CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

V44m N10 3004
152 H5.35
Sangar, Mohan Singh, Bl
Vishal bharat.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

V44mN10
152H5.35

3004

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❄ ❄ ❄ ❄ ❄

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (जनवरी, १९४५)

१. प्रथम प्रणाम १, २. किसानोंका क्रान्ति-गीत २, ३. अमर शहीद ३, ४. अरे, कहे जा खरी-खरी तू ६, ५. नैतिक पतनकी समस्या ७, ६. रियासतों और उनकी सन्धियाँ ९, ७. विराम-बिन्दु ११, ८. प्राचीन यूनानकी झलक १५, ९. बाण भट्टकी आत्म-कथा १७, १०. गीत २१, ११. अमरीकाकी कृषि-व्यवस्था और भारत २२, १२. आलोचनामें 'व्यक्तिवाद' २४, १३. पथकी कथा २६, १४. धर्म और ईश्वर २७, १५. मानवताका मूल्य २८, १६. भारतीय नैरोबी २९, १७. काव्य-साधना ३१, १८. इसलिए तू याद आए ३२, १९. चुंकिंग-यात्रा ३३, २०. घिर चलो हे स्नेहके घन ३६, २१. चिट्ठी-पत्री ३७, २२. समालोचना ३९, २३. सम्पादकीय ४१।

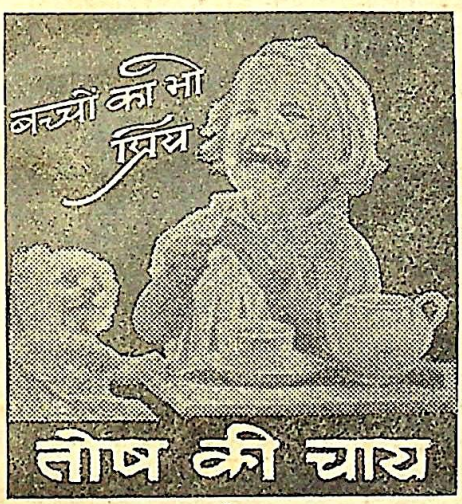

गत २५ वर्षोंसे खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, बाजार-भाव, आरोग्य-ज्ञान, व्यापारादि विषयक सुप्रसिद्ध मराठी मासिक 'उद्यम'का हिन्दी-संस्कार।

हिन्दी उद्यम

उक्त विषयोंपर व्यावहारिक लेख सरल हिन्दीमें उद्यममें प्रकाशित होते हैं।

आज ही 'हिन्दी उद्यम'का नमूना-अंक देखिए

नमूना-अंकका मूल्य केवल १) रु० है।

किन्तु शीघ्र ही वार्षिक मूल्य ५॥) रु० भेजकर स्थाई ग्राहक बननेवाले सज्जनोंको नमूना-अंक तथा १५ जनवरी '४५को प्रकाशित होनेवाला 'गन्ना-गुड़-शक्कर' विशेषांक भी उसी मूल्यके अन्तर्गत भेजे जायँगे।

आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाइए।

मैनेजर—उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपूर।

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—जो अपने क्षेत्रमें मूर्धन्य स्थान पा चुके हैं।

१ **नवयुगके गान**—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १।)

२ **सुमित्रानन्दन पन्त और गुंजन** १॥)

३ **शासन-शब्द-संग्रह**—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)

४ **पृथ्वीराजकी आँख**—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १।)

५ **गीता-परिचय**—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)

६ **ग्राम-चिन्तन**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)

७ **अश्वपरीक्षा**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)

८-११ **ग्राम-पुस्तकालय-माला**—मूल्य प्रति पुस्तक =)

१. मधुमक्खी २. जंगल ३. हमारा देश ४. सफ़ाई

प्रकाशित हो रहे हैं : : प्रतीक्षा करें

विक्रमार्चन—हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ एकांकी नाटक-लेखकोंके विक्रमादित्य-विषयक सात एकांकी नाटकोंका अत्यन्त कलापूर्ण संग्रह २)

पदचिन्ह—प्रसिद्ध कवि एवं नाटक-लेखक श्री जगन्नाथ-प्रसाद मिलिन्दका उच्चकोटिका सामाजिक नाटक १।)

चिन्तन-कण—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'के विचारपूर्ण निबन्धोंका संग्रह १)

नजूमिस्तान—श्री युधिष्ठिर भार्गव-लिखित उच्चकोटिकी हास्य पुस्तक १।)

शहरका अन्देशा—श्री किरणविहारी 'दिनेश'-लिखित हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण पुस्तक १।)

महादेवीकी काव्य-साधना—श्री 'सुमन' - लिखित उच्चकोटिकी आलोचना-पुस्तक १।)

पागल—खलील जिब्रानकी संसार-प्रसिद्ध पुस्तक 'दि मैड मैन'का सचित्र अनुवाद १)

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्त का प्रारम्भ

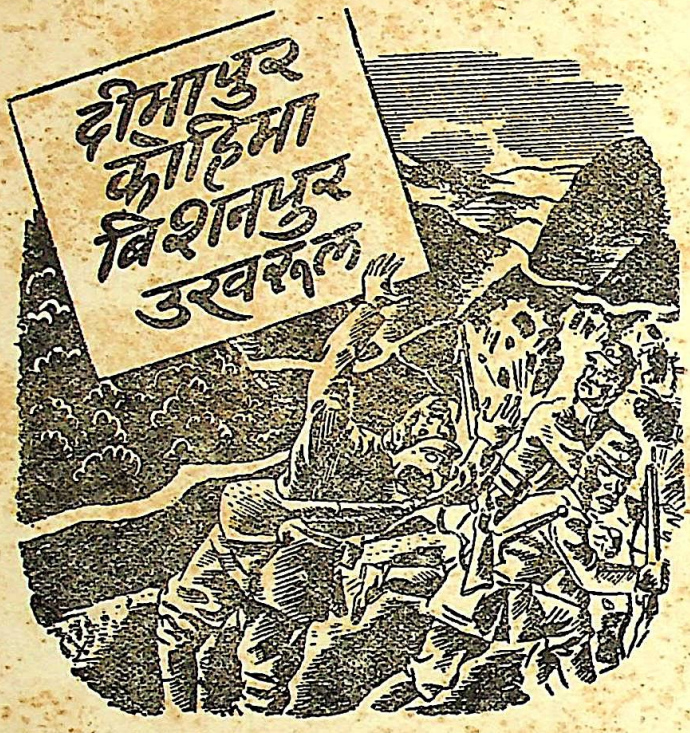

आपको ये नाम याद होंगे? कुछ ही दिन पहिले ये नाम प्रमुख समाचारों के शीर्षक होते थे। दीमापुर के पास रेलवे लाइन बहुत ख़तरे में थी। कोहिमा स्थित हिन्दुस्तानी फ़ौज जापानियों की भारी तादाद के कारण घिर गई थी। जापानी फ़ौज इम्फाल के मैदान में घुस आई थी और बिशनपुर के उत्तर और दक्षिण में पहुँची हुई थी। उखरूल अरक्षित था ....

V44-N10
1945.35

यह सब कुछ अब पुराना क़िस्सा हो गया। जापानी हार खा चुके और सिर पर पाँव रख कर भाग रहे हैं। आज वह किसी जगह दीमापुर से १५० मील पास भी नहीं। नागा लोग कोहिमा में वापस आ गये—गोलियों से छिदे और बमों से खुदे हुए इस पहाड़ी क़स्बे को नये सिरे से बसाने की कोशिशें जारी हैं। बिशनपुर की पहाड़ियों में उस जापानी फ़ौज की हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं जिस फ़ौज को वह अविजेय बताते थे....यह उनके अन्त का प्रारम्भ है। यह पढ़ते वक़्त....उन दिलेर बहादुरों का ख़्याल कीजिए जिनकी बदौलत ये जीतें संभव हो सकीं।

हमारी फ़ौजें साबीत कर चुकीं
कि जापानी न देवता हैं,
न अविजेय श्रेष्ठ पुरुष।

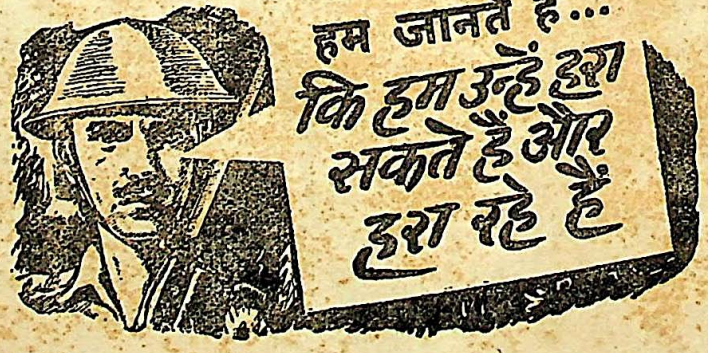

राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे द्वारा प्रकाशित

AAA 1305 Hindi
SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 3004
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (जनवरी, १९४५)

१. प्रथम प्रणाम १, २. किसानोंका क्रान्ति-गीत २, ३. अमर शहीद ३, ४. अरे, कहे जा खरी-खरी तू ६, ५. नैतिक पतनकी समस्या ७, ६. रियासतों और उनकी सन्धियाँ ९, ७. विराम-बिन्दु ११, ८. प्राचीन यूनानकी झलक १५, ९. बाण भट्टकी आत्म-कथा १७, १०. गीत २१, ११. अमरीकाकी कृषि-व्यवस्था और भारत २२, १२. आलोचनामें 'व्यक्तिवाद' २४, १३. पथकी कथा २६, १४. धर्म और ईश्वर २७, १५. मानवताका मूल्य २८, १६. भारतीय नैरोबी २९, १७. काव्य-साधना ३१, १८. इसलिए तू याद आए ३२, १९. चुंकिंग-यात्रा ३३, २०. घिर चलो हे स्नेहके घन ३६, २१. चिट्ठी-पत्री ३७, २२. समालोचना ३९, २३. सम्पादकीय ४१ ।

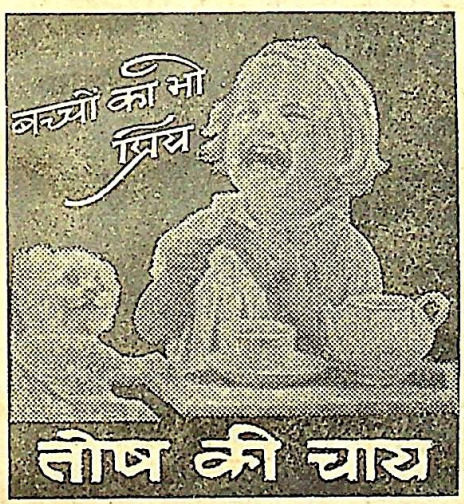

गत २५ वर्षोंसे खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, बाजार-भाव, आरोग्य-ज्ञान, व्यापारादि विषयक सुप्रसिद्ध मराठी मासिक 'उद्यम'का हिन्दी-संस्कार।

हिन्दी उद्यम

उक्त विषयोंपर व्यावहारिक लेख सरल हिन्दीमें उद्यममें प्रकाशित होते हैं।

आज ही 'हिन्दी उद्यम'का नमूना-अंक देखिए

नमूना-अंकका मूल्य केवल १) रु० है।

किन्तु शीघ्र ही वार्षिक मूल्य ५॥) रु० भेजकर स्थाई ग्राहक बननेवाले सज्जनोंको नमूना-अंक तथा १५ जनवरी '४५को प्रकाशित होनेवाला 'गन्ना-गुड़-शक्कर' विशेषांक भी उसी मूल्यके अन्तर्गत भेजे जायँगे।

आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाइए।

मैनेजर—उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपूर।

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—जो अपने क्षेत्रमें मूर्धन्य स्थान पा चुके हैं।

१ **नवयुगके गान**—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १।)

२ **सुमित्रानन्दन पन्त और गुंजन** १॥)

३ **शासन-शब्द-संग्रह**—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)

४ **पृथ्वीराजकी आँख**—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १।)

५ **गीता-परिचय**—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)

६ **ग्राम-चिन्तन**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)

७ **अश्वपरीक्षा**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)

८-११ **ग्राम-पुस्तकालय-माला**—मूल्य प्रति पुस्तक =)

१. मधुमक्खी २. जंगल ३. हमारा देश ४. सफ़ाई

प्रकाशित हो रहे हैं : : प्रतीक्षा करें

विक्रमार्चन—हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ एकांकी नाटक-लेखकोंके विक्रमादित्य-विषयक सात एकांकी नाटकोंका अत्यन्त कलापूर्ण संग्रह २)

पदचिन्ह—प्रसिद्ध कवि एवं नाटक-लेखक श्री जगन्नाथ-प्रसाद मिलिन्दका उच्चकोटिका सामाजिक नाटक १।)

चिन्तन-कण—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'के विचारपूर्ण निबन्धोंका संग्रह १)

नजूमिस्तान—श्री युधिष्ठिर भार्गव-लिखित उच्चकोटिकी हास्य पुस्तक १।)

शहरका अन्देशा—श्री किरणविहारी 'दिनेश'-लिखित हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण पुस्तक १।)

महादेवीकी काव्य-साधना—श्री 'सुमन' - लिखित उच्चकोटिकी आलोचना-पुस्तक १।)

पागल—खलील जिब्रानकी संसार-प्रसिद्ध पुस्तक 'दि मैड मैन'का सचित्र अनुवाद १)

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि इतना जल्द मुझे आराम हो जायगा।

आखिरकार, मुझे खाँसीकी दवा मिल ही गई, जो शीघ्र आराम करनेके साथ-साथ गुणकारी भी है।

छाती और फेफड़ों-सम्बन्धी शिकायतोंको दूर और आराम करने तथा उन्हें सुरक्षित बनाये रखनेके लिए टस्सानलसे बढ़कर निर्दोष, अचूक या लाभकारी दूसरी कोई दवा नहीं।

T3

TUSSANOL
COUGH SYRUP

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री 'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला', मू० ४)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—महात्मा गांधीकी प्रस्तावना-सहित, मू० भाग पहला ३), भाग दूसरा ३)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

भक्तियोग; प्रेमयोग; प्राच्य और पाश्चात्य; आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग; परिव्राजक—प्रत्येकका मू० ॥=)।

मेरे गुरुदेव—मू० ।=); शिकागो-वक्तृता—मू० ।=); वर्त्तमान भारत—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण-आश्रम, नागपुर

(सी० पी०)

राष्ट्रभाषा हिन्दीका महान प्रकाशन

गांधी-अभिनन्द-ग्रन्थ

सम्पादक

पण्डित सोहनलाल द्विवेदी

भूमिका-लेखक

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

संरक्षक तथा कोषाध्यक्ष

श्री घनश्यामदासजी बिड़ला

इतना मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूं कि ग्रन्थ के सम्पादनमें काफ़ी परिश्रम उठाया गया है।

—महात्मा गांधी

मूल्य दस रुपये

प्रकाशक

गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ कार्यालय

९२, लाटूश रोड, लखनऊ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नेशनल स्टूडियोज़ लिमिटेड

चित्रपट-कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार ३०००) द्वितीय पुरस्कार १०००)

तीन अन्य पुरस्कारोंके लिए १०००)

आप फिल्मको देखते ही हैं और कभी-कभी आप सोचते भी होंगे कि इन पुरानी कहानियोंको छोड़कर कोई एकदम नये विषयकी कहानी फिल्मके लिए चुनी जाती तो कैसा रहता! आप कहानी लिखते रहते हैं, तो और भी अच्छा। यदि नहीं, तो भी क्या चिन्ता! कहानी सुनना और कहना तो हरएक आदमी जानता है। लिखिये एक कहानी। मगर विस्तृत हो और व्यावहारिकता-शून्य न हो। आकर्षक घटनाएँ दीजिए और चारित्रोंका विकास अच्छी तरह दिखाइये। वर्त्तमान भारतीय जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली कहानियाँ विशेष रुचिकर होंगी।

सिनेरियो जैसी टेकनिकल चीज़ हम नहीं माँगते। बस, यथास्थान परिस्थितियोंका निर्देश कर दीजिए और महत्त्वपूर्ण कथोपकथन लिख डालिये। गीत लिख सकें, तो सुन्दर, नहीं तो यही बता दीजिए कि गीत कहाँ-कहाँ रखे जायँ और उनका आशय क्या हो।

भाषा चाहे हिन्दी हो, चाहे उर्दू या अंगरेज़ी। प्रत्येक कहानीका कापीराइट नेशनल स्टूडियोज़को होगा, पुरस्कृत रचनाओंके अतिरिक्त कोई रचना किसी काममें आई, तो उचित पारितोषिक भेंट किया जायगा।

नेशनल स्टूडियोज़के अधिकारी तथा कार्यकर्त्ता इस प्रतियोगितामें भाग नहीं लेंगे।

लेडी रामाराव, श्री ऐस० ब्रेलवी तथा श्री ए० एस० परीभाई-जैसे निर्णायकोंके नाम ही आपको प्रोत्साहित करेंगे कि आप अपनी अमूल्य रचना भेजें। निर्णायकोंका निर्णय अन्तिम और मान्य है।

प्रवेश निःशुल्क है। कोई विशेष बात जानना चाहें तो पत्र-व्यवहार करें।

लिफाफेके ऊपर कोनेमें **'कहानी-प्रतियोगिता'** लिखा होना चाहिये। अधिकसे अधिक ३१ जनवरी १९४५ तक इस पतेपर कहानी भेजिए।

नेशनल स्टूडियोज़ लि०,

पो० बाक्स नं० ११३३, बम्बई

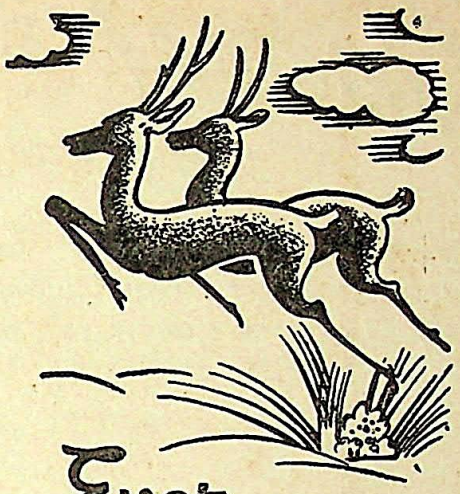

Ever Lifeful

NEUROLECITHIN

A True Nerve Tonic

शरीर और मनकी निस्तेजता दूरकर प्रफुल्लता तथा उत्साह देता है। स्नायु-दुर्बलता, स्मरणशक्तिहीनता, अग्निमन्द, अनिद्रा और श्रान्ति आदि रोगोंमें **निउरोलेसिथिन** बहु परीक्षित, विशेष उपकारी औषध है।

इण्डियन हेल्थ इन्स्टिट्यूट एण्ड लेबोरेटरी लि०

बेलियाघाटा मेन रोड,

कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Godrej गोदरेज का अभिनंदन

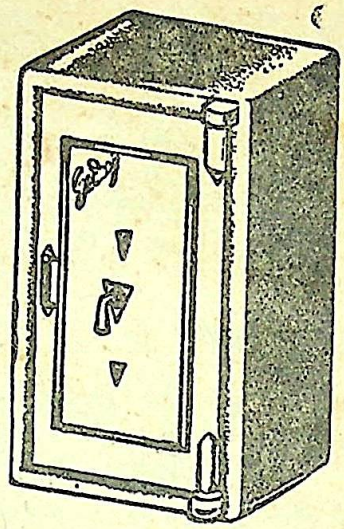

बम्बईमें हृदयको हिला देनेवाले धड़ाकेसे लगी धधकती आगकी लपटोंमें गोदरेजकी तीजोरियोंने जो अभूतपूर्व सेवाएँ की हैं, उनके सम्बन्धमें प्राप्त अनेक प्रशंसापत्रोंमें से केवल एक (स्थानाभावके कारण) यहाँ दिया जा रहा है।

ADAMJI BHAIJI RANGWAL.
करीमजी बिल्डिंग, काजी सैयद स्ट्रीट,
बम्बई, २७ जून १९४४.

मेसर्स गोदरेज एण्ड बोइस मे० कं०, लि०,
लालबाग, परेल, बम्बई।

प्रिय महाशय,

अभी हाल के भीषण विस्फोट की विनाशकारी अग्नि की लपटों में हमारी 'गोदरेज' की तिजोरियां तीन दिन और रात तक बराबर पड़ी रह गई थीं। किन्तु जब अग्नि शांत होने पर वे तिजोरियां हटाई और खोली गईं, तो हमें यह देखकर अतीव आनन्द हुआ कि हमारी चीजें सब सही सलामत थीं। इन तिजोरियों को हम गत २५-३० वर्षोंसे व्यवहार कर रहे हैं। इस प्रकार की उत्तम तिजोरियाँ बनाने के लिए हम आपके कितने कृतज्ञ हैं, आप इसीसे अनुमान लगा सकते हैं।

आपके विश्वासी,
आदमजी भाईजी रंगवाला के लिये,
(सही) वाई० ई० रँगवाला।

गोदरेज एण्ड बोयस मे न्यु. कं०, लि०

बम्बई-कलकत्ता-मद्रास-दिल्ली-कानपूर-हैदराबाद (दक्षिण)

एजेन्सियां समस्त भारतमें हैं।

कासाबिन

श्वास और खांसीके रोगोंमें आशु फलप्रद

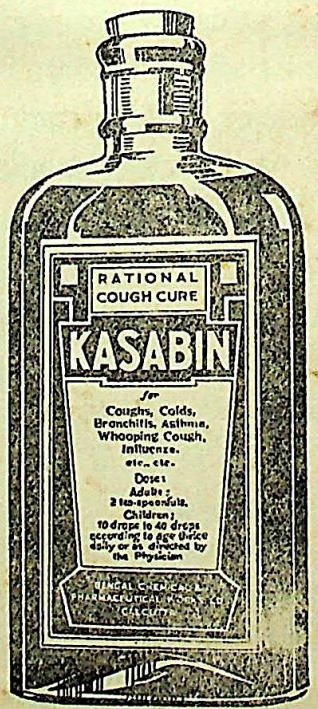

जिन्हें श्लेष्माका घात, ज़रा-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खांसी, टान्सिलका प्रदाह या दमा आदिमें उपद्रवोंका प्रकोप हो, वे सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातिरिक्त उपकार लाभ करेंगे।

कासाबिन बच्चोंको भी निर्विघ्न रूपसे दिया जाता है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमर शहीद स्व० फुलेनाप्रसाद श्रीवास्तव और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती तारारानी श्रीवास्तव

(परिचयके लिए देखिए पृष्ठ ३-६)

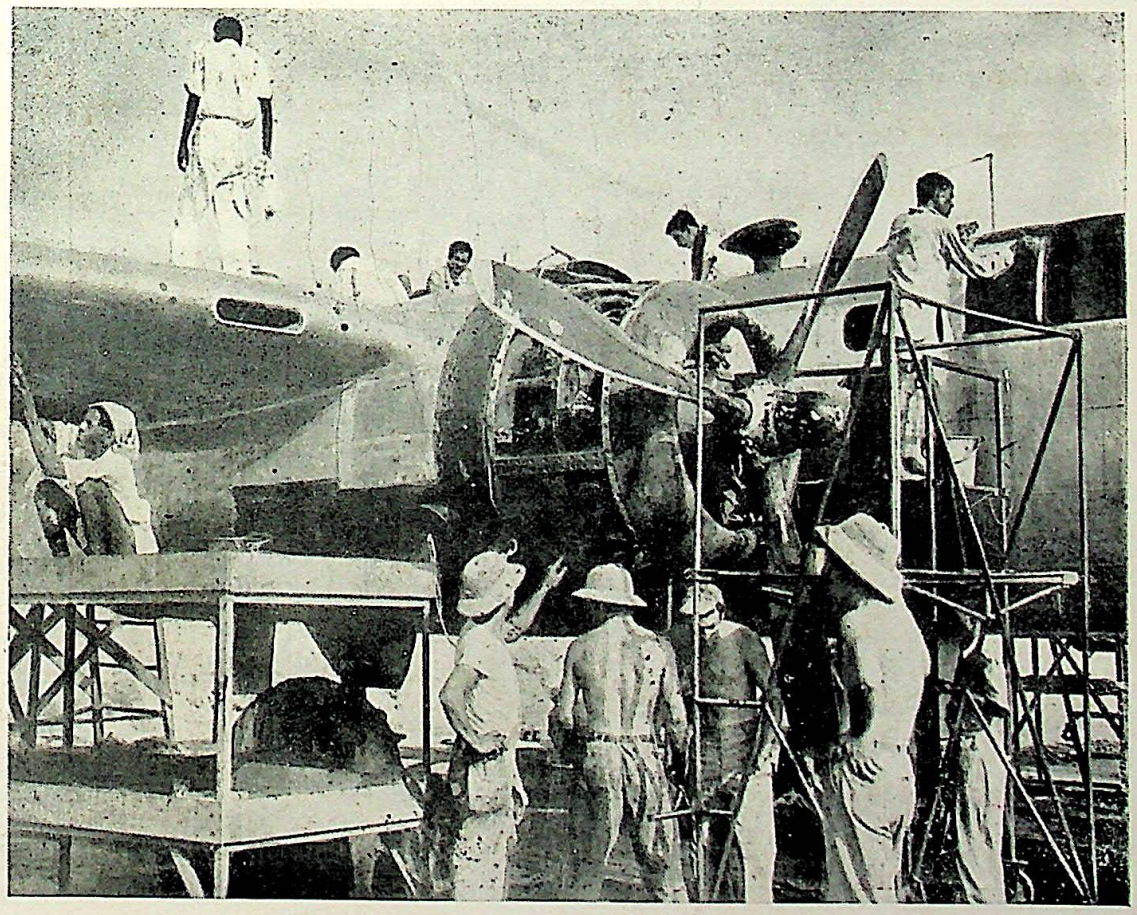

भारतके एक हवाई-जहाज़के कारखानेमें अमरीकन इंजीनियरोंकी देख-रेखमें भारतीय कारीगर एक 'बी-२५' यानकी मरम्मत कर रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता] 'सुजलां सुफलां शस्य-श्यामलाम्' [श्री मणीन्द्रभूषण गुप्त

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक १] कलकत्ता, जनवरी, १९४५ [पूर्णांक २०५

प्रथम प्रणाम

श्री सोहनलाल द्विवेदी

प्रथम प्रणाम, सतत प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों-भिखमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ,
शोषित जनके, पीड़ित जनके करको थाम,
बढ़े जा रहे उधर, जिधर है मुक्ति प्रकाम,
प्राण उच्छ्वसित होते होनेको बलिदान,
नहीं देख सकते जगमें अन्याय-वितान,
जो घावोंपर मरहमका कर देते काम,
ज्ञात नहीं हैं जिनके नाम, उन्हें प्रणाम !
भेद गया है दीन-अश्रुसे जिनका मर्म,
मुहताजोंके साथ न जिनको आती शर्म,
किसी देशमें, किसी वेशमें करते कर्म,
मानवताका संस्थापन ही जिनका धर्म !
कोई कुल हो, जाति, वर्ण, कोई भी धाम,
जहाँ-जहाँ हैं दीनबन्धु अपने अभिराम,
राष्ट्रनियन्ता सजग सुकवि शिल्पी गुणग्राम !
लेखक, वक्ता, गायक, नेता गौरवधाम !
उन्हें प्रणाम ! कोटि प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों-भिखमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ—
जिनके गीतोंके पढ़नेसे मिलती शान्ति,
जिनकी तानोंके सुननेसे झिलती भ्रान्ति,
छा जाती मुखमण्डलपर यौवनकी कान्ति,
जिनकी टेकोंपर टिकनेसे टिकती क्रान्ति !
मरण मधुर बन जाता है जैसे वरदान,
अधरोंपर खिल जाती है मादक मुसकान,
नहीं देख सकते जगमें अन्याय - वितान,
प्राण उच्छ्वसित होते होनेको बलिदान !
जो घावोंपर मरहमका कर देते काम !
उन्हें प्रणाम ! प्रथम प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों - भिखमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ—
उन्हें, जिन्हें है नहीं जगतमें अपना काम,
राजासे बन गए भिखारी तज आराम,
दर-दर भीख माँगते, सहते वर्षा-घाम,
दो सूखी मधुकरियाँ दे देतीं विश्राम !
जिनकी आत्मा सदा सत्यका करती शोध,
जिनको है अपनी गौरव-गरिमाका बोध,
जिन्हें दुखोपर दया, क्रूरपर आता क्रोध,
अत्याचारोंका अभीष्ट जिनको प्रतिशोध !
प्रणत प्रणाम ! सतत प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों - भिखमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ—
यौवनमें ही लिया जिन्होंने है वैराग,
मातृभूमिका जगा जिन्हें ऐसा अनुराग !
नगर-नगरकी, ग्राम-ग्रामकी छानी धूल,
समझे जिससे सोई जनता अपनी भूल,
सभी जातिमें, सभी देशमें, सभी मुकाम,
बने हुए हैं इन्हीं शोषितों ही के धाम,
उन्हें प्रणाम ! सतत प्रणाम !
जिनके ऊपर है जगकी रक्षाका भार,
जिनकी पीठ-कमरपर ही निर्भर व्यापार,
जिनके अस्थि-पंजरोंपर हैं खड़े मकान,
क़िले, महल, ये दुर्ग, राज्य, प्राचीर उठान,
जिनको रोटी-नमक न होते कभी नसीब,
जिनको युगने बना रखा है सदा ग़रीब,
उन भूखोंको, विद्वानोंको, जो दिन-रात,
इन्हें जगानेकी फेरी देते हैं प्रात,
सीखा जिनसे जिन्होंने सोहनका मन्त्र,

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Repository

दाँत न तोड़े, विष भी खींचा, रचकर तन्त्र,
दोष निकाला, दोषीको कर दिया स्वतन्त्र,
पक्षीको भी किया नहीं परवश-परतन्त्र,
उन्हें प्रणाम ! प्रणत प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों-भिखमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ—
ज़ंजीरोंमें कसे हुए सिकचोंके पार,
जन्मभूमि - जननीकी करते जय - जयकार,
सही कठिन हथकड़ियोंकी, बेतोंकी मार,
आज़ादीकी कभी न छोड़ी टेक - पुकार,
स्वार्थ, लोभ, यश, कभी सका है जिन्हें न जीत,
जो अपनी धुनके मतवाले, मनके मीत,
ढानेको साम्राज्यवादकी दृढ़ दीवार,
बार - बार बलिदान चढ़े प्राणोंको वार,
बन्द सीकचोंमें जो हैं अपने सरनाम,
उन्हें प्रणाम ! प्रणत प्रणाम !
कोटि-कोटि नंगों - भिगमंगोंके जो साथ,
खड़े हुए हैं कन्धा जोड़े, उन्नत माथ—
उन्हीं कर्मठों, ध्रुवधीरोंको है प्रतियाम—
कोटि प्रणाम !
जो फाँसीके तख्तोंपर जाते हैं झूम,
जो हँसते - हँसते सूलीको लेते चूम,
दीवारोंमें चुन जाते हैं जो मासूम,
टेक न तजते, पी जाते हैं विषका धूम !
उस आगतको, जो कि अनागत दिव्य भविष्य,
जिसकी पावन ज्वालामें सब पाप हविष्य !
सब स्वतन्त्र, सब सुखी जहाँपर, सुख विश्राम !
नवयुगके उस नव - प्रभातको कोटि प्रणाम !

किसानोंका क्रान्ति-गीत

श्री निरंकारदेव सेवक

हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

बंजर-रेगिस्तानोंमें भी हम हरे खेत लहराते हैं ;
हिम-वर्षा-लू-लपटोंसे लड़कर भी अनाज उपजाते हैं ।
पर हम सन्तोषी, रक्षामें जिसकी तन-प्राण सुखाते हैं ;
वह सब पीठोंपर लाद-लाद शहरोंमें पहुँचा आते हैं !
इसके क्रय-विक्रयके धनपर बन जानेवाले लखपतियो !
यह देश-विदेशों तक फैला सारा व्यापार हमारा है ।
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

भर-भरकर कोष रईसोंके, ये नगर बसाए हैं हमने ;
अलकापुर औ' नन्दन-वनके सुख-स्वप्न दिखाए हैं हमने ।
ये ऊँचे-ऊँचे गढ़-गुम्बद, जिनसे दहशत खाते हैं हम ;
अपने ही त्याग-तपस्याके बलपर चुनवाए हैं हमने ।
सोने-चाँदीसे निर्मित यह, हो देख जिन्हें सुरपति लज्जित ;
इन वैभवशाली महलोंका सारा शृंगार हमारा है ।
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

माना हम सदियोंसे भूखे, नंगे तन हैं रहते आए ;
अपने दुख-संकटको पिछले कर्मोंका फल कहते आए ।
भूपति कहलानेवालोंके निर्दय अत्याचारोंको हम ;
अपने दुर्दिन-दुर्भाग्य समझ नित शीश झुका सहते आए ।
पर आज हमारी युग-युगसे सोई चेतनता जाग उठी ;
धनपतियोंका संचित सारा वैभव-भण्डार हमारा है ।
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

हम दुखियोंकी दुनियामें तुम यह धर्मोंके उपदेश न दो ;
पंडित-मोमिन-पदरियो, अब जप-तप-संयमका नाम न लो ।
हम मान-महत्ता क्या जानें इंजील-क़ुरान-पुराणोंकी ?
ईश्वर औ' धर्म नहीं उसका, खानेको जिसके पास न हो ।
हम लड़े मौतसे आजीवन, पर तुम्हें जुटाए सुख-साधन !
खुद अपने ही मन-प्राणोंपर यह अत्याचार हमारा है ।
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

हम सबके भय-शंकाओंने परमेश्वरका निर्माण किया ;
हम सबकी दुर्बलताओंने धर्मोंको जीवन-दान दिया ।
हम सबकी दुश्चिन्ताओंने भूतों-प्रेतोंके लोक रचे ;
धर्मोंके ठेकेदारोंको देवता हमींने मान लिया ।
जगमें ईश्वरके प्रतिनिधियो, ऐ धर्म-धुरीण मठाधीशो !
तुम सबकी सत्तापर सोचो, कितना उपकार हमारा है ?
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

यह दूर क्षितिज तक लहराते धरतीके धान हमारे हैं ;
यह सूर्य-चन्द्र-आकाश-वायु, जलयान-विमान हमारे हैं ।
यह पृथिवीपर बहनेवाले मीठे-खारी जलके सोते ;
यह सागर, यह नभको छूते गिरि उच्च महान हमारे हैं ।
नदियाँ-नहरें, सड़कें-रेलें, खम्भे-पुल-कलें-कारखाने ;
यह नगर-गाँव-पुर-क़स्बोंका सारा संसार हमारा है ।
हम दुर्बल-दीन किसान नहीं, भूपर अधिकार हमारा है ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमर शहीद

बनारसीदास चतुर्वेदी

एक ओर थी उस अटल व्रतीकी खुली हुई छाती, दूसरी ओर दानवी शक्तियोंका जमघट। उधरसे आवाज़ हुई धाँय और इधरसे गोली लगी—नम्बर एक। फिर आवाज़ हुई धाँय और गोली लगी—नम्बर दो। इस प्रकार एकके बाद एक गोली चली और आठ गोलियाँ उस शरीरको वेध गईं। नवीं गोलीसे सिरके टुकड़े-टुकड़े हो गए और निर्जीव शरीर धराशायी हो गया—बल्कि यों कहिए कि रण-प्रांगणमें वह सिंह सदाके लिए सो गया। भारतीय सत्याग्रहके इतिहासमें यद्यपि अनेक सिपाहियोंने वीर-गति पाई है; पर छपरा (बिहार) के फुलेनाप्रसाद श्रीवास्तवके प्रयाणपर संसारके किसी भी अहिंसक योद्धाको ईर्ष्या हो सकती है। लाठीसे उनके हाथ चकनाचूर हो चुके थे और भाला भी लग चुका था; पर वह वीर अपने स्थलपर अटल खड़ा हुआ था। नवीं गोलीसे उसकी मृत्यु हुई।

पर क्या सचमुच उनकी मृत्यु हुई?

कौन कहता है कि फुलेनाप्रसाद मृत हो चुके? कोई कल्पनाहीन अदूरदर्शी व्यक्ति ही ऐसी भूल कर सकता है। वास्तवमें मृतक समान तो हम हैं, जो आदर्शहीन जीवन व्यतीत करते हैं, जो इस क्षणभंगुर संसारमें अपनेको चिरस्थायी समझते हैं, जो भोग-विलास और प्रमादयुक्त ज़िन्दगी बिताते हैं; जिनके सामने कोई ध्येय नहीं, दिलमें कोई आग नहीं, हृदयमें कोई तड़प नहीं, रगोंमें खून नहीं और जिगरमें जोश नहीं। हाँ, हम लोग मुर्दे हैं और फुलेनाप्रसाद, जिन्होंने मृत्युको हँसते-हँसते वरमाल-सा अंगीकार किया, अमर हैं। पर क्या वह वीर-गति जो बड़े-से-बड़े योद्धाके लिए ईर्ष्याकी वस्तु है, उस अमर शहीदको अकस्मात् ही मिल गई थी? नहीं, हर्गिज़ नहीं; वह तो उनकी उत्कट साधनाका परिणाम थी—मानो उनका समस्त जीवन उसकी तैयारीके लिए अर्पित था। अमरता ऐसी चीज़ नहीं, जो किसी बाज़ारमें और इतनी सस्ती मिल सके। उस महापुरुषका सजीव जीवन-चरित तो कोई उनके पथका पथिक ही लौह-लेखनीसे लिखेगा। हमारे-जैसे कापुरुषके काँपते हुए हाथमें भला वह ताक़त कहाँ, जो भारतीय इतिहासकी स्मृतिमें अपनी अमिट रेखा खींच जानेवाले उस वीर-शिरोमणिका रेखा-चित्र भी खींच सके?

प्रातःकाल चार बजेका समय है। जाड़ेके दिन हैं। फुलेना बाबू उठकर नित्यकमसे निवृत्त हो, सरसोंका तेल मलकर, हज़ार-डेढ़-हज़ार डंड-बैठक लगा रहे हैं। तत्पश्चात् मुग्दरों और डम्बलोंका नम्बर आता है। शरीर खूब कस गया है। उन वृषभ-स्कन्ध तथा विशाल वक्षस्थल और मांसल भुजाओंपर कोई पेशेवर पहलवान भी मुग्ध हो सकता है। व्यायामके बाद वे चने खाते और तत्पश्चात् दूध पीते हैं। फिर अपने देशसेवा-सम्बन्धी कार्यमें लग जाते हैं। कभी किसानोंका काम है, तो कभी मज़दूरोंका। दिन-भर परिश्रम करके वे अपने-आपको थका डालते हैं। ग्यारह बजे सोना और चार बजे उठ बैठना उनका नित्यका नियम है।

रातका वक्त है। फुलेना बाबू छतपर निरन्तर टहल रहे हैं। उम्र उस समय चौबीस वर्षकी है। विवाह हुए दो वर्ष हुए और तत्पश्चात् दो वर्ष गृहस्थका जीवन व्यतीतकर उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया है। उनका विश्वास है कि सन्तान-पालन और देश-सेवा दोनों एक साथ नहीं हो सकते। दोनोंको एक साथ ईमानदारीसे नहीं चलाया जा सकता। बराबर वे गुन-गुना रहे हैं—'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।' फिर कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी कविताका पाठ करते हैं:—

न तन-सेवा न मन-सेवा, न जीवन और धन सेवा;
मुझे है इष्ट जन-सेवा, सदा सच्ची भुवन-सेवा।

तत्पश्चात् वे संस्कृत-श्लोक कहते हैं:—

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवं
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनम्।

इस तरह जाप करते हुए रातकी घड़ियाँ गुज़र जाती हैं। प्रातःकाल नलमें पानी आते ही स्नान करके वे निर्विकार रूपमें उपस्थित हो जाते हैं। फिर वही व्यायाम आदिका क्रम चलता है।

जीवनपर एक दृष्टि

'तेजस्विनां न वयःसमीक्षते'—अर्थात् तेजस्वी आदमियोंकी उम्र नहीं देखी जाती, और—

One crowded hour of glorious life,
Is worth an age without a name.

अर्थात् गौरवपूर्ण जीवनका एक व्यस्त घण्टा कीर्ति-रहित युगोंसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। उस अमर शहीदने अपने जीवनमें कुल जमा तीस वसन्त ही तो देखे थे। उनके महान, किन्तु संक्षिप्त, जीवनकी कुछ झलक ही यहाँ दिखाई जा सकती है।

उस भोले-भाले हृष्ट-पुष्ट बालकको देखकर ग्रामवासियोंको परम आनन्द होता। बड़ी-बड़ी काली-काली आँखें, रंग स्वच्छ, शरीर चिकना, सिरपर मनोहारी घुँघराले केश। बच्चोंमें खेलते-खेलते वे खुद पिट जाते; पर किसीको स्वयं नहीं मारते। जब आठ वर्षके थे, तो आम तोड़ते वक्त एक लड़केने उनके सिरपर एक छोटी-सी लाठी दे मारी, जिससे सिर फट गया और गाँव-भरमें कोहराम मच गया। जब घरके लोग उस अपराधी बालकपर नाराज़ हुए, तो उन्होंने हँसकर कह दिया—'ग़लती उसकी नहीं, मेरी थी। जिधर आम तोड़नेकी लकड़ी फेंकी जा रही थी, भूलसे मैं उधर चला गया। बस, लग गई।'

एक बार पशुओंके खानेके लिए गेहूँका चारा काट रहे थे,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

तो आप भी गए और लगे काटने। अँगुली काट डाली और बड़े मज़ेमें घरके पीछे बागमें बैठकर खून गिरा रहे थे कि उधरसे उनकी बुआ आ निकलीं और रो उठीं। उन्हें कलेजेसे चिपटाकर वे उस खूनको देख सहमी खड़ी थीं, जब कि उन्होंने हँसकर कहा—'देख, कितना लाल है बुआ! इसमें हम अपनी माँकी धोती रँगेंगे।' मिट्टीके गढ़ेमें कटी हुई अँगुलीका खून देखकर घर-भर कराह उठा; पर उनको लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं। फिर उसमें पिताजीने पट्टी बाँधी और वे खेलने चले गए। आज भी पचलखी ग्रामके निवासी उस वीर बालककी याद कर लेते हैं।

बगलमें बस्ता दाबे, उस देहाती सड़कपर अकेले, एक लाइनसे नित्यप्रति छै मील ज़मीन पार करके जाना और आना यही उनके जीवनका क्रम था। न किसीसे बोलना, न चालना। स्कूलके लड़के चिढ़ाते थे—'ओहो, योगिराज हैं आप! हम ग़रीबोंसे क्यों बोलने लगे!' इने-गिने ही साथी थे उनके। और लड़के उन्हें कहते थे झेंपू! बड़े होनेपर उनका कथन था कि मेरी झेंपने ही स्कूली दुराचारोंसे मेरी रक्षा कर दी।

हाईस्कूलकी परीक्षाके समय छोटा भाई इतना बीमार हो गया कि दिन-रात वे उसकी सेवामें जुट गए। उसके परिणाम-स्वरूप वे खुद बीमार पड़ गए और उसी अवस्थामें परीक्षा दी। पर फेल हो गए; जिसपर प्रथम बार ही वे धैर्य खोकर रो पड़े थे, और फिर दूसरे सालकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गए।

उनकी माताजीका कहना है कि घरमें किसीके बीमार हो जानेपर तो सँझले बाबू सब काम छोड़कर उसकी सेवामें लग जाते थे। माँके सिरमें तेल लगाना तो उनका सबसे प्रिय काम था। उमर बढ़नेपर जिन भाभियोंसे बोलते तक नहीं थे (बड़े शर्मीले थे), वे भी यदि बीमार होतीं, तो सिरमें तेल लगाना, दवा पिलाना, रात-भर जागना, यह उन्हींका काम था।

हाईस्कूल पास करनेके बाद वे पटना गए; पर एक साल एफ़० ए० में पढ़कर छोड़ दिया और तबसे बराबर विभिन्न स्थानोंमें रोटीका सवाल हल करते हुए अध्ययन करते रहे। जीवनके विश्वविद्यालयमें उन्होंने जो शिक्षा प्राप्त की, वह अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी, अंगरेज़ीके सिवा बँगला, गुजराती, संस्कृत इन तीन भाषाओंकी अच्छी जानकारी उन्होंने प्राप्त कर ली थी, और उनका संकल्प था कि दक्षिण-भारतकी भाषाओंका भी समुचित ज्ञान प्राप्त करें। जबसे होश सँभाला, अपने पैरों खड़ा होना ही उन्हें अधिक लगा। घरसे पैसा लेना उन्हें अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि एक भाई पटना-कालेजमें और दो भाई हाई-स्कूलमें पढ़ रहे थे। छोटी-सी ज़मींदारीपर १६ व्यक्तियोंका बोझ था।

परदुःखकातरता

वे कभी किसी व्यक्तिका दुःख नहीं देख सकते थे। एक बार वे कहींसे आ रहे थे। देहातमें एक किसानके दरवाज़ेपर ठहरे। बातचीतके बाद उस किसानने कहा—'मेरी बहूके लड़का हुआ है, भइया! पर घरमें चावलका ठीक-ठिकाना नहीं।' उन्होंने अँगुलीकी अँगूठी उतारकर दे दी। घर आनेपर उन्हें बहुत बातें सुननी पड़ीं, क्योंकि वह अँगूठी शादीमें मिली थी। शादीमें ससुरालसे दो-तीन कोट भी मिल गए थे—ऊनी, रेशमी, ओवरकोट इत्यादि—जिन्हें एक-एक करके दूसरोंको दे दिया। उनकी ज़िन्दगीका साथी था कुर्ता, पायजामा, और कठिन जाड़ा हो, तो बण्डी। स्वास्थ्य अच्छा होनेसे उन्हें कोई मौसम सताता नहीं था। युवक होकर इस तरह योगियोंका-सा कष्ट सहन करना, घरवालोंको अच्छा नहीं लगता था। फिर श्रीमती श्रीवास्तव अपनी माँकी एकमात्र सन्तान ठहरीं। सासकी प्रबल इच्छा रहती थी कि दामाद बाबू अच्छी तरह खाएँ-पिएँ, पहनें-ओढ़ें; सो माँसे कुछ रुपया ले श्रीमती श्रीवास्तवने एक बार उनके लिए ओवरकोटका ऊनी कपड़ा खरीदा, जिसे देखकर वे उदास हो गए। शामको टहलनेके बहाने मज़दूरोंके मुहल्लेमें ले गए, जहाँ श्रीमती श्रीवास्तवने देखा कि छोटी-छोटी कोठरियोंमें आगको घेरकर बिल्कुल नंगे बदन आदमी सो रहे हैं। भीषण दृश्य था दरिद्रताका, जिसे देखकर वे सहम गईं। घर आकर श्रीवास्तव-जीने उस कोटके कपड़ेको लौटा दिया और छोटे-छोटे मज़दूर बच्चोंके लिए कपड़े खरीद लाए। इस सच्ची शिक्षाका वे विरोध न कर सकीं। फुलेनाप्रसादके जीवनका यही क्रम था। मुँहसे न कहकर खुद आँखोंसे वे साक्षात परिचय करा देते थे। उनका कहना था कि जिस देशमें लाखों नर-नारी जीवनकी साधारण आवश्यकताओंसे वंचित हैं, करोड़ों आधे पेट दम तोड़ रहे हैं, वहाँ कुछ व्यक्तियोंका ऐशो-आराममें फँसा रहना घोर पाप है, जघन्य अपराध है।

उनका व्यक्तित्व

उस तेजस्वी पुरुषके असाधारण व्यक्तित्वको शब्दोंमें बाँध देना कोई आसान काम नहीं। जिस अमर आत्माके प्रयाणके ४८ घण्टे बाद भी शरीर सजीव-सा लग रहा था, चितापर रखे हुए भी जिनके मुँहसे ऐसा नहीं मालूम होता था कि कुछ हुआ है, मूँछें ऐंठी हुई थीं, काली आँखें खुली हुई थीं, चेहरे और आँखोंपर मुस्कराहट थी, उसके संयमकी कल्पना ही की जा सकती है। मानो उन्होंने अपने-आपको कठोर नियमोंमें आजके ही लिए कसा था। उनका भोजन-सम्बन्धी नियम, जो किसी भी ब्रह्मचर्य-व्रतधारीके लिए अनिवार्य है, इसी पूर्णाहुतिके लिए था। वे प्रायः गेहूँका दलिया खाते थे, दूध और फलोंका सेवन करते थे और रातमें बिना नमकका खाना खाते थे। उनका मुस्कराता हुआ चेहरा उनके अन्तस्तलका प्रतीक था। संक्षेपमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि जो अमरता उन्हें मिली, वह उनके सम्पूर्ण जीवनकी साधका अवश्यम्भावी परिणाम थी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उनकी अर्द्धांगिनी

अमर शहीद फुलेनाप्रसादका यह रेखाचित्र अधूरा ही रह जायगा, यदि उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती तारारानीका कुछ वृत्तान्त यहाँ न दिया जाय। श्रीमती तारारानीमें जो-कुछ भी योग्यता, संगठनशक्ति अथवा कार्यशीलता है, उसका श्रेय सर्वांश में उन अमर शहीदको ही है। जो बात रमाबाई रानाडेके विषयमें कही जाती थी कि वे अपने पति महामति रानाडेकी सर्वोत्तम स्मारक थीं, वही बात श्रीमती तारारानीके विषयमें भी कही जा सकती है। अपने शेष जीवनका प्रत्येक क्षण श्रीमती तारारानी उन्हींके उद्देश्यकी पूर्तिमें व्यय कर देना चाहती हैं। उन्हें एक ही धुन है, एक ही रट है—यानी चाहे जिस लोकमें वे रहें, उनकी आत्माको सन्तोष हो। वे फुलेनाप्रसादको मृत नहीं मानती हैं और उनकी उपस्थितिको निरन्तर अनुभव करती हैं। उन्हें घोर दुःख और हार्दिक मनोवेदना तब होती है, जब कोई उनकी मृत्युकी बात कहता है।

श्रीमती तारारानी अच्छा लिख लेती हैं, बहुत अच्छा लिख लेती हैं। उनकी भाषामें ओज है, भावपूर्णता है और संवेदनशीलता है। किसी विश्वविद्यालयमें उन्होंने शिक्षा नहीं पाई; पर वे बी० ए०, एम० ए० पास महिलाओंसे अधिक जानदार चीज़ लिख सकती हैं। वे दुःखकी उस विश्वव्यापी यूनीवर्सिटीकी एम० ए०, डी० लिट्० हैं, जिसके मुक़ाबले सैकड़ों आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, हारवार्ड और पेरिसके विश्वविद्यालय पानी भरते हैं। जिस महिलाने अपने पतिको नौ-नौ गोलियोंसे छिदते देखा हो, उसकी हार्दिक पीड़ाकी कल्पना कुछ तो की ही जा सकती है; पर कैसे सन्तापका विषय है कि हमारे देशके कितने ही कल्पना-हीन शिक्षित व्यक्ति वह भी नहीं कर पाते!

कैसे भयंकर, प्रलयंकर, किन्तु गौरवशाली दृश्य इस क्षीण-काय बालिकाने देखे हैं? पतिका शव रखा हुआ है। गंगा-तट दूर होनेके कारण बीचमें विश्राम लिया जा रहा है। और उसमें गोलियोंकी प्रगतिके कारण चट्-चट्की आवाज़ हो रही है। सहस्रोंकी भीड़ हो रही है। चितापर पतिदेव रखे हुए हैं। पूज्य माताजी और पितामह पास खड़े हैं। उन्हें डर है कि उनकी वह प्रिय पुत्री आगमें न गिर पड़े। चिताकी लपटोंमें जब उनका पार्थिव शरीर भस्म हो रहा है, वे सूर्य भगवान, अग्निदेव और गंगामाताको क्षण-भरके लिए स्मरण करती हैं और उन्हें मानो उन लपटोंके भीतरसे आकाशकी ओर जाती हुई अपने पतिकी मूर्त्ति दीख पड़ती है। और फिर शहादतके मार्ग-पर पग-पग आगे बढ़नेवाले असाधारण संयमी तथा महाव्रती पतिकी अर्द्धांगिनी बनना भी क्या कोई आसान काम है?

श्रीमती तारारानी किस प्रकार अपने दिन व्यतीत कर रही हैं, बिना पतवारके अपनी नाव किस तरह खे रही हैं और बावजूद तमाम ग़लतफ़हमियोंके किस ढंगपर अपने अत्याचार-पीड़ित प्रान्तमें आशा तथा जीवनका सन्देश भरती जा रही हैं, उसे देखकर आश्चर्य होता है। वे दो बार जेल हो आई हैं, साल-भर कालकोठरीमें एकान्त रहनेका पुरस्कार भी प्राप्त कर चुकी हैं। निर्दय शासनने उनके स्वास्थ्यको चकनाचूर करनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखी; पर इन सबने उनकी प्रबल आत्मा को प्रबलतर बनानेमें सहायता ही दी है। उनके एक हृदय है, जो दुःखितों और पीड़ितोंके अन्तःकरणके गहनतम प्रदेशमें प्रवेश कर सकता है। जब उनके लिखे हुए जेल-जीवनके रेखाचित्र प्रकाशमें आवेंगे, तो निःसन्देह वे हमारे साहित्यकी अमूल्य निधि होंगे। एक प्रसिद्ध कलाकारने कहा था—"God has given me power to paint what I suffer." अर्थात् ईश्वर ने मुझे अपने कष्टोंको चित्रित करनेकी शक्ति दी है।

यदि श्रीमती तारारानी इसी लगन और दृढ़तासे अपने साहित्य-पथपर अग्रसर होती रहीं, तो वे कितनी ही प्रसिद्ध बहनों को ही नहीं, यशस्वी भाइयोंको भी बहुत पीछे छोड़ जायँगी। दुःखोंकी अडिग चट्टानपर खड़ी हुई और चिर-वियोगकी असह्य वेदनाके पहाड़का बोझ अपने हृदयपर धारण किए हुई इस साढ़े चार फीटकी स्त्रीकी साहित्यिक और राजनीतिक सम्भावनाएँ महान हैं। और सबसे बड़ी खूबीकी बात यह है कि उनके लिए साधारण जनताका वह सम्पर्क सुलभ है, जो अपनेको उच्च श्रेणीकी समझनेवाली महिलाओंके लिए प्रायः असम्भव है। उनका हास्य कितनी हृदय-विदारक भयंकर वेदनाको छिपाए हुए है, इसको बहुत कम लोग समझ पाते हैं, इसलिए ग़लत-फ़हमी होनेकी आशंका होती है। परन्तु जिन्हें संसारमें आगे बढ़कर अपने स्वप्नोंको सत्य सिद्ध करना है, वे ग़लतफ़हमीकी चिन्ता क्यों करें? क्या कभी शृगालोंने सिंहपत्नीको ठीक-ठीक समझा है?

अमर शहीदकी स्मृति-रक्षा

अमर शहीद फुलेनाप्रसाद तो अपने जीवनको सार्थक कर गए, और अब वे उस उच्च स्थानको पहुँच गए हैं, जहाँ उन्हें किसीके सार्टीफिकेट या प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं। जो महानुभाव मोहवश ऐसा तर्क करने लगते हैं कि यदि फुलेनाप्रसाद खतरेमें पड़कर अपने प्राणोंकी बाज़ी न लगा देते, तो वे आगे चलकर यह काम कर लेते, वह काम कर लेते; वे वास्तवमें भयंकर भूल करते हैं। जिस प्रकार कुतुबनुमाकी सुई उत्तर और दक्षिणकी ओर आकर्षित होती है, शहीदोंका लक्ष्य उन्हें जीवनके प्रतिक्षणमें अपनी ओर आकर्षित करता रहता है, और उन्हें अपने उद्देश्यसे विरत करना उतना ही असम्भव है, जितना नदियोंको समुद्रमें गिरनेसे रोकना। उन अमर शहीदके बलिदान को सार्थक करना उनके देशवासियोंका कर्त्तव्य है, और उसके लिए हमारी समझमें एक शहीद-प्रेस, शहीद-ग्रन्थमाला, शहीद-पुस्तकालय और यदि हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri

सके तो एक शहीद-आश्रम भी स्थापित करना आवश्यक है।

इन संस्थाओंका संचालन बिल्कुल असाम्प्रदायिक ढंगपर और जातीय विद्वेषसे सर्वथा दूर रहकर होना चाहिए, और यदि इन संस्थाओंमें कुछ आर्थिक बचत हो, तो उसका लाभ आसपासके ग्रामोंके छोटे-छोटे बच्चोंको मिलना चाहिए। बलिदानकी चिनगारीसे यदि विद्वेषकी अग्नि प्रज्वलित की गई, तो वह मानव-एकताके लिए घातक सिद्ध होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस समय अमर शहीदकी चिताभस्मके बाद सहस्रोंकी भीड़ उत्तेजित होकर चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी कि हम इसका बदला लेंगे, तो बहन तारारानीने उस समय उन्हें सावधान करते हुए कहा था—'अहिंसक ढंगपर।' उस शहीदकी स्मृति सर्वथा लोक-कल्याणकारिणी ही होनी चाहिए। बच्चे तो सभीको प्रिय होते हैं और बिना किसी भेद-भावके निकटस्थ ग्रामोंके बच्चोंके खेल-कूद और आमोद-प्रमोदके लिए शहीद-प्रेस तथा ग्रन्थमाला के लाभका उपयोग हो सके, तो इससे बढ़िया स्मारक उन बच्चों-जैसे स्वभाववाले महापुरुषके लिए और क्या हो सकता है? सजीव साहित्यका प्रकाशन तो उक्त ग्रन्थमालाका उद्देश्य होगा ही और उसके लिए 'नमस्कार' नामक एक ग्रन्थ स्वयं श्रीमती तारारानीजी लिखना चाहती हैं। उसमें देश-विदेशके शहीदोंके प्रति श्रद्धांजलि वे अर्पित करेंगी। अमर लेखक गोर्कीका एक विस्तृत जीवन-चरित भी उक्त ग्रन्थमालामें प्रकाशित करनेका विचार है। सर्वथा सात्विक, पुष्टिकर, मानसिक भोजन देना और वह भी अल्प मूल्यपर यह हमारी ट्रैक्टमालाका उद्देश्य होना चाहिए। इस क्रय-विक्रयमय साहित्य-संसारमें, जहाँ अब व्यापारिकताका प्रबल रूपसे प्रवेश हो रहा है, इस प्रकारका सदुद्योग निस्सन्देह उत्साहकी एक लहर फैला देगा। ये संस्थाएँ हिन्दी-जगत्में, जहाँ प्रकाशक लोग स्वार्थका रेगिस्तान बनाते जा रहे हैं, एक नखलिस्तान (हरी-भरी भूमि) का काम देंगी।

क्या हमारा स्वप्न असम्भव है? हम तो इसे सर्वथा सम्भव मानते हैं। यदि उस अमर शहीदके देशवासी हम लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करें, तो हम क्या नहीं कर सकते? श्रीमती तारारानी तो इस स्वप्नके लिए अपने जीवनके शेष दिन अर्पित करनेके लिए सर्वथा उद्यत हैं; पर उनपर किसी प्रकारका बोझ डालना अनुचित होगा। वे तो देशके लिए अपना सर्वोत्तम अर्पित कर चुकी हैं। मातृभूमिके प्रति वे अपना ऋण असंख्य गुना दे चुकी हैं और चिरकालके लिए हम लोगोंको अपना ऋणी बना चुकी हैं। अब हम लोगोंका फर्ज़ है कि हम अपना कर्ज़ अदा करें।

अन्तिम झलक

अपने स्वर्गीय पति अमर शहीद फुलेनाप्रसादके शरीरको, जो जगह-जगहपर गोलियोंसे घायल था, बहन तारारानी अपनी गोदमें लिए बैठी हैं। खूनसे उनके सारे वस्त्र लथपथ हो गए हैं कि इतनेमें पतिके मस्तिष्कसे खूनकी एक धारा निकलती है, जिससे तारारानीकी अलकें रक्तरंजित हो जाती हैं और उनका सम्पूर्ण अंचल भींग जाता है। उनकी आँखोंमें आँसू नहीं हैं और अपनी निकटस्थ पूज्य माताजीकी, जिनके मुँहसे ये शब्द निकले ही हैं—'अरे मेरे लाल!' उँगलीसे इशारा करती हैं—'यह रोनेका समय नहीं है।' सारी वेदनाको पीकर वे दो बच्चों तथा वृद्धा माँकी सहायतासे उस क्षत-विक्षत पथिकको उठा लेती हैं, मानो उनका यही शेष कर्त्तव्य है। शहीदके रक्तसे रंजित अलकोंवाली तारारानीका वह मातृ-रूप हमारे सामने है, उसे हम कल्पनाकी आँखोंसे ज्यों-का-त्यों देख रहे हैं और हमारी आकांक्षा है कि भारतके लक्ष-लक्ष मानव उन्हें उसी रूपमें देखें।

समय आवेगा, जब स्वाधीन भारतकी माताएँ अपने बच्चोंको फुलेनाप्रसादका नाम लेकर प्रोत्साहित करेंगी, पाठ्य-पुस्तकोंमें उनके चरित्र छपेंगे और ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें उनका नाम शहीदोंके उदाहरण-स्वरूप आदरके साथ उपस्थित किया जायगा। दरअसल इस दम्पतिके जीवनमें महाकाव्यका मसाला विद्यमान है। पर कहाँ है वह कवि, जो उसका उपयोगकर अपनी वाणीको पवित्र कर सके? कहाँ है वह लेखक, जो अमर शहीदकी अमर गाथा लिपिबद्धकर अपनेको अमर बना सके? और कहाँ हैं वे पुरुष-पुंगव, जो इस अद्भुत बलिदानको अपने जीवनमें चरितार्थ कर सकें?

प्रतिध्वनि पूछती है—कहाँ हैं? कहाँ हैं? कहाँ हैं?

अरे, कहे जा खरी-खरी तू!

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

अरे, कहे जा खरी-खरी तू, जब तक तेरे अधर खुले हों।
जब तक तेरा गला मुक्त हो, जब तक तेरे स्वर न रुँधे हों।
जब तक तेरे मिटते तनमें जीवनके दो श्वास बचे हों।
जब तक तेरा मन हो जीता, अरे, कहे जा खरी-खरी तू!

* * *

जब तक शेष एक चिनगारी, तब तक आग कभी बुझती है?
जब तक बाक़ी एक लहर भी, तब तक बाढ़ कहाँ रुकती है?
अब तक तो तेरा तन तेरा, अब तक तो तुझमें जीवन है।
महामृत्युके अन्तिम क्षण तक, अरे, कहे जा खरी-खरी तू!

* * *

यह सच है, तेरा तन जर्जर, रक्त नहीं है, मांस नहीं है।
यह सच, तेरा जीवन बन्दी, मुक्ति नहीं, उल्लास नहीं है।
पर तेरे उरमें साहस है, उसकी धड़कन बन्द नहीं है।
तुझमें अभी सत्य जीता है अरे, कहे जा खरी-खरी तू!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नैतिक पतनकी समस्या

श्री कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०

उड़ीसामें एक नया विश्वविद्यालय खुला है, जिसका नाम है 'उत्कल-यूनीवर्सिटी'। इस विश्वविद्यालयके दीक्षान्त-भाषणमें पटना-विश्वविद्यालयके अध्यक्ष श्री सच्चिदानन्द सिंहने देशके भीतर उन लोगोंकी चरित्रहीनता, आडम्बर और स्वार्थपर खेद प्रकट किया है, जो जनताके नेता बननेका दावा करते हैं। सच्चिदानन्दजीने यह बात प्रायः उसी अवसरपर कही है, जब भारतीय 'नेताओं'की धूर्त्तता और स्वार्थसे क्षुभित होकर गांधीजी उपवासका प्रायश्चित्त करनेकी बात सोच रहे हैं। यों तो हमारे पुरखोंके सामाजिक जीवनमें दोष न होता, तो हमारा देश एक विदेशी शासनके हाथ बिकता ही क्यों; परन्तु भारतीय समाजमें वर्त्तमान महासमरके परिणाम-स्वरूप जितनी कुछ चरित्रहीनता आ गई है, वह अनुमानके बाहर है। राजासे रंक तक सभी धनके पीछे दौड़ रहे हैं—उस धनके पीछे, जिसका क्षणिक मूल्य पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट है। चरित्रहीन समाजको यदि स्वतन्त्रता मिल भी जाय, तो उच्छृंखल होकर वह शीघ्र ही अपनी बहुमूल्य निधिको खो बैठेगा। दुःखकी बात तो यह है कि जो अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्त्तन हो रहे हैं, उनके परिणाम-स्वरूप देशको स्वतन्त्र जीवनका अवसर मिलेगा। यदि पतित समाजको स्वतन्त्रताका प्रसाद मिल जाय, तो वह अमृत होकर भी उसके लिए विषका काम कर सकता है। हमारी स्वतन्त्रताकी वही दुर्दशा हो सकती है, जो स्वतन्त्र चीनकी आज हो रही है।

इस पतनके क्या कारण हैं? पहला कारण प्रत्यक्ष है। महासमरके कारण सामाजिक वातावरण बहुत दूषित हो गया है। देशभक्तिके नाते, पर वास्तवमें धूर्त्त नेताओंकी स्वार्थ-सिद्धिके लिए, नर-बलि हो रही है। असत्य और अहिंसात्मक भावोंको विषाक्त दुर्गन्ध नैतिक वातावरणमें व्याप्त है। सत्य और अहिंसा कारागार में बन्द हैं। असत्य और हिंसाके नेता आदृत हैं। ऐसी दशामें विदेशी शासनके कारण पतित समाजका नैतिक जीवन पतनकी चरम सीमाको पहुँच जाय, तो आश्चर्य ही क्या है! पर यह दूषित परिस्थिति स्थायी नहीं है। प्रकृतिका अटल नियम है कि जब कभी धर्मकी ग्लानि अपनी पराकाष्ठाको पहुँच जाती है, तभी ईश्वरीय आत्माएँ पुनर्जन्म लेकर धर्मका अभ्युत्थान करती हैं। इस नियमके अनुसार यह नर-बलि अपनी अवधिको पहुँचकर समाप्त होगी। शान्ति स्थापित होगी, नैतिकताको पुनर्जीवित होनेका अवसर मिलेगा उस शुभ दिनकी तैयारी हमें अभीसे करनी है।

पतनका दूसरा कारण परोक्ष है। सर्वोच्च शिक्षित समाजसे ही हमें अपने नेता मिलते हैं। सर्वोच्च शिक्षा हमें विश्वविद्यालयों में ही प्राप्त होती है। यदि इन विश्वविद्यालयोंका जीवन दूषित है, यदि इनमें युवकको स्वार्थ, धूर्त्तता और देशद्रोहके उदाहरण मिलते हैं, यदि इनके शिक्षक दरिद्रनारायणसे अलग विदेशी ढंग, विदेशी भाषा, विदेशी भोजन-वस्त्र आदिके वातावरणमें अपना संकुचित जीवन व्यतीत करते हैं, यदि वे देहातके दरिद्र जीवनके प्रति मौखिक सहानुभूति ही दिखाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, तो कैसे आशा की जाय कि उनके शिष्य विश्वविद्यालयके स्नातक होकर देशका सात्विक नेतृत्व कर सकेंगे? विश्वविद्यालयके शिक्षक इस बातकी शिकायत नहीं कर सकते कि उन्हें यथेष्ट स्वतन्त्रता नहीं मिलती, उनका वेतन कम है। निम्न श्रेणीके शिक्षालयोंके शिक्षकोंपर चाहे जितना सरकारी और ग़ैर-सरकारी नियन्त्रण हो, चाहे जितना इनके कार्यक्षेत्रमें हस्तक्षेप किया जाता हो, चाहे जितना कम वेतनके कारण उनपर आर्थिक कष्ट हो, जिस कारण वे शिष्य-समुदायकी सच्ची सेवा करनेमें असमर्थ हों; पर विश्व-विद्यालयोंपर सरकारी नियन्त्रण बहुत कम रहता है। उनके आन्तरिक शासनमें बहुत-कुछ शिक्षक-समुदायका ही भाग रहता है। भारतीय प्रोफेसरोंका वेतन संसारके ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य जैसे समृद्धिशाली देशोंके विश्वविद्यालयोंके प्रोफेसरोंसे कम नहीं होता। तिसपर भी यदि हमारे विश्वविद्यालयोंके अधिकतर अध्यापक ऐसे ही हैं, जिनकी सात्विकताकी निधि बहुत कम है, तो इसे देशका दुर्भाग्य ही समझिए।

इस चरित्रहीनताका तामसिक प्रभाव और भी विषाक्त हो जाता है, जब शिक्षक स्वदेशी भाषा और संस्कृतिकी अवहेलना करके विदेशी भाषा और संस्कृतिका प्रचार करते हैं। काशी-विश्वविद्यालय तकमें, जिसे हम अपना राष्ट्रीय विश्वविद्यालय माननेके लिए तैयार रहते हैं, अंगरेज़ी अनिवार्य विषय है, हिन्दी पर्याय है और शिक्षाका माध्यम अंगरेज़ी ही है। विज्ञानमें हमें पश्चिमसे बहुत-कुछ सीखना है। बहुतसे विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जहाँ दर्शनके विद्यार्थियोंको कांट और हीगलका ज्ञान तो मिलता है; पर उन्हें भारतीय दर्शनका पता ही नहीं रहता। विश्वविद्यालयोंके जीवनमें विदेशीपन इतना व्याप्त है कि शिक्षकोंको आभास तो कदाचित् होता भी नहीं। आश्चर्य यह है कि जो विद्यार्थी कल तिरंगे राष्ट्रीय झण्डेपर जान देनेके लिए तैयार थे—कम-से-कम जान देनेके नारे तो लगाते ही थे—वे भी इस विदेशीपनको अपनानेमें अपना गौरव समझते हैं। एक दिनकी बात है। मुझे लखनऊ-विश्वविद्यालयके उस उत्सवमें सम्मिलित होनेका अवसर मिला, जो देशके वर्त्तमान तथा भावी युवक शिक्षकोंकी ओरसे आयोजित था। अंगरेज़ी चाय-पानी, कालेजका नाम अंगरेज़ी, हालका नाम अंगरेज़ी, उसमें संसारके सर्वोच्च विद्वानोंमें भारतके केवल कालिदासका नाम। सभापति भारतीय, बोलनेवाले भारतीय, सुननेवालोंमें दो-एकको छोड़कर सब भारतीय। सभी ऐसे, जो लखनऊकी भाषा बोल सकते थे,

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

समझ सकते थे ; पर सब कार्यवाही अंगरेज़ीमें ! लखनऊमें बैठे लन्दनका वातावरण था ! मजबूरी थी कि हम लोगोंका रंग गोरा नहीं हो सकता था।

हमारी दासता राजनीतिक होती, वहाँ तक ग़नीमत था। उद्धार साध्य होता ; परन्तु रोग बहुत बढ़ गया है। हम सांस्कृतिक दासताके प्रभावमें भी आ गए हैं। सामाजिक जीवनके इस कष्टसाध्य रोगकी किस प्रकार चिकित्सा हो ? यूरोपीय संस्कृतिकी बात दूसरी है। इस देशमें शिक्षाका चरित्रसे घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। वकील, वैद्य, कारीगर या दूकानदार जैसा-कुछ हो ; परन्तु शिक्षकका पद गुरुका है। वह सच्चरित्र होना चाहिए। उसका गार्हस्थ्य जीवन शुद्ध हो, उसका सामाजिक जीवन सादा हो, ज्ञानकी खोज उसका व्यसन हो। इस समय अच्छे वेतनपर विद्वान तो विश्वविद्यालयके लिए यथेष्ट संख्यामें मिल सकते हैं ; पर गुरु-पद-योग्य विद्वानोंके मिलनेमें कठिनाई होगी। तो भी भारत-भूमि निर्बीज नहीं है। प्रत्येक विश्वविद्यालयकी सेवाके लिए विद्वानोंमें भी इतने गुरु-पद-योग्य युवकदल-सेवी तो मिल ही सकते हैं, जो विश्वविद्यालयके अध्यक्ष (Vice-Chancellor) और विभाग-अध्यक्ष (Dean) बनाए जा सकें। प्रस्ताव यह है कि देशके सफल व्यवसायियों, इंजीनियरों, डाक्टरों, वकीलोंपर इस बातका भार छोड़ा जाय कि पचास वर्षकी अवस्था तक जब वे यथेष्ट धन कमा चुकें, तब विश्वविद्यालयोंमें अवैतनिक वाइस-चान्सलर और डीनके पद ग्रहण करके देशके युवक-समाजकी सेवा करें। यदि प्रत्येक विश्वविद्यालयको इस कोटिके पाँच सेवी तक मिल सकें, तो उसका शिष्य-समाज बहुत अच्छा प्रभावित हो सकता है। वर्णाश्रम धर्मके अनुसार २५ वर्षसे ५० वर्षकी अवस्था तक गार्हस्थ्य जीवनको सफल करनेके लिए ही रुपया कमाना चाहिए। इसके पश्चात् वानप्रस्थ-आश्रममें अवैतनिक समाज-सेवा करना प्रत्येक हिन्दूका कर्तव्य हो जाता है। युवक-समाजके चरित्रको प्रभावित करनेके लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय, स्थानीय स्वराज्य-संस्था और प्रान्तीय तथा भारतीय व्यवस्थापक सभाके लिए यथेष्ट संख्यामें वानप्रस्थी सेवी मिलना आवश्यक है।

अन्य संस्थाओंकी बात करनेका मुझे अधिकार नहीं है ; परन्तु विश्वविद्यालयोंको यदि सांसारिक जीवनके अनुभव-प्राप्त सेवा-भावसे प्रेरित शिक्षा-संचालक मिल सकें, तो युवकोंको उनसे चरित्र शिक्षाके अतिरिक्त वह जीवन-शिक्षा भी मिल सकती है, जो अनुभवहीन अध्यापक किताबी पढ़ाई द्वारा नहीं दे सकते। शिक्षकके पश्चात् हमें अपने विश्वविद्यालयोंके शिक्षाक्रमको भी भारतीय बनाना है। पहले यह आवश्यक है कि हम अपनी राष्ट्रभाषा निश्चित कर लें। यह सर्वमान्य है कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है। पर हिन्दुस्तानीका कोई एक साहित्यिक रूप नहीं है। इसके दो रूप हैं—हिन्दी और उर्दू। यह आवश्यक है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय और डिग्री-कालेज अपने विद्यार्थी-समाजका वोट लेकर यह निश्चित कर ले कि उस संस्थामें शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो या उर्दू। प्रान्तीय भाषाएँ माध्यमिक शिक्षालयों तक तो माध्यमका काम दें ; पर यदि हमें अपने विश्वविद्यालयोंको राष्ट्रीय रूप देना है, तो राष्ट्रभाषाको ही उनमें शिक्षाका माध्यम बनाना होगा। यह आवश्यक नहीं है कि तुरन्त ही राष्ट्रभाषाको सभी विषयोंकी शिक्षाका माध्यम बना दिया जाय। आधुनिक विज्ञान हमें बहुत-कुछ अंगरेज़ी-भाषासे ही मिला है, इसलिए कुछ समय तक क़ानून, विज्ञान, इंजीनियरिंग और चिकित्साशास्त्र-जैसे विषयोंकी शिक्षा अंगरेज़ी द्वारा ही दी जाय। किन्तु इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान आदि विषय ऐसे हैं, जिनमें हम भी सभ्य संसारको कुछ दे सकते हैं। राष्ट्रभाषाको इन विषयोंका माध्यम बनाना कठिन नहीं है।

यदि राष्ट्रभाषाको विश्वविद्यालयकी शिक्षाका माध्यम बनाना है, तो इस परिवर्त्तनका नेतृत्व उन्हीं विश्वविद्यालयोंको करना होगा, जिनके विद्यार्थियोंकी मातृभाषा भी राष्ट्रभाषा ही है। उस्मानिया-विश्वविद्यालयका उर्दूके पक्षमें नेतृत्व करना उतना स्वाभाविक नहीं है, जितना वह अलीगढ़की ओरसे होता। पंजाब, संयुक्त-प्रान्त, राजपूताना, मध्य-प्रान्त और बिहारके डिग्री-कालेज तथा दिल्ली, अलीगढ़, काशी, लखनऊ, प्रयाग और पटनाके विश्वविद्यालय जिस सुविधासे राष्ट्रभाषाको माध्यम बनानेमें अग्रसर हो सकते हैं, वह बम्बई, मद्रास और कलकत्ताके विश्वविद्यालयों को प्राप्त नहीं हो सकती। यदि काशी-विश्वविद्यालय हमारा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय है, तो सबसे पहले उसे ही इस ओर अग्रसर होना चाहिए।

शिक्षाक्रममें सबसे बड़ा विदेशीपन इस बातमें है कि अंगरेज़ी अनिवार्य विषय रहता है और हिन्दी पर्याय। अंगरेज़ीके शिक्षकका पद ऊँचा माना जाता है, हिन्दीके शिक्षकका पद नीचा। यह दोष काशी-विश्वविद्यालय तकके हिस्सेमें है। पहले इस दोषको निर्मूल करना है। इसके पश्चात् शिक्षाके प्रत्येक विषयपर भारतीय रंग चढ़ाना है। यदि संसारके भूगोलका अध्ययन करना है, तो उसका केन्द्रीय तात्पर्य यह होना चाहिए कि भारतके पड़ोसी देशोंसे हमारा क्या आर्थिक सम्बन्ध है, हमारे भारतीय संसारके किन भागोंमें बसे हैं, वहाँ उनका कैसा जीवन है, कौन देशोंका जलवायु भारतीयोंके लिए अनुकूल है, कौन प्रतिकूल। इसी प्रकार यदि संसारके इतिहासका अध्ययन करना है, तो वेल्स-कृत अनूदित पुस्तकसे हमारा काम नहीं चलेगा। जवाहरलालजी-कृत 'विश्व-इतिहासकी झलक' यही हमारे विद्यार्थियोंका ठीक पथ-प्रदर्शन कर सकती है। विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, कृषि, सभी विषयोंके पाठ्यक्रमको भारतीय दृष्टिकोणके अनुसार परिवर्त्तित करना होगा। यों हम अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्यार्थियोंको देशभक्त ही न बनायँगे, उन्हें देश-सेवाके योग्य भी बना सकेंगे।

विश्वविद्यालयके संचालन और उसका पाठ्यक्रम सुधारनेके अतिरिक्त शिक्षक-समुदायके प्रति भारतीय समाजका आदर-भाव होना भी आवश्यक है। प्राचीन भारतीय आर्य-समाज तीन वर्णोंमें विभक्त था। ब्राह्मण शिक्षक थे और सर्वोच्च मान उनके ही हिस्सेमें था। क्षत्रिय शासक थे और शक्ति उनके हाथमें थी। वैश्य व्यापारी थे और धन उनके भागमें था। ब्राह्मण निर्धन थे, शक्तिहीन थे; परन्तु शक्तिशाली क्षत्रिय और धन-कुबेर वैश्य उनके चरण-रज छूनेमें अपना सौभाग्य समझते थे। उस समय हमारा देश स्वतन्त्र था और हम मानव-समाजका नैतिक नेतृत्व भी कर सके। हमारे पतन-कालमें शक्ति और धनका ही मान है, सेवाका मान नहीं। यदि हम किसी शिक्षकका कुछ आदर करते हैं, तो इसलिए नहीं कि वह समाजकी सर्वोच्च सेवा कर रहा है, बल्कि इसलिए कि वह बँगलेमें रहता है, बढ़िया कपड़े पहनता है, मोटरपर चढ़ता है और हमारे बालकोंको फेल कर सकता है। यह ठीक है कि शिक्षा भी अब एक व्यवसाय हो गया है। हम फीस देते हैं, उसके बदलेमें शिक्षक बालकोंको पढ़ाते हैं। पर जो व्यवसाय समाजमें आदृत होता है, सच्चरित्र पुरुष-स्त्री उस व्यवसायकी ओर ही झुकते हैं, क्योंकि चरित्र धन और शक्तिका भूखा नहीं होता, मानका भूखा अवश्य होता है। माना कि इस समय शिक्षक-समुदाय अधिकांशमें सम्मान और भक्तिके योग्य नहीं है, तो यह बताइए कि जिन शक्ति-प्राप्त शासकों और धनी व्यापारियोंको आप उपाधियोंसे विभूषित करते हैं, पार्टियों में सम्मानपूर्वक निमन्त्रित करते हैं और अपनी आँखें बिछाते हैं, उनमें से कितने अपनी शक्ति और धनसे समाज-सेवा करते हैं, कितने वास्तवमें सम्मानके योग्य हैं? फिर शक्तिहीन, धनहीन, पर देशकी सर्वोच्च सेवाका बीड़ा उठाए हुए, शिक्षक-समुदायकी ही अवहेलना क्यों?

यों तो भारतीय समाजकी नैतिक उन्नतिके लिए शिक्षा-प्रणालीको ऊपरसे नीचे तक सुधारना आवश्यक है; पर देशका नेतृत्व सर्वोच्च शिक्षा-प्राप्त भारतीयोंके ही हाथमें है। हमारे सर्वोच्च शिक्षालयोंसे ही वे भारतीय निकलते हैं, जो वकील, डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक या व्यापारीकी हैसियतसे समाजका नेतृत्व करते हैं। यदि हम अपने इन विश्वविद्यालयोंको सुधार सकें और शिक्षक-समुदायके प्रति अपना आदर-भाव बढ़ा सकें, तो नैतिक पतनकी बाढ़ बहुत-कुछ रुक सकती है। इस सुधारकी आवश्यकता यों और भी बढ़ जाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय घटना-चक्रमें हमें बहुत शीघ्र स्वतन्त्र जीवनका अवसर मिलना है। उस स्वर्ण अवसरका हम पूरा सदुपयोग अपनी नैतिक शक्तिसे ही कर सकेंगे। विश्वविद्यालय-सुधार, शिक्षा-सुधार, इस नैतिक शक्तिके आह्वानका बीजमन्त्र है।

रियासतें और उनकी सन्धियाँ

श्री जयनारायण व्यास

श्री जिन्नाका कहना है कि भारतको 'हिन्दुस्तान' और 'पाकिस्तान'में बाँटे बिना काम नहीं चल सकता। गांधीजी इससे सहमत नहीं होते। सावरकर साहब एक क़दम आगे बढ़ते हैं। वे मुसलमानोंको विदेशी समझते हैं। सिक्खोंमें 'सिक्खिस्तान'की चर्चा है और द्रविड़ोंमें 'द्राविड़िस्तान'की। अम्बेडकर साहब अपनी क़ौमको 'नेशन' बनानेकी फ़िक्रमें हैं ही। अभी न-जाने कितने अधिक तत्त्व एक-दूसरेका विरोध करनेके लिए आगे आयँगे। इस अवस्थामें भारत-मन्त्री एमरी हिन्दुस्तानको स्वराज्य कैसे दे दें? हम लड़-भिड़ गए, तो सम्हालेगा कौन? सात समुद्र-पारसे ही सही, आज वे हमारी रक्षा तो कर रहे हैं!

पर न नौ मन तेल जमा होगा, न राधा नाचेगी। न सभी विचारके लोग एक होंगे, न स्वराज्य देनेकी फ़िक्र ही होगी। लेकिन क्या पता, लोकमतके दबावसे, समझदारीके कारण अथवा आवश्यकताका तीव्र अनुभव करके अगर भारतके ये सब तत्त्व एक हो जायँ, तो क्या होगा? सरकारके लिए इनसे भी अधिक बलशाली एक गुप्त अस्त्र है। वह है देशी रियासतों की रक्षाकी ज़िम्मेवारी! उनके साथ सरकार बहादुरकी सन्धियाँ जो हैं, उनके अस्तित्वको क़ायम रखनेकी ज़िम्मेवारी जो है! भला उनकी सम्मतिके बिना भारतकी शासन-व्यवस्था कैसे बदली जाय? वे क्षेत्रफलके हिसाबसे भारतका ⅓ भाग हैं और आबादीके लिहाज़से इस देशकी चौथाई जनता उन्हींमें रहती है। उनकी उपेक्षा भला कैसे की जाय? देश इन्क़लाब लाना चाहता है। सरकारके पास भी उसके खिलाफ़ नारे हैं। और तो क्या, मज़दूर-दलका दफ़्तर पार्लमेण्टके सदस्य डडले साहबसे पुस्तिकाएँ लिखवाकर इन नारोंका प्रचार करेगा। धरा रहेगा आपका इन्क़लाब आपके तिरंगे झण्डेकी छाया-तले। इस अवस्था में अब आवश्यकता इस बातकी है कि हम रियासतों और उनकी समस्याओंको ज़रा तफ़सीलमें समझें।

पण्डित जवाहरलाल नेहरूका कहना है—'इन रियासतोंकी आयका अधिकांश भाग उन राजघरानोंमें चला जाता है, जो उनपर शासन करते हैं; सिर्फ़ थोड़ा-सा हिस्सा जनताकी तरक्कीके लिए खर्च होता है। यह बात भी मोटे तौरपर ही

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मालूम है, विस्तृत ज्ञान और सही सूचनाका तो एकदम अभाव ही है। हम सबने बीस या कुछ कम-ज़्यादा बड़ी रियासतोंकी बातें तो सुनी हैं; लेकिन दूसरी सैकड़ोंके बारेमें तो हमें बिल-कुल वाक़िफ़यत नहीं है।' नेहरूजीके ये शब्द रियासतोंके बारेमें हमारे ज्ञान और हमारी मनोदिशाका वास्तविक चित्र हैं।

देशी रियासतोंकी कुल संख्या ५८४ है। इनके रूप अलग-अलग हैं। जम्मू और कश्मीर नामकी एक सम्मिलित रियासत है, जिसका रक़बा ८५८८५ वर्गमील है। इसके मुक़ाबलेमें बिजानोनस (वेस्टर्न इण्डिया एजेन्सी) भी एक राज्य है, जिसका रक़बा है केवल २९ वर्गमील—यानी क़रीब चौथाई वर्गमील! एक वर्गमीलसे कम रक़बा रखनेवाली रिया-सतें १४ हैं। रियासतोंका कुल रक़बा श्री पणिक्करके हिसाबसे ५९८१३८ वर्गमील है (यद्यपि पणिक्कर महोदय कुल रियासतें ५६२ ही गिनते हैं)। इनमें से बीस ही रियासतें ३९६२९१ वर्गमीलपर क़ाबिज़ हैं तथा शेष दो लाखसे कम वर्गमीलमें बाक़ी सब रियासतोंके रक़बेका बँटवारा हुआ है। बैरिस्टर शान्ति धवनने हिसाब लगाया है कि 'हिन्दुस्तानकी २०२ रियासतोंका रक़बा १०-१० वर्गमीलसे भी कम है, और १३९ रियासतें ५-५ वर्गमीलसे भी छोटी हैं। ७० रियासतोंकी लम्बाई-चौड़ाई एक मीलसे भी आगे नहीं बढ़ती।' इस विस्तारकी तरह ही आय और आबादीमें भी भिन्नता है, और इसी प्रकार ब्रिटिश सरकारके साथ सम्बन्ध और शासन-व्यवस्थामें भी भिन्नता है।

अमूमन ऐसे लोगोंको, जिनके बढ़िया कपड़े, मोटरें और बहुतसे नौकर होते हैं, कीमती कपड़ोंपर जवाहरात और ज़ेवरोंकी चमचमाहट होती है, लोग राजा समझ लेते हैं। परन्तु सभी राजा वैसे नहीं होते; बल्कि यों कहना चाहिए कि अधिकांश राजाओंके पास वे ठाट-बाट नहीं होते, जो हम बड़े-बड़े राज-महलोंके आसपास या नाटकोंमें राजाओंके नक़ालोंके साथ देखते हैं। बिलबरी-जैसी रियासतोंसे, जिनकी सालाना आमदनी १००) से कम हो, कैसे आशा की जाय कि वे एक लँगड़ा घोड़ा भी खरीद सकेंगी? ब्रिटिश सरकारने इन विभिन्नताओंको क़ायम रखा है, यद्यपि कुछ समयसे छोटी रियासतोंको बड़ी रियासतोंके साथ मिलानेकी सरकारी तजवीज़ हो रही है, और ऐसी कुछ रियासतें बड़ौदा और नवानगरके साथ मिलाई भी गई हैं। पर इन छोटी रियासतोंकी स्वतन्त्र हस्ती मिटा देनेके खिलाफ़ भी अपील दायर है और न्यायालयने इनका बड़ी रियासतोंके साथ मिलाया जाना ग़ैरक़ानूनी भी घोषित किया है।

इस तरहकी पेचीदगी है रियासतोंके स्वरूपमें। अब प्रजा को इनमें उत्तरदायी शासन क़ायम करनेका अधिकार कैसे दिलाया जाय, भारतके आन्तरिक भू-भागके तौरपर इन्हें कैसे रखा जाय, इनकी जनताको ब्रिटिश प्रान्तोंकी जनताके मुक़ाबलेमें राजनीतिक, आर्थिक आदि दृष्टियोंसे कैसे लाया जाय, आदि कई समस्याएँ हैं। युद्धने इन जटिल समस्याओंको और भी जटिल बना दिया है। इसके सिवा सन्धियोंके नामपर रियासती व्यवस्था को केवल ज्यों-की-त्यों ही नहीं रखा जा रहा है, बल्कि भारत की शासन-व्यवस्थामें भी जनमतके अनुसार परिवर्त्तन करनेमें बाधाएँ उपस्थित की जा रही हैं। वैसे हैदराबाद, बड़ौदा आदि कई बड़ी-बड़ी रियासतोंके साथ सरकारकी कोई सन्धि ही नहीं हुई। उन रियासतों और ब्रिटिश सरकारके राजनीतिक सम्बन्ध परम्परागत रिवाजोंके ही आधारपर स्थापित हैं और समय-समयपर बदलते भी रहते हैं। किन्तु सन्धियाँ हों या न हों, ब्रिटिश शासनके प्रारम्भिक कालमें केवल राजाओंकी ही रक्षाकी ज़िम्मेवारी ब्रिटिश सरकार अपनेपर नहीं लेती थी, बल्कि प्रजा-रक्षा, सुशासन आदिके लिए भी वह अपनेको ज़िम्मेवार बनाती थी।

हैदराबादकी ही मिसाल लीजिए। यह रियासत १८०० से १९०२ तक तो प्रायः ब्रिटिश सरकारके अधीन ही रही। ५ अप्रैल, १९२६ को 'गज़ट आफ़् इण्डिया'में जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है, उसके अनुसार भारत-सरकारने हैदराबादके रेज़ीडेण्टको यों लिखा था :—

"The treaties with Hyderabad constitute the British Government supreme protector of the State from external and internal enemies. In the exercise of this protective power, it has frequently remonstrated against acts of maladministration and oppression....."

अर्थात् हैदराबादसे हुई सन्धियोंके अनुसार ब्रिटिश सरकार भीतरी और बाहरी शत्रुओंसे राज्यकी रक्षा करेगी। इस रक्षा-अधिकारके पालनमें कई बार उसने कुशासन एवं दमनके खिलाफ़ भी आवाज़ उठाई है। इससे स्पष्ट है कि जहाँ भीतरी और बाहरी शत्रुओंसे राज्यकी रक्षा करनेका भार ब्रिटिश शासनपर था, वहाँ राज्यके कुशासन और दमनसे प्रजाकी रक्षा करनेकी भी उसकी उतनी ही ज़िम्मेवारी थी। ब्रिटिश सरकारके ये दो कर्त्तव्य रियायतके प्रति सन्धियों द्वारा निर्धारित थे। इनमें कहीं भी केवल राजा या राज्यकी रक्षाका संकेत नहीं है।

अब सन्धियोंका वास्तविक अर्थ क्या है, यह हैदराबादके निज़ामको २७ मार्च, १९२६ को लिखे गए लार्ड रीडिंगके प्रसिद्ध पत्रसे मालूम हो सकता है। उसमें उन्होंने लिखा था :—

". . . Its supremacy is not based upon treaties and engagements but exist independently of them . . . The title of 'faithful ally' has not the effect of putting Your Exalted Highness in a category separate from that of other States under the paramountcy of the British Crown."

इस प्रकार लार्ड रीडिंगने साफ़ ज़ाहिर कर दिया कि ब्रिटिश सरकारका हैदराबादसे ऊँचा होनेका आधार सन्धियाँ या दूसरे सर्त्तनामे नहीं थे, वह आधार तो स्वतन्त्र था।...'वफ़ादार साथी'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होनेके नाते भी निज़ामकी सार्वभौम सत्ताके अधीन दूसरी रियासतोंसे अलग स्थिति नहीं हो सकती।

सच तो यह है कि नरेन्द्र-मण्डलके ३२ सदस्योंके साथ ब्रिटिश सरकारकी जो सन्धियाँ हैं, उनमें 'सुशासन', 'खेतीकी तरक़्क़ी', 'प्रजाकी भलाई और उसको सुख व सन्तोष देना' आदिका ज़िक्र है। लार्ड लिटनने एक खरीता भारत-मन्त्रीको भेजा था, जिसमें साफ़ लिख दिया था कि 'ब्रिटिश सरकारने अब भारतकी देशी रियासतोंकी बाहरी शत्रुओंसे रक्षा करने और प्रजाकी कुशासनसे रक्षाकर तथा शासकके क़ानून-सम्मत अधिकारका समर्थनकर आन्तरिक व्यवस्था क़ायम रखनेकी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले लेती है।' इससे भी स्पष्ट है कि प्रजाकी कुशासनसे रक्षा करना और राजाके क़ानूनी हक़ोंकी रक्षा करना दोनों ब्रिटिश सरकारके लक्ष्य थे। सन्धियोंमें जहाँ 'राज्य'की रक्षाका उल्लेख है, वहाँ राजा-प्रजा दोनों ही शामिल हैं, क्योंकि दोनोंके बिना राज्य बन ही नहीं सकता।

ये सन्धियाँ सदाके लिए पवित्र ही रही हों, सो बात भी नहीं है। सिरोहीके साथ जो सन्धि १८२३ में हुई थी, उसमें यह शर्त्त (दफ़ा ३) साफ़ तौरपर दर्ज थी कि ब्रिटिश सरकार का आधिपत्य रियासतके भीतर नहीं होने दिया जायगा; पर १८५४ में उसी रियासतको कर्ज़ा चुकानेके उद्देश्यसे ब्रिटिश सरकारकी सीधी व्यवस्थामें ले लिया गया। १८३८ में फ़लवाड़ (पंजाब) के साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें खुले शब्दोंमें (धारा ९) यह माना गया था कि 'राजा, उसके युवराज और उत्तराधिकारी रियासतके सम्पूर्ण शासक रहेंगे और ब्रिटिश सरकारका दीवानी या फ़ौजदारी दखल बिलकुल न होगा।' पर १८९० में वहाँके राजाको सम्पूर्ण अधिकार मिलनेके दो ही वर्ष बाद कुशासनके कारण गद्दीसे हटा दिया गया! कहनेका तात्पर्य यह है कि सन्धि नामकी कोई चीज़ इज़्ज़त करने-योग्य है ही नहीं। सरकार जैसा चाहती है, वैसा अमल करनेको स्वतन्त्र है, और वही रिवाज रियासतोंसे सम्बन्ध क़ायम रखनेके लिए प्रमाणभूत होता है। लार्ड कैनिंगने ३० अप्रल, १८६० के अपने नोटमें साफ़ लिख दिया था कि 'कोई बात ब्रिटिश सरकार को ऐसी गम्भीर खराबियोंको मिटानेके लिए दखल देनेसे रोक नहीं सकती, जिनसे रियासतमें अराजकता या अव्यवस्था फैलनेका खतरा हो; न काफ़ी कारण उपस्थित होनेपर रियासतका अस्थायी चार्ज लेनेके उसके मार्गमें ही कोई बाधा है। यह तो हमारा पुराना रिवाज रहा है।'

परन्तु यथार्थमें इन सन्धियोंका उपयोग या रिवाजका प्रचलन प्रजाकी रक्षा या राज्यकी रक्षाके लिए न होकर सरकारके पोलिटिकल डिपार्टमेण्टके इच्छानुसार ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षा और उसके हित ही में होता है। अतः इन पुराने और दोनों पार्टियों द्वारा नहीं माने जानेवाले कायज़ातको न मनना ही पं० जवाहरलाल नेहरूने उचित बतलाया है। उन्होंने अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषदके लुधियाना-अधिवेशनके अध्यक्षासनसे बोलते हुए कहा था—'हम किन्हीं सन्धियोंको स्वीकार नहीं करते और न किसी हालतमें हम उन्हें मंजूर ही करेंगे। हम जिस अन्तिम और सर्वोच्च सत्ताको स्वीकार करते हैं, वह है जनताका मत और अन्तिम ध्येयके रूपमें मान्य है जनताका हित।'

विराम-बिन्दु

श्री युगल

रामटहलने एक बार फिर उस चित्रकी ओर देखा। कुछ क्षण तक वह देखता रहा। न-जाने क्यों यह चित्र उसे अधिक पसन्द आता है। दो वर्ष हुए उसने इसे एक चित्रकारके यहाँसे खरीद लिया था और सुन्दर फ्रेममें मढ़वाकर अपने सोनेके कमरेके सामनेवाली खिड़कीके ऊपर टाँग रखा था। चित्रको देखकर उसके हृदयकी वेदनाको थोड़ी शान्ति मिलती है या नहीं, इसे रामटहल आज तक भी नहीं समझ पाया है; पर उसके हृदयमें भावोंका एक संघर्ष-सा अवश्य चलने लगता है।

मसनदका सहारा लेकर वह पलंगपर अधलेटा पड़ा था। घड़ीकी ओर देखकर उसने स्फुट स्वरमें कहा—'थोड़ी देरमें १२ बज जायँगे।' उसने दवाकी शीशियोंकी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखा। दवा पीते-पीते तो वह ऊबिज़ आ गया है। आज महीनोंसे वह बीमार है। मर्ज़ बिना पहचाने दवा हो रही है। दिलका दर्द भला दवासे कैसे छूटेगा? यह सोचकर रामटहलके सूखे ओठोंपर एक विकारहीन हँसी फैलकर रह गई। डाक्टर क्या खाक दवा करेंगे? मुफ़्तमें रुपया बर्बाद हो रहा है। रामटहलको यह अनुभव होता है कि उसका कहीं कुछ टूट-सा गया है। वह उखड़ा-उखड़ा-सा रहता है।

खिड़कीपर नीला पर्दा पड़ा था। उससे छनकर हल्का प्रकाश कमरेमें फैल रहा था। रामटहलका दुबला-पतला शरीर एक ही करवट सोए-सोए दुख रहा था। उसने करवट बदली और उसकी नज़र चित्रपर जा पड़ी। हरी दूबोंसे भरा एक बड़ा मैदान है, जहाँ न कोई पेड़ है और न कोई दूसरा पौधा ही। आकाश जहाँ हरे मैदानको चूमता-सा लगता है, वहाँ कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

हल्की लाली फैल गई है। शायद अस्ताचल जाते हुए सूर्यकी यह छूटी हुई पिछली लाली है। थके हुए दो विहग बटोही, एक-दूसरेसे कुछ दूर-दूरपर, अपने पथ नाप रहे हैं—मानो पिछला अगलेसे अपने नीड़में ठहरकर वह रात बिता लेनेके लिए कह रहा हो।

रामटहलने दरवाज़ेके बाहर देखा। ललिता घुटनेपर अधसिला कपड़ा रखे कुछ सोच रही है। सिरपर से आँचल खिसक कर कन्धेपर आ गिरा है। इसका उसे जैसे कोई ध्यान ही नहीं है। रामटहल सोच उठा, ललिता कितनी सुन्दर है! उसके मनमें इस समय कोई-न-कोई संघर्ष अवश्य चल रहा है। क्या सोच रही होगी वह? और दूसरे ही क्षण रामटहलकी आकृति कुछ कठोर हो उठी।

उसने ललिताकी ओरसे दृष्टि हटाई, तो घड़ीपर जा पड़ी। १२ बजनेमें अब कुछ ही देर थी। दवाका समय हो गया था। वह सोचने लगा, यह जो ललिता है, वह उसकी ओरसे कितनी उदासीन रहती है! दवा पिलानेका समय हो गया है और वह बैठी-बैठी कपड़े ही सी रही है! सी तो नहीं रही, कुछ सोच रही है। न-जाने क्या सोच रही है वह! उसे इसका तो कुछ खयाल ही नहीं कि कौन मरता है, कौन जीता है।

न-जाने कब रामटहलके हृदयमें यह अविश्वास घुस गया था कि ललिता अपना पूरा प्रेम उसे नहीं दे पाती है। वह पढ़ी-लिखी औरत है। नई सभ्यताके वातावरणमें तितली-सी पली है। रामटहलका जीवन तो इसी छोटी-सी बस्तीमें कट रहा है। वह सूट-बूटमें नहीं रहता। रोज़ दाढ़ी और मूँछें साफ़ नहीं करता। विशेष ठाट-बाटसे रहना उसे पसन्द नहीं। पर उसने ललिताको कभी नहीं रोका कि वह सेन्ट, साबुन, पाउडर, क्रीम आदिका व्यवहार बन्द कर दे या सप्ताहमें एक बार शहर जाकर सिनेमा न देखे। ललिताके जीमें जो आता है, करती है। वह उसे रोकता नहीं।

और यह जो है उसका छोटा भाई विजन, जिसे उसने माँके मरनेके बाद बचपनसे ही पाला है और आज कालेजकी ऊँची शिक्षा दिला रहा है, उसे शहरकी हवा लग चुकी है। उसे धोती अच्छी नहीं लगती, कुरते बदनमें ठीक नहीं जँचते। अंगरेज़ी पढ़ता है, अंगरेज़ी पोशाक नहीं पहननेपर अभद्रता जो होगी! इसलिए वह इन सब बातोंपर ज़्यादा ध्यान रखता है। जीवनकी रंगीनियोंसे वह खुलकर परिचित हो लेना चाहता है। ललिता भी उसीके रंगमें रँगी चली जा रही है। ललिताको तो गृहिणीके समान रहना चाहिए। उसका अपना पति है। विजन देवर ही है, तो क्या? दोनोंका यौवन उद्गमसे कुछ आगे बढ़कर लहरा रहा है। कोई क्या कहता होगा!

कभी-कभी रामटहलके दिलमें खटक उठता है कि ललिता आखिर इतनी सुन्दर क्यों हुई? कृत्रिमतासे अपनी सुन्दरताको वह और भी बढ़ानेकी चेष्टा क्यों करती है? श्वेत कमलकी छातीसे लगकर सोए हुए दो भौंरोंके समान आँखें, सुन्दर नाक, आरक्त अधर हैं। फिर भी वह भौं क्यों बनाती है, ओठोंपर लिपस्टिक क्यों लगती है, दो चोटियाँ क्यों काढ़ती है? एक चोटीसे भी तो काम चल सकता था। और जब रामटहलको यह सब पसन्द नहीं, तो वह ऐसा क्यों करती है? विजन उसे तृषित आँखोंसे देखता है। रामटहलने इसे कई बार अपनी आँखोंसे देखा है। पर जब ललिताको ही यह सब पसन्द है, तो वह क्यों बोले? ललिता नासमझ नहीं है, जिसे समझाया जाय। उसे भी तो अपना भला-बुरा समझना चाहिए।

रामटहलने एक दीर्घ साँस लेकर छोड़ दी। घड़ीने १२ बजाए—टन्-टन्-टन्। बाहर बैठी ललिता जैसे सचेत हो गई। वह मन-ही-मन गिनने लगी—एक-दो-तीन...बारह! उसने अपने पाँव फैला दिए। फिर एक अँगड़ाई ली। जैसे वह अपने से ही कह उठी, १२ बज गए। शब्दोंमें टूटा हुआ उत्साह था। उसने झाँककर भीतर देखा। रामटहल चित्रकी ओर आँखें गड़ाए देख रहा था। वह अपने ऊपर खीझ उठी, वह बैठी-बैठी क्या सोचा करती है? वह जानती है कि उसे यह सब नहीं सोचना चाहिए। पतिके वृत्तके सिवा उसके सोचनेके लिए और कुछ है भी? पर यह विजन! वह चाहती है कि विजनके विषयमें वह कुछ भी न सोचे। ललिताको जैसे भूला हुआ कर्त्तव्य याद हो आया, दवा देनेका समय हो गया। वह अधसिले कपड़ोंको समेटकर उठी कि दवा दे दे, तब और कुछ करेगी। बैठकसे आवाज़ आई—'भाभी, ज़रा इधर तो आना।'

ललिता भीतर न जा सकी। दरवाज़ेपर से ही लौट गई। विजन इधर-उधरसे घूमकर आया है। १२ बज गए हैं। उसने अब तक खाना नहीं खाया है। कितना बेपरवाह रहा करता है विजन! इस तरह वह कैसे अपने स्वास्थ्यको ठीक रख सकेगा?

रामटहलने देख लिया था कि ललिता दरवाज़े तक आकर लौट गई है। उसे अपने ऊपर खीझ हो आई। वह क्यों कह नहीं देता कि तुम दोनोंका इस तरहका व्यवहार ठीक नहीं। देखो तो, दवा देनेका समय भी खत्म होता जा रहा है और वह है कि मेरी कुछ परवाह ही नहीं करती! सोचनेकी बात है, आखिर विजनसे मिलना रामटहलको दवा पिलानेसे अधिक आवश्यक तो नहीं था। और वह इसी विजन और ललिताके विषयमें क्या-क्या सोचता रहा!

बैठकसे दोनोंकी बातें करनेकी आवाज़ आ रही थी। विजन कह रहा था—'भाभी, तुम खिलाती हो, तो उसमें एक विशेष रस मालूम पड़ता है।'

रामटहल कल्पना करने लगा, विजन ललिताकी ओर तृषित

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By eGangotri Siddhanta eGyaan Kosha

नयनोंसे देख रहा होगा और ललिता हँस रही होगी! फिर विजनको 'एक विशेष रस' क्यों नहीं मालूम पड़े! वह अपनेपर एक बार फिर क्रुद्ध हो उठा। ललिता उसकी विवाहिता स्त्री है। वह उसपर शासन क्यों नहीं करता? उसे निरंकुश रखनेका ही तो यह सब नतीजा है। आज वह साफ़-साफ़ ललितासे कह देगा कि तुम्हारा यह आचरण ठीक नहीं। उसने पुकारा—'ललिता!'

बैठकसे ललिताकी आवाज़ आई—'आई।' रामटहल दरवाज़ेकी ओर प्रतीक्षाकी दृष्टिसे देखने लगा। बैठकमें विजन बोला—'भाभी, थोड़ी दाल दे दो, तब जाना।' रामटहल सोचने लगा, ललिता पहले विजनको दाल देगी, तब यहाँ आयगी। दाल देकर ज्योंही ललिता चलने लगी, तो विजन तरकारी माँग बैठा, फिर भात। इस तरह ललिताके आनेमें कुछ देर हो गई। रामटहल सोच रहा था, ललिता अब उसकी अवहेलना भी करने लगी है। पहले वह उसकी ही बात सुन जाती, तो क्या हर्ज हो जाता? थोड़ी देर खाना नहीं मिलनेसे विजन मर तो नहीं जाता। उसको समझमें नहीं आता कि ललिता उससे क्यों किनारा काट जाना चाहती है। ललिता तो उसकी है। उसके लिए वह सब-कुछ करनेको तैयार है।

ललिता कमरेमें आई। एक क्षण तक वह रामटहलकी ओर देखती रही। फिर उसकी आँख घड़ीपर जा पड़ी। १२॥ बज गए थे। उसे याद आया कि दवा तो उसने दी ही नहीं। अनजाने दाँतों-तले जीभ दब गई, जैसे उससे कोई बड़ा भारी अपराध हो गया हो। उसे अपनेपर क्रोध हो आया। उसे कर्त्तव्यका तो कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। बीमार पतिकी देख-भाल करनेवाला उसके सिवा इस घरमें कौन है? उन्हें दवा देकर कोई काम करना चाहिए था। भला वे क्या सोचते होंगे? वह दवा ढालनेके लिए टेबुलकी ओर बढ़ी। उसे क्रोध आ रहा था रामटहलके ऊपर भी। वे ही क्यों उसकी ओरसे उदासीन रहते हैं। वह पराई तो है नहीं—उनकी अपनी है। उनका तो उसके ऊपर अधिकार है। वे अपने अधिकारका प्रयोग क्यों नहीं करते? उसके सामने वे अपराधी-से क्यों रहते हैं? यह उसे अच्छा नहीं लगता। वह चाहती है कि रामटल उससे अधिकार और शासन-भरे शब्दोंमें कहें, ललिता, तुम्हें यह करना पड़ेगा; वह क्यों नहीं किया? पर वे हैं कि यह सब-कुछ नहीं कहते।

ललिता दवा लेकर रामटहलके सिरहाने खड़ी हो गई। रामटहल छतकी ओर देख रहा था। ललिता सहमी-सी खड़ी थी। वह जानती थी कि उससे अपराध हो गया है। वह कुछ कहना चाहती थी; पर सोचमें पड़ गई कि क्या कहे। फिर साहस करके बोली—'दवा नहीं पियाओगे क्या?'

रामटहलने अपने शब्दोंको बहुत कोमल करते हुए कहा—'नहीं, ललिता!' और अपने ओठोंपर मुस्कान लानेकी चेष्टा की।

ललिताको रामटहलका यह कहना कुछ अच्छा नहीं लगा। वे क्यों उसके किए हुए अपमानको हँसकर पी जाते हैं? उसके सामने वे झुके-झुके-से क्यों रहते हैं? आखिर इस दुरावका क्या मतलब है? उन्हें क्या कहा जाय? अनजाने ही वह सरोष बोल उठी—'तो दवा नहीं पिओगे?'

रामटहलने ललिताकी ओरसे सिर घुमा लिया। ललिता कुछ क्षण तक खड़ी रही। उसके जीमें आता था कि वह हाथ-वाली दवाकी शीशी और गिलास दोनोंको पटककर फोड़ दे। बोली—'अच्छा, न पिओ!' और दवाकी शीशी रखकर बाहर निकल गई। आँगनवाली देहरीपर वह खम्भेसे टिककर कुछ क्षण खड़ी रही। उसका मन करता था कि वह जी खोलकर खूब रोए। उसे लगा, जैसे परिस्थितिमें बहुत-कुछ तनाव आ गया है। रामटहल उससे कुछ पीछे छूट गया है। दोनोंके बीच एक अस्पष्ट-सी दीवार खड़ी हो गई है। वह विचार करती है, इसमें अपराध किसका है—उसका या रामटहलका? यही तो वह नहीं विचार कर पाती है। शायद वह अपराधी नहीं है—शायद रामटहल भी नहीं। फिर दूरी क्यों बढ़ती जा रही है?

वह भरी-भरी-सी कपड़ा सीने बैठ गई। इसी घरमें जब उसने पहले-पहल क़दम रखा था, तो हृदयमें कितने अरमान, कितनी अभिलाषाएँ संचित थीं! पति उसके मनोनुकूल मिले थे। उसने अपने स्वप्नोंको साकार होते पाया था। वह फूली नहीं समाती थी। पर एकाएक उसके पतिके स्वभावमें कैसे इतना परिवर्त्तन हो गया, यही वह नहीं समझ पाती है। सुहाग की रात, जब ललिता फूलोंकी शय्यापर अलसाई हुई सोई पड़ी थी, तो उसके पति आए थे। वह उठकर उन्हें नमस्ते नहीं कह सकी थी। तब उन्होंने बनावटी क्रोधसे ललिताको घरसे बाहर निकल जानेको कहा था। और जब ललिता डरी-सी, सहमी-सी बाहर निकली जा रही थी, तो रामटहलने उसे अपने पाशमें बाँधते हुए बड़े प्यारसे कहा था—'तुम डर गईं ललित! बड़ी भोली हो!' उसके बाद उन्होंने घर-गृहस्थीके विषयमें कहा कि अब उसके ही ऊपर घरका सारा भार है। उस दिन उसे गृहिणीका बोझ उठाते कितना सुख अनुभव हो रहा था। और आज वे बनावटी क्रोधसे भी ललिताके ऊपर अनुशासन नहीं करते। रामटहलका कोमल और क्षमापूर्ण दयनीय प्यार अब ललिताके लिए भार-सा हो गया है। कैसे उन दोनोंके बीच इतनी नीरसता घुस गई है?

ललिता सोचती है कि उसके और उसके पतिके बीचमें रेखा खींच देनेवाली कोई-न-कोई वस्तु अवश्य है। पर वह है क्या? यही तो पता नहीं लग रहा है। वह सोचती है, दुनिया में कितनी जल्दी परिवर्त्तन हुआ करता है! आजसे चार साल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

पहले वह अपने पतिके प्यारके नीचे गद्‌गद थी। पति-गृहमें आकर उसे स्नेह एक और आदमीका भी मिला। और वह है विजन। विजनके स्वभावसे उसका स्वभाव बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, इसलिए विजनको उसके निकट आनेमें कोई देर न लगी। जब वह पहले-पहल आई थी, तो इसी विजनने धीरेसे घूँघट हटाते हुए कहा था—'नमस्ते भाभी!' और खिलखिला कर हँस पड़ा था। उसकी हँसी उसे बहुत अच्छी लगी थी। इसी समय रामटहलने आकर कहा था—'यही है विजन, ललित! इसे सम्हालना भी तुम्हारा ही काम है।' ललिता उस समय लाजसे गड़ गई थी। उस समय रामटहलके हृदयमें उसके लिए प्रेम उमड़ा-उमड़ा पड़ता था। पर आजकल वे उससे क्यों उखड़े-उखड़े रहते हैं? कुछ भी हो, वे बहुत अच्छे हैं। उसे कितना प्यार किया करते हैं। अकारण ही उनपर वह अभी क्यों क्रोधित हो उठी? और वे हैं कि कुछ बोले नहीं। कितना उदार है उनका हृदय! वे दवा नहीं पियेंगे, तो किसका क्या बिगड़ेगा? उसे क्रोधित नहीं होना चाहिए था। क्रोध करनेकी कोई बात भी तो नहीं थी। उन्होंने दवा पीना अस्वीकार कर दिया और वह बिगड़ उठी। छिः, कितनी छिछली है वह! वह उनसे अवश्य माफ़ी माँगेगी।

वह उठकर धीरे-धीरे रामटहलकी ओर चली। बैठकमें से विजनने पुकारा—'भाभी!'

ललिता बोली—'क्या है?'

'इधर आना तो।'

ललिताका करुण व्यक्तित्व हृदयकी आर्द्रतासे भींग उठा था। वह एक क्षण रुकी, फिर बैठककी ओर चली। बैठकमें जाकर वह अवाक् रह गई। विजन बिस्तरकी गठरी बाँध चुका था। शायद वह कहीं जानेकी तैयारी कर रहा था। ललिताने यह देख लिया था कि विजनने कोई तस्वीर बैठककी दीवारसे उठाकर अपनी अटैचीमें रख ली है। वह स्तब्ध-सी क्षण-भर विजनकी ओर देखती रही। वह सोच रही थी कि विजन कहीं जा रहा है। उसे अभी रुपएकी आवश्यकता है, इसीलिए उसे बुलाया है। उसने सहज भावसे पूछा—कहाँ जाओगे, विजन बाबू?'

विजनकी आँखोंमें आँसू भरे थे। उसने एक बार ललिताकी ओर देखा और कहा—'बहुत दूर जा रहा हूँ, भाभी! जहाँसे फिर कभी नहीं लौटूँगा। अब जीवन भार-सा लग रहा है। मैं अब तक अपनेपर नियन्त्रण करता आया हूँ; पर देखता हूँ कि अब असफल हो जाऊँगा। असफलताके पास आनेके पहले ही मैं दूर हो जाना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें अन्तिम बार जी-भर देख लेनेके लिए बुलाया है। मैं एक बात जानना चाहता हूँ, भाभी, कि...'

विजन आगे कुछ नहीं कह सका। उसका गला रुद्ध हो गया था। ललिता साश्चर्य उसकी ओर देख रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि विजन यह सब क्या कह रहा है। एकाएक उसे घरसे विराग क्यों हो गया? इतनी जल्दी वह दार्शनिक कैसे हो गया? कैसा नियन्त्रण? कैसी असफलता? यही सब ललिता सोच रही थी। इक्केवालेने बिस्तरकी गठरी इक्केपर रख दी थी। विजनने एक बार आँख उठाकर ललिता की ओर देखा। उसकी आँखोंसे आँसू ढलक पड़े। ललिताने यह सब देखा। तो विजन रोता है! वह क्यों रोता है? अपनेसे ही वह पूछ उठी। विजनने आँखें पोंछकर एक बार ललिताकी ओर देखा और अटैची उठाकर चलने लगा।

ललिताने अटैची पकड़ ली। शासन-भरे स्वरमें इक्केवालेसे बोली—'सामान उतारकर रख दो! बाबू नहीं जायँगे।' और वह अटैची खोलकर देखने लगी। रूमाल, गंजी, तौलिया और यह तस्वीर! यह तो ललिताकी ही तस्वीर है, जिसे विजनने उसकी शादीके एक साल बाद खींचा था। उसके मनमें तुरत ही बहुत तरहकी भावनाएँ घूम गईं। उसने हतप्रभ-से खड़े हुए विजनकी ओर गौरसे देखा और मुस्करा पड़ी। उसके स्वरमें परिहास था—'तो मुझसे ही प्रेमका स्वाँग करते हो, विजन बाबू? यह तो लड़कपन है। यह नादानी कब सीखी?' और वह खुलकर हँस पड़ी—'तुम अब कहीं नहीं जा सकते।' यह कहकर उसने बिस्तरकी गठरी और अटैची लेकर कमरेमें बन्द कर दी और चाभी लेकर रामटहलके कमरेकी ओर चल दी।

रामटहलका हृदय रो रहा था; पर वह आँसुओंको सम्हाले था। ललिताने उसे दुबारा दवा पीनेके लिए क्यों नहीं कहा? क्या वह दुबारा पूछनेसे भी गया? वह चित्रकी ओर देखता यही सब सोच रहा था। ललिताने कमरेमें प्रवेश करते हुए कहा—'देखो जी, एक बात तो तुम्हें मालूम ही नहीं? यह जो है विजन—तुम्हारा भाई—वह मुझसे प्रेम करता है! वह अभी भागा जा रहा था, इसलिए कि मैं उससे प्रेम नहीं करती!'

रामटहलने जिज्ञासाकी दृष्टिसे ललिताकी ओर देखा कि वह यह सब क्या कह रही है। ललिता खड़ी-खड़ी हँस रही थी। रामटहलको इस समय ललिता बड़ी अच्छी लगी। उसके मनमें एक मधुर पीड़ाका धुँआ उठकर रह गया। उसने ललिताका हाथ अपने हाथमें लेकर दबा लिया। दोनों मुस्करा पड़े। रामटहलने चित्रकी ओर देखा। वह बोल उठा—'देखो, ललिता, वे दोनों ही विहग बटोही साथ चलनेवाले हैं। मैंने भ्रमसे यह समझ रखा था कि दोनों एक-दूसरेसे दूर-दूर उड़ रहे हैं!'

ललिता मुस्करा पड़ी। दोनोंने अनुभव किया, जैसे आज उनके हृदयोंमें चलनेवाले संघर्षोंको एक विराम-बिन्दु मिल गया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राचीन यूनानकी झलक

श्री शंकर भारद्वाज, एम० ए० एल्-एल्० एम०

प्राचीन यूनानका इतिहास बड़ा मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण है। हैलासने संसारको अपने समयके सर्वश्रेष्ठ काव्य, नाटक, दर्शनशास्त्र, चित्र व मूर्त्ति-कला आदि प्रदान किए, जिनके लिए सभ्य संसार आज भी यूनानके उन प्राचीन प्रतिभाशाली विद्या-विशारदों और कला-पुरोहितोंका ऋणी है। यहाँ ही रेखा-गणित, इतिहास, वैद्यक व निर्माण-कला पनपी। यूनानके विद्वानोंने ही सर्वप्रथम सत्यं-शिवं-सुन्दरम्का गुरु-मन्त्र पाश्चात्य संसारको दिया। उन्होंने सर्वप्रथम संसारके आगे सार्वभौमिक नागरिकताका सुन्दर आदर्श उपस्थित किया, यद्यपि स्वयं वे नगर-राज्योंसे आगे न बढ़ सके। मूलतः यूनानी संस्कृतिको यूरोपीय सभ्यताका मेरुदण्ड कहा जा सकता है।

अनेक विद्वानोंका मत है कि संसारकी समस्त जातियोंमें से केवल तीन जातियाँ ही ऐसी हैं, जिन्होंने संसारके आचार-विचारपर अत्यन्त प्रभाव डाला है। वे हैं—भारतीय, यूनानी और चीनी। प्राचीन यूनानका सन्देश न केवल आधुनिक जगत् के ही लिए, वरन सब कालके लिए एक विशेष महत्व रखता है। जो-कुछ हमारा वर्त्तमान ज्ञान है, वह अधिकांशमें हमें यूनानियों से ही प्राप्त हुआ है। ऐसा कोई विषय नहीं, जिसपर यदि उनकी छाप न हो, तो कम-से-कम उन्होंने गम्भीरतापूर्वक विचार अथवा अध्ययन न किया हो। उन्होंने ही संसारको सामंजस्यमें सुन्दरता और सुन्दरतामें सामंजस्यका पाठ पढ़ाया है। ऐसा करनेके लिए उन्हें प्रकृतिकी ओरसे हर प्रकारकी सहूलियतें भी मिली थीं। उनका देश रमणीक वनों तथा सुरम्य पर्वतों व घाटियोंसे आच्छादित समुद्रके तटपर स्थित था। शायद ही कोई नगर हो, जो समुद्रसे दूर आबाद हो। इसीलिए यूनानी समुद्रसे अगाध प्रेम करते थे। वहाँका जलवायु भी स्वस्थ एवं बलवर्द्धक था। स्वदेशके प्रति उनके प्रेम व कृतज्ञताका पता उन नामोंसे लगता है, जो उन्होंने अपने यहाँके पर्वतादिक रम्य स्थानोंको दिए, जैसे—ओलिम्पिक (अमरत्वको प्राप्त देवताओंका निवास-स्थान), पारानस (कवियोंका प्यारा स्थान) आदि। स्वदेश के वनोंमें उनको किन्नर-गन्धर्वोंका आभास मिलता था, इसीलिए उनके साहित्यमें प्रकृति-प्रेमकी विशेष झलक मिलती है। उनका धर्म ज़्यूस-मतका रूपान्तर-मात्र था और ज़्यूसको वे 'आकाश-पति' मानते थे।

उनके देशकी इस विचित्र बनावटने ही अनोखी नगर-राज्य-प्रणालीको जन्म दिया। वास्तवमें यूनान एक देश न होकर वस्तुतः कोई १२ राज्योंमें विभाजित था, जो पूर्ण स्वतन्त्रता और ऐश्वर्यको भोगते थे। परन्तु उनमें एक बड़ा दुर्गुण यह था कि वे एक-दूसरेकी समृद्धिको देखकर जलते थे और आपत्ति-कालमें भी एक होनेमें असमर्थ थे। जब फ़ारसने यूनान पर हमला किया, तो उस समय भी उनमें एकता न थी। वैसे प्रत्येक राज्यने असाधारण वीरता और देशभक्तिका परिचय दिया; परन्तु संगठन न होनेके कारण उनको मुँहकी खानी पड़ी।

यूनान भी भारतकी तरह छोटे-छोटे राज्योंमें विभाजित था और वहाँ भी आर्यावर्त्तकी तरह एक मन्त्रिमण्डल राजाके ऊपर शासन करता था। राजाकी नीतिकी आलोचना करनेवाली एक व्यवस्थापिका-सभा (अगोरा) थी, जो वैदिक कालकी 'समिति' से बहुत-कुछ मिलती-जुलती थी। होमरके समयमें वहाँ स्त्रियाँ उतनी ही स्वतन्त्र थीं, जितनी वैदिक भारतमें। दोनों देशोंमें एक पत्नी-व्रतकी प्रथा थी। कला-कौशलमें भी प्रायः दोनों समान ही थे। यूनानी भी अनेक देवी-देवताओंमें विश्वास करते थे; परन्तु उन्होंने अपने देवी-देवताओंका भी अपने ही रूपमें सृजन किया था, जिसके फल-स्वरूप उनमें भी वे त्रुटियाँ व दोष पाए जाते हैं, जो जन-साधारणमें थे। उदाहरणके लिए, उनका देवता हरमज़ चोर था; ऐरज़ बड़ा क्रूर-खूँख्वार देवता माना जाता था। हाँ, यूनानमें दर्शनशास्त्र उस उच्चतम शिखरपर नहीं पहुँचा था, जिसपर कि वैदिक कालका भारतीय दर्शन पहुँचा था। इसका एक कारण यह है कि यूनानियोंने केवल शुष्क ज्ञानको ही विशेषता न देकर दर्शनके साथ काव्य, नाटक चित्र, मूर्त्ति-निर्माण आदि कलाओंकी भी सामान्य रूपसे तरक्की की थी।

प्राचीन यूनानमें ऐथेन्स प्रसिद्ध नगर था। यहाँ ही बड़े-बड़े दार्शनिक अपनी विचार-धाराका तथा बड़े-बड़े कलाकार अपनी कलाका प्रचार-प्रसार करते थे। जैसा कि इतिहासज्ञ हेरोडोटस ने कहा है—'आध्यात्मिक और मानसिक खोजमें ऐथेन्स-निवासी सबसे बढ़-चढ़कर थे।' ऐथेन्स-निवासियोंके निजी मकान बड़े, छोटे व सादे होते थे; परन्तु उनके मन्दिर सुवर्ण, चाँदी व रत्नोंसे खचित होते थे। एक छोटा-सा दालान और दो छोटे-छोटे कमरे, यही एक साधारण स्थितिके मनुष्यका घर होता था। उनकी सारी कला और सुवर्ण इत्यादि अमूल्य सामग्री अपने पूज्य इष्ट-देवोंके मन्दिरोंके निर्माणमें व्यय होती थी। शिल्पकार अपने कार्यमें धर्म-भावका सदा समावेश करते थे। बाज़ार-हाटमें सामाजिक प्रश्नों पर वाद-विवाद करना अथवा किसी सुन्दर उद्यान, वाटिका या नदी-तटपर भ्रमण करना मानो उनकी दिनचर्याका विशेष अंग था। ऐथेन्स तो स्वतन्त्र था; परन्तु उसके नागरिक परतन्त्र थे। उनका जीवन नागरिक कर्त्तव्योंकी शृंखलामें परिबद्ध था। उनको राजधर्ममें विश्वास करना पड़ता था तथा तदनुसार ही सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेना पड़ता था। प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य था कि वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

शासन-प्रणालीको अच्छी तरह जाने और अपनी बारी आनेपर न्यायाधीश, सिपाही या किसी और हैसियतसे अपनी सेवाएँ देशको अर्पण करे। बड़े-बड़े विद्वान लेखक, दार्शनिक व कवि भी किसी-न-किसी समय फ़ौजमें मामूली सिपाही होते थे। प्रसिद्ध नाटक-लेखक एश्चिल्स फ़ारसके विरुद्ध लड़ा था और थ्यूसिडिड पैलापोनिशियन युद्धमें सेनापति था।

ऐथेन्सके नवयुवक भारतकी तरह जंगलों में गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण नहीं करते थे, वरन वे शहरमें ही रहकर विद्योपार्जन करते थे। उनका शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श नवयुवकों को एक उपयोगी व कर्मिष्ठ नागरिक बनाना था, न कि भिक्षु अथवा कोरे पंडित। विद्यार्थी-जीवनमें ही उनको शासन-सम्बन्धी सामान्य कार्य करने पड़ते थे, जैसे—बन्दरगाहपर जाना और यात्रियोंकी पूछ-ताछ व देख-भाल करना, विशेष समयके लिए फ़ौजमें भर्ती होना इत्यादि। कई बार उनको और छोटे-मोटे कला-कौशल व उद्योग-धन्धोंमें भी हाथ बँटाना पड़ता था। उनकी शिक्षा-प्रणालीके दो मुख्य अंग थे—गायन तथा पुस्तकीय विद्या और शारीरिक व्यायाम। जिमनास्टिकको उन्होंने इसलिए विशेष महत्व दिया कि वे शारीरिक सुन्दरताके अनन्य उपासक थे और दूसरे आजकलकी तरह मुस्तक़िल फ़ौजें न होनेके कारण उनको इन्हीं हृष्ट-पुष्ट नौजवानों से देश-रक्षा भी करनी पड़ती थी। उस समयकी पाठ्य-प्रणालीके सम्बन्धमें अफ़लातूँकी प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक'में बहुत-कुछ लिखा है। अरस्तूका मत था कि बच्चोंको निन्दा, घृणा अथवा बर्बरतापूर्ण कहानियाँ या ऐसी कहानियाँ, जिनका तात्पर्य किसी भले आदमीको दुःखमें दिखाना हो, नहीं सुनाई अथवा पढ़ाई जायँ। अफ़लातूँने नागरिकके आदर्शपर भी काफ़ी प्रकाश डाला है। उसने आदर्श नागरिकमें वीरता, सत्य, आत्म-संयम और शिष्टाचार आदि गुणोंका होना आवश्यक बतलाया है।

यूनानमें थिएटरकी प्रथा देवताओंकी पूजा-अर्चनाके रूपमें आरम्भ हुई थी। तब यह एक धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। ये थिएटर सदा हरे-भरे खुले मैदानोंमें हुआ करते थे। आस-पास दर्शकोंके बैठनेका प्रबन्ध होता था और बीचमें राज पुरोहितोंके लिए संगमरमरकी पीठिका बनी होती थी। यह ध्यान रखा जाता था कि अश्लील, बर्बर और क्रूर दृश्य जनताके सामने न दिखाए जायँ। स्त्रियोंकी मर्यादाके खयालसे उन्हें हास्य-नाटक नहीं देखने दिए जाते थे, क्योंकि कई बार वे अश्लील होते थे। यूनानने कई बड़े-बड़े नाटककार संसारको दिए—एश्चिल्स (जिसका 'एगमन' संसारमें करुणा-रसका सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है), सोफ़ोक्लीज़ (जिसके नाटक मानव-जीवनके हर पहलूपर काफ़ी प्रकाश डालते हैं) आदि।

प्राचीन यूनानमें थिएटर ही की तरह सार्वजनिक खेलोंका भी विशेष स्थान था। इनका विकास भी धार्मिक रीति-रिवाजोंसे हुआ। सर्वप्रथम यह ओलिम्पिया-निवासी ज़्यूसके आदरमें होते थे। ओलिम्पिक खेल ही यूनानके तितर-बितर हुए राज्योंको एक सूत्रमें बाँधे हुए थे। जब यह खेल आरम्भ होते थे, तो लड़ाई भी बन्द कर दी जाती थी, ताकि खिलाड़ी और दर्शक दूर-दूर प्रदेशोंसे आसानीसे आ-जा सकें। इन खेलोंके पुरस्कार वग़ैरः विशेष मूल्यवान नहीं होते थे—एक चोग़ा अथवा जैतूनका गुच्छा या सुन्दर पक्षियोंके पंखका ताज ; परन्तु खेलोंमें इनाम पाना बड़ी इज़्ज़त समझी जाती थी। विजेताका खूब धूम-धामसे जलूस निकाला जाता था। प्रसिद्ध मूर्त्तिकार विजेताओंकी मूर्त्तियाँ बनानेमें अपना गौरव समझते थे। कई संवत भी खेलोंके आरम्भ-दिवससे माने जाने लगे हैं।

प्राचीन यूनानियोंका दृष्टिकोण बड़ा अद्भुत तथा मनोरंज था। उनकी कल्पनामें कोई पाप न था। यहूदियोंवाली ग़म-ग़ीनीसे उनको कोई सरोकार न था। प्रायश्चित्त, अनुष्ठान आदि से वे कोसों दूर भागते थे। वे संसारको मायामय अथवा मिथ्या नहीं मानते थे, वरन सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुसे उन्हें प्रगाढ़ प्रेम था। वे सत्यं-शिवं-सुन्दरम्की अनन्त खोजमें लीन रहते थे और संसारको आनन्दमय बनानेमें ही अपना समय एवं शक्ति व्यय करते थे। जो-कुछ उन्होंने देखा, उसे अपने साहित्य तथा कला द्वारा अमर कर गए।

पर प्राचीन यूनानकी सबसे अमर और उल्लेखनीय देन हैं महात्मा सुकरात, जिनको जगत्गुरु कहना कोई अत्युक्ति न होगी। वे संसारके सर्वप्रथम महापुरुष हैं, जिन्होंने धार्मिक पाखण्ड और रूढ़िवादके विरुद्ध आवाज़ उठाई। वे बुद्धिवादके सर्वप्रथम प्रणेता थे। कई विद्वान तो यूनानी दर्शनका उद्गम भी उन्हींसे मानते हैं। महात्मा सुकरातमें कोई शारीरिक सुन्दरता नहीं थी। वे बाज़ारोंमें विचरते और जन-साधारणसे मामूली विषयोंपर वार्त्तालाप आरम्भ कर देते थे। तत्पश्चात् वे शनैः-शनैः उनके धार्मिक तथा सामाजिक विश्वासकी अपने प्रखर तर्क द्वारा कड़ी आलोचना करते और उनको ज्ञान-मार्गकी दीक्षा देते। इस सत्य-प्रचारके कारण उनको अपने जीवनकी आहुति तक देनी पड़ी थी। उन महात्मापर भी, जिन्होंने स्वयं दारिद्र्य-दुःख सहकर संसारको सत्य-सन्देश दिया, यह दोष लगाया गया कि वे ऐथेन्सके नवयुवकोंको कुमार्गी बना रहे हैं, और परिणाम-स्वरूप उन्हें विष-पान करना पड़ा। विष-पानसे प्रथम जो शब्द उन्होंने अपने व्यथित शिष्योंको कहे, वे इस प्रकार हैं—'ऐ मनुष्य, अपने-आपको पहचान और संसारी बन्धनोंसे मुक्त हो।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

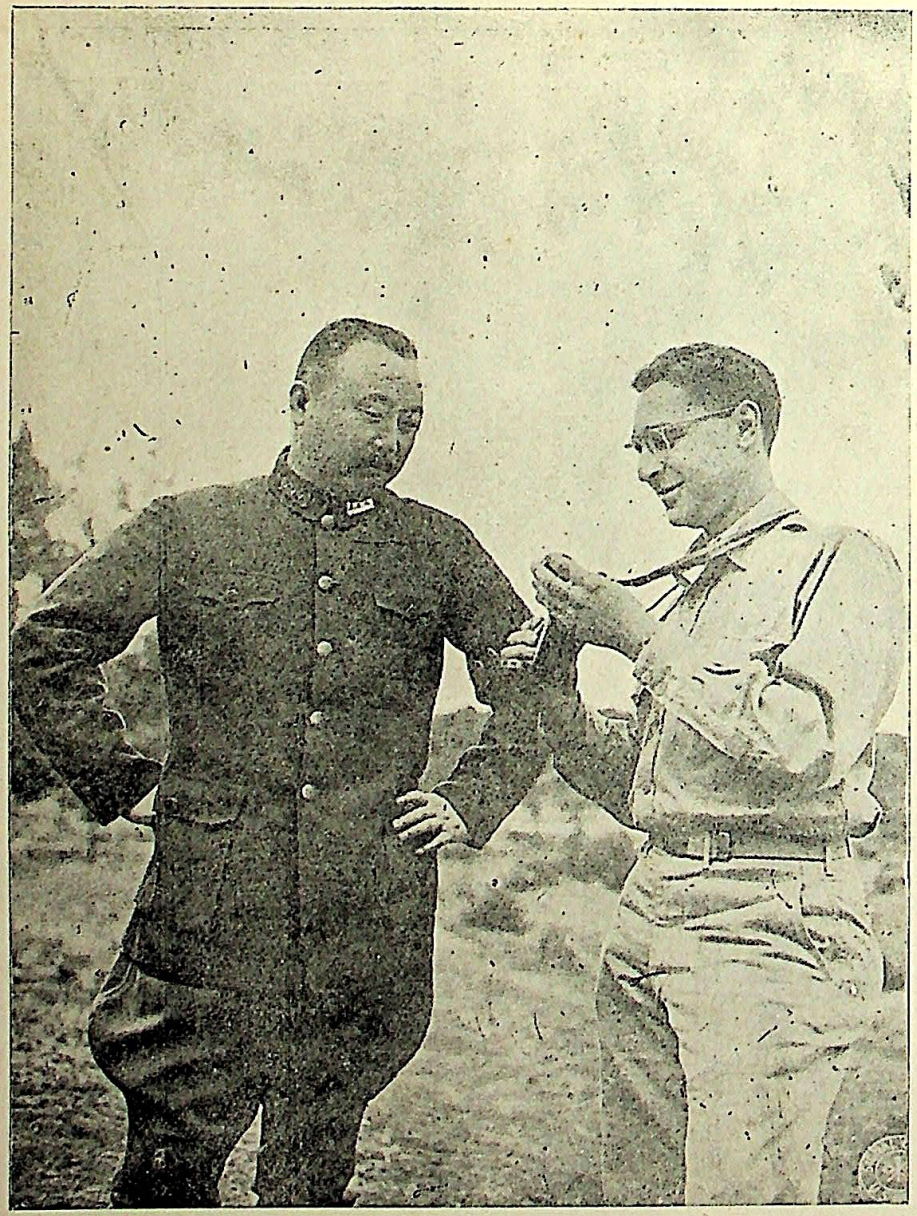

चीनी अगुआ-दलके सेनापति मार्शल वी-ली-हुआंग अमरीकन फोटो-अफ़सर लेफ़्टिनेन्ट नार्मन डेनके साथ।

चीनका एक गुरिल्ला-सैनिक, जो स्थल और आकाशके मार्गसे आनेवाले शत्रुओंकी टोहमें आँखें लगाए खड़ा है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

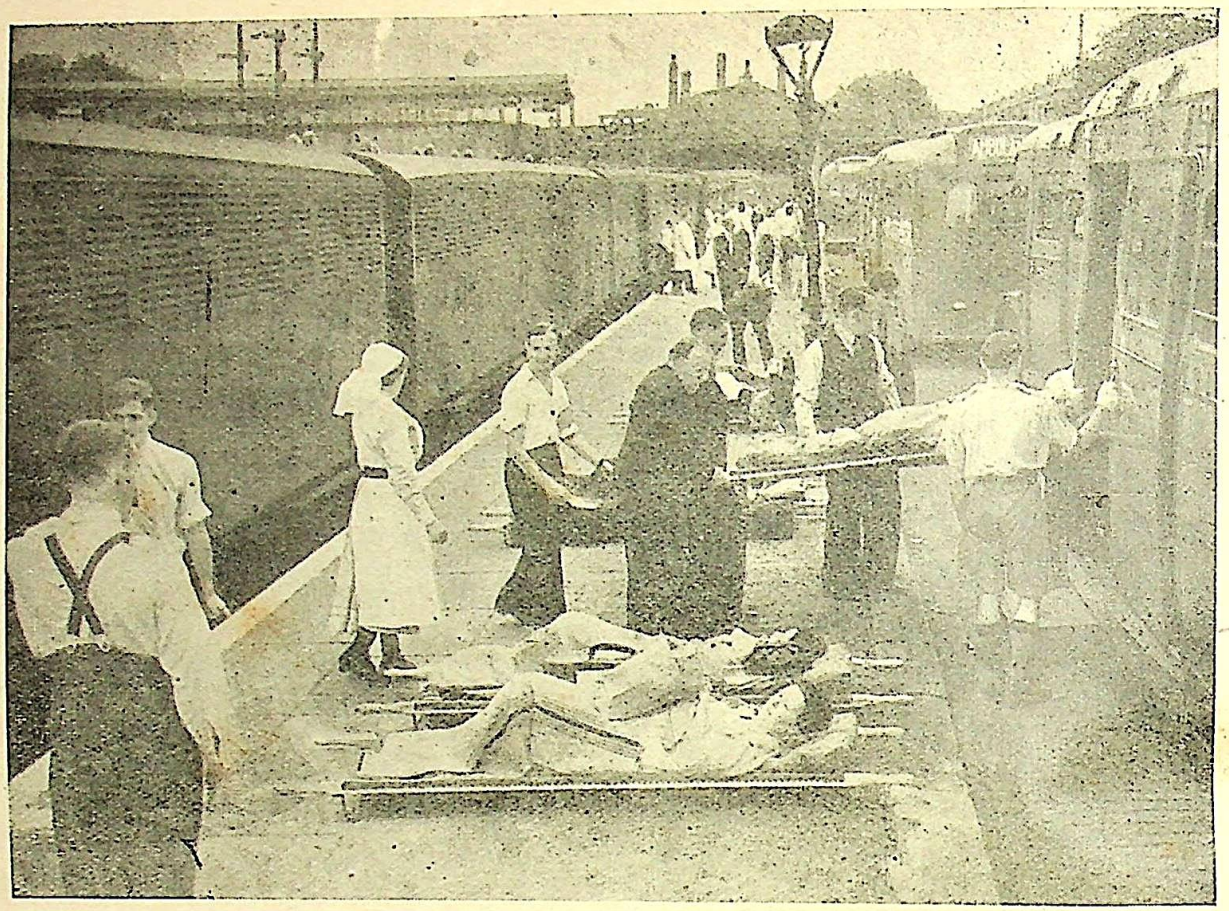

युद्ध-कालीन लन्दनसे रोगियोंको रेल द्वारा दूसरे स्थानोंपर भेजा जा रहा है।

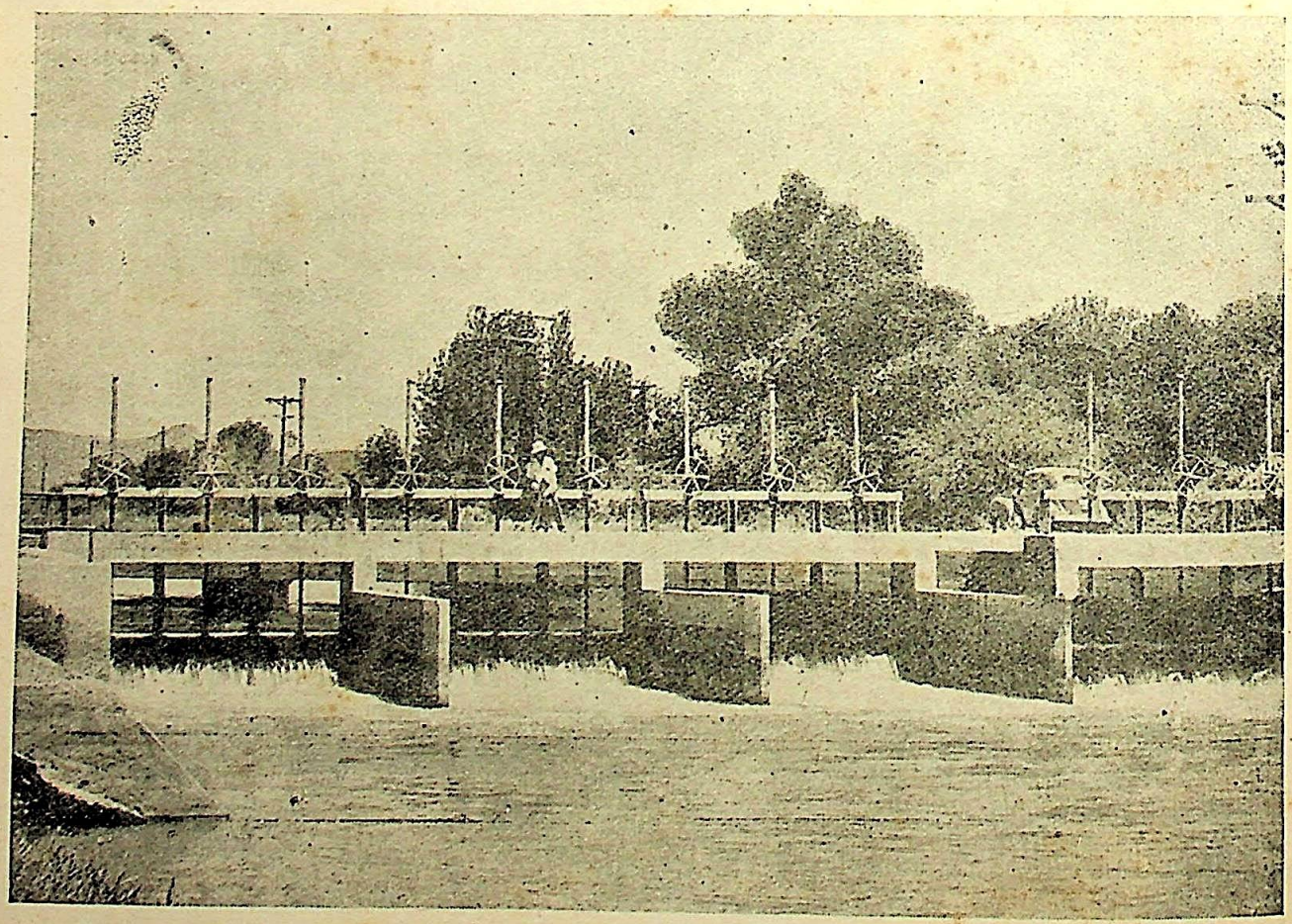

पश्चिमी संयुक्त-राज्यके कोलोरोडो-प्रदेशमें सिंचाईकी नई व्यवस्था। इस नहरके जलसे अनेक मील दूरकी जमीनको पानी पहुँचाया जाता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाण भट्टकी आत्म-कथा

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

(गतांकसे आगे)

सुचरिता अपनी कहानी सहज भावसे ही कहती जा रही थी ; परन्तु यहाँ आकर उसके कण्ठमें थोड़ी-सी जड़िमा आ गई। चन्द्रमाकी धवल ज्योतिर्धारा सीधे उसके मुखपर पड़ रही थी। उसका मुख उस स्वेत आवरणसे जितना ही उद्भासित था, उतना ही आवृत्त भी। परन्तु इस बार जो लालिमा उसके मनोहर मुखपर अनायास ही खेल गई, उसे यह स्वेत आवरण भी नहीं छिपा सका। जाह्नवीकी धारामें प्रतिफलित रक्तोत्पलकी भाँति, जल-चादरके भीतरसे परिदृश्यमान दीप-शिखाकी भाँति, शरत्कालीन मेघोंसे अन्तरित बालसूर्यकी प्रभाके समान वह लालिमा अधिकतर रमणीय होकर प्रकट हुई। केवल एक क्षणके लिए उसकी दृष्टि नीचेकी ओर झुकी और दूसरे ही क्षण वह सहज हो गई। बोली—'क्यों ऐसा होता है, आर्य ? क्या पूर्वजन्मका बन्धन है यह, या परजन्मका निमित्त है ? जिस प्रचण्ड दुर्वार शक्तिके इंगित-मात्रसे लज्जाका आजन्म लालित बन्धन इस प्रकार शिथिल हो जाता है, वह क्या पाप है ? उसे राक्षसी शक्ति क्यों समझा जाता है, आर्य ? मैंने जितने लोगोंको यह कहानी सुनाई है, उन सबने ही बुद्धिमानकी भाँति सिर हिलाकर मुझे पापकारिणी बताया है। दीर्घकाल तक मैं स्वयं अपने इस अकारण आरोपित पाप-भावनाकी चिताग्निमें जलती रही हूँ। वैराग्य क्या इतनी बड़ी चीज़ है कि कवि प्रेमके देवताको उसकी नयनाग्निमें भस्म कराके गौरव अनुभव करें ?' वह देर तक मेरी ओर उत्तरकी आशासे देखती रही। मैंने संक्षेपमें उत्तर दिया—'प्रश्न विभज्यवचनीय है, देवि ! आप दो बातोंको एक करके पूछ रही हैं। कालिदासने प्रेमके देवताको वैराग्यकी नयनाग्निसे भस्म नहीं कराया है, बल्कि उसे तपस्याके भीतरसे सौन्दर्यके हाथों प्रतिष्ठित कराया है। पार्वतीकी तपस्यासे सच्चे प्रेमके देवता आविर्भूत हुए थे। जो भस्म हुआ, वह आहार-निद्राके समान जड़ शरीरका विकार्य धर्म-मात्र था। वह दुर्वार था ; परन्तु देवता नहीं था। देवता दुर्वार नहीं होता, देवि ! विभज्यवचनीय है तुम्हारा प्रश्न। मैं पूरी कथा सुनना चाहता हूँ।' सुचरिता चकित मृग-शावककी भाँति आश्चर्य-विस्फारित नयनोंसे मुझे देखती हुई बोली—'क्या कहा आर्य, पार्वतीने शिवकी क्या एकमात्र देवताके रूपमें आराधना नहीं की थी ? क्या उनका व्रत जड़ शरीर-धर्मोंका पाप-आकर्षण-मात्र था ? व्रज-सुन्दरियोंने निखिलानन्दसन्दोह मुकुन्दकी विग्रह-माधुरीके प्रति जो आकर्षण दिखाया, वह क्या प्रेम नहीं था ? फिर क्यों कहा गया है, आर्य, कि व्रज-सुन्दरियोंका प्रेम ही काम है और काम ही प्रेम है ?[1] क्या पार्वतीका वह प्रणाम, जिसमें उन्होंने नील अलकोंमें शोभमान कर्णिकारका विस्रंसन किया था और कर्णासक्त पल्लवोंको भावावेगके कारण च्युत हो जाने दिया था, एक बाह्य जड़ धर्म था ?'[2] क्षण-भरमें मेरे सामने पार्वतीका तपोनिरत वेश विद्युच्छटाकी भाँति खेल गया, और कालिदासके अपूर्व वर्णना-नैपुण्यसे प्रतिफलित वह मूर्त्ति याद आ गई, जो शिलापर शयन करती थी, अनिकेतवासिनी थी, धूप-वर्षा-आँधी-तूफ़ानमें स्थिर खड़ी रहती थी। केवल महारात्रि ही अपनी विद्युन्मयी दृष्टिसे बीच-बीचमें झाँककर उस महातपस्याकी साक्षी बनी रही।[3] पार्वतीकी उस अवस्थासे सुचरिताकी इस अवस्थामें कितना साम्य है और फिर भी कितना वैषम्य है ! मैंने स्नेह-तरल स्वरमें कहा—'पार्वतीने ठीक ही शिवको अपना सर्वस्व समझा था, देवि ! किन्तु दोष शिवकी ओरसे हुआ था। उन्होंने अपने चित्त-विकारके हेतुको दिशाओंके उपान्त-भागमें खोजा था। चित्त जड़ प्रकृतिका चेतनके संसर्गसे उत्पन्न विकार-मात्र है, शुभे !'[4] परन्तु मुझे पूरी कथा सुननेका आग्रह है।'

सुचरिता बोली—"चतुर हो आर्य, प्रियभाषी हो आर्य, आधी बात सुनकर निर्णय करना बुद्धिमान्यका लक्षण है। सबने मेरी कहानी आधी ही सुनी है, और यह आधी कहानी इस नगरमें नाना भावसे विकृत हुई है। पर तुम पूरी सुनना चाहते हो। निपुणिका आधी ही जानती है ; परन्तु उसने सन्देह नहीं किया और मेरे आचरणको पाप नहीं बताया। वह सहृदय थी। मैं तुम्हें पूरी सुना रही हूँ, आर्य ! जिस समय मैं इस प्रकार अपने-आपको संयमकी रश्मियोंसे खींचनेका प्रयत्न कर रही थी, उसी समय मेरी सास देर तक मुझे लौटती न देख खोजती हुई उधर ही आईं। उन्होंने उस रक्त चीवरधारी मुनिकुमारको देखते ही कातर चीत्कार किया—'अरे मेरा लाल, मेरा अमित-कान्ति !' और अर्द्धमूर्छित-सी होकर तपस्वीके पास गिर गईं।

---

१. बहुत परवर्ती ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिन्धु'के इस वचनसे तुलना की जा सकती है—'प्रेमैव व्रजरामाणां काम इत्यभिधीयते।'

२. तुल० (कुमारसम्भव, ३।६२)—
उमापि नीलालकमध्यशोभि विस्रंसयन्ती नवकर्णिकारम्।
चकार कर्णच्युतपल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय॥

३. तुल० (कुमारसम्भव, ५।२५)—
शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवाष्पवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः॥

४. तुल० (कुमारसम्भव, ३।६९)—
हेतुं स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुनिकुमारके वैराग्य-कठोर मुखपर करुण भावकी रेखाएँ दिखाई देने लगीं। उन्होंने कमण्डलु एक तरफ़ रख दिया और धीर भावसे माताके सिरको गोदमें लेकर दबाना शुरू किया। अत्यन्त मृदु-कोमल कण्ठसे बोले—'आर्ये, संयत होओ, वृथा उद्विग्न क्यों हो रही हो?' माताने करुण नेत्रोंसे पुत्रकी ओर देखा, बोलीं—बेटा, तू मुझ अभागीको रोती-कलपती छोड़ कौन-सा धर्म कमा रहा है? यह देख, वह तेरी ब्याहता बहू है। अभागे, स्वर्गमें ऐसी कौन-सी अप्सराएँ मिलती होंगी, जिनके लिए तू इस मणिकांचन-प्रतिमाको छोड़कर तपस्या कर रहा है?' माताकी इस बातसे मैं जितनी ही हतबुद्धि बन गई, उतनी ही लज्जित भी। यह भी कोई बातकी बात है! तपस्वी किन्तु गम्भीर बने रहे। उनके तेजोमण्डित मुखमण्डलपर निर्विकार भाव ज्यों-का-त्यों बना रहा। माताने कातर कण्ठसे अपना दुखड़ा सुनाना शुरू किया। पुत्रने धीर भावसे सुनकर कहा—'संसार दुःख है, आर्ये!' विचित्र दशा थी। समस्त जीवनके नैराश्यों और कष्टोंकी साक्षात् प्रतिमा माता फफक-फफककर अपनी करुण कहानी सुना रही थी, उसकी आँखोंमें अश्रु-धारा श्रावण मासकी वारि-धाराके समान झड़ रही थी, और पुत्र निर्विकार भावसे उपदेश देता जा रहा था, मानो वह अपनी माताको पहचानता ही नहीं, मानो उसकी अपनी माता भी सौ-पचास अन्यान्य आर्याओंकी भाँति एक सामान्य आर्या हो! मेरा स्त्रीत्व इस ढोंगको बर्दाश्त नहीं कर सका; परन्तु कुछ बोल न सकी। लज्जासे कण्ठ रुद्ध हो गया। अन्तमें माताने ही दूसरा रूप धारण किया—'अरे ओ मूढ़, रटी हुई बोली बोल रहा है तू! भण्ड है वह धर्माचार, जो अपनी माताको भी पहचाननेमें लज्जा अनुभव करता है। इस दुःखमय संसारको और भी दुःखमय बना कर ही क्या तेरा सुखका राजमार्ग तैयार होगा? स्वार्थी है तेरा मार्ग, धिक्कार है तेरे पौरुषको!' तपस्वीका चित्त गला। उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, एक बार अपनी माताकी ओर। माताने मेरी ओर देख डाँटकर कहा—'ताकती क्या है अभागी, यही तेरा पति है, यही तेरा देवता है। आ, इसके चरणोंमें अपनेको समाप्त कर दे। मरती क्यों नहीं भाग्यहीना, मैं मरकर तुझे सिखा दूँगी कि मरना क्या होता है? इसने तेरा हाथ पकड़ा था, यही तेरा निबाहनेवाला है। आ, तू इसीकी शरण आ। मैं चलती हूँ। बहुत रो चुकी हूँ। आज मैंने अपना खोया धन पा लिया है। मैं इस बार नहीं चूकूँगी। यहीं मेरी समाप्ति है।' इतना कहकर माताने ज़ोरसे वक्षःस्थल पर कराघात किया, और कटे रूखकी तरह तपस्वीकी गोदमें लुढ़क गईं। क्षण-भरमें मेरे सामने अन्धकार छा गया। 'हाय अम्मा', कहकर मैं भी माताके अवश शरीरपर गिर पड़ी।

"थोड़ी देर बाद मैं जब होशमें आई, तो क्या देखती हूँ कि तपस्वीके तेजोमण्डित मुखमण्डलमें विकारका धूम छा गया है। उनके बड़े-बड़े नयन-कोशोंसे मुक्ताफलकी धाराके समान अश्रु झर रहे हैं। मैं लज्जिता, शोकर्त्ता, हतबुद्धि और कर्त्तव्य-ज्ञान-विरहिता होकर जड़वत् बनी रही। तपस्वी अपने चीवरसे माताके सिरपर हवा कर रहे थे। उनका कण्ठ वाष्पपूर्ण था। मेरी ओर देखकर ईषत् लज्जित-से होकर वे बोले—'शुभे, धैर्यसे काम लो, इस कमण्डलुमें थोड़ा-सा जल ले आओ।' मेरा जन्म कृतार्थ-सा मालूम हुआ। बिना कोई उत्तर दिए मैं सरोवरसे जल ले आई। माताके नेत्रों और मस्तिष्कको पानीसे आर्द्र करनेके बाद उन्होंने फिर चीवरसे हवा करना शुरू किया। थोड़ी देर बाद फिर मेरी ओर देखकर आँखें नीची कर लीं और बोले—'देवि, माताके तलवोंको करतलसे अच्छी तरह रगड़ो।' मैंने आज्ञा पालन की। थोड़ी देरकी सुश्रूषाके बाद माताकी आँखें खुल गईं। तपस्वीका व्रत इसपर भंग हुआ, संयमका बाँध टूट गया, दीर्घकालकी रटी हुई भाषा लुप्त हो गई। वाष्प-गद्गद् कण्ठसे बोले—'माँ, ऐ माँ!' माताका स्नेहोद्वेल हृदय इस बार उफ़न पड़ा। तपस्वीकी गर्दनको अपनी क्षीण भुज-लताओंसे बाँध वे फफककर रो पड़ीं। बोलीं—'हाँ बेटा, माँ कहकर पुकार। मेरा लाल, मेरी खोई निधि, मेरा अमितकान्ति! तेरे पिता स्वर्गमें तेरे इस रूक्ष-जटिल रूपको देखकर मुझे बुरी तरह डाँटेंगे, मेरे लाल! मैं अधिक नहीं बचूँगी। बोल, एक बार माँ कहकर पुकार। मैं तेरी गोदीमें सुखकी नींद सो जाना चाहती हूँ, मेरे प्राण!' तपस्वी इस बार सम्हाल न सके। फूट-फूटकर रो पड़े—'ना माँ, मैं तेरी गोदीमें लौट चलूँगा, मुझे एक बार गुरुसे आज्ञा ले लेने दो।' माताका चेहरा लाल हो गया। एक बार फिर करुणामें वीररसका अचानक प्रादुर्भाव हुआ। गरजकर बोलीं—'पाषण्ड है वह ढोंगी, जो मातासे बढ़कर अपनेको गुरु मानता है। तू मेरा है, मेरे रक्त-मांसका टुकड़ा है, दूसरा कौन तेरा गुरु है!' माताका दुर्बल शरीर इस उत्तेजनाको बर्दाश्त नहीं कर सका। वे फिर संज्ञाहीन हो गईं। अबकी बार मैं अपनेको सँभाल न सकी। चिल्लाकर रो पड़ी—'हा अम्मा, अब मेरा सहारा कौन होगा?' तपस्वीने वाष्परुद्ध कण्ठसे फिर कहा—'घबराओ मत भद्रे, माताको जिलाना मेरे हाथोंमें है।' वे कुछ सन्नद्ध-से होकर सेवा करने लगे। मुझे भी नाना भावसे सेवा करनेका आदेश करने लगे। थोड़ी देर बाद माता जब सचेत हुईं, तो उन्होंने अकम्पित स्वरमें कहा—'माँ, तू जो कहेगी, वही करूँगा।' माताने स्नेह-गद्गद् हो उनका सिर चूम लिया। उनके वक्षःस्थलसे दूधकी धारा बह निकली। वे तपस्वीको दो वर्षके शिशुके समान गोदमें लेकर दुलराने लगीं। फिर बोलीं—'तू सत्य कहता है, मेरा लाल! मैं जो कहूँगी, वही करेगा?' तपस्वीने सहज स्वरमें कहा—'निश्चय करूँगा, माँ!' माताने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा—'तो पकड़ इसका हाथ। एक बार झूठा बन चुका है, दूसरी बार फिर झूठा न बन।' तपस्वीने एक बार आकाशकी ओर देखा, एक बार पृथ्वीकी ओर। फिर मेरी ओर देखकर बोले—'शुभे, माताकी आज्ञा तुमने सुनी है न?' मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति बताई। तपस्वीने कहा—'मैं माताकी आज्ञासे तुम्हारा हाथ पकड़ना चाहता हूँ। क्या तुम जीवनमें मेरे लक्ष्यकी ओर बढ़नेमें मुझे सहायता पहुँचानेको तैयार हो?' मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। लज्जाके भारसे मेरी ग्रीवा जो झुकी, सो मानो टूट ही गई, उठनेका नाम ही नहीं। माताने स्नेहपूर्वक कहा—'हाथ बढ़ा दे, बेटी!' और मेरा पाणिग्रहण हो गया! माताने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और पुत्रसे कहा—'अब चल बेटा, मेरे साथ।' पुत्रने माताके चरणोंपर सिर रख दिया और गिड़गिड़ाकर कहा—'एक बार गुरुकी अनुमति लेनेकी आज्ञा दे दो, माता!' आज्ञा मिल गई। वे चले गए। फिर क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम। पर फागुनकी पूर्णोंको वे मेरे यहाँ लौट आए और मुझे अवधूत अघोरभैरवके पास ले गए। अवधूतपादके आदेशसे ही हम दोनोंने अपने वर्त्तमान गुरुसे दीक्षा ली है। परन्तु आर्य, मेरे पति जब लौटकर आए, तो माताको नहीं देख सके। माता पहले ही स्वर्ग-यात्रा कर चुकी थीं। मैं दुनियाको आधी कहानी ही बता सकी हूँ। माताके अभावमें आधी बाक़ी रह गई थी। कल अचानक इस आधी कहानीकी सचाईका प्रमाण मिल गया है। श्रेष्ठी धनदत्तने मेरे पतिको पहचान लिया है। यह व्यवहार सिद्ध करता है कि आधी कहानी भी गोपन नहीं रहेगी।"

सुचरिता अपनी कहानी कहकर मेरी ओर एक दीर्घस्थायी दृष्टिसे देखती रही, मानो कुछ सुननेकी प्रतीक्षामें हो। परन्तु मैं दूसरी ही चिन्तामें था। मैं अवधूत अघोरभैरवके पास प्रथम समागत विरतिवज्रको स्मरण कर रहा था। आज मैं समझ सका कि उस शान्त-स्निग्ध मुखश्रीके भीतर कितनी व्यथा थी। समस्त वेदना, अनुताप और अनुशयको पीकर जो निर्धूम अग्नि-ज्योतिके समान अविकृत तेज उस मनोरम मुखसे प्रकाशित हो रहा था, वह निस्सन्देह समुद्र-गम्भीर हृदयका निदर्शक था। मैं सुचरिताके विषयमें भी सोचता रहा। कितना सहज भाव है, कैसा अकृत्रिम व्यवहार है! आहा, कांचन-पद्मधर्मि शरीरमें ही मृदुता और ससारता रह सकती हैं! क्षण-भर रुककर मैंने पूछा—'अविनय मनमें न लाओ देवि, तो मैं पूछना चाहूँगा कि आधी कहानी गोपन रखकर तुमने उसे क्यों विकृत होने दिया?' सुचरिताने बिना हिचकके छूटते ही जवाब दिया—'आधी कहानी ही मेरा अपना सत्य है, आर्य! अगर परवर्ती आधी कहानी न भी घटी होती, तो उतनेकी सचाईमें मुझे कोई सन्देह नहीं रहता। बाक़ी आधी माताकी गवाहीकी अपेक्षा रखती थी। तुमने जितने सरल भावसे इस उत्तरार्धपर विश्वास कर लिया है, उतने सरल भावसे और कोई विश्वास नहीं करता।' मैंने ज़रा संकोचके साथ ही प्रश्न किया—'उत्तरार्धका तुम्हें आधा ही मालूम है, देवि! आधा मुझे मालूम है! तुमने क्या इसमें कुछ छिपाया नहीं है?' सुचरिताकी सहज-मनोहर आँखोंमें हँसीका भाव तरंगित हो गया। बोली—'मैंने सुन रखा है, आर्य, कि तुम नर्म (सरस हास्य)-कुशल हो। क्या छिपाया होगा भला मैंने!' मैंने सुचरिताकी उत्सुक आँखोंमें अपनी आँखें बैठा दीं। हँसकर बोला—'सुनो शुभे, आर्य विरतिवज्रने अवधूत अघोरभैरवसे बताया था कि एक दिन अचानक गुरुने उन्हें बुलाकर कहा था कि तुम कौल-सिद्ध अवधूत अघोरभैरवके पास चले जाओ। मैं इसका साक्षी हूँ। मैं उस दिन इसका अर्थ नहीं समझ सका था। आज समझ रहा हूँ। आर्य विरतिवज्रने गुरुसे सारी कथा कही होगी, गुरुने शिष्यको व्रत-भंगसे बचानेका प्रयत्न किया होगा। शिष्य व्याकुल हो गया होगा; पर सहज गम्भीरताके कारण गुरुके बताए नियमोंका पालन करने लगा होगा। परन्तु—' मैं क्षण-भर रुककर सुचरिताकी ओर देखने लगा। उसकी नर्म-चटुल मुद्रा बदल गई थी। वह गम्भीर हो गई थी। बोली—'हाँ, कहो आर्य, मैं नया सुन रही हूँ।' मैंने हँसकर कहा—'हाँ देवि, तो आर्य विरतिवज्रको किसी सरोवरके निकट गुरुने देखा होगा, जहाँ वसन्त-कालकी जन्मभूमिके समान सहकार लताओंका एक अविरल कुंज होगा, जो मानो पुष्पोंसे पुष्पमय, मधुकरोंसे भ्रमरमय, कोकिलोंसे परभृतमय और मयूरोंसे मयूरमयकी भाँति लग रहा होगा। वहाँ गुरुका सारा उपदेश भूलकर वे लिखितकी भाँति, उत्कीर्णकी भाँति, स्तम्भितकी नाईं, उपरतके समान, प्रसुप्तकी तरह, योग-समाधिस्थकी भाँति निश्चल होकर भी व्रतसे चलित हो गए होंगे। गुरुने आश्चर्यके साथ अपने नैरात्म्यके उपदेशकी यह परिणति देखी होगी, शून्य समाधिकी यह अवस्था उनके मस्तिष्कमें कभी आई ही न होगी। कैसी रही होगी वह शून्य समाधि! हृदय-निवासिनी प्रियाको देखनेके लिए उनकी समस्त इन्द्रियाँ इस प्रकार अन्तःप्रविष्ट हुई होंगी, मानो असह्य विरह-सन्तापसे बचनेका उद्योग कर रहे हों। इस प्रकार उनका समूचा शरीर विराट् शून्यका आकार धारण कर चुका होगा; निष्पन्द-निमीलित नयनोंमें हृदयदाही प्रेमाग्निका धुआँ भीतर-ही-भीतर लग रहा होगा और उनसे अजस्र वारि-धारा झड़ रही होगी; दीर्घ निःश्वास-वायुसे लता-कुसुम काँप उठे होंगे और उनके कुसुम-रेणु दिङ्मण्डलमें विकीर्ण हो रहे होंगे। इसी अवस्थामें गुरुने उन्हें अचानक पुकारा होगा। जब आर्य विरतिवज्र गुरुकी वाणी सुन धड़-फड़ाकर उठे होंगे, तो वृक्षोंने कुसुम-रेणु छिड़ककर मनोभव देवताके वशीकरण-चूर्णका प्रभाव विस्तार किया होगा, अशोक-पल्लवोंने मृदु-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्पर्शसे अपना राग संचारित कर दिया होगा, वनलक्ष्मीने नवीन राज्यमें प्रवेश करनेवाले युवराजकी भाँति उस अपूर्व मनोहर किशोर तापसके भालपट्टपर मधु-विन्दुओंका अभिषेक किया होगा, और वसन्त-कालने कोकिलोंके संगीतसे, भ्रमरोंके गुंजारसे, चम्पक-कलिकाके प्रसादसे और सहकार मंजरीके मांगल्यसे उनका अभिनन्दन किया होगा। तुमने क्या उस दिन इस बातका कोई चिह्न नहीं देखा था, देवि। तुम मुझसे छिपा रही हो न?' सुचरिताने आँखें झुका लीं और हँसीकी तरल धारामें तरंगित-सी होती हुई बोली—'तुम तो परिहास कर रहे हो, आर्य!' थोड़ी देर तक सुचरिता चुपचाप अपने-आपमें ही बहती-उतराती रही। फिर अवसर देखकर मैंने पूछा—'इस व्यवहारमें धनदत्त ने जो ऋणका प्रश्न उठाया है, वह क्या सत्य है, देवि!' सुचरिताने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'एकदम असत्य है, आर्य! मेरी सासने इसकी कोई चर्चा नहीं की, और मेरे पति यदि प्रव्रजित हुए थे, तो मैं तो बराबर ही यहाँ थी, क्यों नहीं धनदत्तने कभी इस ऋणकी चर्चा की? और आर्य, यह अत्यन्त मिथ्या कथन है कि आर्य विरतिवज्र गृहस्थ हो गए हैं। वे जो-कुछ कर रहे हैं, वह सम्पूर्णतया अपने गुरुकी अनुमतिसे। दुनिया इसे जो समझे; परन्तु वे पहले जो थे, वही अब भी हैं। गुरुके निदेशसे उन्होंने साधन-मार्ग बदल दिया है। अब भी वे धर्मके वैसे ही शृंगार हैं, जैसे पहले थे।'

मैंने बीचमें छेड़कर पूछा—'तो तुम, देवि, क्या इस व्यवहार केकारण महाराजाधिराजसे अप्रसन्न हो?' सुचरिता हँसी, बोली—'फेन-बुद्बुदके समान निरन्तर उद्भूयमान और विलीयमान इन नश्वर जीवोंमें महाराजा ही क्या और सेठ ही क्या! मैं महाराजाधिराजपर न प्रसन्न हूँ, न अप्रसन्न हूँ। आर्य, इनसे कहीं बड़े महाराजाकी शरण पानेका प्रयास कर रही हूँ। मैं अप्रसन्न क्यों हूँगी, आर्य! उन्होंने अन्याय किया है, तो उसका लेखा-जोखा वे जानें। मुझे तो जो भी दुःख या सुख मिलेगा, उसीसे अपने नारायणकी पूजा करूँगी। यह हथकड़ी भी उन्हींको अर्घ्य-रूपमें उपहृत है, आर्य!' मैंने विनीत-भावसे कहा—'देवि, तुम्हारे इस व्यवहारसे नगरमें बड़ी हलचल है, रक्तपातकी भयंकर सम्भावनासे राज्यके अधिकारी चिन्तित हो गए हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम महाराजाधिराजकी सहायता कर सकती हो या नहीं? सहायता शान्ति-स्थापनके लिए और प्रजामें विश्वास-आनयनके लिए अपेक्षित है। देवि, दुर्दमनीय दस्युओंकी सेना गिरि-वर्त्मके उस पार एकत्र हो रही है। इस समय प्रजामें असन्तोष रहनेसे महान् अनर्थकी सम्भावना है।' सुचरिताने आश्चर्यसे मेरी ओर देखकर कहा—'यह तो नई बात सुन रही हूँ, आर्य! प्रजाने इसके पूर्व तो कभी मेरे लिए कोई परवाह नहीं की। इस नगरमें मैं बराबर निन्दा-भाजन रही हूँ। मैं नगरके विडम्ब रसिकोंका छन्दानुरोध नहीं कर सकी हूँ, इसलिए उन लोगोंने मेरे विषयमें बहुत-सा अपवाद फैला रखा है। अचानक प्रजामें यह विद्रोह कहाँसे जाग उठा?' मुझे स्वयं भी आश्चर्य हुआ। मैंने साथकी कहानी ज्यों-की-त्यों सुना दी। सुचरिताने प्रसन्न होकर कहा—'समझ गई हूँ, आर्य! मेरे और मेरे पतिके निर्दोष-निरीह आचरणसे जिस प्रकार राज-कार्यमें बाधा पड़ी है, उसी प्रकार प्रजाकी शान्तिमें भी बाधा पड़ी है। यह दो प्रतिद्वन्द्वी स्वार्थोंका संघात है, आर्य! हम लोग तो निमित्त बने हैं। धनदत्तके गुरु भदन्त वसुभूति बौद्ध धर्मको जिताकर ही छोड़ेंगे और भवभूतिके प्रतिभट परमस्मार्त आचार्य मेधातिथि—जो आजकी सभाके गुप्त सूत्रधार थे—सनातन धर्मको पुनः प्रतिष्ठित करके ही दम लेंगे। मनुष्य जाय चूल्हे-भाड़में, इन्हें अपने धर्म-मतका डिंडिम पीटना है। एककी पीठ पर राज-शक्ति है और दूसरेकी हथेलीमें प्रजाका विद्रोह। विरतिवज्रका बौद्धसे वैष्णव होना ही मानो संसारकी सबसे बड़ी घटना है! इस जय-पराजयकी प्रतिद्वन्द्वितामें मनुष्यका चाहे सत्यानाश हो क्यों न हो जाय। परन्तु मैं पूछती हूँ, आर्य, इसमें किसका पक्ष ग्रहणीय है? महाराजाधिराजकी ओरसे ही क्या इस वह्नि-शिखामें ईंधन डालनेका कार्य पहले नहीं हुआ है? आप नहीं जानते, आर्य, इसका सूत्रपात बहुत पहलेसे हो चुका है। जब आर्य विरतिवज्रने नए धर्म-मतमें दीक्षा ली, तो सहसा स्थाण्वीश्वरमें धार्मिक उत्तेजना प्रबल हो गई। विद्वानोंके अनुरोधसे और नगर-सेठोंके प्रसादसे विशाल पटवास बनाया गया और वहाँ मेरे गुरुको निमन्त्रित किया गया। गुरुका सिद्धान्त है कि वे पापी-से-पापीको भी अपनी बात सुनानेमें नहीं हिचते। वे सहज ही मान गए। परन्तु आर्य विरतिवज्रने बाहर आना पसन्द नहीं किया। गुरुके अनुरोधपर उन्होंने सिर्फ़ मुझे वहाँ रहनेकी अनुमति दी। यह बराबर चेष्टा की गई कि बौद्ध आचार्य वसुभूतिसे मेरे गुरुका संघर्ष करा दिया जाय। परन्तु वे महादेवके अवतार हैं, आर्य! उनको अपने भजन-पूजनसे मतलब था। अपना काम समाप्त करनेके पश्चात् वे एक क्षण भी नहीं रुकते थे और भजन आरम्भ होनेके एक क्षण पूर्व वहाँ पधारते थे। यह सब थोड़े-से पंडित-मानी व्यक्तियोंकी ईर्ष्याग्नि है, आर्य, जिसमें राजा जल रहा है, प्रजा जल रही है और वह समय भी आ गया है, जब समूचा आर्यावर्त्त अपने तरुणों, बालकों, अनाथों और वृद्धोंके साथ जल कर भस्म हो जायगा। जिस प्रजासे विद्रोह किया है, वह अज्ञ है, अन्ध है, अभाजन है!'

सुचरिताने दीर्घ निःश्वास लिया। क्षण-भर मौन रहनेके बाद उसने फिर कहा—'दीर्घ साधना भी आर्या महामायाके भीतरके कल्मषको नहीं जला सकी। वस्तुतः कल्मष भी मनुष्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अपना सत्य है। उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक हो सकता है। दबानेसे वह मनुष्यको नष्ट कर देता है। समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्तसे नारायणको नहीं सौंप दिए जाते, तब तक वे भार-मात्र हैं।' मैंने सुचरिताके इस वाक्यको आधा ही समझा; परन्तु देर होनेसे अनर्थ हो सकता था, इसलिए बीचमें ही टोककर पूछा—'तो उपाय क्या है, देवि?' सुचरिताने सहज-भावसे कहा—'महाराजाधिराजके हाथोंमें ही उपाय है। वे हमें फिरसे भजन-पूजनका हमारा जन्मजात अधिकार लौटा दें। यह मैं महाराजकी दृष्टिसे ही कह रही हूँ। मेरे लिए तो जैसी वह पूजा थी, वैसी यह भी है। मेरा अधिकार मुझसे कौन छीन सकता है?'

मैंने श्रद्धावनत ग्रीवाको और भी झुकाकर उस महीयसी देवबालाको प्रणाम किया। हाय महाकवि, तुमने चतुरस्रशोभी शरीरको नवयौवनके द्वारा इस प्रकार विभक्त होते देखा था, मानो तूलिका द्वारा उन्मीलित चित्र हो, या सूर्य-किरणोंसे उद्भिन्न अरविन्द हो![५] परन्तु उस सर्वतोविसारि मनको कहाँ देखा, जो नवयौवनके प्रथम उद्रेकके साथ अखण्डानन्दसन्दोह परमज्योतिकी दीप्तिसे इतना भास्वर हो गया हो? कौन कहता है, यौवन अन्ध और दुर्ललित है? उसमें अपूर्व उन्नायक गुण भी तो हैं! सुचरिताने मुझे प्रणाम करते देखा, तो व्यस्त हो गई। बोली—'आर्य, मुझे अपराधी बना रहे हैं!' और उस निगड़बद्ध अवस्थामें भी साष्टांग प्रणिपात करके उसने अपने अपराधका मार्जन किया। उलाहनेके स्वरमें बोली—'मुझे लज्जित करनेका आपने क्या कारण देखा, आर्य? अभ्यास-दोषसे कुछ अधिक बोलकर अपनेको ज्ञानी दिखानेका प्रयत्न किया है, यही न? क्षुद्रताका बन्धन बड़ा कठोर है, आर्य, जल्दी छूटता नहीं। मेरे पतिदेवने एक बार जो रटी बोलियोंका बोलना बन्द किया, सो अभी तक बन्द ही किए हुए हैं, और मैं भाग्यहीना अब भी रटी बोली बोलती जा रही हूँ! पर अनुताप भी क्या करूँ, मैं ऐसी ही हूँ, अच्छी या बुरी, निन्दिता या अवमानिता। मैं नारायणपर उत्सृष्ट पुष्प-वृन्तके समान गन्धहीन होकर भी सार्थक ही हूँ। मेरा मानापराध मनमें न लाना, आर्य!' मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'तुम सार्थक हो, देवि! तुम्हारा शरीर और मन सार्थक है, तुम्हारा ज्ञान और वाणी सार्थक है, सबसे बढ़कर तुम्हारा प्रेम सार्थक है। तुमको प्रणाम करके भवसागरमें निर्लक्ष्य बहनेवाले अकर्मा जीव भी सार्थक होंगे। तुम सतीत्वकी मर्यादा हो, पातिव्रत्यकी काष्ठा हो, स्त्री-धर्मका अलंकार हो।' सुचरिताने बीचमें ही टोककर हँसते हुए कहा—'तुम तो कविता करने लगे, आर्य!'

मैंने इसका व्यंग्यार्थ समझा। विरतिवज्रकी काल्पनिक मूर्ति रचकर मैंने सुचरिताके स्नेह-मृदुल हृदयमें जो आनन्द उल्लसित कर दिया था, उसकी स्मृति उसके मनसे हटी नहीं थी। उसे आशंका हुई कि मैं फिर कहीं काल्पनिक सौन्दर्य-मूर्त्ति गढ़ना न शुरू कर दूँ। जिसे वह मनोजन्मा देवता कहती रही, उसे मैं बराबर जड़ शरीर-धर्म समझता रहा। मेरा भ्रम उसके इस वक्तव्यसे टूट गया कि विरतिवज्र जैसे पहले थे, वैसे अब भी हैं। मैं कितने निचले स्तरमें बैठकर उसकी बात सुनता रहा! और अब जब उसके सतीत्वका गुणगान करने जा रहा हूँ, तब भी क्या उस अपूर्व शक्तिशाली मनोजन्मा देवताको पहचान सका हूँ, जिसने क्षण-भरमें दो हृदयोंको एकत्र बाँध दिया था? मैंने झेंप मिटानेके लिए हँसते हुए कहा—'ना देवि, मैं अपनी पहुँचके भीतरकी सचाईकी ही बात कह रहा हूँ। पर एक बात मैं बताऊँ, तो तुम्हें आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा।' सुचरिताने उत्सुकतापूर्वक कहा—'क्या आर्य?' सुचरिताके सहज-मनोहर मुखके औत्सुक्यको देर तक बढ़ाते हुए मैंने धीरेसे कहा—'मैं अच्छा भविष्यवक्ता हूँ। काशी-जनपदका वह ब्राह्मण युवा, जिसने तुम्हारे चित्तमें अकारण औत्सुक्य भर दिया था, वह मैं ही हूँ।' सुचरिताके नयनपक्ष्म आश्चर्यके मारे जैसे आकाशमें उड़ गए—उसकी टकटकी जो लगी, सो लगी ही रह गई। देर तक वह इसी अवस्थामें रही। फिर सम्हलकर उसने मूर्त्ति-निषक्त निगड़बद्ध करतलोंको भूमिपर रखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

(क्रमशः)

५. कालिदासके निम्नलिखित श्लोकसे तुलनीय—

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥
(कुमारसम्भव, १।३२)

गीत

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

मेरी शिथिल-मन्द गति ही क्यों, गिरि-वन-सिन्धु-धार भी देखो!
पीले पत्रोंमें वसन्तके लाल-प्रवालोंका दल सोता;
काले जड़ पाषाणोंमें रहता उज्ज्वल जीवनका सोता;
आँखोंका खारा जल ही क्यों, उरका मधुर प्यार भी देखो!
बरसाकर अपना सारा रस-निःस्व हो गई नीरदमाला;
वन-वन रँग-रुचि मधु-सौरभ भर कलियोंने खुदको खो डाला;
ऊपर सूनी डाली ही क्यों, नीचे हरसिंगार भी देखो!
नभके शून्य नयन भर आएँ, तो अवनीका ताप भला रे;
शीतल हो जो हृदय किसीका, तो कोई ले मुझे जला रे;
सोनेका तपना ही क्यों, तुम अपना कण्ठहार भी देखो!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमरीकाकी कृषि-व्यवस्था और भारत

श्री कमलेश्वर

पाश्चात्य देशोंमें रूसको छोड़कर अमरीका ही एक ऐसा देश है, जहाँ औद्योगिक उन्नतिके साथ-साथ कृषिकी उपेक्षा नहीं की गई है। वहाँ उद्योगोंकी आधुनिकतम उन्नति होनेपर भी कृषिका महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय स्थान है। विशेषज्ञोंका कहना है कि अमरीकाकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था अब भी कृषिपर आधारित है, यद्यपि एक-चौथाई निवासियोंकी जीविका ही इस व्यवसायपर निर्भर है। पर भारतमें इसके विपरीत तीन-चौथाई जनताके भरण-पोषणका भार कृषिपर है; फिर भी उसकी दशा बहुत ही पिछड़ी हुई है। भारतीय कृषिका भविष्य कैसा हो? उसकी पुनर्व्यवस्था किस प्रकार की जाय? आजकल भारतीय आर्थिक जीवनके ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। युद्धोत्तर-कालमें भारतीय कृषिकी चिरकालीन व्यवस्थाके वर्त्तमान असम्बद्ध रूपका पुनर्निरूपण करनेके कई आयोजन देखनेमें आए हैं। ऐसी अवस्थामें अमरीकाकी कृषि-व्यवस्थाका अध्ययन भारतीय कृषि एवं ग्रामीण समस्याओंको हल करनेमें बहुत हितकर सिद्ध हो सकता है।

संयुक्त-राज्य अमरीकाके औपनिवेशिक कालमें ९० प्रतिशत जनताका व्यवसाय कृषि था। अमरीकाके स्वतन्त्र हो जानेके बाद भी यूरोपसे आकर बसे हुए निवासी इस भू-खण्डपर पूरी तरह काबू नहीं पा सके थे। नई भूमिमें खेतीके अनेक प्रयत्न विफल हो जाते थे, और जिन प्रदेशोंमें पहलेसे ही खेती होती थी, उनमें भी कई बार सफलता नहीं मिलती थी। इन असफल प्रयत्नोंकी तहमें एक प्रमुख कारण था अमरीकन जल-वायुमें यूरोपीय कृषि-प्रणालीका प्रयोग, जो इस भू-खण्डके लिए अनुपयुक्त थी। इसीसे वहाँ कृषि-अनुसन्धान और उसके आधार पर नियोजित कार्यक्रम कृषि-उन्नतिके लिए आवश्यक समझा जाने लगा। अमरीकाके तत्कालीन राष्ट्रपतिने कृषि-विद्याके प्रोत्साहनपर कई बार ज़ोर दिया और केन्द्रीय कृषि-विभागकी स्थापनाके भी प्रयत्न किए; परन्तु १८६२ से पूर्व इसमें सफलता नहीं मिली। कृषि-विभागके स्थापन-कालसे ही अमरीकन कृषि दिन-प्रतिदिन उन्नति करती गई। भारतीय केन्द्रीय सरकारमें अभी तक कृषिका पृथक् विभाग नहीं है। इस विभागकी कई कारणोंसे आवश्यकता है—(१) देशकी ७५ प्रतिशत जनताका व्यवसाय कृषि है; (२) आर्थिक दृष्टिके अतिरिक्त कृषिका राष्ट्रीय महत्त्व भी है; इंग्लैण्ड-जैसा औद्योगिक देश भी कृषिके पृथक् विभागकी आवश्यकता अनुभव करता है; (३) भारतकी आर्थिक उन्नति कृषि-उन्नतिमें निहित है और देशव्यापी कृषि-नीति निर्धारित करने एवं उसे कार्यान्वित करनेकी दृष्टिसे केन्द्रीय कृषि-विभागकी स्थापना अभीष्ट भी है।

सन् १८६२ में अमरीकामें सर्वप्रथम कृषि-कालेजकी स्थापना हुई। वहाँ ऐसे कालेजको लैण्डग्राण्ट-कालेज कहते हैं। सन् १८९० में मोरिल-क़ानून द्वारा अमरीकन कांग्रेसने प्रत्येक रियासतको इस कार्यके लिए ४५,०००) रु० प्रतिवर्ष दिए। बादमें यही रक़म बढ़ाकर ७५,०००) रुपए प्रतिवर्ष कर दी गई। वहाँ आजकल लैण्डग्राण्ट-कालेजोंकी संख्या ५५ है, जिनके अधीनस्थ भूमिका मूल्य लगभग ५० करोड़ रु० आँका जाता है, और उनकी वार्षिक आय ४७ करोड़ रु०के लगभग है। ये कालेज उच्च शिक्षाके अतिरिक्त अनुसन्धान एवं प्रादेशिक कृषि-समस्याओंके प्रयोगोंके केन्द्र भी हैं। ग्रामीण जनताकी शिक्षा-व्यवस्थाके लिए ग्रामीण हाई स्कूल हैं, जहाँ कृषि प्रधान विषय है। इनकी संख्या ११,५६० है।

अमरीकामें कृषि-अनुसन्धानोंका महत्त्व प्रयोगों द्वारा किसानोंको दर्शाना वर्त्तमान कृषि-व्यवस्थाका आवश्यक अंग है। वहाँ विभिन्न क्षेत्रोंमें ५० ऐसे केन्द्र स्थापित हैं। सर्वप्रथम प्रयोग-केन्द्रकी स्थापना १८६७ में हुई थी। इन केन्द्रोंका किसानोंके जीवनपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। यहाँ किसानोंको कृषि-विज्ञानके व्यवहृत रूपसे परिचित कराया जाता है और प्रादेशिक कृषि-सम्बन्धी कठिनाइयोंको हल करनेके प्रयत्न भी किए जाते हैं। इससे कुछ मिलता-जुलता कार्य भारतमें पंजाब-सरकारने कृषि-फार्म स्थापित करके किया था; पर यह प्रयत्न प्रायः असफल ही रहा। ये फार्म ग्राम्य जीवनसे पृथक् तथा असम्बद्ध रहे। इन्होंने कृषि-व्यवस्थाका जो रूप देशके सम्मुख रखा था, वह वर्त्तमान दशाके अनुकूल न था। कारण, व्ययका अनुपात आयसे अधिक बैठता था। अमरीकन प्रयोग-केन्द्रोंमें न केवल वैज्ञानिक अनुसन्धानों और फसलोंके हेर-फेरके प्रयोग किए जाते हैं, बल्कि अपने प्रादेशिक क्षेत्रोंकी कृषि-पद्धतिका अध्ययन भी किया जाता है। कई दशक पूर्व कृषि-विशेषज्ञ डा० स्पिलमैनने विभिन्न क्षेत्रोंकी कृषि-पद्धतिके अध्ययनकी आवश्यकतापर ज़ोर दिया था। उनका कहना है कि इस प्रकारके अध्ययनसे एक तो किसानोंकी वास्तविक समस्याओंका पता चलता है और दूसरे यह भी ज्ञात हो जाता है कि किसानोंने अपनी अनेक आवश्यक समस्याओंको किस प्रकार हल किया है। पंजाबके कृषि-फार्मोंने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है।

१९०० में अमरीकाके राष्ट्रपतिने कृषिके उन्नति-कार्यकी समीक्षा और ग्रामीण एवं कृषि-संस्थाओंके एकीकरणके लिए 'ग्राम्य जीवन-कमीशन' (Country Life Commission) की नियुक्ति डा० बेलीकी अध्यक्षतामें की। डा० बेली ग्राम्य संस्कृतिको नागरिक संस्कृतिसे पृथक् मानते थे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखनेके पक्षपाती थे। ग्रामीण संस्कृतिको प्रभावशाली

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं सन्तोषप्रद बनानेके लिए वे चाहते थे कि ग्राम्य जीवनके नेतृत्वका प्रादुर्भाव नगरोंके स्थानपर गाँवोंमें होना चाहिए। गाँव अपने निजी व्यक्तित्वके आधारपर नगरोंको अन्न-वस्त्र, नवीन रक्त, शुद्ध शरीर और निर्मल मस्तिष्क दे सकते हैं और राष्ट्र को आधुनिकतम जीवनका भार वहन करनेमें समर्थ बना सकते हैं। इसी दृष्टिकोणसे कमीशनने निम्नलिखित सुझाव पेश किए—(१) ग्रामीण भूमि, खेतों, पेड़-पौधों, पशुओं और जनताकी पूरी सूची तैयार की जाय; (२) ग्रामीण जीवनमें दिलस्पी रखनेवाली सभी संस्थाओं, वर्गों और व्यक्तियोंकी उन्नतिके लिए समुचित संगठन किया जाय; (३) कृषि-कालेजों द्वारा कृषि-विस्तार-कार्यका केन्द्रीकरण एवं राष्ट्रीकरण किया जाय।

औद्योगिक क्षेत्रोंमें वज्ञानिक अनुसन्धान और उत्पादन-काय-प्रणालीमें प्रायः निकटतम सम्पर्क बना रहता है; पन्तु कृषि-प्रणाली कृषि-विज्ञानसे पिछड़ी रहती है। यह स्थिति प्रायः सभी देशोंमें है। पर अमरीकाने इसे बड़ी सफलतापूर्वक हल किया है। कृषिको उन्नत बनानेके लिए अमरीकन सरकारने १९१४ स्मिथ लिवर-क़ानून पासकर प्रत्येक गाँवमें एजेण्ट भेजनेका आयोजन किया। एजेण्ट उन्हीं गाँवोंमें भेजे जाते हैं, जो एक संस्था या क्लबके रूपमें संगठित हैं और एजेण्टके कार्यालयका आंशिक भार वहन करना स्वीकार करते हैं। ये एजेण्ट गाँवोंमें कृषि-विभाग और कृषि-कालेजोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, और इनका मुख्य कार्य है किसानोंको उनकी व्यक्तिगत समस्याओंपर परामर्श देना, उनकी मिट्टी, उपज आदिकी कठिनाइयोंका विशेषज्ञों द्वारा विश्लेषण कराकर सहायता करना, फ़सलोंके अदल-बदलसे मिट्टीकी शक्तिको अक्षुण्ण बनाए रखनेकी जानकारी उपलब्ध कराना और फ़सलों एवं पशुओंके रोगों और उपयुक्त मशीनोंके क्रयकी समस्याको हल करनेमें सहायता देना। यह सब सहायता निःशुल्क दी जाती है। इसके अतिरिक्त एजेण्ट आधुनिकतम अनुसन्धानों एवं प्रयोगोंकी जानकारी किसानों तक पहुँचाते रहते हैं। आजकल अमरीकाके ३०७५ गाँवोंमें से २,९००० में कृषि-एजेण्ट हैं। ९२९ गाँव ऐसे भी हैं, जहाँ दो-दो एजेण्ट हैं। इनपर सरकार प्रतिवर्ष ९ करोड़ रुपया खर्च करती है, जिसमें से ४० प्रतिशत केन्द्रीय सरकार देती है।

भारतकी केन्द्रीय सरकारकी राजकीय कृषि-अनुसन्धान-परिषदने ८ करोड़ रुपएके वार्षिक व्ययसे चार लाख गाँवोंमें किसानोंको सलाह देनेके लिए एक-एक व्यक्ति नियुक्त करनेकी योजना तैयार की है। यह योजना कई अंशोंमें त्रुटिपूर्ण है—(१) अमरीकन आन्दोलनके अनुरूप इसमें गाँवोंको संगठित करनेकी कोई प्रेरणा नहीं है; (२) ग्रामीण सलाहकारोंका अनुसन्धानों एवं प्रयोगशालाओंसे एक ओर और किसानोंसे दूसरी ओर किस प्रकार सम्बन्ध रहेगा, यह भी अनिश्चित है; (३) प्रयोगशालाओंकी स्थापनाकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है; (४) जलवायुकी दृष्टिसे विभिन्न प्रदेशोंकी कृषि-समस्याओं और उनकी कृषि-प्रणालियोंके अध्ययनकी उपेक्षा की गई है; (५) इन सलाहकारोंके रूपमें सैनिकोंको गाँव-गाँवमें नियुक्त करनेकी ओर निर्देश किया गया है, जबकि आवश्यकता है पढ़े-लिखे स्थानीय प्रभावशाली किसानोंको देशकी कृषि-व्यवस्थाके पुनर्निरूपणमें प्रोत्साहन देनेकी।

भारतीय किसानोंकी तरह अमरीकन किसान राजनीतिक मामलोंके प्रति उदासीन और मूक नहीं हैं। सम्भवतः इसी कारण वहाँ कृषि-समस्याओंपर राष्ट्रीय एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है और सरकार भी उनकी उपेक्षा नहीं करती। इसका आधार अमरीकन किसानोंका प्रभावशाली संगठन है। यह संगठन गाँवके उस फार्म-ब्यूरोपर आधारित है, जिसे किसानोंने कृषि-एजेण्ट पानेकी इच्छासे स्थापित किया था। १९१९ में रियासतोंके फार्म-ब्यूरोने केन्द्रीय संस्थाकी स्थापना की। इनके इयाफ और न्यूयार्क सम्मेलनोंने देशव्यापी संस्था अमरीकन फार्म-ब्यूरो-संघकी नींव डाली, जिसकी सदस्य-संख्या ६,९०,००० के लगभग है। यह अमरीकन किसानोंकी सबसे बड़ी प्रभावशाली संस्था है। प्रायः सभी श्रेणियोंके किसान इसमें सम्मिलित हैं। वस्तुतः काउण्टी-एजेण्टों और कृषि-विस्तार-आन्दोलनके सम्पर्कसे ही फार्म-ब्यूरो बिखरे हुए किसानोंको संगठित रखने और उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं।

अमरीकामें कृषि-कार्यका विकास एवं विस्तार औद्योगिक रूपमें हुआ है। वहाँ कृषि-उत्पादन किसानोंकी निजी आवश्यकताओंपर आधारित न होकर विक्रयके लिए किया जाने लगा है। कृषि द्वारा उपार्जित धनसे किसान अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी आशा करते हैं। परिणाम-स्वरूप अमरीकन कृषिमें पशु-पालन भी सम्मिलित हो गया है, खेत बड़ी-बड़ी ज़मींदारियोंमें परिणत हो गए हैं और कृषि-मज़दूरोंकी स्थिति प्रायः मिल-मज़दूरोंके समान हो गई है। यह स्थिति ग्रामीण संस्कृति और राष्ट्र-हित दोनोंके प्रतिकूल है। इस ओर एक अमरीकन कृषि-विशेषज्ञने बहुत पहले संकेत भी किया था। उसका मत है कि समृद्धिशाली, सन्तोषपूर्ण ग्रामीण जनता राष्ट्रीय उन्नतिके लिए आवश्यक है। इसका सर्वोत्तम मार्ग है कृषि-भूमिको छोटे-छोटे खेतोंमें विभक्तकर ऐसे लोगोंमें हस्तान्तरित करना, जो खेतोंपर कृषि-कार्यसे अपने कुटुम्बका निर्वाह कर सकें—अर्थात् कृषि विशाल औद्योगिक रूप धारण न करके गृह-उद्योगके रूपमें विकसित हो। अनुमानतः १००-२०० एकड़

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ ;के खेत गृह-उद्योगके रूपमें कृषि-कार्यके लिए उपयुक्त हैं। इसके विपरित भारतमें खेतोंका आकार इतना छोटा है कि कृषि-कार्य अनुत्पादक बन गया है।

कृषि-फ़सलोंके पाला, बाढ़ और कीड़ोंके आक्रमणसे आकस्मिक नष्ट हो जानेसे किसानोंको जो हानि होती है, वह उनकी आर्थिक हीनताका एक परोक्ष कारण है। इसीलिए १९३८ में अमेरिकाके कृषि-विभागने फेंगल इन्श्योरेन्स कार्पोरेशनकी स्थापना की, जिसके प्रबन्धका सारा खर्च सरकार देती है। कार्पोरेशन खेतोंके बीमाकी किस्तोंसे प्राप्त रुपयोंका नष्ट और क्षत फ़सलोंके मालिकोंको देनेके लिए उपयोग करता है। प्रारम्भिक कालमें आकस्मिक अत्यधिक दुर्घटनासे कार्पोरेशनको सुरक्षित रखनेके लिए अमरीकन सरकारने उसे ३० करोड़ रुपएकी निधि दी थी। वर्त्तमान भारतीय सरकारके लिए ऐसी योजनाकी कल्पना करना कुछ असम्भव-सा है।

आलोचनामें 'व्यक्तिवाद'

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

यह युग विज्ञानका है। आजका कोई भी ज्ञान विज्ञानकी सीमामें पहुँचकर ही अपनेको मुखरित कर सकता है; क्योंकि उसमें पिछले युगोंकी भाँति केवल आस्थाका आग्रह नहीं, वरन तर्कका भी बल रहता है। लोगोंका स्वभाव भी ऐसे ही ज्ञानको स्वीकार करनेवाला बन गया है। अब साहित्यका ज्ञान भी इसी के रूपमें पहुँचकर प्रभावशाली बन पाता है। साहित्यमें मनोविज्ञानकी प्रधानताका यही कारण है। किस अन्तर्वृत्तिसे किस कार्यको प्रेरणा मिली, इसको स्पष्ट करना मनोविज्ञानका उद्देश्य है; क्योंकि कर्म-प्रयासमें इच्छाका योग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

यह तो एक अनिश्चित और सर्वमान्य सिद्धान्त है कि साहित्यका उद्देश्य पारस्परिक सहयोग और सामूहिक कल्याणकी भावनाका प्रचार तथा प्रसार है। इस उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए, जनमतको उदात्त भावनाओंकी ओर उन्मुख करनेके लिए केवल दो ही प्रकारके साधन हैं—बल और विश्वास। बल-प्रयोग द्वारा जनमतको अपने अनुकूल बनाना राज-विधानके अन्तर्गत होता है। जर्मनी इसका उदाहरण है। पर विश्वास और सचाई के मार्गसे जनताको अपनी ओर आकर्षित करना साहित्यका काम है। रूस इसका साक्षी है। संक्षेपतः राजनीति और साहित्यमें यही अन्तर होता है; क्योंकि साहित्यमें जीवनव्यापी सभी सम्भावनाओं और प्रवृत्तियोंका समुचित सम्मेलन रहता है और राजनीतिमें केवल नीति-विशेषका महत्व होता है। यही कारण है कि आजकी राजनीति कलका साहित्य बनती है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि साहित्य राजनीतिका परिष्कृत तथा परिवर्धित स्वरूप है। वस्तुतः साहित्यमें भावनाका और राजनीतिमें घटनाका प्रधान होना आवश्यक है।

हिन्दी-साहित्यमें अपनी परिस्थितियोंसे आश्वस्त और विदेशी विचार-धारासे अनुरक्त एक ऐसा वर्ग सामने आ रहा है, जो साहित्यकारोंको अपनी राजनीतिक दलबन्दीकी वर्दी पहनाने को लालायित है, और जो साहित्यिक उसे पहननेसे इन्कार करता है, उसपर तरह-तरहके अप्रत्याशित आक्षेपोंकी वर्षा की जाती है। इस वर्गके नेताओंको स्मरण रखना चाहिए कि भाव और विचारमें एक तात्विक अन्तर है। भाव जब बुद्धिके संरक्षण में स्थायित्व पा लेता है, तब विचार बनता है, योंही ठोंक-पीटकर नहीं। साहित्य केवल बुद्धिका विषय न होकर साहित्यकारकी भाव-दशा, प्रवृत्ति और उसकी अनुभूत समवेदनाको भी अपनेमें सम्मिलित किए रहता है। यही कारण है कि किसी साहित्यकी समीक्षा करते समय हम गणित, विज्ञान तथा बुद्धिकी चर्चा छोड़ कर काव्य, नाटक एवं उपन्यासका ही ध्यान रखते हैं। मनुष्यके अन्तःकरणके अनुकूल ही उसकी भावनाओंका निर्माण होता है, इसीलिए स्थूलसे सूक्ष्म अधिक व्यापक होता है। साहित्यकी प्रेरणा एक ऐसी ही सूक्ष्म वृत्तिसे उद्भूत होती है। स्थूलको हृदयमें प्रभाव-सम्पन्न बननेके लिए सूक्ष्मकी संज्ञा धारण करनी पड़ती है। स्वभावतः बुद्धि बाह्य ज्ञान होनेके कारण सहजानुभूति से कम महत्वशाली है, सिद्धान्त अनुभवकी अपेक्षा कम ग्राह्य है। साहित्य तो जीवनकी विविधतामयी प्रकृतिका सोद्देश्य उद्घाटन है, उसकी अनुभूति है, उसका विश्लेषण है, न कि कुछ राजनीतिक सिद्धान्तोंका पारायण-मात्र। इसका आशय यह कदापि नहीं कि साहित्यमें बुद्धिकी विशिष्टताका कोई मूल्य नहीं; क्योंकि अन्तःकरणमें बुद्धि, मन, चित्त तथा अहंकारका समावेश रहता है। बुद्धि किसी विशेष भावको पकड़कर ही मन बनती है, यह भाव-विज्ञानियोंसे छिपा नहीं है। मनोविज्ञान इसी मनकी प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करता है, जो श्री इलाचन्द्र जोशीके नवीनतम मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'प्रेत और छाया'का साध्य है। यही कारण है कि उसके अध्ययनसे मस्तिष्ककी आँखें खुल जाती हैं और हृदयको अपनी रमणीयता भी प्राप्त होती है। उसमें बुद्धि मनोवृत्तियोंका नयन है और हृदय उनका प्रेरक।

व्यक्तिके संकल्पकी जैसी प्रकृति होती है, तर्क उसीका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनुगमन करता है, क्योंकि व्यक्तिके जीवनके क्रिया-कलाप उसके भावोंको ही सूचना हैं। 'प्रेत और छाया' पर गत जूनके 'विशाल भारत'में प्रकाशित श्री प्रकाशचन्द्र गुप्तका मन्तव्य इसका अच्छा उदाहरण है। गुप्तजीका पहला आक्षेप यह है कि उपन्यासका कथानक 'एक कलुषित और निम्नतर सामाजिक स्तरकी प्रेम-कथा है।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे समाजमें एक सामन्त-वर्ग ऐसा भी है, जो समाजके निम्नतर वर्गकी उपेक्षा जीवन और साहित्य सभी क्षेत्रोंमें करना चाहता है; पर एक प्रगतिशील समाजवादी गुप्तजीके लिए यह आक्षेप करना आश्चर्यमें डाल देता है, क्योंकि प्रगतिका पहला पग इस वर्गको अपनी ममता देना है। समाजवादके प्रवर्त्तकोंने बार-बार इस बातपर ज़ोर दिया है कि उनकी प्रगतिका आन्दोलन इसी शोषित तथा उपेक्षित वर्गसे आगे बढ़ सकता है। फिर समाजवादके नामपर इस वर्गकी उपेक्षा गुप्तजीके प्रति पाठकोंको सन्देहसे यदि भर दे, तो आश्चर्य नहीं। मानवसे मानवका सघर्ष संसारके कथा-साहित्यका मुख्य विषय रहा है और 'What tman has made of man' को देखकर संसारके सभी महापुरुष क्षुब्ध हुए हैं। जोशीजीने वेश्या-जीवनके जिस ज्वलन्त और मार्मिक पीड़नका इस उपन्यासमें चित्रण किया है, उससे आँख फेरना गुप्तजीका अपना ही विशेषत्व है, अन्यथा लेनिनने भी कहा था कि वेश्याएँ हमारी क्रान्तिको बहुत सहायता पहुँचा सकती हैं, क्योंकि वे सबसे अधिक शोषित प्राणी हैं। बुद्ध भगवानकी बात यदि गुप्तजी न भी मानें, तो ड्यूमा और कूप्रिनकी गवाही तो ले ही सकते हैं। अस्तु, इस वर्गको कलुषित कहना गुप्तजी की प्रगतिशीलताके प्रति स्वयं एक वज्राघात है, दुहाई है समाजवादकी!

उनका दूसरा आक्षेप यह है कि जोशीजीने तपस्यापूत जीवन का वर्णन नहीं किया—'क्या समाजके निम्नतम स्तरोंसे लिए गए ये प्राणी ही जीवनका ध्रुव सत्य हैं?' इस वर्गके विपरीत उन्होंने महात्मा गांधीके तपस्यामय उच्च जीवनका स्मरण किया है। किन्तु गुप्तजी-जैसे यथार्थवादी व्यक्तिके लिए महात्माका स्मरण रूसमें ईश्वरकी प्राणप्रतिष्ठाके समान ही हास्यास्पद लगता है। प्रेमचन्दकी भावुकतामयी कलाका दोष निरूपण करते हुए गुप्तजीने लिखा है—'क्रान्तिके बाद गाँवमें स्वर्ण-युगकी सरलता और निष्कपटताका फिर राज्य होगा; ऐसा शायद कुछ उनका स्वप्न था। यह कहिए कि गांधीजीका रामराज्य फिर लौटेगा। यह वैज्ञानिक मनोवृत्ति नहीं।' फिर जोशीजीके उपन्यासको बुरा कहनेके लिए गांधीजीकी दुहाई देनेकी मनोवृत्ति क्या विज्ञान-सम्मत है? वास्तवमें मैं तो स्तब्ध हूँ कि गुप्तजीने यह सब क्यों किया?

गुप्तजीका तीसरा आक्षेप जोशीजीकी मानवीय आदिम प्रवृत्तियोंकी मान्यतापर है। इसमें सन्देह नहीं कि मानवीय मूल प्रवृत्तियोंका कभी विनाश नहीं होता, उनका केवल सस्कार होता है, क्योंकि दुर्बल वृत्तियोंका दमन या परिष्कार करके सद्वृत्तियोंके प्रचारका ही नाम सभ्यता है। तो भी इस बीसवीं सदीके सभ्य मानवमें भी पशु-प्रवृत्तियोंका कितना विकार अवशेष है, वर्त्तमान महायुद्धमें हम सहज ही देख सकते हैं। जोश जी मानते हैं कि इन प्रवृत्तियोंका परिष्करण हो सकता है; किन्तु उनकी उपेक्षामें नहीं, वरन् उनके अस्तित्वके परिज्ञानमें। गुप्तजीने जोशीजीकी भूमिकासे केवल एकपक्षीय अवतरण उद्धृत किए हैं, अन्यथा हिन्दी साहित्यका प्रत्येक पाठक जानता है कि जोशीजी इन प्रवृत्तियोंका विश्लेषण और इनके परिष्कारके सुझावका निरूपण अपने पहले उपन्यासोंसे बराबर करते चले आए हैं। क्या गुप्तजी उनके उपन्यासोंसे यह सिद्ध कर सकते हैं कि उन्होंने इन दूषित तथा पाशविक प्रवृत्तियोंका विश्लेषण केवल इस निम्नताके लिए किया है और उनके सुधारका कोई सुझाव सामने नहीं रखा? साहित्यकारके प्रधान लक्ष्यको छिपाकर उसके विषयकी कुरूपताका ढोल पीटना मन्दिरमें पहुँचकर मूर्तिको छोड़ इधर-उधरके पत्थर टटोलना है। मेरा विश्वास है, गुप्तजी इसे खूब जानते हैं कि सबको अन्धा कहकर अपनेको नयनसुख कहना अच्छा नहीं होता।

चौथा आक्षेप यह है कि जोशीजीने अन्तर्मनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की है, जो गुप्तजीके विचारोंके प्रतिकूल है; क्योंकि गुप्तजीका मत है कि 'बहिर्जगतका प्रभाव ही मनके ताने-बाने सुलझाया और उलझाया करता है।' हमारा कहना है कि मानवीय जीवनके समुचित विकासमें केवल बाह्य अथवा अन्तर प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियोंका प्रभाव मानना भ्रमसे खाली नहीं है, क्योंकि मनुष्यके प्रत्येक कार्यके मूलमें किसी-न-किसी प्रकारका भाव अवश्य छिपा रहता है, जो कार्य-रूपमें प्रत्यक्ष होता है। भाव अन्तर्जगत्का विषय है, क्रिया बाह्य जगत्का। साहित्यका जीवन प्राकृत जीवन नहीं होता, वरन् उसका प्रभाव-मात्र होता है। यदि साहित्यमें जीवनकी सत्ताको प्रभाव-रूपमें व्यक्त करनेकी बात न मानी जाय, तो व्यक्तिका नख-शिख-वर्णन ही साहित्य माना जायगा। किन्तु बात ऐसी है नहीं। साहित्यकारके भावना-लोकमें किसी व्यक्तिका शरीर नहीं धँस सकता, केवल उसके व्यक्तित्वका प्रभाव भाव-रूपमें प्रवेश पाता है। किसीके आत्मभावके स्वरूपका परीक्षण अपनी अन्तर्प्रतिमासे करके लेखक उसे साहित्यिक स्वरूप देता है। बाह्य और अन्तर्जगत्में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

गुप्तजीका अन्तिम आक्षेप कि 'जोशीजीका तर्क सिरके बल खड़ा है' बहुत ही लचर और बेसिर-पैरका है। ध्यान देनेकी बात है कि गतिके नियमके अनुसार या तो गति ऊपरको होती

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है या नीचेको। जोशीजीने समाजके निम्नतम स्तरोंसे अपना कथानक लिया है, जिसे गुप्तजी स्वयं स्वीकार करते हैं। फिर उनकी गति ऊपरकी ही ओर हो सकती है। और खूबी तो यह है कि गुप्तजीने जोशीजीके तर्कको शीर्षासन करानेका स्वयं कोई तर्क नहीं दिया। जो भी हो, परम आश्चर्य तो तब होता है, जब 'शेखर एक जीवनी'को, जो एक ही व्यक्तिके अहम्का कथाजाल है, गुप्तजी महत्त्वपूर्ण रचना बताते हैं। यों गुप्तजीने स्वयं स्वीकार किया है कि 'वास्तवमें न शेखरके जीवनसे और न उसके विचारोंसे ही हमें नवीनके गढ़नेमें कोई सहायता मिल सकती है। वह घोर असामाजिक प्राणी है और उसका मन मानवताके प्रति अवज्ञा और अवहेलासे भरा है।' किन्तु इससे क्या बनता-बिगड़ता है? जोशीजीने जिस मनोविश्लेषणका अपराध किया है, उसका 'शेखरमें अभूतपूर्व और उत्कृष्ट प्रयोग है। कुल मिलाकर कहना चाहिए कि शेखर एक कलात्मक विजय है।'* गुप्तजीकी इस रुचिपर हमें आश्चर्यके सिवा और क्या हो सकता है? गुप्तजीने जोशीजीके उपन्यासकी अन्तर्प्रवृत्तियोंकी जिन 'कमियों'की ओर संकेत किया है, वे वास्तवमें सभी अपने प्राकृत रूपमें 'शेखर एक जीवनी'में वर्त्तमान हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि शेखरमें व्यक्तिके अहम्को ही महान बताया गया है और जोशीजीका प्रधान उद्देश्य ही इस अहम्का खण्डनात्मक विश्लेषण है।

अस्तु, इस प्रकारके व्यक्ति-व्यस्त तर्कोंसे आलोचकका उत्तरदायित्व क्षीण पड़ जाता है और साथ ही साहित्य-क्षेत्रमें एक ऐसा भयंकर भ्रम फैल जाता है, जिसका परिणाम राष्ट्रके हितमें बाधक होता है। साहित्यिक कृतियोंकी आलोचना साहित्य-सम्बन्धी मान्यताओं और सिद्धान्तोंके अनुसार होनी चाहिए, न कि दल-विशेषकी रीति-नीति या व्यक्ति-विशेषकी रुचिके अनुसार। यदि ऐसा न हुआ, तो साहित्य-संसारमें भी हिटलरकी नृशंसताका हावी हो जाना कठिन न होगा। वास्तवमें साहित्यकी भावनाओंके अनुसार 'प्रेत और छाया' हिन्दी-उपन्यास-क्षेत्रकी एक सुन्दर कृति है। उसके विषयमें व्यक्तिगत रुचियोंकी तत्त्वहीन एकांगी आक्षेप-तालिका तैयार करना साहित्यको व्यक्तिवादके संकुचित कठघरेमें बन्द करना होगा, जो साहित्यिक सुरुचि और सामूहिक सदेच्छाके प्रतिकूल है। साहित्यके उद्देश्योंमें सहयोग देनेके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी पार्थिव सम्पन्नता और बुर्ज़ुआ मनोवृत्तिको छोड़कर एक ऐसे सामान्य धरातलपर आ जाय, जहाँसे वह सम्पूर्ण मानवताके लिए अपनी व्यक्तिगत धारणाओंका परित्याग और परिष्कार कर सके, अन्यथा न तो उसका कल्याण सम्भव है और न साहित्यका।

* शेखर कलात्मक विजय है या नहीं, यह विवादास्पद है; पर व्यक्तिके अहंभावकी विजय इसमें निश्चित हुई है।—ले०

पथकी कथा

श्री ब्यौहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० ए०

मैं युगोंसे इसी प्रकार पड़ा हुआ हूँ। मैं संसारको अपने निर्दिष्ट स्थानपर ले जाता हूँ और अपने उद्देश्य तक पहुँचाता हूँ। मैं ही उससे रेतीले मरुस्थल, लम्बे-लम्बे मैदान, दुर्गम पर्वत तथा सघन जंगल पार कराता हूँ। गति ही मेरा जीवन है और स्थिति मृत्यु। दिन-रात, गर्मी-वर्षा-शीत-वसन्त सभी ऋतुओं तथा सभी कालोंमें मुझपर सभीके पदाघात पड़ा करते हैं। मैं उनकी ध्वनि अच्छी तरह पहचानता हूँ। जब कोई जल्दी-जल्दी चलता है, तो मैं समझ जाता हूँ कि वह अपने प्रियजनसे मिलने घर लौट रहा है। जब कोई बहुत धीरे पग रखता है, तो मैं समझ लेता हूँ कि कोई परदेश जा रहा है। जब बहुतसे पशुओंके पैरोंकी आवाज़ आती है, तब मुझे भान होता है कि कोई बंजारा व्यापारके लिए बैल लादकर ले जा रहा है (पर यह ध्वनि अब बहुत कम सुन पड़ती है)। जब गाड़ियोंके चक्कों और बैलोंकी घण्टियोंकी ध्वनिके साथ किसीके गीत सुन पड़ते हैं, तब जान पड़ता है कि किसान हर्षसे भरे हुए अपने गल्लेको बाज़ारमें बेचनेको ले जा रहे हैं। पर अब इन गाड़ियोंके चक्कोंकी चर्र-मरके बदले मोटरोंके लचकदार पहियोंकी सरपट दौड़ तथा पों-पोंकी आवाज़ ही अधिक सुन पड़ती है। उनकी द्रुत गतिके कारण मेरा उनसे अधिक परिचय नहीं हो पाता। अब तो नंगे पैरोंका मधुर स्पर्श मेरे भाग्यमें मानो दुर्लभ ही होता चला जा रहा है। कभी-कभी बाज़ार जाती हुई स्त्रियोंके कोमल पदोंका स्पर्श अवश्य मिल जाता है; किन्तु उनमें भी अब जीवित चर्मोंकी अपेक्षा मृत चर्मोंका ही स्पर्श अधिक मिलता है। कभी-कभी सबूट कठोर चरणपातसे मैं दहल भी उठता हूँ। उनके एक साथ मिले हुए क़दमोंसे मुझे ऐसा लगता है, मानो कोई सेना किसी स्वतन्त्र प्रदेशको पराधीन करने जा रही है। अब इनकी भी पद-चाप कम हो गई है और इनके बदले भारी-भरकम टैंकों और तोपोंसे लदी मोटर-लारियोंका दुःसह भार मुझे वहन करना पड़ता है। इनके भारसे मेरी पथर-गिट्टी कठोर छाती भी दरक उठती है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

मैं इतना पराधीन हूँ कि किसीको अच्छे कामके लिए उत्साहित करना या बुरे कामसे रोकना, दोनों ही मुझसे नहीं हो सकते।

सूयकी कृपासे गरमीके दिनोंमें पथिकोंको तपाकर वायुकी सहायतासे अपनी धूल उनके सिर-आँखोंमें झोंककर तथा वर्षाकी कृपासे उनके पैरोंको पकड़कर मैं लोगोंको जानेसे रोकता हूँ। वे अपने पैर मुझसे छुड़ानेके लिए अनेक प्रयत्न करते हैं, जिनमें जूते और वाहन उनके मुख्य सहायक हैं। यद्यपि वे मेरी छातीके आधारपर आगे बढ़ते हैं; पर जल्दीसे जल्दी मुझसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। सब लोग मुझे लात मारते ही चलते हैं; पर मैं उन्हें अपने सिरपर उठाए रहता हूँ और आगे ही बढ़ाता हूँ। तब भी मेरा उपकार कोई नहीं मानता। सब यही शिकायत करते हैं कि मैं बहुत लम्बा, बहुत कठोर तथा बहुत धूलिमय हूँ। पर वे एक क्षणको भी यह नहीं समझते कि उनका आर्थिक लोभ मुझसे भी अधिक लम्बा, सामरिक महत्त्वाकांक्षा मुझसे भी अधिक कठोर तथा राग-द्वेषकी मनोवृत्ति मुझसे भी अधिक धूलिमय और मलिन है।

तेज़ीसे लोग गुमराह न हों, इस विचारसे मैंने पथिकों और वाहनोंकी गतिमें जो बाधा दी, उसका परिणाम यह हुआ कि लोगोंने पशुओंसे खींचे जानेवाले वाहनोंका परित्यागकर तेलसे चलनेवाले वाहन बनाए और जब उनसे भी सन्तोष न हुआ, तब मेरी छातीपर लोहेकी पटरियाँ बिछाकर उनपर दौड़नेवाले वाष्प-वाहनका आविष्कार किया। इससे आगे बढ़कर लोगोंने जलपर दौड़नेवाले जहाज़ोंका आविष्कार किया। अब सुना है कि लोग जल और थल दोनोंको छोड़ आकाशमें उड़ने लगे हैं, क्योंकि वहाँ उनकी गतिमें बाधा देनेवाला कोई नहीं है। यह गतिकी दौड़ पहले पृथ्वी, फिर जल और अब नभमें चलने लगी है। ईश्वर जाने, यह गतिकी दौड़ उन्हें कहाँ ले जायगी। कहते हैं, थोड़े समयमें अधिक दूरी तयकर समय और शक्ति दोनोंकी बचत होती है तथा पृथ्वीके विभिन्न भागोंके मनुष्य एक-दूसरेसे अधिक सम्पर्कमें आते हैं, जिससे उनका व्यापार व्यापक एवं टिकाऊ तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध दृढ़तर होता है। किन्तु मैं तो देखता हूँ कि जब पशुओंके वाहनों द्वारा या पैदल लोग मेरे ऊपरसे यात्रा करते थे, तब यात्राकी प्रगति धीमी होनेके कारण समय तो अधिक लगता था; किन्तु लोगोंका आपसी सम्पर्क (अधिक समय समीप रहनेके कारण) प्रेमपूर्ण होता था तथा व्यापारकी वस्तुएँ अधिक दूर न जा सकनेके कारण देश अधिक समृद्ध और सुसम्पन्न था। अब विश्वके देश भौगोलिक दृष्टिसे एक दूसरेके अधिक समीप चाहे हो गए हों; पर उनके हृदय अधिक दूर चले गए हैं। उनका सम्बन्ध केवल व्यापारिक ही रह गया है।

धर्म और ईश्वर

श्री जगदीश वेदालंकार

हिन्दू-धर्ममें स्पष्ट रूपसे एक विकास दृष्टिगोचर होता है। लगभग ३००० से तीन और अन्तमें एकेश्वरवादपर पहुँचना योंही नहीं हुआ है। यह परिस्थितियोंका अनिवार्य परिणाम था। प्रारम्भमें लोग सूर्य, चाँद, पृथिवी, वायु, अग्नि आदि बहुतसे देवताओंके उपासक थे। उनका विश्वास था कि ये देवता ही हमारे जीवनकी रक्षा करते हैं। अतः इनको प्रसन्न रखनेके लिए वे इनकी पूजा किया करते थे। परन्तु कुछ और काल बीतनेपर लोगोंका विश्वास इनके ऊपरसे हटने लगा। उनके दिलमें विचार पैदा हुए कि ये तो स्थूल हैं, स्थान घेरते हैं, एक नियममें चलते हैं। अतः इनके अतिरिक्त कोई और भी शक्ति है, जो इस ब्रह्माण्डको व्यवस्थित रूपमें चला रही है। और उसी शक्तिको 'ईश्वर' नामसे पुकारा गया। जिन्होंने इस ईश्वर नामकी रचना की, वे भी इसके बारेमें सिवा इसके कि यह एक शक्ति है, जो अदृश्य, निराकार, निर्विकार और सर्वव्यापक है, और अधिक न जानते थे। यद्यपि उन्होंने इसके बारेमें बहुत-कुछ कहा है; पर अन्तमें जब वे अधिक स्पष्ट रूपमें इसे बतला नहीं सकते थे, तो 'नेति नेति' कहकर अपना पीछा छुड़ाते थे। इस 'ईश्वर' नामक वस्तुकी सृष्टिमें ब्राह्मणोंकी बहुत-सी समस्याएँ हल हो गईं। जब कोई उनसे ईश्वरके दर्शनके लिए कहता, तो वे कहा करते कि वह 'अतीन्द्रिय' है। वह सूक्ष्म इन्द्रियसे देखा जाता है।

उनकी दूसरी सूझ थी 'पुनर्जन्म'। इसके द्वारा ग़रीबोंका शोषण वे निश्चिन्त होकर कर सकते थे। वे कहते थे कि ग़रीब और धनीका भेद पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है, जिससे शोषित-वर्गमें शोषकके प्रति विरोधके भाव पैदा न हों। इस प्रकार सदियों तक पूँजीपति धर्मके नामपर ग़रीबोंका शोषण करते रहे। ईश्वर नामके हौवाका भय उनके दिमाग़ोंमें इतनी गहराई तक बद्धमूल कर दिया गया था कि आज भी एक हिन्दू किसान या मज़दूर धर्मके नामपर सब-कुछ सहन करता है।

अब हमें यह विचार करना है कि क्या ईश्वर नामकी वस्तु की आराधना करनेका कोई लाभ भी है? यदि दुनियापर दृष्टि डालें, तो पता चलेगा कि ईश्वरको दो प्रकारके मनुष्य सबसे अधिक ध्याते हैं। प्रथम तो वे, जो दुःखी और ग़रीब हैं। दूसरे वे जिनके पास महान् ऐश्वर्य है। मध्यम श्रेणीके मनुष्य

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रायः धर्म और ईश्वरसे उदासीन रहते हैं। इसका कारण है। जब मनुष्य दुःखी होता है, तो उसका वात-संस्थान (nervous system) बहुत विक्षुब्ध हो जाता है। आयुर्वेदकी परिभाषामें इसे रुग्णावस्था (abnormality) कहेंगे। जब मनुष्यका मन विकृत हो जाता है—अर्थात् उत्तेजित (over excited) हो जाता है, तो ज्ञानवाहक तन्तुओं (sensory nerves) को तरह-तरहके भ्रमपूर्ण ज्ञान होने लगते हैं। इससे सिद्ध है कि 'ईश्वर' एक स्वस्थ मनवाले मनुष्यके दिमाग़की उपज नहीं है। दूसरी श्रेणीमें वे लोग आते हैं, जिनके पास पर्याप्त धन है और जो सुखी हैं। वे ईश्वरके सबसे बड़े प्रचारक और भक्त हैं। इसका पहला कारण यह है कि धर्म तथा ईश्वरके नामपर उन्हें शोषण करनेमें सहायता मिलती है। दूसरा कारण यह है कि मनकी अत्यन्त हर्षित अवस्था भी एक प्रकारकी अति उत्तेजना है। साधारणावस्थामें मनुष्यका मन साधारण अर्थात् स्वाभाविक क्रियाएँ करता है। पर हर्षित अवस्थामें अत्यन्त उत्तेजित होनेके कारण उसे ठीक ज्ञान नहीं होता और वह 'ईश्वर' नामकी वस्तुपर विश्वास करता है।

'ईश्वर' हमारे वर्त्तमान धर्मका आधार है, जिसपर धर्मका महल खड़ा किया गया है। सबसे अनोखी बात तो यह है कि एक ही नींव (ईश्वर) पर न-जाने कितने धर्म-रूपी महल खड़े किए गए हैं। हिन्दू-धर्म ईश्वरकी प्राप्तिके कुछ उपाय बताता है और इस्लाम उसी ईश्वरकी प्राप्तिके साधन पहलेसे भिन्न बताता है। इसी प्रकार ईसाई, यहूदी सभी अपने-अपने धर्मोंके अनुसार तरह-तरहके साधन बताते हैं। प्रत्येक एक-दूसरेको बुरा-भला कहता है। कभी-कभी तो यह भी संशय होने लगता है कि जितने धर्म हैं, कहीं उतने ही ईश्वर तो नहीं हैं!

फिर ईश्वरका कोई निश्चित रूप भी तो नहीं। उसे कोई साकार मानता है और कोई निराकार। सबने ईश्वरकी कल्पना अपने-अपने ढंगसे कर रखी है। जिससे पता चलता है कि यह ईश्वर प्रत्येक दिमाग़की अपने समयके अनुसार अलग-अलग उपज है जिसपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार धर्मका भी कोई स्थिर रूप नहीं है। जो आज धर्म है, कल वही महापाप बन जाता है। उदाहरणके लिए हिन्दू-धर्ममें पहले मांस-भक्षण, तलाक़, बहुविवाह आदि जायज़ थे; पर बादमें ये ही महान् पाप बन गए। इसी कारण तो शास्त्रकारोंको यह श्लोक बनाना पड़ा :—

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शेखलिखितौ कलौ पाराशरः स्मृतः॥

अर्थात् कृतयुगमें मनुस्मृति, त्रेतामें गौतम-स्मृति, द्वापरमें शेख-लिखित स्मृति और कलियुगमें पाराशर-स्मृतिको प्रमाण मानो।

ईश्वरकी सत्ताको सिद्ध करनेके लिए जो एक चलती युक्ति दी जाती है, वह यह है कि जब मनुष्य पापकर्ममें प्रवृत्त होता है, तो उसके भीतरसे एक आवाज़ उठती है, जो उसे पाप करनेसे रोकती है। परन्तु जो हमारे अन्दरसे बोला करता है, वह तो ईश्वर नामके हौवाका भय है। सदियोंसे हमारे अन्दर भयकी भावना इतनी बद्धमूल कर दी गई है कि उसने वास्तविकताका रूप धारण कर लिया है। किन्तु यह भय ऐसा ही है, जैसा कि रातके अँधेरेमें चलनेपर भूतका भय होता है। आजसे कुछ वर्ष (और कुछ तो अब भी) हम भूतको वास्तविक वस्तु मानते थे और रातमें उससे डरते भी थे; पर आज हम जानते हैं कि भूत वास्तवमें कोई वस्तु नहीं, हमारी दृष्टि भ्रम है। यही बात यदि आजसे २० बरस पूर्व किसीसे कही जाती, तो वह हमारी हँसी उड़ाता। इसी प्रकार ईश्वर भी हमारा भ्रम है। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञानने हमारे उन सब धार्मिक सिद्धान्तोंको खण्डित कर दिया है, जिनको हम एक समय सत्य समझते थे, उसी तरह वह दिन भी दूर नहीं, जब वैज्ञानिक ईश्वरकी अस्तित्वताका भी पता लगा सकेंगे।

कहा जाता है कि दुःखमें ईश्वरका नाम स्मरण करनेसे सब कष्ट दूर होते हैं। पर यह कोरा भ्रम ही है। मानव-स्वभाव है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, उसका दुःख हल्का होता जाता है। ईश्वर नामकी वस्तुका इसमें कोई हाथ नहीं। हमारा जो यह विश्वास है कि ईश्वर दुःखहर्ता है, वह भी दुःख भुलानेमें सहायक सिद्ध होता है। यदि हम दुर्जन-तोष-न्यायसे स्वीकार भी कर लें कि ईश्वर नामकी कोई वस्तु है, तो हुआ करे। हमें उससे क्या लाभ? सिर्फ़ ईश्वर-ईश्वर चिल्लाते रहने के कारण ही हम उन्नति नहीं कर सके। हमने धर्मको इतना अधिक महत्व दे दिया है कि हमारे जीवनकी प्रत्येक समस्या—चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक—इसी दृष्टिबिन्दुसे देखी जाती है। यह ईसाई है, यह मुसलमान है, यह हिन्दू है—इस तरह न-जाने कितने ही उपभेद हमने बना लिए हैं।

मानवताका मूल्य किसीने सड़कके किनारे नालीसे कुछ ऊपर जूठन गिराई। उसपर दौड़े दो भूखकी ज्वालामें जलते हुए प्राणी। एक मुट्ठी-भर हड्डियोंका ढाँचा—'मानव' नामधारी बालक, दूसरा एक रौबीला काला कुत्ता। दोनों उसपर एक साथ ही अधिकार पानेको लपके। बालक आगे आया—कुत्ता पीछे। लेकिन एक ही छलाँगमें कुत्ता आगे था। बालक फिर भी अपने मानवीय अधिकारसे आगे बढ़ा—शायद पशुतापर विजय पानेकी लालसासे! पर कुत्ता ज़ोरसे उसपर भौंका—झपटा भी। बालक हतप्रभ हो पीछे हट गया। और अब पशुताका उस जूठनपर एकमात्र अधिकार था! मैंने दूरसे यह सब देखा। सोचा, क्या यही आजकी मानवताका मूल्य रह गया है?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—तपेशचन्द्र त्रिवेदी

भारतीय नैरोबी

श्री धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार

जब एक भारतीय पहली बार पूर्वी अफ्रीकाके लिए प्रस्थान करता है, तो उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह एक अत्यन्त अज्ञात प्रदेशमें जा रहा है। परन्तु जहाज़में जो पूर्वी अफ्रीका-प्रवासी भारतीय यात्री उसे मिलते हैं, वे उसको धैर्य बँधाते हैं और उसे आश्वासन देते हैं कि वहाँ भी वह सुखी रहेगा। मुम्बासाके बन्दरगाहपर पहुँचते ही हमें अफ्रीका-निवासियोंके दर्शन हुए। ये 'सुहेली' या तट-निवासी कहलाते हैं। हम पढ़े-लिखे होते हुए भी आदिम पुरुषोंकी सांकेतिक भाषामें ही इनसे बातचीत कर सके, क्योंकि ये हमारी और हम इनकी भाषा नहीं जानते। कस्टमके झंझटसे निबटकर हम टैक्सीमें बैठ समाज-मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ कुछ घण्टे ठहरकर सायंकालकी गाड़ीसे नैरोबीके लिए चल पड़े। स्टेशनोंपर न तो कहीं हिन्दू-पानी और मुस्लिम-पानीकी रट सुनाई दी और न ही चेवड़ा-भजिया-गांठियावालेकी हाथ-गाड़ी ही दिखाई दी। हाँ, एक छोटा-सा नेटिव लड़का 'केक' लेकर ज़रूर सामने आ खड़ा हुआ और एक दूसरा अफ्रीकन केले बेचता हुआ दिखाई पड़ा। प्रातः नौ बजेके लगभग हम नैरोबी पहुँचे। देहली या लाहौर की तुलनामें यह स्टेशन छोटा ही है; पर है सर्वथा आधुनिक। नैरोबीकी चौड़ी सड़कें और खुले बाज़ार देखते ही हमने यह अनुभव किया कि हम एक नए संसारमें आ पहुँचे हैं। यद्यपि नेटिवोंके बाद यहाँ भारतीय ही अधिक संख्यामें हैं, तो भी हम यूरोपियनोंकी दृष्टिमें बलात् प्रवेश करनेवालोंमें से ही जान पड़े।

केनिया प्रधानतया यूरोपियन उपनिवेश है। यहाँ सभी भारतीय यूरोपीय वेश-भूषामें रहते हैं। सब लोग सवेरे चाय पीकर दफ़्तर चले जाते हैं, एक बजे भोजन करने घर आते हैं और फिर शामको घर या बाहर चाय पीते हैं। भारतमें रहते हुए हम बहुधा अपने प्रान्तके भारतीयके ही सम्पर्कमें आते हैं; पर यहाँ भारतके सभी प्रान्तोंके निवासी मिलते-जुलते हैं। दुकानें प्रातः आठ बजे खुलती हैं और सायंकाल छः बजे बन्द हो जाती हैं। अतः कुछ दिनों तक तो नवागत प्रवासीको यह उपनिवेश सर्वथा अभारतीय-सा प्रतीत होता है; पर ज्योंही कुछ समय बीत जाता है, उसे भारतीय नैरोबीके दर्शन होते हैं। दीपमाला आती है, तो भारतीय बाज़ार और भारतीय बस्ती एक छोरसे दूसरे छोर तक जगमगा उठते हैं। हलवाइयोंकी दुकानें भी मनोमोहक रीतिसे सजा दी जाती हैं। छोटे बच्चे अपनी फुलझड़ियाँ और पटाखे भी नहीं भूलते। अगले दिन गुजराती बन्धुओंका नूतन वर्ष प्रारम्भ होता है। ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर वे नित्यकर्मोंसे निवृत्त हो अपने मित्रों और सम्बन्धियोंके यहाँ 'साल मुबारक' करने जाते हैं। इसी दिन वही-खातोंकी पूजा भी होती है। विजयादशमीका भारतीय दृश्य देखना हो, तो सनातन धर्म-मन्दिरमें चलिए। यहाँ रामलीला हो रही है। रावणका दाह भी बड़ी धूमधामसे होता है। नवरात्रके दिनोंमें गुजरातमें जिस प्रकार कन्याएँ और महिलाएँ गरबा-नृत्यका आयोजन करती हैं, उसी प्रकार यहाँ कच्छी-गुजराती-यूनियनकी ओरसे गरबा और अभिनय होते हैं। वसन्त-पंचमीके दिन गुरुद्वारेकी रौनक़ देखिए। वासन्ती वस्त्र पहने सिक्ख नर-नारी उल्लाससे गुरुद्वारेकी ओर जा रहे हैं। ग्रन्थसाहबके पाठके बाद मुँह मीठा करनेके लिए हलुआ भी मिलता है। आर्यसमाजका वार्षिकोत्सव भी ठीक उसी शानसे होता है। आर्य-कन्या-पाठशालाके विशाल आँगनमें ओ३म्‌की पताका फहराती है। ध्वजा-गीतके अनन्तर पूर्वी अफ्रीकाके प्रसिद्ध आर्य-पुरोहित श्री सत्यपाल सिद्धान्तालंकार इसका आरोहण करते हैं। मण्डपमें महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरूके चित्र टँगे हैं। रातको कवि-सम्मेलन तथा संगीत-सम्मेलनका आयोजन भी किया जाता है। आर्यसमाजी बन्धुओंने गुरुकुल खोलनेका संकल्प किया था और इसीलिए श्रद्धानन्द-आश्रमकी स्थापना की गई थी। यह स्वप्न अभी अधूरा है। ईदके अवसर पर मुसलमानोंकी चहल-पहल देखिए। भारी-भारी देगचे हाथ-गाड़ीमें रखे हुए नेटिव 'मस्कीटी' (मस्जिद) की ओर जा रहे हैं। वहाँ पुलाव चढ़ेगा। यहाँ आगाखाँके अनुयायी भी भारी संख्यामें हैं। उनका प्रार्थना-मन्दिर शहरकी प्रसिद्ध इमारतोंमें से है। वहाँ प्रति सायंकाल खोजा नर-नारी कपड़ेके नीचे ढँक कर अपने हाथसे तैयार किया हुआ भोजन ले आते हैं और 'साहबजी'के निमित्त उसे नीलाम करवा देते हैं। भगवान रामचन्द्रके अनन्य सेवक हनूमानजीके पूजक भी यहाँ अनेक हैं। एक हनूमान-आश्रमकी स्थापना भी की गई है, जिसकी शाखाएँ केनियाके बड़े-बड़े नगरोंमें हैं।

विदेशमें देशकी स्मृति व्याकुल कर देती है, अतः प्रत्येक प्रवासीकी यह आकांक्षा होती है कि वह विदेशमें भी स्वदेशका-सा वातावरण उत्पन्न करे। जब इंग्लैण्डके ऐतिहासिक व्यक्ति रैले और हाकिन्स आदि उत्तरी अमेरीकामें उपनिवेश बसाने पहुँचे, तो उन्होंने नए खोजे हुए स्थानोंके नाम 'न्यू इंग्लैण्ड' और 'वर्जिनिया' आदि रखे। नैरोबीमें भी आप 'देहली रोड' और 'सिक्ख कालोनी' पायँगे। भारतीयताकी भावनाको जाग्रत रखनेके लिए भारतीयोंने अपने स्कूल खोले। इन स्कूलोंके लिए जनतासे ही चन्दा माँगा जाता है। वहाँ भी ऐसे समाज-सेवी पुरुष हैं, जो अपना समय देकर इन संस्थाओंका संचालन करते

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। सरकारी स्कूलोंमें छात्रोंको जो शिक्षा दी जाती है, वह भारतीयको अंगरेज़ी और गणितका प्रारम्भिक ज्ञान भले ही करा दे, पर उन्हें 'भारतीयता' नहीं सिखाती। सरकारी शिक्षा-विभागके एक प्रमुख अधिकारीने एक बार अध्यापकोंकी सभामें भाषण देते हुए कहा था कि आजसे थोड़े वर्ष बाद अंगरेज़ी ही यहाँकी सार्वजनिक भाषा हो जायगी। यद्यपि आज घरों और बाज़ारोंमें अंगरेज़ीका ही बोलबाला है, फिर भी धार्मिक संस्थाओं की ओरसे चलनेवाली पाठशालाएँ और अन्य संस्थाएँ इसका यथोचित क्रियात्मक उत्तर दे रही हैं। अधिकांश भारतीय गुजराती बोलते हैं। इसके बाद हिन्दी और पंजाबीका प्रचार है। भाषाके दृष्टिकोणसे यह विदेश नहीं प्रतीत होता, क्योंकि अपने देशकी कर्ण-मधुर बोली प्रायः सर्वत्र सुननेमें आ जाती है।

बाज़ारमें चीज़ें खरीदते समय प्रारम्भमें कुछ नवीनता अनुभव होती है; परन्तु धीरे-धीरे हम दुकानदारोंके साथ परिचित होते जाते हैं और अपनी रुचिके अनुकूल दुकानें ढूँढ़ लेते हैं। नैरोबीमें वैसे तो भारतीय व्यापारियोंका प्राधान्य है; परन्तु मुख्य बाज़ारकी भारतीय दुकानें विशेष रूपसे यूरोपीय शानसे सजी रहती हैं। भारतीय बाज़ारके दो भाग हैं—मुख्य भाग में जैनी व्यापारियोंकी दुकानें हैं और दूसरे भागमें भारतवर्षकी तरह छोटी-छोटी दुकानें हैं। इस बाज़ारके व्यापारी नेटिवोंके लिए परचूनका व्यापार करते हैं और उनकी मनोवृत्तिसे भली-भाँति परिचित हो गए हैं। बम्बईके विश्रान्ति-गृहोंके ढंगपर यहाँ भी गुजरातियोंकी चाय-चेवड़ा-भजियाकी दुकानें हैं। एक छोटी दुकान गोलगप्पे और दहीबड़ेकी भी है। दो-चार पंसारियोंकी दुकानें हैं, जिन्होंने पर्याप्त पैसा कमाया है। एक जगह भड़भूँजेकी दुकान भी देखनेको मिली। गुजराती और हिन्दी की छपाईके प्रेस भी कई हैं। इसी बाज़ारके एक कोनेमें भारतीय डाक्टरोंकी दुकानें भी हैं।

शहरकी आबादीसे दूर कई भारतीयोंने ज़मीनें लेकर मकान बनवा लिए हैं। ये मकान उन तरखानों या साधारण बचतवालों के हैं, जिन्होंने अपने श्रमके पसीनेसे ज़मीन मोल लेने-योग्य कुछ पैसे जमा कर लिए। ये तरखान अपने खाली समयमें गृह-निर्माणका काम स्वयं करते हैं। रविवारको अपने दो-चार साथियोंको भी ले आते हैं, जो इनकी सहायता करते हैं। इस तरह महीनोंमें ये मकान तैयार हो पाते हैं। इन मकानोंमें आपको भारतीयता दृष्टिगोचर होती है। आँगनमें एक जामुन या अमरूदका पेड़ होता है, जिसके नीचे अवकाशके समय हुक्का-पार्टी या ताश-पार्टी जमती है।

भारतके भाग्यके साथ भारतीय प्रवासियोंका भाग्य भी जुड़ा हुआ है, इसलिए जब भारतमें कोई आन्दोलन होता है, तो उसका प्रभाव एवं प्रतिक्रिया यहाँ होना स्वाभाविक ही है। हैदराबाद-आन्दोलनके समय समस्त हिन्दू-समाज विक्षुब्ध हो उठा था और आर्यसमाजने इस अवसरपर पुष्कल आर्थिक सहायता भी भेजी थी। पाकिस्तानकी गूँज भी यहाँ पहुँची है। बंगालके दुर्भिक्षकी वेदना भी प्रवासियोंने अत्यन्त तीव्रतासे अनुभव की है और पीड़ितोंके सहायतार्थ पर्याप्त धन भेजा है। पिछले वर्ष महात्माजीके उपवासका समाचार पहुँचते ही समस्त केनियामें चिन्ता और विषादकी लहर दौड़ गई थी। उपवासके प्रथम दिन पटेल ब्रदरहुडके हालमें महात्माजीके दीर्घ आयुष्यकी प्रार्थनाके लिए एक विशेष सभाका आयोजन किया गया था। ऐसी सभाएँ उपवासके दिनोंमें विभिन्न संस्थाओंकी ओरसे होती रहीं। उन दिनों छोटी-छोटी कन्याओंने भी एक समयका उपवास किया। एक भाईने तो पूरे २१ दिनका ही अनशन किया। भारतसे रेडियो द्वारा गांधीजीके स्वास्थ्यके जो समाचार ज्ञात होते थे, वे प्रतिदिन सभाओंमें सुनाए जाते थे।

केनिया-निवासी यूरोपियनोंमें उपनिवेश बसानेवाले यद्यपि बहुत संख्यामें नहीं हैं; पर वहाँकी सरकारी नीति निर्धारित करने में उनका बड़ा हाथ है। विदेशमें जाकर धन कमाना एक बात है, और वहाँकी भूमिमें हल चलाकर अन्न पैदा करते हुए सदाके लिए वहाँ बस जाना सर्वथा दूसरी बात है। केनियाकी सरकारने उपनिवेश बसानेके लिए यूरोपियनोंको अच्छे जलवायुमें खेतीके लायक़ भूमि सस्ते दामोंपर दी। इन यूरोपियनोंमें कई रिटायर्ड अफ़सर हैं, जो भारतमें अफ़सर रह चुके हैं। ये लोग क़हवा, चाय आदिकी खेती और गो-पालनका व्यवसाय करते हैं। इन कृषकोंकी सहायताके लिए एक बैंक भी है, जहाँसे इन्हें विशेष शर्तोंपर रुपया उधार मिल जाता है। ये लोग एकदम 'साहब' और भारतीय-विरोधी मनोवृत्तिके हैं तथा भारतीयोंकी किसी प्रकारकी भी समृद्धि सहन नहीं कर सकते। ये सर्वदा इसी बात पर ज़ोर देते हैं कि इस उपनिवेशको भारतीयों एवं भारतीय राजनीतिसे सर्वथा पृथक् रखा जाय। भारतीयताकी ओर प्रयाण करनेवाले भारतीयोंके मार्गमें यह भारी विपत्ति है।

केनिया एक पठार है, जिसके किनारोंकी ओर दलदलवाली भूमि है। जो ऊँची भूमि है, उसे 'हाईलैण्ड' कहते हैं। इस हाईलैण्डका जलवायु किनारेकी अपेक्षा उत्तम है और यहाँ पाइरेथ्रम साइसल, गेंहू आदिकी खेती भी उत्तम हो सकती है। यह क़ानून द्वारा श्वेतांगोंके लिए ही सुरक्षित है। भारतीय किसानोंके हिस्सेमें दलदलवाली नीची धरती ही पड़ी है। इन खेतोंमें बैलों द्वारा हल चलानेका रिवाज नहीं है। ट्रैक्टरोंसे ही भूमि खोद ली जाती है। नैरोबीसे किसुम्मू जाते हुए हमें गन्नेके मीलों लम्बे खेत देखकर अनायास ही भारतकी याद हो आई। यहाँ भी भारतीय ढंगसे ही ईखसे गुड़ तैयार किया जाता है। दूसरे भी तैयार करनेकी कला भी भारतवासी ही यहाँ लाए

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। आजसे चार-पाँच साल पूर्व भारतीय ही सारा घी तैयार करते थे ; पर अब उनके हाथसे यह व्यापार जाता रहा है।

पहले जो भारतीय यहाँ आए, उनमें से बहुतेरे धन कमाकर लौट गए। यहाँ बसनेका विचार कभी भी उनके मनमें नहीं आया। पर अब वे यहाँ बसनेके पक्षपाती हो गए हैं। अनेक भारतीयोंने यहाँ अपने मकान बना लिए हैं। कई बाज़ारोंमें तो दुकानें भी भारतीयोंकी अपनी ही हैं। अचल सम्पत्तिकी दृष्टिसे देखा जाय, तो भारतीय ही यूरोपियनोंकी अपेक्षा समृद्धिशाली हैं। इसलिए 'भारतीय केनिया' और 'भारतीय नैरोबी' सरकारकी भाषामें भले ही कोई अस्तित्व न रखते हों; पर क्रियात्मक दृष्टिसे उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रवासमें रहते हुए भी भारतीयोंको अपने हितों, अधिकारों सम्मान संस्कृति, सभ्यता, धर्म और विचारोंकी रक्षाके लिए एकताके सूत्रमें ग्रथित होनेकी अत्यधिक आवश्यकता है।

काव्य-साधना

श्री कमलादेवी, बी० ए० (आनर्स)

सृष्टिमें मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसमें विचारोंके आदान-प्रदान तथा उनके सुरक्षित रखनेकी शक्ति है। बौद्धिक शक्तिमें भी वह अन्य प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। अन्य प्राणी तो अपनी सहज प्रवृत्ति द्वारा जीवनके व्यापारोंको समझते और समझाते हैं। उन्हें इसका ज्ञान नहीं कि ये प्रवृत्तियाँ क्यों और कैसे आईं और दूसरोंमें भी हैं या नहीं? लेकिन मनुष्य अपने विचारों और भावोंको अपने तक ही सीमित नहीं रख सकता। वह उन्हें किसीपर व्यक्त करनेके लिए व्यग्र हो उठता है। वाणी और बुद्धि मिलकर उसके भावोंको प्रकट कर देती हैं। उसकी बुद्धि जीवनके प्रत्येक व्यापारका विश्लेषण करने लगती है, उसके आदि और अन्तकी छानबीन कर डालती है। उसके सिद्धान्तों और अनुभवोंके व्यक्तीकरणके परिणाम-स्वरूप ही दर्शन, साहित्य, विज्ञान आदिकी सृष्टि हुई है।

उसकी अनुभूतिके दो पक्ष हैं—आत्मनिष्ठ पक्ष (Subjective side) और वस्तुपाती पक्ष (Objective side)। वस्तुपाती पक्षका सम्बन्ध विशेषतः बाह्य जीवनसे है। इसकी जटिलताओंको सुलझानेमें बुद्धि उलझी रहती है। नाना प्रकारके वैज्ञानिक आविष्कार, अर्थशास्त्र आदि इसकी सुलझाई हुई समस्याएँ ही हैं। आत्मनिष्ठ पक्षका सम्बन्ध आभ्यान्तरिक जीवनसे है। विविध बाह्य तथा आभ्यान्तरिक व्यापारों द्वारा हृदय भावनामग्न हो जाता है। कलाकारका यह उद्वेग अपनी ही प्रेरणासे आत्म प्रकाश पा लेता है। उसी आत्म-प्रकाशकी अनुभूति तथा अभिव्यक्तिसे काव्यकी सृष्टि होती है। रस ही काव्यकी आत्मा है—'वाक्यं रसात्मकं काव्यं।' काव्यकार अपनी अनुभूतियोंको कल्पना द्वारा स्पष्ट बनाकर व्यक्त करता है।

काव्यके तीन अंग हैं—रसानुभूति, कल्पना और उसकी अभिव्यक्ति। जिस तरह मकानके लिए नींवकी ज़रूरत रहती है, उसी तरह काव्यके लिए अनुभूतिकी आवश्यकता होती है। काव्यकारने यदि समुद्र नहीं देखा और न कभी उसे इस विषयमें किसी प्रकारका ज्ञान ही प्राप्त हुआ, तो वह समुद्रका वर्णन किस प्रकार कर सकता है? उसकी अभिव्यक्तिके पीछे उसकी अनुभूतिका रहना आवश्यक है। काव्यकार अपने कल्पना-जगत्में स्वतन्त्र है। इसमें वह जहाँ चाहे, जा सकता है, और जो चाहे, कर सकता है। उसकी कल्पना-शक्ति साधारणजनोंसे अधिक प्रबल है। एक साधारण व्यक्तिके लिए समुद्रकी लहरें कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखतीं ; पर काव्यकार अपनी कल्पना द्वारा उन्हें नाना रूपोंमें देखता है। कभी उसे चाँदनी शीतल जान पड़ती है, तो कभी वही जलती हुई। भावनाओंकी भिन्न-भिन्न दशाओंमें उसे एक ही वस्तुमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी अनुभूति होती है, जिसे वह कल्पना द्वारा नाना प्रकारके रूप दे डालता है। कभी-कभी तो उसकी कल्पना अतिरंजित हो जाती है। उस दशामें उसकी अत्युक्तिसे केवल तात्पर्य ही निकाला जाता है। काव्यकारकी कल्पनामें छोटी-से-छोटी बातमें कितनी सुकुमारता आ सकती है, ज़रा देखिए—'नदीकी लहर तटकी पुष्पित डालीके पुष्पोंका स्पर्शकर बहती चली जाती है।' इसमें लहरकी सजीवता, उसके आनेका कारण—क्रीड़ाच्छल, स्पर्शसे पुष्पको चूमना और लहरका प्रकृति-सिद्ध चंचलता दिखाकर पलायन एक सामान्य प्राकृतिक सत्यको कल्पना द्वारा सजीव कर दिया गया है। इस तरह कल्पना द्वारा काव्यकार रचनामें जान डाल देता है।

काव्यकार अपनी कल्पना और अनुभूतिको चरम रूप अभिव्यक्ति द्वारा ही दे पाता है। इसीमें वह अपनी रसानुभूति दूसरोंके सामने प्रकट करता है। किन्तु उसका यह व्यक्तीकरण भी अनेक प्रकारका होता है। गद्य या पद्य तो अभिव्यंजनके केवल निमित्त-मात्र हैं। अभिव्यंजनमें वह भावों और कल्पनाके अनुरूप ही अपने शब्दोंका चयन करता है। जितनी सुन्दर अनुभूति होगी, उतनी ही सुन्दर अभिव्यक्ति भी होनी चाहिए।

इस प्रकार काव्यके ये तीनों अंग साध्य एवं साधनके रूपमें अविच्छिन्न रूपसे वर्त्तमान रहते हैं और एक-दूसरेपर प्रभाव भी डालते रहते हैं। बिना अनुभूतिके आधारके सफल कल्पना सम्भव नहीं है। प्रत्येक काल्पनिक रूपका वास्तविक आधार

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए। काव्यकारका यदि अपना व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, तो उसे अन्य लोगोंके अनुभवोंका ज्ञान तो हो ही सकता है, जिसे वह अपनी कल्पना द्वारा आसानीसे एक विशिष्ट रूप दे सकता है। यही तो काव्यकारकी विशेषता है। वह सत्यको सुन्दरता और सुकुमारताका आवरण देता है, एक छोटी-सी सीमाके अन्दर भावोंकी विशालताको प्रत्यक्ष कर देता है। जैसे निम्न पदमें

कभी उड़ते पत्तोंके साथ मुझे मिलते मेरे सुकुमार ;
बढ़ाकर लहरोंसे लघु हाथ बुलाते हैं मुझको उस पार।

लौकिक रूपोंके भीतर असीमका इंगित कितनी कुशलताके साथ प्रकट किया गया है। यही तो उसकी अभिव्यक्तिकी सार्थकता है।

काव्यकार और काव्य-रसिकमें उतना ही अन्तर है, जितना एक चित्रकारमें और उसके बनाए हुए चित्रके अभिज्ञ दर्शकमें। काव्यकारमें सृष्टि करनेकी शक्ति है, जब कि काव्य-रसिकमें उस सृष्टिका रसास्वादन करने-भरकी शक्ति है। पर उसमें भी काव्यकारकी कृतिको पहचानने अथवा कलात्मक अनुभूतिको ग्रहण करनेकी योग्यता तो रहनी ही चाहिए। काव्यकारकी अनुभूति और कल्पना जितनी ही उत्तम होगी, उतना ही उत्तम उसका अभिव्यजन भी होगा। काव्यकारका शरीर किसी स्थान-विशेषमें सीमित भले ही हो ; पर उसका हृदय दिगन्तव्यापी रहता है। वह सकीर्णता और संकोचसे दूर रहता है। जहाँ उसने अपने चारों तरफ़ सीमाकी रेखा खींची, वहींसे उसके काव्यका ह्रास आरम्भ हो जाता है। उसके स्थूल अस्तित्वकी संकुचित सीमाके परेसे ही उसके काव्यमय व्यक्तित्वका प्रारम्भ होता है। वह तो सत्यका वर्णन करता है। उसपर देश, काल, स्थिति आदिका प्रभाव अवश्य पड़ता है ; किन्तु उसके भीतर जो सत्य है, वह विश्वव्यापी है और अक्षुण्ण है। यदि वास्तवमें वह सत्य है तो वह अवश्य ही कल्याणकारी भी है। अतः वह पूर्ण है। जो पूर्ण है, वह सुन्दर भी है और अविनाशी भी। जिस काव्यकारकी कृतिमें सत्यं, शिवं, सुन्दरम्‌की साधना हो, वह निस्सन्देह सफल और अमर कृति है।

इसलिए तू याद आए !

श्री 'यात्री'

घोर निर्जनता न मुझको काट खाए ;
चाहता हूँ, इसलिए तू याद आए !
गोदके शिशुसे मुखर जीवन तुम्हारा,
भुला दे इस पथिकका परिताप सारा।
उतर स्मृति-पटपर कि उरपर हाथ धरकर,
अमृतगर्भा उँगलियोंसे घाव भरकर,
मुक्तकर जा मुझे मर्मान्तिक व्यथासे,
सुला जा हरकर हृदय लम्बी कथासे।
पलातक ही सही, पर करबद्ध होकर,
खड़ा हूँ सखि, आँसुओंसे आँख धोकर।
आह, यदि इन धुली आँखोंमें तुम्हारी,
नाचने लग जाय छवि कल्याणकारी !
फिर यहाँसे और आगे बढ़ सकूँगा ;
हिमालयके तुंग-शिरपर चढ़ सकूँगा।
ये विकट पगडंडियाँ, ये झूलते पुल ;
ये भयानक घाटियाँ चिर-तुहिन-संकुल।
सामने यह मृत्युकी प्रत्यक्ष छाया ;
निबट लूँगा सभीसे हे योगमाया !
साथ हो केवल मधुर मुसकान तेरी,
ले सकेगा कौन जगमें जान मेरी ?
दिवस हों दुर्दिवस, रातें हों अँधेरी ;
परिस्थिति हो विषम, तो भी सजनि, मेरी—
चाल धीमी कभी भी पड़ने न पाए ;
चाहता हूँ, इसलिए तू याद आए।
गगनमें नक्षत्र, वनमें फूल देखा—
तब हृदयमें हँस पड़ी थी पत्रलेखा।
स्मरण आया मुझे अपनी सहचरीका,
विरह-वर्णन पढ़ा जब कादम्बरीका।
अवज्ञात शकुन्तलाका ध्यान आया—
तब वियोगिनि, मैं तुम्हें पहचान पाया !
गोदमें शिशु, सजल नयने, कौन हो तुम ?
दीखती हो स्वप्नमें, क्यों मौन हो तुम ?
महत्त्वाकांक्षा तुम्हें ही भूल करके
पूर्ण होगी, इसीसे मैं फूल करके—
अकेले ही नाव खेने जा रहा था ;
सफलताका श्रेय लेने जा रहा था।
किन्तु तेरे बिना सखि, मधुकोष मेरा—
हो चला है रिक्त, यह सब दोष मेरा।
पिला दो जीवन-सुधा दो-एक मात्रा,
स्मितमुखि, फिर कर सकूँ आरम्भ यात्रा।
स्वप्नमें ही सही, तुम फिर मुस्करा दो ;
अमृतकी दो बूँद इस मुँहमें गिरा दो !
अनमनापन नहीं इस मनको सताए ;
चाहता हूँ, इसलिए तू याद आए !

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चुंकिंग-यात्रा—२

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह, हिन्दी-अध्यापक, राष्ट्रीय प्राच्य महाविद्यालय, छेङ्कुङ्, कुमिङ् (चीन)

चुंकिङ्के अन्दर एक प्रसिद्ध स्थान देखने योग्य है। वह है लोहान् मन्दिर। यहाँ एक बड़े हालमें चीनके प्राचीन ६०० बौद्ध भिक्षुओंकी भरकद मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। ये मूर्त्तियाँ ज़मीनकी सतहसे चार फीट ऊँची वेदीपर पाल्थी-मारे रूपमें स्थापित की गई हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर सुङ्-राजवंश (सन् ९६०-१२७९) के समय बना था। जापानी हवाई-हमलेके कारण बहुत-सी मूर्त्तियाँ टूट-फूट गई हैं तथा मन्दिरको भी काफ़ी क्षति पहुँची है। इस मन्दिरसे सटे पत्थरोंकी चट्टानोंपर छोटी-छोटी गुफाएँ बनी हुई हैं, जिनमें भगवान बुद्धकी मूर्त्तियाँ और महायान सम्प्रदायके देवी-देवताओंकी मूर्त्तियाँ भी हैं। इन मूर्त्तियोंकी पूजा प्रतिदिन विधिवत् होती है। चीनके मन्दिरोंमें कोई भी आदमी जूता पहने अन्दर-बाहर, यहाँ तक कि प्रतिमाके पास तक, आ-जा सकता है, तथा जूता पहने पूजा भी कर सकता है। अक्सर भिक्षु लोग जूता पहने ही पूजा करते हैं।

चुंकिङ्-जैसे प्रधान नगरमें एक भी बड़ा शिक्षालय नहीं है। चुंकिङ्के पड़ोसका स्थान शा-ची डिस्ट्रिक्ट ही चुंकिङ्का शिक्षा-केन्द्र है। शा-ची डिस्ट्रिक्टके सा-पिङ्-पा स्थानमें ही सब शिक्षालय बने हुए हैं। यहींपर राष्ट्रीय केन्द्रीय विश्वविद्यालय, चुंकिङ-विश्वविद्यालय, नानकाइ मिडिल स्कूल (भारतवर्षके माध्यमिक शिक्षाके स्कूल), सिच्वान प्रान्तीय शिक्षा-कालेज, राष्ट्रीय टेक्नालाजिकल कालेज आदि हैं। इन विद्यालयोंमें से कुछ तो युद्ध-कालके पहलेसे ही इसी स्थानपर स्थापित हैं, और कुछ युद्ध-कालमें किनारेके प्रान्तोंसे उठाकर यहाँ स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय केन्द्रीय विश्वविद्यालय नानकिङ्से हटाकर यहाँ लाया गया है। इस समय यह स्वतन्त्र चीनका सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय भी अपना काम अस्थायी टट्टियोंके मकानोंमें चला रहा है। यहाँकी लाइब्रेरी और विज्ञान के विभाग बहुत अच्छे हैं। जिस स्थानपर यह विश्वविद्यालय बसा हुआ है, वह भी बड़ा सुन्दर है। लड़कोंके खेलने, व्यायाम करने आदिका भी अच्छा प्रबन्ध है। चुंकिङ्-विश्वविद्यालय युद्धके पहले भी यहीं था। इसका काम भव्य पक्की इमारतोंमें होता है। यह अपने इंजीनियरिंग-विभागके लिए बहुत प्रसिद्ध है। चुंकिङ्में बहुतसे क्लब भी हैं, जिनमें रोटेरी क्लब, चुंकिङ् अन्तर्राष्ट्रीय क्लब, चुंकिङ् अन्तर्राष्ट्रीय महिला-क्लब, चर्चमैन-क्लब आदि प्रसिद्ध हैं। चुंकिङ्-क्लब केवल विदेशियोंके लिए है। इन क्लब-घरोंमें समय-समयपर मिटिंग, खान-पान, नृत्य आदिका भी आयोजन होता है। इनमें पुस्तकालय और वाचनालय भी हैं। विदेशी मिशन और चर्च आदिकी संख्या तेईस है, जो धर्म-प्रचार तथा रविवारको प्रार्थना करने आदिकी व्यवस्था करते हैं। अस्पताल तथा खैराती संस्थाएँ भी कई हैं। रेडक्रासकी तरफसे विभिन्न रोगोंके कई अस्पताल बने हैं। बहुतसे अस्पताल मिशनरियों द्वारा चलाए जाते हैं। कुछका प्रबन्ध देशी तथा विदेशी रिलीफ़ संस्थाएँ करती हैं। सरकारी अस्पताल भी कई हैं। युद्धसे पीड़ित नागरिकों, विद्यार्थियों आदिकी सहायताके लिए देशी तथा विदेशी दोनों प्रकारकी संस्थाएँ हैं। फ्रेण्ड्स एम्बुलेन्स यूनिट, चिल्ड्रन्स वेल्फेयर एसोसिएशन आदिकी भी यहाँ शाखाएँ हैं, जो अपने आदर्श और कार्यक्रमके अनुसार सहायताके कामोंमें लगी हुई हैं।

चुंकिङ्में अप्रैल, १९४३ में विभिन्न २८ विदेशी राष्ट्रोंके स्त्री-पुरुषोंकी संख्या १०४६ थी। उसके बादके आँकड़े प्राप्त नहीं हैं; परन्तु कोई सन्देह नहीं कि इसमें वृद्धि ही हुई होगी। अप्रैल, १९४३ में चुंकिङ्में केवल तीन भारतीय थे; पर आज दस-ग्यारह हैं। बहुत देशोंके लोगोंके रहनेके कारण यहाँका वातावरण कुछ अन्तर्राष्ट्रीय-सा हो गया है। चुंकिङ्के लोगोंमें राष्ट्रीयताके साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय भावनाकी भी वृद्धि हो रही है। चुंकिङ्में चार विदेशी सैनिक मिशन भी हैं, जिनमें ब्रिटिश और अमरीकन मिशन प्रधान हैं। यहाँ बारह विदेशी राष्ट्रोंके प्रतिनिधि रहते हैं। ब्रिटिश दूतावासके अलावा ब्रिटिश कौंसल-जनरलका भी आफ़िस है। इसके अलावा अमरीकन इन्फर्मेशन सर्विस तथा ब्रिटिश दूतावासके ब्रिटिश प्रेस-एटचीके भी दफ़्तर हैं, जहाँसे बुलेटिन, पत्र-पत्रिकाएँ आदि निकलती हैं। बहुतसे दूसरे दूतावासोंकी ओरसे भी बुलेटिन प्रकाशित किए जाते हैं। चुंकिङ्में समाचार भेजनेवाली विदेशी ऐजेंसियोंके प्रतिनिधियों तथा विदेशी पत्रोंके संवाददाताओंकी संख्या बाईस है। न्यूज़-ऐजेन्सियोंमें रायटर, यूनाइटेड प्रेस, एसोशिएटेड प्रेस, इन्टरनेशनल न्यूज़ सर्विस आदि प्रधान हैं। 'लन्दन टाइम्स', 'न्यूयार्क टाइम्स' आदिके संवाददाता भी रहते हैं। समाचार भेजनेकी चीनी ऐजेन्सियाँ भी हैं, जैसे चीन-सरकारकी सेन्ट्रल न्यूज़-एजेन्सी, चाइना पिक्चर-न्यूज-सर्विस, सेन्ट्रल ब्राडकास्टिंग स्टेशन, इन्टर्नेशनल ब्राडकास्टिंग स्टेशन आदि। चुंकिङ्से सोलह दैनिक पत्र निकलते हैं, जिनमें केवल दो अंगरेज़ीमें प्रकाशित होते हैं। अंगरेज़ी पत्र 'नेशनल हैरल्ड' चीन-सरकारके वैदेशिक विभागकी ओरसे प्रकाशित होता है। मासिक, त्रैमासिक तथा पाक्षिक पत्रिकाएँ भी बेहद संख्यामें निकलती हैं। विभिन्न देशोंसे सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाए रखनेके लिए चुंकिङ्में सात संस्थाएँ हैं, जिनमें चीन-भारतीय सांस्कृतिक संस्था, चीनी-अमरीकन सांस्कृतिक संस्था, चीनी-ब्रिटिश सांस्कृतिक संस्था और चीनी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोवियत् सांस्कृतिक संस्था प्रधान हैं। इनके अलावा शिक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्वकी भावनाके प्रचारके लिए पाँच संस्थाएँ और हैं, जिनमें चाइनीज़ लीग आफ् नेशन्स यूनियन, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-उद्योग और स्वतन्त्र संसार-संघकी शाखाएँ प्रमुख हैं। चुंकिङ्में पाँच बड़े-बड़े पुस्तकालय हैं, जिनमें चीन-सरकारका राष्ट्रीय केन्द्रीय पुस्तकालय सबसे बड़ा और प्रधान है। पुस्तकालयोंके साथ वाचनालय भी हैं। इनके अलावा उपर्युक्त सांस्कृतिक संस्थाओंमें भी पुस्तकों, समाचारपत्रों तथा मासिक पत्रिकाओंका काफ़ी बड़ा संग्रह है। कुछ सांस्कृतिक संस्थाओंने रेस्टोराँ भी खोल रखे हैं, जहाँ विदेशी भोजन तथा जलपानका प्रबन्ध रहता है। चुंकिङ्की स्त्रियोंमें भी काफ़ी जागृति है। वे हर प्रकारके काममें पुरुषोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर आगे बढ़ती हैं। भारतमें स्त्रियाँ अधिकतर शिक्षण-संस्थाओंमें ही काम करती हैं; परन्तु यहाँ तो शिक्षण-संस्थाओंके अलावा ऐसी कोई बड़ी-छोटी दुकान, बैंक, सरकारी आफ़िस, खानगी कारबारी आफ़िस, मोटर, नाव आदि जगह नहीं है, जहाँ स्त्रियाँ काफ़ी संख्यामें पुरुषोंके साथ उनके ही समान बड़ी खूबीसे काम करती न दिखाई पड़ती हों। युद्धके कामोंमें—खासकर सहायताके कामोंमें—स्त्रियोंने बड़ा हाथ बँटाया है।

देशकी राजधानी होनेके कारण चुंकिङ्में कितने ही बैंक, इन्श्योरेन्स कम्पनियों और बड़ी-बड़ी व्यापारिक कम्पनियोंके दफ़्तर हैं। सरकारी तथा खानगी दोनों प्रकारके अधिकांश बैंक प्राचीन नगरमें एक ही स्थानपर स्थित हैं और नगरका यही भाग सबसे अधिक समृद्ध लगता है। आधुनिक ढंगके बने चार-पाँच मंज़िलके मकानोंसे सड़कोंके दोनों किनारे भरे हुए हैं। इस भागका नाम ही 'बैंक-एरिया' पड़ गया है। इसी भागमें उद्योग-धन्धे तथा कारबार करनेवाली देशी-विदेशी कम्पनियोंके दफ़्तर भी हैं, जिनमें स्टैण्डर्ड आयल-कम्पनी, रबर-कम्पनी, तम्बाकू-कम्पनी, चाय-कम्पनी, पेपर मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी आदि प्रधान हैं। इस समय चुंकिङ्में प्रधान ३३ बैंक, ४० फ़र्में और ८ इन्श्योरेन्स संस्थाएँ हैं। आनन्द और मनोविनोदके साधन चुंकिङ्में बहुत कम हैं। संध्या समय काममसे अवकाश पाकर टहलने आदिके लिए पार्क और लानका एकदम अभाव है। जो एक-दो पार्क हैं, वे कहने-मात्रके लिए ही हैं। खेल-कूदके मैदानोंका भी अभाव है। सम्पूर्ण चुंकिङ्में मुझे खेलका एक ही मैदान दिखाई पड़ा, जो शिक्षा-विभागके दफ़्तरके पास है। यह मैदान भी बहुत ही छोटा है। इसके अलावा सा-पिङ्-पा (चुंकिङ् खास शहरसे बाहर) के सेन्ट्रल विश्वविद्यालयमें भी एक मैदान है; पर यह भी कोई बड़ा नहीं है। चुंकिङ्में पाँच सिनेमा-गृह और दो नाटक-गृह हैं, जहाँ नियमित रूपसे खेल होते हैं। इनके अलावा एक और हाल है, जहाँ सिनेमा तथा नाटक दोनों होते हैं। यहाँ दो फिल्म-कम्पनियाँ हैं और नौ विदेशी फिल्म-कम्पनियोंके ऐजेन्ट रहते हैं। सिनेमा-घरोंमें चीनी तथा अंगरेज़ी दोनों प्रकारके फिल्म चलते हैं। नाटक-घरोंमें प्राचीन तथा आधुनिक दोनों प्रकारके चीनी नाटक खेले जाते हैं। सिनेमा-घरोंमें जो भीड़ होती है, उसे देखकर कोई अनुमान भी नहीं कर सकता है कि चुंकिङ्में भयंकर महँगी है। आधुनिक चीनी युवक-युवतियोंमें पश्चिमी ढंगके नाचकी प्रथा भी चल पड़ी है। किसी उत्सव-त्योहारके समय या भोजके अवसरपर ग्रामोफ़ोनके तालपर स्त्री-पुरुष नाचते हैं। किसी-किसी क्लबमें सप्ताहके अन्तमें आर्केस्ट्रा तथा गान आदिका भी प्रबन्ध होता है।

चुंकिङ्की सड़कोंके किनारेकी दीवारोंपर नाना प्रकारके विज्ञापन चिपकाए जाते हैं। कोई भी सरकारी आज्ञा या देशमें होनेवाली प्रधान घटनाका नोटिस तुरन्त शहरमें चारों ओर चिपका दिया जाता है। समाचारपत्र तो पचासों जगह प्रतिदिन चिपकाए जाते हैं। समाचारपत्र पढ़नेकी आदत चुंकिङ्के लोगोंमें बहुत है। मैंने फेरी देनेवालोंको भी दीवारपर चिपकाए हुए समाचारपत्र पढ़ते देखा है। नाना प्रकारकी चीज़ोंको लेकर सड़कोंपर फेरी देनेवाले विचित्र-विचित्र स्वरमें चिल्लाकर अपनी चीज़ोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। समाचारपत्र बेचनेवाले भी समाचारपत्रोंके नाम संगीतमय स्वरमें लेते हुए एक ओरसे दूसरी ओर जाते दिखाई पड़ते हैं। सड़कके फुट-पाथपर नाना प्रकारकी छोटी-छोटी दुकानें सजाकर लोग अपनी जीविका उपार्जन करते हैं। जूता पालिश करनेवाले भी झुण्डके झुण्ड बैठे रहते हैं और 'छा पिया, छा पिया' (पालिश कराइए) की चिल्लाहटके साथ लोगोंको बुलाते हैं। जूता पालिश करनेवाले अक्सर मध्यम और निम्नश्रेणीके रेस्टोरेंटोंमें भी घुसकर लोगोंसे जूता पालिश करानेका निवेदन करते हैं। भाग्य देखनेवाले तथा भविष्य बतलानेवाले भी सड़कके फुट-पाथपर अड्डा जमाए बैठे रहते हैं। प्रायः हर छोटी-बड़ी दुकानपर साइनबोर्ड लगा होता है। साइनबोर्ड चीनी अक्षरोंमें लिखे होते हैं। कुछ ही साइनबोर्ड हैं, जिनपर चीनी अक्षरोंके साथ-साथ रोमन अक्षर भी लिखे हुए हैं। यहाँके लोग बड़े परिश्रमी हैं—खासकर मज़दूरोंका परिश्रम देखकर तो दंग रह जाना पड़ता है। मैं पहले ही कह आया हूँ कि चुंकिङ्की सड़कोंमें चढ़ाव-उतार बहुत है। इन सड़कोंके चढ़ावपर सामान से भरी गाड़ी मज़दूर लोग अपनी छाती और कन्धेसे रस्सा लगा और रस्सेका एक छोर गाड़ीसे बाँध जिस कठिनाईके साथ 'हूँ-हाँ' करते हुए खींचते हैं, वह सचमुच प्रशंसनीय है। एक-एक गाड़ीमें तीन-चार मज़दूर लग जाते हैं और दो-तीन मील तक लगातार चढ़ाव-उतारपर खींचते चले जाते हैं। चीनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग व्यापार करनेमें बड़े सिद्धहस्त हैं। युद्धके कारण अन्य देशोंसे सामान मँगानेकी कठिनाइयोंके होते हुए भी चुंकिङ्के बाज़ारोंमें ऐसी कोई आधुनिक चीज़ नहीं है, जो न मिलती हो। हर बड़ी तथा मध्यम श्रेणीकी दुकानपर चीज़ें कलापूर्ण ढंगसे सजाकर रखी रहती हैं। दुकानदार बड़े शिष्ट और नम्र होते हैं और ग्राहकोंके साथ बड़ी नरमीसे पेश आते हैं। दुकानोंपर बेचनेवालोंमें स्त्री-पुरुष दोनों होते हैं। बड़ी-बड़ी तथा मध्यम श्रेणीकी दुकानोंकी संख्या काफ़ी है और इन दुकानोंपर चीज़ोंका एक दाम होता है, जो चीज़ोंके ऊपर लिखा होता है। हर दुकानपर काठकी बनी एक मशीन (काउन्टिंग मशीन) होती है, जिसपर दुकानदार लाखों-करोड़ोंका जोड़-घटाव, गुणा-भाग बातकी बातमें कर लेते हैं। हर दुकानसे इस मशीनमें लगी काठकी गुल्लियोंकी खटखटाहटकी आवाज़ बराबर कानोंमें आती है। चीनमें कोई भी घर, दफ़्तर, दुकान आदि नहीं, जहाँ यह मशीन न हो।

चुंकिङ्की सड़कोंपर नाना प्रकारकी पोशाकमें लोग चलते हुए नज़र आते हैं। नीला रंग तो एक तरहसे चीनका राष्ट्रीय रंग हो गया है। चीनके लोग सफ़ेद कपड़ा कम पहनते हैं। चीनका रेशम प्रसिद्ध है; पर इन दिनों रेशमके बहुत महँगा होनेके कारण कम लोग ही रेशमी वस्त्र धारण करते हैं। कितने लोग लम्बी चीनी पोशाकमें रहते हैं और कितने एकदम विदेशी सूट-बूटमें। स्त्रियोंमें अधिकतर लम्बी पोशाक ही पहननेकी प्रथा है। कुछ युवतियाँ विदेशी ब्लाउज़-स्कर्ट भी पहनती हैं। किसान, मज़दूर, कुली तथा रिक्शा खींचनेवाले अधिकतर नीले रंगका पायजामा तथा कमर तकका कुर्त्ता पहनते हैं। इन लोगोंकी स्त्रियाँ भी नीले रंगका पायजामा और भर हाथवाला कुर्त्ता पहनती हैं। सिच्वान-प्रान्तके मज़दूर-किसान सिरपर सफ़ेद साफ़ा बाँधते हैं; पर सिरका ऊपरी भाग खुला रखते हैं। चुंकिङ्के लोगोंका रहनेका स्टैण्डर्ड सात वर्षोंके निरन्तर युद्धके आर्थिक दबावके कारण बहुत ऊँचा नहीं है। युद्धके पहलेसे चीज़ोंका दाम कई सौ गुना अधिक हो गया है; पर उसी अनुपातसे लोगोंकी आयमें वृद्धि नहीं हुई है। सबसे अधिक कष्टमें हैं सरकारी कर्मचारी, स्कूल, कालेज और विश्वविद्यायोंके विद्यार्थी और अध्यापकगण। इन लोगोंकी आय सबसे कम है और वह आय परिवारके साथ साधारण तरहसे भी रहनेके लिए यथेष्ट नहीं है। गत एक वर्षसे यह महँगी और भी भयंकर हो गई है। इन लोगोंके पास युद्धके पहले जो चीज़ें थीं और जिन्हें ये लोग युद्धक्षेत्रके बाहर किसी तरह अपने साथ ले आए थे, उन्हीं चीज़ोंको बेच-बेचकर या बड़ी सावधानीसे व्यवहारकर काम चला रहे हैं। चीनके लोग परिस्थितिके अनुसार अपनेको बदलना बहुत जानते हैं और खासकर इन दिनों, जब वे एक महान् आदर्श—मातृभूमिको स्वतन्त्र करने—के लिए कष्ट उठा रहे हैं, परिस्थितिसे शिकायत करना उनसे कोसों दूर है। चुंकिङ्में मुझे कितने ही बड़े-बड़े चीनी लोगोंसे मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ, जो कठिनाईसे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका प्रथम प्रश्न यही होता था कि मुझे तो खाने-पीने तथा रहनेमें बड़ी तकलीफ़ होती होगी? परन्तु जब वे यह प्रश्न पूछते थे, तो उन्हें अपनी परिस्थितिसे कोई शिकायत नहीं थी। उन्हें दुःख इस बातका होता था कि विदेशी अतिथि शायद उनके देशमें कष्ट पा रहा है। मुझे कितने ही व्यक्तियोंके यहाँ भोजन भी करना पड़ा। उन लोगोंने अच्छे-से-अच्छा भोजन मुझे कराया, जो उन लोगोंकी आमदनीके बाहरकी बात थी। चीनके लोग बड़े अतिथि-सेवक होते हैं। वे अपनी बुरीसे बुरी परिस्थितिमें भी अतिथिको ज़रा भी कष्ट नहीं होने देते।

चुंकिङ्में मुझे चीनके बहुतसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे मिलनेका अवसर प्राप्त हुआ, जिनमें प्रधान हैं—चीनकी राष्ट्रीय सरकारके राजकीय परीक्षा-युआनके अध्यक्ष डा० ताइ-ची-तौ, चीन सरकारके शिक्षा-सचिव डा० चन-लि-फु, चीनी बुद्धिस्ट संघके अध्यक्ष भदन्त थाइ-सु, केन्द्रीय राजनीतिक विद्यालयके वाइस-चान्सलर मिस्टर छेङ् थियेन फ़ाङ्, चीन-सरकारके सूचना-विभाग सेक्रेटरी-जनरल मिस्टर चाङ् युआन् रो आदि। डा० ताइ-ची-तौ सन् १९४०-४१ में चीन-सरकारके सद्भाव-मिशनके अध्यक्ष होकर भारत आए थे। चीनमें चीन-भारतीय सांस्कृतिक संस्थाके ये ही प्राण हैं। भारत और चीनके बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध क़ायम हो, इस दिशामें इन्होंने चीनमें सबसे अधिक काम किया है। भव्य ललाट, पतला-दुबला शरीर, लम्बी चीनी पोशाक धारण किए तथा हाथमें जप करनेकी माला लिए डा० ताइ-ची-तौ सचमुच महान् दीखते हैं। इनकी विद्वत्ता तथा नैतिक चरित्रकी धाक चीनमें सभी प्रकारके लोगोंपर समान रूपसे है। ये बौद्ध धर्मावलम्बी है। इनका निवास-स्थान सादगी का नमूना है। इनके कमरेकी दीवारपर लगे आठ चित्रोंमें से तीन तो गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरके और एक गुरुदेव द्वारा आंका हुआ चित्र है। इन्होंने तीन घण्टेसे भी अधिक समय तक मुझसे बातें कीं। शान्तिनिकेतनपर इनकी विशेष कृपा है और उसके बारेमें इन्होंने ब्यौरेवार सभी बातें पूछीं। इन्होंने इस बातकी भी इच्छा प्रकट की कि युद्ध-समाप्तिके बाद ये पुनः भारतवर्षका भ्रमण करेंगे।

चीन-सरकारके शिक्षा-सचिव डा० चन-लि-फु न बहुत दुबले और न बहुत मोटे, पर ठिंगने क़दके व्यक्ति हैं और देखनेसे ही संस्कारी पुरुष जान पड़ते हैं। अपनी चीनी पोशाकमें ये निर्विकार पुरुष-से लगते हैं। ये चीनकी राष्ट्रीय महासभा कोमिङ्-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताङ्के प्रमुख सदस्योंमें से एक हैं। चीनके प्राच्य-भाषा-कालेज के सम्बन्धमें इन्होंने कहा—'इस महायुद्धके बाद पूर्वी राष्ट्रोंके बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध क़ायम होना आवश्यक है। सांस्कृतिक सम्बन्धके मार्गमें भाषाका स्थान प्रमुख है। इसी उद्देश्यको लेकर प्राच्य-भाषा-कालेजकी स्थापना हुई है। चीन और भारतके आधुनिक सांस्कृति सम्बन्धके पीछे हज़ारों वर्षोंका पुराना इतिहास है। इन दोनों देशोंके बीच आज जो पुनः सम्बन्धकी कड़ी जोड़ी गई है, वह युद्धके बाद और भी अधिक मज़बूत होगी। इसके लिए चीनवालोंका हिन्दी जानना ज़रूरी है। इस समय चीनमें शायद इने-गिने लोग ही हैं, जो हिन्दी या हिन्दुस्तानी पढ़-लिख और बोल सकते हों। मैं चाहता हूँ कि चीनके प्रमुख विश्वविद्यालयोंमें हिन्दुस्तानी रखूँ; पर इस युद्ध-कालमें उतने प्रोफ़ेसरोंको भारतसे निमन्त्रित करना कठिन है। इसलिए इस बातकी भरपूर चेष्टा कीजिए कि प्राच्य-भाषा-कालेजके विद्यार्थी योग्य होकर निकलें, ताकि वे दूसरे विश्वविद्यालयोंमें हिन्दुस्तानी-अध्यापनका काम कर सकें। भारतके हिन्दी-विद्वानों, प्रकाशकों और साहित्यिक संस्थाओंने जिस उदारताके साथ प्राच्य-भाषा-कालेजकी लाइब्रेरीके लिए हिन्दी-पुस्तकें भेंट की हैं, उसके लिए मैं अनुगृहीत हूँ। मेरी ओरसे उन लोगोंको धन्यवाद ग्रहण करनेका निवेदन कीजिए। मुझे भारतीय विद्वानोंके सहयोगकी पूरी आशा है।' सूचना-विभागके सेक्रेटरी-जनरल श्री चाङ् युआन रोने कहा—'मुझे सांस्कृतिक कामोंमें जितना आनन्द आता है, उतना आफ़िसके कामों नहीं। परन्तु इस समय देश संकटके बीचसे गुज़र रहा है, इसलिए हम लोग अपने आनन्दकी बातपर ध्यान नहीं देते—ध्यान देते हैं उस बातपर, जिससे राष्ट्रकी अधिक भलाई हो। मैं विश्वास करता हूँ कि इस महा युद्धके बाद संसारका पूर्वी क्षेत्र ही हलचलोंका केन्द्र होगा और उसमें भारत और चीनको मिलकर काम करना है। इन दो देशोंके बीचका सम्बन्ध अधिक-से-अधिक दृढ़ होना ज़रूरी है, क्योंकि संसारकी शान्तिका असली सन्देश इन दो राष्ट्रोंसे ही मिल सकता है। मैं सर एस० राधाकृष्णन् द्वारा चीनमें दिए गए व्याख्यानोंसे बड़ा प्रभावित हुआ हूँ। मैं उनकी विचार-धारा को तहेदिलसे मानता हूँ। मैं निकट भविष्यमें एक सांस्कृतिक पत्रिका निकालना चाहता हूँ और आपसे निवेदन करता हूँ कि पत्रिकाकी सफलताके लिए भारतीय विद्वानोंका सहयोग दिलानेका प्रयत्न कीजिए।' भदन्त थाइ-सु भी चीन-सरकारके धार्मिक मिशनके अध्यक्षकी हैसियतसे भारत-भ्रमण कर आए हैं। भारत के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा है। इन्होंने कहा—'चीन इस समय युद्धमें फँसा है। इसके सिरपर विपत्तिका बादल मँडरा रहा है। यह बादल निश्चय ही थोड़े दिनोंके अन्दर फट जायगा। परन्तु संसारमें स्थायी शान्ति भगवान बुद्धके आष्टांगिक मार्गपर चलने तथा चीनी सभ्यता और संस्कृतिके सन्देशको कार्यान्वित करनेसे ही हो सकती है। भारत और चीनके बीच सांस्कृतिक सहयोगके साथ-साथ धार्मिक विचारोंका भी आदान-प्रदान होगा। ये दो राष्ट्र वास्तवमें एक ही सन्देशके वाहक हैं। मेरी शुभकामना भारतके लोगोंसे निवेदन कर दीजिए।' इस प्रकार जहाँ-जहाँ मैं गया और जिस-जिस प्रकारके आदमियोंसे मिला, सबके मुँहसे मुझे दो बातें ही सुनाई पड़ीं—एक तो चीनको अन्तिम विजयमें सबका दृढ़ विश्वास, दूसरे चीन और भारतके बीच अधिकसे अधिक सांस्कृतिक सहयोगकी भावना। (समाप्त)

घिर चलो हे स्नेहके घन !

श्रीमती सत्यवती शर्मा

घिर चलो हे स्नेहके घन !

मुक्त नभ है पथ तुम्हारा, खिलें तारक-फूल शत-शत ;
क्यों बिछे अंगार पथमें, बरसते अभिशाप अगणित ?
चाँदनीसे झाँकता है मृत्युके भयका प्रकम्पन !
घिर चलो हे स्नेहके घन !

विष-भरे ये यान नभमें, फिर कभी आने न पाएँ,
ज्वालकी लपटें बिछाकर, छार अवनी कर न जाएँ।
ध्वंसका सन्देश लाता, वज्र-सा वह नाद भीषण !
घिर चलो हे स्नेहके घन !

क्षुधासे हो आर्त नारी, मूक शिशु उरमें छिपाए,
डोलती है अर्ध-नग्ना, अन्नको निज कर बढ़ाए।
विश्वका कण-कण व्यथित है, हो रहा है त्रस्त जीवन।
घिर चलो हे स्नेहके घन !

वेदना सन्तप्त जनकी, क्या न तुम तक पहुँच पाती !
आह भी आकुल हृदयकी, क्या न तुममें कम्प लाती !
मत रुको, अब बढ़ चलो हे जलद, बरसो अश्रु बन-बन !
घिर चलो हे स्नेहके घन !

गगनको आच्छन्न कर लो, पुलकसे भीगे धरातल,
जल-कणोंसे सिक्त कर दो, दामिनीका तप्त आँचल।
हृदय-हीन अमानवोंमें, आज भर दो करुण कम्पन !
घिर चलो हे स्नेहके घन !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

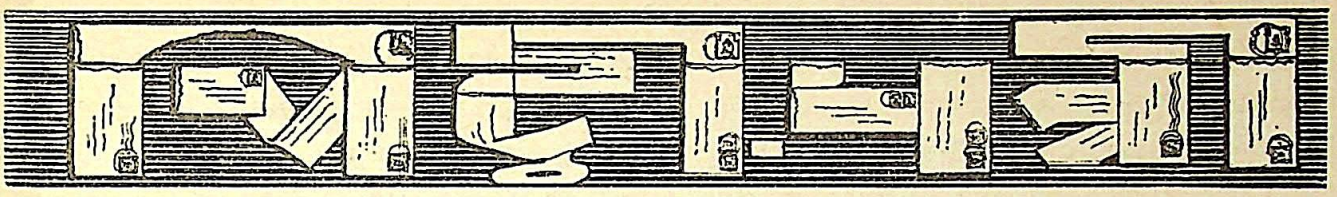

हिन्दी-लेखक और पारिश्रमिक

बम्बईके 'हिन्दुस्थान'में हिन्दी-लेखकोंके पारिश्रमिकके सम्बन्धमें कुछ दिन पहले मैंने एक लेख लिखा था। शायद अनेक पाठकोंने उसे देखा होगा। मेरे कुछ मित्र—विशेषकर सम्पादक-मण्डलवाले—मेरे सुझावको 'व्यावहारिक' नहीं समझते। उनके पक्षकी दी गई प्रायः दो दलीलें हैं—(१) हिन्दी-पत्रोंका धनाभाव और (२) पारिश्रमिक देनेके योग्य सामग्रीका अभाव। यदि पहली दलीलकी छानबीन की जाय, तो उसका पहला कारण यह दीख पड़ेगा कि हिन्दी-पाठक-जगत्‌की हिन्दी-पत्रोंके प्रति उपेक्षा है और कदाचित् इसीलिए विज्ञापनदाताओंका भी संकोच है। पाठक-जगत्‌की उदासीनताका प्रधान कारण है पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने-योग्य सामग्रीकी खटकनेवाली कमी। कोई उन्हें पढ़ना भी चाहे, तो पढ़े क्या? या तो अंगरेज़ी पत्रोंकी जूँठन भद्दे तौरसे जमा करके रख दी जाती है, या इधर-उधरसे जोड़-बटोरकर लिख दी गईं दो-एक 'फूहड़ रस'से लबालब कहानियाँ। इतने-से के लिए इस दीन देशका पाठक बारह आने या दस आने पैसे गिन देनेका हौसला कैसे रखे? इसीलिए विज्ञापनदाता भी मुक्तहस्त नहीं हो पाते। अब प्रश्न आता है पारिश्रमिक-योग्य समग्रीके अभावका। पुरानी कहावत है कि 'दानकी बछियाके दाँत नहीं गिने जाते।' अतः जब तक यह कहनेका दावा न किया जाय कि इस सुविस्तृत हिन्दी-संसारमें मेधावी क़लमके धनियोंका अभाव है, तब तक उपर्युक्त आक्षेप निरर्थक है। सच बात तो यह है कि सामग्री भरी पड़ी है और उसके प्रस्तुत करनेवालोंकी भी कमी नहीं; परन्तु उनकी आवश्यकताओंकी ओर ध्यान देनेका पत्र-संचालकोंको समय नहीं है। उनका कोई संगठन न होनेके कारण शोषणके इस युगमें पत्र-संचालक भी अपना अवसर खोना नहीं चाहते। किन्तु यह नीति स्तुत्य नहीं। राष्ट्र एवं साहित्यके कल्याणकी दृष्टिसे इस प्रश्नपर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाना आवश्यक है।—ललिता-प्रसाद सुकुल, कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता।

हिन्दीकी शुद्धिका आन्दोलन

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें इधर एक नई हवा हिन्दीकी 'शुद्धि'की बही है। इन शुद्धि-समर्थकोंके मतसे अ-संस्कृत मूलवाले शब्द हिन्दीसे निकाल दिए जायँ। हमें संस्कृतसे चिढ़ नहीं। संस्कृतके प्रचलित शब्दोंका प्रयोग हम ज़रूरी समझते हैं; किन्तु उसी प्रकार अन्य भाषाओंसे आए शब्दोंको भी हम अपनी निधि मानते हैं। इतना ही नहीं, हमारा खयाल है कि हिन्दी-भाषाको प्राणयुक्त रखने तथा उसे युगके भावोंकी वाहक बनानेके लिए अन्य भाषाके शब्दोंके लिए सदैव दरवाज़ा खुला रहना चाहिए। खैर, इस समय हम पाठकोंकी सेवामें शुद्ध हिन्दीके समर्थक और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति गोस्वामी गणेशदत्तके अभी हाल ही में कलकत्तेमें हुए प्रायः पौन घण्टेके भाषणके कुछ शब्द उपस्थित कर रहे हैं, जो निश्चय ही संस्कृतसे नहीं आए हैं—'आदत, बीमारी, मलेरिया, कालरा, लेकिन, साल, गवर्मेण्ट, एजूकेशन, दरख्वास्तें, माँगें, जवाब, फ्रण्टियर, ग्राण्ट, सर्किल-इन्स्पेक्टर, तालीम, प्रोग्राम, स्टैण्ड, सीनाज़ोरी, फाइल, क्लर्क, टाइप, शार्ट-हैण्ड, स्टेनोग्राफ़र, मिनिस्टर, फुटबाल, क़ायम, पेपरोंके अन्दर, मद (head), मज़ा, आवाज़, मुश्किल, तकलीफ़ें।' ऐसे शब्द कुल प्रायः एक सौ व्यवहृत हुए थे। अगर ये शब्द साहित्य-सम्मेलनकी हिन्दीमें अपांक्तेय नहीं, तो फिर हिन्दीकी 'शुद्धि'का नारा बुलन्द करने और तुम्बीमें तूफ़ान उठानेकी ज़रूरत?

गोस्वामीजीने कुछ बातें भाषाके सम्बन्धमें ऐसी भी कहीं, जो हम-जैसे भाषा-विज्ञान-अनाड़ियोंके विचारके बाहरकी चीज़ें हैं। हम अनुरोध करेंगे कि डा० सुनीतिकुमार चटर्जी इनपर प्रकाश डालें। गोस्वामीजीका मत है कि उर्दू फारसीका और फारसी अरबीका अपभ्रंश है। अब तक हम सुनते आ रहे थे कि फारसी हिन्द-आर्य-भाषा-परिवारकी तथा अरबी सेमेटिक परिवारकी है। गोस्वामीजीने ज़रूर किसी नई खोजके आधारपर कहा होगा। गोस्वामीजीका यह भी कहना है कि मद्रासी भाषाएँ संस्कृतसे निकली हैं। शायद मद्रासीसे उनका अभिप्राय तामिल, तेलुगू, मलयालमूसे है। परन्तु अब तक ये भाषाएँ द्रविड़-कुलकी (देखिए, काल्डवेलकी 'कम्पेरेटिव ग्रामर आफ़् दि ड्रैविडियन लैंग्वेजेज़') मानी जाती थीं। हर्ष है, अब इनकी 'शुद्धि' हो गई और ये भी हिन्दी-आर्य-कुलमें ले ली गईं।

एक चीज़ गोस्वामीजीने मार्केकी कही और वह इस शुद्धि-आन्दोलनकी अस्लियत बतला देती है। आपने हिन्दू-मुस्लिम-विवादके सम्बन्धमें—हिन्दी-उर्दू-विवाद जिसका उनके मतसे अंग है—राष्ट्रीयतावादियोंसे अपील की कि 'अभी लड़ने दो, तुम शान्त होकर देखो।' वैसे लड़ाईके लिए अखाड़े तो नाना रूपोंमें घर-घर खुद रहे हैं; पर प्रश्न सिर्फ़ यह है कि राष्ट्रीयतावादी शान्त होकर केवल देखें या बीचमें आकर देशको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनाशसे बचाएँ ?—श्रीचन्द्र अग्निहोत्री, महादेवप्रसाद साहा ; ७५, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता ।

प्रगतिशालताकी कसौटी क्या है ?

'हंस'के गत अक्टूबरके अंकमें युक्त-प्रान्तीय प्रगतिशील लेखक-संघकी अनेक बातें छपी हैं, जिनमें कुछ छूटके साथ बाक़ी सच हो सकती हैं। रिपोर्टमें ५२ वें पृष्ठपर कहा गया है—'देशभक्ति ही प्रगतिशीलताकी एकमात्र कसौटी है। राष्ट्रीय आन्दोलनकी स्वस्थ, जनवादी परम्पराओंका उत्तराधिकार प्रगतिवादियोंकी जन-प्रेमी भावनाओंकी पूँजी है। प्रगतिवादियोंकी चेतना उसके पीछे नहीं है।' यहाँ पहला प्रश्न यह उठता है कि इस व्याख्यामें राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ 'स्वस्थ, जनवादी' ये दो शब्द क्यों जोड़े गए ? क्या बिना किसी चेतना तथा बिना किसी सिद्धान्तकी कसौटीके किसी अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनको अस्वस्थ और अजनवादी कहा जा सकता है ? और यदि उसकी कोई कसौटी है, तो कौन-सी ? क्या उस कसौटीमें श्रेणी-संघर्ष नहीं निहित है ? यदि नहीं, तो फिर दूसरे प्रकारकी देशभक्ति अस्वस्थ और अजनवादी कैसे है ? वह कौन-सी ऐतिहासिक आधारोंवाली कसौटी है, जिससे किसी देशभक्तिको जनवादी और अजनवादी सिद्ध किया जा सकता है ?

प्रस्तावमें कहा गया है कि प्रगतिशील लेखक-संघ किसी मत-विशेष या किसी आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्तोंका संगठन नहीं है। इसमें भी किसी हद तक ही सापेक्षिक सचाई है, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रगतिशीलतामें मनुष्य द्वारा मनुष्यका शोषण जायज़ है। और इसीलिए प्रगतिशीलतामें यह माना जायगा कि अब तक समाजमें श्रेणी-संघर्ष था और है, जिसको मिटाकर श्रेणीहीन समाज बनाना है। और ऐसा मानते ही प्रगतिशील आन्दोलनमें एक मत, एक आर्थिक सिद्धान्त और शायद एक राजनीतिक चेतना भी आ जायगी। और यदि कोई प्रगतिशील लेखक-संघ ऐसा नहीं मानता, तो वह या तो दुनियाको धोखा देता है, या अपनेको। हाँ, यह सही हो सकता है कि प्रगतिशील लेखक-संघ सिर्फ़ कम्युनिस्टोंका अखाड़ा नहीं है ; उसमें ग़ैर-कम्युनिस्ट भी हैं और रह सकते हैं। पर उसकी नीतिके संचालनमें एक मत तथा एक विचार-धारा तो रहेगी ही, चाहे उसका प्रकाशन कितना भी तोड़-मरोड़कर क्यों न किया जाय। यहाँ एक आशंका प्रगतिशीलतापर (प्रगतिशील लेखक-संघपर नहीं) भी होती है। हिन्दुस्तानमें बौद्ध धर्म बहुत प्रगतिशील धर्म था। पर उसमें साम्राज्यवादियों और थैलीशाहोंकी भी गुंजाइश थी। नतीजा यह हुआ कि साम्राज्यवादियों और थैलीशाहोंके प्रभावसे बौद्ध धर्मके क्रांतिकारी नष्ट हो गए और धीरे-धीरे बौद्ध धर्म हिन्दुस्तानकी सर-ज़मीनसे ग़ायब हो गया। क्या उसी तरह कुछ लोग प्रगतिशील लेखक-संघकी खिड़कीसे घुसकर भारतवर्षमें सा वादके खुशनुमा पौदेको भी तो न काट डालेंगे ; क्यों प्रगतिशील लेखक-संघ सिद्धान्तकी दृष्टिसे शिथिल है (उसका खास कारण है) और प्रगतिशील लेखक-संघकी खिड़ बहुतसे अवसरवादी साम्यवादका चेहरा लगाकर हिन्दुस्ता साम्यवादी कैम्पमें दाखिल हो रहे हैं।—बैजनाथसिंह 'विनो ८, मन्दिर स्ट्रीट, कलकत्ता ।

स्व० डा० बड़थ्वाल-स्मृति-ग्रन्थ

स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालके अनेक विद्वान मित्रों आग्रह है कि डा० बड़थ्वालकी स्मृतिमें एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशि किया जाय। इस स्मृति-ग्रन्थमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके महत्व इतिहास, विकास, आवश्यकताओं और विविध समस्याओं प्रकाश डाला जाय, हिन्दीकी विविध संस्थओंका परिचय दि जाय और स्मृति-ग्रन्थमें ठोस ज्ञानवर्द्धक उपयोगी सा जनताको भेंट की जाय। इसके लिए योग्य एवं प्रभावश सम्पादक-मण्डलका संगठन हो रहा है। हिन्दीके लेख कवियों और साहित्यिक संस्थाओंके संचालकोंसे सादर सा प्रार्थना है कि वे इस कार्यमें सहयोग और सहायता प्रदान अनुगृहीत करें।—महेशानन्द थपल्याल, संयुक्त-मन्त्री, बड़थ्वाल-स्मृति-ग्रन्थ-समिति, लसडाउन ।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके पुरस्कार और प

सभाकी ओरसे इस समय निम्नलिखित पुरस्कार और प दिए जानेवाले हैं। रचनाओंकी ७ प्रतियाँ विचारार्थ नि लिखित पतेपर आनी चाहिएँ—(१) दो सौ रुपएका रा बलदेवदास बिड़ला पुरस्कार तथा रेडिचे रौप्य पदक—और माघ संवत् १९९७ से २९ पौष २००१ तकके भीतर प्रकाशि अध्यात्म, योग, सदाचार, मनोविज्ञान अथवा दर्शनके सर्वो ग्रन्थपर दिया जायगा। विचारार्थ पुस्तकें ३० माघ २००१ आ जानी चाहिएँ। (२) डा० हीरालाल-स्वर्ण-पदक—१ वैश २००० से ३० चैत्र २००१ तकके भीतर प्रकाशित पुरात मुद्राशास्त्र, इंडालाजी, भाषा-विज्ञान अथवा एपिग्रैफी सम्ब सर्वोत्तम ग्रन्थपर दिया जायगा। पुस्तकें ३१ वैशाख २० तक आ जानी चाहिएँ। (३) द्विवेदी-स्वर्ण-पदक—संवत् २० में प्रकाशित हिन्दीकी सर्वोत्तम पुस्तकपर दिया जाय पुस्तकें १५ पौष २००१ तक आनी चाहिएँ। —प्रधान मं ना० प्र० स०, काशी ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By eGangotri Gyaan Kosha

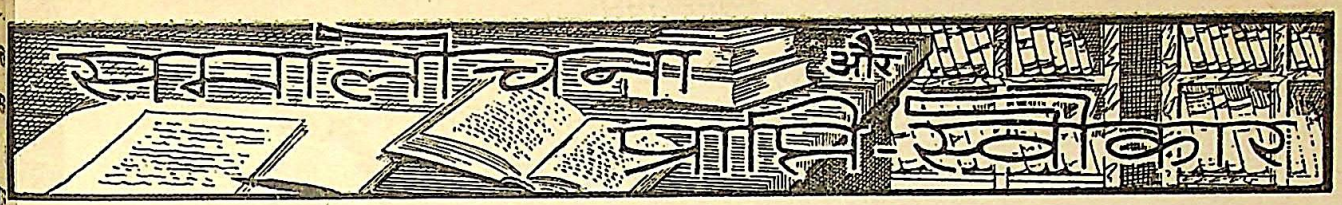

ध्रुव-यात्रा : लेखक—श्री जैनेन्द्रकुमार जैन ; प्रकाशक—सामयिक साहित्य-सदन, चेम्बरलेन रोड, लाहौर ; पृष्ठ २०८, मूल्य २), सजिल्द ।

"यदि और किसी कारणसे नहीं, तो केवल जैनेन्द्रका असली रूप दिखानेके लिए ही मुझे हिन्दीके क्षेत्रमें आना पड़ेगा।" उर्दूके एक चोटीके लेखक एक दिन हमें कहने लगे—"इनको तो कहानीकी टेकनीकका कुछ भी ज्ञान मालूम नहीं देता।" यह उन दिनोंकी बात है, जब जैनेन्द्र अपनी कहानियों का दम घोंटनेके लिए एक ओरसे 'छायावाद'के धुँधले धुएँसे उन्हें ढाँप रहे थे और दूसरी ओरसे 'दार्शनिका'का बोझा उनपर लाद रहे थे। हमने उन उर्दूके लेखकको यह सलाह दी थी कि वे लाख बार हिन्दीमें आएँ ; किन्तु जैनेन्द्रसे होड़ लेनेका दुस्साहस न करें, क्योंकि कथाकार जैनेन्द्र जब भी चाहे कहानी-क्षेत्रमें अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकता है। वे उर्दूके लेखक हिन्दीमें आए ज़रूर ; पर अभी तक द्वितीय श्रेणीकी हिन्दी-पत्रिकाओंसे ऊपर नहीं उठ सके। इसके विपरीत प्रस्तुत पुस्तकसे हमारे कथनकी पूरी तरहसे पुष्टि होती है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि 'ध्रुव-यात्रा'की कुछ कहानियोंकी काल्पनिक उड़ानोंसे अस्वाभाविकता झलकती है, यह भी ठीक है कि कुछ कहानियाँ मोटे तौरपर निरुद्देश्य हैं ; पर इन कहानियोंको पढ़कर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विशुद्ध कहानीकार जैनेन्द्रमें अब भी बल है। रोचकता, शैलीका अलबेलापन, कहनेका अनूठा ढंग, इन सबने मिलकर अधिकतर कहानियोंको कलाके सुन्दर टुकड़ोंमें परिणत कर दिया है। 'ध्रुव-यात्रा', 'रत्नप्रभा', 'जय-सन्धि' शीर्षक कहानियाँ इस दिशामें खूब हुई हैं। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

'ज्वार-भाटा' : लेखक—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ; प्रकाशक—उपयुक्त ही ; पृष्ठ १५२, मूल्य २), सजिल्द ।

इस पुस्तकमें लेखककी दस कहानियाँ संगृहीत हैं। वाजपेयीजी अपनी पुस्तकोंमें अपनी कलाके विषयमें भूमिका-रूपमें कुछ-न-कुछ प्रायः कहते चले आ रहे थे। किन्तु इस संग्रहमें कोई 'भूमिका' नहीं। हाँ, पुस्तक-सम्पादक श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा लिखित वाजपेयीजीका संक्षिप्त परिचय अवश्य रैपरपर दिया गया है। प्रेमीजीने लिखा है—" 'ज्वार-भाटा'में मानव-जीवनके अनेक उतार-चढ़ाव सुन्दर रूपमें चित्रित किए गए हैं।" हमारे विचारमें यह कथन केवल अंशशः सत्य है। मानव-जीवन के एक पहलू अर्थात् स्त्री-पुरुषके प्रेम-सम्बन्धपर इन कहानियोंमें अवश्य प्रकाश डाला गया है। इस दिशामें 'ज्वार-भाटा', 'अशोकका घोड़ा' और 'स्वर्ग-सुख' रोचक तथा सुन्दर बन पड़ी हैं। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई सन्तोषप्रद है।

विद्यापीठ : लेखक—श्री शम्भूदयाल सक्सेना ; प्रकाशक—नवयुग-ग्रन्थ-कुटीर, बीकानेर ; पृष्ठ ६८, मूल्य लिखा नहीं।

प्रस्तुत पुस्तकमें कच और देवयानीकी प्रसिद्ध पौराणिक कहानीको नाटकका रूप दिया गया है। असुरोंके गुरु शुक्राचार्य के पास कच संजीवनी विद्या सीखने आते हैं। गुरु असमंजमें पड़ जाते हैं। अपने शिष्योंके शत्रुओंको यह विद्या वे कैसे सिखा दें, यह कृतघ्नता होगी। किन्तु देवयानीके प्रबल अनुरोधके आगे उन्हें झुकना पड़ता है। वे कचको शिष्यके रूपमें ग्रहण कर लेते हैं। इसी बीचमें देवयानीका कचपर प्रेम हो जाता है ; किन्तु लाख यत्न करनेपर भी वह कचके हृदयमें प्रवेश पानेमें असफल रहती है। इसलिए जब कच विद्या सीखकर जाने लगता है, तो देवयानी खीझकर उसे शाप देती है—"तो जाओ कच, मेरे दुखी हृदयका अभिशाप अपने साथ लिए जाओ कि तुम्हारी यह विद्या कभी फलवती न होगी।" चाहिए तो यह था कि कच इस शापको मुस्कराते हुए स्वीकृत करता ; किन्तु इसके विपरीत वह देवयानीको प्रतिशाप देता है—"विद्या मुझे न फले, परन्तु तुमने शुद्ध हृदयसे नहीं, कामार्त्त हो मुझे यह शाप दिया है। इससे तुम्हारी भी कामना पूर्ण नहीं होगी। कोई ऋषिकुमार तुम्हें ग्रहण न करेगा।" यह शाप देकर कचने अपनी क्षुद्रता ही प्रदर्शित की है। देवयानी तो केवल कचको चाहती थी। जिस किसी भी ऋषिकुमारकी कामना तो उसे न थी। कुछ भी हो, नाटक लिखनेमें सक्सेनाजीको सफलता मिली है और विशुद्ध साहित्य-कला-पारखियोंको यह नाटक रुचेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। पुस्तककी छपाई-सफाई नयनाभिराम है।

—'अवनीश'

पंचगव्य चिकित्सा : लेखक—पं० अक्षयलाल झा ; प्रकाशक—श्री बुधूलाल केजड़ीवाल ; पता—श्री दरभंगा गोशाला-सोसाइटी, दरभंगा ; पृष्ठ ५६ ।

गौ मानव-जातिकी सर्वोत्तम सम्पत्ति है। इससे गोदुग्धादि महान अमृत-वस्तु प्राप्त होती है, जिससे मानव बढ़ता, फलता-फूलता तथा श्रीवृद्धि पाता है। गोमातासे प्रसूत अमृतसे नाना प्रकारके रोग भी दूर हो जाते हैं। लेखकने अटूट परिश्रमकर इन पंचामृत (पंचगव्य) पदार्थोंके सरल प्रयोग इस पुस्तकमें संग्रह किए हैं। प्रयोग अधिक-से-अधिक शास्त्रीय हैं। उन्होंने अपने अनुभूत कुछ प्रयोगोंका भी संकलन किया है। प्रस्तुत पुस्तक गो-प्रेमी गृहस्थों एवं चिकित्सोंके लाभकी और संग्रहणीय है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कूपीपक्व रस-निर्माण-विज्ञान : लेखक तथा भाष्यकार—स्वामी हरिशरणानन्द ; प्रकाशक—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर ; पृष्ठ ४९८, मूल्य ५)।

इस उपयोगी ग्रन्थमें विद्वान् लेखकने सर्वप्रथम (१२० पृष्ठोंके उपोद्घातके दो अध्यायों में) वैद्योंकी जानकारीके लिए प्राच्य एवं प्रतीच्य प्राक्कालीन रसायन-तन्त्रका इतिहास तथा पदार्थ-विज्ञानपर महत्त्वपूर्ण ढंगसे प्रकाश डाला है। भारतीय प्राचीन रस-सिद्धों तथा रस-तन्त्रोंकी खोजका गम्भीर अध्ययनके पश्चात् संग्रह किया गया है, जिससे पुस्तककी उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। आधुनिक रसायनशास्त्रका अध्ययन वैद्योंके लिए कितना आवश्यक है और इससे कूपीपक्व रसोंके निर्माण-कार्यमें कितनी सहायता मिल सकती है, इस विषयका सुस्पष्ट उदाहरण देकर दिग्दर्शन कराया गया है। दूसरे प्रकरणको चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्यायमें रसायनशाला बनानेके स्थान, प्रयोगशालामें प्रयुक्त होनेवाले उपकरण तथा लकड़ी, कोयले, गैस, बिजलीसे निर्मित भट्ठियों और धातुके शोधनार्थ, द्रावणार्थ, सत्त्व-पातनार्थ भट्ठियों तथा यन्त्रोंका सचित्र वर्णन करते हुए कूपीपक्व रसोंके उत्तापकी मात्रा उत्तापमापक यन्त्र द्वारा बताई गई है। दूसरे अध्यायमें सत्त्व-पातनार्थ पात्रों, धातु द्रावण-पात्रों तथा वह्नि-जागरणमें समयके उपयोगका वर्णन दिया गया है। तीसरे अध्यायमें पारदोत्पत्ति तथा पारदके अष्ट संस्कारोंपर स्वानुभव तथा कुछ नए विशेष यन्त्रोंका आविष्कारकर वैज्ञानिक विधियाँ लिखी गई हैं। चौथे अध्यायमें मौलिक तथा यौगिक पदार्थोंके निर्माण तथा रस-निर्माणके सिद्धान्त और कूपीपक्व रसोंके सिद्ध होनेमें उत्ताप-सिद्धान्तपर विद्वत्तापूर्ण विवेचन है।

इस वैज्ञानिक युगमें प्रत्येक वस्तु प्रायोगिक कसौटीपर कसकर ही प्रत्यक्ष की जाती है। अब वैद्योंको उक्त विधि जाननेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। स्वामीजीने वैज्ञानिक सिद्धान्तोंपर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है। स्वामीजीके गम्भीर अध्ययन और विशाल अनुभवके फल-स्वरूप इस पुस्तकने आयुर्वेद-संसार की एक भारी कमीको पूरा किया है। —वैद्य प्रदीपनारायण

बंगालका अकाल : लेखक—डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी तथा अनुवादक—श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला ; प्रकाशक—संचयिनी, कलकत्ता ; पृष्ठ १२९, मूल्य ३), सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तकमें गत वर्ष बंगालमें पड़े भीषण अकालके सम्बन्धमें दिए गए डा० मुखर्जीके भाषणों, पत्रों एवं अपीलोंका हिन्दी-रूपान्तर संगृहीत है। इससे हिन्दी-पाठकोंको बीसवीं शताब्दीकी इस अन्यतम भीषण दुर्घटनाके कारणों एवं घातक प्रभावको विशेष सुगमतासे समझनेमें सहायता मिलेगी। पुस्तकमें कई भावपूर्ण चित्र और रेखाचित्र भी दिए गए हैं, जो पाठकके सामने मानो अकालका हू-ब-हू चित्र उपस्थित कर देते हैं। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। पर मूल्य कुछ अधिक है।

तपेदिक : लेखक—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय ; प्रकाशक—महेन्द्र-रसायनशाला, इलाहाबाद ; पृष्ठ २००, मूल्य ४)

पुस्तकका विषय उसके नामसे ही प्रकट है। विद्वान लेखकने न सिर्फ़ इस घातक रोगके कारणों एवं विकासकी पीढ़ियोंका विशद विश्लेषण किया है, बल्कि उसके प्रतिरोधके प्राकृतिक एवं सुगम उपकरणोंपर भी बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला है। साथ ही लेखकने इस रोगके सम्बन्धमें हुई पौर्वात्य और पाश्चात्य खोजोंसे भी लाभ उठानेका प्रयत्न किया है। इस प्रकार हिन्दीमें यह अपने ढंगकी पहली और श्रेष्ठ पुस्तक है। हम ज़ोरोंसे सिफ़ारिश करेंगे कि न सिर्फ़ वैद्य-डाक्टर ही, बल्कि प्रत्येक गृहस्थ, गृहिणी, अध्यापक और छात्र इसे एक बार अवश्य पढ़ें और इसमें सुझाए गए आचर-व्यवहारको अपनानेकी चेष्टा करें, ताकि इस रोगका शिकार ही न हो। ऐसी उपयोगी पुस्तकके प्रकाशनके लिए पाण्डेयजी हिन्दी-संसारकी कृतज्ञताके अधिकारी हैं।

सम्राट वीर विक्रमादित्य : लेखक—श्री जी० डी० जोशी ; प्रकाशक—हिमालयन पब्लिकेशन्स, बम्बई ; मूल्य ३)।

इस पुस्तकमें शकारि विक्रम, उनकी शासन-व्यवस्था और सभाके रत्नोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। विक्रमके जीवन की एक झाँकी इससे अवश्य मिल सकती है—यद्यपि इसमें वर्णित सभी बातें निर्विवाद और प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं। पुस्तकका मूल्य बहुत अधिक है। —'भग्नदूत'

हमारे सहयोगी

उज्जैनसे श्री सूर्यनारायण व्यासके सम्पादकत्वमें निकलनेवाले सहयोगी '**विक्रम**'ने बड़ी सज-धजसे दीपोत्सवी-अंक प्रकाशित किया है, जिसमें शकारि विक्रमादित्य, उज्जयिनी, बाण, कालिदास, वराहमिहिर, कालकाचार्य और गर्दभिल्ल तथा विक्रम-कालीन अन्यान्य प्रमुख व्यक्तियों और घटनाओंसे सम्बन्धित विद्वान एवं अधिकारी लेखकों द्वारा लिखित पठनीय सामग्रीका संकलन है। अंकमें कई भव्य सादे और रंगीन चित्र भी हैं। छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। हर दृष्टिसे अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

बरहमपुर (मुर्शिदाबाद) से प्रकाशित होनेवाली साहित्य एवं कला-प्रधान त्रैमासिक पत्रिका '**निरीक्षा**' (बँगला)ने शिल्पी-गुरु श्री नन्दलाल बसुकी ६०वीं वर्षगाँठपर अपनी नन्दलाल-संख्या प्रकाशित की है। इसमें नन्द बाबूके जीवन और कलापर प्रकाश डालनेवाले अधिकारी विद्वानोंके लेखों तथा कविगुरु रवीन्द्रनाथके आशीर्वादके अतिरिक्त स्वयं नन्द बाबू द्वारा अंकित ८ तिरंगे और बीसों सादे एवं रेखाचित्र संकलित हैं। इस संग्रहका दाम ५) कुछ अधिक नहीं है। ऐसे सुन्दर एवं सामयिक विशेषांकके प्रकाशनके लिए 'निरीक्षा'के सम्पादक-संचालक हमारे बधाईके पात्र हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

हमारा नया वर्ष

प्रस्तुत अंकसे 'विशाल भारत' अपने जीवनके १७ वर्ष पूरेकर १८वेंमें प्रवेश कर रहा है। वैसे तो युद्ध आरम्भ होनेके समयसे ही सबके साथ हमारी भी कठिनाइयाँ दिन-दिन बढ़ती जा रही थीं; पर गत जूनमें काग़ज़-नियन्त्रणके रूपमें जो अप्रत्याशित प्रहार हुआ है, उसने तो अनेक पत्रोंकी कमर ही तोड़ दी और अनेकको एकदम कृश कर दिया है। इससे एक ओर जहाँ साहित्य, संस्कृति एवं समाजके विकासकी धारा अवरुद्ध-सी हो गई है, वहाँ दूसरी ओर सरकारी धाँधली तथा ग़ैर-सरकारी चोरी और लूटका एक नया अखाड़ा तैयार हो गया है। फलस्वरूप हमारी सेवाका क्षेत्र और भी सीमित-संकुचित हो गया है। आज जिस कृश रूपमें हम 'विशाल भारत' को निकालनेके लिए मजबूर किए जा रहे हैं, उससे हम स्वयं सन्तुष्ट नहीं हैं। पर हम लाचार हैं। पाठकोंको हम आश्वासन दिलाते हैं कि जब तक हमें पृष्ठ-संख्या बढ़ानेकी आज्ञा नहीं मिलती, इतने पृष्ठोंमें ही हम उनकी यथेष्ट सेवा करनेका भरसक प्रयत्न करेंगे। हमें आशा है, कृपालु पाठक, लेखक और कवि महानुभाव हमारी विवशताओं, अभावों एवं त्रुटियोंके लिए क्षमा करते हुए हमें पूर्ववत् अपने कृपापूर्ण सहयोग एवं सत्परामर्शका सुयोग बराबर प्रदान करते रहेंगे।

बिना बाँसकी बाँसुरी

जिस एटलांटिक-सनदको यूरोपके पराधीन राष्ट्रोंकी सच्ची स्वाधीनता और आत्म-निर्णयका घोषणा-पत्र कहा गया था; जिसके भारतपर लागू होनेकी बात रूज़वेल्टने उतने ही ज़ोरके साथ कही थी, जितने ज़ोरसे कि चर्चिलने उसके भारतपर लागू न होनेकी बात; अब राज़ खुला है कि वह युद्ध-प्रचारके एक चकमे या नारेसे अधिक कुछ नहीं था! वाशिंगटनके पत्रोंने जब अभी हाल ही में इस ऐतिहासिक घोषणा-पत्रके राष्ट्रीय अजायबघरसे ग़ायब हो जानेका विवाद खड़ा किया, तो गत १९ दिसम्बरको संयुक्त-राज्य अमरीकाके राष्ट्रपति रूज़वेल्टने पत्र-प्रतिनिधियोंसे कहा कि न तो ऐसी कोई सनद थी और न उसपर किसीने कभी हस्ताक्षर ही किए! 'प्रिन्स आफ़ वेल्स' जहाज़पर चर्चिल-रूजवेल्ट-भेंटके समय योंही एक काग़ज़पर कुछ लिखा ज़रूर गया था, जिसमें सर्वश्री चर्चिल, रूज़वेल्ट, सुमनर वेल्स और सर एज़ेक्ज़ेण्डर काडगनने सुधार-संशोधन किए थे और उसीकी नक़ल सम्बन्धित सरकारों तथा पत्रोंको भेज दी गई थी। तो गोया यह एकदम बिना बाँसकी बाँसुरी ही थी, जिसपर अब तक विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रके मोहक राग निकाले जा रहे थे! और यह भण्डाफोड़ भी उस समय हुआ है, जब आततायी जर्मनोंके नाग-फाँससे यूरोपके राष्ट्र मुक्त हो रहे हैं और उनके सम्बन्धमें मित्र-राष्ट्र अपनी घोषणाओंको लागू करनेकी कसौटीपर कसे जा रहे हैं।

स्वाधीनता और लोकतन्त्रका नया रूप

पर रूज़वेल्टके उपर्युक्त भण्डाफोड़से पहले ही साम्राज्यवाद के जागरूक प्रहरी चर्चिलने अमली तौरपर एटलांटिक-सनदको अपने पाँवों-तले रौंदकर बतला दिया है कि फ़ाशिज़्मके अन्तका मतलब साम्राज्यवादका अन्त कदापि नहीं है और यूरोपके छोटे राष्ट्र उसी तरहके शासनमें रहेंगे, जैसा कि बड़े राष्ट्र उनके लिए तजवीज़ करें। उदाहरणके लिए एटलांटिक-सनदकी दूसरी धारामें इस बातका स्पष्ट उल्लेख था कि हदूदका कोई भी परिवर्त्तन सम्बन्धित व्यक्तियोंकी स्वतन्त्र इच्छाके बिना न होगा। पर अभी पोल जनताके कुछ निर्णय कर सकनेकी स्थितिमें होने से पूर्व ही चर्चिल-स्तालिनने नई कर्ज़न-लाइन तक पोलैण्डकी सीमा तय कर दी है। सीलोन या माल्टाकी तरह सिसिली, साइप्रस, क्रीट तथा डोडेकेनीज़को स्वतन्त्र (?) द्वीप-राज्य बनानेकी भी बातें चल रही हैं। सनदकी तीसरी धारामें कहा गया था कि जर्मनों द्वारा बलपूर्वक स्वशासनसे वंचित किए गए राष्ट्रोंकी जनताको अपना नया शासन-विधान बनानेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। पर फ्रांस, इटली, बेल्जियम और सबसे बढ़कर यूनानमें ब्रिटेनके हस्तक्षेपसे जो-कुछ हुआ और हो रहा है, वह किस मर्ज़की दवा है? फ्रांसमें द'गालका शासन अभी भी पूरा स्वतन्त्र नहीं हो पाया है। बेल्जियमके अनेक मुक्तिकामी देशभक्तोंको आत्म-निर्णयके लिए गोलियोंका शिकार होना पड़ा है। भूखे और पीड़ित, किन्तु प्रगतिशील इटालियनोंको केवल चर्चिलके भ्रू-भंगके कारण पिछले २१ वर्षोंसे अमरीकामें इटालियन फ़ाशिज़्मके विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले काउण्ट स्फोर्ज़ाको विदेश-मन्त्रीके पदपर से हटाना पड़ा है। यूनानमें लोकबलके दबाव से इस्तीफ़ा देकर भागनेवाले प्रधान-मन्त्री पापेन्द्रूको ब्रिटेनकी फ़ौजी शक्तिसे पदारूढ़ रखा जा रहा है और वहाँके देशभक्तोंको, जो आत्म-निर्णय द्वारा सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापना करना चाहते हैं और जिसके लिए उन्होंने पिछले ४ वर्षों तक जर्मन आततायियोंसे प्राणान्तक संग्राम किया है, आतंकवादी, लुटेरे, हत्यारे और उचक्के बताकर गोलीका शिकार बनाया जा रहा है। क्या इसी स्वाधीनता और लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए लाखों भोले-भाले नौजवानोंने अपने प्राणोंको निछावर किया और कर रहे हैं?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नक़ली नेता असली रूपमें

'प्रिन्स आफ़् वेल्स'—जिसपर तथाकथित एटलांटिक-सनदकी सृष्टि की गई थी—गत ८ दिसम्बर, १९४१ को जापान द्वारा हुए हमलेमें सिंगापुरके बन्दरगाहमें डुबो दिया गया। उस अपशकुनके लिए ब्रिटेन या मित्र-राष्ट्र स्वयं कहाँ तक ज़िम्मेदार हैं, इसकी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक होगी। पर जिस एटलांटिक-सनद को मुक्तिकामी सैनिकोंके अधिकारका घोषणा-पत्र कहकर विश्वकी नैतिक बल-वृद्धि की गई, उसे क्रियात्मक रूपसे दफ़नानेका 'श्रेय' तो चर्चिलको और मौखिक रूपसे उसकी मृत्यु-घोषणा करनेका 'गौरव' तो रूज़वेल्टको ही प्राप्त है। पिछले ५ वर्षोंसे यह युद्ध फ़ाशिज़्मके विरुद्ध सच्ची स्वाधीनता और लोकतन्त्रकी स्थापनाके नामपर लड़ा जा रहा है—या कम-से-कम दावा तो यही किया जा रहा है। फिर इसे सहसा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'का रूप दे देनेके लिए क्या इन नेताओंको पूर्ण स्वाधीनता है और जनताके सामने उनका हर हालतमें समर्थन करनेके सिवा कोई दूसरा मार्ग नहीं है? अमरीकाके राज्य-सचिवने दबे स्वरमें यूनानमें ब्रिटिश हस्तक्षेपका विरोध किया है; पर राष्ट्रपति रूज़वेल्टने (जिनके शासनको गवर्नर ड्यूईने अयोग्य, निकम्मा, मुनाफ़ाखोर और न-जाने क्या-क्या बतलाया था, पर अमरीकन बहुमतने चुना आप ही को!) संयुक्त-राष्ट्रोंके नेताके रूपमें इसका कोई सक्रिय या मौखिक विरोध भी नहीं किया। जब ब्रिटिश अधिकारी यूनानी देशभक्तोंका दमन कर रहे हैं, अमरीकन वहाँ सेवा-सुश्रूषाका काम कर रहे हैं! जन-युद्धके अगुआ स्तालिन भी इस सम्बन्धमें चुप हैं। अमरीका और ब्रिटेनके कुछ प्रमुख पत्रोंने तो यहाँ तक कहा है कि पिछली चर्चिल-स्तालिन-भेंटमें प्रभाव-क्षेत्रोंके बँटवारेके रूपमें यह तय हो गया है कि पोलैण्डमें रूसको और यूनानमें ब्रिटेनको मनमानी करनेकी पूर्ण स्वाधीनता होगी! यह बात शायद सच न भी हो; पर आखिर रूसकी रहस्यपूर्ण चुप्पीका कारण क्या है? ब्रिटेनके अनेक स्थानोंके मज़दूरोंने अवश्य चर्चिलकी इस साम्राज्यवादी नीतिका विरोध किया है, जब कि उनके अनेक नकली नेता अपने साम्राज्यवादके समर्थकके असली रूपमें प्रकाशमें आए हैं। अपने-आपको मज़दूर कहनेवाले ब्रिटिश पूँजीवादके ये दलाल आज पहली बार ही अपने असली रूपमें प्रकट नहीं हुए हैं, यह पिछली दो मज़दूर-सरकारोंके कारनामोंसे भी स्पष्ट है। हेंडरसन और मैकडोनल्ड मर गए तो क्या, मारीसन, एटली और बेविन तो हैं!

नए फ़ाशिज्मका ख़तरा

अभी युद्ध जीता नहीं गया है। संयुक्त-राष्ट्रोंके नेता भी अभी विजयमें विलम्ब बतलाते हैं। तब क्या जनताके यथार्थ आत्म-निर्णय, सच्ची स्वाधीनता और लोकतन्त्रके मार्गमें होनेवाला यह अवांछनीय हस्तक्षेप विजयको और भी दूर नहीं ठेल देगा? और यदि ऐसा न भी हो, तो क्या युद्धोत्तर शान्ति स्थायी सुरक्षित हो सकेगी? यह बात आज किसीसे छिपी नहीं है चीनमें होनेवाले जनताके मुक्ति-संग्राममें संयुक्त-राष्ट्रोंको पर्याप्त सहयोग नहीं मिला, जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी बदसे बदतर होती जा रही है और आततायी जापान आँतोंमें अपना शैतानी पंजा फैलाता जा रहा है। भारतके संग्रामको कुचलनेमें चर्चिलने कोई कसर नहीं रखी। आज मानो ब्रिटिश साम्राज्यका दूसरा भारत या अल्स्टर बन गया इटली और बेल्जियम ही नहीं, फ्रांसमें भी ब्रिटिश हस्तक्षेप दृष्टिगोचर हो रहा है। ये सब आसार अच्छे नहीं हैं। फ़ाशि किसी देश या जातिकी बपौती नहीं है। पतनोन्मुख पूँजी कहीं भी अपनी रक्षाके लिए उसका चेहरा लगा सकता अतः लोकमतको इस बातकी सक्रिय चेष्टा करनी चाहिए जर्मन-इटालियन फ़ाशिज़्मके नाशके बाद कहीं अन्यत्र उसका खतरा न पैदा हो जाय। पिछड़ी हुई लोकशक्तिको सजग कर लिए आज भारत, यूनान, बेल्जियम, इटली आदिमें इस खत सूचनाकी घण्टियाँ बज रही हैं।

मरीज़ कौन—डाक्टर या रोगी?

ब्रिटेनके टोरी आज भी ग्लेडस्टन, डिज़रेली और बरोके युगमें रहनेकी मधुर कल्पना कर रहे हैं। साम्राज्यवा चश्मा उनकी आँखोंको मानो वे सब महान परिवर्त्तन और गहरे प्रभावको देखने ही नहीं देता, जो पिछले कई वर्षोंमें गए हैं। उन उद्धत स्वेच्छाचारी साम्राज्यवादियोंकी ध्वनि, कभी यह कहते थके नहीं कि हमने तलवारके बलपर भार जीता है और तलवारके बलसे ही उसे अपने अधीन रखेंगे, आजके राजनीतिज्ञोंके कथनोंमें भी प्रतिध्वनित होती है। गत दिसम्बरको भारतीय व्यापार-संघके वार्षिक अधिवेशनके अवस बोलते हुए लार्ड वेवलने इसी बातको शब्दान्तरसे इस प्र दोहराया है—"मैं नहीं समझता कि 'भारत छोड़ो'-मिस या सत्याग्रहकी गोलियोंने आपको विशेष लाभ पहुँचाया है। आपको सलाह दूँगा कि आप दवाइयोंको एकदम छोड़ दीजि और तब शायद आप देखेंगे कि आप उतने बीमार नहीं जितना आप समझते हैं। शायद कुछ ताज़ा हवा और खुले का काम आपको लाभ पहुँचा सके। मेरा खयाल है कि स्वस्थ होनेके लिए पहली आवश्यकता है विश्वासके उपचारकी ब्रिटेनके लोगोंकी सदिच्छाओं तथा भारतके लोगोंके कल्याण स्वशासनके लिए समझौता करनेकी उनकी वास्तविक इच्छ विश्वास।"

मुफ़्तमें दी गई इस सलाहके लिए हम वाइसरायके आभ हैं। वे पहले सिपाही थे, फिर सेनापति बने, फिर राजनी और अब डाक्टर! राजनीतिमें भले ही भारतीयोंको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शासक चुननेका अधिकार न हो; पर क्या डाक्टरीमें भी मरीज़को अपना चिकित्सक चुननेका अधिकार नहीं है? कमसे कम हमने तो कभी ऐसा सुना या देखा नहीं। खैर। पर जो डाक्टर किसी मरीज़की इच्छाके विरुद्ध ज़बरदस्ती उसका इलाज करनेपर तुल जाय, मनमानी फ़ीस ऐंठे और मरीज़की हालतके लगातार बिगड़ते जानेपर भी उसको जबरन अपने इलाजका शिकार बनाए रहे, उसे क्या कहा जायगा? यह सच है कि मरीज़को डाक्टरमें विश्वास होना चाहिए; पर उसकी भी तो कोई सीमा होनी चाहिए। अगर मरीज़ यह देखे कि वर्षोंके इलाजके बाद भी मर्ज़ बढ़ता जा रहा है; उसकी हालत बदसे बदतर होती जा रही है; उसके स्वास्थ्यकी पूँजी घटते-घटते मौतके निकट आ पहुँची है और फ़ीससे डाक्टरकी न सिर्फ़ जेबें या तिजोरियाँ ही, बल्कि अगणित मालखाने भरते जा रहे हैं; तब वह आखिर कैसे और कब तक डाक्टरकी सदिच्छापर विश्वास करे? पर सच तो यह है कि लार्ड वेवलका कथन सहज बुद्धिकी कसौटीपर एक क्षण भी नहीं टिक सकता। उनकी यह शिकायत सरासर लचर है कि हमने ब्रिटेनके लोगोंकी सदिच्छापर विश्वास नहीं या कम किया। बल्कि हमने तो ज़रूरतसे ज़्यादा विश्वास किया और उसीका फल आज हम पा रहे हैं। अब ब्रिटेन-वासियोंको एक बार भारतीयोंपर, उनकी सदिच्छा एवं मैत्री-भावनामें, विश्वास करके देखना चाहिए कि हम न सिर्फ़ अपना, बल्कि उसके मर्ज़का भी इलाज कैसे करते हैं। दरअसल मरीज़ भारतीय नहीं, बल्कि ब्रिटेनके वे मदांध अधिकारी हैं, जो आज भी १९वीं शताब्दीसे बाहर आनेमें झिझक रहे हैं।

ज़बर्दस्तीका ठेंगा सिरपर!

महारानी विक्टोरियाके समयसे भारतीय ब्रिटिश अधिकारियोंपर विश्वास करते चले आ रहे हैं और उसका परिणाम है भीषण अकाल, महामारी, आर्डिनेन्सोंका राज्य और नागरिक स्वाधीनताओंका खात्मा, पत्रोंकी मुँहबन्दी, राजनीतिक दलादली, उद्योग-धन्धोंकी उपेक्षा, जनताके स्वास्थ्यका ह्रास, मुद्रा-प्रसार और महँगी तथा राष्ट्रीय भारतके विरुद्ध प्रचार! १९१९ और १९३५ के वैधानिक सुधार हमारे विश्वासके अनूठे उपहार हैं! वर्त्तमान युद्ध छिड़नेपर जब ब्रिटिश अधिकारी अपनी शर्त्तोंपर राष्ट्रके प्रतिनिधियोंको लड़ाईके लिए रँगरूट और सरंजाम जुटानेवालोंके रूपमें अपने मातहत होनेको मजबूर नहीं कर सके, तो उन्हें फ़ाशिज़्मके समर्थक और जापानके पक्षपाती कहकर जेलोंमें ठूँस दिया गया और इस प्रकार भारतकी राष्ट्रीय माँगको खटाईमें डालनेका षड्यन्त्र रचा गया। इस हालतमें यदि भारतीयोंका ब्रिटिश अधिकारियोंमें विश्वास न रहे, तो इसके लिए कौन कहाँ तक ज़िम्मेदार है, पाठक आसानीसे समझ सकते हैं।

स्वयं ब्रिटिश अधिकारी भी इसे असन्दिग्ध रूपसे समझते हैं। इसीलिए लार्ड वेवल अपने भाषणमें वर्त्तमान शासन-परिषदकी सेवाओंके गुण गाकर भी यह कहनेसे नहीं चूके कि राष्ट्रीय सरकार भारतकी आवश्यकताओंके सम्बन्धमें इससे अधिक सेवा कर सकती थी। उनका कहना है कि जापानको हरानेके लिए लोगोंको अधिक त्याग करना होगा; पर औसत आदमी उस समय तक अपनी सुविधा और आयका अंश अपने गरीब भाइयों के लिए देनेको तैयार नहीं, जब तक कि वह उन नेताओंकी डिक्टेटरशिपसे मजबूर न किया जाय, जिनमें उसका विश्वास हो। किन्तु इस तथ्यको समझनेके बावजूद वाइसराय राष्ट्रीय सरकार चाहते हैं अपनी परिभाषाके अनुसार, अपनी शर्त्तोंपर! यह असंगत और असम्भव कल्पना है और है ज़बर्दस्तीका ठेंगा। जब तक ब्रिटिश अधिकारी भारतीय जनताके विश्वास और सहयोग-समर्थन-प्राप्त लोकनायकोंको जेलोंमें सड़ायँगे, राष्ट्रीय सरकारका स्वप्न पूरा न होगा और न किसी नक़ली सरकारमें जनताका सच्चा विश्वास ही हो पायगा। अतः इसका एकमात्र हल यही है कि ब्रिटिश अधिकारी आवेश और औद्धत्यके बजाय सहज बुद्धि और दूरदर्शितासे काम लें तथा राष्ट्रके प्रतिनिधियोंको मुक्तकर एक सर्वदलीय राष्ट्रीय सरकार बनानेमें सहायक हों।

हिन्दी-पत्रकारोंकी सामयिक माँग

यह परम सन्तोष और हर्षका विषय है कि पिछले दिनों कानपुरमें हुए अखिल भारतीय हिन्दी-पत्रकार-संघके चतुर्थ अधिवेशनमें राष्ट्रके प्रमुख नेताओंके अनिश्चित रूपसे कारावद्ध रखे जानेके विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठाई गई और उनकी मुक्तिकी माँग की गई। इस सम्बन्धमें संघके स्थानापन्न सभापति पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीको आगामी ९ जनवरीको सभी हिन्दी-पत्रोंमें एक वक्तव्य प्रकाशित करनेका अधिकार दिया गया है। यह राष्ट्रभाषाके उन पुजारियोंकी गर्जना है, जो राष्ट्रकी मुक्तिके संग्राममें कभी किसीसे पीछे नहीं रहे हैं और जिन्होंने सब तरहकी ज़्यादतियों, ज़ोर-ज़ुल्मों, असुविधाओं तथा आर्थिक अड़चनोंके बावजूद राष्ट्रकी स्वाधीनताकी माँगके अपने स्वरको मन्द या शिथिल नहीं होने दिया है।

चीनकी गम्भीर स्थिति

इधर पिछले कुछ दिनोंसे चीनके सम्बन्धमें जो बातें पत्रोंमें छप रही हैं, उनसे वहाँकी स्थितिके गम्भीर होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। चीनके अन्यतम शुभचिन्तक जनरल स्टिलवेलके तबादलेके बादसे तो अमरीकन पत्रोंमें बड़े आश्चर्यजनक भण्डा-फोड़ हुए हैं, जिनसे चीनकी वर्त्तमान स्थितिपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। पर उनका केवल संक्षिप्त रूप ही भारत आ पाया है। अभी हाल ही में लन्दनके 'न्यूज़ क्रानिकल'के प्रसिद्ध संवाददाता स्टुअर्ट गेल्डर चीनकी यात्रा करके भारत लौटे हैं। अपने चीन-सम्बन्धी अनुभवोंको उन्होंने स्थानीय 'स्टेट्समैन'के गत २१, २२, २३,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२४, २७ दिसम्बरके अंकोंमें प्रकाशित किया है। इन लेखोंमें आपने बतलाया है कि मार्शल च्यांगकाई-शेक वहाँके कम्युनिस्तोंसे, जो गत ७ वर्षोंसे जापानियोंका मुक़ाबला कर रहे हैं, कोई समझौता करने और लोकतन्त्रात्मक सरकार बनाकर उसमें उन्हें अधिकार-पूर्ण पद देनेको तैयार नहीं। इसके विपरीत वे उन्हें अब भी बाग़ी समझते हैं और जापानसे लड़नेके लिए उधार-पट्टा-बिलके अन्तर्गत आनेवाली बहुत-सी युद्ध-सामग्री भविष्यमें उनसे लोहा लेनेके लिए बचाकर रख रहे हैं। लोकतन्त्रके अभावमें चीनमें एकमात्र कुओमिन्ताङ्का शासन है, जिसके अधिकारियोंको चीनी जनताके हितके बजाय अपने पदों, प्रभाव-प्रभुता और स्वार्थोंको बचाए रखनेका अधिक खयाल है। स्वल्प वेतन मिलनेके कारण धाँधली और घूसखोरीका बोलबाला है। उधार-पट्टा-बिलके अन्तर्गत आनेवाली बहुत-सी युद्ध-सामग्री चोर-बाज़ारमें जापानियोंके हाथ बेच दी जाती है। शंघाई, तिएंतसीन, हांगकांग, हांकउ और चुंकिंगमें जापानी मालका व्यापार खूब धड़ल्लेसे हो रहा है। आपने बतलाया है कि कुओमिन्ताङ् और खास तौरसे मादाम च्यांगकाई-शेकने इन बातोंपर पर्दा डालनेके लिए विदेशों में चीनकी स्थितिके सम्बन्धमें झूठा प्रचार किया है।

गेल्डरका कहना है कि कुओमिन्ताङ्के अधिकारी विदेशी संवाददाताओंको चीनी कम्युनिस्तोंके सम्पर्कमें नहीं आने देते, क्योंकि वे उनसे, उनकी रीति-नीति, जन-सम्पर्क और युद्ध-कौशलसे प्रभावित हो जाते हैं। जो यदा-कदा उनके सम्पर्कमें आ जाते हैं, कठोर सेंसर उनके सही समाचारोंको बाहर नहीं पहुँचने देता। अभी हाल ही में कम्युनिस्त जनरल चौ-एन-लाई अमरीकाके फौजी संरक्षणमें अमरीकन एलची जनरल पैट्रिक हर्लेके साथ च्यांगकाई-शेकसे समझौतेकी बातचीत करने चुंकिंग आए थे। पूरे एक सप्ताह तक तो च्यांगकाई-शेकने उनसे भेंट ही नहीं की, फिर केवल आध घंटेके लिए मिले और बड़े उद्धत भावसे उनकी समझौतेकी शर्तें ठुकरा दीं। चीनकी यह फूट जापानियोंको कई डिविज़नोंकी सहायता पहुँचा रही है; पर च्यांगकाई-शेक लोकतान्त्रिक ढंगसे सम्मिलित सरकार बनाकर इसका अन्त करनेके लिए राज़ी नहीं। कम्युनिस्तोंकी सेनाएँ पिछले ७ वर्षोंसे जापानियोंसे लोहा ले रही हैं; किन्तु कुओमिन्ताङ् की ओरसे उन्हें कोई युद्ध-सामग्री, खाद्य-सामग्री, कपड़े, दवाइयाँ आदि नहीं भेजी गईं। इसके विपरीत सीमान्त-क्षेत्रमें कोई पौने आठ लाख कुओमिन्ताङ्-सेनाने कम्युनिस्तोंके खिलाफ़ घेरा डाल रखा है। कम्युनिस्त उत्तर, दक्षिण और केन्द्रीय चीनमें जापानियोंसे लड़ रहे हैं और उनकी सेनाएँ कुओमिन्ताङ्की सेनाओंसे अधिक शिक्षित, संयत एवं स्वस्थ हैं। इस समय कम्युनिस्त सेनाकी संख्या ६ लाख और जन-सेनाकी २२ लाख है। जापानके अधिकृत क्षेत्रोंमें से १५ को इन्होंने अभी तक मुक्त किया है, जिनका रक़बा ८३०००० वर्ग-किलोमीटर है। इस प्रदेश जापानकी ग़ुलामीमें सड़नेवाले २० करोड़ चीनियोंमें से ६ करोड़को कम्युनिस्तोंने मुक्त किया है। पिछले ४ वर्षोंमें इन्होंने जापानियोंसे कुल ५६२०२ मोर्चे लिए, जिनमें लगभग ३ लाख जापानी हताहत हुए तथा १५१७६० बन्दूकें, १८११ छोटे-बड़े मशीनगनें और १८३ तोपें जापानियोंसे हथियाई गईं।

महायुद्धकी प्रगति

एक ओर लाल-सेना हंगेरीकी राजधानी बुडापेस्टमें जर्मनोंका सफ़ाया कर रही है और आकेनके दक्षिण-पूर्व तथा साार प्रदेशमें अमरीकन तथा संयुक्त-राष्ट्रीय सेनाएँ जर्मन रक्षा-पंक्तिको ध्वस्त करती हुई आगे बढ़ रही हैं और दूसरी ओर लक्ज़ेवर्ग होकर इस लम्बे मोर्चेके बीचसे घुसकर जर्मन सेनाओंने म्यूज़की ओर बढ़ना शुरू कर दिया है। इस प्रत्याक्रमणके पहले २-३ दिनोंमें जर्मन काफ़ी आगे बढ़े; पर अब मित्र-सेनाओंने उनका मुक़ाबला आरम्भ कर दिया है। इस प्रत्याक्रमणके बुझनेसे पहलेका दीपकका प्रकाश ही समझना चाहिए। इस चकमेसे मित्र-सेनाएँ विपथ नहीं हो सकतीं। हंगेरीका पतन इने-गिने दिनोंकी बात है—यद्यपि वह जर्मनीसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुका है और वहाँ फ़ाशिस्त-समर्थकोंकी धर-पकड़ शुरू हो गई है। लाल-सेना आस्ट्रियाकी राजधानी वियेनाकी ओर बढ़ रही है। युद्धमें सक्रिय योग देनेके लिए फ्रांस शीघ्र ही सैन्य-संग्रह कर रहा है। चीन, बर्मा और फिलीपीनमें जापानी पीछे हटाए जा रहे हैं। सुमात्रा और तोक्योपर बमबारी हो रही है। प्रशान्तमें कई जापानी जहाज़ भी डुबोए गए हैं।

चतुर्वेदीजीको पितृशोक

हमें यह जानकर हार्दिक शोक हुआ कि 'विशाल भारत' परिवार और हिन्दी-संसारके सुपरिचित पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके पितृश्री पं० गणेशीलाल चतुर्वेदीका गत २५ दिसम्बरको उनके निवास-स्थान फीरोज़ाबादमें देहावसान हो गया। इस समय आपकी अवस्था ८९ वर्षकी थी और आप खूब स्वस्थ थे। अपना सारा काम आप स्वयं करते थे और मीलों पैदल ही आते जाते थे। आपका जीवन आदर्श और कठोर साधनामय था। इसी कारण आपने वार्द्धक्यको कभी तन या मनमें आलस्य शिथिलता या अकर्मण्यता पैदा नहीं करने दी। आपके इस बुढ़ापेपर बहुतसे जवानोंको ईर्ष्या होती थी। ऐसे सुयोग्य और कर्मठ बुज़ुर्गकी सरपस्तीसे वंचित होना सचमुच बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। इस अकथनीय शोकमें हम चतुर्वेदीजीके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं और उन्हें इसी आधारपर सान्त्वना दिलाते हैं कि इस शोकमें वे अकेले नहीं हैं, समूचा हिन्दी संसार उनका साझीदार है। दिवंगत आत्माको शान्ति और चतुर्वेदीजीको यह असह्य वियोग-दुःख सहनेका धैर्य और साहस प्राप्त हो, यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है।

मुद्रक और प्रकाशक—श्रीनिवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट

की कहानी उसी की ज़बानी

"मैं आपकी बचत को बिलकुल सुरक्षित रखता हूँ।

★ मैं आपकी बचत को बिलकुल सुरक्षित रखता हूँ।
★ मेरी क़ीमत बारह बरस में दस रुपये से बढ़ कर पन्द्रह रुपये हो जाती है।
★ मेरे ब्याज पर इनकम टैक्स नहीं लगता।
★ आप आसानी से मुझे सरकार द्वारा नियुक्त किसी एजेण्ट से या किसी सेविंग्स ब्यूरो या पोस्ट आफिस से खरीद सकते हैं।
★ मेरे बड़े भाइयों को आप ५० रुपये, १०० रुपये, ५०० रुपये या हज़ार रुपये में ख़रीद सकते हैं और ये सब भी इसी हिसाब से बढ़ते हैं—अर्थात् बारह वर्ष में ५० प्रति शत वृद्धि।
★ मैं दस रुपये क़ीमत चुकाने पर आपको मिल सकता हूँ या आप एक रुपये, आठ आने अथवा चार आने के सेविंग्स स्टाम्प खरीद कर मुझे क्रमशः प्राप्त कर सकते हैं।
★ तीन साल बाद आप मुझे जब चाहें भुना सकते हैं। आपको आपकी पूँजी वापस मिल जायगी और उसके साथ ब्याज भी जो मैंने आपके लिए कमाया होगा—किन्तु

"आपका सब से अधिक लाभ इसी में है कि मुझे सुरक्षित रखें!"

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट सरकार द्वारा नियुक्त एजेण्टों या किसी सेविंग्स ब्यूरो या पोस्ट आफिस से प्राप्त कीजिए।

1235
Hindi

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखिये तो सिनेमा-जगतकी सुन्दर और कुशल अभिनेत्री **कानन देवी** 'ओटीन'के विषयमें लिखती हैं :—

"ओटीन क्रीम" अति आनन्दवर्द्धक है तथा गात्र-वर्णको उत्कृष्ट बनाने के लिए अत्यन्त ही सन्तोषजनक है।"

आप भी तो

ओटीन की—

सौन्दर्य-सिद्धि का उपभोग कर सकती हैं

Of all the toilet creams that I have used I unhesitatingly prefer Oatine Cream as being the pleasantest and most satisfactory for improving the complexion.

Kanan Devi

Oatine CREAM for nightly massage
SNOW for daily protection

Kanan Devi

c/o Cinemas Ltd

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वरी, १९४५

7978

बालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोहिमा और काबा पर हमारे विमान

"....आज हमारे हवाई ज़हाज़ों ने दुश्मन के इलाक़े पर उड़ कर हज़ारों पौं
वज़न के बम गिराये और दुश्मन की चौकियों, क़िलाबन्दियों और फ़ौज
जमघटों को निशाना बनाया...."

अख़बारी ख़बरों का यह एक नमूना है और इसकी तह में हिन्दुस्तानी हवाबाज़ों की बहादुरी और कामयाबी की कहानियाँ छिपी हुई हैं, जिन्होंने उन आशाओं को पूरा कर दिखाया जो हम उनसे रखते थे। दुनिया के बुरे से बुरे मौसम और अज्ञात प्रदेश में, आसपास और ज़मीन दोनों पर उन्होंने जिस साहस, योग्यता और सहनशक्ति का परिचय दिया, उसकी वे सब लोग प्रशंसा करते हैं जिन्होंने उनकी बहादुरी के काम देखे हैं।

आज हिन्दुस्तानी हवाई बेड़े के फाइटर, डाइव बाम्बर और निगरानी करने वाले हवाई जहाज़ अराकान और बर्मा में दुश्मन के इलाक़े पर कार्रवाइयाँ कर रहे हैं।

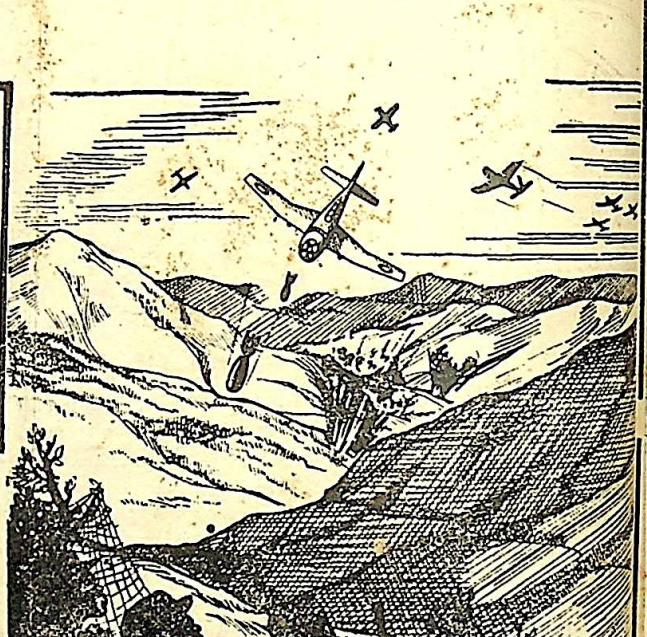

उनके विमान कोहिमा पर और काबा पर उड़ते थे। आज वे बर्मा पर उड़ रहे हैं। उनके 'हरीकेन' और 'वुल्टी वेङ्गनेन्स' नामक विमान जापानियों को ध्वंस कर रहे हैं।

हिन्दुस्तान को इंडियन एअर फ़ोर्स के जवानों पर फ़ख़्र है जिन्होंने साबि
कर दिया है कि....

हम जापानियों को हरा सकते हैं — और हरा रहे हैं

राष्ट्रीय युद्ध मोर्चे द्वारा प्रकाशित

AAA 1308

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gy

ग्रा. 7978

विषय-सूची (फरवरी, १९४५)

१. मेरी क़लम ४५, २. मुक्ति-मार्ग ४६, ३. चीनका आधुनिकतम साहित्य ४७, ४. रोमाँ रोलाँ ५३, ५. विनोदी गांधी ५७, ६. प्रभात ५८, ७. विज्ञानकी उन्नति ५९, ८. किन्नरोंके देशमें ६१, ९. जीवन-यात्रा ६४, १०. जनपद-आन्दोलन ६८, ११. वसन्तके गीत ७०, १२. स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी ७१, १३. देशी नरेशोंकी रक्षा ७३, १४. उज्जयिनीका प्राचीनत्व ७५, १५. पशु-रक्षाकी समस्या ७६, १६. चिट्ठी-पत्री ७७, १७. समालोचना ७९, १८. चयन ८२, १९. सम्पादकीय ८४।

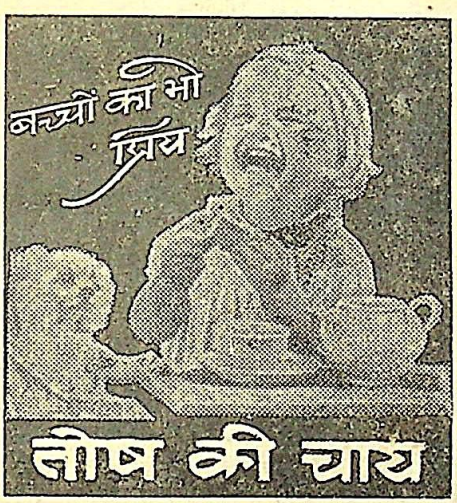

गत २५ वर्षोंसे खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापारादि विषयक सुप्रसिद्ध मराठी मासिक 'उद्यम' का हिन्दी-संस्करण

उद्यम

हर महीनेकी १५ ता० को प्रकाशित होता है। आज ही नमूना-अंक देखिए। ता० १५ जनवरीको 'उद्यम'का—

गन्ना-गुड़-शक्कर विशेषांक

भी प्रकाशित हो गया है; जिसमें उत्कृष्ट गन्नेकी खेती, गन्नेसे गुड़ तथा शक्कर बनानेकी जानकारी इत्यादि सुबोध और सरल भाषा में दी गई है। आजकल इस जानकारीकी सर्वत्र आवश्यकता है, इसलिए इसकी माँग भी बहुत है। आप भी शीघ्र ही वार्षिक मू० ५॥) रु० भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाइये। इससे आपको उसी मूल्यके अन्तर्गत नमूना-अंक तथा गन्ना-गुड़-शक्कर-अंक मिल जायँगे और हर महीनेकी १५ ता० को प्रकाशित होनेवाले अंक भी साल-भर मिलते रहेंगे। नमूना-अंक और विशेषांकका अलगसे मूल्य एक-एक रुपया है। लिखिए—

मैनेजर—उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर।

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—

१ **नवयुगके गान**—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १।)

२ **शासन-शब्द-संग्रह**—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)

३ **पृथ्वीराजकी आँखें**—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १।)

४ **गीता-परिचय**—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)

५ **ग्राम-चिन्तन**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)

६ **अश्वपरीक्षा**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)

७-८ **ग्राम-पुस्तकालय-माला**—मूल्य प्रति पुस्तक =)

१. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

शहरका अँदेशा—लेखक श्री किरणविहारी दिनेश. २)

उच्चकोटिके मार्मिक हास्य तथा व्यंग्यकी अनूठी पुस्तक। हिन्दीमें हास्य-साहित्यका अद्वितीय ग्रन्थ। अत्यन्त कलापूर्ण ढंगसे छपी, अनेकों व्यंग्यचित्र और प्रत्येक पृष्ठपर सुन्दर हास्य पूर्ण अलंकरण।

"केवल हास्य और व्यंग्यपूर्ण साहित्यकी इन रचनाओंके बलपर भी लेखक साहित्य-संसारमें महत्वपूर्ण स्थान पा सकेंगे। पुस्तकी छपाई, गेट-अप, चित्र-सम्पत्ति आदि प्रसंशनीय हैं।"

—मिलिन्द

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाँसीको रोकिये

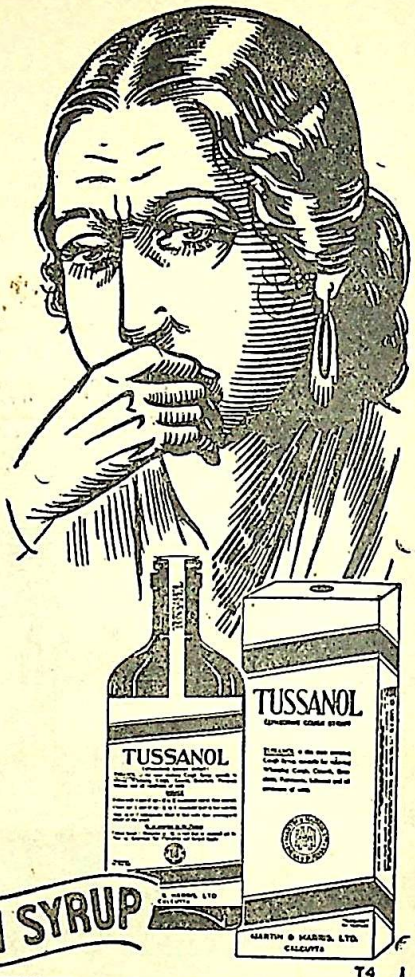

मामूली-सी खाँसीको भी छुपाना या दबाना नहीं चाहिए। वह भले ही फेफड़ोंकी सूजनसे हो, या दिक़से हो, या गलेकी ख़राशसे ; उसको फौरन, सुरक्षापूर्वक और ख़ुशनुमा तरीक़ेसे आराम कीजिए।

टस्सानल से

TUSSANOL

MARTIN & HARRIS, LTD.
CALCUTTA

T4

R B S

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभी नंगा धड़ंगा घुटनों के बल चलता है

किन्तु बारह वर्ष बाद आपके
बच्चे को अच्छी पोशाक
और ख़र्चीली शिक्षा आवश्यक होगी..

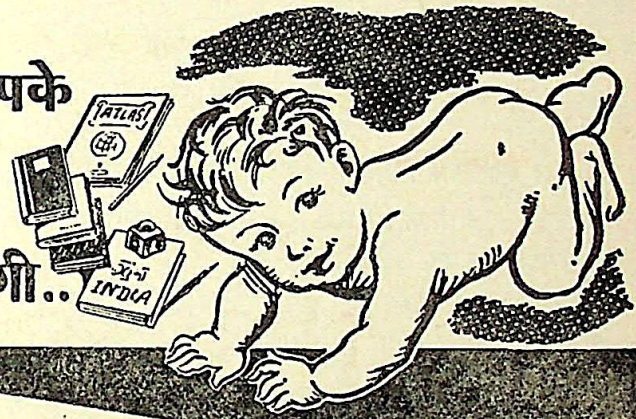

इसके लिए अभी से प्रबन्ध कीजिए

और

ख़रीद लीजिए

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स

१ इनकी क़ीमत बारह बरस में ५० फी सदी बढ़ जाती है।

२ इनमें लगी हुई पूँजी के व्याज पर कोई इनकम टैक्स नहीं देना पड़ता।

३ इन्हें भुना कर असल रक़म व्याज के साथ (हिन्दुस्तान या इंगलैण्ड में) तीन साल बाद जब चाहें पा सकते हैं।

४ आप इन्हें १० रुपये, ५० रुपये, १०० रुपये, ५०० रुपये या १००० रुपये में ख़रीद सकते हैं।

५ अगर आप दस रुपये एक साथ न दे सकें, तो आप एक रुपये, आठ आने या चार आने के सेविंग्स स्टाम्प ख़रीद कर रुपया जमा कर सकते हैं और फिर इनके बदले नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स ले सकते हैं।

६ आप नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स सरकार द्वारा नियुक्त एजेण्टों या किसी सेविंग्स ब्यूरो या पोस्ट आफिस से ख़रीद सकते हैं।

इन्हें शीघ्र ख़रीद लीजिए-
देर न लगाइए!

AAA 1236 Hindi

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Godrej गोदरेज का अभिनंदन

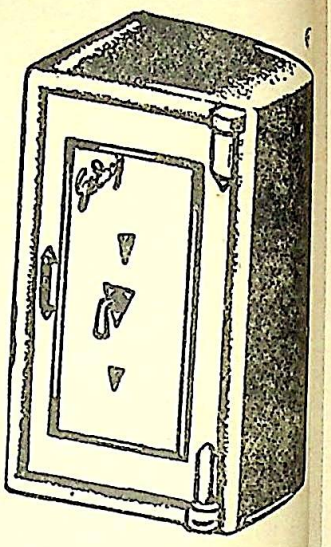

बम्बईमें हृदयको हिला देनेवाले धड़ाकेसे लगी धधकती आगकी लपटोंमें गोदरेजकी तीजोरियोंने जो अभूतपूर्व सेवाएँ की हैं, उसके सम्बन्धमें प्राप्त अनेक प्रशंसापत्रोंमें से केवल एक (स्थानाभावके कारण) यहाँ दिया जा रहा है।

मेमर्स गोदरेज एण्ड वाइस मे० कं०, लि० बम्बई, ता० २४-४-४४
लालबाग, परेल, बम्बई ।

प्रिय महोदय,

"हमें यह कहते हर्ष हो रहा है कि बहुत वर्षों पहले ३०" इंची गोदरेजकी तिजोरी हमने खरीदी थी और इस भीषण धड़ाकेकी भयानक आगमें वह ज्योंकी त्यों डटी रही। जब कि दूसरे ख्याति-प्राप्त विदेशी बनावटकी हमारी तिजोरीकी वस्तुएं इस आगमें बिलकुल नष्ट हो गयीं, आपकी तिजोरीमें रखे हमारे कीमती दस्तावेज, करेंसी नोट तथा जवाहरातको इस आगसे कोई नुकसान नहीं पहुँचा।

आपको धन्यवाद देनेके लिए हमारे पास उपयुक्त शब्द नहीं। फिर भी हम अपनी प्रशंसाके रूपमें आपसे ऐसी ही एक और तिजोरी भेज देनेका आग्रह करते हैं।

आपका विश्वसनीय,
(सही) खीमजी मूलजी
खुद मालिक, प्रेमजी, उमरशी एण्ड कं०, करनाक बन्दर, लोहाबाजार, बम्बई।

गो द रे ज ए ण्ड बो य स
मे न्यु० कं०, लि

ब म्ब ई - क ल क त्ता - म द्रा स
दिल्ली-कानपूर-हैदराबाद (दक्षिण)

एजेन्सियाँ समस्त भारतमें हैं

कासाबिन

श्वास और खांसीके रोगोंमें आशु फलप्रद

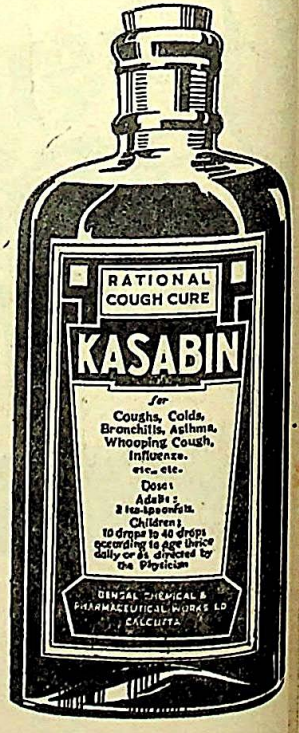

जिन्हें श्लेष्माका आघात, ज़रा-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खांसी, टान्सिलका प्रदाह या दमा आदिमें उपद्रवोंका प्रकोप हो, वे सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातिरिक्त उपकार लाभ करगे।

कासाबिन बच्चोंको भी निर्विघ्न रूपसे दिया जाता है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गवर्मेण्ट आर्ट स्कूल कलकत्ताकी चित्र-प्रदर्शिनीके कुछ चित्र

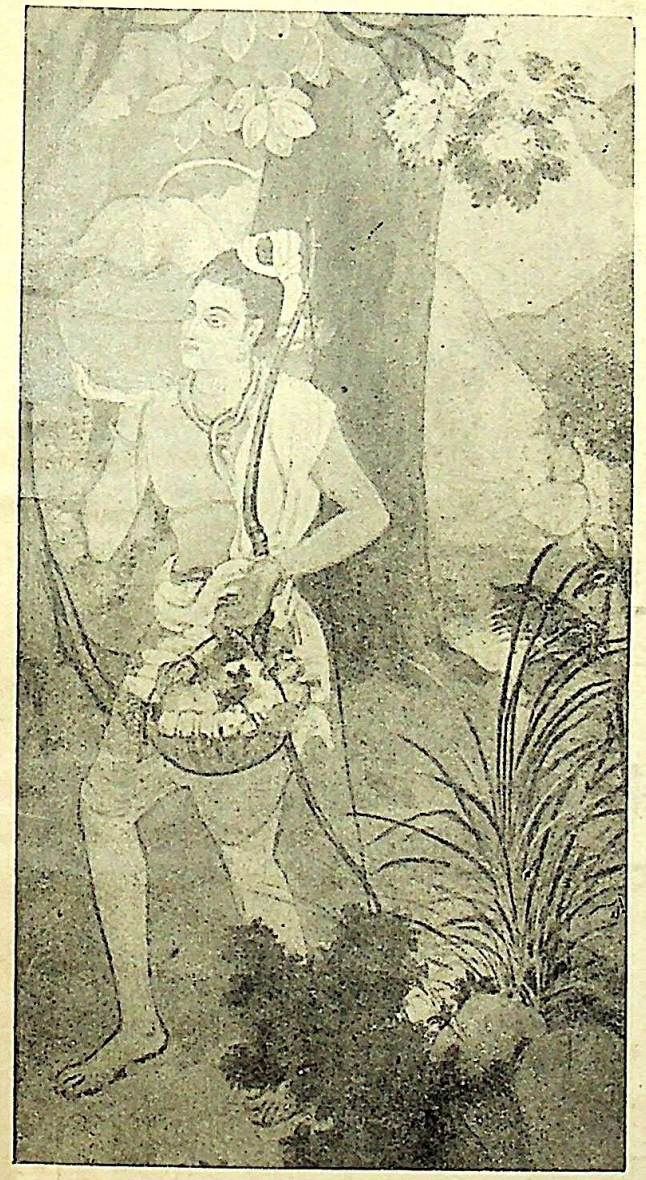

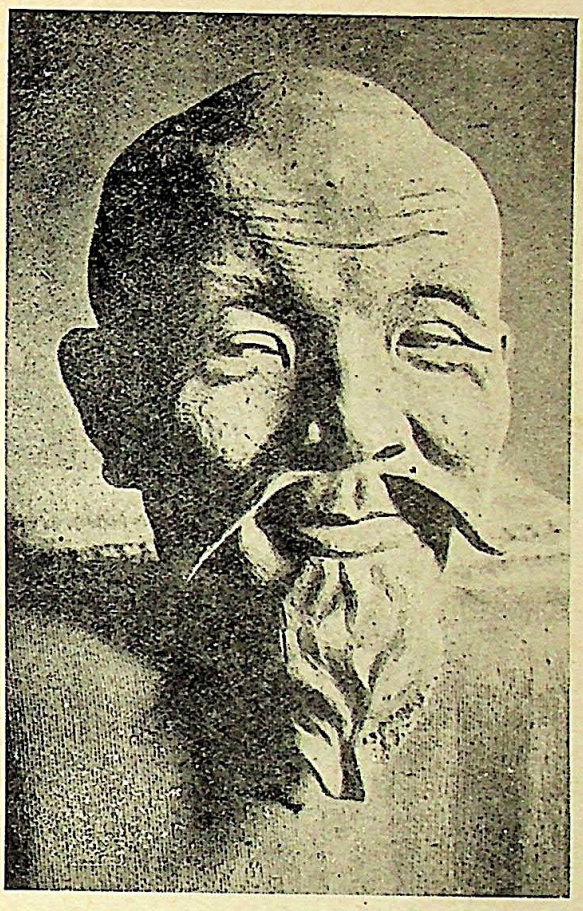

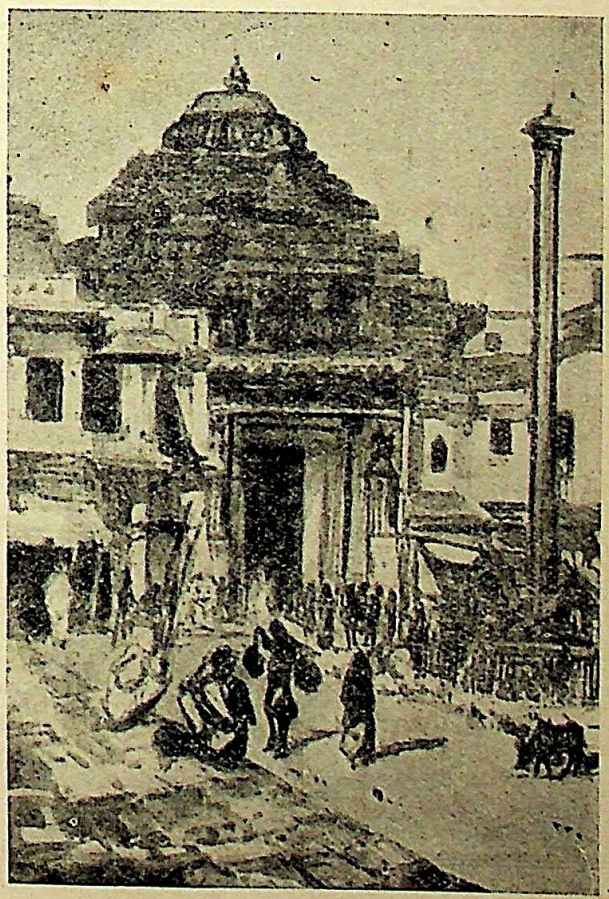

(ऊपर) पंचवटीमें लक्ष्मण, (दाहिनी ओर ऊपर) तिब्बतके एक लामाका चेहरा, (३) (दाहिनी ओर नीचे) पुरीके जगन्नाथ-मन्दिरका तोरण।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक २] कलकत्ता, फरवरी, १९४५ [पूर्णांक २०६

मेरी क़लम

श्री भरवप्रसाद गुप्त

मेरी क़लम !
मेरे हृदयके खूनसे रँग दे तू मेरे हिन्दीकी सीमा,
छिड़क दे चन्द क़तरे माँके चरणोंमें
कि लिखनी है तुझे खूनी कथा उन माँके लालोंकी,
उन उगते नौनिहालोंकी,
जो संगीनोंकी नोकोंके निशाने बन
लुढ़ककर माँकी छातीपर रुलाते खूनके आँसू !
मेरी क़लम !
मेरे हृदयकी आगसे प्रज्ज्वलित कर दे हिन्दकी सीमा,
छिड़क चिनगारियाँ इत-उत
कि लिखनी है तुझे जलती कथा उन दमन-ज्वालोंकी,
जलेपर पड़े छालोंकी,
जो माँके झुलसे आँचलसे झलकते वक्षपर शत-शत
दाग़ बनकर बदनुमा !
मेरी क़लम !
मेरे हृदयके अश्रुमें तू बोर मेरे हिन्दकी सीमा,
छिड़क दे चन्द क़तरे तू चिताओंपर,
शहीदोंके मज़ारोंपर
कि लिखनी हैं तुझे क़ुरबानियाँ
उन इक़लाबी नौजवानोंकी,
उभरते राष्ट्र-प्राणोंकी,
जो परवानों-से हँसते शमापर मुल्ककी खातिर
बँधे पर जल रहे धू-धू,
रहे गिर दारसे चू-चू,
जो उफ़ तक कर नहीं सकते
लिए दिलमें यही अरमाँ,
सफल होगी शहादत एक दिन
निज माँके चरणोंमें !

मेरी क़लम !
मेरे हृदयकी भूखसे तड़पा तू मेरे हिन्दकी सीमा,
मचा चहुँ ओर हाहाकार :
लिखनी है तुझे भीषण कथा
उन अस्थि-पंजरकी,
उन धरती और अम्बरकी
दरक कर फट गए जो
सुनके चीत्कारें उन भूखों मरनेवालोंकी !
मेरी क़लम !
मेरे हृदयकी हयासे
शर्मा दे मेरे हिन्दकी सीमा,
जुटा दे हिन्दकी पलकें
कि खिंचने हैं उसीके सामने
उन नारियोंके—
कुसुम-सी उन क्वारियोंके—
चित्र सड़कोंपर घसिटती,
आह ! नंगे बदनपर खाती हुई चोटें,
कि जिनकी आँखसे शर्मो-हया
पानी हो बह निकली !
मेरी क़लम !
मेरे हृदयके फूलसे
गुलज़ार कर दे हिन्दकी सीमा,
चढ़ा बापूके चरणोंपर ।
पँखुड़ियाँ अंजलीमें भर,
पिरो ले हार दो
चलना तुझे आग़ा-महलमें,
मिलेंगे द्वारपर ही
दो शहीदाने-वतन !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्ति-मार्ग

श्री भारतभूषण अग्रवाल

कुछ दिनोंसे भर रही है हृदयमें अति तीव्र कड़ुवाहट,
घुट रहे हों प्राण जैसे किसी विषमय धुएँसे आक्रान्त,
सूझता जैसे न हो पथ विकल गतिको, रुद्ध जीवनको।
चेत-लुप्तप्राय मैं चलता रहा हूँ अब तलक जिस ओर चल निकला,
जिस ओर जाते दीखते थे मुझे अपने ही सदृश वे व्यक्ति अगणित।
ध्यान यद्यपि था कि यह समुचित नहीं है,
ध्यान यह भी था कि मेरी राह कोई दूसरी है ;
किन्तु फिर भी अलस वह अवसाद ओढ़े
बहा जाता था किसी निश्चेष्ट तिनके-सा।
उबर पाया था न मनकी कामनाओंसे, हृदयकी स्वार्थ-सीमासे,
देखता था स्वप्न सुखके, शान्तिके, आनन्दके—
बाहरी तूफ़ानकी करके उपेक्षा,
चाहता था लीन होना मधुर अन्तर्गीतमें।
आज परिचित हो गया हूँ किन्तु मैं उस सत्यसे,
मिल गया है अब मुझे वह बोध,
कर रहा है जो प्रकाशित आज अनगिन जनोंमें संघर्षका उत्साह,
अपना सभी कुछ उत्सर्ग करनेकी अटल क्षमता।
आज ही मैं जान पाया हूँ कि मेरी यातनाके मूलमें है वह विषमता,
जो कि जगतीके जनोंकी शत्रु है,
जो कि उनको दासतामें बाँधकर, उनके परिश्रमके सहारे
जुटाती है भोग और विलासके बहुमूल्य साधन
एक लघु दलके लिए ;
जो कि बर्बर शक्ति-शोषणकी ध्वजाकी प्रतिष्ठाके हेतु
बाँध रखती है करोड़ों मानवोंको पंगु, नग्न, अशक्त औ' निर्जीव
लौह-शृंखलामें।
आज ही मैं जान पाया हूँ कि केवल मैं अकेला ही नहीं हूँ दुखी,
चिन्ताग्रस्त,
वरन् आज समस्त जीवन-स्रोत
रुद्ध हो इस विषम बाधासे विकल है फूटने,
पथ खोज लेनेके लिए अत्यन्त
व्यस्त है गम्भीर जीवन-मरणके संग्राममें,
जिसकी विजयमें ही छुपा है बीज सुखका, शान्तिका।
आज सहसा दीखता है मुझे नव-आलोक,
झर रही हों सामने दिशि-द्वारसे ज्यों अरुण रेखाएँ
जगातीं प्राण, देतीं अभयका वरदान।
और साथी, आज मेरे हर्षका कोई न ओर न छोर
मेरे हृदयके आनन्द-विस्मयका।
कि मेरे क्षुद्र मनकी वे सभी लघुवर्तिनी आलस्य-सीमाएँ,
त्रस्त जिनके भारसे मैं हो गया था म्लान और विषण्ण,
इस नव्य ज्ञानालोकके संस्पर्शसे अब हो गई हैं छिन्न और भिन्न
प्रखर आतपकी प्रभामें शिशिर-बूँदों-सी।
हृदयकी सब क्षुद्रता, दौर्बल्य
हो गए हैं लुप्त ज्यों कर्पूर—
फूटते इस जनोदयके प्रातकी आभास-वेलामें
भर रही मनमें अयाचित स्फूर्ति पूरम्पूर।
अमित इस नव-शक्तिके वरदानसे भर
आज मैं निर्बन्ध
उस संशय-भरे अति गलित जीवनका अनर्गल मोह तजकर,
आ गया हूँ मुक्तिके पथपर तुम्हारे साथ
न्यायके संघर्षमें सहयोग देनेके लिए।
मुक्तिके इस मार्गमें हम-तुम अकेले ही नहीं हैं,
हैं हमारे साथ लाखों, करोड़ों, अरबों, असंख्य स्वदेश
विदेशके
कि जिनके तेज़ क़दमोंकी सबल आहट निरन्तर गूँजती है
प्रबल आह
जिनके प्राण-स्पन्दनकी प्रतिध्वनि भर रही है धमनियोंमें नित
उत्सा
सह लिए चुपचाप परिजन-वध, सती-अपमान, धन-अप
बन्धन-दंश औ' गृह
आज वे ही वज्र-वक्षी उठ खड़े हैं अडिग, सीना खोल,
भर रहा है आज उनके नादमें इतिहास अपने बोल।
आज चारों ओर
गगन-भेदी घोषसे लो, डोलता है लोक-पारावार ;
पूर्वसे पश्चिम तलक बस, आज देती है सुनाई एक ही आवाज़,
जिससे काँपता है जीर्ण भूमि-प्रदेश, नभका गात, छलका राजसिंहा
'मुक्त हैं, हम मुक्त हैं, है मुक्त ही प्रति जातिकी जनता'—
फ्रान्सके तटसे उठी यह मुक्त-कण्ठोंकी अमर ध्वनि आज देती है
पीत सागरकी तरंगोंमें,
टेम्स, राइन, एल्व, पो, डैन्यूब, वोल्गा पार करती उमड़ती
सिन्धु-सीक्यांगकी विकलता
वह विकलता, जो बनी इन दग्ध-घड़ियोंमें हमारे लोक-जीव
अमूल्या विश्व-व्यापी क्रान्ति-वाणी।
लाल-सेनाके चरणसे फूटता जो मुक्तिका संगीत,
मिल उसीमें एक हो यह विश्व-जनताकी विकलाता,
आज सारे बन्धनोंको चूर करके, दूर करके सब निराशा
मास्को, न्यूयार्क, लन्दन और चुंकिंगके सहारे
फैलती है सर्वदेशोंमें,
काटती दुर्दान्त, क्रूर, प्रमत्त दुष्टोंका प्रसारित लौह-चक्र
विघ्न-सं
बन चली अपराजिता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनका आधुनिक साहित्य

प्रो० कृष्णकिंकरसिंह

चीनका प्राचीन साहित्य अपने-आपमें उतना ही विशाल, प्राचीन और ठोस है, जितना चीनकी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और इतिहास। वह साहित्य इतना कलापूर्ण और ललित है कि उसे पढ़ते समय मनुष्य अपनेको आनन्द-लोकमें विचरण करता हुआ पाता है। प्राचीन साहित्यमें परम्पराके प्रति सम्मानकी भावना है। उसकी पृष्ठभूमिका आधार परम्परागत बातें ही हुआ करती थीं। एक कालके साहित्यकार अपनेसे पहले युगके साहित्यसे श्वास ग्रहण करते थे। पर आधुनिक साहित्यमें इन बातोंका एकदम अभाव है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि आधुनिक साहित्यमें परम्पराकी एकदम उपेक्षा की गई है। इस आधुनिक साहित्यका स्रोत देशी नहीं, विदेशी है। उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्द्धके चीनका इतिहास विदेशियों द्वारा चीनके शोषण, अपमान आदिका इतिहास है। इस कालमें शान्तिप्रिय चीनी लोगोंने विदेशी तोपों, गोलों और विदेशियोंके सम्मिलित रूपसे काम करनेकी शक्तिको देखा। चीनी जनताने अनुभव किया कि उसे विदेशियोंके हाथों जो अपमान सहना पड़ रहा है, उसका एकमात्र कारण है चीनी जनतामें विदेशियोंमें पाए जानेवाले गुणोंका अभाव। इस कारण वे विदेशियोंके तोप-गोलेके रहस्योद्घाटनकी ओर झुके और तोप-गोलेका रहस्योद्घाटन करते समय इन्हें यह भी पता चला कि विदेशी बर्बरोंके यहाँ केवल तोप-गोले ही नहीं हैं, बल्कि उनका साहित्य, उनका सामाजिक संगठन आदि भी बहुत दृढ़ और ठोस हैं। जिस प्रकार विदेशी युद्ध-साधनोंको अपनानेमें चीनी लोग लगे, उसी प्रकार विदेशी साहित्यसे भी अपनेको परिचित कराने लगे। चीनका प्राचीन साहित्य यद्यपि बहुत सुन्दर और ललित है; पर वह आजकी लुटेरी दुनियाके लिए बहुत ही कोमल और स्वप्न-सा है। आजकी दुनियाके लिए जिस प्रकारकी सामग्री चाहिए, वह चीनके प्राचीन साहित्यमें नहीं मिलती और इसी कारण विदेशी सम्पर्कमें आनेके बाद चीनके तरुण मस्तिष्कने विदेशी साहित्यसे श्वास ग्रहण करना प्रारम्भ किया। इस विदेशी सम्पर्कमें आ चीनके साहित्यकारोंने जो-कुछ कहा है, वही चीनका 'आधुनिक साहित्य' कहलाता है।

चीनके आधुनिक साहित्यका जन्म-काल सन् १९१७ की साहित्यिक क्रान्ति माना जाता है। पर इसके पहले ही चीनी साहित्यमें विदेशी पुस्तकोंका अनुवाद धड़ल्लेसे प्रारम्भ हो गया था। वास्तवमें अनुवाद-साहित्य द्वारा ही चीनके विद्वान विदेशी साहित्यको अधिक जाननेमें समर्थ हुए। इस अनुवाद-साहित्यने ही चीनी मस्तिष्कको अधिक प्रभावित किया। सन् १९१७ की साहित्यिक क्रान्तिकी सबसे प्रधान घटना है भाषाके क्षेत्रमें हुआ आमूलचूल परिवर्त्तन। इसके पहले चीनका साहित्य उस भाषामें लिखा जाता था, जो सैकड़ों वर्षोंसे एक ही रूपमें चली आनेके कारण नाना बन्धनोंसे बँधकर जटिल हो गई थी और जिसमें लिखा हुआ साहित्य चन्द विद्वानोंकी ही चीज़ होता था। प्रजातन्त्रकी स्थापनाके बाद डा० हु-शी और मिस्टर चेन् तु-षिउने १९१७ ई०में आवाज़ उठाई कि 'गणतन्त्रसे फ़ायदा ही क्या, अगर वह प्राचीन बन्धनोंको तोड़ सबके लिए शिक्षा सुलभ न कर सके, ताकि साधारण किसान भी कह सके कि शासन-प्रबन्ध किस प्रकार होना चाहिए।' पर शिक्षा सुलभ तभी हो सकती थी, जब प्राचीन जटिल भाषाके स्थानपर सबकी समझ में आनेवाली सरल बोलचालकी भाषा (चीनी भाषामें बोलचाली भाषाको पै ह्वा कहते हैं) का प्रवेश साहित्यके क्षेत्रमें हो। इन दो सज्जनोंने बोलचालकी भाषाको साहित्यमें स्थान देनेका आन्दोलन उठाया; पर पुराने ढर्रेके विद्वानोंने इसका काफ़ी विरोध किया। बोलचालकी भाषाको साहित्यमें स्थान देनेकी आवाज़ समयकी पुकार थी और पुरानी भाषा एक तरहसे मर भी चुकी थी, इसलिए आन्दोलन चल निकला और साहित्य-क्षेत्रमें बोलचालकी भाषाका सिक्का जम गया। इसने चीनकी साहित्यिक धाराको बहुत दिनोंके लिए एक दूसरी ही दिशामें मोड़ दिया।

आधुनिक साहित्यको, जो पश्चिमके सम्पर्कका फल है, जाननेसे पहले संक्षेपमें यह बात जान लेनी चाहिए कि इस सम्पर्क से चीनी साहित्यको क्या फ़ायदा हुआ और क्या हानि। भाषाके क्षेत्रमें हुई क्रान्ति भी पश्चिमी सम्पर्कका ही फल है, क्योंकि इसके सभी प्रचारक पश्चिमी साहित्यके अच्छे जानकार थे या हैं। चीनी भाषाके शब्द-कोषमें बड़ी वृद्धि हुई। नए-नए विषयों—विज्ञान, पश्चिमी दर्शन, समाजशास्त्र, राजनीति आदि—के नए-नए भावों और बातोंको प्रकट करनेके लिए नए-नए शब्द, खासकर पारिभाषिक शब्द, गढ़े गए। इन विषयोंका चित्रण अधिक वास्तविक और वैज्ञानिक ढंगसे होने लगा। पुरानी भाषा बँधकर इतनी जटिल हो गई थी कि उसमें स्वतन्त्र शैलीमें लिखनेकी गुंजाइश ही नहीं थी। भाषाके क्षेत्रमें हुई क्रान्ति और विदेशी साहित्य की भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र और व्यक्तिगत शैलियोंके प्रभावसे चीनी साहित्यमें भी व्यक्तिगत शैलीका जन्म हुआ। साहित्यके रूपोंमें भी कितनी ही नई बातोंका समावेश हुआ, जैसे गद्य-काव्य, कहानी, आधुनिक नाटक, वैज्ञानिक समालोचना आदि। चीनमें उपन्यास यद्यपि प्राचीन कालसे ही लिखे जाते रहे हैं; पर पश्चिमी प्रभाव के कारण उपन्यास लिखनेकी टेकनीकमें काफ़ी परिवर्त्तन हुआ है। समालोचना-पद्धतिमें सुधार होनेके कारण लोग अधिक वास्तविक ढंगसे सोचने लगे तथा जीवन और साहित्यके बीच अधिक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामंजस्य स्थापित हुआ। पर पश्चिमी सम्पर्कसे हानि भी हुई। साहित्य-क्षेत्रमें अराजकताका दौरदौरा हो गया। पश्चिमकी नक़ल करनेमें लोग इतने व्यस्त हुए कि अपने-आपको भूल गए। चीन के लेखकोंको वास्तविक और मौलिक विचार-केन्द्रका पता नहीं लगा। प्राचीन और नवीनके बीच सामंजस्य स्थापित करनेकी शक्ति तरुण मस्तिष्कमें न होनेके कारण यह आधुनिक साहित्य बहुतोंके लिए, खासकर पुराने ढंगके विद्वानोंके लिए, कौतूहलकी चीज़ हो गई। चीनी भाषाका, जो यूरोपीय भाषाओंसे एकदम भिन्न है, यूरोपीकरण हुआ—यानी यूरोपीय भाषाओंके वाक्य-विन्यास आदिकी नक़ल चीनी भाषामें की जाने लगी—यह प्रयत्न हास्यास्पद सिद्ध हुआ, यद्यपि इससे कुछ अंशोंमें चीनी भाषा लचीली अवश्य हुई।*

भाषाके क्षेत्रमें हुई क्रान्ति और सन् १९१९ के सांस्कृतिक आन्दोलनके मेलसे इस नव-साहित्यके आगे बढ़नेका कार्य भी अनुवादसे ही प्रारम्भ हुआ। चीनी मस्तिष्कने, जो एकदम भूखा हो रहा था, एक बार ही हज़ारों वर्षोंके संचित विदेशी साहित्यको अपना लेना चाहा, और इसीलिए होमरसे लेकर आज तकके आधुनिक विदेशी लेखकोंकी कृतियोंका अनुवाद इस नव-साहित्यमें पाया जाता है। चीनी लेखकोंको जो-कुछ भी सामने दिखाई पड़ा, उसे उन्होंने चीनी भाषामें ले आनेकी कोशिश की। पर इस प्रयत्नका फल बहुत ठोस नहीं हुआ। इस कालकी मौलिक कृतियाँ 'चन्द्रकान्ता-सन्तति'के समान यद्यपि समयके कारण अपना मूल्य रखती हैं, पर साहित्यिक दृष्टिसे उनका कम ही मूल्य है। किन्तु इस कालमें मिस्टर लु-शूनकी लिखी हुई पुस्तक 'आह क्यु (Ah Q) की सच्ची आत्मकथा' (आह क्यू चङ् च्वान) और इनके लिखे निबन्ध काफ़ी ऊँचे दर्जेके हैं। लु-शूनके लेखोंमें मानवताकी पुकारके प्रति आदरका भाव है। इनके लेख तीक्ष्ण और व्यंग-पूर्ण हैं, जिन्हें इन्होंने अपनी एक खास शैलीमें लिखा है और इसी कारण वे बहुत ज़ोरदार हो गए हैं। इन्होंने अपनी शैलीमें प्राचीन साहित्यकी धीमी मधुर गन्धके साथ-साथ पश्चिमी वाक्य-विन्यासका विचारपूर्वक मणि-कांचन योग किया है। इनकी कहानियाँ भी बहुत सुन्दर हैं। लु-शूनके लिए साहित्य नैतिक अस्त्र था। वे 'कला कलाके लिए'के पक्षपाती नहीं थे। अनुवादके क्षेत्रमें लु-शून विदेशी पुस्तकोंके शब्दानुवादके पक्षपाती थे, जिस कारण उनका अनुवाद सरस नहीं हो सका है। विदेशी वाक्य-विन्यास जहाँ चीनी भाषाके वाक्य-विन्यासमें ठीक तरहसे नहीं आते थे, वहाँ भी वे विदेशी वाक्य-विन्याससे सामंजस्य लानेके लिए चीनी भाषाके वाक्य-विन्यासको तोड़-मरोड़कर रख देते थे। लु-शूनके अनुवादों तथा मौलिक रचनाओंका नवयुवक लेखकोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

* देखिए डा० लिन यु थाङ्की पुस्तक 'माइ कन्ट्री एण्ड माई पिपुल'का साहित्य-सम्बन्धी अध्याय।

बीसवीं शतीकी तीसरी दशाब्दीके प्रारम्भ होते-होते बोलचालकी साहित्यिक भाषामें दृढ़ता आने लगी और उसमें ज़ोरोंसे साहित्य-निर्माण होने लगा। पर बोलचालकी भाषा साहित्यमें स्थान देनेके समय लेखकोंमें जो उत्साह और स्फूर्ति वह धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगी और लोग प्रारम्भ-कालके लगनके साथ नहीं लिखने लगे। इसी समय कुछ लेखकोंने चाय, वर्षा आदि न-जाने कितने विषयोंपर क्या-क्या लिख यह बोलचालकी साहित्यिक भाषा ज्यों-ज्यों लचीली होती थी, त्यों-त्यों इसकी व्यंजना-शक्ति भी बढ़ती जाती थी। कारण इसमें कुछ अच्छे उपन्यास लिखे गए। पर फ़ दिशामें अराजकता छा गई। सन् १९१७ के पहले भी लेखक बोलचालकी भाषामें सैकड़ों वर्षोंसे उपन्यास लिखते रहे थे, यद्यपि बोलचालकी भाषामें लिखे गए उपन्यासोंकी गि साहित्यमें नहीं होती थी और बोलचालकी भाषाके लेखक भर्त्सना ही पाते थे। सन् १९१७ के बाद जब बोलचाल भाषाको साहित्यमें स्थान मिला, तो गद्य-लेखकोंको किस प्र गद्य-नमूनेको अपनाना चाहिए, इस दिशामें कोई कठिनाई हुई। उनके सामने बोलचालकी भाषामें लिखे गए उपन्यास-लेखकोंके गद्य मौजूद थे। आधुनिक लेखकोंको झाड़-झंखाड़ साफ़ करने-भरका ही काम करना पड़ा। पर लिखनेवालोंके सामने कोई आदर्श नहीं था। नए पद्यके लिए तो कोई नियम था, न नमूना ही। कवि जिस प्रकार चाहता लिखता था। इसीलिए इस कालके काव्यमें लालित्य तो है नहीं, बल्कि वह कड़ुवा और अपरिपक्व भी है। कवि लोग पश्चि काव्यकी बातोंकी नक़ल करने लगे और उन्होंने चीनी साहि अतुकान्त पद्य, सोनेट आदि सभी प्रकारके विदेशी छन्द प्रयोग किया। वे अंगरेज़ी पद्यके शब्दांशकी तरह चीनी भा एक-एक अक्षर (शब्द) को गिनकर पद्यमें रखते थे। कुछ तो इतनी दूर आगे बढ़ गए कि उन्होंने अंगरेज़ी पद्यके ल ही नहीं, बल्कि स्वराघात-प्रणालीको भी चीनी पद्यमें स्थान दि इस प्रकार जो पद्य बनते थे, वे न देशी होते थे, न विदेशी बल्कि उनके विषय भी अजीब होते थे और साथ-साथ छन्द यह था आधुनिक साहित्यके काव्यका प्रभात-काल। पर धीरे-धी इसमें गीति-काव्य लिखे जाने लगे। इस कालके नव-क सम्प्रदाय—शिन्-युए फाइ—(शिन्-युए नामक मासिक पत्रि नामपर इस सम्प्रदायका नामकरण हुआ था) के कवि अंगरेज़ी-साहित्यका काफ़ी प्रभाव था और वे लोग रोमां काव्य लिखते थे। इस सम्प्रदायके कवियोंने बोलचालकी भा पद्य लिखनेका ढाँचा (Form) तैयार किया और उसमें ल भरा। फिर भी इनके पद्य बहुत सरस नहीं होते थे। सम्प्रदायके अधिकांश कवियोंमें सबसे बड़ी कमी यह थी कि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

जो-कुछ लिखते थे, उसकी वास्तविक अनुभूति उन्हें बहुत कम होती थी। इस कारण इस सम्प्रदायकी अधिकांश रचनाएँ कृत्रिम-सी जान पड़ती हैं। पर इसने नव-काव्यको नव-रचना-पद्धतिकी टेकनीककी सामयिक शिक्षा दी थी। इस सम्प्रदायके दो कवियों—शु चु-मो और वन-इ-तो—के नाम उल्लेखनीय हैं। शु चु-मोके प्रेम-सम्बन्धी पद्य नव-चान्द्र सम्प्रदायकी मूल्यवान निधि हैं; पर काव्य-कलाकी दृष्टिसे वन-इ-तोकी रचनाओंका स्थान शु चु-मोकी रचनाओंसे ऊँचा है। वास्तवमें नव-चान्द्र सम्प्रदायकी इज़्ज़त वन-इ-तोकी रचनाओंके कारण ही है। इनकी रचनाओंमें कल्पनाकी उड़ान, कलापूर्ण अभिव्यंजना और भावोंकी गम्भीरता है। शु चु-मोकी असामयिक मृत्यु और वन-इ-तोके नव-साहित्यसे हटकर प्राचीन साहित्यमें लग जानेके साथ-साथ नव-चान्द्र सम्प्रदाय भी समाप्त हो गया।

नव-चान्द्र सम्प्रदायके समाप्त होते ही निर्माणकारी सम्प्रदाय (छुवाङ् चौ-श) के लेखकों और कवियोंने साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया। यद्यपि यह सम्प्रदाय पहले से ही साहित्य-निर्माण में लगा हुआ था; पर नव-चान्द्र सम्प्रदायके समाप्त होनेपर ही इनका कार्य-क्षेत्र विस्तृत हुआ और लोगोंपर इसकी धाक जमी। यह सम्प्रदाय नव-चान्द्र सम्प्रदायसे अधिक सुसंगठित था। इस सम्प्रदायके अधिकांश लेखक और कवि जापानसे पढ़कर लौटे हुए विद्वान थे। इसलिए इस सम्प्रदाय द्वारा निर्मित साहित्यमें कुछ जापानी साहित्यकी भी छाप है। इन लेखकोंने अपने उपन्यासोंमें प्रेमका स्वाभाविक चित्रण किया है, आलोचनात्मक साहित्यकी भी सृष्टि की है; पर वह अधिकांशतः साहित्यकी अपेक्षा कोरा नारा ही है। कुछ लेखकोंके यात्रा-सम्बन्धी निबन्ध उच्चकोटिके हैं। इस सम्प्रदायके नेता थे क्वो मो-ज, जो बहुत चीनी विद्वानोंके अनुसार आधुनिक साहित्यके सर्वप्रथम वास्तविक कवि हैं। कहा जाता है कि इनकी कविता वहाँसे प्रारम्भ होती है, जहाँ नव-चान्द्र सम्प्रदायके कवि अन्त करते हैं। इनकी कविताओंमें प्राचीन व्यवस्थाके प्रति तीव्र विरोधका भाव है। इन्होंने जो-कुछ लिखा है, उसमें उमड़ते हुए भावोंका स्वाभाविक प्रवाह है। साथ ही इन्होंने कविता करनेमें प्राचीन साहित्यके रूपोंको अपनाया है। भावोंके स्वाभाविक प्रवाहके साथ-साथ प्राचीन कविताके सुव्यवस्थित रूपका योग होनेसे इनकी कविताओंमें रूखापन नहीं आने पाया है, जो अक्सर इस कालके कवियोंकी रचनाओंमें पाया जाता है। इन्होंने ही सर्वप्रथम आधुनिक चीनी कवियोंका ध्यान प्रकृतिसे प्रेरणा प्राप्त करनेकी ओर आकर्षित किया। पर ये उस प्रकृतिकी ओर इशारा करते हैं, जो विचार-शक्तिको उत्तेजित करती है और जिसमें निहित असंख्य अर्थोंको केवल मनुष्य ही समझते हैं। को मो-जने अनुवादके क्षेत्रमें भी बड़ा काम किया है। इन्होंने ही सर्वप्रथम उमर खय्यामकी रुबाइयोंसे आधुनिक चीनको परिचित कराया और गेटेकी रचनाओंको ब्योरेवार ढंगसे चीनी साहित्यमें लाए।

नव-चान्द्र सम्प्रदाय और निर्माणकारी सम्प्रदाय दोनों ही रोमान्टिक साहित्य-निर्माण करनेमें अधिक फँसे हुए थे। वास्तव में इन लोगोंने उस साहित्यका निर्माण नहीं किया, जो जनता चाहती थी। इस कालकी सबसे बड़ी देन है कविता; पर कविता सर्वसाधारणसे एकदम भिन्न हो गई थी। बोलचालकी भाषा भी ऐसे साँचेमें ढलती जा रही थी, जिसे जनता नहीं चाहती थी। देशकी राजनीतिक अवस्था भी ठीक नहीं थी। इन सब कारणोंसे असन्तोषका दौरदौरा था। फिर भी इस असन्तोषके बीच गद्यकी धारा बह रही थी। इस कालके गद्य-लेखकोंमें लु शून, चौ चो-जन, लिन् यु थाङ् आदि प्रसिद्ध हैं। इस कालके गद्य-लेखक यु-सूज कहानी मासिक 'श्याव ष्वो युए पौ' नामक पत्रिकाओं द्वारा गद्य-साहित्यका निर्माण कर रहे थे। कहानी-मासिक तो साहित्य-अनुसन्धान-संस्था (वन गुए यिएन च्यु ह्वे) का दृढ़ अङ्ग था। इस संस्थामें उस कालके प्रायः सभी प्रकारके लेखक सम्मिलित थे। इस संस्थाके लेखकोंके प्रमुख दो कार्य थे—एक तो रूसी क्रान्तिकारी साहित्यका अनुवाद करना तथा दूसरे उस साहित्यका निर्माण करना, जिससे जनता आनेवाली राजनीतिक उथल-पुथलमें भाग ले सके; क्योंकि उसी समय क्वोमिनताङ् (चीनकी राष्ट्रीय महासभा) उत्तरी युद्ध-अधिपतियोंको दबाकर देशमें एकता लानेकी तैयारी कर रही थी। इसी समय चीनी साहित्यमें राजनीतिका प्रवेश हुआ।

सन् १९२६-२७ में क्वोमिनताङ्ने उत्तरी युद्ध अधिपतियोंको दबाकर देशमें एकता स्थापित की। उसके इस कार्यमें देशके सभी विचारवालोंने योग दिया। पर युद्ध-अधिपतियोंके शमनके बाद विभिन्न मतवालोंके बीच पटरी नहीं बैठी, इस कारण देशमें गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ। उग्र विचारवाले जो चाहते थे, क्वोमिनताङ् द्वारा वह नहीं प्राप्त होता देख उन लोगोंके बीच असन्तोषका भाव बढ़ा और वे लोग दूसरी ओर बढ़े। युवक-आन्दोलन भी क्वोमिनताङ् द्वारा दबा दिया गया। इन सबके प्रतिक्रिया-स्वरूप क्रान्तिकारी साहित्यका जन्म हुआ। इस कालमें साहित्य पूर्णरूपसे उग्रवादियोंके हाथोंमें चला गया। उन नवयुवक क्रान्तिकारियोंकी रचनाएँ अधिकतर तीव्र प्रचार-मात्र ही हैं—साहित्यिक मूल्यकी कृतियाँ बहुत कम हैं। असलमें ये क्रान्तिकारी उस समय प्रतिदिनकी वास्तविक समस्याओं और संघर्षमें इतने फँसे थे कि उन्हें यह सोचने और समझनेका अवसर ही नहीं था कि वास्तविक साहित्य कहते किसे हैं और उसका निर्माण किस ढंगपर होना चाहिए। जीवन और कलाकी बातें इन क्रान्तिकारियोंके मत-मतान्तरोंके बुलन्द नारोंके नीचे एकदम दब गई थीं। सम्पूर्ण क्रान्तिकारी साहित्यके बीच कुछ ही कृतियाँ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साहित्यिक मूल्य रखती हैं। तिङ् लिन्का उपन्यास 'अँधेरेमें' (चाय ह्व आन् चुङ्) सुन्दर और कुछ साहित्यिक मूल्य रखता है। इसमें तिङ् लिन्ने चीनकी परम्परागत स्त्री-मर्यादाके, जिसने स्त्रियों को वास्तविक क्षेत्रसे एकदम अलग कर रखा था, विरुद्ध आवाज़ उठाई है। मौ-तुन्की कृतियाँ तिङ् लिन्से अच्छी और अधिक साहित्यिक मूल्य रखती हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'वसन्त-ऋतुके रेशमी कीड़े' (छ्वन् छान्) में चीनकी प्राचीन कृषि-प्रथाके टूटनेकी विवेचना की है और 'गोधूलि-काल' (च येह) में विदेशी प्रतियोगिताके कारण चीनके नव उद्योग-धन्धोंकी असारता की ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया है। 'गोधूलि-काल' चीन के आधुनिक साहित्यकी सबसे बड़ी पुस्तक है। मौ-तुन्के सामने क्रान्ति नग्न सत्यके रूपमें थी, और इसकी झलक इनकी 'अभ्रम', 'संशय' और 'अनुसरण' नामक रचनाओंमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। नव-साहित्यमें ये ही प्रथम उपन्यासकार हुए, जो छितरे-बितरे कथा-वस्तुओंको सुन्दर ढंगसे सजाकर गूँथना जानते थे। व्यंगपूर्ण वाक्योंको भी इन्होंने बड़ी खूबीसे अपनी रचनाओंमें रखा है। मौ तुन्की शैली भावात्मक नहीं है। ये जो-कुछ कहते हैं, प्रत्यक्ष रूपसे और सीधे-सादे शब्दोंमें। चीनी साहित्यमें इस प्रकारकी शैली बहुत कम पाई जाती है। पन्-छुङ्-वन् कहानी कहनेमें बेजोड़ हैं। इनकी कहानियोंमें सुन्दर-सुन्दर मुहावरों और अस्थिर भावोंकी प्रधानता रहती है। पा-चिन् की रचनाएँ विद्यार्थियों और नवयुवकोंके बीच बहुत ही प्रिय हैं। ये पूरे व्यक्तिवादी हैं, और इनकी रचनाओंमें उस प्रकारकी बातें पाई जाती हैं, जो कल्पना-जगत्के प्राणी—विद्यार्थी-समूह—को अधिक आकर्षित करती हैं। इनके लिए क्रान्ति बौद्धिक विषय है और इसकी झलक इनकी रचना 'अशान्त जल' (चि त्यु) में पाई जाती है। इन मौलिक रचनाओंके अलावा इस कालमें रूसके क्रान्तिकारी साहित्यकी सैकड़ों पुस्तकोंका अनुवाद चीनी भाषामें हुआ। इस समयके साहित्यपर रूसी प्रभाव साफ़-साफ़ दिखाई पड़ता है। आधुनिक साहित्यका यह युग सचमुच अशान्त था और साहित्यके क्षेत्रमें अराजकता छा गई थी।

पर इसकी प्रतिक्रिया भी शीघ्र ही शुरू हुई। इस कालमें दक्षिणमें शंघाई और उत्तरमें पेफिङ् (पेचिङ्—पेकिङ्) ये दो स्थान ही साहित्यके प्रमुख केन्द्र थे और इन दोनों स्थानोंके साहित्यकारोंकी प्रवृत्तियाँ दो भिन्न-भिन्न तरहकी थीं। शंघाई आधुनिक सभी सामानोंसे युक्त चीनका प्रसिद्ध नगर है और छापे आदिकी सुविधा होनेके कारण बहुतसे लेखकोंका वहाँ इकट्ठा होना भी स्वाभाविक था। शंघाईकी विदेशी बस्तियाँ उग्रवादी लेखकोंके आश्रयके लिए भी उपयुक्त स्थान थीं। संक्षेपमें शंघाई-स्थित साहित्यकारोंका वातावरण अधिकतर व्यावसायिक और राजनीतिक था। क्रान्तिकारी साहित्यके प्रतिक्रिया-रूपमें शंघाईसे प्रकाशित होनेवाली 'आधुनिक' (शिएन ताइ) और 'साहि (वन् शुए) नामक पत्रिकाओंका काम बड़ा ही ठोस हुआ है 'आधुनिक' पत्रिकाके एक सम्पादक श् च् छन् सफल मनोवैज्ञानि कहानी-लेखक थे और दूसरे सम्पादक तु हङ् सुन्दर उपन्यास के साथ-साथ सफल समालोचक भी थे। सम्पूर्ण क्रान्तिक साहित्यमें कविता बहुत कम लिखी गई है, और जो लि भी गई है, वह साहित्यिक दृष्टिसे कोई मूल्य नहीं रखत 'आधुनिक' पत्रिका द्वारा कुछ वास्तविक कवियोंकी रचनाएँ लो को पढ़नेको मिलीं। इस नव-काव्य-आन्दोलनके नेता थे वाङ्-पु। इन्होंने कविताके क्षेत्रमें रूसी प्रभावके स्थानपर फ्रांसी प्रभाव लाकर कविताको आडम्बरपूर्ण होनेसे बचा लिया यद्यपि इनकी कविताओंके वर्णित भाव अस्पष्ट होते थे; पर लिखते थे अपनी एक खास शैलीमें। लेकिन इनसे प्रभावि कवियोंने सांकेतिक कविताओंको केवल वक्रोक्ति-मात्र ही समझ 'आधुनिक' पत्रिका द्वारा साहित्य-क्षेत्रमें रूसी प्रभावके स्थान अंगरेज़ी और अमेरिकन प्रभाव भी पड़ना प्रारम्भ हुआ।

प्राचीन कालसे पेफिङ् चीनकी विद्या, बुद्धि और संस्कृति केन्द्र रहा है। जो शंघाईके व्यावसायिक और राजनीति वातावरणको साहित्यके लिए उपयुक्त नहीं समझते थे, स साहित्यकारोंके लिए पेफिङ् उपयुक्त स्थान था। पेफिङ्में ही चीन बड़े-बड़े आधुनिक विश्वविद्यालय थे और वहीं डा० हु शी त उनके ही समान बहुतसे विद्वान साहित्य-निर्माणमें लगे हुए थे पेफिङ्से कुछ अच्छी पत्रिकाएँ भी निकलती थीं। वहाँसे प्रका शित होनेवाला समाचारपत्र 'ता कुङ् पौ'के 'साहित्यिक संस्करण' में अच्छे-अच्छे कवियोंकी कविताएँ और उपन्यास-लेखकोंकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इस समाचारपत्रमें प्रकाशित 'मूल्य वान घोड़ा' (नौ मा) नामक लम्बी वृत्तान्तात्मक कविता, जाई ये और चु क्वाङ् छिएनके आलोचनात्मक निबन्ध नव-साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति हैं। इस कालमें सचमुच ही अच्छे साहित्यका निर्माण पेफिङ्में हुआ। पिएन च-लिन्की कविताएँ, लि क्वाङ् थिएन और हो चि-फ़ाङ्के निबन्ध, श्याव छिएन, लु फ़ङ् और फ़ङ् मिङ्के उपन्यास आदि नव-साहित्यकी गर्व करने-योग्य रचनाएँ हैं। श्याव चुन नामक लेखकका लिखा हुआ उपन्यास 'अगस्त मासमें गाँव' (पा युए ति श्याङ् छ्वन्*) इस समयका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है।

इसी समय साहित्यिक मूल्यके नाटक भी रचे गए। 'नाटक दृश्य काव्य है। उसका बहुत-कुछ आकर्षण अभिनय पर अवलम्बित रहता है। अभिनय द्वारा नाटकोंकी ओर रुचि बढ़ती है और उनका अच्छा प्रचार होता है। चीनवाले नाटक देखना बहुत पसन्द करते हैं। पर प्रजातन्त्र-स्थापना-कालसे

* इसका अनुवाद रूसी और अंग्रेज़ी भाषाओंमें हो चुका है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 3004

बीसवीं शतीकी तीसरी दशाब्दीके अन्त तक चीनका वातावरण बहुत ही अशान्त था। इस कालमें अभिनयका कोई अच्छा प्रबन्ध न था, इसी कारण बहुत अच्छे नाटक भी नहीं लिखे गए। सन् १९१२ में प्रजातन्त्रकी स्थापनाके तुरत बाद ही 'सांस्कृतिक नाटकों'का प्रचार हुआ था। यह प्राचीन परम्पराके नाटकोंके विरुद्ध विद्रोह था। पर इस प्रकारके नाटकोंको सफलता नहीं मिली। नाटककार किसी कथावस्तु (खासकर देशभक्ति-मूलक) को लेकर केवल एक ढाँचा खड़ा कर देते थे और अभिनयके समय पात्र अपनी इच्छानुसार बोलते जाते थे, जो अक्सर लम्बे व्याख्यानके समान होता था। इससे देशभक्तिका प्रचार तो ज़रूर हुआ ; पर कलाकी दृष्टिसे यह एकदम असफल रहा। इसके बाद थोड़े दिनों तक चीनी नाटककार विदेशी नाटकोंका अनुवाद करके ही सन्तुष्ट रहे। विदेशी नाटकोंसे प्रेरणा पाकर चीनी नाटककारोंने भी 'नव-संस्कृति'की बातोंको फैलानेके लिए कुछ मौलिक नाटक लिखे। इस कालमें लिखे गए नाटकोंमें डा० हु-शीका एकांकी नाटक 'जीवन-पर्यन्त कार्य' (चुङ् शन् ता ष) तथा कुछ और लेखकोंकी इसी ढंगकी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके विषय थे कानफ्यूसियस-विरोधी बातोंका प्रचार करना—खासकर शादी और परिवारसे सम्बन्धित कानफ्यूसियस-विचारोंका विरोध। बीसवीं शतीकी तीसरी दशाब्दीमें चीनके रंगमंचपर थिएन हान् और उनकी नाटक - मण्डली 'नान् क्वो'का बोलबाला था। इस मण्डलीने नवीन ढंगके नाटकोंके देखनेकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित किया और अभिनय-कलाकी दिशामें काफ़ी सुधार किया ; पर इसके द्वारा कलापूर्ण नाटक रचनेकी दिशामें कोई काम नहीं हुआ। इस दशाब्दीमें और भी कितने ही पश्चिमी नाटकोंके अनुवाद हुए। तीसरी दशाब्दीके बीतते-बीतते चीनका राजनीतिक वातावरण कुछ शान्त हुआ और नाटकोंके अभिनय आदिकी भी कुछ व्यवस्था हुई। इन सब कारणोंसे चीनी नाटककार अच्छे नाटक लिखनेकी ओर झुके।

इस शतीकी चौथी दशाब्दीके प्रारम्भ कालसे ही अच्छे नाटक लिखे, जाने लगे जिनमें छौ यू और लि चिएन-चुके नाटक काफ़ी सुन्दर हैं। छौ यूके नाटक दुःखान्त और लि चिएन-चुके सुखान्त होते हैं। इन नाटककारोंने अपनी रचनाओंमें नाट्यशास्त्रकी टेकनीकका निर्वाह अच्छी तरह किया है। वास्तवमें ये नाटककार प्राचीन और आधुनिकके बीचसे अपना रास्ता निकाल रहे थे। छौ यूके नाटकोंपर यूनानी दुःखान्त नाटकोंका काफ़ी प्रभाव है और साथ ही सिनेमा-जगतका भी। इनके छौ यूके 'एकान्त' (युआह इए), 'वज्र और वर्षा' (ले-यू) और 'सूर्योदय' (ज़ घू) नामक नाटक बहुत लोकप्रिय हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि सन् १९२७ के बाद साहित्य उग्रवादियोंके हाथोंमें पड़कर किस प्रकार केवल प्रचारका साधन हो गया था। सन् १९३१ में जापानियों द्वारा मंचूरियापर अधिकार कर लेने तथा सन् १९३२ में शंघाईके आसपास आक्रमण कर देनेके कारण लोगोंने महसूस किया कि साहित्यको देशकी रक्षाके काममें हाथ बँटाना चाहिए। लेकिन फिर भी साहित्यिक वातावरण एक तरहसे शान्त ही रहा, कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। लिन् यु-थाङ्ने उग्रवादियोंके संकीर्ण मतवादसे तंग आकर आवाज़ उठाई कि समय आ गया है, जब मानवी साहित्यका निर्माण स्थिर रूपसे और मनुष्य-मात्रकी भलाईके लिए होना चाहिए। लिन् यु-थाङ्के अनुसार "चीनी लेखकोंमें सबसे बड़ी कमी यह थी कि वे लोग जीवनको जाने बिना ही जीवनको ऊँचा उठानेमें दत्तचित्त हो गए थे।" उन्होंने इस कमीको दूर करनेका उपाय यह बताया कि लेखक जीवनमें प्रतिदिन घटनेवाली बातोंको पश्चिमी पत्रकारोंकी दृष्टिसे लिखनेमें दत्तचित्त हों। लिन यु-थाङ्की बातोंका प्रभाव भी उस कालके बहुतसे लेखकोंपर पड़ा। फिर भी चौथी दशाब्दीके मध्य-कालमें साहित्यिक वातावरण शान्त ही था ; पर जापानियोंका दबाव चीनपर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। इसीलिए देशकी रक्षाके लिए साहित्य-क्षेत्रमें भी संयुक्त-मोर्चेकी आवाज़ बड़े ज़ोरोंसे उठने लगी। सन् १९३६ में चीनी कम्युनिस्तोंके गढ़ शिआन्में मार्शल चिआङ् काई-शेकका अपहरण हुआ ; पर यह घटना तुरत ही शान्त हो गई। इस घटनाके शान्त होनेके साथ-साथ साहित्यके क्षेत्रमें फैले हुए मत-मतान्तर भी मिट गए। साहित्यने दूसरे ही क्षेत्रमें पदार्पण किया, और वह क्षेत्र था राष्ट्रीयताका। १९३७ ई० में जापानने चीनपर चढ़ाई कर दी। उस कालसे आज तक वहाँ जिस साहित्यका निर्माण हो रहा है, उसे आधुनिक चीनका 'युद्ध-कालीन साहित्य' कह सकते हैं।

ऊपर कहा गया है कि युद्ध-कालके पहले साहित्य-निर्माणके दो प्रमुख केन्द्र थे—पेफिङ् और शंघाई। दोनों स्थानोंके साहित्यकार एक दूसरेको अच्छी नज़रसे नहीं देखते थे। पर युद्ध छिड़नेपर देशकी रक्षाके लिए संयुक्त-मोर्चेकी आवश्यकता हुई और १९३८ ई०में राष्ट्रीय आक्रमण-विरोधी लेखक-संघकी स्थापना हुई। इस संघमें सभी साहित्यकार मत-मतान्तरको भूल कर सम्मिलित हुए। इसी समय राष्ट्रीय आक्रमण-विरोधी नाटककार-संघकी भी स्थापना हुई। चीनकी युद्ध-कालीन साहित्यिक नीतियाँ घोषित हुईं—"इस युद्ध-कालमें साहित्य अवकाशका समय बितानेकी चीज़ नहीं है, बल्कि वह है जनताको संगठितकर युद्धमें विजय प्राप्त करनेका साधन। इसमें चीनी जीवनकी झाँकी और चीनके प्रेम, समाजका बलिदान और देशभक्तिके दर्शनका प्रतिरूप होना चाहिए।" चीनी साहित्यकार युद्ध-कालमें इसी नीतिका पालन कर रहे हैं। मिस्टर चु फु-सुङ्ने 'युद्ध-कालीन चीनी साहित्य' शीर्षक निबन्धमें लिखा है—"चीनी लेखक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आँसू और खूनके बीच रहते हुए एक नव-साहित्यके निर्माणमें लगे हैं। जनताको युद्धमें भाग लेनेके लिए संगठित करनेमें उन्होंने साहित्यको शिक्षा और प्रचारका साधन बनाया है। उन्होंने अपने नाटक, कहानी आदिमें सैनिकों, किसानों और इसी प्रकारकी साधारण जनताका चित्रण किया है। युद्धके पहले चीनके लेखक बड़े-बड़े शहरों—शंघाई, पेफिङ् आदि—में रहते थे। वे लोग साधारण जनतासे एकदम अपरिचित थे, क्योंकि चीन—कृषि-प्रधान देश—की जनता खेतों, गाँवों और क़स्बोंमें रहती है। जब समुद्र-तटवर्त्ती बड़े-बड़े शहर जापानके अधिकारमें चले गए, तो वहाँके रहनेवाले साहित्यकारोंको विवश होकर देशके भीतरी भागोंमें आना पड़ा और वहाँ उन्होंने वास्तविक रूपमें चीनकी सर्वसाधारण जनताका परिचय प्राप्त किया।"

युद्धके कारण काग़ज़ और छपाईकी भयंकर कठिनाई होते हुए भी इस कालमें बहुतसे उपन्यास, कहानी, काव्य आदिकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन सभी प्रकारकी साहित्यिक पुस्तकों में लगभग एक ही प्रकारका विषय पाया जाता है। अधिकांश पुस्तकोंमें युद्धसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं और उनसे जनताके जीवनपर पड़नेवाले प्रभावोंका वर्णन होता है। युद्ध-कालीन उपन्यास, नाटक, कहानी आदिके विषय इस प्रकार हैं—किस तरह जापान चीनके निर्दोष नागरिकोंपर अत्याचार ढाता है; किस प्रकार शहर, गाँव, क़स्बे आदि बरबाद किए जाते हैं; किस क्रूरताके साथ स्त्रियोंपर बलात्कार किया जाता है और बच्चों-बूढ़ोंपर गोलियाँ चलाई जाती हैं; किस प्रकार जापानी अत्याचारसे तंग आकर शान्त किसान गुरिल्ला-फौजके रूपमें संगठित होते हैं; किस प्रकार देशभक्ति व्यक्तिगत ऐश-आराम और पारिवारिक मोह ममतापर विजयी होती है; भिन्न-भिन्न मत, सम्प्रदाय, वर्ग आदिके लोग किस प्रकार संयुक्त रूपसे शत्रुसे मोर्चा लेनेके लिए इकट्ठे होते हैं; युद्ध छिड़नेपर किस प्रकार बहादुरीके साथ लोगोंने स्थान-परिवर्त्तन किया है और इस काममें चीनके निचले वर्गके लोगोंने किस प्रकार सहायता पहुँचाई है; विद्यार्थी किस प्रकार युद्धमें सहायता देते हैं तथा उनका जीवन किस कठिनाईसे बीत रहा है; ग्राम्य-जीवन कैसा है और किस प्रकार गाँवके लोग युद्धमें सहायता दे रहे हैं; किस प्रकार चीनके श्रीमन्त आदिनिवासी चीनी जनताके साथ मिलकर शत्रुसे लोहे लेते हैं; युद्ध-जनित समस्याएँ क्या हैं; किस प्रकार युद्ध जीवनपर प्रभाव डाल रहा है; युद्धके कारण सामाजिक ढाँचे, रीति-रस्म आदिमें क्या परिवर्त्तन हो रहे हैं; राष्ट्रका पुनर्निर्माण युद्धके बाद किस प्रकार होना चाहिए आदि। युद्ध-कालीन उपन्यास, नाटक, कहानी आदिके नायक किसान, मज़दूर, सिपाही आदि ही होते हैं।

इस युद्ध-कालमें बड़े-बड़े उपन्यास लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। कविता-क्षेत्रमें भी क्रान्ति हुई है। चीनके प्राचीन साहित्यमें लम्बे काव्यका एकदम अभाव है, यहाँ तक कि चीनी साहित्यमें एक भी महाकाव्य नहीं पाया जाता। पर युद्ध-कालमें लम्बी-लम्बी कविताएँ काफ़ी लिखी गई हैं। गीति-काव्यका अधिक प्रचार हुआ है। ग्रामिण गीतोंके संग्रह करनेकी ओर भी लोगों का ध्यान गया है। गाने-योग्य लम्बी-लम्बी कविताओंमें भाषण देनेवाली पुनरुक्ति तथा लोकप्रिय नारोंका प्रयोग किया गया है, ताकि जनतापर उसका प्रभाव अधिक पड़े। नाटकोंने इस कालमें केवल प्रचार और शिक्षाके काममें ही सहायता नहीं पहुँचाई है, बल्कि नाट्य-कलाकी दृष्टिसे भी इसकी प्रगति कुछ अच्छी हुई है। युद्धके प्रारम्भमें छोटे-छोटे एकांकी नाटक अधिक लिखे गए हैं, जिनमें देशभक्ति, बलिदान आदिकी सनसनीपूर्ण बातें ही अधिक दर्शाई गई हैं। ये नाटक अधिकतर प्रचारके लिए ही लिखे गए थे। ये इतने सरल और आडम्बर-रहित हैं कि सड़कके एक किनारे खेले जाते थे। सन् १९३९ के बाद नाटकोंमें गम्भीर बातें आने लगीं—खासकर युद्ध-जनित जटिल समस्याएँ ही नाटकोंका प्रधान विषय हुईं। ज्यों-ज्यों युद्ध अवधि बढ़ती गई, नाटककारोंने नाटकके विषय और टेकनीकमें काफ़ी सुधार किए। देशके भीतरी भागोंमें रंगमंच आदि बनजाने के कारण अभिनय भी अच्छी तरह होने लगा। सरकारकी ओर से भी इस दिशामें काफ़ी प्रोत्साहन मिला। सन् १९४१ के बाद जो नाटक लिखे जा रहे हैं, उनमें इस बातका अधिक ध्यान है कि युद्ध-जनित बुराइयोंको किस प्रकार हटाया जाय तथा युद्ध जीतनेके लिए और युद्धके बाद राष्ट्रीय पुनर्निर्माण-कार्यके लिए किस प्रकार देशकी जनतामें नव-उत्साह भरा जाय। परिमित साधनोंके होते हुए भी पत्र-पत्रिकाएँ काफ़ी निकल रही हैं।

चीनका आधुनिक साहित्य कल्पना-प्रधान है, क्योंकि आधुनिक चीनके लेखक आदर्शोंसे प्रभावित होकर साहित्य-निर्माण में लगे थे और लगे हुए हैं। पर यह साहित्य सदा जीवनको लेकर आगे बढ़ा है, यद्यपि राजनीतिका पुट आ जानेसे यह कुछ गाँधी भी हो गया है। आधुनिक साहित्य कड़ुवा और अस्थिर है; इसमें बदलती हुई दुनियाका चित्र है, जिसे लेखकोंने विश्वासके साथ अंकित किया है। यह साहित्य समयकी पुकारकी प्रतिध्वनि है। यह आधुनिक साहित्य बहुत गर्व करने योग्य नहीं है, क्योंकि यह केवल गत २५ वर्षोंके उद्योगका फल है, और चीनके २५ वर्ष गृह-युद्ध, विदेशी आक्रमण आदि घटनाओंसे भरे हुए हैं। फिर भी चीनका तरुण मस्तिष्क आधुनिक युगमें क्या सोच-समझ रहा है, उसकी आशा-आकांक्षा क्या है, आदि जानने का एकमात्र साधन यह आधुनिक साहित्य ही है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

रोमाँ रोलाँ

श्री महादेव साहा

विक्टर ह्यूगोकी प्रतिभाके बारेमें कवि स्विनबर्नने कहा था—'जीवनमें मैं एक ही बार ह्यूगोकी प्रतिभाके स्वरूपकी उपलब्धि कर सका हूँ।' पर कहाँ और कब? बचपनमें एक बार वे समुद्र पार करके अस्टेण्डसे घर लौट रहे थे। अचानक समुद्र में भीषण तूफ़ान उठा और बिजली कड़कने लगी। समुद्रमें उन्होंने देखा—बिजलीकी अविराम कड़कड़ाहट और अग्निवर्षा, आलोकका अबाध उल्लास और तूफ़ानका संघर्ष तथा उनके बीचमें स्थिर पूर्ण चन्द्र और उसके नीचे जलते हुए जलका उच्छ्वास। इसीको देखकर कविने कहा—'एक ठोस और छोटे प्रतीकके रूपमें यही विक्टर ह्यूगोकी प्रतिभाकी सर्वश्रेष्ठ परिभाषा है।' रोमाँ रोलाँके व्यक्तित्व और प्रतिभाके सम्बन्धमें यही बात और भी व्यापक रूपसे सच और उपयुक्त है। रोलाँका व्यक्तित्व समुद्र और प्रलयंकारी तूफ़ानके बीच अचंचल पूर्ण चन्द्र है; और रोलाँकी प्रतिभा भी आलोककी उद्दामता, बिजलीका स्फुलिंग तथा ज्वलन्त जल-राशिके तुल्य है। आज मानवताके सबसे महान आदर्श—साम्यवाद—के लिए, 'सामाजिक क्रान्तिके रास्ते शान्ति'के लिए, 'मैं आराम नहीं करूँगा'की वज्र प्रतिज्ञा लेकर लड़नेवाले महामनीषी रोमाँ रोलाँका जीवन-दीप निर्वापित हो गया है। पर आजन्म उन्होंने साम्राज्यवाद, पर-पीड़क अंधी उग्र राष्ट्रीयता, शोषक-वर्गका सर्वग्रासी लोभ तथा शासक-वर्गकी निष्ठुरतासे मानव-समाजको मुक्त करनेके लिए मनुष्यकी दुर्मति, अनुदार आत्मपरायणता और संकीर्ण जाति-विद्वेष और समग्र मानव-समाजको मुट्ठी-भर लुटेरोंके चंगुलसे छुड़ानेके लिए अथक संघर्ष किया। उनके महान आदर्श की तलवार म्यानमें बन्द नहीं है, दुनियाके छठे हिस्सेमें वह रक्त-मांसमें रूपायित हो चुकी है। उनके महान आदर्शके लिए, फ़ाशिज़्म और साम्राज्यवादके विरुद्ध असंख्य जनताकी जय-यात्रा देखकर उन्हें कितनी ख़ुशी हुई होगी? पर दुर्भाग्यवश आज जब उनके वास्तववादी स्वप्नके स्वर्णिम प्रभातकी उषा झिलमिलाती हुई सामने आ रही है, उसका स्वागत करनेके लिए वे नहीं हैं!

आजसे ७८ वर्ष पहले, एक पुराने फ्रांसीसी परिवारमें, वर्गेण्डी-प्रान्तके क्लेमेसी नामक स्थानमें रोलाँका जन्म हुआ था। उनकी प्राथमिक शिक्षा यहींके विद्यालयमें हुई। अपने आरम्भिक जीवनका वर्णन करते हुए रोलाँने लिखा है—"मैं केन्द्रीय फ्रांसके एक नगरमें पैदा हुआ, जहाँ हमारे पुरखे सदियोंसे बस गए थे। यहीं मेरे जीवनके पहले १४ वर्ष बीते। हमारा वंश विशुद्ध फ्रांसीसी—बिना किसी विदेशी मिश्रणके—और कैथलिक मतको माननेवाला है। सन् १८८० में मैं पेरिस आया। इससे पहले मैं निवर्नेके उस पुराने ज़िलेके वातावरणसे घिरा रहा, जिसके आकर्षक घेरेमें बाहरी दुनियाकी कोई भी बात नहीं पहुँचने दी जाती थी। अतः अपने बाल्यकालमें मैंने दुनियाके सब रंगोंका ज्ञान गाल (फ्रांस) की मिट्टीसे बने इस घरौंदे और यहाँके स्वच्छ नीले आकाश तथा नदियोंसे ही प्राप्त किया। आगे चलकर जब मैंने विचार-जगत्के विस्तृत प्रांगणमें प्रवेश किया, तो मुझे किसी देशकी कोई भी चीज़ अजनबी नहीं जान पड़ी। मस्तिष्कके जिन पहलुओंको मैंने अन्यत्र पाया या महसूस किया, मूलतः वे ठीक मेरे-जैसे ही थे। बाहरके अनुभवने केवल मेरे अपने मस्तिष्ककी उस अभिव्यक्तिको ही रूपायित किया, जिसे विविध रूपोंमें मैंने देखा ज़रूर था; पर जिसकी कुंजी मेरे पास न थी। शेक्सपीयर, बीटोफ़ेन या तालस्तायने अथवा मुझे बल देनेवाले रोमेने भी मेरे लिए कोई रहस्योद्घाटन नहीं किया। उन्होंने केवल मेरे उस अन्तर्जगतके द्वार-भर खोल दिए, जिसमें ढँकी मेरी अनन्त शक्ति सोई पड़ी थी।"

१८८६ से '८९ तक इकोल-नार्मल, पेरिस और १८८९ से '९१ तक रोमके इकोल-फ्रांसमें शिक्षा प्राप्त करनेके बाद १८९५ में रोलाँने 'The orgin of morden lyric theatre' (आधुनिक गीति-नाट्यका मूल) नामक निबन्ध लिखा, जिसपर उन्हें डाक्टरेटकी उपाधि दी गई। १८९५ से १९०४ तक वे इकोल-नार्मलमें कलाके इतिहासके अध्यापक नियुक्त हुए और इसके बाद १९०४से १९१० तक पेरिसके सारबोने-विश्वविद्यालयमें संगीतके इतिहासके अध्यापक रहे। छात्र-जीवनमें रोलाँ प्रधानतया इतिहास का अध्ययन किया करते थे। इतिहाससे उन्हें यही शिक्षा मिली की भौगोलिक सीमाएँ नक़ली और संकीर्ण हैं। समग्र मानव-जाति एक है। समाज वर्गोंके संघर्षपर स्थित है। इसी संघर्षमें एक वर्ग उसकी अग्रगतिको अपने नीच स्वार्थोंके लिए रोक रहा है और दूसरा वर्ग उसे आगे बढ़ानेके लिए सब प्रकारकी बाधाओंका सामना करते हुए प्रयत्न कर रहा है। जीवित मानवका कर्त्तव्य है कि वह अग्रगतिमें सहायक हो। सभी देशों और कालोंके जीवित व्यक्तियोंने यही किया है।

जब रोलाँकी उम्र चार-पाँच सालकी थी, तभी फ्रांस-प्रुशिया की लड़ाई हुई और १८७१में फ्रांसीसी क्रान्तिकारियोंने कुछ दिनों के लिए पेरिसमें आधुनिक कालमें सबसे पहली साम्यवादी सरकार (पेरिस कम्यून) की प्रतिष्ठा की। यद्यपि थायर्स और बिस्मार्ककी सेनाओंने ३० हज़ार कम्युनार्डोंको मारकर कम्यूनको नष्ट कर दिया; पर उसके नेताओंके प्रति सर्वहारा-वर्गकी अपार श्रद्धा बनी हुई थी। प्रतिक्रियाशील सरकार क़ायम करनेके लिए ओरलीन और बोनापार्टवादियोंमें चार वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। १८७५ में प्रजातन्त्रकी स्थापनाके बाद भी मैकमेहोन आदि राजतन्त्रकी पुनः प्रतिष्ठाके लिए सतत प्रयत्न करते रहे। राजतन्त्र तो क़ायम नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो सका ; पर गद्दी थैलीशाहोंको मिली। फ्रांस एक आधुनिक उद्योग-धन्धे-प्रधान मुल्कमें परिणत होने लगा। साथ ही इसकी बुराइयाँ भी चारों ओर प्रवेश करती जा रही थीं। फ्रांसके रोड्स और आस्टिन चेम्बरलेन जुले फेरीके नेतृत्व और बिस्मार्ककी सम्मतिसे फ्रांसीसी साम्राज्य अफ्रीका और एशियामें बढ़ाया जा रहा था। फ्रांसीसी साम्राज्यका अफ्रीकामें विस्तार देखकर 'डेली मेल' फ्रांसको 'खून और कीचड़में सान देने'की धमकी दे रहा था। फ्रांसके अन्दर भी जनतापर काफ़ी ज़ुल्म हो रहे थे। १७८९ के वादवाली थारनिडोरीय प्रतिक्रियाका राज फिर स्थापित हो गया था। विक्टर ह्यूगो अपनी प्रतिभाके चरम विकासको पार कर चुके थे। रेनान कह रहे थे कि 'मेरा जीवन उन परम्पराओं द्वारा संचालित हो रहा है, जिनमें मेरा कोई विश्वास नहीं रह गया है।' फ्रांस-प्रुशियाकी लड़ाईने देशकी रीढ़ तोड़-सी दी। देशमें मानो कोई नेता ही नहीं रह गया। ज़ोला, फ्लूबा, अनातोल फ्रांस और मोपासाँ-जैसे महान साहित्यकारोंके पास फ्रांसीसी जनताको देनेके लिए कोई चीज़ नहीं रह गई थी। वे साहित्यको राजनीतिसे बिल्कुल अलग चीज़ समझते थे।

इस अवसरपर रोलाँ साहित्यमें नई संजीवनी शक्ति और ताज़गी लेकर अवतीर्ण हुए। शेक्सपीयरने जिस प्रकार सामन्ती समाजके जीवनकी भ्रष्टताको देखा था, उसी तरह रोलाँने भी पूँजीवादी समाजके अड्डोंके खोखले और विकृत जीवनको देखा। अपने विचारोंको रूप देनेके लिए उन्होंने नाटकोंको ही माध्यम बनाया। रोलाँ तात्स्तायके कला-सम्बन्धी विचारोंके हामी थे। उनका मत था कि कला केवल विलास या दिमाग़ी अय्याशीके लिए ही नहीं है। उसे जनताके दुःखोंको दूर करनेके काममें नियोजित होना चाहिए। तत्कालीन फ्रांसमें और चीज़ोंके साथ पेरिसकी नाट्यशालाएँ भी कलाके नामपर फैलनेवाली विलासितासे भ्रष्ट हो चुकी थीं। पर रोलाँ १८वीं सदीकी फ्रांसीसी क्रान्तिमें नाटकोंकी देन और महत्त्वको जानते थे। अतः उन्होंने एक बार फिर 'जनताकी नाट्यशालाओं'का नारा बुलन्द किया। उनकी 'Tragedie de la fois' ऐसे ज़मानेमें लिखी गई, जब कि पूँजीवादी वर्गके षड्यन्त्रसे सभी चीज़ोंसे विश्वास खोकर लोग हताश हो चुके थे। १८९७ में उन्होंने 'सन्त लुई' और १८९८ में 'कुमार एग्रर्ट' नाटक लिखे। 'नाट्यशालाएँ और क्रान्ति'के नामसे उन्होंने एक दर्जन नाटक लिखना तय किया। इनमें निम्न-लिखित नाटक प्रकाशित हुए और कई जगह खेले गए :—

Saint Louis (1897), Aert (1898), Le Loups (1898), Le triomphe de la raison (1899), Danton (1900), Le 14 Julliet (1902), Le Jude l' Amour et de la mort (1924), Les Leonides and Robespierre (1928).

ये सभी नाटक फ्रांसीसी क्रांतिपर हैं और तत्कालीन मत-मतान्तरों के विरोधोंको चित्रित करते तथा जनताको धर्म-युद्धकी प्रेरणा लेकर आगे बढ़नेके लिए प्रेरित करते हैं। अपनी समसामयिक घटनाओंपर भी रोलाँने कई नाटक लिखे। बोअर-युद्धपर [illegible] अपने नाटक 'Le Temps Viendra (1903) में उन्[illegible] ब्रिटिश साम्राज्यवादकी घोर निन्दा की और बोअर लोगों[illegible] समर्थन किया। उन्होंने विश्व-युद्धके बारेमें 'Liheli' (191[illegible] नामक एक व्यंग्यपूर्ण नाटक भी लिखा।

रोलाँको बचपनसे ही जीवनी पढ़नेका बड़ा चाव था। उ[illegible] पिताने ही पहले-पहल उन्हें प्लूटार्ककी जीवनियोंसे परिचित क[illegible] था। महान कलाकारोंकी जीवनियोंकी ओर उनका खास झु[illegible] था। अपना डाक्टरेटका निबन्ध लिखनेके पहले १८९२में रोल[illegible] जर्मनीके कितने ही कलाकारोंके जन्म-स्थानोंकी यात्राएँ [illegible] इस शताब्दीकी प्रथम दो दशाब्दियोंमें उन्होंने कितने ही यूरो[illegible] कलाकारोंके आदर्शोंका प्रचार करनेके लिए उनकी जीवनि[illegible] लिखीं, जिनमें से निम्न विशेष उल्लेखनीय है :—

Millet (1902), Beethoven (1903), Michel An[illegible] (1906), Musiciens d' autrefois (1908), Musiciens aujour d' hui (1908), Paul Daupin (1908), Hae[illegible] (1910), Tolstoy (1911), Voyage musical aux pays passe (1919), Beethoven l' homme et l'art (19[illegible] Beethoven les grandes epoques creatrices.

अगस्त, १९२१ में स्व० द्विजेन्द्रलाल रायके पुत्र श्री दिलीप कुमार राय शोनेकमें रोलाँसे मिले। उन्हींसे पहले-पहल गांधीजी व्यक्तित्वकी यथार्थ बातें रोलाँको मालूम हुईं। अप्रैल, १९२१ रवीन्द्रनाथके पेरिस जाने और अप्रैल, १९२२ में डा० कालिदास नागके साक्षात्कारसे गांधीजीके प्रति उनका आकर्षण बढ़ा। इस समय मद्रासके प्रसिद्ध पुस्तक-प्रकाशक गणेशनने उनसे 'यंग इण्डिया'के लेखोंके संग्रहकी भूमिका लिखनेका अनुरोध किया। भूमिका तो जल्द नहीं लिखी जा सकी ; पर अपनी बहन मेडेलीन की सहायतासे उन्होंने १९२२-२३ के जाड़ोंमें 'यंग इण्डिया' तथा गांधीजी और गांधीवाद-सम्बन्धी और भी साहित्य पढ़ा। गांधीजीकी एक छोटी-सी जीवनी लिखी। इसका अंगरेज़ी अनुवाद मद्रास और लन्दन दोनों स्थानोंसे प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में उन्होंने गांधीजी और भारतीय राष्ट्रीयताकी प्रशंसा की है। पर जहाँ गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज'में दिए गए सामाजिक संगठन की बात कही है, वहाँ उन्होंने उनका पक्ष नहीं लिया ; बल्कि रवीन्द्रनाथका ही समर्थन किया है। उन्होंने पुस्तकके समर्पणमें लिखा है : "गौरव और ग़ुलामीकी भूमिको, अस्थायी साम्राज्यों और इस गौरवपूर्ण विचारोंकी भूमिको, समयका प्रतिरोध करनेवाले लोगोंको नवजाग्रत भारतको!" श्री धनगोपाल मुखर्जीकी पुस्तक 'My Brother's Face' पढ़कर रोलाँ रामकृष्ण और विवेकानन्द की ओर आकर्षित हुए और १९२९ में तीन जिल्दोंमें[1] आधुनिक

1. The Essay on Mysticism and Action in Contemporary India (Vol. I. The Life of Ramakrishna; Vol. II. The Life of Vivekananda; Vol. III. Universal Gospel).

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतके आध्यात्मिक विकासका विशद विवेचन किया। इनमें केवल रामकृष्ण और विवेकानन्दकी जीवनियाँ ही नहीं हैं, बल्कि राममोहन रायसे लेकर विवेकानन्द तक भारतीय मानसके विकासके समग्र इतिहासको लिपिबद्ध करनेकी चेष्टा की गई है।

लेकिन रोमाँ रोलाँकी विश्व-साहित्यको सबसे बड़ी देन उनका उपन्यास 'जाँ क्रिस्तफ़' (Jean Christopher) है। रोलाँके मानसिक विकासको जाननेके लिए 'जाँ क्रिस्तफ़'को जानना आवश्यक है, क्योंकि स्थूल रूपसे यह रोलाँकी आत्म-कथा भी है। इस शताब्दीके प्रारम्भमें रोलाँके कई मित्रोंने एक साहित्यिक गोष्ठी बनाई थी। इसीकी तरफ़से उनके मित्र चार्ल्स पेगाय 'Capiers de la Quinzaine' नामक एक पत्र निकालते थे। 'जाँ क्रिस्तफ़' १९०४ से '१२ तक इसीमें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ। इस पत्रमें प्रकाशित होनेके साथ ही इसके स्पेनिश (१९०७), अंगरेज़ी, पोलिश, रूसी (१९१०) और जर्मन (१९१३) भाषाओंमें अनुवाद प्रकाशित होने लगे। इस पुस्तक में बीटोफ़ेनकी सृजन-शक्तिके अनुरूप जोहान्न क्रिस्तफ़ नामक एक जर्मन संगीतज्ञकी कहानीका वर्णन किया गया है। रोलाँने इसमें उस कलाकारके अपने अन्दरका तथा अपने युगके संघर्षोंके बीचसे वह किस प्रकारसे जीवनके बारेमें एक नया दृष्टिकोण प्राप्त करता है, इसका बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। इसके अन्तिम भागमें पिछले महायुद्धके दो साल पहले रोलाँने जर्मनी और फ्रांससे मिलनेकी अपील करते हुए कहा है—"ये दोनों पश्चिमके दो पर हैं। अगर एक टूट जाता है, तो दूसरेकी भी वही दशा होगी।"

१९१८ में रोलाँने १६वीं सदीके फ्रांसके बर्गेण्डी-प्रान्तके कोला बेगनाँ नामक एक सीधे-सादे बढ़ईके आनन्दमय जीवनको लेकर एक उपन्यास लिखा। १९२०में अपने 'क्लेरामबल' नामक उपन्यासमें रोलाँने दुनियाके जल्लादोंके खिलाफ़ अकेले ही युद्ध घोषित किया। इसी साल प्रकाशित उनके दूसरे उपन्यास 'पीरे और लूस'में युद्धके दर्मियान दो कोमल प्राणियोंके अनुपम प्रेम और उनके संघर्षोंकी कहानी दी गई है। १९२२ से उनकी अन्तिम उपन्यासमाला 'The Soul Enchanted' के नामसे प्रकाशित होने लगी। इसमें एक अहंवादी महिलाको अपने पतिके हाथोंमें पड़कर किस प्रकार अगणित मुसीबतें सहनी पड़ती हैं, इसके चित्रणके साथ ही समसामयिक समस्याओंको सुलझानेकी चेष्टा भी की गई है। छः खण्डोंमें समाप्त इस उपन्यासके पाँचमें तो नायिका पथके सन्धानमें इधर-उधर भटकती रहती है; पर अन्तिम खण्डमें वह अपने कालके संघर्षसे रास्ता निकालनेके लिए उसमें ख़ुद भी कूद पड़ती है। यही उनका अन्तिम उपन्यास है।

यों तो रोलाँने कभी भी अपनेको राजनीतिसे अलग नहीं समझा; पर १९१४ में वे प्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिमें आए। १९१४-१८ की लड़ाईके पहले ही वे स्वीज़रलैण्डमें जा बसे थे। उस समयके अपने आदर्शोंके बारेमें रोलाँने लिखा है—"उस समय तक मैं अपने समय और अपने वर्गके आदर्शवादमें ही धँसा रहा—उस वस्तु-निरपेक्ष व्यक्तिका आदर्शवाद, जो राजनीतिक और सामाजिक जीवनकी सम्भावनाओंसे पृथक रहता है।" पर इसका अर्थ यह भी नहीं कि वे बाहरी दुनियाके संघर्षोंसे सोलहों आना अलग या बेखबर रहे। द्वन्द्व और संशयोंने उनके मनमें भी आलोड़न पैदा किया। जाँ क्रिस्ताफ़ और आलिवरकी तरह उनके मानस-क्षितिजपर भी विचार-मन्थन चलता रहा। इसी समय, जब कि वे ५०के हो चले थे, आघातका एक अवसर आया। लड़ाई शुरू होनेके बाद उनके गहरे दोस्त और फ्रांसीसी मज़दूरोंके राष्ट्रीय नेता जरे मार डाले गए। बड़े-बड़े आदर्शोंकी रट लगानेवाले नामी लेखक अपने देशोंके सम्राज्यवादियोंका राग अलापने लगे। गारडार्ट हाप्टमैनके नेतृत्वमें ९३ जर्मन कलाकारों (!) ने एक घोषणा निकालकर जर्मन साम्राज्यवादके ध्वंसात्मक कार्योंका समर्थन किया। रोलाँके लिए यह जलेपर नमक छिड़कनेके बराबर था। रोलाँने इन गद्दार लेखकोंके खिलाफ़ अपनी लेखनी उठाई। 'Above the Battle' (युद्धसे परे) नामक अपने पहले लेखमें उन्होंने इनके खिलाफ़ विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। उनकी यह लेखमाला युद्धके अन्त तक जारी रही। इनमें से कुछ लेख १९१४में 'Above the Battle' नामसे पुस्तक-रूपमें संकलित किए गए। १९१९ में उनकी दूसरी पुस्तक 'The Forerunners' (अगुआ) के नामसे छपी। रोलाँने इन लेखोंके ज़रिए युद्धके खिलाफ़ विद्रोह घोषित किया। प्रसिद्ध जर्मन कवि शिलरका महाकाव्य 'In traynnos' (सब ज़ालिमोंके खिलाफ़) इस समय उनका मूल मन्त्र बन गया। रोलाँने विचार-स्वातन्त्र्य तथा बुद्धिजीवियों और मेहनतकशोंके संगठनका नारा बुलन्द किया और दुनियाके ईमानदार और अन्तर्राष्ट्रीयतावादी लेखकोंको अपने झण्डेके नीचे संगठित किया। युद्ध-कालमें उन्होंने तीस खण्डोंमें अपनी डायरी लिखी, जो अभी तक अप्रकाशित है।

युद्ध-काल और उसके कुछ दिनों बाद भी रोलाँ शान्तिवादी थे। युद्धके बीच १९१७ में रूसी क्रान्तियाँ हुईं। रोलाँ उनके स्वागतके लिए जैसे तैयार ही बैठे थे। नवम्बर, १९१६ में उन्होंने लिखा था—"Adieu, Europe,...you are groping in a cemetery. Your place is there. Lie down. And let others lead the world." अर्थात्—'अलविदा, यूरोप,...तुम एक क़ब्रमें भटक रहे हो। तुम्हारा स्थान वहीं है—वहीं सो जाओ और विश्वका नेतृत्व दूसरोंको करने दो।' १९१७ में गोर्कीने क्रान्तिकी खबर रोलाँको लिख भेजी। रोलाँको मानो अपने जीवनकी निधि मिल गई। १९१४-१९ के प्रारम्भ तक लेनिन आदि रूसी क्रान्तिकारी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वीज़रलैण्डमें ही थे। १९१५ और '१६ में लेनिनने युद्ध-विरोधी समाजवादियोंको लेकर ज़िमरवाल्ड और कायेनथालमें दो अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सम्मेलन किए और युद्धको क्रान्तिमें रूपान्तरित करनेका नारा लगाया। १९१७की मार्च-क्रान्तिके बाद जब लेनिन आदि रूस वापस जाने लगे, तो लेनिनने रोलाँको अपने साथ रूस ले जाना चाहा; पर अनेक कारणोंसे वे न जा सके।

मार्चके आठ महीने बाद नवम्बरकी सर्वहारा-क्रान्ति हुई। इसका भी रोलाँने स्वागत किया। क्रान्तिके नवजात शिशुका गला घोंट देनेके लिए चौदह साम्राज्यवादी शक्तियोंने क्रान्तिके कुछ ही महीने बाद १९१८ के प्रारम्भमें सोवियत् राष्ट्रपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। इस अवसरपर रोलाँने लिखा—"आजकी ऐसी घड़ीमें जब कि क्रान्तिकारी रूसके विरुद्ध समूचे संसारके लोकमतको धूर्त्ततापूर्वक उभाड़ा जा रहा है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारसे सम्बद्ध पत्र रोज़ उसे उत्तेजित कर रहे हैं; एक स्वतन्त्र फ्रांसीसी होनेके नाते मैं उस कपटपूर्ण प्रतिक्रियाका भण्डाफोड़ करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिसके द्वारा यूरोपकी जनताको गुलाम बनाए रखने और रूसी क्रान्तिके चारों ओर असुविधा पैदा करनेवाली मशालको बुझानेका बड़ी आतुरतासे प्रयत्न किया जा रहा है।" पर इन शब्दोंके बावजूद रूसी क्रान्तिके यथार्थ एवं व्यापक महत्वको भलीभाँति समझनेमें रोलाँको कई वर्ष लगे, जिसकी आंशिक ज़िम्मेदारी गोर्की और वारबुसकी भी है।

१९१९से '३४ तकके उनके कुछ लेखोंका संग्रह १९३५में 'I will not Rest' (मैं आराम नहीं करूँगा) के नामसे छपा। इसके प्रथम अध्यायमें रोलाँके १९१४से '३४ तकके संघर्षों का संक्षिप्त परिचय मिलता है १९३५ में रोलाँने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'By way of Social Revolution to Peace' (सामाजिक क्रांतिके मार्गसे शान्ति) लिखी। इस समय वे कम्युनिस्त हो गए थे। १९२७ में नवम्बर-क्रान्तिके वार्षिकोत्सवके अवसरपर रोलाँको सोवियत्से निमन्त्रण मिला था; पर इस बार भी वे वहाँ नहीं जा सके। १९३५ में वे सोवियत् रूस गए और प्रत्यक्ष रूपसे वहाँ नई मानवताको देखा।

लेकिन क्रान्तिका स्वागत और उसकी आवश्यकता स्वीकार करनेपर भी वे उसकी हिंसात्मक मूर्त्तिका अभिनन्दन नहीं कर सके। उन्होंने लिखा—"मैं क्रान्तिका समर्थन करता हूँ; पर हिंसाकी उपेक्षा करके विजयी होनेवाली क्रान्तिकी ही मैं कामना करता हूँ। रूसी क्रान्तिका मैं मित्र हूँ, क्रान्तिसे उत्पन्न रूसके विरोधियोंका मैं शत्रु हूँ। पर हिंसा और रक्तपातका शंखनाद करके जिस रास्तेसे विप्लवको लाया गया है, वह मेरा नहीं है; क्योंकि इससे विप्लवका महान आदर्श म्लान हो जाता है।" पर गतिशील इतिहास जानता था कि सशस्त्र क्रान्तिका रास्ता ही दुनियामें स्थायी अहिंसा स्थापित करनेका एकमात्र रास्ता है। अहिंसक क्रान्तिका सपना देखकर शताब्दियों तक करोड़ों को हिंसाकी ज्वालासे जलते देखना भी तो हिंसा है। क्रान्ति अग्निसे उसे स्वाहा कर देना ही सच्ची अहिंसा है। लोग थे कि क्रान्तिसे काँपनेवाले अहिंसक अन्तमें हिंसाकी ही शरण लेते हैं; अतः आज नहीं तो कल, रोलाँ हमारा पक्ष देकर ही रहेंगे। और हुआ भी यही। जैसा कि पहले कह चुका है, १९१४ के प्रारम्भमें फ्रांसीसी मज़दूरोंके अद्वितीय और रोलाँके अन्तरंग मित्र जरेकी हत्या कर डाली गई। १९ के प्रारम्भमें जर्मनीकी सर्वहारा-क्रान्तिके नेता लिबनेख्ट और लुक्सेमबुर्ग मार डाले गए। सशस्त्र क्रान्तिसे डरकर डेमोक्रेटोंने प्रतिक्रियाशील शक्तियोंका साथ दिया। रोलाँने अहिंसाकी अव्यावहारिकता समझी और सभी ज़ख्म खिलाफ़ अपना संग्राम अकेले ही जारी रखा।

इसी समय गांधीजीके सत्याग्रह-आन्दोलन अथवा अहि प्रतिरोधकी खबर उन्हें मिली। रोलाँने लिखा है—"शीघ्र मेरे विचार-क्षितिजपर बहुत दूर गांधी-रूपी तारा उदय हु जिसका प्रकाश मुझे समूचे यूरोपमें प्रतिबिंबित करना थ १९२२ से '२७ तक रोलाँ सत्यकी खोजमें रहे। इस उन्होंने देखा कि गांधीजीकी अहिंसा एक विरोधी प्रदर्शनसे प्रभावपूर्ण नहीं सिद्ध हुई। दूसरी ओर सोवियत् रूसपर ओरसे हुए पूँजीवादी प्रतिगामी राष्ट्रोंके हिंसात्मक आक्रमण क्रान्तिकी उदयोन्मुख शक्तियोंने जिस दृढ़तासे मुक़ाबला किया, उन्हें जान पड़ा कि विशुद्ध अहिंसासे न तो क्रान्ति ही सम्भव और न उसकी रक्षा ही। २१ जनवरी, १९२४ को रूसी क्र के पिता लेनिनकी मृत्यु हो गई। २२ मार्चको गांधीजी हुए। रोलाँने इन दोनों महापुरुषोंके आदर्शोंका समन्वय चाहा; पर स्वयं उन्होंने स्वीकार किया कि वे इसमें सफल हो सके। उन्होंने लिखा है—"मैंने लोकापवाद-रूपसे आग पानीको मिलाना चाहा—मास्कोके विचारोंका भारतके विचा समन्वय करना चाहा।...मैंने चाहा कि क्रान्तिके दो पहलुओं—रूसका लड़ाकू साम्यवाद और गांधी द्वारा संगठित संचालित भद्र-अवज्ञा-आन्दोलन—में समन्वय स्थापित हो गांधीके असहयोग और लेनिनके तूफ़ानी सैनिक-दलोंका मेल सके;...पर मैं सफल नहीं हुआ।"

रूसके बाद यूरोपके और कई देशोंमें भी क्रान्तियाँ हुई पर उनका पीठबल दुर्बल होनेसे उन्हें कुचल दिया गया उनकी जगह प्रतिक्रियाकी स्थापना हुई। इनसे रोलाँकी खुलों। क्रान्तिके निर्मम तर्कके सामने उनका अहिंसाका अ अविचलित नहीं रह सका। फल-स्वरूप हिंसा और शोषणके वि उन्होंने विश्वकी जनताका एक संयुक्त मोर्चा संगठित करने नारा बुलन्द किया और अन्तिम साँस तक इसीके लिए लड़े।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनोदी गांधी

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

[महात्मा गांधीके जीवनके कई ऐसे पहलू हैं, जिनके सम्बन्धमें जनताको अधिक जानकारी नहीं है। इन पहलुओं पर काफ़ी मनोरंजक ढंगसे प्रकाश डाला जा सकता है। 'डाक्टर गांधी' और 'भिक्षुक गांधी' शीर्षक लेख पहले 'विशाल भारत'में छप चुके हैं। आशा है, 'विनोदी गांधी' भी पाठकोंको रुचिकर प्रतीत होगा। —लेखक]

सन् १९३७ के प्रारम्भकी बात होगी। उन दिनों अखबारोंमें कांग्रेस द्वारा प्रान्तीय शासनकी बागडोर हाथमें लेने या न लेनेके सम्बन्धमें ज़ोरोंसे चर्चा चल रही थी। तरह-तरहके अन्दाज़ लगाए जा रहे थे। गांधीजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनके लिए मद्रास जा रहे थे। मैं भी उन्हींके साथ प्रवास कर रहा था। वेज़वाड़ा स्टेशनपर गांधीजीके स्वागतके लिए बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई। 'गांधीजीकी जय!' की आवाज़से वातावरण गूँज उठा। इसी बीच एक पत्रकार भीड़को बड़ी मुश्किलसे चीरता हुआ गांधीजीके डब्बे तक किसी तरह आ पहुँचा। वह पसीनेसे तर था। हाँफते हुए गांधीजीसे पूछने लगा—'महात्माजी, क्या कांग्रेस मन्त्रिपद ग्रहण करेगी?'

इस प्रश्नके उत्तरका महत्व उन दिनों बहुत था। 'हाँ' या 'ना' कुछ भी उत्तर पत्रोंमें तुरन्त बड़े-बड़े अक्षरोंमें छप जाता। लेकिन गांधीजी इस तरह पत्रकारोंकी पकड़में थोड़े ही आनेवाले हैं। फौरन मुस्कराकर उन्होंने उस पत्रकारसे पूछा—'क्यों साहब, आप यह सवाल क्यों पूछते हैं? क्या आप मिनिस्टर बननेके लिए उत्सुक हैं?' सभी लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। बेचारा पत्रकार झेंप गया। उससे कुछ भी उत्तर देते न बन पड़ा। चुपचाप पीछे हटकर भीड़में फिर न-जाने किधर ग़ायब हो गया।

थोड़ी ही देर बाद एक दूसरे सज्जन पास आकर भाव-भरे शब्दोंमें गांधीजीकी तारीफ़ करने लगे—'महात्माजी, मुझे पूरा विश्वास है कि आप ही देशके सच्चे नेता हैं! आपके सिवा भारतवर्षका और कोई उद्धार नहीं कर सकता! आपके दर्शन पाकर मैं आज धन्य हुआ···।' वातावरण काफ़ी गम्भीर हो गया। सब लोग चुप थे। गांधीजी विनोदका मौक़ा चूकते नहीं। तुरन्त मुस्कराकर बोले—'अच्छा, अब तारीफ़ बहुत हो गई; पर महात्माके दर्शनके लिए क्या खाली हाथ ही आए हैं आप?' और झट हाथ बढ़ाकर कहने लगे—'हरिजनोंके लिए पैसे दीजिए! महात्माको दक्षिणा चाहिए।'

महाशयजी अपनी जेब टटोलने लगे; मगर जेब खाली ही थी। लोग हँस पड़े। गम्भीर वातावरण काफ़ूर हो गया।

लोग आम तौरपर खयाल करते हैं कि गांधीजी हमेशा बड़े गम्भीर रहते होंगे; महात्मा जो ठहरे। पर बात उल्टी ही है। कम-से-कम मैंने तो उन-जैसा हँसमुख और विनोदी दूसरा व्यक्ति नहीं देखा। नेताओंमें तो गांधीजी-जैसा विनोदप्रिय कोई है ही नहीं। जवाहरलालजी तो बहुत संजीदा रहते हैं; विनोदके बजाय क्रोधकी मात्रा उनमें अधिक है। सरदार साहब मज़ाकिया ज़रूर हैं; पर उनका मज़ाक तीखा है, चुभता हुआ और पैना है। गांधीजीका विनोद सहृदय और प्रेमसे भरा रहता है। वह दिलोंको दुखाता नहीं, सुखी बनाता है; हृदयोंको तोड़ता नहीं, जोड़ता है। वे तो अक्सर कहा करते हैं—'विनोद ही मेरा जीवन है! मुझमें विनोद न होता, तो मैं कभीका खत्म हो जाता।' और बात है भी बिल्कुल ठीक। बापूके सिरपर आज समूचे देशका ही नहीं, सारे संसारकी जटिल समस्याओंका बोझ है। सुबहसे रात तक पेचीदा सवालोंको हल करने ही में बीतता है। फिर भी अपने विनोदी स्वभावके कारण वे किस ख़ूबीसे वातावरण प्रफुल्लित रखते हैं, यह नज़दीकसे देखनेका विषय है। जब कांग्रेस-वर्किंग-कमेटीकी गम्भीर बैठकोंके बाद बापू मुस्कराते हुए बाहर आते हैं, तो लोगोंके चिन्तित चेहरे खिल उठते हैं और भारी दिल हल्के हो जाते हैं। दिन-भरकी गहन चर्चाओंको खत्मकर जब बापू सेवाग्राममें शामको बच्चोंके साथ खेलते और हँसते हुए टहलने निकलते हैं, तो ऐसा लगता है, मानो इनके सिरपर कोई विशेष ज़िम्मेवारियाँ हैं ही नहीं। यही है गांधीजीकी महानता, यही है उनकी अपूर्व शक्ति और प्रभावका रहस्य।

सन् १९३४ की घटना है। बम्बई-कांग्रेसमें गांधीजीने जब अवकाश ग्रहण किया, तो वातावरण बहुत संजीदा था। बापूका मार्ग-दर्शन अब कांग्रेसको न मिल सकेगा, इस खयालसे जनतामें उदासी छा गई थी। हज़ारों लोग गांधीजीको विक्टोरिया स्टेशनपर पहुँचाने आए। खूब भीड़-भाड़ थी। ट्रेन चलने ही को थी। सब नेता भी चुप थे। किसीसे कुछ कहते नहीं बनता था। लोगोंके दिल भरे थे। गांधीजीकी विदाईसे उनका चित्त व्याकुल-सा था। पर बापू ऐसा गम्भीर वातावरण कैसे टिकने देते। उनके लिए यह असह्य हो गया। उन्होंने एक स्वयंसेवकके सिरपर से टोपी उठाई और पास ही खड़े सरदार पटेलके सिरपर रख दी। सरदार साहब तो टोपी पहनते नहीं हैं। यह दृश्य देखकर सभी ज़ोरसे हँस पड़े। बस, इतनेमें ट्रेनने भी सीटी दी और चल पड़ी। यह सब-कुछ एक मिनटके अन्दर हो गया। लोग मुस्कराते हुए ख़ुश दिलसे 'महात्मा गांधीकी जय!' चिल्ला उठे। यह है गांधीजीका विनोद! यह है उनकी ज़िन्दादिली!

गांधीजीसे मिलनेके लिए सेवाग्राममें सभी तरहके लोग आते हैं, पर उनके विनोदकी गुलगपाड़ोंसे कोई भी अछूता नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

रहता। एक दिन एक कविवर पधारे और अपनी पुस्तक भेंटकर गर्व-सहित कहने लगे—'महात्माजी, इस पुस्तकपर मुझे दो हज़ारका इनाम मिल चुका है!'

'अच्छा! तो मेरा आधा हिस्सा लाए हैं न?'—बापूने झट मुस्काकर पूछा।

बेचारे कविजी लज्जित-से हो गए। कुछ उत्तर देते न बना। थोड़ी देर बाद कुछ साहस बटोरकर फिर बोले—'बापू, मेरी कविताएँ आप ज़रूर पढ़िएगा!'

'अच्छा तो लीजिए, अभी आपके सामने पढ़े लेता हूँ।'—गांधीने हँसकर कहा। इधर-उधरके पन्ने पलटकर एक पंक्ति पढ़ दी, जो कुछ इस तरहकी 'प्रेयसिवादी' थी—'प्रिये, सुना दो मदिर गान!'

गांधीजीको इस तरहकी कविताओंमें आखिर क्या दिलचस्पी हो सकती है? ऊपरकी पंक्ति सुनकर आस-पासके लोग भी मुस्कराने लगे। बापूने हँसकर कहा—'कविराज, अब आपको सन्तोष हो गया न? अगर आप चाहते हैं कि मैं आपकी और कविताएँ पढ़ूँ, तब तो यही मनाइए कि मैं जेल जाऊँ! बाहर मुझे कविताओंका रस चखनेकी फ़ुरसत ही कहाँ?'

कविजी प्रणामकर चुपचाप खिसक गए।

क़रीब तीन वर्ष पहले जूनके महीनेमें कुछ अमरीकन पत्रकार सेवाग्राम आए। उन दिनों खूब लू चलती थी; आग बरसती थी। और फिर वर्धाके ढीले-ढाले ताँगोंमें बैठकर ही आराम-तलब अमरीकनोंको बापूसे मिलने जाना पड़ा। बेचारे पसीनेसे तर थे। रूमालसे मुँहपर हवा करते हुए बापूकी कुटियामें पहुँचे। उनका हाल-चाल देखकर गांधीजीको तरस आया। किन्तु वे गम्भीरताका वातावरण हटाकर अमरीकनोंको हँसाना चाहते थे। मुस्कराकर बोले—'आइए, आप लोग तो air-conditioned coach में आए होंगे न?'

सब ज़ोरसे हँस पड़े। गांधीजी आराम कर रहे थे। पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखी थी, इसलिए उठकर बैठना कठिन था। अमरीकनोंसे कहा—'अच्छा, तो आप अपने प्रश्नोंके तीर चला सकते हैं। मैं पड़ा-पड़ा ही उन्हें झेल लूँगा।'

एक पत्रकार उनका फोटो लेने लगा। अधिक गर्मीकी वजहसे गांधीजीने सिरपर भी पट्टी बाँध रखी थी। कहने लगे—'देखिए, आप मेरा फोटो तो खींचते हैं; लेकिन मेरी सिरकी पट्टी देखकर लोग आपसे पूछेंगे—अरे, गांधीका क्या सिर फूट गया था? फिर आप क्या उत्तर देंगे?'

अमेरीकन पत्रकार इन विनोदोंकी बौछारसे शीतल हो गए और वर्धाकी जूनकी गर्मीको कम-से-कम कुछ वक्तके लिए भूल गए।

गत २ अक्टूबरको सेवाग्राममें गांधीजीकी ७५वीं वर्षगांठ बड़े समारोहके साथ मनाई गई थी। उस अवसरपर कस्तूरबा स्मारक-फण्डके ट्रस्टी भी जमा हुए थे। अस्सी लाख रुपए बापूको भेंट किए जानेवाले थे। यह काम श्रीमती सरोजिनी नायडूको सौंपा गया। रक़मकी थैली भेंट करते समय सरोजिनीदेवीने मज़ाकमें कहा—'बापू, मैं अगर यह रक़म लेकर चलती बनूँ, तो?'

'तो क्या आश्चर्य! मैं जानता हूँ कि तुम ऐसा कर सकती हो!'—बापूने हँसकर कहा और एक मीठा, स्नेह-भरा थप्पड़ सरोजिनीदेवीके जड़ दिया! लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। संजीदा उत्सवमें मनोरंजनकी लहर फैल गई।

गांधीजीके विनोदोंका कोई अन्त नहीं। वे बच्चोंसे बूढ़ों तक किसीको भी नहीं छोड़ते। बच्चोंके साथ तो उनकी बातचीत हँसी-मज़ाक देखने ही योग्य है। वे बच्चोंके सामने स्वयं बालक ही बन जाते हैं। गांधीजी चाहे कितने ही महत्वके काममें मशगूल हों, जहाँ उन्होंने किसी बालकको देखा कि उससे हँसी शुरू की!

बीमारीमें भी बापूका मज़ाक रुकता नहीं। अभी हालकी घटना है। इन दिनों उन्हें ज़ोरकी खाँसी हो गई थी। कुछ दिनों ज्वर भी रहा। काफ़ी कमज़ोरी आ गई थी। कुछ दिन पहले मैं उनकी तबीयतका हाल देखने सेवाग्राम गया था। शाम हो रही थी और बापू टहलनेके लिए बाहर निकल रहे थे। एक बच्चेको देख बापू हँसकर बात करने लगे। हँसनेसे उन्हें फिर ज़ोरकी खाँसी आने लगी। पास खड़े एक युवकने कहा—'बापूजी, आप हँसिए नहीं, हँसनेसे खाँसी सताएगी।'

'तुम बूढ़े लोग न हँसो; मैं तो जवान हूँ, फिर हँसूँ क्यों नहीं?'—बापूने उत्तर दिया। खाँसी फिर आ गई; पर उनका हँसना बन्द न हुआ। उस दिन वे काफ़ी कमज़ोर थे; शाम थोड़ा बुखार भी था।

पर उनके विनोदका स्रोत कभी सूखता नहीं। और वह विनोदका झरना कितना निर्मल है, मीठा है और जीवनदायी है!

प्रभात

श्री 'स्नेहशीलता'

नीरव निशान्तके अन्तरालमें फूट रहा वह स्वर्ण तार;
युग-युगका बन्दी अपराजित जैसे मेरा अनबूझ प्यार!
गम्भीर कुहासेका विषाद पल-पलमें दूर्वापर विकीर्ण;
भींगी पलकोंके सपने ज्यों होते रह-रहकर जीर्ण-शीर्ण!
आलोक स्निग्ध वह फूट रहा तन-मनका एकाकार हास;
मेरे जीवनका मुक्त रोर, रे मेरे प्राणोंका प्रकाश!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विज्ञानकी उन्नति

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

कुछ समय पहले मैंने एक लेख पढ़ा था। उसमें एक विद्वानने भविष्य-संसारकी बड़ी सुखद कल्पना की थी। उनके कथनका तात्पर्य यह था कि वर्त्तमान युगके वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण मनुष्य-जीवनमें जो परिवर्त्तन हो रहा है, उससे यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि भविष्यमें संसारका एक दूसरा ही रूप हो जायगा। सौ वर्ष बाद न तो संकीर्ण जातीयता रह जायगी और न राष्ट्रीयता। कहीं परतन्त्रता नहीं रह जायगी। कोई दरिद्र नहीं रहेगा। कोई पक्षपात नहीं रहेगा। ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं रहेगा। धार्मिक विद्वेषका लोप हो जावेगा और प्रत्येक मनुष्य सामाजिक जीवनके सभी सुखोंका उपभोग कर सकेगा। सौ वर्ष पहले जो तत्त्ववेत्ता हो गए हैं, उन्होंने भी भविष्यके लिए ऐसी ही सुन्दर कल्पना की थी। यूरोपके एक तत्त्ववेत्ताने लिखा था कि अब मेरे सिद्धान्तके कारण संसारमें भ्रातृ-भावका प्रचार हो जायगा। भगवान् बुद्धदेवने भी संसारको जन्म-जरा और मृत्युसे मुक्ति पानेकी सच्ची राह बतलाई थी। संसारका बाह्य रूप चाहे जैसे परिवर्त्तित हो गया हो; पर अन्तः-रूप तो वही है। वही पाप, वही दुःख और वही दारिद्र्य है।

कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कारकी जननी है। ज्यों-ज्यों मनुष्यकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों मनुष्य उनकी पूर्त्तिके लिए तरह-तरहके नए-नए उपाय सोचता है। तभी नए-नए आविष्कार होते हैं। वर्त्तमान युग वैज्ञानिक युग कहा जाता है। बात यह है कि वैज्ञानि युगमें जितने आविष्कार हुए, उतने कभी नहीं हुए। प्राचीन काल और मध्य-कालमें मनुष्य-समाजकी दृष्टि भौतिक उन्नतिकी ओर उतनी नहीं थी, जितनी पारलौकिक उन्नतिकी ओर। इसीलिए उन्होंने पारलौकिक विषयों की ओर ध्यान दिया और धर्म-शास्त्रोंकी सृष्टि की। आधुनिक युगमें भौतिक समृद्धिकी इच्छाके कारण भौतिक विज्ञानोंकी उन्नति हुई। प्राचीन कालमें मनुष्योंका जीवन बड़ा ही सरल था। उसमें किसी भी तरहकी जटिलता नहीं थी। अपने जीवन-निर्वाहके लिए उन्हें जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता थी, उन सबको वे प्रकृतिसे ही प्राप्त कर लेते थे। भोजन और वस्त्रको छोड़कर वे अन्य वस्तुओंकी आवश्यकताका कम अनुभव करते थे। इन्हीं दो वस्तुओंके प्राप्त करनेमें उन्हें जिन-जिन साधनोंकी आवश्यकता पड़ी, उन्हींके आविष्कार पहले-पहल किए गए। आत्म-रक्षाके लिए उन्होंने कुछ आविष्कार किए। प्रकृतिकी सभी शक्तियाँ उन्हें रहस्यमयी प्रतीत होती थीं, और जब लोग उन शक्तियोंसे पराभूत हो जाते थे, तब उनपर आतंक छा जाता था। यही कारण है कि उन शक्तियोंमें उन्होंने दैवी शक्तियोंका अनुभव किया और उन्हें अपने अनुकूल बनानेके लिए उन्होंने उन प्राकृतिक शक्तियोंकी पूजा आरम्भ की। जल, अग्नि, समुद्र, पहाड़, वर्षा आदि सभीमें उन्होंने किसी-न-किसी देवकी कल्पना की और उस देवकी आराधनामें व्यस्त हो गए। उनमें धर्मकी भावना जाग्रत हुई। क्रमशः यह धार्मिक भावना इतनी प्रबल हो गई कि लोग धर्मका यथार्थ रहस्य जाननेके लिए अतीव उत्सुक हो गए। यही कारण है कि मध्य-युगमें धर्मकी ही प्रधानता रही है। अध्यात्म-शास्त्र और दर्शन-शास्त्रकी चिन्तामें सभी विद्वान लगे रहे। उस युगमें जो-कुछ भी उन्नति हुई, वह धर्मके ही नामपर हुई। धर्मके प्रचारके लिए प्रचारकोंने देश-विदेशकी यात्रा की, बड़े-बड़े कष्ट सहे और उसके लिए उन्होंने अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिए। धर्मके ही कारण मनुष्य-समाजमें जो एकता आ गई, उससे उनकी भौतिक शक्ति भी इतनी बढ़ गई कि विशाल साम्राज्य भी स्थापित हो गए।

आधुनिक युगमें मनुष्यने अपनी ही शक्तिपर विचार करना आरम्भ किया। प्रकृतिकी जो शक्तियाँ पहले उसे रहस्यमयी मालूम होती थीं, उनका यथार्थ रूप जाननेके लिए वह उत्सुक हुआ। तब उसकी परीक्षा आरम्भ हुई। परीक्षाके कारण उसके चित्तमें संशय होने लगा। संशयके साथ धर्मपर उसकी श्रद्धा घट गई। और तब उसने नई-नई शक्तियोंका अनुसंधान करना आरम्भ कर दिया। आज जिस बातकी सत्यताको एक बालक भी स्वीकार कर लेता है, उसीको प्रमाणित करनेके लिए आधुनिक युगके प्रारम्भमें वैज्ञानिकोंको कष्ट सहना पड़ा।

धार्मिक विश्वासमें एक अंध-भक्ति होती है। सर्वसाधारण उसी अंध-भक्तिके कारण ही किसी मत-विशेषके अनुयायी होते हैं। ये धार्मिक विश्वास किसी तर्क-शास्त्रका सामना नहीं कर सकते। तर्ककी कसौटीपर कसे जानेपर उनकी असारता प्रकट हो जाती है। एक बार जो परीक्षा आरम्भ हुई, वह अभी तक हो रही है। उससे ज्ञानकी वृद्धि होती गई है। ज्ञानके विकासके साथ-साथ मनुष्यके जीवनका भी विकास होता गया है। मानवीय सभ्यतामें जटिलता आ गई है। पाश्चात्य जातियोंने नए-नए देश खोज निकाले और उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होंने अपने व्यापारको बढ़ाया। इससे उनकी आवश्यकता भी खूब बढ़ गई। जीवनमें क्षिप्रता आ गई। लोग यही सोचने लगे कि कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक काम किस तरह किया जाय। इसी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिए वैज्ञानिक आविष्कार हुए और अभी तक हो रहे हैं। रेलगाड़ी, स्टीमर, मोटरगाड़ी और हवाई-जहाज़ोंकी रचना हुई। कम-से-कम समयमें अधिकसे अधिक काम करनेमें मनुष्यने प्रकृतिकी विभिन्न शक्तियोंको काममें लाना आरम्भ किया। भापकी शक्ति जान लेनेके बाद कितने ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

यन्त्र ऐसे बने, जो भाफ़की शक्ति द्वारा चलाए जाते थे। बिजली की शक्तिका ज्ञान होनेपर उसी शक्तिका उपयोग सभी कामोंमें किया जाने लगा। अब तो जीवनका ऐसा कोई काम नहीं है, जिसमें बिजलीकी शक्तिका प्रयोग नहीं होता। तार, टेलीफ़ोन, बेतारकेतार आदि अनेक आविष्कार हमारे दैनिक जीवनमें व्यवहृत हो रहे हैं।

भविष्य अन्धकारमें है, क्योंकि उसके सम्बन्धमें कोई कुछ नहीं कह सकता कि कब क्या हो जायगा। विज्ञानकी ऐसी आश्चर्यजनक उन्नति देखकर ऐसा जान पड़ता है कि कभी मनुष्य उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँच जायगा। पर कुछ लोग ऐसे हैं, जो विज्ञानकी इस उन्नतिको संशयकी दृष्टिसे देखते हैं। उनका कथन है कि विज्ञानने मनुष्यकी संहारकारिणी शक्तिको बढ़ा दिया है। धार्मिक श्रद्धाके अभावमें और पार्थिव समृद्धिकी वृद्धिके प्रयासमें लोगोंमें परस्पर शत्रुता खूब बढ़ रही है। इसका परिणाम यह होगा कि लोग स्वयं लड़-भिड़कर नष्ट हो जायँगे। कौन जाने, विज्ञान हमें उन्नतिकी ओर ले जा रहा है या अवनतिकी ओर।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान वैज्ञानिक युगमें जब हम लोगोंकी दृष्टि वैज्ञानिक आविष्कारोंके कारण विज्ञानकी उन्नतिकी ओर ही आकृष्ट हो चुकी है, साहित्यकी महत्ताका वर्णन करना उपहासजनक होगा। परन्तु जो चिरंतन सत्यका वर्णन करता है, जिसमें चिरंतन सौंदर्यकी झलक है, जिसमें काल और देशके अतीत जीवनकी यथार्थ महिमा व्यक्त है, जिसका एकमात्र ध्येय मनुष्यकी सर्वकालीन और सर्वांगीण उन्नति है, उसकी ओर तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जिस राथ्सचाइल्डने अपना सारा जीवन धनके संग्रहमें व्यतीत किया है, वह उस क्राइस्टके जीवनकी महत्ताको कैसे समझ सकता है, जिसने आजीवन दरिद्रता स्वीकार की। जिस अलेक्ज़ेन्डरने संसारको वशीभूत करनेके लिए आजीवन एकके बाद एक, कितने ही देशोंको, साम्राज्य-लिप्साके कारण पद्दलित किया, वह उन बुद्धदेवके जीवनकी महत्ताको कैसे समझ सकता है, जिन्होंने एक साम्राज्यको पैरोंसे ठुकराकर वनका आश्रय लिया। दीवाने-आम और दीवाने-खासके निर्माता, सारे भारतवर्षको अपनी अधीनतामें लानेवाला महान् अकबर उस तुलसीदासकी क्षुद्र कुटीका महत्त्व कैसे समझ सकता है, जिसकी दिव्य वाणी आज भी भारतवर्षके घर-घरमें गूँज रही है।

साम्राज्य नष्ट हो गए और नष्ट हो जायँगे। धनकी विशाल राशि क्षण-भरमें विलीन हो जायगी। ऐश्वर्यकी विशाल अट्टालिका पल-भरमें धराशायी हो जायगी। परन्तु साहित्यके उपवनमें चि नवीन कुसुम खिलते ही रहेंगे। उसकी छवि नष्ट नहीं होगी उसका सौरभ हीन नहीं होनेका। कार्लाइलने एक बार क था कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य छोड़ दूँगा; पर शेक्सपियर रचनाको नहीं छोड़ सकता। यह है साहित्यकी महत्ता। यू यूनानी साम्राज्य कहाँ है? पर होमरकी वाणी आज भी विद्यम है। सोक्रेटीज़के उपदेश आज भी सुने जा सकते हैं। प्ले और अरस्तूके ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं।

विज्ञान इस जगत्को लेकर ही व्यस्त है। उसका स ध्येय ऐहिक जगत्का ही विश्लेषण है। वह उसी शक्तिके अ संधानमें लगा हुआ है, जिसके कारण मनुष्यकी मानवीय शक्ति वृद्धि हो। साहित्यका विषय है अतिमानवीय। जो चिरंतन सु है, जो चिरंतन सौंदर्य है, जो चिरंतन आनन्द है, जो चिरं शान्ति है, वह एकमात्र साहित्यका ध्येय है। वैज्ञानिकों द्वारा ह जीवनमें कितनी ही सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं। मनुष्यकी वह क्षम भी बढ़ गई है, जिसके कारण वह दूसरोंका संहार सरलतापूर्व कर सकता है। पर विज्ञान द्वारा क्या कभी उस प्रेमका प्र हुआ है, जिसके कारण मनुष्य मनुष्य-मात्रको अपना बन्धु समझे प्रेम, दया, सहानुभूति, सेवा--यही भाव तो स्पृहणीय हैं। इ भावोंका उद्रेक या प्रचार कभी विज्ञान द्वारा सम्भव नहीं है विज्ञान शक्ति देकर मनुष्यको व्याघ्रसे भी अधिक भयंकर भले ब बना दे; परन्तु यह साहित्यकी ही शक्ति है, जिसकी म वाणीको सुनकर व्याघ्र भी अपना हिंसक स्वभाव भूल जाय।

यदि जीवनकी यथार्थ महिमा देखनी है, तो साहित्य- देखो यदि चिरंतन शक्तिको प्राप्त करना है, तो साहित्यका अध्य करो। यदि विशुद्ध और चिर-नवीन सौंदर्यका दर्शन करना है, तो साहित्यका आश्रय लो। सरस्वतीके सरोवरमें साहित्य ही कमल रूपमें खिलकर चारों ओर अपना स्निग्ध सौरभ वितरण कर र है। सरोवरमें यदि कोई भैंसकी तरह अपने शारीरिक अभाव पूर्त्तिके लिए निर्मल जल-राशिको गँदला करे, तो उसे अ कामसे सन्तोष भले ही हो जाय; पर वह कमलके सौरभका यथा अनुभव नहीं कर सकता। ऐसे नर-सैरिभको हम क्या कहेंगे पर ये ही आज वैज्ञानिकके नामसे प्रसिद्ध हैं।

साहित्य-रसिक तो भौंरेकी तरह साहित्यके कमल-वन सेवन करते हैं। वे लोग साहित्यका यथार्थ रसास्वादन करते हैं पर इन दोनोंके अतिरिक्त भी साहित्यके तटपर बककी तरह लोग केवल मत्स्यकी इच्छासे बैठे हैं, उन्हें क्या कहना चाहि इसका निर्णय-भार मैं तुमपर ही छोड़ देना चाहता हूँ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

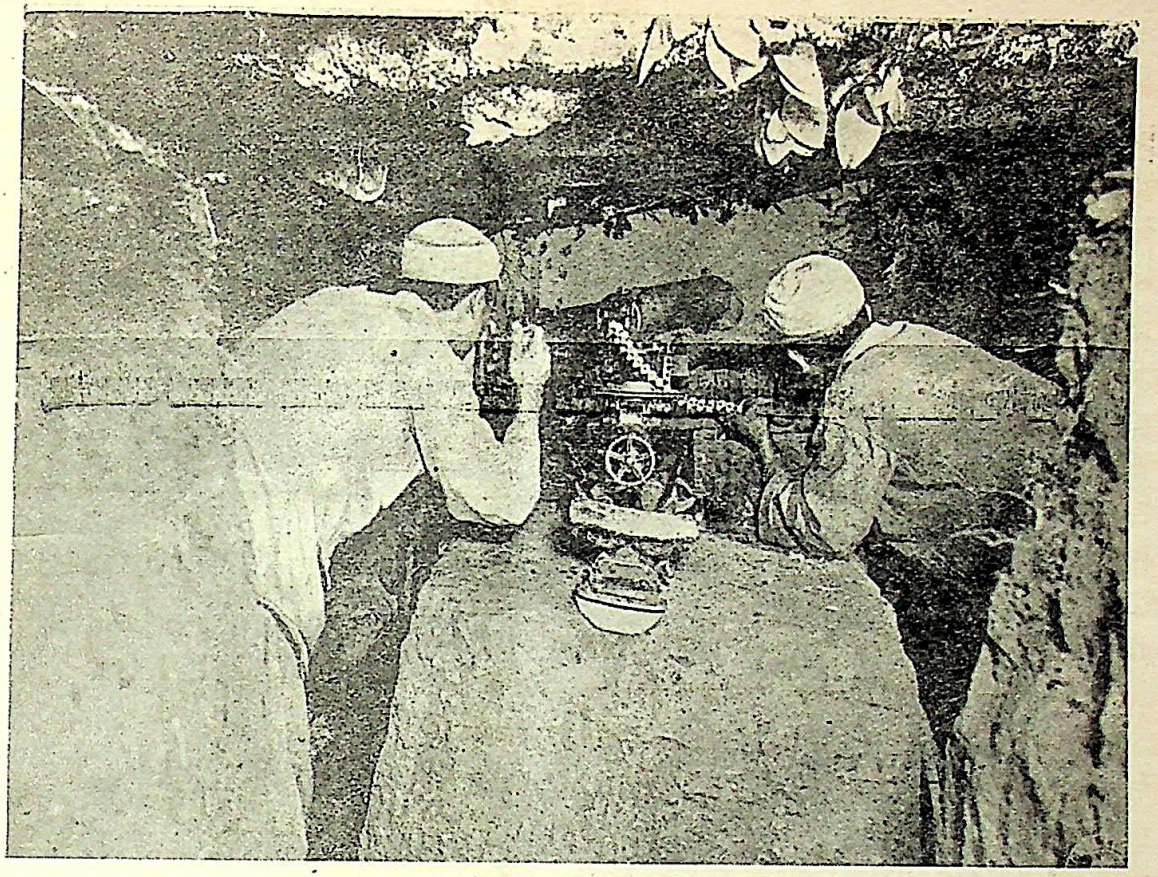

मशीनगनोंसे जापानी टुकड़ीका स्वागत करनेसे पूर्व झाड़ियोंमें छिपे चीनी सैनिक दूरबीनसे उसका सन्धान कर रहे हैं।

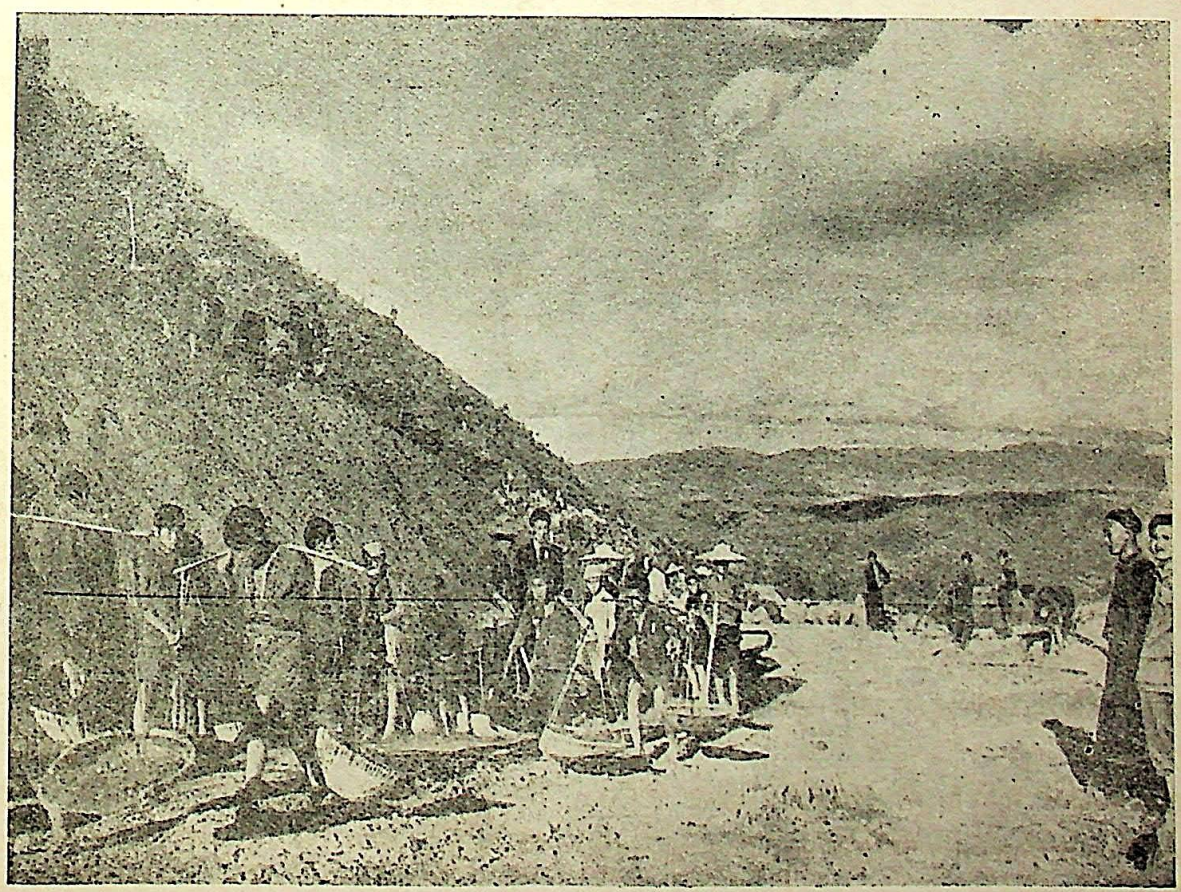

बर्मा-सड़कके आसपासके गाँवोंके निवासी (विशेषतया बच्चे) खाद्य और युद्ध-सामग्री ले जानेका कार्य कर रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

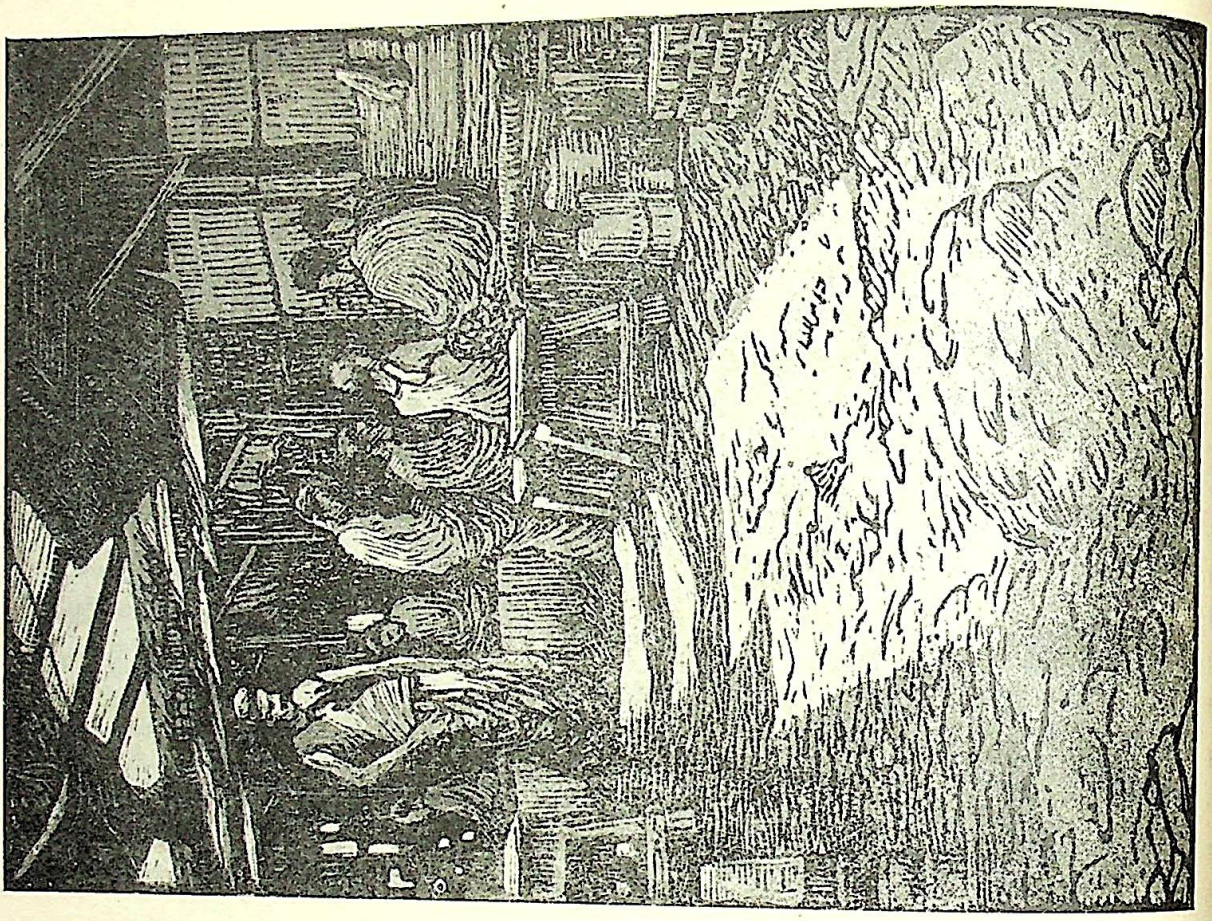

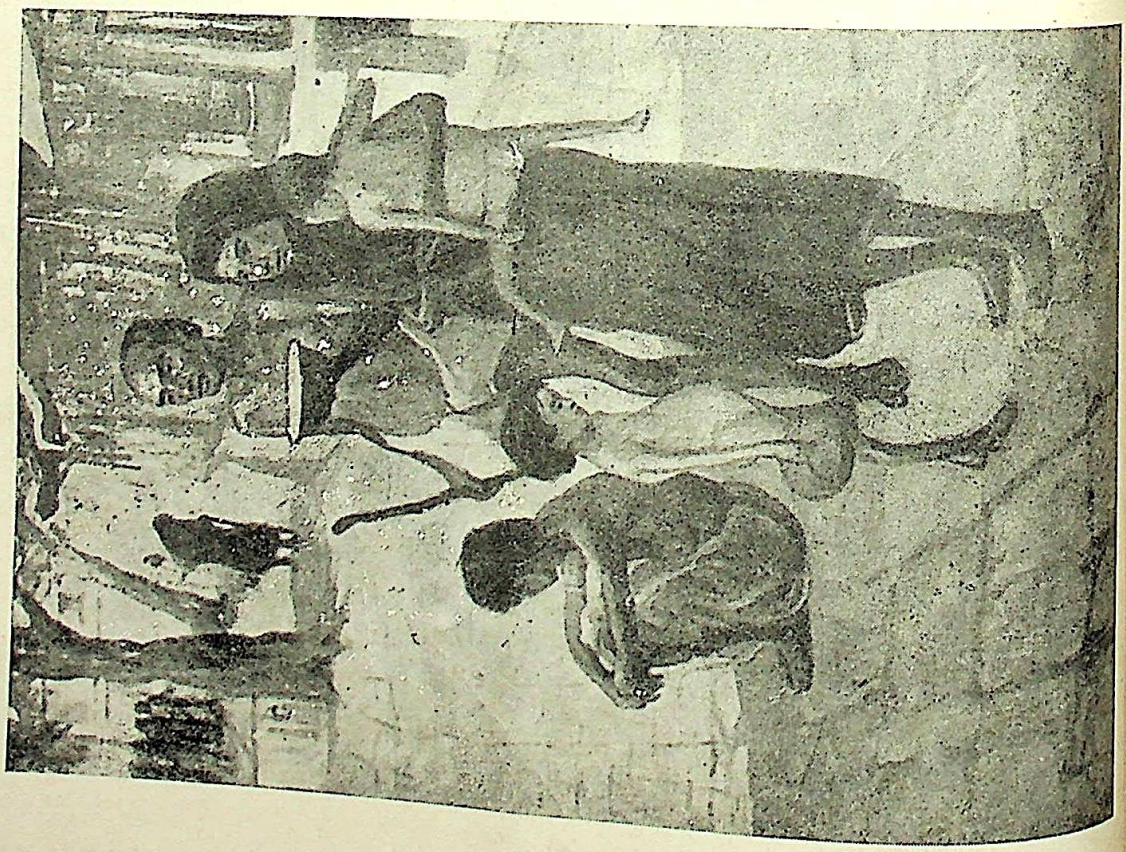

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किन्नरोंके देशमें

श्री भदन्त शान्तिभिक्षु, शास्त्री

सन् १९३९ के अगस्त महीनेकी बात है। मैं जयपुरमें था। वहाँके संस्कृत-कालेजसे स्नातक होकर आगे अपने अध्ययनको चालू रखनेकी बात मैं सोच रहा था। उन दिनों वहाँ बड़ी चहल-पहल थी। सेठ जमनालाल बजाज अपनी नज़रबन्दीसे छुट्टी पाकर वहीं विश्राम कर रहे थे। मैं उनके दर्शन करने गया। समय दोपहरका था। बजाजजीका मौन-दिवस था। जाते ही उन्होंने स्लेटपर लिखकर पूछा—'क्या दूरसे चलकर आए हैं?' जिस जगहपर वे ठहरे थे, वह शहरसे ६ मीलसे कम दूर न थी, और शायद इसीलिए उन्होंने पूछा था। मैंने कहा—'नहीं, पैदल नहीं आया हूँ, साथमें गाड़ी है।' इस तरह मौखिक और लिखित संवाद लगभग घंटे-भर तक चलता रहा। मैंने उनके सामने बौद्ध साहित्यके अध्ययनकी इच्छा प्रकट की। उन्होंने सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन और धर्मानन्द कौसाम्बीके नाम और पते बताए राहुलजीकी लिखी कुछ पुस्तकें मैं उस समय पढ़ चुका था। इस तरह वे मेरे लिए अपरिचित न रह गए थे; पर आनन्दजी और कौसाम्बीजीको मैं नहीं जानता था। मैंने तीनों महानुभावोंको पत्र लिखे, और उनमें यह भी लिख दिया कि मैं अपने आगामी अध्ययनका विषय बौद्ध वाङ्मयको बनाना चाहता हूँ और मेरा विचार है कि पालीके अध्ययनके लिए सीलोन चला जाऊँ। राहुलजीसे मुझे तुरन्त जवाब मिला—"अभी आप सीलोन जानेका इरादा छोड़ दें; उसकी जगह शिमला होते हुए रामपुर (रियासत) चले जायँ। रियासतके ऊपरी भागमें कनौरका इलाक़ा है। वहाँ किसी बौद्ध मठके शिक्षित लामासे तिब्बती भाषा पढ़ें। बौद्ध दर्शन और न्यायके सैकड़ों लुप्त ग्रन्थ अब तिब्बती भाषामें ही मिलते हैं। यदि आप वहाँ एक-डेढ़ वर्ष रहकर तिब्बती भाषाके 'प्रमाण-वार्त्तिक', 'न्यायबिन्दु' आदि कुछ ग्रन्थोंको पढ़ जावें, तो पीछे पाली पढ़नेके लिए सीलोन जानेमें भी दिक्क़त न होगी। कनौरमें चिनीके आसपास रहें। वहाँ रघुवीर नामके तिब्बतसे लौटे एक लामा हैं, उनसे आपको मदद मिलेगी।"

आनन्दजीने जवाब दिया कि आप यहीं आ जायँ, तो खुलकर बातें हों और मैं देख सकूँ कि कहाँ तक आपकी सहायता कर सकता हूँ। कौसाम्बीजीके पास मेरा पत्र पहुँचा ही नहीं, और वह मेरे पास ही लौट आया। मैं इन सब बातोंको लेकर जयपुरमें ही उलझता रहा, और इसी उलझनकी हालतमें कुछ दिन श्रीमाधोपुर तथा कुछ दिन वनस्थलीमें बिताए। इधर आनन्दजी से पत्र-व्यवहार चलता रहा। अंतमें उनके आग्रहसे मैं सरनाथ पहुँचा। अक्टूबरसे मार्च, १९४० तक मैं सारनाथमें रहा। पाली में त्रिपिटकके कितने ही सूत्र और मौद्गल्यायनका पाली व्याकरण अध्ययन इस बीचमें मैंने कर लिया। इससे पाली भाषामें मेरा प्रवेश तो हो गया; पर अगले अध्ययनको जारी रखनेके लिए किसीने मुझे कोई मार्ग न बताया। फिर भी सारनाथको मैं जल्दी न छोड़ सका, और छोड़ता भी कैसे। जब तक मैं अपने आगेके कार्यक्रमके विषयमें कुछ निश्चित न कर लूँ, मुझे सारनाथ छोड़ना जँचता न था। मैं बुद्धके चरणोंसे पवित्र, बुद्धकी वाणी-रूप मंत्रोंसे पूत सारनाथके वातावरणमें ही किसी प्रकारका निश्चय कर लेना चाहता था। योंही देरपर देर होती गई। अंतमें मैंने निश्चय कर ही लिया, और लाहौर चला गया। वहाँ मेरा पहलेसे ही कुछ परिचय था। मैं प्रसिद्ध रईस भाई मनोहरलालजीके यहाँ ठहरा। कितने ही पुराने परिचित भी मिले। मेरे मित्र श्री यज्ञदत्त शास्त्री, जिनसे कुछ दिनोंका ही परिचय था, इस समय मेरे बहुत काम आए। उन्होंने कहा-'आप अभी ठहरिए। जुलाईमें स्कूल गर्मीकी छुट्टीके लिए बंद होंगे, तब मैं आपको स्वयं कनौर ले चलूँगा। जहाँ आपका काम हो सके, वहाँ तक आपके साथ चलूँगा और आपको पहुँचाकर लौट आऊँगा।' धीरे-धीरे जुलाई आई। स्कूलोंमें छुट्टियाँ हुईं, और हम लाहौर से चल पड़े। शिमला पहुँचनेसे पहले हम लोग धर्मपुर और सोलन दो जगह ठहरे।

लाहौरसे चलनेसे पहले मैंने सफ़ेद कपड़े उतार फेंके थे और सिर मुँड़ाकर पीले कपड़े पहन लिए थे। इन रँगे कपड़ोंके कारण मुझे बहुत सुविधा हुई। भाईजी तो सर्वत्र मेरा बौद्ध भिक्षु कहकर ही परिचय देते थे। नामसे मैं भिक्षु था ही, सो यह स्वांग खूब बन गया। जिस समय मैं मन-ही-मन त्रिरत्नकी शरण जाकर पीले कपड़े पहन रहा था, घरसे बेघर होनेका संकल्प कर रहा था, मैंने भाई यज्ञदत्तसे कहा कि यद्यपि आज मैं इन कपड़ोंको इसलिए पहन रहा हूँ कि कनौरके लोग मुझे बौद्ध समझकर मेरे साथ सहानुभूति रखें, पर आगे चलकर जहाँ भी मुझे दीक्षाका सौकर्य मिला, मुझे दीक्षा लेनी ही है; क्योंकि जिस रास्तेपर मुझे चलना है, उसमें जब तक मैं दीक्षा न ले लूँ, अपनी पूरी शक्ति न लगा सकूँगा।

सोलनसे शिमला ३० मील है। शिमलेसे हमें पैदल चलना था; लेकिन भाईजीने सलाह दी कि सोलनसे शिमलेका रास्ता अच्छा है, चढ़ाई बहुत कम है, इसलिए शिमला तक पैदल चल कर यह परख लेना चाहिए कि आगे कैसी बीतेगी। मैं तैयार हो गया। अपना झोला पीठपर लादा, जिसका भार १५ सेरसे कम न होगा। भाईजीके झोलेका बोझ मुझसे ज़्यादा ही था। सोलनसे बाहर निकले। खुफ़िया-पुलिसके आदमीने नाम-धाम लिखे। हम थोड़ी ही दूर गए थे कि उसने फिर रोका और कहा—'आप अभी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

नहीं जा सकेंगे।' मैंने देखा, कितने ही जटाजूटधारी साधु और ग्रामीण लोग सड़कपर आरामसे चल रहे हैं ; पर उन्हें कोई नहीं रोकता। खैर, ४ बजे जब वाइसरायकी सवारी निकल गई, तब हमें जानेकी अनुमति मिली। दूसरे दिन हम शिमला पहुँच गए। दो दिन विश्राम करके फिर चल पड़े। शिमलेकी सीमा पार करते ही मिला—तिब्बत १९६ मील। बरसातके दिन थे। भीगते-भागते, चढ़ाई-उतराई पार करते, तीन दिनमें ४९ मील चले। थानेधार आ गया। यहीं भाई यज्ञदत्तजीका घर था। उनकी माताजी बड़े आदर और स्नेहसे मिलीं। पानी गरम करके उन्होंने मेरे पैर धोए, फिर भोजन बनाने लगीं। मैं कुछ क्षणोंमें ही उनसे खूब हिल-मिल गया और रसोईघरमें जाकर गप्पाष्टक करने लगा। तीन दिन यहाँ रहा। यज्ञदत्तजी तो अक्सर गायब रहते, गाँवके संगी-साथियोंसे उन्हें फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। मैं थका था। बाहर झड़ी लगी हुई थी। घरमें बैठे-बैठे माताजीके साथ इधर-उधरकी बातें चलती रहती थीं। तीन दिनके बाद हम फिर चले। लगातार ६ मीलकी तेज़ उतराई थी। पैर बुरी तरह दुखने लगे। उतरते-उतरते सतलजके किनारे जा पहुँचे। शिमलेसे थानेधार तक खूब ठण्डा था, अब एकाएक गर्मीमें आ गए। रामपुर तक गर्मी-ही-गर्मी थी। शिमलेसे ७० मीलपर रामपुर पहुँचते-पहुँचते मुझे हरारत हो आई ; पर सबेरे ही फिर चलना पड़ा। रामपुरके राजकीय बौद्ध मन्दिरके लामासे कनौरके कुछ लामाओंके नाम और पते डायरीमें नोट किए, जिनसे आगे बड़ी सहायता मिली।

अब आगे चढ़ाई थी। एक ही दिनमें सराहन (शिमलेसे ८९ मील) पहुँचे। रामपुर-स्टेटमें रामपुरके बाद सराहन ही बड़ा शहर है। सराहन तक बहुत क्लेश नहीं हुआ। यहाँसे चलकर हम चौरा पहुँचे, जो शिमलेसे ९२ मीलके लगभग है। यहींसे कनौरका प्रदेश शुरू होता है। कनौरकी शिनाख्त करते हुए विद्वानोंने उसे किन्नर-देश कहा है। किन्नर-जाति अपनी सुन्दरतामें सभी पहाड़ी जातियोंसे बढ़ी-चढ़ी है। दूसरी पहाड़ी जातियोंके रक्त में इतना सम्मिश्रण हुआ है कि उनके चेहरे और उनकी आँखोंमें अमिट मंगोल छाप पड़ गई है ; पर किन्नर-जातिमें यह बात नहीं है। उनका चेहरा, उनकी शारीरिक गठन ठीक वैसी ही है, जैसी आर्य-जातिकी होनी चाहिए। किन्नर-भूमि सतलजकी दूनमें १०० मीलकी लम्बाईमें फैली है। ज्यों-ज्यों नीचेसे ऊपर जाते हैं, ठण्डक और सूखापन बढ़ता जाता है तथा बरसातकी कमी होती जाती है। फ़सलकी सिंचाई केवल पहाड़ी जल-स्रोतोंपर निर्भर है। जिस वर्ष हिम-वर्षा अच्छी होती है, जल-स्रोतोंमें खूब पानी रहता है ; पर यदि हिम कम पड़ा, तो अकालके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार कम हिम पड़नेसे हर तीसरे-चौथे वर्ष संकट आया ही करता है।

किन्नर-भूमिमें घुसते ही हमारी कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं। इस लम्बे प्रदेशमें दूकानें केवल दो-चार जगह ही हैं, जहाँ पकानेका सामान मिल सकता है। हाँ, यह कुशल है कि यात्रियोंके लिए बीच-बीचमें रियासतने सराएँ बनवा दी हैं और कहीं-कहीं महकमा जंगलातके रेस्ट-हाउस भी बने हैं, जहाँ रात बिताई जा सकती है। इन कठिनाइयोंको झेलते हम आगे बढ़ते जाते थे और पर्वतोंके आकाशचुम्बी शिखरोंको देखकर कभी-कभी चकित हो जाते थे। धीरे-धीरे हम चिनी पहुँचे। शिमलेसे यह दूरी १३८ मील है, और यहीं अन्तिम डाकघर है। मैं इस प्रदेशमें उतना ही आगे जाना चाहता था, जितना आगे जानेमें मुझे पत्र-व्यवहारका सौकर्य बना रहे। चिनी तहसील है और वहाँ बुशहर स्टेटके तहसीलदार उस समय वहीं थे। उनसे बात करनेपर मालूम हुआ कि लिप्पा गाँवमें एक शिक्षित लामा रहते हैं, यदि वे पढ़ाना मंज़ूर कर लें और ठहरनेका प्रबन्ध कर दें, तो जिस कार्यके लिए आया हूँ, उसकी आंशिक पूर्त्ति हो सकती है। मैंने उनका नाम पूछा। उन्होंने बताया—सोनम डुप्के। मुझे मालूम हुआ कि सोनम डुप्के तिब्बती शब्द सोनम ड्रुप्के अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है 'पुण्याग्र घोष'। चिनीसे लिप्पा ९ मीलके लगभग है। हम एक दिन चिनीमें ठहरकर फिर आगे बढ़े। रास्तेमें कई गाँव आए। अब हरएक गाँवके दोनों ओर प्रवेश-द्वार मिलते, जिन्हें पुराने शब्दोंमें पुकारें, तो तोरण कहना उचित होगा। तोरणोंकी छतोंमें बुद्ध, बोधिसत्त्वों तथा अन्य देवताओंके चित्र अंकित थे। हर गाँवमें कितने ही विहार बर्फ़ीले शिखरोंके साथ दिखाई पड़ते। पत्थरोंपर तान्त्रिक मन्त्र ओं मणि पद्मे हुं विविध चन्द्र खुदे मिलते। असलमें चिनीसे ऊपरकी किन्नौर-भूमि तान्त्रिक बौद्ध धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको जानती ही नहीं। हम जिस स्थानको लक्ष्य करके चले थे, वह चिनीसे २० मील था। उसका नाम जंगी है।

जंगीकी वह रात मेरे लिए बहुत स्मरणीय हो गई है। जब जंगी पहुँचे, तब अँधेरा हो गया था। यह पता न था कि कहाँ रेस्ट-हाउस है। गाँवमें घुसकर मन्दिरके बरामदेमें डेरा डाला। मन्दिर बन्द हो चुका था। मैं थका था, वहीं पड़ रहा। प्यास भी लगी थी और भूख भी। लोगोंसे पूछा-पाछी की। किसीने न पानीकी जगह बताई और न घरसे पानी ही लाकर पिलाया। पकानेके लिए चावल-दाल तो साथ थे ; पर बर्तन नहीं थे। रातको पात्र भी किसीने न दिए। भाई यज्ञदत्तजी तो कई ही रेस्ट-हाउस ढूँढ़ने जाना चाहते थे ; पर मैं थकावटसे इतना हार चुका था। मैंने कहा—अब मैं तो दो क़दम भी नहीं चल सकता। आप जाइए, सबेरे मुझे यहाँसे ले जाइएगा। मेरी हालत देखकर वे भी वहीं लेट रहे। कुछ मिश्री खाई और रातभर प्याससे परेशान रहे। सबेरे जब मैं जागा, तो भाई यज्ञदत्तजी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गायब थे। दिन निकलते-निकलते लौटे। बोले—'चलिए, पहले चाय पी लीजिए। भोजन भी तैयार होने जा रहा है।' हम रेस्ट-हाउस पहुँचे। खाना खाकर मैं फिर सो गया। दोपहर बाद हम उठे और लिप्पाके लिए चल पड़े। १३ जुलाईको हमने लाहौर छोड़ा था और ८ अगस्तको लिप्पा पहुँचे।

भाग्यसे लामाजीसे भेंट हो गई और मेरा तिब्बतीका अध्ययन शुरू हो गया। एक ओर तो मैं तिब्बती भाषाका अध्ययन कर रहा था और दूसरी ओर गाँव तथा मठमें होनेवाले धार्मिक और सामाजिक समारोहोंमें भी शामिल होता रहता था। बौद्ध धर्मके माननेवाले इन किन्नरोंमें मन्त्र-तन्त्रके प्रति अपार विश्वास है। वहाँ मैं दिसम्बरके महीनेमें बीमार हो गया। बुखार आ गया था और सिरमें बड़ा तेज़ दर्द था। हमारे लामाजी अच्छे वैद्य थे। मैं सोचता था कि कुछ औषध देंगे; पर बात उल्टी हुई। वे झाड़-फूँकमें लगे हुए थे, और मैं भीतर-ही-भीतर इस अन्ध-विश्वासपर कुपित हो रहा था। पर मेरी वहाँ कौन सुनता? औषध भी पिलाई; पर मन्त्रोंकी फूँकके साथ। मेरा शरीर बहुत कमज़ोर हो गया था। बड़ी कठिनाईसे थोड़े-से दूधका प्रबन्ध हुआ, तब जाकर मेरा शरीर जैसे-तैसे सँभला। दृष्ट और अदृष्ट दोनों विषयोंमें यहाँ मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग होता है। पुराने लोगोंका विश्वास था कि आत्मा यदि शरीर छोड़ते समय ब्रह्मरन्ध्रके मार्गसे निकले, तो उसे सद्गति मिलती है। इस सद्गति-प्राप्तिका उपाय किन्नर लोग जीते-जी ही कर लेते हैं। लामा एक मन्त्र देता है। मन्त्रको कण्ठस्थकर उसका निरन्तर पाठ किया जाता है। मन्त्रके बलसे शिखाके पासका स्थान फूल जाता है तथा उससे कुछ जल और रुधिर निकलता है। इस पद्धतिको 'फोआ' कहते हैं। मन्त्रके प्रभावसे शिखाके प्रदेशका फूलना तथा उससे जल और रुधिरका निकलना सचमुच विचित्र है। मरण-कालमें लामाओंको विशेषकर इस क्रियाके लिए बुलाया जाता है। शिखाके जिस प्रदेशसे रुधिर निकलता है, कहते हैं, वहाँ एक छेद हो जाता है, और यदि 'फोआ' किए हुए व्यक्तिके कपालको देखा जाय, तो उसमें बहुत बारीक छिद्र मिलेगा। इस प्रकारका कपाल, जिसे सिद्ध लोग पात्र बना लिया करते थे और अब भी करते हैं, पात्र बनानेके लायक नहीं रहता। गुप्त रहकर यह क्रिया नहीं की जाती, बल्कि जन-समूहके बीच इसको करते हैं। मन्त्रके इस प्रयोगपर मैं अविश्वास न कर सका, क्योंकि यह क्रिया मेरी आँखों देखी हुई है। मन्त्रोंका सीखना भी उस देशमें सहज नहीं है। मन्त्र सीखनेके उम्मीदवारको वहाँ बड़ी कड़ी तपस्या करनी पड़ती है। साधकोंको एक बन्द घरमें रहना पड़ता है, जहाँ केवल गुरु तथा एक अन्य व्यक्ति, जो साधकको आवश्यक वस्तुएँ (अन्न-जल आदि) पहुँचा दे, जा सकते हैं। इसका अर्थ है विवक्त वास, एकान्त-सेवन। लाखों पंचाग नमस्कारोंकी उठक-बैठकके बाद साधक मन्त्र-शास्त्रका अधिकारी समझा जाता है। लाखों जपोंके बाद उसे कुछ-कुछ रहस्य बताया जाता है। कभी-कभी तपस्या और भी कठोर हो जाती है, जब साधक 'मुन्दघम' या अन्धकारमें एकान्तवासका जीवन बिताता है। घरमें केवल एक छेदको छोड़कर, जिससे खाना और पानी पहुँचाया जा सके, पूरा घर बन्द कर दिया जाता है। द्वारको पत्थरोंसे चिनकर पलस्तर कर देते हैं। इसी प्रकार महीनों बीत जाते हैं। मन्त्र-शास्त्रपर अटल विश्वास होनेके कारण ऐसी तपस्याएँ आज भी बहुतसे लोग करते हैं। सर्दीके दिनोंमें जब हिम-वर्षा होती रहती है, बाहरका काम नहीं किया जा सकता, उस समय लोग जप-तपमें ही लगे रहते हैं।

किन्नरोंका मुख्य धार्मिक सिद्धान्त बोधिसत्त्वयान है। बोधिसत्त्वयान या महायानकी व्याख्या तो यहाँ नहीं की जा सकती; पर उसके मर्मकी ओर संकेत-भर कर देना काफ़ी होगा। अपने शरीर, अपनी योग-सामग्री और अपने सुकृत (पुण्य) को प्राणिमात्रके लिए उत्सर्ग कर देना और उत्सर्गके लिए ही उनकी रक्षा, शुद्धि और वृद्धि करना बोधिसत्त्वानुयायीका मुख्य कर्त्तव्य है। अपनी और अपने लोगोंकी रक्षा एवं वृद्धिके लिए किन्नरोंको आज भी भौतिक शक्तिपर विश्वास नहीं है। इनके लिए न मालूम कितने मन्त्र-तन्त्र और पूजा-पाठ होते रहते हैं। मन्त्रयानमें सभी वस्तुओंकी रक्षाके लिए मन्त्र हैं, और वे आज भी अमोघ समझे जाते हैं। नाना प्रकारके मन्त्र भी इन रक्षाओंके लिए प्रचलित हैं। मानसरोवरके पासके एक प्रसिद्ध लामाका बनाया हुआ एक मन्त्र, यह जानते हुए भी कि मैं उसपर विश्वास नहीं करता, मुझे दिया गया। उसका फल यह बताया गया कि उससे आयु-रक्षा होती है। ऐसी कोई भी रहस्यमयी बात सुननेमें आना उस देशमें अचम्भेकी बात नहीं। और हो भी क्यों? जिस देशमें आज भी वैदिक युगकी तकली और करघेसे ऊनकी कताई-बुनाई होती है, आज भी जहाँ हल और कुदालसे ही खाने-भरको मिल जाता है, आज भी पशु-चारणके आदिम-युगके समान जहाँ कितने ही परिवारोंके सदस्य आरण्यक जीवन बिताते हैं, आज भी जहाँ स्त्री और पुरुष अबाध-रूपसे स्वच्छन्द हैं, आज भी जहाँ सभ्यताके क्षेत्रोंमें अनिवार्य-रूपसे प्रचलित मिथ्याभाषण और अनाचार नहीं फैला है, आजके युगमें भी जहाँकी सुन्दरियोंको यह पता नहीं है कि वेश्या-वृत्ति क्या होती है, आज भी जहाँ स्त्री-पुरुषोंके व्यवहारमें उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता और मुग्धता विद्यमान है, आज भी जहाँ वर्षाके लिए लोग लामाओं और देवताओंसे प्रार्थना करते हैं और आज भी जहाँ अदृष्ट तथा अश्रुतपर ही अटूट और अगाध विश्वास है; वहाँ यदि बहुत-सी अदृष्टव्य और अश्रुतपूर्व बातें सुनाई पड़ें, तो आश्चर्य ही क्या?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस अचरज-भरी भूमिमें भोजनके लिए मांस सुलभ है। अंगूर, सेव, खूबानी, चिलगोज़े-जैसे मेवे सुलभ हैं, जौ सुलभ है और गेहूं भी दुर्लभ नहीं है। उस भूमि-निवासियोंकी प्रिय वस्तु है चाय, जिसे पीना वे पहले नहीं जानते थे; पर तिब्बती संसर्गके कारण आज वह उनका प्रिय पेय है। सत्तू उनका प्रिय खाद्य है। नमक और मक्खन मिली चायका स्वाद उनको छोड़कर और किसे प्रिय होगा? उत्सवोंपर और समारोहोंमें किन्नर तथा किन्नरियाँ उन्मुक्त भावसे नाचते-गाते हैं। उनमें जाति-भेद नहीं है। वहांकी स्त्रियाँ श्रमजीवी हैं। परिवारकी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माता होती है, पिता नहीं। किन्नर-जातिमें भिक्षु तथा भिक्षुणियोंकी संख्या भी कम नहीं है; पर उन्हें भिक्षाका व्रत लेकर भी भिक्षा नहीं माँगनी पड़ती। किन्नर और किन्न एक दलने एक बार मज़ाकमें मुझसे कहा कि आपके देशमें में जानेपर माँगनेवाले नाकमें दम कर देते हैं। यद्यपि देशमें बड़े-बड़े अमीर हैं; पर माँगनेवाले भी कितने हैं हमारा देश है, जहाँ ग़रीबी तो है; पर हाथ पसारकर माँग कोई नहीं। परन्तु उस दूरवर्त्ती छोटे-से देशमें भी यहांके लग चुके हैं और उसका स्वास्थ्य भी खतरेमें है। जो आज उनमें हमसे अधिक स्वास्थ्य, अधिक सौन्दर्य और शान्ति है। यद्यपि वे आज भी कई शताब्दियों पूर्वके मन्त्रयान-युगमें विचर रहे हैं; पर पिछड़े हुए होनेपर स्पृहणीय हैं।

जीवन-यात्रा

श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा

सोनकुप्पी गाँवके बाहर, एक पोखरेके पास, सड़कके किनारे एक आदमी दो बच्चोंके साथ बैठा था। देखनेमें वह भिखारी-सा लगता था। मैं उसके नज़दीक जाकर खड़ा हो गया। तीनों इस तरह बैठे थे, मानो सड़कके या प्रकृतिके अजंगम पदार्थों के ये भी टुकड़े हों। उनके साथ बोरेके टुकड़ेका एक बण्डल था। मेरे कहनेपर मनसाने बण्डल खोला, जिसमें ये चीज़ें थीं—एना-मेल किया हुआ लोहेका जीर्ण एक गहरा प्लेट, लोहेकी एक टूटी कड़ाही, काला ज़ंग लगा हुआ एक सिगरेटका टिन, जो इस परिवारके लोटे, ग्लास और कटोरेका काम करता है। इस समय उसमें नमक है—पत्तेमें लपेटा और रस्सीसे बँधा। आधा सेर चावल और कुछ कच्चे मक्के भी हैं। यही इस परिवारकी सम्पत्तिकी पूरी तालिका है।

मनसा जातका कमार है। वह बाघमुण्डी पहाड़के ऊपर मानबेड़ा गाँवमें रहता था। इसी पिछले माघमें उसकी स्त्री प्रसव-यन्त्रणासे मर गई। मनसापर नवजात शिशुका भार पड़ा। उसे बापसे माँ बनना पड़ा। सवाल उठा जीविकाका। पहले तो मनसा लकड़ी काटकर पहाड़के नीचे हाटोंमें बेचा करता था। अब यदि वह लकड़ी काटे, तो दुधमुँही बच्चीको कौन सम्हाले? घरमें आठ वर्षके ढेलाके सिवा और कोई न था। गाँवोंमें फूटी आँखों भी कौन किसको देखता है? और उस समय ये तो सभी दाने-दानेको तरस रहे हैं। बैठे-बिठाए एक मुट्ठी अन्न मिलनेकी कोई सम्भावना न थी।

मनसाका सम्बन्धी विसु पुरुलिया रहता था। विसु प्रायः मानबेड़ा आया करता और मनसासे कहता—'मनसा भाई, एक बार मेरे घर भी तो आओ। शहर देखो और जितने दिन चाहो, मेरे घर आरामसे रहो।'

मनसाने एक दिन उससे पूछा—'क्या बहुत बड़ा गाँव मानबेड़ासे भी बड़ा?

विसु हँसा और बोला—'शहर है, शहर। कहाँ यह और कहाँ पुरुलिया शहर! यह तो उसके कोनेमें भुला जा

मनसाने सोचा, क्या बड़ा होगा? कुछ और मकान और क्या?

मनसाका ध्यान इस समय विसुपर गया। सोचने लगा किसी तरह विसुके पास पहुँच जायँ, तो सारा दुःख मिट विसुके घर खायँगे, पड़े रहेंगे और थूपीको पाल-पोसकर बना लेंगे। उसके बाद फिर घर लौट आयँगे। विसु कितना सहृदय आदमी है, अपने घर जानेके लिए कितना करता रहा है! हमें देखकर कितना प्रसन्न होगा!

पुरुलिया पहुँचनेमें उसे तीन दिन लगे। दोनों छोटे साथ यात्रा अत्यन्त कष्टकर रही। जाड़ेके दिन, मनसाके कपड़े भी नाम-मात्रके ही थे। पहाड़पर के मकानमें लकड़ी रात कट जाती थी, जाड़ा पास भी फटकने न पाता था। बेचारी रातको रह-रहकर काँप उठती थी, और ढेला दुःख करता था।

मनसा पुरुलिया पहुँचा, तो उसका पूरब-पश्चिमका ज्ञान रहा। उसे ऐसा लगने लगा, जैसे समुद्रके जल-स्रोतमें गया हो। उसने जो सोचा था, उसके विपरीत यह तो मनुष्यों और मकानोंका जमघट है! फिर भी उसका विश्वास बना रहा कि विसुका पता तो चल ही जायगा। आदमी सिरपर टोकरी लिए जा रहा था। उससे मनसाने 'विसुका घर कौन-सा है, भाई?'

'कौन विसु?'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'वही विसु, जो मेरा सम्बन्धी है।'

टोकरीवालेने ऐसे आत्माभिमानके साथ मनसाकी ओर देखा, जैसे बड़े घरोंके नौकर मामूली घरोंके नौकरोंको देखते हैं। फिर उसने कठोर हँसी और रूखेपनसे उत्तर दिया—'मालूम होता है, तुम राजघरानेके हो, तुम्हारे सम्बन्धियोंके नाम इश्तहारोंमें छपते हैं।'

मनसाने उसके इस व्यंगको नहीं समझा और कहा—'विसु मेरा निजी सम्बन्धी है। हम उसीके घर जायँगे। हम मानबेड़ेसे आ रहे हैं।'

टोकरीवाला चलते-चलते बोला—'हाँ, ठीक तो है। चले जाओ, वही जो तिमंज़िला कोठा नज़र आता है।'

मनसा उसका मुँह ताकता रहा। मनमें सोच रहा था, ये शहरके लोग कैसे अजीब होते हैं! कुछ दूर और चलनेके बाद मनसाने एक बाबूसे डरते-डरते पूछा—'बाबूजी, विसुका घर कौन-सा है?'

बाबू साहब खड़े हो गए। एक क्षण चुप रहकर कुछ उस टोकरेवालेके ही भावमें बोले—'विसु डिप्टी-कमिश्नर है?'

मनसाने तो विसुके विषयमें ऐसी कोई शिकायत नहीं सुनी थी। झट बोल उठा—'ना।'

'तो विसु कौन है?'

'मेरा सम्बन्धी है। बराबर मेरे घर जाता है।'

बाबू साहबने हार माननेके भावमें समझाकर कहा—'अरे भले आदमी, तुम्हारा सम्बन्धी होनेसे ही हम कैसे उसे पहचान लें? कौन जात है?'

'जात तो कमार है।'

'तो कमारटोलीमें जाकर ढूँढ़ो।'

यह कहकर उन्होंने कमारटोलीका रास्ता बता दिया। मनसा बढ़ता गया; पर बाबू साहबका बताना और न बताना दोनों एक था। शहरमें पूरब क्या और पश्चिम क्या? थूपीको गोदमें लिए-लिए वह थक गया। अन्तमें भाग्यवश सन्ध्या-समय कमारटोलीमें बहुत पूछते-पाछते विसुका घर मिला।

विसु मनसा और उसके बच्चोंको देख पहले तो अकचकाया, फिर प्रसन्नमुख बोला—'अच्छा, यह तो मनसा भाई हैं! कैसे याद किया? मुझे तो विश्वास ही न था कि तुम इस दीन कुटियाको सार्थक करोगे।' मनसा चुप रहा। विसुने फिर पूछा—'आखिर आ कहाँसे रहे हो—घर ही से तो?'

मनसाने धीरेसे कहा—'हाँ।'

विसु बोला—'बच्चोंको शहर दिखाने लेते आए हो? अच्छा ही किया।'

मनसा बरामदेमें थूपीको रखकर बैठ गया। उसने अपनी दुःख-कहानी विसुको सुनाई और अपना संकल्प भी सुनाया कि विसुके आतिथ्यपर कुछ दिनों जीवन-निर्वाह करनेकी आशासे वह यहाँ आया है। यह सुनते ही विसुका चेहरा उतर गया। वह बगलें झाँकने लगा। मनसा थूपीको मूढ़ीके दो-चार दाने खिलाकर सुला रहा था। उसने विसुका भाव-परिवर्त्तन नहीं देखा। विसुने और दो-एक बातें इधर-उधरकी पूछीं, फिर उठकर बोला—'मनसा भाई, मुझे एक बड़ा ज़रूरी काम है, जाता हूँ। आनेमें देर होगी।' यह कह विसु चला गया।

मनसा अपने दोनों बच्चोंको लिए बरामदेमें ही पड़ा रहा। विसुका रात तक कोई पता नहीं चला। उसकी स्त्रीने भी कोई खोज-खबर नहीं ली। मनसाके पास जो थोड़ा-बहुत खानेको था, उसीपर परिवारने रात बिताई। सब थके थे। बैठे-बैठे नींद आ गई। दूसरे दिन भी विसुके दर्शन नाम-मात्रको ही हुए। दो-एक बार तो वह मनसाके आस-पाससे ही आया-गया; पर उसने न कोई बात कही और न पूछी। मनसाने एक बार पुकारा—'ओ विसु भाई, हम लोगोंको भूल ही गए क्या?'

पर विसुका मुखमण्डल चिन्ताके घने मेघोंसे आच्छन्न था। ताच्छिल्यके स्वरमें उसने उत्तर दिया—'नहीं भाई, भूलूँगा कैसे? पर काम भी तो करना है। यह देहात तो नहीं है कि बैठे-बैठे खाना मिल जाय। महँगीका पता तो तुमको होगा ही।'

दो दिन और इसी तरह बीते। विसु मनसाकी कोई खोज-खबर नहीं लेता और न मनसाको ही कुछ कहनेका साहस होता। विसुको आते-जाते देख मनसा उसके मुँहकी ओर कातर नेत्रोंसे देखता; पर उसके अधरोंकी अस्फुट वाणी विसुके भया-वह गाम्भीर्य और कठोरताकी आँचसे मुरझाकर सूख जाती। वह मनमें सोचता—विसुका यह अजीब अतिथि-सत्कार है कि तीन दिनोंमें उसने एक बार भी खानेको नहीं पूछा। वह तो समझता था कि विसुके घर पहुँचते ही उसका सारा दुःख-क्लेश दूर हो जायगा; पर यहाँ तो ऐसा लगता है, जैसे वह अछूत हो और जितनी जल्दी घरसे निकल जाय, उतना ही अच्छा। मनसाने अभी तक अपनी परिस्थितिपर विचार नहीं किया था। स्त्रीकी मृत्युके शोकने उसे प्राणहीन अवश्य कर दिया था; पर कर्म-जीवनमें उस विरक्तिकी काली छाया अभी तक नहीं पड़ी थी। विसु-जैसे आत्मीय जब हैं, तो चिन्ता किस बातकी है? शहरमें किसीको कमी क्या है? पर यहाँ तो उस कल्पित सुख-संसारका चिह्न भी नहीं! विसुसे अधिक तो एक पराया पूछता।

तीन दिन इसी तरह कटे। मनसा चावलकी जो छोटी-सी गठरी लाया था, उसीसे किसी तरह गुजर हुई; पर अब वह चावल भी खत्म हो चला। चौथे दिन सुबह मनसाके सामने विकट समस्या आ खड़ी हुई। वह स्वयं तो भूखा रह भी सकता था; पर इस ढेला और दुधमुँही थूपीको अपनी आँखोंके सामने भूखों मरते कैसे देखता? पर कोई आशा न दीखती थी। प्रगाढ़

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्धकारसे अनन्त भी आच्छादित था। वह इसी चिन्ता-सागरमें डुबकियाँ लगा रहा था कि विसु आकर उसके पास बैठ गया। मनसाका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। भक्तवत्सल भगवानने मूक आर्त्तनाद सुन दया-दूत आखिर भेज ही दिया। कुछ भी हो, विसु अपना आदमी है। बेचारा कामसे फुर्सत नहीं पाता। हम लोगोंकी देख-भाल करनेके लिए स्त्रीको कह रखा होगा; पर स्त्री कब किसकी हुई है? इन चुड़ैलोंको अपना-पराया भगवानसे भी अधिक प्यारा होता है। उसने हँसनेका प्रयत्न करते हुए विसुसे कहा—'कहो भाई विसु, कैसे भूल पड़े? देखता हूँ, शहरमें तुम लोग कोल्हूके बैलकी तरह जुते रहते हो।'

विसुके मुँहसे प्रत्युत्तरका कोई शब्द न निकला। मनसाने उसकी ओर आँखें उठाकर देखा, तो सहम गया। इतनी कठोर मूर्ति! कुछ क्षणके बाद विसुने कहा—'देखो भाई मनसा, सम्बन्धकी भी कोई हद होती है। आजकल किसके पास इतना अनाज या पैसा है कि किसीको बैठाकर खिलाया करे? मैंने सोचा था, तुम्हें इतनी-सी समझ तो होगी ही, ये कड़ुए शब्द मुँहसे निकालने न पड़ेंगे। पर देखता हूँ, कोई उपाय नहीं है। यहाँ तो खुद दानोंके लाले पड़े हैं। चावल रुपएका डेढ़ सेर मिलने लगा है और दाल बारह आना सेर। अब तुम्हीं बताओ, कौन किसको खिला सकता है? कहीं और ठिकाना देखो।'—यह कहकर विसु उठा और चला गया।

ढेला यह वार्तालाप सुन रहा था। सुखमें पला होता, तो इस उम्रमें सांसारिक जीवनसे अभी मीलों दूर होता; पर दुःखकी गरमीने उसे समयसे पहले ही पका दिया था। उसने अवस्था कुछ-कुछ समझ ली और प्रश्न-सूचक दृष्टि पिताकी ओर डाली। पर मनसा तो जैसे इस संसारमें था ही नहीं। उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यमराज अपने विकराल दाँतोंसे उसके दोनों असहाय मातृहीन बच्चोंकी हड्डियाँ चबा-चबाकर हँस रहा हो। ढेलाने कहा—'बाबा!'

यह सुनते ही मनसा बिजलीकी गतिसे उठ खड़ा हुआ और दोनों हाथ दोनों बच्चोंकी ओर फैलाए पागलकी तरह टूटा। उसके नेत्र खुले होते हुए भी मानो बन्द थे। ढेलाने घबराकर ज़ोरसे पुकारा—'बाबा!'

मनसा ठिठक गया। आँखें फैलाकर वह कुछ क्षण ढेलाकी ओर देखता रहा, फिर ललाटका पसीना पोंछते हुए बोला—'क्या है, बच्चा?'

- २ -

मनसाके लिए अब भिक्षा माँगनेके सिवा कोई चारा न था। पहला रहा था, शहर क्यों आया। गाँवमें और कुछ नहीं, तो खानेको तो किसी तरह मिल ही जाता था। गाँववाले इतने कठोर नहीं होते। अपना ही पड़ोसी सुक्खू और बातोंमें इतना दुष्ट होते हुए भी अपनी थाली मेरे बच्चोंकी ओर बढ़ा देता था। और आता ही क्यों, यदि विसुने आनेके लिए इतना न कहा होता आखिर हम लोग विसुका भण्डार तो नहीं खत्म कर देते खैर, जब भगवानने भीख माँगनेकी ही गति दे दी, तो किसी आगे हाथ फैलायँगे, वही दो मुट्ठी दाने खानेको दे देगा।

थूपीको गोदमें ले मनसा निकल पड़ा। मनसा निराशाके उस सीमा तक पहुँच गया था, जहाँसे साहसका आरम्भ होता है। रास्तेमें देखा, कितने ही भिखारी घूम रहे हैं, कितने द्वारोंपर खड़े कातर दृष्टिसे देखते हुए करुण स्वरसे 'माँ, कि जाय, माँ!' चिल्ला रहे हैं। मनसा और ढेला सबसे पीछे होते। भिक्षा देनेवाला कोई बाहर आता, तो अन्यान्य भिक्षु हाथा-पाईकर एक-दूसरेको ठेलते हुए आगे बढ़नेकी चेष्टा करते पर मनसा और ढेला मानो काठके बने हों, उनके पैर आगे उठते। सबके बाद ये सामने जाते। कभी-कभी इन्हें कुछ मिल जाता; पर अधिकतर खाली हाथों ही लौटना पड़ता। बहुत दरवाज़ोंपर तो किसीको कुछ न मिलता।

एक दिन चौकपर बहुतसे लोग जमा थे। मनसाने समझा वहाँ भिक्षा मिल रही होगी। जाकर देखता क्या है कि एक खोंचेवाला चनेके चटपटे बेच रहा है। कुछ लोग एक-एक पैसेके खरीदकर खा रहे हैं और उनके पास ही भिखमंगोंका एक झुण्ड चारों ओरसे घेरकर खड़ा है। खानेवाले जब खाकर पत्ते फेंक देते हैं, तो स्मशानके भूतोंकी तरह हड्डी-पसलीकी करुणाजनक मूर्त्तियाँ उन पत्तोंपर टूटती हैं और हाथ बढ़ा पतंगकी तरह उन्हें ही ऊपर लोकनेके लिए धक्कम-धुक्का करती हैं। जिसको पत्ते दोना मिल जाता है, वह दूर भागकर उसे जी-जानसे चाटता है।

चार-पाँच दिनके बाद मनसाको बड़े ज़ोरोंसे ज्वर हो आया। उस दिन ढेलाको अकेले भिक्षा माँगने जाना पड़ा। मनसा सन्दिग्ध हृदय ढेलाको अकेले जाने देनेके लिए तैयार न था पर क्या करता? घर छोड़ अकेले निकलते ढेलाके भाव भी कुछ ऐसे हुए, मानो छोटी नौका महासागरमें यात्राको निकली है। ढेलाको और भिक्षुकोंके बीच घुसनेमें डर लगता था। कभी घुसनेकी चेष्टा भी करता, तो अन्य भिक्षुक एक-दूसरेको खोदकर कहते—'देखते हो इस छोकरेको? असली पाकेटमार मालूम होता है।' ढेला जहाँ जाता, वहीं सबकी आँखें उसे घूरा करतीं। परिणाम यह हुआ कि सारे दिन खाक छाननेके बाद ढेलाको एक मुट्ठी अन्न नहीं मिला। भूख और थकावटसे उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। शामको घर लौटा, तो देखा कि मनसा ज्वरमें बेहोश पड़ा है और थूपी उसके बदनपर इधरसे उधर लोट-पोटकर रो रही है।

ढेलाके लौटनेकी आहट पा मनसाने झटकेसे करवट बदली जैसे एकाएक उसके मुरझाए शरीरमें शक्तिका ज्वार उठ आया

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो। चिन्तित-पङ्कित नेत्रोंको फाड़कर वह एकटक ढेलाको देखने लगा, मानो शक्तिहीन भुजाओंके असहयोगके कारण आँखोंसे ही अपने खोये हुए रत्नका हृदयसे आलिंगन कर रहा हो। कुछ दम लेनेके बाद ढेलाने अपनी दुःख-कहानी सुनाई—वही कहानी, जिसे उसका सारा शरीर सूक्ष्म शब्दोंमें अब तक कई बार सुना चुका था। मनसाने एक शब्द न कहा, धीरे-धीरे फिर उल्टी करवट सो गया। ढेलाने थूपीको गोदमें लिया और अन्नके पहलेके जो दो-चार दाने थे, उन्हींसे बच्चीको किसी तरह शान्त किया।

मनसाका ज्वर अभी कम न हुआ था। अपने गाँवमें मनसा जंगलकी जड़ी-बूटीसे दवा तैयार कर लिया करता था। दवा-दारू में आसपासके गांवोंमें उसका नाम भी था। पर यहाँ शहरमें तो सब चीज़ें मोल लेनी पड़ती हैं। ढेलाको दो-चार पैसे भी मिल गए होते, तो दवा खरीदी जाती। मनसाके स्वस्थ हो जानेपर तो अधिक चिन्ता न थी। पर भाग्यके सामने किसका वश? खैर, ढेला निकला। आज फिर सारे दिन वह खाक ही छानता रहा। अन्तमें घूमते-घूमते सन्ध्या-समय स्टेशन पहुँचा। अँधेरा हो चुका था; पर घर लौटनेकी उसे सुध न थी। थोड़ी देरमें धड़-धड़ करती पसिंजर-गाड़ी आ खड़ी हुई। बिजलीकी रोशनीसे चारों ओर चकाचौंध हो गई। खोंचेवाले चिल्ला-चिल्लाकर खानेकी चीज़ें बेचने लगे। बहुतसे मुसाफ़िर उतरकर मिठाई-चायकी दूकानपर खाने-पीने लगे। पत्थरकी एक बेंचपर दो सेठजी पत्तलमें पूरी-मिठाई खाने बैठे। ढेला वहीं खड़ा-खड़ा सतृष्ण नेत्रोंसे उस स्वादिष्ट व्यंजनको देखने लगा। पर जिस मात्रासे पूरी-मिठाई विलुप्त होने लगी, जिस मात्रासे सेठोंका गुंबजनुमा पेट गंजीको अतिक्रम कर प्रकाश पाने लगा, उसी मात्रासे बेचारे ढेलाकी निराशा बढ़ती गई। अन्तमें खानेवालोंने अपनी स्वाभाविक कार्य-निपुणताके साथ जब पत्तल साफ़कर उसे वहीं बेंचके नीचे फेंक दिया, तो ढेला उसपर टूट पड़ा और उसपर अँगूठेको रगड़-रगड़कर चाटने लगा। पत्तल जिस समय फेंकी गई थी, उसी समय वह इतनी साफ़ थी, जैसे कोरी हो। फिर भी ढेला उसे चार बार उलट-पलटकर दस मिनट तक चाटता रहा।

यह हृदय-विदारक दृश्य देख एक सदय यात्रीने ढेलाको बुलाकर एकन्नी दी और कहा—'जाकर कुछ खरीद लो, इस पत्तलमें क्या है, जो आध घण्टेसे चाट रहे हो?' पैसा ले और मूक कृतज्ञता प्रकाशकर जब ढेला आगे बढ़ा, तो एक पुलिसवालेने बिना कुछ कहे-पूछे इतने ज़ोरोंसे बूटसे उसे मारा कि बेचारा लड़खड़ाते-लड़खड़ाते किसी तरह बचा। खैनी मलते-मलते बोला—'बदमाश, चोर कहींका, जुआ खेलेगा और शराब पिएगा, इसीलिए पैसे जमा करता फिरता है!' ढेलाने कुछ आगे बढ़ फिर एक पत्तल उसी तरह चाटना आरम्भ किया। जिन महाशय ने पैसे दिए थे, वे कुतूहलवश उसके पास गए और पूछा—'क्यों रे, मैंने तुझे पैसे दिए कि कुछ खरीदकर खा ले; मगर तू पत्तल ही चाटता फिरता है?' पत्तलको हाथमें पकड़े हुए ढेलाने सकरुण नेत्रोंसे देखकर कहा—'मेरे बापको ज्वर हुआ है, छोटी बहन भी दो दिनसे भूखी है, इसीलिए पैसा बचा रखा है।'

- ३ -

अब मनसा ढेला और थूपीको लेकर गाँव-गाँव भीख माँगता फिरता है। मनसाकी छाती पसलियोंका पिंजरा बन गई है, पेट पिलहीके रोगकी तरह निकल आया है, हाथ पतले-दुबले हो गए हैं, काले वस्त्रहीन शरीरपर खुजलीके छोटे-बड़े धब्बे हैं। कमरसे लिपटा चिथड़ा, बाल भालूकी तरह लम्बे-रूखे, गाल धँसे हुए। पर चेहरेपर गर्व है कि थूपीको पाल-पोसकर आदमी बना दिया। मनसा कहता है—'हाँ, फिर घर जाऊँगा। घर गिर गया होगा, उसे फिर पत्ते और लकड़ीका बना लूँगा।' पर उसे देखनेसे ऐसा विश्वास नहीं होता, क्योंकि वह इतना दुर्बल हो गया है और उम्र भी हो गई है कि अब उससे लकड़ी काटना और बेचना नहीं हो सकता। वह इसी तरह माँगता-खाता जीवन शेष करेगा। ढेला और थूपी फिर अपनी जीवन-यात्रा आरम्भ करेंगी। मनसाने भी प्रायः इसी तरह जीवन-यात्रा आरम्भ की थी। जब वह ढेला की उम्रका था, उसी समय माँ-बाप दोनों मर गए। फूआ और फूफाने उसे पाला-पोसा और उसका ब्याह कर दिया।

सन्ध्या हो गई थी। मनसा उठा। गेरुए रंगके कपड़ेके दो टुकड़े थे, उनमें से एक थूपीको और दूसरा ढेलाको ओढ़ा दिया। बोरेका गट्ठर सिरपर रखा और बाईं गोदमें थूपीको लिया। ढेला आगे-आगे चला। लाल मुरमकी सड़क कुछ दूर तक ढिप्पेके ऊपर चढ़ती जाती है, फिर उस पार उतरती है। उस पार असीम गगन-मण्डलके अतिरिक्त और कुछ नहीं दीखता। सूर्यास्तकी मनोहर बहुरंजित रश्मियोंसे पश्चिम-आकाश एक माया-पट बना हुआ है। ऐसा लगता है, मानो उसी ढिप्पेपर इस दुनियाका अन्त है और उस पार दूसरी दुनियाका आरम्भ। दिन-भरका थका-माँदा मनसा एक पग बढ़ता, फिर दम लेता हुआ धीरे-धीरे सीधे चला जा रहा है। उस ढिप्पेपर उसका काला जीर्ण शरीर चमकते आकाशकी यवनिकाके सम्मुख अनन्त-यात्री-सा लगता है, मानो वह इस जीवनको अतिक्रमकर दूसरे जीवनमें प्रवेश कर रहा हो! सामने दिगन्त है, गति मन्द है, मानो धूमिल आत्मा सन्दिग्ध भावसे गति-लाभकी ओर बढ़ती हुई अस्फुट शब्दोंमें पूछ रही हो—क्या मेरी जीवन-यात्रा भी कभी शेष होगी?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जनपद-आन्दोलन

श्री कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी कई आन्दोलन कर चुके हैं। इस समय वे उस आन्दोलनमें प्रमुख भाग ले रहे हैं, जो साहित्यिक विकेन्द्रीकरणके नामसे प्रसिद्ध है। इस सम्बन्धमें समय-समयपर कुछ सामग्री श्री चन्द्रबली पाण्डेकी प्रेरणासे साहित्य-सम्मेलन मेरे पास भेजता रहा है। इसके पश्चात् इधर श्री जय-नारायण व्यास-कृत 'राजस्थानीका जन-आन्दोलन'-शीर्षक पुस्तिका आई और 'लोकवाणी'से उद्धृत 'राजस्थानी : निष्फल प्रयत्न'-शीर्षक लेख मिला। फिर 'मधुकर'का जनपद-आन्दोलन-अंक भी मिला। मैं शिक्षक हूँ, इसलिए इस विषयपर मुझे शिक्षाके दृष्टिकोणसे ही विचार प्रकट करना उचित होगा।

बोली, रहन-सहन और अर्थ सांस्कृतिक जीवनके अंग हैं। इस सांस्कृतिक जीवनको सफल करनेके लिए सामाजिक शान्ति आवश्यक है। शान्तिके दो अंग हैं—(१) आन्तरिक, जो शासक-दलके नियम-दण्डसे प्राप्त होती है और (२) वाह्य, जो शासन-संस्थाकी सैन्य शक्तिसे समाजको मिलती है। सांस्कृतिक जीवनके लिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है और शान्तिके लिए केन्द्रीकरण। शासन-संस्था जितनी विस्तृत हो, उतनी ही सामाजिक जीवनके लिए शान्तिके उद्देश्यकी पूर्त्ति होती है। पूर्ण शान्ति तो उस समय ही मानव-समाजको प्राप्त होगी, जब सब राष्ट्रोंपर शासन करनेके लिए शक्तिशाली विश्व-शासन स्थापित हो जायगा। विश्व-शासन स्थापित न हो सके, तो इस बातमें कोई मतभेद न होना चाहिए कि प्राकृतिक सीमाओंके भीतर बना हुआ मानव-समाज एक ही शक्तिशाली शासन-संस्थाके अधीन हो।

सांस्कृतिक जीवनका मूल है कुटुम्ब—एक बोली, एक रहन-सहन, एक ही अर्थ। कुटुम्बके बढ़नेपर पहले आर्थिक भेद प्रारम्भ होता है, फिर रहन-सहनमें फ़र्क आने लगता है और अन्तमें बोली भी बदल जाती है। यों बोली सांस्कृतिक जीवनकी सबसे बड़ी इकाई है। इस इकाईको शान्तिके उद्देश्यकी रक्षा करते हुए हम जितनी भी स्वतन्त्रता दे सकें, उतना ही हम मानव-जीवन को सफल बना सकेंगे। इस समय भारतीय समाज परतन्त्र है। स्वतन्त्रताके लिए उसे शक्तिकी खोज है। यह शक्ति केन्द्रीकरणमें ही उसे मिलती है, इसलिए विकेन्द्रीकरणके प्रस्तावपर हम भड़क उठते हैं। हम समझते हैं कि जो-कुछ थोड़ी-बहुत शक्ति हमने संचय कर ली है, वह सांस्कृतिक विकेन्द्रीकरणसे बिखर जायगी। परन्तु यह भूल है। सांस्कृतिक जीवनके पेड़-पौधोंको अपनी-अपनी भूमिपर स्वतन्त्र रूपसे बढ़ने देनेपर ही हमारा समाज वह अन्न-फल-शक्ति पा सकेगा, जो उसे स्वतन्त्र केन्द्रीय शासन-संस्था बनानेमें सफल करेगी।

उपर्युक्त सिद्धान्तका प्रत्यक्ष प्रमाण है आधुनिक रूस। किस प्रकार सोवियत्-संघने अपने विभिन्न अंगोंको पूर्ण सांस्कृ स्वतन्त्रा देकर केन्द्रीय शक्ति संगठित की, इसका प्रमाण है रीत सिद्धान्तसे संगठित जर्मन राष्ट्रपर उसकी विजय। जो जनपदीय आन्दोलन चल रहा है, उसे राष्ट्रभाषा हिन्दी घातक न समझकर उससे सहयोग करनेमें ही राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय संगठन दोनोंका लाभ है। हाँ, उचित नेतृत्व आव है, जिससे केन्द्रीय शक्ति—सांस्कृतिक और शासनीय—उ करती रहे, बिखर न जाय।

सांस्कृतिक विकेन्द्रीकरणका एक रूप है जनपद-आन्दो जिसके तीन अंग हैं—(१) प्रत्येक जनपदके लिए अलग सा त्यिक संस्था हो और अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मे तथा नागरी-प्रचारिणी सभा-जैसी संस्थाओंसे यह स्वतन्त्र (२) इस संस्थाका काम हो जनपदीय भाषाके साहित्यका उ उसके गीतों और कहानियोंका संग्रह और प्रकाशन तथा जनप वनस्पति, जीव-जन्तु, भूगोल, इतिहास, रहन-सहन आ अध्ययन और इन विषयोंपर साहित्य-रचना ; (३) इस संस्था सहयोगसे सरकारी शिक्षालयोंमें जनपदीय भाषा द्वारा शि प्रचार, जिसका परिणाम यह हो कि प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकें हि उर्दू में न लिखी जाकर उन तीस बोलियोंमें लिखी जायँ, जि उल्लेख राहुलजीने 'मधुकर'के जनपद-आन्दोलन-अंकमें किया

हिन्दी-प्रान्तोंमें जनपद-आन्दोलनके मूल सिद्धान्तसे सह इस प्रकार हो सकता है—(१) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको के ढंगपर संगठित करना भूल है। सम्मेलनसे सम्बन्धित उसके अधीन कोई ऐसी संस्था नहीं हो सकती, जिसका सं शासक-वर्गके प्रति और ज़िलेके अनुसार हो। ये प्रान्त उनके ज़िले भाषाके विचारसे तो बने नहीं। इनका संगठ भारतमें ब्रिटिश राज्यके ऐतिहासिक प्रसारका परिणाम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे सम्बन्धित और उसके अधीन चाहिएँ जनपदीय साहित्य-संस्थाएँ। यों संयुक्त-प्रान्तीय, राजस्थ या मध्य-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन न होकर होना चाहिए मण्डल-साहित्य-सभा, मारवाड़ी-साहित्य-सम्मेलन, बुन्देली-साहि सम्मेलन, छत्तीसी साहित्य-मण्डल और चेदिका-साहित्य-सभा इत्यादि। (२) इन जनपदीय संस्थाओंको सुपुर्द किया अपने जनपदके साहित्यका पुनरुद्धार-कार्य ; उसके लोकोक्तियों, कथाओंका संग्रह और प्रकाशन ; परन्तु टीका-टिप्पणी हो हिन्दीमें। इसी प्रकार हिन्दीमें ही जनप जीव-जन्तु, वनस्पति, भूगोल, इतिहास और रहन-सहनपर प्रकाशित की जायँ। (३) रूसी सोवियत्-संघके भीतर जनपदोंकी भाषा रूसी नहीं है, उनमें जनपदकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा ही, बालक-बालिकाओंकी मातृभाषाके माध्यमसे ही, प्रारम्भिक शिक्षा देने और व्यावहारिक ज्ञानके प्रसारका प्रयत्न किया गया है। परन्तु साथ ही यह नियम भी है कि शिक्षारम्भके एक या दो वर्ष बाद शिष्योंको अपनी भाषाके साथ-साथ रूसी भाषाका अध्ययन भी अवश्य करना पड़े। हम अपने देशमें यह नियम बना सकते हैं कि प्रारम्भिक शिक्षाके पहले चार-पाँच वर्ष तक बालकोंको शिक्षा उनकी मातृभाषा, उनकी जनपदीय बोली, द्वारा ही दी जाय। शिक्षाका माध्यम तो जनपदकी बोली ही हो; परन्तु इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता कि उसकी लिपि हिन्दी-प्रान्तों और महाराष्ट्रमें देवनागरी ही हो। दो वर्षके भीतर बालकोंका अक्षर-ज्ञान पक्का होनेपर, उनके माता-पिताके इच्छानुसार, उन्हें हिन्दी अथवा उर्दू पढ़ाई जाय। प्रारम्भिक शिक्षाके अन्त तक जनपदीय भाषामें ही पाठ्य-पुस्तकें रहें। साथ ही ऊपरकी तीन-चार कक्षाओंमें हिन्दी या उर्दू अनिवार्य विषय रहे। बंगाल, आसाम और दक्षिण-जैसे अहिन्दी-प्रान्तोंमें प्रान्तीय भाषा ही इसी प्रकार अनिवार्य विषय रहे।

इस समय जनपदीय बोलीको प्रारम्भिक शिक्षाके लिए स्वीकार न करनेके कारण हम विद्यार्थियोंपर—विशेष-रूपसे देहातियोंपर, जो भारतीय जनताके ९० प्रतिशत हैं—लिपिके बोझके साथ अपरिचित भाषाका बोझ भी डालते हैं। यदि उन्हींकी बोलीके माध्यमसे उन्हें लिपि-बोध कराया जाय और फिर व्यावहारिक ज्ञानकी आवश्यक शिक्षा दी जाय, तो शिक्षक और शिष्यका परिश्रम बहुत कम हो जाता है, पठन-पाठनमें रुचि बढ़ती है और अपढ़ देहातियोंके बीच हम पढ़ने-लिखने तथा शिक्षा प्राप्त करनेका शौक पैदा करते हैं। प्रारम्भिक शिक्षाके लिए जनपदीय बोलीकी शरण लेकर हम हिन्दी-उर्दूके झगड़ेको भी बहुत-कुछ तय कर लेते हैं। जब विद्यार्थियोंको अक्षर-बोध और प्रारम्भिक शिक्षा देवनागरी-लिपिमें मिल गई, फिर राष्ट्रभाषाको फारसी-लिपिमें वह क्यों अपनाने लगा?

पिछले लेखमें यह निवेदन किया जा चुका है कि सर्वोच्च शिक्षाका माध्यम राष्ट्रभाषा ही हो। यों हम शिक्षाकी तीन सीढ़ियोंपर तीन श्रेणियोंकी भाषाको महत्व देते हैं—(१) प्रारम्भिक शिक्षालयमें जनपदीय मातृभाषा द्वारा शिक्षा; प्रान्तीय भाषाका अनिवार्य अध्ययन; (२) माध्यमिक शिक्षालयमें प्रान्तीय भाषा द्वारा शिक्षा; राष्ट्रीय भाषा और साहित्य—हिन्दी या उर्दू—का पहले तीन वर्ष अनिवार्य अध्ययन; एक विदेशी भाषा—अंगरेज़ी, रूसी, जर्मन, इटालियन, फ्रेंच, चीनी, जापानी, स्पेनी, बर्मी, मलय, ईरानी, तुर्की, आधुनिक अरबीमें से एक—का ऊपरी तीन कक्षाओंमें अनिवार्य अध्ययन और (३) सर्वोच्च शिक्षालयमें, विश्वविद्यालयमें, राष्ट्रीय भाषा द्वारा शिक्षा हो। विश्वविद्यालय किसे राष्ट्रभाषा माने—हिन्दीको या उर्दूको—यह विद्यार्थियोंके बहुमतपर निर्भर रहे। जनपदीय साहित्य, प्रान्तीय भाषा-साहित्य, विदेशी साहित्यका पर्याय विषय हो। यह सब उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक हमारी संस्कृतिपर विदेशी अधिकार है। जब तक अंगरेज़ी हमारे देशकी प्रधान भाषा है, तब तक जनपदीय भाषाओंके भक्तोंको हिन्दीके कोमल असहाय पौधेको ही सींचना है। जनपदीय संस्थाएँ अवश्य स्थापित हों, वे जनपद-साहित्यका पुनरुद्धार करें, उसके गीतों और जनश्रुतियों का संकलन करें और उन्हें प्रकाशित करें; परन्तु अभी शिक्षालयोंके लिए जनपदीय भाषाकी रीडरें लिखानेका उद्योग न करें। उनके ऐसा करनेसे वे जनपदीय भाषाकी कोई सेवा न कर सकेंगे, उल्टे हिन्दीके वैरियोंको उसे राष्ट्रीय पदसे गिरानेमें ही कदाचित् सहायक होंगे।

जनपदीय बोलियोंमें कदाचित् अभी प्रारम्भिक साहित्यकी रचना करना भी कठिन हो। ब्रज और अवधीको छोड़कर, जिन्हें हमारे कुछ साहित्य-महारथियोंने अपनाया है, अन्य बोलियोंमें अभी न समुचित कोष है, न उनके व्याकरणमें स्थिरता है और न उनकी कोई भौगोलिक सीमा ही निश्चित की जा सकती है। बोलीका रूप एक ज़िलेसे दूसरे ज़िले तक बदलता रहता है। जिस प्रकार इन्द्रधनुषमें बैंजनी रंग आगे चलते-चलते लाल रंगमें बदल जाता है, उसी प्रकार पश्चिमी पंजाबी अपना रूप पूर्वकी ओर बदलती चलती है और उत्तरी बिहार तक पहुँचनेपर मैथिली हो जाती है। कहीं यह नहीं कहा जा सकता कि इस सीमापर एक बोली समाप्त हुई और दूसरी बोलीका आगमन हुआ। ऐसी दशामें दो बोलियोंके बीचके भागोंको भाषाके विदेशीपनकी कठिनाईका सामना करना पड़ेगा। माना कि यह कठिनाई हल की जा सकती है, तो भी जब हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद तक नहीं पहुँच सकी है और हमें अपनी पूरी शक्ति इसी प्रयत्नमें लगानी है, तो जनपदीय बोलियोंमें साहित्य-रचनाका कार्य थोड़े समय तक स्थगित रखनेमें कोई हर्ज नहीं दिखाई देता।

राष्ट्रीय हिन्दी जनपदीय माताका ही स्तन-पानकर थोड़ी-बहुत पुष्ट हो सकती है। इस स्तन्य-ऋणको स्वीकार करना हम हिन्दी-भक्तोंका कर्त्तव्य है। समय आनेपर हम फिर अपनी राष्ट्रभाषाको जनपदीय बोलियों द्वारा पुष्ट कर सकें, यह प्रत्येक देश-भक्तका उद्देश्य होना चाहिए। तब तक यही क्या कम है कि जनपदीय संस्थाएँ स्थापित हों, उन्हें केन्द्रीय सम्मेलनसे यथेष्ट सहायता मिले और वे श्री वासुदेवशरण अग्रवालके निर्देशित कार्यक्रमके अनुसार अपने-अपने जनपदोंकी सांस्कृतिक सेवाका भार अपने ऊपर लें।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वसन्तके गीत

श्री सोहनलाल द्विवेदी

लो, वसन्त - प्रभात आया।
फूल हैं कितने खिले अब, गिन सकेगा कौन ये सब ?
मन्द मलयानिल सभीकी सुरभि औ' मकरन्द लाया।
लो, वसन्त - प्रभात आया।
खिल उठीं किरणें गगनपर, स्नेहके ज्यों भाव मनपर ;
अलक सुहला, पलक छू, रस छलककर किसने गिराया ?
लो, वसन्त - प्रभात आया।
शीत ले हिम-चीर भागी, आज स्वर्णिम उषा जागी ;
द्वारपर देखो तुम्हारे, कुसुमकुल किसने चढ़ाया ?
लो, वसन्त - प्रभात आया।

- २ -

आज कोयल बोलती है।
रक्तके कण-कण उछलते, किस नदीके कूल चलते ?
विरस प्राणोंमें सरस रस कौन बरबस घोलती है ?
आज कोयल बोलती है।
कुहू-कुहूकी ध्वनि निराली, क्या मधुर स्वरसे निकाली ;
बन्द-सी वीणा हृदयकी आज निज स्वर खोलती है।
आज कोयल बोलती है।
कह रही ऋतु-कुसुम आया, वर्षका नवहर्ष छाया ;
ताम्र आम्र बने छटा ले, आज दुनिया डोलती है !
आज कोयल बोलती है।

- ३ -

ज़रा सरसों तो निहारो।
खेतमें खलिहानमें क्या, राहमें मैदानमें क्या ;
बिछा है कुंकुम मनोहर, भर रही हैं दिशा चारों।
ज़रा सरसों तो निहारो।
स्वर्णकी सरिता वही है, आज अति सुन्दर मही है ;
सुखद पीताम्बर लहरता किस रसिकमणिका विचारो !
ज़रा सरसों तो निहारो।
रूपके इस कनक-जलमें, तैरतीं आखें अतलमें ;
क्या उषा लेटी धरापर, हृदयके मधु-बिन्दु ढारो !
ज़रा सरसों तो निहारो।

- ४ -

आज गृह छोड़ो हठीले !
आज वन-वन और उपवन, छा रहो मधुऋतु, मदिर मन ;
कुंज-कानन, लता, तरु, तृण सजी सुषमा नई-सी ले।
आज गृह छोड़ो हठीले !
आज सघन रसाल बौरे, श्याम घन-से घिरे भौंरे ;
माधवीके दूत बनकर कूजते कोकिल रँगीले।
आज गृह छोड़ो हठीले।
कुंज-कुंज लता खिली है, पुंज-पुंज सुरभि हिली है
आज मगमें और पग-पग, नवलश्री बिखरी, रसीले।
आज गृह छोड़ो हठीले !

- ५ -

आज वासन्ती पवन है।
मन्द-मन्द समीर आती, अब न अन्तस्को कँपाती
और अपनी मृदु लहरमें लिए कुछ नवसुरभि-कण है
आज वासन्ती पवन है।
पलकपर अलकें बिखरतीं, कामनाएँ हैं निखरतीं
हृदय-कलिका खोलकर यह कौन गाता सनन्-सन् है
आज वासन्ती पवन है।
एक मदिर हिलोर आती, नयन, तन, मन बोर जाती
कह रहा कोई, नहीं कुछ, कुसुम-ऋतुका आगमन है
आज वासन्ती पवन है।

- ६ -

अब कहीं पतझर नहीं है।
पत्र पीले सभी टूटे, जराके ज्यों केश छूटे
आज कायाकल्प है, नवदल, जहाँ देखो, वहीं है
अब कहीं पतझर नहीं है।
आज तरुकी धमनियोंमें, दलों, शाखों, टहनियोंमें
रक्त-सा है छलछलाता, धार यौवनकी बही है
अब कहीं पतझर नहीं है।
भाग्य यों ही आ मिलेगा, हर्षका जीवन खिलेगा
कह रहा यह कौन ? सुन, पतझर जहाँ, मधुऋतु वहीं है
अब कहीं पतझर नहीं है।

- ७ -

कह रहा मधुमास सुन लो।
घूम लो तुम कुंज-वनमें, झूम लो ले सुरभि मनमें
फूल-शूल सभी विपिनमें, शूल छोड़ो, फूल चुन लो
कह रहा मधुमास सुन लो।
तजो सब मनकी उदासी, हो प्रसन्न सदा प्रवासी
दो दिनोंका खेल है, आँसू हटाओ, हास बुन लो
कह रहा मधुमास सुन लो।
प्रकृति जब उल्लासमय है, सृष्टि नवसुख-लासमय है
तब तुम्हीं क्यों खिन्न मनमें, रसभरी मृदु तान सुन लो
कह रहा मधुमास सुन लो।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी

श्री उमादत्त शर्मा

स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी हिन्दी-संसारमें अपनी अद्भुत प्रतिभाका चमत्कार दिखाकर ऐसे भयंकर और अप्रिय ढंगसे संसारसे अलग हुए, जिसके स्मरण-मात्रसे आज भी रोमांच हो आता है। हिन्दीमें अपनी तरहके वे अकेले ही प्रतिभाशाली लेखक थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा, लगन तथा सचाईसे अनेक कवियों और लेखकोंको खोज निकाला था। 'प्रताप'के राष्ट्रीय अंक उस समयके आदर्श विशेषांक होते थे। उनमें बहुत ठोस सामग्री रहती थी। अनेक प्रतिभाशाली लेखकों और कवियोंका सहयोग उनको प्राप्त था। गणेशजीको विज्ञापनोंका इतना लोभ न था, जितना पाठकोंको ठोस सामग्री देनेका। वैसे 'प्रताप'की ग्राहक-संख्या अधिक होनेके कारण विज्ञापन-दाताओंकी कमी नहीं थी। विज्ञापन काफ़ी छपते भी थे। उन विज्ञापनोंका अर्थ यही था कि 'प्रताप'को आर्थिक कठिनाईका सामना न करना पड़े।

इन पंक्तियोंके अकिंचन लेखकको भी उनसे मिलनेका, उनके साथ रहनेका, उनकी साहित्यिक तथा पत्रकारिताकी गति-विधि देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गणेशजीसे सबसे पहले मेरा परिचय सन् १९११ या १२ में गुरुकुल-काँगड़ीके अधिवेशनके समय हुआ था। वहाँ उनसे दो-तीन दिन तक बातचीत हुई। उस समय 'प्रताप'का तीसरा अंक निकला था। मूढ़तावश इन पंक्तियोंके लेखकको उस समय हिन्दी-समाचारपत्रोंका भविष्य कुछ अन्धकारमय प्रतीत होता था; किन्तु गणेशजीका प्रोग्राम बहुत लम्बा था, और वे उसकी युक्तियुक्त या एक तरहसे वैज्ञानिक रूप-रेखा तैयार करके अग्रसर हुए थे। गुरुकुलका अधिवेशन समाप्त होनेपर लेखक और गणेशजी साथ-साथ लकसर स्टेशन तक आए। गणेशजी उस समय भी पतले-दुबले थे। सिर नंगा था और पट्टूका कोट पहने थे। साथमें एक कम्बलमें लिपटा हुआ छोटा-सा बिस्तर और बक्स था। गणेशजीकी बातचीत और भाव-भंगीसे ऐसा मालूम होता था, मानो वे प्रत्येक चीज़को, हर बातको, बहुत सूक्ष्म और तीव्र दृष्टिसे देखने और जाननेकी लालसा रखते हैं।

इसके बाद गणेशजीसे कभी-कभी साधारण पत्र-व्यवहार होता था। इन्हीं दो-तीन वर्षोंके बीच 'प्रताप'की ख्याति और ग्राहक-संख्या बढ़ने लगी। सन् १९१८ में लेखकने 'प्रताप'को ७-८ हज़ार तक छपते हुए देखा है। संयुक्त-प्रान्तकी सरकारकी जो शासन-रिपोर्ट प्रतिवर्ष प्रकाशित होती थी, उसमें कई वर्षों तक यह लिखा जाता रहा कि 'प्रताप' प्रान्तमें सबसे अधिक प्रकाशित होनेवाला तथा अत्यन्त प्रभावशाली पत्र है।

इन पंक्तियोंका लेखक कुछ दिनों तक एक जातीय साप्ताहिक पत्रका सम्पादक था। पत्रके जातीय होते हुए भी उसमें गणेशजीकी प्रेरणासे काफ़ी राष्ट्रीयता रहती थी, जिसके लिए उसे कई बार सरकारका कोप-भाजन भी बनना पड़ा, और अन्तमें वह पत्र उसी कोपाग्निमें पड़कर समाप्त हो गया। गणेशजी उदार पत्रकार थे। वे व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धामें पड़कर अपने सहयोगियोंका अन्त नहीं चाहते थे, बल्कि तरह-तरहसे उन्हें उत्साहित करते और सहायता देते थे। सरकारी कोपानलमें पड़े उक्त पत्रको उन्होंने कई प्रकारकी सहायता दी तथा लोगोंसे दिलवाई और इस बातकी चेष्टा की कि पत्र बन्द न होने पाय। लेखकका उस समय तक गणेशजीसे काफ़ी परिचय हो चुका था। उसने पूछा—'आप स्वयं पत्रकार हैं, एक राष्ट्रीय पत्रके सम्पादक हैं, आप इस जातीय पत्रके लिए इतनी दौड़-धूप क्यों करते हैं?' इसपर उन्होंने कहा था—'चीज़ बढ़िया होनी चाहिए। नाममें क्या रखा है? "मैंचेस्टर गार्जियन" नाम तो बहुत ही संकीर्ण है; पर उसकी निर्भीकता, विषय-विश्लेषण और खरापन उसे आकाशमें उठाए हुए हैं। समस्त संसार उसके मतको जाननेकी इच्छा रखता है।'

दिल्ली-कांग्रेसके अवसरपर लेखक गणेशजीके पास ही बैठा था। उस समय कांग्रेस-मंचसे किसीको कुछ बोलनेका सुयोग मिल जाय, इसके लिए बड़े-बड़े लोग लालायित रहते थे। प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें एक प्रस्तावके समर्थकोंमें गणेशजीका नाम भी (मि० जी० एस० विद्यार्थीके नामसे) छपा हुआ था। लेखक ने उनसे पूछा—'क्या आप भी कुछ बोलेंगे, प्रोग्राममें आपका नाम तो छपा है?' गणेशजीने कहा—'इस प्रस्तावके सम्बन्धमें मेरी कुछ भी जानकारी नहीं है, वैसे ही मेरा नाम छाप दिया गया है। इस राष्ट्रीय मंचपर चढ़कर उसी आदमीको बोलना चाहिए, जो उसका अधिकारी हो।' अन्तमें जब उनकी बारी आई और मंचसे उनको बुलाहट हुई, तो उन्होंने बोलनेसे साफ़ इन्कार कर दिया।

'सरस्वती'-सम्पादक महामहिम द्विवेदीजी महाराज अपने मासिक पत्रके लिए बहुत अधिक पढ़ते थे। वे सरकारकी शासन-रिपोर्टोंके सम्बन्धमें आँकड़ोंका विश्लेषणकर जो निष्कर्ष निकालते तथा टीका-टिप्पणी करते थे, आज शायद ही हिन्दीका कोई पत्रकार उतना कष्ट उठाता हो। गणेशजी द्विवेदीजीको ही अपना गुरु मानते थे। द्विवेदीजीकी भी उनपर बड़ी कृपा थी। शायद सन् १९१८ की बात है। भारतीय शिक्षाके सम्बन्धमें 'सेडलर-कमीशन'की तीन-चार सौ पृष्ठोंकी रिपोर्ट निकली थी। गणेशजीने अंगरेज़ी पत्रोंकी जूठन न चाटकर और दूसरे लोगोंके मतको अपना मत न बनाकर तीन-चार रुपएमें उसे खरीदकर पढ़ा और तब उसपर 'प्रताप'में अग्रलेख लिखा।

गणेशजी बोलते भी बहुत प्रभावशाली ढंगसे थे। सन्

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९१८ में कानपुरके एक हालमें जलियाँवाला बागके सम्बन्धमें एक सभा हो रही थी। लेखक श्रोताओंमें पीछेकी ओर बैठा था। बहुतसे वक्ताओंके भाषण हुए। गणेशजी भी प्रायः आध घंटे तक बोले। जनता स्तब्ध होकर सुनती रही। भाषण देनेके बाद वे मंचपर से उठकर लेखकके पास आ बैठे और अपने भाषणके बारेमें पूछने लगे। लेखक तो पहले ही उनके ओजस्वी भाषणसे प्रभावित था, और उसने उनकी वक्तृत्व-कलाकी दाद भी दी; पर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और प्रशंसाको स्नेहातिरेक ही बतलाया!

'प्रताप'-कार्यालयमें सैकड़ों चिट्ठियाँ और बीसियों समाचार-पत्र प्रतिदिन आते थे। गणेशजी प्रत्येक चिट्ठी तथा समाचार-पत्रको पढ़ते थे और किसीकी किसी भी बातकी कभी उपेक्षा नहीं करते थे। किसी समाचारपत्रमें कोई विशिष्ट बात होनेपर वे उसपर पूरा ध्यान देते थे।

गणेशजीके संस्मरणोंमें दो आदमियोंको कभी नहीं भुलाया जा सकता। गणेशजीके साथी स्व० शिवनारायण मिश्रको जो लोग जानते हैं, वे उनके उदार स्वभाव, सूक्ष्म दृष्टि, काम करनेकी लगन, साधारण पढ़े-लिखे होनेपर भी उनकी प्रतिभा तथा मधुर स्मृति आदिको कभी नहीं भुला सकते। 'प्रताप'के सम्पादनमें मिश्रजी गणेशजीके प्रधान साथी थे। जिस समय 'प्रताप'-ट्रस्ट बना और व्यक्तिगत स्वत्वाधिकार त्यागनेका प्रश्न उपस्थित हुआ, तो मिश्रजीने सहर्ष उस त्यागमें गणेशजीका साथ दिया।

गणेशजीके सहकारी सम्पादकोंमें उस समय कई विद्वान् थे। अब भी उनमें से कितनोंका ही नाम है। लेखककी दृष्टिमें गणेशजीका सहकारी शायद पं० रमाशंकर अवस्थीसे बढ़िया कोई नहीं हुआ। अवस्थीजीमें पत्रकार होनेके बहुतसे गुण हैं, और वे हिन्दी-लेखकके हिसाबसे एक आर्टिस्ट हैं। खेद है कि अपने दैनिक पत्र 'वर्त्तमान'के संचालनमें ही अधिक व्यस्त रहनेके कारण वे हिन्दीकी विशेष सेवा नहीं कर पा रहे।

गणेशजीके समयके 'प्रताप'के प्रभावको स्वयं सरकार भी स्वीकार करती थी। एक बार संयुक्त-प्रान्तके एक शहरमें गोली-काण्ड होनेपर इन पंक्तियोंके लेखकको 'प्रताप'का प्रतिनिधि होकर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहाँ जानेपर 'प्रताप'का प्रतिनिधि होनेके कारण इस लेखकका सम्मान सर्वत्र ही अधिकारियों तथा वहाँके लोगोंने 'स्टेट्समैन' या 'टाइम्स'के प्रतिनिधिके समान ही किया था।

गणेशजी पं० बाबूराव विष्णु पराड़करकी बहुत प्रशंसा करते थे। उनका कहना था कि बाबूरावजी हिन्दीकी निधि हैं। वे अंगरेज़ी-समाचारपत्रोंके सम्पादकोंके दिमाग़ी ग़ुलाम नहीं हैं। वे स्वतन्त्र रूपसे विवेचन करते हैं। उनके पास शब्दोंका यथेष्ट भण्डार है और उनका यथार्थ प्रयोग करना भी वे खूब जानते हैं।

गणेशजी क्रान्तिकारी या आतंकवादी नहीं थे; फिर भी किसी ऐसे जान-पहचानके देशभक्तपर विपत्ति आई, तो अपनी समस्त शक्तिसे उसकी सहायता की। लाहौर-केसमें सरदार भक्तसिंह आदिकी भूख-हड़ताल समाप्त के लिए गणेशजी जिस समय स्पेशल कोर्टमें पहुँचे, किसी कोई बात न माननेवाले भक्तसिंह आदि देशभक्तोंने हथकड़ी बेड़ियाँ पहने हुए ही जिस तरह उनका अभिनन्दन और वादन किया था, उसे देखनेवाला कभी नहीं भूल सकता।

कानपुरमें बहुत-सी मिलें हैं। वहाँकी मज़दूर-सभा भरमें ख्याति है। वह गणेशजीकी ही स्थापित की हुई इन पंक्तियोंका लेखक गणेशजीके साथ कई बार ग्वालटोली है। उस समय वहाँ आफिस या ऐसा स्थान नहीं था कार्यालय कहा जा सके। वे प्रायः रविवारको ग्वालटोली एक पीपलके पेड़के नीचे बैठकर मज़दूरोंके अभाव-अभियो और यथाशक्ति उनकी सहायता करनेकी चेष्टा करते थे। मज़दूर-मज़दूरनियाँ गणेशजीसे चिट्ठी-पत्री और अर्ज़ियाँ थे। वे बीमार मज़दूरों तथा उनके बाल-बच्चोंके इ प्रबन्ध करते थे और अपने पाससे पैसा देकर उनके कष्ट करनेकी चेष्टा भी करते थे। सैकड़ों मज़दूर उन्हें जानते वहाँ पहुँचनेपर घेरकर बैठ जाते थे।

गणेशजीमें सहनशक्ति भी काफ़ी थी। उन्होंने जेलमें दान' नामक एक पुस्तकका अनुवाद किया था। लेखकसे उसे पढ़नेका अनुरोध किया। वह पुस्तक पढ़ी गई और वर्ष बाद गणेशजीके कलकत्ता आनेपर उसकी तीव्र आलोच की गई और यहाँ तक कह दिया गया कि आपने जेलके में फ्रेंच भाषाकी इस इतनी पुरानी पुस्तकका हिन्दी करनेकी क्या सार्थकता देखी? आपने इतना समय व्यर्थ किया! गणेशजीने इस कटु आलोचनाको सहर्ष सुना और कर लिया।

गणेशजी अपने संगी-साथियोंमें इसी नामसे प्रसि उनमें और बातोंके अतिरिक्त लोक-संग्रहका बहुत बड़ा इन पंक्तियोंका लेखक एक बहुत साधारण व्यक्ति है। जब कलकत्ता आते थे, तो उनका आतिथ्य करनेके लिए ही बड़े-बड़े लोग तैयार रहते थे; पर निरभिमानी सदा अकिंचन लेखकको ही अपने कलकत्ता-आगमनसे, पास ठहर तथा रूखा-सूखा खाकर, सम्मानित करते थे।

एक साधारण कुलमें जन्म लेकर अपने त्याग, सच्ची देशभक्तिके लिए हिन्दी-साहित्य-मन्दिरके इस पुजारीने प्राणोंकी बलि देकर हिन्दी तथा हिन्दी-समाचारपत्रोंके इति जिस रूपमें गौरवान्वित किया है, उसकी दूसरी मिसाल

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देशी नरेशोंकी रक्षा

श्री जयनारायण व्यास

गतांकमें प्रकाशित अपने लेखमें हमने रियासतों और उनकी सन्धियोंपर प्रकाश डालते हुए यह बतानेकी कोशिश की थी कि सन्धियाँ 'राजा' और 'प्रजा' दोनोंकी रक्षाके नामपर की गई थीं, यद्यपि उनका पालन पोलिटिकल डिपार्टमेंटकी मर्ज़ीके माफ़िक ही हुआ है। प्रजाकी रक्षाके लिए तो उक्त डिपार्टमेंटने बहुत कम बार हस्तक्षेप किया है। देशी नरेश स्वयं प्रबल शक्ति हैं और उनकी प्रजा एकदम दबी हुई है। फिर भी नरेश यह चाहते हैं कि सब तरफ़से इस प्रकार कार्यवाही हो, जिससे उन्हींका हित-साधन हो सके। सन्धियोंका अर्थ वे अपने ही हक़में लगाना चाहते हैं और ब्रिटिश सरकार अथवा सार्वभौम सत्तासे भी उनकी सदा यही माँग रहती है। अभी कुछ समय पहले नरेन्द्र-मण्डलकी स्थायी समितिने त्यागपत्र दिया है। त्यागपत्रका कारण नहीं बताया जाना इस बातका प्रमाण है कि साम्राज्य-शाही और राजाशाहीके हितोंमें संघर्ष तो है; पर दोनों शाहियाँ इतनी सतर्क और सावधान हैं कि वे पारस्परिक मतभेदको जनता पर प्रकट किए बिना ही चुपचाप आपसमें समझौता कर लेना चाहती हैं। मगर 'हिन्दुस्तान टाइम्स'में जैसी रिपोर्ट छपी है (इस रिपोर्टको राजा लोग अस्वीकार नहीं करते), उससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लोग 'सन्धि-जन्य अधिकारों'की रक्षाके अलावा 'ब्रिटिश भारतसे होनेवाले हमलोंसे भी रक्षा' चाहते हैं! हमें आश्चर्य है कि राजाओंकी गई-बीती सन्धियों और रक्षाकी माँगोंको भी केवल इसलिए समर्थन मिल जाता है कि वे युद्धके बाद बरती जानेवाली नीति, आय-कर तथा औद्योगिक विकासकी नीतिके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारसे विरोध रखते हैं। अन्य बातोंकी चर्चा हम इस समय नहीं करेंगे; पर 'ब्रिटिश भारतसे होनेवाले हमलोंसे रक्षा'के सवालपर यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक है।

राजाओंने वाइसरायसे यह आवेदन किया है कि ब्रिटिश भारतसे रियासतोंमें जत्थे चले आते हैं और ब्रिटिश भारतीय समाचारपत्रोंमें नरेशोंपर हमले होते हैं, इन बातोंसे वे रक्षा चाहते हैं। राजाओंकी भाषामें हमलोंके शिकार 'राजा लोग' नहीं, 'रियासतें' बताई गई हैं, यद्यपि रियासती प्रजा या क्षेत्रपर हमले होनेका कभी प्रश्न ही नहीं पैदा होता। देशी रियासतोंकी प्रजा तो नितान्त अरक्षित है; पर उस तरफ़ किसीका ध्यान ही नहीं जाता। सन् १९३४ में जब व्यवस्थापिका-सभाके सामने देशी राज्य-रक्षा-क़ानून पेश था, उस समय अखिल भारतीय देशी राज्य-लोक-परिषद्की तरफ़से कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई थीं, जिनमें उदाहरणोंके साथ बताया गया था कि सरकारके सामने प्रजा पर किए गए अत्याचारोंकी ठोस मिसालें रखी गईं; पर उसने उनके सम्बन्धमें कोई क़दम नहीं उठाया। एक महाराजाने किसीकी स्त्रीको उड़ा या उड़वा दिया। पोलिटिकल एजेण्टने उस व्यक्तिको २० हज़ार रुपए लेकर स्त्रीका दावा छोड़ देनेकी सलाह दी! कई रियासतोंमें प्रजापर गोलियाँ चलाई गईं; पर राजाओं का बाल भी बाँका नहीं हुआ! रियासतोंमें ग़ुलामीकी प्रथा प्रायः सभी जगह मौजूद है। दरोगों (दासों) को ज़बरदस्ती अपने जागीरदारोंकी सेवा करनी पड़ती है, चाहे वे उन्हें मामूली खाना देकर ही उम्र-भर घसीटते रहें। कोटा-बूँदीमें सन्धि है। अगर एक जगहका दरोगा दूसरी जगह चला जाय, तो वह उस रियासतको सौंप दिया जायगा, जहाँसे भागा है। बेगार सर्वत्र विद्यमान है। मार-पीट तो मामूली बात है। यदि ब्रिटिश अधिकारियोंसे शिकायत की जाय, तो एक ही उत्तर मिलता है—'हम रियासतोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते।' अखबार निकालनेकी स्वतन्त्रता बहुत कम रियासतोंमें है। जहाँ है भी, तो सीमित और नाम-मात्रकी। भाषण, सम्मेलन आदिका भी यही हाल है। फिर भी रक्षाकी ज़रूरत होती है राजाओंको! उनकी रक्षाके लिए सन् १९२१में राजाओंकी रक्षाका क़ानून बना। व्यवस्थापिका-सभाने उसे पास नहीं किया; पर वाइसरायने विशेष स्वीकृति दे दी। १९३४में राज्य-रक्षा-क़ानून पास कर दिया गया। १९३५के गवर्मेण्ट आफ़् इण्डिया एक्टमें भी—जिसमें रियासतोंके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप करनेकी क्षमता तो ब्रिटिश भारतीय जनताको नहीं दी गई है; पर नरेशों और उनके प्रतिनिधियोंको ब्रिटिश भारतके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप करनेकी स्वतन्त्रता है—देशी नरेशोंकी रक्षा वाइसरायके विशेषाधिकारोंमें है। भारत-रक्षा-क़ानूनमें भी जगह-जगह राजाओं और उनकी सरकारोंकी रक्षाकी धाराएँ हैं। विदेशियोंके सम्बन्धके क़ानूनके मुताबिक कई बार राजाओंके हितमें रियासती प्रजाको 'विदेशी' घोषित करके ब्रिटिश भारतसे निर्वासित भी कर दिया जाता है। फिर समझमें नहीं आता कि राजा लोग इतने दयनीय होकर और रक्षाकी माँग कैसे कर रहे हैं? क्या उनकी पुलिस और उनके पुराने क़ानून उनकी रक्षा करनेके लिए काफ़ी नहीं हैं? क्या उन सबके बावजूद नए हथियारोंकी ज़रूरत रह जाती है?

रक्षाका हल्ला मचानेमें राजाओंका असली मक़सद है ब्रिटिश भारतमें राजाओंके विरुद्ध कही जानेवाली खरी-खरी बातोंको रोकना। मामूली तौरपर यदि नागरिक स्वतन्त्रताका अपहरण किया जाता है, तो ब्रिटिश भारतमें हल्ला मच जाता है, अखबार चीखते हैं तथा प्रान्तीय और केन्द्रीय एसेम्बलियोंमें सवाल होते हैं। ऐसी अवस्थामें ब्रिटिश भारतमें रियासती भारतकी-सी अन्धा-धुन्धी साधारण समयमें असम्भव है। पर राजा तो वहाँ भी वही

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'स्वराज्य' चाहते हैं, जैसा उनके अपने राज्योंमें है। इस निमित्त उन्होंने रक्षाके नामपर इस सिद्धान्तपर ज़ोर लगाया है कि उनका सम्बन्ध ब्रिटिश सरकारसे तो होना ही नहीं चाहिए, जिसकी अंगभूत व्यवस्थापिका सभाएँ होती हैं; बल्कि सीधा 'ताज'से रहना चाहिए। वैसे भी व्यवस्थापिका सभाओंमें रियासतोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सवाल या प्रस्ताव पेश नहीं हो सकते—अलबत्ता राजाओंकी रक्षाके क़ानून पेश हो सकते हैं। पर यदि किसी राजाके कारण किसी नागरिककी नागरिक स्वतन्त्रताका ब्रिटिश भारतमें अपहरण होता है, तो प्रश्न व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा विचारणीय हो जाता है। इसी दिक्क़तको दूर करनेके लिए राजा लोग 'ताज'से सीधा सम्बन्ध क़ायम करके अपनी 'रक्षा' कराना चाहते हैं। कहना न होगा कि हर दृष्टिसे यह माँग एकदम अनावश्यक, अव्यावहारिक और अनुचित है।

ब्रिटेनके मज़दूर-दलके प्रभुत्वमें आनेकी घटनापर प्रकाश डालते हुए स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्यायने देशी राज्य-लोक-परिषद् के अध्यक्षकी हैसियतसे कहा था—"ब्रिटेनमें मज़दूर-दलका सत्ता प्राप्त कर लेना एक क्रान्ति थी। इस मौलिक परिवर्त्तनको भी ब्रिटिश राजगृहने, जिसके सर्वोपरि व्यक्ति बादशाह पंचम जार्ज हैं, अनुकूल मान लिया। ब्रिटिश बादशाह जातिके ब्रिटिश हैं, भाषा बोलते हैं अंगरेज़ी, जैसी कि दूसरे प्रजाजन बोलते हैं, अपने अधिकांश प्रजाजनकी भाँति वे ईसाई हैं, वे लोकमतको मान लेते हैं और अपनी सार्वजनिक प्रवृत्तियोंका मुख्य लक्ष्य जन-हित ही बनाते हैं। फिर भी उनमें इतनी धृष्टता नहीं है कि वे अपनेको जनताका प्रतिनिधित्व करनेकी स्थितिमें मान लें।" तब क्या भारतीय राजाओंके मामलेमें वे बिना पार्लमेण्टकी सहायताके ही सीधा सम्बन्ध क़ायम कर लेंगे? ताजके मानी इंग्लैण्डका राजा हैं, अथवा पार्लमेण्ट-सहित इंग्लैण्डका राजा? इंग्लैण्डका राजा राज-काजमें, जिसमें हिन्दुस्तानी राजाओंके साथके सम्बन्ध भी शरीक हैं, पार्लमेण्ट और उसके द्वारा निर्वाचित मन्त्रीगणकी सहायताके बिना अपनी कोई स्वतन्त्र हस्ती ही नहीं रखता। फिर भारतीय राजाओंके मामलेमें क्या उनपर कोई जादूका डंडा फिर जायगा? यदि राजाओंको 'ताज'में इंग्लैण्डकी जनताकी प्रतिनिधि-स्वरूप पार्लमेण्टको शरीक करनेमें ऐतराज़ नहीं है, तो विधान द्वारा स्थापित भारत-सरकार और उसकी व्यवस्थापिका सभाओंसे सम्बन्ध रखनेमें क्यों ऐतराज़ होना चाहिए? वे भारतकी जनतासे क्यों भयभीत हैं? सच तो यह है कि वे स्वयं जानते हैं कि उनकी राज्य-प्रणाली जनतन्त्रवाद-शून्य है। अतः जनतन्त्रवादी संस्थाएँ उस प्रणालीपर ऐतराज़ उठाए बिना नहीं रह सकतीं। इस वाजिब ऐतराज़को ही वे 'ब्रिटिश भारतीय हमले' समझते हैं और अपनी स्वेच्छाचारितासे रक्षा पानेके लिए इन कथित हमलोंसे सुरक्षित होनेके नामपर भारतकी शासन-व्यवस्थासे एकदम दूर होकर 'ताज'से सीधा सम्बन्ध [illegible] करनेके नामपर एकदम उच्छृंखल हो जाना चाहते हैं।

इंग्लैण्डके बादशाह अपनेको बादशाह जानते हुए भी इंग्लैण्ड की 'स्टेट' बननेका दावा नहीं करते। जब कभी इंग्लैण्ड तरफ़से बोलनेका अवसर आता है, वहाँकी चुनी हुई सरकार ही तरफ़से बोलती है। परन्तु राजा लोग जब कभी बातें करते इसी स्वरसे कि हमारी स्टेट यह माँगती है, वह माँगती है यह चाहती है, वह चाहती है। अतएव जो सत्ता नरेशोंको नहीं है और जिसके प्रति वफ़ादार होनेकी घोषणा प्रत्येक प्रतिमास कई बार करता है, क्या उस सत्ताको धारण करने राजाओंका दावा निरी आत्म-प्रवंचना नहीं है? यदि राजा ही 'स्टेट्स' होते, तो ब्रिटिश सरकार अपनी सन्धियोंमें हितोंका 'स्टेट्स'में ज़िक्र ही क्यों करती? जोधपुरके साथ १६३९ की सन्धिमें जिन लोगोंसे सलाह ली गई थी, महाराजा, पोलिटिकल अफ़सर, सरदार, अहलकार और खा पासवान। उस सन्धिके माफ़िक एक पंचायत बनाई गई, राज्यकी प्रबन्धक थी। धारा ११ में यह साफ़ तौरपर लि गया कि "...इस राजधानीमें एक ब्रिटिश एजेण्टकी नि होनेके बाद किसी भी व्यक्तिपर ज़ुल्म या ज़्यादती नहीं दी जायगी। छः धर्मावलम्बियोंके साथ भी कोई हस्तक्षेप होगा।" यदि राजा ही 'स्टेट्स' होते, तो दूसरोंकी सलाहसे क्यों होती, और प्रजापर अत्याचार और ज़ुल्म न हो, छः धार्मि सम्प्रदायोंके मामलेमें हस्तक्षेप न हो, आदि व्यवस्थाएँ ब्रि सरकार द्वारा क्यों सोची जातीं?

नरेन्द्र-मण्डलके वाइस-चांसलर स्वयं भोपालका ही मा देखिए। पोलिटिकल एजेण्टकी अदालतमें १८६३ में मुकदमे पेश हुए, जिनमें ब्रिटिश रिआया, रियासती रिआया यूरोपियन मुद्दई या मुद्दायला थे। बेगम साहिबाने इस हस्तक्षे खिलाफ़ अपील की, जो खारिज हो गई। यदि भोपालकी बेग साहिबाको ही 'स्टेट' बननेका हक़ होता, तो फिर उ रिआयाकी सत्ता इतनी भी न होती कि वह पार्टी बनकर पो टिकल एजेण्टके सामने चली जाय? इतना ही नहीं, १८८५ जब सरकारको यह पता चला कि बेगम साहिबाके पतिकी दस्तन्दाज़ीसे 'स्टेट'को नुक़सान होता है, तो सरकारने दखल और पतिदेवके दखलको हटाया। इस तरहकी कई मिसालें भी दी जा सकती हैं, जिनसे मालूम हो सकता है कि लोगोंको न प्रजा 'स्टेट' मानती है और ब्रिटिश सरकार ही।

यदि राजाओंको ही 'स्टेट्स' समझ लिया जाय, तो प्रजाका क्या होगा? प्रजापर मनमाने अत्याचार होनेपर उसकी सुनवाई करनेवाला कौन होगा? ब्रिटिश सरकार रिक हस्तक्षेप न करनेके नामपर अलग रह जायगी और

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयं कुछ नहीं कर सकती ; क्योंकि अगर प्रजा स्वयं इलाज करनेकी फिक्र करे, तो ब्रिटिश सरकार राजाओं या रियासतकी रक्षाके नामपर दखल देनेको तैयार हो जायगी। अतः सच पूछा जाय, तो प्रजाकी रक्षा या तो प्रजा द्वारा ही की जा सकती है, या ब्रिटिश सरकार द्वारा। इतिहास और न्यायके पण्डित ब्राइसने लिखा है—"यदि एक शासक अपने वैधानिक अधिकारोंका दुरुपयोग करे ; ज़ालिम हो जाय ; शान्ति, रक्षा और न्यायका शत्रु बन जाय, तो प्रजाको हक़ है कि वह वफ़ादारीसे बाज आय और बग़ावत कर दे।"

पर क्या प्रजाको यह हक़ हासिल है? यदि नहीं, तो क्यों? इसका उत्तर सर टामस मुनरोके शब्दोंमें इस प्रकार है—"...भारतमें कुशासनकी आमतौरसे दवा है शान्त क्रान्ति या विदेशी जीत। पर राजाओंका साथ देनेवाली ब्रिटिश सत्ता इस दवाको निरर्थक कर देती है।" ब्रिटिश सरकारकी इस सहायताके ही कारण लोग क्रान्तिसे रियासतोंमें कुव्यवस्थाको दूर नहीं कर सकते। इसीलिए लार्ड सेलिसबरीने गायकवाड़के मामलेके एक खरीतेमें यह साफ़ राय दी थी कि "...ब्रिटिश सरकारने सरदारों और प्रजाको अपना इलाज आप करनेसे वंचित कर रखा है। ऐसी अवस्थामें उसके लिए यह अनुचित होगा कि जिस राजाकी खराबियाँ पूर्ण अनुभव द्वारा अच्छी तरह मालूम हो गई हैं, उसके कुशासनके खिलाफ़ बग़ावत करनेसे लोगोंको रोका जाय।" पर यह बात कहनेके लिए ही ठीक है। यदि प्रजाकी तरफ़से बग़ावत हो जाय, तो ब्रिटिश सरकारको बीचमें पड़ना ही पड़ता है, चाहे लार्ड सेलिसबरीकी स्वर्गीय आत्मा इस बातको नापसन्द भी क्यों न करे! शायद इन्हीं बातोंका खयाल करके लार्ड रीडिंगने यह भाव प्रकट किए थे—"देशी नरेशोंको आन्तरिक मामलोंमें विभिन्न अनुपातोंकी जो सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है, उसे इस दृष्टिसे सीमित किया जाना चाहिए कि रियासती प्रजाकी हित-रक्षाके लिए ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप कर सके।" इससे भी यह सिद्ध है कि प्रजाकी भलाई ही रियासतोंकी रक्षाका मूल आधार होना चाहिए, न कि राजाओंकी स्वेच्छाचारिताकी रक्षा। इस दृष्टिसे राजाओंकी रक्षाकी यह नई माँग सर्वथा अनुचित है और इसका अर्थ असहाय प्रजाको एकदम अरक्षित बनाना है।

उज्जयिनीका प्राचीनत्व

श्री माधव विनायक किबे, एम० ए०

श्रीमद्भागवतमें उज्जयिनीमें या उसके आस-पास सान्दीपन ऋषिका गुरुकुल था, जिसमें श्रीकृष्ण भगवान पढ़ते थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। ऐसा प्राचीनतर ग्रन्थोंके आधारपर लिखा गया होगा, यह निश्चित है। रामायणमें अवन्ती-देशका उल्लेख नहीं है। महाभारतमें इसका परिचय अवश्य मिलता है, तथापि इसके अनेक संस्करण होनेसे इस ग्रन्थका काल बहुत पीछेका प्रतीत होता है। कालिदासके 'रघुवंश' और 'मेघदूत' ग्रन्थोंमें जो उल्लेख आते हैं, वे भी गत इतिहासके मालूम होते हैं। 'मेघदूत'में कहा गया है कि 'उदयन-कथा' यहाँके लोग दुहराते थे। और 'रघुवंश'में जो यह कहा गया है कि अवन्ती-नरेश महाकालके निकट रहनेसे अपने सिरपरका चन्द्र-प्रकाश सदैव शुक्ल-पक्षका अनुभव करते थे, वह वर्णन इन्दुमतीके स्वयंवरके सम्बन्ध में किया गया है और कवि-कल्पनासे पूर्ण मालूम होता है। भास कविके उपलब्ध नाटकोंमें से चारमें—'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्त', 'चारुदत्त' (उपलब्ध चार अंक) एवं 'अविमारक'में—उज्जयिनीका उल्लेख है। शूद्रकका 'मृच्छकटिक' भासके 'चारुदत्त'का संस्करण मालूम पड़ता है। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि उसके और अंक भी होंगे, जिनमें 'मृच्छकटिक'में वर्णित इतिहासका मूल होगा।

'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण'में उज्जयिनीके राजा प्रद्योत चण्डमहासेन द्वारा कौशाम्बीके राजा उदयनको क़ैद करने और फिर उसके प्रद्योतकी कन्या वासवदत्तके साथ भाग जाने इत्यादिका वर्णन है। यह बिल्कुल ऐतिहासिक है, ऐसा स्पष्ट है। वही हाल 'स्वप्नवासदत्त'का भी है। इसमें वत्सराज्यको फिरसे जीतने और कब्ज़ेमें करनेके लिए उदयनका मगध-देशके राजाकी कन्या पद्मावतीसे विवाह कैसे कराया गया, इसका वर्णन है। यद्यपि उदयन पाण्डवोंका वंशज था, तो भी उसका राज्य क्षीण हो गया था। प्रद्योत एक महापराक्रमी वंश हो गया था। जरासन्धके वंशज मगधमें प्रबल हो गए थे। ये सब घटनाएँ इसमें हैं। 'चारुदत्त' में उज्जयिनीका वैभव मिलता है, और यदि उसका आगेका भाग उपलब्ध होता, तो उज्जयिनीमें चण्डमहासेनके बादकी जो राज्य-क्रान्ति 'मृच्छकटिक'में वर्णित है, उसका वर्णन भी सम्भवतः अवश्य मिलता। उज्जयिनीका वर्णन वाल्मीकि-रामायणके अयोध्याके उस वर्णनसे मिलता-जुलता है, जहाँ सात मंज़िल ऊँचे प्रासाद थे। कालिदासके 'मेघदूत' में भी उसके वैभवका ऐसा ही वर्णन है।

'अविमारक'में जिन राज्योंके नाम आए हैं, वे ही नाम 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण'में भी आए हैं। फिर भी 'अविमारक'में केवल महाकालका नाम होनेसे उसमें वर्णित कथा उदयन-कालसे भी प्राचीन है। साथ ही उसमें गन्धर्वोंका भी उल्लेख है, इससे भी यही बात सिद्ध होती है। गन्धर्वों और मानवोंका सम्बन्ध

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रामायणमें आया है ; पर महाभारतमें वह ज़रा दूर हो गया है। महाभारतके युद्धके बाद तो यह सम्बन्ध विनष्ट ही हो गया। 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्त', 'चारुदत्त' आदिकी कथाएँ भासके किंचित् पूर्वकालकी या समकालीन मालूम पड़ती हैं। 'अविमारक'में उज्जयिनीके राजधानी न होते हुए महाकालके लिए प्रसिद्ध होनेसे भी यही अनुमान पुष्ट होता है। 'अविमारक' की कथा कितनी प्राचीन है, यह जाननेका साधन उपलब्ध नहीं है ; तथापि यह अनुमान हो सकता है कि वह उदयनसे पूर्व सौवीर-राजघरानेमें हुई होगी। यदि इस घरानेकी वंशावलियाँ मिलें, तो उसका भी ठीक-ठीक पता लग जायगा और तीनों नाटकोंकी कथाएँ बहुधा समकालीन हैं या नहीं, इसका भी निर्णय हो जायगा।

भासके नाटकोंकी ऐतिहासिक प्रामाणिकताके बारेमें और उसके काल-सम्बन्धी अनेक पुराने तथ्यों एवं अनुमानोंकी 'किरात' उपनामधारी कृष्णजी लक्ष्मण सोमणने अपने 'भासाची नाटके अर्थात् भास कवीचा मराठी अवतार', जिसमें भासके १३ नाटकों का मराठी-अनुवाद दिया गया है, ग्रन्थके उपोद्घातमें विस्तृत रूपसे चर्चा की है। प्रमाणोंसे पुष्ट होनेपर ऐतिहासिक कथाओंको माननेमें कोई हिचकिचाहट नहीं हो सकती। भासका ईसा-पूर्व पाँचवी सदीमें होना इलिओनिस-यूनिवर्सिटीके अध्यापक डा० आलिवरने भी स्वीकार किया है। प्रद्योत-वंशके संस्थापक चण्ड-महासेन एवं उसके लड़के गोपालक (या पालक) और अनुपालक वत्सराज उदयन और भास समकालीन थे। प्रद्योत, उसके गोपालक और अनुपालक एवं उसका भतीजा आर्यक उज्जयिनी ही थे, यह भासके 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्त' एवं शूद्रकके 'मृच्छकटिक'से भी सिद्ध है। अतएव इसमें उज्जयिनी नगरीका तत्कालीन वर्णन और वहाँकी सामाजिक स्थिति विवरण है, यह मानना असंगत न होगा।

अब यह विचार करना बाकी रहा कि यह बात आजसे कितने समय पूर्वकी है। भविष्योत्तर-पुराणके कलियुग-राजवृत्त प्रकरणमें महाभारतके बाद बृहद्रथ-राजवंशने १००६ वर्ष राज्य किया। इसमें २८ राजपुरुष हुए। इसके बाद प्रद्योत राजवंश आया। उसके ५ राजपुरुषोंने १३८ वर्षों तक राज्य किया। इस वंशका संस्थापक प्रद्योत चण्डमहासेन ही था। महाभारत युद्ध ३१३७ ई० पू० में हुआ। इस हिसाबसे प्रद्योत का २१३१ ई० पू० होना सिद्ध है। इसके क़रीब ५६० वर्ष बाद मौर्य हुए--अर्थात् उनका समय १५०० ई० पू० के लगभग है।[२] बुद्ध-निर्वाण कोई-कोई १७९० ई० पू०में बतलाते हैं, जो सम्भव है। सारांश यह कि भासके नाटकोंमें वर्णित [illegible] २००० ई० पू० से अधिककी हैं, ऐसा मानना असंगत नहीं।

1. A. B. C. R. I. Jubilee Number, Pp. 271-[illegible]
2. Ibid. Pp. 582-90.

पशु-रक्षाकी समस्या

सेठ अचलसिंह, एम० एल० ए०

भारत एक कृषि-प्रधान देश है। पशु यहाँका मुख्य धन हैं। पर दुर्भाग्यवश वर्त्तमान युद्ध-कालमें उनकी संख्या सिर्फ़ १५ करोड़ रह गई है, जब कि सन् १९३० में उनकी संख्या ३० करोड़ थी। इसका फल यह हुआ है कि उनकी क़ीमत चार-पाँच गुनी बढ़ गई है, खेतीके लिए उनका मिलना मुश्किल हो गया है और दूध-घी आदिका बिल्कुल अभाव हो गया है। इंग्लैण्ड, हालैण्ड, डेन्मार्क आदि देशोंमें, जो लड़ाईके केन्द्र बने हुए हैं, दूध-मक्खनकी कोई खास कमी नहीं है। वहाँ पशुओंके दाम मुश्किल से ५० प्रतिशत बढ़े हैं, जब कि भारतमें ये औसतन ३५० प्रतिशत बढ़ गए हैं!

कुछ समय पहले तक भारत-सरकारको पशुओंकी कमीकी कोई परवाह नहीं थी ; पर इधर चन्द महीनोंसे, जब उसे फौजके लिए मांस, दूध और मक्खनकी कमी महसूस होने लगी है, उसका ध्यान इस ओर गया है। यद्यपि केन्द्रीय सरकारने इस सम्बन्धमें प्रान्तीय सरकारोंके नाम कुछ हिदायतें जारी की हैं—जैसे १० वर्षसे कम उम्रवाले और दूध देनेवाले पशु न काटे जायँ और हफ़्तेमें कुछ दिन ऐसे निश्चित किए जायँ, जिनमें [illegible] खाया जाय—पर अफ़सोसकी बात है कि अभी तक सरकारोंने पशु-ह्रासको रोकनेके लिए कोई खास ध्यान नहीं दिया है। यदि इस समस्याको सुलझानेके लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया गया, तो आर्थिक और शारीरिक दशा बड़ी शोचनीय हो जायगी। म्युनिस्पल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंका भी यह देखना कर्त्तव्य है कि उनकी सीमाके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए नियम अमलमें लाए जाते हैं या नहीं। देशी रियासतें भी इस दिशामें महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

जब हम इस दिशामें समस्त भारतको यथार्थ उन्नत की दृष्टिकोणसे विचार करते हैं, तो पता चलता है कि यह तब सम्भव नहीं है, जब तक कि देशमें राष्ट्रीय सरकार न स्थापित हो जाय। पर इसके अभावमें पशु-धनकी उन्नतिके लिए किसी अखिल भारतीय संस्था द्वारा आन्दोलन, प्रचार और रचनात्मक कार्य अवश्य किया जाय। इस सम्बन्धमें मेरा प्रस्ताव

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

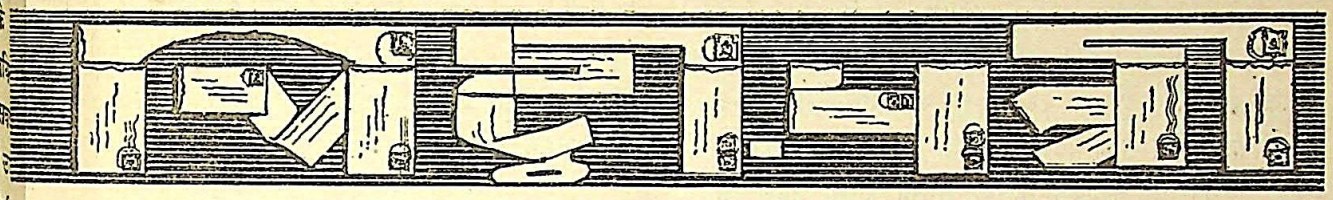

प्रगतिशीलताकी कसौटी

'विशाल भारत'के गतांकमें श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'ने एक चिट्ठी युक्त-प्रान्तीय प्रगतिशील लेखक-संघकी घोषित नीतिके सम्बन्धमें छपवाई है। हमारा ऐसा खयाल है कि पत्र-लेखकने साहित्यमें प्रगतिशीलताको वस्तुस्थितिकी उपेक्षाकर एकांगी संकुचित मान्त्रिक दृष्टिसे देखा है। संघकी रिपोर्टमें कहा गया है—'देशभक्ति ही प्रगतिशीलताकी एकमात्र कसौटी है। राष्ट्रीय आन्दोलनकी स्वस्थ जनवादी परम्पराओंका उत्तराधिकार प्रगतिवादियोंकी जनप्रेमी भावनाओंकी पूँजी है।' पत्र-लेखकने प्रश्न किया है कि राष्ट्रीय आन्दोलनके साथ 'स्वस्थ जनवादी' विशेषण क्यों जोड़े गए हैं? इसीके आधारपर वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलनमें से अस्वस्थ और अजनवादी भाव-धाराको पहचाननेकी कसौटी मार्क्सवाद है। यहाँ यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि समस्त राष्ट्रीय आन्दोलनोंको पत्र-लेखक भी 'स्वस्थ और जनवादी' नहीं स्वीकार करते। चाहते वे यह हैं कि प्रगतिशील लेखक-संघ इसलिए साफ़-साफ़ यह कहे कि प्रगतिवादी साहित्य अवश्य ही मार्क्सवादी विचार-धाराका होगा। अगर कोई लेखक राष्ट्रीय आन्दोलनकी 'स्वस्थ और जनवादी' परम्पराओंके प्रति जागरूक रहकर क़लम चलाता है, तो वह मार्क्सवादी विचारका न होते हुए भी श्रेष्ठ कोटिकी प्रगतिवादी रचनाएँ देगा; क्योंकि उसकी प्रेरणाका उत्स वह जन-मन है, जिस जन-साधारण तक पहुँचनेकी मार्क्सवादी लेखकोंसे अपील करते हैं। यूरोपीय लेखकोंमें रोमाँ रोलाँ, गोर्की कम्यूनिस्त होनेके पहले भी श्रेष्ठ प्रगतिवादी रचनाएँ दे चुके थे। हिन्दी-लेखकों और कवियोंमें प्रेमचन्द, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदिके नाम गर्वके साथ लिए जा सकते हैं—और इनमें से कोई भी मार्क्सवादी नहीं है। हमारे खयालसे जिस लेखकमें जनताके प्रति गहरी सहानुभूति और ममता होगी, वह निश्चय ही प्रगतिवादी होगा।

पत्र-लेखकको आशंका है कि भारतके साम्यवादी आन्दोलन

के देशमें 'अखिल भारतवर्षीय पशु-रक्षा-सम्मेलन' नामक एक संस्था स्थापित की जाय, जिसके निम्न उद्देश्य हों—(१) सरकारी और ग़ैर-सरकारी साधनों द्वारा पशुओंकी रक्षा करना। (२) पशुओंकी नस्ल सुधारना। (३) पशुओंकी मर्दुमशुमारीके समय ठीक-ठीक गणना करनेकी व्यवस्था करना। (४) सस्ते पशु और दूध बिकवानेकी व्यवस्था करना। (५) आवश्यकतानुसार नई गोशालाएँ स्थापित करना और सभी वर्त्तमान गोशालाओंको एक केन्द्रीय संस्थाके अन्तर्गत सम्बन्धित करना, ताकि उनके कार्योंकी भलीभाँति देखरेख की जा सके और वे केवल लूली-लँगड़ी गायोंका आश्रय-स्थान न होकर सस्ता, शुद्ध और अच्छा दूध एकत्रित करनेवाले डेयरी फार्मके रूपमें परिणत हो सकें। (६) पशु-रक्षा-सम्बन्धी क़ानून बनानेके निमित्त केन्द्रीय और प्रान्तीय तथा देशी राज्यकी सरकारोंपर दबाव डालना और तत्सम्बन्धी मौजूदा क़ानूनको अमलमें लाना। (७) भारतके हरएक शहर और क़स्बेमें वर्त्तमान वैज्ञानिक ढंगके डेयरी फार्म खुलवानेके लिए लोगोंको उत्साहित करना। (८) पशु-रक्षा-सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करना। (९) जगह-जगहपर पशु-प्रदर्शिनियों और मेलोंकी व्यवस्था करना और उन्हें लोकप्रिय बनाना। (१०) पशु-चिकित्सा-सम्बन्धी विद्यालय और डेयरी फार्म क़ायम करना और उनकी सहायता करना तथा उन विषयोंके अध्ययनके लिए नवयुवकोंको विदेश भेजना। (११) पशु-चिकित्सालय स्थापित करना और उनकी सहायता करना। (१२) चर्म-रहित वस्तुओंका प्रयोग करना। (१३) पशुओंके वास्ते चरागाहकी व्यवस्था करना और उस सम्बन्धमें जंगलातको सुरक्षित करानेके लिए सरकारपर ज़ोर डालना। (१४) दूधकी उपयोगिता और महत्वपर ज़ोर देना और वर्त्तमान समयमें दूधकी उसी प्रकार इफ़रात करना, जिस प्रकार प्राचीन भारतमें थी। (१५) अकाल-आपदके कारण देशके जिन भागोंमें चारेकी कमी हो जाय, वहाँपर सस्ते दामपर चारेका प्रबन्ध करना। (१६) 'अधिक चारा उपजाओ'का अन्दोलन करना। (१७) देशी नरेशोंसे मिलनेके लिए डेपुटेशनकी व्यवस्था करना, ताकि उनसे डेयरी, दूध देने तथा कृषि-कार्यमें आनेवाले पशुओंकी रक्षा और नस्ल-सुधारके लिए एक पृथक महकमा खुलवानेके लिए निवेदन किया जा सके।

आशा है, जो संस्थाएँ और महाशय इस पुनीत कार्यमें दिलचस्पी रखते हों, वे इस विषयमें अखबारों द्वारा या मुझसे (रोशन मोहल्ला, आगराके पतेपर) अपना विचार प्रकट करेंगे, ताकि उक्त संस्थाको चालू करनेमें सहायता और सहयोग मिल सके और आगे कार्यवाही हो सके।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा प्रगतिशील लेखकोंमें बहुतसे अवसरवादी साम्यवादका चेहरा लगाकर आ रहे हैं। ये कहीं भारतवर्षमें साम्यवादके खुशनुमा पौधेको काट न डालें। पर किसी भी जन-आन्दोलनमें अवसरवादियोंको आनेसे रोका नहीं जा सकता। लेकिन जन-संघर्ष ही उनके चेहरोंपर पड़े नक़ाबको फाड़कर उनका असली चेहरा सबके सामने कर देता है। इसलिए लेखकको अत्यधिक चिन्तित और शंकित होनेकी ज़रूरत नहीं। लेखकको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि बौद्ध संघ और साम्यवादी आन्दोलन एक नहीं हैं। लेखककी नज़रोंमें कौन अवसरवादी है, यह हम समझनेमें असमर्थ हैं। —श्रीचन्द्र अग्निहोत्री, महादेव साहा; ७५, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।

हिन्दी-प्रकृति-मण्डल

कालाकाँकरके कुँवर सुरेशसिंहके उद्योगसे लखनऊमें 'हिन्दी-प्रकृति-मण्डल' नामकी एक संस्थाकी स्थापना हुई है, जिसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंके प्राणिशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र तथा भूस्तर-शास्त्रसे जनताको परिचित कराना है। इसके लिए यह संस्था उक्त विषयोंपर एक मासिक पत्र निकालेगी और जनतामें शास्त्रीय ज्ञान फैलानेके लिए हिन्दीमें सरल-सुबोध वैज्ञानिक साहित्यका निर्माण करेगी। हिन्दीमें अपने ढंगकी यह पहली संस्था है। इसकी सफलतामें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता, जब हम इसकी कार्यकारिणी-समितिमें डा० बीरबल साहनी, लखनऊ-यूनिवर्सिटीके डा० शिवचन्द पाण्डेय, डा० दीनदयाल गुप्त, राय कृष्णदास, श्री असितकुमार हल्दार (प्रिन्सिपल, आर्ट स्कूल, लखनऊ) तथा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (क्यूरेटर, प्राविंश्यल म्यूज़ियम, लखनऊ)-जैसे विद्वानोंके नाम पाते हैं। विशेष विवरणके लिए 'मन्त्री, हिन्दी-प्रकृति-मण्डल, लखनऊसे पत्र-व्यवहार करें। —कुलदीपनारायण, कालाकाँकर।

युवक-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

बड़े खेदका विषय है कि आज जब सम्पूर्ण भारतमें हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेका डंका बज चुका है और दूसरे प्रान्तोंके लोग हिन्दीके प्रति अपनी भक्ति और कर्त्तव्य-परायणता दिखा रहे हैं, हम संयुक्त-प्रान्तके निवासी, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, प्रायः शिथिल-से हैं। आज साहित्य-निर्माणमें युवकोंके सहयोगकी कितनी आवश्यकता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। उनके कन्धों पर महान उत्तरदायित्व है; परन्तु वे अकर्मण्य बने बैठे हैं। थोड़े दिन हुए युवकोंमें हिन्दीके लिए अनुरागका पुनरोदय 'कुमार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन'से हुआ है। हमने एक योजना तैयार की है कि एक 'युक्त-प्रान्तीय युवक-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' किया जाय। इस सम्बन्धमें जो महानुभाव पत्र-व्यवहार द्वारा अपने बहुमूल्य सुझाव भेजेंगे, हम उनके बहुत अनुगृहीत होंगे। प्रान्तके किसी नगरकी कोई संस्था यदि अपने ऊपर सम्मेलनका भार लेना चाहे, तो वह अवश्य लिखे। —बन्धु, शर्मन-कुटीर, मुरादाबाद।

बालोपयोगी काव्य-सामग्री

हिन्दी-जगतके अनेक अभाव हैं। हिन्दीकी कि इकाइयाँ इनके दूरीकरणमें प्रयत्नशील हैं। इधर मैं हिन्दीके कवियोंका ध्यान एक अभावकी ओर आकर्षित करना चाहता हिन्दीमें बालकोंके लिए कई मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती सैकड़ों पुस्तकें भी लिखी जाती हैं; किन्तु इनमें इस आवश्यकताको ध्यानमें रखकर काव्य-सामग्री उपस्थित की जाती। कविताएँ प्रायः सभी एक धुनमें चलती हैं-'मेरे आया, एक मदारी उसको लाया।' बालक प्रत्येक कविताका आनन्द लेना चाहते हैं, जो उन्हें इन कविताओंमें नहीं। पाठशालाके संगीत-शिक्षक विवशता प्रकट करते हैं—बालकोंके लिए उचित गाने हमें मिलते ही नहीं। दुष्परिणाम यह हो रहा है कि बच्चे अवांछनीय और सिनेमा-संगीतकी ओर तेज़ीसे आकृष्ट हो रहे हैं। अतः के लिए हिन्दीमें कविताएँ लिखनेवाले कवि महानुभावोंसे सानुरोध प्रार्थना है कि वे बच्चोंके लिए प्रयत्नकर ऐसी लिखें, जो गाने-योग्य हों, विभिन्न राग-रागिनियोंमें हों, एक व्यक्ति या समूह द्वारा गाई जा सकें, अच्छे भावोंसे और उनकी भाषा खूब सरल हो। पत्र-सम्पादकोंसे विनीत प्रार्थना है कि वे इस ओर विशेष ध्यान दें।—म्युनिस्पल हिन्दी-स्कूल, माटुँगा, बम्बई-१९।

फिल्मकी सर्वश्रेष्ठ कहानी

पिछले अंकमें हमने फिल्मकी सर्वश्रेष्ठ कहानीपर पुरस्कार देनेका विज्ञापन छपवाया था, उसके सम्बन्धमें लेखकोंने पूछताछ की है। इससे पता चलता है कि लेखक अपनी रचनाएँ देना चाहते हैं। उन सबको मौका खयालसे हमने कहानियाँ भेजनेकी आखरी तारीख आगे ३० अप्रैल, १९४५ कर दी है। जो लेखक अपनी भेज चुके हैं, वे दोहरानेके लिए उन्हें वापस मँगा कई लेखकोंने पूछा है कि जिन कहानियोंपर इनाम नहीं उनका क्या होगा? इस सम्बन्धमें निवेदन है कि आवश्यकता खर्च आनेपर प्रतियोगिताके ६ मास बाद ऐसी वापस कर दिया जायगा। इनमें से जिस कहानीका उपयोग करना चाहेंगे, उसके लिए लेखकको उचित मुआवजा जायगा।—मैनेजर, नेशनल स्टूडियोज़, पोस्ट-बक्स नं० बम्बई।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

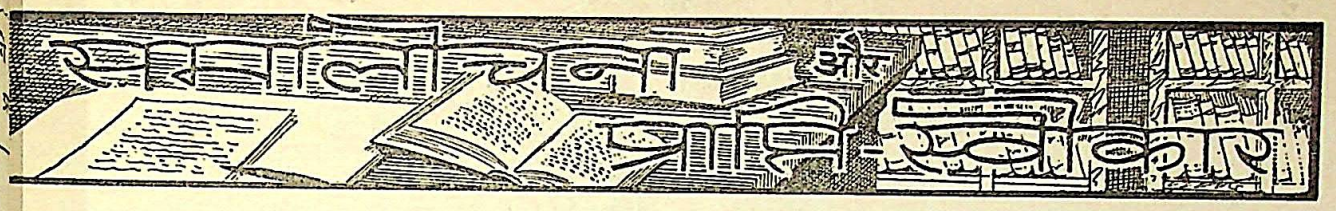

अच्छी हिन्दी : लेखक श्री रामचन्द्र वर्मा ; प्रकाशक—साहित्य-रत्नमाला-कार्यालय, बनारस ; मूल्य २)।

हिन्दी-भाषा और साहित्यके देशव्यापी विस्तारके समय वर्माजीने 'अच्छी हिन्दी' लिखकर हिन्दीकी विशेष सेवा की है। पुस्तक समयानुकूल है, इसमें तो दो मत हो ही नहीं सकते। इसके बारह परिच्छेदोंमें भाषाकी परिभाषासे लेकर भविष्यकी उसकी आवश्यकताओं तकका विश्लेषण करनेका प्रयास किया गया है। आजसे अनेक वर्ष पहले जब अंगरेज़ीमें "King's English" प्रकाशित हुई थी, तब कुछ समयके लिए साहित्यिक जगतमें एक तहलका-सा मच गया था, क्योंकि उसके लेखकने ऐसे लेखकोंकी भाषा-सम्बन्धी भूलें निकाली थीं, जो अंगरेज़ी-साहित्यके निर्माता कहे जाते थे। क़लमके ऐसे धनियोंकी भूलें निकालनेका साहस कम मार्केकी बात नहीं थी। परन्तु देर न लगी कि लोगोंको "King's English" के रचयिताकी सात्विक भावनापर विश्वास हो गया और पुस्तककी उपयोगिता एक स्वरसे स्वीकार कर ली गई। आश्चर्य न होगा, यदि 'अच्छी हिन्दी'की उपयोगिता भी उसी प्रकार हिन्दी-संसार द्वारा शीघ्र ही कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार कर ली जाय। किन्तु अच्छा होता, यदि इस पुस्तक में भी लेखकने जिन भूलोंकी ओर संकेत किया है, उन भूलोंके करनेवालोंके नामोंका भी उल्लेख किया जाता। कदाचित् संकोच-वश ही ऐसा नहीं किया गया जान पड़ता है।

पुस्तककी भूमिकामें (पृष्ठ ७ पर) लेखकने कहा है कि बाबू बालमुकुन्द गुप्तके बाद द्विवेदीजीने भाषाके शुद्धीकरणका काम अपने हाथमें लिया था। किन्तु बात तो यथार्थमें यों थी कि हिन्दी-साहित्यके इस युगमें निरन्तर भाषाके शुद्धीकरणपर विशेष ध्यान रखा जाता रहा। गुप्तजी और द्विवेदीजीके विषयमें आगे और पीछेका सम्बन्ध नहीं था, वरन् 'कड़ी और तेज़ निगाह'के नाते तो शायद द्विवेदीजीका स्थान ही आगे था। 'कृपानामा हस्तगत हुआ' या 'तोड़क' (पृ० ५४) इत्यादि प्रयोगोंकी तीखी आलोचना करके लेखकने बड़ी योग्यतासे यह सिद्ध किया है कि हिन्दीको 'हिन्दुस्तानियत' के कीचड़में घसीटना अशिष्टतासे कम नहीं। पुस्तकमें जहाँ-तहाँ भाषा-सम्बन्धी भूलें काफ़ी हैं। ऐसी पुस्तकोंका प्रूफ़ देखनेमें अधिक सावधानी बरती जानी चाहिए। संरक्षित सामग्रीको देखते हुए पुस्तकके दो सौ पन्नेका स्थान बहुत ही संकुचित है। इतनी सामग्रीका समुचित विश्लेषण एक छोटी-सी पुस्तिकामें सम्भव भी नहीं। भाषाकी उत्तरोत्तर व्यापकताको देखते हुए तो यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसका संस्कार एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नहीं। अब तो समय आ गया है, जब कि हिन्दीकी किसी प्रतिष्ठित संस्था द्वारा एक ऐसी विद्वत्समितिकी स्थापना की जाय, जो भाषाके संस्कार तथा उसके सम्बन्धमें उठने-वाली अगणित समस्याओंका शास्त्रोक्त समाधान अनवरत रूपसे करती रहे। जब कभी और जिस किसीको भाषा-विषयक शंका हो, तो वह संस्था द्वारा उपर्युक्त समितिका निर्णय माँग सके, और समितिके ये निर्णय उस संस्थाकी मुख-पत्रिकामें प्रकाशित हों। इस प्रकार न केवल व्यक्ति-विशेष ही इस समितिसे लाभ उठा सकेगा, वरन सारे हिन्दी-संसारका भी कल्याण हो सकेगा।

—(प्रो०) ललिताप्रसाद सुकुल

सरदार पृथ्वीसिंह : एक क्रान्तिकारी जीवनी : लेखक—श्री राहुल सांकृत्यान ; जन-प्रकाशन-गृह, बम्बई ; पृष्ठ-संख्या ८६ ; मूल्य २॥)।

सन् १९३८ में सरदार पृथ्वीसिंहके पुलिसको आत्म-समर्पण करनेकी बात अखबारोंमें बड़े-बड़े अक्षरोंमें छपी थी और विभिन्न छोटे-बड़े राजनीतिक दलोंमें उससे सनसनी भी फैली थी, यद्यपि कुछ-एक परिचित व्यक्तियोंके लिए यह विशेष विस्मयकी बात नहीं थी। राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित इन्हीं सरदार पृथ्वीसिंहका जीवन-वृत्तान्त जन-प्रकाशन-गृहसे प्रकाशित हुआ है। सरदार पृथ्वीसिंहके घटना-बहुल जीवनकी कहानी निश्चय ही रोचक और अचरज-भरी है ; और इस रूपमें संसारके प्रसिद्ध साहसिकोंकी कहानियोंसे टक्कर ले सकती है। यह भी असन्दिग्ध है कि एक दीप्त देश-प्रेम उनके कामोंको अनुप्राणित करता रहा, यद्यपि यह कहना भूल होगा कि उस देश-प्रेमकी प्रेरणा सदा अचूक रही। देश-प्रेम एक भावना है, तर्क-संगति नहीं। उससे प्रेरित सभी कार्य तर्ककी कसौटीपर ठीक उतरें, यह अनिवार्य नहीं है। न यही सिद्ध किया जा सकाता है कि वे सब सोच-विचार कर किए गए हैं। भावनाकी शक्ति बड़ी होती है ; पर व्यक्ति उसका संचालन नहीं करता, उसके द्वारा संचालित होता है। किन्तु राहुलजीका उद्देश्य, जिसका संकेत उपशीर्षकसे मिलता है, केवल वृत्त-संग्रह नहीं था। उन्होंने दिखाना चाहा है कि किस तरह पृथ्वीसिंहके जीवनका घटना-क्रम उन्हें मार्क्स-वादकी ओर प्रेरित करता रहा। इस ढाँचेमें जीवनी पूर्ण-रूपसे फ़िट नहीं बैठी। और जो पाठक पृथ्वीसिंहसे और उनके नये-पुराने सहयोगियोंसे परिचित रहा है, वह अनुभव करेगा कि इससे 'पर्सपेक्टिव' कुछ विकृत हो गया है। उसे शायद दो-एक ऐसे प्रसंग भी याद आवें, जिनसे पुस्तकका अन्तिम परिच्छेद

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हास्यास्पद जान पड़ने लगे। पृथ्वीसिंहका जीवन 'क्रान्तिकारी जीवन' नहीं, केवल 'क्रान्तिकारीका जीवन' है; और वह भी १९०५-३५ के क्रान्तिकारीका जीवन, जिसमें साधना तो बहुत थी, किन्तु दृष्टि उतनी नहीं—या 'दृष्टि' शब्दपर आपत्ति हो, तो कहा जाय कि विश्लेषक पहुँच कम थी। इस बातकी स्वीकृति प्रस्तुत जीवनीको अधिक सच्ची और हमारी समझमें अधिक प्रभावोत्पादक बना देती। तथापि पुस्तक अत्यन्त रोचक और पठनीय है—राजनीतिमें पाठकको रुचि हो, न हो। —वा०

मराली : रचयिता—श्री 'केसरी'; प्रकाशक—पुस्तक-भण्डार, लहरियासराय; पृष्ठ २००; मूल्य ३), सचित्र, सजिल्द।

'केसरी' बिहारके ही नहीं, हिन्दी-जगत्के कवि हैं। उनकी रचनाओंकी सुकुमारिता, उनकी विविधता और उनकी वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यक्ति उन्हें प्रान्तीय सीमासे ऊँचा उठाकर व्यापक बना देती हैं। 'दो शब्द'में उन्होंने अपनी कविताओंके सम्बन्धमें एक जगह लिखा है कि वे किसी 'वाद'को लेकर नहीं चलतीं; पर उसीमें दूसरी जगह उन्हें यह लिखना भी आवश्यक (?) जान पड़ा कि "मुझे इस ज़मानेमें यह घोषणा (?) करते हुए कुछ भी संकोच नहीं कि मेरा दृष्टिकोण मूलतः रोमाण्टिक है।" इस तरह कविने प्रारम्भमें ही अपनी विरोधाभास-प्रियताका हमें परिचय दे दिया है। 'रोमाण्टिक'से हम दो अर्थ ले सकते हैं। एक तो यह कि कविकी रचनाओंमें 'पिटी लकीरों'से दूर भाग चलनेकी प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति उनकी 'भावनाओं' और 'अभिव्यक्ति' दोनोंमें दीख सकती है। दूसरी यह कि कवि प्रेमकी उल्लासमयी लहरियोंमें डूबते-उतराते लक्षित हो सकते हैं। रोमाण्टिक रचनाके लिए भाव या भावाभिव्यक्तिका वैचित्र्य आवश्यक है। 'मराली'में दूसरे प्रकारका वैचित्र्य अधिक मिलता है, और इसीलिए हम उनकी 'घोषणा'का समर्थन कर सकते हैं।

हिन्दीमें 'रमांस-युग'का प्रारम्भ स्व० श्रीधर पाठकसे माना जाता है, जब उन्होंने अपने पूर्व-कवियोंकी विषय, भाषा, शैली आदि परम्पराके प्रति 'विद्रोह' प्रदर्शित किया था। उसके बाद छायावादके दिनोंमें तो उसका रूप बहुत ही खिलकर सामने आया। वह अपने प्रचलित अर्थमें 'प्रेम'के लौकिक-अलौकिक (?) आलम्बनोंमें काव्य-प्रेमियोंको विभोर बनाता रहा, और आज भी जब युग उसे 'बहिर्मुख' होनेको पुकार रहा है, वह किसी न किसी रूपमें जी रहा है। बात यह है कि 'रोमांस'-प्रियता यौवन का तक़ाज़ा है, जिसके प्रति उदासीन रहकर कवि जी नहीं सकता।

'मराली'में कविकी १०-१५ वर्षोंकी चुनी हुई रचनाओंका समावेश हुआ है। उनमें उन्होंने अपने हृदयके मथनको ही नहीं, बाह्य जगत्के सुख-दुःखको भी अपनी सहानुभूति-सहृदयता प्रदान की है। तभी राहगीरोंकी वाणी उन्हें सुन पड़ती है :—

कौन रे! यह जो दुआकी, प्रात ही मधुर-धार लहे
हो दयादाता! भिखारिन, मैं तुम्हारे द्वार आई

और वे पुरुष-जाति तथा समाजके प्रति भर्त्सना बरसाने लग
प्राकृतिके अचेतन अणुओंको मानवी रूप दे उन्होंने सचमु
हमारा अंग बना दिया है। कटे खेत, रेणु, वनफूल, मह
वे मानो बातें करते हैं। कवि अपनी सत्ता पृथक रख
चराचरमें अपनेको बिखेर देना चाहते हैं। कविने अपने
को देख मानवताके भी गीत गए हैं, और इस तरह
स्थलपर अपनेको केन्द्रित न रखकर गतिशीलताका परिच
है। कविमें विविधता उनकी जागरूकताका द्योतक है।
सन्देह नहीं, वे अपनी भाषामें मिठास भरनेके कारण भी
सहज निकट पहुँच गए हैं। 'मराली'के प्रकाशनसे हिन्दी
श्रीवृद्धि हुई है। —विनयमोह

कलंक : लेखक—श्री राजेश्वरप्रसादसिंह; प्रकाशक—
प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; मूल्य १)।

इस संग्रहकी 'अनुभव', 'बेला', 'आराधना' आ
कहानियोंके दर्शन हिन्दी-प्रेमी वर्षों पहले पत्रिकाओंमें क
हैं। शैली और प्लाटोंकी विवेचनासे लेखक कौशिक और
के स्कूलके जान पड़ते है। अधिकांश कहानियाँ समाज
और मध्य-वर्गीय गार्हस्थ्य जीवनमें किसी-न-किसी रूपमें
विप्लवकी झाँकी लेकर आती हैं। पतिके प्रति वन्दनाके
परिपूर्ण त्याग और बलिदानका स्वत्व लिए जीवनको
तपस्यामें बदल डालती हैं, उन भारतीय नारियोंका सीधे
ये सत्य चित्र हैं। यह प्रगतिगामी साहित्य तो नहीं
हमारे देशके लिए इसके पात्र आज भी एक वास्तविक
इसमें भी सन्देह नहीं। यहाँ किसी मौलिक दृष्टिकोणसे
और पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धका विश्लेषण नहीं कि
युगोंसे समाज द्वारा बाँधी मर्यादाकी परिधिके भीतर ही
और मरते हैं; परन्तु लेखककी संवेदनशीलता उन्हें
'अपना' बनाए रखती है। कहानियाँ रोचक और हृदय
पड़ी हैं। भाषा और शैली दोनोंपर रचनाकारका अधिक

अनुराग : लेखिका—श्री विमलारानी; प्रकाशक—
प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; मूल्य लिखा नहीं।

लेखिकाकी रचनाओंके इस प्रथम प्रकाशनमें नौ
सुन्दर कहानियाँ संगृहीत हैं। कहीं उन्होंने कहा है
स्त्री और पुरुषके बीच माधुर्य-भावना नहीं, भाई और
प्रेमकी आवश्यकता है।' कहानियोंमें मानव-प्रेमके
चित्रणका प्रयास है। वह सफल भी हुआ है।
'बहनों'के दर्शन विद्यार्थी-जीवनमें ही होते हैं—
सहानुभूतिमय हृदय लिए। भाई अधिकांशतः
अपना देवत्व छिपाए संसारपर तिरस्कारकी दृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। उनके जीवनमें बहनोंका आगमन कारबारी जगकी नज़रोंसे ओझल उनका निस्स्वार्थ भाव धो-पोंछकर उज्ज्वल कर जाता है। कहानियाँ करुणापूर्ण हैं। उनमें हास-उल्लास भरना लेखिकाका ध्येय भी नहीं। 'संवेदना' और 'अविश्वसनीय' आदि रचनाएँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। शैली रोचक है; किन्तु लेखिकाके पात्र-पत्री यदि बात-बातपर रो पड़ने, मूर्च्छित हो जानेवाले, चित्रोंसे बातें करनेवाले नाटकीय शिशुतासे भरे न होते, तो जीवनके वे अधिक समकक्ष जान पड़ते।

यह पथ अनन्त : लेखक—श्री 'मधुप'; प्रकाशक—नई किताबें कार्यालय, सिरकीवालान, दिल्ली; मूल्य २)।

प्राक्कथनमें नगेन्द्रजीकी समालोचनाके बाद गीतोंपर कहनेके लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। कविके यौवनमें प्रथम बार प्रेयसीके प्रति आकर्षण जागा है। वह 'सैलानी' और 'दीवाना' बन गया। परन्तु इस स्टेजसे आगे बढ़नेपर वह पाता है स्त्री उसके स्पर्शसे बहुत दूर है, और उसमें इतना साहस नहीं कि समाज द्वारा खींची रूढ़ियोंके चक्रको तोड़कर वह उस तक पहुँच सके। तब उसकी चेतना अन्तर्मुखी हो उठती है। वह कल्पना ही में अपनी पीड़ा सहलानेके साधन खोज लेता है। उसके उन्मादमें धीरे-धीरे अवसाद घिर आता है। वह हार गया है—'जीवनकी कौन विजयपर कह, मैं आज प्रिये! अभिमान करूँ?' और खीझ उठता है—'नव-वर्ष लगा यह तो सच है, पर क्यों दूँ वर्ष बधाई प्रिय?' भावोंमें स्वाभाविकता और संयम हैं। छन्दोंमें गति है। परन्तु कविका यह शैशव प्रयास है, इसीलिए यहाँ प्रौढ़ताका, गहराईका, अभाव भी है। इन दिनों प्रकाशित हो रहे अधिकांश गीत-संग्रहोंके समान ही इस संग्रहका भी सारा आग्रह, समस्त निवेदन, केवल प्रेयसीके लिए ही है। उसे छोड़ संसारमें कविके लिए अभी और कुछ नहीं।

जीवन-वीणा : लेखक—श्री 'प्रदीप'; प्रकाशक—श्री हिन्दी-निकेतन, दरियागंज, देहली; मूल्य १)।

कवि-हृदयमें उठते-मिटते रागोंकी 'जीवन-वीणा' सुन्दर झाँकी है। रचनाकार प्रियतमाके ध्यानमें भी निमग्न होता है और जननी-जन्मभूमिके दुःखसे भी उसके नेत्र बरसते हैं—'आज माँके नयनमें जल!' और समयकी पुकारसे भी उसका हृदय आलोड़ित हुआ है। वह जानना चाहता है :—

थरथराता गात क्यों, क्यों आरती है आज भारी?
उठ न पाती आरती यद्यपि लगा दी शक्ति सारी!
विनय-स्वरमें गूँजता है आज ताण्डव-गान क्यों?
अर्चनाकी आरतीके दीपका आवसान क्यों?

स्मृतियोंकी कसककी दिशामें ही वह कल्पनाकी मंज़िलका अन्तिम पड़ाव नहीं बनाता। जन-शक्तिका वह पुजारी जन-सेवामें जीवन का उत्कर्ष खोज रहा है। 'जीवन-वीणा'में कविके भावोंका प्रवाह विकल है, चारों ओर भटकता नज़र आता है। इसमें उसकी विजय-पराजय दोनोंके चित्र हैं। वह प्रेमी ही नहीं, सैनिक भी है; और सैनिक होते हुए भी कवि है—भावुक, संकोची, संसारकी आलोचनासे घबराया, शून्यके किसी कोनेमें अपना नीड़ बनानेकी कल्पनामें खोया हुआ। छन्द संगीतमय हैं। संग्रहके प्रत्येक गीतमें एक ही भावनाकी क्रीड़ा न होनेसे पाठकको विश्रान्ति मिलती जाती है। —रूपकुमारी वाजपेई

हमारे सहयोगी

'उद्यम' नामक खेती, बागवानी, विज्ञान, व्यापार, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल, ग्राम-सुधार, स्वास्थ्य आदिका उपयोगी मराठी मासिक गत २६ वर्षोंसे नागपुरसे प्रकाशित हो रहा है। हर्ष एवं सन्तोषका विषय है कि इसी जनवरीसे उसका हिन्दी-संस्करण भी 'हिन्दी उद्यम' नामसे प्रकाशित होने लगा है। गत नवम्बरमें सहयोगीने अपना नमूना अंक प्रकाशित किया था, जिसमें उद्योग-व्यवसायोंपर प्रकाश डालनेवाले कई सुन्दर एवं लोकोपयोगी लेख थे। जनवरीका अंक 'गन्ना-गुड़-शक्कर विशेषांक'के रूपमें प्रकाशित हुआ है। इसमें गन्ना, गुड़ और शक्करके इतिहास, तैयार करनेकी विधि, उपयोगिता, कारखाने, राब तथा सीठीके उपयोग और गन्नेके कीड़ों तथा रोग आदि समस्याओंपर अधिकारपूर्वक प्रकाश डालनेवाले लेख हैं। पत्र हिन्दीकी एक बहुत बड़ी कमीकी पूर्त्ति करता है। उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता निर्विवाद है। हमारा विश्वास है, हिन्दी-संसार ऐसे उपयोगी और आवश्यक पत्रको अवश्य अपनायगा।

सर्वोदय-संघ, दिनारा (ग्वालियर) की ओरसे गत ४ महीनों से **'लोकजीवन'** नामक ग्राम-चिन्तन-प्रधान मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा है। इसमें कृषि, पशु-पालन एवं ग्रामोद्योग तथा ग्राम्य जीवनसे सम्बद्ध समस्याओंपर प्रकाश डालनेवाले लेख रहते हैं। सहयोगीके अब तकके प्रकाशित चारों अंक हमारे सामने हैं। इनमें प्रकाशित सामग्री निःसन्देह बड़ी उपयोगी और पत्रके घोषित उद्देश्योंकी पूर्त्ति करनेवाली है। पर पत्रकी भाषा विशुद्ध साहित्यिक या संस्कृतनिष्ठ है, जिसे ग्रामीण तो क्या, शहरके साधारण साक्षर व्यक्ति भी नहीं समझ सकते। इस ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है।

'लोकजीवन' नामका एक और मासिक पिछले दो महीनों से श्री परमेष्ठीदास जैनके सम्पादकत्वमें दिल्लीसे भी निकलने लगा है। नाम-साम्यसे पाठकोंमें भ्रम होना स्वाभाविक है। सहयोगीके प्रकाशित दोनों अंकोंकी सामग्रीसे जान पड़ता है कि यह पत्र गम्भीर चिन्तन, अहिंसा एवं जैन मतके प्रचारको दृष्टिमें रखकर निकाला गया है। अध्यात्मकी प्रेरणा इसमें विशेष है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

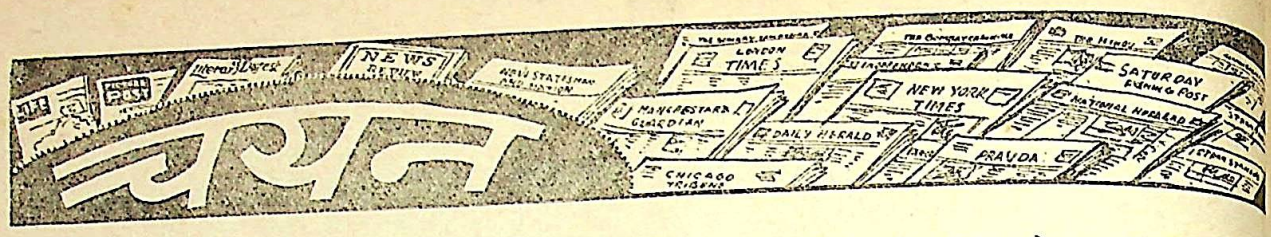

जर्मनीमें क्रान्तिके आसार

ज्यों-ज्यों पश्चिमसे ब्रिटिश और अमरीकन तथा पूर्वसे रूसी सेनाएँ जर्मनीमें आगे बढ़ती जा रही हैं, त्यों-त्यों जर्मन जनताकी अशान्ति भी बढ़ती जा रही है। खुफ़िया-पुलिसकी कड़ी निगरानी और कठोर सेंसरके कारण यद्यपि इस सम्बन्धमें विस्तृत समाचार बाहर नहीं पहुँच रहे, तथापि कई तटस्थ देशोंके संवाददाताओंने इस सम्बन्धमें काफ़ी पतेकी बातें मालूम की हैं। पाल घैली नामक 'न्यूयार्क पोस्ट' और 'चिकागो डेली न्यूज़'के विशेष संवाददाताने अभी हाल ही में बर्नसे लिखा है—"जर्मनीमें गत जुलाई '४४ के हिटलर-विरोधी षड्यन्त्रसे भी बड़ी क्रान्तिके आसार नज़र आ रहे हैं। अधिकारी जनताकी यथार्थ मनोभावना और वफ़ादारीके सम्बन्धमें काफ़ी सशंक और आतंकित हो उठे हैं। कई नगरोंमें युद्ध-विरोधी प्रदर्शन होने लगे हैं। बड़े-बड़े कल-कारखानोंके मज़दूरोंने शान्ति-सभाएँ करनी शुरू कर दी हैं। गेस्टापो द्वारा होनेवाली सामूहिक गिरफ्तारियों और दमनके बावजूद यह प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। पूर्वी और पश्चिमी मोर्चोंसे कई सैनिक भागकर चले आए हैं और अपने लौटनेकी सूचना विभागीय अफ़सरोंको देनेके बजाय चुपचाप सीधे घर आकर बैठ रहते हैं।"

जापानमें विद्रोहकी आग

'सेंट्रल चाइना डेली न्यूज़'में श्री सेमुअल चाओने लिखा है—"अभी हाल ही में चीनकी खुफ़िया-पुलिस द्वारा एक जापानी वाग्री चुंकिंग पहुँचा है, जिसके पास जापानके वाग्री पत्रोंकी कई महत्त्वपूर्ण कतरनें हैं। इन कतरनोंसे पता चलता है कि जापानी लोग अपने फौजी अधिकारियोंकी झूठ और ज़्यादतियोंसे ऊब गए हैं और चारों तरफ़ उनके खिलाफ़ वगावतकी आग फैल रही है। युद्धसे पहले यह आन्दोलन मामूली-सा ही था; पर युद्ध कालमें तोजो-सरकार द्वारा हुए दमन और पिछले कुछ महीनोंमें होनेवाली पराजयोंने इस आगको और भी भड़का दिया है। सरकार द्वारा काफ़ी सख्ती, दमन और देखरेखके बावजूद इसका काम न केवल जापानमें, बल्कि जापान-अधिकृत समस्त देशोंमें तेज़ीसे फैल रहा है। सरकारने अभी हाल ही में अमरीकन सेनाओंको मिली विजयोंसे जापानी जनताको अनभिज्ञ रखने तथा उन्हें जापानकी विजय बतानेकी चेष्टा की। पर वाग्री पत्रोंने असली समाचार जनताको बताकर इतना असन्तोष पैदा कर दिया कि तोजो-सरकारको त्यागपत्र देनेको मजबूर होना पड़ा।

"इस दलका एक प्रमुख कार्यकर्त्ता है काज़ुओ आयोमा, जो सम्राट, फौजी अधिकारियों और युद्धके विरुद्ध प्रचार रहा है। उसने सम्राटको खूनी, परोपजीवी और फौजी अफ़सरों हाथकी कठपुतली बताया है। जापानके पवित्र राष्ट्रीय दर्पण, तलवार और ढालके मिथ्या विश्वासकी पोल भी खोली है। उसका कहना है कि जापानकी जनता गरीब है कि सम्राटके पास जापानकी कुल पूँजीका ७·७ हिस्सा प्रसिद्ध पूँजीपति मित्सुई या शूदा सुमितोमोके पास १९ ३४ करोड़ येन थे, जो १९४० में ३० अरब हो गए! से लगभग आधे येन जापानकी प्रमुख जहाज़ी व रेल-कम्पनी बैंकों तथा कल-कारखानोंमें लगे हैं और कोई २० लाख खेती-बारीमें। इस तरह ये जापानी पूँजीपति वहाँके व्यापार, उत्पादन, कृषि आदिको नियन्त्रित करते हैं। सर्वसाधा भूखों मर रहे हैं; पर ये लोग युद्धके मुनाफ़ोंसे अधिक धनवान होते जा रहे हैं।

"इस दलका एक दूसरा उल्लेखनीय व्यक्ति है वातोरु जो चीनी तथा अमरीकन सेनाओं द्वारा पकड़े गए जापानी में युद्ध-विरोधी प्रचार करता है। इसके अतिरिक्त मोर्चों वह रेडियो अथवा ध्वनि-विस्तारक यन्त्रोंपर जापानियोंसे मुनाफ़ाखोर फौजी अधिकारियोंके लिए प्राण न गँवानेकी करता है। उसके प्रचारने बहुतसे जापानी सैनिकोंकी आँखें हैं और बहुतोंने बिना लड़े ही आत्म-समर्पण कर दिया है।"

युद्ध-सामग्रीके बदले शृंगार-सामग्री!

अभी हाल ही में लीलैण्ड स्टोव नामके एक अमरीकी पत्रकारने अपनी पुस्तक "They shall not Sleep" सोएँगे नहीं) में अमरीका द्वारा चीनको भेजी जानेवाली सामग्रीके नामपर होनेवाले धोखे और गुप्त व्यापारका बड़े ढंगसे भण्डाफोड़ किया है। उन्होंने लिखा है—"कुछ हवाई-अड्डेसे अमरीकन स्वयंसेवकोंके दो दल शीघ्र ही उड़ने थे। उनके P-40 Tomhawks यानोंके लिए अति रेडियो-सेटोंकी ज़रूरत थी। ये रेडियो अमरीकासे बर्मा होकर भेजे गए। चीन जानेवाली अन्यान्य युद्ध-सामग्रीकी इनके बक्सोंपर भी 'चीन-रक्षा-सामग्री' (China Defe Supplies) लिखा था। लाशियो-स्थित बर्मा-सड़कका चुंगी-अफ़सर उन बक्सोंको आमतौरपर खोलकर नहीं देखा था, जिनपर ये शब्द लिखे होते थे। उन शब्दोंकी यथार्थ सन्देह करना उस अफ़सरके बूतेके बाहरकी बात थी। अभी ही में मुझे मित्र-राष्ट्रोंके एक अफ़सरने बताया कि कुछ

Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बक्सोंमें से असाधारण सुगन्धि आती देख जब उसने उन्हें खुलवाकर देखा, तो अतिरिक्त रेडियो-सेटोंके बजाय उनमें इत्र-तेल और स्त्रियोंकी अन्यान्य शृंगार-सामग्री पाई गई। ये चीज़ें कुमिंग अथवा चुंकिंगमें बड़ी ऊँची क़ीमतोंपर बिकती हैं। कदाचित् इसीलिए रेडियो-सेट ग़ायब हो गए थे—शायद रंगून या माण्डलेमें उन्हें भी ऊँची दरोंपर बेच दिया गया हो। यह था बर्मा-सड़कका हस्बदस्तूर काम!"

जर्मन-जापानके गुप्त सहायक!

अमरीकन कम्पनियोंने किस प्रकार 'नैतिक प्रतिबन्धों'की उपेक्षाकर चीनमें आगे बढ़ते हुए और ब्रिटेन-अमरीकाके विरुद्ध युद्धकी तैयारी करनेवाले जापानकी सहायता की, यह किलगोर-उपसमिति द्वारा की गई जाँचसे प्रकट होता है। समितिके सामने पेश किए गए सबूतोंसे यह स्पष्ट है कि बेथेलहेम स्टील कार्पोरेशन १९३९ तक जापानियोंको हवाई-जहाज़ोंके महत्त्वपूर्ण अंग बनाकर दिए। जापानी नौसेनाके एक प्रतिनिधिको अमरीकन बमबाज़ोंके सब कल-पुर्ज़े भी दिखाए गए। गेसोलिन यूनिवर्सल आयल प्रोडक्ट्स कम्पनीने न सिर्फ़ जापानको पेट्रोल ही दिया, बल्कि जापानियोंको हवाई-जहाज़ोंके लिए काममें आनेवाला आक्टन गेसोलिन बनाना भी सिखाया। पर्ल बन्दरगाहपर हुए आक्रमणसे ६ मास पहले वहाँ कितना पेट्रोल भेजा गया है, यह भी जापानियोंको बतला दिया गया। एमेरिकन हैमर्ड पिस्टन-रिंग कं०के निर्यात-मैनेजर पी० एफ़० वैलेट जापानी यानोंके सामनका आर्डर खानगी तौरपर लेते रहे और कम्पनीको अपने नामसे आर्डर देते रहे, क्योंकि कारखानादारोंने जापानके लिए माल बनानेसे इन्कार कर दिया था। इसी तरह टामसन प्रोडक्ट्स इन्कार्पोरेशन, ओहियो सीमलैस ट्यूब कं०, एयर एसोसिएट्स तथा ज़ूस फासनर कं० ने भी जापानके आर्डर लिए। इस सम्बन्धमें उपसमितिके सामने कई गुप्त पत्र पेश किए गए हैं।

अमरीकाके एसिस्टेण्ट एटर्नी-जनरल वेंडेल बर्जने अभी हाल ही में 'Secret Empire' (पोशीदा साम्राज्य) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें अमरीकन, ब्रिटिश, जर्मन और जापानी पूँजीपतियोंके विश्व-व्यापारके एकाधिकारके लिए चलनेवाले षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ किया गया है। इसमें ब्रिटिश कम्पनियों द्वारा ब्रिटेनके शत्रुओंको माल बेचनेका रहस्योद्घाटन किया गया है (और आश्चर्य इस बातका है कि ब्रिटिश अधिकारियोंने इन मामलोंकी जाँच करनेमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई!)। १९४१ में जब ब्रिटेन अपनी अस्तित्व-रक्षाके लिए लड़ रहा था, रेमिंगटन आर्म्स कम्पनीके पेटेण्ट-एटर्नीने एक स्मारक-पत्र तैयार किया, जिसमें ब्रिटेन तथा दक्षिण-अफ्रीकाको कई विशिष्ट अस्त्रादि बेचनेका विरोध किया गया था। इन अस्त्रोंके उपयोगकी अमरीकाके एक सरकारी विभागने ब्रिटेनके शस्त्रास्त्र खरीदनेवाले कमीशनसे सिफ़ारिश की थी; पर ब्रिटेन इन्हें खरीद नहीं सका। ('रिनाल्ड्स न्यूज़')

लार्ड कर्ज़न और तांग शाओ-यी

अभी हाल ही में अमरीकाके प्रसिद्ध पत्रकार डोनेल्ड डनहेम की 'Envoy Extraordinary' (असाधारण राजदूत) नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसमें चीनके भूतपूर्व वैदेशिक मन्त्री तांग शाओ-यीके जीवनकी कई विचक्षण घटनाओंपर बड़े सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला गया है। यहाँ हम भारतके भूतपूर्व वाइसराय लार्ड कर्ज़नसे सम्बन्ध रखनेवाले अंशका भावानुवाद पाठकोंके मनोरंजनार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

जब लार्ड कर्ज़न भारतके वाइसराय थे, तो उन्होंने कलकत्ता आनेवाले चीनियोंसे खरीदकर चीनकी कला-कृतियोंका एक संग्रह जुटा लिया था। यद्यपि वे कभी चीन नहीं गए; पर उनकी धारणा हो चली थी कि उनका संग्रह ही चीनी कला-कृतियोंका सर्वोत्तम संग्रह है। तांग शाओ-यीके कला-पारखी होनेकी बात लार्ड कर्ज़न सुन चुके थे। अतः जब एक बार वे कलकत्ता आए, तो उन्हें अपना संग्रह दिखानेके लिए कर्ज़न इतने आतुर हुए कि अपने पदकी मर्यादा और परम्पराका खयाल छोड़कर वे जिस होटलमें शाओ-यी ठहरे थे, वहीं जा पहुँचे। कर्ज़नके इस व्यवहारसे शाओ-यी आश्चर्य-चकित रह गए और कन्फ्यूसियसका एक ग्रन्थ साथ लेकर वाइसराय-भवनका चीनी कला-संग्रह देखने चल पड़े। कर्ज़नने शाओ-यीको अपने संग्रहालयमें अकेला छोड़ दिया। कोई पौन घंटे बाद कर्ज़नने लौटकर देखा कि वे कन्फ्यूसियसकी किताब पढ़ रहे हैं। पूछनेपर मालूम हुआ कि वे आध घंटेसे किताब पढ़ रहे हैं—अर्थात् संग्रहालयका निरीक्षण उन्होंने केवल १५ मिनटमें ही पूरा कर लिया। वाइसरायके यह पूछनेपर कि संग्रह कैसा है, शाओ-यीने केवल इतना ही कहा—'काफ़ी दिलचस्प।' इससे कर्ज़नको विशेष प्रसन्नता या सन्तोष नहीं हुआ।

कोई दो वर्ष बाद कर्ज़न शंघाई गए। वहाँ उन्होंने शाओ-यीका कला-संग्रह देखा। लगभग एक घंटे तक बड़े ध्यानसे सारा संग्रहालय देखनेके बाद लार्ड कर्ज़नने पूछा—'सच बताइए, मेरे कलकत्तेवाले संग्रहमें क्या वाक़ई कोई चीज़ संग्रह करने योग्य है?' शाओ-यीने कहा—'हाँ, सिर्फ़ ५ चीज़ें हैं।' और उन्होंने उनके नाम बता दिए। वहींसे कर्ज़नने कलकत्ता तार भेजा कि उन ५ चीज़ोंके सिवा अन्य सारी चीज़ें बाँट दी जायँ। ८० वर्षकी अवस्थामें पिछले दिनों एक जापानी एजेंटने शाओ-यीको शंघाईमें मार डाला!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

स्वाधीनता—हमारा जन्मसिद्ध अधिकार

२६ जनवरी, १९३० को राष्ट्रीय महासभाके मंचसे देशने स्वाधीनताकी जो प्रतिज्ञा की थी, उसे इस बार फिर करोड़ों मुक्तिकामी भारतीयोंने दोहराया है। गांधीजीके आदेशानुसार इस वर्ष स्वाधीनता-दिवस विराट सभा-जुलूसोंके रूपमें न मनाया जाकर गम्भीर एवं आडम्बरहीन ढंगसे ही मनाया गया। यह हर्ष और सन्तोषका विषय है कि कांग्रेसियोंके सिवा साम्यवादी, किसान एवं मज़दूर-संस्थाओंने भी यह दिवस मनाया और राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं कांग्रेसी राजबन्दियोंकी रिहाईकी माँग की। जहाँ-तहाँ अन्धी और अदूरदर्शी नौकरशाही द्वारा—जिसके आक़ा विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रके लिए लड़नेका दावा करते हैं—अनुचित और अनावश्यक पाबन्दियाँ भी लगाई गईं और कुछ व्यक्ति गिरफ्तार भी किए गए; फिर भी इस वर्ष स्वाधीनता-दिवस अधिक शानदार, व्यापक और ठोस रहा, इसे शायद भारतकी आज़ादीके विरोधी भी स्वीकार करेंगे।

स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है। वह कोई किसीको देता नहीं, अधिकारी व्यक्ति स्वयं उसे अपने लिए प्राप्त करता है। हमें भी इसी आत्म-विश्वासको लेकर आगे बढ़ना चाहिए। जैसा कि गांधीजीने कहा है, भारतकी स्वाधीनता केवल उसके लिए ही नहीं, विश्व-शान्तिके लिए भी परमावश्यक है। स्वाधीन होकर भारत अशान्ति, आक्रमण और आततायीपनका अन्त करनेके लिए अपने सम्पूर्ण बल और प्रभावका प्रयोग करेगा, यही हमारा परम उद्देश्य, विश्वास और आकांक्षा हैं। साम्राज्य और मुनाफ़ेके लोभसे पागल राष्ट्रोंको शान्ति, सुख और समान समृद्धिके मार्गपर लाना भारत ही का काम है। इस मिशनको पूरा करनेके लिए भारतका अविलम्ब आज़ाद होना ज़रूरी है।

नेताओंकी नज़रबन्दी और ज़िद

इस अवसरपर हम अपने उन लोकनायकों और स्वाधीनताके कर्मठ पुजारियोंको नहीं भुला सकते, जो देशकी आज़ादीका मूल्य आज चर्चिलकी साम्राज्यवादी जेलोंमें सड़कर चुक रहे हैं। पर यह कोई नई बात नहीं है। भारतीय स्वाधीनता-संग्रामकी पिछली आधी शताब्दीमें देशको शायद इससे भी कहीं अधिक महँगा मूल्य चुकाना पड़ा है। हमारे कितने ही वीर योद्धा जेलोंमें सड़-सड़कर मर गए और कितने ही जेलोंमें से अधमरे होकर निकले और बाहर अधिक दिन नहीं जी सके। इन बलिदानोंके अतिरिक्त जेलोंसे बाहर गोलियों और लाठियोंका शिकार हुए लोगोंकी संख्या और माली नुक़सानकी मात्राकी तो केवल कल्पना की जा सकती है। पर इन सबसे हम निराश, उत्साहहीन और पराजित नहीं हुए; न कभी होंगे। जब तक हम अपने सफल नहीं होते, ग़ुलामी या शोषणके सिवा हमारे पास और हारनेको और है ही क्या?

ताहम हम अनिश्चित काल तक अपने योद्धाओंको सड़ने नहीं दे सकते। उन्हें जेलोंमें सड़ाकर आज नौकरशाही हमपर जो खोखला, निकम्मा और स्वेच्छाचारितापूर्ण शासन रखा है, उसका अन्त किया ही जाना चाहिए। माना कि नौकरशाही सुनी-अनसुनी कर रही है—लोकमतकी उपेक्षा स्वेच्छाचारी शासनकी विशेषता है—फिर भी हमें लोकमत अधिक जाग्रत, प्रबल एवं संगठित करना चाहिए, ताकि वह ज़्यादतीसे बाज आय। बिना नेताओंकी रिहाई और जन-विश्वास एवं सहयोग प्राप्त राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाके न तो हमारी आज़ादीकी मंज़िल ही दूर रहेगी, बल्कि जन-साधारण दैनिक आवश्यकताओं-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी दूर न होंगी। हमें सन्तोष है कि माननीय टंडनजी द्वारा युक्त-प्रान्तमें स्वाधीनता-दिवसकी प्रतिज्ञामें इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

मुसलमान आज़ादीके लिए लड़ें

जमीयत-उल्-उलेमा-ए-हिन्द जाग्रत और देशभक्त मुसलमानोंकी एक ऐसी संस्था है, जिसने सदा मुस्लिम-हितोंकी रक्षा यत करके भी कभी उन्हें साम्प्रदायिक संकीर्णतामें ले जाने स्वयं कांग्रेससे प्रतिस्पर्धा करनेकी अदूरदर्शिता नहीं इसी कारण उसे अनेक बार मुस्लिम-लीगके तानाशाहका भाजन भी बनना पड़ा है। साथ ही वह उन बहुसंख्यक मुसलमानोंके सहयोग-समर्थनसे भी वंचित रही है, जो इस्लामको खतरेमें कर भोले-भाले लोगोंकी साम्प्रदायिक भावनाओंको उभाड़ने हैं। पर अपने सीमित दायरेके बावजूद जमीयतने अपने को कभी धुँधला नहीं होने दिया है। अभी हाल ही में बम्बई-प्रान्तीय शाखाने एक प्रस्ताव पासकर मुसलमानोंसे आज़ादीकी लड़ाईमें शिरकत करनेका अनुरोध किया है। पर बोलते हुए मौलाना हफ़ीज़ मोहम्मद तैयबने कहा कि हर मुसलमानको अपने मुल्ककी आज़ादीके लिए लड़नेका देता है। हम हृदयसे इस प्रस्तावका स्वागत और समर्थन हैं। इस्लामकी शिक्षाओंके बारेमें हमारी अपनी कोई जानकारी नहीं। पर यदि तैयब साहबका कथन ठीक समझमें नहीं आता कि आखिर ये लोग किस इस्लामके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

, जो सिर्फ़ मुसलमानोंकी आज़ादीके नामपर समूचे देशकी ज़ादीके मार्गमें रोड़ा बने हुए हैं ?

ब मुझे नेतृत्व करने दो !'

पिछले दिनों अहमदाबादमें मुस्लिम विद्यार्थियोंके सामने लते हुए जिन्ना साहबने फ़रमाया कि पाकिस्तानका सबसे बड़ा रोध कांग्रेस, हिन्दू या अन्य जातियाँ नहीं, अंगरेज़ हैं। लो खैर, देर आयद दुरुस्त आयद ! इसके बाद वहीं पत्र-तिनिधियोंके सामने आपने हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके लिए युक्त मोर्चा बनानेकी अपील करते हुए कहा कि २५ साल तक धीजीने अपनी नीतिके अनुसार काम किया है, अब दो साल वे आपका नेतृत्व स्वीकार करके देखें। इसे स्पष्ट करते हुए आपने हा कि इसका यह मतलब नहीं कि आप नेता या तानाशाह ना चाहते हैं, बल्कि संयुक्त मोर्चेमें अपना कर्त्तव्यपालन करना ौर सलाह देना चाहते हैं।

इससे बढ़कर खुशी और सन्तोषकी बात हमारे लिए और या हो सकती है कि जिन्ना साहब भारतके संयुक्त मोर्चेका तृत्व करें। इससे दुनियाको यह देखनेका मौक़ा तो मिलेगा कि ारतमें गांधीजीसे भी योग्य नेता हैं ; और जो जिन्ना कांग्रेसको रावर कोसते रहे हैं, वे समूचे भारतका नहीं, तो कम-से-कम सलमानोंका ठोस हित तो कर ही सकते हैं। जिन्ना साहब एक योग्य बैरिस्टर हैं—शायद उनकी क़ानूनी योग्यता गांधीजीसे ी अधिक हो। अतः उन्हें यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि तृत्व कोई सरकारी नौकरी या ठेका तो है नहीं, जो कोई किसीको ला सके। फिर गांधीजीका नेतृत्व हिटलर या स्तालिनका-सा ी नहीं कि कोई प्रतियोगी सिर तक न उठा सके। यह तो नताके विश्वास, आदर, प्रेम, स्वेच्छा सहमति-स्वीकृति और हयोगपर आधारित नेतृत्व है, जिसे प्राप्त करनेकी प्रतियोगितामें नवेन्द्रनाथ राय या कम्युनिस्तोंकी भाँति जिन्ना साहब भी अपनी क़दीर और तदबीर आज़मा सकते हैं। हम तो उनसे एक ोधा-सा सवाल यही करना चाहते हैं कि अब तक उन्होंने ऐसा या किया है, जिससे जनता पूरे विश्वास और सहयोगके साथ नका नेतृत्व स्वीकार करे ? जिन्ना साहबकी स्मरण-शक्ति यदि ोक है, तो वे ज़रा १९१६ के बादके अपने आचरणों और ाषणोंको याद करें, जिनके द्वारा उन्होंने हिन्दू-मुसलमानोंके ोचकी खाईको अधिकाधिक चौड़ाकर तथा उनमें फूट, घृणा और ुता बढ़ाकर संयुक्त मोर्चेको दूर ही ठेला है। ब्रिटिश नौकर-ाहीकी ज़ुल्म-ज़्यादतियोंसे अधिक उन्हें कांग्रेसी-मन्त्रिमण्डलोंकी ादतियोंकी शिकायत है ! कांग्रेस और गांधीजीको वे सिर्फ़ न्दुओंका प्रतिनिधि मानते हैं। आज कितने हिन्दू हैं, जिनका श्वास और सहयोग-समर्थन जिन्ना साहबको प्राप्त है ? और रोड़ों मुसलमान उनके साथ नहीं हैं, यह तो वे भी जानते हैं।

लीगकी नकारात्मक नीति

कलकत्तेके एक सम्पन्न लीगी अब्दुर्रहमान सिद्दीक़ी गत मास भारतीय व्यापारी-प्रतिनिधि-मण्डलके सदस्य होकर अमरीका गए थे। वहाँ न्यूयार्कमें हुई एक सार्वजनिक सभामें बोलते हुए आपने हिन्दू-मुस्लिम भेदोंको बढ़ा-चढ़ाकर कहे जानेकी शिकायत करते हुए बतलाया—"यदि अपनी मौजूदा नकारात्मक नीतिके विपरीत एक बार भी मि० जिन्ना कोई अमली नीति अख्तियार करें, तो वे भी सर चिमनलाल सीतलवाडकी तरह लिबरल बन जायँगे।" ये शब्द किसी हिन्दू या कांग्रेसीके नहीं हैं ; अतएव इनकी यथार्थतामें सन्देह नहीं किया जा सकता। यहाँ इस बहसमें पड़ना असंगत होगा कि सर सीतलवाड 'अमली नीति' अख्तियार करने के कारण लिबरल बने या आकर्मण्यता तथा कागज़ी घोड़ोंको अपनानेके कारण ; पर इतना तो स्पष्ट है कि मुस्लिम-लीगकी नीति नकारात्मक है और उसका नेतृत्व लिबरल न हो जानेके डरसे कोई अमली नीति नहीं अपना रहा। हम जिन्ना साहब और उनके साथियोंसे पूछना चाहते हैं कि यदि ईमानदारीसे उनका पाकिस्तानसे ही मुसलमानोंके सब दुःख-कष्ट-अभाव दूर हो जानेकी बातमें विश्वास है, तो उन्होंने इस दिशामें हिन्दुओं तथा कांग्रेस को जली-कटी सुनानेके सिवा अब तक क्या किया है ? क्या घृणा, कटुता और फूटके सैकड़ों-हज़ारों वृक्ष लगाकर वे पाकिस्तानको एक इंच भी निकट ला पाए हैं ? वे भले ही अपने आलोचकोंकी नीयतमें शक करें या उन्हें अपमानित करनेकी अशिष्टता दिख-लायँ ; पर एक-न-एक दिन उन्हें अवश्य मुस्लिम-जनताको यह क़ैफियत देनी पड़ेगी कि उन्होंने मुसलमानोंकी भलाईके लिए इतने लम्बे अर्सेमें क्या किया है ?

अमरीकामें भारत-विरोधी प्रचार

भारतीय व्यापारी-प्रतिनिधि-मण्डलके सदस्य श्री गगनविहारी मेहताने अमरीकासे लौटकर बतलाया है कि यद्यपि संयुक्त-राज्य अमरीकाकी बहुसंख्यक जनता भारतसे बहुत सहानुभूति रखती है ; पर उसे भारतके बारेमें बहुत कम जानकारी है। ब्रिटिश दूतावास और भारतीय एजेण्ट-जनरल लाखों रुपए खर्चकर हज़ारों प्रचारक रखे हुए हैं, जो भाषणों तथा लिखित प्रोपेगेण्डा द्वारा भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंके विरुद्ध भारी प्रचार करते हैं। ये किराएके प्रचारक कांग्रेस तथा गांधीजीको धुरी-पक्षीय और भारतके साम्प्रदायिक मामलोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। श्रीमती पंडितके विरुद्ध भी काफ़ी प्रचार हो रहा है, जिससे अमरीकन पत्रोंमें उनकी हलचलोंका पर्याप्त उल्लेख नहीं हो रहा।

वाशिंगटनमें श्रीमती पण्डितने यह शिकायत की है कि भारतके बारेमें अमरीकाने कुछ नहीं किया। हम सबको भी यही शिकायत है। पर श्री मेहताके उपर्युक्त कथनके बाद हमें यह समझनेमें भूल नहीं करनी चाहिए कि इसके लिए बहुत-कुछ हम

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही ज़िम्मेदार हैं। कांग्रेसके पास साधनोंकी कमी अवश्य है, फिर भी उसे विदेशोंमें राष्ट्रीय प्रचारकी ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए। यदि इस ओर शीघ्र और पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, तो बहुत सम्भव है कि भारत-विरोधी प्रचारसे विदेशोंमें हमारी राष्ट्रीय माँगोंके सम्बन्धमें भ्रम बढ़े और हम अपने अधिकारोंकी लड़ाईमें जनतन्त्रवादी जनताकी सहानुभूति भी खो दें।

प्रशान्त-सम्मेलन और भारत

डम्बरटन ओक्स और चिकागोके हवाई-सम्मेलनके बाद हाटस्प्रिंग्सका प्रशान्त-सम्मेलन उल्लेखनीय कहा जा सकता है। इसमें पूँजीवादी और साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने प्रशान्तके सम्बन्धमें अपने विचारों एवं योजनाओंको प्रकट किया। ब्रिटेनने हांगकांग और फ्रांसने हिन्द-चीन न छोड़नेके सम्बन्धमें दलीलें दीं, जब कि अमरीकाने प्रशान्त-द्वीपोंकी स्वाधीनताकी चर्चा भी चलाई। एक ओर जहाँ इन राष्ट्रोंने अपने साम्राज्यों और बाज़ारोंको अपने कब्ज़ेमें रखनेके नैतिक कारणोंकी दुहाई दी, दूसरी ओर इस बातकी चिन्ता प्रकट की कि जापानकी पराजयके बाद उसके बादशाहको राज्यच्युत कर कहाँ रखा जाय?

भारतके सम्बन्धमें तो जैसे कुछ विचारणीय था ही नहीं। इसीलिए श्रीमती पण्डितने अपनी निराशा और असन्तोष प्रकट करते हुए रायटरके प्रतिनिधिसे कहा—"मैं सम्मेलनसे बहुत-कुछ असन्तुष्ट हूँ। मुझे अनुभव होता है कि उसमें पुराने विचारोंको केवल नवीन ढंगसे प्रकट किया गया। पूर्वी देशोंकी समस्याओंको हल करनेके लिए जो ढंग अख्तियार किया गया, उससे ऐसा कुछ ज़ाहिर नहीं होता कि राष्ट्रोंने समस्याओंके समाधानके लिए अपने पूर्व-निर्धारित विचारोंको त्याग दिया हो। मुझे यह दिखाई दिया कि जो कोई बात बुरी हो, उसका निराकरण करनेके लिए कतिपय सदस्य अनिच्छुक रहे। मैंने मित्र-राष्ट्रोंके लिए शान्ति-प्रेमी तथा सत्यानुगामी शब्दोंका प्रयोग होते सुना है; लेकिन मैं उन्हें फ़िलहाल शक्ति-सम्पन्न कहना पसन्द करूँगी। आज अहंकारके कारण वे यह सोच रहे हैं कि विजय मिलनेपर अपनी शक्तिमें किस प्रकार वृद्धि करें? मैं उन दुःखी लोगोंमें से हूँ, जो अभी तक युद्धके नैतिक पहलूको नहीं समझ सके हैं, क्योंकि युद्धका अन्त होनेपर वही देश विजयी होगा, जिसके पास दूसरेसे अधिक सैनिक, धन तथा शस्त्र होंगे। अतएव शान्ति मानव-समाजके अधारभूत अधिकारकी निर्देशक न होगी।"

आ० भा० सम्पादक-सम्मेलन

'बम्बई क्रानिकल'के सम्पादक सैयद अब्दुल्ला बरेलवीके सम्पादकत्वमें अखिल भारतीय पत्र-सम्पादक-सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन गत २६, २७ और २८ जनवरीको कलकत्तेमें हुआ। इस अधिवेशनमें प्रेस-क़ानूनों तथा प्रतिबन्धोंपर विचार करनेके लिए एक कमेटी बनाने, उन्हें अमरीका और ब्रिटेनके के समकक्ष करने, कागज़-कोटाकी सुविधा बढ़ाने तथा पत्रकारोंको रिहा किए जानेकी माँगें की गईं। 'नेशनल के पुनः प्रकाशनकी अनुमति न देनेके लिए सरकारकी गई। अंगरेज़ी और देशी भाषाओंके पत्रकारोंके मौलि किए गए विभेदको दूर करने तथा पत्रकारोंकी स्थिति लिए कमेटी बनानेके प्रस्ताव खटाईमें पड़ गए।

आतंकित नौकरशाहीकी बौखलाहट

बिहार-सरकारने अभी हाल ही में सर्वश्री श्री अनुग्रहनारायणसिंह, प्रो० अब्दुलबारी, मुरलीमनोहर प्र प्रजापति मिश्रको उनके गाँवोंमें नज़रबन्द कर दिया प्रो० बारीको यह आज्ञा न माननेके कारण गिरफ़्तार लिया गया है। इस सम्बन्धमें सरकारी घोषणामें अभी में हुए कांग्रेसियोंके सम्मेलनमें दिए गए श्री प्रजापति मि तथाकथित वाक्य उद्धृत करते हुए कहा गया है कि किसी दूसरे आन्दोलनके लिए खुल्लमखुल्ला होनेवाली सहन नहीं करेगी। ऐसा जान पड़ता है कि सरकारने शब्दोंका अर्थ ज़रूरतसे ज़्यादा गहरा लगाया है। कार्यको स्वराज्यका सही मार्ग बतलाते हुए गांधीजीने बढ़ानेकी कांग्रेसियोंसे अपील की है। उसे ध्यानसे परोक्ष रूपसे भी यह लक्षित नहीं होता कि उसका उद्देश ऐसे दूसरे आन्दोलनकी तैयारी करना है, जो हिंसात्मक जिससे रक्तपात तथा युद्ध-प्रयासमें बाधा पहुँचे। फिर इस सम्बन्धमें गांधीजीसे भी बड़ा अधिकारी मान लेना चीन होगा? अगर उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमका उद्देश संक्षिप्त और तीव्र अहिंसात्मक आन्दोलनकी तैयारी बतल है, तो सरकारको उसे अनुचित महत्व नहीं देना चाहिए

महायुद्धकी प्रगति

जापान और जर्मनीके नगरोंपर होनेवाली विनाशक बारीके साथ ही पिछले मास लगभग सभी मोर्चोंपर मित्र के धावे बड़े तूफ़ानी वेगके साथ हुए। लाल-सेना तो पूर्व और पूर्वी जर्मनीके सिलेशिया-प्रान्तमें इस तेज़ीसे बढ़ रही जब तक हम उसके द्वारा जीते हुए स्थानोंको नक्शेमें हैं, मीलों आगेके स्थानोंपर उसका कब्ज़ा हो जाता है। और उत्तर-पूर्वसे वह बर्लिनकी ओर तेज़ीसे बढ़ती जा पश्चिमोत्तर और दक्षिण-पश्चिमसे ब्रिटिश तथा अमरीक भी जर्मन-सीमामें बढ़ रही हैं। लूजोन द्वीपमें अमरीक जारी है। केन्द्रीय बर्मामें ब्रिटिश सेनाएँ तेज़ीसे आगे हैं। रंगून, मांडले, सिंगापुर आदिपर भीषण बमबारी है। बर्मा-सड़कसे फिर चीनको माल जाने लगा है।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

राजपूत सम्राट पृथ्वीराज बातूनी नहीं अपितु कर्तव्यपरायण व्यक्ति थे। महाराजा जयसिंह के महल एकाकी घुस कर, वह अपनी प्रियतमा संयोगिता को उठा लाये। पृथ्वीराज के इस साहसिक कार्य ने इतिहास के पृष्ठों में कभी स्थान न पाया होता, यदि उन में असीम साहस और निर्भयता के साथ साथ अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये अत्यन्त शक्ति शाली स्वस्थ शरीर न होता।

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो फ़ास्फेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

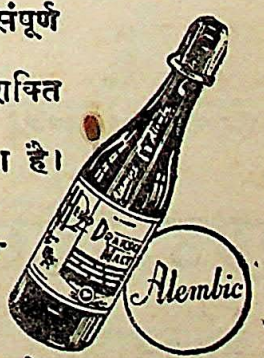

स्वास्थ रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखानियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बराडा

AL 251

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

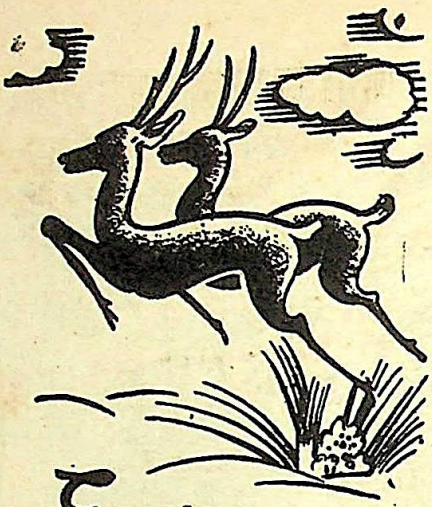

Ever Lifeful

NEUROLECITHIN

A True Nerve Tonic

शरीर और मनकी निस्तेजता दूरकर प्रफुल्लता तथा उत्साह देता है। स्नायु-दुर्बलता, स्मरणशक्तिहीनता, अग्निमन्द, अनिद्रा और श्रान्ति आदि रोगोंमें निउरोलेसिथिन बहु परीक्षित, विशेष उपकारी औषध है।

इण्डियन हेल्थ इन्स्टिट्युट

एण्ड लेबोरेटरी लि०

बेलियाघाटा मेन रोड,

कलकत्ता।

अनुपम नवीन प्रकाश

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्य
जी त्रिपाठी 'निराला', मू०
श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—भाग
मू०

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

भक्तियोग ; प्रेमयोग ; प्राच्य और पाश्चात्
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ; परिव्राजक
प्रत्येकका मू० ॥=)।
मेरे गुरुदेव—मू० ।=); शिकागो-वक्तृता—मू०
वर्त्तमान भारत—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपु
(सी० पी०)

आरसी-रचनावली

आरसी (कविताएं)	....	१
संचयिता (कविताएं)	....	
कलापी (कविताएं)	....	२
पंचपल्लव (कहानियाँ)	....	
कालरात्रि (कहानियाँ)	....	
नयी दिशा (कविताएं)	....	
खोटा सिक्का (कहानियाँ)	....	
जीवन और यौवन (कविताएं)	....	
चन्दा मामा (कविताएं)	....	

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

...di Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

महाराणा रणजीत सिंह, पन्द्रहवीं शताब्दि में, श्री गुरु नानक द्वारा स्थापित वीर सिक्ख जाति के उदीयमान सम्राट थे। उनके वीरता और साहस के कार्य आज भी, केवल सिक्खों को ही नहीं अपितु समस्त भारतीयों को उत्तेजना प्रदान करते हैं। रणजीत सिंह स्वयं योद्धा होने के कारण, सिक्खों को जहां बुद्धिमान देखना चाहते थे। वहां उन्हे हृष्ट पुष्ट भी बनाना चाहते थे।

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो फ़ास्फ़ेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

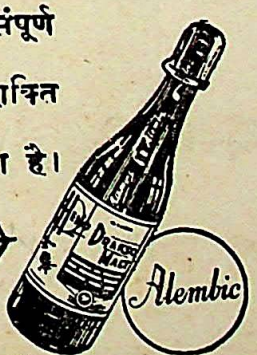

स्वास्थ रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्यूटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बराडा

AL.233 B.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओटीन क्रीम

आपकी निद्रावस्थामें पुनः सौन्दर्य [illegible] करती है

और

ओटीन स्नो

उस सौन्दर्यको दिनमें क़ायम रखती है।

'मिस लीला देसाई'

भारतीय सिनेमा जगतकी सुन्दर और निपुण अभिनेत्री तथा नृत्य-कुशला चमड़ीके लिए सुखकर, शीतलता-प्रद और निर्मलताके लिए ओटीन-क्रीमकी सिफ़ारिश करती हैं और लिखती हैं :—

I always use Oatine Cream before retiring. It is so pleasant and soothing and cleanses my skin from anything left by dust or make up. I recommend it to all my friends.

Jany. 28th 1939. L. Desai

Oatine CREAM *for nightly massage*
SNOW *for daily protection*

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व, १९४५

बालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Math ngotri Gyaan Kosha

★ मक्खियों की पूंजी शहद.

चींटियों की पूंजी दाने

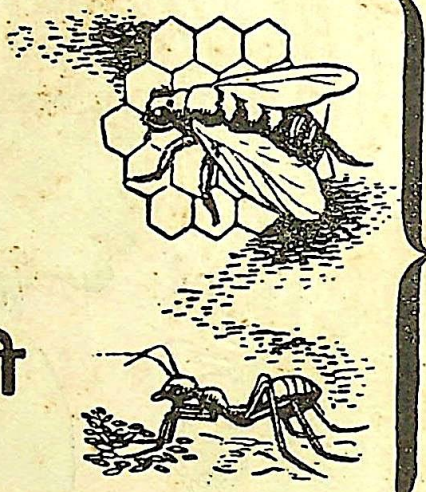

मगर

ये जितना बचा उतना ही पाती है वह भी अगर को छीन न ले!

आपकी पूंजी में १२ वर्ष में ५०० प्रति शत वृद्धि हो सकती है, यदि आप

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स ख़रीदें

जो १० रुपये, ५० रुपये, १०० रुपये, ५०० रुपये, और १००० रुपये पर बिकते हैं और तीन साल बाद आप जब चाहें इन्हें भुना कर असल रक़म और ब्याज पा सकते हैं। आप एक रुपये, आठ आने या चार आने के सेविंग्स स्टाम्प ख़रीद कर शहद की मक्खियों की तरह थोड़ा थोड़ा जमा करते जायें और फिर इन स्टाम्प या टिकटों के बदले नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स ले लें।

आपको सर्टीफिकेट्स और स्टाम्प दोनों सरकार द्वारा नियुक्त एजेण्टों या किसी सेविंग्स ब्यूरो अथवा पोस्ट आफिस से मिल सकते हैं।

★ शहद की मक्खियों से बचाने का सबक सीखिए।

Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

—रुपया लगानेवालोंके लिए सुवर्ण अवसर—

हमारे त्रैवार्षिक स्वर्ण - जयन्ती - बान्डज़ पर
रुपया लगाइये।

विभिन्न कीमतें :—

१००) रु० ; ५००) रु० ; १०००) रु०; ५०००) रु० ; १०,०००) रु०

विवरण के लिये किसी भी बैंक की ब्रांच अथवा
आफिस को लिखिये।

भारत भर में १६८ शाखायें

कारोबारी पूँजी ४५ करोड़ से अधिक

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (मार्च, १९४५)

१. चित्रकारसे ८७; २. चित्रकारसे ८८; ३. गीत ८८; ४. बुनियादी तालीम और भाषाओंका प्रश्न ८९; ५. शरच्चन्द्र और बंगाली-समाज ९१; ६. गीत ९४; ७. गांधी-योजना ९५; ८ दक्षिण-अफ्रीकामें श्वेतांग-नीति ९८; ९. विश्व-ज्योति गांधी १००; १०. भारत क्या निरक्षर ही रहेगा १०१; ११. चक्करदार चोरी १०४; १२. अर्द्धनारीश्वर १०८; १२. भिक्षा या दान क्यों ? १०९; १३. अछूत बनाम सवर्ण ११२; १४ एक सुनहरा दिन ११६; १५. सूरके काव्यमें रंगोंकी संयोजना ११७; १६. सम्मेलनकी प्रचार-योजना ११९; १७. चिट्ठी-पत्री १२०; १८. समालोचना १२२; १९ चयन १२५; २०. सम्पादकीय विचार १२७।

आरसी-रचनावली

आरसी (कविताएं)	....	१५)
संचयिता (कविताएं)	....	५)
कलापी (कविताएं)	....	२॥)
नयी दिशा (कविताएं)	....	२)
कालरात्रि (कहानियाँ)	....	२)
पंचपल्लव (कहानियाँ)	....	२)
खोटा सिक्का (कहानियाँ)	....	१।)
जीवन और यौवन (कविताएं)	....	१।)
आँधीके पत्ते (कहानियाँ)	....	१।)
चन्दा मामा (कविताएं)	....	१)

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

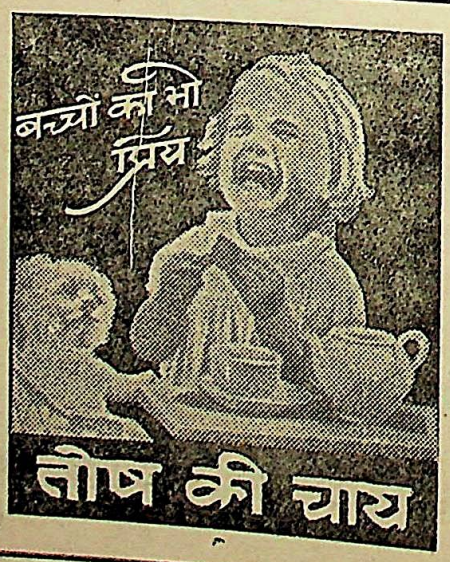

विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह

२ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

३ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक

४ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित

५ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

६ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

७-८ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक १. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

शहरका अँदेशा—लेखक श्री किरणविहारी दिनेश

उच्चकोटिके मार्मिक हास्य तथा व्यंग्यकी अनूठी पुस्तक हिन्दीमें हास्य-साहित्यका अद्वितीय ग्रन्थ। अत्यन्त कला ढंगसे छपी, अनेकों व्यंग्यचित्र और प्रत्येक पृष्ठपर सुन्दर पूर्ण अलंकरण।

"केवल हास्य और व्यंग्यपूर्ण साहित्यकी इन रचनाओं बलपर भी लेखक साहित्य-संसारमें महत्वपूर्ण स्थान पा सकें पुस्तकी छपाई, गेट-अप, चित्र-सम्पत्ति आदि प्रसंशनीय हैं।"
—मिलि

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्थ जीवन
के संकेत
२

क्या आप को सारी रात खाँसी आती है?

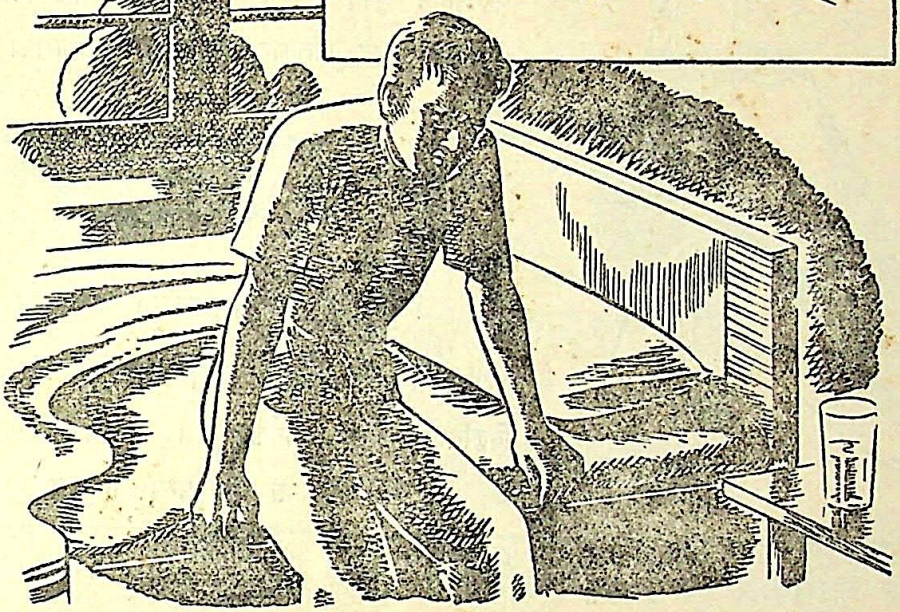

गले की सहलाहट और जुकाम के बाद होने वाली खाँसी, साधारण खांसी है। शायद आप उसे भयानक न समझकर चिकित्सा और उपचार न करें। शायद सारी रात बैठ कर खांसते रहनेपर भी आप उसकी अवहेलना करें। परंतु इस अवहेलना का परिणाम भयानक है। क्योंकि आप के फेफड़े इतनी कोमल झिल्ली के बने हैं कि वे खाँसी के झटकों को नहीं सह सकते।

ग्लाइकोडीन टर्प वसाका डाक्टरों द्वारा प्रयुक्त और प्रमाणित, खांसी की औषधि है। वह खांसी को तुरंत शान्ति देती और उसके मूल कारणों को नष्ट करती है। उस के शक्ति शाली परमाणु खांसी को समूल नष्ट करने वाले हैं।

स्नायु विकार से उत्पन्न हुई हर प्रकार की खाँसी के लिये अपने डाक्टर की सलाह लीजिये।

ग्लाइकोडिन टर्प-वसाका

शान्तिदायक तथा खांसी को नष्ट करती है।

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड; बरोडा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लज्जा नारी का भूषण

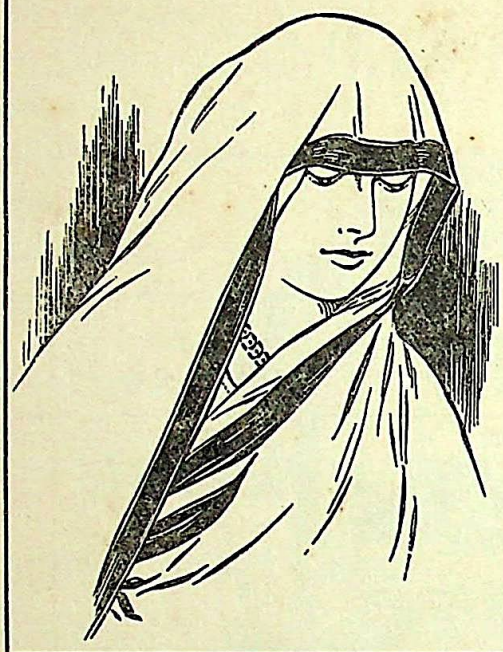

किन्तु उसका आतिशय्य प्रायः ही हानिकर होता है। महीने-दर-महीने दुर्वह यन्त्रणा नीरव रूपसे सह्य न करके रोगकी बात बताकर उसका प्रतिकार करना प्रत्येक नारीका कर्त्तव्य है।

इउटेरन

बेंगल केमिकलका भाइब्रो-अशोक

गर्भाशयके सभी प्रकारके रोगों और स्त्री-धर्मकी सब प्रकारकी विकृतियोंमें विशेष कार्यकर है। वन्ध्या और मृतवत्सा नारियोंके लिए भी यह परम हितकर है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

श्री काशी विद्यापीठके बहुमूल्य प्रकाशन

समाजवाद

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

जिसकी महात्मा गांधीने प्रशंसा की है तथा जिसपर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे अपने विषयकी सर्वोत्तम पुस्तक होनेके कारण बारह सौ रुपयेका 'श्री मंगलाप्रसाद' तथा पांच सौ रुपयेका 'मुरारका' पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करणका मूल्य केवल दो रुपये।

अन्य रचनायें—

१—हिन्दी शब्द-संग्रह

२—अफलातूनकी सामाजिक व्यवस्था

३—हिन्दू भारतका उत्कर्ष

४—मीरकासिम

५—अंग्रेज जातिका इतिहास

गणेश

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

वेद, पुराण, तन्त्र, बौद्ध और शास्त्रोंमें गणेशजीका क्या रूप है भारतके बाहर चीन, जापान और आदि देशोंमें उनकी किस प्रकार होती है जाननेके लिये विद्वान नयी रचना पढ़िये।

अनेक सुन्दर तिरंगे तथा चित्रों-सहित पुस्तकका मूल्य केवल रुपये आठ आने।

काशी विद्यापीठ पुस्तक भण्डार, विद्यापीठ रोड, बनारस छावनी।

हमारे यहां हिन्दी भाषाकी सब पुस्तकें मिलती हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

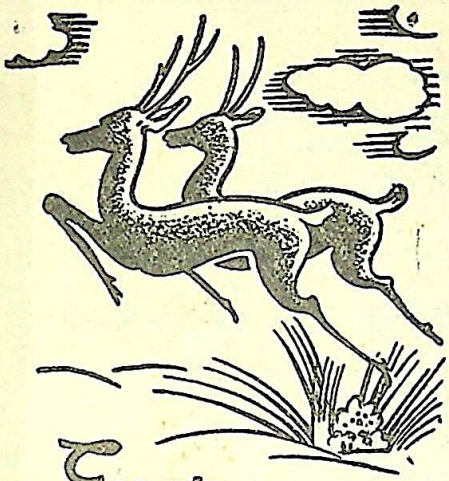

Ever Lifeful

NEUROLECITHIN

A True Nerve Tonic

शरीर और मनकी निस्तेजता दूरकर प्रफुल्लता तथा उत्साह देता है। स्नायु-दुर्बलता, स्मरणशक्तिहीनता, अग्निमन्द, अनिद्रा और श्रान्ति आदि रोगोंमें नेउरोलेसिथिन बहु परीक्षित, विशेष उपकारी औषध है।

इण्डियन हेल्थ इन्स्टिट्युट

एण्ड लेबोरेटरी लि०

बेलियाघाटा मेन रोड,

कलकत्ता।

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTORY

"SANKHA & PADMA"

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

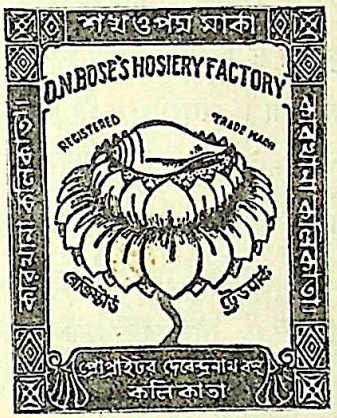

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.

'Phone: B. B. 6056.

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री'म' कृत, अनु० पं० सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला', मू० ४)।

श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—भाग दूसरा मू० ३)।

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

भक्तियोग; प्रेमयोग; प्राच्य और पाश्चात्य; आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग; परिव्राजक—प्रत्येकका मू० ।।।=)।

मेरे गुरुदेव—मू० ।=); शिकागो-वक्तृता—मू० ।=); वर्त्तमान भारत—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्यारी बहिनो

न तो मैं कोई नर्स हूँ, न कोई डाक्टर हूँ, और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थी हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिकधर्म के दुष्ट रोगों में फँस गई थी। मासिकधर्म खुलकर न आता था। अगर आता था, तो बहुत कम और दर्द के साथ, जिससे बड़ा दुःख होता था। पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी, चेहरे का रंग पीला पड़ गया था, कामकाज से जी घबराता था, हर समय सर चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने सैकड़ों रुपये की मशहूर औषधियाँ सेवन कराईं, परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक संन्यासी महात्मा हमारे दरवाजे पर भिक्षा के लिये आये। मैं पर आटा डालने आई तो महात्माजी ने मेरा मुख देख कर कहा--बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे रंग रुई की भाँति सफेद हो गया है? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पतिदेव को अपने डेरे पर बुलाया उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वर कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ। मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिये असल लागत पर बांट रही हूँ। इसके द्वारा मैं उठाना नहीं चाहती, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रक्खा है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फंस गई हो तो वह मुझे जरूर लिखें। उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पारसल द्वारा भेज दूंगी। बहिन के लिये पन्द्रह दिनकी दवाई तैयार करने पर २॥।=) दो रु० चार आने असल लागत खर्च होती है और महसूल डाक अलग है।

जरूरी सूचना—

मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और किसी रोग की दवाई के लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल
नं० (२१) बुढ़लाड़ा, ज़िला हिसार (पंजाब)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

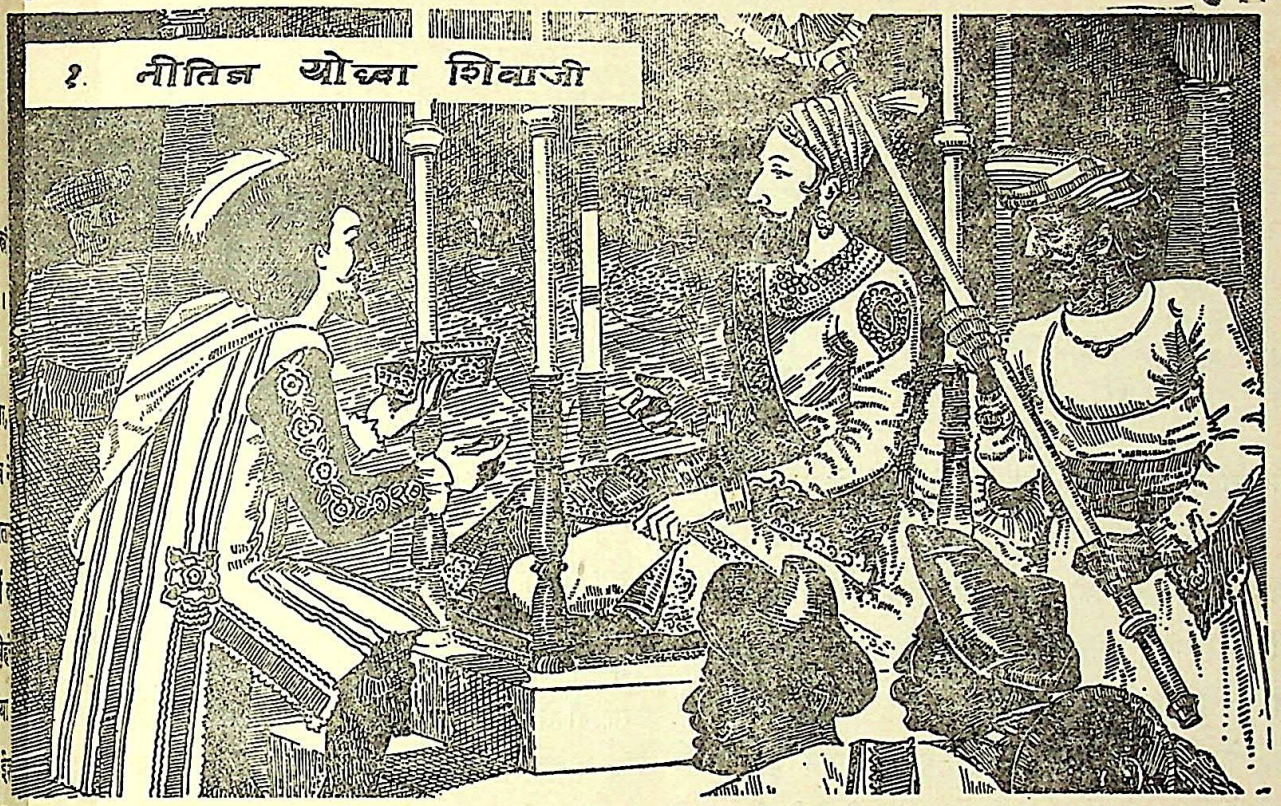

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

महानता और कीर्ति के लक्ष्य की सिद्धि, कार्य कुशल पुरुषोंने मस्तिष्क और शारीरिक शक्ति के सहयोग से ही की है। शिवाजी ने अपने युद्ध कौशल, असाधारण नेतृत्व शक्ति, शत्रु शक्ति का संतुलन और सैन्य संचालन, साथ ही पूर्ण शारीरिक स्वस्थता द्वारा अनेक युध्दों को जीत कर मराठा साम्राज्य की नींव डाली.

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो फ़ास्फ़ेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

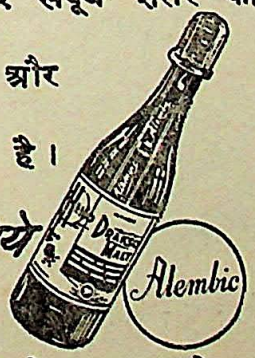

स्वास्थ रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

ए. विक डिस्ट्रब्यूटस लिमिटेड, माखनिया कुआ, लोअर रोड, बांकीपुर पटना।

अ ले म्बि क के मि क ल व र्क्स क म्प नी लि मि टे ड ब रो डा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हर एक की पसन्द के अनुकूल

गो द रे ज
टा य ले ट सा बु

गोदरेज द्वारा बनाये गये तरह तरह के नहाने के साबुनों के कारण ये साबुन लोकप्रिय हो गये हैं। अपने देश के त्वचा सौन्दर्य एवं उसकी स्वच्छता की परम्परा को कायम रखने में लगभग २५ वर्षों से ये साबुन सहायक रहे हैं, क्योंकि भारत के एकदम शुद्ध एवं अत्यन्त लाभप्रद वनस्पति तेल एवं अन्य उपकरण—जो प्रकृति के अपने सौन्दर्य प्रसाधन हैं—का उपयोग ही इन्हें सम्पूर्ण बनाने में किया जाता है। एकमात्र वनस्पति तेलों से ही साबुन बनाने की कला में हम **अग्रगण्य** रहे हैं और सर्वप्रथम हमने ही अनुभव किया था कि उच्चकोटि के साबुन केवल चुनी हुई वनस्पति के तेलों से ही बनने चाहिये—पशु-चर्बी से न रेज के नहाने के साबुनों ने इस देश में और विदेशों यश कमाया है और दुनिया को यह बताने में ये साबु हैं कि भारतीय पूंजी से, भारतीय श्रम से और भारत में बने ये **स्वदेशी साबुन** सस्ते होते हुए भी गुणों साबुनों से बढ़-चढ़कर हैं।

अन्य कहीं भी इन अतुलनीय सुन्दर नहाने के में से अपने पसन्द का साबुन चुन लें और एक अच्छे की तरह आप भी अपनी त्वचा को स्वच्छ, सुरक्षित बनाए रखें।

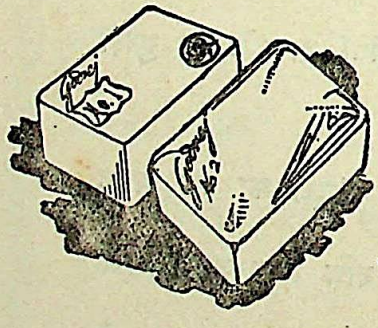

नं० १
नं० २

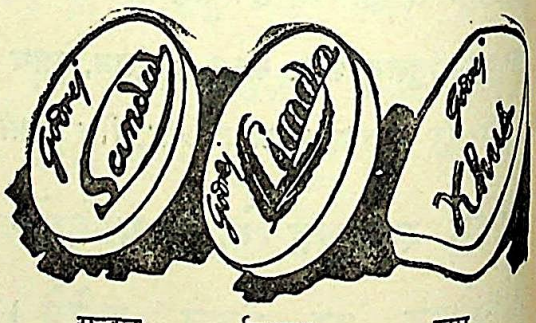

सन्दल लिमडा खस

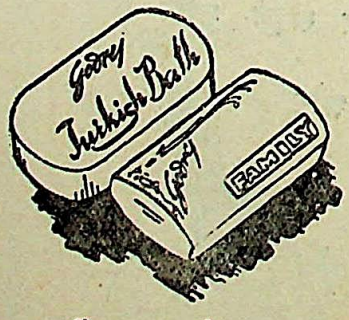

टर्किश बाथ - फैमिली

'वतनी'

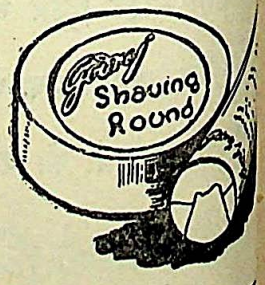

शेविंग स्टिक शेविंग 'राउ

गो द रे ज सो प्स, लि०— कलकत्ता (१०२, क्राइव स्ट्रीट); पटना (स्टेशन रो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

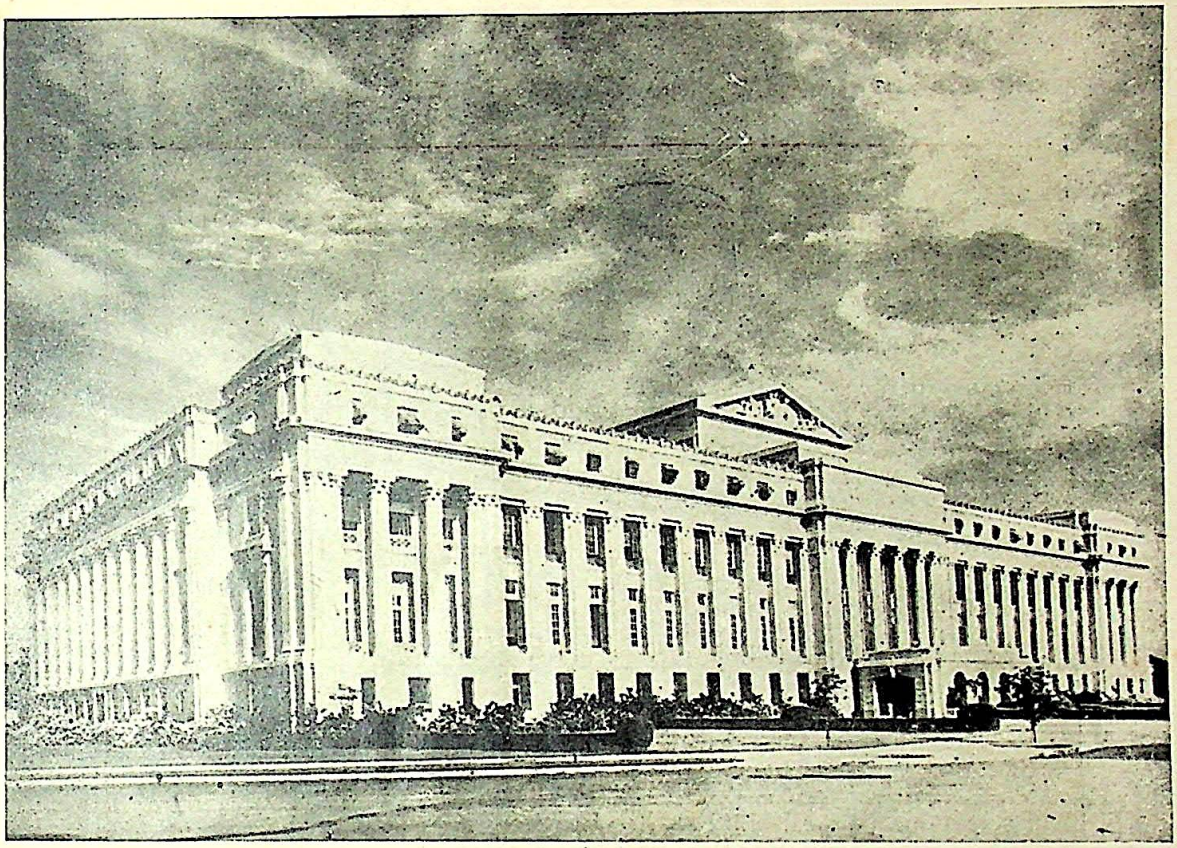

फिलिपीनकी राजधानी मनीलाका असेम्बली-भवन, जिसपर अब फिर अमरीकन झण्डा फहराने लगा है।

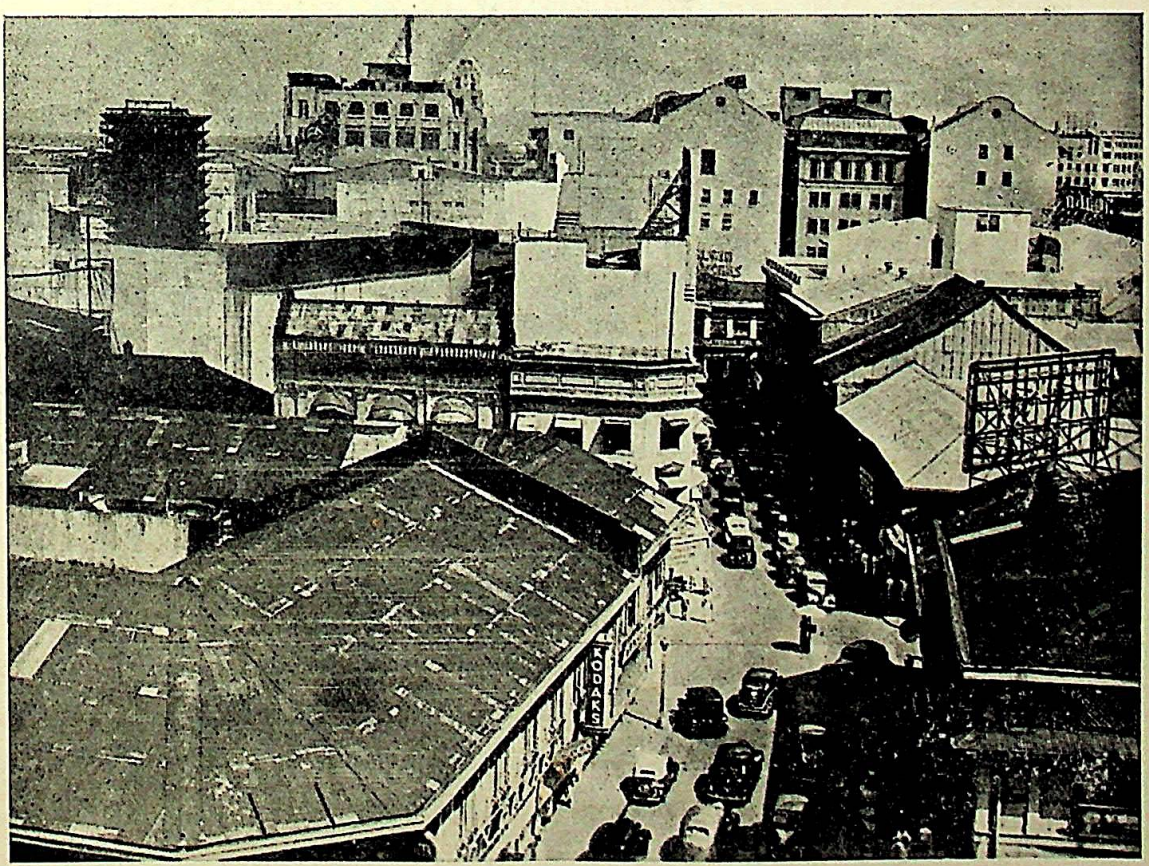

मनीलाके प्रमुख बाज़ार एस्कोल्टाका युद्ध-पूर्वका एक दृश्य। इसके बहुतसे भवन पहले जापानियों और बादमें अमरीकनोंकी बमबारीके कारण नष्ट हो चुके हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

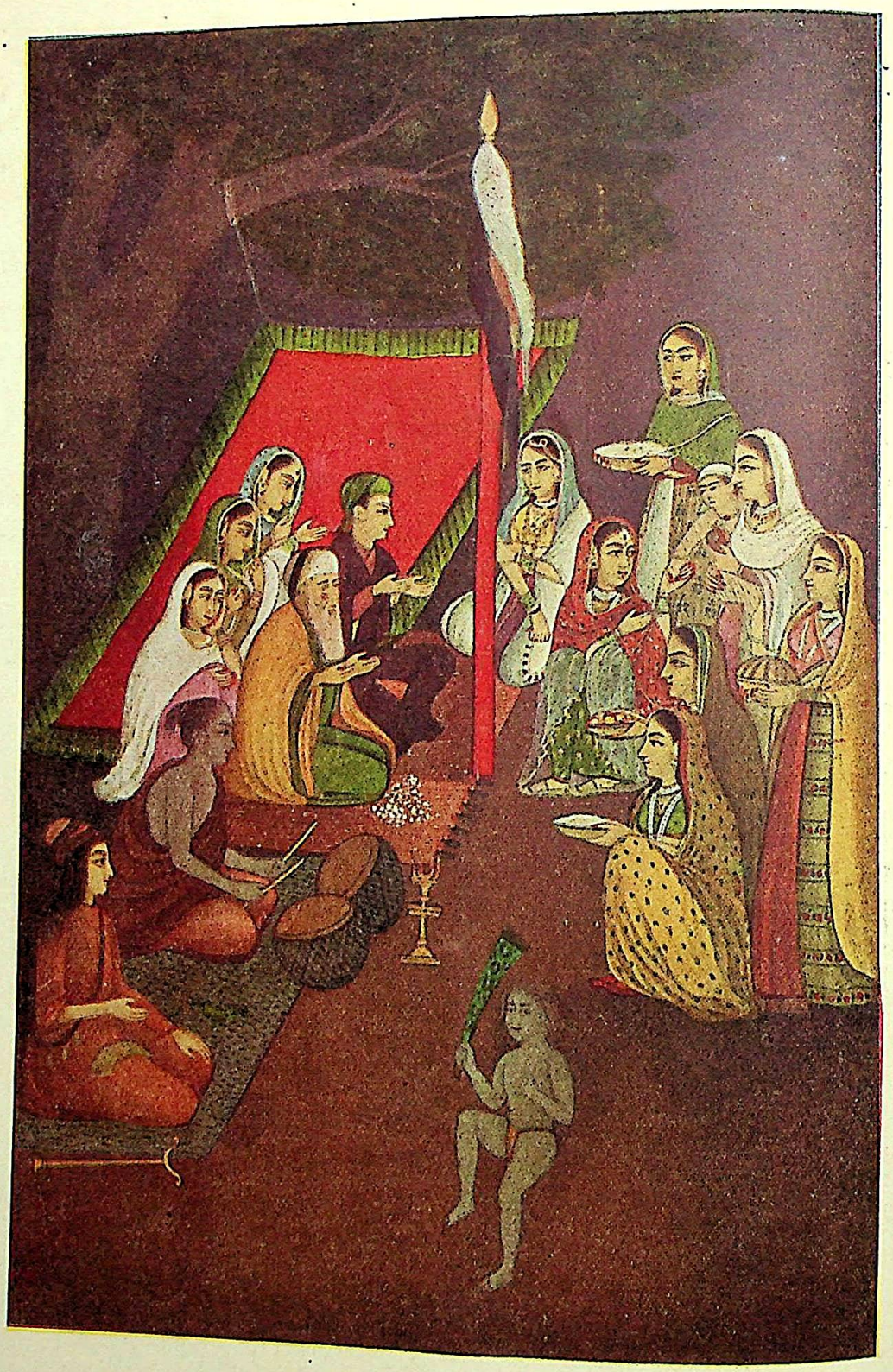

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

छड़ी शाह मदार

[मीर कल्लनखाँ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक ३] कलकत्ता, मार्च, १९४५ [पूर्णांक २०७

चित्रकारसे—

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

आज तेरे चित्र देखे,
और जीमें खुश हुआ, कहकर बताया,
और फिर-फिर जी हुआ—अच्छा कहूँ,
कुछ इस तरह परवस हुआ, लिखकर जताया।
बहुत दिनसे सोचता था यह
कि तेरा प्यार, तेरी भावना,
तेरी सरलता और तेरे भींगते सपने—
रहेंगे मौन कितने दिन,
कि कितनी चिर-अवधि तक कह न पाएँगे
किसीसे बोलकर अपने हृदयकी बात,
फैली चाँदनीकी रात या वातासकी धड़कन।
नहीं थे पास तेरे छन्द,
जलती थी निरन्तर बहुत गहरे पर,
धधककर मत सही, लेकिन अबाधित ज्वाल—
निशिदिन मन्द।
आज तेरे चित्र देखे,
और तब आश्वास पाया—:
यह कि जो बरसातमें चुप हो गई थी,
शोकसे नीरव हुई ऐसी कि मानो खो गई थी,
उस उमड़ते कण्ठवाली कोकिलाने गान गाया,
यह कि फिर मधुमास आया।
और वह कूकी—
कि हूकी, मंजरीके बीचसे अपना समेटा प्यार भरकर ;
गान गूँजे ही नहीं, बहने लगे,
और पत्थरके बड़े-से ढेर—ये पर्वत ;
हुआ ऐसा, खुले कुछ इस तरह, बिन देर--
नदियों तक बढ़े, कहने लगे—
'हम प्यार करते हैं कि देखो दिल हमारा!'
झूठ मत समझो कि उनने चीरकर जी ही बताया
और सजला सरित-सखियोंने भरी आँखें--
कि उनके बीच बहती थी इन्हीं-सी एक जल-धारा।
आज तेरे चित्र देखे ;
यह कि मेरे गान थे अब तक अधूरे,
आज तू छू दे कि ओ पारस!
इन्हें मिल जाय सोनेकी चमक,
बहुमूल्यता उसकी कि तब हो जायँ वे पूरे।
रंग भर दे तू कि मेरे स्वर खिंचे, हर साँझपर
बनकर सुनहरे अभ्रदल,
खिल जायँ शत-शत कमल मेरी गीत-सरितामें,
उठे मेरी पहाड़ी, सिर उठाकर गगनको चीरे,
कि मेरा चाँद छुपकर, झाँककर देखे,
किसी अभिसारिकाको नर्मदा-तीरे,
बढ़ाकर कर दिखा दे पथ ;
झुके मेरी लता, झूमे कि झूले भी,
और मेरा कुन्द फेंके कली, फूले भी।
एक सिहरन-भर, बड़ी कोशिश हुई तब,
खींचकर लाए कि मैंने गीत जो गाए,
आज उनमें रंग ला दे, रूप दे मेरे स्वरोंको
आज भर ले प्यालियोंमें चाँदनी,
कूँची बना सूरज-करोंको,
खींच दे नभके बहुत विस्तृत निराले नील-पटपर
एक वह झाँकी--
कि मैंने शब्द लिखती बेर
अपने निपट सीमित प्राण-प्लावित हृदयपर आँकी।
तू दिखा दे उस कुदालीपर झुके, टूटे हुए धड़को--
कि जिसकी आँख, जिसके भाव मैंने बोल बतलाए ;

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तू दिखा दे उस चुके, मन मारकर बैठे हुए जड़को--
कि जिसके दुःख, जिसके घाव मैंने खोल जतलाए।
बता पाए न मेरे बोल फिर भी वह सभी
जितना छुपा था अंकमें मेरे,
जता पाए न मेरे छन्द वह अभिरूप
जो था रंकमें मेरे।
बने तुझसे अगर मेरे यशस्वी,
तो बना दे दुःखकी तसवीर,
जीको चीर जो मैंने लिखी है रक्तसे अपने,
कुदालीपर झुके मज़दूरकी ज्वाला जगा दे,
और कर दे सत्य वे सपने--
कि जिनकी बात मैंने सौ तरह की है,
और यदि ली है सिसकते प्राणसे कूँची,
तो ऐसा रंग अपनी प्यालियोंमें घोल,
जो मेरी रगोंमें रुक गया-सा है,
लगा दे हाथ ओ अनमोल,
ऊँचा कर, बने तुझसे अगर,
तो शीष मेरा झुक गया-सा है!
बहुत दिनसे सियाही फेरता हूँ मैं, जलनपर बूँद टपकाता
बहुत भर जायँ यदि आँखें, तो उनको मूँद, टपकाता।
जलन कम हो नहीं पाती
कि छाती टूटती-सी है,
भरन कम हो नहीं पाती
कि धारा छूटती-सी है।
बने तुझसे, तो सतरंगे धनुषपर तीरको रख दे;
बने तुझसे, तो बहती आँखके आगे
मधुर तसवीरको रख दे;
बने तुझसे, तो अपने तीरसे
दो टूक कर दे एक ही छनमें
युगोंकी पीरके बादल,
अगर उमड़ें, तो सुख लेकर
सजी तसवीरके बादल!

चित्रकारसे—

श्री विचित्र सिन्हा

चित्रकार एक चित्र बनाओ, अपनी लौकिक कला दिखाओ;
आज रूपका चित्र मिटाकर, सहज कुरूप सत्य दिखलाओ।
वंगदेशकी एक भिखारिनका तुम चित्र बना सकते हो?
जगका जगको हृदय चीरकर उर-पाषाण दिखा सकते हो?
हाँ, तो अपने रंग मिलाकर प्रथम उसीका चित्र बना दो;
कल जो भीख लुटाते देखो, आज भिखारिन उसे बना दो।
जिसके कोमल कर, अंगोंसे कलके सुखमय स्वप्न झलकते;
आज उसीके नील दृगोंसे झर-झर आँसू-तार ढलकते।
मुखपर अरुण लालिमा श्यामल, ढलते सूरजकी परछाईं;
शुष्क अधर कुछ कटे-फटे-से, तेजहीन अँखियाँ मुरझाईं।
तनपर सावित वस्त्र नहीं, हो चिथड़ोंका कुछ ताना-बाना;
पग-पगपर चल-चल दुखियाका, पथके रोड़ोंसे टकराना।
पाँव बनें कोमल, पर जिनमें कटी-फटी हों दुखद विवाई;
उनमें ही धूमिल झलका दो मेंहदीकी लाली, परछाईं।
घुँघराले कुन्तल बिखरे हों, मानो कभी नाज़के पाले;
सड़कोंपर चल-चल झलके हों मोती-से चमकीले छाले।
कुमकुमकी मिटती आभा हो, झलक लालिमाकी हो लाली;
हाथ पसारे चौराहेपर दिखा रही हो झोली खाली।
हो किशोरिका सरल नवेली, पर लूसे मुरझाई पीली;
जिसपर ओस-कणों-से आँसू, अरुण-कालमें जो हो गीली।
वहीं पासमें दानव कामी मानवका एक चित्र बना दो;
मानवताका नग्न नाच तुम इस पटपर स्पष्ट बना दो।
कुछ पैसोंका लालच देकर, मिटे रूपका गाहक बनने;
ताक रहा हो क्रूर दृगोंसे, उसके यौवनका हक़ बनने।
बीच चौकके चौराहेपर, भूखी लाज बिके बेचारी;
मुट्ठी-भर दानेकी खातिर हार रही हो अस्मत नारी।
वह ठिठकी-सी, सहमी-सी कुछ, ललचाई-सी देख रही हो;
दया जिसे कहती है दुनिया, उन आँखोंमें पेख रही हो।
वे आँखें निर्लज्ज इशारोंकी पर करती हों बौछार;
ये दारुण आघात भिखारिन सहती हो, जलती, मनमारे।
नीचे लिख दो नाम चित्रका--'भूखा देश, विदेशी शासन;
(कितना शोषण, कितना पीड़न, कितना पतन, हाय वहशीपन।

गीत

श्री जितेन्द्रकुमार

नवीन पथ ग्रहण करो!
लिखो न गीत दुख-भरे, न वेदना विकल करे;
विषादके अडिग पहाड़ पर सुदृढ़ चरण धरो!
नवीन पथ ग्रहण करो!
न एक आह भी उठे, न एक दाह भी उठे;
मिले समुद्र सामने, सहास संतरण करो!
नवीन पथ ग्रहण करो!
मनुष्य तुम महान हो, अजेय शक्ति-प्राण हो;
डरो न क्षुद्र विघ्नसे, समोद अतिक्रमण करो!
नवीन पथ ग्रहण करो!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुनियादी तालीम और भाषाओंका प्रश्न

श्री कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०

राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनामें तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं—(१) किस प्रकार देशके सब नर-नारी शीघ्र-से-शीघ्र और कमसे कम सरकारी खर्चमें शिक्षित हो जायँ। (२) शीघ्र-से-शीघ्र शिक्षा-प्रचार करनेके लिए पाठ्य-प्रणाली कैसी बनाई जाय, जो शिक्षाके सर्वोच्च आदर्श तक न पहुँचकर भी देशके लिए योग्य और सच्चे नागरिक तैयार कर सके। (३) इस शिक्षा-प्रणालीको सफल करनेके लिए किस प्रकार शिक्षक तैयार किए जायँ और उनकी आर्थिक आवश्यकताको किस प्रकार पूरा किया जाय, जिससे वे योग्यता और सन्तोषके साथ अपना कर्त्तव्य पालन कर सकें।

यहाँ हमें दूसरे प्रश्नपर ही विचार करना है। कोई पाठ्य-प्रणाली सफल नहीं हो सकती, यदि वह पाठकोंकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रतामें बाधा डालती हो, जिसे साधारण श्रेणीके शिक्षक कार्यान्वित न कर सकें और जिसके खर्चका भार समाजकी आर्थिक स्थिति सम्हाल न सके। सांस्कृतिक स्वतन्त्रताका सिद्धान्त सर्वमान्य होना चाहिए। यदि हैदराबाद रियासतके तेलुगू-भाषा-भाषी बालकके माता-पिता यह चाहते हैं कि उसे तेलुगूके माध्यम से ही शिक्षा दी जाय, तो शासन-संस्थाको इसका प्रबन्ध करना चाहिए। शर्त्त यही है कि ऐसे बालक इतनी संख्यामें हों कि उनके लिए शिक्षालय और शिक्षकका प्रबन्ध हो सके। यदि वे इतनी संख्यामें न हों, तो माता-पिताको अधिकार मिलना चाहिए कि वे अपने सांस्कृतिक विचारोंके अनुसार अपने बच्चोंकी शिक्षाका प्रबन्ध स्वयं कर सकें। सांस्कृतिक स्वतन्त्रताके सिद्धान्तका मान अल्प-संख्यक जातियोंके लिए और भी आवश्यक है। इसलिए यदि अधिकांश हिन्दू हिन्दीको देशकी राष्ट्रभाषा मानते हैं और उसी प्रकार अधिकांश मुसलमान उर्दूको वह पद देते हैं, तो भारतीय शासन-संस्थाके लिए दोनोंको राष्ट्रभाषाका पद देना आवश्य है। यदि किसी श्रेणीके शिक्षालयमें राष्ट्रभाषा द्वारा शिक्षा देनेकी नीति हो, तो अधिकांश पाठक राष्ट्रभाषाके जिस रूपके पक्षमें हों, उसके माध्यमसे ही शिक्षा दी जाय। ऐसी दशामें अल्प-संख्यक पक्षकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रतामें कुछ बाधा पड़ती है; परन्तु शासन-संस्थापर सफल शिक्षा-प्रणालीकी तीसरी शर्त्तका प्रतिबन्ध भी तो है। सांस्कृतिक स्वतन्त्रताकी यथासम्भव रक्षा करते हुए यह आवश्यक है कि वह साधारण श्रेणीके शिक्षकोंकी पहुँचके ऊपर न हो।

संयुक्त-राज्य अमरीकामें डिवी नामक एक दार्शनिक हुआ है। उसने शिक्षाके इस आदर्शका प्रचार किया कि बालकोंके लिए पाठशालाके भीतर ऐसे वातावरण तैयार किए जायँ, जो आगे चलकर सांसारिक जीवनमें उनके सामने आनेवाले हैं। पाठशालाके भीतर ही जीवन और जीविकोपार्जनकी समस्याओंको बालकोंके लिए इतने सरल रूपमें रखा जाय कि शिक्षकके नेतृत्वमें ही वे उन्हें हल कर सकें। यह प्रणाली 'प्रोजेक्ट मेथड' के नामसे प्रसिद्ध है, और जिस पाठशालामें डिवीके सिद्धान्तके अनुसार प्रयोग किए जाते हैं, उसे 'ऐक्टिविटी स्कूल' कहते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार शिक्षा देना बहुत अच्छा है; परन्तु इसमें बालकोंकी पढ़ाईके लिए बहुत सामान चाहिए, जिसमें बहुत खर्च पड़ता है। फिर उस सामानका उचित प्रयोग करनेके लिए बहुत योग्य शिक्षक चाहिएँ। उस योग्यताके शिक्षक इने-गिने ही मिलते हैं। सर्वोच्च वेतन देकर भी अधिक संख्यामें ऐसे शिक्षक नहीं मिल सकते। संयुक्त-राज्य संसारका सर्वोपरि देश है। वहाँके साधारण नागरिकोंकी योग्यता भी बहुत बढ़ी-चढ़ी है। इतना होनेपर भी 'ऐक्टिविटी स्कूल' उस देशमें प्रयोगके ही दरजेपर है। थोड़े-से ही ऐसे शिक्षालय हैं, जिनमें डिवीके सिद्धान्तपर प्रयोग किए जाते हैं। वह सार्वजनिक शिक्षाका अंग नहीं हो सका है। हाँ, उसके सिद्धान्तकी सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त है और उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव प्रत्येक देशकी सार्वजनिक शिक्षा-प्रणालीपर पड़ा है।

सभ्य देशोंमें भारत निर्धनता और निरक्षरतामें सर्वोपरि है। इस देशमें भी डिवीके कुछ भक्त हैं। एक हैं डा० ज़ाकिरहुसैन, कर्मशील, धुनके पक्के। उस समय जब कि सरकारी दफ़्तरों तक खादीकी पहुँच न थी, आपने दिल्लीके निकट जामिया-मिल्लिया-इस्लामियाके नामसे एक राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किया; जिसमें कुछ अन्य योग्य और लगनके पक्के शिक्षकोंको एकत्र करके आप अपने सिद्धान्तपर तबसे अब तक प्रयोग कर रहे हैं। दूसरे हैं महात्मा गांधी, जो राजनीतिक क्षेत्रके अग्रगण्य नेता होते हुए भी साबरमती-आश्रम और सेवाग्राममें शिक्षा-प्रणालीपर प्रयोग करते रहे हैं। सन् १९३७ में खादीको सरकारी दफ़्तरों तक पहुँचनेका शुभ अवसर मिला। ज़ाकिरहुसैन साहब और गांधीजीने राष्ट्रीय शिक्षाकी एक योजना तैयार की, जो बुनियादी तालीमके नामसे प्रसिद्ध है। इन नेताओंने देखा कि देश निर्धन है, इसलिए जीवनकी समस्याओं द्वारा नहीं, जीविकोपार्जनकी किसी एक समस्या द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा होनी चाहिए। गांधीजी चरखेके पुराने भक्त रहे हैं, इसीलिए चरखा, तकली और इनसे कताई, फिर सूतसे बुनाई—यह सब बुनयादी तालीमका केन्द्रीय विषय बनाया गया। यह योजना हुई कि इस बुनियादी विषय द्वारा ही हाईस्कूल-कक्षाकी बराबरीको शिक्षा दी जाय और बालकोंकी कताई-बुनाईसे जो आमदनी हो, उससे शिक्षकोंको वेतन दिया जाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महात्माजी राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसा तथा सत्यके प्रचारक हैं और शिक्षा-क्षेत्रमें बुनियादी तालीमके। यदि समाजमें अहिंसा और सत्यका प्रचार हो सके, तो शासनकी कोई समस्या ही न रह जाय---न सेनाकी आवश्यता रहे, न पुलिसकी और न अदालतोंकी। फिर यदि गांधीजीकी योजनाके अनुसार बुनियादी तालीम हो सके, तो बिना सरकारी खर्चके पूरा समाज शिक्षित हो जाय। तब तो नागरिकको कोई टैक्स देनेकी भी आवश्यकता न रहे। कितना आकर्षक चित्र है! परन्तु महात्माजी दो सौ करोड़ जीवित मनुष्योंमें से ही एक हैं और सैकड़ों वर्ष पश्चात् भारतकी पुण्यभूमिने ही उन्हें क्लेशित 'कलयुगी' संसारको दिव्य जीवनका सन्देश देनेके लिए जन्म दिया है। उनकी व्यक्तिगत सफलताके आधारपर कोई शासन अथवा शिक्षाकी योजना बनाने में उनके जीवनके मौलिक सिद्धान्तकी ही हत्या होती है। साधारण मनुष्यमें हिंसा और असत्यकी इतनी अधिक मात्रा है कि उसे अहिंसामें दीक्षित करके हम उसके असत्यकी मात्रा ही बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार बुनियादी तालीमके सिद्धान्तको कार्यान्वित करना भी इतना कठिन है कि उसपर ज़ाक़िरहुसैन साहब-जैसे इने-गिने विद्वान ही सफल प्रयोग कर सकते हैं।

परन्तु यह समझते हुए भी महात्मा गांधीके राष्ट्रीय कांग्रेसके नेता होनेके कारण जब सन् १९३७ के चुनावमें देशके तीन प्रान्तोंको छोड़कर बाक़ी आठ प्रान्तोंकी जनताने कांग्रेसके पक्षमें अपना बहुमत दिया, तब प्रान्तीय शासन-संस्थाओंको महात्मा गांधीके शिक्षा-विषयक विचारोंपर प्रयोग करनेका अवसर मिला। अन्य प्रान्तोंके शासक गांधीजीके भक्त होते हुए समुचित समझदार भी रहे; परन्तु संयुक्त-प्रान्तमें भक्तिकी मात्रा ही अधिक रही। इसका परिणाम यह हुआ कि बुनियादी तालीम पर प्रयोग प्रारम्भ होते ही उसकी दुर्गति बनने लगी। पहले बुनियादी तालीमके आर्थिक आकर्षणका अन्त हुआ। प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ कि बुनियादी तालीमसे—बालकोंसे सूत कतवा कर—शिक्षकका पेट भरना असम्भव है। फिर भाषाका प्रश्न आया। अंगरेज़ीको जो स्थान प्राप्त था, वह उसके लिए बना रहा। प्रश्न यह हुआ कि हिन्दी पढ़ाई जाय या उर्दू। दोनों पक्षोंको खुश करनेके लिए यह निश्चित हुआ कि हिन्दी और उर्दू दोनों पढ़ाई जायँ। फिर सवाल आया कि बुनियादी विषय एक हो, या कई हों। पहले कताईपर ज़ोर रहा, फिर कताई निकाल दी गई और जिल्दबन्दी, कुम्हारी, बढ़ईगीरी, चित्रकला इत्यादि कई बुनियादी विषयोंके मुरब्बेकी तजवीज़ हुई। कहा यही जाता रहा कि इस मुरब्बे द्वारा ही तीन भाषाओं—अंगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू—और गणित, इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, विज्ञान आदि विषयोंकी शिक्षा हो; परन्तु वास्तवमें हुआ यह कि शिक्षा-प्रणाली पहले-जैसी ही रही। अलग विषय, अलग घंटे; घंटी बजी, एक विषय खत्म हुआ और दूसरेकी बारी बालकोंपर पढ़ाईका जितना बोझ पहले था, उससे कहीं बढ़ गया। बुनियादी विषयकी तो खूब ही दुर्गति हुई। पाठ्यक्रम बनाना कठिन न था; परन्तु उसके लिए शिक्षक करना उतना ही सरल समझा गया, जितना अजामिलका समय नारायणका नाम लेकर स्वर्ग जाना सरल हो गया। साधारण शिक्षा-प्राप्त कम वेतनवाले पुराने ढर्रेके अभ्यस्त इस योग्य समझे गए कि डेढ़ महीने या तीन महीने आचार्य इबादुर्रहमान खाँके प्रयागी आश्रममें रहकर वे बुनियादी तालीम देने योग्य हो जायँगे। अन्य प्रान्तोंमें बुनियादी तालीम पर प्रयोग ही होते रह गए और संयुक्त-प्रान्तमें बुनियादी तालीम सार्वजनिक शिक्षाके उपयुक्त मान ली गई! हम संयुक्त-प्रान्त के लिए कितने गौरवकी बात रही। जो संयुक्त-राज्य अमेरिका नहीं कर सका, वह संयुक्त-प्रान्तने कर दिखाया!

शिक्षा-प्रणालीकी मुसीबत उस समय और भी बढ़ जाती है, जब किसी राजनीतिक पक्षको प्रसन्न करनेके लिए बालकोंके गले कोई विशेष विषय मढ़ दिया जाता है। कांग्रेसका मुसलमानोंको साथमें रखना उचित ही था। पंजाबके अधिकांश बालक उर्दू ही पढ़ते हैं, अतः यहाँ उन्हें उर्दूके अतिरिक्त हिन्दी पढ़ानेकी आवश्यकता नहीं समझी गई। परन्तु संयुक्त-प्रान्तमें तो अधिक बालक हिन्दी पढ़ते हैं, फिर भी उनके लिए पाँचवीं कक्षासे उर्दू पढ़ना अनिवार्य कर दिया गया। कहा गया कि महात्माजी हिन्दुस्तानी-प्रचारके पक्षमें हैं। वे चाहते हैं कि लोग हिन्दी और उर्दू दोनों पढ़ें। फिर हिन्दी और उर्दू पढ़कर संयुक्त-प्रान्तको ही तो हिन्दुस्तानीकी साहित्यिक सृष्टि करनी है। इसके लिए बालक केवल चरखा ही न कातें, बल्कि हिन्दीके साथ उर्दू भी पढ़ें—अर्थात् वे तीन लिपियोंमें तीन भाषाएँ पढ़ें और तीनों भी कातें। फिर गणित, इतिहास, भूगोल और विज्ञानका अध्ययन करें। कसरतका समय भी निकालें, चाहे भोजनका कोई समय न भी हो।

महात्माजीका यह विचार नया नहीं है कि उनके भक्त हिन्दी और उर्दू दोनों सीखें। सुना है, वे स्वयं भी आजकल उर्दूका अध्ययन कर रहे हैं। 'हरिजन'में इस विषयपर वे लिख भी चुके हैं। मैं उनसे वहीं तक सहमत हूँ, जहाँ तक कि उनके विचारोंका पालन बालकों या बड़ोंके लिए नियमबद्ध होकर अनिवार्य नहीं किया जाता। हिन्दी पढ़नेवाले बालक उर्दू पढ़ें, यह बहुत अच्छा है। यदि वे अरबी पढ़ सकें, तो और भी अच्छा है। परन्तु हिन्दी सामने प्रश्न यह रहता है कि बालककी अवस्थाको देखते हुए जो समय उसे पठन-पाठनके लिए मिलता है, उसके भीतर कितने विषयोंका पढ़ना उसके लिए अधिक आवश्यक है। यदि हम भाषाओंका पढ़ना अनिवार्य कर दें और यह काम अच्छी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करना चाहें, तो विज्ञान, भूगोल, इतिहास और गणितके लिए यथेष्ट समय नहीं मिलता ; बुनियादी हस्त-कौशलके काम भी अच्छी तरह नहीं हो पाते।

प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषाओंके अतिरिक्त जनपदीय बोलियों का प्रश्न भी अब जनताके सामने उपस्थित है। शिक्षकके सामने समस्या यह है कि वह शिक्षालयको भाषाओंका दंगल ही बनावे या बालकोंको कुछ करना सिखावे, उनकी ज्ञान-वृद्धि करे, उनके स्वास्थ्य और चरित्रकी रक्षा भी करे। हिन्दी या उर्दूकी पढ़ाई शिक्षाके माध्यमिक क्षेत्रमें अहिन्दी प्रान्तोंमें होनी आवश्यक है, क्योंकि सर्वोच्च शिक्षाका राष्ट्रभाषाके माध्यममें होना ही आवश्यक है ; परन्तु उन प्रान्तोंमें जहाँकी मातृभाषा हिन्दी मानी जाती है, वहाँ उर्दूको भी वही पद जनताके अंश-विशेषसे प्राप्त है। ऐसी दशामें यदि हिन्दी-प्रान्तों—सिन्ध, पंजाब, सीमा-प्रान्त, राजपूताना, मालवा, मध्य-प्रान्त, संयुक्त-प्रान्त और विहार—में 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार करना है और हिन्दी तथा उर्दू दोनों को पढ़ाना है, तो यह पढ़ाई संयुक्त-प्रान्त और विहारमें ही न हो ; पंजाब, सिन्ध और सीमा-प्रान्तमें भी हो। फिर यदि माध्यमिक क्षेत्रमें दो भाषाएँ पढ़ाई जायँ, तो अंगरेज़ीकी पढ़ाईका निम्न कक्षाओंसे तो हटाना आवश्यक ही होगा।

आजकल यह दशा है कि बहुत बढ़िया पाठ्यक्रम बने हुए हैं। जो शिक्षक भाग सकते थे, वे भाग निकले। बाक़ीका मस्तिष्क महँगी चर रही है। जिस वेतनपर शिक्षकोंसे इस समय काम लिया जा रहा है, उसपर नवयुवक अब आनेको तैयार नहीं हैं। इस तरह शिक्षाका दिखावा-मात्र ही रह गया है। अतः निवेदन यह है कि गांधीजीके शिक्षा-क्षेत्रमें आनेका यह परिणाम न हो कि जितने असत्यका शिक्षकोंमें प्रचार था, उसकी मात्रा और भी बढ़ जाय।

शरच्चन्द्र और बंगाली समाज

श्री गोपाल हालदार

साहित्यमें आकस्मिक घटनाएँ अक्सर घटा ही करती हैं। वँगला-साहित्यमें सबसे बड़ी आकस्मिक घटना शरच्चन्द्रका आविर्भाव जान पड़ती है। एकाएक कहाँसे उनका उदय हुआ, इसे जैसे किसीने सोचा ही न था। अवश्य ही आज कई लोग यह सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि शरच्चन्द्रका आविर्भाव कोई वैसा आकस्मिक नहीं है। 'कुन्तलीन-पुरस्कार' की प्रतिद्वन्द्वितामें उन्होंने पहले ही अपना स्थान बना लिया था। अपनी कई कहानियाँ और उपन्यास वे पहले से ही लिख रहे थे। हो सकता है कि यह सब सच हो ; किन्तु उससे यह सत्य अप्रमाणित नहीं होता कि शरच्चन्द्रका जिस दिन बँगला-साहित्य-क्षेत्रमें प्रादुर्भाव हुआ, उस दिन साहित्यिक-समाजमें कोई भी आदमी उनके आविर्भावके लिए प्रस्तुत न था। उस समय तो यही जान पड़ा था कि उनका उदय अप्रत्याशित और आकस्मिक है। सच्ची बात कहनेपर यह मानना ही होगा कि साहित्यिक-समाजने पहले-पहल शरच्चन्द्रकी संवर्द्धना नहीं की थी, उन्हें सर्वप्रथम बंगाली पाठक-समाजने ही अपनाया था। उस समयके साहित्यिक शुरूसे ही यह निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि शरच्चन्द्रके प्रति उनका क्या रुख हो ; पर उस समयका पाठक-समाज समस्त मन-प्राणसे उनका स्वागत करनेके लिए अग्रसर हो गया था। उनके स्थानके बारेमें साहित्यिक और कर ही क्या सकते थे ? इसीलिए उन्हें शरच्चन्द्रकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद तो उनपर गर्व करनेमें भी साहित्यिक-समाजमें कोई द्विधा नहीं रह गई थी। फिर भी यह तो सच ही है कि शरच्चन्द्रका आविर्भाव उनके लिए अप्रत्याशित और सभीके लिए आकस्मिक था।

शरच्चन्द्रको जो बंगाली पाठक-समाज इतनी आसानीसे अपना सका और बंगाली साहित्यिक-समाज उनको लेकर पहले-पहल असमंजसमें पड़ गया, उसके पीछे भी कुछ कारण था, और वह कारण जानने-योग्य भी है। शरच्चन्द्र उपस्थित हुए अपनी आश्चर्यजनक रचना-शक्तिका प्रमाण लेकर। इस प्रमाणको अग्राह्य करना असम्भव था। इसने स्वयं अपनी स्वीकृति प्राप्त कर ली। एक क्षणमें ही पाठकोंने समझ लिया—यही तो मनुष्य हैं, हमारे ही समान मनुष्य। हँसना-रोना, सबलता-दुर्बलता, सच-झूठ आदि सब-कुछ लेकर हम लोगोंके ही आत्मीय हैं, हम लोगोंके ही साथी हैं, 'जाया-पुत्र-परिवार' हैं। यही सब मानो शरच्चन्द्रके ग्रन्थोंके पन्नोंमें से बोल उठे थे। ऐसे जीवन्त मनुष्यको, ऐसे जीवन्त चित्रको, स्वीकार न करनेका कोई उपाय भी है ? किन्तु साधारण पाठकोंने जितनी आसानीसे शरच्चन्द्रको स्वीकार कर लिया, उतनी आसानीसे साहित्यिक-समाज उन्हें क्यों नहीं अपना सका ? सृष्टिका अक्षय चिह्न वे भी निश्चय ही देख सके थे। फिर उन्हें हिचकिचाहट क्यों हो रही थी ? यही जानने-योग बात है।

जिस कारणसे उस समयके बंगाली साहित्यिक-समाजके लिए शरच्चन्द्रको पहले ही अकुण्ठित चित्तसे अपनाना सम्भव नहीं हुआ, उसी कारणसे उस समयके साधारण बंगाली पाठकके लिए शरच्चन्द्रको समस्त मन-प्राणसे अपनाना सम्भव हुआ। इसी बातसे यह पता चल जाता है कि उस समयके बंगाली पाठक-समाज और बंगाली साहित्यिक-समाजके बीच एक खाई-सी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पैदा हो गई थी। साधारण बंगाली पाठक मध्यवित्त समाजके आदमी हैं—उस समय भी वे वही थे, आज भी वे वही हैं। हम कह सकते हैं कि साधारण पाठक वास्तवमें बंगालके निम्न-मध्यवित्त समाजके आदमी हैं। साहित्यिक भी साधारण रूपसे मध्यवित्त समाजके ही आदमी हैं। दोनों ही कमोबेश अंगरेज़ी हुकूमत और अंगरेज़ी शिक्षा-दीक्षाके फल हैं। किन्तु साधारण पाठक पुराने समाज और जीवन-यात्राको बहुत-कुछ माया-मोहकी दृष्टिसे देखते थे। कार्य-क्षेत्रमें वे भी निश्चय ही अंगरेज़ी हुकूमत और उस समयके धनतन्त्रके आदर्शको मानकर चलते थे। पर पुराने समाजको स्वयं तोड़-फोड़कर नए समाजको गढ़नेका सुयोग हम लोग स्वाभाविक रूपसे नहीं पाते। हमारे प्राचीन समाज और जीवन-यात्राको प्रबल आघातसे तोड़-फोड़ रही थी बहिरागत पाश्चात्य जीवन-यात्रा, जो धनिकतन्त्र और साम्राज्यवादका प्रकाश थी। इसी कारण हम नूतन जीवन-यात्राको स्वच्छन्द चित्तसे स्वीकार करनेके लिए बिल्कुल ही तैयार न थे। यही नहीं, बल्कि इसी कारण हम बहुत-कुछ मिथ्या-मोहमें पुरातन जीर्ण जीवन-यात्राको ही पकड़कर बड़ा करके देखना चाहते थे। साम्राज्यवादकी अस्वाभाविक आब-हवामें ऐसी भूलका होना ही स्वाभाविक था। अथच हम अंगरेज़ी शासन और अंगरेज़ी शिक्षा-दीक्षाकी मारफ़त पूँजीवादके व्यापकतर आदर्श और गम्भीरतर सत्यके सम्बन्धमें भी सचेतन हो रहे थे। इसके सिवा उपाय ही क्या था—मिल, बेंथम और काँतको पढ़ा था; फराँसीसी विप्लवकी मुक्ति-वाणीने भी हमारे हृदयोंको स्पर्श किया था। ऐसी अवस्थामें हमने मानव-अधिकारों—स्वादेशिकता, गणतन्त्र और वैयक्तिक स्वाधीनता—की यथार्थताका मूल्य भी समझा था। फिर भी हम पुरातन समाजके प्रति अपना मोह नहीं त्याग सके थे। यहाँ तक कि हमारी नई स्वादेशिकता और राष्ट्रीय मर्यादा-बोध भी उसी पुरातनको ही समय-समयपर मोहके आवरणसे ढँककर मोहक और बड़ा बनना चाहते थे। बंगालका स्वदेशी-आन्दोलन भी उसका एक दृष्टान्त है। जिस प्रकार उस आन्दोलनका एक पहलू था स्वदेशी शिल्पकी उन्नतिके रूपमें देशी धनतन्त्रके गठनकी चेष्टा, उसी प्रकार उसका दूसरा पहलू था हिन्दू राष्ट्रीयताके पुनरुज्जीवनके रूपमें पुरातन सामन्ततन्त्रके जीवनादर्शको क़ायम रखना।

साधारण पाठक इन्हीं दोनोंके बीच पड़े हुए थे—उनके मनके एक कोनेमें पुरातन समाजके लिए बहुत-कुछ माया-मोह वर्त्तमान था। किन्तु उस समयके बंगाली साहित्यिक इस पुरातन मोहसे बहुत-कुछ मुक्त थे। वे नई जीवन-यात्राके पक्षपाती थे—व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके प्रधान प्रवर्त्तक थे। वास्तवमें सभी लेखक इसीके पक्षमें थे। यही 'प्रगतिका पथ' था। गत शताब्दीमें इसी प्रगति की धाराका नाम था 'संस्कार' या 'रिफार्म'का आन्दोलन। किन्तु प्रगतिकी यह चेष्टा साम्राज्यवादके कारण स्वाभाविक हमारे लिए लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। यदि वह [illegible] रूपमें आती, तो उसका रूप होता सामाजिक विप्लवका; किन्तु वह आई थी साम्राज्यवादका मसविदा लिए हुए 'संस्कार' या 'सुधार'-आन्दोलनके रूपमें। इसी कारण जन-साधारणने उसे एक लम्बे अर्से तक विलायती [illegible] समझा। इसीलिए बंकिमने इस 'संस्कार'-आन्दोलनपर [illegible] और विवेकानन्दने भी उसका समर्थन नहीं किया। कि सबके बावजूद उस आन्दोलनका रुख था प्रगतिकी ओर। नाथके समान विराट प्रतिभाकी सारी रचना इसी प्रगति बंगाली पाठकोंको आगे बढ़ा देना चाहती थी। साधारण अवश्य उससे अग्रसर होनेके लिए बाध्य होते थे—साहित्यिक रचना और काल दोनोंकी प्रेरणा उसी ओर फिर भी पुरातनका मोह उनमें रह गया था। यही नहीं रवीन्द्रनाथकी सार्थकता और सुधारक-दलोंकी सक्रिय प्राधान्य पाठकोंके मनके एक कोनेमें एक विक्षोभ और [illegible] की ही सृष्टि कर रहे थे। उस विरोधको प्रकट करनेकी [illegible] रक्षणशील साहित्य-क्षेत्रमें भी कर रहे थे। किन्तु [illegible] लोग एक तो सृष्टिकी गतिके विरुद्ध चल रहे थे; दूसरे, साहित्य-रचनामें भी कोई वैसी शक्ति न थी। इसलिए बंगाली पाठकों यानी बंगालके निम्न-मध्यवित्त भद्र लोगोंके एक कोनेमें जो न्याय-अन्याय, वेदना और विक्षोभ भर वे कहीं भी रूप नहीं पा रहे थे। रवीन्द्रनाथके अनुगत भी जितना पुरातन समाजको सुधारनेके लिए उद्यत थे, साहित्य-सृजनमें सक्षम न थे; बल्कि जिस समाजको जितना अपना कहकर जानते थे, वे उतना भी माननेके लिए न थे। उस समय बँगला-साहित्य-क्षेत्रमें अहम् तथा वादियोंका ही प्राधान्य था—यद्यपि वे साहित्य-सृजनमें सार्थक नहीं हो रहे थे—और बंगाली पाठक-समाजमें भी पुराने समाजके लिए मोह और ममता शेष थे।

शरच्चन्द्रका उदय ऐसे ही बंगाली समाजमें हुआ। प्रथम देन थी—'बिन्दुर छेले', 'रामेर सुमति', 'बिरा' 'बड़ दिदि'। एक क्षणमें ही बंगाली पाठक-समाजने रचनाओंमें मनुष्य ही सिर्फ़ जीवन्त नहीं हुआ है, बल्कि एकाएक उनका अपना मनुष्य भी जीवन्त हो उठा है। समाजके पीछे भी तो एक करुण मानवीय सत्य था। सर्वसाधारण उसे अपने-अपने हृदयोंमें अनुभव तो कर रहे पर उसे प्रकाशित नहीं कर पा रहे थे। शरच्चन्द्रने सत्यको एकाएक सभीके सम्मुख ला उपस्थित किया था। ही लीजिए—उसके कोई अपनी सन्तान नहीं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे देखा जाय, तो उसके मातृत्वकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का पथ कहाँ है ? अधिकसे अधिक उसके लिए अनाथाश्रममें ही स्थान था। किन्तु हमारे गलित सामन्त-समाजके परिवारमें तो उसके मातृ-हृदयकी परितृप्तिका एक पथ था। और फिर क्या सिर्फ़ परितृप्तिका ही पथ था ? वहाँ सन्तानहीन विन्दुका भी माँकी हैसियतसे एक दावा है, दायित्व है और अधिकार भी है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका अर्थ तो धनिकतन्त्रका प्रभुत्व है—यानी ९५ प्रतिशत आदमियोंके व्यक्तित्वका नाशकर मुट्ठी-भर धनिकोंका व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, जिसे शायद हम तब नहीं समझ पाए थे। पर उस समय हम यह भी समझ रहे थे कि पुरातन सामन्त-समाजमें, एकान्तवर्त्ती हमारे निम्न-मध्यवित्त परिवारमें, सब-कुछ केवल भूल और अन्याय ही नहीं है—उस जीवनके पक्षमें भी दो-एक बातें कही जा सकती हैं। जिन लोगोंने वास्तवमें उस समाजको देखा था, वे भी मनमें इस बातको जानते थे कि उसी समाजका एक व्यक्ति—हमारा ही एक आदमी—उसको अभिव्यक्त भी कर सकेगा। इसी परिस्थितिमें शरच्चन्द्रका उदय हुआ। साधारण पाठकोंने एक क्षणमें ही समझ लिया कि नए स्रष्टाका आविर्भाव हुआ है और वह नया स्रष्टा हमारा ही अपना आदमी है। यद्यपि बंगाली साहित्यिकोंकी त्यौरियाँ चढ़ गई थीं, फिर भी नवीन साहित्य-रचनाके इस अभ्रान्त परिचयसे उनके मनमें भी एक प्रकारका आनन्द पैदा हुआ था। पर इस आनन्दके बावजूद वे अपनी त्यौरियोंको उतार न सके।

शरच्चन्द्रके प्रथम आविर्भावसे ही बंगाली साधारण पाठक इतना उल्लसित हो उठे थे। जो बात कहनी थी, वही कही गई। सर्वप्रथम शरच्चन्द्रने कहा—नहीं, इस गलित बंगाली समाजमें भी मनुष्य हैं ; सुख है, दुःख है, क्षति है, वेदना है ; किन्तु मनुष्य फिर भी यहाँ स्थान पाता है, अपना विकास कर सकता है। 'हालदार-गोष्ठी'का बनवारीलाल यदि सामन्त-जीवनके कटघरेको तोड़-फोड़ बाहर न निकलता, तो वह अपना विकास नहीं कर सकता था। पर 'निष्कृति'के मुखुज्जे-परिवारके सब लोग एक साथ रहकर मनुष्य ही रह सके, यह क्या कम सत्य है ? किन्तु यह भी अर्द्धसत्य है। इसे हम भी जानते थे और शरच्चन्द्र भी जानते थे। जो बात हमारे प्राचीन समाजके पक्षमें कही जानी थी, उसका कहा जाना पूरा होते-न-होते शरच्चन्द्रकी घोषणा-वाणी ज्वलन्त अक्षरोंमें प्रकट हो गई। किन्तु उस समय भी उन्होंने सुधारवादियोंकी रटी हुई शब्दावलीमें प्राचीन समाज पर आघात नहीं किया, बल्कि एक क्रान्तिकारीके समान ही उन्होंने ज़बरदस्त आघात किया। 'पल्ली-समाज', 'अरक्षरणीया', 'चरित्रहीन', 'देवदास', 'श्रीकान्त' से 'गृहदाह' तक शरच्चन्द्रके विद्रोहकी धारा परिस्फुटित हो उठी थी। इसी समयके बीच रवीन्द्रनाथने भी अपनी नई कहानी ('गल्प सप्तक') लिखी थी, और श्रीयुक्त प्रमथ चौधरीने अपने 'सबुज पत्र' द्वारा बंगाली जीवनमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका चरम प्रचार करना चाहा था। उस प्रचारका प्रभाव हमारे साधारण पाठकोंपर कहाँ तक पड़ा था, हम नहीं कह सकते ; पर शरच्चन्द्रकी रचनाका जन-साधारणने पूर्णरूपसे अभिनन्दन किया था। इसका प्रधान कारण था उनकी साहित्य-रचना, जिसके जीवन्त नर-नारीको स्वीकार करनेके सिवा जन-साधारणके लिए कोई चारा न था। दूसरा कारण यह था कि पुराने समाजके प्रति हमारा कितना ही मोह क्यों न हो, हम यह भलीभाँति जानते हैं कि वह कितना गलित, कितना जीर्ण-

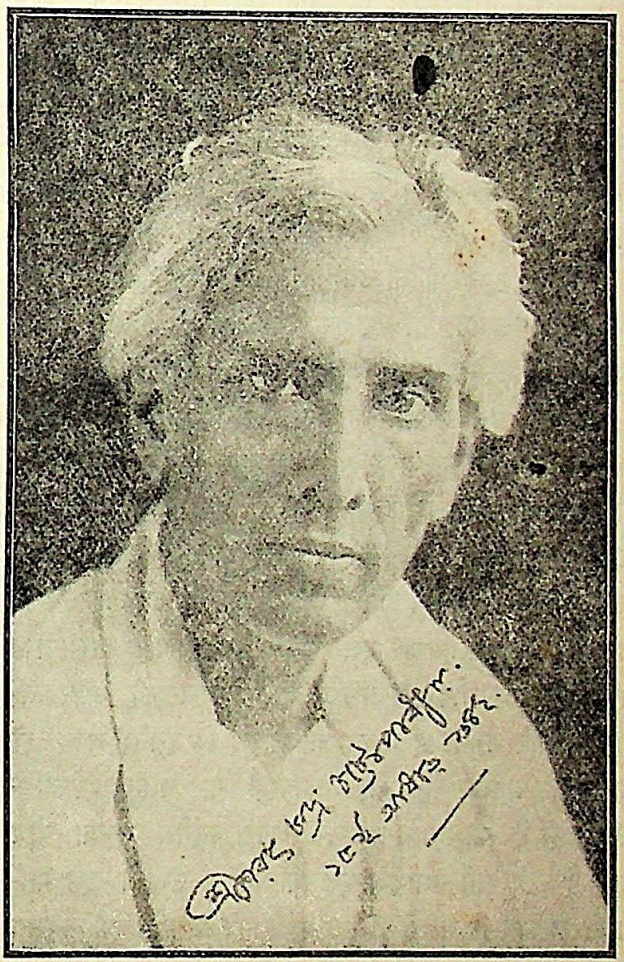

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

शीर्ण और कितना मिथ्या है ! फिर कार्यों और विचारोंमें आधुनिकताका एकबारगी बहिष्कार करना हम भी तो नहीं चाहते थे। हममें से बहुत-से समाजको अचलायतन समझते थे ; पर साथ ही हम मनुष्यके अधिकार और मनुष्यके रूपमें ही मनुष्यकी मर्यादा चाहते थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि दरअसल निम्न मध्यवित्त श्रेणीने ही पुराने समाजके असामंजस्यको ठीक-ठीक समझा था—भले ही उसकी यह धारणा रही हो कि उस पुराने समाजमें भी मनुष्यके विकासकी गुंजाइश है। यह कहनेके बाद उसकी आपत्ति समाप्त हो गई। इसके बाद ही उसने यह दावा किया कि इस प्राचीन समाजके असामंजस्यसे हमारा जो दम घुट

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहा है, क्या उसकी चर्चा भी न की जाय ? यही तो मूल सत्य है। शरच्चन्द्रने आगे बढ़कर जब इसीकी चर्चा की, तो साधारण पाठकोंने और भी सन्तोषकी साँस ली। पुराने समाजकी जो नीति और विन्यास है, उसमें आदमी रह किस प्रकार सकता है ? अपने साँचेमें ढाले गए समाजके साँचेमें मानो उसे स्वयं ढल जाना पड़ता है। बिजली कहींकी नर्त्तकी है, वह बदल कैसे सकती है ? चन्द्रमुखी तो पतिता है, वह पतिता ही रहेगी। और वह प्यारी, भला वह किस अधिकारसे राजलक्ष्मी होगी ? सावित्री मेसकी नौकरानी है, भला वह भी क्या प्रेम करनेका दावा करेगी ? अभयाके स्वामीने वेद-मन्त्रकी शक्तिको नहीं माना, तो क्या अभया भी उस पवित्र विवाह-बन्धनको शिथिल मान लेगी ? पुरुषको यद्यपि यह समाज कार्यतः कुछ स्वाधीनता अवश्य देता है, फिर भी उसके आदर्शके सामने देवदास, श्रीकान्त, सतीश, दिवाकर आदिमें से कौन खड़ा हो सकता है ?

यद्यपि सुधारवादी भी उस प्राचीन जीवन-यात्रा और जीवनादर्शपर वैसा आघात नहीं कर सके थे ; फिर भी निम्न-मध्यवित्त समाज उनके उस मामूली-से आघातको भी सहनेके लिए तैयार न था। फिर उसी समाजने शरच्चन्द्रके इस विद्रोहका स्वागत कैसे किया ? इसके दो कारण हम पहले ही बतला चुके हैं—पहला तो शरच्चन्द्रकी रचना-शक्ति और दूसरा निम्न-मध्यवित्त श्रेणीकी विद्रोहेच्छा और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एवं व्यक्ति-मर्यादाका बोध। इसके अतिरिक्त निम्न-मध्यवित्त समाज या साधारण पाठकोंका निकट सम्बन्ध भी इसका एक कारण था। वही शरच्चन्द्रका अपना दृष्टि-क्षेत्र और दृष्टि-वैशिष्ट्य था। शरच्चन्द्रकी उपस्थिति-मात्रसे हमारे मनमें यह भावना जाग्रत हुई कि हमने अपने ही आत्मीयको पा लिया है। वे अहमवादी या सुधारवादी साहित्यिक नहीं हैं, जो हमारे समाजको अपना कहनेमें लज्जा बोध करते हैं। वे इसी समाजके एक व्यक्ति हैं। उन्होंने इसे मन-प्राणसे स्वीकार किया है। उनका हमारे प्रति हार्दिक अनुराग है। उन्होंने हमारे मनको जीत लिया है। मनुष्य-हृदयपर विजय प्राप्त करनेके इस अस्त्रको लेकर ही शरच्चन्द्र उदित हुए थे। इसीसे उनके इस समाजको तोड़ने-फोड़नेके अधिकारको—अपने समाजके विरुद्ध विद्रोहके अधिकारको—कौन अस्वीकार कर सकता था ? बल्कि जिन लोगोंने इसे अस्वीकार करना था, साधारण पाठकोंने उन्हें ही अस्वीकार कर दिया। उनके द्वारा पतिता स्त्रियों और चरित्रहीन पुरुषोंको साहित्य-क्षेत्रमें सुरुचि और सुनीतिका परिचायक नहीं है, ऐसी भी धारणा है। इस विषयमें प्रतिगामी और सुधारवादी दोनों एक मत थे—सभी दलोंके नेताओंकी आँखोंके आगे करना अशुभ है और इसीसे अशोभन है। किन्तु हम उनकी बातपर कोई ध्यान ही नहीं दिया। शरच्चन्द्रका था—ये पतिता और चरित्रहीन स्त्री-पुरुष साहित्य-क्षेत्रमें क्यों होंगे ? इन्हें साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश करनेका अधिकार कारण, ये समाजके मनुष्य हैं ; जीवन-प्रवाहके संचरणशील हैं, जीवन-संग्रामके आहत, रक्ताक्त, क्षत-विक्षत मनुष्य हैं पर चढ़े हुए मनुष्य हैं ; और सबसे बड़ी बात तो यह है 'मनुष्य' हैं—सत्य-मिथ्या, भूल-भ्रान्ति, वेदन-आनन्दसे भरे मनुष्य। उन्होंने अपने हृदयके सारे प्रेमके साथ मनुष्य स्वीकार किया है। उन्होंने उसी पुरानी बातको है कि—

"शुनइ मानुष भाइ,
सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाइ।"

यही शरच्चन्द्रका दृष्टि-क्षेत्र था, और उनकी इसी दृष्टिको हम उनका दृष्टि-वैशिष्ट्य कह सकते हैं ; 'मनुष्यकार'की उन्होंने भी घोषणा की थी ; किन्तु पोथी बाँचकर और न बुद्धिसे विचार करके ही। 'व्यक्ति-सत्ता'के पक्षमें विद्रोह-घोषणा की थी। कारण, उन्होंने हृदयसे मनुष्यको था और मनुष्यके रूपमें उसके महत्व और उसकी समझा था। शरच्चन्द्र पोथी बाँचकर भी इसे नहीं समझे थे, ऐसी बात नहीं है। यदि 'नारीर मूल्य'पर ध्यान दिया तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि इस दिशामें उनकी काफ़ी क्षमता थी। किन्तु उन्होंने अपने स्वप्रेमके बलपर मानवता-बोधके विकासमें ही मनुष्यके इस उपलब्ध किया था, यह कहना ही ज़्यादा ठीक होगा।

गीत

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री

सिन्धु-मिलनकी चाह न उतनी, मुझको तो बहते जाना है।

दो पुलिनोंसे बँधकर भी कितनी स्वतन्त्र है जीवन-धारा ;
रोक रखेगी मुझको कब तक पत्थर-चट्टानोंकी कारा ?
अपनी तुंग तरंगोंका ही रहता इतना बड़ा भरोसा—
लौट-लौटकर मैं न देखता, मुझको तो बहते जाना है।

राह बनाकर बढ़ना पड़ता, इसीलिए रुक-रुक चलता
झुकना तो मेरा स्वभाव ; हाँ, कुछ चट्टानोंको खलता
आस-पासमें औरोंके मेरी भी एक धार लहराए
यह विचारनेकी कब फ़ुर्सत, मुझको तो बहते जाना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गांधी-योजना

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

यह युग योजनाओंका युग है। संसारमें नई-नई योजनाओं, प्लैनों व आर्थिक सिद्धान्तोंका बोलबाला है। लोग समझते हैं, शायद दुनियाके आर्थिक संकटोंका निवटारा इन्हीं 'योजनाओं' द्वारा हो जायगा, और फिर वे सुख और शान्तिकी नींद ले सकेंगे। किन्तु यह खयाल ग़लत है। केवल योजनाओं अथवा प्लैनोंके बलपर जगत्की समस्या हल न हो सकेगी। योजनाएँ साधन हैं, साध्य नहीं। दुनियाकी आर्थिक कठिनाइयाँ और समस्याएँ तभी हल हो सकेंगी, जब हमारे मूल विचार और जीवन-आदर्श भिन्न होंगे और हमारी ज़िन्दगीके सुखको नापनेवाले पैमाने दूसरे ही होंगे।

आज सभी आर्थिक योजनाओंका ध्येय 'जनताके रहन-सहनके तलको ऊँचा उठाना' रहता है। बेकारीके संकटको दूर करना उनकी सफलताका मापदण्ड गिना जाता है। यह सच है कि मनुष्यको जीवन-निर्वाहके लिए भोजन, वस्त्र, घर आदिकी ज़रूरत रहती है; मनोरंजन और आरामके लिए कुछ अन्य साधनोंकी भी आवश्यकता होती है। लेकिन यह भी सच है कि आदमी सिर्फ़ रोटीके बलपर ही ज़िन्दा नहीं रहता। शारीरिक और भौतिक उपभोगोंके अलावा उसे मानसिक और आध्यात्मिक भोजनकी भी ज़रूरत महसूस होती है। इस मूलभूत सत्यको हम भूल जाते हैं, और यही भूल हमारे जगत्के अनेक भीषण संकटोंकी जड़ है। पश्चिममें शारीरिक और भौतिक सुख और सम्पन्नताकी वृद्धि ही उन्नति और सफलताकी निशानी मानी जाती है। और इसी तरहके सुखी नागरिकोंका निर्माण करना आमतौरपर आर्थिक योजनाओंका आदर्श रखा जाता है। जर्मनी, अमरीका तथा इंग्लैण्डकी 'योजनाओं'का यही ध्येय रहा है। साम्यवादी रूसकी भी दृष्टि यही रही है। ऐश-आरामकी अधिक सामग्री प्रत्येक व्यक्तिको मिल सके, बस यही आर्थिक व्यवस्थाकी सफलता है।

लेकिन क्या यह सच है? क्या धन और शारीरिक सुख मनुष्यके आनन्दके मापदण्ड हैं? ऐसा ही हो, तब तो सभी अमीर सुखी हों और सभी ग़रीब दुखी। लेकिन दुनियामें धनिकोंको सुख कहाँ? उनको जितना ही धन और वैभव मिलता है, उतनी ही उनकी लालसा बढ़ती जाती है; उनको इन्द्रियोंको जितना भोग-विलास मिलता है, उतनी ही वे अधिक उत्तेजित होती जाती हैं। मृगतृष्णाकी तरह उनकी प्यास नहीं बुझती; वह बढ़ती ही जाती है। इसीलिए हमारे पूर्वजोंने इन्द्रियोंको वशमें रखनेका आदर्श हमारे सामने रखा था, न कि भोगका। इसलिए हिन्दुस्तानकी प्राचीन आर्थिक व्यवस्था और उसका आदर्श आजकी योजनाओंसे भिन्न था। भारतीय सभ्यताका आदर्श सादगी और श्रम था, न कि भोग और विश्राम। यही आदर्श आज फिर गांधीजी हमारे सामने दुहरा रहे हैं। वे चाहते हैं कि हमारे देशका आर्थिक संगठन भारतीय परम्पराके आधारपर हो, न कि विदेशी विचारोंकी बुनियादपर।

युद्धके बाद हिन्दुस्तानकी आर्थिक उन्नति और व्यवस्थाके लिए आज देशके सामने कई योजनाएँ हैं। एक तो हिन्दुस्तान-सरकारकी है, जो राजनीतिक ज़िचको भुलानेके लिए जनताके सामने पेश की जा रही है। युद्धोत्तर प्लैनोंकी चर्चामें फँसकर लोग सियासी मामलोंको भूल जायँ और लड़ाईके बाद ब्रिटेनके उद्योगोंके लिए हिन्दुस्तानमें अच्छा बाज़ार पैदा हो सके, यही सरकारी आर्थिक योजनाकी मन्शा है। और एक विदेशी सरकार के लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही है। आश्चर्य तो यह है कि सर आरदेशर दलाल-जैसे उद्योगपति सरकारके बहकावेमें आकर देशको और शायद अपने-आपको भी ग़लत रास्तेपर ले जा रहे हैं। खैर, जो हो, हमें यह स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि सरकारी आर्थिक योजनाएँ थोथी और बेकार हैं। उनका उद्देश्य देशका भला नहीं, पर-देशका भला करना है। युद्धके बाद ब्रिटेन और अमरीका हिन्दुस्तानको और अधिक व्यवस्थित ढंगसे चूसनेपर तुले हुए हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

दूसरी योजना भारतीय पूँजीपतियोंकी है, जो 'बम्बई-योजना'के नामसे मशहूर हो गई है। इसे 'टाटा-बिड़ला-प्लैन'के नामसे भी पुकारा जाता है। जिस समय देशके नेता सीखचोंके पीछे बन्द थे, इन उद्योगपतियोंने हमारे सामने हिन्दुस्तानकी आर्थिक उन्नतिके लिए एक योजना पेश की। यह बुरा नहीं हुआ। उन्होंने देशकी सेवा ही की और लोगोंका ध्यान आर्थिक समस्याओंकी ओर खींचा; लेकिन साथ-ही-साथ हमें यह भी क़बूल करना चाहिए कि 'बम्बई-योजना'का मुख्य ध्येय जनता-जनार्दनकी सेवा नहीं, बल्कि पूँजीपतियोंकी उन्नति है। इस प्लैनका केन्द्र-बिन्दु उद्योगपति है, न कि ग़रीब किसान; इसका ज़ोर धनपर है, जनपर नहीं। कृषि और ग्रामोद्योगोंका इसमें ज़िक्र अवश्य है; लेकिन यह एक दिखावा-जैसा ही है। कुदरतन उद्योगपतियोंकी दिलचस्पी बड़े पैमानेके उद्योग-धन्धोंके बढ़ानेमें ही हो सकती है। इसीलिए वे इन दिनों मोटरकी कम्पनियाँ जारी करनेमें व्यस्त हैं। वे इंग्लैण्ड और अमरीका जाकर कारखानोंके लिए मशीनोंका आर्डर देनेकी फ़िक्रमें हैं। उनसे कृषककी आर्थिक उन्नतिके कार्यमें लग जानेकी आशा करना ही व्यर्थ है। जब मैंने जेलमें पहली बार बम्बई-योजनाके बारेमें अखबारोंमें पढ़ा, तो काफ़ी खुशी हुई; किन्तु गहराईसे पढ़नेके बाद निराशा जाहिर हुई। उम्मीद थी कि शायद दूसरे भागमें, जो क़रीब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक साल बाद प्रकाशित हुआ है, कुछ अधिक सन्तोषजनक सिद्धान्त और आदर्श देखनेको मिलेंगे ; पर दूसरा खण्ड भी विभिन्न विचारोंकी एक अधपकी खिचड़ी-सी है, जो असानीसे हज़म होने लायक नहीं। इस तरहके 'पूँजीवादी साम्यवाद'से हमारा काम नहीं चल सकेगा।

तीसरी योजना एम० एन० रायकी है, जिसका नाम 'पीपल्स प्लैन' याने 'जन-योजना' है। यह योजना साम्यवादके सिद्धान्तोंके आधारपर बनाई गई है। कई दृष्टियोंसे यह 'बम्बई-योजना'से अच्छी है। इसमें कृषिकी ओर अधिक ध्यान दिया गया है। उद्योगोंको पूँजीवादी ढंगसे बढ़ानेके बजाय उनका राष्ट्रीयकरण किया जाय, ऐसा इस प्लैनमें सुझाया गया है। किन्तु यह योजना जनताके सामने ज़्यादा आगे न आ सकी। पता नहीं, उसकी अधिक चर्चा क्यों नहीं हुई। शायद एम० एम० रायकी बदनामीकी वजहसे उनकी योजनाकी ओर भी लोगोंने विशेष ध्यान नहीं दिया।

जैसा कि शुरूमें कहा गया है, इन सभी योजनाओंका मूल आधार भौतिक सुख ही है। इनका आदर्श पाश्चात्य सभ्यता है, भारतीय संस्कृति नहीं। ये सब हमें उसी दिशामें ले जाना चाहती हैं, जिधर आजकी दुनिया पागल-सी बनी भयंकर खड्डमें गिरकर नष्ट हो जानेके लिए तेज़ीसे दौड़ी जा रही है। संसारको शान्ति और न्यायकी बुनियादपर फिरसे बनानेका काम इस ढंगसे नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमें नए आदर्शोंको ढूँढ़ना और अपनाना होगा। एक वक्त था, जब गांधीजीके आर्थिक विचारोंका मखौल उड़ाया जाता था और कहा जाता था कि उनके खयाल अव्यावहारिक और सनकी हैं, जिनकी बिनापर कोई ढाँचा खड़ा नहीं किया जा सकता। लेकिन पिछले कुछ वर्षोंमें जो अनुभव दुनियाको हुए हैं, उनके कारण अब लोगोंका रुख गांधीवादकी ओर दिन-दिन झुक रहा है और यह महसूस किया जा रहा है कि शायद गांधीजीके आदर्श ही संसारको एक ऐसी आर्थिक योजना दे सकें, जो स्थायी शान्ति और सुखकी नींव डाल सके। पश्चिमके कई अर्थशास्त्रियोंने गांधीजीके विचारोंका समर्थन किया है और राय ज़ाहिर की है कि गांधीजी बीसवीं शताब्दीके पीछे नहीं, बल्कि आगे हैं।

ऐसे समय, जब कि देशमें आर्थिक योजनाओंकी ज़ोरोंसे चर्चा हो रही है और इन विषयोंपर जनताके विचार बन रहे हैं, मैंने उचित समझा कि गांधीजीके विचारोंको भी लोग अच्छी तरह समझ लें। इसी खयालसे मैंने 'गांधी-योजना' (Gandhian Plan) को तैयार किया और देशके सामने रखा है। आमतौर पर लोगोंका खयाल है कि गांधीजीने खादी और ग्रामोद्योगोंके अलावा राष्ट्रके दूसरे कई आर्थिक पहलुओंपर विचार ही नहीं किया है। लेकिन यह धारणा ग़लत है। मेरी 'गांधी-योजना' पुस्तकसे यह साफ़ ज़ाहिर होगा कि गांधीजीने देशके आर्थिक पहलुओंपर चिन्तन किया है, भले ही अभी तक सब विषयोंपर लिखा न हो। मैंने गांधीजीके सिर्फ़ सारे लेख नहीं पढ़े, बल्कि उनसे कई घंटे चर्चाएँ भी कीं, और वाणिज्य, मुद्रा, बुनियादी उद्योग, बैंकिंग, जन-संख्या, कर आदि सभी मुद्दोंपर उनके खयाल जान लिए। इस तरह 'गांधी-योजना'में शायद पहली बार गांधीजीके आर्थिक विचारोंका चित्र जनताको दिखलाई देगा। इस योजनामें कोई भी बात अछूती नहीं रही है।

'गांधी-योजना' भारतीय संस्कृतिकी बिनापर खड़ी की गई है। उसके आदर्श वर्त्तमान अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंसे अलग हैं। उसके चार आधार-स्तम्भ हैं—सादगी, अहिंसा, शरीर-श्रम, गौरव और मानव-मूल्य। उसका मूलमन्त्र है विकेन्द्रीकरण। उसका मूल सिद्धान्त है स्वयंपूर्णता और स्वावलम्बन। 'गांधी-योजना'का केंद्र-बिन्दु किसान है, इसलिए सबसे अधिक ज़ोर खेतीको दिया गया है। उपज बढ़ानेकी समस्या, ऋण का सवाल, भूमि-करकी नई व्यवस्था, सहकारी खेती—इन विषयोंपर विचार किया गया है। कृषिके बाद ग्रामोद्योगोंके आवश्यकतापर ज़ोर दिया गया है। रोज़मर्राकी ज़िन्दगी जितनी चीज़ोंकी ज़रूरत पड़ती है, वे जहाँ तक मुमकिन हो गाँवोंमें ही छोटी कलों और औज़ारोंके ज़रिए बना ली जायँ तो आर्थिक शोषणकी जड़ ही कट जाय और पूँजीवाद स्वाभाविक ढंगसे अन्त हो जाय। ग्रामोद्योगोंका संगठन सहकारी समितियों द्वारा किया जाय, ताकि पूँजीपतियोंको पनपने न रहे। देशकी आर्थिक रचनामें बिजली, यातायात, लोहे-कोयलेके धन्धे आदि बुनियादी उद्योगोंको भी उचित स्थान दिया गया है। लेकिन यह बिल्कुल साफ़ कर दिया गया है कि यह सब राज्य द्वारा ही संचालित किए जायँगे, पूँजीपतियों द्वारा नहीं। उनकी व्यवस्था राष्ट्र-हितके लिए की जायगी, न कि धनी लाभके लिए। 'गांधी-योजना'में शिक्षा, स्वास्थ्य, अन्न आदिका भी समावेश किया गया है। शिशु-शिक्षा, बुनियादी शिक्षा, माध्यमिक और उच्च औद्योगिक शिक्षापर विचार हुआ है। राष्ट्रके स्वास्थ्यको उठानेके लिए अस्पतालोंके इन्तज़ामके साथ देशी खेलों और अखाड़ोंके महत्वपर भी ज़ोर दिया गया है। एलोपैथीके बजाय आयुर्वैदिक और यूनानी चिकित्सा, होमियोपैथी, बायो-केमिस्ट्री और प्राकृतिक चिकित्साको उत्तेजन देने भी सिफ़ारिश की गई है।

विकेन्द्रित उद्योगीकरण, जो 'गांधी-योजना'का मुख्य अंग है, केवल गांधीजीकी कल्पना और खब्त नहीं है। दुनियाके अधिकांश अर्थशास्त्रियोंके विचार इसी ओर झुके हैं। जर्मनी और इटलीमें, जहाँ फासीवादका बोलबाला

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सारे उद्योग बड़े पैमानेपर युद्धकी तैयारी करनेके हेतुसे चलाए गए। लोगोंकी बेकारी ज़रूर दूर हुई; लेकिन उसकी जगह जनताका गला घुट गया और उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता काफ़ूर हो गई। सोवियत् रूसमें भी साम्यवादी सिद्धान्तोंकी नींवपर देशका व्यापक आर्थिक संगठन किया गया। बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे राज्य द्वारा चलाए गए और जनताके रहन-सहनका तल ऊँचा उठाया गया; लेकिन वहाँ भी पूँजीपतियोंकी जगहपर राज्यके मैनेजरोंका ज़ुल्म जारी हुआ और नागरिक स्वतन्त्रताको ठेस पहुँची। सत्ताके केन्द्रीकरणका यही अभिशाप है।

औद्योगिक विकेन्द्रीकरण कई दृष्टियोंसे उपयोगी और वांछनीय है। उसमें व्यक्ति-स्वतन्त्रता तो क़ायम रहती ही है; साथ ही मनुष्य एक विशाल यन्त्रका छोटा-सा पुर्ज़ा बन जानेके बजाय अपने व्यक्तित्वको ज़िन्दा रख सकता है। एक फैक्टरीका ग़ुलाम बन जानेकी जगह वह अपने गृह-उद्योगका मालिक बन सकता है। इसके अलावा स्वास्थ्यके खयालसे भी गृह-उद्योगोंको फैलानेकी आवश्यकता है। हेनरी फोर्ड-जैसे मशहूर उद्योगपतिकी राय है कि छोटे पैमानेपर चलनेवाले विकेन्द्रित उद्योग केन्द्रित उद्योगोंकी तुलनामें सस्ते भी पड़ते हैं। भला फिर बड़े कारखानोंके धुएँसे लदे वातावरणमें क्यों काम किया जाय? आज मज़दूर कम घंटे काम करनेकी माँग इसलिए पेश नहीं करते कि श्रम बुरी चीज़ है, बल्कि इसलिए कि आधुनिक कारखानोंमें मज़दूरी करना नरक-जैसा है। वे लोहेकी मशीनोंके साथ काम करते-करते खुद मशीन बन जाते हैं और शारीरिक ह्रासके साथ-साथ उनकी मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक अवनति भी हो जाती है। राष्ट्रीय संरक्षणकी दृष्टिसे भी अब विकेन्द्रीकरण आवश्यक बन गया है, क्योंकि बड़े-बड़े केन्द्रित कारखाने आसानीसे बमोंके शिकार बन जाते हैं। मिसालके लिए आजकी दशामें बम्बई और अहमदाबादकी कपड़ोंकी मिलोंको थोड़े बमोंसे बरबाद करके दुश्मन देशको करीब नंगा बना सकता है। इस युद्धसे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई है। इसी वजहसे जापान, जर्मनी वग़ैरह अपने उद्योगोंको छोटे पैमानेपर गाँव-गाँवमें फैलानेकी कोशिश कर रहे हैं। चीनने शुरूसे ही ऐसा किया। अपने सहकारी उद्योग-धन्धोंकी व्यवस्थाके कारण वह शक्तिशाली जापानसे सफलताके साथ लोहा ले सका; नहीं तो कभीका मटियामेट हो जाता। अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिकी दृष्टिसे भी औद्योगिक विकेन्द्रीकरण हितकर है, क्योंकि फिर पारस्परिक आर्थिक शोषणकी गुंजाइश नहीं रहती। जो वस्तु जहाँ पैदा की जाती है, वह वहीं या आस-पास खप जाती है। दूसरे देशोंको जीतकर वहाँ अपना माल बेचनेकी चिन्ता नहीं रहती। विशाल केन्द्रित उद्योगोंकी व्यवस्थामें साम्राज्यवादके अंकुर तो रहते ही हैं, फिर वह साम्राज्यवाद भले ही 'साम्यवादी' हो। रूस क्या साम्राज्यवादकी ओर दिन-दिन नहीं बढ़ रहा? यह स्वाभाविक ही है। और साम्राज्यवादके गर्भमें युद्ध और हिंसा तो छिपे ही हैं!

'गांधी-योजना'का आदर्श ग्राम्य सभ्यता है। गांधीजी चाहते हैं कि हिन्दुस्तानकी प्राचीन ग्राम-पंचायतें या ग्राम-संघ फिरसे स्थापित किए जायँ। हाँ, आधुनिक कालको देखते हुए उनके नए और पुराने रूपमें कुछ अन्तर तो होगा ही। लेकिन ग्राम-संघ आदर्श लोकतन्त्र थे; उनमें हरएक नागरिकका एक-दूसरेसे सीधा सम्पर्क था। प्रत्येक ग्राम-संघ लगभग स्वयंपूर्ण था। वह अपनी भोजन, वस्त्र, मकान इत्यादिकी ज़रूरतें खुद पूर्ण कर लेता था। जो चीज़ें वहाँ पैदा ही नहीं हो सकतीं, उन्हें ही बाहरसे मँगाना और जो वस्तुएँ ज़रूरतसे ज़्यादा वहाँ पैदा हो सकतीं, उन्हें ही बाहर भेजता था। खेतोंसे लगे हुए उनके छोटे कारखाने और गृह-उद्योग रहते थे, जहाँ वे अपने फ़ुरसतके समयमें काम करते थे। लोगोंका जीवन सादा, किन्तु आनन्दमय था। वे खुली हवामें मेहनत करते और अपनी रोज़ी पाकर सन्तुष्ट हो, ईश्वरका भजन करते। उनका शारीरिक, मानसिक और नैतिक जीवन स्वस्थ और शान्त था। उनके जीवनमें कला थी, प्रेम था, सहानुभूति थी, आह्लाद था। वे अपने घरके मालिक थे और अपने श्रमके पसीनेसे रोटी खाते थे। वे स्वावलम्बी थे, स्वतन्त्र थे और अपनी साधारण आवश्यकताओंके लिए किसीके मुहताज न थे। उनमें आत्म-सम्मान था, आत्म-विश्वास था। यह ग्राम-संघ हज़ारों वर्षों तक जीवित रहे। साम्राज्य आए और गए; पर इनका संगठन न टूटा। अंगरेज़ोंने इनकी नींव ही खोद डाली और उनका ढाँचा तहस-नहस कर डाला। इस तरह अपने स्वार्थके लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनीने हिन्दुस्तानकी ऐसी सभ्यता मिट्टीमें मिला दी, जो दुनियामें शायद सबसे पहले भारतवर्षमें पनपी और सबसे अधिक समय तक यहीं ज़िन्दा रही।

लोग कहते हैं कि इस तरहकी ग्राम-पंचायतोंका फिर संगठन करना प्रगतिका मखौल उड़ाना होगा, उलटी गंगा बहना होगा; लेकिन यह खयाल ग़लत है। यह ग्राम-संघ दुनियासे अलग नहीं रहेंगे। उनका सम्बन्ध, तहसील, ज़िले, प्रान्त और सारे देशसे रहेगा और चाहें तो विदेशोंसे भी। पर यह सम्बन्ध सांस्कृतिक और सामाजिक होगा, न कि आर्थिक और भौतिक। अपनी दुनियाको व्यापक बनानेके यत्नमें हम इतने झगड़ों और संघर्षोंमें फँस गए हैं कि मर-मिटनेकी नौबत आ पहुँची है। हम छोटे लोग हैं, इसलिए अपनी-अपनी छोटी दुनियामें ही रहें, तो कोई हर्ज़ नहीं, फायदा ही होगा। यह सब विचार कोरी भावनासे भरे नहीं हैं। इनके पीछे तर्क है, विज्ञान है, अनुभव है। आज हम भले गांधीजीके आदर्शोंको न समझें या समझनेकी कोशिश न करें; लेकिन अब समय आ गया है, जब कि दुनियाको इस ओर ध्यान देना ही होगा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection; Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दक्षिण-अफ्रीकामें श्वेतांग-नीति

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

यूरोप और एशिया महाद्वीपोंमें अभी लड़ाईकी आग बुझने भी नहीं पाई कि दक्षिण-अफ्रीकामें चमड़ेके रंगकी लड़ाई छिड़ गई! इस महायुद्धके जो सूत्रधार और संचालक छप्परसे गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे कि इस प्रलयंकर युद्धके साथ-साथ पुरातन विश्वका भी अन्त हो जायगा और एक नवीन संसारकी सृष्टि होगी, जिसमें मानव-साम्य, स्वाधीनता, लोकतन्त्र और बन्धुत्वका विकास होगा एवं प्रकाश फैलगा; आज वही युद्धमें सफलता पानेपर अपने उन सिद्धान्तों और घोषणाओंकी छातीपर नात्सी और फाशिस्त मनोवृत्तियोंका खुला प्रदर्शन कर रहे हैं, जिसे देखकर दुनिया दंग है। यूरोपमें बेल्जियम, इटली और यूनान-निवासियोंको विन्सटन चर्चिल स्वभाग्य-निर्णय, लोकतन्त्र एवं स्वाधीनताका सबक सिखा रहे हैं और दक्षिण-अफ्रीकामें जान क्रिश्चियन स्मट्स भारतीयोंको 'गौरवर्ण-श्रेष्ठता-धर्म'पर ईमान लानेके लिए विधान बना रहे हैं। जिन लोगोंने अपने सरल स्वभावके कारण एटलाण्टिक-सनद और उसके सूत्रधारों एवं व्याख्याकारोंके वचनपर विश्वास कर लिया था और जिनकी यह धारणा बन गई थी कि इस युद्धकी समाप्तिके साथ ही वर्ण-विभेद—गोरे-पीले-भूरे-काले रंगोंका भेद-भाव—भी मिट जायँगे तथा संसारमें मानव-स्वतन्त्रता, समानता, शान्ति और सद्भावका नया युग आरम्भ हो जायगा, दक्षिण-अफ्रीकामें जनरल स्मट्सकी काली करतूतोंको देखकर उनकी भी आँखें खुल गईं। ब्रिटिश कामनवेल्थके सच्चे समर्थक और प्रचारक माननीय श्रीनिवास शास्त्रीको भी अभी उस दिन मद्रासकी एक भरी सभामें हताश होकर कहना पड़ा कि यदि दक्षिण-अफ्रीकाके जनरल स्मट्स और उनकी सरकारका यही रवैया रहा, तो हिन्दुस्तानको लाचार होकर कामनवेल्थसे बाहर अपने लिए कहीं स्थान ढूँढ़ना पड़ेगा। इसपर श्री पोलकने विलायतके 'मैंचेस्टर गार्जियन'में परिताप प्रकट करते हुए लिखा है कि माननीय शास्त्री-जैसे ब्रिटिश कामनवेल्थके पक्के हिमायतीका यह निराशापूर्ण हृदयोद्गार दक्षिण-अफ्रीकाके वर्ण-विद्वेषकी प्रतिक्रिया है और चमड़ेके रंगके आधारपर ऊँच-नीच मानना तो नात्सियोंका सिद्धान्त है, मित्र-राष्ट्रोंका नहीं।

पर पोलक साहब खूब जानते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यमें वर्ण-विभेदकी बदौलत प्रवासी भारतीयोंके साथ जैसा अपमानजनक वर्त्ताव होता है, वैसा संसारमें और कहीं नहीं। नात्सी और फाशिस्त तो अभी चन्द सालके बच्चे हैं, उनके भी गुरुघण्टाल हैं जनरल स्मट्स, जो करीब पैंतीस सालसे श्वेतांग-श्रेष्ठता-धर्मका प्रचार कर रहे हैं और अपने अदम्य उत्साहके कारण इस धर्मके मसीहा बन गए हैं। पिछले महायुद्धके पश्चात् वर्सईकी शान्ति-परिषदमें जब जापानने संसारसे वर्ण-विभेद उठा देनेका प्रस्ताव किया, तो उसके विरोधियोंके मुखिया बने थे यही स्मट्स। दक्षिण-अफ्रीकामें प्रवासी भारतीयोंके साथ जो वर्त्ताव उन्नीसवीं सदीके अन्तसे हो रहा है, उसीकी फुल तो यहूदियोंके साथ हिटलरने की। यहूदियोंपर अत्याचार कारण संसार हिटलरपर धिक्कारोंकी बौछार कर रहा है श्वेतांग-श्रेष्ठता-धर्मके मसीहा, ब्रिटिश साम्राज्यवादके स्तम्भ और मित्र-राष्ट्रोंके अग्रनेता जनरल स्मट्सकी वर्ण-नीतिकी निन्दा करनेका भला कौन दुस्साहस कर सकता उनकी गणना तो नवीन विश्वके निर्माताओंमें हो रही है। जब जनरल स्मट्स विश्व-शान्ति, विश्व-बन्धुत्व और विश्व निर्माणपर व्याख्यान झाड़ते हैं, तब-तब मुझे उनकी धृ घृणाकी हँसी आए बिना नहीं रहती है। उनके मुँहसे उ शब्दोंका उच्चारण वैसा ही मज़ाक मालूम पड़ता है, जैसे शैतानके मुखसे बाइबिलका पाठ। स्मट्स साहब धूर्त्त तो ह साथ ही वचन देकर मुकर जाना उनके बाएँ हाथका खेल महात्मा गांधीके साथ उन्होंने बार-बार विश्वासघात स्वर्गीय माननीय गोखलेको भी धोखा देकर छकाया और हर्टजोगके साथ ऐसी दगाबाजी की कि दक्षिण-अफ्रीकाका सूत्र भी उनके हाथसे चला गया। अब फिर नेटाल कांग्रेसको अपने छलका शिकार बनाकर उन्होंने यह सिद्ध दिया कि ज़मानेका रंग-ढंग भले ही बदल गया हो; पर स्वभावमें कोई अन्तर नहीं आया है।

सन् १९४३ के प्रारम्भमें स्मट्सने यूनियन-पार्ल 'पेगिंग-एक्ट' पास कराया, जिसका नतीजा यह निकला डरबन नगरमें गोरोंके मुहल्लोंमें ज़मीन-मकान खरीदना बसना भारतीयोंके लिए वर्जित हो गया। इससे दक्षिण-अफ्रीकाके ही नहीं, इस देशके भारतीयोंमें भी बड़ा क्षोभ और असन्तोष फैला। इस युद्धके ज़मानेमें, जब कि भारतीय सैनिकोंने अफ्रीकाकी रक्षाके लिए अपने शोणितकी सरिता बहा दी दक्षिण-अफ्रीकाके गौरांगोंको अभय-दान देकर निश्चिन्त कर जनरल स्मट्सकी तरफ़से उन्हींके प्रवासी बन्धुओंको पुरस्कार दिया गया! इस घटनासे भारतीय अपनी दासता और परवशताका ऐसा कटु अनुभव हुआ, पहले कभी नहीं हुआ था। महासभा और लीग, सावरकर जिन्नाने घरेलू मतभेद भुलाकर एक साथ विरोधकी उठाई। देशमें एक ओरसे दूसरे छोर तक दक्षिण-अफ्रीकाके श्वेतांगोंके प्रति घृणा और क्रोधका भाव फैल गया। सरकार भी लोकमतका रुख देखकर कुछ चुलबुलाई तो पर अपने मालिककी मर्ज़ीके खिलाफ़ कुछ करना-धरना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तिसे बाहरकी बात ठहरी। उसके आक़ा चर्चिल और एमरीने मौन साधनेमें ही कल्याण समझा, क्योंकि गुलाम भारतके अपमानके लिए स्मट्सको नाराज़ करना उस ब्रिटिश साम्राज्यके लिए कैसे उचित होगा, जिसकी रक्षा और अभिवृद्धिके लिए आज भी उनकी ज़रूरत है! जिस ब्रिटिश सरकारने ट्रांसवालमें भारतीयों के अपमानका बहाना बनाकर बोअर-प्रजातन्त्रके विरुद्ध सन् १८९९ में युद्धकी घोषणा की थी, उसी सरकारके सूत्रधार आज अपने ही साम्राज्यमें भारतीयोंपर दिन-दहाड़े अत्याचार होते हुए देखकर भी आँखें बन्द कर लेते हैं और चूँ तक नहीं करते! इंग्लैण्डके पतनकी यह पराकाष्ठा है। जिस ब्रिटिश साम्राज्यके सम्बन्धमें चर्चिल बड़े अभिमानसे फरमाते हैं कि उनके मन्त्रित्व-कालमें उसका दिवाला नहीं निकलने पायगा, उसी साम्राज्यको दफ़नानेके लिए स्मट्सकी काली करतूतोंसे गहरी क़ब्र तैयार हो रही है। पर चर्चिलकी आँखोंपर ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है कि वे इस सत्यको देख नहीं पाते।

चर्चिल और एमरी भले ही चुप्पी साध लें; पर मानवतापर ऐसा क्रूर प्रहार होता देखकर संसारके विचारशील व्यक्ति और ईमानदार पत्रकार कैसे खामोश रह जाते? विश्वके कोने-कोनेसे स्मट्सपर लानतकी बौछारें होने लगीं। जहाँ वे शान्तिके देवदूत बने हुए थे, वहाँ उनको विश्व-शान्तिका शत्रु कहा जाने लगा। दुनियामें स्मट्सको मुँह दिखाना मुश्किल हो गया। लोकमतकी फटकारसे वे बेज़ार हो उठे। साउथ-अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेसके डेपूटेशनसे उन्होंने यह कहकर मिलनेसे इन्कार कर दिया कि चूँकि यह कांग्रेस मुझे विश्वमें बदनाम करती है, अतएव इसके शिष्ट-मण्डलसे मिलना और बातचीत करना मुझे पसन्द और मंज़ूर नहीं। इससे संसारका लोकमत और भी उत्तेजित हो उठा और उनकी इस दुर्वृत्तिपूर्ण स्वेच्छाचारिताकी सर्वत्र कटु आलोचना होने लगी। आखिर स्मट्सका मिजाज़ कुछ ठिकाने आया और जहाँ प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने साउथ-अफ्रीकन इण्डियन कांग्रेसके शिष्ट-मण्डलसे मिलनेसे इन्कार कर दिया था, वहाँ नेटाल इण्डियन कांग्रेसके अधिकारियोंको स्वयं निमन्त्रण देकर प्रिटोरिया बुलाया और डोमिनियन-परिषदमें भाग लेने इंग्लैण्ड जानेसे पहले चटपट उनसे एक समझौता भी कर लिया, जो 'प्रिटोरिया-एग्रिमेण्ट'के नामसे मशहूर हुआ। समझौतेकी मुख्य शर्तें यह थीं कि नेटालकी प्रान्तिक कौंसिल एक आर्डिनेन्स पास करेगी, जिसके अनुसार एक पंचायत-बोर्ड बनेगा। इस बोर्डके दो गोरे और दो भारतीय सदस्य होंगे और सभापति होगा क़ानूनका जानकार कोई सरकारी नौकर। यदि कोई भारतीय गोरोंके मुहल्लेमें ज़मीन खरीदकर बसना चाहेगा, तो अर्ज़ी देनेपर यह बोर्ड वहाँकी स्थितिकी जाँच करेगा। यदि उस मुहल्लेके गोरे निवासी विरोध करेंगे, तो भारतीयकी अर्ज़ी नामंजूर हो जायगी, अन्यथा उसको वहाँ बसनेकी इजाज़त मिल जायगी। यदि कोई भारतीय गोरोंके इलाक़ेमें ज़मीन-मकान खरीदकर उसमें खुद रहना नहीं चाहता, प्रत्युत किराएपर गोरोंको ही रखनेके लिए मकान बनाना चाहता है, तो उसके लिए कोई रोक-टोक न होगी। यद्यपि ये शर्तें स्वीकार करना मानो स्वेच्छापूर्वक पृथक्करणका सिद्धान्त स्वीकार करना ही था और प्रवासी भारतीयोंके एक दलने इस समझौतेका घोर विरोध भी किया; परन्तु नेटाल इण्डियन कांग्रेसने इस विकट परिस्थितिका अन्त लानेके लिए श्वेतांगोंको सन्तुष्ट करना ही श्रेयस्कर समझा और बहुमतसे समझौतेपर स्वीकृतिकी मुहर लगा दी।

उधर स्मट्स तो कलंककी कालिख धो साफ़ सूरत लेकर विलायत गए, इधर नेटालके गोरोंने भारतीयोंके विरुद्ध और भी उग्र आन्दोलन आरम्भ कर दिया। नेटालकी प्रान्तिक कौंसिल बैठी। एक आर्डिनेन्स पास हुआ, जो स्मट्सके समझौतेके नितान्त प्रतिकूल है। पेगिंग-एक्ट जहाँ केवल डरबनपर लागू होता है, वहाँ यह आर्डिनेन्स सारे नेटालपर लागू किया गया। इसके अमलमें आनेपर भारतीय किसी भी हालतमें ज़मीन नहीं खरीद सकेंगे--किरायेपर गोरोंको देनेके लिए भी मकान नहीं बनवा सकेंगे। इस आर्डिनेन्सका उद्देश्य यही है कि भारतीयोंको अपनी बस्तीसे बाहर और कहीं हाथ-पाँव पसारनेका अख्तियार न होगा। इस आर्डिनेन्सके सिवा दो और आर्डिनेन्स (The Natal Housing Board Ordinance No. 23, 1944, and Provincial and Local Authorities Expropriation Ordinance No. 26, 1944.) पास किए गए, जिनका साफ़ मतलब यह है कि सरकार या म्युनिसैलिटी जहाँ चाहेगी, मनमाना दाम देकर भारतीयोंसे ज़मीन हड़प लेगी। इस प्रकार एक तो भारतीय नई ज़मीन खरीदनेके अधिकारसे वंचित हुए और दूसरे उनकी खरीदी हुई पुरानी ज़मीनपर भी दखल-कब्ज़ा कर लेनेका अधिकार प्रान्तिक और स्थानीय सत्ताधारियोंको प्राप्त हो गया।

इन अत्याचारमूलक आर्डिनेन्सोंसे प्रवासी भारतीयोंपर मानो अकस्मात वज्रपात हो गया। वे अकारण इस निर्मम प्रहारसे मर्माहत और विचलित हो उठे। पर उनकी आशा भंग नहीं हुई। उनको पक्का विश्वास था कि जनरल स्मट्स अपने समझौतेसे टलेंगे नहीं। परन्तु जब स्मट्स विलायतसे विश्वको मानव-बन्धुत्व और सुख-शान्तिका पैग़ाम सुनाकर लौटे, तो नेटाल इण्डियन कांग्रेसके नेताओंने उनसे मिलकर सारा मामला उनके सामने पेश किया और उन्हींसे न्याय और निर्णय करनेकी प्रार्थना की। अतएव स्मट्सको विवश होकर फैसला करना पड़ा कि नेटालकी प्रान्तिक कौंसिलने जिस रूपमें आर्डिनेन्स पास किया है, उससे प्रिटोरिया-समझौता निश्चय ही भंग होता है, इसलिए वे गवर्नर-जनरलको सलाह देंगे कि इस आर्डिनेंसको मंसूख कर दिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाय। इसके सिवा और कुछ करने-धरनेको वे तैयार नहीं हुए। इस हालतमें पेगिंग-एक्ट पूर्ववत् चालू रहेगा। कांग्रेसकी यह प्रार्थना कि इसके सिवा अन्य दोनों आर्डिनेन्स भी रद्द हो जाने चाहिएँ, स्मट्सने ठुकरा दी और साफ़ कह दिया कि अफ्रीकनोंके लिए वे अनिवार्य हैं! पेगिंग-एक्टको रद्द करानेके अभिप्रायसे ही भारतीय कांग्रेसने स्मट्ससे प्रिटोरिया-समझौता किया था और समझौता हो जानेपर स्मट्सने तत्क्षण भारतके वाइसराय लार्ड वेवलको तार देकर खुशीका इज़हार करते हुए विश्वास दिलाया था कि अब भारतीयोंकी समस्या सफलतापूर्वक हल हो जायगी, जिससे उभय पक्षको पूर्ण सन्तोष होगा। पर नेटालके गोरोंका रुख देखकर स्मट्स भी चौकड़ी भूल गए और फिर श्वेतांग-नीतिका नंगा नाच दिखाने लगे।

जब पेगिंग-एक्ट पास होनेपर दक्षिण-अफ्रीका और भारतमें हल्ला-गुल्ला मचा, तो स्मट्स और उनकी सरकारने एक इण्डियन जुडिश्यल कमीशन चुना, जिसके सभापति जस्टिस ब्रूम बनाए गए और दो भारतीय सदस्य भी मनोनीत किए गए। इस कमीशनको यह काम सौंपा गया कि भारतीयोंके प्रश्नके सभी पहलुओंकी जाँच-पड़तालकर उनके स्थायी निपटारेके लिए सम्मति और सुझाव दे। पर मज़ेकी बात तो यह हुई कि एक ओर कमीशनकी जाँच हो रही थी और दूसरी ओर नेटालकी प्रान्तिक कौंसिलमें भारतीयोंके विरुद्ध धड़ाधड़ तीन आर्डिनेन्स पास हो रहे थे! इसलिए कमीशनका महत्व एक हास्यजनक दिखावेके सिवा और क्या रहा? इस स्थितिमें मैंने अपने सहकर्मी भाई मुहम्मद जादवतके साथ कमीशनके भारतीय सदस्य श्री ए० आई० काजी और श्री एस० आर० नायडूको तार देकर कमीशनसे इस्तीफ़ा दे देनेके लिए बलपूर्वक अनुरोध किया, और सन्तोषकी बात है कि वे फौरन कमीशनसे यह कहकर अलग हो गए कि जब कमीशनकी रिपोर्ट निकलनेसे पहले ही कई भारतीय-विरोधी क़ानून बन रहे हैं, तो अब कमीशनकी ज़रूरत ही क्या रही?

स्मट्सने केवल एक आर्डिनेन्स (The Resident Property Regulation Ordinance) को रद्द मंजूर किया है; पर उसकी जगहपर पेगिंग-एक्ट तो चालू है। शेष दो आर्डिनेन्स (The Natal Housing Bord Ordinance, and the Provincial and Local Authorities Expropriation Ordinace) प्रवासी भारतीयोंको भिखारी बना देंगे। भारतीय सदस्योंके इस्तीफ़ा दे देने भी स्मट्सने ऐलान कर दिया है कि इण्डियन जुडिश्यल-कमीशन की जाँच जारी रहेगी। इसका मतलब यह हुआ कि विशुद्ध कमीशनकी रिपोर्टमें यदि गोरोंके हितकी कोई बात होगी, उसपर अमल होगा ही। वहाँके हाई-कमिश्नर सर रज़ा अहमदखांने डरबनमें अपनी विदाईकी सभामें भाषण देते कहा कि अभी संकटोंकी समाप्ति नहीं होने पाई है और कई और भी कड़े क़ानूनोंकी सृष्टि होनेवाली है। उन्होंने भारतीयोंको यह भी आश्वासन दिया है कि शीघ्र ही भारत स्वतन्त्र होगा और आज़ाद हिन्दुस्तान उनके दुःख-दर्द दूर करने में कोई बात उठा नहीं रखेगा। पर वर्त्तमान भारत-सरकार इस सम्बन्धमें क्या करेगी, इसका कुछ पता नहीं है। यद्यपि भारत केन्द्रीय धारा-सभाकी पिछली बैठकमें सर्वानुमतसे दक्षिण-अफ्रीका के विरुद्ध व्यापारिक प्रतिबन्ध लगानेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और डा० खरेने ऐसा उग्र भाषण दिया था कि दक्षिण-अफ्रीकी गोरोंमें खलबली मच गई थी; पर आज तक वह प्रस्ताव अमलमें नहीं आया, और अभी पिछले महीने असेम्बलीमें डा० खरेने जो रोना रोया है, उससे स्पष्ट है कि भविष्यमें भी उसके अमल होनेकी कोई आशा नहीं।

विश्व-ज्योति गांधी

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

साम्राज्यवाद, तानाशाही, हिंसा, पूँजीवादी शोषण,
रण-मद, आडम्बर, वर्ग-द्वेष, भय, दमन, असत्य, द्वेध-जीवन,
कटु वर्ण-भेद, बहु सम्प्रदाय, कितना विष, कितना वैर-भाव,
कितनी आपसकी रक्त-तृषा, कितना धोखा, कितना दुराव,
सात्त्विक जीवनपर व्यंग्य, हाथके उत्पादनका तिरस्कार,
श्रमके प्रति कुत्सित भाव, भोगकी लिप्साका अतिशय प्रसार,
पर-स्वत्व-हरण, छल, छूत-छात, दुर्दम्य घृणा, अति-निर्यातन,
आसुरी शक्तियोंकी सेना, बल, वैभव, बुद्धि, शस्त्र, साधन,
कितनी पशुता, कितना कल्मष, कितने दल-के-दल घिरे उधर;
तू इधर अकेला, अभय, नम्र, सत्याग्रहके बलपर निर्भर!
घनघोर घटाएँ तूफ़ानी, अन्धड़, उत्पात अनन्त प्रबल,
तेरा सबसे संघर्ष अथक, तेरा प्रतिपल है धैर्य अचल!

तू शान्त साधनाका दीपक, अक्षय तेरा, निर्मल प्रकाश
तू उरकी धड़कन दलितोंकी, शोषित मनुजोंकी प्राण-श्वास
हिंसा-असत्य भी सह्य जिन्हें, ऐसे भी कुछ आदर्शवाद
था विश्व प्रयोगोंमें उनके अब तक उलझा! कितना प्रमाद
वे सब आपसमें टकराकर अब हुए जा रहे शक्तिहीन
उनके विनाशपर, नव-जगकी मानवता जागेगी नवीन
तू उस आशाकी रेखाके जीवित विश्वासोंका प्रतीक
जगका पथ होगा वही, जिसे तू अब तक कहता रहा ठीक
सब-कुछ खो चुकनेवालोंकी तू फिर सब पानेकी आशा
तुझसे ही अब समता सीखें आचरण, विचार और भाषा
तेरे प्रकाशमें जग पाए वह तत्त्व सत्य, शिव, चिर-सुन्दर
जो मानवताको भारतका हो सर्वोत्तम उपहार अमर!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. .....3.0.0.4.....

भारत क्या निरक्षर ही रहेगा ?

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

युद्धोत्तर-कालकी योजनाएँ बन रही हैं। १९४४ में असेम्बली के वसन्त-अधिवेशनमें भाषण करते हुए लार्ड वेवलने युद्धोत्तर-कालिक योजनाओंमें पहला स्थान पथ-योजनाको और तीसरा स्थान शिक्षाको दिया था। साक्षरताको वे ज़रूरी समझते हैं; पर उससे पहले सड़कोंका बनना आवश्यक समझते हैं। भारत-सरकारके तत्वावधानमें शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर सर सार्जेण्ट द्वारा बनाई गई शिक्षा-योजना उनके सामने थी; पर उस योजनाको पूरा करनेके लिए वे आवश्यक धनका देशमें अभाव पाते हैं। इसके लिए इससे पहले पथ-योजना और कृषि-उन्नति-योजनाको पूर्ण करना आवश्यक समझते हैं। मगर वास्तविक प्रश्न तो यह है कि जब सार्जेण्ट-योजना ४० सालके बाद अपने पूर्ण मूर्त्त रूपमें आयगी, तब भी क्या भारत शत-प्रतिशत साक्षर होगा और शिक्षाकी दृष्टिसे अन्य उन्नत तथा सभ्य देशोंके समकक्ष होगा?

युद्धोत्तर-कालिक प्रस्तावित सार्जेण्ट-योजना संक्षेपमें इस प्रकार है—६ से १४ साल तककी उमरके सब बालक-बालिकाएँ निःशुल्क और बाधित बुनियादी शिक्षा पाएँ। इस शिक्षापर राष्ट्रका वार्षिक व्यय २०० करोड़ रु० होगा। यह दो भागोंमें विभक्त की गई है। जूनियर बुनियादी शिक्षा पाँच सालकी ६ से ११ सालके बच्चोंके लिए होगी। इसके बाद प्रति पाँचमें से एक हाई स्कूलकी शिक्षाके लिए चुना जायगा और शेष चार सीनियर बुनियादी स्कूलमें तीन साल और शिक्षा पायँगे। यद्यपि पाँचमें से एक छात्र हाई स्कूलमें पहुँचेगा; पर हाई स्कूलोंमें पढ़नेवाले छात्रोंकी संख्या वर्त्तमान आबादीके हिसाबसे ७२॥ लाख होगी, जो आजकी अपेक्षा सात गुनी होगी। हाई स्कूलका पाठ्य-क्रम छः सालका होगा और वह आजके जूनियर इण्टरमीडिएट तकका होगा। हाई स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेके बाद १५ में से एकके लिए कालेजकी शिक्षाकी व्यवस्था होगी और निम्नतम डिग्री पानेके लिए तीन साल लगेंगे। टेकनिकल हाई स्कूलों द्वारा टेकनिकल या यान्त्रिक शिक्षा दी जायगी, और मशीनमैन और मिस्त्री इनमें से लिए जायँगे। प्रतिवर्ष २५००० छात्र और तीन साल उच्च श्रेणीके टेकनिकल स्कूलोंकी शिक्षा लाभ करेंगे। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयोंमें भी पेशोंकी शिक्षा दी जायगी।

जब सम्पूर्ण योजना व्यवहारमें आयगी, तो २२ लाख शिक्षकोंकी ज़रूरत होगी। इनमें से जूनियर बुनियादी स्कूलोंके लिए १२ लाख, सीनियर बुनियादी स्कूलोंके लिए ६ लाख और हाई स्कूलोंके लिए ४ लाख शिक्षक ज़रूरी होंगे। इन शिक्षकोंकी शिक्षापर प्रतिवर्ष ४॥ करोड़ रु० खर्च होगा। जूनियर बुनियादी स्कूलमें शिक्षकका औसतन वेतन ४२॥ रु० प्रतिमास होगा। इससे ऊपर सीनियर बुनियादी स्कूलके अस्नातक शिक्षकका औसतन वेतन ६१॥ रु० प्रतिमास होगा और स्नातक शिक्षकका वेतन ११८·७ रु० होगा। देहातोंमें शिक्षाका काम करनेवाले शिक्षकोंको निवास-स्थान दिया जायगा। मकान न देनेपर वेतनका १० प्रतिशत भत्ता दिया जायगा। प्रारम्भिकसे पहले और जूनियर बुनियादी स्कूलोंमें स्त्री-शिक्षकोंको तरजीह दी जायगी।

निरक्षरता दूर करनेके लिए वयस्क-शिक्षाकी व्यवस्था की गई है। निरक्षरता २० सालमें दूर होगी और इसपर प्रतिवर्ष ३ करोड़ रु० व्यय होगा। योजनामें अन्धों, बहरों और विक्षिप्तोंको भुलाया नहीं गया है। सारी योजना पूर्ण विकास और व्यवहारमें ४० सालके अन्दर आयगी। इस योजनापर पहले पाँच सालोंमें प्रतिवर्ष १० करोड़ रु० व्यय होगा और वह बढ़ता-बढ़ता ४० सालोंमें ३१२ करोड़ रु० हो जायगा। इसमें से सरकारी आयमें से २७७ करोड़ रु० आयगा।

एक राष्ट्रको साक्षर बनानेके लिए आधी सदीसे अधिकका समय भी पर्याप्त न माना जाय, यह माननेको हम तैयार नहीं हैं। एक राष्ट्रको साक्षर बनानेके लिए एक पीढ़ीका समय बहुत अधिक समझना चाहिए। राष्ट्रको साक्षर बनानेके लिए उस समय तक प्रतीक्षा की जाय, जब तक कि प्रथम श्रेणीका ट्रेनिंग स्कूल और कालेज न हो, शिक्षाको व्यवस्था और प्रबन्धके लिए फेडरल पब्लिक कमीशन द्वारा भरती किए गए प्रबन्धक और व्यवस्थापक न हों, यह बड़ी अजीब-सी बात है। सार्जेण्ट-योजनाके अनुसार आधी सदीके बाद भारतके अधिकांश बच्चे १४ वर्षकी उम्रमें स्कूलकी पढ़ाई समाप्त कर रहे होंगे; पर उस समय शेष सभ्य संसार हमसे आगे होगा और १८ वर्षकी आयु तकके बच्चोंको निःशुल्क और बाधित शिक्षा दे रहा होगा। ब्रिटेनने युद्धोत्तर-कालिक शिक्षा-योजनामें १८ वर्ष तककी उम्रके बच्चोंको बाधित और निःशुल्क शिक्षा देनेकी व्यवस्था रखी है। इसलिए सभ्य देश उस अवस्थामें पहुँचनेके लिए आधी सदी इन्तज़ार नहीं करेंगे। पिछले विश्व-युद्ध से पहले ज़ार-युगमें रूसके अन्दर ३ प्रतिशत व्यक्ति विश्वविद्यालयकी शिक्षा पा रहे थे। पर सार्जेण्ट-योजनाके अनुसार चलनेपर ४० सालके बाद भी भारतीय आबादीका, प्रिन्सिपल श्रीराम शर्मा की गणनाके अनुसार, ·०५ प्रतिशत ही विश्वविद्यालयकी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकेगा। भारत इस योजनाका अनुसरण करके सभ्य देशोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर न चल सकेगा।

दूसरी बात यह है कि आज एक बालक और बालिका ६ सालकी उम्रमें विद्याभ्यास प्रारम्भ करनेपर साधारणतः २० सालकी उम्रमें स्नातक व स्नातिका हो जाते हैं; पर सार्जेण्ट-योजनाके अनुसार ३२ सालकी उम्रके पहले स्नातक न हो सकेंगे। इसका

CC-0. Jangamawadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri

अर्थ है कि माँ-बापको एक बच्चेके लालन-पालनका भार उस समय तक उठाना पड़ेगा और उच्च शिक्षा उस समय आजसे भी अधिक महँगी और बोझिल होगी। इससे उच्च शिक्षाकी प्रगतिमें भारी बाधा पहुँचेगी। इस देशके शासक पर्याप्त समयसे उच्च शिक्षाकी ओर वक्रदृष्टिसे देख रहे हैं। क्या यह योजना उसी सरकारी नीतिका परिणाम है?

भारत-जैसे देशके लिए शिक्षा-योजना ऐसी होनी चाहिए, जो सरल हो, जिससे विशाल और बिखरी आबादी उसको अपना सके; सर्वाभौम हो, जिससे जनताके सब वर्ग उसका लाभ उठा सके; और भारतकी आवश्यकता एवं परम्पराके अनुकूल हो। बुनियादी शिक्षाको दो भागोंमें बाँटने और छात्रोंका पंचमांश हाई स्कूलमें भेजनेसे सीनियर बुनियादी स्कूलकी उपयोगिता नष्ट हो जायगी। ऊँची शिक्षाका लाभ पानेवाले अपनेको ऊँचे वर्गका समझेंगे और शेष अपनेको निम्न और हीन वर्गका। यह हीनताकी छाप उनके जीवनपर सदा लगी रहेगी। इस प्रकार समाजमें विद्यमान वर्ग-भेद और बढ़ेगा। शेष चतुर्थांश छात्रों और उनके संरक्षकोंका भी शिक्षामें कोई रस न रहेगा। ऐसी अवस्थामें ८६ करोड़ रु० समाजके अधिकांश भागपर हीनताकी छाप लगानेके लिए व्यय करना क्या समुचित होगा?

रिपोर्टमें यह भी कहा गया है कि बुनियादी शिक्षासे पहले की शिक्षा गाँवोंमें सम्भव नहीं है। अतः उसका कहना है कि इस कालको भी जूनियर बुनियादी शिक्षामें शामिल कर लेना चाहिए। वस्तुतः योजकोंने इस बातपर तो ध्यान रखा है कि १४ सालसे पहले बच्चा कामपर न जायगा; पर उन्होंने यह नहीं सोचा कि १४ सालकी उम्रमें हाई स्कूलकी शिक्षा आरम्भ करने में बहुत देर हो जायगी। इस उम्रमें कालेज़ी शिक्षाका भी आरम्भ नहीं किया जा सकता। साथ ही यह भी खयाल करना चाहिए कि ४० सालके बाद भी यह देश कृषि-प्रधान रहेगा और १२ सालके बच्चेके वास्ते खेतपर काम करना या फैक्टरी-स्कूलमें आधे समय शागिर्दी करना बुरा न होगा। इसलिए बुनियादी शिक्षाका आरम्भ बच्चेकी पाँच सालकी अवस्थासे करना चाहिए और यह सबके लिए समान भावसे बाधित रहनी चाहिए। इसके दो भाग करनेकी ज़रूरत न होनी चाहिए। दूसरे हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि हाई स्कूल तककी शिक्षा सब बच्चोंको निःशुल्क और बाधित रूपसे दी जाय। दिल्ली, लाहौर, कलकत्ता, बम्बई-जैसे बड़े शहरों और प्रान्तोंकी राजधानियोंमें यह अविलम्ब जारी होनी चाहिए।

सार्जेण्ट-योजनाके पुरस्कर्त्ता श्रमको सम्भवतः बहुत उच्च दृष्टिसे नहीं देखते। अन्यथा वे आम शिक्षा और टेकनिकल शिक्षा इन दो भागोंमें शिक्षाको नहीं बाँटते। यह बुर्ज़ुआ मनोवृत्तिका परिचायक है। भविष्य दक्ष और निपुण व्यक्तियों और श्रमियोंके हाथमें है। इसलिए जापानके समान इस देशमें स्कूल पास छात्रके लिए प्रत्येक क्षेत्रमें किसी-न-किसी हुनरमें और निपुण होना चाहिए। बाधित सैनिक शिक्षाके समान न एक शिल्प व कलाकी शिक्षा भी बाधित होनी चाहिए। सार्जेण्ट-योजनामें सैनिक शिक्षाका भी अभाव है। देहातोंमें पालन, बागवानी, डेरी, फल-संरक्षण, गृह-उद्योग आदि पाठ्य-क्रममें रखे जा सकते हैं। रेशमके कीड़े पालना, बनाना, मधुमक्खी पालना, बेंतका सामान बनाना, खिलौने आदिके देहातोंके स्कूल केन्द्र हो सकते हैं। शहरोंके लिए औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा दी जा सकेगी। हाई पास करनेपर प्रत्येक छात्रके लिए उस स्थितिमें जीवन-क्षेत्रमें करने और विश्वविद्यालयोंमें दाखिल होनेके दोनों मार्ग रहेंगे। हम तो यह चाहते हैं कि बुनियादी स्कूलोंकी भी शिल्प-कला और विभिन्न उद्योगोंकी शिक्षाको स्थान जाय, जिससे बड़े होनेपर बालक आसानीसे अपने लिए स्थान बना सके और आत्म-निर्भर हो सके। यदि नाक्स एक अमीरका लड़का होनेके बावजूद अपनी व्यय अखबार बेचकर चला सकता था और इसमें अनुभव करता था, तो कोई वजह नहीं कि हमारे देशके भी बचपनसे ही आत्म-निर्भरताका पाठ क्यों न पढ़ें और शिक्षाके लिए माँ-बापसे खर्च लेना लज्जाजनक मानें।

उच्च शिक्षाको उच्च टेकनिकल शिक्षासे भी सर्वथा करना युक्तिसंगत नहीं है। हमारे विश्वविद्यालयोंको छात्रको पेशेकी शिक्षा लेने और उच्चकोटिकी खोजका देना चाहिए। राष्ट्रके बौद्धिक विकास और औद्योगिक दृष्टिसे दोनोंका सम्मिलन आवश्यक है।

सार्जेण्ट-योजना शिक्षकोंके ट्रेण्ड होनेपर बहुत ज़ोर है। वह प्रतिवर्ष एक लाख शिक्षकोंको ट्रेण्ड करेगी। लोग होंगे, जो विश्वविद्यालयकी शिक्षासे वंचित रहेंगे। प्रकार हीनताकी छाप-युक्त शिक्षक क्या छात्रोंके मनमें भी की छाप न बिठायँगे? भारतमें गुरुओंकी जो प्रतिष्ठा है, समाजमें जो आदर है और उनके अपने विषयके पाण्डित्य धाक है, उसको बनाए रखनेके लिए यह आवश्यक है कि से छोटी श्रेणीको पढ़ानेवाला शिक्षक उच्चकोटिका विद्वान आज भी हाई स्कूलोंमें संस्कृतके शिक्षक एम० ए० की अपने विषयका अधिक विद्वान होता है। यदि प्रारम्भिक लयोंके लिए शिक्षककी यह योग्यता अधिक समझी जाय, तो किया जा सकता है कि हाई स्कूलके अन्तिम दो सालोंमें विषयको ऐच्छिक विषयके रूपमें रख दिया जाय। शिक्षकके मनपर हीनताकी छाप न बैठेगी।

इस योजनामें एक और दोष है। शिक्षाका विषय

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रान्तिक है। केन्द्रीय सरकारका उसपर नियन्त्रण नहीं है। यह योजना पुनः गंगा-प्रवाहको उलटना चाहती है। विश्वविद्यालयों और टेकनिकल शिक्षाको प्रान्तोंसे ले लिया गया है और प्रान्तोंकी सान्त्वना के लिए उनको ज़िला-बोर्डोंसे लेकर बाधित शिक्षाकी व्यवस्थाका भार दिया गया है। बाधित शिक्षाकी सफलताके लिए जन-उत्साह आवश्यक है। जन-उत्साह ही जन-सहयोगको उत्पन्न करेगा। इसके अभावमें बाधित शिक्षा सफल नहीं हो सकती। क़ानून अकेला इसकी सफलताकी गारण्टी नहीं कर सकता। अधिनायकत्व भी बाधित शिक्षाको सफल नहीं बना सकता, यदि उसके पीछे जन-बल और जन-सहयोग न हो। केन्द्रीय गवर्मेण्ट द्वारा प्रचुर राशिमें विश्वविद्यालयोंको दी गई ग्राण्ट भी उनपर से प्रान्तिक सरकारके नियन्त्रणको हटा न सकेगी। फलतः दोनोंमें संघर्ष होगा। ऐसी अवस्थामें योजना कैसे सफल होगी ? इससे स्पष्ट है कि योजनाको सफल बनानेका जो मार्ग चुना गया है, वह ठीक नहीं है और न ही सफलताका मार्ग है।

सारी योजना ४० सालमें पूरी होगी। इसका अर्थ है कि सीढ़ी-ब-सीढ़ी बाधित शिक्षाका क्रमिक विस्तार होगा। यानी बाधित शिक्षा सारे प्रान्तमें एक साथ शुरू न होगी, बल्कि दारूबन्दी और महात्मा गांधीकी बुनियादी शिक्षाके समान प्रान्तके कुछ चुने हुए स्थानोंपर प्रारम्भ होगी। इस प्रकार बाधित शिक्षाके लिए देशव्यापी तो दूर रहा, प्रान्तव्यापी उत्साह भी उत्पन्न न होगा, और जिन ज़िलोंको निःशुल्क बाधित शिक्षाका लाभ न मिलेगा, उनको भी उसका खर्च देना होगा तथा कर-भार सहना होगा। जो माता-पिता बाध्यताके आतंकसे बचना चाहेंगे, वे उस स्थानको छोड़कर दूसरे स्थानको चले जायँगे। ऐसा भी सम्भव है कि कुछ प्रदेश लगातार तीस साल तक कर-भार सहते रहें और उनको इस योजनाका लाभ न मिले। योजनासे अधिक आवश्यक चीज़ योजनाके प्रति जनतामें उत्साह का होना है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि रिपोर्टमें माना गया है, सामाजिक न्यायकी दृष्टिसे कुछ स्थानोंमें बच्चोंको बाध्य करना संगत नहीं है। यही नहीं, यह भी स्वीकार किया गया है कि केवल कुछ जगहोंको चुनना कठिन होगा और राष्ट्रके कुछ बच्चोंको सुविधा देने तथा कुछको न देनेके औचित्यका समर्थन नहीं किया जा सकता। फिर भी योजकोंने योजना इसीके आधारपर बनाई है।

बम्बई-योजनामें निःशुल्क और बाधित शिक्षाकी पन्द्रहवर्षीय योजनाके लिए २३७ करोड़ रु० आवर्त्तक और २६७ करोड़ रु० अन्तर्वर्त्तक व्यय रखा गया है। दूसरी ओर सार्जेण्ट-योजनाने ३१२ करोड़ रु० वार्षिक व्यय रखा है। सार्जेण्ट-योजनाने व्यय ज़्यादा कूता है। प्रारम्भिक स्कूलोंके शिक्षकोंका प्रारम्भिक वेतन ३०-४० रु० न रखकर ४२·५ और ६१·३ रु० रखा गया है। हाई स्कूलोंमें वेतन ४०-७० रु० से बढ़कर ६१·५ और ११८·६ रु० हो जाता है। यदि योजना अविलम्ब जारी की जाय, तो खर्चमें एक-तिहाईकी कमी की जा सकती है और योजना-व्यय २०८ करोड़ रु० रह जायगा। शिक्षकोंके वेतनके अलावा 'अन्य व विविध व्यय'के मदमें बड़ी राशि लिखी गई है। जब शिक्षकोंके वेतनमें कमी हो गई है, तो इसी अनुपातमें उसमें भी कमी अपने-आप हो जायगी।

सार्जेण्ट-योजनामें खर्च ज़्यादा दिखाया गया है। इंग्लैण्ड (युद्ध-पूर्व) में शिक्षकके औसतन वेतन और भारत (४० साल बाद) के शिक्षकके वेतनके बीच अनुपात ९ : १ होगा ; पर प्रति व्यक्ति शिक्षा-व्ययका अनुपात ४ : १ होगा। २०८ करोड़ रु०से ६२ करोड़ रु० प्रबन्ध, ग्राण्टको कायम रखने, युवा-आन्दोलन, डाक्टरी निरीक्षण आदिके लिए रखा गया है। प्रबन्धके लिए ११ करोड़ रु० ज़्यादा है, यह कहनेकी ज़रूरत नहीं है। इससे आधेमें काम चल सकता है। नर्सरी स्कूलके लिए ३ करोड़ और युवा-आन्दोलनके लिए १ करोड़ रु० रखा गया है। यह अनावश्यक है। यह ग़ैर-सरकारी संस्थाओंके लिए छोड़ा जा सकता है। इसी तरह वयस्क-शिक्षाका ३ करोड़ रु० और रोज़गार-ब्यूरोका ६० लाख रु० भी अलग किया जा सकता है। वयस्क-शिक्षाका भार ग़ैर-सरकारी संस्थाओंपर डालना चाहिए। रोज़गार-ब्यूरोका व्यय श्रम-विभागपर या आम शासनपर डाला जा सकता है। इनको अलग करनेके बाद योजना-व्यय १९४७०००००० रु० रह जाता है।

सार्जेन्ट-योजनामें मितव्ययिताका ध्यान नहीं रखा गया है, यह एक और बातसे भी स्पष्ट है। इसका आदर्श प्राग्-युद्ध-काल का इंग्लैण्ड है। इंग्लैण्डमें एक वर्गमें ४० या इससे अधिक छात्रोंके लिए एक शिक्षक उचित माना जा सकता है ; पर भारत में हमें जूनियर बुनियादीमें ३० छात्रोंपर, सीनियर बुनियादीमें २५ छात्रोंपर और हाई स्कूलमें २० छात्रोंपर एक शिक्षक रखना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि योजना-निर्माताओंका ध्येय भारतमें शिक्षा-प्रसार नहीं है, अपितु शिक्षाको शोभाकी चीज़ बनाए रखना है। शिक्षकोंकी संख्या कम होनेसे शिक्षकोंके वेतनमें एक-तिहाई (६ करोड़ रुपए) की कमी हो जायगी और शिक्षकोंका वेतन कम करनेकी भी ज़रूरत न होगी। यदि शिक्षा-प्रसारकी दृष्टिसे शिक्षकोंके वेतनकी वर्त्तमान दरको क़ायम रखा जाय, तो १०४ करोड़ रु० की पहले दिखाई गई कमीको बनाए रखनेपर अविलम्ब निःशुल्क बाधित शिक्षा जारी करनेमें कोई कठिनाई नहीं रहती। निःशुल्क बाधित शिक्षा जारी करनेका कुल व्यय १३२ करोड़ रु० रह जाता है। आजकल शिक्षापर ३० करोड़ रु० व्यय होता है, जिसमें से १७ करोड़ रु० सरकारी कोषसे और १३ करोड़ रु० अन्य स्रोतोंसे आता है। अतः और ११९ करोड़ रु०की ही व्यवस्था करनी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निःशुल्क और बाधित शिक्षा अविलम्ब जारी करनेके उत्साहमें कुछ लोगोंका विचार है कि विपुल व्ययके भयसे सबके लिए सम्भव न हो, तो कन्याओंके लिए फ़िलहाल वह जारी न की जाय और बीस साल तक उनके लिए रुका जाय ; क्योंकि उनके माता-पिताओंकी ओरसे भी भारी विरोध होनेकी सम्भावना है। इससे योजना-व्ययमें ५०-६० करोड़ रु० की कमी भी हो जायगी। यह प्रस्ताव प्रतिगामी ही नहीं, बल्कि राष्ट्रकी प्रगतिमें बाधा देनेवाला और भारतको बीस साल पीछे ले जानेवाले भी है। स्त्री माँ, बहन, पुत्री और पत्नीके रूपमें जो गहरा और व्यापक प्रभाव डालती है, उसको देखते हुए बालकोंसे पहले बालिकाओंका शिक्षित होना आवश्यक है। यदि माँ शिक्षिता होगी, तो न बालक निरक्षर रहेगा और न पति ही। बच्चोंके ज्ञानका मापदण्ड ऊँचा करने, उनका मानसिक विकास विस्तृत करने और शिशुओंका साधारण ज्ञान बढ़ानेके विचारसे भी कन्याओंकी बाधित शिक्षा बालकोंसे अधिक ज़रूरी है। संस्कृति और सभ्यताका आधार स्त्री है। अतः उसको बाधित शिक्षाको कुछ काल रोके रखनेका अर्थ देशकी प्रगतिको रोके रखना है।

सार्जेण्ट-योजनाको क्रियात्मक रूप देनेमें सरकारकी दृष्टिमें वास्तविक बाधा आवश्यक धनकी कमी नहीं, बल्कि ट्रेण्ड शिक्षकोंकी विशाल सेना है। हम इस पक्षमें नहीं हैं कि जब तक ट्रेण्ड शिक्षकोंकी विशाल सेना तैयार न हो जाय, इस योजनाको रोक दिया जाय। वैसे यदि प्रबल इच्छा हो, तो आवश्यक संख्यामें ट्रेण्ड शिक्षक तैयार करना कठिन नहीं है। जब भारतकी सेना पाँच गुनी दसगुनी बढ़ गई और उन डिविज़नोंका निर्माण हो गया, जिनका पहले अस्तित्व तक न था, तो निरक्षरताके विरुद्ध प्रबल युद्ध करनेके लिए भी उतनी ही जल्दी ट्रेण्ड शिक्षकोंकी सेना तैयार की जा सकती है। उनकी शिक्षाका काल घटाया जा सकता है। रूस, अमरीका और ब्रिटेन बाधित और निःशुल्क शिक्षा प्रचलित करनेके लिए ट्रेण्ड शिक्षकोंकी सेना तैयार करनेको नहीं रुके और न उसकी प्रतीक्षा ही की। फिर भारत ही क्यों उस समयकी बाट जोहता रहे ? जब तक सारे भारतमें एक साथ एक ही समय निःशुल्क और बाधित शिक्षा आरम्भ न होगी, देशमें पूर्ण सफलताके लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न न होगा। जनतंत्रको दृढ़ आधारपर स्थापित करनेके लिए निरक्षरताको दूर करना आवश्यक है, अतः इसको प्रारम्भ करनेमें विलम्ब करना आत्मघात होगा।

चक्करदार चोरी

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

उस दिन बड़ी गर्मी थी। कितने वर्ष पहलेकी बात लिख रहा हूँ ; फिर भी मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उस दिन गर्मी थी। ग्रीष्म-ऋतुके आरम्भमें गर्मी होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। तो भी मैं अन्य दिनोंको छोड़कर आज उसी एक दिनकी बात लिख रहा हूँ, क्योंकि उस दिन असिताने···।

पर कहानी आरम्भ करनेसे पहले मुझे प्रस्तावनाके रूपमें बहुत-कुछ कहना है। बात यह है कि यह बिल्कुल कहानी ही नहीं है। इसे यदि मैं चाहूँ, तो अपने जीवनकी एक सच्ची घटना कह सकता हूँ ; पर इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें जो बातें हैं, वे सब सच हैं। सच पूछा जाय, तो न यहाँ कभी चक्करदार चोरी हुई और न यहाँ किसी बालिकाने मुझे अपने साथ लेकर उस चोरीका पता ही लगाया। फिर भी इस घटनाको मैं अपने जीवन की एक घटना समझता हूँ, क्योंकि बाह्य-जगत्की घटना न होने पर भी वह मेरे अन्तर्जगत्की घटना है। संसारमें जो घटनाएँ घटती हैं, वे ही एकमात्र सत्य नहीं हैं। मेरे लिए तो संसारकी कोई घटना तभी सत्य होगी, जब उसका प्रभाव मेरे जीवनपर पड़ेगा। यदि यह बात नहीं है, तो कैसी भी असाधारण घटना क्यों न हो, मेरे लिए उसका कुछ भी महत्त्व नहीं है। उसीकी सत्यताके लिए मैं व्यग्र नहीं हूँगा। पर जो मेरे मनकी बात उसे यदि मैं झूठ कहूँ, तो फिर सच किसे कहूँगा ?

मैं अब ५२ सालका हो गया हूँ। भिन्न-भिन्न स्थानों भटक-फिरकर, भिन्न-भिन्न लोगोंके साथ रहकर, भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंको अतिक्रमणकर मैं अब अपने गाँवमें मास्टर गया हूँ। स्कूलमें मास्टर होनेके कारण अब मुझे केवल बालकों और बालिकाओंके बीच ही रहना पड़ता है। यहाँ आकर मैं ऐसी स्थितिका अनुभव करने लगा हूँ, मानो अब मेरे जीवन गति ही अवरुद्ध हो गई है, मानो अब मुझे जीवनमें अग्रसर ही नहीं होना है। स्कूल-मास्टरके जीवनमें तो वैसे ही शान्ति रहती है, फिर खैरागढ़ एक ऐसी जगह जहाँ जीवन-संग्राम विकट नहीं है। सुख-दुख, यश-अपयश हानि-लाभ सभीको हम लोग यहाँ चुपचाप सह लेते हैं। भावोंकी प्रचण्डता है और न कर्म-शक्तिकी क्षिप्रता। जो लोग नगरके प्रचण्ड प्रवाहमें पड़कर कर्मोंके भीषण आवर्त वेगका अनुभव कर चुके हैं, उन्हें इस ग्राम्य जीवनकी मन्थर से बड़ा आश्चर्य और खेद होता है। यह अवसाद, यह शिथिलता यह अकर्मण्यता, यह जीवन्मृत्यु, यह सन्तोषयुक्त शान्ति उन्हें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

कर देती है ; पर मुझे इसी जीवनसे एक आन्तरिक तृप्ति होती है। यह सच है कि छात्रोंमें भी कितने ही उद्दण्ड होते हैं, कितने ही उच्छृंखल होते हैं, कितने ही उत्पात करते हैं। उनके कारण मैं भी कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी क्रुद्ध होता हूँ और कभी उनकी भर्त्सना भी करता हूँ। पर यह अवस्था क्षणिक होती है। विद्या के इस व्यवसायमें मानसिक अशान्ति और उद्वेगके लिए स्थायी स्थान नहीं है। जहाँ बुरे लड़के होते हैं, वहाँ अच्छे लड़के भी तो होते हैं। यहीं मैंने विजय, बदरी, सूरज, गुलाब, कुसुम आदिको पढ़ाया है और आजकल अनूप, कृष्ण, नमिता, असिता और इन्दुको भी पढ़ा रहा हूँ। स्कूलका जीवन सदैव उल्लासमय ही रहता है। संसारकी बड़ी-बड़ी घटनाएँ अन्य स्थानोंको भले ही विक्षुब्ध कर दें ; पर यहाँ तो उनसे जीवनमें भावकी मृदु तरंगें ही उत्पन्न होती हैं। यहाँ महायुद्ध आतंकके स्थानमें उत्साह और सेवा-भाव ही जाग्रत करता है ; दुर्भिक्षका प्रकोप दया और सहानुभूति ही उत्पन्न करता है। यहाँ जीवनका उत्ताप नहीं रहता ; नैराश्यकी वेदना नहीं रहती। यहाँ तरुणावस्थाकी उदारता, दृढ़ता और स्फूर्त्ति रहती है। यहाँ सांसारिकतासे विरक्ति होती है और छद्मसे घृणा। आशाके स्वप्न, उमंगके अधैर्य और भावोंके वैपरीत्यके कारण छात्रोंका संसार सदैव कौतुकावह होता है। छात्रोंमें मानसिक विकासके साथ भावोंका जो परिवर्त्तन होता है, वह कम विलक्षण नहीं होता। जीवनकी चंचल गति मैं इन छात्रोंमें ही तो देखता हूँ। तभी तो स्कूलमें जीवन चिर-नवीन बना रहता है। एक आता है, और दूसरा जाता है। कुसुमका स्थान इन्दुने ले लिया और अब इन्दुका स्थान लीला लेगी। पर यहाँ छात्र-जीवन वही रहेगा। इसीसे बाल्यावस्थासे अत्यन्त दूर हट जानेपर भी मैं यहाँ बाल्यकालका ही अनुभव करता हूँ, और यही सोचा करता हूँ कि यदि मैं भी फिर बालक हो जाता, तो कितना अच्छा होता! तब देखता कि नमिता मुझे संस्कृतमें किस तरह पछाड़ती और बदरी किस तरह मुझे हिन्दीमें गिराता।

जो बात यथार्थ जगत्में सम्भव नहीं, वह बात कल्पना-जगत्में बिल्कुल सम्भव है। इसीलिए मैंने अपने लिए एक कल्पना-जगत्का निर्माण कर लिया है। उसमें मैं मोहन बनकर असिता का अनुचर हो गया हूँ। बाल्यकालमें मेरी जो भावनाएँ थीं, उन सभीको मोहनमें प्रकटकर मैंने उसमें अपना अस्तित्व लीन कर दिया है। यह सच है कि मेरे बाल्यकालमें न कोई असिता हुई और न कोई प्रभा ; पर एक बार मोहन बन जानेपर इनकी सृष्टिमें मुझे ज़रा भी प्रयास न करना पड़ा। यह सब मैंने कैसे किया, इसका कारण यह है कि मैं उपन्यासोंका एक प्रेमी पाठक रहा हूँ। अभी तक मैंने कितने ही उपन्यास पढ़े हैं। जो उपन्यास मुझे अच्छे लगे, उनके पात्रोंको मैंने अपना सहचर ही बना लिया। कथाका यथार्थ रस इसीमें है कि हम उपन्यासके जगत्में उपन्यासके पात्रोंके साथ स्वयं यात्रा करते हैं। हिन्दीके आधुनिक साहित्यमें अब कितने ही कलाकार हो रहे हैं। उन्होंने बड़े-बड़े कल्पनापूर्ण उपन्यास लिखे हैं। बड़े-बड़े कला-विशारदोंने उनपर बड़ी-बड़ी विद्वत्तापूर्ण समालोचनाएँ भी लिखी हैं। उनमें कलाका चाहे जितना चमत्कार हो ; पर मुझको उनके जगत्से विरक्ति हो गई है। मैं उनके साथ उसमें प्रविष्ट नहीं हो सका हूँ। इसीसे कथाका यथार्थ रस मुझे तो उन कला-विशारदोंकी कृतियोंमें नहीं मिला है। वाजपेयीजी मुझे चाहे मध्यम श्रेणीका पाठक मानें या अधम श्रेणीका ; पर यह बात सच है कि 'कंकाल' में मैंने भी कथाका रस नहीं पाया। वाजपेयीजीके कथनसे यह प्रतीत होता है कि ऐसे उपन्यासोंके लिए पाठकोंकी एक विशेष मानसिक स्थिति होनी चाहिए। मैं तो यह समझता हूँ कि भिन्न-भिन्न उपन्यासोंके लिए भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियाँ होनी चाहिएँ। एक विशेष मानसिक स्थिति न रहनेसे न तो 'अलिफ़-लैला'का रसोपभोग किया जा सकता है, न 'एलिस इन वण्डरलैण्ड' और 'वाटर बेबीज़' आदिका यथार्थ रस लिया जा सकता है, और न 'कथासरित्सागर' और 'कादम्बरी'से ही आनन्दकी उपलब्धि हो सकती है। पो और कोनन डायलकी कहानियोंके लिए भी एक विशेष रुचि चाहिए। यही नहीं, भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें भिन्न-भिन्न उपन्यास विशेष रुचिकर होते हैं। पर यह भी ठीक है कि जो कथाका प्रेमी है, वह सभी स्थितियों और अवस्थाओंमें अपनेको रखकर कथा-रसका आस्वादन कर लेता है। उसे कष्ट तभी होता है, जब कथा कथाका पथ छोड़कर समाज-शास्त्र, विज्ञान या इतिहासका स्थान ग्रहण कर लेती है।

कुछ समयसे विज्ञोंकी यह प्रवृत्ति हो गई है कि वे उपन्यास को मनोविज्ञानकी तरह पढ़ने लगे हैं। मनोविज्ञानके तथ्योंके लिए उनका इतना अधिक आग्रह हो गया है कि वे उन्हींमें कलाकी सार्थकता समझते हैं। प्रसादजीकी कृतियोंकी जो आलोचनाएँ मैंने पढ़ी हैं, उनमें ज्ञानकी इतनी गुरुता है कि मैं उसके भारसे दब जाता हूँ। प्रसादजीकी रचनाएँ मैंने भी पढ़ी हैं। पर पहले मैं उन कथाओं और रचनाओंको निःशंक और निर्भय होकर पढ़ जाता था। अब यह बात नहीं है। अब तो उन्हें पढ़नेका साहस ही नहीं होता। मुझे अब पग-पगपर सन्देह होता है। मुझे अब ऐसा प्रतीत होता है कि शेक्सपियरके नाटकोंकी तरह प्रसादजीकी रचनाएँ भी प्रसादजीको पीछे हटाकर बहुत आगे बढ़ गई हैं। अन्य कलाकारोंके सम्बन्धमें भी ऐसे ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पढ़कर मैं तो विस्मय-मुग्ध हो जाता हूँ। स्वयं कहानीका लेखक हूँ नहीं ; काम चलानेके लिए अंगरेज़ी कहानियोंके भाव लेकर मैंने अपने समयमें दस-पाँच कहानियाँ अवश्य लिख डाली हैं। इसीलिए मैं यह तो नहीं कह सकता कि कथा-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

लेखक अपनी कथामें मनोविज्ञानका विश्लेषण करते हैं, या अपने मनकी बातें लिखते हैं; पर इसमें सन्देह नहीं कि आजकल भावोंकी जटिलतामें पड़कर कितने ही कलाकार अपने यथार्थ उद्देश्यको भूल जाते हैं। अहंवृत्ति किसमें नहीं है? कौन अपनी दृष्टिसे संसारको नहीं देखता? किसे अपने मनोभावोंकी शुचिता और अन्यके मनोभावोंके कालुष्यपर सन्देह होता है? पर मनुष्योंकी इस अहंवृत्तिमें सत्यका सच्चा स्वरूप कहाँ है, यही देखना हमारा ध्येय होना चाहिए। विकृत अथवा विक्षिप्त मानसिक अवस्थाका वर्णन ही कथाकारका यदि उद्देश्य है, तो बात दूसरी है। पर इसमें सन्देह नहीं कि अब आलोचकोंकी-सी विशुद्ध दृष्टि न रखकर उपन्यासका रसोपभोग करना अवश्य कठिन है।

अपने समान उपन्यास-प्रेमीके लिए मैं जिस गुणको अनिवार्य समझता हूँ, वह है उसकी कल्पनाशीलता। उपन्यास-लेखकोंकी कल्पनामें उनकी सृजन-शक्ति रहती है। पाठकोंकी कल्पनामें उसे ग्रहण करनेकी शक्ति चाहिए। लेखक एकके बाद एक कल्पित चित्र उपस्थित करता जाता है और पाठक उन्हें अपनी कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष देखता जाता है। उसे कौतूहल होता है, विस्मय होता है, और वह उसीमें लीन हो जाता है। चित्रोंकी समाप्ति पर भी उसका मोह भंग नहीं होता। वह लेखकके कल्पित संसारसे इतना परिचित हो जाता है, मानो उसने सचमुच उस जगत्की यात्रा कर ली हो। जो लेखक मेरे हृदयमें कल्पनाका यह मोह-जगत् निर्मित नहीं कर सकते, उनमें मेरी समझके अनुसार कथाकी कला नहीं है, अन्य चाहे जो गुण हों। इसीसे प्रेमचन्दजीकी कहानियोंमें मेरे लिए जो आकर्षण है, वह प्रसादजी की कहानियोंमें नहीं है। इतनी लम्बी प्रस्तावना लिखनेका कारण पाठकोंको यह समझाना है कि मैं क्यों मोहन बना। अस्तु।

हाँ, तो उस दिन बड़ी गर्मी थी। मैं कमरेके एक कोनेमें बैठा था, प्रभा दूसरे कोनेमें बैठी थी और असिता तीसरे कोनेमें। सारे घरमें निस्तब्धता थी। सहसा वह निस्तब्धता भंग हुई—'यहाँ कुछ भी नहीं होता। यहाँ कुछ भी नहीं है।' यह कहकर असिताने एक दीर्घ निःश्वास लिया और फिर गहमरीजीके प्रसिद्ध उपन्यास 'चक्करदार चोरी'को, जिसे वह ९ बजेसे पढ़ रही थी, मेज़पर फेंक दिया। असिताकी इस बातने मुझे चौंका दिया। मैं तब हनुमान-टेकरीपर तिलिस्मकी बात सोच रहा था। मैं असिताकी बातका कुछ भी उत्तर न दे सका प्रभा भी असिता की यह नैराश्य-विरक्ति-असन्तोषपूर्ण उक्ति सुनकर भूगोलपर अपनी दृष्टि स्थिर न रख सकी। उसने भी किताब बन्दकर कहा—'हाँ, दीदी, सचमुच यह स्थान बिल्कुल अच्छा नहीं है। न तो सिनेमा...।'

प्रभाकी बात काटकर असिताने कहा—'सिनेमा न हो, तो न सही। सिनेमा देखना ही चाहूँगी, तो अभी मोटरमें बैठकर डोंगरगढ़ और राजनान्दगाँव जा सकती हूँ। पर यहाँ [illegible] घटना ही नहीं होती। सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक वही तरहका जीवन रहता है। वही स्कूल, वही मास्टर, वही [illegible] और वही सब-कुछ। मैं तो बिल्कुल ऊब गई हूँ। [illegible] जाओ, वही एक बात सुनो। यह स्थान ऐसा निश्चेष्ट, [illegible] और निष्प्राण है कि कभी कोई बड़ी चोरी भी तो नहीं होती।

'चोरी!'—प्रभाने चकित होकर कहा—'चोरी-डकैती होगा, दीदी? और वैसे चोरी तो रोज़ ही होती है।'

असिताने विरक्तिसे कहा—'तुम कुछ नहीं समझतीं। लोटा-थाली या कटोरेकी चोरीकी बात नहीं कह रही हूँ। तो चाहती हूँ कि ऐसी चोरी हो, जिससे बड़े-बड़े जासूस [illegible] पड़ जायँ। अभी मैंने एक ऐसी ही चक्करदार चोरीकी [illegible] पढ़ी है। सवा लाखकी चक्करदार चोरी हुई थी और उसका [illegible] लगाया एक जासूसने। युवावस्थाके एक उन्मादने, प्रेमने [illegible] भूलने, सभी लोगोंसे अलक्षित कैसा भयानक रूप धारण कर [illegible] और अन्तमें वह किस प्रकार एक भयानक काण्डमें परिणत [illegible] गया! कितनी रहस्यमय है यह कथा! एकके बाद एक [illegible] जनक घटनाएँ होती जाती हैं, और अन्तमें चोर पकड़ा [illegible] है। यहाँ तो किसीने ताला तोड़ा कि पकड़ लिया गया, [illegible] उसे छः महीनेकी सज़ा हो गई। न कोई आश्चर्यजनक [illegible] होती है और न कोई रहस्यमय भेद ही खुलता है। अगर ऐसी ही विचित्र चोरी होती, तो...' कहते-कहते असिता रुक

'तो क्या दीदी?'—प्रभाने पूछा—'तो क्या होता?'

'तो मैं उसका पता लगाती।'—असिताने कहा।

प्रभाने असिताकी यह बात सुन बड़े आश्चर्यसे कहा—'कैसे पता लगा लेतीं? तुम तो अभी छोटी हो!'

असिताने कहा—'मैं १४ सालकी हूँ, तुमसे दो वर्ष [illegible] हूँ। छोटी तो तुम हो, तभी तो कहती हूँ कि तुम कुछ समझ नहीं। मैंने इतने दिनों तक क्या योंही गोविन्दरामकी [illegible] पढ़ी हैं। मैं सब समझ गई हूँ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ गोविन्दराम किस तरह अपराधियोंको ढूँढ़ निकालते थे। मोहन, तुम क्या सोचते हो?'

मोहन अर्थात् मैं असितासे अवस्थामें बड़ा होनेपर उसका अनुचर था। मुझे दुःख यही था कि वह तिलिस्म ऐयारोंके अस्तित्वपर विश्वास ही नहीं करती थी, बल्कि कल्पना-जगत्की मिथ्या बातें भी समझती थी। उसे तो जगत्की यथार्थ बातोंसे प्रेम था। मैं सोचता ही रह जाता कि वह कमला बन किसी मायारानीकी सभामें जाती और [illegible] भी चण्डूल बनकर वहाँ पहुँचता। पर ऐयारोंके इस स्वर्गमें चिढ़ थी। वह तो गोविन्दरामकी अनुगामिनी थी। वह [illegible] रहस्यागारको तर्कके आलोकसे स्पष्ट कर देना चाहती थी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा मनुष्य-जीवनको छिन्न-भिन्नकर उसका यथार्थ रूप देखना चाहती थी। वह मनोविज्ञानको समझकर संसारको अपराधियोंसे हीन करना चाहती थी। घर बैठे केवल देखकर ही वह अपनी बुद्धि द्वारा अन्तर्जगत्की सभी रहस्यमयी बातोंका पता लगा लेना चाहती थी। इसीलिए मैंने कहा—'तुम ठीक कहती हो।'

'सुनो', असिताने गम्भीर स्वरसे कहा—'चोर अपने चेहरे को दाढ़ी और मूँछोंसे छिपाए रखते हैं। वे चश्मा भी लगाते हैं। वे लोग ऐसा क्यों करते हैं, क्या तुम बतला सकती हो?'

'नहीं दीदी, मैं तो नहीं जानती।'—प्रभाने सिर हिलाकर कहा।

तब असिता कहने लगी—'बात यह है कि दाढ़ी-मूँछ मुँड़ा लेने और चश्मा निकाल देनेपर उनका चेहरा ऐसा बदल जाता है कि अच्छे-अच्छे लोग भी उन्हें नहीं पहचान पाते।'

प्रभा प्रतिवाद नहीं कर सकी। वह जानती थी कि असिताकी बुद्धि तीक्ष्ण है। दसवीं क्लासमें वही फर्स्ट है। इसलिए असिता जो-कुछ कह देती, वह चुपचाप स्वीकार कर लेती थी। जब दोनों इसी चिन्तामें मग्न थीं कि कब कोई ऐसी घटना हो, उसी समय वल्लभ दौड़कर आया और कहने लगा—'दीदी, दीदी, तुमने कुछ बात सुनी है? कल रातको एक बड़ी विलक्षण घटना हो गई, बड़ी ही विलक्षण!'

असिताने कहा—'हाँ, समझ गई। तुमको मास्टरने भूगोलमें पास कर दिया होगा।'

वल्लभने कहा—'वाह, यह भी क्या कोई विलक्षण बात है? मैं क्या भूगोलमें पास नहीं हो सकता था? अच्छा, तुम बताओ छोटी दीदी, क्या बात हुई है?'

प्रभाने कहा—'अरूप और अनूपमें लड़ाई हुई होगी।'

वल्लभने उत्तर दिया—'छिः, ऐसा झगड़ा तो दोनोंमें रोज़ ही होता है। अब तुम खूब सोचकर बताओ, दीदी! सचमुच बड़ी विचित्र बात है।'

असिताने कहा—'कोई चक्करदार चोरी···'

वल्लभने ताली पीटकर कहा—'हाँ, ठीक जान लिया तुमने, दीदी! सचमुच चक्करदार चोरी ही हुई है। कप्तान साहब घबराए हुए हैं। किसीने राजा साहबके कोटके सोनेके बटन चुरा लिए हैं। महलसे चोरी हुई है। १२ बटन थे और एक सोनेकी अँगूठी। न ताला टूटा, न चाबी गायब हुई और चोरी हो गई!'

असिताने सुनकर कहा—'हाँ, चोरी तो ऐसे ही होती है। "चक्करदार चोरी"में भी ऐसी ही चोरी हुई है। खज़ांचीपर सब शक करते होंगे।'

वल्लभने विस्मित होकर कहा—'तुमने कैसे जान लिया, दीदी? सब हरी बाबूपर शक कर रहे हैं। वह बेचारा बड़ा घबरा गया है।'

असिताने निश्चयात्मक स्वरसे कहा—'पर वह चोर नहीं है, वह कभी चोर नहीं हो सकता।'

वल्लभने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'सचमुच वह चोर नहीं है। पुलिसवाले उसे व्यर्थ हैरान कर रहे हैं। उसका लड़का बड़ा अच्छा है। वह मेरे साथ पढ़ता है। उसको बुला लाऊँ, दीदी?'

असिताने कहा—'अभी नहीं। अभी मैं इस घटनाको अच्छी तरह सोच लूँ। इस चोरीमें प्रेमका कैसा रहस्य-भेद होगा? अपनी किस प्रियतमाकी किस इच्छाकी पूर्त्तिके लिए किस चोरने यह साहसपूर्ण काम किया है? अथवा किस लोभ या प्रतिहिंसाने कपटका यह जाल रचा है? ये सभी बातें विचारणीय हैं।'

असिता चोरीकी चिन्तामें डूब गई। मैं भी उसीकी चिन्तामें लीन हो गया। प्रभा चुपचाप बैठी अपने भूगोलके चित्र देखने लगी और वल्लभ भी वहीं कुत्तेसे खेलने लगा। उसी समय दो आदमी आकर सड़कपर खड़े हुए। एकके सिरपर पगड़ी थी। वह काफ़ी ऊँचा था। बड़ी-बड़ी मूँछें और दाढ़ी थी। आँखोंपर चश्मा भी था। वह धीरे-धीरे दूसरे आदमीसे कुछ बातें करने लगा। असिताको कुछ सन्देह-सा हुआ। वह चुपचाप आड़में जाकर उनकी बातें सुनने लगी। वह आदमी कह रहा था—'आज रातको १० बजे उसी शिव-मन्दिरमें मैं आऊँगा। घटनका हाल तो तुमने सुना होगा। पुलिस भी ताकमें है, इसलिए हम लोग चार-ही वहाँ रहेंगे। दूसरोंका काम नहीं है।'

यह कहकर वह चला गया। दूसरा आदमी भी चला गया। असिताके चेहरेपर प्रसन्नताकी झलक आ गई। उसने तुरन्त ही पुकारा—'प्रभा, मोहन, दोनों आओ।' हम दोनों जाकर असिता के सामने खड़े हुए। असिताने कहा—'मोहन, तुम्हारे पास टार्च है?'

मैंने कहा—'हाँ, मैंने उसे अपने ऐयारीके बटुवेमें रखा है।'

मेरी बात सुनकर असिताने कुछ विरक्त होकर कहा—'मुझे तुम्हारी ऐयारीसे कोई मतलब नहीं है। अच्छा, अब यह बताओ कि तुम्हारे पास दो सीटियाँ हैं?'

मैंने कुछ खिन्न होकर कहा—'हाँ, हैं तो।'

असिताने कहा—'सुनो, मैंने चोरोंका पता लगा लिया है। आज हम तीनों रातको निकलेंगे। दो टार्च रखेंगे और सीटियाँ।'

प्रभाने कहा—'कितने बजे रातको हम निकलेंगे? माँ जाने भी देगी?'

असिताने कहा—'माँको कोई बात मालूम नहीं होनी चाहिए। वल्लभ भी अभी न जानने पाय। हम लोग सबके सो जानेपर रातको चुपचाप यहीं एकत्र होंगे और इसी रास्तेसे चलेंगे।'

हम सबने यह निश्चय किया।

एतके निर्धारित समयपर असिता और प्रभा मुझको लेकर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri

निकलीं। अँधेरी रात थी। मेरा हृदय धड़क रहा था; पर असिता निर्भय जा रही थी। कुछ ही देरमें शिव-मन्दिर आ गया। असिताने प्रभा और मुझको एक कोनेमें छिपाकर कहा — 'मैं जब सीटी बजाऊँ, तब तुम भी सीटी बजाना।' यह कहकर वह मन्दिरके पास पहुँच गई। वहाँ उसने खिड़कीमें से देखा कि एक कमरेमें चार आदमी बैठे कुछ कर रहे हैं। रुपयोंकी खन-खनाहट भी उसे सुनाई दी। तुरन्त ही नीचे आकर उसने सीटी बजाई। उसके सीटी बजाते ही मैंने भी दूसरी ओरसे सीटी बजा दी। इतनेमें तुरन्त ही चार आदमी कूदकर भागे। असिताने उनपर टार्चसे रोशनी फेंकी। तब तो वे और तेज़ीसे भागने लगे।

इसके बाद असिता प्रभा और मुझको लेकर मन्दिरके भीतर घुसी। वहाँ हमने देखा कि सोलह कौड़ियाँ पड़ी हुई हैं और उनमें चार चित हैं। हम लोगोंने चारकी आवाज़ भी सुनी थी। इन कौड़ियोंका रहस्य मेरी समझमें न आया। मैं असिताकी ओर देखने लगा। वह भी सोचने लगी कि इसका क्या मतलब है? सहसा उसकी दृष्टि मन्दिरकी दीवारपर गई। उसमें कई छेद बने हुए थे। असिताने गिना आठ छेद थे। दूसरी दीवारपर भी आठ छेद थे। आठ और आठ सोलह हुए। कौड़ियोंका गूढ़ अर्थ असिताने समझ लिया। तब उसने चौथे छेदमें टार्चकी मददसे देखा। कुछ दबा-सा दिखाई पड़ा। उसने ईंटको हटाकर देखा, तो उसमें चमड़ेका एक बैग दिखाई पड़ा। उसे खोलकर उसने देखा कि उसीके भीतर सोनेके बारह बटन थे और अँगूठी भी! मैं तो चकित होकर असिताकी ओर देखने लगा।

फिर हम तीनों चुपचाप घर लौट आए।

सत्य अनन्त है; पर हमारा ज्ञान तो परिमित है। हम उससे जो पाते हैं, उसे सत्य न समझें, तो और किसे समझें? संसारमें प्रेमकी अनन्त घटनाएँ होती हैं। जीवनमें अनेक संयोगान्त और वियोगान्त लीलाएँ होती हैं। यह तो संयोगकी बात है कि किसी विशेष नायकके जीवनमें किसी विशेष समय सुख-दुखकी परिस्थिति उत्पन्न करनेके लिए कोई विशेष आ जाती है। 'श्रीकान्त'ने 'प्यारी'में जो सत्य पाया, 'शेखर'ने 'शशि'में जो सत्य पाया, वही उनके लिए हमने भी कौड़ियों द्वारा संयोगसे चोरीका जो पता लगा उसकी सत्यतामें हमें सन्देह नहीं था। दूसरे दिन हम वल्लभको सब बातें बतला दीं। विजय-गर्वसे उल्लसित होते सब कप्तान साहबकी राह देखने लगे। कुछ देर बाद कप्तान असिताके घर वकील साहबसे बात करने आए। चोरी चर्चा हुई। कप्तान साहबने कहा—'कुछ पता नहीं चला लोगोंने बड़ी कोशिश की।' असिता, प्रभा और वल्लभ वहीं खड़े सुन रहे थे। वल्लभने कहा—'कप्तान साहब लोगोंने पता लगा लिया है। ये हैं आपके बटन और

सब देखकर दंग रह गए। बहुत आश्वासन देनेपर सारी घटना कह सुनाई। सब हँसने लगे।

पर अब असिताको जासूसी उपन्यास पढ़नेको नहीं जाते हैं। वह अब शरद् बाबू और बंकिम बाबूके ही पढ़ा करती है। अब मुझे भी यह आशा नहीं है कि वह कमलिनी या कमला हो सकेगी—आधुनिक उपन्यासोंकी मयी, प्रेमोन्मादिनी, भावुकतासे युक्त नायिका वह भले जाय। पर उसीके साथ मेरी ऐयारी और बटुवेका भी गया। प्रेमकी रश्मिसे अनुरंजित इस नव-साहित्यमें साहसपूर्ण नैपुण्यके लिए स्थान नहीं है। उसमें 'वीरेन्द्र' और 'इन्द्रजीत'का पराक्रम दोनों व्यर्थ हैं। अब तो सुर्वत हरिप्रसन्न तथा शशि और शेखरका युग है। स्त्री और समस्याने प्रेम और क्रान्तिकी वह चक्करदार पहेली बना कि उसमें मैं पड़ना ही नहीं चाहता। मेरे पास यथेष्ट दुः चिन्ताएँ हैं। उपन्यास-लेखकोंके कल्पित पात्रोंके कल्पित और कष्टमें पड़कर कौन अपनी वेदनाको बढ़ाना चाहेगा!

अर्द्धनारीश्वर

श्री आरसीप्रसाद सिंह

हे शिव, हे शिव, तू विचित्र है, आधा नारी, आधा ईश्वर!
पर विचित्रता मेरी तो यह, आधा मानव, आधा पत्थर!
तेरे ईश्वरमें प्रभुता है; तेरी नारीमें ममता!
पर मेरा मानव दुर्बल है, पत्थर में है निष्ठुरता!
ईश्वरता पा सकता मानव, किन्तु बोल शिव, हे नारीश्वर!
क्या तुझमें जो नारी-प्रतिमा, वही नहीं तो मुझमें पत्थर?
लेकिन सच तो यह कि तुझे भी छोड़ सका पाषाण नहीं!
होती पत्थर से पत्थर की लड़की कम शैतान नहीं!

नारीको चरणोंमें रक्खा, ईश्वरको रक्खा शिर पर
मेरा मानव कहाँ जायगा? किसे रुचेगा यह पत्थर
महादेव, जब ऋतु-उत्सवमें हो उठता चंचल निखिल
पुलकाकुल हो जाता मधुके अलस स्पर्शसे वनस्थल
तेरी नारी तो पत्थर है, तू हो जाता है ईश्वर
मेरे मानवके आँसूसे नारी बन जाती पत्थर
किस प्रकार हो गया देव! तू आधा नारी, आधा ईश्वर
मैं तो अब तक बना हुआ हूँ, आधा मानव, आधा पत्थर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भिक्षा या दान क्या ?

श्री कस्तूरमल बाँठिया

एक ओर भारतवर्ष भिखारियोंका देश है, तो दूसरी ओर दानियोंका भी। भिखारियोंका देश यह इसलिए है कि इसमें हट्टे-कट्टे और अपाहिज सभी तरहके भिखारी अन्य देशों की अपेक्षा शायद ज़्यादा हैं। जहाँ कहीं आप खड़े हो जायँ, भिखारी आपके पीछे पड़ जायँगे और आप उनको माँगसे ऊब उठेंगे। यदि आप किसी भिखारीको मेहनत-मज़दूरीकर कमाने-खानेके लिए कहेंगे, तो वह आपकी ऐसी बात सुनेगा ही नहीं। कोई-कोई भिखारी आपको ऐसा भी मिलेगा, जो आपको कमाकर खानेकी शिक्षाकी बात सुनकर आपको यहाँ तक कह देगा कि काम करना या कमाना आप-जैसोंका ही काम है। हम साधु या फकीर हैं, भिक्षा या खैरातपर बसर करना हो हमारा फर्ज़ है। मायाका मोह हम छोड़ चुके हैं। इस तरह भीख माँगना इस देशमें एक पेशा हो गया है। कितने ही भिखारी भिक्षामें मिली वस्तुओंको बेचते भी पाए जाते हैं। मरनेपर बहुतोंके पास धन मिलनेकी खबरें भी समचारपत्रोंमें जब-तब दिखाई पड़ जाती हैं।

जहाँ भिखारी हों, वहाँ दाता भी होने ही चाहिएँ। दाताके बिना भिखारियोंकी गुज़र ही कैसे हो सकती है ? यहाँ भी वही माँग और पूर्त्तिका सूत्र काम करता है। फिर हमारे देशमें तो दानकी महिमाके गुण-गीत सारे धर्म-ग्रन्थोंमें गाए गए हैं। दानसे स्वर्ग ही नहीं, मुक्ति तक मिलती है, ऐसे भी उपाख्यान कुछ कम नहीं हैं। बहुतसे अगला जन्म सुधारनेको भी दान देते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि विभिन्न भावोंसे हर कोई कुछ न कुछ दान देता ही है, और ऐसे दाताओंकी दानेषणा पूरी करनेके लिए कितने ही लोग भिखारीका पेशा अख्तियार करते भी सुने गए हैं। इस तरह भिखारियोंके साथ ही दाताओंका भी एक सम्प्रदाय बन गया है। इस सम्प्रदायके लोग कोई भी नीच या जघन्य काम करते हुए इसलिए नहीं झिझकते कि उससे होनेवाले लाभका कुछ अंश दानकर वे 'पुण्य' भी अर्जन कर लेते हैं!

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या सभ्य समाजमें भिक्षा-वृत्ति होनी या रहनी चाहिए ? सभ्यता और संस्कृति मनुष्यमें आत्म-गौरवके भाव जाग्रत करती हैं ; पर भिक्षावृत्ति पक्षान्तरमें आत्म-गौरवकी भावनाको नष्ट करती है। पहले-पहल भिक्षा माँगने का साहस हरएकका नहीं होता। भूखे-से-भूखा पशु भी दुत्कारे जानेसे डरता है। फिर भला मनुष्य किस तरह निःशंक होकर भिक्षा माँग सकता है ? जब इस दुत्कारे जानेके भावपर विजय पा ली जाती है, तब कहीं आदमी सफल भिखारी बन पाता है। इसलिए सभ्य समाजमें कोई आत्म-गौरव-विहीन और परमुखापेक्षी हो, यह जितनी आश्चर्यकी बात है, उससे भी अधिक उस समाज के लिए दुःख एवं लज्जाकी बात है। तब क्या भिक्षा देना भी अनुचित नहीं ? पर भिक्षाके साथ 'दान'को जोड़कर हम दोनों को ही बुरा कह रहे हैं, यह समझना भूल होगा। हम सहानुभूति, सेवा आदि मानवोचित सात्विक प्रवृत्तियोंकी समाजसे जड़ काटनेके पक्षपाती नहीं। जिस समाजसे इन सात्विक प्रवृत्तियोंका लोप हो जाय, वह मनुष्योंके रहने लायक नहीं रह जायगा। अपनों और परायोंके प्रति, दीन और दुखियोंके प्रति केवल मौखिक ही नहीं, अपितु वास्तविक सहानुभूति और सेवा-भावना लोक-कल्याणके लिए अनिवार्य-सी है। जनता-जनार्दनकी सेवा और सहायताके लिए ही अनेक सेवापूर्ण कार्य निःस्वार्थ भावसे और प्रचुर द्रव्य व्यय करके किए गए हैं, और आज भी किए जाते हैं। ज़रूरतमन्द व्यक्तिकी सेवा अथवा सहायताके लिए कुछ देना बुरा नहीं है और न हम उसे बुरा कहते ही हैं। पर हम लोगोंने इस परम सात्विक प्रवृत्तिको छोटी-छोटी सिद्धियोंका जो साधन बना लिया है, वह बुरा है।

यदि हमारी सेवा या सहानुभूतिकी प्रवृत्ति भूखोंको अन्न, प्यासोंको पानी, रोगीको औषध और नंगेको वस्त्र देनेके लिए प्रेरित करती है, तो सहज ही यह प्रश्न भी उठता है कि यही प्रवृत्ति हमें उस महती भावनाको भी सिद्ध करनेके लिए क्यों नहीं प्रेरित करती, जिससे समाजमें कोई भूखा, प्यासा, रोगी और नंगा रहे ही नहीं। यदि ऐसे भूखे, प्यासे, नंगे और रोगीको इन त्रासोंसे बचानेकी हममें सच्ची लगन है, तो उन्हें सदाके लिए इन त्रासोंसे दूर रखनेकी भावना भी हममें होना आवश्यक है। हमें केवल दुःखी व्यक्तिके दुःखकी ओर ही नहीं, अपितु उसके दुःख के कारणोंकी ओर भी देखना होगा। उसके वर्त्तमान दुःखको दान या सेवासे कुछ समयके लिए मिटा देनेके साथ-ही-साथ उन कारणोंको भी मिटा देनेके लिए अग्रसर होना होगा, जिनसे वह दुःख पैदा हुआ है। किसीके वर्त्तमान दुःखको हमने मिटा दिया है, बस इतनेसे ही तो काम नहीं चलेगा। यह तो उसके दुःखका अस्थायी निवारण होगा, स्थायी नहीं। और दुःखका अस्थायी निवारण करना ही हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकता।

पर हम तो सेवा या सहायता करके निश्चिन्त हो जाते हैं। दुःखके कारणोंकी खोज हम नहीं करते। इसके भी अनेक कारण हैं। पहला कारण तो शायद यह है कि हम पूर्वजन्मके कर्मोंके फलको भोगना अनिवार्य-सा समझकर उन्हें दूर या परिवर्त्तन करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ समझते हैं। दूसरा कारण यह है कि दुःखके कारणोंकी खोज और उनको दूर करनेकी कोई सामूहिक तथा सुसंगठित चेष्टा नहीं की जाती। बंगालके भूखोंका ताज़ा उदाहरण हमारे सामने है। कौन नहीं जानता कि जनताने

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन भूखोंकी सहायताके लिए मुक्तहस्त होकर दान दिया ? परन्तु क्या अन्न-वस्त्रका अकाल आज भी बंगालमें मुँह बाए नहीं खड़ा है ? क्या उसकी जड़ अभी तक जमी नहीं है ? जब तक यह जड़ क़ायम रहेगी, हमें दानियोंकी थैलियोंका मुँह खुलवानेके लिए दानकी अपीलें ही करते रहना पड़ेगा।

दानसे दुःखकी जड़ क्यों नहीं सदाके लिए उखड़ या कट जाती, इसका उत्तर स्पष्ट है। और वह यह कि दान देने-मात्रके लिए दिया जाता है। दान दे दिया, बस इतने ही से लोग अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं। ऐसा दान एक तरहसे व्यवसायी-सा हो गया है। जब मानव-यन्त्रणा इस तरहके व्यवस्थित, संगठित, व्यापारी और पेशेवर दानकी पात्री बना दी जाती है, तो उसका हृदय सुन्न हो जाता है, और वह निष्प्राण तथा निकम्मी हो जाती है। तब यह यन्त्रणा हमारे हृदयको स्पर्श तक नहीं करती। इसके विपरीत सच्ची सहानुभूति या मददपरस्तीका न तो कोई कभी विज्ञापन करता है और न उसकी सूची बनाकर ही अपने पास रखता है। क्या यह सच नहीं है कि हम लोगोंके घरोंमें अनाथ बच्चे उससे कहीं अधिक पल जाते हैं, जितने विज्ञापित अनाथालयोंमें भी नहीं पलते। यही हाल उन अन्य संस्थाओंका भी है, जो सदा जन-साधारणकी सेवा करनेका ढिंढोरा पीटती हैं। उनसे कहीं अधिक ज़रूरतमन्द लोगोंकी सेवा एवं सहायता खानगी तौरपर हो जाती है। इस परम भौतिक ज़मानेमें मानव-समाज सर्वथा मानवता-शून्य हो गया है, यह अप्रिय एवं दुखद सत्य है।

इस दानवादसे मिलता-जुलता ही एक वह वाद भी है, जिसे हम भावना-प्रधान आदर्शवाद कह सकते हैं। कभी-कभी ऐसे भावना-प्रधान आदर्शवादकी गूँज देशमें चारों ओर फैल जाती है और इस हद तक पहुँच जाती है कि अपनी उपयोगिताको खोकर वस्तुतः समाजकी हानि करने लगती है। दानवादसे देशकी आज जो हानि हो रही है, वह सिवा आदर्शवादियोंके और किसी यथार्थवादीसे छुपी नहीं है। सेवाकी भावनाका भी हमारे देशमें इसी तरह पतन हो गया है। सेवाका अभिप्राय यह है कि हम किसीके लिए कुछ करें। पर यह तो तब ही सम्भव हो सकता है, जब कोई हमें यह सेवा करने दे। जहाँ सब कोई सेवा करनेके इच्छुक हों, और कोई सेवा कराना ही नहीं चाहता हो, वहाँ यह भावना सार्थक कैसे हो सकती है ? समाजमें सेवा-भावको प्रगति देनेकी शुद्ध भावनासे प्रारम्भमें कुछ लोग सेवा करानेको किसी तरह तैयार कर लिए जाते हैं। बस, इस तरह सब कोई विशुद्ध सेवा-भावसे उनकी सेवा करते हैं। धीरे-धीरे ऐसे लोगों की सेवा करानेकी आदत हो जाती है। कालान्तरमें अनेक लोग इस तरहकी सेवा पानेके लिए उसी तरह लालायित हो उठते हैं, जिस तरह कभी सेवा करनेके लिए लोग उत्सुक थे। सेवाकी द्वारा उनकी सेवा हो भी जाती है। इस भावनाके फल समूहके समूह बिल्कुल अपाहिज हो जाते हैं। उदाहरणके राजाओं, धनियों, साधु-संन्यासियों आदिको ही देखिए। यह भावना जन्मसे ही जाग्रत की जाती है कि सांसारिक गृहस्थी उनकी सेवा करनेके लिए ही हैं। उन्हें अपने लि भी नहीं करना है। राजा और वैधानिक अधिकारी अपने और कर्मचारियोंसे तथा धर्मगुरु अपने अनुयायियोंसे सेवाके अनेक तरहकी बेगार लेनेके इतने आदी हो जाते हैं कि वे स्वयं बिल्कुल अकर्मण्य और असहाय बन जाते हैं। लोगोंमें धीरे-धीरे आत्म-निर्भरता और आत्म-विश्वास क्षी हो जाता है। जिस परिस्थितिमें इस तरहकी सेवा करनेकी उठी थी, उसका न तो किसीको विचार होता है और यह बिगड़ी हुई परिस्थिति ही सुधारी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दानवाद या आदर्शवाद ही से लोगोंका दुःख दूर नहीं हो सकता। इस तरह दान सेवाका महत्व और सार्थकता भी नष्ट हो जाते हैं। दा दान या सहायताकी सार्थकता तो तब है, जब कि उसे लेने फिर किसीके आगे दीन भावसे हाथ न पसारना पड़े। इसक लब यह है कि उसकी शक्ति ऐसे कार्योंमें लगाई जाय, वह अपनी जीविका कमा सके और किसी-न-किसी रूपमें लिए उपयोगी सिद्ध हो। भार बनकर कोई भी व्यक्ति समय तक सम्मानके साथ किसी भी समाजमें नहीं रह स इच्छा अथवा मजबूरीसे उसे समाजका उपयोगी और निर्भर अंग बनना या बनाना ही होगा। कई बार हमने सु अमुक-अमुक स्थानोंमें भीख माँगना क़ानूनन निषिद्ध कर गया। पर यह हमने नहीं सुना कि जिन लोगोंको भीख वर्जित किया गया, उनका पेट भरनेके लिए आखिर क्या गया ? इस दिशामें शायद कुछ भी नहीं किया गया। स्वरूप निषिद्ध स्थानोंके पेशेवर भिखारी या तो कुछ समय वहीं या अन्यत्र जाकर भीख माँगने लगे। इससे सिद्ध दान ही की तरह क़ानून-क़ायदोंसे भी भिक्षावृत्ति या दान प्रवृत्तिको रोका नहीं जा सकता। अतः दाताओंके धन सरकारकी सत्तासे यदि दीन-दुखियोंके लिए जीविका-उ साधन जुटाए जा सकें, उनके लिए काम खोजा जा सके समस्या बहुत-कुछ हल हो सकती है।

यह कहा जा सकता है कि यदि सबके लिए काम होता, तो संसारमें बेकार कोई नहीं रहता। पर आज तो की समस्या सब ही देशोंके नेताओं और अर्थशास्त्र-विश लिए भी हल करना असम्भव-सा हो गया है। रोगकी दवा की जाती है, रोग बढ़ता ही जा रहा है। परन्तु यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि संसारमें सबके लिए

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाच-गाकर स्लोवाक लड़कियाँ वसन्तोत्सव मना रही हैं। लाल-सेनाकी प्रगतिके साथ-साथ उनके देशकी मुक्तिका दिन निकट आता जा रहा है।

केन्द्रीय स्लोवाकियाका एक गाँव, जो गृह-निर्माण, पोशाक और रहन-सहनकी अपनी परम्पराको आज भी कायम रखे है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखो, छूना मत ; हाथ अलग रखो। यहाँ एक थियेटर हो रहा है !' —लन्दनके

पर लन्दनके बच्चे सिर्फ़ खेल और खिलौनोंके ही शौकीन नहीं हैं, पढ़नेके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न कोई उत्पादक काम तो है ही। कामकी कमी न थी, न है और न कभी रहेगी। कमी जो है और जो रहेगी, वह काम लेने-वालोंकी थी, है और होगी। मि० हेनरी फोर्ड कहते हैं कि मेरे कारखानोंमें अन्धों-लँगड़ोंके लिए ही नहीं, बल्कि दोनों हाथ और दोनों पैर-हीन लोगों तकके लिए काम रहता है। मैं उनको अपने कारखानोंमें काम देता हूँ, जिससे वे भी उतना ही कमाते हैं, जितना कि और लोग। हम लोगोंको उनकी यह बात शायद पूर्णतया सच न जँचे, क्योंकि हमारे यहाँ दोनों हाथ या दोनों पैरवालोंके लिए भी काम नहीं मिल रहा है। मि० फोर्डने अपनी जीवनीमें, जो पहले-पहल सन् १९२२ में प्रकाशित हुई थी, लिखा था—"जाँच करनेपर यह पता लगा कि कारखानेमें कोई ७८८२ तरहके भिन्न-भिन्न काम होते हैं। इनमें सिर्फ़ ९४९ तरहके काम ही ऐसे थे, जो भारी कहे जा सकते थे और जिनको शरीरके हट्टे-कट्टे और मज़बूत आदमी ही कर सकते थे। ३३३८ तरहके काम ऐसे थे, जिनमें साधारण शरीर-संस्थान और ताक़तवालोंकी ज़रूरत थी। बाक़ी बचे ३५९५ तरहके कामों को करनेमें किसी तरहकी शारीरिक मेहनत खर्च नहीं होती थी, और इसीलिए कमज़ोर-से-कमज़ोर आदमी भी उन्हें अच्छी तरह कर सकते थे। उनमें से भी कितने ही काम ऐसे थे, जो स्त्रियों और बच्चोंसे भी अच्छी तरह किए जाने-योग्य थे। इन हल्के कामोंकी और भी बारीकीसे जाँच करके यह पता लगाया गया कि उनमें से कितनोंके लिए कितनी मानसिक और कितनी शारीरिक शक्तियाँ आवश्यक हैं। इस जाँचसे यह पता लगा कि इनमें से ६७० काम तो बिना टाँगोंवाले भी कर सकते हैं, २६३७ काम एक टाँगवालोंसे किए जा सकते हैं, २ काम बिना हाथवाले कर सकते हैं, ७१५ काम एक हाथवाले और १० काम बिलकुल अन्धोंसे भी किए जा सकते हैं।"

जाँच करके चुप रहनेवालोंमें मि० फोर्ड न थे। उन्होंने तुरत ही कारखानेमें काम करनेवालोंकी जाँच-पड़ताल की। उससे उन्हें मालूम हुआ कि उनके कारखानेमें तब ९५६३ पैमानेसे कुछ हल्के (Sub-standard) काम करनेवाले हैं। इनमें भी १२३ का हाथ, बाँह या भुजा टूटी हुई है। एक मज़दूरके दोनों हाथ नहीं हैं। ४ पूर्ण अन्धे हैं, २०७ एक आँखके अन्धे, २५३ एक आँखसे कुछ अन्धे, ३७ गूँगे और बहरे, ६० मृगी-रोगवाले, ४ दोनों टाँगोंसे विहीन और २३४ एक टाँगवाले हैं। इनके अलावा जो ८६४० लोग हैं, वे भी किसी-न-किसी छोटी अपंग-हीनता अथवा बाधावाले हैं। इससे प्रकट है कि जिस उद्योगमें श्रम-विभाग पूर्ण सोच-विचारकर अच्छी तरह कर दिया गया है, उसमें हर तरहके सशक्त, अशक्त, अन्ध, बधिर आदि मनुष्योंके लिए काम पर्याप्त रहता है। जब इस तरह जीविका उपार्जन करनेका साधन सबके लिए हो, तो भिक्षाके लिए भिक्षा कोई क्यों माँगेगा ?

और इस प्रकारका श्रम-विभाग मशीनों द्वारा ही सम्भव है। मशीनें कोई ऐसी जीती-जागती राक्षस नहीं हैं कि उनके पास जो कोई जाय, उसे वे खा ही जायँ। जो ऐसा होता, तो वे हमारे जीवनमें आवश्यक स्थानकी पूर्त्ति करनेवाली नहीं हो सकती थीं। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि मशीनसे काम लेनेकी ओर मानव आदि-कालसे झुका हुआ है और हरएक काममें मशीन द्वारा अपना श्रम हल्का करने और साथ ही अपनी उत्पादक शक्तिको बढ़ानेकी कोशिश कर रहा है। पुराने ज़मानेमें कुशल कारीगर अपना अधिकांश समय ऐसे कामोंके करनेमें लगाते थे, जो आसानीसे साधारण मज़दूरों द्वारा अच्छी तरह किए जा सकते थे। यह उनके श्रमकी, हुनरकी फ़ज़ूलख़र्ची थी। परन्तु उन दिनों हरएक काम—चाहे वह कुशल कारीगरका हो, चाहे अकुशलका—एक ही कारीगरको करना पड़ता था। इसलिए ऐसे कामोंमें तब न तो ऐसे आदमियोंको ही लगाया जा सकता था, जो हुनर सीखनेके बिलकुल अयोग्य थे, और न ऐसोंको ही, जिन्हें हुनर सीखनेका कहीं पहले अवसर न मिला हो।

कोई भी कारीगर अपने हाथसे काम करते हुए अपनी रोज़ी-भर ही काम करता है, अधिक नहीं। अतः यह भी मानी हुई बात है कि ऐसे कारीगरका बुढ़ापेमें या जब वह अपने हाथसे रोज़ी कमानेमें अशक्त हो जाय, तो या तो उसके बच्चोंको पालन करना होगा, या यदि वह निःसन्तान है, तो उसका जीवन-भार सरकार या समाजको उठाना पड़ेगा। पर विचारकर देखा जाय, तो यह सब बिलकुल अनावश्यक है, क्योंकि पर्याप्त श्रम-विभाग द्वारा उद्योगोंमें सभी तरहके लोगोंके लिए सदा ही काम रहता है। समाजमें जितने अन्धे हों, उनसे कहीं अधिक अन्धोंके लिए ऐसे उद्योगोंमें काम है। इसी तरह अन्य अपंगोंके लिए भी कामकी कोई कमी नहीं हो सकती। जो व्यक्ति हमारी क्षुद्रबुद्धि या अदूरदर्शिताके कारण हमें दान या भिक्षाका पात्र दीख रहा है, वह ठीक उतनी ही उत्सुकता और सफलतासे अपनी पूरी रोज़ी कमा सकता है, जितनी एक पूर्ण सशक्त और उत्साह-भरा मनुष्य। अपंग आदमीके करने योग्य काममें सशक्त मनुष्यको लगाना उसकी शक्तियोंका अपव्यय नहीं तो क्या है ? अन्धोंको छबड़ी बनानेमें लगाना अथवा क़ैदियोंसे चक्की पिसवाना या पत्थर कुटवाना या ऐसा ही कोई बेकार काम करवाना उनकी शक्तियोंका अपव्यय ही है। मि० फोर्डका कहना है कि सुसंचालित जेलखाना न केवल अपना खर्च आप ही पैदा करनेवाला होना चाहिए, बल्कि जेलमें रहता हुआ प्रत्येक क़ैदी अपने परिवारका भी भरण-पोषण कर सके, उसे उतना कमाना चाहिए। यदि वह परिवारवाला नहीं है, तो उसके छूटने तक उसकी कैदखानेकी कमाईकी बचत इतनी इकट्ठी हो जानी चाहिए कि उससे छूटनेपर वह अपने पैरोंपर खड़ा हो सके। पर हमारे यहाँ तो क़ैदमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भेजकर हम प्रत्येक मनुष्यको ईमानदारीसे जीविका कमानेसे भी बेकार कर देते हैं। जेलखाने अपराधियोंको सुधारकर उन्हें उत्तम नागरिक बनानेके बजाय उत्तम नागरिकोंको सदाके लिए अपराधी बना देते हैं और इस तरह समाजको स्थायी हानि पहुँचाते हैं।

मि० फोर्डका दृष्टिकोण उपयोगी सेवाका है। इस दृष्टिकोणसे जो भी उद्योग संघटित और संचालित किया जायगा, वह लोकोपकारके लिए दान या भिक्षाकी आवश्यकता ही नहीं रहने देगा। लोकोपकार चाहे कितनी ही उच्च और निःस्वार्थ भावनासे किया जाय, कभी भी न तो 'आत्म-विश्वास'का स्थान ले सकता है और न उसे पैदा ही कर सकता है। हमें तो समाजके प्रत्येक व्यक्तिमें आत्म-विश्वास चाहिए। हमें तो ऐसा समाज चाहिए, जो सदा इस बातसे असन्तुष्ट रहे कि जो-कुछ काम अब तक हो रहा है, वह उससे और भी अच्छी तरह क्यों नहीं हो सकता। समाजका प्रत्येक उद्योग हरएक काम करनेवालेको इतना रोज़ी दे सकता है, जो उसके परिवारके प्रत्येक व्यक्तिको विश्वासी और अपना भरण-पोषण करनेवाला बना दे। वह लोकोपकार या लोक-सेवा जो लोगोंको इस तरह करे, उससे सदा ही अच्छी है, जिससे समाजमें परमुखापेक्षिता और आत्म-विश्वास-हीनता पैदा हो। कार भी समाजमें उत्पादक होना चाहिए और हो इसको मि० फोर्डने सफल प्रयोग करके दिखा दिया है। फोर्डके लिए सम्भव है, वह हमारे देशके विचारशील लिए भी सम्भव होना चाहिए।

अछूत बनाम सवर्ण

श्री सन्तराम, बी० ए०

जगतके बहुतसे देशोंमें इस प्रकारके लोग रहे हैं, जो नीच समझे जाते थे। रोमन लोगोंके पास दास थे, स्पार्टन लोगोंके पास क्रीतदास (हेलट) थे, ब्रिटिश लोगोंके यहाँ दुर्जन (विलेन) थे, अमेरिकनोंके यहाँ नीग्रो थे और जर्मनोंके यहाँ यहूदी थे। इसी प्रकार हिन्दुओंके अछूत हैं। पर जो दुर्गति अछूतों की है, वह सम्भवतः संसारकी किसी भी जाति या श्रेणीके लोगोंकी नहीं होगी। दासता, दुर्जनता, क्रीतदासत्व सब अन्तर्धान हो चुके हैं; पर अछूतपन अभी तक मौजूद है, और जब तक हिन्दू-धर्म है, तब तक इसके बने रहनेकी आशा है। अछूतों की दशा यहूदीसे भी कहीं अधिक खराब है। यहूदीके कष्टोंका कारण वह आप है; परन्तु अछूतोंके दुःखोंकी यह बात नहीं। वे तो निष्ठुर, स्वार्थान्ध हिन्दू-धर्मके परिणाम हैं। यह धर्म दुःख देनेमें पाशविक बलसे कम नहीं। यहूदीसे घृणा बेशक की जाती है; परन्तु उसे उन्नतिके अवसरोंसे वंचित नहीं रखा जाता। अछूतसे केवल घृणा ही नहीं की जाती, वरन् उत्थानके सभी सुयोगोंसे उसे वंचित भी रखा जाता है।

१८ और १९ जुलाई सन् १९४२ को नागपुरमें अखिल भारतीय अस्पृश्य-सम्मेलन हुआ था। उसमें उन्होंने तीन संरक्षण माँगे थे—(१) व्यवस्थापिका सभा जनताकी प्रतिनिधि ही नहीं, वरन् दोनों श्रेणियों—सवर्णों और अछूतों—की अलग-अलग भी प्रतिनिधि होगी। (२) शासन-विभाग केवल व्यवस्थापिका सभाके आगे ही नहीं, वरन् हिन्दुओं और अछूतों दोनोंके सामने उत्तरदायी होगा, क्योंकि व्यवस्थापिका सभाका अर्थ है सवर्णोंके सामने उत्तरदायी होना। (३) शासन केवल उपयुक्त गुणशाली ही नहीं, वरन इस योग्य भी हो कि उसपर जनताके सभी विभाग अछूत विश्वास कर सकें, उसमें अछूतोंके प्रतिनिधियोंकी संख्या हो, उन प्रतिनिधियोंके पास प्रधान पद हों, जिससे को शासनमें विश्वास हो सके। अछूतोंकी इन माँगोंपर हिन्दुओं और अछूतोंमें बड़ा वाद-विवाद चलता रहा है। सम्बन्धमें कांग्रेसकी प्रतिनिधि-सरकारकी स्कीम इस प्रकार (१) व्यवस्थापिका सभाका चुनाव प्रतिनिधि-निर्वाचक द्वारा हो, और ये समुदाय बिलकुल प्रादेशिक हों। (२) विभागके लिए व्यवस्थापिका सभामें एकमात्र बहुसंख्यांक ही कर्मचारी लिए जायँ। (३) शासन-कार्य ऐसे द्वारा चलाया जाय, जिनको एकमात्र कार्यदक्षताके भरती किया गया हो। कांग्रेसमें सवर्ण हिन्दुओंका बहुमत अपनी स्कीमको राष्ट्रीय योजना और अछूतोंकी बनाई साम्प्रदायिक योजना कहते हैं। अब विचारणीय विषय भारतीय समाजकी आज जैसी विशिष्ट सामाजिक उसे दृष्टिमें रखते हुए क्या विशुद्ध प्रादेशिक निर्वाचन भारतमें वस्तुतः प्रतिनिधि व्यवस्थापिका सभा बना ऊपरसे देखनेपर राष्ट्रीय योजना नाम बड़ा लुभावना और दायिक योजना बुरा प्रतीत होता है; परन्तु गरम्भीरतापूर्वक करनेपर इसकी निःसारता प्रकट हो जाती है। भारत-जहाँ कोई ऐसे हित नहीं, जिनमें जनताके विभिन्न दलोंमें हो, जहाँ आपसमें मुक्त एवं पूर्ण मेल-जोल न हो, जहाँ सामाजिक आदान-प्रदानकी रुकावट हो; वहाँ एक दल बड़ा हो और चाहे छोटा—दूसरे दलकी इच्छा-आकांक्षाओं

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिखला सकता। बहुसंख्याकी इच्छा बहुसंख्याकी इच्छा ही होती है, इससे बढ़कर और कुछ नहीं। तर्कका कोई भी कौशल इस सचाईको बदल नहीं सकता। इसलिए इस इच्छाको कार्य करने देना मानो बहुसंख्याके अत्याचारको खुली छुट्टी देना है।

फिर यह मान लेना भारी भूल होगा कि व्यवस्थापिका सभामें चुनकर भेजा हुआ प्रतिनिधि उन मतदाताओंकी इच्छाओंको दिखलायगा, जिन्होंने उसे चुना है, और जिस श्रेणीसे उसका सम्बन्ध है, उसके हितोंको भूल जायगा या गौण कर देगा। प्रतिनिधिकी अवस्था विभक्त भक्तियोंकी अवस्था है। उसे दो, वरन् तीन, परस्पर-विरोधी कर्त्तव्योंका सामना करना पड़ता है—अपने-आपके प्रति कर्तव्य, उस जाति या उपजातिके प्रति उसका कर्त्तव्य, जिसमें उसका जन्म हुआ है और उन वोटरोंके प्रति उसका कर्त्तव्य, जिन्होंने उसे चुना है। पहली बातको छोड़कर, यह हमारा प्रतिदिनका अनुभव है कि प्रतिनिधि अपने वोटरोंके हितोंकी अपेक्षा अपनी जातिके हितोंको अधिक महत्व देता है। यह एक सचाई है कि व्यवस्थापिका सभाके एक ब्राह्मण या बनिया सदस्यको ब्राह्मणों या बनियोंके हित जितने प्यारे हैं, उतने दूसरी जातियोंके वोटरोंके नहीं।

इस बातका मूल हिन्दू-समाजके विशिष्ट स्वरूपमें है। हिन्दू-समाज-पद्धति एक जातिको दूसरी जातिके ऊपर रखती है। इसका फलाफल होना अनिवार्य है। हिन्दू-समाज-पद्धतिमें शूद्रसे ब्राह्मण तक प्रत्येक वर्णका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और अपमान घटता जाता है। इसलिए यह बताना कुछ भी कठिन नहीं कि इन सामाजिक भावोंका वोटिंगपर क्या फलाफल होगा। कोई भी सवर्ण हिन्दू किसी अछूत शूद्रको वोट देना पसन्द नहीं करेगा, क्योंकि वह नीच होनेके कारण व्यवस्थापिका सभामें जाने के योग्य नहीं समझा जाता। इसके विपरीत अछूतोंमें अनेक ऐसे वोटर होंगे, जो अछूत उम्मेदवारके बजाय स्वेच्छापूर्वक सवर्ण उम्मीदवारको वोट देंगे। इसका कारण यह है कि उन्हें अपने-आप या अपने अछूत भाई-बन्धुकी अपेक्षा सवर्ण हिन्दूका अधिक सम्मान करना सिखाया गया है। शूद्रों-जैसे दरिद्र, अशिक्षित, अचेतन, असंगठित सम्प्रदायसे वोट लेना इसलिए सवर्ण हिन्दुओं-जैसे धनाढ्य, सुशिक्षित और सज्ञान दलके लिए कुछ भी कठिन नहीं।

सवर्ण हिन्दू अछूत शूद्रोंके लिए पृथक् निर्वाचनका विरोध करते हैं। उनकी आपत्ति यह है कि पृथक् निर्वाचनका अर्थ है राष्ट्रको खण्ड-खण्ड कर डालना। इसका उत्तर स्पष्ट है। सबसे पहली बात तो यह है कि 'राष्ट्र' शब्दके सच्चे अर्थमें भारतीयों का कोई राष्ट्र है ही नहीं। अभी उसे अस्तित्वमें लाना है। पृथक् एवं स्वतन्त्र जातियोंको दबाना या छिपाना एक राष्ट्र बनानेकी कोई विधि नहीं। दूसरे, यदि मान लिया जाय कि व्यवस्थापिका सभामें अछूतोंके प्रतिनिधि अछूत ही होने चाहिएँ, तब यह आवश्यक है कि वे अछूत अछूत वोटरोंके सच्चे प्रतिनिधि हों। यदि यह स्थिति ठीक है, तो केवल पृथक् निर्वाचनसे ही अछूतोंके सच्चे प्रतिनिधि आ सकते हैं। कथित राष्ट्रीय योजनाका उद्देश्य चाहे साम्प्रदायिक न हो, पर परिमाण निस्सन्देह साम्प्रदायिक है।

सवर्ण हिन्दू कहते हैं कि शासन-विभाग व्यवस्थापक सभाके अधिकांशका प्रतिनिधि होना आवश्यक है और शासन-विभागके कर्मचारी शासन-कार्यके योग्य होने चाहिएँ। यह युक्ति मौलिक रूपसे निर्दोष है; परन्तु यह भी अनुभव करना चाहिए कि प्रतिनिधि सरकारमें यह युक्ति अधिक दूर तक काम नहीं देती। राजनीतिके पण्डित प्रोफ़ेसर डाईसेका कथन है—'बौद्धिक दृष्टिसे यथासम्भव सर्वोत्तम पार्लमेण्ट इकट्ठी करना वैधानिक व्यवस्थाका प्रारम्भिक उद्देश्य कभी नहीं रहा। वास्तवमें इस प्रकारकी पार्लमेण्ट बनानेका प्रयत्न करना, जो सर्वसाधारण जन-समूहसे बुद्धिमें बहुत अधिक बढ़िया हो, प्रतिनिधि सरकारके भावके साथ असंगत होगा।' क्षमताशीलतापर बल देना अनावश्यक है। कोई नहीं कहता कि अपढ़ मनुष्योंको सचिव बना दिया जाय, केवल इसलिए कि वे अछूत या शूद्र हैं। यदि उन्हें मन्त्रिमण्डलमें अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार दे दिया जायगा, तो वे अपनेमें से अधिक क्षमताशाली व्यक्तिको सचिव चुनेंगे।

'बहुसंख्या' और 'अल्पसंख्या' शब्दोंका बड़ा दुरुपयोग किया जा रहा है। सवर्ण हिन्दू भूल जाते हैं कि बहुसंख्या और अल्पसंख्या राजनीतिक श्रेणियाँ हैं, इसलिए राजनीतिक श्रेणियोंके रूपमें न कोई स्थिर बहुसंख्या है और न स्थिर अल्पसंख्या। राजनीतिक बहुसंख्याएँ और राजनीतिक अल्पसंख्याएँ तरल संस्थाएँ होती हैं। जो आज बहुसंख्या है, वही कल अल्पसंख्या बन सकती है, और जो आज अल्पसंख्या है, वही कल बहुसंख्या बन सकती है। परन्तु सवर्ण हिन्दुओं और अछूतोंके बीचका अन्तर ऐसा नहीं। न सवर्ण अछूत बन सकता है और न अछूत सवर्ण। राजनीतिमें अल्पसंख्या बढ़कर बहुसंख्या हो जाती है, और वह बहुसंख्या अल्पसंख्याकी भावनाको इतना अधिक सोख लेती है कि अल्पसंख्या परिणामके साथ सन्तुष्ट हो जाती है और उसे बहुसंख्याके साथ झगड़नेकी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु भारतकी अल्पसंख्याओं और बहुसंख्यामें ये बातें नहीं। वे एक-दूसरेसे केवल भिन्न ही नहीं, एक-दूसरेकी विरोधी भी हैं। इनको बहुसंख्या और अल्पसंख्या कहना वैसा ही है, जैसे जर्मनोंको बहुसंख्या और फ्रांसीसियोंको अल्पसंख्या कहना।

अछूत कहते हैं कि सरकारी नौकरीके लिए एक कम-से-कम योग्यता नियत कर दी जाय और फिर हमारे लिए नौकरियोंका एक अनुपात निश्चित कर दिया जाय। हम नहीं कहते कि हमारे

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपढ़ अछूत सरकारी नौकरियोंमें भरती किए जायँ। जो अछूत उस नियत कम-से-कम योग्यताको प्राप्त करे, उसे ही नौकर रखा जाय। सवर्ण हिन्दू अछूतोंकी इस माँगका विरोध करते हैं। वे कहते हैं, राज्यका हित इस बातमें है कि सरकारी नौकरीके लिए पदप्रार्थीकी केवल क्षमता, योग्यता और चरित्रपर ध्यान दिया जाय, उसकी जाति और सम्प्रदायका कुछ खयाल न किया जाय। क्षमता, योग्यता और चरित्रकी आवश्यकताके विषयमें किसीको कोई झगड़ा ही नहीं। विवाद केवल इस बातपर है कि क्या सरकारी नौकरीमें भरती करते समय जाति और सम्प्रदायपर विचार करनेकी आवश्यकता है या नहीं? सवर्ण हिन्दू क्षमता-शीलताकी एकमात्र कसौटी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताको ही समझते हैं। इसलिए वे आग्रह करते हैं कि जाति और सम्प्रदायका कुछ भी विचार न करके जो भी व्यक्ति प्रतियोगिताकी परीक्षामें बढ़ जाय, उसे ही सरकारी नौकरी दी जाय। वे कहते हैं, इसमें सवर्ण और असवर्ण दोनों नौकरी पा सकते हैं और क्षमताशाली मनुष्य ही लिए जायँगे।

अब प्रश्न यह है कि क्या प्रतियोगिताकी परीक्षाओंके द्वार सभी जातियों और सम्प्रदायोंके लिए खुले होनेसे ही अछूत सरकारी नौकरियोंमें अपने पैर जमा सकेंगे? यह बात राज्यकी शिक्षा-पद्धतिपर निर्भर करती है। क्या हमारी शिक्षा-पद्धति पर्याप्त रूपसे प्रजातन्त्री है? क्या शिक्षाके सुभीते इतने फैले हुए हैं और जनता उनका उतना उपयोग कर पाती है कि सब जातियोंके लोग प्रतियोगितामें आ सकें? भारतमें उच्चशिक्षापर ऊँची जातियोंके हिन्दुओंका ही इजारा है। अछूतोंको शिक्षाके सुभीते प्राप्त नहीं। दरिद्रताके कारण भी वे उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। इसी लिए अछूत कहते हैं कि प्रत्येक सरकारी नौकरीके लिए एक सर्वाल्प योग्यता नियत कर दी जाय। फिर यदि दो मनुष्य उसके लिए प्रार्थनापत्र भेजें और उन दोमें से अछूतकी सर्वाल्प योग्यता हो, तो सर्वाल्प योग्यतासे अधिक योग्यता रखनेवाले दूसरे सवर्ण हिन्दू प्रार्थीको छोड़कर उस अछूतको नौकरी दी जाय। इसका अभिप्राय यह है कि नौकरी पानेका आधार सर्वाल्प योग्यता होना चाहिए, न कि सर्वोच्च योग्यता।

गाँवोंमें सवर्ण हिन्दुओंके साथ एक ही जगह रहनेसे अछूत अछूत बने हुए हैं। इसीसे सवर्ण उनपर अस्पृश्यताकी अयोग्यता क़ायम रखनेमें सफल हुए हैं। यदि अछूतोंके गाँव सवर्णोंसे भौगोलिक एवं प्रादेशिक रूपसे बिल्कुल अलग बसा दिए जायँ, तो वहाँ अस्पृश्य और स्पृश्यका, ऊँच और नीचका भेद-भाव बिल्कुल मिट जायगा और सवर्ण भी उनसे घृणा न कर सकेंगे। गाँवोंमें बहुसंख्यक सवर्ण हिन्दुओंके साथ थोड़े-से अछूत रहते हैं। वे आर्थिक रूपसे सवर्णोंपर आश्रित हैं, इसलिए अछूत उनसे दबे रहते हैं। हिन्दूकी समाज-पद्धति उसके धर्मका अंग है। इस पद्धतिसे उसे तो बहुतसे विशेषाधिकार प्राप्त हैं; अछूतपर अपमानों और अयोग्यताओंका ढेर लाद दिया गया है। अब अछूतोंमें भी आत्म-सम्मानका भाव जाग्रत होने लगा है। गाँव-गाँवमें सवर्ण और अछूतके बीच संग्राम आरम्भ हो गया है। परन्तु हिन्दू-पत्र उसके समाचार नहीं छापते, ताकि उनकी आँखोंमें उनके स्वतन्त्रता-आन्दोलनको हानि न पहुँचे।

संसारके किसी भी दूसरे देशमें शासन-विधान बनानेमें ऐसे प्रश्नोंका सामना नहीं करना पड़ता, जैसा कि भारतमें पड़ता है। इसका कारण यह है कि हिन्दू-समाजका ढाँचा ऐसा है, जिससे उपर्युक्त प्रश्नोंको वैधानिक महत्ता मिल जाती है। हिन्दुओंका जाति-भेद एवं धर्म-पद्धति ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। सवर्ण कहते हैं, हिन्दुओंके जाति-भेद और पश्चिमी देशोंके श्रेणी-भेदमें कोई अन्तर नहीं; पर उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। जाति-भेद और श्रेणी-भेदके अन्तरका उन्हें ज्ञान नहीं। जाति-भेदमें जुदाईका भाव भरा हुआ है। वह एक जातिको दूसरी जातिसे पृथक् रहनेको एक सद्गुण समझता है। श्रेणी-भेदमें भी जुदाई तो है; पर यह पृथकत्वको न तो सद्गुण समझता है और न सामाजिक मेल-मिलापका निषेध करता। यह सच है कि श्रेणी-भेदसे समुदाय उत्पन्न हो जाते हैं; पर ये समुदाय जात-पाँतके समुदायोंके सदृश नहीं होते। श्रेणी-भेदके समुदाय केवल असामाजिक हैं। पर जाति-भेदमें अपने आपमें सम्बन्धोंमें वे निश्चित एवं स्पष्ट रूपसे समाज-विरोधी हैं। इस प्रकार हिन्दू-समाज-पद्धति पाश्चात्य समाज-पद्धतिसे भिन्न है। इसलिए भारतकी राजनीतिक रचना भी पाश्चात्य राजनीतिक रचनासे भिन्न होनी चाहिए। जाति-भेद प्रजातन्त्रका बिल्कुल उलटा है। इसलिए जब तक जाति-भेद है, तब तक प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली भारतके अनुकुल नहीं हो सकती। सवर्णों और अछूतोंमें आज इतना विरोध बढ़ गया है कि यदि सवर्णोंको अंगरेज़ोंसे स्वतन्त्रता और स्वराज्य मिल जाय, तो वे सवर्णोंसे किसी न्यायकी रक्षा नहीं कर सकते।

यद्यपि मुसलमान और सिक्ख भी अलग अधिकार माँग रहे हैं; पर सवर्ण हिन्दू उनका उतना विरोध नहीं करते, जितना कि अछूतोंका। मुसलमानोंकी तो वे चापलूसी तक भी करते हैं। संवादपत्र प्रायः सभी सवर्ण हिन्दुओंके हैं। वे जानबूझकर अछूतोंके समाचार नहीं छापते। वे उनके प्रति उदासीनता दिखलाते हैं। जब वे उदासीन नहीं रह सकते, तो वे अछूत नेताओंको खरीदनेका यत्न करते हैं। जब किसी नेताको खरीदनेमें उन्हें सफलता नहीं होती, तो वे विधिपूर्वक उसे गालियाँ देते, अशुद्ध रूपमें पेश करते और दबाने तथा चुप करानेकी हर सम्भव चेष्टा करते हैं। वे उसे देशद्रोही कहने लगते हैं।

सवर्ण हिन्दू अंगरेज़ोंसे पूछते हैं कि जर्मनीके साथ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्देश क्या है ? पहले अपना उद्देश्य स्पष्ट करो, फिर हम इस युद्धमें तुम्हें सहायता देंगे। वे कहते हैं, हमें बताओ कि जिस स्वतन्त्रताके नामपर तुम हिटलरसे लड़ रहे हो, वह हमें भी दोगे या नहीं ? इसी प्रकार क्या अछूत और सछूत शूद्र सवर्ण हिन्दुओंसे नहीं पूछ सकते कि अंगरेज़ोंसे राज्य ले लेनेके बाद तुम क्या करना चाहते हो ? क्या उस प्राप्त की हुई स्वतन्त्रतासे अछूतों और शूद्रोंको भी सामाजिक और राजनीतिक समता प्राप्त कराओगे या आप ही पहलेसे भी अधिक शक्तिशाली बनकर शूद्रोंको और भी अधिक दास बना दोगे ? क्या तुम मनुका धर्म-राज्य स्थापित करके शूद्रोंके लिए स्वतन्त्रता, समता और बन्धुताका निषेध कर दोगे ? इन प्रश्नोंके उत्तरसे ही पता लग जायगा कि सवर्ण हिन्दू समूचे देशकी स्वतन्त्रताके लिए संग्राम कर रहे हैं, या अपने लिए शक्ति प्राप्त करनेके लिए।

सवर्ण लोग वर्ण-व्यवस्थाको छोड़नेको तैयार नहीं। बड़े-बड़े कांग्रेसी नेता तक वर्णाश्रम धर्मके गुण गाते नहीं थकते। यह वर्ण-व्यवस्था स्वतन्त्रता, समता एवं बन्धुता अर्थात् प्रजातन्त्रकी विरोधी है। थोड़ी-बहुत विषमता, निस्सन्देह, संसारमें सब कहीं पाई जाती है। इसका कारण अधिकतर अवस्थाएँ और परिस्थितियाँ हैं ; परन्तु कहीं भी इस विषमताको धर्मका अंग नहीं समझा जाता। हिन्दुओंमें केवल सामाजिक विषमता ही नहीं, वरन् इस असमताको धर्मका अंग भी समझा जाता है। सवर्ण हिन्दू किसीके साथ समताका व्यवहार करनेको तैयार ही नहीं। प्रत्येक सवर्ण सामाजिक रूपसे अनुदार और राजनीतिक रूपसे प्रजातन्त्री है। जब कोई सवर्ण हिन्दू सन् १७७६ की स्वतन्त्रताकी अमरीकन घोषणामें पढ़ता है—'जब कभी गवर्मेण्टका कोई रूप इन उद्देश्योंका नाश करनेवाला बन जाय, तो जनताको अधिकार है कि वह इसे बदल दे या नष्ट कर दे और नई गवर्मेण्ट बना ले ; और उस नई गवर्मेण्टका आधार ऐसे सिद्धान्तों पर रखे और उसकी शक्तियोंका संगठन ऐसे रूपमें करे, जिससे जनताकी रक्षा और सुखकी वृद्धिकी बहुत अधिक सम्भावना हो।' तो वह हर्षसे पागल हो जाता है। परन्तु वह उतना ही पढ़कर बन्द कर देता है। वह उस घोषणाके पहले अंशको पढ़नेका कष्ट नहीं करता, जिसमें लिखा है—'हम इन सचाइयोंको स्वतःसिद्ध मानते हैं कि सब मनुष्य जन्मसे बराबर हैं। स्रष्टाने उनको कई ऐसे अधिकार दिए हैं, जो उनसे छीने नहीं जा सकते। उन जन्मसिद्ध अधिकारोंमें जीवन, स्वाधीनता और सुखका उपार्जन करनेकी चेष्टा भी है। इन अधिकारोंको सुरक्षित करनेके लिए ही मनुष्योंमें गवर्मेण्टें बनाई जाती हैं। ये गवर्मेण्टें शासित प्रजाकी सम्मत्तिसे ही अपनी न्यायसंगत शक्ति प्राप्त करती हैं।'

अब देखना यह है कि क्या अछूतोद्धारकी प्रतिज्ञा करनेवाले हिन्दू-संघ या मण्डल अछूतोंको सवर्ण हिन्दू-प्रभुओंसे स्वतन्त्रता दिलाने, उनको सामाजिक और राजनीतिक रूपसे सवर्णोंके बराबर बनानेको तैयार हैं ? बिल्कुल नहीं। यह काम तो प्रजातन्त्री और सामाजिक क्रान्तिकारीका है। महात्मा गांधी-जैसे नेता भी इन दोनोंमें से एक भी नहीं हैं। आत्माभिमानी अछूत अनुभव करते हैं कि ये अछूतोद्धारक संघ भारतको हिन्दुओं और हिन्दू-धर्मके लिए रक्षित करना चाहते हैं। वे अछूतोंकी लड़ाई नहीं लड़ते। इसके विपरीत दरिद्र अछूतोंके भिक्षापात्रोंमें मुट्ठीभर भिक्षा डालकर उनको खरीदने, चुप करने और उनके विरोधको शान्त करनेकी चेष्टा करते हैं ; क्योंकि वे जानते हैं कि यही एक शक्ति है, जो वर्ण-व्यवस्थाको नष्ट करके भारतमें सच्चा प्रजातन्त्र स्थापित करेगी। ये सवर्ण नेता वर्ण-भेदको अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं। साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि अछूत हिन्दू रहें। परन्तु किस रूपमें ? भागीदारके रूपमें नहीं, वरन् सवर्णोंके दरिद्र आत्मीयोंके रूपमें। वे अछूतोंपर दया करते हैं। परन्तु किस लिए ? केवल इसलिए कि वे अपनी दयालुतासे अछूतोंको सवर्णोंसे पृथक् और स्वतन्त्र होनेके उनके आन्दोलनको मार दें।

श्री जवाहरलाल नेहरूको ही देख लीजिए। वे 'स्वाधीनता की अमेरिकन घोषणा'से अनुप्रेरणा प्राप्त करते हैं। परन्तु क्या उन्होंने छूत और सछूत शूद्रोंकी दुरवस्थाके विषयमें कभी लज्जा या मनस्ताप प्रकट किया ? उनकी लेखनीसे साहित्यका जो प्रवाह निकल रहा है, क्या उसमें उन्होंने कभी इनका भी उल्लेख किया ? भारतके उन नवयुवकोंके पास जाइए, जिनसे विश्वविद्यालय भरे हुए हैं, जो जवाहरलालजीको अपना हृदय-सम्राट कहते हैं और जो ब्रिटिश लोगोंके विरुद्ध भारतकी राजनीतिक लड़ाइयाँ लड़नेको सदा तैयार रहते हैं। परन्तु सवर्ण हिन्दुओंकी धनीमानी जातियोंके इन बच्चोंने शूद्रोंके प्रति इनके पूर्वजों द्वारा किए गए अनिष्टोंको दूर करनेके लिए क्या किया है ? राजनीतिक प्रोपेगण्डामें सम्मिलित होनेके लिए आपको सहस्रों सवर्ण युवक मिल जायँगे ; परन्तु आपको एक भी ऐसा युवक न मिलेगा, जो वर्ण-भेदको या अस्पृश्यताको मिटानेका काम हाथमें लेनेको तैयार हो। प्रजातन्त्र या समताका भाव वर्ण-भेदको माननेवाले हिन्दुओं के लिए एक अपरिचित चोज़ है। इसलिए ऐसे अनुदार और ऊँच-नीचमूलक वर्ण-भेदको माननेवाले सवर्णोंके हाथमें भारतका शासत-सूत्र जाना अछूतों और शूद्रोंके लिए भारी अनिष्टका कारण ही समझता है। फलतः यह परम आवश्यक है कि सवर्ण हिन्दू अंगरेज़ोंके विरुद्ध अपने संग्रामका उद्देश्य विघोषित करें, जिससे पता लगे कि वे सचमुच समूचे देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं।*

* डाक्टर बी० आर० अम्बेडकर-कृत 'Mr. Gandhi and Emancipation of Untouchables' के आधारपर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक सुनहरा दिन

श्रीमती मन्दाकिनी त्रिलोकेकर

सारा संसार जिस समय निद्रादेवीकी गोदमें सो रहा था, गुजरातके एक छोटे-से देहातका दृश्य कुछ और ही था। अस्सी घरोंवाला यह ग्राम भी और दिनोंकी भाँति, अन्य गाँवोंकी नाईं, शायद कुछ अधिक समय तक निद्रादेवीकी गोदमें सोता; परन्तु मानो उस दिनके विशिष्ट महत्वको पूर्णरूपसे समझकर ग्रामवासियोंने प्रातःकार्य आज और दिनोंसे शीघ्र प्रारम्भ कर दिए थे। ग्रामके पुरुषोंका काम था गायों तथा भैंसोंको दुहना, उन्हें चराने ले जाना और इस प्रकारके सब कार्य समाप्त होनेके पश्चात् अपने जीवनके साथी वृषभोंको साथ लेकर खेतोंमें जाना तथा धरती मैयाको काममें लगाना। एक ओर इस तरह पुरुषोंका कार्य आरम्भ हो रहा था, तो दूसरी ओर ग्रामकी स्त्रियाँ उतने ही उत्साहके साथ भिन्न-भिन्न प्रकारके गृहस्थीके कार्य कर रही थीं। बच्चोंको जगा तथा हाथ-मुँह धुला और घरमें सफ़ाई करके वे पुरुषोंके लिए भोजन बनाकर बालकोंके हाथ या स्वयं पहुँचानेकी व्यवस्था कर रही थीं। इस प्रकार सारे ग्रामवासी विविध कार्योंको शीघ्रतासे समाप्त करनेकी चेष्टामें लगे थे। इस उत्साहका कारण था आज उस ग्रामके पासवाले शहरकी एक पाठशालाकी बालिकाएँ इन ग्रामवासियोंके साथ एक दिन व्यतीत करनेको आनेवाली थीं। ग्रामवासियोंके लिए मानो यह एक सौभाग्यका दिन था।

यद्यपि इस बातसे कई ग्रामवासियोंके मनमें एक प्रकारका आनन्द छा गया था, तथापि थोड़े ग्रामवासी ऐसे भी थे, जिनका मन कुछ दुविधामें पड़ गया था। उन्हें आशंका हो रही थी कि कहीं ये बालिकाएँ हम लोगोंका धर्मान्तर करनेके हेतुसे तो नहीं आ रही हैं! कुछ ग्रामवासी ऐसे भी थे, जिनके मनमें यह शंका झाँक गई कि इस वर्ष हम लोगोंको खेतोंसे अधिक प्राप्ति हुई है, अतः ये शेष अनाज ले जानेको कहीं खुफ़िया-पुलीसकी तरफ़से तो नहीं आ रही हैं! पर सौभाग्यवश इस विचारके ग्रामवासी अधिक न थे। पर स्त्रियोंको देखनेसे ज्ञात होता था कि वे पुरुषोंसे सौगुने अधिक उत्साह तथा हर्षके साथ अपने कार्यको इतनी शीघ्रता तथा सफ़ाईसे कर रही थीं, मानो कोई बड़ा भारी मेहमान आनेवाला है। वे चाहती थीं कि आनेवाले मेहमानोंका स्वागत करनेमें किसी बातकी ज़रा भी कमी न रहे।

सारे ग्रामवासियोंने अपने-अपने कार्य लगभग बारह बजे तक समाप्त कर लिए थे और उनकी दृष्टि आनेवाले मेहमानोंके मार्गकी ओर एकटक लगी थी। इसी समय सामनेसे आनेवाली मोटरकी आवाज़ उनके कानोंमें पड़ी, और वे जान गए कि जिस शुभ घड़ीकी बाट जोह रहे थे, वह आ पहुँची। देखते-ही-देखते पैंतीसके क़रीब बालिकाएँ अपनी शिक्षिकाओंके साथ मोटरसे उतरीं और बड़े उत्साहके साथ अपना कार्यक्रम प्रारम्भ लग गईं। वे ग्रामके पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चोंके लिए के उपहार लाई थीं, जिनके लिए उन्होंने सामर्थ्यानुसार किया था। सबसे पहले बालिकाओंने ग्रामके सारे घरोंक्षण किया। बादमें वे ग्रामकी पाठशालामें गईं। उन्होंने एक बड़े वृक्षके नीचे सारे ग्रामवासियोंको विविध खेल खिलाए। विविध प्रकारके दिल बहलानेवाले इस बाद ग्रामकी औरतोंने बहुत-कुछ शरमानेके पश्चात् देहाती सुनाए तथा रास दिखाए। अन्तमें इनाम बाँटनेका एक समारम्भ हुआ। बालिकाओंकी समितिके निर्णयानुसार पुरुष तथा स्त्रीको, सबसे तन्दुरुस्त पुरुष, स्त्री तथा बालबालिकाको, सबसे स्वच्छ रहनेवाले ग्रामवासीको तथा प्रकारके खेलोंमें पहला नम्बर प्राप्त करनेवाले बालकको इनाम गए। कार्यक्रम समाप्त होनेसे पहले एक बालिकाने ग्रामवयह विनती की कि वे ग्रामकी पाठशालामें अपने बालकोंकर कम-से-कम उन्हें लिखना-पढ़ना ज़रूर सिखायँ। उसे बताया गया कि दुनियाके सारे देशोंमें शिक्षा-क्षेत्रमें हमारे बराबर पिछड़ा हुआ और कोई देश नहीं है। इस कलंकडालनेका केवल एक ही उपाय है, और वह यह कि सारे वासी अनपढ़ न रहनेका उपाय करें। देशकी वास्तविक तभी हो सकती है, जब कि सारे देशवासी पढ़े-लिखे हों

यह सब सुनकर ग्रामवासी शिक्षाके महत्वको तो जानपरन्तु उनको अपने सभी बच्चोंको पढ़ानेकी बात शायद व्यानहीं लगी। एक तो किताबोंपर खर्च करना उन्हें मुश्किल तथा दूसरा यह कि जब स्त्री-पुरुष दोनों अपने खेतोंमें करने जाते हैं या और अन्य कार्योंमें लगे रहते हैं, तब भाई या बहनको सम्हालनेका काम घरके बड़े बच्चोंको ही पड़ता है। इस प्रकारके अनेक कारण उन्होंने बालिसम्मुख पेश किए। उनके इस प्रकारके अनेक संकटोंको बालिकाओंके कोमल मन दुःखसे पीड़ित हुए, और वे शिक्षिकाओंसे उद्विग्न मनसे पूछने लगीं—'इन ग्रामोंमें शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ़्त क्यों नहीं करती, ताकि सारे रूसी ग्रामवासियोंकी भाँति पढ़-लिख सकें?' शिक्षिकाएँ इसका क्या उत्तर देतीं?

इनाम पानेवालोंमें एक वृद्ध ९० वर्षका था, जिसकी दो महीने पहले तूफ़ानने उड़ा दी थी। इस प्रकार वह बे-घरबार तथा बे-रिश्तेदार हो गया था। उसकी यह दुःखकहानी सुनकर बालिकाओंके मनकी सुन्दर भावना जाग उठी, उन्होंने यह संकल्प किया कि हर महीने अपनी कक्षाकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काओंसे चन्दा एकत्रितकर उस वृद्धको गुज़र-बसरके लिए भेज दिया जाय। जब तक उस बुड्ढेकी जीवन-नैया इस दुनिया-रूपी सागरमें चलती रही, तब तक इन बालिकओंने जितनी बन सकी, उसकी सहायता की।

सन्ध्या होते ही सूरज डूबनेके साथ बालिकाओंने भी वहाँसे प्रस्थान किया। उन्हें विदा करते समयका ग्रामवासियोंका हार्दिक दुःख अवर्णनीय था। कई बार उन्होंने बालिकाओंके साथ आई हुई शिक्षिकाओंसे भविष्यमें इस प्रकारकी शुभ घड़ीकी अपेक्षा प्रकट की। मेहमानोंके जानेके पश्चात् सब ग्रामवासी यही कहने लगे कि इस ग्रामके इतिहासमें वह सुनहरा दिन कोई भूल नहीं सकेगा, क्योंकि उस दिन उन्होंने कई बातोंपर प्रकाश पाया था। उस दिन उन्होंने मालूम किया कि शहरके पढ़े-लिखे सभी लोग बुरे नहीं होते, बल्कि उनसे कई अच्छी बातें सीखी जा सकती हैं। उनके मनमें शहरवासियोंके प्रति जो एक प्रकारका भय या उपेक्षा थी, वह नष्ट हो गई। उनके मनमें यह भी विचार आया कि इस प्रकार शहरवासियोंसे उनका सम्बन्ध बना रहे, तो उनका गँवारूपन दूर होनेमें बहुत समय न लगेगा। इधर बालिकाएँ भी ग्रामवासियोंके इतने निकट सम्पर्कमें आनेसे अपने-आपको धन्य समझ रही थीं, क्योंकि उन्होंने उस दिन ग्रामवासियोंके सही स्वभावका अनुभव किया था। उन्होंने यह मालूम किया कि केवल किताबोंमें ही शिक्षा नहीं है, बल्कि धरती-माताके इन सच्चे सुपुत्रोंके साथ सजीव सम्पर्क स्थापित करना तथा उनके स्वभाव, रहन-सहन, रीति-रिवाज और जीवनका ढंग जान लेना ही सच्ची शिक्षा है। ऐसी शिक्षाका महत्व अक्षरों द्वारा समझाया नहीं जा सकता। इन बालिकाओंमें आधेसे अधिक संख्या अमीर घरानोंकी बालिकाओंकी थी।

सूरके काव्यमें रंगोंकी संयोजना

श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन'

हिन्दी-साहित्य-गगनके सूर्य सूरके काव्यका स्वरूप पचरंगी चादरकी भाँति दृष्टिगोचर होते हुए भी भक्तिमय सख्य भावके अनुरागकी लालिमासे विशेष-रूपेण अनुरंजित है। भगवानकी तीन विभूतियों (शक्ति, शील एवं सौन्दर्य)में कविने केवल सौन्दर्यपर ही अपनेको निछावर किया है। सूरके काव्यमें जिस सौन्दर्यको व्यक्त किया गया है, उसमें हृदय-पक्षका पुट प्रधान है और कला-पक्षका गौण। हृदय-पक्षके पुजारी सूरके काव्यमें कला-पक्ष तो स्वतः ही सहयोगीके रूपमें आ गया है। उसके लिए कविको मानसिक व्यायाम करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। वस्तुतः सूरके सूरत्वमें हृदय-पक्ष एवं कला-पक्ष सागर और तरंग की भाँति समवाय सम्बन्ध रखते हैं। कविकी भक्ति तथा वात्सल्य की प्रगाढ़ताका ही यह फल है कि हमें 'सूरसागर'की एक-एक पंक्तिमें अनेक भावोंकी अभिव्यंजना मिलती है। यशोदाके शब्दोंमें कविके कवित्वको परखिए :—

नन्द ब्रज लीजै ठोंकि बजाय।
देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुलके राय॥

उपर्युक्त शब्दावलीमें माता यशोदाकी वात्सल्य-सरिता अपने किनारोंके ऊपर होकर बही है। मातृत्वने पत्नीत्वपर पूर्ण विजय पाई है। इन पंक्तियोंमें माता यशोदाका भाव पंचामृत है। 'ब्रज लीजै ठोंकि बजाय'में निर्वेद, तिरस्कार तथा अमर्ष तीनोंका ही सुन्दर सम्मिश्रण है। शान्त, वात्सल्य एवं शृंगारके वक्ता सूरने अपने काव्यमें गिनती गिनानेके लिए तो सभी रसोंकी स्रोतस्विनी प्रवाहित की है; पर वात्सल्यके मनोवैज्ञानिक चित्रण और वियोग-शृंगारकी कसकमें तो कविने क़लम ही तोड़ दी है।

सूरके काव्यपर हमें वल्लभाचार्यके पुष्टि-मार्गका प्रभाव पूर्णतया दिखाई पड़ता है। पुष्टि-मार्गके आधारपर श्रीकृष्णका दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार है—(१) प्रभातीसे उठना, (२) शृंगार करना, (३) गोचारण, (४) भोजन-शयनादि। इसीसे प्रभावित होकर कविने 'सूरसारावली', 'साहित्य-लहरी' तथा 'सूरसागर'में अपने पदोंकी रचना की है। श्रीकृष्णके प्रेमपूर्ण जीवनमें सूरदासने प्रकृति तथा मनोविज्ञानमय चित्रण, लौकिक आचार और आध्यात्मिक संकेतकी अभिव्यक्ति अनुपम एवं आकर्षक शैलीमें की है। इस व्यक्तीकरणमें हमें कविकी प्रकृति-सूक्ष्मदर्शिता एवं चटकीली रंगसाज़ी भी पूरी तरह दृष्टिगोचर होती है।

सूरदासने पहले शान्त और फिर शृंगारसे अपने भक्त एवं सखाओंके मानसको आप्लावित किया है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि सूरके काव्यमें इन्द्रधनुषकी भाँति सातों रंगोंके साथ शान्त, शृंगार एवं वात्सल्य प्रधान रूपसे अपनी छटा दिखाते हैं। सूरदास पहले शान्त रसमें ही कविता किया करते थे। एक बार उनसे श्री वल्लभाचार्यने कहा—'सूर है कै ऐसो घिघियात काहे को है, कछू भगवल्लीला बरनन कर।' तब उन्होंने शान्तको छोड़ शृंगारमें गोपिकाओंका विरह-वर्णन उत्कृष्टताके साथ किया। वात्सल्यमें श्रीकृष्णकी बाल-लीलाओंका वर्णन शुद्ध, सूक्ष्म, मधुर एवं मनोवैज्ञानिक है। उसमें प्रेम तथा माधुर्यकी व्यंजना ग्राम्य जीवनको लेकर बड़ी स्वाभाविकताके साथ की गई है। वात्सल्यकी मिठासको चखनेके लिए कविके निम्न पदपर ध्यान दीजिए :—

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैया मैं नहिं माखन खायौ ।
भोर भयौ गैयनके पीछे मधुवन मोय पठायौ ।
चार पहर बंसीबट भटक्यौ साँझ परे घर आयौ ॥
मैं बालक बहियनको छोटो छींको केहि विधि पायौ ।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायौ ॥
तू जननी मतिकी अति भोरी इनके कहे पतिआयौ ।
जिय तेरे कछू भेद उपजिहै जानि परायौ जायौ ॥
यह लै अपनी लकुटि-कमरिया बहुतहिं नाच नचायौ ।
'सूरदास' तब विहँसि जसोदा लै उर-कण्ठ लगायौ ॥

हमारे साहित्यके सूर्यने अपनी सतरंगी किरणोंसे जिस प्रकार काव्य-जगत्को अतिरंजित किया है, उसकी संयोजनाकी अभिव्यंजना भी देखने योग्य है। कविने नीचेके पदमें वियोगकी रात्रिको बड़े अनूठे ढंगसे सर्पिणीका रूपक बनाया है। साथ ही काले और सफ़ेद रंगोंका ऐसा सुन्दर और गहरा आभास दिया है कि चित्त चमत्कृत हो जाता है। कविके ही शब्दोंमें—'पिया बिनु साँपिन कारी रात। कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात ॥' इस पदमें प्रकृति तथा रंगोंका निरीक्षण एवं चित्रण पूरी तरह किया गया है। जिन मनुष्योंने काली सर्पिणीको देखा है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि जब वह किसी व्यक्तिको काटती है, तो फन मारते ही चित हो जाती है और उसके पेटकी सफ़ेदी दिखलाई दे जाती है। इसी बातको कविने रूपात्मक अभिव्यंजना के साथ व्यक्त किया है। काली रातमें बिजलीका चमकना सब देखते हैं; परन्तु सर्पिणीका रूपक लेकर काले और सफ़ेद रंगोंका ऐसा स्पष्ट व्यक्तीकरण केवल सूरकी ही लेखनी कर सकती है।

बालकृष्णकी छविका वर्णन करते हुए कविने बड़ी सुन्दरतासे नीले और काले रंगोंका संयोजन किया है। वात्सल्यकी मोदमयी अभिव्यंजनामें रंगोंकी संयोजना भी देखने योग्य है :—

लालन तेरे मुखपर हौं वारी।
लट लटकन मोहन मसि बिन्दुका तिलक भाल सुखकारी।
मनहुँ कमल अलि सावक पंगति उड़त मधुर छवि भारी ॥

सूरने केवल काले, श्वेत एवं नीले रंगोंको ही संयोजना नहीं की, वरन् रंगोंकी अद्भुत आभा भी चित्रित की है। कविकी निम्न पंक्तियोंमें नीले, सफ़ेद लाल और पीले रंगोंका संयोग देखिए :—

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई।
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरंग बनाई।
मानौं नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई ॥
नील सेतपर पीत लाल मनि लटकन भाल लुनाई।
कवि-गुर-असुर-देवगुरु मिलि मनौं भौम-सहित समुदाई ॥

कविने नटवरके वेश-वर्णनमें काले, नीले, सफ़ेद और पीले रंगोंका संयोग दिखलाया है :—

नटवर वेष काछे स्याम।
जानु जंघ सुघट निकाईं नाहिं रम्भा तूल।
पीत पट काछनी मानहुँ जलज केसरि झूल ॥
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटिके तीर।
मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं हृद्-तीर ॥
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गंगा-बीच जमुना चली मिलिकैं धार ॥

सूर जन्मान्ध नहीं थे। यौवन-कालमें चर्म-चक्षुओंके हो जानेपर उनके ज्ञान-चक्षु चौगुनी ज्योतिसे जगमगाने लगे। तभी तो नीचेके पदमें रोती हुई लाल आँखोंको उपमा दी है। भ्रमर-गीतके पदोंमें सूरदास गोपियोंको लेकर उद्धवसे कहते हैं :—

बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं।

'सूरदास' प्रभुको मग जोवत अँखियाँ भईं बरन ज्यों ऊपरकी पंक्तियोंमें लाल आँखोंको चौंटनियोंकी उपमा सूक्ष्म-दृष्टि प्रदर्शित करती है। चौंटनीका रंग लाल होता परन्तु बिन्दु-भर जगह कालापन लिए होती है। यही आँखकी पुतलीका द्योतक है। इसीमें कविकी प्रतिभा अनोखी सूझकी गहराई छिपी हुई है। साथ ही विमल किरण पूरी तरह प्रकट है। इसी भाँति सूरदासके बहुतसे अनेक रंगोंका संयोग मिलता है; परन्तु हमारे काव्याकाश की भक्ति-रूपी किरणें इतनी प्रभावपूर्ण और तेजोमयी उनकी रंगीनीको साधारण पाठक देख नहीं पाते हैं।

सूरके कृष्णका चित्रण स्फुट काव्यके कलेवरमें सतरंगे धनुषकी तरह कान्त एवं कमनीय है। कविके बालकृष्ण मनोवैज्ञानिक एवं सर्वजनीन रूपसे सुशोभित हैं कि वे भावनाओंके इतिहासमें कभी पुराने नहीं पड़ेंगे। सूरदासके आराध्यदेवके चित्रणमें जिस शृंगारको लेकर कविता उसको 'गितगोविन्द'कार जयदेव और मैथिल-कोकिल अपनी लेखनीसे उद्भूत कर चुके थे। इन दोनों पूर्ववर्ती का प्रभाव सूरदासपर भी पड़ा है। इसीसे तो नायक आलम्बन-विभावमें कृष्ण और राधाको उपस्थित करके नख-शिख और ऋतु-वर्णनको लिया गया है। इसकी पुष्टि लोचनाके आचार्य श्री शुक्लजी भी करते हैं। वे 'सूर' के लिखते हैं—'जयदेवकी देववाणीकी स्निग्ध पीयूष-धारा की कठोरतामें दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषाके में परिणत होकर मिथिलाकी अमराइयोंमें विद्यापतिके कण्ठसे प्रकट हुई और आगे ब्रजकी करील-कुंजोंके मुरझाए मनोंको सींचने लगी। आचार्योंकी छाप लगी वीणाएँ श्रीकृष्णकी प्रेमलीलाका कीर्त्तन करने उठीं, ऊँची, सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की थी।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्मेलनकी प्रचार-योजना

श्री सत्यदेव शास्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने अपने ३२ वर्षके जीवनमें हिन्दी-भाषा और साहित्यके प्रचार एवं साहित्य-सृजन द्वारा देश की जो सेवा की है, उससे हिन्दी-जगत् भलोभाँति परिचित है। सम्मेलन हिन्दीका एक महान वृक्ष है, जिसकी शाखा-प्रशाखाएँ समस्त भारतमें फैली हुई हैं। हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रासको सम्मेलनने १९१८ ई० के इन्दौर-अधिवेशनमें पूज्य महात्माजीके सभापतित्वमें जन्म दिया। आज वह संस्था स्वतन्त्र रूपसे दक्षिण-भारतमें अपने साहित्य, विद्यालय और परीक्षाओं द्वारा हिन्दीकी सराहनीय सेवा कर रही है। उसके प्रयत्नसे मद्रासमें लाखों नर-नारी हिन्दी पढ़ना-लिखना सीख गए हैं और प्रतिवर्ष हिन्दी सीखनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। १९३६ ई०में राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समितिने अहिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों—महाराष्ट्र, गुजरात, उत्कल, बंगाल, आसाम, सिन्ध और बलूचिस्तान—में राष्ट्रभाषा हिन्दीका जो प्रचार किया है, वह कम सन्तोषका विषय नहीं है। हाँ, बंगालमें इसकी प्रगति बहुत ही मन्द है। अभी तक १ लाखसे ऊपर परीक्षार्थी इसकी विभिन्न परीक्षाओं—कोविद, परिचय आदि—में बैठ चुके हैं। नियमतः यह सम्मेलनके अधीन है; किन्तु स्वतन्त्र रूपसे अपना काम करती जा रही है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन-जैसा सुयोग्य मन्त्री प्राप्त होनेसे इसका विकास और प्रसार उत्तरोत्तर हो रहा है। सम्मेलनके अधीन पंजाबमें साहित्य-सदन, अबोहर हिन्दीकी एक मुख्य संस्था है। इसने पंजाब और काश्मीरमें परिचय और कोविदकी परीक्षाओं द्वारा हिन्दी-प्रचारका बीड़ा उठाया है। अबोहरकी परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष ४०० से लेकर ५०० तक विद्यार्थी बैठते हैं। सम्मेलन अपने केन्द्र-स्थान प्रयागसे ५८० परीक्षा-केन्द्रों द्वारा प्रथमा, मध्यमा और उत्तमाकी परीक्षाओंकी व्यवस्था करता है। इन परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष लगभग ३५०० परीक्षार्थी बैठते हैं और इनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

सम्मेलनकी प्रचार-समितिने साल-भरके लिए एक ठोस योजना बनाकर उसे हिन्दी-संसारके सामने प्रस्तुत किया है। इस योजनाकी सफलतासे सम्मेलनकी शक्ति बढ़ेगी। योजना इस प्रकार है: किसी संस्थाके आधार-स्तम्भ उसके सदस्य होते हैं। सदस्यमें गुण और संख्या दोनों सन्निहित हैं, अर्थात् अच्छे लोग सदस्य हों और वे काफ़ी संख्यामें हों। प्रचार-समितिने इस वर्ष अधिक-से-अधिक साधारण सदस्य, विशेष सदस्य और सम्मानित सदस्य बनानेका निश्चय किया है। दूसरे, प्रत्येक प्रान्तमें प्रान्तीय सम्मेलनकी स्थापनाका आयोजन किया जाय। जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन पहलेसे ही मौजूद हों, उन्हें अधिक सजीव, क्रियाशील और शक्तिशाली बनानेका प्रयत्न किया जाय। तीसरे, हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंके प्रत्येक ज़िलेमें ज़िले-भरके प्रतिनिधि-रूप जनपद-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना की जाय। जहाँपर पहलेसे ही ज़िला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्थापित हैं, उन्हें अपना वार्षिक अधिवेशन सुविधानुसार इस वर्ष कर लेना चाहिए, और जिन ज़िलोंमें अभी तक ज़िला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन क़ायम न हों, वहाँके हिन्दीके विद्वान् तथा हिन्दी-प्रेमी सज्जनोंको अविलम्ब जनपद-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापनाकर उसे सम्मेलनसे सम्बद्ध करा लेना चाहिए। चौथे, ज़िलेमें जगह-जगह हिन्दीके पुस्तकालय और वाचनालय खोले जायँ और प्रत्येक अंगरेज़ी स्कूल और कालेजमें हिन्दी-परिषद्को स्थापनाकर वहाँ हिन्दीका वातावरण उत्पन्न किया जाय तथा छात्रोंमें हिन्दी पढ़ने और हिन्दी-साहित्यके अध्ययनकी अभिरुचि उत्पन्न की जाय। पाँचवें, जहाँ आवश्यकता और सुविधा हो, वहीं हिन्दी-साहित्यके अध्ययन और अध्यापनके लिए विद्यालय खोले जायँ। अंगरेज़ी स्कूल, कालेज तथा हिन्दी-मिडिल-स्कूलके अध्यापक हिन्दीको ओर थोड़ा ध्यान दें, तो सम्मेलनके परीक्षा-केन्द्र और भी अधिक संख्यामें खोले जा सकते हैं।

आखिरी और महत्त्वपूर्ण हिन्दी-प्रचार-कार्य तो कचहरियोंमें ही है। कचहरी एक ऐसा सुदृढ़ क़िला है, जहाँ हिन्दीके घुसते ही व्यापक रूपसे हिन्दीका प्रचार हो सकेगा। इस कार्यमें वकीलों की सहायता अपेक्षित है। वकीलवर्ग इस ओरसे उदासीन रहा है; किन्तु हिन्दीकी बढ़ती हुई लहरसे वह भी अब प्रभावित हो चला है। युक्त-प्रान्तके पूर्वी ज़िलोंकी कचहरियोंमें कुछ वकीलोंने हिन्दीमें ही काम करनेका व्रत ले लिया है। बहुतोंने सम्मेलनसे प्रकाशित प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर भी किए हैं। किन्तु कचहरीमें अभी तक हिन्दी-प्रचारकी गति बहुत ही मन्द है। वकीलोंके सामने कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। अर्जीसे उर्दूमें काम करनेवाले वकीलोंको हिन्दी अपनानेमें कुछ असुविधा भी होती है। वकीलों की कठिनाइयोंको ध्यानमें रखते हुए कचहरीमें हिन्दी-प्रचारके लिए श्रद्धेय पुरुषोत्तमदासजी टंडनने टाइपराइटर-योजना बनाई थी। वह योजना कतिपय ज़िलों (जैसे प्रतापगढ़ हरदोई, लखीमपुर-खीरी, इलाहाबाद आदि) में चली; किन्तु प्रचारकोंके अभावमें सफलतापूर्वक नहीं चल सकी। हम चाहते हैं कि उस योजनाको फिरसे युक्त-प्रान्तके अन्य ज़िलोंकी कचहरियोंमें चालू करें; किन्तु टाइपराइटरोंके अभावमें हम उस योजनाको फ़िलहाल स्थगित करते हैं। हर ज़िलेके वकील कचहरीमें एक हिन्दी-प्रचार-समिति क़ायमकर उसके द्वारा हिन्दीमें सभी प्रकारके कागद-पत्र लिखनेकी प्रतिज्ञा करें और उसका पूर्ण वफ़ादारीसे पालन करें, तो यह कठिन कार्य भी सुकर हो सकता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

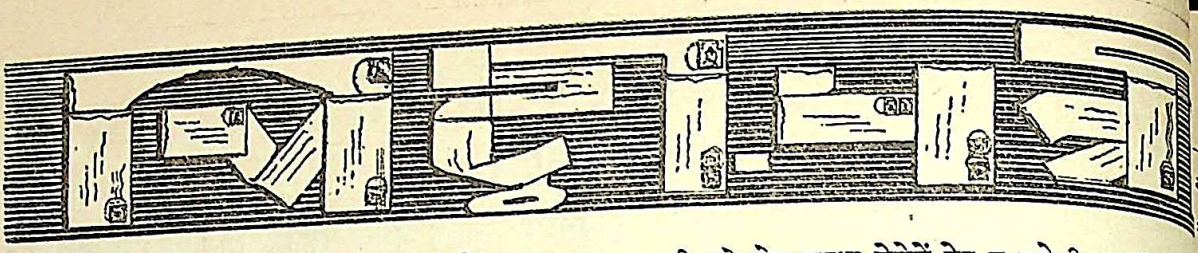

अ० भा० रेडियोकी भाषा-नीति

रेडियोकी भाषाके सम्बन्धमें जो आन्दोलन आरम्भ किया गया था, उसकी ओर आपका तथा आपके पाठकोंका ध्यान जाना आवश्यक ही था। धाँस-नीतिकी उपासिका सरकार हिन्दी-संसार की उचित माँगपर कभी विचार भी करेगी, इसकी किसीको विशेष आशा नहीं थी! परन्तु श्री रविशंकर शुक्लकी रेडियो-विभागकी भाषा-नीतिकी आलोचनाने कुछ इतनी धूम मचा दी कि सर सुल्तानको भी इस ओर ध्यान देनेके लिए समय निकालना ही पड़ा। साहित्य-सम्मेलनके प्रतिनिधि और अंजुमन-ए-तरक्किए-उर्दू वालोंके साथ विचार-विनियम हो चुका। कुछ लोगोंको कुछ बड़े फलोंकी आशा भी हो चली थी; परन्तु इधर रेडियो-विभाग की नीति-विषयक घोषणाको सुन चुकनेके बाद यही कहना पड़ेगा कि सरकारका रेडियो-विभाग इस मामलेमें बिल्कुल औंधा घड़ा है। विभागकी उक्त घोषणाकी शाखा दोमें स्पष्ट कहा गया है कि उपयुक्त हिन्दुस्तानी शब्दके अभावमें यदि कहींसे कोई बाहरी शब्द लेना ही पड़े, तो वह 'फारसी या अरबी या अंगरेज़ीसे ही लिया जा सकता है।' सर सुल्तानकी हाँड़ीका यह एक चावल उनकी मनोवृत्तिको स्पष्ट करनेके लिए पर्याप्त है। यदि रेडियोकी 'हिन्दुस्तानी' कहलानेवाली भाषा विशुद्ध हिन्दी ही होती, तब तो उपर्युक्त नियम शायद बहुत खलनेवाला न होता; किन्तु रेडियोकी 'हिन्दुस्तानी' तो आगे ही फारसी-अरबी-प्रधान है, जिसपर अब और भी अरबी, फारसी तथा अंगरेज़ीपनकी कलई चढ़नेकी सम्भावना है!

परन्तु साहित्य-सम्मेलनकी अपने प्रतिनिधि चुननेकी नीति भी कम विचित्र नहीं थी। प्रतिनिधियोंको उस विभागके अनौचित्यपर प्रकाश डालनेके लिए सरकारके रेडियो-विभागके मन्त्रीसे मिलना था। ये प्रतिनिधि कोरी चाय-पार्टी या गप्प-गोष्ठीके लिए नहीं बुलाए गए थे। तब समझमें नहीं आया कि श्री रविशंकर शुक्ल या ऐसे अन्य व्यक्तियोंको छोड़कर, जिन्होंने वास्तविक रूपमें रेडियोकी भाषा-नीतिके बारेमें अध्ययन किया है, प्रतिनिधि चुने गए भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पंडित (?) सम्पूर्णानन्द तथा पं० मौलिचन्द्र शर्मा। सम्पूर्णानन्दजीने शुक्लजीकी रेडियो-भाषा-नीति-विषयक पुस्तककी भूमिका अवश्य लिखी है और युक्त-प्रान्तीय शिक्षा-विभागके मन्त्री भी रह चुके हैं। शायद इन विचारोंसे वे तो किसी प्रकार खप सकते थे; परन्तु अन्य दोनों सज्जनोंका चुनाव किस विशेष योग्यताके आधारपर किया गया, यह कदाचित् सम्मेलनके कर्णधारोंको छोड़कर और कोई नहीं जानता। इस विषयमें ज़रा अंजुमनकी नीति देखी जाय और इधर सम्मेलनकी भी, तो भेद समझ लेनेमें देर न लगेगी। कोई कह कि प्रतिनिधि कोई भी होता, फल तो लगभग यही होता दलीलके अनुसार तो प्रतिनिधि न भेजना शायद और बुद्धिमानी होती। सम्मेलन क्या कभी समझ सकेगा और औचित्यका भी कुछ मूल्य होता है?

हिन्दीके लेखक और सम्पादक

कदाचित् आपको स्मरण होगा कि पिछले पत्रकार अवसरपर जब अंगरेज़ी तथा देशी भाषाओंके पत्रकारोंके वेतनकी विषमतापर बहस हो रही थी, उस समय बड़े-बड़े वादी तथा साम्यवादी अंगरेज़ी पत्रोंके ठेकेदार यह कहे न हुए कि योग्यताके स्तरपर आजका देशी भाषाका अंगरेज़ीकी अपेक्षा बहुत नीचे दर्जेपर है, अतः बेतन विषमता न्याय-संगत ही है। मैं चाहूँगा कि कम-से-कम जगत्का पत्रकार तो इसपर ध्यान अवश्य ही दे—न लिए कि इसका उसके जीवनकी सुविधासे सीधा सम्बन्ध इसलिए भी कि देशका भविष्य अनेक अंशोंमें हिन्दीके नबीसोंके कन्धोंपर ही अवलम्बित है। यदि ईमानदारी जाय, तो उपर्युक्त लांछनके मूलमें अधिक सत्य नहीं भाषाओंके पत्रोंका सम्पादन करनेवाले अनेक व्यक्ति दर्जेकी योग्यता रखते हैं। लेकिन फिर भी अंगरेज़ी अपेक्षा देशी भाषाओंके पत्रोंका स्टैण्डर्ड नीचा अवश्य है इसका कारण सम्पादकोंकी अयोग्यता नहीं, वरन् उन साधनोंका अभाव है, जो एक अंगरेज़ी पत्रके सम्पादकके पास ही प्राप्त हो जाते हैं। सारी असुविधाओंकी तालि न भी दी जाय, तो हिन्दी तथा अंगरेज़ी अखबारोंमें वि की दशाकी तुलना तो की ही जा सकती है। जहाँ अखबारोंका लेखक एक-एक लेखपर सैकड़ों रुपए पाता हिन्दीकी अखबारी दुनिया या तो लेखोंको मुफ्त ही चाहती है, या फिर 'दया' करके दो-चार पैसे देकर ही 'पुरस्कृत' करनेका हौसला रखती है। अंगरेज़ीका लेख की सुविधाओंसे युक्त होकर जब दस-बीस रुपएकी खरीदनेका शौक़ रखता है, तब हिन्दीका लेखक पेटके दाने जुटा लेनेका भी भरोसा नहीं रखता।

अब यदि थोड़ी देरके लिए यह मान भी लिया योग्यतामें हिन्दीका सम्पादक या लेखक अंगरेज़ीकी है, तब सहसा प्रश्न उठता है कि इस दयनीय परिस्थिति दायित्व किसपर है? हिन्दीकी अखबारी दुनियाके ठेके आँखें खोलकर देखें तो सही कि योग्य व्यक्तियोंको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकर्षित करनेके लिए उनके द्वारा प्रोत्साहन ही कितना दिया जाता है ? जहाँ तीस या पैंतीस रुपए मासिक वेतनपर सम्पादक ढूँढ़े जाते हैं तथा अठन्नी और चवन्नी कालमकी लिखाई देकर लेख माँगे जाते हैं, वहाँ दावा किया जाय स्टैण्डर्ड ढूँढ़नेका, तो इसे एक पिनकीके ख्वाबके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? स्वार्थपरताकी भी एक सीमा होनी चाहिए। अभी भी समय है कि हिन्दी-पत्रोंके सम्पादक इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करें तथा लेखकोंके संगठनमें हाथ बँटावें। इस दयनीय परिस्थितिसे वे स्वयं ऊपर उठें तथा लेखकोंको उठावें। 'कुल्हाड़ीका बेंट' बनाना किसीके लिए लाभप्रद नहीं। —ललिताप्रसाद सुकुल।

युवक-साहित्य-सम्मेलन क्यों ?

गत माहके 'विशाल भारत'में युवक-साहित्य-सम्मेलन-विषयक प्रस्तावना प्रकाशित हुई है। मेरी समझमें तो यह कुमार-साहित्य-सम्मेलनका ही प्रभाव प्रतीत होता है, और इसका अन्त केवल दलबन्दीमें ही होगा। युवकोंके लिए संरक्षण या सीमाकरणकी कोई आवश्यकता मैं महसूस नहीं करता। उनके लिए तो सम्पूर्ण क्षेत्र पड़ा है, जिसमें वे कुछ करके दिखावें। संरक्षण व प्रोत्साहन तो कुमार कलाकारोंको चाहिएँ, और इसीलिए कुमार-साहित्य-सम्मेलनकी आवश्यकता थी। यदि युवकगण भी आपसमें एक बन्धु-भाव पैदा करना चाहते हैं, तो यह बहुत अच्छी बात है। किन्तु एक अलग संगठन बनानेका मैं तो यही अर्थ समझता हूँ कि वे प्रौढ़ साहित्यिकोंके विरुद्ध आन्दोलन-सा करना चाहते हैं। यह साहित्यके लिए बहुत बुरी चीज़ होगी, क्योंकि फिर प्रौढ़-साहित्य-सम्मेलनकी आवश्यकता भी पड़ जायगी तथा भविष्यमें शायद महिला-साहित्य-सम्मेलन भी बनने लगे। अतएव मैं विभिन्न सम्मेलनोंकी इस प्रवृत्तिका विरोधकर सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्यके पूर्ण संगठनपर ज़ोर देना चाहूँगा।—रामकिशोर पशिने, कामर्स कालेज, वर्धा।

लोकवार्त्ता-परिषद, टीकमगढ़

टीकमगढ़ (मध्य-भारत) में महाराजा ओरछाके संरक्षणमें प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार श्री कृष्णानन्द गुप्तके प्रयत्नोंसे एक लोकवार्त्ता-परिषदकी स्थापना हुई है, जिसका उद्देश्य विशेष तौरसे मध्य-भारत तथा बुन्देलखण्डके नृतत्व तथा लोकवार्त्ताओंका अध्ययन करना है। डा० वैरियर एलविन इसके सभापति हैं और श्री कृष्णानन्द गुप्त मन्त्री। इनके अतिरिक्त श्री एन० सी० मेहता (आई० सी० एस० रिटायर्ड), मि० डब्ल्यू० जी० आर्चर, आई० सी० एस०, रावबहादुर सरदार माधवराव विनायक किबे, डा० वासुदेशरण अग्रवाल, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, बा० वृन्दावनलाल वर्मा तथा श्री गणेश चौबे मान्य सदस्य हैं। परिषद 'लोकवार्त्ता' नामसे एक त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित कर रही है, जिसमें नृतत्व तथा लोकवार्त्ता-सम्बन्धी उपयोगी लेख प्रकाशित होते हैं। पत्रिकाका मूल्य ५) वार्षिक है।—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

वैशाली-महोत्सव, १९४५

प्राचीनतम प्रजातन्त्र, महात्मा गौतम बुद्धकी कृपाधिकारिणी प्रिय भूमि और अजातशत्रुके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाली एवं उसके द्वारा विजित राजधानी वैशाली आज भी केवल भग्नावशेष नहीं है ; इसकी लुप्त सभ्यताको राखमें उस नवजीवनकी चिनगारियाँ निहित हैं, जो अपने जन्मकी प्रतीक्षा कर रहा है। वैशाली-महोत्सवके मनानेमें हमारे दो उद्देश्य हैं—प्रथम तो हम उस महान् नगरके खण्डहरोंको प्रकाश और प्राधान्यमें लाना चाहते हैं और उस अनादर और विस्मृतिसे इसका उद्धार करना चाहते हैं, जिसका यह विगत कतिपय दशाब्दियोंसे शिकार रहा है। दूसरे, हम इस महोत्सवको उस ओर बसे गाँवोंमें एक नवीन सांस्कृतिक और सामाजिक जीवनको प्रगति देनेका एवं प्राचीन वैशाली प्रजातन्त्रके आदर्शोंसे प्रेरणा लेते हुए एक जन-संस्कृति-आन्दोलनको जन्म देनेका मौक़ा बनाना चाहते हैं। इस महोत्सवको वैशाली (हाजीपुर सब-डिवीज़नमें स्थित) के पुराने गढ़के खण्डहरोंपर ३०, ३१ मार्च तथा १ अप्रैल, १९४५ को ईस्टरकी छुट्टियोंमें मनानेका विचार है। कार्यक्रममें ये विषय रहेंगे—वैशालीके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनेके लिए सभा, वैशालीके इतिहास एवं आधुनिक कृषक-जीवनकी झलक देनेवाला नाट्य-प्रदर्शन, प्राचीन चिह्न, ललित-कला एवं कृषि-कला-सम्बन्धी प्रदर्शिनी, चुने हुए गाँवोंमें ग्राम-पुनर्निर्माणका उद्घाटन, ग्रामीण और अन्य कवियोंका समादर, ग्रामवासियों एवं स्कूलके छात्रोंके लिए खेल-प्रतियोगिता, लड़कोंके लिए वाक्य-प्रतियोगिता। प्रान्तीय पुस्तकालय-सम्मेलन और ज़िला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके भी अधिवेशन होंगे। सम्पूर्ण कार्यक्रम इस प्रकार रखा जायगा, जिसमें प्राचीन वैशालीका वातावरण आ सके और जन-संस्कृतिको झलक मिल सके। कुछ स्थायी परिणाम निकालनेके विचारसे भारतीय पुरातत्त्व-विभागसे वैशालीके पुनः उत्खननका भी अनुरोध किया जायगा। एक वैशाली-केन्द्रकी स्थापना भी की जायगी।

महोत्सवको सफल बनानेके लिए हम धनी-मानी सज्जनोंसे आर्थिक, विद्वानोंसे बौद्धिक और कलाकारोंसे व्यावहारिक सहायता की प्रार्थना करते हैं। अन्य जनोंसे भी हम इस सम्बन्धकी जो-कुछ सहायता हो सके, चाहते हैं। सहायता बाबू रामस्वरूप बुबना, अर्थ-मन्त्री, वैशाली-महोत्सव, हाजीपुर (ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर) के पतेसे भेजी जाय और अन्य सभी बातोंके लिए बाबू जगन्नाथ-प्रसाद साह, संगठन-मन्त्री, वैशाली-महोत्सव, हाजीपुर (ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर) को लिखा जाय। —जगदीशचन्द्र माथुर, बदरीनारायण सिंह, दोपनारायण सिंह, शफ़ी दाऊदी, उमाशंकरप्रसाद, दिग्विजयनारायण सिंह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

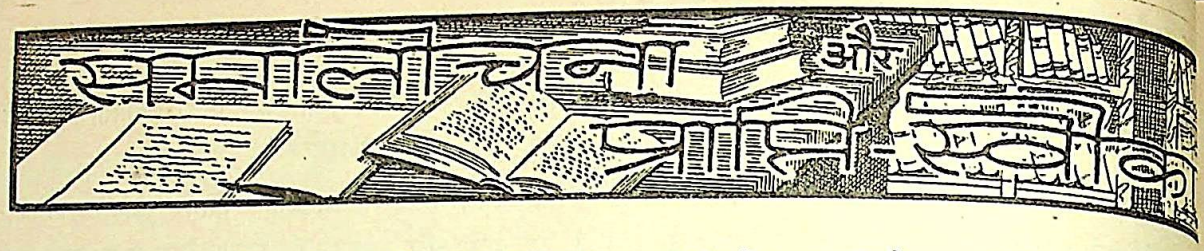

मन्वन्तर : लेखक—श्री ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, अनुवादक—श्री बी० पी० माधव ; प्रकाशक—सामयिक साहित्य-सदन, लाहौर ; पृष्ठ ३९२, मूल्य ४)।

बँगला-साहित्यके प्रगतिशील लेखकोंमें श्री ताराशंकर आज मूर्द्धन्यपर आसीन हैं। उनके भावोंमें जो यथार्थवादिता, भाषामें जो प्रवाह और ज़ोर तथा दृष्टिमें जो पैनापन और गहराई तक पैठनेकी अद्भुत क्षमता है, उसने उन्हें मानव-जीवनका एक सफल और समर्थ कलाकार बना दिया है। 'मन्वन्तर' बंगालके अभी हाल ही के अकालको लेकर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यासकी रोचकता रखते हुए भी तथ्योंकी दृष्टिसे यह आधुनिक बंगालका एक खासा अच्छा इतिहास बन गया है। इसमें समाज के अर्थनीतिक संघर्ष, पूँजीवादकी हृदयहीन अनैतिकता, विदेशी शासनकी नपुंसकता और पूँजीवादी व्यवस्थाके अभिशाप-स्वरूप होनेवाली अस्मत-फरोशी का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। जिन लोगोंने बंगालके अकालको अपनी आँखोंसे नहीं देखा है, वे बिना इसे पढ़े उसके यथार्थ कारणों और उसकी भीषणताको ठीक-ठीक समझ ही नहीं सकते। इसे हिन्दी-पाठकोंके लिए सुलभ करनेके लिए अनुवादक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं।

मधु-मंजरी : प्रकाशक—दक्षिण-भारत हिन्दी - प्रचार - सभा, मद्रास ; पृष्ठ २४५, मूल्य २)।

सभाने अपनी आवश्यकताओंके अनुसार हिन्दीका यह प्रतिनिधि कहानी-संग्रह प्रकाशित किया है, जिसमें सर्वश्री प्रेमचन्द, कौशिक, उग्र, प्रसाद, उषादेवी मित्रा, चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, यशपाल और गुलेरीजीकी कहानियाँ संगृहीत हैं। संग्रहके 'प्रतिनिधि' होनेके सम्बन्धमें शायद बहुतसे समीक्षक सम्पादकसे सहमत न हों ; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि संग्रह सुन्दर है और विद्यार्थियोंके सिवा अन्य पाठक भी उससे पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

दक्षिणकी कहानियाँ : प्रका०—उपर्युक्त ; पृष्ठ ६५, मूल्य ।।)।

सभाका यह दूसरा प्रकाशन दक्षिणके प्रतिभाशाली लेखकों (४ तेलुगू और १ कन्नड़) की कहानियोंका हिन्दी-रूपान्तर है। इसके प्रकाशनका उद्देश्य एक भाषा द्वारा उत्तर और दक्षिणके भाषा-भेदकी खाईको पाटकर सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आदान-प्रदानका मार्ग प्रशस्त करना है। यह उद्देश्य जितना साधु है, उतना ही श्लाघ्य भी, जिसके लिए समूचे हिन्दी-संसारको सभाका कृतज्ञ होना चाहिए। शिल्पी, शैंगान, स्मशानमें, प्रतीक्षा और मेरी पत्नीमें कहानीपनके अलावा दक्षिणकी जो सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है, वह दक्षिणेतर हिन्दी-पाठकोंके रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। ऐसे उपयोगी प्रकाशनके सभाको हार्दिक बधाई देते हुए उत्सुकतापूर्वक उसके प्रकाशनोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ : लेखक विनयमोहन शर्मा ; प्रकाशक—शिवाजी प्रकाशन, लखनऊ ; पृष्ठ १४७, मूल्य २)।

यह हिन्दीके सुपरिचित समीक्षक श्री विनयमोहन शर्मा प्रस्तुत आधुनिक कविताकी पृष्ठभूमिपर 'प्रसाद'के कवि है। इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रमुख ग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।

'प्रसाद'जीके दो ऐतिहासिक नाटक : लेखक कृष्णनन्दन सहाय ; प्रकाशक—सहाय एण्ड सन्स, (पटना) और भागलपुर ; पृष्ठ १६१, मूल्य १।)

प्रस्तुत पुस्तकमें 'प्रसाद'के दो ऐतिहासिक नाटकों 'शत्रु' और 'ध्रुवस्वामिनी'पर आलोचनात्मक ढंगसे प्रकाश गया है। आरम्भमें हिन्दीके नाट्य-साहित्यपर प्रकाश डाल है और फिर दोनों नाटकोंके आधार, चरित्र-चित्रण, रस भाषा आदिका विशद विवेचन किया गया है। पुस्तक विशेष कामकी है। —रा०

अपराध और दण्ड : लेखक—श्री परमेश्वरीलाल धूसविहारीलाल सक्सेना ; प्रकाशक—ज्ञानमण्डल काशी ; पृष्ठ १२२, मूल्य १)।

लेखकद्वयने अनेक अपराध-निवारक एवं अपराधी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्यके आधारपर प्रस्तुत रचना की है, जिसका विषय उसके नामसे ही प्रकट है। द्वारा उन्होंने हिन्दी-पाठकोंके मनमें अपराध, अपराधी के प्रति जिज्ञासा तथा इस विषयके अध्ययनकी करनेका सफल प्रयत्न किया है। सामाजिक दृष्टिसे पुस्तक ही महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी अवश्य पढ़ना चाहिए।

ब्राह्मण, सावधान ! लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द ; प्रकाशक उपर्युक्त ही ; पृष्ठ ४८, मूल्य ।)।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'आज'में प्रकाशित श्री सम्पूर्णानन्दकी इसी नामकी लेख-मालाने बहुत बड़ी संख्यामें हिन्दी-भाषा-भाषियों—विशेषतया पंडितों—का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था और उन्हें आत्म-निरीक्षणकी प्रेरणा दी थी। इसमें विद्वान लेखकने ब्राह्मणों के गुण-दोषों तथा उनके उपकारों और धाँधलियोंकी पुष्ट आधार और प्रमाणोंसे आलोचना की है। आलोचना कठोर ज़रूर है; पर कटु, द्वेषपूर्ण या कुतर्कसंगत नहीं। क्या हमारा पंडित-समाज ठंडे दिल और विवेकसे इसमें सुझाई गई वस्तुस्थितिपर विचारकर अपने कर्तव्यका यथार्थ बोध करेगा? हम हर विचारशील व्यक्तिसे एक बार इसे अवश्य देख जानेकी सिफ़ारिश करेंगे।

भारतकी आर्थिक उन्नतिकी योजना : प्रकाशक—उपर्युक्त ही; पृष्ठ ६०, मूल्य लिखा नहीं।

आठ भारतीय उद्योगपतियों द्वारा बनाई गई भारतके युद्धोत्तर आर्थिक पुनर्निर्माणकी योजनाके प्रथम भागका यह हिन्दी-अनुवाद है। वैसे तो पत्रोंमें उसकी काफ़ी चर्चा हो चुकी है; पर केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक प्रस्तुत पुस्तिकासे उसका विस्तृत विवरण प्राप्त कर सकते हैं।

गांधी-जिन्ना-वार्तालाप : भूमिका-लेखक—श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य; प्रकाशक—हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली; पृष्ठ ९०, मूल्य ।।।) ।

प्रस्तुत पुस्तकमें गत वर्ष हुई गांधी-जिन्ना-वार्त्ता-सम्बन्धी दोनों नेताओंके पत्र, वक्तव्य, आलोचनाएँ, वक्तव्य और भाषण, गांधी-वाइसराय-पत्रव्यवहार तथा जन-संख्याके आँकड़े संगृहीत हैं। कई चित्र, व्यंग-चित्र और भारतका एक मानचित्र भी दिया गया है, जिसमें मुस्लिम बहुसंख्यावाले क्षेत्र दिखलाए गए हैं। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

दूध-चिकित्सा : लेखक—श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय; प्रकाशक—महेन्द्र-रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद; मूल्य ४) ।

दूधको हमारे यहाँ अमृत कहा गया है। प्राचीन और अर्वाचीन चिकित्सकोंने उसके महत्व एवं प्रयोगोंपर बहुत-कुछ कहा है। वह सबल और निर्बल, स्वस्थ और रोगी, बालक और वृद्ध सभीके लिए लाभदायक है। ऐसे उपयोगी पदार्थके स्वरूप, गुणों एवं उपयोगपर पुस्तक लिखकर विद्वान लेखकने देशकी बहुत बड़ी सेवा की है। इस पुस्तकका प्रत्येक घरमें रहना आवश्यक है। पर पुस्तकका मूल्य यदि ग़लतीसे ४) नहीं छप गया है, तो वह ज़रूरतसे कहीं ज़्यादा है। इतना अधिक मूल्य पुस्तकके प्रचारमें बाधक ही होगा। —श्रीपति पाण्डेय

लाल सेना : लेखक—प्रो० आई० मिज़, अनु०—डा० रामविलास शर्मा; प्रकाशक—जन-प्रकाशन-गृह, राजभवन, सैण्डहर्स्ट रोड, बम्बई ४; पृष्ठ १२३, मूल्य २) ।

लाल सेना संसारकी पहली और एकमात्र जन-सेना है। उसका उद्देश्य आक्रमण और लूट नहीं, क्रान्ति और क्रान्तिकारी शक्तियोंकी रक्षा करना है। इस युद्धमें विजय तो मित्र-पक्षकी ही होगी; पर नात्सियोंकी तथाकथित अजेय और बर्बर सेनाको ध्वस्त करनेका श्रेय तो एकमात्र लाल सेनाको ही है। आखिर साधन-सामानकी कमीके बावजूद लाल सेना इतना बड़ा कार्य करनेमें कैसे सफल हुई, इसे जाननेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको प्रस्तुत पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ देखनी चाहिए। इसमें लाल सेनाके संगठन, इतिहास, शिक्षा और कुछ प्रमुख युद्धोंका सचित्र वर्णन दिया गया है। शैली काफ़ी रोचक है। भाषा कुछ और सरल होती, तो साधारण पढ़े-लिखोंके लिए पुस्तक और अधिक उपादेय साबित होती।

स्तालिनग्रादका महायुद्ध : अनुवादक—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त; प्रकाशक—उपर्युक्त ही; पृष्ठ ८५, मूल्य १।) ।

प्रस्तुत पुस्तकमें स्तालिनग्रादके ऐतिहासिक युद्धके सम्बन्धमें सोवियत्-संघके १३ लेखकों तथा लाल सेनाके अफ़सरों और सिपाहियों द्वारा लिखे गए स्केचोंका संग्रह किया गया है। इनसे उक्त युद्धके सम्बन्धमें काफ़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। —मो० सिं० सेंगर

समाधान : रचयिता—श्री रामसंजीवन; प्रकाशक—श्री विन्ध्याचल, जीवन-मन्दिर, जिहुली, पो० पदुमकेर (ज़िला चम्पारण); मूल्य ।=) ।

यह एक गीति-नाट्य है। इसमें वासनामय प्रेमका पर्यवसान सात्विक प्रेममें हुआ है। कवि कहते हैं—"'समाधान'के प्रत्येक पात्रमें 'समाधान'के कविने अपना जीवन उँड़ेला है।" पर खेद है, वह सफल 'गीति-नाट्य' नहीं बन सका। कथोपकथनमें कथाको अपने लक्ष्य तक धकेलनेकी अविच्छिन्न गति नहीं है; भाषाके शैथिल्यने उसे और भी पंगु बना दिया है। शब्दों पर अर्धचन्द्र रखनेके नियमोंकी विस्मृतिके अतिरिक्त 'फूलै, ढूँढ़ै' आदि और एक ही वाक्यमें एक ही व्यक्तिके सम्बोधनमें 'तू' और 'तुम' प्रयुक्त देखकर अतुकान्त कविताकी गेयता मनमें लय नहीं बाँध पाती—"थी शकुन्तला भस्मकाव्य मुनि कण्वको; मरुथलमें भी 'ओएसिस'का दृश्य है।" पढ़कर फ्रायडका स्मरण हो आता है।

रेगिस्तान : रचयिता—पं० पतराम गौड़ 'विशद', एम० ए०; प्रकाशक—बिरला-कालेज, पिलानी; पृष्ठ ५१; मूल्य ।।) ।

कविने इसमें अपनी जन्मभूमिके प्रति 'राग' उड़ेलनेकी चेष्टा की है। राजस्थानके पक्षी, पशुओं और टीबोंके बार-बार नामोल्लेख किए गए हैं। इसमें सन्देह नहीं, कविको उन्होंने प्रेरणा प्रदान की है; पर उसे वे 'चित्र'का रूप देनेमें बहुत कम स्थलों पर सफल हुए हैं। राजस्थानके अतीतका स्मरण भी अभिव्यक्तिको सजीव नहीं बना सका। ऐसा प्रतीत होता है कि कविने अपनी जन्मभूमिको स्वर्गादपि गरीयसी अनुभव तो किया है;

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर उस अनुभूतिको वे भीतर-ही-भीतर पी-से गए हैं। उसके कुछ रस-कण ही बाहर छिड़का सके हैं। फिर भी राजस्थानके सुख-दुखका ज्ञान पुस्तकके वर्णनसे हमें हो जाता है। पुस्तकको 'खण्ड-काव्य' न लिखा जाता, तो अच्छा होता ; क्योंकि उसकी शास्त्रीय परिभाषाके चारों क्या, एक भी कोनेमें वह नहीं बैठता।

--विनयमोहन शर्मा

जन-प्रकाशन-गृहकी कुछ पुस्तकें

जन-प्रकाशन-गृह, बम्बईने इधर कई सामयिक प्रकाशन किए हैं। ये प्रकाशन चूँकि कम्युनिस्त पार्टीकी ओरसे होते हैं, अतः सभी क्षेत्रोंमें इनका स्वागत हो या सभी लोग इनकी बातोंसे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं। फिर भी आजकी राजनीति और देश तथा विश्वके प्रति अपना कर्त्तव्य स्थिर करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिके लिए इन पुस्तकोंका पढ़ना आवश्यक है। **'लेनिनके मूल सिद्धान्त'** में स्तालिन द्वारा १९२४ में दिए गए कुछ भाषण संगृहीत हैं, जिनसे मोटे तौरपर लेनिनके मूल सिद्धान्तोंकी सामान्य जानकारी प्राप्त की जा सकती है। **'द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद'** स्तालिन द्वारा लिखे गए एक निबन्धका अनुवाद है, जिसमें संसारको समझने और उसे बदलनेके विज्ञानकी विवेचना की गई है। **'फासिज्म क्या है'**में रजनी पामदत्तने फासिज़्मके उदय, उसके यथार्थ स्वरूप और 'नई व्यवस्था' की विशद चर्चा की है। **'सोवियत् भूमिकी स्वतन्त्र जातियाँ'** श्री गंगाधर अधिकारीके एक भाषणका रूपान्तर है, जिसमें उन्होंने सोवियट रूसकी स्वतन्त्र जातियोंके उदय और विकासपर प्रकाश डाला है। **'समाजवादी रूसकी स्त्रियाँ'** रूसी महिलाओंके सम्बन्धमें टी० सेरे ब्रन्निकोफ़की एक सुन्दर पुस्तिका है। इसमें उन्होंने विस्तारसे बतलाया है कि सोवियत् शासनने किस प्रकार रूसकी नारियोंको घरकी क़ैद और अज्ञान तथा दासतासे मुक्त किया। इस प्रकार स्वाधीन होकर रूसी स्त्रियोंने वहाँके सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक एवं सामरिक विकासमें जो आशातीत योग दिया है, वह भी कम महत्वका नहीं है। इसे प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुषको पढ़ना चाहिए। **'साम्राज्यवाद और जनता'**में फ्रैंक वेरुलमने पूँजीवादके स्वरूप, उसके असमान विकास, फासिज़्म और साम्राज्यवादी संघर्षपर बड़े सरल और सुन्दर ढंगसे प्रकाश डाला है।

देशकी ज्वलन्त समस्याओंपर भी गृहने अनेक पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं। **'संयुक्त-प्रान्तमें अन्नका सवाल'**में श्री श्रीनिवास सरदेसाईने अन्नकी बहुतायतके बावजूद ऊँचे मूल्यों, अन्नचोरोंकी शरारतों और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंकी निष्क्रियताके कारण हुए अन्नाभावपर तथ्यों-सहित प्रकाश डाला है। **'बंगालके प्रति और अन्य कविताएँ'** कविताएँ न होकर प्रचारकी दृष्टिसे लिखी गई तुकबन्दियाँ या पद्य हैं। पर इनके सामयिक महत्वको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। **'पाकिस्तान सवाल', 'मुस्लिम लीग और आजादी'** और **'पीपल लीग यूनियानस्ट झगड़ेका रहस्य'** एकांगी दृष्टिको और किसी हद तक पक्षपातके साथ—लिखी गई पुस्तिका जिनकी बातोंसे अधिकतर ग़ैर-कम्युनिस्त सहमत न **'कांग्रेस और कम्युनिस्त'**में श्री पूरनचन्द्र जोशीने प्रति कम्युनिस्तोंकी नीतिका स्पष्टीकरण किया है। इसे 'हिन्दुस्तानी कम्युनिज़्म' और कम्युनिस्तोंके बारेमें नई पैदा होना स्वाभाविक हैं।

हमारे सहयोगी

कोट्टयम (ट्रावनकूर) से गत जनवरी माससे श्री तथा के० एस० भट्टके सम्पादकत्वमें **'विश्वभारती'** एक हिन्दी-मासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी है। भारतमें हुए व्यापक हिन्दी-प्रचारका यह एक ऐसा सु जिसपर हिन्दी-संसार गर्व कर सकता है। प्रथम अंक कस्तूरबापर केरलके महाकवि वल्लत्तोलकी एक भावपूर्ण पी० केशवदेवका एक भव्य एकांकी, एम० तंकम्मा एक सुन्दर कहानी और कोट्टयमका परिचय तथा हिन्दु प्रश्नपर प्रकाश डालनेवाले सुन्दर लेख हैं। हम हृदयसे 'विश्वभारती'का स्वागत करते हुए उसके दीर्घजीवनकी काम हैं। हमें आशा है, वह हिन्दीके माध्यम द्वारा उत्तर और भारतके साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान एक सुदृढ़ सम्बन्ध-सूत्र बनेगी। पत्रिकाका वार्षिक मूल्य छमाही २॥) है।

पिछले ९ वर्षोंसे उदयपुर (मेवाड़)के पितृ-संघ द्वारा उद्देश्य बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें माता-पिताओंको बोध कराना तथा घर और शालामें सहयोग-सामंजस्य करना है--श्री कालूलाल श्रीमाली और श्री जनार्दनरायके कत्वमें **'बालहित'** नामका एक उपयोगी मासिक प्रकाशि रहा है। शिक्षाके क्षेत्रमें सम्पादकद्वय काफ़ी योग्यता, और ख्याति लाभ कर चुके हैं। अतः यह कहना अनावश्य कि उनकी क़लमसे निकलीं अथवा सम्पादित चीज़ें बाल सम्बन्धमें अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं। इसके प्रत्येक बालक-बालिकाओंके मानसिक विकास, मनोविज्ञान और सम्बन्धित विषयों एवं समस्याओंपर अधिकारपूर्ण लेख रहते माता-पिताओं और शिक्षकोंके लिए **'बालहित'**को यदि कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी। तड़क-भड़क और पनबाज़ीसे दूर रहकर सहयोगी देशके भविष्य-निर्माण अमूल्य योग दे रहा है, उसे देखते हुए हिन्दी-संसारको समुचित आदर एवं लगनके साथ अपनाना चाहिए। वार्षिक मूल्य केवल २) है, जो कुछ भी नहीं है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुन्दर पोशाकमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद !

भारतके विशिष्ट अतिथियोंके स्वागतमें बकिंगम महलमें होनेवाले दिखावेकी परम्परापर प्रकाश डालते हुए लन्दनके 'लीडर' में जे० बी० प्रीस्टलेने लिखा है--"भारतीय अतिथियोंके स्वागत-सम्मानमें जो रस्में मनाई जाती हैं, उनकी परम्परामें पुरानापन बहुत कम है। उनमें अपेक्षाकृत एवं कृत्रिम नयापन है। सम्राटकी मान्यताका आविष्कार चतुर डिज़रेलीने मानो अभी कल ही किया हो; पर भारतीय राजे तो निश्चय ही हमारे द्वीप-जीवनकी परम्पराका कोई अंग नहीं हैं। यह एक थोथी परम्परा है—वैसी ही, जैसा कि पुराना फर्नीचर। यह सुन्दर पोशाकमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद है, जिसकी पृष्ठभूमिमें हैं कम्पनियोंके संस्थापक और डिवेंचर लेनेवाले लोग!"

इसके बाद कुछ भारतीय बच्चोंके दो प्रकाशित चित्रोंकी ओर संकेत करके प्रीस्टलेने कहा है--"ये सुन्दर पोशाकमें धनी वयस्क भारतीय नहीं हैं, बल्कि दारिद्र्य-बहुल भारतका एक प्रकाशित अंग-भर हैं। जब हम भारतका खयाल करते हैं, तो हमें ध्यान आता है योगका, कीलोंकी शय्याका, रस्सेके जादूका, नर्त्तकियोंका, हाथीदाँतके महलोंका, शेर और चीतोंके शिकारका, पुराने मन्दिरोंका, हीरों-पन्नोंसे लदे राजाओंका, महात्माओं और पागलोंका, सँपेरों और मज़ाकिया बावुओंका। अतः यह याद रखना आवश्यक है कि भारतकी सन्तति इनके अतिरिक्त भी हैं। चूँकि इनका चमड़ा काला है और ये हमसे बहुत दूर रहते हैं, यह न समझना चाहिए कि इन्हें भूख, प्यास, थकान, अकेलापन और डर आदि नहीं सताते। साथके बच्चोंमें से चित्र लिए जानेके बाद कुछ मर चुके होंगे और कुछ जीवित होंगे। यदि इनमें से कोई पढ़ा और सामूहिक रूपमें सोचना सीखा होगा और अपने साथियोंका प्रतिनिधि बना होगा, तो अवश्य वह इस समय जेलमें होगा, और हमने ही उसे वहाँ भेजा है। ये बच्चे खेलनेकी उम्रके बाद जब बड़े होंगे, तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये हमें कोसें नहीं, बल्कि सद्भावनासे देखें। यह इस बातसे कहीं ज़रूरी है कि बकिंगम महलके चौकमें एक बड़ा आदमी सुन्दर पोशाक धारण करता रहे!"

भारत संयुक्त-राष्ट्रोंके साथ क्यों नहीं ?

अभी हाल ही में वाशिंगटनके शोरहाम होटलसे रेडियोपर 'भारतको आज़ादीके मार्गमें कौन बाधक है?' विषयपर वाद-विवाद हुआ था। इसमें ब्रिटेनकी ओरसे बोले थे ब्रिटिश सरकारके वेतनभोगी प्रचारक सर फ्रेडरिक पकल और मुसलमानोंकी ओरसे एक अमरीका-स्थित मुसलमान व्यापारी और ऑरिएण्ट प्रेसके प्रतिनिधि एस० एम० अहमद। भारत अथवा कांग्रेसकी ओरसे कोई अधिकृत व्यक्ति नहीं था, अतः उसकी ओरसे प्रसिद्ध अमरीकन समाजवादी नार्मन टामस और अमरीकन कांग्रेस-सदस्य इमेनुअल सैलरने वाद-विवादमें भाग लिया। वाद-विवादके अध्यक्ष ग्रेनिकने आरम्भमें कहा--"भारत अभी तक इस युद्धका सबसे रहस्यपूर्ण प्रश्न बना हुआ है। आज जब कि जापानके साथ हमारा युद्ध पूरी गरमीपर पहुँच रहा है, अमरीकन जनता पूछती है कि चालीस करोड़ भारतीय संयुक्त-राष्ट्रोंका पूरी तरह साथ क्यों नहीं देते? जब युद्ध समाप्त हो जायगा और ब्रिटेन अपने साम्राज्यका पुनर्निर्माण करेगा, फिर प्रश्न होगा--क्या भारत उसमें सहयोग देगा? या क्या ब्रिटेनको फिर नए युद्धका सामना करना पड़ेगा? भारतीय जनताके प्रतिनिधि यही पूछ रहे हैं कि भारत कब स्वतन्त्र राष्ट्र होगा? २०० वर्षोंसे भारत ब्रिटेनके अधीन है। ऐसे समय जब कि दुनिया आज़ादीके लिए लड़ रही हो, भारतका स्वाधीनताके लिए आवाज़ उठाना स्वाभाविक ही है। उसकी आज़ादीके मार्गमें कौन बाधक है? क्या इस बातका डर है कि स्वतन्त्र होकर भारत संयुक्त-राष्ट्रोंके प्रति वफ़ादार नहीं रहकर जापानके साथ अधिक मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखेगा? या यह डर है कि आज़ादी मिलनेपर भारतमें गृह-युद्ध हो जायगा?"

नार्मन टामसने कहा—"संसारकी कल्पनामें दीर्घकालसे भारत साम्राज्यवादका मुकुट अथवा प्रतीक रहा है। यह साम्राज्यवाद ही न सिर्फ भारतकी आज़ादीके मार्गमें, बल्कि विश्व-शान्तिके मार्गमें भी बाधक है। डम्बर्टन ओक्समें हुई मन्त्रणाका निचोड़ यही है कि अमरीका सुदूर-पूर्वके ब्रिटिश, फ्रेंच और डच साम्राज्योंकी रक्षा करे, जो कि अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हो गए हैं। अरबों एशियावासियोंने चर्चिल-रूज़वेल्ट द्वारा आश्वस्त कोरियाकी स्वतन्त्रता और भारत, बर्मा तथा मलायाके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा या नहीं कहा गया, उससे यह धारणा बना ली है कि ये अंगरेज़ी-भाषी लोग श्वेत-साम्राज्यवादको क़ायम रखनेकी ही चेष्टा कर रहे हैं। इसका परिणाम अगली पीढ़ीमें दूसरा युद्ध ही होगा। देशी लोगोंके विद्रोहोंके फल-स्वरूप होनेवाले युद्धमें निश्चय ही रूस उनकी सहायता करेगा। इस दूसरे महायुद्धके आत्मघाती विनाशसे हमें केवल एक ही चीज़ बचा सकती है और वह है अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगकी पृष्ठभूमिमें बिना शर्त्त भारतको स्वाधीन करनेका आश्वासन। पर क्रिप्स-योजना और ब्रिटेन द्वारा होनेवाले प्रोपेगेण्डा तथा नेहरू और अन्य भारतीय देशभक्तोंके जेलमें सड़नेसे शान्तिकी यह आशा नहीं की जा सकती।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by eGangotri

भले ही भारतमें फूट नज़र आती हो ; पर स्वाधीनताकी माँगमें सभी दल एकमत हैं। भारतकी स्वाधीनतामें अमरीकाका, जो सुदूर-पूर्वमें ब्रिटिश सत्ताका स्थान ग्रहण करेगा, निश्चित और आत्म-रक्षा-जनित प्रयोजन है। इससे भी अधिक उसकी विश्व-स्वातन्त्र्यमें यह नैतिक दिलचस्पी है कि वह शान्ति और समृद्धिके लिए इसे आवश्यक समझता है।" ('भारतज्योति')

पंजाबमें हिन्दी

पंजाबमें हिन्दी-प्रचारका प्रश्न आजसे कुछ वर्ष पूर्व जितना निराशाजनक था, उतना आज नहीं है। पिछले वर्षोंमें पंजाबने हिन्दी-प्रचारके बारेमें निश्चित रूपसे उन्नति की है। एक समय वह भी था, जब यह समझा जाता था कि पंजाबमें हिन्दीके लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ न हिन्दीमें छपी पुस्तकोंके लिए स्थान है, न हिन्दी-समाचारपत्रोंके लिए। परन्तु हिन्दी-प्रेमियोंके उत्साहने इन दोनों धारणाओंको निराधार सिद्ध कर दिया। पिछले कुछ वर्षोंमें पंजाबमें जहाँ हिन्दीकी नई-नई पुस्तकें लिखी गईं और प्रकाशित हुईं, वहाँ समाचारपत्र भी निकले और उनमें से कुछ अखबार काफी सफल भी हैं। इस सफलताका बहुत बड़ा कारण पंजाबियोंका वह हिन्दी-प्रेम है, जो धीरे-धीरे जाग्रत हो रहा है और जिसने उन्हें यह अनुभव करनेकी शक्ति दी है कि हिन्दीके साथ हमारी संस्कृति और हमारे धर्मका गहरा सम्बन्ध है। इस नई अवस्थाको देखकर हर्ष होता है। परन्तु यह समझना कि हिन्दी-प्रचारके बारेमें पंजाब अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुका, ठीक नहीं। थोड़ी-सी उन्नति कर लेनेपर भी इस प्रान्तके अन्दर हिन्दी उस स्थितिको नहीं पहुँच पाई है, जहाँ तक कि उसे पहुँचना चाहिए। साम्प्रदायिक मुसलमानोंने सदा ही हिन्दी-प्रचार-आन्दोलनको कुचलनेका यत्न किया। उन्होंने कभी यह समझनेकी चेष्टा नहीं की कि हिन्दी-प्रचारका उद्देश्य उर्दूका अन्त कर देना नहीं है। उन्होंने कभी यह देखनेका कष्ट नहीं किया कि उर्दू हिन्दीका ही रूपान्तर है। भेद है तो केवल लिपिका, और यह कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। इस बहसमें फँसकर साम्प्रदायिक मुसलमानोंने हिन्दी-प्रचारके मार्गमें बाधाएँ ही नहीं डालीं, बल्कि जोशमें आकर उर्दूका भी सत्यानाश कर डाला। आज भी यदि वे ध्यानसे देखें, तो उन्हें पता चलेगा कि हिन्दी-प्रचारका उद्देश्य उर्दू या इस्लामको हानि पहुँचाना नहीं है। उर्दूको हानि पहुँचा रहे हैं वे लोग, जो उसे क्रमशः फारसीमय बनाते जा रहे हैं और उसे एक ऐसा रूप दे रहे हैं, जिसे कोई भी भला मानुष समझ न सके। इस रोगमें फँसकर देशवासियोंने जो ग़लत रास्ता अपनाया, उसके कारण आज पंजाबमें हिन्दीके लिए कितने ही नए प्रश्न पैदा हो गए हैं। रेडियोपर जो भाषा बोली जाती है, वह शनैः-शनैः उर्दूके बजाय फारसीका हिन्दुस्तानी रूप बनती जा रही है। डाकखानोंमें केवल नागरी अक्षरोंमें लिखे पत्रोंके साथ ऐसा व्यवहार हो रहा है, जिसे निश्चित रूपसे देर तक सहन नहीं किया जा सकता। यूनियनिस्ट-शिक्षा-नीतिमें हिन्दीके साथ सौतेले पुत्र-जैसा ही नहीं, शत्रुका-सा व्यवहार हो रहा है। इन बातोंके विरुद्ध हमें लन करना है। ('हिन्दी-मिलाप')

स्वर्गीय हंस मेघराज

अभी उस दिन डरबन-नेटाल-निवासी श्री वी० ए० का तार पाकर मेरे सन्तापकी सीमा नहीं रही कि उनके नेटाल इण्डियन कांग्रेसके पूर्व मन्त्री एवं प्रवासी भारतीयोंके होनहार नेता हंस इस लोकसे सदाके लिए विदा हो गए। की जनताको सम्यक् रूपसे यह बता सकना मेरे लिए दुष्कर है कि इस तरुण नेताके निधनसे नेटालके प्रवासी को कितनी बड़ी हानि हुई है। नेटालके प्रसिद्ध मेघराजके पाँच पुत्रोंमें हंस द्वितीय पुत्र थे। सन् १९ उनका जन्म डरबनमें हुआ था। वे आर्य-सामाजिक पले। वहाँके हायरग्रेड गवर्मेण्ट इण्डियन स्कूलमें उन्हो मिली। शिक्षा समाप्तकर वे ज़मींदारी तथा महाजनीका बार सीखने लगे। कुछ ही काल बाद उन्होंने ज़मीनकी बिक्री, पैसेका लेन-देन, बीमा आदिके कामके लिए हंस एण्ड कम्पनीके नामसे निजी कार्यालय खोला। सचाई इमानदारीके प्रतापसे उनका व्यवसाय चमक उठा, और काफ़ी धन कमाया। उनमें विशेषता यह थी कि वे केवल धन मशीन नहीं बने। उनके हृदयमें देश और क़ौमकी सेवा को उत्कट लगन भी थी। दो सालसे अधिक वे नेटाल कांग्रेसके मन्त्री रहे और अपनी ज़िम्मेदारीको उन्होंने तरह निभाया। डरबन-आर्यसमाज और डरबन-युवक-आर्य वे मुख्य मन्त्री थे और नेटाल-आर्य-प्रतिनिधि-सभाके मन्त्री भी। वे सेन्ट जान एम्बूलेन्स एसोसियेशनके प्रथम डिविज़नके मन्त्री तथा इण्डियन अस्पताल एडवायज़री खज़ांची भी बनाए गए थे। इण्डियन रेट-पेयर्स एसोसिएश के पाँचवें वार्डके और इन्स्टीट्यूट आफ़् नेटाल इण्डियन इस्टेट एजेन्ट्सके मन्त्रीत्वका भार भी उनपर डाला गया डरबन टाउन-प्लानिंग एसोसिएशनके वे भारतीय सदस्य क्षयरोग-अस्पतालकी सहायताके लिए उन्होंने 'हंस मेघराज मस स्टाम्प' प्रदान किया था। नेटालके सार्वजनिक जीवनके क्षेत्रोंमें उनकी प्रवृत्ति थी।

अभी तक हंसने विवाह भी नहीं किया था। हंसके उ नेटालके प्रवासी भाइयोंने एक विचारशील राजनीतिक एवं उत्साही समाज-सुधारक खो दिया। उनकी देशभक्ति भावना, क्रियाशीलता, बुद्धिमत्ता और सौजन्य प्रवासी लिए आदर्शका काम देंगे। (स्वामी) भवानीदयाल संन्या

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

राष्ट्रमाता कस्तूरबाका स्मारक

पिछले दिनों जब समूचा देश आदर और श्रद्धापूर्वक राष्ट्रमाता कस्तूरबाकी पहली बरसी मना रहा था, वर्धाके खादी-विद्यालयमें गांधीजी उनके स्मारक-कोषकी प्रान्तीय समितियोंके प्रतिनिधियोंके साथ उसके उपयोगकी योजनाके सम्बन्धमें विचार-विनिमय कर रहे थे। गांधीजीने कहा—"यह धन एक अशिक्षित और सरल-हृदय स्त्रीके नामपर इकट्ठा किया गया है। अतः उसको स्मृतिमें किया जानेवाला काम शत-प्रतिशत ईमानदारीसे होना चाहिए।" आपने बतलाया कि ग्रामीणोंकी दुरवस्थाका मुख्य कारण गरीबी और अज्ञान हैं। स्त्रियोंको घरकी गुलामी और बच्चोंको पेटके लिए शिक्षासे विमुख होनेसे बचानेका एकमात्र उपाय यही है कि उन्हें शिक्षा द्वारा कोई उपयोगी कामकर अपने पाँवोंपर खड़ा होने लायक बना दिया जाय। निःसन्देह भारतके ७ लाख गाँवोंके लिए एक करोड़ २४ लाख रुपया समुद्रमें एक बूँदकी भाँति ही है; फिर भी कार्यकर्त्ताओंकी लगन और देशवासियोंका उत्साह देखकर हमें विश्वास होता है कि इससे कमसे कम ग्रामीण भारतके अज्ञानकी जड़ोंपर सफल आघात तो हो ही सकेगा, और शायद आगे भी धन तथा कार्यकर्त्ताओंकी कमी न रहे। जब तक देशव्यापी निरक्षरताको दूर नहीं किया जायगा, हमारी आज़ादीकी लड़ाईकी तैयारी अधूरी ही रहेगी। महिलाओं को अधिकाधिक संख्यामें इस पुनीत कार्यमें हाथ बँटाना चाहिए। ऐसा करके वे न सिर्फ़ राष्ट्रमाताके प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि ही अर्पित करेंगी, न सिर्फ़ अपने आवश्यक कर्त्तव्यका पालन ही करेंगी; बल्कि अपनी अज्ञान और दासताके नरकमें सड़नेवाली असंख्य बहनों और अबोध बच्चोंके मुक्तिका मार्ग भी प्रशस्त करेंगी। इससे बढ़कर बाका सच्चा स्मारक और क्या हो सकता है?

विरोधियोंका शरारत-भरा प्रचार

कस्तूरबा-स्मारक-कोषके ट्रस्टियोंने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है, उसकी गुरुता और उनके कार्यक्षेत्रको व्यापकताको देखते हुए उनके साधन-सुविधाएँ काफ़ी स्वल्प हैं। सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं की कमी भी वे महसूस करते हैं। इन सबके सिवा उनके सामने सबसे बड़ी बाधा है कांग्रेस-विरोधियों, प्रतिगामियों, ग़द्दारों और साम्राज्यवादी एजेंटोंका मिथ्या और शरारत-भरा भ्रान्ति-प्रचार। कोषकी अपील निकलते ही 'वीर' (?) सावरकरने हिन्दुओंसे उसमें कुछ न देनेका अनुरोध किया था। पर ७५ लाखके बजाय कोषमें १२४ लाख रुपया एकत्र हो जाना इस बातका प्रमाण है कि देशवासियोंकी निगाहमें सावरकर-जैसे खाली कारतूसोंके शब्दोंका क्या मूल्य है! इसके बाद मानवेन्द्रनाथ राय, अम्बेडकर और जिन्नाने (शायद अधिकारियोंको उकसानेके लिए) यह राजनीतिक भूत खड़ा किया कि इस रुपएसे रचनात्मक कार्यक्रमकी ओटमें कांग्रेस-संगठनको फिर ज़िन्दा किया जा रहा है। कांग्रेस को हर तरहसे बदनाम करने और कांग्रेस-नेताओंके खिलाफ़ जी-भरके ज़हर उगलने तथा मिथ्या प्रचार करनेमें इन स्वयंभू नेताओंने कोई कसर उठा नहीं रखी। पर आज यह देखकर इनकी सिट्टी गुम है कि स्मारक-कोषसे बिना एक भी पाई खर्च हुए और सरकारी पाबन्दी तथा दमन-ज़्यादतीके बरक़रार रहनेके बावजूद देश-भरमें कांग्रेस-जन फिर संगठित होने लगे हैं।

यद्यपि गांधीजीने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्मारक-कोष द्वारा होनेवाले रचनात्मक कार्यको राजनीतिसे सर्वथा दूर रखा जाय और इसके लिए ऐसे कार्यकर्त्ता जुटाए जायँ, जिनका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध न हो; फिर भी विरोधियोंके मिथ्या प्रचारसे एकदम बचना सम्भव नहीं देख पड़ता। 'स्टेट्स्मैन' (१६-१-४५) के दार-एल्-इस्लामके लेखकने मुस्लिम-लीगके दृष्टिकोणसे लिखा है—"यह फिर हिन्दुओं और मुसमानोंमें नया संघर्ष पैदा करने के बीज बोए जा रहे हैं। मि० गांधी कुछ भी कहें; पर यह ज़ाहिर है कि इन सुशिक्षित कार्यकर्त्ताओं और कस्तूरबा-स्मारक-कोषकी सहायतासे वे दूसरे जन-सम्पर्कका आयोजन कर रहे हैं। ग्राम-सुधार-कार्यकी ओटमें कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओंकी यह सेना कांग्रेसके ध्येयकी सन्देशवाहक होगी और मुस्लिम-लोगके प्रति मुस्लिम जनताकी वफ़ादारीको खोखला करेगी।...जल्दी या देरसे उनके कार्यकर्त्ताओंको उन मुस्लिम कार्यकर्त्ताओंके संघर्षमें आना पड़ेगा, जिनका यह समान कर्त्तव्य होगा कि मुसलमानोंके तथाकथित लाभके लिए होनेवाले इस सामाजिक सुधारके धोखे और घूसखोरोसे उनकी रक्षा करें।" यही नहीं, मुस्लिम-लीगके मुखपत्र 'डान'में उसके पटना-स्थित संवाददाताका एक संवाद छपा है, जिसमें बिहार-सरकार द्वारा कांग्रेस-नेताओंपर लगाई गई पाबन्दियोंपर सन्तोष प्रकट करते हुए कहा गया है कि कांग्रेसका रचनात्मक कार्यक्रम मुस्लिम जनतासे सम्पर्क स्थापित करनेकी चाल और मुस्लिम-लीगको दरगुज़र करनेका एक नया प्रयास है! गत १८ फरवरीको मध्य-प्रान्तीय मुस्लिम-लीगकी कार्य-समितिकी जो बैठक हुई है, उसमें न सिर्फ़ इसे मुसलमानोंके लिए हानिकर ही बतलाया गया है, बल्कि वैतनिक कार्यकर्त्ता रखकर इसके खिलाफ़ प्रचार करनेका भी तय किया गया है! हमें हैरत और

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आश्चर्य है कि इस अभागे देशमें आखिर ऐसा कौन-सा काम है, जिसे साम्प्रादायिक रंग न दिया जा सके !

यहाँ हम कुतर्कियोंके उपर्युक्त शरारत-भरे भ्रान्ति-प्रचारका उत्तर देना अनावश्यक समझते हैं। ये शरारती प्रचारक ऐसे अज्ञान नहीं, जिन्हें कुछ समझाया जाय। पर इस ओर कोषके ट्रस्टियोंका ध्यान हम अवश्य आकर्षित करना चाहते हैं। हमें आशा है, ट्रस्टीगण कार्यकर्त्ता चुनते समय इस बातका विशेष ध्यान रखेंगे कि अधिकाधिक मुस्लिम कार्यकर्त्ता और कार्यकर्त्रियाँ आगे आयँ तथा अधिकाधिक मुस्लिम स्त्रियों और बच्चोंको उनकी ऐच्छिक भाषा और लिपि तथा दस्तकारीमें शिक्षितकर ग़द्दारों और हिन्दू-मुस्लिम-एकताके इन संकीर्ण एवं स्वर्थान्ध विरोधियोंको मुँहतोड़ जवाब दिया जाय। वे मुस्लिम जनताको स्पष्ट बतला दें कि ग़रीबी, गुलामी और अज्ञान जाति या धर्म नहीं देखते। वे सभीके लिए समान रूपसे घातक हैं। वह समय दूर नहीं है, जब मुसलमान स्वयं देखें और समझेंगे कि उनका सच्चा नेता, सहायक और उद्धारक कौन है ?

तस्वीरका दूसरा रुख़

एक ओर जहाँ प्रतिगामी फूट-परस्तोंको कांग्रेसियों--कांग्रेस नहीं--के लोकोपयोगी सामान्य सेवा-कार्योंमें भी साम्प्रदायिकता की बू आती है, आतंकित अधिकारियोंको रचनात्मक कार्योंमें भी राजनीतिक (नहीं, नहीं, दूसरे क्रान्तिकारी आन्दोलनकी तैयारी !) की बू आई है। बिहार-सरकारने पिछले दिनों वहाँ हुई रेल-दुर्घटनाको कांग्रेसियों द्वारा नुक़सना पहुँचानेका प्रयत्न बतलाया था—यद्यपि आज तक उसने इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं समझी ! इसके बाद उसने कांग्रेसियोंके रचनात्मक कार्योंको दूसरे आन्दोलनकी तैयारी बतलाकर एक कार्यकर्त्ताको गिरफ़्तार कर लिया तथा चारको अपने-अपने गाँवों में नज़रबन्द कर दिया। इस ज़्यादतीका देशव्यापी विरोध होनेके कारण यद्यपि नज़रबन्दीके हुक्मोंकी तामील तो अभी कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दी गई है; पर इस ग़लत क़दमको सरकारने पीछा नहीं उठाया है। इसपर स्वयं गांधीजीको कहना पड़ा है--

"बिहार-सरकार द्वारा कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओंको दी गई चुनौतीपर अपनी राय देनेमें मैंने इस आशासे देरी की कि यह तूफ़ान एक भ्रान्त ग़लतीके कारण है और इसे ठीक कर दिया जायगा। पर मैं देखता हूँ कि मैं ग़लतीपर था।"

इस सम्बन्धमें श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन (जो बादमें छोड़ दिए गए) और श्री गोपबन्धु चौधरीकी गिरफ़्तारियोंका उल्लेख कर गांधीजीने कहा है—"यह तस्वीरका एक रुख है और दूसरा यह है कि वाइसराय श्री भूलाभाई देसाईसे बातचीत कर रहे हैं। बड़े-बड़े रद्दोबदलकी अफ़वाहें ज़ोरोंपर हैं। पर ऊपरकी बातोंसे इन अफ़वाहोंकी संगति नहीं दिखाई पड़ती।" यह बात लाते हुए कि उनके द्वारा तैयार किए गए १५ बातोंके कार्यक्रम और उसपर उनके सुझाए हुए ढंगसे होनेमें राजनीतिकी बू तक भी नहीं है, गांधीजीने कहा है अमल करनेके लिए उनके (श्री प्रजापति मिश्र) या उत्तेजक भाषण देने या अहिंसात्मक अवज्ञा करनेका नहीं उठता—हिंसात्मक कार्य करना या उसकी स्वीकृति बहुत दूरकी बात है। मौजूदा हालातमें सामूहिक आन्दोलनकी कोई योजना नहीं है, यह मैं स्पष्टतया और मैं जानता हूँ कि देश-भरमें कांग्रेसी मेरी इस सार ही काम कर रहे हैं। पर सैद्धान्तिक प्रतिरोधकी संकेत करनेसे तो किसीको नहीं रोका जा सकता और न करना रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करनेकी शर्त जा सकता है। निःसन्देह राजनीतिक, सामाजिक और स्वतन्त्रता ही इसका उद्देश्य है।"

अन्तमें गांधीजीने मर्मान्तक व्यथासे पीड़ित होकर है—"एक और दुखद अनुभव मुझे हो रहा है, जिसमें को साझीदार करना चाहता हूँ, और वह है इक़बाली करनेके लिए राजबन्दियोंपर पड़नेवाली मार और उ जानेकी खबरें। कुछ मामले जनताके सामने आ भी जैसे कोल्हापुरका बदनाम काण्ड। कई और ताज़े ओर भी मेरा ध्यान आकृष्ट किया गया है। एक मेरे सामने है--एक नौजवानका, जिसके खिलाफ़ बारह जिसने मेरे कहनेपर स्वतः पुलिसको आत्म-समर्पण क क्या यह समय नहीं है, जब कि अधिकारियोंको दुर्व्यवहार करने और उन्हें सतानेके इस रवैएका अन्त चाहिए ?"

राजबन्दी पुलिसकी दयापर !

उपर्युक्त उद्धरणकी अन्तिम पंक्तियोंने सहसा हमें लाल सक्सेनाके साथ किए गए एक गोरे पुलिस-अफ़सर हारकी याद दिला दी। सक्सेनाजीकी ओरसे गोरखपुर डिप्टी-इन्स्पेक्टर-जनरल पुलिस सी० पी० लक द्वारा १९४२ को अपनी पत्नीको लिखा गया एक सनसनी अदालतमें पेश किया गया है और पुलिस इन्स्पेक्टर इस बातकी तसदीक़ की है कि पत्र लक ही के हाथका है। इसमें बड़े गर्वके साथ लकने अपनी प्रियतमाको "...प्रमुख कांग्रेस विद्रोही शिब्बनलाल सक्सेनाकी दिनोंसे तलाश थी, और कल महाराजगंजके पास मुखियाने उसे गिरफ़्तार किया।...मैंने आज सुबह ९-४५ तक उससे भेंट की। वह सूअर ऐसा बहाना जैसे वह युक्त-प्रान्त और बिहारमें कांग्रेस द्वारा किए कार्योंके बारेमें कुछ भी नहीं जानता हो।...पर समस्त

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और कष्टोंके लिए उस मनुष्यको ज़रा भी दुःख नहीं है। उसे केवल यही दुःख है कि वह अधिक हानि पहुँचानेके पूर्व ही पकड़ लिया गया। मैंने उसे उसकी कोठरीमें इतना तंग किया कि वह प्रायः अधमरा हो गया…।" ('भारत')

लकके उपर्युक्त पत्रांशसे यह स्पष्ट है कि सिर्फ़ अपने सन्देह का कारण—जिसका आधार चाहे जितना भी सूक्ष्म या मिथ्या क्यों न रहा हो—उसने युक्त-प्रान्तके एक संभ्रान्त नागरिक और लोकनायकको 'सूअर' बनाने और उनके साथ सूअरसे भी बदतर व्यवहार करनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया। पर लक कोई अपवाद नहीं है। गत १० फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीमें श्री चेट्टियरने पूछा कि क्या श्री जयप्रकाश नारायणने अदालतमें यह शिकायत की है कि जेलमें पुलिसने उनके साथ दुर्व्यवहार किया? गृह-सदस्यने उत्तरमें आरोपोंको स्वीकार करके भी कहा कि इनके सम्बन्धमें जाँच करना सरकारका काम नहीं है! कदाचित् इसी-लिए ब्रिटिश भारतीय नौकरशाहीमें ऐसे अफ़सरोंकी कमी नहीं है, जो मौक़ा आनेपर सारे क़ानून और अधिकार अपने हाथोंमें लेनेमें झिझकते नहीं। और झिझकें भी क्यों, जहाँ आर्डि-नेन्सोंसे 'शासन' हो तथा हज़ारों नागरिक केवल कुछ व्यक्तियोंके 'सन्देह'के कारण बिना सफ़ाईका मौक़ा पाए अनिश्चित काल तक जेलोंमें सड़ाए जाते हों, वहाँ मनमानी और ज़्यादती करनेमें कौन कफ़ायत करेगा? लकका पत्र प्रकट हो गया, इसलिए जनता उसकी ज़्यादतीका आभास पा सकी है; पर न-जाने कितने अभागे और निर्दोष नज़रबन्द आज लक-जैसे निर्दयी और स्वेच्छाचारी 'अधिकारियों' द्वारा सताए जा रहे होंगे।

कांग्रेसी नेता नहीं छूटेंगे

श्री चेट्टियरके प्रश्नके उत्तरमें केन्द्रीय असेम्बलीमें गृह-सदस्यने घोषणा की कि गत जनवरीमें कांग्रेसी नेताओंके सम्बन्ध में पुनः विचार किया गया था और परिणाम-स्वरूप उनपर ६ मास तक और नज़रबन्द रखनेके नए हुक्म तामील किए गए हैं। श्रीप्रकाशजीके इस प्रश्नका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया गया कि पिछले ६ मासमें इन नेताओंने ऐसा क्या किया है, जिस के कारण इनपर नज़रबन्दीके ये नए हुक्म तामील किए गए हैं? गृह-सदस्यने यही बतलाया कि उन्हें फ़िलहाल छोड़ा नहीं जायगा। अगर यही बात है, तो समझमें नहीं आता कि आखिर सरकार ने हर छः महीने बाद नज़रबन्दीके ये नए हुक्म जारी करनेकी अर्थहीन और अपव्ययी औपचारिकताका ढकोसला क्यों रच रखा है। गांधीजीको इन नेताओंपर निश्चित अभियोगोंके अधीन मुक़दमा चलानेकी जो धमकी भूतपूर्व वाइसरायने दी थी, उसपर अमल करनेकी तैयारी क्या अभी भी पूरी नहीं हुई है? या सरकार स्वयं महसूस कर चुकी है कि वह धमकी अनावश्यक, निराधार और मिथ्या थी। अच्छा हो, या तो सरकार इन नेताओं पर मुक़दमा चलाकर न्यायकी अदालतमें इन्हें सफ़ाई देनेका मौक़ा दे, या फिर इन्हें पकड़ और नज़रबन्द रखकर उसने जो भारी भूल की है, उसको शीघ्रातिशीघ्र सुधारे।

नेताओंका स्वास्थ्य

गत १० फरवरीको कांग्रेसी नेताओंके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें स्पष्टीकरण करते हुए सरकारकी ओरसे कहा गया कि सब नेताओंका स्वास्थ्य अच्छा ही है, बस डा० राजेन्द्रप्रसाद पुराने दमेसे पीड़ित हैं; पं० गोविन्दवल्लभ पन्तकी पीठमें दर्द रहता है और उनका हर्नियाका आपरेशन होगा; पं० नेहरू कमरके दर्दसे पीडित थे; सरदार पटेल अर्सेसे अँतड़ियोंके रोगसे पीड़ित रहे हैं; मौलाना आज़ादका वज़न ४१, पंतजीका १५, श्री आसफ़-अलीका ९ और डा० पट्टाभीका ६ पौण्ड कम हुआ है! इस विवरणको देखकर यह समझना मुश्किल है कि नेताओंका स्वास्थ्य किस दृष्टिसे अच्छा है और क्या उनके स्वास्थ्य-लाभके लिए ही सरकार उन्हें अहमदनगरके सेनेटोरियममें रखनेकी कृपा कर रही है?

हज़ारों व्यक्ति जेलोंमें क्यों?

गत १० फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीमें पूछे गए एक प्रश्नके उत्तरमें गृह-सदस्यने बतलाया कि १ जनवरी, १९४५ को १९४४ के तीसरे आर्डिनेन्सके अन्तर्गत नज़रबन्द किए गए व्यक्तियोंकी संख्या ७५७४ और भारत-रक्षा-क़ानूनोंके अन्तर्गत दण्डित व्यक्तियोंकी संख्य ५७०८ है। इनमें से अनेक ग़ैर-राजनीतिक कारणोंसे भी दण्डित हैं। १४ फरवरीको एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें कहा गया कि युद्धारम्भ होनेसे लेकर ३१ दिस-म्बर १९४४ तक भारत-रक्षा-क़ानूनोंके अन्तर्गत दण्डित कुल व्यक्तियोंकी संख्या १२०४३६ है। उपर्युक्त तीनों संख्याओंमें ग़ैर-राजबन्दी भी शामिल हैं, अतः यह कहना कठिन है कि केवल राजबन्दियों अथवा नज़रबन्दोंकी संख्या कितनी है। पर इसमें सन्देह नहीं कि वह हज़ारोंसे कम न होगी। भारत-रक्षा-क़ानूनों और १९४३-४४ के आर्डिनेन्सोंके सिवा अनेक १८१८ के तीसरे रेगूलेशनके अन्तर्गत भी नज़रबन्द हैं। आज जब कि युद्ध-स्थिति मित्र-पक्षके अनुकूल है और देशमें ईमानदार तथा सेवाव्रती कार्यकर्त्ताओंकी बहुत ज़रूरत है, क्या सरकार इन्हें रिहा कर जनताके क्षोभ और असन्तोषको दूर नहीं करेगी?

पंजाब, बंगाल, सिन्ध, सीमा-प्रान्त, आसाम, उड़ीसा, बिहार आदिमें न सिर्फ़ राजबन्दियोंको अनिश्चित कालके लिए बिना मुकदमा चलाए जेलोंमें ही रखा जा रहा है; वरन जो छोड़े गए हैं, उनपर अनुचित प्रतिबन्ध भी लगा दिए गए हैं। पंजाब और सिन्ध-असेम्बलियोंके मुक्त सदस्योंको असेम्बलियोंकी बैठकोंमें शामिल होनेसे भी रोका जा रहा है। ऊपर बताए हुए पहले पाँच प्रान्तोंमें तो यह आशंका भी प्रकट की गई है कि यदि कांग्रेसी धारा-सभा छोड़ दिए जायँगे, तो येनकेनप्रकारेण

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan

अवस्थित मन्त्रिमण्डल डगमगा जायँगे। पर इस तरह बकरेकी मा आखिर कब तक खैर मनायगी ?

राष्ट्रीय झण्डेका अपमान

देशके अनेक भागोंमें अधिकारियों द्वारा स्वाधीनता-दिवसपर लगाए गए प्रतिबन्धोंके समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं। कई व्यक्तियोंके घरोंपर से पुलिस द्वारा राष्ट्रीय झण्डे उतारकर ले जाए जानेके समाचार भी मिले हैं, जिनपर विचार करनेके लिए श्री के० एस० गुप्तने केन्द्रीय असेम्बलीमें एक स्थगित-प्रस्ताव पेश करनेका नोटिस दिया है। नई दिल्ली कांग्रेस-कमेटीके मन्त्री श्री मुश्ताक़ अहमदने दिल्लीके अधिकारियोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि दिल्लीकी कई अदालतोंमें राष्ट्रीय झण्डे झाड़न के काममें लाए जा रहे हैं। इसपर विचार करनेके लिए श्री अब्दुलक़य्यूमने एक और स्थगित प्रस्ताव पेश करनेका नोटिस दिया है। इन समाचारोंसे सम्बन्धित अधिकारियोंकी अदूरदर्शिता, नासमझी और ग़ैरक़ानूनी प्रवृत्तिका ही परिचय मिलता है। गत २३ फरवरीको सिन्ध-असेम्बलीमें श्री निचलदास वज़ीरानीके यह कहनेपर कि पुलिसने कई घरों और दुकानोंपर से राष्ट्रीय झण्डे उतार लिए, गृह-सदस्यने बतलाया कि खानगी मकानोंपर कांग्रेस-झण्डा फहराना निषिद्ध नहीं ; पर यदि झण्डे फहरानेका प्रभाव कांग्रेस-आन्दोलनको पुनर्जीवित करना हो, तो सरकार हस्तक्षेप करना ज़रूरी समझती है। आपने बतलाया कि ९ अगस्त '४३ से ९ फरवरी '४४ तक राष्ट्रीय झण्डा फहराने या फहरानेकी चेष्टा करते हुए १३३ व्यक्ति गिरफ्तार किए गए हैं। अधिकारी यदि ठंडे दिमाग़से सोचते, तो वे यह समझनेमें भूल नहीं करते कि केवल राष्ट्रीय झण्डा फहरानेसे ही तो अमन-क़ानून खतरेमें नहीं पड़ते। इसके विपरीत राष्ट्रीय झण्डेका—जिसके प्रति जनताका अशेष आदर है—अपमानकर उन्होंने जनतामें अनावश्यक क्षोभ, असन्तोष और उत्तेजन ही पैदा किया।

अभी कुछ दिन पूर्व अमरावती ज़िलेके यावली गाँवमें राष्ट्रीय झण्डा उतारनेकी चेष्टा करनेवालोंपर आक्रमण करनेके अभियोगमें दण्डित ३८ व्यक्तियोंको रिहा करते हुए नागपुर-हाईकोर्टके जस्टिस नियोगीने कहा था—"प्रमाणित तथ्योंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि चौकमें एकत्र व्यक्तियोंको राष्ट्रीय झण्डेका उतारा जाना रोकनेका अधिकार था। झण्डा ज़ब्त नहीं था, अतः चौकमें उसका फहराया जाना भी ग़ैरक़ानूनी नहीं था। यदि झण्डेका उतारा जाना ग़ैरक़ानूनी है, तो ऐसा किया जाना कितना भी ज़रूरी क्यों न समझा गया हो, ऐसा करनेवाले अफ़सरोंने अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं किया। क़ानून कर्त्तव्य पालनके नामपर अफ़सरोंको ग़ैरक़ानूनी हरकतें करनेकी इजाज़त नहीं देता, और जो अफ़सर ऐसी ग़ैरक़ानूनी हरकतें करते हैं, जिनका प्रतिरोध होना उचित हो, वे भारतीय दण्डविधानकी धारा ३३३ के अन्तर्गत पनाह लेनेके अधिकारी नहीं हैं। अधिक सशस्त्र व्यक्तियोंको ले जाकर बिना गाँववालोंकी और उनकी इच्छाके विरुद्ध झण्डा उतारना खुदसे जुर्म है।"

तब लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध, बिना उनकी स्वीकृति निजी घरोंसे ज़बर्दस्ती झण्डे उतारकर उनसे झाड़नका कौन-सा जुर्म है, यह कोई न्यायाधीश ही बता सकता है।

सेविंग्ज़-सर्टिफिकेट लेनेपर ज़ोर

देश और विदेशोंमें सरकार यह प्रचार कर रही है युद्धमें भारतसे जन और धनकी सहायता स्वेच्छासे मि कांग्रेसके ख़िलाफ़ उठाए गए उसके क़दमका मक़सद प्रयासको अबाध रखना ही बतलाया गया है। पर सेविंग्ज़-सर्टिफिकेट बेचनेके लिए जो पखवाड़ा रखा था, जगहोंसे सर्टिफिकेट खरीदनेके लिए जनतापर ग़ैरक़ा अनुचित दबाव डाले जानेकी शिकायतें आई हैं। क़ानून और न्याय-विभागके भूतपूर्व मन्त्री डा० काटजूने इलाहाबादके ज़िला-मजिस्ट्रेटसे शिकायत क कड़ा परगनेके दारानगर गाँवके सरयूप्रसाद नामके एक यह कहनेपर कि वह ५०) के सर्टिफिकेट नहीं खरीद सक तहसीलदारने उसे रस्सेसे बँधवा दिया और अर्दलियोंने मारे। इस सम्बन्धमें सरकारने क्या कार्यवाही की है, मालूम ; पर इसकी शीघ्रातिशीघ्र निष्पक्ष जाँच होनी ज़

गत १० फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीने ४० के मतोंसे लोगी सदस्य श्री धनीका स्थगित-प्रस्ताव पास जिसके द्वारा उन्होंने बिहारमें सर्टिफिकेट खरीदनेके सम्बन्ध ग़ैरक़ानूनी और अनुचित तरीक़ोंकी निन्दा की है। लाया कि मा-बापसे कहा गया कि प्रत्येक बच्चेके लिए सर्टिफिकेट लें, नहीं तो बच्चे स्कूलोंमें नहीं रखे जायँगे। लैसन्सवालोंसे २००) से ५००) वार्षिक तक माँगे गए। ज्योंड़ी पिटवाकर कहा गया कि जो १) कर देता है, के सर्टिफिकेट खरीदे। जिन्होंने इस सरकारी हुक्मको उन्हें सब तरहसे तंग किया गया। राजमहलके दो १०-१० हज़ारके सर्टिफिकेट लेनेको कहा गया। पर १ हज़ारसे अधिकके लेनेमें असमर्थता दिखाई, तो सम्बन्धि अफ़सरने नोटिस तामील किया कि वे उनका हिसाब जाँचना चाहते हैं। इसपर मामला हाईकोर्ट तक गया अधिकारियोंके ग़ैरक़ानूनी और स्वेच्छाचारितापूर्ण रिकॉर्डको बचाना अपना कर्त्तव्य बतलाया। श्री धनीने ऐसे ही अन्य कई मामले भी हैं।

बहसके दौरानमें श्री नियोगीने कहा कि युक्त-प्रान्त आदमीको सुर्ख़ी बना दिया गया और १५) देनेपर छोड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

आपने कहा कि गाजियाबादकी एक खाँड-मिलके मैनेजरसे कहा गया कि वह तनख्वाहका रजिस्टर पेश करे, जिससे इस बातकी जाँच की जाय कि उसने मज़दूरोंकी तनख्वाहोंमें से (सर्टिफिकेटोंके लिए) अनिवार्य कटौती की है या नहीं। लीग-दलके उपनेता नवाबज़ादा लियाक़तअली खाँने कहा कि प्रस्तावके आरोप समस्त देशके बारेमें सच हैं। विरोधी-दलके नेता श्री भूलाभाई देसाईने कहा : इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रस्तावके आरोपकी सत्यता स्वीकार कर ली गई है। सरकारने अनुचित ढंगसे पैसा जुटानेवालोंके पास न जाकर ग़रीबों और मध्य-श्रेणीके लोगोंपर दबाव डाला, जिनका निर्वाह-खर्च ही मुद्रा-प्रसारके कारण बहुत बढ़ गया है। हमें आश्चर्य है, नए गृह-सदस्य सर फ्रान्सिस मुडीने—जो एक वर्ष पहले बिहारके गवर्नर थे और उससे पहले युक्त-प्रान्तीय गवर्नरके सलाहकार—इन आरोपोंका कोई खण्डन नहीं किया। उन्होंने केवल इन ज़्यादतियोंकी ज़िम्मेदारी अफ़सरोंसे हटाकर ज़मीदारोंपर डाली। इसी प्रकार अर्थ-सदस्यने भी निरन्तर और अनियन्त्रित मुद्रा-प्रसारके कारण लोगोंकी आर्थिक स्थिति अच्छी होनेका सहारा लेकर लोगोंको 'अधिकसे अधिक समझा-बुझाकर' युद्ध-ऋणमें कुछ रुपया देनेको राज़ी करनेकी सफ़ाई दी।

समझाने-बुझानेकी बातसे कोई भी समझदार व्यक्ति असहमत न होगा। पर ऊपर जिन ज़्यादतियोंका उल्लेख किया गया है, वे किसी भी सभ्य समाजमें समझानेका ढंग नहीं मानी जा सकतीं। इस तरहकी ग़ैरक़ानूनी हरकतोंसे—चाहे वे बिना सरकारी स्वीकृतिके ही क्यों न होती हों—सरकारका उद्देश्य सफल न होगा और जनतामें व्यर्थ क्षोभ, विरोध और असन्तोष फैलेगा।

करोड़ोंके ख़र्चकी गड़बड़ी

गत ८ फरवरीको जब केन्द्रीय असेम्बलीका बजट-अधिवेशन फिर शुरू हुआ, तो सार्वजनिक हिसाब-समितिकी १९४२-४३ की रिपोर्टमें संशोधन पेश करते हुए श्री चेट्टियरने कहा कि युद्ध-प्रकाशन और अन्य मामलोंमें बड़ी-बड़ी रक़मोंके हिसाबमें भारी गड़बड़ी हुई है। युद्ध-प्रकाशन-सम्बन्धी खर्चकी गड़बड़ी तो एक खुला कलंक है और स्वयं आडीटर-जनरलने प्रान्तोंसे सन्तोषजनक हिसाब न मिलनेकी शिकायत की है। उन्होंने कहा है कि यदि इन खर्चोंके सम्बन्धमें 'गुप्त सेवा-खर्च' लिख दिया जाता, तो जाँचकी कोई ज़रूरत ही न रह जाती। आपने कहा कि केन्द्रीय सरकारकी नकारात्मक नीतिके सिलसिलेमें उसके एजेण्टके रूपमें बंगाल-सरकारने ३ करोड़ रुपयोंकी गड़बड़ी की है। बर्माके ग़ैर-भारतीय शरणार्थियोंको दिए जानेवाले भत्तेके हिसाबका भी कोई सबूत नहीं है। बंगालकी धाँधलीके सम्बन्धमें श्री नियोगीने कई गम्भीर आरोप किए और कहा कि इन सबके लिए भूतपूर्व गवर्नर ज़िम्मेदार है। श्री मोहम्मद नौमानने बतलाया कि कागज़ पर आसाममें लाखों रुपए लगाकर एक पुल बनाए जानेका हिसाब है, जो बादमें रक्षाके कारणोंसे उड़ा दिया गया। पर यथार्थमें न तो कोई पुल बना और न तोड़ा ही गया!

अर्थ-सदस्यने सार्वजनिक धनके खर्चमें होनेवाली गड़बड़ीपर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए इस सम्बन्धमें उचित कार्यवाही करनेके गृहके प्रस्तावका स्वागत किया। आपने कहा कि मैं उन खर्च करनेवाले विभागों तथा उनके मातहत अधिकारियोंका—जिन्होंने या तो कर्त्तव्य-पालनमें लापरवाही की है या अपने अधिकारोंका दुरुपयोग किया है और जिनके रवैयेकी सार्वजनिक हिसाब-समिति निन्दा कर चुकी है—पक्ष-समर्थन करनेकी कल्पना भी नहीं कर सकता! आपके आश्वासनपर हमें विश्वास करना चाहिए। युद्ध-कालमें हिसाबकी छोटी-मोटी सामान्य त्रुटियोंकी उपेक्षा की जा सकती है ; पर करोड़ोंकी धाँधली क्षमा नहीं की जा सकती और न ही युद्ध-स्थितिको ऐसी गम्भीर धाँधलीका पर्याप्त औचित्य ही बनाया जा सकता है।

राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चेके समर्थक

यह किसीसे छिपा नहीं है कि युद्ध-ऋण और कर-दाताकी आयका एक काफ़ी बड़ा हिस्सा सरकार युद्ध-प्रकाशनपर व्यय कर रही है। पर यह रुपया कब और कैसे व्यय होता है, इस सम्बन्धमें सरकारके आडीटर-जनरल तक अन्धकारमें हैं। गत २२ फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीमें पूछे गए एक प्रश्नके उत्तरमें सूचना और ब्राडकास्टिंग-विभागके सदस्य सर सुल्तान अहमदने बतलाया कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चेके समर्थनके लिए केन्द्रीय सरकार अपने मदसे कोई रुपया नहीं दे रही है। यदि प्रान्तीय सरकारें प्रान्तीय राजस्वमें से इस दिशामें कुछ दे रही हों, तो यह सीधा उनसे दरियाफ़्त किया जा सकता है।

शायद सर सुल्तान भूले न होंगे कि असेम्बलीकी पिछली बैठकमें यह स्वीकार किया जा चुका है कि केन्द्रीय सरकार श्री मानवेन्द्रनाथ रायके 'वैंगार्ड'की कई सौ प्रतियाँ लेती है। हो सकता है, यह खर्च केन्द्रीय सरकारके राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चेके मदसे न होता हो ; अथवा इसे 'आर्थिक सहायता' न लिखकर 'पत्रकी खरीद'के रूपमें लिखा जाता हो। यह सौभाग्य और किन पत्रोंको प्राप्त है, हमें नहीं मालूम। पर ऐसे पत्रोंकी संख्या एक दर्जनसे कम तो हर्गिज़ नहीं होगी, जिनका प्रचार एकदम नगण्य है ; पर जो हज़ारोंकी संख्यामें छपते तथा राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चेका समर्थन और कांग्रेसके खिलाफ़ विष-वमन करते हैं! पूछनेपर भी इन्हें कौन किस मदसे रुपया देता है, भला यह कौन बतायगा! इस श्रेणीके इधर कई नए पत्र भी निकले और कुछ निकलनेवाले हैं ; पर 'नेशनल हैरल्ड'के प्रकाशनकी आज्ञा अभी भी शायद कागज़के अभावके कारण नहीं दी जा रही!

अमरीकामें प्रकाशन-व्यय

गत १२ फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीमें श्री अब्दुलक़य्यूमने

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By eGangotri

पूछा कि क्या अमरीकामें प्रतिवर्ष प्रचारके लिए २५ लाख रुपया खर्च किया जाता है? वैदेशिक मामलोंके मन्त्री सर ओलाफ़ कैरोने बतलाया कि इस वर्ष ४५१२४५) खर्च किए गए। श्री नियोगीके इस प्रश्नका आपने नकारात्मक उत्तर दिया कि एजेण्ट-जनरलको भत्तोंके सिवा गुप्त सेवाओंके खर्चके लिए कुछ नहीं मिलता। १९ फरवरीको सर सुल्तानने भी असेम्बलीमें अमरीकामें १९४४-४५ में हुए प्रकाशन-व्ययको १३४७०० डालर अथवा ४७१२४५) बतलाया है।

पर गत १२ फरवरीके 'हिन्दुस्तान टाइम्स'में उसके विशेष संवाददाताका जो लेख छपा है, उसमें कहा गया है—"ठीक-ठीक कोई नहीं जानता कि यह प्रचार किस हद तक भारतके खर्चपर होता है; क्योंकि भारतसे खर्च होनेवाली बहुत-सी रक़में 'गुप्त रक़में' हैं, जिनपर भारतीय धारा-सभाका कोई नियन्त्रण नहीं। एक अनुमान यह है कि भारतकी ब्रिटिश नीतिके समर्थन में भारत-सरकार लगभग २५ लाख रुपया प्रतिवर्ष खर्च करती है और ब्रिटिश सरकार १०० से १२० लाख डालर।" सचाई क्या है, इसका पता लगाना हमारे वशके बाहरकी बात है।

अमरीकामें भारत-विरोधी प्रचार

पर आइए, खर्चके आँकड़ोंके चक्करमें न पड़कर यह देखें कि भारतीय कर-दाताके इस धनसे अमरीकामें होता क्या है? गत १२ फ़रवरीका केन्द्रीय असेम्बलीमें पूछे गए सरदार मंगल-सिहके प्रश्नके उत्तरमें सर ओलाफ़ने कहा कि एजेंट-जनरल द्वारा अमरीकामें जो-कुछ प्रकाशित किया जाता है, वह भारतके अधिकारी व्यक्तियों द्वारा भेजी गई सामग्री और यहाँकी रिपोर्टों तथा वक्तव्योंके आधारपर होता है। पहले या साथ ही यह भारतमें भी प्रकाशित किया जाता है। १९४४ में कोई ऐसी चीज़ वहाँ प्रकाशित नहीं की गई, जिसमें भारतके आन्तरिक मतभेदोंका ज़िक्र या राष्ट्रीय आकांक्षाओंपर कोई आक्षेप हो। एक दूसरे प्रश्नके उत्तरमें सर ओलाफ़ने कहा कि अमरीकामें ऐसी कोई चीज़ प्रचारित नहीं की जाती, जो भारतमें प्रचारित न होती हो। १९ फरवरीको असेम्बलीमें सर सुल्तानने कहा कि 'इण्डियन इन्फर्मेशन' के सिवा बहुत कम पुस्तिकाएँ अमरीकामें बाँटी जाती हैं, और पत्रिका तो कोई भी नहीं। इस सम्बन्धमें प्रो० रंगाने जब सर सुल्तानका ध्यान दिल्लीके एक पत्रमें प्रकाशित अमरीकामें होनेवाले भारत-विरोधी प्रचार-सम्बन्धी लेखोंकी ओर आकृष्ट किया, तो आपने फ़रमाया कि उनमें लिखी ९/१० बातें मिथ्या हैं। श्री कृष्णमाचारीके यह पूछनेपर कि जो १/१० बातें सच हैं, उनके सम्बन्धमें सरकार क्या करेगी; आपने कहा कि उनके सम्बन्धमें कुछ भी करना आवश्यक नहीं। सत्य और असत्य दोनोंके प्रति सर सुल्तान के इस समान उपेक्षा-भावसे सरकार या धारा-शास्त्रियोंको शायद सन्तोष हो जाय; पर जन-साधारणको तो इससे कदापि सन्तोष न होगा। अतः हमारे लिए यहाँ संक्षेपमें दूसरे पक्षको ले करना भी आवश्यक जान पड़ता है।

प्रो० रंगाने जिन लेखोंकी ओर सर सुल्तानका ध्यान र्षित किया, वे गत १२, १४, १५ और १८ फरवरीके स्तान टाइम्स'में छपे हैं। इनका लेखक अभी हाल ही में रीकासे यात्राकर लौटा है और जो-कुछ लिखा है, अपनी जानकारीके आधारपर ही। उसकी बातोंका सारांश इस है: लगभग १० हज़ार ब्रिटिश एजेंट—जिनमें से कुछ कुछ अंगरेज़, कुछ अमरीकामें बसे हुए अंगरेज़ और कुछ रेज़ों द्वारा खरीदे हुए अमरीकन तथा पादरी हैं, भारत—ि तथा कांग्रेस और उसके नेताओं—के खिलाफ़ वहाँ प्रचा रहे हैं। इनमें से लार्ड हेलीफैक्स, सर गिरिजाशंकर वा जे० हेनसी, सर फ्रेडरिक पकल, जायस, रुस्तमजी, टी० रमन, वाल्टर लिपमैन, डोरोथी थाम्पसन, मेजर फील्डिंग फिलिप सिम्स, वेवर्ली रूट और बार्नेट नोवरके नाम उल्ले हैं। सर शर्मा, हरगोविन्द मिश्र, बौज़मैन और कई अन्य घूमकर प्रचार करनेके दौरेपर भी हो आए हैं। सबसे प्रचारक रुस्तमजीने मांटेग्यूके भारतको स्वशासन देनेकी का व्यापक प्रचार किया और साथ-ही-साथ भारतकी निन्द जात-पाँत, बाल-विवाह तथा हिन्दू-मुस्लिम-भेदोंका भी। मेयो-लिखित 'मदर इण्डिया'की १० लाख प्रतियाँ प्रमुख अख़ संस्थाओं एवं व्यक्तियोंमें मुफ़्त बाँटी गईं। पीटर म्यूर-दम्पति जो भारत-सरकारके अतिथि थे, 'यह भारत है' पुस्तक—ि पाण्डुलिपिमें ब्रिटिश प्रकाशन-विभागने काफ़ी सुधार-संशो परिवर्द्धन किए—३० हज़ार छपाकर मुफ़्त बाँटी गई। तरहका दूसरा प्रकाशन पोस्टवैलरकी 'तूफ़ानके खिलाफ़ ह है। एक पुस्तिका रायल बैंक आफ़ कनाडाकी ओरसे व बँटवाई गई। टी० ए० रमनकी 'गांधी क्या चाहता है पुस्तिकामें 'हरिजन'में निकले गांधीजीके लेखोंमें कुछ वाक्य मरोड़कर रखे गए हैं। इनके अलावा पचासों, लेख, पत्र प्रतिदिन हज़ारों अमरीकन नागरिकों एवं संस्थाओंके नाम जाते हैं। कई अमरीकन पत्रोंके सम्पादकोंको भी भारत-वि प्रचारके लिए खरीद लिया गया है। ऐसे कई लोगोंके व्यय भ्रमण भी कराए जाते हैं। इन सबका उद्देश्य होता है भारतमें ि अधिकारी जो-कुछ कर रहे हैं, उसका समर्थन और यह दि कि भारत बड़ा सुखी-सन्तुष्ट है, कांग्रेस या उसके नेता प वादी और जापान-पक्षीय हैं, उनकी भारतमें कोई आवाज़ है। इस सबके लिए ब्रिटेन और भारतसे हवाई डाक साधन-सामग्री बराबर अमरीका भेजी जा रही स्मरण रहे कि इसमें से कोई भी चीज़ भारतमें वि नहीं पहुँची।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रीमती पण्डित द्वारा भण्डाफोड़

अमरीकाकी अधिकांश जनता भारतीय वस्तु-स्थितिके बारेमें अनभिज्ञ अवश्य है ; पर वह इतनी मूर्ख नहीं है कि ब्रिटिश प्रोपेगेण्डाको ज्योंका त्यों निगल ले। डा० श्रीधरानी, अनूपसिंह, जे० जे० सिंह, सैयद हुसेन तथा लुई फिशर, पर्ल बक, काफ़ी, सैलर, ब्रामफील्ड आदि अनेक वक्ता और लेखक अमरीकनोंको भारतकी यथार्थ बातोंसे भी अवगत करते रहे हैं। इधर जबसे श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित वहाँ गई हैं, उनके भाषणोंने तो मानो ब्रिटिश प्रोपेगेंडाका भण्डाफोड़ ही कर दिया है। विभिन्न नगरोंमें उनका जैसा स्वागत हो रहा है, जैसे भाषण उन्होंने वहाँ दिए हैं और जिस उत्साह एवं शानसे वहाँ भारतीय स्वाधीनता-दिवस मनाया गया है, उस सबको देखकर बहुत कम लोगोंको इस बातमें सन्देह रहेगा कि भारत-विरोधी प्रचारपर अमरीकामें खर्च किया गया पैसा सरासर पानीमें ही फेंका गया। क्या ही अच्छा होता, यदि इस व्यय और श्रमका दशांश भी भारत-ब्रिटेनके सम्बन्धोंको अच्छा बनानेके लिए खर्च किया गया होता!

श्रीमती पंडितने अमरीकामें कांग्रेसकी स्थितिको ही स्पष्ट नहीं किया, बल्कि यह भी कहा कि यदि भारतकी स्वतन्त्रताको अवधि घोषित कर दी जाय, तो जापानको शीघ्र ही हराया जा सकता है। भारतीयोंके धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक मतभेदोंका वहाँ जो अतिरंजित प्रचार किया गया है, उसका भी उन्होंने खण्डन किया और कहा कि आज़ादीकी मांगमें सब भारतीय एकमत हैं। हमें आश्चर्य है, कुछ मुस्लिम-लीगियोंने इससे असहमति प्रकट की है। वे इस बातसे असन्तुष्ट हैं कि श्रीमती पंडितने हिन्दू-मुस्लिम-मतभेदोंका वहाँ उल्लेख क्यों नहीं किया? पर वे भूल जाते हैं कि कुछ समय पूर्व श्री अब्दुर्रहमान सिद्दीकीने भी न्यूयार्कमें यही कहा था—और ठीक ही कहा था—कि हिन्दू-मुसलमानोंके मतभेदोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बतलाया जाता है।

प्रवासी भारतीय और सरकार

गत १० फरवरीको केन्द्रीय असेम्बलीने सर्वसम्मतिसे श्री लालचन्द नवलरायका स्थगित-प्रस्ताव पासकर दक्षिण-अफ्रीकाके विरुद्ध आर्थिक अंकुश न लगानेके लिए सरकारकी निन्दा की। लगभग सभी दलोंके सदस्योंने उपनिवेश-सम्बन्ध-सदस्य डा० खरे द्वारा बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलाए जानेके बावजूद कुछ न किए जानेपर क्षोभ प्रकट किया और कहा कि जब तक भारतीयोंपर लगाई गई अनुचित पाबन्दियाँ दूर न की जायँ, वहाँ भारतीय हाई-कमिश्नर भेजना उचित नहीं। पर असेम्बलीमें यह प्रश्न पेश होनेसे कुछ दिन पहले ही नए हाई-कमिश्नर साहब दक्षिण-अफ्रीकाके लिए चल चुके हैं। डा० खरेने कहा कि आर्थिक अंकुश और भारतमें दक्षिण-अफ्रीकन गोरोंपर—जिनकी संख्या काफ़ी नगण्य है—प्रतिबन्ध लगानेका प्रश्न अभी विचाराधीन है। पता नहीं, आखिर सरकार कब तक इनपर विचार करेगी? भले ही दक्षिण अफ्रीकाके विरुद्ध आर्थिक अंकुश लगानेसे भारत को कुछ हानि हो और भले ही भारतमें प्रवासी अफ्रीकनोंकी संख्या नगण्य हो ; पर इन प्रतिबन्धों द्वारा प्रवासी भारतीयोंके साथ होनेवाले अन्याय और ज़्यादतीका नैतिक विरोध तो होगा ही। इस न्यूनतम कर्त्तव्य-पालनमें भी आखिर सरकारको इतना विलम्ब, झिझक और आशंकाओंकी ओट लेनेकी क्या ज़रूरत है?

नेटालके आर्डिनेन्स ग़ैरक़ानूनी

दक्षिण-अफ्रीकाकी यूनियन-सरकार द्वारा भारतीयोंके खिलाफ़ पास किए गए चारों आर्डिनेन्स न केवल नैतिक, सैद्धान्तिक अथवा मानवीय दृष्टिसे अनुचित हैं, बल्कि क़ानूनी दृष्टिसे भी ग़लत और बेजा हैं। १९१७ को इम्पीरियल-कान्फ्रेन्समें स्व-शासित उपनिवेशोंको प्रवासके नियन्त्रणका अधिकार देते हुए यह स्पष्ट घोषणा की गई थी कि जिस ब्रिटिश प्रजाको कहीं नागरिककी तरह बसनेकी अनुमति दे दी जायगी, उसपर विदेशियोंके लिए बननेवाले क़ानून लागू नहीं होंगे। अतः दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीय वैसे ही अफ्रीकन हैं, जैसे कि वहाँके देशीलोग या अन्य गोरे प्रवासी। उन्हें किसी भी दृष्टिसे—सिवा वर्ण-औद्धत्य और ज़्यादतीके—विदेशी नहीं कहा जा सकता। हमें प्रसन्नता है, गत १९ फरवरीको डरबनके मेयर रूपर्ट एलिस ब्राउनने प्रान्तिक कौंसिल द्वारा चारों आर्डिनेन्सोंके ग़ैरक़ानूनी क़रार दिए जानेकी घोषणा की है। पर इसका मतलब यह नहीं कि यूनियन-सरकार इस निर्णयको मानकर चुप बैठ जायगी। अधिक सम्भव यही है कि वह भारतीयोंके खिलाफ़ कोई नई योजना बनाय। अतः भारत-सरकारका कर्त्तव्य है कि भारतीयोंकी सहायताके लिए दूरदर्शिता, दृढ़ता एवं तत्परतासे काम ले।

रेडियोकी भाषा-नीति

गत १४ फरवरीको भारतीय रेडियोकी भाषा-नीतिके सम्बन्ध में हिन्दी-उर्दूके प्रतिनिधियोंसे बातचीत होनेके बाद जो सरकारी विज्ञप्ति निकाली गई है, उसमें कहा गया है कि समाचार, समाचारोंकी आलोचनाएँ और घोषणाएँ उर्दू और हिन्दीमें अलग-अलग ब्राडकास्ट नहीं की जायँगी। इनमें प्रयुक्त होनेवाली भाषा सरलतम होगी, जिसे हिन्दुस्तानी बोलनेवाले क्षेत्रोंमें अधिकाधिक लोग समझ सकें। जहाँ कोई उपयुक्त हिन्दुस्तानी शब्द लेना होगा, वहाँ उसे किसी देशी भाषा, फारसी, अरबी अथवा अंग-रेज़ीसे इस आधारपर चुना जायगा कि उसे हिन्दुस्तानी बोलनेवाले क्षेत्रमें अधिकसे अधिक समझा जा सके। देखनेमें ये बातें बड़ी तार्किक, उचित और निष्पक्ष जान पड़ती हैं ; पर जिसे मौ० अब्दुलहक़, डा० अब्दुलसत्तार सिद्दीकी, क़ैफ़ी साहब, सर सुल्तान और सैयद हुसेन इमामके भाषा-सम्बन्धी विचारोंका कुछ भी आभास है, उसे यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि 'सरलतम ढंगकी भाषा', 'हिन्दुस्तानी बोलनेवाले क्षेत्र' और 'किसी देशी भाषा' आदिसे उनका तात्पर्य उसी अरबी-फ़ारसी-मिश्रित उर्दूसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

है, जिसे अधिकांश हिन्दी-भाषा-भाषी आसानीसे नहीं समझ पाते। यही अब तक रेडियोकी भाषा रही है और आगे भी रहेगी। यदि सर सुल्तानको यही करना था, तो समझमें नहीं आता कि हिन्दी-उर्दूवालोंकी कान्फ्रेंस बुलानेकी फिर क्या ज़रूरत थी?

पर सर सुल्तानसे शिकायत करना व्यर्थ है। यदि हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें कुछ भी जीवट और भाषाभिमान है, तो उन्हें जब तक हिन्दीके साथ न्याय न हो, रेडियो-विभागका पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए। हिन्दी-पत्रों और लेखकों-कवियोंको रेडियो से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। हिन्दी यदि करोड़ों भारतीयोंकी राष्ट्र-भाषा है, तो वह बिना रेडियोके भी जीवित रहेगी। पर रेडियो बिना हिन्दीके अधिक दिन जीवित नहीं रहेगा, यह सिद्ध करना हिन्दी-भाषा-भाषियोंका काम है।

भारतमें अमरीकन एलची

अभी हाल ही में अमरीकामें एक सरकारी विज्ञप्ति निकाल कर घोषणा की गई है कि भारतमें जार्ज मैरेल उसके प्रतिनिधि नियुक्त किए जाते हैं, यद्यपि राष्ट्रपति रूज़वेल्टके निजी भारतीय प्रतिनिधि विलियम फिलिप्स ही रहेंगे। अमरीकन प्रतिनिधि भारतमें क्यों नियुक्त किए जाते हैं, इसमें हमारी कोई दिलचस्पी नहीं। पर उनकी नियुक्ति, वापस जाने और नई नियुक्तियोंकी घोषणाएँ कम हास्यास्पद नहीं जान पड़तीं। ब्रिटिश अधिकारियोंने फिलिप्सको गांधीजीसे नहीं मिलने दिया; अमरीका लौटकर उन्होंने रूजवेल्टको जो रिपोर्ट दी, उसके रहस्योद्घाटनपर अंग-रेज़ोंकी ओरसे उनके 'अनधिकारी व्यक्ति' घोषित करनेकी आवाज़ उठाई गई। कारण कुछ भी हो, पर उनका भारत न लौटना हमें तो रूज़वेल्ट-शासनपर चर्चिल-नीतिकी विजय ही जान पड़ी। अप्रैल, १९४३ से फिलिप्स भारतसे बाहर हैं। अतः उनके स्थानपर नया व्यक्ति नियुक्त करके और उनसे अमरीकामें दूसरा काम लेकर भी उनका ओहदा क़ायम रखना थोथी होशियारी है।

महायुद्धकी प्रगति

जर्मनीके प्रधान नगरोंपर होनेवाली भीषण गोलाबारीके साथ ही पूर्व और पश्चिमसे उसका घेरा और संकीर्ण होता जा रहा है। पश्चिममें राइन और मासके बीचका क्षेत्र मित्र-पक्षके अधिकारमें आ गया है। डूरेनपर कब्ज़ाकर मित्र-सेनाएँ कोलोनकी ओर बढ़ रही हैं। उत्तर-पूर्वमें मार्शल चुइकफ़की सेनाएँ स्टेटिन और बर्लिनको घेरनेके लिए पूरी तैयारी कर रही हैं। इसीलिए उनकी प्रगति कुछ मन्द हो चली है। मार्शल कूनिफ़की सेनाएँ ओडर पारकर तेज़ीसे उत्तर-पश्चिमकी ओर बढ़ रही हैं। पूर्वी प्रुशिया पर एक पखवाड़ेमें रूसियोंका अधिकार हो जानेकी सम्भावना है। रायल एयर-फोर्सके बमवर्षक माण्डले, रंगून और सिंगापुरपर भयंकर बमबारी कर रहे हैं। पश्चिमोत्तर बर्मामें काफ़ी बड़े भागपर मित्र-पक्षका कब्ज़ा हो गया है। प्रशान्तके कई द्वीपों और फ़िलि अधिकांश भागपर कब्ज़ा करनेके बाद अमरीकन इवोजीमा उतरे हैं। इसके दक्षिण-पश्चिमी और केन्द्रीय भाग स्थानोंपर उनका अधिकार हो गया है। शीघ्र ही उनके मुख्य द्वीप तथा चीनके दक्षिण-पूर्वी तटपर उतरनेकी भी है। जापानके नगरोंपर बमबारी जारी है। जर्मनीकी भाँ भी आतंक और निराशाके चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे हैं

जौहरजीका निधन

यह समाचार हिन्दी-जगत्में बड़े शोकके साथ पढ़ा कि गत १४ फरवरीको काशीमें प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी श्री 'जौहर'ने अपनी इहलीला संवरण कर ली। स्वतन्त्र 'हिन्दी बंगवासी'के सम्पादक और अनेक नाटकोंके लेखक जौहरजी हिन्दीमें पर्याप्त ख्याति लाभ कर चुके थे। लेखनीमें जौहर था, इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर पिछले कई वर्षोंसे आप 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार'का सम्पादन थे। इधर कई महीनोंसे आप अस्वस्थ थे। वार्द्धक्य एवं के बावजूद न तो आपकी लेखनीमें शैथिल्य आया था, न हल्कापन और न आपकी हिन्दी-सेवाकी लगन ही कम हुई आपके निधनसे हिन्दीने अपना एक बहुत बड़ा सेवक खो

गत २० जनवरीको जापानसे श्री रासबिहारी बसुके का भी संवाद आया था। पता नहीं, यह सच है या झूठ पर हार्डिज-बमकाण्डमें शामिल होनेका सन्देह था और आप फ़रार थे। बादमें सुना गया कि आप जापान चले वहाँ आप एक जापानी महिलासे विवाहकर बस गए और जापानी पत्रका सम्पादन भी करने लगे। अपने विचि अनुसार आप भारतकी आज़ादीके लिए प्रयत्नशील रहे।

रूसके प्रसिद्ध लेखक अलेखेई तल्सत्वा और ब्रिटेनके कार सर विलियम राथेन्स्टीनके निधनके संवाद बुद्धिजीवी बड़े दुःखके साथ पढ़े जायँगे। जर्मन आततायियों द्वारा तल्सत्वाके पुस्तकालयको नष्ट कर दिए जानेके बाद अलेखेई कई भागोंमें मारे-मारे फिरे; पर शत्रुपर लेखनीसे बराबर करते रहनेमें आप चूके नहीं। राथेन्स्टीन न केवल सरकारी कलाकार ही थे, बल्कि भारतीय कलाके भी अच्छे और प्रोत्साहक थे। १९१० में आप भारत आए थे। कवीन्द्र रवीन्द्रके न केवल कई श्रेष्ठ चित्र ही आँके, बल्कि अंगरेज़ लेखकों और कवियोंसे परिचय भी कराया।

जुलाई-दिसम्बर '४४ की सूची

हमें खेद है, कागज़-नियन्त्रण-सम्बन्धी कठिनाईके जुलाई-दिसम्बर '४४ की छमाही सूची इस बार गत अंकमें नहीं दे सके। जो ग्राहक यह सूची चाहें, भेजकर मुफ्त मँगा सकते हैं।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, एम० ए०, भारती प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दुस्तान में

१. सबसे पहले टाँगा टायर हमने बनाया। -----
२. सबसे पहले साइकल टायर व ट्यूब हमने बनाया।
३. सबसे पहले डाक्टरों के काम का रबर का सामान हमने बनाया।
४. यह कारखाना सन् १९३४ से स्थापित है। ---

शत प्रतिशत स्वदेशी उद्योग.

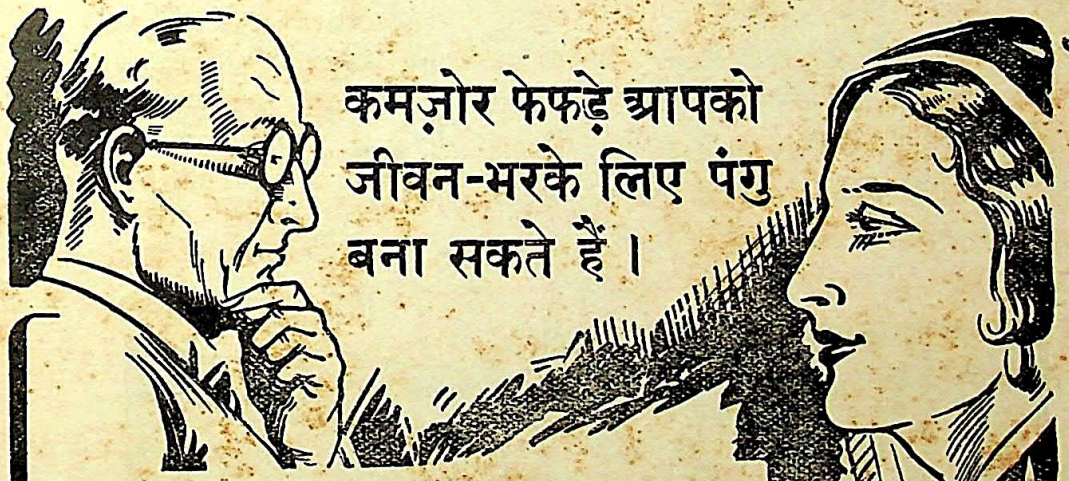

कमज़ोर फेफड़े आपको जीवन-भरके लिए पंगु बना सकते हैं।

भले ही आपने उपेक्षासे अपने फेफड़ोंका खतरनाक बना दिया हो, लेकिन अभी भी बहुत देरी नहीं हुई है। **'टस्सानल'** विधिवत सेवन करनेसे यह फेफड़ोंकी कमजोरी दूरकर आपको फिर पूर्ण स्वस्थ बना देगा।

"अगर मैं अपने मरीज़ोंके घरोंमें **'टस्सानल'** रखने और बराबर उसका प्रयोग करनेको राज़ी कर सकता—"

TUSSANOL

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखिये तो सिनेमा-जगतकी सुन्दर और कुशल अभिनेत्री कानन देवी 'ओटीन'के विषयमें लिखती हैं :—

"ओटीन क्रीम" अति आनन्दवर्द्धक है तथा गात्र-वर्णको उत्कृष्ट बनाने के लिए अत्यन्त ही सन्तोषजनक है।"

आप भी तो

ओटीन की—

सौन्दर्य-सिद्धि का

उपभोग कर सकती हैं

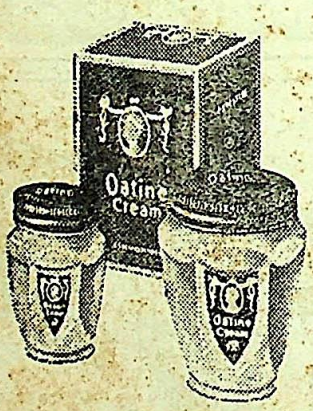

Of all the toilet creams that I have used I unhesitatingly prefer Oatine Cream as being the pleasantest and most satisfactory for improving the complexion.

Kanan Devi

Oatine CREAM for nightly massage
SNOW for daily protection

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CH, ...न, १९४५

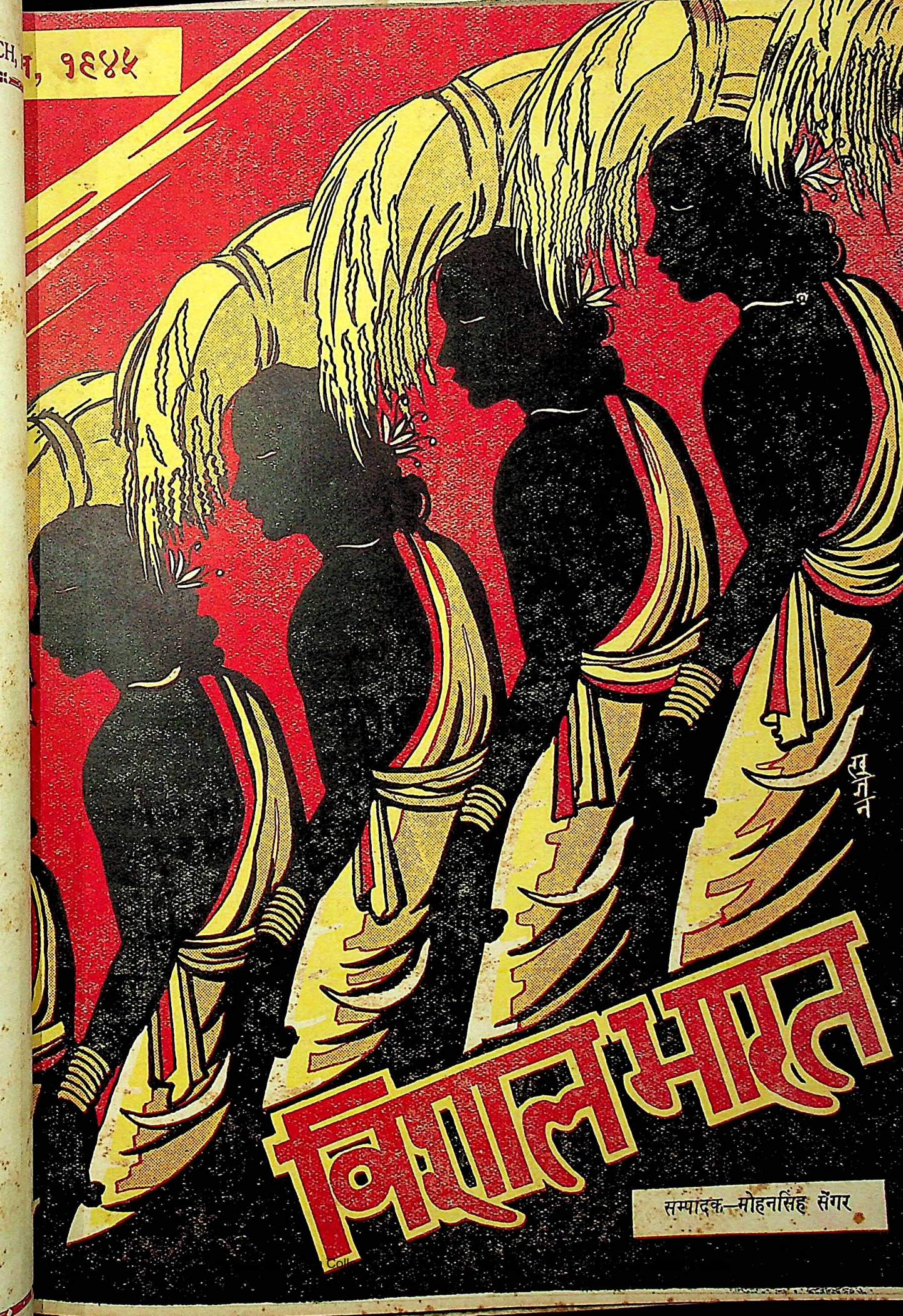
विशालभारत
सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

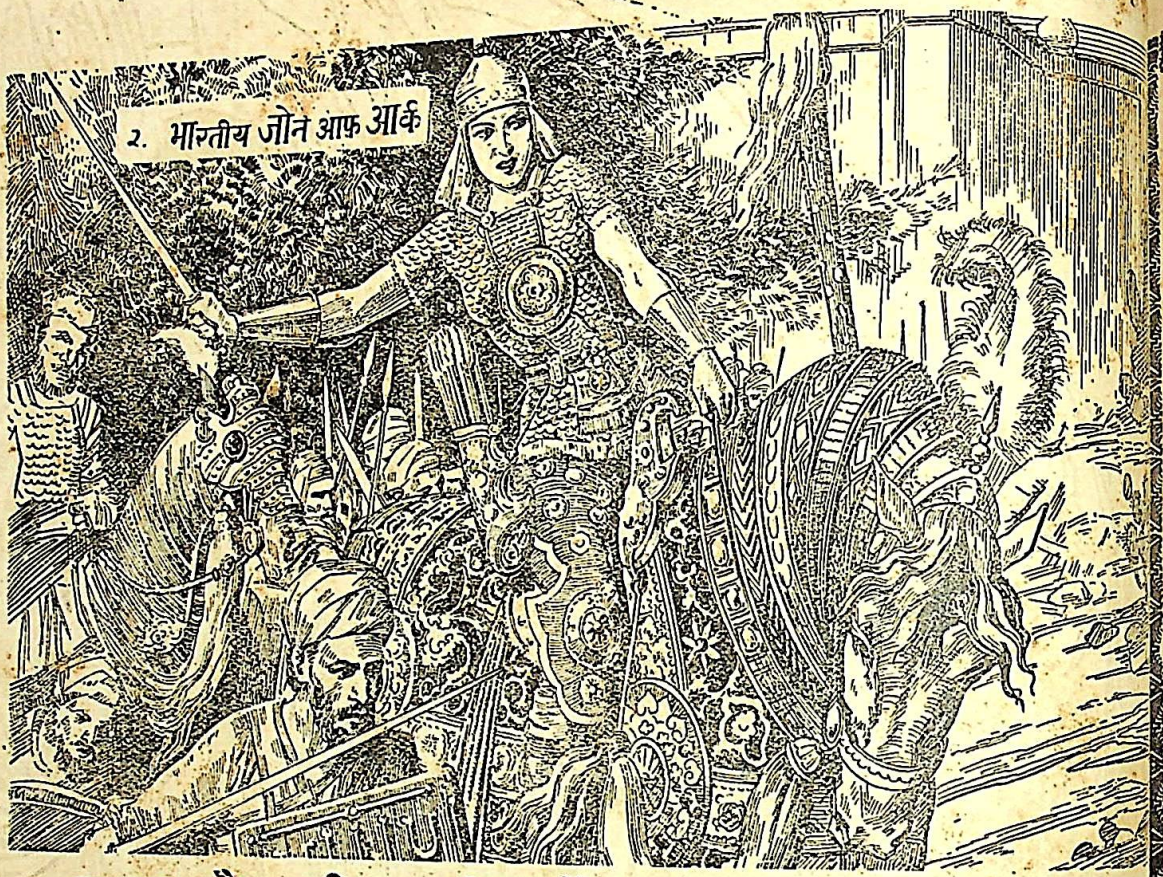

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

चाँदबीबी सुन्दरी ही नहीं अपितु मुस्लिम जाति की एक साहसी योद्धा भी थी। आत्म समर्पण करने कि अपेक्षा मृत्यु को अधिक सुखकर समझते हुए, क़िले में घिरी हुई, शत्रु की अपेक्षा कहीं छोटी सेना का स्वयं संचालन और वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए वह वीर गति को प्राप्त हुई। उसके असामान्य साहस से पूर्ण सुन्दर स्वास्थ्य ने उसका नाम भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से लिख कर अनन्त काल के लिये अमर कर दिया।

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो-फ़ास्फ़ेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट, पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

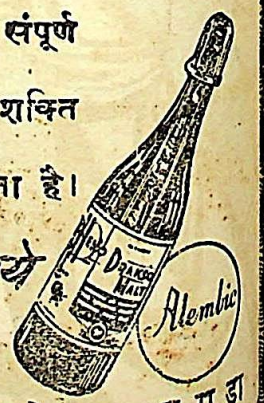

स्वास्थ रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अ ले म्बि क के मि क ल व र्क् स क म्प नी लि मि टे ड ब रा दा

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है ।

हेड आफिस
४७, दी माल लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

१-१-४५ से कारोबारी पूँजी ४५ करोड़ से अधिक

भारत भर में १७२ शाखायें

१३ अप्रैल, १९४५ को स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी ।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (अप्रैल, १९४५)

१. शहीदकी विधवासे	१३५		
२. 'मैं' और केवल 'मैं'	१३६		
३. भारतमें ब्रिटिश शासन	१३७		
४. गणेश, चिन्तामणि, रामानन्द	१४२		
५. कला और जीवन	१४५		
६. ओ नभके चितचोर	१४७		
७. अकबरकी मृत्यु और सलीमका राजतिलक	१४८		
८. महान्	१५१		
९. शरच्चन्द्रका दृष्टिकोण	१५२		
१०. युद्धोत्तर आर्थिक नीति	१५५		
११. स्व० रामकरण आसोपा	१५८		
१२. कलकत्तेमें हिन्दी-भवन	१५९		
१३. नारी	१६०		
१४. गोस्वामी तुलसीदास	१६२		
१५. मातृत्व	१६४		
१६. गीत	१६५		
१७. कीर्त्तन	१६६		
१८. अंजीर	१६७		
१९. चिट्ठी-पत्री	१६९	२०. समालोचना	१७१
२१. चयन	१७३	२२. सम्पादकीय	१७५

गत २५ वर्षोंसे खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापारादि विषयक सुप्रसिद्ध मराठी मासिक 'उद्यम' का हिन्दी-संस्करण

उद्यम

हर महीनेकी १५ ता० को प्रकाशित होता है। आज ही नमूना-अंक देखिए। ता० १५ जनवरीको 'उद्यम'का—

गन्ना-गुड़-शक्कर विशेषांक

भी प्रकाशित हो गया है ; जिसमें उत्कृष्ट गन्नेकी खेती, गन्नेसे गुड़ तथा शक्कर बनानेकी जानकारी इत्यादि सुबोध और सरल भाषामें दी गई है। आजकल इस जानकारीकी सर्वत्र आवश्यकता है, इसलिए इसकी मांग भी बहुत है। आप भी शीघ्र ही वार्षिक मू० ५॥) रु० भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाइये। इससे आपको उसी मूल्यके अन्तर्गत नमूना-अंक तथा गन्ना-गुड़-शक्कर-अंक मिल जायँगे और हर महीनेकी १५ ता० को प्रकाशित होनेवाले अंक भी साल-भर मिलते रहेंगे। नमूना-अंक और विशेषांकका अलगसे मूल्य एक-एक रुपया है। लिखिए—

मैनेजर—उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर।

विद्यामन्दिर-प्रका
मुरार (ग्वालियर-रा

हमारे प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलि
कविता-संग्रह

२ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहर
द्विवेदी

३ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके
नाटक

४ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखि

५ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० सिं

६ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० सिं

७-८ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक

१. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

१ विभूति—

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी
सचित्र संग्रह।

२ शहरका अन्देशा—

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके
व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक
प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है।

३ पाँचधागे—

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन वि
मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह।

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रका
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

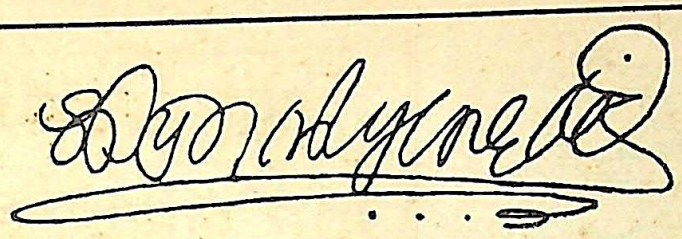

—लिखित

आँधीके पत्ते

कहानियोंका यह अनुपम संग्रह इसी महीनेमें छपकर निकला है। क्या भाषा, क्या भाव, क्या शैली और क्या कला-वस्तु, सभी दृष्टियोंसे यह पुस्तक हिन्दी-कथा-साहित्यकी श्री-वृद्धि करनेमें समर्थ हुई है। मूल्य केवल १।) सवा रुपये ?

सञ्चयिता

कविताओंका यह विशाल और अपूर्व संग्रह है। 'आरसी'का मूल्य १५) पन्द्रह रुपये हो जानेसे इस पुस्तककी उपादेयता बहुत बढ़ गई है। जो व्यक्ति 'आरसी' नहीं खरीद सकते, वे 'संचयिता' जरूर लें और कविकी विलक्षण प्रतिभाका चमत्कार देखें। मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

नई दिशा

'नई दिशा'की कविताएँ वास्तवमें एक नई दिशाकी ओर संकेत करती हैं। वह 'नई दिशा' क्या है ? इसे आप स्वयं समझें, तो ज़्यादा अच्छा हो। हिन्दीके लिये यह भले ही 'नई' दिशा हो—परन्तु सनातन साहित्यके लिये चिर-प्राचीन दिशा है; ध्रुव;—चंचल होकर भी कम्पासकी सुई जिधर स्थिर हो जाती है। मूल्य १॥) केवल डेढ़ रुपये।

- अन्य पुस्तकें

१. आरसी (कविताएँ)···१५) २. जीवन और यौवन (किशोरोपयोगी कविताएँ)···१।) ३. कालरात्रि (कहानियाँ)···२)
४. चन्दा मामा (बालोपयोगी कविताएँ)···१) ५. कलापी (कविताएँ)···२॥)

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

श्री काशी विद्यापीठके बहुमूल्य प्रकाशन

समाजवाद

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

जिसकी महात्मा गांधीने प्रशंसा की है तथा जिसपर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे अपने विषयकी सर्वोत्तम पुस्तक होनेके कारण बारह सौ रुपयेका 'श्री मंगलाप्रसाद' तथा पाँच सौ रुपयेका 'मुरारका' पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करणका मूल्य केवल दो रुपये।

गणेश

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

वेद, पुराण, तन्त्र, बौद्ध और जैन शास्त्रोंमें गणेशजीका क्या रूप है और भारतके बाहर चीन, जापान और जावा आदि देशोंमें उनकी किस प्रकार पूजा होती है जाननेके लिये विद्वान लेखककी नयी रचना पढ़िये।

अनेक सुन्दर, तिरंगे तथा एकरंगे चित्रों-सहित पुस्तकका मूल्य केवल दो रुपये आठ आने।

हिन्दू भारतका उत्कर्ष

लेखक—श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० बी०

इस पुस्तकमें लेखकने अनेक अरब प्रवासियोंके लिखित शिला लेखों इत्यादिके आधारपर राजपूतोंके प्रारम्भिक इतिहासकी सभी ज्ञातव्य बातों-पर प्रकाश डाला है। साथ ही तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियोंका भी विवेचन किया है। मूल्य ३॥) रु०।

श्री काशी विद्यापीठ पुस्तक भण्डार, विद्यापीठ रोड, बनारस छावनी।

हमारे यहां हिन्दी भाषाकी सब पुस्तकें मिलती हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

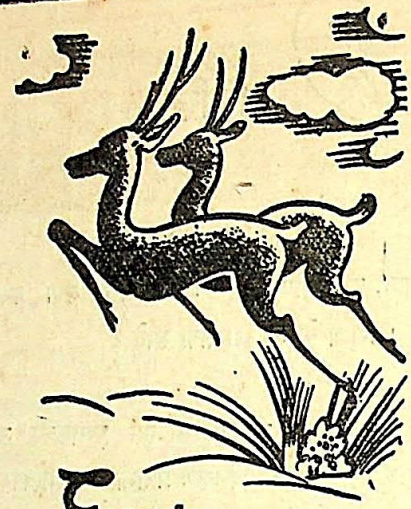

Ever Lifeful

NEUROLECITHIN

A True Nerve Tonic

शरीर और मनकी निस्तेजता दूरकर प्रफुल्लता तथा उत्साह देता है। स्नायु-दुर्बलता, स्मरणशक्तिहीनता, अग्निमन्द, अनिद्रा और श्रान्ति आदि रोगोंमें निउरोलेसिथिन बहु परीक्षित, विशेष उपकारी औषध है।

इण्डियन हेल्थ इन्स्टिट्युट एण्ड लेबोरेटरी लि०

बेलियाघाटा मेन रोड,

कलकत्ता।

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTO

"SANKHA & PADM

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELL

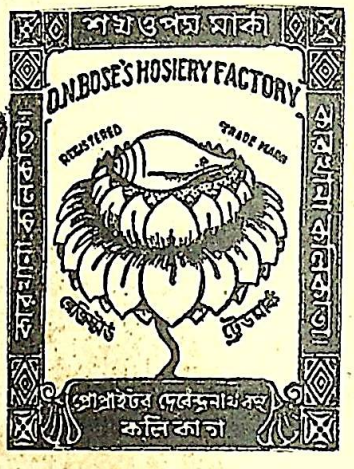

Pelican

Colour-

Super

Lady

Kulty

Himani

Sho-W

Grey S

Sandow

Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED B

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calc

'Phone: B. B. 6056.

अनुपम नवीन प्रका

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

श्रीरामकृष्णवचनामृत—श्री 'म' कृत, अनु० पं०
जी त्रिपाठी 'निराला', प
श्रीरामकृष्ण - लीलामृत (विस्तृत जीवनी)—
मू

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

भक्तियोग ; प्रेमयोग ; प्राच्य और पा
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग ; परिव्रा
प्रत्येकका मू० ।।।=)।
मेरे गुरुदेव—मू० ।=) ; शिकागो-वक्तृता—मू०
वर्त्तमान भारत—मू० ।=)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नाग

(सी० पी०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पारिजात

[नूतन, स्वस्थ और गतिमूलक साहित्यका प्रतीक]

सम्पादक -- श्री रामखेलावन पांडेय, एम० ए०

पारिजातका उद्देश्य है साहित्यिक और सांस्कृतिक विचारोंको वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टिकोणसे अध्ययन करना। 'पारिजात' नूतन, स्वस्थ और प्रगतिशील साहित्य-प्रधान प्रकाशन है, इसलिये यह विश्व-साहित्यकी धाराओं और अन्तर्धाराओंका भी विश्लेषण करेगा। सामाजिक समस्याओंका साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्यांकन तथा मानवीय कल्याणकी दृष्टिसे विज्ञानकी व्याख्या उपस्थित करना 'पारिजात'की विशेषताएँ होंगी।

विश्व-संघर्षकालीन वर्त्तमान युगमें 'पारिजात'का प्रकाशन अत्यन्त महत्वपूर्ण इसलिये है कि यह हमारी साहित्यिक क्षुधाको शान्त करनेमें सहायक होगा। इसे कविवर 'निराला'; पं० नन्ददुलारे वाजपेयी; पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी; डा० रामविलास शर्मा; कविर 'दिनकर'; डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, एम० ए०, पी० एच० डी०; श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'; श्री दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी आदि सुप्रसिद्ध साहित्यकारोंका सहयोग प्राप्त है, इसलिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह कितना अध्ययनपूर्ण प्रकाशन होगा।

'पारिजात'के अन्तर्गत वर्षमें कम-से-कम चार पुस्तकें अवश्य प्रकाशित होंगी। पहली संख्या मार्चमें अवश्य प्रकाशित हो जायगीं। [प्रत्येक २)। वार्षिक मूल्य ६)। १ ली संख्या प्रकाशित होनेके पहले ५)।]

हमारे नवीन प्रकाशन

१. काव्यालोक (द्वितीय उद्योत) अविधा, व्यंजना, लक्षणा और ध्वनिकी विस्तृत विवेचना--पं० रामदहिन मिश्र ५)
२. नवीन मनोविज्ञान—पं० लालजीराम शुक्ल एम० ए० बी० टी० ३)
३. नवीन मनोविज्ञान और शिक्षा २)
४. साहित्यकी वर्त्तमान धारा—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र एम० ए० बी० एल० १॥)
५. आधुनिक हिन्दी कविता—श्री रामखेलावन पांडेय, एम०ए० २।)
६. चिड़ियाखाना—श्री सुरेशसिंह १॥)
७. आर्यावर्त (पृथ्वीराज-कालीन युद्ध-महाकाव्य)-- श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' ३)

ग्रन्थमाला-कार्यालय, बांकीपुर, पटना

केवल एक दिनमें

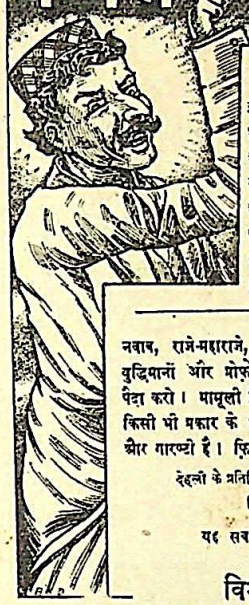

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की घड़ियों में ६½ इत्यादि बजा देना, दीवार में आग लगा देना, मुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्में सीखकर

दूसरे ही दिन

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और मोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाउन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की सोरदार सिफारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

विभाग नम्बर २५

मुरादाबाद यू० पी०

ऋतु उदय (Regd Mixture)

स्वास्थ्यको अक्षुण्ण रखकर चाहे जितने दिनोंका और जिस किसी कारणसे आशंकित ऋतुबन्धको २४ घंटेमें स्राव करके यन्त्रणा दूर करता है। ऋतुबन्ध चाहे जिस अवस्था व जितना भी जटिल क्यों न हो, गारण्टीके साथ आराम किया जाता है। मूल्य ३) रु०, डाकमहसूल ॥), अन्य निरोध स्थायी ५), अस्थायी २)।

डा० बी० चक्रवर्त्ती, H. M. B.

१४६, एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता।

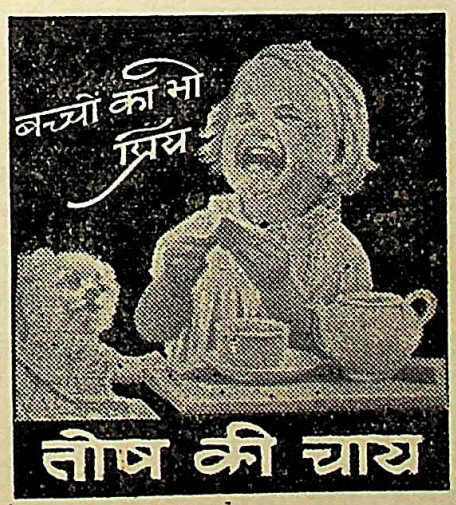

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवाह का राजसी श्रेष्ठ अवसर

कीर्त्तिमान् चहुवान वंश की एक पराक्रमी शाखा के—भूमण्डल पर स्वकीय प्रणालीके अप्रतिम मौलिक प्रतिभासम्पन्न, गुण सम्पन्नों के मुकुट, आदर्श राजन्य, दीनोंमें दीन और अमीरोंके भी अमीर—वे जो, विश्वव्यापी दारुण अशान्ति या आर्यजाति की दुर्दशा से, हिन्दुस्थानकी पराधीनता और क्षत्रियों के घोर अधःपतन से चिन्ताकुल हैं तथा इनके निवारणार्थ शक्ति संलग्न भी, उसी प्रकार अंग्रेजों की कूट शोषण नीति के, हमारे धार्मिक कार्यों में भी व्यर्थ कानून बनवाने की और नरेशोंको निर्बल तथा राजपूत संस्थानों (ठिकानों) को स्वत्वरहित करते जाने की पालिसी के पूरे विरोधी होते हुए महामान्य वर्त्तमान महायुद्धमें मित्र दल की विजय इसीलिये चाहते हैं कि—दरिद्रता फूट द्वेष कायरता भ्रष्टता अकर्म भेड़ियाधसान से ग्रसित भारत, जर्मनों व जापानियों जैसे मायावी लोगोंके द्वारा कहीं आगामी अनेक शताब्दियों तक पुनः नवीन पाताल में नहीं जा पड़े (क्योंकि अभी तो सुपरिचित जैसा तैसा ब्रिटिश शासन भी ठीक है)। ऐसे एक अपने को **सेवक** मानने वाले श्रीमन्मान्यवर संस्थान के अधीश के द्वितीय विवाह के योग्य—समुज्वल उच्च कुलके व देश-विख्यात की (वार्षिक आय कई लक्षों पर ही हो) सुशीला एवम् गुणवती राजकन्या की आवश्यकता है।

राजकुमारीजी की वय २७-२८ होवे या किंचित् विशेष, क्योंकि श्रीमन्त की वय भी ४८ है और अभी अनेक राज्य परिस्थितिवश इससे अधिक वय की कुमारियें मिलती हैं अतः चर्चामें स्पष्ट ही उत्तर भेजेंगे।

जगदम्ब की दयासे श्रीमन्महानुभाव की अ० सौ० प्रथम श्रीमतीजी महोदया सानन्द हैं और सुसन्तान भी हैं श्रीमन्तका प्रसिद्ध संस्थान भारी नहीं है (वार्षिक आय कुछ सहस्रों पर है वह भी नहीं गिनेंगे) केवल इससे यह सम्बन्ध प्रकारान्तर से गौरवयुक्त है; कदाचित् नामी नरेन्द्रों को या मानी महिपालों को, सहसा, साधारण या अटपटा भी तुलेगा। इसमें उत्कृष्ट कुल के सिवाय अन्य जरूरी बातें—कुमार वर, विशाल राज्यादि प्रत्यक्ष में तो नहीं हैं। किन्तु संपूर्णतः तो उधर की परिस्थिति, निर्मल भावना और उत्कर्ष की योजनाएँ विशेष श्रेणी की ज्ञात होंगी। वय के बारे में तो ऊपर सूचना में ही यथेष्ट समाधान संयुक्त है। विवाह द्वितीय है किन्तु आगे के अनेक धीर वीर भी प्रशस्त बहुविवाह (सकारण) ही थे व अब भी हो रहे हैं। जो दुरात्मा, विलासी, व्यभिचारी, नपुंसक लक्षणों के या भ्रष्ट हैं (पाश्चात्य कुसंसर्ग से चालू हानिकर शिक्षा द्वारा दुःख है कि ऐसे 'श्रीमानों' और 'राजकुमारों' की वृद्धि है) उनके वास्ते तो आजकल प्रथम विवाह निपट फाल्तू लगते हैं। सारांश कि अन्यान्य गुण विद्यमान हैं तथा भावी ऐश्वर्य के योगों की संभावना भी है। इस किसीके भी साथ ऊपरी तुलना ठीक नहीं। 'मथुरा तीन लोक से न्यारी' जसी ही बात कुछ हमारी भी समझ लें। केवल पहचानिये। अर्थात् तेज की महिमा है, जिसके प्रभावसे यावत् सुख-सम्पदाएँ एकत्र हो जाती हैं।

यह विवाह बाह्य आगन्तुक कारणों से अपेक्षित है और नितान्त सादगी से होवेगा। परन्तु तदर्थ आगामी सम्बन्ध कन्या-पक्ष की स्थिति के अनुरूप ही अमीरी ढंगपर कराई जावेंगी, जिससे सबका गौरव तथा सुविधा रहे। किसी भी पारस्परिक सौहार्दकी नाममात्र भी कोताही के विषयमें कल्पना करना बुद्धिमानी नहीं है। सन्तानके वास्ते उत्तम राजसी किस प्रकार बन सकेंगे ऐसे प्रश्न भी ठीक नहीं। प्रभु चराचरकी सुधि लेते हैं।

निश्चय है कि इस सम्बन्ध का महत्त्व परम उदार व साहसी स्वभाव के कोई विरले राजन्यों को ही जँचेगा और यदि बड़े से बड़े मान लें तदपि सम्बन्ध से ऊँचे वे ही कहावेंगे। अलबत्ता तात्कालिक तड़क-भड़क, पुष्कल प्रशंसा या आदान की वसी बिखेर तो होगी नहीं। बहुमूल्य चमकते रत्न विकट स्थलों में, कमल पंकमें ही मिलेंगे।

जो विवेकी श्रीमन्त विशेष सयानी अवस्था की निज राजकुमारियों के विवाहार्थ चिन्तित हों, उनके समक्ष तो यह दुर्लभ संवाद है। परन्तु मामूली दहेज के अतिरिक्त तिलक के नाम पर पर्याप्त द्रव्य, जितना वे सहज दे सकें, अवश्य पड़ेगा,—जो अनिवार्य शुभ कार्यों में व जाति-सेवा में ही व्यय होगा।

तथापि ध्यान रहे, जो रईस सनातन राजपूती मर्यादा से हटते जा रहे हों, जिन्हें अनार्य संस्कृति से, हीन आचरणों से भाषा, टुच्ची प्रचलित वेश-भूषा, दूषित भोजन-पान, व्यसनादि से कठोर घृणा नहीं हो, जो इस अधम युग के दास व जनता तो क्या पिछलग्गू बन चुके हों, जिनकी कन्याएँ कष्टसहिष्णु, आज्ञापालक नहीं—स्वच्छन्द रहकर अन्तःपुरों से दूर पढ़ी हों जो श्रीमान् दूरदर्शी भी नहीं (वे कोई महाराजेश्वर हों या अदना गृहस्थ हों) उनके वास्ते यह रिश्तेदारी व सन्तोषप्रद होगी नहीं। सलाह करके विचार लें।

जो प्रकट करना था, वह सब कर चुके। जिन्हें विश्वास व पक्की गरज़ नहीं हो, वे भी कृपाकर ढीले मनसे संशय भरे प्रयत्न नहीं करावें।

पंडित और वर्मा, C/o कांडरवासा संस्थान (वाया=नामली) मालव प्रान्त

Pandit & Varma, c/o Kanderwasa Estate, (Namli) C.I.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल गवर्नमेण्ट सिक्यूरिटी जिसमें

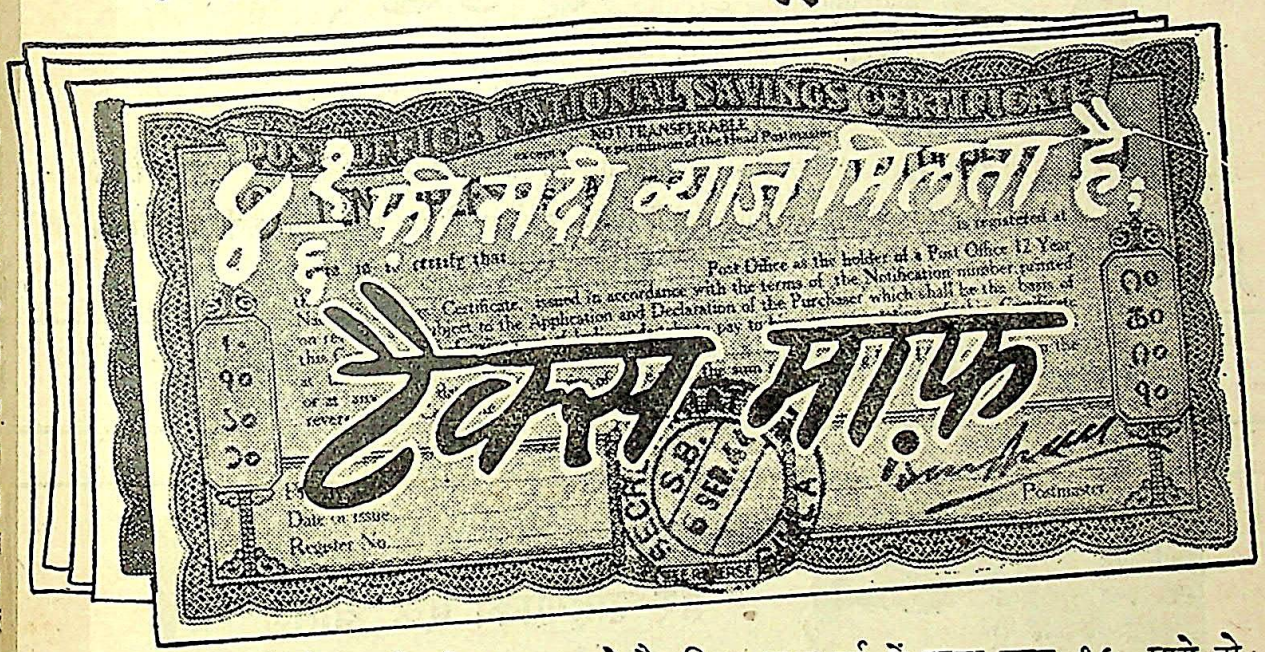

४ फ़ी सदी ब्याज मिलता है;
टैक्स माफ़

नेशनल सेविंग्स सर्टीफ़िकेट्स की क़ीमत १० रुपये है, किन्तु बारह वर्ष में इनका मूल्य १५ रुपये हो जाता है। इस प्रकार इन पर ४½ फ़ी सदी व्याज मिलता है; अर्थात् यदि आप इस समय १००० रुपये लगायें तो आपको १५०० रुपये वापस मिलेंगे और आपकी पूँजी सब समय सुरक्षित रहेगी।

इन्हें तीन बरस बाद किसी समय भी भुनाया जा सकता है।

आप इन्हें सरकार द्वारा नियुक्त एजेण्टों या किसी सेविंग्स ब्यूरो अथवा पोस्ट आफिस से ख़रीद सकते हैं।

नेशनल सेविंग्स सर्टीफ़िकेट्स ख़रीदिए

AAA 1243—Hindi

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लज्जा नारी का भूषण

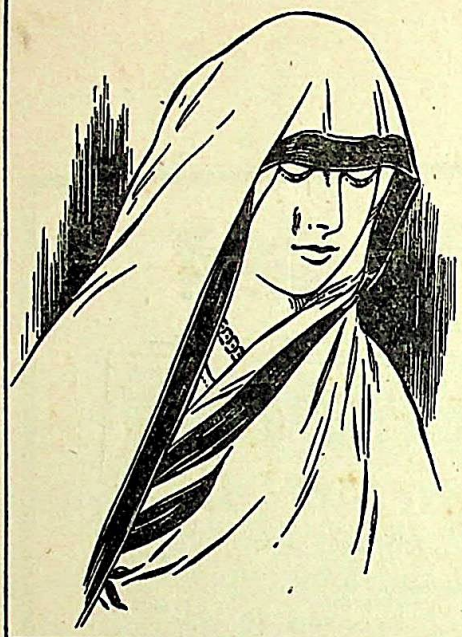

किन्तु उसका आतिशय्य प्रायः ही हानिकर होता है। महीं दर-महीने दुर्वह यन्त्रणा नीरव रूपसे सह्य न करके रोगको बताकर उसका प्रतिकार करना प्रत्येक नारीका कर्त्तव्य है

इउटेरन

बेंगल केमिकलका भाइब्रो-अशोक

गर्भाशयके सभी प्रकारके रोगों और स्त्री-धर्मकी सब प्रकार विकृतियोंमें विशेष कार्यकर है। वन्ध्या और मृतवत्सा नारियों लिए भी यह परम हितकर है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

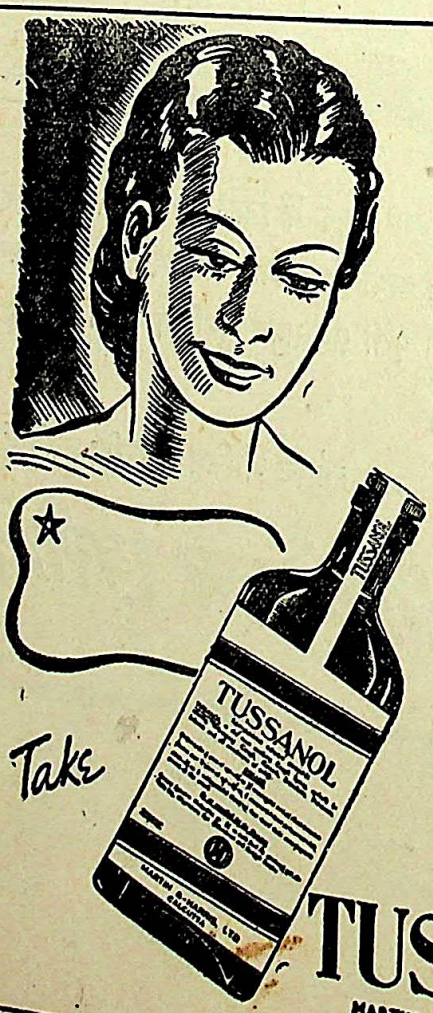

हर गृहिणीको एक बोतल सदा अपने पास रखनी चाहिए

खांसीको उपेक्षा करना खतरनाक है। जब भी खांसी शुरू हो, चाहे वह कैसी ही मामूली क्यों न मालूम होती हो, एहतियातन **'टस्सानल'**का सेवन शुरू कर दें और इस बातका इतमीनान कर लें कि आप समझदारी से काम ले रहे हैं। जब कभी और जहाँ कहीं खाँसी ज़ोर पकड़े, कभी सन्देह, संकोच या आश्चर्य न करें कि आपको क्या करना है? 'टस्सानल' ही उसका एकमात्र जवाब है।

मार्टिन एण्ड हेरिस लि०, कलकत्ता

TUSSANOL Cough Syrup

MARTIN & HARRIS LTD., CALCUTTA

Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

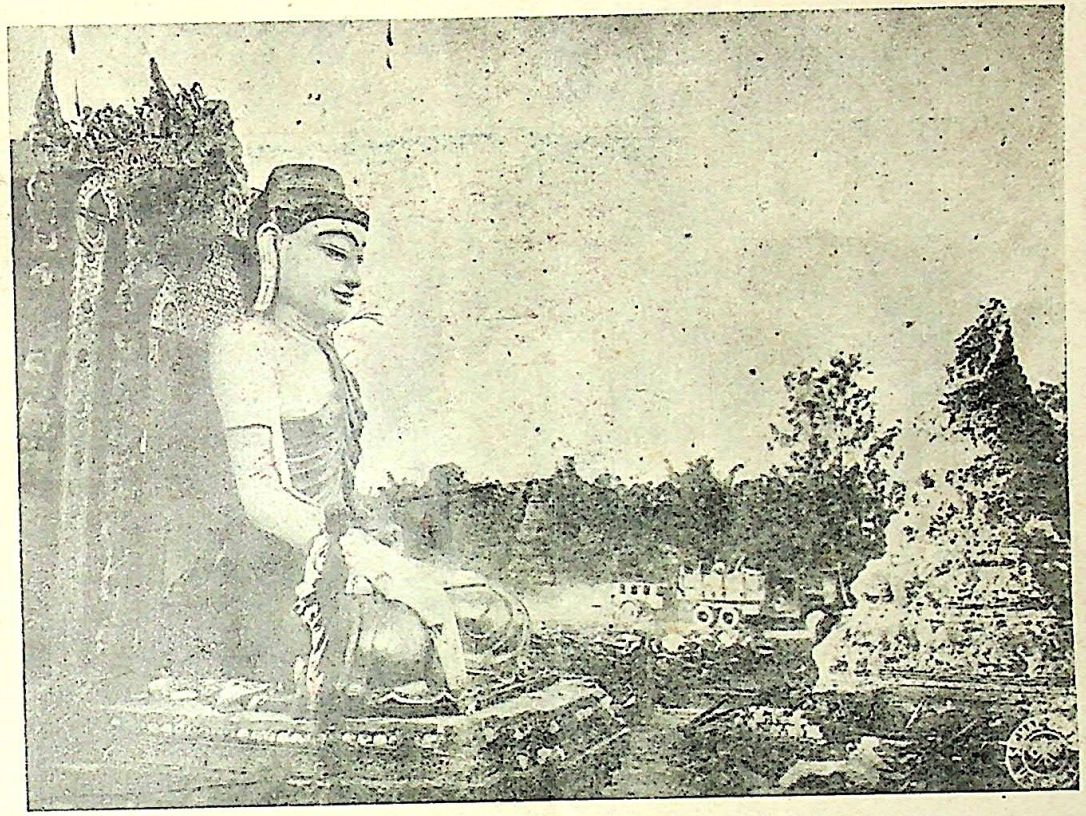

चीन जानेके लिए सैनिकोंका प्रथम जत्था बर्माके नामखामके बौद्ध मन्दिरके खँडहरोंसे होकर गुजर रहा है।

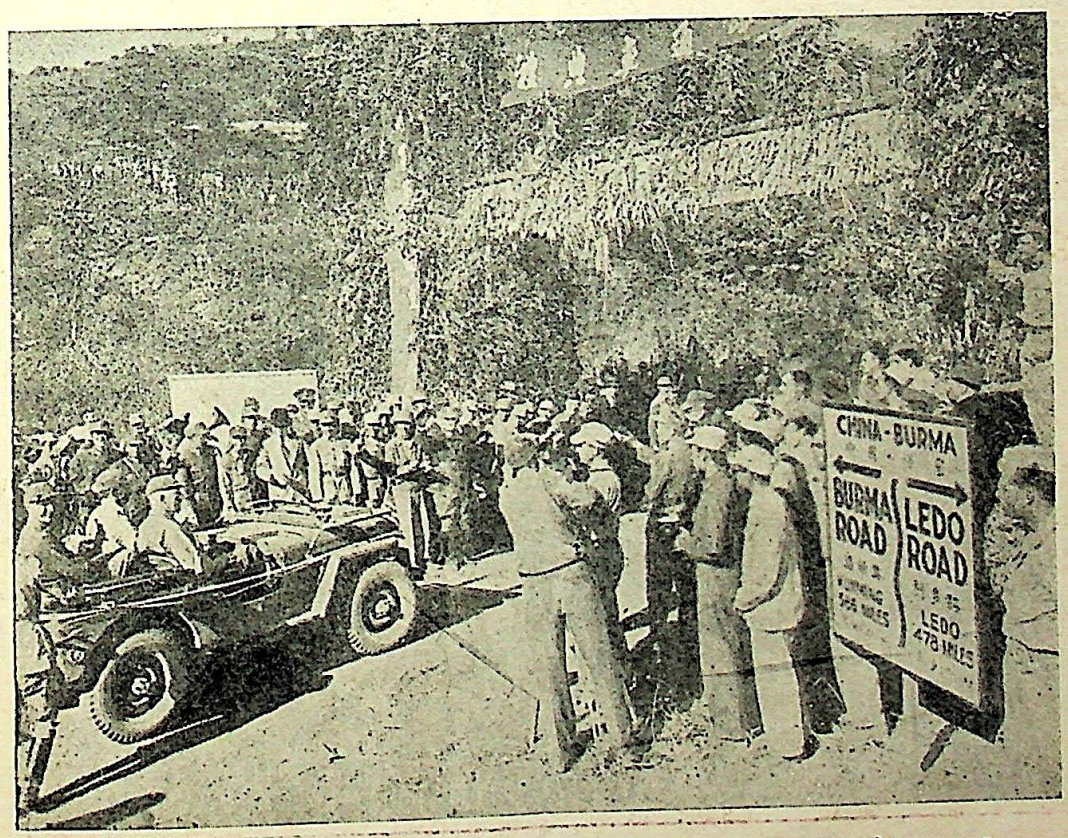

जापानियों द्वारा तीन वर्ष तक चीनपर घेरा डाले रहनेके बाद २८ जनवरीको प्रथम सैनिक जत्थेने स्टीलवेल रोडपर वांटनमें चीनकी सीमाको पार किया।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक ४] कलकत्ता, अप्रैल, १९४५ [पूर्णांक २०८

शहीदकी विधवासे—

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

एकाकिनी आज इस जगमें,
आदर्शोंके ज्योति-पुंजकी एक शुभ्र रेखा-सी,
तुम महिमामयि !
भूल गए फाँसीपर प्रियतम ;
क्षण-भरमें चढ़ गया मातृ-मन्दिरमें
जीवनका सर्वस्व तुम्हारा प्यारा ।
तुम सजीव स्मृति
तरुण तपस्वी उस साधककी,
जिसने हँसकर झोंक दिए निज प्राण
महाक्रान्ति-पथकी भीषण ज्वालामें ।
वन्दनीय तुम,
गौरव-निधि तुम,
ओ शहीदकी विधवा !
अखिल राष्ट्रका तुमको मूक नमन !

- २ -

मानव ही थे तुम दोनों—यह
मानो जगको जतलानेको,
आदर्शोंको साध्य बनाकर
मानवताका बढ़वानेको पद-गौरव-सम्मान,
एक-दूसरेके जीवनमें
पति-पत्नी बन आए दोनों ।
केवल एक वसन्त मिलनका,
वह भी उन्मन
क्रान्ति-पुजारी प्रियके उन उच्छ्वासोंसे,
जो पीड़ित मानवताकी स्मृतिसे थे आकुल ।
मुसकानोंके, फूलोंके वे कितने-से क्षण
तुमने देखे, तुमने जाने !
वह जीवन था नहीं तुम्हारा जीवन ।
आगे आया ज्वालाओंका,
कुश-काँटोंका, चट्टानोंका
दुर्गम जीवन-पथ प्रियतमका ।

- ३ -

स्नेह इधर, संघर्ष उधर !
प्रियकी दुविधा तुमने कर दी दूर,
एक दिवस हँसकर चिर-दिनको अनुमति देकर ।
मुक्त हुई गति स्वतन्त्रता—साधककी ।
एक-एक पदको बलि-पथपर
शुद्ध स्नेहकी निर्मल स्मृतिसे
मिलने लगा शक्तिका सम्बल अथक, अटूट ।
कर्म, कर्म, अविराम कर्म था जीवन !
संघर्षोंकी प्राण-वायुसे पूर्ण श्वास प्रत्येक ।
एक साध थी, एक साधना केवल—
टूटें बन्धन मानवताके, हो नवयुग-निर्माण,
नई व्यवस्थामें मानव हो उन्नत, सुखी, स्वतन्त्र !

- ४ -

किन्तु, न निज पथपर चल पाया अधिक दिनों तक वीर ।
भ्रम, हिंसा, भय, दमन खा गए मिलकर उसको हाय !
शोषक-दलकी लोलुप लिप्साका वह हुआ शिकार ।
विश्व, देश, मानवताका वह रत्न अमूल्य !
उसको खोकर खोया तुमने क्षण-भर धैर्य ;
बुझनेको हो गई हृदयकी साहस-ज्योति ।
पर, फिर आया ध्यान—
प्रियकी है साधना अधूरी !
उनकी थाती यही तुम्हारे पास—
एक-एक क्षण इस जीवनका,
एक-एक कण रक्त, स्वेदका,
जो-कुछ शेष तुम्हारे पास,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब हो हँसते-हँसते क्रमशः
प्रियके प्यारे उसी लक्ष्यके हित उत्सर्ग !

- ५ -

अश्रु ?
अश्रु नहीं, छिः, पोंछो अश्रु !
रक्त चाहिए, रक्त, विश्वको निर्मल रक्त !
स्वेद चाहिए, अविरत श्रमका स्वेद ।
कर्म चाहिए अथक, साधना मूक, अखण्ड,
अपराजित उत्साह, सिद्धि तक चिर-संघर्ष !
सबसे उज्ज्वल मिली विरासत तुमको, देवि !
अनुगामी हो तुमसे बढ़कर
कौन तुम्हारे पतिका जगमें ?
कौन साधना करे अधूरी पूर्ण ?
तुम्हीं रखोगी बलि-दीपककी जाग्रत ज्योति !
तुम्हीं करोगी नवयुगका आह्वान !

- ६ -

है आदर्श, लाभ मानवका, अपने अन्दर आप ;
आदर्शोन्मुख मनुज चाहता और न कुछ प्रतिदान ।
पतिको चढ़ा चुकीं, निजका दो नीरव आहुति-दान !
जब जीवनकी अथक साधनाकी समाप्तिपर पाओ
विस्मृति और उपेक्षा जगसे करना मत आश्चर्य ।
खिन्न न होना,
खर्व न होना तुम क्षण-भरको,
यह संकीर्ण स्वार्थकी दुनिया
भूल जाय यदि तुम्हें एक दिन,
दूर ग्रामकी जीर्ण कुटीमें
जीवनके अन्तिम क्षण बीतें !
रखना पतिको याद !

'मैं' और केवल 'मैं'

श्री उदयशंकर भट्ट

जीवनमें सबसे अधिक बार 'मैं'का उपयोग किया मैंने ।

मैं एक 'अहं' ले उठा और जो अड़ा उसे ही दिया पीस ;
जो खड़ा विघ्न बनकर आगे, उसका भी कुचला वहीं सीस ।
बिजलियाँ तारमें भी डालीं, ले काल घड़ोंमें बन्द किया ;
उच्चास पवनपर थिरक-थिरक फूलोंका हँसना 'छन्द' किया ।
तारोंकी गतिको नाप-नाप उनकी किरणोंके अस्त्र किए ;
सागरकी गहराई पीकर यानोंके विघ्न निरस्त्र किए ।
नदियोंकी छातीपर नाचा, पर्वतके शिखरोंपर नाचा ;
बादलमें उड़ता रहा और सागरकी लहरोंपर नाचा ।
जो पा न सका, वह पानेका अनथक उद्योग किया मैंने ।
मैंने कठोरता लोहेसे औ' दृढ़ता सीखी पत्थरसे ;
सागरकी गहराई पीकर गर्जन बादलकी थर-थरसे ।
बिजलीसे गति, तरुओंसे यति, छायासे बदल-बदल जाना ;
तूफ़ानी सरिसे 'अहं' छीन अपनेको सबसे बढ़ माना ।
साँपोंके फन कुचले, पीकर हालाहल उगल दिए मैंने ;
औ' नाश दूसरेका करके जीवनको सफल किया मैंने ।
सब पशुओंसे भी नया-नया पाकर खाली मस्तिष्क भरा ;
जीवनमें अपना दृष्टिकोण भरकर आशाको किया हरा ।
निज निर्मित पथपर चल पल-पल, सब ओर प्रयोग किया मैंने ।
पर जैसे-जैसे सबल बना, वैसे ही वैसे निबल बना ;
मेरी कमज़ोरीने मिलकर मेरे अन्तरको किया घना ।
मेरी कमज़ोरीने बढ़कर ईश्वरका भी निर्माण किया ;
आस्तित्वहीन उस ईश्वरने मानवमें भेद-विधान किया ।
दुखसे हटकर सुख पानेका सन्तोष-बहाना ईश्वर है ।
अपनेको जाने बिना सही, कल्पितको माना ईश्व
जब दुखके घन घहराते हैं, तब दुख रचता है ईश्व
कल्पना प्रसव करती तब ही मानवकी त्रुटिको, ईश्व
तब नई विवशतासे घबरा ईश्वरसे योग किया
जैसे-जैसे सुखको खोजा, दुख उनके साथ जुड़े
यौवन, सौन्दर्य, सबलताने संकुल कंकाल खड़े
बेबसी झाँकती जहाँ मिली, कल्पना ताकती वहाँ
मेरी कमज़ोरी अन्धी बन विश्वास आँकती वहाँ
मैं जान सकूँ यदि 'मैं' ही हूँ अपने जीवनका
अपने सुख, अपनी संसृतिका स्रष्टा, संहर्त्ता औ'
फिर पुनर्जन्मके तापोंसे, फिर पूर्वजन्मके
फिर ईश्वरका आक्रोश छोड़ मैं जी जाता
फिर किया न होता स्वयं कभी दुःखोंका नित्य
मुझसे ही सृष्टि सफल अनुपल, मैं मूक प्रकृतिकी
मेरे प्रकाशसे आलोकित अणु-अणुकी गतिमय
मैं हूँ समाज-विद्युत्का 'स्विच', मेरा व्यक्तित्व
मेरा प्रकाश ही जीवन है, मैं जगता ले
मैं अपना हूँ कल्याण शुद्ध, मैं स्वयंभूत
मैं मूल प्रकृति आनन्द-कुसुम, खिल रहे मुझीसे
'मैं'का निर्माण करो साथी, 'मैं'का सम्मान
'मैं' महासृष्टिका शुद्ध सत्य, 'मैं'की पहचान
अपनी ही भूलोंसे जगमें पैदा यह रोग
जीवनमें सबसे अधिक बार 'मैं'का उपयोग

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतमें ब्रिटिश शासन

क्लाइव ब्रान्सन

[मई, १९४२ में क्लाइव ब्रान्सन नामक एक अंगरेज़ सिपाही भारत आया था। २५ फरवरी, १९४४ को वह अराकान-मोर्चेपर गाँकेदाँक-दर्रेकी लड़ाईमें काम आया। इस प्रवास-कालमें—जिसमें अगस्तकी अशान्ति, बंगालका अकाल, भारतके कई नगरोंपर बमबारी आदि अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं—उसने भारत और भारतीयोंके बारेमें जो-कुछ देखा-सुना-समझा, उसे पत्रोंके रूपमें अपनी पत्नीको लिखा। इन्हींमें से कुछ पत्र अभी हाल ही में लन्दनसे "British Soldier in India" नामसे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। नीचेके कुछ अंश इसीसे लिए गए हैं। इनसे पाठक देखेंगे कि जहाँ अनेक अंगरेज़ आज असामान्य वर्ण-औद्धत्य, अदूरदर्शिता, संकीर्ण स्वार्थ-बुद्धि, दमन और मिथ्या प्रचार द्वारा भारत और भारतीयोंकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंके विरुद्ध दुराचरणकर भारत और ब्रिटेनके बीच घृणा और कटुता पैदा कर रहे हैं; वहाँ ब्रान्सन-जैसे भले, ईमानदार, निष्पक्ष, सच्चे मानव और दूरदर्शी अंगरेज़ भी हैं, जो भारतकी स्वाधीनता और समानतामें ही दोनों देशों और विश्वकी भलाई देखते हैं। —सं०]

अच्छा, यह भारत है! यद्यपि भारतमें आए मुझे अभी थोड़ी ही देर हुई है; पर एक बात जो बहुत खटकती है, वह है किसानोंका जीवन, और बम्बईमें घरोंकी समस्या। पर चित्र आँकनेके लिए यहाँके लोग कितने उपयुक्त हैं! जब यह रक्त-पातका काण्ड समाप्त हो जायगा, तो यहाँके कई चित्र आँकनेके लिए मैं अध्ययन और नोट आदि तैयार कर लूँगा।...हम लोग बम्बईसे रेल द्वारा पूनाके बाहरके एक कैम्पमें गए। हर आदमी यह देखकर हैरान था कि लोग कैसी भीषण स्थितियोंमें रहते हैं और इसपर कई बार चर्चा भी हुई। हम लोग हर बार एक ही या सही निर्णय निकालते हों, ऐसा नहीं; पर इस मौलिक तथ्यके बारेमें कोई मतभेद नहीं था कि १७५ वर्षोंके साम्राज्यवादके बाद भारतमें जो हालत है, वह बड़ी लज्जाजनक है। इस और हमारे भविष्य (वर्त्तमान भी) सम्बन्धी कई अन्य कारणोंसे अंगरेज़ सैनिकोंमें 'भारतीयोंके लिए भारत' का नारा बड़ा लोकप्रिय हो गया।

सेनामें लोगोंको सारी बातें समझाई नहीं जातीं। लगभग प्रत्येक दिन धैर्यपूर्वक हमें यही सुनना पड़ता है कि यहाँ क्यों कुछ करना आवश्यक है, और भारतीयों तथा भारतीय राजनीतिके प्रति हमारा क्या रुख होना चाहिए। यद्यपि भारतीयोंके साथ पुराने ढर्रेका वर्त्ताव करनेकी ही अधिकांश गोरोंमें प्रवृत्ति है; पर कैम्पमें भारतीय सैनिकों और सिविलियनोंका सम्पर्क, आसपास के लोगोंकी बेहद ग़रीबीके कारण सहानुभूति और अधगोरोंका हमारे तथा भारतीयोंके प्रति धृष्टतापूर्ण रुख हमें अपनी स्थितिकी वास्तविकता सिखा रहा है।

जहाज़से लिखे गए अपने पत्रोंमें मैंने ज़िक्र किया था कि गुरिल्ला-युद्ध ही भारतकी रक्षाकी कुंजी है। देशके वास्तविक सम्पर्कमें आनेके बाद मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। पर खाद्य और पानीकी समस्या (जिसे अकेला सेना-विभाग हल नहीं कर सकता) और खराब सड़कें (वर्षोंकी उपेक्षा और लापरवाहीके बाद अब जिनके बारेमें बम्बईमें बड़े गरमागरम भाषण दिए जा रहे हैं) देखकर मुझे १९वीं शताब्दीके एक महान इतिहासकारका एक कथन याद आ रहा है—इतिहास अपनी पुनरावृत्ति एक नियमसे करता है। पहले वह एक नाटक रचता है और फिर उसकी नक़ल दोहराता है। चौन नाटक है—क्या भारत उसकी नक़ल होगा?...खानेके समय मैंने 'टाइम्स आफ़् इण्डिया' पढ़ा। यह स्पष्ट है कि 'होम-गार्ड' का प्रश्न अधिकारियोंको व्यग्र कर रहा है। पूनाके सरकारी सिविल-गार्ड और उसके कार्योंके सम्बन्धमें एक रिपोर्ट है, जिसमें ए० आर० पी०, लाठी चलाना (!) और पुलिस-कार्य हैं! इस बातका आश्चर्य नहीं कि इसमें केवल २०० व्यक्ति हैं और जनता इसमें शामिल नहीं होती (या हो सकती?)। अभी हाल ही में एक पत्रने कहा था कि जनताको होम-गार्ड न बनाने देनेका प्रमुख कारण है हथियार दे सकनेकी असमर्थता। यह कितना आश्चर्यजनक है!

पिछले कुछ दिनोंसे मेरा पेट खराब है, जिससे भारतीयोंको बुरा-भला कहनेवाले मूर्ख गोरे सैनिकोंसे पेश आनेमें मैं धैर्य नहीं रख पाता। वे भारतीयोंके साथ जैसा सलूक करते हैं, उससे न सिर्फ़ भविष्यके बारेमें ही कँपकँपी आती है, बल्कि इस बातकी शर्म भी आती है कि मैं भी उन्हींमें से एक हूँ। सचमुच यहाँके कुछ अज्ञानी लोगोंपर दया आती है। वे घरके झंझटोंसे बचने के लिए सेनामें भर्ती हो गए। वे घर कभी चिट्ठी नहीं लिखते और वहाँका खयाल तक भुला देना चाहते हैं। अपने इस दुर्भाग्यका गुस्सा वे असहाय भारतीयोंपर उतारते हैं। सैनिक-जीवनको वे अच्छी नौकरियोंके लिए एक ऐसा संघर्ष समझते हैं, जिसमें सभी सबके खिलाफ़ हैं! युद्धके कलात्मक रूप, इस युद्धके यथार्थ रूप और भारतके बाहर इसके परिणाम आदिसे मानो उन्हें कोई सरोकार ही नहीं।

रातके सिवा दूसरा असली अँधेरा वह है, जो लोगोंके घरों में पाया जाता है, और वहाँ भेद स्वरका नहीं, वर्णका है।...मैंने धर्म और विज्ञान-सम्बन्धी ५ पुस्तकें खरीदी हैं। भारतपर मुझे कुछ भी नहीं मिल सका।...मैंने पी० ई० एन० द्वारा प्रकाशित 'एँग्लो-इण्डियन लिटरेचर' खरीदा। इसके पृष्ठ ४३ पर मुल्कराज आनन्दकी, जो अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक-संघसे सम्बद्ध हैं, 'कुली', 'अनटचेबल',

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

'दि विलेज' आदि पुस्तकोंका विवरण छपा था। मैंने सोचा कि भारतीयोंके बारेमें ऐसी ही पुस्तकें तो मैं चाहता हूँ। अतः मैं किताबोंकी दो बहुत बड़ी दुकानोंपर पहुँचा। मुझसे नम्रतापूर्वक कहा गया कि इनमें से कोई भी किताब नहीं है। फिर एकने कहा--'कुली' तो ज़ब्त है! इसपर मुझे बहुत गुस्सा आया। यहाँ हिटलरके भाषण मिल सकते हैं, 'मेरा संघर्ष' मिल सकता है, सुभाष बसुकी आत्मकथा मिल सकती है। सब कहीं गन्दा साहित्य और गन्दे चित्र खरीदे जा सकते हैं; पर एक प्रगतिशील लेखक द्वारा भारतीय जीवनके सम्बन्धमें लिखी गई पुस्तक ज़ब्त है! इस स्थितिमें अंगरेज़ शासक जब संस्कृति और लोकतन्त्रके सन्देशवाहक होनेका दम भरते हैं, तो शब्दों द्वारा उनके इस कपटाचरणका वर्णन नहीं किया जा सकता।...मैंने एक भारतीय फिल्म देखना चाहा (हालीवुडके वाहियात फिल्मोंसे मैं ऊब चुका हूँ); पर एक भारतीय सिनेमामें मुझे जाने नहीं दिया गया!

जब तक तुम्हें यह पत्र मिलेगा, कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ़्तारीकी खबर बासी हो चुकी होगी। तुम इस मौलिक तथ्यसे भलीभाँति परिचित होगी कि इन गिरफ़्तारियोंसे भारतीयोंकी मुख्य समस्या (अपने देशकी आज़ादीके लिए लड़ना) का कोई हल न निकलेगा, सिवा इसके कि इनसे भारतीय हमें और भी अधिक घृणा करना सीखेंगे। अब दो पहलू सामने आ रहे हैं: पहला रचनात्मक है कांग्रेसका पाकिस्तानके सम्बन्धमें समझौता, और दूसरा नकारात्मक सहायताके लिए जापानकी ओर देखना। ...सैनिकोंमें भारी भ्रान्ति फैल रही है—विशेषकर कांग्रेसके सम्बन्धमें। इस सम्बन्धमें रात-दिन बहसें होती हैं, जिनमें दो चरम मत हैं: (अ) हम यहाँ जापानियोंसे लड़ने आए हैं, हिन्दुस्तानियोंसे नहीं; (ब) गांधी और उनके हिन्दुओंकी एक बार खूब खबर लेना अच्छा ही होगा। हमें थोड़ा अभ्यास तो होगा, जैसा कि जापानियोंको चीनमें हुआ।

हमारी टुकड़ीसे पंसके एक क़स्बेमें अमन-क़ानूनकी रक्षाके लिए कुछ जत्थे भेजे गए हैं। ऐसी लड़ाई मेरे लिए इतनी अरुचिकर है कि मैं हर तरह कोशिश करके उसमें जानेसे बचता हूँ। यह सारा काण्ड बहुत ही दुखद है। भारतीय इसलिए आज़ादी चाहते हैं कि वे अपनी आज़ादीकी रक्षाके लिए जापानसे लड़ सकें। पर गोरे साहब कहते हैं--नहीं। वे ज़बानी ही ऐसा नहीं कहते, कई व्यावहारिक रूपोंसे भी यह ज़ाहिर करते हैं, जैसे—होम-गार्ड नहीं, जन-सेना नहीं, गुरिल्ला-केन्द्र नहीं, मुनाफ़ाखोरोंकी गिरफ़्तारी या सज़ा नहीं, अत्यावश्यक भारतीय उद्योगोंके विकासका दमन (उदाहरणके लिए अमरीकन उद्योग-मिशनकी रिपोर्टका दमन) और अन्ततः गोरे-राजकी अहंमन्यता, फ़ज़ूलखर्ची और आधिपत्य।

कांग्रेसने जनताकी माँगको लिया है—[illegible] गांधीजी उसपर शान्तिवाद थोपते हैं, जिसका [illegible] है संघर्षको हानि पहुँचाना। पर आज स्थिति [illegible] है कि शान्तिवाद असंभव है। इसीलिए रचनात्मक [illegible] तरहसे अराजकवादी रूप धारण कर लेता है, और [illegible] कठोरता—अर्थात् नेताओंकी गिरफ़्तारी, कोई [illegible] पहले पुलिस और फिर सैनिक बुलाना--भी उसे [illegible] सहायता करती है। इन कार्योंसे अधिक भारत-[illegible] को शायद ही और-कुछ अधिक कटु बना सके।... [illegible] जनता जो-कुछ कर रही है, उससे सहमत न होते [illegible] तो समझा ही जा सकता है कि लोग क्यों ऐसा कर [illegible] आशा करनी चाहिए कि मौजूदा अशान्ति शीघ्र [illegible] हो जायगी और जनता फिर रचनात्मक दृष्टिसे [illegible] यद्यपि यह ज़रा मुश्किल दीख पड़ता है जब कि [illegible] यथार्थमें राष्ट्रीय महासभाका दमन कर दिया गया हो [illegible] नेता जेलोंमें ठूँस दिए गए हों।...कल मेरी एक [illegible] एक मित्रसे भेंट हुई। उसने बताया कि इंग्लैण्डमें [illegible] स्थितिसे बड़े चिन्तित हैं। मैंने पढ़ा है कि [illegible] नेताओंने कांग्रेसी नेताओंसे भद्र-अवज्ञा आन्दोलन [illegible] अपील की है। कितनी सुन्दर बात है! क्या [illegible] नहीं मालूम कि कांग्रेसी नेता जेलमें हैं, इसीलिए उन्हों [illegible] हैं—अराजकवादी ढंगके, क्योंकि कोई नेतृत्व नहीं है।

एक बात जो मैं तुम्हें पहले भी लिख चुका हूँ, [illegible] है कि हम यहाँ क़ैदियोंकी तरह—कोढ़ियोंकी तरह—[illegible] जिन्हें गाँवों, भारतीय सैनिकोंके डेरों आदिमें जाने [illegible] तरह भारतीय लोगोंको जाननेका निषेध है। और [illegible] हमने जनताको कभी जन-सेना या गुरिल्ला-सेना संगठित [illegible] सहायता देनेका भी नहीं सोचा।...यहाँ आकर एक [illegible] मैंने ज़रूर जानी है कि इंग्लैण्डमें जीवन--और [illegible] तथा लोगोंके प्रति वहाँके निवासियोंका दृष्टिकोण—[illegible] समाजसे बिल्कुल पृथक है। जब यह युद्ध समाप्त हो [illegible] रिकोंके रूपमें हमें चीन और भारत जाना चाहिए। [illegible] हूँ कि यह बात अभी अव्यावहारिक जान पड़ेगी—[illegible] वह है भी; पर इससे तुम्हें यह तो पता चलेगा कि [illegible] प्रवास मुझे घर लौटकर बसनेके लिए प्रेरित नहीं कर [illegible] अधिकाधिक सीखने-जाननेकी ही प्रेरणा दे रहा है।

आज कुछ मित्रोंसे बातचीत करके मैंने अपने [illegible] नया आदमी पाया। कम्युनिस्ट-पार्टीको क़ानूनी बना दि [illegible] है; पर उसके ९०० सदस्य—जिनमें बम्बईके माने हुए [illegible] नेता भी शामिल हैं--अभी भी जेलोंमें हैं। इसके [illegible] कांग्रेसी नेताओंका जेलमें होना, गोलीकाण्ड, [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सख्त क़ैदकी सज़ाएँ, मुनाफ़ाख़ोरी और चोर बाज़ार यहांके लोगोंको लोकतन्त्रका अर्थ खूब अच्छी तरह सिखा रहे हैं—क्या ?

आज शामको मैं एक भारतीयके घर हिन्दुस्तानी दावत खाने गया था। रास्तेमें मेरी ट्राम एक आदमीके शवके पाससे गुज़री, जो मोटर या किसी अन्य चीज़से कुचलकर मर गया था। लोग उसके पाससे ऐसे चले जा रहे थे, मानो कोई मरी हुई बिल्ली या कुत्ता पड़ा हो। निश्चय ही भारतमें किसी-न किसी दिन अवश्य विस्फोट होगा—और जब यह होगा, कैसा भीषण होगा!

कल शामको मुझे एक मित्रने अपने यहाँ निमन्त्रित किया था। वहाँ मुझे कई कांग्रेस-समर्थकोंसे मिलनेका मौक़ा मिला, जिन्हें मैंने संघर्षके ढंग बतलाए। मैंने उनसे कहा कि उनके मौजूदा ढंगके संघर्षसे तो जापानको सहायता मिलती है और साथ ही ब्रिटिश सरकारके उत्तेजनको भी, जिसका आरम्भ कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ़्तारीसे हुआ है और जिसका उद्देश्य है पाँचवे दस्तेके दमनके नामपर यहांके संगठित राष्ट्रीय आन्दोलनका दमन।...यह अब और भी अधिक स्पष्ट हो गया है कि जिस खास मौक़ेपर कांग्रेसी नेताओंको गिरफ़्तार किया गया है, उससे नौकरशाहीने जनताको बहुत बड़ा उत्तेजन दिया है। इससे देश-भरमें क्षोभ फैला, जिससे ब्रिटिश राजको देशके संगठित राष्ट्रीय आन्दोलनको कुचलनेका मौक़ा मिला, जिसकी कि वह बहुत दिनोंसे तलाशमें था।...नौकरशाहीकी योजना ग़लत सिद्ध हुई है, क्योंकि उन्हें इस बातकी कभी आशा नहीं थी कि (१) कांग्रेसी नेताओंकी रिहाईके लिए सभी दलोंकी जनता (जिसमें मुसलमान भी शामिल हैं) की इतनी सहानुभूति और ज़ोरदार माँग होगी; और (२) सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर इस्तीफ़ा देंगे, जिसका अर्थ है कि जिसने कांग्रेसके खिलाफ़ पहल की है, वह कांग्रेस-विरोधी सरकार नहीं बना सकता। अब नौकरशाही आशा करती है एक तथाकथित भारतीय राष्ट्रीय सरकार बनानेकी, जिसमें सभी स्वीकृत दल शामिल होंगे (कांग्रेस उसमें न होगी, क्योंकि वह ग़ैर-क़ानूनी है)। पर यह स्पष्ट है कि समूचे देशकी—जिसमें मुस्लिम जनता भी शामिल है—ऐसी राष्ट्रीय सरकारमें कोई रुचि नहीं है।...भारतीयोंका अंगरेज़ों की वर्मा-नीति अथवा उनके वादोंमें कोई विश्वास नहीं है और न उनकी ब्रिटिश कमान या उसके नियन्त्रणके अधीन लड़नेकी तनिक भी इच्छा है। यह है भारतीय जनताकी स्थिति, और एकमात्र यही जापानको हरा सकते हैं। उसकी माँग है कि भारत ब्रिटेनके स्वतन्त्र मित्रको हैसियतसे भारतीय राष्ट्रीय सरकारके नियन्त्रणमें लड़े। इससे कुछ भी कमसे गोरे साहबोंके प्रति भारतीयोंके मनोंमें जो पिछले १५० वर्षोंसे संचित घृणा है, वह कम न होगी।

हम लोग भारतीय समस्याको हल करनेकी किस तरह कोशिश कर रहे हैं, इसका एक दिलचस्प उदाहरण देखो। बारामती (पूना) में दो हफ़्ते पहले कुछ उपद्रव हुए थे—रेलवे स्टेशन जला दिया गया, टेलीफ़ोनके तार काट डाले गए और पुलिसवालोंपर हमले किए गए। लगभग एक दर्जन व्यक्ति पकड़े गए और उन्हें कड़ी सज़ाएँ दी गईं। तब शान्ति स्थापित हो गई। अब घोषणा की गई है कि गाँवपर ३० हज़ार रुपया सामूहिक जुर्माना किया गया है (जो पुलिसवालों, अधिकारियों और परिगणित जातियोंपर लागू नहीं होगा !!)। किस तरह नौकरशाही समस्त देशवासियोंमें घृणा पैदा कर रही है, उसकी यह एक विशिष्ट मिसाल है। शायद इसी वातावरणमें हमसे जापानियोंसे लड़नेको कहा जायगा। कितना आशाप्रद है यह!

तो क्या यहांके लोग हमसे घृणा करते हैं? नहीं। मैं ठीक कह रहा हूँ। जब तक सरकार अपने द्वारा की गई क्षतिकी पूर्ति के लिए कुछ नहीं करती, ईश्वर ही हमें जापानियोंसे बचाय। यह प्रश्न सदा चेतावनीके रूपमें मेरे दिमाग़में घूमता रहता है। जापानके खिलाफ़ लड़ाई जीतनेकी यही एक शर्त है। यह जितनी प्राथमिक है, उतनी ही आवश्यक भी। तुम्हें वहाँ इस सम्बन्धमें कुछ करना चाहिए। हम अंगरेज़ लोग आते तो हैं यहाँ जापानसे लड़नेके लिए; पर सम्भावना देखते हैं हम यहाँ अपनी क़ब्र बननेकी। हम लोग आत्मघातक दलके रूपमें तो यहाँ आए नहीं हैं कि दिल्ली और ह्वाइट हाउसके अंगरेज़ नौकरशाह हमारी पीठ में छुरा भोंक दें। हम यहाँ एमरी एण्ड कम्पनीकी पागल और प्रतिगामी नीतिसे उत्तेजित भारतीयों द्वारा मारे जानेके लिए तो आए नहीं हैं।...हमारा पहला कर्त्तव्य अपने देशके प्रति है; पर जब वह भलीभाँति सम्पन्न हो जायगा, तो मैं भारत लौटूँगा, जहाँ मैं मानवताके साथ अपने-आपको एकात्म महसूस कर सकूँ—टाँके हुए टुकड़ेकी तरह उससे अलग न रहूँ। सभ्य गोरे साहबने निःसन्देह मानवताको उसके प्राचीन रूपसे विशृंखल कर दिया है। अब मानवता उसे धृष्ट पशुसे फिर मनुष्य बनना सिखायगी।

मेरी छुट्टी खत्म हो गई है। मैंने रातकी गाड़ीसे एक तीसरे दर्जेके डिब्बेमें यात्रा की, जो किसानों और ग़रीब मज़दूरोंसे भरा था। यात्रा बड़ी दिलचस्प रही; डिब्बेमें एक अंगरेज़ और कुछ भारतीय सिपाही भी थे। अंगरेज़ सिपाही असबाब रखनेके मार्ग में लेटा था, जिसे मैंने उठाया। इसके बाद मैंने किसानों—खास कर स्त्रियों और बच्चोंके बैठनेकी व्यवस्था करनेकी ठानी। हिन्दुस्तानी सिपाही पुराने क़ज़्ज़ाकोंकी तरह बरताव कर रहे थे। वे बैठनेकी जगह आरामसे लेटे थे, जब कि स्त्री-बच्चे नीचे फ़र्शपर बैठे थे और पुरुष बेचारे खड़े थे। इसलिए मैंने उल्टे ढंगसे गोरे साहबोंका-सा काम किया—उन्हें उठाकर दूसरे लोगोंके बैठनेकी जगह की।...छुट्टी और अपने कैम्पके वातावरणके भीषण विपर्ययसे मैं बराबर व्यथित हो रहा हूँ। फिर मैं वर्ण-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घृणा और काला आदमी-विरोधी साहबोंके बीच आ गया हूँ। यह भेद बड़ा निरुत्साहजनक है, भले ही इसके बारेमें कोई कितना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्यों न रखे।

हमें कई कामोंपर बाहर जाना पड़ता है। इनके बारेमें मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता कि हमारे साथी व्यर्थ ही नष्ट की जानेवाली फ़सलके सम्बन्धमें बड़ी कटुतापूर्वक शिकायत करते हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि इनमें से बहुतसे लोग छोटे किसानोंके निकट सम्बन्धी या स्वयं छोटे किसान हैं और उनका कहना है कि ऐसे दुराग्रहपूर्ण कार्य न होते, तो ठीक था। उनके मनमें इनसे किसानोंके प्रति सहानुभूति पैदा होती है। पर भारतीय किसानोंके दिमाग़ोंमें तो इससे अपने आक़ाओंके प्रति और घृणा ही पैदा हो रही है। युद्धके कारण होनेवाले इस तरहके नुक़सान और युद्ध-कार्योंके लिए ली जानेवाली ज़ायदादकी क्षतिपूर्तिका प्रश्न भी अक्सर कांग्रेसकी ओरसे उठाया गया है। ऐसी चर्चाएँ पुराने सिपाहीको प्रकट करा देती हैं। एक गोरे साहबने, जो सशस्त्र मोटर, मशीन-गनों, बन्दूकों, घोड़ों और तमंचोंसे लैस था, कहा—'इन हरामियोंसे ऐसे ही पेश आना ठीक है। वे पराजित लोग हैं और उन्हें वैसे ही रहना चाहिए। वे बाहरसे काले और अन्दरसे पीले हैं। मैंने उपद्रवोंमें उन्हें देखा है।' इन लोगोंको कोई भी दलील बदल नहीं सकती—यद्यपि यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत रूपसे ये लोग काफ़ी भले हैं और सैनिकका यह पागलपन वर्षोंके यान्त्रिक हुक्मों, खुफ़ियागीरी, मूर्खता और कठोर अनुशासनका परिणाम है। पर हममें से जो लोग इसे समझते और धैर्यपूर्वक उन्हें समझाते हैं, उन्हें इतिहास और ख़ास तौरपर भारतीयोंकी सहायताकी बड़ी ज़रूरत है।

जनताकी भीषण ग़रीबी, गन्दगी, अज्ञान और पिछड़ेपनपर मैं कहाँ तक ज़ोर दूँ? फिर भी हम लोग आधुनिक लारियोंमें रेलकी पटरियों और ऐसे कारखानेके पाससे गुज़रे, जिसमें मशीनें लगी थीं। हम मीलों बोई हुई ज़मीनके पाससे गुज़रे; पर कहीं भी ट्रैक्टरके दर्शन नहीं हुए। देखा, केवल बैल और एक फलसे ज़मीन खोदता हुआ हल। हम लोग कई गाँवोंके पाससे गुज़रे, जिनमें आदमी घरौंदोंमें रहते हैं। मिट्टीका फ़र्श, पुराने पत्थरकी दो दीवारोंपर टिकी एक क्षीण छत—बाँसकी खपच्चियोंपर छाया हुआ छप्पर, जिसपर टिनके टुकड़े, पुराने बिछावन, कुछ कपड़े आदि टँके—जिनमें आदमी सिर्फ़ उकड़ूँ बैठ सके।...पर ये किसान कुछ देखते-समझते न हों, ऐसी बात नहीं है। हर बार जब कि एक हवाई-जहाज़ गाँवपर से उड़ता है या गाँवमें से कोई लारी गुज़रती है, सामन्तशाहीके कफ़नमें एक कील और ठोंकी जाती है और भारतकी भूमिसे एक नया राष्ट्रवादी पैदा होता है। इन क्षेत्रोंकी यात्रा यह देखकर बड़ी दुःखद हो जाती है कि कितने बड़े पैमानेपर मानव-सुख और बुद्धि-शक्ति व्यर्थ जा रही है।

पर एक बात सुनिश्चित है—भारतीय जनता इस प्रयत्नके बारेमें सर्वथा उदासीन है। अंगरेज़ोंसे लोग ऊबे हैं और एकमात्र भारतीय राष्ट्रीय सरकार ही इस युद्धको तीयोंका युद्ध बना सकती है। भारतीय हमारे स्वार्थके लिए लड़नेके दावेका कोई विश्वास नहीं करते। यही स्थितिकी सचाई यही है, और कोई सफ़ाई ठीक नहीं है।

हमें एक नया हुक्म मिला है कि भारतीय अफ़सरोंसे करें। इससे गोरे सैनिकोंमें बड़ा क्षोभ फैल रहा है। हम लोगोंके कपड़े साफ़ करके लाया है। बरामदेमें हट, घुड़की और धमकाना आदि हो रहा है, जिससे है कि गोरा साहब किसी साधारण आदमीसे बात करा उसे ब्रिटिश लोकतन्त्रका सच्चा अर्थ समझा रहा है। दिन इनमें से एक गोरे साहबसे मेरी कहा-सुनी हो कहा कि मैं चाय और फलवालों तथा बच्चोंसे मेल करके गोरोंकी प्रतिष्ठा कम कर रहा हूँ। मैंने जवाब हाँ, जो गोरे साहब सस्ते वेश्यालयोंमें जाते हैं, वे इस रक्षाके लिए बहुत-कुछ करते हैं! तुम कल्पना नहीं कि हमें कैसा 'सस्कृत' जीवन बितानेको मजबूर किया भारत या भारतीयोंके बारेमें हमें कुछ भी जानने जाता। अभी मेरी एक ऐसे सैनिकसे बात हुई, जो भारतमें रह चुका है। मैंने उससे पूछा कि छुट्टी वेश्यालयकी लड़की या चायवालेके सिवा कभी किसी ट्रेड-यूनियनिस्ट या सार्वजनिक नेतासे भी मिले हो? सिर्फ़ नकारात्मक उत्तर ही दिया, बल्कि पूछा—'ट्रेड क्या होता है?' और यह आदमी लोकतन्त्रका सैनिक

गोरोंकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें मेरी जिस मूर्खसे बात उसने आज सुबह चाय लानेवाले चीकूके मुँहपर एक चपत जड़ दी। यह 'साहब' बच्चेके सामने गुर्रा रहा वह अंगरेज़ी समझ नहीं पा रहा था। जब इसने उसे मारी, तो पहले तो वह भौंचक रह गया और फिर रोने अभी उस दिन रातको मेरा एक बड़े गोरे साहबसे झग हो गया, जिसने एक भारतीय नौजवानको मारा और ओ० सी० कुत्तेकी तरह उसपर भूँकने लगा।

पर भारतीय जनताकी ग़रीबी बड़ी दुखद है। आदमी जाता है, वही नज़ारा। छोटे-छोटे घरोंका समूह गाँव-जितना बड़ा, टूटी हुई पत्थरकी दीवारें, टिनोंके दीवारके सहारे खड़ी छत और चटाई। इन्हींमें आदमी 'घर' कहते हैं। इनके बीचमें या पास ही एक या गिरजा होता है। और इनसे दूर नगरोंमें सम्पन्नतासे रहते हैं।

अब यह स्पष्ट हो चला है कि कांग्रेस-विरोधी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समूचे भारतपर खाद्यके अभावका संकट झूल रहा है। मध्य-श्रेणी, किसानों और मज़दूरोंपर उसका असर भी होने लगा है। खाद्य जमाकर रखने और चोर-बाज़ारका भी ज़ोर है। पर इसका सबसे गंभीर रूप यह है कि यद्यपि इसका किसान-मज़दूरों पर गहरा असर पड़ रहा है, तथापि वे इसकी सूचना पुलिसको नहीं देते। गोरे साहबोंके प्रति अपनी घृणाके कारण वे अधिकारियोंसे सहयोग करनेको तैयार नहीं।···चोर-बाज़ार यहां बहुत बड़े पैमानेपर है। सभी औद्योगिक नगरोंमें खाद्यकी कमी गंभीर रूप धारण कर रही है। कई जगह खाद्य-उपद्रव भी हुए हैं, कुछ दुकानें लूट ली गई हैं। यही तो नौकरशाही और पाँचवें दस्तेवाले चाहते हैं।···अपने-आपको मैंने इतना उदास और इतनी गंभीर परिस्थितिमें कुछ न करने लायक—इस महान देशपर शासन करनेवाले तथाकथित कपटी, कुटिल और गन्दे अंगरेज़ों द्वारा फैलाई गई दुर्गन्धिको दूर करनेमें इतना असमर्थ--कभी नहीं पाया। हर आदमीको अपने क्षेत्रमें ही कुछ करना चाहिए, ताकि जब महान भारतीय जनता स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए उठे, तो कम-से-कम कुछ गोरे साहब तो ऐसे मिलें, जो उसके साथ हों और अपने देशवासियोंके कारनामोंसे मुक्त हों।

तुम्हें मालूम होगा कि आजकल कलकत्तेपर बमबारी हो रही है। पर क्या तुम्हें मालूम है कि समूचे बंगालमें गंभीर खाद्य-संकट व्याप्त है? चावल पैदा करनेवाले इस प्रान्तमें चावल नहीं है! कलकत्तेमें कोयलेका भी संकट है। खाद्यके लिए सर्वत्र लोगोंको कतारें लगी हैं और खाद्य-उपद्रव होनेके भी समाचार आए हैं। हमारे बर्माको फिर जीतनेके लिए लिनलिथगो एण्ड कम्पनीने यह सार्वजनिक आधार तैयार किया है!···यहाँ स्थिति इतनी भयावह है कि मैं अपने-आपको काफ़ी उदास पाता हूँ। कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ़्तारीसे न तो वर्ग-संघर्ष मिटा, न साम्राज्यवाद ही। मुझे भय है, कहीं हम लोगोंको फिर अमन-क़ानूनकी रक्षाके लिए न बुलाया जाय। पर मुझे ग़लत न समझना—सटोरियों, ज़मींदारों और सरकारी कर्मचारियोंको मारनेके लिए नहीं, बल्कि क्षुब्ध जनतासे पेश आनेके लिए।

आज जब हम लोग एक टैंकपर काम कर रहे थे, तो तीन भारतीय बच्चे खड़े हमें देख रहे थे। इनमें से एक बहुत ही छोटा था; पर खड़ा हो सकता था। बोलनेके लिए वह बराबर बड़बड़ा रहा था, जैसा कि छोटे बच्चे बहुधा करते हैं। मैं उसे ध्यानसे देखने लगा। मुझे उसकी ओर देखता देखकर सहसा एक बड़े लड़केने आकर उस बच्चेसे कहा—'सिपाही साहबको सलाम करो।' इससे मुझे न सिर्फ़ क्रोध ही आया, बल्कि झुँझलाहट भी हुई।···मैं भारतीय जनताके बारेमें काफ़ी जानने लगा हूँ। उसका व्यवहार अत्यन्त मैत्रीपूर्ण है (आश्चर्य नहीं, यदि ये लोग मुश्किलसे समझते हैं कि रूसी और सहायक लड़ाई से ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है)। २९ मार्चको केय्यूर के चार नौजवान कम्युनिस्त इसलिए फाँसीपर लटका दिए गए कि उन्होंने एक प्रदर्शन किया था, जिसमें एक पुलिसमैन मारा गया। भारतमें गोरे साहब कितनी कायरता दिखा सकते हैं, यह शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता। शुक्र है कि मैं और तुम सौभाग्यसे ऐसे सियारोंके नहीं, बल्कि एक मानव-समाजके निर्माणमें सहायक हो रहे हैं।

हम जो लोग भारत आए हैं, उनमें से कोई भी लाखों आदमियोंकी विश्वास और बयानके नाक़ाबिल ग़रीबीको भूल नहीं सकेगा। हम सबका विश्वास है कि अगर विलायतके लोगोंको यह सब मालूम हो, तो बड़ा हुलस्थूल होगा, क्योंकि यह सब अंगरेज़ोंके नामपर हो रहा है। पर साथ ही हमारी यह भी धारणा है कि इसका कहीं समानान्तर नहीं है और किसी भी दृष्ट या ज़बानी प्रतीकके रूपमें इसे वहाँके लोगोंको समझाया नहीं जा सकता। नाइन एल्म्सके लोगोंको मैं कैसे बतला सकता हूँ कि उनके गन्दे मकान भी भारतीय बस्तियोंके मुक़ाबलेमें महल हैं? वे मेरा विश्वास नहीं करेंगे या मुझे झूठा समझेंगे। वहाँ परिवार यदि एक कमरेमें रहे, तो लोग अचम्भित हो जाते हैं। पर कितनी बार लाखों भारतीय यह कहे सुने जाते हैं कि उनके रहनेको कोई कमरा हो नहीं है और समूचे परिवार घास-फूस, चिथड़ों, टिनके टुकड़ों और एक छोटी चटाईवाले 'घरों'में ही रहते हैं, जो ८ फीट लम्बे, ४ फीट चौड़े और ४ फीट ऊँचे होते हैं। ऐसे घर आदमी न सिर्फ़ हर गाँवमें, बल्कि हर कस्बेके बाहर—भीतरके ईंटोंके बने गन्दे मकानोंसे पहले—देखता है।

पर यदि कोई सरकारी--गवर्नरों, टाटा और महाराजाओंका--ही भारत देखे, तो आसानीसे गोरे सिपाही या पक्के साहबका-सा ग़लत दृष्टिकोण बना सकता है। पर वह भारत स्वशासन या स्वतन्त्रताकी योग्यताके पास भी नहीं है। किन्तु एक दूसरा भारत है, भारतीय जनताका, किसानों और मज़दूरोंका भारत; महान बुद्धिजीवियों--बंगालकी तोरू दत्त नामकी २१ वर्षकी लड़की, जिसने अंगरेज़ीमें मौलिक कविता लिखी थी, टैगोर, सरोजिनी नायडू—और उन सहस्रों लोगोंका भारत, जो पौर्वात्य, पाश्चात्य, भूत और वर्त्तमानकी संस्कृतियोंका सब-कुछ पचाए जा रहे हैं। इन्हीं तथ्योंसे आदमीकी भावना सजीव रहती है और वही इसी समय भारतको स्वाधीनता देनेकी तात्कालिक व्यावहारिकताका आधार है।

अखबारमें मैंने पढ़ा है कि पार्लमेण्टके कज़र्वेटिव सदस्य फैरिसने भारतीय स्थितिका अध्ययन किया है और यह महान फ़ैसला किया है कि भारत अभी स्वशासनके लिए तैयार नहीं है। मुझे आश्चर्य है, इस मौलिक निर्णयपर पहुँचनेके लिए उन्हें कितने हिस्की-सोडाके पेग चढ़ाने पड़े होंगे!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गणेश : चिन्तामणि : रामानन्द

बनारसीदास चतुर्वेदी

यद्यपि भारतीय पत्रकार-कलाके मन्दिरमें अनेक मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित हो चुकी हैं और अपने-अपने ढंगपर उनका महत्व है, तथापि अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, सम्पादकाचार्य सी० वाई० चिन्तामणि और ऋषिवर रामानन्द चट्टोपाध्यायके मुक़ाबलेकी कोई त्रिमूर्ति शायद ही निकले। तीनों ही आदर्शवादी पत्रकार थे, अपनी वृत्तिके प्रति पूरे वफ़ादार; और तीनों ही इतने ईमानदार थे कि उन्हें संसारका कोई भी आर्थिक प्रलोभन अपनी अन्तरात्मा द्वारा निर्दिष्ट पथसे विचलित नहीं कर सकता था।

यदि कविवर चकबस्त द्वारा बतलाई हुई 'दीन क्या है, किसी कामिलकी इबादत करना'—धर्मकी यह परिभाषा ठीक है, तो हम पत्रकारोंका यह धर्म हो जाता है कि हम इस पूज्य त्रिमूर्त्तिके जीवन-चरितके माहात्म्यका विधिवत् अध्ययन करें, और अगर बन सके, तो उनके गुणोंका कुछ अनुकरण भी।

वैसे तो समस्त भारत इस त्रिमूर्त्तिका ऋणी है; पर इन पंक्तियोंके लेखकपर तो इन महापुरुषोंका व्यक्तिगत ऋण है, और वह इतना अधिक है कि उससे उऋण होनेकी सम्भावना ही नहीं। पत्रकारोंके आकाशवृत्ती जीवनमें कभी भी संकटके दिन आ सकते हैं। महकमा बेकारीका सदस्य बनना उसमें आसान है। ढाई वर्ष हमें भी एक ऐसे ही चक्करमें अपने दिन बिताने पड़े, जिनमें पिछले सात महीनेमें तो एक बड़ा भारी सहारा मिल गया था। हिन्दुस्तानमें एक ऐसे दानी भी थे, जो दान देकर बिल्कुल भूल जाते थे, और वे थे श्रद्धेय बाबू शिवप्रसादजी गुप्त। उन्होंने पचास रुपए महीने भेजना शुरू कर दिया था। और यह तब तकके लिए था, जब तक मुझे जीविकाका कोई साधन नहीं मिल जाय! 'विशाल भारत'की नौकरी मिलनेपर ही वह बन्द हुआ। घरसे कलकत्तेकी यात्रा मैंने गुप्तजीके ही पैसेसे की थी; 'आज' की सहायता इससे अलग थी, और नागपुर-कांग्रेसको यात्राके लिए मैं श्रद्धेय पराड़करजी तथा 'आज'का ऋणी हूँ।

गुप्तजीकी सहायताके पूर्वके दो वर्ष बड़ी मुश्किलसे कटे। फाक़ेकशीकी नौबत तो नहीं आई थी; पर आर्थिक संकट बहुत खलने लगा था, और कहींसे एक पैसेकी आमदनी नहीं थी। लेखोंसे ३५-४०) रुपया मासिक कमा लेना भी कठिन था। श्रद्धेय गणेशजीको मेरी स्थितिका पता लग गया था। वे मेरे लिए चिन्तित थे। वह दिन मुझे आज भी स्मरण है, जब कि बाज़ारसे दही मँगानेके लिए घरमें पैसा नहीं था। हाँ, चार रुपए महीनेकी अखबारोंकी रद्दी ज़रूर बिक जाती थी। इस 'स्थायी आमदनी'से बड़ी मदद मिली। उन्हीं दिनों गणेशजीका एक कार्ड मिला। वह अब भी मेरे पास सुरक्षित है। सुन लीजिए—

"कानपुर, १४-४-१९२७। प्रिय चतुर्वेदीजी, आपके प्रयागके मेजर बसु और उनके पाणिनि आफ़िसको अवश्य होंगे। मेजर साहबके पास दस-बारह हज़ार पुस्तकें हैं, वे ऐकेडेमी नामकी एक संस्था बनाना चाहते हैं, जहाँ कुछ बैठकर भारतीय इतिहासके रिसर्चका काम करें। मेजर के पास इस कामके लिए बहुत मसाला है। वे अपनी किताबें ज़मीन और रुपया देना चाहते हैं और चाहते हैं यह सत्पात्र इस कामको उठा लेवे और कई सज्जनोंकी एक कमेटी बना दी जाय, जो आवश्यक फण्डका प्रबन्ध करे। सुन्दरलालजीकी मेरी दृष्टि आपपर पड़ी। क्या आप इस कामको प्रयागमें आगे बढ़ा सकते हैं? फण्डकी कमी न रहेगी, यदि कोई आदमी भी जुटनेवाला मिल जाय। मेजर बूढ़े आदमी हैं, कुछ लिखनेका काम कर और करा सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। यदि आपको सुविधा हो, तो आप इलाहाबाद मेजर बसु और सुन्दरलालजीसे मिल लीजिए। इसमें देर होगा, मैं दूँगा। उत्तर शीघ्र दीजिएगा। आशा है, आप होंगे।—आपका, ग० शं० विद्यार्थी।"

यद्यपि मैं इस अवसरसे लाभ नहीं उठा सका, क्योंकि मैं इतिहासज्ञ था और न कोई ऐसा काम अपने ऊपर ले सकता था, जो मेरी योग्यता और सामर्थ्यके बाहरका हो; गणेशजीके उक्त पत्रको पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। हिम्मत भी बँधी। आखिर कोई ऐसा व्यक्ति तो हमारे है, जो हमारे-जैसे क्षुद्र लेखकका खयाल रखता है। इस जो सान्त्वना दी, उसकी कल्पना भुक्तभोगी ही कर सकते हैं

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि गणेशजीकी कृपासे कालम मेरे लिए सदा खुले हुए थे। साप्ताहिकमें वे रुपए प्रति पृष्ठ दिला देते थे और दैनिकके लिए महीनेमें १५-२० कालम लिखनेका आदेश उन्होंने दे दिया था। ऊपर छोड़ दी थी। दरअसल 'प्रताप'का मेरा सम्बन्ध नहीं था। वस्तुतः मेरे गौरवकी रक्षाके खयालसे मज़दूरीके रूपमें आर्थिक सहायता दी थी। यही भावना उनके ही नहीं, समस्त हिन्दी-लेखकोंके गुरु—पूज्य द्विवेदीजीमें भी थी। संकटके वे दिन आए और चले गए श्रद्धेय गणेशजीकी उदारताकी याद यावज्जीवन बनी रहेगी।

गणेशजीने एक बार 'प्रताप'-कार्यालयमें ही कहा "एक बात हमारी भी सुन लीजिए, जनाब! 'आत्मघात'में बहुत अन्तर है; ये दोनों अलग-अलग चीज़ें 'प्रताप'-प्रेस और पत्र आपका है। हमसे संकोच कैसा?" संकटसे मनुष्यमें आत्महत्याकी भावना किस प्रकार आ जाती है वह दूसरोंका कितना कटु आलोचक बन जाता है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

होनेके कारण हम यह भलीभाँति जानते हैं। निस्सन्देह गणेशजीकी उदारताने मेरी कटुताको दूर करनेमें बड़ी मदद दी। आज कहाँ हैं गणेशजी-जैसे सहृदय पत्रकार, जो अपने छुटभइयों का इतना खयाल रखते हों? मेरी प्रथम श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्माके लिए अर्पित है।

- २ -

उत्सवोंके अवसरपर अपने पूर्वजोंका स्मरण करनेकी प्राचीन भारतीय पद्धति है। अतएव अखिल भारतीय पत्रकार-सम्मेलनके अवसरपर अपनी वृत्तिके महान् आचार्योंका स्मरण करना सर्वथा प्रासंगिक ही होगा। हमें श्रद्धाके चार फूल चढ़ाने हैं सम्पादकाचार्य चिन्तामणिजीकी स्मृतिमें, जिन्होंने गणेशजीकी तरह ही हमें आश्रय और प्रोत्साहन दिया था। स्वतन्त्र पत्रकारीके प्रयोगमें जो चालीस रुपए हम कमा पाते थे, उनमें सम्भवतः पचीस 'लीडर'से मिलते थे और पन्द्रह हिन्दी-पत्रोंसे। किसी छोटी जगहपर रहकर, जहाँ अच्छे पुस्तकालय और सन्दर्भ ग्रन्थोंका अभाव हो, स्वतन्त्र पत्रकारीका प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। यह तो 'लीडर'के सम्पादक-द्वय—चिन्तामणिजी तथा श्री कृष्णराम मेहता—की कृपा थी कि मेरी रचनाओंको स्थान मिल जाता था और उनके लिए पारिश्रमिक भी। योग्यताकी कमीकी पूर्त्ति सुन्दर हस्ताक्षरोंसे करनेका गुर मुझे अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही आ गया था। श्री कृष्णराम मेहताने सन् १९२० में जब चिन्तामणिजीसे परिचय कराया था, तो कहा था—"आपके पंचानवे फी-सदी संवाददाताओंसे ये अच्छा लिखते हैं।" पत्रोंके संवाददाता प्रायः घसीटकर लिखते हैं, यह बात मुझे तब तक ज्ञात नहीं थी। मैं रफ लिखकर फेयर करता, फिर संशोधन कराता और तब फिर अच्छेसे अच्छे काग़ज़पर अच्छे निबसे खूब सँभाल-सँभालकर लिखा करता था। बन्धुवर स्वर्गीय विश्वनाथप्रसादजी भी मेरी रचनाओंमें संशोधन कर दिया करते थे। कैसे-कैसे खराब अक्षरोंसे सम्पादकोंका पाला पड़ता है, यह बात तो मुझे आगे चलकर ही मालूम हुई। उस प्रथम मुलाक़ातमें ही चिन्तामणिजीने प्रोत्साहन दिया, उसको याद अभी भी नहीं भूला। उन्होंने विश्वनाथप्रसादजीसे कहा—"इनकी 'प्रवासी भारतवासी'की विस्तृत रिव्यू (आलोचना) 'लीडर' में करनी है, मुझे याद दिला दीजिए।" थोड़े दिनों बाद ढाई कालमका लीडिंग आर्टिकल (अग्रलेख) मेरी पुस्तकपर 'लीडर'में छपा। उसे पढ़कर हार्दिक हर्ष हुआ। पूज्य चिन्तामणिजीके दर्शन करनेका और अपने सहकारी सम्पादकोंके साथ बातचीत करते हुए सुननेका सौभाग्य मुझे अनेक बार प्राप्त हुआ था। जितना ही उनके सम्पर्कमें आता गया, उतनी ही अधिक श्रद्धा उनके प्रति बढ़ती गई। एक बार अपनी बीमारीमें उन्होंने अपने सुपुत्र श्री बालकृष्णरावसे लिखाकर एक पत्र मुझे भिजवाया था। श्री बालकृष्णरावने उनके शब्द ज्यों-के-त्यों लिख भेजे थे :—

"Write to Pandit Benarsidas that the columns of the *Leader* are open to him as ever and that any contribution he may send will very gladly be published and thus I shall be able to do my bit for one whom I hold in the greatest respect and affection."

अर्थात्—'पंडित बनारसीदासको लिख दीजिए कि 'लीडर'के कालम उनके लिए हमेशाकी तरह खुले हुए हैं, और वह जो-कुछ भी भेजेंगे, उसे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित किया जायगा। इस प्रकार मैं उस व्यक्तिके लिए, जिसे मैं सबसे अधिक सम्मान एवं प्रेमकी दृष्टिसे देखता हूँ, यथाशक्ति सहायता पहुँचा सकूँगा।' पूज्य चिन्तामणिजीकी इस उदारताकी कहाँ तक प्रशंसा की जाय? मुझे प्रोत्साहन देनेके लिए ही उन्होंने उपर्युक्त शब्द लिखा दिए थे।

चिन्तामणिजी अत्यन्त ईमानदार पत्रकार थे। अपने सिद्धान्तोंके विरुद्ध एक भी पंक्ति लिखना उनके लिए असम्भव था। यदि वे अपने राजनीतिक सिद्धान्तोंके विषयमें समझौता कर लेते, तो भारतीय राजनीतिक क्षेत्रमें उच्चसे उच्च पद प्राप्त कर लेना उनके लिए एक आसान-सी बात थी; पर उन्होंने कदापि ऐसा विचार भी नहीं किया। एक बार किसी रियासतके उच्च पदाधिकारी महोदय उन्हें दस हज़ार रुपए देने लगे। चिन्तामणिजीने वह रक़म तुरन्त अस्वीकार कर दी। बहुतोंको शायद इस बातका पता न होगा कि चिन्तामणिजी अपने स्वर्गवासके समय ऋणग्रस्त थे, यद्यपि वस्तुतः अखिल भारतीय राजनीतिक जगत् उनका ऋणी था।

कलकत्तेकी एक घटनाकी हमें खास तौरपर याद आ रही है। बन्धुवर श्रीराम शर्माको उनसे मिलानेके लिए ले गया था। बातचीतके सिलसिलेमें मैंने चिन्तामणिजीसे कहा—'आप अपना जीवन-चरित लिखा दें, तो बड़ी अच्छी बात हो! सुना है कि श्री राधेलाल चतुर्वेदीने भी आपसे इस विषयमें अनुरोध किया था। वे तो आपके पास एक शार्ट-हैण्ड टाइपिस्ट भी रखनेके लिए उद्यत हैं।' चिन्तामणिजी बोले—'आत्म-चरित लिखानेकी मेरी तबीयत नहीं होती। मैं चिन्तित रहता हूँ, मुझपर कर्ज़ है (I am indebted) और उसे बढ़ाना नहीं चाहता।' मेरे मुँहसे निकल गया—'I am also indebted.' (मैं भी कर्ज़दार हूँ।) श्रीरामजीने भी कहा—'मैं भी ऋण-ग्रस्त हूँ।' चिन्तामणिजी हँसकर बोले—'Let us then form a debtor's association.' (तो हम सब मिलकर कर्ज़दार समिति क्यों न बना लें?)

चिन्तामणिजी सच्चे साधक थे, अत्यन्त उदार और मेरी तरहके सैकड़ों ही व्यक्ति उनके ऋणी रहे होंगे; पर भारतका वह प्राचीन गुण कृतज्ञता हमारे बीचसे लोप हो गया है। क्या कभी चिन्तामणिजीके भक्तों तथा प्रशंसकोंने आपसमें मिलकर उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिए स्मारक बनानेकी बात भी सोची है ? कम-से-कम उनका एक विस्तृत जीवन-चरित तो छपना ही चाहिए।

- ३ -

चिन्तामणिजी स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्यायके, जिन्हें हम लोग आफ़िसमें 'बड़े बाबू' कहते थे, अत्यन्त प्रशंसक थे। अपने एक भाषणमें चिन्तामणिजीने उन्हें सर्वश्रेष्ठ सम्पादक (Noblest editor) कह दिया था। इसपर बड़े बाबूने उन्हें एक पत्र लिखा था, जिसका आशय यह था—'आप तो कुशल पत्रकार हैं, नपी-तुली बात कहनेके अभ्यस्त ; फिर यह अत्युक्ति-मय प्रशंसा कैसे आपकी क़लमसे निकल गई ?' निस्सन्देह बड़े बाबू महान सम्पादकके साथ-साथ महान पुरुष भी थे। पूज्य महात्माजीने उनके बारेमें एक बार कहा था—'रामानन्द बाबू तो ऋषि-तुल्य पूज्य हैं।'

दस वर्ष उन्हीं ऋषि-तुल्य पूज्य बड़े बाबूके अधीन काम करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। दरअसल 'अधीन' शब्द कहना ग़लत होगा, क्योंकि बड़े बाबू किसी पत्रकारको पराधीन बनानेमें विश्वास नहीं करते थे। दस वर्षोंमें 'विशाल भारत'में मुझे कभी भी यह ज्ञात नहीं हुआ कि मैं किसीका नौकर हूँ। आफ़िसमें चाहे जब आना, चाहे जब चला जाना, चाहे कुछ लिखना, चाहे जिसे पारिश्रमिक देना, चाहे जब छुट्टी लेना और अपने 'विशाल भारत'के साथियोंके साथ जैसा भी उचित समझूँ व्यवहार करना—यह सब स्वाधीनता 'विशाल भारत'में उन्होंने मुझे दे रखी थी। यही नहीं, स्वयं उनके राजनीतिक, सामाजिक अथवा साहित्यिक विचारोंके विरुद्ध लिखनेकी भी स्वतन्त्रता मुझे थी, और अनेक अवसरोंपर मैंने उसका उपयोग भी किया था। घाटेके लिए मालिक वे थे, और वस्तुतः शेष सब बातोंमें 'विशाल भारत'का सर्वेसर्वा उन्होंने मुझे ही बना दिया था। 'विशाल भारत'का चौदह हज़ार रुपया सालका बजट था। इस प्रकार एक लाख चालीस हज़ार रुपएका प्रयोग मेरे द्वारा हुआ। उसमें बड़े बाबूको बीस-बाईस हज़ारका घाटा हुआ। स्वयं एक बार उन्होंने 'माडर्न रिव्यू'में लिखा था—"Our losses in the Vishal-Bharat have run into five figures." (अर्थात् 'विशाल भारत'में हमें जो आर्थिक हानि हुई है, वह पाँच अंकोंमें लिखी जा सकती है।)

इस प्रसंगमें एक घटना याद आ रही है।.....के एक हिन्दी-पत्रने एक लेख प्रकाशित किया था, जिसमें यह लिखा गया था कि 'विशाल भारत' हिन्दीकी एक शोषक एजेन्सी है। वह हिन्दीवालोंका शोषण करके बंगालियोंका पेट भरता है। उस पत्रके सम्पादक महोदयने लेख ही नहीं छापा था, बल्कि एक बुद्धिमानी और भी की थी, यानी उसकी कटिंग बड़े बाबूको भी भेज दी थी। उससे उन्हें बड़ी उद्विग्नता हुई। मुझे उन्होंने पत्र लिखकर घर बुलाया—उस समय वे कुछ अस्वस्थ आफ़िस नहीं आ रहे थे—और उक्त पत्रका ज़ि साथ ही कहा—"पण्डितजी, आप जानते ही हैं भारतसे हमें घाटा ही घाटा हुआ है—सहस्रोंकी है—यद्यपि हम इसमें आपका कोई दोष नहीं मानते भारत' हिन्दीवालोंमें लोकप्रिय नहीं बन सका, यही लोग हमपर यह अपराध भी लगा रहे हैं कि हम शोषण कर रहे हैं और बंगालियोंका पेट भर रहे विनम्रतापूर्वक निवेदन किया—"इस पत्रके सम्पादक भवहीन हैं और उनके आक्षेपपर ध्यान नहीं देना बाबूने उन सम्पादक महोदयका परिचय पूछा। मैंने दिया कि वे अमुक सज्जनके सुपुत्र हैं। बड़े बाबूने सज्जन तो मेरे छात्र रहे थे।" मैंने कहा—"प्रयागके होंगे।" बड़े बाबूने कहा—"ख़ैर, उन्होंने आपके वि सो लिखा ; पर इस लेखके खण्डनमें और 'विशाल पक्ष लेते हुए भी किसी पत्रने लिखा है ?" मैंने वि "अभी हिन्दी-जगत्में यह प्रथा नहीं चली। हमारे अन्यायका शिकार बनता रहे, दूसरे चुपचाप देखते बड़े बाबूने कहा—'ऐसी परिस्थितिमें यही उचित 'विशाल भारत' बन्द कर दिया जाय। हम सत्तर दार हैं और इस वृद्धावस्थामें हमारी एक ही इच्छा कि हम ऋणग्रस्त न मरें।"

उस वृद्ध तपस्वीकी उस वाणीको सुनकर अपनी मुझे बड़ी ग्लानि हुई। दरअसल दोष मेरा ही था। तथा कुव्यवस्थाके कारण मैं पूर्ण ईमानदारीके साथ की सेवा नहीं कर पाता था। न उसका यथोचित सकता था और न समयपर उसका प्रकाशन। साधारण लिए उसे मैं काफ़ी मनोरंजक भी न बना सका। वस्तुतः मेरी सनकोंका प्रचारक तथा क्षुद्र व्यक्तित्वका बन गया था, जो सफल पत्रकार-कलाकी दृष्टिसे एक था। मैं इस बातको लज्जापूर्वक स्वीकार करूँगा कि के २०-२२ हज़ार रुपए बर्बाद करनेकी ज़िम्मेदारी पूर्ण स्वाधीनता अत्यन्त वांछनीय होते हुए भी दरअसल चीज़ है और अनधिकारी व्यक्तिके हाथमें पहुँचकर वह वन जाती है ; फिर भी स्वाधीनता-जन्य त्रुटियोंको इलाज भी अधिकाधिक स्वाधीनता ही है।

बड़े बाबूने वर्षों तक सबेरेसे बारह बजे तक घण्टा-भर विश्राम करके एक बजेसे छः बजे तक श्रम किया था। पत्रकार-जगत्की उन्होंने पचास अधिक सेवा की थी। बीस वर्ष तक तो अपने नहीं निकले—सभा-सोसाइटियोंमें जाना बिल्कुल बन्द

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri eGangotri Collection

—१९०७ की कांग्रेसके बाद उन्होंने बीस वर्षके लिए मानो त्र-संन्यास ले लिया था। तत्पश्चात् राष्ट्र-संघने उन्हें निमन्त्रित या था। राष्ट्र-संघका ८-१० हज़ारका चेक उन्होंने कहकर लौटा दिया कि इससे हमारे मस्तिष्कपर बोझ होगा!

किसी भी दिन बड़े बाबू कांग्रेसके सभापति हो सकते थे। शकी स्वाधीनताके लिए उन्होंने जो साधना की थी, तप किया , वह अनेक कांग्रेस-अधिपतियोंसे कहीं ज़्यादा था; पर बड़े बाबू न कीर्त्तिके लोलुप थे, न पदके। वे एक ईमानदार पत्रकार थे, और वही रहना चाहते थे।

गणेशजी प्रायः कांग्रेसके समर्थक थे, चिन्तामणिजी लिबरल-दलके थे और रामानन्द बाबू थे सर्वथा स्वतन्त्र व्यक्ति; पर ये तीनों ही अत्यन्त ईमानदार थे। हमारे भावी पत्रकार-विद्यालयमें इन तीनों महापुरुषोंके तैलचित्र निकट ही लगने चाहिएँ। इस त्रिमूर्त्तिके चरण-दर्शन हम पत्रकारोंके लिए आशीर्वादके समान होंगे, उनका पुण्य-स्मरण शुभ फलदायक होगा और उनके आदर्शोंका अनुकरण स्वयं हमारे तथा हमारी मातृभूमिके लिए कल्याणकारी होगा।

कला और जीवन

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

रातमें कितनी ही दुश्चिन्ताओंको लेकर मैं सोने गया था। किसीका तिरस्कार, किसीकी अवज्ञा, किसीका अपमान—यही सोचते-सोचते मैं सो गया था। एक तो दिनमें सूर्यके तापसे हम लोग योंही सन्तप्त हो जाते हैं। फिर कार्यकी व्यग्रताके साथ यदि किसी तरहका मानसिक कष्ट हुआ, तो उद्वेग और भी अधिक हो जाता है। रातमें भी दुःस्वप्न होते हैं। पर उस दिन जब मैं सोकर उठा, तब मुझे न कोई चिन्ता थी, न कष्ट। खूब वर्षा हो रही थी। वर्षा-ऋतुमें मेघोंकी श्याम घटा आप-से-आप मनमें औत्सुक्यपूर्ण भावोंकी एक घटा ला देती है। पवनकी चंचल गति मनको अस्थिर कर देती है। जलकी तरंगें हृदयमें भावोंकी तरंगें उत्पन्न कर देती हैं। उस दिन जब मैं प्रातःकाल सोकर उठा, तब मेरे भी मनमें एक उमंग-सी उठ रही थी। मैं एक अनिर्वचनीय भावसे पुलकित हो उठा। मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं शान्ति, सुषमा और आनन्दके एक अलसित राज्यमें प्रविष्ट हो गया हूँ। मैं खिड़की खोलकर प्रकृतिकी शोभा देखने लगा। वर्षाके उल्लासमें प्रकृतिकी अपूर्व छटा हो जाती है। नदी कितनी उमंगसे बह रही थी। वह मानो अपने आनन्दके वेगको रोक नहीं सकती थी। हरे-हरे वृक्ष, हरी-हरी लताएँ और हरी-हरी भूमि—सभी प्रफुल्ल प्रतीत होते थे। जैसे अब किसीके लिए कोई ताप नहीं, कोई बाधा नहीं। सभी ओर स्वच्छन्दताका साम्राज्य हो गया था। रह-रहकर बिजली चमक उठती थी, बादल गरज उठता था और पवनके जल-मिश्रित झोंके आ जाते थे। मैं भी अकारण अपनी सारी चिन्ताएँ छोड़कर पद्माकरका एक कवित्त पढ़ने लगा :—

चंचल चमाकैं चहुँ ओरनते चाय-भरी,
चरजि गई थी फेरि चरजन लागी री।
कहै पद्माकर लवंगनकी लोनी लता,
लरजि गई थी फेरि लरजन लागी री।
कैसे धरौं धीर वीर त्रिविध समीर तन,
तरजि गई थी फेरि तरजनि लागी री।
घुमड़ि घमंड घटा घनकी घनेरे आवे,
गरजि गई थी फेरि गरजन लागी रे।

यही तो जीवनका रस है, यही तो जीवनकी कला है, यही तो जीवनकी आनन्दमयी स्थिति है। प्रकृतिके राज्यमें सदैव यौवनका उल्लास रहता है। वहाँ वार्धक्यकी चिन्ता नहीं रहती। वहाँ चिर-वैचित्र्य है, चिर-नवीनता है, चिर-सौन्दर्य है। तभी तो प्रकृतिके साहचर्यमें रहकर कवि अक्षय सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। तब हम लोगोंका संसार कितना तुच्छ और कितना हेय हो जाता है! पर ज्योंही मैं बाहर जानेके लिए तैयार हुआ, त्योंही मुझे स्मरण हुआ कि मेरे पास छाता नहीं है। ऐसी वृष्टिमें छाता न रहनेसे भावमय सौन्दर्यको तो अवश्य अनुभूति हो सकती है; पर कर्ममय जीवनका काम नहीं चल सकता। मैं रानूदानसे छाता लेकर घरसे बाहर निकला।

सड़कपर छल-छल, कल-कलकर जलके जो छोटे-छोटे प्रवाह बहने लगे थे, उनके स्वरमें जो संगीतमय मधुरता थी, वही उनकी क्षिप्र गतिमें भी थी। सड़कपर कितने ही बालक स्वच्छन्दतापूर्वक खेल रहे थे। वर्षा-ऋतुका यथार्थ रस वही पा रहे थे। तब तक मैं बागची साहबके घर तक पहुँच गया। देखा, जयती स्थिर दृष्टिसे न-जाने क्यों आकाशकी ओर देख रही थी। मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि वर्षा-कालकी प्रकृति-लक्ष्मीने इसी बालिकाका रूप धारण कर लिया है। तभी तो उसकी निविड़ केशराशि और सुदीर्घ नेत्रोंमें मेघ-घटाकी कालिमा थी, मुखपर प्रफुल्ल कमलकी लालिमा थी और परिधानमें पृथ्वीकी हरीतिमा थी। इसी समय शंकरका अचानक निमन्त्रण पाकर ज्योंही मैं

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कमरेके भीतर गया, त्योंही नमिताने कहा—'मास्टरजी, आज तो छुट्टी होनी चाहिए। ऐसी वर्षामें कौन पढ़ेगा?' नमिताका कथन बिलकुल सच था। प्रकृतिके इस महोत्सवमें यदि हम सम्मिलित नहीं हो सकते, तो हमारे जीवनमें उत्सव-काल कब आवेगा? मैंने कहा—'चार दिनोंके बाद ही तो तुम्हारी परीक्षा है।' परीक्षाका नाम लेते ही नमिता चिन्तामें डूब गई। तब उसने अनुभव किया कि जीवनमें उत्सवके ही दिन नहीं हैं, परीक्षाके भी दिवस होते हैं। वह चुपचाप किताब लेकर बैठ गई और पढ़ने लगी।

पर बाहर वर्षाकी गति नहीं रुकी। कभी-कभी अपनी इस लीलाको क्षण-भर रोककर वह भी मानो मनुष्योंके तुच्छ कार्योंपर निर्लिप्त दृष्टिपात करती थी और फिर खिलखिलाकर अपनी लीलामें मग्न हो जाती थी। स्कूलका काम समाप्त हुआ। रात हो गई। अँधेरा हो गया। पर वर्षा बन्द नहीं हुई। उसकी गति अवश्य मन्द हो गई। क्रमशः अन्धकार बढ़ता ही गया। चारों ओर निशाकी निस्तब्धता छा गई। मुझे वह अन्धकार बड़ा ही रहस्यमय प्रतीत होने लगा। निशाके इस निविड़ अन्धकारमें भय और शंकाके साथ प्रेम और वेदनाके भी भाव विलीन रहते हैं। तभी तो जयदेवने कहा है :—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमाल द्रुमै-
र्नक्तं भीरुयं तदेव तदिमं राधे गृहं प्रापयः।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमे
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः।

मेघाच्छन्न आकाश, अन्धकारमय पथ, नदी-तट, प्रेमकी व्यग्रता, औत्सुक्यपूर्ण प्रतीक्षा, सौन्दर्यका रहस्यमय अवगुण्ठन, नूपुर-ध्वनि आदिसे युक्त कल्पना-जगत्के निकुंजोंमें मैं भी न-जाने कब तक विचरण करता रहा और न-जाने कब सो गया। सहसा लोगोंका कोलाहल सुनकर मैं जाग पड़ा। मालूम हुआ कि नदीकी बाढ़ मेरे घर तक आ गई है। सभी लोग भागते हैं। कुछ देरके बाद बाढ़के और अधिक बढ़ जानेसे मैं भी अपने घरके सब लोगोंको लेकर सेठ मेघराजजीके घर पहुँचा। वहीं हम लोग रात-भर रहे। नगरके कितने ही लोग अपना-अपना घर छोड़कर इसी मुहल्लेमें आ गए थे। इस समय मेरे हृदयमें जो भावनाएँ उठ रही थीं, उन्हें मैं ही समझ सकता हूँ। शिक्षित और मध्यवित्त गृहस्थ होनेके कारण मैं अपने अभावोंके कारण एक ग्लानियुक्त उत्तापका अनुभव कर रहा था। पक्का घर न होनेके कारण ऐसे कुसमयमें मुझे घर छोड़ना पड़ा। सेठजीकी कृपाके कारण मेरे घरवालोंको कष्ट अवश्य नहीं हुआ; पर मैं अपने मनमें एक अशान्ति, असन्तोष और व्यथाका अनुभव कर रहा था। वहीं कुछ गरीब लोग भी आ गए थे; पर उन्हें कष्ट होनेपर भी कोई दुश्चिन्ता नहीं थी।

दूसरे दिन मैं घर आया। नगरका दृश्य सचमु था। कितने ही मकान गिर गए। सभी मिट्टीके और उनमें गरीब ही लोग रहते थे। राजा साहबने सब स्कूलों और अन्य स्थानोंमें रहनेकी जगह पा अनाज देनेका भी प्रबन्ध हुआ और मकान बनानेके रुपए भी दिए गए। स्कूल बन्द हो गया। नगरमें विपत्ति आती है, तब उसका दुष्परिणाम गरीबोंके देखा जाता है। दुर्भिक्षमें वही मरते हैं। रोगोंका पर उन्हींका संहार होता है। बाढ़ या भूकम्पमें उन्हीं होता है। युद्धमें भी उन्हींकी अधिक हत्या होती है। संसारमें उन्हींकी संख्या सबसे अधिक होती है। वे ही सबसे अधिक बढ़ते हैं और सबसे अधिक नष्ट संसारमें हम लोग जिसे सुख मानते आए हैं, उस सुख जानते ही नहीं। उस सुखपर तो कुछ श्रीमानोंका रहता है। फिर भी यह बात नहीं है कि वे आनन्द ही नहीं करते। मेरी तो साधारण स्थिति है। मैं कहा जा सकता; परन्तु सचमुच जो गरीब हैं, उनके बराबर रहता आया हूँ। उन झोपड़ोंमें आनन्दकी वह ज्योति है, जो सूर्यके प्रकाशमें है, जो उनके आँगनोंमें उनकी आवश्यकता थोड़ी ही है, इसीसे वे थोड़ेमें ही जाते हैं। वे जिस आनन्दके साथ रूखा-सूखा भोजन और चीथड़ोंमें सोते हैं, वह श्रीमानोंको सचमुच दुर्लभ

नगरोंमें श्रीमानोंके विलास और ऐश्वर्यकी ओर जो असन्तोषकी भावना बढ़ रही है, वह यथार्थमें भावना नहीं है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वह मुझ-जैसे शिक्षित मध्यम श्रेणीके लोगोंकी। मेरे नज़दीक जो दरिद्र रहते हैं, उनसे मैंने अपनी तुलना की है। उनकी अवस्था अवश्य हीन है; पर उन लोगोंके ज्ञानका फल' अभी तक नहीं चखा है। इसीसे उनमें सरलता है, सन्तोष है, सहिष्णुता है और स्नेह है। उनकी बुभुक्षा और लोलुपता नहीं है। पर मैं तो ज्ञानका फल चुका हूँ। मेरी तो आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं। जब मैं आवश्यकताओंकी ओर ध्यान देता हूँ, तब मुझे यह होता है कि मुझे अपने अभावोंकी पूर्तिके लिए जो कष्ट पड़ता है, वह उन्हें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके उठाना पड़ता। मैंने देखा कि बाढ़के दूसरे ही दिन लोग अपने-अपने कामोंमें निश्चिन्त होकर लग गए। पर स्थितिसे चिन्तित हूँ, त्रस्त हूँ और उद्विग्न हूँ। केवल और बासीपर निर्भर रहनेवाली देवकुँवरको मैंने कभी नहीं देखा। सोनकुँवरको भी मैंने सभी स्थितियोंमें प्रसन्न आश्चर्यकी बात तो यह है कि सुमेरके घरमें सोकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कष्ट नहीं हुआ। मैंने भी वहाँ एक शान्तिपूर्ण उल्लासका अनुभव किया। यह सच है कि हम लोग अपनी आवश्यकताओंको स्वयं बढ़ाकर उनकी पूर्त्ति न होनेसे चिन्तित और दुखित होते हैं। पर शिक्षा और सभ्यताके प्रसारने मेरी इन कृत्रिम आवश्यकताओं को बिल्कुल स्वाभाविक बना दिया है। मैं नहीं समझता कि मैं विलासप्रिय हूँ। मैं अपनेको अमितव्ययी भी नहीं समझता; पर यह सच है कि खैरागढ़ ऐसे छोटे ग्राममें भी अपनी आवश्यकताओंकी वृद्धिके कारण मेरा निर्वाह नहीं हो रहा है। यही हाल मेरे ही समान मध्यम श्रेणीके कितने ही अन्य गृहस्थोंका है। तभी तो हम सभी अपनी तुलना बड़ोंसे करते हैं और उनका ऐश्वर्य देखकर अपनी दशासे असन्तुष्ट होते हैं।

आजकल समताका सिद्धान्त जो प्रचलित हो रहा है, उसका आधार प्रेम नहीं, यही सम्पत्ति और प्रभुत्व है। वैज्ञानिकोंके ज्ञान और नीतिज्ञोंकी नीति दोनोंका लक्ष्य इसी सम्पत्ति और प्रभुत्वकी वृद्धि है। उसीके कारण जीवनमें संघर्ष है और देशमें युद्ध है। यन्त्रोंकी वृद्धि हो रही है, उद्योगोंकी उन्नति हो रही है, व्यवसायोंका विस्तार हो रहा है; पर उन्हींके साथ राष्ट्रोंमें संघर्ष भी बढ़ रहा है, देशके भीतर अशान्ति भी फैल रही है। यदि सचमुचमें हममें समता और बन्धुत्वका भाव आ जाय, तो यही संसार स्वर्ग हो जाय। पर एकमात्र सम्पत्तिको ही प्रधानता देकर हम लोगोंमें जो एक असन्तोष और अशान्तिको प्रबलता हो रही है, वह क्या हमें सचमुच सुख और शान्तिके पथमें ले जा रही है?

इन्हीं चिन्ताओंमें व्यस्त रहकर जब मैं सन्ध्या-समय नदी-तटपर पहुँचा, तब देखा कि वहाँ कैसी शान्ति है, कैसी शोभा है, कैसा माधुर्य है! रात्रिकी भयानकता न-जाने कहाँ विलीन हो गई थी। नदी कल-कलकर बहती जा रही थी। वृक्षोंपर पक्षी कलरव कर रहे थे और कुछ नदीमें ही विहार कर रहे थे। पवन भी मन्द-मन्द गतिसे बह रही थी। सूर्यास्तके कारण आकाश बहुवर्ण-रंजित हो गया था। सर्वत्र सौन्दर्यका एक अप्रतिम राज्य था। यहीं तो हम सच्ची शान्तिका अनुभव करते हैं। पर क्या मूक प्रकृतिमें ही यह सौन्दर्यमय जीवन है? क्या मनुष्योंके जीवनमें अभावोंके ही कष्ट और चिन्ताओंकी ही वेदनाएँ हैं? उसमें क्या कहीं विशुद्ध सौन्दर्य, विशुद्ध आनन्द या विशुद्ध मुक्तिकी अवस्था नहीं है? बाह्यजगत्में जिस अलक्षित शक्ति द्वारा अलौकिक सौन्दर्यकी सृष्टि होती है, उसने क्या हमारे अन्तर्जगत्में किसी भी सौन्दर्यकी रचना नहीं की? वहाँ क्या हिंसा और वासनाओंकी ही आँधी उठती है? वहाँ क्या प्रेमकी मृदु तरंगें नहीं उठती हैं? क्या संसारमें संघर्ष ही सत्य है, सहयोग नहीं? क्या जीवनमें कर्मका चक्र ही यथार्थ है, भावकी कला नहीं? क्रमशः अन्धकार फैल गया और मैं घर लौट आया। पर इस एक ही दिनमें मैंने जीवनमें कलाका अनुभव किया और कलामें जीवनका।

ओ नभके चितचोर !

श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'

ओ नभके चितचोर !
खींच रहे हो रजत-रश्मियोंसे क्यों अपनी ओर?

मैं पृथ्वीका वासी, तुम नभके सौन्दर्य-विलास,
तुम्हें हृदयकी बात सुनाना भी है विफल प्रयास,
सुन्दर मुख है, अस्तु हृदय भी होगा बड़ा कठोर;
ओ नभके चितचोर !

तुम्हें चाहनेवाले कितने, मैं हूँ एक अकिंचन,
यहाँ किसीसे नेह लगाकर, छिड़क गया है यह मन,
किस बूतेपर फिरसे जोड़ूँ मनकी टूटी डोर?
ओ नभके चितचोर !

पर तुममें ऐसा भी क्या है, जीवन-ज्योति-उजागर,
जिसे देखकर सूखा मानस बन जाता है सागर,
लहरोंपर लहरें उठती हैं छूने नभके छोर;
ओ नभके चितचोर !

तुम्हें सुधाधर कहना भी तो है केवल अनुमान,
दूरीसे तो सबके प्रियतम लगते सुधा समान,
इस घटका विष अमृत कर दो, तो समझूँ कुछ ज़ोर;
ओ नभके चितचोर !

आँखें ही आँखें हैं तुममें, मनकी जाने कौन?
दुर्बलतापर तो न हँसेगा किन्तु तुम्हारा मौन,
अपनाओ भी नहीं, न फेरो पर करुणाकी कोर;
ओ नभके चितचोर !

अब ऐसा ही स्नेह चाहिए आशासे भरपूर,
जो आँखोंके आगे तो हो किन्तु पहुँचसे दूर,
जिसकी एक-एक धड़कनपर नाच उठे मनमोर;
ओ नभके चितचोर !

जिसके अधरोंकी आशापर अमर बने मधुप्यास,
जिसके बलपर अंगारे चुगनेका हो अभ्यास,
जिसकी मस्तीपर इतराएँ प्यासे नयन-चकोर;
ओ नभके चितचोर !

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अकबरकी मृत्यु और सलीमका राजतिलक*

चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य

मेरा बेटा खुसरू राजा मानसिंहका भानजा होता था। उसका विवाह खाने-आज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताशकी बेटीसे हुआ था। इसलिए यह दोनों मेरे पिता (सम्राट अकबर) की मृत्युके बाद खुसरूको बादशाह बनानेके इच्छुक थे। इसकी एक वजह यह भी थी कि इन दोनोंने अपने स्वार्थके लिए बहुतसे ऐसे अनुचित काम किए थे कि यदि उनका भेद खुल जाता, तो निःसन्देह इन्हें उनका फल भोगना पड़ता। इन दोनोंका खयाल था कि यदि खुसरू बादशाह हो गया, तो हमारी बुराइयोंपर पर्दा पड़ा रहेगा और दोष प्रकट न होने पाएँगे। राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताश मेरे विरुद्ध सदैव बादशाहके कान भरते रहते थे कि वह मेरे बजाय खुसरूको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दें। मुझे अपने पिताजीसे मिलनेका बहुत कम मौक़ा मिलता था। एक बार पिताजी बीमार हुए। यह खबर सुनकर मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। वह मेरे साथ बड़ी मोहब्बतसे पेश आए और बहुत देर तक अपने पास बैठाए रखा।

जब राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताशको इस बातका पता चला, तो उन्हें बहुत अफ़सोस हुआ, और वह उस दिनसे मेरे पिताजीको मेरे विरुद्ध करनेके लिए अधिक प्रयत्नशील रहने लगे। जब पिताजीकी तबीयत कुछ अच्छी हुई, तो राजा मानसिंहने उनसे निवेदन किया—'स्वास्थ्य-लाभके लिए मनोरंजन का होना भी आवश्यक है। आप बीमार रहनेपर भी हर समय राज्यके कार्योंमें लगे रहते हैं और अपने आरामकी तरफ़ कुछ ध्यान नहीं देते। यदि आज्ञा हो, तो सरकारकी तफ़रीहके लिए हाथियोंकी कुश्ती कराई जावे।' बादशाहने इसकी स्वीकृति दे दी। राजा मानसिंहने मेरे आवरूप नामक हाथीके साथ खुशरूके गरांवार हाथीकी कुश्ती तै करा दी। मेरा हाथी खुसरूके हाथीसे कमज़ोर था। इस कुश्तीसे राजा साहबका यह उद्देश था कि यदि मेरा हाथी खुसरूके हाथीसे हार जायगा, तो बादशाहके दिलमें यह बात बैठ जायगी कि खुसरूका भाग्य मेरे भाग्यसे बलवान है। अतः खुसरूको ही उत्तराधिकारी बनाना चाहिए। क्योंकि पिताजीको शगुन लेनेका शौक़ था, और वह ऐसी बातों पर बहुत विश्वास करते थे। चुनांचे (पानीपतकी) लड़ाईके बाद जब हीमूको गिरफ़्तार करके उनके सामने लाया गया, दारोंने कहा—'आप अपने दस्ते-मुबारिकसे इसका क़त्ल कीजिए।' तो मेरे वालिदने जवाब दिया—'मैं इस क अब क्या मारूँगा! मेरे नज़दीक तो यह उसी वक्त म था, जब मैंने (शगुन लेनेके लिए) इसकी हाथ-पैर त तस्वीर बनाई थी।'

जब मुझे इस कुश्तीकी सूचना मिली, तो बड़ी चिन्ता मगर अब हो ही क्या सकता था? बादशाह इसकी चुके थे। कुश्तीकी तारीख नियत हो चुकी थी और मुनादी करा दी गई थी। आखिर कुश्तीका दिन आया दोनों हाथियोंको मैदानमें लाया गया। बड़े-बड़े राजकर्मचा सरदार उपस्थित थे। स्वयं बादशाह भी महलके झरोखे तशरीफ़ रखते थे। पिताजीकी आज्ञासे मैं और घोड़ोंपर सवार होकर दंगलमें आए। मेरा दिल बहुत कि न मालूम इस कुश्तीका क्या परिणाम हो। और बार अपने पीर सलीम चिश्तीका स्मरण करता था कि उनकी मेरे हाथीको सफलता प्राप्त हो। मेरा हाथी बड़ी अकड़ अखाड़ेमें खड़ा हुआ था। उसकी आँखोंसे चिनगारी निक थी। ऐसा मालूम होता था कि आजकी कुश्तीके महत्त अच्छी तरह समझ गया था। महावतका इशारा पाते ही खुसरूके हाथीपर झपटा, और दोनों हाथी ऐसे ज़ोरसे देखनेवालोंके दिल हिले जाते थे। मेरा हाथी यद्यपि था; लेकिन मेरे पीरकी बरकत और मेरे भाग्यसे उसने देरमें खुसरूके हाथीको अखाड़ेसे भगा दिया। चारों वाह-वाह होने लगी, और मेरे मित्रोंको बड़ी खुशी हुई। के चेहरोंपर हवाइयाँ उड़ने लगीं और उन्हें बड़ी निराशा हुई

लेकिन यह लोग बड़े चालाक थे। जब उन्होंने देखा मेरा हाथी जीत गया है, तो फ़ौरन शाही फ़ीलखानेसे एक हाथी मँगाकर मेरे हाथीके सामने खड़ा कर दिया कि अब साथ कुश्ती होगी। मैंने यह देखा, तो अपने आदमि हुक्म दिया कि शाही फ़ीलवानसे कहो, इस हाथीको वापस जाय; परन्तु वह मेरे दुश्मनोंका भेजा हुआ था। ऐसा करनेके लिए तैयार न हुआ और मेरे हाथीसे मुठ करना चाहा, तो मैंने अपने आदमियोंसे कह दिया कि महा ज़बरदस्ती बाहर निकाल दो। मेरे आदमियोंने मार-पीटकर वापस भगा दिया।

बादशाह महलके झरोकेमें बैठे हुए थे। खुसरू उनके दौड़ा हुआ गया, और शिकायत की कि शाह-भाई (शाहजादा सलीम) ने शाही फ़ीलवानको पिटवाया है और उसको

---

* 'तुज़्क जहाँगीरी' फ़ारसीका एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें सम्राट जहाँगीरका आत्म-चरित तथा दरबारमें रहनेवाले मुंशियोंके रोज़नामचे हैं, जिनमें तत्कालीन राजनीतिक तथा अन्य घटनाओंका बड़ा मनोरंजक वर्णन है। यह विवरण सम्राट जहाँगीरके आत्म-चरितके एक अंशका भावानुवाद है। इसमें उर्दू तथा अंगरेज़ीके अनुवादोंसे सहायता ली गई है।—अनु०

Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

बेइज़्ज़ती की है। बादशाहने मेरे पास शाहज़ादा खुर्रम (शाहजहाँ) को भेजा कि 'वजह दरयाफ्त करो, शाही फ़ीलवानको क्यों पिटवाया गया है?' मैंने खुर्रमको समझाया कि तुम पिताजीसे अर्ज करना—'यदि शाह-भाई (सलीम) के हाथीसे शाही हाथीकी कुश्ती होती, तो जहाँपनाहकी शानमें गुस्ताखी होती। इसलिए फ़ीलवानसे कहा गया कि हाथीको वापस ले जाय। जब वह नहीं माना, तो शाह-भाईके आदमियों और शाही महावतमें हाथापाई हो गई। इसमें शाह-भाईका कोई क़सूर नहीं है। उनके नौकरोंसे जो खता हुई है, वह माफ़ की जावे।' शाहज़ादा खुर्रमने बड़ी चतुराईके साथ बादशाहके सामने मेरी सफ़ाई पेश की; लेकिन मेरे मुखालिफ़ सरदार वहाँ मौजूद थे और बादशाहको भड़का रहे थे, इसलिए शाहज़ादा खुर्रमकी बातोंका उनपर कोई असर न हुआ, और इस घटनासे उनके दिलको बहुत दुःख पहुँचा।

इस उत्सवके बाद पिताजी महलोंमें तशरीफ़ ले गए। उनका स्वास्थ्य तो पहलेसे ही खराब था, शामको फिर बुखार चढ़ आया। जब मैं मिज़ाज-पुर्सीके लिए सेवामें उपस्थित हुआ, तो उनकी हालत अच्छी नहीं थी। मैंने खुदासे दुआ की कि उन्हें जल्द आराम हो जाय। दूसरे दिन मैं फिर नावमें बैठकर पिताजीके पास जानेके लिए रवाना हुआ। जब किश्ती किनारेपर पहुँची, तो मेरा एक मुसाहिब ज़ियाउद्दीन दौड़ा हुआ आया और कूदकर किश्तीपर चढ़ गया। वह बहुत घबराया हुआ था। उसने कहा—"आपके खिलाफ़ बड़ी साज़िशें हो रही हैं। आज राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताशने अमीरों और सरदारोंके सामने कहा—'यह बात आप सबको मालूम है कि बादशाह शाहज़ादा सलीमसे नाराज़ हैं और बेटेके बजाय अपने पोते खुसरूको उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं। लेकिन सलीम अपनी बादशाही चाहता है। इस वजहसे शाही खान्दानमें लड़ाई छिड़ने का खतरा है। ऐसी दशामें हम सबका कर्त्तव्य है कि इस आनेवाली विपत्तिको रोकें।' चूँकि राजा मानसिंह और मिर्ज़ा साहब को सब अमीरोंसे ज़्यादा सम्मान और अधिकार प्राप्त हैं, इसलिए किसीने भी उनकी बातका विरोध नहीं किया, और खामोशीसे सुनते रहे। सिर्फ़ हुज़ूरका जो कुटुम्बी समन्दखाँ खड़ा था, उसने गरजकर कहा—'तुम व्यर्थको बकवास करते हो। बादशाहकी हरगिज़ यह इच्छा नहीं है कि खुसरूको अपना उत्तराधिकारी बनावें। यह बात हमारे खान्दानी दस्तूरके खिलाफ़ है कि बड़े बेटेकी मौजूदगीमें छोटे बेटे या पोतेको राजगद्दी दी जाय।' समन्दखाँकी बातोंका इन दोनोंने कोई जवाब नहीं दिया, और वह इन्हें बुरा-भला कहता हुआ वहाँसे चला गया। लेकिन उसके चले जानेके बाद राजा मानसिंहने सब अमीरों और सरदारोंसे कहा—'बादशाहकी इच्छा पूरी करने और तैमूरी वंशके इस अनिष्टको रोकनेका एक उपाय है, और वह यह कि सलीम-जैसे बाग़ीको गिरफ़्तार कर लिया जाय। वह रोज़ बादशाहको देखने आता है। आज जिस वक्त आवे, उसे फौरन हिरासतमें ले लो।' यह सुनकर कुछ अमीरोंने उनका समर्थन किया और कुछ खामोश हो गए। इसके बाद खाने-आज़म और मानसिंहने राजा रामदास कछवाहासे कहा—'तुम अपनी फ़ौज लेकर तुरन्त जाओ और खज़ानेकी हिफ़ाज़त करो। कहीं ऐसा न हो कि सलीमके आदमी उसपर कब्ज़ा कर लें।' यह सुनकर फ़ौजका बख्शी शेख फ़रीद बुखारी और दूसरे सरदार वहाँसे उठे और अपनी-अपनी फ़ौजोंमें चले गए, और मैं सीधा आपके पास दौड़ा हुआ आया हूँ, ताकि आपको वहाँ जानेसे रोकूँ।"

ज़ियाउद्दीनने यह भी कहा—जब मैं वहाँसे चला हूँ, तो सरदार शरीफ़खाँने राजा मानसिंहको समझाया कि तुमने उस दिन बादशाह सलामतसे भी पूछा था और उनकी मर्ज़ी यही पाई गई कि वे सलीमको ही अपना उत्तराधिकारी बनावेंगे। आज शाही खान्दानके प्रतिष्ठित सरदार समन्दखाँकी तक़रीरसे भी यही बात प्रकट हुई। इस वास्ते मेरी यह राय है कि तुम सलीमसे व्यर्थकी दुश्मनी मोल न लो और उससे सुलह-सफ़ाई कर लो। राजा मानसिंहने जवाब दिया—'हमें सलीमके पास चलनेमें कोई उज्र नहीं है; लेकिन वह हमसे नाराज़ है और हमें वहाँ जानेमें खतरा मालूम होता है।' सरदार शरीफ़खाँने कहा—'इसकी ज़िम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। शाहज़ादा सलीम तुम्हारे साथ बुरा बर्त्ताव नहीं करेंगे। जिस वक्त तुम चाहो, मैं तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ।'

ज़ियाउद्दीनकी यह बात सुनकर मैं तुरन्त अपने महलोंको वापस लौट आया। वहाँ कुछ मुसाहबोंने मुझसे कहा—'इस तरह शोहरत फैल रही है कि खुसरू तख्तपर बैठ गया है, इसलिए हुजूर भी अपनी बादशाहीका ऐलान कर दें और इस खुशीमें उत्सव मनाया जाय।' मैंने जवाब दिया—'पिताजी सख्त बीमार हैं, अतः मैं कोई ऐसा काम करना नहीं चाहता, जिससे उन्हें कोई तकलीफ़ पहुँचे। मेरा भरोसा खुदापर है, और यदि मैं इन्साफ़पर हूँ, तो वह मेरी मदद करेगा।'

थोड़ी देर बाद सरदार शरीफ़खाँ राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताशको साथ लेकर आया। वे अपनी हरकतोंपर बहुत शर्मिन्दा थे। गिड़गिड़ाकर मुझसे माफ़ी माँगने लगे। मैंने उनके साथ अच्छा बर्त्ताव किया, ताकि मेरी तरफ़से उनके दिलमें कोई शक न रहे।

शाही हकीम अलीखाँ पिताजीकी चिकित्सा कर रहे थे। उनके इलाजसे फ़ायदा होने लगा और बुखार उतर गया। लेकिन हिन्दू रानीने इस खयालसे कि जल्दी ताकत आ जाय, खूब घीमें भूनकर उन्हें उड़दकी दालकी खिचड़ी खिला दी। पचनशक्ति

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कमज़ोर थी, अतः यह गरिष्ठ भोजन हज़्म न हो सका और फिर ज़ोरका बुखार चढ़ आया। जब हकीम अलीखाँको इसका पता चला, तो वह बहुत नाराज़ हुआ, और कहा कि पथ्य और औषधके बारेमें औरतोंको बिना मेरी रायके कोई काम नहीं करना चाहिए।

मैं इलाजमें कोई दखल न देता था और हकीमजीसे भी बहुत कम बातें करता था—इस ख़यालसे कि खुदा न करे, यदि खराबी हो गई, तो मेरे दुश्मन यह मशहूर कर देंगे कि मैं हकीमजीसे मिलकर ग़लत इलाज करा रहा हूँ, ताकि जल्दी बादशाही मिल जाय। हकीम अलीखाँने बड़ी सावधानीसे इलाज करना शुरू किया; लेकिन मर्ज बजाय कम होनेके बराबर बढ़ता ही गया। जब जीवनकी कोई आशा न रही, तो राजा मानसिंह और खाने-आज़म मिर्ज़ा कोकलताश आपसमें मशवरा करके उनके पास पहुँचे। पिताजीको बुखार चढ़ा हुआ था। सब बड़े-बड़े अमीर और सरदार उनके पास बैठे हुए थे। राजा मानसिंह और मिर्ज़ा साहब पलंगके पास बैठ गए और बड़ी नम्रताके साथ कहा—'जहाँपनाह, खुसरूके बारेमें क्या आज्ञा है?' पिताजीने आँखें खोलीं; लेकिन कोई जवाब न दिया और इन दोनोंको देखकर करवट बदल ली। थोड़ी देर तक खाने-आज़म और राजा साहब खामोश बैठे रहे और फिर उस तरफ़ जाकर बैठ गए, जिस तरफ़ पिताजीने मुँह किया हुआ था और फिर वही बात दोहराई—'सरकार, खुसरूके लिए क्या हुक्म है?' पिताजी ने क्रोधके लहज़ेमें कहा—'मानसिंह, तुम चंगेज़ी क़ानून (मुग़लों के पूर्वज चंगेजखाँके बनाए हुए नियमों) को नहीं जानते। हमारे यहाँ बेटेके होते हुए पोतेको राजगद्दी नहीं मिल सकती।' यह जवाब सुनकर यह दोनों सहम गए और सब अमीरोंके सामने इन्हें लज्जित होना पड़ा।

इसके बाद पिताजीने मेरे बारेमें दरयाफ़्त किया कि शेखोजी (शाहज़ादा सलीम) कहाँ है? वह हमारे पास क्यों नहीं आता? इन दोनोंने जवाब दिया—'सरकार, वह आगरेमें ही है। मालूम नहीं, उसकी क्या नीयत हैं। उसने अपने महलपर तोपें चढ़ा रखी हैं।' मेरे पक्षके लोग भी वहाँ बैठे हुए थे। उन्होंने कहा—'सरकार, राजा साहब ग़लत फ़रमाते हैं। असल वजह यह है कि राजा साहबने महलके फाटक बन्द कर दिए हैं कि सलीम अन्दर न आने पाए और ऊपर तोपें चढ़ाई गई हैं। यह देखकर शाहज़ादा सलीमने भी हिफ़ाज़तके ख़यालसे अपने महलपर तोपें रखवा दी हैं। उनका कोई बुरा इरादा नहीं है।' यह सुनकर पिताजीने राजा मानसिंह और खाने-आज़मकी ओर क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखा और कहा—'ऐसा क्यों हुआ? अभी दरवाज़े खोल दो और शेखोजीको मेरे पास बुलाओ।' फिर राजा मानसिंहको हुक्म दिया—'तुमको हमने बंगालका सूबेदार बनाया। तुम वहाँ चले जाओ और काम सँभाल लो।'*

शाही कर्मचारी दौड़े हुए आए और मुझे महलमें ले गए। मैं पिताजीके पैर पकड़कर रोने लगा। उन्होंने दिया—'ताज और शाही तलवार लाओ।' जब ये चीजें आ गईं, तो मुझे आज्ञा दी—'ताजको अपने सिरपर रखो और तलवार कमरमें बाँध लो। मैंने आज तुमको हिंदुस्तानका बादशाह बनाया।' मैंने बड़े संकोचसे पिताजीकी आज्ञाका पालन किया और फिर उनके पैर पकड़कर रोने लगा। पिताजीने मुझे छातीसे लगा लिया और मेरे सिरपर हाथ रखकर दुआएँ दीं। बहुत देर तक उनके पास बैठा रहा।

इसके बाद मैं शेख फ़रीद बुखारीसे मिला। यह शेख सलीम का बख्शी है। पिताजी इसपर बहुत भरोसा करते हैं। राज्यकी सारी सेनाएँ इसके क़ब्ज़ेमें हैं। राजा मानसिंह और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकलताशकी फ़ौजें भी इसके असरमें हैं। फ़रीद बुखारीने मुझसे कहा—'आपके बेटे खुसरू अपने लोगोंको एक हज़ार रुपए रोज़ाना देते हैं, ताकि आड़े वक्त हम उनकी सहायता कर सकें। लेकिन हमने सारी उम्र पिताजीका नमक खाया है और आज उन्होंने सबके आपको अपना उत्तराधिकारी बना दिया है, तो जो कुछ हो सकेगा, हम आपकी सहायता करेंगे और खुसरूको कोई मदद न देंगे।'

मैंने फ़रीद बुखारीका शुक्रिया अदा किया। वह कहने लगे—'आप मेरे मकानपर चलिए, मैं सब इन्तज़ाम ठीक करके वहीं आता हूँ।' मैं फ़रीद बुखारीके मकानपर चला आया। वहाँसे पिताजीके स्वास्थ्यकी खबरें मँगाता रहा। नौकर देखकर आते थे और मुझे उनकी तबीयतका हाल सुनाते। आखिर एक आदमी भागा हुआ आया और कहने लगा कि आपके भाग्यका सितारा चमकनेवाला है। बादशाह चन्द महमान हैं। मैंने उसे डाँटकर कहा—'क्या बकता है, मैं अपने पिताकी मृत्यु नहीं चाहता। जब तक उनका साया मेरे सिरपर बना रहे, अच्छा है।' नौकर गिड़गिड़ाकर माँगने लगा। लेकिन जो बात होनी थी, वह होकर रही। थोड़ी देरमें पिताजीके श्वास पूरे हो गए। मैं दौड़ा हुआ में पहुँचा। जब अन्त्येष्टि-क्रियाकी सब तैयारी हो चुकी अर्थी उठाई गई। मैंने भी कन्धा दिया और हम सब उस शरीरको खाकके सुपुर्द कर आए।

* अकबरकी इस आज्ञामें यह रहस्य था कि यदि राजा बंगाल चले जायँगे, तो खुसरूकी पीठ कमज़ोर हो और राजगद्दीके लिए आपसमें झगड़े न उठेंगे। —अनु

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महान्

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

कर्मक्षेत्रमें प्रविष्ट होकर तुमसे साक्षात्कार हुआ था। तुम्हारी सुनी हुई सुकीर्त्तिसे मन प्रभावित हुआ था। मनको अपनी अनुकूलताका आभास मिला था। मैं तुम्हारे सम्पर्कमें आई। प्रथम साक्षात्कारमें ही तुमने मेरे सुन्दर रूपको विमुग्ध दृष्टिसे निहारा था। मनने लक्ष्य किया—तुम्हारी उन आँखोंमें सौन्दर्यके प्रति अनुराग ही नहीं, पिपासा भी है। वह पिपासा नहीं है, जिसकी परिभाषा कला है। सत्यं शिवं सुन्दरम् नहीं—वह पिपासा, जिसका नाम है वासना और जिसकी एक परिभाषा है पाप।

अपने संस्कारमें इस पाप-पुण्यकी व्याख्याको विशेष महत्व मिला है। जीवनने अपने विकासमें ही विश्लेषण करनेका अवसर पाया है। फल-स्वरूप अपनी मनोदशा पापकी परिभाषाकी ओर नहीं, उस ओर अनुरक्त है, जिसका नाम है सदाचार और जिसकी परिभाषा है पुण्य।

परिस्थितियोंने प्रारम्भसे ही इस प्रकारकी पिपासाके प्रति, जिसे मैंने तुम्हारी दृष्टि-दानमें पाया था, मनमें विद्रोह उत्पन्न कर दिया था। उसके विरुद्ध उत्पन्न हुई मेरे मनकी क्रान्ति उसके किसी भी स्वरूपके प्रति उदार नहीं रह सकती थी। वह उसके हर पहलूको पापसे भरा पाती थी, पुण्यसे बहुत दूर।

कितने ही दिनों तक वह क्रान्ति बलवती रही। उसने विस्फोट उत्पन्न करके अपने मनको उसके प्रति पूर्ण विद्रोही बना दिया। मनने अपनी कितनी ही कोमल, स्निग्ध चेष्टाओंको उस क्रान्तिमें झोंक दिया। क्रान्ति सफल हुई। विद्रोह शान्त हुआ। मनको प्राप्त हुई विजय—आत्म-दमनकी सफलता; किन्तु जीवन में महान् विरसता, अभाव और अभावकी तृष्णा। दमनने निष्ठा दी, दृढ़ता दी और दिया मनको अपूर्व पराक्रम; आत्म-अभिमान, आत्म-बल, किन्तु आत्म-अन्तोष नहीं; आत्म-विजय, किन्तु असन्तोषकी पराजयके साथ; प्रवृत्तियोंकी जय, किन्तु अभाव की तृष्णाके साथ।

तृषित मनने विरसताको अपनाकर रसका अन्वेषण नहीं किया। प्रकृतिने स्वतः ही मनमें जो रसके स्रोत स्फुरित किए थे, उस क्रान्तिकी ज्वलन्त ज्वालाने उन्हें शुष्क कर दिया। दमनकी देवीने अनुरंजित उद्गारोंको, उत्फुल, स्निग्ध चाहनाओंको आहुतिके रूपमें ग्रहण किया। अतः मनकी कोमल, सरल, प्रखर, सुखद, तृप्तिप्रदमय रसोंका विनाश होकर वह स्थल मरुभूमि बन गया। हास्यकी इतिश्री हुई, कटुता उद्भासित हुई, प्रणयकी अनुभूति नष्ट हुई, कठोर कर्मनिष्ठा जाग्रत हुई; किन्तु मनकी तृष्णाने, उस तृष्णाकी मौलिकताने, पराजय स्वीकार नहीं की। वह भी अपने कर्मक्षेत्रमें तटस्थ रही।

मनको आत्म-प्रतारणा विलुप्त नहीं हुई, अन्तस्तलकी भीतरी सतहमें समाकर भयभीत-सी, व्यथित-सी छिप गई। क्रान्तिने उसे कुचल दिया; पर विस्फोटकी चिनगारियाँ उसे छू नहीं पाईं। वह शनैः-शनैः भीतरकी सतहको कुरेद-कुरेदकर सुरंग बनाती गई और राह बनानेकी क्रियामें संलग्न सामिग्रियोंकी अनजानमें माँग करती रही। अभावकी पूर्त्ति! पर पूर्त्तिमें सुख नहीं, आनन्द नहीं, हास्य नहीं, रस नहीं है। केवल कर्मक्षेत्रकी व्यापक कर्मनिष्ठ और उसी कर्मनिष्ठाकी प्रेरणा-स्वरूप तुमसे साक्षात्कार हुआ।

यहींपर अब अतीतकी एक बात रूपकमें सुनो। एक सुन्दर सुकुमार कलिका मनमें निश्दल शैशव भरे थी; किन्तु विकासमें यौवन छलछला आया था। वह अपने यौवनके मद और रूपकी मादकतासे बेसुध थी। उस विकसित कलिकाका रस पान करनेके लोभी मधुकरने उसके कानमें कुछ गुनगुना दिया। रूप-यौवनकी मद-भरी प्यालियोंकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया। कलिका लजा उठी। उसके कपोल अरुणिम हो उठे। क्रूर मधुकरने विकास की उस पुनीत स्निग्धताको अपनी पिपासाका साधन बनानेका उपक्रम किया।

कलिका एक क्षणके लिए भयभीत हुई; पर आन्तरिक प्रेरणाने उत्तेजना दी। प्रवृत्तिको अतीव दृढ़ता प्राप्त हो गई। वह उस प्रकृतिके निर्माल्यका ज़बरन अपहरण देख नहीं सकी। उसे केवल भावावेश ही में मधुकरकी अपने प्रति प्रकाण्ड घृणाका दिग्दर्शन मिला। उसके साहसमें शिथिलता आ गई। कलिकाकी विजय हुई। पर उसकी उसी विजयने, उसी घृणाने, उसके जीवनमें क्रान्ति, विद्रोह और इतना हाहाकार भर दिया।

तुम्हारी आँखोंमें भी उसी पिपासाका सामंजस्य देखकर नैराश्यकी चोट लगी, मनमें किंचित् घृणाका संचार हुआ; पर विजयाभिमानने, उद्भासित मनकी कर्मनिष्ठाने, तुमपर भी विजय पानेका संकल्प किया। प्रवृत्तियोंमें संघर्ष प्रारम्भ हुआ; पर इस बार मेरी विजय नहीं हुई। अभाव खुल खेला। आत्मा-प्रतारणा स्फुटित हुई। किन्तु मनोदशाने परिवर्त्तनका बाना पहना। तुम्हारी दृष्टिकी उस पिपासाने, जिसका नाम वासना है और जिसकी व्याख्या पाप है, मेरे अन्तर्जगत्को पुण्यसे सम्पर्क रखनेवाली कोई दिव्य विभूति प्रदान की। विरसतामें सरसताका प्रवाह मिला और मरुभूमि शस्य-श्यामला भूमि बन गई।

मेरी कर्मनिष्ठाके प्रहारसे तुम्हारी आँखोंकी पिपासाने हार नहीं मानी; किन्तु वह भी परिवर्त्तित होकर कदाचित् सरल ममताके प्रवाहमें डूब गई, जिसकी व्याख्या पाप नहीं, पुण्य है; वासना नहीं, वासनाका पुनीत परिवर्त्तन है। उस दृष्टि-दानसे मैंने पाया आत्म-सन्तोष, आत्म-तृप्ति, आत्म-शान्तिका महान् दिग्दर्शन और अभाव-पूर्त्तिके लिए महान् पीड़ाकी निधि।

अतः आज तुम मेरे लिए घृणाके पात्र नहीं, महान् हो!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरच्चन्द्रका दृष्टिकोण

श्री गोपाल हालदार

मानवता-बोध इस युगके साहित्यका एक बहुत बड़ा सत्य है। वर्त्तमान कालका साहित्य एक प्रकारसे उसी मनुष्य की 'मानवीयता'का घोषणा-पत्र हो उठा है। आजका साहित्य जैसे कहना चाहता है : वह ईश्वरीय नहीं, मानवीय है, और वह अपना रास्ता स्वयं निर्माण करता चला जाता है। कारण, युग-युगसे वह चलता चला आ रहा है। उसे कितनी ही बाधाएँ दूर करनी पड़ती हैं और उसकी मानवीयता—उसका स्वरूप—और भी उज्ज्वल, और भी प्रस्फुटित हो उठती है। पर बात यह है कि इस सत्यका और भी नए रूपमें इसी युगने आविष्कार किया है, और यह आविष्कार किया गया है अत्यन्त वास्तविक कारणों तथा सभ्यताके वास्तविक विकासकी भावनासे। जिस धनिकतन्त्रने सामन्ततन्त्रकी रीढ़ तोड़कर कहा—'तुम सिर्फ़ दास नहीं हो, मालिक नहीं हो, स्त्री नहीं हो, पति नहीं हो, तुम मनुष्य हो' और जिसने व्यक्तिकी स्वाधीनता स्वीकार की, जिससे मनुष्यने नए रूपमें समझा कि 'मनुष्य ही सब-कुछ है', वही धनिकतन्त्र इस सत्यको कुचल डालनेकी चेष्टा कर रहा है। वह प्रमाणपत्रवाला आदमी चाहता है, मज़दूर चाहता है, किरानी चाहता है; पर सिर्फ़ मनुष्यको सहन करना नहीं चाहता। किन्तु बात यह है कि मनुष्यकी इस मानवीयताका आविष्कार नए रूपमें इसी धनिकतन्त्रने किया था। अब वह इससे बच भी नहीं सकता।

प्रसंगवश यहाँ हम यह बता देना चाहते हैं कि यह 'मानवीयतावाद' या 'मानवता-बोध' किस अर्थमें नया है। जबसे मनुष्यने अपने-आपको मनुष्यके रूपमें पहचाना, तभीसे उसके अन्दर एक अर्थमें मानवता-बोधकी भावना पैदा हुई। किन्तु उसका वह बोध बिल्कुल अस्पष्ट था—वहाँ तो मनुष्य प्रकृतिके हाथका खिलौना-मात्र था। इसीसे उस समयके मानवता-बोधका अर्थ मनुष्यकी मर्यादाका बोध नहीं, मनुष्यकी असहायताका बोध था, यानी देवताकी महिमाका बोध—ये देवता मंगल-काव्यके देवी-देवता भी हो सकते हैं और यूनानी स्वर्गके जीउस या नियति भी हो सकते हैं। सभ्यताके उस प्रथम स्तरमें मानवीयता-बोध इससे आगे नहीं बढ़ सका। भारतवर्षमें हमने मनुष्यकी इसी मर्यादाको 'तत्वमसि' कहकर अभिनन्दन किया। इसका असल मर्म यह है—ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है—तुम ब्रह्म हो सकते हो, पर हँसने और रोनेवाले मनुष्यके रूपमें तुम मिथ्या हो। अर्थात् मनुष्यकी इसी मर्यादाने वास्तवमें मनुष्यको पूर्ण रूपसे 'नस्यात्' कर दिया। यूनानियोंने मनुष्यको इस रूपमें मर्यादा न देकर वास्तवमें जीवनके रूपमें मर्यादा दी थी। इसीसे सारा यूनानी साहित्य आज भी आश्चर्यजनक रूपमें इतना आधुनिक जान पड़ता है। वहाँ मनुष्यकी मानवीयता स्वीकार कर ली गई; पर साथ ही यह भी माना गया कि उस मनुष्यको देवी-देवता बनाती-बिगाड़ती है। इसीसे मनुष्यके मनमें वह करुण और इतना दुखान्त जान पड़ता है। सच बात तो यह है कि यूनानियोंकी दृष्टिमें सिर्फ़ यूनानी ही मनुष्य थे—बर्बर मनुष्य मनुष्य नहीं थे और हेल्टर तथा गुलाम भी मनुष्य नहीं थे। प्राचीन समाजमें अपनी ही श्रेणीके आदमीको मनुष्य समझा जाता था, दूसरोंको शूद्र या पशुओंकी श्रेणीका। इस समय मानवता-बोध यहीं तक सीमित था। फिर भी पुनर्जागरण-कालमें इस यूनानी मानवता-बोधने भी मनुष्यको बड़ा बना दिया था। 'मनुष्य कैसा आश्चर्यजनक जीव है'—इसी की इस युक्तिका मानो समस्त पुनर्जागरण-कालीन साहित्यने आविष्कार किया था। इसके बाद मनुष्यको केवल दास या बेगार अथवा केवल गृहिणीके रूपमें मानना कठिन हो गया। इसीलिए धनिकतन्त्रके उद्बोधकोंको मनुष्यके अधिकारोंकी घोषणा करनी पड़ी। बर्न्सने इसी सत्यको जानकर कहा—'मनुष्य मनुष्यके लिए सब-कुछ है।'

अब मानवता-बोध परिष्कृत होकर नए रूपमें प्रकट होने लगा। उसने हमारे पुराने समाजको तोड़-फोड़ डाला और उसकी भनक हमारे कानोंमें पड़ी। इस प्रकार हमने भी इस पृथिवीके मानवका नए रूपमें आविष्कार किया। यह आविष्कार हमने प्रधानतया यूरोपीय साहित्य और उसकी यात्राका रूप देखकर ही किया था (यूनानी साहित्यके द्वारा ही पुनर्जागरण-कालीन मनुष्यने भी नए रूपमें इसीका आविष्कार किया था)। हम भी निश्चित रूपसे इसका आविष्कार कर सके। कारण, नई सभ्यताकी यही नई वाणी थी। ठीक इसी कारण इसे 'तत्वमसि' या चण्डीदासके 'सहज मनुष्य'के साथ मिलाकर करके देखना ठीक नहीं है। आज हमें ऐसा जान पड़ता है कि चण्डीदासकी वाणी उसीका परम वाणी-रूप था; किन्तु बीसवीं शताब्दीके प्रथम महायुद्धके बादके उन बंगालियोंकी दृष्टि यही है, जिनकी दृष्टिमें मानव-धर्म चरम सत्य हो उठा है। इसी चण्डीदासके उसी आश्चर्यजनक सत्यको लेकर कितने ही आश्चर्य-चकित हो उठे थे। चण्डीदासने भी मानवको मानवता-बोधकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि सहज बुद्धिकी दृष्टि सत्यके रूपमें पहचाना था। उस तन्त्रमें मनुष्य एक दृष्टिसे सत्य है, दूसरीसे वैसा ही मिथ्या भी है। एक दृष्टिसे वह है, कारण उसकी जीवन-लीला एक परम स्वात्मीयता है; दूसरी दृष्टिसे वह मिथ्या है, कारण वह स्वात्मीय है, परन्तु तो और कुछ है। 'सहज मनुष्य' बिल्कुल साधारण मनुष्य है। आधुनिक मानवता-बोधसे उसका अन्तर यही

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

आधुनिक मानवता-बोध सामाजिक मनुष्यको ही मनुष्यके रूपमें स्वीकार करता है, समाजसे अलग वह किसी 'सहज मनुष्य'की कल्पना नहीं करता। समाजके बनने-बिगड़नेके बीच ही वह उसकी क्रम-प्रकाशित सत्ताको भी देखता है, उसके क्रम-उद्घाटित सम्भव्यताका सन्धान पाता है। आधुनिक मानवता-बोधका मूल-मन्त्र है एकमात्र मनुष्य, जो आध्यात्मिक सत्ता, आत्मा या देवता न होकर किसी समाजका एक जीव तथा इसी सृष्टिका एक मनुष्य है। मनुष्यका ठीक यह रूप सभ्यताके और किसी स्तरपर देखा जाना सम्भव न था,—वह सम्भव हुआ एकमात्र इस स्तरके समाजके आर्थिक विकासकी एक उन्नत सीढ़ीपर।

जब हम आधुनिक जीवन-यात्राके सम्पर्कमें आते, तो अपने समाजमें भी निश्चय ही इस मानवता-बोधको प्राप्त करते। जब हम यूरोपके धनतान्त्रिक युगकी शिक्षा-दीक्षा, साहित्य और दृष्टि-भंगीका ज्ञान प्राप्त करते, तो इस मानवीयताको हम और भी तीव्र रूपमें अनुभव करते। मनुष्यको मनुष्यके रूपमें ग्रहण करनेके लिए नवीन शिक्षित मध्यवित्त श्रेणीके हम सब लोग प्रस्तुत थे। निम्न-मध्यवित्तवाले समाजके हम लोगोंको राष्ट्र, समाज और आर्थिक क्षेत्रमें तो यह 'मानव-अधिकार' और भी कम मिलता था। इसीसे यह मानवता-बोध हम लोगोंके लिए और भी तीव्र था, और भी तीक्ष्ण था—समस्त प्राण-मनसे एक वेदना-मय अंगीकार था। शरच्चन्द्रमें भी हमने ठीक वही देखा—वही हृदय देकर हृदयको पहचानना। मानवता-बोध सिर्फ़ उनका दृष्टिक्षेत्र नहीं था; उनकी दृष्टि भी वही सप्रेम दृष्टि थी, उनका पथ प्रेमका पथ था—प्रेम करनेका पथ। वे जैसे हमारे साधारण पाठकोंके साथ एकात्म हो गए थे।

पर, सचमुच शरच्चन्द्र हमारे साथ एकात्म हो गए थे, इसे हम और भी बादमें समझ सके। हमारे साथ क़दम मिलाकर वे स्वदेशीके पथपर चलनेके लिए आगे बढ़े। शिक्षा-प्रणालीका विरोध करनेपर उनका कविगुरुके साथ मतभेद होनेपर भी वे आगे ही बढ़ते गए। फिर वे हम लोगोंकी पराजयसे व्यथित और आहत हुए, और हमारी अन्ध-देशप्रति तथा अन्ध-विद्वेषका स्तोत्र—'पथेर दाबी'—लिखने बैठे, जो हमारे तत्कालीन राजनीतिक नैराश्य और दृष्टिहीनताका एक अग्निमय परिचय है। उसमें निम्न-मध्यवित्तवालोंकी वेदना और विष तो है; पर उसमें किसी पथका निर्देश नहीं है। हम निम्न-मध्यवित्तवाले इसे नहीं जानते थे कि हमारे अपने ही आदमी शरच्चन्द्र इस बातको जानेंगे कैसे? हम लोग राजनीतिक पराजयमें जन-जागरणकी बात सोच रहे थे; पर उसके बारेमें हमारी कोई स्पष्ट धारणा या निश्चय न था। इसीलिए सव्यसाची और तलवारकी जन-विद्रोह-सम्बन्धी वक्तृताएँ बिल्कुल उद्देश्यहीन और अवलम्बनहीन हैं। बुद्धिको हृदय-वृत्तिसे छोटी करनेपर ऐसा ही संकट उत्पन्न होता है। जीवनमें बुद्धिका स्थान सर्वप्रथम है, यद्यपि हृदय-वृत्तिका स्थान सबसे ऊपर है। साधारणतया हम लोग उनमें हेर-फेर किया करते हैं, इसीसे चिन्तन और कर्ममें गलती रह जाती है। इसी कारण उस समय हम नहीं जान सके—शरच्चन्द्र भी नहीं देख सके—कि जन-शक्ति ही इस कालकी सृष्टिकी अधिकारिणी है और इसीसे वह विप्लवी शक्ति है।

शरच्चन्द्र हमारे इतने अपने थे, इसीसे वे हम लोगोंको छोड़ कर नहीं चल सकते थे। यही नहीं, जिस 'विद्रोह'की हमने आलोचना की है, वहाँ भी वे हम लोगोंके सहयात्री ही थे—वे अग्रदूत होकर कभी नहीं चले। जिस परिमाणमें हम निम्न-मध्य-वित्त समाजवाले आगे बढ़ सके थे, वे भी उसी परिमाणमें हम लोगोंका हाथ पकड़कर आगे बढ़े थे। हम लोगोंकी इस यात्राका प्रत्येक मोड़ मानो उनकी सृष्टिसे सुचिह्नित हुआ है। वे विद्रोह का झण्डा उठाकर चले, फिर भी हम लोगोंको आश्वासन देनेके लिए उन्होंने कई छलनाओंका भी सहारा लिया था। यदि वे ऐसा न करते, तो हम लोग उनके साथ चलनेके लिए राज़ी भी न होते। 'सावित्री'से आत्म-त्याग कराना ही होगा। 'किरणमयी' को पागल बनाना स्वाभाविक ही था। इसके सिवा उसकी और कोई गति भी थी? इसी तरह पार्वती वृद्ध भुवनमोहनके सिरपर हाथ फेर देती है, मृणाल वृद्ध पतिकी सेवा बाहरसे विशुद्ध रूपमें करती है। अन्तमें कमल तकको उन्होंने शुद्धाचारिणी बना दिया है, और सतीशसे लेकर जीवानन्द तक कितने ही पुरुषोंको बिना शुद्ध किए योंही छोड़ दिया है। यदि ऐसा न होता, तो क्या हम सब भी उन्हें छोड़ देते?

हमारा यह मानसिक दैन्य और अस्पष्टता शरच्चन्द्रकी सृष्टिके प्रत्येक स्तरमें निहित है। जब हम लोग जितना भी अग्रसर हो सके, तब उन्होंने उतनेको ही परिष्कृत रूपमें पेश किया। 'गृहदाह' की अचला ही जैसे हम लोगोंके उस समयके विचारोंकी सीमाका निर्देश करती है। इसके बाद 'शेष प्रश्न'के प्रश्नका उत्तर हम लोग नहीं जानते; शरच्चन्द्रने भी उत्तर नहीं दिया है। अथच, मानवको वे इतना प्यार करते हैं, प्यार करनेके रहस्यको वे इतनी अच्छी तरह समझते हैं कि मनुष्यके इस प्यारको वे अस्वीकार करना भी नहीं चाहते। किन्तु प्रश्न प्रश्न ही रह जाता है—मनुष्यके इतिहासमें जो नया उत्तर प्रकट हो रहा था, उसे हम साधारण पाठक नहीं पढ़ सकते थे। कारण, उस समय हमारे समाजके चारों ओर एक ऐसा अन्धकार छा रहा था, जिसमें हम अपना पथ नहीं ख़ोज पा रहे थे। उस समय हम यह भी नहीं जान पा रहे थे कि हम आगे चलें या पीछे। ऐसे ही समयमें हम लोगोंकी मानसिक अस्पष्टता और पश्चिमीपनकी छाप श्रीकान्त (चतुर्थ खण्ड) और विप्रदासमें फूट पड़ी। फिर एक बार जैसे शरत् बाबू कहना चाहते थे—सनातनके पक्षमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभी भी कहनेके लिए कुछ बाक़ी है। श्रीकान्त चतुर्थ पर्वकी अस्पष्टता और विप्रदासकी गति-विमुखताकी बात सोचनेपर एक और बातका भी ध्यान रखना होगा कि शरच्चन्द्र उस समय जीवनकी अन्तिम घड़ीमें पहुँच गए थे, उनकी शक्ति निस्तेज होती जा रही थी। द्वितीय, इस निस्तेज शक्तिको लेकर वे जिस जीवन-चित्रको आँकने बैठे थे, वह उनका पूर्वपरिचित निम्न-मध्यवित्त समाजका जीवन-चित्र न था। उन्होंने इस जीवन और इस चरित्रका चित्रण अपने पूरे अधिकारके साथ नहीं किया और न ऐसा करनेका समय ही था। बंगालका निम्न-मध्यवित्त समाज भी उस समय आर्थिक और सामाजिक विपर्ययके आगे-पीछे चल रहा था।

यह कहना अनावश्यक है कि जो साधारण पाठक शरच्चन्द्रके लक्ष्य थे और शरच्चन्द्रके अपने थे, उन्हें बंगालका जन-साधारण कहना ठीक न होगा। बंगालका निरक्षर, निम्न-मध्यवित्त समाज ही साधारण पाठक है। उनके साथ जन-साधारणके धन-वैषम्यका अन्तर उस समय भी बहुत ज़्यादा न था—अब तो वह और भी कम होता जा रहा है। किन्तु वे 'भद्र लोग' थे, इस हिसाबसे जन-साधारणके साथ साधारण पाठकोंकी जीवन-यात्रा और दृष्टि-भंगीका अन्तर पहले दुस्तर था—आज भी वह कम नहीं है। यद्यपि कोई भी लेखक अपना लेख निरक्षरोंके लिए नहीं लिखता; फिर भी जिनको लक्ष्य करके लिखा जाता है, उनकी भावना-धारणा ज्ञात या अज्ञात रूपसे उनके लेखके रूपको अनुप्राणित करती है। इस प्रकार जिस सत्यकी सृष्टि हुई, उसे अन्य स्तरोंके पढ़े-लिखे लोग ग्रहण नहीं कर सकते, यह बात भी ठीक नहीं है। यह सत्य उनसे अपनी सत्ता स्वीकार कराकर ही रहेगा। इसी कारण यह सोचना हास्यास्पद होगा कि शरच्चन्द्र निम्न-मध्य-वित्तवालोंका जीवन चित्रित करते थे, इसीसे उनका आदर हुआ है। यह मध्यवित्त समाज तो आज नष्ट होता जा रहा है—उच्च-मध्यवित्तवाले ऊँचे उठकर पूँजीपति-श्रेणीमें परिणत हो रहे हैं और निम्न-मध्यवित्तवाले निम्नतर स्तरके वेतन-भोगी चाकरमें परिणत होते जा रहे हैं—अतएव निकट भविष्यमें शरच्चन्द्र अपने पाठक-समाजको खो बैठेंगे, राहुग्रासमें पड़ जायँगे। शुरूसे जो बात सच्ची है, उसे भुला देनेपर ही इस प्रकारकी हास्यास्पद बात कोई कह सकता है। और वह बात यह है कि शरच्चन्द्र स्रष्टा हैं, उन्होंने जीवनको देखा है, मनुष्यको चित्रित किया है, उनके पृष्ठोंमें जीवनका यथार्थ परिचय है, उनके चित्रोंमें अप्रमेय प्रमाण है।

इसी कारण शरच्चन्द्रकी त्रुटियों और गुणोंका लेखा-जोखा लेना निष्प्रयोजन जान पड़ता है। हम जानते हैं कि वे निरासक्त चित्रकार नहीं हैं। वे हम लोगोंके समान आवेग-प्रवण हैं। यहाँ तक कि कई बार वे भी भाव और भाषाके तालको सँभाल नहीं सके हैं। यह भी हम जानते हैं कि वे [illegible] जीवनका महाचित्र अंकित नहीं कर सके हैं—'श्रीकान्त' ग्रन्थमें भी आदमियोंकी ही भीड़-भाड़ है और उसमें [illegible] महाकाव्यकी व्यापकता भी नहीं है। हम यह भी [illegible] कि उनके समान शक्तिधारी स्रष्टाने भी एक ही चेहरा सामने एकाधिक बार पेश किया है; विचित्र मनुष्यको अनेक रूपोंमें पेश नहीं कर सके हैं। यह भी हम [illegible] किसी-किसीने उनकी भाषाकी भूलें भी निकाली हैं। [illegible] यही अन्तिम बात है? नहीं, शरच्चन्द्रके बारेमें यह [illegible] उल्लेख-योग्य नहीं है। जो बँगला-भाषा रवीन्द्र [illegible] गढ़ी गई है, उसे गढ़नेका उत्तराधिकार उन्हें भी [illegible] उपन्यासकी एक विशिष्ट भाषा-रीति शरच्चन्द्र प्रतिष्ठित [illegible] हैं, बादके औपन्यासिक भी उसके प्रभावको एकदम [illegible] नहीं कर सकेंगे। निश्चय ही आज नूतनतर रीति भी [illegible] रही है, और सच्ची बात तो यह है कि भाव और भाषा [illegible] परमेश्वर हैं, और एक-एक आदमीके हाथों उनका [illegible] भी प्रस्फुटित हो रहा है।

शरच्चन्द्र बँगला-साहित्य-सृष्टिको समृद्ध कर गए हैं कहना काफ़ी है। और यह बात कहनेपर कहना पड़ेगा कि [illegible] च्चन्द्र बंगालीको जीवनके पथमें नया पाथेय दे गए हैं; [illegible] चिरदिनके सहयात्री होकर चले आ रहे हैं। और [illegible] विशिष्ट अर्थमें यह बात कही जा सकती है कि शरच्चन्द्र [illegible] मुक्तिका पथ प्रशस्त कर गए हैं। ग़ुलामोंको ऐसे हितैषी [illegible] कम मिलते हैं। हम लोगोंके समाजमें सबसे अधिक ग़ुलाम [illegible] स्त्रियाँ। उनका चित्र बंगाली कलाकारों द्वारा बराबर अंकित हुआ है। किन्तु शरच्चन्द्रके समान बंगालकी नारीको [illegible] और भी किसीने देखा है? स्नेहमयी, प्रेममयी, लीलामयी, दीप्तिमयी और वेदनामयी—बंगाली नारीको शरच्चन्द्रने जैसा दिया है, वैसा और कोई भी नहीं दे सका है। इसका भी [illegible] हम पहले ही बता चुके हैं। वे सिर्फ़ द्रष्टा ही न थे, [illegible] ग़ुलामोंके बन्धु, व्यथाके बन्धु भी थे। उनका दृष्टि-पथ [illegible] पथ था। जिन लोगोंको पीड़ित मानवताका दरदी कहा जा [illegible] है, उनमें शरच्चन्द्रको प्रधान स्थान मिलेगा, इसमें [illegible] सन्देह नहीं।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या हार्दिकतासे [illegible] देखना यथार्थ कलाका लक्षण है? साहित्यमें वास्तविकताको [illegible] तर्कका कोई अन्त नहीं है। कोई भी कला एकबारगी [illegible] विक नहीं है; किन्तु सब कलाकार भी समान रूपसे [illegible] नहीं होते। कितने ही कलाकार तो कल्पनाका आश्रय [illegible] वास्तविकताको दर-गुज़र कर देना चाहते हैं और कितने आवेगवश वास्तविकताको एक अयथार्थ रूप दे बैठते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

उसपर यहाँ विचार-विश्लेषण करना व्यर्थ है। दो-एक मूल बातों पर ध्यान रखनेसे ही काम चल जायगा—साहित्य और कलाकी वास्तविकता तथा विज्ञान और इतिहासकी वास्तविकता एक चीज़ नहीं है। साहित्य और कला जीवन-सत्य और मानव-सत्यको प्रकट करते हैं। इसीसे घटना-यथार्थ्य उसमें सर्वोच्च नहीं होता। ज़ोलाकी वास्तविकता कलाकी दृष्टिसे कोई बहुत बड़ा कृतित्व नहीं है। जीवन-सत्य और मानव-सत्य उसमें रूप नहीं भी पा सकते हैं। इसीसे कलाकी वास्तविकता जीवन-सत्यको प्रकट करती है—मानव-बोधको सुस्पष्ट करती है। इसी प्रकार कलाकार यदि कहे—'मैं जीवनको प्यार करता हूँ, मैं मनुष्यकी अमर्यादाको सहन नहीं कर सकता', तो इससे कला या साहित्यकी मर्यादा क्षुण्ण नहीं होती। असल बात तो यह है कि वह जीवनको प्रकट कर सका है या नहीं, उसके हाथों मनुष्यने कोई रूप पाया है या नहीं, उसका आवेग और दृष्टि रचनामें सार्थक हुए हैं या नहीं?

एक और भी बात है। 'निरासक्त' कलाकार कहाँ तक निरासक्त होता है, इसे हम नहीं जानते। फिर भी इतना हम जानते हैं कि 'विशुद्ध कलाकार'की अपेक्षा प्रेममय कलाकारको हम बहुत आसानीसे स्वीकार कर सकते हैं। इसी कारण अनातोले फ्राँसके बजाय रोलाँको हम अपने अधिक निकट पाते हैं और गोर्की तथा शरच्चन्द्रको अपना मानते हैं। यथार्थमें कला जीवनकी एक स्वीकृति है। यह स्वीकृति जितना भी सुनिपुण क्यों न हो, सिर्फ़ नैपुण्यके बलपर ही वह जीवन-सत्यको हम लोगों तक नहीं पहुँचा सकती। जहाँ मनुष्य मनुष्यके सामने आ खड़ा होता है—जन्म, मृत्युके समान गम्भीरतम जीवन-सत्यका सामना हो जाता है—वहाँ विशुद्ध कला काफ़ी नहीं होती; वहाँ तो हम प्रेममय सहयात्रीका स्पर्श और बाहुडोरकी ही कामना करते हैं। उसको पाकर हम इस दृढ़तासे पकड़ लेते हैं, मानो हम तर गए; मानो हमने अपने आपको पहचान लिया और जाना कि यही सबसे बड़ी बात है।

युद्धोत्तर आर्थिक नीति

श्री रमेशचन्द्र गोयल, बी० काम०

आज युद्धोत्तर-योजनाओंने विचारकोंके मस्तिष्कको उलझा रखा है। औद्योगिक उत्पादन, धनका वितरण, उद्योगों का केन्द्रीकरण, सामाजिक सुख-शान्ति आदि महत्त्वपूर्ण विषयोंको लेकर नई योजनाएँ पेश की गई हैं और की जा रही हैं। किन्तु देशकी आर्थिक तथा मुद्रा-नीतिकी युद्धोत्तर-रूपरेखाके सम्बन्धमें अभी बहुत कम विचार प्रकट किए गए हैं। वास्तवमें उद्योग और उन्नतिकी सारी इमारत मुद्रा-नीतिकी नींवपर ही टिकी है, अतएव इस मूलकी परवा न करके उद्योग-धन्धोंकी वृद्धि और समृद्धिकी बात करना पत्तोंको सींचनेके समान है। अर्थशास्त्रियोंका यह निश्चित मत है कि इस महायुद्धके बाद एक बार विश्वव्यापी व्यापारिक मन्दीका आना आवश्यक है। उस समय धड़ाधड़ कारखाने बन्द होंगे, चीज़ोंके भाव गिरेंगे और शायद फिरसे विदेशी मालकी प्रतियोगिता आरम्भ हो जायगी। यह प्रतियोगिता शायद इसलिए और भी भयंकर होगी, क्योंकि इंग्लैण्ड और अमरीका-जैसे समृद्ध देश अपनी मुद्रा-नीतिके लिए निश्चित योजनाएँ बना चुके हैं और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष तथा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक इत्यादिकी योजनाओंके बलपर उसे सुदृढ़ भित्तिपर स्थापित कर चुके हैं, जिससे उन्हें अपनी मुद्राकी कीमत घटाकर अथवा अन्य प्रकारसे दूसरे देशोंके साथ प्रतियोगिता करनेमें सुविधा होगी। किन्तु भारतवर्ष तो इस विषयमें कोरा-सा ही है। बैटनवुड्स-कान्फ्रेन्समें रुपएकी अन्तर्राष्ट्रीय दर निश्चित करनेका प्रश्न उठा अवश्य था; पर वह प्रत्येक देशकी अपनी मर्ज़ी पर छोड़ दिया गया। किन्तु भारतकी मर्ज़ी तो उसकी अपनी नहीं है। अमरीकामें 'नेशनल प्लानिंग एसोसिएशन'की ओरसे हाल ही में जो एक पुस्तकाकार योजना[1] प्रकाशित हुई है, उससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार बैंकिंग और मुद्राकी नीतिको स्थिर और सुदृढ़ मार्गपर रखकर उस देशमें युद्धोत्तर-कालमें भी समृद्धि बनाए रखनेका प्रयत्न किया जा रहा है, ताकि सब लोगोंको काम मिल सके और उसके लिए उचित दाम भी। किन्तु हमारे देशमें इस प्रकारके प्रयत्नोंकी ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालयके अर्थशास्त्री डा० जैनने अपनी पुस्तक 'India Builds her War Economy' में इस समस्याकी ओर ध्यान आकर्षित करनेकी चेष्टा की है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा मुद्रा-नीतिके विषयमें हमारी स्टर्लिंग थातीको माध्यम बनाकर भी समय-समयपर लोग बहुत-कुछ कहते रहे हैं; किन्तु मुद्रा-नीतिकी अन्य युद्धोत्तर-समस्याओंपर कदाचित् ही पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। देशकी आर्थिक समस्याओंके साथ मुद्रा-नीतिका कितना गहरा सम्बन्ध है और उससे किस प्रकार हमारे देशके भाग्यका पासा पलट सकता है, इसको यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं; किन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि युद्धोत्तर-कालमें मुद्राके अत्यधिक आस्फालनसे उत्पन्न मन्दीके धक्केको सहनेमें समर्थ होनेके लिए उसमें अवश्य ही आमूल परिवर्त्तन होना चाहिए। 'लीग आफ़ नेशन्स'ने एक पुस्तक[2]

1. National Planning Association, Washington, W.C. Planning Pamphlet No. 35, 1944.
2. International Currency experience, Lessons of the Inter-War Period. (League of Nations, Columbia University Press, New York City, 1944.)

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाशित की है, जिसमें पिछले महायुद्धसे लेकर वर्त्तमान महायुद्धके प्रारम्भ होने तक संसारकी विभिन्न देशोंकी मुद्रा-नीतिमें जो परिवर्त्तन हुए हैं, उनकी सर्वे है। उसके सम्पादक भी इसी परिणामपर पहुँचे हैं कि कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-योजना तभी सफल हो सकती है, जब उससे सम्बन्ध रखनेवाले देशोंकी आन्तरिक मुद्रा-नीति स्थिर हो तथा उनमें बेकारीकी बला न हो। अतः आन्तरिक आर्थिक समृद्धि तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओंमें सक्रिय भाग लेनेके लिए हमारी मुद्रा-नीतिका समयानुकूल सुदृढ़ होना अत्यन्त आवश्यक है।

आज जब कि लड़ाईका शीघ्र ही अन्त होनेवाला है, अर्थशास्त्रियोंको फिरसे विश्वव्यापी मन्दीका भूत सताने लगा है, और वे उसकी रोक-थामके लिए योजनाएँ बनानेमें लगे हैं। युद्धकी परिस्थितियाँ इतनी शीघ्रतासे बदलती हैं कि उनके लिए निश्चयात्मक रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता; किन्तु एक बात निश्चित है कि इस युद्धने हमारे देशको कर्ज़दारसे साहूकार बना दिया है, और यदि लड़ाई चलती रही, तो हमारे स्टर्लिंग-ऋणका परिमाण भी बढ़ता ही चला जायगा। आज लगभग १००० करोड़की स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज़ हमारे पास जमा हो गई हैं, और युद्धके अन्त तक पता नहीं कितनी हो जायँगी। अतः अच्छा हो कि हम पहले अपनी परिस्थितिकी देख-भाल कर लें; एक चतुर वणिककी भाँति अपनी पूँजीका तलपट देख लें। हमारी मुद्राका कितना प्रसार हुआ है और वह कैसे हुआ है, इसको जाँचे बिना उसका उपाय सोचना सम्भव नहीं है।

सितम्बर, १९३९ में चलनमें १८० करोड़के नोट थे, जो दिसम्बर, १९४४ में बढ़कर ९८० करोड़ हो गए, अर्थात् ४४४.४ प्रतिशत बढ़ती हुई। यदि युद्ध कुछ दिन और चला, तो नोटोंका चलन १००० करोड़के ऊपर सहज ही पहुँच जायगा। इसी प्रकार बैंकोंकी जमा रक़में भी सितम्बर, १९३९ में १३,४३६ लाखसे बढ़कर नवम्बर, १९४४ में ६१०२५ लाख हो गईं। मुद्राके इस आस्फालनके प्रभावको कम करनेकी चेष्टा निम्न बातोंने की है—(१) जनतामें कुछ रुपया बटोरकर रखनेकी प्रवृत्ति, (२) बैंकोंमें अचल जमा रक़में, (३) गवर्मेन्ट द्वारा प्रचारित मूल्य-नियंत्रण तथा अन्य तरीके और (४) कुछ मात्रामें बढ़ा हुआ उत्पादन और काम। इसके अतिरिक्त देशमें जो मुद्रा प्रचलित है, उसके लिए विदेशमें १००० करोड़के मूल्यकी स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज़ जो जमा हो गई हैं, उन्होंने एक प्रकारसे हमारी मुद्रा—रुपए—को दरको मज़बूत करनेकी चेष्टा की है। फिर भी युद्धोत्तर-कालमें मुद्राकी यह बँधी हुई कीमत टिक सकेगी या नहीं, इसमें सन्देह है। विनिमयकी दरके प्रश्नके साथ उद्योग-धन्धोंके लिए 'टैरिफ़'का सवाल भी दुरूह है। अतः अच्छा हो, यदि हम एक-एक करके इन समस्याओंको देखनेकी चेष्टा करें।

यदि हम बीसवीं सदीके पिछले ४२ वर्षोंके [illegible] व्यापारके जमा-खर्चके खातेपर दृष्टि डालें, तो ज्ञात होगा २-३ वर्षोंको छोड़कर शेष वर्षोंमें हम पावनेदार रहे हैं। हमारा देश सदा जितना माल बाहर भेजता था, उससे बाहरसे मँगाता था। अर्थशास्त्रकी परिभाषामें कहिए कि अधिक तथा आयात कम था। सन् '३९ के लगभग यह रक़म ५२ करोड़ तक औसतन रही थी। इस प्रकार पावनेदार होनेसे हमें कुछ लाभ हुआ हो, सो बात नहीं। विपरीत हम उल्टे देनदार ही बने रहे। हमारा यह [illegible] हमारी सरकारके 'होम-चार्जेज़', हमारे देशमें लगी विदेशी सूद तथा अन्य देनदारियोंके भुगतानमें ही उड़ [illegible] और फिर भी इंग्लैण्डमें रक़में हमारे नामें लिखी जाती कर्ज़का एक बड़ा बोझा इस प्रकार हमारे सरपर [illegible] लदा रहा। युद्धकी कृपासे हमें इतना माल बाहरवालोंसे है कि आज हमारा सब-कुछ देन चुक गया है। [illegible] हमारी रक़में जमा हो गई हैं, और कहना चाहिए कि [illegible] दारसे साहूकार हो गए हैं। यही हमारी १००० स्टर्लिंग रक़म आज जमा है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या हम अपनी इस [illegible] जिस रूपमें चाहें, वापस पा सकेंगे? न्यायकी बात तो [illegible] हम जब और जिस तरह चाहें, उसी तरह हमें इसे वापस सुविधा होनी चाहिए। किन्तु यह रक़म इतनी अधिक किसी भी देशके लिए उसे एकदमसे चुकाना सम्भव नहीं क्या इसीलिए हमें २०-३० वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी फिर इसके एवज़में उस देशसे माल मँगाना पड़ेगा? [illegible] होगा, यदि हम अपना निर्यात कम कर दें, जिससे हमारी की रक़म कम न हो, तो बढ़े तो कम-से-कम नहीं, चाहे जैसा रद्दी-सद्दी माल लेकर वसूलयाबीकी भरपाई पड़ेगी। कोई कारण नहीं है कि हम विदेशोंसे [illegible] माल मँगाकर अपने देशके उद्योग-धन्धोंको हानि पहुँच अपना उत्पन्न माल बाहर भेजें। अतः मुद्रा-नीतिकी [illegible] बड़ी समस्याका हल करनेके लिए हमें अपने आयात समस्याको सुलझाना पड़ेगा और इसके सम्बन्धमें एक नीति स्थिर करके उसपर अमल करना होगा। यह विषय है, भारत-सरकारका ध्यान इस समस्याकी ओर किया गया है कि भारतसे युद्ध-जनित आवश्यकताओं मालका निर्यात कम किया जाय, ताकि हमारी इस युद्धसे दबी हुई आर्थिक व्यवस्थाकी कमर न टूटने पाय। ओरसे सर अकबर हैदरी इस विषयमें प्रतिनिधि होकर गए हैं, और यह आशा की जाती है कि वे इस समुचित समाधान करके स्वदेश लौटेंगे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस समस्याकी सहयोगी समस्या है 'टैरिफ़', अर्थात् औद्योगिक टैक्सोंकी प्राचीरें खड़ी करनेकी। आज हमारे उद्योग उन्नति और विकासकी दौड़में संसारके अन्य देशोंसे बहुत पीछे रह गए हैं। हमारे उद्योगोंमें अभी १८वीं शताब्दीकी मशीनें ही चल रही हैं, जब कि विदेशी कारखाने उत्पादनके नए-नए तरीकोंमें हमसे बहुत आगे निकल गए हैं। यदि युद्धके बाद फिरसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारके रुद्ध द्वार खुल जायँगे, तो विदेशी प्रतियोगिताके सामने हमारे स्वदेशी उद्योग-धन्धे एक दिन भी न टिक सकेंगे। अतः उनकी प्रतियोगितासे अपनी रक्षा करनेके लिए टैरिफ़की ऊँची दीवारोंके पीछे छिपे बिना निस्तार नहीं है। सर्वप्रथम तो हमें अपने स्वदेशी उद्योगोंको समुन्नत और सबल करके अपनी राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धि करनी है, और उसके लिए एक निश्चित टैरिफ़-नीतिका निर्माण और प्रयोग अनिवार्य है। अपने उद्योगोंकी रक्षा करनेका एक दूसरा प्रकार भी हो सकता है, और वह यह कि हम अपनी मुद्राकी दरको अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारमें घटा दें, ताकि हमारा माल भी विदेशीके मुकाबलेमें उतना ही सस्ता पड़े। किन्तु यह दोनों ही बातें अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओंके समर्थकोंको पसन्द नहीं आयँगी, क्योंकि इनसे हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है और शायद उनके स्वार्थों (Vested interests) में बाधा पड़ती है। इस बातको समझनेवाला जनमत आज हमारे देशमें प्रबल रूपसे तैयार चुका है, और इस बातकी आवश्यकताको अनुभव किया जा रहा है कि हमारे देशकी एक निश्चित टैरिफ़-नीति होनी चाहिए, जिसके बलपर हम अपने उद्योग-धन्धोंकी विदेशी प्रभाव और प्रतियोगितासे रक्षा कर सकें।

इसके अतिरिक्त मुद्राकी विनिमय-दर तथा स्टर्लिंगके साथ उसका वर्त्तमान गठबन्धन भी विचारणीय समस्याएँ हैं। हमारी प्रतीक मुद्रा—रुपए—की कीमतका स्टर्लिंगसे बँधा रहना भी घोर असन्तोषका कारण है। वास्तवमें तो रिज़र्व बैंकके विधानमें ही यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि वह निकट भविष्यमें भारतकी भावी मुद्रा-नीतिके विषयमें अपने अनुभवके बलपर व्यवस्थापिका सभाके सामने सुधारके प्रस्ताव पेश करेगा। किन्तु महायुद्ध छिड़ जानेसे यह मामला खटाईमें पड़ गया। अब ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं, जिनमें यह आवश्यक मालूम होता है कि रुपयेके स्टर्लिंगके साथ इस गठबन्धनको विच्छिन्न कर दिया जाय। उसकी विनिमय-दर विदेशी एक्सचेंज़की आवश्यकतानुसार समय-समयपर रिज़र्व बैंक द्वारा निश्चित की जाती रहे। यद्यपि कुछ लोग सन्देह करेंगे कि इससे रुपएकी कीमतमें लोगोंको अविश्वास हो सकता है; किन्तु उन्हें यह भी सोचना चाहिए कि आज भी तो देशमें १००० करोड़के लगभग नोट चलनमें हैं, जिनके पीछे अधिकांशमें स्टर्लिंग सिक्यूरिटीज़के अलावा और कोई अन्य वस्तु नहीं है, फिर भी रुपएकी कीमतके प्रति लोगोंके विश्वासमें कोई अन्तर नहीं आया है। अतः यह सन्देह निर्मूल है। दूसरे जब तक रिज़र्व बैंक इस विषयमें पूरी छानबीन करके कोई निश्चित योजना व्यवस्थापिका सभा या सरकारके सामने नहीं रखता, तब तक और कोई अन्य तरीका भी तो नहीं। अतः कुछ समयके लिए यदि उपर्युक्त प्रबन्ध ही कर दिया जाय, अर्थात् रुपएकी कीमत स्टर्लिंगसे हटाकर रिज़र्व बैंकके हाथमें सौंप दी जाय, तो भी अनिष्टकी कोई आशंका नहीं है।

इसके साथ ही विनिमयकी दरकी स्थिरताका प्रश्न भी स्वयमेव हल हो जाता है। डा० राव[3] के मतानुसार हमें विनिमयकी दर स्थिर रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमारे देशकी मुद्रा-नीतिके इतिहासका यह अध्याय आँसुओंसे लिखा गया है। यह एक दुख-भरी कहानी है, जिसमें जनमतके विरुद्ध सरकार सदा इसी स्थिरताके सिद्धान्तसे चिपटी रहकर देशकी आर्थिक स्थितिको बरबस इसके अनुकूल बनानेके असफल प्रयत्न करती रही है, जिनसे देशको बहुत-कुछ आर्थिक हानि तो उठानी पड़ी ही है, साथ ही उत्पादन, आय तथा कीमतोंपर ऐसा बुरा प्रभाव पड़ा और विदेशी पूँजीका प्रभुत्व बढ़ा है, जिसके प्रभावसे हम आज भी मुक्त नहीं हो सके हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक मन्दियोंने अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षको अधिक धक्का पहुँचाया है, क्योंकि हमारा देश अधिकतर कृषि-प्रधान होनेके कारण उनका सामना करनेके योग्य नहीं था, और ऐसे अवसरोंपर विनिमय-दरके फैलाव और संकोचकी सुविधा भी उसे नहीं मिली थी। अतः एक स्थिर विनिमय-दरसे अपनी आर्थिक व्यवस्थाको बाँध रखनेकी चेष्टा मैदानमें चरती हुई बकरीके पैरमें खूँटेकी रस्सी बाँध देनेके समान है, जिससे उसे अन्तमें भूखों ही मरना पड़ेगा। इसकी अपेक्षा एक अनिश्चित विनिमय-दरकी सुविधा और स्वतन्त्रता कहीं अधिक लाभदायक होगी।

अन्ततोगत्वा संक्षेपमें हमारी भावी आर्थिक नीतिके निम्नलिखित मुख्य अंग होंगे—(१) स्टर्लिंगकी शीघ्र प्राप्ति और उसका समुचित उपयोग, (२) उद्योग-धन्धोंकी वृद्धिके लिए 'टैरिफ़'की दीवारोंका उपयोग, (३) रुपएके स्टर्लिंगके साथ गठबन्धनका विच्छेद और (४) एक स्वतन्त्र तथा परिवर्त्तनशील विनिमय-दरका प्रचार और उपयोग। इन मोटी-मोटी बातोंको ध्यानमें रखकर ही हमें देशकी भावी आर्थिक नीतिकी रूपरेखा निश्चित करनी होगी। क्या देशके अर्थशास्त्रियों और मनीषियोंसे यह आशा की जाय कि वे विस्तृत विवेचन द्वारा उक्त समस्याके विभिन्न अंगोंपर प्रकाश डालकर एक निश्चित रूपरेखा स्थिर करनेकी चेष्टा करेंगे?

3. Dr. V. K. R. V. Rao, Professor of Economics, University of Delhi.—India & International Monetary Plans.

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वर्गीय रामकर्ण आसोपा

श्री मोतीलाल मेनारिया, एम० ए०

स्वर्गीय रामकर्णका जन्म भाद्रपद कृष्णा २, १९१४ वि०को अपने नानाके घर बड़ल्ल (जोधपुर-राज्य) नामक गाँवमें हुआ था। आप दाहिमा ब्राह्मण थे। पण्डितजी आदि-निवासी मेड़तेके थे, जहाँ आपके पुरखा ज्योतिषका काम किया करते थे। १९०१ वि०में आपके पूज्य पिता बलदेवजी मेड़ता छोड़कर जोधपुरमें जा बसे थे। अपने पिताके पाँच पुत्रोंमें पं० रामकर्ण सबसे बड़े थे। आपकी माताका नाम शृंगारदेवी था, जो अपने पतिकी परमभक्त और पतिव्रता स्त्रियोंमें गणना करने योग्य महिला थीं।

पाँच वर्षकी अवस्थामें पण्डितजीको शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी तथा गणितका थोड़ा-सा ज्ञान हो जानेपर आपने सारस्वत पढ़ना शुरू किया, जिसके साथ-साथ श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध का पाठ भी चलता रहा। तदन्तर रघुवंश आदि काव्य एवं ज्योतिष-वैद्यकके ग्रन्थ भी पढ़े। फिर अपने पिताके साथ आप बम्बई चले गए, जहाँ प्रज्ञाचक्षु पं० गट्टूलालके पास रहकर सिद्धान्त-कौमुदी, महाभाष्य, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि अनेक विषयोंका गम्भीर अध्ययन किया। बम्बईसे आनेपर आप जोधपुरके दरबार-हाईस्कूलमें अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ पूरे १८ वर्ष तक आपने बड़ी सचाई और लगनके साथ काम किया। बादमें आपका तबादला राजकीय इतिहास-विभागमें हो गया। तबसे २८ वर्ष तक आप जोधपुरके इतिहास-विभागमें रहे। यहाँपर आपका मुख्य कार्य प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदिको पढ़ना था। आपने सैकड़ों पुराने शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने इत्यादि पढ़े और पुरातत्त्व-शोधक कई यूरोपीय विद्वानोंके पढ़े हुए लेखोंका संशोधनकर उन्हें इण्डियन एण्टिक्वेरी और एपिग्राफ़िया इण्डिकामें छपवाया। भारतीय पुरातत्त्व-विभागके तत्कालीन डाइरेक्टर सर जान मार्शल पण्डितजीकी प्रतिभापर मुग्ध थे। अपनी अनेक रिपोर्टोंमें उन्होंने आपकी विद्वत्ताकी बड़ी प्रशंसा की है। एक बार उन्होंने आपके विषयमें लिखा था—'पण्डित रामकर्ण असाधारण गुणी मालूम होते हैं और प्राचीन लिपि पढ़नेके परिज्ञानके कारण भारत-भरके प्रथम स्थानीय आधे दर्जन विद्वानों की गणनामें आते हैं।'

संस्कृत, हिन्दी, डिंगल आदि भाषाओंके सुज्ञाता होनेके साथ-ही-साथ पंण्डितजी इतिहासके भी बहुत बड़े खोजी और विद्वान् थे। आप दो साल तक कलकत्ता-विश्वविद्यालयमें राजपूत-इतिहासके लेक्चरार भी रहे थे। डिंगल-भाषाके तो आप अद्वितीय अधिकारी माने जाते थे। १९७१ वि० में बंगालकी रायल एशियाटिक सोसाइटीके तत्त्वावधानमें जिस समय प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डा० टैसीटोरीने राजस्थानमें डिंगल-भाषाके ग्रन्थोंकी खोजका कार्य प्रारम्भ किया, उस समय रामकर्णजी उनके प्रधान सहकारी थे। सच तो यह है कि अधिकां उद्योग और अध्यवसायके कारण डा० टैसीटोरीको इ कार्यमें इतनी सफलता मिली थी। इसके अतिरिक्त टोरीको डिंगल-भाषाका प्रारम्भिक ज्ञान भी आपने था। बादमें जब डा० टैसीटोरीने डिंगल-ग्रन्थोंके काम शुरू किया, तो उसमें भी आपका पूरा-पूरा हाथ उन ग्रन्थोंके कठिन शब्दों एवं स्थलोंके अर्थ करते जाते डा० टैसीटोरी उनके नोट आदि अंगरेज़ीमें लिख लेते

पण्डितजीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप कु और इतिहासकार थे, सुकवि थे, अनुवादक थे, टीकाका थे कुशल लेखक। छोटे-बड़े कुल मिलाकर आपने ग्रन्थोंका सम्पादन, प्रणयन, अनुवाद आदि किया, जिसे गम्भीर अध्ययन, असाधारण ऐतिहासिक ज्ञान और शोध-बुद्धिका पता लगता है। इन ग्रन्थोंमें 'राठौरोंका इ हास', 'बूँदीके कविराजा सूर्यमलकृत वंश-भास्करकी टीक वाड़का मूल इतिहास' इत्यादि आपकी अत्यन्त उपयोगी, म और अनमोल रचनाएँ हैं। इधर कुछ वर्षोंसे पण्डितजी भाषाका एक बृहत् कोष तैयार करनेमें लगे हुए थे, जिसे कठोर परिश्रम करके आपने ६०००० शब्दों एवं हज़ारों मुहावरोंका संग्रह किया था। लेकिन दुःख है, आपका प्रकाशित भी न हो पाया कि गत ९ अक्टूबर, १ ८६ वर्षकी आयुमें आपका देहान्त हो गया।

पण्डित रामकर्णजी बड़े मधुर भाषी, मिलनसार सरल प्रकृतिके पुरुष थे और आत्म-प्रशंसा एवं चाटु कोसों दूर रहते थे। आत्म-विज्ञापनके लिए आधुनिक प्रोपेगेण्डा करना आपको बिलकुल पसन्द न था, और यही है कि इतने प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी राजस्थानके लोगोंका परिचय आपकी विद्वत्तासे उतना नहीं था, होना चाहिए। आपकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी थी। लकड़ी लेकर इस सादी वेश-भूषामें जब आप घूमनेके लि निकलते थे, तब पूरे कृषक दिखाई पड़ते थे। कठिन बातको सरल करके समझा देनेमें पण्डितजी परम प्रवी कैसा भी कठिन विषय क्यों न हो, पण्डितजीकी प्रतिभा चढ़कर वह नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी हवा हो जाती थी। इधर विगत सौ वर्षोंमें पण्डित रा जैसा डिंगल-भाषाका मर्मज्ञ विद्वान कोई दूसरा नहीं हुआ इस दृष्टिसे पण्डितजीकी मृत्यु केवल राजस्थानवासियोंके नहीं, बल्कि समस्त भारतके डिंगल-भाषा-प्रेमियोंके लि दुःखदायक घटना है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

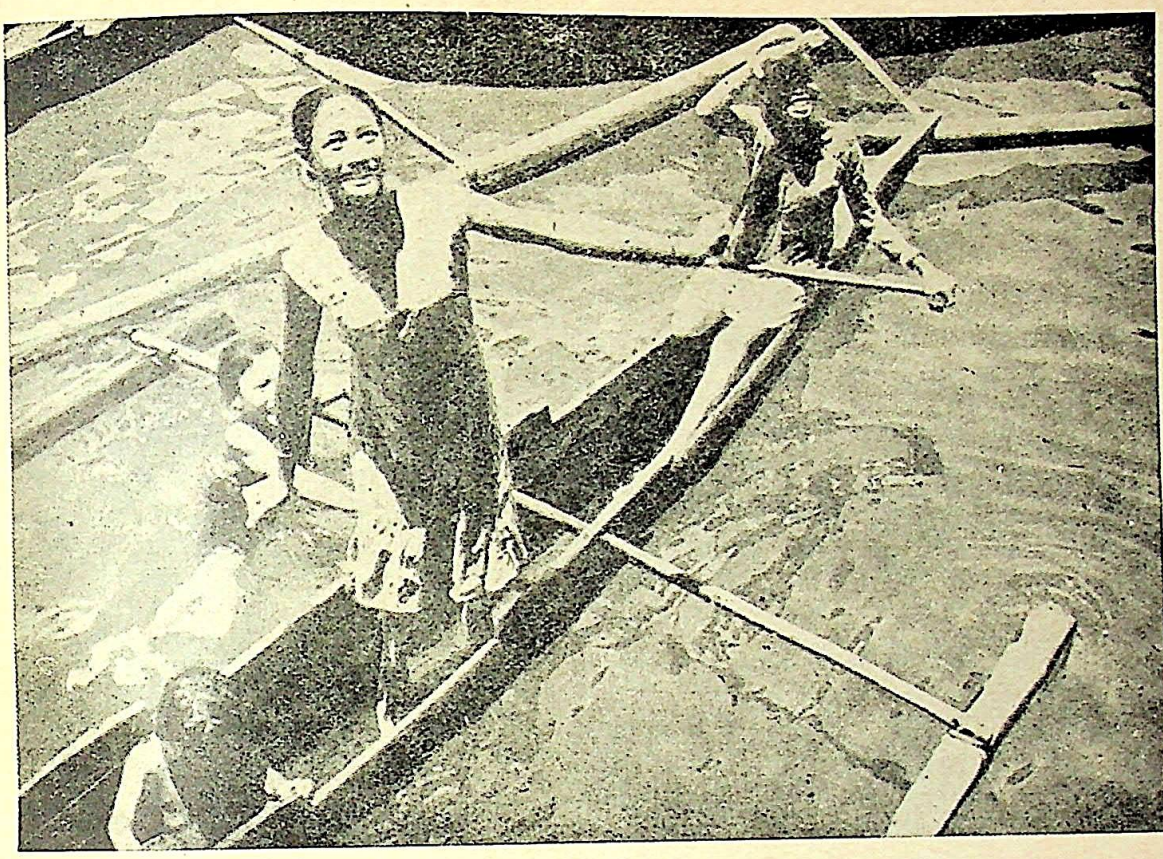

एक द्वीपसे दूसरे द्वीपको जानेवालों स्टीमरों द्वारा समुद्रमें फेंके गए पैसोंको निकालनेके लिए फिलीपिनको लड़कियाँ गोते लगा रही हैं।

अमरीकन रेड-क्रासकी औषध आदि नाव द्वारा चीन भेजी जा रही है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

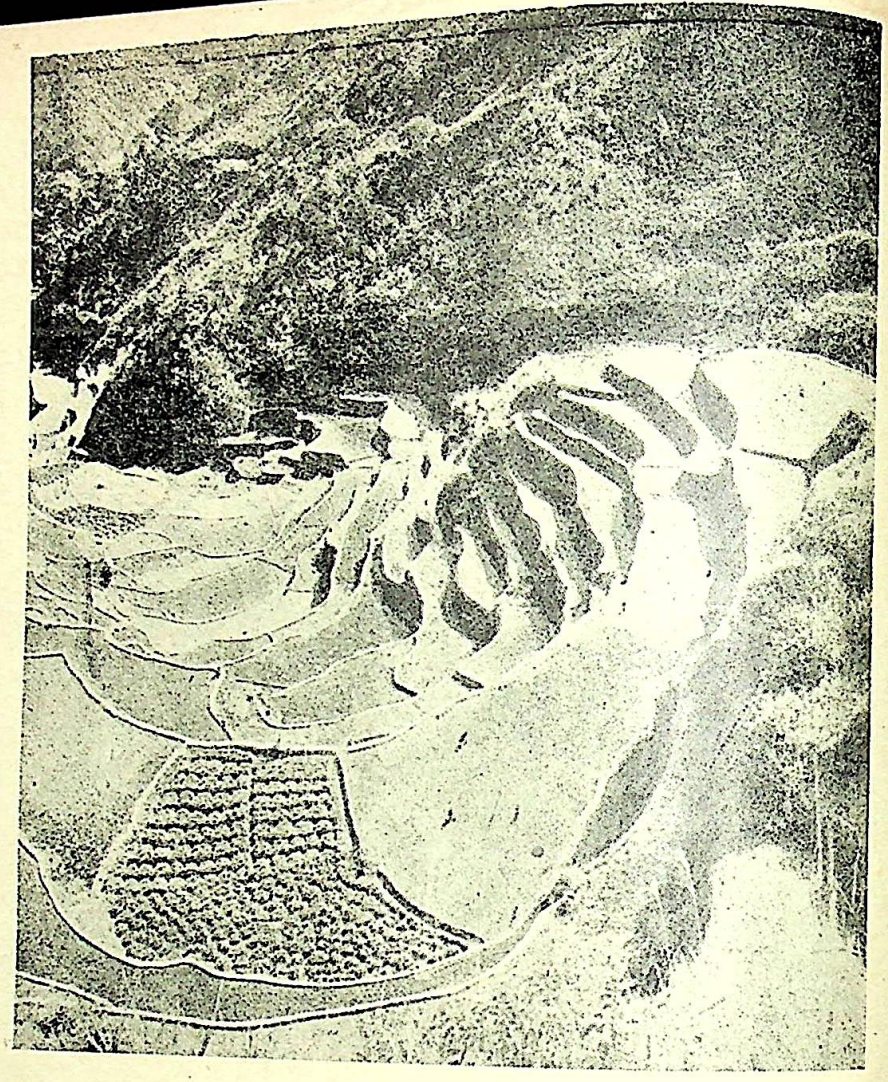

फिलीपिनके धानके खेत, जिन्हें पहाड़ोंको काटकर बनाया जाता है ।

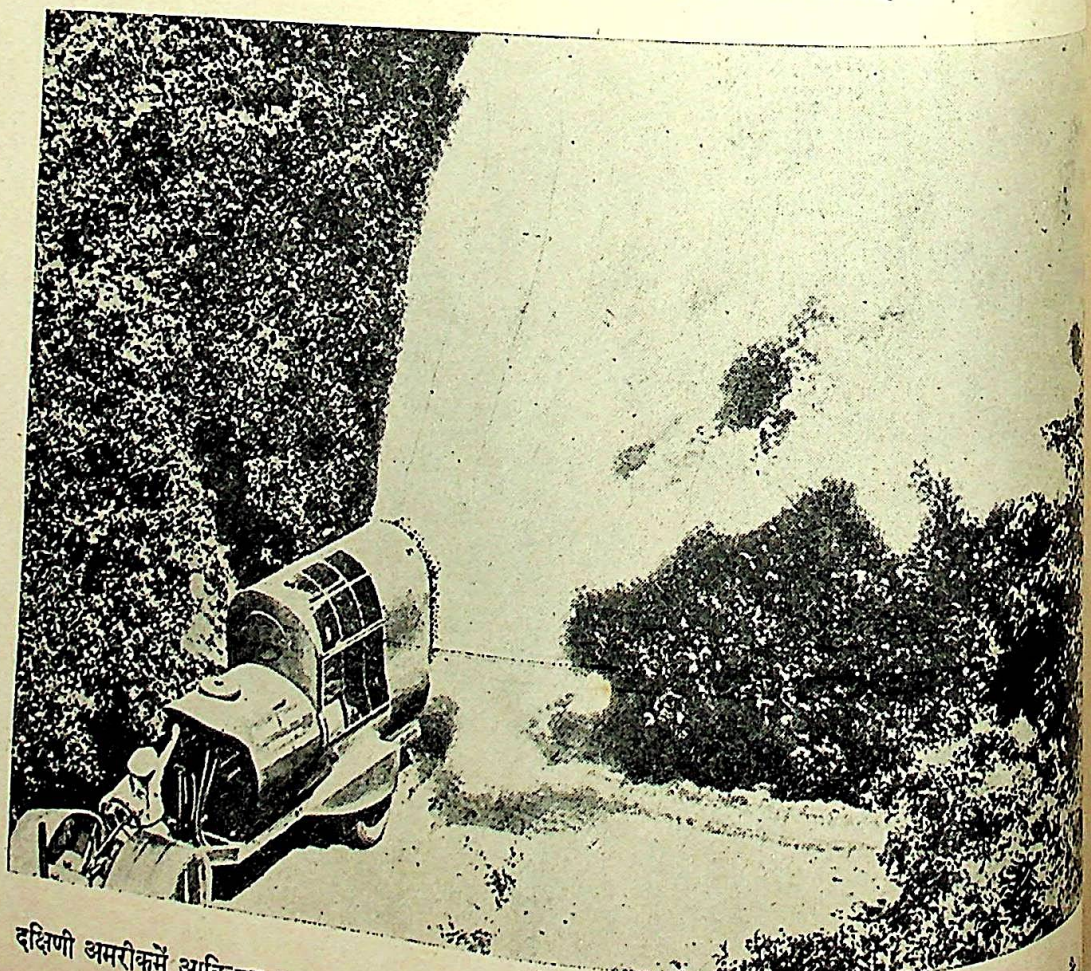

दक्षिणी अमरीकमें आविष्कृत एक यन्त्र, जिसके द्वारा छिड़काव करके बगीचेके कीट-पतंगोंका नाश किया जाता है

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलकत्तेमें हिन्दी-भवन

बनारसीदास चतुर्वेदी

अनेक वर्ष पहलेसे हमारा यह विचार चला आ रहा है कि जब तक हिन्दी-जगत्में दस-बीस साहित्यिक भिक्षु नहीं होंगे, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए स्थानीय संस्थाओं को शक्तिशाली बनावें, नवीन साहित्यिक केन्द्र स्थापित करें और लेखकों तथा कवियोंको प्रोत्साहन प्रदान करें, तब तक बीस करोड़ हिन्दी-भाषा-भाषियोंका सांस्कृतिक संगठन नहीं किया जा सकता। यद्यपि हम इस बातके पक्षमें हैं कि कलकत्ता, कानपुर और बम्बई जैसे नगरोंसे देशकी भिन्न-भिन्न संस्थाओंको भरपूर आर्थिक सहायता मिले, तथापि एक बात हमें बराबर खटकती रही है, वह यह कि बाहरसे चन्दा माँगनेके लिए आनेवाले सज्जनोंने प्रायः इस प्रश्नकी उपेक्षा ही की है कि स्वयं कलकत्ता, बम्बई तथा कानपुर इत्यादिका साहित्यिक जीवन कैसे संगठित किया जाय। उनकी यह नीति सर्वथा अदूरदर्शितापूर्ण रही है। अब वह समय आ पहुँचा है, जब कि इस उपेक्षापूर्ण नीतिमें कुछ परिवर्त्तन किया जाय।

सैकड़ों स्थानीय केन्द्र

अब हिन्दी-जगत्के उद्धारका एकमात्र उपाय है सैकड़ों स्थानीय केन्द्रोंकी स्थापना करना और फिर उनको संघबद्ध करना। कहीं पुस्तकालय खोलनेको ज़रूरत है, तो कहीं वाचनालय स्थापित करनेको। कहीं साहित्यिक गोष्ठीकी स्थापना करनी है, तो कहीं स्वाध्याय-मण्डलकी आयोजना। कहीं हिन्दी-भवन बनाना है, तो कहीं संग्रहालयकी नींव डालनी है। और ये सब काम सफलतापूर्वक वही आदमी कर सकता है, जो अपने लिए या अपनी किसी संस्थाके लिए चन्दा न माँगे। चन्दा उगाहना वास्तवमें ज़हर पीना है, और हमारे-जैसे क्षुद्र व्यक्तिके लिए तो वह विघातक सिद्ध हो सकता है। यह महान यज्ञ सर्वथा निस्स्वार्थ भावनासे ही प्रबलतर हाथों द्वारा किया जा सकता है।

विस्तृत आयोजनाका एक अंश

कलकत्तेमें हिन्दी-भवनकी स्थापना हमारी एक विस्तृत आयोजनाका एक अंश ही है। इसी प्रकारके हिन्दी-भवन कानपुर, दिल्ली और बम्बईमें भी स्थापित करने हैं। हम अपनी साधनहीनता तथा असमर्थताको भलीभाँति जानते हैं, फिर भी जब तक कोई योग्यतर व्यक्ति इस पुण्यकार्यको हाथमें नहीं लेता, तब तक उसके लिए क्षेत्र तैयार कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं। प्रारम्भमें ही एक बात हमें स्पष्ट कर देनी है, वह यह कि न तो हमें इन हिन्दी-भवनोंमें ठहरना है और न उनके प्रबन्ध-संचालन इत्यादिमें कुछ भाग लेना। सत्यनारायण-कुटीर (प्रयाग)में एक भी दिन ठहरनेका अवसर हमें नहीं मिला और शान्तिनिकेतनके हिन्दी-भवनमें सम्भवतः एक रात ही हमने बिताई है। आज हमारे देशमें कार्यकर्त्ताओंके सद्भावमें शंका करनेवालोंकी कमी नहीं, इसलिए यह व्यक्तिगत कैफ़ियत देना ज़रूरी समझा गया।

साहित्यिकोंकी असुविधा

पिछले ८-९ महीनोंमें हमें काफी यात्राएँ करनी पड़ी हैं। कलकत्ता और कानपुर तो हम दो बार आ चुके हैं; पर बम्बई, दिल्ली, जयपुर, आगरा, गोरखपुर, छपरा, वर्धा, काशी, प्रयाग इत्यादिकी भी यात्रा हमने की है। यह बात हमने खास तौरपर महसूस की कि कहीं भी किसी हिन्दी-साहित्यिकके ठहरनेकी कोई सुविधा नहीं है, और एकाध जगहको छोड़कर न कोई ऐसा स्थल ही है, जहाँ स्थानीय व्यक्ति साहित्यिक गोष्ठी, व्याख्यान, नाटक इत्यादिका प्रबन्ध कर सकें।

इस विचारको हमने गत ११ मार्चकी स्थानीय साहित्य-गोष्ठी में रखा था और कलकत्तेमें हिन्दी-भवनकी स्थापनाका प्रस्ताव भी पेश किया था। अत्यन्त हर्षकी बात है कि हमारे इस प्रस्तावका उपस्थित सदस्योंने हार्दिक समर्थन किया, और जिन श्रमजीवी बन्धुओंने उसकी आलोचना की, वह भी सर्वथा सद्भावसे और ईमानदारीके साथ। उनकी उस कठोर, किन्तु दूरदर्शितापूर्ण आलोचनासे वातावरणके स्वच्छ तथा स्पष्ट होनेमें सहायता ही मिली। निस्सन्देह भविष्यके लिए वह एक ज़ोरदार चेतावनी थी कि कहीं हमारा भावी हिन्दी-भवन किसी वर्ग-विशेषकी सनकोंका क्रीड़ास्थल न बन जाय। पर एक बातमें सभी सहमत थे, वह यह कि इस महानगरीमें एक सुदृढ़ साहित्यिक तथा सांस्कृतिक भवनका निर्माण किया जाय। श्रद्धेय रामदेवजी चोखानी, जिनसे हमारा गत २७ वर्षसे व्यक्तिगत सम्बन्ध है, सौभाग्यसे उस गोष्ठीमें अनिमन्त्रित होनेपर भी पधारे थे, और उन्होंने बड़े उत्साहपूर्वक यह वचन दिया कि वे हिन्दी-भवनके लिए पचीस हज़ार रुपए दिलानेका प्रयत्न करेंगे। प्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी श्रीयुत बसन्तलालजी मुरारकाने एक हज़ार रुपए देनेका वचन दिया; पर इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वचन थे कई श्रमजीवी पत्रकारोंके, जिनके प्रत्येक पैसेका मूल्य सहस्रों रुपयोंसे कहीं अधिक है। यह बात हमें गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि सरस्वतीके मन्दिरमें सभी वर्गों तथा जातियोंके महानुभावोंको पूजा करनेका समान अधिकार होगा, और हिन्दी-मन्दिरको आयोजना तथा नियमावलीमें इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर दी जायगी।

स्वर्ण अवसर

आज हम कलकत्तेके श्रमजीवी साहित्य-सेवियों और साहित्य-प्रेमी साधन-सम्पन्न व्यक्तियोंसे एक निवेदन कर देना चाहते हैं, वह यह कि इस अवसरपर, जब यह प्रश्न ज़ोरोंके साथ स्थानीय हिन्दी-जनताके सम्मुख उपस्थित है, हमें पारस्परिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहयोगकी भावनासे ही काम लेना चाहिए। यदि कलकत्तेमें हिन्दी-भवनकी स्थापना हो गई, तो कानपुर, दिल्ली तथा बम्बईमें भी इसी प्रकारके हिन्दी-भवन स्थापित करा देना कोई असम्भव कार्य न होगा। यद्यपि ईंट-पत्थर और चूना-सीमेण्टमें हमारा विश्वास नहीं है और हम इन संस्थाओंको प्रगतिशील तथा सजीव रूपमें ही देखना चाहते हैं, तथापि कार्य-संचालनके लिए विशेष-विशेष कुटीरों तथा भवनोंका निर्माण हम आवश्यक समझते हैं।

कलकत्तेने हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दी-पत्रकार-कलाकी उन्नति के लिए जो प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, तदर्थ उसका नाम हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें अमर हो चुका है। आज भी इस महा-नगरीमें—जो हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी सबसे बड़ी नगरी है—वह साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शक्ति विद्यमान है, जिसके द्वारा समस्त हिन्दी-जगत्को प्रभावित किया जा सकता है, बशर्ते कि उसका विधिवत् संगठन तथा संचालन किया जा सके। इस प्रकार कलकत्तेमें हिन्दी-भवनकी स्थापना हिन्दी-जगत्की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना होगी।

आज स्व० लल्लूजी लालकी आत्मा स्वर्गसे झाँक रही है और 'उदन्त मार्त्तण्ड' (हिन्दीके प्रथम समाचारपत्र) के सम्पादक स्व० युगलकिशोर शुक्ल, सम्पादकाचार्य स्व० रुद्रदत्त शर्मा, स्व० दुर्गा-प्रसाद मिश्र, स्व० माधवप्रसाद मिश्र, स्व० अमृतलाल चक्रवर्ती, स्व० माधव शुक्ल, स्व० नन्दकुमारदेव शर्मा, स्व० प्रसाद चतुर्वेदी, स्व० बालमुकुन्द गुप्त आदिकी आत्माएँ देख रही हैं कि हम लोग इस महान् यज्ञमें कहाँ तक होते हैं। हम इस बातको फिर दुहरा देना चाहते हैं घड़ी पारस्परिक सहयोगकी है, न कि कटु आलोचन कार्यक्षेत्रमें पूज्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, श्रद्धेय और बन्धुवर गर्देजीने अपने जीवनके सर्वोत्तम वर्ष कि उनका आशीर्वाद निस्सन्देह हमारे साथ है।

मनुष्यों, नगरों और जातियोंके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं, जिनका यदि समयपर उचित उपयोग गया, तो वे वर्षोंके लिए टल जाते हैं और फिर सिवा कुछ भी हाथ नहीं आता। कलकत्तेके हिन्दी इतिहासमें आज वही स्वर्ण अवसर उपस्थित है। हमें है कि इससे हम लोग—हिन्दी-भाषा-भाषी, जो संख्यामें लाखसे भी अधिक होंगे—भरपूर लाभ उठावेंगे।

जो महानुभाव इस यज्ञमें सहायक होंगे, वे अक्षय भागी तो होंगे ही, साथ ही आगे चलकर उनके हृदय सन्तोष भी होगा कि उन्होंने एक ऐसे वटवृक्षका किया है, जो भविष्यमें केवल कलकत्ता और बंगालको वरन् समस्त हिन्दी-जगत्को प्रेरणा तथा स्फूर्तिके प्रदान करेगा। अतएव शुभस्य शीघ्रम्।

नारी

श्रीमती तारारानी श्रीवास्तव

वह प्रसिद्ध ट्रेन-डकैत है। मुझे उसकी वह उग्र मूर्त्ति अक्सर याद आ जाती है, जब कि उसने बड़े रोष और जोशसे कहा था—'हाँ जी, मैंने सत्रह बार जेल काटी है, और हज़ारों रुपए कमाकर धर दिए हैं, जिन्हें मेरी तीन पुश्तें खायँगी।'

'वासमती माई, तुम्हारे घरमें कौन-कौन है? और तुम क्यों···?' मेरी बातको बीचमें ही काटकर उस खूँख्वार बुढ़ियाने, जिसके चेहरेसे दुनियाके लिए नफ़रत टपक रही थी, जवाब दिया—'तीन बच्चे, माईजी!' और फिर उसने मिचमिचाती आँखोंसे झटसे मैले आँचलमें कुछ पोंछ लिया। मैं अवाक थी और सोच रही थी कि इसके पास भी कुछ संचित धरोहर है!

उसके हृदयका बाँध टूट चुका था, उसका मातृ-हृदय कराह रहा था। मैंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। वह कहती गई—'आप भी भगवानकी देह (स्वरूप) हैं।' फिर उसने विस्तारपूर्वक अपनी राम कहानी सुना डाली।

नाम था वासमती; पर भाग्य कुछ वैसा नहीं था। बाल्या-वस्थामें ही उसके माँ-बाप हैज़ेके शिकार हो गए थे और रह गई थी वह अनाथ बालिका। एक दूरके चाचा थे। वही उसके संरक्षक थे। पर रक्षक ही भक्षक निकले। चाचा-चाची पूर्वक ग्यारह वर्ष तक तो उसे आश्रय दिया और तत्प आठ सौ रुपए गिनाकर अपनी दयासे उसे मुक्त कर दि

इन आठ सौ चाँदीके टुकड़ोंमें वासमतीको ख एक खूसट बूढ़ा था, जिसकी पहली पत्नी मौजूद थी; प गुंजाइश न देखकर वासमतीका जीवित मांस खरीदा भगवानकी कुछ ऐसी देन कि उस वृद्ध व्यापारीको व्या सुनाफ़ा हुआ और देखते-देखते वासमती भी तीन बच्चे गई। इन पुत्र-रत्नोंसे कोष भरा देखकर वह व्यापारी साँस ले रहा था। पर भाग्य भी कम मज़ाक नहीं कर

एक रोज़ बूढ़ेके छोटे भाईके बच्चे कमरेमें कर हाथमें कड़े चमकाते आए उनके यहाँ खेलने। बेटोंकी मतीने प्रस्ताव रखा—'मेरे लल्लाको भी बनवा दो ज़ेवर।' वृद्धने एक न सुनी, और घरवालोंके बहुमतसे प्रस्ताव पर नवागत बहूकी शान कुछ कम थोड़े ही थी। घरकी बहू तीन बच्चोंकी माँने अपने मायकेका चाँदीका और अपने लल्लाकी उँगली पकड़कर चली गाँवके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

भला, गाँववाले इस मौक़ेपर क्यों चूकनेवाले थे! वे तो उपयुक्त अवसरकी ताकमें ही थे। बुढ़ऊने अपनी युवावस्थामें ग्रामकी एक बहनका जीवन नष्ट किया था, सो उसके भाई सुखियाने बदला लेनेकी भावनासे थानेमें रपट लिखा दी कि वासमतीने हमारे घरसे गहने चुराए हैं। नतीजा यह हुआ कि वासमती अपने लल्ला और गहनेके साथ पकड़ी गई और हवालात में डाल दी गई। पुलिसने सुबूतके अभावमें तीन दिन बाद उसे छोड़ दिया; पर अब प्रश्न यह था कि इस अस्पृश्य घड़ेको घरमें कौन रखे? एक स्वरसे गाँवके पंच भगवानने फ़ैसला कर दिया—'तीनों बच्चोंको ले लो और उसको घरसे निकाल दो।'

बुढ़ऊने डरते-डरते सिफ़ारिश की कि बच्चे पालनेके लिए ही उसे अभी थोड़े दिन तक नौकरानीके रूपमें रहने दिया जाय, क्योंकि छोटा बच्चा अभी तीन ही महीनेका है; पर ग्रामके पंच-परमेश्वर टससे मस न हुए। जिस पुरुष-समाजको सती-साध्वी जगन्माता सीताजीको निर्वासित करते देर न लगी, उसके लिए वासमती भला किस खेतकी मूली थी। 'निकालो गाँवसे बाहर'—यह हुक्म था पंचोंका। निर्वासन तो आर्य-संस्कृतिके विधानानुसार ही हुआ; पर न तो अब कोई तपोवन था और न थे ऋषिवर वाल्मीकि-जैसे आश्रयदाता। बल्कि उनके स्थानपर थी काम, लोभ इत्यादि वासनाओंसे भरी हुई दुनिया, जिसकी गृद्ध-दृष्टि इस चौबीस सालकी युवती मछलीपर थी। इसपर भी कठिनाई यह थी कि वासमतीके पास धरोहर थी वह चीज़, जो डाल-डालपर कूदनेवाली बन्दरियोंसे लेकर मांसभक्षण करनेवाली शेरनियों तकमें पाई जाती है, यानी मातृत्व अथवा नारी-हृदय।

हाँ, तो वह अभागी माँ गाँवको छोड़ न सकी। मातृ-हृदय तीन बच्चोंके मोहको तिलांजलि न दे सका। दिन-भर वासमती खेतोंमें दाना चुगती और शामको कच्चे ही या भूनकर चबा लेती और तलैयाका पानी पी लेती। उसके मनकी एक ही साध थी, यानी अपने तीन महीनेके बच्चेकी रुलाई सुनते हुए घरके पिछवाड़े बाँसकी झाड़ीमें अँधेरी रात काट देना। कभी वर्षा हो जाती, तो काँपते हुए किसीके ओसारेमें सो जाती और कदाचित् घरके मालिककी आवाज़ सुनाई पड़ जाती, तो खोप (भूसा रखनेके लिए बाँस द्वारा बने हुए घर) में घुस जाती। राँधा हुआ अन्न खाए और कुएँका पानी पिए उसे चार महीने हो गए थे, फिर भी उसके हृदयमें छलिनी आशा बनी हुई थी कि बूढ़ा शायद अब भी रख लेगा। जब पुराने वैर-विरोधके कारण दुश्मनोंने उसे बेकसूर पकड़वा दिया था, तो फिर उसको अपराधी क्यों माना गया? आज तक किसीने उसके हाथ पकड़नेका साहस नहीं किया, फिर भला उसे अछूत क्यों समझ लिया गया? और फिर भगवानके दिए हुए उन्हीं बुढ़ऊसे उसके तीन बच्चे जो हैं।

एक दिन गाँवकी गोड़िनने कहा—'सिंहजी नहीं रखेंगे, बहन, कहीं और चली जाओ। इतना दुःख क्यों उठाती हो?' इसपर उसे विश्वास ही नहीं हुआ; पर जब बड़े लड़केने मौक़ा पा आकर कहा—'माँ तुम चली जाओ, नहीं तो पिताजी मारेंगे।' तब बिल्कुल निराश हो उसने अपने ही बच्चोंको चुरानेका दृढ़ संकल्प कर लिया, और अवसरकी ताकमें रहने लगी।

अँधेरी रात थी। बूढ़ा आँगनमें छोटे बच्चेके पेटपर हाथ रखे सो रहा था। वह धीरे-धीरे घुसी अपने ही घरमें, चोर बनके! बूढ़ेका हाथ उसने कपड़ेकी तहोंपर रख दिया और चटपट अपने ही खूनसे तैयार ममताके पुतलेको उठाकर ले भागी। पर भाग्यने उसका पीछा न छोड़ा। पहले तो यह हो-हल्ला हुआ कि बच्चेको गीदड़ उठा ले गया; पर पीछे गाँवकी एक धूर्त बुढ़ियाने भेद खोल दिया कि बच्चेको उसकी माँ उठा ले गई है और पिछवाड़ेकी बाँसकी झाड़ीमें छिपी बैठी है। अतः मालमतेके साथ मुजरिम गिरफ़्तार कर ली गई, उसकी दुर्गति की गई और बच्चा छीन लिया गया। पर अब वह दुःखसे पिघल जानेवाली मोम नहीं थी, बल्कि कष्टोंको धता बता देनेवाली, कठोर-हृदय, कर्मशील व्यक्ति बन गई थी। यही नहीं, उसकी हृदयवेधक अनुभूतियोंने उसे जीवन-धारणके हेतु शिकारी भी बना दिया था।

वासमतीने अपने बड़े लड़केको फुसला लिया। एक रोज़ उस लड़केने खबर दी—'बाबू और काका बलिया गए हैं।'

रात अन्धकारमय थी, ठीक उसके भाग्यकी तरह। वह घर पहुँची। सौत सो रही थी। उसने सब ज़ेवर इकट्ठे किए और तीनों बच्चोंको उठाकर चलती बनी। अनेक कष्टोंको काटते हुए वह माँके घर पहुँची; पर वहाँ भी दुत्कारके सिवा कुछ न मिला। फिर वह आश्रयकी खोजमें बिल्लीकी तरह तीन बच्चोंको दाँतमें दाबे घर-घर घिघियाती फिरी; पर किसीने बैठने न दिया!

इसी प्रकार भटकते-भटकते किसी शहरमें सुप्रसिद्ध डकैत रमजनियासे उसकी मुलाक़ात हो गई। रमजनियाने उसे गले लगा लिया। परिणाम? दरिद्रता, तीन बच्चोंकी ममता और हिन्दू-समाजकी धर्म-परायणता (!) ने वासमतीको आज ट्रेन-डकैतके खूँख्वार रूपमें खड़ा कर दिया था। महिमामयी नारीका यह विचित्र परिवर्त्तन था। पर आज भी उसमें मातृ-हृदय ज्यों-का-त्यों प्रेमपूर्ण रूपमें विद्यमान है। पढ़ा-लिखाकर उसने अपने तीनों बच्चोंको नागरिक जीवनके योग्य बना दिया है। वह कहती है—'मैं चाहती हूँ कि मेरा कलंक मुझी तक रहे, मेरे प्यारे बच्चोंको छूने न पावे।'

सेण्ट्रल जेल भागलपुरमें जब इन पंक्तियोंको मैं लिख रही हूँ, उस कठोर नारीके अन्दर कोमल मातृ-मन्दिरके दर्शन मुझे साक्षात हो रहे हैं और उस डकैत कहलानेवाली कठोर, किन्तु कोमल, माताको मैं श्रद्धाके ये पुष्प सादर अर्पित कर रही हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोस्वामी तुलसीदास

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दीके महाकवि थे। वे वैष्णव सन्त थे, उनमें वैष्णव-सुलभ जीव-दया और प्रेम था। उनकी भक्ति 'स्मृति-सम्मत' थी, और वह जितनी दूर तक प्रेमका प्रसार कर सकती थी, उतनी दूर तक तुलसीदासमें प्रेम भी है। तुलसीदासमें जितनी महानताएँ हैं, वे उन्हें महान बनाए रखनेके लिए काफ़ी हैं। पर न-जाने क्यों, हमारे यहाँ जो भी मतवाद पैदा होता है, वह अपनेसे पूर्ववर्तियोंकी छाप अपने ऊपर रखना चाहता है—दूसरे अर्थोंमें अपना समर्थन पूर्ववर्तियोंकी ज़बानसे कराना चाहता है। शायद इसी खयालसे एक साहित्य-समीक्षकने भीषण घटाटोपके साथ कहा है—'मध्यकालीन भारतमें मुख्य उत्पादक शक्ति किसान थे और उनके उत्पादनसे लाभ उठानेवाले हिन्दू और मुग़ल सामन्त थे, जिनका मुख्य संगठन-केन्द्र अकबरका दरबार था।' और '...इस नीरस गाथाका तात्पर्य यह है कि मध्यकालीन भारतका मुख्य संघर्ष सामन्त और किसानके बीच था।' पर इस साधारण-सी बातके लिए शायद इतने घटाटोपकी ज़रूरत नहीं थी। इतिहासके आदिम युगसे भारतकी मुख्य उत्पादक शक्ति किसान ही रहे हैं। उनमें अपनी हीन परिस्थितिके प्रति असन्तोष भी स्वाभाविक है; पर उस असन्तोषने तुलसीदासके कालमें संघर्षका रूप धारण कर लिया था, इसके लिए यथेष्ट प्रमाणकी ज़रूरत है। मैं यह नहीं कहता कि वह असन्तोष व्यक्त नहीं हो रहा था। मेरी रायमें वह असन्तोष निर्गुण सन्त-सम्प्रदायकी वाणीमें व्यक्त हुआ है। और आगे चलकर औरंगज़ेबके कालमें इसी निर्गुण सन्त-सम्प्रदायके सतनामी साधुओंने विद्रोह भी किया था। मुझे नहीं मालूम कि 'स्मृति-सम्मत हरिभक्ति-पथ'में भी कहीं विद्रोह हुआ था या नहीं। इसलिए मध्यकालमें किसान-सामन्त-संघर्ष दिखाकर और उसके आधारपर तुलसीदासको प्रगतिशील सिद्ध करना काफ़ी विवादास्पद है।

उसी जगह उसी साहित्यिकने लिखा है—'तुलसी लोक-धर्मके समर्थक हैं, उससे विरक्त नहीं हैं। उनसे मतभेद तभी होगा, जब उनकी भक्ति लोक-धर्मके प्रतिकूल हो जायगी।' तुलसीदासके लोक-धर्मके सम्बन्धमें पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—'लोक-मर्यादाका उल्लंघन, समाजकी व्यवस्थाका तिरस्कार, अनधिकार चर्चा, भक्ति और साधुताका मिथ्या दम्भ, मूर्खता छिपानेके लिए वेद-शास्त्रकी निन्दा, ये सब बातें ऐसी थीं, जिनसे गोस्वामीजीकी अन्तरात्मा बहुत व्यथित हुई।'[1] और ब्राह्मण्यवादका लोक-धर्म ऐसा होता ही है। ब्राह्मण्यवादमें वेद-प्रामाण्य और वर्ण-व्यवस्था को न माननेवालोंको व्रात्य कहकर गालियाँ दी गई हैं, कीकट देश (मगध) को इसीलिए अनार्योंका निवास कहा ब्राह्मण्यवादमें आर्य (श्रेष्ठ) होनेके लिए वेद-प्रामाण्यको तुलसीदासने भी अपने पूर्ववर्त्तियोंके नियमोंका पालन अपने कालके सन्तोंको भरपूर सुनाया है, जिसका समर्थन ने भी किया है। तुलसीदासका लोक-धर्म (१) द्विज है, (२) वेद-शास्त्रकी मर्यादाका पृष्ठपोषक है, (३) एक मानव-समुदायको अर्ध-दासताकी हालतमें रखने

तुलसीदास जिस लोक-मर्यादाके माननेवाले हैं, व व्रतका अनधिकारी, अमानुष, यज्ञ और देवताओंके योग्य है। उसका स्वाभाविक कर्म सेवा माना गया है। इकट्ठा करनेका अधिकार इसलिए नहीं दिया गया है ब्राह्मणोंको तक़लीफ़ देगा। वेद सुन लेनेपर उसके सीसा डालने और पढ़ लेनेपर उसकी जिह्वा काटनेकी उसे ब्रह्मज्ञानका अधिकारी किसी भी हालतमें नहीं मा तुलसीदासने सोच-विचारकर ही एक नियोजित ढंगसे ज़हर उगला है। फिर भी लोग कहते हैं—तु सहृदयता और तार्किकतामें सदा सामंजस्य नहीं रहता बुद्धिसे जिस वर्णाश्रम-धर्मको वे श्रेय समझते हैं, उनकी सहृदयता विद्रोह करती है।' यही महानुभाव फिर कहते हैं—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका यही है कि मनुष्य बड़ा होता है अपनी मनुष्यतासे, और पदसे।' शायद उनके हाथों कोई हस्तलिखित प्रति हो; नहीं तो वे ऐसी बात न कहते। कारण, तुलसीदास आराध्यके श्रीमुखसे स्वयं कहलाया है :—

सुनु गन्धर्ब कहउं मैं तोहीं। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताके सब देव॥

सापत ताड़त परुष कहन्ता। बिप्र पूज्य अस गावहिं
पूजिय बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान

अगर मनुष्य अपनी मनुष्यतासे बड़ा होता है, ऐसी तुलसीदासकी है, तो फिर उनको इस बातसे रंज न होना कि कोई शूद्र 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मः'का दावा करता तुलसीदास पक्के ब्राह्मण्यवादी थे, और ब्राह्मण्यवादमें शूद्र ज्ञानके अयोग्य माना गया है।[3] इसीलिए तुलसीदासने कहा

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।

---

१. 'गोस्वामी तुलसीदास', अध्याय 'लोक-धर्म', पृ० ३३-३४ और पूरा अध्याय द्रष्टव्य।

२. ऋग्वेद ३,५३,१४ की व्याख्यामें यास्क ६,३२ सभी भारतीय पंडित कीकट देश मगधको मानते हैं।

३. गौतम-धर्मसूत्र १।१।३ और मनु० १०।१२६।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आंखि देखावहिं डाटि ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥
साखी, सबदी, दोहरा, कहि किहनी उपखान ।
भगत निरूपहिं भगति कलि, निन्दहि वेद-पुरान ॥

कहना न होगा कि तुलसीदासका इशारा यहाँ गोरख-पंथियोंसे लेकर कबीर, दादू आदिकी परम्पराके सन्तोंकी ओर है। ये सब सन्त किसी वेद-शास्त्रको सामने रखकर उसके आधारपर तो उपदेश देते नहीं थे, बल्कि ये तो 'संसकिरित है कूप जल' कहते थे। तो फिर उस भाषाके ग्रन्थोंसे इनका क्या काम? लेकिन शायद उनका प्रभाव भी कुछ बढ़ रहा था। इस सम्बन्धमें तुलसीदासने लिखा है :—

कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन निज मति कलप करि, प्रकट किये बहु पन्थ ॥
मारग सोइ जाकहुँ जो भावा । पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई । ताकहुँ सन्त कहहिं सब कोई ॥

पर शैव-वैष्णव विवादके सम्बन्धमें तुलसीदास 'मारग सोइ जाकहुँ जो भावा' कहकर बुरा नहीं मानते, बल्कि वहाँ तो विष्णुके अवतार अपने आराध्यके श्रीमुखसे कहलाते हैं :—

शिवद्रोही मम दास कहावै । सो नर सपनेहु मोहि न भावै ॥

वहाँ तो उन्होंने शैव-वैष्णवोंको अपना-अपना मत माननेकी खुली आज़ादी दी है। क्या इसका कारण यह नहीं है कि शैव-वैष्णव-विवाद हिन्दू-सामन्तों, मठाधीशों तथा उच्चश्रेणीके लोगोंका आपसका मतभेद था, जिससे उनकी शक्ति बिखरती थी और इस तरह ब्राह्मण्यवाद कमज़ोर पड़ता था? इसे तुलसीदास-सरीखे ब्राह्मण्यवादी कवि भला कब पसन्द कर सकते थे?

फिर मध्य-कालमें हिन्दुस्तानकी समस्या सामन्त-किसान-संघर्ष की शक्लमें थी, ऐसा इतिहास भी नहीं बताता। मध्यकालीन समस्याको हम दो भागोंमें बाँटते हैं—(१) हिन्दुओंका भीतरी पतन। इसके अन्दर भी दो सतह हैं : (क) उच्चश्रेणीमें साम्प्रदायिक (जैसे शैव-वैष्णव) विवाद, और (ख) उच्चश्रेणीका नीची श्रेणीके साथ बुरा बर्त्ताव (ऊँच-नीच, छुआछूत, वर्णवाद, जाति-वाद और धार्मिक ढोंग इत्यादि); और (२) हिन्दू-संस्कृतिके जीर्ण-शीर्ण ढाँचेसे मुस्लिम संस्कृतिका द्वन्द्व। संक्षेपमें यही मध्य-कालकी समस्या थी।

हिन्दुस्तानके इतिहासमें यह एक अद्भुत सामाजिक सत्य है कि जहाँ-जहाँ ब्राह्मण्यवादको अस्वीकार करनेवाले व्रात्य थे, वहाँ-वहाँ बादमें बौद्ध धर्मका ज़ोर बढ़ा; और जहाँ-जहाँ बौद्ध धर्मका ज़ोर था, वहीं-वहीं बादमें इस्लामका ज़ोर बढ़ा। इसका रहस्य छिपा है वर्ण-व्यवस्थाके अन्दर। जिन गोरखपंथियोंपर तुलसीदासका कोप है, उनके अन्दर रहनेवाले बुनकरोंका उपकार 'श्रुति-सम्मत हरि-भक्ति-पथ'से नहीं हुआ। उसमें तो उनकी हालत अर्ध-दासताकी-सी थी। यही कारण है कि सभी बुनकर श्रेणी-रूपेण उस इस्लामके झण्डेके नीचे चले गए, जहाँ उनकी अर्ध-दासताका अन्त होता था। (इसीलिए हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंके अन्दर इन जुलाहोंकी संख्या सबसे ज़्यादा है।) ये सभी इस्लामकी तलवारसे मुसलमान नहीं हुए, ब्राह्मण्यवादकी ज़ुल्मी तलवारसे बचनेके लिए मुसलमान हुए।[४] वर्णाश्रमी व्यवस्था द्वारा छोटी बनाई गई जातियोंके प्रति तुलसीदासके हृदयमें ज़रा भी दया नहीं थी और न वे उनके सम्बन्धमें सोचने-विचारनेके लिए तैयार थे। उनके जाति-द्वेषका एक परिचय यह है :—

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥

यही नहीं, तुलसीदासका शूद्र-विद्वेष और शूद्रोंको अर्ध-दासताकी हालतमें रखनेका समर्थन दशरथके मर जानेपर भरतको गुरु वशिष्ठ द्वारा समझानेमें और भी साफ़ हो जाता है। द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, जो साधन-सम्पन्न श्रेणी है) के सम्बन्धमें वे कहते हैं :—

सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धरम विषै लौ लीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिय बयसु कृपिन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥

और उन शूद्रोंके लिए, जिनको वेद-शास्त्र, श्रुति-स्मृति सभीने सर्वसाधन-हीन कर रखा था, जिन्हें आजकी परिभाषामें सर्वहारा कह सकते हैं, उनके सम्बन्धमें तुलसीदास कहते हैं—'सोचिय सूद्र विप्र अपमानी। मुखर, मानप्रिय, ज्ञानगुमानी॥' क्या इससे यह साफ़ नहीं मालूम होता कि तुलसीदास द्विज-श्रेणीके हितोंकी रक्षा बहुत सफ़ाईके साथ करते हैं? और इसीके लिए वे शूद्रोंको अर्ध-दासताकी हालतमें रखनेके पक्षपाती हैं? किन्तु किसी 'भगवद्भक्त' हिन्दू सम्राटके अभावके कारण जो ये शूद्र 'मुखर', 'मान-प्रिय' और कबीर आदिके रूपमें 'ज्ञान-गुमानी' भी होते जा रहे थे, उससे तुलसीदासको बड़ा क्षोभ था।

तुलसीदासका यह सम्पूर्ण दृष्टिकोण बताता है कि उनका ध्यान उच्च श्रेणीके हितोंकी ओर था; और जिस तरह मनु, याज्ञवल्क्य और नारद-स्मृतियोंमें उच्चश्रेणीके हितोंकी रक्षा की गई है—कवित्वकी विशेषताके साथ—उसी तरह तुलसीदासने भी उच्चश्रेणीके हितोंकी रक्षा की है। हाँ, ऐसा करते हुए वे मनु और वाल्मीकि-जैसे क्रूर नहीं हैं; और यह इसलिए कि समाज अपेक्षाकृत आगे बढ़ गया था। वाल्मीकिने रामके हाथों शूद्र मुनि (शम्भूक)की हत्या करवाई; पर भवभूतिने अपने रामके मुखसे ही उस दाहिने हाथकी भर्त्सना करवाई और तुलसीदासने

४. श्री राहुल सांकृत्यायन—'प्राचीन हिन्दी और इसलाम', 'विश्ववाणी', सितम्बर १९४४।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

मातृत्व

कुमारी सुप्ति सिंह, एम० ए०, डी० टी०

'माँ' शब्दमें विश्व-ब्रह्माण्डकी सारी विभूतियाँ भरी हैं। जो स्नेह हृदयको मथितकर, शरीरकी नसोंको झकझोरकर लोम-लोमसे, सूर्यकी किरणके समान, विद्युतकी धारकी तरह, दसों दिशाओंसे घूमकर दूरस्थ सन्तानके कानोंमें एक अस्फुट स्वरमें, एक हल्की-सी ध्वनि 'माँ'में माताका सर्वस्व भाव प्रस्फुटितकर उसके मनको विह्वल कर देता है, वह मातृत्वका कोट्यांश भी नहीं कहा जा सकता। इतनी तीव्र है इसकी गति। जो प्रेम माँके हृदयके अति कोमल, अति सूक्ष्म, अति आर्द्र तन्तुके तारसे उत्पन्न होकर सन्तानकी दृष्टिसे देखी गई मानव-जातिको जिस प्रकार सम्पूर्ण रूपसे आवृत रखता है, छोटी-बड़ी लहरें मिलकर भी वृहत्तम सागरको उस प्रकार घेरकर नहीं रह सकतीं। इतना अनन्त है इसका विस्तार। जो अनुभूति माँको गौरवान्वितकर सम्मानके उत्तुंग शिखरपर चढ़ानेके निमित्त सन्तानके अस्थि-पंजरमें घुसकर मृतमें प्राण संचार कर सकती है, रक्तहीनको खूनकी होली खिलानेमें उत्तेजित कर सकती है, मर-मिटकर अपनेको अमर रखनेके उत्सको अपने हृदयकी धुक्धुकी जगाए रखनेका सामर्थ्य रखती है, वह अरुणकी प्राणदायिनी किरणोंकी शक्तिसे, कर्ममय करनेवाली ज्योतिर्मय छटासे कहीं अधिक प्रचण्ड है, कहीं अधिक उज्ज्वल है। इतनी प्रखर है इसकी शक्ति।

जब बच्चा खेलसे क्लान्त होकर माँकी गोदमें लपककर आता है, उछ्वाससे उछलकर जब कोमल रक्त-रंजित ओठों तक पहुँचना चाहता है, तुतली वाणीसे हृदयकी सारी उमंग भरकर, शरीरके सारे उत्साहोंको सींचकर थकानको दूर करनेकी इच्छासे संजीवनी धाराको पान करनेके निमित्त केवल मधुर स्वरमें—धीमेसे 'माँ' कहता है, उस समय माताके मुखमण्डलका वात्सल्य-रससे प्रदीप्त, मृदुल, लावण्यमय आभाका प्रतिबिम्ब, स्नेहसे सिक्त नयनोंकी अमृत-वर्षा और तृप्तिसे अंकित ओठोंकी स्मित-रेखाके सौन्दर्यका वर्णन कौन-सी लेखनी कर सकती है? अथवा किस कलाकारकी तूलिकामें वह सामर्थ्य है कि वह उस दैवी सौन्दर्यको रूप दे सके? इतना अतुलनीय है, इसमें सौन्दर्य। विश्वके आदि कलाकार सृष्टिके निर्माताने कदाचित् इसी चित्रसे सूर्योदय तथा सूर्यास्तके रमणीय, लोभनीय, मुग्धकारी चित्रपटपर रंग भरनेकी प्रेरणा पाई है। प्रातःका स्निग्ध नीलेसे पीलेका एकीकरण बच्चेकी स्नेही माँग और माँके चुम्बनकी उमंगका मिलन है। पूर्व दिशाका लालिमासे ओतप्रोत होकर झूमना मातृ लावण्यसे समानता रखता है। नीचे कल-कल करती जब अस्फुट स्वरसे आह्वान करती है, तब आकाशकी लालिमाका प्रतिबिम्ब नदीके सर्वांगपर फैलकर उसे मुस्कराहट आँक देता है और नदी तृप्त होकर फिर ले हो बढ़ चलती है। इस अतुल्य चित्रकारकी कल्पना कवि, चित्रकार, दार्शनिक, भावुक, व्यथित व व्यक्ति सभी मुग्ध होकर अपने भावोंके प्रेरक-रूपसे देखते और देखते रहेंगे। फिर भी इस चित्रांकनमें एक वह है प्राणमय मंजुल और यह है जड़मय सुन्दर।

मातृत्वके इसी वात्सल्य रसके आस्वादन हेतु परमेश्वरने यशोदाकी गोदमें बाल-रूपमें जन्म लिया था। कृष्णकी बाल-लीलाके मधुर रसके अनुमान-मात्रसे बीत जानेपर भी आज तक कवि, लेखक और भक्त उमड़ आता है। श्रीकृष्णके शैशवके मचलनेका दृश्य संसार मुग्ध हो जाता था, तथा उसके साहित्यको पढ़ भी हृदय प्रेमसे गद्गद हो जाता है। एक दिनकी यशोदाजी घरके आवश्यक कामोंमें लग रही थीं, बालकृ गए और बोले—'मैं गोद चढ़ूँगा।' मताने कुछ दिया। इसपर खीझकर वे रोने और आँगनमें लोटने माँका प्यार पानेकी इच्छासे रंजित बालकृष्णका सौन्दर्य कितना अधिक हो गया होगा, यह सोचकर देवर्षि अनुपमेय अलौकिक दृश्यको देखनेके लिए वहाँ आ उन्होंने देखा, सचराचर विश्वके स्वामी परम आनन्दमय माताकी गोदमें चढ़नेके लिए पृथ्वीपर पड़े रो रहे हैं। देवर्षि गद्गद हो गए और यशोदाको पुकारकर कहने लगे

किं ब्रूयस्त्वां यशोदे कतिकति सुकृतक्षेत्रवृन्दानि
गत्वा कीदृग् विधानैः कतिकति सुकृतान्यर्जितानि त्वचैः
न शक्रो न स्वयम्भूर्न च मदनारिपूर्यस्य लभे प्र
तत्पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपत् क्रोड़भारोदूकामम्

अर्थात्—हे यशोदे, तेरा मग्य महान् है। क्या कहूँ, न पिछले जन्मोंमें तीर्थोंमें जा-जाकर कितने महान पुण्य अरी, जिस विश्वपति, विश्वस्रष्टा, विश्वरूप, विश्वाधार कृपाको इन्द्र, ब्रह्मा और शिव भी नहीं प्राप्त कर सकते पूर्ण ब्रह्म आज तेरी गोद चढ़नेके लिए पृथ्वीपर पड़े

अपने राममें वह कलंक लगने ही नहीं दिया! कृष्ण-भक्तिके सहारे जो चारित्रिक कमज़ोरी उच्चश्रेणीमें आ गई थी, उसे भी रामका चरित्र रखकर तुलसीदासने दूर करनेका प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इस दृष्टिसे यदि कोई ब्राह्मण्यवादी तुलसीदासको प्रगतिशील कहे, तो कह सकता है। भारतीय समाजके हित और सुखकी दृष्टिसे (या मान दृष्टिकोणसे) तो तुलसीदासके ये कार्य कभी भी नहीं कहे जा सकते।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। निर्मल, निःस्वार्थ प्रेमानन्दका क्या और कोई स्वरूप है? कितनी असीम और आकर्ष मधुरिमा इसमें है!

सारे पृथ्वी-मण्डलमें यदि कोई त्यागका प्रतीक खोजता फिरे, तो स्नेहसे संचित, जीवन-रससे परिपूर्ण माँके कोमल स्तनसे अनुपम-अद्वितीय दृष्टान्त मिलना असम्भव है। माताका मूक वक्ष मानो कहता है—'मैंने अपने रक्तको तेरा पेय बना दिया। जिसको लाल देखकर तुझे डर लगता, उसे पवित्र, शुभ्र, स्वादिष्ट बना दिया। सारे शरीरकी शक्तिको प्रेमसे बटोरकर तेरे लिए मैंने संचय कर रखा है, तेरे ही समान कोमल स्थानमें, जिससे तुझे कष्ट न हो। तू पी जा, तू चूस ले मेरा निचुड़ा हुआ सारा सार। तू कर दे मुझे रिक्त। इसीमें मेरी तृप्ति है, इसीमें मेरा आनन्द है और इसीमें है मेरी विभोरता।' केवल यही उदाहरण त्यागकी पराकाष्ठा दर्शानेके लिए पर्याप्त है। मनुष्य-माँ अथवा पशु-माँमें ही नहीं, बल्कि सारे भूमण्डलकी माँकी यही मूर्त्ति हम देखते हैं।

पुरुष और प्रकृतिके सम्मिलनसे विश्व-ब्रह्माण्डकी रचना हुई। हम देखते हैं कि अणुसे भी क्षुद्र परमाणु है, और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चक्षु-अगोचर परमाणुसे भी क्षुद्र है परम परमाणु। यही जगत्का निर्विशेष चरम उपादान है। इसीके संयोग-संहननसे विश्वकी सृष्टि-रचना हुई। इसी उपादानको हम सूक्ष्म प्रकृतिके नामसे पुकारते हैं। इन उपादानोंके संयोग-संहननके मूलमें जो शक्ति निविड़ रूपसे है, वही पुरुषके नामसे पुकारी जाती है। यही चरम उपादान मिल-मिलकर जब पृथ्वीके समान मिट्टीके रूपमें परिणत हुआ है, हमने उसे स्थूल प्रकृतिके नामसे जाना है। यही स्थूल प्रकृति पंचभूतात्मक होकर संसारकी गोचर वस्तुओंको रूप दान करती है। इसीको हम प्रकृति-माँ कहेंगे।

अब प्रश्न होता है कि प्रकृतिको हमने 'माँ' क्यों कहा? क्या माँका पूर्ण रूप हम उसमें देख पाते हैं? इसी पृथ्वीपर ही स्थावर, जंगम, उद्भिज पदार्थोंकी सृष्टि होती है। पृथ्वीसे पैदा हुई और पृथ्वीपर पैदा हुई वस्तुएँ एक-से-एक लोभनीय गुण सम्पन्न हैं—अर्थात् पृथ्वीमें इन गुणोंका सूक्ष्म रूप वर्त्तमान है। हम एक सुन्दर, सुगन्धित गुलाबको देखकर मुग्ध होते हैं। पृथ्वीसे उसकी उत्पत्ति है। वसुधा उसे अपने वक्षस्थलके रससे सींचती है और गुलाब वसुधाकी सुधाको चूसकर अपनेको माधुर्य-पूर्ण करता है। रूप-रस-गन्ध उँड़ेलकर वह पुष्पको प्रस्फुटित करती है और चुपकेसे उसकी नस-नसमें प्रवेशकर कहती है—'संसारको सुखी करनेके निमित्त जितना समय जीवित रह सकते हो, रहो।' अपने वक्षस्थलपर बड़े-बड़े वन उत्पन्नकर वह उनसे कहती है—'देशकी रक्षा करो, वीर बनो।' सुस्वादु फल-मूलकी सृष्टि करके वह अपने अन्दरकी दानशीलताको विकसित करती है और कोटि-कोटि प्राणियोंके प्राण धारण करनेके लिए उन्हें अभय-दान देती है। वह मूक भाषासे ज्ञापित करती है—'हे सृष्टिके जीव! जब तक मैं हूँ, अपने अस्तित्वको निचोड़कर तुम्हारी सेवा करनेमें ही मेरी परितृप्ति है।' असंख्य प्रकारसे प्रतिक्षण प्रकृति-माँने हमारे अत्याचारोंको निर्वाक् होकर सहते हुए हमें अपने जीवनमय दानोंसे इस प्रकार आवृत्त कर रखा है कि हम कभी सोच ही नहीं पाते और अधिकार-रूपमें सब-कुछ ग्रहण करते जाते हैं। इसी गम्भीर दृष्टिसे हमारे प्राचीन महर्षियोंने माँके असीम गुणोंको देखकर उन्हें प्रतिमामें स्थापित किया था। जिस अगणित रूपसे माँ अपनी सृजित वस्तुकी—चाहे वह स्थावर हो, चाहे जंगम—रक्षा करती है, उसे हम आकार देकर दस भुजायुक्त महिषासुर-वधकारिणी दुर्गाके रूपमें पूजते हैं। वह असीम शक्तिदायिनी माँ शतकोटि वार प्रणम्य है। विकसित रक्त कमलपर स्थित दानरूपिणी माँको सहस्र वार प्रणाम है। माँकी अन्तरात्माके निगूढ़ स्थलमें वही भाव वात्सल्य-रससे आप्लावित रहता है, जो भक्तके हृदयमें भक्ति और योगीके हृदयमें ज्ञानके रससे प्रवाहित होकर उन्हें उनके उच्चतम आदर्श—परम आनन्द-स्वरूप सत-चित्-आनन्द—को प्राप्त करनेके निमित्त निरन्तर उन्हें स्फटिक बनाता रहता है। प्रत्येक नारी इसी रूप और रससे विकसित हो।

गीत

श्री सुधीन्द्र

प्रेय अपना आप हूँ मैं!

कौन है जगमें कि जो मुझसे मुझीको अधिक चाहे?
कौन जो मुझसे प्रलय तक प्रणयका बन्धन निबाहे?
कौन मेरे प्राणमें जो प्राण ही अपने समा ले?
मरणका आघात पाकर भी न जो पल - भर कराहे?
आप अपना वर बना जो, वह अमिट अभिशाप हूँ मैं!
गेय था मैं ही अकल्पित कोटि कल्पोंकी कथाका;
ध्येय था मैं ही अलक्षित जन्म-जन्मोंकी व्यथाका;
प्राण थे जिस ओर उन्मुख, मैं स्वयं था लक्ष्य उसका;
सिद्धि निकला मैं स्वयं ही साधनाकी इस प्रथाका!
मिलनमें जो मिल गया घुल, वह अनन्त विलाप हूँ मैं!
मुग्ध था जिसपर कि मैं वह था स्वयं प्रतिरूप अपना;
कर रहा था अर्चना प्रतिपल उठाकर स्तूप अपना;
लुब्ध था जिसमें निरन्तर, वह स्वयं था पाश मेरा;
प्रेम अभिनय यह सभी निकला अचानक एक सपना!
पुण्य जो पलमें बना, वह जन्म-भरका पाप हूँ मैं!
प्रेय अपना आप हूँ मैं!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कीर्त्तन

श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा

बरसातके दिन थे, पर धूल उड़ रही थी। धानके नन्हें-नन्हें पौधे हरेसे पीले हो गए थे और झुलसनी हवामें सिर धुन-धुनकर मर रहे थे। अपने इन प्यारे बच्चोंको सामने तड़पते देख बेकस किसानोंकी छाती फटी जा रही थी। उत्तर-पट्टीमें सलाह हुई, वर्षाके लिए कीर्त्तन किया जाय। यों तो छक्कनसिंह कोई भी प्रस्ताव सामने लाते, तो गिलौरी दुबे सोचते कि कैसी बाहरी चाल चल रहा है! गीताके निस्स्वार्थ कर्मकी कसौटीपर इस गाँवको जाँचिए, तो आला नम्बरका निकलेगा। अन्तर केवल यही है कि यहाँ निस्स्वार्थ कर्म दूसरेकी भलाईके बदले बुराईके लिए होता है। उसको बढ़ती रोकनेके लिए अपना नुकसान करना यहाँ सभी धर्म समझते हैं। पर संकटमें आदमी और साँप एक ही डालपर आश्रय लेते हैं। फिर भी दक्खिन-पट्टीसे आपत्ति उठी, बिना हमसे पूछे कीर्त्तनका निश्चय क्यों किया गया? खैर, समझौता हो गया, और सभी लोगोंने अपने सामर्थ्यानुसार कुछ न कुछ चन्दा दिया। उत्तर-पट्टीके मन्दिरमें चौबीस घण्टेका अखण्ड कीर्त्तन हुआ। दैवने भी झट सुन ली और बारह घण्टे भी न बीते थे कि मूसलधार वृष्टि हुई।

गाँवसे कुछ दूर एक बड़ा-सा आहर है; पर उस समय वह बेमरम्मत पड़ा था। उत्तर-पट्टीके लोग फिर अगुआ हुए, और दस दिनकी कड़ी मेहनतसे दैवका दिया हुआ पानी संरक्षित कर लिया गया। जिन लोगोंने स्वयं परिश्रम किया था या जिन्होंने आदमी दिए थे, उनको छोड़ बाक़ी सभीके ऊपर खर्चके ३८) का हिस्सा बाँट दिया गया। देनदारोंकी सूचीमें अधिकतर दक्खिन-पट्टीवालोंके ही नाम थे।

दक्खिन-पट्टीने कहा—हम खर्चका हिस्सा देनेको तैयार हैं; पर ३८) बहुत होते हैं। इतना खर्च कैसे हो सकता है? हमें इसका ब्यौरा मिलना चाहिए। पर उत्तर-पट्टीने आगा-पीछा किया। ब्यौरा दिया भी नहीं और न देंगे, सो भी नहीं कहा। साथ-साथ तक़ाज़ा दिन-दिन ज़ोर पकड़ता गया। बात यह थी कि आहर-मरम्मतकी आड़में उत्तर-पट्टीके चन्द्रदेवसिंहकी गाँजेकी अतृप्त लालसाने पगहिया खुला ली थी। अकेला इस मदका खर्च १५) हो गया था। बात भीतर-भीतर तो फूट गई थी; पर बाहर फोड़े कौन? उत्तर-पट्टीकी चाल थी कि गाँजेका दम दूसरोंके मत्थे निपट जाय और दक्खिन-पट्टीका दाँव था कि आहरके वाजिब खर्चसे भी इसी बहाने निकल जायँ।

यह बात तय भी न हो पाई थी कि सिंचाईके लिए आहरसे पानी लेनेका समय आ गया। आहर कहाँ काटा जाय, यह सवाल उठा। उत्तर-पट्टीके लोग कोनेमें काटने चले; पर दक्खिन-पट्टीवालोंने रोका कि आहरका वह कोना सबसे निचला हिस्सा है; वहाँ काटनेसे तो सब पानी आप लोगोंके ही खेतमें और हम सूखे रह जायँगे। वाद-विवाद आरम्भ चलते उत्तर-पट्टीका आदमी दक्खिन-पट्टीसे उलझ में उत्तर-पट्टीमें बैठक हुई, जिसमें दक्खिन-पट्टीके सम्मिलित हुए।

मोथा रायने कटाक्ष किया—'आप लोग पैसा देंगे बहुरियाका घूँघट झाँकने लगते हैं और पानीका है, तो पाँचो अँगुली घीमें चाहिए।'

दक्खिन-पट्टीके डोमनलाल तिलमिला उठे—'क्यों कहते हैं, साहब?'

'ऐसा न कहें, तो कैसा कहें? सच्ची बात ही है।'

'हम खैरात माँगने आपके पास नहीं आए हैं।'

'तो आहरका खर्च क्यों नहीं दे देते?'

'हम देनेको तैयार हैं; पर ३८) की अस्थित मालूम हो।'

सभामें कुछ देर सन्नाटा रहा। उत्तर-पट्टीकी छिपकर एक-दूसरेको देखने लगीं और दक्खिन-पट्टीकी आँखोंको खुफ़िया-पुलिसकी तरह छिपी-छिपी पीछा करते

'तो क्या खर्चकी रक़म झूठी है?'

दक्खिन-पट्टीके तिवारीने न्यायकी दुहाई दी—पंच कहें।'

निसान राय अन्तिम पंक्तिमें बैठे अभी तक ज्वालामुखीकी तरह अपना परिचय रह-रहकर खैनीकी पीकसे ही दे रहे थे। पंच शब्दने उन्हें अपना रूप दे सीना तानकर बोले—'मैं कहूँ, पंचकी ऐसी-तैसी। हम किया है, आहरका पानी हमारा है। जिस माईके लालके ज़ोर हो, वह आ जाय।'

मुन्शी डोमनलाल इस भैरव-मूर्त्तिके सामने तो कुछ थे; पर क़ानूनके क्षेत्रमें वैसे ही सबल और कुशल थे, घड़ियाल। इस रणभेरीकी ललकारमें न पड़ प्रतिद्वन्द्वीको अखाड़ेमें खींच लाए—'तो कीर्त्तनका चन्दा हमें लौटा

उत्तर-पट्टीके लोगोंने एक स्वरसे कहा—'कीर्त्तनका क्यों लौटा दें?'

'क्यों नहीं?'

'क्यों?'

'इसलिए कि वर्षाके लिए ही कीर्त्तन किया गया था

'इससे क्या?'

'आहरका पानी उसी वर्षाका है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात बढ़ती गई। मामला सुलझनेके बदले उलझता गया। अन्तमें मोथा रायने कहा—'वह खर्च देवीजीके नामपर किया गया था। जब आप लोग हमारी देवीको नहीं मानते, तो हमारे मन्दिरमें पूजा करने अबसे मत आइए। हमारी औरतें भी ब्याहकी मिट्टी कोड़ने आपकी पट्टीमें नहीं जायँगी।'

दक्खिन-पट्टीने चुनौती ले ली। जिस तरह शरीरमें एक विष दूसरे विषको मिटाकर रोगीको स्वस्थ बना देता है, उसी तरह उत्तर-पट्टीकी ओरके इस नवजात वैमनस्यने दक्खिन-पट्टीके लोगोंमें आपसकी सहृदयता जगा दी। इस मात्राका सहयोग इस गाँवमें बिरले ही किसीने देखा होगा। रुपए आने लगे, ईंटें गिरने लगीं और दीवारोंके साथ-साथ दक्खिन-पट्टीकी देवीका भाग्य ऊपर उठनेकी व्यर्थ चेष्टा करने लगा।

मन्दिरका निर्माण अभी आधा भी न हो पाया था कि प्रश्न उठा, पूजा कौन लेगा? दक्खिन-पट्टीके तिवारीने कहा—'मेरे यजमान मन्दिर बनवा रहे हैं और मन्दिर भी मेरी ही पट्टीमें है, अतः पूजा मैं लूँगा।' उत्तरपट्टीके पाँडेने कहा—'हम इस गाँवके डिहवार हैं। जहाँ कहीं भी मन्दिर बने, पूजा मेरी है।'

इसी बीच तेगा कहारने, जो अन्यत्रसे आकर इस गाँवमें बस गया था, अपने नए घरमें प्रवेश करनेके अवसरपर सत्यनारायणकी कथा बैठाई। तिवारीजी कथा बाँच रहे थे कि पाँडे लोगोंने आकर जेहाद छेड़ दिया—'आप कथा बाँचनेवाले कौन होते हैं?'

'मैं पुरोहित हूँ, और कौन?'

'आप पुरोहित कैसे हुए?'

तिवारीने शान्तिपूर्वक कहा—'दो कारणोंसे। एक तो यह कि तेगाने मेरे यजमानकी ज़मीनपर घर बनाया है। दूसरे सबको ईश्वर-दत्त अधिकार है, जिस किसीको पुरोहित पूजे। तेगाने मुझे पूजा।'

पाँडे इस तर्कके घेरेमें उसी तरह बेसब्र हो उठे, जैसे बेड़ेमें घिरा हुआ जंगली हाथी। चिंघाड़ मारकर बोले—'कभी नहीं; यह हो नहीं सकता। हम इस गाँवके डिहवार हैं।'

तिवारीकी नीतिशीलता पाँडेकी उद्दण्डताके सम्मुख भी पथच्युत नहीं हुई। दूसरा मार्ग भी न था। उसी शान्त भावसे बोले—'यदि आप हो इस गाँवके आदिम पुरोहित हैं और आपकी प्रभुता इतनी सर्वव्यापक है, तो इतने युगोंसे मैं आधे गाँवका पुरोहित कैसे रहा हूँ?'

इसके उत्तरमें पाँडे-घरानेके लोग उठे और एकने झपटकर तिवारीके हाथसे पोथी छीन ली। तिवारीकी सिट्टी गुम हो गई। बेचारे तिलमिलाते हुए आसनसे उठ नीचे बैठ गए। पाँडेने कथामें जान डाल दी—ज्ञान और पाण्डित्यकी नहीं, कण्ठ-बलकी। अन्तमें १॥) जो दक्षिणा मिली, उसे ले पाँडेजी घर चलते बने। तिवारीजीने लोलुप नेत्रोंसे देखते और तर्क करते हुए बड़ी दूर तक पीछा किया; फिर सूखे मुँह और खाली हाथ लौट आए।

तिवारीने पंचायत जमा की। उत्तर-पट्टीके पंचोंने मामलेको पाँडेकी ओर खींचा और दक्खिन-पट्टीने तिवारीकी ओर। तय कुछ न हुआ। तिवारीजी यजमानोंकी ब्राह्मण-सेवा अक्क्रान्त अध्यवसायसे जगाते रहे—'मेरी हार आपकी हार है। गऊ और ब्राह्मणका बल उसके रक्षकका बल है।'

इस तरह तिवारी वोट जमा कर ही रहे थे कि उनके बैलोंका आला जोड़ा रातको खुल गया। इस महँगीके बाज़ारमें २५०) से कमका जोड़ा न होगा। तिवारीका तो सर्वस्व लुट गया। बहुत हाय-हाय की, रात-दिन हूँढ़े-भटके; पर महीनोंकी खोजके बाद भी बैल न मिले। केवल यही पता चला कि किसीने बैल खुलवा दिए। तिवारीने चौबीस घण्टेका अखण्ड कीर्त्तन करवाया; पर फल कुछ न हुआ। फिर एक सप्ताहका अखण्ड कीर्त्तन करवाया। पर अभी तक न तो बैल मिले हैं और न पाँडेके घर कोई मरा ही है!

अंजीर

श्री रामेश बेदी, आयुर्वेदालंकार

वनस्पतिक जगत्में अंजीर-वंश सबसे बड़े वंशोंमें से एक है। वनस्पतिशास्त्रके विद्वानोंने इस वंशमें एक हज़ारसे अधिक पौधोंका पता लगाया है और उनका वर्णन किया है; परन्तु उनमें ऐसे थोड़े ही हैं, जिनके फल खानेके काम आते हों। काटी हुई शाखाओंसे अत्यन्त सुगमतासे उग आना, गरमी और पालेसे मुकाबला करनेकी शक्तिका होना, शीघ्र फल देने लग जाना, मानवीय भोजनके रूपमें प्रयुक्त होना आदि गुणोंके कारण ही अंजीर आज संसार-भरमें फैल गया है।

इस पौधेका मूल उत्पत्ति-स्थान भारत होनेमें बहुत सन्देह है। भारतीय संस्कृत-साहित्यमें क्षीरी-वृक्षोंमें उदुम्बरके भेद काकोदुम्बरिकाको आम तौरपर अंजीर नाम देनेकी प्रथा प्रचलित हो गई है। पर यह शब्द अंजीरके लिए ही प्रयुक्त हुआ है, इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अंजीर शब्द फ़ारसीका है, जिसे हमारे लेखकोंने संस्कृतमें अपना लिया था। मालूम होता है कि पूर्वकी ओर व्यापारके लिए आनेवाले अरब व्यापारियोंके फारसके नाविकों द्वारा अंजीर हिन्दुस्तानमें आया। फारसवाले अपनी खाद्य-सामग्रीमें शुष्क अंजीरोंको भी रखते थे। इसलिए, सम्भव है कि भारतमें अंजीर का प्रसार उन्हींके द्वारा हुआ हो। फिर भी प्राचीन संस्कृत-लेखकों द्वारा वर्णित काकोदुम्बरिकाके पर्यायोंका आर्थिक विश्लेषण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काकोदुम्बरिकाको अंजीरके रूपमें अस्वीकार करनेसे हमें मना करता है। पहले भारतमें सम्भवतः जंगली छोटे अंजीर उगते हों, जिनका जिक्र चरक और सुश्रुतने काकोदुम्बरिका नामसे किया है। बादमें जब उसकी बड़ी और अधिक विकसित क़िस्म फारसवालों द्वारा लाई गई, तो निघण्टुकारोंने उसे तथा चरक-सुश्रुतको ज्ञात काकोदुम्बरिका (जंगली अंजीर) को एक समान देखकर दोनोंको एक ही नामसे उल्लेख किया है।

भूतलपर अत्यन्त पुरातन कालसे खेती की जानेवाली यह झाड़ी या छोटा वृक्ष सम्भवतः एशिया-माइनरका मूल निवासी है; पर अब सारे संसारमें इसकी खेती होती है। बलूचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, पश्चिमी एशिया और भूमध्य-सागरके पूर्वीय प्रदेशोंमें इसकी खेती बहुतायतसे होती है। कहा जाता है कि कान्धारके पास जंगलोंमें यह अपने-आप उगता है। डा० एचि-सनका खयाल है कि अंजीर अफ़ग़ानिस्तान और फारसका मूल निवासी है। अफ़ग़ानिस्तानमें प्रत्येक गाँवमें अंजीरके बग़ीचे होते हैं। वहाँके निवासी इसे ताज़ा ही खा जाते हैं, बेचते नहीं। डिकैण्डीलाकके अनुसार अंजीरका पूर्व ऐतिहासिक क्षेत्र सीरियासे केनरीज़ तक भूमध्य-सागरके प्रदेशका मध्य और दक्षिणी भाग है।

कागजमें अंज़ीर प्राकृतिक रूपमें, पर आकारमें छोटा होता है। सीरिया और फ़िलस्तीनमें अंजीर वृक्ष देशीय है, और इन देशोंमें अंगूरके समान इसकी खेती बहुत पुराने समयसे होती है। उत्तर-पश्चिमीय भारतके मैदानों और पश्चिमीय हिमालय आदिमें लगभग पाँच हज़ार फ़ीटकी ऊँचाई तक इसकी खेती की जाती है। पश्चिमोत्तर भागसे पूर्वकी ओर अवध तक और दक्षिणमें पूनामें इसकी खेती होती है। पूनासे १४ मील दक्षिणमें प्रायः २२०० फ़ीटकी ऊँचाईपर स्थित खड़े शिवपुर नामक ग्राममें सबसे अच्छी क़िस्मके अंजीर होते हैं। सिन्ध, बम्बई, मद्रास और आण्डमान द्वीपमें भी इसकी खेती होती है। पिछली आधी सदीसे मलायामें भी इसकी खेतीके लिए प्रयत्न हो रहे थे। गढ़वालमें अंजीर अपने-आप उग आता है। यह रंगमें लाल और काला दोनों प्रकारका होता है। ज्येष्ठ-वैशाखमें फल पकते हैं। पका फल खाया जाता है। कच्चा ऐसे ही नमक लगाकर खाया जाता है या सब्ज़ी बना लिया जाता है।

एशियासे अंजीर भूमध्य-सागरके तटवर्ती प्रदेशोंमें पहुँचा था। रोमन राज्यके अन्तिम कालमें पाँचवीं सदीकी समाप्तिपर यह एटलाण्टिक-तट, चैनल-प्रायद्वीप और शायद दक्षिणी इंग्लैण्ड के कुछ अनुकूल स्थानोंमें फैल गया था। मालूम होता है, राजा त्सांग-कीनके राज्य-कालमें यह सुदूर-पूर्वसे चीनमें पहुँचा था, जिसका एक दल १२७ ईस्वी पश्चात् तुरान गया। चीनी लेखकों ने ८वीं सदीमें अंजीरका ज़िक्र किया है। मिस्रमें अंजीर चार हज़ार ईस्वी पूर्वसे है। कैलिफ़ोर्नियामें पहले पादरी अंजीर लाए। यद्यपि मेक्सिको तथा मध्य अमरीकाके गरम हिस्सोंमें विभिन्न जातियोंके होते थे; परन्तु वे एटलाण्टिक-पारसे लाए घटिया थे। अमरीकाके कितने ही प्रकारके मिशन फ़िग' भी एक है। यह क़िस्म पहले छाया-वृक्षके रूपमें पृथक् बोई जाती थी; परिमाणमें बोई जा रही है—खासकर कैलिफ़ोर्नि घाटियोंमें। कैलिफ़ोर्नियामें स्मर्ना अंजीर पहले-पहल शरद्में सनफ्रांसिस्को कम्पनी द्वारा लाया गया था, भेदोंकी चौदह हज़ार क़लमें थीं, और ये क़लमें हज़ार ग्राहकोंको बाँट दी गई थीं। विभिन्न अवस्थाओं वृक्ष फल देता है। प्रायः अर्द्ध-ऊष्ण देशीय वृक्षोंकी आजकल यूरोप और अमरीकामें बोया जा रहा है पश्चिमी यूरोप और इंग्लैण्डके अपेक्षाकृत गरम हिस्सों खेती होती है। यद्यपि यह एशियाका देशीय माना पर यूरोपके दक्षिणमें यह प्राचीन समयसे ही बोया

समाजकी आदि अवस्थामें रहनेवाले मनुष्यों अंजीरका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। न केवल सामयिक में ही यह हिस्सा लेता था, बल्कि नियमित भोजनके या सूखा खाया भी जाता था। जब हम इसके इतिहास उन्नत कालकी ओर बढ़ते हैं, तो हम इसे काफ़ी प्रमुख पाते हैं। यहूदियोंने अंजीर-वृक्षपर फूलोंका अभाव बहुत समस्या समझी थी। भोज्य-सामग्रीमें अंजीरोंका समावेश जाता था। यूनानमें जब लाइकर्गसने आदेश दिया था कि लोग एक ही भवनमें भोजन करें, तो आटा, शराब, अंजीर प्रत्येक व्यक्तिकी सामान्य रसदमें मुख्य स्थान एकीनियन्स अंजीरको इतनी अधिक ज़रूरतका पदार्थ समझते कि एटिकासे उसका निर्यात बन्द कर दिया था। रोमके स्वागतमें अंजीरका स्थान शराबसे अगला था। कहते हैं ताज़गी और शक्ति शराबसे नहीं, अंजीरोंसे ग्रहण की जाती

ब्रिटेनमें खुली वायुमें बिना अधिक कठिनाईके अच्छा फल देता है। फिर भी ८ हज़ार टन अंजीर उसे मँगाने पड़ते हैं, जो मुख्यतया तुर्कीसे आते हैं। स्पेनमें सूखा अंजीर व्यापारका अच्छा पदार्थ है। प्रमुख भागोंमें अंजीर-उद्यान बहुत हैं। यहाँ अंजीरकी खेती मुख्य धन्धा बन गया है। अमरीकामें पैदावार बीजरहित है और यह ताज़ी ही खाई जाती है। अमरीकामें अधिकतर तुर्की और एशिया-माइनरसे आते हैं। अंजीर अधिकतर बाहरसे आते हैं—कुछ अफ़ग़ानिस्तान कुछ तुर्की तथा अन्य देशोंसे।

CC-O: Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

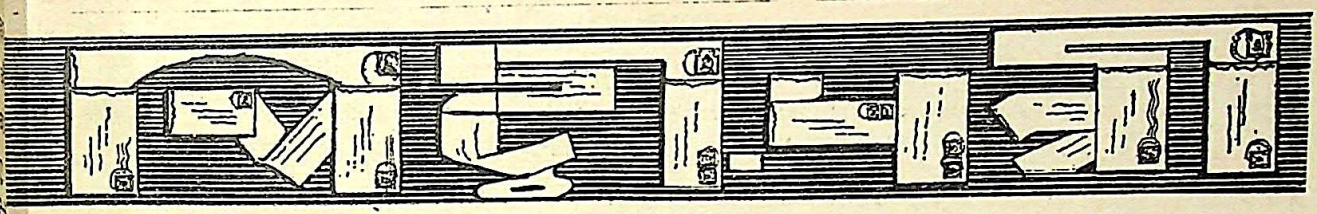

अर्थका अनर्थ

श्री सम्पूर्णानन्द-लिखित 'आर्योंका आदि देश' नामक पुस्तकके दसवें अध्यायमें लोकमान्य तिलकका मत उद्धृत करते हुए महाभारतके कुछ पद्य लिखे गए हैं--"महाभारतके वनपर्वके १६३ वें और १६४ वें अध्यायमें अर्जुनकी मेरुयात्राका वर्णन है। वहाँ कहा है--एनं त्वहरहर्मेरुं, सूर्याचन्द्रमसौ ध्रुवं। प्रदक्षिणमुपावृत्य, कुरुतः कुरुनन्दन॥ ज्योतिषिं चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघ सर्वतः। परियान्ति महाराज, गिरिराजं प्रदक्षिणम्॥ स्वतेजसा तस्य नगोत्तमस्य, महौषधीनां च तथा प्रभावात्। विभक्तभावो न बभूव कश्चि, दहोनिशानां पुरुषप्रवीर॥ बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां, संवत्सरेणैव समान रूपः॥ हे कुरुनन्दन, सूर्यचन्द्र मेरुकी प्रतिदिन प्रदक्षिणा करते हैं। सब तारे भी गिरिराजकी प्रदक्षिणा करते हैं। उस श्रेष्ठ पहाड़के तेजसे तथा महौषधियोंके प्रभावसे दिन-रातमें भेद नहीं प्रतीत होता। उन लोगोंका दिन-रात एक वर्षके बराबर होता है।"

महाभारतके उक्त अध्यायोंमें अर्जुनकी मेरु-यात्राका वर्णन नहीं है। जिस समयका वर्णन इन अध्यायोंमें है, उस समय अर्जुन तो स्वर्गलोकमें इन्द्रके मेहमान थे। यह वर्णन तो यक्षयुद्धपर्वमें युधिष्ठिर आदि चार भाइयों, द्रौपदी और धौम्य आदि ब्राह्मणोंके गन्धमादन पर्वतपर निवास करनेका है। भीमसेनके साथ जब यक्षोंकी लड़ाई हुई और यक्षगण मारे गए, तो वहाँ कुबेर आए, तथा युधिष्ठिरको समझा-बुझाकर जब वे वापस अलका चले गए, तब वहाँ आर्ष्टिषेण ऋषि आए थे। युधिष्ठिरने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद धौम्य मुनि धर्मराजका हाथ पकड़कर पूर्व ओर दिखलाते हुए बोले--देखो, वह मन्दर पर्वत दीख रहा है। फिर दक्षिण ओर दिखलाकर बोले--इधर संयमिनीपुरी है और पश्चिम ओर अस्त पर्वत है, जहाँ वरुणकी नगरी (सुषा) है। उत्तर ओर दिखलाकर बोले--वह जो चमक रहा है, महामेरु पर्वत है। और बहुत-कुछ कहनेके बाद फिर बोले--सूर्य और चन्द्रमा इसी मेरुकी प्रदक्षिणा (ध्रुवकी प्रदक्षिणाके साथ-साथ) किया करते हैं। (श्री वेंकटेश्वर प्रेसके सटीक महाभारतमें उपावृत्यके स्थानमें उपावृत्य पाठ है, जो समीचीन बोध होता है।) तारे आदि सब ज्योतिःपिण्ड भी उसी प्रकार गिरिराज (मेरु)की प्रदक्षिणा करते हैं। अन्यकनित्य दीप्तं तत्स्थानं विष्णोर्महात्मनः। स्वयैव प्रभया राजन् दुःप्रेक्ष्यं देवदानवैः॥ (अध्याय १६३, श्लोक १९) वह मेरु पर्वत महात्मा विष्णुका स्थान है, और सूर्य तथा अग्निसे बढ़कर अपने ही प्रकाशसे चमकता है। इस पद्यसे मेरु-वर्णनके साथ 'अरोरा'का संकेत मिलता है; पर १६४वाँ अध्याय तो गन्धमादन पर्वतका वर्णन करता है, वहाँ 'अरोरा' कहाँ?

फिर १६४ वें अध्यायमें वैशम्पायन राजा जनमेजय (पारिक्षित) से कहते हैं--इस प्रकार उस पर्वत (गन्धमादन) पर रहते हुए तथा अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए धर्मराज आदि महात्मागणको दुःख व हर्ष दोनों हुए। वहाँ उनके पास महर्षि तथा गन्धर्व लोग भी आए। उक्त पर्वतपर अनेक फूलोंके वृक्ष फूल रहे थे। मयूर, हंस आदि पक्षियोंके झुण्ड कलरव कर रहे थे। पोखरोंमें वत्तख, कारण्डव, राजहंस आदि खेल रहे थे। वहाँ क्रीड़ाभूमियोंकी भरमार थी। उसके शिखरोंपर मणि आदि चमक रहे थे। फिर वैशम्पायन बोले--हे पुरुषश्रेष्ठ राजा जनमेजय, उस पर्वतके अपने तेज और औषधियोंके प्रभावसे रात-दिन का होना परिलक्षित नहीं होता था। यहाँ गन्धमादनपर 'अरोरा' को ढूँढ़ निकालना भ्रम है। मेरु-दर्शन तो १६३वें अध्यायमें ही समाप्त है और पूरा १६४ वाँ अध्याय गन्धमादनके वर्णनसे भरा है। आगे और देखिए, 'बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां संवत्सरेणैव समानरूपः' पद्यके अर्थका अनर्थ किया गया है—'उन लोगों (मेरु-निवासियों) का दिन-रात एक वर्षके बराबर होता है। बभूव भूतकालिक क्रियापदका अर्थ 'होता है' वर्त्तमान कालमें तथा बिना पूर्वापर-विचार किए ही किया गया जान पड़ता है।

अब देखिए, इसके पहले बहुत-कुछ कहनेके बाद वैशम्पायन कहते हैं—'इहैव हर्षोऽस्तु समागतानां क्षिप्रं कृतास्त्रेण धनंजयेन। इति ब्रुवन्तः परमाशिषस्ते पार्थास्तपोयोगपरा बभूवुः॥१२॥ दृष्ट्वा विचित्राणि गिरौधनानि किरीटिनं चिन्तयतामभीक्ष्णम्। बभूव रात्रिदिवसश्च तेषां संवत्सरेणैव समानरूपः॥१३॥...तथैव तं चिन्तयतां सिताश्वमस्त्रार्थिनं वासवमभ्युपेतम्। मासोऽथ कृच्छ्रेण तथा व्यतीतः नस्मिन्नगे भारत भारतानाम्॥१६॥ उषित्वापंच वर्षाणि सहस्राक्ष निवेशने।...आगच्छदर्जुनः प्रीतः प्रहृष्टो गन्धमादनम्॥२०॥' क्षिप्रं कृतास्त्रेण धनंजयेन समागतानां (नः) इह एव हर्षः अस्तु। इति परमाभिषः ब्रुवन्तः ते पार्थाः (युधिष्ठिरादयश्चत्वारो भ्रातरः) तपोयोग पराबभूवुः॥१२॥ गिरौ विचित्राणि वनानि दृष्ट्वा अभीक्ष्णं किरीटिनं (अर्जुनं) चिन्तयतां तेषां (युधिष्ठिरादीनां) रात्रिः दिवसश्च संवत्सरेण समानरूपः (तुल्यः) बभूवः॥१३॥ हे भारत (जनमेजय) अथ तथैव अस्त्रार्थिनं वासवं अभ्युपेतं सिताश्वं (अर्जुनं) चिन्तयतां भारतानां (युधिष्ठिरादीनां) तदा तस्मिन् नगे (पर्वते गन्धमादने) कृच्छ्रेण मासः व्यतीतः॥१६॥ सहस्राक्ष निवेशने पञ्चवर्षाणि उषित्वा अर्जुनः प्रीतः प्रहृष्टः (सन्) गन्धमादनम् आगच्छत्॥२०॥ अर्थात् अस्त्र-शिक्षा पाकर आए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्जुनसे शीघ्र मिलनेका आनन्द यहीं (गन्धमादनपर ही) हो, यह आशीर्वाद करते हुए वे पाण्डव तपस्या करने लगे ॥१२॥ और पर्वतपर चित्र-विचित्र वनको देखकर हरदम अर्जुनकी सोचमें पड़े हुए उन पाण्डवोंको एक रात-दिन एक वर्षके समान बोध हुआ, यानी उन्हें एक दिन-रातका काटना एक वर्षके बराबर जान पड़ा। अर्जुनके बिना एक रात-दिन एक साल हो गया ॥१३॥ इस प्रकार वहाँ (गन्धमादन) पर रहते और अर्जुनकी चिन्ता करते हुए उन पाण्डवोंका एक महीना बड़े कष्टसे बीता ॥१६॥ तब इन्द्रके यहाँ पाँच वर्ष रहकर अस्त्र-शस्त्र आदिकी शिक्षा पाकर अर्जुन प्रसन्न मनसे गन्धमादनपर उतर आए।

संस्कृत व्याकरण तथा कोशसे अपरिचित, वेद-शास्त्रोंका सम्यक् अनुशीलन नहीं किए हुए पाश्चात्य विद्वान् तथा उन्हींकी नक़ल करनेवाले पौर्वात्य विद्वान भी संस्कृत पद्योंके अर्थ लगानेमें प्रायः अर्थका अनर्थ कर देते हैं। अतः मैं संस्कृतके भारतीय विद्वानोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे इस तरहकी अनधिकार चेष्टाओंको रोकें तथा शास्त्रोंका यथार्थ अर्थ करें। —श्री शशिनाथ झा (काव्यतीर्थ), सबोर (भागलपुर)।

राजस्थानका साहित्य और इतिहास

राजस्थान प्राचीन स्मृतियोंका गौरवपूर्ण प्रदेश है। भारतवर्षके ऐतिहासिक मंचपर यह प्रान्त एक श्रेष्ठ अभिनेता रहा है। यह ध्रुव सत्य है कि इस देशके उज्ज्वल इतिहासमें जो हिस्सा इस प्रान्तका है, वह किसी अन्य प्रान्तका नहीं। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय, तो इस प्रान्तने अपनी प्राचीन सभ्यता और कला-कौशलकी ही रक्षा नहीं की है, बल्कि एक ओजपूर्ण प्राचीन साहित्यकी भी सुरक्षित रखा है। पर दुःखकी बात है कि यहाँके पढ़े-लिखे व्यक्ति भी साहित्यके इस भण्डारसे अनभिज्ञ हैं। क्या यह अत्यधिक खेदकी बात नहीं कि इस अनुपम साहित्यको इस प्रान्त के विद्यालयों एवं कालेजोंके पाठ्यक्रममें भी कोई स्थान नहीं दिया गया? इधर जबसे राजस्थानमें विद्याका पुनर्जन्म हुआ है, इसका साहित्य विद्वानोंका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इसके आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पहलुओंपर देशके नेताओं एवं समाचारपत्रोंका ध्यान गया है। फिर भी अभी समूचा देश इससे सम्यक् रूपसे परिचित नहीं। इसके लिए राजपूतानेके इतिहासपर एक संक्षिप्त, किन्तु सर्वमान्य पुस्तककी अत्यधिक आवश्यकता है। यद्यपि टाडके दो सुन्दर एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रस्तुत हैं; किन्तु न तो वे संक्षिप्त हैं और न पूर्ण ही। ओझाजीके ग्रन्थ विद्वत्तापूर्ण एवं ऐतिहासिक तथ्योंसे पूर्ण हैं; किन्तु वे भी बृहदाकार हैं। श्री गहलोतका 'राजपूतानेका इतिहास' प्रशंसनीय है; किन्तु वह भी अपूर्ण एवं बृहत् है। ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्व रखनेवाली अन्य कई पुस्तिकाएँ, टिप्पणियाँ और संक्षिप्त विवरण भी मिलते हैं; किन्तु वे भी इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकते। इस समय तो हमें [illegible] 'इंग्लैण्डके इतिहास'की तरह इस प्रान्तका भी [illegible] एवं पाठ्यक्रमोपयोगी इतिहास चाहिए।

राजस्थानी साहित्यपर भी इसी तरहकी पुस्तकों आवश्यकता है। मेनारियाजीकी पुस्तक इस विषयक प्रकाशनोंमें अत्यन्त उपयोगी एवं पथ-प्रदर्शक है। अंगरेज़ीमें भी एक प्रयोजनीय पुस्तककी आवश्यकता दिशामें उदयपुर-विद्यापीठकी सेवाएँ प्रशंसनीय हैं। साहित्यके और भी आवश्यक ग्रन्थोंका अंगरेज़ीमें होना और आवश्यक है। अभी तक इस दिशामें केवल हुआ है। बहुत-कुछ करना अभी बाक़ी है। राजनेता जन एवं विद्वानोंकी कमी न होते हुए भी यह आश्चर्यकी बात है कि इस प्रान्तकी अनुपम रत्नावली अभी तक नहीं आ सकी।—विश्वनाथ मोर, नवलगढ़ (राजपूताना)

पुस्तकालय-योजना

राष्ट्रभाषा-प्रचारकी दृष्टिसे अहिन्दी-प्रान्तोंमें पुस्तकालयों और वाचनालयोंका खुलना अत्यन्त आवश्यक ताकि राष्ट्रभाषाके प्रेमियों, विद्यार्थियों और प्रचारकों पुस्तकें आसानीसे मिल सकें। इसी उद्देश्यको लेकर [illegible] तैयार की गई है—(१) समिति द्वारा पुस्तकोंका सुझाव किया जाय, जिसमें नीचे लिखी हुई बातें दी जायँ: [illegible] कोष तथा सन्दर्भ ग्रन्थोंके नाम, प्रकाशक और मूल्य; [illegible] मुहावरे, व्याकरण, प्रान्तीय भाषा-हिन्दी-कोष, उर्दू-[illegible] सुबोधिनी)। (ख) राष्ट्रभाषाकी प्रत्येक परीक्षाके लिए पठनीय पुस्तकें। (ग) प्रचार-परीक्षाओंकी [illegible] (घ) प्रसिद्ध मासिक तथा साप्ताहिक पत्रोंकी जानकारी। हिन्दी-साहित्यकी सुन्दर १०० पुस्तकें। (२) 'राष्ट्रभाषा' मास हिन्दीकी चुनी हुई सुन्दर पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय जाय। (३) अहिन्दी-प्रान्तोंमें वर्त्तमान सभी हिन्दीके [illegible] और वाचनालय अपना सम्बन्ध राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिसे

सम्बद्धताके नियम—(क) वे सभी हिन्दी-पुस्तकें सार्वजनिक उपयोगमें आते हैं और जो किसी व्यक्तिसे [illegible] हैं, समितिसे सम्बन्धित हो सकते हैं। (ख) सम्बन्ध लिए नीचे लिखी बातोंकी जानकारी और १) शुल्कके दन-पत्र प्रान्तीय संचालक द्वारा भेजना होगा: (१) लयका नाम-पता; (२) पुस्तकोंकी विषयवार-संख्या; माहमें कितने व्यक्ति पढ़ने आते हैं; (४) पुस्तकालय नियम; (५) वाचनालयमें आनेवाले मासिक, साप्ताहिक दैनिक पत्रोंका ब्योरा; (६) पाठकोंकी दैनिक उपस्थिति (ग) सम्बन्ध-शुल्क १) प्रतिवर्ष भेजना होगा। पुस्तकालयका वार्षिक विवरण भेजना होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

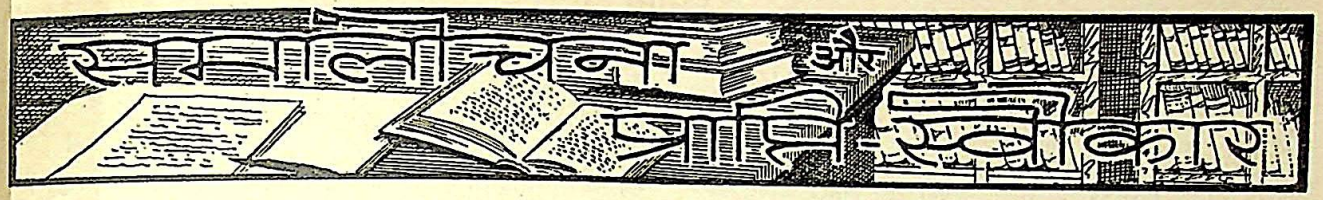

साध : लेखक—श्री पृथ्वीनाथ शर्मा ; प्रकाशक—हिन्दी-भवन, लाहौर ; मूल्य १), सजिल्द ।

रंगमंचकी कमीके साथ-साथ हिन्दीमें अभिनय, समयोचित प्लाट और भाषाकी दृष्टिसे कसे हुए नाटकोंकी संख्या उँगलियोंपर गिनी जाने योग्य है । साहित्यका यह एक अंग जितना क्षुद्र और अपूर्ण है, दूसरा नहीं । एक ओर प्राचीन संस्कृत परिपाटीपर बने वे नाटक हैं, जहाँ युगकी सामयिक धाराओंका जीवनसे समन्वय नहीं । दूसरी ओर यथार्थवादी होनेके नाते उन साहित्यिकोंकी रचनाएँ हैं, जिन्होंने इब्सेनके सिद्धान्तपर चलकर अपने नाटक नितान्त बौद्धिक बनाए । यहाँ कथानककी नवीनता ज़रूर है, काव्यकी सरसता नहीं । 'साध' तीन अंकोंकी छोटी-सी नाटिका है, जो अधिकसे अधिक एक घटेमें अभिनीत की जा सकती है । मृदुला, अजीत और कुमुदको लेकर अति-आधुनिक समाजमें व्यापक एक भ्रमका लेखकने स्वाभाविकताके साथ निवारण किया है । कुसुम आधुनिक लड़की है । विवाह और सन्तान अपने अस्तित्वके विकासमें उसे बाधा-रूप जान पड़ते हैं । फिर भी अपने भीतर सोती प्रकृत नारीको वह किसी प्रकार तिरोहित नहीं कर पाई । अजीतके सौजन्यके सम्मुख उसे परास्त होना ही पड़ा । प्राचीनता और अर्वाचीनताकी तरंगें तो अभ्यास-मात्र हैं । लेखक कहता है—'एकमात्र पुरुषका—मानवका—हृदय टटोलो । यदि वह निर्मल है, तो डरकी कोई बात नहीं ।' और अपनी बात कहते उसने काव्यमें रूक्षता नहीं आने दी । भाषा शिष्ट-समाजकी हिन्दी है । कहीं-कहीं अत्यधिक साहित्यिक हो जानेके कारण समान्य दर्शकके लिए दुर्बोध हो जायगी । वाक्यों और मुहावरोंका प्रयोग भी पंजाबी है । पंजाबके बाहर यह अपरिचित है । कथोपकथनके अवसरपर पात्र द्वारा कहे वाक्योंको श्रोता द्वारा प्रत्येक अवसरपर दुहरवा देना नाटकीय भले ही हो, स्वाभाविक नहीं । कुल मिलाकर नाटक सुरुचि-सम्पन्न और अभिनय-योग्य है ।

अजेय-खण्डहर : लेखक—श्री रांगेय राघव ; प्रकाशक—सोशलिस्ट लिटरेचर पब्लिशिंग कम्पनी, गोकुलपुरा, आगरा ; मूल्य २) ।

'झंकार', 'ललकार' और 'हुंकार' खण्डोंके अन्तर्गत संकलित अतुकान्त छन्दमें रचे हुए 'अजेय खण्डहरके गीत' सामने हैं । गीत इन्हें कहा जाय या नहीं, यह भी एक प्रश्न है । यह रचना साहित्यके अन्तर्गत काव्य-रूप होकर नहीं आती । यहाँ काव्यकी सरसता नहीं, व्यंजना नहीं । इसमें तो गद्यका रूखापन है, पौरुष है । यह गद्य है, पद्य-बद्ध । यह साहित्य भी नहीं । इसमें शब्दोंको इस प्रकार विकृत किया गया है, मुहावरोंका इतना असंगत मनमाना प्रयोग हुआ है कि वह बेतुका जान पड़ने लगता है । किन्तु 'अजेय-खण्डहर'की सृष्टि साहित्यकी गौरव-वृद्धिके लिए नहीं हुई । लेखकका अभीष्ट तो है—

ओ गीत !
एक झोंका वायु बन
यह जगा दे देश, भूला देश ।

और इस अभीष्टकी सिद्धिके लिए वह जो कहता है, वह अपनी भावप्रवणताके नहीं, भावोंकी सत्यताके कारण मर्मस्पर्शी हो जाता है । 'अजेय-खण्डहर' स्तालिनग्राद्की वीरताका स्तवगान है । यह उस युद्धका सविस्तार वर्णन है, जो नाज़ी साम्राज्यवादके विरोधमें नगरकी गली-गली, घर-घर तीन मास अहर्निशि हुआ था । स्तालिनग्राद, लेखककी दृष्टिमें, प्रतीक है जागरणका, विश्वमें नवयुगके विधानका, जन-शक्तिका । यही वह ध्रुव तारा है, जिसकी ओर दृष्टि किए भारत और चीन, ट्यूनिशिया और अबीसीनिया सब संगठनके प्रभातमें जागेंगे, आज़ाद होंगे । स्तालिनग्राद्को भारतके लिए वह महाक्रान्ति-पथपर आदर्शके रूपमें लेता है । वह चाहता है, उसके देशका कण-कण आज स्तालिनग्राद बनकर महानाशका पाश तोड़ दे । रूसियोंको श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए वह कहता है :—

आज अभिवादन शहीदो !
विश्वको तुमने दिखाया सत्यका निर्वाह
अन्ध कलुषोंके निठुर आघात करके चूर
तुमने जागरणका गीत गाया ।

और कहता है—जाग मेरे सोएसे हिन्द !
जाग मेरी कविताके छन्द !

सुविधाएँ—प्रचारक-समितिसे सम्बन्धित पुस्तकालय ही प्रचार-समितिसे ये सुविधाएँ पा सकेंगे : (१) 'राष्ट्रभाषा' भेजा जायगा । (२) पुस्तकें चुन देने और विभिन्न प्रकाशकोंसे पुस्तकें मँगाकर भेज देनेकी व्यवस्था समिति करेगी और ऐसी पुस्तकोंपर शक्य कमीशन देनेका प्रयत्न करेगी । (३) समिति द्वारा तैयार की हुई सूचीकी सभी पुस्तकें एक साथ या समय-समयपर खरीदनेके लिए ७५) जमा करनेपर समिति अपनी ओरसे २५) और देगी । यह सहायता पुस्तकोंके रूपमें ही दी जावेगी । (४) नए पुस्तकालय भी इस योजनासे लाभ उठा सकेंगे । —मन्त्री, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्तस्तलसे निकली यह आर्त्त पुकार, शिथिल देशमें प्राण फूँकनेकी यह सत्यनिष्ठा, ही रचनाकी सार्थकता है। इसीके कारण 'अजेय खण्डहर'के गीत अपनी ही बात जान पड़ते हैं। पुस्तक अंगरेज़ी साहित्य और विश्व-इतिहाससे अपरिचित पाठकके लिए तनिक कठिन हो पड़ेगी। बेबीलोनियन, बेज़न्टाइन संस्कृति और प्रोमीथियसके प्रसंगोंसे वह अनभिज्ञ है। अंगरेज़ी भाषाका जिन्हें ज्ञान नहीं, उन तक अंगरेज़ी शब्दोंके अत्यधिक, अनावश्यकीय प्रयोगके कारण गीत अपना सन्देश पूरी-पूरी तरह पहुँचानेमें सफल होंगे, इसमें भी सन्देह है। साम्यवादी विचार-धाराकी अभिव्यक्तिके लिए एक साम्यवादी भाषा भी ज़रूर है, ऐसा तो नहीं। --रूपकमारी बाजपेई

समीक्षांजलि (प्रथम भाग) : लेखक और प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल सहल ; मिलनेका पता—बिड़ला - कालेज, पिलानी (जयपुर) ; मूल्य ॥=) ।

इस पुस्तकमें लेखकके ग्यारह विषयोंपर लिखित लेखोंका संग्रह है। 'पन्त'के 'गुंजन'ने पुस्तकका अधिकांश घेर लिया है। शेष निबन्ध कला और काव्यसे सम्बन्ध रखते हैं, जिनमें भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-समीक्षा-सिद्धान्तोंका समन्वय पाया जाता है। 'गुंजन'की विवेचनामें सहलजीके कई निष्कर्ष मान्य हैं। 'गुंजन'में वस्तुतः कवि पलायनवादी नहीं रह गया है। वह रवि बाबूके 'वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय' दर्शन-सिद्धान्तको ही विविध स्वरोंमें गुँजा रहा है। उसमें वह कल्पनाका ऐसा पंछी नहीं रह गया है, जिसकी आँखें आकाशकी रंगीनियोंको देखकर ही मुग्ध रहती हैं और अपनी पाँखोंसे जो दूर—बहुत दूर—क्षितिजके परे अज्ञात लोकमें ही उड़ान भरा करता है। प्रकृतिमें अपने विस्मृत 'कुछ'को पाकर वह आत्म-विस्मृत अब नहीं होता। वह युगकी साँसोंको पहचानने लगा है और उन्हें अपनेमें भरकर उन्हींको उच्छ्वसित भी कर रहा है। वह युग-बन्धनसे घबराता नहीं, ऊबता नहीं, बल्कि उससे प्यार करता है, उसीमें मुक्ति देखता है। यही कर्मवाद है, जिसकी सन्देश-लहरियाँ 'गुंजन'में सुन पड़ती हैं। हम सहलजीकी इस भाव-प्रवणताका समर्थन नहीं कर सकते कि 'पन्तजी, सच्चे अर्थोंमें प्रगतिवादका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।' प्रगतिवाद युगकी चिन्तनाको लेकर चलता है? 'पन्त'के 'युग'वादी बननेके पूर्व भी 'नवीन', मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियोंने 'समय'को खुली आँखोंसे 'निहारा' था। 'नवीन'में हम विद्रोहका बहुत ही स्पष्ट घोष सुनते आ रहे हैं। लेखककी विवेचन-शैली स्पष्ट है। 'समीक्षा' विद्यार्थियोंके कामकी है।

साहित्य प्रबोध : लेखक तथा प्रकाशक—श्री चन्द्रलाल ; सुनार मुहल्ला, अल्मोड़ा ; पृष्ठ ४२ ; मूल्य १) ।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने साहित्य और साहित्यकार-सम्बन्धी सिद्धान्त-वाक्योंका सहृदयतापूर्ण चयन किया है। उन्हें ढंगसे व्यक्त करनेकी चेष्टा की है। नमूनेके लिए कुछ रत्न यहाँ दिए जाते हैं—'साहित्यकी विशुद्ध परिभाषा ही कि मूक भाषा बोल उठे।' 'तू जो-कुछ लिखे अपनेको लिख ; ताकि पढ़नेवाले तुझे कभी भी भुला न सकें। एक कला है। यह साधारण पाठक तभी समझते हैं, किसी शैलीके क़ायल होने लगते हैं।' ऐसे वाक्योंके हम 'सत साहित्य क्या है, कला क्या है, इसकी विवेचना बड़े-बड़े वाक-दूक (?) विद्वान भी नहीं कर सके तो जन्मजात मूर्ख, लाल बुझक्कड़ भला क्या करेगा?' भी तो लेखककी विनय-भावना हमें नहीं खींचती और न उल्टा ही हमें गुदगुदा पाता है, वरन इससे पुस्तकका गाम्भीर्य जाता है। --विनयमोहन

शिशु भारती और बाँसुरी : लेखक—सोहनलाल द्विवेदी ; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य नहीं।

ये दोनों पुस्तकें बालकोंके अपने कवि श्रीयुत सोहन द्विवेदीकी लिखी हुई हैं। 'शिशु भारती'में बत्तीस पद्य हैं 'बाँसुरी'में तेईस। 'शिशु भारती'की कविताएँ हमें अधिक उत्तमतर प्रतीत हुईं। दोनों पुस्तकोंमें अच्छे-अच्छे भाव उभर छिटके पड़े हैं। कहींपर साम्य-भावना द्वारा नवयुगका लानेकी अदम्य लालसा है, तो कहीं देशपर कुर्बान होने उत्कट अभिलाषा। कुछ कविताओंमें प्रचार-दृष्टि झलक गई है। 'है दुश्मनपर पाला कपड़ा', 'खद्दर सबसे कपड़ा'में कवित्व कम है, प्रचार ज़्यादा। 'आओ हम चलें में' (या पर ?) में सरलताके साथ उत्साहप्रद सन्देश दि है। 'तुम क्या करते, हम क्या करते?' में एक मनोरंजक बच्चोंसे पूछी गई है, जिसका उत्तर देनेमें हमारे-जैसे हिचकिचायँगे। 'उग रही घास', 'ओस' और 'फूल मुसकाता' इत्यादि रचनाएँ काफ़ी मनोहर बन पड़ी हैं, गुण तो सभी रचनाओंमें है।

यदि धृष्टता क्षन्तव्य हो, तो हम एक परामर्श दे दें कि अगले संस्करणोंमें इन पुस्तकोंको खूब अच्छी तरह किया जाय। बच्चोंकी पुस्तकोंका चित्रित न होना बहुत है। सुप्रसिद्ध अंगरेज़ लेखक चेस्टरटनने अपनी एक किसी बच्चेको भेंट करते हुए लिखा था—'किसी विश्वास न करो, जो चित्रों द्वारा प्रदर्शित न की जा सके।'

अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा युवकोंको प्रोत्साहित और प्रसादगुणयुक्त पद्यों द्वारा बालकोंका दिल चुरानेका द्विवेदीको आ गया है, उसे यदि हम भी जान पाते! —बनारसीदास

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

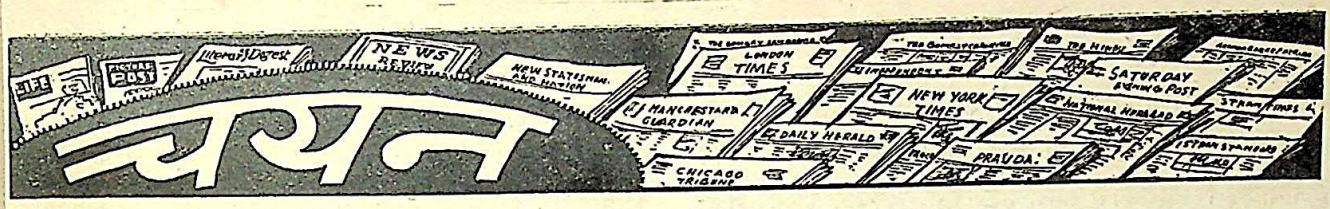
चयन

दुनियाकी आबादीमें वृद्धि

आक्सफोर्डके श्री वारेन सिम्पसन टामसनने अभी हाल ही में 'Plenty of People' (आबादीकी बहुतायत) नामक एक पुस्तक प्रकाशित कराई है, जिसमें वे लिखते हैं--उद्योगोंके कारण उत्तर-पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीकाकी आबादी, जो १८०० में ११·५ करोड़ थी, १९४० में ४३·५ करोड़ हो गई। अन्य प्रदेशोंकी आबादी शायद और और न बढ़े, पर संयुक्त-राज्य अमरीकाकी आबादीके १९७५ तक १६ करोड़ तक पहुँचनेकी सम्भावना है। इसके विपरीत दक्षिण-पूर्वी यूरोप, रूस और जापानकी आबादी, जो प्रधानतया कृषि-प्रधान देश हैं, अब उनके उद्योगोंके साथ ही बढ़ेगी। १९७० तक रूसकी आबादीके १७·४ करोड़से २५·१ करोड़ हो जानेकी सम्भावना है। दक्षिण-पूर्वी यूरोपकी आबादी १४·२ से २२·५ करोड़ हो गई है। आगामी कुछ दशाब्दियोंमें भारतकी आबादीके ३८·९ से ५० और चीनकी ४० से ६० करोड़ हो जानेकी सम्भावना है। इससे कुछ ऐसी नई-नई अर्थनीतिक और राजनीतिक समस्याओंके पैदा हो जानेकी भी सम्भावना है, जिन्हें यूरोपके मौजूदा राजनीतिक ढाँचेसे हल नहीं किया जा सकता। अतएव उन्हें हल करनेके लिए या तो एक ऐसा विश्व-संघ बनाना चाहिए, जो जनताकी आवश्यकता, कच्चा माल, बाज़ार आदिकी सहयोगी व्यवस्था करे, अन्यथा युद्धोंकी पुनरावृत्ति अवश्यम्भावी है।

भारतमें हिन्दुओंकी जनसंख्या

सन् १९४१ की मर्दुमशुमारीके मुताबिक भारतकी कुल आबादी ३८,८९,९७,७५५ है। इसमें से प्रत्येक प्रान्तमें कितने व्यक्ति रहते हैं और उनमें हिन्दुओंकी संख्या कितनी है, यह नीचे दिया जाता है :—

प्रान्त	कुल आबादी	हिन्दू
आसाम	१,०२,०४,७३३	४२,२२,४९०
बंगाल	६,०३,०६,५२५	२,५२,३२,९९१
बम्बई	२,०८,४९,८४०	१,६८,३१,०६५
मद्रास	४,९३,४१,८१०	४,२८,३१,४५०
बिहार	३,६३,४०,१५१	२,६५,३२,७६८
मध्य-प्रान्त व बरार	१,६८,१३,५८४	१,३०,३२,०७४
संयुक्त-प्रान्त	५,५०,२०,६१७	४,६१,५२,३६०
पंजाब	२,८४,१८,८१९	१,१३,४७,२५३
उ० प० सीमा-प्रान्त	३०,३८,०६७	२,३८,२८५
उड़ीसा	८७,२८,५४४	६८,३३,५२१
सिन्ध	४५,३५,००८	१२,६४,७३५
दिल्ली, कुर्ग, बलू० आदि	२२,११,०२४	१०,४०,७७७

भारतकी समूची आबादीमें २५,४९,३०,५०६ हिन्दू तथा ९,२०,५८,०९६ मुसलमान हैं, यानी आबादीका औसत हिन्दू ६५·९ प्रतिशत तथा मुस्लिम २४·५ प्रतिशत पड़ा। शेष अन्य जातियाँ हैं। प्रान्तीय प्रतिशत क्रमशः इस प्रकार है--हिन्दू मद्रासमें ८६·८, बम्बईमें ८०·७, बंगालमें ४१·८, संयुक्त-प्रान्तमें ८३·८, पंजाबमें ३९·९, बिहारमें ७३·०१, मध्य-प्रान्तमें ७७·८, आसाममें ४१·३, उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशमें ७·६, उड़ीसामें ७८·२, सिन्धमें २७·८, अन्यमें ४७·०७ तथा देशी रियासतोंमें ७०·४ प्रतिशत हैं।

जन-गणनाके अधिकारियोंने इधर-उधर जो संख्याएँ फैला रखी थीं, उन्हें जोड़कर ये संख्याएँ निकाली गई हैं। यह भी स्मरण रहे कि देशी रियासतोंकी कुल ९,०८,५७,९०१ की जनसंख्यामें से ६,४०,१९,५५३ हिन्दू हैं तथा १,२६,५९,५९३ मुसलमान। ('हिन्दी-मिलाप')

समूचे संसारके लिए एक वर्णमाला

संयुक्त-राष्ट्र अमरीकाके पूर्व सीनेटर अन्धे राबर्ट ओवेनने एक सरल वर्णमाला तैयार की है, जो समूचे संसारकी किसी भी भाषाके बोलनेवाले व्यवहारमें ला सकते हैं। गांधीजीने इस वर्णमालाको पसन्द किया है। ओवेन इन दिनों वाशिंगटनमें अपनी वर्णमालाके समर्थक जुटानेमें लगे हैं। सीनेटर ओवेनका, जो वकील तथा विशिष्ट सार्वजनिक नेता हैं, दावा है कि इस वर्णमाला द्वारा समस्त संसारकी निरक्षता मिट जा सकती है। गांधीजीके अलावा इस वर्णमालाके समर्थकोंमें जार्ज बर्नार्ड शा भी हैं। ओवेन इस वर्णमालाका नाम 'ध्वनि अनुयायी त्वरा लेखन विश्व-वर्णमाला' रखा है। इसमें ४२ अक्षर हैं तथा संयुक्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक अक्षर एक उच्चरित ध्वनिका निदर्शक है। अन्वेषकका कहना है कि इस लिपिके सहारे कोई भी व्यक्ति अपनी भाषाके अलावा अन्य कोई भाषा किसी भी द्विभाषा-पुस्तकके सहारे सीख सकता है।

क्रिप्स फिर मज़दूर-दलमें

मज़दूर-दलकी गत दिसम्बरकी बैठकके बादसे सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सका मज़दूर-दलमें वापस आना निश्चित-सा हो गया है। उन्होंने मज़दूर-दलमें फिरसे शामिल होनेके लिए जो अर्जी दी थी, उसे उसकी कार्य-समितिने स्वीकार कर लिया है। जनवरी, १९३९ में उन्हें मज़दूर-दलसे निकाल दिया गया था। मज़दूर-दल और सरकारी नरम-दलके सम्मिलित जन-मोर्चेकी स्थापनाकी बातको लेकर उनका मज़दूर-दलकी कार्य-समितिसे संघर्ष छिड़ गया था। यह उनका कार्य-समितिसे पहला ही संघर्ष न था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९३५ में इटलीके विरुद्ध की गई कार्रवाईकी उन्होंने निन्दा की थी, और पार्टीसे इस्तीफा दे दिया था। अगले वर्ष उन्होंने पूँजीवादके विरुद्ध अपनी सोशलिस्ट लीग, कम्युनिस्ट और मज़दूर दलोंके एक संयुक्त-मोर्चेका नारा बुलन्द किया। यह देखकर मज़दूर-दलने यह निश्चय किया कि सोशलिस्ट लीगकी सदस्यता उसकी सदस्यताके विरुद्ध है। इसपर सर क्रिप्सने लीगको भंग करके मज़दूर-दलसे निकाले जानेसे अपने-आपको बचा लिया। फिर भी अपने भाषणों द्वारा बराबर वे मज़दूर-दलको तंग करते रहे, और इसके लिए दो बार उनकी निन्दा भी की गई। एक बार एक लेबर पार्लमेंट सदस्यने कहा था—'प्रत्येक बार जब क्रिप्स बोलते हैं, वे हम सबके २०,००० वोटोंसे अपने-आपको वंचित करते हैं।' जबसे उन्हें पार्टीसे निकाला गया है, उनकी जीवन-गति ख्यातिके विभिन्न स्तरोंको छूती रही है। उनका १९४०-४३ तक राजदूतकी हैसियतसे मास्कोमें रहना उनकी व्यक्तिगत विजय थी; पर जिस उद्देश्यको लेकर वे भारत आए थे, उसमें उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली। उनके मज़दूर-दलमें आजानेसे अब वह राष्ट्रीय सरकारमें अपने एक अतिरिक्त सदस्यके होनेका दावा कर सकता है। सर क्रिप्स स्वयं भी इस प्लेटफार्मका स्वागत ही करेंगे, क्योंकि सिर्फ़ प्रतिभा ही किसीके राजनीतिक जीवनको स्थायी नहीं बना सकती।

कोरियामें गुप्त आन्दोलन

कोरियाके गुप्त दलके सदस्य श्री ली पिंगशान कोरियासे चुंकिंग पहुँचे हैं। उन्होंने कहा कि कोरियामें तीन लाख आदमियोंका एक गुप्त दल संगठित किया गया है, और वे लोग उस मौक़ेकी ताकमें हैं, जब कि जापानके खिलाफ़ कार्रवाई की जा सके। श्री ली पिंगशानने कहा कि सुरक्षाके खयालसे उक्त संगठनका विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता। उन्होंने यह भी बताया कि जबसे चीन-जापान-युद्ध छिड़ा है, जापानियोंने दो लाख कोरियनोंको क्रान्तिकारी होनेके जुर्ममें गिरफ़्तार किया, जिनमें से ७ हज़ार अभी जेलोंमें सड़ रहे हैं और ५० हज़ार आदमियोंको खतरनाक होनेके कारण नज़रबन्द बनाकर रखा गया है।

अमरीकामें समाचारपत्र

अमरीकन लोग समाचारपत्र पढ़नेके अत्यधिक आदी होते हैं। वे प्रतिदिन ४,४०,००,००० से भी अधिक समाचारपत्र खरीदते हैं, यानी अमरीकाकी आबादीके प्रति तीन आदमियोंमें से एक आदमी एक समाचार हर रोज़ खरीदता है। वहाँ सन्ध्या-कालमें निकलनेवाले २७,०,००,००० पत्र हैं और सुबहमें १,७०,००,००० । लोग अधिकतर सन्ध्या-कालके पत्रोंको ही खरीदकर घर ले जाते हैं। इस प्रकार वे अकेले हो नहीं पढ़ते, बल्कि उनके परिवारवाले भी पढ़ते हैं।

एक शताब्दी पूर्व संयुक्त-राष्ट्र अमरीकामें कुल २५ पत्र निकलते थे, जिनकी ७०,००० प्रतियाँ छपती थीं। १९०० में इन समाचारपत्रोंकी संख्या २०० से भी ऊपर गई, जिनकी १,५०,००,००० प्रतियाँ छपने लगीं। जैसे समाचारपत्रोंकी संख्या बढ़ने लगी, वैसे-वैसे इनका संयुक्त भी बढ़ने लगा। १९४२ में जब अमरीकाने युद्धमें भाग तो समाचारपत्रोंकी ४,३३,७४,००० प्रतियाँ छपने लगी। १९४२ में वहाँ १७८७ दैनिक पत्र थे, जिनमें से ३४ और १४४२ सन्ध्या-समय प्रकाशित होते थे। इनके वहाँ रविवारको निकलनेवाले ४७४ पत्र थे, जिनकी ३,५ ००० प्रतियाँ छपती थीं। रविवारको प्रकाशित होनेवाले इतना अधिक प्रचार होनेका प्रधान कारण यह है कि वे पाठकोंको विभिन्न प्रकारके समाचार तथा मनोरंजनकी सामग्री देते हैं। समाचारोंके अतिरिक्त उनमें रंगमंच, खेल-कूद, हास्य-प्रहसन आदि सम्बन्धी काफी मसाला रहता प्रत्येक पत्रके मुखपृष्ठपर उसका नाम ऐसे अक्षरोंमें लिखा है, ताकि उसे आसानीसे पहचाना जा सके।

सन् १९४३ में अमरीकन समाचारपत्रोंको बहुत कठिनाइयोंमें प्रकाशन करना पड़ा था, इसलिए उनकी संख्या ह्रास भी हुआ था। फिर भी जो १७५४ दैनिक पत्र प्रका हो रहे थे, उनके प्रचारमें प्रतिदिन १०,००,००० प्रति वृद्धि ही हुई थी। इस वृद्धिका मुख्य कारण अमरीकनोंकी के मोर्चोंपर होनेवाली प्रतिदिनकी घटनाओंसे अपने-आपको चित करना ही है।

मिशनोंपर ख़र्च

हिन्दुस्तानमें अक्सर 'मिशन' आया करते हैं। ऐसा किया जाता है कि इन मिशनोंसे हमारा महान उपकार इनपर हज़ारों रुपए खर्च किए जाते हैं। केन्द्रीय असेम्बलीकी बैठकमें दिए गए एक बयानसे १३ मिशनोंमें से ९ पर कि खर्चका पता चलता है—थाईलैण्ड शुभेच्छा मिशन, १५ (२) चीनी शिक्षा-मिशन ३३,७४४), (३) ईरानी मिशन १५०००), (४) ऐंग्लो-अमरीकन बन्दर और मिशन १०,५००), (५) तुर्की प्रेस-मिशन ६८,७००), इंग्लिस-अप्लेटन (Inglis-Appleton) मिशन २१, (७) ग्रेडी-मिशन ५४,९०७), (८) खाद मिशन १५, (९) मिनिस्ट्री आफ़ सप्लाई मिशन ३,३१,११३)। मिशनोंपर हिन्दुस्तानका कुल ५,६८,४६४) खर्च हुआ। हिन्दुस्तानका क्या उपकार होगा, यह बात तो अलग इन मिशनोंने क्या किया, यह भी हमें पूरी तरह नहीं उदाहरणके लिए ग्रेडी-मिशनकी रिपोर्ट अभी तक प्रकाशित नहीं की गई है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

गांधीजी और हिन्दुस्तानी

गत २५-२६ फरवरीको वर्धामें हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी जो बैठक हुई थी, उसमें गांधीजीने कहा – "बहुत अर्सा नहीं हुआ, उत्तर-भारतके लोगोंकी भाषा एक ही थी। वह उर्दू और देवनागरी लिपियोंमें लिखी जाती थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, दोनों एक-दूसरेसे जुदा होती गईं।...ग्रामीण जनता बड़े-बड़े शब्दोंको, चाहे वे फ़ारसीसे लिए गए हों चाहे संस्कृतसे, परवा नहीं करती।...वह जो भाषा बोलती है, केवल वही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है और हरेक हिन्दुस्तानीका कर्त्तव्य है कि वह उसे सीखे।...मैंने जिस गरजसे आपको बुलाया है, वह है भाषाके दो स्रोतों—हिन्दी और उर्दू—से राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दुस्तानीका विकास करनेके काममें मदद देना।..."

हिन्दी-भाषाके जो प्रकाशित इतिहास अब तक हमारे देखने में आए हैं, उनसे गांधीजीके उपर्युक्त कथनोंका समर्थन नहीं होता। मुस्लिम-आक्रमण और आधिपत्यसे पहले तो उर्दू भाषा या लिपिका भारतमें कोई अस्तित्व ही नहीं था। उसके बाद यद्यपि अरबी-फ़ारसीका प्रवेश भारतमें हुआ; पर शासक-जातिने हिन्दीके प्रचलित रूपोंको अपनाया, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। यद्यपि राजभाषाका स्थान अरबी-फ़ारसीको ही दिया गया और राजाश्रित मुस्लिम इतिहासकारोंने भी इन्हींमें इतिहासादि लिखे, तथापि जनताकी भाषाएँ हिन्दीके तत्कालीन प्रचलित रूप ही रहे। जायसी और रहीम, ताज और रसखान तथा मुन्शी इन्शा अल्लाहखाँकी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। अतः यदि गांधीजी के शब्दोंमें इसीको उत्तर-भारतकी भाषा कहा जा सके, तो निःसन्देह कुछ अपवादोंको छोड़कर यह हिन्दी थी और नागराक्षरोंमें ही लिखी जाती थी। उच्चारणके अनुसार लिखी जानेकी स्वाभाविक सरलताके कारण शासक होते हुए भी मुसलमान इस भाषापर अरबी-लिपि (जिसे गांधीजीने 'उर्दू-लिपि' कहा है) नहीं थोप सके। इससे सिद्ध है कि काफ़ी अर्से पहले न तो उर्दू नामकी कोई भाषा थी और न लिपि ही। आगे चलकर व्यावहारिक आवश्यकताके लिए हिन्दी-अरबी-फ़ारसीके मिश्रणसे एक कृत्रिम बाज़ारू भाषा चल पड़ी, जो कालान्तरमें उर्दू कहलाई। अरबी-लिपिमें लिखी जानेके कारण यद्यपि यह हिन्दीसे पृथक-सी रही है, तथापि इसने हिन्दीसे और हिन्दीने इसके अरबी-फ़ारसी-स्रोत से बहुत-कुछ हासिल किया है। पर इस आदान-प्रदानके बावजूद दोनोंने दो पृथक भाषाओंके रूपमें विकास किया है और दोनोंकी अपनी-अपनी विशिष्टताएँ हैं।

गांधीजीके इस कथनका अभिप्रेतार्थ भी हम ठीक नहीं समझ पाए कि ग्रामीण जनता जो भाषा बोलती है, वही भारतकी राष्ट्र-भाषा हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्रामीण जनताके हृदय तक एकमात्र उसीकी भाषाके माध्यम द्वारा पहुँचा जा सकता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि समूचे या केवल उत्तर-भारतकी ग्रामीण जनता ही कोई एक भाषा नहीं बोलती। उसकी अनेक बोलियोंका यद्यपि हिन्दीसे घनिष्ठ सम्बन्ध है; पर गाँवोंके सामन्त-तन्त्रके द्वीप बने रहनेके कारण न तो इनका सम्यक विकास एवं उन्नति ही हो पाई है और न पारस्परिक आदान-प्रदान ही सविशेष हुआ है। जन-साधारणकी साक्षरताका औसत हमारे देशमें केवल २ प्रतिशत है, जो संसारमें सबसे नीचा है। अतएव केवल अनुन्नत एवं अविकसित बोलियोंके आधारपर ही राष्ट्रभाषा बनानेका प्रयत्न सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। उदाहरणके लिए रेल, तार, डाक, बिजली, मोटर, साइकिल, मशीन, टिकट, स्टेशन, रेडियो आदिके लिए ग्रामीण जनताकी भाषा अथवा बोलियोंमें कोई शब्द नहीं हैं। पर इन्हें राष्ट्रभाषामें दीक्षित करना तो अनिवार्य है। यही बात अरबी, फ़ारसी और संस्कृत शब्दोंके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। अतः बोलियोंके निर्माणके बाद जो आब्किार हुए हैं, उनसे सम्बन्धित शब्दोंका निर्माण और शिक्षण अनिवार्य-सा है।

अन्तर्प्रान्तीय भाषाका सवाल

गांधीजीके इस कथनसे हम सर्वथा सहमत हैं कि भारतकी जनताके हितकी दृष्टिसे एक अन्तर्प्रान्तीय भाषाका विकास आवश्यक है। हम उनके इस सत्परामर्शका भी स्वागत करते हैं कि हिन्दी जाननेवालोंको उर्दू तथा उर्दू जाननेवालोंको हिन्दी और दोनोंको दक्षिण-भारतकी एक भाषा अवश्य सीखनी चाहिए। इससे न केवल उत्तर और दक्षिण-भारतके भाषा-भाषी एक-दूसरेके अधिक निकट आयँगे और एक दूसरेको अधिक अच्छी तरह समझेंगे; बल्कि दोनोंकी भाषाओं और साहित्योंको भी पारस्परिक आदान-प्रदानसे काफ़ी लाभ होगा। पर इससे उत्तर-भारतके लोगोंको अंगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू तथा एक दक्षिणी भाषा सीखनी पड़ेगी और दक्षिण-भारतके लोगोंको इन चारोंके अलावा शायद एकाध दक्षिणी भाषा और सीखनी पड़ेगी। अतएव इस मसलेपर हमें गम्भीरतापूर्वक विचारकर देखना चाहिए कि प्रत्येक बालकको ४-५ लिपियाँ और भाषाएँ सिखाना व्यावहारिक दृष्टिसे कहाँ तक उपयुक्त होगा?

व्यक्तिगत रूपसे हमारा इस तरहकी भाषामें कोई विश्वास नहीं। भाषाएँ सदा लोक-परम्पराका परिणाम होती हैं। आव-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

स्थकता उनकी जननी है। कुछ लोगोंने एक स्थानपर बैठकर फतवा दे दिया और भाषा बनकर चलने लगी हो, इस तरहकी मिसाल दुनियाकी किसी भी भाषाके इतिहासमें नहीं मिलती। नदीकी तरह भाषाकी विकास-धारा भी अपना पथ स्वयं खोजती और निर्माण करती है। किसी राजनीतिक स्वार्थ या किसी सम्प्रदाय-विशेषको सन्तुष्ट करनेके लिए भाषाका बलिदान या रियायत सरासर अदूरदर्शिता है। भाषाओंमें कभी कोई झगड़ा नहीं होता। झगड़ा होता है सदा उनको बोलनेवालोंमें, जो दुर्भाग्यवश मस्जिद-मन्दिर अथवा नमाज़-आरतीकी तरह भाषाको भी अपने संकीर्ण एवं क्षुद्र स्वार्थ-संघर्षोंका माध्यम बना लेते हैं। अतः इन्हें सन्तुष्ट करनेके खयालसे अन्तर्प्रान्तीय भाषाके निर्माणकी योजना बनाना कम हास्यास्पद और अदूरदर्शितापूर्ण नहीं है।

उत्तर और दक्षिणके लोग कौन-कौन-सी भाषाएँ सीखें, यह उन्हींके बुद्धि-विवेक और आवश्यकतापर छोड़ देना ज़्यादा अच्छा होगा। रही हिन्दी-उर्दूको मिलाकर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारके लिए एक कृत्रिम 'हिन्दुस्तानी' भाषा बनानेकी बात, सो उसका निर्णय समय ही करेगा। वैसे यदि सरल हिन्दी और सरल उर्दू को पृथक्-पृथक् रूपसे विकसनेका अवसर दिया जाय, तो न सिर्फ़ दोनों भाषाओंके लिए ही अच्छा होगा; बल्कि हिन्दी-उर्दूके इस कृत्रिम और अनावश्यक झगड़ेका अन्त हो जायगा और भोली-भाली जनता तथाकथित विद्वानोंकी भ्रान्तियोंका शिकार होनेसे भी बच जायगी। जब उत्तर-भारतमें बोलचालकी हिन्दी और उर्दूमें कोई अधिक भेद नहीं है, तो जिसका जो मन हो, वही भाषा सीखे। दक्षिण-भारतवाले अपनी सुविधा और सरलताकी दृष्टिसे हिन्दी या उर्दू कोई भी एक भाषा सीखें, तो उनका काम चल सकता है। इस तरह जहाँ भाषाकी अनावश्यक और नाखुशगवार राजनीतिका खात्मा हो जायगा, वहाँ अन्तर्प्रान्तीय भाषाका मसला भी अपने-आप हल हो जायगा।

हिन्दुस्तानी और हिन्दीवाले

हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी गांधीजीके वक्तव्यकी जो प्रतिक्रिया हिन्दी-जगत्में हुई है, उसे किसी भी हालतमें उसके अनुकूल नहीं कहा जा सकता। यद्यपि गांधीजीके यह कह देनेपर कि वे अकेली उर्दूको ही नहीं, उर्दू-हिन्दी दोनोंके मेलको हिन्दुस्तानी कहते हैं, उनके कुछ भक्त और समर्थक प्रसन्न नज़र आते हैं; पर अधिकांश हिन्दी-भाषा-भाषियोंने उनके इस नए आन्दोलनका स्वागत नहीं किया है। जहाँ तक भाषा-शास्त्रकी दृष्टिसे इससे असहमति या विरोधका सम्बन्ध है, वहाँ तक इसका औचित्य स्वीकार किया जा सकता है। पर यदि भाषाके प्रति मोह या गांधीजीकी अब तककी सरपरस्तीसे वंचित होने और हिन्दीको हानि पहुँचनेकी आशंका इसका कारण है, तो यह सरासर अनुचित है। गांधीजीके नाम-कामसे हिन्दीके प्रचार-अ बड़ी सहायता मिली है, इस बातसे इन्कार नहीं किया वे भाषा-शास्त्रके पण्डित न होकर एक राजनीतिक ने हर समस्याको अपने ही ढंगसे सोचने और हल करने अतः उन्होंने हिन्दुस्तानीका जो रूप सोचा है, उसके उन्हें दोष नहीं दे सकते। यदि हम अपने-आपको नहीं पाते, तो इसमें व्यर्थ परेशान होनेकी क्या ज़रूरत तक हमें अपने कर्त्तव्य एवं विवेक और हिन्दीकी सामर्थ्यपर विश्वास है, हमें कोई भ्रान्त नहीं कर सक

कितने आदमी अपने दिलपर हाथ रखकर कह कि उन्होंने हिन्दीके प्रति अपने कर्त्तव्यका सम्यक् प है। जितना ध्यान हमने हिन्दीको राष्ट्रभाषा कहने प्रचार-प्रसारकी चिन्तामें व्यय किया है, उसका शतांश साहित्यिक श्रीवृद्धि करनेकी ओर नहीं दिया। भाषाके हम बहस करने और लड़ने लगते हैं; पर उसके साहित्य एवं सर्वांगीण बनानेकी ओर कोई ध्यान नहीं देते। हम कांश तथाकथित साहित्यिक संस्थाएँ आज साहित्यि और प्रकाशकोंके प्रभावमें हैं। लेखकोंका कोई सामू साहित्यिक विकासकी दिशामें नहीं है। अतएव हमारा कर्त्तव्य तो यह होना चाहिए कि राष्ट्रभाषा या उ विवादमें न पड़कर हिन्दीको अधिकाधिक सरल भाषाओं और बोलियोंसे उसकी शब्द-सामर्थ्य बढ़ाएँ साहित्यको इतना उन्नत एवं सर्वांगीण बना दें कि हि लिखनेकी आवश्यकता लोग स्वयं महसूस करें। वहा प्रोपेगेण्डाके बजाय उपयोगिताके माध्यमसे लोग हिन्दी यह हिन्दी और हिन्दीवालोंके लिए अधिक गौरवकी

हिन्दुस्तानीका महत्व

जहाँ तक बोलचालकी राष्ट्रभाषाका सवाल है, की ज़रूरत और महत्वसे कोई इन्कार नहीं कर सक अरबी-फ़ारसी या संस्कृतमय बनानेका झगड़ा कुछ भाषा-शास्त्रियोंका वितण्डावाद-मात्र है। जन-साधा आवश्यकताके अनुसार हिन्दुस्तानी बोल और बना गांधीजीकी तरह हमें भी आशा करनी चाहिए कि अं यह देशकी आम भाषा होगी। आज हिन्दी-उर्दू में हो नज़र आ रहा है, वह अधिकांशतया राजनीतिक दायिक कारणोंसे ही है। अगर इस देशके हिन्दू-मुसल जुलकर सुख, शान्ति और आज़ादीसे रहना चाहते हैं नीतिक, सामाजिक, अर्थनीतिक और सांस्कृतिक भेदों भाषाके भेदको भी दूर करना लाज़िमी है। इस जीके प्रयत्नका महत्व और दूरदर्शिता असाधारण से जो भारतको एक मज़बूत, संगठित, स्वतन्त्र

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखना चाहते हैं, उन्हें इस पुनीत कार्यमें अवश्यमेव सहायक होना चाहिए।

अनेक हिन्दी-पत्रोंमें हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके वक्तव्योंकी जो प्रतिक्रिया हुई है, उसकी हम प्रशंसा नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानीके निर्माण और प्रचारसे हिन्दीका अहित होगा, यह समझना सरासर अदूरदर्शिता, संकीर्णता और दक़ियानूसीपन है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो पत्र और पत्रकार गला फाड़-फाड़कर पाकिस्तानका विरोध और अखण्ड हिन्दुस्तानका समर्थन करते हैं, वे भी एक भाषाकी आवश्यकता और महत्वको स्वीकार नहीं करते! संयुक्त भारतमें विशुद्ध उर्दूवाले हिन्दीको और हिन्दीवाले विशुद्ध उर्दूको कैसे अपनायँगे? इस प्रश्नको हिन्दी और उर्दूके हिमायतियोंको दृष्टिसे देखनेसे न तो कोई हल ही सम्भव है और न भाषाकी समस्याके साथ न्याय ही हो सकता है। गत २२ मार्चको राज्य-परिषदमें सर जोगेन्द्रसिंह और सर सुल्तान अहमदने जिन शब्दोंमें गांधीजीके आम भाषाके आन्दोलनकी दाद दी है, उसको हमें ध्यानसे पढ़ना चाहिए—यद्यपि उनके और हमारे मक़सद अलग-अलग हैं।

यह राजनीतिक सरकार क्यों?

अर्थ-बिल और बजटकी लगभग प्रत्येक माँगको अस्वीकार कर केन्द्रीय असेम्बलीने यह स्पष्ट ज़ाहिर कर दिया है कि मौजूदा सरकारकी अयोग्यता, भ्रष्टता और निकम्मेपनके बारेमें देशका क्या मत है और उसमें जनताका कितना विश्वास है। पर जब हम देखते हैं कि इस निन्दा, आलोचना, अस्वीकृति और अविश्वासके बावजूद बजट पिछले वर्षोंकी तरह लगभग मूल रूपमें ही वाइसराय द्वारा स्वीकृत कर दिया जायगा और वर्त्तमान सरकार भी हिमालयकी तरह अचल रहेगी, तो सरकारकी ये हारें अर्थहीन-सी हो जाती हैं। पार्लमेण्टरी जनतन्त्रके ढकोसलेका इससे बढ़कर भण्डाफोड़ और क्या हो सकता है? ध्यान रखनेकी बात यही है कि इस राजनीतिक सरकारको करनेवाले दोनों दल—सरकार और असेम्बली—कर-दाताके नाम और मूल्यपर यह अभिनय करते हैं। विरोधी दलोंको जैसे मिलकर सरकारको हरानेके सिवा कोई काम या ज़िम्मेदारी नहीं, और सरकारको इन हारोंको खिलवाड़से अधिक महत्व देनेकी ज़रूरत या परवाह नहीं। इस हालतमें जन-साधारणके लिए यह समझना मुश्किल है कि तब आखिर इस अभिनयकी ज़रूरत क्या है?

प्रान्तोंमें जब कहनेके लिए १९३५ के विधानके अनुसार शासन होता है, केन्द्रीय सरकार १९१९ के विधानपर ही स्थित है! एकमात्र वाइसराय इसे नामज़द करता है, जिसे धारा-सभाओंकी कोई भी आलोचना या निन्दा हटा नहीं सकती। असेम्बलीका चुनाव भी १९१९ के विधानके अनुसार ही हुआ है, जिसमें केवल ३ प्रतिशत लोगोंको मताधिकार प्राप्त है। इसपर मताधिकारकी योग्यताका आधार रखा गया है साम्पत्तिक और उच्च शिक्षा, जिसका मतलब है केवल सम्पन्नवर्ग। अतः पार्लमेण्टरी शासनके नामपर नई दिल्लीमें जो यह राजनीतिक सरकस हो रहा है या होता रहता है, उसमें एक दल है देशके ३ प्रतिशत सम्पन्नवर्गका प्रतिनिधि और दूसरा है ब्रिटिश साम्राज्यवादके निरंकुश स्वेच्छाचारी गुट्टका एजेण्ट। अब रह गई देशकी ९७ प्रतिशत ग़रीब और निम्न-मध्यवित्त जनता, सो उसके सामने एक निःसहाय दर्शककी भाँति इस सरकसको दूरसे देखनेके सिवा कोई चारा नहीं है। जनताके हितोंका प्रतिनिधित्व और संरक्षण मानो दोनोंमें से किसी भी दलका काम नहीं। जनता दोनोंमें से किसी भी दलको न हटा सकती है, न उन्हें अधिक देर सहन ही कर सकती है।

व्यावहारिक राजनीतिका तक़ाज़ा

केन्द्रीय असेम्बलीमें जो दो प्रमुख विरोधी दल हैं, वे हैं कांग्रेस और मुस्लिम-लीग। दोनोंके ही पीछे काफ़ी बड़ा लोकबल है और दोनों ही जनताके हितोंके प्रतिनिधित्व एवं रक्षाका दावा करती हैं। अतएव हम दोनों से ही पूछना चाहेंगे कि आखिर सरकारकी प्रत्येक माँगको ठुकराकर, उसके तज़ेंअमलकी निन्दाकर और उसमें देशका अविश्वास प्रकट करके ही उन्होंने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है, या उनकी और भी कुछ ज़िम्मेदारी है? एक ओर जहाँ युद्धके कारण हुई चीज़ोंकी कमी और बढ़ी हुई दरोंने जनताकी दिक़्क़तोंको बेशुमार कर दिया है, दूसरी ओर निरंकुश नौकरशाहीके निकम्मेपन और भ्रष्टता तथा लोभी पूँजीपतियोंकी चोरी और लूटने उसका जीना दूभर कर दिया है। इस स्थितिमें केन्द्रीय असेम्बलीमें होनेवाला राजनीतिक सरकस कोढ़में खाज बन रहा है। इससे जनताका दोनोंके प्रति उदासीनता और निराशाका भाव होना स्वाभाविक ही है। क्या इस स्थितिको अनिश्चित काल तक जारी रखना या रहने देना उचित है?

इस स्थितिमें व्यावहारिक राजनीतिका एकमात्र तक़ाज़ा यही है कि दोनों विरोधी दल सरकारको हरानेमें जिस पारस्परिक सहयोगका परिचय दे रहे हैं, उसीका परिचय जनताके हितोंको आगे बढ़ानेमें भी दें। अभी तक हम दोनों दलोंकी ओरसे ऐसा कोई अमली क़दम उठता हुआ नहीं देख रहे। सिन्ध, सीमा-प्रदेश, आसाम और बंगालके लीगी मन्त्रिमण्डलोंकी पराजयोंने राजनीतिक धाँधलीको और भी गम्भीर रूप दे दिया है। सीमा-प्रदेशमें डा० खाँ साहबने कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनाकर भी समस्याका कोई व्यावहारिक हल पेश नहीं किया है। इसका कारण यह है कि अब लीगी दल विरोधी दल हो गया है और बजाय कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलसे मिलकर जनताका हित-साधन करनेके वह उसके कार्यों में अड़ंगे खड़े करने और उसको गिराकर स्वयं पदारूढ़ होनेकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

चेष्टा करेगा। इस तरह जनताकी भलाईका स्थान पदोंके लिए दोनों दलोंकी दौड़ ले लेगी। इससे किसको और क्या लाभ होगा? बल्कि केन्द्रमें लीग और कांग्रेसका सहयोग तथा प्रान्तोंमें प्रतियोगिता और अल्पमत-बहुमतके नामपर एक-दूसरेको गिरानेकी चेष्टा दोनोंके राजनीतिक दिवालिएपनका ही परिचायक हैं। यदि अकर्मण्यता और अदूरदर्शितावश दोनोंकी यही रीति-नीति रही, तो आश्चर्य नहीं, यदि दोनोंको ही जनताके बहुत बड़े भागके विश्वास और सहयोगसे वंचित होना पड़े। आज दोनों ही दल अपने मिथ्या मोहमें इस तथ्यकी उपेक्षा कर रहे हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि दोनों मिलकर सभी प्रान्तोंमें सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनायँ और फिर वालिग मताधिकार द्वारा नए चुनाव कराकर केन्द्रमें भी १९१९ के विधान द्वारा चलनेवाली निरंकुश स्वेच्छाचारिताका अन्त करें और अन्यान्य दलोंके सहयोगसे भारतका भावी विधान तैयार करें।

टोरियोंका राजनीतिक दिवालियापन

ब्रिटेनके टोरी भारतीय असेम्बलीमें होनेवाली सरकारकी पराजयोंको किस रूपमें लेते हैं, इसका अनुमान अभी हाल ही में कामन्समें भारत-मन्त्री द्वारा दिए गए उत्तरोंसे ही लगाया जा सकता है, जिनमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि राजबन्दियोंकी रिहाई या राजनीतिक ज़िचका अन्त करने-सम्बन्धी नीतिमें सरकार कोई परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता नहीं समझती! क्रिप्स-प्रस्तावका द्वार अब भी खुला है! आज जब युद्धने न सिर्फ़ मित्र-राष्ट्रोंके अनुकूल ही रुख अख्तियार किया है, बल्कि उनकी सुनिश्चित विजय काफ़ी निकट आ चुकी है, इस तरहकी अदूरदर्शिता एवं अविचारपूर्ण हठधर्मी राजनीतिज्ञताकी नहीं, बल्कि राजनीतिक दिवालिएपनकी ही द्योतक है। कदाचित् इसी लिए गत ४ मार्चको लन्दनमें भारतीय विद्यार्थी-संघकी ओरसे हुई सभामें बोलते हुए कामनवेल्थ-कान्फ्रेन्सके भारतीय प्रतिनिधि सर विजयप्रसाद सिंहने कहा है—"मौजूदा भारतीय राजनीतिक ज़िचसे ब्रिटिश राजनीतिज्ञताका दिवालियापन ही साबित होता है। जब तक कांग्रेसी नेता नहीं छोड़े जाते, भारतमें कोई राजनीतिक समझौता नहीं हो सकता। कांग्रेस एकमात्र ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो भारतीय जनताकी ओरसे बोल सकती है।" आपने शीघ्र ही भारतमें राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना को जाने और सान फ्रान्सिस्को-कान्फ्रेन्समें उसीको भारतका प्रतिनिधित्व करने देनेकी भी माँग की।

स्मरण रहे कि सर विजयप्रसाद न तो कांग्रेसी हैं और न उसके समर्थक ही। वे अब तक कई महत्त्वपूर्ण सरकारी पदोंपर रह चुके हैं और सरकारके असन्दिग्ध वफ़ादार हैं। जब ऐसे लोग भी टोरियोंके राजनीतिक दिवालिएपनसे ऊब उठे हैं, तब उसके विरोधियों और आलोचकोंकी कौन कहे। क्या अब भी टोरियोंकी आँखोंमें उँगली डालकर बतलाना होगा कि बूझकर अन्धे क्यों बन रहे हैं?

भारतकी बेसब्री और असन्तोष

कामनवेल्थ-कान्फ्रेन्सके भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल सर मोहम्मद ज़फ़रुल्लाखाँने भी—जो न सिर्फ़ कई सरकारी पदोंपर रह ही चुके हैं, बल्कि इस समय भी के जज हैं—लार्ड एस्टर द्वारा दी गई दावतके है—"शान्ति और सभ्यताके भविष्यसे सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी मसले हैं, जिनकी ओर पर्याप्त दिया जा रहा। सरकारका रुख यह है कि भारतके एक नीति घोषित कर देनेके बाद ब्रिटेन उसके सारी ज़िम्मेदारियोंसे मुक्त हो जाता है और दूसरा भारतका ही काम है। पर ब्रिटेन, कामनवेल्थ और तथा सुरक्षाका हित इसीमें है कि भारतीय स्थितिको न होने दिया जाय। वैदेशिक सम्बन्धोंमें जब ब्रिटेन राज्य अमरीका और रूससे सन्तोषजनक समझौते तब क्या केवल भारतके मामलेमें वह हार मान लेगा!

एक अन्य अवसरपर कामनवेल्थ-कान्फ्रेन्सके सम्बोधित करते हुए आपने कहा—"क्या यह प्रश्न व्यंग्य नहीं है कि कामनवेल्थ-राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताकी भारतके २५ लाख सैनिक लड़ रहे हों और स्वयं के लिए वह परमुखापेक्षी हो? आखिर वह कब तक करे? वह आगे बढ़ रहा है। आप चाहे उसे सहायता दें, चाहे रोड़े अटकायँ; पर कोई उसे सकता।...कामनवेल्थ-राष्ट्रोंको स्वाधीनताको कायम विश्व-शान्तिकी भावी सुरक्षाके लिए भारतने जो है, उसने कई दिशाओंमें असन्तोष भी पैदा किया है अर्थनीतिक जीवनपर यद्यपि इसकी बड़ी गम्भीर है; पर लाभदायक सम्भावनाएँ भी बड़ी हैं।...भारत राजनीतिक परीधीनतासे बड़ा बेसब्र हो रहा है। क्षेत्रको इस निराशा और विफलताकी भावनाको इस और भी गहरा कर दिया है कि युद्धके बाद फिर उसे न हो। यदि यह कहा जाय कि भारतमें फूट और हैं, तो क्या वे चीनके कुओमिन्तांग और कम्युनिस्टोंसे भी अधिक गम्भीर हैं?"

भारतीय ज़िच कैसे दूर हो?

सर ज़फ़रुल्लाने भारतके राजनीतिक ज़िचको सम्बन्धमें दो उपाय बतलाए हैं। पहला तो यह कि राजनीतिक दलोंसे पारस्परिक मतभेद और भारतके विधानका मसविदा तैयार करनेको कहा जाय। यह कि यदि वे ऐसा न कर सकें, तो ब्रिटिश सरकार

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को औपनिवेशिक दर्जा देनेके विधानका मसविदा बनाकर पार्लमेंटके सम्मुख रखे। इस सम्बन्धमें लन्दनके 'टाइम्स'में कई विशिष्ट व्यक्तियोंके पत्र भी प्रकाशित हुए हैं। उनपर टिप्पणी करते हुए 'टाइम्स'ने लिखा है—"ब्रिटेन भारतके सम्बन्धमें अपनी घोषित नीतिको बाअसर ढंगसे अमली जामा पहनानेके लिए आवश्यक कार्यवाही करे। 'क्रिप्स-प्रस्तावको स्वीकार करो या ठुकरा दो' का उसका जो मौजूदा रुख है, वह पर्याप्त नहीं है। दरअसल यह रुख युद्ध-कालमें और इसके बादके भारत-ब्रिटेनके सहयोग-सम्बन्धके लिए घातक है। लोगोंकी यह आम धारणा है कि भारतके सम्बन्धमें पहल करना ब्रिटेनका काम है।" इस सम्बन्धमें 'टाइम्स'ने दो उपाय सुझाए हैं। पहला तो यह कि सरकार अपने शासन-यन्त्रमें इस तरहके परिवर्त्तन करे कि धीरे-धीरे सत्ता भारतीयोंको हस्तान्तरित की जा सके और दूसरा यह कि साम्प्रदायिक समस्याको नए ढंगसे हल किया जाय। इस नए ढंगको सुझानेमें 'टाइम्स'ने साम्राज्यवादियोंकी पुरानी चालको फिर दोहरा दिया है। उसका कहना है, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें तो गम्भीर मतभेद है ही; पर देशी नरेश, अछूत और सिक्ख भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। शासनमें उन्हें उचित हिस्सा मिले और उनके हितोंको पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हो, यह भी सरकारकी ही ज़िम्मेदारी है।

सर ज़फ़रुल्ला और 'टाइम्स'के सुझावोंमें कोई मौलिक भेद नहीं है। वे भारतका राजनीतिक ज़िच दूर करना चाहते हैं, यहाँ तक तो समझमें आता है। पर सर ज़फ़रुल्लाका औपनिवेशिक दर्जेकी माँग करना अब उतना ही अनावश्यक एवं असामयिक है, जितना 'टाइम्स'का हिन्दू-मुस्लिम मतभेदका भूत खड़ाकर राजाओं, अछूतों, सिक्खों आदिके प्रति ब्रिटेनकी ज़िम्मेदारीकी वक़ालत करना। जब यूरोपके छोटे-से-छोटे देश आत्मनिर्णय द्वारा अपना स्वतन्त्र विधान बना रहे हैं, भारतीय विधानके ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा बनाए जानेकी कल्पना ही इस बातका प्रमाण है कि विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रकी दुहाई देनेवाला ब्रिटेन अभी भी साम्राज्यके मोहसे—जो सारी अशान्ति और अव्यवस्थाको जड़ है—मुक्त नहीं हो पाया है। इस तरहकी मनोवृत्तिसे भारतीय ज़िच कभी दूर नहीं हो सकता। इसका एकमात्र हल तो यही हो सकता है कि बालिग मताधिकारके आधारपर एक प्रतिनिधि-मण्डल चुना जाय और वही देशके भावी विधानका मसविदा बनाय। यदि सरकारका विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रमें सच्चा विश्वास है, तो उसे ऐसा करनेके लिए अविलम्ब पहल करनी चाहिए।

सान फ्रान्सिस्को और भारत

याल्ता (क्राइमिया) में संयुक्त-राष्ट्रोंने क्या-क्या निर्णय किए, यह अभी तक भी पूर्णतया प्रकट नहीं हुआ है। धीरे-धीरे जिन बातोंको कहना आवश्यक समझा जाता है, मोटे रूपमें जनताके सामने वे ही प्रकट की जाती हैं। कदाचित् इसीलिए जार्ज बर्नर्ड शाने इसे 'राजनीतिक बच्चोंके मनबहलावकी अत्यन्त थोथी परिस्तानकी कहानी' बतलाया है। कहा जाता है कि भावी शान्ति और सुरक्षाके लिए संयुक्त-राष्ट्रोंने याल्तामें योजना बना ली है और उसीका स्पष्टीकरण एवं अमलमें लानेका निश्चय सान फ्रान्सिस्कोमें होनेवाले सम्मेलनमें किया जायगा। अन्य ब्रिटिश उपनिवेशोंकी तरह भारतको भी इसमें प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार (?) मिला है। इसका उपयोग किया है मौजूदा भारत-सरकारने, जिसको न तो जनताका विश्वास प्राप्त है और न जो जनताकी प्रतिनिधि ही है। उसने अपने दो वेतनभोगी कर्मचारियोंको भारतकी ओरसे प्रतिनिधि नियुक्त किया है। कहना न होगा कि ये भारतीय जनताकी अपेक्षा अपने साम्राज्यवादी आक़ाओंके स्वार्थोंका ही प्रतिनिधित्व करेंगे, जैसा कि भारतके नामपर दिवंगत राष्ट्र-संघमें होता है। इससे न केवल भारत और भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंके प्रति ही ब्रिटेनका रुख स्पष्ट हो जाता है, बल्कि उसके विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र-सम्बन्धी दावोंकी अस्लियत भी प्रकट हो जाती है। इस तरहके रवैएसे कोई कैसे आशा कर सकता है कि भारतीयोंका ब्रिटेनके दावों और घोषणाओंमें कोई विश्वास हो सकता है?

ब्रिटिश अधिकारियोंने सान फ्रान्सिस्को-सम्मेलनमें भारतका प्रतिनिधित्व करनेके लिए केवल अपने वेतनभोगी कर्मचारियोंको नियुक्त ही किया हो, यही बात नहीं है; उन्हें बात भी ब्रिटेनके हितकी ही कहनी पड़ेगी। पता चला है कि सम्मेलनसे पूर्व लन्दनमें ब्रिटिश उपनिवेशोंके तथाकथित प्रतिनिधियोंकी एक बैठक होगी, जिसमें यह तय किया जायगा कि ब्रिटिश प्रतिनिधि-मण्डलकी ओरसे सम्मेलनमें एक ही मत रखा जाय। गत २० मार्चको केन्द्रीय असेम्बलीमें सरदार सन्तसिंहके प्रश्नका वैदेशिक मन्त्री सर ओलाफ़ कैरोने जो उत्तर दिया है, उससे भी इसका समर्थन ही होता है। आपने कहा कि यद्यपि भारतीय प्रतिनिधि अपना मत प्रकट करनेमें स्वतन्त्र होंगे; पर उन्हें जो हिदायतें दी जायँगी, वे भारत-मन्त्रीकी स्वीकृतिसे ही दी जायँगी। जिन लोगोंने भारत-मन्त्रीके पिछले ५-६ वर्षोंके वक्तव्य ध्यानसे पढ़े हैं, उन्हें यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि ये हिदायतें क्या होंगी? बक़ौल राष्ट्रपति रूज़वेल्टके विश्व-शान्ति और सुरक्षा किसी दल-विशेष या फौजी विजयका ही प्रश्न नहीं है। अतः उसमें सब देशोंका स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व होना लाज़िमी है और साथ ही यह बात भी कि लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताके ये प्रतिनिधि स्वयं भी सही मानोंमें स्वतन्त्र और लोकतन्त्रवादी हैं या नहीं। इस दृष्टिसे भारतके नामपर होनेवाला यह प्रतिनिधित्व न सिर्फ़ भारत और ब्रिटेनके लिए ही, बल्कि विश्व-शान्ति और सुरक्षाके लिए भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हानिकर और एक बहुत बड़ा धोखा तथा विश्वासघात है। इस युद्धके पिछले ६ वर्षोंमें स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रके लिए जन-धनकी इतनी बड़ी बलि देकर भी ब्रिटिश साम्राज्यवादी अभी तक अपनी संकीर्ण स्वार्थ-भावना, मोह और अदूरदर्शिताको नहीं छोड़ सके हैं; यह ब्रिटेन और दुनियाके लिए कम आश्चर्य, दुःख और दुर्भाग्यकी बात नहीं है।

अमरीका और भारतीय

दक्षिण-अफ्रीका या आस्ट्रेलिया ही ऐसे देश नहीं हैं, जहाँ भारतीयोंको मनुष्यका-सा व्यवहार और सम्माननीय नागरिकके अधिकार प्राप्त नहीं हैं। जनतन्त्रका गढ़ कहलाने और नीग्रो लोगोंको नीची और क्रूर दृष्टिसे देखनेवाला अमरीका भी इस वर्ण-औद्धत्यसे मुक्त नहीं है। भारतमें अमरीकन बेरोक-टोक आ-जा, बस और तिज़ारत कर सकते हैं; पर वहाँ भारतीयोंका प्रवेश (सिवा अस्थायी विद्यार्थी या पर्यटकके रूपमें ६ मासके लिए) निषिद्ध है। १९१७ से पूर्व ऐसी कोई पाबन्दी नहीं थी; पर इस वर्षसे उनका प्रवेश नियन्त्रित कर दिया गया और १९२४ में बिल्कुल निषिद्ध। अभी पिछले दो वर्षोंसे भारतीयों द्वारा अमरीकाके जन-साधारणकी चौहरी स्वतन्त्रताके दावेको चुनौती दी जानेके फल-स्वरूप यह सुना जा रहा था कि अमरीकाकी धारा-सभाओं द्वारा इस प्रतिबन्धको हटाकर भारतीयोंके प्रति अकारण किए गए इस अन्याय और अनीतिका मार्जन किया जायगा। कह नहीं सकते कि वास्तवमें इस प्रचारके पीछे अमरीकाकी अपनी गलतो ठीक करनेकी सच्ची भावना थी या केवल भारतीयोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेकी चाल; पर भारत और अमरीका दोनोंमें ही लोकमतने इसका स्वागत किया। इस सम्बन्धमें पेश किए गए बिलोंको अमरीकन धारा-शास्त्रियों और पत्रोंका ही नहीं, राष्ट्रपति रूज़वेल्ट तकका समर्थन प्राप्त हुआ। पर अब सहसा सुना गया है कि भारतीयोंके प्रवेशसे मज़दूरी सस्ती हो जानेकी आशंकासे इण्डियन इमिग्रेशन बिल अनिश्चित कालके लिए खटाईमें डाल दिया गया है।

यदि किसी अन्य कारणसे उक्त बिलको स्थगित किया गया होता, तो हमें विशेष आश्चर्य या दुःख नहीं होता। पर ऐसा करनेमें जिस मिथ्या और निराधार आशंकाकी शरण ली गई है, उससे हमें अमरीकनोंकी समझ और सूझपर तरस आता है। इस आशंकाकी तहमें वही अंगरेज़ोंकी-सी साम्राज्यवादी भावना काम कर रही है कि भारत केवल कुलियोंका देश है और ये सस्ते कुली ही शायद अमरीका पहुँचें। पहली विचारणीय बात तो यह है कि आज भारतीयोंमें से मज़दूर ही अमरीका जायँ, विद्यार्थी, व्यापारी या बुद्धिजीवी नहीं; ऐसी संभावना बहुत कम है। फिर यदि ऐसा हो भी, तो क्या अमरीकन सरकार इतनी नपुंसक है कि वह मज़दूरीको सस्ती होनेसे रोक नहीं सकती? या अमरीकन सरकारको भी कहीं दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंके इतिहासकी पुनरावृत्तिका भय तो नहीं है? जो भी हो, इस तरहकी हीन और कपटपूर्ण दलीलोंसे अमरीकाने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई है, न नैतिक साख ही। जो भारतीय अमरीकासे सच्चे जनतन्त्र, मानव-भ्रातृत्व और समानताके आदर्श रखते हैं या थे, उन्हें इस व्यवहारसे अवश्य दुःख होगा।

दक्षिण-अफ्रीका और सरकार

गत २२ मार्चको राज्य-परिषदने सर्वसम्मतिसे दक्षिण-अफ्रीकाके विरुद्ध आर्थिक अंकुश लगाने और वहाँके हाई-कमिश्नरको वापस बुलानेका प्रस्ताव पासकर देशको एक बार फिर दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंकी दुर्दशाकी ओर आकृष्ट किया है। उपनिवेश-विभागके मन्त्री श्री बनर्डी स्मट्सके वक्तव्य और नेटाल-कौंसिल द्वारा भारतीयोंके आडिनेन्सोंके अवैधानिक घोषित किए जानेपर ज़ाहिर की आशावादिता दिखलाई है। डा० खरेने रेसिप्रोसिटी-फ़ंक्शन करनेकी जो दुहाई दी है, उसका व्यावहारिक महत्व ही क्या, जब कि उसपर अब तक भी कोई अमल नहीं। यह और भी आश्चर्यकी बात है कि उन्होंने सात फ्रंटियर कान्फ्रेन्ससे वर्ण-भेद दूर करनेकी आशा की है, जब कि भारतीय जनताका कोई प्रतिनिधि न होगा! इस तरहसे साफ़ ज़ाहिर है कि सरकार इस दिशामें कोई भी अगला उठानेको तैयार नहीं। अतः यह परमावश्यक है कि असेम्बली और राज्य-परिषदके सदस्य उसपर उक्त अमलमें लानेके लिए ज़ोर डालें और देशमें उसके लिए आन्दोलन किया जाय।

बंगालमें कपड़ेका अकाल

अन्न, तेल, दवाइयों आदिके अकालके बाद अब कपड़ेके अकालसे पीड़ित है। नगरों और गाँवोंसे इस जो समाचार आ रहे हैं, वे कम हृदय-विदारक नहीं हैं। कमीका अनुमान पाठक इसी बातसे लगा सकते हैं कि स्थानोंपर क़ब्रमें गड़े मुर्दे उखाड़कर उनके कपड़े उतार लि कई जगह स्मशानमें जलानेको रखे गए मुर्दोंके शरीरपर गायब हो गए। दो-एक स्थानोंपर कपड़ोंकी दुकानें भी लूटी कपड़ा मिलनेकी दुकानोंके सामने घण्टों पहलेसे लगी कतारें केवल निराश होकर तितर-बितर ही नहीं होतीं, बल्कि पानेकी छटपटाहटमें ये लोग आपसमें लड़-झगड़ भी पड़ते अभी कलकत्तेमें एक दुकानके सामने हुए एक ऐसे ही एक स्त्रीके मारे जानेका भी संवाद मिला है।

आखिर इस दयनीय स्थितिके लिए कौन ज़िम्मेदार अभी हाल ही में केन्द्रीय असेम्बलीमें एक प्रश्नके उत्तरमें सरकारके व्यवसाय-सदस्यने कहा कि प्रति व्यक्ति पीछे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

भारतके अन्य प्रन्तोंसे अधिक कपड़ा दिया गया है। तब यह कपड़ा गया कहाँ ? इसका आंशिक उत्तर व्यवसाय-सदस्य द्वारा दिए गए एक दूसरे प्रश्नके इस जवाबसे मिल जाता है कि बंगालमें भेजा गया कपड़ा चोरीसे तिब्बतके रास्ते चीन जाता है, जिसे रोकनेकी ज़िम्मेदारी बंगाल-सरकारकी है। अनुमान यह है कि बंगाल आनेवाला कपड़ा केवल २५ प्रतिशत तो बाज़ारोंमें आता है और बाक़ी चोर बाज़ारमें चला जाता है। प्रायः रोज़ ही हम स्थानीय पत्रोंमें पढ़ते हैं कि अमुक स्थानपर चोरीसे छुपाकर रखा गया कई हज़ार गज़ या गाँठ कपड़ा पकड़ा गया। पर पकड़े जानेके बाद उस कपड़ेका क्या होता है अथवा उसे चोरीसे छुपाकर रखनेवालोंको क्या दण्ड दिया जाता है, इस बारेमें बहुत कम सुनने या पढ़नेमें आता है। अतएव जन-साधारणका यह समझना बहुत ग़लत नहीं कि नियन्त्रणके नामपर निकम्मी और ग़ैर-ज़िम्मेदार सरकार और चोर तथा लुटेरे दोनों ही इस परिस्थितिके लिए उत्तरदायी हैं।

चोरों और लुटेरोंको बंगालमें जो छूट मिली हुई है, उसकी एकमात्र जवाबदेह सरकार है। बाज़ारमें कपड़ेकी कमी ज्यों-ज्यों अधिक होने लगी, जनताको शिकायतें भी बढ़ने लगीं। पर चतुर अधिकारियोंने सदा उसे धोखेमें डालनेकी ही चेष्टा की। गत ७ अक्टूबरको सिविल सप्लाई-विभागके मन्त्रीने कहा था कि कपड़ेकी कमी केवल अपेक्षाकृत है, वास्तविक नहीं! ९ अक्टूबरको दिल्लीके सिविल सप्लाई-विभागकी ओरसे एक विज्ञापन छपा, जिसमें कहा गया कि जनताकी ज़रूरतके लिए काफ़ी कपड़ा है। पर कपड़ेकी कमी और उसके वितरणके बारेमें जनताकी आशंकाएँ कम नहीं हुईं। इसपर २२ दिसम्बरको बंगालके सिविल सप्लाई-विभागके मन्त्रीने यह आश्वासन दिया कि कपड़े वितरणमें कोई ढिलाई नहीं होगी। पर आज जो स्थिति है, वह इन आश्वासनोंको एक गम्भीर चुनौती है। स्वयं सरकारने स्वीकार किया है कि कपड़ेका वितरण ठीक न होनेसे उत्पादक केन्द्रोंसे उसका प्रभावपूर्ण नियन्त्रण नहीं हो रहा। पर इसके लिए ज़िम्मेदार भी तो वही है। यदि सारी सत्ता और साधन-सामानके बावजूद वह कपड़ेका ठीक-ठीक वितरण नहीं कर सकी और चोरों तथा लुटेरोंको जनताको लूटनेकी खुली छुट्टी है, तो करदाताकी गाढ़ी कमाईपर पलनेवाले मोटी-मोटी तनख्वाहोंके ये अफ़सर और सारा शासन-यन्त्र फिर आखिर किस मर्ज़की दवा हैं ? क्या हम आशा करें कि बंगालके धारा-शास्त्री और प्रमुख नागरिक सामूहिक रूपसे सरकारपर कपड़ेका पूर्ण नियन्त्रण और उचित विवरण करनेके लिए ज़ोर डालेंगे ? सर सप्रूकी इस बातसे हम सहमत हैं कि वाइसरायको इस सम्बन्धमें शीघ्र ही हस्तक्षेप करना चाहिए।

लार्ड वेवलकी लन्दन-यात्रा

लार्ड वेवलके अचानक लन्दन जानेसे राजनीतिक क्षेत्रोंमें तरह-तरहकी अटकलबाजियाँ शुरू हो गई हैं। उनके वहाँ जाने के दो कारण बतलाए गए हैं। पहला तो यह कि जर्मनीके विरुद्ध युद्ध खत्म होनेके बाद जापान-विरोधी युद्धपर मित्र-पक्षकी सारी शक्तिके केन्द्रित किए जानेसे सम्बन्धित मसले और दूसरा भारत की राजनीतिक स्थितिपर विचार-विनिमय। जन-साधारणमें अधिक दिलचस्पी दूसरे पहलूके सम्बन्धमें ही प्रकट की जा रही है। भारत-मन्त्रीने इस सम्बन्धमें कहा है—"लार्ड वेवलके यहाँ आनेपर भारतके विधान और राजनीतिक भविष्यके सम्बन्धमें स्वभावतया विचार होगा।...पर मेरे लिए ऐसी किसी धारणाको प्रोत्साहन देना ग़लत होगा कि वाइसरायके आगमनका परिणाम जल्द ही कुछ गम्भीर निर्णयोंके रूपमें होगा।" क्रिप्स-योजनाके अब तक बरक़रार रहनेकी दुहाई देकर आपने इस बातपर खेद प्रकट किया है कि अब तक भारतीय राजनीतिक दलोंमें कोई समझौता नहीं हो सका है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि केन्द्रीय असेम्बलीमें हुई सरकार की हार-पर-हार, सीमा-प्रदेशमें कांग्रेसके पद ग्रहण करने और कई भारतीय नेताओंसे मिलनेके बाद वाइसरायका लन्दन जाना केवल विचार-विनिमयके लिए ही नहीं हो सकता। पर चर्चिल, एमरी और वेवलके पिछले वक्तव्योंको देखकर इस यात्रासे विशेष आशा करना ठीक नहीं। अधिक सम्भावना इसी बातकी हो सकती है कि ब्रिटिश अधिकारी सान फ्रान्सिस्को-सम्मेलनसे पहले विश्व-लोकमतकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए कोई राजनीतिक स्टण्ट खेलना चाहते हैं। वैसे भारतकी स्थिति अब इतनी बदतर हो चली है कि नौकरशाहीके लिए भी शासनके वर्त्तमान ढोंगको अधिक दिन चालू रखना सर्वथा हानिप्रद और अव्यावहारिक हो चला है। वे देख चुके हैं कि ज़्यादती और स्वेच्छाचारितासे जहाँ भारतमें उनकी नीतिके प्रति गहरा असन्तोष और क्षोभ फैल रहा है, वहाँ विश्व-लोकमतने भी भारतके सम्बन्धमें उन्हें गम्भीर चेतावनी और चुनौती दी है। अनुदार-दल चाहता है कि ब्रिटेनमें युद्ध समाप्त होनेसे पहले ही आम चुनाव हों। इस समय युद्धकी स्थिति उनके अनुकूल है। चर्चिलको छोड़कर कोई भी नई सरकारकी कल्पना नहीं कर सकता। अनुदारोंके विरोधी और प्रतिस्पर्धी न सिर्फ़ विघटित ही हैं, बल्कि उनके पास कोई कार्यक्रम भी नहीं है। इस स्थितिमें भारतका ही एक ऐसा अप्रिय प्रश्न है, जिसके सम्बन्धमें कोई गोल-मटोल अस्पष्ट-सी घोषणाकर अनुदार-दली अपना राजनीतिक भविष्य सुधार सकते हैं।

फ्रान्सीसी हिन्दी-चीनका विद्रोह

पिछले दिनों जापानने यह आरोप लगाकर कि फ्रान्सीसी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी-चीन मित्र-पक्षके हवाई आक्रमणोंमें सहायक हो रहा है और उनके सम्भावित स्थल-आक्रमणका प्रतिरोध करनेमें जापान का साथ देनेको तैयार नहीं है, उसके गवर्नर-जनरलको पदच्युतकर उसका शासन अपने हाथमें ले लिया है और अन्नामको स्वतन्त्र प्रजातन्त्र घोषित कर दिया है। इसके फल-स्वरूप १०-१५ हज़ार अन्नामियों और फ्रान्सीसियोंने जापानके खिलाफ़ बग़ावत कर दी है। बक़ौल जनरल द'गालके जब हिन्दी-चीन विशी-सरकारके अधीन था, तभी स्वतन्त्र फ्रान्सीसियोंने वहाँ बग़ावतका प्रचार किया और कुछ शस्त्रास्त्र भी पहुँचाए थे। कदाचित् इसी-लिए अन्नामी और फ्रान्सीसी सैनिक बड़ी मुस्तैदीसे जापानियोंका मुक़ाबला कर रहे हैं। पर मित्र-पक्षकी ओरसे शीघ्र और पर्याप्त सहायता न पहुँचनेपर यह मुक़ाबला शायद अधिक दिन जारी न रह सके। सुननेमें आया है कि शीघ्र ही ब्रिटिश और अम-रीकन यान सहायता पहुँचानेवाले हैं। यदि यह सहायता समयपर पहुँच गई, तो न सिर्फ़ हिन्दी-चीन ही जापानके चंगुलसे बच जायगा, बल्कि प्रशान्त-युद्ध भी बहुत सुगम और छोटा हो जायगा।

महायुद्धका प्रगति

इस मासकी महायुद्धकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना [illegible] मोर्चेपर मित्र-पक्षका गम्भीर आक्रमण, राइन पार कर[illegible] बढ़ाव। इसकी तीव्रताका अनुमान इसीसे लगाया जा[illegible] कि जनरल पेटनने कई हज़ार जर्मनोंको बन्दी किया [illegible] उनके मुक़ाबलेका भार कैसरलिंगको सौंपा गया है। [illegible] आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया और ब्रेसलाऊ तथा स्टेटि[illegible] पर लाल सेना अपनी योजनाके अनुसार बढ़ रही है। [illegible] वियेनापर आखरी धावा करनेसे पूर्व रूसी कोनिंग्सबर्ग, [illegible] और बाल्टिक-प्रदेशके बचे-खुचे जर्मन-अधिकृत स्थानों[illegible] चाहते हैं। दक्षिण-पूर्व एशियामें एक ओर ब्रिटिश सेना[illegible] तेज़ीसे बढ़ रही हैं, दूसरी ओर चीनमें जापानियोंको [illegible] बलेका सामना करना पड़ रहा है। प्रशान्तके पेंने द्वीप[illegible] रीकन सफलतापूर्वक उतर गए हैं। इवोजीमापर अधि[illegible] जानेके कारण जापानी नगरोंपर होनेवाली बमबारी और [illegible] हो चली है। इसपर अमरीकनोंके अधिकारको खेदजनक [illegible] हुए जापानी प्रधान-मन्त्रीने शीघ्र ही जापानके मुख्य [illegible] अमरीकनोंके उतरनेकी आशंका प्रकट की है।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

हमारी खास चीजें

१ कैरेज टायर -----
२. साइकल टायर ---
३. साइकल ट्यूब ----
४. पैडल व ब्रेक रबर --
५. रिक्शा रबर ----
६. हास्पिटल ट्यूबिंग --
७. वाटर ट्यूबिंग -----
८. गैस ट्यूब -------
९. आइस बैग ------
१०. हॉट वाटर बॉटल ---
११. एयर कुशन ------
१२. एबोनाइट शीट व रॉड
१३. डेन्टल गम ------
१४. रबर सोल्यूशन ----
१५. रिपेयर कम्पाउंड ---
१६. वी. आई. आर. वायर
१७. हैंड ग्लोव्ह ------
१८. हार्न बल्ब -------

युद्ध के कारण कुछ वस्तुओं का उत्पादन स्थगित है।

प्रस्तुतकारक—
आर बी एस जैनरबर मिल्स

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varan[illegible] By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्थ जीवन के संकेत १

खांसी गई ... प्राण रक्षा हुई।

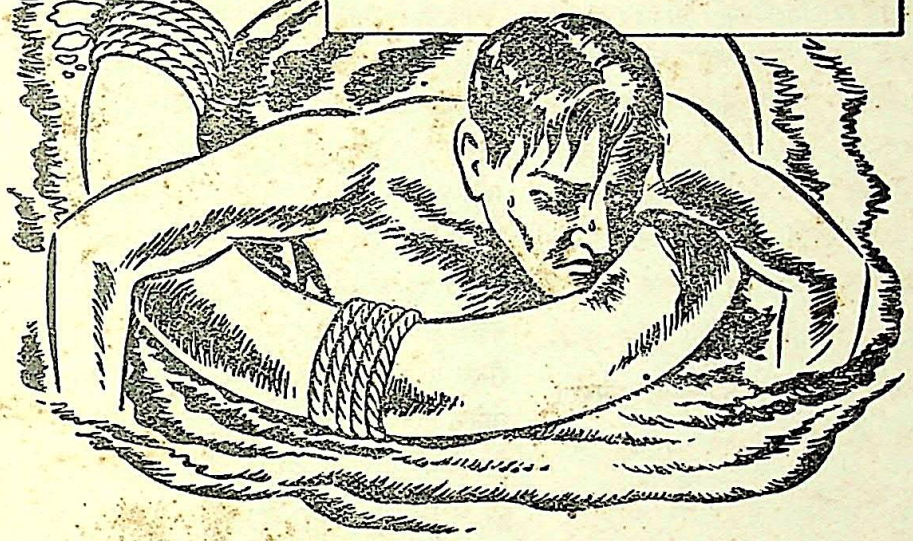

गले की सहलाहट और जुकाम के बाद उत्पन्न होने वाली खाँसी एक साधारण रोग है। परंतु यही खाँसी उपेक्षा की जाने के बाद, फेफड़े की सूजन (ब्रोंकाइटिस) श्वास और राजयक्ष्मा जैसे भयंकर रोगों का कारण होती है। अतःसमय रहते उचित चिकित्सा द्वारा इसका निराकरण प्राणरक्षा का उपाय है।

ग्लाइकोडीन टर्प वसाका डाक्टरों की राय में साधारण (चालू) खाँसी की अमोघ औषधी है। वह खांसी के मूल कारणों को नष्ट करती और उसके स्वास्थ्य दायक परमाणु शान्ति दायक और खाँसी को समूल नष्ट करने वाले हैं।

स्नायु विकार से उत्पन्न हुई किसी प्रकार की खाँसी के लिये अपने डाक्टर की सलाह लीजिये।

ग्लाइकोडिन टर्प-वसाका

शान्तिदायक तथा खांसी को नष्ट करती है।

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड, बरोडा

AL-252

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओटीन क्रीम

आपकी निद्रावस्थामें पुनः
सौन्दर्य प्रदान करती है
और

ओटीन स्नो

उस सौन्दर्यको दिनमें क़ायम
रखती है।

'मिस लीला देसाई'

भारतीय सिनेमा जगतकी सुन्दर और निपुण अभिनेत्री तथा नृत्य-कुशला चमड़ीके लिए सुखकर, शीतलता-प्रद और निर्मलताके लिए ओटीन क्रीमकी सिफ़ारिश करती हैं और लिखती हैं :—

I always use Oatine Cream before retiring. It is so pleasant and soothing and cleanses my skin from anything left by dust or make up. I recommend it to all my friends.

Jany. 28th 1939. L. Desai

Oatine CREAM for nightly massage
SNOW for daily protection

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९४५

बालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Collection

प्रत्येक वस्तु कम बरतिए

-आप ख़ुद फ़ायदा उठाइए

-देश को भी फ़ायदा पहुँचाइए

अपने देश के ग़रीबों के लिए त्याग कीजिए। आज कल माल और साधनों की बहुत कमी है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि अपने आप हर चीज़ थोड़ा कम बरते, जिससे दूसरे लोग उससे बिलकुल वंचित न रह जायँ। देश के प्रति यही कर्त्तव्य है।

ऐसे अवसरों से लाभ उठा कर आनन्द प्राप्त कीजिए। आत्म संयम के प्रत्येक कार्य से कुछ पैसा बचता है। ऐसी बचतों के लिए किफ़ायत से काम लीजिए।

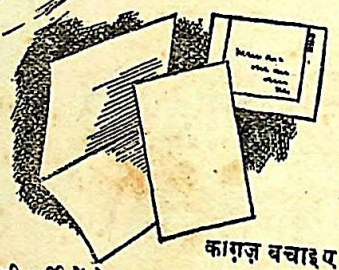

कागज़ बचाइए।
छोटी पर्चियों से काम चला लीजिए। पुराने लिफाफों को फिर से काम में लाइए।

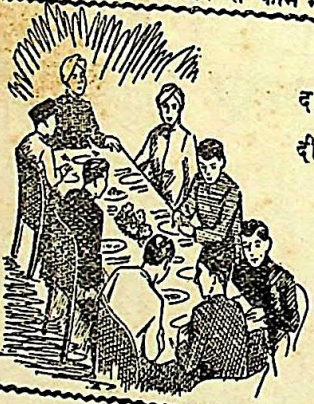

दावतें कम दीजिए।

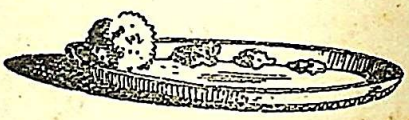

भोजन बरबाद न कीजिए-
यह देश की सेवा होगी।

टेलीफोन की ट्रंक-काल कम कीजिए।

रस्सी-डोरा बरबाद न कीजिए। ये बहुत महँगे और कम हैं।

बच्चों के पुराने खिलौने मरम्मत कर लीजिए। नये मत ख़रीदिए।

तेज़ रफ़्तार या ज़्यादा बोझ या कम हवा से टायर ख़राब न कीजिए।

कमख़र्ची से संकट दूर कीजिए

जिसके बिना काम चल जाय उसे मत ख़रीदिए

AAA 1 Hindi.

भारत-सरकार के सूचना तथा प्रचार-विभाग द्वारा प्रकाशित।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ।

सब से अधिक सुरक्षा और
तत्परता से काम करता है।

हेड आफ़िस
४७, दी माल लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी
५० करोड़ से अधिक

भारत भर में १७५ शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (मई, १९४५)

१. साँझ १८३, २. चीनका नववर्ष-त्योहार १८५, ३. याद १९०, ४. उत्सवकी महत्ता १९१, ५. मांसाहार और बौद्ध तथा जैन १९२, ६. साधनाका फल १९६, ७. कविका विद्रोह १९९, ८. गीत २०३, ९. प्रजातन्त्र और वर्ण-भेद २०४, १०. वह नारी है, वह माँ है २०६, ११. एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ : 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति २०७, १२. जागरण २०९ १३. बालक गांधी २१०, १४. नीलामघर २११, १५. आधुनिक शिक्षा और ज्योतिष २१३, १६, सामाजिक नियमोंमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता २१५, १७. उसका ताज २१८, १८. शिव कवि शुक्ल २२०, १९. उपालम्भ २२१, २०. फ्रेंकलिन डिलानो रूज़वेल्ट २२२, २१. हिन्दी-प्रकृति-मण्डल २२७, २२. केनियाके भारतीयोंकी समस्या २२८, २३. एक रोज़ २३०, २४. नवयुग-पुरुषका स्वागत २३१, २५. चिट्ठी-पत्री २३२, समालोचना २३४, २७. चयन २३७, २८.सम्पादकीय २३९।

केवल एक दिनमें

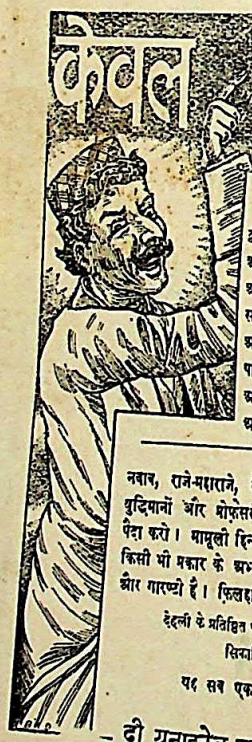

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की पट्टियों में ६½ इत्यादि बना देना, दीवार में आग लगा देना, मुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अक्षरों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्में सीखकर

—दूसरे ही दिन—

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और मोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाउन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की जोरदार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

— दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी
मुरादाबाद यू. पी०

क्यों आपने अभी तक नहीं पढ़ा ?

'श्यामू की माँ'

माताकी उदार शिक्षाका सरल, सादा और सुन्दर संस्कृतिमय एक करुण एवं मधुर कथात्मक चित्र। ३०० पृष्ठोंकी पुस्तककी कीमत सिर्फ़ १) रुपया। मँगानेका पता :—

अनाथ विद्यार्थीगृह प्रकाशन,
६८४, सदाशिव पेठ, पूना।

विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' कविता-संग्रह

२ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

३ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक

४ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित

५ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

६ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

७-८ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक

१. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

१ विभूति—

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी [illegible] सचित्र संग्रह।

२ शहरका अन्देशा—

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। [illegible] प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है।

३ पाँचधागे—

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह।

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ

विवाह का राजसी श्रेष्ठ अवसर

कीर्त्तिमान् चहुवाँन वंश की एक पराक्रमी शाखा के—भूमण्डल पर स्वकीय प्रणालीके अप्रतिम मौलिक प्रतिभामण्डित—सर्व-गुण सम्पन्नों के मुकुट, आदर्श राजन्य, दीनोंमें दीन और अमीरोंके भी अमीर—वे जो, विश्वव्यापी दारुण अशान्ति या पापों से, आर्यजाति की दुर्दशा से, हिन्दुस्थान की पराधीनता और क्षत्रियों के घोर अधःपतन से चिन्ताकुल हैं तथा इनके निवारणार्थ यथा-शक्ति संलग्न भी, उसी प्रकार अंग्रेज जो हमारे धार्मिक कार्यों में भी व्यर्थ कानून बनवाते और देशी नरेशोंको निर्बल तथा राजपूत संस्थानों को स्वत्वरहित करना चाहते हैं उस पालिसी के पूरे विरोधी होते हुवे भी जो महामान्य वर्त्तमान महायुद्धमें मित्रों की विजय के पक्ष में इसीलिये हैं कि चिर संतप्त भारत को जर्मनों व जापानियों जैसे विशेष मायावी लोग कहीं पुनः दासत्वके पाताल में नहीं पटक दे, ऐसे एक अपने को तुच्छ सेवक मानने वाले श्रीमन्मान्यवर (संस्थान के अधीश) के द्वितीय विवाह के योग्य—समुज्वल उच्च कुलके व देश-विख्यात भूपति की (वार्षिक आय कई लक्षों पर ही हो) सुशीला एवम् गुणवती राजकन्याकी आवश्यकता है।

राजकुमारीजी की वय २७-२८ होवे या किंचित् विशेष, क्योंकि श्रीमन्त की वय भी नवयुवकों से आगे है और अभी अनेक राजस्थानों में इससे अधिक वय की कुमारियें मिलती हैं अतः चर्चामें स्पष्ट ही उत्तर भेजें।

जगदम्ब की दयासे श्रीमन्महानुभाव की अ० सौ० प्रथम श्रीमतीजी महोदया सानन्द हैं और सुसन्तान भी है तथा श्रीमन्तका प्रसिद्ध संस्थान भारी नहीं है (वार्षिक आय कुछ सहस्रों पर है वह भी नहीं गिनेंगे) केवल इससे यह सम्बन्ध (आन्तरिक जो गौरवयुक्त है) कदाचित् नामी नरेन्द्रों को या मानी महिपालों को, सहसा, साधारण या अटपटा भी तुलेगा। क्योंकि इसमें उत्कृष्ट कुल के सिवाय अन्य जरूरी बातें—कुमार वर, विशाल राज्यादि प्रत्यक्ष में तो नहीं हैं। किन्तु संपूर्णतः विचारेंगे तो उधर की परिस्थिति, निर्मल भावना और उत्कर्ष की योजनाएँ विशेष श्रेणी की ज्ञात होंगी। वय के बारे में तो ऊपर की सूचना में ही यथेष्ट समाधान संयुक्त है। विवाह द्वितीय है किन्तु आगे के अनेक धीर वीर भी प्रशस्त बहुविवाह (सकारण) करते ही थे व अब भी हो रहे हैं। जो व्यभिचारी, नपुंसक लक्षणों के या भ्रष्ट हैं (पाश्चात्य कुसंसर्ग से और चालू हानिकर शिक्षा द्वारा दुःख है कि ऐसे 'श्रीमानों' और 'राजकुमारों' की वृद्धि है) उनके वास्ते तो आजकल प्रथम विवाह भी निपट फाल्तू लगते हैं। सारांश कि अन्यान्य गुण विद्यमान हैं तथा भावी ऐश्वर्य के योगों की प्रबल संभावना तो है ही। इस वास्ते किसीके भी साथ ऊपरी तुलना ठीक नहीं। द्वापरमें 'मथुरा तीन लोक से न्यारी' ही देखिये और ऐसा ही बात कुछ हमारा भी समझ लें। केवल मनुष्यका अर्थात् तेज की महिमा है, जिसके प्रभावसे यावत् सुख-सम्पदाएँ एकत्र हो जाती हैं।

यह विवाह बाह्य आगन्तुक कारणों से अपेक्षित है और नितान्त सादगी से होवेगा। परन्तु तदर्थ आगामी व्यवस्थाएँ कन्या-पक्ष की स्थिति के अनुरूप ढंगपर कराई जावेंगी, जिससे सभीका गौरव तथा सुविधा रहे। किसी भी तरफसे पारस्परिक सौहार्दकी न्यूनता की कल्पना बुद्धिमानी नहीं है। भावी सन्तानके निमित्त उत्तम राजसी प्रबन्ध किस प्रकार बन सकेंगे, ऐसे प्रश्न भी ठीक नहीं। प्रभु चराचरकी सुधि लेते हैं।

निश्चय है कि इस सम्बन्ध का महत्त्व परम उदार व साहसी स्वभाव के कोई विरले राजन्यों को ही जँचेगा और यदि उन्हें बड़े से बड़े मान लें तदपि सम्बन्ध करके ऊँचे वे ही कहावेंगे। अलबत्ता तात्कालिक तड़क-भड़क, पुष्कल प्रशंसा या आनन्दोल्लासकी वैसी बिखेर तो हागी नहीं। कमल पंकमें ही प्राप्त होंगे। ऐसे समर्थकोंको कोई वसे समर्थ ही पहचानेंगे, जो लाखों-करोड़ों में दो-चार ही हों।

जो विवेकी श्रीमन्त विशेष सयानी अवस्था की निज राजकुमारियों के विवाहार्थ चिन्तित हों, उनके समक्ष तो यह गृहागत दुर्लभ संवाद है। परन्तु मामूली दहेज के अतिरिक्त तिलक के नाम पर पर्याप्त द्रव्य, जितना वे सहज दे सकें, अवश्य देना पड़ेगा,—जो अनिवार्य शुभ कार्यों में व जाति-सेवा में ही व्यय होगा।

तथापि ध्यान रहे, जो रईस सनातन राजपूती मर्यादा से हटते जा रहे हों, जिन्हें अनार्य संस्कृति से, हीन आचरणों से, पराई भाषा, टुच्ची प्रचलित वेश-भूषा, दूषित भोजन-पान, व्यसनादि से कठोर घृणा नहीं हो, जो इस अधम युग के दास व जनता के नेता तो क्या भले पिछलग्गू तक नहीं, जिनकी कन्याएँ कष्टसहिष्णु, आज्ञापालक नहीं—स्वच्छन्द रहकर अन्तःपुरों से दूर पढ़ी हों, पुनः जो श्रीमान् दूरदर्शी भी नहीं (वे कोई महाराजेश्वर हों या अदना गृहस्थ हों) उनके वास्ते यह रिश्तेदारी फूटी कौड़ी जितनी भी उपयोगी व रत्ती भर सन्तोषप्रद होगी नहीं। वारंवार विचार लें।

जो प्रकट करना था, वह सब कर चुके। जिन्हें विश्वास व पक्की गरज़ नहीं हो, वे भी कृपाकर ढीले मनसे संशय में कदापि प्रयत्न नहीं करावें।

पंडित और वर्मा, C/o कांडरवासा संस्थान (वाया=नामली) मालव प्रान्त
Pandit & Varma, c/o Kanderwasa Estate, (Namli) C.I.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—लिखित

आंधीके पत्ते

कहानियोंका यह अनुपम संग्रह इसी महीनेमें छपकर निकला है। क्या भाषा, क्या भाव, क्या शैली और क्या सभी दृष्टियोंसे यह पुस्तक हिन्दी-कथा-साहित्यकी श्री-वृद्धि करनेमें समर्थ हुई है। मूल्य केवल १।) सवा रुपये।

सञ्चयिता

कविताओंका यह विशाल और अपूर्व संग्रह है। 'आरसी'का मूल्य १५) पन्द्रह रुपये हो जानेसे इस पुस्तककी बहुत बढ़ गई है। जो व्यक्ति 'आरसी' नहीं खरीद सकते, वे 'संचयिता' जरूर लें और कविकी विलक्षण प्रतिभाका चमत्कार मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

नई दिशा

'नई दिशा'की कविताएँ वास्तवमें एक नई दिशाकी ओर संकेत करती हैं। वह 'नई दिशा' क्या है? इसे आप स्वयं तो ज्यादा अच्छा हो। हिन्दीके लिये यह भले ही 'नई' दिशा हो—परन्तु सनातन साहित्यके लिये चिर-प्राचीन दिशा है; चंचल होकर भी कम्पासकी सुई जिधर स्थिर हो जाती है। मूल्य १॥) केवल डेढ़ रुपये।

अन्य पुस्तकें

१. आरसी (कविताएँ)···१५) २. जीवन और यौवन (किशोरोपयोगी कविताएँ)···१।) ३. कालरात्रि (कहानियाँ) ४. चन्दा मामा (बालोपयोगी कविताएँ)···१) ५. कलापी (कविताएँ)···२॥)

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

हमारी खास चीजें

१ साइकल के ट्यूब.....
२ साइकल के टायर.....
३ पैडल रबर.....
४ ब्रेक रबर.....
५ पम्प ट्यूबिंग.....
६ वाल्व ट्यूबिंग.....

यहाँ की सड़कों और आवहवा के अनुकूल उपादानों से हमारे कारखाने में ही सब से पहले बने, जो अपने टिकाऊपन के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

सभी अच्छे दूकानदारों से मिलेंगे

शत-प्रतिशत भारतीय उद्योग

प्रस्तुत कारक—
आर वी एस जैनरेटर्स लिमिटेड

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

राजपूत सम्राट पृथ्वीराज बातूनी नहीं अपितु कर्तव्यपरायण व्यक्ति थे। महाराजा जयसिंह के महल एकाकी घुस कर, वह अपनी प्रियतमा संयोगिता को उठा लाये। पृथ्वीराज के इस साहसिक कार्य ने इतिहास के पृष्ठों में कभी स्थान न पाया होता, यदि उन में असीम साहस और निर्भयता के साथ साथ अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिये अत्यन्त शक्ति शाली स्वस्थ शरीर न होता।

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो फ़ास्फेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

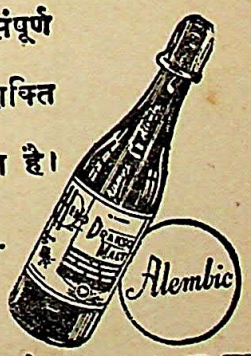

स्वास्थ्य रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बराडा

AL 351

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

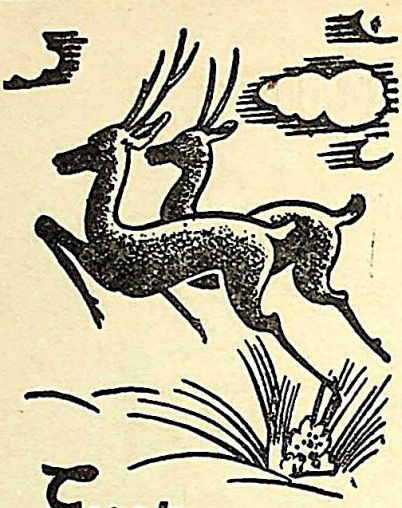

Ever Lifeful

NEUROLECITHIN

A True Nerve Tonic

शरीर और मनकी निस्तेजता दूरकर प्रफुल्लता तथा उत्साह देता है। स्नायु-दुर्बलता, स्मरणशक्तिहीनता, अग्निमन्द, अनिद्रा और श्रान्ति आदि रोगोंमें निउरोलेसिथिन बहु परीक्षित, विशेष उपकारी औषध है।

इण्डियन हेल्थ इन्स्टिट्युट

एण्ड लेबोरेटरी लि०

बेलियाघाटा मेन रोड,

कलकत्ता।

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTO

"SANKHA & PADMA

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLE

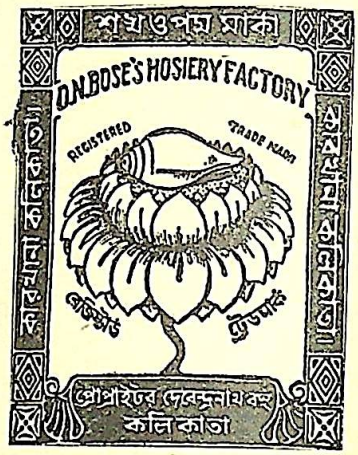

Pelican S

Colour-S

Super F

Lady Fa

Kulty S

Himani

Sho-Wel

Grey Sh

Sandow

Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BR

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calc

'Phone: B. B. 6056.

ऋतु उदय (Regd Mixtur

स्वास्थ्यको अक्षुण्ण रखत

जितने दिनोंका और जिस किसी कारणसे आशंकित ऋ

२४ घंटेमें स्राव करके यन्त्रणा दूर करता है। ऋतुबन्

जिस अवस्था व जितना भी जटिल क्यों न हो, गारण्टी

आराम किया जाता है। मूल्य ३ रु०, डाकमहसूल

निरोध स्थायी ५, अस्थायी २।

डा० बी० चक्रवर्त्ती, H. M. B.

१८६, एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता।

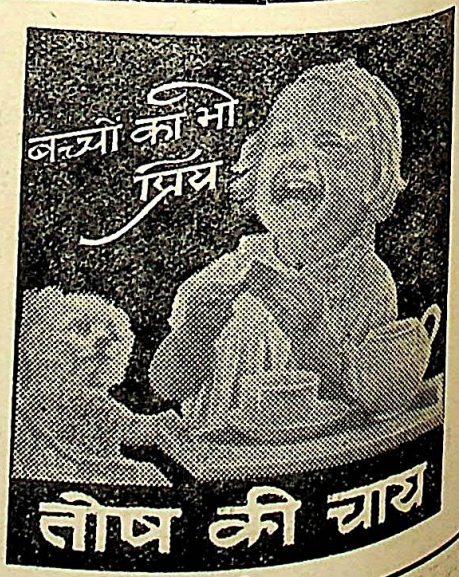

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लज्जा नारी का भूषण

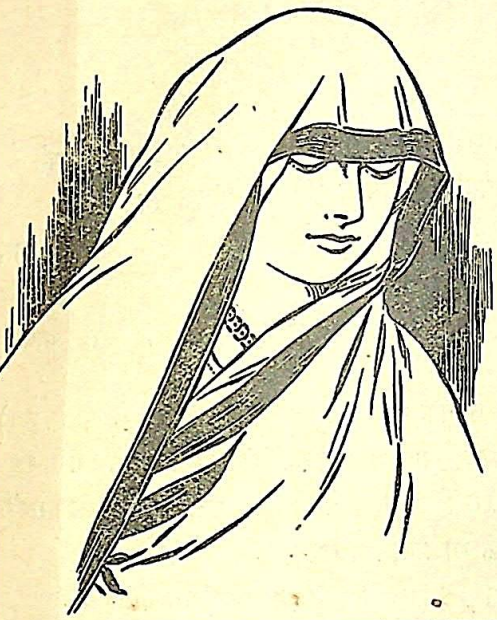

किन्तु उसका आतिशय्य प्रायः ही हानिकर होता है। महीने-दर-महीने दुर्वह यन्त्रणा नीरव रूपसे सह्य न करके रोगकी बात बताकर उसका प्रतिकार करना प्रत्येक नारीका कर्त्तव्य है।

इउटेरन

बेंगल केमिकलका भाइब्रो-अशोक

गर्भाशयके सभी प्रकारके रोगों और स्त्री-धर्मकी सब प्रकारकी विकृतियोंमें विशेष कार्यकर है। वन्ध्या और मृतवत्सा नारियोंके लिए भी यह परम हितकर है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि इतना जल्द मुझे आराम हो जायगा।

आखिरकार मुझे खाँसीकी दवा मिल ही गई, जो शीघ्र आराम करनेके साथ-साथ गुणकारी भी है।

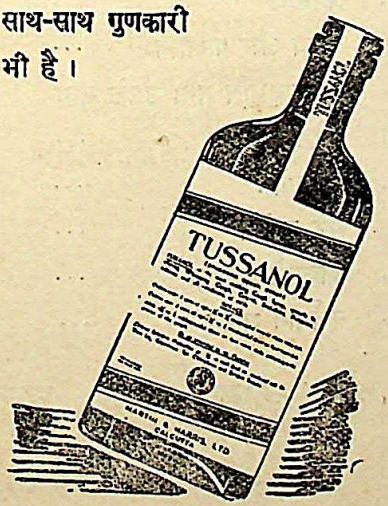

छाती और फेफड़ों-सम्बन्धी शिकायतोंको दूर और आराम करने तथा उन्हें सुरक्षित बनाये रखनेके लिए टस्सानलसे बढ़कर निर्दोष, अचूक या लाभकारी दूसरी कोई दवा नहीं।

TUSSANOL
COUGH SYRUP

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

T3

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वाधीनता के पथ पर

लेखक—गुरुदत्त

आलोच्य पुस्तक हिन्दी के उपन्यास-भण्डारमें एक नवीन और बहुमूल्य वृद्धि है। इसका प्रकाशन मार्च ४३ में हुआ है।

इसका कथानक एक बिल्कुल नवीन और महत्वपूर्ण समस्या के आधार पर निर्मित है। पिछले १५ वर्षों (करीब १९२० से १९३५) तक की राजनीतिक परिस्थिति का इसे 'ऐतिहासिक उपन्यास' कहा जा सकता है। सारा कथानक हिंसा-अहिंसा, गांधीवाद-साम्यवाद, सत्याग्रह-आतङ्कवाद, क्रान्तिकारी-कांग्रेसी आदि की विचार-धाराओं, उनके कार्यक्रम तथा उनकी सफलताओं व असफलताओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। उपन्यासकार की विशेषता यह है कि उसने किसी भी विचार-धारा या वाद का पक्ष लेकर प्रचारक बननेका प्रयत्न नहीं किया है।

उपन्यास जितना पठनीय है, उतना मनोरंजक भी। प्रारम्भ से लेकर समाप्त होने तक पाठक की जिज्ञासा और दिलचस्पी वैसी ही कायम रहती है, जैसे एक अच्छे नाटक या सिनेमा में।

—हिन्दुस्तान, नई देहली

दूसरा संस्करण * सजिल्द * मूल्य ६)

अन्य प्रकाशन

१—तपस्विनी (नाटक) 'लेडी विद ए लैम्प' का हिन्दी अनुवाद ; सजिल्द, पृ० सं० २००, मूल्य १॥)

२—जौहर (प्रबन्ध-काव्य)—रचयिता श्री सुधीन्द्र एम० ए०, साहित्यरत्न ; सजिल्द, पृ० सं० २२५, मूल्य १॥)

३—यहाँ आँसू बहाना है मना (जेल-जीवन-सम्बन्धी कहानियाँ)—श्री राधेश्याम मिश्र, मूल्य १॥)

४—अध्यापिका (कहानी-संग्रह) चुनी हुई रूसी और जर्मन कहानियोंका अनुवाद, सजिल्द, मूल्य १॥)

५—पथिक (उपन्यास) हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर अधिकारपूर्ण प्रकाश डालने वाला, रचयिता श्री गुरुदत्तजी, पृ० सं० ६००, सजिल्द, मूल्य ५)

६—विवाह और विच्छेद—लेखक श्री रामप्रताप गौंडल, एम० ए०, साहित्यरत्न, मूल्य ॥)

विद्या मन्दिर लिमिटेड

कनॉट सरकस, नई देहली

खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापार, स्वास्थ्य, वैद्यक आदि विषयक एकमात्र हिन्दी

उद्यम

हिन्दीके विभिन्न पत्रों द्वारा एवं पाठकों द्वारा प्रशंसित

विषयोंका एकमात्र अनोखा मासिक पत्र।

इसके प्रत्येक पृष्ठमें—प्रत्येक पंक्तिमें—खेती, उद्योग-धन्धे, व्यापार, विज्ञान, स्वास्थ्य, वैद्यक आदि पाठक प्रयोगात्मक, व्यावहारिक एवं सुलभ सामग्री पायेंगे।

शीघ्र ही वार्षिक मूल्य ५॥) रु० (वी० पी० से भेजकर जनवरीसे ग्राहक बननेवालोंको नमूना-अंक शङ्कर-अंक, फरवरी, मार्च, अप्रैलके अंक एक साथ और अन्य अंक भी प्रतिमास वर्ष-भर मिलते रहेंगे।

प्रतिमास १५ ता० को 'उद्यम' प्रकाशित होता है

व्हीलरके स्टालोंपर एवं न्यूज़पेपर-एजेण्टोंसे 'उद्यम'की बहुत माँग कर रही है।

आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर स्थाई ग्राहक बन जा

मैनेजर—'उद्यम' मासिक, धर्मपेठ, न

अनुपम नवीन प्रका

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी) भाग दूसरा मूल्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

१.	प्रेमयोग	...	मूल्य ०-१
२.	प्राच्य और पाश्चात्य	...	" ०-१
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग		" ०-१
४.	परिव्राजक	...	" ०-१
५.	भक्तियोग	...	" ०-१
६.	मेरे गुरुदेव	...	" ०-१
७.	शिकागो वक्तृता	...	" ०-१
८.	वर्त्तमान भारत	...	"

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपु

(सी० पी०)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूरदर्शी पिता का सुखी पुत्र

इसकी शिक्षा और सफलता का अच्छा प्रबन्ध हो गया है....

यह अभी केवल नन्हा बालक है; किन्तु इसका पिता दूरदर्शी है और वह जानता है कि पढ़ाने-लिखाने में पैसा ख़र्च होगा; इसलिए उसने बुद्धिमानी से इसकी पढ़ाई के लिए पैसा जमा करा दिया है। इस रक़म में १२ वर्ष में ब्याज से ५० प्रति शत वृद्धि हो जायगी, जिसके आधार पर बड़े होने पर विश्वविद्यालय में इसका ख़र्च भली भाँति पूरा हो जायगा और पूर्ण तथा लाभजनक शिक्षा प्राप्त करके यह विश्वास तथा आशा के साथ संसार-क्षेत्र में प्रवेश कर सकेगा।

यह अपने पिता के प्रति कितना ऋणी होगा कि उसने नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेटों में अपनी बचत की रक़म लगा कर बड़ी समझदारी से काम लिया। क्या आप अपने पुत्र के लिए ऐसा कर सकेंगे? यह आप पर निर्भर करता है।

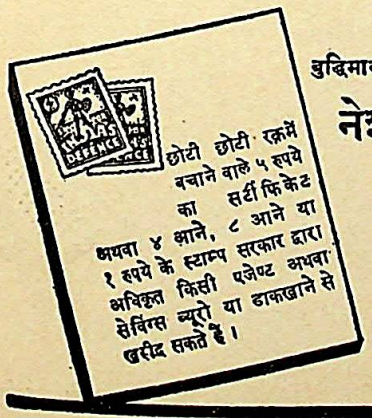

बुद्धिमान माता-पिता के दल में आप भी सम्मिलित हो जाइए और अपनी आमदनी की बचत

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट में लगाइए।

★ १२ वर्ष में १० रुपये के १९ रुपये हो जाते हैं।
★ ४½ प्रति शत साधारण ब्याज, इनकम टैक्स माफ़।
★ जमा हुए ब्याज के सहित तीन साल बाद इन्हें भुनाया जा सकता है (५ रुपये के सर्टीफिकेट को १८ महीने बाद)।

AAA 124—HINDI

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हर एक की पसन्द के अनुकूल

गोदरेज टायलेट साबुन

गोदरेज द्वारा बनाये गये तरह तरह के नहाने के साबुनों के कारण ये साबुन लोकप्रिय हो गये हैं। अपने देश के त्वचा सौन्दर्य एवं उसकी स्वच्छता की परम्परा को कायम रखने में लगभग २५ वर्षों से ये साबुन सहायक रहे हैं, क्योंकि भारत के एकदम शुद्ध एवं अत्यन्त लाभप्रद वनस्पति तेल एवं अन्य उपकरण—जो प्रकृति के अपने सौन्दर्य प्रसाधन हैं—का उपयोग ही इन्हें सम्पूर्ण बनाने में किया जाता है। एकमात्र वनस्पति तेलों से ही साबुन बनाने की कला में हम **अग्रगण्य** रहे हैं और सर्वप्रथम हमने ही अनुभव किया था कि उच्चकोटि के साबुन केवल चुनी हुई वनस्पति के तेलों से ही बनने चाहिये—पशु-चर्बी से नहीं। गोदरेज के नहाने के साबुनों ने इस देश में और विदेशों में भी यश कमाया है और दुनिया को यह बताने में ये साबुन सफल हैं कि भारतीय पूँजी से, भारतीय श्रम से और भारतीय कच्चे माल से में बने ये **स्वदेशी साबुन** सस्ते होते हुए भी गुणों में विदेशी साबुनों से बढ़-चढ़कर हैं। **अन्य कहीं भी इन अतुलनीय सुन्दर नहाने के साबुनों में से** अपने पसन्द का साबुन ले लें और एक अच्छे भारतीय की तरह आप भी अपनी त्वचा को स्वच्छ, सुरक्षित और कोमल बनाए रखें।

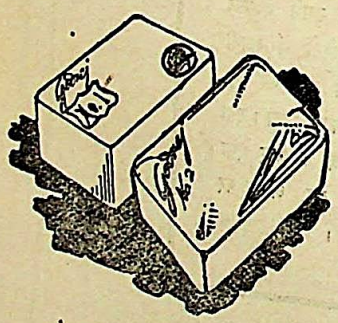

नं० १ नं० २

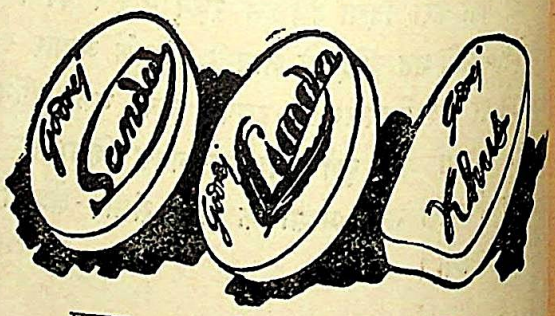

सन्दल लिमडा खस

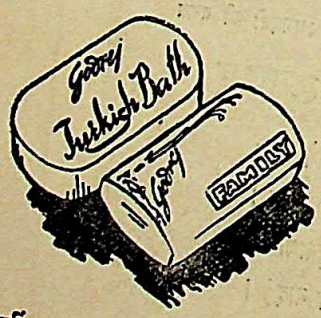

टर्किश बाथ फेमिली

'वतनी'

शेविंग 'राउण्ड' शेविंग स्टिक

गोदरेज सोप्स, लि०

कलकत्ता (१०२, क्लाइव स्ट्रीट); पटना (स्टेशन रोड)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

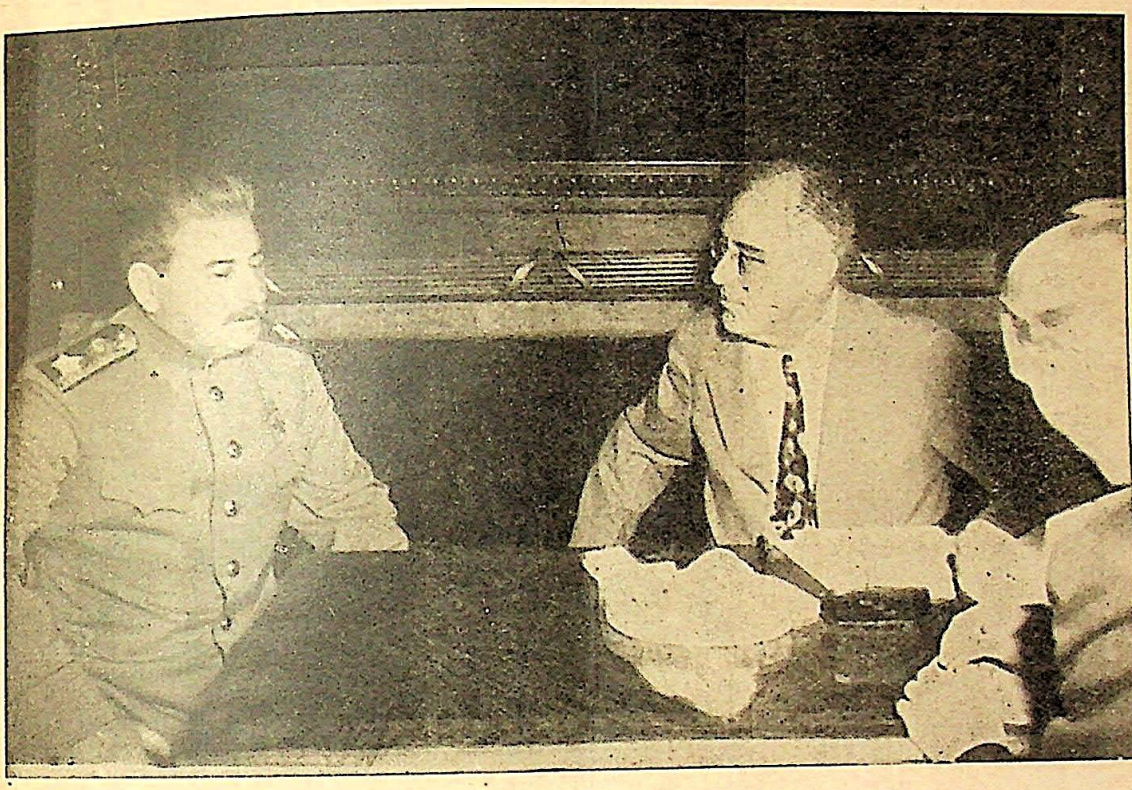

याल्ता (क्राइमिया)-कान्फ्रेन्सके समय स्व० रूज़वेल्ट मौ० स्तालिनसे मन्त्रणा कर रहे हैं।

राइन और मोसले नदियोंके संगमपर बने जर्मन नगर कोबलेंजका युद्ध-पूर्वका एक दृश्य।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक ५] कलकत्ता, मई, १९४५ [पूर्णांक २०९

साँझ

श्री रांगेय राघव

साँझ घिरती आ रही है।
बादलोंपर से उतरकर,
धुन्ध-छाया भूमिपर आ
लोटती-सी छा रही है;
दूर-दूर थके-थके-से
चूर क्षितिजोंपर तड़पती
एक नारंगी विभासे
क्षणिक मस्ती जा रही है;
घुट रहा धूँआ कसैला,
तीर-सी दुर्गन्ध लगती,
तबेलोंके सामने वह
घास जलती, घोंटती-सी
वायुको सुबका रही है;
हिनहिनाते अश्व भीतर
रौंदते हैं भूमि रह-रह,
और वे साईस बैठे
हाँकते हैं ज़िन्दीको,
सिर्फ़ भाड़ेके लिए ज्यों
एक गाड़ी जा रही है।
मैं यहाँ अब श्रान्त बैठा
सोचता हूँ, किन्तु मेरा
सोच भी घुटने लगा है,
मान भी कटने लगा है,
यह सदा-सी साँझ, जिसमें
एक ऊमस सड़ रही है,
मौन हो बल खा रही है।
कोलियोंकी एक बस्ती
जो बसी है पासमें ही,
है जहाँ जीवन घिनौना
क्योंकि वे धनहीन गन्दे,
एक आत्माको बनाने
ज्यों खड़ा मन्दिर अकेला;
और झालर-ध्वनि झकोरे
खा लहरती आ रही है।
एक विधवा, जो जवानी
की विषैली नागीनीको
पालती, नतशिर,कटी-सी,
गुनगुनाती, है जलाती
एक दिवला और तुलसी
थाँवलेपर धर, डरी-सी
जोड़ती है हाथ, वह भी
अब पराजयको जलाकर
जा चुकी-सी, जा रही है।
मैं नहीं हूँ सान्ध्य दीपक,
मैं नहीं हूँ यह धुँआ भी,
मैं न नभका सान्ध्य तारा,
मैं नहीं कोई अँधेरा;
एक प्रहरी ही नहीं,
निर्माणकारी शक्ति हूँ मैं,
जो बदलती भी कभी
नतशिर न होती, चुप न होती,
एक ये ही तो चुनौती
श्वास बन मँडरा रही है।
उड़ रहे हैं विहग नभमें,
उड़ रहे रणयान नभमें,
उड़ रहा धूँआ गगनमें,
उड़ रहा नभमें अँधेरा;
रेंगते प्राणी यहाँपर,
घुट रहा मानव यहाँपर,
रो रहा जीवन यहाँपर,
अहंका अमरत्व कुण्ठित
प्राण खाली लग रहे हैं,
छटपटाता क्रोध, और
विषादिनी अकुला रही है।
वह पुराना घर किसीका,
जो कि छज्जोंको बढ़ाकर
रातसे कुछ माँगता है
और दिनमें धुन्ध-काई
से दबा-सा झाँकता है,
ज्योंकि लड़की-सी वधू
उस मलिन घूँघटमें छिपी-सी
देखती है राह पतिकी;
यादगारों-सी जवानी
हाथ फैलाकर न पाती—
फल कि जो ऊँचे लगे हैं,
दृष्टि उसपर जा रही है।
एक क्षण वह लौ हिली है
प्राणका अवसाद पोकर,
वह नहीं सौ बार मरती,
सौ दफ़ा चुपचाप जीकर;
एक जीवन, एक ही है
मृत्यु भी, उसकी धुँए-सी
ज़िन्दगी बेचैनियोंकी
एक जलती-सी निशानी,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुझ गई तो बुझ गई
फिर आग भी हो जाय पानी ;
नागपाशोंमें न उसको
बाँध सकती मित्रता है,
वह छले ही जा रही है ।
दूर अब वे जल उठी हैं
महानगरीकी धधकती
बत्तियाँ, कोलाहलोंका
तैरता बेड़ा धुँधलके
पर तनिक-सा डगमगाता,
मत्त नारीको कहीं ज्यों
डंक बिच्छू मार खोया
और पीड़ासे बिलखती
नग्न होती, ढाँक लेती,
हाय करती, वेदनासे
निलज घर-घर माँगती-सी
फिर रही है, भागती है,
निर्निमेष विषाक्त-सी
उन्मादिनी कुम्हला रही है ।
एक डंकेपर पड़ी है
चोट घन-घन गूँजती-सी,
हिल उठीं दीवार सारी,
हिल उठी सारी अँधेरी ।
एक मटमैली बुझी
दूकानमें बूढ़ा गड़रिया
कह रहा है वह कहानी—
जब कि इस संसारमें
ताले न थे, कुंजी नहीं थी,
खेतमें चूहे नहीं थे,
हाटमें सोना नहीं था ;
किन्तु छोड़ो वह नहीं है,
आज तो दुनिया घिरी है,
तुम भुलाकर भी न भूले,
शृंखला कस जा रही है ।
एक सूनापन कि अब
चुपचाप अपनी साँस रोको,
कुचर गलियाँ कह रही हैं,
वायु अपनी साँस रोको ;
ज़िन्दगीका केन्द्र मन है,
किन्तु मन बन्दी हुआ है,
क्योंकि तन भूखा पड़ा है,
प्रेतको दे पिण्ड ज्यों
जीवित तड़पता मर रहा है ;
मरण है अन्तिम पिपासा
या कि जीवनकी पहेली,
सिन्धु अंजलिमें उठाने
जो चला, वह हाथमें
घोंघा लिए दिखला रहा है ;
एक यह निर्धूम तृष्णा
विवश हा-हा खा रही है ।
दफ़्तरोंसे लौटकर
आए हुए उन बाबुओंके
रोशनी अब जल रही है,
ज़िन्दगीकी कशमकशमें
एक छोटी-सी गृहस्थी
ही जिन्हें सारी परिधि है ;
और है अपमान ही
साधन हुआ जब पंथका औ'
अब वही सत्ता निभाने
की अकेली केंचुली है ;
तब वही अब शक्ति सारी,
दालमें मिल जाये थोड़ा-
सा नमक अरमान है यह,
ज़िन्दगीमें तो नहीं है,
सात पुश्तोंने न पाया ;
फिर ग़ुलामी ही चबा
आज़ादियोंको खा रही है ।
साँझ, पर है याद आया,
साँझ, पर है भूल मेरी,
जागरण औ' नींदकी
करवट यही है साँझ मेरी
एक वह चुम्बन तियाका,
बाल-शिशुकी लोरियों-सी,
या नई दुनिया बसाने
की अधूरी कल्पना-सी,
या कि मरघटकी सलज
रंगीनियोंकी छाय सुखदा
यन्त्रणा-सी या व्यथा-सी,
दुःख-सुखकी आत्म-छलना,
तिमिरकी सूखी पलकमें
जलनकी-सी मिचमिचाती,
खुरदरी-सी घासपर ज्यों
रेंगता हो साँप कोई
स्वयं फन फटकारता-सा,
जो अभी अँगड़ा रही है।
और मिट्टीके घरौंदों-
सी बनी वह झोंपड़ी जो,
अब वहाँ लौटे हुए
दिनके भयानक बोझ ढोए
कुछ थके मज़दूर हुक्के गुड़गुड़ाते
और उनके युवक कुछ-कुछ गा रहे
एक घरके सामने कुछ
औरतें घूँघट निकाले
गालियाँ भी गा रही हैं ;
एक प्यालेका न विष
उतरा कि फिरसे भर लिया है,
एक रोना ही जहाँपर
बन गया है हास जैसे
महानदके रोधका उन्मत्त
हाहाकार ही गतिका विषम ज्व
और छलना बन गया है,
मैल ही सारी चिरन्तन
भावनाकी अमर छाया,
पापिनी मुस्का रही है ।
गगनकी निर्द्वन्द्वता
जगकी अँधेरी बन गई है,
भूँकते कुत्ते, लटकती
जीभ थर-थर काँपती ज्यों
रातके चिथड़े न नभको
ढाँक पाते, और चेचक
के पके वे दाग़-से तारे
लगे हैं झलमलाने,
क्षितिज सारे गर्क हैं ज्यों
मौतसे लड़ती हुई वह
ज़िन्दगी अपना झुका सिर
डूब जाती, और होती मौन,
दहशतसे भरी छाती भयद
निस्तब्धता है बाल नोंचे,
कुछ न कर पाते यथा जो
हैं खड़े वैसे यहाँ घर
देखते निवीर्य्य काले,
और मनका भीतरी भी

(शेष १८५ पृष्ठपर)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

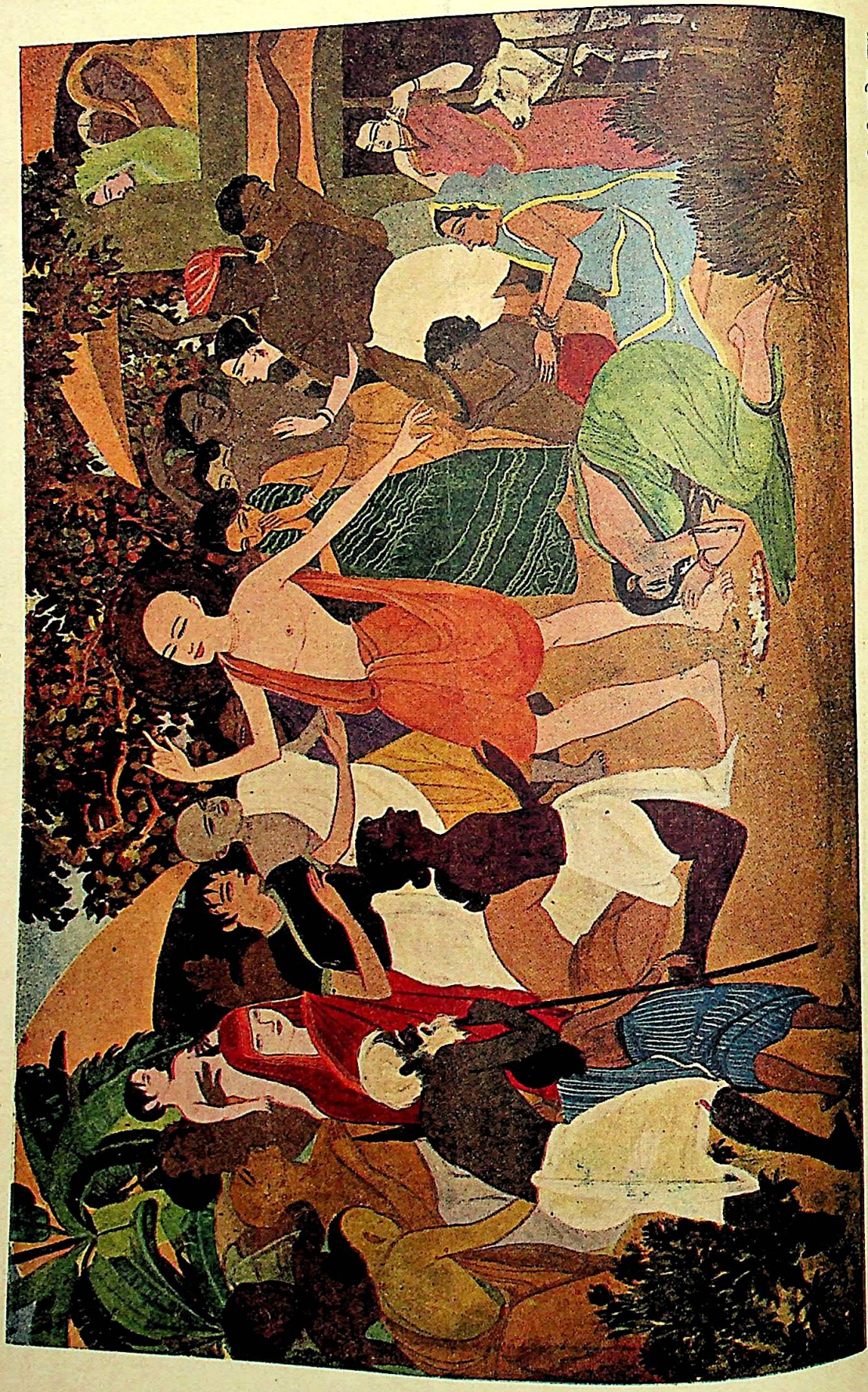

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक ५] कलकत्ता, मई, १९४५ [पूर्णांक २०९

साँझ

श्री रांगेय राघव

साँझ घिरती आ रही है।
बादलोंपर से उतरकर,
धुन्ध-छाया भूमिपर आ
लोटती-सी छा रही है;
दूर-दूर थके-थके-से
चूर क्षितिजोंपर तड़पती
एक नारंगी विभासे
क्षणिक मस्ती जा रही है;
घुट रहा धूँआ कसैला,
तीर-सी दुर्गन्ध लगती,
तबेलोंके सामने वह
घास जलती, घोंटती-सी
वायुको सुवका रही है;
हिनहिनाते अश्व भीतर
रौंदते हैं भूमि रह-रह,
और वे साईस बैठे
हाँकते हैं ज़िन्दीको,
सिर्फ़ भाड़ेके लिए ज्यों
एक गाड़ी जा रही है।
मैं यहाँ अब श्रान्त बैठा
सोचता हूँ, किन्तु मेरा
सोच भी घुटने लगा है,
मान भी कटने लगा है,
यह सदा-सी साँझ, जिसमें
एक ऊमस सड़ रही है,
मौन हो बल खा रही है।
कोलियोंकी एक बस्ती
जो बसी है पासमें ही,
है जहाँ जीवन घिनौना
क्योंकि वे धनहीन गन्दे,
एक आत्माको बनाने
ज्यों खड़ा मन्दिर अकेला;
और झालर-ध्वनि झकोरे
खा लहरती आ रही है।
एक विधवा, जो जवानी
की विषैली नागीनीको
पालती, नतशिर,कटी-सी,
गुनगुनाती, है जलाती
एक दिवला और तुलसी
थाँवलेपर धर, डरी-सी
जोड़ती है हाथ, वह भी
अब पराजयको जलाकर
जा चुकी-सी, जा रही है।
मैं नहीं हूँ सान्ध्य दीपक,
मैं नहीं हूँ यह धुँआ भी,
मैं न नभका सान्ध्य तारा,
मैं नहीं कोई अँधेरा;
एक प्रहरी ही नहीं,
निर्माणकारी शक्ति हूँ मैं,
जो बदलती भी कभी
नतशिर न होती, चुप न होती,
एक ये ही तो चुनौती
श्वास बन मँडरा रही है।
उड़ रहे हैं विहग नभमें,
उड़ रहे रणयान नभमें,
उड़ रहा धूँआ गगनमें,
उड़ रहा नभमें अँधेरा;
रेंगते प्राणी यहाँपर,
घुट रहा मानव यहाँपर,
रो रहा जीवन यहाँपर,
अहंका अमरत्व कुण्ठित
प्राण खाली लग रहे हैं,
छटपटाता क्रोध, और
विषादिनी अकुला रही है।
वह पुराना घर किसीका,
जो कि छज्जोंको बढ़ाकर
रातसे कुछ माँगता है
और दिनमें धुन्ध-काईं
से दबा-सा झाँकता है,
ज्योंकि लड़की-सी वधू
उस मलिन घूँघटमें छिपी-सी
देखती है राह पतिकी;
यादगारों-सी जवानी
हाथ फैलाकर न पाती—
फल कि जो ऊँचे लगे हैं,
दृष्टि उसपर जा रही है।
एक क्षण वह लौ हिली है
प्राणका अवसाद पीकर,
वह नहीं सौ बार मरती,
सौ दफ़ा चुपचाप जीकर;
एक जीवन, एक ही है
मृत्यु भी, उसकी धुँए-सी
ज़िन्दगी बेचैनियोंकी
एक जलती-सी निशानी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुझ गई तो बुझ गई
फिर आग भी हो जाय पानी ;
नागपाशोंमें न उसको
बाँध सकती मित्रता है,
वह छले ही जा रही है ।
दूर अब वे जल उठी हैं
महानगरीकी धधकती
बत्तियाँ, कोलाहलोंका
तैरता बेड़ा धुँधलके
पर तनिक-सा डगमगाता,
मत्त नारीको कहीं ज्यों
डंक बिच्छू मार खोया
और पीड़ासे बिलखती
नम्र होती, ढाँक लेती,
हाय करती, वेदनासे
निलज्ज घर-घर माँगती-सो
फिर रही है, भागती है,
निर्निमेष विषाक्त-सी
उन्मादिनी कुम्हला रही है ।
एक डंकेपर पड़ी है
चोट घन-घन गूँजती-सी,
हिल उठीं दीवार सारी,
हिल उठी सारी अँधेरी ।
एक मटमैली बुझी
दूकानमें बूढ़ा गड़रिया
कह रहा है वह कहानी—
जब कि इस संसारमें
ताले न थे, कुंजी नहीं थी,
खेतमें चूहे नहीं थे,
हाटमें सोना नहीं था ;
किन्तु छोड़ो वह नहीं है,
आज तो दुनिया घिरी है,
तुम भुलाकर भी न भूले,
शृंखला कस जा रही है ।
एक सूनापन कि अब
चुपचाप अपनी साँस रोको,
कुचर गलियाँ कह रही हैं,
वायु अपनी साँस रोको ;
ज़िन्दगीका केन्द्र मन है,
किन्तु मन बन्दी हुआ है,
क्योंकि तन भूखा पड़ा है,
प्रेतको दे पिण्ड ज्यों
जीवित तड़पता मर रहा है ;
मरण है अन्तिम पिपासा
या कि जीवनकी पहेली,
सिन्धु अंजलिमें उठाने
जो चला, वह हाथमें
घोंघा लिए दिखला रहा है ;
एक यह निर्धूम तृष्णा
विवश हा-हा खा रही है ।
दफ़्तरोंसे लौटकर
आए हुए उन बाबुओंके
रोशनी अब जल रही है,
ज़िन्दगीकी कशमकशमें
एक छोटी-सी गृहस्थी
ही जिन्हें सारी परिधि है ;
और है अपमान ही
साधन हुआ जब पंथका औ'
अब वही सत्ता निभाने
की अकेली केंचुली है ;
तब वही अब शक्ति सारी,
दालमें मिल जाये थोड़ा-
सा नमक अरमान है यह,
ज़िन्दगीमें तो नहीं है,
सात पुश्तोंने न पाया ;
फिर ग़ुलामी ही चबा
आज़ादियोंको खा रही है ।
साँझ, पर है याद आया,
साँझ, पर है भूल मेरी,
जागरण औ' नींदकी
करवट यही है साँझ मेरी
एक वह चुम्बन तियाका,
बाल-शिशुकी लोरियों-सी,
या नई दुनिया बसाने
की अधूरी कल्पना-सी,
या कि मरघटकी सलज
रंगीनियोंकी छाय सुखदा
यन्त्रणा-सी या व्यथा-सी,
दुःख-सुखकी आत्म-छलना,
तिमिरकी सूखी पलकमें
जलनकी-सी मिचमिचाती,
खरदरी-सी आसपर ज्यों
रेंगता हो साँप कोई
स्वयं फन फटकारता-सा,
जो अभी अँगड़ा रही है।
और मिट्टीके घरौंदों-
सी बनी वह झोंपड़ी जो,
अब वहाँ लौटे हुए
दिनके भयानक बोझ ढोए
कुछ थके मज़दूर हुक्के गुड़गुड़ा
और उनके युवक कुछ-कुछ गा र
एक घरके सामने कुछ
औरतें घूँघट निकाले
गालियाँ भी गा रही हैं ;
एक प्यालेका न विष
उतरा कि फिरसे भर लिया है
एक रोना ही जहाँपर
बन गया है हास जैसे
महानदके रोधका उन्मत्त
हाहाकार ही गतिका विषम ज
और छलना बन गया है,
मैल ही सारी चिरन्तन
भावनाकी अमर छाया,
पापिनी मुस्का रही है ।
गगनकी निर्द्वन्द्वता
जगकी अँधेरी बन गई है,
भूँकते कुत्ते, लटकती
जीभ थर-थर काँपती ज्यों
रातके चिथड़े न नभको
ढाँक पाते, और चेचक
के पके वे दाग़-से तारे
लगे हैं झलमलाने,
क्षितिज सारे ग़र्क़ हैं ज्यों
मौतसे लड़ती हुई वह
ज़िन्दगी अपना झुका सिर
डूब जाती, और होती मौत,
दहशतसे भरी छाती भयद
निस्तब्धता है बाल नोंचे,
कुछ न कर पाते यथा जो
हैं खड़े वैसे यहाँ घर
देखते निवीर्य्य काले,
और मनका भीतरी भी

(शेष १८५ पृष्ठपर)

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनका नववर्ष-त्योहार

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह, राष्ट्रीय प्राच्यविद्या-अध्ययन कालेज, छेङ्कुङ् (कुमिङ्)

चीन उत्सव और त्योहार-प्रधान देश है। यहाँके लोग नाना प्रकारके उत्सव और त्योहार मनाते हैं। यहाँके त्योहारोंको यद्यपि धार्मिक रूप प्राप्त है ; पर धर्मकी अपेक्षा इनमें मौसमी और सामाजिक पुट ही अधिक है। चीनी त्योहारोंकी जानकारी रखनेवाले डा० युन् ख्वाइ थौने लिखा है कि चीनी चान्द्र पंचांगमें कुल २४ छोटे और ९ बड़े त्योहारोंका उल्लेख रहता है। ये चौबीस छोटे-छोटे त्योहार वर्ष-भरमें क्रमशः हर पन्द्रह दिनपर (सौर गणनाके आधारपर) मनाए जाते हैं, और ये कृषकोंके बड़े कामके हैं ; क्योंकि वे इनका अनुसरण अपने कृषि-कर्ममें करते हैं। पर नौ बड़े त्योहार चान्द्र गणनाके अनुसार होते हैं, और ये धार्मिक तथा सामाजिक ढंगके हैं। इन नौ बड़े त्योहारोंके नाम तथा इनको मनानेकी तारीखें यों हैं :

युआन् तान्—चीनी नववर्ष-दिन (चीनी वर्षके प्रथम मास का प्रथम दिन), **तङ् चिए**—दीप त्योहार (चीनी वर्षके प्रथम मासका पन्द्रहवाँ दिन), **चिङ् मिङ्**—पूर्ण प्रकाश-त्योहार (चीनी वर्षके दूसरे मासका लगभग सोलहवाँ दिन), **तुआन् थाङ्**—अजगर नाव-त्योहार (चीनी वर्षके पाँचवें मासका पाँचवाँ दिन), **चुङ् युआन्**—सर्वात्मा-दिन (चीनी वर्षके सातवें मासका पन्द्रहवाँ दिन), **चुङ् चिउ**—मध्य-पतझड़-त्योहार (चीनी वर्षके आठवें मासका पन्द्रहवाँ दिन), **चुङ् याङ्**—युग्म नौ त्योहार (चीनी वर्षके नवें मासका नवाँ दिन), **सुङ् हान्**—पूर्वजोंके पास जड़ावर भेजनेका दिन (चीनी वर्षके दसवें मासका पहला दिन) और **ला पा**—आठवें दिनकी खिचड़ी (चीनी वर्षके बारहवें मासका आठवाँ दिन)।

इन नौ त्योहारोंमें से पहला, चौथा और छठा सबसे प्रसिद्ध हैं और सबसे अधिक धूमधामसे मनाए जाते हैं। डा० युन् ख्वाइ थौने लिखा है कि ये तीन त्योहार—तुआन् याङ्, चुङ् चिउ और युआन् तान्—क्रमशः विश्व-रचनाके सम्बन्धमें चीनकी प्राचीन धारणा याङ् और यिङ् सिद्धान्तके पूर्व-पक्ष, उत्तर-पक्ष और दोनों पक्षोंके संयोगके द्योतक हैं। उन्होंने इन तीन त्योहारों के साथ याङ्-यिङ् सिद्धान्तके मेलको निम्न ढंगसे बताया है। अति प्राचीन कालसे ही चीनी लोग यह मानते आ रहे हैं कि इस विश्वका आधार द्वैत सिद्धान्त (याङ् और यिङ्) हैं। याङ् पुरुषवाचक है और यिङ् स्त्रीवाचक। संसारकी हर चीज़ इसी सिद्धान्तपर स्थिर है। स्वर्ग याङ् है और पृथ्वी यिङ्, सूर्य याङ् और चन्द्रमा यिङ्, प्रकाश याङ् और अन्धकार यिङ्, पुरुष याङ् और स्त्री यिङ्, और इसी प्रकार संसारकी हर चीज़। इतना ही नहीं, हर आदमीके शरीरके कुछ भाग याङ् हैं और कुछ भाग यिङ् तथा मनुष्यके विचारों और स्वभावोंमें भी कुछ याङ् हैं और कुछ यिङ्। जब तक इन दो सिद्धान्तोंमें मेल है, संसार और संसारकी हर चीज़ व्यवस्थित है ; एकका अधिक या कम होना गड़बड़ी पैदा कर देता है। इस प्रकार ये सिद्धान्त वर्ष, ऋतु, मास आदिमें भी अभिनिविष्ट हैं। वर्षका पहला आधा भाग याङ् है और पिछला आधा भाग यिङ्। प्रथम आधे भागमें वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ पड़ती हैं, इसलिए ये याङ् हैं और पिछले आधे भागकी दो ऋतुएँ—पतझड़ और जाड़ा—यिङ्। वर्षके पहले आधे भागका प्रधान त्योहार तुआन् याङ् (अजगर नाव-त्योहार) याङ्का बोधक है और पिछले आधे भागका त्योहार चुङ् चिउ (मध्य-पतझड़-त्योहार) यिङ्का। तुआन् चाङ् त्योहारमें सूर्यकी पूजा होनी चाहिए ; पर इन दिनों जिस ढंगसे यह त्योहार मनाया जाता है, उसमें सूर्यकी पूजा देखनेमें नहीं आती। फिर भी चुङ् चिउ त्योहारमें अब तक चन्द्रमाकी पूजाकी प्रधानता है। जब वर्ष समाप्त होनेको आता है, तो याङ् और यिङ् एक-दूसरेसे मिलते हैं, और इस मेलसे ही नववर्षकी पैदाइश होती है। इसीलिए नववर्ष-त्योहार मनाया जाता है।

उपर्युक्त तीन प्रधान त्योहारोंमें से नववर्ष-त्योहार सबसे अधिक धूमधामसे मनाया जाता है। अजगर नाव-त्योहार और मध्य-पतझड़-त्योहार तो एक-एक सिद्धान्तके बोधक हैं ; पर नव-वर्षमें तो दोनोंका संयोग होता है। और जब दो बिछुड़े-हुओंमें संयोग हो, तो उस समयसे अधिक खुशियाँ और कब मनाई जा

कोण है सुनसान, सन्-सन्
शून्यता-सी गा रही है।
जर्जरोंकी धधकका
विश्वास यौवन-शक्ति मेरी,
अमरताके ध्वंसपर
जीवन खड़ा ललकारता है ;
गगन-भूका मिट चला है
अब तिमिरमें भेद सारा,

जल रहा है दीप, नभमें
अगन दीपक जल रहे हैं ;
हो रहा है मूक विनिमय
अलस तन्द्राका अभागिन
अतृप्ता अभिलाषिणी
मन वासनासे शीश नतकर,
क्षुधित है मन आज जैसे—
राहका प्रत्येक मानव

आह हा-हा खा रहा है
और करता है निरत
संघर्ष ऊँचा सिर उठाए ;
प्रबल जन-बल-सी तृषाएँ
गूँज-सी तिमिरा गगनसे
ढाँकतीं इस वेदनाको
अंजना बरसा रही हैं।
साँझ घिरती आ रही है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकती हैं ? पर और भी दूसरे कई कारण हैं, जिनसे यह त्योहार चीनका सबसे प्रसिद्ध, सबसे बड़ा और सबसे अधिक धूमधामसे मनाया जानेवाला त्योहार माना जाता है। कहा जाता है कि संसार में यह सबसे लम्बे समय तक मनाए जानेवाला त्योहार है। इस त्योहारमें धार्मिक पूजा-पाठ भी होता है, सामाजिक नियमोंका भी पालन होता है और लोग दिल खोलकर खुशियाँ भी मनाते हैं।

कोई त्योहार उसी समय आनन्दसे मनाया जा सकता है, जब मौसम न अधिक गरम हो और न अधिक सर्द ही। साथ ही त्योहार मनानेवाले लोग उस समय विशेष कार्यव्यस्त भी न हों और न उन्हें त्योहार मनानेके समय किसी बातकी चिन्ता ही हो। अगर मौसम सुहावना रहता है और लोग बे-फिक्र होते हैं, तो स्वभावतः उनकी प्रवृत्ति आनन्द मनानेकी ओर हो जाती है। चीनका नववर्ष-त्योहार ऐसे मौसममें पड़ता है, जब 'दिन कर'जी की पंक्ति 'मैं शिशिर शीर्णा चली अब जाग रे मधुमास-वाली'की सत्यताको लोग अनुभव करने लगते हैं। उस कालमें जाड़ा उतारपर रहता है और वसन्तकी मादकता फैलने लगती है। चीनका वर्ष भारतके चान्द्र पंचांगके अनुसार फागुन शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ होता है। फागुनके सुहावने महीनेमें भारतमें हम लोग भी तो दिल खोलकर होलीकी खुशियाँ मनाते हैं। इतनी बातें तो हुईं मौसमके सम्बन्धमें। इस त्योहारके अवसरपर प्रायः सभी वर्गों—कृषक, व्यापारी, विद्वत्-समाज, सरकारी अधिकारी और कर्मचारी—के लोगोंको अवकाश रहता है। चीन कृषि-प्रधान देश है, और यहाँके ७० फी-सदी लोग किसान हैं। चीनका अधिकांश भू-भाग समशीतोष्ण-कटिबन्धमें पड़ता है, जहाँ जाड़ेमें अधिकतर फ़सलें नहीं उग सकती हैं। कृषक लोग मार्चसे खेती प्रारम्भ करते हैं, इसलिए जनवरी और फ़रवरी मासमें इन्हें त्योहार मनानेको पूरा अवकाश रहता है। कृषि-प्रधान देशोंमें वाणिज्य-व्यापार भी कृषिके चढ़ाव-उतारका ही अनुसरण करते हैं, इसलिए कृषि-कर्मके बन्द रहनेके कारण वाणिज्य-व्यापारमें भी शिथिलता आ जाती है और व्यापारीवर्गके पास भी त्योहार मनानेके लिए अवकाश रहता है। साथ-साथ प्राचीन कालसे यह प्रथा चली आ रही है कि नववर्षके अवसरपर व्यापारी लोग साल-भरका आय-व्यय, नफ़ा-नुक़सान ठीककर अपनी-अपनी रोकड़ बन्द करते हैं और कुछ दिनोंके लिए अपना व्यवसाय भी बन्दकर नववर्षके उपलक्षमें खुशियाँ मनाते हैं।[1] प्रजातन्त्रकी स्थापनाके पहले जब चीनमें प्राचीन ढंगके स्कूल और कालेज थे, तो इन स्कूल-कालेजोंमें पाठनके कार्य वर्षके बारहवें महीनेके मध्यमें बन्द हो जाते थे, शिक्षकों तथा विद्यार्थियोंको एक मासकी छुट्टी मिलती थी, सब लोग अपने-अपने घर जाकर त्योहार मना सकें। सरकारकी ओरसे जो राजकीय परीक्षाएँ ली जाती थीं, वे भी नववर्षके पहले समाप्त हो जाती थीं कि परीक्षार्थी नववर्षके तक घर लौट जाते थे और अपने परिवारवालोंके साथ उत्सव मनाते थे। आज जब देशमें पश्चिमी ढंगके स्कूल कालेज चालू हैं, फिर भी चीनी नववर्षके अवसरपर सभी शिक्षालय जाड़ेकी छुट्टीके नामसे लगभग एक महीनेके बन्द होते हैं। इस प्रकार विद्वत्वर्गको भी इस अवसरपर काश रहता है। जब चीनमें राजतन्त्र था, तो सभी सरकारी कार्य साल-भर तक चलते रहते थे। रविवार तक त्योहारोंके अवसरपर भी सरकारी दफ़्तर बन्द नहीं होते थे भी इस नववर्षके अवसरपर सब सरकारी कर्मचारियोंको की छुट्टी मिलती थी। प्रथा यह भी थी कि बारहवें माह वीं तारीखको हर सरकारी विभागमें एक उत्सव होता था, 'मुद्रा-बन्द'-उत्सव कहा जाता था। इस उत्सवके अवसर सरकारी विभागको सब मुद्राएँ उस विभागकी प्रधान लाई जाती थीं और एक बक्समें रखी जाती थीं। विभागके सभी सरकारी कर्मचारी घुटने टेक और सिर लगा (प्राचीन कालसे चीनमें देवी-देवताओं, पूर्वजों, तथा महापुरुषोंको घुटने टेक तथा सिर पृथ्वीपर लगा करनेकी प्रथा चली आ रही है। इसे चीनी भाषामें खो-तौ हैं।) मुद्राओंको प्रणाम करते थे। उसके बाद बक्सपर लम्बाई-चौड़ाई दोनों ओरसे दो सरकारी काग़ज़ चिपका जाते थे। यही था मुद्रा-बन्द-उत्सव। अगर अति आवश्यक नहीं आ पड़ता था, तो एक महीने तक सब प्रकारके सरकारी काम बन्द रहते थे। एक महीने बाद सरकारी मुद्राएँ सील सरकारी तौरपर तोड़ी जाती थी और पुनः सरकारी कार्य नियमित रूपसे चलने लगता था। प्रजातन्त्रकी स्थापनाके बाद यह मुद्रा-बन्द-उत्सव नहीं होता है और न इस अवसरपर सरकारी ढंगसे छुट्टी ही मिलती है। फिर भी प्रायः सभी सरकारी कर्मचारी ग़ैर-सरकारी छुट्टी मनाते हैं और इसमें कोई रोक-टोक भी नहीं है। इस अवसरपर मौसम भी अच्छा रहता है, लोगोंको अवकाश भी काफ़ी मिलता है और उन्हें किसी प्रकारकी चिन्ता भी नहीं रहती है, इसलिए सम्पूर्ण देशके सभी लोग नववर्ष-त्योहारमें दिल खोलकर आनन्द मनाते हैं। यह त्योहार जनताका त्योहार है।

ऊपर लिखा गया है कि यह सम्पूर्ण त्योहार २३ दिनका है और चीनी पंचांगके बारहवें मासकी २३वीं तारीखसे

१. प्रजातन्त्रकी स्थापनाके बादसे सरकारी तौरपर रोकड़ बन्द करनेका समय प्राचीन कालसे चला आनेवाला नववर्ष-दिन नहीं माना गया है, तथापि बहुतसे व्यवसायी प्राचीन ढंगपर ही रोकड़ बन्द करते हैं। इस अवसरपर रोज़गार-धन्धा तो प्रायः सभी प्रकारके व्यापारी बन्द रखते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

म इसकी १५वीं तारीख तक मनाया जाता है। जैसा कि हर देशमें होता है, यहाँ भी लोग त्योहार मनानेकी तैयारी बहुत पहलेसे ही प्रारम्भ कर देते हैं और त्योहारकी प्रतीक्षा तथा उनके मनानेके नाना प्रकारकी मानसिक कल्पनाओंका आनन्द उठाते हैं। त्योहार प्रारम्भ होनेके पहले ही उस अवसरपर लगनेवाली सब चीज़ोंकी खरीद-बिक्री समाप्त कर ली जाती है। यह काम अधिकतर पुरुष ही करते हैं। खाना बनाना तो चीनमें भी स्त्रियोंके ही हाथोंमें है; पर त्योहारके अवसरपर उन्हें भी आनन्द मनानेका अवकाश रहे, इसलिए वे पहलेसे ही नाना प्रकारकी खाद्य-सामग्रियाँ बनाना प्रारम्भ कर देती हैं। वे नाना प्रकारके मांस और तरकारियाँ नाना विधिसे बनाकर त्योहारके दिनके लिए सुरक्षित रूपसे रख देती हैं। चीनकी जलवायु इस समय ऐसी रहती है कि हफ़्तों तक बनी चीज़ें खराब नहीं होतीं। इस त्योहारपर लोग--खासकर स्त्रियाँ और बच्चे--नूतन वस्त्र और जूते आदि पहनते हैं, इसीलिए एक मास पहलेसे स्त्रियाँ कपड़ा सीने, कपड़ोंपर कसीदा काढ़ने, कपड़ेके जूते बनाने आदि कामोंमें लग जाती हैं। चीनी पंचांगके बारहवें महीनेमें जिन्हें चीनकी बस्तियों में जानेका अवसर मिलता है, वे अच्छी तरह देखते हैं कि किस प्रकार स्त्रियाँ—खासकर युवतियाँ—घरके बाहर दोपहरकी धूपमें बाँस या पुआलके मोड़ोंपर बैठी हुई कसीदा काढ़ने या सिलाई करनेमें मग्न रहती हैं। चीनके लोग नाटक देखना पसन्द करते हैं, इसीलिए चीनके प्रायः सभी बड़े शहरोंमें नाटक-मण्डलियाँ और स्थायी रंगमंच हैं। इस नववर्ष दिनके पहले नाटक-मण्डलीके लोग भी छुट्टी मनाते हैं। चीनी पंचांगके बारहवें महीनेके पिछले पक्षमें नाटक-मण्डलियोंके लोगोंको 'बक्स-बन्द' खेलके बाद छुट्टी मिलती है। ये लोग पुनः नववर्षके दिनसे जनताके मनोरंजनके लिए नाटक खेलना प्रारम्भ करते हैं। 'बक्स-बन्द' खेलका अर्थ यह है कि नाटक खेलनेकी जितनी भी सामग्रियाँ होती हैं, वे सब एक बक्समें बन्द कर दी जाती हैं और बक्स नववर्षके दिन पुनः नाटक खेलनेके लिए खोला जाता है। जिस खेलके बाद नाटक-सामग्रियाँ बक्समें बन्द की जाती हैं, वही बक्स-बन्द खेल कहलाता है।

चीनी जनताका विश्वास है कि हर परिवारमें एक पाकशाला-देव रहते हैं। इन पाकशाला-देवका स्थान हर चीनी परिवारकी पाकशालामें धुआँदानीके पास बना होता है। ये देव वर्ष-भर बराबर परिवारके साथ रहते हैं और परिवार द्वारा किए जानेवाले अच्छे-बुरे कामों को देखते रहते हैं। जब बारहवें मासकी २३वीं तारीख आती है, तो उस दिन शामको ये स्वर्गके पास जाते हैं और उनके सामने परिवारके साल-भरके अच्छे-बुरे कामोंका विवरण पेश करते हैं। इस विवरणके आधारपर ही स्वर्ग आनेवाले वर्षमें परिवारको वरदान या श्राप देते हैं। इसलिए पाकशाला-देवको प्रसन्न करनेके लिए बारहवें महीनेके २३वीं तारीखकी शामको परिवारके लोग पाकशालामें इनकी पूजा करते हैं। इनकी वेदीपर धूपदानी में धूपबत्तियाँ जलाई जाती हैं और धूपदानीके दोनों बगल शमादानपर लाल मोमबत्तियाँ भी। एक तश्तरीमें चीनीकी बनी चिपकनेवाली टिकियों (Sugar Candy) का इन्हें भोग लगाया जाता है। चिपकनेवाली टिकियाँ देनेका अर्थ यह है कि देवताके ओठ सट जायँ, और ये अगर परिवारवालोंसे किसी कारण असन्तुष्ट हों और स्वर्गके पास शिकायत करना चाहते हों, तो नहीं कर सकें। इसके बाद परिवारके सभी छोटे-बड़े पुरुष घुटने टेक और सिर पृथ्वीपर लगा तीन बार देवताको प्रणाम करते हैं। इस पूजाका अधिकार स्त्रियोंको नहीं है, यद्यपि स्त्रियाँ ही रसोई-घरकी मालकिन होती हैं। पाकशाला-देवको स्वर्ग तक पहुँचनेके लिए सवारी चाहिए, इसलिए पूजाके अवसरपर काग़ज़का बना घोड़ा या कुर्सीदार डोली जलाई जाती है। इस अवसरपर पटाखे आदि भी छोड़े जाते हैं। पाकशाला-देवकी पूजाके बाद छः दिनों तक कोई विशेष उत्सव नहीं मनाया जाता। बारहवें मासकी २४वीं तारीख सफ़ाई-दिवस कहलाता है। इस दिन हर परिवारके लोग अपने घर तथा घरकी हर चीज़की सफ़ाई करते हैं। लोग काग़जों--खासकर लाल काग़ज़पर--मंगल-वाक्य लिखकर दरवाज़ेकी चौखटों तथा घरके अन्य स्थानोंपर साटते हैं। भिन्न-भिन्न रंगके काग़ज़ोंकी नाना प्रकारकी बनी चीज़ोंसे वे अपने घर सजाते हैं। देहातोंमें प्रधान फाटकके दोनों पल्लोंपर देवताओं या बहादुरोंकी दो तस्वीरें साटी जाती हैं। सम्भवतः ये विघ्न-बाधा को घरमें आनेसे रोकते हैं।

नववर्ष-त्योहारका प्रधान उत्सव बीतनेवाले वर्षकी अन्तिम सन्ध्या से प्रारम्भ होता है। इस दिन तीसरे पहर सब लोग अपनी सबसे सुन्दर पोशाक पहनते हैं। स्त्रियों और बच्चोंकी पोशाकें तो बहुत ही भड़कीली होती हैं। हर परिवारके लोग अपने घरकी प्रधान कोठरीमें, जो आँगनकी ओर खुली रहती है, दीवारसे सटाकर मेज़ रखते हैं और दीवारपर अपने पूर्वजोंके चित्र या उनके नामकी तख्तियाँ लटकाते हैं। दीवारसे सटी मेज़के आगे भी और मेज़ें एक-दूसरेके आगे-पीछे सटाकर रखी जाती हैं। अगर परिवार बड़ा और अमीर होता है, तो मेज़ें अधिक रखी जाती हैं। दीवारसे सटी मेज़पर पूर्वजोंके व्यवहारके लिए खानेकी खपच्चियाँ (चीनके लोग हाथसे नहीं खाते, बल्कि वे दो खपच्चियोंकी मदद से खाना उठाकर अपने मुखमें रखते हैं), चम्मच, शराबकी प्यालियाँ आदि रखे जाते हैं। सबसे अगली मेज़पर लाल रंग का रेशमी या सूती कपड़ा मेज़के अगले किनारेसे ज़मीन तक लटकता रहता है। इसी मेज़पर उसके अगले किनारेके बीचमें धूपदानीमें धूपबत्तियाँ रखी जाती हैं और धूपदानीके दोनों बगल शमादानपर लाल मोमबत्तियाँ। इस मेज़के आगे दरी बिछी

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहती है और दरीपर लाल रंगकी छोटी-छोटी गोल गद्दियाँ रखी जाती हैं। इन गद्दियोंपर घुटने टेक और सिर पृथ्वीपर लगा पूर्वजोंको प्रणाम किया जाता है। इस कोठरीकी अन्य दीवारोंपर नाना प्रकारके दूसरे चित्र, प्रधान-प्रधान व्यक्तियों द्वारा लिखे गए मंगल-वाक्य आदि टँगे रहते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि हर परिवार अपने घरकी प्रधान कोठरीको, जिसमें वह उत्सव मनानेका आयोजन करता है, अपनी शक्ति-भर सजानेकी कोशिश करता है।

जब शामके खानेका समय (प्रायः चीनी लोग रातका खाना सन्ध्या-समय पाँच और छः बजेके बीच खाते हैं) आता है, तो बीतनेवाले वर्षकी विदाईके उपलक्षमें धूपबत्तियाँ और मोमबत्तियाँ जला दी जाती हैं। हफ्तों पहले और इस दिन बनाए गए सब प्रकारके भोजन अलग-अलग तश्तरियोंमें लाए जाते हैं और धूपदानीवाली मेज़ और दीवारसे सटी मेज़ोंपर रखे जाते हैं। परिवारके पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे--सब इस कोठरीमें आते हैं और घुटने टेककर पूर्वजोंको प्रणाम करते हैं। प्रणाम करनेमें बड़े-छोटेका खयाल रखा जाता है। रिश्तेकी बड़ाई-छोटाईके अनुसार परिवारके लोग पूर्वजोंको पहले या पीछे प्रणाम करते हैं। छोटे-बड़ेके अलावा प्रणाम करनेमें स्त्री-पुरुषका भी खयाल रखा जाता है। पहले पुरुष प्रणाम करते हैं, पीछे स्त्रियाँ। इस प्रकार सबसे छोटा लड़का सबसे बूढ़ी स्त्रीसे पहले प्रणाम करता है। पूर्वजोंके प्रणामके बाद रिश्तेमें जो छोटे हैं, वे अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करते हैं। यह प्रणाम भी घुटने टेककर ही होता है; पर उस दरी और गद्दीपर नहीं, जिनपर पूर्वजोंको प्रणाम किया जाता है, बल्कि उसी कोठरीके एक तरफ़ या दूसरी कोठरीमें। इस प्रणाममें स्त्री-पुरुषमें अन्तर नहीं माना जाता। अगर रिश्तेमें सबसे बड़ी कोई स्त्री है, तो अन्य पुरुष और स्त्रियाँ पहले उसीको प्रणाम करते हैं। प्रणाम करनेपर बड़े लोग छोटे बच्चोंको पैसे और आशीर्वाद देते हैं तथा वयस्क लोगोंको आशीर्वाद और कोई उपहार। छोटे बच्चोंको इस अवसर पर जो पैसे दिए जाते हैं, उसे 'या सुइ छिएन्' कहते हैं, जिसका अर्थ है 'आनेवाले वर्षमें बुराइयोंको दूर भगानेवाले पैसे।' इस दिन अगर परिवारमें कोई अतिथि रहते हैं, तो परिवारिक प्रणामके बाद अतिथि और अतिथि-सेवक एक-दूसरेको प्रणाम करते हैं। यह प्रणाम हाथ जोड़ और सिर झुका कर होता है। फिर परिवारके नौकर-चाकर अपने मालिकोंको घुटने टेककर प्रणाम करते हैं। इन दिनों पढ़े-लिखे लोगोंमें अपने रिश्तेदारोंको घुटने टेककर प्रणाम करनेकी परिपाटी उठ रही है। वे लोग केवल हाथ जोड़ और सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं। देहातोंमें घुटने टेककर प्रणाम करनेकी प्रथा आज भी बनी हुई है।

प्रणाम करनेका कार्य समाप्त होनेके बाद खान-पान प्रारम्भ होता है। कोशिश यह की जाती है कि परिवारके सब लोग (स्त्री-पुरुष-बच्चे) एक ही मेज़के चारों ओर खाने बैठें। यह वह दिन है, जब परिवारके सब लोग एक जगह इकट्ठे होते हैं। किसी कारणवश अगर परिवारका कोई आदमी दूर है और इस अवसरपर आ नहीं सका है, तो खानेकी मेज़पर अनुपस्थित व्यक्तिके नाम खानेकी खपच्चियाँ तथा अन्य सामग्रियाँ रख दी जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि अनुपस्थित व्यक्ति भी परिवारके भोजमें सम्मिलित है। पूर्वजोंको जो खाद्य-सामग्रियाँ भेंट लगाई गई होती हैं, वे उठाकर लाई जाती हैं और सब लोग हँसी-खुशीके साथ घण्टों अपना समय खानेमें व्यतीत करते हैं। इस अवसरपर होड़ लगाकर शराब भी पी जाती है। खानेके बाद बच्चे नाना प्रकारके खेल और पटाखे छोड़ना प्रारम्भ करते हैं और बड़े लोग ताश, जुआ (मा चिआङ्) आदि खेलने लगते हैं। इस रात (बीतनेवाले वर्षकी अन्तिम रात) को लोग एकदम नहीं सोते, क्योंकि चीनी लोगोंका विश्वास है कि नववर्षके एकदम प्रभात-कालमें स्वर्गका द्वार थोड़ी देरके लिए ही खुलता है और जो इस खुले द्वारको देख सकते हैं, उन लोगोंके लिए नववर्ष अत्यन्त मंगलदायक होता है। अगर मनुष्य सारी रात जागता रहेगा, तो जब कभी भी स्वर्गका द्वार खुले, वह ज़रूर देखेगा। इसलिए लोग रात-भर जागते ही रहते हैं। पर इन दिनों यह प्रथा अधिकतर गाँवोंमें ही है। शहरके पढ़े-लिखे लोग इसमें विश्वास नहीं करते, और वे लोग लम्बी चादर तान रात-भर सोते हैं।

नववर्षके एकदम प्रभात-कालमें नववर्षके स्वागतकी तैयारी होती है। जिस कोठरीमें बीतनेवाले वर्षकी विदाईका उत्सव मनाया गया होता है, उस कोठरीकी सारी चीज़ें (भोगमें चढ़ाई गई खाद्य-सामग्रियोंको छोड़कर) पिछली सन्ध्यासे ज्यों-की-त्यों रखी रहती हैं। इस नववर्षके अवसरपर स्वर्ग और पृथ्वी तथा अन्य देवताओंकी पूजाके लिए एक मेज़ और रखी जाती है। यह मेज़ कोठरीके उस तरफ़ और उस मेज़के सामने, जो आँगनसे सटी होती है और जिसपर गत सन्ध्या-समय धूपदानी, शमादान आदि रखे होते हैं, रखी जाती है। इस मेज़पर धूपदानीमें धूपबत्तियाँ और शमादानमें मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं और फल, चीनीकी टिकियाँ आदि भोगके लिए रखे जाते हैं। इस समय भी पटाखे छोड़े जाते हैं। इस प्रकार स्वर्ग तथा पृथ्वीकी पूजा प्रारम्भ हो जाती है। परिवारके पुरुष-स्त्रियाँ-बच्चे सबके सब गत सन्ध्याकी तरह ही आकर पहले स्वर्ग और पृथ्वीको और बादमें पूर्वजोंको प्रणाम करते हैं। इस प्रणामके बाद नववर्षके आनन्ददायक अवसरके लिए पुनः परिवारके छोटे लोग अपनेसे बड़ेको प्रणाम करते हैं—गत सन्ध्याकी तरह ही। पर इस अवसरपर प्रणामके बदले केवल आशीर्वाद ही दिया जाता है, भेंट आदि नहीं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसके बाद परिवारके सब पुरुष (स्त्रियाँ नहीं) रसोईघरमें जाते हैं और पाकशाला-देवके स्वर्गसे परिवारमें आगमनके स्वागतमें पूजा करते हैं।

नववर्ष-स्वागत-उत्सव सूर्योदयके पहले तक समाप्त हो जाता है। इसके बाद लोग इस अवसरके लिए बनाई गई मीठी रोटियाँ, जो भाफ़ द्वारा पकाई जाती हैं, खाते और कोई मीठी चीज़ पीते हैं। यह मीठी रोटी 'नववर्ष-रोटी' कहलाती है। इस खान-पानके बाद लोग उस दिशामें घूमने जाते हैं, जिस दिशासे आनन्द-देवताका आगमन होता है। इस घूमनेको चीनी भाषामें 'छू शिङ्' कहते हैं। आनन्द-देवता किस वर्षमें किस दिशासे आयँगे, यह पता चीनी पंचागसे लगता है। जो लोग निश्चित दिशाके विपरीत जाते हैं, उनके लिए नववर्ष आनन्ददायक नहीं होता है—ऐसा विश्वास किया जाता है। नववर्षके अवसरपर चीनी लोगोंमें अपने कुल तथा अपने निकट सम्बन्धियोंके घर जाकर अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करनेकी प्रथा है। यह वर्षके प्रथम तीन दिनों तक बहुत ही चलता है; पर असलमें यह प्रथम पन्द्रह दिनों तक चालू रहता है। हर परिवार प्रणाम करनेके लिए आनेवालों से कुछ-न-कुछ खानेका आग्रह करता है; पर चूँकि एक आदमी को अपने कई सम्बन्धियोंके यहाँ जाना पड़ता है और हर जगह खानेका आग्रह होता है, इसलिए हर आदमी एक जगह थोड़ी देर ही ठहरता है और आग्रहकर्त्ताका मन रखनेके लिए थोड़ी-सी चीज़ मुँहमें रखकर ही विदाई लेता है। प्रणाम करनेके लिए स्त्री-पुरुष दोनों ही जाते हैं।

नववर्षके पाँचवाँ दिन 'अर्थ-देवता'की पूजा होती है। यह नववर्ष-स्वागत-दिनके स्वर्ग और पृथ्वीकी पूजाकी तरह ही मनाई जाती है। परिवारके सब लोग—यहाँ तक कि नौकर-चाकर आदि भी—इस पूजामें सम्मिलित होते हैं, क्योंकि धनकी चाह सबको होती है। पूजा नववर्षकी पाँचवीं तारीखको सुबह होती है। दुकानदार इस दिन सुबह अपनी दुकानका आधा फाटक खुला रखते हैं, ताकि अर्थ-देवता दुकानमें प्रवेश कर सकें। अर्थ-देवताकी पूजाके अलावा नववर्ष प्रारम्भ होनेके कुछ ही दिनोंके अन्दर 'वसन्त-स्वागत'-उत्सव मनाया जाता है। यह त्योहार वास्तवमें किस दिन पड़ता है, यह पता चीनी पंचांगसे लगता है। कभी-कभी यह त्योहार नववर्षके पहले (इस साल नववर्ष-उत्सवके पहले पड़ा था) और कभी-कभी संयोगवश नववर्षके दिन भी पड़ जाता है। यह वह दिन है, जिस दिनसे वसन्तका आगमन माना जाता है। चूँकि वसन्त-ऋतु चीनके किसानोंका खेती-बारीका समय है, इसलिए किसान यह त्योहार बड़ी धूमधामसे मनाते हैं। स्वर्ग और पृथ्वीकी पूजा होती है; धूपबत्तियाँ और मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं तथा पटाखे छोड़े जाते हैं। घुटने टेककर लोग स्वर्ग और पृथ्वीको प्रणाम करते हैं। कहीं-कहीं गायको सजाकर सड़कोंपर फेरी दी जाती है, जो कृषि-कर्मका द्योतक माना जाता है।

इस सम्पूर्ण नववर्ष-उत्सवके अवसरपर लोग नाना प्रकारके क्रीड़ा-विनोद द्वारा दिल बहलाते हैं। बाल-बच्चे और छोटे लड़के पटाखे छोड़ते, पतंग उड़ाते तथा गेंद आदि खेलते हैं। इस अवसरपर लगभग १६ वर्ष उम्र तकके लड़के-लड़कियाँ पेड़ोंमें झूला डाल झूलते हैं। झूलेकी डोरियाँ काफ़ी लम्बी रखी जाती हैं और ये इतनी ऊँचाई तक जाती हैं कि देखनेवालोंका शरीर कभी-कभी रोमांचित हो उठता है। चीनके शहरोंमें ओपेरा, नाटक, सिनेमा आदि होते रहते हैं, और सब प्रकारके लोग इस अवसरपर इन खेलोंको देखने जाते हैं। सिनेमा आदि में तो नववर्ष प्रारम्भ होनेके पहले ही नववर्षके बादके ५-६ दिनों तकके टिकट बिक जाते हैं। गाँवोंमें, जहाँ सिनेमा-नाटक आदि नहीं हैं, लोग तरह-तरहके स्थानीय खेलों द्वारा खुशियाँ मनाते हैं। कहीं-कहीं पावदान लगे हुए डण्डेपर चढ़कर लोग इधर-से-उधर घूमते हुए नाना प्रकारके अभिनयों तथा गीतों द्वारा लोगोंका मनोरंजन करते हैं। इस अवसरके विनोदमें सबसे प्रधान 'दीप-अजगर-जुलूस' है। बाँसके फ्रेमपर काग़ज़का अजगर इस प्रकार बनाया जाता है कि बीचमें जलते दीप रखे जा सकें। इसकी लम्बाई दससे सौ फीट तककी होती है। फ्रेममें बाँसके कई डण्डे लगे रहते हैं, जिनके सहारे पूरा फ्रेम ऊपर उठाया जाता है। पूरे फ्रेमको उठानेके लिए बीसियों आदमियोंकी ज़रूरत पड़ती है। दीप-अजगरके अलावा बाँसके एक बड़े डण्डेके ऊपर बाँसके फ्रेमपर काग़ज़की गेंद बनाई जाती है, जिसे 'शिउ चिउ' कहते हैं। इस गेंदका पेट खोखला रखा जाता है, ताकि उसमें मोमबत्ती रखकर जलाई जा सके। इस दीप-अजगर खेलके कई दल होते हैं, और हर दल अपना अलग-अलग 'शिउ चिउ' और दीप-अजगर बनाता है। ये दोनों चीज़ें अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक ढंगसे बनाई जाती हैं। हर दलके पास अपना अलग-अलग झण्डा रहता है। जब दीप-अजगर-जुलूस निकलता है, तो जिस दलका जुलूस होता है, सबसे पहले जुलूसमें उस दलका झण्डा रहता है। झण्डेके बाद बाजा बजानेवाले रहते हैं, जो नाना ढंगसे बाजा बजाकर तथा नाच नाच कर लोगोंको आकर्षित करते हैं। बाजेवालोंके पीछे शिउ चिउ लेकर चलनेवाला और शिउ चिउके पीछे दीप-अजगरको उठाकर चलनेवाले लोग रहते हैं। जुलूस जब चलता है, तो शिउ चिउ को उठाकर चलनेवाला आदमी विभिन्न तरहसे और विभिन्न दिशाओंमें शिउ चिउको झुलाता है। शिउ चिउके पीछे दीप-अजगरको उठाए हुए जो लोग रहते हैं, वे लोग भी दीप-अजगरको ठीक उसी तरह झुलाते हैं, ताकि शिउ चिउ और दीप-अजगरकी गतिमें सामंजस्य बना रहे। दीप-अजगर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उठानेवालोंको यह खयाल रखना पड़ता है कि दीप-अजगरका मुँह हमेशा शिउ चिउके सामने रहे, ताकि दर्शक यह समझें कि शिउ चिउ अजगरके हड़पनेके डरसे इधर-उधर भागा जा रहा है और अजगर ठीक उसी तरह बराबर उसका पीछा कर रहा है। यह खेल नववर्षके दिनसे ही प्रारम्भ हो जाता है और नववर्षके पन्द्रवें दिन (फागुन-पूर्णिमा या उसके लगभग) समाप्त होता है। इस रात्रिको विभिन्न दलोंमें होड़ होती है। नववर्षका पन्द्रवाँ दिन दीप-उत्सव (युआन् शिऔ चिए) का दिन कहलाता है।

यह दीप-उत्सव चीनके इस लम्बे त्योहारका अन्तिम उत्सव है। यह अन्तिम उत्सव बड़े ही आकर्षक ढंगसे मनाया जाता है। नववर्षके पन्द्रवें दिनके तीसरे पहरसे ही लोग अपने घरोंके विभिन्न स्थानोंको नाना आकृतिके दीपोंसे सजाते हैं। अगर बस्ती बड़ी और धनाढ्य होती है, तो सार्वजनिक स्थानमें बाँसके फ्रेमपर कागज़के नाना रंगके गुम्बज बनाए जाते हैं, जो दीप-गुम्बज कहलाते हैं। इन गुम्बजोंमें रंग-बिरंगे दीप रखे जाते हैं। आतिशबाज़ीका भी प्रबन्ध किया जाता है। सन्ध्या समय हर परिवार अपने घरमें सजाए दीपको जला देते हैं। फिर पूर्वजों और देवी-देवताओंकी पूजा करते हैं। पूजाके बाद खान-पान होता है। खाना समाप्तकर लोग अपने अड़ोस-पड़ोसके घरोंके दीपोंकी सजावट देखने निकलते हैं। जिस ग्राममें दीप-अजगर, अतिशबाज़ी और दीप-गुम्बजका प्रबन्ध होता है, वहाँके लोग निर्धारित स्थानपर इन खेलोंको देखनेके लिए जमा होते हैं। अड़ोस-पड़ोसके गाँवोंके लोग भी इन चीज़ोंको देखने आते हैं। यह रात्रि फागुन-पूर्णिमाकी होती है, इसलिए जाड़ा भी अधिक नहीं रहता है, साथ ही सारा भू-भाग चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंसे नहाता रहता है। वसन्तका मौसम और पूर्णिमाकी रात्रि उत्सवकी शोभाको और भी बढ़ा देते हैं। मध्य-रात्रिके लगभग जब लोगोंकी भीड़ काफ़ी इकट्ठी हो जाती है, तो दीप-गुम्बजोंके दीप जला दिए जाते हैं, जो देखनेमें बड़े ही आकर्षक लगते हैं। इसी आकर्षक अवसरपर दीप-अजगर खेल करनेवाले विभिन्न दल अपना खेल दिखाने आते हैं। ऊपर कहा गया है कि शिउ चिउ तथा दीप-अजगरके झुलानेमें ही दलकी निपुणता समझी जाती है। एकके बाद एक दल लोगोंके सामने आता और अपना खेल दिखाकर चला जाता है, जो दल लोगोंकी सबसे अधिक बार और अधिक लम्बे समय तक हर्ष-ध्वनि प्राप्त करता है, वही दल सबसे अच्छा समझा जाता है। इस खेलके बाद आतिशबाज़ी छोड़ी जाती है, और इस अतिशबाज़ीके छोड़नेके साथ-साथ नववर्षका त्योहार भी समाप्त हो जाता है।

एक चीनी विद्वानने लिखा है कि इस नववर्ष-त्योहारके बीच-खासकर दीप-उत्सवके दिन--चीनी विद्वान अपना मनोरंजन दीप-पहेली (तङ् मी) नामक खेल द्वारा करते हैं। कागज़के टुकड़ों पर कोई शब्द, कविता, लोकोक्ति या महापुरुषोंके वाक्य लिखकर अलग-अलग सुसज्जित दीपोंके फ्रेमपर साटकर लटका दिए जाते हैं। हर शब्द, कविता आदि किसी खास वाक्य, घटना, खेल आदिका द्योतक होता है। विद्वान लोग इन पहेलियोंको हल करते हैं। पहेली बनानेवाला पहेली हल करनेवालेको इनाम भी देता है। जो व्यक्ति सबसे कठिन पहेली हल करता है, वही प्रथम माना जाता है। पहेली हल करनेका काम कितने ही दिनों तक चलता रहता है। जब पहेली हल हो जाती है, तभी वह दीपके फ्रेमपर से हटा ली जाती है, अन्यथा वह दीपके फ्रेमपर ही सटी रहती है।

इस लम्बे त्योहारके मनानेकी विधियोंमें स्थान-भेदके कारण कुछ अन्तर भी पड़ता है। दीप-गुम्बज, दीप-अजगर, आतिश-बाज़ी आदि तो शहरों और बड़े कस्बोंमें ही देखनेको मिलते हैं। छोटे-छोटे गाँवोंकी ग़रीब जनतामें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वह इन खेलोंके खर्चको उठा सके। पढ़े-लिखे लोगोंकी रुचि त्योहार मनानेकी ओर कम है, यद्यपि उत्सवमें वे लोग भी शरीक होते हैं। असलमें त्योहार गाँवकी जनता ही अधिक मनाती है, और गाँवोंमें ही त्योहारका असली रूप भी देखनेको मिलता है। मोटे तौरपर भारतकी वसन्त-पंचमी, होली और दिवालीकी तुलना क्रमशः चीनके वसन्त-स्वागत, नववर्ष-स्वागत (यद्यपि होलीकी नाईं इस त्योहारमें रंग आदिका व्यवहार एकदम नहीं होता) और दीप-उत्सवसे की जा सकती है। इन त्योहारोंको चीनके लोग आनन्द और आह्लादके साथ मनाते हैं, और इस प्रकार २३ दिनों तक चिन्तारहित जीवन बितानेके बाद पुनः सभी वर्गके लोग अपने-अपने कामोंमें तन-मनसे लग जाते हैं।

याद

श्री रामप्रकाश अग्रवाल, एम० ए०

ले चपल मृदु हास!
कौन दामिनी-सी दमकती, उर-गगनमें आज?
शून्य दृग, मानस-पटलपर यह हरित नव-रेख कैसी?
शान्तिकी एकान्त छायामें उठी लघु ज्योति कैसी?
आज ले नव साज!

जग रही किसकी, हृदयमें मृदु मनोरम याद?
कौन इस सोए हुएको छेड़ता है आज निर्मम?
जग उठे क्यों आज सहसा भाव, जो चिर-सुप्त थे मम?
मधु मलयकी वात!
वह रही किस ओरसे करती सजग सुप्रभात?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्सवकी महत्ता

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

उस दिन इन्दुके एक निबन्धमें मैंने वर्षा-ऋतुका इतना सुन्दर वर्णन पढ़ा कि मुझे तो उसीमें कदम्ब-कुसुमका सौरभ प्राप्त हो गया। वर्षाके आगमनसे सारी प्रकृति जो महोत्सव करती है, उसमें वह भी तो सम्मिलित है। इसलिए उसकी भाषामें वही मधुरिमा है, उसके भावमें वही उल्लास है। मुझमें और उसमें अवस्थाका जो वैपरीत्य है, उसके कारण मेरी और उसकी दृष्टिमें भी बड़ा भेद है। हम लोग अपनी-अपनी दृष्टिसे संसारको देख सकते हैं। उसके लिए वर्षा सुख, सौरभ, संगीत और नव-श्री लाती है; पर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इसके शीतल समीरमें किसीका वेदनापूर्ण निःश्वास भी विलीन है। मेघोंके इस गम्भीर गर्जनके साथ किसीकी हाहाकार-ध्वनि भी उठी है। कौन नहीं जानता कि यहाँ तो हम वर्षाके उल्लासमें मग्न हैं और कहीं रणका ताण्डव-नृत्य हो रहा है। यहाँ प्रेमके प्रसून खिल रहे हैं और कहीं विद्वेषकी चिताग्नि धधक रही है। ये तो दूरकी बातें हुईं। हमारे समीप ही क्या हो रहा है, इसका हमें क्या ज्ञान है? कौन कह सकता है कि जब हम हँस रहे हैं, तब कोई रो नहीं रहा है। यह किसे ज्ञात है कि किसके हृदयमें कैसी वेदना है। हम तो अपने ही आनन्दमें उन्मत्त रहते हैं। हम तो यही समझते हैं कि संसार हमारे लिए है। किसीको क्या पता कि किसकी किस बातसे मुझे कितना दुःख हुआ। मुझे भी क्या मालूम कि मेरे किस कामसे किसको कितना कष्ट हुआ। आज मैं स्वयं बड़ी चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ। मुझे मेघोंकी यह श्याम घटा सुखद नहीं है। मुझे लोगोंका यह आमोद-प्रमोद अच्छा नहीं लग रहा है। तो भी अपने मनकी व्यथाको मनमें ही छिपाकर मैं सब लोगोंसे मिलता हूँ, हँसता हूँ, बोलता हूँ, सभी काम करता हूँ। सुख-दुःखका यह प्रवाह तो चिरन्तन है। हम सभी लोग उसमें बहते चले जा रहे हैं। अपने-अपने भावोंकी तरंगोंमें पड़कर हम लोग नाचते, थिरकते, डूबते, उतराते, चमकते-छिपते, टकराते और चक्कर खाते चले जा रहे हैं। अपने दुःखमें हमें किसी अन्यके सुखकी परवाह नहीं होती। अपने उल्लासमें हमें किसी अन्यके विषादकी सुधि नहीं रहती। अपनी स्वार्थ-सिद्धिमें हमें दूसरोंकी हानिकी चिन्ता नहीं रहती। अपने मान, गौरव और प्रतिष्ठाकी वृद्धिमें हमें दूसरोंके अपमान और अप्रतिष्ठाका ध्यान नहीं रहता।

पर हम लोगोंके अपने सुख-दुःखसे किसी भी उत्सवकी महत्ता नहीं नष्ट होती। वर्षमें अपने-अपने दिनमें सभी उत्सव हर्ष और प्रमोद ही लेकर आते हैं। उस दिन मैंने देखा कि सब लोग रथ-यात्राके उत्सवमें ऐसे लीन हो गए थे, मानो उनको कोई चिन्ता या कष्ट ही नहीं। युद्धका आतंक, दुर्भिक्षका प्रकोप, अभावका कष्ट सभी भूल गए थे। लोगोंकी बड़ी भीड़ थी। खूब कोलाहल हो रहा था। सब धक्के खा रहे थे। फिर भी सभी प्रसन्न थे। कुछ व्यर्थ बातें कर रहे थे, कुछ अकारण हँस रहे थे, कुछ अनावश्यक वस्तुएँ खरीद रहे थे और कुछ व्यर्थ घूम-घूमकर आनन्दित हो रहे थे। पर सभी थे प्रमुदित।

मनुष्य उत्सव-प्रिय होते हैं। उत्सवोंका एकमात्र उद्देश्य आनन्द-प्राप्ति है। यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य अपनी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिए आजीवन प्रयत्न करता रहता है। आवश्यकताकी पूर्त्ति होनेपर सभीको सुख होता है। पर उस सुख और उत्सवके इस आनन्दमें बड़ा अन्तर है। आवश्यकता अभाव सूचित करती है। उससे यह प्रकट होता है कि हममें किसी बातकी कमी है। मनुष्य-जीवन ही ऐसा है कि वह किसी भी अवस्थामें यह अनुभव नहीं कर सकता कि अब उसके लिए कोई भी आवश्यकता नहीं रह गई है। एकके बाद दूसरी वस्तुकी चिन्ता उसे सताती ही रहती है। इसीलिए किसी एक आवश्यकताकी पूर्त्ति हो जानेपर उसे जो सुख होता है, वह अत्यन्त क्षणिक होता है; क्योंकि तुरन्त ही दूसरी आवश्यकता उपस्थित हो जाती है। उत्सवमें हम किसी बातकी आवश्यकताका अनुभव नहीं करते। यही नहीं, उस दिन हम अपने सारे काम-काजोंको छोड़कर विशुद्ध आनन्दकी प्राप्ति करते हैं। यह आनन्द जीवनका आनन्द है, कामका नहीं। उस दिन हम अपनी सारी आवश्यकताको भूलकर केवल अपने मनुष्यत्वका खयाल करते हैं। उस दिन हम अपनी स्वार्थ-चिन्ता छोड़ देते हैं, कर्त्तव्य-भारकी उपेक्षा कर देते हैं, गौरव और सम्मानको भूल जाते हैं। उस दिन हममें उच्छृंखलता आ जाती है, स्वच्छन्दता आ जाती है। उस दिन हमारी दैनिक चर्या बिलकुल नष्ट हो जाती है। व्यर्थ घूमकर, व्यर्थ कामकर, व्यर्थ खा-पीकर हम लोग अपने मनमें यह अनुभव करते हैं कि हम लोग सच्चा आनन्द पा रहे हैं। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि उत्सवोंमें हम सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होकर मुक्तिका आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं।

हिन्दू-समाजमें विशुद्ध आनन्दकी प्राप्तिके लिए वर्षके अन्तमें जो उत्सव रखा गया है, वह वसन्तोत्सव कहलाता है। वर्ष भर कर्त्तव्यके गुरु भारसे आक्रान्त रहकर हम लोग वर्षके अन्त तथा नववर्षके आरम्भमें विशुद्ध आनन्द पानेके लिए उत्सव मनाते हैं। उस समय प्रकृतिके उल्लासके साथ हम भी अपने जीवनमें उल्लासका अनुभव करते हैं। ऊँच-नीचका भेद छोड़कर हम सब एक ही रंगमें, एक ही भावमें, रँग जाते हैं। प्रत्येक ऋतुके परिवर्त्तनके समय ऐसा ही उत्सव हम लोग मनाते हैं।

हिन्दू-उत्सवोंकी यह महत्ता है कि उनमें धर्म और जातिके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उच्चतम आदर्शोंका भी समावेश हो जाता है। ये उत्सव हमारे धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवनके उच्चतम आदर्शोंके स्मारक हो गए हैं। प्रत्येक उत्सवके साथ किसी-न-किसी आदर्श चरित्रका समावेश कर दिया गया है। वसन्तोत्सवमें शिवजीके काम-दहन और श्रीकृष्णजीके पूतना-वधका लोग स्मरण करते हैं। आषाढ़में कालकी दुर्निवार गतिकी स्मृतिमें जगन्नाथकी रथ-यात्रा होती है। जीवनके अनन्त पथपर असंख्य प्राणियोंके बीचमें भगवान विचरण करते हैं। श्रावणीके रक्षाबन्धन द्वारा हिन्दू-समाजमें भ्रातृत्व और धर्म-भारका स्मरण दिलाया जाता है। दीपावलीमें लक्ष्मी-पूजनके साथ नरकासुरके वधका स्मरण हम लोग करते हैं। इस तरह सभी उत्सवोंमें धर्म और इतिहास बिलकुल मिल गए हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यताका ऐसा कोई भी आदर्श नहीं है, जिसका स्मरण दिलानेके लिए वर्षमें एक दिन नहीं रखा गया है। इससे हमारे जातीय संस्कार बने रहते हैं। और लोग जहाँ उत्सवमें आनन्द प्राप्त करते हैं, वहाँ हिन्दू आनन्दके साथ-साथ अपने जातीय गौरवका भी अनुभव करते हैं।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि लगातार परिश्रम करनेके बाद हम लोगोंमें जो शिथिलता आ जाती है, जो एक अवसाद-सा छा जाता है, उसको दूर करनेके लिए आमोद-प्रमोद की आवश्यकता सभीको पड़ती है, और इसीलिए उत्सव किए जाते हैं। ऐसे उत्सवोंमें हम शिथिलताको खोकर नई शक्ति पाते हैं। पर यह सभी अंशोंमें ठीक नहीं है। हम लोगोंका प्राकृतिक जीवन ऐसा है कि शिथिलता या अवसाद आनेपर प्रकृति निद्रा द्वारा हमारी सारी शिथिलताको दूरकर आप-से-आप शरीरमें नई शक्ति ला देती है। उसके लिए उत्सवोंकी आवश्यकता नहीं है। उत्सवका उद्देश्य सामाजिक जीवनमें एक विशुद्ध आनन्द प्राप्त करना है। उस उत्सवका सम्बन्ध व्यक्ति नहीं, समाज, जाति और राष्ट्रसे है। उस दिन हम लोग आमोद-प्रमोदमें अवश्य लीन हो जाते हैं; पर उससे शारीरिक शक्ति घटती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है। फिर भी उन उत्सवों द्वारा हम जो आनन्द प्राप्त करते हैं, वह हमारे जीवनको पूर्ण बना देता है। उस दिन अपने सारे अभाव, सारी आवश्यकता, सारी चिन्ता को छोड़ हम अपने जीवनकी पूर्णताका अनुभवकर आनन्दमें लीन हो जाते हैं। जगन्नाथकी रथ-यात्राके साथ हमारे जीवनका जो कर्म-चक्र प्रवर्त्तित होता है, उसका कोई अन्त नहीं है। उसकी गति कभी अवरुद्ध नहीं होती है। उत्थान-पतन उसके लिए एक साधारण नियम है। कभी वह ऊपर आता है और कभी वह नीचे जाता है। पर उसके द्वारा जगन्नाथका रथ अग्रसर ही होता है। क्या व्यक्ति, क्या समाज और क्या राष्ट्र—सभीके उत्थान-पतन होते हैं। फिर भी जीवन तो सदैव विकास ही होता है। एक ओर संहार होता है और दूसरी ओर निर्माण भी होता है। भगवानकी रथ-यात्रामें इस विश्वका कल्याण ही निहित है। इसीलिए हम अपने क्षुद्र दुःखोंको भूलकर, अपनी दैन्यावस्थाका तिरस्कारकर उस महोत्सवमें सम्मिलित होते हैं।

मांसाहार और बौद्ध तथा जैन

श्री लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

सन् १९१६ से पहलेकी बात है। लखनऊमें श्री मार्कण्डेय भट्टाचार्यसे चर्चा छिड़ी हुई थी मांस-भक्षणकी। बंगाली होनेसे वे मांस खानेके घोर पक्षपाती थे और अपने पक्षके समर्थनमें तरह-तरहकी युक्तियाँ देते थे। मैं निरामिष भोजनके पक्षमें अहिंसाकी दुहाई देकर, जैनोंकी तरह बौद्धोंको भी निरामिषभोजी समझ, कुछ कह रहा था कि भट्टाचार्य बाबू अपने सहज-सुलभ हास्यके साथ कहने लगे—"बौद्ध तो संसारके अधिक भागमें फैले हुए हैं और सभी मांसाहारी हैं। तिब्बत, चीन, बर्मा, स्याम सर्वत्र मांसाहार प्रशस्त है। और बौद्ध-धर्मके प्रवर्त्तक स्वयं बुद्धने देह त्यागनेसे पूर्व पावा नगरीके चुन्दके घर सूअर खाया था, जिससे उन्हें संग्रहणी हुई और वही उनको समेट ले गई।" भट्टाचार्य बाबूने पाली पुस्तकें पढ़ी होतीं, तो वे बौद्ध ग्रन्थोंके प्रमाण देकर अपने पक्षको और भी प्रबल कर देते। मैं चक्करमें था कि बुद्धके मांसाहारकी बात कहाँ तक ठीक होगी; क्योंकि कविराज जयदेव पण्डितका यह पद बुद्धको कुछ और ही कह रहा है—"निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्। सदयहृदय दर्शित पशुघातम्। केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे!" इधर मैंने आचार्य धर्मानन्द कोसम्बीकी मराठी पुस्तक 'भगवान बुद्ध' (उत्तरार्द्ध) देखी, जिसके ग्यारहवें प्रकरणमें मांसाहारका विस्तृत वर्णन है। आपने लिखा है :—

बुद्धने परिनिर्वाणके दिन जो चीज़ खाई थी, उसका नाम 'सूकरमद्दव' था। उस शब्दपर बुद्धघोषाचार्यकी यह टीका है—"सूकरमद्दवं ति नातितरुणस्स नातिजिण्णस्स एक जेट्ठक सूकरस्स पवत्तमंसं। तं किर मुदुं चेव सिनिद्धं च होति। तं पटियादापेत्वा साधुकं पचापेत्वा ति अत्थो। एके भणन्ति, सूकरमद्दवं ति पन मुदुओदनस्स पञ्चगोरसयूसपाचनविधानस्स नाममेतं, यथा गवपानं नाम पाकनामं ति। केचि भणन्ति सूकरमद्दवं नाम रसायनविधि। तं पन रसायनत्थे आगच्छति, तं चुन्देन भगवतो परिनिब्बानं

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न भवेय्या ति रसायनं पटियत्तं ति।" अर्थात् जो न तो बिलकुल बूढ़ा हो और न बिलकुल जवान, जो हो तो कम उम्रका, पर खूब मोटा-ताज़ा, ऐसे सूअरका पक्का-पकाया मांस। वह नरम और चिकना होता है। उसे तैयार करके अर्थात् अच्छी तरहसे पका करके यह अर्थ समझना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि पंचगोरससे बनाए गए नरम भातका यह नाम है। जैसे कि 'गवपान' एक विशिष्ट पक्वानको कहते हैं। कुछ लोगोंकी समझमें सूकरमद्दव नामक एक रसायन था। रसायनके अर्थमें ही उस शब्दका प्रयोग किया जाता है। चुन्दने बुद्ध भगवानको वह पदार्थ इसलिए दिया कि उनका परिनिर्वाण न हो।

इस टीकामें सूकरमद्दव शब्दका मुख्य अर्थ सूअरका मांस ही किया गया है। लेकिन टीकाकार बुद्धघोषको इस अर्थके सम्बन्धमें कुछ शंका थी। बात यह है कि उन दिनों उक्त शब्दके दो अर्थ और भी प्रचलित थे। इसके सिवा 'उदान अट्ठकथा'में भी दो भिन्न अर्थ दिए हुए हैं--"केचि पन सूकरमद्दवं ति न सूकरमंसं, सूकरेहि मद्दितवंसकलीरो ति वदन्ति। अञ्ञे सूकरेहि मद्दितपदेसे जातं अहिच्छत्तकं ति।" अर्थात् कुछ लोगोंका कहना है कि सूकरमद्दवका अर्थ सूअरका मांस नहीं है। वह तो बाँसका ऐसा कोमल अंकुर है, जिसे सूअरने रौंद डाला हो। औरोंकी रायमें सूअरोंकी रौंदी हुई जगहमें उपजा हुआ कुकुरमुत्ता उक्त वस्तु है। (उक्त दोनों वस्तुओंकी कहीं-कहीं तरकारी बनाई जाती है।)

यों 'सूकरमद्दव' शब्दके अर्थके सम्बन्धमें अनेक मत हैं। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बुद्ध भगवानको सूअरके मांससे परहेज़ न था। अंगुत्तरनिकायके पंचकनिपातमें उग्ग गहपति कहता है--"मनापं मे भन्ते संपन्नवरसूकरमंसं, तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनकम्पं उपादायाति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाया ति।" अर्थात् भदन्त, यह मांस बढ़िया सूअरका अच्छी तरहसे पकाया हुआ है। मेरे ऊपर कृपा करके इसे ले लिजिए। भगवानने कृपा करके उसे ले लिया।

अन्य श्रमण सम्प्रदायोंमें जो अत्यन्त तपस्वी थे, उनमें जैन प्रमुख थे। फिर भी पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जैन सम्प्रदायके श्रमणोंको भी मांससे परहेज़ न था। आचारांग सूत्रके निम्न उद्धरणमें इसका उल्लेख इस प्रकार है—"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सेज्जं पुण जाणेज्जा बहुअट्ठियं मंसं वा, मच्छं वा बहुकण्टकं, अस्सिं खलु पडिगाहितंसि अप्पे सिवा भोयणजाये बहुउज्झियधम्मिये। तहप्पगारं बहुअट्ठियं वा मंसं, मच्छं वा बहुकण्टकं, लाभेवि सन्ते णो पडिगाहेज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे परो बहुअट्ठिएण मंसेण मच्छेण उवणिमंतेज्जा, आउसन्तो समणा अभिकंखसि बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहेत्तए? एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वमेव आलोएज्जा, आउसोत्ति वा भइणीत्ति वा णो खलु मे कप्पइ बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहेत्तये, अभिकंखसि से दाउं जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि मा अट्ठियाइं। से सेवं वदंतस्स परो अभिहट्टु, अन्तोपडिग्गहगंसि बहुअट्ठियं मंसं परिभाएत्ता णिहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहणं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा। से आहच्च पडिगाहिए सिया तं णोहित्ति वएज्जा, अणोवत्ति वएज्जा। से त्तमायाय एगंतमवक्कमेज्जा। अवक्कमेत्ता अहेआरामंसि वा अहेउवस्सयंसि वा अप्पंडए जाव संताणए मंसगं मच्छगं भोच्चा अट्ठियाइं कंटए गहाय से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा। अवक्कमेत्ता अहेज्झामथंडिलंसि वा अट्ठिरासिंसि वा किट्टरासिंसि वा तुसरासिंसि वा गोमयरासिंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव पमज्जिय पमज्जिय परिट्ठवेज्जा।"

अर्थात् वह भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा मांस मिलनेपर जिसमें हड्डियाँ अधिक हों या अधिक काँटेवाली मछली मिलनेपर समझेगा कि इसमें खाने लायक हिस्सा कम और फेंक देने लायक ज़्यादा है। ज़्यादा हड्डियोंवाला मांस या अधिक काँटोंवाली मछली मिलती हो, तो उसको लेनेसे इन्कार कर दे। भिक्षु या भिक्षुणीके किसी गृहस्थके घर भिक्षाके लिए जानेपर यदि भिक्षा देनेवाला पूछे कि आयुष्मान् श्रमण, इस मांसमें हड्डियाँ ज़्यादा हैं, क्या इसे भिक्षामें ले सकते हो? तो इस प्रश्नके पूछे जानेसे पहले ही वह कह दे कि आयुष्मान्, (और स्त्री हो तो बहन,) मुझे ऐसे मांसकी क्या ज़रूरत। देना ही हो तो मांस दो, हड्डियाँ न चाहिएँ। ऐसा कहनेपर भी यदि घरका मालिक देनेकी ज़िद करे, तो उसे ठीक न समझकर न ले। यदि वह पात्रमें डाल ही दे, तो एक ओर ले जाकर बागमें या उपाश्रयमें...मांस और मछलियाँ खाकर हड्डियों और काँटोंको एक ओर ले जावे। फिर जली हुई धरती, हड्डियों की ढेरी, टूटे-फूटे लोहेके टुकड़ोंके ढेर या छिलके वगैरहके ढेर अथवा उपलोंकी राखकी ढेरी वगैरहपर या ऐसी ही दूसरी ऊँची जगहपर, सफ़ाई करके, उन हड्डियों या काँटों वगैरहको संयमसे रख दे।

यही भाव दशवैशालिक सूत्रकी इन गाथाओंमें भी है:—

बहुअट्ठियं पुग्गलं आमिसं वा बहुकंटयं।
अच्छियं तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखण्डं व सिंबलिं॥
अप्पे सिआ भोअणजाए, बहुउज्झिय धम्मियं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पई तारिसं॥

अर्थात् बहुत हड्डियोंवाला मांस, बहुत काँटोंवाली मछली, अस्थि-वृक्षका फल, बेल, गन्ना, शाल्मलि इस प्रकारकी चीज़ें – जिनमें खानेका हिस्सा तो कम, पर फेंकनेका ज़्यादा रहता है—मेरे कामकी नहीं हैं, ऐसा प्रतिबन्ध कर दे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मांसाहारके विषयमें प्रसिद्ध जैन साधुओंकी सलाह

गुजरात - विद्यापीठकी पुरातत्त्व - मन्दिर नामकी शाखा थी। उसकी ओरसे 'पुरातत्त्व' त्रैमासिक पत्र (गुजरातीमें) निकलता था। उस त्रैमासिकके सन् १९२५ के एक अंकमें कोसम्बीजीने इसी विषयपर एक लेख लिखा था और उसमें उपरिलिखित दोनों प्रमाण उद्धृत किए थे। कोसम्बीजीने कुछ इन प्रमाणोंको स्वयं न ढूँढ़ा था, बल्कि मांसभक्षण-विषयक चर्चा छिड़नेपर प्रसिद्ध जैन पण्डितोंने ही आपको इन प्रमाणोंकी सूचना दी थी। तब आपने उस लेखमें इनका उपयोग कर लिया था। उक्त लेखके छपते ही अहमदाबादके जैनियोंमें खासी हलचल मच गई। पुरातत्त्व-मन्दिरके संचालकोंसे जैनियोंने शिकायत की कि उक्त लेखका लेखक जैन धर्मकी जड़ खोदना चाहता है। संचालकोंने उन लोगोंको समझाया कि वह तो पुरातत्त्वका एक लेख है, और कुछ नहीं।

उस समय वयोवृद्ध स्थानकवासी साधु गुलाबचन्द और उनके प्रसिद्ध शतावधानी शिष्य रतनचन्द अहमदाबादमें ही रहते थे। एक बार किसी जैन पण्डितके साथ कोसम्बीजी उनसे भेंट करने गए। शामका वक्त था। जैन साधु अपने पास चिराग़ नहीं रखते, इस कारण दोनों साधुओंका चेहरा स्पष्ट दिखाई न देता था। साथी जैन पण्डितने रतनचन्दजीको कोसम्बीजीका परिचय दिया, तो उन्होंने कहा कि मैंने आपकी तारीफ़ सुनी है। लेकिन आपने प्राचीन जैन साधुओंके मांसाहारी होनेका उल्लेख अपने लेखमें करके हमारे धर्मपर हमला किया है। कोसम्बीजीने उत्तर दिया कि इस समय बौद्ध और जैन दो ही श्रमण-सम्प्रदाय रह गए हैं, इस कारण उनके प्रति मुझे बहुत ही आदर है; किन्तु खोजकी बात दूसरी है। इस मामलेमें श्रद्धा, आदर और प्रेमकी कोई पख नहीं रहती। सच तो यह है कि सत्य बातके प्रकट होनेसे किसी सम्प्रदायकी तिल-भर भी अप्रतिष्ठा नहीं होती।

वृद्ध गुलाबचन्द साधु कुछ फ़ासलेपर थे। उन्होंने वहींसे अपने शिष्यसे कहा—"कोसम्बीजीने दोनों उद्धरणोंका जो अर्थ लगाया है, उसमें कोई भूल-चूक नहीं है। आधुनिक टीकाकारोंने ज़रूर खींच-तान की है। इन उद्धरणोंके अतिरिक्त कितने ही अन्य स्थलोंमें ऐसे आधार हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि जैन साधु मांससे परहेज़ न रखते थे।" फिर उन्होंने जैन सूत्रोंके प्रमाण दिए; किन्तु उनके विद्वान शिष्यने इस चर्चाको आगे नहीं बढ़ने दिया।

महावीर स्वामीकी मांसाहार-सम्बन्धी चर्चा

महावीर स्वामीको भी मांससे कोई परहेज़ न था। श्रीयुत गोपालदास जीवाभाई पटेलने 'प्रस्थान' मासिक (संवत् १९९५, वर्ष १४, अंक १) में 'श्री महावीर स्वामीका मांसाहार'-शीर्षक एक लेख लिखा था। उसमें जो बातें आई हैं, उनका वर्णन संक्षेपमें यों है—"महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरीमें रहते थे। [illegible] मक्खलि गोसाल भी गया। वे आपसमें एक-दूसरेके विरुद्ध आलोचना करने लगे। अन्तमें गोसालने महावीर [illegible] को शाप दिया कि तुम मेरे शापसे छः महीनेके अन्तमें पित्त ज्वरसे मर जाओगे। तब महावीर स्वामीने भी उसे शाप दि कि तू सातवीं रातको पित्तज्वरसे पीड़ित होकर चल बसे ऐसा ही हुआ। किन्तु इससे महावीर स्वामीको अत्यन्त [illegible] होकर रक्तके दस्त लगने लगे। तब उन्होंने अपने शिष्य सिंह कहा कि तू मेंढिक गाँवमें रेवती नामकी रमणीके पास ज उसने मेरे लिए दो कबूतर बनाकर रख छोड़े हैं, उनकी [illegible] अब ज़रूरत नहीं। जिस मुर्ग़ीको कल बिल्लीने मरोड़ डाला [illegible] उसीका मांस वह पका दे। उसीसे मेरा काम चल जायगा। [illegible] उससे कहना।" मूल भगवती सूत्रके इस विषयके उद्धरण ये हैं— "तं गच्छह णं तुमं सीहा, मेंढियगामं नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहे तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार-कडए कुक्कुडमंसए तं आहराहि एएणं अट्ठो।"

जिसे अर्धमागधी भाषाका थोड़ा-सा भी ज्ञान हो, वह [illegible] इस उद्धरणको पढ़े, तो उसे कहना पड़ेगा कि गोपालदासजीने किया हुआ अर्थ बिल्कुल ठीक है। लेकिन बड़े अचम्भेकी बात है कि लोग असल बातके ज़ाहिर कर देनेसे गोपालदासजीके पीछे पड़ गए।

बौद्ध और जैन श्रमणोंके मांसाहारमें भेद

मांस खानेके बाबत जैनों और बौद्धोंमें जैसा-कुछ विचार था, उसपर विचार करनेसे गोपालदासजीकी ही बात ठीक सिद्ध होती है। वैशालीका सिंह सेनापति निर्ग्रन्थोंका उपासक था। लेकिन बुद्धका उपदेश सुनकर वह उनका मुरीद हो गया। उसने बुद्ध और भिक्षुसंघको अपने घर आमन्त्रित करके आदरपूर्वक उन्हें तृप्त किया। यह बात निर्ग्रन्थोंको अच्छी न लगी। उन्होंने वैशालीमें यह अफ़वाह फैला दी कि सिंहने बड़े पशुको मारकर गौतम और भिक्षुसंघकी खातिरदारी की और मज़ा यह कि इसकी जानकारी रहनेपर भी गौतमने कुछ आगा-पीछा नहीं किया। किसीने यह खबर जाकर सिंहको दी, तो उसने कहा कि यह सरासर झूठ है। बुद्धकी फ़जीहत करनेमें निर्ग्रन्थोंको सुख मिलता है। इसीसे यह अफ़वाह उड़ाई गई है। जान-बूझकर खातिरदारी करनेके लिए मेरा प्राणीकी हिंसा करना बिल्कुल झूठ है।

इसी तरहका दूसरा प्रमाण मज्झिमनिकायके (५५ वें) जीवक सुत्तमें है। एक समय बुद्ध राजगृहमें जीवक कौमारभृत्यके आम्रवनमें रहते थे। तब जीवक भगवानके पास आकर, उनको अभिवादन करके, एक ओर बैठ गया और कहने लगा—"भदन्त, आपपर यह आरोप लगाया जाता है कि आपके लिए खास तौरपर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मारे गए चौपाएका मांस बनाया जाता है और उसे आप खाते हैं। क्या यह सच है?" भगवानने कहा—"यह बात बिल्कुल झूठ है। अपने लिए यदि प्राणी मारा जाता हो और उसे देख या सुन लिया जाय, या सन्देह ही हो जाय, तो ऐसा भोजन निषिद्ध है। यह मैं कहा करता हूँ।"

इससे प्रकट है कि जैनोंका बुद्धपर किस प्रकारका आक्षेप था। बुद्धको न्यौता देकर कोई मांस खानेको देता, तो जैन कहते कि श्रमण गौतमके लिए मारे गए पशुका मांस (उद्दिसकटं) वह खा लेता है। जैन साधु तो किसीका निमन्त्रण स्वीकार ही न करते थे। रास्ता चलते जो भिक्षा मिल जाती थी, उसीको लेते थे, और उसमें मांस मिल जाता था, तो उसे वे फेंक न देते थे।

बुद्ध-समकालीन कुछ तपस्वी लोग मांससे ज़रूर परहेज़ रखते थे। ऐसे लोगोंमें से एक तपस्वी काश्यप बुद्धका संवाद सुत्तनिपातके (१४ वें) आमगन्ध सुत्त[1]में है। उस सुत्तका भावार्थ यह है—"प्राणिघात, वध, छेदन, चोरी-चाकरी, मिथ्या-भाषण, ठगना, जारण-मारण आदिका अभ्यास और व्यभिचार आमगन्ध (अशुद्ध वस्तु) है; मांसाहार आमगन्ध नहीं है। जिन्हें स्त्रियोंके सम्बन्धमें संयम नहीं है, जो चटोरे हैं और अशुद्ध कार्य करते हैं, ऐसे नास्तिक, विषम और दुर्विनीत लोगोंके कार्य आमगन्ध है, मांसाहार नहीं। मांस-मछलीसे परहेज़ रखना, नंगे या मुण्डित रहना, जटा-जूट रखना, भस्म रमाना, खुरदरी मृगछाला, अग्निहोत्र अथवा इस लोकको अन्य विविध तपश्चर्या, होम-हवन, यज्ञ और शीतोष्णको सहन करना—ये काम उस मनुष्यको पवित्र नहीं कर सकते, जो शंकाओंके पार नहीं पहुँचा। इन्द्रियोंको संयत करके उनको पहचानकर व्यवहार करनेवाला, धर्ममें स्थित, आर्जव और मार्दवमें सन्तोष रखनेवाला, संगसे अतीत तथा जिसके सारे दुःख नष्ट हो गए हों, ऐसा धीर पुरुष ही दृष्ट और श्रुत पदार्थोंमें बद्ध नहीं होता है।" यह सुत्त बहुत प्राचीन है। इससे प्रकट हो जाता है कि बुद्ध-समकालीन भिक्षु लोग मांसाहारका समर्थन इस रीतिसे किया करते थे।

इस सुत्तमें तपश्चर्याको कुछ महत्त्व नहीं दिया गया। यह सलाह जैन श्रमणोंको पसन्द न आई होगी; क्योंकि वे तो बार-बार तप किया करते थे। फिर भी मांसाहारका समर्थन वे भी इसी ढंगसे करते थे। बात यह है कि पूर्वकालीन तपस्वियोंकी भाँति जंगलके कन्द-मूल-फल आदिपर ही निर्वाह न करके वे लोगोंकी दी हुई भिक्षाके भरोसे रहते थे। और उस ज़मानेमें ऐसी भिक्षा मिल न सकती थी, जिसमें मांस-मछली हो ही नहीं। ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें पशुओंका बलिदान करके उनका मांस लोगोंको बाँट देते थे। देहाती लोग बलिदान करके पशुओंका मांस खाते थे। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि जैन श्रमण किसी भी प्राणीकी हिंसाको पाप समझते थे, और इस समय भी उनका यही दृढ़ मत है।

हिंसाके विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला पहला ऐतिहासिक राजा अशोक है। उसके पहले शिलालेखमें लिखा है—'यह धर्मलिपि देवोंके प्रिय प्रियदर्शी राजाने लिखवाई है। इस राज्यमें किसी प्राणीको मारकर न तो होम-हवन किया जाय और न मेलेमें बलि दी जाय। प्रियदर्शी राजाको मेलोंमें बहुत-सी बुराइयाँ दिखाई देती हैं। कुछ मेले राजाको ज़रूर पसन्द हैं। पहले प्रियदर्शी राजाके रसोईघरमें खानेके लिए हज़ारों जीव मारे जाते थे। जिस समय यह लेख लिखा गया, उस समयसे दो मोर और एक मृग ही इस काममें आते हैं। यह मृग भी प्रतिदिन नहीं मारा जाता। आगे चलकर इन तीन प्राणियोंका मारा जाना भी बन्द कर दिया जायगा।'

आजकल यज्ञ-याग एक प्रकारसे बन्द ही हैं। हाँ, मेलोंमें कई जगह बलिदान होता है। अन्य देशोंकी अपेक्षा हिन्दुस्तानके लोग बहुत अंशोंमें मांस-मछलीसे परहेज़ रखते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह जैन और बौद्ध धर्मोंके प्रचारका ही फल है। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम आज शाकाहारी हैं, इससे हमारे पूर्वज भी कट्टर शाकाहारी ही थे।

चीनमें पुराने लोग सूअरको सम्पत्तिमें गिनते थे। चीनियों की लिपि चित्रलिपि है। उनके यहाँ चिह्नोंके संयोगसे भिन्न-भिन्न शब्द बनते हैं। मनुष्यका चिह्न बनाकर उसके ऊपर तलवारका चिह्न बनानेसे उसका अर्थ शूर होता है। स्त्रीके दो चित्र बनानेका मतलब झगड़ा और सूअरके चित्रका मतलब सम्पत्ति होता है। चीनवाले प्राचीन कालमें घरमें सूअर रखना सम्पत्तिका लक्षण मानते थे। आजकल भी वहाँ सूअरका वही मान मौजूद है।

हमारे यहाँ ज़रूर सूअरको कोई सम्मान प्राप्त नहीं था। फिर भी वह सम्पत्तिका एक भाग तो था ही। अरियपरियेसन सुत्त (मज्झिमनिकाय २६) में ऐहिक सम्पत्तिकी अनित्यता यों बतलाई गई है—"किं च भिक्खवे जातिधम्मं? पुत्तभरियं भिक्खवे जातिधम्मं। दासीदासं···अजेलकं···कुक्कुटसूकरं···हत्तिगवास्सवलवं···जातरूपरजतं जातिधम्मं।" मतलब यह कि हाथी-घोड़ा, गाय वगैरह सम्पत्तिमें मुर्गी और सूअरको भी गिनती होती थी। फिर सूअरका मांस इतना गन्दा क्यों माना जाने लगा? पाली वाङ्मयमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिससे पता चले कि यज्ञ-याग आदिमें सूअर भी मारे जाते थे। अर्थात् बुद्धके ज़मानेमें सूअर अपवित्र हो चुका था; लेकिन उसके अभक्ष्य होनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अभक्ष्य होता, तो क्षत्रियके घरकी सम्पत्तिमें उसका समावेश कैसे होता? सूकर-मांसका निषेध

१. आमगन्ध सुत्तमें दिए गए उपदेशकी तुलना ईसाके इस वचनसे कीजिए—"जो मुँहमें जाता है, वह मनुष्यको अशुद्ध नहीं करता; अशुद्ध वही करता है, जो मुँहमें से निकलता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले-पहल धर्मसूत्र[२]में मिलता है। वही बात फिर मनुस्मृति[३] आदिमें दुहराई गई; परन्तु अरण्य सूकरका कभी निषेध नहीं हुआ। उसका मांस पवित्र माना गया है। जंगली सूअर होता भी तो बड़ा बली है।

बुद्धपर मात्रासे अधिक खा लेनेका आरोप

बुद्धने परिनिर्वाणसे पहले सूअरका मांस खाया था, यह मान लिया जाय, तो भी यह नहीं माना जा सकता कि उन्होंने इतना अधिक मांस खा लिया, जिससे अजीर्ण होकर उनकी मृत्यु हो गई। गौतम बुद्धके बेहद खा लेनेका उदाहरण कहीं भी नहीं मिलता। फिर उन्होंने इसी अवसरपर यह चीज़ कैसे प्रमाणसे अधिक खा ली होगी। यह तो निरी झूठ बात है। इससे पहले बुद्ध वैशालीमें तीन महीने तक सख्त बीमार रह चुके थे। इसे उनको देहमें कुछ तत्त्व न रह गया था। चुन्दके यहाँ भोजन करनेसे बुद्धका परिनिर्वाण हो गया, यह अफ़वाह फैलाकर लोग उस बेचारेकी मिट्टी पलीद न करने लग जायँ, इस आशंकाको दूर करनेके लिए बुद्धने परिनिर्वाणसे प्रथम आनन्दसे कहा था—"आनन्द, चुन्द लुहारसे कोई कहे कि तेरे यहाँ भिक्षा ग्रहण करके से तथागतका परिनिर्वाण हुआ है, इससे तेरी बड़ी हानि होगी, और ऐसा कहकर अगर चुन्दको दुखी किया जाय, तो तुम उससे दिलजमई इस तरह कर देना कि चुन्द, तेरी भिक्षा ग्रहण करके तथागतको परिनिर्वाण प्राप्त हुआ है, इसलिए तेरा दान सचमुच लाभदायक है। मुझे तथागतने बतलाया था कि अन्य भिक्षाओं की अपेक्षा तथागतको मिली हुई दो भिक्षाएँ अधिक फलप्रद और अधिक प्रशंसनीय हैं। एक तो वह भिक्षा, जिसको खाकर तथागतने सम्बोधिज्ञान प्राप्त किया और दूसरी वह, जिसको खाने के बाद परिनिर्वाण पाया। चुन्दने जो काम किया है, वह आयुष, वर्ण, सुख, यश, स्वर्ग और स्वामित्व देनेवाला है। आनन्द, इस प्रकार चुन्दके मनकी चिन्ताको दूर कर देना।"

---

२. 'काकवकं गृध्रश्येना जलजरक्तपादतुण्डा ग्राम्यकुक्कुटसूकराः।'
—गौतम सूत्र, अ० ८।२९।
'एकखुरोष्ट्रगवयग्रामसूकरसरभगवाम्।'—आपस्तम्ब धर्मसूत्र, प्रश्न १, पटल ५, खण्डिका १७।२९।

३. मनुस्मृति, अ० ५।१९ और ३।२७०।

साधनाका फल

श्रीमती आशालता सिंह

नमिताके स्कूलमें जो नई प्रधानाध्यापिका आई है, उसकी अवस्था केवल बीस-बाईस सालकी ही होगी। फिर भी अपनी कुशाग्र बुद्धि, विद्या और व्यक्तित्वके कारण लड़कियोंमें रेवा दीदी शीघ्र ही अपनी-सी हो गई हैं। उस दिन मैट्रिकका परीक्षा-फल निकला और स्कूलमें खबर आई। अपने हृदयमें खुशीको न दबा रखनेके कारण रेवा दीदी नमिताको परीक्षा-फल सुनाने उसके घर आ उपस्थित हुईं।

प्रातःकालका समय था। आठ-साढ़े-आठ बजे थे। गृहस्थके अन्तःपुरमें नित्यकार्योंका यह एक सन्धि-क्षण था। सभी लोग घरके कामोंमें व्यस्त थे। लड़कोंको स्कूल-कालेज जाना था और बाबू लोगोंको आफ़िस-कचहरी। स्त्रियाँ भोजन बनानेके आयोजनमें लगी थीं। नमिता बुआजीके आदेशानुसार धुले शुद्ध कपड़े पहन कर अचारकी हाँड़ी धूपमें रख रही थी। उसके दोनों हाथोंमें अचारका तेल और हल्दी लगी थी। बुआजी नौ हाथकी टसरकी ओछी धोती पहने, माला फेरती हुई, घरके कामोंको बनाती फिरती थीं। नई भाभीकी गोदवाली बच्ची हाथमें बालोंकी कटोरी लिए रो रही थी।

ऐसे समयमें अकस्मात रेवा दीदीको खड़ी देखकर नमिता का चेहरा फक् हो गया और उसके मनमें नाना प्रकारकी भाव-नाएँ उठने लगीं। इसी बीच रेवा दीदी उसके पास आकर कहने लगीं—'मैट्रिकका परीक्षा-फल निकल गया है। नमिता, तुम प्रथम श्रेणीमें पास हुई हो और तुम्हें पचीस रुपएका वज़ीफा भी मिला है। इसके लिए तुम्हें बधाई है। तुम्हारे कारण स्कूलका मुख उज्ज्वल हुआ है।'

नमिता यह सब-कुछ अभिभूत हो सुनती रही। बुआजी गरज कर कहने लगी—'नमिता, कैसी हो तुम! अचार बिना आचारके दो दिनमें सड़कर गोबर हो जायगा। आज बरेनको घर आने दो, तुम्हारा रात-दिन पढ़ना, केवल पढ़ना, सब निकलवाती हूँ।' यह कहकर वे उसकी ओर एक बार भृकुटि चढ़ा, कुटिल आँखोंसे देख निर्लिप्त भावसे जल्दी-जल्दी हरिनामकी माला जपने लगीं।

घरकी स्त्रियोंमें नमिताकी रँगीली भाभीकी रुचि परिमार्जित है और अभी तक लड़का वगैरह न होनेके कारण उसका कमरा भी साफ़-सुथरा है। इसीलिए नमिताने रेवा दीदीको उसीके कमरेमें बैठाया और इशारेसे अपनी रँगीली भाभीको चायके आयोजनके लिए कहा। कमरेकी दीवारपर एक कालीकी तस्वीर टँगी थी। उधर देखकर रेवा दीदीने कहा—'आश्चर्य है नमिता, इस घरके वातावरणमें पलकर भी तुम इतनी तीक्ष्ण बुद्धि हो! मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती।'

नमिताका मुख लाल हो उठा। बोली—'मैं सिर्फ़ अपने बड़े

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

और मझले भाइयोंकी बात सुनती हूँ। वे यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओंमें सबसे अव्वल रहे हैं।'

रेवाने ज़रा बाईं आँख मटकाकर कहा—'आश्चर्य है, बाहर से देखकर तो लोग यही सोचेंगे कि यह एक कुसंस्काराच्छन्न परिवार है! और तुम्हारी यह बुआजी तो एकदम भयंकर हैं! मेरे यहाँ आते ही यह टंटा!'

इसी समय बुआजीका कर्कश स्वर सुनाई पड़ा—'ओ रँगीली बहू, ज़रा देख तो फिर नमिता कहाँ चली गई। उस क्रिस्तानी को छूकर उसी कपड़ेसे सब भ्रष्ट तो नहीं कर दिया! इस म्लेच्छ परिवारमें अब मेरा रहना नहीं हो सकता। आज वरेनको आने दो, मेरा कोई प्रबन्ध कर दे। अब यहाँ मैं एक क्षण भी नहीं रहूँगी।'

रँगीली बहूने विनीत भावसे कहा—'बुआजी, आपके पैरों पड़ती हूँ; आज ज़रा शान्त रहिए। वे सामने ही मेरे कमरेमें बैठी हैं, सब-कुछ सुन लेंगी। वे क्रिस्तान नहीं, हमारी ही जातिकी हैं। इसी उम्रमें बी० ए०, बी० टी० पास कर चुकी हैं। कितनी शिक्षिता हैं वे।'

बुआजी उग्र कण्ठसे बोलीं—'बस, बस, अब अधिक मत बक। तुम लोगोंके दिमाग़में रमेनने यही सब भर दिया है। बाबू साहब खुद तो विलायत जा ही रहे हैं और घर-भरकी स्त्रियोंको भी मेम साहिबा बना देना चाहते हैं।'

रँगीली भाभीके कमरेकी खुली खिड़कीसे यह सारी बातें अच्छी तरह सुनाई पड़ती थीं। क्षोभ और दुःखसे नमिता व्याकुल हो रही थी। उधर रेवा दीदी कुर्सी छोड़कर उठीं और बोलीं—'मैं अब अधिक नहीं ठहर सकती। स्कूलका समय हो रहा है। अच्छा, तुम अपनी बुआजीसे समझाकर कहना कि तुम्हारे पास होनेका सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ था, इसीलिए तुम्हें खबर देने चली आई थी। यहाँ आनेका मेरा और कोई अभिप्राय नहीं था।'

नमिता अनुनयके साथ बोली—'उनकी ऐसी ही बातें हैं। हम लोग तो आठों पहर ही सुना करती हैं। रेवा दीदी, आप क्या योंही चली जायँगी? रँगीली भाभीने आपके लिए चाय और जलपान तैयार किया है। यदि आप जलपान किए बिना चली गईं, तो उन्हें बड़ा दुःख होगा।'

रेवाने गम्भीर होकर कहा—'हाँ, मैं जा रही हूँ। फिर ज़रा-सी बातके लिए इस घरमें अशान्ति क्यों उत्पन्न करना चाहती हो? तुम जिन बर्त्तनोंमें मुझे खिलाओगी, उन्हें शायद फेंकना पड़े; क्योंकि मैं क्रिस्तान जो हूँ! तुम्हारी बुआजी...।'

दरवाज़ेका पर्दा हटा और २६-२७ वर्षके एक नवयुवकने कमरेमें प्रवेश किया। वह रेवाको नमस्कारकर बोला—'माफ़ कीजिएगा। आप लोग आवश्यकता पड़नेपर दूसरोंसे बातें कर लेती हैं, इसीलिए मैं आपको दो-तीन बातें समझानेका लोभ संवरण नहीं कर सका। बगलवाले कमरेमें बैठे हुए मैंने आपकी सारी बातें सुन ली हैं। अच्छा, इतनी जल्दी आप नाराज़ क्यों हो गईं, बता सकती हैं?'

किन्तु रेवा उत्तर क्या देती, वह तो एकटक उसकी तरफ़ देख रही थी। उसे निरुत्तर देख रमेनने फिर कहा—'भारतवर्षके इतिहासमें तो आपने यह अवश्य पढ़ा होगा कि भारतकी साधना-धारा किस तरफ़ बही है। कितने ही विरोधी मतों और संघातों के बावजूद कितनी ही विभिन्न जातियोंको अपनी ओर आकर्षितकर उसने समन्वय लानेकी चेष्टा की है। हिन्दू-समाज उसी साधना का एक छोटा संस्करण है। यदि आप यह बात सोच पातीं, तो शायद इतनी जल्दी नाराज़ न होतीं। इसी घरको लीजिए। यहाँ कितने ही आदमी हैं और सबमें कितनी विभिन्नता है; फिर भी प्रत्येकका इस घरमें अक्षुण्ण अधिकार है। यह समन्वयकी एक साधना है, समझीं!'

पीछेसे कोई मधुर स्वरमें बोला—'खूब समझी हैं। किन्तु अब आप ज़रा अपनी वक्तृता बन्द तो कीजिए, ये चाय पियेंगी।' नमिताकी रँगीली भाभी चायका ट्रे और जलपान लिए आई और ज़रा हँसकर बोली—'यह मेरे छोटे देवर रमेन बाबू हैं। प्रोफ़ेसरी करते-करते इन्हें एक बुरी आदत पड़ गई है कि जब-तब वक्तृता झाड़ने लगते हैं और साधारण भाषामें बातचीत करना तो जैसे भूल ही गए हैं।'

उसकी बातोंपर सभी हँस पड़े। नमिताने देखा कि उसकी रेवा दीदीका क्रोध गायब हो चुका है। प्रस्थानोद्यत रमेनकी ओर देखकर रेवाने कहा—'देखिए, आपके घरके इन बर्त्तनोंमें चाय पीनेपर क्या आप भारतीय इतिहासकी समन्वय-साधनाकी रक्षा कर सकेंगे? मुझे भय है कि कहीं ये आपकी बुआजीके क्रोधानलमें पड़कर भस्मीभूत न हो जायँ।'

रमेनने गर्वसे कहा—'भारतवर्षकी साधनाने कितने ही असाध्य साधन किए हैं, जानती हैं? यह उसकी तुलनामें क्या है? फिर आप तो हम लोगोंमें से ही हैं, आपको किस बातका संकोच है?'

रमेनके चले जानेके बाद भी उसके शेष शब्द रेवाके कानोंमें गूँजते रहे। लौटनेके समय अपमानकी समस्त ज्वाला शान्त होकर उसका सम्पूर्ण हृदय अनिर्वचनीय माधुर्य रसमें क्यों डूबा जा रहा था, यह वह किसी तरह भी स्थिर नहीं कर सकी। आते समय नमिताकी रँगीली भाभीने हँसी-हँसीमें कहा—'यदि इनका विवाह आपकी ही तरहकी किसीसे हो, तभी कुछ आशा है; नहीं तो इन्होंने हम लोगोंकी तरह मूर्ख व्यक्तियोंके आगे जो अविश्रान्त वक्तृता देना सीखा है, उसीकी पुनरावृत्ति होगी।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

- २ -

उस दिन सबेरेकी डाकसे रेवाके नामकी एक चिट्ठी आई, जिसमें उसके चाचाने लिखा था—"बेटी, अगले महीनेसे मेरी बदली तुम्हारे शहरमें हुई है। अब वहाँ हम सब लोग साथ-साथ रह सकेंगे। हाँ, एक बात कहनेकी इच्छा रहनेपर भी तुमसे नहीं कह सका हूँ। कितने ही लोग सोचते हैं और कितने तो कहते भी हैं कि तुम्हारे पिताजीके न रहनेके कारण मैं तुम्हारे विवाहमें व्यर्थ देर कर रहा हूँ। किन्तु लोगोंकी बातोंसे कुछ आता-जाता नहीं। इस विषयमें तुम्हारा मत जाननेके लिए तुमसे मिलनेकी अपेक्षामें हूँ।"

इधर कुछ दिनोंसे रेवाके हृदयमें एक परिवर्त्तन घर कर रहा है। चिट्ठी पढ़नेके बाद वह अन्यमनस्क होकर खिड़कीके पास खड़ी हुई और बाहरकी ओर देखने लगी। इतने दिनों तक वह विवाहकी बातोंसे उदासीन ही रही। यदि कभी कल्पनामें ऐसी बात उठी भी, तो किसी बड़ी नौकरीवालेके घरके आराम और स्वाधीनताकी ही छवि उसके मनमें प्रतिफलित हुई। किन्तु अब सर्वदा जो दृश्य आँखोंमें नाचता है, उसका स्वरूप जानकर ही वह सिहर उठती है। नमिताके घरकी वह अद्भुत मूढ़ता, असह्य रुचि और असम्भव कोलाहल और दूसरी ओर इन सबको दबा देनेवाला वह सौम्य मुख! अभी उस दिन गंगा-किनारे टहलते समय रमेनको देख केवल-मात्र भद्रताके नाते एक छोटा-सा नमस्कारकर वह भाग आई थी। जब तक वह अपने हृदयको पूर्ण रूपसे जाँच न ले, उसके सामने बातचीत करनेका उसे भरोसा नहीं।

- ३ -

प्रायः एक महीना हुआ, रेवाके चाचा आ गए हैं, और रेवा उन्हींके पास चली गई है। उस दिन शामको चाचाको चाय देनेके लिए बाहरवाले कमरेमें आते समय किसी एक परिचित कण्ठकी आवाज़ सुनकर वह खड़ी हो गई। खुली खिड़कीमें से झाँककर उसने देखा, रमेन बैठा उसके चाचासे बातें कर रहा है। कमरेमें जाकर रेवाने बड़े शान्त भावसे रमेनको नमस्कार किया।

रमेनने हँसकर कहा—'हमारे घर जानेपर एक बार आपको जो अभ्यर्थना मिली, उसके बाद क्या फिर जानेका साहस नहीं होता?'

रेवा गम्भीर होनेकी चेष्टा करनेपर भी हँस पड़ी और बोली—'अनुमान तो आपका ठीक है; किन्तु आपमें तो मैं साहसका अभाव नहीं देखती। और फिर यदि आपसे उसी अभ्यर्थनाका प्रतिशोध लूँ तो?'

रमेन बोला—'शायद इससे आपके मनका क्षोभ कुछ कम हो।'

रेवाने देखा कि रमेनका हँसता हुआ चेहरा एकदम म्लान हो गया है। इसीसे रेवाने अनुतप्त कण्ठसे कहा—'यह बात तो मैंने योंही हँसीमें कही थी।'

रमेन मृदु स्वरमें बोला—'तो क्या आप समझती हैं कि हँसी नहीं समझ सकता?'

रेवा बोली—'सो क्यों नहीं? मेरी समझमें तो आप केवल दुनियामें भारतवर्षका इतिहास सम्यक रूपसे समझते हैं, इससे अधिक और कोई बड़ी बात नहीं समझते।'

रमेन दूसरी ओर देखकर कहने लगा—'आप जो कुछ अधिक समझती हैं, उसे मैं नहीं जानता। जो ज़रा-सी बातों नाराज़ हो जाती हैं, वे धीरतासे समझेंगी क्या?'

रेवाने कहा—'अच्छा, अब झगड़ा रहने दीजिए। जाती हूँ, ज़रा आपके लिए चाय ले आऊँ।'

रेवाके चाचाने पुकारकर कहा—'चायके साथ थोड़ा जलपान भी लेती आना।'

रमेनने हँसते हुए रेवाकी ओर देखकर कहा—'जाइए, खूब अतिथि-सत्कारका आयोजन कीजिए। अब क्या करेंगी, बड़ोंका ऐसा ही आदेश है।'

- ४ -

महीने-भर बाद रेवाके चाचाने उसे बुलाकर कहा—'रमेनके भाईने रमेनके साथ तुम्हारे विवाहका प्रस्ताव भेजा है। मैं तुम्हारी राय लिए बिना हाँ-ना कुछ भी नहीं कर सकता। अधिक देरी करनेका समय नहीं। रमेन अगले महीने इंग्लैण्ड जा रहा है।'

बहुत चेष्टा करनेपर भी रेवा 'ना' न कह सकी।

विवाहके बाद रमेनने कहा—'मैं जब चला जाऊँगा, तो तुम कहाँ रहोगी—चाचाके घर? यही व्यवस्था अच्छी रहेगी।'

रेवाके मुखपर कौतुककी हँसी छलछला उठी। बोली—'क्यों, यह व्यवस्था अच्छी क्यों है? मेरा क्या अपना घर नहीं, जो चाचाके यहाँ रहनेकी व्यवस्था होगी?'

रमेन उसकी ओर दृष्टि गड़ाकर बोला—'सच! किन्तु बुआजी...।'

रेवाने बीचमें ही रोककर कहा—'सो मैं जानती हूँ। बुआजी ज़रा आचार-विचार मानकर चलती हैं। इसीलिए मुझे अपना घर छोड़कर दूसरी जगह रहना पड़ेगा, इसका क्या कोई अर्थ होता है?' फिर ज़रा रुककर बोली—'अब मुझे मालूम होता है कि उसे छोड़कर एक रात भी मैं दूसरी जगह नहीं रह सकती।'

रमेन कुछ कहने ही जा रहा था कि उसे रोककर रेवाने हँसते हुए कहा—'दुहाई है, फिर अपने भारतके इतिहास और साधनाकी बातें सुनाने मत बैठना।'

रमेनने कहा—'भारतवर्षकी साधनाकी कथा कहनेका अब प्रयोजन नहीं होगा, क्योंकि उसी साधनाका फल तो सामने प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।'

अनु०—श्री गिन्नालाल पाटोदिया

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कविका विद्रोह

प्रो० जगन्नाथप्रसाद मिश्र

कविता-रचना आजकल केवल इसलिए हो रही है कि किसी तरह कविताको जीवित रखना है। हम लोग जिस जगत्में वास कर रहे हैं, उसका काव्यहीन रूप हम लोगोंको नित्य ही दृष्टिगोचर होता है। हम पग-पगपर इस बातका अनुभव किए बिना नहीं रह सकते कि हमारी सभ्यता सर्वथा अर्थ-प्रधान है। अर्थ ही यहाँ एकमात्र सामाजिक मूल्य है, आत्म-तृप्तिका अवलम्बन है। इसलिए जिस वास्तविकताके बीच हमारे मनुष्यत्वका विकास हुआ है, वह हमारे उस काव्य-जगत्के रंगीन चित्रसे सम्पूर्ण भिन्न है, जिसकी कल्पनामें विभोर होकर हमारा बाल्य-काल व्यतीत हुआ था।

इस प्रकारकी आशा और निराशा यद्यपि गम्भीर नहीं कही जा सकती, फिर भी इसका कुछ तात्पर्य है। बात यह है कि बहुतसे लोग जब इस जगत्को अपनी चिर-पोषित कल्पनाके अनुसार सुन्दर एवं सहज नहीं पाते, तो वे नैराश्यवादी उपहास-रसिक बन जाते हैं। काव्यके प्रति उनके मनमें विराग उत्पन्न हो जाता है। उनके मनमें यह धारणा उत्पन्न हो जाती है कि काव्य एक ऐसी बाल-सुलभ मनोवृत्ति है, जिसको वे अतिक्रम कर चुके हैं। जो लोग कविताको लेकर आत्म-विभोर बने रहते हैं, उनके सम्बन्धमें समझना चाहिए कि वे अब भी बाल्य दशाको अतिक्रम करके वास्तविक अर्थनीतिक जगत्में नहीं पहुँचे हैं। कलाका सम्पर्क केवल सुन्दर वस्तुके साथ ही है—इस प्रकारकी शिक्षाका दीर्घस्थायी प्रभाव अनेकांशमें हमारी उक्त धारणाके लिए उत्तरदायी है। इसमें सन्देह नहीं कि कलामें वस्तुतः सुन्दरका प्रकाश होता है; किन्तु कलाका यह सौन्दर्य उसकी एक विशेष प्रक्रियाका ही नाम है। सौन्दर्य ही काव्यका सब-कुछ नहीं है। फूल, आकाशके तारे, पक्षी-कुलका कल-कूजन, रमणीका मन्द-मधुर हास्य और मार्गमें पड़े हुए कूड़ा-करकटके ढेर और उनमें से जूठी पत्तल बीनकर उदर-ज्वाला शान्त करनेवाले मनुष्य नामधारी जीव—केवल इन्हींको लेकर काव्यका परिपोषण एवं परिवर्द्धन नहीं होता। जीवनसे ही काव्य प्राण-रस संग्रह करता है।

चाहे जो-कुछ हो, साहित्यानुरागियोंके प्रति अत्यन्त उपेक्षा-भाव धारण करनेसे एक और समस्या हमारे सामने उपस्थित होती है। आधुनिक जीवनकी धारामें भी, जो प्रत्यक्ष रूपमें अत्यन्त वैचित्र्यहीन एवं नीरस-जैसी प्रतीत होती है, काव्यके लिए उपादान मिल सकते हैं। हमारी दृष्टिके सामने प्रायः नित्यके जो दृश्य उपस्थित होते हैं, वे हैं—कारखाना, मज़दूरोंकी बस्ती, कूड़ा-करकटके ढेर, मशीनों द्वारा तैयार की गई पण्य वस्तुओंकी राशि और वर्त्तमान यान्त्रिक पद्धतिकी प्राणहीन कर्मशीलता। इसके बाद वह मानसिक वातावरण, जो इन सब वस्तुओंके चतुर्दिक परिव्याप्त है, जैसे—व्यवसायकी जटिलता, कम्पनीका काग़ज़, विज्ञापनका दम्भ, कोलाहलपूर्ण महानगरी घुड़दौड़, सिनेमा, राजनीति और आधुनिक युद्ध-विग्रह।

अब यदि हम स्थूल रूपसे यह मान लें कि कविताका तात्पर्य केवल सौन्दर्यसे है, तो सौन्दर्यके क्षेत्रमें इन सब वस्तुओंका समावेश नहीं हो सकता। किन्तु यन्त्रोंमें भी प्रायः महान् सुन्दर की प्रतिच्छवि देखी जाती है। मज़दूरोंकी बस्तीमें भी काव्य है, जो मनुष्यको रुलाए बिना नहीं रह सकता। इन सब विषयों में काव्य-वस्तुकी खोज करना मनुष्यकी दृष्टिभंगीके ऊपर निर्भर करता है। विषयको यथार्थ रूपमें समझनेके लिए पहले यह जान लेना आवश्यक है कि अकाव्यिक क्या है? काव्य-धर्मका अभाव मूलतः देखा जाता है उन सब वन-सम्पत्ति एवं कर्मोद्यमके चित्रणमें, जो सर्वथा व्यावहारिक एवं अनात्मिक (unspiritual) व्यापारोंमें नियोजित होते हैं। किन्तु राजनीतिक या व्यवसाय-संघके आदर्शको एकान्त अमानसिक और अनात्मिक कहना अत्युक्ति होगा—विशेषकर जब कि यह सब वस्तुएँ मनुष्यके उद्यमके ही फल हैं। इन्हें यथार्थ रूपमें यदि हम कहना चाहें, तो कह सकते हैं कि मनुष्यके ही आदर्श, मनुष्यकी ही कर्म-पद्धति, उद्यम एवं नीतिने मानो मनुष्यके जीवनसे विच्छिन्न होकर एक अमानुषिक—अतिमानविक—चरित्र लाभ किया है। वह एक अव्यक्तिक पद्धतिमें रूपान्तरित हो गई है और प्रत्येक युग एवं प्रत्येक व्यक्तिके वास्तविक प्रयोजनकी उपेक्षाकर चल रही है।

जिस आर्थिक व्यवस्थाके बीच हम लोग वास कर रहे हैं, वह मनुष्यके स्वार्थसे सम्पूर्ण विच्छिन्न होकर अपने लिए स्वतन्त्र यान्त्रिक नियम बना लेती है, मनुष्यको कर्मच्युत कर देती है। अपने चक्रवत् आवर्त्तनमें एक बार समृद्धि और इसके बाद कठोर दारिद्र्य लाती है, वर्त्तमान युद्धकी तरह प्रलयंकर दुर्घटनाओंकी सृष्टि करती है और सब समयमें एक दल पर-श्रमजीवी मनुष्यका पालन करती है। यह अव्यक्तिक एवं अतिमानविक पद्धति किसी प्रकारके भविष्य, किसी प्रकारके आदर्श जीवनकी कोई परिकल्पना, देवता या मनुष्योचित किसी प्रकारकी आशा-आकांक्षाकी अभिव्यक्ति नहीं है। यह है केवल अर्थ-सृष्टिकी यान्त्रिक पद्धति—आर्थिक व्यवस्थाकी गाणितिक प्रक्रिया। समाज-व्यवस्था एक स्वतःस्फूर्त्त यान्त्रिक धारामें विवर्त्तित होती है, उसपर मनुष्यका कोई वश नहीं चलता। पेशेवर अर्थनीतिज्ञोंकी परीक्षा इस विषयमें सफल नहीं हुई है, इसलिए इसकी क्रियाके सम्बन्धमें राष्ट्रका कोई दायित्व नहीं होता। फलतः यह देखा जाता है कि जो वस्तुतः असत् है, वह भी अपनी असाधु प्रवृत्तिको चरितार्थ करने के लिए प्रचलित आर्थिक व्यवस्थाकी कैफ़ियत पेश करती है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

युद्धमें हम शत्रुसे घृणा नहीं करते। इसका कारण हमारी धर्म-निष्ठा नहीं, बल्कि यह है कि सब प्रकारके प्रोपेगेण्डाके होते हुए भी हम युद्धके लिए साक्षात् रूपमें किसीको अपने मनमें उत्तरदायी नहीं ठहराते। यह हम जानते हैं कि समाजके नियन्त्रणसे परे अर्थनीतिके यान्त्रिक नियमानुसार ही युद्धकी उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार हम समाज-व्यवस्थाके दास हैं, उसी प्रकार यन्त्रके भी हम क्रीतदास बन गए हैं। इस यन्त्रका अन्यान्य यन्त्रोंके साथ नाना प्रकारका जटिल सम्पर्क है। इसके सिवा यह वस्तु शिल्प-विवर्जनके साथ अपनी प्रतियोगिताको एक क्षणके लिए भी नहीं भूल सकती, यद्यपि इसका सम्पर्क कभी शत्रुता-मूलक और कभी बन्धुत्वमूलक होता है। जो जीवन यन्त्रकी दासत्व-शृंखलामें आबद्ध आर्थिक व्यवस्थाकी यान्त्रिक प्रक्रियाके साथ घुल-मिल गया है, प्रचलित प्रथाकी अवैयक्तिक जड़ता उसे ग्रस्त किए बिना नहीं रह सकती। यह जीवन अपने मानसिक सुख-दुःखको, अपनी आत्मिक प्रयोजनीयताको भूल जाता है।

मध्य-युगके समाजमें, जब कि मनुष्यकी प्रधानता बनी हुई थी, यदि कोई राजा या पोप उपपत्नी रखता, तो किसीको आश्चर्य न होता; किन्तु इस युगमें हम फोर्ड या राकफेलर-जैसे व्यक्तियों में साधारण मनुष्योंकी तरह दुर्बलता देखकर अत्यन्त आमोद एवं विस्मयका बोध करते हैं। उनकी यान्त्रिक कर्मधाराके साथ जैसे इस दुर्बलताकी कोई संगति ही न हो। समाचारपत्रोंमें इन कर्मवीरोंके चित्रोंको देखकर ऐसा लगता है, मानो ये हमसे कह रहे हों—'हम लोग दृढ़संकल्प, अध्यवसायी एवं साहसी हैं; किन्तु प्रेमका प्रयोजन हमें नहीं है। हम किसी प्रकारके मानसिक विकारका भोग नहीं करते। हमें किसी प्रकारकी शारीरिक अतृप्ति नहीं है। हमने वर्त्तमान युगका जो नेतृत्व लाभ किया है, वस्तुतः उसके मूलमें हमारी कामना तथा आत्मिकताका अभाव है।'

बड़े-बड़े व्यवसाय-वीर, बैंकर, वाचाल पत्रकार आदिने, जो आधुनिक कर्म-जगत्के केन्द्रस्थल-स्वरूप हैं, अपने कार्यों द्वारा एक प्रकारकी रहस्यमयता प्राप्त कर ली है। धन-सम्पत्ति, प्रभाव, घटना आदिके बाहुल्यके कारण उन्होंने प्राणवन्त जीवन लाभ किया है, और उनमें अन्तरकी कल्याणकर वस्तुके प्रति बाल-सुलभ आकर्षण भी नहीं रह गया है। गुरुत्वपूर्ण कार्योंके भारसे आक्रान्त कर्मवीरों और भविष्यके रहस्योंके उद्घाटक पत्रकारोंके पड़ोसमें रहते हुए हमारा जीवन कहाँ तक नैराश्य, निरर्थकता तथा बोधशून्य जड़तामें परिणत हो रहा है, यह वर्णनातीत है। जिन सब कृषकोंने महानगरीके पड़ोसमें रहते हुए भी अपने समस्त जीवनको विस्तृत खेतोंकी नीरस वैचित्र्यहीनताके बीच बिता दिया है, उनके मुखमण्डलके समान ही हमारा जीवन भी विषण्ण हो रहा है।

मानवताके अभावके लिए, पत्नीके मनस्तुष्टि-विधान और सन्तानके आनुगत्य लाभमें अक्षम होनेके कारण धनिक सम्प्रदाय लब्धप्रतिष्ठ नेताओंके प्रति किसी-किसीने उपेक्षाका दृष्टि-निक्षेप किया है; किन्तु वास्तविक रूपमें यही उनकी शक्ति है। जिस प्रकार वे अपनी मोटरको हाँककर ले चलते हैं, उनका जीवन भी ठीक उसी तरह चल रहा है। हो सकता है कि उसके लिए कोई यत्न हो या नहीं भी हो। असल बात तो यह है कि कोई व्यक्तिगत जीवनके ऊपर वे विशेष गुरुत्व आरोपित नहीं करते। उनका व्यक्तिगत जीवन अधिकांश समय गैरेजमें बन्द रहता है, केवल बीच-बीचमें दौड़के लिए एक बार बाहर लाया जाता है। इस प्रकारकी दौड़के लिए कभी-कभी महीना देकर किसी ड्राइवरको भी नियुक्त कर लिया जाता है। कारण, वास्तविक रूपसे यथार्थ जीवन-धारण उनका लक्ष्य नहीं होता। उनका लक्ष्य होता है अव्यक्तिक यान्त्रिकताके शक्तिशाली द्वन्द्वमें अपने जीवनको ले देना। रुपया और कल-कारखाना, व्याख्यान और डिक्टेटर, टेलीफ़ोन और खर्चका हिसाब-किताब, वायुयान और नाना प्रकार की हलचलोंमें अपने जीवनको विलीन कर देना ही उनका धर्म होता है। इसलिए जो लोग काव्य, धर्माचरण, दर्शन, मनोविज्ञान आदि शास्त्रोंके सत्यानुशीलनमें अपनेको नियोजित करते हैं, वे अव्यक्तिक यान्त्रिकताके जगत्में अवास्तव हैं। उनका मूल्य अस्वीकार किया गया हो, यह बात नहीं है। उन्हें केवल व्यावहारिक जगत्में पूर्ण वयस्क व्यक्तिके लिए अनुपयोगी बच्चोंके खिलौनेकी तरह वर्जित कर दिया गया है। यही सत्य प्रतीत होता है कि शरीर अति दुर्बल होनेसे नष्ट हो जाता है; किन्तु यन्त्र मज़बूत होता है। एकके नष्ट होनेपर उसकी जगह दूसरा बैठाया जा सकता है। इस तरह आर्थिक व्यवस्था भी कायम रह जाती है।

मनोविज्ञानवेत्ता और कवि भले ही निर्दिष्ट भावसे यह दिखा दें कि पूँजीपति और डिक्टेटर मानसिक और शारीरिक रोग भोगते हैं; पर इससे क्या कुछ होता-जाता है? रास्ता चलनेमें अनेक लोगोंसे भूल होती है; किन्तु रास्ता ठीक ही रहता है। कविकी लेखनीसे व्यंग्य-धारा विनिःसृत हो सकती है; किन्तु जो कवि अब भी बचे हुए हैं, उनका जीवन शोचनीय दैन्यसे परिपूर्ण है और उन्हींकी बगलमें यन्त्र-वाहन-शक्ति-मदमत्त एक वाहिनी गर्जन करती हुई द्रुत वेगसे आगे बढ़ रही है।

जो मनुष्य यन्त्रोंकी परिचालना कर रहे हैं, वे उनकी निष्प्राण और मृत्युहीन यान्त्रिक शक्तिके सामने अपनेको विलीन कर देते हैं। एक मर्यादा-सम्पन्न व्यक्तिके लिए अकपट भावसे जीवनका आस्वाद ग्रहण करना बिलकुल आरामका व्यापार-मात्र है। इस प्रकारका जीवनास्वाद होता है पारिवारिक विषयमें मनोयोग देना, सामोंमें भ्रमण, खेल-कूदकी चर्चा, मनुष्य-सुलभ मृदु हास और

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

बच्चोंको लेकर आमोद-आह्लाद। आधुनिक कालके नेतृस्थानीय व्यक्ति जब मनुष्यका रूप ग्रहण करते हैं, तो ऐसा लगता है, मानो जीवनके प्रति उनके हृदयमें अनुकम्पा उत्पन्न हुई है। वे वस्तुतः यन्त्र-युगके ऋषि हैं। हम इस बातको नहीं समझ सकते। कारण, ऋषि-मुनियोंके पार्थिव सम्पद्का उपभोग करनेकी बात हम सोच ही नहीं सकते। असलमें ये हैं ऋषि-मुनि ही; पर विपरीत रूपमें। ये हैं वस्तुवादी ऋषि। व्यावहारिक जगत् ही इनका क्षेत्र है। इन्होंने आध्यात्मिक विषयोंसे अपना सम्पूर्ण सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया है, यही इनकी तपस्या है।

वस्तु-स्थितिको ठीक तरहसे समझनेके लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि आजके समाज-जीवनमें काव्यकी सार्थकताको कोई स्वीकार नहीं करता; यद्यपि काव्यके सम्बन्धमें इस समय भी कोई-कोई उच्छ्वास प्रकट करते हैं, जिस प्रकार फूल, पक्षी और देहको लेकर कोई-कोई करते हैं। पेशेके हिसाबसे काव्य अन्यान्य ललित-कलाओंकी तरह किसी एक 'काम'के अन्तर्गत नहीं आता, और हमारे लिए कार्य ही एकमात्र बड़ा गुण होता है, जिसे हम सार्वजनिक मर्यादा प्रदान कर सकते हैं। कार्यका लक्ष्य एवं प्रकृति चाहे कुछ भी हो, हम एक महत् गुण समझकर ही उसका समादर करते हैं। जर्मनोंने जब फ्रान्सपर अधिकार किया था और जब फ़ाशिस्तोंने सफलता प्राप्त की थी, तो उनके समर्थकोंने उनके कर्मोद्यमकी ओर सर्वसाधारणकी दृष्टि आकर्षित की थी। उनके कार्यको सर्वजन-स्वीकृति-योग्य विश्व-धर्मके रूपमें समझा गया। आजकल यदि कोई कार्य नहीं करता, तो वह समादर नहीं पाता और स्वयं भी अपनेको समादर-योग्य नहीं समझता। वह चाहे कुछ भी करे; पर जब तक वह कार्य नहीं करता, उसे स्वयं अपने-आपपर घृणा उत्पन्न होती है। कर्महीन व्यक्ति बेकार निम्नश्रेणीके लोग होते हैं, या अवहेलित, जघन्य उच्चश्रेणीके धनिकोंके आश्रित आत्मीय-स्वजन, जिनकी बात कोई मनमें धारण तक नहीं करता। साधारणतः कर्म-क्लान्त जीवनके अवसानको हम एक महान् मृत्यु समझकर उसके प्रति श्रद्धा-भाव प्रकट करते हैं। जब कोई व्यवसायी अपने कार्यसे अवसर ग्रहण करनेके बाद मृत्युको प्राप्त होता है, तो यह मृत्यु श्रेष्ठ समझी जाती है। कारण, 'बिना कार्य किए वह जीवित नहीं रह सकता था।'

कविता कोई कार्य नहीं है। इसके दो कारण है—पहला तो यह कि टेनिसन, ब्राउनिंग आदिको छोड़कर यदि विचार करें, तो मालूम होगा कि कविता लिखनेका कोई निर्दिष्ट समय नहीं होता और दूसरा यह कि कविता पढ़ना भी कोई 'काम' नहीं कहा जा सकता। जो लोग नियमित रूपसे कार्य करते हैं, वे यह कहते सुने जाते हैं—'कई वर्षोंसे मुझे पुस्तक पढ़नेका समय नहीं मिला।' इस प्रकारका कथन श्रेष्ठ योग्यता-अर्जनका एक लक्षण माना जाता है। वस्तुतः उनके कहनेका अभिप्राय यह होता है: मैं इस समय कुछ पढ़ता-लिखता नहीं, कारण मेरे पास इस समय अनेक आवश्यक कार्य हैं। जब हम यह सोचते हैं कि ये आवश्यक कार्य कौन-से हैं, तो वर्त्तमान युगका उज्ज्वल चित्र हमारे मानस-चक्षुके सामने प्रस्फुटित हो उठता है।

समालोचकोंके मुखसे समय-समयपर अभियोग सुना जाता है कि आधुनिक कविता कैशोरोचित गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है। ऐसा होगा ही। कारण, किशोर-सुलभ वर्द्धनशीलताका अर्थ ही होता है क्रमशः समयके साथ, युग-धर्म एवं युगकी रीति-नीतिके साथ, सामंजस्य रखते हुए चलना। विद्रोहीकी तरह युग-धर्मसे अपनेको बाहर रखना इसका अर्थ नहीं है। इस समयके जो परिणत वयस्क हैं, उन्होंने अवश्य ही समस्त मानविकताको पीछे छोड़कर वर्त्तमान कालकी रीति-नीतिके साथ मेल स्थापित कर लिया है। जो लोग प्रेमकी स्वाधीनता, उन्मुक्त वातावरण, खुला मैदान, ललित-कला आदिके लिए चीत्कार करते हैं, वे सब विद्रोही हैं, इसलिए वे सब तारुण्य-लक्ष्ययुक्त हैं—वे सब अपने यौवनको उस अवस्थाके बीचसे होकर ले चल रहे हैं, जब मनुष्य परिवारिक कर्त्तव्यके विरुद्ध विद्रोह करता है। कभी-कभी अवश्य उनका यह विद्रोह वस्तुवादके विपरीत एक प्रतिक्रियाशील आन्दोलनका रूप ग्रहण करता है। सम्भवतः यह कहना यथार्थ होगा कि परिणत शिल्पी एवं कवि वे ही समझे जाते हैं, जिनकी सृष्टिकी सार्थकताको वर्त्तमान समाजके मुखियाओंने स्वीकार कर लिया है।

इससे पाठकोंके मनमें यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि मैं उपहासके छलसे यह इशारा कर रहा हूँ कि काव्यमय जीवनकी प्रयोजनीयता ही सत्य है और प्रभावशाली धनी व्यक्तियोंके जीवनकी वास्तविकता घृणाके योग्य है। इसका अर्थ होगा आजकलके जीवनकी मूल धाराओंने जो आकृति ग्रहण की है, उसको उपेक्षा करना। यदि हम समग्र जीवनको काव्यके रूपमें ग्रहण करें, जिसमें मानवताको जीवित रखनेकी वास्तविकताका उल्लेख किया जाता है, तो हम देखेंगे कि काव्यका बहुलांश एक प्रकारकी द्वन्द्वमूलक नीतिकी ही घोषणा करता है। और यदि हम यह मान लें कि कविका काम होता है जीवन-काव्यको कथा-काव्यमें और सामयिक जीवनको चिरन्तन जीवनमें रूपान्तरित करना, तो विगत युगोंकी अपेक्षितामें आजकलकी वास्तव सफलता, रीति-नीति, घटनावली आदिका तात्पर्य क्या है, इसे उपलब्धकर उसे अवश्य काव्यका रूप देना होगा। वर्त्तमान युगकी पाशविकता एवं कुरूपताकी ओरसे आँख मूँदकर आजकल जो काव्य-रचना हो रही है, उसका स्पष्ट अर्थ है जो बहुत पहले काव्यका रूप ग्रहण कर चुका है, उसी ओर लौट चलना और वर्त्तमान युगके, इसलिए सब समयके, जीवनके तीन-चौथाई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भागको अज्ञताके आवरणसे ढँक रखना। कारण, आजके जीवनने जो आकृति ग्रहण की है, उसमें ही अतीत एवं भविष्यका रूप प्रतिफलित हो रहा है। हम उसे पसन्द करें या न करें, हमें उसे जानना ही होगा।

इसलिए जो सब देवता वर्त्तमान समाजके आराध्य हैं, जो सब विश्वास आजके समाजको प्रेरित एवं परिचालित कर रहे हैं और काव्यको समाज जिस दृष्टिसे देखता है, उसका परिचय देना आवश्यक है। व्यक्तिगत जीवनमें अधिकांश मनुष्य अर्थ एवं साफल्यके उपासक होते हैं; किन्तु सामाजिक जीवनमें वे यश एवं प्रतिष्ठाके भक्त होते हैं। यह प्रतिष्ठा व्यक्तिके संकल्पके प्रतीक-रूप या जीवनादर्शमें शृंखला लानेके रूपमें नहीं, बल्कि उसके निजके आकर्षणसे ही लोभनीय होती है। एक दल निर्मम देवताके अस्तित्वमें विश्वास करता है। यह है अर्थनीतिक शक्ति-समष्टि, अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य-प्रतियोगिता आदि। यही दल युद्ध-विग्रह, समृद्धि, अर्थ-संकट और विप्लवका आवाहन करता है।

आर्थिक शक्ति-समूहपर जिन लोगोंका नियन्त्रण होता है, उनके स्वार्थोंका समुचित रूपमें बँटवारा करनेके लिए कोई-कोई युद्धमें विश्वास करते हैं। ये विद्रोही देवता होते हैं समाजके निपीड़ित श्रेणी-स्वार्थके प्रतीक। सारांश यह कि आजकलके राजनीतिक चेतना-सम्पन्न मनुष्य अपनी कर्मक्षमतापर विश्वास रखते हुए भी पहलेकी तरह इस समय भी अतिमानवीय शक्ति-समूहके भावी नियन्त्रणपर विश्वास रखते हैं।

जीवनका मूल्य आज मृतवत् हो रहा है। जड़ यन्त्र आजके मनुष्यके ऊपर शासन कर रहे हैं। अन्ध प्रतियोगिता और आसुरिक शक्तिके नियमानुसार ही वर्त्तमान समाज चल रहा है। इस प्रकारकी घोषणा कोई-कोई कवि सम्भवतः कर सकते हैं। इस प्रकारका कथन कुछ अद्भुत-जैसा प्रतीत होगा। इसका अर्थ यह होता है कि आजका मनुष्य मनुष्य न होकर एक यन्त्र एवं प्रचलित प्रथाका अंश-मात्र बन गया है। आजका मनुष्य अतीत के जीवनको खो चुका है। किन्तु अद्भुत लगनेपर भी आज-कलके बहुतसे मनुष्योंने इस बातको कार्यतः सत्य-रूपमें स्वीकार कर लिया है, या इस प्रकारकी आशंका करते हैं। उन्होंने निश्चित रूपमें मान लिया है कि यन्त्रोंके प्रकोपसे जीवन निःशेष हो गया है, अन्ध आर्थिक स्वार्थने जीवनके समस्त मूल्यको बहिष्कृत कर दिया है और मनुष्यके लिए इस समय एकमात्र उपाय रह गया है यन्त्रोंके बीच अपनेको विलीन कर देना।

जो जीवनके क्षेत्रमें अभी नवागत हैं, उन तरुणोंके जीवनका यदि पर्यवेक्षण किया जाय, तो एक बात दृष्टिगत हुए बिना न रहेगी कि जो वस्तुएँ जीवनमें सबसे बढ़कर जीवन्त होती हैं, उनका इन्होंने वर्जन किया है। विशेषकर युद्ध-कालमें जब अतीतके मूल्य तथा मान्यताओंपर विश्वास करना कठिन हो जाता है, तो यह बात अचानक दिखाई पड़ती है। मनुष्यके प्रति मनुष्यके प्रेम-स्नेहके आदान-प्रदानमें प्रचलित समाज-परिस्थितिको प्रतिबन्धक समझकर जिन तरुणोंने उसके प्रति विद्रोह किया है, उन्होंने ही शोचनीय पराजयके बीच सुस्पष्ट रूपमें यह स्वीकार कर लिया है कि इस जगत्में धन और सफलता-प्राप्तिसे बढ़कर और कोई जीवनादर्श नहीं है।

बड़े-बड़े कर्मवीरोंका मूलधन और बन्दूकके कुन्दोंके बलपर अर्जित उनका साफल्य, उनका वास्तविक राजनीतिको विकृत करनेवाला अद्भुत यन्त्र, उनका प्रोपेगेण्डा, उनका प्रचार-पत्र, उनकी स्वेच्छाचारी नीति, जिसका प्रयोग वे अपनी परिस्थितिको अपने अनुकूल बनानेके लिए करते हैं—इन सबका प्रभाव इतने गम्भीर रूपमें हमारे नैतिक जीवनपर पड़ा है कि इस क्षेत्रमें यदि कोई व्यक्ति इनको चरम सत्य-रूपमें स्वीकार कर ले, तो अवश्य ही उसका दोष क्षमा-योग्य समझा जायगा। राजनीति, समाचारपत्र और विज्ञापनोंके बुद्धिमान संचालक इस बातको बखूबी जानते हैं कि उन्होंने मिथ्याका व्यापार खोल रखा है। वस्तुतः इस प्रकारका कार्यक्रम ही उनके जीवनादर्शका एक गुरुत्वपूर्ण अंश हो रहा है। जो लोग वर्त्तमान युगकी हलचलोंके बीच अपने जीवनके रहस्यको आविष्कार नहीं करते, उनके प्रति ये व्यक्ति मन-ही-मन एक प्रकारका घृणा-भाव पोषण करते हैं। एक आदर्शवान् रागी युवक फ्लीट स्ट्रीटमें कई सप्ताहके विचरणके बाद किस प्रकार सनसनी पैदा करनेवाला आत्म-विश्वासी बन जाता है, इसपर ध्यान देनेसे आश्चर्य होता है। इस प्रकारका युवक मिथ्या भाषण करना और दूसरेको येनकेनप्रकारेण दबाकर उसके ऊपरसे अपने जीवन-रथको द्रुत गतिसे अग्रसर करना ही जीवनका चरम सत्य मानता है।

चाहे जो-कुछ हो, इनके विरुद्ध प्रचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है। कारण, हम इनके न्याय-प्राप्यको स्वीकार करते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि वर्त्तमान हलचलोंके बीच सत्यको भूलकर मिथ्याको ग्रहण करना दुर्नीतिको प्रश्रय देना है। इसका परिणाम आगे चलकर होता है फ़ाशिज़्मका उदय और उसके आनुषंगिक-स्वरूप गण-हत्या। फिर भी आजके दुर्नीतिपरायण पत्रकारों और राजनीतिज्ञोंका समर्थन करनेके लिए बहुत-कुछ है। जिस धारामें उनका जीवन-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है, वे उसी धाराके प्रतीक हैं। और जो-कुछ हो, उच्च मनका कपट-प्रकाश उनमें नहीं है। वे जो मिथ्या भाषण करते हैं, उसमें भी किसी प्रकार की भणिता नहीं होती। वर्त्तमान कालका जो सत्य (असलमें जो मिथ्या) है, उसके साथ अपनेको मिला देनेके लिए वे एक प्रकारसे लापरवाह ढंगको बहादुरीका भाव प्रकट करते हैं। न्याय-संगत भावसे ही वे अनेक उच्चमना एवं कवि-भावापन्न व्यक्तियों को भण्ड, अधःपतित, मूर्ख और यन्त्रवत् समझते हैं। उनमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

कम-से-कम इतनी सान्त्वना अवश्य होती है कि उनका दाहिना हाथ जो-कुछ करता है, बाएँ हाथको भी उसकी जानकारी रहती है। अपनी परिष्कृत मिथ्याचारिता एवं संसारमें उन्नति करनेकी पाशविक इच्छाकी न्याय्यताके सम्बन्धमें उनका विश्वास अकपट होता है। उनमें त्रुटि यही होती है कि वे नहीं समझते कि कठिन मिथ्याके अन्तरालमें सत्यका अक्षय मर्मस्थल छिपा हुआ है।

दृश्यमान सभी वस्तुओंके अन्तरालमें जीवनका जो विश्वजनीन सत्य निहित है, यह विश्वास ही एक सच्चे कविको सत्-काव्य लिखनेमें समर्थ करता है। मृत्युको काव्य-वस्तुके रूपमें अतिरिक्त भावसे व्यवहृत करनेके लिए आधुनिक कविताको अभियुक्त किया जाता है। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि मृत्युको काव्यका विषय बनाए बिना कोई उपाय नहीं है। इसका अर्थ है परिस्थितिको स्वीकार करना और जीवन-मृत्युका पार्थक्य तथा जीवनकी वास्तविकताको दृढ़तापूर्वक घोषित करना। इलियटकी यह पंक्ति 'What is life? Life is death.' अर्थात् 'जीवन क्या है? जीवन मृत्यु है।' इस विपरीत अर्थका भी द्योतक है—'What is death? Death is life.' अर्थात् 'मृत्यु क्या है? मृत्यु जीवन है।'

वस्तुतः ये दो सूत्र ही वर्त्तमान सभ्यताके प्रति आधुनिक कवियोंकी दृष्टिभंगीके मूल कारण हैं। कवि जिस जगत्को अपने चतुर्दिक देखता है, वहाँ इस प्रकारकी शक्तिकी क्रिया चल रही है, जिसने जीवनको एक प्रकारकी मृत्युमें, यान्त्रिक नियम द्वारा परिचालित एक प्रकारकी निर्मम पद्धतिमें, परिणत कर दिया है। मनुष्यके सामने आज केवल दो ही मार्ग खुले हुए हैं—मृत्यु और दुर्नीति। आधुनिक कविताने दुर्नीतिकी अवश्यम्भाविकताको स्वीकार कर लिया है, और दुर्नीतिसे परे जो निष्पाप सत्य है, उसके आविष्कारकी चेष्टा कर रही है। इसलिए आधुनिक काव्य की मूल बात यह है कि वर्त्तमान सभ्यता मृत्युमुखी सभ्यता है। इस तथ्यको कविने केवल स्वीकार ही नहीं कर लिया है, बल्कि इस वास्तविकतासे उसने अपनेको जकड़ भी रखा है। कारण, वस्तुतः आधुनिक सभ्यताके यन्त्रोंने और किसी वस्तुकी अपेक्षा मृत्युकी ही अधिक परिमाणमें सृष्टि की है।

यन्त्रसे आभास तो यही होता है कि यह मृत्यु नहीं है; किन्तु रणक्षेत्रको उसने मृत देहोंसे आच्छन्न कर दिया है। इस यन्त्रने ही हमें मृत्युके सम्मुख ला खड़ा किया है। यदि हमने मृत्युको काव्यकी विषय-वस्तुके रूपमें दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, तो जीवनको भी यही किया है। इलियटके काव्यमें मृत्युके जय-गानने हमारी दृष्टिके सामने अतीत जीवनका प्रतिरूप उपस्थित किया है।

आधुनिक कवि गतानुगतिक, आधुनिक, विप्लवी आदि विभिन्न श्रेणियोंमें विभक्त किए जाते हैं। वे न्यूनाधिक रूपमें परस्पर-विरोधी भी हैं। फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि आजकलके समस्त कवि एक ही परिस्थितिके बीच मनुष्य होकर एक ही व्रतके व्रती हो रहे हैं। हाँ, उनकी दृष्टि-भंगी अवश्य पृथक्-पृथक् है। सच्चे कवि समसामयिक जीवनकी भंगिमामें विश्व-मानवके चरित्रका ही विश्लेषण कर रहे हैं और उनका विश्लेषण परस्पर परिपूरक है। आधुनिक कालके कतिपय श्रेष्ठ जीवित कवियोंको चाहे जिस कोटिमें रखा जाय, उन्होंने एक साथ मिलकर वर्त्तमान धनतान्त्रिक सभ्यताके विरुद्ध विद्रोह-घोषणा की है, इस विषयमें सन्देह नहीं। उनके भिन्न-भिन्न धरातल विद्रोहके विभिन्न रूपोंके परिचायक हैं। राजनीतिक अर्थमें न होनेपर भी इस अर्थमें आधुनिक कवियोंको हम विप्लवी कह सकते हैं।*

* स्टिफेन स्पेण्डरके एक लेखका भावानुवाद।

गीत

श्री 'वीरात्मा'

रुनझुन - रुनझुन जब आती हो;
प्राणोंमें लय भर जाती हो!
जगता या सोता हूँ तब मैं, तुम्हें छोड़कर कौन बताए?
हँसता या रोता हूँ यह भी, अधर बताए, आँख बताए?
नज़रें नज़रोंसे माती हो—
जातीं, रुनझुन जब आती हो!
छल है, या सचमुच ही जीका चित्र खींच जाती हो?
तुम्हीं दीखती हो, जग - हित ये आँख मींच जाती हो!
क्या टोना - सा कर जाती हो?
रुनझुन - रुनझुन जब आती हो!
उजड़ी क्यारीमें मतवाला सौरभ भर जाती हो!
पग - पगसे पँखुड़ी गुलाबकी मानो झर जाती हो!
रुनझुन - रुनझुन जब आती हो!

× × ×

जल उठता है दीपक चमचम मेरे सूने घरमें;
भर लाती हो स्नेह जभी तुम अपने नेत्र-मदिरमें।
बिजली - सी कौंधा जाती हो;
रुनझुन - रुनझुन जब आती हो!
शील-लाज प्रहरी यौवनके, ज़रा सदय हो जाना;
आँखोंसे हट क्षण - भर ही को पलकोंमें सो जाना।
कानोंमें जब मदमाती हो;
रुनझुन - रुनझुन ध्वनि आती हो!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रजातन्त्र और वर्ण-भेद

श्री सन्तराम, बी० ए०

क्या सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे और क्या प्रवृत्तियोंकी दृष्टिसे प्रजातन्त्र और जाति-भेदमें बड़ा भारी वैपरीत्य है। दोनों पद्धतियोंके आदर्शों, अन्तरों, रीतियों और सामाजिक जीवनपर उनके प्रभावोंकी परीक्षा करनेके पूर्व यह बताना परम आवश्यक है कि प्रजातन्त्र कहते किसे हैं। यहाँ हमारा सम्बन्ध उन आदर्शों एवं सिद्धान्तोंसे है, जिनपर समाजकी प्रजातन्त्र-धारणा आधारित है, उन संस्थाओंसे नहीं—चाहे वे पार्लमेण्टरी, फाशिस्त या सोवियत् हों—जिनके द्वारा विभिन्न राष्ट्रोंने उन आदर्शों एवं सिद्धान्तोंको कार्य-रूपमें परिणत करनेका यत्न किया है।

ऐसे समाजकी भावना, जिसमें सब मनुष्य बराबर और अपनी सरकारके लिए उत्तरदायी हैं, सभी देशोंमें मौजूद रही है। अब यह बात भलीभाँति प्रतिष्ठित हो चुकी है कि एक समय स्वयं भारतमें भी प्रजातन्त्र और गणतन्त्र परम्पराएँ बहुत प्रबल थीं। यूरोपमें प्रजातन्त्र संस्थाओंका विकास ग्रीक और रोमन परम्पराओं में हुआ था; परन्तु ग्रीक और रोमन दोनों अपने-अपने शासक-वर्गोंमें ही प्रजातन्त्री थे, जिस प्रकार भारतमें ब्राह्मण थे। यूरोपमें वर्ग-भेद धीरे-धीरे अन्तर्धान हो गए और उनके राजनीतिक कार्योंके प्रतिनिधि-स्वरूप प्रजातन्त्री समाज एवं राष्ट्र-राज्य क्रमशः प्रधान हुए। इसके विपरीत भारतमें समयके साथ-साथ वर्ग-भेद अधिकाधिक कड़े होते गए। यूरोपमें समाजने विशाल बनकर राज्यकी सारी जनताको अपनेमें ले लिया। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्डमें पहले राजनीतिक समाज केवल उन्हीं प्रधान मुज़ारोंका था, जिनको प्रत्यक्ष रूपसे राजासे भूमि मिली हुई थी। इस समाजको विशाल बनाकर उसमें सभी माफ़ीदारोंको भी सम्मिलित कर दिया गया। इस संस्थाके लचकदार होनेसे समाज प्रगतिशील बना रहा। ये माफ़ीदार और इनके साथ नगरोंके अधिवासी मिलकर राष्ट्र बनाते थे। फिर कालान्तरमें इस संस्था को और भी विशाल कर दिया गया, जिससे १९वीं शताब्दीमें पट्टेदार, इजारेदार और अन्य भी इसके भीतर आ गए। फिर ट्रेड-यूनियन और मज़दूर आन्दोलन प्रकट हुए। यह राष्ट्रके निम्नतम वर्गोंकी दूसरोंके साथ समान अधिकारकी माँग थी। प्रतिनिधित्वके आधारके रूपमें प्राप्त-वयस्कोंको मत-प्रकाशकी क्षमता मिल जानेसे वहाँ समाजका पूर्ण प्रसार हो गया।

एक बड़े विद्वानने प्रजातन्त्रका लक्षण इस प्रकार किया है—'जनताका शासन, जनताके लिए शासन और जनता द्वारा शासन।' 'जनता' शब्दका लक्षण इतिहासके विभिन्न कालोंमें आधारभूत रूपसे परिवर्त्तित होता रहा है। हाल तक 'जनता'में स्त्रियाँ नहीं समझी जाती थीं। दक्षिण-अफ्रीकामें अब भी वहाँके मूल अधिवासियोंको 'जनता' नहीं माना जाता। सोवियत् रूसमें [illegible] वर्गके सिवा किसी दूसरेको राजनीतिक अधिकार नहीं। यही दशा इटलीकी भी है। इन सब परस्पर-विरोधोंके रहते भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कम-से-कम [illegible] रूपमें अब 'जनता' शब्द उन प्राप्त-वयस्क लोगोंके सारे समूह प्रकट करता है, जो अपने और दूसरोंके लिए सोच सकते हैं। इस लक्षणका अब और अधिक विस्तार संभव नहीं।

इसलिए प्रजातन्त्रका पहला स्वतःसिद्ध मत यह है कि राज्य वास्तवमें सारे समाज—जनता—की संगठित शक्तिको [illegible] लाता है। राजनीतिक शक्ति और सामाजिक अधिकार व्यक्ति परिवारों या दलोंमें नहीं, वरन् सामूहिक समाजमें हैं। [illegible] प्रजातन्त्रका अर्थ होगा समाजकी एक ऐसी अवस्था, [illegible] एक ऐसा संगठन, सामाजिक सम्बन्धोंकी एक ऐसी पद्धति, [illegible] किसी भी एक व्यक्तिको अपने दूसरे मनुष्य-बन्धुओंपर कोई [illegible] जात अधिकार नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'जनताका [illegible] प्रजातन्त्रके लक्षणके रूपमें केवल आंशिक सत्य है। प्रजा [illegible] इससे कुछ अधिक चीज़ है। प्रजातन्त्र इस मूलभूत एवं [illegible] नीय सिद्धान्तकी अनुभूति है कि मनुष्य अपने-आपमें एक [illegible] फल है और समाजके संगठनका मौलिक सिद्धान्त मनुष्य [illegible] समष्टिके रूपमें समाजमें अधिक-से-अधिक गतिशक्तिको, [illegible] मनुष्यपर एक व्यक्तिके रूपमें कम-से-कम रुकावटके साथ, [illegible] करना।

इस सत्यको भलीभाँति स्वीकार कर लेनेके बाद, जो प्र [illegible] तन्त्रका आधार है, मानवी समताका भाव बिल्कुल स्पष्ट [illegible] जायगा। सब मनुष्य बराबर हैं। यह कोई नवीन सिद्धान्त नहीं [illegible] है। मानवी विचारके आरम्भसे ही यह किसी-न-किसी रूप [illegible] सब धार्मिक मतोंमें प्रकट होता रहा है। महान विचारक रूसो [illegible] मत था कि मानवी विषमता सभ्यताका परिणाम है। समता [illegible] सिद्धान्तको एक महान सिद्धान्तके रूपमें, जिसपर सामाजिक [illegible] प्रगतिके सभी विचारोंका आधार है, प्रतिपादित करनेका श्रेय [illegible] रूसोको ही है। वास्तवमें रूसो आधुनिक प्रजातन्त्रका जनक है।

समताके शत्रु अब तक भी हैं। इसके सस्ते समालोचक [illegible] हैं कि यह प्रबलोंके विशेषाधिकार लेनेकी दुर्बलोंकी चिल्लाहट है। [illegible] वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि समता शारीरिक रूपसे असम्भव है, [illegible] क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजोंका, देश-परम्पराका, पारि [illegible] स्थिक अवस्थाओं और सहज गुणोंका परिणाम-मात्र होता है। [illegible] फिर कई दूसरे कहते हैं कि व्यक्तियों, राष्ट्रों और जातियों [illegible] असमता इतनी अधिक है कि समताका विचार—यदि समता [illegible] अर्थ यह है कि मनुष्य समान योग्यता या समान चरित्रवाले [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या उनको ऐसा होना चाहिए—स्पष्ट रूपसे न्याय-विरुद्ध है। इन प्रत्यक्ष सचाइयोंसे किसीको इन्कार नहीं। मानवी समताका विचार लौकिक गुणाधिकार, चरित्र और उन सब असंख्य हेतुओं की महत्तासे इन्कार नहीं करता, जो मनुष्यके जीवनको ढालते हैं। यह तो केवल इस बातपर बल देता है कि यदि मानव-समाजको अपना पूर्णतम विकास करना है, तो प्रत्येक मनुष्यका आत्मगत निर्धारित मूल्य एक-सा है या एक-सा होना चाहिए। यह वर्गों, उपवर्गों और व्यवसायोंकी असमताको, जन्म या अपरिवर्त्तनीय धन्धोंपर आधारित असमताको, स्वीकार करनेसे इन्कार करता है। प्रजातन्त्र जिस बातको दृढ़तापूर्वक कहता है, वह अधिकारों, विशेष सुविधाओं और सुयोगोंकी समता है, प्रतिभा या चरित्रकी समता नहीं।

प्रजातन्त्री आदर्शोंका महान कूटतार्किक नेपोलियन समताका लक्षण प्रतिभाके लिए खुला अवसर या व्यवसाय बताता है; परन्तु यह केवल अर्द्ध-सत्य है। प्रजातन्त्रमें समता प्रतिभाशाली व्यक्तियोंके लिए अवसरके साथ ही समाप्त नहीं हो जाती। अधिक महत्त्वपूर्ण और राष्ट्रीय चरित्रपर बहुत बड़ा प्रभाव रखनेवाला राजनीतिक अधिकारों और वैध स्थितिका सिद्धान्त है। कुछ मनुष्योंके जीवनका मूल्य अधिक और कुछका कम लगाना अनिवार्य रूपसे उन लोगोंको पतित कर देता है, जिनके जीवनका मूल्य कम समझा जाता है। यह वह सिद्धान्त है, जिसके प्रजातन्त्र असन्धेय रूपसे विरुद्ध है।

कोई भी व्यवसाय करनेकी स्वतन्त्रता और फलतः व्यवसाय पर आधारित पद-मर्यादाके विचारका प्रबल प्रतिवाद समताके सिद्धान्तसे उत्पन्न होनेवाला प्रजातन्त्री समाजका एक दूसरा नियम है। व्यवसायों और राजनीतिक अधिकारोंमें सम्बन्ध सभी प्रजातन्त्री समाजमें पाया जाता है। जहाँ धनाढ्य लोगोंका शासन है, वहाँ सम्पत्ति शक्ति है। यही मत उन लोगों द्वारा अधिक युक्तियुक्त रूपमें उपस्थित किया जाता है, जो आधुनिक धनिकतन्त्र समाजोंमें निहित हितोंवालोंके पक्षमें युक्ति देते हैं। यह सब धन रखनेवाले वर्गोंकी श्रेष्ठता और फलतः व्यवसायोंके मूल्योंमें उस स्थिति या धनकी मात्राके अनुसार, जो उन व्यवसायोंसे प्राप्त होता है, क्रम-विन्यासको सूचित करता है। प्रजातन्त्र राज्य इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता। यह व्यवसायपर आधारित वर्गके विचारोंको अस्वीकार करता है। इस प्रकार यहाँ भी यह जाति-भेदका विरोधी है।

तब प्रजातन्त्र समाजका एक ऐसा संगठन है, जिसमें सारी शक्ति—क्या राजनीतिक और क्या दूसरी—'समाजकी अखण्ड समष्टि'के हाथमें रहती है। समता इसका प्रधान सिद्धान्त है। इसके प्रमुख नियमोंका आधार यह निश्चित नैतिक सूत्र है कि प्रत्येक मनुष्य अपने-आपमें चरम फल है और राज्य स्वयं वहीं तक वांछनीय है, जहाँ तक वह व्यक्तिको आत्मानुभूतिका सर्वोत्तम अवसर देता है। यह जन्म या सम्पत्तिपर आधारित किसी भेदके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता। यह सब मनुष्योंको समान अवसर देनेके पक्षमें है। इसकी प्रधान सामाजिक प्रवृत्ति समूहोंकी रुकावटोंको तोड़कर प्रगति करते हुए उनको अधिक बड़े समाजमें परिणत कर देना है।

प्रजातन्त्र-पद्धति, दूसरी पद्धतियोंके सदृश्य, अपनी धर्म एवं शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों द्वारा कार्य करती है। चूँकि राज्य समाजको सम्पूर्ण समष्टिसे अभिज्ञ होता है, इसलिए प्रजातन्त्रका शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श जाति-भेदसे पूर्णतः भिन्न है। प्रजातन्त्र निःशुल्क, अनिवार्य और सार्वभौमिक शिक्षा, समान सुविधाओं, सदोष व्यक्तियोंके लिए विशेष ट्रेनिंग और कम समझदारोंपर अधिक मनोयोग देनेके पक्षमें है।' यह किसी भी प्रकारकी वर्ग-शिक्षा या शिक्षाकी किसी ऐसी पद्धतिको स्वीकार नहीं करता, जो पद-मर्यादापर आधारित आत्मीयताको उत्साहित करती हो। इसके विपरीत वर्ण-भेदका आदर्श शिक्षाको विशेष वर्णों तक रखना और उनमें अपने वर्णकी श्रेष्ठताकी चेतनाको विकसित करना है। वर्ण-व्यवस्थामें शूद्रों और स्त्रियोंके लिए ज्ञानका निषेध है। यह शिक्षाका इजारा केवल एक विशेष वर्णको ही सौंपती है।

अपनी धर्म-सम्बन्धी नीतिमें भी प्रजातन्त्र-पद्धति पुरोहितके प्रभावके विरुद्ध है; क्योंकि सत्य केवल एक ही धर्म तक सीमित नहीं, और संसारमें अनेक धर्म हैं और रहेंगे, इसलिए प्रजातन्त्र की प्रवृत्ति सदा लौकिक होनेकी ओर रहती है। इसके पुरोहितके प्रभावके विरुद्ध आक्रमणको बहुधा धर्मपर आक्रमण समझ लिया जाता है। जहाँ प्रतिष्ठित धर्म दूसरे धर्मोंके प्रति सहिष्णुता और मतकी स्वतन्त्रताकी अनुमति नहीं देते और जहाँ पुरोहितोंने लौकिक अधिकारोंको भी हथिया रखा है, वहाँ प्रजातन्त्रको उनका विरोध करना पड़ता है। चूँकि प्रजातन्त्रका आदर्श प्रत्येक व्यक्तिको उसके स्वतन्त्र विकासके लिए, स्वतन्त्र रखना है, इसलिए व्यक्तिगत धर्ममें हस्तक्षेप करना इसके आधारभूत सिद्धान्तोंके विरुद्ध है। वर्ण-भेद अपनेको धर्मपर आधारित करता है और पुरोहितशाहीके प्रभावको बढ़ानेमें प्रवृत्त है, इसलिए यह प्रजातन्त्रके सर्वथा विपरीत है।

प्रजातन्त्र शासन-पद्धतिके परिणाम क्या हैं? प्रजातन्त्री संस्थाओंके कार्योंने अनेक परिणाम उत्पन्न किए हैं, जिनमें से कुछकी ही पहलेसे सम्भावना थी। प्रजातन्त्रके समर्थक पहलेसे इसके शिक्षादायक मूल्यपर बल देते आए हैं। मिल महाशयके शब्दोंमें प्रजातन्त्र राज्य 'राष्ट्रीय शिक्षाका साधन' है। किसी राजनीतिक संस्थाके सम्बन्धमें पहला प्रश्न यह है कि वह अपने समाजके सदस्योंमें विविध वांछनीय नैतिक और मानसिक गुणोंको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहाँ तक उत्पन्न करती है। प्रजातन्त्र, समाजके सामूहिक उत्तरदायित्वके रूपमें, निस्सन्देह सामाजिक उत्तरदायित्वके विचार, पारस्परिक हित और एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यपर निर्भरताका विकास करता है। चूँकि मनुष्यको दूसरे मनुष्योंके मामलोंका वहाँ तक फैसला करनेका अधिकार होता है, जहाँ तक कि दूसरों को उसके मामलोंमें फैसला करनेका है, इसलिए प्रजातन्त्रमें व्यक्तिमें सामान्य कल्याणकी अधिक बुद्धि विकसित होती है। उसे अनुभव हो जाता है कि व्यक्तिगत स्वाधीनता सामाजिक संगठन द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। इससे उसके अपने सामाजिक बन्धनोंके सच्चे नियम सम्यक रूपसे उसकी समझमें आ जाते हैं। दूसरी जगह इन बन्धनोंका आधार या तो धर्मकी व्यवस्था या भय होता है, जैसाकि जाति-भेदकी दशामें, या समूहोंका जैसा कि धनिकतन्त्र शासन-पद्धतिमें, या राजाका जैसा कि राजतन्त्रमें। इस प्रकार प्रजातन्त्र शासन-पद्धतिका पहला परिणाम आत्म-सम्मान और किसी विशेष वर्गसे भिन्न सम्पूर्ण जनतामें उत्तरदायित्वके भावका विकास है।

प्रजातन्त्री आदर्शका दूसरा और समान रूपसे महत्त्वपूर्ण परिणाम विभिन्नताकी उन बाड़ोंको तोड़ डालनेकी प्रबल प्रवृत्ति है, 'जिन्होंने संकीर्ण घरेलू दीवारोंसे संसारको टुकड़े-टुकड़े कर डाला है।' यह अपने कार्य-क्षेत्रको सदा प्रसारित करता है, जिससे वंश और राष्ट्रके क्षुद्र विभाग मिटते जायँ। यूरोपमें जिस अन्तर्राष्ट्रीय भावनाका विकास हुआ है, प्रजातन्त्रका ही परिणाम है।

प्रजातन्त्र सत्यकी अनुभूति है। अब इसके विषयमें [illegible] करना उतना ही निष्प्रयोजन है, जितना कि बिजली या [illegible] यानके लाभके विषयमें सन्देह करना। वास्तविक आचरणमें कई त्रुटियाँ हो सकती हैं और उनपर आपत्ति करना [illegible] भी हो सकता है; परन्तु इसके उद्देशके साथ उनका [illegible] सम्बन्ध नहीं। यह निस्सन्देह सत्य है कि कार्यतः प्रजातन्त्र [illegible] आदर्शोंमें बहुत पीछे है। यहाँ हमारा सम्बन्ध दो परस्पर-विरोधी संस्थाओंके सिद्धान्तके साथ है—वर्ण-भेदके सिद्धान्तकी प्रजातन्त्रके सिद्धान्तके साथ तुलना करना। यह निस्सन्देह सत्य है कि प्रजातन्त्रके सदृश्य जाति-भेद भी विशेष विचारोंको ही प्रकट करता है। वे कितने अधूरे तौरपर कार्यान्वित हो पाए हैं, यह बात इन आदर्शोंके नैतिक मूल्यके सम्बन्धमें न तो हमारे विचार परिवर्त्तित कर सकती है और न उनके परिणामोंके [illegible] तखमीनेपर ही कोई असर डाल सकती है।

वह नारी है, वह माँ है!

डा० देवराज

वह नारी है, वह माँ है!

भीगा-सा उसका अन्तस्तल
पग उसके कुछ चंचल - चंचल
आँखोंमें कोमल स्नेह-ज्योति, चेहरेपर मृदुल उल्लास विमल
नह नारी है, वह माँ है!
जब पकड़-पकड़ उसका आँचल
आँगनमें शिशु चलता टलमल
गृह-पवन थिरक उठता, उठती उसके उरमें हिलोर उच्छल
वह नारी है, वह माँ है!
जलमें भीगा, मिट्टीमें सन
करता है वह जब नटखटपन
वह खीझ-भरी क्या-क्या कहती, करतीं पर आँखें मधु-वर्षण
वह नारी है, वह माँ है!
कुर्सीपर पुस्तक ले बैठा
पढ़ता कुछ क्षण गम्भीर बना;
पीछे कर बाँधे कभी टहल
वह पूज्य पिताकी खूब नक़ल
करता हँस-हँस, सब देख-सुना होती विस्मय-विनोद-विह्वल
वह नारी है, वह माँ है!
दिनमें निशिमें हर पल हर क्षण
मनमें रहता है शिशु शोभन
सोते-सोते सुन लेती है, उसका रोना—दे देती [illegible]
वह नारी है, वह माँ है!
है युद्ध कहीं, औ' क्रान्ति कहीं
वसुधामें घोर अशान्ति,—नहीं
मतलब उसको, वह चुप करती नूतन नरका निर्माण-सृजन
वह नारी है, वह माँ है!
शिशुका हँसना है—विजय-पर्व
शिशुका रोना—संकट अखर्व
शिशुके सुख-दुखमें वह करती संसृतिके सुख-दुखका दर्शन
वह नारी है, वह माँ है!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ : 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

तुलनात्मक भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे अध्यापक बेचरदास जीवराज दोशीकी 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'की गणना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंमें होनी चाहिए, और इसके लिए दोशीजीकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। दोशीजीने अपनी पुस्तकके विषयपर बम्बई-विश्वविद्यालयमें पाँच व्याख्यान दिए थे, जो इसमें संगृहित हैं, और इनमें से केवल पहले 'आमुख'पर ही विचार करनेका यत्न इस लेखमें किया जा रहा है। आधुनिक प्रादेशिक भाषाओंमें इस ढंगकी शायद यह पहली पुस्तक है, जिसमें एक प्रादेशिक भाषाके क्रम-विकासका इतना सांगोपांग और विशद विवेचन किया गया है।

यूरोपियनोंमें पहले जान बीम्सने आधुनिक आर्य-भाषाओंका तुलनात्मक व्याकरण (A Comperative Grammar of the modern Aryan Languages) और बादको डा० हार्नलिने गौड़ीय भाषाओंका तुलनात्मक व्याकरण (A Comperative Grammar of the Gaudian Languages) लिखा। परन्तु देशके लोगोंका बहुत दिनों तक इधर ध्यान ही न गया, और जब गया, तब विशेष रूपसे नहीं। इसलिए बोम्स और हार्नलि ही हमारे शास्त्रकर्त्ता बन गए और हम उनको सुप्रसिद्ध जर्मन प्रोफ़ेसर बाप समझने लगे थे, जो इस शब्द-निर्वचन-शास्त्रके विधाता माने जाते हैं। परन्तु दोशीजीने जो तथ्य हमारे सामने रखे हैं, उनसे तो जान पड़ता है कि बीम्स और हार्नलि लेभग्गू ही थे। तो भी हमें उनको प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने इस विषयपर विचार तो किया। विदेशी और पूर्व-संस्कारग्रस्त होनेके कारण वे इससे अधिक कुछ नहीं कर सकते थे।

इस पुस्तकके विषयमें कुछ लिखनेके पूर्व हम कहना चाहते हैं कि सव्युत्पत्तिक भाषाकोषका हमारी भाषाओंमें बड़ा अभाव है, और प्रादेशिक भाषाओंके विद्वानों और संस्थाओंसे अनुरोध करते हैं कि वे इस ओर ध्यान देनेकी कृपा करें। इससे आठो—सिन्धी, पंजाबी, हिन्दी, बँगला, उड़िया, आसामी, गुजराती और मराठी—भाषाएँ एक-दूसरीके बहुत पास ही न आ जायँगी, बल्कि हमारी राष्ट्रभाषाका प्रश्न बिल्कुल सरल हो जायगा और राष्ट्रभाषा आजकी तरह परीक्षा (experiment)का विषय न रह जायगी। राष्ट्रभाषामें प्रादेशिक भाषाओंके जितने ही परिचित शब्द रहेंगे, उतनी ही उसकी नींव गहरी होगी। लिपियोंके सीखनेका कोई भार न रहेगा। आशा है, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और विशेषकर उसके कर्णधार बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन इस ओर अग्रसर होंगे।

अब प्रस्तुत विषयपर आइए। दोशीजीके इस ग्रन्थमें ६६१ पृष्ठ हैं, जिनमें एक-तिहाई—२१८ पृष्ठोंमें आमुख वा भूमिका ही है। दूसरी विशेषता यह है कि गुजरातीमें पुस्तक होनेपर भी नागराक्षरोंमें छपी है, जिससे वे भी इसका स्वाद ले सकते हैं, जिन्हें गुजराती अक्षर पढ़नेका अभ्यास नहीं है। इसलिए दोशीजी हमारे-जैसे अल्पज्ञोंके धन्यवादके पात्र हैं। इस पुस्तकपर विचार करनेके लिए भी एक पुस्तक ही लिखनी चाहिए; परन्तु यदि युद्ध जारी रहा, तो शायद ऐसा कहना भी कुछ दिनों बाद जुर्म समझा जायगा और माना जायगा कि कागज़ चोरी करनेका लेखकका इरादा है।

यद्यपि दोशीजीने कहा नहीं है, तथापि उनका यह ग्रन्थ अपने विषयका शास्त्र ही समझा जायगा, क्योंकि उन्होंने शब्द-स्वरूपसे विषय उठाया है और उसपर कपिल, गौतम, कणाद आदि ही नहीं, जैन और बौद्ध मतोंका भी उल्लेख करके शब्द और अर्थ, भाषा-भेदके कारण और भाषा-भेद-प्रभेद तथा उच्चारण-भेदसे भाषा-भेद बढ़ना और अशुद्ध उच्चारणको शुद्ध मानकर लोगोंका काम चलाना बताया और इसे समझानेके लिए यास्क और पाणिनिके उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि वेदोंमें भी अनार्य शब्द घुसे हुए हैं। पिक, नेम, सत और तामरस आज संस्कृतके ही शब्द समझे जाते हैं; परन्तु दोशीजी शबर मुनिका प्रमाण देकर कहते हैं कि ये अनार्य वा म्लेच्छ शब्द हैं।

बहुत दिनोंसे इस लेखके लेखककी धारणा थी कि वैदिक भाषा ही आदि भाषा नहीं हो सकती, क्योंकि जब भाषा बहुत परिष्कृत हो चुकती है, तभी उसमें साहित्यकी सृष्टि होती है; इसलिए वेदोंकी भाषाके पहले आदि प्राकृत रही होगी, जिससे प्राकृत और वेद-भाषाएँ हो नहीं, पहलवी और ईरानी आदि भाषाएँ भी निकली होंगी। दोशीजीके इस कथनसे उसकी कुछ पुष्टि होती है कि 'जीवती' वैदिक भाषा और आदिम प्राकृत दोनों एक हो हैं, क्योंकि जीवती वैदिक भाषामें उच्चारणकी व्यवस्था नहीं रह सकती। एक ही शब्दके विविध उच्चारणोंके जो उदाहरण उन्होंने दिए हैं, वे और भी बढ़ाए जा सकते हैं। हस्तका रूप वर्त्तमान फारसीमें दस्त, शुष्कका खुश्क, पृष्ठका पुश्त, अंगुष्ठ का अंगुश्त, अश्वका अस्प, उष्ट्रका उश्तर और शुतर, अभ्रका अब्र इत्यादि होता है।

दोशीजीका यह कथन बड़ा ही कौतूहलवर्द्धक है कि आर्योंके अन्तःपुर तक आदिम जनताका प्रवेश हो गया था, जिसका असर उनकी भाषापर भी पड़ा है। और यह तो और भी विस्मयजनक है कि द्राविड़ी शब्द भी घुस पड़े हैं। द्रविड़-भाषा—शायद तमिल—में चावलको चोर कहते हैं। क्या आश्चर्य कि चोरसे ही हिन्दीमें चावल और बँगलामें चाल शब्द बने हैं। द्राविड़ी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द तो देशके ही हैं और आज भी हम लोग कोई शब्द ले ही लेते हैं, जैसे कांग्रेस द्वारा द्राविड़ी शब्द पण्डाल मण्डपके अर्थमें भारतव्यापी हो गया, यद्यपि यह मण्डप या मण्टप भी संस्कृत शब्द नहीं है। परन्तु आर्य जिसके सम्पर्कमें आए, उसीसे उनका लेने-देन हुआ। फलित ज्योतिषमें जातक और ताजिक मत यहाँ चलते हैं। इनमें होड़ा शब्द ग्रीक या यूनानी 'होरा' है, और ताजिकिस्तानसे आए हुए शब्द इत्थसाल, मुद्दा, मुन्था आदि हैं। इन्हें आज कोई फारसी नहीं समझता।

सम्राट् हर्षके समयमें हुएनसंग नामका एक चीनी यात्री यहाँ आया था। इसने हमारे स्थानों आदिके नामोंके जो उच्चारण किए हैं, उनको एक सूची दोशीजीने दी है, जिसे पढ़कर हमें थाई या सयामी उच्चारणोंको याद आ गई। हमारे शब्दोंमें थाई लोग वर्णके तृतीय अक्षरको द्वितीयसे बदलकर अपना लेते हैं; जैसे, गंगा–खंखा, अम्बर—अम्फर, जम्बुद्वीप—छम्फुथ्वीप, बन्धु–फन्धु, बुद्ध—फुत्थ इत्यादि। वर्णका प्रथम अक्षर जैसे प्राकृतमें तृतीयसे बदल जाता है, वैसे ही थाई भाषामें भी बदलता है; जैसे, चैत्र—जेत, तुषित—दुषित। चतुर्थ वर्णको भी द्वितीयमें बदलते हैं; जैसे, भिक्षु–पिक्खू। तृतीय और चतुर्थ वर्ण भी प्रथम से बदला जाता है; जैसे, गरुड–कख्त, मेघ–मेछ। पंजाबीमें भी लिखनेको भले ही चतुर्थ वर्ण चाहे लिखें, पर बोलते प्रथम ही हैं; जैसे, भाई–पाई, घोड़ा–कोड़ा। कश्मीरीमें 'भ'को 'व' बोलते हैं; जैसे, भगवती–वगवती, भैरव–पैरव। थाई भाषामें 'र'को 'न' से बदल देते हैं; जैसे, रामेश्वर–रामेश्वन। बँगलामें बोल-चालमें 'ल' को 'न' से बदलते हैं; जैसे, पन्नालाल–पन्नानाल, लाऊ–नाऊ। सचमुच इस तरह एक भाषा दूसरी भाषाका जामा पहनती है, इसका शोध बड़ा ही मनोरंजक है। ज्योतिषी शब्द ही लीजिए। यह अपने शुद्ध रूपके सिवा अनेक रूपोंमें अनेक स्थानोंमें पाया जाता है। इसका एक रूप जो अपढ़ लोगोंमें चलता है, वह जोतसी है। कश्मीरीमें जुत्शी और कन्नड़में जोइस, हिन्दीमें जोसी और मराठीमें जोशी और गुजरातीमें शायद दोशी है। हिन्दी-प्रदेशमें अल्मोड़ेमें ही जोशी अच्छे ब्राह्मणोंकी गिनतीमें आते हैं; परन्तु इधर मैदानमें जोसी हीन ब्राह्मण समझे जाते हैं। वे शनिश्चर आदिका दान लेते हैं, और उस दानमें तेल भी दिया जाता है, इसलिए वे तेलिया पण्डा भी कहाते हैं।

अरबी-फारसीके शब्दोंकी शुद्धि किस प्रकार आर्योंने की, इसके कई उदाहरण दोशीजीने दिए हैं; परन्तु सबसे चमत्कारपूर्ण उदाहरण रहमानका है। ऋषभदेवस्तवनका हवाला देकर वे बताते हैं, 'अथ रह त्यागे धातुः—रहति रागद्वेषौ त्यजति इत्येवं शक्तः शक्तिवसास्ताच्छील्येः इति शानड्, आत्, मोन्त णत्वे कृते रहमाण इति रूपं।' इस तरह संसारकी किसी भाषाके शब्दको अपना सिद्ध करनेमें संस्कृत कदाचित् अद्वितीय भाषा है। विस्तार-भ दोशीजीके संगृहीत अधिक उदाहरण नहीं दिए जा सकते।

दोशीजीने इसके उपरान्त व्यापक प्राकृतका उद्भव, शब्दका अर्थ, लौकिक संस्कृतकी घटना और उसका प्रकृ लौकिक संस्कृतका विकार प्राकृत इस मतका खण्डन और की पुष्टिमें पाँच कारण, 'जीवती' वैदिक भाषाका उत्तरकि व्यापक प्राकृतमें है, इसे बतानेको ५१ उदाहरण दिए हैं। व्यापक प्राकृतमें जीवती वैदिक भाषाका प्रतिबिम्ब और 'प्रकृ संस्कृतम्' वाक्यकी संगतता और असंगतता दिखाकर कु जटिल प्रश्नोंका बुद्धिगम्य समाधान विद्वान् व्याख्याताने किया है वर्त्तमान संस्कृतसे प्राकृत निकली है, इस मतका खण्डन करते दोशीजीने अंगरेजी, संस्कृत और गुजरातीके कई शब्दोंके दिखाकर बताया है कि अंगरेजी शब्दोंका संस्कृतसे साम्य है इसका यह अर्थ नहीं है कि अंगरेज़ीसे संस्कृत निकली है, वैसे अंगरेज़ीदांको संस्कृत सिखाना है। इसी प्रकार प्राकृत व्याकर संस्कृतज्ञोंको प्राकृत सिखानेके लिए रचे गए और 'प्रकृ संस्कृतम्' कहा गया। बात भी समझमें आने योग्य है, क्यों प्राकृत व्याकरणोंका वाहन संस्कृत है।

आगे चलकर विद्वान् व्याख्याताने भाषातत्त्व और इतिहा दृष्टिसे विचार करनेके लिए 'प्रकृतिः संस्कृतम्' सिद्धान्तके विरु रुद्रटके टीकाकार श्रीनमि साधुका प्रमाण इस प्रकार उद्धृत कि है—'सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वच व्यापारः भाषानिबन्धन भूते वचनमुच्यते मेघनिर्मुक्तजलमिव ए स्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्करणाच्च समासादि विशेषं सत्संस्कृ द्युत्तरविभेदान् आप्नोति। अतएव शास्त्रकृताप्राकृतं आदौ निर्दि तदनुसंस्कृतादीनि। पाणिन्यादि व्याकरणोदित शब्दलक्षणेन संस्का णात् संस्कृत मुच्यते।' परन्तु दोशीजी इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हो गए, बल्कि और आगे बढ़कर यह भी कह दिया है कि व्याक प्राकृत और लौकिक संस्कृत दोनों बहनें हैं, और छोटी बहन संस्कृतपर बड़ी बहन प्राकृतके प्रभावके ५६ उदाहरण दिए हैं। संस्कृतवालोंने प्राकृतके अभ्यासकी और जो दुर्लक्ष किया, उसके परिणामकी चर्चा करके दोशीजीने नाटकोंमें प्राकृतकी दुर्दशा दिखाकर 'कौन प्राकृत किस पात्रकी भाषा है', इसकी ओर संकेत करके इसका भी खासा उत्तर दिया है कि प्राकृत नीच पात्रोंकी भाषा है।

व्यापक प्राकृतमें दोशीजीके मतानुसार 'बौद्ध मागधी–पालि आर्ष प्राकृत–अर्द्धमागधी और साधारण प्राकृत' आती हैं। साधा रण प्राकृतके बाद वैयाकरण चण्डका क्रम है—अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी; परन्तु वैयाकरण हेमचन्द्रका क्रम है—साधारण प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश। चण्डने षड्भाषाकी व्याख्यामें कहा है—'संस्कृ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

प्राकृतं चैवाऽप्रभ्रंशोऽथ पिशाचिका। मागधीसूरसेनी चं भड्भाषाश्च प्रकीर्त्तितः ॥' लक्ष्मीधरकी षड्भाषामें प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश हैं। वररुचिके प्राकृत प्रकाशमें चार ही तरहकी प्राकृत---महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची—का व्याकरण बताया गया है। महाराष्ट्रीको कुछ लोग वर्त्तमान महाराष्ट्रकी भाषा समझते हैं; पर वह बड़ी व्यापक भाषा थी। वीम्सका यह कहना ठीक है कि वह farfamed country of the doab and Rajputanaकी भाषा है।

जब तक लोगोंके दिमागमें यह भरा जा रहा था कि संस्कृतसे प्राकृत पैदा हुई है, तब तक तो तत्समका संस्कृतसम और तद्भवका संस्कृतभव अर्थ ठीक ही थे। पर जब प्राकृत वर्त्तमान संस्कृतसे पहलेकी सिद्ध हुई, तब इनके अर्थोंमें भी अन्तर होना चाहिए। दोशीजीने इस सम्बन्धमें बताया है—'जो शब्द वैदिक ऋचाओंमें आए हुए शब्दोंसे उच्चारण और अर्थकी दृष्टिसे समभाव रखते हों, वे तत्सम और वैदिक शब्दों तथा प्राकृत साहित्यगत शब्दोंमें उच्चारण-भेद रहनेपर भी अक्षर-योजना और अर्थदृष्टिसे जिन शब्दोंमें समानता जान पड़ती हो, वे तद्भव हैं।' हम समझते हैं कि माध्यन्दिनि शाखाके लिए कात्यायनकी उच्चारण व्यवस्थाने भी तद्भव शब्दोंकी उत्पत्तिमें सहायता पहुँचाई है, क्योंकि 'ष' को 'ख' और 'य' को 'ज' तथा 'व' को 'ब' कहनेसे बहुतसे तद्भव शब्द बने हैं। कुछ यूरोपियन भाषाओंमें भी उच्चारणकी ऐसी ही विषमता है; जैसे, यूगोस्लैविया–जूगोस्लैविया, सर्विया–सर्विया। जर्मन और रूसी भाषाओंमें 'व' का 'फ़' उच्चारण होता है; जैसे, वान–फ़ान, मोलोटोव–मोलोटोफ़।

प्राकृत शब्दोंका तीसरा भेद देश्य है। इसकी साधारण व्याख्या है, जिस शब्दमें प्रकृति कौन है और प्रत्यय कौन है, यह न ठीक-ठीक जाना जा सकता हो, वह देश्य है। इसके आगे किसीने कुछ भी नहीं कहा। परन्तु दोशीजीने बताया है कि देश्य शब्द दो प्रकारके हैं—एक आर्य-सन्तानीय और दूसरे अनार्य-सन्तानीय। आर्य-सन्तानीय शब्द संस्कृत तथा प्राकृतसे सम्बन्ध रखते हैं और अनार्य-सन्तानीय शब्द वे भी हैं, जो अनार्य-देशीय हैं और जो आर्योंकी भाषामें आ मिले हैं। इनमें द्रविड और विदेशी अरबी-फारसी शब्द तो हैं ही, हमारी समझमें इस देशकी जंगली और पिछड़ी जातियोंके शब्द भी आ मिले हैं। दोशीजीने बताया है कि द्राविड़ी शब्द ऊका बहन अर्थमें, तेलुगूका टुंटी शब्द तंट वा टंटा रूपसे व्यवहृत होता है। तेलुगूमें पड्डा पहली ब्याई गायको कहते हैं; पर हिन्दीमें भैंसके बच्चे-नरको पड़ा और मादाको पड़िया कहते हैं। नीम, जीन आदि तो फारसी शब्द हैं ही। दोशीजीने बताया है कि वर्त्तमान संस्कृतमें भी बहुतसे अनार्य शब्द आ गए हैं।

यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि दोशीजीने इस ग्रन्थमें प्राकृतोंके विषयमें जैसा विशद विवेचन किया है, वैसा इसके पहले किसीने नहीं किया था। शौरसेनी भाषाका परिचय देते हुए उन्होंने दिगम्बर जैन साहित्य और शौरसेनी भाषा तथा शौरसेनीकी विविधता बताकर मागधीका परिचय भी उसी प्रकार दिया है। सूत्रमागधी अर्थात् त्रिपिटक और जैन सूत्रोंकी मागधी तथा व्याकरणोंमें आई हुई मागधी तथा मागधीकी विविधताकी चर्चाकर पैशाची, चूलिका पैशाची और पिशाच देशका दिग्दर्शन कराया है। अनन्तर-वर्ण-विकारको दृष्टिसे भाषाओंका क्रम इस प्रकार बताया है—बौद्ध मागधी या पालि वा आर्ष प्राकृत, बाद पैशाची, अनन्तर अशोककी लिपियाँ, खारवेलाका शिलालेख, तत्पश्चात् मागधी, शौरसेनी और अन्तमें साधारण प्राकृत। बौद्ध मागधी वा पालिको दोशीजीने जो प्रथम स्थान दिया है, उससे प्रकारान्तरसे 'सामागधी मूल भासानराया आदि कप्पिका' इत्यादि उक्ति ही सिद्ध की है। इसीको वे आर्ष प्राकृत बताते हैं।

दोशीजीने अपभ्रंशकी चर्चा करते हुए इसे अपभ्रंश नाम देनेका प्रतिवाद किया है, क्योंकि अपभ्रंशका अर्थ गिरी-पड़ी भाषा है। जो शुद्धतावादी (purists) हैं, वे संस्कृतसे इतर भाषाको अपभ्रंश कहें, तो आश्चर्य नहीं। मुंशी दुर्गाप्रसाद नादिरने 'खज़ीनतुल उलूम'में रेख्ताका भी यही अर्थ किया है। अपभ्रंश स्थान-विशेषकी भाषा नहीं है। वह तो भाषाका विकृत रूप है—चाहे वैदिक भाषाका हो, चाहे लौकिक संस्कृतका अथवा किसी प्राकृतका। अपभ्रंशके विषयमें भी इसमें विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है और अपना पक्ष सिद्ध करनेके लिए अनेक ग्रन्थोंसे अपभ्रंशके उदाहरण दिए गए हैं। अन्तमें विद्वान् व्याख्याताने पहले ऊगती गुजराती और बादको वर्त्तमान गुजरातीपर प्रकाश डाला है।

हमें आशा है कि इस ग्रन्थका गुजरातीमें तो आदर होगा ही, अन्य आर्य-भाषाओंके विद्वान् भी इससे लाभ उठावेंगे तथा प्रादेशिक भाषाओंके क्रम-विकासका विचार करनेके लिए इसके आमुखका भाषान्तर अवश्य प्रकाशित करेंगे। अन्तमें दोशीजीका इन सुन्दर व्याख्यानोंके लिए हम अभिनन्दन करते हैं।

जागरण

श्री जितेन्द्रकुमार

सृष्टि-सिन्धुमें उठी प्रकाशकी प्रखर हिलोर,
मिट चला निमेषमें समग्र स्वप्न-तिमिर घोर,
फैल गई विश्व बीच श्वेत विभा मनहरण !—जागरण !

बह चली अमन्द स्नेहकी मलय मरुत् अजान,
खिल उठा सुरभि-भरा मनुष्यता-जलज अम्लान,
हँस पड़ी नवीन युग-प्रभातकी अरुण-किरण !—जागरण !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बालक गांधी

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

एक बार महात्मा ईसाके शिष्योंने उनसे पूछा—'ईश्वरके राज्यमें सबसे बड़ा कौन है?' ईसाने एक छोटे बच्चेको बुलाकर उनके बीच बैठाया और बोले—'जब तक तुम बच्चोंकी

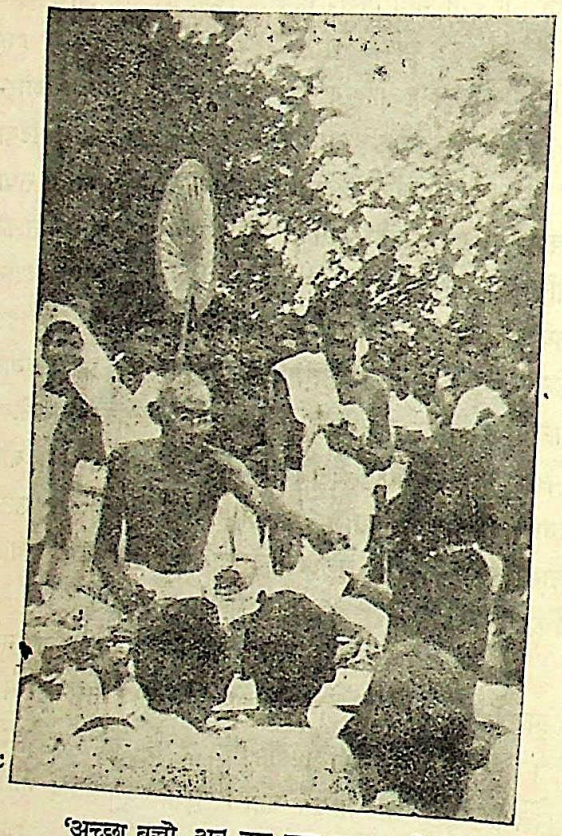

'अच्छा बच्चो, अब तुम ज़रा उधर चलो...'

भाँति नहीं बनोगे, तुम स्वर्ग न पा सकोगे। जो कोई इस छोटे बच्चेकी तरह नम्र और भोला बन सकेगा, वही परमेश्वरके राज्यमें सबसे बड़ा कहलाएगा।'

ईसाके शागिर्द चकित हुए; किन्तु चुप रह गए। शायद वे बालकपनके महत्वको न समझे हों। लेकिन क़रीब सभी महापुरुषोंने बच्चोंकी महिमा गाई है और उन्हें अपने प्रेमका भाजन बनाया है। हज़रत मुहम्मदका भी छोटे बच्चोंपर बहुत प्यार था। वे उनके साथ खेलते, हँसते और देर तक बातें करते थे। बच्चोंके साथ खेल और विनोद गांधीजीकी भी एक खासियत है। दिन-भर गम्भीर काम करनेके बाद जब बापूजी बालकोंके साथ टहलने निकलते हैं और उनसे हँसी-मज़ाक करते चलते हैं, तब वे भी महात्मा गांधीके बजाय पूरे 'बालक गांधी' ही बन जाते हैं। बापू बच्चोंसे झुक-झुककर बातचीत करते हैं, उनसे तोतली ज़बान बोलते हैं, उन्हें कहानी सुनाते हैं, उनके साथ दौड़-दौड़कर चलते हैं, उनसे खेल खेलते हैं और उनको हँसानेके लिए तरह-तरहसे मुँह बनाते हैं।

बापूजी चाहे कितनी संजीदा चर्चामें मशगूल क्यों न हों और चाहे जितने महत्वके काममें क्यों न लगे हों, जैसे ही किसी बच्चेको देखते हैं, झट चेहरेका भाव बदलकर उ विनोद शुरू कर देते हैं। कुछ साल पहले अपने नाती (श्री रामदास गांधीका पुत्र) से वे खूब हँसते-खेलते थे। सेवाग्राम-आश्रमका एक विनोद बन गया था। कभी वह लकड़ी पकड़ बापूजीको आगे खींचता, और वे खिंचकर पीछे-पीछे दौड़ते। कभी कनू गांधीजीसे कहानी सुनना चाह और वे बड़ी दिलचस्पीके साथ उसे मज़ेदार कहानी सुनते आजकल श्री प्यारेलालकी क़रीब डेढ़ वर्षकी भांजी नन्दि बापूजीका खिलौना बन गई है। उसकी वजहसे दिन-भ गांधीजीको हँसनेका मौक़ा मिलता रहता है। नन्दिनी बड़ी प्यारी बच्ची है और अपनी तोतली ज़बान और मोहक मुस्क हटसे बापूजीको खूब हँसाती रहती है। बापूजी उससे बातें करते वक्त उस-जैसे ही बालक बन जाते हैं। नन्दिनी भी गांधीजीके पास आकर इसी तरह खेलती है, मानो वे छोटे बच्चे ही हों। 'बालक गांधी'की मनोरंजक लीला देखते ही बनती है; उसका वर्णन करना कठिन है।

हाल ही में गांधीजीने दो बार मेरे 'कुटीर'में कुछ दिन निवास करनेकी कृपा की। मेरे बच्चे भरतसे उनकी अच्छी-खासी दोस्ती हो गई है। उसको देखा कि गांधीजीने मज़ाक शुरू किया

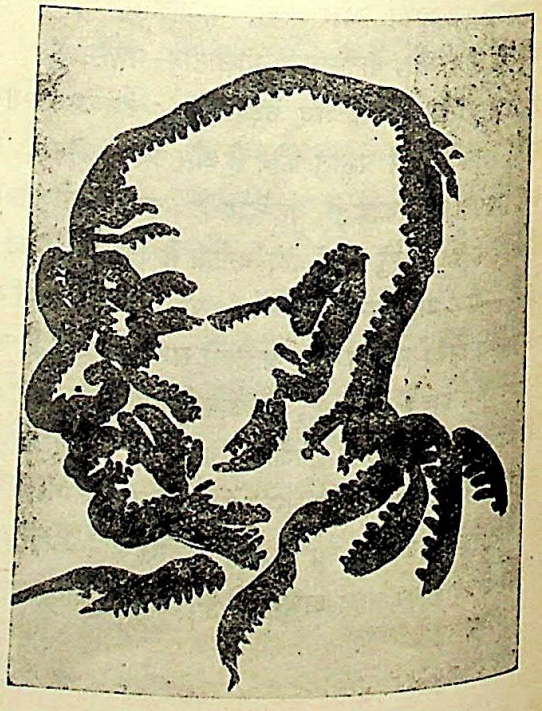

'दिन-भर गम्भीर काम करनेके बाद...'

कई बार भरत-गांधी-कुश्ती भी लड़ी जा चुकी है। जब वे भरतसे किसी बातकी चर्चा करते हैं, तो बस उसीकी तरह तीन वर्षके बालक बन जाते हैं। बच्चोंका चेहरा उनके लिए 'टानिक'का

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काम करता है। उसे देखकर उनकी सारी थकान काफ़ूर हो जाती है और विनोद व प्रेमका चश्मा बह निकलता है।

बापूका जन्मदिन २ अक्टूबर है और भरतका ३ अक्टूबर। पिछली ३ अक्टूबरको अपनी तीसरी वर्षगाँठके दिन भरत सेवाग्राम बापूजीको प्रणाम करने गया। न-जाने अचानक उसे क्या सूझा। (इस बार २ ता० को बड़ी धूमधामसे बापूजीकी ७५वीं वर्षगाँठ मनाई गई थी। भरत भी उस दिन सेवाग्राम गया था।) बोला—'बापूजी, कल तो मेरा जन्म दिन था; आज (यानी ता० ३ को) आपका है।'

बापूजी यह सुनकर ज़ोरसे हँस पड़े। फौरन वे कहने लगे—'हाँ, हाँ, कल तेरा जन्मदिन था; आज मेरा है। तू मुझसे बड़ा है न? तू बूढ़ा है, मैं जवान हूँ! आ, मुझसे कुश्ती लड़ेगा?'

सब लोग खिलखिला पड़े। भरत मुस्कराकर भाग गया। बस, इसी तरह बापूके न-जाने कितने हँसी-मज़ाक बच्चोंके साथ रोज़ ही चला करते हैं। कितने मनोरंजक हैं ये बाल-विनोद, कितने प्रेम-भरे और मार्मिक भी!

मार्मिक? हाँ, मार्मिक भी। कारण, बापूजी बच्चोंसे सिर्फ़ विनोद ही नहीं करते, वे बालकोंको केवल अपने मनोरंजनका साधन हो नहीं बना लेते; बल्कि उनके लिए बालकोंका दर्शन ईश्वर-दर्शन है। वे बालकोंकी भोली-भाली मुस्कराहटमें अपने प्रभुकी मुस्कान देखते हैं। वे बच्चोंकी तोतली भाषामें भगवानकी सत्य वाणीकी ध्वनि सुनते हैं और उनके खेलमें परमेश्वरकी क्रीड़ाकी झलक निहारते हैं। उनके लिए बच्चोंका सहवास केवल मानसिक मनोरंजन ही नहीं, आध्यात्मिक सत्संग भी है। अंगरेज़ी-कवि वड्सवर्थकी तरह गांधीजीकी भी धारणा है कि बालकोंके नज़दीक सच्चा स्वर्ग विद्यमान रहता है और आत्मिक शान्तिके लिए हमें बच्चों-जैसा ही पवित्र व कपटहीन बननेकी ज़रूरत है।

और गांधीजीने अपने-आपको सचमुच एक बालक-जैसा ही बना लिया है। जिनको उन्हें नज़दीकसे देखनेका मौक़ा मिला है, वे जानते हैं कि बापू कितने भोले, श्रद्धापूर्ण और छलहीन हैं। उनकी विचार-शैली बच्चों-जैसी ही सरल, स्वाभाविक और सीधी है। उनमें ज़रा भी दाँव-पेच नहीं; तनिक भी घमण्ड और दिखावा नहीं। वे अपनेको ईश्वरके हाथका औज़ार मानते हैं, उसकी गोदीका एक बालक समझते हैं। 'जैसे राखौ वैसे रहौं' भजन गाकर गांधीजी अपनी सारी विपदा और चिन्ता एक बच्चेकी तरह अपने परमपिता परमेश्वरके स्मरणमें भूल जाते हैं। उनके महात्मापनका असली रहस्य उनके निर्मल और मार्मिक बालकपनमें छिपा हुआ है। बच्चोंकी पवित्र मुस्कराहटमें वे अपने दिलकी परछाईं देखना चाहते हैं और जानना चाहते हैं कि कहीं उनके हृदयमें कोई विकार तो नहीं, धब्बा तो नहीं। बालक उनके लिए आध्यात्मिक शीशेका काम करते हैं, इसीलिए गांधीजी बच्चोंसे इतनी मुहब्बत करते हैं और उनके साथ बालक बनकर ही सदा हँसना और खेलना चाहते हैं।

नीलामघर

प्रो० आनन्द

पात्र-परिचय

बाबूजी : लीडरीके शौकने इनको बरहना कर दिया;
वरना ये भी आदमी थे कामके!

लम्बोदर लपाड़िया :
जो निकल जाय ज़मानेमें, जो पूरी हो जाय;
इनको हवस ही वो नहीं, इनकी तमन्ना वो नहीं।

पंडित धनदास : गर मूँछ कांग्रेसी, दाढ़ी सभानुमा है!

[**पहला दृश्य :** राजसी ठाट-बाटसे सजी लम्बोदर लपाड़ियाकी 'कुटिया']

पं० धनदास—भाग हो तो आपका-सा।

लम्बोदर—हें! हें! सब भगवत्कृपा हे। ये हाथी-घोड़ा, चाँदी-सोना जो हे सो उसीकी देण हे। उसीका हे, में कोण, न पढ्या, न लिख्या; बेठ्या हूँ, इण मुहरोंके ढेरपर; चाहूँ जो जिस्को दे दूँ। हें! हें!

धन०—तभी तो···

लम्बो०—में तो इसवरसे भी बेसी किरपा आपकी मानूँ हूँ। ये ह्यांकी ह्यांकी चियरमेंणी, आज लाट साबकी मुलाखात, तो कल महात्माजीसे रूबरूँ— ये सब तो आपकी किरपा हे, महाराज!

धन०—हूँ! हूँ! सब आप ही का प्रताप है, सेठजी!

लम्बो०—अजी हमेरा परताप-वरताप काएका; लेकण सोचूँ हूँ के धण कमायो, माण कमायो, चाहूँ तो कल रायसाब हो जाऊँ···पर पढ्या-लिख्या लोग तो मखौली ही उड़ावें हैं।

धन०—इसका क्या सोच? इच्छा-भर हो जाय; फिर देखिए, कलकत्ता, बम्बई, यू० पी०, सी० पी० सब तरफ़से आपके ही नगाड़े बजने लगेंगे। पैसा खर्च करनेसे आजकल क्या नहीं होता, सेठजी?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लम्बो०—हें ! हें ! खरच-वरचकी तो क्या बात हे, पण में कहूँ ऊँके···

धन०—आज्ञा तो दीजिए, फिर देखिए ।

लम्बो०—हें ! हें ! आपका मुजे पूरा बरोसा है, म्हाराजजी !

[दूसरा दृश्य : स्थान—बाबूजीका दफ्तर]

धन०—कर्मचारियोंको अगर छः-छः महीनेका वेतन नहीं दिया गया है, तो इतनी चिन्ताकी क्या बात है, बाबूजी ?

बाबूजी—क्यों, क्या यह बदनामीकी बात नहीं है ? और फिर ये पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस रुपल्ली पानेवाले जिएँगे कैसे ?

धन०—बदनामी-बदनामी काहेको ? हमारे यहाँ कम्पोज़ीटर-प्रेसमैनोंकी कौन कहे, एडीटरों तककी दो-दो सालकी तन-ख्वाहें बाक़ी रह जाती हैं, और हमेशा रहती ही हैं। जीने-चीनेकी बात सोचना बिलकुल व्यर्थ है। आजके ज़मानेमें अगर आपने पन्द्रह या बीस रुपल्ली दे ही दिए, तो उसीसे क्या गुज़र-बसर हो सकती है ? लेकिन फिर भी क्या किसीने काम छोड़ा, या जानेका नाम भी लिया ?

बाबूजी—हाँ, यह तो ठीक है ; लेकिन आखिर उनकी गुज़र-बसर कैसे...

धन०—गुज़र-बसर, बाबूजी ! अरे आजकल तो काग़ज़की रद्दी भी पूरे सवा रुपए सेर बिक जाती है। और फिर आपके गोदामोंमें तो किताबोंके—और सो भी पाठ्य-पुस्तकोंके—ढेर-के ढेर लगे हैं। वे क्या रद्दीसे भी गई-गुज़री हैं ? फिर क़लम है, दावात है, स्याही है, विलाटिंग है, सभी कुछ तो दफ़्तरमें मौजूद है। आमदनीके ज़रिए-ही-ज़रिए तो हैं।

बाबूजी—लेकिन और मदोंके रुपए भी तो खर्च हुए चले जा रहे हैं।

धन०—सो कैसे ?

बाबूजी—अब पिछले दिनों मुझे कई बार बम्बई, फिर पटना, फिर वहाँसे लाहौर, फिर वहाँसे जालन्धर वग़ैरा भी तो जाना-आना पड़ा। साथ कभी फुल्लजी, तो कभी तरपेटीजी वग़ैरह कोई तो रहते ही हैं। मेरा सेकेण्ड और उनका तीसरे दर्जेका किराया लेकर भी बिल क़रीब पौने ग्यारह सौका हो गया था। अभी अन्धेर-खातेवाली निधिसे फिर कुछ लेना ही पड़ा है। वह भी खाली-सी हो चली है।

धन०—हाँ, हाँ, तो बाबूजी, आप एक इसी संस्थाको बाँधे तो बैठे नहीं रह सकते ? जन-सेवा-समिति, बेवा-बाज़ार, कलेवा-क्लब वग़ैरा-वग़ैरा सभीपर तो आपको ही पंजा रखना पड़ता है।

बाबूजी—हूँ ! हूँ ! तो फिर आखिर लम्बोदरजीके बारेमें...

धन०—बस, आपकी कृपा हो जानी चाहिए।

बाबूजी—देखो जी, बात नपी-तुली होनी चाहिए। वे और कहीं सभापति अगर बनना चाहते, तो कोई बात न थी ; लेकिन एक लक्ष्मीवाहनके सिर सरस्वती-मठकी महन्ती भला...

धन०—लेकिन बाबूजी, इनके छूते ही सरस्वती-मठकी सिद्धि सोना हो जायगी, सोना।

बाबूजी—हूँ ! हूँ ! लेकिन अपने अखबारोंमें समर्थन करोगे इस तजवीज़का ?

धन०—ज़रूर। ये मशीनगनें हैं आखिर किस दिनके लिए !

बाबूजी—हूँ ! हूँ ! हूँ !

[तीसरा दृश्य : स्थान—लम्बोदर लपाड़ियाकी 'कुटिया']

लम्बो०—तो हिचक किस बातकी है ?

धन०—कुछ नहीं, वही संस्थाके कर्ज़-वर्ज़को लेकर बाबूजी कुछ...

लम्बो०—तो उनकूँ कह्या क्यूँ नईं के सभापती बणवा तो दूं फिर देखें के एक-एक अपीलमें दिल्लीके दगासिंह जगत और कलकत्तेके कपड़चोर कटपीसिया-जैसे कुबेरोंकी थैल्यां बिखर जायँ हें के नईं ?

धन०—हाँ, हाँ, और क्या ? इधर इतने बरसोंसे जो बाबूजीके हमपेशा लोग इस हँडियामें अपने सत्तू सानते रहे हैं, वे थोड़ेसे पैसों ही के बलपर तो ? और सो भी अपने नहीं, चन्देके।

लम्बो०—अजी, अग्गेवालोंसे अपणो बोली दस आगे रहे, तब तो बात। जो कोई कहे बीस, तो अपणी तीस। हें ! हें !

धन०—सब कह दिया है। और मैंने यह भी कह दिया कि बाबूजी, यह ज़माना डिमोक्रेसीका है, बहुमतका युग है। कौन नहीं जानता कि देशमें इस समय शिक्षितोंकी अपेक्षा अशिक्षितोंका ही बहुमत ज़बर्दस्त है। आखिर उनके प्रतिनिधिको भी तो कभी मौक़ा मिलना चाहिए। हर जगह न्याय, हर जगह न्याय, इसी अनुदारताने तो अछूतोंकी समस्या खड़ी कर दी है।

लम्बो०—वा धणदासजी, वा ! खूब कह्या आपणे ! फिर क्या बोले ?

धन०—फिर क्या बोलते ? बस, अब देखिएगा, उस विराट नगरीमें इस ठाठसे बेसींग-पूँछवाले नागौरी बैल आपका रथ खींचेंगे, कितने उपन्यास-सम्राट, कहानी-कानन-कनकौवे 'जिह्वा द्वारा साहित्यका उत्पादन तथा संरक्षण करनेवाले गद्यपद्याधिराज' आपकी आरती उतारते दौड़ते फिरेंगे और तब मैं पुकारकर कहूँगा कि ऊँची बोली श्री लम्बोदर लपाड़ियाकी, एक—दी—तीन !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधुनिक शिक्षा और ज्योतिष

कुमारी सुप्ति सिंह, एम० ए०, डी० टी०

वर्त्तमान युगमें एक हवा-सी चली है कि कोई भी वस्तु या ज्ञान यदि वैज्ञानिक नहीं है, तो वह ग्राह्य ही नहीं है। इस कारण यदि कोई किसी चीज़को ग्रहण करने या करवानेकी उपकारिता प्रतिपन्न करना चाहे, तो उसे पहले इस निष्कर्षपर आना होगा कि वह चीज़ वैज्ञानिक है। ज्योतिषका भी आज यही हाल है। लोग भारतीय ज्योतिषके गाम्भीर्यकी तह तक तो पहुँच नहीं पाते, उल्टा उसे प्राचीन कालका भ्रममय संस्कार कह कर उसकी अवज्ञा करते हैं। स्व० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने इसी मनोवृत्तिका वर्णन एक वाक्यमें इस प्रकार किया था—'अतीतको थूकके समान फेंक दो।' पर हमारा अतीत गौरवयुक्त है, बहुमूल्य है। भारतीय ज्योतिषके रहस्यमय सिद्धान्तोंको आधुनिक पश्चिमीय वैज्ञानिक अभी तक समझनेमें असमर्थ रहे हैं। इसी कारण इसको हम भारतीय आज अवैज्ञानिक कहनेकी धृष्टता करते हैं। पर जब हमारी ही शिक्षा, सभ्यता तथा ज्ञानको विदेशी अपने ढंगसे हमें देते हैं, तब हम उसे उच्च और वैज्ञानिक मानकर स्वीकार कर लेते हैं। जिस दर्शनको पाश्चात्य साधक समझ नहीं सकते, जिस उच्चता तक उठनेकी वे क्षमता नहीं रखते, उसे हम अन्ध-विश्वास और दक़ियानूसी कहकर उड़ा देते हैं! फिर ज्योतिषके सिद्धान्त तो इतने गूढ़ हैं कि आधुनिक ज्ञान उनके रहस्यका उन्मीलन नहीं कर सकता। योग-बल द्वारा प्राप्त ज्ञान ही उस अदृश्य भाग्यका उत्तर देता है।

हिन्दू-ज्योतिषियोंने केवल ९ ग्रहोंका उल्लेख किया है, जिनमें से दो अदृश्य हैं, जिन्हें राहु तथा केतु कहते हैं। अंग-रेज़ीमें इन्हें Nodes कहा जाता है। एकाएक आप कह सकते सकते हैं कि उन्हें सुदूरतम ग्रहोंका ज्ञान नहीं था। हाँ, उनका उल्लेख कहीं नहीं है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि Uranus, Neptune और Pluto का उन लोगोंको ज्ञान ही नहीं था, अथवा यह भी सम्भव है कि पृथ्वीसे उनका दूरत्व इतना अधिक रहा हो कि सम्भवतः मनुष्यके भाग्यपर उनका कोई प्रभाव ही न पड़ा हो। यह अवश्य सम्भव है कि इन सुदूर ग्रह-नक्षत्रोंका मनुष्य-जैसे ज्ञानी जीवधारियोंपर कहाँ कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका वैज्ञानिक अवलोकन न हुआ हो; पर मनुष्य-जीवनमें इन प्रभावोंकी अभिव्यक्ति हमें आश्चर्य-चकित कर देती है। इन्हीं प्रभावों द्वारा खचित हैं हमारी हस्त-रेखाएँ, अंगुलि-चक्र, पद-चिह्न तथा पद-चक्र, जो हमारे जीवनकी घटनाओं तथा हमारे भाग्यके लेखनका दृश्य-अंकन हैं। इन रेखांकनोंके ज्ञान द्वारा कही हुई बातें जब जीवनकी भूत-भावी घटनाओंके साथ एक हो जाती हैं, तब भी क्या सन्देह रह जाता है कि यह वैज्ञानिक है या नहीं? यदि यह वैज्ञानिक नहीं है, तो एक-एक घटनासे एक-एक भविष्यवाणी एकदम ठीक समयपर मिल कैसे जाती है? इससे भी ऊपर उठिए, हस्त-रेखा इत्यादि को एकदम छोड़िए, केवल अपना जन्म-समय ठीक जानकर भृगु-संहितापर दृष्टिपात कीजिए। किसी ग्रहके प्रभावमें उत्पन्न होनेपर किस प्रकारकी जीवन-धारा होती है, स्पष्ट और असन्दिग्ध रूपसे आप जान सकेंगे। प्रत्येक क्षणमें ग्रह-उपग्रहोंका मनुष्य-जीवनपर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक प्रभावके कारण प्रत्येककी जीवन-धारा, भाग्यकी उज्वलता तथा हीनता, आशा-आकांक्षाकी पृथकता, प्रवृत्तियाँ, मनोविकार, चेष्टाएँ, सफलता-विफलता वहीं कुछ-कुछ खचित हो जाती है। जीवनकी मुख्य घटनाओंका, मानसिक गतिका, प्रवृत्तिका तथा सफलता-विफलताका भी यदि कोई ज्ञान आपको इसी प्रभाव द्वारा केवल आपके जन्म-समयके ज्ञान-मात्रसे ही दे सके, क्या तब भी आप उस ज्ञानको वैज्ञानिक कहनेमें हिचकेंगे? भृगुसंहिताको देखकर आपको मानना ही पड़ेगा कि इतनी भारी गणना एकदम अवैज्ञानिक नहीं हो सकती। इसकी ओर विद्वानोंके आकृष्ट होनेका मूल कारण ही है इसकी वैज्ञानिक पराकाष्ठा। केवल इसके सिद्धान्तोंमें रहस्य है; पर इसकी अभिव्यक्तिमें चमत्कार है।

प्रश्न यह है कि क्या ग्रह-उपग्रहोंका प्रभाव ही हमारे भाग्य की लिपि है? हाँ है तो, पर परिस्थितिका प्रभाव भी हमारे जीवनपर पड़ता है। इन प्रभावोंका अति सूक्ष्म भावसे हम अध्ययन नहीं कर पाते, इसी कारण सबका भाग्य निश्चित रूपसे ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता। यदि सिद्धान्तमें रहस्य न रहता, तो प्रत्येक ज्योतिषी भगवानका रूप ही न हो जाता! अच्छेसे अच्छे ज्योतिषी इसी कारण यही कहते हैं कि अमुक समय ऐसा होनेकी सम्भावना है। अतः इन त्रुटियोंको ध्यानमें रखते हुए अब हमें देखना है कि ज्योतिषका जीवनसे क्या सम्बन्ध है? इसके लिए यह जानना आवश्यक है कि साधारणतया जीवनमें कौन-कौन-सी अनिवार्य घटनाएँ हैं और सुख-दुःखके मूल कारण क्या हैं?

जीवन धारण करनेके लिए सर्वप्रथम आवश्यक है स्वास्थ्य। स्वास्थ्यके विषयमें हिन्दुओंने बहुत ही गूढ़ गवेषणा की है। खाद्य-पदार्थोंका गुण-वर्णन जैसा वैज्ञानिक ढंगसे भारतमें हुआ, उतना कहीं भी नहीं हुआ है। आधुनिक डाक्टर भी खाद्य-द्रव्यके गुण के अनुसार ही रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी चेष्टा करने लगे हैं। हिन्दू-ज्योतिषी आपको न केवल आपके जन्म-मरणकी वार्त्ता ही बताते हैं, बल्कि आपके कठिन रोगों तथा मृत्युकी आशंकाकी वार्त्ता भी बताते हैं। कभी-कभी तो स्वास्थ्यको मन्द गतिका अवसर तथा कितने दिनों तक वह अवस्था रहेगी, इतना तक

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बता देते हैं। कभी-कभी रोगकी प्रकृति तक बतला देते हैं। आप कह सकते हैं कि जब वे इतना कह सकते हैं, तो क्या रोग-निवारणके उपायकी ओर उनके पूर्वजोंका ध्यान नहीं गया होगा? अवश्य गया था; पर उनके नियमोंका पूर्णरूपसे हम जीवन में पालन नहीं करते। हम जहाँ तक स्वास्थ्यके नियमोंका तथा खाद्य-पदार्थोंके द्रव्य-गुणका ध्यान रखकर चलते हैं, उतना ही हम स्वस्थ रहते हैं। यह सभी जानते हैं कि पुराने समयके भारतीय नर-नारी वार्द्धक्यमें भी आधुनिक चश्मेवाले फैशनेबल युवक-युवतियोंसे कहीं अधिक बलवान, कार्य-कुशल, एवं दीर्घजीवी होते थे।

स्वास्थ्यके बाद है साम्पत्तिक स्थिति, अर्थात् सौभाग्य तथा सफलता। जीवनकी सम्पूर्णताके मूलमें है सफलता। इसी कारण हिन्दू-ज्योतिषियोंने इसका अध्ययन इतनी सूक्ष्मतासे किया कि हमें उनकी बातोंसे चमत्कृत होना ही पड़ता है। धन-प्राप्ति, पठन-पाठन इत्यादिकी सफलताकी परिस्थितियोंमें समयानुसार परिवर्त्तन होता रहता है। प्रत्येक बातमें इस प्रकार दो तरहका प्रभाव रहता है—एक दृश्य और दूसरा अदृश्य। दृश्य प्रभाव समय-समयपर सभ्यताकी गतिके साथ-साथ बदलता रहता है; पर जो अदृश्य है, उसे हम नियति अथवा ईश्वरका हाथ कहते हैं और सोचते हैं कि उसे कोई बतला नहीं सकता। इसी अदृश्य प्रभावको ज्योतिषियोंने गणितके नीरस विज्ञान तक खींचा है और उन समस्याओंको ग्रहोंके प्रभाव द्वारा हल किया है। जब हम देखते हैं कि अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति और वंश-प्रभावके रहते हुए तथा लाख चेष्टा करनेपर भी असफलता ही मिलती है, तब ईश्वरका हाथ न कहकर यदि ज्योतिषी असफलताकी अनिवार्यताका कारण किसी ग्रहका फेर बताता है, तो क्या वह अधिक विश्वसनीय नहीं है?

इन सबके अलावा ज्योतिषी यह कहनेका सामर्थ्य भी रखते हैं कि अमुक बच्चेकी प्रकृति ऐसी है या होगी, उसकी रुचि ऐसी है, उसके विचार अमुक प्रकारके हैं, उसकी तृष्णा अमुक धारामें बहनेकी आशंका रखती है, इत्यादि। जीवनकी सफलताके मूलमें है रुचि। एक आदमी बहुत अमीर है, घर-गृहस्थी है, सुख-चैनसे खाता-पीता और मौज करता है। दूसरा सोचता है कि अमुकका जीवन कितना सफल है, कितना सुखी है! पर दर-असल प्रत्येक व्यक्तिके जीवनकी सफलताके मूलमें है उसकी रुचि की अभिव्यक्ति, उसकी आशा-आकांक्षा तथा स्वप्नका प्रस्फुटन। आजकल कालेजोंके पाठ्यक्रममें मनोविज्ञान एक मुख्य विषय है। क्यों? कन्याओंके प्रायः प्रत्येक कालेजमें इसपर विशेष ज़ोर दिया जाता है। क्यों? इसलिए कि वे सन्तानकी रुचिको लक्ष कर सकें; इसलिए कि प्रत्येकके साथ व्यवहार करते समय सम्बन्धित व्यक्तिकी मनोवृत्तिके अनुसार काम कर सकें, जिससे जीवनकी पूर्ण अभिव्यक्ति हो तथा जीवन सुख-साफल्यमय हो। इसके लि ही यदि सहज विज्ञान द्वारा माताको सन्तानके जन्मके यह भी ज्ञात हो जाय कि अमुक हस्तरेखाके अनुसार उसकी ऐसी होगी, उसका स्वभाव ऐसा होगा, उसमें इन-इन विकारों अधिकता है और इन-इन गुणोंकी कमी है, वह जन्मसे संस्कारोंके साथ पैदा हुआ है इत्यादि, तो क्या आप सोचते कि उससे मनोविज्ञानके अध्ययनसे कुछ कम लाभ होगा? मनोविज्ञान उम्रके साथ-साथ अध्ययन करनेकी वस्तु है। बच्चे मनोभाव कुछ-कुछ एक ही समान हो सकते हैं; पर कुछ व्यक्ति रूपसे भिन्न भी होते हैं। उन्हीं भिन्न विकारों और रुचियोंको ह कर यदि माता-पिता अपनी सन्तानको उन्हींके अनुसार जीवि पथपर अग्रसर कर या करवा सकें, तो सफलताकी अधिक सम्भ हो सकती है। जब आधुनिक शिक्षाका इस विषयमें तात्पर्य उद्देश्य यही है, तब इस सरल और उपयोगी पथको पकड़नेमें क दोष है?

इसके उपरान्त जीवनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है विवाहका प्र जो जीवनके आधे अंगको सम्पूर्णता देता है। अधिकांश मनु के जीवनमें विवाह एक भारी परिवर्त्तन, एक महान घटना है कौमार्य जीवन एक गतिमें चलता है, विवाहित जीवन दूसरी गतिमें। यदि यह धारा अपनी आशा-आकांक्षाओंके साथ सामं जस्य रखकर चलनेका अवसर पाती है, तो विवाहित जीवनमें सफलता है, और यदि नहीं, तो वही आत्म-हत्या हो जाती है। यह जीवनकी इतनी महत्त्वपूर्ण समस्या है, इसीसे ज्योतिषियों इसपर बहुत ध्यान दिया है। वे इस बातको पूर्णरूपसे समझते थे कि विवाह केवल साथीकी पूर्त्तिके लिए ही नहीं, वरन पूर्ण मानसिक तथा आध्यात्मिक विकासके लिए दो समभावापन्न (just complimentary) मित्रोंके मिलनका संस्कार है। इसी कारण किस ग्रहके प्रभावयुक्त व्यक्तिके साथ किस दूसरे ग्रहके प्रभावापन्न व्यक्तिका मानसिक मेल हो सकता है, इस संयोग (permutation combination) की पूरी-पूरी गणना ज्योतिषियोंने की है। इसपर आप कह सकते हैं कि तब जन्म-पत्री मिलाकर होनेवाले विवाह असुखी क्यों होते हैं? इसका कारण यह हो सकता है कि कागज़में दो सम्पूर्ण मेल खानेवाली बातें (two kinds of perfect compliments) क्या सचमुच दो व्यक्तियोंमें ढूँढ़ निकाली जा सकती हैं? यदि निकाली जा सकती हों, तो विवाह सुखी ही होता है, नहीं तो आंशिक सुखी। क्या यह कह देना भी पर्याप्त नहीं है कि अमुक-अमुकका विवाहित जीवन सुखी होगा या दुखी, अमुक विधवा होगी या नहीं, अमुकका वैधव्य-योग कट सकता है इत्यादि? क्या इतना ज्ञान भी कुछ सहायक नहीं है?

यह तो हुई जीवनकी बड़ी-बड़ी समस्याओंपर एक दृष्टि।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोअर नदी पारकर अमरिकन सेना जर्मनीके एक नगरमें से गुज़र रही है, जिसे बमबारी द्वारा अमरीकन यानोंने मिस्मार कर दिया है।

प्रूम नदीपर बनाया गया एक पुल पारकर अमरीकन युद्ध-सामग्रीकी लारियाँ राइनकी ओर बढ़ रही हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जापानी द्वीप आयोजीमापर उतरनेसे पहले अमरीकन नौ-सेना उसपर गोलाबारी कर रही है।

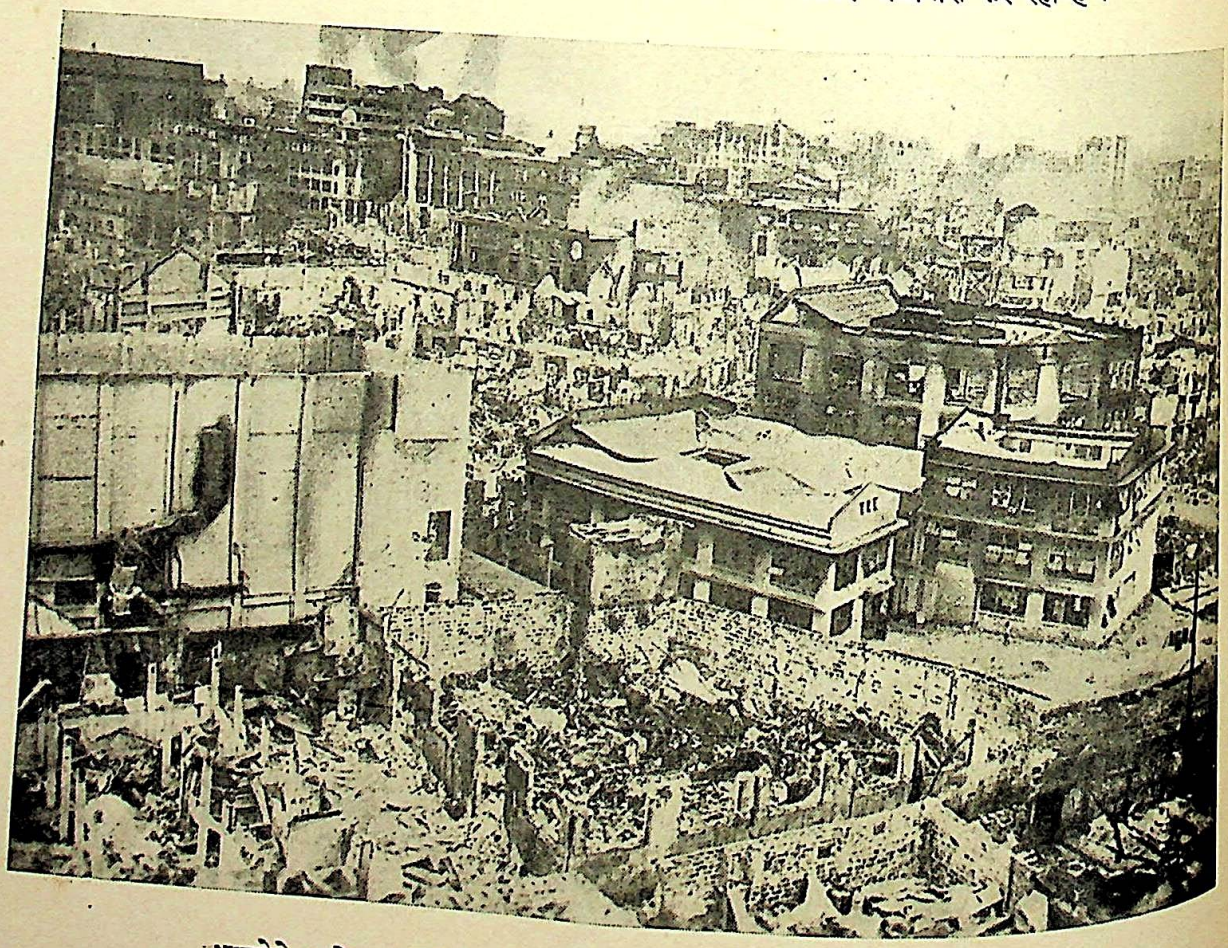

भागनेसे पहले जापानियों द्वारा मनीलाके घरोंमें आग लगा दिए जानेका परिणाम।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब देखिए, ज्योतिषी आपको आपके छोटे-मोटे सुख-दुखोंकी बातें बतलाकर भी कितनी सहायता पहुँचाते हैं? उदाहरणार्थ लड़ाई-झगड़े, भ्रमण, मातृ-पितृ-वियोग, पत्नी-विरह, पुत्र-शोक, परीक्षाकी सफलता-असफलता, नौकरी, बड़े साहबसे कलह, पत्नीसे खटपट इत्यादि छोटी-मोटी घटनाएँ जीवनके किस भागमें किस प्रकार स्थान लेंगी, यह भी बताया जा सकता है। मानो जीवन एक हार हो और जीवनकी घटनाएँ उनपर रंग-विरंगे मोतियोंके समान सजी हुई हों। ज्योतिषी उस हारके प्रत्येक मोतीको प्रत्यक्ष देख रहा है और प्रत्येक मोतीका ठीक स्थान तथा उससे होनेवाला हानि-लाभ भी बता रहा है। क्या ज्योतिष-विज्ञानकी इस सूक्ष्मता और उपादेयताको देखकर भी कोई युक्तियुक्त मनुष्य यह नहीं कहेगा कि भारतीय ज्योतिषियोंका मस्तिष्क अद्भुत एवं असाधारण प्रकारसे वैज्ञानिक था? आज जब सस्ते और पेटू बाज़ारू ज्योतिषी-नामधारी ठगों द्वारा ज्योतिषशास्त्र बदनाम और अनादृत हो रहा है, क्या हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम उसके महत्वको ठीक-ठीक समझें और उसके जीर्णोद्धारकी चेष्टा करें? इस विषयमें यूनिवर्सिटियोंके गवेषणा-विभागको अधिक ध्यान देना चाहिए। जब Meteorology इत्यादि विज्ञानोंसे ज्योतिष अधिक वैज्ञानिक है, तो कोई कारण नहीं कि यह विश्व-विद्यालयोंमें स्थान न पा सके। इसके ज्ञानकी उपकारिता तथा प्रचार भारतीय जीवन-कलिकाको अधिक प्रस्फुटित कर सकेगा, अधिक उल्लासमय और विकसित कर सकेगा तथा पृथ्वीके अन्य देशोंको भी एक अपूर्व ज्ञान-निधि देकर उपकृत कर सकेगा।

सामाजिक नियमोंमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता

श्री रामप्रताप गोंडल, एम० ए०, साहित्यरत्न

भारतीय जीवनको सम्पूर्ण और मानवोपयोगी बनानेके लिए पुरुषके साथ स्त्रीको भी अपना पूर्णरूपेण योग देना होगा, जैसा कि संसारके अन्य उन्नतिशील देशोंमें हो रहा है। जिन देशोंने अपने जीवनको उन्नतिशील बनाया है, उन्होंने राजनीतिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके अतिरिक्त अपनी समुचित आर्थिक उन्नति भी की है। जहाँ राजनीतिक स्वतन्त्रता लोकोपयोगी संस्थाओंको जन्म देकर मनुष्यको सामाजिक उन्नतिके लिए मार्ग निर्माण करती है, वहाँ आर्थिक स्वतन्त्रता व्यक्तिको सुशिक्षित, संस्कृत और प्रशस्त मार्गपर द्रुतगतिसे बढ़ानेमें सहायक होती है। भारतीय जीवनमें दोनों वस्तुओंका ही अभाव है। प्रथम तो हम राजनीतिक दृष्टिसे स्वतन्त्र नहीं और दूसरे कुछ इने-गिने धनी व्यक्तियोंको छोड़कर शेष निपट निर्धन हैं। एक ओर हमें अपनी ग़रीबी दूर करनी है और दूसरी ओर परतन्त्रता। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए हम गत ३०-४० वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु हमारे प्रयत्न सुव्यवस्थित रहे हैं तथा यथेष्ट लगनके साथ हुए हैं, इससे कोई भी विचारशील राजनीतिज्ञ सहमत नहीं होगा।

क्या हम शिक्षित भारतीय स्त्रियोंको दाम्पत्य जीवन और मातृत्व तक ही सीमित रखकर एक बहुत बड़ी राजनीतिक भूल नहीं कर रहे? हम जानते हैं कि मध्यम-वर्गके परिवारोंमें, जिनमें से ही अधिकांश राष्ट्र-विधायक निकलते हैं, एक विवाहित पुरुष अकेले अपनी आयसे कठिनतासे अपनी स्त्री व बच्चोंका भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा वगैरह कर सकता है। उसका सम्पूर्ण जीवन इसीमें निकल जाता है। उसके लिए अपने जीवनको, अर्थोपार्जनके अतिरिक्त, अन्य किसी समाजोपयोगी या राजनीतिक कार्यमें लगानेका अर्थ है अपने आश्रितोंके लिए एक विकट समस्या खड़ी कर देना। अतः यहाँ एक प्रश्न उठता है। क्या ऐसी स्त्रियाँ, जो उचित शिक्षा प्राप्त हैं अथवा कला-कौशलसे विज्ञ हैं, अपने-आपको दाम्पत्य जीवन और मातृत्व तक ही सीमित रखें, अथवा समय निकालकर समाजोपयोगी और लोकोपयोगी कामोंमें भी भाग लें, अर्थ उपार्जनकर पुरुषोंको सामाजिक एवं राजनीतिक उन्नतिमें आगे क़दम बढ़ानेके लिए प्रेरित करें और साथ ही स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवनको भी स्वेच्छानुसार विकसित करें? हमारी वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्थामें स्त्री-जीवन-सम्बन्धी परम्परागत विचारोंके कारण अभी तक यह संभव नहीं हो सका है। भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राममें समय-समयपर आगे बढ़कर भाग लेनेवाले व्यक्तियोंने भी अपनी स्त्रियों और बहन-बेटियोंको अपने पैरोंपर खड़ा नहीं होने दिया है।

एक पढ़ी-लिखी विचारशील स्त्री (विवाहित अथवा अविवाहित) अपने घरकी चहारदीवारीसे बाहर क्यों नहीं निकलती, इसके कई कारण हैं—(१) अपने पति अथवा अन्य बुज़ुर्गोंकी इच्छाके विपरीत वह इतनी क्षमता नहीं रखती। उनको नाराज़ कर समाजकी वर्तमान पुरुष-प्रधान व्यवस्थामें वह अपने-आपको इतना योग्य नहीं पाती कि किसी लोकोपयोगी कार्यमें योग दे सके। कहीं पुरुषकी क्रूर दृष्टि या सामाजिक प्रतिक्रियाका परिणाम यह न हो कि उसे अपने घरसे भी हाथ धोना पड़े। (२) पुरुष स्त्रियोंपर दीर्घकालसे अपना एकाधिपत्य रखते आ रहे हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि पढ़े-लिखे पुरुष भी अपनी सुशिक्षिता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्रियोंको अपने ऐश-आरामकी वस्तु ही समझते हैं और उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचारानुकूल समाजोपयोगी काम करनेकी सुविधा, सहायता एवं प्रोत्साहन नहीं देते। (३) सन्तानवती होनेपर पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ शिशु-पालन-गृह वगैरहके अभावमें केवल अपनी दो-एक सन्तानोंके पालन और घरके मामूली काम-धन्धोंमें ही अपना सारा समय व्यतीत कर देती हैं। यूरोपमें सरकारकी ओरसे स्थान-स्थानपर ऐसे शिशु-गृह स्थापित हैं, जहाँ दो महीनेसे लेकर पाँच साल तकके बच्चोंके लालन-पालन तथा खान-पानका समुचित प्रबन्ध है। फैक्टरियों, दफ़्तरों, शिक्षालयों, चिकित्सालयों आदिमें काम करनेवाली स्त्रियाँ अपने बच्चोंको सुबह ऐसे शिशु-गृहोंमें छोड़ जाती हैं, बीचमें अवकाशके समय जाकर उनसे मिल आती हैं, उन्हें दूध पिला आती हैं और शामको कामसे लौटनेपर उन्हें घर ले जाती हैं। ऐसे शिशु-गृहोंमें बच्चोंके लालन-पालनके साथ उन्हें आवश्यक आरम्भिक शिक्षा भी दी जाती है। उनके स्वास्थ्य आदिका भी पूर्णरूपेण ध्यान रखा जाता है। यह भी देखा गया है कि मध्यम व निम्न श्रेणीके बच्चे ऐसे गृहोंमें आकर अधिक स्वस्थ और समझदार बन जाते हैं। रूसमें इस प्रकारके शिशु-गृह रूसी क्रान्तिके बाद ही स्थापित हो चुके थे; परन्तु इंग्लैण्ड वगैरहमें इस महायुद्धमें स्त्रियोंका सहयोग प्राप्त करने तथा बच्चोंको सुरक्षित स्थानपर रखनेके हेतुसे स्थापित किए गए हैं। (४) हमारे चरित्र-सम्बन्धी विचार संकीर्ण और अव्यावहारिक हैं। इनके कारण पढ़ी-लिखी सुयोग्य स्त्रियाँ भी समाजोपयोगी कामोंमें इसलिए भाग लेनेसे डरती हैं कि अन्य पुरुषोंके सम्पर्कमें आनेसे स्त्री-पुरुष-जन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियोंमें बहकर कहीं समाज द्वारा बहिष्कृत न हो जायँ! कई होनहार युवतियोंको कुमारी-अवस्थामें माता बनने अथवा गर्भ रह जानेके कारण अपना समूचा जीवन ही पतित या नष्ट करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन-सम्बन्धी परम्परागत विचारोंने भारतीय नारीको सतीत्वको ही अपने जीवनकी इतिश्री समझनेके लिए बाध्य किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि उसने चहारदीवारीमें अन्य पुरुषोंसे यथासम्भव दूर रहनेमें ही अपना कल्याण समझा है। हमारे नैतिकताके इतने कठोर नियमोंने लड़कियोंकी शिक्षा-दीक्षा, उनके खेल-कूद, बाल्य-मैत्री, विवाह, विवाहित जीवन आदि सबमें संकीर्णता पैदाकर स्त्रियोंके जीवनको एक कोल्हूके बैलकी तरह घूमनेके लिए बाध्यकर उनके जीवन-विकासको रोक दिया है। फल-स्वरूप हमारे यहाँकी शिक्षित स्त्रियोंमें भी चरित्रका विकास उचित रूपसे नहीं हो पाता।

हमारे नैतिकताके वे नियम, जो भारतीय लड़कियोंको शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वेच्छानुसार जीवन-निर्माण, इच्छानुसार विवाह, विवाहसे पूर्व प्रणय तथा विवाहोपरान्त समाजोपयोगी कामोंमें भाग लेनेसे या जीवन-सम्बन्धी अन्य आवश्यक व्यापारोंसे वंचित रखते हैं, समाज-हितमें अवश्य ही परिवर्त्तनीय हैं। मैं अपवाद-स्वरूप अविवाहिता स्त्रीको अपनी सन्तानको पालनेमें उसकी वैधता झ भक्ता हूँ और लोक-लाजके कारण भ्रूण-हत्या या त्यागनेमें रता। कोई भी स्त्री अपने जीवनको समाजोपयोगी काममें कर अगर किसी कारणसे अविवाहित होते हुए या विवाह-बन्ध बँधना अपने लिए असम्भव पाकर किसी ऐसी सन्तानको देती है, जिसके माता द्वारा लालन-पालनके जन्म-सिद्ध अधि से समाजके वर्त्तमान नियम उसे वंचित करते हैं, तो उस एक माताके नाते उसी प्रकार जीवन-यापनका अधिकार है, प्रकार एक विवाहिता स्त्रीको। सन्तानवती होनेमें उस भला क्या दोष? दोषी अगर कोई है, तो वह जो उत्तरदायित्व स्वीकार करनेसे पीछे हटता है, या फिर नैतिकताके वर्त्तमान नियम।

कभी-कभी अपने आसपासकी ऐसी घटनाएँ सुनकर समाचारपत्रोंमें पढ़कर कि अमुक स्त्रीको सड़कपर अकेली हुए किसी पुरुषने छेड़ा, हम लोग लड़कियों या स्त्रियोंको जानेसे रोकना अधिक उचित समझते हैं। परिणाम यह होता कि एक ओर स्त्रियाँ कायर हो जाती हैं और दूसरी ओर प्रकार छेड़-छाड़ करनेवाले पुरुषोंका साहस बढ़ जाता है। गिनी स्त्रियोंका सड़कोंपर चलना या बागोंमें घूमना स्वभाव पुरुषोंका ध्यान आकर्षित करता है, और वे उनको टीका-टिप्पणी विषय बन जाती हैं। अगर स्त्रियाँ अधिक संख्यामें घरसे निकलना शुरू करें, तो ऐसी घटनाएँ कम घटने लगें। उदाहरणार्थ, बम्बई-प्रान्तमें अधिक स्त्रियाँ स्वतन्त्र रूपसे घूमती हैं, वहाँ ऐसी घटनाएँ कम सुननेमें आती हैं। लाहौरमें लारेन्स गार्डनमें होनेवाली कुछ ऐसी घटनाओंका उचित उत्तर तब दिया गया, जब लड़कियों, विद्यार्थियों, अन्य नागरिकों तथा पुलिसने ऐसे गुण्डोंकी अच्छी तरह खबर ली। पिछले दिनों कनाट-प्लेस नई दिल्लीमें कालेजकी कुछ लड़कियोंने छेड़खानी करनेवाले पुरुषोंको अच्छी तरह पीटकर और उनमें से एकको पुलिसके हवालेकर अच्छा सबक़ सिखाया। हम इस प्रकारकी घटनाओंको कम कर सकते हैं; परन्तु एकदम रोक नहीं सकते। फिर भी हम अपनी लड़कियों व स्त्रियोंको सावधान रहने, घरसे आवश्यक प्रबन्धके साथ जाने तथा समय-कुसमय और स्थानका ध्यान रखकर आने-जानेके लिए कहकर उन्हें मार्ग दिखा सकते हैं। उन्हें घरसे बाहर जानेसे रोककर तो हम उनके जीवन-विकासको ही रोकते हैं तथा समाज-विरोधी शक्तियोंको प्रोत्साहन देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री स्वभावतया पुरुषकी अपेक्षा शरीर-बलमें कम होनेके कारण सहसा आपत्ति पड़नेपर अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर पाती, और जब तक समाज उसकी रक्षाका उचित प्रबन्ध नहीं करे, उसे तथा हमें व्यावहारिक बुद्धिसे काम

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेना ही चाहिए। परन्तु साथ ही अत्याचार-पीड़ित स्त्रियोंसे समाजकी सहानुभूति होनी चाहिए, न कि उन्हें बहिष्कार करने या घरसे बाहर निकाल देनेका अनुचित और निर्मम दण्ड मिले। ऐसी घटनाएँ घरके अन्दर अकेली स्त्रीको पाकर भी घट सकती हैं। अभी कुछ दिन पहले हिन्दीके एक पत्रमें इस आशयकी एक घटनाका संवाद छपा था कि एक लड़कीको घरमें अकेली पाकर दो लड़के घुस आए और उसके साथ बलात्कार किया! अगर हमारे समाजकी स्त्रियोंको इतना आश्वासन या विश्वास हो जाय कि उनके साथ इस प्रकारका पाशविक अत्याचार हो जानेपर भी घरमें उनके लिए पूर्ववत् ही स्थान रहेगा और लड़कीके माता-पिता या स्त्रीके अभिभावककी इज्ज़तमें किसी प्रकारका बट्टा नहीं लगेगा, तो कोई कारण नहीं कि स्त्रियाँ अधिक वीरता का परिचय न दें और कायर बनकर घरमें रहने तथा प्रत्येक छोटे-मोटे कामके लिए पुरुषपर ही निर्भर करें।

यूरोप और अमरीकामें स्त्रियाँ समाजके प्रत्येक काममें भाग ले रही हैं। युद्ध-कालमें परिस्थिति-विशेषके कारण उनसे पुरुषों को तरह कोई भी काम नहीं छूटा, और यह कहनेमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि यूरोपीय महिलाएँ पुरुषोंसे कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर अपने-अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रही हैं। केवल स्त्री होनेके नाते या आजकी भारतीय नारीकी तरह सतीत्व और कौमार्यको जीवनसे भी अधिक मूल्य देनेके कारण वे अपने-आपको अरक्षित पाकर पीछे नहीं हटतीं। क्रान्तिके बाद रूसमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए हैं, जिनका परिणाम आज हमारे सामने है। इस महायुद्धमें रूसियोंकी विजय देखकर किसकी आँखें चकाचौंध नहीं हो जातीं? रूसमें स्त्रियोंको पूर्ण नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। कोई भी ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण काम नहीं, जो रूसी स्त्रियोंने योग्यतासे पूर्ण न किया हो। रूसी स्त्री एक ओर श्रेष्ठ न्यायाधीशके पदपर आसीन है, तो दूसरी ओर लड़ाकू हवाई-जहाज़की परिचालक है। एक ओर वह विज्ञ इंजीनियर है, तो दूसरी ओर अन्य देशोंमें विश्वस्त रूपसे कूटनीतिका प्रतिनिधित्व कर रही है। वहाँ आज किसी अविवाहित स्त्रीके सन्तानवती होनेपर तथा अपनी सन्तानका लालन-पालन न करनेपर कोई उसकी ओर अँगुली तक नहीं उठाता। वहाँ लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनके छात्रालय एक ही हैं—केवल रहनेके कमरे जुदा-जुदा हैं। उनके साथ-साथ खेलने-कूदने अथवा मिलने-जुलनेमें कोई रुकावट नहीं। इन सबके होनेपर भी लड़के-लड़कियाँ संयमी जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें काम-विज्ञान-सम्बन्धी उचित शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थी काम-विज्ञान-सम्बन्धी विषयोंपर खूब अच्छी तरह वाद-विवाद करते हैं और संयमके महत्व तथा स्वास्थ्यकी आवश्यकताको पूरी तरह समझते हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यक नियमोंका पालन वे बड़ी मुस्तैदीसे करते हैं। मैं नीचे एक सच्ची घटनाका उल्लेख कर रहा हूँ, जो रूसी लड़कियोंके चरित्रपर अच्छा प्रकाश डालती है।

रूसकी एक कुमारी युद्ध-स्थलसे अपनी माताको एक पत्रमें लिखती है—"मेरी अमुक-अमुक पुरुषसे मित्रता हुई, और यह जानते हुए कि अमुक पुरुष कामासक्त होकर मेरी ओर प्रथम आकृष्ट हुआ, मैंने इस किसानको क़लमें छुड़ाकर सेनामें मोर्चेपर लड़नेके लिए कटिबद्ध किया। आज वह एक वीर सिपाहीकी तरह देशकी आज़ादीके लिए लड़ रहा है। परन्तु मेरी प्यारी माँ, इसका अर्थ यह न लगाना कि मैं किसी प्रकार पतित हो गई हूँ।" रूसमें युद्ध-क्षेत्रमें आगे आकर लड़नेवाली स्त्रियोंके चरित्रके विषयमें ऐसी अनेक कहानियाँ समय-समयपर प्रकाशित होती रहती हैं और यूरोपके अन्य देशवासियोंने उनके उज्ज्वल चरित्र और त्यागकी प्रशंसा भी मुक्तकण्ठसे की है। पर ध्यान रखनेकी बात यह है कि रूसी स्त्रियोंका स्त्रीत्व अपने देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ने-मरनेके कठिन काममें भी बाधक नहीं हुआ, जैसा कि हमारे यहाँ देखनेमें आता है।

वर्त्तमान युद्धने चीनकी स्त्रियोंमें भी क्रान्तिकारी परिवर्त्तन ला दिए हैं। चीनी स्त्री युद्धसे पहले भारतीय नारीकी तरह ही समाजके बन्धनोंमें जकड़ी हुई थी। वहाँ भी सम्मिलित परिवार-प्रथा थी। विवाहके लिए लड़की माता-पितापर अवलम्बित थी। घरके बाहर उसके लिए बहुत कम काम था। परन्तु आज चीनी स्त्रियाँ गुरिल्ला-दस्तोंमें भरती होकर लड़ रही हैं; घायलोंकी सेवा-सुश्रूषा कर रही हैं; दफ़्तरों, कारखानों, शिक्षालयों आदिमें जहाँ भी उनकी माँग है, देशकी स्वतन्त्रताके हित योग दे रही हैं। आज एक शिक्षित चीनी स्त्री विवाहसे पूर्व अपने पतिसे यह वचन ले लेती है कि वह उसके माता-पिताके घरसे अलग अपना घर बनाएगा, उसे पूर्ण रूपसे व्यावसायिक स्वतन्त्रता होगी और उसे पुरुषके समान ही अपना जीवन विकसित करनेका अधिकार होगा। चीनी स्त्रियोंके बारेमें यह भी सुननेमें आया है कि पति-पत्नीके रूपमें विवाहित जीवन साथ-साथ व्यतीत करते हुए अगर पति अन्य किसी स्त्रीसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो पत्नी भी अन्य पुरुषसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर सकती है और कर भी लेती है। पतिकी ओरसे ऐसी पत्नियोंको इसके लिए आवश्यक स्वतन्त्रता रहती है।

भारतीय समाजमें प्रत्येक व्यक्तिके लिए—विशेषकर प्रत्येक लड़कीके लिए—विवाहकी अनिवार्यता और जीवन-पर्यन्त विवाह-सम्बन्धका अटूट रहना उसके जीवनको आवश्यक स्वतन्त्रता से वंचित कर देता है। परिणाम-स्वरूप अपनी रुचिके अनुसार वह अपने जीवनोद्देश्यकी ओर नहीं बढ़ पाती। प्रत्येक स्त्रीके लिए, जो उच्च शिक्षा प्राप्तकर शिक्षक, डाक्टर, नर्स, समाज-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुधारक, लेखक अथवा अन्वेषक बनना चाहती है, अथवा किसी ऐसे समाजोपयोगी काममें योग देना चाहती है, जिसे वह विवाहित होकर सुलभ रूपमें पूरा नहीं कर सकती, आजीवन विवाह-सम्बन्ध अनावश्यक एवं बाधक है। अगर एक पुरुष विवाहित होते हुए भी अपनी रुचिके अनुसार एक कुशल डाक्टर, दार्शनिक, वैज्ञानिक, नेता अथवा लेखक बन सकता है, तो फिर एक स्त्री ही विवाह-बन्धनमें बँधकर क्यों इन समाजोपयोगी कामोंमें भाग नहीं ले सकती? ऐसे कामोंमें भाग लेनेके लिए आवश्यक सुविधाएँ पुरुषोंकी ओरसे उसे प्राप्त होनी चाहिएँ। क्या हम अपने नैतिकताके नियमोंमें ऐसे आवश्यक परिवर्त्तन नहीं कर सकते, जिनसे स्त्रीके चरित्रका आधार एवं उसकी कसौटी सतीत्व, अक्षत योनि, कुमारावस्थामें सन्तानवती न होना आदि न होकर अन्य समाजोपयोगी कार्य हो जायँ? तात्पर्य यह है कि सापेक्ष महत्व दूसरी ओर चला जाय और अत्यधिक महत्व जो इन गुणोंको दिया जा रहा है, वह कम हो जाय।

देशकी स्वतन्त्रताका प्रश्न हमारे लिए इतना सुगम नहीं कि हम अपनी सामाजिक व्यवस्था और नैतिकताके नियमोंको यथावत् रखकर ही हल कर लें। अगर यूरोपीय और अन्य देशोंकी स्त्रियाँ घरकी चहारदीवारीको छोड़कर बाहर आ रही हैं और अपने सामाजिक नियमोंमें आवश्यक परिवर्त्तन कर रही हैं जिनसे कि वे समाजका क्रियाशील अंग बन सकें और अपने तथा अपने देशवासियोंका जीवन उच्च बना सकें, तो हमें भी इस ओर आगे बढ़ना ही होगा। पाश्चात्य विजयी जातियोंके मुक़ाबला हम उनके अनुरूप, पर उनसे अधिक त्यागमय, जीवन बनाकर ही कर सकेंगे। अपने देशको स्वतन्त्र करना हमारे लिए एक महान उद्देश्य है; अपने जीवनको उच्च बनाना हमारे लिए व्यक्तिगत व सामाजिक आवश्यकता है। इसीलिए हमें अपनी सामाजिक व्यवस्थाओं, अपनी चरित्र-सम्बन्धी मिथ्या तथा भ्रान्त धारणाओं और नैतिकताके नियमोंमें आवश्यक परिवर्त्तन करना नितान्त अनिवार्य है, जिससे पाश्चात्य उन्नतिशील जातियोंके तुल्य ही स्त्रियोंका पूर्ण सहयोग हमें भी प्राप्त हो सके। उक्त योगिता और उद्देश्यकी दृष्टिसे देखें, तो आज जो हमें अनैतिक प्रतीत होती है, कल वही नैतिकतामें परिणत हो जायगी। सामाजिक नियमोंमें समय और परिस्थितिके अनुकूल परिवर्त्तन करना बुद्धिमत्ता और दूरन्देशी है, और इसीसे समाज जीवित रहता है।

उसका ताज

श्री गंगाधर शुकुल

'सलमा, मैं शाम होते-न-होते वापस आ जाऊँगा। आज बादशाह सलामत ताजमहल बनानेवाले तमाम कारीगरोंको इनाम देंगे।'

'कितने नेक हैं वो! भला, इनाम होगा क्या?'—नेत्रहीन सलमाने उल्लाससे खिले मुँहको हबीबकी ओर मोड़ते हुए पूछा।

'आज ग़रीब हबीब भी अपनी भोली सलमाके लिए कोई तोहफ़ा ला सकेगा।'—प्यारसे सलमाकी ठोड़ी ऊपर उठाते हुए उसने कहा—'एक नन्हा-सा मोतियोंका झूमर।'

'झूमर! मोतियोंका! जिसे मैं देख भी न सकूँगी!'

कुछ समय सन्नाटा रहा, फिर बात बदलते हुए सलमाने कहना शुरू किया—'भला, कितना सुन्दर है ताजमहल, जिसे तुमने बनाया है?'

'मैंने बनाया है? नहीं भई, मैंने तो बहुत ज़रा-सा ही काम किया है। लेकिन सलमा, काश, तुम उस बिखरी हुई खूबसूरतीको देख सकतीं! इतना खूबसूरत...!'

'कितना? मुझे दिखलाओगे न? मैं ज़रूर देखूँगी।'

'मगर कैसे देखेगी, मेरी रानी?'

'मैं देख लूँगी। सिर्फ़ अगर तुमने मुझे अपने हाथोंका सहारा दिया, तो मैं सब-कुछ समझ लूँगी। मैं छूकर उस पच्चीकारीको देख लूँगी, जिसे मेरे प्यारे हबीबने बनाया है। तुम चुप क्यों हो गए? मैं सब-कुछ देख लूँगी।'

उसकी ज्योतिहीन आँखोंसे आँसू बह निकले। दूसरे क्षण उठी हुई सिसकियों और हृदयमें उमड़ते हुए बिरोग-मिश्रित उद्वेलित प्राणोंके कंपनको वह हबीबकी गोदमें छिपानेका विफल प्रयत्न कर रही थी। हबीब चुपचाप उसके बालोंको सहलाता रहा। इच्छा रहते हुए भी अपनी प्यारी सलमाके दुःखको वह कैसे दूर कर सकता था। काँपते हुए स्वरमें वह कहती ही जा रही थी—'कहते हैं, खुदा रहमदिल है। आँखें लेकर भी बीमारीने पीछा नहीं छोड़ा। खुदा क्या यह नहीं देखता कि मुझे कितनी तकलीफ़ है! भला, मैंने उसका क्या बिगाड़ा था?'

'खुदापर यक़ीन रखो सलमा, वह बहुत रहमदिल है।'—हबीब सान्त्वना देते हुए प्यारसे कह रहा था—'तुम्हारी आँखें तो मेरे पास हैं, फिर ग़म कैसा? चन्द दिनोंमें सलमा अच्छी हो जायगी, तब हम वतन वापस चलेंगे। मचलते हुए झरनोंकी फुहारसे भींगे पत्थरोंपर बैठेगी मेरी रानी। उछलती लहरें तालियाँ बजाकर इस्तक़बाल करती हुई नन्हें-नन्हें खूबसूरत पैरोंको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क़दमबोसी करेंगी। और मैं सबसे ज़्यादा खूबसूरत फूलोंको चुन सलमाके बालोंको सजाकर देखूँगा उनका शर्मसे लजाना। खूबसूरतीमें वे मेरी समोके पासंग बराबर भी तो न होंगे।'

उसकी बाँहोंपर सिर रखे हुए सलमा सुन रही थी। सिसकियाँ दब गई थीं। चिहुँककर सलमाने कहा—'मचलते हुए झरनोंकी फुहारसे भींगे पत्थरोंपर! न हबीब, मैं न बैठूँगी।'

'क्यों?'

'मैं अन्धी हूँ न। अगर गिर गई, तो?'

'हबीबके मज़बूत हाथोंपर इतना भी भरोसा नहीं?'—उसे बाँहोंमें भरकर अपनी ओर समेटते हुए हबीबने कहा। कुछ देर कोई न बोला। फिर उठकर चीज़ें सँभालते हुए हबीबने कहा—'सलमा, मैं जाऊँ न?'

'जाओ, मगर जल्द आना। मैं हमेशा अँधेरेमें रहते-रहते ऊब उठी हूँ। और जब तुम भी नहीं होते, तो अँधेरा और भी गाढ़ा होकर जैसे मुझे निगल जाना चाहता है। मैं कितनी बदनसीब हूँ कि हमेशा तुम्हें तकलीफ़ ही पहुँचाती रही···!'

'समो!'—बात काटते हुए हबीबने कहा—'आज तुम्हें हो क्या गया है? तुमको क्या मालूम कि तुम्हीं मेरी सबसे बड़ी ताक़त और दिलासा हो। दिन-भरकी थकावट, दिन-भरकी मेहनतसे थकी आँखें तुम्हारे इन खूबसूरत बालोंमें उलझकर सब-कुछ भूल बैठती हैं। अब फिर कभी ऐसी-वैसी बातें मुँह तक न लाना।'—रूखे स्वरमें सलमाका सिर हिलाते हुए उसने कहा।

सलमा खामोश थी। हबीब चला गया, और वह देखती रही—जिधर पैरोंकी चाप प्रतिध्वनित होकर खो गई थी और जिसके वापस फिरनेमें बहुत देर थी।

- २ -

देश-विदेशके कलाकार, जिन्होंने भारत-सम्राटकी प्रियतमाकी स्मृतिको संसारमें कभी न विस्मृत होनेके लिए उस अलौकिक स्मारकका निर्माण किया था, आज अपने परिश्रमका मूल्य ही नहीं, पुरस्कार पानेके लिए एकत्रित हुए थे। भारतके राजकोषके रत्नों, स्वर्ण तथा अन्य पारितोषिकोंसे पुरस्कृत होकर सबकी आँखें चकाचौंध हो उठीं। हरएककी जिह्वापर सम्राटकी प्रशंसा ही थी।

और इसके बाद फिर कभी वैसी कलाका प्रदर्शन न हो सके, फिर कभी वैसी जालियाँ न काटी जा सकें, फिर वैसे ही फौवारे न बन सकें, फिर वैसी पच्चीकारी न खिंच सके—इसलिए कि सिर्फ़ ताजमहलकी ही ऊँची सुन्दर मीनारें आकाशके घुमड़ते हुए बादलोंको छूती गर्वसे कह सकें कि ऐसा स्मारक फिर कभी न बन सकेगा—राजाज्ञा थी कि सब कलाकारोंके हाथ काट दिए जायँ! उन्हींमें से था हबीब, और वह भी न बच सका।

चार दिन बाद धड़कते हुए दिल और काँपते हुए पैरोंसे हबीब अपने घरकी ओर जा रहा था। अपने कष्टका तो उसे ध्यान भी न था। चार दिन—पूरे चार दिन—बाद हबीब फिर वहीं खड़ा था, जहाँ वह सलमासे बहुत जल्द वापस आनेका वादा करके गया था। सलमा बेहोशीमें न-जाने क्या कह रही थी। प्राणोंका दीप कदाचित् आखिरी झोंकेकी प्रतीक्षामें अभी भी टिमटिमा रहा था। बहुत देर हो चुकी थी। बादशाह सलामतके इनामसे कलका भिखारी आज जागीरदार था। सलमा बुदबुदाई—'मचलते हुए झरनोंकी फुहारसे भींगे पत्थरोंपर मैं बिठाऊँगा।···मुझे डर लगता है, हबीब,...अँधेरा मुझे निगल जाना चाहता है...हबीबके मज़बूत हाथोंपर भरोसा नहीं···मचलते हुए झरने···।' साँस टूट रही थी, क्षणोंकी देर थी। रूखे होंठोंपर जीभ फेरते हुए उसने कहा—'पानी।'

और हबीब भरी हुई आँखोंसे अन्दर-ही-अन्दर अपनी बेबसीको सींचता हुआ देख रहा था अपने उन मज़बूत हाथोंको, जो अब उसकी आखिरी दम तोड़ती हुई प्यारी सलमाके मुँहमें दो बूँद पानी भी नहीं डाल सकते थे!

- ३ -

ताजमहलमें हल्का-सा उजाला था। बादशाह सलामत लाल क़िलेके महरावदार दरवाज़ेसे चुपचाप उधर देख रहे थे, जहाँ उनकी प्रियतमा, भारतकी सम्राज्ञी, अटूट निद्रामें सो रही थी। अब वे आपसमें फिर कभी न मिल सकेंगे। साथमें बिताया हुआ एक-एक क्षण आज याद आ रहा था, जो फिर लौट न सकता था। इतना बड़ा सम्राट, जिसके माथेकी एक शिकन न जाने कितने भाग्योंका हेर-फेर कर सकती थी; जिसकी इच्छासे संसारकी भला कौन-सी ऐसी वस्तु थी, जो पैरोंपर न आ गिरती! लेकिन सब-कुछ न्योछावर करके भी वे अतीतके एक नन्हें-से क्षणको वापस बुला सकते थे? छोटी-छोटी बातें हृदयको मथती हुईं एक तूफ़ान-सा उठाए थीं। सारी दुनिया उनके लिए सूनी हो चुकी थी।

लेकिन बादशाह सलामतको क्या मालूम कि पास ही एक ताज़ी क़ब्रकी गीली मिट्टीको अपने आँसुओंसे और भी गीली बनाता हुआ एक और आदमी भी उसी ताजमहलको हसरत-भरी निगाहोंसे देख रहा था! काश, उनको मालूम हुआ होता कि वह अपने तड़पते दिलकी बेबसीको दबाए हुए सोच रहा था कि जिन हाथोंने उस ताजमहलको इतना खूबसूरत बनानेमें मदद की, आज वे अपनी प्यारी सलमाकी क़ब्रपर दो मुट्ठी मिट्टी भी नहीं डाल सकते!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिव कवि शुक्ल

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी, एम० ए०

शिव कवि शुक्लका जन्म असनी ग्राम (ज़िला फ़तेहपुर) में एक ऊँचे कान्यकुब्ज-परिवारमें हुआ था। पिताकी मृत्यु बाल्यकालमें ही हो जाने और अन्य सहारा न होनेसे उनका प्रारम्भिक जीवन विपत्तियोंकी एक करुण कहानी ही है। उस समय असनीमें कई अच्छे कवि थे, उन्हीं लोगोंके नित्य सत्संग, अध्यवसाय और कुछ स्वाभाविक कवित्व-शक्ति होनेके कारण कालान्तरमें एक अच्छे कवि हो गए। परन्तु कविता करना और जीविकाका प्रश्न हल करना तो दो भिन्न वस्तुएँ थीं। मस्तिष्कमें संघर्ष था। आखिर सरस्वतीदेवीके पक्षमें विजय हुई, और शुक्लजीने अधिष्ठात्री वाणीको ही सदाके लिए अपनी जीविकाका माध्यम बना लिया।

वे अनेक राजाओंके यहाँ होते हुए तत्कालीन बघेल-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह जू देव बहादुरके दरबारमें पहुँचे और अवसर प्राप्त होते ही निम्न कवित्त सुनाया :—

मरयो मेरे बापको, खिझायो मेरे बाबाको,
लूट्यो परपाजाको, न रहन पायो दाना है ;
माथे पै सवार ह्वै फिरायो मोहिं देस-देस,
मिलैका हजार तो देवायो एक आना है।
शिव कवि कहत अर्ज सुनो विश्वनाथसिंह,
तू तो है बघेल, तेरो वीरताको बाना है ;
खैंचि कै कमान बान काने लौं तान,
तेरो तीर है अचूक, मेरो दारिद निशाना है।

इसे सुनकर रीवाँ-नरेशने उन्हें ५००) इनाम दिए और सालाना वृत्ति भी बाँध दी तथा उन्हें अपने दरबारमें बड़े आदरसे रखा। अतएव इतना अनुमान किया जा सकता है कि कविका समय विक्रमकी १८वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध और १९वीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध रहा होगा। एक दिन महाराजने गंगाजीकी स्तुति करनेके लिए कहा, तब उन्होंने निम्न कवित्त सुनाए :—

गंगाको न्हाय और तीर्थ मत जाव,
गंगाके नहाए लोक दूनहूँ सुधरि हैं ;
गंगा ते कासी प्राग सागरकी भई थाप,
गंगाके तीर महाजोगी जामा छोरि हैं।
गंगाको नाम अग्नि पाप-फूस फूँकि देत,
शिव कवि कहत जम नाम लेत डरि हैं ;
गंगाके नहायेको ह्वैहै फल झूठो तौ,
ब्रह्माके बनाए पाप तेऊ झूठे परि हैं॥
तू है आदि माया जग तू ही उपजाया,
चारो वेद जस गाया तू जहान पेट भरयो है ;
तोहीं सों खानदान सम्पत्ति शरीर सुख,
तोहींको त्रिपुरारि जटा बीच धरयो है।
तोहींको ध्यावैं शिव कवि फल पावैं चार,
पातकी अनेकनको महादेव करयो है ;
मारिबो महेशजूको, पालिबो मुरारि हाथ,
तारिबो तरंगिनि तिहारे हाथ परयो है।

शिव कविको रीवाँ-दरबारमें रहते हुए कई वर्ष बीत गए, परन्तु उन्होंने महाराजसे अपनी आर्थिक दुरावस्थाका हाल कभी नहीं कहा। एक दिन असनीसे शिव कविका दसवर्षीय पुत्र रीवाँ आया और वह भी दरबारमें गया। वहाँ किसी कारणवश कविजीकी थोड़े समयकी अनुपस्थितिमें महाराजने उस बच्चेसे बातचीत करके सारा हाल जान लिया। उन्होंने जाना कि कविजीका असनीका घर कच्चा बना हुआ है, जिसके विषयमें पूछनेपर उन्होंने सदैव उसे पक्का बताया था। थोड़ी देर बाद कविजी भी आ गए। उनके समीपस्थ होते ही महाराजने साधारण भावसे प्रश्न किया कि कविजी, आपका असनीवाला घर कच्चा है या पक्का ? कविजीने तत्काल उत्तर दिया कि महाराज, पक्का बना हुआ है। तब महाराजने कविजीके पुत्रकी ओर संकेत करते हुए कहा कि यह बच्चा तो कहता है, कच्चा है। यह सुनते ही उन्होंने अपने पुत्रके एक थप्पड़ मारा और कहा—'मूर्ख, इतना भी नहीं जानता, पजावेमें एक बार आग लगाई जाती है, तो सारी ईंटें पक जाती हैं ; असनीमें अब तक इक्कीस बार आग लग चुकी है, अभी हमारा घर कच्चा ही रह गया है !' महाराज कविजीका अपनी बातकी पुष्टिमें ऐसा अनोखा प्रमाण सुनकर चमत्कृत हो उठे और कहा कि बहुत अच्छा, एक हज़ार रुपया लीजिए और अपना घर पक्की ईंटोंका बनवा डालिए।

रीवाँ-महाराज पक्के वैष्णव थे और शिव कवि थे पक्के शैव, इसलिए आए दिन यह धार्मिक मतभेद लेकर मुठभेड़ हो जाया करती थी। एक दिन अपने-अपने मतकी श्रेष्ठताका विवाद चल रहा था। राजा विष्णुको अन्य सारे देवताओंसे बड़ा कहते थे और कविजी शिवको। आखिरकार और कोई बात न सूझती देख कविजीने अपनी रुद्राक्षकी माला उतारकर महाराजके सामने रख दी और कहा—'यह लीजिए, मेरे शिवजीका चिह्न और आप भी अपने देवताके चिह्नवाली गलेकी तुलसीकी कण्ठी निकालिए तथा इन दोनों चिह्नोंको बाज़ारमें बिकवा लीजिए। जिसका चिह्न अधिक मूल्यमें बिके, उसका देवता भी सबसे बड़ा सिद्ध हो जायगा।' महाराज यह सुनकर उस दिन और आगे न बोल सके, पर उनको यह बात लग गई। उन्होंने शिव कविको नीचा दिखानेके विचारसे एक दिन बाहरसे कई विद्वान पण्डितों

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को विष्णुकी श्रेष्ठताका समर्थन करनेके लिए चुपचाप दरबारमें बुलवाया। फिर क्या था, चारों ओरसे शिव कविपर बौछार पड़ने लगी। पहले तो वे यथा-तथा शिव-मतका प्रतिपादन और उसकी श्रेष्ठतापर कहते-सुनते रहे; परन्तु जब उन्होंने अपना उपहास होते देखा, तो वे खड़े हो गए और निम्न दो छन्द पढ़े :—

मुच्छ मुण्ड मुण्ड सिर झोटई छोटि-छोटि,
छापा दिए मुँह बाए द्वार-द्वार फिरिहौ।
तन्तुकार चर्मकार बाम बढ़ई लोहार,
सोनखर सोनार मिलि सबै भ्रष्ट करिहौ।
शिव कवि कहैं तेरे गरेमें परैगो काठ,
पूछिहौ न जाति-पाँति जूँठ खात फिरिहौ।
ऊधौके विरोधी राधे गोपिनके श्राप ते,
काहू कठमलियाके पाले पूत परिहौ।

देखे विभूति जरे सियरे बगरे बन बालन दुष्ट कुजाती;
वेद-पुरान हेरान जहान ते सूदनकी फैली परिपाटी।
बेहना पटवा चिकवा जहँ पण्डित शिव कवि मैं न चढ़ौं वह घाटी;
रीवाँ मा सोई बड़ो बकता जेहिके गरे काठ कपार मा माटी।

और दरबार छोड़कर चल दिए। सुनते हैं, महाराजने यह वचन देकर कि अब कभी भी इस प्रकारका विवाद न होने पायगा, बड़ी कठिनाईसे शिव कविको पुनः अपने दरबारमें बुला पाया था।

शिव कवि रीवाँ-दरबारके सिपाही-प्यादोंको कभी कोई इनाम-इकराम नहीं दिया करते थे, इससे वे लोग भीतर-ही-भीतर उनसे कुढ़ा करते थे। एक बार उनके रीवाँ पहुँचनेपर महाराज को उनके आनेकी खबर नहीं दी गई। होते-होते दशहराका पर्व आ गया। दूसरे दिन महाराजकी सवारी निकलनेवाली थी। शिव कवि महाराजकी अपने प्रति ऐसी उदासीनता देखकर बड़े चक्करमें पड़े हुए थे। उन्होंने निम्न कवित्त एक काग़ज़पर लिखा और उसे रीवाँ नगरके 'पटपट-दरवाज़े' पर रातमें चिपका दिया :—

रही ना गिरिस्ती सब लूटि लियो मोदीने,
हो गए फकीर शौच करै जायँ नारे मा;
राजनके दिए सिरोपाव भाँति-भाँतिनके,
तेऊ बेंचवाय लीन्ह्यों दया नहीं सारे मा।
जियत विश्वनाथ मोहिं विश्वनाथ कै दीन्ह्यों,
पास नहिं रजाई जाड़ु काटैं जाय भारे मा;
भंगकी तरंगमें औ संग यार लोगनके,
तवा बेंचि हवा खायँ पटपट-दरवाजे मा।

प्रातःकाल महाराजकी हाथीपर सवारी निकली। उनकी दृष्टि उस काग़ज़पर पड़ी। काग़ज़ उतरवाया गया और उसे पढ़ते ही महाराज समझ गए कि यह जुर्रत असनीके शिव कविको छोड़कर और कोई नहीं कर सकता। उन्होंने तुरन्त पूछा कि क्या शिव कवि आए हैं? अब नौकर-चाकर अधिक छिपानेका साहस न कर सके। महाराजने शिव कविको बुलवाया, प्रणाम किया, एक घोड़ा और सिरोपाव दे सवारीके आगे उन्हें चलाया, तब वे चले। इसी घटनाके उपरान्त महाराजने ड्योढ़ीवानोंको आज्ञा दी कि शिव कविको भविष्यमें मेरे पास बेरोक-टोक आने देना।

कविने किसी प्रबन्ध-काव्यकी रचना नहीं की है। उनकी फुटकर रचनाओं-सम्बन्धी लगभग डेढ़ सौ कवित्त व सवैए प्राप्त हुए हैं, जिनमें अधिकांश भँड़ौए हैं और कहीं-कहीं अश्लील शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। शृंगार-रस-सम्बन्धी उनका अभी तक कोई छन्द देखनेमें नहीं आया। उनके कवित्त हास्यरस-प्रधान और ओजस्वी हैं। वे कविके लिए 'भँड़ौआ-रचना' अति आवश्यक समझते थे, यह उनके निम्न कवित्तसे स्पष्ट हो जायगा :—

रैन बिन चन्द जैसे, कन्द है मिठाई बिन,
सन्द बिन कर्जदार, ग्वाही जाको नबि है;
दीप बिना गेह जैसे, नेह बिना पाहुन है,
देह बिना रामनाम जात वृथा सब है।
वेद बिना ब्राह्मण, बजार बिना बनियाँ है,
बानी बिना बैन जाति शिव कवि दबि है;
हाँड़ी बिन डउआ ज्यों, किसमत बिन नउआ,
पर बिना कउआ त्यों, भँड़उआ बिना कवि है।

खेद है कि कविका वंश डूब गया; परन्तु उनकी कृतियाँ आज भी उन्हें जीवित रखे हुए हैं। कविका असनीवाला घर उजड़ गया, गिर गया और उसपर दूसरोंका अधिकार भी हो गया; परन्तु असनीमें बहुतेरोंकी ज़बानपर कविके कवित्त हैं। हमें कविकी निधन-तिथिका भी पता नहीं लग सका।

उपालम्भ

श्रीमती होमवती देवी

स्वप्नसे आए, बने चिर-चेतना, जो कहीं जाग्रति ही बन आते;
भूल न पाई अभी तुमको, तब जाने कहाँ तुम प्राण! समाते?
दूर खड़ा लखता यह विश्व, मैं 'तुम' बनती, तुम 'मैं' बन जाते;
रहते सदा संग छाया-शरीरसे, एक हृदय तन दो कहलाते।

हमने उनको सब सौंप दिया, अपना वे सदा ही बचाते रहे;
हमने तो भरोसा किया उन पै, वह घात पै घात चलाते रहे।
हमने उनको अपना समझा, वह दूसरोंको अपनाते रहे;
हमने अरु नेह सँवारा जिसे, वह प्रेमका दीप बुझाते रहे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फ्रेंकलिन डिलानो रूज़वेल्ट

मोहनसिंह सेंगर

लेनिनकी मृत्युके बाद कहा गया था : भावी इतिहासकारों को शायद इस बातका निर्णय करनेमें कुछ दुविधा हो कि अक्टूबर-क्रान्तिका श्रेय लेनिनको अधिक था, या पहले महायुद्धको ? आश्चर्य नहीं, यदि वर्त्तमान महायुद्धके इतिहासकारोंको भी इस बातका निर्णय करनेमें दुविधा हो कि इसकी विजय—और विशेषतया फाशिज़्मके विनाश—का श्रेय रूज़वेल्टको अधिक है, या रूसको ? यहाँ हमने जान-बूझकर अमरीका न लिखकर रूज़वेल्ट लिखा है। इसका कारण यह है कि अमरीका आसानीसे लड़ाईमें शामिल नहीं हुआ है। ७ दिसम्बर, १९४१ को पर्ल वन्दरगाह पर हुए जापानी आक्रमणसे पूर्व अमरीकन जनताको आत्मघाती तटस्थताकी भ्रान्तिसे मुक्त करने तथा गुप्त फ़ाशिस्त प्रचारकोंके प्रभाव एवं उनके सहायक-समर्थक अमरीकन पूँजीपतियोंके चंगुल से निकालनेके लिए रूज़वेल्टको जिस राजनीतिक विरोध, प्रतिगामी भ्रान्ति-प्रचार और पग-पगपर मुनाफ़ाखोर पूँजीपतियोंकी अड़ंगेबाजीका सामना करना पड़ा है, वह उनसे कम प्रभाव, लोकप्रियता और जीवटके किसी भी दूसरे राष्ट्रपतिको सहज ही विफल कर सकता था। मार्च, १९४१ में उधार-पट्टा-विल और बादमें अमरीकन सेना और युद्ध-सामग्री बाहर भेजे जानेके विरोध को जिस साहस और दृढ़ताके साथ उन्होंने जीता, वह हर किसीके बूतेकी बात नहीं थी। यदि विश्व-संकटके इस समय रूज़वेल्ट अमरीकाके राष्ट्रपति न होते और उनके प्रभाव-प्रेरणासे अमरीका फ़ाशिज़्मके बढ़ते हुए खतरे और शक्तिके मुक़ाबलेके लिए अपनी सारी साधन-शक्तिके साथ न आ डटता, तो आज क्या स्थिति होती और दुनियाका भविष्य क्या होता, इसकी शायद हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते।

महत्वाकांक्षा और आदर्शनिष्ठा

फ्रेंकलिन डिलानो रूज़वेल्टका जन्म ३० जनवरी, १८८२ को हाइड पार्क (न्यूयार्क) में हुआ था। इनके पुरखे १६४९ में हालैण्डसे आकर यहाँ बस गए थे। फ्रेंकलिनकी माताका नाम 'डिलानो' और पिताका 'रूज़वेल्ट' था। इसीलिए परम्परानुसार उनका पूरा नाम फ्रेंकलिन डिलानो रूज़वेल्ट हुआ। फ्रेंकलिनके पिता जेम्स रूज़वेल्टके पास खेती और व्यवसायसे काफ़ी धन हो गया था। अतः वे सपरिवार गर्मियाँ यूरोपमें ही बिताया करते थे। फ्रेंकलिनकी प्रारम्भिक शिक्षा ऐसे ही प्रवासमें २ वर्ष तक जर्मनीमें हुई। इन यात्राओंमें फ्रेंकलिनने न केवल जर्मन, फ्रेंच, डच आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान ही प्राप्त किया, बल्कि यूरोपीय देशोंके जीवनको भी निकटसे खूब अच्छी तरह देखा-समझा। बचपनसे ही फ्रेंकलिनको समुद्री जीवनसे विशेष प्रेम हो गया था ; पर आपके पिताने आपको इस ओर नहीं जाने दिया।

अमरीकाके पूर्व राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट जेम्सके [illegible] रिश्तेमें कुछ लगते थे। अक्सर वे इनके यहाँ आते-जाते [illegible] फ्रेंकलिनकी प्रतिभा, समझ एवं दूरदर्शिताने उन्हें विशेष [illegible] आकृष्ट एवं प्रभावित किया था। एक बार जब थियोडोर [illegible] अमरीकाके राष्ट्रपति (१९०१-८) थे, हँसीमें फ्रेंकलि [illegible] कहा था—'यदि मैं अमरीकाका राष्ट्रपति बनूँ, तो आपसे [illegible] काम करूँगा !' इसके उत्तरमें थियोडोरने भी हँसकर कह दि [illegible] 'जिस दिन तुम राष्ट्रपति बनोगे, या तो अमरीका रसातलमें [illegible] जायगा या फिर वह बिल्कुल एक नई दुनिया हो उठेगा !' [illegible] न होगा, हँसीमें कही गई यह बात कितनी सत्य निकली है।

नियमित रूपसे फ्रेंकलिनकी प्राथमिक शिक्षा हाइड पार्क [illegible] ग्रामीण शालामें ही हुई। माध्यमिक और उच्च शिक्षाके लि [illegible] हारवर्ड-विश्वविद्यालय भेजे गए। वहाँके स्नातक होकर उन्हों [illegible] तीन वर्षकी पढ़ाईके बाद कोलम्बिया-विश्वविद्यालयसे कानून [illegible] किया और न्यूयार्कमें वकालत शुरू कर दी। लोक-कल्या [illegible] भावना और आदर्शनिष्ठा सहज ही फ्रेंकलिनको राजनी [illegible] संघर्षमें खींच लाईं और १९१०में वे डेमोक्रेटिक-दलकी ओ [illegible] सेनेटके सदस्य चुने गए। अपनी वाक्पटुता, ईमानदारी [illegible] कर्त्तव्य-परायणताके कारण शीघ्र ही फ्रेंकलिनने सरकारी [illegible] गैर-सरकारी क्षेत्रोंमें खासी धाक जमा ली। इसी समय राष्ट्र [illegible] उड्रो विल्सनकी नज़र आपपर पड़ी, और उन्होंने (१९१३ [illegible] आपको नौसेना-विभागका सहमन्त्री बना दिया। वैसे [illegible] समुद्र-यात्राका शौक होनेके कारण फ्रेंकलिनको इस विभा [illegible] कार्योंसे विशेष रुचि भी थी ; अतः उन्होंने अपनी समझ [illegible] तथा कार्य-क्षमतासे राष्ट्रपतिके दिलमें शीघ्र ही अच्छा [illegible] बना लिया। कदाचित् इसीलिए १९१८ में यूरोपमें अमरीक [illegible] जंगी-बेड़ेके निरीक्षण तथा १९१९ में अमरीकन सेनाकी वा [illegible] की व्यवस्था करनेके लिए राष्ट्रपतिने आप ही को भेजा।

१९२० में डेमोक्रेटिक-दलने फ्रेंकलिनको उपराष्ट्रपति-प [illegible] लिए खड़ा किया। इस समय विल्सनकी यूरोपीय नीति—[illegible] विशेषतया राष्ट्रसंघकी स्थापना—के विरुद्ध अमरीकामें [illegible] राजनीतिक तूफ़ान आया हुआ था। आप न सिर्फ़ विल्सन [illegible] नीतिके ही समर्थक थे, बल्कि राष्ट्रसंघके हिमायती भी। अतः [illegible] इस चुनावमें सफल नहीं हुए। इसके अगले ही वर्ष तेज़ [illegible] शौकने आपको एक आकस्मिक शारीरिक विपत्तिमें डाल दि [illegible] आप एक साफ़ बर्फ़ीले पानीकी झीलमें कूद पड़े। इसके फ [illegible] लकवेके कीटाणु थे, जिन्होंने आपके पाँवोंको बेकार कर दि [illegible] पूरे दो वर्ष आप चारपाईपर पड़े रहे। इस दौरानमें आपने अ [illegible] रीकाके इतिहास और पूर्व राष्ट्रपतियोंकी जीवनियोंका विशेष [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्ययन किया। अच्छे-से-अच्छा इलाज करानेपर भी आप फिर कभी अपनी टाँगोंपर खड़े होने अथवा चलने लायक़ नहीं हो सके और बादमें सदा बैसाखीके सहारे अथवा पहिएदार कुर्सीपर ही चलते-फिरते रहे। इस घटनाने एक तरहसे फ्रैंकलिनके राजनीतिक जीवनका अन्त-सा ही कर दिया था; पर भाग्यके आगे निराश होकर सिर झुकानेवाले आप न थे। पूरे दो वर्षके अभ्यासके बाद जब आप एक पाँवका अँगूठा हिला-डुला सकनेमें कामयाब हो गए, तो आपने अपने साथियोंसे कहा—'अब मुझे दुनियामें कोई भी काम असम्भव नहीं जान पड़ता!' और सचमुच आप फिर नए साहस तथा विश्वासके साथ कार्यक्षेत्रमें कूद पड़े और तेज़ीसे सफलताकी ऊँची सीढ़ियोंपर चढ़ने लगे।

राजनीतिक संघर्षका आरम्भ

१९२४ में फ्रैंकलिनके पुनरागमनने डेमोक्रेटिक-पार्टीकी साखको बढ़ा दिया और १९२८ तथा १९३० में वे दो बार न्यूयार्कके गवर्नर चुने गए। अपने कार्य-कालमें फ्रैंकलिनने न्यूयार्कके नागरिक जीवनको टैमनी-हाल*के कुप्रभावसे मुक्त किया, मेयर वाकरके विरुद्ध लगाए जानेवाले अभियोगोंकी जाँच को और न्यूयार्क-राज्यके शासनको काफ़ी लोकतान्त्रिक रूप दिया। बेकारों और श्रमजीवियोंकी बस्तियों तथा उनकी रहन-सहनको सुधारनेके लिए भी आपने बहुत-कुछ किया। इसने फ्रैंकलिनकी प्रतिष्ठा और लोकप्रियताको इतना बढ़ा दिया कि जुलाई १९३२ में डेमोक्रेटिक-पार्टीके सर्वेसर्वा एल स्मिथके मुक़ाबलेमें १९०½ के विरुद्ध ९४५ मतोंसे डेमोक्रेटिक-दलने राष्ट्रपति-पदके लिए फ्रैंकलिनको ही अपना उम्मीदवार मनोनीत किया।

नवम्बर, १९३२ में ४८ राज्योंने ६५ लाख वोटोंके बहुमत से हर्बर्ट हूवरके मुक़ाबलेमें फ्रैंकलिनको राष्ट्रपति चुना। यह समय अमरीका ही नहीं, विश्व-भरमें बड़े अन्धकार, आर्थिक एवं व्यापारिक मन्दी और प्रतिगामी शक्तियोंके उदयका था। एक ओर जापान सिर उठा रहा था और उसका फौलादी पंजा कोरिया-मंचूरिया द्वारा एशिया महाद्वीपपर फैलने लगा था। चीन भीषण गृह-युद्धकी आगमें जल रहा था। भारतमें राजनीतिक असन्तोष और अशान्ति अपनी चरम सीमापर पहुँच रहे थे। मन्दी और बेकारीके साथ ही राजनीतिक दमन, आर्डिनेन्स-राज्य और गांधीजीके घोषित अनशनसे भारतीय जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त हो रहा था। यूरोपमें रूसी क्रान्तिके बाद उदय हुई क्रान्तिकारी शक्तियाँ विघटित हो रही थीं। फ्रांसमें राजनीतिक अराजकता और जर्मनीमें नात्सी-शक्ति अपना मनहूस सिर उठानेका अवसर ढूँढ़ रही थीं। ब्रिटेनमें दूसरी बार विफल होकर तथाकथित समाजवादी मज़दूर-दल टोरियोंके आगे घुटने टेक चुका था और टोरी सारी मन्दी तथा बेकारीका दोष मज़दूर-मन्त्रिमण्डलके सिर थोपनेके सिवा कुछ भी नहीं कर रहे थे। अमरीका भी इस विश्वव्यापी गिरावटसे अछूता नहीं बच सका। मन्दी और घाटेके कारण कई बैंक दिवालिया हो गए थे, कई कल-कारखाने बन्द कर दिए गए थे और कई बड़ी-बड़ी दुकानें उठा दी गई थीं। इसके फल-स्वरूप उद्योग-धन्धे शिथिल पड़ गए और मेहनतकश तथा मध्य-श्रेणीके लाखों आदमी बेकार हो गए।

फ्रैंकलिनके लिए इस स्थितिका सामना करना सरल काम न था। फिर उनके पूर्ववर्त्तियोंने आर्थिक तथा व्यापारिक मामलों में हस्तक्षेप न करनेकी परम्परा-सी बना दी थी। पर ऐसे समय सामाजिक और अर्थनीतिक ढाँचेको मुट्ठी-भर पूँजीपतियोंकी मनमानीपर छोड़कर शासन कर सकना नितान्त असम्भव था। अतः फ्रैंकलिनने सबसे पहले बेकारी दूर करनेके लिए उद्योगोंके विकेन्द्रीकरण तथा बेकारीके बीमेकी व्यवस्था की। 'उद्योग-संघों' या 'अर्थनीतिक सामन्तशाही'के चंगुलसे असहाय जनताको निकालनेके लिए उन्होंने शक्ति-उत्पादक केंद्रों (बिजलीघरों आदि) तथा बैंकों और स्टाक-एक्सचेंज कम्पनियोंको सरकारी नियन्त्रणमें लिया; कर्ज़दार देश अमरीकासे व्यापार कर सकें, इसलिए आयात-निर्यात-करोंको घटाया; बढ़े पैमानेपर शराबका जो चोर-बाज़ार चल रहा था, उसे तोड़नेके लिए शराब-बन्दीके तथाकथित वाल्स्टीड-क़ानूनको मन्सूखकर सस्ती दरपर शराब और बीयरकी बिक्रीकी व्यवस्था की तथा बंजर ज़मीनको उपयोगमें लाकर खेती को बढ़ाया। इनके परिणाम-स्वरूप जहाँ जन-साधारणकी मुश्किलें कुछ आसान हुईं, पूँजीपतियोंका पारा चढ़ गया। उन्होंने फ्रैंकलिनके प्रयत्नोंको विफल करनेके लिए कोई कसर उठा नहीं रखी। मियामी (फ्लोरिडा) में ज़िंगारा नामके एक इटालियनने उनकी हत्याकी विफल चेष्टा भी की, पर फ्रैंकलिन ऐसे कायरतापूर्ण हमलोंसे डरकर क़दम पीछे उठानेवाले नहीं थे।

और कोई उपाय न देख अदूरदर्शी पूँजीपतियोंने १९३३ में पैसेको रोकना शुरू किया। इससे बाज़ारों, बैंकों तथा स्टाक-एक्सचेंज कम्पनियोंका काम रुकने-सा लगा और देशमें एक अजीब आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। अर्थ-पिशाचोंको चेतावनी देते हुए फ्रैंकलिनने कहा था—"बैंकरों और व्यापारियोंकी इस बेहूदगीका अन्त होना ही चाहिए। एक पवित्र ट्रस्टको इन लोगोंने बेईमानी और स्वार्थका साधन बना लिया है। जनताकी अदालतमें धनकी अदला-बदली करनेवाले इन बेईमानोंका पर्दाफाश हो चुका है। साखके अभावमें इन्होंने और अधिक कर्ज़े देने शुरू कर दिए हैं। अतः सारे बैंकों और रुपया उधार देने-

* टैमनी नामके एक आयरिश प्रवासीने मनोरंजन और खानगी पंचायतके लिए एक गोष्ठी क़ायम की थी, जो आगे चलकर भ्रष्ट राजनीति—खासकर म्यूनिसिपल मामलोंमें—का एक बदनाम अखाड़ा बन गई। बादमें 'टैमनी-हाल' भ्रष्ट राजनीतिके हथकण्डोंके लिए अंगरेज़ी मुहाविरा ही बन गया।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाली कम्पनियोंका निरीक्षण एवं नियन्त्रण आवश्यक है। जनताके पैसेपर होनेवाली इस सट्टेबाज़ीको रोकना ही पड़ेगा।" इस संकटका सामाना करने लिए फ्रैंकलिनने विशेष अधिकारोंकी माँग की। जनताके सहयोग-समर्थनके कारण पूँजीपतियोंके एजेण्टोंकी चालें न चल सकीं और कांग्रेसने एकके बाद एक अधिकार फ्रैंकलिनको देना शुरू किया। किसानोंके लाभके लिए चीज़ोंकी खपत करनेवालोंपर २० करोड़ पौण्डका कर लगाया गया और भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियोंकी पेन्शनोंके मदमें ८० करोड़ पौण्डकी कमी कर दी गई। चीज़ोंकी क़ीमतें बढ़ानेके लिए मुद्रा-स्फीतिको नियन्त्रित करना आवश्यक था, अतः स्वर्ण-मानको त्याग दिया गया। इससे विश्वको अर्थ व्यवस्थापर भी कुछ प्रतिकूल असर पड़ा; पर फ्रैंकलिनने अन्य राष्ट्रोंको अपनी-अपनी चादरके अनुसार ही पाँव पसारनेका कहकर चुप कर दिया।

जुलाईमें फ्रैंकलिनने अपने मन्त्रियोंकी संख्या बढ़ा दी, ११ शासक नियुक्त किए और राष्ट्रकी स्थितिमें व्यापक सुधार करनेके लिए कई क़ानून (नेशनल रिकवरी एक्टस्) पास कराए। इनके द्वारा बेकारोंका बीमा, बूढ़ोंको पेन्शन, किसानोंको सहायता, मज़दूरोंकी उजरत-वृद्धि और कामके घण्टोंकी कमी तथा उन्हें सामूहिक कार्यवाहीका अधिकार, उनके लिए अच्छे घरों, पार्कों एवं आमोद-गृहोंकी व्यवस्था, साधारण उद्योगों तथा दिवालिया बैंकोंको सहायता, खेतोंसे बचाने या उद्योगोंके लिए ली गई ज़मीनोंके लिए मुआवज़ा आदिकी व्यवस्था की गई। पहले चार महीनोंमें ही इन कार्योंमें १४ अरब ३० करोड़ डालर खर्च हुए। चीज़ोंका मूल्य बढ़ाने और डालरके स्वर्ण-अनुपातको कम करनेके लिए आपने रिकंस्ट्रक्शन फिनेन्स कार्पोरेशनको विनिमय-दरको परवाह न कर नवनिर्धारित मूल्यपर सोना बेचनेकी अनुमति दे दी। इस प्रकार दुनिया-भरका सोना अमरीका पहुँचने लगा। इसी तरह बाज़ार-दरसे २१॥ सेण्ट अधिक मूल्यपर चाँदी भी खरीदी गई। इसके बावजूद चीज़ोंका इण्डेक्स गिरता और गेहूँकी पैदावार बढ़ती देखकर आपने ५० करोड़ एकड़ ज़मीन खरीद ली और वहाँ खेती नहीं होने दी। इसके लिए सरकारको काफ़ी कर्ज़ भी लेना पड़ा। इस प्रकार डालरका मूल्य घटाकर आपने न सिर्फ़ आर्थिक गिरावटका ही सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया, बल्कि देशकी स्थितिको भी सँभाला और जनतामें नया विश्वास जमाया।

अपने नए कार्यक्रमसे फ्रैंकलिनने यद्यपि बेकारों, बूढ़ों, किसानों और मज़दूरोंकी स्थिति सुधार दी थी; पर साथ ही मध्यवित्त और पूँजीपतियोंको उनके अनुचित मुनाफ़ोंसे भी वंचित कर दिया था। अतः उन्होंने फ्रैंकलिनके कामोंको बिगाड़नेके लिए तरह-तरहके षड्यन्त्र रचने शुरू किए। इस कार्यक्रमसे वैदेशिक व्यापारको प्रोत्साहन नहीं मिला था, अतः व्यापारियोंने चीज़ोंके मूल्य गिराने और मज़दूरोंको उजरत न बढ़ानेकी चेष्टा की। इससे देशमें कई जगह हड़तालें होने लगीं और [illegible] आतंकित होने लगे। फलतः सुप्रीम कोर्टने देशको फिर [illegible] बग्घियों तथा ग़ुलामोंके युगमें लानेकी प्रवृत्तिका परिचय [illegible] और फ्रैंकलिनके कई सुधारोंको अवैध घोषित कर दिया। [illegible] सुधार थे—तेलका उत्पादन और नियन्त्रण, रेल-कर्मचारि[illegible] पेन्शन, उद्योगों और ज़मीन रहन रखनेके नियमोंमें परि[illegible] कोयलेके उत्पादनका नियन्त्रण, मालिक-मज़दूर-झगड़ोंका [illegible] टारा, कृषि-करोंकी व्यवस्था और मूल्य बढ़ानेके लिए कृषि [illegible] पशुओंकी पैदावारके नियन्त्रणका मुआवज़ा आदि। इससे [illegible] फ्रैंकलिनके कार्यक्रमके कई अंग असमय ही त्याग दिए [illegible] तथापि टैनेसीवेली-योजनाको, जिसके द्वारा पैदा की गई बि[illegible] सस्ती दरमें देकर सरकारने मनमाना मुनाफ़ा लूटनेवाली [illegible] बिजली-कम्पनियोंकी बधिया बैठा दी थी, सुप्रीम कोर्टने भी [illegible] घोषित किया। १९३५ में कांग्रेसने सहायता-कार्यके लि[illegible] अस्थायी रूपसे कम वेतन देने तथा जो कम्पनियाँ अपनी [illegible] योगिता सिद्ध न कर सकें, उनका अन्त करनेके फ्रैंकलिनके प्रस्ता[illegible]वित क़ानून भी रद्द कर दिए। इसी वर्ष भूतपूर्व सैनिकोंको बोनस [illegible] दिए जानेका एक बिल कांग्रेसने पास किया, जिसपर हस्ता[illegible] करनेसे फ्रैंकलिनने यह कहकर इन्कार कर दिया कि इससे राष्ट्र[illegible] ४० करोड़ पौण्डका अनावश्यक बोझ बढ़ जायगा। [illegible] समर्थनके लिए स्वयं कांग्रेसमें उपस्थित होकर फ्रैंकलिनने [illegible] रीकाके राजनीतिक इतिहासमें एक नई मिसाल क़ायम की।

इसके बाद फ्रैंकलिनकी राजनीतिक साख फिर बढ़ने लगी। मुद्रा-नीतिके स्थिरीकरणके लिए उन्होंने २५ प्रतिशत चाँदीके उपयोग करनेका निश्चय किया। इससे चाँदीवाले राष्ट्रोंको क[illegible] सुविधा हो गई। फरवरी, १९३५ में सुप्रीम कोर्टने भी सहर्ष [illegible] स्वर्ण-मुद्राको शर्त्तको छोड़नेकी स्वीकृति दे दी। जून, १९३५ [illegible] उन्होंने अधिक वैयक्तिक आयवालोंपर कर बढ़ानेके लिए कांग्रेसको [illegible] राज़ी कर लिया। बूढ़ोंको पेन्शन, बेकारोंका बीमा, शिशु [illegible] ज़च्चा-गृहों आदिको भी कांग्रेसने स्वीकार कर लिया। इस [illegible] सुप्रीम कोर्ट और पूँजीवादियोंके अवरोधोंके बावजूद फ्रैंकलि[illegible] अपने कार्यक्रमको काफ़ी आगे बढ़ा लिया और अगस्त, १९३[illegible] तक कोई ३ अरब पौण्ड खर्च किए, जिनमें से आधा कर्ज़ लि[illegible] गया था। पर यह सब होते हुए भी कांग्रेसने उनका सुप्रीम कोर्ट [illegible] की पुनर्व्यवस्थाका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उसे भय था कि ऐसा करके वे उसे अपने अनुकूल बना लेंगे और फिर जो कुछ करेंगे, उससे वैध घोषित करवा लेंगे।

तटस्थतासे युद्ध-सहयोगकी ओर

'पुरानी दुनिया'से दूर होनेके कारण अमरीका बाहरी आक्रमणके भयसे मुक्त रहा है। कच्चे माल, प्राकृतिक साधनों और जन-शक्तिको इफ़रातने जहाँ उसके उद्योग-धन्धोंको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहज ही उठने और विकसनेका सुयोग दिया, वहाँ विदेशी प्रतियोगिताकी कमी और विदेशी बाज़ारोंने उसे समृद्ध बनानेमें भी खूब मदद दी। पैसेके साथ ही किसी सांस्कृतिक वैशिष्ट्य या लगावके अभावने अमरीकनोंमें अलगाव या तटस्थताकी भावना भर दी। यह एक सहज नियम है कि जो सम्पन्न हैं, वे दूसरोंके झगड़ों-टण्टोंमें नहीं पड़ना चाहते। पर फ्रैंकलिनने देखा और अनुभव किया कि आजके वैज्ञानिक युगमें—जब कि विज्ञानके नवीनतम आविष्कारोंने जल-थल-वायुके अन्तरको न्यूनतम कर दिया है और भौगोलिक अवरोधों एवं सीमाओंको बेकार बना दिया है—कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रकी आन्तरिक स्थिति एवं उसके आचरणकी प्रतिक्रियासे अछूता नहीं रह सकता। एक घरमें लगी आग केवल उसीको या उसके पोड़सके सिर्फ़ एक ही घरको भस्मसातकर शान्त हो जाय, यह ज़रूरी नहीं है। वह दुनियाके किसी भी कोने तक पहुँच सकती है। अतएव फ्रैंकलिनने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग-सद्भावना, निःशस्त्रीकरण और शान्तिकी स्थापना तथा सुरक्षाके लिए सक्रिय चेष्टा आरम्भ की।

१९३३ में मैकडोनल्ड (ब्रिटेन) और हीरियो (फ्रांस)ने युद्ध-ऋणकी चुकतीके लिए फ्रैंकलिनसे मिलकर बातचीत की और वे नाम-मात्रका अंश लेकर सारा ऋण चुकती करनेको राज़ी हो गए। अमरीकासे यूरोपीय देशों तथा जापानको जानेवाले शस्त्रास्त्र और तत्सम्बन्धी आवश्यक सामानके निर्यातपर आपने पाबन्दी लगा दी और ४४ राष्ट्रोंके अध्यक्षोंसे निःशस्त्रीकरणके लिए ज़ोरदार अपील की। इस अवसरपर आपने कहा था कि विश्व-शान्तिको असली खतरा राजनीतिज्ञोंसे है, जनतासे नहीं। इसके कुछ ही दिन बाद नात्सी-दलके सर्वेसर्वा हिटलरने जर्मनीमें शासन-सत्ता प्राप्तकर इस कथनको अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिया। इसी वर्ष स्वार्थान्ध पूँजीपतियों और प्रतिगामी राजनीतिज्ञों द्वारा होनेवाले सोवियत् रूसके बहिष्कारका भी आपने खात्मा किया और उससे फिर कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया। १९३४ में कांग्रेससे शस्त्रोंके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारपर अंकुश लगानेका अनुरोध करते हुए आपने कहा कि एक ओर सरकारें अपनी भूखी और अधभूखी जनतापर बेशुमार करोंका बोझ लादती जा रही हैं और दूसरी ओर मौतके इन उपायोंकी तिज़ारत कर रही हैं। शान्तिके इस खतरेका एकमात्र कारण है शस्त्रास्त्र बनानेवालोंपर किसी भी तरहका नियन्त्रण न होना। इस सम्बन्धमें आपने एक जाँच-समिति नियुक्त की, जिसने अमरीकन शस्त्र-निर्माताओं द्वारा जापान और जर्मनीको युद्ध-सामग्री भेजनेके कई गुप्त समझौतों का रहस्यपूर्ण भण्डाफोड़ किया। इसी समय आपने अमरीका द्वारा कनाडा और संयुक्त-राज्योंकी सीमापर हवाई-अड्डा बनाए जाने तथा अटलांटिक और प्रशान्तके कई ब्रिटिश एवं फ्रांसीसी द्वीपोंके हस्तान्तरित होनेकी अफ़वाहोंका भी जोरोंसे खण्डन किया।

पर बावजूद इन प्रयत्नोंके अशान्तिको उत्तेजन देनेवाले काण्ड बढ़ते जा रहे थे। अमरीकन मुनाफ़ाखोर छिपे-छिपे जर्मनी, जापान, फ्रांस आदिको युद्ध-सहायक-सामग्री भेज रहे थे। यूरोपीय राष्ट्र बोल्शेविक खतरेके कल्पित भूतसे बचनेके लिए चुपके-चुपके हिटलर, मुसोलिनी, फ्रांको आदिको बराबर मदद दे रहे थे। १९३५ में इटली द्वारा अबीसीनियापर हुए आक्रमणके कारण फ्रैंकलिनने युद्ध-सामग्रीके निर्यातपर रोक लगा दी और राष्ट्रसंघसे अनुरोध किया कि वह इटलीको जानेवाले तेलपर भी अंकुश लगा दे। पर डिक्टेटरोंके तलवे सहलानेवाले फ्रांस-ब्रिटेनके प्रतिगामी प्रभावके कारण भला तब उसमें ऐसा करनेका नैतिक बल कहाँ था? १९३६ में आपने डिक्टेटरोंके खिलाफ़ जनताको सावधान किया और उनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि-समझौतोंके भंग किए जानेके ढंगपर हैरत एवं आश्चर्य प्रकट किया। (नवम्बर, १९३६ में आप गवर्नर लेण्डनके मुक़ाबलेमें १५८३९६०९ के विरुद्ध २५९३६२७७ मतोंसे दुबारा राष्ट्रपति चुने गए।) यूरोपकी आग पश्चिमी गोलार्द्धमें भी न फैले, इस खयालसे आपने दक्षिण-अमरीकाके राज्योंका दौरा किया और शान्तिको बनाए रखनेके लिए उनके सहयोग-सद्भावनाके महत्वपर ज़ोर दिया।

जहाँ एक ओर अमरीकाके मुनाफ़ाखोर शस्त्र-निर्माता और उनके अधिकृत तथा प्रभावित पत्र ज़ाहिरा तौरपर जनताको बाहरी झगड़ोंसे अलग एवं उदासीन रहनेका शान्ति-स्तोत्र सुना रहे थे, फ्रैंकलिन अधिक-से-अधिक कड़े शब्दोंमें फाशिज़्मके बढ़ते हुए खतरेसे उसे आगाह कर रहे थे। १९३७ में शिकागो में बोलते हुए आपने आक्रमणकारियोंकी ज़ोरोंसे भर्त्सना की और कहा कि इन्हें 'क्वेरेण्टाइन' (दूसरोंको छूत न लगे, इसलिए पीड़ितोंको अलग रखना) करनेकी ज़रूरत है। पर इस समय अमरीकाका वातावरण तटस्थताके नामपर इतना दूषित हो रहा था कि चाहनेपर भी स्पेनके गृह-युद्धके सम्बन्धमें आप कुछ न कर सके—यद्यपि अमरीकन पत्रोंमें जर्मनी, इटली तथा रूसके हस्तक्षेपकी बड़ी सनसनीखेज़ खबरें छपती थीं। मुसोलिनीसे आपने अबीसीनियापर चढ़ाई न करनेकी विशेष अपील की थी। दिसम्बर, १९३७ में जापान द्वारा अमरीकाका 'पैने' जहाज़ डुबो दिए जानेकी आपने कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की और ६ महीने बाद शान्ति भंग होनेकी आशंकासे स्वातोसे अमरीकन नागरिकोंको वापस बुला लिया। आस्ट्रियापर जर्मन सेनाका दखल और १८ अगस्त, १९३८ को हुए म्यूनिख-पैक्टकी आलोचना करते हुए आपने कहा था—'यदि कनाडापर आक्रमण हुआ, तो संयुक्त-राज्य अमरीका कभी भी चुप न बैठेगा।'

पर आस्ट्रियाके बाद ही सुडेटनलैण्डपर कब्ज़ा करके हिटलरने जब यह स्पष्ट कर दिया कि झुकने या दबनेसे काम नहीं चलेगा, तो १९३९ में फ्रैंकलिनने अमरीकन तिज़ारती जहाज़ों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को सशस्त्र किया और कांग्रेससे आवश्यक शस्त्रीकरण तथा सैनिक शिक्षाकी व्यवस्था करनेकी भी स्वीकृति माँगी। फिर भी शान्ति-रक्षाके लिए वे बराबर सचेष्ट रहे और हिटलर तथा मुसोलिनीसे १० वर्षकी सुलहके लिए अपील की। ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा अबीसीनियापर इटलीका आधिपत्य स्वीकार कर लिए जानेपर भी अमरीकाने उसे स्वीकार नहीं किया। यूरोपकी बढ़ती हुई अशान्तिको देखकर आपने कांग्रेससे तटस्थता-क़ानूनमें संशोधन करनेका अनुरोध किया; पर जर्मनी और जापानको चोरीसे माल भेजनेवाले धनिकों और उनके पत्रोंने इसका डटकर विरोध किया और कहा कि राष्ट्रपति दूसरोंके मामलोंमें अनावश्यक दस्तन्दाज़ी कर रहे हैं! परन्तु वर्त्तमान युद्ध छिड़नेके बाद आपने कांग्रेससे अनुरोध किया कि शस्त्र-निर्यातपर से प्रतिबन्ध हटा लिया जाय और ब्रिटेनको सब प्रकारकी सहायता दी जाय।

नवम्बर, १९४० में वेण्डेल विल्कीके मुक़ाबलेमें २२३२७२२६ के विरुद्ध २७२४१९३९ मतोंसे फ्रैंकलिन तीसरी बार अमरीका के राष्ट्रपति चुने गए। इस सफलताने आपको अधिक साहस और आत्म-विश्वास दिया और आपने अधिक मुस्तैदीसे यूरोपीय खतरेको रोकनेके लिए सक्रिय चेष्टा की। ६ जनवरी, १९४१ को कांग्रेसके सामने दिए गए भाषणमें आपने कहा कि यदि ब्रिटेन इस युद्धमें हार गया, तो अमरीका सुरक्षित नहीं रहेगा। आपके सतत प्रयत्नसे ही मार्चमें उधार-पट्टा-बिल पास हो सका, जिसके कारण विना नक़द मूल्य चुकाए मित्र-राष्ट्रोंको असीम युद्ध-सामग्री भेजी जा सके। इसे यूरोप पहुँचाने और मार्गकी सुरक्षाके लिए अमरीकन नौसेनाकी शक्ति भी बढ़ाई गई। इसके लिए जूनमें जो विदेशी जहाज़ अमरीकन बन्दरगाहोंमें थे, उन्हें अमरीकाने ले लिया। जून, १९४१ में रूसपर हमला होते ही आपने रूसको पूर्ण सहायता देनेकी घोषणा की और ब्रिटिश सेनाका बोझ हल्का करनेके लिए आइसलैण्डके रक्षार्थ अमरीकन सेना भेजी। अगस्त में आपने दोनों देशोंके भावी सम्बन्धोंके विषयमें अटलांटिक महासागरमें ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्री श्री चर्चिलसे भेंट की। बदनाम 'अटलांटिक सनद' इसी समय तैयार की गई थी।

७ दिसम्बर, १९४१को जापानने पर्ल बन्दरगाहपर अकस्मात धावा बोल दिया और उसके बाद ही मलाया, सिंगापुर आदिपर भी आक्रमण किया। जिस समय यह आक्रमण हुआ, जापानी प्रतिनिधि कुरूसू अमरीकामें समझौते की बातचीत कर रहा था और अमरीका द्वारा जापानी बादशाहसे शान्ति-रक्षार्थ की गई अपीलके उत्तरमें जापानने आश्वासन दिया था कि अमरीकासे लड़ाई छेड़नेका उसका कोई इरादा नहीं है। जापानके इस विश्वासघातने तटस्थताके नशेमें ग़ाफ़िल अमरीकनोंके होश ठिकाने ला दिए और अमरीकाने धुरी-शक्तियोंके विरुद्ध लड़नेके लिए कमर कस ली। इसके बाद वाशिंगटन, कैसाब्लांका, तेहरान और याल्तामें संयुक्त-राष्ट्रोंके नेताओंके साथ फ्रैंकलिन जो महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ हुईं, उनके बारेमें पाठक जानते ही हैं। नवम्बर, १९४४में न्यूयार्कके गवर्नर टामस ई० डूवीके मुक़ाबले आप चौथी बार राष्ट्रपति चुने गए। अमरीकाके इतिहास लगातार चौथी बार राष्ट्रपति चुने जानेका गौरव सर्फ़ फ्रैंकलिनको ही प्राप्त हुआ।

अब्राहम लिंकनके बाद फ्रां० डि० रूज़वेल्टको संसार अमरीकाके सबसे बड़े और लोकप्रिय राष्ट्रपतिके रूपमें याद करेगा। वर्त्तमान पोढ़ीके बालकों और नवयुवकोंने तो होशसँभालनेके बाद रूज़वेल्टके सिवा और किसी अमरीकन राष्ट्रपतिको जाना ही नहीं। पर प्रौढ़ों और वृद्धोंने भी रूज़वेल्टके शासन-कालमें अमरीकाका कायाकल्प होते देखा है। जन और धन-शक्तिमें आज अमरीका की ऐसी महत्त्वपूर्ण स्थिति हो गई है कि वह विश्व-इतिहासकी धाराकी दिशाको बहुत हद तक प्रभावित कर सकता है। अमरीकाकी इस शक्ति-सम्पन्नताका एकमात्र श्रेय रूज़वेल्टको ही है। ऐसा कहना तो न सिर्फ़ सचाईकी उपेक्षा करना होगा, बल्कि उनके साथी-सहयोगियोंके साथ अन्याय भी। पर इसमें कोई शक नहीं कि स्वदेशवासियोंका शोषण करनेवाले पूँजीपतियों और फ़ाशिस्तोंकी सहायता करनेवाले मुनाफ़ाखोरोंके दबदबेको कम करने और देशकी साधन-शक्तिको लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए उद्योगमें लानेका बहुत बड़ा श्रेय रूज़वेल्टको ही है। अमरीकाके जन-साधारणकी स्थितिको उन्होंने कितना सुधारा, नीग्रो लोगोंके साथ होनेवाले अमानुषिक दुर्व्यहारको कितना कम किया और फाशिज़्मके विनाशमें सक्रिय योग देकर विश्व-स्वातन्त्र्य एवं लोकतन्त्रको कितना सुरक्षित बनाया, इन सबका ठीक-ठीक मूल्य और महत्व शायद आनेवाली पीढ़ियाँ ही आँक सकें। इसे दुर्भाग्य शोषित-पीड़ित लोगोंका दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि जिस व्यक्ति स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रकी स्थापना तथा सुरक्षाके लिए आखिरी दम तक प्रयत्नशील रहे, अपनी आँखोंके आगे उसकी अन्तिम रूप-रेखा बनते और उसपर अमल होते वे नहीं देख सके। उनके इस असामयिक निधनपर हमें वाल्ट ह्विटमैन द्वारा लिंकनकी मृत्युपर लिखी गई निम्न पंक्तियाँ याद हो आती हैं:—

O Captain! My Captain! Our fearful trip is done,
The ship has weathered every rock, the prize we sought is won,
The port is near, the bells I hear, the people all exulting,
While follow eyes the steady keel, the vessel grim and daring.

But O heart! heart! heart!
The bleeding drops of red,
Where on the deck my Captain lies
Fallen cold and dead!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी-प्रकृति-मण्डल

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

भारतवर्ष विशाल देश है। यहाँ देखने और प्रशंसा करनेकी अनन्त प्राकृतिक सामग्री चारों ओर बिखरी हुई है। प्रकृतिके वरदानोंसे जैसा यह देश भरपूर है, वैसा शायद ही और कोई हो। प्रकृतिकी समृद्धिने देशवासियोंके जीवनपर भी गहरा प्रभाव डाला है। भारतवासी सच्चे अर्थोंमें प्रकृतिके सखा हैं। प्रकृतिके साथ तन्मय होकर ही उन्होंने अपनी सभ्यताका विकास किया है। प्रकृतिके प्राण-वायुसे हमारे साहित्यको भी पोषण मिला है। भारतीय जीवन और साहित्यमें खुले आकाश और स्वच्छन्द वायुके लिए सदासे एक अमिट लालसा ओतप्रोत है। प्रतिवर्ष आनेवाले पर्वों और उत्सवोंमें छः ऋतुओंके साथ रूप-परिवर्त्तन करनेवाले संवत्सर-चक्रमें जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसका विचार भारतीय जीवनशास्त्रके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानवके चैतन्यमें जागरणका अलख सदा बनाए रखनेका सबसे बड़ा मूलमन्त्र जो यहाँके लोगोंके हाथ लगा, वह प्रकृतिका सान्निध्य ही था। बर्फ़से ढँकी हुई महान् पर्वतोंकी चोटियोंपर तीर्थोंकी कल्पना, वनके भीतर देवस्थानोंका निर्माण, वन्य पशुओंसे भरे हुए आश्रमोंकी कल्पना, पर्वतोंके झरने, कुण्ड, जलाशय और जल-धाराओंके लिए प्रेम, फूलोंसे हँसनेवाली लताओंके साथ एवं मंजरीके भारसे झुके हुए वृक्षोंके नीचे आमोद-प्रमोदोंका विधान—इन नाना रूपोंसे प्रकृतिकी उपासना करना जीवनका लक्ष्य था।

प्रकृतिके उदार प्रांगणमें आज भी पहले-जसा ही उल्लास भरा हुआ है। वनदेवीकी रमणीयता नित्य है। उसके शृंगारकी वर्णमाला धरती-आकाशके विपुल अन्तरालमें आज भी शतशः महाकाव्योंका सँजोआ सजा रही है। अपने नवीन जीवनके लिए हमें प्रकृतिसे पुनः परिचित होनेकी आवश्यकता आ पड़ी है। यन्त्र-युगकी निष्प्राणकारिणी जीवन-पद्धतिसे आत्म-रक्षा करनेका एकमात्र उपाय प्रकृतिकी शरणमें जाना है। प्रकृति-परिचयकी नूतन परिपाटीको लोकव्यापी बनानेके लिए इस समय अनेक प्रयत्न होने चाहिएँ। इस प्रकारके उद्देश्यको लेकर बम्बईमें 'बाम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी' अनेक वर्षोंसे कार्य कर रही है। भारतीय पक्षी और पशु-जगत्के अध्ययनके लिए इस संस्थाकी ओरसे अंगरेज़ी-माध्यमसे बहुत कार्य हुआ है। परन्तु जब तक भारतीय भाषाओं द्वारा इस प्रकारका अध्ययन-क्रम जारी न होगा, तब तक शतकोटि भारतीय जनताके लिए वह ज्ञान सुलभ न होगा।

सौभाग्यसे चार वर्ष पहले गुजरात-प्रकृति-मण्डल, अहमदाबादका संगठन किया गया था, जिसका उद्देश्य गुजरातकी पशु-पक्षी-वनस्पति-सम्पत्ति और भूगर्भ-रचनाका अध्ययन करना है। इस संस्थाके कार्यकर्त्ता बड़े उद्योगी और लगनके सच्चे हैं। उन्होंने गुजरातके सभी वैज्ञानिकोंका सहयोग अपनी मातृभाषाके लिए प्राप्त कर लिया है। मण्डलकी ओरसे अहमदाबादमें एक संग्रहालय स्थापित करनेकी योजना भी बन चुकी है। मण्डलके जन्मके साथ ही 'प्रकृति' नामक एक अति सुन्दर त्रैमासिक गुजराती पत्रिकाका प्रकाशन भी हो रहा है। इसके द्वारा वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र और भूस्तरशास्त्र-सम्बन्धी अनेक उपयोगी लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनमें अंगरेज़ी और लैटिनके पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग विशेष बात है। संस्कृतकी सहायतासे वैज्ञानिक शब्दावलीका निर्माण भारतीय भाषाओंके लिए बहुत सुकर है। आशा है, इसी क्रमसे गुजरातीमें प्रकृति-सम्बन्धी वैज्ञानिक साहित्य शीघ्र सुलभ हो सकेगा।

हिन्दी-भाषाके माध्यमसे प्राकृतिक अध्ययन और विवेचनका कार्य होना और भी अधिक आवश्यक है। हिन्दी न केवल मध्य-देशकी साहित्यिक भाषा और जनताकी भाषा ही है, बल्कि राष्ट्रीय ज्ञान-वितरणका एकमात्र माध्यम भी है। हिन्दीके द्वारा कही हुई बात अधिक-से-अधिक जन-संख्या तक पहुँचती है। हिन्दी-भाषामें प्रकृतिके ज्ञान-विज्ञानका अध्ययन प्रस्तुत करने तथा जनतामें इस प्रकारके अध्ययनके लिए रुचि उत्पन्न करनेके लिए हिन्दी-प्रकृति-मण्डलकी स्थापना लखनऊमें हुई है। इसके स्थापक और मन्त्री कालाकांकरके कुँवर सुरेशसिंह हैं, जिन्होंने हिन्दीमें इस प्रकारके साहित्यका सूत्रपात भी किया है। सौभाग्यसे लखनऊ-विश्वविद्यालयके प्राणिशास्त्र-विभागके अध्यक्ष डा० कर्मनारायण बाहलने मण्डलका सभापति-पद स्वीकार कर लिया है। बाहलजी संस्कृत और हिन्दीके अच्छे विद्वान तथा योग्य लेखक हैं। उनके लेख अक्सर 'विज्ञान'में प्रकाशित होते रहते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० बीरबल साहनी भी मण्डलके सदस्य बने हैं। प्रकाशनको सुविधा मिलनेपर मण्डलकी अपनी पत्रिका और पुस्तकोंका प्रकाशन भी आरम्भ होनेकी योजना है। आशा है, हिन्दी-प्रकृति-मण्डल द्वारा भारतीय—विशेषतः उत्तर-भारतकी—प्रकृति-रचना और प्राणिजीवनका व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकेगा।

भारतवर्षमें लगभग ढाई हज़ार तरहकी चिड़ियाँ होती हैं। कहा जाता है कि उनका पूरा संग्रह केवल ब्रिटिश म्यूज़ियममें है। ज़ूलोजिकल सर्वे आफ़् इण्डियामें केवल एक पक्षी-विशेषज्ञ डा० रुनवाल हैं। हमारे देशमें और प्रत्येक प्रान्तमें पक्षी-विशेषज्ञोंकी संख्या बढ़नी चाहिए। अकेले संयुक्त-प्रान्तमें ऋतु-ऋतुमें विहार करनेवाले पक्षियोंकी लगभग सात सौ कोटियाँ हैं। नाम-धामके साथ उनका पूरा परिचयात्मक संग्रह अवश्य एक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थानमें होना चाहिए। पुराने समयमें पक्षियोंके साथ हमें कितनी रुचि थी, इसका कुछ हाल शतपथ ब्राह्मणकी एक बातसे मालूम होता है। अश्वमेध-यज्ञके समय यजमान राजाका राष्ट्रीय जीवन के विविध अंगोंके साथ परिचय करानेके लिए कई दिनों तक व्याख्यान और विचार-विमर्शकी एक सभा लगा करती थी, जिसे 'परिप्लव आख्यान' कहते थे। यज्ञका अध्वर्यु होतासे कहता था कि यजमानके साथ भिन्न-भिन्न प्राणियोंका परिचय कराओ (भूतानि आचक्ष्व) और तदनुसार होता राजाके सामने भूतोंका वर्णन करता था (भूतेष्विनं यजत्रानमध्यूहति)। इस कार्यके लिए भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके जाननेवाले विशेषज्ञ विद्वान 'पारिप्लव आख्यान'में भाग लेते थे। सभाके नवें दिन राजाके सामने पक्षियोंका परिचय दिया जाता था। पक्षियोंका भी एक जगत् है। उसकी हित-रक्षाका भार भी तो राजापर ही है। पक्षिसंसारमें गरुड़ सम्राट् है। पक्षी उसकी प्रजाएँ हैं। दोनों राजाके राज्यमें हैं, दोनोंके हितोंका उत्तरदायित्व अश्वमेधमें दीक्षित राजाके ऊपर आ जाता है। नाना भाँतिके पक्षी और पक्षियोंके विशेषज्ञ इस सभामें बुलाए जाते थे (वयांसि च वायोविद्विकाश्चोप समेता भवन्ति।—शतपथ, १३।४।३।१३)। पक्षिविशेषज्ञके लिए जिस प्रकार अंगरेज़ीमें 'आरनीथालाजिस्ट' (Ornithologist) शब्द है, उसी प्रकार वैदिक भाषाका पुराना शब्द 'वायोविद्विक' है, अर्थात् 'वयस' (पक्षी) की विद्या जाननेवाला। व्याकरणशास्त्र में 'वायोविद्विक'का ही रूपान्तर 'वायसविद्विक' है, जिसका उल्लेख महाभाष्यकारने पाणिनि सूत्र ४।२।६० के एक वार्त्तिकके उदाहरणमें किया है, जिसके द्वारा विद्या-विशेषका अध्ययन करने या जाननेवालेका नामकरण किया जाता था। संस्कृतमें पक्षीके लिए 'वि' या 'वयस्' शब्द है। इसीसे लैटिन-भाषाका Avi (अवि) शब्द है, जिसका अर्थ है पक्षी। इसीका बहुवचन Aves संस्कृत 'वयांसि' का पर्याय है। संस्कृत 'वायस' भी 'वयस्' से ही निकला है। 'वायस' या काक-परिवार (Passes) पक्षिजगत्के वैज्ञानिक वर्गीकरणमें सर्वप्रथम आता है।

अर्वाचीन भारतके लिए प्राचीन 'वायोविद्विक' आचार्यों के बहुसंख्यक नवावतारोंकी आवश्यकता है। सुनहली बूँदोंसे ताराकित पंखोंवाले सुन्दर पक्षियोंका अथवा गरुड़ दुर्द्धर्ष शक्तिसे झपटा मारनेवाले आकाशचारी विहगोंका नया परिचय और नया माहात्म्य सुननेकी किसे इच्छा न होगी? हमारे देशके जंगल किसी समय सिंहों और व्याघ्रोंसे आबाद थे। दुर्भाग्यसे आज भारतीय सिंह स्वदेशमें नाम-शेष हो गया है। लम्बी आयालोंसे मण्डित मुखाकृतिवाले भारतीय केसरीके साक्षात् दर्शन आज भूतकालकी घटना बन जाना चाहते हैं। काठियावाड़के तिकोने भू-प्रदेशके दक्षिणी भागमें क़रीब सौ मीलका एक पहाड़ी जंगल (गीर-जंगल) है। केवल उसमें ठेठ बबर केसरीके कुछ नमूने जीवित रह गए बतलाए जाते हैं। इनकी संख्या भी सौसे अधिक न होगी। शोक है कि भारतीय प्रकृतिके इस उत्कृष्टतम प्राणीका संहार अनाड़ी मनुष्यने स्वयं अपने हाथोंकर डाला है। हमें सावधान करनेवाले जात-जागते प्रकृति-मण्डलका जन्म आज पचास वर्ष पिछड़कर हो रहा है।

केनियाके भारतीयोंकी समस्याएँ

श्री धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार

आजसे अनेक वर्ष पूर्व जब हमारे पूर्वज मुम्बासा, लामू और मलिण्डी (पूर्वी अफ्रीकाके बन्दरगाह) में उतरे थे, तो उन्हें स्वप्नमें भी यह गुमान न होगा कि उनकी सन्तानें यहाँ बस जायँगी और उन्हें अपने जीविकोपार्जनके लिए सर्वथा इसी भूमिपर आश्रित रहना पड़ेगा तथा भारतसे उन्हें कोई सहायता नहीं मिलेगी। वैसे तो भारत पराधीन है, इसलिए प्रवासी भारतीयोंको यहांसे किसी प्रकारकी ठोस सहायता की आशा ही न करनी चाहिए; फिर भी दूर विदेशमें जाकर साँस लेनेवाले भारतीयोंका स्वदेशवासी बन्धुओंको सद्भावना और सहानुभूतिपर अक्षुण्ण अधिकार तो है ही।

जो भारतीय शिक्षित होकर केनियामें नौकरी या व्यवसाय करने आए, उन्होंने तो अपनी आजीविका कमा ली; परन्तु उनकी सन्तानें क्या करें? भारतीय बालकों तथा बालिकाओंके लिए सरकारकी ओरसे सीनियर-केंब्रिज अथवा लन्दन-मैट्रिक तककी परीक्षाएँ दिलानेका प्रबन्ध स्कूलोंमें है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकारकी उच्चशिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा (Technical Education) के आयोजनकी ओर न तो सरकारने ध्यान दिया और न भारतीयोंने ही। अफ्रीकनोंको प्रारम्भिक चिकित्सा तथा पुलिसके काममें यथोचित निपुण बनानेके लिए सरकारने प्रबन्ध किया है; परन्तु भारतीयोंके लिए ऐसा कोई प्रबन्ध भी नहीं है। केनियावासी भारतीय नवयुवकोंको युद्धके कारण इन दिनों नौकरियाँ मिल गई हैं; परन्तु इसके बाद उनके सामने भी बेकारीकी समस्या विकराल रूपसे उपस्थित होगी। कई भारतीयोंने अपने बालकोंको जापान, इंग्लैण्ड और भारतमें उच्च शिक्षा दिलानेके लिए भेजा; परन्तु औसत आमदनीवालोंके लिए तो यह भी सम्भव नहीं। भारतमें अनेक महाविद्यालय

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और विश्वविद्यालय हैं और उनमें उच्चशिक्षाका प्रबन्ध भी है; पर ये महाविद्यालय भी आजीविकाकी समस्याको सुलझानेमें पूर्णतया सफल नहीं हुए हैं। इसलिए केनियामें भारतीय महाविद्यालयोंकी शैलीके महाविद्यालयोंकी आवश्यकता नहीं।

पिछले कई वर्षोंसे भारतमें व्यावसायिक शिक्षा दिलानेकी ओर अभिभावकोंका ध्यान गया है और बी० ए० तथा एम० ए० की उपाधिके प्रति मोह घट रहा है। शिक्षाका सच्चा उद्देश्य यही है कि वह विद्यार्थीको जीवनके संघर्षके लिए सुसज्जित करे। प्रत्येक विद्यालयका मूल्य इसी कसौटीपर आँका जा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उच्चशिक्षाकी सर्वथा ही उपेक्षा कर देनी चाहिए। इसकी भी अपनी उपयोगिता है; परन्तु कई अभिभावकोंका प्रचुर धन अपने बालकोंको उच्चशिक्षा दिलानेमें ही व्यय हो जाता है, और फिर वे अपने बालकोंसे आशा करते हैं कि वे कुछ कमाने लगें। अनेक उदाहरणोंमें अभिभावकोंको निराशा ही होती है। अतः केनियामें स्कूलके उपरान्त जिस शिक्षाका प्रबन्ध हो, वह सर्वथा किताबी न हो। दूसरे संगीत, चित्रकला आदि जीवनोपयोगी विद्याओंके लिए पूर्वी अफ्रीकामें एक भी शिक्षणालय नहीं है। केनियामें ऐसे धनिकोंकी कमी नहीं है, जो चाहें, तो इस दिशामें बड़ी ठोस सहायता कर सकते हैं।

केनियाके गुजरातियोंने व्यापारमें पर्याप्त प्रभुत्व जमा रखा है। वे स्वदेश तथा विदेशसे माल मँगाते हैं और इस आयात द्वारा अच्छा धन कमाते हैं। फ़ैशनके युगमें वस्त्रकी बड़ी खपत है, अतः इस ओर भारतीय व्यापारियोंने खूब ध्यान दिया है। केनियावासी यूरोपियन भी भारतीयोंकी दुकानोंसे ही कपड़ा खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त अप-टू-डेट फ़ैशनकी दुकानें भी भारतीय ही चला रहे हैं, जिनमें घरमें काम आनेवाली प्रायः सभी वस्तुएँ मिल जाती हैं। फ़र्नीचर बनानेका काम भी भारतीयोंके ही हाथोंमें है। भारतीयोंकी तुलनामें यूरोपियन व्यापारियोंकी संख्या थोड़ी है; परन्तु उन्हें सरकारकी प्रच्छन्न और प्रकट सहायता प्राप्त है। युद्ध-जन्य परिस्थितियोंकी आड़में अनेक क़ानून बनाए गए हैं, जिनसे भारतीयोंके व्यापारको धक्का पहुँचा है। केनियाकी उपजाऊ भूमि यूरोपियनोंके पास है, इसलिए गेहूँका उत्पादन और वितरण सर्वथा उन्हींके हाथोंमें है। केनियामें १९४२ में ही राशनिंगकी प्रणाली चालू कर दी गई थी, इसलिए कोई भारतीय व्यापारी गेहूँ अपने पास नहीं रख सकता। गेहूँको पीसकर आटा बनानेका एकाधिकार 'ऊँगा लिमिटेड' (सुहेलीमें, जो केनियावासी अफ्रीकनोंकी बोल-चालकी भाषा है, आटेको ऊँगा कहते हैं) नामक यूरोपियन फ़र्मको मिला हुआ है। सम्भव है, युद्ध-समाप्तिके उपरान्त अवस्थामें परिवर्त्तन हो; किन्तु अनिश्चित भविष्यसे कोई सुनहरी आशाएँ नहीं बाँध सकता। इतिहास इस बातका साक्षी है कि किसी भी जातिने सर्वथा उपकारकी भावनासे प्रेरित होकर दूसरी जातिपर शासन नहीं किया। अतः यदि केनियाकी सरकार अपनी मातृभूमिके साथ व्यापार बढ़ानेकी योजनाएँ बनाय और अंगरेज़ोंको व्यापार-सम्बन्धी विशेष सुविधाएँ दे, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

एक बात तो स्पष्ट है कि केनियाके भारतीय व्यापारियोंको सर्वथा अपने पैरोंपर ही खड़ा होना है। उनकी छोटी-सी भूलको भी बड़ा बनाकर बताया जाता है, और किसी एक व्यक्तिके दोषको सारी भारतीय जातिके माथे मढ़कर उन्हें निन्दित करनेका गर्हित प्रयत्न भी किया जाता है। अतः भारतीयोंको भूतकालकी भाँति धैर्य और होशियारीसे ही काम लेना चाहिए और ईमानदारी तथा सद्व्यवहार द्वारा ही अपना काम करना चाहिए। भारतको भी केनियाके आयात-निर्यात-व्यापारसे अच्छी आमदनी है, अतः स्वदेशवासी भारतीयोंको भी केनियावासी भारतीयोंकी कठिनाइयों और असुविधाओंको दूर करनेके लिए उचित रूपसे अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। यद्यपि शासकोंकी मनोवृत्ति यह है कि इंग्लैण्डके साथ अधिकमत व्यापार हो; परन्तु निकट होनेके कारण भारत और केनियाका पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध बना ही रहेगा। इसी भौगोलिक कारणसे जब कभी आयात या निर्यात-व्यापार-सम्बन्धी कोई नया प्रतिबन्ध लगाया जाता है, तो स्वदेशवासी भारतीयों एवं केनियावासी भारतीयोंपर समान रूपसे प्रभाव पड़ता है। परिणामतः अपने स्वार्थोंकी रक्षासे प्रेरित होकर दोनों ही उसके विरोधमें आवाज़ उठाते हैं। केनियाके व्यापारसे भारतीयोंको जो आर्थिक लाभ हुआ एवं हो रहा है, उससे गौरांग प्रभुओंकी आखें खुल गई हैं। अतः उनके षड्यन्त्रों एवं क़ानूनी अड़ंगोंका एकमात्र जवाब भारतीय परस्पर अधिकाधिक सहानुभूति, संगठन और सहयोगकी भावनासे काम करके ही दे सकते हैं।

यहाँ केनियावासी भारतीय व्यापारियोंकी एक सामान्य शिकायतकी ओर भारतीय व्यापारियोंका ध्यान खींचना आवश्यक है। 'देसी साहब' और 'देसी टाइम' की भाँति 'देसी माल' भी केनियामें खूब बदनाम है। भारतीय फ़र्मसे किसी मालका नमूना मँगाया जाता है, तो वह भारतसे भेज दिया जाता है, दाम भी तय हो जाता है। पर जब माल भेजा जाता है, तो अनेक उदाहरणोंमें वह 'नमूने'के अनुकूल नहीं होता। फिर माल भेजनेमें कभी-कभी नियमितताको भी सर्वथा तिलांजलि दे दी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि ग्राहकों और व्यापारियों दोनोंको निराशा होती है। इसके विपरीत यूरोपियन फ़र्मों द्वारा जो माल भेजा जाता है, वह 'नमूने'के अनुसार होता है। यदि किसी बार मालमें फ़र्क हो, तो उसके विषयमें उचित समय पूर्व सूचना दे दी जाती है। माल भेजनेमें नियमितताका भी वे बहुत ध्यान रखते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि यूरोपियन व्यापारी मुनाफ़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काफ़ी लेते हैं ; परन्तु वे 'व्यापार-शास्त्र'के नियमोंका पालन भी करते हैं। इसी कारण वे व्यापारमें पर्याप्त उन्नति भी कर रहे हैं। यह तीव्र प्रतियोगिताका युग है, अतः जिसे अपना माल बेचना है, उसे ग्राहकको पूरी सुविधा और सन्तोष देना होगा।

अभी हाल ही में केनियाके अर्धसरकारी दैनिक पत्र 'ईस्ट अफ्रीकन स्टैण्डर्ड' में एक यूरोपियनने सम्पादकके नाम लिखे एक पत्रमें भारतीयोंपर यह दोषारोपण किया था कि केनियावासी भारतीय पैसा तो केनियासे कमाते हैं ; पर उसे जमा करते हैं भारतके बैंकोंमें। इस कमाईसे भारतमें भूमि मोल लेते हैं और ज़ायदाद खड़ी करते हैं। इसका मुँह तोड़ उत्तर एक भारतीयने इन शब्दोंमें दिया था कि भारतीय भारतमें ज़ायदाद खड़ी न करें तो कहाँ करें ? केनियामें तो हाईलैण्ड-एक्ट द्वारा उन्हें उपजाऊ जलवायुवाली भूमि खरीदनेसे वंचित कर दिया गया है। वे दलदलवाली भूमिमें मकान खड़ा करें ? खेती करनेके लिए उन्हें न तो उपजाऊ भूमि खरीदनेका सुभीता दिया गया है और न ही 'सेटलर्स' (खेती करनेवाले श्वेतांग) की तरह रुपया उधार दिया जाता है। इस आंशिक उत्तरमें भारतकी राजनीतिक दीनता और हीनताकी ओर एक विवश संकेत है। अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थितिको उन्नत करनेके लिए अभी हमें अनेक बलिदान देने होंगे।

एक रोज़

श्री रामगोपाल चतुर्वेदी, एम० ए०

प्रकृति-देवीका क्रीड़ास्थल वैसे तो पूरा बुन्देलखण्ड ही कहा जा सकता है ; परन्तु इस भू-भागके प्रमुख खण्ड ओरछामें तो प्राकृति मानो अखण्ड रूपसे अठखेलियाँ करती है। ओरछा-राज्यमें यों तो अनेक स्थान सौन्दर्यसे परिपूर्ण हैं ; पर उनमें मोहनगढ़ विशेष रूपसे आकर्षक है। अतीत गौरवका स्मृति-चिह्न मोहनगढ़का क़िला पुरातन इतिहासकी कहानी सुनाता हुआ ऐसे स्थानपर खड़ा है, जहाँ प्रकृति बड़े भव्य रूपमें दृष्टिगोचर होती है। उसकी अनुपम छटाको देख हृदय उल्लाससे भर जाता है और आँखोंको वह अजीबोग़रीब नज़्ज़ारा दिखाई पड़ता है कि सहसा मुँहसे निकल पड़ता है—'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति !' क़िलेके तीन तरफ़ विस्तृत जलराशिका साम्राज्य और जलराशिसे सटे सघन वनोंसे आच्छादित पहाड़ोंका दृश्य क़िलेके मोहनगढ़ नामको सार्थक करता है। पूर्वमें ताल है, पश्चिमसे प्रारम्भ हुई पर्वत-श्रेणी उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं तक अंचल पसारे एक मनोहर झाँकीका दर्शन कराती है। जहाँ पर्वत जलराशिसे कुछ दूर हैं, वहाँ लहलहाते हरे-भरे वन बड़े सुहावने जान पड़ते हैं। पल्लवित लतिकावलियोंपर चहचहाते पक्षियोंकी नैसर्गिक तान, लोल लहरोंसे हिल्लोलित कमलोंपर मधु-मस्त भ्रमरोंका मधुर गान, उधर ऊपर सुदूर क्षितिज तक नील वर्ण वितान तथा नीचे विमल जलमें उसका चंचल प्रतिबिम्ब मानो महाकवि इक़बालकी उस पंक्तिको मूर्तिमान करता है—'जैसे हसीन कोई आईना देखता हो !'

इसी मोहनगढ़के क़िलेमें ओरछा-राज्यके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री ठाकुर सज्जनसिंहजी, मैं और भूतपूर्व रेवन्यू कमिश्नर बद्री-नारायणसिंहजी दो-तीन दिनसे ठहरे मौज कर रहे थे। पर शिकारी आदमीको भला यह ठलुवा जीवन कैसे पसन्द आता ? बिना शिकार खेले उसे चैन कहाँ ? आखिर एक दिन सुबह ही ठाकुर साहबने कहा—'आज यहाँसे वापस चला जाय लौटते हुए आसपासके जंगलोंमें शिकार भी खेला जाय।' हम लोगोंने क़रीब दस बजे तक चलनेकी तैयारी कर ली अपनी-अपनी बन्दूक ले गाड़ीमें सवार हुए। शिकारी लक्ष्मणसिंह भी थरमसमें पानी ले साथ हो लिया। कुछ मील निकलनेपर बस्तीसे बाहर आए और धीरे-धीरे दोपहर होने तक जंगलके पास जा पहुँचे। गाड़ीको एक पेड़की छायामें छोड़ हम लोग पैदल हो लिए। थोड़ा आगे बढ़नेपर ठाकुर साहबने हकइयोंको आज्ञा दी कि वे उधरसे हाँका शुरू करें। इधर हम लोग भी एक-एक करके लगातपर लगते गए। लक्ष्मणसिंह मेरे साथ बैठा।

मार्चका महीना था और दोपहरका समय। सामने घना जंगल गर्मीसे झुलस रहा था। हवा साँय-साँय कर रही थी। सन्नाटा छाया था। निस्तब्धतामें किसी प्रकारकी आवाज़ दूरसे ही सुनाई पड़ जाती है, अतः हम लोग मौन-व्रत धारे शिकारकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ ही समय बाद हाँका शुरू होने लगा। पहले कुछ पक्षी वृक्षोंसे उड़-उड़कर आगे आने लगे। मोर कूँक करके भागते दिखाई दिए। धीरे-धीरे टाँकरकी भनक भी कानमें पड़ने लगी। बादको पत्तोंके दबनेसे कुछ धीमी आवाज़ सुनकर सुनाई दी। लक्ष्मणसिंहने इशारेसे बताया कि उस तरफ़से 'ऐरा' मिला है। सतर्क होकर मैं ग़ौरसे उसी दिशामें देखने लगा। कुछ समय बाद फिर पत्तोंकी खड़खड़ाहट हुई और एक चीतल और दो मादा उस कोनेसे भागकर निकले। मादाओंपर बन्दूक चलाना आखेट-नियमके विरुद्ध है ; अतः चीतलपर निशाना लगानेकी सोची। चीतल तेज़ीसे भागा जा रहा था और इधर मेरा हृदय भी तीव्र गतिसे धड़क रहा था। मैंने दम साधकर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और भागते हुए चीतलपर झटसे गोली चला दी। ठक्का हुआ, और चीतल आँखोंसे ओझल! जब हाँका खत्म हुआ, तो लक्ष्मणसिंह बोला—'चीतलको ठिठकनेका मौक़ा देना था। हिरन, साँभर आदि सभी जानवर आहट लेनेको कुछ क्षण रुकते हैं।' अपने राममें भला यह अक्ल कहाँ थी?

थोड़ा समय बीतनेपर ठाकुर साहब और कमिश्नर साहब भी आ गए। आगे बढ़ने लगे; पासमें दूसरा हाँका अभी कराना था। धीरे-धीरे चुपचाप जंगलसे गुज़र रहे थे। मैं तो वैसे भी चुप्पी साधे था; क्योंकि निशाना चूकनेका अफ़सोस था। कुछ दूर चलनेपर ठाकुर साहबने हकइयोंको पासके जंगलमें हाँका करनेकी आज्ञा दी। इधर हम लोग भी मचानोंपर जा बैठे। मेरा मचान धूपमें था, अतः मैं और लक्ष्मणसिंह पास ही छायामें जम गए। लक्ष्मणसिंहने कुछ हरी डालें तोड़ सामने रख मेरी ओट कर दी, जिससे जानवर न देख सके। पर इस बार हाँका खत्म होने तक यह नौबत ही न आई। गरमीसे सब परेशान थे। निश्चय हुआ कि किसी छायादार वृक्षके नीचे विश्राम किया जाय और दोपहर ढलनेपर पुनः शिकारके लिए निकला जाय।

कुछ ठण्डक होनेपर गाड़ीमें सवार हो, हम लोगोंने दक्षिण दिशामें प्रस्थान किया। थोड़ा फ़ासला तय करनेपर जंगल पास आ गया। गाड़ीको छोड़ हम लोग पैदल चलने लगे। यह वन सघन दीख पड़ा। जहाँ-तहाँ हरियाली भी थी। शिकार मिलनेकी सम्भावना यहाँ अधिक थी। विकट गरमीमें जानवर ऐसे ही स्थानोंमें टिकते हैं। हाँका शीघ्र ही आरम्भ कराया गया। लक्ष्मणसिंह और मैं एक कटानपर बैठे, ठाकुर साहब जंगलके दूसरे सिरेपर और कमिश्नर साहब बीचवाले मचानपर। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद दूरसे चीतल आते दीख पड़े। उनमें से एक चीतल आहट लेनेको आगे रुका कि कमिश्नर साहबने निशाना लगा दिया। पर वह खाली गया। एक फायर और किया, वह भी बेकार। इधर मैं भी उसपर लबलबी दबानेको था कि इतनेमें एक रोज़ पहाड़से उतरता दीख पड़ा। दो गोली चलनेके ठक्केसे भयभीत होकर वह दूसरी ओर भागा। उधर ही ५०-६० गज़ पर हम लोग पेड़की आड़में छिपे बैठे थे। मैंने जल्दीसे खड़े होकर निशाना साधा और घोड़ा दबा दिया। गोली उसकी गरदनपर लगी। वह गरदन घुमाकर आगे बढ़ा ही था कि दूसरा वार कर दिया। रोज़ पहले तो बैठ गया; पर शीघ्र ही उठकर भागा। लक्ष्मणसिंहके कहनेसे मौक़ा पाते ही मैंने एक गोली और दाग़ दी। गोली पड़ते ही वह कुछ दूर जा ज़ोरसे साँस लेकर गिर पड़ा। तत्पश्चात् सूर्यास्त होने तक वहाँ और बैठे; पर बादको कोई जानवर न निकला। उस दिनकी सन्ध्याके साथ उस रोज़की जीवन-सन्ध्या भी वहीं समाप्त हो गई।

नवयुग-पुरुषका स्वागत

श्री नन्दकिशोर

- १ -

स्वागत आज अपावनके गृह पावन परम पुनीत हमारे;
मनुज-मुक्तिके महायज्ञमें आओ, अभय अजीत हमारे।
अर्चन यहाँ न कुसुम-करोंसे, अक्षत-दूर्वादल, न आरती;
सुमुखि-कण्ठसे यहाँ न वन्दन, वीणा टूटी लिए भारती।
चन्दन चमचम केसर-कुंकुम, धूप-दीप-नैवेद्य सँवारे;
यहाँ न उभरे कुच नितम्बिनी, कौन कलशसे पैर पखारे?
तोरण-वन्दनवार विपुल छवि, छविमय यह संसार नहीं है;
आलोकित-दलमलित-गुंजरित आलवाल पथ-द्वार नहीं है।

- २ -

यह पतितोंका देश अभागा जीर्ण-शीर्ण बहुव्याधि-ग्रस्त है;
यह परतन्त्र हो गया कितना दीन-हीन आतंक-त्रस्त है।
जोड़े हाथ खड़ा नतशिर है युग-युगान्तसे पदमर्दित है;
फटे वसनके तार-तारसे लिपटा अवयव, पर-शासित है।
यह जड़वत निस्तेज हो गया सहते अत्याचार-दमन नित;
आँसूसे अरमान तर हुए, जीवन उत्पीड़नसे कम्पित।
स्वागतमें नवपुरुष तुम्हारे, यह भारतका नग्न चित्र है,
भले न जग पहचाने इसको, यह वसुधाका परम मित्र है;

- ३ -

मनुज-मुक्तिके महायज्ञका आयोजन करना ही होगा;
प्रथम होम उस अग्निकुण्डमें भारतको चढ़ना ही होगा।
आज तोड़ देना निश्चित है मानवपर मानवका बन्धन;
आज मुक्त करना निश्चित है कोटि-कोटि दलितोंका जीवन।
रंग-रंगकी विविध धर्मकी जाति-पाँतिकी देश-वेशकी;
निश्चित लीक मिटा देनी है निर्मित मानव या महेशकी।
मानव-युगकी साम्य-सृष्टिका मानव खुद ही बने विधाता;
अगर आज तक छिपा कहीं है, तो मानव-पग पड़े विधाता।

- ४ -

तोड़ रहा दम कह वीरोंका 'प्रभुसे जीता कभी न मानव';
कविको दीख रहा है आगे, पिछड़ रहा है देव, न मानव।
कायरकी बातोंमें आकर रह जाएगा मानव पिछड़ा;
और होड़में भाग न ले यदि रह जाएगा युगसे पिछड़ा।
आज अगर डर गया होमसे, जकड़ा रह जाएगा बन्धन;
करवट भी यदि बदल न पाया, पीड़ित रह जाएगा जीवन।
जागो युगके पुरुष विधाता, अरुण सवेरा हँसता आया;
स्वागत नवयुग-पुरुष तुम्हारा खग जय-गीत सुनाता आया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasaya Sanskrit Vishwavidyalaya Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

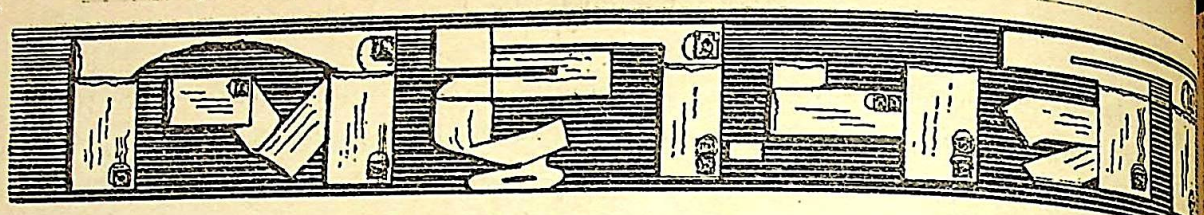

कलकत्तेमें हिन्दी भवन

गत अप्रैलके 'विशाल भारत'में 'कलकत्तेमें हिन्दी-भवन'-शीर्षक लेख देखकर हर्ष भी हुआ और वेदना भी। विचार स्वयं तो बहुत सुन्दर है, लेकिन हमें इससे पूर्व स्थापित संस्था शान्ति-निकेतनके हिन्दी-भवनकी की गई अवहेलना, उसमें हुई ग़लतियों का तथा वे ग़लतियाँ फिरसे न दोहराई जायँ, इसका पूरा अध्ययन कर लेना आवश्यक है; अन्यथा मुझे भय है कि इसकी भी कहीं वही गति न हो, जो शान्तिनिकेतनमें स्थापित हिन्दी-भवनकी हुई है। कोई वर्ष बीते होंगे, इस विचारके अनुरूप हो भारतके एक सांस्कृतिक स्थान शान्तिनिकेतनमें हलवासिया-ट्रस्ट द्वारा हिन्दी-भवनका निर्माण हुआ। आशा तो की गई थी कि इससे हिन्दी-साहित्यकी बहुत बड़ी सेवा होगी, लेकिन सेवा छोड़ किसी साहित्य-प्रेमीने उसकी तरफ़ झाँका भी नहीं! हमारे साहित्यकी इतनी अवहेलना क्या सहन करने लायक थी? लेकिन फिर भी किसीने इसके निमित्त अपने विचार कभी प्रकट नहीं किए। आज एक नया हिन्दी-भवन कलकत्तेमें निर्माण करनेका विचार हो रहा है। आशा है, इसके प्रस्तावकोंने इन सब बातोंपर पूर्णरूपेण विचार कर लिया होगा; अन्यथा सिर्फ़ इमारत खड़ी करनेसे ही तो साहित्य-सेवा न हो सकेगी। मैं उन सहयोग देनेवाले साहित्य-सेवियोंसे भी यही अनुरोध करूँगा कि वे भवन-निर्माणके निमित्त अग्रसर होनेसे पूर्व इसके हरएक दृष्टिकोणपर विचार कर लें। कहीं यह भी उसी अन्धकारमें विलीन न हो जाय। —पुरुषोत्तमदास हलवासिया, ४७, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता।

काला झूठ

डाक्टर अब्दुलहक़ साहबके और राक़िमके खिलाफ़ अक्सर ग़लत अफ़वाहें फैलाई जाती हैं और इस तरह दिलके फफोले फोड़े जाते हैं। इस कारे-सवाबमें कभी-कभी उर्दूकी हिमायतका नाम लेनेवाले भी शामिल हो जाते हैं। मगर हम उन मेहरबानोंसे बे-एतनाईका बर्त्ताव करते हैं और उन लोगोंको समझकर तरस खाकर चुप रहते हैं। मगर बाज़ अफ़तरा-परवाज़ी ऐसी होती है कि उसका रद ज़रूरी होता है और ऐसी ही यह एक है, जिसके रदमें हमें ये सतरें लिखनी पड़ीं।

बम्बईसे एक रोज़ाना अखबार हिन्दीका निकलता है, जिस का नाम 'विश्वमित्र' है। इसकी १४ मार्चकी इशायतमें एक तहरीर छपी है, जिसका उनवान है 'हिन्दी-विरोधी आन्दोलन—लीगी मुसलमानोंकी योजना' यानी 'हिन्दीके खिलाफ़ जद्दोज़हद और लीगी मुसलमानोंकी साज़िश। इस उनवानके नीचे लिखा है कि अंजुमन-तरक्क़ी-उर्दूकी रूह-दर्दा डाक्टर मौलवी अब्दुल-हक़ने एक खत कुछ चुनीदा उर्दूके हिमायतियोंको भेजा जिसमें उन्होंने अखिल भारतीय रेडियोमें सरकारी एलानके होनेवाली तब्दीलीसे उर्दूको मुश्किलातमें गिरफ़्तार बतलाते हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके तरीक़े-कारके खिलाफ़ आल जद्दोज़हद करनेकी अपील की है।

'विश्वमित्र'के एडीटर और उनको खबर देनेवालेकी लौहीपर रहम भी आता है और हँसी भी आती है। इन बन्दोंने इतना भी न सोचा कि जब मौलवी अबुलहक़ सा की पालिसीको अव्वलसे क़ौमी इत्तहाद और वतनके मुफ़ दुश्मन समझते आते हैं और अंजुमनका आर्गन सम्मेलनकी वाइयोंकी खुल्लमखुल्ला चिथाड़ करता रहता है, तो मौलवी या किसीके खुफ़िया साज़िशकी ज़रूरत ही क्या थी? बात है कि हुकूमत सम्मेलनकी बन्दर-भबकियोंमें न आई, वुखार दूसरोंपर निकाला जा रहा है। सफ़ेद झूठ एक मुहा बन गया है, मगर हम इस दरोगबानीको काला झूठ कहने मजबूर हैं। यह खबर सरासर बेबुनियाद और सिरेसे झूठ —'हमारी ज़बान' (१ अप्रैल, १९४५)

'संसार-नगर-परिचयमाला'

हिन्दी-साहित्यकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए यह आवश्यक कि उसमें संसारके प्रसिद्ध नगरोंका परिचय करानेवाली पुस्तकें निकलें। संसारमें कम-से-कम ५० नगर तो ऐसे अवश्य हैं जिनपर स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। अतः मैं प्रकाशकों से निवेदन करूँगा कि वे 'संसार-नगर-परिचयमाला' निकालें नगरका इतिहास देकर फिर चित्रोंकी सहायतासे उसकी विशि इमारतोंका परिचय दिया जाय। नगरकी प्रसिद्धिके कारणों प्रकाश डालते हुए वहाँके निवासियोंकी आर्थिक तथा सामाजि दशाका भी वर्णन हो। इसी प्रकार 'संसार-विश्वविद्यालय-परिचयमा भी निकाली जा सकती है। आशा है, प्रकाशकगण इस सुझाव ओर ध्यान देकर शीघ्र ही इस संकल्पमें कुछ करेंगे। ऐसा जानेसे हिन्दी-साहित्यमें एक खटकनेवाली कमीकी पूर्ति जायगी। —नारायणदास बाहेती, मुरैना (ग्वालियर)

आचार्य द्विवेदीजाकी थाती

आचार्य द्विवेदीजीने जुही कलाँ, कानपुरसे १९-१०-२१ सभाको एक पत्र लिखा था—"मेरी पुस्तकोंका जो संग्रह कानपुरमें है, उसे आपने देखा ही है। वह पड़ा-पड़ा यहाँ बाद हो रहा है। मैं उसे ना० प्र० सभा, काशीको दे डालना चाहता हूँ। उसकी इच्छा हो, तो ले ले। शर्तें कोई नहीं। शर्तें वह करे, वही मंज़ूर। पुस्तकें यों ही सटपट हैं। मगर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुछ है, हाज़िर है। दौलतपुरमें भी संग्रह है। वह इतना ही या इससे कुछ अधिक ही होगा। मैं कानपुरमें शायद ही महीना-भर रहूँ। पुस्तकें ग्रहण करना मंज़ूर हो, तो किसीको भेज दीजिए। वह फिहरिस्त बना डाले, एक कापी मुझे दे दे, एक ले जाय। रहे शहरमें, काम करने जुही आवे; क्योंकि यहाँ रहनेकी जगह नहीं। मेरे खपरैलमें सिर्फ़ दो कमरे हैं, एक पुस्तकोंके लिए, एक भीतर। पुस्तकें चीड़के बक्सोंमें बन्द करके, बण्डल बनाकर, बोरियोंमें भरकर, जिस तरह सुभीता हो, ले जाय। मेरे यहाँ न रहनेके कारण बहुत पुस्तकें बरबाद गईं, कुछ उठ गईं, कुछकी जिल्दें चूहोंने कुतर डालीं। इससे जल्द उठाना चाहिए। जिस लड़केको मैंने अपनी छोटी भानजी दी है, वह म्यूर कालेजके फोर्थ ईयरमें है। संस्कृत भी उसके कोर्समें है। दस बी० ए० (संस्कृत) की पुस्तकें उसके लिए रख लूँगा। मेरे समयकी 'सरस्वती'की १७ वर्षकी हस्तलिखित कापियाँ मेरे पास हैं। किसी समय भविष्यत्में वे शायद मूल्यवान् समझी जायँ। उनको देखने से पता चलेगा कि आजकलके हिन्दीके अनेक धुरन्धर लेखक किस तरह राहपर लाए गए थे। वे भी दे डालूँगा। सभा चाहे तो जिल्द बँधाकर रख छोड़े। कुछ पत्र-व्यवहार भी रखनेको दे दूँगा। अपनी कई पुस्तकोंकी भी हस्तलिखित कापियाँ दूँगा। मेरी अनेक पुस्तकोंकी कापियाँ सभामें मौजूद होंगी। पर बहुत-सी न भी होंगी। मासिक पुस्तकोंको जिल्दें बहुत हैं। अंगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बँगलाकी भी पुस्तकोंका संग्रह है। सब खिचड़ी है, सूचो कोई नहीं।"

यह पत्र सभाकी प्रबन्ध-समितिमें उपस्थित किया गया और सादर स्वीकृत हुआ। इसकी सूचना पाकर आचार्य द्विवेदीने २ नवम्बर, १९२३ को सभाके प्रधान-मन्त्रीको लिखा—"मिति १४ कार्तिकका पत्र १३२६ : ३९ मिला। सभाका 'निश्चय' जाना। मंज़ूर है। जहाँ तक हो सके, आदमी जल्द भेजिए। दस ही बारह दिन बाद मैं यहाँसे चला जाना चाहता हूँ। जितनी पुस्तकें उठ सकें, उतनी ही सही, बाक़ी फिर मेरे आनेपर उठवा लीजिएगा। अलमारियोंका प्रबन्ध कर रखिए, दौलतपुरकी भी पुस्तकें यदि मैंने दीं, तो आठ-दस अलमारियाँ कम-से-कम दरकार होंगी। पत्र-व्यवहार छाँटना है। दे सकूँगा, तो कुछ अभी दे दूँगा, बाक़ी फिर। ये पत्र बन्द रहें, ताले-कुंजोमें रहें, चाभी मन्त्रीके पास रहे। इनका उपयोग यदि कभी किया जाय, तो मेरे नाम-शेष हो जानेपर, यह कहीं लिख रखिए।"

इसके बाद सभाके कर्मचारीने जुही जाकर पुस्तकें आदि सहेजकर काशी भेजनेकी व्यवस्था की। द्विवेदीजीकी दी हुई वह अमूल्य सामग्री आर्यभाषा-पुस्तकालयकी आठ अलमारियोंमें सुरक्षित है और जनताके उपयोगमें आ रही है। 'सरस्वती'की और पुस्तकोंकी प्रेस-कापी कला-भवनमें सुरक्षित है। उस विषयकी रुचि रखनेवाले जो लोग यह सामग्री देखना चाहते हैं, उन्हें, सूचना पाकर, यह दिखाई जाती है। द्विवेदीजीके नाम आए हुए पत्रोंका जो संग्रह सभा-कार्यालयमें है, उसे देखनेकी जिन्होंने इच्छा प्रकट की, उनको दिखाया गया है। पुराने दिनोंमें आचार्य द्विवेदीका सभासे कुछ बातोंमें मतभेद था, इसका यह अर्थ नहीं कि सभासे उनको किसी प्रकारका द्वेष था। वे जिस सुधारके पक्षमें होते थे, उसके लिए प्रयत्न करते थे। ऐसा तो सभी संस्थाओंमें थोड़े-बहुत परिमाणमें होता है। कुछ लोगोंने यह निराधार खबर उड़ाई है कि सभामें रखी हुई चिट्ठियोंमें से कुछ पत्र नष्ट कर दिए गए हैं। किन्तु निराधार बातका कुछ मूल्य नहीं होता और प्रतिष्ठित व्यक्ति ऐसी बातें कहते भी नहीं हैं। श्री मैथिलीशरणजीके यहाँ और द्विवेदीजीके घरपर जो 'कौटिल्य कुठार' रखा हुआ है, उसे देखनेका परिश्रम कितने द्विवेदी-भक्तोंने किया है? सभामें ७३ पृष्ठोंका जो द्विवेदीजीका 'वक्तव्य' सुरक्षित है, उसे ही पढ़नेका कष्ट कितने सज्जनोंने किया है? इन दोनों चीज़ोंके रहते सभापर कुछ महत्वके पत्र नष्ट करनेका आरोप लगानेमें सज्जनता कहाँ तक है, इसका अनुमान समझदार जनता स्वयं कर सकती है।

सभाको यह अयाचित सात्विक दान प्राप्त हुआ है, और यह आचार्य द्विवेदीकी थाती है, जो उनकी आज्ञाके अनुसार सुरक्षित है। कोई भी अधिकारी व्यक्ति पहलेसे सूचना देकर, स्वीकृति मिलनेपर, इसको देखे और अपने दायित्वपर इसका उपयोग करे। सभाको तो इसमें प्रसन्नता ही होगी। समस्त पत्रोंको पढ़ने और उनकी तालिका बनानेके लिए समय और परिश्रम अपेक्षित है। सभाने इस पत्र-संग्रहको छाँटनेके लिए गत जुलाई मासमें तीन सज्जनोंकी एक उपसमिति बनाई थी। उपसमितिने विचार करके यह सुझाव उपस्थित किया है कि (१) द्विवेदीजीके पत्र-संग्रहकी एक तालिका तैयार करके प्रकाशित की जाय, जिसमें पत्रकी तिथि, पत्र भेजनेवालेका नाम तथा पत्रका संक्षिप्त सार रहे। इसकी केवल २५० प्रतियाँ अभी छापी जायँ। (२) पत्र संग्रहमें कुछ पत्र एकदम निजी हैं, उनका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है; पर उनमें द्विवेदीजीका जीवन-चरित लिखनेके लिए काफ़ी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है। ऐसी सामग्री अलग से एकत्र कराई जाय। संग्रहमें कुछ साहित्यिकोंके भी पत्र हैं, उनका साहित्यिक महत्व है। उन्हें अविकल रूपसे प्रकाशित किया जाय। यदि पुस्तकाकार तत्काल प्रकाशित न हो सके, तो किसी मासिक पत्रमें या सभाकी त्रैमासिक पत्रिकामें प्रकाशित कर दिया जाय। यथावसर इसकी पूर्त्ति की जायगी।—रामनारायण मिश्र, प्रधान-मन्त्री, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

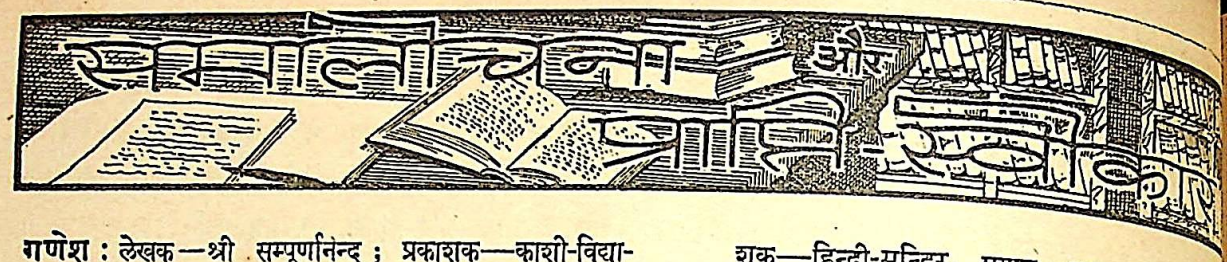

गणेश : लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द ; प्रकाशक—काशी-विद्यापीठ, बनारस ; मूल्य २॥) ।

हिन्दू-समाजमें घर-घर गणेशकी पूजा होती है। किसी भी मंगल-कृत्यके आरम्भमें गणेशकी पूजा-अर्चना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य-सी है। पर यह गणेश हैं कौन, इनकी उत्पत्ति और प्रसिद्धि कैसे हुई और देवताओंमें इनको श्रेष्ठ एवं उच्च आसन कैसे मिल गया, इन बातोंको जाननेवालोंकी संख्या नगण्य ही है, और जिनको थोड़ा-बहुत मालूम भी है, उनकी जानकारीका एकमात्र आधार है पुराणोंमें यत्रतत्र गणेशजीकी चर्चा। पर इस ग्रन्थमें गणेशपर गम्भीर और गवेषणापूर्ण विचारोंकी अभिव्यक्ति है। विद्वान ग्रन्थकारने बड़ी योग्यतासे यह सिद्ध कर दिखाया है कि वेदोंमें न गणेशका कहीं पता-सुराग है और न वे आर्योंके देवता ही हैं। आर्यगण जब सप्तसिन्धव देशसे पूर्व दिशाकी ओर अग्रसर हुए, तो उनका भारतके मूल निवासियोंके सम्पर्कमें आना अनिवार्य था। विद्वानोंके विरोध करते रहनेपर भी साधारण श्रेणीके आर्योंने अपने अनार्य पड़ोसियोंके कुछ देवी-देवोंको अपना लिया, जिनमें गधेपर सवार होनेवाली शीतला और कुत्तेकी पीठपर बैठनेवाले भैरवके सिवा चूहेपर चढ़नेवाले हस्तिमुख गणेश भी थे। विश्वकी अशिक्षित, असभ्य और जंगली जातियोंमें इस तरहके अद्भुत् देवी-देवताओंकी पूजा सर्वत्र ही प्रचलित है।

यह तो निर्विवाद है कि वैदिक युगसे बौद्ध काल तक आर्यों का गणेशसे कोई परिचय नहीं था। इधर दो सहस्र वर्षके अन्दर ही अनार्योंके देवता गणेश आर्योंके देवता भी बन बैठे। यही पुराणोंका रचना-काल भी माना जाता है। अतएव पुराणोंमें गणेश-सम्बन्धी नाना प्रकारकी गाथाएँ गढ़ी गईं। इस तरह गणेशजी आर्योंके घरमें प्रवेशकर विघ्नेश्वरसे मंगल-मूर्त्ति बन गए, क्रूरकर्मासे कल्याणकारी कहे जाने लगे और सर्वदेवोंसे पहले पूजाके अधिकारी बन बैठे! यह भी नहीं भूलना चाहिए कि आर्योंने आखिर गणेशकी मूर्त्ति गोबरकी ही बनाना उचित समझा, जो आर्य-देवोंके लिए अपमानको बात समझी जाती। लेखकने किसी साम्प्रदायिक भावनासे प्रेरित होकर इस पुस्तककी रचना नहीं की है, बल्कि श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराणोंकी छान-बीनकर गणेशके सम्बन्धमें जो निष्कर्ष निकाला है, वह सर्वथा युक्तियुक्त, न्यायसंगत और प्रामाणिक है। धार्मिक साहित्यमें यह क्रान्तिकारी अभिवृद्धि है। लेखकको अपने प्रयत्नमें अच्छी सफलता मिली है। गणेश-मूर्त्तिके अनेक चित्रोंसे ग्रन्थका महत्व और भी बढ़ गया है।

आधुनिक भारत : लेखक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय, ; प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग ; पृष्ठ ३३२ ; मूल्य सजिल्द ५) ।

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक आचार्य जावड़ेकरजीकी मराठी-कृ हिन्दी-रूपान्तर है, तो भी उपाध्यायजीने इसे ऐसे साँचेमें दिया है कि पढ़नेमें मौलिकको भाँति ही आनन्द आता है इस प्रकारके साहित्यकी सम्प्रति परमावश्यकता है, जिससे देशकी अधोगति और जाग्रतिके कारणोंको जाननेमें सहायता सके। वास्तवमें यह ग्रन्थ आधुनिक भारतका शब्द-चित्र है इसमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यह निरूपण किया गया है कि अंग्रेज यहाँ क्यों और कैसे आए, यहाँकी तत्कालीन परिस्थितिसे उन्हें कितना लाभ पहुँचा और किस प्रकार वे भारतमें ब्रिटिश रा स्थापित करनेमें समर्थ हुए, दासता-जनित दुर्गतिसे कैसे हमारी आँखें खुलीं, कैसे भारतमें राष्ट्रीय जागरणका सूत्रपात हुआ राष्ट्रीय आन्दोलनको किन-किन परिस्थितियोंसे गुज़रना पड़ा आज राष्ट्रका ध्येय क्या है और उसकी पूर्त्तिके लिए किन उपायोंका अवलम्बन किया जा रहा है? ये सब बातें ऐसी हैं, प्रत्येक भारतीयको जाननी चाहिएँ और देशके मंगल-भविष्य लिए अपने कर्त्तव्यका निर्धारण कर लेना चाहिए। श्री कन्हैया लाल माणेकलाल मुन्शीने भूमिकाके रूपमें आठ पंक्तियाँ लिखी हैं। यदि इसके स्थानपर विद्वान लेखककी इस विषयपर प्रस्तावना होती, तो पुस्तका महत्व और भी बढ़ जाता ; पर हमारे देशके बड़े आदमियोंसे भूमिका लिखवानेका एक रोग-सा चल पड़ा है और विस्मय एवं विषादकी बात है कि उपाध्यायजी-जैसे विद्वान और राष्ट्रभक्त भी इस रोगसे बच नहीं पाए। पुस्तक सामयिक सर्वोपयोगी और सुपाठ्य है। राष्ट्रीय दृष्टिसे इसका अधिकाधिक प्रचार वांछनीय है।

पारसी-परिचय : लेखक—श्री कृपानारायण पाठक ; प्रका शक—इण्डियन प्रेस, लि०, प्रयाग ; पृष्ठ ९८ ; मूल्य ॥)

हिन्दुस्थानमें बसनेके विचारसे विदेशोंसे जो भिन्न-भिन्न जातियाँ आईं, उनमें पारसियोंका आगमन एक विलक्षण घटना है। वे आक्रमणकारीके रूपमें नहीं आए, प्रत्युत मतान्ध आक्रमण कारियोंसे अपने धर्म, साहित्य, संस्कृति और सभ्यताकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे हिन्दुस्थानमें शरणागत हुए। यहाँ अभय-दान पाकर अपनी योग्यता और बुद्धिमत्ता, उद्योग और परिश्रम, कला कौशल और वाणिज्य-व्यवसायके प्रतापसे उन्होंने राष्ट्रीय जीवनमें एक विशिष्ट स्थान बना लिया। भारतीय राष्ट्रके ऐसे आवश्यक अंगके सम्बन्धमें राष्ट्रभाषामें कोई विस्तृत और प्रामाणिक ग्रन्थ दृष्टिगोचर नहीं होता, इससे बढ़कर अचरज और अफ़सोसकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बात और क्या हो सकती है। अतएव साधारण जनतामें पारसियोंके विषयमें जो भाँति-भाँतिकी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं, वे सर्वथा स्वाभाविक हैं। पारसियोंके सम्बन्धमें अंगरेज़ी और गुजरातीमें पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है; पर हिन्दी इस सौभाग्यसे अब तक वंचित ही है। ऐसी स्थितिमें पं० कृपानारायणकी यह कृति अभिनन्दनीय है। यद्यपि यह पोथी है तो बहुत छोटी, फिर भी बड़े कामकी चीज़ है। हिन्दीमें एक खटकनेवाली कमीकी इससे कुछ हद तक पूर्त्ति हुई है। इसमें सिद्ध किया गया कि पारसियोंका पुराना ज़रथोस्ती धर्म वास्तवमें वैदिक धर्मका ही रूपान्तर है, उनका साहित्य भारतके संस्कृत-साहित्यका सहोदर है, पारसी आर्य-जातिकी एक शाखा हैं और ईरानकी पुरानी संस्कृति आर्य-संस्कृतिकी ही अनुकृति है। हमें इस छोटी-सी पोथीपर ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए, और हिन्दीमें इस विषयपर एक बृहत् ग्रन्थ लिखा जाना चाहिए। हिन्दू-हितके हिमायतियोंकी पारसियोंकी ओर यह उपेक्षा-वृत्ति अत्यन्त शोचनीय है। उनको इस विषयपर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए और देशवासियोंको बतलाना चाहिए कि पारसियों और हिन्दुओं के धर्म-कर्म, आचार-विचार और व्यवहारमें कितना सामीप्य और साम्य है।

The People of Poland by Benard Newman; *The Polish Question* by F. A. Voigt; *Poland and Russia* by Dr. Weyers; *What Poland Wants* by Ignacy Matuszewsgi; *Socialists and Poland* by Patricg J. Dolian; *Russia, Poland and India* by S. R. Ali; *The Core of a Continent—Problems of Central and Eastern Europe* by Henryk Strasburger. Published by the Indo-Polish Library, 78, Nepean Road, Bombay.

प्रस्तुत पोथियोंसे पोलैण्डकी परिस्थितिपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। पोलैण्डका पेचीदा प्रश्न आज अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिके सूत्रधारोंके लिए विशेष चिन्ता और चर्चाका कारण बन गया है। इस दृष्टिसे इण्डो-पोलिश लाइब्रेरीसे प्रकाशित इन पोथियोंसे पोलैण्डकी सारी समस्याओंपर सरकारी पक्षसे पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इन्हें पढ़कर कहना पड़ता है कि विश्व-बन्धुत्व, समता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी दुहाई ढोंगके सिवा कुछ भी नहीं है।

—भवानीदयाल संन्यासी

गांधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ : सम्पादक—श्री सोहनलाल द्विवेदी; प्रकाशक—अवध-पब्लिशिंग-हाउस, लाटूश रोड, लखनऊ; पृष्ठ सवा दो सौके लगभग, मूल्य १०), सजिल्द।

प्रस्तुत ग्रन्थ गांधीजीकी ७५वीं वर्षगाँठपर उन्हें हिन्दी-संसारके अर्घ्यके रूपमें भेंट किया गया था। इसमें हिन्दीके प्रमुख कवियोंके सिवा संस्कृत, उर्दू, बँगला, गुजराती, मराठी, उड़िया, मैथिली, राजस्थानी, सिन्धी, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, कनारसो, चीनी और अंगरेज़ीके प्रतिष्ठित भारतीय और विदेशी कवियों द्वारा गांधीजीके सम्बन्धमें लिखी गई कविताएँ संकलित हैं। हिन्दीके अतिरिक्त अन्य भाषाओंकी कविताओंका भावार्थ भी अन्तमें दे दिया गया है। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई बड़ी नयनाभिराम है और सम्पादन भी बड़ी योग्यता एवं परिश्रमसे किया गया है। इसके लिए इसके सम्पादक द्विवेदीजी हिन्दी-संसारकी बधाई और कृतज्ञताके अधिकारी हैं। हिन्दीमें यह अपने ढंगकी सर्वथा नई, अनूठी और संग्रहणीय चीज़ है।

प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनका उद्देश्य दोहरा है—गांधीजीका अभिनन्दन और इसकी आयसे उनके दाहिने हाथ स्व० महादेव भाईकी स्मृति-रक्षा। इसीलिए इसका साधारण मूल्य १०) और विशेष रूपसे लेनेवालोंके लिए १००), ५००) और १०००) रखा गया है। हम अपने समर्थ पाठक-पाठिकाओंसे अनुरोध करेंगे कि वे अधिकाधिक मूल्यमें इसे खरीदकर इस पुण्य उद्देश्यकी पूर्त्तिमें सहायक बनें।

दक्षिण-आफ्रिकाना रंगभूमि : लेखक और प्रकाशक—श्री प्राणशंकर सोमेश्वर जोशी, ४० त्री स्ट्रीट, जोहानिसबर्ग (दक्षिण-आफ्रिका); मुख्य विक्रेता—भारती-साहित्य-संघ, १३८ मेडोज स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई; पृष्ठ ३२८; मूल्य ३॥)।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने दक्षिण-अफ्रीकाके आन्तरिक जीवन का आँखों-देखा वर्णन अपने विचारों तथा स्मरणोंके रूपमें दिया है। १९३७ में उनकी 'रंग द्वेषनो दुर्ग' पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें प्रधानतया वर्ण-द्वेष और उसकी प्रतिक्रियाका ही वर्णन था। प्रस्तुत पुस्तक उसीका पूरक अंग कहा जा सकता है। आरम्भमें लेखकने अपने दक्षिण-अफ्रीका जानेका विवरण दिया है और उसके बाद वहाँके प्रदेशों, निवासियों, वर्ण-भेदकी प्रतिक्रिया, बाँटू लोगोंकी रहन-सहन तथा राजनीतिपर विस्तृत प्रकाश डाला है। पुस्तकके अन्तमें भारतीयोंकी राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, मनोरंजन और शिक्षण-संस्थाओं तथा वहाँ बोली जानेवाली भाषाओंकी तालिका भी दे दी है। इन सबसे वहाँके प्रवासी भाइयोंकी स्थिति और वहाँकी मौजूदा परिस्थितिका खासा अच्छा ज्ञान पाठकोंको हो सकेगा। लेखकने वहाँकी बातों और राजनीतिक तथा सामाजिक स्थितिका वर्णन इतने स्पष्ट और संयत ढंगसे किया है कि पुस्तककी प्रामाणिकतामें सन्देहकी गुंजाइश नहीं रह जाती। पत्रकार होनेके नाते उनकी भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण और शैली बड़ी रोचक है। ऐसी सुन्दर, सामयिक और उपयोगी पुस्तक लिखनेके लिए हम जोशीजीको हार्दिक बधाई देते हैं। अच्छा हो, यदि कोई प्रकाशक इसका हिन्दी-रूपान्तर भी प्रकाशित करें। जब तक ऐसा नहीं होता, हिन्दीके गुजराती जाननेवाले पाठकोंसे हम अनुरोध करेंगे कि वे इसे एक बार अवश्य पढ़ें।

—मो० सिं० सेंगर

हमारे सहयोगी

मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौरकी मुखपत्रिका 'वीणा'ने अपना जनवरी, १९४५ का अंक 'मुख्यतः रोम्याँ रोलाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की स्मृतिमें प्रकाशित'कर बड़ा ही अनुकरणीय एवं स्तुत्य कार्य किया है। हिन्दीके अधिकांश पाठक अभी इस युग-मनीषीके बारेमें लगभग कुछ भी नहीं जानते। रोलाँके निधनपर हिन्दी-पत्रोंमें जो-कुछ निकला है, उसमें से बहुत कममें उनके जीवन-विकास और ऐतिहासिक देनको ठीक-ठीक रूपमें समझने या समझानेका प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टिसे 'वीणा'के इस अंककी सामग्री भी काफ़ी और विशेष सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। भाषाकी क्लिष्टता--यथा प्रज्ञावान श्रमिकों, प्रतिरोध देने, स्वेच्छतया, वैचारिकता (प्रज्ञा), मानसिक अलगाव (निर्वासन), प्रज्ञातीत उपचेतना, अपरिमेय संचयिता, राजकीय (?) क्रान्तियाँ, दुःखवाद, कलालोचक आदि—और अनुवादकी ग़लतियोंके अलावा तथ्योंकी ग़लतियाँ भी काफ़ी हैं। उदाहरणके लिए 'साधन-सामग्रीके अभाव और बहुत जल्दीमें' लिखे गए (पता नहीं क्यों ?) माचवेजीके लेखमें 'I will not rest' (इसका 'मैं रुकूँगा नहीं' अनुवाद ग़लत है) का रचना-काल ८० वर्षकी आयुमें बताया गया है, जब कि रोलाँकी मृत्यु ७८वें वर्षमें ही हो गई। दरअसल उनके १९१९से ३४ तकके लेखों का यह संग्रह १९३५ में छपा, जब कि उनकी अवस्था ६९ वर्षकी ही थी। इसी प्रकार 'साँ लुई' भी १९२६ में नहीं, बल्कि १८९७ में छपा था। रोलाँके ग्रन्थोंका उल्लेख करते हुए माचवेजीने एक जगह 'आमियाँ आशान्ते'के बाद 'एक दुनिया की मौत' और दूसरी जगह 'मन्त्रमुग्ध आत्मा'के साथ 'अनेट एण्ड सिल्वी' लिखा है। दरअसल 'आमियाँ आशान्ते' और 'मन्त्र-मुग्ध आत्मा' कोई पृथक ग्रन्थ न होकर ६ खंडोंका एक उपन्यास है, जो अंगरेज़ीमें 'Soul Enchanted' नामसे छपा है। 'एक दुनियाकी मौत' इसका चौथा और 'अनेट एण्ड सिल्वी' इसका पहला खण्ड-मात्र हैं। उनका यह कथन भी निराधार है कि रोलाँ २३ अप्रैल, १९३२ को पेरिससे सदाके लिए विदा लेकर विलेन्यू में आकर बस गए और आजीवन वहीं रहे। रोलाँ फ्रांसमें जर्मन-अधिकारियों द्वारा पकड़े गए थे और वहीं उनकी मृत्यु भी हुई।

'रोम्याँ रोलाँका भारतीय अध्ययन'-शीर्षक लेख तो न सिर्फ़ अपूर्ण ही है, बल्कि भ्रामक भी। दरअसल रोलाँका भारतीय अध्ययन केवल रामकृष्ण, विवेकानन्द, राममोहन राय, दयानन्द, केशवचन्द्र सेन और देवेन्द्रनाथ ठाकुर तक ही सीमित नहीं था। इनका अध्ययन उन्होंने १९वीं शताब्दीकी सांस्कृतिक विकास-धारा को जाननेके लिए किया था। यथार्थमें उन्होंने आधुनिक भारतको जाना है गांधीजीके लेखों, डा० कालिदास नाग और दिलीप रायके विवरणों और जवाहरलाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बसु, डा० अन्सारी और अन्य कई प्रमुख भारतीयोंसे हुए पत्र-व्यवहारसे। भारतका अध्ययन उन्होंने उसे पूर्वका जगद्गुरु मानने या घोषित करनेके लिए नहीं, बल्कि विश्व-जन-आन्दोलन की पृष्ठभूमिमें किया था—वैसे ही, जैसे कि इटली, फ्रांसीसी हिन्द-चीन और सेको-वेंज़ेटीके त्रासक अमरीकाका। सम्पादकीय में रोलाँको ताल्स्तायका 'साहित्यिक संस्करण' और 'कलाकार तथा सन्तका सामंजस्य' बतलाया गया है और फाशिज़्म तथा कम्युनिज़्मको दो बुराइयाँ बतलाकर छोटी बुराईके रूपमें कम्युनिज़्मको 'आपद्धर्म्म'के रूपमें, अपनानेकी बात लिखी गई है। अच्छा होता, यदि ऐसी भ्रामक बात लिखनेसे पहले सम्पादक महोदय ज़रा रोलाँकी "By way of social revolution to Peace" उठाकर देख लेनेका कष्ट करते। इसी प्रकार महात्माजीका पूँजीपतियोंको साथ लेकर चलना और रोलाँका कम्युनिस्तों को 'अपने प्रयत्नमें सम्मिलित' कर लेना भी भ्रान्तिपूर्ण है।

दिल्लीके सहयोगी 'वीर अर्जुन'ने हाल ही में अपना व्यापार-उद्योग अंक प्रकाशित किया है। १०४ पृष्ठोंके इस अंकमें पूरे ५० पृष्ठ विज्ञापनके हैं और शेषमें कविता-कहानियोंके अतिरिक्त भारतके व्यापार-व्यवसाय तथा आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाले अनेक पठनीय लेख हैं। इनसे भारतकी अर्थनीतिक और औद्योगिक समस्याओंके सम्बन्धमें पाठकोंको काफ़ी जानकारी हो सकती है। 'व्यवसाय-समृद्ध भारतका एक स्वप्न' चित्र बहुत सुन्दर और उपयुक्त बन पड़ा है। राणा प्रतापका तिरंगा चित्र इस अंकमें पता नहीं क्या समझकर दिया गया है!

'चित्रलेखा' नामकी हस्तलिखित पत्रिका पिछले तीन वर्षोंसे जोधपुरके जसवन्त कालेजसे निकल रही है। गत वर्ष इसका 'मीरा-अंक' निकला था, जिसमें मीराबाईके जीवन-सम्बन्धी बहुत ही उत्तम सामग्री एकत्र की गई थी। इस वर्ष कथा-अंक निकला है। इसके लेखोंको तीन भागोंमें विभक्त किया गया है—प्राचीन कथा-साहित्य, मध्यकालीन कथा-साहित्य और आधुनिक कथा-साहित्य। प्राचीन और आधुनिक कथा-साहित्यपर तो काफ़ी अच्छा मसाला है; हाँ, मध्यकालीन कथा-साहित्यपर केवल सम्पादकीयमें दो-चार पंक्तियाँ ही लिखी गई हैं। प्राचीन संस्कृत-कथा-साहित्य, भारतीय कथाको विश्व-कथा-साहित्यको देन, पंचतन्त्र और विश्वकी प्राचीनतम कहानी आदि लेख बड़े सुन्दर और पठनीय हैं। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा और उषादेवी मित्रा तथा प्रसादपर काफ़ी अच्छे और पठनीय लेख हैं। थैकरे, डिकेन्स, हार्डी और आल्डस हक्सलेपर लेखोंके आ जानेसे पत्रिका और भी सुन्दर हो गई है। आलोच्य लेखकोंके स्केच तो सचमुच बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। इस सबके बावजूद गुजराती, मराठी और उर्दू-कथा-साहित्यपर कुछ न रहना खटकनेवाली बात है। हमारा विश्वास है, इससे छात्रोंमें साहित्यिक सुरुचि और हिन्दी-प्रेम जाग्रत होगा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

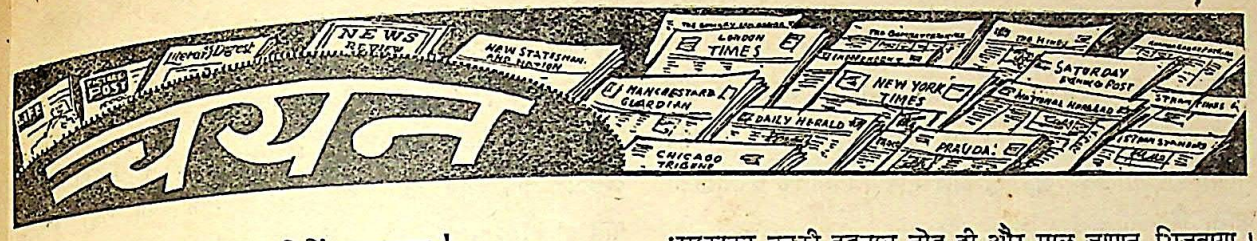

विज्ञान

मौतके बदलेमें मुनाफ़ा !

लन्दनके प्रसिद्ध प्रकाशक विक्टर गोलांज़ने अभी हाल ही में फेनर ब्रोकवे और फ्रेडरिक मुलेली द्वारा लिखित "Death Pays a Dividend" (मौत द्वारा मुनाफ़ा) नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें ब्रिटिश और अमरीकन फर्मों द्वारा युद्ध-सामग्री भेजे जानेके रहस्यपूर्ण आँकड़े दिए गए हैं। इनसे मालूम होता है कि १९३२ में प्राट एण्ड ह्वाइटने एयर-क्राफ़्ट कम्पनीने जर्मनको ६००० पौण्डके हिस्से बेचे। १९३३ में हिटलरके सत्तारूढ़ होनेके बाद, २७२००० पौण्डका सामान जर्मनीको भेजा गया। इसी कम्पनीने १९३४ में, जब कि हिट-लरने ज़ोरोंसे शस्त्रीकरण आरम्भ किया, जर्मनीको १४४५००० पौण्डकी युद्ध-सामग्री भेजी ; जिसमें १७६ हवाई-जहाज़के इंजन, दो बड़े माल ढोनेवाले हवाई-जहाज़ और ६ दो सीटोंवाले हवाई-जहाज़ थे, जिन्हें बम्बर बनाया जा सकता था। बेवेरियन मोटर वर्क्सको ५०००० पौण्ड वार्षिकपर लुफ्टवाफ़ेके लिए 'हार्नेट' इंजन बनानेका लैसन्स दिया गया। स्पेरी जिरोस्को कम्पनी जर्मनीको ५० विमान प्रतिमास तैयार करनेका सामान भेजती रही है। १४ मई, १९३४ को स्वयं सर जान साइमनने स्वीकार किया था कि जर्मनोके लिए ८० हवाई-जहाज़ तैयार करनेका आर्डर आर्मस्ट्रांग सिडले कम्पनीको मिला है। ब्रिटिश जहाज़रानीकी एक प्रसिद्ध कम्पनीने जर्मनीको जहाज़ बनानेके लिए १५०००० टन मशीनें बिल्कुल रद्दी लोहेके भाव बेचीं और इन्हें खरीदनेका रुपया भी ब्रिटिश पूँजीपतियोंने ही जर्मनीको उधार दिया था। डीहेवीलैण्ड एयरक्राफ्ट कम्पनीने नौसेना और हवाई-युद्धकी शिक्षाके लिए जर्मनीको हवाई-जहाज़ बेचे और विकर्सने ब्रिटिश सरकारकी स्वीकृतिसे जर्मनीके फौजी पत्रोंमें लम्बी मार करनेवाली तोपों और टैंकोंके पूरे पृष्ठके विज्ञापन छपवाए।

इसी तरह जापानको भी बराबर माल जाता रहा है। पुस्तक में दिए गए आँकड़ोंसे प्रकट है कि मंचूरियापर जापानका हमला होनेके बाद, १९३२ में, ब्रिटिश फर्मोंने उसे ५३६१४५० कार-तूस, १० तोपें, ७४० मशीनगनें और १६०००० पौण्डके शस्त्रास्त्र बेचे। इस वर्ष जापानको ब्रिटेनने २३००० पौण्डके शस्त्रास्त्र बेचे, जब कि चीनको केवल ७३०० के! १९४१ में आस्ट्रेलियन अंगरेज़ोंकी ब्रोकनहिल प्रोप्राइटरी कम्पनी कच्चा लोहा और इस्पात बराबर जापानको भेज रही थी। केम्बला बन्दर-गाह (न्यू साउथवेल्स) के जहाज़-मज़दूरोंने इस सामानको जापान के लिए लादनेसे इन्कार भी किया था; पर अधिकारियोंने इसे धमकाकर उनकी हड़ताल तोड़ दी और माल जापान भिजवाया। दिसम्बर, १९४०में उत्तरी इंग्लैण्डकी एक कम्पनी जापानको टैंकके मुख्य हिस्से बराबर भेज रही थी। जब इसके रातके मज़दूरोंने काम करनेसे इन्कार कर दिया, तो मजबूरन सरकारको यह निर्यात बन्द करना पड़ा। १९३२ में अमरीकाने भी जापानको ४२० लाख टन सीसा और १९२९ से १९३३ तक हज़ारों टन लोहा और इस्पात भेजे। यहाँकी प्रसिद्ध इलैण्ट्रिक वोट कम्पनीने १९३१ से १९३४ तक जापानके लिए बहुत-सी पनडुब्बियाँ भी बनाईं।

मुर्दे ज़िन्दा होने लगे !

अभी हाल ही में पश्चिमी मोर्चेपर एक अमरीकन डाक्टर द्वारा मर जानेके कुछ ही क्षण बाद एक सैनिकके फिर ज़िन्दा किए जानेकी सनसनीखेज़ खबर छपी थी। सबसे पहले इस दिशामें जिन सोवियत् वैज्ञानिकोंने सफल प्रयोग किए, उनमें व्लादिमिर नेगोवरकी अरकादी मक्रायशरके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। इनका कहना है कि किसी भी आघात या चोटसे आदमी तुरन्त नहीं मरता। दिलकी गति रुकनेके बाद धीरे-धीरे नब्ज़ बन्द होने लगती है। इस ज़ाहिर मौतके दौरान और कुछ क्षण बाद तक भी शरीरके कई हिस्से काम करते रहते हैं। प्रो० बरदेंकोंकी अध्यक्षतामें काम करनेवाले केन्द्रीय न्यू-रोसर्जरी-इंस्टीट्यूटके इन वैज्ञानिकोंने प्रयोग द्वारा मालूम किया है कि यदि रसायन द्वारा इन अवशिष्ट जीवित अवयवोंकी जीवन-शक्ति बढ़ाई जा सके, तो आदमीको फिर पूर्णतया जीवित किया जा सकता है।

सर्वप्रथम २५० मरते हुए कुत्तोंके विभिन्न अवयवोंकी परीक्षा की गई। फिर उनके जिस अवयवमें प्राण शेष रहे, उनकी जीवन-शक्तिको खूनका दौरा पैदा करके बढ़ाया गया। इसके बाद मरे पैदा होनेवाले बच्चों या पैदा होते ही मर जानेवाले बच्चोंपर यह प्रयोग दोहराया गया और कई बार सफलता भी मिली ; पर वे कुछ घण्टोंसे अधिक नहीं जिए। बादमें जाँच करनेपर पता लगा कि वे दिमागकी नस फट जाने, फेफड़ोंके अविकसित रहने या और ऐसे बड़े कारणोंसे मरे हैं, जिन्हें औषधियों द्वारा नहीं सुधारा जा सकता। युद्ध छिड़नेके बाद मोर्चोंपर आघातसे मरनेवाले सैनिकोंपर ये प्रयोग किए गए। आक्सीज़न तथा ग्लूकोज़-मिश्रित खून पहुँचानेसे बहुतसे सद्यमृत सैनिकोंका दिल फिर हरकत करने लगा और कृत्रिम आवाज़से साँसको उखाड़ा गया। इस प्रकार ५१ में से १२ को बिल्कुल जीवित कर दिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया ; पर दुर्भाग्यवश बादमें न्यूमोनिया तथा अन्य रोगोंसे मर गए। २२ तीन दिन तक जीवित रहे और १२ को आंशिक रूपसे जीवित किया गया। पर इसे अभी आरम्भ ही समझना चाहिए। प्रयोग अभी जारी हैं और भविष्यमें अधिक सफलताकी आशा की जाती है।

क्रुप्सका अतीत और भविष्य

जर्मनीमें तेज़ीसे आगे बढ़ते हुए अमरीकनोंने अभी कुछ दिन हुए नर-संहारके भीषणतम शस्त्रास्त्र तैयार करनेवाले सुप्रसिद्ध क्रुप्स कारखानेके एकमात्र उत्तराधिकारी ३७ वर्षीय अध्यक्ष आल्फ्रेड क्रुप्सको पकड़ा है। 'डेली एक्सप्रेस'के संवाददाता जेम्स वेलार्डके साथ हुई भेंटमें उसने यह स्वीकार किया कि वह नात्सी है और नात्सी-दलके सहायक व्यवसायियोंमें से है। इस समय क्रुप्सकी स्वत्वाधिकारिणी उसकी माँ है, जो आस्ट्रियामें रहती है। पिछले १० वर्षोंमें इसने जर्मन नौ-सेनाके लिए ७००० तोपें, कई बड़ी तोपें, टैंक और यू-बोट आदि तैयार किए। इसमें काम करनेवाले मज़दूरोंकी संख्या ५०००० से ११६००० तक रही है, जिनमें से हज़ारों जर्मन-अधिकृत देशोंमें भेजे गए 'स्वयं-सेवक' (?) हैं। इनकी संख्या २० हज़ार है, जिनमें से कुछ को नाम-मात्रको मज़दूरी दी जाती है और अधिकांश गुलामोंकी तरह मुफ़्तमें ही काम करते हैं। संवाददाताका कहना है कि महायुद्धके बाद क्रुप्स कारखानेका भविष्य क्या होगा, इस सम्बन्धमें स्वयं आल्फ्रेड क्रुप्स भी अभी अन्धकारमें है।

क्रुप्स कारखानेकी स्थापना १८४५ में फ्राइड्रिख क्रुप्स (१७८४-१८२६) के लड़के आल्फ्रेड क्रुप्स (१८१२-८४) ने १२२ मज़दूरोंको लेकर की थी। तब यह लोहेके साधारण औज़ार बनानेकी एक छोटी-सी फैक्ट्री ही थी। आल्फ्रेडके लड़के फ्राइड्रिख आल्फ्रेड क्रुप्स (१८५४-१९०२) ने इसके कामको काफ़ी बढ़ाया और १९०२ में इसमें काम करनेवालोंकी संख्या ४०००० हो गई। १९०८ में इसकी लागत पूँजी ९० लाख पौण्डसे बढ़ाकर ११५ लाख कर दी गई। छापेकी मशीनें और इंजन आदि ही इसमें विशेष रूपसे बनते थे ; पर गत महायुद्धके समय इसमें बहुत बड़े पैमानेपर आधुनिक शस्त्रास्त्र बनने लगे। १९१८ में इसमें काम करनेवालोंकी संख्या लगभग पौने दो लाखपर पहुँच गई थी। १९१८ के बाद इसका काम घट गया और विशेषतया इंजन आदि ही इसका मुख्य काम रह गया।

'प्रावदा'की बत्तीसवीं वर्षगाँठ

कई सप्ताह पहले समग्र सोवियत् रूसमें 'प्रावदा'की बत्तीसवीं वर्षगाँठ मनाई गई। वैसे तो सोवियत्के सैकड़ों शहरों, गाँवों, कारखानों, मज़दूर-संघों, युवक-संघों तथा लाल सेनाके केन्द्रोंसे उनके अपने स्वतन्त्र समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं ; पर इनमें से मास्कोसे प्रकाशित होनेवाले दो दैनिक 'प्रावदा' और 'रेड स्टार', 'क्रोकोडाइल' और 'वार एण्ड वर्किंग-क्लास' दो मासिक एवं लेनिनग्रादसे प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'इ वेस्तिया'का स्थान ही प्रमुख है। इन्हें खरीदनेके लिए लोग लगाकर खड़े रहते हैं। जो लोग 'प्रावदा'को नहीं पाते हैं, वे दीवारोंपर चिपकाई गई प्रतियोंको पढ़नेके लिए पाँतमें खड़े हो जाते हैं। कई शहरोंमें छपनेके लिए जहाज़से 'प्रावदा'का स्टीरियो भेज दिया जाता है। अक्सर 'प्रावदा'में प्रकासित बातोंपर बहस करनेके लिए होती हैं। ऐसा और किसी पत्रके सम्बन्धमें नहीं सुना गया।

'प्रावदा', 'इज़वेस्तिया' और 'रेड स्टार' क़रीब-क़रीब ही आकार-प्रकारके होते हैं। इनमें कौतुक या हँसी-मज़ाक की कोई बात नहीं छपती। हत्याकाण्ड या दुराचार आदिकी कोई खबर नहीं छपती। चित्र भी नहींके बराबर ही होते हैं। खेल या शतरंजकी प्रतिद्वन्द्विताकी खबरें भी चन्द पंक्तियोंमें होती हैं। पाठक इसे चावसे पढ़ते हैं। मनोरंजनके लिए पाठकोंको कभी-कभी व्यंग-चित्र मिल जाते हैं। इधर युद्ध छिड़नेके बादसे अक्सर फ़ाशिज़्म-विरोधी व्यंग-चित्र ही विशेष छपते हैं। इन पत्रोंके पिछले पृष्ठ सरकारी तास-एजेन्सीकी विदेशी खबरोंसे भरे रहते हैं। मुखपृष्ठपर स्तालिनके हुक्मनामे और लड़ाईकी प्रधान खबरें होती हैं। अन्दरवाले दो पृष्ठोंपर युद्धके मोर्चोंके बारेमें विशेष लेख तथा पंचायती खेतों और कारखानोंकी रिपोर्टें छपती हैं, जो अधिकांशमें सैनिकों और मज़दूरों द्वारा ही लिखी होती हैं। भारतकी तरह मास्कोके पत्र बड़े तड़के ही नहीं निकलते, फिर भी वे बातकी बातमें ही बिक जाते हैं। दुनियामें अकेले रूसके ही पत्र ऐसे हैं, जो विज्ञापनों द्वारा चाँदीके नकेलमें बँधने और उससे पाठकोंको ठगनेका व्यापार नहीं करते। रचनात्मक सुझाव, सेवा और ज्ञान-वर्द्धन ही उनका प्रधान उद्देश्य है।

'प्रावदा' (सत्य) का प्रकाशन सेण्ट पीटर्सबुर्ग (अब लेनिनग्राद) से १९१२ में आरम्भ हुआ था। अपने पिछले वर्षके जीवन-कालमें 'प्रावदा' दुनियाका सबसे बड़ा दैनिक पत्र बन गया है। इसकी प्रचार-संख्या तीस लाख तक पहुँच गई थी ; पर युद्धके कारण इसे बीस लाख कर दिया गया है। मास्को-स्थित इसके कार्यालयमें कर्मचारियोंके लिए अस्पताल, रेस्तोराँ, थिएटर आदिका भी प्रबन्ध है। यह २१ रोटेरी-मशीनोंपर, जो प्रतिघण्टे दस लाख प्रतियाँ छाप सकती हैं, छपता है। इसके सम्पादकीय विभागमें २५० व्यक्ति हैं। फौज़ और जहाज़ी बेड़ेके प्रत्येक विभागके साथ इस पत्रके संवाददाता रहते हैं। अब तक विभिन्न मोर्चोंपर इसके पचाससे ऊपर संवाददाता मारे जा चुके हैं। ज़रूरत होनेपर 'प्रावदा' रिकलिन, शोलोकफ़, सिमोनोव जैसे प्रसिद्ध लेखकोंको भी अपने संवाददाता नियुक्त करता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

जर्मनीकी पराजय

इस वर्षका पहली मईका दिन दुनियाके इतिहासमें जर्मनीकी पराजय और बर्बर नात्सीवादकी अन्त्येष्टिके लिए चिरस्मरणीय रहेगा। प्रातःकाल राइखटागपर लाल-सेनाने एक सुविशाल हँसिया-हथौड़ा-अंकित लाल झण्डा फहराया और मार्शल स्तालिनने रूसी श्रमिकों तथा योद्धाओंको सम्बोधित करते हुए कहा—"हिटलरी जर्मनीका पतन अब निकटतम भविष्यकी बात है।" इस प्रकार रूस, ब्रिटेन और अमरीका जब जर्मनीके बिला शर्त्त आत्म-समर्पण की खुशखबरीकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि हाम्बुर्ग-रेडियोसे (जो बर्लिनके बाद जर्मनीका सबसे ज़बर्दस्त रेडियो-स्टेशन है) कहा गया : 'युद्ध सम्भवतः कुछ ही घण्टोंमें समाप्त हो जायगा।' इसके कुछ घण्टों बाद ही डा० शार्पिने, जो बर्लिन-रेडियोसे जर्मनोंकी निश्चित विजयके लिए अन्तिम दम तक लड़नेकी जनता से बराबर अपीलें करते रहे हैं, सर्वप्रथम जर्मनीके लड़ाई हार जानेकी घोषणा की। आपने कहा—"युद्ध तेज़ीसे अपने अन्तकी ओर बढ़ रहा है और सम्भव है, कल ही खत्म हो जाय। हज़ारों-लाखों, नहीं करोड़ों, जर्मन बच्चे और जर्मन औरतें अपने घरोंकी खिड़कियोंमें खड़े खाली सड़कोंपर अपने पिता और पतियोंके लौटनेकी राह देखेंगे। किन्तु अब वे कभी नहीं लौटेंगे। अब हम खेत रहे जर्मन वीरोंके इस वीभत्स मार्गसे विदा हो रहे हैं।"

रायटरका कहना है कि इस दिन जर्मनीके अन्यान्य रेडियो-स्टेशनोंने भी स्थितिको निराशाजनक बतलाते हुए जर्मनीके शीघ्र ही घुटने टेक देनेकी सम्भावना बतलाई। इटली और डेन्मार्कके जर्मनोंने बिला शर्त्त आत्म-समर्पण कर दिया है। नार्वेमें भी उन्होंने आत्म-समर्पणका निश्चय कर लिया है। अन्य स्थानोंसे शीघ्र ही जर्मनोंके आत्म-समर्पणके समाचारोंकी प्रतीक्षा की जा रही है।

पराजयको टालनेकी चाल

पिछले महायुद्धमें वाइप्रसकी तीसरी लड़ाई (३१ जुलाई, १९१७) में जर्मनीकी करारी हार हुई थी। पर सेनावादियोंके अजेयताके मिथ्या अभिमानके कारण उसने प्रकट रूपमें पराजय स्वीकार न कर निराश होकर भी लड़ाई जारी रखनेका ढोंग रचा। आस्ट्रिया, बुल्गारिया और तुर्कीके (सितम्बर-अक्टूबर, १९१८) लड़ाईसे हट जाने तथा बैवेरियाके स्वतन्त्र प्रजातन्त्र घोषित किए जाने (७ नवम्बर) पर जब उसकी रीढ़ ही टूट गई, तो उसने सुलहकी शर्त्तें स्वीकार कर लीं (११ नवम्बर) और हथियार डालकर अपना जंगी बेड़ा मित्र-राष्ट्रोंको सौंप दिया (२१ नवम्बर)। कैसी भी कल्पना या परिभाषा द्वारा इसे जर्मनी की प्रत्यक्ष हारके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। पर वर्ण और रक्त-श्रेष्ठताके अभिमानी अहम्मन्य नात्सियोंने जर्मनोंके दिमाग़में यह कीड़ा पैदा किया कि जर्मनी लड़ाईमें पूर्णतया पराजित कभी नहीं हुआ। कुछ समयके प्रोपेगेण्डाके पश्चात् यह भ्रान्ति एक तथ्य और लाखों जर्मनोंका विश्वास बन गई, और जर्मनीकी लोकसत्तात्मक शक्तियोंको कायर तथा पराजित घोषित कर उनके शवपर हिटलरने अपने दलका झण्डा गाड़ा।

इस बार भी—जब कि जर्मनीके सारे साथी-संगी न सिर्फ़ युद्धसे विरत ही हो चुके हैं, बल्कि अधिकांश उसके विरुद्ध लड़ और हर तरहसे मित्र-पक्षकी मदद भी कर रहे हैं; जर्मन-भूमिके बहुत बड़े अंशपर मित्र-पक्षका कब्ज़ा हो चुका है तथा जर्मनीकी जल, थल और हवाई-शक्तियाँ नाम-शेष रह गई हैं—कुछ महत्वाकांक्षी जर्मन उस चालको दोहरानेकी चेष्टा कर रहे हैं। जब हिटलर, हिमलर, गोयरिंग और गोयबल्स बार-बार बोल्शेविज़्मके खतरेकी आवाज़ उठाकर भी संयुक्त-राष्ट्रोंमें फूट न डाल सके, तो गत २८ अप्रैलको बदनाम नात्सी गुण्डा-दल गेस्टापोके अध्यक्ष हिमलरने स्वेडिश रेड-क्रासके काउण्ट बर्नाडोट द्वारा ब्रिटेन और अमरीकाके सामने बिला शर्त्त आत्म-समर्पण करनेका सन्देश भिजवाया। इसका आशय यही हो सकता था कि जर्मनी रूसके खिलाफ़ लड़ाई या छापामारी जारी रखना चाहता है। पर दोनों देश इस फन्देमें नहीं फँसे और कह दिया कि जब तक रूसको भी इसमें शामिल नहीं किया जायगा, बिला शर्त्त आत्म-समर्पण स्वीकार नहीं किया जा सकता। मार्शल स्तालिनने, जो हिमलरकी इस चालका अर्थ बखूबी समझते हैं, चर्चिल और ट्रुमानसे अनुरोध किया कि हिमलरकी इतनी सत्ता नहीं रह गई है कि वह जर्मन जनतासे आत्म-सम्पर्णके आदेशका पालन करा सके और नात्सियोंकी शस्त्र-शक्तिके पूर्ण विनाशसे पहले आत्म-समर्पणकी कोई चर्चा नहीं चलनी चाहिए। रूसी बहुत सतर्क हैं कि जर्मनोंको पिछले युद्धकी तरह प्रोपेगेण्डा के लिए यह कहनेका मौक़ा नहीं मिलना चाहिए कि वे अभी और लड़ सकते थे; पर लड़ाई रोकनेके लिए सहमत हो गए।

हिटलर और मुसोलिनीकी मौत

पहली मईको तीसरे पहर जर्मन-रेडियोने हिटलरके मरने और उसका स्थान भूतपूर्व नौ-सेनापति एडमिरल डोनिट्ज़ द्वारा लिए जानेकी घोषणा की। विगत जुलाईमें बम द्वारा आहत

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होनेके बादसे हिटलरको सार्वजनिक उत्सवों या स्थानोंमें नहीं देखा गया। गत २९ अप्रैलको स्टाकहोमके 'स्वेंसका डागल-ब्लाडेट'में बर्नका इस आशयका संवाद छपा था कि बर्लिनके टायरगार्टन (नात्सियोंके हेडक्वार्टर) में हिटलरकी मृत्यु हो गई। अमरीकन एसोशिएटेड प्रेसका कहना है कि ५ दिन पहले हिटलर और गोयबल्सपर गोलियाँ चलाई गई थीं। २४ फरवरी, १९२०को पहले-पहले हिटलरने म्यूनिखके बीयर-सैलरमें वर्साई-सन्धिकी निन्दा करते हुए जर्मनीमें राष्ट्रीय समाजवादकी स्थापना की आवाज़ बुलन्द की थी। जनताने उसे सुननेसे इन्कार कर दिया, जिसपर उसके भाड़ेके गुण्डोंने सभामें उपद्रव शुरू कर दिया। यही हाल उसकी ९ नवम्बर, १९२३ की दूसरी सभामें भी हुआ। इस अवसरपर शान्ति क़ायम करनेके लिए पुलिसको गोली चलानी पड़ी थी, जिसमें हिटलरके १४ साथी मारे गए। इसके बाद उसने जर्मनीकी लोकसत्तात्मक शक्तियोंका नाशकर आर्य-रक्त और वर्णकी सर्वश्रेष्ठता, यहूदी-विरोधी घृणा तथा विश्व-आधिपत्यका जो ज़हर जर्मनोंमें भरा, उसका परिणाम आज सबके सामने है। इसकी मँहगी प्रतिक्रियाके लिए न-जाने कितनी जर्मन-पीढ़ियोंको हिटलरका नाम लेकर आठ-आठ आँसू रोना पड़ेगा।

हिटलरके साथी मुसोलिनीको देशभक्त इटालियनोंने पहले ही ठिकाने लगा दिया। गत २८ अप्रैलको मिलानके उत्तरमें स्थित कोमोके पास गुइलियानो-दि-मेज़ाग्रा (डोंगों)में गैरीबाल्डी-डिवीज़न के १५ देशभक्त सैनिकोंने मुसोलिनी और उसकी रखेली क्लारा पेताचीको गोलीसे उड़ा दिया। दोनोंकी लाशें मिलान ले जाई गईं, जहाँ पियाज़ा लोरेटोमें उनका सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया। लोग उन्हें देख-देखकर उनपर थूकते थे। लाशोंके पास खड़ी एक देशभक्त इटालियन स्त्री कह रही थी कि मुसोलिनीके शवपर बने ५ गोलियोंके निशान उसके द्वारा मरवाए गए मेरे ५ लड़कों के बदलेके निशान हैं। पर हिटलर और मुसोलिनी द्वारा मारे या मरवाए गए लोगोंकी ठीक-ठीक संख्या शायद ही कभी निर्धारित हो सके। अगर ये दोनों व्यक्ति गुण्डईसे बाज़ आते, तो शायद इन्सानकी मौत इन्हें नसीब होती। पर अपने मिथ्या अभिमान और प्रमाद द्वारा इन्होंने अपने-आपको इन्सानोंके लिए हिंस्र पशुओंसे भी अधिक खौफ़नाक बना लिया, और इसीलिए मजबूर होकर इनके देशवासियोंको ही इन्हें नरकमें ठेलना पड़ा।

नात्सी बर्बरताका नग्न रूप

यद्यपि फाशिस्त और नात्सी-गुण्डोंका इस युद्धमें खात्मा हो रहा है; पर उनकी अमानुषिक बर्बरताकी कलंक-कहानी सदाके लिए इतिहासके पृष्ठोंपर अंकित रहेगी। रूस, पोलैण्ड, बाल्टिक-राष्ट्रों, हालैण्ड, बेल्जियम, फ्रान्स और अब जर्मनीमें बढ़ती हुई संयुक्त-राष्ट्रोंकी सेनाओंको जो जर्मन 'नज़रबन्द-कैम्प' या 'यन्त्रणा-गृह' मिल रहे हैं, उन्हें युद्ध-संवाददाताओंने ठीक ही 'मौतके कारखाने' कहा है। खारकफ़में नात्सी गुण्डोंपर खून, लूट, बलात्कार आदिके जो मामले चले थे, उनमें जर्मनोंके बारेमें गई बातोंको अधिकांश शेखचिल्लियोंने रूसी प्रोपेगेण्डा या रंजना कहा था। पर अब बेल्सन, नार्डहासेन, ओहरड्रुफ, डाहउ बुकेनवाल्ड आदिमें अमरीकनोंको मिले नज़रबन्द-कैम्पों, बन्दी-कैम्पों और यन्त्रणा-गृहोंके जो आँखों-देखे विवरण चित्र भारत तथा ब्रिटेन-अमरीकामें प्रकाशित हुए हैं, उन्हें देखकर कलेजा मुँहको आ जाता है। भूख और यन्त्रणासे तड़पते हुए हज़ारों सैनिकों, नागरिकों, बच्चों और स्त्रियोंको सड़ती हुई लाशोंके ढेरके रूपमें देखकर किसके रोंगटे खड़े नहीं होंगे। गली-सड़कों, घरों, नाले-नालियों और सार्वजनिक स्थानोंमें सड़ने वाली लाशोंका तो कोई शुमार ही नहीं। इन कैम्पोंमें आदमियों को मारनेके नए-नए ढंग ईजाद किए गए थे। औरतोंके कैम्प की, जिन्हें स्टार्म-ट्रूपर महिलाओंकी अध्यक्षतामें नात्सी गुण्डोंके लिए वेश्यालय बना दिया गया था, स्थितिका तो वर्णन ही असम्भव है। वहाँ स्त्रियों और कमसिन लड़कियोंको न केवल भूख, यन्त्रणा और अत्यधिक परिश्रमसे, बल्कि बलात्कार और वर्णनातीत दुराचारोंसे मारा या अधमरा किया गया। इटलीके बादशाहकी राजकुमारी मफ़ालदा यहीं सड़ाकर मारी गई। सड़ती हुई लाशोंके अलावा आज जर्मनों द्वारा बन्दी बनाए गए लाखों स्त्री-पुरुष और बच्चे कंकाल-शेष रह गए हैं। अनेक स्त्रियोंको बलात्कारसे और पुरुषोंको नामर्दीका इन्जेक्शन देकर सदाके लिए बेकार कर दिया गया है। अनेक पुरुषोंको बेज़ेन्टाइन के इन्जेक्शन भी दिए गए हैं। सोहनहोफेन, फ्लोगेलसांग, फाकेनबुर्ग आदिमें मौतके इन कारखानोंके अध्यक्ष और कर्त्ता-कर्त्ताओंकी शिक्षाके केन्द्र भी मिले हैं।

लन्दन-स्थित भारतीय हाई-कमिश्नरके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री एस० एन० दत्तने बुकेनवाल्ड-कैम्प देखकर एक पत्र-प्रतिनिधिको बतलाया—"अगर बुकेनवाल्डके जर्मन—कमाण्डर गारद और उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्ति—मनुष्य कहे जा सकते हैं, तब तो मैं कुछ और ही कहलाना पसन्द करूँगा। वहाँ देखे भीषण और अमानुषिक नज़ारोंका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। उसे देखनेसे पहले मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि आदमी इतना गिर सकता है। अभी भी मुझे उसमें से मौतकी बू आती है और मैं उसकी भीषणताकी कल्पना कर सकता हूँ। ...जो विवरण हमें मिले हैं तथा जो चित्र हमने देखे हैं, वे चतुर्थांशमें भी यथार्थ स्थितिके परिचायक नहीं हैं; क्योंकि फौजी अधिकारियोंने पीड़ितोंकी सहायता करके और वातावरणको मानवीय बनाकर उसका रूप ही बदल दिया है। पहले यह कैसा रहा होगा, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।"

ब्रिटिश पार्लमेण्टके सदस्यों, फ्रांसके बिबलोथिक-नेशनलके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्त्री श्री जूलियन केन और प्रो० सुआर्द तथा अनेक पत्रकारों और विशिष्ट व्यक्तियोंने मौतके इन कारखानोंको देखकर अपार विस्मय और क्षोभ प्रकट किया है। काश, वे लोग भी इस अमानुषिक बर्बरताकी ठीक-ठीक कल्पना कर पाते, जो जर्मनोंके साथ कठोर व्यवहार न किए जानेकी आवाज़ उठा रहे हैं।

विश्व-शान्ति और सुरक्षा

युद्धकी लपटें शान्त हो रही हैं। हिटलर और मुसोलिनी तथा उनके साथी-समर्थकोंकी सत्ता और राजनीतिक दलोंका भी अन्त हो रहा है। पर क्या इन विशिष्ट व्यक्तियों या इनके दलोंके अन्तसे ही नात्सी-फाशिस्त आततायीपनका ख़ात्मा हो जायगा? कदाचित् इन्हीं बातोंको दृष्टिगत रखकर स्व० रूज़वेल्टने अपने अन्तिम सन्देशमें कहा था—"केवल हमारे शत्रुओंकी हार ही काफ़ी नहीं है। हमें अपनी शक्ति-भर उन सब आशंकाओं, डरों, अज्ञान और लोभोंपर विजय पानेके लिए भी सब-कुछ करना चाहिए, जो इस बीभत्सताको सम्भव बनाते हैं।" वास्तवमें यदि ये बुराइयाँ युद्धकी सृष्टिकर धन-जनका भीषण संहार कराती हैं और विश्वकी शान्ति-सुरक्षाको खतरेमें डालती हैं, तो इनका मूलोच्छेद ही भावी शान्ति और सुरक्षाकी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

इन बुराइयों और इनके द्वारा घटे दुष्परिणामके लिए जर्मनी-जापान-इटलीको जितनी भी सज़ा दी जाय और युद्धोत्तर-व्यवस्थाको जितना भी कठोर बनाया जाय, हमें कोई खास शिकायत नहीं—बशर्ते कि ऐसा करनेवालोंके अपने हाथ और आत्माएँ साफ़ हों। इस दृष्टिसे जब हम अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, हालैण्ड, बेल्जियम आदिकी ओर देखते हैं, तो हमें खेदजनक हँसी आ जाती है। इनके उपनिवेशों और अधीन राष्ट्रोंका आखिर क्या होगा? यदि जापान-जर्मनी-इटलीकी साम्राज्य-लिप्सा अनिष्टकारी थी, तो क्या इन राष्ट्रोंकी साम्राज्य-लिप्सा भी विश्व-शान्ति और सुरक्षाको फिर खतरेमें डालनेवाली सिद्ध नहीं हो सकती? अगर पीटरकी एक बुराई दुनियाके लिए अभिशाप सिद्ध हो सकती है, तो पालकी वही बुराई वरदान कैसे बन सकती है? अतएव जब तक स्व० रूज़वेल्ट द्वारा उल्लिखित बुराइयोंका सर्वतः मूलोच्छेद नहीं किया जाता, विश्व-शान्ति और सुरक्षाकी कोई भी योजना कारगर नहीं होगी।

उपनिवेशोंका भविष्य

लाहौरकी नागरिक स्वाधीनता-परिषदके अध्यक्ष-पदसे बोलते हुए श्री भूलाभाई देसाईने कहा है—"अगर रूज़वेल्टके वक्तव्य का कुछ भी मतलब है, तो यही कि यदि गुलाम लोगोंको इस लड़ाई के बाद भी गुलाम रहना है, तो यह लड़ाई स्वाधीनताके लिए और स्वाधीनताके नामपर व्यर्थ ही लड़ी गई। यदि जावा और सुमात्रा फिर हालैण्डको, हिन्द-चीन फ्रांसको, मलाया ब्रिटेनको ही मिलेंगे तथा बर्मा गुलाम रहेगा और भारत ब्रिटिश ताजका उज्ज्वल रत्न रहेगा, तो बहैसियत ईमानदार व्यक्तियोंके इस युद्धमें हमारी कोई दिलचस्पी नहीं। अगर नई व्यवस्था पुरानोंका ही रूप होगी और गोरी जातियोंका काली जातियोंकी आधीसे अधिक दुनियापर शासन बना रहेगा, तो दुनिया इस हलको नहीं मानेगी। यदि दुनियाकी समस्याएँ (जो अभी हल नहीं हुई हैं) उसके सामने फिर वैसी ही रहेंगी, तो लाखों आदमियों और अरबों रुपयोंकी आहुति व्यर्थ ही गई समझी जायगी। अगर हम यह मान लें कि दुनिया पहले-जैसी ही रहेगी, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि मित्र-पक्षने लिप्सापर—गोरी जातियोंकी संगठित लिप्सापर—विजय प्राप्त कर ली है?"

अमरीकाके भूतपूर्व उप-राष्ट्रसचिव श्री सुमनर वैल्सने 'न्यूयार्क हैराल्ड ट्रिब्यून'में लिखा है—"इस बार एटलाण्टिक-सनदके सिद्धान्तोंकी प्रेरणाके फल-स्वरूप जन-साधारणमें स्वाधीनता की भावना अधिकाधिक व्यापक और प्रबल होगी। यदि संयुक्त-राष्ट्रोंकी कान्फ्रेंसने इस समस्याको भी उसी भावनासे सुलझानेकी चेष्टा नहीं की, जिससे कि उसने इस विश्व-स्वातन्त्र्य-युद्धको लड़ा है, तो श्री गांधीकी यह भविष्यवाणी ही सच होती नज़र आती है कि यदि पूर्वके लोगोंको उनकी मौलिक स्वाधीनताएँ नहीं मिलीं, तो अधिक रक्तपातमय युद्धकी सम्भावना ही अधिक है। इस बार पूर्वके लोग थोथे वादोंसे ही सन्तुष्ट नहीं होंगे।" मास्कोके 'वार एण्ड वर्किंग क्लास'का कथन है—"उपनिवेशोंमें जहाँ दुनियाकी बहुत बड़ी आबादी रहती है, लोकतन्त्रकी गन्ध भी नहीं है। अतः जो लोग लोकतन्त्रका समर्थन करते हैं, उन्हें इस दिशामें प्रयत्नशील होना चाहिए।"

सेनफ्रांसिस्कोका राजनीतिक सरकस!

पर जब हमारी आँखें सेनफ्रांसिस्कोमें होनेवाली संयुक्त-राष्ट्रों की अति विज्ञापित कान्फ्रेंसकी ओर जाती हैं, तो कुछ आशंका होती है कि क्या वास्तवमें वह युद्धके कारणोंको मिटाकर विश्व-शान्ति और सुरक्षाकी कोई ठोस योजना बना सकेगी? उपनिवेशों या अधीन देशोंकी स्वाधीनता जैसे उसका काम ही न हो। राष्ट्र-संघको विफल करनेवाली स्वार्थपूर्ण गुटबन्दीसे ही उसका भी श्रीगणेश हुआ है। ब्रिटेन अपने उपनिवेशोंकी चर्चा करनेको भी तैयार नहीं तथा अमरीका आत्म-रक्षाके नामपर प्रशान्त-मार्गोंके नाकोंके रूपमें जापान-अधिकृत कुछ द्वीप अपने कब्ज़ेमें लेना चाहता है। पर शत्रु-अधिकृत उपनिवेशोंको एक अन्तर्राष्ट्रीय ट्रस्टके अधीन रखनेको सभी चिन्तित हैं। अमरीका द्वारा अभीष्ट सुरक्षा-समिति का स्थायी सभापतित्व तो रूसने उसे नहीं मिलने दिया; पर लेटिन-अमरीकाके आर्जेन्टीना-जैसे राष्ट्रको—जो अभी कल तक खुल्लमखुल्ला जर्मनी-जापानकी मदद कर रहा था—वोटोंके बलपर

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समितिमें सीट दिलवा ही दी गई ! जब आर्जेन्टीना और भारतके नक़ली प्रतिनिधि तक परिषदमें लिए गए, तो पोलैण्डकी नवगठित सरकारको, पता नहीं क्यों, प्रतिनिधित्वसे वंचित रखा गया !

कान्फ्रेंसपर अमरीकन पत्रोंने जो टिप्पणियाँ की हैं, वे काफ़ी मनोरंजक है। 'न्यूयार्क डेली न्यूज़'में जान ओडोनलने लिखा है—"यह उन बड़े आदमियोंका अव्यवस्थित राजनीतिक सरकस है, जो अपने-अपने देशोंके नागरिकोंके भी प्रतिनिधि नहीं हैं।" आई० एफ० स्टोनने 'पी-एम'में लिखा है—"उद्घाटनके दिन हुए छिछले भाषण मौजूदा गम्भीर वातावरणमें बड़े निराशाजनक जान पड़े। सारा वातावरण बड़े व्यापारियों और पेशेवर लोगोंका एक मेला-सा जान पड़ा। इनमें से ईडन और हेलीफैक्स आदि वे ही लोग हैं, जिन्होंने जेनेवाके राष्ट्रसंघको विफल कराया।...अरब-राष्ट्र स्टैण्डर्ड आयल कम्पनी, केलिफोर्निया आयल कम्पनी, टैक्सास आयल कम्पनी आदिकी कृपासे इसमें बैठ सके।...एक और ग़ुलाम देश भारतके प्रतिनिधि भी इसमें हैं, जो बिना वहाँके दलों या राजनीतिक नेताओं—जिनमें दूरदर्शी नेहरू भी हैं, जो छोटे लोगोंकी इस मण्डलीके बजाय महान नेताओंके किसी सम्मेलनमें हो चमकते—की सलाह-स्वीकृतिके उसके प्रतिनिधि चुन लिए गए हैं।"

भारत स्वाधीन होगा !

भारतके तथाकथित भाड़ेके प्रतिनिधियोंके सेनफ्रांसिस्को पहुँचनेसे पहले ही उनकी कुख्याति वहाँ पहुँच चुकी थी। इसपर भी श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितने तो अपने प्रभावशाली भाषणों और प्रकाशनों द्वारा उनकी रही-सही पोल भी खोल दी। वे बेचारे तो लन्दन और नई दिल्लीमें रटाए गए भारतके युद्ध-सहयोगके बखानके सिवा और कुछ कह नहीं सके; पर कान्फ्रेंसमें एकसे अधिक सदस्योंने भारतकी स्वाधीनताका अनिवार्य प्रश्न उठाया। आर्जेन्टीनाके ४ के विरुद्ध ३१ वोटोंसे निमन्त्रित किए जानेपर श्री मलोतफ़ने कहा—"...यहाँ हमारे बीच भारतका प्रतिनिधि-मण्डल भी उपस्थित है, यद्यपि हम जानते हैं कि भारत स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं है। पर समय आयगा, जब स्वाधीन भारत ही यहाँ होगा। फ़िलहाल हमने ब्रिटिश सरकारके इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया है कि यद्यपि भारत स्वतन्त्र नहीं है, तथापि उसे इस परिषदमें निमन्त्रित किया जाय।" समग्र-अमरीका-संघके अध्यक्ष काउण्ट काउडेहोव कालेर्गीने कहा—"सुरक्षा-परिषदमें भारतको भी, जो दुनियाका एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्र है, स्थायी रूपसे स्थान मिलना चाहिए।...मेरा विश्वास है कि सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टिसे भारतका रूम-सागर और हिन्द-महासागरके तट-वर्ती देशोंसे गहरा सम्बन्ध है। पर इनमें प्रमुख स्थान उसे तभी मिल सकता है, जब कि वह स्वतन्त्र हो।"

रूस और पोलैण्डकी सन्धि

गत २१ अप्रैलको रूस और पोलैण्डमें २० वर्षीय मैत्री सन्धि हुई है। इसके अनुसार दोनों राष्ट्रोंने अन्तिम विजय संयुक्त-राष्ट्रोंके साथ जर्मनीके विरुद्ध लड़ने; युद्ध और शां कालमें स्थायी मैत्री तथा एक-दूसरेकी स्वाधीनता और सत्ताका आदर करने तथा आन्तरिक मामलोंमें दखल न दे शान्ति और सुरक्षाके लिए सब अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें स देने और आक्रमण तथा पुनर्निर्माणमें एक-दूसरेकी सहायता का वादा किया है। पक्की होनेपर सन्धि २० वर्षके लिए होगी

इस सन्धिका रूस या पोलैण्ड ही नहीं, यूरोप और अन्त समूचे विश्वके लिए विशेष महत्व है। पाठक भूले न होंगे कि वर्त्तमान महायुद्धका एक बहुत बड़ा कारण पोलैण्ड और रूस प्रति उसके नाम-शेष 'अधिकारियों' का रुख ही है। पोलि धनिकों और ज़मींदारोंने अपनी थैलियों और ज़मीनोंकी रक्षा मोहमें पकड़कर रूसकी सहायताको ठुकरा दिया और जर्मनों द्व पद्दलित होना स्वीकार किया। यही नहीं, निरीह जनताके बर्बर नात्सियोंके भरोसे छोड़कर ये 'अधिकारी' पूरी तरह लड़ने पहले ही भाग भी गए! जब पोलिश जनता लाल-सेनाकी विज यात्राके साथ अपने नए नेताओंकी रहनुमाईमें खून और अ देकर अपनी खोई हुई आज़ादी खरीद रही थी, उसके 'अधिकारी' लन्दनके आलीशान होटलोंमें ऐश-आराम कर थे। भविष्यमें इस अप्रिय काण्डकी पुनरावृत्ति रूस या पोलै कोई भी सहन नहीं कर सकता। अतः पोलैण्डसे २० वर्ष सन्धि करके स्तालिनने न केवल पूँजीवादी राष्ट्रोंके षड्यन्त्रों ही बेकार कर दिया है, बल्कि भावी खतरेको भी एक बहुत ह हद तक दूर ठेल दिया है। राष्ट्रसंघकी विफलता और उसके ओटमें हुई कुछ स्वार्थी राष्ट्रोंकी धूर्त्तता और विश्वासघात परिचित स्तालिन भला किसी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते या संस्थाके भरोसे रूसी जनताके भविष्यके साथ जुआ कैसे खेल सकते हैं! उनके लिए तो ब्रिटेनके साम्राज्य या अमरीकाके मुट्ठी-भर पूँजी पतियोंके स्वार्थोंकी अपेक्षा रूसी और पोलिश जनताका हित अधिक वांछनीय है। इसीलिए इनकी असहमति और इनके प्रच अप्रकट एजेण्टोंकी ग़लतफ़हमियों और ग़लत-बयानियोंके बावजू स्तालिनको यह दृढ़ और दूरदर्शितापूर्ण क़दम उठाना पड़ा है।

रूस, प्रुशिया और आस्ट्रियामें क्रमशः १७७२, १७९३ और १८९५ में तीन बार पोलैण्डका बँटवारा हो चुका है। पहले महायुद्धके बाद १९१८ में रूस, जर्मनी और आस्ट्रियाके कुछ हिस्से मिलाकर नए पोलैण्डकी सृष्टि की गई, जिससे न सिर्फ पोलैण्ड ही असन्तुष्ट रहा, बल्कि ये तीनों राष्ट्र भी अप्रसन्न हो गए। पोज़नान, कारीडर और उत्तरी सिलेशियाके पासके भू-भाग पर सदा जर्मनीकी आँख रही और उक्राइन तथा श्वेत-रूसके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भागोंको सदा रूस वापस चाहता रहा। बदनाम कर्ज़न-लाइन के दक्षिण-पश्चिमकी रूसी बस्तियोंको पोलैण्डमें मिलाकर पिछले महायुद्धके नेताओंने इन दोनों देशोंमें सदाके लिए फूटका बीज बो दिया। पर अब न तो वह सन् १९१८ का पोलैण्ड है और न १९१९-२० का रूस ही। अतः यह स्वाभाविक ही है कि उस इतिहासकी पुनरावृत्ति अब न हो सकेगी।

जली रस्सीकी ऐंठन

अभी हाल ही में जनरल द'गालने अमरीकन सेनाधिकारियों के इस अनुरोधको अस्वीकार कर दिया है कि स्टटगार्टसे पहली फ्रान्सीसी सेना हटाकर उसे अमरीकाकी सातवीं सेनाके सिपुर्द कर दिया जाय। आपने कहा है कि जब तक जर्मनीके फ्रान्स-अधिकृत-क्षेत्रका निर्णय नहीं हो जाता, स्टटगार्टपर फ्रान्सीसी सेनाका ही कब्ज़ा रहेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ्रान्सके पतन और ज़िल्लतमें एकमात्र जर्मनीका ही हाथ था। अतः अब यदि फ्रान्सके अधिकारी अपने कुण्ठित अभिमानका बदला जर्मनीके कुछ हिस्सेपर अस्थायी रूपसे अधिकारकर (और बादमें शायद उसके कुछ पश्चिमी भागको माँग करके भी) लें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर जिस धृष्टतासे द'गाल फ्रान्सको फिर 'बड़ी' या 'ऊँची' शक्तिके दरजेपर ले जाना चाहते हैं, उसमें हमें भावी खतरेके आसार दिखाई पड़ रहे हैं। अभी याल्तासे वापस जाते समय रूज़वेल्टने आपसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी; पर आपने उसे अस्वीकार करनेमें ही शिष्टता और शान समझी। आप शायद यह भूल गए कि यदि अमरीका न होता, तो आज द'गाल और फ्रान्सकी कुछ और ही हालत होती।

द'गाल रूस, ब्रिटेन और अमरीकाके साथ समानताका दरजा ही चाहते हों, सिर्फ़ यही बात नहीं है। उन्होंने कहा है कि फ्रान्स अपने सारे उपनिवेश रखेगा। सीरिया और लेबाननकी स्वाधीनताके सम्बन्धमें उनकी अदूरदर्शिता और हठधर्मी किसी भी साम्राज्यवादी या फ़ाशिस्तसे कम नहीं है। फ्रान्सीसी हिन्द-चीनको उन्होंने साम्राज्यवादी फ्रान्सके मुकुटका सर्वोज्ज्वल रत्न बतलाया है। इनसे स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यकी अक्षुण्णता और रक्षाकी जितनी चिन्ता चर्चिलको है, उससे रत्ती-भर भी कम चिन्ता फ्रान्सीसी साम्राज्यके सम्बन्धमें द'गालको नहीं है। तब क्या इस दूसरे महायुद्धमें अपार जन और धनकी बलि इसी-लिए दी गई कि फ्रान्स और ब्रिटेनके साम्राज्य बरक़रार रहें! हमें हैरत है, हिटलर और मुसोलिनी तथा उनके कुप्रभावके कारण उनके देशोंकी हुई दुर्दशाको देखकर भी इन साम्राज्यवादी कुचक्रियोंकी अक्ल ठिकाने नहीं आती? क्या जली हुई रस्सीकी इस ऐंठको भस्मसात करनेके लिए फिर तीसरे महायुद्धका अभिनय होगा?

ब्रिटेनका युद्ध-व्यय

गत २४ अप्रैलको कामन्समें ब्रिटेनका युद्ध-बजट पेश करते हुए अर्थ-सचिव सर जान एण्डरसनने कहा—"ब्रिटेनके इतिहासमें इस वर्ष पहली बार वार्षिक व्यय ६ अरब पौण्डसे अधिक है।" यथार्थमें इस वर्ष उसका व्यय ६ अरब ६ करोड़ ३० लाख पौण्ड हुआ है, जो कूते गए व्ययसे १२ करोड़ ६० लाख अधिक है। अब तक ब्रिटेन युद्धपर २७ अरब ४० करोड़ पौण्ड खर्च कर चुका है। उसका वैदेशिक ऋण ३ अरब हो चुका है और युद्ध समाप्त होने तक उसके ४ अरब हो जानेकी सम्भावना है। इस भारी-भरकम व्ययका ४२ प्रतिशत वैयक्तिक और ५३ प्रतिशत औद्यो-गिक आयपर लगाए गए करों द्वारा पूरा किया गया है।

यह कहना अनावश्यक होगा कि उपर्युक्त आँकड़े जन-साधा-रणके गणित-ज्ञानको बौखला देनेवाले हैं। हममें से अधिकांशके लिए, जिन्हें आम तौरपर ४० तकके पहाड़े और अधिकसे अधिक दस करोड़ तककी संख्याके आगेका हिसाब-किताब विशेष नहीं करना पड़ता, ब्रिटेनके युद्ध-व्ययके ये आँकड़े आकाशके तारोंकी संख्या-जैसी ही पहेली हैं। पर इनसे युद्धके घातक और महँगे परिणामका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यदि इसका शतांश या उससे भी कम अंश शान्ति-रक्षाके लिए व्यय किया जाता, तो शायद आज ब्रिटेनको यह दिन न देखना पड़ता। पर सच तो यह है कि १८७० से यूरोपीय राष्ट्र शान्तिका मूल्य और महत्व भूल चुके हैं। अपनी परोपजीवी महत्वाकांक्षाओं, परापहरणकी लालसाओं और शस्त्र-बलसे प्रतिद्वन्द्वीको दबाने तथा नीचा दिखानेके दौरात्म्यने उनको यह समझनेका अभ्यासी बना दिया है कि उनके सारे झगड़ों, मतभेदों तथा समस्याओंका एकमात्र हल युद्ध ही है! ऊपरके आँकड़ोंसे क्या अब भी ब्रिटेन यह नहीं सीखेगा कि युद्ध कभी लाभदायक नहीं होता?

भारतके युद्ध-व्ययकी जाँच

केन्द्रीय व्यवस्थापिका-परिषदके ११ सदस्योंने गत १० अप्रैल को एक वक्तव्य निकालकर निरन्तर बढ़ते जानेवाले भारतके युद्ध-व्ययकी विरोधी-दलके नेताओं द्वारा जाँच कराए जानेकी माँग की है। उनका कहना है कि इस समय प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे भारतपर ५०० करोड़ रुपए वार्षिक युद्ध-व्ययका बोझ है, जो बहुत अधिक है। अतः इसे निरन्तर बढ़ने न देकर भारतकी क्षमताके अनुसार स्थिर करना आवश्यक है। भारतकी एक आर्थिक सीमा तय हो जानी चाहिए, जिससे अधिक सारे खर्च ब्रिटिश सरकार दे। इस समय भारतके युद्ध-व्ययके रूपमें केवल एक बड़ी रक़म बतला दी जाती है, उसका कोई विवरण नहीं दिया जाता। इसलिए यह ज़रूरी है कि इस व्ययके विभाजन और इसे भारतके कर्ज़के रूपमें लिखे जानेके सिद्धान्त तय हो जायँ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और इन सबकी केन्द्रीय असेम्बलीके विरोधी-दलके ३ और राज्य-परिषदके एक या दो दल-नेता जाँच करें।

भारतकी वर्त्तमान स्थितिको देखते हुए हमारी समझमें यह माँग न्यायका न्यूनतम तकाज़ा है। एक ओर देशमें अन्न, वस्त्र, दवाइयों, कोयला, तेल आदि दैनिक आवश्यकताकी चीज़ोंका अकाल-सा आ गया है और दूसरी ओर युद्ध-व्ययके निरन्तर बढ़नेसे जो असाधारण मुद्रा-स्फीति हुई है, उसने चीज़ोंके मूल्योंको बुरी तरह बढ़ाकर जन-साधारणको बड़े संकटमें डाल दिया है। ऐसी बुरी हालत तो शायद बहुत-से युद्ध-रत राष्ट्रोंमें भी नहीं है। अतः यह सर्वथा आवश्यक है कि युद्ध-व्ययको भारतकी क्षमताके अनुरूप निश्चित किया जाय और उसके मौलिक सिद्धान्तों तथा विवरणकी भारतीय धारा-शास्त्रियों द्वारा जाँच हो।

युद्धमें भारतीय हताहत

गत १० अप्रैलको कामन्समें श्री चर्चिलने बताया कि युद्ध आरम्भ होनेसे २८ फरवरी, १९४५ तक १६३४८६ भारतीय हताहत हुए। इनमें से १९४२० शत्रु द्वारा मारे गए या घायल होकर मरे, ५१०३८ घायल हुए, १३३२७ गायब हैं, और ७९७०१ शत्रु द्वारा युद्ध-बन्दी बनाए गए या नज़रबन्द हैं। अन्तिम संख्यामें २११८१ अफ़सर तथा अन्य दर्जोंके सैनिक भी हैं, जो गायब हैं; पर जिनके युद्ध-बन्दी होनेका ही अनुमान है।

भारतीय सैनिकोंको सुविधाएँ

पिछले दिनों भारतके प्रधान-सेनापतिने १० भारतीय पत्र-कारोंको मध्य-पूर्व और इटलीमें भारतीय सैनिकोंकी स्थिति देखने तथा उसके सुधारके सम्बन्धमें अपने सुझाव देनेके लिए भिजवाया था। इनमें से अधिकांशने वापस आकर जो विवरण प्रकाशित करवाए हैं, उनसे भारतीय सैनिकोंकी स्थिति और उन्हें मिलने-वाली तथाकथित सुविधाएँ कदापि सन्तोषजनक नहीं कही जा सकतीं। यद्यपि अफ़सरोंने भारतीय सैनिकोंके साहस, शक्ति, अनु-शासन और व्यवहारकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की, तथापि स्वयं सैनिकों ने अपनी असुविधाओंका बड़ा रोना रोया। इनमें से उल्लेखनीय हैं—३-४ वर्षोंसे छुट्टी न मिलना, १० प्रतिशत छुट्टीका कड़ा नियम, अच्छी खाद्य-सामग्री और सिगरेटोंका न मिलना, अच्छे पत्रों और पुस्तकोंका न मिलना और मनोरंजनके उपयुक्त साधनों का अभाव इत्यादि।

हमारी समझमें इन असुविधाओंका मूल कारण यह है कि भारतीय सेनाओंके प्रायः सभी बड़े अफ़सर गोरे साहब हैं। इनके लिए भारतीयोंकी मनोभावनाओं एवं आवश्यकताओंको ठीक-ठीक समझना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। कदाचित् इसीलिए खराब आटे और रद्दी 'वी'-सिगरेटोंकी तरह ही 'फौजी अखबार', 'सन्देश' और 'दुनिया'-जैसे वाहियात पत्र, गन्दे और इश्किया क़िस्से-कहानियोंकी किताबें और 'अलीबाबा'-जैसी रद्दी फ़िल्में हिन्दुस्तानी सिपाहियोंको नसीब होती हैं। इसी तरह 'दिलखुश-सभा' नामकी बाच-गानेकी पार्टीके सस्ते और प्रदर्शनोंको भी सैनिक नापसन्द करते हैं। इस सम्बन्धमें असेम्बलीमें पास हुए श्री कृष्णमाचारीके प्रस्तावको चुनौती देकर सरकारने यद्यपि इन सब शिकायतोंका औचित्य स्वीकार लिया है; पर सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं है। उसे शीघ्र ही दूर करनेकी सक्रिय चेष्टा भी करनी चाहिए।

अमरीकामें भारतीय नागरिक

अमरीकामें भारतीयोंको कोटाके हिसाबसे प्रवेशाधिकार १९२४ के बाद बसे हुए भारतीयोंको नागरिक अधिकार जानेके प्रस्तावित बिलोंके मज़दूरी सस्ती होनेके बहाने डाले जानेकी चर्चा हम पिछले अंकमें कर चुके हैं। अब मिला है कि गत २७ अप्रैलके सेनेटकी प्रवास-उपसमिति सामने गवाही देते हुए उसके प्रस्तुतकर्त्ता सेनेटर लेंगसे है—"युद्धके लिए सामान बनानेवाली अमरीकन फैक्ट्रियों जहाज़ी कारखानोंमें भारतीयोंने जो अनुकरणीय अच्छा किया है, यह बिल उसकी स्वीकृति है। इसके पास होनेसे और अमरीकाके व्यापारिक सम्बन्ध उन्नत हो जायँगे।" कमिश्नरके विशेष सहकारी एडवर्ड शागनैसीने सर गिरिजा वाजपेयी और लार्ड हेलीफैक्ससे बातचीत करनेके बाद में रहनेवाले ४०५९ भारतीयोंको नागरिक और कोटाके हि भावी आगन्तुकोंको प्रवास-अधिकार दिए जानेका समर्थन है। नए राष्ट्रपति ट्रूमानने यद्यपि अभी तक इन बिलोंके में अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है; पर स्थानापन्न सचिव ग्रयू और एटर्नी-जनरल बिडलने इनपर अपनी और विभागकी सहमति प्रकट की है।

अमरीका बनिया है, इसलिए वह हर बात पैसेके सोचता है। वहाँ बसे भारतीयोंको नागरिक अधिकारसे रखना और दूसरोंको वहाँ रहनेकी अनुमति न देना लोकतन्त्र दुहाई देनेवाले अमरीकाके लिए बहुत बड़ा नैतिक पाप और है! उसे सीधे और स्पष्ट रूपमें दूर न कर उसको अमरीका-प्रवासी भारतीयोंकी सेवाओंकी स्वीकृति और अमरीकाके व्यापार-सम्बन्ध उन्नत करनेके लिए दूर क़ानूनी नाटक करना सर्वथा हास्यास्पद प्रवंचना है। हम न सिर्फ़ घोषित आदर्शों और सिद्धान्तोंके प्रति अमरीकाका श्वास या विश्वासघात ही, बल्कि उसकी सूझ और सहज अपमान भी समझते हैं। हमारा विश्वास है, भारतका स्वाभि कृपा या एहसानके रूपमें मिलनेवाली ऐसी किसी सुविधाको स्वीकार नहीं करेगा। काम और व्यापार तो बादकी बातें सबसे पहले तो हम मानवता और विश्व-बन्धुत्वके नामपर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और समान नागरिकका दरजा चाहेंगे। आखिर भारतीय चीनियों या अमरीकामें बसे अन्य लोगोंसे किस बातमें हीन हैं?

अमरीकामें भारत-सहायता-कोष

कर्नल लुई जान्सन और विलियम फिलिप्स-जैसे सच्चे और कर्त्तव्य-परायण अमरीकन बन्धुओंको भारतीय जनता कभी भी भुला नहीं सकेगी। ब्रिटिश अधिकारियोंकी प्रतिगामिता और अमरीकन अधिकारियोंके दब्बूपनके बावजूद भारतकी असली स्थिति अपने देशवासियोंको बतलाकर इन्होंने लोकतन्त्रकी बहुत बड़ी सेवा की है। अपनी इच्छा और स्वीकृतिके बिना ज़बरदस्ती युद्धमें घसीटे जाने और भ्रष्ट नौकरशाही तथा अनैतिक व्यापारियोंकी धन-लिप्साके कारण भारतीय जनताको इस समय जिन कष्टों और अभावोंमें से गुज़रना पड़ रहा है, वह सब फिलिप्स अपनी आँखों देख गए हैं। अतएव भारतमें यह समाचार बड़े सन्तोष और प्रसन्नताके साथ पढ़ा जायगा कि उन्होंने बंगाल तथा भारतके अन्य अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंकी सहायताके लिए अमरीकामें घूम-घूमकर १२ लाख डालरका कोष एकत्र करनेका काम शुरू किया है। धन-संग्रहका कार्य आरम्भ करते हुए आपने कहा है—"भारत की वर्त्तमान दुरवस्था प्रत्यक्ष रूपसे युद्धके कारण हुई है, अतएव उसकी सहायता और कष्ट दूर करना अमरीकाकी ज़िम्मेदारी है। जब अमरीकाके हज़ारों सैनिक भारतीय आधारसे होनेवाले युद्धमें लड़ रहे हैं, तो अमरीका भारतकी सहायताकी माँगको अनसुनी नहीं कर सकता।"

फिलिप्सके बंगाल तथा भारतके अन्यान्य अकाल-पीड़ित क्षेत्रोंकी सहायतार्थ एक लाख डालर प्रतिमास एकत्र करनेके कार्यका समर्थन करते हुए 'न्यूयार्क सन'ने लिखा है—"भारत युद्धका शिकार है। उसकी नदियों तथा समुद्र-तटकी यातायात-व्यवस्था नौकाओं तथा जहाज़ोंके नष्ट हो जानेके कारण असम्बद्ध हो गई है। बोमारियाँ और अकाल—जो वहाँ सदा फैलते रहे हैं—अपना भक्ष्य ले रहे हैं। भारतीय यह समझनेमें असमर्थ हैं कि क्यों वे रेड-क्रास या संयुक्तराष्ट्र-सहायता-कोषसे (जिसमें भारतको जबरन लगभग ८ करोड़ रुपए देने पड़े हैं!—सं०)—जो कि सिर्फ़ शत्रुसे मुक्त किए जानेवाले देशोंके लिए ही हैं—लाभ नहीं उठा सकते? वैसे भारत इन देशोंकी श्रेणीमें ज़रूर नहीं आता; पर यथार्थमें इसकी वर्त्तमान कठिनाइयोंका कारण इसकी अर्थनीतिपर युद्धका दबाव ही है। दरअसल उसकी आवश्यकताओंको देखते हुए एक लाख डालर मासिक बहुत कम हैं। पर चूँकि अमरीका इसे बिना साम्प्रदायिक या राजनीतिक भेद-भावके एकमात्र भौतिक आवश्यकताओंके आधारपर ही दे रहा है, यह भारतकी ओर उसका मैत्रीपूर्ण हाथ बढ़ाना है—जो कि अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्वका नया आधार खोजनेवाली दुनियाके लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण संकेत है।"

पाठक देखेंगे कि जब सुदूर अमरीका तकमें पीड़ित भारतीयोंकी सहायतार्थ यह अमली क़दम उठाया जा रहा है, हमारे देशके केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकारी अन्न, वस्त्र, कोयला, तेल, दवाइयों आदिके अभावके बावजूद दुनियाको यह विश्वास दिलाने की कोशिश कर रहे हैं कि भारतीयोंको कोई कष्ट या कमी नहीं है, उनकी हालत इतनी खराब नहीं है आदि।

भारतीयोंके साथ क्रूर बर्त्ताव

गत २६ अप्रैलको क्यूबेक (कनाडा)-धारासभाके स्वतन्त्र सदस्य श्री रेने शालौतने कहा है—'कनाडाके धाराशास्त्रियोंका जो दल जर्मनीमें नात्सियोंके अत्याचारोंको देखने जायगा, उसे ३० करोड़ भारतीयोंके साथ होनेवाले क्रूर बर्त्तावको देखने भारत भी जाना चाहिए।' विदेशोंके लोग जब भारतीयोंकी साधारण स्थितिके बारेमें ही न-कुछके बराबर जानते हैं, तो उनके साथ होनेवाली क्रूरताओंकी खबरें भला उन तक कैसे पहुँच सकती हैं। एक तो गुलाम होनेके कारण भारतीय वैसे भी विदेशियोंकी निगाहमें हेय और नगण्य हैं और बहुत कम लोग भारत-सम्बन्धी समस्याओंमें रुचि रखते हैं; दूसरे सैंसरकी कृपासे 'क्रूर बर्त्ताव'की खबरें भला बाहर पहुँच भी कैसे सकती हैं? हाँ, बाहरवालोंको यह बतलाने और विश्वास करानेके लिए सरकार लाखों रुपया ज़रूर खर्च करती है कि भारतीयोंके लिए उसने ये-ये न्यामतें बख्शी हैं; अंगरेज़ चले जायँ तो भारतीय आपसमें लड़ मरेंगे तथा भारतमें जो-कुछ अच्छाई है, वह अंगरेज़ी शासनके कारण और जो गन्दगी या बुराई है, वह नालायक़ भारतीयोंकी वजहसे ही है!

जिस शासनमें चोरों, उचक्कों, डाकुओं, गिरहकटों, दुराचारियों, घूसखोरों और खूनियों तकको काफ़ी सुविधा-स्वतन्त्रता हो, उसमें देशके सम्माननीय नेताओंके साथ सरासर कमीना और पाशविक व्यवहार किया जाय, यह काम दुःख और आश्चर्यकी बात नहीं है। अहिंसा और विनयकी मूर्त्ति सीमान्त गांधीकी बात ही लीजिए। 'अमृतबाज़ार पत्रिका'के नई दिल्ली-स्थित विशेष संवाददाताने अपने १७ अप्रैलके संवादमें बतलाया है कि गिरफ़्तारीसे पहले खान अब्दुलग़फ़्फ़ार खाँको बुरी तरह पीटा गया, जिससे उनकी रीढ़की दोनों हड्डियाँ टूट गईं। श्री शिब्बनलाल सक्सेना और अनेक अन्य राजबन्दियोंको बुरी तरह पीटनेके संवाद भी पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं। पुलिसके दुर्व्यवहारके कारण भागलपुर-कैम्प-जेलमें अभी फिर भूख-हड़ताल होनेका समाचार मिला है। क़ानून और अधिकारके नामपर होनेवाला यह कमीनापन किसी भी शासनके लिए बड़े शर्म और कलंककी बात है। मार-पीटके बाद पकड़े जानेपर सीमान्त गांधीको 'सी' श्रेणीमें ही रखा गया। आचार्य कृपलानी और बैरिस्टर आसफ़अलीको भी यही इज़्ज़त बख्शी गई। मौलाना आज़ादके साथ खड़गपुर स्टेशनपर हुआ दुर्व्यवहार और आचार्य कृपलानीको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विना कपड़ोंके मीरपुर खाससे मोटर द्वारा २०० मील चलकर हैदराबाद ले जानेकी ग़ैरज़िम्मेदाराना हरकतोंकी जितनी भी निन्दा की जाय, कम है।

एक लज्जास्पद काण्ड

जबसे युद्ध-स्थितिके कारण विदेशी सैनिक भारतमें आए हैं, उनके द्वारा होनेवाले नाना प्रकारके उत्पातोंके संवाद पत्रोंमें पढ़ने को मिलते हैं। यद्यपि सेन्सरकी कठोरताके कारण ये संवाद भी अपवाद-स्वरूप ही छपते हैं, तथापि इनकी गम्भीरताका यत्किंचित् अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। अभी हाल ही में हावड़ाके ज़िला और दौरा जजने जबरन एक घरमें घुसकर एक बीमार विवाहिता लड़कीके साथ बलात्कार करनेके अपराधमें एक गोरे सैनिकको १० वर्षकी सख्त क़ैदकी सज़ा दी है और दूसरेका मामला हाईकोर्टके सिपुर्द किया है।

इस्तग़ासेके अनुसार घटना इस प्रकार बतलाई गई है कि पिछले अक्टूबरमें एफ़० कज़िन्स और जे० केन नामके शाही नौ-सेनाके दो व्यक्ति पिस्तौलोंसे लैस होकर आधी रातके बाद औरतोंकी तलाशमें हावड़ा क़स्बेकी ग़रीब बस्तीके एक मकानमें घुस पड़े। उसमें छान-बीन करनेपर भी जब कुछ न मिला, तो वे गोलाबारी थानेके हल्केके एक दूसरे घरमें ज़बरदस्ती घुसे। इसमें पिछले एक सालसे बीमार एक विवाहिता लड़की रोग-शय्यापर पड़ी थी। गोरोंको देखकर लड़कीकी माँ तो किसी तरह वहाँसे भाग निकली; परन्तु लड़की और उसके बापने दोनों गोरोंसे मिन्नत-खुशामद की कि वे उसपर रहम करें। पर उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। केनने पिस्तौल दिखाकर लड़कीके बापको बाहर निकाल दिया और कज़िन्सने लड़कीके साथ बलात्कार किया। कहते हैं कि कज़िन्सके बाद केनने भी उसके साथ बलात्कार किया। लड़की बीमारीकी कमज़ोरीके कारण इन राक्षसोंके चंगुलसे बचनेमें असमर्थ रही। पर उसका रोना-चिल्लाना सुनकर आसपासके लोग वहाँ जमा हो गए। दोनों गोरोंमें से एकने भीड़को डराकर भाग निकलनेके लिए पिस्तौलसे एक फायर किया; पर अन्ततः वहाँ पहुँचे कुछ पुलिसवालों और नागरिकोंने उन्हें पकड़कर थाने में पेश किया। पीड़ित लड़कीके बच्चेको बचानेके लिए जब उसकी छोटी बहन उसे लेकर जाने लगी, तो एक गोरेने उसका पीछा किया, जिससे भागनेके प्रयत्नमें वह बच्चे-सहित गिर पड़ी। वह स्वयं बेहोश हो गई और बच्चेके सख्त चोट आई, जिससे वह दूसरे दिन सबेरे मर गया। लड़कीका हावड़ा जनरल अस्पतालमें एक पखवाड़े तक इलाज होता रहा।

कज़िन्सको सज़ा सुनाते हुए विचारपतिने कहा—"जिन गम्भीर परिस्थितियोंमें यह संगीन जुर्म हुआ है, उन्हें देखते हुए अपराधी अधिकतम सज़ाका अधिकारी है। उसके पक्षमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह नवयुवक और सेनाका एक सदस्य है, जिसके संयम और शराफ़तकी भावनाओंको युद्ध-स्थितियोंने असंतुलित कर दिया है। तथापि मुझे कहना [illegible] कि उसने बहादुर शाही नौ-सेनाके नेक नाम और परम्परा [illegible] कालिख पोती है।"

एक निकृष्टतम गुण्डापन

ऊपर जिन बातोंका उल्लेख किया गया है, वे मुख्यतः ब्रिटिश भारतकी हैं, जहाँ नाम-मात्रको नियम-क़ानूनोंकी [illegible] बहुत ओट है। मगर अधिकांश देशी राज्योंमें तो, जो [illegible] गोरे महाप्रभुओंकी कृपासे आज भी मध्ययुगीन बर्बरताके [illegible] जागते नमूनोंके रूपमें विद्यमान हैं और जहाँ राजाकी मर्ज़ी [illegible] उसके चाटुकार और भ्रष्ट नौकरोंकी मुनमानी ही क़ानूनका [illegible] नाम है, पाशविकताकी चरम सीमाको भी बहुत पीछे छोड़ [illegible] गया है। अभी हाल ही में कोल्हापुरकी श्रीमती काशीबाईके [illegible] हुआ दुर्व्यवहार नात्सी गुण्डोंके कारनामोंसे किसी भी रूपमें [illegible] नहीं कहा जा सकता। नागपुरके सहयोगी 'इण्डिपेण्डेण्ट' ने [illegible] गत १२ मार्चके अंकमें इस काण्डकी कोल्हापुर-प्रजा-परिषद् [illegible] हुई जाँचका निम्नलिखित विवरण छापा है :—

"गत ९ अक्टूबर, १९४४ को सुबह पुलिस काशीबाई [illegible] पति, बच्चों और दो अन्य व्यक्तियोंको छिकवलवालके पुलिस पटेलके यहाँ ले गई। उसने उन्हें पुलिस-दारोग़ाके सामने पेश किया। दारोग़ाने पहला प्रश्न काशीबाईसे यही पूछा कि [illegible] मालूकी माँ है या पत्नी? फिर वह चोटी पकड़कर काशीबाई [illegible] घसीटकर उसके पतिके पाँवोंके पास ले गया और उससे [illegible] बिल्कुल नंगा कर देनेको कहा। काशीबाईकी साड़ी उतार [illegible] गई और उसे चमड़ेके एक पट्टेसे खूब पीटा गया। शायद [illegible] के निशान छिपानेके लिए उसके शरीरपर पानी भी डाला गया [illegible] फिर भी उसके शरीरपर चोटोंके निशान तो बन ही गए [illegible] इनामी ज़मीनका उपभोग करनेवाले ४ चौकीदारोंको [illegible] गवाहीसे मालूम होता है कि दारोग़ाने काशीबाईके गुप्त [illegible] पिसी हुई लाल मिर्च झोंकनेकी भी धमकी दी और [illegible] एक गवाहीसे मालूम होता है कि उस नर-पिशाच या [illegible] आदमियों द्वारा ऐसा किया भी गया। शुक्रवारको सुबह [illegible] काशीबाईको नंगाकर पीटा गया। पुलिसने काशीबाईके [illegible] दोनों बच्चों और दूसरे दोनों आदमियोंको भी पीटा। इनमें [illegible] एक आदमीको तो इतने ज़ोरसे एक दीवारकी तरफ़ धकेला [illegible] कि उसकी कुछ ईंटें तक बाहर निकल पड़ीं। यह मार-पीट पुलिस [illegible] पटेलके घरपर ही हुई और वहीं उन्हें कई दिनों तक बिना रोटी [illegible] पानीके रखा गया, जहाँसे उनके रोने-चिल्लानेकी आवाज़ [illegible] आती रहती थी। जब पुलिसवाले गाँवसे चले गए, तब [illegible] वहाँसे जानेकी इज़ाजत मिली।"

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवासन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्थ जीवन के संकेत २

क्या आप को सारी रात खाँसी आती है?

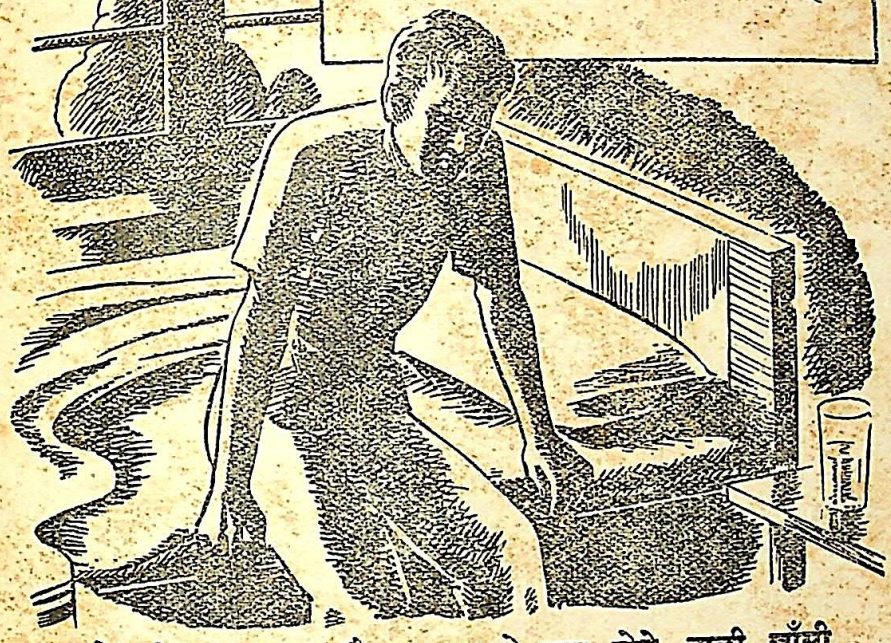

गले की सहलाहट और ज़ुकाम के बाद होने वाली खाँसी, साधारण खांसी है। शायद आप उसे भयानक न समझकर चिकित्सा और उपचार न करें। शायद सारी रात बैठ कर खांसते रहनेपर भी आप उसकी अवहेलना करें। परंतु इस अवहेलना का परिणाम भयानक है। क्योंकि आप के फेफड़े इतनी कोमल झिल्ली के बने हैं कि वे खाँसी के झटकों को नहीं सह सकते।

ग्लाइकोडीन टर्प वसाका डाक्टरों द्वारा प्रयुक्त और प्रमाणित, खांसी की औषधि है। वह खांसी को तुरंत शान्ति देती और उसके मूल कारणों को नष्ट करती है। उस के शक्ति शाली परमाणु खांसी को समूल नष्ट करने वाले हैं।

स्नायु विकार से उत्पन्न हुई हर प्रकार की खाँसी के लिये अपने डाक्टर की सलाह लीजिये।

ग्लाइकोडिन टर्प-वसाक

शान्तिदायक तथा खांसी को नष्ट करती है।

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड, बरोडा

AL. 288

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaah Kosha

देखिये तो सिनेमा-जगतकी सुन्दर और कुशल अभिनेत्री **कानन देवी** 'ओटीन'के विषयमें लिखती हैं :—

"ओटीन क्रीम" अति आनन्दवर्द्धक है तथा गात्र-वर्णको उत्कृष्ट बनाने के लिए अत्यन्त ही सन्तोषजनक है।"

आप भी तो

ओटीन की—

सौन्दर्य-सिद्धि का उपभोग कर सकती हैं

Of all the toilet creams that I have used I unhesitatingly prefer Oatine Cream as being the pleasantest and most satisfactory for improving the complexion.

Kanan Devi

Oatine CREAM *for nightly massage*
SNOW *for daily protection*

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न, १९४५

बालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

h College Varanasi

बहुत से बूढ़े लोग जो रोज़गार जारी रखने पर मजबूर होते हैं भयभीत मन से यह कहते सुनाई देते हैं...

"मैं इतना बूढ़ा नहीं जितना कि दिखाई पड़ता हूँ।"

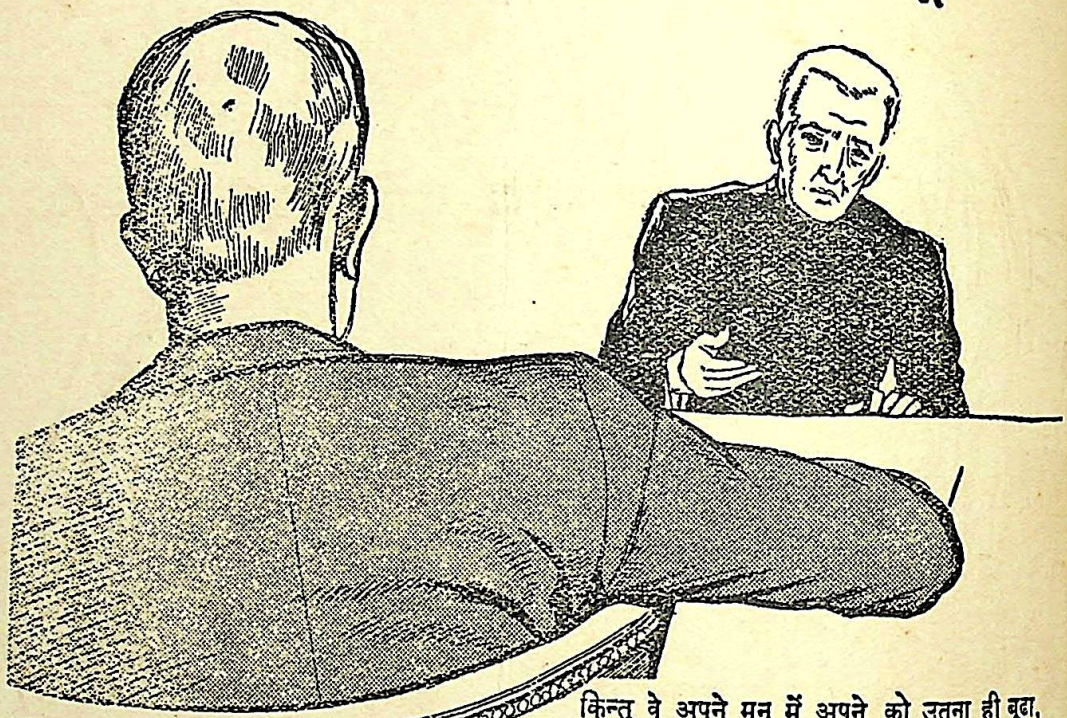

किन्तु वे अपने मन में अपने को उतना ही बूढ़ा, शायद उससे भी ज़्यादा बूढ़ा समझते हैं। इसका कारण यह होता है कि उन्होंने अपने भविष्य के लिए कोई आधार नहीं बनाया, हाथ में पैसा नहीं रखा। हर गिरा-पड़ा काम उन्हें स्वीकार कर लेना पड़ता है। उनका जीवन बहुत निराशापूर्ण होता है। किन्तु यह ज़रूरी नहीं कि आपको भी ऐसी मुसीबत का सामना करना पड़े। यदि आप अभी योजना बना लें, तो आप वृद्धावस्था में शान्ति एवम् सम्मान के साथ विश्राम कर सकते हैं।

बुद्धिमान लोग जिन्हें अपने भविष्य का ख़्याल है अपनी बचत के रुपये को आजकल नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेटों में लगा रहे हैं। अपने सुरक्षित भविष्य में उन्हें पूर्ण विश्वास है। आपको भी ऐसा विश्वास प्राप्त हो सकता है।

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट ख़रीदिए।

छोटी छोटी रक़में बचाने वाले ५ रुपये का सर्टीफिकेट अथवा ४ आने, ८ आने या १ रुपये के स्टाम्प सरकार द्वारा अधिकृत किसी एजेण्ट अथवा सेविंग्स ब्यूरो या डाकख़ाने से ख़रीद सकते हैं।

★ १२ वर्ष में १० रुपये के १५ रुपये हो जाते हैं।
★ ४½ प्रति शत साधारण ब्याज, इनकम टैक्स माफ़।
★ जमा हुऐ ब्याज के सहित तीन साल बाद इन्हें भुनाया जा सकता है (५ रुपये के सर्टीफिकेट को १८ महीने बाद)।

AAA 128 HINDI

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है ।

हेड आफ़िस
४७, दी माल लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी ५० करोड़ से अधिक

भारत भर में १७९ शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये ।

हमारी मद्रास ब्रांचने अपना कारोबार २ मई १९४५ से शुरू कर दिया है।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—

१ **नवयुगके गान**—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १।)

२ **शासन-शब्द-संग्रह**—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)

३ **पृथ्वीराजकी आँखें**—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १।)

४ **गीता-परिचय**—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)

५ **ग्राम-चिन्तन**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)

६ **अश्वपरीक्षा**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)

७-८ **ग्राम-पुस्तकालय-माला**—मूल्य प्रति पुस्तक =)

१. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

१ **विभूति**— २॥)

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी नाटकोंका सचित्र संग्रह।

२ **शहरका अन्देशा**— २)

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। इसका प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है।

३ **पाँचधागे**— १।)

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक पाँच मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह!

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

केवल एक दिनमें

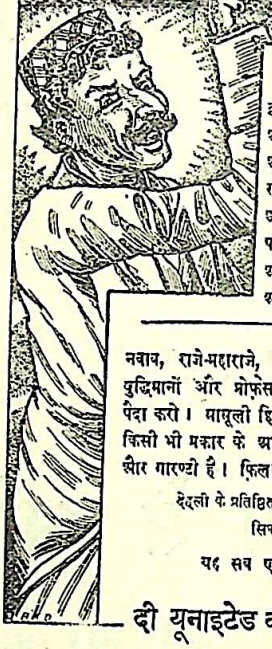

करामाती मिस्मेरिज़्म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढक[कर] अजीब व ग़रीब मदों के सही-सही उत्तर पूछना, [दह]कती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी की [जे]ब सब दर्शकों की घड़ियों में ६½ इत्यादि बता देना, [कं]घेपर आग लगा देना, हाथ में ले आग को खासे [तौ]लिया पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच करना [और] आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक चित्तलुभन [तथा] अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी क्रियायें [सीखिये]

—दूसरे ही दिन—

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े पुरस्कार [प्राप्त] बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों को बुद्धि चकर और हैरत में डालकर [इनाम] पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता [है]। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा [सरल] और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की [ओर से] सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यदि सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

दी यूनाइटेड वण्डरफ़ुल मेजिकल कम्पनी
विभाग नं० २५,
मुरादाबाद, यू० पी०

D. N. BOSE'S
HOSIERY FACTORY
"SANKHA & PADMA"
BRAND
GENJEES
STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

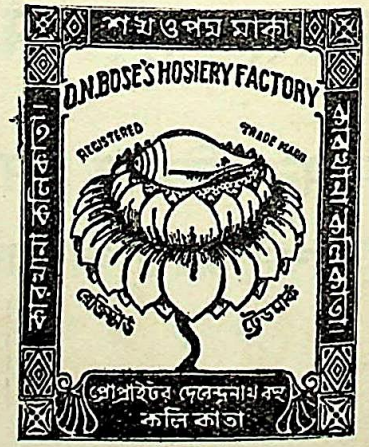

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL
ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND
FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.
'Phone: B. B. 6056.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार "ओटीन" आज सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य-प्रसाधनके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है, उसी प्रकार साधना बोसकी ख्याति भी—न केवल उनके सौन्दर्यके कारण, बल्कि एक सफल कलाकार और नर्तकीके रूपमें। देखिये "ओटीन"के बारेमें वे क्या कहती हैं :—

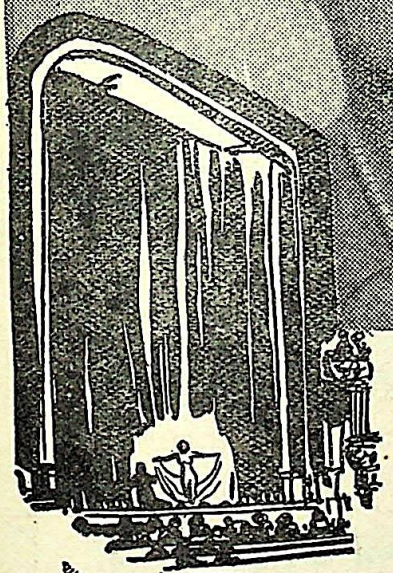

OATINE CREAM is indispensable for my toilet. I have been using it for a long time, and find it delightful, and extremely necessary to preserve a perfect skin.

Sadhona Bose

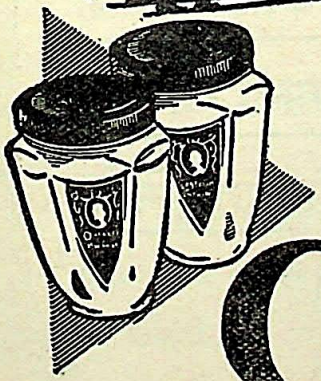

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हवाई बेड़े के बारे में लोगों की सम्मति

देखिए, श्री डी० एफ० कारका अपनी "विद दि फोर्टीन्थ आर्मी" (चौदहवीं फ़ौज के साथ) नामक पुस्तक में क्या कहते हैं।

"उनमें मैत्रीभाव था और अपने साथियों के प्रति आश्चर्यजनक सम्मान, तथा इससे भी अधिक था उनमें अपने हवाई बेड़े के प्रति प्रेम। उन्हें इस बात पर गर्व था कि वे हवाई बेड़े में काम करते हैं, और इससे भी अधिक गर्व इस बात पर था कि वह बेड़ा हिन्दुस्तानी हवाई बेड़ा है। यह किराये के टट्टुओं का हवाई बेड़ा नहीं था।

यह उन भारतीयों का हवाई बेड़ा था जिन्हें अपने देश का, अपनी शानदार विरासत का, और अपनी मातृभूमि के गौरव का ध्यान रहता है।"

AAA167

"WITH THE 14th ARMY"
(Thacker) Rs. 4-12-0

* रायल इण्डियन एअर फोर्स

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाँसीको रोकिये

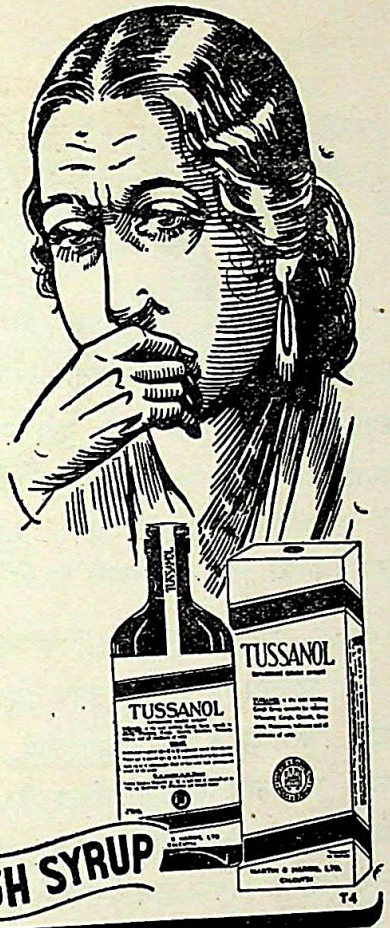

मामूली-सी खाँसीको भी छुपाना या दबाना नहीं चाहिए। वह भले ही फेफड़ोंकी सूजनसे हो, या दिक़से हो, या गलेकी ख़राशसे ; उसको फौरन, सुरक्षापूर्वक और ख़ुशनुमा तरीक़ेसे आराम कीजिए।

टस्सानल से

TUSSANOL

MARTIN & HARRIS, LTD.
CALCUTTA

श्री काशी विद्यापीठके बहुमूल्य प्रकाशन

समाजवाद

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

जिसकी महात्मा गांधीने प्रशंसा की है तथा जिसपर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे अपने विषयकी सर्वोत्तम पुस्तक होनेके कारण बारह सौ रुपयेका 'श्री मंगलाप्रसाद' तथा पाँच सौ रुपयेका 'मुरारका' पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करणका मूल्य केवल दो रुपये।

गणेश

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द

वेद, पुराण, तन्त्र, बौद्ध और जैन शास्त्रोंमें गणेशजीका क्या रूप है और भारतके बाहर चीन, जापान और जावा आदि देशोंमें उनकी किस प्रकार पूजा होती है जाननेके लिये विद्वान लेखककी नयी रचना पढ़िये।

अनेक सुन्दर। तिरंगे तथा एकरंगे चित्रों-सहित पुस्तकका मूल्य केवल दो रुपये आठ आने।

हिन्दू भारतका उत्कर्ष

लेखक—श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० बी०

इस पुस्तकमें लेखकने अनेक अरब प्रवासियोंके लिखित शिला लेखों इत्यादिके आधारपर राजपूतोंके प्रारम्भिक इतिहासकी सभी ज्ञातव्य बातों-पर प्रकाश डाला है। साथ ही तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियोंका भी विवेचन किया है। मूल्य ३॥) रु०।

श्री काशी विद्यापीठ पुस्तक भण्डार, विद्यापीठ रोड, बनारस छावनी।

हमारे यहां हिन्दी भाषाकी सब पुस्तकें मिलती हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नर्सिंग — संसार का सर्वोत्तम कार्य

AAA 1198

नर्सिंग सब से अधिक परोपकारी कार्य है। बुद्धिमती महिलायें स्वभावतः इसकी ओर आकर्षित होती हैं। यह कार्य युद्ध-प्रयत्नों को वास्तविक सहायता पहुंचाता है। ए० एन० एस० की सफ़ेद वर्दी पहिनने वाली नर्सें घायल सैनिकों की तीमारदारी करती हैं।

आजकल समाज यह चाहता है कि नवयुवतियां घर पर आलस्य से अपना समय बिताने की अपेक्षा किसी अच्छे काम में लग जायं, इसलिये आपको महिलाओं के उस परोपकारी दल में सम्मिलित हो जाना चाहिये जो अस्पतालों में कष्ट-निवारण के कार्य में हाथ बंटाता है।

ए० एन एस०(आग्जीलरी नर्सिंग सर्विस) में आपको नर्स के काम की जो अच्छी ट्रेनिंग मिलेगी वह लड़ाई के बाद शहरी क्षेत्र में बहुत काम आयेगी। यदि आपका ऐसा कार्य-क्रम नहीं है, तो भी चिकित्सा का जो ज्ञान आप प्राप्त कर लेंगी वह जीवन भर आपकी गृहस्थी के लिए तथा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इस सुअवसर से लाभ उठाइए!

ए० एन०एस० लेक्चर रूम

जनरल सर्विस में वेतन इस प्रकार मिलता है:—(१) जिनके पास नर्स का सर्टीफिकेट नहीं है—१०० रु० से १२६ रु० मासिक तक। (२) जिनके पास नर्स का सर्टीफिकेट है-१३५ रु० से १७५ रु० मासिक तक। दोनों को मुफ़्त में रहने की जगह, भोजन और ईंधन मिलता है।

कोई भी महिला जिसकी उम्र १७॥ और ४५ वर्ष के बीच हो तथा जो ब्रिटिश प्रजा अथवा किसी भारतीय रियासत की प्रजा हो इस सर्विस में भरती हो सकती है। पूर्व योग्यता की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु जिन महिलाओं को नर्स के काम का पिछला अनुभव है वे ऊंची श्रेणी पर भरती हो सकती हैं। सब उम्मीदवारों में अंग्रेजी लिखने और बोलने की अच्छी योग्यता होनी चाहिए और आवेदन-पत्र मंगाने के लिए अंग्रेजी में पत्र लिखा जाना चाहिए। नर्सों की देखभाल अच्छी तरह से की जाती है और जब तक कि वे स्वयं समुद्र पार न जाना चाहें उन्हें हिन्दुस्तान में ही ड्यूटी के लिए नियुक्त किया जाता है। AAA 1198

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

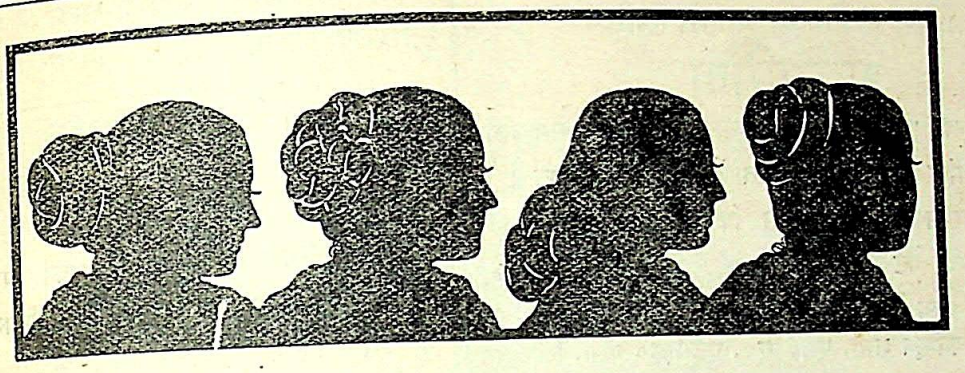

लो टा स

कोकोनट आयल

रमणीय केशको और भी रमणीय करता है

इसका उपादान विशुद्ध, गन्धवस्तु निरापद, गन्ध-मात्रा परिमित अथच मनोरम है। सुरुचि-सम्पन्न नर-नारी मात्र ही इस स्निग्ध गन्धाधिवासित तैलके व्यवहारसे तृप्त होंगे।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

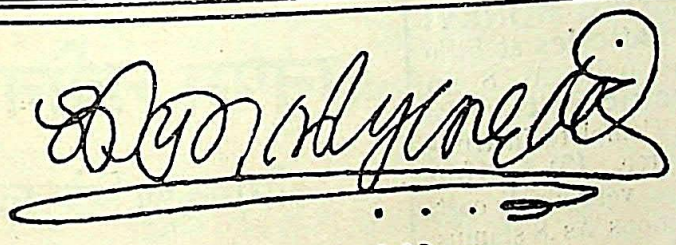
—लिखित

आँधीके पत्त

कहानियोंका यह अनुपम संग्रह इसी महीनेमें छपकर निकला है। क्या भाषा, क्या भाव, क्या शैली और क्या कला-वस्तु, सभी दृष्टियोंसे यह पुस्तक हिन्दी-कथा-साहित्यकी श्री-वृद्धि करनेमें समर्थ हुई है। मूल्य केवल १।) सवा रुपये।

सञ्चयिता

कविताओंका यह विशाल और अपूर्व संग्रह है। 'आरसी'का मूल्य १५) पन्द्रह रुपये हो जानेसे इस पुस्तककी उपादेयता बहुत बढ़ गई है। जो व्यक्ति 'आरसी' नहीं खरीद सकते, वे 'संचयिता' जरूर लें और कविकी विलक्षण प्रतिभाका चमत्कार देखें। मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

नई दिशा

'नई दिशा'की कविताएँ वास्तवमें एक नई दिशाकी ओर संकेत करती हैं। वह 'नई दिशा' क्या है? इसे आप स्वयं समझें, तो ज़्यादा अच्छा हो। हिन्दीके लिये यह भले ही 'नई' दिशा हो—परन्तु सनातन साहित्यके लिये चिर-प्राचीन दिशा है; ध्रुव;—चंचल होकर भी कम्पासकी सुई जिधर स्थिर हो जाती है। मूल्य १॥) केवल डेढ़ रुपये।

अन्य पुस्तकें

१. आरसी (कविताएँ)…१५) २. जीवन और यौवन (किशोरोपयोगी कविताएँ)…१।) ३. कालरात्रि (कहानियाँ)…२)
४. चन्दा मामा (बालोपयोगी कविताएँ)…१) ५. कलापी (कविताएँ)…२॥)

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो नये प्रकाशन

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त लिखित

अनुरागिनी

एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढ़ियोंपर सफल आघात करता है। भाषा सुललित है। एक बार प्रारम्भकर विना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या ३८४, मूल्य केवल ४॥) ।

प्रोफ़ेसर विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, लिखित

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी-कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्य-ग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।" सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या १४७, मूल्य केवल २) ।

शिवाजी प्रकाशन मान्दर,
सुन्दरबाग, लखनऊ।

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost. Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps. **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As. 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B.

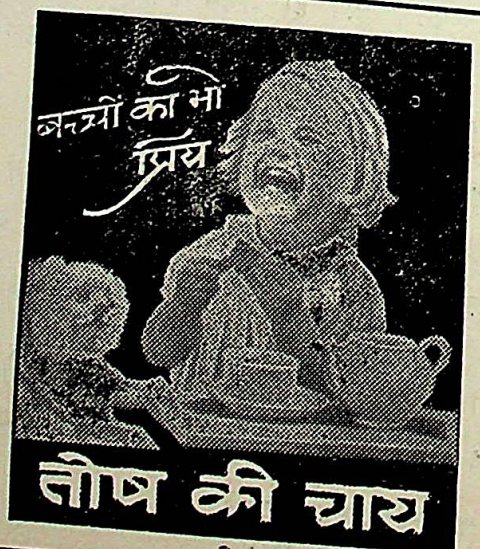

खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापार, स्वास्थ्य, वैद्यक आदि विषयक एकमात्र हिन्दी

उद्यम

हिन्दीके विभिन्न पत्रों द्वारा एवं पाठकों द्वारा प्रशंसित

विषयोंका एकमात्र अनोखा मासिक पत्र।

इसके प्रत्येक पृष्ठमें—प्रत्येक पंक्तिमें—खेती, उद्योग-धन्धे, व्यापार, विज्ञान, स्वास्थ्य, वैद्यक आदि पाठक प्रयोगात्मक, व्यावहारिक एवं सुलभ सामग्री सरल पायेंगे।

शीघ्र ही वार्षिक मूल्य ५॥) रु० (वी० पी० से ५॥) भेजकर जनवरीसे ग्राहक बननेवालोंको नमूना-अंक, शक्कर-अंक, फरवरी, मार्च, अप्रैलके अंक एक साथ मिल और अन्य अंक भी प्रतिमास वर्ष-भर मिलते रहेंगे।

प्रतिमास १५ ता० को 'उद्यम' प्रकाशित होता है।

व्हीलरके स्टालोंपर एवं न्यूज़पेपर-एजेण्टोंसे भी 'उद्यम'की बहुत माँग कर रही है।

आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाइये।

मैनेजर—'उद्यम' मासिक, धर्मपेठ, नाग

अनुपम नवीन प्रकाश

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी) भाग दूसरा मूल्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

१.	प्रेमयोग	...	मूल्य ०-१
२.	प्राच्य और पाश्चात्य	...	,, ०-१
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग		,, ०-१
४.	परिव्राजक	...	,, ०-१
५.	भक्तियोग	...	,, ०-
६.	मेरे गुरुदेव	...	,, ०-
७.	शिकागो वक्तृता	...	,, ०-
८.	वर्त्तमान भारत	...	,,

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वस्थ जीवन
के संकेत
३

उपेक्षा से भयंकर परिणाम की संभावना।

प्राय: देखा गया है कि हम लोक साधारण खांसी की असावधानी के कारण समय पर चिकित्सा नहीं करते। इस से बहुधा जान तक से हाथ धोना पड़ता है। इस लिये समय रहते खांसी की उचित चिकित्सा करना अति आवश्यक है।

ग्लायकोडिन टर्प वसाका खांसी की अव्यर्थ महौषधि है। सैंकड़ो अनुभवी डाक्टरों ने इस की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। यह रोग के मूल तक पहूँच कर भयानक से भयानक खांसी को भी कुछ ही दिनों में शर्तिया आराम करता है।

स्नायु-सम्बन्धी असाध्य खांसी में डाक्टरों से राय लें।

ग्लाइकोडिन टर्प-वसाका

शान्तिदायक तथा खांसी को नष्ट करती है।

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड, बरोडा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Godrej

गोदरेज द्वारा जनता का सुरक्षा

गोदरेज की इन मजबूत और विशाल वस्तुओं से अपनी बेशकीमती चीजोंकी सुरक्षा कीजिए। जोड़रहित तिजोरियां, कैस-बाक्स् (नगदी का बाक्स), केबिनेट और आलमारियाँ, ताले जो आपको **सुरक्षा का पूण आश्वासन देते हैं।** और बाजार में दूसरे मिलने वालों की अपेक्षा कहीं बेहतर हैं। गोदरेज की वस्तुएँ भारत में धन और बेशकीमती चीजोंकी रक्षा करनेमें अपना सानी नहीं रखतीं। गवर्नमेण्ट, बैंक, व्यापारिक संस्थायें, जनता तथा समस्त देश अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति की रक्षा के लिए गोदरेज की वस्तुओं पर ही विश्वास करता है।

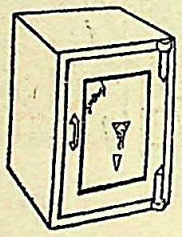

१६–कोनेवाली बैंड जोड़रहित तिजोरियाँ

६–पेटेंट एवर–टाइट आलमारी

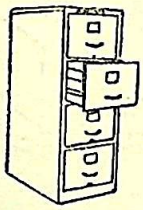

पेटेंट बाल–स्लाइड फाइलिंग केबिनेट

शेल्विंग रेक

गोदरेज एण्ड बाइस मेन्यु. कं., लि०. कलकत्ता (१०२, क्लाइव स्ट्रीट)

कन्ट्रोल के मूल्य

(१) साइकिल टायर इम्प्रूव्ड टूरर	४।।।)	प्रति टायर
,, ,, टूरनामेंट	४।।।)	,, ,,
(२) साइकिल ट्यूब वार ग्रेड	२=)	,, ट्यूब

विक्रेताओं और ग्राहकों की जानकारी के लिये प्रचारित

USEFUL EMPLOYMENT OF R.B.S. RUPEES BRAIN & STRENGTH

माँग पूरी करने का प्रयत्न किया जाता है; पर युद्धजन्य कठिनाइयों से, पूर्ति में कमी और देरी हो सकती है।

प्रस्तुत कर्ता

आर बी एस जेनरवर मिल्स

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

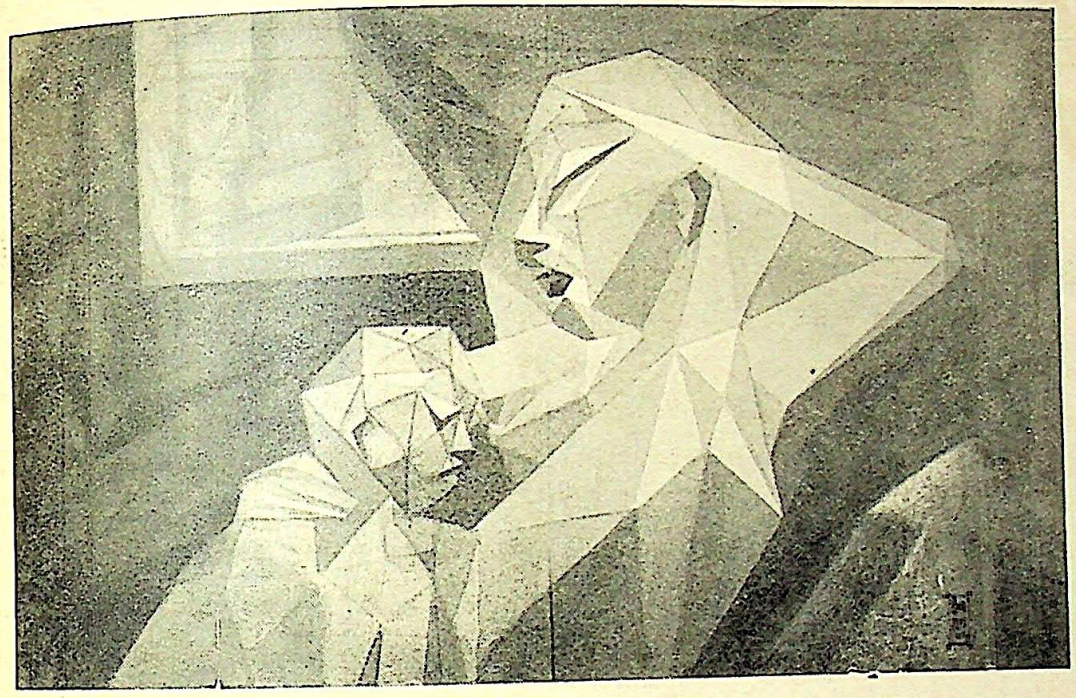

अकालके समय एक भूखी माँ और उसका बच्चा [चित्रकार : श्री शैलेन्द्रकुमार मुखोपाध्याय

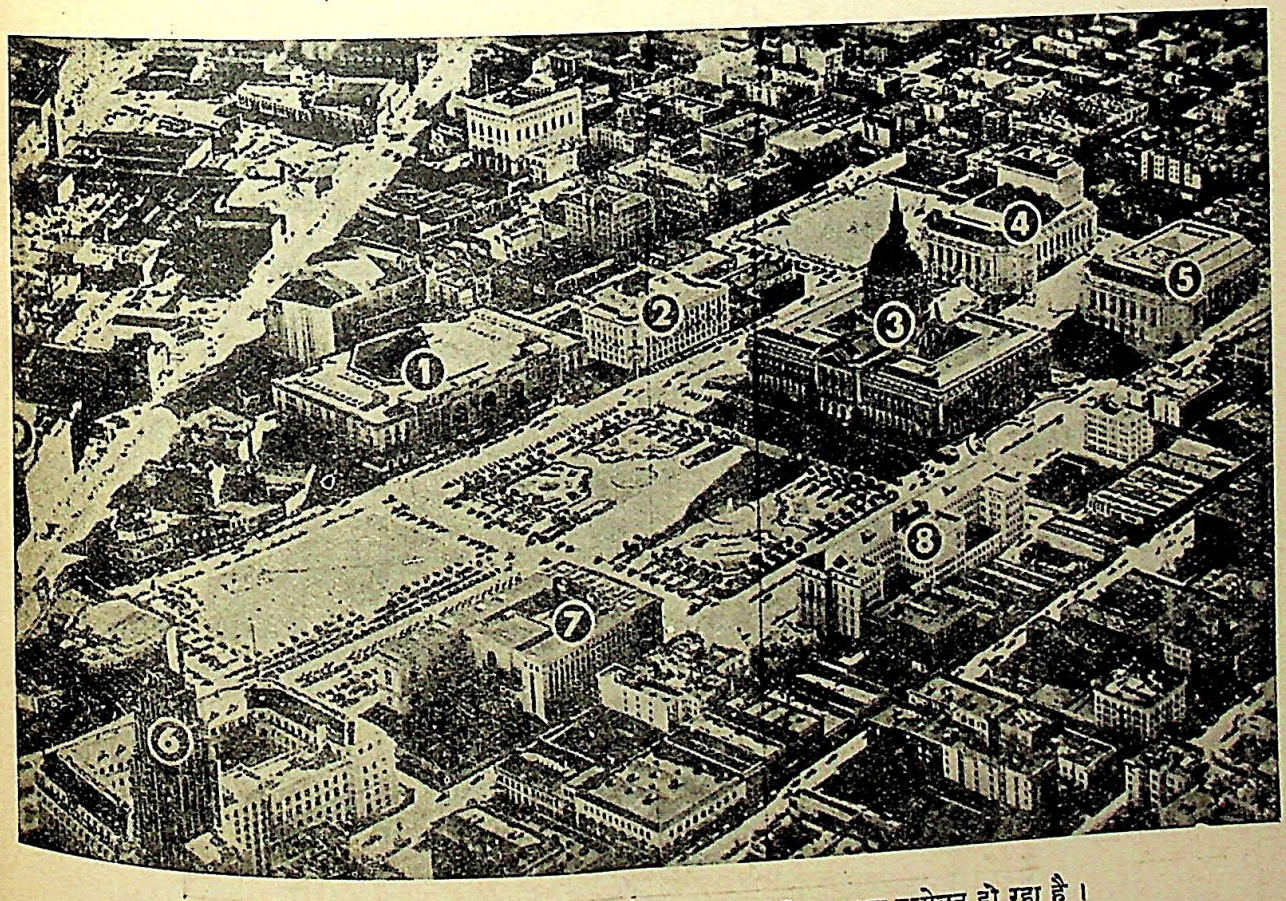

अमरीकाके प्रसिद्ध नगर सेनफ्रांसिस्कोका एक दृश्य, जहाँ विश्व-सुरक्षा-सम्मेलन हो रहा है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[श्री राधाचरण बागची

नादिराकी मृत्यु

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३५, अंक ६] कलकत्ता, जून, १९४५ [पूर्णांक २१०

विषमता

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

दुपहरियाका घाम—धधकता देख जेठका घाम!
सूर्य-किरणोंने लौसे लाल, क्रोधसे विस्फारित विकराल;
खोल अंगारोंके दृग-द्वार, जगाए ज्वालामुखी अपार।
चिताकी लोहित लपट समान, जल रहा आसमान सुनसान।
धधकती धरा उगलती धुआँ, खदकते ताल-तलैया-कुआँ।
चीरती चली जा रही नील शून्यको ऊपर-ऊपर चील।
अलस जड़िमासे भाराक्रान्त, वन्य पशु ग्रीष्मातपसे क्लान्त।
कहीं भी नहीं पथिकका गमन, तनिक भी नहीं सनकता पवन।
अंगारा-सा घाम, हाथमें हलस्थाणुको थाम;
रहा वह ऊसर धरती जोत, उगे संकटके मोथे जोत।
खेतमें भूखा कमकर एक, भाग्यका ठूँठा मानव एक।
दूर, जगके सौरभसे दूर, दूर जीवनके मधुसे दूर;
छाँहसे वंचित नंग-धड़ंग, पसीनेसे लथपथ प्रत्यंग।
एकरस जलता रेगिस्तान, एकरस छाया-वन छविमान;
एकरस बादर या तूफ़ान, एकरस कौंधेकी कड़कान।
चल रहा फार चमकता तीव्र, मोड़पर जीवनके अति शीघ्र;
चल रहा फार खोदता गर्त्त, फाटता पर्त्त, पर्त्तपर पर्त्त।
चल रहे बैल पाँतरा बाँध, चल रहे काँटोंका पथ लाँघ;
प्रहारों, विषदाओंको झेल, रुकावटके ढेलोंको ठेल;
चल रहे दायें-बायें घूम, चल रहे आगे-सीधे झूम।
सृष्टिका परम अनूठा फूल, धूपमें झुलस फाँकता धूल।
जलाता जीवनका कर्पूर, तपाता तन-कंचनका नूर,
कि फूले मिट्टीमें मुस्कान, कि फूलें भूखोंके अरमान,
कि लहरे अग-जगमें उल्लास, मिटे जीवन-चातककी प्यास।
जानते इस श्रमका तुम मूल्य? नग्न जीवनका निश्चित मूल्य?
क्षीण रोटीका टुकड़ा एक, आमकी चटनी, मिर्चा एक;
तीन या चार सेर ही अन्न! इन्हींसे लाखों क्षुधित प्रसन्न!
उगलती दावा-ज्वाल, ज्येष्ठकी प्रखर किरण विकराल,
सरितमें मीन तड़फड़ा उठे, प्राण जीनेसे घबरा उठे।
प्याससे कण्ठ चटपटा उठे, घामसे विश्व छटपटा उठे।
दिवस दुपहरका दारुण स्पर्श, न तनमें पुलक, न मनमें हर्ष।
यहाँसे वहाँ, वहाँसे यहाँ, विकल मन-पंछी बैठे कहाँ?
मौन वाणीका मुखर सितार, भग्न वाणी-वीणाका तार।
खड़े तरु-वृन्द मौन साधार, मौन अम्बरका गहन प्रसार।
पसरकर अन्ध-विवरमें तंग, पड़े दम साध अवाक् भुजंग।
कुरद नखसे मिट्टीको श्वान, जुड़ाते बैठ छाँहमें प्राण।
ढूँढ़ती छाया छाया म्लान, ढूँढ़ती जीवनका अनुपान।
प्रखर चण्ड आतंक, ग्रीष्मके शासनका आतंक;
बना खसका बँगला वह एक, घिरा खसकी टट्टीसे देख;
लहरते पंखा पंख पसार, वितरते झिर-झिर मन्द बयार;
सूदका पाला शोषक एक, गाँठका पूरा बाबू एक;
अहंकी आत्मा शापित एक, काठका पुतला जड़वत एक;
सेजपर चिर सुखमें आसीन, इन्द्रधनुषी चिन्तनमें लीन—
"मूलधन एक, ब्याज हो चार, सृजित, वर्द्धित हो विविध प्रकार;
भरे प्रतिदिन वैभव-भण्डार, प्रदेशोंमें फैले व्यापार;
द्रव्य जीवन-अर्चनका तन्त्र, निखिल त्रिभुवनका मोहन मन्त्र;
द्रव्य ही धर्म-दण्ड दुर्वार, जगत-जीवनका सुखमय द्वार;
उमड़ जिसमें शत-शत अभिलाष, खिलाते पतझड़में मधुमास;
पूर्वके तपसे आभासीन, प्रतिष्ठित धनपति धर्म-धुरीण;
पूर्वके सत्कर्मोंसे हीन, दलित जन धन-बल-वंचित दीन।"
मनोनभमें उसके अभिराम, कल्पनाके सावन घन श्याम;
घुमड़ घिर करते स्वप्न-विलास, तपनमें फैला मन्दोच्छ्वास।
यह मनुज नहीं, जिसमें मानव, यह नर, जिसमें निर्दय दानव;
यह मनुज नहीं, जिसके लोचन, जो करते दुखका अवलोकन;
यह नर, जिसके दोनों लोचन, हतप्रभ, निद्रित, मोहित क्षण-क्षण;
जगमें जो धन-पदसे पूजित, जो मद-मत्सरसे आराधित;
युग-धर्म, सत्यसे पर वंचित, नवचेतनतासे विमुख पतित;
स्रष्टाकी कृतिका अमिट भूल, ये प्रगति मार्गके विषम शूल।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत स्वाधीन होगा !

श्रीमती फ्रांसेस गुन्थर

["आज भारत अपनी स्वाधीनता-प्राप्तिके सिंहद्वारपर खड़ा है। यह स्वाधीनता उसे इंग्लण्ड द्वारा दानके रूपमें नहीं मिलेगी; वरन् एकमात्र भारतीय जनता ही अपने रक्त, श्रम, आँसुओं और बुद्धि-बलसे इसे प्राप्त करेगी"—इन शब्दोंमें विदुषी लेखिकाने Revolution in India (भारतमें क्रान्ति) नामक अपनी पुस्तकमें भारतीय स्वाधीनताकी समस्यापर बड़े अधिकारपूर्ण ढंगसे प्रकाश डाला है। प्रस्तुत लेखमें —जो आपकी इसी पुस्तकके आधारपर तैयार किया गया है—आपने बतलाया है कि ब्रिटेन क्यों भारतको आज़ाद नहीं करना चाहता और किस तरह भारत स्वाधीनता-प्राप्तिकी ओर अग्रसर हो रहा है। —सं०]

भारत और ब्रिटेनका सम्बन्ध कुछ ऐसा पेचीदा हो चला है कि अंगरेज़ उसके आर्थिक पहलूकी चर्चा सार्वजनिक रूपसे बहुत कम करते हैं। पर दरअसल भारतसे ब्रिटेनका पार्थिव सम्बन्ध ही अधिक है। उसने १५ अरब रुपए भारतमें खोले गए अपने उद्योग-धन्धोंमें लगा रखे हैं (यह ब्रिटेन द्वारा विदेशोंमें लगाई गई पूँजीका चतुर्थांश है) और ब्रिटेनके खरबों रुपएकी लागतके उद्योग-धन्धे एकमात्र भारतीय बाज़ारपर निर्भर करते हैं। अतएव भारत-ब्रिटेनके सम्बन्धका प्रश्न यथार्थमें एक गम्भीर आर्थिक समस्या है।

ब्रिटिश व्यापारका सारा ताना-बाना भारत ही को प्रमुख आधार बनाकर बुना गया है। भारत ब्रिटेनकी अर्थनीतिका उज्ज्वलतम रत्न है। ५० करोड़की आबादीवाले ब्रिटिश साम्राज्य में ४० करोड़ तो महज़ भारतीय ही हैं। अतः अगर भारत स्वाधीन हो जाता है, तो ब्रिटेनके इस फैले हुए और पेचीदा अर्थनीतिक यन्त्रका क्या होगा? अगर भारत आज़ाद हो जाता है, तो ब्रिटेनकी पूँजी, उद्योग-धन्धों और शाही व्यापार-चक्रका क्या होगा? ब्रिटिश भारतके उद्योग-धन्धोंमें पूँजी लगानेवाले लाखों व्यक्तियों और लंकाशायर आदिके लाखों कारीगरोंका क्या होगा? यथार्थमें इंग्लैण्डका सीधा सम्बन्ध इन्हीं प्रश्नोंसे है, और इन्हींके बारेमें उसे स्वच्छन्दता और ईमानदारीसे कुछ कहना चाहिए। उसे बेवकूफ़ रट्टू तोतेकी तरह हिन्दू-मुसलमानों तथा राजाओंके पुराने झगड़ों और गोरे-प्रभुओंकी ज़िम्मेदारीका दावा ही बार-बार नहीं दोहराए जाना चाहिए। मेरा अनुमान है, वह इन बातोंको बार-बार इसलिए दोहराता है कि असली प्रश्नोंका सामना करनेसे वह डरता है। मैं समझती हूँ, उसे डरनेकी ज़रूरत नहीं। उसे इन प्रश्नोंपर विचारकर इन्हें हल करना चाहिए और आजकी तरह कीचड़-सने हाथोंके बजाय साफ़ हाथोंसे दुनियाके सामने आना चाहिए। इतिहासमें कई बार इंग्लैण्डको मुँह दिखानेकी जगह नहीं रही है; पर फिर उसने अपनी स्थिति को सँभाल लिया है। भारतको दवाए रखकर वह बहुत-कुछ या सब-कुछ खो सकता है। पर भारतको आज़ादकर ब्रिटेन न सिर्फ़ अपने-आपको ही आज़ाद करेगा; बल्कि उस कामनवेल्थको भी बचा लेगा, जो हमारे समयका एक बड़ा मौलिक, मूल्यवान और स्तुत्य राजनीतिक संघ है।

स्वाधीन भारत और ब्रिटिश कामनवेल्थके अर्थनीतिक सम्बन्धोंको पुनर्गठित और पुनर्विभाजित करनेका काम कठिन है—और विशेष रूपसे इसलिए कि भारतपर अपना एकाधिपत्य स्थापितकर इंग्लैण्डने न सिर्फ़ भारतके संतुलित अर्थतन्त्रको ध्वस्त कर दिया है, बल्कि ऐसा करनेमें अपने संतुलित अर्थतन्त्रको भी। इस आधिपत्यका प्रभाव दोनों देशोंके लिए ही हानिकर हुआ है। भारत ज़रूरतसे ज़्यादा कृषि-प्रधान हो गया और आवश्यक उद्योग-धन्धे भी यहाँ जनम और पनप नहीं सके। इधर ही इंग्लैण्डमें ज़रूरतसे ज़्यादा उद्योगीकरण हो गया और उसे यहाँकी आबादीका पेट भरने-लायक़ अन्न भी आज वहाँ नहीं उपजता। भारतको कच्चे मालका भाण्डार तथा अपने-आपको सस्ते मूल्यपर कच्चा माल खरीदकर मँहगे दामोंमें बनी हुई चीज़ें बेचनेवाला देश बनाकर इंग्लैण्डने कम समयमें काफ़ी धन तो ज़रूर कमाया; पर आज खाद्यके लिए इंग्लैण्ड और शस्त्रोंके लिए भारत अमरीकाके मोहताज हैं। अतएव भारत और इंग्लैण्डके अर्थनीतिक सम्बन्धोंका पुनर्गठन आसान बात तो नहीं है; पर उसे असंभव भी नहीं कहा जा सकता। इस सम्मानप्रद, परिश्रम-सापेक्ष और रचनात्मक कार्यके लिए वर्त्तमान अर्थनीतिक सम्भ्रमकी सभी अवदानोंकी आवश्यकता है।

भारतको स्वाधीन करनेमें इंग्लैण्डकी दो प्रमुख आशंकाएँ हैं। पहली तो यह कि ऐसा करनेसे उसके यहाँका सारा अर्थतन्त्र छिन्न-भिन्न हो जायगा—खास तौरसे लंकाशायरका सूती मिलोंका कारबार। दूसरी यह कि शायद भारतमें साम्यवाद हो जाय, जिससे वह ब्रिटेनके भारतीय उद्योगोंका अन्त कर दे तथा १५० वर्षकी ब्रिटिश ट्रस्टीशिपमें अपने ऊपर हुए ब्रिटेनके भारी-भरकम कर्ज़को मंसूख कर दे। ये दोनों आशंकाएँ निराधार नहीं हैं। लंकाशायरको निःसन्देह अपने लिए दूसरे बाज़ार ढूँढ़ने पड़ेंगे; क्योंकि ब्रिटिश जहाज़ों द्वारा, ब्रिटिश मूल्योंपर, सात समुद्र-पारसे कपड़ा मँगानेके बजाय—जिसके लिए कि पिछले १५० वर्षोंसे भारतको मजबूर किया जा रहा है—भारतके पास अपनी आवश्यकताका कपड़ा स्वयं तैयार करनेके सभी प्राकृतिक साधन हैं। रही साम्यवादकी बात, सो भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश मज़दूर-दलसे अधिक साम्यवादी नहीं है। किसानोंसे लेकर बड़े-बड़े उद्योगपति इसके सदस्य हैं। यह सच है कि कांग्रेसने अपने अर्थ-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीतिक कार्यक्रममें प्रमुख उद्योगों एवं सेवाओं, खनिज उपकरणों, रेलों एवं जलमार्गों, जहाज़रानी एवं सार्वजनिक यातायातके अन्यान्य साधनोंपर राजकीय नियन्त्रणकी सिफ़ारिश की है ; पर यह प्रवृत्ति आज सभी जनतन्त्र या एकतन्त्र देशोंमें आवश्यक समझी जा रही है। यदि भारतकी आज़ादीका प्रश्न शान्तिपूर्ण समझौते द्वारा सुलझाया जाता, तो राष्ट्रीय ऋणको मंसूख करने की गांधी या नेहरूने कल्पना भी न की होती। हाँ, युद्ध-जनित क्रान्तिके बाद भारत अपने-आपको इस राष्ट्रीय ऋणको चुकानेके लिए बाध्य समझेगा या नहीं, यह एक सर्वथा दूसरा प्रश्न है।

'हमारा अपना' नहीं छोड़ेंगे !

सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि जब मि० चर्चिल यह कहते हैं कि 'जो हमारा अपना है, उसे हम रखेंगे' ; तब शायद वे 'हमारा अपना' खो देनेकी संभावनासे भी अनभिज्ञ नहीं हैं। सच बात तो यह है कि 'हमारा अपना'से मि० चर्चिलका अभिप्राय उसीसे है, जो उनका 'अपना' नहीं है। ज़रा विचार करने पर हमें पता चलता है कि 'हमारा अपना'से उनका तात्पर्य डोवर के श्वेत पठार या हैरोके खेलके मैदानोंसे कदापि नहीं है ; बल्कि उनका अभिप्राय है भारतसे। पर सारी दुनिया समझती है, और शायद अपने मनमें मि० चर्चिल भी, कि भारतको वे ग़ुलाम नहीं रख सकेंगे।

एक बार अमरीकावासियोंको सम्बोधित करते हुए मि० चर्चिलने कहा था—'इंग्लैण्डके लिए भारतको छोड़ देना शक्य नहीं है, क्योंकि प्रति १० में से २ अंगरेज़ भारतपर निर्भर करते हैं।' (कुछ लोगोंका कहना है १० में से ८) यथार्थमें मि० चर्चिलका 'निर्भर करने'से क्या तात्पर्य है ? यह बड़ा अभागा शब्द है, और यदि यह बात सही है, तो समझमें नहीं आता कि कोई भी अंगरेज़ भारतपर क्यों निर्भर करता है ? उनमें आखिर ऐसी कौन-सी खामी या खराबी है कि वे किसी दूसरी चीज़ या दूसरे व्यक्तिपर निर्भर करें ? क्या यह स्वीकार करना उनके लिए अपमानकी बात नहीं है ? मि० चर्चिलके इस कथनको हम गंभीरताके साथ ग्रहण कर लेते हैं ; पर हमें सोचना चाहिए कि यदि जापान भी कहे कि चूँकि १० में से २ जापानी चीनपर निर्भर करते हैं, अतः वह चीन नहीं छोड़ सकता, तो यह बात कितनी घातक होगी ?

भारतके सम्बन्धमें मि० चर्चिलकी आशंका इन शब्दोंमें और भी पूर्ण रूपसे व्यक्त हुई है : "जैसे भी हो, भारतकी हानि हमारे लिए अन्तिम और घातक होगी। यह उस विधिका एक अंग होगी, जो हमें एक छोटी शक्तिकी स्थितिमें पहुँचा देगी।" मि० चर्चिलके गुणों और अपने देशके लिए की गई उनकी महान सेवाओंका आदर करते हुए भी मुझे कहना पड़ेगा कि उनका यह विचार सरासर अर्थनीतिक पुरोगामिता है। भारतका मुक्त होना इंग्लैण्डके लिए न तो हानि होगी, न अन्तिम या घातक ही। अन्य छोटे और बड़े राष्ट्र जब बिना भारतपर निर्भर किए भलीभाँति रह रहे हैं, तो इंग्लैण्ड क्यों नहीं रह सकता ? अंगरेज़ोंको इस भ्रान्तिपूर्ण भावुकतासे ऊपर उठना चाहिए कि अगर इंग्लैण्ड दुनियाके अन्य राष्ट्रोंके समान दर्जेका हो गया, तो इंग्लैण्ड या दुनियाका खात्मा ही हो जायगा !

ब्रिटिश सरकार और अमरीकन पत्र अभी तक भी भारतको ब्रिटिश ताजका उज्ज्वलतम रत्न कहते हैं। इस कथनका रूप भले ही हो ; पर अब इसका कोई अर्थ नहीं है, इसमें कोई जान नहीं है। अब इसका प्रतिवाद करना आवश्यक है। पर यथार्थता—जो न उज्ज्वल है और न रत्न-जैसी ही—यह है कि आज दुनिया में जो राजनीतिक जुर्म हो रहे हैं, भारत उन सबका मूलाधार है। आज भारतमें लड़ाइयाँ, खून, ज़ब्तियाँ, दमन और सत्यका जो हनन प्रभु—इंग्लैण्डके प्रभु—के नामपर हो रहा है, वही दुनियाके विभिन्न भागोंमें जर्मनी, इटली और जापानके प्रभुओंके नामपर भी हो रहा है।

प्रधान-मन्त्री होनेसे पहले मि० चर्चिलने कहा था—"भारतीय जीवनके प्रभावपूर्ण नियन्त्रणको छोड़नेका हमारा कोई इरादा नहीं है। यथार्थमें बादशाहके मुकुटके उस सबसे उज्ज्वल और मूल्यवान रत्नको, जो हमारे सब अधीन देशों और उपनिवेशोंसे बढ़-चढ़कर ब्रिटिश साम्राज्यकी शक्ति और गौरवका प्रतीक है, त्यागनेका हमारा कोई विचार नहीं है।" अतः जब जापान कहता है कि चीन जापानी सम्राटके मुकुटका सबसे उज्ज्वल और मूल्यवान रत्न है, या हिटलर कहता था कि पोलैण्ड और फ्रांस जर्मन साम्राज्यकी शक्ति और गौरवके प्रतीक हैं, तो निःसन्देह इन दावोंका नैतिक मूलाधार भारत ही रहा है।

पर क्या वास्तवमें भारत ब्रिटिश साम्राज्यकी शक्ति और गौरवका प्रतीक है ? दरअसल तो वह ब्रिटेनकी लूट और चोरी का ही प्रतीक है। ब्रिटिश साम्राज्यकी शक्ति और गौरवका यथार्थ प्रतीक तो हैं मि० चर्चिलका रागात्मक गद्य (यद्यपि हर बार उसका अर्थ नहीं), अंगरेज़ कवियोंकी कविताएँ और उन स्वाभिमानी लोगोंका विवेक, जो केवल अपने ही लिए नहीं, बल्कि सर्वसाधारणके लिए स्वाधीनतामें विश्वास करते हैं। अभी हाल ही में प्रकाशित वैदेशिक नीतिकी एक रिपोर्टमें भारतके सम्बन्धमें लिखा गया है—"बिना भारतीय नेताओंकी सलाहके भारतको युद्धरत-राष्ट्र घोषित करके ब्रिटिश सरकारने, अपने क़ानूनी अधिकारोंके अनुसार काम करते हुए भी, बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक भूल की। इसीके परिणाम-स्वरूप भारतमें और अन्यत्र बड़ा क्षोभ फैला तथा उसकी कटु आलोचना हुई।" यह बहुत बड़ी भूल हो या न हो ; पर भारतमें शासन करनेका ब्रिटेनको कोई क़ानूनी अधिकार नहीं है—है केवल क़ानूनी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज़बरदस्ती, जिसके क़ानूनीपनका एकमात्र आधार आधिपत्य है। अगर भारतमें ब्रिटेनके शासनका कोई क़ानूनी आधार है, तब तो पोलैण्डमें जर्मनीके, अबीसीनियामें इटलीके और चीनमें जापान के शासनका भी क़ानूनी आधार है। तब हम यह लड़ाई किस लिए लड़ रहे हैं?

इस दलीलसे पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता कि भारतपर ब्रिटेनका आधिपत्य तो २०० वर्ष पुराना है, इसलिए अब गड़े मुर्दे उखाड़नेसे क्या लाभ? पर दरअसल यह अतीत ही तो वर्त्तमानका कारण है। आज लन्दनपर इसीलिए जर्मन बम गिर रहे हैं कि गत वर्ष भारतके उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रदेशमें ब्रिटिश बम गिरे थे। अगर एक साल तक कोई काम बुरा रहता है, तो २०० वर्षोंमें वह कोई अच्छा नहीं हो जाता; बल्कि वह और २०० गुना बुरा हो जाता है। अगर खरदिमागीसे हम २०० वर्ष पुराने बुरे कार्योंके परिणामोंको स्वीकार कर लेते हैं, तो आज डिक्टेटरोंसे लड़नेकी क्या ज़रूरत है? हमें चुपचाप लम्बी तानकर चैनसे सो जाना चाहिए—और २०० वर्ष बाद उनका आधिपत्य भी उतना ही क़ानूनी हो जायगा, जितना कि हमारा है!

किसकी स्वाधीनता?

अंगरेज़ जब यह कहते हैं कि जर्मनीके अधीन होनेसे वे लड़कर मर जाना ज़्यादा पसन्द करेंगे, तब हम उनकी पीठ ठोंकते हैं। पर जब भारतीय ब्रिटिश आधिपत्यके आगे झुकनेके बजाय अपनी स्वाधीनताके लिए लड़ते हैं, तो उन्हें बुरा लगता है। वे कहते हैं कि यह हमारे संकटसे लाभ उठाना अतएव असम्माननीय है। जब भारतीय उन्हें याद दिलाते हैं कि अंगरेज़ोंने वर्षों तक लगातार भारतीयोंकी परिस्थितिका असम्माननीय ढंगसे अनुचित लाभ उठाकर उन्हें अपने अधीन किया है, तो वे कहते हैं कि गड़े मुर्दे उखाड़नेसे अब लाभ ही क्या? जब भारतीय कहते हैं कि अच्छा, पुरानी बातोंको जाने भी दें, पर अब तो हमें आज़ाद कर दें; तो अंगरेज़ कहते हैं—'अभी नहीं, फिर कभी'। पिछले २५ वर्षोंसे अंगरेज़ यही कहते चले आ रहे हैं। ...साथ ही अब वे यह भी कहने लगे हैं कि तुम्हें अंगरेज़ों, चेकों, पोलों और डचोंकी स्वाधीनताके लिए लड़ना चाहिए। पर अगर तुम अपनी स्वाधीनताके लिए लड़ोगे, तो या तो जेल भेज दिए जाओगे या प्राणदण्ड पाओगे।

अंगरेज़ भारतपर अपनी डिक्टेटरशिप क़ायम रखनेके लिए तीन बड़ी काली और भौंड़ी दलीलें देते हैं—मुसलमानोंके हित, राजाओंकी रक्षा और बाहरी आक्रमणका खतरा। पर सच पूछा जाय, तो ब्रिटिश शासन इन तीन समस्याओंका कोई हल नहीं करता, बल्कि उन्हें स्थायी रूपसे खराब कर रहा है। अगर भारतका धन क़ानूनी तौरपर अंगरेज़ों द्वारा न लूटा जाकर भारतीयोंके जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुख, कृषि और उद्योगोंकी उन्नति में लगाया जाता, तो स्वतन्त्र और समृद्ध भारतमें इन समस्याओं का स्वाभाविक ढंगसे कभीका हल हो गया होता। हिन्दुओं-मुसलमानोंका मनमुटाव—जो अधिकांशतया ग़रीबी और ... के कारण है – उसी तरह मिट जायगा, जिस तरह कि ... और प्रोटेस्टेंटोंका मिट गया। देशी नरेश एकमात्र ब्रि... सहायतासे भारतके एक-तिहाई भागपर निरंकुश स्वेच्छाचा... पूर्ण शासन कर रहे हैं। कांग्रेस द्वारा देशी राज्योंमें लोकत... भावनाका प्रसार करनेके जो प्रयास हुए हैं, उनका राज... बजाय ब्रिटिश अधिकारियोंकी ओरसे अधिक विरोध हुआ... क्योंकि ये राजाओंको जान-बूझकर सामन्तोंके रूपमें रखना च... हैं। रही बाहरी आक्रमणकी बात, सो भारतकी इतनी बड़ी ... संख्या और पर्याप्त प्राकृतिक साधनोंसे अवश्य ही उसकी ... करने लायक़ सुसज्जित सेना तैयार की जा सकती है। हि... महायुद्धमें भारतीयोंने कोई १२-१३ लाख सैनिक और ... तीन अरब रुपयोंकी सामग्री दी थी और लगभग इतनी ... आर्थिक सहायता साम्राज्यकी की थी। अगर वे अपने वि... के लिए इतना कर सके, तो अपने लिए और भी अधिक ... सकते हैं।

भारत स्वाधीन होगा!

यह सच हो सकता है कि शायद कुछ भारतीय अंगरेज़ ... गुलामीसे मुक्त न होना चाहें। १७७६ में कुल अमरीकन ... यही चाहते थे। शायद कुछ फ्रांसीसी भी ऐसे हों, जो जर्मन ... आधिपत्यसे मुक्त नहीं होना चाहते रहे हों। पर ऐसे लोग ... अधिक महत्व नहीं रखते। आज भारत अपनी स्वाधीनता-... सिंहद्वारपर खड़ा है। यह स्वाधीनता उसे इंग्लैण्ड द्वारा ... रूपमें नहीं मिलेगी, बल्कि एकमात्र भारतीय जनता ही ... रक्त, श्रम, आँसुओं और बुद्धि-बलसे इसे प्राप्त करेगी। ... इतिहासमें भारतीयोंकी यह क्रान्ति अपने सबल आत्म-विश्व... वीरतापूर्ण उदारता, सभ्य गौरव और साहसिकताके लिए ... तीय है। क्या हम इस क्रान्तिको पुराने ढंगके आतंकवाद, ... हत्याओं या भीषण गृह-युद्धके रूपमें परिवर्त्तित करनेकी ... दारी अपने ऊपर लेंगे? अगर हम इस क्रान्तिको भंग क... ज़िनोविफ़के-से नक़ली पत्र ईजाद करने, भ्रान्तियाँ फैलाने, ... और शत्रुताको प्रोत्साहन देने, भारतको यह बताकर निराश क... कि सारी दुनिया उसके ख़िलाफ़ है, गांधी और नेहरूकी विचा... का विज्ञापन करने और विनाश तथा घृणाकी प्रतिस्पर्धा क... को उकसानेकी चेष्टा करेंगे, तो वही होगा। या हम इस ... की बढ़ती हुई प्रसूति-पीड़ाको सुगम करेंगे? जो शक्तियाँ ... भारतीय क्रान्तिमें काम कर रही हैं, वे रचनात्मक हैं—उनमें ... है, दूरदर्शिता है और है कल्पना-शक्ति। वे आधुनिक ... विश्वसे सहयोग करनेको तैयार हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यद्यपि इस बातकी बहुत कम संभावना है ; पर यदि अमरीकन जनमत ब्रिटिश जनमतको इतना प्रबल बना सके कि वह ब्रिटिश अधिकारियोंपर एक प्रतिनिधि भारतीय सरकारके पक्षमें शासनाधिकार छोड़नेके लिए पर्याप्त दबाव डाल सके, तो कुछ हो भी सकता है। ऐसी भारतीय सरकारके सहयोगसे संयुक्त-राष्ट्रोंके सुलझानेके लिए भारतमें कोई पेचीदा समस्याएँ नहीं रह जायँगी और वे युद्धके साथ शान्तिको जीतनेकी ओर सारी शक्ति लगा सकेंगे। ऐसा करनेसे तीसरे विश्व-युद्धकी हुंडियोंके सिवा हम कुछ भी नहीं खोएँगे और कम-से-कम हमें अपना स्वाभिमान तो मिलेगा ही। पर ऐसा करनेके लिए ब्रिटेनको भारत-सम्बन्धी वैदेशिक नीतिमें क्रान्ति होना ज़रूरी है। क्या ऐसी क्रान्ति संभव है ?

सन् १८५७ में रिचार्ड कावडनने जान ब्राइटको एक पत्र लिखा था, जिसमें कहा था—"वह दिन बड़ा सुखद होगा, जब इंग्लैण्डके पास एशियाकी एक एकड़ भूमि भी न होगी। पर यह स्थिति कब आयगी, यह बताना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है ; ...क्योंकि हम कब ऐसे एक व्यक्तिके भी सम्पर्कमें आते हैं, जो इस विचारसे आतंकित नहीं है कि यदि इंग्लैण्डसे भारतीय साम्राज्य छिन गया, तो वह बरबाद हो जायगा ? अतः मुझे अपने उन सूअरों और भेड़ोंकी रखवालीके लिए ही निश्चिन्त छोड़ दो, जो कि इस भ्रान्तिसे मुक्त हैं !"

हिन्दुस्तानी-प्रचार

डाक्टर जाफ़र हसन

हिन्दुस्तानी-भाषाका प्रश्न हमारे देशके अत्यन्त कठिन प्रश्नोंमें से एक है। एक तरफ़ प्रान्तीय भाषाएँ बढ़ती हुई अहमियत हासिल कर रही हैं, दूसरी तरफ़ हिन्दी-उर्दूकी फूट ज़्यादा होती जा रही है। उसपर तुर्रा यह कि सारे देशपर अंगरेज़ी छाई हुई है, और इसका ज़ोर धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा है। अब वह समय नहीं रहा कि अंगरेज़ी केवल सरकारी दफ़्तरों और पाठशालाओंकी ज़बान हो। अब तो अंगरेज़ी हमारी व्यापारी, राजकारी, साइन्सी और समाजी ज़बान भी होती जा रही है। अक्सर साधारण व्यापारियोंसे लेकर बड़े-बड़े नाज़िरों तकके दुकानों, फर्मों और कम्पनियोंके नाम, साइनबोर्ड और दफ़्तरी कारबार सभी अंगरेज़ीमें होते हैं। बैंकों और कारखानोंका भी यही हाल है। कांग्रेस, मुस्लिम-लीग, हिन्दू-महासभा और दूसरी राजकारी संस्थाओंका काम-काज ज़्यादातर अंगरेज़ीमें ही होता है। तमाम रेजोल्यूशन अंगरेज़ीमें ही लिखे जाते हैं। नेताओंके पयाम और बयान अंगरेज़ीमें निकलते हैं। इनका हिन्दी-अनुवाद या उर्दू-तर्जुमा अगर छपता भी है, तो ग़लत-सलत या अधूरा। बनारसकी हिन्दू-यूनिवर्सिटी और अलीगढ़की मुस्लिम-यूनिवर्सिटी दोनोंके यहाँ अंगरेज़ीका राज है। समाजमें भी अंगरेज़ीका बोलबाला होता जा रहा है। शादी-ब्याहके कार्ड छपते हैं, तो अंगरेज़ीमें। समाज-मुलाकातोंमें भी बातचीत होती है, तो अंगरेज़ीमें। बाप बेटेको, बेटा माँको, बीबी मियाँको और पति पत्नीको खत लिखता है, तो अंगरेज़ीमें। और यह हाल तमाम शहरोंके खाते-पीते घरानोंका है।

इसीलिए मेरा यक़ीन है कि हिन्दी हो या उर्दू, दोनोंमें इतना आपसी वैर नहीं, जितना दोनोंका अंगरेज़ीसे है। हिन्दी और उर्दूमें थोड़ा-सा आपसी झगड़ा ज़रूर है ; मगर दोनोंको जितना नुक़सान अंगरेज़ीके कारण हो रहा है, उसका पाई भी आपसके झगड़ेकी वजहसे नहीं हो रहा है। अगर हिन्दी-प्रेमी और उर्दूके हामी एक-दूसरेका पीछा करना छोड़कर अपने-अपने घर-बारको अंगरेज़ीसे और हिन्दुस्तानको हद तक भूली-बिसरी ज़बानोंसे बचानेकी कोशिश करें, तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-उर्दू दोनोंकी भलाई होगी, दोनों आप-ही-आप एक-दूसरेके क़रीब होती जायँगी और इन दोनोंके मेलसे हिन्दुस्तानीका प्रचार होगा। गोया हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए यह प्रोपेगेण्डा अवश्य करना चाहिए कि हिन्दी-प्रेमी और उर्दूके हामी अपनी-अपनी ख़र मनायँ, आपसके झगड़े-टण्टे कम करें, जिससे इन दोनोंको घाटा हो रहा है।

मिसालके तौरपर देखिए कि उर्दू-घरानोंमें उर्दूकी कैसी बेइज़्ज़ती हो रही है, और हिन्दी-प्रेमियोंके कारण हिन्दीका कैसा घोर अपमान हो रहा है। सरकारी ज़बान उर्दू हो या हिन्दी, देशके हर प्रान्तमें हज़ारों मालदार और तालीम पाए हुए खानदानोंके सपूत अंगरेज़ीकी पूजा करते हैं। बच्चे और नौजवान सब-के-सब अंगरेज़ी मदरसों, हाईस्कूलों और कालेजोंमें तालीम पाते हैं। माँको ममी, बापको डैडी, खालाको आण्टी और मामाको अंकिल कहना मासूम बच्चोंको सिखाया जाता है। पिताजी या अब्बाजान कहलाए जानेमें इन्हें शर्म आती है। आपको याद होगा कि दो-तीन बरस पहले कानपुरमें उर्दूकी कुल हिन्द कान्फ्रेन्स हुई थी। इस कान्फ्रेन्सकी तरफ़से बाज रुक्के और दावतनामे तक़सीम हुए थे, जो अंगरेज़ीमें छपे थे। हैदराबादकी हिन्दी-प्रचार-सभाने दावती रुक्का भेजा, तो अंगरेज़ी भाषामें। मैं खुद ऐसे बीसियों उर्दू-घरानोंको जानता हूँ, जहाँ अंगरेज़ी अखबार आते हैं। माहाना रिसाले भी अंगरेज़ीके होते हैं। कई हिन्दी-घरानोंमें एक भी दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र हिन्दीका नहीं आता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

'टाइम्स' डेली या वीकली पढ़ा जाता है। अच्छे हिन्दीके प्रेमी या उर्दूके हामी हैं, जो अंगरेज़ी पत्रोंके पढ़नेसे हिन्दी या उर्दूकी तरक्क़ी चाहते हैं।

हिन्दुस्तानीकी तरक्कीके लिए एक तरीक़ा तो यही है, जिसका मैंने अभी ज़िक्र किया है, यानी लोगोंको यह बताना, समझाना और लगातार प्रोपेगेण्डाके ज़रिए यह यक़ीन दिलाना कि हिन्दीकी तरक्क़ी चाहो या उर्दूकी तरक्क़ी, हर हालतमें अपने-आपको अंगरेज़ीसे बचाकर अपनी मातृभाषाके सच्चे भक्त बनना लाज़मी है। और अपनी मातृभाषाके सच्चे भक्त बननेके लिए अपनी ज़बान को आसान बनाना लाज़मी है। ज़बानको आसान बनानेके तीन तरीक़े हैं। एक तो यह कि तलफ़्फ़ुज़ या उच्चारण आसान हो और हम चाहे नागरी-अक्षरोंमें लिखें या उर्दू-हरफ़ोंमें, जैसा लिखें, वैसा ही पढ़ें और जैसा बोलते हैं, वैसा ही पढ़ें। मतलब यह कि दोनों लिखावटोंको आसान कर दिया जाय। और आखिर में जो नए-नए शब्द या इस्तिलाहें बनानी पड़ें, उन्हें जहाँ तक बन पड़े, चालू लफ़्ज़ोंकी सहायतासे बनानेकी कोशिश करें। इस कोशिशसे उर्दू और हिन्दी दोनों एक-दूसरेसे क़रीब होती जायँगी और दोनों भाषाओंमें मिले-जुले लफ़्ज़ोंकी जो पूँजी है, उसमें इज़ाफ़ा होगा।

मैं जानता और मानता हूँ कि अदबी उर्दू या साहित्यिक हिन्दीको बदलना मुमकिन नहीं। मुझे हिन्दी-साहित्यसे उतना ही प्रेम है, जितना कि अंगरेज़ी या जर्मन लिटरेचर और उर्दू अदबसे है। मैं कभी नहीं चाहूँगा कि कबीर और तुलसीदास, वृन्द और भूषण, रहीम और मलिक मुहम्मद जायसीके ग्रन्थोंको समझनेवाले और इनसे आनन्द उठानेवाले कम हो जायँ। इसी तरह ग़ालिब, अनीस, हाली और इक़बालके अदबमें जो अनमोल अदबी खज़ाना है, उसकी क़दर हर शख़्स करेगा, जिसे अदबसे लगाव है। ज़ाहिर है कि इन महाकवियोंकी ज़बान बदलना मुमकिन नहीं और न हम यह चाहेंगे कि आइन्दा जो बड़े-बड़े अदीब और शायर हों, वे अपनी ज़बान बदलकर ऐसी ज़बान लिखें, जो किसीको पसन्द न आए। मगर हम यह ज़रूर कर सकते हैं और हमें आपसके फ़ायदेके लिए और खुद अपने फायदेके लिए यह करना ही होगा कि अपने इल्मी, साइंसी और कारोबारी शब्दोंको आसान बनायँ, जो हिन्दी और उर्दू दोनोंके लिए मौजूँ हो सकें। मैं समझता हूँ कि हर इस्तिलाहके लिए किसी ऐसे शब्दकी तलाश करना जो उर्दू और हिन्दी दोनोंमें चल सके, मुमकिन नहीं। मगर थोड़ी-सी कोशिशसे इस क़िस्मके बीसियों हो नहीं, सैकड़ों, बल्कि हज़ारों लफ़्ज बन सकते हैं। मसलन Right Angle को हिन्दीमें समकोण और उर्दूमें ज़ावये क़ायमा कहते हैं। अगर हम सीधा कोना कहें, तो दोनों के लिए आसानी है। Lowland को निम्नभूमि या नशेबी ज़मीन कहनेसे निचली ज़मीन कहना बहरहाल बेहतर है। Law of Diminishing Return के लिए पचीस या तीस साल हुए क़ानून तक़लील हासिलकी डरावनी इस्तिलाह बनाई गई थी। इसीको हिन्दीकी वैज्ञानिक भाषामें क्रमागत ह्रास-नियम कहा जाता है। पाँच-छै साल हुए इसका तरजुमा घटती उपज क़ानून किया गया है, जो हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानोंमें चल सकता है। बिहारकी हिन्दुस्तानी-कमेटीने Planet के लिए चलतारा, Isthmus के लिए ज़मीन जोड़, Strait के लिए पनजोड़, Axiom के लिए आप सच, Postulate के लिए मान सच जैसे शब्द तजवीज़ किए हैं। मेरी रायमें ये लफ़्ज़ बहुत अच्छे हैं और उर्दू और हिन्दी दोनोंमें चल सकते हैं। हिन्दी-प्रेमी ऐसे शब्दोंको छोड़ नए शब्दोंके बनानेमें बिला वजह संस्कृतसे मदद लेते हैं और उर्दूके हामी फ़ारसी और अरबीसे। यह भी एक वजह है कि हिन्दीको हिन्दीके नाममात्र प्रेमियोंसे और उर्दूको उर्दूके नामनिहाद हामियोंसे बड़ा नुक़सान हो रहा है। दोनों अपनी ज़बानको भारी-भारी और भयानक शब्दोंसे कठिन और बोझिल बना रहे हैं। सच्चा हिन्दी-प्रेम बहुत कम लोगोंमें पाया जाता है।

अक्सर हिन्दी-प्रेमियोंके दिल और दिमाग़में अंगरेज़ीसे लगन, संस्कृतकी पूजा और उर्दूका विरोध पाया जाता है। हिन्दीसे लगन, हिन्दीकी पूजा और हिन्दीकी सेवा करनेका ध्यान बहुत ही कम लोगोंको है। यही हाल उर्दूके हामियोंका है। वे उर्दूपर फ़रेफ़्ता (आशिक) हैं। अरबी और इससे ज़्यादा फ़ारसीसे इनके दिल व दिमाग़ मरऊब हैं। और हिन्दीसे कपट है। तभी तो ये लोग आसान लफ़्ज़ोंको छोड़कर भारी-भारी अरबी-फ़ारसीके अल्फ़ाज़ डिक्शनरियोंसे तलाश कर-करके निकालते हैं, और आसानी का ज़िक्र किया जाय, तो कहते हैं—"देखो हिन्दीवालोंको, कैसे संस्कृतके शब्द हमारी ज़बानमें ठूँस रहे हैं।" मैं हिन्दी-प्रेमियों और उर्दूके हामियों दोनोंसे कहता हूँ कि दूसरा फ़रीक माने या न माने, तुम खुद ठीक रास्तेपर चलो। जीत उसीकी होगी, जो अपने बोझको हलका करेगा। संस्कृत-शब्दोंसे लदी हिन्दी और अरबी-फ़ारसी लफ़्ज़ों और तरकीबोंसे लदी उर्दू खुद अपने-आपको ज़्यादा नुक़सान पहुँचाती हैं। इसीलिए मैं हिन्दी-प्रेमियोंसे कहता हूँ कि आपको सबसे ज़्यादा नुक़सान अंगरेज़ी और कठिन हिन्दीकी वजहसे हो रहा है, और इन दोनोंसे होशियार रहिए। उर्दूदानोंको मैं मुखातिब करके कहता हूँ कि आपको हिन्दीसे ज़्यादा नुक़सान नहीं हो रहा है, बल्कि अंगरेज़ीसे और मुश्किल उर्दूसे। लिहाज़ा हिन्दी-प्रेमी हों या उर्दूके हामी, दोनोंका फ़र्ज़ है कि जहाँ तक बन पड़े, अपनी ज़बान और लिखावटको आसान बनायँ। इसका एक तरीक़ा तो यही है कि चालू शब्दोंके सहारे नए-नए शब्द बनाए जायँ और सिर्फ़ मजबूरीकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूरतमें ही हिन्दी संस्कृतसे और उर्दू फारसीसे मदद लें।

आपकी आज्ञासे मैं चन्द और लफ़्ज़ोंको बतौर मिसाल पेश करना चाहता हूँ, जो मेरे खयालमें आसान उर्दू या सरल हिन्दी के अच्छे नमूने हैं। Colour-blind के लिए उर्दूमें अमीउल लौन जैसी तरकीब इस्तेमाल हो चुकी है। मौलवी अब्दुलहक साहबने अंगरेज़ी-उर्दू-डिक्शनरीको तरतीबके वक्त Colour-blind और Colour-blindnessके लिए रंगोदा और रंगोदिया लफ़्ज़ बनाए हैं, जो रंग और अन्धासे रतौंदाके वज़न और तरकीबपर बनाए गए हैं। हम हिन्दी या उर्दूमें रात, रंग और अन्धा तीनों बोलते हैं। लिहाज़ा रतौंदा और रंगोदा बोलना और समझना आसान है। रतौंदा पुराना, रंगोदा नया लफ़्ज है और बहुत अच्छा है। पं० ब्रजमोहन दत्तात्रय क़ैफ़ीने भी बाज बहुत उम्दा लफ़्ज बनाए हैं। मसलन Oil engine के लिए तिलअंजन, Explosive के लिए भकड़ोल। Propaganda के लिए हिन्दी या उर्दूमें कोई निजी लफ़्ज नहीं, और यह अंगरेज़ीके जरिए आया हुआ लातीनी भाषाका शब्द सारे देशमें चल पड़ा है। एक मरतबा Counter Propaganda के लिए मैंने उर्दूमें जवाबी प्रोपेगेण्डाकी नई इस्तिलाह देखी। मुझे खयाल आया कि Counter Propaganda के लिए अगर तोड़ प्रोपेगेण्डा लिखा जाय, तो और बेहतर होगा। इसी वज़न और तरीक़ेपर हम Counter Revolution को तोड़ इंक़िलाब, Counter attraction के लिए तोड़ कशिश, Counter actके लिए तोड़ अमल कह सकते हैं। मुख्तलिफ़ मौक़ोंपर मैंने Floral Tribute के लिए फूल छड़ावा और Reverse या Reversal के लिए पिछलाना और पिछलाव, Census के लिए गिनावा इस्तेमाल किया है। Census को उर्दूमें मरदुमशुमारी और हिन्दीमें मनुष्य-गणना कहते हैं। आप हिन्दी-प्रेमियोंसे पूछिए कि वे मरदुमशुमारी कबूल कर सकते हैं? मरदुमका लफ़्ज हिन्दी तो हिन्दी, उर्दूमें भी तनहा इस्तेमाल नहीं होता, और Census में सिर्फ़ इन्सानोंकी शुमारी ही नहीं होती, बल्कि धन-दौलतकी सभी चीज़ोंकी शुमार होती है। लिहाज़ा Census को सिर्फ़ गिनाव या गिनावा कहना मरदुमशुमारीकी मुश्किल तरकीबसे आसान भी है और बेहतर भी। Pentagon और Hexagon को हिन्दीमें पंचभुज और षट्कोण कहनेकी कोशिश करवाई जाती है। उर्दूके फारसी-अरबी जाननेवाले मखमस और मुसद्दस या शशगोशकी तरकीब चलाना चाहते हैं। इनके बजाय पंचकोनियाँ या छकोनियाँकी तरकीब कितनी आसान है। इसी तरह हम तिकोनियाँ, चौकोनियाँ, सतकोनियाँ अठकोनियाँकी तरकीबें बना ले सकते हैं। गर्ज कि थोड़ी-सी कोशिशसे ग्रामर, हिसाब, जुग्राफ़िया, तबीई और राजकारके सैकड़ों-हज़ारों आसान लफ़्ज बनाए जा सकते हैं, जो उर्दू और हिन्दी दोनों ज़बानोंमें चल सकते हैं। ऐसे ही शब्दोंको बनाना और चलाना हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका सबसे बड़ा कर्तव्य होना चाहिए।

आसान लफ़्ज़ोंके बाद ज़बानको आसान बनानेका दूसरा उपाय आसान तलफ़्फ़ुज़ या सरल उच्चारण है, और सरल उच्चारण से मुराद आम तौरपर प्रचलित उच्चारणसे है। जो लफ़्ज हिन्दीमें या उर्दूमें जिस तरह आम तौरपर बोला जाता है, वही सही है। जो लफ़्ज पढ़े-लिखे लोग, इनके खानदानवाले और मुख्तलिफ़ पेशों और तबक़ोंके नुमाइन्दे जिस तरह बोलते हैं, वह सही है—चाहे वह लफ़्ज अरबीका हो या फारसीका, संस्कृतका हो या अंगरेज़ीका। हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए यह उसूल हमेशा याद रखना चाहिए कि हमें हिन्दुस्तानी-प्रचारकी हद तक संस्कृत, अंगरेज़ी, अरबी और फारसीके उच्चारणोंसे कोई वास्ता नहीं रहेगा। जो लफ़्ज हमारी माँ, बहनें, बीवियाँ और बेटियाँ जिस तरह बोलती हैं और जिस लफ़्जका जो तलफ़्फ़ुज़ हममें से अक्सर पढ़े-लिखे लोग खुद करते हैं, उसे ग़लत ठहराना बड़ी भारी भूल है। हर ज़बान का खास उच्चारण होता है, और जो लफ़्ज दूसरी ज़बानसे आकर इस ज़बानमें घुल-मिल जाते हैं, उनका तलफ़्फ़ुज़ बदल जाता है। यह तब्दीली बिल्कुल फ़ितरी और लाज़मी है। दुनियाको हर ज़बानमें हमेशासे यह होता आ रहा है और यही होता रहेगा। हम भी अपने घरोंमें या आम बोलचालमें गैर-ज़बानोंके हर लफ़्जको इसी तरह बोलते हैं, जैसे सब लोग बोलते हैं। मगर हममें से बाज लोग अपनी क़ाबिलियत जतानेके लिए या ज़बाँदानियोंका रोब गाँठनेके लिए कहते हैं कि फलाँ लफ़्जका तो तलफ़्फ़ुज़ यों नहीं, यों है। यह तलफ़्फ़ुज़ बिगड़ गया है। यह शब्द अपभ्रंश है। गरम चाय कहना ग़लत है, क्योंकि गरम फारसी लफ़्ज है। दीवाली सही नहीं, Dewali is the corruption of Deepavali. राज नहीं, राज्य बोलना चाहिए; राज अपभ्रंश है। हम लोगोंके लिए क़ाबिल अफ़सोस और शर्मनाक छुटवेहमीपन (Inferiority complex) का इससे बढ़कर सबूत क्या हो सकता है कि हम जिस ज़बानका प्रचार करना चाहते हैं, उसीपर गैर-ज़बानोंके उसूल और क़ायदे लादकर चलती गाड़ीमें रोड़े अटका रहे हैं। मैं जब कभी किसी किताबमें बिगाड़ या अपभ्रंश पढ़ता हूँ, तो मुझे दुःख होता है, और जब कभी मैं किसी उर्दूके हामीको यह कहते हुए सुनता हूँ कि फलाँ लफ़्जका सही तलफ़्फ़ुज़ यों नहीं, यों है और जब कभी कोई हिन्दी-प्रेमी कहता है कि फलाँ शब्दका शुद्ध उच्चारण यह नहीं, यह है, तो मेरा यह यक़ीन पक्का हो जाता है कि हिन्दीको हिन्दीके नाममात्र प्रेमियोंसे और उर्दूको उर्दूके नामनिहाद हामियोंसे जितना नुक़सान पहुँच रहा है, उतना आपसके झगड़ोंसे नहीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृतकी पूजा करनेवाले लोकप्रचलित हिन्दी-उच्चारणको अशुद्ध ठहराते हैं और हमारे उच्चारणको अपभ्रंशके हिकारतआमेज़ लफ़्ज़से ताबीर करते हैं। अरबी और फारसीकी क़दर करनेवाले उर्दूमें अरबी-फारसी-लफ़्ज़ोंमें जो तब्दीली कुदरती तौरपर होती है, उसीकी बिगाड़से ताबीर करके हमारी तौहीन करते हैं। हिन्दी-उर्दूके इन नादान दोस्तोंकी कोशिशें कभी सफल नहीं हो सकतीं; मगर इनके कारण हिन्दीकी उन्नति या उर्दूकी तरक्क़ीमें दिक्क़तें पैदा हो रही हैं और हिन्दुस्तानीके फैलनेकी रफ़्तार बहुत धीमी है। हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए इस उसूलका प्रचार भी ज़रूरी है कि जो शब्द जनतामें जिस प्रकार प्रचलित हो चुका है, वह हिन्दुस्तानी भाषाका शब्द है। इसका जो उच्चारण हम करते हैं, वह शुद्ध है, और हमें इससे कोई बहस नहीं कि यह शब्द कहांसे आया, असलमें इसका क्या तलफ्फुज था या अब भी दूसरे देशोंमें क्योंकर बोला और लिखा जाता है। हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए आम समझ लफ़्ज़ोंका खयाल रखना और आसान तलफ्फुज़को सही मान लेना लाज़मी है।

हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए मिले-जुले लफ़्ज़ों और आसान उच्चारणके अलावा आसान लिखावटें भी लाज़मी हैं। लिखावटके बारेमें तफसीलसे ज़िक्र करनेका यह मौका नहीं। हिन्दी और उर्दू-लिखावटोंको आसान बनानेके लिए मौजूदा लिखावटोंमें से हम-आवाज़ हरफ़ोंको यानी एक ही तरहसे बोले जानेवाले हरफ़ों में से एकको रखकर दूसरोंको छोड़ देना चाहिए। मसलन यह कि उर्दूमें से जाल, बड़ी हे, से, स्वाद, ज़्वाद, ज़ोय और ऐन निकाल दिए जायँ; क्योंकि इनके हम-आवाज़ सीन, छोटी हे और ज़े मौजूद हैं। हिन्दी-लिखावटमें से ऋ, ॠ, ऌ, ञ और ष को भी निकाल देना चाहिए, और जहाँ एक ही हरफ़ दो मरतबा आता है या दो-दो हरफ़ मिलाकर लिखे जाते हैं, उनकी असल शक्ल बरकरार रखनी चाहिए। उर्दू-लिखावटको आसान बनानेकी मुनज्ज़म कोशिश अब तक किसी जमाअतने शुरू नहीं की। महात्मा गांधीकी लीडरीमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिने हिन्दी-लिखावटको आसान बनानेकी कोशिश शुरू की है। मगर अफ़सोस है कि हिन्दी-संसार तो बड़ी बात है, खुद हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने भी इस लिखावटको अख्तियार नहीं किया है और राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके उसूलोंको मानते हुए भी वह अपनी तमाम पुस्तकें और रिसाले पुरानी लिखावटमें छाप रहा है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अक्सर लोग मेरे मुखालिफ़ होंगे और न सिर्फ़ हिन्दी-प्रेमी, बल्कि उर्दूके हामी मुझे बुरा-भला कहेंगे। मगर हिन्दुस्तानीकी तरक्क़ीके मानी यह हैं कि उर्दूके कट्टर हामी और हिन्दीके कट्टर प्रेमी चाहे थोड़े-बहुत नाराज़ हो जायँ; लेकिन एक ऐसा रास्ता अख्तियार किया जाय, जो इनके नज़दीक ही चलता हो और आखिरमें इनसे जा मिलता हो। जिस तरह गंगा और जमुनाका संगम प्रयागमें होता है, वैसे ही हिन्दी और उर्दूका संगम हिन्दुस्तानी है। जिस तरह गंगाजीका पाकोसाफ़ पानी मुख्तलिफ़ नदियोंसे आता है, उसी तरह हिन्दुस्तानीकी भी भिन्न-भिन्न धाराएँ हैं। अदबी उर्दू, मुश्किल उर्दू, कठिन हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू, देहाती बोली और दक्खिनी, भांति-भांतिकी ये भाषाएँ अपनी-अपनी जगह भी बहुत अहम हैं, और इनके अलग-अलग बहनेमें भी कोई खराबी नहीं, बशर्ते कि ये एक नुक्तेपर आ मिलें, और वह नुक्ता है हिन्दुस्तानी यानी आसान उर्दू या सरल हिन्दी।

घृणाका प्रेम

श्री रांगेय राघव

ओ पथिक, इस वेदनाकी साधनाका अन्त क्या है?

भोरकी कलियाँ सलोनी साँझमें मुरझा गिरेंगी;
प्राणके हर फूलपर फिर नील छायाएँ घिरेंगी;
किन्तु क्या गतिका मुखर उल्लास मुझमें रिक्त होगा?
यह समीरण-सा सतत उन्माद कब तक मुक्त होगा?
कौन-सा निर्वाण है, जो दे सकेगा मोल मेरा?
वज्रके संघर्षमें है आत्मलयका बोल मेरा।
मैं मिटा करके न अपनेको कभी भी जी सकूँगा;
अहंका अमरत्व केवल विश्वको मैं दे सकूँगा।
अंजलीके फूल क्या, अंगार लेकर मैं खड़ा हूँ!
मैं पहाड़ों-सा अभय अब तक उठाए सिर खड़ा हूँ।

मैं न निर्जनका पथिक, इस गहन सागरमें पला हूँ;
चिर-पुरुष-से दुःखकी प्रिय छाँहमें अब तक चला हूँ।
बन्धनोंसे मुक्ति ही क्या शक्तिका उपवास मेरा?
विश्वके विश्वासपर है खड्ग-सा उपहास मेरा।
मैं घृणा करता हृदयसे हूँ तभी तो प्यार करता;
एक सामंजस्यकी छलना इसे स्वीकार करता।
कामनाके मूलमें चिर-वासना है, जानता हूँ;
स्वर्गका प्रतिदान भी बस यातना है, जानता हूँ।
एक मन्द्रा रागिणी-सी गूँजती है आज ममता;
प्राणके विश्वोमें है गर्व-सा हिमवन्त गलता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक दिन

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

पटनेमें गंगाजीका कितना सुन्दर दृश्य है! बनारस और इलाहाबादमें गंगाजी इतनी चौड़ी नहीं हैं। यहाँ तो उनका खूब विस्तार है। प्रातःकाल उठकर जब मैं गंगा-तटपर पहुँचा, तब सूर्योदय नहीं हुआ था; फिर भी यथेष्ट प्रकाश था। कैसी शान्ति थी, कैसी निस्तब्धता थी! यह दृश्य देखकर आप-से-आप मनमें उल्लास भर जाता है। हिन्दू-मात्रका विश्वास है कि गंगाजीके दर्शनसे ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उनके जलसे केवल शरीर ही शुद्ध नहीं होता, मन भी पवित्र हो जाता है। मानसिक विशुद्धि हो जानेसे पापोंकी कालिमा नहीं रह सकती, वासनाका उत्ताप नहीं रह सकता। मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी सारी भव-बाधा नष्ट हो गई। पटनेमें आकर मैं सचमुच अपनी सारी चिन्ताओंको भूल गया हूँ। जो होना है, वह होगा ही। मैंने तो यही सोचा कि अब कुछ दिन गंगाजीके तटपर रहकर उन्मुक्तिके आनन्दका भी तो अनुभव कर लूँ, इसीलिए यहाँ मैं खूब आरामसे समय व्यतीत कर रहा हूँ। गंगा-तट, गोलघर और मैदान इन तीन स्थानोंको छोड़कर मैं और कहीं नहीं जाता।

एक बार वर्माजीके साथ मैं 'मुक्त'जीके घर गया। वहाँ मैंने जैनेन्द्रजीको देखा। आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें जैनेन्द्रजीने अपनी अपूर्व शैली और उससे भी अधिक अपनी अपूर्व कथा-वस्तुसे एक नवीन ही आदर्श ला दिया है। उनकी कृतियोंमें प्रेमचन्दजीके-से उन सरल भावोंका विन्यास नहीं है, जिनके लिए सोचने और समझनेकी आवश्यकता हो। उनकी रचनाओंमें सुदर्शनजीकी वह विशेषता नहीं है, जिसके कारण हम उनके पात्रोंकी ओर आप-से-आप आकृष्ट हो जाते हैं। उनमें प्रसादजीकी अलौकिकता और उग्रजीकी यथार्थता भी नहीं है। उनके पात्रोंसे न तो घटनाओंका कोई मेल रहता है और न उनके भावोंसे परिस्थितिका ही कोई सम्बन्ध रहता है। उनकी कहानियोंमें न-जाने कब कोई भी पात्र किसी भी परिस्थितिमें कोई भी काम कर बैठे। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि वे पाठकोंको अपनी कथा-शैलीकी विलक्षणतासे मुग्ध कर लेते हैं। इसी सम्बन्धमें मैंने प्रेमीजीसे बातचीत की थी। प्रेमीजीने मेरे सम्बन्धमें शायद जैनेन्द्रजीको कुछ लिखा था। इसीसे जैनेन्द्रजीने मुझसे अपनी कहानियोंके सम्बन्धमें पूछा। पर पहले उन्होंने अपना विचार व्यक्त कर दिया। उसे सुनकर मैं चुप रह गया। सच तो यह है कि सभी लेखक अपने लिए एक मार्ग बना लेते हैं। जैनेन्द्रजी ने भी अपने लिए एक मार्ग बना लिया है। उसमें विवादके लिए स्थान नहीं है। मेरी तो यह धारणा है कि अवस्थाकी वृद्धिके साथ हम अपनी रचनाकी यथार्थताको समझने लगते हैं। फिर सत्यका सच्चा स्वरूप जान लेनेका दावा कौन कर सकता है? कथा और कविता दोनों मेरे लिए तो आनन्दकी सृष्टि हैं। यदि मुझे उनसे आनन्दकी उपलब्धि नहीं हुई, तो वे मेरे लिए व्यर्थ हैं। इसीसे कलाका सच्चा समालोचक तो काल है।

फिर भगवती बाबू और जैनेन्द्रजीसे जीवन-निर्वाहके सम्बन्ध में विवाद हुआ। भगवती बाबूने कहा कि हम लोगोंको दाल-रोटीकी ही चिन्ता रहती है। जैनेन्द्रजीने कहा—'यदि दाल-रोटीकी ही चिन्ता होती, तो कोई बात नहीं थी। पर इस दाल-रोटीके साथ हमारी सैकड़ों अन्य आवश्यकताएँ हैं, जिनके कारण हम लोग चिन्तित रहते हैं। सच पूछो, तो दाल-रोटीकी कुछ चिन्ता हो नहीं है।' इसी बातपर दोनोंमें बहुत देर तक विवाद हुआ। इसके बाद कविता-पाठ हुआ। मैंने एक निरपेक्ष व्यक्तिकी तरह विवाद भी सुना और कविताएँ भी सुनीं। हिन्दीमें अब नवयुगकी भावना प्रकट होने लगी है। कुछ समय पहले लोकशिक्षा और देशभक्तिके भावोंसे प्रेरित होकर जो कविताएँ लिखी जाती थीं, उनमें न भावकी विलक्षणता थी और न कल्पनाका विलास। पर अब कविताओंका ढंग बदल गया है। कल्पना और भावुकताके साथ उनमें विश्वासकी दृढ़ता भी प्रकट होने लगी है। अभी उनमें जो एक आडम्बर और कृत्रिमताकी वृद्धि हो रही है, वह मेरे लिए विरक्तिजनक है। इसलिए हिन्दीकी आधुनिक कविताओंको न मैं ध्यानपूर्वक पढ़ता हूँ और न सुनता हूँ।

कविता-पाठ समाप्त हो जानेके बाद जो साधारण बातें हुईं, उनमें मेरा मन अवश्य लगा। ऐसी ही छोटी बातोंसे मैं किसीको जान पाता हूँ। मेरे लिए वहाँ सभी अपरिचित-से थे। उनमें जैनेन्द्रजी, मुक्तजी और वर्माजी आधुनिक हिन्दी-साहित्यके देदीप्यमान नक्षत्र माने जाते हैं। उनकी रचनाओंमें कितना सार है, यह तो भविष्य-युग ही निर्णय करेगा; पर उनके व्यक्तित्वकी विशेषताओंसे मैं अवश्य आकृष्ट हुआ। जैनेन्द्रजीको देखकर मुझे ऐसा जान पड़ा है कि उनमें इतनी अधिक सरलता, स्पष्टता और विश्वासकी दृढ़ता है कि वे मनुष्योंके संसारको कभी नहीं समझ सकेंगे। साहित्यके क्षेत्रमें वे अक्षय कीर्ति पा लें; पर संसारके कर्मक्षेत्रमें उन्हें कोई भी पराभूत कर देगा। मुक्तजीमें मैंने यह विशेषता देखी कि उन्होंने भाव और कर्म दोनों क्षेत्रोंको बिल्कुल पृथक कर रखा है, जैसे एक शरीरमें दो व्यक्ति निवास कर रहे हों। उनमें भाव-प्रवणता है और बुद्धिकी तीक्ष्णता भी है। वर्माजीमें मैंने बुद्धिकी ही प्रधानता देखी। उनमें भावुकता नहीं है। वे एकमात्र अपनी बुद्धिसे संसारको देखते हैं। संसारकी बुराई उनसे छिप नहीं सकती, पर उनमें सहानुभूतिकी वह व्यापकता

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं है, जिससे वे किसीके अन्तस्तलके निगूढ़ भावोंको पहचान सकें। फिर चाय पीकर मैं घर लौटा।

इसी तरह बिल्कुल आलस्यमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। आश्चर्यकी बात यह है कि आलस्यके जीवनमें न तो अवसाद है, न शिथिलता। मैं यहाँ जो एक शान्ति और सन्तोषका अनुभव कर रहा हूँ, उससे ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग चिन्ताकर चिन्ताकी सृष्टि करते हैं। एक बार चिन्ताके बन्धनसे छूट जाने पर यह आप-से-आप प्रकट हो जाता है कि जीवनमें चिन्ताके लिए कोई स्थान नहीं है। बाल्यावस्थासे ही मैं अकेला घूमता आया हूँ। मेरा कुछ ऐसा स्वभाव-सा हो गया है कि अकेले बैठकर मैं अपने ही जीवनकी बातें सोचा करता हूँ। अपनी इस चिन्तामें मैं ऐसा लीन हो जाता हूँ कि मुझे फिर किसी बातकी सुधि नहीं रहती। सिनेमाके चित्र देखनेसे जो आनन्द होता है, वही आनन्द मुझे अपने मनके इन अतीत चित्रोंको कल्पना द्वारा देखनेसे होता है। कल मैं बड़ी देर तक मैदानमें एक बेंचपर बैठा रहा। एक-एक करके कितनी ही बातें मेरे मनमें आने लगीं। भविष्यमें क्या होगा, इसे जानता कौन है? हम लोग वर्त्तमानमें ही व्यस्त रहते हैं और अतीतकी बातें सोचते हैं। अब जब मैं चला जाऊँगा, तब यही सब बातें, जो आज मेरे लिए प्रत्यक्ष हैं, एक दिन स्मृतिकी बातें हो जायँगी। उस दिन इन्हींको मैं अपने मनमें वैसे ही देखूँगा, जैसे मैं आज अपनी कितनी ही अतीत बातोंको मनमें देख रहा हूँ।

संसारमें एक ओर कर्मचक्र चल रहा है और दूसरी ओर भावचक्र घूम रहा है। कर्मचक्रमें पड़कर हम भावचक्रको भले ही भूल जायँ अथवा भावचक्रमें पड़कर हम कर्मचक्रकी भले ही उपेक्षा करें; पर दोनोंके अस्तित्वमें पल-भर भी किसीको सन्देह नहीं हो सकता। कर्मचक्र बाह्य-जगत्में है और भावचक्र अन्तर्जगत्में। दोनोंकी गति कभी अवरुद्ध नहीं होती। अपने जीवन-निर्वाहके लिए संसारमें किसी-न-किसी कर्मक्षेत्रके व्यवसायमें निरत होना पड़ता है। समाजमें रहकर अन्य लोगोंसे कई प्रकारके व्यवहार करने पड़ते हैं। अपनी स्वार्थ-सिद्धि, अपनी लाभ-हानि, अपनी उन्नति-अवनतिका विचार करके हम अपने भावोंको छिपाकर कितने ही काम करते हैं। प्रेमकी वेदना, अपमानकी ग्लानि, क्रोधका उत्ताप, प्रतिहिंसाकी ज्वाला—सभीको हृदयमें रखकर हम अपने कार्योंमें व्यस्त हो जाते हैं, और तब ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य-जीवन बाह्य-जगत्के ही लिए है। संसारके कर्मक्षेत्रमें जो हमारे कार्य निश्चित हैं, उन्हींको पूर्ण करनेमें जीवनकी सफलता है।

संसारमें धन और वैभवका महत्व है। उसके उपार्जन और संचयके लिए जो एक सुबुद्धि चाहिए, उसमें त्याग और उपकार, दया और क्षमा, प्रेम और ममताको संयत रखना पड़ता है। धनको तुच्छ समझकर जो लोग अपने भावोंके [illegible] संसारके कर्मक्षेत्रमें असफल हो जाते हैं, उनकी दुर्दशा देखकर यही निश्चय करना पड़ता है कि जो अपने भावोंको दलित कर कर्मक्षेत्रमें दृढ़तासे बद्धपरिकर होकर लगा रहता है, उसीमें यथार्थ पौरुष है। जब भाव उद्दाम होते हैं, तब संसारके कर्म-क्षेत्रमें जो-जो स्पृहणीय हैं, उन सभीको छोड़कर अपने भावोंके ही अनुसरणमें हम लीन हो जाते हैं। तब यश और प्रतिष्ठा, सम्पत्ति और ऐश्वर्य, नीति और कर्त्तव्य—सभीसे विरक्ति हो जाती है। बाह्य-जगत्में कुछ बात रहती है और अन्तर्जगत्में कुछ और ही बात रहती है। संसारमें दुख है, दैन्य है, पराधीनता है, युद्ध है, भीषणता है। हृदयमें प्रेम है, दया है, वासना है, क्रोध है, अहंकार है। हम लोग इन दोनोंको ही लेकर जीवन-यात्रा करते हैं। हमारे लिए ये दोनों ही यथार्थ हैं। हमारे कितने ही भाव हृदयमें उठकर वहीं विलीन हो जाते हैं। वे कार्य-रूपमें परिणत नहीं होते; पर अन्तर्जगत्में वे विप्लव मचा ही देते हैं। हमारी कितनी ही वासनाएँ, चिन्ताएँ और वेदनाएँ मनमें छिपी रह जाती हैं। उनपर किसी अन्यकी दृष्टि नहीं जाती; पर हृदयमें उनसे एक आँधी आ ही जाती है। उनके आगे बाह्य-जगत्के सभी व्यापार तुच्छ रहते हैं। यह सच है कि संसारमें हम जो काम करते हैं, उन्हींके द्वारा हमारे मनुष्यत्वकी परीक्षा होती है। पर हमारे कितने ही काम हमारे भावोंके प्रतिकूल होनेके कारण हमारे लिए मिथ्या हो होते हैं। इसीसे कथाओंमें भाव-जगत्को लेकर जब कार्योंका विपर्यय प्रदर्शिता किया जाता है, तब हम शराब पीकर नालीमें पड़े हुए कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्य किसी देवदासके प्रति भी सहानुभूति प्रकट करते हैं। हृदयके सच्चे भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए सत्साहस चाहिए। हृदयमें कालुष्य भी तो रहता है। कल्पित पात्रोंमें भावोंकी विशुद्धि प्रदर्शित कर देनेसे ही उनके पापोंकी यथार्थ बीभत्सता चली जाती है। संसारमें अपने भावोंके अनुकूल काम करनेके लिए भी हमें मिथ्या भावोंको प्रदर्शित करना पड़ता है। जहाँ स्नेह नहीं, जहाँ भक्ति नहीं, जहाँ श्रद्धा नहीं, वहाँ इन सबका प्रदर्शन करना पड़ता है। पर हम तो अपने भावोंकी बीभत्सताको समझते हैं, इसीलिए हमें अपने-आपको भी धोखा देना पड़ता है। तभी तो हम कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं और मनमें सोचते कुछ और ही हैं। हम लोग चाहे जिसे सत्य समझें; पर हम लोगोंके लिए सभी कुछ सत्य है और सभी कुछ असत्य है—अर्थात् सभी कुछ असत्य होकर भी सत्य है और सत्य होकर भी असत्य हैं।

यह जीवनकी कोई पहेली नहीं है, यह तो बिलकुल साधारण बात है। हरि यह समझता है कि गोपालने उसे ठगकर रुपए ले लिए। गोपाल यह समझता है कि मेरे लिए मेरी आवश्यकता ही एकमात्र सत्य है। जिसे हरि छल या पाप कहता है

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

उसे मैं अपने जीवनकी सार्थकता समझता हूँ। हरि अपने रुपयों को मेरे जीवनसे अधिक महत्ता क्यों देता है? उन रुपयोंके चले जानेसे हरिको हानि नहीं है, क्योंकि उसके पास आवश्यकता से अधिक रुपए हैं। रुपयोंके प्रति उसका मोह मिथ्या है। अपने जीवनके प्रति मेरा मोह सच्चा है। इसी प्रकार जिस युवतीपर कृष्ण का कोई सामाजिक अधिकार नहीं है, उसपर उसका प्रेम देखकर कोई यह कहता है कि उसका वह कार्य सर्वथा घृणित है; पर स्वयं कृष्ण यह समझता है कि अन्य जनोंके लिए समाजका यह बन्धन ही सच है। पर मेरे लिए हृदयका यह भाव ही सच्चा है। जिस समय मुझे यह विश्वास हो जायगा कि मेरा यह भाव मिथ्या है, उस समय सूरदास या तुलसीदासकी तरह मैं भी अपनी प्रियतमासे विरक्त हो जाऊँगा। अतएव प्रत्येकके भाव-जगत्में सत्य और असत्यका निर्णय कुछ दूसरे ही ढंगसे होता रहता है। संसारके कर्म-जगत्का प्रभाव उसपर अवश्य पड़ता है; पर उसके कारण भावोंका घात-प्रतिघात होता रहता है, क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है, और इन्द्रधनुषके समान मनुष्यके जीवनमें भावों और क्रियाओंके विलक्षण मिश्रणसे शुचिता और अशुचिताका इतना वर्ण-वैचित्र्य हो जाता है कि यह समझमें नहीं आता कि विशुद्ध भाव कहाँ है। जो वेदना, जो क्रोध, जो विद्वेष, जो अहंकार, जो प्रेम और जो सहानुभूति हम अपने जीवनमें प्रदर्शित करते रहते हैं और तदनुकूल कार्य करते रहते हैं, उनके भीतर अन्य कितने ही कार्य छिपे रहते हैं। तुम सत्य किसे कहोगे—प्रेमको या वासनाको; त्यागको या अहंकारको; लोभको या सेवाको; भयको या क्रोधको? इसीलिए आज जो मैं यहाँ लिख रहा हूँ, उन सबकी सत्यतामें मुझे सन्देह न रहनेपर भी मैं यह नहीं कहता कि वही सत्य है।

लार्ड बायरनका विवाह-विच्छेद

श्री रूपकुमारी बाजपेई, एम० ए०

नीलमें नयनकी सतहपर पुतली-जैसे तैरते जहाज़की आखिरी सीटी बजी। जैसे झंझावात उठ पड़ा हो! हृदयोंकी धड़कनें तेज़ होकर दिशाओंपर छा गईं। हाबहाउस तटपर खड़ा रहा। यात्रियोंकी भीड़में मिला हुआ, फिर भी सबसे अलग-सा, अपना मित्र उसे अभी भी स्पष्ट दीख पड़ रहा था—एकाकी, पर असाधारण। ऊँचा, स्वस्थ शरीर, भूरे-घुँघराले बाल, प्रशान्त उदधि-सी नील आँखें, तनिक लम्बे-से भरे चेहरेपर चिबुकका गढ़ा। अनायास ही कण्ठ-भर आया और वह कह उठा—"God bless him for a gallant spirit and a kind one."

"एक दिन सोकर उठनेपर मैंने पाया, मैं विख्यात हो गया हूँ।" बायरनके इन्हीं शब्दोंमें उलट-फेर करके उनकी अपकीर्त्तिका रहस्य समझाया जा सकता है। एक दिन इसी प्रकार समाजको पलकोंपर पला हुआ भाग्यका यह लाड़ला अपने ही निर्वासनके लिए विवश किया गया। एक वर्ष पहले ही विवाहको वेदीपर उसने कुछ पावन प्रतिज्ञाएँ की थीं। और अब विच्छेद! बवण्डर की तरह समाजमें आया। इंग्लैण्डके शिष्ट समाजमें एक छोरसे दूसरे छोर तक विरोध और भर्त्सनाकी अग्नि भड़क उठी।

लार्ड और लेडी बायरनके पारस्परिक इस विग्रहमें जनमत लेडी बायरनके पक्षमें रहा। बायरनके उन्मुक्त प्रणय-दानोंसे तंग आए पतियों और पुरातन-पंथी पिताओंको एक मौका हाथ आया था। लेडी बायरनके प्रति बायरनके व्यवहारको निन्दनीय, अशोभन, गर्हित माना गया। प्रेस और पर्चोंकी सहायतासे उनके विरुद्ध तीव्र विष-वमन किया गया। उनकी अनेक प्रेमिकाओंमें उनकी बहन आनरेरी आगस्टा लीहकी गणना उनपर लगाए गए असंख्य आरोपोंमें से एक थी। जनताका धिक्कार उस चरम सीमापर पहुँच चुका था, जहाँ क्रोधके आवेशमें विवेचना-शक्ति मूर्च्छित हो जाया करती है। उचित-अनुचितका ज्ञान इस समय किसीको न था। भावुक कवि मर्माहत हो उठा। सदर्प बायरन को लेकिन समाज नत न कर सका—"मेरे विरुद्ध ये सारे लांछन सत्य हैं, तो मैं इंग्लैण्डके योग्य नहीं। यदि मिथ्या हैं, तो इंग्लैण्ड अब मेरे योग्य नहीं।" और १८१६ के एक अप्रैल दिवसमें देशको अन्तिम प्रणामकर 'चाइल्ड हेराल्ड' अपनी उस यात्रापर चल खड़ा हुआ, जहाँसे वह फिर कभी न लौटा। बायरनका गृहदाह जीवन-व्यापी रहा।

महाद्वीपसे बायरनने अपनी बहनको लिखा—"तूफ़ान जब जवानीपर था और पिकाडेलीमें तुम सब मेरे साथ सहानुभूति प्रकट रहे थे, तरस खा रहे थे अथवा मुझपर धिक्कार भेज रहे थे, तबका समय मेरे लिए तीव्र आघात-संयुक्त रहा है। अब न तो शक्ति है और न साहस हो कि कुछ ऐसा करूँ, जो मन और मस्तिष्क हलका हो ले। इस महीनेके अन्तमें आल्प्स पार करनेका इरादा है। फिर चला जाऊँगा—खुदा जाने कहाँ।" उच्छृंखल, अविनीत बायरन इस समय बहुत ही विचलित दीख पड़ते हैं। उनकी यह भावुकता यहीं खत्म नहीं हो जाती। सामान्य जगतकी नज़रोंमें तीखा और कटु, परन्तु भीतरसे अत्य-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धिक संवेदनापूर्ण, इस तरुण हृदयमें इंग्लैण्डके फैशनेबल स्तर द्वारा छेड़ी हलचल कभी विश्रान्ति न ले सकी।

विच्छेदके लिए उत्तरदायी आखिर था कौन? क़ानूनने बायरनको अपराधी माना। बायरनने क़ानूनके समक्ष सिर झुकाया; परन्तु उनकी आत्मा इसके तर्कोंका न्याय स्वीकार न कर सकी। अपनी दृष्टिमें बायरन दोषी न ठहरे। प्रतिपक्षी दलके वकील सर रामिलीने पत्नीकी मृत्युका आघात सहनेमें असमर्थ हो जब आत्म-हत्या कर ली, तब कविका आहत गर्व अपने स्वरसे व्यंगकी ध्वनि छिपा न सका। इस प्रसंगमें लेडी बायरनके नाम बायरनका पत्र है—"क़ानूनके नामपर मुझसे मेरी पत्नी छीनते, मेरा हृदय विदीर्ण करते, मेरे जीवन-उत्समें विष घोलते, कलंककी अमिट छाप लगाते, प्रवासी बनाते समय इस शख्सने कभी सोचा भी होगा कि छत्तीस माहके भीतर ही कीर्त्तिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचकर उसे भी एक गार्हस्थ्य दुर्घटनाके कारण कुत्तेकी मौत मरना पड़ेगा?"

मिलबैंक बायरनसे बायरनका सम्बन्ध-विच्छेद क्यों हुआ, इसका समुचित समाधान आज तक नहीं हो पाया। आलोचकोंने तलाक़का कारण बायरनकी हृदयहीनतामें, लेडी बायरनके प्रति उनके मनमें ममत्वके अभावकी कल्पनामें माना है। हमेशा तो नहीं, किन्तु सामान्यतः पत्र किसीके व्यक्तित्वकी आवरणहीन आत्म-कथा रहा करते हैं। बायरनके अन्तरका जो चित्र उनके पत्रोंमें आलेखित है, उसमें तो लेडी बायरनके लिए उत्कट स्नेह ही का रंग झलकता दीख पड़ता है। इस विवाहका आधार यदि प्रेम न लें, तो उसके सम्पन्न होनेके लिए दूसरा ठोस कारण नहीं। बायरनके स्निग्ध अनुरागका अर्घ्यदान यदि लेडी बायरनके लिए न था, तो तलाक़के बाद उनके पास लौट जानेकी आकांक्षाके सामने फिर-फिर प्रणत होनेके लिए वे बाध्य न थे। तब विच्छेद हुआ ही क्यों?

विवाहके बाद ही अपनी प्रिय लेडी मेलबार्नको लार्ड बायरनने लिखा था—"उनका मिजाज़ हमारी कल्पनासे विपरीत निकला। स्वभाव ठीक नहीं, ऐसा तो मैं कभी कह नहीं सकता; लेकिन वे आत्म-पीड़क, आतुर और रोमांटिक बहुत हैं। संक्षेपमें—अगर विग्रह हुआ, तो इसका दायित्व उनपर होगा, मुझपर नहीं।"

नित्य जीवनकी प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना अचेतन मस्तिष्कपर बेजाने ही प्रभाव डालती रहती है। नगण्य दीख पड़नेवाले क्षण भी चुपचाप संग्रहीत होकर कभी-कभी ऐसा आकार धारण कर लेते हैं कि जीवनका रुख ही बदल जाया करता है। उपर्युक्त पत्र विग्रहके मूल-स्रोतकी स्पष्ट अभिव्यक्ति है। प्रणयके बावजूद दम्पति एक-दूसरेकी सत्य प्रकृतिसे अपरिचित ही रहे। दोनोंने तुनुकमिजाज़ी पाई थी। दोनों उत्तेजनाके दमनमें सर्वथा असमर्थ थे। बायरनको समाज द्वारा खींचे हुए चक्कके बाहर पैर रखनेकी अनुमति पत्नीसे कभी न मिल सकी। लेडी बायरन और उनकी माताके नियन्त्रणको बायरन अनुचित हस्तक्षेप समझते। उनके कर्त्तव्य और न्यायका आलाप उस जोशीले युवककी सहनशीलताके लिए बहुत अधिक प्रमाणित हुआ। प्रहार होते ही प्रतिक्रियाके उद्धत हो जाना उसका स्वभाव था। वह बगावत कर बैठा। पारस्परिक वैमनस्यकी छाया घनीभूत होकर एक दिन सुखमय जीवनपर छा भी सकती है, बायरनके ध्यानमें यह सत्य तब तक आया न था। शायद उनका खयाल था कि विदुषी मिलेंगी उदारहृदया पत्नी भी हो सकती हैं। सम्भवतः लेडी बायरनने पतिको विचार और व्यवहार दोनोंमें बाँध रखनेके लिए विवाह-बन्धन ही यथेष्ट समझा। अपनी एकमात्र सन्तान एडाके जन्मके बाद ही वे पितृगृह चली गईं।

मानव-चरित्रकी इमारतका नक्शा बनानेमें प्रकृतिसे भी बड़ा हाथ वातावरणका हुआ करता है। बायरन उस युगमें उत्पन्न हुए थे, जब जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें परिवर्त्तनकी उथल-पुथल थी, प्राचीनता नवीनताके लिए स्थान खाली कर रही थी। फ्रान्सने राज्यक्रान्तिके बाद पश्चिमने ज़िन्दगीके हर पहलूमें बग़ावत चाही। यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका युग था। व्यक्तित्ववादकी पुकार फ्रान्ससे उठी और समस्त महाद्वीपपर कुहरे-सी छा गई। इससे व्यक्तिका गार्हस्थ-जीवन भी अछूता न रह सका।

युगोंसे चली आती परम्पराओंके लिए बायरनके मनमें श्रद्धा न थी। जहाँ तक उनका अपना—व्यक्तिका—सम्बन्ध है, इन्हें वे गौरव न देते। मुक्त-विलास उस पावन-पुनीत स्नेह-धाराकी राहमें उनकी सम्मतिमें बाधक न था, जो सृष्टिका स्पन्दन, विश्वकी आत्मा है। उनकी दैहिक आसक्ति सचमुच ही उनके यथार्थ स्नेहको कभी स्पर्श न कर सकी। समाजकी शृंखलाकी कड़ियोंसे बन्धन-मुक्ति शेलीकी भी साधना रही है। परन्तु हाड़-मांसका नारी-शरीरमात्र उनके लिए कोई अर्थ न रखता था। उनमें यह कभी लालसा जागरित न कर सका। स्त्री उनके लिए भोगकी नहीं, वन्दनाकी वस्तु थी। लिप्सा-वृत्तिकी तुष्टिके लिए नहीं, कल्पनाके प्रोत्साहनके लिए ही उनके जीवनमें नारीका प्रवेश हुआ। बायरनके लिए स्त्री सिर्फ़ व्यसन थी—एक नशा। और यह ऐसा नशा था, जिससे वे कभी त्राण न पा सके। फिर भी रहा नशा ही। शेली देवत्वमय नारीकी आराधना करते थे, बायरन मानवीय—अत्यधिक मानवीय—नारीकी कामना करते रहे। शेलीमें व्यक्ति और कवि एकाकार हो गए थे, बायरनका कलाकार उनके मानवके साथ भेद मानकर चला। सम्भवतः उनमें मानव कविको पीछे ठेलकर अग्रसर हुआ है—वह मानव जो दुर्बलताओंका पुतला है, जिसमें धूप है तो अन्धकार भी, त्याग है तो आरामकी लालसा भी। बायरन स्वप्नलोकमें तन्मय होकर न रम सके। वे कर्मक्षेत्रके कर्मठ पुरुष थे। उनकी तीक्ष्ण

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धि, उनकी विवेचना-शक्ति, उनकी दूरदर्शिता ग्रीक-स्वाधीनता-संग्राममें उन्हें नवजीवनका पैगम्बर बना गईं—वैसे ही, जैसे साहित्य-क्षेत्रमें शेलीकी आदर्शात्मकता मंगल और आनन्दकी सन्देशवाहिका बन बैठी। जीवित रहनेके लिए उन्हें रसिकता ज़रूरी थी।

२८ वर्षका यौवन मादकताका उन्माद पिए, शिराओंमें तारुण्यका रक्त भरे जीवनको अभी तक कौतुक भावमें ही पहचानता था। फिर बायरनके पास सम्पदा थी, पद-मर्यादा थी, प्रतिभा थी, रूप था, यौवन था, उम्र थी। स्त्रियोंके लिए वे स्वयं आकर्षण बन जाते। क्लेअर क्लेअरमान्ट और उनकी परिचित असंख्य तरुणियाँ इसका जाग्रत प्रमाण हैं। कवि विधवा माँका एक ही पुत्र था। भोग और आमोदके बीच उसका लालन-पालन हुआ था। प्रलोभनोंपर जो वह विजयी न हो सका, तो अचरज नहीं। ये दर्ज़नों स्त्रियाँ किन्तु उसके जीवनमें महत्व न पा सकीं। बायरनके लिए वे मनोरंजनसे अधिक और कुछ न हुईं। वे कहते हैं—"One makes love mechanically." उनकी भोग-लिप्साके स्तरको भेद वे अन्तरकी गहराईमें कभी उतर न सकीं। यही कारण है, जो बायरनकी साहित्य-साधनामें हास-विलासके कारण कभी अवरोध न उत्पन्न हुआ। 'गोदान'के खन्ना के समान बायरनका जीवन भी दोरुखा था। सम्भवतः यहाँ भी हमेशा उत्तम और मध्यममें संघर्ष हुआ है और अपनी सबलता के सबब मध्यम उत्तमपर सदैव ग़ालिब आता रहा है। विच्छेद का प्रहार धक्का देकर मनोविनोदके अन्तरमें मूर्च्छित सत्य जगा गया। यह उन्मुक्त प्रेम-क्रीड़ा उनके भीतरके पुरातन, प्रकृत पुरुष को कभी नष्ट न कर सकी। वासनाके सागरमें आकण्ठ डूबकर भी बायरनके हृदयसे गार्हस्थ्य जीवनकी आकांक्षा मिटो न थी। शरत्के जीवानन्दके समान हाबहाउसको वे लिखते हैं—"मेरे सामने इंग्लैण्डका नाम न लिया करो। वहाँ कभी मेरा भी घर था, भूमि थी, पत्नी थी, सन्तान थी, नाम था। आज सब विनष्ट है।...और फिर भी मैं अपना एक देश चाहता हूँ, गृहस्थी चाहता हूँ।" उच्छृंखल प्रेम-दानके प्रवाहमें अनियन्त्रित बहता कवि हँसा तो, लेकिन अपनी छायामें। जो व्यथा-भार वह साथ लिए फिरता है, उसमें पिसकर रोया भी।

नारीका उज्ज्वल चन्द्र-सा कोई चित्र बायरनके मनःपलटपर अंकित न था, ऐसा नहीं। नारी, जो नारीत्वमयी होती, प्रबुद्ध बायरनको तुरन्त आकृष्ट कर लेती। बचपन ही से यथार्थ सहानुभूतिका भूखा मन जहाँ इसका धुँधला-सा भी आभास पाता, आतुर होकर हृदयका सारा रस वहाँ उँड़ेल देता। बायरनके जीवन-कालमें इसके अनेक दृष्टान्त हैं—लेडी करोलीन लैम्ब, लेडी आक्सफोर्ड वेबेस्टर और अन्तिम और सम्भवतः इन सबमें महत्वशीला इटैलियन काउन्टेस ग्ल्यूसिओली। १८१९ का वसन्त बायरनके सन्ताप, विकल जीवनमें शान्तिका सन्देश लाया। काउन्टेस ग्ल्यूसिओलीने इसी समय रंगमंचपर प्रवेश किया था। इसके विषयमें शेलीने लिखा है—"लार्ड बायरनके लिए काउन्टेस ग्ल्यूसिओलीका सम्पर्क अतीव कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। प्रतिभा, स्वभाव, स्वास्थ्य, सदाचारिता आदि सब दृष्टिकोणोंसे उन्होंने निश्चय ही उन्नति की है।"

विवाहके बाद भी आखिर बायरनकी उद्धत प्रकृति अचंचल क्यों न हो सकी? इसे बचपनकी पड़ी आदतका परिणाम मान सकते हैं। कुछ इसलिए भी कि पत्नीसे उन्हें वह अनन्य अनुराग प्राप्त न हुआ, जो उन्हें स्थिर कर देता, जिसमें स्नानकर वे विभोर हो उठते। शारीरिक अपंगता और माताके अभद्र स्वभावसे उत्पन्न कलहपूर्ण वातावरणमें पलनेके कारण बालक बायरनमें संवेदनशीलता बचपनसे ही तीव्र थी। समाजमें वह घुल-मिल न पाता। वह एकाकी महसूस करता रहता। चारमें वह भी मिलना चाहता था। वह पाता, उसकी अवहेलना हो रही है। उसे खीझ उत्पन्न होती। साथ ही किसीकी सहानुभूतिमें सिमटकर वह छिप भी जाना चाहता था। उम्र पाकर शर्मीला बायरन व्यवहार-कुशल तो हो गया; लेकिन उसकी भावुकता तीव्रसे तीव्रतर होती गई। लेडी बायरन पत्नी थीं बस! ऐसी पत्नी, जो अपने प्रियपर किसी औरकी आँखें पड़ने देना नहीं चाहतीं, किसी औरपर उसकी दृष्टि पड़ने नहीं देतीं। उनका पत्नीत्व अभी प्रणयके पथ पर ही था। रमणीत्वके उस चरम उत्कर्षपर वह पहुँच न पाया था, जहाँ सेवा और उत्सर्ग ही नारीके सबसे बड़े अधिकार होते हैं। बायरनके व्यवहारोंके लिए इस नारी-उरमें तरलता कम, आलोचना अधिक थी। संवेदनशीलताकी तीव्रता, प्रतिहिंसाकी भावना और आहत गर्वके आक्रोशने बायरनको विरोधी प्रवृत्तियों का वह चरित्र प्रदान किया कि वह दुर्बोध हो उठा—"तुझे मीर समझा है यां कम किसूने।" पतिका हृदय पढ़ लेनेमें लेडी बायरनसे भी भूल हुई। "Lord of himself—that heritage of woe" का व्यंग बायरनसे अधिक और कौन समझ सकता है?

विच्छेदकी वेदनासे बायरन आजीवन दग्ध रहे। आगस्टाके नाम उनका एक पत्र है—"मेरे अपराध चाहे जो रहे हों, उनके लिए दण्ड-विधायकके पदपर नियतिने उनकी (लेडी बायरनकी) नियुक्ति नहीं की थी। उनका आचरण देख लेना एक दिन उन्हीं के लिए सन्ताप बन बैठेगा। सन्तानके प्रति कर्त्तव्यपरायणता और कल्याणकी आड़ ले वे चाहे जो तर्क पेश करें, चाहे जैसा व्यवहार करें, वह हाहाकार जो उन्होंने उस पुरुषके जीवनमें सर्जित किया है, जिसके लिए वे केवल अभिशाप रहीं, एक दिन उन्हींके पास लौट जायगा। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे जो मानसिक नरक यातना इस लीने मुझे पहुँचाई है, वह कोई और प्राणी भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

सह सकता है, मैं नहीं जानता। उसने मुझे मेरे बच्चेसे छुड़ाया, तुमसे दूर किया।" आत्माभिमानी कविका मन संसारके समक्ष अपनी वेदना आने नहीं देता था। वैयक्तिक दुःखको बायरनने छिपाया है। कविताके क्षेत्रमें भी वे खुलकर शेलीके शब्दोंमें कह न सके—"O! lift me as a cloud, as a leaf", यद्यपि जीवनके शूलोंसे विंधकर उनके प्राण भी रक्त-स्राव करते रहे हैं। क़ानूनने उनसे पत्नी छीनी। पत्नीने जब पितृत्वके अधिकारसे उन्हें वंचित करना चाहा, तब बायरनने उन्हें लिखा—"सब-कुछ होनेके बावजूद अब तक हृदयमें जो पलती रही है, वह सम्मिलनकी आशा, अब मुझे विश्वास हो गया, बेकार है। सम्भवनीय न सही, यह निष्कपट ज़रूर थी। और अब इससे सम्बन्ध तोड़ते वक्त उससे भी अधिक व्यथा हो रही है, जितनी तुमसे अलग होते समय हुई थी। इस सारे दुखद व्यापारमें मेरी कोशिश यही रही है कि हमारे बीचका सौहार्द मिटने न पावे। काश, तुम कभी याद भी कर लिया करतीं कि तुम्हारे परिवारकी खातिर जिसने यश, नाम और अपने समस्तको आहुत चढ़ा दी है, उससे कभी तुमने प्रेम भी किया था। और तुमने चाहे जो समझा हो, वह भी तुम्हें अन्तःकरणसे चाहता था। अगर तुमने यह धारणा बाँध रखी है कि मैं तुम्हारे लिए प्रतिकारके भाव छिपाए हूँ, तो तुम भूल कर रही हो। इतना नीच मैं नहीं। क्रोधित मैं रहा हूँ—यह अचम्भेकी बात नहीं। पर रोषके क्षणिक व्यक्तिकरणके बाद मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिसके कारण हमारी सन्तान हमारी लज्जाकी उत्तराधिकारिणी होती। मेरे विरुद्ध मनमें कटुता एकत्रकर यदि तुम आराम पाने की आशा किए बैठी हो, तो तुम फिर भूलमें हो। तुम सुखी नहीं; तुम्हें शान्ति नहीं—उतनी भी नहीं, जितनी सामान्य मानवताके हिस्सेमें पड़ी है। जो दण्ड मैंने तुम्हें न दिया, वह काल और प्रकृति देंगे। मैं अपनी भूलोंके लिए परिताप कर रहा हूँ। तुम अपनी ग़लतियोंपर पछताओगी।" वे कभी भूल न सके, वे पति हैं। वे कभी भूल न सके, वे पिता हैं। यही उनकी सबसे बड़ी पराजय थी।

आलोचकोंका मत है, बायरन अन्तिम वयसमें लेडी बायरन से समझौता कर लेते। यह इसलिए कि उनके अन्तरमें रूढ़ियोंके लिए श्रद्धा थी। मेरे खयालमें कविके सम्बन्धमें यह भी एक भ्रान्ति है—वैसी ही, जैसी तलाक़के मामलेमें उन्हें एकान्त अपराधी क़रार देना। इस परम निःस्वार्थ प्राणीका व्यक्तित्व किस प्रकार सदा ग़लत समझा गया है! बायरनने पतियोंको उनकी पत्नियाँ यदि वापस की हैं, तो केवल उन युवतियों और उनके परिवारोंके हितका खयालकर। बलिदानके प्रत्येक अवसरपर अपने सुखकी बात स्वप्नकी भाँति उनके मस्तिष्कसे मिटी है। बायरन पत्नीके पास वापस लौट जाते समाजके भयसे नहीं, हृदयसे लाचार होकर। तलाक़ भी लेडी बायरनके प्रति बायरनके अगाध, उत्कट प्रेमका अन्त न कर सका। बायरनके दाम्पत्यका सारा मान-अभिमान मिलबैंक बायरनके ही निकट है। जैसे मातासे प्रताड़ित पाया बालक सान्त्वनाकी खोजमें फिर माताके अंचलमें मुँह छिपा ले। बायरनका मन भी बार-बार लेडी बायरनकी ओर इस प्रकार लपकता है, जैसे उनके बिना उन्हें गति न थी, 'जैसे काग जहाज़ को सूझे और न ठौर।' "मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है"—एक के एक चित्रके लिए प्रार्थना करते लेडी बायरनको वे लिखते हैं—"कि ऐसी एक चीज़ मेरे पास है, जो स्मरण दिलाती रहती है कि जो मेरा है, वही जीवनपर्यन्त तुम्हारा भी रहेगा।" बायरन अगर चाहते, तो उनका महल एक बार फिर दीवालीकी अमित दीप्तिसे जगमगा उठता; परन्तु वहाँ तो गृहस्वामिनीका आसन केवल मिलबैंकके लिए था। प्रेयसियाँ बायरनके लिए अनेक थीं, पत्नी सिर्फ़ एक।

परिस्थितियाँ विधि हैं, विधायक भी। बचपनसे ही जिस पारिवारिक सुखके लिए लार्ड बायरनका सम्पूर्ण अस्तित्व पिपासाकुल रहा था, जो शान्ति काउन्टेस ग्ल्यूस्ओलीने उनके जीवनमें सँजोई, वह लेडी बायरनके सम्पर्कमें उन्हें न मिल सकी। मिलती होती, तो प्रसन्नताको अपने सारे दर्जे तैकर विकलतासे मिलनेका मौक़ा न मिल पाता। बायरन तो अन्याय-प्रताड़ित पतिके ही रूपमें दीख पड़ते हैं। एक आचारहीनताके कारण उनके और समस्त गुणोंसे लेडी बायरन यदि आँखें न फेर लेतीं, कलाकारके भाव-प्रवण प्रवृत्तियोंके लिए यदि अधिक सम्मान दिखाया होता, बायरनने भी जो पत्नीके पत्नी-भावका मान रखा होता, तो कविका हृदय भग्न न होने पाता। पत्नीसे बायरनको अगर तनिक भी सौहार्द मिलता, तो व्यंग और क्रोधके आवरणमें अपनी व्यथा छिपाए, अग्नि और उमंगसे भरा यह अभिमानी महाद्वीपके बर्फ़ीले मैदानों, ऊँचे शिखरों, गहरी झीलोंके बीच आँधी और तूफ़ानों, मृत्यु और रोगोंमें भटकता न फिरता। उस दिशामें यदि ज़रा भी द्रावक सहानुभूति उन्हें दीख पड़ती, तो कला-मर्मज्ञोंका यह सम्राट, अंगरेज़ी-साहित्यका नेपोलियन, सरस्वतीका वरद पुत्र, ऐसा उदारचेता कवि घरसे दूर, परिजनोंसे दूर, एकाकी, परित्यक्त, आहत उर जीवनके विकास-कालमें ही यों न मुरझा जाता।

Through life's road so dim and dirty.
I have dragged to three and thirty.
What have those years left to me?
Nothing except thirty three.

में उस जीवनका सारा इतिहास समाया है, जहाँ आनन्दके क्षण वरदानके पथपर चल सदैव अभिशाप बने हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan-Kosha

कहानी-कला

श्री विष्णु प्रभाकर, बी० ए०

जीवन स्वयं एक कहानी है। आत्म-अभिव्यक्तिके पीछे यही भावना काम करती है। मनुष्य अपनी बात कहना चाहता है और अपने जो चारों ओर हैं, उनकी बात जानना चाहता है। इसी कहने-जाननेमें कहानीका जन्म होता है। इसीलिए विश्वके प्राचीनसे प्राचीन ग्रन्थोंमें कहानीका अस्तित्व मौजूद है। वेद, शास्त्र, जातक, बाइबिल तथा बादके धर्म-ग्रन्थोंमें भी कथा-साहित्य की प्रचुरता है। समय-समयपर युगके आदर्शोंको इन्हीं कथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है। लोक-प्रचलित कहानियों द्वारा आज भी हम किसी जाति या देश-विशेषकी मनोदशा, आकांक्षा और आदर्शका पता लगाते हैं। मनोरंजनके साथ-साथ मनुष्यकी वास्तविक दशाका ज्ञान भी वे कराती हैं।

कहानी कई कारणोंसे इतिहास, निबन्ध, कविता आदिसे भिन्न है। इतिहासमें अधिकतर राजनीतिक चर्चा होती है। निबन्धमें केवल-मात्र सिद्धान्त और तथ्यकी बात बताई जाती है। कविताकी अतिरंजित भावना तथ्यको बहुत-कुछ छिपा लेती है; पर कहानीमें वस्तुके उस रूपके दर्शन होते हैं, जो वास्तविक हैं। कहानीकार राजनीति, धर्म, विज्ञान, कला आदि सभीका वर्णन मनुष्यसे व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित करते हुए करता है, इसीलिए उसकी बात ज़्यादा और जल्दी समझमें आ जाती है और इसीलिए कहानीका प्रचार भी ज़्यादा है। वह जीवनके ज़्यादा समीप है और थोड़े-से शब्दोंमें जीवनके अनेक जटिल रहस्योंकी सरलतासे समझा देती है। सिद्धान्तके लिए वह उदाहरणका काम देती है, इसीलिए कहानीका महत्व है। यही महत्व कहानीकारके लिए गौरवमय है और उसकी आवश्यकताको प्रकट करता है; लेकिन इसी कारण कहानीकारका उत्तरदायित्व भी अधिक है। व्याख्याताका उत्तरदायित्व होता ही सबसे अधिक है।

इस उत्तरदायित्वको लेकर कहानीकारके लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि वह अपने चारों ओरकी दुनियासे घनिष्ट-से-घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करे। उधरसे मुँह मोड़कर वह दार्शनिक भले ही बन जाय; परन्तु कलाकार नहीं बन सकेगा। इसी बातको दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं: चूँकि कहानीका जीवनसे व्यापक सम्बन्ध है, इसलिए उसे वैयक्तिक ज़्यादा नहीं होना चाहिए। ऐसी कहानी पाठकके लिए जल्दी ग्राह्य नहीं होगी। समाजसे व्यक्ति अलग नहीं हो सकता। इसी तरह व्यक्तिके मनोविश्लेषणको लेकर कहानी लिखी जायगी, इसके विरोधकी बात नहीं कही जा रही। बात केवल इतनी है कि कहानी एक व्यक्ति तक सीमित न रहे, वह व्यक्तियोंकी चर्चा अधिक करे। लेखकको अपनी दार्शनिकताके साथ-साथ मानव-समाजमें निरन्तर मच रहे संघर्षका चित्रण करना भी ज़रूरी है, नहीं तो कहानी अधूरी रह जायगी। हम अपनी दार्शनिकताके मूल्यको ठीक-ठीक तभी समझ सकते हैं, जब हम दूसरे व्यक्तियोंसे सम्पर्क स्थापित करें।

हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए। परम्पराको आगे बढ़ाए बिना तो तालाबके जलकी सड़ाँद ही हमें मिलेगी। सड़ाँद तो नाश करनेवाली है। वह परम्पराको भी नष्ट कर देगी। परम्परा के अर्थ केवल इतने ही नहीं हैं कि जो चलती आ रही है, बल्कि उसमें 'चलती रहेगी', यह भी गर्भित है। 'रही' में प्रवाहकी शर्त्त है, इसीलिए कछुएकी तरह अपनेमें सिमटकर बैठनेसे काम नहीं चलेगा। आत्म-विश्वास, कल्पना, आदर्श, व्यापक दृष्टिकोण आदिको लेकर ही हमें निरन्तर आगे बढ़ते रहना है; लेकिन यहाँ एक चेतावनी देनी ज़रूरी है। आत्म-विश्वासको कोई अहंकारके अर्थमें न ले। हिन्दीमें इधर यह प्रवृत्ति बहुत व्यापक होती जा रही है। अनेक नए लेखकोंमें जाने या अनजाने यह भावना काफ़ी तेज़ीसे प्रकट हो रही है कि हमने जो-कुछ लिखा है, वह कलाका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, हमें अब कुछ नहीं सीखना है और हम तो सिखानेवाले हैं। यह गतिपर अंकुश है। प्रगतिके लिए तो यह भावना विष है। आत्म-विश्वासको इसी अर्थमें ग्रहण किया जा सकता है कि व्यक्ति सब-कुछ कर सकता है, सब-कुछ जान सकता है और करने और जाननेकी कोई सीमा नहीं है। आदर्श स्थिर नहीं है। मनुष्य सदा नए-नए आदर्शोंका निर्माण करता रहा है और करता रहेगा। यही स्थिति कल्याणमय है और यही प्रगतिशील दृष्टिकोण है।

व्यापक दृष्टिकोणके लिए व्यापक ज्ञानकी ज़रूरत है। इसी कारण कहानीकारको सभी कुछ पढ़ना चाहिए। उसे अपने पूर्ववर्त्ती जितने भी लेखक हो चुके हैं, उनके प्रति आलोचककी दृष्टि रखना ज़रूरी है। इस वाक्यसे शंका हो सकती है; परन्तु आलोचक हुए बिना कोई कुछ भी सीख नहीं सकेगा, बल्कि अपना अस्तित्व भुलाकर किसी एकका अपना बन जायगा। यह स्थिति कलाकारके लिए आत्महत्या-जैसी है। कलाकार कभी किसीके आदेशसे नहीं चल सकता। अपने प्रति जगारूक तथा अनुभूतिशील रहकर तथा दूसरेके प्रति सहानुभूति लेकर अगर वह अध्ययन करेगा, तो अवश्य ही कलाके मर्मभेदी तत्त्व उसे मिलेंगे। इसीलिए यहाँ आलोचनाका मतलब केवल गहन, व्यापक और सहानुभूतिपूर्ण अध्ययनसे है। इसी हालतमें वह अपनी आवश्यकतानुसार अपने पूर्ववर्त्ती या समकालीन कलाकारोंसे कुछ सीख सकता है और ग्रहण भी कर सकता है। वह जागरूक है, तो ग्रहण करना न चोरी है, न नकल; क्योंकि विचार और भावना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसीकी बपौती नहीं हैं। चिन्तनशील रहते हुए अगर किसी लेखककी भावना किसी दूसरेसे मिल जाती है, तो वह भावनाकी व्यापकताको ही प्रकट करता है ; लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि किन्हीं दो लेखकोंकी वाक्य-रचना भी मिल सकती है। वर्णमालाके सीमित अक्षर होते हुए भी यह उसी तरह असम्भव है, जिस तरह असंख्य मनुष्योंके रहते हुए कई शक्लोंका हूबहू मिलना। यों तो दस इन्द्रियाँ सभी मनुष्योंके क्या, लगभग सभी जीवोंके होती हैं।

इसीके साथ यह समझ लेना भी ज़रूरी है कि कथाकार जीवनका चित्रकार होकर भी प्रचारक नहीं है। कला और प्रचार के बीच जो अन्तर है, वह कहानीकारको सबसे ज़्यादा समझना है। प्रचार राजनीतिज्ञका काम है, कलाकारका नहीं। यह तो हो सकता है कि उसके अपने कुछ विचार हों और विचार होते हैं, क्योंकि उनके बिना उसका अस्तित्व ही नहीं होता ; पर इसका यह मतलब नहीं कि वह इनको इस प्रकार प्रकट करे कि ये पाठकके मनपर सीधे उभर आयँ और वह एकदम कह उठे कि यह कलाकार तो अमुक धाराका प्रोपेगेण्डा कर रहा है। यह नारेबाज़ी कलाकारकी असफलताका ही नारा बुलन्द करती है। जिस तरह कलाकार किसीका आदेश मानकर नहीं चल सकता, उसी तरह वह किसीको आदेश (डिक्टेट) दे भी नहीं सकता। यह अधिकार उसे नहीं मिला है, इसीलिए यह ज़रूरी है कि वह इस तरह लिखे कि उसके विचार उसकी अपनी अचेतनतामें इस तरह घुल-मिल जायँ कि पाठक उन्हें कभी कलाकारकी कलासे अलग न कर सके। कहानीके पात्र इस तरह अपनी बात कहें कि पाठक कलाकारके अस्तित्वको ही भूल जाय। लेखक जब कहानीके पात्रोंसे अभिन्नता स्थापित कर लेता है, तो कला और जीवनमें कोई अन्तर नहीं रहता, और कलाकार अपनी बात पाठकके हृदयमें पहुँचाकर भी प्रचारक नहीं बनता।

एक पुराने विवादकी बात भी कथाकारको जान लेनी चाहिए—कला कलाके लिए या जीवनके लिए ? कलाका जीवनसे अलग कोई अस्तित्व नहीं है। कहा जा सकता है, कला ही जीवन है ; क्योंकि जो जीना जानता है, वही तो कलाकार है। तब अगर कहा जाय कि कला कलाके लिए है, तो ग़लत क्या है ? जीवन जीवनके लिए यानी जीवन जीनेके लिए है। जीना जाने बिना भी क्या कोई कलाकार होता है ? फिर यह विवाद क्यों ? इसका कारण है कि 'कला कलाके लिए'के नारे लगानेवाले व्यक्तिवादी हैं। समाजकी व्यापक अनुभूतिकी उन्हें अधिक चिन्ता नहीं है। जीवन उनके लिए एक सीमित चीज़ है। कलाके लिए व्यक्तित्वकी ज़रूरत होकर भी यह स्थिति पलायनवादी मनोवृत्तिकी सूचक है। दूसरी ओर 'कला जीवनके लिए'के जो पक्षपाती हैं, वे कलाके अर्थोंमें रोचक अभिव्यक्ति और सुन्दर जो भाव हैं, उनको भूल जाते हैं। जीवनका वर्णन करते-करते वे कोरे उपदेशक या आदर्शवादी प्रचारक बनकर रह जाते हैं, यह भी कलाकारकी मौत है। अतः इन दोनों परिस्थितियोंमें सामंजस्य स्थापित करना अर्थात् जीवनका कलात्मक और ठोस दृष्टिसे वर्णन करनेकी कोशिश कथाकारको करनी चाहिए—उस जीवनका, जिसमें राष्ट्रका सुख-दुख, संघर्ष, आकर्षण, आकांक्षाएँ, कामनाएँ प्रतिध्वनित होती हों। यह चेतनता कथा-साहित्यकी सबसे बड़ी ज़रूरत है।

उपर्युक्त बातोंपर मनन करनेसे एक बातका हल और मिल जाता है। वह यह कि कहानीकारको कहानी लिखनेका टेकनीक जानना चाहिए या नहीं। जो लेखक केवल टेकनीकके पीछे पड़कर ही आगे बढ़ते हैं, वे और कुछ भले ही बन जायँ ; पर कलाकार नहीं बन सकते। उनमें प्रवाहका अभाव रहता है, और प्रवाह जीवनकी शर्त्त है। वे उस व्यक्तिके समान हैं, जो जीता तो है ; परन्तु उसके हाथ-पैर कट चुके हैं, शायद नेत्रहीन भी है। यह स्थिति हेय है। इतना कहकर टेकनीककी निस्सारता सिद्ध नहीं करनी है, बल्कि यही स्पष्ट करना है कि कहानी-लेखक बराबर लिए टेकनीकका बोझ ही अपने मस्तिष्कपर नहीं लादना चाहिए। उससे अधिक ज़रूरत इस बातकी है कि जीवनको गहरी दृष्टिसे देखा जाय। दृष्टिकोणको व्यापक बनाया जाय, तो सच जानिए कि कथाकारके हृदयसे जो-कुछ कहानीके रूपमें निकलेगा, वह कहानीके दिए गए टेकनीकपर पूरा उतरेगा। छन्द घोट-घोटकर कभी कोई कवि नहीं बना है। इसी तरह टेकनीक बनाकर कहानी लिखना नहीं सीखा गया, बल्कि कहानीका उत्तरोत्तर विकास ही टेकनीक बन गया है। टेकनीक कहानी-लेखकका निर्माण नहीं करता, बल्कि कहानी-लेखक ही टेकनीकका निर्माता है। टेकनीक विज्ञानके फारमूलेकी तरह अडिग नहीं है (वैसे तो विज्ञानके फारमूले भी बदलते रहते हैं), वह तो युग-युगमें बदलता रहता है। इतना कुछ समझकर कथाकार यदि टेकनीकका अध्ययन करता भी है, तो वह धोखा नहीं खा सकता।

अन्तमें आजके कथाकारको एक और बात भी जाननी है कि वह केवल यथार्थका चित्रण करनेवाला नहीं है, बल्कि वह यथार्थ क्यों और कैसे सम्भव हुआ, यह भी बतानेवाला है। साथ ही क्या यह स्थिति ठीक है, यदि नहीं, तो और क्या होना चाहिए आदि ज्वलन्त प्रश्नोंसे भी उसे मुँह नहीं मोड़ लेना है। भविष्यकी झाँकी भी उसे देनी है। वह केवल जीवनका चितेरा ही नहीं है, बल्कि निर्माता और स्रष्टा भी है। वह ठीक स्रष्टाकी तरह जीवनमें एकदम घुल-मिल गया है, अलग कहीं नहीं है। उसकी चेतावनी ऊपरसे नहीं, बल्कि अन्दर-ही-अन्दर आत्माकी पुकारकी तरह मनुष्यको सचेत करती रहती है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म-बहन

श्रीमती होमवती देवी

जब भैया आठवीं-नवीं कक्षामें पढ़ते थे, तभीसे राजीव बाबूसे उनकी मित्रता चली आ रही थी, और आज तक उस मित्रतामें रत्ती-भर भी फ़र्क़ नहीं जान पड़ा। हाईस्कूल-परीक्षा पास कर लेनेके उपरान्त भैयाके अन्य सहपाठी चाहे दूर न भी हुए हों; किन्तु राजीवलोचन बनारस छोड़कर कलकत्तेमें अपने किसी सम्बन्धीके पास चले गए और फिर वहींसे उन्हें कोई नौकरी भी मिल गई। जब भैया द्वारा मेरे विवाहका निमन्त्रण पाकर वे आए, तब उन्हें पहचाननेमें भी कठिनाईका सामना करना पड़ा। कम-से-कम मैं तो उन्हें तब तक पहचान न सकी, जब तक कि उनका नाम न सुन लिया। भैयाने दुबले-पतले शरीर-वाले राजीवको अपनी बलिष्ट भुजाओं द्वारा सिरसे ऊँचा उठाकर फ़र्शपर डाल दिया। फिर कहा—'क्यों बे कृतघ्न, चुपचाप सगाई करा बैठा और हमारे भाग्यमें दो लड्डू भी नहीं! अच्छा, विवाह होने दे, तब समझूँगा।' मैं आँगनमें होती हुई अम्माके लिए दूध लिए जा रही थी। उन दोनोंका मल्लयुद्ध देखकर मुझे हँसी आनेको हुई, और मैं जल्दीसे दूसरे कमरेमें भाग गई। भैयाका कण्ठस्वर सुन पड़ा—'उधर क्या देख रहा था, नीहारको ही न? क्यों, अभी तक पुरानी आदत नहीं छूटी न? अच्छा चलो, भोजन कर लें, नहीं तो अम्माका पारा चढ़ जायगा। बड़ी देर हो गई।'

भयाकी बातें सुनकर मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। सोचा—इन्हें अभी तक इस प्रकार छिछोरापन दिखलाते तनिक भी संकोच नहीं होता! इतने बड़े हो गए, परन्तु बात करनेका ज़रा भी सलीका नहीं। तभी उन्होंने मुझे आवाज़ देकर खाना खिलानेके लिए बुलाया; परन्तु जी अच्छा नहीं है कहकर, नौकरके हाथों थाल भेजकर मैंने छुट्टी पाई। इसके पश्चात् विवाह के विशेष संस्कारोंमें बाँधकर मुझे एक कोनेमें बैठा दिया गया। कोई भी काम करनेकी मनाही इसलिए खास तौरपर कर दी गई थी कि अपने विवाहमें आप ही काम करनेसे वर्षाका बहुत डर रहता है और सब कार्योंमें विघ्न पड़ जाता है। मेरा मन वैसे ही अप्रसन्न था। कुछ तो लाज और कुछ अपनोंके छूट जानेका दुःख, साथ ही एक अपरिचित परिवारके सम्पर्कमें आनेका भय—इन सब बातोंने मिलकर मुझे अधमरा-सा कर दिया। यही पता नहीं लगता था कि मेरे आसपास हो क्या रहा है। इसी दशामें चार दिन खूब धूमधामके साथ बीत गए। मैं अपना घर छोड़कर दूसरी जगह चली गई, और शायद दो ही चार दिन बाद सब अतिथि-अभ्यागत भी अपने-अपने घर चले गए।

एक सप्ताह पश्चात् मैं लौटी, तब वहाँ कोई भी नहीं था। राजीव भी चले गए थे। उन्हें शायद छुट्टी अधिक न रही होगी। वैसे भैया उन्हें जल्दी छोड़नेवाले न थे; क्योंकि राजीव उनके विशेष मनोरंजनकी वस्तुओंमें से एक थे।

कुछ महीनोंके बाद एक दिन भैया अपने जानेकी तैयारी कर रहे थे। मैंने पूछा—'कहाँ जा रहे हो, भैया?'

'राजीवकी बारातमें।'—वे बोले।

लगभग दो-ढाई वर्ष पश्चात् जब मुझसे मिलनेके लिए एक बार भैया बलिया गए, तब उन्होंने कहा—'राजीवका घर उजड़ गया, नीहार! उसकी पत्नीका हालमें ही देहान्त हो गया। कुल दो-ढाई वर्षमें ही सब-कुछ हो गया। इधर तुम्हारा दुःख भी भूले न थे। क्या किया जाय, भगवानकी इच्छा!'

भयाको चाहे राजीवका दुःख अधिक व्यथित कर रहा हो, चाहे मेरा; पर उनकी इतनी बातसे मेरी तो अपनी ही व्यथासे छाती फटने-सी लगी और जी घबराने लगा। तभी जीवनका एकमात्र आधार और सौभाग्यकी नन्हीं-सी स्मृति कुन्द रो पड़ा। मैं जल्दीसे उसे उठा लाई। इस समय वह ६ मासका शिशु, जिसका प्यारका नाम मैंने कुन्द ही रखा था, मुझे बहुत बड़ा जान पड़ा, मानो यही मेरा संरक्षक है और यही अभिभावक। बीते हुए दिनोंकी सुखकी घड़ियोंके इस छोटे-से अवशेषको मैंने मानपूर्वक छातीसे लगा लिया।

- २ -

सुख-दुःखकी अनेक रेखाओंको बनाते-बिगाड़ते तीन वर्ष पूरे हो गए। अब ६ महीनेसे मैं यहीं हूँ। इन ६ मासके थोड़े-से दिनोंमें मैंने बहुत-कुछ पाया है। सबसे पहली बात यह है कि अब आकर मैं यह समझ सकी हूँ कि स्त्रियों और पुरुषोंकी मनो-वृत्तिमें कदाचित् आकाश-पातालका नहीं, तो थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य है। दूसरा अनुभव है सन्तानका माता-पितापर अधिकार। पिताकी बात उतनी ठीक-ठीक नहीं जानती; किन्तु मातापर अवश्य ही पुत्र अपना नियन्त्रण थोड़ी-थोड़ी समझ आनेपर ही मान बैठता है। कारण, मेरा छोटा-सा कुन्द मेरी प्रत्येक बातकी चिन्ता अपने माथे लेनेका यत्न किया करता है। 'अम्मा, तुमने आज खाना क्यों नहीं खाया? मैं तो तुम्हारे ही साथ खाऊँगा। तुम रो क्यों रही थीं?...खचेड़ू हमें बहुत चिढ़ाता है, उससे तुम मत बोलना।' इत्यादि बातोंसे वह मानो मुझे पग-पगपर सचेत करना चाहते हुए अपना पूर्ण अधिकार साबित करता रहता है।

जबसे मैं यहाँ आई हूँ, बराबरवाले मकानमें राजीवलोचन को निरन्तर देख रही हूँ। भैया कहते हैं कि उन्होंने एक वर्षकी छुट्टी ली है। और अब वे एक सुधारकके नाते अपना पुनर्विवाह करनेके लिए किसी एक योग्य विधवाकी खोजमें हैं। यह सब बातें सुनकर मेरा कलेजा धड़कने लगा। पता नहीं क्यों, उस दिन न तो किसी काममें मन लगा और न भर-पेट खाना ही खाया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया। मैंने राजीवलोचनकी स्त्रीको केवल एक ही बार देखा था, जब वह माताजीके पैर पूजने एक दिन हमारे घर आई थी। बड़ी सुन्दर और भली लड़की जान पड़ी। मैंने भैयाकी बात सुनकर मन-ही-मन सोचा—राजीव बाबू उसे क्योंकर भूल जायँगे? वह इतनी जल्दी भूल जाने-योग्य तो थी भी नहीं। परन्तु वे पुरुष ठहरे, उनके विषयमें क्या कहा जा सकता है! राजीवकी स्त्री एक सुन्दर कलिकाके समान कन्याको जन्म देनेके दो-एक मास बाद ही मर गई थी। अब राजीवकी माँ उस बच्ची के लालन-पालनका भार अपने ऊपर लिए हुए थीं। मुझे उस मुन्नीपर बड़ी दया आती। कुछ तो पड़ोसके नाते और कुछ अपने हृदयकी प्रेरणाके प्रभावसे प्रभावित होकर मैं मुन्नीके लालन-पालन में उनकी सहायता कर देती थी। कपड़े तो वह अधिकतर मेरे ही सिले हुए पहना करती थी।

प्रायः चायके समय भैया राजीव बाबूको बुला भेजते हैं। उस दिन भी वे दोनों चाय पी रहे थे और मैं ढाल-ढालकर दे रही थी कि अचानक भैयाने कहा—'नीहार, अच्छा एक बात तो बताओ। तुम पुनर्विवाहको कैसा समझती हो?' और फिर उनकी ओर बिना देखे ही मैंने अनुमान किया कि वे दोनों बड़े ध्यानसे मेरी ओर देख रहे हैं। कदाचित् मेरा उत्तर पानेकी उत्सुकता उनमें अदम्य हो उठी थी; क्योंकि उस बीच उन लोगोंने चायकी प्याली योंही छोड़ रखी थी, एक घूँट भी नहीं पी। मेरा काम बन्द रहा, इसीसे कदाचित् मेरा दम और भी घुटने लगा। भैयाने पुनः अपने शब्दोंपर ज़ोर देते हुए कहा—'आजकल सुधारका ज़माना है न, नीहार! लोग-बाग गुड़िया-गुड्डों-जैसे विवाहको वैसा-कुछ महत्व नहीं दे रहे। वास्तविक प्रेम क्या चीज़ है, इसको समझने लग गए हैं। और···और यह चुनाव वयस्क होनेपर अपनी ही इच्छा और पसन्दपर निर्भर करता है। स्त्रियोंको भी अपने समानाधिकारका लाभ उठाना चाहिए। वे पुरुषोंसे किसी बातमें भी कम नहीं। फिर क्यों एक कभी न लौटनेवाले व्यक्तिके नामपर संसारमें जीवित रहकर भी मृतकके समान जीवन बितावें? धन्य हैं वे लोग, जिन्होंने ऐसी स्त्रियोंको हाथ बढ़ाकर अपनाने तथा उनके उद्धारका बीड़ा उठाया है! तुम···तुम भी नए ज़मानेकी होनेके कारण आधुनिक विचार···।' कहते-कहते वे रुक गए। पता नहीं, आगे क्या कहने जा रहे थे। मैंने देखा कि उन दोनों मित्रोंने एक-दूसरेकी ओर विचित्र भावसे देखा। मेरा समस्त अंग काँप-सा उठा। एक क्षण भी वहाँ खड़े रहना दूभर-सा हो गया। अब सोचती हूँ कि वह मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी और हृदयकी दुर्बलताका परिचय था। आज भी जिसे सोचकर मैं कटी-सी जा रही हूँ।

'मुझे देर हो रही है, मैं जा रही हूँ, भैया!' कहकर मैं वहाँसे चलनेके लिए जैसे ही उद्यत हुई कि भैयाने मानो ज़बरन रोककर कहा—'कहाँ जा रही हो? चाय नहीं पीनी है क्या?'

'नहीं, आज शिवरात्रिका दिन है न! अम्माके साथ मन्दिर में पूजन करने जाना है। आज उपवासका दिन है, मैं चाय नहीं पिऊँगी।' मैंने अपनी घबराहटको दूर करनेकी चेष्टा करते हुए कहा।

'यह सब ढोंग कबसे सीख गई, नीहार?' कहकर वे अट्टहास कर उठे। उनकी हँसीसे घर-आँगनका कोना-कोना गूँज उठा। मैं उत्तर देना अनावश्यक समझकर अम्माके साथ पूजाकी थाली लेकर चल दी। रास्ते-भर अनेक प्रकारसे अपने मनको शान्त तथा विचारोंको दृढ़ करनेकी चेष्टा करती हुई जब मन्दिर के द्वारपर पहुँची, तब देखा कि राजीवलोचन अपनी साइकिलका सहारा लिए, मन्दिरकी दीवारपर चिपके किसी सिनेमा-विज्ञापन या वैसे ही किसी अन्य पोस्टरको पढ़ डालनेका यत्न कर रहे हैं। उन्हें देखकर मन एक बार फिर न-जाने कैसा होने लगा; परन्तु एक अमोघ अस्त्रके समान अम्मा मेरे साथ थीं। इस बार अपने हृदय की दुर्बलतापर मैं आप ही झुँझला पड़ी—किसी भले आदमीके विषयमें ऐसी असंगत धारणा बना लेना अपने मनको दूषित करना नहीं, तो और क्या है? यह सब सोचकर भी मैं अपने मनसे इस भावको किसी प्रकार दूर नहीं कर सकी कि देवताओंकी प्रतिमाओंमें इन लोगोंका विश्वास न होते हुए राजीव बाबू आज किस निष्ठासे मन्दिर तक चले आए? अवश्य ही यह बात कुछ असंगत-सी जान पड़ी। इसके पश्चात् एक दिन भी ऐसा नहीं आया, जब कि पहलेकी नाईं मैंने राजीव बाबूसे खुल कर बात करनेकी चेष्टा की हो। अब इनकी मुन्नीको खिलाने दुलरानेमें भी मुझे एक प्रकारकी लज्जा, संकोच और भय-सा मालूम होने लगा। कुन्द तो पहले ही से यह पसन्द नहीं करता था कि मैं उसे छोड़ और किसीके सम्पर्कमें आऊँ। अब उनसे भी सुलह हो गई।

- ३ -

प्रायः जब कभी मैं मुन्नीके हाथ-मुँह धोकर आँखोंमें काजल डालने तथा कपड़े आदि पहनानेके अभिप्रायसे उसे अपने पास बुलाती, तब राजीव बाबू पास आकर खड़े हो जाते। कहने लगते—'देखो न, दिन-दिन कैसी मोटी होती जा रही है! भला इन हाथोंका मान क्या कोई मामूली मान है! हमारी अम्मी बेचारी पुराने ज़मानेकी ठहरीं, फिर अब बुढ़ापा ..। न हो नीहार इस मुन्नीको तुम्हीं ले लो।' आदि बातें करते हुए वे छतपर इधर से उधर टहलने लगते। मैं कभी तो कोई उत्तर ही न देती और कभी कह देती—'यह मेरी तो है ही', और फिर अपने काममें लग जाती। कुन्दको यह सब शायद नहीं भाता था। जब मैं उसके पास जाती, तो देखती कि उसका भरा हुआ चेहरा कुछ और भी भारी हो गया है। वह मुझसे रूठ गया है, यह मैं तुरन्त ही समझ जाती। उसे झट गोदमें उठा लेनेपर थोड़ी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देरमें वह मान भी जाता और अपना अभिप्राय प्रकट करनेमें लेश-मात्र भी संकोच न करता। कहने लगता—'अम्मा, तुम तो मेरी अम्मा हो, उसका मुँह क्यों धोया? क्या तुम मुन्नीकी भी अम्मा बन गईं? मैं उसे मारूँगा।' तब मैं उसे प्यारसे पुचकारकर कहती—'नहीं राजा भैया, वह तुम्हारे उन मामाजीकी मुन्नी है, जिन्होंने तुम्हें कितने सारे खिलौने लाकर दिए थे।' वह कहता—'मैं उनके खिलौने नहीं लूँगा। वे अपनी मुन्नीका मुँह तुमसे क्यों धुलवाते हैं? तुमने उसका मोज़ा क्यों बुना?' कहकर वह मुझसे झगड़ा ठान बैठता। मैं कहती—'उसकी माँ मर गई है, कुन्द! मान लो, मैं मर जाऊँ, तो फिर तेरा काम भी तो दूसरोंको ही करना पड़ेगा न?' इसपर वह मुझे खूब कस कर पकड़ लेता और कहता—'मैं तुम्हें मरने ही नहीं दूँगा।' मुझे हँसी आ जाती और वह भी हँस पड़ता। कुन्दकी और मेरी यह आखरी बात होती और यहींपर झगड़ा खत्म हो जाता।

इधर कई दिनोंसे मैंने मुन्नीके हाथ नहीं लगाया। इससे कुन्द सन्तुष्ट था। पर राजीव बाबू कई दिनोंसे काफ़ी गम्भीर-से दीख रहे थे। हमारे घर आकर भी मानो भैयाके अतिरिक्त किसीसे उन्हें बोलने-चालनेका अवकाश नहीं रहता था। अम्माका गठिया-बाय उभरनेका समाचार जानकर भी वे कुछ विरक्त-से जान पड़े। संध्याको भोजन करते समय भैयाने कहा—'नीहार, आज तीन दिनसे गार्गीकी तबीयत खराब है, उसे बहुत तेज़ बुखार चढ़ रहा है। राजीवकी माँ बेचारी वृद्धा ठहरीं। बड़ी चिन्तामें है। न उसकी माँ मरती, न बेचारा इस झंझटमें फँसता। इसीलिए तो स्त्रीकी ज़रूरत होती है। कहता था कि रात-भर जागना पड़ा, मुन्नी घण्टे-भर भी नहीं सोई।'

मैं चुपचाप सब सुनती रही। फिर बोली—'अच्छा? मुझे नहीं मालूम...।'

'मालूम ही कैसे होता? आज कई दिनोंसे तुमने उसे छुआ भी नहीं। सम्भवतः वह इसीसे बीमार पड़ गई हो। तुमने उसे अपनेसे इतना हिलाया ही क्यों? आखिर अब नहीं, तो चार मास पीछे कुछ दिनोंके लिए ससुराल ही चली गई, तो बेचारी लड़कीका क्या होगा। उसका विवाह जल्द हो जाता; मगर अब...।'

मैंने बीच ही में उन्हें रोककर कहा—'हाँ, मगर अब क्या? और फिर इसका क्या विश्वास कि दूसरी पत्नी अपने ही बच्चेके समान गार्गीको प्यार करेगी। विमाता तो कोई-कोई...।'

'हाँ-हाँ, यही सब तो वह कहता है, और मैं भी जानता हूँ कि गार्गीको तुमसे अधिक प्यार कोई नहीं कर सकता। वह...वह तुमसे बहुत...।' कहते-कहते भैयाकी ज़बान लड़खड़ाने-सी लगी।

मेरा सिर घूमने लगा। फिर भी सावधान होकर मैंने कहा—'तो इन सब बातोंसे आपका क्या अभिप्राय है? जहाँ तक गार्गीका सवाल है, मैंने कभी उससे मुँह नहीं मोड़ा—वह आपके मित्रके नाते या मनुष्यताके नाते। मैं जब तक भी यहाँ हूँ, उसका भार अपने ऊपर लेनेके लिए तैयार हूँ। यदि राजीव बाबू पसन्द करेंगे, तो मैं उसे वहाँ भी ले जाऊँगी। जब उनकी मुन्नी बड़ी हो जायगी...।'

'हाँ-हाँ, यह तो ठीक है; लेकिन फिर भी मनुष्यके साथ दुःख-सुख लगा ही रहता है। मान लो, कलको राजीव ही बीमार पड़ जाय, तो उसीकी देख-भाल करनेवाला कौन है? बूढ़ी माँके सिवा एक घूँट पानी देनेवाला भी कोई नहीं।' भैयाने कुछ मुँह बनाकर कहा।

'क्यों नहीं है? आप हैं, हम सब हैं। जब वे हमारे सुख-दुःखमें काम आते रहे, तब उनका सब-कुछ आपको करना ही चाहिए।'

'मुझे? मेरे किएसे क्या होगा? मुझे अवकाश भी नहीं है। और तुम तो राजीवसे न-जाने क्यों चिढ़ी-सी रहती हो। उसे कमी किस बातकी है? घरमें नौकर-चाकर हैं। घरका पक्का मकान रहनेको है। उसे पाकर कोई भी स्त्री अपने भाग्यको सराहे बिना न रहेगी।'

भैयाकी उपर्युक्त बातोंसे मेरा हृदय धड़कने लगा। उनकी अब तककी ऊटपटाँग बातोंसे मैंने जो मतलब निकाला, वह यही था कि मैं भी राजीव बाबूके समान ही सुधारवादी बनकर नारीत्वके गौरवपर खाक डाल दूँ। आँगनमें फैले हुए कुन्दके खिलौनोंको जल्दी-जल्दी उठाते हुए मैंने कहा—'भैया, तुम पुरुष हो। किसी भी नारीके हृदयकी बात जान लेना कितना कठिन है, इसे तुम नहीं जान सकते। और कब कौन स्त्री किस परिस्थितिमें अपने भाग्यको सराहेगी, इसे समझ लेना भी तुम्हारा काम नहीं। राजीव बाबूके लिए किसी ऐसी विधवाकी खोज करो, जिसने संसारमें कुछ भी न देखा हो, अन्यथा राजीवलोचनका जीवन और भी बरबाद हो जानेका डर है।'

इतना सब कहते-कहते मैं शीघ्रतासे ऊपर चढ़ गई। अम्मा पूजा-गृहमें किवाड़ बन्द किए बैठी थीं। मेरे आँसुओंका बाँध टूटने-सा लगा। सोचा—अभी तो अम्मा ज़िन्दा हैं, और कुछ अधिक दिन भी नहीं हुए। फिर अभीसे भैयाको मेरी चिन्ता क्यों? मेरी जो बहुत-सी ग़रीब बहनें पेटकी ज्वालासे तड़पती रहती हैं, उन्हींमें से क्यों नहीं वे किसीका उद्धार करते? मुझे तो भगवानने सब-कुछ दे रखा है। वहाँ भी सास-ससुरको अकेली बहू हूँ। किसी बातकी कमी नहीं। इसी समय मुझे कुन्दकी याद हो आई। दूसरी छतपर, जहाँ ईंटोंका ढेर पड़ा था, जाकर देखा, वह बैठा ईंटोंसे खेल रहा है। मैंने पूछा—'यह सब क्या हो रहा है, कुन्द? हाथ-पैरमें चोट लग जायगी, तब क्या होगा?'

'चोट नहीं लगेगी, अम्मा! आओ देखो, तुम्हारे लिए घर बना रहा हूँ। इसीमें हम-तुम रहा करेंगे।'—उसने अपनी तोतली ज़बानमें कहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

'हम-तुम रहा करेंगे ? इस नन्हें-से घरमें ?'—मैंने उछलते हुए हृदयको दबाकर कहा।

'हाँ, और किसीको नहीं रहने देंगे—दोनों मामाको भी नहीं, मुन्नीको भी नहीं। बस, नानीको पूजा करने देंगे। और झूला कहाँ डालेंगे अम्मा, इधर ?'—बच्चेने दो खड़ी ईंटोंके बीचकी ओर उँगली उठाकर कहा।

मेरा कलेजा हाथ-भर ऊँचा हो गया। मुझे इसका ध्यान ही न रहा कि इस समय मेरी आयु कुल २० वर्षकी है और कुन्द अभी पूरे चार वर्षका भी नहीं हुआ। मानो मैं बूढ़ी हो चली हूँ और कुन्द हो गया है पढ़-लिखकर पूरा युवा। मैंने उसे गोद में उठाकर कहा—'किसीको रहने क्यों नहीं देंगे, भैया ? कई कमरे तो तेरी बहूको ही चाहिएँ। मेरा क्या है ? पर तुझे घर बनाना नहीं पड़ेगा, भैया ! तेरा बना-बनाया घर आजकल तेरे बिना सूना पड़ा होगा !'

'अम्मा, तो घर चलो न।'—जैसे बालक सोते-से जाग पड़ा।

'हाँ, परसों चलेंगे।'—मैंने उसे फिर छातीसे लगा लिया।

- ४ -

छतकी मुँडेरपर बैठी मैं कुन्दके कुरतेमें बटन लगा रही थी, तभी उस घरमें से किसीके सिसकनेकी आवाज़ कानोंमें पड़ी। जबसे मुन्नीकी बीमारीका समाचार सुना था, तबसे मन उधर ही लगा था। मैंने तो यह स्वप्नमें भी न सोचा था कि राजीव बाबू ऐसे विरक्त हो उठेंगे कि मुझे मुन्नीकी बीमारीकी खबर भी नहीं देंगे। मैं इसी प्रतीक्षामें इच्छा होते हुए भी एक बार बिना बुलाए उसे देख आनेमें लज्जा और अपमानका अनुभव कर रही थी। रोनेकी आवाज़के साथ-साथ राजीव बाबूका स्वर भी सुन पड़ा—'मरने भी दो, अम्मा ! मेरी जानसे झगड़ा भी तो छूटे। रोने-धोनेसे क्या होगा ?'

माँ कह रही थीं—'तेरा घर उजड़ते कैसे देखूँ, बेटा ! मुझे मौत भी नहीं आती !'

इसपर उन्होंने कहा—'यह सब मनसे समझने-भरकी बातें हैं। एक दिन सभीको मरना है। सब झूठे नाते हैं। कुछ घण्टोंकी बात है, यह बेचारी भी अपनी माँके पास चली जायगी। रोओ-धोओ नहीं, इसे शान्तिसे मरने दो।'

पिछली बात पूरी होते-न-होते मैं कुरता फेंककर खड़ी हो गई। अम्माने कहा—'कहाँ जा रही है ? दो दिन जानेके रह गए, अपना सामान तो ठीक कर लेती। धोबीके यहाँ कपड़े पड़े हैं, किसीको लेने भेज दे। और देख, आठ दिन रहकर जल्दी चली आना। घरका काम-काज मेरे बूतेका अब नहीं रहा। जब तक सुन्दरका विवाह हो, सब तुझे ही सँभालना पड़ेगा, बेटी !'

'सो सब देखा जायगा, अभी तो मैं मुन्नीको देखने जा रही हूँ।'—कहकर मैं जल्दीसे नीचे उतर आई। वहाँ जाकर देखा, वह मुँह फाड़े और आँखें मींचे दादीकी गोदमें पड़ी है। ऐसा जान पड़ा, मानो मैंने यह हत्या अपने ही हाथोंसे की है। मुन्नीको मैंने उनकी गोदीसे लेकर छातीसे लगा लिया। पास दालानमें राजीवलोचन मेरी दी हुई पुस्तक 'योगवाशिष्ठ' पढ़ रहे थे। मुझे देखकर यह कहते हुए खड़े हो गए—'अब शायद इसके प्राण फिर लौट आयँगे, बहन ! तुम्हारे इन हाथोंमें जादू भरा है। तभी तो उन हाथोंसे दी हुई यह पुस्तक मुझे मनुष्यलोक ओर ले जा रही है।'

मैंने साफ़ देखा कि उनके नेत्रोंमें तैरते हुए जल-बिन्दुओंमें अपार श्रद्धा नाच रही है। मुन्नीकी दवाइयोंकी शीशियाँ तथा उसकी मालिशका तेल लिए और गार्गीको कलेजेमें चिपकाए मैं अपने घर लौट आई। पूरे एक सप्ताह पश्चात् भगवानने बालिका की आँखें खोल दीं। अब वह मुझे एक मिनटके लिए भी नहीं छोड़ती। और कुन्द भी झगड़ा नहीं करता।

आज फिर वहाँसे बुलानेकी चिट्ठी आई है। लिखा है कि ससुरजी बीमार हैं। सुन्दर भैया पहुँचा दें, तो अच्छा है। यह सुनकर कि मैं कल सन्ध्याकी गाड़ीसे जा रही हूँ, राजीवलोचनने कहा—'बहन नीहार, मुन्नी तो तुम्हारे बिना नहीं रहेगी।'

'पर मैं तो इसे अपने साथ लिए जा रही हूँ न ? क्या आपको इसमें कोई आपत्ति है ?'

राजीव बाबू रो पड़े। बोले—'मुझे और भी लज्जित न करो, नीहार ! तुम मेरी धर्मकी बहन हो। इस बातमें रत्तीभर भी फ़र्क़ नहीं पड़ेगा, बहन ! मैं सदा मानपूर्वक हृदयसे तुम्हारी पूजा करूँगा। इतना तो अधिकार दे सकोगी न ?' और वे फिर फूट-फूटकर रोने लगे।

मुझसे कोई उत्तर देते न बना। ऐसा जान पड़ा, मानो राजीवलोचन मेरे बहुत निकटतम सम्बन्धी हों। अगले दिन चलते समय भैयाने कहा—'दो दिनके लिए मेरे कपड़े भी रख लेना, नीहार ! तुम्हें पहुँचाकर परसों लौट आऊँगा।'

'मगर मुझे पहुँचाने तो राजीव भैया जा रहे हैं। वहाँ अम्माके पास तुम्हारा रहना ज़रूरी है।'

भैया मेरी ओर आश्चर्यसे देखते हुए बोले—'लेकिन उसके मुन्नीका क्या होगा ? वह अभी बीमारीसे उठी है।'

'वह भी तो मेरे साथ जा रही है न ?'

भैया और भी चकित दृष्टिसे आँखें गड़ाकर मुझे देखने लगे। तभी राजीवलोचनने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—'यह अब उसी घरकी होकर वहीं रहेगी, सुन्दर भैया ! कुन्द जब बड़ा होगा, तब उसीके साथ गार्गीका विवाह कर दिया जायगा। नीहारसे यह बहुत हिल गई है न। इनके बिना रह न सकेगी।' और फिर हम चारों गाड़ीमें जा बैठे। भैया तब भी आश्चर्यसे खड़े-खड़े देख रहे थे ; पर खुश जान पड़ते थे। और अम्मा आँखोंमें आँसू-भरे मुझे आशीर्वाद दे रही थीं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'विनयपत्रिका'की स्तुतियाँ

श्री हरिहरप्रसाद गुप्त, एम० ए०, एल० टी०

'विनयपत्रिका'का लगभग एक-चौथाई भाग स्तुतिके रूपमें है। यों तो सारी 'विनयपत्रिका' विनयके पदोंका ही संग्रह है; किन्तु आरम्भके कुछ पद भाषा, भाव शैली आदिकी दृष्टिसे अपना विशेष स्थान रखते हैं। हम इन्हें प्रार्थना या विनय न कहकर स्तुति कहना अधिक उचित समझते हैं। इन स्तुतियोंको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—गणपति १, दिवाकर २, शिव ३ से १४ तक, पार्वती १५-१६, गंगा १७ से २० तक, यमुना २१, काशी २२, चित्रकूट २३-२४, हनुमान २५ से ३६ तक, लक्ष्मण ३७-३८, भरत ३९, शत्रुघ्न ४०, सीता ४१-४२ और राम ४३ से ६१ तक।[1]

स्तुतिकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। किसी भी कार्यकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए आरम्भमें देवताकी वन्दना या स्तुति आवश्यक मानी गई है। इसीलिए ग्रन्थके आरम्भमें भी वन्दनाका नियम है। किन्तु गोस्वामीजीकी वन्दनाओंका कुछ और भी उद्देश्य मालूम होता है। गोस्वामीजीके जीवनका उद्देश्य है राम-भक्तिकी प्राप्ति। 'विनयपत्रिका' उसी उद्देश्य-सिद्धिका साधन है। गोस्वामीजीकी विनयपत्रिका सुनी जाय, इसके लिए वे यह आवश्यक समझते थे कि रामके इष्टभक्तोंको भी प्रसन्न किया जाय। उनका विश्वास था कि रामके सन्निकट पहुँचनेके लिए रामके सेवकोंकी पूजा अनिवार्य है, इसीलिए विनयपत्रिका[2] भेजनेके साथ ही साथ वे हनुमान, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नसे भी सिफ़ारिश करते हैं :—

पवन-सुवन, रिपु-दवन, भरत लाल लखन दीनकी।
निज-निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ,
दास-आस पूजि है खास खीनकी॥
× × ×
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीनकी।
प्रीति रीति समुझाइबो नतपाल कृपालुहिं परमिति पराधीनकी॥
(पृ० २७८)

हुआ भी वही, जैसा कि गोस्वामीजीने सोचा था। हनुमान एवं भरतजीकी इच्छा देखकर लक्ष्मणने गोस्वामीजीके लिए सिफ़ारिश कर ही दी :—

मारुति मनरुचि भरतकी लखि लखन कही है।
कालि कालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति-प्रीति एक किंकरकी निबही है॥

फिर क्या था? रामको भी गोस्वामीजीकी सुधि लेनी पड़ी :—

बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है।

इतना ही तो गोस्वामीजी चाहते थे कि रामजी 'सही' कर दें :—

मुदित माथ बनी तुलसी अनाथकी, परी रघुनाथ सही है॥
(पृ० २७९)

उपर्युक्त तालिकासे स्पष्ट है कि गोस्वामीजीने केवल रामके भक्तों (हनुमान आदि) की ही वन्दना नहीं की है, बल्कि गणेश, दिवाकर आदिकी भी। इससे यह प्रकट है कि गोस्वामीजीकी सभी देवी-देवताओंमें प्रीति थी। उन्हें हम राम-भक्तकी उपाधि देते हुए भी बहुदेवोपासक कह सकते हैं।

गोस्वामीजीके विचारोंमें कितनी व्यापकता थी, यह इससे भी जाना जा सकता है कि उनकी दृष्टिमें राम, कृष्ण, बुद्ध आदिमें कोई अन्तर नहीं है। ये सब एक ही ब्रह्म-सत्ताके रूप हैं।[3] इसी प्रकार गोस्वामीजी हनुमान और शिवमें भी कोई भेद नहीं मानते। हनुमानजीको उन्होंने 'रुद्र-अवतार'[4] माना है और उन्हें 'महादेव' तथा 'कपाली'[5] कहकर सम्बोधित किया है। एक रुचिकर बात यह है कि उपर्युक्त स्तुति-समूहमें शिव और हनुमान-सम्बन्धी स्तुतियोंकी संख्या बराबर है। रामकी स्तुतियोंके अतिरिक्त सबसे अधिक संख्या शिव और हनुमानकी स्तुतियोंकी है। गोस्वामीजीका ऐसा विश्वास भी था कि शिव और हनुमानकी भक्ति राम-भक्तिके लिए अनिवार्य है।[6]

साधारणतः कविने सभी देवी-देवताओंसे राम-भक्तिकी ही याचना की है; किन्तु शंकर और हनुमानसे की गई स्तुतियोंमें भौतिक कष्टकी भी सूचना है। गोस्वामीजी उस कष्टके निवारणके लिए शिव और हनुमानको समर्थ समझते हैं और उनसे अपनी पीड़ाको दूर करनेकी प्रार्थना करते हैं। वे शंकरसे कहते हैं :—

---

१. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभासे प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' २रा भागसे।

२. विनयपत्रिका दीनकी, बापु! आपु ही बाँची। —पृ० २७७

३. भूमि-भर-भार हर प्रकट परमातमा ब्रह्म नर-रूप-धर भक्त-हेतू।
वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू॥
प्रबल पाखंड-महिमंडलाकुल देखि निन्द्यकृत-अखिल-मखकर्म-जालं।
शुद्ध बोधैक घनज्ञान गुनधाम अज बुद्ध अवतार बन्दे कृपालं॥
(पृ० ५८)

४. रनधीर रघुवीर-हित देवमनि रुद्र अवतार संसार पाता।
(पृ० २५)

५. जयति मर्कटाधीस मृगराज-विक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
(पृ० २६)

६. सिव सिव! होइ प्रसन्न करु दाया।
× × ×
बिन तव कृपा राम-पद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई॥ (पृ० ९)
जाके गति है श्री हनुमानकी।
ताहर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, अरु जानकी॥ (पृ० ३०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥
बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूंध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे॥[७] (पृ० ८)

'अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे।' से दो अर्थ निकल सकते हैं। जैसा कि कहा जाता है, गोस्वामीजी जिस समय काशीमें थे, उन्हें एक बार शैवों और मन्दिरके पण्डितोंने बहुत तंग किया था। सम्भव है, यह पद उसीकी ओर लक्ष्य करता हो। एक दूसरा अर्थ जो अधिक समुचित जान पड़ता है, वह यह है कि गोस्वामीजीको काशीमें रहते समय कोई शारीरिक कष्ट हुआ हो।[८] यह कष्ट गोस्वामीजीके विश्वासानुसार भूतकृत था[९] और भूत शिवके ही समाजके गण हैं।[१०] इसलिए वे कहते हैं कि जो-कुछ मुझे कष्ट है, वह आपके ही किंकरों या दासोंका दिया हुआ है और आप ही उसे दूर करनेमें समर्थ हैं। हनुमानजीसे भी इसी प्रकारकी प्रार्थना है :—

तेरे देखत सिंहको सिसु मेंढक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥ (पृ० ३२)
ना कहि आयो नाथ सों सांसति भय भारी।
कहि आयो कीबी छमा निज ओर निहारी॥ (पृ० ३४)
समरथ सुभ जो परवई बीर, पीर पराई।
ताहि तकै सब ज्यों नदी वारिधि न बुलाई॥ (पृ० ३५)

इन पदोंसे स्पष्ट है कि गोस्वामीजीको काशीवास करते समय कोई विशेष भौतिक कष्ट अवश्य हुआ था। कहा नहीं जा सकता कि यह कोई भूतव्याधा थी, अथवा महामारी[११] या बाहुपीर थी[१२]। यह भी हो सकता है कि इनमें से कुछ या सभीने एक साथ उन्हें कष्ट दिया हो।

उपर्युक्त स्तुति-क्रमके पीछे क्या सिद्धान्त है, यह बतलाना कठिन है। गणपतिकी वन्दना तो आरम्भमें होती ही है; किन्तु गणपतिके बाद प्रथम स्थान दिवाकरको क्यों मिला? तिसके बाद हनुमान, भरत, सीता आदिकी स्तुति इनके उपरान्त क्यों की गई, यह निश्चय करना कठिन है। राम-संबंधी पदोंको अंतमें रखनेसे ज्ञात होता है कि कवि अपनी कार्य-सिद्धिके लिए इष्टदेवकी प्रार्थना के पूर्व ही इतर देवताओंकी वन्दना समाप्त कर लेना चाहता है। इस स्तुति-समूहमें कुछ पद ऐसे भी हैं, जिनका रखा जाना रुचिकर नहीं है। शिवकी स्तुतियोंके एक पदमें शिवको सम्बोधित करके वसंत-ऋतुका चित्रण किया गया है।[१३] तुलसी-ग्रंथावलीके सम्पादकोंकी दृष्टिसे इस पदमें शिवके अर्द्धांग-रूप (पार्वती) का वसंत-ऋतुका रूपक घटाया गया है। यदि यही अर्थ है, तो पद बहुत अश्लील है। शिवके अर्द्धांग-रूपको देखकर कामोद्दीप्त जाग्रत होना कितना अनुचित है। किन्तु मेरी समझमें कवि सीधे-सादे वसन्त-ऋतुपर ही नारी-सौंदर्यका रूपक घटाया गया है। इसी ढंगका एक पद गीतावलीमें भी आया है :—

आजु बन्यो है विपिन देखो, राम धीर।
मानो खेलत फागु मुद मदन वीर।
वट बकुल कदम्ब पनस रसाल।
कुसुमित तरु निकट कुरव तमाल।
मानो विविध वेष धरे छैल जूथ।
बिच बीच लता ललना बरूथ॥ (गी० अ० ४)

जो-कुछ भी हो, 'विनयपत्रिका'की स्तुतियोंकी श्रेणीमें इस शृंगार-प्रधान पद शोभा नहीं देता।

काशीके सम्बन्धमें जो पद आया है, उसमें काशीपर कल्प-धेनुका रूपक घटाया गया है।[१४] रूपक-प्रेमियोंकी दृष्टिसे यह पद चाहे जो महत्व रखता हो, किन्तु कल्पना और भावकी दृष्टिसे इसमें कोई सौन्दर्य नहीं। इसके पश्चात्के पदमें कविने चित्रकूटका कल्पवृक्षका रूपक घटाया है।[१५] इस पदके सम्बन्धमें भी वही बात कही जा सकती है। 'गीतावली'के चित्रकूट-वर्णनको इसके सामने रखते हैं, तो यह अत्यन्त फीका लगता है।[१६]

---

७. इसी तात्पर्यका कवितावलीमें भी एक कवित्त है—
देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
× × ×
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर देबे दीन द्वारे गुदरत हौं॥ (क० उ० १६५)

८. अविभूत वेदन विषम होत, भूतनाथ!
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं॥ (क० उ० १६६)

९. रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसीको,
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं॥ (क० उ० १६७)

१०. भूतभव! भवत् पिसाच भूत प्रेत प्रिय,
आपनो समाज सिव आपु नीके जानिए॥ (क० उ० १६८)

११. संकर-सहर सर, नर-नारि बारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है॥ (क० उ० १७६)

१२. केसरी किसोर, रन रोर बरजोर बीर,
बाहुपीर राहु भानु ज्यौं पछारि मारियै॥ (ह० बा० २१)

१३. देखो देखो बन बन्यो आज उमाकन्त।
मनो देखन तुम्हहिं आई ऋतु वसन्त॥
× × ×
कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान।
उर बसि प्रपंच रचै पंचबान॥ (पृ० १४)

१४. सेइय सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी॥ (पृ० २२)

१५. सब सोच विमोचन चित्रकूट।
कलि हरन करन कल्याण बूट॥ (पृ० २३)

१६. 'गीतावली'का कितना सुन्दर चित्रण है :—
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमँगे सृंगनि।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन स्तुति-पदोंमें कुछ पद गोस्वामीजीके आध्यात्मिक जीवन पर बड़ा महत्त्वपूर्ण और सुन्दर प्रकाश डालते हैं। गोस्वामीजी का कर्मकाण्डके सम्बन्धमें क्या मत था, इसका उनके आरती-सम्बन्धी दो पदोंसे अनुमान किया जा सकता है। गोस्वामीजीकी आरती मन्दिरोंमें साधारण रीतिसे की जानेवाली आरती नहीं है। वे अपनेको समझाते हैं : 'ऐ मन, तेरी आरतीकी सामग्री इन बाहरी धूप-दीप-नैवेद्यकी सामग्रियोंसे न हो। तेरी धूप तो यह हो कि तू भगवानके नित्य चराचर-व्यापक रूपको समझ। तेरा ज्ञान ही दीप हो, जिससे काम-क्रोधादि अन्धकारका अवसान हो। तेरे सुन्दर भाव ही शुभ नैवेद्य हों। तेरा पवित्र प्रेम ही ताम्बूल हो। तेरी वत्तियाँ अशुभ-शुभ कर्म-रूपी घृतसे जलें और उनसे त्याग-रूपी अग्निका आविर्भाव हो, जिससे सतोगुण प्रकाश निकले। तू भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी दीपावलीसे भगवानकी पूजाकर तथा भगवानका शयन अपने निर्मल हृदय-भवनमें करा, जिसमें शान्तिकी शय्या हो और जहाँ क्षमा-करुणा आदि भगवान की सेवामें निरत हों।' गोस्वामीजी कहते हैं कि ऋषि-मुनियोंकी यही आरती है, और जो कोई भी इस वास्तविक आरतीको करेगा, उसके सारे कष्ट निर्मूल हो जायँगे और उसके अज्ञान-तिमिरका नाश हो ज्ञान-सूर्यका आविर्भाव होगा। यह आरती मोक्षदायिनी है।[१७]

रामरावण-युद्धका आध्यात्मिक रहस्य क्या है और हमारे नित्यके जीवनमें यह युद्ध किस प्रकार हो रहा है, इसका विवेचन गोस्वामीजीने एक पदमें बड़े मार्मिक ढंगसे किया है। गोस्वामीजीका कहना है कि मोह रावण है तथा काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-द्वेष-कपट आदि रावणके परिजन हैं; जीव विभीषणका स्वरूप है; ज्ञान और भक्ति दशरथ और उनकी गृहिणी हैं, जिनसे भगवानका अवतार होता है। मोक्ष-प्राप्तिकी साधनाएँ ही भालु-बन्दरकी सेना है। प्रबल वैराग्य ही विषय-वनका नाश करनेके लिए हनुमान है। वे भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि हे नाथ, मेरा यम-नियम एक भी नहीं चलता। वे तो देवताओंकी तरह मोह-रूपी रावणके वशमें हैं। ऐसी दशामें आप ही रक्षा कीजिए।[१८]

गोस्वामीजी सत्संगको बड़ा महत्त्व देते थे। सन्तोंके ही प्रभावसे अज्ञानान्धकार दूर हो सकता है, ऐसा उनका विश्वास था। वे सन्तको भगवानका ही स्वरूप मानते थे।[१९] भक्तिके साधनोंमें गोस्वामीजी नाम-जपको सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे। उनका जप-तप सभी कुछ यही था।[२०] उनकी दिनचर्या ही थी भगवन्नाम-स्मरण[२१]। वे राम-नामको सारे वेदोंका सार समझते थे। यह सकल सुखोंकी खान है, ऐसा उन्हें विश्वास था।[२२]

मनहुँ आदि अंभोज विराजत सेवत सुरमुनि भृंगनि ॥
× × ×
जल जुत विमलसिलनि झलकत नभ वन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहुँ जग-रचना विचित्र विलसति विराट अँग-अंग ॥
(गी० अ० ५०)

१७. ऐसी आरती राम रघुबीरकी करहि मन।
हरन दुखद्वन्द्व गोविन्द आनन्द-घन ॥
अचर-चर रूप हरि सर्वगत-सर्वदा बसत इति बासना धूप दीजै।
दीप निज बोध, गत क्रोधमदमोहतम, प्रौढ़ अभिमान चित्तवृत्ति छीजै ॥
भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम सन्तोषकारी।
प्रेम ताम्बूल गतसूलसंसय सकल विपुल भव वासना-बीज-हारी ॥
असुभ-सुभ कर्म घृतपूर्ण दस वर्तिका त्याग पावक सतोगुन प्रकासे।
भगति-वैराग-विज्ञान दीपावली अर्पि नीराजन जगनिवासे ॥
विमल हृदि भवन कृत सान्ति-पर्यंक सुभ सयन विश्राम श्रीराममाया।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका यत्र हरि तत्र नहिं भेद माया ॥
एहि आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देव ऋषि अखिल
मुनि तत्वदरसी।
करै सोइ तरै परिहरै कामादि मल वदति इति अमल मति
दास तुलसी ॥ (पृ० ४७)
× × ×
हरति सब आरती, आरती रामकी।
दहति दुख-दोष निर्मूलिनी कामकी ॥
भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम हारिनी।
विमल विज्ञानमय तेज विस्तारिनी ॥ (पृ० ४८)

१८. मोह दसमौलि,तद्भ्रात अहंकार,पाकारिजित-काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विबुधान्तकारी ॥
द्वेष-दुर्मुख दम्भखर, अकम्पन-कपट, दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचेर निकर सहित षड्वर्ग गोयातुधानी ॥
जीव भवदघ्रि-सेवक विभीषण बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता।
नियम-यम सकल सुरलोक-लोकेस लंकेसबस नाथ! अत्यन्त भीता ॥
ज्ञान अवधेस, गृहगेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभारहर्त्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्यकृत गमनकिय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥
कैवल्यसाधन अखिल भालु-मर्कट विपुल, ज्ञान सुग्रीवकृत जलधि-सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय विषम वन दहनमिव धूमकेतू ॥
(पृ० ५८)

१९. सन्त-भगवन्त अन्तरनिरन्तर नहीं
किमपि मतिमलिन कह दास तुलसी ॥ (पृ० ५७)

२०. भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान दस नाम-आधीन साधन अनेकं ॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ॥
येन श्री रामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ॥
(५० ४६)

२१. नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासीदास कहाई। (पृ० ४१)

२२. सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ!
मानि विस्वास वद वेदसारं ॥ (पृ० ४६)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषाकी दृष्टिसे यदि इन समस्त स्तुतियोंपर विचार किया जाय, तो कहा जा सकता है कि साधारणतया ये दो शैलियोंपर लिखी गई हैं। एक शैली तो साधारण पदोंकी है, जिसमें 'विनय-पत्रिका'के तीन-चौथाईसे भी अधिक भागकी रचना है।[२३] दूसरी शैलीको हम संस्कृत-प्रधान शैली कह सकते हैं, जो संस्कृतके स्तोत्रोंकी परिपाटीपर लिखी गई है। उनमें संस्कृतके तत्सम शब्दोंका बाहुल्य और लम्बे-लम्बे समासोंका प्रयोग है। ऐसे पदोंका अन्त 'म्' से हुआ है। इन स्तोत्रोंमें भी तीन वर्ग किए जा सकते हैं। एक तो वे, जो संस्कृतकी भाषा और शैलीके अधिक निकट हैं।[२४] दूसरे वे, जिनमें हिन्दी-संस्कृतकी खिचड़ी है।[२५] तीसरे वे, जिनमें केवल समासोंका बाहुल्य है, अन्यथा वे हिन्दीके ही अधिक निकट हैं।[२६] गोस्वामीजीने साधारण पदों और स्तोत्रोंकी श्रेणियाँ अलग-अलग न कर एक ही में मिला दी हैं। कभी पद और कभी स्तोत्र इस प्रकार दोनों मिले-जुले चलते हैं। यदि इनका कोई निश्चित क्रम होता, तो ज़्यादा अच्छा होता।

काव्यकी दृष्टिसे यदि इन दोनों शैलियोंपर विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि साधारण पदोंकी रचनामें कविकी मौलिकता, अनुभूति तथा भक्ति-भावनाका अधिक परिचय मिलता है। उन रचनाओंमें सरसता है, स्वाभाविकता है तथा उनमें भावोंकी तीव्रता है। वे हिन्दी-साहित्यकी अनुपम सम्पत्ति हैं। हिन्दी-संसारको उनके लिए गर्व है।

देखिए, निम्न पदमें कितना सुन्दर हास्य है :—

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दए बिनु, वेद बड़ाई मानी॥
× × ×
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी।
तिन रंकरको नाक सँवारत हौं आयो नकबानी॥

विधिके द्वारा यह हास्य, यह व्यंग्य कितना सुन्दर है? इसमें ही साथ ही गोस्वामीजीके शब्दोंमें 'प्रेम-प्रसंसा-विनय-व्यंग्य' चित्रण है। एक अन्य पदमें देखिए, गोस्वामीजीकी सरलता, निर्धनता, उनकी निष्कपटता आदिका कितना स्वाभाविक चित्र है! पदकी एक-एक पंक्ति रसपूर्ण है और वह कविके हृदयकी झाँकीका काम कर रही है :—

कबहुँक अंब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्यायबो कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन सब अंगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम ले भरे उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझि है सो है कौन? कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥

तुलसीकी भक्ति-भावनासे एक-एक शब्द ओतप्रोत है। कला और काव्य दोनोंका कितना सुन्दर सम्मिश्रण है।

स्तोत्रोंका अपना एक स्वतंत्र स्थान है। उनकी शैलीपर संस्कृतकी गहरी छाप है। संस्कृतके धार्मिक ग्रन्थोंमें भगवान्की शक्ति-शील-सौंदर्यके वर्णनकी मुख्य रूपसे यही परिपाटी प्रचलित थी। भगवानका गुणगान करना ही इन स्तोत्रोंका मुख्य उद्देश है। गोस्वामीजीने हिन्दीमें स्तोत्रोंकी रचना करके अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभाका परिचय दिया है और हिन्दी-साहित्यके भण्डारको एक अद्वितीय सम्पत्तिसे परिपूर्ण किया है। एकाध स्तोत्र तो बड़े ही सुन्दर हैं। निम्न स्तोत्रमें भगवानके स्वरूपका कितना सजीव और सरस वर्णन है :—

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव-भय दारुनं।
नवकंज-लोचन कंज-मुख कर-कंज पद-कंजारुणं॥
कंदर्प अगणित-अमित छवि नवनील नीरज सुन्दरं।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनकसुतावरं॥

---

२३. गाइए गनपति जगवन्दन। शंकर सुवन भवानी नन्दन।—१
अब चित चेति चित्रकूट ही चलु। —२४

२४. यत्र कुत्रापि मम जन्म निज कर्मवश भ्रमत जगयोनि
संकट अनेकम्।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे रामविश्राममेकम्॥

२५. नष्टमति दुष्ट अति खेदगत। दास तुलसी शंभु शरण आया।
देहि कामारि श्रीराम-पद-पंकजे। भक्तिमनवरत गतभेद माया॥

२६. जयति अंजनीगर्भ अंभोधि-संभूतविधु विबुध कुलकैरवा-
नन्दकारी॥ —२५

गीत

श्री शम्भुनाथ 'शेष', बी० ए०

विजित हो गया यों मेरा मन, नयन विजय होनेसे पहले;
जैसे सूर्य उदय हो जाए, अरुणोदय होनेसे पहले!
तारोंकी छायामें बैठा सोचा करता हूँ मैं अकसर;
वह भी कैसी दुनिया होगी, नील निलय होनेसे पहले!
अर्ध-निशामें सारा जग तो चुप है, किन्तु हृदय है व्याकुल;
यह कैसा तूफ़ान आ गया विश्व-प्रलय होनेसे पहले?
प्रेमानलमें जल रे क्षण-क्षण, आह न भर मेरे भोले मन;
पानी करके आग पिए जा, अमृतमय होनेसे पहले!
आगे बढ़कर आधे पथमें, मंज़िल खुद राहीको ढूँढ़े;
साहस पैर बढ़ा देवे यदि, पथ निश्चय होनेसे पहले!
क्या अचरज है मधुर मिलनकी, पृष्ठभूमि हो यह अवहेला;
अन्धकार बढ़ ही जाता है, चन्द्रोदय होनेसे पहले!
यही याचना करती है, सागरसे सरिताकी व्याकुलता;
अपने मनकी बात कह सकूँ, तुझमें लय होनेसे पहले!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छिपकलियाँ

कुँवर सुरेशसिंह

छिपकलियोंके बारेमें यह तो हम सभी जानते हैं कि ये मगरकी शक्ल-सूरतके, किन्तु उससे बहुत छोटे क़दके प्राणी हैं, जिनके सिर, पैर और दुम एकमें मिले न रहकर अलग-अलग ज़ाहिर रहते हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं, जो देखनेमें एकदम साँप-जैसे लगते हैं ; लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है।

वैसे तो संसारमें प्रायः २५०० क़िस्मकी छिपकलियाँ पाई जाती हैं ; लेकिन हमारे देशमें इनकी संख्या २९० के लगभग है। फिर जो हैं भी, उनमें आपसमें एक-दूसरेसे इतना भेद रहता है कि उनका अलग-अलग परिचय देना ही ठीक होगा। इससे पहले कि इनके बारेमें अलग-अलग कुछ कहा जाय, कुछ साधारण बातोंका संक्षिप्त वर्णन कर देना असंगत न होगा। छिपकलियोंमें कुछ प्राणी ऐसे हैं, जो पेड़ोंपर रहते हैं ; और कुछ अपना समय पानीमें बिताते हैं। लेकिन ज़्यादा संख्या उन्हींकी है, जिन्होंने खुश्कीपर रहनेकी आदत डाल ली है। इन तीनों प्रकारके प्राणियोंके शरीरकी बनावटपर भी इसका असर पड़ा है, और हम जहाँ यह देखते हैं कि ज़मीनपर रहनेवालोंका शरीर ऊपरसे चपटा रहता है, वहीं पेड़पर रहनेवालोंका दोनों ओरसे चपटा शरीर भी हमसे नहीं छिपता। पानीमें अपना ज़्यादा समय बितानेवालोंका शरीर गोलाई लिए रहता है, और चिकनी दीवारपर दौड़नेवाली छिपकलियोंने अपनी उँगलियोंका ऐसा विकास कर लिया है कि उन्हें छतोंपर उल्टी अवस्थामें दौड़नेमें भी कुछ दिक्क़त नहीं उठानी पड़ती। छिपकलियोंकी खालकी बनावट साँप-जैसी सेहरनुमा रहती है, जो साँपकी केंचुल की तरह समय आनेपर शरीरसे उतर जाती है ; लेकिन ऐसी छिपकलियाँ कम हैं। ज़्यादा तादाद तो उन्हींकी है, जिनकी खाल टुकड़े-टुकड़े होकर निकलती है।

छिपकलियाँ ज़हरीली नहीं होतीं। विदेशमें एक प्रकारकी छिपकली ज़रूर होती है, जिसे ज़हरीली कहा जा सकता है ; लेकिन हमारे यहाँकी किसी छिपकलीके ज़हर नहीं होता। कुछ लोग गोहके बच्चोंको, जिनकी पीठपर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं, 'बिसखोपड़ी' कहकर पुकारते हैं और इसपर विश्वास करते हैं कि 'बिसखोपड़ी'के काटनेसे आदमी फौरन मर जाता है। लेकिन यह एकदम कपोल-कल्पित बात है। बिसखोपड़ी भी ज़हरीली नहीं होती। यह खयाल, जान पड़ता है, इनकी साँप-जैसी दुफंकी ज़बानकी वजहसे पड़ा। गोहकी ज़बान लम्बी और साँपकी तरह फटी-फटी-सी रहती है ; लेकिन और छिपकलियोंकी ज़बान भिन्न-भिन्न तरहकी होती है। विद्वानोंने इनको इनकी मुख्तलिफ़ किस्मकी ज़बानोंके अनुसार अलग-अलग परिवारोंमें विभक्त किया है।

छिपकलियोंके दाँत दो तरहके होते हैं। एक तो वे, जो इनके जबड़ेकी हड्डीके भीतरकी ओर होते हैं और दूसरे वे, जो जबड़ेके अगले हिस्सेपर रहते हैं। कुछ छिपकलियोंकी ज़बानके ऊपर कड़े छिलके-से पड़े रहते हैं और कुछकी ऊपरी सतह मुलायम रहती है ; लेकिन पानी पीनेका तरीका करीब-करीब सबका एक-जैसा ही है। इनका पानी पीनेका तरीका कुत्तों-जैसा है। ये अपनी ज़बान पानीमें जल्दी-जल्दी भीतर-बाहर करके पानी पीती हैं। एक काम इनकी ज़बानको प्रकृतिने और सौंपा है। इनकी ज़बानमें स्पर्श-ज्ञान इतना होता है कि ये बिना देखे अपनी ज़बानसे छूकर अपने अण्डोंको पहचान लेती हैं। इनकी आँखोंकी बनावट ज़रूर बहुत सादी होती है। आँखोंके ऊपर एक पारदर्शी ढक्कन-सा रहता है, जिसके भीतर इनकी पुतलियाँ इधर-उधर हरकत करती रहती हैं।

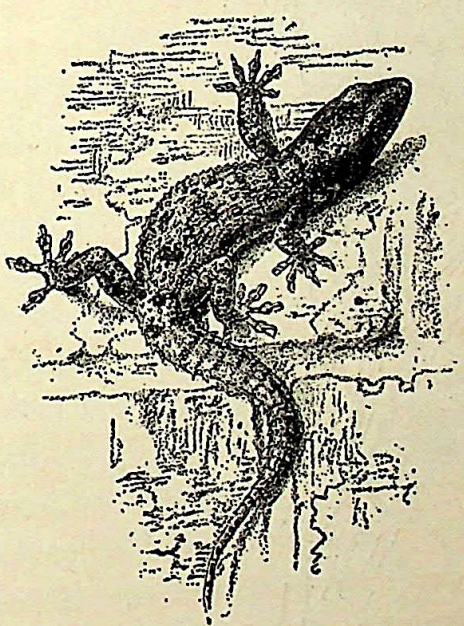

काली छिपकली

छिपकलियोंमें कोई ही ऐसी हैं, जो बच्चे जनती हैं। ज़्यादा संख्या तो उन्हींकी है, जो अंडे देती हैं। शुरू-शुरूमें बच्चोंके थूथनपर एक तेज़ दाँत रहता है, जो डिम्बदन्त (Egg-Tooth) कहलाता है। इसीके सहारे बच्चे छिलका तोड़कर अण्डेसे बाहर निकलते हैं। अण्डेसे बाहर निकलनेके कुछ ही दिनों बाद यह दाँत गिर जाता है। कुछ विद्वानोंका यह भी मत है कि बच्चे अपने डिम्बदन्तकी सहायतासे नहीं, बल्कि अपने पंजोंकी मददसे बाहर निकलते हैं।

प्रायः सभी छिपकलियोंके बच्चोंका रंग चटक होता है, जो बड़े होने तक धूमिल और गन्दा हो जाता है। जोड़ा बाँधनेके समय नर-मादाकी पोशाक कुछ भड़कीली हो जाती है,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिसमें नरका रंग मादासे सुन्दर और चटकीला रहता है।

कुछ छिपकलियाँ अपनी दुम गिरा देती हैं, यह तो हम सब जानते हैं; लेकिन यह थोड़े ही लोग जानते होंगे कि पहली बार टटनेके बाद जब इनके दुबारा दुम निकलती है, तब वह दूसरी

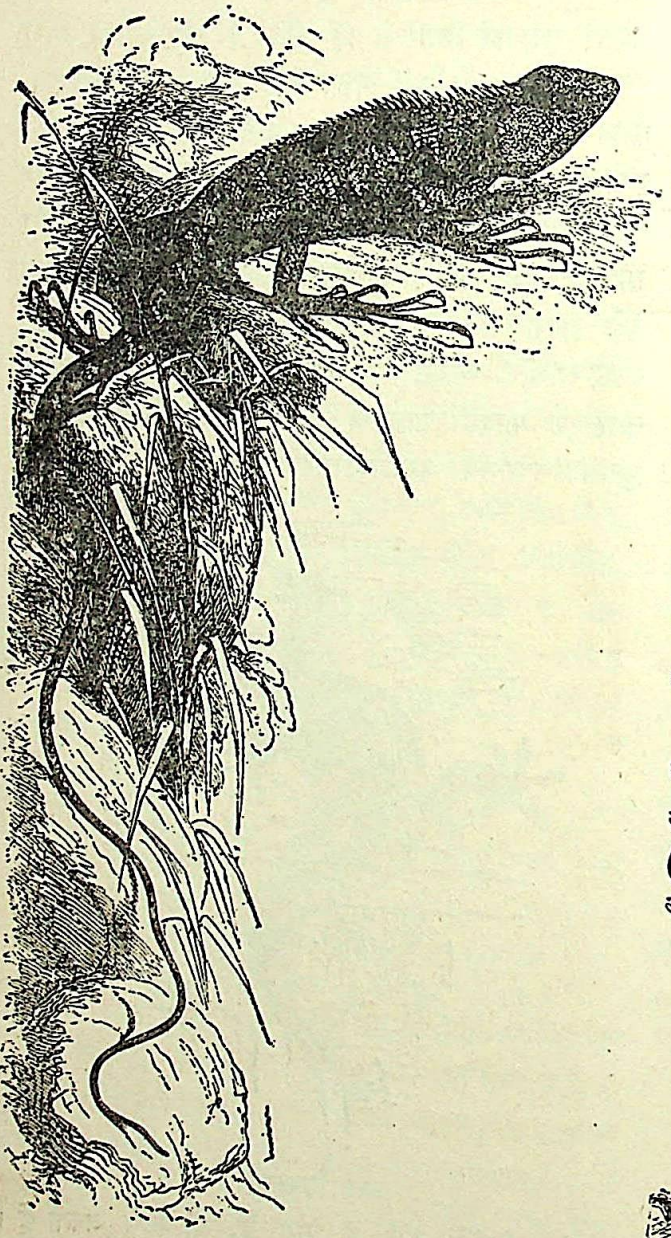

गिरगिट-जातिकी छिपकली

ही तरहकी रहती है। छिपकलियोंकी दुम बीचसे न टूटकर जड़के पास टूटती है, जहाँ वह एक प्रकारकी कोमल हड्डीसे जुटी रहती है और उसके हाथ सिवा इस दुमके और कुछ नहीं लगता। पहली दुमके भीतर तो गुरियाँ-सी पड़ी रहती हैं; लेकिन पहली बार टूट जानेपर दूसरी बार निकली हुई दुमकी बनावट पतली छड़-सी रहती है।

छिपकलियोंने अपने खानेके विषयमें कोई एक नियम नहीं बना रखा है। इनमें से कुछ तो ऐसी हैं, जिनको शाकाहारी कहा जा सकता है। ये शाक-पात और फलके अलावा नरम कोंपलें और सड़ी पत्तियाँ खा लेती हैं; लेकिन ज्यादा तर [illegible] उन्हींकी है, जो मांसाहारी हैं। इनके मांसाहारमें [illegible] मछली, कीड़े-मकोड़े और मेंढकोंके अलावा हर तरहके [illegible] शामिल हैं।

छिपकलियाँ हमारे लिये उपयोगी हैं। एक ओर [illegible] ये कीड़े-मकोड़ोंको खाकर हमको हर प्रकारसे फ़ायदा पहुँच [illegible] हैं, दूसरी ओर इनके शरीरके चमड़ेसे तरह-तरहकी चीज़ें [illegible] बनती हैं। छोटे बैग और बहुत क़िस्मकी वस्तुएँ बनानेके लि [illegible] इनका चमड़ा विदेशोंमें जाता रहता है। इनकी खाल [illegible] मज़बूत तो होती ही है, साथ-ही-साथ उसमें जो खाने-खाने-से [illegible] रहते हैं, वे भी कम सुन्दर नहीं लगते। इनकी खालकी तिज [illegible] रत करनेवालोंसे इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हमको बहुत-[illegible] छिपकलियोंका पता चल गया है; लेकिन इस बातका खतरा भी [illegible] इन्हीं लोगोंकी ज़ातसे बढ़ता जा रहा है कि कहीं हमारे [illegible] कुछ छिपकलियाँ सदाके लिए लुप्त न हो जायँ। गोहको और [illegible] छिपकलियोंसे ज़्यादा खतरा है, क्योंकि बड़ी होनेके कारण [illegible] ज़्यादा उसीकी खालकी माँग रहती है। हमारे देशसे १९[illegible] ई० में सरीसृपोंकी करीब तीन लाख खालें बाहर गईं, जिन [illegible] गोहकी खालें ही ज़्यादा थीं।

छिपकलियोंको पाँच मुख्य परिवारोंमें इस प्रकार बाँटा [illegible] सकता है—(१) छिपलियाँ (Geckonidae), (२) गिरगिट और साँड़ा (Agamidae), (३) बहुरूपी (Chamaeleonidae), (४) बम्हनी (Lacertidae), (५) कोतरी (Scincidae) और (६) गोह (Varanidae)।

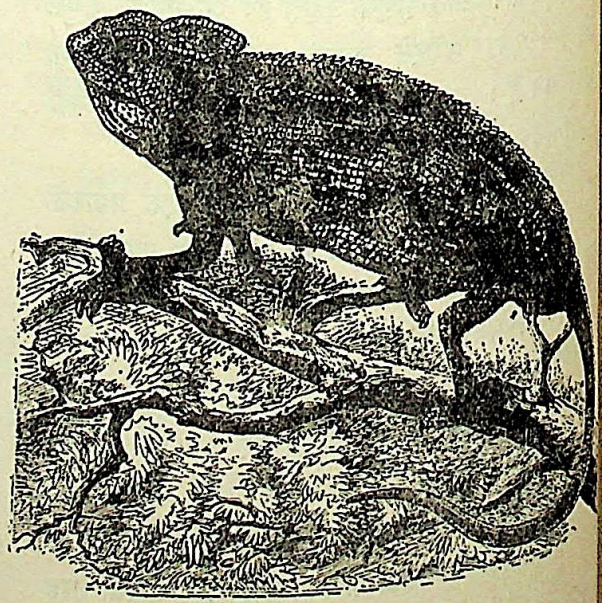

बहुरूपी छिपकली

छिपकलियोंसे हम सभी परिचित हैं। हमारे देशमें लगभग ७० जातिकी छिपकलियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से घरोंमें दिखाई पड़नेवाली काली और भूरी छिपकलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिसतुइया भी कहलाती हैं। छिपकलियाँ रात्रिचारी जीव हैं, जो सारे दिन किसी जगह छिपी रहकर रातको शिकारके लिए निकलती हैं। हमारे घरकी बिसतुइया भी दिनको परदोंके पीछे, छप्पर, खपरैल और तस्वीरोंके नीचे छिपी रहती हैं; लेकिन रातको लैम्पके निकट जब कीड़ोंकी भीड़ लग जाती है, तो ये

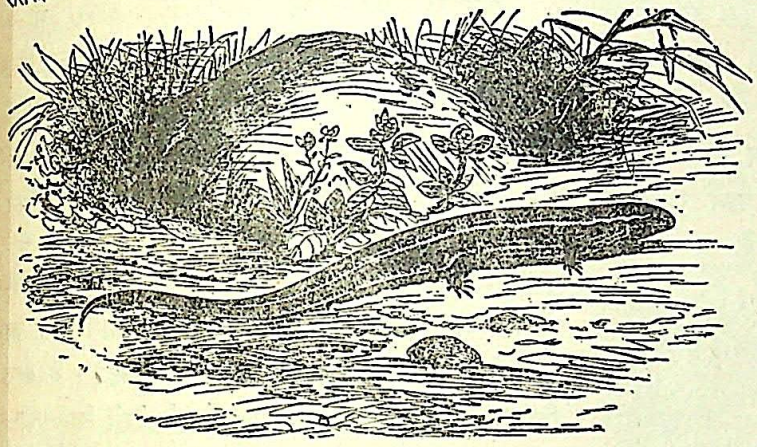

बम्हनी छिपकली

इतनी निडर और ढीठ हो जाती हैं कि इनको जैसे किसीका डर ही नहीं रह जाता। घरोंके अलावा इनमें से कुछ जंगलोंमें रहती हैं, तो कुछ झाड़ियोंमें; और कुछ ऐसी भी हैं, जो सुनसान रेगिस्तानोंमें बिल बनाकर या पहाड़ोंकी चट्टानोंके नीचे छिपकर अपना जीवन बिता देती हैं।

शक्ल-सूरतमें ये मगरकी तरह, किन्तु क़दमें उससे बहुत छोटी होती हैं। कोमल और छूते ही टूट जानेवाली इनकी दुमके बारेमें हम सब जानते हैं। दूसरी खास बात जो इनमें हम देखते हैं, वह इनकी कटोरीनुमा उँगलियाँ हैं, जिनके सहारे ये कमरेकी भीतरी छतोंपर भी उल्टी होकर बड़ी तेज़ीसे दौड़ सकती हैं। होता यह है कि जब ये अपनी कटोरीनुमा उँगलियोंको दीवारपर दबाकर चलती हैं, तो उनके भीतरकी हवा निकल जाती है और वे उसी तरह दीवारसे चिपक जाती हैं, जैसे खाली गिलासको मुँहपर खूब चिपकाकर उसमें की हवा भीतर खींच लेनेपर होता है। गिलास जिस प्रकार मुँहपर चिपक जाता है, उसी तरह इन छिपकलियोंके चारों पैरोंकी कटोरीनुमा उँगलियोंसे हवा निकल जानेपर उनका शरीर दीवारसे चिपक जाता है और उल्टी रहने पर भी ये ज़मीनपर नहीं गिरतीं। ये समय आनेपर अपनी केंचुलको अपने मुँहसे पकड़कर खींच लेती हैं और उसे खा जाती हैं। यही कारण है कि हमको साँपकी केंचुलकी तरह इनकी केंचुल पड़ी नहीं मिलती। ये अण्डज जीव हैं, जिनकी मादाएँ सफ़ेद हैं और कड़े छिलकेवाले अण्डे देती हैं। अण्डोंकी संख्या प्रायः दो रहती है।

गिरगिट-परिवारमें भी ७० प्राणी हैं, जो हमारे देशमें पाए जाते हैं। इनमें ज़्यादा संख्या उन्हींकी है, जो अपना अधिक समय पेड़ोंपर बिताते हैं। साँडा आदि कुछ प्रसिद्ध जीव ऐसे भी हैं, जो ज़मीनपर ही रहते हैं। वृक्षोंपर रहनेवालोंका शरीर दोनों ओरसे दबा हुआ और ज़मीनपर रहनेवाले जीवोंका ऊपरसे चपटा रहता है। गिरगिटकी दुम काफ़ी लम्बी होती है, जो छिपकलियोंकी तरह टूट नहीं जाती।

गिरगिटोंकी कई क़िस्में ऐसी हैं, जो अपना रंग बदलती हैं। कुछका गला लाल रहता है, जिससे वे 'रकतचुसा' कहे जाते हैं। जोड़ा बाँधनेके समय नर लाल रंगके हो जाते हैं। इनके सरपर छोटे-छोटे शल्क होते हैं और पीठके सेहर एक-दूसरेपर चढ़े रहते हैं। कभी-कभी पीठपर काँटे-से उठे रहते हैं और अक्सर नरोंके सिरपर या तो मुकुट-जैसा उभरा रहता है या उनके गलेमें एक थैली-सी लटकती रहती है। गिरगिटोंका शरीर और पैर सुदृढ़ होते हैं। इनकी मोटी ज़बान नीचे काफ़ी दूर तक जुटी रहती है, जिसके सिरेका हिस्सा कुछ कटा रहता है। इनमें से प्रायः सभी अण्डज जीव हैं, जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। कुछ फलाहारी भी हैं, जो अपना पेट पत्तियों और फलोंसे भरते हैं और कुछ सर्वभक्षी भी हैं, जिनसे कुछ नहीं बचता।

बहुरूपी अपने परिवारकी अकेला प्राणी है, जो अपनी अद्भुत आकृतिके कारण औरोंसे अलग ही रहती है। इसके सिरपर की हड्डी कलंगी या मुकुटकी तरह उठी रहती है। पैरकी उँगलियाँ दो हिस्सोंमें बँटी रहती हैं, जिनसे यह टहनियोंको बड़ी आसानीसे पकड़ लेती है। आँखें बड़ी होती हैं, जिनकी पलकोंपर दाने-दाने-से उभरे रहते हैं और मोटी पलकोंके बीचके सूराखसे इसकी आँखकी पुतली दिखाई देती रहती है। आँखोंसे भी ज़्यादा अद्भुत बनावट इसकी ज़बानकी होती है, जो काफ़ी

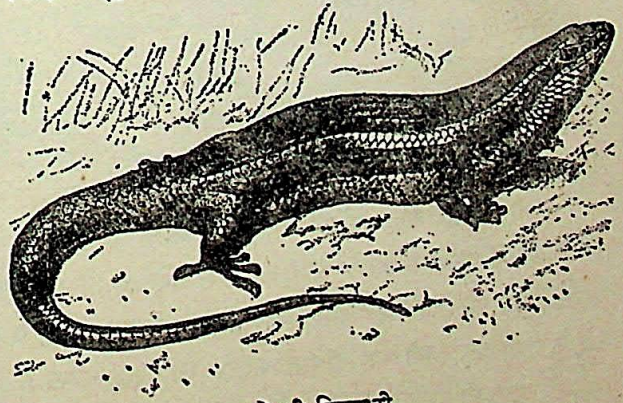

कोतरी छिपकली

लम्बी, गोल और मुग्दरके शक्लकी होती है। शिकार पकड़ते समय यह मारे काहिलीके अपनी जगहसे तो हिलती नहीं, बस अपनी इसी लम्बी ज़बानको बड़ी तेज़ीसे निकालती है; जिसके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

सिरेपर के चिपचिपे पदार्थमें कीड़े-मकोड़े चिपक जाते हैं।

बहुरूपीको यह सुन्दर नाम उसके रंग बदलनेके कारण मिला है। यह बहुत जल्दी-जल्दी रंग बदलती है और थोड़ी देर तक इसकी ओर देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि इसके बदनपर रंगोंकी लहर-सी उठ रही है। यह कभी पीली, कभी हरी और कभी लाल हो जाती है। इसका कारण यह है कि कुछ जलचरों, उभचरों और सरीसृपोंकी त्वचाके कोषमें लाल, पीले, काले, सुनहले और अन्य तरहके अनेक रंगोंके कण रहते हैं, जो वर्णकोष (Chromolophore) कहलाते हैं। ये कोष जब खालके ऊपर फैल जाते हैं, तो खालका वही रंग दिखाई पड़ने लगता है। जब इस प्रकारके कोषवाले प्राणी गुस्सा होते हैं या डरते

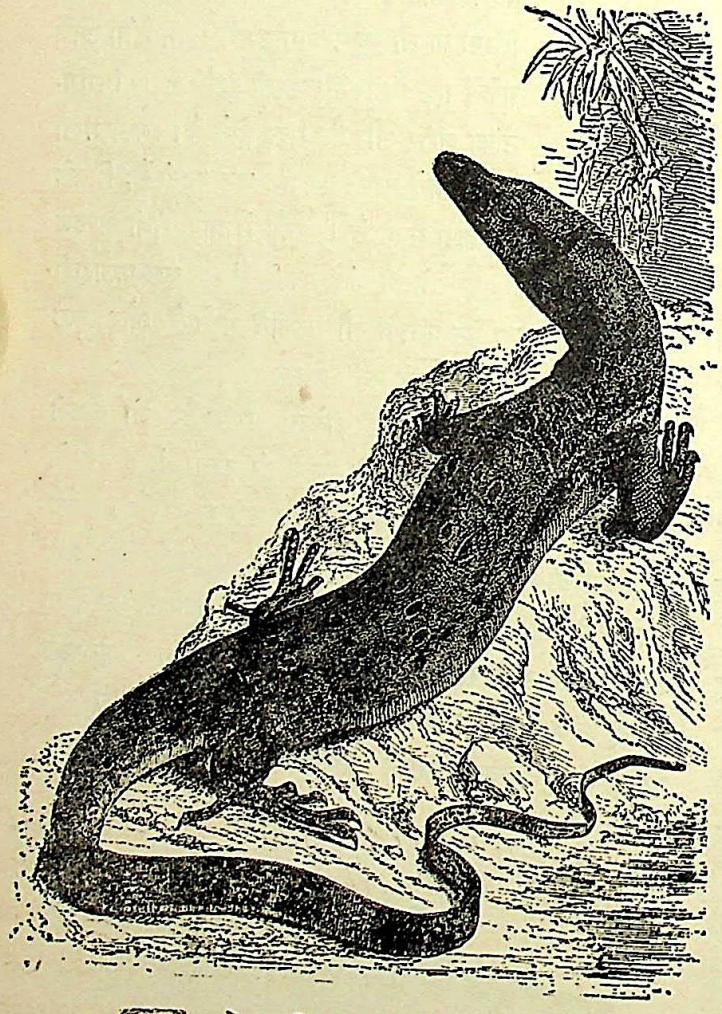

[चित्र] गोह-जातिकी जलीय छिपकली

हैं, तो ये वर्णकोष खालके ऊपर अपना रंग दिखाते हैं। भयसे जैसे हम लोगोंका चेहरा सफ़ेद और क्रोध आनेपर लाल हो जाता है, उसी प्रकार बहुरूपियोंके शरीरका रंग भी बदला करता है।

[चित्र] बहुरूपी बहुत ही निरोह और आलसी जीव है, जिसका अधिक समय वृक्षोंपर ही बीतता है। इसकी दुम काफ़ी लम्बी होती है, जिसके सहारे यह डालीको पकड़कर ऊपर चढ़ती है। पेड़पर थोड़ी दूर खिसकनेमें ही यह पूरा दिन लगा देती है। इसी सुस्तीके कारण यह शिकारका पीछा करके नहीं, बल्कि अपनी लम्बी ज़बानको तीरकी तरह फेंककर पकड़ती है। बहुरूपीका दोनों ओरसे दबा हुआ रहता है। इसकी गरदन और पैर होते हैं, जिनपर धड़ उठा-सा रहता है। उँगलियाँ दो बँटी रहती हैं, जिनसे यह बड़ी मज़बूतीसे पेड़को पकड़ सकती है। यह कीड़े-मकोड़े खानेवाली प्राणी है।

बम्हनी छिपकलीकी शक्ल-सूरतकी होकर भी चिकनी पीठ और छोटे पैरोंके कारण फौरन पहचान ली है। इस परिवारमें २०-२५ प्राणी हैं। बम्हनियोंका शरीर कलियोंकी तरह होकर भी जैसे एकमें मिला-सा रहता है। अंग सुदृढ़ और दुम छिपकलियोंकी तरह कोमल रहती है। के ऊपर तरतीबवार सेहर-से बने रहते हैं। पीठपर भी प्रकारके सेहर रहते हैं। इनकी ज़बान चपटी, लम्बी आगेकी ओर फटी रहती है। इसी कारण लोग इनको ज़ समझते हैं; लेकिन वास्तवमें बात ऐसी है नहीं। ये निरीह जीव हैं, जो अक्सर कूड़े वगैरहके ढेरमें छिपी पड़ी हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े है। इनकी मादा कलियोंकी तरह अण्डे देती है।

कोतरीके शरीरकी बनावट बहुत-कुछ बम्हनीसे जुलती रहनेपर भी यह उससे ज़्यादा गोल होती है। शरीर सिरसे दुम तक इस तरह उतार-चढ़ावका रहता सिर, गरदन, पीठ और दुम आदि अलग-अलग जान पड़ते। सब-कुछ जैसे एक हो में मिला रहता है। लगभग ७० क़िस्में हमारे देशमें पाई जाती हैं। कुछ प्राणियोंके बहुत छोटे-छोटे पैर होते हैं और कुछ होते हैं, जिनके पैर ही नहीं रहते। ऐसे साँपकी शक्लके पैर न होकर भी पैरके स्थानपर कुछ निशान तो रहते जिनसे यह जाना जा सकता है कि वहाँ किसी समय होंगे। इनकी पीठका ऊपरी हिस्सा एक तरहके कड़े प्लेटों रहता है, जो शल्कोंके नीचे रहते हैं। कोतरियोंमें ऐसी हैं, जो ज़मीनपर रहती हैं, कुछ पेड़पर भी रह लेकिन ऐसी कोई भी नहीं है, जिसे पानीमें रहना अच्छा इनकी दुम लम्बी और कोमल होती है। आँखकी पुतलियाँ और ज़बान बम्हनीकी तरह चपटी और फटी हुई रहती इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं। इनमें से को छोड़कर बाकी सब अण्डे देती हैं; लेकिन हमारे प्रसिद्ध कोतरी बच्चे ही जनती है।

गोह हमारे बहुत परिचित जीव हैं। हमारे देशमें ६ क़िस्में पाई जाती हैं, जिनकी शक्ल-सूरत और आदतें जैसी होती हैं। गोह अपने भारी-भरकम शरीरसे कलियोंसे अलग ही रहते हैं। इनमें से कुछ सूखेमें और दो-एक पानीमें। खुश्कीमें तो ये काफ़ी तेज़ चलते हैं, पानीमें भी काफ़ी तैर लेते हैं। तैर ही नहीं

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भीतर काफ़ी देर तक डुबकी भी लगा लेते हैं। इसका कारण यह है कि इनके नथुनोंके भीतरकी नली काफ़ी फैल जाती है, जिसके भीतर हवा रोककर ये पानीके भीतर रह लेते हैं। गोहों का शरीर वैसे तो चपटा होता है ; लेकिन पानीमें रहनेवालेकी बनावट कुछ गोलाई लिए रहती है। इनकी दुम दोनों ओरसे दबी-दबी रहती है, जो लम्बाईमें भी कम नहीं होती। गोहोंकी ज़बान बहुत लम्बी, चिकनी और साँपकी ज़बानकी तरह दुफंकी रहती है। इनकी ज़बानकी जड़के पास एक खोल-सी रहती है, जिसमें ये साँपोंकी तरह अपनी ज़बानको खींचकर भीतर कर लेते हैं। इनकी आँखकी पुतलियाँ गोल होती हैं, जिनपर मोटी-मोटी पलकें रहती हैं। गरदन काफ़ी लम्बी होती है और सब अंग बड़े और मज़बूत होते हैं। सिरके ऊपर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं, जिनके किनारेपर दाने-से उभरे रहते हैं। गोह वैसे तो बहुत सीधे-सादे जानवर हैं ; लेकिन दबावमें पड़नेपर ये अपनी दुमसे बड़े ज़ोरसे वार कर बैठते हैं। दुमके अलावा ये गुस्सा होनेपर अपने नुकीले दाँतोंको भी इस्तेमाल करते हैं और पंजे भी चलाते हैं। गोह मांसाहारी जीव हैं, जिनका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, मेंढक, साँप, चिड़ियाँ और अण्डे हैं। मादा समय आनेपर २०-२५ सफ़ेद अण्डे देती है, जिनका छिलका मुलायम रहता है। इनके अण्डा देनेके स्थानोंमें से दिमौर मुख्य है।

रियासतोंकी जागीरी प्रजा

श्री जयनारायण व्यास

भारतवर्षका एक-तिहाई भूभाग 'देशी राज्यों'का इलाक़ा है। बावजूद नवाब भोपाल द्वारा विदेशी पत्रकारोंको इस भागके 'महान्' पहलुओंके अवगत कराने और नरेन्द्र-मण्डलकी तरफ़से देशी राज्योंके सम्बन्धकी ५० बातें प्रकाशित करानेके यह भाग राजनीतिक दृष्टिसे बहुत पिछड़ा हुआ है। इस भागमें भी दो तरहके शासन हैं—खालसा और जागीरी। खालसा शासन राजाओं और उनकी नौकरशाही द्वारा संचलित होता है और जागीरी शासन जागीरदारों द्वारा। जागीरी प्रजा वैसे राजाओंकी ही प्रजा है ; पर चूँकि उसका सीधा सम्बन्ध राजासे न होकर जागीरदारसे होता है, अतः वह प्रजा कई अर्थोंमें 'बेमालिक' ही रहती है। परन्तु जहाँ तक उसके शोषण एवं पीड़नका सम्बन्ध है, इस प्रजापर जागीरदार और राजा दोनोंका हक़ है! अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस जनवर्गके बारेमें यहाँ कुछ रोशनी डाली जाय।

वैसे प्रायः सभी रियासतोंमें जागीरें हैं। कुछ रियासतोंको छोड़कर प्रायः सभी बड़ी रियासतोंमें जागीरी समस्याएँ एक-सी होती हैं ; परन्तु राजपूताना व मध्य-भारतकी रियासतोंमें जागीरें बहुत बड़ी बाअख्तियार और प्रतिगामी हैं। वे रियासतके भीतर अलग रियासतोंकी भाँति ही हैं। इतना ही नहीं, कई मानीमें तो आन्तरिक स्वतंत्रता भोगते हुए भी वे पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होनेका प्रयास करती हैं। सीकरके पिछले आन्दोलनके पीछे जागीरको जयपुर-राज्यसे स्वतन्त्र करनेकी भावना भी काम कर रही थी।

रियासती प्रजाका जिस प्रकार शोषण होता रहता है, उससे तो जागीरी प्रजा बरी नहीं हो सकती ; पर इसका तो और भी दोहरा शोषण होता है। जयपुर और जोधपुर राज्योंकी ज़कात-प्रथाको ही लीजिए। उसका भार तो जागीरी प्रजाको उठाना ही पड़ता है ; पर रियासती ज़कातके साथ ही उसे वैसा ही जागीरी टैक्स भी देनेको बाध्य होना पड़ता है।

बेशक इसमें रियासतोंको ऐतराज़ है ; इसलिए नहीं कि डबल ज़कातके कारण प्रजाका अधिक शोषण होता है, बल्कि इसलिए कि ज़कात लेते रहनेसे जागीरें 'स्वतन्त्र' बननेका दावा कर सकती हैं! परन्तु जागीरदारोंको 'ज़कात' न कहलाए जाने-वाले कई ऐसे टैक्स—जो ज़कातके भी कान काटते हैं—लेने दिए जाते हैं। मसलन मापा, जो ज़कातके अलावा सामानके आने और बिकनेकी चुंगीके तौरपर लिया जाता है। लड़ाईके या और तरहके चन्दे भी जागीरी प्रजाको देने पड़ते हैं। जागीर-दारोंको उसे भूमि-करके अलावा कई तरहकी बेगारें, पैठें आदि भी देनी पड़ती हैं।

जागीरी प्रजाके शोषणके तरीक़े भी अजीबो-ग़रीब हैं। उसे भूमि-कर—लटाई या बँटाई—तो देना ही पड़ता है ; पर उसके अलावा कई लाग-बागें भी देनी पड़ती हैं। इससे किसान को कभी-कभी तीन-चौथाई फसल तो इन 'धणियों'को ही दे देनी पड़ती है। अगर कहीं खेतीकी पैदाइशका चौथाई हिस्सा देनेका रिवाज है, तो वहाँ पैदाइशकी आयमें से एक और दो आना रुपया तक 'लाग'के तौरपर अतिरिक्त कर देना पड़ता है। इसकी वसूलीका बहाना यह बताया जाता है कि जागीरदारको नाजके टूटने-फूटनेका हर्जाना और बिक्रीमें हुआ नुक्सान भी तो देना पड़ता है (फिर चाहे नाजकी बिक्रीसे उसे लाभ ही क्यों न होता हो)! और भी कई तरहकी लागें अलग-अलग जागीरोंमें ली जाती हैं। किसी फसलपर जागीरदार साहबके कुँवर साहब पहुँच गए। उन्होंने कलेवा माँगा। किसानने कुछ नाज देकर कलेवेकी व्यवस्था कर दी। अब कुँवर साहब चाहे फिर कभी न भी जायँ, पर उतना नाज तो 'कुँवर-कलेवे'की लागके तौरपर उसे हमेशा देते रहना पड़ेगा! जागीरदारके नौकरोंके

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नामपर 'कामदारोंका धोवा', 'कणवारिएकी कल्सी' और न-जाने कितनी-कितनी लागें किसानको देनी पड़ती हैं। फसलकी लागोंके अलावा इन्हें रिवाजी लागें भी देनी पड़ती हैं। भोजनका आयोजन कहीं हुआ हो, तो कुछ 'काँसे' जागीरदारको भी देने पड़ते हैं। इसे 'काँसा-लाग' कहते हैं। जोधपुर-राज्यमें 'काँसा-लाग' ग़ैरक़ानूनी क़रार दे दी गई है; पर अभी भी यह लाग ली जाती है। कारण, जोधपुर-सरकारने अनुचित लागोंको तो ग़ैरक़ानूनी ज़रूर क़रार दे दिया; पर इन ग़ैरकानूनी लागोंको रोकनेके लिए कोई मशीनरी नहीं बनाई।

शादीके अवसरपर दूल्हेके लिए जागीरी ठिकाने ही से घोड़ा लेने और 'घोड़ा-लाग' देनेके लिए प्रजाको बाध्य किया जाता है। खेती व रिवाजकी अन्यान्य लागोंके अलावा पेशोंपर भी लागें ली जाती हैं। अगर जोधपुर-राज्यके पीपाड़में कोई तेलकी घानी रखता है, तो उसे चार आना माहवार लाग देनी पड़ती है। साइकिल किराए देनेका भी ठेका है। ठेकेदारके सिवाय कोई किराएको साइकिल नहीं रख सकता। अगर रखता है, तो सज़ावार होता है। इतना ही नहीं, गोबर तक ठेकेदारके अलावा कोई नहीं बीन सकता। कई जागीरोंमें शाक-भाजी बेचनेवालोंको बाज़ारमें लाई गई तरकारीका एक हिस्सा जागीरदारके यहाँ भेजना ही पड़ता है। लाग-बागोंके डरके कारण अधिकांश जागीरोंमें लोग फल-फूल आदि क़ीमती चीज़ें पैदा ही नहीं करते।

लागें लेनेके अलावा जागीरदार लोग अक्सर प्रजा-हितके लिए संगृहीत चन्देको भी खुद हड़प कर जाते हैं! जोधपुर-राज्यमें जागीरी गाँवोंमें फी-घर 'झूपी' या 'वाछ' लाग ली जाती है। इस लागको एक तरहसे 'गृह-कर' कह सकते हैं। इस करके अलावा एक 'ग्राम-कर' भी लिया जाता है। इसके लिए 'खरड़ा' या चन्दा हर साल वसूल होता है। बावजूद इस आशय के अदालती फैसलेके कि यह 'खरड़ा' जागीरदारका निजी कर नहीं है, बल्कि गाँवकी भलाईके लिए वसूल किया जानेवाला चन्दा है, प्रायः सभी जागीरोंमें यह कर जागीरदारकी जेब ही में जाता है। जागीरदारोंके लड़के-लड़कियोंकी शादियोंपर भी प्रजासे चन्दा वसूल किया जाता है। इतना ही नहीं, ऐसी भी जागीरें हैं, जो अपने पुरखोंके श्राद्धपर प्रजासे दूध इकट्ठा करना अपना पदाइशी हक़ समझती हैं। कई जगह घोड़ोंको मावा खिलानेके नामपर भी दूध इकट्ठा किया जाता है!

इन अनुचित और अन्यायपूर्ण लागोंमें से प्रत्येकके पीछे एक इतिहास है। कभी एक घटना घटती है, इन्सानियतके तक़ाज़ेसे किसान कुछ उदारता दिखाता है, और परिणाम-स्वरूप हमेशाके लिए वह जागीरी शोषणका दुखद साधन बन जाता है। एक बार एक ठिकानेके किसी गाँवमें ठाकुर साहब आए। उनका घोड़ा सर्दीसे ठिठुर रहा था। एक व्यक्तिने उसे अपना कम्बल ओढ़ा दिया। बस, उसी दिनसे 'घोड़ा-कम्बल' लागकी सृष्टि हो गई! एक बार एक गाँवके ओसवालोंने कहा कि चलो इस साल होलीका गढ़ा खुद ही क्यों न खोद डालें। बस, दूसरे साल गढ़ा खोदनेकी 'लाग' ओसवालोंपर लद गई और आगे चलकर तो मज़दूरोंसे भी गढ़ा खुदवानेकी मनाही कर दी गई। उन्हें कहा गया—'यह तो क़दीमी लाग है, उठाओ कुदाल और गढ़ा खोदो!' आखिर बेचारोंको और कोई चारा न देख 'नुक़' देकर छुटकारा पाना पड़ा; परन्तु गढ़ा खुदवानेकी मज़दूरीकी रक़मकी 'लाग' तो क़ायम ही रही। इसी तरह अन्य लागें भी ऐसी ही बेहूदगियोंका इतिहास हैं; फिर भी उन्हें कोई रोक नहीं सकता। इतना ही नहीं, जोधपुर-सरकारने तो इस तरह बेहूदगीका एक आज्ञा द्वारा समर्थन भी किया है और यह ऐलान कर दिया है कि जो लागें २० वर्षसे चली आती हैं, क़ानूनमें समझी जाकर हाकिमों द्वारा वसूल कराई जायँगी। और हाकिमका हुक्म सिर-आँखोंपर, यही तो रियासती न्याय है!

संसारमें अगर सबसे अधिक पद्दलित और उपेक्षित प्रजा कहीं है, तो वह रियासती जागीरोंमें। वहाँ गुलामीकी प्रथा आज भी अपने नग्न रूपमें मौजूद है। लड़कियोंकी शादियाँ माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध कराई जाती हैं। दहेजमें लड़कियाँ ली-दी जाती हैं। उनसे न सिर्फ़ आजीवन बिना पैसे दासीका काम ही लिया जाता है, बल्कि और भी न-जाने कितनी तरहका पशुवत बर्त्ताव उनके साथ होता है। जागीरी प्रजाकी चारपाइयाँ जब जागीरदार चाहें, मँगवा सकते हैं। मुफ़्तमें उसके बैलों और गाड़ियोंसे काम ले सकते है, और बैलोंको घास तक भी नहीं देते! उसके कपड़े-लत्ते तक बेगारमें लिए जा सकते हैं। हजामत मुफ़्त कराना, पानी मुफ़्त भरवाना, गाय-भैंस मुफ़्त दुहाना, ईंधन मुफ़्त जुटवाना, खेतमें मुफ़्त काम कराना, घर मुफ़्त मँगवाना और न-जाने क्या-क्या मुफ़्त काम प्रजासे लेना जागीरदारका जन्मसिद्ध अधिकार समझा जाता है। पर पढ़नेका उसे अधिकार नहीं! जागीरदार भला प्रजाको साक्षर क्यों बनने लगे? गाँवमें सफ़ाई करानेका काम भी उनका नहीं। दवा-शराब का इन्तज़ाम भी उनका काम नहीं। अगर कोई घर बेचना चाहे, तो ज़मीन और मकानकी क़ीमतका १६ फी-सैकड़ा भाग ठिकानेको देना होगा। अगर किसीको किसी ठिकानेमें ज़मीन पूरी नहीं मिली और वह किसी दूसरी जगह जाकर खेती करता है, तो उसे जागीरदारको ५) मावलीका देना ही पड़ेगा।

रियासतोंकी सरकारें भी लाग-बाग दिलानेमें तो जागीरदारोंकी सहायता करती हैं; पर पढ़ाई, दवाई, रोशनी, सफ़ाई आदिकी व्यवस्थाके लिए जागीरदारोंको कुछ भी नहीं कहतीं। इस प्रकार जागीरी प्रजा रियासती अमलदारोंके गुप्त परन्तु नियमित षड्यन्त्र-सहयोगसे हद दर्जेकी पद्दलित अवस्थामें पहुँची हुई है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वापसी

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

वासिली अब एक बहादुर सिपाही था। पेशेसे वह फ़ौजी नहीं था, खारकोवके नज़दीक लिखोविडोवका नामक एक गाँवका वह एक महत्त्वपूर्ण किसान था। बीजों, पौधों और जानवरोंकी बीमारियोंका विशेषज्ञ होनेके कारण सारे गाँवमें उसकी धाक और प्रतिष्ठा थी। वासिलीका घर गाँव-भरके लोगों को मुफ़्त, परन्तु बहुमूल्य सलाह-मशविरा देनेका अड्डा बना रहता था। वही वासिली २० जून, १९४१ को, जिस दिन जर्मनीने रूसपर अचानक हमला कर दिया, रूसी फ़ौजमें शामिल हो गया। अपनी सुन्दर पत्नी और दो लड़कियोंसे विदा लेकर वह खारकोव चला गया।

बहुत जल्द यह साबित हो गया कि वासिली बहुत ऊँचे दर्जेका एक सिपाही है। उसका ओहदा बढ़ा दिया गया और उसे फ्रण्टपर भेज दिया गया। पूरे २८ महीनों तक वासिली फ्रण्टपर रहा। इस लम्बे अरसेमें रूसी फ़ौजोंको लगातार पीछे हटना पड़ा। पीछे हटते हुए रूसी फ़ौजोंको जल्दी-जल्दीमें पचासों काम करने होते थे। उनकी कोशिश रहती थी कि दुश्मनके हाथ एक भी ऐसी चीज़ न लगे, जिससे उसका बल बढ़े। किस चीज़की गाँववालोंको ज़रूरत है और कौन-कौन-सी चीज़ें दुश्मन के काम आ सकती हैं, इस बारेमें वासिली एक विशेषज्ञ माना जाने लगा। फ़ौजमें उसकी क़दर और अधिक बढ़ गई।

वासिलीकी इस बढ़ी हुई क़दरसे उसे यह नुक्सान पहुँचा कि वह अपनी फ़ौजके लिए लगभग अपरिहार्य हो गया। उसे छुट्टी मिलना असम्भव हो गया। जिस तरह एक बड़े टैंकको लड़ाईके मैदानसे दूर ले जानेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, उसी तरह वासिलीको फ्रण्टसे दूर भेज सकना लगभग असम्भव माना जाने लगा।

पीछे हटते हुए अपना सभी कुछ बरबाद करते जानेकी रूसी नीतिसे क्रमशः जर्मन फ़ौजी इतना जल-भुन गए कि वे निरीह रूसी बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियोंपर मनमाना ज़ुल्म करने लगे। रूसी गुरिल्ला जीती हुई जर्मन फ़ौजोंको इतना परेशान करते थे कि कभी-कभी तो जर्मनोंकी जीत उन्हें हारके समान महँगी पड़ती थी। इसका ग़ुस्सा जर्मन फ़ौजी निरीह रूसी स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चोंपर ही निकालते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्द रूसी और जर्मन एक-दूसरेसे गहरी नफ़रत करने लगे। यह रूसी और जर्मन दुश्मनी साँप और नेवलेकी दुश्मनीसे कहीं बढ़कर हो गई।

रूसी किसानोंपर ज़ुल्म करते हुए अगर कोई जर्मन रूसी सैनिकोंके हाथ पड़ जाता, तो उसकी बुरी गत बनाई जाती थी। परन्तु वासिली उन लोगोंमें से था, जो ऐसे मौक़ोंपर भी अपने साथियोंको किसी जर्मनपर ज़ुल्म न करने देता था। वासिली प्रायः कहा करता था—'जर्मनोंकी तरह अगर हम भी जंगली पशु बन गए, तो हममें और नाज़ियोंमें फ़र्क़ ही क्या रह गया? हम कम्यूनिस्ट सिपाहियोंको कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे सिपाहियोंकी बहादुराना संस्थाकी प्रतिष्ठाको दाग़ लगे।'

क्रमशः जर्मन आगे बढ़ते आए। वासिलीका गाँव, क़स्बा, प्रान्त सब-का-सब नाज़ियोंके अधिकारमें आ गया। वासिलीको अपनी पत्नी और बच्चोंकी खबरें मिलनी बन्द हो गईं। वासिलीपर एक तरहका जनून सवार हो गया। बीसों बार वह मौतके मुँहमें कूदा; मगर कामयाबीके साथ ज़िन्दा बच आया। आखिर वासिलीको यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह संसारके अब तकके सम्पूर्ण इतिहासकी सबसे अधिक बहादुराना लड़ाई—स्तालिनग्राद की लड़ाई—में भी हिस्सा ले सके। हज़ारों तोपों, सैकड़ों टैंकों और अनगिनत हवाई-जहाज़ोंकी दिन-रातकी अग्नि-वर्षासे स्तालिनग्रादकी अधिकांश गगनचुम्बी इमारतें ज़मींदोज़ हो गईं; मगर वासिली-जैसे सिपाहियोंने स्तालिनग्रादमें बहादुरीका एक नया स्टैण्डर्ड क़ायम करके दिखा दिया। स्तालिनग्राद भूमिसात हो गया; मगर जीत भी स्तालिनग्रादकी ही हुई।

स्तालिनग्रादकी इस जीतने जैसे रूसकी क़िस्मत ही बदल दी। अपने नामके शहरकी जीतने जैसे रूसी नेता स्तालिनकी किस्मत और शोहरतको चार चाँद लगा दिए। जीतका चक्र अब दूसरी ओरको घूम गया। वासिलीके बटालियनके कमाण्डरको अब वासिलीका भी ध्यान आया। उसे रूसका सबसे बड़ा तमगा स्तालिन-क्रास दिया गया और इसके साथ ही उसे यह भी बताया गया कि उसकी फ़ौज अब खारकोवकी ओर रवाना हो रही है, और खारकोव पहुँचनेके साथ-ही-साथ उसे अपने परिवारसे मिलनेके लिए १० दिनकी छुट्टी मिलेगी।

भागते हुए जर्मनोंका पीछा करते हुए वासिलीकी फ़ौज बिजलीकी तेज़ीसे खारकोव तक आ पहुँची। मालूम हुआ कि वासिलीके गाँवपर अभी तक जर्मनोंका कब्ज़ा है। अपने कमाण्डरसे इजाज़त लेकर अपने कुछ चुने हुए साथियोंके साथ वासिली उसी रात अपने गाँवके लिए रवाना हो गया।

जब वासिली अपने साथियोंके साथ लिखोविडोवका गाँवके नज़दीक पहुँचा, तो सुबह हो गई थी; मगर सूरज अभी तक गहरी धुन्धमें छिपा हुआ था। आस्मानसे तेज़ीके साथ बरफ़ गिर रही थी; फिर भी दूर ही से वासिलीने देखा कि गाँवके कई हिस्सोंसे गहरा धुआँ और आगके शोले निकल रहे हैं। वह समझ गया कि जर्मन गाँवसे भाग गए हैं और भागते हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँवको आग लगाते गए हैं। यह ग़नीमत थी कि गिरती हुई बरफ़के कारण यह आग अधिक फैलने नहीं पाई।

सबसे पहले वासिलो और उसके साथियोंने आग बुझानेमें मदद दी। बरफ़ गिरनेका वेग और भी अधिक बढ़ गया था, इस कारण आग बुझानेमें इन लोगोंको अधिक वक्त नहीं लगा। आग बुझनेके साथ-ही-साथ वासिलीके दिलमें स्वभावतः यह इच्छा पैदा हुई कि वह अपने बीवी-बच्चोंसे जाकर मिले। वह उधर जाने ही वाला था कि नज़दीकके अर्द्धदग्ध मकानकी ओटमें से उसे किसी औरतके सिसक-सिसककर रोनेकी आवाज़ आई। रहमदिल वासिलीसे रहा नहीं गया। वह उसी ओर चल पड़ा।

मकानके पीछे एक खुली जगह थी। वासिलीने देखा, उसी खुली जगहमें बैठी एक औरत सिसक रही है। मालूम होता है, वह बहुत देरसे रो रही थी, और रोते-रोते उसकी ताक़तने जवाब दे दिया था। अब वासिलीको देखकर वह फिरसे ज़ार-ज़ार रोने लगी।

वासिलीने रूस और जर्मनीकी लड़ाईमें पूरे २९ महीनों तक हिस्सा लिया है और इस अरसेमें भयंकरसे भयंकर वारदातें देखी हैं; मगर ऐसा भयंकर दृश्य तो शायद उसने भी कभी नहीं देखा। मैदानमें सब जगह श्वेत बरफ़ बिछी हुई है और उस बरफ़पर दो बच्चोंकी अधजली काली लाशें पड़ी हैं--६ सालका एक लड़का और ४ सालकी फूलकी कली-सी एक लड़की। और रोनेवाली इन दोनों बच्चोंकी माँ है। माँने बताया—'कल रात जब जर्मन यहाँसे जाने लगे, तो उन्होंने हमारे मकानोंमें आग लगानी शुरू की। हम सब लोग तो भाग कर छिप गए। ये बच्चे कहीं दूरपर खेल रहे थे, मेरा ख़याल था कि ये अपनी चाचीके घर गए हैं। मैं अभागी दूरके उस गढ़ेमें जाकर छिप रही। वहाँसे मैं सब-कुछ देख रही थी। घरमें आग लगी देखकर ये बच्चे दौड़कर इधर आए और एक-दूसरेसे चिपककर, डरी हुई निगाहसे मकानकी ओर देख ही रहे थे कि ५-७ जर्मन फ़ौजियोंने इन्हें पकड़ लिया। बच्चोंको देखते ही मैं गढ़ेसे निकलकर उनकी ओर बढ़ी थी कि जर्मन फ़ौजियोंको देखकर मैं फिरसे गढ़ेमें जा घुसी। मुझे यक़ीन था कि आखिर वे बच्चोंको तो छोड़ ही देंगे। दो-तीन मिनट तक उन जर्मनोंमें कोई सलाह-मशविरा होता रहा। उसके बाद दो जर्मनोंने इन दोनों बच्चोंको उठाकर एकदम इसी जलती हुई आग में फेंक दिया। जलते हुए मकानको रोशनीमें मैंने यह सब देखा। मैंने अपने कानोंसे इन मासूम बच्चोंकी आखरी चीखें भी सुनीं। बच्चोंको आगमें फेंकते ही वे जर्मन यहाँसे चले गए। मैं चिल्लाई, कुछ लोग मेरी मददको आए। हम लोगोंने धधकती आगसे इन बच्चोंको निकाल तो लिया; मगर आप लोग देख ही रहे हैं कि ये किस हालतमें हैं।'

बहादुर वासिलीसे वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। उसने कुछ भव किया कि दो मासूम बच्चोंकी इन अधजली लाशोंको देख उसने क्षण-भर भी और देखा, तो वह पागल हो जायगा। कुछ शब्द भी बोले बिना उसने 'अबाउट टर्न' की और वहाँसे बड़े तेज़ीसे रवाना हुआ, जैसे किसी भूतसे डरकर भाग रहा हो। वह अपने परिवारके लिए अत्यधिक चिन्तित हो उठा था। एक साँसमें भागकर जब वह अपने मकानके नज़दीक पहुँचा, तो यह देखकर उसे ज़रा तसल्ली हुई कि न सिर्फ़ उसका मकान, बल्कि उसका बाग़-बगीचा सब सही-सलामत है। मगर उसी क्षण उसने यह अनुभव किया कि यह क्या! यह सन्नाटा कैसा है! एकदम मौतका-सा सन्नाटा!

बरामदेमें पहुँचकर वासिलीने बड़ी घबराई हुई-सी दशामें किवाड़ खटखटाया; पर कोई आवाज़ नहीं आई। क्रमशः अधिकाधिक ऊँची आवाज़में वासिलीने किवाड़ खटखटाया—दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार; मगर कहींसे कोई उत्तर नहीं आया। वासिली सहनमें उतर आया और उसने आवाज़ दी—'अन्ना! प्यारी अन्ना!' यह उसकी पत्नीका नाम था। उसकी ऊँची आवाज़ अब बुरी तरह काँप रही थी। अगले ही क्षण उसे आवाज़ सुनाई पड़ी—'हज़ूर!'

वासिलीने देखा, उसका बूढ़ा पड़ोसी सोवर चला आ रहा है। वासिलीने बड़ी बेकलीसे पूछा—'कहो सोवर, मेरी अन्ना कहाँ है? लिज़ा और मार्या कहाँ हैं?'

सोवरने कहा—'बाग़के पीछे एक गढ़ेमें वे छिपे हुए हैं। तुम्हारे मकानमें जर्मन कमाण्डरने अपना अड्डा बना लिया था, उसीके डरसे वे अब तक वहीं छिपे हुए हैं। तुम ज़रा ठहरो, मैं उन्हें बुला लाता हूँ।'

वासिलीकी जानमें जान आई। बड़ी उद्विग्नताके साथ वह अपनी पत्नी और बच्चोंका इन्तज़ार करने लगा। बहुत जल्द उसने एक नारी-मूर्त्तिको अपनी ओर आते देखा। ओह, क्या यही अन्ना है! अन्नाको वह एक युवतीकी हालतमें यहाँ छोड़ गया था। उसी अन्नाके चेहरेपर अब झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं। उसका हाथ पकड़कर यह जो कमज़ोर-सी लड़की चली आ रही है, यह मार्या होगी। अब ५ सालकी मालूम होती है। वासिलीके चेहरेपर मुस्कराहट छा गई। आगे बढ़कर उसने अपनी पत्नीको छातीसे लगा लिया। मगर यह क्या? पतिको देखकर भी अन्नाके चेहरेपर मुस्कराहटकी झलक तक नहीं आई। वासिलीको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह किसी चेतना-रहित, ठण्डी देहका आलिंगन कर रहा हो। वासिलीने अपनी छोटी लड़कीको गोदमें उठा लिया और अन्नासे पूछा—'लिज़ा कहाँ है? अब तो वह बहुत बड़ी हो गई होगी।'

अन्नाकी जड़वत् आँखोंमें आँसू भर आए। उसने बोलना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

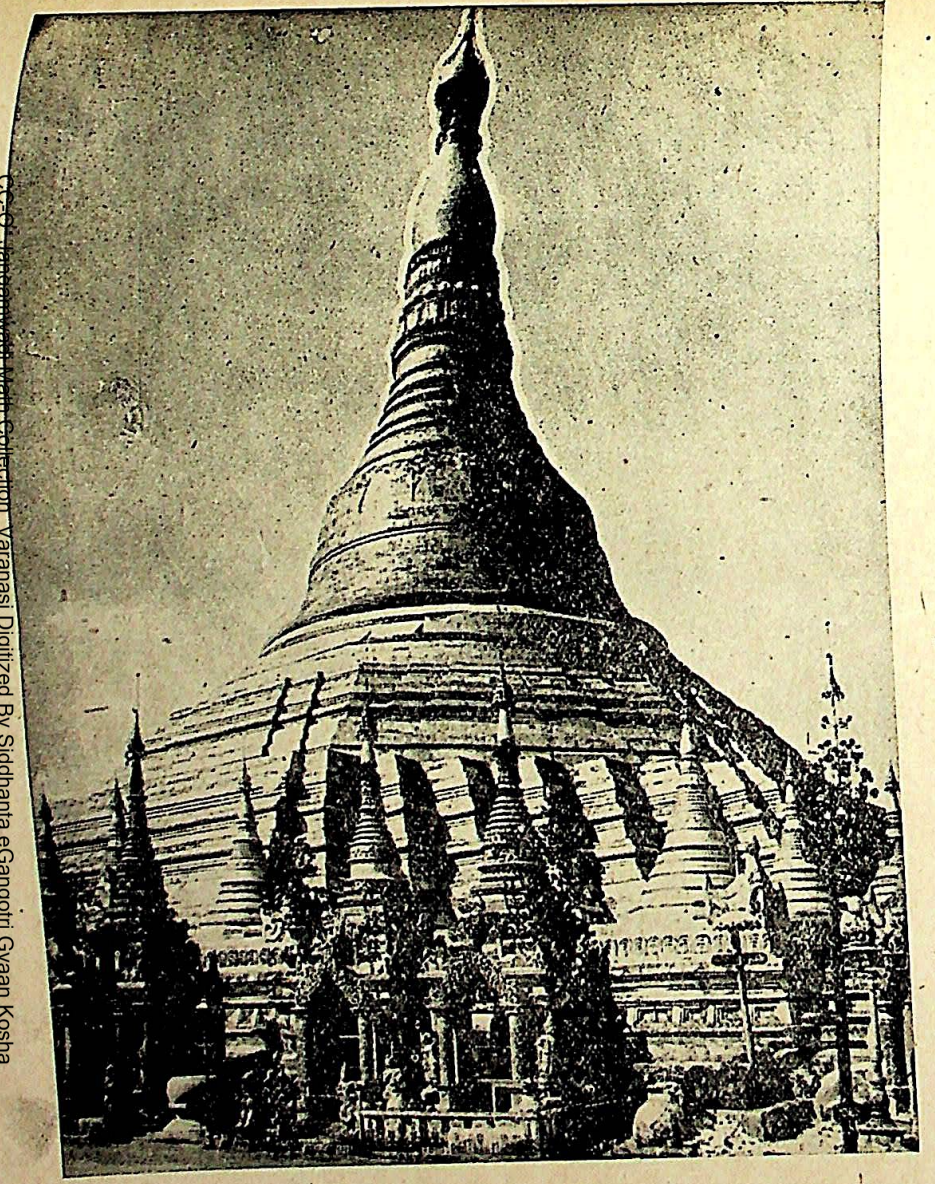

रंगूनका सुप्रसिद्ध स्वर्ण-पगोडा, जिसकी सम्पत्ति जापानी लूट ले गए।

लन्दनके सन्त पाल गिरजेके पाससे विजय-दिवसकी परेडका एक दृश्य।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

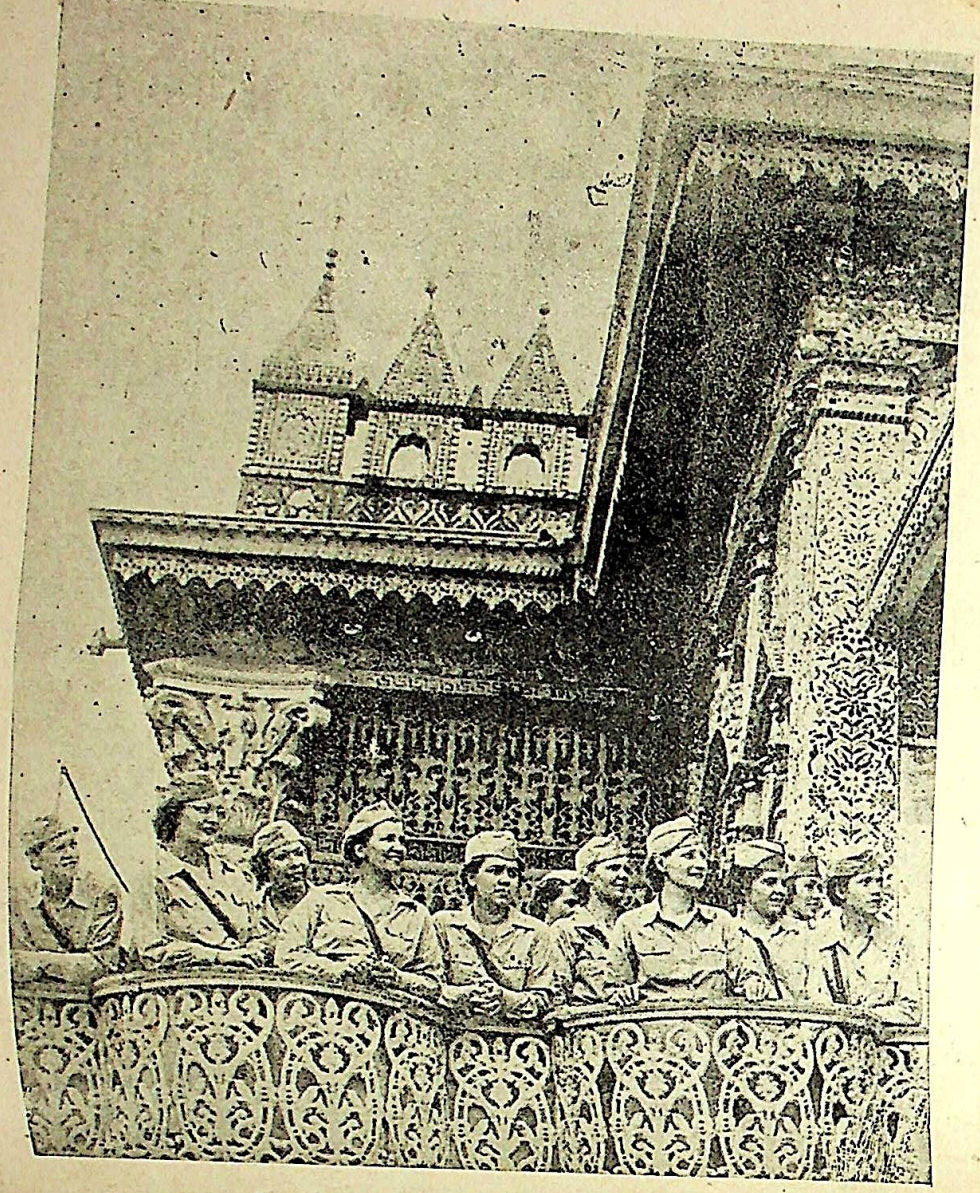

अमरीकन फ़ौजी स्वेच्छा-सेविकाएँ कलकत्तेका जैन-मन्दिर देख रही हैं।

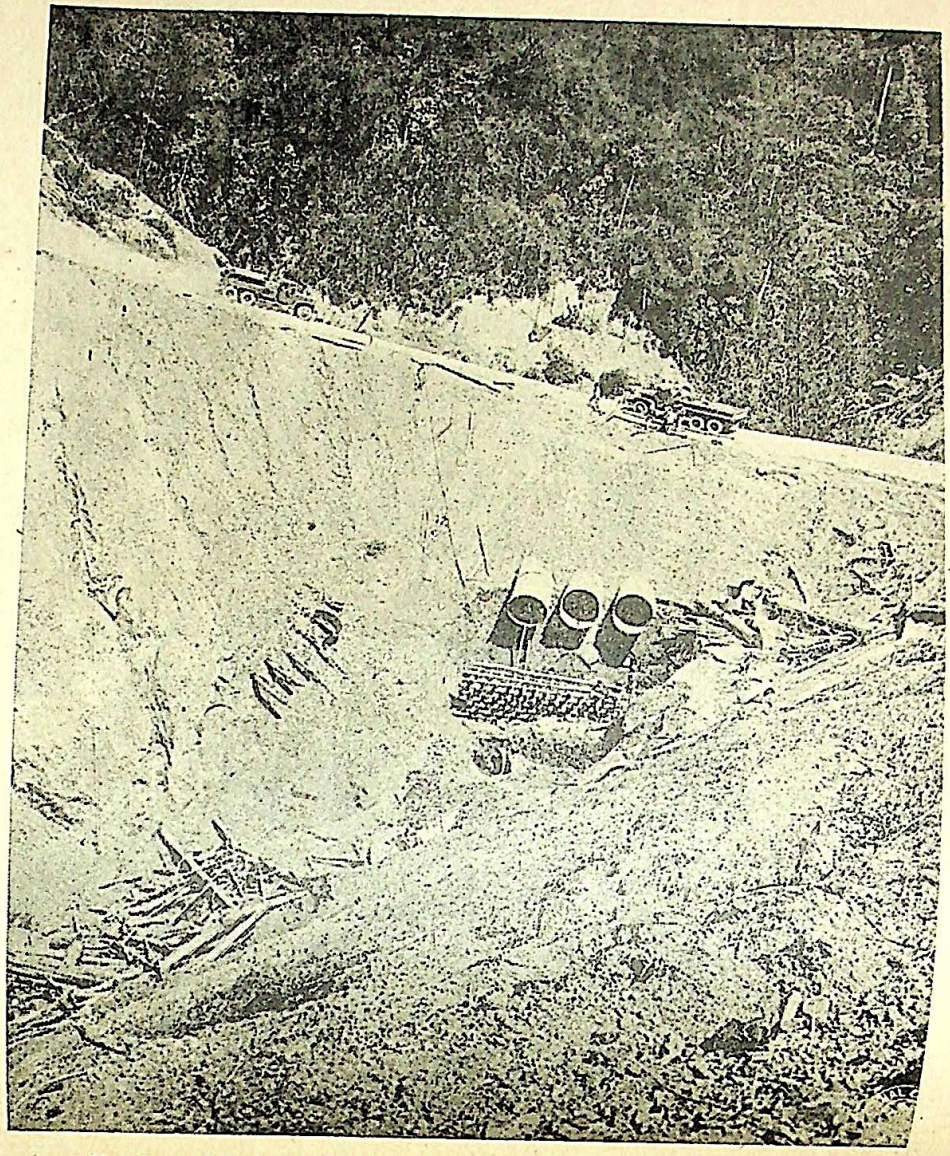

बर्मासे चीन जानेवाली लोडो-सड़क, जिसकी काफ़ी हिफ़ाज़त करनी पड़ रही है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहा, पर मुँहसे आवाज़ नहीं निकली। होंठ ज़रा-सा काँपकर रह गए। सिर्फ़ उँगलियोंसे वह बाग़की ओर काँपता-सा इशारा कर पाई। वासिलीने समझा कि शायद लिज़ा बीमार है। वह अन्नाका हाथ पकड़कर उसे मकानके पीछेकी ओर ले चला। पड़ोसी सोवर चुपचाप साथ-साथ चल रहा था।

बाग़का मैदान बरफ़से ढँका हुआ था। क्षण-भरके लिए वासिलीको मालूम हुआ कि वह कोई सपना देख रहा है। आज सुबहका देखा हुआ वह महाभयंकर और हृदयविदारक दृश्य जैसे उसका पीछा ही नहीं छोड़ना चाहता। यहाँ भी तो बाग़के कोनेमें सफ़ेद-सफ़ेद बरफ़पर एक बच्चेकी अधजली लाश पड़ी है!

सहसा अन्ना चीख मारकर रो पड़ी, बच्ची मार्या सिसकने लगी और बूढ़ा सोवर आँसू पोंछने लगा। तब जाकर वासिली समझा कि वह सपना नहीं देख रहा। यह सब अटल और ध्रुव सत्य है। सामने उसकी प्यारी बेटी लिज़ाका अधजला शरीर पड़ा है। उसकी लिज़ा सचमुच बड़ी हो गई थी, उसका शरीर निखर आया था। कल तक वह ज़िन्दा थी। पूरे २९ महीनों तक वह बापके वापस आनेका इन्तज़ार करती रही। और उसके बाद...?

वासिली एकाएक बहुत गम्भीर हो गया। सिपाहीकी पूरी चेतना जाग्रत हो गई। अपनी रोती हुई पत्नीके कन्धेपर उसने धीरेसे हाथ रखा और कहा—'अन्ना धीरज धरो और मुझे बताओ कि यह क्या हुआ?'

अन्ना फिर भी चुप रही; पर बूढ़े सोवरने कहना शुरू किया—'जर्मन कमाण्डरने तुम्हारे मकानको अपना अड्डा बना लिया, तो अन्ना और बच्चे बाग़की उन कोठरियोंके पिछले हिस्सेके एक गढ़ेमें छिपकर रहने लगे। गाँवके सब लोगोंकी कोशिश थी कि जर्मनोंको यह पता न लगे कि अन्नाका पति फ़ौजी अफ़सर है। जिस तकलीफ़से अन्ना और उसके बच्चोंको ये दिन काटने पड़े...।'

वासिलीने बीच ही में रोककर कहा—'वे सब बातें जाने दो, दोस्त! मुझे सिर्फ़ इतना ही बताओ कि लिज़ाको क्या हुआ?'—और इतना कहकर वह लिज़ाकी लाशके एकदम समीप जा बैठा और धीरे-धीरे उसके अधजले चेहरेपर हाथ फेरने लगा।

क्षण-भर तक सोवर चुप रहा, जैसे कहनेकी ताकत जमा कर रहा हो। उसके बाद काँपती आवाज़से वह बोला—'परसों जर्मन कमाण्डरका जन्मदिन था। रातको उसने अपने कुछ दोस्तों के साथ खूब शराब पी। जब सब लोग चले गए और वह अकेला रह गया, तो उसने अपने अर्दलीसे कहा कि कोई लड़की पकड़कर लाओ। आधी रातका वक्त था। अर्दलीको अन्ना और बच्चोंकी जगह मालूम थी। वह बदमाश वहाँ जा पहुँचा। ये सब लोग वहाँ गहरी नींदमें सोये हुए थे कि वह चुपचाप १४ बरसकी लिज़ाको बहलाकर उठा लाया। वहाँ आते ही ठण्डी हवाके झोंकेसे लिज़ा जाग गई, तो अर्दलीने उसका मुँह दबा दिया, ताकि वह चिल्ला न सके।

लिज़ा थी तो सिर्फ़ १४ बरसकी, मगर उसके जिस्मका उभार बहुत आकर्षक निखर आया था। जर्मन कमाण्डरने जब उसपर बलात्कार करना चाहा, तब पहले तो वह बहुत अनुनय-विनय करती रही। परन्तु जब वह शैतान बाज़ नहीं आया और उसने लिज़ाको अपनी ओर खींचा, तो लिज़ाने इतनी ज़ोरसे उसके गालोंपर अपने दाँत गड़ाए कि उस बदमाशका एक गाल कट ही गया। उस जर्मन-जानवरने उसी वक्त पिस्तौल निकाली और लिज़ाका काम तमाम कर दिया। जब उसे होश आया, तो अपना यह अपराध छिपानेके लिए उसने लिज़ाकी फूल-सी देहको कम्बलमें लिपटवाकर उसपर पेट्रोल छिड़कवाया और आग लगवा दी।'

इतना कहकर सोवर चुप हो गया। यह सब सुनकर भी वासिली चुपचाप बैठा रहा। न वह चिल्लाया, न रोया और न सिसका ही। चुपचाप अपलक नयनोंसे वह अपनी प्यारी लिज़ाके अधजले शरीरकी ओर देखता रह गया।

अन्ना अब तक सँभल गई थी। वह अपने पतिके पास आ खड़ी हुई और उसके बालोंमें प्यारसे उँगलियाँ चलाने लगी। परन्तु अब वह वासिलीका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकी। वासिली अब भी उसी तरह एकटक लिज़ाके अधजले शरीरकी ओर देख रहा था।

सहसा वासिलीको अनुभव हुआ, यह सामने पड़ा हुआ, अधजला, मसले हुए फूल-सा जिस्म उसकी लाड़ली बेटी लिज़ाका जिस्म नहीं है; यह तो उसकी महामहिमाशालिनी माँ—रूस-माता—के हज़ारों-लाखों निरीह बच्चोंका प्रतीक है। और वासिली जानता है कि वह कौन-सा महादानव है, जिसने रूस-माताके घरके विशाल आँगनको एक महाश्मशानके रूपमें परिणत कर दिया है।

वासिलीने अपनेमें एक नई शक्ति और नई जलनका अनुभव किया और वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी पत्नीको यह भी नहीं बताया कि वह छुट्टी लेकर आया है। मार्याको प्यारकर और अन्नासे विदा लेकर वह उसी वक्त खारकोवके लिए रवाना हो गया।

वासिलीके बटैलियनके कमाण्डरको यह देखकर सख्त हैरानी हुई कि वासिली छुट्टीके पहले ही रोज़ खारकोव वापस लौट आया है और अनुरोध कर रहा है कि उसकी छुट्टी मंसूख कर दी जाय। जब तक लड़ाई जारी है, उसे एक लहमेकी भी छुट्टी नहीं चाहिए। २९ महीने ही क्या, अगर लड़ाई २९ बरसों तक भी जारी रहे, तब भी वह ज़िन्दा रहते नाज़ी जर्मनीके खिलाफ़ होनेवाली इस लड़ाईसे कभी छुट्टी नहीं माँगेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

- २ -

वासिली अब एक बदला हुआ शख्स था। उसकी बहादुरी और उसकी समझदारी पहलेसे भी बढ़ गई थी; परन्तु उसपर एक तरहका जनून सवार हो गया था। 'जर्मन' नामसे ही जैसे उसे गहरी नफ़रत हो गई थी। किसी जर्मनको मारकर उसके ज़ख्मी दिलको मानो ज़रा-सी ठण्डक प्राप्त होती थी। अब वह पहले-सा खुशमिज़ाज़ और बातूनी नहीं रहा था। वह सदैव चुपचाप लड़ाईके किसी-न-किसी काममें लगा रहता; परन्तु जहाँ किसी जर्मनके नामकी भनक भी उसके कानोंमें पड़ती, उसका हाथ अपनी कमरकी पिस्तौलपर जा पहुँचता। अपनी नोटबुकमें उसने ये तीन वाक्य दर्ज कर लिए थे :

किसी जर्मनके लिए क्षमा नहीं है।
किसी जर्मनके लिए रहम नहीं है।
किसी जर्मनको मारना एक बहुत बड़ा सवाब है।

और मालूम नहीं, रूसी फ़ौजमें इस तरहके कितने वासिली थे, जो प्रतिहिंसाकी धधकती आगसे हर वक्त दहकते रहते थे।

वासिलीको अब अपनी ज़िन्दगीसे एक तरहका मोह हो गया। बहादुर तो अब वह पहलेसे भी ज़्यादा था; परन्तु पहलेके समान मौतके मुँहमें नहीं कूदता था। अब वह ज़िन्दा रहना चाहता था और महज़ और-अधिक जर्मनोंको मारनेके लिए ज़िन्दा रहना चाहता था। यही वजह थी कि पोलैण्डकी एक घमासान लड़ाईमें जब वासिली गोली खाकर ज़ख्मी हो गया, तब उसके दुःखका पारावार न रहा। लड़ाईके मैदानमें वासिलीको बेहोशीकी हालतमें पाया गया था, और उसी हालतमें वह अस्पतालमें भर्ती कर दिया गया। जब उसकी बेहोशी टूटी और उसे अपनी असहाय अवस्थाका ज्ञान हुआ, तो बरबस उसकी आँखोंमें आँसू भर आए। अस्पतालके डाक्टरों और नर्सोंने वासिलीकी बहादुरीकी बहुत-सी बातें सुन रखी थी। उन्हें कभी इस बातका खयाल तक न हो सकता था कि वासिली-जैसा आदमी ज़ख्मके दर्दसे रो सकता है। मगर बहुत जल्द उन्हें भी वासिलीकी अन्तर्भावनाका परिचय मिल गया।

ज़ख्मकी गहराई और मानसिक व्यथा—इन दोनोंके कारण वासिलीको तेज़ बुखार चढ़ आया। बुखारकी गरमीसे वासिली बड़बड़ाने लगा और यह देखकर उसपर ड्यूटी देनेवाली नर्सके विस्मयका ठिकाना न रहा कि अभी तक अत्यन्त उदास और दुखी दिखाई देनेवाला वासिली बुखारकी बेहोशीमें किसी बेफ़िक्रे पियक्कड़की तरह चहक रहा है। नर्सके लिए यह अनोखा अनुभव था। वह सुनने लगी। वासिली बड़बड़ा रहा था—'वह मारा! वाह, मेरे यार! मेरा निशाना कितना सच्चा!... गरमी, गरमी···कहीं पानी नहीं है! वोल्गाकी धार भी अबके सूख गई है! कोई फ़िक्र नहीं। मैं इतने जर्मन मारूँगा कि उनके बहते खूनसे वोल्गाकी धारमें बाढ़ आ जायगी!...वह मारा! वाह, इन जर्मनोंको मारना कितना आसान है! एक, दो, तीन! दस, बीस, तीस! सौ, दो सौ, तीन सौ! शाबाश बहादुरो!'

- ३ -

वासिलीको जब तक अस्पतालसे छुट्टी मिली, लड़ाईका रुख जर्मनीके फ्रैंकफ़र्ट नगर तक जा पहुँचा था। रूसी फ़ौजें फ्रैंकफ़र्टको घेर लेनेका प्रयत्न कर रही थीं और जर्मन अजेय सकतेकी-सी हालतमें थे। हिटलरका हुक्म था कि लड़ते-लड़ते जान दे दो; मगर पीछे मत हटो। फ्रैंकफ़र्टके फ़ौजी अफ़सर यह जानते थे कि रूसियोंकी सुसज्जित, सुसंगठित, विशाल फ़ौजका बढ़ता हुआ प्रवाह वे किसी भी दशामें नहीं रोक सकेंगे। नगरकी रक्षा करना असम्भव था और पीछे हटनेकी उन्हें इजाज़त नहीं थी। रूसियोंके सामने आत्म-समर्पण करनेकी बात भी वे नहीं सोच सकते थे, क्योंकि उन्हें हुक्म था कि यदि किसी जर्मनपर यह शक हो जाय कि वह रूसियोंके सम्मुख आत्म-समर्पण करने जा रहा है, तो उसे गोली मार दो—चाहे वह कितना ही बड़ा अफ़सर क्यों न हो। सिर्फ़ मुमकिन था जख्मी हो सकना या गिरफ़्तार हो जाना, और जर्मन फ़ौजी यही कर रहे थे।

सबसे बड़ी मुश्किल फ्रैंकफ़र्टके नागरिकोंकी थी—खास तौरसे बच्चों, बूढ़े मर्दों और बूढ़ी औरतोंकी। नगर छोड़कर भाग सकनेके लिए उनके पास कोई साधन या सुविधा नहीं थी। और नगरकी एक-एक इमारतसे क़िलेबन्दीका काम लिया जा रहा था। रूसी हवाई-जहाज़, रूसी टैंक और रूसी तोपें फ्रैंकफ़र्टकी इमारतोंको तेज़ीके साथ ज़मींदोज़ करते जा रहे थे।

आज सुबह ही वासिली इस फ्रण्टपर पहुँचा था और दिल भर उसने अपने मनकी हवस जी-भरकर निकाली थी। उसके आँखोंके सामने न सिर्फ़ हज़ारों जर्मन फ़ौजी, बल्कि उनसे भी अधिक संख्यामें जर्मन नागरिक हताहत हो रहे थे। फ्रैंकफ़र्टका वह बुरा हाल बना दिया गया था, जो आज तक किसी रूसी शहरका नहीं बनाया जा सका था। पिछले एक युगसे (लड़ाईके मैदानमें ४४ महीनोंका अरसा एक युग नहीं तो क्या है!) वासिली इसी चीज़के सपने देखता रहा है। कब वह किसी प्रमुख जर्मन शहरकी वही हालत बना देनेके क़ाबिल होगा, जो हालत लड़ाईके शुरूसे जर्मन फ़ौजी रूसी नगरोंकी बनाते आए हैं। आज उसने सचमुच अनुभव किया कि फ्रैंकफ़र्टका अग्निकाण्ड उसके गाँव लिखोविडोवकाके अग्निकाण्डसे कहीं अधिक बड़ा है।

साँझ हो गई थी कि फ्रैंकफ़र्टकी जलती हुई इमारतोंका निरीक्षण करनेके लिए वासिली अकेला ही आगे बढ़ गया। आगकी ये धधकती ज्वालाएँ उसके सन्तप्त हृदयको जैसे चन्दनकी शीतलता पहुँचा रही थीं। फ्रैंकफ़र्टका यह टूटा-फूटा, जलता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुआ मुहल्ला पूरी तरह वीरान और उजड़ा हुआ-सा पड़ा था। अचानक नज़दीक ही से किसी अत्यन्त निरीह प्राणीके रोनेकी करुण आवाज़ वासिलीको सुनाई दी। लपटोंकी ऊँची धू-धू ध्वनि की तुलनामें यह आवाज़ बहुत ही क्षीण और दुर्बल थी। परन्तु इस आवाज़में जो गहरी द्रावकता थी, वह उसे बरबस श्राव्य बना देती थी। वासिलीका हृदय भी यह करुण आवाज़ सुनकर एक बार काँप गया। उसे कुछ समझ न आया कि यह किस जन्तुकी आवाज़ है। पालतू बिल्ली, इन्सानका बच्चा, कोई निरीह परिन्दा—किसीकी भी यह आवाज़ हो सकती है।

वासिलीने ध्यान लगाकर सुना, तो नज़दीककी जलती हुई इमारतके तहखानेसे उसे यह आवाज़ आती प्रतीत हुई। क्षण-भर तो उसने सोचा कि कहीं यह दुश्मनका फन्दा न हो; परन्तु अपनी ताक़तवर पिस्तौलपर हाथ रखकर वह धीरेसे उस तहखानेमें उतर गया। आसपासके दहकते हुए मकानोंका प्रकाश इस अँधेरे तहखानेको काफ़ी उजेला बनाए हुए था। इसी जगते-बुझते प्रकाश में वासिलीने इस तहखानेमें सचमुच एक बहुत करुण दृश्य देखा। एक युवती जर्मन स्त्री मरी पड़ी थी। और उसकी छातीसे लग कर ढाई-तीन सालकी एक फूल-सी कोमल बालिका न-जाने कबसे चिल्ला रही थी। क्षण-भर तक उधर देखते रहनेके बाद अनायास ही वासिलीने उस बालिकाको अपनी गोदमें उठा लिया। बालिका रोते-रोते बिल्कुल मायूस हो गई थी। वासिलीकी गोदमें पहुँचते ही उसका रोना तो बन्द हो गया; परन्तु घण्टों तक रोनेकी प्रतिक्रियाके रूपमें अब वह रह-रहकर और भी अधिक करुण सिसकियाँ भरने लगी।

तहखानेमें खासा धुआँ भरा हुआ था। वासिली उस लड़की को गोदमें लेकर बाहर चला आया। बाहर आते ही वासिलीको जैसे ध्यान हो आया कि मैं तो फ्रैंकफ़र्टमें हूँ। फ्रैंकफ़र्ट दुश्मनका पहला शहर है, जिसे हम लोग तबाह कर रहे हैं। अपनी ज़िन्दगीमें मेरा यह पहला सौभाग्यशाली दिन है, जब मैं नाज़ी दानवोंका यह क़िला उखाड़ फेंकनेका पुण्यकार्य कर रहा हूँ। और यह चिमगादड़की तरह चीं-चीं करनेवाली लड़की एक जर्मन लड़की है, जिसे मैं नाहक यहाँ उठा लाया हूँ!

वासिलीने क्रोध-भरी निगाहसे उस बालिकाकी ओर देखना चाहा; मगर कोशिश करनेपर भी वह उत्तेजित न हो सका। बालिकाका सिसकना भी अब तक बन्द हो चुका था। वासिली को अपनी ओर ताकता देखकर वह धीरेसे बोली—'पापा!' और इसके साथ-ही-साथ अत्यन्त निष्कलंक और मधुर भावसे वह मुस्करा दी।

वासिलीने पिछले ४४ महीनोंमें एक बार भी वैसी पवित्र मुस्कराहट नहीं देखी। उसे याद आया, आजसे पौने चार साल पहले जब वह फ़ौजमें भर्ती हुआ था, मायाकी ठीक यही उम्र थी और ठीक इसी अन्दाज़से वह मुस्कराया करती थी। मगर मायाकी यादके साथ-ही-साथ उसे अपनी प्यारी बेटी लिज़ाकी याद भी हो आई। एक जर्मन पिशाचने किस क्रूरताके साथ उस पवित्रतम लड़कीकी जान ले ली! और यह बालिका भी तो किसी जर्मनकी ही लड़की है!

वासिली तिलमिला उठा। उसने चाहा कि अपने अन्तरकी सम्पूर्ण प्रतिहिंसाको जगाकर वह अपनेको एक क्रूर पशुके रूपमें परिवर्त्तित कर ले—एक ऐसा क्रूर पशु, जो इस नन्हीं-सी बालिकाके यदि टुकड़े-टुकड़े न कर सके, तो कम-से-कम उन शैतान जर्मनोंकी तरह इसे जर्मन मकानोंकी धधकती ज्वालामें तो फेंक सके।

बालिका एक बार बहुत ही मधुर स्वरमें फिरसे बोली—'पापा!' क्षण-भर रुककर तोतली ज़बानमें उसने कहा—'मुझे भूख लगी है, पापा!'

वासिलीने पाया कि वह कमज़ोरीका शिकार हो रहा है। अपना सम्पूर्ण सैनिकपन एकत्रकर उसने चाहा कि यदि वह और कुछ न भी कर सके, तो कम-से-कम उस बालिकाको उसी जगह छोड़ तो दे। ज़बरस्ती अपनी मुद्राको बहुत गम्भीर बनाकर वासिलीने बालिकाको अपनी छातीसे दूर करनेकी कोशिश की। परन्तु शायद बालिका ग़लतीसे वासिलीको सचमुच अपना 'पापा' समझ बैठी थी। सम्भवतः उसका पिता कहीं जर्मन फ़ौजमें होगा और बहुत दिनोंसे उसने उसे नहीं देखा होगा। बालिका वासिलीकी छातीसे चिपक गई और बड़े प्यार-भरे स्वरमें बोली—'पापा! पापा!!'

वासिलीने फिर भी परवाह नहीं की। उस नन्हीं-सी बालिका को एक झटकेके साथ उसने अपनी छातीसे पृथक् कर दिया और उसे उस निजन, सुनसान, दहकती हुई सड़कपर अकेला छोड़कर तेज़ीसे भाग खड़ा हुआ।

बालिका क्षण-भरके लिए तो सहम गई; परन्तु उसके बाद उसकी रही-सही निरीह चेतनाने उसे सम्भाल लिया। 'पापा! पापा!' चिल्लाती हुई वह भी जहाँ तक बन पड़ा, तेज़ीसे वासिली के पीछे दौड़ी।

थोड़ी ही दूरपर एक मोड़ था। वासिली वहाँ पहुँचकर एक टूटी दीवारके पीछे छिप गया। वहाँसे उसने पीछेकी ओर देखा। बालिका थोड़ी दूर तक तो दौड़ी और उसके बाद एकदम हताश होकर जलती सड़कके बीचोंबीच बैठ गई। इसी तरह अकर्मण्य-सी बैठी रहकर उस भयावनी रातके सन्नाटेमें वह ज़रा-सी बच्ची अत्यन्त करुण स्वरमें लगातार चिल्लाने लगी—'पापा! पापा! पापा!'

वासिली आखिर परास्त हो गया। एक छोटी-सी निरीह बालिकाने ग़लतीसे उसे अपना पिता समझ लिया है। उसके न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डोरोथी वर्ड्सवर्थ

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

"भाई विलियमका विवाह मेरी हचिन्सनसे हो गया। बाल्य काल ही से मेरीको मैं अपनी सगी बहनके तुल्य मानती आई हूँ। वह अब भी मेरे लिए उसी भाँति आकर्षक है और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि संसारमें 'मेरी'से बढ़कर अन्य कोई भी स्त्री मेरे भाईके लिए उपयुक्त सिद्ध न होती। तो भी न-जाने क्यों, कल प्रातः जब उन दोनोंको चर्चकी ओर जाते देखा और विलियमने मुझसे विदा ली, तो कठिनाईसे मैं अपने को सँभाल सकी।...'विवाह हो गया। वे आ रहे हैं।' कुछ देर बाद सारा हचिन्सन (मेरीकी छोटी बहन) के इन शब्दोंने मुझे उठनेके लिए विवश किया। मैं दौड़कर वर-वधूका स्वागत करने उठी और भाईके गलेसे चिपट गई।"

उपर्युक्त भाव सरल-हृदया डोरोथीने अपने भाई महाकवि विलियम वर्ड्सवर्थके विवाहके दिन अपनी अन्यतम सखीको लिखे थे। भाई-बहनका सम्बन्ध वास्तवमें स्नेहके अत्यन्त सूक्ष्म तन्तुओंसे निर्मित है। भाईके विवाहके अवसरपर वैसे तो प्रत्येक स्नेहशील बहनके उल्लसित हृदयमें क्षण-भरके लिए एक विषादपूर्ण झोंकेका उठ आना स्वाभाविक है; किन्तु डोरोथीके लिए यह अवसर अपेक्षाकृत अधिक एवं उदासी-मिश्रित आँसू लाया था। उन आँसुओंमें वही गहन पुनीत भाव थे, जो प्रथम बार समुद्र, हिमाच्छादित आल्प्स-शिखर और प्रसिद्ध कवि कोलरिजको देखकर डोरोथीके नेत्रोंसे झर पड़े थे। इनका रहस्य उसके अतीत जीवन के पन्ने पलटनेपर ज्ञात होता है।

डोरोथी चार भाइयोंकी एक बहन थी। इनके पिता जोहन वर्ड्सवर्थ गार्समीयरके नामी वकील थे। स्वाभाविक प्रकृति और काम-काजमें अधिक उलझे रहनेके कारण अपनी सन्तानके साथ वे खुला एवं घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित न कर सके। इसीलिए बच्चोंके चरित्र-निर्माणमें उनकी बुद्धिमती माताका हाथ ही प्रमुख रहा, जो स्वयं अधिक पढ़ी-लिखी न होनेपर भी बच्चोंके मनोभावोंसे पूर्णतया परिचित और सहज-बुद्धियुक्त एक ऊँचे चरित्रकी महिला थीं। वे उन माताओंमें से नहीं थीं, जो सन्तानके तनिक भी आँखसे ओझल होनेपर अधीर हो उठती हैं। प्रत्युत वे उन्हें स्वच्छन्द भावसे खेतों, वनों, हरे-भरे कूलों आदिमें विचरण करने देती थीं। धार्मिक तथा भयप्रद कथा-कहानियोंके बजाय वे बच्चोंको Jack and Giant-Killer, Robinhood आदिकी अनेक ऐसी रहस्यमयी वीरतापूर्ण कहानियाँ सुनाया करती थीं, जिनसे वे साहसी, स्वावलम्बी और सन्तुलित मस्तिष्कके बन सकें। तभी तो माँके गुणोंका स्मरण करते हुए वर्ड्सवर्थने लिखा है—'जो हमारी सब शिक्षाओं एवं प्रेमोंका हृदय और मूल केन्द्र थीं।'

दुर्भाग्यसे डोरोथी जब कुल छः ही वर्षकी थी, उसकी जननीकी मृत्यु हो गई। किन्तु जिन सुघड़ हाथोंमें वे बच्चोंकी देख-रेख एवं सुशिक्षाका भार सौंप गईं, वे उनका भविष्य बनाने में कम लाभदायक सिद्ध नहीं हुए। डोरोथीकी यह मौसी (माँकी चचेरी बहन) भी अत्यन्त बुद्धिमती एवं सुसंस्कृत महिला थी। उनका हृदय स्नेह एवं वात्सल्यसे ओतप्रोत था। इससे एक ही वर्ष पूर्व वे अपनी सगी स्वर्गीया बहनके पाँच नन्हें बच्चोंका भार वहन किए थीं। बच्चोंकी सूक्ष्म मनोवृत्तियोंका ज्ञान उन्हें उनके योग्य माता-पिताओंसे कहीं अधिक था। बच्चोंको स्वतन्त्रताप्रिय वृत्ति, सम्मान एवं चारित्रिक विकासका पूरा ध्यान रखते हुए जिस ढंगसे उन्होंने अपने भानजी-भानजोंका पालन-पोषण किया, माँके अभावको भुलाकर सहज ही बच्चोंके हृदयोंमें उनके लिए विशिष्ट एवं निकट स्थान बना लिया। इस ओर उनके क्रियात्मक जीवनका विशेषतया डोरोथीपर जो प्रभाव पड़ा, उसीके फल-स्वरूप वह आगामी पचास वर्षों तक भी अपनी इन स्नेहमयी मौसीको न भुला सकी।

डोरोथीकी प्रारम्भिक शिक्षा स्कूलों और पुस्तकोंकी अपेक्षा हेलीफैक्समें अधिकतर अनेक संगी-साथियोंके साथ भाँति-भाँतिके खेलों, नृत्यों एवं पास-पड़ोसके गाँवोंमें घूमते-फिरते ही हुई। कुल चौदह वर्षकी आयुमें उसके छोटे-से निजी पुस्तकालयमें शेक्सपीयर, मिल्टन, फ़ील्डन, होमर, गोल्डस्मिथ, पोप आदि श्रेष्ठ कलाकारोंकी कृतियोंका पाया जाना, उसकी उत्कृष्ट एवं परिष्कृत रुचिका परिचायक था। कदाचित् इसी कारण भाषा एवं शब्दोंके समुचित प्रयोगपर उसे बचपनसे ही पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। सोलह वर्षकी अवस्थामें लिखे गए पत्र उसके परिपुष्ट एवं आकर्षक शैलीका प्रमाण हैं। किन्तु प्रायः देखा गया है कि सरल, भावुक, मातृ-पितृ-हीन बच्चोंको परिस्थितियाँ कुछ अधिक बनाना चाहती हैं। कुछ काल बाद उनके पिताकी भी मृत्यु हो गई। इससे आर्थिक संकटके कारण तीनों लड़कोंको

माँ है, न बाप। न-जाने कबसे उसने न खाना खाया है, न पानी पिया है। मगर यह सब-कुछ भूलकर वह सिर्फ़ अपने इस कल्पित पापाको ही पुकारे जा रही है।

ओटसे निकलकर वासिली तेज़ीके साथ वापस लौटा और उस छोटी-सी बालिकाको उसने इतने आग्रहके साथ अपनी बाँहोंमें लगा लिया, जैसे सचमुच वह अपनी बेटीसे मिल रहा हो।

और युद्धके बाद जब वासिली अपने घर वापस लौटा, तो १४ सालकी लिज़ाकी जगह ३ सालकी एक और लड़कीको अपने साथ लेता आया। लोगोंसे वह अब भी यही कहता है कि लिज़ा सब बदलकर वापस आ गई है!

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होस्टलमें तथा डोरोथीको नाना-नानीके पास जाकर रहना पड़ा।

वृद्धजन बच्चोंको स्नेह तो करते हैं; किन्तु आयुके दीर्घ व्यवधानके कारण उनके कोमल मनोभावोंको समझनेमें असमर्थ रहते हैं एवं उनके साथी कदापि नहीं बन पाते। तिसपर डोरोथीकी नानी तो नितान्त पुराने ढंगके विचारोंकी थीं। वे न केवल प्रखर-बुद्धि डोरोथीको जंगली तथा मूढ़ ही समझती थीं, बल्कि माँ और मौसीकी कृपासे विकसित उसके सम्पूर्ण ऊँचे दर्जेके गुणोंको स्पष्ट रूपसे पाप समझ सदैव उन्हें कुचलने एवं अनुशासन करनेमें ही आनन्द लेती थीं। उनका छोटा लड़का भी उनके विचारोंमें सम्मिलित था। डोरोथीको कहीं बाहर आने-जाने और किसी बन्धु-बान्धवसे मिलने तककी स्वतन्त्रता नहीं दी जाती थी। पास-पड़ोसकी स्त्रियोंकी नुक्ताचीनी तथा व्यर्थ बैठकर गप्पें हाँकना उसे अत्यन्त नागवार जान पड़ता था। दिन-रात वह खाना बनाने, बर्तन माँजने तथा सफ़ाई करनेमें ही लगी रहती। इससे तनिक छुट्टी मिली, तो कपड़ोंकी सिलाई और मरम्मत करनेमें लग जाती। लुक-छिपकर किसी अर्द्ध-रात्रिमें वह अपनी अभिन्नतम सखी जेन पोलाण्डको पत्र लिखनेका अवसर निकाल ही लेती; क्योंकि नानीके यहाँ क़लम, पुस्तक आदि हाथमें लेना तो उसका भारी अपराध समझा जाता था। यही नहीं, वह तथा उसके प्राणोंसे प्यारे भाई वहाँ बड़े-बूढ़ोंसे लेकर नौकरों तकसे पग-पग पर अपमानित होते थे। उनका संरक्षक मामा प्रायः ताने मारा करता—'तुम लोगोंके रुपए चुक गए हैं! तुम्हारे पास कुछ भी गर्व करने योग्य शेष नहीं है!' छोटी-छोटी वस्तुओंके लिए भी उन्हें दूसरोंका मुँह ताकना पड़ता था। एक बार उसके भाइयोंको लिखा लानेका प्रबन्ध जान-बूझकर इससे नहीं किया गया कि 'बच्चे क्यों पत्रमें यह लिखना भूल गए!' न ही उनके जन्मोत्सवपर किसीको निमन्त्रित किया या करने दिया जाता। ये बातें बहन डोरोथीके लिए असह्य थीं। संगी-साथी-विहीन वह अपनेको कुण्ठित समझने लग गई। उस दम घोंटनेवाले वातावरणमें सप्ताहका अन्तिम दिन तो उसके लिए मानो नक्षत्रके समान था। भाई-बहन प्रति शनिवारकी सन्ध्याको एकत्रित होते और स्वप्न देखते: काश, उनके पिता जीवित होते और उनका एक निजी मकान होता! अपने भविष्यके विषयमें वे तरह-तरहके मन्सूबे बाँधते।

किन्तु दुःखकी भी सदा अवधि हुआ करती है। इन्हीं दिनों उनके बड़े मामा विलियम केम्ब्रिजसे उच्चशिक्षा समाप्तकर लौटे। वे घरवालोंसे सर्वथा भिन्न एवं उदार-प्रकृतिके बुद्धिमान व्यक्ति थे। आते ही उन्होंने अपनी प्रखर-बुद्धि भानजीके गुणोंको पहचान लिया और उससे अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने लगे। प्रातः-सायं उसे अपने साथ घूमने ले जाने और लैटिन, फ्रेंच, भूगोल, इतिहास आदिका अभ्यास कराने लगे। डोरोथीसे अक्सर वे कहा करते—'अपने भावोंको खुलकर पत्रों द्वारा व्यक्त करती जाओ।' उनके इस कथन एवं आदेशको डोरोथी आजीवन ध्येय बनाए रही। उसे मानो निर्दिष्ट मार्ग सूझ गया। फलस्वरूप उसके सैकड़ोंकी संख्यामें सखियों, मित्रों, बन्धुओं आदिके नाम लिखे गए पत्रोंका बृहत संग्रह आज अंगरेज़ी-साहित्यको डोरोथीकी अमर देन है।

मामा विलियमका काम लग जानेकी खबर सुन डोरोथी फूली नहीं समाई। कुछ ही दिन बाद उनका विवाह भी डोरोथी की एक प्रिय सखीसे हो गया। अब तो वह मामा-मामीके पास फोर्नसेटमें सुखसे रहने लगी। उनके बाल-बच्चोंका पालन-पोषण और घरका काम-काज उसने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथोंमें ले लिया। इतने समयमें उसके भाइयोंकी शिक्षा भी समाप्त हो चुकी थी। डोरोथीको सभी भाई प्राणोंसे प्यारे थे; किन्तु विलियम वर्ड्सवर्थ और डोरोथी तो—जिनका अन्तर केवल एक वर्षका था—जैसे जुड़वाँ बच्चोंकी भाँति थे। दोनों स्वच्छन्द, भावुक, प्रकृतिके अनन्य पुजारी और विश्वके कण-कणसे स्वभावतया परिचित-से थे।

वर्ड्सवर्थ इन्हीं दिनों आकर यहाँ ठहरे। जब दोनों भाई-बहन घूमने जाते, तो लम्बी यात्राओं, विदेश-भ्रमण एवं स्वतन्त्र रूपसे जीवन-निर्वाह करनेकी ही योजनाएँ बनाया करते। चिर-प्रतीक्षा और साधनाके अनन्तर अन्तमें वह दिन भी आया, जब दोनों सर्वथा मुक्त होकर वर्षों बाद पुनः अपनी प्रिय जन्मभूमि गार्समीयरकी ओर गए। जिन पर्वतों, मैदानों और हरे-भरे कूलोंकी गोदमें उनका शैशव बीता था, वे वृक्ष, फूल, पशु, पक्षी, ग्राम-निवासियोंकी भाषा और नीलाकाश तक मानो उनका स्वागत कर रहे थे। वहीं अपनी प्यारी झीलके समीप ही डोव-कुटीरका निर्माण कराकर वे उसमें रहने लगे। इन दिनोंका डोरोथीने जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त यथार्थ और मधुर है। एक स्वर्गीय मित्रकी कृपासे यद्यपि उन्हें कुछ धन प्राप्त हो गया था; किन्तु जीवन-निर्वाहकी समस्या अभी तक हल नहीं हुई थी। वर्ड्सवर्थ निजी लेखों तथा अन्य अनुवादों द्वारा कुछ उपार्जन करने लगे। इधर डोरोथीने भी घरके काम-काजके अतिरिक्त एक सम्बन्धीके दो-तीन बच्चोंके संरक्षणका काम ले लिया। वह बिना किसी नौकर-नौकरानीकी सहायताके खाना बनाती, सिलाई करती, वस्त्र धोती और साथ ही वर्ड्सवर्थकी कविताओंका प्रूफ़ देखनेका काम भी करती। किन्तु दिन-भर व्यस्त रहनेपर भी अब वह खूब प्रसन्न थी। प्रत्येक जीव-जन्तु, पक्षी, बादल, हवाके झोंके तकसे उसका अटूट सम्बन्ध था। परिस्थितियोंने उसे लौकिक आडम्बरोंसे पृथक रखकर अन्तर्दर्शी एवं प्रकृतिकी अत्यन्त सूक्ष्म ध्वनियोंसे जोड़-सा दिया था। विलियम वर्ड्सवर्थ की Plain living and high thinking प्रभृति कवि-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताएँ इन्हीं दिनोंको लक्ष्य करके लिखी गई हैं। प्रायः ऐसा होता था कि भाई बाहर झीलके किनारे बैठे कविताएँ लिख रहे हैं और बहन घरमें खाना बनाने आदि गृह-कार्योंमें व्यस्त है। छोटा बालक हाथमें कविताएँ लिए आता, डोरोथी सब काम छोड़ वहीं उनमें संशोधन करने लग जाती। विश्वके महान् कवि वर्ड्सवर्थकी कविताओंके पीछे डोरोथीका कितना बड़ा हाथ है, इसे प्रायः कम ही लोग जानते हैं। पर यथार्थमें वही उनकी मूल प्रेरक, सर्वप्रथम संशोधक, आलोचक और प्रशंसक थी।

उनकी दिनचर्याके दो-एक पन्ने देखिए—"विलियम रात भलीभाँति सो नहीं सका। प्रातः नौ बजे बिस्तरसे उठा, किन्तु उठनेसे पूर्व उसने 'भीखारी बालक'-शीर्षक कविता समाप्त कर ली थी। नाश्तेके वक्त भी वह उसी प्रकार खुले गलेकी कमीज़ पहने 'तितली' नामक कविता लिखनेमें निमग्न रहा। मक्खन-रोटी आदिको उसने छुआ तक भी नहीं। इस कविताको लिखनेका भाव इस प्रकार उसके मनमें उठा : योंही परस्पर बाल्यकालकी बातें करते-करते तितलियोंका मृदु प्रसंग आ गया। कैसे हम हर समय तितलियोंको देखनेके लिए उत्सुक रहते थे! उनके कोमल पंखोंकी धूलि उड़ न जाय, इस भयसे मैं उन्हें पकड़ न पाती थी। और विलियमने सुनाया, कैसे वह साथियों-सहित सफ़ेद-सफ़ेद बहुत-सी तितलियोंका संग्रह कर लाता था।"

एक दूसरा वर्णन है—"वनसे आते समय दूरसे हमने कुछ डेफ़ोडिल पानीकी सतहपर खिले देखे। ऐसा लगा, मानो झीलने कभी कुछ बीज किनारेपर फेंक दिए हों, जिनसे वहाँ फूलोंका नगर-सा बस गया हो। किन्तु ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते गए, फूल भी क्रमशः अधिक दिखाई देने लगे। अन्तमें उनकी लम्बी कतार एक बृहत् चौड़ी सड़ककी भाँति जान पड़ी। इतने सुन्दर फूल मैंने आगे कभी नहीं देखे। वे जहाँ-तहाँ काई-भरी चट्टानों के मध्यमें हिलोरें ले रहे थे। कुछ मानो उनपर अलसित भावसे विश्रामके हेतु झुके थे। झीलके वक्षपर से उठती हुई मत्त पवन भी जैसे उन्हें थपकियाँ दे रही थी।"

इन स्थलोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो एक ही ध्वनि वंशीके दो छिद्रों द्वारा प्रवाहित हो रही हो। इसी कारण अपने प्रिय भाईके विवाहके अवसरपर डोरोथीकी आँखोंसे जो आँसू सहसा झर पड़े थे, वे अत्यन्त स्वाभाविक थे। किन्तु उसका संशय निर्मूल सिद्ध हुआ; क्योंकि विवाहके कुल एक ही घण्टे बाद वे तीनों दूर भ्रमणके लिए चले गए और आश्चर्यकी बात है कि बाल्यकालके वे तीनों खेल-कूदके साथी आगामी पचास वर्षों तक एक ही घरमें बिना किसी मनोमालिन्यके एक साथ स्नेह-पूर्वक रहे।

प्रारम्भसे ही भाई-बहनके बौद्धिक जीवनकी अभिन्नता एवं परस्पर-पूर्तिका ज्ञान उदारहृदया, सहनशीला मेरीको भली प्रकार हो गया था। अतः उसने उन्हें सभी प्रकारकी स्वतन्त्रता दे रखी थी। इधर डोरोथीने भी जिस स्नेहसे मेरीके बाल-बच्चोंका पालन-पोषण किया, उसे पढ़कर देह-मन पुलकित हो उठते हैं। वे उनकी धर्ममाता बनीं। बाल-मनोवृत्तियोंका अध्ययन तो वे कवि-दृष्टि पहलेसे ही करती आई थीं। (इसी बीच उन्होंने अपने बच्चोंका एक स्कूल भी खोला था।) उनके भोले, पवित्र मुख देख वे नाच उठतीं और उन्हें गोदमें लेकर मधुर कण्ठसे लोरियाँ सुनतीं तथा उनके साथ खेलते-हँसते स्वयं बच्ची बन जातीं। कई बार वे किसी साहित्यिक कार्यमें गहन भावसे लीन थीं। इतनेमें रसोईघरसे बुलाहट हुई और आँचल खींचकर डोरोथीको वहाँ लाया गया कि उनकी भतीजी और भतीजा कई अन्य बच्चोंको नाचनेके लिए निमन्त्रित कर लाए थे और बिना बुलाए हाथ पकड़कर नृत्य करने और मुँहसे भाँति-भाँतिके स्वर निकालने के वह उत्सव पूरा नहीं हो रहा था!

इस तरह चिरकाल तक डोव-कुटीर मुखर जीवन, सौन्दर्य एवं साहित्यका केन्द्र बना रहा। उस समयके प्रायः सभी प्रसिद्ध लेखक और कवि—कोलरिज, लैम्ब, स्काट, डी-क्वैन्ज़ी आदि—इस परम रमणीक एवं मधुर वातावरणकी शोभा बढ़ाते थे। डोरोथीके साथ इन सबोंका स्नेहयुक्त व्यवहार था, जो उनके उपलब्ध पत्र-व्यवहारसे प्रकट है।

बीच-बीचमें वर्ड्सवर्थ-परिवार देश-विदेशकी लम्बी यात्राओं के लिए भी जाता था। समस्त यूरोपका भ्रमणकर डोरोथीने बाल्यकालके अपने स्वप्न सत्य सिद्ध किए। आल्प्सके हिमाच्छादित गगनचुम्बी शिखर तथा समुद्रकी उत्ताल तरंगोंका अवलोकन देखकर वे आनन्दके मारे उछल उठी थीं। अनेक चाँदनी रातों झीलों, निर्झरों, विविध पक्षियोंके संगीत, सूर्यास्तके अद्भुत रंगों आदिका अपूर्व वर्णन डोरोथी तथा मेरी द्वारा हज़ारों पृष्ठों उनकी विस्तृत दिनचर्यामें लिखित है। ये यात्राएँ केवल प्राकृतिक सौन्दर्य-पानके हेतु ही नहीं की गईं, बल्कि इनके दौरानमें डोरोथी जर्मनी, स्विटज़रलैण्ड, फ्रांस, स्काटलैण्ड आदि देशोंमें मीलों पैदल घूमकर वहाँके ग्राम-निवासियों—विशेषकर गरीब किसानों—की वेश-भूषा, रहन-सहन, सामाजिक व्यवस्था तथा कई एक ग्रामीण भाषाओंका गम्भीर अध्ययन भी किया। बिना हिचकिचाहटके जिस निर्भीकतासे वे अपरिचित ग्रामीण घरोंमें घुस जातीं, वहाँ गोरोंसे जिस सहज-भावसे मेल-मिलाप कर लेतीं और उनकी टूटी-फूटी भाषामें जैसे वार्त्तालाप करने लगतीं, उसे देख उनके साथी विस्मित हो उठते थे।

चित्रकला एवं संगीतकी शिक्षा परिस्थितिवश न प्राप्त कर सकनेका डोरोथीको बहुत दुःख था; किन्तु लेखनी द्वारा उनके सजीव चित्रांकन दुर्लभ हैं। विरला ही चित्र वे मानवकी भूमिमें लाए बिना उतारती थीं। उदाहरणार्थ नीचेके तीन देखिए :—

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो ग्रामीण युवतियाँ : लौटते समय दो ग्रामीण युवती कन्याएँ हमें मिलीं, जिनमें से एक अत्यन्त रूपवती थी। वे दोनों एक मटमैले वस्त्रसे अपने सम्पूर्ण शरीरको ढँके थीं। हमें उत्तर देनेके लिए उन्होंने चेहरेपर से केवल तनिक पर्दा हटाया और इस मधुरतासे धीरे-धीरे बातचीत की, ऐसी भोली चितवनसे हमारी ओर देखा कि मैं मुग्ध हो गई। अंगरेज़ी भाषाका ऐसा स्पष्ट और मृदु उच्चारण सम्भवतः प्रथम बार ही मैंने सुना था। वे दोनों दरवाज़ेके मध्यमें खड़ी-खड़ी जिस निर्भयतासे हमारे प्रश्नोंका उत्तर दे रही थीं, उसे देख मुझे पीटर बैलकी 'हाईलैण्ड गर्ल'की वे पंक्तियाँ स्मरण हो आईं—

As light and beauteous, as a squirrel,
As beauteous and as wild.

बूढ़ा व्यक्ति : काली चादर और पहाड़ी ढंगकी टोपी पहने सहज भावसे क़दम रखते हुए एक वृद्ध व्यक्तिको हमने आते देखा। वह अपने साथी कुत्तेको लिए ऊँची पहाड़ियों, वनों और खेतोंमें घूम रहा था। उसके चेहरेपर कैसी दैवी शान्ति और धैर्य विराज रहा था!

पहाड़ी बालक : चलते-चलते सहसा हम झीलके उस पारसे एक ध्वनि सुनकर रुक गए। यह सीटीका-सा स्वर एक स्काटिश पहाड़ी बालकका था, जो सम्भवतः रात्रि हो जानेके कारण पशुओंको एकत्रित करनेके लिए बजा रहा था। आसपास दूर तक कहीं भी बस्तीका चिह्न तक न था। साँझके बढ़ते हुए अन्धकार, कुहरे, नदीके गर्जन तथा नीरव पर्वत-श्रेणियोंके मध्यमें उसकी दीन-त्रस्त-उदास आकृति, जो बहुधा असांसारिकताका परिणाम होती है, कई कल्पनाएँ भरने लगी।

एक अन्य चित्र, जो यद्यपि कुछ विस्तृत है, किन्तु उतना ही अधिक मर्मस्पर्शी भी है, इस प्रकार है—"प्रिय विलियम, गत सोमवारसे न केवल हम दोनों, बल्कि सारा गाँव परेशानीमें रहा। कारण, जार्ज ग्रीन और उसकी स्त्री (गृह-कार्यमें सहायता देनेवाली लड़की सैलीके माता-पिता) शनिवारकी सुबह लैंगडेल पहाड़ीपर एक भेलेमें गए थे। उस दिन बहुत सबेरे ही बर्फ़ पड़ने लगी थी और बेहद ठंड थी। मेलेसे लौटते हुए तो कुछ लोगोंने उन्हें वहाँ देखा भी; किन्तु दुःख है, वे घर न पहुँच सके। अँधेरा हो जानेके कारण वे कहीं गिर या भटक गए होंगे, यही लोगोंका अनुमान है। अपने पीछे वे छः छोटे-छोटे बच्चे, जिनमें से सबसे छोटा तो अभी माँका दूध ही पीता है, छोड़ गए थे। बेचारे बच्चे रात ग्यारह बजे तक प्रतीक्षा करते-करते अन्तमें यह सोचकर सो गए कि शायद उनके माता-पिता मौसम खराब होनेकी वजहसे वहीं रुक गए होंगे। किन्तु अगले दिन भी उनकी कोई खबर न मिली और न ही पास-पड़ोसमें किसीको कुछ पता चला। दुर्घटनाके विषयमें तो तब जान पड़ी, जब कहीं तीसरे दिन उनकी लड़की जैनी (तुम्हें याद होगा, उस दिन सैर करने जाते हुए जिस सुन्दर प्यारी बच्चीके मुखकी सरलता एवं शारीरिक गठनने तुम्हें अत्यन्त प्रभावित किया था) एक पड़ोसीके यहाँसे ओवरकोट माँगने गई, ताकि वह अपने माँ-बाप को ढूँढ़ लाए। पड़ोसी गेलेण्डसन तुरन्त समझ गया कि वे अवश्य कहीं बर्फ़में दब गए होंगे। पल-भरमें यह खबर सारे गाँवमें फैल गई। पचास-साठ व्यक्ति उसी समय पहाड़ोंकी ढलानकी ओर उन्हें ढूँढ़ने गए; पर अभी तक कुछ भी पता नहीं चला।...

"मेरी और मैं आज प्रातः उनके घर गई थीं। ओह, कितना हृदयविदारक दृश्य था! दो बड़ी लड़कियाँ थरथराती काँपती आईं। छोटा शिशु पालनेमें सो रहा था। उन अबोध नन्हें बच्चोंको अभी तक माता-पिताके आनेकी आशा थी। ग़रीब सैली अत्यन्त दुखी थी। हमने उसे आश्वासन दिया कि उसे हम सदा अपने पास रखेंगी और पढ़ना-लिखना, सिलाई आदि सिखाती रहेंगी (वैसे भी हमें आशा है, बड़ी होकर वह सयानी लड़की बनेगी)। तीन बच्चे रात श्रीमती नाटके यहाँ रहे थे, जिसने उन्हें खाने-पीनेकी सामग्री देकर विदा किया तथा वस्त्र भिजवाने का वचन भी दिया, क्योंकि छोटे बच्चे तो निरे चिथड़े पहने हैं। अपने विषयमें कुछ लिखनेको मन नहीं चाहता, क्योंकि पिछले तीन दिनोंसे जी बड़ा उखड़-उखड़-सा रहा है। हाँ, सैलीके लिए एक बाइबल अवश्य लेते आना। वहीं पासके गाँवमें मिल जायगी। —तुम्हारी, डोरोथी।"

"पुनश्च : चिट्ठी खोलकर दुबारा यह सूचित करनेके लिख रही हूँ कि लाशें मिल गई हैं। वे दोनों बर्फ़में दूर तक लुढ़कते गए। स्त्रीकी मृत देह एक दीवारके साथ सटी पड़ी पाई गई और उसके पतिकी तनिक हटकर ऊपर कहीं।—डो०"

उपर्युक्त घटनाका विस्तृत विवरण प्रकाशित करनेका अनुरोध उनके एक मित्रने किया, जिसका उत्तर डोरोथीके व्यक्तित्व को प्रकट करनेके लिए पर्याप्त है। उत्तर इस प्रकार है—"प्रिय मित्र, मुझे खेद है कि मैं इस दुर्घटनाका विवरण प्रकाशित न करवा सकूँगी। यदि यह एक काल्पनिक घटना होती, तो इसके प्रकाशित करानेमें कुछ भी आपत्ति न थी। तब यह बिना नामके ही छप जाती। अब तो इसके प्रकाशित होनेसे व्यर्थ ही लोगोंका कौतूहल जाग उठेगा, जो बच्चोंके चारित्रिक विकासमें न-जाने कितना बाधक हो। दूसरे, मेरे हृदयपर यह अनुभूति अभी इतनी गहरी और इतनी ताज़ी है कि इसकी करुण कहानी सुनानेके आधारपर मैं लेखिकाओंमें नाम नहीं गिनाना चाहती। हाँ, आज से तीस-चालीस वर्ष बाद, जब ये बच्चे बड़े होकर इस संकटपूर्ण अवस्थाको पार कर चुके होंगे, तब यदि इसके प्रकाशनमें कोई लाभ जान पड़े, तो निःसन्देह वह प्रकाशित होने दी जाय। उस वक्त मैं चाहे जिन्दा रहूँ या न रहूँ।"

CC-O.Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

किन्तु डोरोथी ग्रीन-परिवारकी इस हृदयविदारक दुर्घटनाका वर्णन अपने एक अन्य मित्रको लिखे बिना न रह सकीं। उन्होंने लिखा—"सोमवारकी सन्ध्याको दुर्घटनाका पता लगते ही दूर पड़ोसकी दो-तीन स्त्रियाँ दौड़ी-दौड़ी बच्चोंको सँभालने उनके घर पहुँचीं। बच्चे अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें थे और सब-के-सब एक साथ चिल्ला रहे थे। पूरे दो दिन बिना किसीको पता दिए धैर्यसे प्रतीक्षा करते-करते उन्होंने न-जाने कैसे गुज़ारे थे; किन्तु माता-पिताकी मृत्युकी सूचना मिलते ही मानो उनपर वज्रपात हो गया। ज़रा-सी देरमें लोगोंने मिल-जुलकर बच्चोंके खान-पानकी व्यवस्था कर दी। जार्ज ग्रीन गाँव-भरमें सबसे निर्धन व्यक्ति था, उसका अन्दाज़ा तो तुम इसीसे लगा सकते हो कि उस समय घरमें दो उबले आलुओं और दो-चार मांसके टुकड़ोंके अतिरिक्त और कुछ भी न था। एक गाय थी, जो अब बूढ़ी हो चुकी थी; और घोड़ा तो पहले ही बिक चुका था। थोड़ी-सी पैतृक ज़मीन थी (वह भी गिरवी थी), जिसमें वे खून-पसीना एककर आलू आदि बो दिया करते थे। जार्जकी यह दूसरी शादी थी, पहली स्त्रीसे तीन लड़कियाँ और एक लड़का था। और अभी जो मृत्यु-मुखमें उसकी साथिन बनी थी, उससे चार लड़कियाँ और चार लड़के थे। पैंसठ वर्षके लगभगका वह बूढ़ा व्यक्ति अवश्य ही पड़ोसियोंकी मज़दूरी करके दिन काटता होगा। सुना है, उन्होंने चाय पीना तक बन्द कर रखा था और प्रत्येक आगामी सप्ताहके निर्वाहके लिए आवश्यक समानमें से भी उन्हें कुछ-न-कुछ बेचना पड़ता था। तब भी आश्चर्य है, आज तक कभी किसीने उनके मुँहसे अपनी दरिद्रताकी बात नहीं सुनी थी। किसी बन्धुसे मिलने-जुलने अथवा मेलेमें जानेके वक्त वे सदैव स्वच्छ-सुथरी पोशाकमें होते थे।

"बुधवारकी सुबह मैं और मेरी पुनः अनाथ बच्चोंकी सुधि लेने गईं। इस बार वे पहलेकी अपेक्षा शान्त-स्थिर अवस्थामें थे। छोटा बच्चा सो रहा था, दो बच्चे फ़र्शपर खेल रहे थे; किन्तु दोनों बड़ी कन्याएँ काम करते-करते रोती भी जाती थीं और तनिक आहट पा कान लगाकर सुनती थीं। उन दोनोंने आजसे बीस वर्ष पूर्वकी उस दुर्घटनाका ज़िक्र किया, जब इसी घरसे एक साथ उनकी माँ (जार्जकी पूर्व पत्नी) और भाईकी अर्थी निकली थी और दोनोंको एक ही क़फ़नमें लिटाना पड़ा था। ऐसा जान पड़ता था, वह पुराना घाव मानो आज पुनः उनके हृदयोंमें ताज़ा हो गया हो।

"मित्र-बान्धवोंसे घिरे तथा अनेक काम-धन्धोंमें उलझे बड़े-बड़े नगर-निवासियोंकी अपेक्षा इन साधारण ग्रामीणोंका जीवन कहीं अधिक सचाई एवं सरलतासे भरा होता है। न केवल कोई अनहोनी घटना ही घर-घरकी चर्चाका विषय बन जाती है, बल्कि ये लोग परस्पर एक-दूसरे परिवारकी विशेष आदतों, स्वभावों और छोटे-बड़े कष्टोंको भी भलीभाँति अनुभव करते हैं। घटनाएँ बहुधा गाथाओंका रूप धारण कर लेती हैं। उस दिन एक दूर स्थानपर एक स्त्री ग्रीन-परिवारकी कष्ट-कथाको सुना रही थी, मानो यह दुर्घटना स्वयं उसीके साथ बीती है। उस स्त्रीने यह भी सुनाया कि हमारे यहाँ किसीको बीमारी मुसीबतमें बिना किसीको बताए उनके घरमें चुपके-से कुछ छोड़ आनेका रिवाज है।...

"मृत देहें मिल जानेपर पहाड़ीकी दिशामें बहुत शोर हुआ। शुक्रवार दोपहरको वे दोनों एक ही क़ब्रमें दफ़ना दिए गए। उससे पूर्व उनके घरमें कितने ही कुलीन व्यक्ति भी एकत्रित हो गए थे। बरामदेमें अतिथियोंके सिरहाने सबसे बड़ी लड़की बैठी थी, बाकी छोटी लड़कियाँ रसोईघरमें थीं और इस अथाह दुःखमें अपने घरमें प्रथम बार इतने व्यक्तियोंके आनेसे एक प्रकार आनन्द अनुभव कर रही थीं। नन्हें शिशुको गोदमें लि बालिका जैनी एक कोनेमें जिस ढंगसे बैठी थी, सब लोग उसकी सराहना कर रहे थे। अतिथियोंके उठनेसे पूर्व एक रोटी प्रत्य अतिथियोंमें बाँटी गई। ऐसी दयनीय अवस्थामें यह रीति को नहीं जँची; किन्तु कहीं उनका जी न दुखे, इस कारण टुकड़ा उसने भी ले लिया।

"अन्तिम जुलूस धीरे-धीरे शान्तिसे जा रहा था। नंगे-सिर चर्चके बड़े दरवाज़ेके मध्यमें तनिक रुककर पूर्व नुसार एक गीत गाया। फिर शव वेदीके पास रख दि और पिताकी अर्थीके दोनों ओर घुटने टेक सारे परिवारने क किया। सबसे बड़ी लड़की तो क़ब्रिस्तान तक पहुँच ही न और दूसरी भी क़ब्रके पास बेहोश हो गई। दोनों भाई निराशा और निस्तब्धताकी साक्षात् मूर्त्ति बनकर खड़े थे। बच्चियाँ लम्बी हिचकियाँ ले रही थीं। ज़रा-सी जान-पहच व्यक्तियोंके नेत्रोंसे भी वेगपूर्वक अश्रुधाराएँ बह रही जितने भी लोग वहाँ एकत्रित थे, वे सभी उस समय बच्चोंके साथ सहानुभूतिके कारण एक दृढ़ सूत्रमें बँधे दिखाई थे। दफ़ना चुकनेके बाद ग्रीन-परिवार पुनः अपने उदास लौट गया। इस बृहस्पतिवारको उनका सामान आदि भी कर दिया गया और वह घर एकदम नीरव उजाड़ हो गया।

डोरोथी तथा मेरी वर्ड्सवर्थने मिलकर इन अनाथ लिए एक फ़ण्ड भी खोला। वैसे भी उन दिनों गाँवोंमें खर्चपर ग़रीब परिवारोंमें ऐसे अनाथोंका पालन-पोषण किए रीति थी। ग्रीन-परिवारके बच्चोंका जो समुचित स्वागत किया उसका उल्लेख करनेका लोभ भी संवरण नहीं किया जा इस सम्बन्धमें डोरोथीने लिखा है—"बच्चोंको पृथक घरोंमें के प्रश्नपर एक स्वरसे सभीने कहा—'जैनी और छोटा पृथक नहीं हो सकते।' गाँवके लोहारकी निःसन्तान स्त्रीने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपने यहाँ रख लिया। गोदमें बच्चेको लिए जैनी उस नए घर में अँगीठीके पास जा बैठी। अभ्यासवश यद्यपि शिशु निरन्तर मामा-पापा चिल्लाए जा रहा था, किन्तु ऐसा लगता था मानो बहनकी गोदमें उन दोनोंका अभाव उसे तनिक भी प्रतीत नहीं हो रहा; क्योंकि वह क्षण-भर भी उसे छोड़ अन्य किसीके पास नहीं जाना चाहता था। जेन बड़ी प्यारी लड़की थी। उसकी सरल-सुन्दर छविको दूर पुलपर से आते देख कुछ मास पूर्व विलियम तथा मेरी मन्त्रमुग्ध-से खड़े रह गए थे तथा समीप आनेपर उसके गालोंकी अकृत्रिम गुलाबी रंगतने उन्हें लुभा लिया था। घर आकर भी कितनी बार वह नीले चोगेमें हल्के गुलाबी रंगके पेटीकोट तथा नीले रिबनसे बँधी टोपी पहने, एक हाथसे टोकरी थामे, स्वाभाविक वेश-भूषा-युक्त उस वनकन्याकी शोभाका ही वर्णन करता रहा। उस समय कौन जानता था कि यही अल्हड़ लड़की इतनी शीघ्र ही कर्त्तव्यके बोझसे दब जायगी और छोटे-छोटे मातृ-पितृहीन बच्चोंकी माँका स्थान ग्रहण करेगी! कैसी तत्परतासे वह बच्चेकी देख-रेख कर रही थी। अपने घरमें भी उसे आग सुलगाए रखनेके लिए बार-बार सतर्क रहना और दूध दुहना पड़ता था। इस नए घरमें भी उसने वैसी ही कार्यपटुता और सहनशीलताका परिचय दिया। मुझे समझ नहीं पड़ता, अपने भावोंको किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ? आह, गहन शान्ति ही मानो अब उसकी शान और सौन्दर्य थी!

"फिर हम दोनों लड़कोंको लेकर पहाड़ीकी ढलानपर स्थित एक स्वच्छ खेतमें गईं। गृहस्वामी तथा स्वामिनी लगभग सौ गज़ नीचे उतरकर उन्हें लेने आए और वात्सल्यपूर्वक बच्चोंको गले लगाना चाहा। किन्तु दोनों लड़के श्रीमती नाटसे चिपट गए। छोटा बच्चा उसकी गोदमें बैठ गया और बड़ा मेरी गोदमें। वे दोनों चुप थे, किन्तु बड़े बच्चेकी छातीकी धड़कनसे मैंने अनुभव किया कि साथियोंसे बिछुड़नेका भाव उसके मनमें एक संघर्ष एवं दुःख भर रहा है। उसके नेत्रोंमें आँसू भर आए थे। छोटा भाई पहले तो शान्तिसे बैठा रहा; पर अन्तमें दोनों ही ज़ोरसे फूट पड़े। तब तक मेरा अनुमान था, रोटी और मक्खनका छोटा टुकड़ा-मात्र ही उनके दुःखको दूर कर सकता है; किन्तु उस नेक स्त्रीकी वात्सल्य-भरी दृष्टिका उनपर इतना महत्त्वपूर्ण प्रभाव हुआ कि थोड़ी देरमें ही दोनों बच्चोंको वह राज़ीसे लिवा ले गई। अभी कुछ वर्ष हुए इन लोगोंके बीसवर्षीय होनहार लड़केकी मृत्यु तथा अन्य बच्चोंके विदेश चले जानेसे यह स्त्री सदैव एकान्त उदास विचारोंसे घिरी रहती थी। किन्तु इन बच्चोंको लेनेमें इन दोनोंने अत्यन्त विवेकसे काम लिया है। अब उसमें अद्भुत परिवर्त्तन आ गया है। वह उन्हें पढ़ाती-लिखाती है और स्वयं भी बच्चोंकी अच्छी आदतों व स्वभावके कारण बहुत प्रसन्न है। मेरी उससे दुबारा मिलने गई, तो बच्चे सन्तुष्ट नज़र आते थे। यहाँ तक कि एक बच्चा तो खेलते-खेलते यों कह रहा था—'हमारे माता-पिता मर गए हैं, लेकिन हम इस घरसे कभी नहीं जायँगे।'

"अब एक सात वर्षके बालकको ठिकाने लगाना शेष था। बहन-भाइयोंसे बिछुड़ते समय वह भी विह्वल हो उठा; किन्तु यह सुनकर कि वह जोहनके यहाँ जा रहा है, वह सहसा प्रसन्न हो गया। श्रीमती नाटने मुझे बतलाया कि वह कहता है—'उस व्यक्तिका मेरे पितासे अच्छा सम्बन्ध रहा है? उसने हमें गत वर्ष दो भेड़ें भी दी थीं और उसकी बहन जैनीका तो वह धर्मपिता है। मोज़े बुननेके लिए प्रतिवर्ष कुछ ऊन देनेका वचन भी उसने जैनीको दिया था।' वास्तवमें मित्रकी मृत्युका समाचार मिलते ही जोहनने इस सातवर्षीय बालकको लेनेकी इच्छा प्रकट की थी। हमारे वहाँ पहुँचनेपर वृद्ध जोहनने पितामहकी भाँति दोनों हाथोंसे उसके सिरको पकड़कर ऐसे स्नेह-भरे शब्दों में कहा—'डरो नहीं बेटा, तुम मज़ेसे पहाड़ीपर जाकर भेड़ोंको सँभाल लो।' फिर हमारी ओर देखकर कहने लगा—'यह छोटा लड़का अपने भाई-बहनोंके साथ सदैव मेरे पास आया करता था। ऐसे शान्त-स्थिर प्रकृतिके बच्चोंके आनेसे मुझे कभी बाधा प्रतीत नहीं हुई।' यही बालक, जो इतने दिन निरन्तर रोता ही रहता था, उस घरमें पहुँचनेके बाद पूर्ण स्नेह और भरपेट भोजन पाकर अब प्रसन्न और सन्तुष्ट दिखाई देने लगा है। जोहन, जो स्वयं दुर्बल तथा पक्षाघातसे पीड़ित है, अपने इस नन्हें साथी और एक कुत्तेको साथ लिए खेतोंकी निगरानी अथवा भेड़ें चरानेमें अब बहुत समय बाहर व्यतीत करता है। जोहनकी भाँति उसकी घरवाली भी बच्चेमें बहुत दिलचस्पी लेती है। कल मैंने उसे बच्चेके मोज़े बुनते देखा। वह बच्चेकी प्रशंसा करते हुए सुना रही थी कि वे लोग शनिवारको भेड़ें चराते हुए पहाड़ीके उस ओर निकल गए, जहाँ उसके पिताका मकान और खेत था। बच्चा एकाएक बोल उठा—'मेरी माँकी भेड़ने सुन्दर बच्चा दिय है!' और दुखी व उदास होनेके बजाय भेड़के बच्चे तथा अपनी माँकी पोषित भेड़को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

"मुझे भय है, कहीं तुम बच्चोंके इस चारित्रिक वर्णनको रोमांस अथवा दयासे उत्पन्न काल्पनिक सत्य न समझ बैठो। किन्तु दया सदैव स्नेहको जन्म देती है, और जो-कुछ मैंने उनके विषयमें चित्रित किया है, वह अब भी किसी हद तक आंशिक है। जो मैं कहना चाहती थी, वह पूरा चित्रित नहीं हो सका। सम्भवतः तुम कहोगे कि यदि उनके माता-पिताने ईमानदारी, सचाई आदि अच्छी आदतें न डाली होतीं, तो ऐसा अच्छा परिणाम न निकलता। किन्तु मेरा विचार है, इसमें इन लोगोंके रहन-सहन आदिकी विशेष परिस्थितियोंका बहुत बड़ा हाथ है। ऐसे एकान्त स्थानमें वे रहते थे, जहाँ विरला ही कोई व्यक्ति

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आता-जाता दिखाई पड़ता। निजी भाई-बहनोंके अतिरिक्त इन बच्चोंके खेल-कूदमें भाग लेनेवाला भी न तो कोई बाहरका साथी था और न खाने-पीने, खेल-तमाशों आदिकी विभिन्नता में ही कोई रुचि। अपने माता-पितामें भी उन्होंने ऐसी अतृप्त आकांक्षाका सर्वथा अभाव देखा था। शैशव-कालसे बड़े होने तक किसी अन्य वातावरणमें रहनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिला। हाँ, केवल कभी-कदास खेत छोड़कर—वह भी महज़ कर्त्तव्य-पालनकी गरज़से—सन्देश लेकर ज़रूर कहीं जाना पड़ा हो। निःसन्देह ऐसे कई परिवारोंमें, जो ऐसी निर्धन परिस्थिति और एकान्तमें निवास करते हैं, विशेष अच्छा परिणाम नज़र नहीं आता। दूसरे यह भी मैं भलीभाँति अनुभव करती हूँ कि यही एकान्तवास प्रायः हानिकारक सिद्ध होता है—विशेषतया जब माता-पिता दुश्चरित्र हों, क्योंकि ऐसे वातावरणमें प्रायः दरिद्र और पराधीन लोग निवास करते हैं, जिनमें इतनी शक्ति संचित नहीं होती कि वे अपने सम्मान अथवा ईमानदारीको सुरक्षित रख सकें। किन्तु जार्ज ग्रीन और उसकी पत्नी, थोड़ी-सी पैतृक सम्पत्ति पानेके कारण, अपनेको अन्य लोगोंसे विशिष्ट समझते हुए निरन्तर बुराइयोंसे बचनेकी चेष्टामें लगे रहते थे। छोटे-से खेत और पैतृक गृहके प्रेमका उल्लास ही उस परिवारमें हिलोरें लेता था। माँ-बापकी देख-रेख एवं संलग्नताने बच्चोंके हृदयमें ऐसे शुभ बीज बो दिए हैं, जिससे वे छोटेसे बड़े तक अत्यन्त परिश्रमी और उत्साहसे मिल-जुलकर कार्यमें जुटे रहते हैं। अपने माता-पिता द्वारा बोए गए खेतकी फ़सलको जब वे एक साथ कन्धोंपर उठाकर ले जाते हैं, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। पृथक-पृथक रहते हुए भी कुछ घण्टे निजी खेतमें एक साथ काम करनेसे यह परिवार अभी तक एक सूत्रमें बँधा है। इस परिवारकी सबसे बड़ी लड़कीने, जब वह केवल चौदह वर्षकी थी, दादाकी अन्तिम क्रियाके लिए अपनी आयका मुख्य भाग पिताको सौंपकर बुद्धिमताका परिचय दिया था। और अब भी वह उसी प्रकार छोटे सौतेले भाई-बहनोंके लिए चिन्तित रहती है।

"लोगोंके विचारमें जार्ज और उसकी पत्नीमें एक ही अवगुण केवल रूखे स्वभावका था। तनिक-सी वस्तु उधार लेकर तुरन्त वे लौटानेकी फ़िक्रमें रहते थे। अभी कुछ दिन हुए हमें भी उनकी इस प्रवृत्तिका परिचय मिला, जब कि उन्होंने सैलीकी कमीज़ोंके दाम बहुत शीघ्र ही वचनसे पूर्व दुकानदारको चुका दिए थे, जब कि उनकी हालत यह थी कि मृत्युके समय उनकी जेबोंमें कुल तीन पैसे ही निकले। ऋण चुकानेमें सदैव तत्पर और लेनेको अनिच्छुक, इसीसे तो पड़ोसी प्रायः उन्हें रूखे स्वभाव के अथवा अभिमानी कहते थे। किन्तु स्वाभिमानके अतिरिक्त भला उनके पास था ही क्या? यदि वे इसे भी खो बैठते, तो निश्चय ही उनके प्रसन्नतासे उछलते हृदयोंमें से सचाई सद्भाव भी निकल जाते।"

उपर्युक्त विस्तृत विवरण-युक्त पत्रके अन्तमें डोरोथी लिखती हैं—"मुझे भय है, कहीं तुम इस लम्बे पत्रसे ऊब न जाओ; क्योंकि विपदग्रस्तोंकी पड़ोसिन और उसी गाँवकी निवासिनी होनेके कारण मेरे मनमें जो चित्र सजग हो उठे हैं सम्भवतः तुम्हारी दृष्टिमें वे केवल एक साधारण स्केचसे अधिक न हों।" किन्तु यही 'साधारण स्केच' उनकी लेखनीका कितना सबल, सुन्दर और उत्कृष्ट उदाहरण हैं! यह न केवल सौ पुराने ग्रामीण जीवनका सरल-सजीव चित्र हैं, प्रत्युत इसमें लेखिकाकी दूसरेके जीवनको परखनेकी गहन सूक्ष्म दृष्टि भी खूबीसे निहित है।

वास्तवमें आजन्म कुमारी डोरोथीका जीवन स्वयं ही झरते प्रपातों, झरनोंके समान निर्मल और किसी सुन्दर पक्षीके उड़ानेके सदृश्य स्वच्छन्द रहा है। उन्हें निर्भयतापूर्वक वनोंमें विचरते देख एक ग्रामीण महिलाने मुग्ध होकर कहा था—"She is the very being of nature." (अर्थात् यह तो स्वयं प्रकृतिका ही एक अंश है।) पचपन वर्षकी आयु तक वे हिम-पूरित शिखरों और स्काटलैण्ड आदिके ग्रामोंमें घूमती रहीं। जीवन-भर कभी बीमार नहीं पड़ीं। प्रातः-सायं पक्षियोंके कलरवके बीच एकान्तमें घूमनेका नियम उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। वे अनेक पक्षियोंको स्वरोंसे ही पहचान लेती थीं। उनके पत्रों और लेखोंमें हम प्रायः उन्हें नीरव चाँदनी रातोंमें कभी प्रिय भाईकी प्रतीक्षा करते, कभी एकटक वायु और जल धाराओंकी विभिन्न ध्वनियाँ सुनते और कभी रेबिन, अबाबील और यहाँ तक कि कीट-पतंग तकका वर्णन करते पाते हैं। और अन्तमें जब वे साठवें वर्षमें रोग-शय्यापर जा पड़ीं, तो भी बिस्तर पर पड़ी-पड़ी कविताओं, पुस्तकों, पक्षियोंके ही मधुर स्वप्न देखा करती थीं। यह विपत्ति वर्ड्सवर्थ-परिवारपर अकेली नहीं आई। कवि वर्ड्सवर्थ स्वयं, उनकी प्राणप्रिय पुत्री डोरा और डोरोथी तीनों एक साथ बीमार पड़ गए। बेचारी मेरी, जो इन सबसे आयुमें बड़ी थी, अत्यन्त परिश्रमसे इनकी सेवामें लगी रहती। होनहार युवती डोराकी मृत्यु सबसे पूर्व हुई। डोरोथीके बचनेकी भी आशा नहीं थी; किन्तु डोरोथीकी आन्तरिक इच्छा थी कि उसकी मृत्युका दुःख उसका प्यारा भाई न सहन करे। और हुआ भी ऐसा ही। वर्ड्सवर्थकी मृत्युके पूरे एक वर्ष बाद उसी दिन, उसी सन्ध्या समय, जीवन-भर छायाकी भाँति भाईके साथ रहनेवाली बहन डोरोथी परलोक सिधारीं।

इस प्रेमी बहनकी अमर कथा साहित्यमें अनन्त काल तक गूँजती रहेगी। सैकड़ों लम्बे पत्रों तथा वृहत् दिनचर्याके पन्नोंमें गद्य-पद्य द्वारा जो-कुछ भी डोरोथीने लिखा, वह तनिक भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रिटेनके ये टोरी !

मोहनसिंह सेंगर

सन् १५८८ में जब स्पेनके आततायी राजा फिलिप द्वितीयका 'अजेय जंगी बेड़ा' एक बढ़ते हुए खतरेके रूपमें ब्रिटेनकी समुद्री शक्तिको चुनौती दे रहा था और उसकी जंगी तैयारियोंके साथ ही फिलिपकी धमकियोंका स्वर भी उग्र होता जा रहा था, इंगलैण्डकी मल्का एलिज़बैथने लार्ड लेफ़्टिनैन्टको लिखा था—"अपने यहाँके सब श्रेष्ठ सभ्योंको बुलाकर उन्हें स्पेनकी इन तैयारियों तथा उद्धत धमकियोंसे अवगत कराओ।" फलतः ऐसा ही किया गया, और जब इन श्रेष्ठ सभ्योंको स्पेनी बेड़ेकी तैयारियों और धमकियोंकी सूचना दी गई तथा एक ब्रिटिश नाविकने स्पेनियों द्वारा काट लिया गया अपना एक कान डिबियामें से निकालकर दिखाया, तो सबने एक स्वरसे कहा—'युद्ध!' इसके बाद किस प्रकार लोकबल संग्रहकर ब्रिटेनने स्पेनी बेड़ेको सदाके लिए समुद्रके गर्भमें विश्राम करने भेजा और लहरोंपर अपना शासन स्थापित किया, यह इतिहासके सभी पाठक जानते हैं। अस्तु—

पिछले ३० वर्षोंके अल्पकालमें ही हमने दो भीषणतम विनाशकारी महायुद्ध देखे हैं। इनमें जो करोड़ों जनोंका खून बहा है और खरबों रुपयोंकी हानि हुई है, वह क्या आकस्मिक ही था? क्या उसे टाला नहीं जा सकता था? वैसे कहनेके लिए ब्रिटेन पिछले महायुद्धमें सर्बिया और इस बार पौलैण्डपर हुए आक्रमणोंका प्रतिरोध करनेके लिए ही इनमें शामिल हुआ और दोनोंको लड़ने एवं जीतनेका अधिकांश श्रेय भी अपने प्रोपेगैंडा-बलके कारण उसीने लिया है; पर जब इन महायुद्धोंकी तैयारियाँ हो रही थीं, तो ब्रिटेनके ये 'श्रेष्ठ सभ्य' कहाँ थे? स्पेनकी जंगी तैयारियोंकी तरह ही जब इस बार जर्मनी, इटली और जापान ज़ोरोंसे लड़ाईकी तैयारी कर रहे थे और फिलिप द्वितीयसे भी बढ़-चढ़कर हिटलर और मुसोलिनी बराबर धमकियाँ दे रहे थे; तब ब्रिटेनके ये 'श्रेष्ठ सभ्य' क्या कर रहे थे? एलिज़बैथकी तरह इस बार ब्रिटेनके बादशाहको उन्हें इन तैयारियों और धमकियोंका हाल बतलानेकी ज़रूरत नहीं पड़ी। ब्रिटेनके विश्वव्यापी खुफ़िया-विभाग और रेडियो तथा अखबारोंने जर्मनी, इटली तथा जापानकी तैयारियोंका सारा कच्चा चिट्ठा इन तक पहुँचा दिया था। पर जब युद्ध छिड़ा, तो ये उसके लिए तनिक भी तैयार न थे! आखिर क्यों?

गत महायुद्धके अन्तसे लेकर इस महायुद्धके आरम्भ तक की ब्रिटेनकी राजनीति ही उपर्युक्त प्रश्नसूचक चिह्नका डैशनुमा एक लम्बा-सा उत्तर है। १९२४ और १९२९-३१ के दो अल्पकालीन मज़दूर-मंत्रिमंडलोंको छोड़कर—जो अपने दलके आभ्यान्तरिक विरोधों एवं संकीर्ण तथा अदूरदर्शितापूर्ण सीमाओंके कारण विशेष कुछ कर न सके—यह काल टोरियोंके शासन एवं प्रभावका हो रहा है। १९३१ के चुनावमें कामन-सभाकी ६१५ सीटोंमें से ३७५ टोरियोंको मिलीं और १९३५ के चुनावमें ४०५। इस चुनावमें पड़े कुल २१९९७४५० वोटोंमें से ११७८९५७५ टोरियोंको मिले। अतएव शासन और पार्लमेंट पूरी तरह इन प्रतिगामी साम्राज्यवादियोंकी मुट्ठीमें आ गए। १९३० में जर्मनीमें गुण्डईसे-हिटलरकी नात्सी-पार्टी को अपूर्व विजय मिली और जुलाई, १९३३ में वह अपनी आतंकवादी तिकड़मोंसे जर्मनीका चांसलर भी बन बैठा। सबसे पहला नारा उसने उठाया बोल्शेविज़्मके खिलाफ़। यद्यपि लोकमतके दबावके कारण ब्रिटेनको (फ्रांस और अमरीकाको भी) पिछले महायुद्धके बाद रूसी क्रान्तिको कुचलनेके लिए भेजी गई सेनाएँ वापस बुला लेनी पड़ी थीं, तथापि जब भी अवसर मिले, उसे कुचलनेकी महत्वाकांक्षा सभी पूँजीवादी राष्ट्रोंके साथ उसके मनमें भी पल रही थी। महायुद्धके बाद साम्राज्यवादी ब्रिटेन फ्रांस और जर्मनीमें से किसीको भी सबल नहीं देखना चाहता था; किन्तु साम्यवादी रूसको तो वह फूटी आँखों भी देखनेको तैयार न था। फलतः हिटलर और उसके गुण्डा नात्सी-दलके उदयमें टोरियोंको न केवल ब्रिटेनका, बल्कि समूचे यूरोप और सुतरां विश्वका रक्षक दिखाई दिया!

इस भावनाने टोरियोंको हिटलर और नात्सीवादका बहुत बड़ा सहायक बना दिया। एक-एककर हिटलरने वर्सई-संधिकी शर्तों और पाबन्दियोंको तोड़ा; पल्टन, नौ-सेना और हवाई-

---

प्रकाशन अथवा साहित्यिक दृष्टिकोणसे नहीं, बल्कि अत्यन्त सरलतासे अपने प्राणप्यारे भाईको महत्व देनेके लिए, जो वास्तवमें आज संसारका महाकवि हो गया है। जीते-जी कभी कहीं एक पंक्ति भी डोरोथीके नामसे प्रकाशित नहीं हुई, हालाँकि जिस महानताका साक्षात्कार डोरोथीने किया था, जो प्रेरणा उसने भाईकी आत्मामें फूँकी थी, वह अन्यत्र अलभ्य है। और न वर्ड्सवर्थ-सी श्रद्धांजलि ही कोई अन्य कवि अपनी बहनको अर्पित कर सका :—

Where'er my foot-steps turned,
Her voice was like a hidden bird that sang.
The thought of her was like a flash of light,
Or unseen companionship a breath,
Or fragrance independent of the wind.
In all my going in the new and old,
Of all my meditations, and, in this
Favourite of all, in this the most of all.

और

She gave me eyes, she gave me ears,
Her heart was a fountain of tears."

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

सेनाका संगठन किया; बड़े पैमानेपर शस्त्रीकरण और युद्धोद्योग आरम्भ किया; सार, आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर कब्ज़ा किया; अबीसीनिया-आक्रमणमें इटलीके तानाशाह मुसोलिनीको और स्पेनिश प्रजातंत्रके ख़िलाफ़ फ़ाशिस्त गद्दार फ्रांकोको खुलेआम मदद दी। पर टोरियोंने इन सबको दर-गुज़र किया और उसे पार्थिव मदद देनेके आलावा अपने पत्रों, प्लेटफ़ार्मों तथा पार्लमेण्ट तकसे हिटलर और जर्मनीके ख़िलाफ़ ब्रिटिश जनतामें बढ़नेवाले अविश्वास, आशंकाओं और क्षोभको निराधार, अनावश्यक तथा अतिरंजित सिद्ध करनेकी चेष्टा भी की। सितम्बर, १९३८ में—इस महायुद्धके छिड़नेसे सिर्फ़ ११ मास पूर्व—ब्रिटेनके टोरी प्रधान-मन्त्री चेंबर्लेन द्वारा किया गया 'म्यूनिख-पैक्ट' आततायीके सामने घुटने टेकने और संकीर्ण स्वार्थान्धताके वशीभूत होकर छोटे राष्ट्रोंके प्रति विश्वासघात करनेका सबसे गर्हित और घृणास्पद खरोता है।

अन्तमें जब ब्रिटेनको अपने साम्राज्यवादी स्वार्थोंकी रक्षाके लिए जर्मनीसे लड़नेको मजबूर होना पड़ा, तो देखा गया कि वह तैयार ही नहीं है! फल-स्वरूप म्यूनिखके राजनीतिक एवं नैतिक पलायनकी भाँति ही उसे डंकर्क, नार्वे, क्रीट, सिसिली और पूर्वमें सिंगापुर, मलाया, न्यूगिनी, बर्मा आदिसे फ़ौजी पलायन भी करना पड़ा; जिसमें जन-धनकी अपार हानि हुई। आज विजयकी चकाचौंधमें यही टोरी विश्वासघात और जनद्रोहके अपने इस लज्जास्पद अतीतपर पर्दा डालकर इतिहासको चमका देनेकी चेष्टा कर रहे हैं। आज यही प्रतिगामी और साम्राज्यवादी पूँजी-पतियोंके प्रतिनिधि सीना तानकर और गला फाड़-फाड़कर अपने-अपनेको विश्व-शान्ति, सुरक्षा, स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रका प्रहरी सिद्ध कर रहे हैं! अतः आइए, ज़रा इनके विचारों, समझ-सूझ और काले कारनामोंपर एक सरसरी निगाह डाल लें। इधर युद्ध-कालमें इंग्लैण्डमें इनकी करतूतोंका भण्डाफोड़ करनेवाली कई किताबें निकली हैं, जिनमें से 'गिल्टी मैन', 'हीयर आर दि टोरीज़', 'योर एम० पी०', 'डैथ पेज़ ए डिविडेण्ड' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ हम इन्हींके आधारपर प्रमुख टोरियोंके विचारों और उनकी फर्मोंके कार्योंकी चर्चा करेंगे। स्थानाभावके कारण ब्रिटेनके इन टोरियों द्वारा इटली और जापानको दी गई सहायता तथा अबीसीनिया, स्पेन और चीनके साथ किए गए विश्वासघातका विवरण हम फ़िलहाल छोड़े दे रहे हैं।

'कहीं रूसके निकट न चले जायँ!'

सबसे पहले हम भारत-मन्त्री लियोपोल्ड एमरीको ही लेते हैं। १८-११-३८ को स्पार्कब्रुकमें भाषण देते हुए लियोपोल्ड एमरीने 'जर्मनी द्वारा थोड़ा-सा पुनःशस्त्रीकरण' करनेकी हिमायत की थी और इससे एक मास पूर्व बर्मिंघमके रोटेरी-क्लबमें फ़रमाया था—"हर हिटलरकी नाटकीय प्रदर्शन एक बार कुछ खतरा भले ही पैदा करे; पर यह अगर यूरोपके संगठनमें नहीं, तो अधिक बाधक भी सिद्ध नहीं होगा।' जुलाई, १९ में स्पार्कब्रुकमें बोलते हुए आपने कहा था—'हम ऐसी नीति अख्तियार नहीं कर सकते, जो हमें जर्मनी, इटली जापानके संघर्षमें लाय। इसलिए हमें कोई ऐसा क़दम उठाना चाहिए, जो हमें रूसके अधिक निकट ले जाय।' जे० जे० एस्टरने २-११-३३ को डोवरमें कहा था—हिटलर के सत्तारूढ़ होनेपर डरनेकी कोई बात न थी। सब अनावश्यक थीं।' बीवर्ली बैक्स्टरने २६-७-३८ को कहा था—'कभी-कभी हममें से कुछ लोग बड़ी बेक़ूफ़ी जाते हैं, जो यह समझते हैं कि राष्ट्रीय समाजवादमें अच्छाई ही नहीं, या हिटलर और गोयरिंग-जैसे निःस्वार्थता है ही नहीं।' आर० ए० बटलरने १५-१ को ब्रिजवाटरमें कहा था—'अगर समाजवादी-दल रूसके करनेको तैयार है, जहाँकी तानाशाहीसे वास्तवमें कोई सहमत नहीं, तो हम इटली या जर्मनीसे क्यों मैत्री सकते? कुछ लोग कहते हैं कि हिटलरने वादा-खिलाफ़ी है। पर मैं बता देना चाहता हूँ कि उसने जर्मन ब्रिटिश बेड़ेका एक-तिहाई रखनेका जो वचन दिया था, वफ़ादारीसे पालन किया है।' आर० जे० ई० कोर्नेटने १९३८ में कहा था—'फाशिस्त शक्तियोंके विरुद्ध फ्रां रूससे मैत्री करनेका लिबरल-समाजवादी प्रस्ताव इस रूपसे खतरनाक है।' सी० टी० कल्वरवैलने, जिनके पैक्टके भाषणपर बर्लिनमें सर्वाधिक सन्तोष प्रकट था, अक्टूबर, १९३८ में कहा था—'जो लोग घृणा करते हैं, उनसे मैं पूछना चाहता हूँ कि आखि ऐसा क्या किया है, जिसके ख़िलाफ़ हमें उचित हमें उसके पुराने कुकर्मोंको और उन उपायोंको—जिन्हें घृणा करते हैं, पर जिनका आश्रय मजबूरन उसे लेना पड़ भूल जाना चाहिए।' युद्धके एक वर्ष बाद आपने जर्मनीसे की बातचीत चलानेकी माँग भी की थी। इतना ही ३०-११-३९को आपने पार्लमेण्टमें ब्रिटेनकी जीतमें विलम्ब करते हुए यह भी कहा था—'अधिक सम्भावित परिणाम रूसकी शक्ति-वृद्धि और पश्चिममें साम्यवादका प्रसार है। भी कल्पना कर सकता हूँ कि बोल्शेविक खतरेके विरुद्ध हमारी सेनाएँ जर्मनोंके साथ-साथ लड़ें।'

स्थानाभावके कारण ऊपर हमने केवल कुछ प्रमुख हृदयोद्गारोंके ही उद्धरण दिए हैं; पर इन्हींसे पाठक हैं कि ब्रिटेनके 'श्रेष्ठ सभ्य' बोल्शेविक खतरेसे पाश्चात्य रक्षा करनेके लिए जर्मन पुनःशस्त्रीकरण, नात्सी-शा और निःस्वार्थी हिटलर-गोयरिंगकी मैत्रीको कितना

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझते रहे हैं। विवियन एडेम्स, डचेज़ आफ़् एथोल, लेडी एस्टर, ब्रेण्डेन ब्रेकेन तथा रेण्डल्फ़ और विन्स्टन चर्चिल आदि पचासोंके हिटलर-पक्षीय और रूस-विरोधी उद्गारोंके उद्धरण और दिए जा सकते हैं। चूँकि चर्चिल इस समय ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्री हैं, उनके कुछ समय पहलेके विचारोंकी थोड़ी-सी झलक देख लेना ज़रूरी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे आरम्भसे ही नात्सी खतरेका मुक़ाबला करनेके लिए ब्रिटेनके पुनःशस्त्रीकरणपर ज़ोर देते रहे हैं; पर सोवियत् रूसके नामपर तो उनके मुँहका स्वाद भी सदा बिगड़ता रहा है। पिछले महायुद्धका अन्त होते-न-होते वे चीख पड़े थे--'जर्मन लोगोंसे सुलह और बोल्शेविक ज़ालिमोंसे लड़ाई!' अंगरेज़ी भाषापर उनके असाधारण अधिकारने उनके रूस-विरोधी कथनोंको कहीं अधिक कटु और विषाक्त बना दिया। कुछ नमूने देखिए--'अपराधियों और पशुत्वका वह जघन्य सम्मिलन' (१०-४-१९); 'सभ्यताके कट्टर शत्रु' (३-१-२०); 'असाधारण प्रतिभावाले मगरमच्छ' ('वर्ल्ड क्राइसिस'में); 'कीटाणुमय रूस, प्लेग-ग्रस्त रूस ..जहाँ सैनिकोंको विद्रोह करने और अपने अफ़सरोंको मारने को उत्तेजित किया जाता है, अवारोंको मध्य-श्रेणीके खिलाफ़ बग़ावत करने और उस श्रेणीके लोगोंको मारने, लूटने, उनका सामान चुराने तथा उनकी स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेके लिए जुटाया जाता है' (२८-७-२०); 'मास्कोके रक्त-रंजित ज़ालिम' (२०-९-२४); 'कुकर्मी···शर्म और पतनका बोझ' (२१-१०-२४); 'मास्कोके गन्दे क़साई' (२७-१०-२४); 'शहरोंके गुप्त षड्-यन्त्रकारी' (२८-११-२५); 'संसार-भरकी चण्डाल-चौकड़ी' (१९-६-२६); 'क्रेमलिनके कलमुँहे षड्यन्त्रकारी' (२२-६-२६); 'रूसकी पतित बर्बरता' (२३-७-२७) आदि। यही चर्चिल आज रूससे मैत्री करनेके सबसे बड़े हिमायती हैं!

पर कहा जा सकता है कि ये बातें बहुत पुरानी हैं। अतः एक नया उद्धरण देना नितान्त आवश्यक है। २०-१-४० को (वर्त्तमान महायुद्ध छिड़नेके बाद) अपना भाषण ब्राडकास्ट करते हुए चर्चिलने कहा था—'फिनलैण्डने मानवताकी महान सेवा की है। उसने समूचे संसारके सामने लाल-सेना और लाल हवाई बेड़ेकी फ़ौजी अक्षमताको उघाड़कर दिखा दिया है। उत्तरी ध्रुव-वृत्तमें हुई लड़ाईके इन भीषण हफ़्तोंने सोवियत् रूस-सम्बन्धी बहुत-सी भ्रान्तियोंको दूर कर दिया है। हर आदमी देख सकता है कि साम्यवादसे किसी देशकी आत्मा कैसी सड़ जाती है, कैसे वह उसे शान्ति-कालमें हीन और भूखा तथा युद्धमें निकृष्ट और घृणास्पद बना देता है।' इन शब्दोंसे जहाँ चर्चिलकी दूरदर्शिता, फ़ौजी मसलोंकी जानकारी एवं उनपर राय देनेकी योग्यता और लाल-सेना तथा हवाई बेड़ेकी फ़ौजी अक्षमतापर उनकी खुशीकी अस्लियत मालूम होती है, वहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि १९०९ और १९४० के चर्चिलमें कोई मौलिक अन्तर नहीं आया है। इतना ही नहीं, अन्य टोरियोंकी आँखोंमें तो सोवियत् रूस उस समय तक भी खार ही बना रहा, जब कि जर्मनी उसपर आक्रमण कर चुका था और रूस ब्रिटेनका मित्र-राष्ट्र हो गया था। सर रोनल्ड क्रासने जुलाई १९४१ में कहा था—'इंग्लैण्ड-भरमें रूसको शासन-प्रणालीको नफ़रतकी निगाहसे देखा जाता है। सिर्फ़ थोड़ेसे लोग इसे नात्सी तानाशाहीसे बेहतर समझते हैं।' जब रूसने १९३९ में जर्मनीसे अस्थायी सन्धि कर ली, तब तो टोरी लोग एकदम गाली-गलौजपर ही उतर आए। सर एलफ्रेड नाक्सने, जो १९१९में रूसमें ब्रिटेनके फ़ौजी सलाह-कार थे और अमरीकाको सोवियत् रूसपर हमला करनेको राज़ी करने वाशिंगटन गए थे, 'डेली टेलिग्राफ़' (२०-१२-३९) में स्तालिनको 'गुण्डा' तक लिख डाला और रूस-फिनलैण्डके झगड़े में अकर्मण्य रहनेके कारण ब्रिटेनको बहुत बुरा-भला भी कहा।

जर्मन पुनःशस्त्रीकरण और टोरी

ब्रिटेनने अगुआ बनकर जो वर्सईकी सन्धि की थी, उसके अनुसार जर्मनीको पुनःशस्त्रीकरण अथवा जंगी बेड़ा अथवा पनडुब्बियाँ रखनेके अधिकारसे वंचित कर दिया गया था। पर १९३५ में 'मास्कोके कलमुँहे षड्यन्त्रकारियों'से पाश्चात्य सभ्यता की रक्षा करनेके लिए शायद जर्मनीको इन घातक युद्धास्त्रोंसे लैस करना आवश्यक समझा गया और सर सेमुअल होरने (जो अब लार्ड टैम्पलवुड हैं) हर फ़ान रिबेन्ट्रापसे यह सन्धि की कि जर्मन जंगी-बेड़ा ब्रिटिश बेड़ेका ३५ और पनडुब्बियाँ ४५ प्रतिशत हों! इससे जर्मनीको काफ़ी बल और प्रोत्साहन मिला। १ जनवरी, १९३५ को हिटलरने पुनःशस्त्रीकरणके लिए अनि-वार्य सेवाके लिए मज़दूर भर्त्ती किए; १६ मार्चको फ़ौजी भर्त्ती शुरू हुई और अप्रैलमें उस 'लुफ्टवाफ़े' (जर्मन हवाई बेड़े) की स्थापनाकी घोषणा की गई, जिसने बादमें दक्षिण-पूर्वी इंग्लैण्ड, यूरोप और रूसके दर्जनों नगरों और लाखों नर-नारी-बालकोंको असमय नाशके घाट उतार दिया! जार्ज लेन्सबरी-जैसे लोग बरा-बर आवाज़ उठा रहे थे कि 'एक क्षणके लिए भी हम जर्मन पुनः-शस्त्रीकरणकी स्वीकृति नहीं दे सकते' (१६-१०-३३), तथा १९३५ में शान्तिके लिए हुए जनमत-संग्रहने २३५१९८१ के विरुद्ध ६७८४३६८ मतोंसे यह राय ज़ाहिर की थी कि यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्रपर हमला करे, तो सबको मिलकर उसका मुक़ाबला करना चाहिए। किन्तु टोरी सदस्यों तथा उनके समर्थनसे टिके मन्त्रियोंने बराबर इस आवाज़को अनसुनी किया। क्यों? इसका उत्तर भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री बाल्डविनके १२-११-३६ को कामन्समें कहे गए निम्न शब्द देंगे—'फ़र्ज़ कीजिए कि मैं देश-भरमें घूमकर लोगोंसे कहता कि जर्मनी पुनःशस्त्रीकरण कर रहा है, अतः हमें भी शस्त्रीकरण करना चाहिए, तो मेरी दृष्टिसे चुनावमें हारनेका इससे अधिक सुनिश्चित कारण और कोई

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं होता।' खूब! तो गोया चुनाव जीतनेके लिए ही जनताको इस मुग़ालते और अन्धकारमें रखा गया, और इसका बहाना बताया गया देश-भरमें शान्तिकी भावनाका प्राबल्य!

पर सभी जानते हैं कि यह बात सरासर झूठ थी। देशमें शान्ति नहीं, अशान्तिकी भावना एवं आशंकाका प्राबल्य था। जार्ज लेन्सबरी आदि कितने ही दूरदर्शी राजनीतिज्ञ बढ़ते हुए नात्सी और फ़ाशिस्त खतरोंसे देशवासियों तथा अधिकारियोंको सावधान कर रहे थे। शान्तिके लिए हुए जनमत-संग्रहके रूपमें ६८ लाख लोगोंने आततायीपनको रोकनेकी आवाज़ उठाई थी। किन्तु इंग्लैण्डके टोरी नात्सीवादसे अधिक देशके उठते हुए समाजवाद तथा रूसके फैलते हुए साम्यवादसे भयभीत थे। वे इसके विरुद्ध हिटलर और जर्मनीको सबसे बड़ी ढाल समझते थे। सर आर्थर बाल्फुरने रूसी खतरेका ज़िक्र करते हुए जर्मनी की शस्त्रहीनताको शान्तिके लिए सबसे बड़ा खतरा बतलाया था!* तो जनताकी आवाज़के खिलाफ़ रूसी खतरेका यह कल्पित भूत खड़ाकर जर्मन शस्त्रीकरणका समर्थन आखिर क्यों किया जा रहा था? इसकी अस्लियत जाननेके लिए हमें यह देखना होगा कि शान्तिकी ओटमें मुनाफ़ोंसे अपनी जेबें भरनेवाले ये टोरी आखिर करते क्या थे और जर्मन शस्त्रीकरणसे इन्हें क्या लाभ (या नुक़सान) हो रहा था?

टोरियोंका पेशा और आय

पहले सर आर्थर बाल्फुरको ही लें। आप अपनी निजी कम्पनीके सिवा तब नेशनल प्रोविंश्यल बैंकके डाइरेक्टर, दो इस्पातकी फर्मोंके अध्यक्ष और २१ सरकारी कमीशन-कमेटियोंके सदस्य थे। अतः जब कभी आप बोलते थे, तो इंग्लैण्डकी जनता या राजनीति नहीं, उद्योग और पैसा बोलता था। तभी तो टोरियोंको सबसे अधिक चिन्ता थी चुनाव जीतनेकी। इसीलिए जब १९३८ में ट्रेड यूनियन कांग्रेसने आततायीपन रोकने तथा शान्तिकी रक्षाके लिए फ्रांस-रूससे सन्धि करनेकी आवाज़ उठाई, ताकि चेकोस्लोवाकियाको बचाया जा सके; तब भी इन पैसेवालों ने हिटलरसे प्रेम और रूससे घृणा करना ही जारी रखा। पैसेका लोभ मानो इनकी इन्सानियतपर भी विजय पा गया था।

पर बाल्फुर कोई अपवाद नहीं हैं। हिटलरके अन्यतम प्रेमी और प्रशंसक एमरी भी सदर्न रेल्वे और प्रसिद्ध इंजीनियरिंग फर्म विकर्ससे सम्बन्धित कैमेल लेयर्ड कम्पनीके डाइरेक्टर रहे हैं। कर्नल जे० जे० एस्टर और लेडी एस्टर तो एकमात्र अपने धनके लिए ही प्रसिद्ध हैं। १९१५ में एस्टरके पिताने उन्हें १४ लाख पौण्ड दिए थे। उसकी मृत्युके समय उनको तथा उनके भाईको ४० लाख पौण्ड मिले! आर० ए० बटलरने कौर्टलाड-परिवारकी एक कन्यासे विवाह किया। 'डेली एक्सप्रेस'में २३-२-२८ को छपा था कि कौर्टलाड कम्पनीने अपने हिस्सेदारोंको १२ करोड़ पौण्ड बोनस बाँटा! उस समय कौर्टलाड-परिवारको १९ लाखकी मुनाफ़ा हुआ। इस परिवारके उस समय कम्पनीमें १ करोड़ १० लाख पौण्डके हिस्से थे। सर रोनेल्ड क्रास अपने पिता द्वारा स्थापित लंकाशायरकी कई मिलोंके मालिक और बैंकर हैं। सर डब्लू० एलेक्ज़ेंडर ९० लाख पौण्ड लागतकी सेलेनीज़ कम्पनीके डाइरेक्टर तथा एक तेल-कम्पनीके उपाध्यक्ष हैं। कुछ समय पूर्व वे चार्ल्स टीनेन्ट कम्पनीके भी डाइरेक्टर थे। सर इरविंग एलेन स्टाक-एक्सचेंजके सदस्य तथा आई० एल्बरी कम्पनीके बड़े साझेदार हैं। सर जान एण्डरसन (बंगालके भूतपूर्व गवर्नर और इस समय ब्रिटेनके अर्थ-सचिव) दुनियाकी सबसे बड़ी फर्मों विकर्स लिमिटेड और इम्पीरियल केमिकल वर्क्सके डाइरेक्टर रह चुके हैं। रेल्फ़ ऐशटन खासे बड़े ज़मींदार और स्टाक-एक्सचेंजके सदस्य हैं। सर एड्रियन बेलीको अपने भाईसे १॥ लाख पौंड वसीयतमें मिले और उनका विवाह हुआ एक अमरीकन करोड़पतिकी उत्तराधिकारिणी कुमारी व्हिटनेसे। लीड्स-कैसल इनका भव्य प्रासाद है, जहाँ १९३३ में नात्सीवादका पंडित हर रोज़ेनबुर्ग अतिथिके रूपमें रहा था। सर ब्रोग्रेव व्यूकेंप और आर० ई० बी० ब्यूमोंट धनी पिताके उत्तराधिकारी और धनियोंके एकमात्र दामाद हैं। सर एल्फ्रेड बीटको उनके पिता द्वारा ३५ लाख पौण्ड मिले, जिनसे उन्होंने एक बहुत बड़ी कम्पनी चला रखी है। एल० एच० बोयस ग्लाउस्टर रेल्वे-कैरेज एण्ड वैगन कम्पनी तथा ७ अन्य कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं। आर० ए० ब्रेबनर एक धनी व्यापारी और बैंकर हैं। मेजर ए० एन० ब्रेथवेट गार्जियन, मिडिलसेक्स, एसेक्स, ब्रिक्स तथा लिण्डसे पार्किन्सन आदि कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं। सर विलियम ब्रास गार्जियन कम्पनी के डाइरेक्टर तथा ज़मीन-ज़ायदादके व्यापारी हैं। सर जार्ज ब्रोडब्रिज लन्दनके मेयर और टिनके बड़े व्यापारी हैं। कनाडा बार्टल बुल एक कनाडियन करोड़पतिके उत्तराधिकारी हैं। जी० आर० हालकेन ९-१० कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं। डब्लू० एच० कार्वर एल० एन० ई० आर० तथा एक शराबकी कम्पनीके डाइरेक्टर हैं। आर० एस० क्लार्क भी कई कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं। सर टामस कुक इसी नामकी प्रसिद्ध यात्री-कम्पनीके संस्थापकके पौत्र और कम्पनीके संचालक हैं। डफ़ कूपर स्टलैण्डके ड्यूकके बहनोई और फ़ाइफ़के ड्यूकके भतीजे हैं। सर जार्ज कोर्टहोप ससैक्सके पुराने ज़मींदार, सदर्न रेल्वेके डाइरेक्टर और ३००० घरोंकी मल्कियतवाली इण्ड-कूप-एल्सप कम्पनीके अध्यक्ष हैं। एच० बी० ट्रेवर काक्स भी एक कम्पनीके डाइरेक्टर हैं। लार्ड क्राइचटन स्टुअर्ट और हेरी कुकसोंक धनी पिताके पुत्र और धनी ससुरके दामाद हैं। जे० एफ० ई० काउडर प्रसिद्ध जहाज़ी कम्पनी क्लायडके डाइरेक्टर हैं।

* John F. Kennedy : Why England Slept, P. 82

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri

ग़रीबोंके ख़िलाफ़ धनिकोंका दल

कदाचित् इसीलिए टोरी-दलके सम्बन्धमें ८-५-१९०८ को चर्चिलने कहा था—'बड़े निहित हितोंवालोंका एक दल, जो एक भयंकर चौकड़ीके रूपमें संगठित है; जो देशमें धाँधली करता है और उसे छुपानेको विदेशोंमें लड़ाई; चुंगीके चकमों और धोखा देनेके कुचक्र; सुपुष्ट दलकी ज़्यादती; बाल्टी-भर-भर भावनाएँ और साम्राज्यवादी लोटा-भर-भर देशभक्ति तथा साम्राज्यवाद।' ३०-१-१९०० को आपने फिर कहा था—'ग़रीबोंके खिलाफ धनिकोंका दल।' इस कथनकी सचाई स्वयं टोरियोंने खुलेआम स्वीकार की है। टोरी-दलकी सदस्यता ग़रीब तो क्या साधारण मध्य-श्रेणीके धनियोंकी भी महत्वकांक्षाकी सीमाके बाहरकी बात है। जब तक कोई धनी, धनी पिताका पुत्र या धनी श्वसुरका उत्तराधिकारी दामाद न हो, टोरी-सीट उसे 'बेची' नहीं जा सकती। इन 'खरीदी जा सकनेवाली टोरी-सीटोंके सम्बन्धमें सर डेरिक गंस्टनने कहा था—'इन धनी और सुरक्षित सीटोंके लिए, जिनसे बहुतसे लाभदायक साधन प्राप्त होते हैं, दलको उस समय तक चन्दा उगाहनेकी तकलीफ़ करनेकी ज़रूरत नहीं, जब तक कि ऐसे धनी आदमी मिल जाते हैं, जो चुनावकी चखचखमें पड़नेके लिए अनिच्छुक होते हुए भी एक सुरक्षित सीटके लिए पूरा खर्च देनेको तैयार रहते हैं। अमलो तौरपर जो लोग सुयोग्य हैं, पर काफ़ी धनी नहीं हैं; उन्हें सीटोंके लिए लड़कर निराश ही होना पड़ता है। इन धनी और सुरक्षित सीटोंके लिए अधिकाधिक मूल्य देना पड़ता है।' २००० पौण्ड तक वार्षिक आयवाला कोई भी व्यक्ति इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। स्थानीय टोरी-संस्थाओंका सदस्य बननेके लिए भी कम-से-कम ६००० पौण्ड वार्षिककी आय ज़रूरी है!

लोकतन्त्रके प्रति विश्वासघातकर इन टोरियोंने जो बड़े-बड़े मुनाफ़े कमाए, उनका विवरण हृदयहीन चोरों और लुटेरोंके क़िस्सोंसे कम दिलचस्प नहीं है। सर जान लेने, जो प्रायः पार्लमेंटसे ग़ैरहाज़िर ही रहा करते हैं, पिछले युद्धके बाद एक कम्पनीका दिवाला निकालकर दूसरी बनानेमें ही ८९२००० पौण्ड मुनाफ़ा कमाया! ओल्डमकी दिवालिया-अदालतमें उनका मामला पेश होनेपर कहा गया कि उन्होंने ७२००० पौण्डकी पूँजीवाली जान ले एण्ड कम्पनीका दिवाला निकाल तथा हिस्सेदारोंका रुपया हड़पकर १००००० पौण्डकी पूँजीवाली ले-वेस्ट कम्पनी बना ली! १९३५ में प्रसिद्ध इंजीनियरिंग-फर्म बीयर्डमोरके १ पौण्डवाले हिस्सोंकी क़ीमत गिरकर सिर्फ़ ३ पैंस रह गई थी। १९४० में इनका मूल्य २७ शि० ६ पैंस हो गया। इसी वर्ष ९ हवाई जहाज़ बनानेवाली कम्पनियोंने, जिनकी लागत पूँजी ७६११०८२ पौण्ड थी, ५२२३१६० पौण्ड मुनाफ़ा अपने संस्थापकों तथा स्टाक-एक्सचेंजको दिया और उनके हिस्सोंका मूल्य ३ पौण्ड प्रति हिस्सा बढ़ गया। अब पाठक देखें कि टोरियोंने इस वर्ष दो-तिहाई अबीसीनिया इटलीको दे देनेके होर-लावाल-प्रस्तावका समर्थन क्यों किया था? इस महायुद्धके छिड़नेपर अभी हाल ही में हटे उप-प्रधानमन्त्री एटलीने कहा था कि 'देशके लिए हमें अपने सब शक्ति-साधन जुटाने चाहिएँ और कोई युद्धसे खानगी मुनाफ़ा न कमाए (२२-५-४०)। पर इस युद्धमें टोरियों द्वारा संगठित-संचालित कम्पनियोंके मुनाफ़ोंके आँकड़े सबसे ऊपर पहुँचे हैं। डंकास्टर एमेलगेमेटेड कोलियरीज़ने १९३९ में २१५६५० तथा १९४०में ४२७८३० पौण्ड मुनाफ़ा कमाया—और जो १०० फ़ी-सदी अतिरिक्त मुनाफ़ा-कर दिया, एक बैंकसे लिया हुआ १००००० पौण्डका कर्ज़ चुकाया तथा १००००० पौण्ड स्थायी कोषमें जमा किया, वह सब अलग! युद्ध-कालमें ब्रिटिश सरकारने वहाँकी रेलें स्वयं नहीं लीं, बल्कि उसने इस शर्त्तपर उन्हें चलाया कि प्रत्येक हिस्सेदारको २ पौण्ड साप्ताहिक पेंशन दी जायगी, कम्पनियोंको ४ करोड़ ३० लाख पौण्ड मुआवज़ा दिया जायगा और हिस्सेदारोंको ३१५०००० पौण्ड मुनाफ़ा! इस सम्बन्धमें २२-१०-४१ को रिडलेने कहा कि 'सरकार रेल-कम्पनियोंकी मल्कियत उनके मौजूदा संचालकोंके हाथोंमें ही रहने देगी और उन्हें ४३००००० पौण्ड मुनाफ़ा देगी।' पता नहीं, इन आँकड़ोंके बारेमें अब एटली साहबकी क्या राय है?

पुनःशस्त्रीकरणका स्वाँग!

एक ओर टोरी धड़ल्लेसे मुनाफ़ोंकी दौड़ लगा रहे थे, और दूसरी ओर जनतामें बढ़ते हुए नात्सी और फ़ाशिस्त खतरोंका मुक़ाबला करनेके लिए पुनःशस्त्रीकरणकी माँग ज़ोर पकड़ती जा रही थी। अतएव जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए कुछ करना ज़रूरी हो गया। फलतः ११-२-३७ को पार्लमेंटमें अगले ५ वर्षोंमें पुनःशस्त्रीकरणपर खर्च किए जानेके लिए ४० करोड़ पौण्डका कर्ज़ स्वीकृत हुआ। बादमें यह रक़म पहले १॥ और फिर २ अरब पौण्ड कर दी गई। पर मई १९४० में (पूरे तीन वर्ष बाद, जबकि पुनःशस्त्रीकरणका यह कार्यक्रम आधेसे भी अधिक पूरा हो जाना चाहिए था) फ्रांस, बेल्जियम और अन्यान्य युद्ध-क्षेत्रोंमें लड़नेवाले ब्रिटिश सैनिकोंके पास बन्दूकों, गोलियों, तोपों, गोलों, टैंकों आदिकी भारी कमी थी! लार्ड गोर्टने अपने १० मईके डिस्पैचमें लिखा कि इस समय लगभग हर तरहके गोला-बारूदकी उनके पास कमी थी, जबकि जर्मन सैनिक ५ हज़ार टैंकोंकी सहायतासे लड़ रहे थे। उन्होंने लिखा—"शुरूसे ही यह स्पष्ट हो गया कि शत्रुकी शस्त्रास्त्रकी अधिकता युद्धमें उसकी बहुत बड़ी सहायता सिद्ध हो रही है। जब शत्रुके शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित १२ डिवीजन लड़ रहे थे, ब्रिटेनके साधारण टैंकोंसे लैस ७

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रसाले, एक पुराने ढर्रेकी सशस्त्र मोटरोंकी टुकड़ी और दो टैंक-पल्टनोंकी टुकड़ियाँ थीं ; जिनके पास केवल एक मशीनगनवाले दूसरे मार्केके २३ टैंक थे !"

पाठक ज़रा सोचें, क्या २ अरब पौण्डसे ३ वर्षोंमें केवल २३ टैंक ही तैयार हो सके ? कदापि नहीं। एक तो ब्रिटेनका पुनःशस्त्रीकरण-कार्यक्रम रूस-विरोधी और जर्मनीके सहायक मुनाफ़ाखोर टोरियोंकी कृपासे आरंभ ही बड़ी देरसे, शिथिलता-पूर्वक और बहुत छोटे पैमानेपर हुआ ; दूसरे रक्षा-मन्त्री सर टामस इन्सकिपके कथनानुसार (२१ मई, १९३६) टोरी-व्यवसायियोंने उसके लिए 'व्यापारके सामान्य प्रवाहको रोकने' से साफ़ इन्कार कर दिया ! इस समय शस्त्र बनानेवाली प्रमुख एवं प्रसिद्ध विकर्स कम्पनीके डाइरेक्टर थे सर जान एण्डरसन, एच० पी० मिचेल, लार्ड हेल्शम, लियोपोल्ड एमरी, सर ई० रेम्सडन और सर पी० हैनन। पता नहीं, इनकी कृपासे या संचालकोंकी अनिच्छसे, १९३८ तक बड़ी-बड़ी इंजीनियरिंग फर्मोंको पुनःशस्त्रीकरण-सम्बन्धी कोई आर्डर ही नहीं दिया गया था। यह हाल उस समय था, जब कि इन फर्मोंके संचालक-संस्थापक टोरी ही थे और इनमें से २३ फर्में सिर्फ़ हवाई-जहाज़ बनानेके काममें संलग्न थीं। सचाई तो यह है कि टोरियोंकी फर्में ब्रिटेनकी रक्षाके लिए शस्त्रास्त्र बनानेके बजाय जर्मनीके लिए शस्त्रास्त्र बनाकर मुनाफ़ा कमानेकी फिक्रमें थीं। साथ ही चैंबर्लेनके म्यूनिख-पैक्टके रूपमें ब्रिटेनके टोरी-अधिकारियोंने चेको-स्लावोकियाके १५०० हवाई-जहाज़, ४६९ टैंक, ५०० विमान-तोड़क तोपें और ४३००० मशीनगनें भी उपहारके तौरपर हिटलरको सौंप दिए थे ! इतनेपर भी जब कामन-सभामें ६ अक्टूबर, १९३८ को म्यूनिख-पैक्टपर बहस हुई, तो टोरियोंने १४४ के विरुद्ध २६६ मतोंसे चैंबर्लेनकी दाद दी !

१९१४ से १९१७ तक, जब ब्रिटेनका उद्योगीकरण १९३७-४० से कहीं पिछड़ा हुआ था, ५००० तोपें तैयार की गई थीं ; जो लार्ड गोर्टकी सेनासे पँचगुनी सेनाके लिए काफ़ी थीं। १९१६ से १८ तकमें ब्रिटेनने २००० बड़े-बड़े टैंक रणक्षेत्रमें पहुँचा दिए। पर तब ब्रिटेनके बड़े उद्योग-धन्धे युद्ध-आयोजन थे। इस बार जब १२ नवम्बर, १९३६ को किंग्सले ग्रिफिथ्सने सफ़ाई-विभाग खोलनेका प्रस्ताव किया, तो टोरियोंने शोर मचाया कि इसका अर्थ होगा शान्ति-कालके उद्योग-धन्धोंको लड़ाईकी तैयारीमें लगाना ! और यह प्रस्ताव १३१ के विरुद्ध ३३७ मतोंसे गिर गया। २५ मई, १९३८ को ह्यू डाल्टनने हवाई रक्षा-साधनोंकी जाँचका प्रस्ताव पेश करते हुए फिर सफ़ाई-विभागकी स्थापनाका प्रश्न उठाया, जिसका समर्थन चर्चिलने बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें किया। पर इस बार भी प्रस्ताव १४४ के विरुद्ध ३१९ मतोंसे अस्वीकृत हो गया। १९३५ में ब्रिटेनके पास ८५० अच्छे हवाई-जहाज़ थे। १९३७ में चर्चिलने इनकी संख्या १००० से कम बतलाई, जिसका प्रतिवाद करते हुए रक्षा-मन्त्री सर टामस इन्सकिपने कहा कि अब उनकी संख्या ११५० है। इसका मतलब है कि प्रति सप्ताह ब्रिटेनने केवल ३ हवाई-जहाज़ बनाए ! आर० ए० बलटरने तो यहाँ तक कह डाला कि हमारी हवाई और अन्य शक्तियाँ खतरनाक रूपसे मज़बूत हैं। नवम्बर, १९३८में सर हरबर्ट विलियम्सने कहा कि देशकी ८० से ९० प्रतिशत इंजीनियरिंग फर्मोंको पुनःशस्त्रीकरणका एक भी आर्डर नहीं मिला था। इसका असली कारण तो टोरी ही जानें पर इतना हम ज़रूर जानते हैं कि बहुत-से युद्ध छिड़नेके कुछ दिन पहले तक यह कहते सुने गए कि लड़ाई नहीं होगी ; उसकी बात शरारत-भरा और बेहूदा प्रोपेगेण्डा है ! एडवर्ड ग्रिग, सर पैट्रिक हानन, कमाण्डर लौकर लेम्पसन, डब्लू एस० मौरीसन, मेजर डंकन मैक्कालुम, औसबर्ट पीक आदिने एक-दूसरेसे बढ़-चढ़कर युद्ध-चिल्लाहट करनेवालोंको फटकारा और कहा कि दूसरा महायुद्ध असम्भव है।

वह दर्शन—वह मुसकान !

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

राजमार्गपर आते ही मैंने दूरसे तुम्हारे रथको प्रभातकी प्रथम किरणोंके साथ आते देखा। तुम्हारे दर्शनकी उत्कण्ठा हृदयमें प्राकृतिक भूखके समान जाग उठी। तुम्हारे दर्शनकी सम्भावनासे मन-मयूर आनन्दसे नाच उठा। पैर वहीं रुक गए और मैं उत्सुकतापूर्वक तुम्हारे रथके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। सहज-स्वाभाविक मन्थर गतिसे तुम्हारा रथ धीरे-धीरे आकर मेरे निकट केवल एक क्षणके लिए रुका। मुझे गर्व हुआ—मेरे प्रियतम मुझसे मिलनेके लिए स्वयं नीचे आए ! किन्तु संकोच और लज्जासे मेरी आँखें ऊपर नहीं उठीं, नीचे पृथ्वीपर ही गड़ी रहीं। इतने समारोहोंके बीच मैं तुम्हारा सहज अकृत्रिम रूप न देख सका। तुम्हारा रथ आगे बढ़ चला। मैं सारी लोकलज्जा छोड़कर निराश भावसे रथकी ओर उसी दृष्टिसे देखने लगा, जैसे दीन कृषक अकालके निर्जल मेघोंको देखता है। किन्तु जब पड़ता है, तुमने मुझे देख लिया था और तुम्हें मेरा वह अच्छा भी लगा था। अपनी सुन्दर ग्रीवा मोड़कर तुमने देखा, अपनी मुसकानके मिस वहाँ चाँदनी बिखेर दी। अहेतुकी कृपा-वारि-धारासे तुमने मुझे नहला दिया। मैं हुआ। मुझे सर्वस्व मिल गया। मेरा मानव-जीवन धन्य हुआ। तुम्हारा वह दर्शन—तुम्हारी वह मुसकान क्या कभी भूलने वस्तु है ?

('गीतांजलि'के एक गीतकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

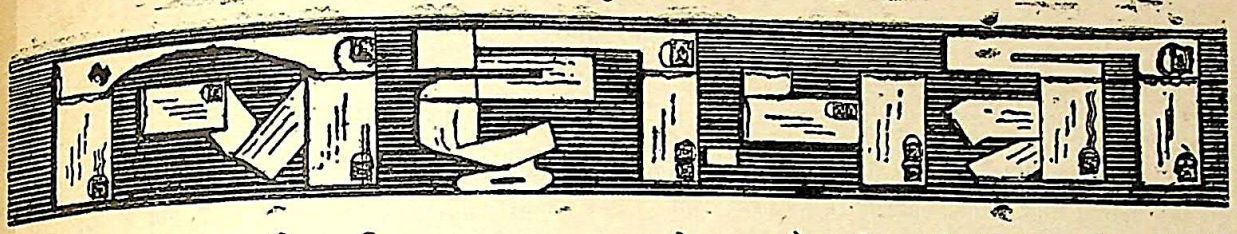

विज्ञान और साहित्य

'विशाल भारत'के गत फरवरीके अंकमें श्री पद्मलाल पुन्नालाल बख्शीका उपर्युक्त शीर्षकका निबन्ध प्रकाशित हुआ है। मैं उनके निबन्धका आदर करता, पर उसकी कुछ पंक्तियाँ भ्रम उत्पन्न करती हैं। इस लेखमें विज्ञानकी उपेक्षाका आभास मिलता है। विज्ञानसे सांहारिक शक्ति बढ़ गई, मानवता उससे त्रस्त है; यह कथन भ्रामक है। यह दोष विज्ञानके सिर नहीं मढ़ा जा सकता, यह तो उसके ग़लत उपयोगका मानवीय दोष है। हमारी चारित्रिक दुर्बलताने इसे इस रूपमें पहुँचाया है। वे हमारा ध्यान साहित्यकी ओर आकृष्ट करते हैं। किन्तु क्या विज्ञानकी उपेक्षाकर सिर्फ़ साहित्यके बलपर ही मानवकी सर्वांगीण उन्नति सम्भव है? वे लिखते हैं—'साहित्यका विषय अति मानवीय है।' यह कैसी बात? अगर साहित्यका विषय अति मानवीय है, तो फिर मानव या मानव-जीवनसे साहित्यका नाता ही क्या रह जाता है? और ऐसा होनेपर वह साहित्य ही किस कामका? साहित्य तो मानवको लेकर ही है। साहित्य और विज्ञान दोनोंका ही अपना-अपना महत्व है। मनुष्य किसी एककी भी उपेक्षाकर अपनी सर्वांगीण उन्नतिमें बाधा ही डालेगा।

विज्ञानके साधनसे ही आज मनुष्य मनुष्यके अतिनिकट है। कुछ घण्टोंमें ही संसारके समस्त निवासियोंसे मिलकर लौट आया जा सकता है। पर विज्ञान द्वारा हम शरीरसे ही एक दूसरेके अतिनिकट हैं, आत्मासे नहीं; यद्यपि सभी आत्माओंकी एकरूपता तथा अभिन्नता निर्विवाद है। आत्माओंका नैकट्य साहित्यसे ही सम्भव हो सकता है। साहित्य हमारा आन्तरिक विकास करता तथा हमारे हृदयको विस्तृत, व्यापक और उदार बनाता है। मनुष्य जब कलाकी छायामें अनुभूति द्वारा अपने शाश्वत रोग-शोक-हर्ष-विषाद आदि भावोंकी अभिव्यक्ति रागात्मक वाणीमें करता है, तो वह साहित्यका सृजन करता है; और जब बुद्धिका अंचल पकड़ सिद्धान्तकी स्थापना करता है, तो विज्ञानका। अर्थात् विज्ञानकी उत्पत्ति मस्तिष्कसे और साहित्यकी हृदयसे है। साहित्य सत्यकी प्रतिष्ठा करता है अनुभूतिकी अपेक्षा रखकर और विज्ञान को सत्यके विवेचनमें ही तृप्ति है। साहित्यको संवेदनशीलता अपेक्षित है; पर विज्ञान अनुभूतिकी सीमाका अतिक्रमण कर जाता है। विज्ञानकी दृष्टि जीवनके वाह्य तत्त्वपर ही टिकती है, जब कि साहित्य इससे बच मनुष्यमें मानवताका प्रसार करता है। विज्ञान हमारी उदर-क्षुधाको शान्त करता एवं देह-जीवनका प्रतिपालन करता है, जब कि साहित्य मानसिक क्षुधाकी पूर्ति करनेका साधन है। विज्ञान संवेदनीय भावना-हीन बुद्धिवादी यथार्थको हमारे समक्ष रखता है। सौन्दर्यपूर्ण भावात्मक अभिव्यक्ति साहित्यकी निजी वस्तु है। साहित्य हमारी दृष्टिको व्यापक बनाता है और विज्ञान हमारी प्रगतिमें सहायक होता है। दोनोंके उचित सामंजस्यमें ही मानवका कल्याण है। दोनों जीवन-सरिताके दो उपकूल हैं। एकके विना हमारा जीवन एकांगी ही रह जायगा। किसी एकसे बिछुड़नेसे सरिताका पाट संकीर्ण होनेके सिवा और क्या होगा? साहित्यकी उपेक्षा करनेसे विज्ञानकी क्या दुर्गति और उसका क्या दुरोपयोग हो सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे समक्ष है। और विज्ञानकी अवहेलनाकर साहित्य प्रगतिसे ही वंचित रह जाता।—'नवरंग', विद्या-मन्दिर, वनमनखी (पूर्णिया)।

लेखकोंके पारिश्रमिकका सवाल

लेखकोंके पारिश्रमिकको लेकर श्री रामरावका एक पत्र हाल ही में कुछ अंगरेज़ी पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। 'लेखकोंको भी जीने दो' की उनकी अपील कितनी मार्मिक थी! इसी समस्याको लेकर कवियित्री महादेवी वर्माका हृदय भी विचलित हो गया और कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी छत्र-छायामें उन्होंने एक सुदृढ़ संस्थाके संगठनका प्रस्ताव किया। अभी कुछ ही दिन हुए साप्ताहिक 'हिन्दुस्थान'में 'बम्बईके कलाकारों'को सम्बोधित करके वहाँ के बाज़ारमें हिन्दीके सेवकोंकी दुर्दशाका खासा चित्र खींचा गया था। अतः यह तो प्रत्यक्ष ही है कि हिन्दी-संसार अपने कलाकारों तथा लेखकोंकी दयनीय दशासे भलीभाँति परिचित है और शायद इस ओर कुछ करना भी चाहता है। लेकिन प्रश्न तो यह है कि क्या किया जा सकता है और किस प्रकार उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है? इस ओर पहली आवश्यकता तो यह है कि हिन्दीके प्रकाशक एवं पत्र-संचालक ऐसी सुविधाएँ देनेके लिए तैयार किए जायँ कि हमारे लेखक तथा कलाकार लेखन-वृत्तिको व्यवसायके रूपमें ग्रहण कर सकें तथा लेखनीके बलपर अपनी जीविका अर्जित करनेका विश्वास लेकर इधर आ सकें। आवश्यक एवं वांछनीय होते हुए भी इस ओर विशेष कुछ नहीं हो पाता। क्योंकि संगठनके इस ज़मानेमें भी लेखक बेचारे अपना संगठन नहीं कर पाते, यद्यपि उन्हींकी क़लमके ज़ोरसे रिक्शेवाले और ठेलेवाले तक संगठित हो चुके हैं। इधर सफलता प्राप्त करनेके लिए प्रमुख श्रेणीके साहित्यिकोंका अग्रसर होना आवश्यक है। क्या आशा की जाय कि इस ओर जिनकी ओर संकेत है, वे कुछ तत्परता दिखाएँगे?—(प्रो०) ललिताप्रसाद सुकुल, कलकत्ता-विश्वविद्यालय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतीय राष्ट्रका इतिहास

सन् १९३८ में डा० राजेन्द्रप्रसाद और मैंने भारतीय राष्ट्रका एक ऐसा इतिहास तैयार करनेका आयोजन किया, जिसमें नएसे नए ऐतिहासिक अनुसंधानकी सभी बातें आ जायँ और जो भारतीय लेखकों द्वारा ही सरल और सुबोध शैलीमें लिखा जाय तथा जिसकी कीमत इतनी कम हो कि वह हमारे सभी देशवासियोंकी पहुँचके अन्दर रहे। इस परमावश्यक राष्ट्रीय महानुष्ठानके लिए बनारसमें भारतीय इतिहास-परिषद्की स्थापना की गई और वह एक रजिस्टर्ड संस्था बनी। इतिहासकी जिल्दोंके विभिन्न अध्याय विभिन्न सुयोग्य विद्वानोंको लिखनेके लिए देकर काम जारी कर दिया गया। इसी बीच महासमरके छिड़ जानेसे हमारे विद्वान्, पुस्तकालय और संग्रहालय सभी यत्र-तत्र पड़ गये और इसी झंझटमें हमारे चार साल नष्ट हो गए। पर अब यह कहते हर्ष होता है कि हमारे इतिहासकी दो मुख्य और रोचक जिल्दें छपनेके लिए तैयार हो गई हैं और तीसरी भी आधी तैयार हो चुकी है। मौर्य और गुप्त-कालकी इन दो जिल्दोंकी पांडुलिपियाँ मेरे हाथमें आ गई हैं। गुप्त-कालीन जिल्दका सम्पादन डा० रमेशचन्द्र मजुमदार और डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकरने किया है तथा मौर्य-कालीन जिल्दका प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री और डा० हेमचन्द्र रायचौधरीने। अकबर-कालीन जिल्द स्वयं मेरे हाथोंमें है, और मुझे आशा है कि इन दो जिल्दोंकी छपाईका काम आरम्भ हो जानेके चार महीने बाद इसकी भी पाण्डुलिपि प्रेसके लिए तैयार हो जायगी। १९३८ में हमें आशा थी कि हम प्रत्येक जिल्दकी क़ीमत ४) रु० रख सकेंगे; पर युद्धकी परिस्थितिमें खर्च बढ़ जानेके कारण अब ६) रु० क़ीमत होगी। अंगरेज़ी-संस्करणके प्रति जिल्दपर लगभग ११०००) रुपए खर्च होंगे। हिन्दी-संस्करण भी साथ-ही-साथ तैयार किया जा रहा है। प्रत्येक जिल्दमें २०-२५ चित्र और नक्शे होंगे। दानी महाशयोंकी उदारतासे ही हम लोग पिछले छः वर्षोंके झंझटोंमें आफ़िस चालू रख सके, ढाई जिल्दोंकी पाण्डुलिपियाँ पूरी कर सके और १००००) रुपए भी बचा सके हैं। अभी सात और जिल्दें तैयार करनेका काम विभिन्न सम्पादकोंको सौंपा गया है। अतएव हम अपने उदार दानी महाशयोंसे अपील करते हैं कि सन् १९४५-४६ के लिए हमें ११०००) रु० दान देनेकी कृपा करें, जिससे यह राष्ट्रीय महानुष्ठान अकस्मात नष्ट न हो जाय और डा० राजेन्द्रप्रसादके इस राष्ट्रीय महानुष्ठानके संकल्पका स्वप्न सत्य हो सके तथा संसारको सिद्धकर दिखा दे कि भारतका अतीत उच्च और महान था।—(सर) यदुनाथ सरकार, पी० २५५, लेक टिरेस, कलकत्ता।

रोमाँ रोलाँ और 'वीणा'

इन्दौरकी 'वीणा'ने गत जनवरीमें अपना रोलाँ-अंक निकाला था। रोलाँके जीवन और साहित्यसे रुचि होनेके कारण मैंने तुलसी-पुस्तकालयसे लेकर मैंने उस अंकको शुरूसे अन्त तक बड़े ध्यानसे पढ़ा। मुझे उसमें कई ग़लतियाँ दिखाई दीं। अतः मैंने ९ अप्रैल, १९४५ को 'वीणा'-सम्पादकको एक पत्रमें उन्हें लिख भेजा और अपने उत्तर एवं संशोधन-सहित 'वीणा'में छापनेका अनुरोध भी किया, ताकि 'वीणा'के पाठकोंके भ्रम-निवारण हो सके। लगभग १॥ मास बाद 'वीणा'-सम्पादकने मेरा पत्र वापस कर दिया और लिखा—"...माचवेजीके लेखोंके सम्बन्धमें आपने जो सूचनाएँ दी हैं, उसके सम्बन्धमें उन्होंने स्वयं अपनी भूल मान ली है। 'विशाल भारत'के नए अंकमें भी आपने उन त्रुटियोंकी चर्चा कर दी है। अतएव 'वीणा'में इसका जिक्र करना अनावश्यक हो गया है।...सम्पादकीय दृष्टिकोणके सम्बन्धमें हमारा आपका मतभेद स्वाभाविक है। आपका नोट पढ़ लेनेके बाद भी मुझे अपने विचारमें परिवर्त्तन करनेकी ज़रूरत नहीं जान पड़ी।" मेरा पत्र लिखनेका एकमात्र उद्देश्य था 'वीणा'के पाठकोंका भ्रम-निवारण और सम्पादकीय स्पष्टीकरण, जो शायद माचवेजी द्वारा एक खानगी पत्रमें भूल स्वीकार करने या सम्पादकजीके अपने मतपर डटे रहनेसे पूरा नहीं होता। 'विशाल भारत'में इस सम्बन्धमें क्या निकला है, 'वीणा'-सम्पादकका पत्र पानेसे पहले मैंने उसे देखा भी नहीं था। अतः मुझे यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य और खेद हुआ कि 'वीणा'-सम्पादकने किस आधार पर उसका लेखक मुझे समझ लिया? इस हालतमें क्या मैं आशा करूँ कि आप मेरे पत्रको अपने यहाँ छापनेकी कृपा करेंगे?

"रोलाँ-अंकके सम्पादकीय तथा दूसरी चीज़ोंके बारेमें निम्नलिखित पंक्तियाँ आपको सेवामें भेज रहा हूँ। आशा है, उन्हें साथ इन्हें 'वीणा'में प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे, ताकि नोट शंकाओंके समाधानके साथ ही यदि 'वीणा'के पाठकोंमें भी कुछ भ्रम फैला हो, तो दूर हो जाय। आपने स्मृति-अंक निकालकर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करके बहुत अच्छा किया। लेकिन रोलाँके बारेमें अधिक जानकारी प्राप्त करके अंक निकाला जाता तो अच्छा होता और रोलाँके प्रति न्याय भी होता। रोलाँ किसी भी विषयपर लिखनेमें जल्दबाज़ी नहीं करते थे। विषयके बारेमें पूरी जानकारी प्राप्त कर लेनेके बाद ही वे अपनी क़लम उठाते थे। यहाँ तक कि जब मद्रासकी गनेशन कम्पनीने 'यंग इण्डिया' के लेख-संग्रहोंकी भूमिका लिखनेके लिए उनसे अनुरोध किया तो उन्होंने इसीलिए इन्कार कर दिया। गांधीजीके बारेमें गम्भीर अध्ययन तथा कालिदास नाग, दिलीप राय आदिसे वार्तालापके बाद ही उन्होंने गांधीजीकी जीवनी लिखी, जिसे पढ़कर खुद गांधीजीने कहा कि यह अचरजकी बात है कि आपने नहींके बराबर ही ग़लतियाँ की हैं।

"१९४३ के दिसम्बरमें भी एक बार रोलाँके मरनेकी ख़बर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आई थी। उस वक्त भी एकाधको छोड़कर सभी पत्रोंने लिखा था कि रोलाँ शान्तिवादी, ताल्सतायवादी, अध्यात्मवादी, रहस्यवादी, गांधीवादी आदि थे। इस बार भी पत्रोंने लगभग इन्हीं उपाधियोंसे फिर उन्हें विभूषित किया है। अपने जीवनमें कुछ समय तक रोलाँ ताल्सतायके प्रभावमें थे, पिछले युद्धके समय वे शान्तिवादी रहे, उनकी कुछ चीज़ोंमें अध्यात्मवादकी छाप स्पष्ट है; लेकिन क्या रोलाँका समग्र परिचय यही है? रोलाँके जीवनमें जो विकासकी धारा मिलती है, वह एकाधको छोड़कर दुनियाके किसी भी लेखकमें शायद ही मिले। उपर्युक्त सभी वादोंके अन्दरसे गुज़रते हुए रोलाँ अन्तमें कम्युनिस्ट हो गए थे। यह घटना 'I will not Rest' के लिखनेके बादकी है। इसके बाद उन्होंने कम्युनिस्ट होकर 'By way of Social Revolution and Peace' लिखी थी। दुःखकी बात है कि रोलाँकी अन्य पुस्तकोंकी तरह इसका प्रचार भी इस देशमें अच्छी तरह नहीं हुआ। उनके कम्युनिस्ट होनेकी बात श्री इलाचन्द्र जोशीने अपने लेख ('भारत', जनवरी, १९४५) में स्वीकार की है; यद्यपि उन्होंने भी रोलाँको गीताके प्रचारक ताल्सताय आदिके भक्तके रूपमें ही याद किया है। अलेक्स आरन्सनने भी अभी हाल ही में निकली अपनी पुस्तकमें ऐसा ही लिखा है; यद्यपि उन्होंने रोलाँको अध्यात्मवादी, उदार-दली, यूरोपके विवेकके रक्षकके रूपमें चित्रित करनेकी ही कोशिश की है। इन लेखकोंमें से कोई भी कम्युनिस्ट नहीं है।

"अपनी सम्पादकीय टिप्पणीमें आप लिखते हैं कि रोलाँ ताल्सतायके आधुनिक संस्करण थे। एकाध बातोंमें आंशिक रूपमें कुछ समता होते हुए भी उन्हें ताल्सतायका आधुनिक संस्करण नहीं कहा जा सकता। कार्यक्षेत्रमें ताल्सतायका मूलमन्त्र था—'अन्यायका विरोध न करो।' वे हर प्रकारकी हिंसाके खिलाफ़ थे—चाहे वह किसी भी परिस्थितिमें किसी भी उद्देश्यसे क्यों न काममें लाई गई हो। लेकिन रोलाँ साम्राज्यवाद, फ़ाशिज़्म और सोवियत विरोधके खतरेको दूर करनेके लिए किसी भी अस्त्रसे काम लेनेके पक्षमें थे। रोलाँका मुख सात्विक साध्यकी ओर रहा, यह भी ग़लत है। रोलाँका कम्युनिस्ट-सहयोग और गांधीजीका पूँजीपतियोंको साथ लेना क्या एक ही बात है? इस बातका पता आपने कहाँसे लगाया कि समाजवादका लक्ष्य राजनीतिक (यांत्रिक) जीवनकी ओर है? आप लिखते हैं—'गांधीजी पूँजीपतियोंसे प्रभावित नहीं होते, उनके साध्य और साधनपर उनका असर नहीं पड़ता। पूँजीपतियोंका उनके प्रति विश्वास है। वे (तथाकथित गांधीवादी पूँजीपति—लेखक) सही मानीमें पूँजीपति नहीं हैं। स्वाधीन भारतमें वे अपने पुरखोंकी ओर मुड़ जायँगे।' इन बातोंका आधार क्या है? जवाहरलालजीने अपनी आत्मकथामें इस विषयमें दूसरी ही बातें लिखीं हैं। उनका कहना है कि पूँजीपति गांधीजीसे पूरा फ़ायदा उठाते हैं। अनेकांशमें इसीलिए वे उनके साथ हैं कि वे सोलहो आने पूँजीपति हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ यही है कि देशके कामोंके लिए कभी-कभी ये देशके नामपर करोड़ोंके नफ़ेमें से कुछ रुपया दे देते हैं। गांधीजीके साथ होनेसे इनके पूँजीपति होनेमें कोई अन्तर नहीं आता है। इसी तरह प्राचीन भारतके धनियोंकी बात भी झूठी है। गौतमबुद्ध-जैसे क्रान्तिकारीको भी इनके सामने झुकना पड़ा था, जैवली, आरुणि, याज्ञवल्क्यकी बात तो छोड़ ही दें। बुद्धने जब कहा कि संघका सदस्य हो जानेपर कोई दास नहीं रहेगा, तो श्रेष्ठियों और राजाओंके हज़ारों दास बुद्धके चेले बनने लगे। श्रेष्ठियोंके कान खड़े हो गए। उन्हींकी सहायतासे वंचित होनेसे बचनेके लिए बुद्धको कहना पड़ा कि दास संघके सदस्य नहीं हो सकते।

"गांधीवाद और कम्युनिज़्मको आपने यथाक्रमसे मानववाद और यन्त्रवाद लिखा है। इसका पता आपको किस पुस्तकसे चला कि कम्युनिस्ट मानवतावादी नहीं हैं? 'I will not Rest' में रोलाँने मार्क्सके मानववादका ही समर्थन किया है (पृ० ६३), और अपने साथियोंसे अनुरोध किया है कि पूँजीवादी झूठे ढोंगको छोड़ वे इसीको अपनायँ। रोलाँने किसी सीमा तक ही 'समाजवादसे सहयोग' नहीं लिया, बल्कि सोवियत के जन्मसे वे उसके ज़बर्दस्त समर्थक रहे हैं। अन्तमें उन्होंने कम्युनिज़्मको ही सम्पूर्ण रूपसे अपनाया। वे साम्यवादी मानववाद (आपके शब्दोंमें यन्त्रवाद) की प्रतिष्ठाके लिए जीवनके अन्तिम दिनों तक लड़ते रहे।

"इसी अंकमें श्री माचवेने अपने लेख (पृष्ठ १०९) में लिखा है कि ३० अप्रैल, १९२२ को वे पैरिस छोड़कर विलेन्यू चले गए और इसके बाद आजीवन वहीं रहे। यह ग़लत है। इसके बाद वे फ्रांस आए थे। लड़ाईके समय वे वहीं थे। अगर नहीं थे, तो हिटलरी जल्लादोंने उन्हें क़ैद कैसे किया? स्वीज़रलैण्ड तो तटस्थ देश है। पृष्ठ ११० पर श्री माचवे लिखते हैं—फिर रोलाँ के ग्रन्थ एक-एक करके पढ़े·····आमियाँ अशांते, एक दुनियाकी मौत' और पृष्ठ १११ पर रोलाँकी प्रमुख पुस्तकोंकी सूचीमें उन्होंने लिखा है—'मन्त्रमुग्ध आत्मा' (१९२२), 'अनेट और सिल्वी (१९२२) 'आमियाँ अशांते' रोलाँके निम्नलिखित ६ खण्डोंके उपन्यासका नाम है—(१) अनेट और सिल्वी, (२) ग्रीष्म, (३) माता और पुत्र, (४) एक दुनियाकी मौत, (५) संघर्ष, (६) वाया सैक्रा। ये १९२१-३२ के बीच लिखे गए। 'सिलुसि' (१९१९) की जगह लिलुलि (१९१९) होगा। 'संत लुई (१९२६)' की जगह १८९७ होगा। अंकके लिए एक बार फिर बधाई। आशा है, आप पत्रका उत्तर देंगे।" — महादेव साहा, ७५, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

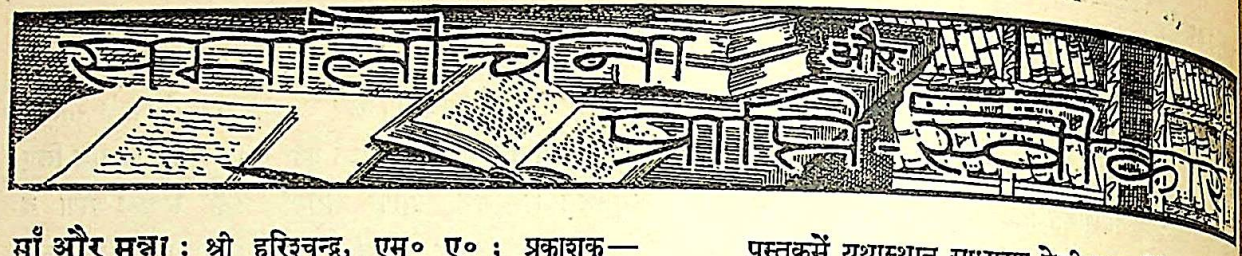

माँ और मुन्ना : श्री हरिश्चन्द्र, एम० ए० ; प्रकाशक—मलहोत्रा बदर्स, दिल्ली ; पृष्ठ १४३ ; मूल्य २), सजिल्द ।

प्रस्तुत पुस्तककी रचना, जैसा कि उसके नामसे ही प्रकट है, मातृत्वका भार वहन करनेवाली स्त्रियोंके लिए हुई है । 'दो शब्द' शीर्षक अग्रलेखमें जिन उपयोगी किन्तु उपेक्षित विषयोंकी ओर संकेत किया गया है, उससे हम सर्वथा सहमत हैं । निःसन्देह जहाँ एक ओर कविता, कहानी आदिके क्षेत्रमें भरपूर वर्षा-सी हो रही है, वहाँ बाल-शिक्षा, मनोविज्ञान, मातृत्व आदि अनेक महत्त्व-पूर्ण विषयोंका क्षेत्र लगभग सूखा-सा है । इससे पूर्व 'गुप्त सन्देश', 'मातृत्व', 'गर्भवती और प्रसूता बालक' आदि दो-चार पुस्तकें अवश्य प्रकाशित हुई हैं ; किन्तु ऐसे रहस्यपूर्ण एवं शुष्क विषयको कहानी, सम्भाषण, ब्राडकास्ट आदि नवीन ढंगसे अत्यन्त सरल और रोचक बना देना इस पुस्तककी प्रथम विशेषता है । सारी पुस्तक नई शैली तथा सुन्दर व्यंगचित्रोंके कारण एक आश्चर्यजनक कहानी-सी बन गई है ।

गत कई वर्षोंसे लेखक महोदयका हज़ारों वयस्क तथा अल्पायु बच्चोंके साथ निकटतम सम्बन्ध रहा है । 'चाइल्ड गाइडेन्स कौंसिल'के निर्माणमें भी आपका प्रमुख हाथ रहा है, जिससे भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंके विद्यार्थियों एवं शिक्षकोंकी मनोवृत्तियोंका अध्ययन करनेका आपको पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ है । ऐसा जान पड़ता है, बादमें परिपक्व हो जानेवाले अनेक मानसिक एवं शरीरिक रोगोंका निदान विद्वान लेखकने जड़-मूलसे करना आरम्भ किया है । उनके हृदयगत भाव प्रथम परिच्छेदमें झलक उठे हैं—"हमारा समाज एक युवा और युवतीको विवाह-बन्धनमें बाँध देता है । उन्हें आज्ञा देता है कि सन्तति उत्पन्न करो, राष्ट्रको बनाओ । उनके कन्धोंपर इतना उत्तरदायित्व डालते समय वह इस बातकी बिल्कुल परवाह नहीं करता कि इस जोड़ेको सन्तान-उत्पत्ति, उसका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षाके नियमोंसे परिचित कराया गया है या नहीं । कितनी लापरवाही है ! यह किसीको बेपतवार नावपर सवार कराकर यौवनपर आई हुई नदीमें ढकेल्नेके तुल्य नहीं तो क्या है ?···इस कारण उनसे सहस्रों भूलें होती हैं और गृहस्थ-जीवन कटु, दुःखपूर्ण और नीरस हो जाता है । मोटर-जैसी मशीन चलानेके लिए ड्रायवरीकी शिक्षा (ट्रेनिंग) लेनी ही पड़ती है । माली बननेके लिए बाग़बानीकी कलामें कुशल होना ही पड़ता है । लेकिन माता बननेके लिए, राष्ट्र एवं जातिके निर्माता बननेके लिए क्या किसी ज्ञान, किसी शिक्षा, किसी कौशलकी आवश्यकता ही नहीं ? ओह ! कितनी भूल है ! कितनी भारी मूर्खता है !! कितना भारी भोलापन है !!!

पुस्तकमें यथास्थान साधारण देशी तथा विदेशी औषधियों और उपायोंका उल्लेख उचित ही जान पड़ता है । बच्चेके संतुलित भोजन, सोनेके नियम, सूँघने, देखने, पहचानने आदिकी स्वाभाविक चेष्टाओंके क्रमशः विकासके पूरे चार्ट बना दिए गए हैं । अन्तमें भोजन-सम्बन्धी तथा बच्चेकी उत्पत्तिकी सुन्दर तालिका दी गई है । 'चैकरकी रिपोर्ट' एवं 'अद्भुत प्राणी'-शीर्षक अध्याय हमें विशेष भले लगे । प्रत्येक गृहस्थीमें, विशेषकर प्रसव-विज्ञानका शौक रखनेवाली बहनोंके पास, इस पुस्तकका होना नितान्त आवश्यक है । साथ ही हम लेखक महोदयसे अनुरोध करेंगे कि वे आठ-दस मासके शिशुको वहीं लड़खड़ाने और रेंगने तक ही न छोड़ दें, प्रत्युत वयस्क बच्चोंके विकासमें सहायक अपने विविध अनुभव भी शीघ्र प्रकाशित करें । माता, पिता और धात्री तीनोंके सहयोगसे ही भावी सन्ततिका मंगलमय निर्माण होगा ।

—सत्यवती मलिक

संस्कृतका अध्ययन : लेखक—डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ; प्रकाशक—आरती-मन्दिर, पटना ; मूल्य १॥) ।

प्रस्तुत पुस्तकमें अनेक भारतीय और विदेशीय विद्वानोंके पुरातत्त्व-सम्बन्धी गवेषणाओंके उद्धरण तथा अनेक उपयोगी चित्र देकर यह सिद्ध किया गया है कि संस्कृत संसारकी सबसे पुरानी भाषा है । और वह वर्णमाला, लिपि, अंक, व्याकरण आदि प्रत्येक दृष्टिसे परिष्कृत और पूर्ण है । अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, जीव-विज्ञान, आयुर्वेद, शल्य, चिकित्सा, शरीर-विज्ञान, धातु-विद्या, वास्तुकला, भूमिकला, चित्रकला, संगीत, नाट्य, रस, नीति, साहित्य आदि सभी विषयोंका साहित्य सर्वप्रथम संस्कृत वाङ्मयमें ही उपलब्ध होता है । अन्य भाषाओं अथवा देशोंने उपर्युक्त सभी विषय पीछेसे अपनाए हैं । पुस्तकके दो अध्यायोंमें अनेक युक्ति-प्रमाणों द्वारा उक्त बात सिद्ध करके अनन्तर चौथे अध्यायमें भारतीय इतिहासपर प्रकाश डालते हुए बतलाया गया है कि भारतकी प्राचीन शासन-पद्धति कैसी थी । इस पुस्तकमें विद्वान् लेखकने यह भी बताया है कि ईसाकी कई शताब्दी तक भारतके नालन्दा आदि विश्व-विख्यात विश्वविद्यालयोंमें बहुसंख्यक विदेशी विद्यार्थी शिक्षा पाते थे । पाँचवें अध्यायमें संस्कृतकी पठन-पाठन-पद्धतिपर विचार किया गया है । इतिहास और राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है ।

निमाई (खण्डकाव्य) : लेखक—श्री अतुलकृष्ण गोस्वामी ; प्रकाशक—प्रेमसदन, वृन्दावन ; मूल्य १॥) ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

यह पद्यात्मक पुस्तक दो सर्गोंमें विभक्त है। इसमें वैष्णव सम्प्रदायके इष्टदेव निमाई (चैतन्य महाप्रभु) के जन्मसे लेकर कुछ जीवन-घटनाओंका वर्णन पद्योंमें किया गया है। धार्मिक विचारसे 'निमाई'का कितना ही महत्व क्यों न हो; परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोणसे यह अपना विशेष स्थान नहीं रखतो। पुस्तकमें अप्रचलित एवं क्लिष्टतर संस्कृत शब्दोंकी भरमार है। अनेक स्थानोंपर अस्वाभाविक सन्धियाँ की गई हैं। इससे शब्दोंका स्वाभाविक सौन्दर्य तो नष्ट हो ही गया है, साथ ही समझनेमें भी कठिनाई हो गई है। नमूना देखिए—

तुष्णी भूत अनन्य भाव रत सद नग्नाङ्ग निस्त्राण, श्री
नित्यानन्द समुत्सुकाति लखेन गौराङ्ग आस्याञ्ज थे।
आभा है उस ब्रह्मकी त्विषित मां सर्वत्र संसारमें
तुष्टा निर्मित सर्व वस्तु सम हैं मातः सुखोल्लासिके
कैसे फिर ये भूमि दूषित शुभे! स्वैरी विभा रश्मि पा

× × ×

शस्याढया हरिताभपुञ्ज नदिया स्त्रोती तटा संस्थिता।

यह काव्य श्री गोस्वामीजीने एक विशेष विचार-धारासे प्रभावित होकर लिखा है, अतः यह उनके लिए स्वान्त सुखाय हो सकता है। परन्तु साहित्य-शास्त्रियोंके लिए इसमें काव्यानन्दकी कहीं झलक भी दिखाई न देगी। यदि गोस्वामीजी अपने इस काव्यको संस्कृतमें लिखते, तो शायद उन्हें कुछ सफलता मिल सकती। —ऋषिदेव भट्ट

कामायनीका सरल अध्ययन : लेखक—श्री सत्यपाल विद्यालंकार ; प्रकाशक—हिन्दी-भवन, लाहौर; पृष्ठ २८४; मूल्य २)।

'प्रसाद'की 'कामायनी' वर्त्तमान हिन्दी-कविताकी महत्त्वपूर्ण कृति है। 'प्रसाद' अपनी 'भावना' और 'चिन्तन'को 'प्रासादिक ढंग'से व्यक्त करनेके आदी नहीं रहे। भाषा भी उनकी 'चलती हुई' नहीं है। अतः उनके काव्यको वही समझ सकता है, जो उसमें स्वयं भींगकर सिहरनेकी सहृदयता रखता है। 'कामायनीका सरल अध्ययन'के लेखकने कविकी अन्तरात्मामें प्रविष्ट होकर ही इस टीकात्मक 'अध्ययन'की सृष्टि की है। 'भाष्य'के पूर्व १०६ पृष्ठोंकी एक भूमिका जुड़ी हुई है, जिसमें 'कामायनी'की कथाका सार, 'कामायनी'की जीवन-मीमांसा, प्रसादजीका शैव दृष्टिकोण, 'कामायनी'की भाषा, छायावाद और रहस्यवाद, 'कामायनी'पर विहंगम दृष्टि और साहित्यमें उसका स्थान आदि विषयोंपर सुलझे हुए विचार प्रकट किए गए हैं। लेखकके विचारोंसे मतभेद होते हुए भी पुस्तककी उपादेयतामें सन्देह नहीं हो सकता। विद्यार्थियोंका इससे लाभ ही होगा।

कामायनी-मीमांसा : लेखक—श्री प्रेमनारायण टंडन ; प्रकाशक—रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा-प्रयाग ; मूल्य [illegible]

यह श्री प्रेमनारायण टंडन द्वारा श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री श्यामनारायण वैजल, श्री विश्वम्भर 'मानव', श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, स्व० रामचन्द्र शुल और विनयमोहन शर्माके 'कामायनी'पर विभिन्न दृष्टिकोणोंसे लिखे गए लेखोंका चयन-मात्र है। लेखोंमें यहां-वहां प्रूफ़की भूलें रह गई हैं। सबसे बड़ी भ्रामक भूल तो वह है, जहाँ श्री प्रेमनारायण टंडनको 'सम्पादक' न छापकर 'लेखक' छाप दिया गया है!

व्रजभाषा-साहित्यमें नायिका-निरूपण : रचयिता, श्री प्रभुदयाल मीतल ; प्रकाशक—अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल-भवन, मथुरा ; पृष्ठ १६६ ; मूल्य २)।

हिन्दीका रीतिकालीन साहित्य 'नायिका-निरूपण'से ही अभिरंजित है। 'नायिका-भेद'को कामशास्त्रका एक अंग माना जा सकता है, जिसमें 'स्त्री'को 'अवस्था' और 'स्थिति'के भेदसे मानसिक उथल-पुथलका चित्रण पाया जाता है। स्थितिके भेदसे नायिकाके तीन भेद माने गए हैं—स्वकीया, परकोया और सामान्या या गणिका। 'स्वकीया' अवस्था-भेदसे मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा हो सकती है। संयोग और वियोग-कालमें इनके मनकी स्थितिके विभिन्न रूपोंका वर्णन भी नायिका-भेदका विषय है। नायिका-निरूपणको हम मनोविज्ञानका एक अंग मान सकते हैं। रीतिकालीन कवियोंने इस 'विज्ञान'में अपना अच्छा कौशल प्रदर्शित किया है। श्री मीतलजीने प्राचीन आचार्योंके ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्ण अध्ययन किया है और अपनी पुस्तकके भूमिका-खण्डमें उन्हीं आचार्योंके विवेचनको अपने ढंगसे विशद रूपमें प्रस्तुत किया है। दूसरे भागमें प्राचीन काव्यसे नायिका-भेदके उदाहरण संचित किए गए हैं। रीतिकालीन नायिका-भेद-ग्रन्थोंमें जहाँ 'अश्लील' उदाहरणोंका बाहुल्य है, वहाँ प्रस्तुत पुस्तक इस 'दोष'से मुक्त है। जिन्हें नायिका-भेद-शास्त्रमें रुचि हो, वे इसे अवश्य पढ़ें। —विनयमोहन शर्मा

आर्यावर्त्त (ऐतिहासिक महाकाव्य) : रचयिता—श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' ; प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना ; पृष्ठ २१२ ; मूल्य ३), सजिल्द।

अपनी सुन्दर कृतियोंसे मातृभाषा हिन्दीका भण्डार भरनेमें बिहार-प्रान्तके जिन साहित्य-सेवियोंका नाम आदरपूर्वक लिया जा सकता है, उनमें श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। 'निर्माल्य' और 'एक तारा'में आपको कमनीय काव्य-कल्पनाकी ऊँची उड़ानका परिचय हमें बहुत पहले मिल चुका है। 'आर्यावर्त्त'के रचयिताके रूपमें अब महतोजी 'आज राष्ट्रीयता ही श्रेष्ठ आर्य धर्म है' का एक नवीन और सामयिक सन्देश लेकर हमारे सामने आए हैं। सचमुच उन्हींके शब्दोंमें यह उनकी 'ज्वालामयी साधना' है। भारतके अन्तिम आर्य-सम्राट महाराजा पृथ्वीराज किस प्रकार द्वेषकी दावाग्निमें झुलसे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए महाराजा जयचन्दका सहयोग पा जानेवाले विदेशी आक्रान्ता मुहम्मद गोरीसे बन्दी बनाए जाकर नेत्र-विहीन करके ग़ज़नी पहुँचाए जाते हैं तथा फिर प्रकार महाकवि चन्द और महारानी संयोगिता एक बार फिर अगठित आर्य-नरेशों और सामन्तोंका संगठन करके गोरीके दाँत खट्टे करते हैं, साथ ही किस प्रकार कवि चन्द ग़ज़नी पहुँचकर कारागारमें पड़े हुए महाराजा पृथ्वी-राजसे मिलता तथा किस कौशलसे उनके बाणसे गोरीका वध करवाता है, यही इस ऐतिहासिक महाकाव्यकी कथावस्तु है, जिसे द्वादश सर्गोंमें अमित्राक्षर छन्दमें पूर्ण किया गया है। प्रत्येक सर्गके वर्णनमें सजीवता और स्वाभाविकताका समावेश है। अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ ओजस्विता और वीरताकी साकार प्रतिमा-सी 'आर्यावर्त्त'के कविने खड़ी कर दी है। गोरीसे लड़नेको जाते समय महारानी संयोगिताके वीर-वेश-वर्णनका एक उदाहरण लीजिए :—

रत्नमय सोनेका किरीट-अंशुमाली-सा
करता प्रकाश है विकीर्ण रंग-रंगका ;
मानो इन्द्रचाप घेरकर पूर्ण शशिको
करता विभूषित है—अथवा स्वयम् ही
होता है विभूषित कलाधरकी शोभासे।
मूर्तिमान शोभाको मण्डन क्या चाहिए?
अष्टधातु-निर्मित सतारु अंग-अंगमें
रानीके सुशोभित हैं—मानो गिरिनन्दनी
असुर विदारिणीका लेके रूप रोषमें,
जा रही है खेलने रणांगनमें तारिणी!

कथोपकथनमें लाई गई सूक्तियोंके उदाहरण भी उल्लेखनीय हैं। यथा :—

हारे हुए शत्रु और चोट खाए व्याघ्रसे
खूब सावधान रहना ही बुद्धिमत्ता है।
× × ×
कोई खोजता है प्राण होमके सुकीर्तिको
पर कीर्ति स्वेच्छासे वरण कर लेती है
उस नररत्नको जो कर्मवीर धीर हो।
× × ×
जिसने न माना कभी लोहा तुच्छ मृत्युका
जीनेका वही तो अधिकारी है जगतमें।
भाग्यफल भोगनेको जड़वत वृक्ष-सा
इच्छाहीन, कर्महीन जीना धिक्कार है।

महाराजा जयचन्दके अवसानपर कही गई निम्नलिखित पंक्तियाँ भी अतीव हृदयग्राही और भावपूर्ण हैं :—

दीपशिखा लीन हुई जाके अंशुमालीमें,
लीन हुई लहर अनन्त पारावारमें।
सौंपकर निज कृत कर्म-भार प्रभुको,
सौंपकर यश - अपयश इतिहासको,
सौंपकर नाशवान देह मातृभूमिको,
राजा जयचन्द हुआ पार भव-सिन्धुके।

इस महाकाव्यके आदिमें श्री रामदहिन मिश्रका लिखा लगभग ५० पृष्ठोंका विवेचनात्मक परिचय है। महत्वपूर्ण वीर काव्यका हिन्दी-जगतमें पर्याप्त आदर हो, यह हमारी भाषा है।

जवानीका नशा : लेखक—श्री जयनाथ 'नलिन'; प्रकाशक—सामयिक साहित्य-सदन', चेम्बरलेन रोड, लाहौर; १९८; मूल्य २।)

प्रस्तुत पुस्तक साहित्यमालाका तेरहवाँ पुष्प है। रचयिता नलिनजी हिन्दीके उदीयमान प्रतिभाशाली लेखक आपकी लेखनीसे प्रसूत हुई हास्य और व्यंगकी ग्यारह का यह संग्रह पठनीय और सराहनीय है। किसी भी हास्यके नामपर शिष्टता और शालीनताकी मर्यादाका उल्लंघन हो, इसका लेखकने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। 'मनीआर्डरके 'प्रेमकी पीड़ा', 'परछाईंवादी डिबेटर', 'तीसरा दर्जा', 'इ और 'लाट साहबको विदाई' नामक कहानियाँ सचमुच जिनमें लेखकने मनोरंजनके साथ-साथ हमारे आजके मनोदशाका अच्छा चित्रण किया है। बहुधा कहानियोंका पात्र उठती हुई उम्रका ऐसा युवक है, जो जीवनके उतार-च घाटियोंमें होकर नहीं गुज़रा है, इसीलिए सम्भावतः पुस्तकका नाम 'जवानीका नशा' रखा है, जो सर्वथा उपयु पुस्तककी भाषा सरल और सुबोध है। —विष्णुशंकर

हमारे सहयोगी

बच्चोंकी दुनियामें 'बालसखा'ने अपना विशिष्ट स्थान लिया है। उसकी सामग्री, सजावट और सुन्दरता उसकी अधिक लोकप्रियताका विशेष कारण हैं। अभी हाल ही में 'वार्षिक बालसखा' नामसे अपना २५० पृष्ठोंका प्रकाशित किया है। इसमें बालक-बालिकाओंके मनोरंजन, वर्द्धन और मनन करनेके लिए अनेक विचारपूर्ण लेख, कहानियाँ, कविताएँ और चुटकुले हैं। इसे हम बच्चोंके बहलाव और शिक्षणका एक खासा अच्छा पिटारा कह सकते हैं। आशा है, बच्चे इसे खूब पसन्द करेंगे।

नसीनू, सूवा (फिजी) से इधर कुछ समयसे 'झान' बच्चोंका एक सुन्दर पाक्षिक पत्र निकलने लगा है। प्रेसकी न होनेसे यह स्टेन्सिल द्वारा ही मुद्रित होता है। इसकी छपाई और सजावट बड़ी आकर्षक होती है। लायक हर अंकमें अच्छे चुटकुले, कविताएँ, कहानी और रहते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

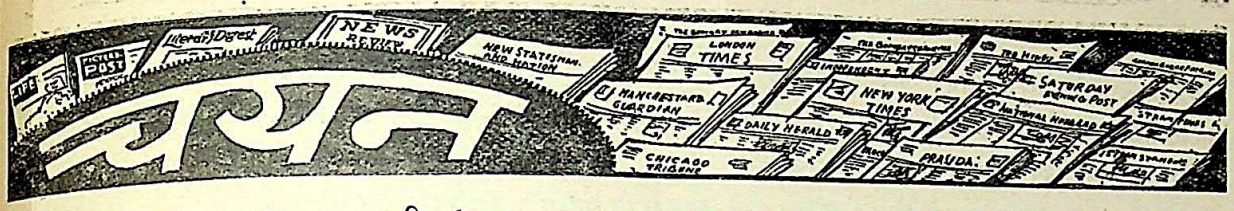

नई 'भोजपत्री भागवद्गीता'

गोंडल (काठियावाड़) को रसशाला-औषधालयके अध्यक्ष राजवैद्य जीवाराम कालिदास शास्त्रीने गत ३० वर्षोंकी शोध और परिश्रमके बाद अभी हाल ही में भोजपत्रो भागवद्गीता प्रकाशित की है, जो गीताकी सबसे प्राचीन प्रति बतलाई जाती है। प्रचलित गीतासे इसके मूलमें भी काफ़ी अन्तर है। अब तक गीताके ७०० श्लोक ही उपलब्ध थे, जब कि इसमें ७४५ श्लोक हैं। कहते हैं कि इनमें से ६२० भगवान कृष्णने, ५७ अर्जुनने, ६७ संजयने और एक धृतराष्ट्रने रचा था। अब तक शंकरके जिस भाष्यको प्रामाणिक माना गया है, उसमें ७०० श्लोक ही हैं। 'यादव-प्रकाश' आदिके आधारपर श्री वेदान्त देशिकणने जो 'तात्पर्यचन्द्रिका' लिखी है, उससे भी विद्वानोंने शास्त्रीजी द्वारा आविष्कृत ४५ श्लोकोंकी प्रामाणिकताकी जाँच की और उन्हें ठीक पाया। अतएव कहा जा सकता है कि यह नई गीता प्रचलित गीताओंके लिए एक बड़ो सबल चुनौतो है। ('हिन्दू')

मेक्सिकोमें साक्षरता-प्रचार

मैक्सिकोने साक्षरता-प्रचार-आन्दोलन बड़े ज़ोरोंसे शुरू किया है। राष्ट्रपति एविला कामाशो द्वारा २१ अगस्त, १९४४ को जारी किए गए आदेशके अनुसार १८ से ६० वर्षके नागरिकको कम-से-कम एक निरक्षर नागरिकको स्वेच्छासे साक्षर बनाना होगा। इस आन्दोलनको तीन विभागोंमें बाँटा गया है। सर्व-प्रथम तो निरक्षर लोगोंमें एक-एक वर्ण-परिचय और एक-एक नोटबुक बाँटी गई। इस प्रकार करोड़ों वर्ण-परिचय और नोटबुकें बाँटी जा चुकी हैं। मैक्सिकोमें कुल १४ हज़ार गाँव हैं और कोई एक करोड़ निरक्षर लोग। ये लोग ५२ बोलियाँ बोलते हैं, जिनमें दक्षिणके चामुलास, शियाया, तरामरेश, छिहुआहुआ आदिमें 'इण्डियनों'की बहुतायत है। बोलियोंके समूहोंके अनुसार इन्हें ४०५० छात्रोंके दलोंमें बाँटा गया है। तीसरा और सबसे कठिन काम होगा साक्षरोंकी जाँच, जो १ मार्च, १९४६ से आरंभ होकर संभवतः सितम्बर तक चलेगा। ('टाइम')

सिपाहियोंका साथी अर्नी पाइल

प्रशान्तके युद्ध-क्षेत्रमें स्क्रिप्स-हावर्ड पत्रोंके अमरीकन युद्ध-संवाददाता अर्नी पाइलके मारे जानेका समाचार सर्वत्र बड़े दुःख और निराशाके साथ पढ़ा जायगा। युद्धसे पहले बहुत कम लोग पाइलका नाम जाते थे, पर आज उसके नामसे अमरीकाका बच्चा-बच्चा परिचित है। इसका मुख्य कारण है पाइलके युद्ध-समाचारोंकी अपनी विशिष्टता। उसने कभी भी बड़े जनरलोंसे भेंट नहीं की और न कभी युद्ध-नीतिके सम्बन्धमें आशाप्रद भविष्यवाणी या सुन्दर व्याख्याएँ कीं। उसने केवल यह लिखा कि युद्धका साधारण सिपाहीके जीवन—उसके विचारों और रहन-सहन—पर क्या असर पड़ता है? वह वर्त्तमान और भविष्यके बारेमें क्या सोचता है? कब वह तकलीफ़ और डरमें रहता है तथा कब वीरता और उत्साहमें? 'रैमंड क्रैपर मेमोरियल एवार्ड' उसे दो बार दिया गया। पाइल स्वयं दुबला-पतला और बड़ा डरपोक था, अतः तोपोंके चलनेपर अपने डरनेकी बात भी उसने लिखी है। जहाँ वह नागरिकोंको सैनिक जीवनकी ये सब बातें बताता था, सैनिकोंको उनके घरोंकी बातें भी बताता था—यथा युद्ध-स्थितिके कारण अमरीकाके नगरोंका जीवन कैसा हो गया है, चीज़ोंकी कमी और दरोंको वृद्धिका क्या असर पड़ रहा है, युद्ध और अपने सम्बन्धियोंकी खबरें पाकर नागरिकोंमें क्या प्रतिक्रिया होती है आदि। इन सबने पाइल और उसकी चीज़ोंको इतना लोकप्रिय बना दिया कि हालीवुडवालोंने अमरीकन सेनाके साथ उसका फिल्म तैयार करनेका अनुरोध किया। पाइलने इस निमंत्रणको केवल इस शर्त्तपर स्वीकार किया कि उसे फिल्ममें अधिक गौरवान्वित न कर वैसा ही दिखाया जाय, जैसा कि वह है। अब फ़िल्ममें पाइलका काम बर्गेस मेरेडिथ नामका अभि-नेता कर रहा है। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका, उत्तर-पश्चिमी यूरोप और मध्य-पूर्वकी यात्राओंके बाद गत फरवरीमें ही पाइल प्रशान्त के युद्ध-क्षेत्रमें गया था। पाइलके ग्रन्थोंमें 'ब्रेव मैन' तथा 'दिस अवर वार' उल्लेखनीय हैं।

राजाओंको बिदा करो

प्रसिद्ध अंगरेज़ लेखक हरबर्ट जार्ज (एच० जी०) वेल्सने अभी हाल हो में लिखा है—"...हम चाहते हैं कि सभी लोगों में सारी बातोंको समझनेकी शक्ति उत्पन्न की जाय। राजाओं, राजकुमारों, फ्यूहररों, डिक्टेटरों आदि कभी ग़लती न करनेवाले जो शिक्षक आज भी हमें अंधकारमें रखनेके लिए षड्यंत्र रच रहे हैं, उन्हें हम रोष-भरी दृष्टिसे देखते हैं। इन राजाओंमें मैं ब्रिटेनके राजाको शामिल नहीं करता। क्रामवेल, मिल्टन, शेली आदिका देशवासी होनेके नाते मैं भी गणतंत्रवादी हूँ। लेकिन मैं इस बातको मानता हूँ कि ब्रिटिश राजतंत्र अब सिर्फ़ सिद्धान्त रूपमें ही अपना अस्तित्व बचाए हुए है और आजके ज़मानेमें वह कार्यतः क़ानूनके नियंत्रणमें ही है। राजा अपने ज़िम्मेदार मंत्रियोंकी सलाहके अनुसार ही चलता है। यही उसके अस्तित्व का सार है। पर अन्यान्य राजा, राजकुमार आदि पूँजीपतियोंके किसी गुट्टके चंगुलमें फँसे रहते हैं। उनके दरबार और वंश आदिकी बातें बेतुकी हैं। अब समय आ गया है, जब कि संयुक्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गणतंत्रों, उनके विचारोंके समर्थक अखबारों और उनके निर्द्धारित पथपर चलनेवाले वैदेशिक विभागोंको इस बातका ऐलान कर देना चाहिए कि राजाओंका अस्तित्व अब मिटना ही चाहिए।

"आज हमारे सामने बहुत-से लोग 'नेता'के रूपमें आत्म-प्रकाश करके हमसे अस्त्र-शस्त्र माँग रहे हैं, ताकि वे हमारे ही खिलाफ़ इस्तेमाल किए जा सकें। हमें उनसे कह देना चाहिए कि तुम अपना-सा मुँह लेकर भाग जाओ। इनका अस्तित्व लाखों लोगोंके जीवन और आनन्दको खतरेमें डाले रहता है। आज सर्वत्र लोग जीवनके विषयमें वास्तववादी होते जा रहे हैं। इतने दिनों तक सताए जानेके कारण अब आम लोगोंके आचरणमें एक प्रकारकी निर्दयता-सी आ गई है।"

हुक्म हाकिमका है

गत २४ मईको राँचीमें बिहारके गवर्नरने विजयोत्सवपर भाषण देते हुए कहा बतलाते हैं कि जब तक हिंसा-वृत्तिवाले अपने षड्यन्त्रोंसे बाज़ नहीं आते और जो ऐसे षड्यन्त्रोंमें लगे हैं, वे भविष्यमें भले आदमियोंकी तरह रहनेका विश्वास नहीं दिलाते, तब तक भारत-रक्षा-क़ानूनका उठाना सम्भव नहीं। इस भाषणको ध्यानमें रखकर बिहारके भूतपूर्व कांग्रेसी प्रधान-मन्त्री बाबू श्रीकृष्णसिंहने एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है, जिसके कुछ उल्लेखनीय अंश पाठकोंकी जानकारीके लिए नीचे दिए जा रहे हैं—

"भारत-रक्षा-क़ानूनके नियमोंको जारी रखनेके पक्षमें गवर्नर महोदयने जो दलील पेश की है, वह उचित और युक्तिसंगत नहीं मालूम होती। अदालतमें नियमानुकूल अपराधी ठहराये बिना किसीकी स्वतन्त्रताका अपहरण करना और उसको जेलमें बन्द करना आजकलके सभ्य समाजमें अत्यन्त गर्हित बात समझी जाती है। जब तक यूरोपमें लड़ाईका अन्त नहीं हुआ था और जापानसे सचमुचमें हिन्दुस्तानको खतरा था, तब तक भारत-रक्षा-क़ानूनके नियमोंको जारी रखना जायज़ हो सकता था। किन्तु अब जब कि जर्मनी केवल हारा ही नहीं है, बल्कि उसने बिना शर्त्त आत्मसमर्पण कर दिया है और जापान भारतवर्षके लिए वास्तवमें खतरेका कारण नहीं रह गया है; भारत-रक्षा-क़ानूनके पाशको हमारे गलेमें पूर्ववत् जकड़े हुए रखना अनुचित ही नहीं, बल्कि हमारे जनतन्त्रीय अधिकारोंसे साथ भारी अन्याय करना है। हमारी समझमें भारत-रक्षा-क़ानूनको गवर्नमेंटके इस प्रकार चिपटकर धरनेका कारण यह है कि वह समझती है कि एक ऐसी गवर्नमेंटके लिए जो जनमतपर क़ायम नहीं है, लोगोंपर शासन करनेके लिए इस प्रकारके क़ानूनसे बढ़कर आसान कोई दूसरा साधन नहीं हो सकता है।

"राष्ट्रीय बचत-आन्दोलनको सफल बनाने और निश्चित रक़मको वसूल करनेमें नागरिक स्वतन्त्रताके साथ जो [illegible] हुई है, वह अब छिपी नहीं है। स्वयं गवर्नर महोदय [illegible] कहे जानेपर कि बचत-आन्दोलनमें दबावसे काम नहीं लिया चाहिए, इस बारका बचत-आन्दोलन भी दबावसे खाली रहा। भागलपुरके तथा पूर्णियाके कुछ हिस्सोंमें हालमें [illegible] करते हुए मुझे इसके अनेक प्रमाण मिले। इसी माहके [illegible] पूर्णियाँ ज़िलेका दौरा करते समय मेरी एक सत्तर वर्षके [illegible] मुलाक़ात हुई, जिसने मुझसे कहा कि बचत-फण्डके लिए [illegible] गई रक़मको देनेमें असमर्थता प्रकट करनेपर उसे कपड़े [illegible] उठाया गया और बादमें उसके सिरको लकड़ीके खम्भेसे [illegible] गया। एक बस्तीमें मैंने पाया कि चौकीदार ही वहांका [illegible] था। अपनी नाजायज़ हरकतोंसे उसने सारी बस्तीको [illegible] कर रखा था। तेलकी बस्तीमें मुझे मालूम हुआ कि [illegible] व्यक्तियोंको खोजकर गिरफ़्तार करनेके बहाने रात्रिके [illegible] पुलिसका दस्ता महिलाओंको हटनेकी सुविधा दिए बिना ही [illegible] में बेधड़क घुस जाता था। हाल ही में पूर्णिया-ज़िलेके [illegible] सम्बन्धमें श्री वैद्यनाथप्रसाद चौधरीका एक वक्तव्य निकला [illegible] उसके बाद मैं इन इलाक़ोंमें घूमने गया और वहां भी मुझे [illegible] क़ानूनी तरीक़ेसे ज़ायदाद अपहरण करने तथा लोगोंकी [illegible] स्वतन्त्रताओंके साथ हस्तक्षेप करनेकी बातें सुननेमें [illegible] भागलपुरके इलाक़ोंमें भ्रमण करते समय मुझे यह देखनेमें [illegible] कि वहाँ गिरफ्तारियाँ इस ढंगसे की गईं कि अनेक [illegible] साधारण पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। कुछ [illegible] वृद्ध लोग पकड़े गए, जो फ़रारके पिता अथवा सम्बन्धी थे।

"वाकायदा तजवीजके बिना किसी व्यक्तिकी स्वतन्त्र [illegible] अपहरण करनेका अधिकार किसी गवर्नमेंटके हाथमें एक [illegible] हथकण्डा है। जहाँकी गवर्नमेंट जनमतपर क़ायम है [illegible] यह आशा की जा सकती है कि इस प्रकारके हथकण्डेका [illegible] विवेकपूर्ण होगा; किन्तु पराधीन देशमें इसका विवेकपूर्ण [illegible] कठिन है। हम पराधीन हैं और बिहार गवर्नमेंटका [illegible] लोकमतसे सम्पर्क नहीं है। भारत-रक्षा-क़ानूनके द्वारा दिए [illegible] इस कठोर अस्त्रको कार्यमें लानेके लिए उसको मुख्यतया [illegible] रिपोर्टोंपर निर्भर करना पड़ता है, जो अन्धकारमें तैयार [illegible] हैं। ये रिपोर्टें कैसी होती होंगी, इसका कुछ अन्दाज मुझे [illegible] मिला, जब मुझे एक विश्वस्त मित्रने कुछ ऐसी बातें कहीं [illegible] मालूम हुआ है कि कुछ ऐसी ही रिपोर्टोंने, प्रान्तके एक [illegible] और सच्चे गांधीवादीके सम्बन्धमें, एक अत्यन्त चालाक [illegible] कुछ उच्च पदाधिकारियोंके हृदयमें, खड़ी कर दी है। ऐसा [illegible] जाता है कि मुख्यतया इन रिपोर्टोंके आधारपर ही प्रान्तके [illegible] व्यक्ति नज़रबन्द हुए और आज भी नज़रबन्द हैं।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्पादकीय विचार

जर्मनीका आत्म-समर्पण

ब्रिटेन-अमरीका और रूसमें फूट डालनेकी अन्तिम चालोंके बेकार होनेपर गत ७ मईको आधीरातके बाद जर्मनीकी थल, जल और हवाई सेनाओंने मित्र-पक्षके आगे बिला शर्त्त आत्म-समर्पण कर दिया। पर इस फौजी हारको राजनीतिक जीतमें परिणत करनेकी कुचेष्टासे जर्मन फिर भी बाज़ न आए। रूसियों के खिलाफ़ ज़हर उगलने और अंगरेज सैनिकों तथा अफ़सरोंकी तारीफ़ करनेके सिवा लगभग सभी बड़े-बड़े नात्सी-अधिकारियों ने—जो आत्म-हत्या नहीं कर सके, और शायद किसी भावी दुराशाको लेकर जीवित रहे—अपने-आपको तथा यूरोप-भरमें लूटे गए सोने, जवाहरात और कला-कृतियोंके वृहत् संग्रहको ब्रिटिश या अमरीकन सैनिकोंको ही सौंपा; रूसियोंको नहीं। ब्रिटिश तथा अमरीकन अधिकारियोंने आत्म-समर्पण करनेवाले जर्मन युद्ध-बन्दियोंके साथ जेनेवा-विधानके अनुसार ही बर्त्ताव किया। हिटलरके उत्तराधिकारी डोनिट्ज़की फ़्लेंज़बुर्ग-स्थित नाम-शेष सरकारको आत्म-समर्पणका कार्य पूरा होने तक काम करने दिया गया और २४ मईको उसका भी अन्त कर दिया गया।

वर्त्तमान जर्मन-राइखकी स्थापना १८७० में हुई थी। उससे पूर्व यह अनेक ज़मींदारियों, म्युनिस्पैलिटियों और स्वतंत्र नगरोंमें बँटा था, जो सदा आपसमें लड़ा-भिड़ा करते थे। इसके होहेनज़ोलेर्न-वंशीय शासक और प्रुशियन जागीरदार अपने सैनिक-बलके लिए 'प्रसिद्ध' रहे हैं। बादमें आर्यत्वकी भ्रान्तिने इनमें रक्तकी विशुद्धता और वर्णकी श्रेष्ठताका ऐसा भूत भरा कि ये समूचे विश्वपर शासन करनेका स्वप्न देखने लगे। १९१४ में बड़े भीषण रूपमें जर्मनोंके इस मिथ्या अभिमानने विश्वकी शान्ति और विवेकको चुनौती दी। पर १९१८ में उन्हें मुँहकी खानी पड़ी। १९३९ में उन्होंने फिर अपना भाग्य आज़माया और १९४५ में फिर परास्त हुए। इस पराजयने जहाँ एक ओर वेहरमाख्ट, फ़ाकस्ट्रूम और लुफ़्टवाफ़ेकी अजेयताकी भ्रान्तिका भण्डाफोड़ कर दिया है, वहाँ अपने-आपको विशुद्ध आर्य कहने और समझनेवाले जर्मन बौड़मोंकी रक्त और वर्ण-श्रेष्ठताका खोखलापन भी उघाड़कर रख दिया है। इतना बड़ा और महँगा मूल्य चुकानेके बाद कदाचित् अब जर्मन महसूस कर रहे होंगे कि अब तक वे दुनियाको नहीं, बल्कि स्वयं अपने-आपको ही धोखा देते रहे हैं।

दूसरे महायुद्धकी क्षति

इस महायुद्धमें जन और धनकी जो अपार क्षति हुई है, उसका ठीक-ठीक कूता जाना तो शायद अभी असंभव है। मोटे तौरपर उसका अन्दाज़ भी शायद वर्षों बाद ही लगाया जा सके। अतः फ़िलहाल जो आँकड़े सरकारी तौरपर प्रकाशित किए गए हैं, हमें उन्हींपर सन्तोष करना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यके हताहतोंकी संख्या ११२६८०२ सैनिक और ५९७९३ नागरिक है। इनमें अकेले इंग्लैण्डके हताहत ६८५६३८ हैं। साम्राज्यके ४८२ जहाज़ और ११४९ हवाई जहाज़ नष्ट हुए हैं। अमरीका के १५९४१ हवाई-जहाज़ नष्ट हुए और १००२८८७ सैनिक हताहत हुए। इनमें से बहुतसे गायब और युद्ध-बन्दी भी हैं। सबसे अधिक नुक़सान रूसको हुआ, जिसके लगभग २ करोड़ आदमी नात्सियोंके मुक़ाबले, नज़रबन्द और यन्त्रणा-कैम्पों तथा अकाल और रोगोंके शिकार हुए। उसके जो नगर-ग्राम नष्ट हुए हैं, कारखाने ध्वस्त हुए हैं और खानों तथा बाँधोंकी हानि हुई है, उसको कई अरब पौण्ड कूता गया है। इस सबके सिवा, जर्मनीकी अपनी और उसके अधिकृत देशोंकी जो हानि हुई है, उसका अभी ठीक-ठीक पता नहीं चला है। जर्मनोंने सिर्फ़ धन और जनकी क्षतिपर ही सन्तोष नहीं किया; बल्कि मध्य-युगीन यूरोपकी दुर्लभ कला-कृतियों, अद्वितीय कला-संग्रहालयों तथा विविध भाषाओंके महत्त्वपूर्ण वृहत् पुस्तकालयों तकको नष्ट-भ्रष्टकर इन बर्बर दस्युओंने सभ्यता और संस्कृतिकी कुछ अलभ्य देनोंका भी अन्त कर दिया। गत ६ वर्षोंके खून, चोरी, लूट, बलात्कार, अग्निकाण्ड और विनाशके इस दुर्द्धर्ष खेलमें हुई कुल हानिकी तो कल्पनासे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं!

अपराधियोंके साथ बर्त्ताव

पहले अपने देशमें और फिर यूरोपमें खून और नाशकी ज़हरीली लपटें फैलानेवाले इन नराधम बर्बरोंके साथ कैसा बर्त्ताव किया जाय, इस सम्बन्धमें तेहरान-मन्त्रणाके बाद मित्र-राष्ट्रोंने एक अपराध-कमीशन नियुक्त किया था। पर ब्रिटेन और अमरीकाके अधिकारियोंके अनिश्चित रुखके कारण उसका अस्तित्व आज दिखाई नहीं देता। ब्रिटेनके अपराध-कमीशनके अध्यक्षने तो सरकारसे मतभेद हो जानेके कारण इस्तीफ़ा ही दे दिया था, जिसका ठीक स्पष्टीकरण आज तक भी नहीं हुआ है। अभी तक भी अमरीका और ब्रिटेनने इस कामके लिए अपने-अपने प्रतिनिधि नियुक्त करनेके सिवा और कुछ नहीं किया है। इससे ब्रिटिश और अमरीकन जनताके साथ ही रूसियोंके मनमें भी, जिन्होंने नात्सी-बर्बरताका सबसे निकृष्ट फल भोगा है, सन्देह पैदा होना स्वाभाविक ही है। डोनिट्ज़के नात्सी दलको आत्म-समर्पणके

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाद भी सत्तारूढ़ रखना, फ्लेंज़बुर्ग-रेडियोको शरारत-भरा प्रोपेगेण्डा करने देना और बड़े-बड़े नात्सी-अधिकारियोंकी गिरफ़्तारीमें तथा गिरफ़्तारीके बाद उन्हें सुरक्षित रखनेमें ढिलाई दिखाना मित्र-देशोंकी जनताके क्षोभके प्रमुख कारण हैं। यह कोई खेल तो था नहीं, जिसके खत्म होनेपर नात्सियोंसे हाथ मिलाना ज़रूरी हो। वैसे भी यह कम आश्चर्य और खेदकी बात नहीं है कि जब यूनान, यूगोस्लाविया, चेकोस्लाविया, इटली, नार्वे, डेन्मार्क, फ्रांस आदिमें शत्रुका साथ देनेवाले हज़ारों ग़द्दारोंके मामलोंपर न केवल विचार ही आरम्भ हो गया है, बल्कि बहुतसे दण्डित भी हो चुके हैं; मित्र-राष्ट्र इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कर रहे।

हिटलर, हिमलर, गोयबल्स और अन्य कई प्रमुख नात्सी दस्युओंने तो आत्म-हत्याकर न्यायको चकमा दिया ही है; पर जो जीवित हैं, वे भी तरह-तरहकी चालोंसे धोखा देनेकी कोशिश कर रहे हैं। पकड़े जानेपर गोयरिंगने कहा है कि मतभेद हो जानेपर हिटलरने उसे न सिर्फ़ निकाल ही दिया था, बल्कि प्राणदण्ड भी दिया था। पर इससे क्या उसके जीवन-भरके अपराध मिट जाते हैं? आत्म-समर्पणके बाद डोनिट्ज़ने जर्मनोंके साथ सम्मान और स्वाधीन देशके नागरिकोंका-सा बर्त्ताव किए जानेकी दुहाई दी है। पर इसी जल्लादने एक दिन जर्मन सैनिकोंको गुरु-मन्त्र दिया था—'खून, खून और खून!' जोडलने मगरमच्छके-से आँसू बहाते हुए कहा कि जर्मनी तो आगे ही बहुत दुःख-कष्ट भोग चुका है, उसपर रहम किया जाय। इसी नराधमने अधिकार-मदमें एक दिन मित्र-पक्षके युद्ध-बन्दियोंको भूख, यन्त्रणा और बेज़ैंटाइन तथा नपुंसकताके इंजेक्शनों द्वारा मरवाया और अधमरा करवाया था। फ्रान क्राज़िकने जर्मनीकी सम्मानपूर्ण स्थितिके लिए दयापूर्ण और स्वतन्त्र देशका-सा व्यवहार किए जानेकी माँग की है। पर उस समय इसकी बुद्धि कहाँ चरने चली गई थी, जब जर्मन-अधिकृत देशोंके नागरिक इसकी आज्ञासे कोड़ों, गोलियों और संगीनोंके शिकार बनाए जाते थे? क्या तब कभी उसने इनके प्रति दया दिखलाई, या इनकी स्वतन्त्रता और सम्मानका खयाल किया था? ऐसी स्थितिमें इन खूनियों, लुटेरों और दुराचारियोंके साथ—जिन्होंने अपने कुकर्मोंसे पशुओं और शैतानोंको भी लज्जित किया है—दया दिखाने या अच्छा बर्त्ताव करनेका प्रश्न मनुष्यता एवं सभ्यता-संस्कृतिके प्रति भारी अपराध और विश्वासघात जान पड़ता है।

जर्मनोंका भविष्य

अभी तक तो जर्मनीके अस्थायी फ़ौजी शासनके बारेमें भी मित्रराष्ट्र कुछ तय नहीं कर पाए हैं; अतः उसके भविष्यके बारेमें उन्होंने कोई निश्चित रूप-रेखा तैयार की होगी, ऐसा समझना असामयिक ही होगा। ब्रिटिश और अमरीकन पत्रोंने इस सम्बन्धमें बड़े ही परस्पर-विरोधी मत प्रकट किए हैं। अमरीका के पूँजीवादियोंका कहना है कि जर्मनीके बड़े-बड़े उद्योगोंको सदाके लिए खत्मकर उसे कृषि-प्रधान देश बना दिया जाय, जिससे वह फिर विशाल युद्ध-यन्त्र तैयारकर विश्व-शान्तिको खतरेमें न डाल सके। ब्रिटेनके पूँजीवादियों और टोरियोंमें अभी भी उसके प्रशंसकोंकी कमी नहीं है। वे न तो यह चाहते हैं कि उसे अमरीकाकी मण्डी बने और न यही कि वह दूसरा रूस बने। पर इन दोनोंके बीचका अपना कोई मार्ग अभी वे स्थिर नहीं कर पाए हैं। कदाचित् इसीलिए उनमें से कुछने कहना शुरू किया है कि जर्मनीके साथ कठोर और प्रतिशोधपूर्ण बर्त्ताव न हो।

जिन लोगोंने हिटलरके सत्तारूढ़ होनेके बादसे जर्मनीके अब तकके राजनीतिक, अर्थनीतिक एवं सामाजिक विकासके विभिन्न पहलुओंका बारीकीसे अध्ययन किया है, उन्हें यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि इस नर-पिशाचने जर्मनीके बच्चे-बच्चेके खूनमें आर्यत्वकी श्रेष्ठता; गैर-आर्योंके प्रति घृणा और उन्हें गुलाम करनेकी भावना तथा खून, लूट और बल-प्रयोग द्वारा विश्व-साम्राज्य प्राप्त करनेका ज़हर भर दिया है। अतः सर्वप्रथम जर्मनीकी समस्या मनोवैज्ञानिक है। प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता प्रो० डुर्लेने कहा है कि १० प्रतिशत जर्मन तो असाध्य रूपसे विकृत मस्तिष्कके हैं। पर शायद यह संख्या और भी अधिक हो, क्योंकि युद्ध-काल और उसके बाद भी जर्मनोंने जिस ढंगसे आचरण किया है, वह उनके अर्द्धपशु या शैतान होनेका ही ज्यादा परिचायक है। अधिकृत देशोंकी जनता, युद्ध-बन्दियों और विशेषकर 'गुलामों'के साथ जर्मनोंने जैसे निर्मम दुर्व्यवहार किए हैं, उनके चित्र देख तथा विवरण पढ़कर ही कलेजा मुँहको आ जाता है। स्त्रियाँ तक इन ज़ुल्मोंके करनेमें पीछे नहीं रही हैं। सर बर्नार्ड स्पिलसबरीने अपनी आँखोंसे बुकेनवाल्ड-कैम्पके अध्यक्षकी पत्नी फ्राउ कौशके यहाँ आदमीकी खालके बने लैम्प-शेड तथा और भी कई चीज़ें देखी हैं। ब्रिटिश पार्लमेण्टकी सदस्या श्रीमती वेडगवुड टेटने अधिकृत-जर्मनीसे लौटकर बतलाया है कि मित्र-बन्दियोंकी सड़ी-जली लाशोंके ढेर दिखाए जानेपर भी जर्मन नागरिकोंके चेहरोंपर खेद या पश्चात्तापके भाव नहीं देखे गए। इन राक्षसी-मया-हीन लोगोंको क्या सामान्य मनुष्य ही कहा जायगा!

इसलिए जब तक जर्मनोंकी ज़हनियतको आमूल-चूल बदला नहीं जायगा, वे दुनियाको चैनसे नहीं रहने देंगे। गेटे, शोपेनहर, बिटोफ़न और वागनर, निट्शे और मेक्समूलरके अवदानोंने एक दिन जर्मनीको सभ्य संसारके मूर्द्धन्यपर प्रतिष्ठित किया था। पर शीघ्र ही फ्राइड्रिख, बिस्मार्क, विलियम द्वितीय, क़ैसर और हिण्डेनबुर्गके सैनिकवादने जर्मनीके उस गौरवपर कालिख पोत दी। हिटलरके आर्यवाद और यहूदी-विरोधने उसका रहा-सहा दम भी निकाल दिया। आज जर्मनी दर्शन, काव्य, संगीत, ललित-कला, विज्ञान आदिके लिए नहीं,

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पशु-बलके लिए 'प्रसिद्ध' है। इसे फिर मानव बनानेके लिए असाधारण त्याग, लगन, धैर्य और भगीरथ प्रयत्नकी आवश्यकता है।

ब्रिटिश ग़द्दारोंका विचार

पूँजीवादी शासनमें ग़द्दार और वतन-फ़रोश कहाँ नहीं होते? यूरोपके लगभग सभी देशोंमें काफ़ी बड़ी तादादमें अब वे सामने आ रहे हैं। ब्रिटेनमें यद्यपि फ़ाशिस्त नेता मोसले और कप्तान रेम्ज़ेको उनके साथी-संगियों-सहित पहले ही पकड़ लिया गया था, पर कुछ लोग भागकर जर्मनी पहुँच ही गए। इनमें भारत-मन्त्री एमरीका लड़का जान एमरी, विलियम जायस (लार्ड हा-हा!), मार्गेरेट व्हाइट, नार्मन बेली स्टीवार्ट और पी० जी० वोडहाउसके नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। स्काटलैण्ड-यार्डने इन्हें पकड़ने और ब्रिटिश पत्रोंने इनकी निन्दा करने तथा शीघ्र इनके अपराधोंका विचार किए जानेकी माँग करनेमें जितनी तत्परता दिखाई है, उतनी जघन्य नात्सी-अपराधियोंके बारेमें नहीं। हो सकता है ब्रिटिश जनता इन ग़द्दारोंके कारण बहुत लज्जा एवं ग्लानि अनुभव कर रही हो। हर हालतमें इन्हें शीघ्र और पर्याप्त दण्ड मिलना ही चाहिए।

किसी विदेशी सत्ताके अधीन हो स्वदेशके खिलाफ़ लिख-बोलकर प्रचार करनेवाले ग़द्दारोंके प्रति ब्रिटिश जनताका यह क्षोभ, घृणा और ग्लानि हमें उससे एक सामान्य प्रश्न करनेको प्रोत्साहित करते हैं। जिन भारतीयोंको किराएपर रखकर ब्रिटिश अधिकारी अमरीका और ब्रिटेनमें एक अर्सेसे भारत-विरोधी प्रचार करा रहे हैं, उनके बारेमें ब्रिटिश जनता क्या सोचती है? उनपर भारत और ब्रिटेनके कर-दाताओंकी गाढ़ी कमाईका जो अपव्यय हो रहा है, उसके बारेमें वह क्यों मौन है?

क्या सेनफ्रांसिस्को-कांफ्रेंस सफल होगी?

युद्ध-कालकी एकता शान्ति-कालमें भी जारी रहे, यह उस वक्त तक ज़रूरी नहीं, जब तक कि एकताके सभी साझीदारोंके दिल व दिमाग़ साफ़ न हों। अगर ऐसा होता, तो गत २५ अप्रैलसे सेनफ्रांसिस्कोमें जो कान्फ्रेंस हो रही है, वह बहुत पहले ही कुछ सार्थक निर्णय करके भंग हो गई होती। पर हम देख रहे हैं कि द्रौपदीकी साड़ीकी तरह उसका अन्त भी कहीं नज़र नहीं आ रहा। गत ४ जूनका रायटरका संवाद है कि 'वीटो'के सम्बन्धमें रूस द्वारा फ्रांस, ब्रिटेन, अमरीका और चीनके समझौता-प्रस्तावके अस्वीकृत कर दिए जानेसे कांफ्रेंसमें पूर्णतया ज़िच उपस्थित हो गया है। रूसी प्रतिनिधि सोबोलेफ़के अकस्मात वापस बुला लिए जानेसे प्रतिनिधिगण और भी हैरतमें पड़ गए हैं। इससे पहले लगभग हर प्रश्नपर मित्र-राष्ट्रोंमें मतभेद होने और कांफ्रेंसमें ज़िच पैदा होनेके ही समाचार आते रहे हैं। कांफ्रेंसके कार्यक्रमकी प्रगतिके सम्बन्धमें रायटरका यह संवाद बड़ा दिलचस्प है—"सेनफ्रांसिस्को-कांफ्रेंस अब कार्यक्रमसे बुरी तरह पिछड़ रही है। एक सप्ताह पूर्व प्रतिनिधियों ने जिन मसलोंको व्यावहारिक रूपसे तय हो गया समझ लिया था, उनपर फिर चर्चा छिड़ जानेसे वे बड़े उदास हो चले हैं और अपना जाना जूनके मध्य तक स्थगित कर रहे हैं।"

दरअसल कांफ्रेंसकी कार्यवाहीका जो ब्यौरा अब तक प्राप्त हुआ है, उसे देखकर यह कहना मुश्किल है कि मित्र-राष्ट्र शीघ्र ही किसी उचित निर्णयपर पहुँचनेके इच्छुक हैं। ऐसा लग रहा है कि युद्ध और शान्तिके उद्देश्योंको भूलकर सभी अपनी-अपनी स्वार्थ-रक्षाके लिए चिन्तित हैं। साथ ही यह भी भासित होता है कि युद्धकी समाप्तिसे पहले आरम्भ होनेके कारण मित्र-राष्ट्रोंने इसे वैदेशिक मन्त्रियोंके विचार-विनिमयसे अधिक कोई महत्व भी नहीं दिया है। फिर भी इसे भावी शान्ति-परिषदकी छाया अवश्य कहा जा सकता है। अतः यदि यह कांफ्रेंस सफल नहीं हुई, तो इसकी प्रतिक्रिया लगभग वैसी ही होगी, जैसी कि पिछले महायुद्धके बाद सिनेटर लाजर द्वारा विल्सनको पराजित किए जानेकी हुई थी।

जन-हित बनाम वर्ग-हित

ब्रिटेन और अमरीकाके युद्ध-उद्देश्योंपर हमें कभी भी विश्वास नहीं हुआ। कोई भी साम्राज्यवादी और पूँजीवादी राष्ट्र फ़ाशिज़्मके विनाश तथा जन-स्वातन्त्र्यकी लड़ाई लड़ सकता है, यह भ्रान्ति हमें कभी नहीं हुई। जब भारतने ब्रिटेनके युद्ध-उद्देश्योंको अपनी आज़ादीकी कसौटीपर कसा, तो उसका फ़ाशिस्त रूप चमक आया। इसी तरह जब मार्शल च्यांगकाई-शेक और अनेक अमरीकनोंने अमरीकासे भारतके मामलेमें हस्तक्षेप करने को कहा, तो न सिर्फ़ उसने इसे 'ब्रिटेनका खानगी मामला' बतलाकर ही जान छुड़ाई, बल्कि भारतीय पत्रोंमें छपनेवाले चौहरी स्वतन्त्रताओंके विज्ञापन भी बन्द कर दिए! लुई जान्सन और फिलिप्सके वापस बुलाए जानेकी स्थितियोंको भी हम भूले नहीं हैं। बादमें पोलैण्ड, यूनान, यूगोस्लाविया, इटली, बेल्जियम, आस्ट्रिया आदिके सम्बन्धमें इन दोनों राष्ट्रोंने जो रुख अख्तियार किया, उससे इनके युद्ध-उद्देश्योंका खोखलापन और भी साफ़ तौरपर ज़ाहिर हो गया। सेनफ्रांसिस्कोमें फ़ाशिस्त आर्जेन्टीनाको शामिलकर, शासनादेश-प्राप्त उपनिवेशोंका प्रश्न न उठने देकर, उपनिवेशोंकी ट्रस्टीशिपका चरम लक्ष्य 'स्वतन्त्रता'के बजाय 'स्वशासन' स्थिर किए जानेपर ज़ोर देकर तथा महत्त्वपूर्ण नाकोंके नामपर न सिर्फ़ साम्राज्यको ही बदस्तूर बनाए रखने, बल्कि उसकी और अपने भावी बाज़ारोंकी रक्षाके मार्गको भी सुरक्षित रखनेकी चालें चलकर तो उन्होंने असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट कर दिया है कि सेनफ्रांसिस्कोमें वे मृतप्राय राष्ट्रसंघके मुर्दे को फिर खड़ाकर उसकी ओटमें अपने स्वार्थोंका शिकार खेलना चाहते हैं। पर इस बार उनका पाला ऐसे पड़ा है, जो उनकी सब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चालोंको भलीभाँति समझता है। वहाँ उन लोगोंका शासन नहीं है, जो खरीदे हुए वोटोंके ज़ोरपर 'शासक' बनकर अपने और दूसरे देशोंकी जनताका शोषण करते हैं। मसनूई जनतन्त्रकी यह धोखेकी टट्टी रूस पिछले महायुद्धके बाद ही दफ़ना चुका है। पिछले २७ वर्षोंसे वहाँ जनताका शासन है। इस शासनने इतने अल्पकालमें ही रूसकी जो काया-पलट कर दी है, उसका शतांश भी पार्लमेंटका सरकस दिखानेवाले धनतान्त्रिक देश शताब्दियोंमें भी नहीं कर पाए हैं। पर विरोधी शक्तियोंसे घिरे रहकर कोई भी जन-शासन अधिक दिन टिक नहीं सकता। इसका दीर्घजीवन एवं उन्नयन तभी सम्भव है, जब कि संसारमें सर्वत्र ऐसे ही शासन हों। यही आततायीपनके अन्तका एकमात्र सफल और अमोघ नुस्खा है। अतः रूसके लिए—जिसकी कोई साम्राज्यवादी या पूँजीवादी महत्वाकांक्षाएँ नहीं हैं—यह स्वाभाविक ही है कि वह न सिर्फ़ जहाँ-जहाँ फ़ाशिस्त शासनोंका अन्त हुआ है, वहाँ ही; बल्कि जहाँ-जहाँ फ़ाशिस्त शासन क़ायम हैं या जहाँ उनको क़ायम करनेका यत्न किया जा रहा है, वहाँ भी जन-शासनकी स्थापनाको सुगम एवं सम्भव बनानेकी चेष्टा करे। भारतकी स्वाधीनता, शासनादेश-प्राप्त उपनिवेशोंका अन्तिम लक्ष्य स्वतन्त्रता हो, सभी लोगोंको काम पानेका अधिकार हो, जन-साधारणके अधिकारोंकी घोषणा की जाय तथा उनके स्वास्थ्य एवं रहन-सहनके दर्जेको ऊँचा उठाया जाय इत्यादि दावोंको पेशकर रूसने सहज ही विश्वके पीड़ित-शोषित जनोंकी सहानुभूति प्राप्त कर ली है। जिन लोगोंको गुलामीकी जंज़ीरोंके सिवा कुछ भी खोना नहीं है, वे स्पष्ट देख रहे हैं कि फ़ाशिज़्मका अन्त करनेकी लड़ाई रूस बर्लिनके बादसे नाफ़्रांसिस्कोमें लड़ रहा है। इस लड़ाईका अगला मोर्चा कहाँ होगा; इसे समय, विरोधी शक्तियोंका संगठन और पीड़ित-शोषित जनताका जागरण ही तय करेगा।

आपसी डर और अविश्वास

सेनफ़्रांसिस्कोसे जहाँ बराबर रूस और ब्रिटेन-अमरीकाके मतभेदके समाचार आ रहे हैं, ईडन, स्टेटीनियस और जोसेफ़ ग्रू बराबर यही कह रहे हैं कि दुनियाके किसी भी हिस्सेमें हमारे और रूसके हितोंमें कोई संघर्ष नहीं है! तब फिर सेनफ़्रांसिस्को में जो यह मतभेदोंका नाटक हो रहा है, वह क्या लोग-दिखाऊ ही है? 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन'के सम्पादक किंग्ज़ले मार्टिनने सेनफ़्रांसिस्कोसे लिखा है—"अमरीकन नौसेना-विभाग और कई अमरीकन व्यापारी खुल्लमखुल्ला रूससे लड़नेकी बात कह रहे हैं।" अमरीकाके लोकप्रिय राष्ट्रीय पत्र 'डेली न्यूज़'ने लिखा है—"ब्रिटेनके टोरी अन्ततः रूसके खिलाफ़ लड़ाई छेड़नेकी योजना बना रहे हैं। ऐसा जाना पड़ता है, मानो यूरोपमें रूसकी शक्तिको कम करनेके लिए चर्चिलको लड़ना ही पड़ेगा।" स्थानीय सह योगी 'स्टेट्समैन'के वाशिंगटन-स्थित संवाददाताने सेनफ़्रांसिस्कोसे लिखा है—"अमरीका और ब्रिटेनको पूर्वी यूरोप और बल्कान सम्बन्धी रूसी योजनाओंके बारेमें काफ़ी आशंकाएँ हैं। फ़ाशिज़्म विरोधी नेतृत्वकी दिशामें उसके बढ़ते हुए प्रभावको भी वे देख रहे हैं।" मद्रासके 'हिन्दू'के संवाददाताने सेनफ़्रांसिस्कोसे लिखा है—"पिछले महीनेकी अमरीका और ब्रिटेनकी नीतिसे यह आभास मिलता है कि रूससे कड़ाईके साथ पेश आया जाय। ट्रस्टीशिपके महत्त्वपूर्ण प्रश्न और आर्जेन्टीनाके बारेमें स्टेटीनियस ने रूसको अकेला छोड़कर ब्रिटिश टोरियोंका ही खेल खेला है। पर रूस भी आसानीसे माननेवाला नहीं है।" इस तरहके पक्षपात समाचार पिछले महीने भारत, ब्रिटेन और अमरीकाके पत्रोंमें छपे हैं, जिनसे लोकमतकी दिशा जानी जा सकती है।

रूसी पत्रोंने भी ब्रिटेनकी फ़ाशिस्तोंके समर्थनकी चालों और अमरीकाकी साम्राज्यवादी आकांक्षाओंकी आलोचना की है। 'इज़्वेस्तिया'के सेनफ़्रांसिस्को-स्थित संवाददाताने लिखा है—"प्रशान्त-युद्धका विषय ही किपलिंगके ढंगकी औपनिवेशिक कहानी की कथाओंका विषय बन गया है। जनता और सैनिकोंके लिए छपनेवाले पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं आदिमें बड़े-बड़े अधिकारियोंके भाषण छपते हैं, जिनमें इस बातपर ज़ोर दिया जाता है कि अमुक प्रशान्त-द्वीप अमरीकाकी मल्कियत होने चाहिएँ। सेनेटर, एडमिरल और पत्रकार इसके सिवा इनकी समस्याका और कोई हल ही नहीं बताते। इस प्रचारसे उन लोगोंके हित मालूम होते हैं, जो प्रशान्तकी जीतोंको एक औपनिवेशिक साम्राज्यके रूपमें संगठित करना चाहते हैं।" इसी तरह 'डेली स्टार'ने लिखा है—"उत्तर-पश्चिम जर्मनीके ब्रिटिश अधिकृत अंचलमें पोलिश फ़ाशिस्तोंको विशेष सुविधा प्राप्त है। इसका उद्देश्य है रूस और उसके सहयोगी जनतन्त्र देशोंके खिलाफ़ के लिए संगठन और रूस-विरोधी फ़ौजी आधार स्थापित करना। ब्रिटेनके टोरी-पत्रोंमें रूसकी युद्धोत्तर योजनाओंके बारेमें बराबर भ्रान्तिपूर्ण समाचार निकल रहे हैं, जिनसे रूसके साथ सहयोग रखनेवालोंको आतंकित किया जा रहा है।"

इस तरहके संवाद आज केवल मित्र-राष्ट्रोंके पत्रों तक ही सीमित नहीं हैं; वे उन देशोंकी जनताकी दैनिक चर्चाका विषय भी बन गए हैं। कदाचित् इसीलिए अमरीकाके राष्ट्रपति रूजवेल्ट आपसके इन मतभेदों या ग़लतफ़हमियोंको दूर करनेके लिए जोसेफ़ डेवीज़को लन्दन और हैरी हापकिन्सको मास्को भेज तथा शीघ्र ही महानत्रयके मिलनेकी सम्भावना भी बतलाई है।

'रोटी भेजिए, या क़फ़न!'

वर्त्तमान-युद्ध छिड़नेके कुछ ही मास बाद संयुक्त-राष्ट्र युद्धोत्तर सहायता और पुनर्निर्माणके लिए एक समिति बनाई थी उसके लिए काफ़ी धन एकत्र किया गया तथा उसके कार्यकी रेखा बनानेमें बहुतोंका काफ़ी समय भी खर्च हुआ। पर जब

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राष्ट्र शत्रु-अधिकारसे मुक्त होने लगे और आवश्यक सहा-
की माँग शुरू हुई, तो पता चला कि समिति अभी सुदूर-पूर्वके
की ही रूप-रेखा तैयार कर रही है। उसके शेखचिल्लियोंकी
िल्लताके अलावा सहायता देनेवालोंके राजनीतिक विचारों
र सहानुभूतिके खयालने भी पीड़ितोंके लिए समयपर उपयुक्त
यता नहीं पहुँचने दी। यही कारण है कि आज इटली,
ज्यम, हालैण्ड, यूनान आदिमें खाद्य और अन्य आवश्यक
मानकी बेहद कमी है। आज लाखोंकी संख्यामें अधनंगे, भूखे,
ल, कृश-काय, रोग-ग्रस्त और सब-कुछ खोए हुए, पोल, चेक,
ोस्लाव, इटालियन, रूसी, फ्रांसीसी, डच और डेन लोग टिड्डी-
की तरह मलबोंमें से होकर ध्वस्त-शेष नगरोंपर टूट रहे हैं।
दवाई, कपड़ों और खाद्यकी उनकी आवश्यकताओंकी आंशिक
ति भी नहीं हो रही है। लार्ड रीडिंगने इनकी संख्या २-३ करोड़
ती थी, पर ब्रिगेडियर-जनरल मिकेल्सनने इन्हें ७ करोड़ बत-
या है। यूनानके पोड़ितोंने तो अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रासकी मार्फ़त
मितिको शीघ्र सहायता भेजनेका संदेश भेजते हुए यहाँ तक
हा है—'हमारे लिए रोटी भेजो और अगर वह न भेज सको,
कफ़न भेजो।' इसीसे उनकी आवश्यकता, अभाव और
ोव्यथाका अनुमान किया जा सकता है।

'स्टेट्समैन'के लन्दन-स्थित संवाददाताने बतलाया है कि
द्यपि सार्वजनिक रूपसे विशेष कुछ नहीं कहा गया है; पर
मालूम हुआ है कि रूसने ब्रिटेन और अमरीकासे युद्धोत्तर
सहायता और पुनर्निर्माणके लिए काफ़ी बड़े कर्ज़ माँगे थे, जिनके
लिए इन्कार कर दिया गया है! गोया समितिका कोष क्या
हुआ, ब्रिटेन-अमरीकाका खानगी फण्ड हो गया, जिसमें से केवल
उनके सहायक-समर्थक ही कुछ पानेकी आशा कर सकते हैं!
हमें समितिसे विशेष रूपसे शिकायत इसलिए है कि उसके कोषमें
८ करोड़से भी अधिक रुपया भारतसे लिया जा रहा है। गत
४ मईको इस रक़मके 'सरकारी' वादेको सधन्यवाद स्वीकार करते
हुए समितिके डाइरेक्टर-जनरल हरबर्ट लेहमैनने महज़ यह
आश्वासन दिया है कि इन रुपयोंका माल भारतमें ही खरीदा
जायगा। पर इससे तो उल्टी भारतको दोहरी सज़ा मिलेगी। एक
तो इससे उसकी चीज़ोंका युद्ध-कालीन मूल्य अभी और कुछ दिन
कम न होगा और मुनाफ़ाखोरी तथा चोर-बाज़ारको कुछ दिन
और जीवन मिलेगा। दूसरे, यूरोप और एशियामें हुई तबाहीके
लिए भारत-जैसे शोषित-पीड़ित देशसे, जिसकी अधिकांश जनता
घनाभावके कारण स्वयं भूखी-नंगी रह रही है और जिसका
यूरोप-एशियाको तबाहीमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे कोई हाथ नहीं
रहा है, जबरन इतना बड़ा जुर्माना वसूल करना सरासर ज़्यादती
और अन्याय है। इससे भी अधिक हँसी और क्षोभकी बात तो
यह है कि एक ओर भारतसे इतनी बड़ी रक़म अनावश्यक और
अनुचित ढंगसे वसूल की जा रही है और दूसरी ओर कपड़े तथा
अन्नके अकालसे पीड़ित भारतीयोंकी सहायताके लिए अमरीकामें
सार्वजनिक रूपसे चन्दा उगाहा जा रहा है!

फ्रेंच प्यूहररकी हिमाक़त

अगर आत्माके अमर होनेकी बात सच है और वाक़ई
हिटलर मर चुका है (जैसा कि हमारा अनुमान है), तो आश्चर्य
नहीं कि उसकी आत्माने द'गालके शरीरमें प्रवेश कर लिया हो,
या कम-से-कम उसकी आत्मापर हावी ही हो गई हो! उसकी
साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाका ज़िक्र हम पिछले अंकमें कर चुके
हैं। इधर सीरिया, लेबानन और एल्जीरियासे आए समाचारोंसे
ज्ञात होता है कि उसने हिटलरी बल-प्रयोग द्वारा अपनी साम्राज्य-
वादी महत्वाकांक्षाओंको पूरा करनेका कार्यक्रम ज़ोर-शोरसे
आरम्भ कर दिया है। सीरिया-लेबाननमें उसने अपने हवाई
और नाविक अड्डे रखने, इराकसे सीरिया तककी तेलकी पाइप-
लाइनकी रक्षा करने और फ्रांसकी सांस्कृतिक एवं अर्थनीतिक
संस्थाओंकी स्वीकृतिके लिए इन दोनों घोषित 'स्वतंत्र प्रजातंत्रों'
पर दबाव डाला। जब वे फ्रांसको किसी भी अन्य राष्ट्रके
मुक़ाबलेमें 'विशिष्ट सुविधा' देनेको तैयार न हुए, तो फ्रांसीसी
सेनाओंने सीरियन पार्लमेंट और सरकारी दफ़्तरोंपर कब्ज़ा कर
लिया तथा टैंकों, तोपों, बमवर्षकों, मशीनगनों आदिसे देशभक्त
अरबोंपर हमला किया, जिसके परिणाम-स्वरूप लगभग २००० व्यक्ति हताहत हुए। सीरियाके कई नगरोंमें हड़तालें और फ्रांसीसी-
विरोधी दंगे हुए, जिनमें कई फ्रांसीसी सैनिक और अफ़सर भी
हताहत हुए। ब्रिटेनके फ़ौजी हस्तक्षेपके कारण अशान्त क्षेत्रोंसे
फ्रांसीसी सेनाएँ हटा ली गई हैं और इक्के-दुक्के हमलोंको
छोड़कर अब वहाँ शान्ति स्थापित हो गई बतलाई जाती है।

एल्जीरियाके अरबोंके दमनके भी ऐसे ही समाचार आए
हैं। कुछ तो खाद्यके अकाल और कुछ फ्रांसीसी अधिकारियोंकी
दमन नीतिके कारण वहाँके अरबोंका असंतोष भी विद्रोहके रूपमें
भड़क उठा। फ्रांसीसियोंने सातिफ़से समुद्र-तटके क्षेत्रमें मार्शल-ला
घोषित कर दिया और तोपों, बमवर्षकों तथा मशीनगनोंसे
गाँवके गाँव साफ़ कर दिए। अरबोंका कहना है कि ऐसा दमन
एल्जीरियामें पहले कभी नहीं हुआ। कठोर सेंसरके कारण
इसकी पूरी खबरें बाहर नहीं पहुँच रही हैं। रोमके अमरीकन
फ़ौजी अखबार 'स्टार्स एण्ड स्ट्राइप्स'का कहना है कि ८ से
१६ मई तक फ्रांसीसियोंके दमनसे वहाँ १० हज़ार अरब हताहत
हुए हैं। कुस्तुन्तुनियाके दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिमके कुछ
अरब गाँवोंको फ्रांसीसी हवाई-बेड़ेने तहस-नहस कर दिया है।
फ्रांसीसियोंने बस्तियोंका सफाया करनेमें अमरीकन बमवर्षकों और
ब्रिटिश लड़ाकू-विमानोंका उपयोग किया बतलाते हैं।

मुसोलिनीने अबीसीनियामें और हिटलरने पोलैण्ड आदिमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यही तो किया था, जिसे लेकर इतना भीषण और विनाशकारी महायुद्ध हुआ। पर आश्चर्यकी बात तो यह है कि पूरे तीन सप्ताह तक मित्र-राष्ट्रोंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अब रूस, अमरीका और ब्रिटेनने फ्रेंच फ्यूहरर द'गालसे अनुरोध किया है कि वह इस झगड़ेको अमरीका, ब्रिटेन, रूस, चीन आदि की मध्यस्थतासे समझौतेके रूपमें निपटा ले। इसे द'गालने अस्वीकार कर दिया है। द'गालकी यह हिमाक़त मित्र-राष्ट्रों और सेनफ्रांसिस्कोमें बननेवाली अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा-परिषदके अस्तित्व एवं नैतिकताको खुली चुनौती है। देखें, इस आततायी-पनको रोकनेके लिए वे क्या करते हैं? स्मरण रहे कि सीरिया और लेबानन फ्रांसके उपनिवेश नहीं, गत युद्धके बाद शासनादेश-प्राप्त देश हैं, जिन्हें जून, १९४१ में फ्रांसीसी जनरल कातरू स्वतन्त्र घोषित कर चुके हैं। अमरीका, फ्रांस और ब्रिटेन इनकी स्वाधीनता स्वीकार भी कर चुके हैं। एल्जीरियामें फ्रांसके पतनके बाद जर्मन प्रभाव बढ़ गया था; पर नवम्बर, १९४२ में मित्र-सेनाओंने उसपर अधिकार कर लिया। इस समय वह फ्रांसके कब्ज़ेमें है।

'चोर-चोर मौसेरे भाई!'

सीरिया और लेबाननमें हुई अशान्तिको 'कुछ ब्रिटिश एजेण्टों द्वारा फैलाई गई फ्रांसीसी-विरोधी भावना'का परिणाम बतलाते हुए द'गालने कहा है कि हम वहाँ वैसे ही अड्डे चाहते हैं; जैसे कि ब्रिटेन और अमरीकाको प्राप्त हैं, तथा सन्धि द्वारा उनसे सम्बन्धित समस्याओंको हल कर लेना चाहते हैं। शब्दान्तरमें यही बात २१ दिसम्बर, १९१२ को तत्कालीन फ्रांसीसी प्रधान-मन्त्री पोंइकेरने सेनेटमें कही थी—"लेबानन और सीरियामें हमारे परम्परागत स्वार्थ हैं, जिनका हम आदर करवानेका विचार रखते हैं।" उस समय सीरिया और लेबानन तुर्कीके अधीन थे। पिछले महायुद्धमें तुर्कीके हार जानेके कारण अनुन्नत राष्ट्रोंको अभिभावक-हीन न छोड़नेके विचारसे राष्ट्र-संघने आदेश-प्राप्त शासनके लिए इन्हें फ्रांसको और फिलस्तीन, ट्रांसजोर्डन और इराक ब्रिटेनको सौंप दिए। इन दोनों साम्राज्य-वादी राष्ट्रोंने इनका शासन तो क्या शोषण ज़रूर किया और अपने सुदूर-पूर्वी साम्राज्यके मार्गपर स्थित होनेके कारण वे इन्हें अपनी पैतृक सम्पत्ति ही समझने लगे। फ्रांसीसी कुशासनके कारण सीरिया और लेबाननमें १९१९ से लेकर १९४३ तक बराबर विद्रोह होते रहे हैं। यद्यपि १९२० में राष्ट्रसंघने लेबाननको सीरियासे पृथककर नाम-मात्रके लिए 'स्वतन्त्र' घोषित कर दिया था; पर आततायी फ्रांसने १९२६ में उसके विधानको स्थगितकर उसपर अपनी संगीनोंका ही 'शासन' थोपा। मुक्तिकामी अरब फ्रांसकी इस टुकड़े करके शासन करनेकी साम्राज्यवादी चालको समझ गए और १९३६ में मैत्रीपूर्ण संधि द्वारा सीरिया और लेबाननने फिर अपना सम्बन्ध जोड़ लिया।

दरअसल इन और अन्य अरब राष्ट्रोंपर 'अनुन्नत 'अभिभावक-हीन' होनेके कारण नहीं, बल्कि तेल और [illegible] साम्राज्यके मार्गपर स्थित होनेके कारण फ्रांस-ब्रिटेनकी [illegible] रही है। बक़ौल जिन्नाके इनका शासनादेश-प्राप्त [illegible] रूपमें फ्रांस-ब्रिटेनको सौंपा जाना नैतिक और राजनीतिक [illegible] ग़लत था। १९३२ में राष्ट्रसंघने इराकको स्वतन्त्र [illegible] दिया, यद्यपि वहाँ तेल-पाइपके रक्षार्थ फ़ौजी और [illegible] ब्रिटेनके रहे! इसी तरह सीरिया-लेबाननको भी १९४[illegible] घोषित कर दिया गया; पर बक़ौल 'न्यू स्टेट्समैन एण्ड [illegible] के द'गाल वहाँ वही सुविधाएँ चाहता है, जो ब्रिटेनको [illegible] प्राप्त हैं! यदि ब्रिटेनने इराकमें अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति-[illegible] सुविधाएँ नहीं प्राप्त की हैं, तो अकेले द'गालको ही [illegible] दिया जा सकता है? पर म्याऊँका ठौर पकड़े कौन?

उपनिवेश और साम्राज्य क्यों?

रूसने अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और चीन द्वारा सीरिया-[illegible] के झगड़ेका शान्तिपूर्ण हल निकलवानेकी द'गालसे अपील [illegible] यह पहला अवसर है जब रूसने मुक्तिकामी अरबोंके [illegible] वाले साम्राज्यवादी षड्यन्त्रके खिलाफ़ मुँह खोला है। [illegible] समझमें नहीं आया कि एक शेर और मेमनेमें शान्तिपूर्ण [illegible] क्या और कैसे हो सकता है? बदनाम राष्ट्रसंघने छोटे [illegible] 'रक्षित' या 'शासनादेश-प्राप्त' घोषित करते समय उनके [illegible] की रक्षा एवं स्वाधीनताकी आकांक्षाके विकासकी कोई [illegible] नहीं की। इसीलिए मिस्र, इराक, फिलस्तीन, ट्रांसजार्डन, [illegible] लेबानन, एल्जीरिया आदिमें जो खून-खराबा हुआ, वह [illegible] है। अभी हाल ही में अमरीकाके एसोशिएटेड प्रेसका [illegible] भेजा गया एक संवाद छपा है, जिससे ज्ञात होता है कि [illegible] तरह फरवरी, १९४२में ब्रिटिश टैंकोंने मिस्रके बादशाह [illegible] नहासपाशाके बदले अली मेहरपाशाके प्रधान-मन्त्रित्वमें [illegible] बनानेको मजबूर किया! नहासपाशा मिस्रकी राष्ट्रीय [illegible] नेता और अरब-संघके अन्यतम जन्मदाता हैं। उनके [illegible] उनपर भारतीय कांग्रेसके समान ही ब्रिटिश साम्राज्य [illegible] वक्रदृष्टि रही है। फिलस्तीन और ट्रांसजार्डनमें अभी [illegible] जो-कुछ होता रहा है, उसे दुनिया भूली नहीं है। ऐसी [illegible] सीरिया-लेबाननके मामलेमें ब्रिटेनका सशस्त्र हस्तक्षेप [illegible] झगड़ेमें बन्दरकी पंचायत-सा ही जान पड़ता है।

वास्तवमें इस झगड़ेकी जड़ हैं सुदूर-पूर्व और [illegible] साम्राज्य और उपनिवेश। जब तक ये रहेंगे, इनकी [illegible] इनके मार्गों और उनके नाकोंके अधिकारके झगड़े [illegible] रहेंगे। इनकी यथार्थ स्वाधीनताके सिवा और कोई [illegible] या हल इन झगड़ोंका अन्त नहीं कर सकता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हांगकांग और सिंगापुर नहीं छोड़ सकता ; हालैण्ड बोर्नियो, सुमात्रा और जावा नहीं छोड़ सकता ; तो अकेले फ्रांससे ही हिन्द-चीन, पांडोचेरी या सीरिया-लेबानन छोड़नेको क्यों कहा जाय ? अतएव लूट और ज़्यादतीके इस अन्याय एवं अनीतिपूर्ण अध्यायको सदाके लिए समाप्त कर देना चाहिए। 'रेड स्टार' में प्रो० यूजेन कोरोविनने और सेनफ्रांसिस्कोमें श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितने स्पष्ट कहा है कि जब तक साम्राज्यों और उपनिवेशोंका अन्त नहीं होता, विश्व-शान्ति असंभव है।

बर्मामें गवर्नरी शासन

एटलांटिक सनदके भारतपर लागू न होनेका फ़तवा चर्चिल पहले ही दे चुके हैं (और पता नहीं, वह लागू हुई कहाँ है!), पर जापानी अधिकारसे मुक्त होनेके बाद बर्माकी जनताको तो उसके इच्छानुसार अपना शासन-विधान बनानेकी सुविधा मिलनी ही चाहिए थी। परन्तु तीन सालके लिए बर्मापर गवर्नरी शासन थोपकर सरकारने स्वयं सिद्ध कर दिया है कि उसके लिखित या मौखिक आश्वासनोंका कोई मूल्य नहीं है। गत १७ मईको प्रकाशित किए गए बर्माके श्वेत-पत्र (अच्छा होता, यदि इसका नाम 'कला कागज़' रखा जाता) में कहा गया है कि चूँकि मौजूदा परिस्थितियोंमें १९३५ के क़ानूनके अनुसार बर्मामें सामान्य विधानको चालू करना संभव नहीं है, अतः १९४२ में गवर्नरके शासनकी जो स्थापनाकी घोषणा की गई थी और जिसकी अवधि आगामी दिसम्बरमें समाप्त होगी, उसीको अगले तीन वर्षों (अर्थात् ९ दिसम्बर, १९४८ तक) के लिए फिर लागू किया जाता है। साथ ही एक छोटी-सी व्यवस्था-परिषद बनेगी, जिसमें आगे चलकर जैसा अवसर होगा, ग़ैर-सरकारी बर्मी भी लिए जा सकेंगे। इसके बाद बर्मी जनताके प्रतिनिधि ऐसा विधान बनायेंगे, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकारके दायरेमें बर्मामें स्वशासन स्थापित किया जा सके।

इस घोषणा द्वारा ब्रिटिश अधिकारियोंने न सिर्फ़ अपने वादों, आश्वासनों और युद्ध-उद्देश्योंका खोखलापन ही ज़ाहिर किया है; बल्कि बर्मियोंके खोए हुए विश्वास, सद्भाव एवं सहयोगको फिर प्राप्त करनेका एक बड़ा सुन्दर और मनोवैज्ञानिक अवसर भी खो दिया है। जिस दिन यह श्वेत-पत्र प्रकाशित हुआ है, उसी दिन बर्मासे लौटे 'न्यूज़ क्रानिकल'के युद्ध-संवाददाता स्टुअर्ट गेल्डरने 'स्टेट्समैन'में लिखा—"बर्माकी स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक है। जिस ढंगका शासन वहाँ इस युद्धसे पहले था, वैसा ही फिर थोपनेका प्रयत्न सफल न होगा। बर्माका स्वाधीनता-आन्दोलन कमज़ोर नहीं, १९३९ से कहीं मज़बूत है। मित्र-पक्ष—और विशेषतया महान-त्रयके स्वाधीनता-प्रचार—ने वहाँ बड़ा काम किया है। बर्माकी जिस सीधी-सादी जनताने हमें इस युद्धमें जापानियों के खिलाफ़ मदद दी है, उसने इसलिए मदद नहीं दी है कि वह ब्रिटेनकी समर्थक है; बल्कि इसलिए कि वह बर्माकी समर्थक और जापानकी विरोधिनी है।...हमें यह देखना चाहिए कि कौन बर्मी सच्चे देशभक्त हैं और कौन राजनीतिक तथा व्यावसायिक शक्ति मिलनेकी आशासे शत्रुका साथ देनेवाले फ़ाशिस्त गद्दार हैं।...अतः यह बहुत ज़रूरी है कि बर्माकी स्थितिकी शीघ्र ही जाँच करवाई जाय। बुद्धिमत्तापूर्ण बात यही होगी कि इंग्लैण्डसे एक मिश्रित पार्लमेंटरी कमीशन बर्मा भेजा जाय, जो वहाँकी सच्ची रिपोर्ट पार्लमेंटको दे।"

गेल्डर नई पीढ़ीके जनतन्त्रवादी पत्रकार हैं। अंगरेज़ होनेके नाते शायद एटलाण्टिक-सदन और ब्रिटिश वादोंमें उनका विश्वास भी रहा है। कदाचित् इसीलिए उन्होंने बर्मामें जो-कुछ देखा, उसीके आधारपर एक आवश्यक एवं न्याय-संगत सुझाव रखा। पर आज ब्रिटेनका शासन जिन साम्राज्यवादी टोरियोंके हाथोंमें है, उन्होंने बर्माकी स्थिति एवं वहाँकी जनताकी भावनाओंको जाननेकी कोई ज़रूरत ही नहीं समझी। बर्माकी स्थिति चाहे जैसी भी क्यों न हो, टोरियोंके दिमाग़ोंकी स्थिति तो वही है, जो १९३९ में या उससे पहले थी। बर्मियोंके प्रति सन्देह और अविश्वास ही उनकी दृष्टिमें सबसे बड़ी सुरक्षा है। अधिकारियोंकी तरह पार्लमेंटने भी बर्माकी स्थितिसे परिचित होनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझी और सर्वसम्मतिसे अधिकारियोंके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया! लोकतन्त्रके इस युगमें इस अदूरदर्शिता और ग़ैरज़िम्मेदारीसे हज़ारों मील दूर बैठे अपरिचित एवं अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा करोड़ों बर्मियोंके भाग्यका निर्णय होना एक तीखा और लज्जास्पद व्यंग है। २५ वर्षोंके स्वशासनके आश्वासनके बाद मिले इस तोहफ़ेसे यदि बर्मियोंके मनमें भी अंगरेज़ोंके प्रति भारतीयोंके समान ही क्षोभ, कटुता एवं अविश्वास बढ़े, तो उसके लिए ब्रिटेनके टोरी ही ज़िम्मेदार हैं।

यूरोपीय विजय और भारत

यूरोपका युद्ध समाप्त हो गया। भारतीयोंने युद्ध-ज्वर और युद्ध-कालीन असुविधाओंकी कमीके खयालसे कुछ राहत ज़रूर महसूस की, पर यूरोपकी जनताकी-सी खुशी या सन्तोषका इज़हार उसने नहीं किया। सरकारी और ग़ैर-सरकारी दफ़्तर-दुकानें बन्द रहे, कुछपर यूनियन जैक और कुछपर संयुक्त-राष्ट्रोंके झण्डे फहराए गए तथा फ़ौजी परेडें हुईं। चन्द तमाशबीनोंके सिवा इन प्रदर्शनोंमें जनताका सहयोग विशेष नहीं देख पड़ा। सहयोगी 'स्टेट्समैन'ने इसका कारण जापानसे युद्धका जारी रहना बतलाया है, जो कि भारतके अधिक निटक है। पर अनेक सरकारी और नीम-सरकारी एजेण्टोंने जनताकी इस उदासीनताका सारा दोष 'राष्ट्रीय भारत'पर ही मढ़ा है। कुछने तो यहाँ तक कहने की हिमाक़त की है कि हिटलरकी मृत्युसे 'राष्ट्रीय भारत'को खुशी नहीं हुई। जो यथार्थ स्थिति है, उसे सरकार भी जानती

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है और जनता भी। पर इन सरकारी उत्तेजकों और गुर्गोंके शरारत-भरे प्रोपेगेण्डाके पीछे यह भावना काम कर रही जान पड़ती है कि येनकेनप्रकारेण सरकारकी नज़रोंमें 'राष्ट्रीय भारत' को हिटलर और फ़ाशिज़्मका समर्थक बतलाया जाय! किन्तु इस ढोलकी पोल बहुत पहले ही खुल चुकी है।

सच तो यह है कि बुद्धिजीवी भारतीय हिटलर-मुसोलिनीकी मृत्यु, नात्सी-फ़ाशिस्त दलोंके अन्त और मित्र-पक्षकी विजयके राजनीतिक एवं नैतिक महत्वको भले ही समझते हों; पर अधिकांश भारतीय तो—जो निरक्षर और दरिद्र हैं—दिमाग़से नहीं, पेटसे सोचते हैं। वे बेचारे हिटलर-मुसोलिनी और चर्चिल-एमरीकी तानाशाहियोंमें भेद करना क्या जानें? देशके श्रद्धास्पद नेताओं और हज़ारों सम्भ्रान्त नागरिकोंके बिना मुक़दमा चलाए अनिश्चित रूपसे जेलोंमें सड़ाए जानेको वे फ़ाशिज़्मका अन्त मानकर कैसे खुशी मनाएँ? कल उन्होंने अन्नके अकालके कारण लाखों व्यक्तियोंको अपनी आँखोंके सामने अकाल काल-कवलित होते देखा था और आज वस्त्र तथा जीवनकी अन्यान्य आवश्यक चीज़ोंके अभावमें लोगोंको असाधारण कष्ट पाते देख रहे हैं। कल जिन यूरोपीय राष्ट्रोंकी स्वाधीनता छिनी थी, आज वे फिर स्वतन्त्रताकी साँस ले रहे हैं; पर १५० वर्षका ग़ुलाम भारत आज जहाँका तहाँ ही है! भारतीयोंके कानोंमें चर्चिलके ये शब्द एक अजीब-सी झनझनाहट पैदा करते हैं कि 'ब्रिटिश साम्राज्य आज पहलेसे कहीं अधिक शक्तिशाली है!'—जैसे इस युद्धका एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यको निरापद और मज़बूत बनाना ही था। क्या यही भारतीयोंके लिए खुशी मनानेके पर्याप्त कारण हैं?

भारतीय पूँजीपतियोंका कुचक्र

युद्धकी परिस्थितियोंने जहाँ ग़रीबोंको और अधिक ग़रीब बना दिया है, पूँजीपतियोंको मनमाना मुनाफ़ा देकर खूब माला-माल कर दिया है। अब वे इस बढ़ी हुई पूँजीको नए-नए उद्योग-धन्धोंमें लगाना चाहते हैं, जिससे और अधिक मुनाफ़े लूट सकें। एक ओर तो शोषणके अतिक्रमणके कारण भारतीय बेहद ग़रीब हैं और आज़ादीके लिए तड़प रहे हैं तथा दूसरी ओर ब्रिटिश पूँजीपति, जो भारतके शासक भी हैं, इस सोनेकी चिड़ियाको हाथसे जाने नहीं देना चाहते। अतः भारतीय पूँजीपतियोंने एक ओर भारतीय जनताकी रहन-सहनकी सतह ऊँची उठानेका खुशनुमा झाँसा दिया है और दूसरी ओर भारतकी लूटमें ब्रिटिश पूँजीपतियोंसे साझेदारी करनेकी गाँठ-साँठ लगाई है। पहले दिखावटी उद्देश्यके पक्षमें भारतमें इनके खरीदे और किराएके पत्रोंमें धुआँधार प्रोपेगेण्डा हो रहा है और दूसरेके लिए इनकी एक टोली विलायत गई है। वहाँसे [illegible] अमरीका भी जायगी।

जन-साधारणमें पूँजीपतियोंके इस कुचक्रके विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही है। कुछ तथाकथित राष्ट्रीय [illegible] जिनका अस्तित्व बहुत-कुछ इन पूँजीपतियों द्वारा [illegible] टुकड़ोंपर ही निर्भर करता है—दबे स्वरसे जनताके [illegible] नए षड्यन्त्रका विरोध किया है एवं इसे आशंकाकी दृष्टि [illegible] है। गत ७ मईको महाबलेश्वरसे गांधीजीने जो वक्तव्य [illegible] शित कराया है, उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है—"बड़े [illegible] पूँजीपति, उद्योगपति और अन्य लोग सरकारके खिलाफ़ [illegible] और लिखते हैं; पर कार्यतः उसीकी मर्ज़ीके अनुसार [illegible] और उससे मुनाफ़ा भी उठाते हैं—यद्यपि यह होता [illegible] प्रतिशत ही है, जब कि सरकार ९५ प्रतिशत ले लेती [illegible] जो तथाकथित ग़ैरसरकारी डेपूटेशन इंग्लैण्ड और [illegible] जायगा, उसे उस वक्त तक निरीक्षण या किसी शर्मनाक [illegible] के लिए जानेका दुःसाहस नहीं करना चाहिए, जब तक [illegible] समितिके प्रमुख सदस्य—जिनका एकमात्र अपराध है [illegible] भारतकी आज़ादीके लिए चेष्टा करना—बिना विचारे [illegible] बन्द हैं।" पर इसके बावजूद भारतकी लूटमें ब्रिटिश पूँ [illegible] से शर्मनाक समझौतेके लिए विलायत जाकर इन लोगोंने [illegible] कर दिया है कि कार्य-समितिके प्रमुख सदस्योंकी मुक्ति [illegible] आज़ादीसे ज़्यादा इन्हें पैसे और मुनाफ़ेकी चिन्ता है। [illegible] नाम तो है व्यावहारिकता और व्यावसायिक बुद्धि!

बंगालका भ्रष्ट शासन

अभी-हाल ही में बंगालके शासनकी जाँच-समिति [illegible] अकाल-कमीशनकी जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं, उन्हें [illegible] पाठक १९४३ के बंगालके भीषण अकाल, आजके [illegible] अन्य चीज़ोंके अभाव और निकम्मे शासनके यथार्थ [illegible] कुछ आभास पा सकेंगे। किस प्रकार साम्प्रदायिक [illegible] अकर्मण्यता, ग़रज़िम्मेदारी, जनताकी उपेक्षा, घूसखोरी [illegible] चोर-बाज़ार और मुनाफ़ाखोरीको बल एवं प्रोत्साहन दिया [illegible] फल-स्वरूप लाखों ग़रीबोंको मौतके मुँहमें ढकेलकर [illegible] अधिकारियोंने घूस और मुनाफ़ोंके हिस्सेके रूपमें और [illegible] चोर-बाज़ारियोंने लूटके रूपमें जो असामान्य लाभ किया, [illegible] उसकी एक सामान्य-सी टीका हैं। पर इनका प्रकाशन [illegible] तो पर्याप्त नहीं है। हम जानना चाहेंगे कि सरकार अपराधी [illegible] कारियों और कलमुँहे चोर-बाज़ारियोंको माकूल सज़ा देनेके [illegible] क्या करने जा रही है?

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२।१२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पराक्रम और शक्ति शाली कार्यों का मूल कारण स्वस्थ शरीर।

महाराणा रणजीत सिंह, पन्द्रहवीं शताब्दि में, श्री गुरु नानक द्वारा स्थापित वीर सिक्ख जाति के उदीयमान् सम्राट थे। उनके वीरता और साहस के कार्य आज भी, केवल सिक्खों को ही नहीं अपितु समस्त भारतीयों को उत्तेजना प्रदान करते हैं। रणजीत सिंह स्वयं योद्धा होने के कारण, सिक्खों को जहां बुद्धिमान् देखना चाहते थे। वहां उन्हें हृष्ट पुष्ट भी बनाना चाहते थे।

शारीरिक स्वस्थता के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट का सेवन करिये।

हेमो द्रक्षो माल्ट पुरुष स्त्री और बच्चे सभी को समान लाभदायक है। उनके ग्लीसरो फ़ास्फ़ेट्स स्नायुवों को शक्ति देते हैं। उसके माल्ट पैप्सिन और अंगूरों का रस पाचन शक्ति, भोजन में रुचि तथा जठराग्नि की शक्ति को बढ़ाते हुए संपूर्ण शरीर को असाधारण शक्ति और कान्ति प्रदान करता है।

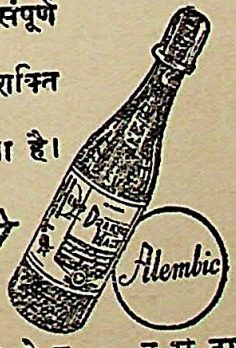

स्वास्थ रक्षा के लिये हेमो-द्राक्षो-माल्ट व्यवहार कीजिये

अलेम्बिक डिस्ट्रिब्युटर्स लि. मखनियां कुआं लोअर रोड, बांकीपुर पटना

अलेम्बिक केमिकल वर्क्स कम्पनी लिमिटेड बराडा

AL.253 B.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बचत के गुर
-देश के लिए!
-अपने लिए!

ग़रीबों की मदद के लिए, हम लोगों को इन दिनों थोड़ी चीज़ों से ही काम चला लेना होगा। कम ख़र्च करके आप उन लोगों के लिए सामान छोड़ते हैं जिन्हें इसकी वास्तव में आवश्यकता हैं। पैबन्द लगे हुए कालर या टीप लगे हुए जूते पहिनने में गर्व का अनुभव कीजिए। आजकल देश के प्रति आपका यही कर्त्तव्य है। सच तो यह है कि कमख़र्ची की ही आजकल क़दर है।

एक बात और भी ध्यान देने की है। पुरानी चीज़ों से काम चला लेने, हर रोज़ हर चीज़ की किफ़ायत करने से बचत होती है—इसका यह मतलब हुआ कि भाव गिरने पर ख़र्च करने को हाथ में ज़्यादा पैसे होंगे।

१ दन्तमंजन किफ़ायत से ख़र्च कीजिए। पुराने ट्यूब रद्दी-भंडार (स्क्रैप डिपो) को दे दीजिए।

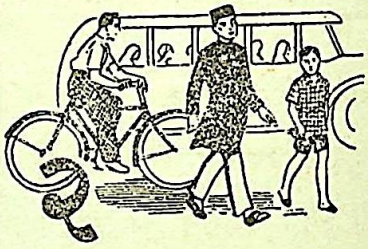

थोड़े सफ़र के लिए पैदल या साइकिल पर जाइए॥ एकएक आना बचाइए।

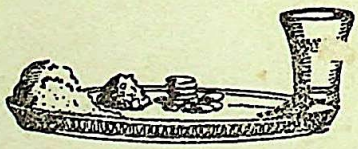

२ भोजन में कम प्रकार के खानें परोसिए।

४ लैम्प ठीक रखने से किरासिन कम जलता है।

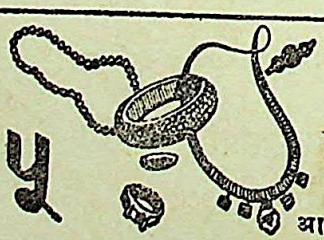

५ नये ज़ेवर मत ख़रीदिए। आपको अपने पैसे बराबर मूल्य नहीं मिलता।

६ पेन्सिल, स्याही, काग़ज़ आदि कम ख़र्च कीजिए।

जिसके बिना काम चल जाय उसे मत ख़रीदिए

AAA 2 HINDI

भारत-सरकार के सूचना तथा प्रचार-विभाग द्वारा प्रकाशित।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जुलाई, १९४५

विशाल भारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Math C... Varan... ...angotri Gyaan K...

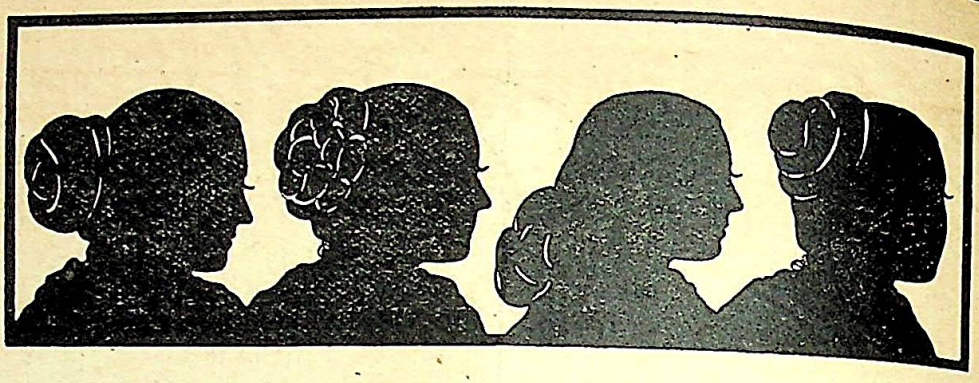

लो टा स

कोकोनट आयल

रमणीय केशको और भी रमणीय करता है

इसका उपादान विशुद्ध, गन्धवस्तु निरापद, गन्ध-मात्रा परिमित अथच मनोरम है। सुरुचि-सम्पन्न नर-नारी मात्र ही इस स्निग्ध गन्धाधिवासित तैलके व्यवहारसे तृप्त होंगे।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

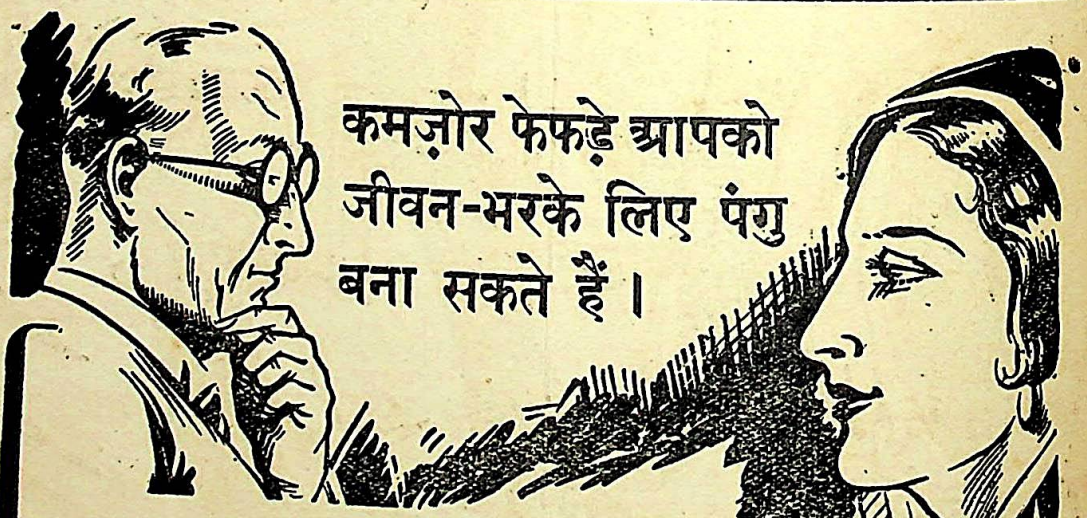

कमज़ोर फेफड़े आपको जीवन-भरके लिए पंगु बना सकते हैं।

भले ही आपने उपेक्षासे अपने फेफड़ोंको खतरनाक बना दिया हो, लेकिन अभी भी बहुत देरी नहीं हुई है। **'टस्सानल'** विधिवत सेवन करनेसे यह फेफड़ोंकी कमजोरी दूरकर आपको फिर पूर्ण स्वस्थ बना देगा।

"अगर मैं अपने मरीज़ोंके घरोंमें **'टस्सानल'** रखने और बराबर उसका प्रयोग करनेको राज़ी कर सकता—"

TUSSANOL

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है।

हेड आफ़िस
४७, दी माल लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी ५० करोड़ से अधिक

भारत भर में १८५ शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये।

हमारी मद्रास ब्रांचने अपना कारोबार २ मई १९४५ से शुरू कर दिया है।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (जुलाई, १९४५)

१ तुम मम मन्दार सुमन !—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' १
२ मेघके बूँद, बूँदके पल...—श्री भवानीप्रसाद मिश्र १
३ चीनका अजगर-नाव-त्योहार—प्रो० कृष्णकिंकर सिंह २
४ लेखनीसे—श्री भरत व्यास ६
५ नवयुग और नव-आदर्श—श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ७
६ वेवेल प्लैन—पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ११
७ 'प्रोषित पतिकाएँ...'—श्री 'संजीवनी' १३
८ रजनी पाम दत्त—श्री महादेव साहा १६
९ विशाल देव (कहानी)—श्री 'अशोक' १७
१० भारतीय वास्तु-कला—श्री आनन्द शास्त्री २५
१० सच्ची स्वतन्त्रता—श्री सन्तराम २७
११ हे चिर-नवीन !—श्री जितेन्द्रकुमार ३१
१२ थारू लोक-गीत—श्री गणेश चौबे ३२
१३ न्याय (कहानी) श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा ३४
१४ रावन—प्रो० सत्येन्द्र ३७
१५ हिन्दुस्तानी-आन्दोलन क्यों ?—
श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ४२
१६ मांसाहार और बौद्ध तथा जैन—श्री कामताप्रसाद जैन ४५
१७ भाषाके डिक्टेटर—प्रो० ललितप्रसाद सुकुल ४९
१८ चिट्ठी-पत्री ५१
१९ समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार ५३
२० चयन ५५
२१ सम्पादकीय विचार ५७

तरंगा चित्र—

महेन्द्रकी सिंहल-यात्रा—श्री खगेन राय १

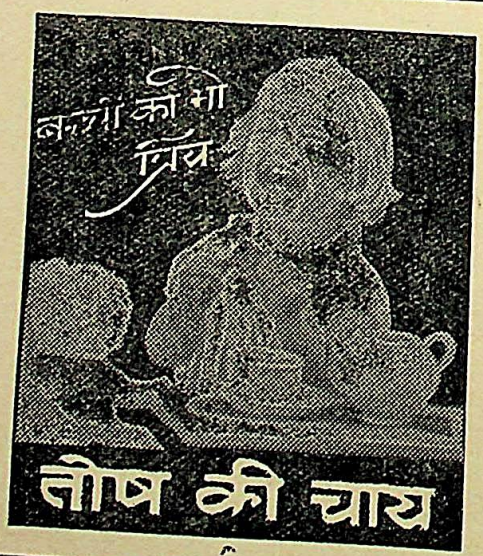

विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

हमारे प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १)
२ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)
३ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १)
४ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ५)
५ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १)
६ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २)
७-८ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक ।)
१. मधुमक्खी २. जंगल

हमारी नवीनतम पुस्तक

१ विभूति— २॥)
डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी नाटकोंका सचित्र संग्रह।
२ शहरका अन्देशा— ३)
श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। इसका प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है। १)
३ पाँचधागे— ।)
श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक पाँच मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह।

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—
प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीम
टूथ पेस्ट

नीमकी दातुन हिन्दुस्तान में प्राचीन कालसे चलती है। क्यालकेमिको के नीम टूथ पेस्ट में नीमके सब गुण वर्त्तमान हैं।

—मार्गोफ्रिस—

(MARGOFRICE Neem Dental Powder)

नीम का पाउडर मञ्जन भी है, अगर आपको मञ्जन पसन्द हो।

कलकत्ता केमिकल कम्पनी लिमिटेड्
वालिगञ्ज :: कलकत्ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कन्ट्रोल के मूल्य

(१) साइकिल टायर इम्प्रूव्ड टूरर	४।।।)	प्रति टायर
" " टूरनामेंट	४।।।)	" "
(२) साइकिल ट्यूब बार ग्रेड	२=)	" ट्यूब

विक्रेताओं और ग्राहकों की जानकारी के लिये प्रचारित

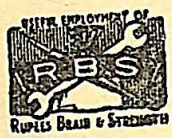

माँग पूरी करने का प्रयत्न किया जाता है; पर युद्धजन्य कठिनाइयों से, पूर्ति में कमी और देरी हो सकती है।

आर बी एस जेनरल मिल्स

खेती, बागवानी, उद्योग-धन्धे, व्यापार, स्वास्थ्य आदि विषयक एकमात्र सुप्रसिद्ध मासिक पत्र

'उद्यम'का साबुन विशेषांक

सुन्दर मुखपृष्ठ !] [सूचक व्यंगचित्र !

ता० १५ अगस्तको प्रकाशित होगा

इस विशेषांकमें साबुनके लिये लगनेवाला कच्चा माल, साबुन तयार करने सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहारोपयोगी जानकारी, मालकी प्रसिद्धि व इतर सम्पूर्ण जानकारी प्रथमतः ही हिन्दी भाषामें प्रकाशित हो रही है।

वार्षिक मूल्य रु० ५-८-०, (व्ही० पी० से रु० ५-१२-०) भेजकर ग्राहक बननेवालोंको 'साबुन-अंक' तो प्राप्त होगा ही, इसके सिवाय खेती, बागवानी, लाभप्रद उद्योग-धन्धे, व्यापार आदि विषयोंकी जानकारी प्रति माह १५ तारीखको नियमित प्राप्त होती रहेगी।

'उद्यम' को माँगकी अधिकताके कारण कहीं आपको निराश न होना पड़े, अतः शीघ्रातिशीघ्र लिखिये !

मैनेजर—'उद्यम' मासिक, धर्मपेठ, नागपुर

महाकवि अकबर और उनका उर्दू काव्य

स्वर्गीय महाकवि अकबर इलाहाबादीकी चुनी हुई अनुपम उर्दू-कविताओंका संग्रह। फुटनोटमें कठिन शब्दोंके अर्थ दिए हैं। चौथा संशोधित और परिवर्धित संस्करण, सुन्दर कागज, बढ़िया छपाई, पृष्ठ लगभग ३००, मूल्य केवल ३॥)।

२. मुग़लोंके अन्तिम दिन—मुग़ल बादशाहोंके परिवारकी सच्ची दुःख-भरी कहानी। पृष्ठ २००, मूल्य २)।

३. जन्नतके फूल—उर्दू भाषाके प्रसिद्ध कवियोंमें से इक़बाल, हाली, चकबस्त इत्यादिकी चुनी हुई कविताओंका अपूर्व संग्रह। तीसरी बार छपी है। पृष्ठ १०४, मूल्य ॥=)।

४. उपयोगितावाद—मनुष्य-जीवनको सफल बनानेवाली अपूर्व पुस्तक। संसारकी बीस भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है। पृष्ठ १४२, मूल्य १॥)।

५ अनारकली—स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोरकी अपूर्व रचनाका हिन्दी अनुवाद। सम्राट जहांगीर और नादिरा बेगमके प्रेमका जीता-जागता चित्र। मूल्य ।=)।

ज्ञान - प्रकाश - मन्दिर,
पो० माछरा, ज़िला मेरठ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एअर मार्शल सर जान बाल्डविन द्वारा थर्ड टैक्टिकल एअर फोर्स के आई० ए० एफ० स्क्वाड्रन्स के कमांडिंग आफिसर्स के नाम लिखे गये पत्र से उद्धरण।

"आई० ए० एफ० (हिन्दुस्तानी हवाई बेड़ा) की स्थापना हुए ग्यारह वर्ष हो गये। इन ग्यारह वर्षों में आपने एक शक्तिशाली, भीषण प्रहारक बेड़े का निर्माण कर लिया है। आर० ए० एफ० और यू० एस० ए० एफ० के साथ काम करके आई० ए० एफ० ने उड़ने में, लड़ने में तथा बमवर्षा करने में जिस ऐक्य एवम् शक्ति का प्रदर्शन किया है, उसकी प्रशंसा मैं लिखित रूप से करना चाहता हूं।

अभी एक महान कार्य करना है। आपको पता है कि हम एक निर्दय और सुसज्जित शत्रु से लड़ रहे हैं। किन्तु मुझे इसके परिणाम के संबंध में कोई सन्देह नहीं है। अच्छे काम को जारी रखिए। विजय प्राप्त होने पर आई० ए० एफ० के अपने विमान-चालकों के प्रति हिन्दुस्तान बहुत कृतज्ञ होगा।"

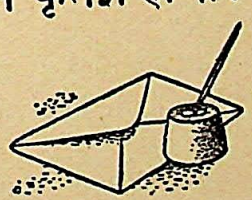

AAA 234

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

BOOKS AVAILABLE

	Rs.	As.
Chatterjee's Picture Albums—Nos. 1 to 17 (*No. 1, 4, 5, 8 & 9 out of Stock*) each No. at	4	0
An Album of European Paintings	4	0
History of Orissa Vols. I & II —R. D. Banerji each Vol.	25	0
Canons of Orissan Architecture—N. K. Basu	12	0
Dynasties of Mediæval Orissa— Pt. Binayak Misra	5	0
Eminent Americans: Whom Indians Should Know— Rev. Dr. J. T. Sunderland	4	8
Emerson & His Friends— ditto	4	0
Evolution & Religion— ditto	3	0
Origin and Character of the Bible ditto	3	0
Rajmohan's Wife—Bankim Ch. Chatterjee	2	0
Prayag or Allahabad—(*Illustrated*)	3	0
The Knight Errant (*Novel*)—Sita Devi	3	8
The Garden Creeper (*Illust. Novel*)— Santa Devi & Sita Devi	3	8
Tales of Bengal—Santa Devi & Sita Devi	3	0
Plantation Labour in India—Dr. R. K. Das	3	8
India And A New Civilization— ditto	4	0
Mussolini and the Cult of Italian Youth (*Illust.*)—P. N. Roy	4	8
Story of Satara (*Illust. History*) —Major B. D. Basu	10	0
My Sojourn in England— ditto	2	0
History of the British Occupation in India —[*An epitome of Major Basu's first book in the list.*]—N. Kasturi	3	0
History of the Reign of Shah Alum— W. Franklin	3	0
The History of Medieval Vaishnavism in Orissa—With introduction by Sir Jadunath Sarkar.—Prabhat Mukherjee	6	0
The First Point of Aswini—Jogesh Ch. Roy	0	8
Protection of Minorities— Radha Kumud Mukherji	0	4
Indian Medicinal Plants—Major B. D. Basu & Lt.-Col. K. R. Kirtikar—Complete in 8 Vols. [Authoritative Work with numerous Superb Plates]	320	0

Postage Extra.

The Modern Review Office

120-2, UPPER CIRCULAR ROAD, CALCUTTA.

প্রবাসীর পুস্তকাবলী

মহাভারত (সচিত্র) ৺রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়

সচিত্র বর্ণপরিচয় ১ম ভাগ— রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়

সচিত্র বর্ণপরিচয় ২য় ভাগ—ঐ

চাটার্জির পিক্‌চার এল্‌বাম (১, ৪, ৫, ৮ ও ৯ বাদে) প্রত্যেক

চিরন্তনী (শ্রেষ্ঠ উপন্যাস)—শ্রীশান্তা দেবী

উষসী (মনোজ্ঞ গল্পসমষ্টি)— ঐ

সোনার খাঁচা— শ্রীসীতা দেবী

আজব দেশ (ছেলেমেয়েদের সচিত্র) ঐ

বজ্রমণি (শ্রেষ্ঠ গল্পসমষ্টি) ঐ

উত্থানলতা (উপন্যাস)—শ্রীশান্তা ও সীতা দেবী

কালিদাসের গল্প (সচিত্র)—শ্রীরঘুনাথ মল্লিক

গীত উপক্রমণিকা—(১ম ও ২য় ভাগ) প্রত্যেক

জাতিগঠনে রবীন্দ্রনাথ—ভারতচন্দ্র মজুমদার

কিশোরদের মন—শ্রীদক্ষিণারঞ্জন মিত্র মজুমদার

চণ্ডীদাস চরিত—(৺কৃষ্ণপ্রসাদ সেন) শ্রীযোগেশচন্দ্র রায় বিদ্যানিধি সংস্কৃত

মেঘদূত (সচিত্র)—শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য

হিমালয় পারে কৈলাস ও মানস সরোবর (সচিত্র)— শ্রীপ্রমোদকুমার চট্টোপাধ্যায়

পাথুরে বাঁদর রামদাস (সচিত্র)— শ্রীঅসিতকুমার হালদার

জল্পনা—শ্রীহেমলতা দেবী

খেলাধূলা (সচিত্র)—শ্রীবিজয়চন্দ্র মজুমদার

বিলাপিকা—শ্রীযামিনীভূষণ সাহিত্যাচার্য্য

ল্যাপল্যাণ্ড (সচিত্র)—শ্রীলক্ষ্মীশ্বর সিংহ

ডাকমাশুল স্বতন্ত্র।

প্রবাসী কার্য্যালয়—১২০।২, আপার সার্কুলার রোড, কলি

CC-O. Jangamwadi Math Collection,·Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आरसी - लिखित

पांचजन्य

हिन्दी कविता में एक प्रथम श्रेणी की रचना

कविकी साहित्यिक प्रगतिका एक नया माइल-स्टोन। सम्पूर्ण पुस्तककी ऐसी कोई भी कविता नहीं और किसी कविताकी ऐसी कोई भी पंक्ति नहीं, जिसमें पुलिंग न बोलता हो। एक साथ ही अध्यात्म, दर्शन, पौरुष एवं अमृत-छन्दसीके रहस्यमय भावोंसे ओत-प्रोत यह नवीन पुस्तक इसी महीनेमें प्रकाशित हुई है। मूल्य अजिल्द १॥) और सजिल्द २)।

इसी लेखककी अन्य रचनाएँ

१. आरसी (कविताएँ) .... १५)
२. संचयिता (कविताएँ) .... ५)
३. कलापी (कविताएँ) .... २॥)
४. आँधीके पत्ते (कहानियाँ) .... १।)

कवि नन्दकिशोर-लिखित

१. प्राणदीप (नया कविता-संग्रह) .... १)
२. आभा (सरस कविताएँ) .... १)
३. रणभेरी (ओजस्वी रचना) .... ॥।)

कवि अरुण-लिखित

१. शकुन्तला (खण्ड-काव्य) .... ॥।)
२. अरुणिमा (प्रारम्भिक रचनाएँ) .... ॥।)

अन्य पुस्तकोंके लिये सूचीपत्र माँगिये

तारामण्डल : मुजफ्फरपुर

क्या आपको आवश्यकता नहीं है?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की स्त्री-पुरुषके लिए औषध

मेनसो--कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २)।

लिबर्टी--उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २)।

ओज़न--निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनाता है। मूल्य सिर्फ ४)।

कैटरैक्टो--बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २)।

मेनसो चेम्बर

१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता

फोन : साउथ २४६७

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost. Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps. **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As. 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B.

मृगी-हिस्टीरियाकी विजयी जड़ी

यह अचूक जड़ी केवल १ बार दौड़ेके समय रोगीको सुँघा देनेसे सवा इंच लम्बा काले रंगका एक कीड़ा छींकोंके साथ निकल आयगा। कीड़ा निकल जानेपर रोगी सदैवके लिये निरोग हो जायेगा।

पता—श्री १०८ महात्मा श्री सिद्ध बाबा,

पो० नागोद (ज़ि० जबलपुर)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महिलाओं के लिए अपूर्व सुअवसर

महिलाओं के सामने यह सिद्ध करने का सुअवसर उपस्थित है कि अनेक कार्यों के लिए वे पुरुषों की ही भांति योग्यता रखती हैं। हिन्दुस्तान में आजकल हज़ारों स्त्रियां, नौसेना और सेना की चुस्त वर्दी पहने हुए, यह बात सिद्ध कर रही हैं और इस प्रकार वे युद्ध का अन्त निकट ला रही हैं। जो बुद्धिमती महिलाएं वमेन्स आग़ज़ीलरी कोर (भारतीय महिला सहायक सेना) में भरती हुई हैं, उन्होंने यह अनुभव किया कि स्त्रियोंके सामने उन्नति का वास्तविक सुअवसर उपस्थित है और नारी-जागरण भारतवर्ष के भविष्य-निर्माण का एक महत्वपूर्ण अंग है। जो कार्य ये सीख रही हैं, वे कार्य, व्यवसाय-कुशल व्यक्तियों की सम्मति में, राष्ट्र की औद्योगिक उन्नति के लिए तथा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। वमेन्स आग़ज़ीलरी कोर में आपको भविष्य-सुधार का बहुत बड़ा सुअवसर प्राप्त हो रहा है। भरती होने का अंतिम निर्णय करने से पहले कोर की नौकरी के सम्बन्ध में पूरा विवरण किसी डबल्यू० ए० सी० (आई) महिला-भरती-अफसर (पते नीचे लिखे हैं) अथवा किसी डबल्यू० ए० सी० (आई) यूनिट कमाण्डर से मालूम कर लीजिए।

डी० टी० आर. ओ०, डब्लू० ए० सी० (१), १३।बी।१ रसेल स्ट्रीट, कलकत्ता।

ए० टी० आर० ओ०, डब्लू० एस० सी० (१), एग्जीबीशन रोड, पटना।

डी० ए० टी० आर० ओ०, डब्लू० ए० सी० (१) C/o. असिस्टेण्ट टेकनिकल रिक्रूटिंक आफिसर, सेक्रेटरियेट हिल, शिलौंग।

डी० ए० टी० ओ०, डब्लू० ए० सी० (१), C/o. असिस्टेण्ट टेकनिकल रिक्रूटिंग आफिसर, हैडले हाउस, रांची।

डी० ए० टी० आर० ओ०, डब्लू० ए० सी० (१), C/o. डेपुटी रिक्रूटिंग आफिसर, ४२ नाईवाला कटरा रोड, निमताली, ढाका।

AAA 244

* वमेन्स आग़ज़ीलरी कोर (इंडिया) *

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माँ और शिशु —श्री एस० सेन

नटीकी पूजा —श्री ताराप्रसाद

दुष्यन्त और शकुन्तला —श्री एस० घोष

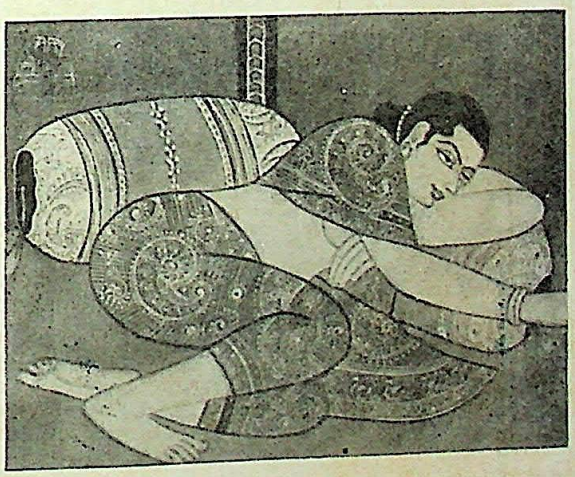

विश्राम —श्री वंशीलाल

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

महेन्द्रकी सिंहल-यात्रा

[श्री खगेन राय

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक १] कलकत्ता, जुलाई, १९४५ [पूर्णांक २११

तुम मम मन्दार-सुमन !

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

तुम मम विद्रुम - लतिका, तुम मम मन्दार - सुमन;
तुम मम मृदु पारिजात, तुम मम यूथिका - चयन;
तुम मम मन्दार - सुमन !

शत - शत सौन्दर्य - सार न्यौछावर है तुमपर;
अति अतुलित सौकुमार्य है तव पग - गति-पट-तर;
सरसिज - कुड्मलसे भी सुन्दर हैं दृग हिय - हर;
तुम मेरे राका - पति; हैं चकोर मम लोचन;
तुम मम मन्दार - सुमन !

मेरे सन्ध्या - नभके तुम ही तो हो कुंकुम;
मेरे जीवन - मगकी ज्योति - किरण भी हो तुम;
मम अपूर्ण चाहोंके तुम ही हो इच्छा - द्रुम;
तुम ही में केन्द्रित है मेरी यह हृदय - लगन;
तुम मम मन्दार - सुमन !

जब मेरे प्राणोंमें तुम पाहुन बन आए,—
जब मम मन-गगन बीच तुम नव-घन बन छाए,—
अरुण नयनवाले, प्रिय, जब तुम मम मन भाए,—
अहो, तभीसे मेरा पूर्ण हुआ अपनापन !
ओ, मेरे स्नेह - सुमन !

प्रिय, मेरे हियमें तुम आए चोरी - चोरी;
औ' ले ली निज करमें मेरी जीवन - डोरी;
रंजित है तव रँगमें अब मम चादर कोरी;
मुझको अब कहते हैं सभी तुम्हारा चारण !
ओ, मम मन्दार - सुमन !

अब कैसी लोक - लाज ? अब क्या संकोच, सजन ?
क्यों न आज बन्ध तोड़, बहे मुक्त स्नेह - व्यजन ?
हम-तुम मिल क्यों न करें आज नवल नीति-सृजन ?
जिसपर चलकर पाएँ निजको ये सब जग - जन।
ओ, मम मन्दार - सुमन !

मेघके दिन, बूँदके पल....

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

मेघ के दिन, बूँद के पल,
छू न जाएँ यदि मनस्तल,
चाप सतरंगा न भाए,
मन हवा के सँग न गाए,
तो तुम्हारे प्यार के दिन,
तो तुम्हारे नेह के पल विफल मेरे द्वार पर होंगे...

यह भयंकरता बचा लो,
मुझे वर्षा में नचा लो;
घन घिरे हैं, बस बहुत है,
सब विरस हो, रस बहुत है;
परस - पारसवंद्य वर्षा—
आ गई है, मैं न हर्षा !
हे, मुझे पागल बनाओ, दूसरा बादल बनाओ !

सान्द्र सुख - सपने घुमड़कर,
स्वर जगे मुझ में उमड़कर;
'झड़' बनाकर मुझे छोड़ो,
गर्व के सौ शिखर तोड़ो;
मैं हिला दूँ दर्प के दल,
गिर पड़ें वे शीश के बल;
मैं तुम्हारा चाप बनकर, खिचूँ छवि की छाप बनकर।

बरसने की शक्ति लेकर,
वज्र - विद्युत् - शक्ति लेकर,
जिसे छू दूँ, हरा कर दूँ,
धान - धन्या धरा कर दूँ।
मान मानव का बढ़ाओ,
उसे अम्बर तक चढ़ाओ;
अंक ऐसे आँक दे वह, चाँद - सूरज टाँक दे वह !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनका अजगर-नाव-त्योहार

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह, हिन्दी-अध्यापक, राष्ट्रीय प्राच्य विद्या-अध्ययन कालेज, छेङ्कुङ् (चीन)

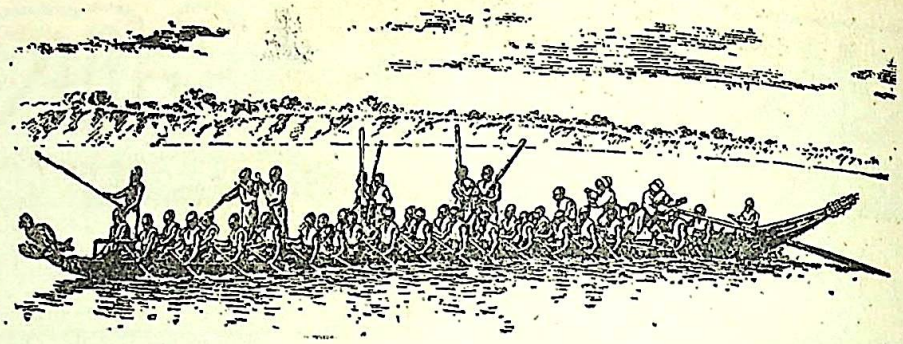

चीनके प्रधान नौ त्योहारोंमें से तीन त्योहार—नव-वर्ष-त्योहार, अजगर-नाव-त्योहार और मध्य-पतझड़-त्योहार—सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक धूम-धामसे मनाए जाते हैं। अजगर-नाव-त्योहार याङ्(पुरुष)-बोधक है और इसमें सूर्यकी पूजा (चीनमें सूर्य याङ्-बोधक माना जाता है) होनी चाहिए; पर इन दिनों सूर्यकी पूजा देखनेको नहीं मिलती। चूँकि यह त्योहार वर्षके प्रथम आधे भागके अन्दर पड़ता है और वर्षका प्रथम आधा भाग याङ्-बोधक माना जाता है, इसीलिए यह त्योहार याङ्-बोधक है। यह चीनी पंचांगके पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीखको मनाया जाता है, जो अंगरेज़ी पंचांगके अनुसार जूनके प्रथम और तृतीय सप्ताहके बीच पड़ता है। इस समय सूर्य कर्कट-रेखापर या उसके बहुत निकट आ जाता है, यानी सिरपर आ जाता है। इसीलिए चीनी भाषामें इस त्योहारका नाम 'तुआन् याङ्' (लम्ब रूप सूर्य) है। चूँकि इस त्योहारका एक प्रधान उत्सव 'नावकी दौड़' कहलाता है और दौड़में भाग लेनेवाली सभी नावोंकी शक्ल अजगरकी तरह बनी रहती है, इसलिए यह त्योहार 'अजगर-नाव-त्योहार'के नामसे भी प्रसिद्ध है।

यह त्योहार नववर्ष-त्योहारकी तरह बहुत अधिक दिनों तक नहीं मनाया जाता। सभी प्रकारके उत्सव, खेल आदि एक दिनके अन्दर ही समाप्त हो जाते हैं, यद्यपि तैयारी कुछ पहलेसे ही करनी पड़ती है। यह त्योहार सम्पूर्ण चीनमें मनाया जाता है और सभी जगह इस अवसरपर होनेवाले उत्सव, खेल आदि लगभग एक ही तरहके होते हैं। हर देशके त्याहारोंमें धर्मके नामपर कुछ अन्धविश्वासोंका राज्य रहता है। यह बात चीनमें भी पाई जाती है। चीनमें त्योहारोंको अपेक्षाकृत कम धार्मिक रूप प्राप्त है; पर अन्धविश्वासोंकी कमी नहीं है। यह त्योहार (अजगर-नाव-त्योहार) प्राचीन कालके एक श्रेष्ठ पुरुषको याद-गारमें मनाया जाता है; पर इस अवसरपर ताओ-धर्म (चीनके एक श्रेष्ठ दार्शनिक लौ-च के नामपर चला हुआ धर्म) के पुरो-हितोंकी बुलाहट होती है, पूर्वजोंको भोग लगाए जाते हैं तथा भूत-पिशाच आदिको भगानेके लिए कितने ही कार्य किए जाते हैं। इस दिन पूर्वजोंको चुङ् च का भोग लगाया जाता है और अजगर-नावकी दौड़ होती है। 'चुङ् च' और अजगर-नावके सम्बन्धमें अधिक बातें जाननेसे पहले इस त्योहारकी उत्पत्ति, इसके साथ जुड़ी पौराणिक कथा और कुछ ऐतिहासिक बातोंको जान लेना आवश्यक है।

इस त्योहारकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें चीनी लोग एक कथा सुनाते हैं और उसमें पूरा विश्वास करते हैं। कथा यह है कि ई० पूर्वकी तीसरी शताब्दीके प्रथम चरणमें चीनके वर्त्तमान हु-नान् प्रदेशमें छु नामक एक राज्य था, जिसमें चौ वंशके राजा राज्य करते थे। उस राज्यमें छु-युआन् नामक एक व्यक्ति बुद्धिमान और ईमानदार मन्त्री थे। वे केवल मन्त्री ही नहीं, बल्कि एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और कवि भी थे। राजा दोनों ही छु-युआन्के कार्यसे खुश थे और उनका पूरा आदर करते थे। पर छु-युआन्की बढ़ती देखकर राज-दरबारी उनसे मन-ही-मन जला करते थे और उन्हें ईर्षाकी दृष्टिसे देखते थे। अन्तमें राज-दरबारियोंके षड्यन्त्रके कारण राजाका दिल छु-युआन्की तरफ़से हट गया, और वे उनकी अच्छी बातोंपर भी ध्यान नहीं देने लगे। राजाके इस कार्यसे छु-युआन्को बड़ा दुःख पहुँचा। जब उन्होंने परिस्थिति सुधारनेको सब उपाय असफल देख लिए, तो बड़े निराश हुए और राज-दरबार छोड़कर दुःखके मारे मि-लुओ नदी (यह नदी चीनके वर्त्तमान हु-नान् प्रान्तकी राज-धानी छाङ्-शाके पास है) के तटपर भटकने लगे। उसी समय उन्होंने 'लि-सौ' नामक अपनी प्रसिद्ध कविता रची, जिसमें उनके आन्तरिक दुःखकी स्पष्ट छाप है। नदी-तटपर भटकते-भटकते वे जग और जीवन दोनोंसे इतने निराश हो गए कि उन्होंने अपने शरीरमें एक बड़ा-सा पत्थर बाँध नदीमें कूद आत्म-हत्या कर ली। उस अवसरपर जो लोग नदी-तटपर थे, वे सब नाव लेकर उन्हें बचाने दौड़े; पर शरीरसे पत्थर बाँधकर कूदनेके कारण उनका शव भी नहीं मिल सका। यह अजगर-नाव-त्योहार उन्हीं की यादगारमें मनाया जाता है। जिस दिन उन्होंने आत्म-हत्या की थी, वह चीनी पंचांगके पाँचवें मासका पाँचवाँ दिन था, इसलिए यह त्योहार आज तक भी पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीख को ही मनाया जाता है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, इस अवसरपर पूर्वजोंको चुङ् च का भोग लगाया जाता है और अजगर-नाव-दौड़ होती है। इन दोनोंकी उत्पत्ति भी इसी दिनसे मानी जाती है। कहा जाता है कि छु-युआन्की आत्म-हत्यासे लोगोंको बड़ा दुःख

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहुँचा, इसलिए अपनी श्रद्धा प्रकट करनेके लिए और उनके प्रेतात्माको सन्तुष्ट करनेके लिए लोग हर वर्ष पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीखको नदीमें चावल फेंकने लगे। एक बार प्रेतात्माने लोगोंको दर्शन दिया और कहा—'आप लोगोंके कर्त्तव्य-पालनसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और धन्यवाद देता हूँ। पर आप लोग जो चावल फेंकते हैं, वे मुझे नहीं मिलते; क्योंकि नदीकी मछलियाँ, कछुए आदि उसे खा जाते हैं। इसलिए आप लोग बाँसके चोंगों में चावल रख और पत्तियोंसे उन्हें बन्दकर तथा रंगीन रेशमी धागेसे बाँध नदीमें मुझे अर्पण किया कीजिए; क्योंकि इस विधिसे देनेपर मछली, कछुए आदि उन्हें छूनेका साहस नहीं करेंगे।' उसके बादसे लोग प्रेतात्माके कथानुसार ही करने लगे। आज जो चुङ् च पूर्वजोंको भोग लगाया जाता है, उसकी उत्पत्ति इसी बाँसके चोंगोंमें चावल रखकर प्रेतात्माको अर्पण करनेकी विधिसे हुई है। जिस समय छु-युआन् अपने शरीरमें पत्थर बाँधकर नदीमें कूदे थे, उस समय नदी-तटके लोग नाव लेकर उन्हें बचाने दौड़े थे। आज जो अजगर-नावकी दौड़ होती है, यह 'नावें लेकर बचानेके लिए दौड़ने'की यादगार बनाए रखनेके लिए ही होती है। इतनी बातें हैं इस त्योहार तथा इससे संलग्न प्रधान कार्योंकी उत्पत्तिके बारेमें, और इन बातोंमें जनता पूर्ण विश्वास करती है। पर प्रोफ़ेसर युन ख्वाइ-थौने लिखा है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे छु-युआन्की यादगारमें यह त्योहार ई० सन्की छठी शताब्दीसे मनाया जाता है, यद्यपि छु-युआन्की मृत्यु ई० पूर्व लगभग २८८० में हुई थी। पर पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीख बहुत पहलेसे ही चीनमें अपना एक खास स्थान रखती है। चौ राजकुल (५०० ई० पूर्व) के समय यह विश्वास किया जाता था कि पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीखको पैदा होनेवाला बच्चा अवश्य ही अभागा होगा। बहुत हाल तक यह विश्वास किया जाता था कि वर्षका पाँचवाँ महीना बड़ा ही अमंगलदायक है। हान् राजकुल (ई० पूर्व पहली शती) के प्रारम्भ-कालमें सम्राट् इस तारीखको अपने दरबारियोंके बीच तरंगमय डिज़ाइनका रेशमी पाजामा बाँटते थे। इसलिए इतना तो स्पष्ट है कि प्राचीन कालसे ही चीनमें पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीख विशेष अर्थ रखती आ रही है।

यद्यपि यह त्योहार छु-युआन्की यादगारमें शोक प्रकट करने के लिए मनाया जाता है; पर इस दिन शोक-सूचक दृश्य देखनेको एकदम नहीं मिलता। यह उस प्रकारका त्योहार हो गया है, जब लोग दिल-दिमाग़ और शरीरको थकानेवाले प्रतिदिनके काम-धन्धों तथा शोक-दुःखको भूलकर आनन्द मनाने तथा नाना प्रकारकी अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने-पीनेमें अपना समय व्यतीत करते हैं। त्योहारके दिन खाने-पीनेके लिए अच्छी-अच्छी चीज़ें और देवी-देवताओंको चढ़ानेके नवीन सामग्रियाँ चाहिए; इसलिए दो-चार दिन पहलेसे ही खरीद-बिक्री प्रारम्भ हो जाती है। त्योहारवाले दिनके लिए लोग बाँस, आइ और फुके हरे पत्ते, पीले कागज़को काटकर बनाए गए जहाज़, लाल हरताल आदि विशेष रूपसे खरीद कर लाते हैं। बच्चोंके लिए खिलौने आदि भी खरीदे जाते हैं। ठीक त्योहारके दिन दरवाज़ेकी चौखटोंपर आइ और फुके हरे पत्ते लगाए जाते हैं। जनता विश्वास करती है कि दरवाज़ेकी चौखटोंपर इन पत्तोंके लगानेसे किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा घरमें प्रवेश नहीं कर सकती है, क्योंकि आइके पत्ते शेरकी शक्लके और फुके तलवारकी शक्लके होते हैं। डा० युन ख्वाइ-थौने लिखा है कि किसी-किसीके मतानुसार प्राचीन कालमें आइके पत्तोंके शेर बनाकर दरवाज़ोंपर लगाए जाते थे। पर इन दिनों तो केवल पत्ते ही लटकाए जाते हैं। घरकी दीवारों, दरवाज़ों या दरवाज़ोंके पर्दोंपर गोजर, बिच्छू, साँप, छिपकली और एक विशेष प्रकारके मेंढ़कके चित्र, जो लाल कागज़ या रेशमी कपड़ेके काटकर बनाए गए होते हैं, अधोमुख स्थितिमें साटे जाते हैं। लोगोंका विश्वास है कि ये पाँचों जीव विषैले हैं और अधोमुख स्थितिमें लटकानेसे ये अपना विष खो देते हैं। लौकीके चित्र लाल कागज़ (चीनमें लाल कागज़ विघ्न-बाधाको दूर भगानेवाला माना जाता है) को काटकर बनाए जाते हैं और उपर्युक्त जीवोंकी तरह ही दीवारों आदिपर साटे जाते हैं। चीनमें औषधि-विक्रेता अपनी औषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) लौकोके पात्रमें रखते हैं, इसलिए जनता विश्वास करती है कि लौकीमें भी बीमारीको अच्छा करनेकी महान् शक्ति है। ऊपर कहा गया है कि उस दिनके लिए लोग पीला कागज़ काटकर बनाया गया जहाज़ बाज़ारसे खरीदकर लाते हैं। जहाज़पर 'स्वर्ग-मालिक' और 'चुङ्-क्वइ'के चित्र या उनकी मोहरोंकी छापें, जो सिन्दूरसे की गई होती हैं, अंकित रहती हैं। कभी-कभी उपर्युक्त पाँच विषैले जीवोंके चित्र भी आँके जाते हैं। यह जहाज़ घरके प्रधान फाटक या प्रधान कोठरीके दरवाज़ेपर साटा जाता है। चुङ्-क्वइकी तस्वीर भी लोग खरीदकर लाते हैं और अपने घरकी दीवारपर साटते हैं। चुङ्-क्वइकी तस्वीर बड़ी भयावनी बनी होती है—लम्बी-लम्बी मूँछें, विशाल शरीर, शरीरपर विभिन्न रंगोंकी भड़कीली पोशाक और दोनों हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र। 'स्वर्ग-मालिक'की तस्वीर भी दीवारोंपर साटी जाती है। इन तस्वीरोंके साटनेका अर्थ यह है कि भूत-पिशाच आदि का प्रवेश घरमें न हो सके।

ये 'चुङ्-क्वइ' और 'स्वर्ग-मालिक' कौन हैं, यहाँ इसपर भी कुछ कह देना आवश्यक है। चीनमें जब थाङ् राजकुल (सन् ६१८-९०७ ई०) का राज्य था, तो सन् ७१२-७५६ ई०के बीच मिङ् ह्वाङ् नामक सम्राट् गद्दीपर थे। एक बार वे ज्वरसे बहुत पीड़ित थे। उसी दशामें एक दिन एक रातको उन्होंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वप्नमें देखा कि एक छोटी आकृतिवाला पिशाच, जो नील-लोहित रंगकी पोशाक धारण किए हुए था, राजमहलमें घुस पड़ा। वह उनका सुवासित बटुआ और क़ीमती बाँसुरी चुराकर भागने ही वाला था कि एक बड़ी आकृतिवाले देवने राजमहलमें प्रवेश किया और उस छोटी आकृतिवाले पिशाचको पकड़कर उसकी एक आँख निकाल ली और उसे खा डाला। सम्राट्ने उस बड़ी आकृति-वाले देवसे पूछा—'आप कौन हैं?' इसपर उन्होंने बताया—'मेरा नाम चुङ्-क्वई है और मैं थाङ् राजवंशके प्रथम सम्राट्के समय उनके अधीन द्वितीय दर्जेका सैनिक अफ़सर था। यद्यपि मैं प्रथम दर्जेका अफ़सर कभी नहीं बनाया गया, तथापि सम्राट् मेरी बड़ी क़दर करते थे और मेरे मरनेके बाद उन्होंने मेरा शव बड़ी इज़्ज़तके साथ दफ़नाया था। तब मैंने उनसे प्रतिज्ञा की थी कि मैं थाङ् वंशके राज्यकी रक्षा करूँगा और किसी प्रकारके भूत-पिशाचको राज्यमें नहीं घुसने दूँगा। इसीलिए आज रातको जब एक पिशाच राजमहलमें घुस पड़ा, तो मैंने उसकी एक आँख निकालकर खा ली।' जब सम्राट्की आँखें खुलीं, तो उन्होंने देखा कि उनके शरीरसे ज्वर जाता रहा है और वे एकदम भले-चंगे हो गए हैं। उन्होंने तुरत अपने समयके सबसे प्रसिद्ध कलाकार वु तौ-चको बुलवाया और उनसे सारी घटना बता उन्हें चुङ्-क्वइकी तस्वीर आँकनेको कहा। सम्राटने स्वप्नमें देखे हुए चुङ्-क्वइकी शक्लका वर्णन जिस तरह किया था, उस कलाकारने ठीक उसी तरहकी तस्वीर उतारी। तस्वीर देखकर सम्राट् बड़े ही खुश हुए और उन्होंने आज्ञा दी कि नववर्ष-त्योहारके अवसरपर सब लोग चुङ्-क्वइकी तस्वीर अपने-अपने घरोंकी दीवारोंपर लटकाएँ। पर बादमें यह तस्वीर नववर्ष-त्योहारके दिन नहीं, बल्कि इस अजगर-नाग-त्योहारके दिन लटकाई जाने लगी। आज चुङ्-क्वइ सम्पूर्ण राज्यके प्रेतात्माओंके महान् शिकारीके रूपमें माने जाते हैं और जनता विश्वास करती है कि उनकी तस्वीर लटकानेसे किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा, भूत-पिशाच आदिका प्रवेश घरमें नहीं होगा। यही है कहानी चुङ्-क्वइके बारेमें। 'स्वर्ग-मालिक'की उत्पत्ति यों बताई जाती है कि जब चीनमें मंगोल जातिका राज्य (सन् १२७९-१३६७ ई०) था, तो उसके अन्तिम सम्राट युआन् शुन-ति (सन् १३३३-१३६७ ई०) ने चाङ् चुङ् युआन् नामक एक व्यक्तिको, जो ताओ-धर्मका अनुयायी था, 'स्वर्ग-मालिक'की उपाधि दी; क्योंकि उसने अपने जिन जादू-टोने आदिका आविष्कार किया था, वे विघ्न-बाधाओंको भगानेके लिए रामबाण सिद्ध हुए। इसलिए इस त्योहारके दिन उसकी तस्वीर भी दीवारोंपर साटी जाती है, ताकि भूत-पिशाच घरमें प्रवेश न कर सकें।

इस दिनके लिए लोग बाज़ारसे लाल हरताल खरीदकर लाते हैं। चीनमें लाल हरतालसे शराब बनाई जाती है और यह शराब इस त्योहारके दिन व्यवहारमें आती है। इस शराबको धूपमें सुखाकर एक प्रकारका रंग भी तैयार किया जाता है। इस त्योहारके दिन इस रंगसे छोटे-छोटे बच्चोंके कपाल, नाक, कान आदि रँगाए जाते हैं। चीनके लोग विश्वास करते हैं कि बच्चेके कपालपर तीन पड़ी रेखाओंको काटती हुई एक खड़ी रेखाकी आकृतिका चिह्न रहता है और चीनी भाषामें यह आकृति 'राजा' शब्दका द्योतक है। इसलिए शराबसे बनाए गए रंगसे लोग अपने बच्चोंके कपालपर यह चिह्न (चीनी भाषामें इस चिह्नका उच्चारण 'वाङ्' है) अंकित करते हैं। चूँकि बाघ जानवरोंका राजा समझा जाता है, इसलिए बच्चेके कपालपर यह चिह्न अंकित करनेसे वह भी राजा होगा और साथ-साथ उसके पास किसी प्रकारके दुःखदायी जीवोंका आगमन न हो सकेगा, ऐसा विश्वास किया जाता है। इस अवसरपर माँ-बहनें महीन और रंगीन रेशमी कपड़ेमें लपेटी हुई रुई काटकर चुङ् च, ततु लौकी आदिकी छोटी-छोटी आकृतियाँ बनाती हैं, या बनी-खरीदकर लाती हैं, और उन सबोंको एक धागेमें पिरोकर बच्चे पीठ या गलेमें लटकाती हैं। यह धागा 'दीर्घ जीवन-सूत्र' कहा लाता है। देहातकी स्त्रियाँ भी अपने जूड़ोंमें इसे लटकाती हैं। इस अवसरपर जादू-टोने, अन्धविश्वास आदिके सम्बन्धमें सब बातें होती हैं।

त्योहारका दूसरा पहलू आनन्द मनाना है, इसलिए खाना भी बड़े समारोहके साथ मनाया जाता है। त्योहारके अवसर लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनना तथा अच्छी-अच्छी चीज़ें खाना पसन्द करते हैं। इसलिए आजके दिन खासकर स्त्रियाँ और बच्चे अपनी-अपनी सबसे अच्छी पोशाक पहनते हैं। ऊपर कहा गया है कि इस अवसरका प्रधान खाना चुङ् च है और यह भी बताया जा चुका है कि किस प्रकार बाँसके चोंगोंमें चावल रखकर, उन्हें बाँसकी पत्तियोंसे ढँककर तथा धागेसे बाँधकर छु-युआन्को अर्पण किया जाता था। पर आज कोई भी इस विधिसे मृतात्माको चावल नहीं अर्पण करता, बल्कि जीवित लोग चुङ् च अर्पण करते हैं। यह चुङ् बाँसके चोंगेका ही संस्करण है। इस त्योहारके लिए लोग बाज़ारसे चिपा चावल (चावलमें कई चीज़ें मिलाकर उसे विशेष बनाया जाता है) खरीद कर लाते हैं और साथ-साथ बाँसके पत्ते भी। मुट्ठी-भर चिपचिपा चावल दबाकर (जो दबानेसे एक-दूसरेसे सट जाता है) उसके ऊपर बाँसकी पत्तियाँ और फिर उसे सूतेसे बाँध देते हैं। अपनी औकातके लोग चिपचिपे चावलमें अन्य प्रकारकी स्वादिष्ट चीज़ें (मांस मिलाते हैं। यह सिंघाड़ेकी शक्लका त्रिभुजाकार, पर सिंघाड़ेसे बड़ा बनाया जाता है। मैंने इसे गायदुमाकार, बीचमें फूला हुआ दोनों ओर नुकीलो आकृतिका भी देखा है। कहते हैं कि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहीं यह वर्गाकार और आयताकार भी बनाया जाता है। यह मीठा और नमकीन दोनों प्रकारका बनाया जाता है। सूतेसे बाँधनेके बाद इसे पानीमें उबालते हैं और उबालनेके बाद यह खाने योग्य हो जाता है। इसे ही 'चुङ् च' कहते हैं। इस अवसरपर हर परिवारमें कोड़ियोंकी संख्यामें यह बनाया जाता है। यह इस त्योहारका प्रधान भोजन है तथा ग़रीब-अमीर सभी इसे खाते हैं। चुङ् च बनानेका कार्य त्योहारकी पिछली संध्याको ही समाप्त हो जाता है। त्योहारके दिन सुबह पूर्वजोंको चुङ् च तथा अन्य प्रकारकी मीठी रोटियाँ, फल आदिके भोग लगाए जाते हैं। भोग लगानेके समय धूपबत्तियाँ, मोमबत्तियाँ आदि जलाई जाती हैं और लोग पूर्वजोंको घुटने टेककर प्रणाम करते हैं। यह कार्य समाप्त होनेके बाद लोग चुङ् च का जलपान करते हैं और नदी या झीलमें छु-युआनके प्रेतात्माको चुङ् च अर्पण करते हैं। दोपहरको ठीक सबेरेकी तरह ही पुनः पूर्वजोंको चुङ् च का भोग लगाया जाता है। इस भोगमें लोग अपनी औक़ातके अनुसार अन्य प्रकारकी खाद्य-सामग्रियाँ, मांस, मछली आदि भी रखते हैं। लाल हरतालकी शराबका भोग लगाना एकदम ज़रूरी है। भोगके बाद पूर्वजोंकी वेदीपर से सभी चीज़ें उठाकर लाई जाती हैं और तब दोपहरका खाना प्रारम्भ होता है। इस अवसरपर लाल हरतालकी शराब पीना सबोंके लिए (बच्चोंको छोड़कर) ज़रूरी है। लोग होड़ लगाकर शराब पीते हैं तथा बड़े चावसे हँसी-मज़ाक करते हुए खाना समाप्त करते हैं।

त्योहारका तीसरा पहलू सामाजिक है। यद्यपि नववर्षकी तरह सामाजिक व्यवहार इस त्योहारके अवसरपर नहीं होता, फिर भी विवाहित पुत्रियाँ इस दिन दोपहरके पहले अपने पति और बच्चोंके साथ अपने माता-पिताके घर जाती और आशीर्वाद प्राप्त करती हैं। लोग एक-दूसरेके यहाँ चुङ् च को भेंट भेजते हैं। इस दिन भद्दे हँसी-मज़ाकका बाज़ार गरम रहता है। पर इस अवसरका सबसे मनोरंजक और सामाजिक कार्य है सामूहिक रूपसे खेला जानेवाला खेल, जो 'अजगर-नाव-दौड़' कहलाता है। मुझे अजगर-नाव-दौड़ देखनेका अवसर नहीं मिला है और वास्तवमें यह दौड़ अब कहीं-कहीं ही होती है। कहते हैं कि बीस वर्ष पहले यह दक्षिण-चीनमें बहुत ही प्रचलित थी। इसलिए संक्षेपमें अजगर-नाव-दौड़के सम्बन्धकी निम्न बातें डा० युन ख्वाइ-थौकी 'तुआन्-याङ्' नामक पुस्तिकासे उद्धृत की जाती हैं।

दोपहरका खाना समाप्तकर जहाँ नदी या झील है, वहाँके लोग अजगर-नाव-दौड़ देखनेके लिए नदी या झीलके तटपर इकट्ठे होते हैं। यह दौड़ लगभग दो बजे दिनको प्रारम्भ होती है। यह खेल 'अजगर-नाव-दौड़' इसलिए कहा जाता है कि खास इस अवसरके लिए ठीक अजगरकी शक्लकी नाव बनाई जाती है। नावका अगला भाग अजगरके सिरकी तरह बना रहता है और उसमें अजगरका मुँह खुला हुआ रखा जाता है, जिसमें विषैले दाँत अंकित रहते हैं। अक्सर सिर लाल रंगसे रँगाया जाता है। नावकी लम्बाई ६०से ९० फीट तक होती है, जिसमें ३० से ४० खेनेके डाँड़ लगे रहते हैं। हर गाँव या गोत्र (clan) या मण्डली (guild) के पास एक या दो नावें होती हैं।

चीनी पंचांगके चौथे मासके प्रारम्भमें ही हर दल इस अवसरके लिए नाव खेनेवालों और गाने-बजानेवालोंको चुनता है और तभीसे उन लोगोंकी ट्रेनिंग प्रारम्भ हो जाती है। चौथे मासकी आठवीं तारीखको हर दल हर नावके लिए अपना मुखिया चुनता है और तब सब चुने हुए नाव खेनेवाले तथा गाने-बजानेवाले अजगरका कृत्रिम सिर अपने कन्धोंपर रख गाजे-बाजेके साथ जुलूसके रूपमें गाँवमें फेरी देते हुए यह घोषणा करते हैं कि त्योहारके दिन अजगर-नाव-दौड़ होगी। इस दौड़के खर्चके लिए हर दल कुछ चन्दा एकत्रित करता है। पाँचवें मासकी पहली तारीखको नदी या झीलमें, जहाँ नाव रहती है, नाव धोई जाती है और यदि नावकी मरम्मतकी ज़रूरत पड़ती है, तो मरम्मत भी की जाती है। पाँचवें मासकी चौथी तारीखको कोई ताओ पुरोहित आमन्त्रित किया जाता है, जो अजगर-सम्राट (लुङ् वाङ्) की पूजा करता है। हर दलके नाव खेनेवाले तथा गाने-बजानेवाले अलग-अलग रंगकी पोशाक पहने रहते हैं।

पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीख (यानी त्योहारके दिन) को लगभग एक बजेसे नदी या झीलके किनारे दर्शकोंकी भीड़ लगने लगती है। अल्पाहारको विभिन्न चीज़ें, चाय, खिलौना आदि बेचनेवाले अपनी छोटी-छोटी दुकानें लाकर सजा देते हैं। लोग हँसी-मज़ाक करते हुए चाय पीते तथा अल्पाहार करते हैं। लगभग दो बजे ढोल-झाल आदिकी आवाज़के बीच विभिन्न दलके लोग आते हैं और दौड़की निश्चित जगहपर कतार बाँधकर खड़े हो जाते हैं। खेनेवालोंको आते देख दर्शक करतल-ध्वनि करते और नाना प्रकारके उत्साहवर्द्धक शब्दोंसे उन्हें उत्साहित करते हैं। जब सब दलोंके खेनेवाले पंक्ति बाँध खड़े हो जाते हैं, तब दौड़ प्रारम्भ करनेका हुक्म दिया जाता है। हुक्म मिलते ही खेनेवाले बिजलीकी तरह दौड़कर अपनी-अपनी नावोंपर बैठ जाते और खेनेमें तल्लीन हो जाते हैं। डाँड़ोंकी छपछपाहट और उनसे उठनेवाले पानीके रजत फेनकी उछलाहट, हर दलके झण्डेको फड़फड़ाहट, ढोल तथा झालोंकी ढमढमाहट और झलझलाहट तथा जनताकी उत्साहवर्द्धक और प्रशंसासूचक ध्वनि आदि सभी चीज़ें मिलकर दौड़को अत्यन्त मनोरंजक और सनसनीपूर्ण बना देती हैं। निर्धारित स्थानपर पहुँचनेवाली प्रथम तीन नावोंको प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार दिए जाते हैं। पुरस्कार समाजकी ओरसे या ज़िलाधीशकी ओरसे दिया जाता है। अगर दौड़में भाग लेनेवाले दल बहुत होते हैं, तो दौड़ कई घण्टों तक चलती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहती है। जब सन्ध्या होने लगती है, तो लोग दिन-भरके विभिन्न प्रकारके आनन्दसे तृप्त होकर अपने-अपने घरोंको लौट जाते हैं और इस प्रकार यह त्योहार समाप्त हो जाता है।

यह अजगर-नाव-दौड़ लोगोंको बहुत ही आनन्द प्रदान करती है। साथ ही इसका सामाजिक पहलू भी ध्यान देने योग्य है। प्रो० तान युन-शान्ने लिखा है कि चीनके लोग अपने गाँवोंको इतना प्यार करते हैं कि जीवन-भर वे वहीं रहते, काम करते और अपनी औलाद छोड़ चल बसते हैं। अपनी बस्तीसे बाहर जाना वे ठीक नहीं समझते। यद्यपि यह आजके लिए बहुत दूर तक सत्य नहीं है; लेकिन पचास वर्ष पहले (और आज भी चीनके भीतरी भागमें) चीनी जनतामें यह भावना बहुत ही पाई जाती थी। फिर भी इस प्रकारके उत्सव, त्योहार आदिके अवसर पर लगनेवाले मेलेमें वे ज़रूर जाते थे। इस प्रकार एक गाँवके लोगोंको दूसरोंसे मिलने, विचारोंके आदान-प्रदान करने तथा देश और समाजकी नाना प्रकारकी भलाई-बुराईकी बातें कहनेका मौक़ा मिलता था। वास्तवमें जब आजके समान आधुनिक यातायातकी सुविधाएँ नहीं थीं, तो ये मेले, हाट आदि ही समाचारपत्र, रेडियो आदिका काम करते थे। इसलिए इस आजगर-नाव-दौड़का यह पहलू सचमुच बड़ा प्रधान था।

उपर्युक्त बातोंको देखनेसे पता लगता है कि इस त्योहारमें अन्धविश्वासका बोलबाला है। पर अन्धविश्वासके साथ-साथ लोग दिल खोलकर खुशियाँ मनाते हैं। वास्तवमें ये अन्धविश्वास भी एक प्रकारके दिल बहलानेके साधन हो गए हैं। इसीलिए एक चीनी विद्वानने कहा है—"शायद चीनी जनताके जीवनकी सबसे बड़ी कलापूर्ण बात यह है कि उसने गम्भीर तथा दिल न लगनेवाली बातोंको भी मनोरंजक और कलापूर्ण विनोदके रूपमें परिणत कर दिया है, जिसके फल-स्वरूप किसी भी चीज़का आधारभूत अर्थ इतना बदल गया है कि लोग इसे गम्भीर मानते ही नहीं।" आज चीनके आधुनिक—खासकर पढ़े-लिखे—लोग प्राचीन त्योहारोंके मनानेमें हाथ नहीं बँटाते। वे अधिकतर दर्शक का ही काम करते हैं। त्योहार तो अधिकतर गाँवोंमें ही देखने को मिलता है। अब गाँववालोंपर भी शहरके पढ़े-लिखे लोगोंकी छाप पड़नी प्रारम्भ हो गई है। जब देशका शिक्षित समाज किसी चीज़की तरफ़से उदासीन हो जाता है, तो इसका असर धीरे-धीरे अशिक्षित समाजपर भी पड़ने लगता है और वह भी उसे बुरा मानकर धीरे-धीरे उसे छोड़ने लगता है। इस प्रकार परम्परासे आती हुई बहुत-सी बातें, जिनका देशकी संस्कृति से काफ़ी सम्बन्ध रहता है, लोग भूल जाते हैं। आज भी इस त्योहारके अवसरपर चीनके सरकारी आफ़िस, कालेज आदि बन्द रहते हैं; पर त्योहार मनानेकी ओर लोगोंका दिल नहीं झुकता। इस परिस्थितिसे दुःखित होकर एक चीनी विद्वानने निराशापूर्ण शब्दोंमें कहा है—"आज भी त्योहार पाँचवें मासकी पाँचवीं तारीखको मनाया जाता है; पर इसमें प्राचीन सामंजस्य स्थापित करनेवाली भावना देखनेको नहीं मिलती। त्योहारमें न सरसता रह गई है, न आनन्द ही। मौलिक चीनी संस्कृतिके समान त्योहारका सौन्दर्य भी नष्ट हो गया है। आज इस त्योहारके अवसरपर कुछ सस्ते 'आधुनिक' रेस्तोराँओंमें केवल मुट्ठी-भर 'चुङ्' जिह्वापर रखनेके लिए मिलते हैं।"

लेखनीसे—

श्री भरत व्यास

ओ सुकोमल लेखनी मेरी, रुको मत, गति बढ़ाओ।
आज तक जो-कुछ लिखा, वह भूमिका थी!
गीत तो मेरे अभी प्रारम्भ होंगे,
और अब ही से पुजारिन, थक चलीं तुम!
आज तुमको बन्दिनी माँका निमन्त्रण,
आज तुमको राष्ट्रके रणका निमन्त्रण,
आज तुमको धूलि कण-कणका निमन्त्रण,
आज है पगली कहाँ विश्रामका क्षण?
आज तो कर्त्तव्यका तुमको निमन्त्रण।
लो, सुहागिन, शीघ्र अब आलस्य छोड़ो,
और यह चिरकालका मसिपात्र तोड़ो;
आज तो इन आँसुओंमें डूबकर सखि,
रक्तसे मेरे चलो लिखती हुई तुम।

आज तुम विस्फोट-सी फटती चलोगी,
आज तुम अन्यायियोंकी जड़ हिलाती,
कम्प-सी भूकम्प-सी हिलती चलोगी;
आज तुम शिव-सर्पिणी बन रक्त निगलोगी,
प्रलय-सी ज्वालामुखी बन आग उगलोगी;
युगोंके बन्धनोंको भस्म करतीं, क्षार करतीं,
यदि स्वयं भी भस्म हो जाओ, नहीं कुछ है असम्भव!
और अब ही से पुजारिन, थक चलीं तुम!
आज भावोंकी धुएँ-सी साँस अन्तिम छोड़नी है;
आज काग़ज़के शरोंसे भित्तिकाएँ फोड़नी हैं!
लेखनी मेरी, शुकी निष्प्राण पिंजरेमें घिरीं तुम,
आज तो निज चंचुसे तुमको शलाका तोड़नी है!
आज मेरी लेखनी, तुम रुको मत, गति ही बढ़ाओ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नवयुग और नव-आदर्श

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

भारतवर्षमें नवयुगका आविर्भाव हो रहा है। क्या साहित्य, क्या कला, क्या समाज और क्या धर्म—सभीमें नए आदर्शोंका निर्माण हो रहा है। स्वाधीनता, एकता और समताके ही आधारपर नए आदर्शका निर्माण हो रहा है। पर यह आदर्श अभी तक विद्रोह अथवा क्रान्तिके ही रूपमें है। देशके उत्थान, समाजकी उन्नति और मानसिक भावोंके विकासमें कितने ही लोगोंका हाथ रहता है। एक-एक समयमें एक-एक ऐसे विज्ञ या महात्मा हो जाते हैं, जिनका प्रभाव तत्कालीन देश और समाज पर विशेष रूपसे पड़ता है। यह सच है कि इन सबका प्रभाव समान रूपसे न तो स्थायी होता है और न प्रबल ही; तो भी उन्हें जो काम करना होता है, वह काम वे कर ही जाते हैं। उनके बाद लोग भले ही उनकी महत्ताको भूल जायँ, अथवा उनकी नीतिको स्वीकार न करें; पर देश या जातिके इतिहासमें उनका गौरव अलक्षित रूपसे सदा विद्यमान रहता है।

आधुनिक भारतकी विचार-धाराके प्रवर्त्तक एक नहीं, अनेक विज्ञ हैं। यह सच है कि पाश्चात्य सभ्यताके संघर्षसे भारतीय सभ्यताने दूसरा रूप धारण किया है। पर राजा राममोहन रायसे लेकर महात्मा गांधी तक सभी विज्ञोंने भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिए ही सतत् उद्योग किया है। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारतवर्षके साहित्य, समाज और राजनीतिके क्षेत्रमें गत २५ वर्षोंसे जो परिवर्त्तन होता आ रहा है, उसने अब तक क्रान्तिका रूप धारण कर लिया है। स्वतन्त्रताका आन्दोलन अब केवल शिक्षित जनोंमें ही बद्ध नहीं है; वह अब जनताका आन्दोलन हो गया है। राजनीतिके ही क्षेत्रमें उसका प्रभाव नहीं पड़ा है, साहित्य और समाजमें भी उसके कारण बड़ा परिवर्त्तन हो रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि मानव-समाजमें सर्वत्र जो अशान्ति और असन्तोष है, उसका कारण यह है कि व्यक्तिके साथ समाजका और समाजके साथ राष्ट्रका उचित सामंजस्य-विधान नहीं स्थापित हुआ है। भौतिक प्रभुताके लिए यदि भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंमें पारस्परिक स्पर्धा है, तो राष्ट्रके भीतर जातिगत-विरोधका भी अभाव नहीं है। समाजके अधिकारके साथ व्यक्तिगत स्वाधीनताकी रक्षा भी एक जटिल प्रश्न है। प्रति-योगिताके भावसे सभी एक-दूसरेपर आघात कर रहे हैं। जहाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता है, वहाँ भी व्यक्तित्वके विकासके लिए अन्दो-लन हो रहा है। यही नवयुगकी बड़ी समस्या है। क्या सभी व्यक्तियोंको समान रूपसे अपनी उन्नति करनेका अवसर मिलता है? व्यक्तिपर समाजका कितना अधिकार हो, सम्पत्तिका कैसा विभाजन हो?—यही नवयुगके प्रश्न हैं।

भारतवर्षमें नवयुगकी वाणी महात्मा गांधीके कण्ठसे उत्थित हुई है। उनके पहले कितने ही नेता हुए; परन्तु उनके शब्द विज्ञोंके समाजमें ही गूँजते थे। अशिक्षित जनतासे उनका कोई सम्पर्क नहीं था। जनतामें शिक्षाका प्रचार अत्यन्त परिमित होने के कारण अब भी यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वसाधारणमें महात्माजीके सिद्धान्तोंका प्रचार हो गया है। अभी लोग उनके व्यक्तित्वसे जितने प्रभावित हुए हैं, उतने उनके सिद्धान्तोंसे नहीं। जो महात्माजीके अनुयायी हैं, उनमें भी उनके सिद्धान्तोंके प्रति सच्ची भक्ति और श्रद्धा नहीं है। तो भी यह स्पष्ट है कि देशमें एक अपूर्व जाग्रति आ गई है। इस नवयुगके आदिकालमें दो व्यक्तियोंका विशेष प्रभाव पड़ा है। वे हैं—लोकमान्य तिलक और कवीन्द्र रवीन्द्र।

अन्य नेताओंकी अपेक्षा भारतवर्षके राजनीतिक जीवनमें लोकमान्य तिलकका प्रभुत्व क्रमशः बढ़ता ही गया। इसी तरह साहित्यके क्षेत्रमें रवीन्द्रनाथकी कीर्त्ति बढ़ती ही गई। हिन्दीमें 'हिन्दी-केसरी'के प्रकाशनके साथ ही हम लोग लोकमान्यके राज-नीतिक विचारोंसे भी परिचित हो गए। रवीन्द्रनाथकी रचनाओंका अनुवाद पहले मासिक पत्रोंमें—विशेषकर 'सरस्वती'में—प्रका-शित हुआ। फिर उनकी कहानियाँ छपीं, फिर उपन्यास और फिर उनकी कविताएँ। रवीन्द्रनाथकी ये रचनाएँ केवल साहित्य-जगत् की ही वस्तुएँ नहीं थीं। उन्होंने पाठकोंको जीवनका एक नया आदर्श भी दिखलाया। पाश्चात्य विचार-धाराने हिन्दू-समाजपर जो आघात किया है, उसको उन्होंने स्पष्ट कर जीवनमें जो चिरन्तन सत्य है, उसको भी प्रदर्शित कर दिया। समाजके नव-निर्माणमें न अतीतकी उपेक्षा की जा सकती है और न वर्त्तमानकी। चिरन्तन सत्यका जो सूत्र अतीत और वर्त्तमानको ग्रथितकर उसे दृढ़तापूर्वक भविष्यमें ले जाता है, उसीके आधारपर उन्होंने जीवनकी आलोचना की।

लोकमान्य तिलक और कवीन्द्र रवीन्द्रका प्रभाव अक्षय होने पर भी परिमित ही था। कांग्रेसमें जैसे विज्ञोंका प्रवेश था, वैसे ही रवीन्द्रके साहित्यमें शिक्षितोंका अधिकार था। भारतवर्ष में आज जो हलचल है, वह महात्मा गांधीके कारण है। बनारस में जब विश्वविद्यालयके शिलान्यासका उत्सव हो रहा था, तब एक छात्र होनेके कारण मुझे उनका व्याख्यान सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस व्याख्यानमें था यथार्थ भारतका यथार्थ सन्देश। वह सन्देश छात्रोंको दिया गया था; पर उसके कारण सभा-भवनमें हलचल-सी मच गई। महामना मालवीयजीको महात्मा गांधीके उक्त सन्देशकी व्याख्या करनी पड़ी। उत्सव तो समाप्त हो गया; पर महात्मा गांधीका सन्देश भारतव्यापी हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजनीतिके क्षेत्रमें विप्लव-सा हो गया। कांग्रेसकी नीति ही परिवर्त्तित हो गई। कांग्रेसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहा, अथवा यह कहिए कि उसने गांधीजीका रूप धारण कर लिया। भारतीयोंमें जिस प्रकार राजनीतिक पराधीनता आई है, उसी प्रकार मानसिक पराधीनता भी आई है। अब भारतीयोंको एक-मात्र राजनीतिक स्वाधीनता ही प्राप्त नहीं करनी है, उन्हें अपनी भाषा और साहित्यका भी स्वराज्य स्थापित करना है। राष्ट्रोंमें ज्ञानका आदान-प्रदान एक बात है और मानसिक दासत्व दूसरी बात है। इसीको अभी दूर करना है।

राजनीतिके क्षेत्रमें महात्माजीका जो प्रभाव है, वह तो स्पष्ट है। पर क्या यह कहा जा सकता है कि समाजके क्षेत्रमें भी उनका उतना ही प्रभाव पड़ा? क्या चर्खा, क्या खद्दर, क्या अछूतोद्धार और क्या हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य—इनमें से किसीने भी भारतवासियोंके हृदयपर गहरा प्रभाव नहीं डाला। क्रान्ति और सुधारकी भावना देशमें अवश्य आ गई है; पर अभी हिन्दू-जनताके हृदयमें प्राचीन आदर्शोंका प्रबल संस्कार है। किन्तु यह बात भी सच है कि नवयुगकी क्रान्ति उसपर प्रबल आघात कर रही है। देशमें अशान्ति और असन्तोषका जो वातावरण हो गया है, उसका मूल केवल राजनीतिक पराधीनतामें नहीं है, सामाजिक और बौद्धिक पराधीनतामें भी है। लोग धर्म, समाज और साहित्यके बन्धनोंके प्रति असहिष्णु हो रहे हैं। नगरोंमें तो सर्वत्र नव-सुधारों और नव-आदर्शोंकी चर्चा हो रही है और तदनुकूल परिवर्त्तन भी हो रहे हैं। ग्रामोंमें भी इसका प्रभाव पड़ रहा है।

ग्राममें जीवन-संघर्ष उतना विकट नहीं होता, जितना नगरमें। पाप और पुण्य, न्याय और अन्यायकी लीलाएँ तो सर्वत्र होती हैं। पर ग्राम्य जीवनमें वह भीषणता और बीभत्सता नहीं होती, जो हम नगरमें पाते हैं। नगरके पापोंमें एक तीव्र बुभुक्षा-सी रहती है। वहाँ वासना अग्निकी तरह प्रचण्ड रहती है। वहाँ लोभ अट्टालिकाकी तरह बढ़ जाता है। वहाँ क्रोध और प्रति-हिंसा दोनोंमें ट्रामगाड़ीकी-सी उग्रता और क्षिप्रता रहती है। उद्योगके कोलाहलमें एक मनुष्यका अस्तित्व बिलकुल दब जता है। किसी एकके कामकी ओर किसीकी भी दृष्टि नहीं जाती। पर ग्राममें यह बात नहीं होती। किसी एकके सम्बन्धकी कोई भी बात तुरन्त फैलकर बड़ी बन जाती है; परन्तु विस्तार के साथ ही वह अपनी तीव्रता खो बैठती है। जीवनके प्रवाहमें तेलकी बूँदकी तरह वह जितनी ही अधिक फैलती है, उतनी ही अधिक सारहीन हो जाती है, और अन्तमें वह उसीमें ऐसे लीन हो जाती है, मानो उसका कोई अस्तित्व नहीं था। पाप और कलंक, विद्वेष और क्रोध, अत्याचार और अन्याय—सभीमें एक क्षणिकता रहती है। जीवनके प्रवाहमें ये सभी बह जाते हैं। एक ही स्थानमें सब एकत्र होकर जीवनके प्रवाहको अवरुद्ध नहीं करते। तो भी ग्रामोंमें कभी-न-कभी कोई-न-कोई सुधारक हो ही जाता है।

पण्डितजी भी हमारे ग्रामके एक ऐसे ही सुधारक थे। सुधारक-दलमें सम्मिलित होनेके पहले पण्डितजीको स्वयं समाज का अत्याचार सहना पड़ा था। तभीसे समाजको अपने सुधारोंसे उलट देनेके लिए वे कटिबद्ध हो गए। इसी भावनासे प्रेरित होकर वे हम लोगोंके गाँवमें आए। उनके आते ही ब्राह्मण नवयुवकोंने शिखा और सूत्रको पहले नष्ट किया, फिर सन्ध्या छोड़ी, फिर सिगरेट पीने लगे, फिर चायके साथ अभक्ष्योंका प्रचार बढ़ा, फिर सुधार प्रारम्भ हुआ। उनके आनेके पहले हम सभी लोग अपनी स्थितिसे सन्तुष्ट थे। यह बात नहीं थी कि गाँवमें कोई बुराई ही न थी अथवा हम लोग उसे जानते ही न थे। हम लोग अपने दोषोंको अच्छी तरह जानते थे; पर संसारकी कितनी ही अनिष्ट वस्तुओंकी तरह हम उन्हें भी अनिवार्य समझकर सन्तोषपूर्वक स्वीकार कर लेते थे। किसीके भी उत्थान-पतनको भाग्य-चक्रका खेल समझकर हम लोग निश्चेष्ट बने रहते थे। सुख-दुःख, हानि-लाभ, न्याय-अन्याय—सभी हमारे लिए विधिके विधान थे। ब्राह्मण हों या शूद्र, उच्च हों या नीच, धनी हों या निर्धन—सभीकी स्थितिको हम कर्म-फल मानते थे।

५० वर्षकी अवस्थाको अतिक्रमण कर लेनेके बाद जब रघुनन्दन बाबूकी स्त्रीका देहान्त हो गया, तब हम सब लोगोंने उनसे सहानुभूति प्रकट की, और जब उन्होंने अपने पारिवारिक कष्टको दूर करनेके लिए विवाहकी इच्छा प्रकट की, तब हम सभी लोग सहमत हो गए। 'देवदास'की पार्वती और 'गृहदाह'की मृणालिनीकी तरह स्वयं कन्याने भी आपत्ति नहीं की और न अनिच्छा ही प्रकट की। किसीने भी उसका विरोध नहीं किया, क्योंकि किसीने भी उसमें अनौचित्य नहीं देखा। इसी प्रकार जब लाला कुन्दनलालने अपने ज्येष्ठ पुत्रका विवाह १२ वर्षकी ही अवस्थामें कर दिया, तब हम सब लोगोंने विवाहका निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार किया और ५ दिनों तक विवाहोत्सवमें सम्मिलित रहे। बाल-विवाहके कुफलपर किसीने ध्यान नहीं दिया। एक बार जब १६ वर्षकी अवस्थामें ही लाला हरीमोहन की पुत्रवधू विधवा हो गई, तब सारा गाँव शोकमें निमग्न हो गया; पर स्वप्नमें भी किसीने यह नहीं सोचा कि उक्त पुत्रवधूका पुनर्विवाह सम्भव है।

परन्तु पण्डितजीके गाँवमें आते ही एक आन्दोलन मच गया। गाँवका सारा जीवन क्षुब्ध हो गया। लोगोंमें एक अशान्ति आ गई। जिन दोषोंकी ओर किसीने दृष्टिपात तक नहीं किया था, वही दोष अब सब लोगोंको प्रत्यक्ष भासने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने लगे। सद्धू चमारने आज तक कभी यह नहीं सोचा था कि शिव-मन्दिरमें उसका प्रवेश निषिद्धकर मन्दिरके निर्माताने उसपर कितना अन्याय किया है ; पर अब उसे यह बात मालूम हो गई। नन्दू मेहतरको पण्डितजीसे दूर रहनेमें अभी तक कोई अत्याचार नहीं प्रतीत होता था ; पर अब उसे अस्पृश्यताका यह अत्याचार असह्य हो गया। स्त्रियोंमें अवश्य उनके सुधारोंका प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। कुछ समय पहले कोई विधवा अपने दुष्कर्मके कारण पतित हो गई थी, उसका उदाहरण देकर जब पण्डितजीने विधवाओंके पुनर्विवाहकी चर्चा की, तब स्त्रियोंने ही उनका सबसे प्रबल विरोध किया। उस कलंकिनीके साथ हिन्दू स्त्रीकी तुलना करना घोर अपमानजनक हो गया। कितने ही दुश्चरित्र पुरुषों और दुश्चरित्र सधवाओंका उल्लेखकर पण्डितजीसे पूछा गया कि उनके लिए किस विवाहकी व्यवस्था की गई है? एकने पण्डितजीसे यह भी पूछा कि जहाँ बाल-विवाह नहीं है, जहाँ विधवाओंके विवाह प्रचलित हैं, जहाँ जाति-भेद नहीं है और जहाँ स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-स्वातन्त्र्य भी है, वहाँ पापोंका प्रसार क्यों है?

समाज-सेवा और समाज-सुधारकी बात मैं भी अपनी छात्रावस्थासे ही सुनता आ रहा हूँ। जाति-भेदके कारण हिन्दू-समाज में जो विद्वेष, घृणा और तिरस्कारके भाव फैल रहे हैं, उनके सम्बन्धमें मैं यथेष्ट सुन चुका था। समाजकी उन्नतिमें वह कितना बड़ा बाधक है, यह भी मुझे समझाया जा चुका था। बाल-विवाह के कारण समाजका कितना पतन हो गया है, विधवा-विवाह न होनेसे समाजकी कितनी दुरवस्था है, पर्देके कारण कितना अज्ञान फैला हुआ है, स्त्री-शिक्षा तथा स्त्री-स्वातन्त्र्यके अभावसे समाजमें कितनी अधिक संकीर्णता और अनुदारता आ गई है और इन सबका परिणाम हिन्दू-जातिके लिए कितना अधिक घातक हो रहा है—इनकी विशद आलोचनासे भी मैं अवगत हो चुका था। हिन्दू-समाजकी दुरवस्थाके कितने ही चित्र कथा-साहित्यमें अंकित हो चुके थे। वे सभी मेरे लिए अज्ञात नहीं थे। इसीसे अपनी छात्रावस्थामें कितने ही उच्च और उदार विचारोंको लेकर मैं संसारमें प्रविष्ट हुआ था। पर इन २८ वर्षोंके भीतर मैंने एक हिन्दू-गृहस्थके रूपमें सामाजिक जीवनका जो अनुभव प्राप्त किया, उससे प्रायः मेरे सभी विचार परिवर्त्तित हो गए हैं। बात यह है कि अपने-अपने व्यक्तिगत जीवनमें हम लोगोंको जो एक विशेष परिस्थितिमें रहना पड़ता है, उसके कारण हम लोगोंमें आप-से-आप परिवर्त्तन हो जाता है।

व्यक्तिगत उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि जिस समाज में हम लोग रहें, वह समाज भी उन्नत हो। उसका आदर्श ऐसा हो, जो सभी लोगों द्वारा अनुसरणीय हो। यह भी सच है कि मनुष्य समाज-प्रिय प्राणी है। समाजसे पृथक होकर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना उसके लिए सम्भव नहीं है। यही नहीं, व्यक्तिका समाजसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि समाजकी उन्नति और अवनतिपर उसकी भी उन्नति और अवनति निर्भर है। हममें जिन गुणोंका विकास होता है, वे गुण हम समाजसे भी पाते हैं। हमारी नैतिक और कुछ अंशमें आध्यात्मिक स्थिति भी समाजपर अवलम्बित है। इसलिए हमारे समाजके नेता सदैव हमारे समाजकी उन्नतिके लिए सचेष्ट रहते हैं। वे जानते हैं कि समाजकी उन्नतावस्थामें ही मनुष्य अपनी उन्नति अच्छी तरह कर सकता है।

समाजके संगठनमें ही त्यागका भाव विद्यमान है। समाज व्यक्तियोंका समुदाय है। जब १० मनुष्य मिलकर कोई काम करते हैं, तब उस कार्यके लिए उन्हें अपने-अपने छोटे कामोंकी चिन्ता छोड़नी पड़ती है। महत्ताके लिए क्षुद्रताका त्याग करना ही पड़ता है। तभी समाजकी स्थिति सम्भव है। समाजकी मर्यादा उसी महत्तम उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए बतलाई जाती है। प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने क्षुद्र स्वार्थोंको छोड़ कर उस महत्तम उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए समाजकी मर्यादाका उल्लंघन न करे। समाजकी उन्नतिके लिए और उसकी मर्यादा-रक्षाके लिए कठोर नियम बनाए ही जाते हैं। उन नियमोंके पालन करने से हममें एक दृढ़ता आती है और साथ-ही-साथ आत्म-संयमका गुण भी प्राप्त होता है। जिस समाजके मूलमें आत्म-त्याग और आत्म-संयमकी भावना विद्यमान नहीं है, वह समाज शीघ्र ही पतित हो जाता है। इसीलिए समाजमें उच्च आदर्शका प्रचार सभी स्थितियोंमें आवश्यक है। पतनोन्मुख समाज भी जिन कार्योंके कारण उन्नतिके पथपर अग्रसर होता है, वही सुधार कहे जाते हैं। समय-समयपर ऐसे सुधार होते रहनेसे समाजकी उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है।

देश, काल और परिस्थितिके अनुसार परिवर्त्तन हमारे समाज में आवश्यक हैं। संसार परिवर्त्तनशील है, इसीसे वह उन्नतिशील है। स्थिरता जड़ता और अकर्मण्यताकी सूचना देती है। जलके प्रवाहको एक ही स्थानमें रोक रखनेसे उसमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। नदीका स्रोत तभी तक निर्मल बना रहता है, जब तक वह लगातार बहता ही चला जाता है। यही हाल हमारे जीवन-प्रवाहका भी है। जीवनकी गति रुद्ध होनेपर उसमें शैथिल्य, अवसाद और जड़त्व आ जाते हैं। इन्हींको दूर करनेके लिए नए-नए परिवर्त्तन किए जाते हैं, जिससे हममें नवजीवन और नव-शक्तिकी स्फूर्त्ति आती है।

समाजके भीतर भिन्न-भिन्न स्वभावोंके मनुष्योंमें संघर्ष न हो, इसी उद्देश्यसे गुण, कर्म और स्वभावके अनुसार हिन्दू-समाजमें जाति-भेदकी व्यवस्था की गई। इस जाति-भेदसे हिन्दू-जातिको लाभ अवश्य हुआ ; पर हिन्दू-समाजका विस्तार होनेपर और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोगोंके अन्य-अन्य स्थानोंमें जा बसनेके कारण इस जाति-भेदमें संकीर्णता आ गई। जिस संघर्षणको दूर करनेके लिए जाति-भेद की व्यवस्था की गई थी, वही संघर्षण समाजमें फिर आ गया। बन्धुत्व और समानताके भाव दूर हो गए। प्रतिस्पर्धा और द्वेष के भाव व्याप्त हो गए। सैकड़ों उपजातियाँ बन गईं। इसलिए समाजके नेता उसको दूर करनेके लिए समाजका नव-संगठन करना चाहते हैं। यह एक सामाजिक सुधार है, जिसकी चर्चा देशमें खूब हो रही है। खान-पान, विवाह आदिमें जाति-व्यवस्थाके कारण जो एक संकीर्णता आ गई है, उसको दूर करने के लिए कितने ही लोग प्रयत्नशील हो रहे हैं।

बाहर जैसे पुरुषोंका आधिपत्य है, वैसे ही भीतर स्त्रियोंका प्रभुत्व है। पुरुष जैसे बाह्य शक्तिसे वशीभूत करता है, स्त्री उसी तरह अन्तःशक्तिसे वशीभूत करती है। इसीलिए स्त्रियोंपर ही धर्म और नीतिके उच्चतम आदर्शोंकी रक्षा निर्भर है। मातासे ही पुत्र धर्म और नीतिकी यथार्थ शिक्षा प्राप्त करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि स्त्रियोंमें हम सेवा, प्रेम और त्यागकी उच्चतम अवस्थाको देखें। पतिकी अपेक्षा पत्नीके लिए अधिक कठोर और दृढ़ बन्धन बनाए गए। इसके लिए हिन्दू-समाजमें पतिव्रत-धर्म की रक्षाके लिए कितनी ही स्त्रियोंने पतिके देहावसान होनेपर अपने प्राण त्याग सतीकी कीर्त्ति पाई और कितनोंने आजीवन वैधव्य स्वीकारकर सब सुखोंको तिलांजलि दे दी। पर कुछ ही समयके बाद बाल-विधवाओंकी संख्या बढ़ने लगी, और विधवाओं पर अत्याचार होनेके कारण जो पतिव्रत-धर्म पहले महिमाका सूचक था, वही एक घोर अन्याय प्रतीत होता है। साठ वर्षका बूढ़ा मनुष्य अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए नवयुवतीसे विवाह कर लेता है और एक १९ वर्षकी विधवा अपना दूसरा विवाह नहीं कर सकती। यह व्यवस्था किसीको भी उचित प्रतीत नहीं हो सकती। इसीलिए आजकल हिन्दू-समाजमें विधवा-विवाहका आन्दोलन हो रहा है।

हिन्दू-समाजमें ऐसे अन्य कितने ही दोष आ गए हैं, जिनके कारण समाजकी बुरी अवस्था हो गई है। उन दोषोंको दूर करना ही होगा और नए सुधार करने ही होंगे। इसीलिए समाजमें एक सुधारक-दल बन रहा है। समाजमें जो एक दृढ़ता रहती है, उसीके कारण तुरन्त कोई भी सुधार नहीं हो जाता। अगर समाजमें यह दृढ़ता न हो, तो स्वेच्छाचार और उच्छृंखलताका प्राबल्य हो जाय। जिसे सुधारक-दल कट्टरता कहते हैं, वही यह दृढ़ता है। हम लोगोंके सामाजिक संस्कार सहसा नष्ट नहीं होते। उन्हींके द्वारा तो हमारे व्यक्तित्वकी पुष्टि होती है।

समाजका सुधार एक बात है और व्यक्तिका सुधार दूसरी बात है। समाजपर दोषारोपणकर हम अपने व्यक्तिगत जीवनसे मुक्त नहीं हो सकते। हममें जो अहंवृत्ति और स्वार्थ-बुद्धि हैं, उन्हींके कारण परस्पर-संघर्ष होता है। समाज केवल एक मर्यादा, एक व्यवस्था, एक विधान स्थापित कर सकता है; पर व्यक्तिकी समस्या बनी ही रहती है। इसलिए कहा जाता है कि हमें पापसे घृणा करनी चाहिए, पापियोंसे नहीं। संसारमें सभी प्रकारके लोग रहते हैं—सभीमें कुछ गुण होते हैं और कुछ दोष भी। जब हम किसीका उपहास या निन्दा करते हैं, तब क्षण-भर यह भूल जाते हैं कि हम भी मनुष्य हैं। हममें भी कुछ गुण हैं और कुछ अवगुण। अपने इन गुण-दोषोंकी भी समीक्षा करना कठिन है; क्योंकि हम स्वयं जिन्हें अपने गुण समझते हैं, उन्हींको दूसरे लोग दोष समझ बैठते हैं। दूसरोंमें हमें जो दोष दिखाई देते हैं, वे इतने स्पष्ट होते हैं कि हमें यह आश्चर्य होता है कि ये लोग अपने दोषोंको देख कैसे नहीं पाते। इसी प्रकार अपने गुणोंकी भी महिमा हमारे लिए इतनी अधिक होती है कि जो लोग उन्हें देखकर आँख मूँद लेते हैं, उनकी अन्धता या मूढ़तापर हमें विस्मय होता है। हमारे लिए हमारे दोष नहीं होते। वे मनुष्योंके लिए स्वाभाविक निर्बलताके परिचय होते हैं। उनके लिए दूसरोंको हमारे प्रति सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए। हमपर दया और प्रेमका भाव प्रदर्शित करना चाहिए। दूसरोंके विचारोंमें यह संकीर्णता, अनुदारता कैसे आ जाती है। अपनी महत्ताके विषयमें हमें जैसे सन्देह नहीं है, वैसे ही दूसरोंको क्षुद्रताके सम्बन्धमें भी पूर्ण विश्वास रहता है। इसी अहंवृत्तिके कारण समाजको मर्यादाको दृढ़ न रखनेसे हममें व्यक्तिगत संघर्ष प्रबल हो जाता है।

सुधारक अथवा विज्ञ चाहे कितने ही सुधार करें, अच्छे विधि-विधान करें, हम लोगोंके व्यक्तिगत जीवनमें किसी प्रकार दोष उत्पन्न हो ही जाते हैं। स्त्रियोंको शिक्षा न देकर पर्दोंमें रखने से जो कुफल हुआ, उसके कारण स्त्री-स्वातन्त्र्य और स्त्री-शिक्षाका प्रचार अवश्य हुआ; पर उसने सारी नारी-जातिको उन्नतिके शिखर पर नहीं पहुँचा दिया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाहको रोक देने और विधवा-विवाह प्रचलित कर देनेसे न व्यभिचार ही कम हुआ और न समाजका रोग ही हटा। बात यह है कि एक व्यक्ति मनुष्यत्वके मूलमें जो शक्ति काम कर रही है, वह अपनी ही रीतिसे उसे उन्नति अथवा अवनतिकी ओर ले जा रही है।

सच तो यह है कि व्यक्तिगत जीवनकी समस्याओंको लेकर समाजकी आलोचना या सामाजिक जीवनकी समीक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्तिके दोष समाजके दोष नहीं कहे जा सकते। अचलाकी समस्या मृणालिनीकी समस्या नहीं है। उसी प्रकार मायाकी समस्या चुन्नीकी समस्या नहीं है। प्रकृतिके विरुद्ध कार्य करनेसे हमें प्राकृतिक कष्ट होंगे ही; पर उन कष्टोंके कारण हम प्रकृतिके नियमोंका तिरस्कार नहीं कर सकते। मनुष्य-प्रकृति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Sarayu Trust. eGangotri Gyaan Kosha

विचारकर जो समाजकी एक मर्यादा स्थापित कर दी गई है, उसका उल्लंघन करनेपर एक व्यक्तिको कष्ट सहना ही पड़ेगा। उसके कारण समाजकी मर्यादा नष्ट नहीं की जानी चाहिए। समाज, राष्ट्र या देशकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक होता है कि उसकी मर्यादा-रक्षाके लिए लोगोंमें एक दृढ़ता हो। अपने व्यक्तिगत सुखों और स्वार्थोंका बलिदानकर हम अपने समाज, देश या राष्ट्रकी मर्यादाकी रक्षा कर सकते हैं। अतएव सुधारमें हमें समस्त मानवीय समाजकी प्रकृतिका विचार करके मानव-जीवनके उच्चतम आदर्शोंके अनुकूल मर्यादा स्थापित करनी चाहिए। आदर्श यह सूचित करता है कि मनुष्य किस उच्च अवस्था तक पहुँच सकता है। यह आदर्श न रहनेसे मनुष्योंका पतन अनिवार्य है। अतएव सामाजिक आदर्शोंमें त्याग, सेवा, सहिष्णुता, संयम आदि सद्गुणोंका समावेश होना ही चाहिए। प्राचीन आर्योंके सामाजिक सिद्धान्तमें आदर्शकी यही उच्चता थी। वे त्यागके लिए धनका संचय करते थे, सन्तानके लिए विवाह करते थे और सेवाके लिए शासन करते थे। आदर्शोंका लोप हो जानेसे ही समाजकी अवनति होती है। आज जो हम सामाजिक पतन देख रहे हैं, उसका एकमात्र कारण यह है कि हम अपने सामाजिक आदर्शोंसे च्युत हो रहे हैं।

भारतके सामाजिक आदर्शोंके मूलमें जो भावना काम कर रही थी, वह जातिको शक्तिकी ओर न ले जाकर धर्मकी ओर ले जा रही थी। प्रतिज्ञा-पालन और कर्त्तव्य-पालनकी ओर बड़े लोगोंका जितना ध्यान था, उतना शक्ति-संचयकी ओर नहीं। आर्योंके लिए यह साधारण बात थी कि वे धर्मके लिए अपनी शक्तिको खो दें। भीष्म पितामह अपनी जिस प्रतिज्ञाके कारण भीष्म हुए, वह हम लोगोंकी दृष्टिमें अब अभिनन्दनीय नहीं है। दशरथका वचन-पालन, रामचन्द्रजीका राज्य-परित्याग अथवा सीता-परित्याग और आधुनिक राजपूत-कालके वीरोंके आत्म-त्यागकी कथाएँ ऐसी हैं, जो वर्त्तमान युगकी दृष्टिसे प्रशंसनीय नहीं समझी जा सकतीं। संसारके क्षेत्रमें पराभव पाकर भी धर्मके क्षेत्रमें विजय पानेकी कामनाएँ भारतीय आदर्शमें विद्यमान हैं। कष्ट, वेदना, अपमान आदि सबको सहकर भी भारतीय आर्योंने अपने आत्म-गौरवकी रक्षा की है। उनका यह आत्म-गौरव कर्त्तव्य-पालनपर ही निर्भर था। पर अब आधुनिक युगका दूसरा ही आदर्श है। अब अर्थकी समस्या है, अधिकारका प्रश्न है। व्यक्ति और समाज, समाज और जाति, जाति और राष्ट्रमें जो अन्तर्द्वन्द्व है, उसके मूलमें अर्थ और अधिकारकी ही समस्या है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रमें भी इसी कारण संघर्ष है। प्रेमके ही आधारपर यथार्थ समता हो सकती है; पर उसका आदर्श अभी भविष्यके गर्भमें है।

वेवेल-प्लैन

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

जिस वेवेल-प्लैनकी बड़ी धूम थी, वह नई बोतलमें पुरानी शराबकी तरह क्रिप्स-योजना ही निकला। और इससे अधिक 'शून्यगं नैव दास्यामि' मि० चर्चिलकी नीति ही है। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कूटनीति संसारमें बेजोड़ है। महाभारत के उद्योगपर्वमें एक श्लोक आया है और वही कुछ शाब्दिक हेर-फेरसे कौटिलीय अर्थशास्त्रमें भी पाया जाता है, जिसका अर्थ है कि धनुर्धरका चलाया हुआ बाण एक मनुष्यको मारे या न मारे, परन्तु बुद्धिमानोंकी चलाई हुई बुद्धि राष्ट्रको राजा-सहित मार देती है। उक्त श्लोक यों है :—

एकं हन्यान्न वा हन्यात् इषुः क्षिप्तो धनुष्मता।
बुद्धिः बुद्धिमतां सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम्॥

पीढ़ियोंसे एकको दूसरेसे भिड़ा देनेके काममें पटु अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंके सामने हमारे परोपकारी सत्याहिंसा-प्रेमी नेता यदि मात खा जायँ, तो क्या आश्चर्य है? आश्चर्य केवल इतना ही है कि जिसे कल हराम कहते थे, उसे आज हलाल कहना पड़ता है—'जे मुखे बोले छिलाम कानी च्यांग बुड़ी, सेइ मुखे बोलते हय जय विषहरी।'

अंगरेज़ राजनीतिज्ञोंसे मात खा जानेमें भी उतनी हेठी नहीं है, जितनी मि० जिन्नासे; क्योंकि अंगरेज़ तो इस काममें पटु—माहिर या एक्सपर्ट—हैं, और इसके लिए ८५ साल पहले लार्ड डरहम कैनेडाके मामलेमें उन्हें सर्टिफिकेट भी दे चुके हैं। पर मि० जिन्नाको तो जुम्मे-जुम्मे आठ रोज़ भी नहीं हुए। १९१८में श्री कृ० प्र० खाडिलकरने बम्बईकी एक सभामें कहा था—'मि० जिन्ना आमचे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्याचा जीना आहे' (अर्थात् मि० जिन्ना हमारे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यका ज़ीना हैं)। वे ही मि० जिन्ना आज कुल्हाड़ीके बेंट बन गए। उन्होंने गांधीजीसे कहा था कि कांग्रेस हमसे हिन्दुओंकी प्रतिनिधि-संस्थाके नाते मिले और मुस्लिम-लोगको एकमात्र प्रतिनिधि मुस्लिम-संस्था मान ले। उस समय तो गांधीजीने इसे स्वीकार नहीं किया, पर अब लार्ड वेवेलने इसी रूपमें दोनों संस्थाओंको शिमला-कान्फरेन्समें बुलाना निश्चय किया है। वेवेल-ब्राडकास्टमें 'सवर्ण' हिन्दू विशेषण रहनेके कारण गांधीजीको वेदना तो अवश्य हुई है, पर लार्ड वेवेल उसकी तीव्रता वैसी ही व्याख्यासे घटाना चाहते हैं, जैसीसे कोई 'तुम्हारे बापकी जोय' कहकर बताये कि इसका अर्थ है 'तुम्हारी माँ!'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मामलेमें कांग्रेसको मुँहकी खानी पड़ी है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है और होना भी यही था। ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंने १९०६ में मुस्लिम-लीगकी स्थापना कांग्रेसका प्रभाव नष्ट करनेके लिए कराई थी। आज प्रायः ४० वर्षोंमें उनका मन्त्र सिद्ध हुआ है। जो कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था-रूपमें जन्मी थी, वह ६० साल बाद आज हिन्दू-संस्था बन गई! वह भी अपनी इच्छासे नहीं, दूसरोंके ज़बर्दस्ती बनानेसे। ऐसा अन्धेर अंगरेज़ोंके सिवा कौन कर सकता है?

अब कांग्रेसपर जो यह ब्रिटिश 'कंट्रोल' हुआ है, उससे वह अपनी रक्षा कैसे करती है, यह देखना है। सच पूछा जाय, तो सरकारने कांग्रेसको कन्नेसे काट दिया है। वेवेल-प्लैनके अनुसार वाइसरायकी कौन्सिलमें सवर्ण हिन्दू और मुसलमान बराबर-बराबर होंगे। 'एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा'के अनुसार इससे एक ओर हिन्दुओंकी एकता नष्ट करने और दूसरी ओर मुस्लिम-लीगके झण्डेके नीचे सब मुसलमानोंको ले आनेका काम किया गया। अवश्य ही डा० अम्बेडकर पानी पी-पीकर सवर्ण हिन्दुओंको कोसते हैं; पर उन्होंने भी अछूतोंको हिन्दुओंसे न कभी भिन्न कहा और न माना ही। जिस प्रकार हमारे महाप्रभुओंने हमारी भाषाके भिन्न-भिन्न रूपोंको भाषा बना डाला, वैसे ही छूत और अछूत दो जातियाँ भी गढ़ डालीं। तथोक्त राष्ट्रीय वा आज़ाद मुसलमानोंकी उपेक्षा गांधीजी मि० जिन्नासे मिलनेके पहले कर ही चुके थे, इसलिए यदि लार्ड वेवेलने भी इनका अस्तित्व मिटा देना चाहा, तो क्या आश्चर्य हुआ? शीया और मोमिन चिल्लाते ही रह गए कि हम मुस्लिम-लीगसे अलग हैं; पर इनकी आवाज़ मि० एमरी और लार्ड वेवेलके कानोंमें न पहुँची और पहुँचती भी कैसे? ये तो कानोंमें तेल डालकर ही लेटे हैं! ४ करोड़ मोमिन और ३ करोड़ शीया हैं, जो लोगमें शामिल नहीं हैं; परन्तु मि० एमरी बंगालके अकालकी तरह इनको भी काल्पनिक समझ बैठे और मि० जिन्नाको ९ करोड़ क्यों अपनी ओरसे एक करोड़ और दस करोड़का नेता बना दिया! यही नहीं, दस करोड़ लीगवालोंको २५-३० करोड़ हिन्दुओंके बराबर भी ठहरा दिया!

महात्मा गांधीने पहले तो अनधिकारपूर्वक मि० जिन्नाको पाकिस्तान देनेके लिए क़दम बढ़ाया और भावी पाकिस्तानमें बसनेवालोंसे पूछनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी; और उसके बाद अब हिन्दुओंको मुस्लिम-लीगकी बराबरीपर ला बैठाया। श्री भूलाभाई देसाईने उनकी अनुकूलता प्राप्त न कर ली होती, तो इस तरहका प्रस्ताव लार्ड वेवेलको न देते। हिन्दू-जातिका जितना अहित किया है, सब हिन्दुओंने। टोडरमल हिन्दू ही थे, जिन्होंने मुग़ल-दफ़्तरोंसे हिन्दी हटाकर उसकी जगह फ़ारसी चलाई थी, जिससे उर्दू पैदा हुई। गांधीजी भी हिन्दू वैष्णव ही हैं, जो उर्दू-हिन्दीकी नई खिचड़ी हिन्दुस्तानी तैयार कर रहे हैं और जो प्रकारान्तरसे हिन्दू-जातिके बहुमतको अल्पमत बनानेमें सहायक हुए हैं।

हिन्दू-महासभाको ब्रिटिश सरकार भूल ही गई, क्योंकि उसे हिन्दू-हितोंका नाश करना है, और यह हिन्दू-महासभाके सामने नहीं हो सकता। हिन्दुओंकी बड़ी कमज़ोरी है कि वे न्याय करनेमें भी डरते हैं, यदि वह न्याय हिन्दुओंके हितमें होता है, चाहे वे नेता हों या नरपति। पर मुसलमानोंको इस प्रकारके विचार कभी नहीं सताते। इसके सिवा अब मुस्लिम हितार्थ वाइसराय अपनी निषेध-शक्तिका उपयोग करेंगे।

महात्मा गांधीने क्रिप्स-योजना अस्वीकार करके देश और हिन्दू-जातिको जिस दुरवस्थामें डाल दिया है, उससे उसके उद्धारका मार्ग नहीं दिखाई देता। आवश्यक बुराईके रूपमें वेवेल-प्लैनको स्वीकार किए बिना गति ही नहीं है। यदि आज वे इसे ठुकरा दे, तो कल फिर वही नादिरशाही शुरू हो जाय। नेता तो क़ैदका ही क्लेश सहते हैं; पर जो उनके आदेश पालन करते हैं, उनकी दुर्दशा वर्णनातीत है। १९४२ के उपद्रवोंकी क़ानूनी ज़िम्मेदारी चाहे किसीपर हो या न हो; पर उसके नैतिक उत्तरदायित्वसे कांग्रेस बच नहीं सकती। कितने लोग फाँसीपर चढ़े, कितनोंको क्रुद्ध अधिकारियोंके रोष-भाजन होकर धन-जन और प्राण त्याग करने पड़े, कितने लुटे और पिटे, कितनी स्त्रियोंपर अत्याचार हुए, कितनी भुखमरी देशमें आई और किस प्रकार निर्दोष मनुष्योंपर अत्याचार किए गए—इसका सच्चा इतिहास कौन बता सकता है? और जिन्होंने कांग्रेसकी आज्ञा समझकर अपनी बुद्धिमत्ता अथवा मूर्खतासे इस उद्धममें हाथ बँटाया, उनपर और उनके साथियोंपर कैसी बीती, यह भुक्त-भोगीके सिवा कोई नहीं जानता। कितने आदमी मारसे अन्धे, बहरे तथा अन्य अंगोंसे रहित हो गए। कांग्रेस वर्किंग कमिटीके लिए तो देशमें आन्दोलन होता रहा, परन्तु जिन्होंने विप्लव सरकारका रोष सहा, उनकी चर्चा कभी किसी समाचारमें भी नहीं हुई। कांग्रेसकी बड़ी तोपोंमें भी पं० जवाहरलाल नेहरूके सिवा किसीने उनकी ओर इशारा भी नहीं किया। सरकारने अपनी योजनाकी सफलता उनके छुटकारेकी शर्त रखी है।

वेवेल-प्लैनके बारेमें चाहे जो कहा जाय, परन्तु उसमें उदारता और सहृदयताका अभाव स्पष्ट हो रहा है। श्रीयुक्ता हिन्दू लक्ष्मी पण्डितके आन्दोलन, अमेरिकाके दबाव, चुनावमें कन्जर्वेटिव लेबर-पार्टीकी सफलताकी आशंकासे चिन्ता, रूसके प्रभावकी और भूलाभाई देसाईका आत्म-समर्पण और 'देहि मे पदारम् मुदारम्'की प्रार्थना इस प्लैनके मूलमें काम कर रही है। यह देशकी दयनीय दशा। कोई क्या कहे? बड़ी विकट स्थिति है! 'जो बोलूँ तो माँ मारी जाय, नहीं तो बाप पिला खाय!'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'प्रोषित पतिकाएँ हों जितनी, सखि, तू उन्हें बुला ला !'

श्री 'संजीवनी'

नहीं जानती कि वास्तवमें उर्मिलाने अपनी सखीसे ऐसा ही कहा था और सखीने भी उसकी आज्ञा पालन की थी; परन्तु १९४२ का कोई कवि यदि जाग उठे, तो वह हम वियोगिनियोंके आतुर हृदयोंसे यही अविरत ध्वनि सुनेगा कि 'प्रोषित पतिकाएँ हों जितनी, सखि, तू उन्हें बुला ला !' उर्मिला तो अकेली ही थी; पर यहाँ तो अगणित उर्मिलाएँ मौजूद हैं! परन्तु यथार्थमें वह हमारी प्रतिनिधि थी। वह एकमें अनेक थी। उसके नाथ कर्त्तव्यके कारण वनवास गए थे—एक-दो सालके लिए नहीं, पूरे १४ सालके लिए। हम अनेकोंके नाथ भी आज कर्त्तव्यके कारण वनवासमें हैं—कोई २-४ सालके लिए और कोई २०-३० सालके लिए। लक्ष्मण राजाकी वनवासकी तिथि तय थी और यह भी तय था कि वे उसके बाद ठीक समयपर लौटेंगे; परन्तु यहाँ तो वनवासकी अवधि या लौटनेके अवसरकी प्रतीक्षा उतनी भी निश्चितताका सुख नहीं प्राप्त होने देती! काश, किसी सहृदय कविने हमारे भी दिलोंको देखा होता! सैकड़ों साल पहलेकी उर्मिला बहनकी कहानी आज भी यदि गुप्तजीके हृदयको उद्वोलित कर सकती है, तो क्या आजकी इन जीती-जागती उर्मिलाओंकी दुखद कहानियाँ हमारे किसी भी कविकी स्फूर्तिका उपादान नहीं बन सकतीं? ये त्याग-तपस्या-वेदनाकी तस्वीरें क्या उसे आवाहन देनेकी क्षमता नहीं रखतीं? उसकी युगकी वाणी क्या युग-निर्माताओंकी सहचारिणियोंके हृदयकी पुकारके लिए एकदम मौन हैं?

हमने गौरवान्वित होकर अपने लक्षण राजाओंको स्वातन्त्र्य-संग्राममें आहुतियाँ देनेके लिए विदा किया था। हमने उन्हें खुशी-खुशी सरकारी पंजेमें दे दिया था। हमने उन्हें मौतसे भी आलिंगन करनेके लिए अपने आलिंगन-पाशोंसे विमुक्त किया था। हमारे नन्हें-नन्हें बालकोंकी स्नेह-रश्मियाँ भी उन्हें पीछे खींचनेमें असमर्थ बनी थीं। जन्मदाताओंकी दर्दनाक आवाज़ें भी उन्होंने अनसुनी की थीं। चरितार्थके अभावकी भीषण विभीषिका भी उनको नहीं डरा पाई थी। हमारे वे प्राणधन आज लम्बे-लम्बे तीन सालोंसे सीखचोंके पीछे बन्द हैं। कुछके सकुशल लौटनेकी उम्मीद है, तो कुछकी पूरी नाउम्मीद। कोई शीघ्र ही लौट सकता है, तो कोई बरसों बीतनेपर भी शायद न लौटे। और वे, जो सदाके लिए विदा हो चुके हैं, जो भारतमाताकी गोदमें अपना सिर रखकर चिर-गम्भीर निद्रामें सो गए हैं, जो अपने खुले सीनोंपर अग्निवर्षा सहनकर मृत्युकी विभीषिकाको स्वर्ण-संयोग बना गए हैं, वे क्या गुलाम भारतमें लौटेंगे? हाय! मेरी वे बहनें किस प्रोषित पतिकाको बुलाएँ? वे अपने पतियोंके लौटनेकी क्या प्रतीक्षा करें?

उफ़! मानव-मन कितना कमज़ोर है। उस मुक्ति-युद्धमें हम स्वयं कूद पड़ी थीं! हममें से कई उन ज्वालाओंमें झुलस चुकी हैं! हमने अपने जीवन-धनको ही सिर्फ़ नहीं भेजा, बल्कि हम स्वयं भी उस आगमें कूद पड़ीं! छोटे बच्चेसे लेकर वृद्ध माता-पिता तक उस ज्वालामुखीके शिकार बने। हमने सब-कुछ हँसते-हँसते सहा और सह रही हैं। हम अपने पति-भाई-पिता सबसे आगे बढ़कर, उनसे कन्धा भिड़ाकर, अपनेको भूलकर, एक निराले रंगमें शराबोर होकर उस ज्वालामुखीकी राह चल रही थीं। और आज समयकी गति देखकर यह कमज़ोर मन अपना प्रभुत्व हमपर जमाना चाहता है! नशीले दिनोंका अवसाद देखकर वह हमपर दुधारी तलवार चलाना चाहता है! आज वियोगकी एक-एक रात इस कमज़ोर दिलके अधीन होकर उनकी यादमें आँसू वहाती है! हर अवसरपर आशा अपना जाल फैला कर हमें झकझोर डालती है और फिर तीव्र निराशाके गर्त्तमें ढकेल देती है! वे अव छूटेंगे, अव छूटेंगेकी आशा-भरी वाणी भी अव मौन हो चुकी है। सारे अखबारोंमें से केवल वे ही पंक्तियाँ हमें खींचती थीं, जो कुछ ऐसी आशादायक खबरें बताती थीं! एक दिनकी आशाजनक खबर जव दूसरे दिन अफ़वाह बन जाती या प्रतिवादके आघातसे निराशा वन जाती है, तो हम दिल मसोसकर रह जाती हैं। मगर आशा मरते दम तक भी कैसे छूट सकती है? हममें से कइयोंकी आशा सफल हुई, तो कइयों की सफल होनेके रास्तेपर है। जो अमर निद्रामें सोए हैं, उनकी याद ही अव हममें से कइयोंकी थाती है!

जीवनकी विभीषिकाका नग्न नृत्य आप कुछ देखेंगे? शायद तब आपकी स्फूर्त्ति कुछ जाग्रत हो उठे। आइए, देखिए, ये हमारे वृद्ध सास-ससुर हैं। अपनी जानके टुकड़ोंकी प्रतीक्षामें कैसे सूखे जा रहे हैं! इनके आँसू न-जाने अव तक कितने कपड़ोंको भिगो चुके हैं! इनकी तो जैसे सहारा देनेवाली लकड़ी ही चली गई! लाख वे दिलको समझायँ कि उनके लाड़ले एक महान कर्त्तव्य-पथपर अग्रसर हुए हैं; मगर उनके दिल आखिर इतने समाधानके बाद भी वियोगको कैसे भूल सकते हैं! यदि आप किसीके माता-पिता हैं, तो आप समझेंगे कि पुत्र-वियोग कितना दर्दनाक होता है—भले ही वह वियोग एक सत्य-मार्गकी राह चलते हो हुआ हो!

ये नन्हें-नन्हें बालक पिताकी यादमें कैसे तड़प रहे हैं! कोई पूछता है—'क्यों नहीं बाबूजी दिनको आकर हमसे मिल जाते? फिर चाहे रातको वहाँ आराम करें!' समझमें नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आता, इन भोले बच्चोंको कैसे समझाऊँ? मेरे प्यारे बेच्चे, काश, तुम्हारे बाबूजी इतना कर सकते! दिलपर पत्थर रखकर उन्हें यही कह-कहकर बहलाती हूँ—'आज आयँगे। नहीं, परसों तो ज़रूर ही आयँगे। हाँ, कुछ खेल-खिलौने भी तो लायँगे। यह देखो, उनका पत्र आया है। तुम सबके लिए एक-एक चित्र, एक एक कहानी और एक-एक पहेली भेजी हैं। पक्षियोंका कैसा सजीव वर्णन किया है! बस, अब दो-चार दिनोंमें आते ही होंगे।' और जब वे देखते हैं कि कई परसों और कई २-४ दिन बाद भी बाबूजी नहीं आए, तो रुँआसे होकर फिर मुझसे पूछते हैं। मैं उन्हें कहाँ तक दिलासा दिलाऊँ!

और ये उनके भाई-बहन हैं। इनकी पढ़ाई, इनकी शादी, इनका सब-कुछ कैसे रोते-झींकते चल रहा है! इनकी तमन्नाएँ कितनी रुँधी हुई हैं! असामयिक भार और अकालिक ज़िम्मेदारीसे ये कितने दबे नज़र आ रहे हैं!

और ये मेरे माता-पिता हैं! मेरी हँसीकी आँखोंमें भी तीव्र विषाद और प्रतीक्षाको देख लेते हैं और मेरी वेदनाको जान लेते हैं! मेरे दुःखसे दुखी ये मेरे जन्मदाता देखो कैसे उनकी बाट जोह रहे हैं! इस तरह न-जाने कौन-कौन उनकी बाट नहीं देख रहा! कितनोंके काम रुके हैं उनके बिना, कितनोंकी बातें अड़ी हुई हैं!

इतना ही क्यों, इस अर्थ-पिशाचका क्रूर अट्टहास भी तो एक बार देखते चलिए। उनके पीछे दिन कैसे कट रहे हैं, इसकी एक झलक भी देख लीजिए। जीना है और पेटकी आग बुझानी है, इसके लिए दाने-दानेकी मुहताजी क्या किसीकी नज़रोंमें आ सकती है? सारे कारबारकी मिट्टी पलीद होते किसीने देखी है? स्वार्थियोंकी चालबाज़ियाँ किसीने भाँपी हैं? काश, एक बार भी आप इसका शिकार होकर देख पाते कि जलेपर यह कितना गहरा नमक है! अपने बेगाने हो गए और बेगाने बिलकुल बेग़ैरत। मौक़ा पाकर भाई-बन्दोंने कैसा वैर उगाहा है! क़ानूनका सहारा लेकर हमें कैसे बेघर-बारका बना डाला है! न खानेको रोटी, न रहनेको घर, न पहननेको कपड़ा! बच्चोंकी बदक़िस्मती भी इसी समय जाग उठी थी! अभावकी यह अग्नि-वर्षा हमें कितनी भस्म कर रही है, इसे कोई एक बार भी देख ले!

और इन सबके ऊपर उनके वे अत्याचार! वे हमारे आक़ा हैं! हमपर राज जो करते हैं! वे भला हमें कैसे भूल सकते थे! हमने और हमारे घरवालोंने देशके लिए बलिदान किया, इतना बड़ा पाप भला वे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे! जिनपर बीती हो, वे ही इसका मर्म समझ सकते हैं। घर-बारको मटिया-मेट कर डालना, तंग करनेके नए-नए औज़ार ढूँढ़ निकालना, मौक़े-बेमौक़े निरीह निर्दोषोंको अपनी पाशविकताकी भूखका शिकार बनाना और...! ओह! यही क्या नरक है?

ये इतने चित्र देखनेके बाद भी क्या आप हमारे दिलोंके दुनिया देखनेकी इच्छा रखते हैं? क्या उतना बड़ा दिल है आपका? तो सुनिए। न-जाने कितनी रातें छिप-छिपकर रोनेमें बीती होंगी। दुनियाको तो यह सब नहीं बताना है न! जीवनमें कितना विवश होकर कृत्रिमता स्वीकार करनी पड़ती है। आप हमारे दिलोंकी कल्पना नहीं कर सकते, संभवतः कोई प्रोफ़ेसर पतिका ही कर सकती है। वियोगकी ये धधकती ज्वालाएँ, प्रतीक्षाकी ये लम्बी रातें, निराशाके ये निर्मम धक्के, परिस्थितियों के ये क्रूर थपेड़े, संकटोंकी यह हृदयहीन परम्परा और यादोंकी यह कड़ुवी तीव्रता बर्दाश्त करनेकी शक्ति हममें कैसे आती है, यह तो हमारी समझसे परे है। एक-एक दिन दूभर हो जाता है, मगर वह बीतता ही है! एक-एक रात जागनेमें जाती है, मगर सबेरा होता ही है! घर-बारकी निराशाके धक्के खाकर हम बेहोश-सी हो जाती हैं, मगर फिर उठकर आशाका तिनका पकड़ कर किनारे पहुँचनेकी आकांक्षा पालती ही हैं! यह सब बातें कल्पनासे परे हैं न, मेरे कवि भाई!

पति-वियोगकी ये ज्वालाएँ ही नहीं हैं, उनके साथ परिस्थितियोंके तीव्र आघात भी हैं। वियोग-वह्नि और परिस्थितियों के आघातकी चक्कीमें पिसते हुए यदि हमें किसीने नहीं देखा है, तो उसने ज़िन्दगी क्या देखी? कसौटीकी पराकाष्ठा है यह। जीवन-सखाका यह अभाव ज़िन्दगीके लिए कितना अभिशापरूप है, यदि कोई जान सकता, तो देखता कि हम प्रोषित पतिकाएँ अन्ततः जी कैसे रही हैं! दिलकी वेदना-ध्वनि किसीको सुनाई न दे, इसके लिए कितना सावधान और जाग्रत रहना पड़ता है हमें! दिलको सँभालते हुए दुनियाको भी कैसा सँभालना पड़ता है हमें! मेरी क़लम मेरी यथार्थ वेदनाको आप तक नहीं पहुँचा पाएगी। आँखोंके आँसू अब नहीं रुक रहे हैं। प्राण-सखाकी प्रतीक्षा भी अब थक गई है। जब किसी बहनका पति लौट आता है, तब उसकी खुशीसे फूल उठती हूँ, और उसी समय यह असफल प्रतीक्षा कितनी असीम पीड़ामें डुबो देती है! मुझसे भी ज़्यादा उन्हें भीतर कितनी वेदना होती होगी! बच्चोंकी याद वे कितने तड़पते होंगे! वियोगकी आगमें वे कितने झुलस रहे होंगे! हम लोगोंकी चिन्तासे कितने चिन्तित हो उठे होंगे! और भीतरी तकलीफ़ोंसे कितना लोहा ले-लेकर थक गए होंगे! यह सब जब याद करती हूँ, तो अपना दुःख भूल जाती हूँ! उन्हींकी बातें याद आती हैं और दिल रो उठता है। हर तरह अपनेको व्यस्त रखनेकी कोशिश करती हूँ, मगर फिर भी दिल आखिर दिल ही है। आशामय खबरोंकी मस्तीमें पुरानी भीषण स्मृतियाँ जाग उठनेपर जिस रंगमें रँग जाती हूँ, निराशाकी ख़बर सुनते ही चढ़ा हुआ दिल बैठ जाता है। दुनियाको एक ही

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिकन न दिख पाए, इसकी सावधानी रखती हूँ। पर एकान्तमें जैसे बाँध टूट-सा जाता है। मनके कारण सारा शरीर जैसे तपस्या कर रहा हो, साधनाकी तपनमें जैसे जल उठता हो। यह प्रोषित पतिकाओंका जीवन है। १९४२ की क्रान्तिकी एक झलक है। अपनी मृत्युके पश्चात् क्या गुज़र सकती है, इसकी एक झलक भीतर बठे हुए हमारे प्राण-सखाओंने देखी और उन्होंने भी देखी, जो 'भूमिगत' हैं। विधुर और विधवाकी-सी कुछ-कुछ मनःस्थिति भीतर-बाहरवालोंने अनुभव की। यह कोई लम्बा इतिहास नहीं, लम्बी कहानी नहीं; मगर तीन सालके इस छोटे-से अर्सेमें युग-युगकी कहानियाँ भर गई हैं। अगणित दुखद-सुखद घटनाओंसे ओतप्रोत ये तीन बरस एक क्रान्ति-युगकी वैविध्यपूर्ण दास्तानोंसे परिपूरित हैं।

उफ़! कमज़ोर दिलने आखिर अपनी दास्ताँ सुना ही दी! उससे न रहा गया! एक अवसादके आवेशमें उसने इतनी हिम्मत कर ही ली! मगर नहीं, वेदना-ताड़ना-पीड़ा और वियोगकी ज्वालाएँ इससे आगे हिम्मत नहीं कर सकेंगी। क्षणिक कमज़ोरी के आवेशमें हृदयने यह जो करुणा बहाई है, वह स्वाभाविक है। परन्तु हृदय-बोझसे भरा हुआ नहीं है। ये सारी यातनाएँ एक बलिदानकी पुकारके लिए हो हैं, यह हम नहीं भूल सकतीं। माँको मुक्त करनेके प्रयासमें ही ये सौग़ातें हमें मिली हैं। इसके लिए हमें गौरव है, गर्व है, अभिमान है। हमारी पीड़ाएँ तीव्रतम हैं, मगर उन पीड़ाओंकी सृजना हमारी ही खुशीसे हुई है। उसके लिए हमें ज़रा भी पश्चात्ताप नहीं है। एक महान् कर्त्तव्यका पथ अंगीकार करते समय मिली हुई यह अमूल्य देन है, जिसके भीतर ज्वालाएँ हैं; पर हमें जलानेवाली नहीं, हमारा सोना बनानेवाली हैं। इस आगमें तपकर हम भस्म नहीं होंगी, सौटंच खरा सुवर्ण बनकर निकलेंगी। हम अपने दुःख-दर्दोंके लिए, परिस्थितिकी विभीषिकाओंके लिए, वियोगकी ज्वालाओंके लिए भाग्यको क्यों कोसें?

वे अपने लिए नहीं, देशके लिए आज तपस्यामें लीन हैं। हम उनकी हिम्मत पस्त नहीं होने देंगी। अपनी कसौटीकी वेलामें हम उन्हें बता देंगी कि मेरे वीर, साधनामें रत रहो, तुम्हारी सहधर्मिणी खुशी-खुशी ये सब यातनाएँ सह लेगी, अपनी ज़िम्मेवारी निभा लेगी, अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेगी, अपना जीवन भी उत्सर्ग कर देगी; परन्तु तुम्हारे पैर पीछे नहीं खींचेंगी, तुम्हारे दिलको कमज़ोर न होने देगी। मेरे नाथ! जिस साधनाके लिए ये यातनाएँ हैं, क्या वह साधना व्यक्तिगत है? स्वार्थगत है? नहीं। तब क्यों हम आप हिम्मत पस्त होने दें? यह क़ुर्बानी, यह बलिदान, यह त्याग जिस देश-कर्त्तव्यके लिए है, उसीकी प्रकाश-ज्योति हमारा मार्ग उज्ज्वल करती रहेगी।

मेरे कवि भाई! हमारी विवशता, दुःख-भरी कहानी, यातनाओंकी दास्ताँ सुननेके लिए तुम्हें आवाहन देने या अपने किए पर पश्चात्ताप व्यक्त करनेके लिए यह कदापि नहीं है। तुम्हारी स्फूर्तिका उपादान यदि हमारी ये वेदनाएँ, वियोग-ज्वालाएँ बनें भी, तो उसके साथ-साथ हमारी यह आवाज़ भी संसारको बता देना कि हमें अपने ऊपर नाज़ है, अपने प्राण-सखाओंपर नाज़ है, अपने भाई-बच्चोंपर गर्व है। हमारे कमज़ोर दिलकी कहानी सुनाते-सुनाते कहीं हमपर यह अन्याय न कर बैठना कि हम जीवनकी विभीषिकासे पीछे हटी हैं, प्राप्त परिस्थितिसे डरी हैं, महान ध्येयके प्रति बेईमान बनी हैं। यदि तुम्हारी स्फूर्त्ति तुम्हें प्रेरित करे, तो दुनियाको हमारी यही चीज़ पहले बताना—बादमें हमारे दुःख-दर्द।

जिस महान् समयमें से हम गुज़र रही हैं, इतिहासके निर्माण में जैसे हाथ बँटा रही हैं, कर्त्तव्य-पथपर अग्रसर होनेमें जैसी होड़ कर रही हैं, वह सब अपनी वाणीसे वर्त्तमानके रन्ध्रोंमें भर देना। यदि तुममें भी वास्तवमें १९४२ ने कोई आग जलाई हो, यदि तुम भी उस आगमें झुलसे हो, यदि तुम्हारी वाणीने एकाध भी अमर गीत गाया हो, तो हमारी वेदनाके साथ-साथ हमारा अभिमान, हमारा गौरव, हमारी हिम्मत, हमारा ब्रह्मानन्द भी दुनियाको सुनाते जाना। नहीं तो तुम्हें अधिकार नहीं कि हमारी यह पवित्र थाती अपनी उच्छिष्ट एवं अपवित्र वाणी द्वारा भ्रष्ट करो। इससे तो दुनिया हमारी कहानी नहीं सुने, यही ठीक है। जिसने जीवनमें इस क्रान्ति-युगका महान् दर्शन नहीं किया है, वह युग-कवि कैसा और उसे हमारी ये पवित्र कहानियाँ कहने-सुनने का अधिकार कैसा? हम प्रोषित पतिकाएँ अपनी मौन साधनामें ही सन्तुष्ट रहेंगी। युग-युगकी वंचित उर्मिलाने नहीं सोचा था कि उसकी व्यथाको कोई व्यक्त करेगा। उसी उर्मिलाकी ये बहनें हैं, जो युग-युग तक वैसी ही अज्ञात रहना चाहेंगी—यदि उनकी कहानी सुनानेवाला कोई अधिकारी न हो। उर्मिलाने योग्य अधिकारी द्वारा ही अपनेको अभिव्यक्त किया और हम भी उसीकी परम्परा क़ायम रखनेका विचार रखती हैं। अपने प्रियतमकी मधुर स्मृतिमें उनकी वियोग-ज्वालाको सहते हुए भी हम अपने कर्त्तव्य-पथपर अचल रहेंगी और समष्टिमय होकर अपने-जैसी अनेक बहनोंको इसी शर्त्तपर आमन्त्रित करेंगी। अवसादसे भरी हुई नहीं, गौरवसे ओतप्रोत वाणीमें कहेंगी—'प्रोषित पतिकाएँ हों जितनी, सखि, तू उन्हें बुला ला!' और अपने वीरोंके गीत गाती हुई दिन काटेंगी। आखिर अन्धकारमय रात्रिके बाद प्रकाश भी तो होता ही है!

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रजनी पाम दत्त

श्री महादेव साहा

आगामी ५ जुलाईको ब्रिटिश पार्लमेण्टकी ६४५ सीटोंके लिए होनेवाले आम चुनावमें जो लगभग १६५० उम्मीदवार खड़े हुए हैं, उनमें से रजनी पाम दत्तने भारतमें सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट किया है। इसका प्रधान कारण यह है कि वे स्पार्कब्रुक (बर्मिंघम) के चुनाव-क्षेत्रसे बदनाम भारत-मन्त्री लियोपोल्ड एमरीके खिलाफ़ खड़े हुए हैं। एमरीका विरोध करने का उनका उद्देश्य कोई पार्लमेण्टका सदस्य होना नहीं है, वरन इस घोर प्रतिक्रियावादीके भारत-सम्बन्धी काले कारनामोंका पर्दाफाश करना और ब्रिटिश मतदाताओंको यह बताना है कि उनके प्रतिनिधिने अपने अधिकारोंका कितना अधिक दुरुपयोग किया है। एमरी ब्रिटेनकी टोरी-पार्टीका सबसे प्रतिगामी और अदूरदर्शी सदस्य है। उसने जापान द्वारा मंचूरियापर किए गए आक्रमणका समर्थन किया, मुसोलिनीका 'यूरोपमें शान्ति स्थापित करनेवाला' कहकर स्वागत किया और हिटलरको उपनिवेश देकर सन्तुष्ट करनेकी नीतिका समर्थन एवं प्रचार किया। भारतमें उसीकी नीतिके कारण लाखों आदमी अकालसे मरे, मिथ्या सन्देहके कारण कांग्रेसी नेता जेलोंमें ठूँसे गए और देशव्यापी उत्तेजन एवं दमनका चक्र चला, राजनीतिक गतिरोध बना रहा और आज लाखों व्यक्ति कपड़ेके अभावमें त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। इस प्रकार ब्रिटेन और भारतके सम्बन्धोंको कटु बनानेमें एमरीका सबसे अधिक हाथ रहा है।

रजनी पाम दत्त कलकत्तेके रामबागानके प्रसिद्ध दत्त-परिवार के हैं। कांग्रेसके एक पूर्व सभापति और इतिहास, अर्थनीति एवं साहित्यके ख्यातनामा मर्मज्ञ स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त इन्हींके चाचा थे। इनके दूसरे चाचा श्री योगेशचन्द्र दत्तने पहले-पहल 'महाभारत' और कल्हणकी 'राजतरंगिणी'का अंगरेज़ीमें भाषान्तर किया। इनकी बुआ तरु दत्त, जिनका दुर्भाग्यवश अल्पायुमें ही देहान्त हो गया, अंगरेज़ीकी प्रसिद्ध कवियित्री हो गई हैं। रजनी के पिता उपेन्द्रनाथ दत्त पिछली शताब्दीके चतुर्थांशमें डाक्टरी पढ़ने विलायत गए थे। डाक्टरी पासकर आप वहीं प्रैक्टिस करने लगे। पिछली शताब्दीके अन्तिम दशकमें वे स्वेडन घूमने गए, जहाँ उनका एक सुशिक्षिता स्वेडिश महिलासे प्रेम हो गया। अपने समाजके विरोधकी कोई परवाह न कर उसने आपसे विवाह कर लिया। इस दम्पतिके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। रजनीके बड़े भाई क्लेमेण्ट ब्रिटेनके प्रमुख प्राणिशास्त्रवेत्ता हैं, जो कुछ काल तक बर्मिंघम-विश्वविद्यालयमें अध्यापक भी रह चुके हैं। ब्रिटेन और भारतकी जनताकी सेवाके लिए उन्होंने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया। इस समय वे ब्रिटेनकी कम्युनिस्त-पार्टीके प्रमुख सदस्य और 'डेली वर्कर'के संवाददाता हैं। मार्क्स और एंगल्सकी कई पुस्तकोंका उन्होंने मूल जर्मनसे अनुवाद एवं सटीक सम्पा किया है। उनकी दोनों बहनें भी विदुषी और राष्ट्रके ज़िम्मेदार पदोंपर रह चुकी हैं।

रजनी पाम दत्तकी असाधारण प्रतिभाका परिचय उनके कालसे ही मिलने लगा था। उनकी गणना आक्सफोर्डके छात्रोंमें थी। यूनानी और लातिनी भाषाओं तथा दर्शनमें सम्मान-सहित उच्च परीक्षा पास की। राजनीतिक आन्दोल भाग लेनेके कारण उन्हें एक बार विश्वविद्यालयसे निकाल दिया गया था; पर बादमें वे फिर भर्त्ती कर लिए गए अर्थनीति तथा आधुनिक राजनीतिमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण पिछले महायुद्धके समय वे समाजवादी संघमें शामिल हो और १९२० में कुछ अन्य समाजवादी दलोंके साथ ब्रिटेनकी कम्युनिस्त-पार्टीकी नींव डाली। अपनी प्रतिभा, पैनी राजनीतिक दृष्टि और प्रकाण्ड पाण्डित्यके बलपर ही वे पार्टीके चोटीके नेताओंमें से और उसके सहकारी सभापति कम्युनिस्त इण्टर्नेशनलके भी वे सदस्य रह चुके हैं। १९२०में 'लेबर मंथली' नामक पत्र निकाला, जिसमें लेनिन, स्तालिन दुनियाके अन्य प्रमुख क्रान्तिकारी बराबर लिखते रहे हैं। गम्भीर एव अध्ययनपूर्ण नोट इस पत्रका सबसे महत्त्वपूर्ण

१९२४ में 'माडर्न इण्डिया' ग्रन्थके रूपमें आपने भार राजनीतिकी वैज्ञानिक समालोचना की, जो पहले भारतमें और विलायतमें छपा। लाहौरसे इसका एक हिन्दी-अनुवाद भी है। १९३४ में प्रकाशित आपकी 'फ़ाशिज़्म एण्ड सोशल ल्यूशन' अपने विषयको अद्वितीय पुस्तक है। १९३७ में 'वर्ल्ड पालिटिक्स'के रूपमें साम्राज्यवाद, नात्सीवाद और युद्ध विरुद्ध सभी प्रगतिशील शक्तियोंके संगठनको आवाज़ बुलन्द १९४० में प्रकाशित 'इण्डिया टुडे'में ब्रिटिश साम्राज्य अधीन भारतीय आत्माकी पुकार एवं स्वाधीनताके लिए सतत संघर्षका इतिहास मिलता है। १९४२ के अन्तमें 'ब्रिटेन इन वर्ल्ड फ्रण्ट' लिखकर साम्राज्यवादी युद्ध-नीतिका फाश किया और जनताको संगठित होकर इस नीतिका विजयकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दी। आपकी लिखी नामक पुस्तिका लेनिनकी सर्वोत्तम संक्षिप्त जीवनी है। इन्क्लोपीडिया ब्रिटेनिका'में साम्यवादपर आप ही का लेख किया गया है। अगस्त, १९४२ के बाद जब ब्रिटिश शाहीने भारतीय नेताओंको फ़ाशिस्त-पक्षीय कहकर बदनाम शुरू किया, तो आपने कहा—'भारत और भारतीय नेता के अनेक मन्त्रियोंके मुक़ाबलेमें सच्चे फ़ाशिस्त-विरोधी हैं।' बार आपने भारत आनेकी चेष्टा की, पर सरकारने अनुमति

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशाल देव

श्री 'अशोक'

अपनी धार्मिक सभाके लिए एक नया भाषण तैयारकर मिसेज़ रेडिच पतिके पास आकर बैठ गईं। वे आज प्रसन्न थीं। व्याख्यान खूब अच्छा रहेगा। उनके पति, इंजीनियरिंग-विभाग के प्रधान, मिस्टर नार्टिंघम रेडिच उस समय बरामदेकी धूपमें बैठे हिमालयकी ओर बनाई जानेवाली नई मोटर-सड़कको फ़ाइल देख रहे थे। अपने सहकारी इंजीनियरकी, जो सड़कका निर्माण कर रहे थे, इस आशयकी रिपोर्ट पढ़कर वे खूब हँसे : "हिमालयके इस प्रदेशमें अन्ध-विश्वास अब भी अपना बहुत प्रभाव जमाए है। चट्टानके अब तक न कट सकनेका कारण यह अन्ध-विश्वास भी है। यहाँपर प्रत्येक पहाड़ और चट्टानपर किसी न किसी देव या दानवकी स्थिति मानी जाती है। इस चट्टानके निकट भी, जिसके कारण अब तक दो सौ मील लम्बी बिल्कुल तैयार सड़कपर मोटरका आना सम्भव नहीं हो सका है, एक देवीका मन्दिर है। पहाड़ी कुलियोंका ऐसा विश्वास है कि जब तक उस देवीकी सन्तुष्टि न होगी, चट्टान न कटेगी और मोटरका इस ओर आना सम्भव न होगा।"

'बीसवीं शताब्दीमें भी ऐसी ऊल-जलूल बातोंपर विश्वास किया जाता है?'—पत्नीने कहा।

मिस्टर रेडिच बोले—'मूर्खताकी हद है, अपनी अकर्मण्यता को छिपानेका एक असम्भव प्रयत्न! मुझे इस इंजीनियरकी बुद्धि पर तरह आता है। कुलियोंका अन्ध-विश्वास इसके लिए ऐसा महत्त्वपूर्ण है!'

मिसेज़ रेडिचने कहा—'और एक ईसाईको क्या ऐसी प्रागैतिहासिक नास्तिकतापर विश्वास करना चाहिए? इंजीनियर मेसन एक ईसाई होकर भी ऐसी ऊटपटाँग बातोंपर विश्वास करते हैं!'

मिस्टर रेडिच फ़ाइल देखकर बोले—'और देखो, आगे लिखा है : "तीन ठेकेदारोंने अब तक इस चट्टानको काटनेका ठेका लिया और तीनों काम छोड़कर भाग गए। अब कोई ठेकेदार इसे काटनेको तैयार नहीं। सरकारी कुलियोंसे ओवर-सियरको देख-रेखमें सुरंगें खुदवाई जा रही हैं; पर बारूद और डाइनामाइटका भी इस चट्टानपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। बारूद या तो सुरंगोंसे धुएँके रूपमें वापस आ जाती है या दस-बारह कंकड़ियाँ चट्टानसे उड़ाकर समाप्त हो जाती है। चट्टान बहुत ही सख्त ज्ञात होती है। साधारण चट्टानोंको काटनेके लिए जो तालिकाएँ हमारे विभागने बनाई हैं, वे इस चट्टानपर काम नहीं दे सकतीं। अन्ध-विश्वास इतना दृढ़ है कि पहले ठेकेदारोंने बकरों और भैंसोंकी बलि चढ़ाकर चट्टानपर काम करना आरम्भ किया और अब भी सरकारी कुली बड़ी अनिच्छासे काम कर रहे हैं। किसी पुजारीने उनसे कह दिया है कि जब तक मनुष्यका बलिदान न होगा, चट्टान न कट सकेगी।"'

'आश्चर्य है!' मिसेज़ रेडिचने कहा—'मिस्टर मेसन ऐसा लिखते हैं। आप अपने मातहतोंसे सदा बड़ी नरमीसे पेश आते हैं, उसीका यह फल है कि सरकारी काग़ज़पर ऐसी अधार्मिक नास्तिकताकी बातें लिखी गई हैं!'

पतिने कहा—'तब उस बेवकूफ़को चाहिए कि स्वयं अपनी बलि उस चट्टानपर चढ़ाकर सड़कके निर्माणका काम समाप्त करे। इससे अधिक उससे और कुछ नहीं हो सकता।'

पत्नी बोलीं—'और इधर आप सरकारको अपना जवाब देते-देते परेशान हो गए हैं। सड़कके उद्घाटनकी तिथि स्थगित होती जा रही है। मार्चमें सड़क तैयार हो जानेका निश्चय था, फिर जूनमें। अब तो दिसम्बर भी बीत चला। गवर्मेण्ट भी क्या कहती होगी!'

दफ़्तरमें पहुँचकर मिस्टर रेडिचने अपने सहकारी इंजीनियर को निम्न आशयका हुक्म भेजा : "गोरखा और गढ़वाली कुलियों को चट्टानपर काम मत करने दो। पठान कुलियोंको जल्दी मंसूरी से बुलाकर चट्टानपर लगा दो और स्वयं बेवकूफ़ न बनो। इस सप्ताहके अन्त तक मैं स्वयं उस चट्टानका निरीक्षण करने आऊँगा।"

उस सप्ताह मिसेज़ रेडिचकी धार्मिक संस्था 'जाग्रत जीज़स-सभा'का अधिवेशन भी समाप्त हो गया। वे बहुत प्रसन्न थीं। धर्मोंके विकासपर जो भाषण उन्होंने इस सप्ताह दिए थे, वे ईसाई महिलाओंको बड़े रुचे—विशेषकर वह व्याख्यान, जिसमें उन्होंने प्रकृतिकी उपासनाको अपने वैज्ञानिक तर्कसे असभ्यताका अवशिष्टांश, आदिम निवासियोंका ज्ञानाभाव-जनित स्वाभाविक भय और पुरोहितोंकी मक्कारी सिद्ध किया था। उनके ओजस्वी भाषणोंके शब्द उनके मस्तिष्कमें लौट-लौटकर चक्कर लगा रहे थे। पतिके साथ वे भी उन पहाड़ी प्रान्तोंमें अपनी जाग्रत जीज़स-सभाका कार्य आरम्भ करनेकी इच्छासे चलनेको तैयार हो गईं।

- २ -

रेलके अन्तिम पहाड़ी स्टेशनसे लगभग सौ मीलकी दूरीपर हिमालयकी उपत्यकाओंके बीच वह चट्टान थी। रेलसे उतरकर खच्चरोंपर सामान लद गया। दो पहाड़ी टट्टू रेडिच-दम्पतिके लिए आ गए। सरकारी इंजीनियर मिस्टर मेसनने अपने ओवर-सियर और कुछ कर्मचारियोंको मिस्टर रेडिचको लिवा लानेके लिए रेल्वे-स्टेशन तक भेज दिया था।

सब लोग साथ ही पहाड़ी मार्गसे उस चट्टानकी ओर बढ़े। हिमालयकी पहाड़ियोंके बीच यह यात्रा बड़ी ही रमणीक थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोटी-छोटी पहाड़ियोंपर टेढ़े-मेढ़े घुमावदार रास्तोंसे चढ़ना, फिर चीड़ और तुनसे ढँके उन पर्वतोंके कन्धोंपर कुछ समतल भूमि, फिर दूसरी पहाड़ीके नए क्षितिज, एक नए भू-भागका सम्मुख आ जाना, फिर चारों ओर ऊँचे गिरिशृंगोंसे परिवेष्टित एक समतल भूमि, उसके बीचमें बहती हुई एक नदी, जिसके चारों ओर पहाड़ोंकी आधी ऊँचाई तक हरे-हरे सीढ़ीके ढंगके गेहूँके खेत। इस प्रकार सारी घाटी रेडिच-दम्पतिको प्राचीन यूनानकी एक विशाल नाट्यशाला-सी प्रतीत हुई।

मार्गमें आठ-आठ या दस-दस मीलकी दूरीपर जंगलमें सरकारी विश्रामगृह थे, जो बहुधा पहाड़की श्रेणियोंपर ही बने हुए थे। वहाँपर सन्ध्या-समय दोनों घाटियोंका मनोरम दृश्य उनको अपने देश स्काटलैण्डकी याद दिला देता था। पर्वतोंकी घाटियोंके बीच बसी हुई बस्तियाँ, वृक्षोंकी अनोखी सुहावनी वायु, पहाड़ी रंग-बिरंगी चिड़ियोंका अद्भुत संगीत, दूर बसे हिमाच्छादित पर्वतोंकी श्रेणियाँ, जो कभी-कभी इन मध्यवर्त्ती घाटियों के आ जानेसे एकाएक लुप्त-सी हो जातीं और कभी उनकी एक बड़ी चोटी नीली और काली पर्वत-राशिके पीछे अटके बादलके टुकड़े-सी दिखलाई देती। प्रकृतिका यह सौन्दर्य बड़ा ही अद्भुत और मुग्धकारी था। एक सप्ताहकी यात्राके उपरान्त वे हिमाच्छादित पर्वतोंके और भी निकट आ गए। अब जंगलोंपर शीतोष्ण-प्रान्तीय साल, तुन और शीशमके वृक्षोंका नाम भी न था। चीड़, देवदार और सुरईके वृक्ष पहाड़ोंपर दिखलाई देते थे। इन वृक्षोंकी नुकीली पत्तियाँ शीत-ऋतुके आगमनसे गिर रही थीं। उस दिन एक ऐसे ही जंगलके बीच जाते हुए जिस नई घाटीका दृश्य सामने उपस्थित हुआ, वह बिल्कुल उनकी जन्मभूमिके समान था। उनके मस्तिष्कमें स्वदेशकी स्मृतियोंके तूफ़ान आ गए। बचपनकी छोटी-छोटी सुप्त भावनाएँ पुनर्जाग्रत हुईं। उन्होंने फिर देखा, कंकड़ों और बृहदाकार शिलाओंके बीच बहती हुई एक पहाड़ी नदी, गहरे पीले रंगका जंगल, पिछले पतझड़ोंमें गिरी चीड़की नुकीली पत्तियाँ। पत्तियोंके ढेरसे सारा जंगल बादामी रंगके गहरे आवरणसे ढँककर गँदले पानीकी तरंगोंसे भरा-सा ज्ञात होता था। सारे जंगलका रंग, यहाँ तक कि चीड़के पेड़ोंकी छाल और टहनियोंका रंग भी, गँदले पानीका-सा था। जंगलके उपरान्त झाड़ियाँ, खेतोंकी पत्तियाँ, नीले पत्थरकी भयंकर चट्टानें - सब-कुछ उसी 'ब्लैकनिर'की-सी घाटी लगती थी, जहाँ उस दम्पतिकी अपनी जन्मभूमि थी। वहाँपर वे लोग रुक गए, क्योंकि समतल भूमिका वह टुकड़ा ठीक उनके स्काटलैण्डके पड़ोसी स्टिवेलके फार्म-सा लगता था और उस समतल भूमिके ऊपर एक पहाड़की धार(रिज)पर बना हुआ बँगला ठीक उस गिरजे-सा था, जिसमें पादरी साहबकी इस एमा, जो अब मिसेज़ रेडिच थीं, और गाँवके स्कूल-मास्टर जिमीका, जो अब इंजीनियर जेम्स नाटिंघम रेडिच थे, पाणि-ग्रहण हुआ था।

मि० रेडिचने भावावेशमें कहा—'ओवरसियर यह बड़ी रमणीक है। उस समतल भूमिपर बसे सुन्दर गाँवका नाम है भला?'

ओवरसियरने कहा—'साहब, इसे कालाढूँगी कहते हैं।'

मिसेज़ रेडिचने अपनी प्राचीन स्काटिशमें कहा—'कि प्यारे, नाममें भी बहुत-कुछ समानता है—काला-कुछ 'ब्लैकनिर'! आश्चर्य है! काश, उस पहाड़की नोंकपर बने बँगलेकी छतें और ढालू होतीं और वह ब्लैकनिरका गिरजा होता!'

'क्या वह जंगल-विभागका विश्रामगृह है?'—मि० रेडिच पूछा।

ओवरसियरने कहा—'नहीं साहब, वह एक पलटनके अफ़सरका मकान था, अब उजाड़ है। वर्षोंसे उसमें कोई नहीं रहता।'

'वर्षोंसे उसमें कोई नहीं रहता!'—इंजीनियर रेडिचने मन-ही-मन कहा—'ऐसी सुन्दर जगह, ऐसा जलवायु और ऐसी सुन्दर स्थिति उस मकानकी है, फिर भी उसमें कोई नहीं रहता!' और तब ओवरसियरसे उन्होंने पूछा—'क्या बात है, ऐसा सुन्दर मकान योंही व्यर्थ पड़ा है?'

ओवरसियर क्षण-भर चुप रहा। मकानकी घटना एक लम्बी कथा थी। उसे किस प्रकार आरम्भ किया जाय, यही सोचकर उसने फिर कहना आरम्भ किया—'नदीके उस पार तराईसे निकले उस पहाड़के बीचमें एक चट्टान दिखलाई दे रही है—वह काली-सी भयंकर शिला, उसीके नामपर इस घाटीका नाम कालाढूँगी है। ढूँगी इस प्रदेशकी भाषामें पत्थरको कहते हैं। उस चट्टानकी अशुभ-दृष्टि इस मकानपर पड़ती है, ऐसा इस प्रदेशके निवासियोंका विश्वास है।'

उपहासकी भावनासे मिस्टर रेडिचने कहा—'और एक बहादुर अफ़सर चट्टानकी अशुभ-दृष्टिसे डरकर ऐसे सुन्दर मकानको छोड़ गया!'

ओवरसियरने कहा—'सूबेदार साहबको, जिनका यह मकान है, अन्ध-विश्वासकी किंचित् भी चिन्ता न थी। उन्होंने इसके और गाँववालोंकी रायके विरुद्ध इसी स्थानपर यह बँगला बनवाया। पर देखिए, वह काली चट्टान सदा इसी ओर घूरती-सी दिखलाई देती है और इसीके ठीक सामने आ गई है। दुर्भाग्यसे जिस दिन सूबेदार इस मकानमें आए, उसी दिन उनके एक लड़केकी मृत्युका समाचार उन्हें मिला, और जब तक वे इस मकानमें रहे, कुछ-न-कुछ अनिष्ट होता ही रहा।'

'चट्टानकी अशुभ-दृष्टिके ही कारण?'—मिस्टर रेडिचने उसी प्रकार उपहास-मिश्रित व्यंगसे पूछा। वे तीनों अब पगडण्डीसे उसी मकानके पाससे गुज़र रहे थे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओवरसियर कहता गया--'जो, एक और दुर्घटना पारसाल हो गई। नई सड़कके कुलियोंने इस मकानमें रहना आरम्भ किया और उनमें से एकको मृत्यु हो गई। साँपने उसे काट लिया।'

श्रीमती रेडिच अब मकानके बिल्कुल पास चल रही थीं। एक बार उन्होंने तोंद-से उभरे उस पर्वतको देखा और तब उसके बीचमें छोटे-बड़े पत्थरोंकी प्राकृतिक दीवारपर खड़ी एक विशाल काले दुर्ग-सी चट्टानको, जो मानो ठीक उन्हींकी ओर देख रही थी। 'चट्टानकी अशुभ-दृष्टि और अनिष्टकारिणी शक्तिपर मुझे किंचित् भी विश्वास नहीं'--मन-ही-मन यह कहकर उन्होंने उस ओरसे आँखें हटा लीं। पर एकाएक उन्हें उस चट्टानको देखकर एक मृत शवके दीख पड़नेकी-सी भयाकुल आशंका हुई। किन्तु यह भावना क्षणिक थी। आगे बढ़कर नदीके जलका तल स्वच्छ पारेकी भाँति चमक रहा था। उस पर्वतके नीचे उतरते-उतरते उनका मन फिर संयत हो गया। पहाड़की सम्पूर्ण चढ़ाई समाप्त कर चुकनेपर कलकल करती हुई स्वच्छ जलकी नदी बह रही थी। वहाँपर वे फिर घोड़ोंसे उतर गए। उस स्वच्छ जलको पीनेके लोभको वे संवरण न कर सके, और जलपानकर आगे बढ़े।

पहाड़के इस ओर चढ़ाईपर चढ़ते-चढ़ते बादल घिर आए और पानी पड़ने लग गया। पानीकी आशंका पर्वत-प्रदेशके दौरे पर सदा रहती है, इसीलिए पूरा प्रबन्ध कर लिया गया था। पर जो कुली बरसाती कोट ला रहा था, वह अभी पहुँचा न था। इसीलिए सुरई और चीड़के वृक्षोंके बीच कुछ दूर आगे बढ़कर वे जंगलके एक अदना कर्मचारीकी चौकीपर रुक गए। ठण्डी हवा गोलाकार वृक्षोंको उल्टे पेण्डुलमोंकी भाँति नचा रही थी। उनकी छोटी-छोटी नुकीली पत्तियोंपर पानीकी बूँदें क्षण-भर टिककर फिर तृणसंकुल भूमिपर गिर रही थीं। हवाकी साँय-साँय, बादलों का गर्जन, वर्षाकी झड़ी और बूँदोंका गिरना--यह सब मिलकर उस एकान्त जंगलमें एक अद्भुत संगीत-सा भर रहे थे। प्रकृतिका यह भावोत्पादक व्यापक और संवादपूर्ण दृश्य केवल शब्दमय ही नहीं, बल्कि वास्तविक भौतिक विचित्रता-सा सजीव लगता था।

मिस्टर रेडिचका हृदय प्रसन्नतासे नाच रहा था। जो भी आ जाय, उससे घुल-मिलकर बातें करनेकी इच्छा होती थी। एक वृद्ध पर्वतवासीने एकाएक इस गौरांग पति-पत्नीको ऐसी जगह देखकर बड़ी भक्तिसे कमर तक झुककर सलाम किया। मि० रेडिचने ज़ोरसे कहा--'सलाम, भाई, सलाम। एकाएक वर्षा आ गई। हमारा आदमी पीछे रह गया, इसीसे यहाँ रुक गए।'

'हुज़ूर, मेरी झोंपड़ी पास ही है, वहाँ चले चलें। मैं इस जंगलमें रेजिन (बिरोजा) का ठेकेदार हूँ।'

ओवरसियर, जो अब तक एक कोनेमें दुबका था, बोला 'हाँ हुज़ूर, मुझे तो याद भी नहीं रहा। वहाँपर रेजिन-डिपोका कमरा अच्छा साफ़-सुथरा है।'

'हुज़ूर, मुझे मालूम हो गया था'--ठेकेदारने कहा--'कि आप तशरीफ़ लायँगे। वहाँ चाय-पानीका प्रबन्ध हो गया है।'

ओवरसीयरको देखकर वृद्ध ठेकेदारको निश्चय हो गया कि यही वे बड़े इंजीनियर हैं, जिनके आनेकी प्रतीक्षामें वह था। जंगलका वह ठेकेदार अब नई सड़कका ठेका लेकर जल्दी ही अधिक-से-अधिक रुपया बनानेकी चिन्तामें था। इसीलिए रेजिन-डिपोके पास एक सुन्दर फाटकपर 'वैलकम'का कपड़ा टाँगकर सुबहसे ही इनके आगमनकी प्रतीक्षामें था। रेजिन-डिपोमें पासके जंगल-विभागके विश्रामगृहके खानसामाने, जिसे कुछ पुरस्कारका प्रलोभन देकर वृद्ध ठेकेदार बुला लाया था, रेडिच-दम्पतिको चाय पिलाई। चायके साथ चीड़के चिलगोज़ोंको भूनकर बनाई गई नमकीन 'बीन्स'की तश्तरी देख मिस्टर रेडिच बहुत प्रसन्न हुए।

चाय पीते-पीते कुली आ गए। रेडिच-दम्पतिने हाथ मिलाकर वृद्ध ठेकेदारको धन्यवाद दिया और घोड़ेपर चढ़कर आगे बढ़। वह वृद्ध ठेकेदार भी साथ हो लिया। चलते-चलते बोला--'हुज़ूर, जंगलके ठेकेमें अब कुछ नहीं रह गया है।'

'नहीं, कुछ क्यों नहीं?'--मि० रेडिचने बच्चोंकी-सी उसी विनोदपूर्ण प्रसन्नतासे कहा--'चीड़का चिलगोज़ा बड़ी अच्छी चीज़ है।'

'हाँ साहब,'--ठेकेदारने कहा--'पर जंगलका ठेका अच्छी चीज़ नहीं। इतने सजीव और हरे-भरे वृक्षोंकी जानें ले चुका हूँ। यह हत्या अब अच्छी नहीं लगती।'

'हत्या, मरडर!'--मि० रेडिचने मन-ही-मन कहा--'पेड़ोंकी भी क्या हत्या होती है!' और अपनी पत्नीसे स्काटिश भाषामें बोले--'देखो एमा, यह आदमी पेड़ोंकी हत्यासे डर रहा है!'

जंगलके बीच ऊँचे-ऊँचे वे पेड़ सचमुच सजीव-से लग रहे थे। 'उनकी हत्या किसी मानव या पशु-हत्यासे कम महत्वकी नहीं हो सकती।' श्रीमती रेडिचने मन-ही-मन सोचा। एक सुन्दर शृंगार-सा किए शोभामयी प्रकृति द्वारा स्वयं काट-छाँटकर बनाए हुए ठोस ज्यामितिकी सूचीके आकारके सनोवरके इस वृक्षको अवश्य ही काटना नहीं चाहिए। स्वार्थके लिए इसे काट डालना एक अपराध ही है। पर शीघ्र ही उन्हें विचार आया कि पेड़ चैतन्य कहाँ है? और पतिसे बोलीं--'यह देश नास्तिक प्रकृतिके उपासकोंका है। यहाँ ऐसी ही बातें सुननेको मिलेंगी।'

वृद्ध उनको क्षण-भर चुप देख अपने बोलनेका अवसर पाकर बोला--'साहब, अबके नई सड़कमें मुझे ठेका दिला देनेकी कृपा की जाय।'

इस बातके सुनते ही मि० रेडिचकी मुद्रा कठोर हो गई। उस आलिप्यमें वृद्धके स्वार्थ-साधनकी लिप्सा भी थी, यह जानकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन-ही-मन उन्हें उस चायके ग्रहण करनेसे अब ग्लानि-सी हुई। जिस आत्मीयता और विनोदकी भावनासे वे अब तक घुली-मिली-सी बातें कर रहे थे, वह एकाएक लुप्त हो गई, और अपनी मुद्रापर कठोर गम्भीरताका आवरण-सा धारण करते हुए उन्होंने कहा—'क्या इसी आशासे तुमने हमें चाय पिलानेका कष्ट किया है? यह तुमने ठीक नहीं किया।'

'नहीं, नहीं, साहब, नहीं।'—वृद्धने सकुचाकर कहा।

फिर उस वृद्धके भोलेपनपर मुस्कराकर मि० रेडिच बोले—'टेंडर दे सकते हो। तुम्हारा टेंडर यदि और सबोंसे कम होगा, तो सड़कके इंजीनियर अवश्य ही तुम्हें ठेका दे देंगे। इसमें हम कुछ नहीं कर सकते। समझे?'

वृद्धने कहा—'जी, हाँ।' पर उसकी मुद्रापर शून्य-सा भाव पढ़कर मिस्टर रेडिच समझ गए कि वह कुछ भी नहीं समझा। घोड़ोंपर सवार होते हुए उन्होंने कहा—'अच्छा, ठेकेदार साहब, धन्यवाद। सलाम।'

वृद्धने फिर झुककर दो बार सलाम किया। उस अभिवादन और वृद्धकी हत्याकी उस आशंकासे मन-ही-मन पुलकित हो रेडिच-दम्पति आगे बढ़े।

- ३ -

पहाड़ोंकी चढ़ाई तथा उतार और फिर चढ़ाई तथा फिर उतार, यह क्रम अब समाप्त हो गया था। अब एकके उपरान्त दूसरी पहाड़ी श्रेणियाँ पहाड़के एक मोड़के बाद दूसरी और फिर तीसरी छोटे-छोटे दर्रोंकी रचना करती हुई पूरी ग्यारह हज़ार फीटकी ऊँचाईपर समाप्त होती थीं और तब उस पर्वत-श्रेणीके दूसरी ओर वह चट्टान थी, जहाँ मिस्टर रेडिचको पहुँचना था।

एक ऐसे पर्वतकी पूरी परिक्रमा कर चुकनेपर सहसा एक नया पर्वत सामने आ गया और दोनों घोड़े एकाएक चौंककर खड़े हो गए। देवदारका जंगल उस नए पर्वतको भौंहके समान चतुर्दिक विशालकाय शिलाओं, पर्वतखण्डों और भद्दी-सी चट्टानोंके वनस्पति-विहीन गिरि-मस्तकपर दूर तक चला गया था। पगडण्डीके ठीक ऊपर एक बड़ी-सी श्वेत चट्टानकी बाईं ओरसे सनसनाती तेज़ हवा चली आ रही थी।

'ओह देखो, यह क्वार्टज़ (श्वेत स्फटिक) की चट्टान है।'—मिस्टर रेडिचने कहा।

उनकी पत्नी उसे अब तक कोई हिमालय-प्रदेशका जंगली जानवर समझ भयाकुल-सी घोड़ेपर ऐंठकर बैठ गई थीं। क्षण-भरमें संयत होकर बोलीं—'घोड़ेने तो मुझे डरा दिया। मैंने तो इसे सफ़ेद भालू समझा। बड़ी डरावनी चट्टान है यह!'

दोनों पहाड़ोंके बीच उस छोटे-से मार्गमें सूर्यकी किरणें कभी न पहुँच पाती थीं और एक हरी काई उसपर सदा जमी रहती थी, जिससे घोड़े बहुधा फिसल जाते थे।

ओवरसियरने आगे बढ़कर कहा—'आगे फिसलन बहुत है। घोड़ेसे उतर जाइए, तो अच्छा हो।'

घोड़ोंसे उतरकर दोनों हाथमें लगामें पकड़े हुए आगे बढ़े। ओवरसियरने वहाँपर पतलूनकी किनारीको मोज़ेके ऊपर डालकर ऊपरसे फ़ीता बाँध लिया। ऊनी कान ढँकनेवाली टोपीको पूरा खोलकर गले तक ओढ़ लिया और उसके भी ऊपर लोईका फन्दा बाँधकर आँखों और नाकको ही खुला रखा, क्योंकि हवा बड़ी ठण्डी चल रही थी और शीघ्र ही बर्फ़के तूफ़ानकी आशंका थी। रेडिच-दम्पतिने भी अपने ऊनी बड़े कोट पहन लिए।

ओवरसियर उस बड़ी सफ़ेद चट्टानकी ओर मिट्टीका एक ढेला फेंककर आगे बढ़ा। इन घाटियोंके पर्वतीय लोग अब भी उस स्फटिक चट्टानके टुकड़े तोड़-तोड़कर ले जाते थे और अग्निदेव (आग पैदा करनेका चकमक पत्थर) बनाते थे। इस ओर रहने वाले गाँवके निवासी इस चट्टानपर, जिसका नाम 'अग्निदेव' (अग्निदेव) था, पत्र-पुष्प, काठका टुकड़ा या कंकड़ जो भी मिल जाय, चढ़ाकर तब आगे बढ़ते थे। ऐसे ही चढ़ाए हुए सूखे ढेलों और लकड़ीके टुकड़ोंका वहाँपर एक काफ़ी बड़ा ढेर लग गया था। इंजीनियर रेडिचने ढेलेका गिरना देखा तथा चट्टानके पास पड़ा हुआ वह कंकड़-पत्थरोंका ढेर भी और ओवरसियरसे इसका कारण पूछा।

'एक पुरानी प्रथा-सी चली आती है।' ओवरसियरने कहा—'इस चट्टानपर कुछ-न-कुछ चढ़ाकर लोग आगे बढ़ते हैं।'

'तो तुम भी इस रीतिका पालन करते हो?'—मिस्टर रेडिचने पूछा।

'नहीं', ओवरसियर सकुचाकर बोला—'पर एक ढेला ऊपर फेंक देनेमें कुछ बुराई तो है नहीं, इसीलिए...'

मिस्टर रेडिच पत्नीसे अपनी भाषामें बोले—'यहाँपर काईके कारण लोग फिसल जाते होंगे और किसीका हाथ पाँव टूट जाता होगा। ऐसी दुर्घटनाओंका कारण पर्वतीय समझमें होता होगा चट्टानकी अशुभ-दृष्टि। शायद इसी इसपर कुछ चढ़ाकर लोग आगे बढ़ते हैं।'

पत्नीने कहा—'आपने ठीक कहा। मैंने अपने भाषणमें यही कहा था कि प्रकृति-उपासनाका कारण ज्ञानका अभाव उससे जनित भय और कुसंस्कार हैं। लौटती बेर मैं पासके ईसाई प्रचारकोंसे मिलूँगी। इस प्रदेशमें सच्ची प्रचारकोंकी बड़ी आवश्यकता है।' पर यह कहते काँप उठीं। वर्षाकी झड़ी, बादलोंका गर्जन, तेज़ हवा ही इस प्रकम्पनका कारण हैं। यह कँपकँपी चट्टानकी दृष्टिके कारण हरगिज नहीं है, यह सोचकर उन्होंने एक बार अच्छी तरह हिलाया और उस कँपकँपीको शरीरसे झाड़ देना चाहा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'अगला बँगला कितनी ऊँचाईपर है?'—मिस्टर रेडिचने पूछा। इस समय उनकी पत्नी सोच रही थीं कि पत्थरका एक टुकड़ा उठाकर यदि चट्टानपर फेंक दिया जाय, तो हर्ज़ ही क्या है? खासा अच्छा मज़ाक रहेगा। पर इच्छा होते हुए भी वे ऐसा न कर सकीं।

मिस्टर रेडिचके प्रश्नके उत्तरमें ओवरसियरने कहा —'पहले उस बँगलेकी ऊँचाई ग्यारह हज़ार पैंतीस फीट बतलाई जाती थी। नए सर्वेयरोंका जो जत्था इस साल आया था, उसने बतलाया है कि यह सारा पर्वत ऊँचा उठा रहा है। इस ओर और भी कई चोटियोंकी ऊँचाई बढ़ गई है।'

मिसेज़ रेडिचके लिए यह एक नई बात थी। चौंककर बोलीं—'डार्लिंग, क्या पहाड़ भी बढ़ते रहते हैं?'

पतिने कहा—'हाँ, ऐसा तो होता है। सारा हिमालय ऊँचा उठ रहा है, ऐसा भूगर्भवेत्ताओंका विचार है।'

फिसलनेवाली उस हरी भूमिके समाप्त हो जानेपर मिसेज़ रेडिच घोड़ेपर सवार होते हुए सोचने लगीं—'पहाड़ बढ़ते हैं। चट्टानें भी बढ़ती होंगी, पेड़ भी बढ़ते रहते हैं। पर पेड़ोंका बढ़ना और पहाड़का ऊँचा उठाना ये दो भिन्न-भिन्न क्रियाएँ हैं। सारा हिमालय ऊँचा हो रहा है। घोड़ेपर सवार हम जिस विशाल पर्वतके कन्धोंपर से गुज़र रहे हैं, वह भी बढ़ रहा है।'

इस विचारसे जूतोंके अन्दर उनके पाँवोंके तलवोंमें एक अजीब सनसनाहट-सी आ गई। रक़ाबोंपर ज़ोरसे पाँव दबाकर मन-ही-मन उन्होंने इस अनोखी-सी गुदगुदीका निवारण किया और सोचा—'यह कुछ नहीं। एक वैज्ञानिक सिद्धान्तके कारण यह बढ़ना सम्भव होता है।' अनायास उनकी दृष्टि पीछे पड़ी हुई उस श्वेत स्फटिक-शिलाकी ओर गई। जान-बूझकर उन्होंने उस ओर नहीं देखा। एक अचेतन भावनासे अनायास ही उनकी गर्दन क्षण-भरके लिए मुड़-सी गई और उन्हें ऐसा भास हुआ कि चट्टान ठीक उन्हींकी ओर ताक रही है।

'प्यारे, मुझे आगे बढ़ने दो।' कहकर उन्होंने अपना घोड़ा पतिके घोड़ेसे आगे कर लिया। पर रीढ़-तले एक मीठा-सा दर्द उन्हें अनुभव हुआ। मानो वहींपर उस चट्टानकी दृष्टि पड़ रही हो। 'नहीं, चट्टानके भला आँख कहाँ होती है।'—यही मन ही मन दो बार दुहराकर वे आगे बढ़ीं।

वह पगडण्डी अब जंगलसे निकलकर सुन्दर खुली हुई भूमिमें आ गई। वहाँपर ऊबड़-खाबड़ असभ्य-सी चट्टानें न थीं, जो इस हिमालय-प्रदेशमें एक साधारण-सी वस्तु हैं और जो सदा सामने रहती हैं। देवदार और सनोवरके लम्बे वृक्ष अब समाप्त हो गए थे। बेंतका हरा जंगल और उसके बीचमें बुरंश (रोडोडेड्रोन)के छोटे-छोटे टेढ़-मेढ़े पेड़ोंके कुंज-से थे। और उससे ऊपर ढलू भूमि कहीं भूरी-भूरी घास और कहीं जहाँ पानीका स्रोत बहता हो, गहरे हरे रंगकी काईसे ढँकी हुई थी। यह भू-भाग निर्जन-एकान्त महासागरके मध्य हरे द्वीपकी भाँति लगता था।

अब पानीकी बूँदें आकाशके ऊपर-ही-ऊपर अपनी पारदर्शिता खोकर रुईके कोमल फाहों-सी चुपचाप निःशब्द गिर रही थीं। सारा वातावरण इन हिमके फाहों-से श्वेत तितलियोंके दलसे भरा हुआ-सा ज्ञात हो रहा था। हिमके ये फाहे हवामें तैरकर धीरेसे पेड़की पत्तियों, टहनियों और मार्गपर चलनेवालोंके कपड़ोंपर बैठ जाते थे। सारा वातावरण निःशब्द था। केवल इन्हीं लोगोंके चलनेका शब्द पहाड़पर एक अशुभ आगमन-सा खटपट-खटपट गूँज रहा था। ज्यों-ज्यों ये लोग पहाड़की ऊँचाईपर चढ़ते गए, वे हिमकण घने होते गए। अपार श्वेत टिड्डियोंका-सा दल अब सारे आकाशको घेरे था। अब वे फाहे धीरे-धीरे पेड़ोंको ढँक चुके थे। श्वेत आवरण अब सूखी घास, हरी भूमि और अन्तमें सारी भूमिको ढँकने लगा। शीघ्र ही सारा पर्वत श्वेत चादर-सी ओढ़े दिखलाई दिया। पेड़-पौधे, घास, लकड़ी, मिट्टी सभी फेनिल दुग्ध-से श्वेत हिमका परिधान पहने हुए थे।

पहाड़की सम्पूर्ण चढ़ाई समाप्त कर चुकनेपर जो दृश्य सम्मुख आया, वह और भी चित्ताकर्षक था। उस ऊँचे पर्वतसे पहाड़का सारा उतार दिखलाई दे रहा था। छोटी-छोटी झाड़ियोंके उस जंगलके उपरान्त बुरंश और बांजके वृक्षोंके कुंज और तब देवदार और सनोवरके जंगल दूर तक फैले दिखलाई दे रहे थे। पहाड़के उस ओर उतरकर उन्होंने देखा कि उन ऊँचे-ऊँचे सूच्याकार वृक्षोंके ऊपर हिमका आवरण जहाँपर समाप्त हो गया था, वह भी एक अनोखा ही दृश्य था। हिम-विहीन हरे और हिमाच्छादित श्वेत भाग एक-दूसरेमें आकर धीरे-धीरे नहीं मिले थे। इन्द्रधनुषके रंगोंकी भाँति एक रंग दूसरेमें मिलकर अन्तर को अस्पष्ट न करता था; बल्कि एक सीधी रेखामें एकाएक रेखागणितकी कृति-सी हिमकी रेखा आकर समाप्त हो गई थी और हिम-विहीन हरी रेखाका आरम्भ हो गया था। भूमिके भूगर्भ-स्थित किसी धातु-गुणसे, पेड़ोंकी ताप-संवाहिनी विभिन्न प्रकृतिसे अथवा उनके किसी और विद्युत गुणसे शायद हिम एक रेखामें आकर समाप्त हो गया था, आगे नहीं गिरा था या गिरते-गिरते अपना ठोस रूप धारण न कर सकनेसे पिघल गया था। प्रकृति का यह अनोखा खेल देखकर वे भी स्तब्ध-से वहाँ थोड़ी देर खड़े रह गए।

अब पहाड़के उतारपर लगभग एक मीलकी दूरीपर वह चट्टान थी, जहाँ उन्हें पहुँचना था। हिमसे ढँका हुआ मार्ग दूर तक फैला दिखलाई दे रहा था—श्वेत मखमलसे ढँका हुआ-सा। उस कोमल आवरणपर पाँव रखते ही गढ़ा पड़ जाता और उसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समतल आवरण कुरूप हो जाता। घोड़ोंके खुरोंसे उस श्वेत भूमिमें जो काले छेद हो आते, वे बड़े कुरूप दिखलाई देते। ऐसी सुन्दर भूमिको इस प्रकार चलकर कुरूप कर देनेमें उन दोनोंको लज्जा-सी आती। पर वे लोग इस भावनाको मन-ही-मन दबाकर आगे बढ़ते रहे। मार्गमें किसी चिड़िया तकके इधर-उधर फुदककर जानेके चिह्न उस श्वेत कोमल बर्फ़पर स्पष्ट दीख पड़ते थे।

एक पहाड़ीकी श्रेणीपर उतर जब वे थोड़ी-सी समतल भूमिको पार करके दूसरी पहाड़ीपर आए, तो जो दृश्य सम्मुख आया, वह और भी चित्ताकर्षक था। उस ऊँचे पर्वतसे अनेक छोटे-छोटे पर्वतोंकी श्रेणियाँ निकलकर एकके उपरान्त दूसरी घाटियोंकी रचना करती हुई दूर उस बड़े पर्वतके ठीक मूलमें एक बड़ी विशाल नदीके तटपर जाकर समाप्त हो गई थीं। उनके ठीक पाँवोंपर कुहरेसे भरी, चारों ओर पर्वतोंसे घिरी घाटी एक बड़ी दूधसे भरी झील-सी लगती थी। उसके एक ओर यह पर्वत, हरे और श्वेत रंगोंका वह अनोखा खेल, हिमका वह निःशब्द वातावरण और दूसरी ओर नदीके उस पार अनेक छोटी-छोटी वैसी ही पहाड़ियाँ, उनके किनारोंपर बहती हुई छोटी-छोटी नदियाँ, उन नदियोंसे परिवेष्ठित अनेक छोटी-छोटी घाटियाँ थीं। यह अलौकिक दृश्य उस एकान्त शीतल वायुमें नितान्त आवरणहीन सौन्दर्यकी एक भयावनी उल्लासपूर्ण भावनासे उन्हें कम्पायमान करने लगा। चिर-परिचित वृक्ष भी उस श्वेत आवरणसे विशाल देव-से खड़े चुपचाप उनकी ओर एकटक देखते-से जान पड़ते थे। वे ही मानो उस अलौकिक शान्तिमें विघ्नकर्त्ता अपराधी हों।

नदीके उस पारकी उन घाटियों, पर्वतमालाओं और उनके बीच अटके हुए बादलोंके ऊपर सारी उत्तर-दिशाके पूरे क्षितिज पर विशाल श्वेत स्फटिककी दीवार-सी हिमालयकी श्रेणी खड़ी थी। एक ओर वह ऊँची हिममाला और दूसरी ओर यह हिम-पर्वत उस विशाल नदीके दूर बसे दो किनारोंकी भाँति हो गए थे। बीचमें आनेवाली छोटी-छोटी पहाड़ियाँ इतनी बड़ी घाटीमें अपना विशालपन खोकर नदीके हरे और नीले कंकड़-पत्थरों-सी लगती थीं। उनकी उन छोटी-छोटी घाटियोंमें लोट-पोट होते कुहरेके बादल बहते हुए नदीके पानीकी फेनिल तरंगोंकी भाँति दिखलाई दे रहे थे। हिमालयकी श्रेणीके बीच एक सबसे बड़ी चोटी उस कोसों फैली नदीके ठीक किनारे खड़ी दिखलाई दे रही थी।

रेडिच-दम्पति हिममालाकी उस अद्भुत छटाको देखते रह गए। हिमका गिरना बन्द हो गया था। बादलोंके टुकड़े यत्र-तत्र सारे आकाशमें छिटके हुए जल्दी-जल्दी भाग रहे थे। उत्तरकी ओर उस हिममालाके एक कोनेपर आकाश बिलकुल स्वच्छ हो गया था। उज्ज्वल नील आकाशका एक प्रान्त सूर्यकी किरणोंसे सारे हिमालयकी श्रेणीको तीव्र प्रकाशसे चमक था। सारा वातावरण सन्ध्याके पीत प्रकाशमें धुन्ध-सा हो था, जो हिमालयकी इस श्रेणीपर ऐसा जान पड़ता था, दिनका कुछ भाग छूटकर रह गया है।

ओवरसियरने कहा—'वह बड़ी ऊँची श्रेणी केदार है और दूर नीचे बहती हुई गंगाकी एक सहायक अलकनन्दा है।'

इस नैसर्गिक दृश्यको देखकर रेडिच-दम्पतिकी भी हुई कि एक बार इन पर्वतों और नदियोंकी नहीं, तो निर्माणकर्त्ताकी तो अभिवन्दना कर लें। पर वे दोनोंमें भी न कर सके। यह विचार उनके मनमें ही रह गया।

मि० रेडिचने पूछा—'केदारनाथका मन्दिर इसी श्रेणीपर होगा?'

'हाँ, उसी श्रेणीके ठीक नीचे, जहाँपर श्वेत हिम छाया-सी दिखलाई देती है।'—सैकड़ों मील दूर बसी श्रेणीकी ओर उँगलीसे संकेत करके ओवरसियरने इतनी दूरसे भी उज्ज्वल हिमालयकी पृष्ठभूमिपर प्रखर छायासे घिरे अंश साफ़ पहचाने जा सकते थे।

'केदारनाथमें किस देवताकी उपासना होती है?'—पूछा। उनकी पत्नी भी यही प्रश्न पूछना चाह रही थीं।

ओवरसियरने इस प्रान्तका निवासी होते हुए भी इस प्रश्नपर कभी विचार नहीं किया था कि उस तीर्थ किस देवताकी उपासना होती है। पर शीघ्र ही उसे स्मरण हो आया और उसने कहा—'मूर्त्ति तो वहाँ किसी की नहीं है। हिमालयकी दूर तक फैली एक चट्टानका उस मन्दिरके अन्दर आ गया है, उसीकी उपासना होती शिवजीका वह एक अंश है।'

काले कुहरेका एक उच्छ्वास-सा इस प्रत्युत्तरको मिसेज़ रेडिचके मुँहसे निकला—'तो यह पहाड़ी प्रान्त सारे हिन्दुस्तानके निवासी जो केदारनाथकी यात्रा करते प्रकृतिके, इन पाषाणोंके, इन वृहदाकार चट्टानोंके उपासक पर इससे क्या, जो एक व्यक्तिका कुसंस्कार है, वह एक भी कुसंस्कार हो सकता है। इतने अधिक लोग इसकी करते हैं, केवल इसी एक कारणसे चट्टानोंकी महत्ता बढ़ जाती।'—यही सोचकर उन्होंने अपनी आन्तरिक प्रतिक्रिया मार्ग एकाएक बन्द-सा करनेका प्रयास करते हुए पतिसे 'यह वही केदारनाथ तो है, जहाँ आपके असिस्टेंट मि० सिंह उस तीर्थ-मार्गपर काम करते हैं?'

पतिने कहा—'हाँ, यह वही स्थान है। सचमुच अस्तित्व तो इन पर्वतोंमें खो-सा जाता है। इतने बड़े ये घाटियाँ भी हिमालयकी उस श्रेणीके निकट

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

दिखलाई देती हैं। केवल हिमालय ही एक विशाल देवकी भाँति इस प्रान्तमें निरंकुश राज्य करता-सा जान पड़ता है।'

पर अपनी बात समाप्त करते ही मि० रेडिच सोचने लगे कि जाग्रत जीज़स-सभाकी यह अध्यक्षा हिमालयकी इस उपमासे, मेरे उसे जीवित शासकका रूप दे देनेसे, शायद प्रसन्न न हुईं होंगी। और पत्नी सोच रही थीं कि जो एक व्यक्तिका कुसंस्कार है, वह एक जातिका कुसंस्कार हो सकता है; पर एक जातिका कुसंस्कार—अज्ञान-जनित भय—क्या सचमुच हेय वस्तु है? निरंकुश शासक, यह निरंकुश शासक हिमालय बढ़ रहा है, ऊँचा उठ रहा है! विशाल देव! पतिने भी इसे विशाल देव कहा। एक जातिका कुसंस्कार मानव-जातिकी स्वाभाविक अभिव्यंजना भी तो हो सकता है। लेकिन मैं यह क्या सोच रही हूँ?

तब सामने नदीके उस पार उस धुँधले प्रकाशमें मटमैले तम्बुओंकी पंक्तिको देखकर पत्नीने अपनी उस अप्रिय विचार-धारा को बरबस रोककर कहा—'डार्लिंग, हम लोग आ गए। वे तम्बू दिखलाई दे रहे हैं।'

- ४ -

उस रात मिसेज़ रेडिच अच्छी तरह सो न सकीं। आँखें बन्द करते ही उन्होंने ब्लैकनिरकी वह घाटी देखी और अपने पिताको उस गिरजेके पास मरा हुआ देखा। फिर चट्टानें आईं—काली, नीली, श्वेत, भयावनी चट्टानें! उन चट्टानोंने बड़े-बड़े गिद्धोंकी भाँति उस शवको घेर लिया। बड़े-बड़े ऊँचे पर्वत दौड़-दौड़कर आए। उन्होंने अपनी शाखाएँ हिला-हिलाकर पत्र-पुष्प और फल उस शवपर बिखेर दिए। फिर एकाएक नाटकका-सा पर्दा गिर गया। सारा दृश्य बदल गया। चट्टानें बढ़ने लगीं। बढ़कर एक-दूसरेमें मिल गईं। वह शव भी उनमें मिल गया। सारा सम्मिश्रण एक विशाल पर्वत-सा हो गया। बीचमें उस शवकी दो बड़ी-बड़ी आँखें ही दूर खड़ी अकेली उनको ताकती रहीं। उन आँखोंसे चारों ओर पीला-सा प्रकाश फैल रहा था। चमकीली पीली-पीली अनेक लम्बी सुइयोंकी भाँति किरणें आँखोंसे चारों ओर फैल रही थीं। सारा पर्वत धीरे-धीरे उनके निकट आ रहा था। नगाड़ोंके बजनेका-सा शब्द हो रहा था। दूर एक विशाल नीली नदीके किनारे वह अकेली खड़ी थीं। मिस्रके पिरामिड-सी वह बड़ी पर्वतराशि उन्हींकी ओर खिसकती चली आ रही थी। उनके मुँहसे एक चीख निकली और नींद टूट गई!

पर पिरामिड फिर भी सामने दिखलाई दे रहा था। उन्होंने आँखोंको अच्छी तरह मलकर मन-ही-मन कहा—'यह स्वप्न था—एक स्वप्न, निरा स्वप्न!' पर खुली आँखोंके सामने भी एक धुन्ध-सी सूच्याकार पिरामिडकी छाया दिखलाई दे रही थी। फिर उन्होंने दो-तीन बार आँखोंको फिर-फिर बन्द किया और खोला। काफ़ी देरके बाद धीरे-धीरे कहीं वह दृश्य हटा। 'तम्बूके दर-वाज़ेका पर्दा सारे तम्बूके कपड़ेकी अपेक्षा हल्का था, इसीलिए चाँदनीका प्रकाश सूच्याकार हो अन्दर दिखलाई दे रहा है।'—यही सोचकर उन्होंने फिर आँखें बन्दकर सोनेका उपक्रम किया।

थके हुए मि० रेडिच रोज़की भाँति प्रगाढ़ निद्राका आनन्द ले रहे थे। उनकी लम्बी-लम्बी साँसें दूर बहती हुई पहाड़ी नदीके गर्जनके शब्दके साथ मिलकर कानोंमें एक अनोखा काँय-काँय-काँय शब्द कर रही थीं। इसीसे देर तक उनकी आँख नहीं लगी।

दूसरे दिन उन्होंने उस दुर्भेद्य चट्टानका निरीक्षण किया। नदीके किनारे-किनारे वह नीली चट्टान दूर तक फैली थी। सुरंगोंके छेदोंसे बिंधकर उसका रूप चेचकके घावोंसे भरा हुआ-सा विकृत हो गया था। सारी चट्टान गोलाकार पर्वतके एक विशाल स्तनकी भाँति नदीके किनारे उस नई सड़कके ऊपर और नीचे दोनों ओर फैली थी। जहाँ पर्वतकी ऊँचाईपर उसकी गोलाकार परिधिका अन्त होता था, वहाँपर एक छोटी-सी कुटिया थी, जिस पर नीले स्लेटोंकी छत थी। इसीको लोग देवीका मन्दिर कहते थे। इस गोलाकार विशाल चट्टानपर नई सड़कका कटा हुआ मार्ग उन तम्बुओंसे देखनेपर अपनी चौड़ाई खो देता था और एक खरोंच-सा दिखलाई देता था।

उस दिन मिसेज़ रेडिचकी पलकें रात्रिकी अनिद्रासे बोझिल हो रही थीं। उन्हें बड़ी थकान-सी आ रही थी। पिछली रातके उस स्वप्नकी बात वे पतिसे कहना चाहती थीं; पर पतिको आज अवकाश ही न था। वे दिन-भर उस चट्टानपर काम करनेवाले कर्मचारियोंको अनेक प्रकारके आदेश देनेमें ही संलग्न रहे। सन्ध्या समय तक पाँच सुरंगें तैयार हो गईं। इंजीनियर रेडिचने उन्हें अपने सामने खुदवाया। सीधी सुरंगके अन्तिम भागमें एक-एक और तिरछा छेद करवाया। उन तिरछे छेदोंमें डाइनामाइटकी बत्तियाँ रखी गईं। फिर उसी चट्टानके चूर्णको एक रसायनमें मिलाकर छेदोंको अच्छी तरह बन्द कर दिया गया। कुलियों और अन्य सब कर्मचारियोंको वहाँसे हट जानेकी आज्ञा दी गई। तब इस जड़ पत्थर और मानव-बुद्धिकी लगातार इन तीन वर्षोंकी लड़ाईका एक नया काण्ड आरम्भ हुआ। सब लोग बड़ी उत्सुकतासे फलकी प्रतीक्षा करने लगे। मि० रेडिचने एक बार फिर अच्छी तरह चट्टानका निरीक्षण किया। सबको चट्टानके दगनेकी प्रतीक्षामें अच्छी तरह छिपकर रहनेकी आज्ञा देकर वे अपने तम्बूमें पत्नीके पास लौट आए।

चट्टानके टूटनेपर इस ओरके तम्बुओंमें, जो पहाड़की ओटमें थे, किसी प्रकारकी आपत्तिकी आशंका न थी। जल्दी-जल्दी चाय पीते हुए मि० रेडिचने कहा—'मुझे अभी फिर चट्टान तक जाना है। सुरंगें ठीक हो गई हैं, उन्हें मैं अपने सामने धुलवानेका इन्तज़ाम करूँगा।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

मिसेज़ रेडिचने आँखें उठाईं। अनायास ही उनकी आँखों में आँसू आ गए। वे पतिसे बोलीं—'यह चट्टान न काटी जाय, तो अच्छा हो। क्या कोई दूसरा मार्ग मोटर-सड़कके लिए नहीं बन सकता?'

पत्नीके इस अचानक भाव-परिवर्त्तनपर आश्चर्यसे मन-ही-मन इसका अर्थ लगाते हुए मि० रेडिचने कहा—'प्रिये, इस बार भी यदि चट्टान न कटे, तो ऐसा ही करना पड़ेगा। पर यह होगी बड़ दुर्भाग्यकी बात!'

पत्नीने एक लम्बी साँस ली। कहा—'डार्लिंग, जाने दो, इस चट्टानको न काटो। इसे ऐसा ही पड़ा रहने दो। मुझे बड़ी घबराहट हो रही है।'

मि० रेडिचने पत्नीकी मुख-मुद्रापर भयके चिह्न स्पष्ट देखे। पर स्त्रीजन-सुलभ एक साधारण कदर्यता ही इसका कारण जानकर उनकी पीठ सहलाते हुए कहा—'एमा, तुम घबराओ मत। लो, यह ओवरसियर आ गया है। मैं जाकर डाइनामाइटकी बत्तियाँ सुलगवाता हूँ। तुम संयत होकर अन्दर बैठी रहना। बैटरी आ गई है। रेडियोकी मशीन ठीक-ठाक करना। मैं अभी लौटकर आता हूँ।' यह कहकर एक हल्की-सी थपकी पत्नीकी पीठपर देकर मि० रेडिच चट्टानकी ओर चले गए।

'हाय! हे ईश्वर, यह ठीक नहीं हुआ! मैं यहाँ आई ही क्यों?' मन-ही-मन यह कहते हुए पत्नी तम्बूके अन्दर चली गई। 'हाय, मेरे पति भी मेरे हृदयकी दशाको नहीं समझ सके! इस चट्टानका टूटना मेरे लिए असह्य प्रसंग है। पति कठिनतासे मेरी बातोंको सुननेके लिए आधे बैठे-से रहे, बड़ी अन्य-मनस्कतासे और इतनी थोड़ी देरके लिए!'—यही सोचते हुए उन्होंने खुले रेडियोकी मशीनके कभी एक पुर्ज़े और कभी दूसरे पुर्ज़ेको उठाकर अकारण ही तम्बूके अन्दर चक्कर लगाना आरम्भ किया।

तभी हल्की-सी गड़गड़ाहटसे उनका ध्यान भंग हुआ। किसी अज्ञात प्रेरणासे दौड़कर वे तम्बूके किनारे बाहर, जहाँ चायके बर्तन अब तक मेज़पर वैसे ही पड़े थे, आ गईं। किसी पेड़के गिरनेका-सा शब्द हुआ और फिर भयंकर लम्बायमान गर्जना—चारों ओरसे शिकारियोंसे घिरे हुए शेरकी अन्तिम निराशापूर्ण दहाड़का-सा भयंकर निनाद! फिर भयानक अविराम गर्जन! भयंकर ध्वनियों और प्रतिध्वनियोंसे सारी घाटी काँपने लगी।

मिसेज़ रेडिचकी आँखें चट्टानकी ओर उठ गईं। पर धुएँके बादल, बारूद और जलते हुए गन्धककी गन्ध, पेड़ोंके प्रकम्पनकी उस सनसनाहटमें वे कुछ भी न देख सकीं। तब उनके कानोंमें नगाड़ोंके बजनेका-सा शब्द हुआ—ठीक वैसा ही, जैसा रातको उन्हें सुनाई दिया था। लौटकर वे अन्दर चली गईं। तम्बूमें दो-तीन चक्कर और लगाए; पर आँखोंसे कुछ भी न दिखलाई दिया। उनका सारा ध्यान उसी चट्टानकी ओर था। 'यह व्यर्थ है। मैं घबरा नहीं रही हूँ।'—यह सोचकर वे फिर बाहर आ गईं। कुर्सीके पास झुककर उन्होंने उसपर बैठना चाहा; पर कुर्सी एकाएक गिर पड़ी। उनकी समझमें नहीं आया कि यह क्योंकर हुआ। फिर गड़गड़ाहट हुई—धातुके किसी भारी खंभे के टूटनेकी-सी भयंकर झनझनाहट, वज्रपातका-सा भयानक शब्द। नगाड़ोंका शब्द और ज़ोरोंसे उनके कानोंमें बजने लगा। उन्होंने आँखें फिर उस धुएँके बीच चट्टानको ढूँढ़ने लगीं। पर नगाड़ोंका वह शब्द असह्य हो चला था। अन्दर लौट आनेको उन्होंने पाँव बढ़ाया; पर हवाका एक झोंका गन्धककी तीव्र दुर्गन्धके साथ इतने वेगसे आया कि वे लड़खड़ाती दो क़दम पीछे को गिरीं। हवामें तिनके, सूखे पत्ते और चट्टानोंपर उगी हुई नागफनीके पीले पुष्पोंकी पंखुड़ियाँ उड़ रही थीं। वहीं फिर इस क्षणके लिए उनकी चेतना वापस आ गई।

'चट्टानकी अशुभ-दृष्टिसे यह नहीं हो रहा है, केवल गर्जनासे ही यह घबराहट आ गई है। शीघ्र तम्बूकी ओर चल ही अब उचित होगा। मुझे घबराना नहीं चाहिए।'—यह सोच तम्बूकी ओर उन्होंने पाँव बढ़ाया; पर फिर उनकी दृष्टि धुएँ को हो गई। उड़ते हुए तिनके, पत्ते और पुष्प हिमके अगणित टुकड़ों के साथ उनके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। वे टुकड़े पीले, लाल, नीले और अन्तमें काले हो गए और फिर जुगनूसे चमकने हो उनकी आँखोंके सम्मुख नाचने लगे। कुछ क्षण बाद उन्होंने नाचना बन्द कर दिया। हवाका वह प्रकम्प भी रुक गया। उन्हें ऐसा भास हुआ कि वे सशरीर चट्टानकी ओर उड़ी जा रही हैं। सब-कुछ शान्त और अचल हो गया है, वे ही भयानक गर्जन करती उस शान्त हवाको चीरती हुई उड़ रही हैं। विक्षिप्त कल्पनामें सहसा विचार आया: 'चट्टान टूट रही है। उसे टूटना न था, बिना नर-बलिके वह टूट नहीं सकती! शायद उसने मुझे ही छाँट लिया है। बरबस मुझे ही अपनी ओर खींच वह मेरी हत्या करके सन्तुष्ट होना चाहती है। पर यह विचार व्यर्थ है। मैं उड़ नहीं रही हूँ। मैं घबरा गई हूँ।'—यह सोचकर फिर उन्होंने हाथ और पाँव चारोंसे रेंगकर तम्बूकी ओर बढ़ना चाहा; पर सारा ज़ोर लगाकर भी वे तिल-भर आगे न बढ़ सकीं और मुँहके बल वहीं गिर गईं।

भयंकर गर्जना और प्रतिगर्जनासे घड़ी-भर तक सारी घाटी काँपती रही। उन गर्जनाओंके शान्त होनेपर जब धूलके बादल फट गए, तो मिस्टर रेडिच तम्बूकी ओर लौटे। उन्होंने उसके निकट औंधी पड़ी हुई निर्जीव पत्नीको देखा। उनके स्कर्टका एक छोर उल्टी कुर्सीके एक पाँवसे फँसा था। नाक और मुँहसे झाग निकलकर पासकी सारी मिट्टीमें बबूले-से उठ गया था। इन्द्रधनुषका रंग उन बबूलोंपर नाच रहा था!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओकीनावाके नागरिक उसके सबसे बड़े द्वीप र्यूक्यूज़-स्थित अपने-अपने गाँवोंको लौट रहे हैं।

भारतीय विज्ञानवेत्ता सर ज्ञानचन्द्र घोष, जे० एन० मुखोपाध्याय, डा० नज़ीर अहमद, प्रो० मेघनाद साहा, प्रो० एम० के० मित्र और सर शान्तिस्वरूप भटनागर, जो हाल ही में अमरीकाकी यात्रा करके लौटे हैं।

यह फोटो नहीं, श्रीमती लौरा नाइट द्वारा हाथसे खींचा गया ब्रिटेनकी युद्ध कालीन चित्रकलाका एक नमूना है। इसमें रायल एयर-फोर्सकी महिला सहायक-सेनाकी दो अफ़सर काम करती हुई दिखलाई गई हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

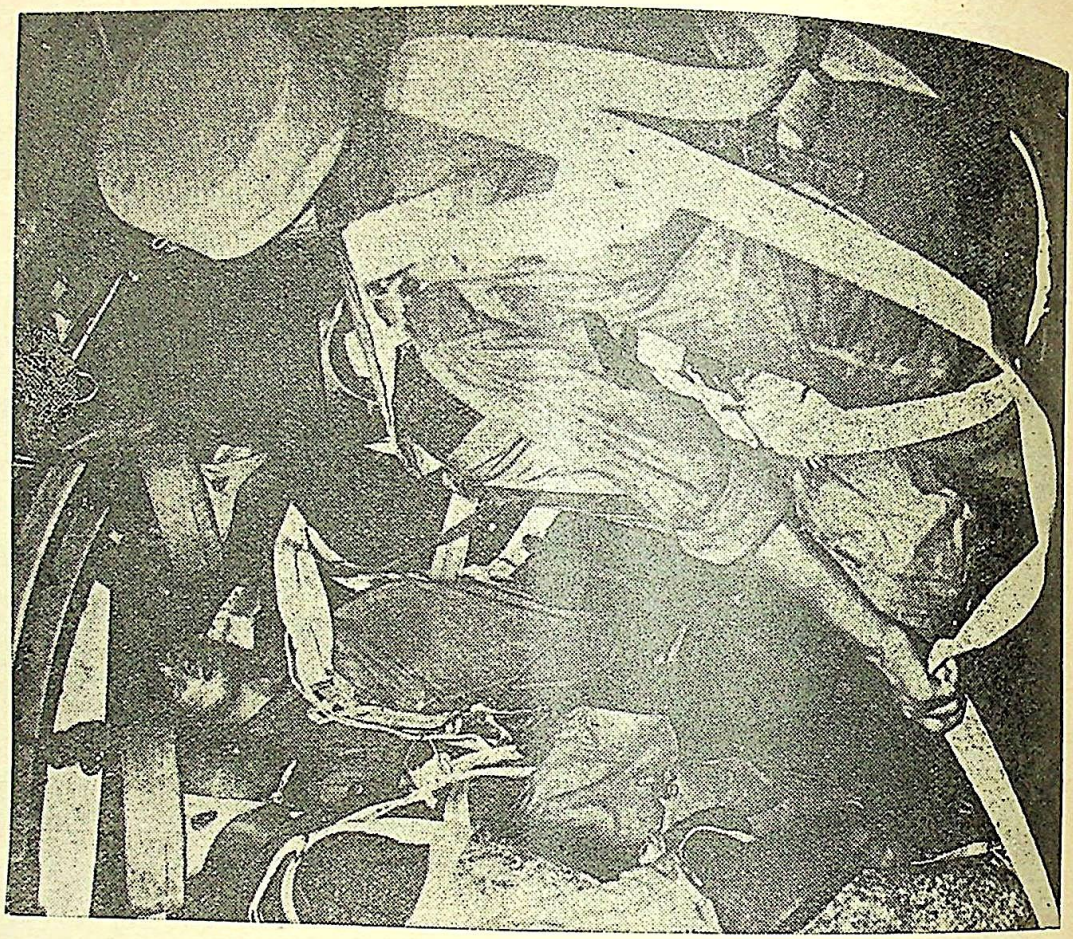

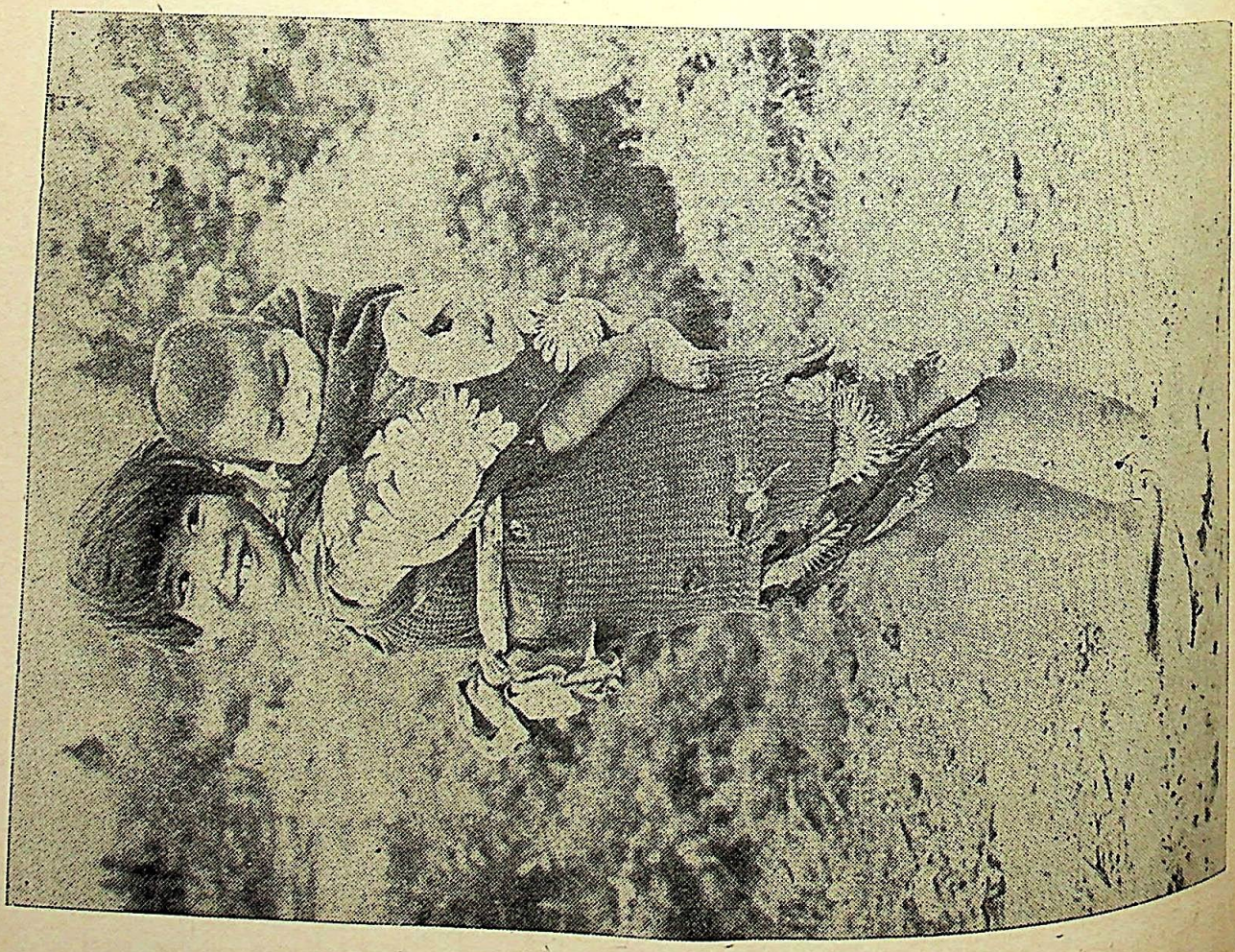

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतीय वास्तु-कला

श्री आनन्द शास्त्री

भारतीय कला-भावनाने कब भौतिक रूप पाया, इस सम्बन्ध में यद्यपि प्रमाणोंके अभावमें अभी तक निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सका है तथा पुरातत्ववेत्ताओंके अनुसंधानोंके फल-स्वरूप भी ई० पू० तीसरी शताब्दीसे पहलेके भौतिक प्रमाण नहीं मिल सके हैं ; फिर भी संस्कृतके जो प्राचीन ग्रन्थ विनष्ट होनेसे बच रहे हैं, उनके अनुशीलनसे स्पष्ट है कि ईसासे कई हज़ार वर्ष पूर्व भारतीय मूर्ति, चित्र, संगीत, वास्तु आदि कलाओं-सम्बन्धी उत्कृष्ट सिद्धान्त स्थिर किए जा चुके थे। इसमें सन्देह नहीं कि उन विदेशी आक्रामकोंकी धार्मिक असहिष्णुताके कारण ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थ बहुत ही थोड़ी संख्यामें बच रहे हैं, फिर भी प्राचीन भारतीय कलाओं-सम्बन्धी जानकारीके लिए उनमें पर्याप्त सामग्री भरी पड़ी है।

हमारे प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंमें ३२ विभिन्न विज्ञानों तथा ६४ कलाओंका उल्लेख है, और उन्हीं ३२ विज्ञानोंमें से शिल्प-शास्त्र अथवा वास्तु-कला भी एक है। ये विज्ञान एवं कलाएँ केवल उन प्राचीन आर्योंके कल्पना-जगतकी ही चीज़ें नहीं थे, अपितु वे इनमें पूर्णतः निष्णात भी थे। प्राचीन वास्तु-विद्याके सम्बन्धमें अब तक जो प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध हो सके हैं, उनमें से 'मय-शिल्प', वैषानस-संहिता', 'पंचरात्र-संहिता', 'शैव संहिता', 'अयादि लक्षणम्', 'मनुष्यालय विधि', 'विश्वामित्र-संहिता', 'वास्तुशास्त्र', 'वास्तु-विज्ञान', 'सनत्कुमार-वास्तु', 'सनत्कुमार-शिल्प', 'मानसार-शिल्पशास्त्र' आदि प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से भी 'मानसार-शिल्पशास्त्र' सबसे अधिक उल्लेखनीय है, जिसमें प्राचीन हिन्दू-आदर्शोंके अनुसार ग्राम, नगर आदि सम्बन्धी वास्तु-कलाका विशद वर्णन है। साधारणतः 'मानसार' शब्दका अर्थ है—मापन-कलाका सार। किन्तु उक्त ग्रन्थके प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही दिए गए एक श्लोकके आधारपर ज्ञात होता है कि उसके प्रणेता मानसार नामक कोई एक ऋषि थे और उन्हींके नामके अनुसार ग्रन्थका नाम भी 'मानसार' पड़ा।[1]

ऊपर जिन प्रामाणिक संस्कृत-ग्रन्थोंका उल्लेख किया गया है, उनके आधारपर ही ज्ञात होता है कि अतिप्राचीन समयसे ही दक्षिण-भारतमें दो ऐसे विशेष वर्गोंके लोग रहते थे, जो शिल्पशास्त्रके ज्ञानको अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। वे अपनेको दिव्य कलाकार विश्वकर्माका वंशज मानते थे तथा स्वयं भी विश्वकर्मा कहलाते थे। अपने कार्योंके अनुसार वे पुनः स्थपति, सूत्रग्रथी, वर्धकी, तक्षक आदि चार वर्गोंमें विभक्त थे तथा वास्तुकार, मापक, जोड़नेवाले कर्मकार आदिका प्रतिनिधित्व करते थे। उनकी वह परम्परा आज तक भी किसी-न-किसी रूपमें अविच्छिन्न बनी हुई है। इन कार्योंको करनेवाले आज भी अपनेको विश्वकर्माका वंशज मानते हैं। उन प्राचीन स्थपति लोगोंको ज्यामिति (रेखागणित), चित्रण-कला, मूर्त्ति-निर्माण-कला, वास्तु-कला, धर्मग्रन्थों तथा ज्योतिष आदि विद्याओंका ज्ञान होना आवश्यक था। 'मानसार'के द्वितीय परिच्छेदमें इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसी परिच्छेदमें यह भी लिखा है कि उपर्युक्त चारो वर्गों (वर्णों) के शिल्पियोंकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न उनके चारों पुत्रों—विश्वकर्मा, विश्वभूः, विश्वस्ति तथा विश्व-श्रेष्ठ—से हुई। इन चारों पुत्रोंके भी चार पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः विश्वकर्मा, मय, त्वस्थ और मनु बताए गए हैं। इन्हींसे पुनः क्रमशः स्थपति, सूत्रग्रथी, भद्रकी तथा तक्षककी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार इन्हें ब्रह्माका ही वंशज सिद्ध किया गया है। ऊपर बताए गए वंशवृक्षके दूसरे वर्गवाले चारों पुत्रों—विश्वकर्मा, मय, त्वस्थ और मनु—के सम्बन्धमें ऐसा कहा गया है कि ये वस्तुतः अपने माता-पिताके पुत्र नहीं थे, बल्कि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा द्वारा अपने प्रथम वर्गके चारों पुत्रोंके सहायतार्थ बनाए गए थे। फिर वे अपने-अपने गुणोंके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी श्रेणीमें रखे गए।

भारतीय कलाओंकी चर्चा करते समय हमें यह न भूलना चाहिए कि भारतीय कलाएँ प्रारम्भसे ही अध्यात्म-प्रधान रही हैं। अतः उन प्राचीन भारतीय वास्तु-कला-विशारदोंके सामने भी जो आदर्श एवं सिद्धान्त थे, सभी धार्मिक भावनाओंसे ही अनुप्राणित थे। यही कारण था कि उन्होंने जो-कुछ भी निर्माण किया, वह केवल अपने भौतिक उद्देश्योंकी पूर्त्ति-मात्रके लिए नहीं किया, बल्कि उनके उन निर्माण-कार्योंके मूलमें ही अपने आराध्य के प्रति उत्कट भक्ति-प्रदर्शन तथा अपनी आध्यात्मिक पिपासाकी पूर्त्तिका महान उद्देश्य अन्तर्हित था। वे अपने विषयके पूर्ण विशेषज्ञ होते थे, और कला-सम्बन्धी धार्मिक पाबन्दियों एवं विधानोंकी अवहेलना करनेपर उनके लिए नरककी सज़ाकी व्यवस्था थी। वे अपने आराध्यके मन्दिर अथवा उनकी मूर्त्तिके निर्माणके पीछे कभी-कभी अपना सारा जीवन लगा देते थे तथा कला-निर्माण-सम्बन्धी धार्मिक आदेशोंके प्रति पूर्ण सतर्क रहा करते थे। उस समयके शासक-वर्ग भी अपना एक महान कर्त्तव्य समझकर उन स्थपतियों तथा दूसरे प्रकारके शिल्पियोंको हर प्रकारकी सहायता प्रदानकर प्रोत्साहित करते थे। इन्हीं कारणोंसे वे उत्तमोत्तम एवं लोकोत्तर कलाओंकी रचना कर सके थे।

वास्तु-कला-सम्बन्धी नाम और विभेद

संसारके सभी देशोंमें उनके समाजकी रचना एवं उनकी

१. मानसार ऋषिणां कृतः शास्त्र मानसार विदितं कामसिद्धिः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभ्यताके आदिकालसे नाप-तौलके लिए अवश्य ही कुछ-न-कुछ माध्यम रहे हैं। भारतके उन प्राचीन शिल्पशास्त्रियोंके भी नाप-जोख-सम्बन्धी अपने कुछ माध्यम थे। हमारे यहाँ मापकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म इकाई 'परमाणु' माना गया है, जो भारतीय आचार्योंके कथनानुसार केवल योगियों द्वारा ही द्रष्टव्य है।[२] पर साधारणतः किसी छतकी पतली नलीसे होकर पड़नेवाली सूर्यकी रश्मियोंमें परिलक्षित होनेवाले सूक्ष्म पदार्थको ही 'परमाणु' माना जाता है। वैज्ञानिक साधनों द्वारा भी इसका देखा जाना सम्भव है। 'विश्वकर्मा-शिल्प'में नापकी पूर्णांगुल, रज्जु तथा अन्य विधियों एवं मानोंका उल्लेख इस प्रकार है :—

८ परमाणु	=	१ रथरेणु
८ रथरेणु	=	१ बालाग्र (केशका अग्र भाग)
८ यूका	=	१ यव
६ यव	=	३ शामी पत्र या १ कनिष्ठांगुल
७ यव	=	३॥ शामी पत्र या १ मध्यांगुल
८ यव	=	४ शामी पत्र या १ पूर्णांगुल[३]

ग्रन्थकी एक दूसरी तालिकामें रज्जु यानी वर्त्तमान अंगरेज़ी 'चेन'-सम्बन्धी नापोंका उल्लेख इस प्रकार है :—

१२ पूर्णांगुल = १ वितस्ति	२४ अंगुल = १ शिशुहस्त
२ वितस्ति = १ हस्त	२५ अंगुल = १ प्रजापत्यहस्त
४ हस्त = १ दंड	२६ अंगुल = १ धनुर्मुष्टि
४ दंड = १ रज्जु	२७ अंगुल = १ धनुर्ग्राह

उपर्युक्त दोनों प्रकारकी माप-पद्धतियाँ साधारण पूर्णांगुल मापके ही अन्तर्गत हैं, जिनका प्रयोग निम्नलिखित विभिन्न कार्योंमें होता था :—

शिशुहस्त-माप—रथ तथा विमानादिके निर्माणमें।
प्रजापत्यहस्त-माप—विमान, मण्डप, निवास-स्थान के निर्माणमें।
धनुर्मुष्टि-माप—राजधानियों, नगरों, गाँवों, प्रासादों, तालाबों तथा किलोंके निर्माणमें।
धनुर्ग्राह-माप—बड़ी सड़कों, गलियों आदिके निर्माणमें।
अंगुल-माप—मंदिरों, अस्तबलों, शस्त्रागारों आदिके निर्माणमें।
दंड-माप—नगरों, गाँवों आदिके निर्माणमें।
रज्जु-माप—सड़कों, तालाबों, मैदानों, खेतों आदिके मापमें।

इन मापक आधारोंके अलावा 'कामिकागम-शिल्पशास्त्र'के अनुसार सुप्रसिद्ध वास्तुविद्या-विशारद चित्रसार द्वारा प्रतिपादित ६ और भी मापक आधारोंका पता चलता है, जिनका प्रयोग उस समय मन्दिरों, तालाबों, कूपों, छतों, मूर्त्तियों तथा अन्य द्वारोंके निर्माण-सम्बन्धी कार्योंमें होता था—(१) मान, (२) प्रमाण, (३) उनमान, (४) परिमाण, (५) उपमाण तथा (६) लम्बमान। इनका प्रयोग ज़मीनकी लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई, गहराई, वक्रता तथा ऊपरसे नीचेके मापमें होता था।[४]

'मानसार-शिल्प'के द्वितीय अध्यायमें निवास-स्थान, देव-मन्दिर, राजप्रासाद आदिके निर्माण योग्य एवं अयोग्य स्थानों तथा वास्तु-कला-सम्बन्धी और भी विभिन्न विषयोंपर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त गरुड़पुराणमें भी वास्तु-कला-सम्बन्धी प्रसंग आया है, जिसमें मकान, मन्दिर आदिके निर्माण-सम्बन्धी कुछ स्पष्ट निर्देश हैं :—

सुरेज्यः पूर्वताः कार्यो: दिश्याग्नेय्यां महानसम्।
कार्य निर्गमनं येन पूर्वतः सूत्र मंडपम्॥
गन्ध-पुष्प गृहं कार्य मै शान्यां पट्ट संयुतम्।
भांडोगारं च कौवेर्या गोष्ठोगारं च वायवे॥

इसी प्रकार और भी :—

उदाश्रयं च वारुण्यां वातायन समन्वितम्।
समित्कुशैन्धन स्थान मा युधानां च नैऋते॥
आम्यागतालयं रम्यं सशस्यासन पादुकम्।
तोयाग्नि दीप संमृत्यैयुक्तं दक्षिण तो भवेत्॥

'सनत्कुमार-गृह-वास्तु'में निवास-स्थान-निर्माणके सम्बन्ध निम्नलिखित निर्देश किया गया है :—

पूर्व दिशि स्नानगृहमाग्नेय्यां पाकमन्दिरम्।
दक्षिणे चैव शयनं नैऋत्ये चा युध गृहम्॥
पश्चिमे भोजनं गृहं वायव्ये पशुमन्दिरम्।
भांडारे चोत्तरदिशि ऐशान्ये देवमन्दिरम्॥

यों तो साधारणतः वास्तुका अर्थ मकान, मन्दिर आदि निर्माण-सम्बन्धी विद्या ही होता है; किन्तु गौणरूपेण इसके बाग, पुल, तालाब, सड़क आदि सम्बन्धी कार्योंको भी इसके अन्तर्गत मान लिया गया है। 'कामिकागम-शिल्प'में मेरु, मन्दर, ऋक्षमामी, द्युमणि, चन्द्रशेखर, माल्यावान, पारिजात, रत्नशीर्ष, धातुमान, पंचकोश, पुष्पहास, श्रीकर, स्वस्तिका, पद्म तथा पद्मकूट आदि १६ प्रकारके मन्दिरोंका उल्लेख है।

इसी प्रकार 'गृह-वास्तु'में भी ४५ प्रकारके राजप्रासादों तथा निवास-स्थानोंका ज़िक्र आया है। ऊपर जिन १६ प्रकारके

---

२. मुनिनां नयनोत्प्रेक्ष्यः परमाणुरिति स्मृतः। —मानसार

३. परमाण्वष्ट कैर्मेयो रथधूलि रुदाहृतः।
पराणु रथधूल्योश्च रेणुकाष्टांशके शिकः॥
शिकैरष्टां शकैर्लिष्मो, लिष्मैरष्टां शकैर्युकः।
यूकाष्टकैर्यवश्च यवमष्टांशमंलगुम्॥
षडै गुलस्तु प्रादेशी वितस्ति द्वादशांगुलां।
वितस्तिर्द्वय हस्तश्च विश्वकर्मा प्रमाणेत्॥

४. मानं प्रमाणमुन्मानं परिमाणोपमानकौ,
लम्बमानं षडैतानि मानाधिक शषाम्यहम्।
आयाम आयतं दीर्घमान पर्यायवाचकम्,
विस्तारं, विस्तरं तारं विततं विस्तृतं ततम्॥

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सच्ची स्वतन्त्रता

श्री सन्तराम, बी० ए०

आज हम भारतीय जिसे स्वराज्य या स्वतन्त्रता समझकर लेनेका यत्न कर रहे हैं, वास्तवमें वह किसी भी राष्ट्र को स्वतन्त्रता नहीं कहला सकती। रिफ़ार्म-स्कीमके अनुसार अनेक प्रान्तोंमें हमारी अपनी निर्वाचित व्यवस्थापिका सभाएँ और हमारे अपने भारतीय प्रधान-मन्त्री हैं; पर क्या इससे हम स्वतन्त्र कहला सकते हैं? मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि यदि गवर्नर और वाइसराय भी भारतीय ही बनने लगें, वरन् सेना भी हमारे अधीन हो जाय, तो भी भारतमें सच्ची स्वतन्त्रता नहीं होगी। किसी राष्ट्रके स्वतन्त्र कहलानेके लिए एक बातका होना परम आवश्यक होता है, और वह है उसके अपने देशमें उसका अपना सिक्का चलानेका अधिकार। यही अधिकार सच्चे स्वराज्य की निशानी होती है।

भारतमें इस समय स्वतन्त्रताकी बड़ी चर्चा है। हमारी जनता समझ रही है कि स्वतन्त्रता आ रही है। परन्तु सचाई यह है कि स्वतन्त्रता दिन-पर-दिन दूर जा रही है। जिस वस्तु को हम स्वराज्यके नामपर स्वीकार कर रहे हैं, वह सुराज या अच्छा राज्य बेशक हो, स्वतन्त्रता बिलकुल नहीं। यह बात निश्चित है कि वर्त्तमान युगमें जो युद्ध हो रहे हैं, उनका कारण आर्थिक एवं व्यापारिक है। जापानकी चीनसे यह माँग है कि चीन जापानको आर्थिक सहायता दे। जर्मनीके डिक्टेटर हिटलर की भी यही माँग थी कि उसीकी नवीन व्यवस्था संसारमें चले। जापानकी चीनसे माँगमें और हिटलरकी नवीन व्यवस्थाकी माँगमें भी यही बात छिपी हुई थी। ये दोनों राष्ट्र विश्वमें अपना सिक्का चलाना चाहते थे। भारतमें अंगरेज़ोंके अपना राज्य स्थापित करनेका उद्देश्य भी यही है कि अंगरेज़ सरकारका नोट और सिक्का भारतमें चले, जिससे बिना कोई मूल्य दिए या मनमाने मूल्यपर भारतका सारा वैभव और साधन अंगरेज़ोंके अधीन और अधिकारमें रहें। अंगरेज़ सरकार अपने सिक्के द्वारा हमपर किस प्रकार शासन करती है और उसके अतिरिक्त वह अन्य किन रीतियोंका उपयोग करती है, जिससे हम आर्थिक रूपसे कंगाल होते जा रहे हैं, और किन उपायों द्वारा हम इस आर्थिक क्षतिसे बच सकते हैं, इसीको स्पष्ट करनेका यत्न मैं इस लेखमें करूँगा। मेरा विश्वास है कि यदि हम अंगरेज़ी शासनसे आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र हो जायँ, तो हम स्वतन्त्रताके अधिक निकट पहुँच जायँगे।

अंगरेज़ सरकार हमपर निम्नलिखित रीतियोंसे शासन करती है—एक तो चाँदी, निकल और ताँबेके सिक्के बनाकर या नोट जारी करके। दूसरे, हमारे सिक्केको अंगरेज़ी पौण्डके साथ बाँधकर और हमारे सिक्केका मूल्य महँगा और अपने पौण्डका मूल्य सस्ता रखकर। तीसरे, भारतमें रेल्वे द्वारा हमारे वाणिज्य को अपने अधिकारमें रखकर। इसमें अब मोटरोंकी इजारादारी भी सम्मिलित की जा रही है। चौथे, भारतमें अंगरेज़ी इंश्योरेंस कम्पनियों, अंगरेज़ी बैंकों और दूसरे अंगरेज़ी वाणिज्यको प्रोत्साहन देकर। यदि आप इन चारों बातोंको समझ जायँ, तो आप सच्ची स्वतन्त्रताका भाव सम्यक् रूपसे समझ सकेंगे। फिर आप यह भी समझ सकेंगे कि अभी हम सच्ची स्वतन्त्रतासे कितनी दूर हैं, और वह हमारे निकट नहीं आ रही, वरन् हमसे दूर जा रही है। यदि आप एक बार सच्चो स्वतन्त्रताका प्रकृत भाव समझ लें, तो सब साम्प्रदायिक झगड़े शान्त हो जायँगे।

इन साम्प्रदायिक झगड़ोंका कारण यह है कि हम इस समय समझ रहे हैं कि असम्बलीकी मेम्बरियाँ, सरकारी अधिकारियों का हिन्दू, मुस्लिम या अंगरेज़ होना और देशकी पुलिस एवं दैनन्दिन कार्योंको अधिकारमें कर लेना ही स्वतन्त्रता है। सचाई यह है कि असली स्वाधीनता कुछ और ही वस्तु है। यदि वह प्राप्त

मन्दिरोंका उल्लेख किया गया है, उनके साथ ही अन्य प्रकारके भवनोंके भी ८ से लेकर ३५ पदों (विभागों) तकके होनेका स्पष्ट वर्णन है। इनमें से हरएककी कुछ अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं। ये चतुष्कोण, त्रिकोण, षट्कोण तथा चक्राकार विभिन्न प्रकारके हो सकते हैं और सौ-सौ कमरों या पदोंमें विभक्त किए जा सकते हैं।

'मानसार-शिल्पशास्त्र'में विभिन्न प्रकारके नगरों तथा ग्रामों आदिके निर्माणकी विधियोंका भी विशद वर्णन किया गया है। इसके एक श्लोकके अनुसार दण्डक, सर्वतोभद्र, नान्द्यावर्त, भद्रक, स्वस्तिक, कार्मुक प्रस्तर, चतुर्मुख आदि ८ प्रकारके नगरों एवं ग्रामोंका पता चलता है।[५] इनमें से दण्डक साधारणतः ग्राम-निर्माणके लिए ही उपयुक्त था। सर्वतोभद्रका प्रयोग बड़े-बड़े नगरों अथवा ग्रामोंके निर्माणमें होता था। नान्द्यावर्त भी नगर-निर्माणकी ही एक विधि थी। शेष प्रकारों एवं विधियोंका भी प्रयोग इसी प्रकार नगरों एवं ग्रामोंके निर्माणके लिए होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन प्राचीन ग्रन्थोंमें नगर आदिके निर्माण-सम्बन्धी जो निर्देश दिए गए हैं, वे बहुत अंशोंमें आजकी बड़ी-बड़ी म्युनिसिपैलिटियों तथा कार्पोरेशनोंसे कहीं बढ़कर हैं। अब तककी खुदाईमें पाए गए विभिन्न प्राचीन नगरोंकी व्यवस्था को देखकर भी इस बातकी पुष्टि होती है।

---

५. वक्ष्येऽहं ग्रामविन्यासलक्षम् शास्त्र मार्गतः।
दण्डकं सर्वतोभद्रं, नान्द्यावर्त च भद्रकम्॥
स्वतिकं प्रस्तरं चैव कार्मुकं च चतुर्मुखे।
एवमष्ट विधिं प्रोक्तं तत्तद्रूपेण संज्ञितम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो जाय, तो सूर्यके प्रकाशके सदृश्य वह हिन्दू और मुसलमानमें कोई भेद-भाव न रखेगी। यदि सच्ची स्वतन्त्रता वही होती, जो हम समझ रहे हैं, तो आज देसी रजवाड़े स्वाधीन होते, क्योंकि वहाँ क़ानून बनानेवाले और अफ़सर सब देसी होते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि वास्तविक स्वतन्त्रतासे हम सब दूर हैं। यदि भारतमें किसी समय सच्ची स्वतन्त्रता आयगी, तो सम्भवतः यह दूसरा अमरीका ही बन जायगा।

सबसे पहली बात है हमारे सिक्के और नोट तथा उनको पौण्डमें बदलते समय हमारे रुपएके मूल्यका महँगा होना। जो रुपया इस समय भारतमें प्रचलित है, उसके दो टुकड़े कर दीजिए। उसके बदलेमें आपको बाज़ारमें दो अठन्नियाँ मिल जायँगी। अब फिर उस अठन्नीके दो टुकड़े कर दीजिए, उसके बदलेमें आपको दो चवन्नियाँ मिल जायँगी। इस चवन्नीको खराब कर दीजिए, उसके बदलेमें आपको निकलके कुछ सिक्के मिल जायँगे। उन निकलके सिक्कोंको तोड़ दीजिए, आपको ताँबेके कुछ सिक्के मिल जायँगे। उन ताँबेके सिक्कोंको खराब कर दीजिए, आपको उसके बदलेमें जो-कुछ मिलेगा, वह इतना तुच्छ होगा कि आप उससे शायद कुछ भी न खरीद सकें। सरसरी तौरपर देखनेसे यह बात साधारण-सी जान पड़ती है; परन्तु इसका अर्थ यह है कि गवर्मेण्ट सिक्का बनाकर हमें हमारे श्रमका आधा भाग देती है और शेष आधा करके रूपमें आप रख लेती है। सरकार इस प्रकार जो लाभ प्राप्त करती है, वह हमें कैसे मुजरा मिलता है, इस विषयमें मैं निश्चयात्मक रूपसे कुछ नहीं कह सकता। परन्तु इतना आप अवश्य समझ सकेंगे कि हमारे किसान और श्रमिककी दरिद्रताका रहस्य इसीमें छिपा है।

आप कहेंगे कि यह सच है कि हमारे सिक्केका मूल्य चाँदी और सोनेकी तुलनामें कम है; पर गवर्मेण्टको इससे विशेष लाभ नहीं पहुँचता। गवर्मेण्ट वर्षों तक नए सिक्के जारी नहीं करती, और उसको उतना ही लाभ है जितने कि सिक्के खराब होकर नए सिक्के बनें या खो जायँ; क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिको उसी सिक्केके बदले पूरी वस्तु मिल जाती है। इसलिए यह ऐसी बात नहीं, जो अधिक हानिप्रद समझी जाय। आप यह भी कहेंगे कि चाँदीका मोल घटता-बढ़ता रहता है और यह सम्भव नहीं कि कोई गवर्मेण्ट सिक्केके तौलको भी उसी प्रकार घटाती-बढ़ाती रहे। इसका उत्तर यह ठीक है कि कोई गवर्मेण्ट अपने सिक्केके वज़नको बार-बार बदल नहीं सकती; पर वह यह तो कर सकती है कि दूसरे देशोंसे जो सिक्के भारतमें यहाँ का माल खरीदनेके लिए लाए जायँ, उनके बदलेमें उतने सिक्के दे दे, जितने कि विदेशोंके सिक्कोंसे खरीदी हुई चाँदीके भारतीय सिक्के बनते हैं। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्डमें पौण्डका सिक्का है, तो पौण्डका मूल्य इस प्रकार निर्धारित होना चाहिए कि उस पौण्डसे खरीदी हुई चाँदीके कितने रुपए बन सकते हैं। [illegible] परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों चाँदी सस्ती होगी, [illegible] अनाज, तेलके बीज, चमड़ा, कोयला, रुई, सन, खाँड आदि [illegible] के कच्चे मालका मूल्य बढ़ेगा और इन वस्तुओंका मूल्य [illegible] भारतकी सर्वसाधारण प्रजाकी आर्थिक दशा सुधरेगी। [illegible] मालका मूल्य बढ़नेसे देशको लाभ पहुँचता है, इसका [illegible] वर्त्तमान महायुद्धने दे दिया है। फिर भी मैं इस विषयको [illegible] कुछ अधिक स्पष्ट करूँगा। साधारण नागरिक जनता [illegible] तक यह समझती है कि कच्चे मालका सस्ता होना इसके [illegible] है और महँगी उसका शाप है।

कच्चे मालके सस्ता होनेसे केवल थोड़े-से मनुष्योंको [illegible] अस्थायी लाभ पहुँचता है, जैसे किराया खानेवालों, ब्याज [illegible] वालों और वेतनभोगी नौकरोंको। इनके सिवा शेष सारी प्रजा [illegible] —किसान, दुकानदार, ज़मींदार, बढ़ई, तोलनेवाला, हाथसे [illegible] करनेवाला मज़दूर और कारीगरको हानि पहुँचती है। जहाँ [illegible] सिक्केकी सख्या बढ़ जाती है, तो उसके फैलावसे देशका [illegible] अधिवासी सम्पन्न एवं सुखी रहता है। इस विनिमयकी [illegible] एक और भी लाभ होगा। वह यह कि दूसरे देशोंकी वस्तुएँ [illegible] महँगी खरीदनी पड़ेंगी। उदाहरणार्थ, यदि अंगरेज़ी पौण्ड [illegible] विनिमयकी दर १३ रुपए ५ आनेके बजाय २० रुपए हो [illegible] जो विलायती बूट या विलायती लट्ठा हमें १३ रुपए ५ आने [illegible] मिलता है, वह फिर २० रुपएमें मिलेगा। इसका परिणाम [illegible] होगा कि हमारे औद्योगिक-वर्ग और मिल-मालिकोंका [illegible] अधिक बिकेगा। अब हमारे मोचीको १३ रुपए ५ आने [illegible] बूटसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है, फिर उसे २० रुपएवाले [illegible] करनी पड़ेगी। अब हमारे जुलाहेको १३ रुपए ५ आने [illegible] लट्ठेके थानसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। पौण्डका मूल्य [illegible] रुपया होनेपर उसे २० रुपएवाले थानसे प्रतियोगिता करनी पड़ेगी। अर्थात् विदेशी महँगे कपड़ेके मुक़ाबलेमें वह सस्ता कपड़ा [illegible] सकेगा। अब अंगरेज़ पेंशनर भारतमें १३ रुपए ५ आने [illegible] इंग्लैण्डमें एक पौण्ड ले सकता है। दूसरी दशामें उसे [illegible] २० रुपए देने पड़ेंगे। गत महायुद्धके बाद जब भारतमें [illegible] दौर आया, तो उसका कारण यह न था कि भारतकी [illegible] कम हो गई थी, वरन् यह कि भारतकी उत्पन्न [illegible] वस्तुओंका दाम गिर गया था। परिणाम यह हुआ था कि [illegible] का सारा सोना इंग्लैण्ड चला गया था और भारतके [illegible] बचानेके लिए कांग्रेसी सरकारों और पंजाबकी यूनियनिस्ट [illegible] को सुनहरे बिल पास करने पड़े थे।

लड़ाईमें वस्तुओंका भाव चढ़ जानेसे सोना भारतमें [illegible] है। पहले भारत ऋणी था, अब ऋणदाता है। जब भारतमें [illegible] सस्ती थीं, यहाँके नगरों और ग्रामोंमें भूख नाच रही थी। [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समृद्धिका राज्य है। आप कहेंगे कि बंगाल और बिहारमें अब भी भूख नाच रही है। पर इससे भी मेरी ही बात सिद्ध होती है। बंगाल और बिहारकी उपजका भाव चढ़नेसे रोक दिया गया है, इसलिए वहाँके लोग भूखों मर रहे हैं। यद्यपि हम सच्चे तौरपर स्वतन्त्र होते, तो हमें बंगाल और बिहारके लिए दान इकट्ठा करके वहाँ सहायता पहुँचानेकी आवश्यकता न होती। हम इस प्रकारके उपाय काममें ला सकते थे, जिनसे बंगाल और बिहारके कोयले, जूट और खाँडका भाव बढ़ जाता। ऐसा कर देनेपर वहाँ कभी अकाल न पड़ सकता था। अब हुआ क्या है कि रेलोंकी नीतिपर नियन्त्रण करके बंगालमें अन्न भेजना बन्द कर दिया गया। उधर बंगालका जूट और कोयला सस्ता रहनेसे वहाँके लोग महँगे भावपर अन्न खरीद सके। परिणाम था बंगालका भीषण अकाल। अब तक भी कलकत्तेके अस्पतालोंमें क्षुधातुर लोग आ रहे हैं। बिहारमें मलेरिया और विशूचिका गत वर्ष विध्वंस फैलाते रहे।

खनिज और कृषिजात वस्तुओंके सस्ता होनेसे पूँजीपतिको लाभ पहुँचता है; पर किसान और मज़दूर घाटेमें रहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि अनाजका भाव १० रुपए मन हो, तो एक लाख रुपएवाले पूँजीपतिका मूल्य १० सहस्र मन गेहूँ होता है। यदि यही गेहूँ २ रुपए मन हो, तो उसका मूल्य ५० सहस्र मन गेहूँ हो जाता है। कृषिजात पदार्थ महँगे होनेसे सामान्य किसानको कम लगान देना पड़ता है, ब्याज कम देना पड़ता है। वह थोड़ा अनाज बेचकर बाक़ी अधिक अनाज अपने पास रख सकता है। कारण, थोड़ा अनाज बेचकर उसे इतना रुपया मिल जाता है कि उससे उसके लगान आदि सारे खर्च पूरे हो जाते हैं। इसके विपरीत अन्न सस्ता होनेपर, कभी-कभी तो अपना सारा अन्न बेच देनेपर भी, उसका सरकारी लगान और महाजनका ऋण नहीं चुकाया जाता। उसे वर्ष-भर आप भूखसे तड़पना पड़ता है। ज्यों-ज्यों खाद्य-पदार्थ महँगे होते हैं, सरकारी नौकरोंके वेतन अपने-आप घटते चले जाते हैं, और ज्यों-ज्यों सरकारी नौकरोंके वेतन कम होते जाते हैं, सर्वसाधारण जनता समृद्ध होती जाती है। बस, सच्ची स्वतन्त्रता यह है कि अपनी वस्तुओंको महँगा करनेका अधिकार हमें मिल जाय, हम अपने रुपएका मूल्य नियत कर सकें और रिज़र्व बैंककी पालिसी हमारे अधिकारमें हो। रेल्वेकी पालिसी हमारे वसमें हो जानेसे हम बंगालको भूखसे बचा सकेंगे। कारण, गवर्मेण्टकी रेल्वेकी नीति बंगालके कोयलेको सस्ता रख रही है। रेल्वेकी नीति बंगालको अपना कोयला मुक्त मार्केटमें बेचनेकी आज्ञा नहीं देती। गवर्मेण्ट जिसको सस्ता कोयला दिलवाना चाहती है, उसीको रेलगाड़ियोंकी सहूलियत देकर दूसरोंसे प्रतियोगिता करनेके कष्टसे बचा लेती है। अंग-रेज़ी इंश्योरेंस कम्पनियाँ, अंगरेज़ी बैंक और अंगरेज़ व्यापारी करोड़ों रुपए यहाँसे कमाकर विलायत ले जाते हैं। इसकी बारीकियोंको वही समझ सकते हैं, जो व्यापार करते हैं। वास्तव में व्यापार ही शासन है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी हम सच्ची स्वतन्त्रताके निकट नहीं, वरन् उससे दूर जा रहे हैं।

हम सच्चे अर्थोंमें स्वतन्त्र तब होंगे, जब भारतको करेंसी (प्रचलित मुद्रा) हमारे अपने अधिकारमें होगी, जब हम अपने रुपए अर्थात् सिक्केका मूल्य आप नियत कर सकेंगे, जब हमारी रेलें हमारे हितार्थ काम करेंगी और जब हम बाहरके व्यापारियोंपर प्रतिबन्ध लगा सकेंगे। जिस प्रकार जापानमें कोई विशुद्ध विदेशी कम्पनी व्यापार नहीं कर सकती, उसी प्रकार भारतमें भी वही कम्पनी बाहरसे आकर काम कर सकेगी, जिसमें भारतीय भी सम्मिलित होंगे, और जो ऐसा काम करेगी, जो भारतके लिए हितकर होगा। यदि भारतकी राष्ट्रीय सरकारको इन सब खराबियोंका इलाज करनेका अधिकार नहीं होगा, तो शेष सब शासन-विभाग भारतीय बन जानेसे भी राष्ट्रको कुछ लाभ नहीं होगा। यदि भारतकी राष्ट्रीय सरकार रिज़र्व बैंककी पालिसीको बदल नहीं सकेगी, यदि वह भारतके सिक्केको दूसरे देशोंमें बदलते समय अपने लिए हितकर विनिमयकी दर नियत नहीं कर सकेगी और यदि भारतीय सरकार विदेशी व्यापारियोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकेगी, तो उस सरकारसे भारतको कुछ लाभ नहीं होगा। वह अंगरेज़ी सरकारकी तुलनामें अच्छी सरकार भी न होगी। यदि भारतीय सरकारके अधिकारमें सेना भी दे दी जाय; पर रिज़र्व बैंक और विनिमयकी दर अंगरेज़ोंके हाथमें ही रहे, तो यह वही बात होगी कि भारतकी धन-सम्पदा तो अंगरेज़ोंके अधिकारमें रहे और उसके पहरेदार देसी हों। जिस प्रकार किसी सेठकी तिजोरीपर पहरा देनेवाला सिपाही तिजोरीके धनका स्वामी नहीं हो जाता, उसी प्रकार हमारी सेना भी पहरेदार-मात्र ही होगी।

आर्थिक नीतिके हमारे हाथमें आ जानेके तत्कालीन परिणाम ये होंगे—हमारी रुईका मूल्य बहुत बढ़ जायगा। अनाजका जो भाव इस समय है, उससे वह कम न होने पायगा। हमारा कोयला महँगा हो जायगा। हम जूटका मूल्य बढ़ा देंगे। हम खाँडका मूल्य दुगुना कर देंगे। परिणाम यह होगा कि जिस प्रकार पंजाब समृद्ध है, उसी प्रकार भूखा बंगाल भी भूखसे मुक्त हो जायगा। मलेरिया और विशूचिकासे पीड़ित बिहार रोगसे छुटकारा पा जायगा। स्वदेशका व्यापार हमारे अपने हाथमें आ जायगा। सारांश यह कि आधुनिक युगके राज्योंका काम आर्थिक लूट है। जापान, इंग्लैण्ड, जर्मनी और अन्य औद्योगिक देश अपने औद्योगिक मालको बेचकर कृषि-प्रधान देशोंसे खाद्य-पदार्थ और दूसरा कच्चा माल सस्ते भावपर प्राप्त करते हैं। उनका दूसरे देशोंको जीतना और शेष सब काम इन दोनों उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए ही होते हैं। यदि हम उनके प्रथमोक्त दोनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उद्देश्योंको विफल कर दें, तो उनकी देश-विजयकी लालसा कम हो जायगी अथवा समाप्त हो जायगी।

अतः इसके लिए हमें निम्नलिखित उपायोंका अवलम्ब करना चाहिए—भारतके कच्चे मालको महँगा होने दिया जाय, ताकि औद्योगिक देशोंको खाद्य-पदार्थ और कच्चा माल सस्ता न मिल सके और हम लोग थोड़ा माल बेचकर भी अधिक दाम प्राप्त कर सकें। बाक़ी बची हुई चीज़ें हम स्वयं अपने उपयोगमें ला सकेंगे। हमारी शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिए, जिससे २०-२५ वर्षके अन्दर हम इन औद्योगिक देशोंके बनाए हुए मालके बिना ही निर्वाह कर सकें। यदि हम ये दोनों बातें प्राप्त कर लें, तो हमारा देश दूसरा अमरीका बन जायगा। अमरीका ही एक ऐसा देश है, जिसमें कृषि और उद्योग-धन्धे दोनों उन्नतिपर हैं। हमारा देश भी वैसा ही होना चाहिए। परन्तु कठिनाई यह है कि अंगरेज़ी शासनकी विद्यमानतामें हम यह काम कैसे कर सकेंगे। फिर भी हमें यत्न करना चाहिए। इसी यत्नको दृष्टिमें रखते हुए मैं एक कार्यक्रमका प्रस्ताव करूँगा। काम कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ हमारे कार्यक्रमके दो भाग हैं। एक तो यह कि हमारा कच्चा माल महँगा रहे और दूसरा यह कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली द्वारा अपने नवयुवकोंमें औद्योगिक प्रवृत्ति एवं औद्योगिक निपुणता उत्पन्न करें।

अपनी कृषिजात वस्तुएँ महँगी करनेके लिए पहले हमें रुई, गेहूँ, तोरिया, चावल, कोयला, खाँड, सन आदि द्रव्योंका मूल्य बढ़ानेका यत्न करना चाहिए। इन वस्तुओंका मूल्य बढ़ जानेसे शेष वस्तुओंके मूल्य अपने-आप बढ़ जायँगे। इसके साथ ही नागरिक श्रमजीवीका पारिश्रमिक अपने-आप ऊँचा हो जायगा। इस कामको करनेकी रीति यह है कि जिस प्रकार पंजाबमें ज़मींदारा-लीग बनी हुई है, उसी प्रकार सब प्रान्तोंमें ज़मींदारा-लीगें बन जायँ। अन्तर केवल यह हो कि उनका नाम जन-साधारणकी लीग रखा जाय। इन लीगों द्वारा धन इकट्ठा किया जाय और इस धनसे फ़सलके समय उन वस्तुओंको स्टाक किया जाय। जब फ़सलका समय बीत जाय, तो धीरे-धीरे उन वस्तुओंको बेचा जाय। यदि इस प्रकारके संघ या लीगें बन जायँ, तो देशके बहुत-से पूँजीपति अपने-आप स्टाक करने लग जायँगे, जिससे इन लीगोंका भार हल्का हो जायगा। मेरा अनुभव यह है कि ऐसा करनेसे पूँजीपतियों और इन लीगोंको आर्थिक दृष्टिसे हानि भी न होगी। वर्त्तमान दशामें हानिका कारण यह है कि यह काम केवल पूँजीपति करते हैं। चूँकि वे सारा माल सँभाल नहीं सकते और सरकार तथा जनता उनके इस कामको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखती, इसलिए फ़सलका ज़ोर आ पड़नेपर ये वस्तुएँ सस्ती हो जाती हैं। किसान तथा सामान्य श्रमिकका पारिश्रमिक सस्ता हो जानेसे देशको हानि पहुँचती है। यदि इन लीगोंमें साम्प्रदायिक विषको प्रविष्ट न होने दिया जाय, तो व्यापारी वर्गकी सहायतासे ये लीगें देशका बहुत उपकार कर सकती हैं।

दूसरा उपाय यह है कि भारत-सरकार अब प्रान्तिक [illegible] म्बलियोंके हाथमें आ गई है, इसलिए प्रान्तीय सरकारें [illegible] वस्तुओंके कम-से-कम भाव नियत करके इन वस्तुओंके [illegible] अनुमति दे सकती हैं। उदाहरणार्थ, गेहूँका कम-से-कम [illegible] ७॥) प्रति मन, चावलका १०), तोरिएका १०), रुईके [illegible] इंचवाले मालका ४०) और बाक़ीका इसी प्रकार क्रमिक; [illegible] रुईका मूल्य ३०), सुपर-फ़ाइन जूटका मूल्य वर्त्तमान मूल्यसे [illegible] गुना, खाँडका दुगुना, कोयलेका वर्त्तमान मूल्यसे डेढ़ गुना [illegible] कर दें। यदि प्रान्तीय सरकारें ऐसा कर दें, तो यह [illegible] रूपसे सम्भव हो सकता है। जिस समय इन वस्तुओंका दाम [illegible] नियत किए हुए दामसे कम हो जाय, उस समय सरकारें [illegible] खरीदना आरम्भ कर दें। इससे पहले तो आशा नहीं कि [illegible] कोई हानि होगी; फिर यदि किसी वर्ष हानि हो भी जाय, [illegible] दूसरे वर्ष वे इस हानिको बजटमें रखकर पूरा कर लें। [illegible] साथ-साथ वे यह काम भी करें कि सर्व-साधारणको यह बात [illegible] झानेके लिए संवादपत्रोंकी सहायता प्राप्त करें कि यह सब [illegible] उनके भलेके लिए किया जा रहा है। वे ब्रिटिश गवर्नमेण्टपर [illegible] डालें कि वह हमारे सिक्केका बाहरी मूल्य चाँदीके हिसाब [illegible] नियत करे। ये बातें मैं इस विश्वासके साथ लिख रहा हूँ कि [illegible] हम ये काम सरकारकी सहायतासे अथवा उसके बिना भी [illegible] बनाकर कर सकते हैं। खाँड और कोयलेका मूल्य बढ़ानेके लिए [illegible] गन्नेका मूल्य २॥) प्रति मन और कोयलेकी खानमें काम करने वाले श्रमिकोंका दैनिक पारिश्रमिक कम-से-कम ३) नियत कर दें। इससे खाँड और कोयला अपने-आप महँगे हो जायँगे।

अब इस कार्यक्रमके दूसरे भागको लीजिए। अर्थात् हम अपनी शिक्षा-प्रणालीको किस प्रकार परिवर्त्तित करके अपने देश को औद्योगिक बना सकते हैं, जिससे हमें विदेशसे कोई [illegible] लेनी ही न पड़े। ऐसा करनेके पहले मैं एक बात और भी [illegible] देना चाहता हूँ। वह यह कि यदि इंग्लैण्डकी सरकार [illegible] औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहती है, तो या तो उसे रिज़र्व [illegible] बैंककी पालिसी और आर्थिक नीतिका पूर्ण अधिकार हमें दे देना [illegible] चाहिए, अथवा उसे ऐसा करना चाहिए कि जो सिक्का इंग्लैण्डमें [illegible] प्रचलित है, वही सिक्का भारतमें प्रचलित कर दे। इसका परि- [illegible] णाम यह होगा कि यदि इंग्लैण्ड समृद्ध होगा, तो हम भी समृद्ध [illegible] होंगे, और यदि उसकी दुरवस्था होगी, तो हमारी भी दुरवस्था [illegible] होगी। वर्त्तमान प्रणालीसे इंग्लैण्डकी समृद्धि अनेक बार हमारी [illegible] दरिद्रताका कारण बन जाया करती है। यदि भारतीयोंको इंग्लैण्ड [illegible] में व्यापारके वे सब सुभीते मिल जायँ, जो अंगरेज़ोंको भारतमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त हैं, यदि भारत और इंग्लैण्डके सिक्के एक नाप और एक ही तौलके हों और उनके विनिमयके समय साधारण बैंक-कमीशनके अतिरिक्त कोई और खर्च न पड़े, तो ऐसी दशामें औपनिवेशिक स्वराज्य और वास्तविक स्वतन्त्रतामें कोई अन्तर नहीं रह जाता है। यदि यह चीज़ न हो, तो औपनिवेशिक राज्य भी नाम-मात्रकी ही स्वतन्त्रता होगी, उसमें सार कुछ भी नहीं होगा।

औद्योगिक कार्यक्रमका उद्देश्य यह है कि सब प्रकारकी मशीनरी और वे सब वस्तुएँ जो हम विदेशोंसे मँगाते हैं, हम आप बनानेके योग्य हो जायँ। इस सम्बन्धमें मेरा प्रस्ताव यह है कि अभी हमें बड़े-बड़े कारखाने खड़े करनेकी आवश्यकता नहीं। सबसे पहले हमें इस प्रकारके कारीगर उत्पन्न करने चाहिएँ, जो एक मर्तबा उनके सामने आ जानेवाली सब प्रकारकी मशीनरी स्वयं तैयार कर सकें। आज तक हम लाखों इंजन, मिलें और दूसरे प्रकारकी चीज़ें विलायतसे खरीद चुके हैं; परन्तु हम उनकी नक़ल करके यहाँ इंजन या बायलर नहीं बना सके। यदि हम ठीक रीतिपर चलते, तो विदेशोंसे आनेवाली सभी चीज़ें अभी तक यहाँ बनने लगी होतीं। सीधी-सादी रीति यह है कि हम प्रत्येक स्कूलमें पाँचवीं कक्षाके उपरान्त प्रत्येक लड़केके लिए पहले तीन वर्ष लोहार या बढ़ईका काम सीखना अनिवार्य कर दें। फिर तीन वर्षके उपरान्त लड़कोंको लोहेकी ढलाई करना, पैटर्न बनाना और खरादपर पुर्ज़ोंको बाँधना सिखलाया जाय। इन लड़कोंको नक़्शा बनाना भी आना चाहिए। फिर इन लड़कोंको विदेश भेजा जाय। वहाँसे वे पुर्ज़े ढालने और तैयार करनेका काम देख आयँ। यदि आप ऐसा करेंगे, तो आप २५ वर्षमें ही देशमें कारोगरोंका एक बड़ा दल तैयार कर देंगे। उनमें से कई ऐसे निकल आयँगे, जो स्वयं बाइसिकिल, मोटर और इंजन बना लेंगे। शायद आपमें से कुछ सज्जन दूसरे प्रकारकी शिक्षा—जैसे बिजली, रेडियो, इंजीनियरिंग—पर ज़ोर दें। परन्तु मैं केवल इतना ही कहूँगा कि आप स्कूलोंकी आधी संख्या उन कामोंके लिए रक्षित कर दीजिए, जो मैंने ऊपर बताए हैं। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि ये चीज़ें हम स्वयं अपने नवयुवकोंको सिखला सकते हैं। उपर्युक्त प्रकारकी शिक्षा पाए हुए नवयुवक बाक़ी चीज़ें अपनी बुद्धिसे आप बना लेंगे। इस समय वर्त्तमान दशा यह है कि हमारा लोहार और बढ़ई-वर्ग शिक्षासे कोरा है। हमारा शिक्षित-वर्ग अपने हाथसे कोई चीज़ तैयार नहीं कर सकता। आप शरीर और मस्तिष्कको मिला दें। परिणाम बहुत सुन्दर निकलेगा। हमें केवल औज़ारों की ज़रूरत है। यदि औज़ार बनानेवाले युवक हम स्वयं तैयार कर लें, तो बाक़ी मशीनरी अपने-आप बन जायगी।

इस समय प्रान्तीय सरकारें औद्योगिक शिक्षाके लिए कुछ लड़कोंको विदेश भेजने जा रही हैं। उनको चाहिए कि वे कुछ लड़के ऐसे भेजें, जो इस समय लोहेके कारखानोंमें ढलाईका काम कर रहे हों। कुछ ऐसे नवयुवक ढूँढ़ें, जो खरादका काम अपने हाथसे कर रहे हों। कुछ ऐसे बढ़ई तलाश करें, जो पैटर्न बनाना जानते हों। यदि इस प्रकारके आदमी विदेश न भेजे गए, तो जिन आदमियोंको वे भेजेंगी, वे रुपया नष्ट करके लौट आयँगे, प्रकृत लाभ बहुत कम होगा। यदि हम इंजन और दूसरी सब प्रकारकी मशीनरी यहाँ तैयार कर लें, तो बाक़ी काम सहज हो जायगा। अन्यथा बनी-बनाई मशीनरी विदेशसे मँगाकर हम विशेष लाभ न उठा सकेंगे। उससे तो थोड़े-से पूँजीपति ही लाभान्वित होंगे।

यदि हम अपने शिक्षणालयोंमें इस पद्धतिको प्रचलित कर दें, तो २०-२५ वर्षमें यह बीज बढ़कर एक विशाल वृक्ष बन जायगा। कालान्तरमें ये लोहार और बढ़ई उत्पन्न करनेवाले शिक्षणालय उच्च कोटिके इंजीनियरिंग-विद्यालय बन जायँगे। इन विद्यालयोंके प्रतापसे हमारे नवयुवक साधारण लोहार-बढ़ईसे उन्नति करके बढ़िया प्रकारके इंजीनियर बनने लगेंगे। फिर विदेशोंसे बार-बार मशीनरी नहीं मँगानी पड़ेगी, वरन् हम अपने-आप उसे तैयार कर लेंगे। आप बीज डालिए और लाखोंकी संख्यामें डालिए, कुछ समयके बाद इन बीजोंके वृक्ष बन जायँगे। कोई-कोई चतुर कारीगर चमत्कार भी कर दिखायगा। अमरीका और इंग्लैण्डने भी इसी प्रकार उन्नति की है। उनको सिखानेके लिए कोई आकाशसे शिक्षक नहीं उतरे थे। आप भी उसी प्रकार करें। आप ऊपरसे नहीं, वरन् नीचेसे आरम्भ करें। सफलता निश्चित है।

हे चिर-नवीन !

श्री जितेन्द्रकुमार

जागो हे चिर - नवीन !
हो विनष्ट पुराचीन, जीर्ण-शीर्ण कृशित दीन ;
जागें नव-आशाके दिशि-दिशि अंकुर नवीन ;
हो पुराण मन्दिरमें नव-प्रतिमा समासीन। जागो हे०
मिटे कुहासा मलीन, तिमिर-जाल हो विदीर्ण ;
कण कणमें अणु-अणुमें हो नव-आभा विकीर्ण ;
विश्व-क्षितिजपर विहँसे नवयुग-ऊषा अक्षीण। जागो हे०
हो मनोज्ञ नई सृष्टि, हो अबाध सौख्य-वृष्टि ;
जन-जनके उर-मनको मिले भव्य नव्य-दृष्टि ;
युग-युग तक भू-नभपर बजे तव पुनीत बीन। जागो हे०

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थारू लोक-गीत

श्री गणेश चौबे

हिमालयके पार्वतीय प्रदेश तथा उत्तर-भारतकी समतल भूमि के मध्य नेपालकी तलहटीमें थारुओंका 'थरुहट' जनपद अवस्थित है। थारू-जाति यद्यपि शारदा नदीसे कोसी नदी तक विकीर्ण है, तथापि इसका मुख्य अवस्थान बिहारके चम्पारण-ज़िले के पश्चिमोत्तर छोरसे युक्त-प्रान्तके बहराइच-ज़िले तक है। सन् १९३१ के जनगणनानुसार चम्पारणमें ३७३३८, युक्त-प्रान्तमें ३९२०१ तथा बंगालमें ४८२ थारू बसते हैं। नेपाल-राज्यमें बसनेवाले थारुओंकी संख्या ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। यह जाति किस वंशकी है, इसका मूल निवास-स्थान कहाँ था, आदि बातोंका अभी निर्णय नहीं हो पाया है। थारुओंकी शारीरिक गठनपर ध्यान देनेसे हम इस अनुमानपर पहुँचते हैं कि यह जाति द्रविड़ों की एक शाखा है। थारुओंकी अपनी सभ्यता है, अपनी संस्कृति है, अपने गीत तथा अपनी लय है। किसी समय इनकी अपनी भाषा भी रही होगी; किन्तु आज तो इनकी भाषा भोजपुरी है, जिसमें मैथिली तथा नेवारीका पुट है। इनकी बोलीमें एक मन-मोहक माधुर्य है, जो भोजपुरीकी अन्य शाखाओंमें नहीं पाया जाता। यह जाति आज विशाल हिन्दू-परिवारका एक अंग है।

थारुओंको निवास-भूमि सोमेश्वर तथा दूनकी वनाच्छादित घाटी प्रकृत सौन्दर्यकी खान है। थारुओंके इस समूचे जनपदमें पहाड़ी नदियों, नालों तथा जल-स्रोतोंका जाल-सा बिछा हुआ है। जगह-जगहपर सदानीरा नदियाँ बह रही हैं, जिनका पाट ग्रीष्म-ऋतुमें इतना पतला हो जाता है कि आप उन्हें आसानीसे लाँघ सकते हैं; परन्तु वर्षा-ऋतुमें ये वेगवाहिनी हो जाती हैं और थारुओंके धानके खेतोंको जलसे पूरित कर देती हैं। वृक्षोंकी जड़ों एवं पृथ्वीसे उत्प्लावित निर्मल जल-स्रोत तो पग-पगपर मिलते हैं। वनफूलोंका प्राकृतिक निकुंज, सेमल, साल, तून, आम्र तथा जामुन आदिकी अवली और उनपर चहकते हुए रंग-बिरंगे पक्षी, कूकती कोयलें, उड़ते हुए पहाड़ी सुग्गोंके झुण्डोंका दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है। किन्तु प्रकृतिकी यह रम्यस्थली दोषोंसे भी मुक्त नहीं है। वृष्टिकी अधिकताके कारण वृक्षोंके पत्ते सड़ जाते हैं। फल-स्वरूप वहाँका जलवायु दूषित हो जाता है और आश्विनसे पौष तक थरुहटमें ज्वरका भीषण प्रकोप रहता है, जो थारुओंके जीवनमें कुछ महीनोंके लिए विरसता ला देता है।

कृषि थारुओंका प्रमुख व्यवसाय है। पशु-पालन तथा आखेटसे भी इन्हें अनुराग है। चरीके बाहुल्यसे थारुओंकी गाय-भैंसें खूब दूध देती हैं। थारुओंके धनसर सदा धानसे भरे रहते हैं। नदियोंसे इन्हें मछलियाँ तथा वनोंसे मांस मिल जाते हैं। थारू चावलसे एक प्रकारकी मदिरा बनाते हैं और उसका खूब पान करते हैं। संसारके कोलाहलसे दूर तराईके निभृत काननमें इस जातिने अपने पृथक अस्तित्वको क़ायम रखा है। जीवन-धारणकी आवश्यक सामग्रियोंकी चिन्तासे मुक्त यह जाति अपने गृहस्थीसे बचे हुए समयको नृत्य, गीत तथा वादनमें व्यतीत करती है। इनके गीतोंमें हम इनके देश एवं समाजका, सुख-दुःख, मान-अपमान, शकुन-अपशकुन आदिका सजीव चित्र पाते हैं। ये गीत उनकी भूमिकी उपज हैं, स्थानीय रंगसे रँगे उनके जीवनके गान हैं। एक गीत देखिए :—

झिरिहिरि-झिरिहिरि नदिया जे बहे गोरी,
तिरिआ माछर मारे।
झपटलि चिल्हिया हरइया लेइ गेलिया,
ओही रे सेमर कइ डार।
आरे आरे भाइया भँइसी चरवाहवा,
नाउँ ना जानी ले तोहार।
सेमर ठाटसे हरइया घींचि देहु,
तोरा-मोरा भोग-बिलास।

अर्थात्— झिरहिर-झिरहिर नदी बह रही है, जिसमें एक तरुणी मछली पकड़ रही है। ऊपरसे मँडराती हुई चील चली आई और झपटकर मछलीको सेमलकी डालपर ले गई। यह देखकर वह तरुणी एक भैंसके चरवाहेको सम्बोधित करके कहती है—हे भाई चरवाहे, मैं तुम्हारा नाम नहीं जानती हूँ। यदि तुम सेमलकी डालसे मछली ला दो, तो हम दोनों मिलकर आनन्द मनावेंगे।

इस गीतको थारू स्त्रियाँ 'झमटा' नामक नृत्यमें गाती हैं। यह गीत थारुओंके देश तथा उनके सामाजिक जीवनका संक्षिप्त चित्र स्पष्ट दृश्य हमारे समक्ष उपस्थित करता है। साथ ही थारुओंके प्राचीन विचार-पद्धतिपर भी प्रकाश डालता है। एक युग था जब थारू कुमारियाँ स्वयं अपना पति वरण करती थीं। इस गीत की तरुणी चरवाहेको चुनौती देती है कि यदि तुम सेमलकी डालपर जा बैठी चीलके पंजेसे मछलीको छुड़ाकर ला दोगे, तो मैं तुम्हें अपना जीवन-सखा बना लूँगी। थारुओंके जीवनमें उपयोगिताकी दृष्टिसे आखेट-निपुणताकी बड़ी प्रतिष्ठा है और इसी कारण तरुणी इस कलामें दक्ष पुरुषको ही पतिके रूपमें स्वीकार करना चाहती है। सम्भवतः यह गीत उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन कि यह जाति। कितनी बार इस गीतने सोमेश्वर तथा दूनकी घाटीमें अपनेको प्रतिध्वनित किया होगा; कितनी बार हरबोरा तथा पंडईकी लहरोंपर यह गीत थिरका होगा, इसे कौन बता सकता है?

थारू अपने खेतोंमें हल चलाता हुआ एक प्रकारका गीत गाता है, जिसे 'बिरहनी' कहते हैं। 'बिरहनी'का अर्थ है वह स्त्री, जिसका पति परदेशमें हो। वस्तुतः विरह-वर्णनके अधिकांश

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के कारण इस कोटिके गीतोंका नाम 'विरहनी' पड़ा है। जेठकी उत्तप्त दुपहरीमें सूर्यकी किरणोंकी प्रखरतासे विह्वल थारू 'विरहनी' गाकर अपने श्रमकी कठोरताको भूल जाना चाहता है। वह अपने सुख-दुःखके साथी बैलोंको पुचकारता है, ललकारता है, उनकी पूँछ ऐंठता है—शायद इसलिए कि वे भी गीत सुनकर नए उत्साहसे हल खींचे। एक 'विरहनी' देखिए :—

पुरुआ त बहले पछुवे रे ननदी,
हरे गोरी गोइठिया ना सुनुगे आग।
मोरे जिउआ करइक दस मूठी रे,
गोरिया कहवाँ बसे चित रे चोर।
सहर बुलिय बुलि हाँक पारे गोरिया,
हाँ रे गोरी सुनिलेहु बचन हमार।
कवने घरे गोरिया नु हे बाड़े जोड़ी रे जँतवा,
हमहुँ तनिक पीसे जाईं।
ऊँची त रे घरवाके नीची त दुअरिया,
तवने घरे बाड़े जोड़ी जाँत।
कहवाँहि सिरिजे जोड़ी जाँत,
कहवाँहि सिरजे ला हे गोहूँ।
कहवाँहि सिरिजे ननदीके भइया,
तहवाँ बसे ला चित रे मोर।
पाटन सिरिजे इहो जोड़ी जँतवा,
तिरहुत सिरिजे ला हे गोहूँ।
सासु-कोखि सिरजे ननदीके भइया,
तहवाँ बसे चित रे मोर।
एकवाके जँतवामें दुइ-दुइ गोरिया,
दुहुु बइठि जाँघ जोर।
चारु त जोबन बीचे जँतवा घुमावे,
जँतवा त मुखे-मुखे बोल।
जाँत नाहिं चलइक निको नाहिं लगइक
जुअवा ओठँघि धनि रोई।

अर्थात् हे ननद, पुरवैया तथा पछेवा दोनों हवाएँ बहीं, किन्तु उपलेकी आग नहीं सुलगी। मेरा हृदय दस मुट्ठीका हो गया। न-जाने मेरा चितचोर आजकल कहाँ है। शहरमें घूम-घूमकर गौरांगी हाँक लगा रही है—कोई मेरी बातें सुने। किसके घरमें जाँतकी जोड़ी है? मैं कुछ देरके लिए पीसना चाहती हूँ। ननद उत्तर देती है—घर तो ऊँचा है, किन्तु उसका द्वार नीचा है। उसी घरमें जाँत है। इसपर भावजने प्रश्न किया—यह जाँत कहाँका बना हुआ है, कहाँसे गेहूँ आया है और तुम्हारे भाईका जन्म कहाँसे हुआ है, जिसमें कि मेरा हृदय बसता है? ननदने उत्तर दिया—पाटनका बना हुआ जाँत है, तिरहुतसे गेहूँ आया है तथा तुम्हारी सासकी कोखसे हमारे भाई उत्पन्न हुए हैं, जिनमें तुम्हारा हृदय बसता है। ननद और भावज दोनों अपने पैरोंको जोड़कर जाँत चलाने बैठ गईं। चार उरोजोंके मध्य जाँत मुखरित हो उठा। किन्तु भावजका मन नहीं लगा। वह जाँत चलानेमें असमर्थ हो गई तथा हाथड़को पकड़कर रोने लगी। विरहिणी नारीकी मनोव्यथाका यह कितना मार्मिक और यथार्थ चित्रण है। गीतकी भाषा कुछ ऐसी है, जिसपर पठित-समाजको आपत्ति हो सकती है। इस गीतका रचयिता अवश्य ही कोई रसिक-हृदय रहा होगा। थारू-समाज इस गीतको बिना किसी हिचकके गाता है। उसका ध्यान तो गीतके भावपर रहता है, भाषापर नहीं।

एक और गीत देखिए। रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही है। पुरुष 'बीअराड़'से धानके बीज उखाड़ रहे हैं तथा स्त्रियाँ उन्हें खेतोंमें रोप रही हैं। उनका हृदय उल्लाससे परिपूर्ण है। यह एक मंगलमय कार्य है, अतः स्त्रियाँ हर्षातिरेकमें गा रही हैं :

उतरल भादों चढ़ल कुआर री,
खुलि रे गेल दसो त दुअरिया ए हाँ री,
लाइ रे देहु सिरी राम हिंडोलवा।
एसोंके सलिया पाट रे महँग भइले री
आगे साल लाइ देब सिरी राम हिंडोलवा।
पाट माँगे गइले ओही रे पटहेर घरे री
खंभारी माँगे गेलिय बढ़इया घरे,
सिरी राम हिंडोलवा।
एक खम्भा गड़ले देस री चउपारन ए हाँ री
दूजो खम्भा नगरी गोरखपुर।
कवनहिं सखी हे खम्भिया उठाई
कवने लगावे पटडोर हे।
कवनहिं सखी री झूलन लागी
झूलि-झूलि गावहिं विरोग, सिरी राम हिंडोलवा।
राम हि री सखी खम्भिया उठाई
लछन लगावे पटडोर हे।
सीता हि सुन्दरी झूलन लागी
झूलि-झूलि गावहिं विरोग, सिरी राम हिंडोलवा।

अर्थात् सीता श्रीरामसे अनुरोध करती है कि भादों समाप्त हुआ तथा आश्विनका आरम्भ हुआ। अब दसों दिशाओंके मार्ग खुल गए। हे राम, मुझे हिंडोला लगा दो। रामने उत्तर दिया—इस साल पाट बहुत महँगा है, आगामी वर्ष मैं हिंडोला लगवा दूँगा। इसके बाद रामने पटहेराके घरसे पाट तथा बढ़ईके घरसे खम्भा मँगवाया। एक खम्भा चम्पारण देशमें तथा दूसरा गोरख-पुर नगरीमें गाड़ा गया। गानेवाली अपनी सखीसे पूछती है—हे सखि, किसने यह खम्भा गाड़ा और किसने हिंडोलेमें डोरी लगाई? हे सखि, उस हिंडोलेपर कौन झूल रही है और विरह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का राग गा रही है ? सखी कहती है—रामने खम्भा गाड़ा तथा लक्ष्मणने उसमें डोरी लगाई। सीता उस हिंडोलेपर झूल रही है तथा विरहका राग गा रही है। इस गीतमें थारुओंके सामाजिक जीवनका एक बहुत बड़ा तथ्य अथवा विश्वास निहित है। वह यह कि थारू अपने और रामके जीवनमें कोई अन्तर नहीं मानते। रामके प्रति अपनेपनका यह भाव प्रायः हिमालयसे कन्याकुमारी तक और आसामसे सीमान्त-प्रदेश तकके लोक-गीतोंमें पाया जाता है, जो हमारी सांस्कृतिक एकताकी आधार-शिला है।

इस तरहके लोक-गीतोंसे थारुओंका जीवन आज भी बड़ा रससिक्त एवं जागरूक है। उनके लोक-साहित्यका संकलन तथा उनका विधिवत् अध्ययन बहुत महत्वका कार्य है। थारुओंका इतिहास उनकी अनुश्रुतियों, परम्परागत कथाओं तथा लोक-गीतों में अन्तर्हित है। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त गीतोंको ही लीजिए। थारुओंके देशमें झिरहिर नदी बहती है, हिंडोलेका एक खम्भा चम्पारण प्रदेशमें तथा दूसरा गोरखपुर नगरीमें गाड़ा जाता है, पाटनसे जाँत तथा तिरहुतसे गेहूँ आता है। इतना ही नहीं, थारुओंकी भाषामें अनेक शब्द ऐसे हैं, जिनसे हम ऐतिहासिक तथ्य निकाल सकते हैं। थारू अपनेसे भिन्न लोगोंको 'बाजी' नामसे पुकारते हैं। 'बाजी' शब्द 'वृज्जि'का अपभ्रंश है। ढाई-तीन हज़ार वर्ष पूर्व चम्पारणमें प्रभावशाली वृज्जियोंका राज्य था। इसी प्रकार वे मदिरा बनानेमें जिस जड़ीका व्यवहार करते हैं, उसे 'सोमलतिया' कहते हैं। सोमलताका व्यवहार तो वैदिक कालीन भारतके आर्य भी करते थे।

लिखित-साहित्यके अभावमें थारुओंके इतिहास-प्रकाशका एकमात्र साधन उनका यह मौखिक साहित्य ही है। पर थारुओंका यह अमूल्य लोक-साहित्य विनाश-पथकी ओर अग्रसर हो रहा है। शनैः-शनै उनमें शिक्षाका प्रचार बढ़ रहा है। ज्यों-ज्यों किसी जातिमें शिक्षा-प्रसार होता है, वह अपने लोक-साहित्यकी उपेक्षा-सी करने लगती है और उसके व्यवहारमें संकोच तथा लज्जाका अनुभव करती है। यदि थारुओंका परम्परागत मौखिक साहित्य यथाशीघ्र लिपिबद्ध नहीं कर लिया गया तो वह सदाके लिए विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जायगा, और थारुओंका उद्भव तथा इतिहास हमारे लिए सदा पहेली ही बने रहेंगे।

न्याय

श्री योगेन्द्रनाथ सिन्हा

न्याहके जल्सेमें रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। मेरा मित्र मनोहर डाकबँगलेमें ठहरा था। उसको पहुँचाने टहलता हुआ मैं डाकबँगले तक गया। अँधेरी रात थी। सितारोंकी रोशनीमें रास्ता सूझ तो जाता था; पर पेड़ोंकी काली घनी छाया ऐसी भयावनी लगती थी, मानो उनके नीचे भूतोंकी मूक सभा बैठी हो। एक विचित्र रहस्यमय निस्तब्धताका राज्य था। डाकबँगलेके आसपास बहुत-से पेड़ हैं। घनी छायाके बीच हम लोग धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। सहसा एक करुण-क्रन्दन कानों में आया। मैं खड़ा हो गया। मनोहरने पूछा—'यह दर्दनाक आवाज़ सुनी ?'

मैं काठकी तरह खड़ा ही रहा। मेरे कान कहीं और थे। मनोहरके फिर पूछनेपर मैंने मानो होशमें आ उत्तर दिया—'हाँ; पर यह किसकी आवाज़ है ?'

मनोहर—'इसी रुलाईके मारे मैं डाकबँगलेके इस ओरके कमरेमें रह ही नहीं सकता। उस तरफ़ भी रातके तीन बजे बाद सोना असम्भव हो जाता है।'

मैं स्तम्भित हो सुनता रहा। आवाज़ किसीके रोनेकी आ रही थी। पर यह रोना भी अजीब तरहका था। बीच-बीचमें गानेके ऐसा लगता था, कभी आह भरनेका शब्द, कभी रोना।

मनोहरने कहा—'इस समय क्या, सुबह तीन बजे सुनो, तो छाती फट जाय। हर रोज़ बिना नागा तीन बजेके अन्दाज़ वह औरत इसी तरह रोना आरम्भ करती है।'

'हर रात ?'

'पिछले दस बरसोंमें जब कभी मैं यहाँ ठहरा हूँ—चाहे जाड़ा, बरसात, कोई भी मौसम हो—कभी उसके रोनेमें नागा नहीं हुई।'

मैं कान लगाकर सुनता रहा। उस रहस्यमयी रजनीके खोहमें, उन काले वृक्षोंकी काली छायाके उस पारसे, वह करुण क्रन्दन ऐसा लगता था, मानो कोई दुखी भूत दूर दिगन्तमें बैठा भर रहा हो। ब्याहके उत्सवका उच्छ्वसित दृश्य, वर-कन्याके मुकुलित आशाओंके कल्लोल, अभी मानस-पटसे मिटे न थे कि सहसा इस भयावनी रुलाईने अवर्णनीय भावोंका संचरणकर उथल-पुथल मचा दी। भाव थे कुछ भयके, कुछ समवेदनाके, और सबसे अधिक कुतूहलके।

सड़कके उस पार जजकी कचहरी है। उसीके एक कोनेमें आवाज़ आ रही थी। उस कोनेमें वृक्ष और घने हो गए हैं। डाकबँगलेसे कचहरीका वह बरामदा, अलकतरेसे आधा पुता हुआ, काली छायाकी तरह कुछ-कुछ दीख पड़ता है।

डाकबँगलेमें हम लोग आकर बैठे, तो मनोहर कहने लगा—'अपने कारबारके सिलसिलेमें दस बरसोंमें कई बार मुझे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आना पड़ा है। हमेशा उस औरतको उसी बरामदेमें आश्रय लेते देखता हूँ। जाड़ेकी कँपानेवाली सर्दीमें भी जब हम रज़ाईके भीतर ठिठुरते हैं, वह उन्हीं फटे चिथड़ोंपर उसी खुले बरामदेमें अचल रहती है। और हर रात यही रुलाई। मैं यों तो तड़के उठनेवाला हूँ, पर यहाँ तीन बजेके पहले ही से मेरा सोना हराम हो जाता है। एक अजीब भाव मनमें उठता है। सन्नाटी रातमें प्रकृतिकी प्रगाढ़ निस्तब्धताको चीरता हुआ यह रोमांचकारी करुण विलाप घरमें घुसकर चारों ओरसे मुझ बेक़सको इस तरह घेर लेता है, जैसे श्मशानके हज़ारों दुखी भूत दुर्बोध्य प्रार्थनापत्र लिए खड़े हों। हृदय करुणासे भर जाता है। सुख-विलासकी सभी स्मृतियाँ झूठी मालूम होती हैं। संसार उसी हृदय-विदारक विलापके लिए बना-सा लगता है। मैं उकताकर उठ बैठता हूँ।

कुछ क्षणके बाद मनोहर फिर कहने लगा—'सुबह सूर्यकी पहली किरण जहाँ आई कि वह भिखारिन सड़कके इस पार एक पत्थरपर आ बैठती है। देखनेमें अधेड़ लगती है—यही तीस-पैंतीसके बीच। यह भी नहीं कहा जा सकता कि भिक्षा माँगनेके लिए वह बनावटी रुलाई रोती है—जैसा कि भिखारी अक़्सर किया करते हैं—क्योंकि मैं कितनी ही बार उसके पाससे आया-गया हूँ, कभी उसने मुझसे माँगा कुछ नहीं; तंग करना तो दूर रहा। मैंने उस भिखारिनको कभी किसीको तंग करते नहीं देखा। मुझे तो इतना होते हुए भी अभी तक एक पैसा उसे देनेका मौक़ा नहीं हुआ। पता नहीं, कहाँसे खानेको पा जाती है, और क्यों इस तरह विलाप करती है?'

मुझे इतनी उत्सुकता हुई कि सुबह मैं फिर आया। मनोहरके कथनानुसार भिखारिनको उसी पत्थरपर बैठे पाया। वह शान्त बैठी थी, मानो सामने सड़ककी हलचल उसके लिए गम्भीर वनकी निस्तब्धता हो। मैंने कई प्रश्न किए, पर कोई सन्तोष-जनक उत्तर न मिला। भिखारिन कुछ पगली-सी लगती थी, पर पूरी पगली भी नहीं। केवल एक शब्द 'झिलरुआँ' उसके मुँहसे बार-बार निकला।

- २ -

मैं इस घटनाको भूल ही गया था कि एक दिन दौरेपर घूमते-घूमते झिलरुआँ नामक गाँवमें जा पहुँचा। नाम सुनते ही डाकबँगलेकी वह रात बिजलीकी चमककी तरह मानस-पटपर खेल गई। मैंने कुतूहलवश पूछ-ताछ आरम्भ की कि इस गाँवमें कोई ऐसी किसी भिखारिनके विषयमें जानता है या नहीं। धीरे-धीरे एक अजीब कहानी मालूम हुई।

क़रीब १२-१३ बरस पहलेकी बात है, बेटेहो नामक एक आदिवासी इस गाँवमें रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था मुलिया। दोनों आदर्श पति-पत्नीका जीवन व्यतीत करते थे। बेटेहो परिश्रमी, साहसी और सच्चरित्र, पर बच्चोंकी तरह सरल और लापरवाह था। जब मुलिया बेटेहोको उसकी नादानीके लिए सस्नेह डाँटती, तो बेटेहोको असीम आनन्दका बोध होता। मगर गाँवके मुण्डा (मुखिया) की बेटेहोसे नहीं पटती थी। मुण्डा था नशेबाज़, बदकार; अतएव बेटेहो उसके हथकण्डोंका विरोध किया करता था। एक बार बेटेहोपर मनुष्य-हत्याका दोषारोपण हुआ। मुण्डा मुक़द्दमेमें अगुआ था, इसलिए बेटेहोकी ओरसे कोई कुछ बोल न सकता था; पर असली बात भीतर-ही-भीतर सभीको मालूम हो गई थी। बात यह थी कि एक रातको बेटेहो अपने मक्केके खेतमें मचानपर बैठा रखवाली कर रहा था। पास ही में बामियाहोका मचान था। बामियाहोके खेतमें कई दिनोंसे एक जानवर तंग कर रहा था। रोज़ पिछली रातके समय जब बामियाहोकी आँख लग जाती, तो यह धूर्त जन्तु धीरे-धीरे आकर कई मक्के खा जाया करता था। बामियाहोने पंजेके निशानोंसे यह पता लगा लिया था कि भालू है। एक रातको वह खूब सावधानीसे बैठा था कि मक्के तोड़नेकी आवाज़ आई। बामियाहोने शब्दका निशाना लगाकर विषैला तीर छोड़ा। तीर छूटा ही था कि सहसा एक लड़केके कराहनेका शब्द हुआ, जैसे वह आहत होकर मर रहा हो। बामियाहो और बेटेहो दोनों मचानसे नीचे कूदकर दौड़े। देखते क्या हैं कि एक ११-१२ बरसका लड़का तीरसे बिंधा पड़ा छटपटा रहा है। बामियाहो तो झट भाग खड़ा हुआ; पर बेटेहो वहीं बैठा जो-कुछ सेवा-सुश्रूषा बन पड़ी, करता रहा।

अभी अच्छी तरह सुबह भी न हो पाई थी कि मुण्डा तीन आदमियोंके साथ आ पहुँचा। पता नहीं, उसे इतनी जल्दी यह खबर कैसे लग गई? यों तो वह इतना आलसी था कि सूर्य उगनेके बाद उठा करता था। मुण्डाने बेटेहोपर विजय-दृष्टि डालकर बातें चबा-चबाकर कहा—'अच्छा, ये तो बेटेहो हैं! मेरा खून चूसते-चूसते पेट नहीं भरा, तो अब इस ग़रीब बच्चेका खून चूसने बैठे हो!'

बेटेहोने अविचलित हो उत्तर दिया—'बामियाका तीर भूलसे लग गया। यह बेचारा न-जाने कैसे असगुनमें मक्के चुराने आया था।'

मुण्डा—'क्या कहा, बामियाका तीर?'

'हाँ, हम और वह अगल-बगल ही मचानपर सोए थे। भालू समझकर उसने विषैला तीर चलाया था।'

'पर बामिया तो सारी रात मेरी दालानपर सोता रहा है और अभी तक उठा भी नहीं है।'

'नहीं, वह तो मेरे ही साथ यहाँ आया था, पर अभी कुछ देर पहले डरकर भाग गया।'

उसी दिन शाम होते-होते पुलिस आई और बेटेहोको रस्सीसे बाँधकर ले गई। मुलिया पछाड़ खाकर गिर पड़ी। मुण्डे-मालकीकी धर-पकड़ उसने देखी थी, उससे घबराती न थी। पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाल पगड़ीवाले सिपाही उसे यमराजके रक्त-सिक्त राक्षसोंके समान लगते थे। उनकी सूरत ही विचारके पहले इन्साफ़की तरह थी। मुलिया डर और निराशासे बेहाल हो गई। निष्प्रभ-निश्चल नेत्रोंसे जीवनके रंगमें इस तरह भंग पड़नेको वह ऐसे देख रही थी, जैसे अनन्त नील आकाशकी ओर आहत-सृगी। पर भयसे पीछे हटता हुआ मन एक ऐसी अवस्थापर पहुँच जा सकता है, जहाँ भयकी पराकाष्ठा साहसकी पराकाष्ठामें परिणत हो जाय। सहसा बच्चेको धूलमें उतार मुलिया बिजलीकी तरह पुलिसवालों पर टूट पड़ी और पतिको पकड़कर ज़ोर-ज़ोरसे खींचने लगी, जैसे बाघके मुँहसे अधमरी गायको खींचती हो। पुलिसवालोंने उसे धक्का दिया, तो उन्हें दाँत काटने लगी, मुँह नोंचने लगी और उन पति-भक्षक यमराजके दूतोंमें इस तरह विलगित हो गई, जैसे उद्दाम झंझावातसे आलोड़ित यमुना गंगामें।

जब बलने निर्बलपर सम्पूर्ण विजय पा ली, तो बेटेहोने अविचलित स्वरसे भर्त्सना करते हुए कहा—'तुम इतनी बेसमझ कैसे हो गईं! अभी तो न्याय होगा। जब मैंने कुछ किया ही नहीं, तो मुझे क्या डर? मैं बेदाग़ लौट आऊँगा। सरकारी कचहरीमें भगवान न्याय करते हैं, वहाँ तो दूधका दूध और पानीका पानी होता है।'

- ३ -

मुक़दमा चला। पुलिसकी ओरसे मुण्डा तथा तीन और गवाह थे। चारोंने अपनी आँखों देखा था कि झिलरुआँके बेटेहोने अपने हाथों रूपाहोनका गड़ाँसेसे गला काटा था! बेचारा बे माँ-बापका लड़का भूखसे व्याकुल हो दो-एक मक्के चुराने गया था बेटेहोके खेतमें, बस यही उसका दोष था।

न्यायशालाकी गम्भीर कार्यवाहीने मुलियाको मुग्ध कर दिया। उसे अब पूर्ण विश्वास हो गया कि अगर दुनियामें कहीं दूधका दूध और पानीका पानी होता है, तो ऐसी ही न्यायशाला में। वह अब निश्चिन्त हो पतिको दूरदर्शिता सराहती और हाकिमको मन-ही-मन आशीर्वाद देती थी। पर बेटेहोके मित्रोंने चेतावनी दी : कचहरीका कोई ठिकाना नहीं। कौन कह सकता है कि ऊँट किस करवट बैठे? तुम भी वकील करो, कोई अच्छा-सा वकील। वकीलपर ही सब-कुछ निर्भर करता है।

मुलियाका विह्वल हृदय इस अपरिचित लोकमें कुछ इतना सन्दिग्ध हो गया था कि जेठको दुपरियाको कोई भादोंकी रात कह दे, तो भी उसे ना कहनेका साहस न था। सारे बर्त्तन और दो बैल बेचकर उसने वकील किया। पेशोपर पेशी चलती गई। हर पेशीपर उसे कहीं-न-कहींसे लाकर वकीलको रुपए देने पड़ते थे। मुक़दमा फिर जजके यहाँ गया। वहाँ भी वकीलका खर्च। मुलियाका जो-कुछ था, सब बिक गया। गोदका बच्चा अयत्नसे मुरझा-सा गया। पर वकीलका आश्वासन था कि मुक़दमा अच्छे रास्तेपर है, बेटेहो अवश्य बच जायगा।

फ़ैसलेका दिन भी आ गया। मुलियाके पास अपनी कोई छोड़ और कुछ न बचा था; पर उसीको वह एक सप्ताहसे रही थी। उसका मुखमण्डल गर्वसे उज्ज्वल था। वह थी, लाख विपत्तियाँ झेलीं, पर पतिको मृत्यु-चक्रसे बचा लिया। पतिदेव आयँगे, अमृत-वर्षा होगी और फिर क्यारियाँ हरी होंगी। मुण्डाने तो अपनेसे कुछ उठा न खैर, भगवान उसका भला करे। घरको लीप-पोतकर अल्पना दिया, और जब सज-धजकर कचहरीकी ओर चली, उसके भाव ऐसे थे, मानो अभिसारको निकली हो।

जजने फ़ैसला सुनाया—'बेटेहोपर नर-हत्याका जुर्म आने साबित हो गया। मुण्डा एक शरीफ़ आदमी है। और तीन स्वतन्त्र गवाहोंने अपनी आँखों मुजरिमको यह काण्ड करते देखा है। मुझे उनको गवाहीपर अविश्वास करने कोई कारण नहीं देख पड़ता। ऐसी पक्की गवाही कम मुश्किलसे मिलती है। मुजरिमकी बनावटी सूरत बेक़सूर बन रहने करनेकी कोशिश कर रही है; पर ऐसे जुर्म करनेवाले पिशाचोंके दिलकी कमज़ोरी दिखाना अन्याय है। समाजका अस्तित्व न्यायपर ही टिक सकता है। मैं मुजरिम बेटेहोको फाँसीकी सज़ा देता हूँ।'

मुलिया यह सुनते ही धड़ामसे गिर पड़ी। पक्की गिरनेसे बच्चेका सिर फट गया और उसी रातको दैवी भी फ़ैसला सुना दिया गया!

यह तेरह बरस पहलेकी बात है। उस दिनसे मुलियाने किसीने इस कचहरीके बरामदेको छोड़ और कहीं रात नहीं देखा। सरकारी कर्मचारियोंने लाख यत्न किए, प्रलोभन दिए, धमकियाँ दीं; पर भिखारिन वहाँसे कहीं नहीं और यहीं प्रतिदिन निस्तब्ध रात्रिमें अटूट क्रमसे तीन रातको वह अपना हृदय-विदारक करुण-क्रन्दन आरम्भ है। भगवान जाने क्या कहती है, क्या चाहती है!

× × ×

कभी-कभी चाहे मैं कहीं भी क्यों न होऊँ, तीन बजे को अचानक एक क्षणके लिए नींद खुल जाती है। ऐसा है, जैसे उसी भिखारिनका करुण-स्वर कानोंमें पसीज रहा हो वायुमण्डलमें उमड़-घुमड़कर सारे जीव-जगत्को जगा-जगा पूछ रहा हो—'क्या यही न्याय है?'

दूसरे ही क्षण उस ब्याहका आनन्द-किलोल सामने आ जाता है और साथ-ही-साथ मनोहरके सुनी हुई दर्दनाक रुलाई भी! अमीरोंका सुख-विलास है और साथ-ही-साथ ग़रीबोंकी दुःख-यन्त्रणा भी। एक असीम-अपार भाव उठता है और वह भी पूछने है—'क्या यही न्याय है?'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ग़बन'

प्रो० सत्येन्द्र, एम० ए०

उपन्यास-साहित्यमें 'ग़बन'से पूर्वकी परिपाटी

हिन्दीमें प्रेमचन्दका सबसे प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' विशेषतः सामाजिक समस्याओंपर केन्द्रित है : बेमेल विवाह और वेश्या तथा विधवा-जीवन ; साथ ही व्यक्तिपर समाजका अत्याचार। इनके साथ प्रासंगिक उल्लेख चुंगी-चर्चा और पुलिसके महकमेका भी है। भारतीय जीवनमें राजनीतिक जाग्रतिसे पूर्व सामाजिक और आर्थिक सुधारवादी आन्दोलनोंका विशेष प्रभाव पड़ा। इनसे ही एक जाग्रतिका आरम्भ हुआ। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द और सर सैयद अहमदखाँके उद्योगोंसे समस्त देशमें एक सुधारकी उत्तेजना आई। स्वामी दयानन्दका आर्यसमाज हिन्दी-क्षेत्रमें गहरा सामाजिक नश्तर लगा रहा था। उसकी अवधानतामें आर्यसमाजी मनोवृत्ति और शिक्षाके फलस्वरूप कितने ही उपन्यास लिखे गए। उन सबका उद्देश्य समाजको आदर्शकी ओर सुधारके मार्गसे ले जाना था। श्रीनिवासदासजीका 'परीक्षागुरु' भी इसी सुधारवादी मनोवृत्तिका परिणाम है, यद्यपि श्रीनिवासदासजीको आर्यसमाजी नहीं कहा जा सकता। आर्यसमाजके तीव्र आघातोंसे हिन्दुओंके अन्य क्षेत्रोंमें भी एक जाग्रति हो उठी थी। वे भी सुधार तो चाहने लगे थे ; पर वास्तवमें शेष समुदाय धर्मसे उतना भयभीत नहीं था, जितना उसे विदेशी रीति-नीतिसे घृणा और विद्वेष था। इन धार्मिक आन्दोलनोंसे उसे अपनी संस्कृति और सभ्यताके आदर्श रूपपर अभिमान भी हुआ था और उसके साथ अपनी दुर्बलताओंको, सामाजिक दोषोंको, दूर करनेकी व्यग्रता भी उदय हुई थी। फलतः सुधारवादी मनोवृत्ति सभीमें थी, और वह प्रेमचन्दसे पूर्व और उनके आरम्भिक कालमें भी दो भागोंमें विभक्त थी—आर्यसामाजिक और आर्यसमाजेतर। आर्यसमाजी आदर्श पातिव्रत और सतीत्वकी प्रशंसा करता हुआ विधवा-विवाहका भी पोषण करता था। वेश्याओंके प्रति इस सम्प्रदायने घोर घृणाका भाव उत्पन्न किया। प्रेमचन्दका 'सेवासदन' इसी सुधारवादी युगकी रचना है—वह सामाजिक है। 'प्रेमाश्रम'में प्रेमचन्द राजनीतिक दिशाकी ओर विशेष अग्रसर हुए। 'रंगभूमि' पूर्णतः नवीनतम राजनीतिक आदर्शोंको ही नहीं, संघर्षोंको भी लिए हुए है। जहाँ 'सेवासदन'में राजनीतिके नाम लोकल सेल्फ गवर्मेण्ट और चुंगीकी ही चर्चाका ज़ोर था, या पुलिसके पतनके स्वरूप (द्वैध शासन)की भयंकरताका दिग्दर्शन था, वहाँ 'रंगभूमि'में सत्याग्रह तकने प्रमुख स्थान पाया है। 'रंगभूमि'में ही वे राजनीतिक गतियोंमें अत्यन्त व्यस्त हो गए, और यही जैसे उनका प्रधान पक्ष हो गया था।

'ग़बन' : उपराम-कालकी रचना

राजनीतिक संघर्षोंकी गतिमें अत्यन्त व्यस्त उनका मन जब कुछ उपराम और विश्राम चाहता था, तो उतरे हुए ज्वारकी भाँति वे पूर्व तलपर आ जाते थे और तब फिर सामाजिक समस्याएँ उनका ध्यान आकर्षित कर लेती थीं। 'निर्मला' और 'ग़बन' ऐसे ही अवकाश-कालके उपन्यास हैं और 'सेवासदन'की परम्परामें रखे जाने चाहिएँ। 'ग़बन'में देवीदीनके चरित्रमें एक आकर्षण है, वह हमें उपन्यासमें मिलनेवाले समयकी सूचना देता है। उसके दो पुत्र विदेशीके बायकाट-आन्दोलनमें पिकेटिंग करते हुए बलि हो चुके थे। तब उसने भी उनका स्थान लिया था ; पर अब सब ओरसे शिथिल वह अपनी सेवामें ही रत है। आन्दोलन-कालकी उग्रताका शमन हो गया है, उसीके साथ प्रेमचन्द भी उस ओरसे हटकर देशके अन्य देवीदोनोंसे सानुकूलता रखनेके लिए और रचनात्मक (Constructive) क्षेत्रमें काम करनेके लिए यह उपन्यास लिखने बैठे हैं।

'ग़बन'में सामाजिक प्रश्न

'गबन'में कई सामाजिक प्रश्न गुँथे हुए हैं। सबसे बड़ा प्रश्न तो स्त्रियोंकी आभूषण-प्रियताका है। हमारे घर और समाजमें आभूषणोंको कुछ ऐसा महत्व दिया जाता है कि बालकपनसे ही स्त्रीके हृदयमें उनके प्रति विशेष आग्रह उत्पन्न हो जाता है। इसके फल-स्वरूप अनेक तबाहियाँ और संकट सिरपर आते हैं, घर मटिया-मेट हो जाते हैं। इन सबके मूलमें सामाजिक प्रतिष्ठा को दिखावेसे प्राप्त करनेकी भावना है। दिखावेमें हम बहुत ऊँचो प्रतिष्ठा पायँ, यह हमारे समाजमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। इसीसे अनेक व्यक्ति विवाह आदि अवसरोंपर अपनी सीमासे ऊपर व्यय कर डालते हैं, अनेक अनावश्यक व्यय सिरपर ले लेते हैं और उनके भारसे ऐसे दब जाते हैं कि खुलकर साँस भी नहीं ले सकते। इन दबावोंके फल-स्वरूप जीवन-निर्वाहके लिए रिश्वत अनिवार्य हो जाती है। हिन्दू-समाजमें हिन्दू-घरकी व्यवस्था अत्यन्त दयनीय हो गई है। बेमेल और वृद्ध-विवाहकी भी समस्या है, पर इस ओर प्रेमचन्दने केवल संकेत-भर किया है। स्त्रीको उन्होंने साध लिया है, और ऐसे विवाह करनेवाले पुरुषमें एक पश्चात्तापकी भावना उत्पन्न कर दी है। पर विधवाकी दशापर उनका ध्यान गया है। पतिकी मृत्युके उपरान्त स्त्रीका सम्पत्तिपर कोई भी अधिकार नहीं रह जाता। क़ानून किंचित् भी उसकी सहायता नहीं कर सकता। जिसका पति सम्पत्तिवान हो और उसके समयमें स्त्री जिस शासन और विलाससे जीवन बिता रही हो, पतिके उपरान्त सम्पत्ति दूसरोंके हाथमें चले जानेपर, वे चाहे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्र ही क्यों न हों, उसको एक अत्यन्त हीन अवस्थामें गिर जाना पड़ता है, जो मर्मान्तिक होती है। क्या स्त्री पतिके जीवन-काल में भी उतनी ही अनाथिनी नहीं है, जितनी बादमें? पतिके जीवन-कालमें भी अधिकारके साथ उसकी कौन-सी वस्तु है? रतनका यह विचार भारतीय हिन्दू-समाजमें स्त्रीका यथार्थ रूप प्रस्तुत कर देता है: "पहले भी वह अनाथिनी थी, केवल भ्रम-वश अपनेको स्वामिनी समझ रही थी। अब उस भ्रमका भी सहारा नहीं रहा।" इस दिशामें प्रेमचन्दको बड़ी सहानुभूति रही है। वेश्याको वे इसमें भी नहीं भूल सके हैं। वह आती है अपने पेशेके लिए, पर उसमें परिवर्त्तन हो उठता है और वह अपने वेश्यात्वकी केंचुली उतार फेंकती है। दानकी निस्सारता और ब्राह्मणत्वका खोखलापन भी प्रसंगात् इस उपन्यासमें प्रदर्शित हो उठा है।

इस प्रकार 'गबन'में सामाजिक तत्वोंकी ही प्रमुखता है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि उपन्यासकारने समाजके दोषोंको ही उभार कर रखा है। वर्त्तमान समाजमें क्या आकर्षक और सुन्दर है, इसका हमें उल्लेख नहीं मिलेगा। समस्त उपन्यास जैसे वर्त्तमान समाज-व्यवस्थाके जर्जरित रूपकी उग्र भर्त्सना है। 'गबन' की विस्तृत कथा-भूमिमें कहीं भी किसी सुखी प्राणीके दर्शन नहीं होते। जो सुखी है, वह अपने आत्म-परितोष अथवा आत्म-केन्द्रित होनेके कारण सुखी है, अथवा उसने अपने अहंबलसे अपना ही एक जगत् बना लिया है, जो समाजकी चिन्ता नहीं करता।

व्यक्ति और समाज

'गबन'के समस्त सामाजिक प्रश्नोंका उदय यथार्थतः सामाजिक आधारपर नहीं, बल्कि वैयक्तिक आधारपर हुआ है। यह व्यक्ति दो रूपोंमें हमारे समक्ष उपस्थित होता है। एक तो वह व्यक्ति, जो समाजसे अनुकूलता ग्रहण करता है अथवा उससे विद्रोह करता है; दूसरा वह व्यक्ति, जिसने जीवनके ठोस यथार्थ को नहीं समझा है। समाज और सामाजिक प्रश्नोंने व्यक्ति-मानवके जीवनकी भूमिका बनाई है। आभूषण-प्रेम स्त्रियोंमें मिलना एक सहज प्रकृतिका व्यापार है; पर उसके प्रति उप-न्यासके व्यक्ति-पात्रोंकी प्रतिक्रिया एक विशेष रूपमें है—आभूषणों की प्रियता और उसके लिए एक पुरुषका इतना व्यस्त होना असाधारण नहीं। ऐसे कामोंके लिए गबन करना यद्यपि साधारण बात नहीं, पर इसे भी असाधारण नहीं कह सकते। इसी प्रकार अनमेल विवाह अवांछनीय और अनुचित भले ही हों, पर वे भी असाधारण नहीं। ऐसे सभी प्रस्तुत प्रश्न अपनी असाधारणताके कारण आकर्षक नहीं; पर इस कारण कि इनकी पृष्ठभूमिपर पात्रों में जो प्रतिक्रिया हुई है, वह साधारण नहीं है। व्यक्ति समाजके गहन ठोस सत्यको नहीं समझ पाया है। वह व्यक्तिवादी व्यक्ति बना है, अहंवादी नहीं। वस्तुतः 'गबन' व्यक्ति-पात्रोंकी कहानी है। व्यक्तिवादी पात्रका व्यक्तित्व अपनी सीमाओंसे घिरा रहता है। उसके साथ अपना वैयक्तिक स्वार्थ सर्वोपरि रहता है। उस सत्यको वह इतना महत्व प्रदान करता है कि उसका जो जीवन और समाज-सम्बन्धी व्यवहार है, वह उससे ओझल रहता है, और जब यह जीवन और समाजका यथार्थ समुद्रगर्भित चट्टानकी भाँति उसके व्यक्ति-वादी लोककी कल्पनाके जहाज़से टकरा जाता है, तो निश्चय ही जहाज़ डूबता ही है। एक ट्रेजेडी उपस्थित हो जाती है। व्यक्ति-वादी समाजके लिए आतंककी वस्तु बन जाता है और व्यक्ति समाजसे अलग लोकका एक प्राणी हो जाता है। अहंवादी व्यक्ति समाज घृणा करने लगता है और व्यक्तिवादी समाजको घृणा करने लगता है। वस्तुतः अहं और व्यक्ति एक ही इकाईके दो रूपान्तर है। Superiority Complex अहंको जन्म देता है और Inferiority Complex व्यक्तिको। 'गबन' ऐसे ही हीनता-भावग्रस्त प्राणीकी कहानी है। गोर्कीने कहीं कहा है कि व्यक्तिवादी भी पूँजीवादका परिणाम है—और उसमें फक्कड़ वृत्तिकी प्रधानता इसी पूँजीवादिताके फल-स्वरूप हो जाती है। यह बात प्रेमचन्दके 'गबन'से पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। आभूषण को हम सम्पत्ति या पूँजीका प्रतीक न भी मानें, तो भी समाजकी सारी व्यवस्थामें उस पुरुषके लिए क्यों वे कल्पनाएँ हैं, क्यों वे सब्जबाग हैं, जो एक विशेष वर्गसे सम्बन्धित हैं? क्योंकि रसिकता पूँजीवादका परिणाम है, जब कि स्वस्थ काम और प्रेम यथार्थ मानवका। जहाँ स्त्रीको हार, ईयरिंग या कंगन देकर प्रसन्न करनेकी प्रणाली कोई व्यक्ति स्वीकार करता है, वहाँ उसका वह कृत्य केवल रसिकताका कृत्य कहा जायगा। प्रेमकी भूमि दृढ़ और कठोर होती है। उसमें किसी प्रलोभनका स्थान नहीं। इसी पूँजीवादी व्यवस्थामें जर्जरित समाजमें सच्चा प्रेम सहज ही प्राप्य नहीं। निन्यानवे प्रतिशत तो प्रेमके प्रदर्शन केवल रसिकताके प्रदर्शन होते हैं। रसिकतासे ऊपर उठकर जब प्रेमका उदय होता है, तो वेश्या भी पावन हो जाती है, अन्यथा विवाहिता भी वेश्यासे कम नहीं ठहरती।

घर और बाहर

इसी व्यक्तिके साथ 'घर' और 'बाहर' भी गुँथा हुआ है। यह वह घर और बाहर नहीं, जो रवीन्द्रनाथने प्रस्तुत किया है, वह बाहर है, जो घरके अन्तरालको बाहर निकालकर रख देता है, जैसा जैनेन्द्रकी 'सुनीता'में। यह 'घर' और 'बाहर' एक परिस्थितियों और अवकाशकी परिखाओंसे बना हुआ है, जिसमें घरका प्रतिरूप बाहर भी खड़ा किया गया है। घर ही महत्व-शाली है, और व्यक्तिकी पुष्टि और विकासके लिए घरकी अपेक्षा है। उसी मान्यताको उपन्यासकारने 'गबन'में जैसे अपना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवनकी यथार्थ सामाजिक प्रयोगशालामें उधेड़कर रख दिया है। जो व्यक्ति बाहर निस्सारताकी झलक देखते हैं और सृष्टिमें अपने तथा परायेके व्यावहारिक भेदपर ज़ोर देते हैं, उनकी धारणाओंकी भी परीक्षा 'गबन'में होती है। 'गबन'का घर फलतः पति-पत्नीका घर नहीं; उसमें माता-पिता, स्त्री और भाईका भी समावेश है। बाहर किसी पुरुष-मित्रसे सम्बन्धित नहीं। इस उपन्यासके घरके बाहर भी घरका ही बाहर है, रोमांस या प्रेम-रसिकताका स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी बाहर नहीं। जिन Values में प्रेमचन्द अपने पात्रोंको जगमगाता देखना चाहते हैं, वे यौन-Values मात्र नहीं। उनके पात्रोंकी मनोवृत्ति केवल कामोद्रेकित भावनाओं और मस्तिष्क-मुद्राओंके विविध घात-प्रतिघातों और उनमें मिलनेवाली सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्थितियों और गतियों तक ही सीमित नहीं—सृष्टिकी भाँति वह भी वैविध्ययुक्त है। यही कारण है कि युगके अन्य कलाकारोंकी अपेक्षा प्रेमचन्दके उपन्यासोंकी सृष्टिमें एक अनोखापन है। व्यक्ति है; एक तो उसके माता-पिता वे हैं, जिनसे उसका जन्म हुआ है; उसकी एक स्त्री है, जिससे उसका विवाह हुआ है। जब यह घरसे बाहर निकल पड़ता है, तब इसे एक और माता-पिता मिलते हैं, पर इनके द्वारा उसका जन्म नहीं हुआ; एक और स्त्री मिलती है, पर उससे विवाह नहीं हुआ। इस प्रकार एक छोरपर उपन्यासका घर है और दूसरे छोरपर बाहर है। पहले घर व्यक्तिके व्यक्तिवादी मिथ्या आचरणसे ध्वस्त हो उठता है, और जब वह व्यक्ति पूँजीवादी व्यवस्थाके जराजीर्ण बन्दीखानेसे, जिसे गृह नाम दे दिया गया है, मुक्त होकर बाहर संसारमें अनाथकी भाँति उतरता है, तो जैसे वह सबसे अधिक सनाथ हो उठता है। भारतीय समाजके घरोंकी व्यवस्था पूँजीवादी आधारपर है। इसमें व्यक्तिवादीके लिए स्थान नहीं, जो इसीकी पैदाइश है। आजके घरमें जो गृह-प्रबन्धकका रूप है, वह ठीक किसी राज्यके एकाधिकारी राजा-जैसा माना जा सकता है। उसके हृदयमें वात्सल्यकी अपेक्षा शासन और बच्चेको सुधरा हुआ यानी आज्ञाकारी और ठीक उसके जैसा मूढ़ अनुगामी देखनेकी व्यग्रता व्याप्त मिलती है। बालकके व्यक्तित्वकी सम्मान-भावनाका यहाँ लेश भी दिखाई नहीं पड़ेगा। हमारे घर आज अपनी उपयोगिता खो रहे हैं। गृह-पति अपनी रूढ़ियोंमें फँसी मनोवृत्तियोंकी मूढ़ग्राहितासे घिरा हुआ जड़ हो चुका है—उसमें न सहानुभूति है, न समवेदना, न वात्सल्य, न कर्तृत्व, न चैतन्य। वह मोहाविष्ट हो तो हो। यह घर न-जाने कितनी मर्यादाओंकी दीवारोंसे घिरा हुआ है। यह घर प्रेमचन्दका घर है, जिसमें वैविध्य है, और कभी जिसमें एक शृंखला थी, आज विशृंखला है। अतः यह यौन-आधारवाला स्त्री-पुरुषमें सीमित घर नहीं। वस्तुतः यह भारतीय घर है। भारतीय घरमें यौन-आधारको बहुत पीछे पटक दिया गया है। इस घरमें स्त्री-पुरुष कब अपने-आपको प्राप्तकर स्त्री और पुरुष होते हैं, यह जाग्रत और हलचलमय घरमें कोई सहज ही नहीं जान पाता। यहाँ माता-पिता, भाई-बहन, देवर-भाभी-ननद ही दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं सम्बन्धोंका उभरा हुआ रूप इस घरमें दीखता है। यद्यपि प्रेमचन्द हमें घरमें रहते हुए भी स्त्री-पुरुषके पास ही अधिक रखते हैं, फिर भी यह स्त्री-पुरुषका पति-पत्नी-व्यापार घरकी ठोस भूमिपर एक कल्पना-लोक-सा ही लगता है। घरका जैसे इस युगसे सम्बन्ध छिन्न हो रहा है। प्रेमचन्दने साम्यवादके सिद्धान्तके अनुसार किसी मुक्त समाजकी विशद और मोहक कल्पना तो हमारे सामने नहीं रखी; पर उन्होंने घर और बाहरके भेदको हटा देनेका प्रयत्न अवश्य किया है। उन मर्यादाओंको भी ध्वस्त दिखाया है, जो इन भेदोंको बनाए रखनेके लिए ज़िम्मेवार हैं—जैसे जाति-प्रथा। तो जैसे यौन-आधारका अभाव है, वैसे ही आध्यात्मिक आधारका भी।

व्यक्ति, घर और समाज इन तीनोंकी अपूर्णताओंका 'गबन' एक प्रबल दिग्दर्शन है। व्यक्ति सभी अपूर्ण या यथार्थ हैं, आदर्श नहीं। यह वह उपन्यास है, जिसमें सभी पात्र किसी न किसी मानवीय दुर्बलताके शिकार हैं और कल्पना-निर्मित आदर्श से युक्त नहीं। यह कहा जा सकता है कि इसमें अन्तिम परिणतियाँ आदर्श हुई हैं। रतन विधवा होकर भी वेश्या नहीं हुई; ज़ोहरा वेश्या होकर भी पवित्र जीवनके लिए चल पड़ी; जालपा आभूषण-प्रिय होते हुए भी किसी प्रलोभनमें नहीं फँसी, वरन् प्रायश्चित्तके कठोर आदर्श-मार्गपर चल पड़ी; रमा अन्तमें सत्य बोलनेपर तुल ही गया; देवीदीन और जग्गोमें आदर्श वात्सल्यका भाव विद्यमान है—इन समस्त परिणतियों और स्थितियोंमें कल्पना-जगत्की आदर्श-सृष्टिकी ओर झुकाव है। किन्तु पहले इन परिणतियोंको छोड़कर इनके जीवनपर दृष्टि डालिए। प्रत्येक पात्र न-जाने किन-किन भूलों और दुर्बलताओंका शिकार हुआ है। वह आगे बढ़नेकी चेष्टा करते-करते पीछे हटा है; उठनेकी चेष्टा करते-करते गिरा है। रमाका जीवन कितने उतार-चढ़ावका जीवन है। अपनी ही भूलोंका वह शिकार होता चला जाता है। गिरहपर गिरह बँधती चली जाती है। उठनेकी चेष्टा करता है, विवश फिर गिर पड़ता है। रमा बार-बार प्रेरित और अनुप्राणित होता है और फिर गिर पड़ता है। अन्तमें वह निराश-प्रयत्नकी भाँति ही अपने पापको हटा पाता है। वह आदर्श नहीं पाता, जैसे परिस्थितियोंके थपेड़ोंसे वह चैतन्य हो उठता है। उसकी सोई हुई आत्म-चेतना उठती है और वह अन्धकारसे प्रकाशमें आ जाता है।

जहाँ तक रमाके चरित्रका सम्बन्ध है, वह आदिसे अन्त तक यथार्थ है—दुर्बल मन, मनके सब्ज़बाग़ोंसे प्रसन्न रहनेवाला, थल-थल और घोर कायर, पर श्रद्धालु स्वभाव। वह परिस्थितियों

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का कन्दुक है। हाँ, भलाई-बुराईके लिए कुछ चैतन्य उसमें है; पर वह चैतन्य उसकी अन्य दुर्बलताओंपर उस समय तक विजय नहीं पाता, जब तक कि उसे बुरी तरह झकझोरा नहीं मिलता। उसका वह चैतन्य भी किसी 'आदर्श'के ऊपर निर्भर नहीं करता। उसका मूल आधार मानवीय सुरुचि है, मानवकी मानवके प्रति संवेदना है। जब यह संवेदना उसमें प्रबल हो उठती है, तब उसमें प्रायश्चित्त तथा पश्चात्तापके भाव उठते हैं, और वह बल ग्रहण करता है; पर सबसे अधिक उसे अपने प्रति मोह है। पुलिसके अधिकारियोंने इस मर्मको जान लिया है। जब रमा बल ग्रहण करनेका साहस करता है, तो वे उसी मोहपर चोट करते हैं। रमामें हमें आदर्श नहीं मिलता। अन्तमें उसका साहस बटोर कर सत्यको उद्घाटित कर देना भी आदर्शकी प्रेरणासे नहीं—वह तो केवल उस तैराकके ऊपर आनेका निराशा-जन्य उद्योग है, जिसमें वह अपनी अन्तिम बाज़ी लगा देता है, जो निरंतर गहरे में डूबता चला जा रहा है, अन्धकारमें फँसता चला जा रहा है और उसे वहाँ कोई अपना साथी भी नहीं दीखता। यश-प्रेम उसका अपनेपनके प्रति मोहका ही दूसरा रूप है। हीन-भावना-ग्रस्त होनेके कारण यह यश-प्रेम उसके अन्दरसे स्वयं अपनी वाणीमें आत्म-प्रशंसाका रूप ग्रहण कर लेता है। उसका अपनी पत्नी जालपासे इतना बढ़-बढ़कर बातें करना इसी मूल केन्द्रके दोनों तत्वोंसे उद्भूत है : कीर्ति-लिप्सा और आत्म-मोह। अन्तिम बार जब वह डूबता हुआ तिनकेका सहारा ढूँढ़ता जालपाके पास आता है, तब ठोकर खाकर कितनी निराशा उसके हृदयमें चीत्कार कर उठती है—तब वह सत्यका उद्घाटन कर पाता है। इसमें सन्देह नहीं कि जालपाने ही इस सबकी ठोस भूमिका बनाई है। उसका पतन और उद्धार—यदि इन शब्दोंका प्रयोग हम कर सकते हैं—तो जालपाके कारण ही हुआ है। जहाँ रमाके चरित्रमें कहीं किंचित् भी असाधारणता और आदर्शवादिता नहीं है, वहाँ जालपामें इन दोनोंका प्रवेश हमें यथार्थकी ठोस भूमिपर मिलता है।

जालपामें एक अद्भुत धूप-छाँह है। आभूषण-प्रियता एक साधारण बात है, जो स्त्रियोंमें मिलती है; पर उसने जालपामें असाधारण संकल्पके कारण एक उग्र रूप धारण कर लिया है। उपन्यासकारने समाजकी एक विशेष व्यवस्थाको भी जालपाके मानसिक निर्माणके लिए उत्तरदायी ठहराया है; पर जालपाका अपना व्यक्तित्व असाधारण है। जिस यत्नसे वह अपने काँचके हारको सँजोकर रखती है, वह साधारण व्यापार नहीं। चीज़ें आती हैं और चली जाती हैं; पर जालपा उस हारको हृदयका हार बनाकर रखती है और उससे किसी असली हारको पानेकी अभिलाषाको सींचती रहती है। दूसरी असाधारणता हमें विदित होता है उस दिन, जब रमा घर छोड़कर चला गया है। किस तत्परतासे वह चुंगी जाकर सब-कुछ चुका देती है। उसका कृत्य न केवल उपन्यासके पात्रोंको ही आश्चर्य-चकित कर देता है, वरन् पाठक भी उसके चरित्रमें ऐसी आकस्मिकता पाकर उसमें से अनेक सम्भावनाओंकी कल्पना कर उठता है। उसके चरित्रमें हमें निःसीम क्षमताके किंचित् दर्शन यहाँ होते हैं। तब तो उसके अद्भुत व्यापारोंसे बड़ी उग्र हलचल उपन्यासमें मिलनी है। पुलिसके पहरेमें भी रमाके पास पत्र पहुँचाना, देवीदीनके जग्गोके पास रहना, रमाके प्रति एक विशेष कठोरता प्रकट करना—ये तो छोटे आश्चर्य हैं। उस अपराधीके घरका पता लगाकर उसकी सेवा-सुश्रूषामें लग जाना, महान् अद्भुत कर्म है। इत्र रंजके नक़शे द्वारा रमाका पता लगानेकी विधि उसकी मार्मिक सक्षम सूझका अद्भुत उदाहरण उपस्थित करती है। प्रेमचन्द के 'ग़बन'में हमें स्पष्ट विदित होता है कि प्रेमचन्द भी पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको ही अधिक सुलझा हुआ, सबल और बुद्धिमान समझते हैं।

जालपा, रतन, ज़ोहरा, जग्गो—इन चार प्राणियोंने उपन्यासको उपन्यासका दर्जा दिया है। इनमें बुद्धि है, उदारता है, अटूट सहिष्णुता है, त्याग है और अवसरके अनुकूल साहस है। इन अन्तिम गुण हमें 'ग़बन'के और किसी पात्रमें इतनी मात्रामें नहीं मिलता। पुरुषोंमें दयानाथ एक आदर्शपर मिथ्या अड़ जानेके झंझटोंसे दूर रहनेवाले हैं। रमेशमें भी कोई चारित्रिक दृढ़ता नहीं मिलती—वही एक साधारण मिथ्याचार, एक नीतिपर जीवनकी सजीवताको पटकनेवाले, हाँ, कुछ सहृदय अवश्य हैं। रतनके पति वकील साहब तो बेचारे जीर्ण-शीर्ण मिट्टीके लोंदे हैं, जो रतनसे विवाह करनेके प्रायश्चित्तमें जैसे गले जा रहे हैं। देवीदीन कुछ आदमी है; पर वह शिथिल और स्त्रीके आश्रित है। रुस्वा तो देख ही चुके हैं, जो गरजता बादल है। पुलिसके अधिकारियोंमें पुलिसका ही चरित्र है—वे जैसे इस जगतके नहीं शैतान हैं। जालपाने रमाको हतप्रभ कर दिया है, रतनने वकील साहबको, जग्गोने देवीदीनको। घरमें और बाहर ये स्त्रियाँ पुरुषोंसे प्रबल ठहरती हैं। इन्हींके हाथमें पुरुषोंकी नकेल है। ये ही उपन्यासमें छाई हुई हैं, भले ही उपन्यास रमेश के चारों ओर चक्कर काट रहा हो। रमाके साथ जालपा ही है, और दोनोंने ही मौलिक पाप (Original sin) किया हैं। दोनोंको उसके लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है; पर यहाँ रमाका प्रायश्चित्त विवशता द्वारा है और जालपाका स्वेच्छासे अतः उसे दो प्रायश्चित्त करने पड़े हैं—अपना भी और रमा भी। 'ग़बन' फलतः प्रायश्चित्तका उपन्यास है। साधारणतः आदर्श के मूल बीजसे आरम्भ होकर यह उपन्यास वहीं समाप्त हो जाना चाहिए, जहाँ जालपाको उनके लिए अपने पतिको खो देना पड़ा अथवा अधिक-से-अधिक कुछ और तपस्या जालपा द्वारा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपन्यासकार रमाको जालपासे मिला देता। इससे उपन्यासमें एक स्वाभाविक पूर्णता तो मिलती, प्रायश्चित्तका एक भाग किसी सीमा तक पूर्ण भी हो जाता ; पर पात्रोंमें जो सम्भावनाएँ हैं, न तो वे प्रकट होतीं, न रमाके अपराधका और न उस अपराधके मूल जालपाके केन्द्रीय अपराधका ही परिमार्जन हो पाता। जालपाका अपराध ही मौलिक अपराध माना जायगा क्या? ईसाइयोंकी आदम-हव्वाकी कहानीमें हव्वाका अपराध ही क्या मौलिक है? शैतानने पहले उसे भुलाया, उसने आदमको ललचाया। स्त्री-जातिका क्या यही अध्ययन है? जालपाका केन्द्रीय अपराध रमाकी दुर्बलताओंको—उसके मौलिक अपराधको—उभारनेका कारण हुआ है। वे दुर्बलताएँ उभरकर निरन्तर उसका शिकार करती चली गई हैं। जब तक इन सबका समाधान नहीं हो जाता है और रमा जालपाके पास जब तक उस रूपमें लौटकर नहीं आता, जिसमें जालपा उसे अपना सकेगी, तब तक प्रायश्चित्त की कहानी पूर्ण नहीं हो सकती। जालपाकी आभूषण-प्रियताकी कहानी भले ही पहली अवस्थामें समाप्त हो ले, रमाकी शुद्धिके साथ जालपाकी भी योग्यता, उसे साधे रखनेकी, बढ़नी चाहिए। यह उद्योग प्रेमचन्द घरकी जड़ और जीर्ण दीवारोंके अन्दर नहीं करा सकते। इसके लिए बहिर्जगत्के विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता है, जहाँ जीवनका मूल्य जीवनके बाज़ारमें कूता जाता है और जहाँ देश-काल उन्मुक्त होकर अपने प्रभावसे मूल्यकी घटा-बढ़ीमें क्रियात्मक सहयोग देते हैं।

इस विशाल क्षेत्रमें जब ये पात्र उतरते हैं, तो एक बात बड़ी विलक्षण दिखाई पड़ती है। रमाका प्रायश्चित्त तो उसके कर्मके साथ-साथ घरमें ही आरम्भ हो गया था। चारों ओर भय और अपमानकी मूर्त्तियाँ उसे दीखती थीं, भले ही वह जालपाके सौन्दर्यसे आश्वस्त रहा हो। घर छोड़कर उसे यही भय घेरे रहा है, यही भय अन्त तक उसके साथ रहा है—यह तो सब मानसिक क्रान्ति थी। शरीरतः तो हम उसे देवीदीनके यहाँ और पुलिसमें भी सुखी ही पाते हैं। पुरुष केवल मानसिक प्रायश्चित्त कर रहा प्रतीत होता है। जालपाको हम मस्तिष्क और शरीर दोनोंसे व्यग्र पाते हैं ; पर वह मानसिक प्रायश्चित्तमें उतनी प्रवृत्त नहीं, जितनी शारीरिकमें। घरमें भी पिताकी सेवा और निकटता पतिके चले जानेके बाद उसे करनी पड़ती है। बाहर तो वह फाँसीपर चढ़ाए जानेवाले अपराधियोंके कुटुम्बकी स्वेच्छासे क्षुद्र-से-क्षुद्र सेवा भी करती है। क्षुद्रताओंने उसे महानता प्रदान की है। उसका प्रायश्चित्त स्वेच्छासे उस कष्टको स्वीकार करनेसे ही पूर्ण हुआ है। रमाका जड़ीभूत, मोहग्रस्त मस्तिष्क और हृदय भी उसीसे उबरा है। हमें कितना स्पष्ट दीखता है कि जालपा जगत्की यथार्थताको समझती है, मानव-हृदयकी गतिको समझती है, और उसीके कारण उसमें असाधारणता और आदर्शका उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। रमा कल्पनाओंमें उड़नेवाला, जड़-जगत्से टकरा-टकराकर अन्धकारावृत्त होता जाता है। जालपा यथार्थ जगत्का मर्म समझकर उसे टकरा-टकराकर उसमें से कल्याणका स्वर्ग रचनेको अग्रसर होती है।

मौलिक अपराधके लिए स्त्रीको ही पुरुषका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा—मनसा भी और कर्मणा भी। कोरी संवेदनामें प्रायश्चित्त का अणु भी नहीं, वह संवेदना क्रियाशील होनी चाहिए। इस प्रकार 'ग़बन' मानवके मूल अपराधोंका शाश्वत महाकाव्य है। पर उस महान् मानवताको प्राप्तकर अन्त कहाँ है? रतनको मरना था, वह मर गई। तब ज़ोहरा क्यों डूबी? किसीको बचानेमें डूबा क्यों जाता है? उस अवसरपर फिर जालपाको हम क्यों मोहाविष्ट पाते हैं? क्यों उसे रमाके प्राण इतने प्यारे हैं, ज़ोहराके नहीं? यह सुखद दृश्य भी इस एक अवसादकी बूँदसे अन्तमें क्यों कलुषित हो गया? रमा स्वरिकके यहाँ रहा, ज़ोहरा वेश्या होकर भी उसके लिए त्यागशालिनी बनी। जालपाने जाति-गत दर्प छोड़कर भी हीन-से-हीन वर्गकी सेवा की। इन सबसे भी क्या 'मानव'के लोकमें यथार्थ मानवताकी प्रतिष्ठा नहीं हुई। प्रेमचन्दका यथार्थ अयथार्थको यहाँ आदर्श बनानेके लिए भी उस घरमें स्वर्ग नहीं ला सका। प्रायश्चित्त और पश्चात्तापकी जीवनमें सदा अपेक्षा है। मानव जब पूर्णता नहीं पा सका है, तब निर्दोष सुख भी कहाँ है? यह अपने और पराएकी परिखाएँ इस वर्त्तमानमें व्याप्त सामाजिक रूढ़ियोंमें क्या योंही ध्वस्त हो जायँगी?

प्रेमचन्दके 'ग़बन'में हमें गांधीवादी प्रगतिके दर्शन होते हैं। जालपाके समस्त साधन गांधीवादी हैं, और उसीकी विजय होती है। हृदयका भाव समाजकी जाति-परम्पराओंको कुछ कालके लिए इतस्ततः कर सकता है ; पर जैसे व्यक्तिके स्वार्थका उससे पूर्ण दमन नहीं हो पाता। फलतः सामाजिक दृष्टिसे 'ग़बन' एक महान् ट्रेजेडी—दुःखावसानकी कथा—बन जाता है। यहाँ आकर हम देखते हैं कि जालपा ज़ोहरासे हार जाती है। रतन और ज़ोहरा की भाव-सम्पन्नता जालपासे भी महान् सिद्ध होती है। रतनमें वह स्नेह और त्याग भी यद्यपि परिस्थितियोंका परिणाम है, ज़ोहरामें परिस्थितियोंसे अधिक आत्म-चेतनाका, फिर भी इन दोनोंका व्यक्तित्व अपना महत्व रखता ही है। रतनके लिए भी आत्म-सम्मानके लिए कष्ट भोगनेका मार्ग छोड़कर अन्य मार्ग था। ज़ोहरा-जैसे पात्रोंके लिए तो 'आत्मग्लानि' अनुभव करनेके जीवनमें कितने तो अवसर आते होंगे और वे कितने प्रबल होते होंगे ; पर यह ज़ोहरा ही मानी जानी चाहिए, जो इस प्रकार अपने क्षुद्रत्वपर विजय प्राप्त कर लेती है। जालपाके प्रायश्चित्तमें स्वार्थका पुट सदा विद्यमान है। वह स्वार्थ उसका निजी है, वह सारा कार्य आत्म-जागरणके लिए नहीं करती, यथार्थतः

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आत्म-भोगके लिए ही करती है। ज़ोहराका त्याग आत्म-जागरण के लिए है। वह अपनी खोई हुई आत्माको पाकर अपनेको पूर्णतः खो देती है। जालपा प्रायश्चित्तमें पतिको और घरको पाकर मानो अपनेको पा लेती है। ज़ोहरामें मानव-मात्रके लिए सहानुभूति उसके प्राणोंका स्पन्दन बन जाती है। जालपा अपनी उदारताके चारों ओर गृह और अपने मनकी दीवारें खड़ी कर लेती है। उसको समस्त महानता उन दीवारोंसे टकरा उठती है और क्षुब्ध हो जाती है। ज़ोहराने उन परिखाओंको तोड़ दिया है। उसकी उदारता उन्मुक्त है। भले ही वह तत्कालीन गृह-परिस्थितियोंके कारण हो। इस दृष्टिसे उपन्यासका महान् उत्थान क्षुद्रतासे टकराकर चूर-चूर हो जाता है, और अन्तमें उसकी क्षीण प्रतिध्वनि जालपा और रमाके मन्द शोकाश्रुओं और स्मृतिमें रह जाती है। जर्जरित घरको आरम्भमें भी देखा था। जालपाने तपस्यासे उसका पुनर्निर्माण किया। उसमें प्राचीन Vertical विकास-प्रवृत्तिका केन्द्र टूटकर Horizental विस्तार-प्रवृत्तिका भाव आया है। 'यह मेरा पुत्र है, मुझसे यथार्थतः उत्पन्न' यह घरकी वर्टिकल विकास-प्रवृत्ति है। और 'जो मुझे जिस भावसे ग्रहण करता है, वह मेरा है, मैं चाहे उससे न तो उत्पन्न हुआ हूँ, न किसी संस्कार-विशेषसे संबद्ध हूँ;' यह घरकी Horizental प्रवृत्ति-विस्तृतिमें परिणति है। देवीदीन, जग्गो, रतन, ज़ोहरा, रमा और जालपा एक घर बना रहे हैं। यहीं आदर्शके निकट उपन्यासकार पहुँचा कि चैतन्य हो गया। एक यथार्थकी ठोकर लगाकर उसने वह घर-पतुआ ध्वस्त कर दिया। रमाके निजत्वमें जालपाने विवाह और प्रायश्चित्तसे जो स्थान पाया, क्या वह स्थान ज़ोहरा पा सकी? यहीं एक बड़ा भारी प्रश्न उपन्यासकारने प्रस्तुत कर दिया। ज़ोहराने जिसके लिए प्राणोंको संकटमें डाला, उसके लिए क्या रमाको या जालपाको भी अपने प्राणोंको संकटमें डालना उचित था या नहीं? जालपा, ज़ोहरा आदिके सम्बन्धमें जो सुखमय रूप सामने खड़ा होता जा रहा था, अन्तमें उसे एक आकस्मिक घटनाका धक्का देकर लेखकने अन्त कर दिया है। इस प्रकार बनते हुए घरकी नींवमें किसी मौलिक दुर्बलताकी ओर संकेतकर, जीवनमें विशेष कायरताका स्थान दिखाकर ज़ोहराके उस त्यागपर दो आँसू बहाकर उपन्यासकारने छोड़ रख दी। क्या उसके सामने किसी 'गृहहीन' गृहकी कोई स्वप्नवादी कल्पना आ खड़ी हुई थी? पर यहीं हमें ज़ोहरा और रतन के जीवनमें जो एक अवसाद और शैथिल्य दिखाई पड़ता है, वह क्या है? देवीदीन और जग्गोका तो कोई विशेष रूप इस नए घरमें हमारे सामने खड़ा नहीं होता। वे व्यस्त हैं और व्यस्त हैं। वे मज़दूरीमें व्यस्त हैं। जो काम वे करते हैं, उसके आधारपर उनको विश्वास है, इसीलिए उनके सामने कोई स्वप्न नहीं। पर ज़ोहरा और रतनमें गहरा अवसाद है, आत्मा उत्फुल्लता नहीं। यह इस नए घरकी दूसरी दिशाकी ओर संकेत करता है। गृहकी विस्तृति (Horizentality) भी यथार्थ समस्याको हल नहीं कर पाती। प्रेमचन्दने फिर इस प्रश्न के घरकी ओर दृष्टि नहीं डाली, और वह प्रश्न झूलता हुआ रह गया है। यों दुःखावसानसे क्षुब्ध यह महान उपन्यास उनके हिन्दीके समस्त उपन्यास-साहित्यमें अभी तक एकाकी खड़ा हुआ है।

हिन्दुस्तानी-आन्दोलन क्यों?

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

राष्ट्रभाषाका सवाल दिन-दिन जटिल-सा होता जा रहा है। हमारी क़ौमी ज़बानका प्रश्न एक तरहसे तो बहुत आसान है; लेकिन हिन्दुस्तानमें आज राजनीतिक और साम्प्रदायिक झगड़ोंकी वजहसे राष्ट्रभाषाका सवाल भी झगड़ेका विषय बन गया है। होना तो यही चाहिए कि देशके सभी मामलोंमें तर्क और न्यायकी बुनियादपर काम चले; लेकिन ऐसा होना हर हालतमें मुमकिन नहीं होता। राष्ट्रभाषाका मामला भी तर्कके बजाय भावनाओंका प्रश्न बन गया है।

पूज्य गांधीजीने शुरूमें राष्ट्रभाषाका नाम हिन्दी ही रखा। हिन्दी शब्द कोई संस्कृतका नहीं है, बल्कि यह नाम मुसलमानों का ही दिया हुआ है। इसलिए क़ौमी ज़बानको 'हिन्दी' नाम देकर गांधीजी कोई साम्प्रदायिक सवाल उठाना नहीं चाहते थे। बादमें 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' नाम चलानेकी कोशिश की गई पर इस तरहका लम्बा नाम चल सकेगा, इसकी कोई उम्मीद न थी। आज हालत यह है कि हिन्दी और उर्दू नामोंके हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति और तहज़ीबका सवाल खड़ा जाता है। बहुतसे हिन्दू हिन्दीको ही राष्ट्रभाषा इसलिए हैं कि वह हिन्दुत्वका प्रतीक-सी बन गई है। दूसरी ओर मुसलमान उर्दूको ही देशकी क़ौमी ज़बान क़बूल कराना हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि उर्दू लिखावट और ज़बानमें इस्लामी तहज़ीब समाई हुई है। दरअसल यह दोनों ग़लत हैं। न हिन्दी हिन्दुओंकी ही है और न उर्दू मुसलमानोंकी। हिन्दी-साहित्यसे अगर जायसी, कबीर और रसखान-जैसे कवियोंका साहित्य निकाल दिया जाय

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी अधूरी ही रह जायगी। इसी तरह अगर उर्दूमें से हिन्दू अदीबोंका अदब निकाल दिया जाय, तो वह कितनी ग़रीब बन जायगी! पण्डित ब्रजमोहन दत्तात्रय 'कैफ़ी', जो उर्दू-प्रचारके बड़े करता-धरता हैं, आखिर हिन्दू ही हैं न? और अंजुमने-तरक्क़ी-ए-उर्दूके सदर भी एक हिन्दू ही हैं, यानी सर तेज-बहादुर सप्रू। इस तरह हिन्दी और उर्दू ज़बानोंका सवाल फ़िरक़ेका सवाल नहीं रहता। लेकिन हमारी बदक़िस्मतीसे हिन्दी और उर्दूका झगड़ा हिन्दू और मुसलमानोंका झगड़ा सा बन गया है।

इन सब बातोंका खयाल करके आज गांधीजीने यही तय किया है कि हमारी राष्ट्रभाषाका नाम 'हिन्दुस्तानी' हो। 'हिन्दुस्तानी'से गांधीजीका मतलब है सहल हिन्दी और सहल उर्दू। यह वह ज़बान है, जिसको उत्तर-हिन्दुस्तानके शहरों और गाँवोंमें हिन्दू-मुसलमान वग़ैरह सभी आमतौरपर बरतते हैं। इसमें न तो संस्कृतके कठिन शब्द आते हैं और न अरबी-फ़ारसीके कठिन लफ़्ज़ोंका इस्तेमाल होता है। आजकल हिन्दी-उर्दू-झगड़ेके कारण हिन्दी और उर्दू दोनों धीरे-धीरे कठिन बनती जा रही हैं, और इसलिए यह दोनों धाराएँ एक-दूसरेसे दूर बहती जाती हैं। लेकिन आम जनतामें तो अब भी बोल-चालकी हिन्दी और उर्दूमें ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है। जनताकी सेवाके खयालसे भी यही ज़रूरी है कि हिन्दी और उर्दू ज़बानों को भारी लफ़्ज़ोंसे लादनेके बजाय एक मिली-जुली भाषाका ही प्रचार किया जाय, जिसको सभी आसानीसे समझ सकें। यही हिन्दुस्तानी हमारी राष्ट्रभाषा कहलाए। कांग्रेसने भी हमारी राष्ट्रभाषाका नाम हिन्दुस्तानी ही रखा है। कांग्रेसका हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी प्रस्ताव श्रद्धेय टण्डनजीने ही पेश किया था। इसलिए अब अच्छा तो यही हो कि राष्ट्रभाषाके लिए हिन्दुस्तानी नामका ही प्रचार किया जाय। हिन्दी और उर्दू नाम बुरे नहीं हैं; लेकिन आज देशका जो वातावरण और फ़िज़ाँ है, उसे देखते हुए राष्ट्रभाषाके लिए 'हिन्दुस्तानी' नामका ही आग्रह रखना मुनासिब होगा।

लेकिन 'हिन्दुस्तानी' शब्दके बारेमें जनतामें काफ़ी ग़लत-फ़हमी है। हिन्दीके लोग यह समझते हैं कि हिन्दुस्तानीके नामपर अरबी और फ़ारसीके लफ़्ज़ोंसे भरी हुई उर्दू लाद दी जायगी; और उर्दूके लोग यह समझते हैं कि हिन्दुस्तानीकी ओटमें संस्कृत-भरी हिन्दीका ही प्रचार करनेकी कोशिश की जा रही है। लेकिन यह दोनों खयाल ग़लत हैं। यह तो हमें मानना चाहिए कि दोनों ओरसे कुछ ग़लतियाँ ऐसी ज़रूर हुईं, जिनकी वजहसे इस तरहकी ग़लतफ़हमियाँ फैलीं। कुछ प्रान्तीय सरकारों और संस्थाओंने हिन्दुस्तानी-प्रचारके जोशमें ऐसी भाषाका प्रचार करना शुरू किया, जो उर्दू ही थी और जिसमें हिन्दीमें आम-तौरपर इस्तेमाल किए जानेवाले शब्दोंको जान-बूझकर नहीं रखा गया। रेडियो द्वारा भी हिन्दुस्तानीके नामपर जिस ज़बानका प्रचार किया जाता है, वह उर्दू ही होनेके कारण लोगोंको डर हो गया है कि हिन्दुस्तानीके ज़रिए कांग्रेस या हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा भी सिर्फ़ उर्दूका ही प्रचार करेगी। दूसरी तरफ़ चूँकि गांधीजीने शुरूसे ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ काम किया और 'हिन्दी' शब्दको अपनाया, उर्दूवाले समझते हैं कि वे अब 'हिन्दुस्तानी'के नामपर हिन्दी भाषाका ही प्रचार करना चाहते हैं। लेकिन हिन्दी और उर्दू दोनों ही हलकोंकी यह ग़लत-फ़हमियाँ नामुनासिब हैं। हिन्दुस्तानीके नामपर हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा न तो कठिन हिन्दीका प्रचार करना चाहती है और न कठिन उर्दूका ही। उसका उद्देश्य तो देशमें एक ऐसी आसान ज़बानका प्रचार करना है, जिसको उत्तरके हिन्दू-मुसलमान और साथ-ही-साथ दूसरे सूबोंके भी सब लोग आसानीसे समझ और बोल सकें। ऐसी भाषाका साहित्य आज भी है; लेकिन वह बहुत थोड़ा है। उसे बढ़ाना है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस तरहकी आसान ज़बानका रूप कौन तय करे? यह सवाल महत्त्वका है। इस देशकी क़ौमी ज़बानकी शक्लका फ़ैसला किसी व्यक्ति या संस्थाके ज़रिए नहीं किया जा सकता। हाँ, हिन्दी और उर्दूके कुछ लेखक यह कोशिश ज़रूर कर सकते हैं कि आम जनताकी भाषाको खयालमें रखकर वह ऐसी ही ज़बान लिखें, जो आसानीसे समझी जा सके। इस ज़बानमें आजकी हिन्दी और उर्दू भाषाओंमें इस्तेमाल किए जानेवाले छोटे और मानीसे भरे लफ़्ज़ोंको जगह मिलेगी ही। कुछ नए आसान शब्द भी गढ़ने पड़ेंगे। बहुतसे पारिभाषिक (इस्तिलाही) शब्दोंके लिए भी कोशिश करनेपर काफ़ी आसान और सुन्दर लफ़्ज़ बनाए जा सकते हैं। जहाँ यह मुमकिन न हो, वहाँ संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और अंगरेज़ीसे मदद ली जा सकती है। ज़रूरत पड़नेपर कुछ शब्दोंके सामने ब्रैकेटमें दूसरा पर्यायवाची शब्द दिया जा सकता है, जिससे संस्कृत और अरबी-फ़ारसी जाननेवाले दोनों ही उसका अर्थ समझ सकें। अगर अच्छी भावनासे यह काम किया जाय, तो कठिन नहीं होगा। लेकिन हिन्दुस्तानीके रूपका आखिरी फ़ैसला तो जनता ही कर सकती है। जिन लफ़्ज़ोंको लोग आसानीसे समझेंगे और अपनायँगे, वे चल पड़ेंगे। जो शब्द कठिन होंगे और जनताकी समझमें नहीं आयँगे, उन्हें हम कोशिश करनेपर भी न चला सकेंगे। इस तरह हिन्दुस्तानकी जनता ही धीरे-धीरे हिन्दुस्तानीकी शक्लको खुद निखार देगी और एक आसान, सुन्दर और मुहावरेदार ज़बान हमारी राष्ट्रभाषा बन जायगी।

आज कठिनाई यह है कि हिन्दीके लेखक ज़्यादातर उर्दूसे वाक़िफ़ नहीं हैं और उर्दूके लेखक तो ऐसे बहुत कम हैं, जिन्हें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दी भाषाका ज्ञान हो। इससे हिन्दी और उर्दूका मेल होना मुश्किल है। ज़रूरत इस बातकी है कि कम-से-कम हिन्दी और उर्दूके लेखक और प्रचारक दोनों ज़बानें सीख लें। जब वे दोनों भाषाओंसे या शैलियोंसे परिचित हो जायँगे, तो खुद-ब-खुद ऐसी ज़बान लिख सकेंगे, जो हिन्दी और उर्दूका मिला-जुला आसान रूप 'हिन्दुस्तानी' हो। बहुतसे ऐसे विचार हैं, जिनके लिए हिन्दीमें कोई आसान लफ़्ज़ नहीं है; लेकिन जिनको ज़ाहिर करनेके लिए उर्दू ज़बानमें बड़े सुन्दर शब्द हैं। इसी तरह ऐसे भी बहुतसे विचार हैं, जिनको व्यक्त करनेके लिए उर्दूके बजाय हिन्दीमें बहुत सहल लफ़्ज़ है। लेकिन इन बातोंकी जानकारी उसीको हो सकती है, जो हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानोंसे वाक़िफ़ हो। लेखकोंके अलावा देशके हज़ारों-लाखों सेवक और नवयुवक भी अगर उर्दू और हिन्दी दोनों शैलियोंको सीख लें, तो राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका रूप धीरे-धीरे क़ुदरती ढंगसे ढल जायगा। यह तो निश्चित है कि ज़ोर-ज़बरदस्तीसे कोई भाषा नहीं बन सकती, और राष्ट्रभाषा तो कभी नहीं। इसीलिए आज-कल गांधीजी बार-बार जनता और राष्ट्र-सेवकोंसे अपील करते हैं कि वे हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियोंको सीखनेकी कोशिश करें।

हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं या शैलियोंसे अच्छी तरह वाक़िफ़ होनेके लिए यह ज़रूरी है कि दोनों लिपियाँ भी सीख ली जायँ। बिना नागरी-लिपि जाने हिन्दी भाषा और वर्त्तमान साहित्यका परिचय होना शक्य नहीं है। उसी तरह उर्दू या फ़ारसी-लिपि जाने बिना उर्दू भाषा और साहित्यकी जानकारी हासिल करना नामुमकिन है। साथ-ही-साथ हमें यह भी क़बूल करना चाहिए कि हिन्दी और उर्दूका झगड़ा खासकर लिपिका झगड़ा बन गया है। अगर पंजाब-जैसे प्रान्तमें आर्यसमाजी लोग ठेठ हिन्दी भाषामें लेकिन फ़ारसी-लिपिमें अखबार निकालते हैं, तो वे उर्दूके अखबार ही गिने जाते हैं। ऐसे ही उर्दू-ज़बानमें भी अगर नागरी-लिपिमें अखबार निकलें, तो वे आम तौरपर हिन्दीके ही समाचारपत्र कहलायँगे। इस तरह नागरी और फ़ारसी लिपियोंके पीछे साम्प्रदायिक भावनाएँ फैल गई हैं। हम जब अंगरेज़ी या जापानी भाषा सीखते हैं, तब हमें यह महसूस नहीं होता कि हम कहीं अंगरेज़ या जापानी न बन जायँ। लेकिन उर्दू ज़बान सीखते वक्त हिन्दुओंको ऐसा महसूस होने लगा है कि वे इस्लामी तहज़ीबके फन्देमें फँस रहे हैं। इसी तरह नागरी-लिखावट सीखते समय मुसलमानोंको शायद ऐसा लगता है कि वे हिन्दू-संस्कृतिके चक्करमें पड़ रहे हैं। इस तरहकी ग़लत भावनाओंको धीरे-धीरे मिटानेके लिए भी यह ज़रूरी है कि हम दोनों लिपियाँ सीख डालें, ताकि नागरी या फ़ारसी लिपि किसी खास फ़िरक़ेकी लिखावट न समझी जाय। अगर हम चाहते हैं कि हमारे देशमें पाकिस्तान-जैसी कोई चीज़ खड़ी न हो, तो हमको यह साबित करना होगा कि इस देशके हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं, क्योंकि उनकी भाषा एक है और दोनों ही नागरी और फ़ारसी लिपि जानते हैं। अगर हम हिन्दुओंके लिए हिन्दी भाषा और नागरी-लिपि और मुसलमानोंके लिए उर्दू-ज़बान और फ़ारसी-लिखावट बाँट दें, तो फिर हिन्दी और उर्दू भाषा और साहित्य कभी भी एक न हो सकेंगे, और हमको सचमुच मानना ही होगा कि इस देशमें हिन्दू और मुसलमान दो अलग-अलग जातियाँ हैं, जिनकी संस्कृति अलग है, भाषा अलग है, साहित्य अगल है और तहज़ीब अलग है।

दो लिपियोंको सीखनेका सवाल इतना कठिन और लम्बा व्यवहारिक नहीं है, जैसा कि हम अक़्सर मान लेते हैं। स्विट्ज़रलैण्ड-जैसे छोटे देशमें तीन-तीन भाषाओंका एक साथ चलन है। वहाँके क़रीब सभी पढ़े-लिखे लोग फ्रेंच, जर्मन और इटैलियन भाषाएँ जानते हैं और उन्हें इस्तेमाल करते हैं। कनाडामें अंगरेज़ी और फ्रेंच दोनों भाषाएँ एक साथ चलती हैं। दक्षिण अफ्रीकामें भी अंगरेज़ी और डच भाषाएँ मुल्कके सभी स्कूलोंमें साथ-साथ इस्तेमाल की जाती हैं। हिन्दुस्तानमें राष्ट्रभाषा तो क़रीब-क़रीब एक ही है। हिन्दी और उर्दूके व्याकरण एक-से हैं। बहुत-से लफ़्ज़ एक ही हैं। एक तरहसे हिन्दी और हिन्दुस्तानी भाषाकी दो शैलियाँ हैं, अलग-अलग भाषाएँ नहीं। इसलिए हमारे सामने तो सिर्फ़ दो लिपियाँ सीखनेका ही प्रश्न है। हममें से बहुतसे लोग शायद नहीं जानते कि अंगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और डच एक-दूसरेसे कितनी जुदा ज़बानें हैं। उस हिसाबसे तो हमारे लिए राष्ट्रभाषाका प्रचार करनेकी अपेक्षा सिर्फ़ दो लिपियाँ सीख लेना बहुत आसान है। लोग कहते हैं कि मुसलमान तो नागरी-लिपि कभी सीखेंगे नहीं, आप सिर्फ़ हिन्दीके ऊपर ही फ़ारसी लिपि लाद देंगे। यह भावना उचित नहीं है; क्योंकि इसके पीछे अविश्वास या बेएतबारी छिपी हुई है। हम तो अपनी तरफ़से जितने ज़ोरसे नागरी-लिपि जाननेवालोंसे फ़ारसी-लिपि सीखनेकी अपील करते हैं, उतने ही ज़ोरसे फ़ारसी-लिपि जाननेवालोंसे अपील करते हैं कि वे भी नागरी-लिपि सीख लें।

मैं एक बात और बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हिन्दुस्तानीका आन्दोलन हिन्दी और उर्दूके खिलाफ़ नहीं है। जिस तरह हम राष्ट्रभाषाके नामपर दूसरी प्रान्तीय भाषाओंके विकासमें दखल नहीं देना चाहते, उसी तरह हिन्दी या उर्दू साहित्यकी उन्नतिमें भी हम किसी तरहकी बाधा नहीं डालना चाहते। हाँ, हम यह ज़रूर चाहते हैं कि जनताकी ख़ातिर ख़यालसे हिन्दी और उर्दूके लेखक ज़्यादा आसान ज़बानमें लिखें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गांधीजी चाहते हैं कि गंगा-जमुनाकी तरह हिन्दी और उर्दू दोनों ही बहती रहें ; लेकिन दोनोंके बीचकी एक आसान ज़बानके रूपमें हमें सरस्वती भी चाहिए, जो हमारी राष्ट्रभाषा बन सके। ज़ाहिर है कि हिन्दी और उर्दू धाराओंको सुखाकर हिन्दुस्तानीका प्रवाह नहीं बह सकता ; लेकिन गांधीजीका यक़ीन है कि हिन्दुस्तानी धाराकी वजहसे हिन्दी और उर्दू दिन-दिन एक दूसरेके नज़दीक आती जायँगी और आखिरमें एक हो जायँगी। यह मिलाप क़ुदरती ढंगसे ही हो सकता है।

हमें यह भी खयाल रखना होगा कि हिन्दुस्तानी ज़बानमें हिन्दी और उर्दूके आसान और आमफ़हम शब्दोंके अलावा दूसरी प्रान्तीय भाषाओंके सरल और सुन्दर शब्दोंको भी उचित स्थान मिले। जिन लफ़्ज़ोंका इन दूसरी ज़बानोंमें भी चलन है, उन्हें हिन्दुस्तानी ज़बानमें तरजीह देना मुनासिब होगा। लेकिन जो भी शब्द हिन्दुस्तानीमें लिए जायँ, वे चाहे संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, अंगरेज़ी या किसी प्रान्तीय भाषाके हों, वे हिन्दुस्तानी-व्याकरणके अनुसार ही इस्तेमाल किए जायँ।

आखिरमें हम यह न भूलें कि हमारा झगड़ा अंगरेज़ीसे है, न कि हिन्दी या उर्दूसे। जो स्थान अंगरेज़ी भाषाने इस देशमें बना लिया है, वह हमारी क़ौमकी शानके खिलाफ़ है। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा अंगरेज़ी कभी नहीं बन सकती, न बननी चाहिए। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। अंगरेज़ीको उसकी जगहसे हटानेके लिए यह ज़रूरी है कि हिन्दी और उर्दू दोनोंके ही सेवक अंगरेज़ीके खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलन्द करें। अगर ऐसा करनेके बजाय हिन्दी और उर्दूका आपसका झगड़ा ही चलता रहा, तो फिर अंगरेज़ीको अपने पदसे हटाना मुमकिन न होगा।

मांसाहार और बौद्ध तथा जैन

श्री कामताप्रसाद जैन, डी० एल०, एम० आर० ए० एस०

उस दिन एक मित्रने कहा—'यह क्या ? आप तो कहते थे कि श्री धर्मानन्द कोसाम्बीने अपनी त्रुटि स्वीकार कर ली है और वे अपनी पुस्तकमें यह स्पष्ट कर देंगे कि दिगम्बर जैनोंके साहित्यमें किसी तरह भी मांसाहारका विधान नहीं मिलता।' मैंने कहा—'यह तो कोसाम्बीजीने पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा स्पष्ट किया ही था। अब क्या हुआ ?' मित्र बोले—'देखिए, यह मई मासका "विशाल भारत" है। इसमें पुनः जैनियोंपर मांस-भक्षणका आरोप किया गया है।' मैंने वह अंक देखा। उसमें किन्हीं श्री लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेयने कोसाम्बीजीकी मराठी पुस्तक 'बुद्धदेव'में जो श्वेताम्बर जैनागम ग्रन्थोंसे उद्धरण दिए हैं, उन्हीं के आधारपर तीर्थंकर महावीरको मांसभक्षी और उनके समयके जैनोंमें मांसाहार प्रचलित बतानेका अतिसाहस किया है। अति-साहस इसलिए कि विद्वत्समाज म० महावीरको अहिंसाका अवतार और निरामिष भोजनका प्रचारक सिद्ध करता है[1] और पाण्डेयजी उल्टी गंगा बहाते हैं। पाण्डेयजीने जैन धर्मका कितना अध्ययन किया है, इसके पहले भी जैन धर्मपर उन्होंने कोई लेख लिखा है या नहीं, यह हमको मालूम नहीं। उनके लेखसे तो ऐसा आभास होता है कि वे जैन धर्मके साहित्यमें पैठे ही नहीं हैं और शायद उस विषयपर लिखनेके अधिकारी भी नहीं हैं। जो हो, उन्होंने जो लिखा है, उसकी आलोचना करना हमें यहाँ अभीष्ट है। विज्ञ पाठकोंको हम यह बता देना चाहते हैं कि श्री धर्मानन्द कोसाम्बी इस बातको मान गए हैं कि दिगम्बर जैन ग्रन्थोंमें कहीं भी मांसाहारके पक्षमें कोई विधान नहीं है। विद्वज्जन यह मानते ही हैं कि दिगम्बर-सम्प्रदाय ही मूलतः निर्ग्रन्थ-मतका अनुयायी है।[2] दिगम्बर जैन धर्मके ग्रन्थ भी श्वेताम्बरियोंसे पहले प्रथम शताब्दीमें लिपिबद्ध हो गए थे।[3] उन प्राचीन ग्रन्थोंमें मांसाहारका निषेध प्रतिपादित है। अतः उनसे प्रमाणित है कि मूलतः जैनी मांसाहारके विरोधी वैसे ही रहे, जैसे वे आज हैं।

आश्चर्य है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सभी जैनी शाकाहारी हैं, और जब-जब जैनी शासनाधिकारी रहे,

---

१. लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने म० महावीर-प्रणीत अहिंसा-धर्मका प्रभाव वैदिक धर्मपर पड़ा घोषित किया था। म० गांधीने भी म० महावीरको अहिंसाका सबसे बड़ा अवतार कहा है। यही बात कवीन्द्र रवीन्द्रने भी प्रकट की थी। डा० विमलाचरण लाहाने भी म० महावीरके अहिंसा-धर्मका यह प्रभाव लिखा कि लोगोंने मांस-मछली खाना छोड़ दिया था :—

"Those who came under the influence of Mahavira's personality and teachings, gave up the eating of meat and fishes for good, and adhered to vegetarian diet."

—*Mahavira : His Life and Teachings*, pp. 54-55.

२. "The Jains are divided into two great parties, Digambara and Svetambara . . . The former are almost certainly the same as Nirgranthas, who are referred to in numerous passages of Buddhist Pali Pitakas and must therefore be as old as 6th century B.C."—*Encyclo : Britannica* (11th edition), Vol. XXI—Jains.

३. देखिए—धवलाग्रन्थ (अमरावती) प्रथम खण्डकी भूमिका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने शाकाहारका प्रचार किया। बादशाह अकबरसे मांस छुड़ाने का श्रेय श्वेताम्बर जैनाचार्य हरि विजयसूरिको प्राप्त है। जो पाठक मानव-प्रकृति और मनोविज्ञानसे परिचित हैं, वे स्वयं समझ सकते हैं कि जो साम्प्रदाय आज और मुसलमान बादशाहोंके शासन-कालमें भी निरामिष भोजी रहा, उसके पूर्वज और आराध्य-देव कैसे मांसाहारी हो सकते हैं? कदाचित् यह मान भी लिया जाय कि म० महावीर मांसाहारी थे, तो उनके पश्चात् जैन संघ में ऐसा कौन महापुरुष हुआ, जिसने तीर्थंकरके मांसाहार-विधान को पलटकर जैनोंको पूर्ण शाकाहारी बना दिया? इतिहास ऐसे महापुरुष अथवा ऐसी किसी घटनाको नहीं जानता। उसपर जैन सम्प्रदायके लिए यह विचित्रता क्यों हुई कि उसमें एक भी मांसाहारी नहीं मिलता और उनके शास्त्रोंमें मांसाहार एवं मांसाहारियोंकी निन्दा ही भरी पड़ी है, जब कि बौद्ध सर्वत्र मांसाहारी हैं। बौद्धोंके यहाँ महायान सम्प्रदायगत 'लंकावतारसूत्र'में तो निरामिष भोजनका एकदा ज़ोरोंसे प्रचार भी किया गया था।[४] उसपर भी वहाँ निरामिष भोजन न-कहींका ही रहा। अतः जैन सम्प्रदायकी ऐतिहासिक रूप-रेखा यही बताती है कि जैनी हमेशा निरामिषभोजी रहे। उन्होंने हमेशा मांसाहारका निषेध किया है।

बौद्ध शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपसे मांसाहारका विधान म० बुद्धने किया था।[५] उसी अनुरूप मांसाहारका विधान जैन शास्त्रोंमें नहीं मिलता। स्वयं श्वेताम्बर जैन आगम ग्रन्थोंमें मांसाहारका निषेध मौजूद है। 'आचारांगसूत्र' और 'निशीथसूत्र'में तो वहाँ जाने तककी मनाई है, जहाँ मांस-मछली बिकती हो (मंसखलं मच्छखलं वा इच्चाइ जावेणो अभिसन्धारेज्जा)। सूत्रकृतांगसूत्रके दूसरे अध्ययन में मुनियोंको 'मांस और मद्यको नहीं खानेवाले' (अमज्जमांसासिणो) लिखा है। 'भगवतीसूत्र'के आठवें शतकके नवें उदेशमें कहा गया है कि महारंभ, महापरिग्रह और पंचेन्द्रिय जीवके नरक आयुका बंध होता है (महारंभयाए महापरिग्रहयाए कुणिमाहारेणं पंचेदियवहेणं नेरइयाउयकम्मासरीराप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइया उयकम्मासरारे जाव पयोगबन्धे)। यही बात 'ठाणांगसूत्र' (४) में कही गई है। 'सयूगडांगसूत्र'में दूसरे श्रुतस्कंधके छठे अध्ययनमें अड़तीस गाथाओंमें मांसाहार करनेवालेका वर्णन करके अन्तमें कहा है :—

ये यावि भूजन्ति तहप्पगारं सेवन्ति ते पावम जाणमाणा,
मणं न एयं कुशलं करन्ती, वायावि एसावुइया ऊमिच्छा।

अर्थात्—जो भी उस प्रकारकारका आहार करता है, वह पापको न जाननेवाले अनार्य मानवकी सेवा करता है; परन्तु कुशल मनुष्य मांस-भक्षणके पापको जानता है, उसकी अभिलाषा भी मनमें नहीं करता है—ऐसी (मांस-भोजन-विधान-जैसी) मिथ्या वाणी बोलता भी नहीं। प्रसिद्ध श्वेताम्बर जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी योगशास्त्रमें स्पष्टतः निम्न प्रकार मांस-भोजनका निषेध करते हैं[६] :—

सद्यः सम्मूर्च्छितानन्त जन्तुसन्तान दूषितम्,
नरकाध्वनि पाथेयं कोऽश्नियात् पिशितं सुधीः।

भावार्थ—जीवके नाश होते ही उसमें अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। भला ऐसे मांसको कौन बुद्धिवान भक्षण करेगा! यह मांस तो नरकके लिए पाथेय-रूप है। उसमें निरन्तर जीव उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिए मांस नहीं खाना चाहिए।

अब पाठक ज़रा विचार करें कि स्वयं श्वेताम्बर जैनोंके प्राचीन आगम ग्रन्थों एवं उपरान्त-कालीन शास्त्रोंमें जब मांस भोजनका निषेध किया गया है, तब यह कैसे सम्भव है कि उन ग्रन्थमें उसका विधान मौजूद होगा? ऐसा पूर्वापर-विरोध लिए उल्लेख सर्वज्ञप्रणीत शास्त्रोंमें नहीं हो सकता। वस्तुतः जिन प्रकरणोंमें मांसका उल्लेख हुआ बताया जाता है, उनमें मांसका उल्लेख नहीं है।

किसी भी शास्त्र-प्रकरणका अर्थ उसकी आत्माको बराबर ताक रखकर अंट-संट करना बुद्धिमत्ता नहीं है। श्वेताम्बर शास्त्रोंके जिन प्रकरणोंमें मांस-भक्षणका विधान बताया जाता है, उनमें वस्तुतः वह नहीं है। म० महावीरके विषयमें श्वेताम्बर ग्रन्थोंके आधारपर यह कहना कि उन्होंने दाह और रक्तके दस्तों को शमन करनेके लिए कबूतर और मुर्गीका मांस खाया, सरासर सत्यका गला घोंटना है। दाह और रक्तके दस्तोंमें उष्ण और रक्तपित्तजनक मांसको भला कौन खा सकता है?[७] अतः यह

४. भगवांस्तस्मै तदवोचत्। अपरिमितैर्महामते कारणैर्मांसं सर्वमभक्ष्यं कृपात्मनो बोधिसत्वस्य तेभ्यस्तूपदेशमात्रं वक्ष्यामि।' इन शब्दोंके साथ 'लंकावतारसूत्र'में म० गौतम बुद्धके मुखसे मांसाहारका निषेध कराया गया है, जिससे स्पष्ट है कि बौद्धों में ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें मांसाहारके विरुद्ध भावना जाग्रत हुई थी। सम्भव है, पालिग्रन्थोंमें प्रयुक्त शब्दोंका कुछ और अर्थ हो। (विशेषके लिए 'जैन-बौद्ध-तत्वज्ञान', पृ० १८४-१८५ देखिए।)

५. 'जीवक, तीन प्रकारके मांसको मैं भोजन कहता हूँ—अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित।' (जीवका अपने लिए मारा जाना न देखना, न सुनना और न शंका होना।) 'जीवकसुत्तन्त' (२।१।५), 'मज्झिमनिकाय' (हिन्दी) पृ० २००, 'महावग्ग' (६।१५।२) में म० बुद्धके १२५० भिक्षुओं-सहित मांस भोजन करनेका उल्लेख है। इसी ग्रन्थमें (६।३१।१४) उपर्युक्त तीन शर्तों-सहित मछली खानेका विधान है।

६. इस लेखमें श्वेताम्बर आगम ग्रन्थोंके उद्धरण हमने मुनि विद्याविजयजी व सूरि सागरानन्दजीके लेखोंसे (जैन तत्त्वप्रकाशसे) लिए हैं। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। —वैद्यकमन्त्र

७. 'स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनक वातहरं च'।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरणमें प्रयुक्त 'कवोयसरीरा', 'माजारकडे' और 'कुक्कुडमंसए' शब्दोंका अर्थ पशु-मांस नहीं हो सकता। ये शब्द वनस्पति-वाचक हैं। टीकाकार अभयदेवसूरिने इन शब्दोंका वनस्पति-वाचक ही अर्थ किया है, यथा—'कपोतकः पक्षविशेषस्तद्वद्ज द्वे फले, वर्णसाधर्म्मा ते कपोते कुष्माण्डे आदि।' और—'मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतं, संस्कृतं मार्जार कृतं अपरेत्वाहुः। मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृतं भावितं यत्तत्तथा, किं तत्? इत्याह-कुर्कुटमांसकं बीजपूरकं कटाह आहराहि त्ति निरवधत्वात्।'

इस प्रकार उपर्युक्त शब्दोंका अर्थ कुम्हडा और बिजौरा होता है। इन चीज़ोंको मुरब्बे आदिकी शक्लमें लेनेसे दाह और खूनके दस्तोंको लाभ होता ही है।[८] जैन टीकाकार ही नहीं, संस्कृत भाषाके कोषाकार भी इन शब्दोंका वनस्पतिवाचक अर्थ करते हैं। 'अभिधानसंग्रह—निघंटु'में कपोतको 'कपोताण्ड-तुल्य-फल' और कुक्कुटको वनस्पति-विशेष (श्रीवारकः शितिवरीवितुन्नः कुक्कुटः शिति) लिखा है। 'भगवतीसूत्र'में 'माजारकडे'का अर्थ मुग्धपर्णी वनस्पति किया है। 'हैम अनेकार्थ-नाममाला'में भी ऐसा ही अर्थ मिलता है (मार्जारः स्यात् खट्वांश बिलाडियोः)। इस प्रकार टीकाकारों और कोषकारोंके मतानुसार यह स्पष्ट है कि म० महावीरने रक्त-दाह-शमनके लिए वनस्पति-विशेष शाक-भोजन लानेका ज़िक्र अपने शिष्योंसे किया था। इसपर से उनपर मांस-भक्षणका आरोप लगाना अतिसाहस है। दिगम्बर-मतानुसार एक तीर्थंकरको इस प्रकारका रोग होना सम्भव नहीं है। दिगम्बर-शास्त्रोंमें यह प्रकरण कहीं नहीं है। उसपर दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही शास्त्र कहते हैं कि जैन मुनि औद्देशिक भोजन—उनके लिए खास तौरपर बनाया गया भोजन—नहीं करते। तब यह कैसे सम्भव है कि म० महावीरने खास तौरपर अपने लिए कोई भोजन बनवाकर खाया होगा? अतः म० महावीरकी मांसाहार-सम्बन्धी चर्चा निराधार और काल्पनिक है। उसमें तथ्य नहीं है।

इसी प्रकार श्वेताम्बरीय 'आचारांगसूत्र' और दशवैकालिक-सूत्र'में वर्णित जैन मुनि-चर्या-प्रसंगमें उल्लिखित 'मंसगं'-'अत्थियं'-'तिन्दुयं' शब्द भी वनस्पति-सूचक हैं और अपवाद-रूप हैं। टीकाकार श्री हरिभद्रसूरिने स्पष्टतः उन्हें फल ही बताया है (वनस्पत्यधिकारात् तथा विध फलाभिधाने एते—'अत्थियं'—अस्थिकवृक्ष-फलम्। तिन्दुयं—तेन्दुरुकीफलम् इति)। 'शब्दस्तोमहानिधि' कोषमें मांस सदृश वस्तुका उल्लेख भी इसी नामसे होता बताया गया है, यद्यपि उसका अर्थ फल-विशेष होगा (मांसफला-स्त्री, मांसमिव कोमलं फलं यस्याः। वार्ताक्याम्)। प्रो० हर्मन् जैकोबीने जैन सूत्रोंका विशेष अध्यन किया था। उन्होंने भी इन प्रकरणोंमें आए हुए शब्दोंका अर्थ वनस्पतिवाचक ही किया है। जिस 'आचारांग-सूत्र'में स्पष्टतः मांसका निषेध किया गया है, उसीमें उसका विधान कैसे सम्भव है? आज भी पंजाबमें मक्केको कुक्कड़ी कहते हैं और गुजरातमें हरे चनेको पोपटा कहते हैं। यदि आज कोई कहे कि पंजाबके जैनी कुक्कड़ी और गुजराती जैनी पोपटा खाते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं होगा कि वे पशु-मांस, मुर्गा और तोता खाते हैं, क्योंकि कुक्कड़ी और पोपटका अर्थ क्रमशः मुर्गी और तोता भी है। प्राचीन कालमें कई फल इसी तरह अपने विशेष नामसे प्रचलित होंगे, इसीलिए शास्त्रकारोंने बहुप्रचलित नामसे उन फलों का उलेख किया है। जैन शास्त्र जनताकी बोलीमें लिखे गए हैं, अतएव प्राचीन जैनोंपर मांसाहारका आरोप निराधार है। आज भी प्रायः सभी विद्वान् श्वेताम्बर साधु प्राचीन परम्पराको मानकर वनस्पतिवाचक ही अर्थ करते हैं।

प्रकरणवश यहाँ बौद्ध और जैन श्रमणोंके अहिंसा-सिद्धान्तपर प्रकाश डालना समुचित है। यह बात भी ज्ञातव्य है कि दिगम्बर जैनोंको पुरातन मान्यताके अनुसार म० गौतम बुद्ध स्वयं एक समय दिगम्बर जैन मुनि रहे थे। उस समय वे पूर्ण अहिंसामहाव्रती थे और मांसादि कुछ भी नहीं खाते थे। जैन कहते हैं कि मछलीका मांस खाकर वे भ्रष्ट हुए और बौद्ध धर्मके संस्थापक बने।[९] म० गौतमबुद्धने इस सत्यको निम्नलिखित शब्दोंमें स्वीकार किया है, जिससे उनका दिगम्बर मुनि होना स्पष्ट है—वहाँ सारिपुत्र! मेरी यह तपस्विता थी—अचेलक (नग्न) था। मुक्ताचार, हस्तापलेखन (हथचट्टा) नए हिमादन्तिक (बुलाई भिक्षाका त्यागी), न-तिष्ट-भदन्तिक (ठहरिए कह, दी गई भिक्षाको), न अपने उद्देश्यसे किए गएको और न निमन्त्रण को खाता था।...न मछली, न मांस, न सुरा पीता था।... शाकाहारी था।...केशदाढ़ी नोचनेवाला था।'—मज्झिमनिकाय, १।२।२, (हिन्दी) पृ० ४८-४९।

इससे स्पष्ट है कि जैन मुनि न मांसाहार करते थे, न सुरापान और न ही नियन्त्रण स्वीकार करके औद्देशिक भोजन करते

८. कुष्माण्डं शीतलं वृष्यं स्वादु पाकरसं गुरु।
हृद्यं रूक्षं रसस्यन्दि श्लेष्मलं वातपित्तजित्॥
× × ×
श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कष्ठशोधनम्।
लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुंगमुदाहृतम्॥
त्वक् तिक्त दुर्जरा तस्य वातकृमिक फापहा।
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारुतपित्तजित्॥
इस प्रकार 'सुश्रुत'में भी बिजौरेको मांस कहा गया है।

९. 'सिरि पासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी॥ (दर्शनसार)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

थे। जब तक म० गौतम जैन बुद्ध मुनि रहे, तब तक उन्होंने भी वैसा ही किया; परन्तु जब वे जैन मुनिके पदको छोड़कर मध्य-मार्गके प्रणेता हुए, तब उन्होंने मांस-मछली खाना प्रारम्भ कर दिया।[१०] जैन मुनि-चर्या इससे भिन्न अहिंसक थी। जैन श्रमण ही नहीं, उस समय जैन गृहस्थ भी निरामिषभोजी थे, यह बात बौद्ध ग्रन्थ 'महावग्ग'के निम्नलिखित उद्धरणसे भी स्पष्ट है। जब सेनापति सिंहका निमन्त्रण स्वीकार करके बुद्धने उनके यहाँ मांस खा लिया, तो बौद्ध ग्रन्थकार कहते हैं--'एक बड़ी संख्यामें वे (निर्ग्रन्थ=जैनी) वैशालीमें सड़क-सड़क और चौराहे-चौराहेपर शोर मचाते दौड़ते फिरे कि आज सेनापति सिंहने बैलका बध किया और उसका आहार श्रमण गौतमके लिए बनाया है। श्रमण गौतम जान-बूझकर कि यह बैल मेरे आहार-निमित्त मारा गया है, पशुका मांस खाता है। इसलिए वही उस पशुके मारनेके लिए बधक है। हम अपने जीवनके लिए कभी भी जान-बूझकर प्राणी-वध नहीं करते हैं।'—Vinaya Texts, SBE., Vl. 31-II.[११]

इस उद्धरणमें जैनी म० बुद्धपर औद्देशिक भोजनके रूपमें बैलका मांस खानेके कारण उन्हें उस हिंसाका दोषी ठहराते हैं और स्वयंके लिए कहते हैं कि 'हम अपने जीवनके लिए कभी भी जान-बूझकर हिंसा नहीं करते।' एक गृहस्थ जैनी ही संकल्पी हिंसाका सर्वथा त्यागी होता है--वह जान-बूझकर प्राणी-बध किसी हालतमें नहीं कर सकता। यही बात उपर्युक्त बौद्ध उद्धरणमें कही गई है। जैन मुनि तो पूर्ण अहिंसाव्रती होते हैं। जब तक सिंह जैनी श्रावक रहा, तब तक उसने भी इस नियमको माना; किन्तु बौद्ध होते ही वह मांसाहारपर तुल पड़ा। संयमकी दुर्द्धरताके कारण ही वह जैनी नहीं रहा प्रतीत होता है। अतः जैन और बौद्ध अहिंसाका भेद स्पष्ट है। पहले भी जैनी गृहस्थ संकल्पी हिंसासे दूर निरामिषभोजी होते थे। जीवन भले ही जाय, पर वे जीवनके लालचमें जान-बूझकर प्राणी-बध नहीं करते थे। इसके विपरीत बौद्ध गृहस्थ भिक्षुओंके लिए प्राणी-वध करते थे और भिक्षुओं-सहित बुद्धदेव उसे स्वीकार करते थे।

उस प्राचीन कालमें निस्सन्देह हिंसाका बोलबाला था; परन्तु उसका अन्त म० महावीरके उपदेशसे पूर्णतः हो गया था। म० महावीरसे ढाई सौ वर्ष पहले तीर्थंकर पार्श्वनाथने भी अहिंसा का प्रचार किया था, जिसका प्रभाव यूनान तक पहुँचा था। परिणामतः म० महावीरके जन्मके समय अहिंसा-धर्मको पालने वाले अनेक शाकभोजी जैनी श्रावक भारत और उसके बाहर मौजूद थे।[१२] तब जैन साधुओंको निरामिष भोजन मिलना दुष्कर नहीं था। यज्ञ-यागका भोजन लेना तो जैन साधुके लिए निषिद्ध था। वह तो विधिपूर्वक मिला हुआ निरामिष भोजन ग्रहण करता था। निस्सन्देह यदि जैनी भी मांसाहारी होते, तो बौद्ध ग्रन्थोंमें यह उल्लेख अवश्य मिलता, क्योंकि जैनी बौद्धोंपर मांसाहारका आरोप खुलेआम लगाते थे। यदि जैनी स्वयं जीव-वध नहीं करते थे और बौद्धोंकी तरह ही दूसरों द्वारा मारा गया मांस खा लेते थे, तो फिर दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं रह जाता। ऐसी उस दशामें बौद्ध यह अवश्य कहते कि इस तरह तो जैनी भी जीव-हिंसक हैं, क्योंकि वे भी दूसरों द्वारा मारा गया मांस ग्रहण करते हैं। परन्तु गौतम बुद्धने ऐसा कहीं नहीं कहा। इस प्रसंगमें उन्होंने जैन साधुओंको सब पापोंसे मुक्त बताकर यह आक्षेप अवश्य किया कि वे मार्ग चलनेमें होती हिंसासे नहीं बचते हैं?[१३] यहाँ बुद्ध अज्ञात भावरूपेण भाव-हिंसाका अर्थ नहीं पहचान पाए; किन्तु यहाँ द्रष्टव्य यह है कि बुद्धदेवको भी जैन मुनिके जीवनमें कहीं भी हिंसा नहीं दिखी, सिवा गमनागमन में। यदि जैन मुनि भी मांसाहारी होते, तो बुद्ध उन्हें उस हिंसा का दोषी अवश्य बताते, बल्कि कई प्रकरणोंमें बौद्ध ग्रन्थकार जैन मुनियोंको मांसाहारका त्यागी बताते हैं।[१४] निस्सन्देह जैनोंकी यह विशेषता प्राचीन कालसे रही है। अतएव उनपर मांसाहारका आरोप लाना मिथ्या है और जान-बूझकर जैन महापुरुषोंको बदनाम करना है। जिस मांसमें हर समय जीव उत्पन्न होते रहते हैं, जो हिंसाका घर है, तामस है, उसे सत्व-प्रकृतिके जैनी कभी भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं, यह ध्रुव सत्य है। इतिहास यही बताता है।

---

१०. जीवकसुत्तन्त (२।१।५।), मज्झिमनिकाय (हिन्दी) पृ० २२० और महावग्ग (६।३१।२४)।

११. डा० विमलाचरण लाहा इसी सूत्रको लक्ष्यकर लिखते हैं कि उससे निर्ग्रन्थों (जैनों)का कट्टर शाकाहारी होना प्रमाणित है:
"There is a sutta which vividly paints the character of the Nirgranthas as strong advocates of vegetarian diet."—*Mahavira*, p. 4.

१२. देखिए, संक्षिप्त जैन इतिहास, भा० २, खण्ड १, पृ० १-५।

१३. गौतम बुद्ध कहते हैं—'सब (पाप) वारिसे धुला हुआ, सब (पाप) वारिसे छूटा हुआ, निर्ग्रन्थ (जैन साधु) है। वह जाते बहुत-से छोटे-छोटे प्राणिसमुदायको मारता है। गृहपति निगंठ नातपुत्त इसका क्या विपाक (फल) बतलाते हैं?
—मज्झिमनिकाय, उपालिसुत्तन्त (हिन्दी) पृ० २२५।

१४. 'अचेलो कन्दरमसुको वेसालियम् पटिवसति।...यावदत्थं सुरामांसेन एव यापेय्यम्—न ओदन कुम्मासम्, भुंजेय्यं।
—दीघनिकाय (PTS) ३।९-१० देखिए और संयुक्तनिकाय ४।३१७ भी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषाके डिक्टेटर

प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०

ईश्वरने मनुष्यको बुद्धि और तर्कशक्ति इसलिए दी कि वह सत्यका अधिक-से-अधिक अन्वेषण कर सके और असत्यके अन्धारसे सत्यके प्रकाशमें आ सके। परन्तु उसकी अपार सृष्टिमें कुछ ऐसे अन्धकार-प्रेमी जीव भी निरन्तर देखे जाते हैं, जिन्हें प्रकाशसे सरासर घृणा है। उनकी एक विशेषता यह और है कि वे औरोंको भी प्रकाशमें देखना पसन्द नहीं करते। इसका एक ज्वलन्त प्रमाण डा० ताराचन्दका वह चिट्ठा है, जो उन्होंने हिन्दीकी अपनी ज्ञानहीनताको छिपानेके लिए 'विश्ववाणी' अक्तूबर, १९४४ में प्रस्तुत किया था। आपकी सबसे बड़ी खोजका पहला नमूना यह है : ..'उसका (उर्दूका) साहित्य हिन्दीके साहित्य से बहुत पुराना है।' और ठीक इसीके बादके वाक्यमें आप कहते हैं--'उर्दू हिन्दू-मुसलमानोंके मेल-जोलसे बनी है।' यह समझमें नहीं आता कि डाक्टर साहबकी पहली उक्ति ठीक है या दूसरी। यदि उर्दू हिन्दू-मुसलमानोंके मेल-जोलसे बनी है, तब तो इसका अस्तित्व १५ वीं शताब्दीके पहले सम्भव नहीं जान पड़ता; क्योंकि इसके पहले तो—जैसा कि उर्दू-साहित्यके इतिहासकार रामबाबू सक्सेना तथा बाबू ब्रजरत्नदास और अन्य कई मुसलमान लेखकोंने भी कहा है—सामाजिक अथवा राजनीतिक परिस्थितिमें इतनी शान्तिका वातावरण स्थापित हो नहीं हुआ था कि हिन्दू और मुसलमानोंके पारस्परिक मेल-जोलकी वह स्थिति पैदा होती, जिसके द्वारा दोनोंमें सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो सकते। उर्दूके सर्वप्रथम कवि मुहम्मदकुली कुतुबशाहका समय भी १५५० के लगभग माना जाता है; लेकिन हिन्दी-साहित्यका काल तो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी माना गया है। 'रासो'-साहित्य तथा 'नूरक-चन्दा'की प्रेम-कहानी उपर्युक्त कथनके प्रमाण हैं।

डाक्टर साहबकी भाषा-विषयक परिभाषा भी कम मौलिक नहीं है। आप कहते हैं—'भाषा यानी अदबकी ज़बान।' तब प्रश्न उठता है कि जो आपके 'अदब'के दायरेके बाहर हैं, वे या तो शायद गूँगे हैं या उनका भाव-प्रकाशन भाषा द्वारा न होकर शायद इशारोंके सहारे ही होता होगा। अपनी इसी मौलिक परिभाषाके अनुसार डा० ताराचन्द साहब १९वीं सदीसे पहले हिन्दीका 'नाम और निशान' भी नहीं पाते। अपनी इस नई खोजके समर्थनमें डाक्टर साहबने जो-कुछ लिखा है, वह कुछ इस ढंगसे है, मानो डाक्टर साहबकी अपनी ही खोज हो। किन्तु यदि कुछ अधिक ईमानदारीसे काम लेकर डाक्टर साहब कह देते कि यह जूठन उन्हें सर जार्ज ग्रियर्सनकी मेज़पर से प्राप्त हुई है, तो वे इस अज्ञानके टीकेसे बच जाते। The Modern Vernacular of Hindustan की भूमिकाके २३वें पृष्ठपर सर जार्ज ग्रियर्सनने लिखा था : "The first half of the 19th. century...was the period of the birth of the Hindi language, invented by the English and first used as a vehicle of literary prose composition in 1803 under Gilchrist's tution by Lallujee Lal etc." (अर्थात् १९ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें अंगरेज़ों द्वारा हिन्दी भाषाका आविष्कार हुआ और सर्वप्रथम १८०३ में ग्रिलक्राइस्टकी अध्यक्षतामें काम करनेवाले लल्लूजी लालने उसमें गद्य-रचना की।) इसीके आधारपर डा० ताराचन्द साहबने अपने मौलिक ज्ञानका श्रेय अर्जन करनेकी चेष्टा की है। परन्तु स्वयं ग्रियर्सन साहबको उपर्युक्त कथनके बाद शीघ्र ही अपनी भूलका पता चल गया और १९१८ के Bulletin of the school of Oriental studies में उन्होंने लिखा था : "The present form of literary Hindi or High Hindi is a reversion to the type of the non-Persianised vernaculars of the Upper doab, brought into use by the teachers at the college of Fort William etc." (अर्थात् साहित्यिक अथवा उच्च हिन्दीका वर्त्तमान रूप उत्तरी दोआबकी उसी फ़ारसी-विहीन भाषाका परिवर्त्तित रूप है, जिसका फोर्ट विलियम कालेजके अध्यापकोंने प्रयोग किया था।) इसी विचारका समर्थन करते हुए बरान्निकोवने भी (Modern literary Hindi, G. C. V. B. O. S. P. 379) कहा है : "Khari Boli is an independent idiom having risen on the basis of one of the local dialects." (अर्थात् खड़ी बोली स्थानीय बोलियोंमें से एकके आधारपर बनी स्वतन्त्र भाषा है।) अतः डाक्टर साहबने यदि उस पुरानी जूठनसे ही अपनेको सन्तुष्ट न कर इस बादके कथनपर भी ध्यान दिया होता, तो शायद मौलिकताकी इस फ़ज़ीहतसे बच जाते, क्योंकि हिन्दी (खड़ी बोली) —जिससे उनका तात्पर्य है, उसका वैज्ञानिक आधार—बिजनौर इत्यादिके आसपासकी बोली है, जिसका समय तथा जिसके विकासका क्रम ग्राहम बेलीके अनुसार लगभग उतना ही प्राचीन ठहरता है, जितना हिन्दी-भाषाकी किसी अन्य बोलीका (Urdu the name of a language, JRAS, 1930.)। अतः हिन्दीको १९वीं शताब्दीकी उपज बताना मौलिकताकी पराकाष्ठा है। उसपर भी तुर्रा यह है कि यह निष्कर्ष डाक्टर साहबने 'ठंडे दिलसे ग़ौर' करनेके बाद निकाला है।

पंजाब, पश्चिमोत्तर सरहदी प्रान्त, सिन्ध और काश्मीरमें उर्दूकी अनिवार्य शिक्षाके विरुद्ध जो आन्दोलन किया गया है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसकी आलोचना करते हुए आपने दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचार की नैतिकताको अन्यायपूर्ण ठहरानेकी चेष्टा की है। अपनी इस अकाट्य दलीलपर डाक्टर साहबका हृदय हर्षोन्मादसे एक क्षणके लिए विह्वल हो गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु डाक्टर साहब यह भूल गए कि प्रश्न राष्ट्रभाषाका है, हिन्दी या उर्दू या अन्य किसी भाषाका नहीं। दक्षिण-भारतमें हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रचार राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे तथा वहाँके निवासियोंकी इच्छाके अनुसार किया गया था और आज भी किया जाता है। परन्तु पंजाब या सिन्ध या पश्चिमोत्तर-प्रान्तमें उर्दूके प्रचारके पीछे राष्ट्रभाषासे किसी पवित्र सिद्धान्तका बल नहीं था। ठीक कसौटी तो यह होती कि वे दक्षिण-भारतवासियोंसे ही यह पूछनेका साहस करते कि राष्ट्रभाषाके नाते वे उर्दू पढ़ना चाहते हैं या हिन्दी? इसीके उत्तरसे शायद डाक्टर साहबको 'आँखमें रोड़ा या किंकरी' ठीक-ठीक सूझने लगती।

डाक्टर साहबकी भाषा-विज्ञानकी 'निगाह' भी अत्यन्त प्रशंसनीय है। अपनी इस निगाहसे आप 'हिन्दी, उर्दू और संस्कृतके सम्बन्धपर गौर' करने चले, तो तुरत आ गए अक्षर-विज्ञानपर और बहस करने लगे 'धुनियों' (ध्वनियों नहीं!) पर! शायद इसी तरहकी—बौद्धिक कलाबाज़ियोंसे प्रेरित लोगोंके लिए ही कबीरने कहा है—'आए थे हरि-भजनको, ओटन लगे कपास।' भाषा-विज्ञान और अक्षर-विज्ञानके उनके ज्ञानकी आलोचना करने की विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस सम्बन्धमें 'सरस्वती' (भाग ४६, संख्या ५, पृष्ठ २२१से २२४) में प्रयाग-विश्वविद्यालयके श्री श्यामनारायणने बड़ी योग्यतापूर्वक डाक्टर ताराचन्दकी आँखें खोलनेकी चेष्टा की है। पर अपने प्रयासमें वे कहाँ तक सफल होंगे, यह कहना कठिन है; क्योंकि सोतेको जगाया जा सकता है, लेकिन जागतेको कोई कैसे जगा सकता है? आप बारम्बार यह कहते नहीं थकते कि अनेक प्रकारसे (व्याकरण इत्यादिकी दृष्टिसे) हिन्दी संस्कृतकी अपेक्षा उर्दूके बहुत निकट है। लेकिन क्या यह भी बताना होगा कि उर्दू अपने अविकृत रूपमें आखिर हिन्दीकी 'महफ़िली शैली'के अतिरिक्त और है ही क्या? डाक्टर ताराचन्दका यह कहना कि '१५वीं सदीसे १८वीं सदीके आखिर तक उर्दू ही हिन्दू-मुसलमान शिष्टोंकी भाषा थी', कुछ अंशोंमें सत्य होता, यदि वे 'उर्दू ही' न कहकर 'उर्दू भी' कहनेकी शिष्टता दिखाते। जिस उर्दूसे डा० ताराचन्द साहबका अभिप्राय है, वह पंजाब और संयुक्त-प्रान्तके शहरों तथा देहाती रईसोंके 'दीवानखानों'को छोड़कर शायद ही कहीं सुनाई पड़ती रही हो। और वहाँ भी हिन्दुओं द्वारा इसका व्यवहार जिस मनोवृत्तिके कारण होता रहा है या आज भी होता है, वह अभी हाल ही में कहे गए महात्मा गांधीके वाक्योंमें सजीव हो उठी है। सरहदी गांधी खान अब्दुलगफ़्फ़ारखाँ पिछले दिनों जब महात्माजीके साथ ठहरे हुए थे, तब महात्माजीने उर्दूकी श्यकतापर ज़ोर देते हुए कहा था कि 'मुझे ही देखो, दोस्तके साथ, जिनकी भाषा सरासर उर्दू है, क्या मैं हिन्दीमें बातचीत करूँगा?' यह भावना थी महात्माजीके सौहार्दकी। डाक्टर साहब तो संयुक्त-प्रान्तके निवासी हैं। संस्कृति और शिष्टाचार भारतवर्षमें आज भी प्रसिद्ध हैं। निवासियोंकी यह जन्मजात परम्परा रही है कि वे सुविधा-असुविधाके खयालसे कभी निश्चिन्त नहीं होते। सतत चेष्टा रहती है कि आगन्तुकका स्वागत एवं सत्कार तक सम्भव हो, उसीकी भाषामें तथा उसीके सदाचार-द्वारा करें। इसका प्रमाण यदि देखना हो, तो दूर न होगा। संयुक्त-प्रान्तके हिन्दी-भाषा-भाषी निवासी जब अन्य भाषा-भाषीसे मिलते हैं, तो उनकी सतत चेष्टा है कि वे यथाशक्ति उसीकी भाषामें या उसकी भाषासे जुलती किसी दूसरी भाषामें उससे बातें करें। किन्तु यह कदापि नहीं लगाया जा सकता कि उनके पास भाषा ही नहीं, या विचारों एवं भावोंकी अभिव्यक्तिके अन्य भाषाओंके मुहताज हैं। उनके इस सौजन्य या यदि किसीको कुतर्कोंकी प्रेरणा मिलती है, तो यह मस्तिष्कका ही परिणाम कहा जायगा।

हिन्दुस्तानीकी परिभाषा देते हुए आप कहते हैं—उर्दूके बीचकी ज़बानका नाम हिन्दुस्तानी है।' यों तो परिभाषा अर्थहीन-सी जान पड़ती है, क्योंकि जैसा आधुनिक हिन्दी भाषाके पण्डितों (बेली, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर सुनीति बाबू आदि) ने माना है कि उर्दू हिन्दीकी एक मात्र है। अतः हिन्दी और उर्दूको भाषाकी दो सीमाएँ भ्रमसे खाली नहीं। उपर्युक्त परिभाषाकी टीका करते हुए ताराचन्द साहब स्वयं कहते कि '...लिखावटका वह ढंग जिसमें अफ़ातफ़ी न हो, जो ज़्यादा-से-ज्यादा हिन्दुस्तानी समझमें आ जाए और जिसमें अपनी असली धुनियाँ ग्रामरके नियमोंके मुताबिक लफ़्ज़ोंका इस्तेमाल हो।' इस दृष्टि डाली जाय, तो 'धुनिधारा' (ध्वनियोंका सम्बन्ध तो रणसे है, अतः 'धुनिधारा' प्रयोग कवित्वकी कलाबाज़ीके रिक्त और कुछ भी नहीं।) से संकेत है उच्चारण-प्रणालीके और 'ग्रामरके नियमों'से भाषाके ढाँचेकी ओर। 'ज्यादा-से-हिन्दुस्तानियोंके समझने'की दुहाई देकर परामर्श दिया भाषाको सरल बनानेका। यह सत्परामर्श सुनते-सुनते तो कम-से-कम ऊब ही चुके होंगे। इन कोरे उपदेशोंको कहना अनुचित न होगा कि 'सरल और कठिन' यह क्षिक शब्द (reletive terms) हैं। इनका लेखकपर ही नहीं, वरन पाठककी योग्यतासे भी गहरा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 3004

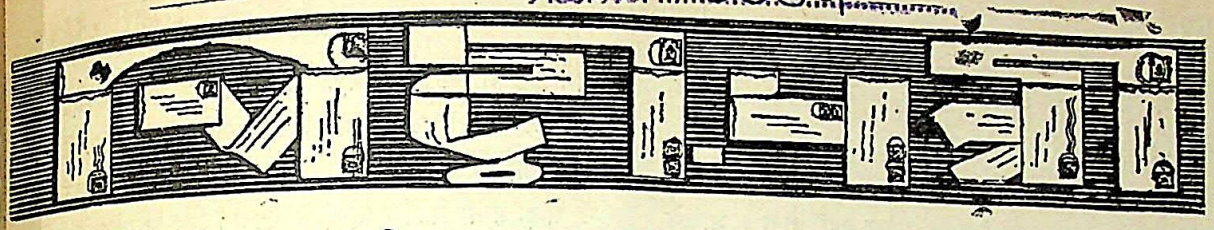

स्व० माधव शुक्लकी स्मृति-रक्षा

राष्ट्रकवि पण्डित माधव शुक्लकी मृत्युके बाद ऐसा सुननेमें आया था कि उनकी स्मृतिको चिरस्थायी बनाए रखनेके लिए कलकत्तेमें स्व० माधव शुक्ल-स्मारक-समितिकी स्थापना हुई है, जिसके सभापति स्व० दुर्गाप्रसाद खेतान चुने गए थे। इस समितिकी कुछ योजनाएँ भी सामने आईं, जिनसे यह आशा हो चली थी कि समिति भविष्यमें शुक्लजीकी स्मृति-रक्षाके लिए कोई ठोस कार्य करेगी। पर दुर्भाग्यवश खेतानजीका असमय ही निधन हो गया और उसके बाद समिति क्या कर रही है तथा खेतानजीके बाद किसने उनका पद ग्रहण किया, यह हम न जान सके। यह तो निश्चित है कि समितिको खेतानजी-जैसा सुयोग्य पथ-प्रदर्शक मिलना कठिन है; फिर भी समितिके कार्यको सुचारु रूपसे चलानेके लिए किसी उपयुक्त सभापतिको चुन लेना आवश्यक ही है। इधर स्मारकके सम्बन्धमें बिलकुल मौन धारण कर लेनेसे ऐसा मालूम होता है कि समिति उदासीन हो चुकी है, क्योंकि इस विषयका कोई समाचार न तो हमें समाचारपत्रोंमें देखनेको मिला, न कहीं अन्यत्र ही। आशा है, समितिके पदाधिकारी इस ओर ध्यान देंगे और शीघ्र अपनी योजनाओंको कार्यान्वित करेंगे।—देवनारायण द्विवेदी, बड़े गणेश, काशी।

भाषा और व्याकरण

देशका कोई भी हितैषी सच्चे अर्थमें बरती जानेवाली 'हिन्दुस्तानी'से मुकर नहीं सकता। पर हिन्दुस्तानीपर जब पक्षपातका बोझ लाद दिया जाता है, तो वह बहुतोंको अखरने लगता है। इसी पक्षपातके कारण आज भाषा-सम्बन्धी एक अनावश्यक विवाद उठ खड़ा हुआ है। 'हिन्दुस्तानी' भाषा वही है, जिसे भारतीय आम जनता (हिन्दू और मुस्लिम) अपने रोज़मर्राके व्यवहारमें लाती और समझती है। आज साहित्यमें भी इस भाषाके प्रचारकी आवश्यकता समझी जाने लगी है और इसीलिए इस भाषाके भण्डारकी पूर्ति एवं वृद्धिके लिए नए-नए शब्दोंका निर्माण किया जा रहा है, या दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो नए सिरेसे भाषा बनाई जा रही है। पर क्या इस तरह भाषा बनाई जा सकती है? क्या घरके कोनेमें बैठकर शब्दोंका निर्माण किया जा सकता है? हाँ, जब विदेशी शब्दोंके उपयुक्त अपने भाषा-कोषमें शब्द न हों, तब उनके पर्यायवाची शब्द अवश्य बनाए जा सकते हैं। पर अपने देशकी जनताकी भाषा और उसके शब्दोंका नव-निर्माण कैसा? इसके लिए घरका कोना छोड़ जनताके पास जाना होगा। वहाँ विद्वानों द्वारा शब्द-निर्माणकी आवश्यकता नहीं रह जायगी। वहाँ शब्दोंका भरा-पूरा भण्डार मिलेगा। फिर भी अगर नई सूझ और आवश्यकताओंका तकाज़ा हो, तो नए शब्द भी जन-शब्द-भण्डारसे लिए जा सकते हैं।

इसी तरह हिन्दी-वर्णमाला भी पूर्णतया वैज्ञानिक और सर्वांगपूर्ण है। इसके सूचक चिह्नोंके वही लाभ हैं, जो इसकी सूचक ध्वनियोंके। यह खूबी अन्य भाषाओंको प्राप्त नहीं। इसीलिए हिन्दीके शब्दोंमें भी कोई झंझट नहीं—जो उच्चारण करते, वही लिखते; जो लिखते, वही पढ़ते। शब्दावयव (हिज्जे) की भी कोई दिक्कत नहीं। ऐसा नहीं कि शब्दोंमें कुछ अनुच्चरित वर्ग हों, या हिज्जे है कुछ और, उच्चारण करते हैं कुछ और। बहुतसे शब्द ऐसे भी हैं, जिनके मूल रूप व्यवहारमें प्रायः बदल जाते हैं। व्याकरणने इन्हें 'अपभ्रंश' कहा है। ऐसे शब्दका प्रयोग केवल अशिक्षित लोग ही नहीं, शिक्षित भी करते हैं। अतः हिन्दुस्तानीमें यह विचार रखना आवश्यक होगा कि जनता द्वारा व्यवहृत शब्दोंके मूल रूपको ठीक माना जाय या व्यवहृत 'अपभ्रंश' रूपको। उच्चारण और हिज्जेकी कट्टरताको मिटाना होगा, इस बातमें सभी हिन्दुस्तानी-समर्थक एक मत हैं।

रखता है। कितनी ही सरल भाषा क्यों न लिखी जाय, शब्द चाहे जितने सीधे-सादे क्यों न हों, भाव कितने ही स्पष्ट क्यों न हों; किन्तु यदि पाठक महोदय भाषा-ज्ञानसे कोरे हैं, प्रयुक्त शब्द उनकी संकीर्ण ज्ञान-परिधिके बाहरकी चीज़ हैं, तो सरल-से-सरल भाषा तथा स्पष्ट-से-स्पष्ट भाव भी उनके लिए कठिन ही प्रतीत होंगे। आजकलके सरल भाषाके हमारे ये उपदेशक प्रायः उपर्युक्त कोटिके ही व्यक्ति हैं। जितनी हिन्दी उन्होंने सीखी है, अथवा जितना संकीर्ण उनका हिन्दी-शब्द-भण्डार है, उस हिसाबसे तो हिन्दीका कोई लेखक शायद ही कोई ऐसी चीज़ लिख सके, जो सरल कही जा सके। ऐसे व्यक्तियोंमें मानसिक आलस्य इतना अधिक होता है कि वे स्वयं अपने शब्द-भण्डारको बढ़ानेकी अपेक्षा इसी उलझनमें रहते हैं कि प्रत्येक लेखक केवल उतने ही शब्दोंमें सब-कुछ लिखनेकी चेष्टा क्यों नहीं करता, जो इनके ज्ञान-कोषकी निधि हैं? इनका सरलता अथवा कठिनताका मापदण्ड अपना निजी ज्ञान अथवा अज्ञान ही हुआ करता है। इस कोटिके व्यक्ति कुछ ऐसे ही होते हैं, जो भारतकी दीन दशापर दुखी होकर आँसू बहाते हुए बात-बातपर कहा करते हैं कि भारतको अपने सुधारके लिए आवश्यकता है एक डिक्टेटरकी। किन्तु वह डिक्टेटर नहीं हो सकते महात्मा गांधी, जवाहरलाल, यह या वह। सच्चा डिक्टेटर तो बैठा है आपके सामने!

CC-0. Jangamawadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाषाके साथ व्याकरणका गहरा सम्बन्ध है। भाषाका प्रवाह निरन्तर अविरल गतिसे स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवाहित होता रहता है। व्याकरण उसे नियमबद्धकर सुव्यवस्थित करनेका काम करता है; पर इसमें सदा वह सफल नहीं होता। भाषाके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि जब-जब भाषाको व्याकरणने जकड़ना चाहा, वह बन्धन तोड़कर नया रूप ही धारण करती गई। भाषा और व्याकरणका यह विरोध सदासे रहा और रहेगा। भाषाके प्रवाहकी भूमि आम जनता है। वह उसे ही अपनाती है, जो उसे उच्चारणमें सरल एवं सुननेमें मधुर मालूम पड़ता है। जब भाषा व्याकरणसे जकड़ जाती है, तो आम जनता उसका साथ नहीं देती। वह अपनी भाषा आप ही अज्ञातरूपेण प्राप्त करती रही है। संस्कृत (नियमबद्ध प्रवाह-हीन भाषा) कुछ विशिष्ट वर्गकी जनताकी परिष्कृत भाषा ही समझी जाती रही है। लोक-साहित्यकार उस भाषा द्वारा जनता तक नहीं पहुँच पानेके कारण जनताकी भाषाको ही अपनाता रहा है। अतः जनताकी भाषाको फिर कठोर नियमबद्ध किया जाना घातक ही होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि व्याकरण भाषाको व्यवस्थित करनेमें सदा असमर्थ ही रहा है, तो फिर व्याकरणकी आवश्यकता ही क्या रह जाती है? व्याकरणके नियम उसीका प्रतिपादन करते, जो आम जनताको पसन्द होता। यदि लेखक आम जनताकी ओर ही ध्यान रखें, तो फिर व्याकरणकी विशेष ज़रूरत ही क्या? और आजके व्याकरण कल बेकाम ही तो हो जाते हैं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि व्याकरणकी आवश्यकता इसलिए है कि भावी सन्तानको हमारी भाषा समझमें आ सके तथा दूसरे भाषा-भाषी भी इसे समझ सकें। पर फिर भी कुछ उलझनें रह जाती हैं। इस उद्देश्यसे लिखे गए व्याकरणकी लेखन-पद्धति और शैली कुछ और ही रहेगी और शायद व्याकरणकी परिभाषा भी बदल जायगी। क्या मैं आशा करूँ कि विद्वज्जन इस प्रश्नोंपर विचार करनेकी कृपा करेंगे।—'नवरंग', साहित्य-कुटीर, पो० बिहारीगंज (भागलपुर)।

लेखकोंके संगठनकी आवश्यकता

लेखकोंके पारिश्रमिकके सम्बन्धमें 'विशाल भारत'के 'चिट्ठी-पत्री'-स्तम्भमें जो चर्चा छेड़ी गई है, देखता हूँ, उस ओर हिन्दी के अनेक पत्र-पत्रिका-सम्पादकों तथा संचालकों एवं लेखकोंका ध्यान कुछ-कुछ आकृष्ट होने लगा है। कुछ मित्रोंने मुझसे पूछा है कि यदि लेखकोंका संगठन किया ही जाय, तो उसकी रूप-रेखा क्या हो? जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, आजके सब प्रकार के संगठनोंके पीछे प्रायः लेखकोंकी क़लमका ही बल रहता है; लेकिन वही क़लमधारी आज अपने संगठनके विषयमें स्वयं कुछ भी सोचनेमें असमर्थ-से हैं। शिष्टता मनुष्यको अपने विषयमें कुछ भी कहने-सुननेकी आज्ञा नहीं देती। [illegible] संकोच आजके हिन्दी-लेखकोंके असंगठनका भी प्रधान [illegible] है। अपनी ओरसे मैं कहूँगा कि इस प्रकारके सात्विक संघ [illegible] पहली सीढ़ी होनी चाहिए हिन्दीके स्वनामधन्य अग्रश्रेणीके [illegible] कोंकी भावनाका परिवर्त्तन। किसी स्वार्थ-भावनासे न [illegible] सिद्धान्तके नाते ही उन्हें बिना यथेष्ट पारिश्रमिकके लिखे [illegible] अपनी पुरानी आदतको बदल डालना चाहिए। इसलिए [illegible] कि उन्हें रुपयोंकी आवश्यकता है, वरन केवल अपने उन [illegible] साथियोंके विचारसे, जिन्हें केवल लेखनी द्वारा ही अपना [illegible] करना पड़ता है। यों तो आजकलके ज़मानेमें इने-गिने [illegible] भाग्यके लाड़लोंको छोड़कर आर्थिक समस्या प्रायः सबके [illegible] रहती ही है; लेकिन एक क्षणके लिए यदि यह भी मान लि[illegible] जाय कि हमारे प्रथम श्रेणीके लेखक प्रायः आर्थिक कठिन[illegible] मुक्त हैं, तो भी उनके अतिरिक्त न-जाने कितने ही ऐसे प्रति[illegible] शाली योग्य हिन्दी-सेवक हो सकते हैं, जो अपनी आर्थिक [illegible] नाइयोंकी वजहसे साहित्य-सेवाके परम पुण्यसे वंचित रह [illegible] हैं। सम्पादक एवं पत्र-संचालक जब यह देखते हैं कि [illegible] प्रोफ़ेसर एवं विख्यात पंडित बिना कुछ लिए ही उनके [illegible] लिखनेके लिए प्रस्तुत ही नहीं, वरन आतुर-से रहते हैं, तो [illegible] ऐसोंकी जो अपनी सेवाका पारिश्रमिक भी चाहते हैं, [illegible] करनेके लिए प्रोत्साहित होते हैं। कम्पोज़ीटर बिना अधि[illegible] दूरी लिए एक लाइन कम्पोज करनेके लिए तैयार नहीं, [illegible] मैन बिना मज़दूरीके दो मिनटका भी समय नहीं दे [illegible] काग़ज़ और स्याही तथा अन्य आवश्यक सामग्री तो दुगुने [illegible] तिगुने दामपर भी यदि मिल जाय, तो सस्ती ही है; [illegible] यह सारा आयोजन किसके लिए? उन्हीं विद्वान, मेधावी [illegible] की प्रतिभाको पत्रोंपर अंकित करनेके लिए ही तो! [illegible] उन्हींका कोई मूल्य नहीं! यह तो कुछ ऐसा ही है कि [illegible] का प्रत्येक व्यक्ति, यहाँ तक कि खिदमतगार तक, खुब [illegible] जाय; लेकिन वर और वधू नग्नावस्थामें ही पेश किए [illegible] आशा है, हिन्दी-विचार-धाराके नायक अपने कर्त्तव्य एवं [illegible] दायित्वकी ओर यथाशीघ्र समुचित ध्यान देंगे।—[illegible] ललिताप्रसाद सुकुल, कलकत्ता-विश्वविद्यालय।

भूल-सुधार

गत मईके 'विशाल भारत' (पृष्ठ २०७-९) में [illegible] महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ : गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'-शीर्षक लेख [illegible] २०८ के पहले कालममें 'ज्योतिषी'का गुजराती रूप 'शास्त्र [illegible] है' लिखा गया है, जो ठीक नहीं है। वास्तवमें 'शास्त्री' [illegible] रातीमें बजाजको कहते हैं। यह संस्कृतके 'क्रय'से निकला [illegible] जिसका अर्थ है कपड़ा बेचनेवाला। —सं०

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

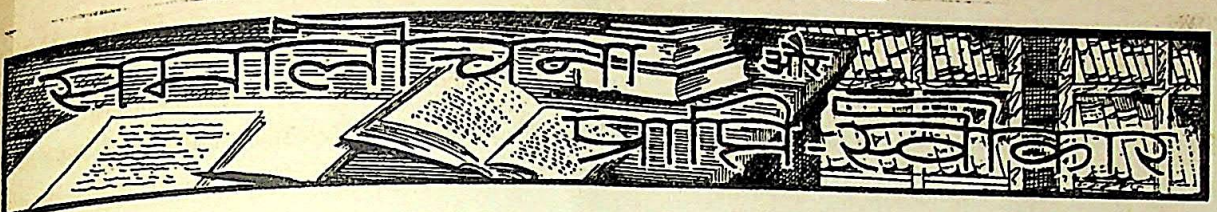

प्रेमचन्द : घरमें : लेखिका—श्रीमती शिवरानीदेवी प्रेमचन्द; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस ; मूल्य ५) ।

प्रेमचन्दजीके साहित्यसे हिन्दी-संसार भलीभाँति परिचित है; पर उनसे, उनके व्यक्तित्वसे शायद बहुत कम लोग परिचित होंगे। और लेखकको भलीभाँति जाने-समझे बिना उसके साहित्यको ठीक-ठीक समझना संभव नहीं। बकौल शिवरानीजीके प्रेमचन्दजीको 'आदमियतकी छाप उनकी एक-एक पंक्ति और एक-एक शब्दपर है।' और 'आदमीकी पहचान तकलीफ़के भँवरमें पड़कर ही होती है और चूँकि हम दोनों साथ-साथ उन तकलीफ़ोंसे लड़े, साथ-साथ रोये और हँसे, इसीलिए मुझे उनकी विशालता का थोड़ा-सा अन्दाज़ लगानेका मौक़ा मिला।' इस तरह 'एक ही नावके यात्री' होनेके कारण शिवरानीजीसे बढ़कर प्रेमचन्दजी के व्यक्तित्वपर प्रकाश डालनेवाले इन घरेलू संस्मरणोंको अधिक यथार्थता एवं अधिकारपूर्वक और कौन लिख सकता था? पुस्तक का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने लिखा है—'मानवताकी दृष्टिसे भी वह व्यक्ति कितना महान्, कितना विशाल था, यही बताना इस पुस्तकका उद्देश्य है।'

पुस्तककी भूमिकामें शिवरानीजीने लिखा है—'साहित्यिकता के भूखे पाठकोंको संभव है इस पुस्तकसे कुछ निराशा हो, क्योंकि साहित्यिकता मेरे अन्दर ही नहीं है।' पर जब हम पुस्तकमें उन्हींके ये शब्द पढ़ते हैं कि 'मैं यहाँ लिख नहीं रही हूँ; बल्कि शान्ति पानेका एक बहाना ढूँढ़ रखा है। बीसों वर्षकी पुरानी बातें याद करके मेरा दिल बैठ जाता है। मेरे वशमें है ही क्या? हाँ, पहली बातोंको सोचकर मुझे नशा-सा हो जाता है। उस नशेसे कोई उत्साह नहीं मिलता है, बल्कि एक तड़पन ही पैदा होती है।' तो विश्वास नहीं होता कि कोई भी सच्चा और सहृदय साहित्यिकताका भूखा पाठक प्रेमचन्दजीकी जीवन-संगिनीका दिल बैठाने और तड़पन पैदा करनेवाले नशेसे लिखी गईं इन पुरानी बातोंसे निराश होगा। कल्पना और मिथ्यावादितासे हीन इन सीधी-सच्ची बातोंका जो साहित्यिक एवं मानवीय मूल्य है, उसके पासंगमें दुनियाका कौन-सा साहित्य ऊँचा उतरेगा?

जैसा कि शिवरानीजीने लिखा है—'पुस्तकके लिखनेमें मैंने केवल एक बातका अधिक-से-अधिक ध्यान रखा है और वह है ईमानदारी, सचाई। घटनाएँ जैसे-जैसे याद आती गई हैं, मैं उन्हें लिखती गई हूँ। उन्हें सजानेका न तो मुझे अवकाश था और न साहस।' पुस्तककी शैली बिलकुल घरेलू और आडम्बर-हीन है तथा भाषामें भी साहित्यिक सजावट नामकी कोई चीज़ नहीं है। घटनाओंका वर्णन भी सीधे-सादे ढंगसे ही किया गया है। प्रेमचन्दजीके बचपन, विनोदप्रियता, शिक्षा, विवाह, दूसरा विवाह, सामाजिक रूढ़ियोंके प्रति प्रेमचन्दजीका विरोध, इंस्पेक्टरी और अध्यापकीका जीवन, 'सोज़ेवतन'के प्रकाशनकी प्रतिक्रिया, गणेशजीसे सम्पर्क, प्रेस लेनेकी व्यवस्था, सरकारी नौकरीसे इस्तीफ़ा, बंगाली बाबूको रुपया उधार देना ('दपोरसंख' कहानी का प्लाट), भाई, बहन और चाचीका बर्त्ताव, लेखक-संघकी स्थापना, अलवर-नरेशको पत्र, प्रेसका कार्य, बेदार साहबके यहाँ शराब पीना, बन्नूका खोना, रायबरेलीका गल्प-सम्मेलन, 'मोटेराम शास्त्री', महात्माजीके दर्शन, राय साहबीकी अस्वीकृति, महिला-आश्रम, होलीपर बेहूदापन, शिवरानीजीका राजनीतिमें सक्रिय सहयोग और जेल-यात्रा, 'हंस' और 'जागरण'का प्रकाशन, प्रेसकी हड़ताल, शारदा-बिल, बम्बईका जीवन, मद्रास-भ्रमण, 'गोदान'का प्रकाशन और आलोचना, गोर्कीके निधनपर शोक और श्रद्धांजलि, प्रेमीजीका साहचर्य और अन्तिम समयकी भारतमाता-मन्दिर देखनेकी लालसा आदिके सिलसिलेमें उनके व्यक्तित्वपर प्रकाश डालनेवाली सैकड़ों छोटी-बड़ी बातें प्रस्तुत पुस्तकमें संग्रहीत हैं।

शिवरानीजीका यदि प्रेमचन्दजीसे पुनर्विवाह न हुआ होता, तो उनका क्या होता और प्रेमचन्दजी समाज-सुधारक कहलाते या नहीं; यह कहना हमारे लिए सम्भव नहीं। पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि उस हालतमें हिन्दी-संसार प्रेमचन्दजी-सम्बन्धी बहुमूल्य इन घरेलू संस्मरणोंसे अवश्य वंचित रह जाता। ये संस्मरण साहित्यकी बहुमूल्य निधि एवं प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषीके लिए पठनीय हैं। इन्हें प्रस्तुत करनेके लिए शिवरानीजी हिन्दी-जगत्के साधुवाद एवं कृतज्ञताकी पात्र हैं। हमें आशा है, ये संस्मरण हिन्दी-संसारमें आदर और रुचिके साथ पढ़े जायँगे।

सतरंगिनी : लेखक—श्री बच्चन ; प्रकाशक—भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ; मूल्य २॥) ।

लगभग एक दर्जन कविता-संग्रहोंकी रचनाकर—जिनमें से कुछके ४-४ और ६-६ संस्करण तक हो चुके हैं—तथा अपने कविता-पाठसे बड़े-बड़े कवि-सम्मेलनोंको मन्त्र-मुग्धकर बच्चनजीने असाधारण कीर्त्ति और लोकप्रियता अर्जन की है। उनके गीतोंकी भाषा सरल, भाव सुगम और छन्द बड़ा गेय होता है। 'सतरंगिनी' यद्यपि उनके १९४२ से '४४ तक लिखे गए ५० फुटकर गीतोंका संग्रह है, तथापि उन्होंने नामकरणके अनुसार ही उसे सात भागोंमें विभक्त किया है। प्रत्येक भागमें ७-७ गीत हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार अपने-आपमें 'सतरंगिनी' एक सम्पूर्ण रचना है। यद्यपि 'सतरंगिनी'के गीतोंमें 'मधुमाला', 'मधुशाला' और 'मधुकलश'की-सी मस्ती नहीं देख पड़ती ; पर कविका स्वर इसमें बदला हुआ ज़रूर है। 'कोयल' और 'पपीहा' कविताएँ इसका उदाहरण एवं प्रमाण हैं। पपीहाको सम्बोधितकर कहे गए ये शब्द कितने यथार्थ एवं अर्थपूर्ण हैं :—

लघुतन विहंगम यह नहीं, यह प्यासको आवाज़ है,
इसमें छिपा ज़िन्दादिलोंकी ज़िन्दगीका राज़ है ;
यह जिस जगह उठती नहीं है मौतका साया वहाँ ;
कहता पपीहा, 'पी कहाँ ?'

इसी तरह 'अँधेरेका दीपक'में कविने कहा है :—

नाशकी उन शक्तियोंके साथ चलता ज़ोर किसका ?
किन्तु ऐ निर्माणके प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना,
जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृतिके जड़ नियमसे,
पर किसी उजड़े हुएको फिर बसाना कब मना है ?

और कविका 'विश्वास' देखिए :—

मृत्यु-पथपर भी बढ़ूँगा मोदसे यह गुनगुनाता
अन्त यौवन, अन्त जीवनका, मरण क्या ?
दो नयन मेरी प्रतीक्षामें खड़े हैं !

हमें आशा है, बच्चनजीकी ये कविताएँ भी उनकी पूर्व रचनाओंकी तरह ही आदर पायँगी, और वे हिन्दी-कविता-उपवनको बराबर अपने कविता-सुमनोंसे सज्जित-सुवासित करते रहेंगे।

—'भग्नदूत'

सामुद्रिक-शास्त्र अथवा मनुष्यका पंर : लेखक—श्री बल्देवप्रसाद शुक्ल 'रमेश' ; प्रकाशक—रमेश ज्योतिष-कार्यालय ; २४, बहादुरगंज, इलाहाबाद ; पृष्ठ ६७ ; मूल्य १।)।

हस्तरेखा-विज्ञान प्राचीन भारतीय विद्वानोंकी संस्कृत-पुस्तकों तथा पाश्चात्य विद्वानों—जैसे कीरो, वैन्हम, सेंट जर्मेन आदि—की पुस्तकोंके आधारपर हिन्दीमें काफ़ी उपयोगी ग्रन्थ निकल चुके हैं। किन्तु मनुष्यके पाँवकी रेखाओं द्वारा उसके भाग्यका उतार-चढ़ाव कैसे पढ़ा जा सकता है, यह दिखानेवाली पुस्तक अभी तक हिन्दीमें नहीं थी। प्रस्तुत पुस्तक इस दिशामें पहला प्रयास है। लेखकके कथनानुसार पंडित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी शर्माको एक परलोक-विद्याके चक्रमें महर्षि भरद्वाजने पाद-रेखा-विषयक एक सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखवा दिया था। प्रस्तुत पुस्तक ही महर्षि भरद्वाज-प्रदत्त वह ग्रन्थ है। इस पुस्तकमें मनुष्यके पैरमें बननेवाली बहुत-सी रेखाओंके चित्र दिए गए हैं, तथा उनके फल वर्णित हैं। इसलिए पुस्तक रोचक तो अवश्य बन पड़ी है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे उसकी उपयोगिता बहुत कम है। हाथकी मूल रेखाओं द्वारा मनुष्यके स्वभाव तथा भाग्यको जैसे क्रमबद्ध रूपसे पढ़ा जा सकता है, वैसी ही पाँवकी मूल रेखाओंका अनुसन्धान करनेकी इस पुस्तकमें कोशिश नहीं की गई। फिर भी ज्योतिष तथा सामुद्रिक-शास्त्रके विद्यार्थियोंके निकट पुस्तक आदर पाएगी, ऐसा हमारा विश्वास है। पुस्तककी छपाई-सफ़ाई साधारणतया अच्छी है।

—'अवनीश'

हमारे सहयोगी

कानपुरके सहयोगी 'रामराज्य'ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमें एक पत्रकार-अंक प्रकाशित किया है। पत्रकारोंसे सम्बन्धित अनेक समस्याओंपर प्रकाश डालनेवाले कई सुन्दर लेख इसमें हैं, जिनमें सर्वश्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, सम्पूर्णानन्द, रसिकमोहन, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, बनारसीदास चतुर्वेदी, नरसिंहराम शुक्ल, पृथ्वीपालसिंह, देवव्रत शास्त्री, प्रेमनारायण अग्रवाल, सत्यनारायण जायसवाल, जयदेव आदिकी रचनाएँ पठनीय एवं मननीय हैं। आशा है, हिन्दी-पत्रकार इसमें उठाई गई समस्याओंकी ओर विशेष ध्यान देंगे। इस अंकके प्रकाशनके लिए 'रामराज्य'के सम्पादक-प्रकाशक साधुवादके पात्र हैं।

हाल ही में पं० गिरीशचन्द्र त्रिपाठीके सम्पादकत्वमें स्वतंत्र सहयोगी 'लोकमान्य' और 'लोकमत' (नागपुर) का संयुक्त कला-उद्योग-विशेषांक प्रकाशित हुआ है। कला और उद्योग-धन्धों एवं युद्धोत्तर औद्योगिक पुनर्निर्माणपर कई सुन्दर और खोजपूर्ण निबन्धोंके अलावा अनेक भावपूर्ण कहानियाँ, सरस कविताएँ तथा सुरुचिपूर्ण लेख भी इस अंकमें हैं। अंककी छपाई-सफ़ाई बड़ी सुन्दर और कलापूर्ण तथा सम्पादन योग्यतापूर्वक हुआ है।

प्रयागका सहयोगी 'अभ्युदय' जो पिछले कुछ महीनोंसे इंडियन प्रेससे कहानी-साप्ताहिकके रूपमें निकलने लगा था, अब फिर श्री भगीरथ पाण्डेयके सम्पादकत्वमें विचार-पत्रके रूपमें निकलने लगा है। इस नए रूपमें वह काफ़ी आकर्षक और पठनीय है। हम सहयोगीकी सफलता और दीर्घ जीवनकी कामना करते हैं।

जोधपुरके सहयोगी 'प्रजासेवक' और अजमेरकी 'मीरां'ने हाल ही में सुन्दर युद्ध-अंक प्रकाशित किए हैं, जिनमें युद्ध-सम्बन्धी अनेक चित्रोंके अलावा कई जानकारीपूर्ण लेख, कविताएँ और कहानियाँ हैं। गुलेरीजीकी 'उसने कहा था' शीर्षक बहुमुद्रित कहानीको युद्ध-अंकमें छापकर 'मीरां'ने सम्पादन-कौशल का एक नया नमूना पेश किया है। उदयपुरके सहयोगी 'नवजीवन'का प्रताप-अंक भी काफ़ी अच्छे रूपमें निकला है। हम अपने इन राजस्थानी सहयोगियोंकी उत्तरोत्तर उन्नति और दीर्घ जीवनकी मंगल-कामना करते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

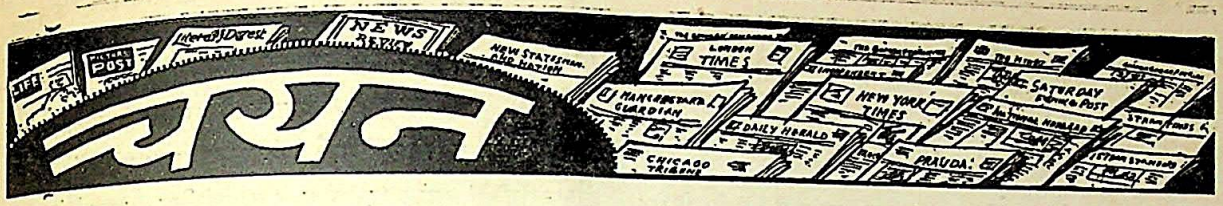

ब्रिटिश जनताकी टोरियोंसे नफ़रत

सन् १९२२ में लायड जार्जके संयुक्त-मन्त्रिमण्डलके टूटनेके बादसे लेकर अब तक टोरी-पार्टी ब्रिटेनके राजनीतिक दलोंमें सबसे प्रमुख एवं मज़बूत रही है। इसके समयमें ब्रिटेनमें बेकारी बढ़ी तथा कृषि, खनिज-पदार्थोंकी उपज, जहाज़रानी और उद्योग-धन्धोंकी अवनति ही हुई है। इसके समयमें ब्रिटेनका प्रभाव और प्रतिष्ठा बहुत कम हो गए। भारत क्षुब्ध और असन्तुष्ट रहा तथा उपनिवेशोंकी उपेक्षा की गई। एक टोरी प्रधान-मन्त्री (बाल्डविन)ने चुनावमें हार न जाय, इसलिए जर्मनीकी धमकियोंसे जनताको अनभिज्ञ रखा और दूसरे (चेम्बरलेन) ने चेकोस्लोवाकियाका म्यूनिखमें बलिदान किया! विदेशी नीतिमें अदूरदर्शिता, शासनमें अयोग्यता और फ़ौजी तैयारीमें ढिलाई एवं अकर्मण्यता ही उसके प्रधान गुण रहे हैं। उद्योग-धन्धोंके विकास एवं रक्षा-साधनोंकी सुव्यवस्था भी वे नहीं कर सके। शासनको हाथमें लेकर उन्होंने अर्थनीतिक सट्टेबाज़ी भी खूब की। आज भी उन धनियोंका समर्थन इसे प्राप्त है, जो म्यूनिख समझौतेको उचित बतलाते और रूसके बजाय अमरीकासे सन्धि-समझौता करनेके ज़्यादा इच्छुक हैं। पिछले ६ चुनावोंमें इन्हें मिले वोटों का विवरण इस प्रकार है :—

चुनाव-वर्ष	टोरी	मज़दूर	लिबरल
१९२२	५५००३८२	४२४१३८३	२५१६२८७
१९२३	५५३८८२४	४४३८५८८	४३१११४७
१९२४	७८५४५२३	५४८९६७७	२९२८७४७
१९२९	८६५६४७३	८३८९५१२	५३०८५१०
१९३१	११९०५९२५	६६४९६३०	१४०३१०२
१९३५	१०४९६३००	८३२५४९१	१४२२११६

उपर्युक्त तालिकामें अन्य दलोंको इसलिए छोड़ दिया गया है कि वे प्रमुख न होकर सहायक-मात्र हैं। इस बार चुनावकी लड़ाईके लिए टोरी-दलने फिर कमर कसी है। चर्चिल और ईडनको छोड़ उसके पास कोई भी महान या महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व का आदमी नहीं है। वह बड़ी चतुराईसे अपने काले अतीतको छिपानेका यत्न कर रहा है। पर जन-साधारण उससे ऊब उठे हैं और नहीं चाहते कि वे फिर उसके जुएमें जुतें।

('लीडर', लन्दन)

अमरीकन अंगरेज़ोंको नहीं चाहते!

लन्दनके 'होराइज़न'में प्रसिद्ध अंगरेज़ी लेखक बरट्रेण्ड रसैलने अभी हाल ही में एक लेख लिखकर अमरीकनों द्वारा अंगरेज़ोंके न चाहे जानेके कारणोंपर विचार किया है। राष्ट्रीयतावादको इस युगकी बेवकूफ़ी बतलाते हुए आपने अपने ब्रिटेन और अमरीकाके जीवन एवं अनुभवोंका उल्लेखकर लिखा है : बुद्धिजीवी मध्य-श्रेणीके जो सरकारी और ग़ैरसरकारी प्रतिनिधि लन्दन और वाशिंगटन जाते हैं, वे कट्टर राष्ट्रीयताकी भावनाओं से ऊपर नहीं उठ पाते। दोनोंकी देशभक्तिकी भावनाओंमें भी बड़ा अन्तर है। सरकारी विभागों और लोकतन्त्रके बारेमें भी दोनोंकी भावनाएँ एवं धारणाएँ भिन्न हैं। इन मामलोंमें अध्यापकोंकी परिभाषात्मक एवं विश्लेषणात्मक चोज़ोंकी खपत ज़्यादा है। स्कूल-कालेजोंमें जो पढ़ाई होती है, उसपर भी उग्र राष्ट्रीयताकी भावनाका काफ़ी असर है। जनताके बजाय लेखकों एवं अध्यापकोंपर धनिकवर्गका असर ही अधिक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमरीकामें अच्छे बुद्धिमानों एवं विद्वानोंकी कमी नहीं है ; पर जन-साधारण ब्रिटेनके सम्बन्धमें बड़ा अनभिज्ञ एवं मिथ्या धारणाओंका अभ्यस्त है। यह आशा की जानी चाहिए कि भविष्यमें एक-दूसरे देशकी उचित जानकारी और उसके लिए आदरकी भावना बढ़ेगी और अमरीकाकी श्रेष्ठता तथा उच्चता उसकी राष्ट्रीयताको अधिक उग्र नहीं बनायगी। साथ ही ब्रिटेन और अमरीकाके स्वार्थोंका सामंजस्य सम्भवतः अमरीकामें असंदिग्ध रूपसे अंगरेज़ोंके प्रति जो घृणा है, उसे अवश्य कम करेगा।

दुनियाके लिए एक नई भाषा

१९ वर्ष पहले वैस्टलीड्स हाई स्कूलके एक १२ वर्षीय छात्रने रेड-इण्डियन्सके बारेमें पढ़ाई जानेवाली एक पुस्तकके एक चित्रके आधारपर एक संकेत-भाषाका आविष्कार किया था। जार्ज बरनार्ड शाके प्रोत्साहनपर अब उसीको उसने एक विश्व-भाषाका रूप दिया है, जिसकी प्रसिद्ध अंगरेज लिपि और भाषा-विशेषज्ञ सर रिचार्ड पेजेटने भी प्रशंसा की है। इस भाषाका नामकरण **'मोनलिंग'** किया गया है। इसकी वर्णमालामें कुल २० अक्षर हैं और शब्दकोष कुल ८०० शब्दोंका है।

इसके आविष्कारकका नाम है केनेथ लिटिलवुड, जिन्होंने लैटिनमें विशेष योग्यताके साथ मैट्रिक पासकर रायल एयरफोर्समें क्लर्की कर ली। ३ वर्ष बाद इनका तबादला इराक हो गया, जहाँ इन्होंने अरबी पढ़नेकी कोशिश की ; पर लिपिकी दुरूहताके कारण नहीं पढ़ सके। फिर इंग्लैण्ड लौटकर इन्होंने चीनी और रूसी भाषाएँ सीखीं और फिर उच्चारणके अन्दाज़से अपनी भाषा की लिपि और शब्दकोष तैयार किए। अब वे और उनकी मँगेतर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कुमारी विनीफ्रेड कार्ल्वर्ट इसे भलीभाँति बोल और लिख लेते हैं। (रिनाल्ड्स न्यूज़')

रूसमें भारतके प्राचीन ग्रन्थ

सबसे पहले भारतीय विद्याओंके जानकार रूसी विद्वान जरासिम लेबेदफ़ थे, जो १५० वर्ष पूर्व भारत आए थे। उनके कार्यका जहाँ भारतीय रंगमंचपर बड़ा असर पड़ा, वहाँ उनके द्वारा रूसमें भारतीय भाषाओंके अध्ययनका भी श्रीगणेश हुआ। १९२५ में ताशकन्दकी उज़बेक-सरकारने बुखाराके अमीरों और खीवाके खानोंके कुछ अरबी, फ़ारसी, तुर्की और उज़बेकीके हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्र किए; जो सम्भवतः १९४४ में उज़बेक-विज्ञान-परिषदको दे दिए गए। परिषदके आदेशपर अध्यापक अलक्षेन्द्र सेमेनफ़ने इनमें से कोई ३००० की एक सूची तैयार की। इसमें कोहक़ाफ़के प्रसिद्ध कवि खकनी (जिनकी मृत्यु हिजरी सन् ५८२-८४के बीच हुई) की तर्ज़पर ट्रांसकाकेशियन, मध्य-एशिया, ईरान और भारतके कवियों द्वारा लिखी गई फ़ारसी कविताओंके कई संग्रह भी शामिल हैं। खकनीका प्रतिनिधित्व किसी हद तक भारतीय कवि अब्दुर्रहमान जामीने किया है, जिनकी अपनी हस्तलिपिमें लिखा हुआ एक काव्य भी इस संग्रह में है। सादीका हिजरी सन् ७२२ का एक संग्रह भी है, जो उनकी मृत्युके २९ वर्ष बाद नक़ल किया गया था। जलालुद्दीन रूमीके 'मग़फिरातनामा'का औरंगज़ेबके दरबारमें रहनेवाले सुलेखक मीर मोहम्मद बाक़िर द्वारा तैयार किया गया एक सुलेख भी है। यहियाऊस द्वारा संकलित दिल्लीके सुल्तानों का इतिहास 'तारीखे-मुबारकशाही' और 'सिहरिन्दी' तथा अब्दुल-हमीद लाहौरीका 'पादशाहनामा' भी हैं, जिनका यूरोपीय भाषाओं में कोई पूर्ण अनुवाद नहीं है। सैयद जमाल शीराज़ी-लिखित सिन्धके शासकोंका इतिवृत्त 'तरखाननामा' और 'खुलासात उत्-तवारीख' (आरम्भसे लेकर औरंगज़ेबके शासन-काल तकका भारतका इतिहास), अब्दुलक़ादिर बदायूँनी-लिखित भारतका इतिहास, निज़ामुद्दीन अल्-हारवी-लिखित अक़बरके समयका इतिहास, जहाँगीरकी आत्मकथा, मुन्शी मोहम्मद काज़िम और मोहम्मद साक़ी मुस्तैदीखाँ लिखित जहाँगीरके समयके इतिहास आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अबुलफ़ज़लके 'अक़बरनामा'की आठ जिल्दें भी हैं। इनमें से पहली जिल्द हिजरी सन् १०१५ में लिखी गई थी।

उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रन्थोंके सिवा अबुलफ़ज़ल द्वारा अपने तथा अपने मालिक और मित्र अक़बरके नामसे आने-जानेवाले पत्रोंका एक संग्रह भी है। अब्दुल्ला काबुलीका 'ऐतिहासिक तारीखोंका संग्रह' भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसमें प्रमुख क़िलों, पुस्तकालयों, पुलों, मदरसों आदिके बनवाए जानेकी तिथियाँ दी गई हैं। १६वीं और १८वीं शताब्दीके भारतीय मुस्लिम सन्त तथा ग्रामीणों द्वारा लिखी गई रचनाओंके संग्रह भी हैं। 'फ़र्हंगे-जहाँगीरी' नामक शब्दकोष तथा ज्योतिष, आयुर्वेदके कुछ ग्रन्थ और जयपुरके सवाई राजा जयसिंह द्वारा संकलित गणित-विज्ञानके ग्रन्थ आदि भी हैं। प्रसिद्ध पंजाबी कवि अब्दुल्लाह रूमी, अमीर खुशरू, हफ़ीज़ फ़ैज़ी, उरफ़ी आदिके ईसाकी १५वीं शताब्दीसे लेकर १८वीं तककी रचनाओंके कुछ संग्रह भी हैं। सिराजुद्दीन आरज़ूका एक दीवान और भारत तथा मध्य एशियाके लोकप्रिय अब्दुलक़ादिर बेदिलकी कविताएँ भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। ('तास')

चटगाँवका नरक

सुप्रसिद्ध कम्युनिस्ट कार्यकर्त्री श्रीमती कल्पना दत्तने हाल ही में चटगाँवका भ्रमणकर उसका जो सचित्र विवरण 'लोकयुद्ध'में प्रकाशित कराया है, उससे अराकानकी सड़क दिन-दहाड़े होनेवाले स्त्रियोंके व्यापारपर खासा प्रकाश पड़ता है। उसके कुछ दृष्टव्य अंश इस प्रकार हैं :—

यह अराकानकी सड़क है। साधारण लोग इस सड़क नहीं चलते। परन्तु आज कितनी ही स्त्रियाँ सड़कपर काम कर रही हैं। दल बाँधकर वे सड़कके किनारे मिट्टी खोद रही या सड़कपर पानी डाल रही हैं। ये साधारण स्त्रियाँ नहीं ये फ़ौजी मज़दूरोंमें भर्ती हुई हैं। हमने बहुत-सी औरतों बात की। सभीने शिकायत की कि उन्हें मजूरी ठीक समय नहीं मिलती और दस-पन्द्रह दिनकी मेहनतके बाद यदि दो-रुपए मिल भी गए, तो उनसे गुज़ारा नहीं होता। परन्तु किसीने नहीं बताया कि उनकी साड़ियाँ कहाँसे आईं। जिनके खानेका ठिकाना नहीं है, वे इस तरह सज-धजकर कैसे रहती हैं।

इन औरतोंका कामका समय सुबह आठ बजेसे शामके बजे तक है। उसके बाद सड़कपर उनका कोई काम नहीं रहता परन्तु शामके अँधेरेमें भी आपको कितनी ही औरतें सड़कके दोनों किनारोंपर बैठी हुई मिल जायँगी। आराकानकी सड़क जहाँ अकेले जाते हर भली औरतका दिल काँपता है, अँधेरेमें ये स्त्रियाँ क्या करती हैं? उस रोज़ हमारी आँखोंके सामने एक मोटर-लारी आई और कुछ मज़दूरिनोंके सामने खड़ी हो गई। अन्दरसे खाकी वर्दी पहने एक आदमीने एक साड़ी और एक जोड़ी जूते स्त्रियोंको दिखलाए। एक क्षण तक स्त्रियाँ हिचकिचाईं। फिर उनमें से कुछ आगे बढ़ीं; पर इतनेमें फ़ौजी किसी फ़ौजी अफ़सरकी कारको आते देखकर सिपाही अर्दली लारी चला ले गए।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

वेवेल-योजना

गत १४ जूनको लार्ड वेवेलने 'वर्त्तमान राजनीतिक ज़िच दूर करने और भारतको स्वशासनकी ओर बढ़ाने'की अपनी चिर-प्रतीक्षित योजना 'भारतके राजनीतिक नेताओं'के समक्ष उपस्थित करते हुए कहा—"यह कोई वैधानिक समझौता कराने या थोपनेका प्रयत्न नहीं है।...आज भारतके सामने लाभ उठानेको बड़े-बड़े अवसर और हल किए जानेको बड़ी-बड़ी समस्याएँ उपस्थित हैं, जिनके लिए सब दलोंके प्रमुख व्यक्तियोंका समान प्रयत्न अपेक्षित है। इसलिए सम्राटकी सरकारके पूर्ण समर्थन-सहित मैंने राजनीतिक दलोंकी अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण नई शासन-परिषद बनानेके लिए केन्द्र और प्रान्तीय राजनीतिके सभी भारतीय नेताओंको मुझसे परामर्श करनेके लिए आमन्त्रित करनेका प्रस्ताव किया है। प्रस्तावित नई परिषद प्रमुख जातियोंकी प्रतिनिधि होगी, जिसमें सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानोंका अनुपात बराबर होगा। यदि यह बन सकी, तो इसे मौजूदा विधान के अधीन ही काम करना होगा। किन्तु वाइसराय और प्रधान सेनापतिको छोड़कर, जो अपना युद्ध-सदस्यका पद क़ायम रखेंगे, यह पूर्णतया भारतीयोंकी ही परिषद होगी। यह भी प्रस्तावित है कि वैदेशिक मामलोंका विभाग, जो अब तक वाइसरायके अधीन रहा है, वह—जहाँ तक कि ब्रिटिश भारतका सम्बन्ध है—परिषदके एक भारतीय सदस्यको सौंप दिया जाय। सम्राट की सरकारने एक यह भी प्रस्ताव किया है कि उपनिवेशोंकी ही तरह भारतमें भी ब्रिटेनके व्यापारी और ऐसे ही अन्य हितोंके प्रतिनिधित्वके लिए एक हाई-कमिश्नर नियुक्त किया जाय।"

अपने वक्तव्यमें वाइसरायने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह परिषद अस्थायी होगी और अन्तिम वैधानिक निर्णयपर इसका कोई असर न पड़ेगा। इसका उद्देश्य होगा जापानकी पूर्ण पराजय तक अधिकतम शक्तिके साथ युद्ध-संचालन, नए विधानके बनने और अमलमें आने तक युद्धोत्तर-पुनर्निर्माणके सभी कामोंको भुगताना और भावी विधानकी रूप-रेखापर विचार करना। इस घोषणाके साथ ही आपने कांग्रेस-कार्यसमितिके सदस्योंको छोड़नेकी आज्ञा दे दी और अगस्त, १९४२ की अशान्तिके फल-स्वरूप नज़रबन्द किए गए लोगोंकी रिहाईका मसला नई केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंपर छोड़ दिया। नए चुनाव, प्रस्तावित परिषदकी सदस्य-संख्या आदि प्रश्न आपने नेताओंके सम्मेलनपर ही छोड़ दिए हैं।

सद्भावना और सहयोगकी माँग

अपनी घोषणाके अन्तमें वाइसरायने समझौतेके मार्गकी कठिनाइयों और खतरोंकी ओर इशारा करते हुए कहा है—"सभी ओरसे कुछ-न-कुछ क्षमा करने और भूलनेको है। भारतके भविष्यमें मेरा विश्वास है और मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, उसकी महानताको आगे बढ़ाऊँगा। मैं आप सबसे सहयोग और सद्भावना चाहता हूँ।" ये शब्द उनके दिमाग़ नहीं, दिलसे निकले जान पड़ते हैं और इन्हें पढ़ने-सुननेके बाद उनकी नेक-नीयतीमें शक या अविश्वास करना शराफ़त नहीं कहा जा सकता। पर इस बातका अफ़सोस और ताज्जुब हमें ज़रूर है कि अपनी घोषणामें हर जगह 'राजनीतिक' शब्दका प्रयोग करनेके बावजूद उन्होंने शासन-परिषदमें 'सवर्ण हिन्दुओं' और मुसलमानोंकी समानता रखनेकी बात कही और इन दोनोंके प्रतिनिधि-स्वरूप निमन्त्रित किया गांधीजी और जिन्नाको! सभी प्रमुख राजनीतिक दलोंके प्रतिनिधित्वकी दुहाई देकर भी देशकी सबसे बड़ी और अधिकतम प्रतिनिधि-संस्था कांग्रेस तथा राष्ट्रपतिको बुलाना उन्हें शायद आवश्यक नहीं जान पड़ा। यदि गांधीजीने हिन्दुओंके साथ प्रयुक्त 'सवर्ण' विशेषणपर आपत्तिकर उसे लार्ड वेवेल द्वारा अज्ञानतावश प्रयुक्त न बतलाया होता और कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करनेकी अपनी वैधानिक अयोग्यता प्रकटकर राष्ट्रपतिको आमन्त्रित किए जानेकी दूरदर्शितापूर्ण एवं उचित सलाह वाइसरायको न दी होती, तो शायद 'सब प्रमुख राजनीतिक दलोंके प्रतिनिधियों'को लेकर होनेवाले शिमला-सम्मेलनमें कांग्रेस अनुपस्थित ही रहती। ज़रा ठण्डे दिल व दिमाग़से लार्ड वेवेल स्वयं सोचें, क्या भारतीयोंकी सद्भावना और सहयोग प्राप्त करनेका यही तरीक़ा है?

सहयोग और सद्भावना देनेमें भारतीय कभी भी कृपण या अनुदार नहीं रहे। पर दूधका जला मठा भी फूँक-फूँककर पीता है। मलका विक्टोरियाकी घोषणासे लेकर वेवेलकी योजना तकमें हमें फूट डालकर शासन करनेकी साम्राज्यवादी दुर्नीतिकी ही बू आती है। इसका एकमात्र कारण कपटी और अदूरदर्शी अंगरेज़ राजनीतिज्ञ ही हैं। आज़ादी और स्वशासनका ढिंढोरा पीटकर भी उन्होंने हमें जेलों और दमन-दावानलकी ओर ही धकेला है। उनकी कथनी और करनीके इस अन्तरने ही आज बरबस हमारे दिलोंमें उनके प्रति घृणा, क्षोभ, कटुता और अविश्वास पैदा कर दिए हैं। वेवेल-योजना नई बोतलमें वही पुरानी शराब है। इसमें सिक्ख, हिन्दू और मुसलमानोंके भेदको तो एक तथ्यके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपमें ग्रहण किया ही गया है, साथ ही 'सवर्णों' और शेष हिन्दुओंमें भी—जिन्हें ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंने 'तफ़सीली जातियाँ' संज्ञा दी है—भेद डालनेकी चतुर चेष्टा की गई है। यदि यह बात न होती, तो २५ करोड़ हिन्दुओंको पौने नौ करोड़ मुसलमानोंकी 'समान स्थिति'में ले आने और ६ करोड़ तफ़सीली जातियोंको पौने नौ करोड़ मुसलमानोंसे केवल चौथाई या पाँचवाँ हिस्सा प्रतिनिधित्व देनेकी बातका आधार और सिद्धान्त आखिर क्या है? विश्वास नहीं होता कि इस तरहके प्रतिनिधित्वको लेकर शासन-परिषद बनानेका असली उद्देश्य जापानको हराना है या भारतकी उस राष्ट्रीयताको, जो साम्राज्यवादी कुचक्रों और साम्प्रदायिक गद्दारोंके षड्यन्त्रोंके बावजूद आज ब्रिटिश साम्राज्यवादके लिए एक अदम्य और सफल चुनौती बन चुकी है।

कांग्रेसका यथार्थवादी रुख़

वेवेल-योजनाको ध्यानपूर्वक पढ़नेके बाद कोई भी ईमानदार और निष्पक्ष देशभक्त यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि यह योजना साम्राज्यवादी अन्याय एवं लोकतन्त्र-घातक अनीतिकी पराकाष्ठा है। इस बातकी कल्पना ही हमें क्षुब्ध कर देती है कि इस योजनामें प्रस्तावित परिषदमें उसका कांग्रेसके—जिसने असाधारण लूट, मार, अपमान, अनाचार, अर्थ और कारा-दण्ड आदि सहे हैं—भी उतने ही प्रतिनिधि रहेंगे, जितने उस मुस्लिम-लीगके, जिसके मुखियाओंने न सिर्फ़ कोठियों और पहाड़ोंपर आरामसे अपना वक्त ही गुज़ारा है, बल्कि युद्धकी बहती गंगामें से चुल्लू या लोटे ही नहीं, बाल्टियाँ और बड़े-बड़े हौज़ भी भर लिए हैं। इसके अलावा सबसे बड़ा खतरा इसमें यह भी है कि अगर यह यथातथ्य रूपमें कार्यान्वित होती है, तो कांग्रेस अपने-आप हिन्दू-संस्था हो जाती है और करोड़ों ग़ैर-लीगी मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वका सेहरा अपने-आप लीगके सिर जा बँधता है। इससे जहाँ राष्ट्रीय और अन्य निष्पक्ष मुसलमानोंके साथ बहुत बड़ा विश्वासघात होता है और कांग्रेसके कमज़ोर होनेकी आशंका है, वहाँ देशकी आज़ादीके मार्गमें रोड़ा बननेवालोंकी ताक़त और हौसले भी बढ़ जाते हैं। फिर राजबन्दियोंकी रिहाईका प्रश्न भी पीछे नहीं ठेला जा सकता। कदाचित् इन्हीं कारणोंसे साधारण आदमी अपने-आपको इस योजनाके पक्षमें नहीं पाता।

पर कांग्रेस एक व्यक्ति तो नहीं है, और न ही वह इसे अपने दलगत स्वार्थोंकी ढाल ही बना सकती है। यदि वह आज साधारण आदमीका रुख अख्तियारकर इसे नामंज़ूर कर दे, तो वक़ौल वाइसरायके मौजूदा शासन-परिषद ही क़ायम रहेगी—जिसका मतलब होगा न सिर्फ़ मौजूदा अन्न-वस्त्र-संकट और शासनकी भ्रष्टताका ही जारी रहना, बल्कि बंगालके-से अकाल और शासनके नामपर होनेवाली ज़ुल्म-ज़्यादतियोंके विस्फोटकी पुनरावृत्तिकी पूरी-पूरी संभावना भी। क्रिप्स-योजनाको अस्वीकार करना कितना भी औचित्यपूर्ण क्यों न रहा हो; पर यह आज महसूस करते हैं कि यदि कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेती शायद बंगालके अकाल, इतनी मुनाफ़ाखोरी, अन्न-वस्त्रके और शासनकी वर्त्तमान भ्रष्टताका कुफल असहाय जनताको भोगना पड़ता। आज यदि कांग्रेस अपने सिद्धान्तोंकी एवं अक्षुण्णताकी रक्षाके नामपर असाधारण कष्ट-यातना निरीह देशवासियोंको मुनाफ़ेके लोभी क़साइयों और घूसके सरकारी भेड़ियोंकी दयापर छोड़ दे, तो उसके जन-और राष्ट्रीयताके दावेका मूल्य और महत्व ही क्या रह

कदाचित् इसीलिए राष्ट्रपति आज़ादने कहा है कि योजनाके प्रति कांग्रेसका रुख दलगत विचारोंसे प्रेरित न राष्ट्रीयताके विचारोंसे ही प्रेरित और रचनात्मक है, नहीं; और कांग्रेसने हिन्दू-मुसलमानोंको अनुचित और राजबन्दियोंके न छोड़े जानेके बावजूद न सिर्फ़ सम्मेलनमें भाग ही लिया, बल्कि प्रस्तावित परिषदके अपनी ओरसे नाम देनेका भी निश्चय किया। अपनी राष्ट्रीय रक्षा और उसके खिलाफ़ होनेवाले साम्राज्यवादियों एवं षड्यन्त्रको विफल करनेके लिए उसने मुसलमानों, हरिजनोंके प्रतिनिधियोंके भी नाम देनेका फ़ैसला किया गांधीजी, नेहरूजी, पटेल, राजाजी, भूलाभाई आदिने भी मन्त्रणाको सफलताकी इच्छा प्रकट की है।

जिन्नाकी दुविधा

जहाँ अन्य दलोंने अपने-अपने नाम ६ जुलाई तक के पास भेज देना मंज़ूर कर लिया, वहाँ जिन्नाने मुस्लिम-लीग कार्यसमितिसे पूछे बिना कोई आश्वासन देनेमें असमर्थता की। पत्रोंमें प्रकाशित समाचारोंके अनुसार इसका कारण यह कि वे सभी मुस्लिम सदस्योंकी नामज़दगीका एकाधिकार थे; जब कि वाइसरायने पेश किए जानेवाले नामोंमें से मुसलमानोंकी नामज़दगीका अन्तिम फ़ैसला अपने हाथोंमें है। गत २९ जूनको पहली बार शिमलामें पत्रकारोंके प्रस्तावित परिषदमें हिन्दू-मुसलमानोंकी समानताके अपना रुख स्पष्ट करते हुए जिन्नाने कहा—"शासन-समानताके सम्बन्धमें हमें कोई मुग़ालता नहीं है, क्योंकि मानोंका प्रस्तावित कोटा एक-तिहाईसे अधिक नहीं होगा इस तरह समूची परिषदमें मुसलमान एक-तिहाईकी अल्पहोंगे। इसके विपरीत जहाँ हिन्दू मुसलमानोंके बराबर वहाँ तफ़सीली जातियाँ और सिक्खों और न-जाने और किस जाति या जातियोंके प्रतिनिधि होंगे, क्योंकि नई परिषदकी सदस्य-संख्याका निर्णय होना तो अभी बाकी है तरह किसी भी महत्त्वपूर्ण मामलेमें कांग्रेस आसानीसे जातियों और सिक्खोंके समर्थनकी आशा कर सकती है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक सिक्खोंके प्रतिनिधित्वका सम्बन्ध है, वे भारतके विभाजनके खिलाफ़ हैं तथा उनका राजनीतिक आदर्श और ध्येय वही है, जो कांग्रेसका। फिर वाइसराय और प्रधान सेनापति दो अंगरेज़ सदस्य होंगे। अतः परिषदके इस संगठनसे कांग्रेसको सहज ही बहुमत प्राप्त हो जायगा। मुसलमानोंपर बहुमतके बलपर कांग्रेस द्वारा अपने निर्णय थोपे जानेका कोई पर्याप्त बचाव नहीं है। अतएव हमें सोचना है कि उसके खिलाफ़ क्या सुरक्षा की जाय।" इसके साथ ही जिन्नाने १९४० के लाहौर-प्रस्तावकी दुहाई देकर पाकिस्तानको कार्यान्वित करनेके निमित्त मुसलमानोंके लिए आत्म-निर्णयके अधिकारकी गारण्टी भी चाही है।

पाठक देखेंगे कि वाइसरायकी घोषणामें यह स्पष्ट कर दिए जानेके बावजूद कि यह परिषद अस्थायी होगी और इसका भावी वैधानिक समझौतेपर कोई असर न होगा, जिन्नाने लीगको सब मुसलमानोंका एकमात्र प्रतिनिधि मनवाने और मुसलमानोंके आत्म-निर्णयके अधिकारकी गारण्टी करवानेके-से विवादास्पद प्रश्न ला खड़े किए हैं। बक़ौल राजाजीके ऐसे विवादास्पद प्रश्नोंको इस समय नहीं उठाया जाना चाहिए, क्योंकि उनके पक्ष या विपक्षमें वेवेल-योजनामें कुछ भी नहीं कहा गया है। ऐसे दलगत विचारों और स्वार्थोंको लेकर सर्वदलीय सरकार बन ही कैसे सकती है? रही महत्त्वपूर्ण मामलोंमें कांग्रेसको तफ़सीली जातियों और सिक्खोंका समर्थन प्राप्त होनेकी बात, सो ऐसे मामले देशकी भलाई या जनताके हितोंकी रक्षासे ही सम्बन्धित हो सकते हैं। तब क्या उनमें जिन्ना या उनके प्रतिनिधि प्रतिपक्षी होना चाहेंगे? क्या देशको आज़ादी और जनताकी भलाईमें लीग कांग्रेसके साथ और उससे एकमत नहीं है? फिर यह आशंका तो लीग द्वारा पाँचों मुस्लिम सदस्योंके नामज़द किए जानेकी स्थितिमें भी रह सकती है। आखिर जिन्ना यही क्यों समझते हैं कि परिषदके अन्य सदस्य लीगी सदस्योंके खिलाफ़ ही होंगे? बक़ौल पंतजीके दरअसल अल्पमत तो होगा इसमें हिन्दुओंका, जो मुसलमानोंसे तिगुने होकर भी उनके बराबर ही प्रतिनिधित्व पायँगे। पर तिगुने हिन्दुओंके मुक़ाबलेमें बराबर प्रतिनिधित्व पाकर भी जिन्ना सन्तुष्ट नहीं! वे सरकारसे कांग्रेस बहुमत और उसके निर्णयोंके खिलाफ़ पर्याप्त सुरक्षा ही नहीं चाहते, बल्कि मुसलमानोंके प्रतिनिधित्वके एकाधिकारकी स्वीकृति तथा मुसलमानोंके पाकिस्तानी आत्म-निर्णयके अधिकारकी गारण्टी भी चाहते हैं! इस तरह जिन्ना अस्थायी सरकारके नामपर अपने स्थायी स्वार्थोंको पूरा करा लेनेके लिए आतुर नज़र आते हैं।

९९ फ़ासदी मुसलमानोंके प्रतिनिधि?

ऊपर हमने जिन्नाके वक्तव्यका जो अंश उद्धृत किया है, उसीमें उन्होंने लीग द्वारा ९९ प्रतिशत मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेका भी दावा किया है और कहा है कि पिछले दिनों हुए ७० उपनिर्वाचनोंमें एकके सिवा सबमें लीगको सफलता मिली है। आपने यह भी कहा कि केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं के ६०० मुस्लिम सदस्योंमें से केवल ३० कांग्रेसी हैं। लीगके मन्त्रीने कहा कि ६०० मुस्लिम धाराशास्त्रियोंमें से ४२० लीगके टिकटपर चुने गए हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीधे-सादे मुसलमानोंके दिमाग़में हिन्दू-आधिपत्यका भूत बैठाकर तथा साम्प्रदायिक उत्तेजन देकर जिन्ना और उनके साथियोंने लीगका प्रचार-प्रभाव काफ़ी बढ़ा लिया है। पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि लीग ही समूचे या ९९ प्रतिशत मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। जिन्नाके इस झूठे और स्वार्थपूर्ण दावेका बंगालकी कृषक-प्रजा-पार्टीके नेता श्री शमसुद्दीन अहमद, बंगालके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री श्री फ़ज़लुलहक़ (जिन्हें अनुचित और अनधिकारपूर्ण ढंगसे हटाकर भूतपूर्व गवर्नरने लीगी मन्त्रिमण्डल क़ायम किया था), शिया-मजलिसके प्रतिनिधि तथा केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य श्री हुसेनभाई लालजी, बंगाल-कौंसिलके सदस्य प्रो० हुमायूँ कबीर, आज़ाद मुस्लिम-संघके अध्यक्ष सर अब्दुल हलीम ग़ज़नवी, बिहार के भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री श्री यूनुस तथा जमीयत-उल्-उलेमाए-हिन्द, मुस्लिम-मजलिस, मोमिन-कान्फ्रेंस, अंजुमनए-वतन बलूचिस्तान, मोमिन-अन्सारी कान्फ्रेंस, मज़लिस-ए-क़ुरेश और बिहारकी मुस्लिम इण्डिपेंडेंट-पार्टी आदिने खुले तौरपर विरोध किया है। इनके सिवा देशमें करोड़ों नहीं, तो लाखोंकी संख्यामें ऐसे मुसलमान हैं, जो जिन्ना और साम्प्रदायिक वैमनस्यको आगपर अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंकनेवाले उनके अमीर साथियोंकी लीगके खिलाफ़ हैं। ये जिन्ना या उनके साथियोंसे कम अक़्लमन्द, ईमानदार या इस्लाम-परस्त हर्गिज़ नहीं हैं। पर ये मुल्कको आज़ादी और जन-साधारणकी बेहतरीको अपने मज़हब या स्वार्थसे ऊपर समझते हैं। ये सभी लोग कांग्रेस या हिन्दुओं द्वारा बहकाए गए हों, ऐसी बात तो नहीं है। फिर इनके प्रतिनिधित्वका सेहरा ज़बरदती जिन्ना साहबके सिर कैसे बाँधा जा सकता है?

जिन्नाके ये समर्थक!

भारतीय राजनीतिक समस्याके हलके सम्बन्धमें एक अर्सेसे जिन्नाने जिस अविचार, असहिष्णुता और अड़ंगेबाजीका परिचय दिया है, उससे उनके प्रति देश-विदेशमें काफ़ी दुर्भावना फैल रही है। वेवेल-योजनाके सम्बन्धमें भी उन्होंने जो रुख अख्तियार किया है, उससे लार्ड स्ट्रेबोल्गी-जैसे लोगोंको भी—जो न हिन्दू हैं, न मुसलमान; न कांग्रेस-पक्षीय हैं, न लीग-विरोधी—क्षोभ हुआ है। प्रमुख भारतीय मुसलमानों और मुस्लिम-संस्थाओंने भी उनके रुखपर खेद प्रकट किया है। पर कुछ लोग जिन्नाके समर्थन का भी दम भरते हैं—चाहे उनकी नीति उनकी समझमें आय या न आय। उदाहरणके लिए, शिमलाका २ जुलाईका एक समाचार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखिए—"मि० जिन्नाको भारतके विभिन्न भागों तथा विदेशसे अनेक व्यक्तियों और संस्थाओंकी ओरसे कई तार मिले हैं, जिनमें उनके नेतृत्वमें विश्वास प्रकट किया गया है और शिमला-सम्मेलनमें अख्तियार किए गए उनके रुखको दाद दी गई है।" और इसके बाद तार भेजनेवाले व्यक्तियोंके तो नहीं, पर चन्द संस्थाओंके नाम ज़रूर दिए गए हैं ; जिनमें से उल्लेखनीय हैं—अलीगढ़ और अन्य स्थानोंके मुस्लिम छात्र-संघ, दिल्लीकी चिश्ती-पार्टी और अंजुमन-तबलीगुल-इस्लाम, बम्बईके मैमन-व्यापारी और छुरी-काँटे बनानेवालोंका संघ, पटनाकी मोमिन-कान्फ्रेंस और डरबनका मुस्लिम-एसोसिएशन। अगर हमारी जानकारी और स्मरण-शक्ति धोखा नहीं दे रही, तो इनमें से अधिकांश संस्थाओं (यदि वास्तवमें वे हों, तो) का नाम हम पहली बार देख रहे हैं। फिर जिन्नाके किस रुखकी उन्होंने ताईद की है ? अड़ंगेबाज़ीकी ? यदि हाँ, तो यह समर्थन उतना ही अन्धा और अविचार-पूर्ण है, जितना कि जिन्नाका नेतृत्व। क्या ऐसे ही समर्थनपर जिन्नाको ९९ प्रतिशत मुसलमानोंका नेतृत्व करनेका नाज़ है ?

जिन्नाके रुखका रहस्य

'अमृतबाज़ार पत्रिका'के शिमला-स्थित विशेष प्रतिनिधिने लिखा है—"मि० जिन्नाके निकट सम्पर्कके क्षेत्रोंमें कहा जाता है कि लीगके नेताका यह रुख अब और भी कड़ा हो गया है कि जब तक पाँचों मुस्लिम सीटें लीगके नामज़दोंके लिए ही सुरक्षित न की जायँ, वेवेल-योजनाको स्वीकार न किया जाय।... दूसरी ओर यदि जिन्नाकी बात नहीं चलती और वे योजना अस्वीकार कर देते हैं और यदि लार्ड वेवेल सिर्फ़ कांग्रेसके सहयोगपर ही सरकार बना लेते हैं, तो लीग-नेताको अगले आम चुनावों के लिए एक अच्छा हथियार मिल जायगा और वे मतदाताओंके पास इस नारेको लेकर जायँगे कि मुसलमानोंको कुचलनेके लिए कांग्रेस ब्रिटिश सरकारसे मिल गई है। इस तरह जिन्ना दोनों ही तरह लाभ उठानेकी आशा रखते हैं—अर्थात् यदि पाँचों मुस्लिम सीटें लीगको मिल जाती हैं, तो वह देशके मुसलमानोंकी एकमात्र प्रतिनिधि संस्था बन जाती है ; जिसके परिणाम-स्वरूप लीगके बाहरके मुसलमानोंका कोई राजनीतिक अस्तित्व नहीं रह जायगा और उन्हें अन्ततः लीगकी शरणमें ही आना होगा। दूसरे विकल्पमें मि० जिन्नाको चुनावके लिए एक अनुपम नारा मिल जाता है।"

लीग और मुस्लिम-समस्या

स्थानीय 'सैटरडे मेल'के वार्षिकांकमें मुस्लिम-समस्यापर लिखे गए अपने एक विचारपूर्ण लेखमें राजाजीने कहा है—"मैं महसूस करता हूँ कि सम्भवतः लीग यथार्थमें मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों की भावनाओंका उचित प्रतिनिधित्व न कर मुस्लिम अल्पसंख्यक क्षेत्रोंकी मनोदशा और भावनाओंका ही प्रतिनिधित्व करती है ; जो सर्वथा एक दूसरी चीज़ है। अखिल भारतीय संस्था हो भी लोगपर आतंक है मुस्लिम अल्पसंख्यकोंकी आवश्यकता मुस्लिम-बहुसंख्यकोंकी भावनाएँ उसको प्रेरणा नहीं हैं। अधिक झुकाव है पृथक चुनाव, विशेष संरक्षण और खास आदिकी ओर, न कि अपने बहुसंख्यक क्षेत्रोंको स्वतन्त्र को कोई योजना। मेरे विचारसे सप्रू-फार्मूला पाकिस्तानकी लीगके उद्देश्यके अधिक निकट है। पर इसे स्वीकार नहीं जाता।...यदि मुसलमान महसूस करते हैं कि वे एक और संघ-राष्ट्रमें अच्छे तथा सुखी रहेंगे, तो वे उसमें स्थान प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे अपने स्वतन्त्र भावनासे स्वेच्छा संघके रूपमें संगठित स्वाधीन रहना लाभदायक समझें, तो वैसा कर सकते हैं। यदि दोनोंके बजाय बिल्कुल अलग राष्ट्रके रूपमें रहकर शेष केवल सन्धि-सम्बन्ध ही रखना चाहें, तो ऐसा भी हो सकता किन्तु सम्बन्धित क्षेत्रोंके निवासियोंकी इच्छा बिना या हदबन्दीके आधारपर तो कोई भी उनकी पृथक्करणकी समर्थन नहीं कर सकता। पर फ़िलहाल हम इस समझको रखकर केन्द्रीय सरकारको लोकप्रिय आधारपर संगठित कामचलाऊ समझौताकर तुरन्त इस स्वेच्छाचारिताका कर ही सकते हैं। इसीलिए मैं देसाई-लियाक़तअली-स्वागत करता हूँ, जो, मेरा विश्वास है, मूलतः सप्रू-कामचलाऊ सरकार बनानेके प्रस्तावका ही दूसरा रूप है। पारस्परिक निकट सम्पर्क और संयुक्त ज़िम्मेदारियोंसे सहल हो जाय।"

'कांग्रेस मरी नहीं है !'

विगत ८ अगस्त, १९४२ को सरकारने कांग्रेसी नेताओं गिरफ़्तारकर जो अनुचित, अनावश्यक और अदूरदर्शिता उतावलापन दिखाया था, उसका आंशिक प्रायश्चित्त लार्ड वेवेल गत १४ जूनको उन्हें लगभग तीन वर्ष तक बिना मुक़दमा चलाए नज़रबन्द रखनेके बाद छोड़कर किया। देशके श्रद्धा, विश्वास और आकांक्षाओंके प्रतीक इन नेताओंकी और इनके वक्तव्योंसे राजनीतिक वातावरणमें एक नई आशा जान-सी आ गई प्रतीत होती है। जनताकी आशा और को सबसे अधिक उत्तेजन मिला है पं० जवाहरलाल वक्तव्योंसे ; जिनकी ताज़गी, सजीवता और सदाशयता उज्ज्वल व्यक्तित्वके अनुरूप ही है। नैनीताल और बाद प्रयागकी अपार जनता द्वारा किए गए स्वागतके आपने कहा—"कुछ लोग कहते हैं कि कांग्रेस कुचल है और वह मर चुकी है। इसपर कभी विश्वास न आज आपने मेरी जो संवर्द्धना की है या जैसी मेरी लखनऊमें हुई है, उससे मेरा यह विश्वास दृढ़ हो जाता है

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिमला पहुँचनेपर आपका जो स्वागत हुआ, वह तो शायद शिमलाके इतिहासमें अभूतपूर्व ही था। उस अवसरपर समवेत अनियन्त्रित भीड़को सम्बोधित करते हुए आपने कहा—"पिछले तीन वर्षोंकी घटनाओं और असाधारण दमनके फल-स्वरूप जनताको जो यातनाएँ सहनी पड़ीं, उनका उनपर कोई असर नहीं हुआ है। जहाँ-जहाँ मैं गया हूँ, मैंने लोगोंसे पूछा है कि क्या वे भयभीत हैं, और हर जगह इसका नकारात्मक उत्तर ही पाया है। इसी तरह मैंने कई जगह लोगोंसे पूछा कि क्या वे अपने-आपको काफ़ी सशक्त महसूस करते हैं, तो उन्होंने कहा—हाँ। अतः मेरे मतसे पिछले ३ वर्षोंमें जो-कुछ हुआ है—और जिस दमनके कारण जनताको महान यातनाएँ सहनी पड़ी हैं, उसको तुलना गदरके समयके दमनसे ही की जा सकती है—उससे जनताको शक्ति ही मिली है। जनताकी इच्छाकी कमी नहीं थी, कमी थी उसको सुव्यवस्था और सदुपयोगकी। अतएव आवश्यकता है जनताकी इच्छा-शक्तिको समुचित व्यवस्थाकी।"

देशभक्तोंके प्रति श्रद्धांजलि

जिसे नेहरूजीने सन् सत्तावनके गदरके समयका-सा दमन बतलाया है, उसमें कितने देशभक्त बलिदान हो गए, कितने सदा के लिए अपंग हो गए, कितनोंके घर-परिवार बरबाद हो गए और कितने आज जेलोंमें सड़ रहे हैं, हममें से अधिकांशको ठीक-ठीक नहीं मालूम। यह सब मालूम करनेके जो साधन हैं, उनपर हमारा कोई अधिकार नहीं। पर जिनके बारेमें हम थोड़ा-बहुत जान-सुन पाए हैं, उनके लिए भी हमने क्या किया है? पीड़ित परिवारोंके लिए ही हमने क्या किया है? नेहरूजी पहले नेता हैं, जिन्होंने झिझक और औपचारिकता छोड़कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। इलाहाबादमें कहे गए उनके ये शब्द कितने ही जख्मी दिलोंपर मरहमका काम करेंगे कि—"आज आप लोगोंका उत्साह मुझे अगस्त, १९४२ की घटनाओंकी याद दिला देता है। इन घटनाओंका पूरा विवरण मुझे नहीं मालूम; पर जो-कुछ भी हो, मेरे देशवासी सही रहे हों या गलत, उन निर्भीक शहीदोंके प्रति मैं अपना सिर झुकाता हूँ, जिन्होंने देशकी आज़ादीके लिए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। मैं अपने प्रान्त और देशके उन नागरिक भाइयोंके प्रति भी सिर झुकाता हूँ, जो देशके पवित्र ध्येयके लिए लड़े और लड़ रहे हैं। मैं उन्हें बधाई देता हूँ।"

अगस्त-उपद्रवोंकी ज़िम्मेदारी

इलाहाबादके पत्रकारोंकी सभामें बोलते हुए नेहरूजीने कहा—"अगस्त-उपद्रवोंके दौरानमें देशमें जो-कुछ हुआ, व्यक्तिगत रूपसे मैं उसकी ज़िम्मेदारी लेता हूँ। इस ज़िम्मेदारीसे मुकर कर मैं अलग खड़ा नहीं होना चाहता। पर यह कहना कि कांग्रेसने कोई आन्दोलन चलाया, सर्वथा झूठ और बेहूदा है। नेताओंकी गिरफ़्तारीके बाद जो-कुछ हुआ, वह तात्कालिक था। सच तो यह है कि कांग्रेसने किसी भी आन्दोलनके लिए कोई हिदायत नहीं दी थी। यह हक़ीक़तसे ही ज़ाहिर है, और मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि यदि नेताओंको गिरफ़्तारीके १० रोज़ पहले भी कांग्रेस हिदायतें दे देती, तो तात्कालिक प्रतिक्रियाके रूपमें जो-कुछ हुआ है, उससे कहीं भीषण उपद्रव होता। लिहाज़ा हम लोगोंकी गिरफ़्तारीके बाद अगस्त, १९४२ में जो-कुछ हुआ, वह ब्रिटिश सरकारके कारनामोंका फल था, जिसकी ज़िम्मेदारी उसीपर है।"

पुलिस और अधिकारियोंका पतन

आगे चलकर नेहरूजीने कहा—"इन उपद्रवोंके दमनके लिए मैं सरकारको दोष नहीं देता। पर भारतीय पुलिस और अधिकारियोंका जो नैतिक पतन हुआ है, वह देखकर मेरा दिल काँप उठता है। जिस ढंगसे वे अपने ही देशवासियोंके साथ पेश आए और जैसी भ्रष्टता आज उनमें जारी है, वह शराफ़त और नैतिक सच्चरित्रताके लिए शर्मनाक है। इस नैतिक पतनके फल-स्वरूप इन लोगोंका एक 'नया धनी-वर्ग' बन गया है और देशके सामने अपनी सतहपर से इस धूलको दूर करना एक समस्या होगी।...मैंने जो-कुछ सुना है, उससे जान पड़ा है कि प्रायः प्रत्येक सरकारी विभागमें घूसखोरी और दूसरे क़िस्मका भ्रष्टाचार फैल गया है। शायद कुछ मातहत जुडीश्यल अफ़सर ज़रूर ऐसे थे, जिन्होंने अपनेको इससे अलग रखा; अन्यथा सरकारकी सारी व्यवस्था ही भ्रष्ट हो गई, जिसने इसे शासन-यन्त्रके रूपमें काम करनेके अयोग्य बना दिया।"

ब्रिटिश शासनका सबसे बड़ा कलंक

अपनी रिहाईके बाद ३-४ स्थानोंपर नेहरूजीने बड़ी वेदनाके साथ बंगालके अकालका ज़िक्र किया है। छूटनेके तीसरे ही दिन नैनीतालमें उन्होंने कहा—"बंगालका वह हृदय-विदारक अकाल भारतमें ब्रिटिश शासनका सबसे बड़ा कलंक है। जब कलकत्ते की सड़कोंपर मुर्दे सड़ रहे थे, कुछ सुविधाप्राप्त लोग नाच-रंगका जीवन बिता रहे थे। जब बंगालमें अन्न पहुँचानेके लिए डिब्बों को ज़रूरत थी, उनमें कलकत्तेकी रेसोंके लिए घोड़े ले जाए जा रहे थे। बंगालका अकाल ब्रिटिश शासनकी सबसे बड़ी निन्दा है।"

मुनाफ़ाख़ोरोंको फाँसी दी जाय!

इसी सिलसिलेमें नेहरूजीने कहा—"इस सम्बन्धमें हमारे अपने देशवासियोंका आचरण भी कम शर्मनाक नहीं था, जो इस संकटके समय भी चोर-बाज़ार और मुनाखोरी करते रहे। जब हज़ारोंकी संख्यामें पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे मर रहे थे, मुनाफ़ाखोरी और चोर-बाज़ार खूब पनप रहे थे।" इसी सम्बन्ध में बम्बईमें बोलते हुए आपने कहा—"वुडहेड-कमीशनकी रिपोर्ट

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by eGangotri eGangotri Gyaan Kosha

के अनुसार बंगालके अकालमें मरे १५००००० व्यक्तियोंमें से प्रत्येकपर चोर-बाज़ारियोंने १०००) मुनाफ़ा किया! आदमी इतना निर्मम और अमानुषिक कैसे हो सकता है, यह कल्पनातीत है। मैं छोटे-से कीड़ेको भी नहीं मारता; पर अगर इन बड़े-बड़े मुनाफ़ाखोरोंको उस वक्त तक गर्दनसे लटका दिया जाय, जब तक कि ये मर न जायँ, तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होगी।"

नेहरूजी ही नहीं, इन मानव-देहधारी शैतानों और पैसेके लोभी क़साइयोंको फांसीपर झूलता देखकर उन लाखों भारतीयोंके कलेजे भी ठण्डे होंगे, जिन्होंने अपनी आँखोंके सामने १५ लाखसे भी कहीं अधिक लोगोंको भूखसे दम तोड़ते हुए घरोंमें और सड़कोंपर मरते देखा है। साथ ही इन हृदयहीन नराधमोंकी मौतसे अकालमें मरे उन निर्दोषोंकी आत्माको भी शान्ति मिलेगी, जिनका एकमात्र अपराध था ग़रीबी और पराधीनता। पर मनुष्यताका यह कोढ़ और समाजका यह कलंक आज उन अधिकारियोंको घूस और नैतिक पतनकी अन्तिम सीढ़ीपर ले आया है, जो अमानुषिक मुनाफ़ाखोरीके लिए प्राण-दण्ड देनेकी क्षमता रखते हैं। अतएव इस भ्रष्ट शासनको बदलकर इन बड़े-बड़े ठगों और चोरोंको उचित दण्ड देनेवाला जनताका शासन स्थापित करनेकी ज़िम्मेदारी नेहरूजी-जैसे निर्भीक नेताओंपर ही है।

नेहरूजी और भारतीय कम्युनिस्ट

इधर जबसे कांग्रेसजन जेलोंसे छूटकर आए हैं, भारतीय कम्युनिस्तोंके विरुद्ध कई गहरे आरोप लगाए गए हैं। कई जगह तो उनपर सरकारी एजेण्ट अथवा खुफ़ियाका काम करने तकके आरोप लगाकर उन्हें कांग्रेससे निकाल देनेके प्रस्ताव भी पास किए गए हैं। गांधीजी और कांग्रेसके अन्य नेताओंके छूटनेपर उनसे भी ऐसी शिकायतें की गई हैं। पिछले दिनों बम्बईमें नेहरूजी से—जिन्हें अधिकांश लोग कांग्रेसमें समाजवादी अथवा वामपक्षी नेताके रूपमें जानते हैं—भी जब इन बातोंका ज़िक्र कर उनका मत पूछा गया, तो उन्होंने कहा—"मूल रूपसे कम्युनिस्तोंकी नीति उस देशके हितकी दृष्टिसे नहीं होती, जहाँ कि ये काम करते हैं; बल्कि रूसकी विदेशी नीतिकी दृष्टिसे ही होती है। रूस और जो असाधारण उन्नति उसने की है, उसके प्रति मेरी काफ़ी सहानुभूति है; पर कई पहलुओंसे मैं ऐसा नहीं मानता कि किसी भी देशकी नीति रूसकी विदेशी नीतिसे ही सम्बन्धित होनी चाहिए। मुख्य प्रश्न तो यह है कि क्या उनकी नीतिसे भारतके उद्देश्यको हानि हुई है? बड़े-बड़े देशोंके सामने जब राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ एक साथ उपस्थित हुई हैं—उदाहरणके लिए, जर्मनीके साथ रूसकी अनाक्रमण-सन्धि और युद्धारम्भसे पहले ब्रिटेनकी नीति—और जब अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय नीतियोंमें संघर्ष उपस्थित हुआ है, तो राष्ट्रीय नीतिकी ही जीत हुई है। जब बड़े और स्वतन्त्र देशोंके मामलेमें यह बात ठीक है, तो भारत-जैसे अधीन देशके सम्बन्धमें तो यह कहीं ज़्यादा ठीक होनी चाहिए।...पिछले दो या तीन वर्षोंमें कम्यु निस्तोंने ज़िन्दगीका एक नायाब मौक़ा खो दिया। यदि वे कुछ और ढंगसे काम करते, तो वे अपने दलको बहुत शक्तिशाली बना सकते थे। भारतीय इतिहासके संकटके समय तटस्थ रहना मुश्किल था, पर वे तो दूसरे पक्षसे जा मिले। वे ठीक हो सकते हैं, किन्तु प्रश्न तो दृष्टिकोणका है।"

कम्युनिस्त-पार्टीके प्रधान-मन्त्री श्री पूरनचन्द जोशीने नेहरूजीके मत-प्रकाशको कम्युनिस्त-पार्टीपर 'हमला' बतलाते हुए उसे 'कम्युनिज़्म-विरोधियोंकी सहायता करना' कहा है। उनके कम्युनिस्त-पार्टीको नीतिके रूसकी विदेशी नीतिपर निर्भर होनेके बातको भी जोशीजीने 'रूसको बदनाम करनेके साम्राज्यवादी झूठको अभिव्यक्ति' और 'इस देशमें रूस-विरोधी भावना पैदा करनेवाली संस्थाओंकी सहायता करना' बतलाया है। कोई भी निष्पक्ष पाठक जोशीजीको इस फिक़रेबाज़ीसे अनुमान लगा सकता है कि यह न सिर्फ़ छोटे मुँह बड़ी बात ही है, बल्कि इससे कम जानमें उन्होंने नेहरूजीके कथनकी सत्यता भी सिद्ध कर दी है। क्या जोशीजीके शब्दोंमें रूसी एजेण्ट या रूसकी विदेशी नीतिका समर्थक नहीं बोल रहा? पर शायद जोशीजी स्वयं जानते हैं कि अपने बचावके लिए कम्युनिस्तों द्वारा दी जानेवाली ये दलीलें—उनका यह पेटेण्ट तकिया-क़लाम—अब बहुत पुरानी हो चुकी हैं! फिर नेहरूजीको रूस-विरोधियोंका सहायक बतलाकर जोशीजीने अपनी नासमझी, छिछोरपन और बदहवासीका ही परिचय दिया है। अगर जोशीजीकी स्मरण-शक्ति ठीक है, तो उन्हें यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं कि जब शायद उन्होंने कम्युनिस्त-पार्टि को देखा या छुआ भी न था, तबसे नेहरूजी न सिर्फ़ उसके प्रशंसक एवं समर्थक ही हैं, बल्कि बहुत-से भारतीयोंकी इस विरोधी भ्रान्तियोंको दूर भी कर रहे हैं।

देशभक्तोंके ख़िलाफ़ क्रूसेड

नेहरूजीके इस कथनका कि कम्युनिस्त दूसरे पक्षसे मिल गए थे, खण्डन करते हुए जोशीजीने कहा है कि उनके दलने दूसरे पक्षका विरोध किया और उसका उचित उत्तर भी दिया। हमें उनके दलके अन्दरूनी हालातकी कोई खास जानकारी नहीं। अतः ज़ाहिरा तौरपर उन्होंने और उनके दलने जो-कुछ किया है उसीसे हम अपना मत बना सकते हैं। अगर वास्तवमें जोशीजी का दल दूसरे पक्षके खिलाफ़ था—उसका विश्वास और कुछ कर नहीं था—तो उन्हें मैक्सवेल और मुडीके दरबारमें क्यों हाजिरी देने जाना पड़ा? अगर जोशीजी दूसरे पक्षकी नीतिके खिलाफ़ थे, तो अगस्त-उपद्रवोंके बहाने निरीह जनतापर हुए असाधारण दमनका विवरण छापने और उसके विरुद्ध लोकमत संगठित करनेके बजाय वे और उनके साथी क़समें खा-खाकर इसे कांग्रेस

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

का आन्दोलन साबित करते क्यों फिरते थे ? सच तो यह है कि अगस्त-उपद्रवोंकी ज़िम्मेदारी कम्युनिस्तोंने न सिर्फ़ कांग्रेस और कांग्रेसजनोंके सिर ही थोपी (और इस तरह दूसरे पक्षके मिथ्या प्रोपेगेण्डा तथा दमनको सहायता पहुँचाई), बल्कि उन्हें 'अन्धा देशभक्त' उपाधि देकर उनके खिलाफ़ अपने पत्रोंमें बाक़ायदा क्रूसेड भी शुरू कर दिया। इनके नए कुल-पुरोहित महापण्डित राहुल सांकृत्यायनने तो 'हुंकार'में, जिसके वे उस समय सम्पादक थे, स्पष्टतया कांग्रेसियोंको 'गुण्डा'-जैसा शिष्ट और संयत विशेषण भी प्रदान किया। (कुछ लोगोंका अनुमान है कि उस समय सरकार द्वारा जारी किए गए गुण्डा-विरोधी विज्ञापनों और पोस्टरों की प्रेरणा इन्हीं महापण्डित-प्रवरकी इसी महासूक्तसे ली गई थी।) इससे कम्युनिस्तोंके प्रति जन-साधारणमें जो घृणा और कटुता फैली, शायद उसीके कारण सारे कांग्रेसी देशभक्तोंके खिलाफ़ जारी किए गए इस क्रूसेडका मुँह बादमें सिर्फ़ फारवर्ड-ब्लाकियों और कांग्रेस-समाजवादियोंकी ओर मोड़ दिया गया। इसमें कम्युनिस्तोंने अपने अन्य राजनीतिक विरोधियोंको भी शामिल किया और उन्हें 'जापानी समर्थक' तथा 'पाँचवा दस्ता' आदि विशेषणोंसे विभूषित किया गया। इस क्रूसेडकी सर्चलाइटमें सरकारको कितने नए शिकार मिले होंगे—जिनमें से यदि कुछ दोषी होंगे, तो बहुत-से निर्दोष भी रहे होंगे—इसका अनुमान-भर ही किया जा सकता है।

पर कम्युनिस्तोंको यह नीति कोई नई नहीं है। मज़दूर-क्षेत्रोंके सिवा भारतीय राजनीतिमें यतीमोंसे बेहतर कोई स्थिति न होनेके कारण इन्होंने सदा देशभक्तोंके खिलाफ़ ही मोर्चाबन्दी की है। अपने मतवादकी सैद्धान्तिक कट्टरताके कारण इन्होंने कांग्रेस को हमेशा टुटपुँजियों (पेटी-बुर्ज़ुआ लोगों) की जमात और कांग्रेसी नेताओंको घोर प्रतिक्रियावादी तथा देशी पूँजीवादियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंका दलाल बतलाया है। गांधीजीको ये प्रतिगामी और सुधारवादी तथा नेहरूजीको भ्रान्त कहते रहे हैं। कांग्रेसके असहयोग, स्वदेशी, खद्दर-चर्खा, भद्र-अवज्ञा आदि लगभग सभी आन्दोलनोंके ये न सिर्फ़ खिलाफ़ ही रहे हैं; बल्कि उन्हें देशके लिए हानिकर और जनताके प्रति कांग्रेस-नेतृत्वका विश्वासघात तक बतलाते रहे हैं। इससे किसको बल मिला है, किसके हाथ मज़बूत हुए हैं, इसे हमसे अधिक शायद कम्युनिस्त ही भलीभाँति जानते हैं।

कट्टरता बनाम व्यावहारिकता

भारतीय कम्युनिस्तोंका यह आचरण संसारके अन्य देशोंके कम्युनिस्तोंके अनुरूप ही रहा है। अपने मतवादकी सैद्धान्तिक कट्टरताके कारण प्रायः सभी देशोंमें कम्युनिस्तोंने अपने-आपको अन्यान्य राजनीतिक दलोंसे—और मुख्यतया समाजवादी तथा अन्य वाम-पक्षी दलोंसे—अलग समझा और रखा है। ईश्वरका अस्तित्व मिटाकर इन्होंने स्तालिनको नया खुदा बना दिया। धर्मकी जड़ उखाड़कर इन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादको एक नया मज़हब बना डाला। जो इनके अन्ध-भक्त नहीं, वे कम्युनिस्त-विरोधी, प्रति-गामी सुधारवादी, राजनीतिक भगोड़े, प्रतिक्रान्तिवादी, साम्यवाद के दुश्मन और न-जाने क्या-क्या क़रार दिए गए। इसी नीतिके कारण यद्यपि रूसी क्रान्तिकी सफलताके बाद लगभग सभी देशोंमें साम्यवादी विचारोंका ज़ोर बढ़ा, कम्युनिस्त पार्टियाँ बनीं; पर वहाँ क्रान्ति होना तो दूर रहा, कम्युनिस्तोंका बहुमत भी कहीं नहीं हुआ। उल्टा यह ज़रूर हुआ कि जहाँ-जहाँ कम्युनिस्त शासन स्थापित हुआ (जैसे हंगेरीमें बेला कुनका) या कम्युनिस्तोंका ज़ोर बढ़ा (जैसे पिछले महायुद्धके बाद फ्रांस, इटली और जर्मनी में); वहाँ अपने आचरणके कारण न सिर्फ़ इन्हें मुँहकी ही खानी पड़ी, बल्कि फ़ाशिस्तोंके सत्तारूढ़ होनेका मार्ग भी सुगम हो गया। उदाहरणके लिए जर्मनीको ही लीजिए। क़ैसरके पतनके बाद वहाँ स्थापित हुआ वाइमर-प्रजातन्त्र यद्यपि पूर्ण समाजवादी नहीं था; पर जिन परिस्थितियोंमें वह खड़ा होनेकी कोशिश कर रहा था, वे असाधारण थीं। जर्मन कम्युनिस्तोंने उसकी सीमाओंको सुधारवादी प्रवृत्ति बतलाया और हिटलरके नात्सी गुण्डोंसे मिलकर उसका खात्मा करवा दिया। परिणाम हुआ हिटलर और नात्सी-दलका प्रभुत्व, जिसने सत्तारूढ़ होते ही जर्मन कम्युनिस्तोंको खत्म करवा डाला। जब नात्सी-दल जर्मनीमें काफ़ी बड़े खतरेका रूप ग्रहण कर चुका, तब कम्युनिस्त नेता दिमित्रफ़को होश हुआ और उसने दूसरे इण्टरनेशनलसे 'पापूलर-फ्रण्ट'की नीति स्वीकृत कराई। पर इस वक्त तक काफ़ी देर हो चुकी थी और कम्युनिस्त अपनी ज़िन्दगीका मौक़ा खो चुके थे। और बक़ौल दिमित्रफ़के उस फिसड्डी सर्वहारा-वर्ग (Lumpen Proletariat) ने, जो कम्युनिस्त-दलका अनुयायी था, सबसे पहले विजयी नात्सियोंका साथ दिया। कम्युनिस्तोंकी इसी तरहकी कट्टरताके कारण फ्रांसका संयुक्त-मोर्चा टूटा और इटलीके नाम-समाजवादी दलने फ़ाशिस्तों के आगे घुटने टेक दिए। स्पेनमें तो वह जर्मनीकी तरह ही प्रजातन्त्रकी मृत्युका भी कारण बना।

इन कटु अनुभवोंसे कम्युनिस्तोंने कुछ सबक़ हासिल किया, यह कहना अभी कठिन है, क्योंकि इस दूसरे महायुद्धके बाद भी अनेक देशोंसे वाम-पक्षोंके लगभग १९१९-२० के-से ही झगड़ों और मतभेदोंके संवाद आ रहे हैं। अमरीकाके कम्युनिस्त नेता अर्ल ब्राउडरने ज़रूर राष्ट्रोंके समुचित सहयोगके मार्गमें बाधक बतलाकर वहाँकी कम्युनिस्त-पार्टीको भंग कर दिया था (पर अब वर्ग-युद्धके नए पोषकोंने उन्हें हटाकर फिर कम्युनिस्त-संघ स्थापित किया है।)। पर स्वयं स्तालिनने इस सम्बन्धमें काफ़ी व्यावहारिकता, कल्पना-शक्ति और यथार्थवादिताका परिचय दिया है। अपनी स्थिति और मतवादके सम्बन्धमें कोई समझौता न करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी उन्होंने रूसकी रक्षा और भलाईके मार्गमें सैद्धान्तिक कट्टरता या थोथे नारोंको कभी नहीं आने दिया है। अपने भाषणों या घोषणाओंमें उन्होंने कट्टरताको कभी झाँकने तक भी नहीं दिया। इस युद्धको कभी भी उन्होंने जन-युद्ध या सैद्धान्तिक युद्ध नहीं कहा—यद्यपि रूसके लिए सही मानोंमें यह ऐसा ही था। इसी प्रकार उन्होंने तीसरे इण्टरनेशनलको भंग करनेमें भी कोई झिझक नहीं की। इन सबसे जहाँ उन्होंने साम्यवादकी कोई हानि नहीं की, वहाँ उसके दुश्मनोंकी आशंकाओंको एक हद तक दूरकर उसकी जीवन-रक्षा ही की। इस तरह रूसकी रक्षाकर स्तालिनने बड़े कौशलसे साम्यवादके दीपकको जलता रखा है। क्या हमारे देशके कम्युनिस्ट भी सैद्धान्तिक कट्टरताको दूर रख ऐसी ही व्यावहारिकता, कल्पना-शक्ति और यथार्थवादितासे काम लेकर सबसे पहले देशको साम्राज्यवादी जुएसे मुक्त करनेवाली संस्थाओंके साथ पूर्ण सहयोग करनेकी ओर ध्यान न देंगे?

सीरिया-लेबानन और कांग्रेस

चीन, स्पेन, अबीसीनिया आदिके सम्बन्धमें पास किए गए प्रस्तावोंके बावजूद भारतीय राष्ट्रीयताके जिन दुश्मनोंने पिछले दिनों कांग्रेसको जर्मनी-जापानका समर्थक कहकर बदनाम करनेकी शरारत की थी, उन्हें शायद यह देखकर हैरत हुई होगी कि अपनी रिहाईके सिर्फ़ एक हफ़्ते बाद कांग्रेस-कार्यसमितिकी जो पहली बैठक हुई, उसमें सीरिया-लेबाननकी आज़ादीपर साम्राज्यवादी फ्रांस द्वारा किए गए आक्रमणका विरोध किया गया है। प्रस्तावमें कहा गया है—"समितिको हाल ही में सीरिया और लेबाननकी आज़ादीके खिलाफ़ हुए आक्रमणोंको देखकर गहरा खेद एवं विक्षोभ हुआ है। यह न सिर्फ़ सीरिया और लेबाननकी जनताको दिए गए विशिष्ट आश्वासनोंकी ही उपेक्षा है, बल्कि संयुक्त-राष्ट्रों द्वारा घोषित सिद्धान्तोंकी अवहेला भी।"

चर्चिलको गांधीजीका पत्र

विगत १७ जुलाई, १९४४ को गांधीजीने पँचगनीसे ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री श्री विन्स्टन चर्चिलको एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखा था, जिसे उन्होंने हाल ही में प्रकाशित कराया है। पत्र इस प्रकार है—"प्यारे प्रधान-मन्त्री, सुना गया है कि आप इस सीधे-सादे 'नंगे फ़क़ीर'को—जैसा कि आपने मुझे कहा बतलाते हैं—कुचलनेकी ख्वाहिश रखते हैं। मैं फ़क़ीर होनेकी कोशिश करता हूँ—और वह भी नंगा, जो कि एक बहुत ही मुश्किल काम है। अतः आपके कथनको मैं एक प्रशस्ति समझता हूँ, यद्यपि वह अनजानमें कही गई है। अब मैं इसी हैसियतसे आपको यह लिख रहा हूँ कि आप मेरा विश्वास करें और अपने तथा मेरे लोगों और उनके द्वारा दुनियाके लोगोंके हितके लिए मेरा उपयोग करें। —आपका सच्चा मित्र, मो० क० गांधी।"

दूसरी गोलमेज़-कान्फ्रेंसके समय जब गांधीजी सपरि बादशाह पंचम जार्जके निमन्त्रणपर बकिंगम-महलमें उनके साथ चाय पीने गए थे, तब प्रमादी चर्चिलने उनको 'नंगा फ़क़ीर' कहा था। आज उसी नंगे फ़क़ीरको—जो भारतकी ग़रीबीका प्रतीक और ४० करोड़ मूक गुलामोंकी आवाज़ है—वाइसरायने चर्चिल की सहमति-स्वीकृतिसे अपनी सहायता और सलाहके लिए शिमला बुलाया है। पता नहीं, चर्चिल अब क्या सोचते होंगे!

'फ़ाशिज़्म अभी मरा नहीं है!'

पूरे दो मासकी मन्त्रणाके बाद गत २६ जूनको सेन फ्रांसिस्को-सम्मेलन संयुक्त-राष्ट्रोंकी ओरसे १० हज़ार शब्दोंके एक सनद स्वीकारकर समाप्त हो गया। जेनेवाके दिवंगत राष्ट्र-संघके विधानसे इसमें १००० शब्द अधिक हैं, यद्यपि उद्देश और आदर्श लगभग वैसे ही हैं। इस नई सनदमें संसारको युद्धसे बचाने, राष्ट्रोंकी आपसमें शान्ति, सहिष्णुता और स्वतन्त्रतापूर्वक अच्छे पड़ोसियोंकी तरह रहनेमें सहायता करने और राष्ट्रोंके झगड़ोंको निपटाने, उनमें मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने, समानता और आत्म-निर्णयके आधारपर अर्थनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय सहयोग-सम्बन्ध क़ायम करनेके लिए संयुक्त-राष्ट्रोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ स्थापित करनेका अभिप्राय स्पष्ट किया गया है। इसपर ५० राष्ट्रोंने हस्ताक्षर किए हैं, जो पूर्ण स्वाधीनताकी समानताके आधारपर नए संघके सदस्य होंगे। भारत न तो पूर्ण स्वतन्त्र है और न अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रोंके समान हो, फिर भी ब्रिटिश कूटनीतिज्ञोंकी कृपासे पिछले राष्ट्रसंघकी तरह ही वह इसका भी सदस्य है!

दरअसल सनदों और खरीतोंसे कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्व-शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। उसके लिए चाहिए साफ़ हाथ, साफ़ दिल और साफ़ दिमाग़। ईमानदारीसे अमल करनेपर कोई भी सनद कारगर हो सकती है और बेईमानी तथा स्वार्थान्धतावश काममें लानेपर बड़े-बड़े नेक दावे भी बुरे हो सकते हैं। इसीलिए इसपर हस्ताक्षर करते हुए अमरीकन राष्ट्रपति ट्रूमानने कहा है—"उचित और स्थायी शान्ति सिर्फ़ सद्भावनीतिक समझौतों या फ़ौजी सहयोगसे ही कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। अनुभवने बतलाया है कि किस गहराईसे सामाजिक अन्याय और अर्थनीतिक प्रतिद्वन्द्विताके कारण लड़ाईके बीज बोए जाते हैं।...सारा फ़ाशिज़्म मुसोलिनीके साथ ही नहीं मर गया। हिटलरका अन्त हो गया, पर उसके विकृत मस्तिष्क द्वारा फैलाई गई भावनाएँ कई उद्धत मस्तिष्कोंमें जम चुकी हैं। जातिविद्वेष खात्मा करना और नज़रबन्द कैम्पोंको बन्द कर देना आसान है, पर उनको जन्म और शक्ति देनेवाले विचारोंको मारना आसान नहीं।"

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निमाईचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाग ३५] जनवरी–जून, १९४५ [पूर्णांक २१०

विषय-सूची

अंजोर – रामेश वेदी १६७
अकबरकी मृत्यु और सलीमका राजतिलक— शिवनाथसिंह शांडिल्य १४८
अछूत बनाम सवर्ण – सन्तराम ११२
अमर शहीद—बनारसीदास चतुर्वेदी ३
अमरीकाकी कृषि-व्यवस्था और भारत – कमलेश्वर २२
अरे कहे जा खरी-खरी तू !—तेजनारायण काक ६
अर्द्धनारीश्वर—आरसीप्रसाद सिंह १०८
आधुनिक शिक्षा और ज्योतिष—सुप्ति सिंह, कुमारी २१३
आलोचनामें 'व्यक्तिवाद'—गंगाप्रसाद पाण्डेय २४
इसलिए तू याद आए !—'यात्री' ३२
उज्जयिनीका प्राचीनत्व – माधव विनायक किबे ७५
उपालम्भ—होमवती देवी २२१
उसका ताज - गंगाधर सुकुल २१८
उत्सवकी महत्ता—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी १९१
एक दिन – पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी २५५
एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न : 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'— अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी २०७
एक रोज़—रामगोपाल चतुर्वेदी २३०
सुनहरा दिन – मन्दाकिनी त्रिलोकेकर ११६
ओ नभके चितचोर—शिवमंगलसिंह 'सुमन' १४७
कलकत्तेमें हिन्दी-भवन बनारसीदास चतुर्वेदी १५९
कला और जीवन पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी १४५
कविका विद्रोह—जगन्नाथप्रसाद मिश्र १९९
कहानी-कला—विष्णु प्रभाकर २६१
काव्य-साधना—कमलादेवी ३१
किन्नरोंके देशमें—शान्ति भिक्षु ६१
किसानोंका क्रान्ति-गीत निरंकारदेव सेवक २
कीर्त्तन—योगेन्द्रनाथ सिन्हा १६६
केनियाके भारतीयोंकी समस्याएँ—धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार २२८
गणेश, चिन्तामणि, रामानन्द—बनारसीदास चतुर्वेदी १४२
गांधी-योजना—श्रीमन्नारायण अग्रवाल ९५
गीत—जानकीवल्लभ शास्त्री २१; ९४
गीत—जितेन्द्रकुमार ८८
गीत—सुधीन्द्र १६५
गीत—'वीरात्मा' २०३
गीत—शम्भुनाथ 'शेष' २७०
गोस्वामी तुलसीदास – बैजनाथसिंह 'विनोद' १६२
घिर चलो हे स्नेहके घन !—सत्यवती शर्मा ३६
घृणाका प्रेम –रांगेय राघव २५४
चक्करदार चोरी – पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी १०४
चयन— ८२ ; १२५ ; १७३ ; २३७ ; ३०१
चिट्ठी-पत्री— ३७ ; ७६ ; १२० ; १६९ ; २३२ ; २९५
चित्रकारसे—भवानीप्रसाद मिश्र ८७
चित्रकारसे—विचित्र सिन्हा ८८
चीनका आधुनिक साहित्य—कृष्णकिंकर सिंह ४७
चीनका नववर्ष-त्योहार—कृष्णकिंकर सिंह १८५
चुंकिंग-यात्रा-२—कृष्णकिंकर सिंह ३३
छिपकलियां—सुरेशसिंह कुँवर २७१
जनपद-आन्दोलन—कालिदास कपूर ६८

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जागरण—जितेन्द्रकुमार २०९
जीवन-यात्रा—योगेन्द्रनाथ सिन्हा ६४
डोरोथी वर्ड्सवर्थ—सत्यवती मल्लिक २८२
दक्षिण-अफ्रीकामें श्वेतांग-नीति—भवानीदयाल संन्यासी ९८
देशी नरेशोंकी रक्षा—जयनारायण व्यास ७३
धर्म और ईश्वर—जगदीश वेदालंकार २७
धर्म-बहन—होमवती देवी २६३
नवयुग-पुरुषका स्वागत—नन्दकिशोर २३१
नारी—ताराराणी श्रीवास्तव १६०
नीलामघर—आनन्द, प्रो० २११
नैतिक पतनकी समस्या—कालिदास कपूर ७
पथकी कथा—व्यौहार राजेन्द्रसिंह २६
पशु-रक्षाकी समस्या—अचलसिंह ७६
प्रजातन्त्र और वर्ण-भेद—सन्तराम २०४
प्रथम प्रणाम (कविता)—सोहनलाल द्विवेदी १
प्रभात—'स्नेहशीलता' ५८
प्राचीन यूनानकी झलक—शंकर भारद्वाज १५
फ्रैंकलिन डिलानो रूज़वेल्ट – मोहनसिंह सेंगर २२२
बाण भट्टकी आत्म-कथा—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी १७
बालक गांधी—श्रीमन्नारायण अग्रवाल २१०
बुनियादी तालीम और भाषाओंका प्रश्न—कालिदास कपूर ८९
ब्रिटेनके ये टोरी—मोहनसिंह सेंगर २८९
भारत क्या निरक्षर ही रहेगा ?—
अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार १०१
भारत-स्वाधीन होगा !—फ्रांसेस गुःथर २४८
भारतीय नैरोबी—धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार २९
भारतमें ब्रिटिश शासन—क्लाइव ब्रान्सन १३७
भिक्षा या दान क्यों ?—कस्तूरमल बांठिया १०९
महान—कमलादेवी चौधरी १५१
मांसाहार और बौद्ध तथा जैन—लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय १९२
मातृत्व सुप्ति सिंह, कुमारी १६४
मानवताका मूल्य—तपेशचन्द्र त्रिवेदी २८
मुक्ति-मार्ग – भारतभूषण अग्रवाल ४६
मेरी क़लम—भैरवप्रसाद गुप्त ४५
'मैं' और केवल 'मैं'—उदयशंकर भट्ट १३६
याद—रामप्रकाश अग्रवाल १९०
युद्धोत्तर आर्थिक नीति—रमेशचन्द्र गोयल १५५
रियासतें और उनकी सन्धियाँ—जयनारायण व्यास ९
रियासतोंकी जागीरी प्रजा—जयनारायण व्यास २७५
रोमा रौलाँ—महादेव साहा
लार्ड बायरनका विवाह-विच्छेद—रूपकुमारी वाजपेई
वह दर्शन—वह मुसकान !—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
वह नारी है, वह माँ है !—देवराज, डा०
वसन्तके गीत—सोहनलाल द्विवेदी
वापसी—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
'विनयपत्रिका'की स्तुतियाँ—हरिहरप्रसाद गुप्त
विनोदी गांधी—श्रीमन्नारायण अग्रवाल
विराम-बिन्दु—युगल
विषमता—रामइक़बाल सिंह 'राकेश'
विश्व-ज्योति गांधी—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
विज्ञानकी उन्नति—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
शरच्चन्द्र और बंगाली समाज—गोपाल हालदार
शरच्चन्द्रका दृष्टिकोण—गोपाल हालदार
शहीदकी विधवा—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
शिव कवि शुक्ल—विपिनविहारी त्रिवेदी
समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार—
३९ ; ७९ ; १२२ ; १७१ ; २३४ ; २९८
सम्पादकीय विचार—
४१ ; ८४ ; १२७ ; १७५ ; २३९ ; ३०१
सम्मेलनकी प्रचार-योजना—सत्यदेव शास्त्री
साँझ—रांगेय राघव
साधनाका फल—आशालता सिंह
सामाजिक नियमोंमें परिवर्त्तनकी आवश्यकता—
रामप्रताप गोंडल
सूरके काव्यमें रंगोंकी संयोजना—अम्बाप्रसाद 'सुमन'
स्व० गणशंकर विद्यार्थी—उमादत्त शर्मा
स्व० रामकर्ण आसोपा—मोतीलाल मेनारिया
हिन्दी-प्रकृति-मण्डल—वासुदेवशरण अग्रवाल, डा०
हिन्दुस्तानी प्रचार—जाफ़र हसन, डा०

तिरंगा चित्र सूची

छड़ी शाह मदार—मीर कल्लनखां
'सुजलां सुफलां शस्य-श्यामलां'—मणीन्द्रभूषण गुप्त
भीलकी एक झलक—देवीप्रसाद रायचौधरी
नादिराकी मृत्यु—राधाचरण बागची
पुरी जाते हुए श्री चैतन्य—खगेन राय
फाग—देवीप्रसाद राय चौधरी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल एक दिनमें

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की घड़ियों में ६३ इत्यादि बजा देना, दीवार में आग लगा देना, मुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात बाद के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्में सीखकर

—दूसरे ही दिन—

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चक्कर और हैरत में डालकर हजारों रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की जोरदार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. श्रीरामकृष्ण लीलामृत (विस्तृत जीवनी) भाग दूसरा मूल्य ३-०-०

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

१.	प्रेमयोग	...	मूल्य ०-१४-०
२.	प्राच्य और पाश्चात्य	...	,, ०-१४-०
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग		,, ०-१४-७
४.	परिव्राजक	...	,, ०-१४-०
५.	भक्तियोग	...	,, ०-१४-०
६.	मेरे गुरुदेव	...	,, ०-७-०
७.	शिकागो वक्तृता	...	,, ०-६-०
८.	वर्त्तमान भारत	...	,, ०-६-०

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTORY

"SANKHA & PADMA"

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

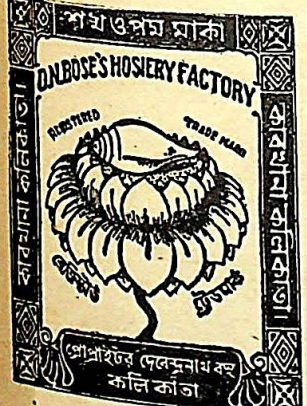

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.

'Phone: B. B. 6056.

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त लिखित

अनुरागिनी

एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढ़ियोंपर सफल आघात करता है। भाषा सुललित है। एक बार प्रारम्भकर बिना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या ३८४, मूल्य केवल ४॥) ।

प्रोफ़ेसर विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, लिखित

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी-कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्य-ग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।" सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या १४७, मूल्य केवल २) ।

शिवाजी प्रकाशन-मन्दिर, लखनऊ ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ओटीन" के बारेमें अपना मत देते हुए भारतकी सौन्दर्यमयी और प्रतिभाशाली सिनेमा-तारिका **काननदेवी**ने ठीक ही कहा है—"चेहरेका सौन्दर्य बढ़ानेके लिए सबसे सुखद और सबसे सन्तोषजनक।" देखिए वे क्या लिखती हैं :—

Of all the toilet creams that I have used, I unhesitatingly prefer Oatine Cream as being the pleasantest and most satisfactory for improving the complexion.

Kanan Devi

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गस्त, १९४५

निराला भारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Math C[illegible]n, Varanasi

साइकल टायर खरीदते समय

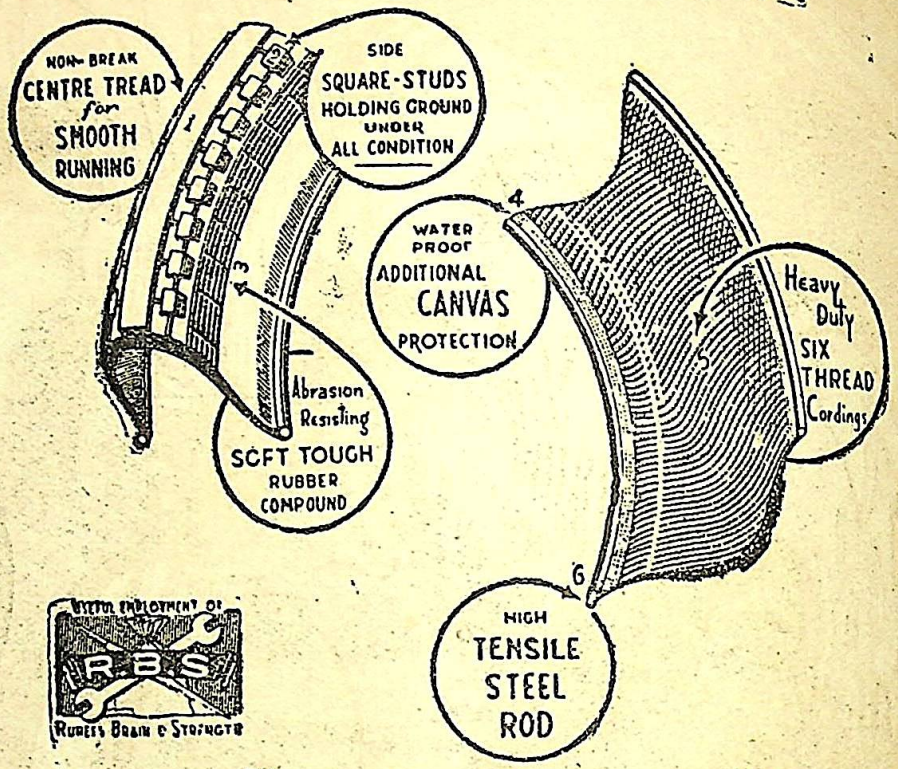

ध्यान में रखने योग्य ६ बातें।

R. B. S.
इम्प्रूव्ड ट्यूरर टायर को
अपनी सेवा का अवसर दीजिये

R. B. S.
युद्धकालीन ट्यूबें अपेक्षाकृत
अधिक टिकाऊ हैं

प्रस्तुत कारक—

आर वी एस जेनरल मिल्स

कासाबिन

श्वास और खांसीके रोगोंमें आशु फलप्रद

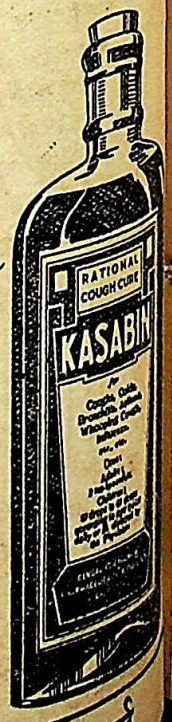

जिन्हें श्लेष्माका घात, ज़रा-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खांसी, टान्सिलका प्रदाह या दमा आदिमें उपद्रवोंका प्रकोप हो, वे सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातिरिक्त उपकार लाभ करेंगे।

कासाबिन बच्चोंको भी निर्विघ्न रूपसे दिया जाता है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटि[illegible]ल लि०, कलकत्ता :: बम्बई

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

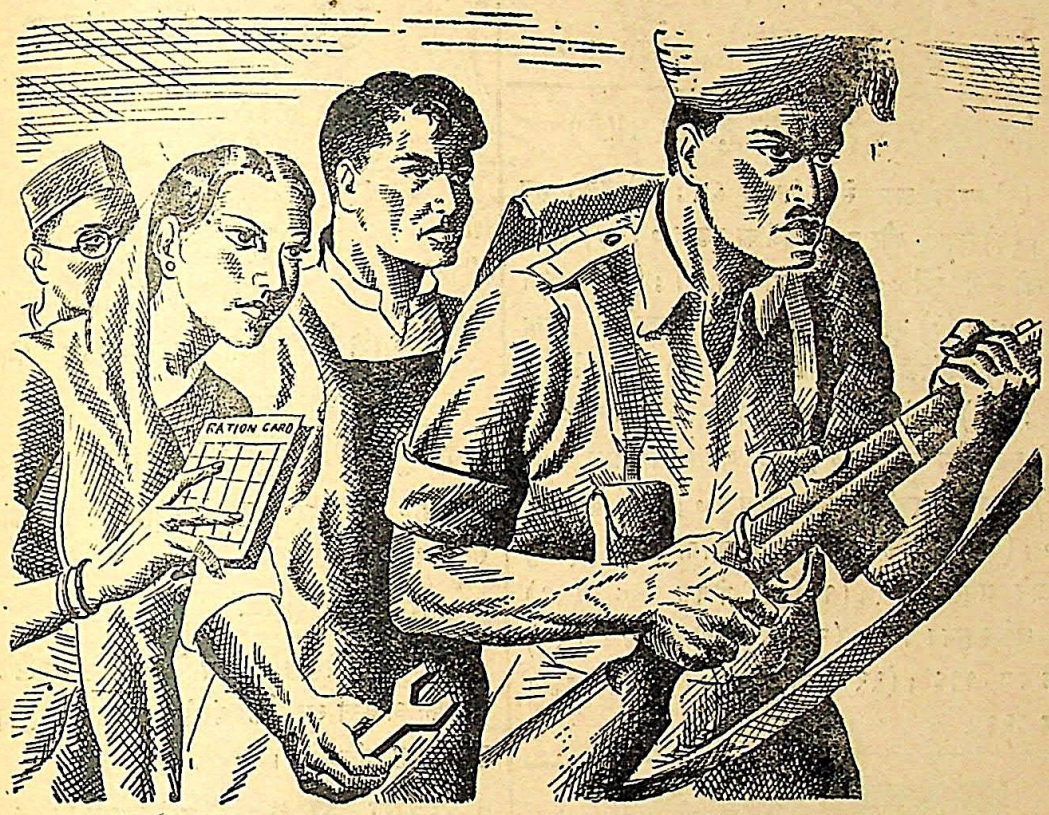

हमारा युद्ध

आठ वर्ष पहले जब जापान ने चीन पर अकारण आक्रमण किया, हिन्दुस्तान ने स्पष्ट रूप से इसकी निन्दा की। जब नाज़ी लुटेरों ने दुनिया को तबाह करने के लिए युद्ध छेड़ा, हिन्दुस्तान ने आक्रमणकारियों का सामना करने में गौरवपूर्ण भाग लिया। हमारे सैनिकों, नाविकों और विमान-चालकों ने इस बड़े काम के लिए अपनी जानें दीं; हमारे मज़दूर और कारीगर लड़ाई के ज़्यादा से ज़्यादा हथियार बनाने के लिए कारख़ानों में जी तोड़ मेहनत करते रहे; माल की कमी और चीज़ों की मंहगाई से हम सबको कष्ट उठाना पड़ा; किन्तु हमारे युद्ध-प्रयत्नों में कोई कमी नहीं हुई।

अब नाज़ियों के बिना शर्त हथियार डालने के बाद हमारा महान संघर्ष आख़िरी मंज़िल पर पहुंच गया है। आक्रमण और अत्याचार के विरुद्ध यह युद्ध आज पहले की अपेक्षा और अधिक हमारा अपना युद्ध बन गया है। अपराजित जापान हमारी सुरक्षा तथा शांति के लिए बहुत बड़ा संकट है।

शत्रु अब तक काफ़ी बलवान है। उसके सैनिक बड़े वहशी होते है और आख़िर दम तक लड़ते हैं। उसके साधनों में अभी कमी नहीं हुई। हमें अभी भीषण युद्ध करना है। इसलिए सुख से सोने का समय अभी नहीं आया। हमारे दृढ़ संकल्प से हिन्दुस्तान के बहादुर जवानों का हौसला बढ़ेगा और वे दुश्मन के घर में घुंस कर उससे बिना शर्त हथियार डलवा कर रहेंगे।

अपने सैनिकों के त्याग के सामने हमारी कठिनाइयां कुछ भी नहीं। हमें साहस और दृढ़ता के साथ अपनी ज़िम्मेदारी निभाते रहना चाहिए और जीत का दिन निकट लाने के लिए पहले की अपेक्षा और अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

हमारा युद्ध जारी है....

AAA 359 डिपार्टमेण्ट आफ इन्फर्मेशन एण्ड ब्राडकास्टिङ्ग, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'विशाल भारत' का

आगामी विशेषांक

विवरणके लिए अगला अंक देखिए।

विषय-सूची (अगस्त, १९४५)

(१) बादल ऊपर सेज पियाकी ६५ ; (२) जलते दाग ६६ ; (३) सुदास और दस राजाओंका युद्ध ६७ ; (४) सखि, पावसकी भींगीं रातें ७० ; (५) मेरी कथा ७१ ; (६) मानवकी महिमा ७२ ; (७) एक कविताका पुरस्कार : काश्मीरका राज्य ७३ ; (८) कुर्आनकी एक आयत ७६ ; (९) चीन अजेय है ७८ ; (१०) कास्मोपोलिटन क्लब ८१ ; (११) कामना ८९ ; (१२) रचनात्मक स्वप्न ९० ; (१३) गंगारामका प्रश्न ९५ ; (१४) भारतीय संस्कृतिका भावी स्वरूप ९७ ; (१५) क्या कहूँ १०० ; (१६) 'कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो' १०१ ; (१७) शिमलासे मसूरी १०५ ; (१८) गांधी-योजना १०८ ; (१९) स्व० श्रीदेव सुमन १११ ; (२०) चिट्ठी-पत्री ११४ ; (२१) समालोचना ११६ ; (२२) चयन ११९ ; (२३) सम्पादकीय विचार १२१।

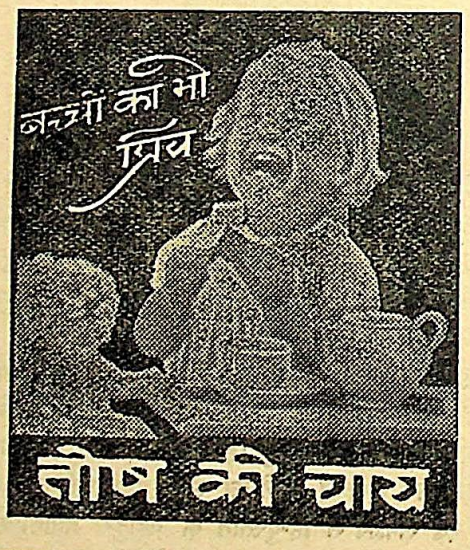

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost. Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

के

प्रसिद्ध प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' की कविता-संग्रह ।)

२ विभूति— ।)

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी नाटकोंका सचित्र संग्रह।

३ शहरका अन्देशा— ।)

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य व व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। हर प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है।

४ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक ।)

५ पाँचधागे— ।)

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह।

६ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ।)

७ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ।)

८ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले ।)

९ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले ।)

१०-११ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक ।)

१. मधुमक्खी २. जंगल

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नीम
टूथ पेस्ट

नीमकी दातुन हिन्दुस्तान में प्राचीन कालसे चलती है। क्यालकेमिको के नीम टूथ पेस्ट में नीमके सब गुण वर्त्तमान हैं।

मार्गोफ्रिस

(MARGOFRICE Neem Dental Powder)

नीम का पाउडर मञ्जन भी है, अगर आपको मञ्जन पसन्द हो।

कलकत्ता केमिकल कम्पनी लिमिटेड्
वालिगञ्ज :: कलकत्ता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह सम्मानपूर्ण चिन्ह आपके लिए है!

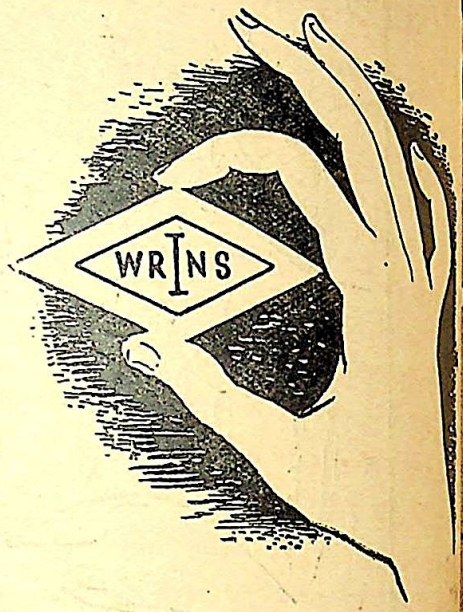

वमेन्स रायल इंडियन नेवल सर्विस का यह बिल्ला बड़े गौरव तथा विश्वास का चिन्ह है। यह प्रकट करता है कि रायल इंडियन नेवी ने इसे लगाने वाली महिला को बहुत ज़िम्मेदारी का काम सिपुर्द किया है; और यह प्रायः बड़ा महत्वपूर्ण कार्य होता है। इसे लगाने वाली महिलायें जानती हैं कि वे संसार के भविष्य तथा स्वयं हिन्दुस्तान के भविष्य के किए बहुत बहुमूल्य सेवा कर रही हैं। वे यह भी जानती हैं कि जो ज्ञान वे प्राप्त कर रही हैं उसके आधार पर शांति स्थापित होने पर उनकी गणना बड़े योग्य नागरिकों में होगी। उस समय व्यवसाय-वाणिज्य, उद्योग-धन्धे आदि में ज़िम्मेदारी की जगहों के लिए ट्रेनिंग प्राप्त और अनुभवी महिलाओं की आवश्यकता होगी। समुद्री बेड़े का सम्मानपूर्ण चिन्ह आपकी राह देख रहा है! डबल्यू० आर० आई० एन० एस० की नौकरी के सम्बन्ध में पूरा विवरण आप किसी डबल्यू० ए० सी० (आई) रिक्रूटिंग आफिसर से प्राप्त कीजिए, जिनके पते नीचे दिये हुए हैं। आप किसी डबल्यू० आर० आई० एन० एस० यूनिट कमांडर या किसी बन्दरगाह के नेवल आफिसर इन्चार्ज के पास सीधे आवेदनपत्र भी भेज सकती हैं।

डबल्यू० आर० आई० एन० एस०

WRINS

वमेन्स रायल इंडियन नेवल सर्विस
वमेन्स आग्ज़ीलरी कोर (इंडिया)
में भरती हो जाइए

डी.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.ए.सी. (१) नीडोज होटेल, लाहौर। डी.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.ए.सी. (१) हज़रतगंज, लखनऊ। ए.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.एस.सी.(१) नं० १ सेक्शन दिल्ली। डी.ए.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.आर.आई.एन.एस.,C/o.असिस्टेण्ट टेक्निकल अफसर, इलाहाबाद। डी.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.ए.सी. (१) २८ थियेटर रोड, ए.टी.आर.ओ.,डब्ल्यू.ए.सी.(१) ३।१८, माउन्ट रोड, मद्रास। डब्ल्यू.ए.सी.(१) ए.एफ.आई. बिल्डिंग, हास्पिटल लेन, धोबी तलाव,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कविवर श्री आरसी प्रसाद सिंहकी

चार अनुपम रचनाएं

[ये चारों रचनाएं कविवरकी साहित्यिक विभिन्न दिशाओंकी ओर संकेत करती हैं।]

आरसी

१९४२ में प्रकाशित और आज तक अतुलनीय। 'विशाल भारत' साइजमें छपे प्रायः ७०० पृष्ठ और लगभग ९०० कविताएं। इस पुस्तकने हिन्दी-प्रकाशन-संसारमें एक हलचल-सी मचा दी थी और जिसकी १६०० प्रतियाँ प्रेससे निकलते ही हाथों-हाथ बिक गई थीं। कीमत भी ५) से लेकर १५) तक बराबर बढ़ती गई। अब थोड़ी-सी प्रतियाँ बच गई हैं, जो पुनः ९) में बिकनेको तैयार हैं। शीघ्रता कीजिए। स्मरण रखिए कि इस पुस्तकका फिर दुबारा संस्करण न होगा और जब अलग-अलग खण्डोंमें यह किताब छपेगी, तब सम्पूर्ण सेटका दाम ५०) से कम न होगा।

कलापी

कविकी चुनी हुई रचनाओंका यह प्रथम संग्रह है, जो १९३८ में प्रकाशित हुआ था और साहित्य-जगत्में अपना एक निश्चित स्थान बना लिया था। कविकी रोमान्टिक कविताओंका यह अमूल्य संकलन है, जिसपर सारे हिन्दी-जगत्को गर्व है। डिमाई साइजमें छपी लगभग २२५ पृष्ठोंकी इस सचित्र और सजिल्द काव्य-पुस्तकका दाम केवल २॥) है। इसकी भी बहुत थोड़ी प्रतियाँ बची हैं।

नयी दिशा

कल्पनाके आकाश-महलसे नीचे उतरकर कविने जब धरातलकी कठोर भूमिपर पैर रखा, उस समयकी बहु-विचित्र भावनाओंका सफल चित्र इस कलात्मक पुस्तकमें देखिए। तीन महीनेमें ही प्रथम संस्करणका समाप्त हो जाना इस बातका सूचक है कि यह पुस्तक कितनी लोक-प्रिय है। दूसरा संस्करण इसी महीनेमें फिर छपकर निकल जायगा। मूल्य केवल २) रुपए।

पांचजन्य

नई दिशामें जो वस्तु अंकुरित हुई, वही इस काव्य-पुस्तकमें अद्भुत सफलताके साथ पुष्पित-पल्लवित हुई है, जिसकी सुगन्धसे समस्त हिन्दी-संसार आप्लावित है। पुस्तककी ऐसी कोई कविता नहीं और किसी कविताकी ऐसी कोई भी पंक्ति नहीं, जिसमें पुलिंग न बोलता हो। एक साथ ही अध्यात्म, दर्शन, पौरुष एवं अमृत-छन्दसीके रहस्यमय भावोंसे ओत-प्रोत यह नवीन पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित हुई है। मूल्य २)।

तारामण्डल, मुज़फ्फरपुर

खेती, बागवानी, उद्योगधंधे, व्यापार, स्वास्थ्य, इत्यादि विषयक एक मात्र सुप्रसिद्ध मासिक पत्र

उद्यम का साबुन विशेषांक

सुन्दर मुखपृष्ठ।] ता० १५ अगस्तको तयार। [सूचक व्यंगचित्र।

इस विशेषांकमें साबुनके लिए लगानेवाला कच्चामाल, **साबुन तैयार करने सम्बन्धी सम्पूण व्यवहारोपयोगी जानकारी**, मालकी प्रसोद्ध व इतर सम्पूर्ण जानकारी प्रकाशित हुई है।

वार्षिक मूल्य रु० ५-८-०, (वी० पी० से रु० ५-१२-०) भेजकर ग्राहक बननेवालोंको 'साबुन-अंक' तो प्राप्त होगा ही, इसके सिवाय खेती, बागवानी, लाभप्रद उद्यो-गधंधे, व्यापार आदि विषयोंकी जानकारी प्रति माह १५ तारीखको नियमित प्राप्त होती रहेगी।

'उद्यम' की मांगको अधिकताके कारण कहीं आपको निराश न होना पड़े, अतः शीघ्रातिशीघ्र लिखिए।

मैनेजर 'उद्यम मासिक' धर्मपेठ, नागपुर

क्या आपको आवश्यकता नहीं है ?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की स्त्री-पुरुषके लिए औषध

मेनसो—कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २)।

लिबर्टो—उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २)।

ओज़न—निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनता है। मूल्य सिर्फ ४)।

कैटरेक्टो—बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २)।

मेनसो चेम्बर

१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता

फोन : साउथ २४६७

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हजमात (शेवींग) के लिये भी 'गोदरेज' साबुन का व्यवहार कीजिये !

सावधानी से बनाने की विधि प्राकृतिक औषधियों का मिश्रण परीक्षित शुद्ध वनस्पति तेल का उपयोग ही अन्य गोदरेज नहाने के की तरह ही गोदरेज शेविंग सोप की भी विशेषतायें हैं। इसमें उपयोग गये वनस्पति तेल के फेन से आपके चर्म पर किसी भी तरह की नहीं होगी। इसमें दो खास फायदे हैं—एक तो यह कड़ी से कड़ी दाढ़ी को मुलायम देता है जिससे हजामत बनाने में जरा भी कष्ट नहीं होता और दूसरा अत्यन्त कोमल को भी हजाम बनान के बाद मुलायम और चिकना रखता है। गोदरेज शेविंग स्टिक या 'राउन्ड'—का उपयोग कर अपने चेहरे की सुन्दरता को बढ़ाइये।

गोदरेज टायलेट साबुन नं० १ : नं० २ 'वतनी' : सन्दल लिमडा (नीम) फे मि ली टर्किश बाथ शेविंग स्टिक शेविंग 'राउन्ड'

गोदरेज

शेविंग स्टिक

शेविंग 'राउन्ड'

गो द रे ज सो प्स, लि०. कलकत्ता (१०२, क्लाइव स्ट्रीट) ; पटना (स्टेशन रो

केवल एक दिनमें

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब सवालों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की घड़ियों में ६½ इत्यादि बजा देना, दीवार में आग लगा देना, मुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्में सीखकर

—दूसरे ही दिन—

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाउन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की ज़ोरदार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

— दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

मूल्य

१. प्रेमयोग
२. प्राच्य और पाश्चात्य (द्वितीय संस्करण)
३. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (द्वितीत संस्करण)
४. परिव्राजक (द्वितीय संस्करण)
५. भक्तियोग
६. मेरे गुरुदेव (द्वितीय संस्करण)
७. शिकागो वक्तृता (तृतीय संस्करण)
८. वर्त्तमान भारत

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखिए।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

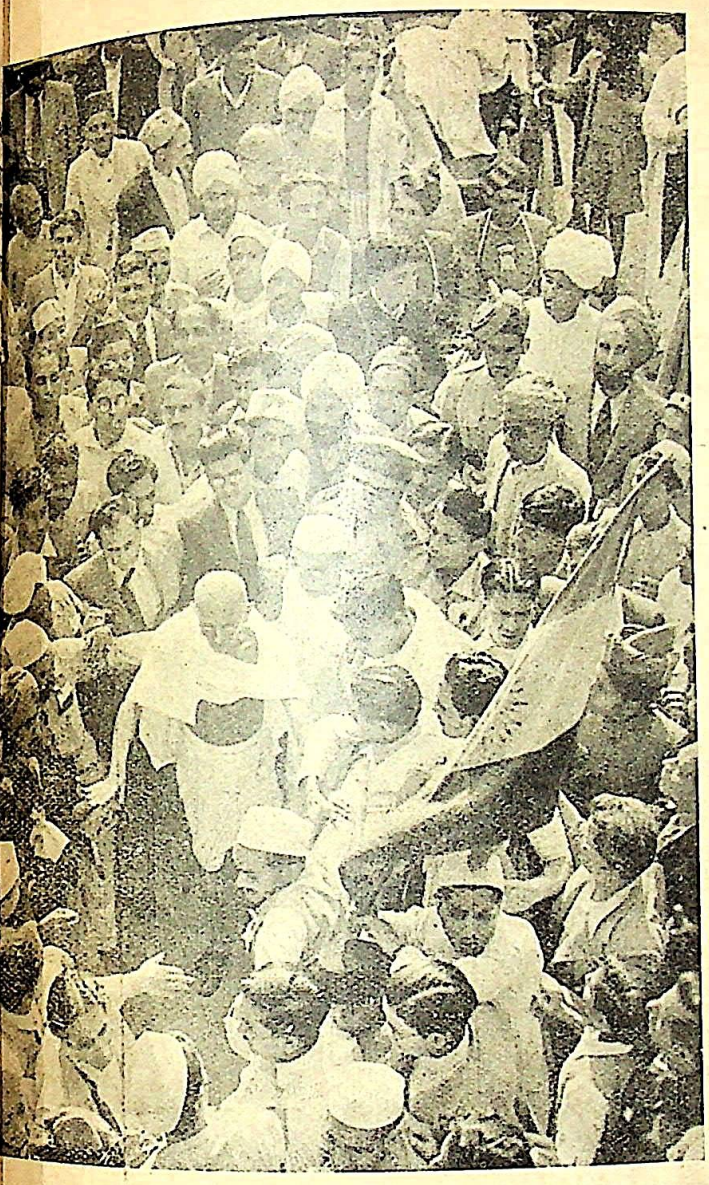

वाइसराय राष्ट्रपति आज़ादका स्वागत कर रहे हैं।

शिमला-सम्मेलनके कुछ दृश्य

वाइसरायसे मिलकर लौटनेपर जनता और पत्रकार गांधीजीको घेर लेते हैं।

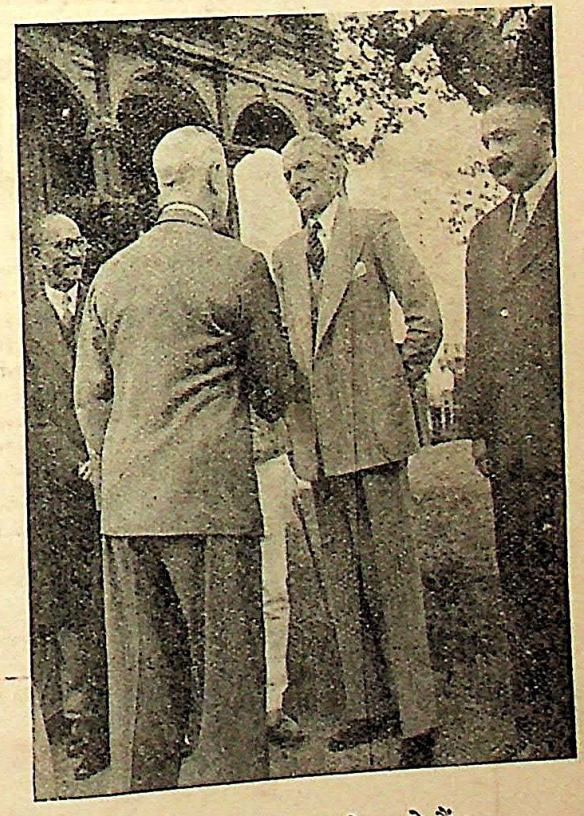

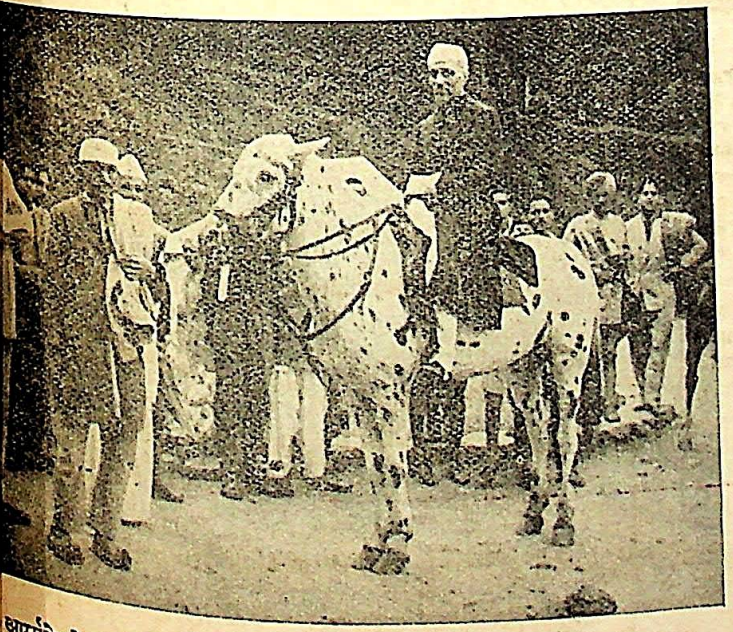

आर्म्सडेलसे घोड़ेपर सवार होकर नेहरूजी वाइसरायसे मिलने जा रहे हैं।

वाइसराय जिन्नासे हाथ मिला रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक २] कलकत्ता, अगस्त, १९४५ [पूर्णांक २१२

बादल ऊपर सेज पियाकी—

साहित्याचार्य प्रो० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन', एम० ए०

मेघ-मन्द्रमें ग्राम-वधूटी, पीतम उठा पुकार—
घरके पीछे बँसवाड़ीमें सजल नैन हैं लीन ;
झुक गवाक्षपर झिल्लीके शिंजनमें तू सुधिहीन !
सोच रही—'जब सुरभि-भारसे आकुल हो अमराई ;
पुंस्कोकिलके करुण कण्ठमें दे सन्देश सुनाई ।'
किन्तु आज सहसा झंझामें किसका स्वर-सम्भार—
मेघ-मन्द्रमें ग्राम-वधूटी, पीतम उठा पुकार !

पीतम उठा पुकार, कि सचमुच पीतम उठा पुकार—
सुध सँभार, उठ री ओ पगली, कर ले नव-सिंगार ;
अगरु-धूपमें वासित अपनी कबरी शीघ्र सँवार ।
दे नैनोंमें काजल, ले नूपुर-किंकिणी उतार ;
वसन पहन ले श्याम-तारकित, लिए उमंग अपार—
विजली-सी उनए नव-घनमें सजनी, कर अभिसार ;
पीतम उठा पुकार, कि सचमुच पीतम उठा पुकार !

ह्वूँढ़ रही वह दूर पियाकी आकुल लग्न पुकार—
रति-मन्दिरमें सेज विछाए तकती किसकी राह !
करमें मौलसिरीकी माला, सूखी सुरभि अथाह ।
दीपककी लौ क्षीण, पी गई कितना उत्सुक स्नेह !
गिनते-गिनते अवधि उँगलियाँ क्षाम, तार-सी देह ।
यह न मिलनकी सेज बावरी ! विहर-समुद्र अपार—
ह्वूँढ़ रही वह दूर पियाकी आकुल लग्न पुकार !

गुरु-गँभीर यह गूँज रही साजनकी हाय, पुकार—
यह पुकार गुरुसे गुरुतर, गुरुतम हो उठी पुकार ;
दिग्दिगन्त आप्लुत, गिरि-कानन-कुहरोंमें उच्चार ;
लहरोंमें गुंजन-आस्फालन, झंझामें झंकार ;
अणु-अणुमें परिव्याप्त नाद, सुन बिरहिन, यह स्वर तार
जो बजाता है उर-स्पन्दमें आमन्त्रण अविकार ।
गुरु-गँभीर यह गूँज रही साजनकी हाय, पुकार !

दूर गगनमें री, परदेसी सैयाँ रहे पुकार—
तूने उनका रूप न देखा, पर स्वर तो पहचान ;
सुन कदम्बसे अंग कोरकित, पागल-से मन-प्रान ।
शिव-डमरू, बाँसुरी कान्हकी, सब इसमें लयमान ;
यह कैसा है गान पियाका, मर्मान्तक आह्वान !
कहाँ हाय, तू बाँध तोड़कर उफन रहा अब प्यार—
दूर गगनमें री, परदेसी सैयाँ रहे पुकार !

यह असह्य है अविरल बालमको रस-भरी पुकार—
सीमाहत नारी, ले बढ़कर सीमाहीन दुलार ;
तड़ित-दीप ले पिया दिखाते पन्थ-खड्गकी धार ।
डोरी झूल रही बूँदोंकी भोरी ! भीमाकार ;
धर ले डगर पियाकी गोरी ! ऐसी, निरहंकार ।
जनम-जनमकी बिरहिन, तेरा मिलन-लग्न त्यौहार—
यह असह्य है अविरल बालमकी रस-भरी पुकार !

भर भादोंकी रात और यह पीतम उठा पुकार—
जिसे पुकार रही युग-युगसे, उसकी आज पुकार ;
बहू ! आज सब लाज और भयका दे भार उतार ।
रपटीली है राह, किन्तु फिर कल्प-कल्पकी आह ;
तटकी बन्दिनि सुन, न मिलेगा फिर यह मुक्ति-प्रवाह ।
जनम-मरणके साथीसे घुल-मिल कर साक्षात्कार—
भर भादोंकी रात और यह पीतम उठा पुकार !

बालम उठा पुकार, हाय, यह पीतम रहा पुकार—
अंग-अंगमें रभस, देहलीपर ओ वेसुध नारी !
पहुँच रही तू, घटा झुक रही, यह ले कारी-कारी ।
अपने हाथों सेज बिछाई, साजन परम सयाने ;
तड़प रहे यह, तड़ित देख, तू समझी इसके माने ?
यह रहस्यमय मधुर देहली, साजन जिसके पार—
मेघ-मन्द्रमें ग्राम-वधूटी, पीतम उठा पुकार !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

जलते दाग़

श्री रांगेय राघव

- १ -

कैसी कारामें बैठा हूँ, जो चल-फिरकर भी आज बन्द !
हथकड़ियोंकी झन-झनमें से ध्वनि आती है—'मन हो न भंग !'
बन्दी हैं ये चालिस करोड़, फिर भी क्यों डरता लौह पाश ?
स्वामीकी छलनामें भूला दासोंसे थर्राता विषाक्त ?
कह उठा कौन—'बन्दी ! प्रकाशसे जीत सका कब अन्धकार ?
जनताकी लहरोंके सम्मुख कब ठहर सका है अहंकार ?'
मेरे प्राणोंमें गूँज रही युग-युगकी वह निर्भय पुकार,
कह गए जो कि पूर्वज मेरे—'है असत् स्वयं ही एक हार ।'
सुन रहा भयानक काराके उन लौह सींकचोंके पीछे ;
उस चपल सिंहकी वह पग-ध्वनि है गूँज रही तमको चीरे ।
जल रहा हृदय, अवरुद्ध सर्प-सा पटक रहा फन वह गभीर,
उस महासिन्धु-सा गरज रहा, फिर भी है अपराजित प्रवीर ।
घनघोर मेघके पाशोंमें, रे, छिप न सका वह ज्योतिर्कन ;
कर रहा प्रतीक्षा है अब भी थर्राता जिसको देख मरण ।
इन भुजदण्डोंमें वही रक्त, इन हुंकारोंमें वही शक्ति ;
खोलेंगे काराके वे पट, माँगता राष्ट्र है आज मुक्ति ।
ये जो सहस्र शत-शत अबाध कारामें सड़ते आज फूल ;
सभ्यता-सुन्दरीके पटपर चुभ रहे आज हैं बने शूल ।
एक-एक कील आज़ादीकी साम्राज्यवादके घृणित कफ़न * —
को भिंगो रक्तसे मूँद रही, कर नवल शक्तिका महासृजन ।
साम्राज्यवाद पाषाण बाँध, हम आज ग़ुलामीका विषाद ;
केवल अतीतके महासिन्धुमें सबल डुबा दें निर्विवाद ।
सूने नयनोंसे गगन देख हम रह न सकेंगे आज मौन ;
जो मुर्दोंमें फिर साँस भरे हम ही हैं वह—है और कौन ?
क्या मानवताकी छातीसे मिट सके कभी वे कील-दाग़ ?
क्या हसनैनोंकी हत्यासे घुट सका सत्यका प्रबल श्वास ?
क्या दर्शनका वह दीप्त सूर्य विषपान-तिमिरमें सका डूब ?
रुधिराद्र शीश आज़ादीके वह एक शृंखला है अटूट ।
यह टूट न जाए तार आज, बन जाए ऐसी रज्जु एक ;
कैसी भी अँधियारी बाँधे होकर प्रकाशकी स्वर्ण-रेख ?

- २ -

मैं कैसे भूलूँ शूलोंको, कब तक रोऊँ—'हारा-हारा' ?
लो, मेरा मौन पुकार उठा, अरमान हुआ है अंगारा !
वह दिन आँखोंमें जलता है ज्वालामुखियोंका दाह बना ;
जिसपर घायल चीत्कारोंका वह रक्त-सना आवरण तना ।
था देश क्रोधसे पागल-सा, घर-घरमें था विक्षोभ जला ;
तू उधर हुआ बन्दी, सबके फूत्कारोंका था तीर चला ।
अपमान हुआ था भारतका, जन-जनमें जोश उमड़ता था ;
अत्याचारोंके विषसे था अब रक्त खौलता हुंकार ।
जब यह सारा संसार सतत पशु-बलसे जूझ रहा पल-पल ;
जब जनताके इस्पाती तनपर लोहा भी झुक व्यर्थ विकल ;
तब शीश उठाकर भारतमें मानवताका आलोक जला ;
इस अन्धकारके पापोंको दिखलानेकी थी एक सुझ ।
क्या कहा कि कण्ठ न बोल सके, क्या सुना कि मन चीत्कार उठा ;
उन निरपराध जन-सेननीका पाश हमें ललकार उठा ;
इतिहास न भूलेगा लेकिन, अपमानोंकी यह घोर व्यथा ;
है लिखी रक्तसे भारतने बलियोंकी मुक्त ज्वलन्त कथा ।
क्षण-भरको तम-सा छाया था, अवरुद्ध रोष था चीख उठा ;
मानवताके मृदु अंगोंको पाशव बल सहसा भींच उठा ;
भूले-भटके थे छले गए चालोंमें चतुर शिकारोंसे ;
केवल प्रतिशोध उमड़ता था, दासता दबाती भारोंसे ।
है याद साँझ थी रक्त-वसन, हम खड़े निहत्थे महाधीर ;
हम थे सहस्र, अगणित, मिलकर थे बोल उठे—'रे नहीं भीर !'
पर टूट पड़े थे अश्व लिए दण्डोंका जो करते प्रहार ;
वह छिन्न न कर पाए हमको, थी शक्ति नई, था महाबल ।
थे रहे कुचलते अश्व, किन्तु हम थे अबाध निर्भीक बढ़े ;
दूना भर देते थे साहस वे मुक्त शीश, जो रक्त-सने ।
क्या कहूँ कि मन चिल्लाता है ? मैं माँग रहा हूँ न्याय सदा ।
हो जाय ध्वस्त साम्राज्य, किन्तु फिर भी न रुकेगी यह पुकार ।
जब घिरी खड़ी थी यह जनता, गोली चलती थी अन्ध, हठी ;
शत-शत अपराजित खड़े रहे, पीछे हट जाए आज कौन ?
नभमें भीषण ध्वनि गूँज उठी, घहराई, टकरा हुई दफ़न ;
पर पृथ्वीपर आज़ादीका झण्डा ख़ूँसे था गया गड़ा ।
संसार देख ले, यह नर-पशु अपनेको कहते हैं मानव ;
मैं पूछ रहा—क्या आज़ादी माँगना पापका छाया-दान ?
जब सिंह पड़े कारागृहमें, जनता पर होते थे प्रहार ;
कुत्ते बाहर दुम हिला-हिला थे चूस रहे हड्डी-निकर ।
साम्राज्यवादकी मरण-भेरियोंसे गुंजित था बार-बार ;
संसार, व्यस्त था, गरज रहा फट रहा, कुहरका घोर भार ।
मैं नहीं कहूँगा अब कुछ भी, कह रहा, स्वयं जन-जन अक्षर ;
लोहेकी अंगुली भी मानवके सत्य शब्द कब सकी मिटा ?

---

* Coffin—क़फ़नका बक्स ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुदास और दस राजाओंका युद्ध

प्रो० भगवतीप्रसाद पान्थरी, एम० ए०

मनुष्य प्रकृतितः एक संघर्षप्रिय या लड़ाकू जीव है, यह धारणा ऐतिहासिक खोजोंसे ग़लत सिद्ध होती है। ऐतिहासिक खोजोंसे यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्राग्ऐतिहासिक युगका मनुष्य जब शिकारी और कृषककी अवस्थामें था, तो उस समय उसका जीवन 'सरल और शान्तिप्रिय' था। यही बात पाषाण-युगके मनुष्यके साथ लागू है। पाषाण-युगका मनुष्य 'कलहप्रिय' न था, इसलिए उस युगमें शास्त्रोंका अभाव भी पाया जाता है।[1] पूर्व-पाषाण-युग और उत्तर-पाषाण-युगके अवशेषोंमें हथियार नहीं मिले हैं।[2] यदि इन युगोंमें 'युद्ध' मानव-जीवनके एक व्यापारके रूपमें ग्रहण हो चुका होता, तो निःसन्देह उस समय शस्त्रोंके निर्माणमें लोगोंने कुशलता और चेष्टा दिखलाई होती। अतः यह मान लेना असंगत नहीं हो सकता कि मानवकी आदिम जातियाँ कलहसे मुक्त थीं। श्री विण्टरिंघम, जो यौद्धिक कलाके एक विवेचक हैं, का मत है कि प्राग्ऐतिहासिक युगमें, जो 'विस्मृति और अप्रगतिके अन्धकार'का एक युग है, बहुत कम सामरिक प्रवृत्ति देखनेको मिलती है। श्री राजलके अनुसार यह युग 'युद्धके भीषण तथा प्रलयंकारी बाढ़से मुक्त था।'

वस्तुतः युद्धकी प्रवृत्ति और कलहोंका श्रीगणेश तब प्रारम्भ हुआ, जब मनुष्य-जातिने राज्योंको स्थापितकर जायदाद संचित करना सीखा। साम्राज्य निर्मित करनेवाले नेता अथवा शासक-वर्ग फलतः युद्धके जन्मदाता बने। यही कारण है कि वैदिक युगसे लेकर अन्त तक भारतीय इतिहास, वरन् संसारके इतिहास में जितने भी युद्ध हुए हैं, वे साम्राज्यके विस्तार और आर्थिक शोषणके लिए ही किए गए हैं।

ऋग्वैदिक कालमें युद्ध—वैदिक युगमें आर्य लोग कई जातियोंमें विभाजित थे। इन जातियोंमें परस्पर संघर्ष चला करता था। संघर्षका कारण मुख्यतः 'साम्राज्य-प्रसार'की नीति थी। बहुधा किसी जातिका शक्तिशाली राजा अपने पड़ोसकी रियासतोंको हड़पकर अपने फैलावका प्रयत्न किया करता था। अतः पड़ोसी निर्बल राज्य आपसमें 'संघ' स्थापितकर अतिक्रमण करनेवाले राजाको रोकनेका प्रयत्न करते थे।

ऋग्वेदकी कई ऋचाओंसे पता चलता है कि उस समय साम्राज्यशाही-लिप्सासे पारस्परिक कलह काफ़ी बढ़े हुए थे। ऋग्वेदकी अनेक ऋचाओंमें युद्ध, संघर्ष, विजय और पराजयके उल्लेख मिलते हैं। प्रमुख ऋग्वैदिक ऋषि शत्रुओं के विनाश और पराजयकी प्रार्थना करते हुए पाए जाते हैं। युद्धमें विजय प्रदान करनेवाले देवता इन्द्रकी खूब मान्यता मिलती है। युद्धमें विजय पानेके हेतु वैदिक ऋषि इन्द्रकी स्तुतिमें लवलीन मिलते हैं।

ऋग्वेदमें आर्योंके पारस्परिक तथा अनार्योंके बीचके युद्धोंकी कई सूचनाएँ भी ऋचाओंमें पाई जाती हैं। मं० १, सू० ५१, अ० ६ में इन्द्र द्वारा विप्रोंके पुरों (क़िलों) के ध्वंस करने तथा ऋज्रिश्वान (कोई वैदिक राजा) को दस्युओंको मारनेमें इन्द्रकी सहायता देनेका ज़िक्र है।[3] इसी प्रकार दूसरी ऋचाओंमें भी आर्यों और दस्युओंके बीच होनेवाले संघर्षोंपर प्रकाश डाला गया है।

दस राजाओंका संघ और सुदास—आर्यों तथा दस्युओंके संघर्षके अलावा आर्योंमें होनेवाले पारस्परिक युद्धोंका भी ऋग्वेद में स्पष्ट ज़िक्र मिलता है। इन युद्धोंमें दोका प्रमुखतः उल्लेख हुआ है—बीस राजाओं और सुश्रवा तथा दस राजाओं और सुदासके बीचके युद्ध। प्रथम युद्ध—बीस राजाओं और सुश्रवाके बीच हुए युद्धका ऋग्वेदमें अधिक विवरण नहीं मिलता। ऋग्वेदके मं० १, सू० ५३, अ० ९ में केवल इतना कहा गया है कि बीस राजाओं ने मिलकर सुश्रवापर ६००९९ सैन्य लेकर आक्रमण किया था; किन्तु सुश्रवाने इन्द्रकी सहायतासे उन्हें हरा दिया।[4] इतनेके अलावा इस युद्धके बारेमें ऋग्वेदसे कुछ अधिक पता नहीं चलता। लेकिन यह युद्ध अवश्य एक निर्णायक युद्ध था, यह निर्विवाद रूपसे माना जा सकता है; क्योंकि इस युद्धके परिणाम-स्वरूप बीस छोटी-छोटी रियासतोंको पराजितकर शक्तिशाली सुश्रवा एक संयुक्त आर्य-साम्राज्य क़ायम करनेमें सफल हुए होंगे। इस अद्वितीय सफलताके कारण सुश्रवा वैदिक युगमें ही सम्भवतः 'राम और युधिष्ठिर'की भाँति एक पौराणिक महापुरुष के रूपमें पूजे जाने लगे थे।[5] द्वितीय युद्ध—ऋग्वैदिक कालका दूसरा महान युद्ध दस राजाओंके संघ और सुदासके बीच हुआ था। इस युद्धके बारेमें ऋग्वेदमें अधिक विस्तारसे वर्णन मिलता है।

सुदास—ऋग्वैदिक कालमें सप्त-सिन्धुमें कई आर्य-जातियाँ निवास करती थीं, जिनमें प्रमुख पुरु, तृत्सु और भरत थे। भरत-कुलकी तृत्सु-जातिमें दिवोदास और उसका लड़का अथवा पोता सुदास बहुत प्रसिद्ध राजा हुए हैं। ऋषि भरद्वाजके अनुसार ऋग्वैदिक युगमें राजा भरत और दिवोदासने 'अग्नि-यज्ञ'के उपासकोंके रूपमें बहुत ख्याति प्राप्त की थी।[6] दिवोदास एक बलिष्ठ और पराक्रमी

---

1 *The Growth of Civilization*: By W. S. Perry, p. 211-212.
2 *The Art of War*: By Arthur Birnie, p. 11.
3 *The Hymns of the Rig-Veda*: By Griffith, p. 70-71.
4 *Ibid.*, p. 74.
5 *Rig-Vedic Culture*: By A. C. Das, p. 383.
६. ऋग्वेद—मं० ६, सू० १६, अ० २।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

योद्धा था। तुर्वशुओं और भद्रओंके साथ उसने कई युद्ध लड़े थे[७] और उनपर विजय प्राप्त की थी। उसने असुर राज गिरे-र्दास शम्बरको पराजितकर इन्द्रदेवकी मददसे उसके ९९ पुरोंको ध्वस्त किया था[८] तथा पंणि, पारावत और वृसयोंका विनाश किया था।[९] अन्तकी इन तीन जातियोंको कुछ यूरोपियन विद्वानोंने आरकोसियाकी बतलाया है; लेकिन यह उनकी कल्पना-मात्र है। ये तीनों जातियाँ भारतीय थीं, और इनमें से पंणि गंगाके तटपर और पारावत यमुनाके तटपर रहती थीं। दिवोदासने इन जातियों से आरकोसियामें नहीं, वरन् पंजाबमें सरस्वती नदीके तटपर युद्ध किया था।[१] वीर दिवोदासके मित्रोंमें पुरु राजा, कुत्स और आमू थे (मं० २, सू० १४, अ० ७)। अपने विजयी जीवनमें केवल एक बार अतिथिग्व दिवोदासको अपने मित्रों-सहित राजा तूर्वयाणसे पराजित होना पड़ा था। (मं० १, सू० ५३, अ० १०)। तूर्वयाण पक्थ-जातिका राजा था।

इसी विजयी सम्राट दिवोदासका लड़का अथवा पोता सुदास हुआ। सुदास भी अपने पिता या दादाकी भाँति ही वीर और योद्धा था। दिवोदासने विभिन्न जातियोंको ध्वस्तकर एकछत्र आर्य-साम्राज्यकी स्थापना करनी चाही थी, जैसा कि उसकी लड़ाइयों और विजयोंसे साफ़ है। सुदासने भी साम्राज्य-स्थापना के इस प्रशस्त मार्गका अनुकरण किया। उसका ध्येय सप्त-सिन्धव की सम्पूर्ण बिखरी हुई आर्य-जातियोंको एक शासन और एक राष्ट्रके नेतृत्वमें लाना था; क्योंकि वह समझता कि बिना एक राष्ट्र और एक शासनके क़ायम होनेसे आर्य-जाति उन्नति करनेमें असमर्थ है। साम्राज्यका संगठन आवश्यक प्रतीत हुआ। अतः इसी अभिप्रायसे सुदासने सम्भवतया अपनी विजय-यात्रा प्रारम्भ की थी, और प्रारम्भमें उसके पुरोहित ऋषि विश्वामित्रने भी उसे सहायता पहुँचानेका निश्चय किया था। विश्वामित्रने सुदासकी विजयके हेतु कई यज्ञादि किए थे और इन्द्रको प्रसन्न किया था (मं० ३, सू० ५३, अ० ९)। ऋषिने सुदासके लिए अश्व-मेघ-यज्ञ करके विजय-यात्राका श्रीगणेश भी कर दिया था। अपने पुत्रोंको बुलाकर विश्वामित्रने आदेश दिया था कि 'कुशिको, सुदासके अश्वमेघ-यज्ञके घोड़ोंको मुक्त कर दो और राजाको अपने शत्रुओंका हनन करने दो' (मं० ३, सू० ५३, अ० ११)।

विश्वामित्र इस प्रकार सुदासकी दिग्विजयको सफल बनानेकी चेष्टामें थे; किन्तु इसी बीच विश्वामित्रका सुदासके ब्राह्मण पुरोहित वशिष्ठसे किसी बातपर झगड़ा हो गया। तृत्सव कीय सुदासके राजकुलके ब्राह्मण पुरोहित थे। विश्वामित्र भरत-जातिसे थे। सम्भवतः विश्वामित्र सुदासके यहाँ ब्राह्मण पुरोहित होनेका अधिकार चाहते थे। किन्तु वशिष्ठके कहनेपर यह अधिकार विश्वामित्रको नहीं दिया गया और उन्हें केवल राजर्षि माना गया, जैसा कि महाकाव्यों और पुराणोंके कथानकोंसे मालूम होता है। लेकिन ऋग्वेदसे झगड़ेका कोई स्पष्ट कारण नहीं मालूम होता। ऋग्वेदसे इतना ही पता चलता है कि पहले विश्वामित्र तृत्सवोंके पुरोहित थे और बादमें वशिष्ठ द्वारा वे उस पदसे हटा दिए गए। फलतः विश्वामित्र क्रोधित होकर सुदासका राज्य छोड़ उसके शत्रु भरतोंके यहाँ चले गए।

विश्वामित्र क्रोधित होकर चुप नहीं बैठ गए। उन्होंने घोर हिंसामें पड़कर सुदास और वशिष्ठसे बदला लेनेका निश्चय किया। विश्वामित्र जानते ही थे कि सुदासकी दिग्विजयके फलस्वरूप कई छोटी-छोटी जातियाँ उससे असन्तुष्ट हैं, अतः इन असन्तुष्ट जातियोंको सुदासके विरुद्ध एक संघमें आयोजित किया जा सकता है। फलतः विश्वामित्रने इन जातियोंको सुदासके विरुद्ध युद्ध मोर्चा लेनेके लिए प्रेरित किया। विश्वामित्रकी प्रेरणा काम कर गई और जल्दी ही सुदासके विरुद्ध दस राजाओंने मिलकर एक संगठित दल क़ायम कर लिया। दलके संचालक और युद्ध नेता विश्वामित्र बनाए गए। इस दलमें सम्भवतः निम्न जातियाँ सम्मिलित हुई थीं—अनु, द्रुह्यु, भरत, पक्थ, तुर्वश, यदु, शिम्यु, अज, शिग्रवु और यक्ष (मं० ७, सू० १८)। सुदास प्रान्तके किसी एक जातिके राजा भेदने भी संघमें मिलकर युद्धमें बहुत बड़ा भाग लिया (मं० ७, सू० १८, अ० १८७)। अज, शिग्रवु और यक्ष सम्भवतया अनार्य-जातियाँ थीं, जो सप्त-सिन्धव के उत्तरमें रहा करती थीं।

सुदासकी तैयारी—सुदासको अपने विरुद्ध एक जबरदस्त संघके क़ायम होनेकी खबर लगनेमें देर न हुई। उसे विदित हो गया कि पुरु-समेत प्रमुख आर्य एवं अनार्य जातियोंने उसके खिलाफ़ एक संगठित दल बना लिया है। यह स्थिति उसके लिए अवश्य चिन्तनीय थी। संघके विरुद्ध मोर्चा लेनेके लिए अकेला सुदास निर्बल पड़ता था। इसी कारण तृत्सु-समाजने उत्तरकी बहुत-सी आर्य तथा अनार्य जातियोंको अपनी ओर मिला लिया। सुदासने वशिष्ठकी आज्ञा और अनुशासनपर चलते हुए पृथु, पर्शवो, पक्थ, भलानस, अलिनस, शिवास विषाणिनों आदि जातियोंसे मैत्री स्थापितकर अपना एक बलिष्ठ संघ क़ायम कर लिया और विश्वामित्र तथा दस राजाओंके संघसे युद्ध करनेकी पूरी तैयारी कर ली।[११]

---

७. ऋग्वेद—मं० ९, सू० ६१, अ० ३।
८. मं० १, सू० १३०, अ० ७ और मं० ६, सू० २६, अ० ५।
९. मं० ६, सू० ६१, अ० १-२।
10 *Rig-Vedic India*, chap. vi and vii; *Rig-Vedic Culture*, chap. ix, p. 356: By A. C. Das.
११. ऋग्वेद—मं० ७, सू० १२, अ० ७; *Rigvedic Culture*, By A. C. Das, P. 360 61

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पक्थ, भलानस, अलिनस, शिवास और विषाणिनी जातियाँ, श्री जिम्मरके अनुसार, वर्त्तमान काफ़िरितानके उत्तर-पूर्वमें रहती थीं। श्री कीथके अनुसार अलिनस काफ़िरिस्तानके उत्तर-पूर्वमें, पक्थ अफ़ग़ानिस्तानमें, भलानस बोलनके दर्रेमें और शिवास सिन्धु-तटमें बसी थीं। श्री कीथ इन जातियोंको सुदासकी जगह दस राजाओंके संघमें शामिल बतलाते हैं। किन्तु श्री रौथका मत अधिक मान्य है कि वे—अलिनस, पक्थ, भलानस, शिवास और विषाणिनी जातियाँ सुदासकी ओर थीं, जैसा कि ऋग्वेदसे स्पष्ट झलकता है (मं० ७, सू० १८, अ० ७)।[१२]

दस राजाओंके संघका बढ़ाव—दस राजाओंके संघकी सेना पूरी तैयारी करनेपर विश्वामित्रके नेतृत्वमें पूर्वसे परुषिणीकी ओर बढ़ने लगी। किन्तु परुषिणीके दक्षिणी तटपर पहुँचनेके लिए उन्हें मार्गमें शतुद्री और विपाश नदियोंको पार करना पड़ता था। यद्यपि मौसम पतझड़का था, किन्तु पहाड़ोंपर पानी बरसनेसे दोनों नदियों में बाढ़ आ गई थी। अतः विश्वामित्रके संघकी सेनाको बाढ़के कारण नदियोंको पार करनेमें कठिनाईका सामना करना पड़ा। ऋग्वेद में दिया है कि इस अवसरपर विश्वामित्रने नदियोंसे स्तुति की कि वे अपनेको नीचा कर लें और दूरसे आई हुई सेना, रथ आदिको सरलतासे पार हो जाने दें (मं० ३, सू० ३३, अ० ९)। इसपर, कहते हैं, नदियोंने विश्वामित्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और युद्धके लिए उत्तेजित तथा शत्रुओंको जीतने के लिए व्यग्र भरतोंको पार उतरने दिया (मं० ३, सू० ३३, अ० १०-११)।

इन उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि विश्वामित्रके संघको नदियोंमें बाढ़ आनेसे कुछ समयके लिए मार्गमें रुक जाना पड़ा और बाढ़के शान्त होनेपर ही उनकी सेना नदियोंको पारकर परुषिणीके दक्षिणी तटपर आ सकी। परुषिणीके उत्तरी तटपर तृत्सु-जनपदके नगरों और गाँवोंको बाढ़से सुरक्षित रखनेके हेतु एक बाँध बनाया गया था। अतः विश्वामित्रके संघने अपने शत्रुओंको पीड़ितकर आसानीसे विजय पानेके लिए बाँधको तोड़ शत्रुके जनपदको पानीसे भर देनेका विचार किया। किन्तु मौसमके शुष्क होनेसे पानीकी कमीके कारण विश्वामित्रका संघ इसमें सफल न हो सका। मालूम पड़ता है, संघने इस कार्यके लिए संघके नेताओंमें से शयमानके लड़के 'कवि'को नियत किया था। कवि बाँध तोड़नेमें सफल हुआ; किन्तु पानी कम होनेसे बाढ़ न आ सकी। इसी बीच वीर सुदासने शत्रुओंके इस अभिप्रायको असफल करनेके हेतु जल्दीसे अपनी सेनाकी एक टुकड़ी लेकर कविपर आक्रमण कर दिया। कवि युद्धमें मार डाला गया और प्रतापी सुदासने अपनी बुद्धिमानी, वीरता और सैन्य कुशलतासे सारी स्थिति काबूमें कर शत्रुओंकी कुचालको खत्म कर दिया। (मं० ७, सू० १८, अ० ८-९ विल्सन द्वारा अनूदित ऋग्वेद)।

खुला युद्ध और सुदासकी विजय—सुदासने देखा, उसके शत्रुओंकी सेना परुषिणीके दक्षिणी तटपर डटी हुई है। अतः वह भी अपनी सेना लेकर नदीके दूसरे तटपर आ डटा। इस प्रकार दोनों सेनाएँ नदीके आर-पार युद्धके लिए सन्नद्ध हो आक्रमणके अवसरको जोहने लगीं। सुदासने चारों ओरसे अपने को घिरा पाया। परुषिणीके दक्षिणी तटपर भरतोंके नेतृत्वमें संघकी सेना डटी थी और उत्तर तथा पश्चिमसे प्रबल पुरु सुदास पर आघात करनेके लिए बढ़ रहे थे। तृत्सु-महाराज सुदासकी स्थिति संकटापन्न थी। शत्रुओंको बढ़ने देनेमें सुदासको उनका मुकाबला करना कठिन हो सकता था, इसलिए उसने स्वयं आगे बढ़कर धावा बोलना उचित समझा। एक सेनानायककी दक्षता और कुशलताके साथ सुदासने वीरता और कौशलसे काम लिया। उसने अपनी सेनाकी एक टुकड़ी लेकर नदीकी ऊपरी तरफ़से शत्रुओंके अनजानमें चुपकेसे नदीको पारकर सहसा पीछेसे आकर परुषिणी-तटपर डटी हुई दस राजाओंकी सेनाको घेर लिया (मं० ७, सू० ३३, अ० ३)। सहसा इस तरह घिर जानेसे शत्रु-संघमें खलबली मच गई। संघकी सेना विचलित हो बिखर गई। संघके नेता विचलित सैन्यमें संयम और संघटन क़ायम न कर पाए। नदीकी ओरके सिवा संघने अपनेको सब तरफ़से सुदास द्वारा घिरा पाया। उनमें प्रत्याक्रमणका साहस जाता रहा। बिखरी असंगठित सेनाको लेकर शत्रुके प्रत्याक्रमणका मुकाबला किया ही कैसे जा सकता था? शत्रु-दल आक्रमणके प्रहारोंको सह न सकनेसे भागकर अपने प्राणोंकी रक्षाका प्रयत्न करने लगा। सुदासने इन भागते हुए शत्रुओंके एक सेनापति भेदको भी मार गिराया (मं० ७, सू० ३३, अ० ३)। बहुतसे जान बचानेके लिए परुषिणीमें कूद पड़े और उत्तरी तटपर पहुँचनेका प्रयत्न करने लगे; किन्तु बहुतसे इस प्रयत्नमें नदीमें ही डूबकर मर गए और जो यत्नपूर्वक नदीको पारकर उत्तरी तटपर आ सके, वे उधर स्थित सुदासकी शेष सेनाके हाथोंमें पड़कर मार डाले गए या बन्दी बना लिए गए।

संघके वीर 'वज्रबाहु नेताओं'में डूबकर मरनेवाले श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु थे (मं० ७, सू० १८, अ० १२) तथा रणमें न्यस्त हुए अधिनायकोंकी संख्या २१ थी (मं० ७, सू० १८, अ० ११)। इस प्रकार सुदासकी रण-कुशलता और प्रचण्डतासे दस राजाओंकी क़रीब सारी सेना पूर्णतया विनष्ट कर दी गई। अनुओं और द्रुह्योंके ६६६० वीर योद्धा सुदास द्वारा युद्धमें मार डाले गए। वीर तृत्सु-महाराज सुदास इन्द्रकी सहायतासे 'शत्रुओंके ऊपर बाँध-टूटे पानीकी तरह प्रवाहित हो बह चला', जिससे शत्रु-

12 *The Cambridge History*: Vol. I, p. 81-82; *Rig-Vedic Culture*: By A. C. Das, p. 360-361.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दल भयभीत होकर अपनी सारी सामग्री सुदासके हाथोंमें छोड़ भाग खड़े हुए[13] (मं ७, सू० १८, अ० १४-१५)।

निःसन्देह वीर तृत्सु सुदासने अपने रण-कौशल और चतुर नायकत्वसे दस राजाओंके संघपर बहुत बड़ी विजय प्राप्त की थी। इस विजयका कारण सैनिक संख्याकी अधिकता न थी। उसका पूर्ण श्रेय अकेले सुदासको था, जिसने अल्प सेनाको लेकर अपने नेतृत्वकी कुशलतासे भारी संख्याको आसानीसे रौंद डाला और प्रबल शत्रुओंको न्यस्तकर विजय पाई। किन्तु सुदास ऐसे प्रबल शत्रुओंको एकाकी कैसे जीत सका, यह तत्कालीन समाज समझनेमें असमर्थ था। अतः सुदासकी विजयमें दैवी सहायताका हाथ स्वीकारकर विजयका श्रेय इन्द्रको दे दिया गया।

दस राजाओंकी सेनाको न्यस्त करने और उनपर विजय पानेके बाद सुदास सन्तुष्ट होकर चुप नहीं हो गया। इस विजय का लाभ उठाकर तृत्सु-महाराजने उनके सात पुरोंका, जो उनकी शक्तिके केन्द्र थे, ध्वंस कर डाला (मं० ७, सू० १८, अ० १३)। अनुका राज्य विजितकर तृत्सु-साम्राज्यमें मिला लिया गया (मं० ७, सू० १८, अ० १३)। तुर्वशु, द्रुह्यु और भरतोंको रौंद दिया गया। भेदके राज्यपर अधिकार कर लिया गया। (मं० ७, सू० १८, अ० १८)। अनार्य अजों, शिग्रवों और यक्षोंको अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ी, और उन्होंने सुदासको करमें घोड़े भेंट किए[14] (मं० ७, सू० १८, अ० १९)।

विजित कोष—इस विजयसे सुदासके हाथ असंख्य कोष या धन लगा। इस विजित कोषको सुदासने बहुत उदारताके साथ ऋषियों, ब्राह्मणों और मित्रों आदिमें बाँट दिया। महर्षि वशिष्ठने सुदासकी इस उदारता और दानवीरताकी बहुत प्रशंसा की है। वशिष्ठको दिवोदासके इस प्रतापी नाती और पैजवनके लड़के (सुदास) ने दो सौ गाय, दो रथ और दो वधुएँ (स्त्रियाँ) तथा मुक्ताके आभरणोंसे युक्त चार घोड़े भेंट किए थे (मं० ७, सू० १८, अ० २२-२३)। अपने पुरोहित और ब्राह्मणके अलावा सुदासने अपने सेनानायकोंको भी विजित धन-राशिका उचित भाग प्रदान किया[15] (मं० ७, सू० १८, अ० २४)।

सुदासके युद्धका परिणाम—भरत-कुलका तृत्सु-सम्राट सु... निःसन्देह बहुत वीर योद्धा, कुशल सेनानायक और सम्राट थ... उसकी विजयोंके फल-स्वरूप सप्त-सिन्धवकी सभी बिखरी हु... जातियाँ एकसूत्रमें संगठित हो चलीं और सप्त-सिन्धवमें भरत-वंशका एकछत्र शासन स्थापित हुआ। यद्यपि यह एक... राज्य अधिक दिनों तक क़ायम न रह सका; फिर भी सु... आर्य-जातिको एक शासन और एक राष्ट्रमें संगठित कि... जानेका जो प्रशस्त मार्ग खोला, उसका आगे आनेवाले आ... आर्य शासकोंने भी अनुसरण किया। फल-स्वरूप वे भ... भारतको एक आर्य-राष्ट्र, आर्य-संस्कृति और आर्य-धर्म तथा आ... सभ्यताके अन्तर्गत लानेमें सफलीकृत हुए। इस त... सप्त-सिन्धुवसे लेकर पूरे उत्तर और दक्षिण भारतमें एक ही सं... संस्कृति और धर्मका प्रचार तथा प्रसार हुआ।

इस विजयके फल-स्वरूप सुदासका सप्त-सिन्धवमें ... आधिपत्य स्थापित नहीं हुआ, अपितु भरत-वंशी राजा संवर... हरानेसे उसका प्रभाव हस्तिनापुर तक फैल गया। फलतः संवरणको अपनी राजधानी छोड़कर सुदासके भयसे बहुत दि... तक सिन्धमें छिपकर दिन बिताने पड़े, और सुदासके बाद ... वह पुनः अपने राज्य हस्तिनापुरपर अधिकार स्थापित न... सका।[16] इसी संवरणका उत्तराधिकारी कुरु हुआ, जिसके न... सरस्वतीके पासका प्रदेश कुरुक्षेत्र कहलाया। ऐसा मालूम ... है कि सुदासके बाद फिर हस्तिनापुरके भरत-वंशी राजाओं... प्रभाव और प्रताप बहुत बढ़ चला था।

महाप्रतापी सुदास और दस राजाओंके संघके इस महा... और निर्णायक युद्धकी सम्भावित तिथि लगभग ई० पू० ५०... मानी जाती है। युद्धके परिणामोंको देखते हुए इस युद्ध... 'वैदिक पानीपत' भी कहा जाता है।[17]

13 *The Hymns of the Rig-Veda*: By Griffith, p. 19.
14 *The Rig-Vedic Culture*: By A. C. Das, p. 306.
15 *The Hymns of the Rig-Veda*: By Griffith, p. ...
16 *Proceedings of the Indian History Congress*, ... session, Lahore, 1940, p. 112.
17 *History of Sanskrit Literature*: By C. V. ... p. 113.

सखि, पावसकी भीगीं रातें !

श्रीमती होमवती देवी

सखि, पावसकी भीगीं रातें !
किसे रुलाकर, किसकी सुधिमें, मेरे आँगनमें रो जातीं ?
इस तममें, सूनेपनमें, धुँधले चित्रोंको धो जातीं !
लिख जाती हैं अन्तर्पट पर, जीवनकी सब बिखरी बातें ! सखि०
घुल-घुलकर मेरी आँखोंमें, बहते रहते ये घन काले ;
फूट रहे हैं तिल-तिल करके, अंतस्तलके दुखते छाले ;
सुस्मृतियोंका तार बँधा है, हार गई मैं मन समझाते ! सखि०
आँखोंमें ही रैन बिताई, आँखोंमें हो गया सवेरा ;
पलकों-पलक न लगने पाई, कैसे आता अतिथी मेरा !
वह सपनोंका ही राजा है, सपने सपना बनते जाते !
कितना विस्तृत और भयावह दीख रहा है नभका घेरा ;
सुख-निद्रामें पंथी होंगे, लेते होंगे विहग बसेरा ;
पर मेरे इस मन-पंछीको बीत गई निशि अश्रु बहाते !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेरी कथा

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

सत्य अनन्त है, ज्ञान अनन्त है और ब्रह्म अनन्त है। उसी तरह मेरा भी अन्त नहीं है। पर जो असीम है, वह किसी सीमामें आबद्ध होकर प्रत्यक्ष होता है। जो महत् है, वह क्षुद्रताको स्वेच्छासे स्वीकारकर लीलामय हो जाता है। जो अन्त-हीन ज्ञान है, वह भी मेरा ही क्षुद्र रूप धारणकर आनन्द-रूप और रस-रूप हो जाता है। मैं ग्रन्थ हूँ, ज्ञानका आगार हूँ, विद्याकी निधि हूँ, रसका भाण्डार हूँ। मुझसे संसार ज्ञान प्राप्त करता है। मेरे ही कारण मनुष्योंकी उन्नति हुई है। यदि मैं न होता, तो मनुष्य और पशुमें क्या भेद रहता? जिन लोगोंमें मेरा प्रचार नहीं है, उनको जाकर देखो। वे अभी तक वन्य-पशुओंकी तरह जंगलोंमें भटकते फिरते हैं। उन्हें केवल उदर-पूर्त्तिकी चिन्ता रहती है। ज्ञानका गौरव वे क्या समझें, साहित्यकी महिमा वे क्या जानें, विज्ञानकी शक्तिका उन्हें क्या पता?

परन्तु तुम मुझे काग़ज़ोंका बण्डल मत समझो। यह मत समझो कि प्रेसने मुझे दबा-दबाकर तैयार किया है। प्रेस, काग़ज़ और स्याही तो जड़ वस्तु हैं, उनमें ज्ञान कहाँ? इसी प्रकार अक्षरोंको जोड़नेवाले, या प्रेसको चलानेवाले, या दुकानमें बैठकर मुझे बेचनेवाले मेरे जन्मदाता नहीं हैं। तुम उन्हें भले ही मेरा प्रकाशक मानकर उनकी प्रशंसा करो; पर मुझे तो यथार्थ प्रकाश मिलता है किसीकी अन्तर्ज्योतिसे। मुझे बेचकर जो लोग सम्पत्ति-शाली हो गए हैं, वे अपने वैभवका गर्व भले ही करें और तुम लोगोंसे प्रतिष्ठा और आदर पाकर गौरवके उच्च शिखरपर भले ही बैठ जायँ; पर मैं तो किसी तपस्वीकी तपस्याका फल हूँ, मैं तो किसी ज्ञानीकी अनवरत साधनाका परिणाम हूँ, मैं तो किसी कविकी उदात्त कल्पनाकी सृष्टि हूँ, मैं तो किसी विज्ञके अध्यवसाय की रचना हूँ। मुझमें किसी दूसरेकी आत्मा निवास करती है।

देश और कालको अतिक्रमणकर वही आत्मा मुझमें निविष्ट होकर तुम लोगोंको अपना दिव्य सन्देश सुनाती है। न-जाने कब कुरुक्षेत्रमें भगवान श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया था; पर पुस्तकके रूपमें तुम आज भी उनकी वाणी सुन सकते हो। न-जाने किस आषाढ़के प्रथम दिवसमें मेघके दर्शनकर कालिदास की चित्त-वृत्ति अन्यथा हो गई; पर प्रेम और वियोगका जो गान उस दिन उनके अन्तःकरणमें उद्भूत हुआ, वह तुम मेरे ही समान पुस्तकमें पाओगे। अतीत और वर्त्तमान युगके कितने ही महात्माओं, ज्ञानियों और कवियोंके उद्गार तुम हममें सुन लोगे।

मैं आनन्दकी सृष्टि हूँ। संसारमें जो सुख, जो सौन्दर्य, जो उल्लास, जो शौर्य, जो गौरव, जो वेदना, जो आतंक और जो विस्मय है, वही जब किसीके अन्तर्जगतमें जाकर रस-रूपमें परिणत हो जाते हैं, तभी मेरी सृष्टि होती है। विश्वकी वेदनासे करुणार्द्र, संसारके अत्याचार और अन्याय से क्षुब्ध, ज्ञानकी महिमासे विस्मित तथा जीवनकी सुषमासे पुलकित किसी भी द्रष्टा या स्रष्टाकी कृति मैं हूँ। तुम मेरे पृष्ठपर जो मूल्य देखते हो, वह मेरा मूल्य नहीं है, वह तो किसी व्यव-सायीके लाभ और लोभका सूचक है। यह सच है कि मेरे कितने ही निर्माताओंको अपनी कृतियोंके लिए अपरिमित सम्पत्ति प्राप्त हुई है; पर कुछ ऐसे भी हुए हैं, जो जीवन-भर कष्ट सहकर संसारको अमूल्य निधिके रूपमें अपनी रचना दे गए हैं। यदि आज आरनाल्ड बेनेटको प्रत्येक शब्दके लिए १६) रुपए मिलते हैं, तो कभी गोल्डस्मिथको आजीवन दरिद्रतामें ही बराबर साहित्यकी सेवा करनी पड़ी है। प्रकाशकोंके लिए मैं अवश्य अर्थ-सिद्धिका साधन हूँ; पर अपने कर्त्ताओंके लिए मैं आनन्दका ही साधन हूँ। दुःखमें, कष्टमें, विपत्तिमें मुझीसे उन्हें सान्त्वना मिली है। मेरे ही लिए उन्होंने गर्व किया है। मेरे ही लिए उन्होंने वैभवका तिरस्कार किया है। इसीलिए मैं उनके गौरवकी स्मृति हूँ, मैं उनकी वेदनाका सहचर हूँ। मेरे इस पृष्ठांकित मूल्यमें अन्य व्यवसायोंकी तरह धूर्त्तता है, छल है, कपट है, स्वार्थसिद्धि है। मेरा यथार्थ मूल्य है कविकी कीर्त्तिमें, ग्रन्थकर्त्ताके चिरन्तन गौरवमें और उस अलौकिक आनन्दमें, जिसका उपभोग तुम कर रहे हो।

पर मेरे सभी बान्धव मेरी तरह यही बात दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकते। अधिकांशका जीवन अत्यन्त क्षणिक होता है। खद्योतकी ज्योतिकी तरह उनमें ज्ञानकी अत्यन्त अल्प ज्योति रहती है। पर उनकी क्षणिकतामें ही उनकी उपयोगिता है। प्रातःकालीन शीत-बिन्दुओंकी तरह उनमें यह शक्ति नहीं रहती कि ज्ञानके तीव्र उत्तापमें वे रह सकें। पर क्षुद्र होनेपर भी उनमें रसकी तरलता रहती है, उनमें भी प्राणोंका आवेग रहता है, आनन्दका उच्छ्वास रहता है, अनन्त स्वर्गकी आभा रहती है। वे भी ज्योतिर्मयकी ज्योतिसे उद्भासित रहते हैं। वे भी क्षण-भर कुछके हृदयको शीतल कर जाते हैं, कुछको घड़ी-भर आर्द्र कर जाते हैं। अपने ही समान क्षुद्र, पददलित, तृणवत जनोंकी वे कुछ सेवा कर ही जाते हैं। ऐसोंके निर्माता विश्वसे अनादृत, तिरस्कृत और विताड़ित भले ही हों; पर यह समझ रखो, सभी स्थितियोंमें उनसे तुम लोगोंका उपकार ही होगा, अपकार नहीं।

जब ज्ञान आनन्दका रूप ग्रहण करता है, तभी उससे सत्सा-हित्यकी रचना होती है। जब वह व्यवसायका रूप धारण करता है, जब वह लेन-देन, लाभ-हानिका साधन बन जाता है, तब वह साहित्यके तड़ागमें कमलके रूपमें विकसित न होकर मत्स्योंके रूपमें परिणत हो जाता है। तब जो मत्स्यजीवी हैं, वे उन्हें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाज़ारमें बेचकर उदर-पूर्त्ति करते हैं। वहाँ छोटी-बड़ी सभी मछलियोंके लिए ग्राहक मिल जाते हैं। उसमें लोक-रुचिकी प्रधानता रहती है। उसीसे उनका मूल्य निर्दिष्ट होता है। उसी मूल्यमें मत्स्यजीवीकी सफलता है। संसारमें सफलताकी यही एक कसौटी है। जो व्यक्ति जिस इच्छासे कोई काम करता है, उसकी उस इच्छाकी पूर्ति हो जानेपर ही वह अपनेको सफल अवश्य समझेगा। संसारमें धनकी महत्ता है, कीर्त्तिका गौरव है, पदकी प्रतिष्ठा है। कुछ काम धनके लिए किए जाते हैं, कुछ कीर्त्तिके लिए और कुछ पदके लिए। इसके अतिरिक्त कुछ काम ऐसे भी होते हैं, जो आनन्दके ही लिए किए जाते हैं। धनके लिए जब कोई व्यक्ति प्रयत्न करता है, तब उसे कीर्त्ति, पद या आनन्दकी चाह नहीं होती। अर्थ-कष्टमें पड़कर कितने ही बड़े लोगोंको ऐसे काम करने पड़ते हैं, जो न उनके गौरवके वर्धक हैं और न उनको कीर्त्तिके। इसी प्रकार जो लोग एकमात्र अर्थसिद्धिमें ही अपने जीवनकी सफलता समझते हैं, उनके लिए कीर्त्ति या महिमा भी बाधक हो जाती है।

सच पूछो तो मेरे लिए न कीर्त्तिकी महत्ता है, न पदकी और न धनकी। आज जो कीर्त्ति, पद और धनका उपभोग कर रहे हैं, वे नहीं रह जायँगे; पर मैं रह जाऊँगा। कालिदासके आश्रयदाता नरेश कहाँ हैं, तुलसीदासके समयका मुग़ल-वैभव कहाँ है! पर मेरे रूपमें 'मेघदूत' और 'रामचरित-मानस' तो अब भी हैं। आज जो छोटे-बड़े लोग सम्पत्ति और प्रभुताके अधिकारी हैं और जिनकी सेवा, प्रशंसा और यशोगानमें मेरे ही निर्माता संलग्न हैं, वे सभी अपनी सारी प्रभुता और धर्मको लेकर न-जाने कहाँ विलीन हो जायँगे। रह जाऊँगा मैं, क्योंकि मुझीमें चिरन्तन आनन्द और गौरव है। तो भी यह सच है कि जीवन-निर्वाहके लिए धनकी आवश्यकता होती है। इसीलिए किसी न किसी रूपमें प्रायः सबकी अर्थसिद्धिके लिए कोई काम करना पड़ता है। मेरे निर्माताओंकी साहित्य-सेवामें अर्थसिद्धिकी भावना है ही नहीं, यह कहना सच नहीं है। पर यह कह सच है कि साहित्य द्वारा आनन्दके रूपमें मेरे निर्माता स्वयं कुछ पा जाते हैं, वही उनका यथार्थ पुरस्कार है। बिहारी सात सौ दोहोंके लिए सात सौ मुहर पाकर संतुष्ट हो पद्माकर अपने एक-एक अक्षरके लिए लाखोंकी सम्पत्ति पा फिर भी यह पुरस्कार दूसरोंकी कृपापर निर्भर है। इसी प्रतिष्ठा और गौरव भी दूसरोंकी ही कृपापर है। कोई मान करे या अपमान, उसे अपनी कृतियोंसे जो मनःतुष्टि है, वही यथार्थमें साहित्य-कार्यके लिए प्रेरित करती है। में अपनी विशेष स्थितिसे ही कोई मान या गौरव पाता और विशेष स्थितिमें पड़कर उसे अपमान भी सहना पड़ा और कष्ट भी उठाना पड़ता है। मेरे साहित्यके क्षेत्रमें यह चिन्तनीय बात नहीं है। मेरी यथार्थ हत्या तो तब होती जब तुम स्वयं साहित्यके उच्च आदर्शको छोड़कर ले मनोविनोद, क्षणिक उपयोगिता अथवा क्षणिक प्रभुता बना डालते हो, या जब तुम मिथ्या प्रशंसा, मिथ्या मिथ्या अभिमानसे प्रेरित हो साहित्यके क्षेत्रको अर्थ सिद्धिका एक उपाय समझकर, उसीके लिए दल बनाकर, एक-दूसरेको प्रशंसाकर, अपने-अपने विपक्षियोंकी निन्दा उछल-कूद करते रहते हो। साहित्यके सरोवरमें अन्य वक हैं और ऐसे भैंसे भी हैं, जो उसके निर्मल जलको करते रहते हैं। पर मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। तुम करो या मत करो; पर यह जान लो: Comrade, this no book; who touches this, touches a

बन्धुवर, मैं एक निष्प्राण ग्रन्थ नहीं हूँ। मुझमें मनुष्यकी आत्मा विद्यमान है। जीवन-सागरका मन्थनकर वेदना और कष्टके रूपमें जो विष उसने प्राप्त किया, वह स्वयं पी गया, और अमृतके रूपमें जो-कुछ निकला मुझमें विद्यमान है।

मानवकी महिमा

डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

गहन तममें चेतनका स्फोट, शून्यमें खिला रुचिर संसार;
निमित्तोंने देखा दिक्काल, गगनमें झूले तारक-हार।
तारकोंमें वसुन्धरा भरी, भरे सागर-वन-पर्वत-पुंज;
मनुजके बिना किन्तु, बस, रही निपट सूनी-सी वसुधा-कुंज।
सागरोंमें थे मत्स्य विचित्र, वनोंमें थे खग-मृग अभिराम;
व्योमके लोकोंमें थे देव, न जिनको जरा-मृत्युसे काम।
किन्तु जब नरने किया प्रवेश, बाल-वपुमें विभु-तत्व समेट;
हो गई अखिल चराचर सृष्टि, एक उसके चरणोंपर भेंट।
देखने ही को वह संकीर्ण, विपुल है उसके 'स्व'का प्रसार;
देह तक मृत्यु, जीव तक बन्ध, असीमित आत्माका अधिकार।

वही दासोहं सोहं वही, वही है असह एक अ
उसीके देव बन गए दास, उसीके हेतु सृष्टि-
वही शासित है बनकर व्यक्ति, वही शासक है बनकर
उसीमें है अन्तर-राष्ट्रीय, बन्धनोंसे छन-छन कर
सभी रंगोंमें एक असंग, कहाँ गोरे-कालेका
वही शिव-सुन्दर-सत्य महान, उसीकी महिमामें
अमिट उसका अस्तित्व विशाल, काल क्या कभी हो
खड़ा वह 'यथापूर्व' है यहाँ, लाँघकर सृष्टि-प्रलयके
भले ही कुछ देहें मिट जायँ, भले ही कुछ बुदबुद हों
किन्तु है अचल सब भाँति मनुज-रत्नाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक कविताका पुरस्कार : काश्मीरका राज्य !

श्री भगीरथ शास्त्री

"मेरे सखुनको तू खल्कमें कारगर करे ;
वह बात दे ज़बाँ पै कि दिलमें असर करे ।"

स्वर्गीय महाकवि मौलाना आज़ादकी इस सूक्तिकी यथार्थता और चरितार्थता हमें उस दिन विदित हुई, जब कल्हण की 'राजतरंगिणी' पढ़ते-पढ़ते काश्मीरकी वह ऐतिहासिक विचित्र घटना सामने आई, जिसमें एक कवितापर प्रसन्न हो राजाने उसे पुरस्कार-स्वरूप काश्मीरका राज्य न्योछावर कर दिया था। अबसे दो हज़ार वर्ष पहले जब वैक्रम संवत्के प्रवर्त्तक महाराजाधिराज श्रीमान् विक्रमादित्य उज्जैनको राजधानी बनाकर समस्त भारतपर शासन कर रहे थे, तब अचानक ही दैवयोगसे राजा हिरण्यके निःसन्तान सुरधाम सिधारनेपर त्रिदिव-दुर्लभ, परम समृद्ध और सुन्दर काश्मीरका राज्य राजरहित हो गया—'वर्तते राजरहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम्।' चूँकि काश्मीरका राज्य उज्जैनके सम्राट्के मातहत था, अथवा आजकलके शब्दोंमें वह उसका शासनादेश-प्राप्त देश था, अतः काश्मीरके मन्त्रिमण्डलने सम्राट्से ही किसी न्यायपरायण योग्य राजाकी माँग की। किन्तु कितने ही दिन लगातार सोचने और खोजने पर भी सम्राट्को कोई ऐसा योग्य और सर्वगुण-सम्पन्न राजा नहीं दीख पड़ा, जिसे काश्मीरका राज्य सौंपकर वे निर्वृत्त हो जाते।

राजाकी इन सतत चिन्ताओंके दिनोंमें ही दैव और दारिद्र्यका सताया हुआ एक विद्वान् कवि उसके दरबारमें उपस्थित हुआ, जिसका नाम मातृगुप्त था। निःसन्देह मातृगुप्तकी निर्धनता चरम सीमाको भी पार कर रही थी। वह जितना ही अधिक विद्वान् था, वाग्देवताका कृपापात्र था, सपत्नी-स्वभाव-सुलभ ईर्ष्यासे मानो लक्ष्मी उतनी ही उससे कोसों दूर थी। दूसरे शब्दोंमें सातवाहनकी निम्न सूक्तिका वह ज्वलन्त उदाहरण था :—

ये ये गुणिनो ये ये त्यागिनो ये च विदग्धज्ञानाः।
दारिद्र्य! रे विचक्षण तेषां त्वं सानुरागमसि।

अर्थात्—हे दारिद्र्य, तू बड़ा ही चतुर और समझदार है। संसारमें जिसे गुणी, त्यागी और ज्ञानी देखता है, तू उसीसे दोस्ती गाँठ बैठता है। अतएव जीवन-निर्वाहके लिए उसे किसी राजाके आश्रयकी अवश्यकता थी। साथ ही वह परम मनस्वी और गुणज्ञ भी था। अपूज्यकी पूजा और अवन्द्यको वन्दनासे उसे सख्त नफ़रत थी। अतएव वह एकाएक ऐसे अगुणज्ञ धनी या राजाके पास जानेसे हिचकता था, जहाँ उसका समुचित समादर न हो। जीवनमें कई बार वह ऐसे कटु अनुभव प्राप्त कर चुका था कि बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधकर किसी राज-दरबारमें गया, या किसी अमीर-उमरावका दरवाज़ा खटखटाया ; लेकिन वहाँसे उसे खाली हाथ लौटना पड़ा। वह अपने दारिद्र्य-निवारणके लिए अनेक बार अनेक उपाय करता था ; पर विधिके बाएँ आ जाता था :—

यद् यदा लिखति मन आशावर्त्तिकाभिर्हृदयफलके
तत्तद् बालइव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रोञ्छति।

अर्थात्—आशा-रूपी कूँचीसे हृदय-रूपी फलकपर मन जो-कुछ लिखता रहता है, विधि उसे चुपचाप हँसकर ऐसे पोंछ डालता है, जैसे छोटा बच्चा।

कर्ण-परम्परासे मातृगुप्तने विक्रमकी प्रशस्ति और देव-दुर्लभ गुणोंको सुना था। एक दिन उसके मनमें आया कि क्यों न मैं एक बार इस राजाको सेवासे भी अपने भाग्यकी आज़माइश कर देखूँ। अनेक संकल्प-विकल्पोंके अनन्तर वह किसी शुभ लग्नमें राजाके दरबारमें जा पहुँचा। दरबारमें पहुँचनेपर उसने कई दिन तो चुपचाप राजाकी दिनचर्या देखने और उसके दरबारी लोगोंकी चर्चा सुननेमें ही बिताए। बादमें धीरे-धीरे जब वह राजकुलका एक विश्वस्त पुरुष हो गया, तब प्रार्थना करनेपर दरबारी लोगोंने उसे महलके द्वारपालकी ड्यूटी सौंप दी। द्वारपाल बन जानेसे मातृगुप्तको राजाको और भी अधिक निकटसे देखने—उसके निकट सम्पर्कमें आने—का सुअवसर हाथ आ गया। थोड़े ही दिन सेवा करनेके बाद उसने राजाके बारेमें अपनी एक अच्छी सम्मति स्थिर कर ली। उसने यह दृढ़ धारणा बना ली कि इस राजाकी सेवासे मुझे अवश्य ही यश और धनकी प्राप्ति होगी। निश्चय ही एक दिन यह मेरे गुणोंका आदर करेगा ; क्योंकि यह राजा स्वयं गुणी है :—

यस्मिन् राजनितत्त्वज्ञैः सूरिभिः संभृतश्रुतैः
नांजलिर्दीयते जातु मानाय च गुणाय च॥
खिलीकृतखलालापे युक्तायुक्त विवेक्करि
नायाति सेव्यमानेऽस्मिन् स्वगुणोऽनर्थकारिताम्॥
सर्वदोषोज्झितं सेव्यं नृपमेवमिमं मम
समासादयतः पुण्यै रदूरे स्वार्थसिद्धयः॥

अर्थात्—यह राजा विक्रम उन श्रेष्ठ राजाओंमें हैं, जिनके शासनमें तत्त्वज्ञानी, शास्त्रपारदर्शी विद्वानोंको प्रतिष्ठा पाने या अपने गुणोंकी क़द्र करानेके लिए हाथ जोड़ना या आरज़ू-मिन्नतें नहीं करनी पड़तीं। औचित्य और अनौचित्यको ये स्वयं परखते हैं, अतएव इनके दरबारमें कर्णेजप खलोंकी दाल नहीं गलती। यदि मैं सब दुर्गुणोंसे रहित अतएव सुतरां सेव्य इस राजाकी सेवामें तन-मनसे जुट गया, तो निश्चय ही मेरे गुणोंकी पूछ होगी और मेरा भाग्योदय हो जायगा। इस धारणाको मनमें रखकर मातृगुप्त पूरे मनोयोगसे आस्था और निष्ठापूर्वक दिन और रात राजाकी सेवामें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जुट गया। धीरे-धीरे सेवा करते-करते उसे ६ ऋतु-पूरा एक संवत्सर हो गया ; पर फल-प्राप्ति न हुई। राजाकी मुलाक़ातसे वह अब तक भी वंचित ही रहा। राजाको उसकी योग्यता और विद्वत्ता अपने पार्षदोंसे भलीभाँति विदित हो चुकी थी ; परन्तु अन्यान्य राजकीय कार्योंमें सतत व्यस्त रहनेके कारण किसी फ़ुर्सतके समय कविको निकटसे देखने और समझनेका सुअवसर अब तक भी राजाके हाथ न आया था।

एक दिन आधी रातके समय जब सारा संसार सुखकी नींद सो रहा था, अचानक राजाकी नींद खुली। उसने देखा कि वर्षाको साथ लिए हुए ज़ोरोंसे आँधी चल रही है। राजमहलके बाहरके सारे दीपक बुझ चुके हैं। हवाके झोंकोंसे बार-बार अन्दरके दिए भी झिलमिला रहे हैं। 'द्वारपर कौन है ?' राजाके पुकारनेपर मातृगुप्तने विनीत भावसे उत्तर दिया—'मैं मातृगुप्त हूँ, महाराज !' 'अब कितनी रात और शेष है ?'—राजाके प्रश्न करनेपर मातृगुप्तने उत्तर दिया कि डेढ़ प्रहर रात्रि और शेष है। 'तुमने यह कैसे जाना कि डेढ़ प्रहर ही शेष है ?'—राजाके इस दूसरे प्रश्नपर कविने मनमें सोचा कि अब अपनी यथार्थ स्थितिके वर्णन करनेका अवसर है। अपनी यथार्थ दशाका वर्णन करनेसे या तो आज सदाके लिए दीनतासे छुटकारा पाऊँगा—मेरी दीन-दशा सुनकर राजा दयार्द्र-हृदय हो मुझे धन-धान्य दे बैठेगा—या यदि इतनी दीन-दशा सुनकर भी ऐसे दयालु राजाका हृदय न पसीजा, तो सदाके लिए धनी होनेकी आशा ही छोड़ बैठूँगा—'अवस्था वेदनादाशां दैन्यं वा त्यक्तुमुद्यतः।' यह सोचकर कविने निम्नलिखित श्लोक बनाकर राजाको सुनाया :—

शीतेनोद्धूषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरंगता
सत्पात्र प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी॥

अर्थात्—हे राजन्! मुझे सारी रात जागते ही बीती है। अतएव रात्रिका एक-एक क्षण मालूम है। जैसे उड़दकी फली ठण्ड पाकर सिकुड़ जाती है, उसी भाँति काश्मीरकी हेमन्त-ऋतुकी झंझावात-मिश्रित रात्रिमें मैं भी ठण्डसे सिकुड़ रहा हूँ। हिम-पात-जन्य शीतकी इतनी अधिक प्रबलता है कि बार-बार सेंकनेके लिए फूँक मारनेपर भी आग बुझती ही चली जा रही है। इधर भूखकी तड़पन है, उधर घरपर दीन और हीन बाल-बच्चोंकी बेबसीकी चिन्ता और व्यथा है। फिर भला नींद कहाँ! जैसे मनस्विनी दयिता अपमानित होकर पास नहीं फटकती, उसी तरह नींद भी मुझे छोड़कर न-जाने कहाँ चली गई है। जैसे सुपात्रको दिया गया पृथ्वीका दान अक्षय हो जाता है, उसी तरह जाड़ोंकी यह पहाड़-सी रात भी बिताए नहीं बीत रही।

राजा कविकी इस सूक्तिको सुनकर फड़क उठा ; लेकिन ही अपने आश्रित कविकी इस दीनता और अब तककी कर्तव्यच्युतताने उसके हृदयमें एक वेदना पैदा कर तत्काल उसकी निद्रा हवा हो गई। बिस्तरपर लेटे-लेटे वह मन मन सोचने लगा कि ओह, मैं कितना अधन्य हूँ! मेरे बारमें एक ऐसा योग्य विद्वान् कवि लगातार एक वर्षसे निर और एकनिष्ठासे मेरी सेवा करता चला आ रहा है, और एक दिनके लिए भी उससे उसके योगक्षेमके विषयमें नहीं हन्त! ऐश्वर्य-मदमत्त हो मैंने एक क्षणके लिए भी यह नहीं दिया कि देशान्तरसे आए हुए एक विद्वान् कविपर के हेमन्त और शिशिरके वे प्रसिद्ध हिमपात और झंझावात होकर गुज़र रहे हैं! यह यादकर राजाको और भी अन्तःसन्ताप होने लगा कि अबसे कई मास पूर्व राजसभा बाहर निकलते हुए मेरी दृष्टि इस कविपर पड़ी थी, और समय मैंने इससे मुलाक़ात करनेका विचार भी किया था; अन्तःपुरमें जाते ही फिर भूल गया था। मानो अन्तःपुर पहुँचते ही मातृगुप्त-सम्बन्धी वह विचार-धारा अपनी शुभ्र इन्दुद्युतिको भी फीका कर देनेवाली मत्तमातंगगामिनियोंकी रस-धारामें विलीन हो गई हो। इसलिए अब मुझे क्या चाहिए ? एकनिष्ठा और निष्कपट भावसे की गई एक विद्वान् सेवाका क्या पुरस्कार दूँ ? अब तककी उपेक्षाका क्या प्रायश्चित करूँ ? और स्वयं इस कविताका क्या मूल्य चुकता करूँ, जिसने मेरे मर्मस्थलको आहत और हृदयस्थलको उद्बोधित किया है। सोचते-सोचते राजाको 'सत्पात्र प्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी'—कविकी इस सूक्तिने काश्मीर राज्यके राजरहित होनेकी बात याद दिला दी। राजा गम्भीरतासे इस बातपर विचार करने लगा कि काश्मीरके मन्त्रिमण्डलने एक योग्य राजाकी मृत्यु के है। सत्पात्रको दिया गया पृथ्वीका दान अक्षय फल देनेवाला होता है। संसारमें इस कविसे बढ़कर और कौन योग्य और सुपात्र होगा ? अतः इसे ही काश्मीरका राज्य देकर क्यों न यश और पुण्यका भागी बनूँ :—

अथवास्यैव सूक्तेन स्मारितोऽस्म्यधुना यथा
वर्तते राजरहितं काम्यं कश्मीरमण्डलम्।
पात्रायास्मै महीतस्मात् सा मया प्रतिपाद्यते
अवधीर्य महीपालान् महतोऽप्यर्थना परान्॥

इतना विचारते ही राजाने तुरन्त रातमें ही काश्मीरके मण्डलके पास यह सन्देश देकर निजी दूत भेज दिया कि हाथसे लिखे एक पत्रको लेकर मातृगुप्त नामक एक पहुँचेगा। मैंने उसे ही काश्मीरका राजा बनाना निश्चित है। जैसे ही वह पण्डित मेरा बन्द लिफ़ाफ़ा आपके आप तत्काल उसका (मातृगुप्तका) विधिवत् राज्याभिषेक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसी बातचीतमें रात्रिका वह डेढ़ प्रहर भी बीत गया। प्रातःकालकी सूचना देनेवाले स्तुति-पाठकोंका मंगल-गान आरम्भ हो गया। राजा तो मनमें इस बातसे निश्चिन्त हो गया कि मैंने अपना कर्तव्य पालन कर दिया। किन्तु अभी यह सब मामला सुनिभृत था - अत्यन्त गुप्त था, अतः कवि अपने मनमें इस बातसे बहुत ही अधिक खिन्न हुआ कि मैंने अपनी दीन-दशा भी सुनाई और राजाकी वह चिर-प्रतीक्षित मुलाक़ात भी हो चुकी; पर परिणाम कुछ भी नहीं निकला! ऐसे श्लोकको सुनकर तो पत्थर भी पसीज जाता। मेरा यह आत्म-निवेदन यहाँ भी व्यर्थ ही गया! या तो इस राजाके गुणगान ही झूठे हैं, जिन्हें लोगोंसे सुनकर मैं इसकी सेवाके लिए आकृष्ट हुआ था, या फिर मेरा दुर्भाग्य ही अन्तिम सीमापर पहुँच गया है! दोनों ही हालतोंमें मेरा यहाँ रहना बेकार है। मातृगुप्त इसी विचार-धारामें बह रहा था कि एकाएक आस्थानमण्डपसे उसकी पुकार हुई।

राजाज्ञा पाते ही कवि राजाके समक्ष उपस्थित हुआ और विधिवत प्रणाम किया। 'आप काश्मीरको जानते हैं? मेरा यह बन्द लिफ़ाफ़ा वहाँके प्रधान-मन्त्रीके हाथमें दे दीजिए। यह सख्त हिदायत है कि इस पत्रको न तो आप खोलकर पढ़ें और न किसी दूसरेको दिखावें। हमारे शरीरकी शपथ है।' राजाके इतना कहते ही मातृगुप्त उसके हाथसे पत्र ले प्रणाम करके तत्काल काश्मीरके लिए चल पड़ा। वास्तविकताका किसीको भी अभी ज्ञान न था, अतः यह देखकर लोगोंको नागवार गुज़रा कि राजाने एक मामूली राजकर्मचारीके करने-योग्य कार्यके लिए ऐसे योग्य विद्वान्को कष्ट दिया है! कहाँ उज्जैन और कहाँ काश्मीर! कितनी कष्टप्रद है यात्रा! एक तरफ़ लोगोंमें यह चर्चा चल रही थी और दूसरी ओर राजा मातृगुप्त-सम्बन्धी इस प्रकरणको लेकर अलहदा ही अपनी विचार-धारामें बहा जा रहा था। उधर राजाके उस सुगुप्त पत्रको और साथमें अनेक संकल्प-विकल्पोंके बोझको लिए हुए मातृगुप्त दबादब आगे बढ़ा जा रहा था। वह जल्द-से-जल्द काश्मीर पहुँचनेके लिए—इस भारी जिम्मेवारीसे छुटकारा पानेके लिए—बहुत ही अधिक उत्सुक और कटिबद्ध था। इसी बीच यात्राके दूसरे ही दिन उसे रास्तेमें साँपके फनपर बैठा हुआ खंजन पक्षी दिखाई दिया और रातमें स्वप्नमें उसने अपनेको महलकी छतपर से छलाँग मारकर समुद्र पार करते हुए देखा :—

अपश्यत् स फणाकोटौ खंजरीटमहेः पथि।
स्वप्ने प्रासादमारुह्य स्वं चोल्लंघितसागरम्॥

कवि शकुनशास्त्रका पण्डित था। उसने यह पढ़ रखा था कि 'अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु राज्यप्रदः कुशलदःशुचि-शाद्वलेषु।' अर्थात् यदि किसीको हाथी, घोड़े या साँपपर बैठा हुआ खंजन दिखाई दे जाय, तो उसे निश्चय ही राज्य-प्राप्ति होती है। इसी तरह स्वप्नमें यदि कोई महलकी छतपर चढ़कर समुद्र पार करते हुए अपनेको देख ले, तो उसे सिंहासन-प्राप्ति होती है। इन दो शुभ शकुनोंसे मातृगुप्तने मनमें यह तय कर लिया कि हो-न-हो राजाकी यह कठोर आज्ञा (काश्मीर भेजनेकी) मेरे लिए फलीभूत होगी। इससे मुझे निश्चय ही राज्य-प्राप्ति-जैसी कोई उत्तम वस्तु हस्तगत होगी। इन दो शुभ शकुनोंने मातृगुप्तको अगला रास्ता तय करनेमें बड़ी सहायता दी। वह इतना उत्साहित हुआ कि उसके लिए रास्तेकी थकान, सफ़रकी दिक्क़त और परेशानी एक-एक करके सब ग़ायब होने लगे। नगरों और ग्रामोंमें जहाँ कहीं वह ठहरता था, सोत्साह लोग उसका स्वागत करते थे। अतिथि-सत्कारकी वह सब जगह धूम पाता था।

कई दिनों तक चलनेके बाद उसे हिमालय दिखाई दिया। हिमलयके भिन्न-भिन्न रूपोंने उसके मनको हरना शुरू कर दिया। कहीं वह हरे-हरे वृक्षों, लताओं और गुल्मोंसे आच्छादित था, तो कहीं दहीकी तरह सफ़ेद हिमकी चादरसे ढँका हुआ था। कहीं उसकी नदियों, झरनों और स्रोतोंकी कलकल ध्वनियाँ कविके कानोंको तृप्त कर रही थीं, तो कहीं जलकण-मिश्रित मारुत उसके मन और इन्द्रियोंको आप्यायित कर रहा था। इस प्रकार हिमालयके दृश्योंको देखता हुआ वह ठेठ काश्मीरकी सरहदमें जा पहुँचा। जिस काम्बुव नामक एक क़स्बेमें उसने पहली रात बिताई, वहीं काश्मीरका मन्त्रिमण्डल किसी विशेष कार्यसे उपस्थित था। खबर पाते ही कवि मन्त्रिमण्डलके पास पहुँचा और प्रधान-मन्त्रीके हाथमें उज्जैनके सम्राट्का हस्तलिखित पत्र दे, भार-मुक्तकी तरह निश्चिन्त हो, मन्त्रीकी आज्ञासे पास रखी हुई आसन्दीपर बैठ गया। मन्त्रीने पत्र पढ़ते ही पूछा—'क्या आपका ही नाम मातृगुप्त है?' कविने 'जी हाँ' कहकर सिर नवाया। इतना सुनते ही प्रधान-मन्त्रीने प्रतिहारीको आवाज़ दी। प्रतिहारीके उपस्थित होते ही उसने आज्ञा दी कि तुरन्त राज्याभिषेककी तैयारी करो और राज्यमें सर्वत्र दुन्दुभिके साथ घोषणा कर दी जाय कि काश्मीरके सिंहासनपर मातृगुप्तको अभिषिक्त कर दिया गया है।

मन्त्रीका आदेश होते ही राज्याभिषेककी सब तैयारी मुकम्मिल हो गई। स्नान और अनुलेपनके अनन्तर आभूषण और मुकुट धारण करके मातृगुप्त राजसिंहासनपर बैठ गए। तदनन्तर प्रधान-मन्त्रीने प्रजावर्गकी ओरसे नव-दीक्षित राजाकी सेवामें बड़ी नम्रतासे निम्न निवेदन किया :—

अर्थितेन स्वयं त्रातुं विक्रमादित्यभूभुजा।
निर्दिष्टः स्वसमानस्त्वं शाधिनः पृथिवीमिमाम्॥

अर्थात् हमने सम्राट् विक्रमादित्यसे अपनी रक्षाके लिए एक न्यायपरायण योग्य राजाकी माँग की थी। उन्होंने आपको अपने ही समान योग्य राजा समझकर हमारे पास भेजा है। अतः आप काश्मीर-मण्डलपर शासन कीजिए और कृपाकर इतना और ध्यान

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीजिए कि आजसे आप किसीके लिए भी 'त्वदीयोऽस्मि' (मैं आपका ही कृपापात्र हूँ) कहकर हमें और अपने-आपको हल्का न करें। जैसे प्राणियोंके जन्मके कारण उनके अपने-अपने कर्म हैं और कर्मानुसार ही प्रत्येक प्राणी भिन्न-भिन्न योनियों और भिन्न-भिन्न माता-पिताको पाता है, स्वयं माता-पिता जन्मके मुख्य कारण नहीं हैं, उसी तरह राज्य भी मनुष्यको स्वकर्मानुसार ही प्राप्त होता है, अन्य मनुष्य तो केवल ऊपरी कारण यानी गौण बन जाते हैं। अतः आपको अमुकने राज्य दिलाया है, इसलिए हमेशा उसके लिए नतमस्तक होते रहना अथवा उसके लिए सर्वसाधारणमें कृतज्ञता प्रकाशित करना ठीक नहीं है। इतनी कार्यवाही समाप्त होनेपर खूब ज़ोरोंके साथ वाद्यध्वनि और शंखध्वनि हुई। राज्यमें सर्वत्र नए राजाकी घोषणा कर दी गई और बड़ा भारी दान दिया गया।

मातृगुप्तने राजसिंहासनपर बैठते ही सबसे पहले अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करनेके लिए सम्राट् विक्रमके पास प्रचुर-मात्रामें उत्तमोत्तम भेंटें भेजीं और एक दूत द्वारा निम्नलिखित श्लो भी बनाकर भेजा :—

नाकारमुद्वहसि नैव विकत्थसे त्वं
दित्सां न सूचयसि मुंचसि सत्फलानि।
निःशब्दवर्षणमिवाम्बुधरस्य राजन्
संलक्ष्यते फलत एव तव प्रसादः॥

अर्थात्—हे राजन्! जिस प्रकार बरसनेवाला बादल गरजता, सारे धराधामको आप्लावित कर देनेव सबकी प्यास और संतापको मिटाकर जगत्को हरा-भरा देनेवाला पर्जन्य न तो पहले सूचना ही देता है, न गरजता ठीक उसी प्रकार आपने भी पहले घोषणा या बड़ा बिना ही चुपचाप मुझे ऐसा उत्तम फल दे डाला है कि तख्तेपर उसकी मिसाल नहीं मिलती। वर्ष-भर की सेवासे आपकी प्रसन्नता या अप्रसन्नताका पता आज इस प्राप्ति-रूपी फलसे ही लग पाया है।

क़ुर्आनकी एक आयत

श्री चन्द्रबली पांडे

आजकलकी परिस्थितिमें क़ुर्आनमजीदकी एक आयतपर जितना विचार करना चाहिए, उतना हो नहीं रहा है। कहते हैं कि जब यहूदियोंसे यह न सहा गया कि उनमें भी अज्ञान है, अथवा अल्लाहका सब-कुछ ज्ञान उनके धर्मग्रन्थ 'तौरात'में ही नहीं आ गया है, तब इसीको स्पष्ट करनेके लिए यह आयत उतरी। इस आयतका भाव क्या है, इसे तो कोई भी झट कह सकता है; किन्तु इसका इतिहास क्या है, इसे विरला ही बता सकता है। पश्चिमके विद्वानोंने क़ुर्आनमजीदका जिस ढंगसे अध्ययन आरम्भ किया है, उसमें यह भी जानना आवश्यक हो जाता है कि किस भावका स्रोत कहाँ है। इस प्रकारके अध्ययनसे शान्ति नहीं मिलती; पर जिज्ञासा अवश्य तीव्र हो जाती है, जिसे अध्ययनका प्राण ही समझना चाहिए। भक्ति भगवानको पाकर तृप्त हो जाती है; पर ज्ञानकी पिपासा कभी शान्त नहीं होती और प्रतिदिन और भी बढ़ती ही रहती है। इसी बाढ़का यह परिणाम है कि आज धर्मग्रन्थोंको भी ज्ञानकी कसौटीपर कसा जा रहा है और उनके स्रोतोंका पता लगाया जा रहा है। इस प्रकारके अध्ययनसे इतना अवश्य हो रहा है कि परस्परकी कट्टरता दूर होती जा रही है और आपसमें एक-दूसरेको समझनेकी क्षमता बढ़ती जा रही है। अतः अब तो जैसे हो, तैसे धर्मग्रन्थों का खुला अध्ययन करना ही होगा और उनके महत्त्वको कल्याणके लिए सबके सामने रखना ही होगा। तो इस कहा गया है—"व लौ अन्ना मा फ़िल् अर्ज़े मिन् शजरतिन् लामुन् बल् बह्रो यमुद्दोहू मिन् बादहि सब्अतो अह्रुन् मा नफ़ेदत् कलेमातुल् लाहे इन्नल्लाहा अजीज़ुन हकीम। (सूरत लुक़मान)

यह तो हुई वह भाषा, जो अपनी समझमें रंच भी न परन्तु अपने लोगोंको समझनेके लिए इसके जो अनुवाद हैं, उनमें से कुछ लिए जाते हैं। सबसे पहले शाह रफ़ीउद्दीन का अनुवाद लीजिए—"और अगर हो यह कि जो कुछ ज़मीनके है दरख्तोंसे क़लमें और दरिया हो स्याही उसके हों सात दरिया न तमाम होवेंगी बातें अल्लाहकी। 'अल्लाह ग़ालिब है हिकमतवाला"।

शाह रफ़ीउद्दीनका उल्था अरबीके ढंगपर ही हुआ अतः एक दूसरा अनुवाद भी देख लीजिए। शाह साहबका अनुवाद है—"और अगर जितने दरख्त हैं क़लम हों और समुन्दर हो उसकी स्याही उसके समुन्दर न निबड़ें बातें अल्लाहकी। बेशक अल्लाह हिकमतोंवाला।"

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसीको यदि और भी खुले रूपमें देखना हो, तो शाह अशरफ़अली थानवी साहबका अनुवाद देखिए—"और जितने दरख्त ज़मीन भरमें हैं अगर वह सब क़लम बन जाएँ और यह जो समुन्दर है उसके अलावा सात समुन्दर और हो जावें तो अल्लाहकी बातें खत्म न हों। बेशक खुदावन्द ताला ज़बरदस्त हिकमतवाला है।"

अच्छा होगा, एक और अनुवाद भी देख लें। सैयद फ़र्मान-अली साहब लिखते हैं—"और जितने दरख्त ज़मीनमें हैं सबके सब क़लम बन जाएँ और समुन्दर उसकी स्याही बने और उसके (खत्म होनेके) बाद (और) सात समुन्दर (स्याही हो जाएँ और खुदाका इल्म और उसकी बातें लिखी जायँ) तो भी खुदा की बातें खत्म न होंगी। बेशक खुदा (सबपर) ग़ालिब (और) दाना (बीना) है।" साथ ही 'खुदाकी बातें'पर आपकी टिप्पणी है—"खुदाकी बातोंसे उसका इल्म या क़ुदरत या हुक्म या मखलूक़ात मुराद हैं। यह तो मेरा खयाल है। मगर सच तो यों है कि उसकी बातें कुछ वही खूब जानता है कि क्या हैं।"

इस आयतके इतने अनुवादोंको एक साथ देनेका उद्देश्य यह है कि आप इसके भावको भलीभाँति ग्रहण कर सकें और प्रत्यक्ष देख सकें कि इसका इष्ट क्या है। इसमें तो सन्देह नहीं कि इस आयतमें क़लम और स्याहीके अतिरिक्त और किसी साधनका उल्लेख नहीं है। हाँ, इसमें इतना अवश्य है कि 'स्याही'पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। अब दूसरी ओर 'महिम्नस्तोत्र'के इस अति प्रसिद्ध श्लोकको लीजिए और देखिए कि इसकी स्थिति क्या है। कहते हैं—

"असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥"

कहना न होगा कि इस श्लोकमें जहाँ 'सुरतरुवरशाखा'की 'लेखनी' है, वहीं शारदा-जैसी लेखिका भी और जहाँ 'उर्वी'का 'पत्र' है, वहीं 'सिन्धु'का 'पात्र' और 'असितगिरि'का 'कज्जल' भी और लिखा भी जाता है 'सर्वकाल' 'ईश'का 'गुण'। तात्पर्य यह कि सभी सामग्री उपलब्ध है। 'असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं' से तो यह भी प्रकट है कि वास्तवमें समुद्रसे केवल जल (मसि) पात्रका काम लेना है।

क़ुर्आनमजीदकी रचनाका समय निश्चित-सा है। सन् ६३२ ई०के इधरका वह हो नहीं सकता; परन्तु 'महिम्नस्तोत्र'के विषयमें यह कहा नहीं जा सकता कि वस्तुतः वह कब बना। तो भी इतना तो प्रकट ही है कि उसे हम काव्यमीमांसासे इधरका नहीं मान सकते। कारण, उसमें उसके अवतरण हैं। इस दृष्टिसे देखा जाय, तो यह बताना कठिन होगा कि वास्तवमें किसका प्रभाव किसपर पड़ा। महिम्नस्तोत्र ९०० ई० के पहलेका सिद्ध है; परन्तु कितने पहलेका, पता नहीं। हाँ, यदि उसके रचयिता पुष्पदन्त कात्यायन वररुचि सिद्ध हुए, तो वह अवश्य ही क़ुर्आनसे पुराना है। परन्तु उभय दशाओंमें एकका दूसरेसे प्रभावित होना कठिन प्रतीत होता है। किन्तु अपनी धारणा कुछ और है। हम इसपर स्वतन्त्र रूपसे फिर विचार करेंगे, अभी इतना और जान लें कि कबीर इसी भावको लेकर कहते हैं—

"सात समन्दकी मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ॥"

स्पष्ट है कि इसका पूर्वार्द्ध क़ुर्आनसे लिया गया है, तो उत्तरार्द्ध महिम्नस्तोत्रसे। यहाँ 'धरती'का कागद (पत्रमुर्वी) और 'गुण' प्रकट ही दिखाई दे रहा है। हाँ, 'शारदा' और 'सुरतरु'को यहाँ स्थान नहीं।

कबीरकी भाँति ही मलिक मोहम्मद जायसीने भी इस प्रसंगको लिया है। पद्मावतके आरम्भमें ही अल्लाहकी स्तुतिमें वे लिखते हैं—

"अति अपार करता कर करना, वरनि न कोई पावै वरना।
सात सरग जौ कागद करई, धरती समुद दुहूँ मसि भरई।
जावत जग साखा बन पाखा, जावत केस रोवँ पँखि पाँखा।
जावत खेह रेह दुनियाई, मेघबूँद औ गगन तराई।
सब लिखनी कै लिखु संसारा, लिखि न जाइ गति-समुद आपारा।"

कहनेका तात्पर्य यह कि यह भाव बहुत दूर तक फैला है और कहा भी गया है समय-समयपर कुछ भिन्न-भिन्न रूपमें ही। जायसीने विस्तार तो किया है; पर वे किसी प्रकारकी विशेषता नहीं ला सके हैं। हाँ, एक बात अवश्य ध्यान देनेकी है। स्तोत्रकी 'लेखनी' ही 'कबीर' और 'जायसी'के यहाँ भी है, कुछ क़ुर्आनकी 'क़लम' नहीं। क़लमके विषयमें इतना और जान लें कि वह वस्तुतः अरबी नहीं, यूनानी भाषाका शब्द माना जाता है और संस्कृतमें भी उसका प्रयोग पाया जाता है। क़लम वास्तवमें किस भाषाका शब्द है, इसपर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं; परन्तु इतना तो प्रकट ही है कि क़ुर्आनमें जिस बातपर विशेष ध्यान दिया गया है, वह स्याही हो है; क्योंकि उसीके (एक समुद्रके) चुकनेपर सात समुद्रका उल्लेख होता है। जो हो, तुलनात्मक अध्ययन और विचारोंके आदान-प्रदानके लिए क़ुर्आनका यह प्रसंग विशेष विचारणीय है। यहाँसे उसका कितना मेल है, इसका कुछ विचार 'क़ुर्आनमें दहरविद्या'में किया गया है। शेषका फिर कभी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीन अजेय है !

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह, हिन्दी-अध्यापक, राष्ट्रीय प्राच्य विद्या-अध्ययन कालेज, छेङ्कुङ् (चीन)

भारतका पड़ोसी राष्ट्र चीन, जिसके पास पाँच हज़ार वर्षोंका प्राचीन इतिहास है और जिसकी सभ्यता वर्त्तमान दुनियाके राष्ट्रोंमें सबसे पुरानी है, पिछले आठ वर्षोंसे जापानसे लोहा ले रहा है। फिर भी हम लोगोंमें से कम ही यह जानते हैं कि इन आठ वर्षोंके अन्दर क्योंकर चीन जापान-जैसे शक्तिशाली राष्ट्रसे लोहा लेनेमें समर्थ हुआ है। चीनके अधिकांश उपजाऊ भूभाग, उसका सम्पूर्ण सामुद्रिक किनारा, आधुनिक कल-कारखानों तथा अन्य सुविधाओंसे युक्त प्रायः सभी प्रधान नगर, आठ हज़ार मील रेल-लाइनोंमें से लगभग सात हज़ार मीलसे भी अधिक लाइनें आदि आज जापानके अधिकारमें हैं। चीनकी राष्ट्रीय सरकार देशके उन भागोंपर शासन कर रही है, जो युद्धसे पहले चीनके पिछड़े हुए प्रदेश माने जाते थे। राष्ट्रीय सरकारके पास चीनका जो भूभाग है, वह आज स्वतन्त्र चीन कहलाता है, और जापानियोंके अधिकारमें जो है, वह अधिकृत चीन। स्वतन्त्र चीनमें न तो बड़े-बड़े कल-कारखाने हैं और न यातायातके लिए रेलकी लाइनें या मोटर चलने योग्य अच्छी सड़कें ही; शिक्षा तथा सरकारी काम चलानेके लिए न तो अच्छे तथा बड़े-बड़े मकानोंकी और न पढ़ने-लिखने तथा पढ़ने-लिखनेकी आवश्यक चीज़ोंकी सुविधा ही। पहननेके लिए अच्छे कपड़ेकी बात तो दूर रही, साधारण कपड़ेकी भी कमी है और खानेके लिए लोगोंको मोटा चावल भी पर्याप्त नहीं मिलता है। संक्षेपमें, चीन के पास आधुनिक युगके लड़नेके प्रायः सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों का पूरा अभाव है। उसका आर्थिक ढाँचा भी एकदम ढह गया है। फिर भी चीन लड़ रहा है। यह बात सचमुच बाहरवालों के लिए पहेली और चीनवालोंके लिए नगण्य सत्य है।

आजके युद्धमें किसी भी राष्ट्रकी राजधानीपर क़ब्ज़ा कर लेने-मात्रसे ही वह राष्ट्र पराजित नहीं माना जा सकता है। आज तो चप्पे-चप्पे ज़मीनपर लड़ाई होती है, और जब सम्पूर्ण राष्ट्र शत्रुके अधिकारमें चला जाता है, तभी वह राष्ट्र पूर्ण पराजित माना जाता है। इतना ही नहीं, किसी राष्ट्रके भूभागपर शत्रुका अधिकार हो जानेपर भी उस राष्ट्रकी सरकार अपने मित्र-दलोंकी मददसे तथा मित्र-दलोंके देशोंको आधार बनाकर शत्रुसे लोहा लेती है। इस प्रकार आजकी सामरिक विजय तभी पूर्ण कहला सकती है, जब विजयी राष्ट्र विजित राष्ट्रके भूभागपर अधिकार कर ले और विजित राष्ट्रकी जनता, सरकार तथा देश-भक्त भी शत्रुका अधिकार स्वीकारकर ग़ुलामीके बन्धनमें बँध जायँ। इस दृष्टिसे चीनको एक बड़ा लाभ है। चीनका रक़बा यूरोप महादेशके बराबर है। पूर्वसे पश्चिम और उत्तरसे दक्षिण वह इतने विशाल भूभागमें फैला हुआ है कि कोई शत्रु उसे आसानीसे अपने क़ब्ज़ेमें नहीं कर सकता। इसीलिए जब देशकी राजधानी नानचिङ् (नानकिङ्) जापानके अधिकारमें चली गई, तो राष्ट्रीय सरकारने देशके भीतरी भागमें अपनी राजधानी स्थापित की। शत्रु इस युद्ध-कालीन राजधानी चुंकिङ्के दरवाज़े तक आ पहुँचा था; पर उसे हताश होकर पीछे लौटना पड़ा। चीनका भीतरी भाग तटवर्त्ती प्रान्तोंकी तरह समतल नहीं है, और वहाँ यातायातकी सुविधा भी नहीं है। अधिकांश भूभाग पहाड़ी है। तटवर्त्ती प्रान्तोंसे दूर भीतरी भागमें न तो युद्ध-सामग्रियाँ सुविधासे पहुँचाई जा सकती हैं और न सुविधापूर्वक तथा शीघ्रतासे सेना ही एक जगहसे दूसरी जगह भेजी जा सकती है। इसलिए भीतरी भागमें प्रवेश करना शत्रुके लिए कठिन हो रहा है। राष्ट्रीय सरकारकी युद्ध-कालीन राजधानी चुंकिङ् संसारके उन नगरोंमें से है, जिनपर खुलकर बमवर्षा हुई है। इस प्रकार चीनके अजेय बने रहनेमें देशकी विशालता और प्राकृतिक स्थितिने बड़ी सहायता पहुँचाई है।

चीनका आकार-प्रकार जितना बड़ा है, उसकी जनसंख्या भी उतनी ही अधिक है। इसलिए किसी भी कामके लिए जहाँ मानवीय श्रमकी आवश्यकता पड़ती है, आदमियोंकी कमी नहीं होती है। साथ ही चीनी लोगोंकी जीवनी-शक्ति भी अधिक है। मानवीय श्रमका खेल तो चीनमें ही देखनेको मिलता है। भारतमें मैं अधिक दिनों तक देहातमें ही रहा हूँ, और मुझे अच्छी तरह पता है कि जेठकी दोपहरीमें भारतके किसान और मज़दूर किस मेहनतसे काम करते हैं। पर मैंने जेठकी दोपहरी तथा माघके भयंकर जाड़ेमें (जैसा जाड़ा शायद भारतके केवल हिमालय-प्रान्तोंमें ही पड़ता होगा) चीनी किसानों और मज़दूरोंको भी काम करते देखा है। परिश्रमकी दृष्टिसे भारतके किसान और मज़दूर वहाँसे बहुत ही पिछड़े हुए हैं। चीनमें खेती करने योग्य कम ही ज़मीन है। कपड़ेकी मिलें बहुत कम हैं। माल ढोनेके लिए रेलगाड़ियाँ तो एक तरहसे नहीं हैं और मोटर-ट्रकका भी अभाव है। इसलिए वहाँ मशीन-शक्तिके अभावमें मानवीय शक्तिसे ही काम लिया जाता है। उदाहरणके लिए, वहाँके किसान और मज़दूर (भारतकी तरह चीनमें भी किसान और मज़दूर ही अधिक हैं) दिन-रात खेतोंके काममें लगे रहकर अधिक-से-अधिक अन्न पैदा करते और कपड़े तैयार करते हैं। वे अपने कन्धों और पीठपर माल लादकर सैकड़ों मीलकी दूरी तक उसे ढोकर ले जाते हैं। आज स्वतन्त्र चीनमें जो भी कल-कारखाने हैं, उनमें से अधिकांश तटवर्त्ती प्रान्तोंसे लाकर स्थापित किए गए हैं। इन कल-कारखानोंको लानेका काम भी मज़दूरों द्वारा ही हुआ है—पीठ, कन्धों, और

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और भैंसागाड़ियोंपर लादकर। विपुल जनसंख्याके कारण वहाँ युद्धमें लड़नेवाले सिपाहियोंकी कमी नहीं है और न हवाई-अड्डे तथा युद्ध-सम्बन्धी अन्य चीज़ें बनानेवाले मज़दूरोंकी ही कमी है। फिर चीनके लोग अपनी कारीगरीके लिए तो संसार-प्रसिद्ध हैं। युद्ध छिड़नेसे पहले प्रतिदिनकी ज़रूरतकी चीज़ें, जो चीनमें नहीं बनती थीं, बाहरसे आती थीं ; पर आज यातायातके रास्ते बन्द हो जानेसे वे चीज़ें दूसरे देशोंसे वहाँ नहीं जा सकती हैं। परिमित साधनोंके होने और उन चीज़ोंके बनानेमें अभ्यस्त न होनेपर भी यहाँके लोग जो कर रहे हैं, वह सचमुच सराहनीय है। युद्ध-सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्रोंके बारेमें भी ठीक यही हालत है। यहाँ न तो काफ़ी संख्यामें अस्त्र-शस्त्र हैं और न अस्त्र-शस्त्र बनाने की मशीनें ही बाहरी देशोंसे पहुँच सकती हैं। पर युद्ध चलानेके लिए तोप-गोले आदि तो चाहिएँ ही। इस दिशामें चीनी जनताकी कारीगरी-बुद्धिने बड़ा काम किया है। कम या अधिक परिमाणमें आज प्रायः सभी प्रधान चीज़ें चीनमें बनने लगी हैं, जिनसे युद्ध चलानेमें बड़ी मदद मिल रही है। चीनकी विपुल जनसंख्या, चीनी जनताकी जीवनी-शक्ति, परिश्रम करनेकी क्षमता तथा कारीगरी-बुद्धिने इस युद्धको चालू रखनेमें बड़ी मदद की है।

चीनी जातिकी एक बड़ी विशेषता यह है कि वह समयानुसार अपनेको बदलना जानती है। शान्तिके समय अगर वह आराम, सुविधा और ऐयाशीके साथ रह सकती है, तो युद्धके समय वह कठिन-से-कठिन कष्ट भी हँसते हुए झेल सकती है। कठिनाइयों को झेलनेके लिए धैर्यकी आवश्यकता होती है, और मेरे जानते संसारकी किसी भी जातिमें चीनी जातिके समान धीरता नहीं है। आठ वर्षोंके निरन्तर युद्धके कारण चीनका आर्थिक ढाँचा एकदम ढह गया है। यहाँकी सरकार कागज़ी नोट चालूकर युद्ध चला रही है। दैनिक जीवकी अति आवश्यक चीज़ोंका दाम इतना अधिक है कि भारतके लोग सहसा विश्वास नहीं करेंगे। लोगोंका जीवन किस कष्टसे गुज़रता है, यह तो कोई तभी अनुभव कर सकता है, जब वह वहां जाकर अपनी आँखोंसे प्रतिदिन घटनेवाली घटनाओंको देखे। फिर भी वहाँकी जनता आठ वर्षोंसे नाना प्रकारके कष्टोंको धीरतापूर्वक सह रही है। कष्टसे घबराकर वह कभी भी अपनी सरकारसे यह नहीं कहती कि हमारी धीरता की सीमा समाप्त हो गई, अब घुटने टेक दो। बल्कि इसके विपरीत जनताका नारा है—हम देशको स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, देशमें पूर्ण गणतन्त्र शासनकी स्थापना करना चाहते हैं, इसके लिए हमें और भी भयंकर कष्टोंका सामना क्यों न करना पड़े। यह है वर्त्तमान युगके युद्धका सबसे अधिक शक्तिपूर्ण अस्त्र—नैतिक साहस। आज शत्रु-दलके लोग सबसे प्रथम यह चेष्टा करते हैं कि जिस देशपर आक्रमण किया गया है, उस देशकी जनताका नैतिक साहस तोड़ दिया जाय। जापानने अपनी बम-वर्षा, बीभत्स अत्याचार, रेडियो और न-जाने कितने प्रकारके साम-दाम-दण्ड-विभेद द्वारा चीनी जनताका नैतिक साहस तोड़ देनेका प्रयत्न किया ; पर इसमें उसे कुछ भी सफलता न मिली। आज चीनके बहुतसे भूभाग जापानके अधिकारमें हैं और बहुतसे दग़ाबाज़ चीनी अपने स्वार्थ-साधनके लिए जापानियोंसे मिलकर अधिकृत प्रान्तोंका शासन सँभाल रहे हैं ; पर अधिकृत प्रान्तोंकी जनताके दिलमें उन दग़ाबाज़ों या जापानियोंके प्रति कुछ भी श्रद्धा नहीं है। संगीनके डरसे निहत्थी जनता चुप ज़रूर रहती है ; पर मौक़ा आनेपर वह उस प्रकारके कार्य करनेसे बाज़ नहीं आती है, जो इस बातके निर्देशक होते हैं कि हवाका रुख किस ओर है। जनताकी सहायतासे ही, या यों कहिए कि जनता द्वारा संगठित गुरिल्ला-दल ही आज अधिकृत प्रान्तोंमें जापानियोंको लोहेके चने चबवा रहा है। यह हालत है अधिकृत प्रान्तोंकी, फिर स्वतन्त्र प्रदेशोंकी जनताका क्या कहना। जनताके नैतिक साहसने ही आज चीनकी राष्ट्रीय सरकारको युद्ध-सामग्रियोंके एकदम अभावमें भी वह शक्ति प्रदान की है, जिसे जापान सभी प्रकारके आधुनिक हथियारों को लेकर भी नहीं तोड़ सका है। समयानुसार अपनेको बदलना, धीरजसे काम लेना और हृदयमें नैतिक साहस रखना चीनी जातिकी विशेषताएँ हैं, और इन विशेषताओंने वर्त्तमान युद्धमें चीनको शत्रुसे लोहा लेनेमें बड़ी मदद की है।

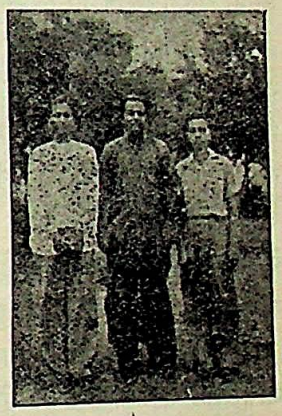

लेखक (बीचमें) चीनी पोशाकमें

चीनी जातिकी एक विशेषता यह है कि वह न तो दूसरोंको सताना चाहती है और न यही बरदाश्त कर सकती है कि दूसरे उसे सताएँ। जब-जब बाहरी जातियों या राष्ट्रों द्वारा चीनका शोषण प्रारम्भ हुआ है, वहाँकी जनताने उसका विरोध किया है और सदा इस कोशिशमें रही है कि क्योंकर बाहरी अत्याचारसे छुटकारा मिले। चीनी जनता ग़ुलामीके बन्धनमें अपनेको रखना एकदम पसन्द नहीं करती। यह सत्य है कि पाँच हज़ार वर्षोंके लम्बे ऐतिहासिक युगमें चीनको दो बार बाहरी जातियोंकी भी ग़ुलामी स्वीकार करनी पड़ी है ; पर दोनों ही बार वहाँकी जनताने उससे अपनेको मुक्त कर लिया है। यह तीसरी बार है, जब जापान उसपर ग़ुलामीका जुआ रखना चाहता है। पर ग़ुलामीके बन्धनमें न बँधने और अपनेपर किए जानेवाले अत्याचारोंको न बरदाश्त करनेकी भावना यहाँकी जनताके हृदयमें इतनी बद्धमूल हो गई है कि वह अपना सर्वस्व स्वाहा करके भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेको कटिबद्ध है। चीनी जातिकी इस परम्परागत विशेषतामें चीनी प्रजातन्त्रके पिता डा० सन् यात-सेन् द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयताके सिद्धान्तने सोनेमें सुगन्धवाली कहावतका काम किया है। डा० सन्ने बताया है कि राष्ट्रीयता वह अमूल्य सम्पत्ति है, जिससे कोई भी राष्ट्र फूलता-फलता है और उस राष्ट्रमें रहनेवाली जाति अपना अस्तित्व सदा बनाए रखती है। दूसरे शब्दोंमें कहें, तो राष्ट्रीयताका उद्देश्य राष्ट्रपर दूसरोंका अधिकार न होने देना है, जिससे वह अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनाए रख सके और संसारके अन्य उन्नतिशील राष्ट्रोंके समकक्ष अपना स्थान बना सके। चीनी जनताकी नज़रोंके सामने चीनका गौरवपूर्ण और उज्ज्वल अतीत है और वर्त्तमान कालका अधःपतन। वह समझ गई है कि चीन—चाहे उसका अतीत कितना ही उज्ज्वल और गौरवपूर्ण क्यों न रहा हो, चाहे उसकी सभ्यता और संस्कृति कितनी ही महान क्यों न हों, चाहे उसका भूभाग प्रचुर सम्पत्तिसे ही क्यों न भरा पड़ा हो—आधुनिक युगमें किसी योग्य नहीं है, अगर वह परतन्त्र है। वह विश्वास करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें चीनका स्थान अन्य आधुनिक राष्ट्रोंके समकक्ष तभी बन सकेगा, जब वह संसारके मानचित्रमें स्वतन्त्र राष्ट्रकी हैसियतसे अंकित किया जाता रहेगा। इस विश्वासका उदय हुआ है डा० सन् यात-सेन् द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोंको माननेसे। गत आठ वर्षोंसे चीन जापान-जैसे शक्तिशाली राष्ट्रसे मोर्चा लेनेमें समर्थ हो रहा है, इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि चीनी जनता डा० सान् यात्-सेन्के 'जनताके तीन सिद्धान्तों'में विश्वास करती है, और इन सिद्धान्तोंने जनतामें देशभक्तिका वह बीज बोया है, जो अस्त्र-शस्त्रोंके ज़ोरसे नहीं मसला जा सकता।

युद्धको अच्छी तरह चलानेके लिए देशमें एकताका होना ज़रूरी है। चीनमें दो प्रधान राजनीतिक दल हैं—क्वोमिन्ताङ् और चीनी साम्यवादी दल। इन दोनों दलोंके बीच बराबर संघर्ष होता आया है। इस संघर्षमें जन-धन दोनोंकी अपार क्षति हुई है। जिस समय जापानने चीनपर हमला किया, उस समय भी क्वोमिन्ताङ् और साम्यवादी दलके बीच मनमुटाव था। यह राजनीतिक मनमुटाव आज भी बना हुआ है; पर आज दोनों ही दल जापानियोंको चीनसे खदेड़ बाहर करना चाहते हैं। दोनों दल इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि हर हालतमें चीनको बाहरी राष्ट्रकी गुलामीसे बचना चाहिए, इसलिए राजनीतिक मनमुटावके होते हुए भी दोनों दल मिलकर जापानसे लोहा ले रहे हैं। आज क्वोमिन्ताङ् और चीनी साम्यवादी दलके अन्दर सैद्धान्तिक मतभेद है; पर दोनोंके बीच गृह-युद्ध नहीं है। दोनोंका अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर जापानियोंसे भिड़ जाना, एक बहुत ही प्रधान कारण है कि चीन आठ वर्षोंसे जापान-जैसे शक्तिशाली राष्ट्रसे मोर्चा लेनेमें समर्थ हो सका है।

युद्ध-संचालनके लिए योग्य नेताकी आवश्यकता होती है। युद्ध-कालमें वही योग्य नेता है, जिसपर देशको जनताका विश्वास हो और जो देशको एकताके सूत्रमें पिरो सके। सौभाग्यसे चीनको च्यांग काई-शेकके समान योग्य नेता मिला है, जो डा० सन् यात-सेन्के अधूरे कार्यको अपने जीवनकी आहुति देकर भी पूरा करना चाहता है। मार्शल च्यांग काई-शेकने अपने जीवनके प्रभात-कालसे ही जापान द्वारा चीनपर की जानेवाली शरारतोंको देखा है। उन्होंने यह भी देखा है कि किस प्रकार समय-समयपर जापान चीनकी कमज़ोरीसे फ़ायदा उठाता रहा है। इसलिए उनके समान देशभक्त व्यक्तिके, जो चीनको स्वतन्त्र देखना चाहता है, हृदयमें जापान-विरोधी भाव भर जाना स्वाभाविक है। इस विरोधी भावने उन्हें इस योग्य बनाया है कि वे जापानियोंको चीनसे बाहर खदेड़नेके लिए सब-कुछ स्वाहा करने को तैयार हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि जापानकी दासता स्वीकार करना चीनी जातिके ऊपर महामारी बुलाना है। जापानी छेड़खानीसे चीनी जनता भी तंग आ गई है। उसके हृदय च्यांग काई-शेककी तरह जापान-विरोधी भाव भर गया है। इसी लिए इस युद्धमें च्यांग काई-शेकको चीनी जनताका पूर्ण सहयोग प्राप्त है। यहाँ तक कि साम्यवादी दलके लोग भी जो युद्धके पूर्व च्यांगको जापानसे मिला हुआ समझते थे, आज स्वीकार करते हैं कि च्यांगमें ही यह शक्ति और योग्यता है कि देशको विजय झण्डेके नीचे लाकर जापानके विरुद्ध युद्धका संचालन करे। इस प्रकार योग्य नेताका होना और योग्य नेताको देशकी जनताका समर्थन प्राप्त होना चीनके प्रतिरोधका बहुत बड़ा कारण है।

जो कोई भी सहृदय व्यक्ति इस युद्ध-कालमें चीन जाता है, चीनकी ग़रीबी, चीनी सैनिकोंकी पोशाक, खुराक और उनकी सामग्रियाँ, चीनके यातायातके साधन आदिको देखकर आँसू बहाए बिना नहीं रह सकता। साथ ही चीनी जनताकी देशभक्ति, सहिष्णुता, त्याग, लक्ष्य तक पहुँचनेकी प्रबल आकांक्षा आदि देखकर प्रशंसाके दो शब्द कहे बिना भी वह नहीं रोक सकता। असलमें इस युद्ध-कालमें चीनके अजेय रहनेका प्रधान कारण है चीनी जनता—खासकर चीनके किसान। एक अमरीकन पत्रकारने ठीक ही कहा है—"चीनका इस युद्धमें अजेय बने रहनेका प्रयत्न निष्फल होता, अगर उसे किसानों से अटूट शक्ति न प्राप्त हुई होती। किसान दो चीज़ें पैदा करते हैं—खाना और सैनिक। वास्तवमें चीनमें किसान ही युद्धके कच्चे माल (Raw material) हैं।" पर अब युद्धके बादल साफ़ हो रहे हैं, और वह दिन नज़दीक आता जा रहा है, जब चीनी जनता अजेय चीनमें पुनः सुख-शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करेगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सेन फ्रांसिस्कोमें एकत्र हुए पाँच बड़े राष्ट्रोंके प्रतिनिधि—(बाईं ओरसे) वैलिंगटन कू (चीन), जार्ज बिदाल्त (फ्रांस), एडवर्ड स्टेटीनियस (संयुक्त-राज्य अमरीका), मलोतफ़ (सोवियत् रूस) और क्लीमेण्ट एटली (ब्रिटेन)।

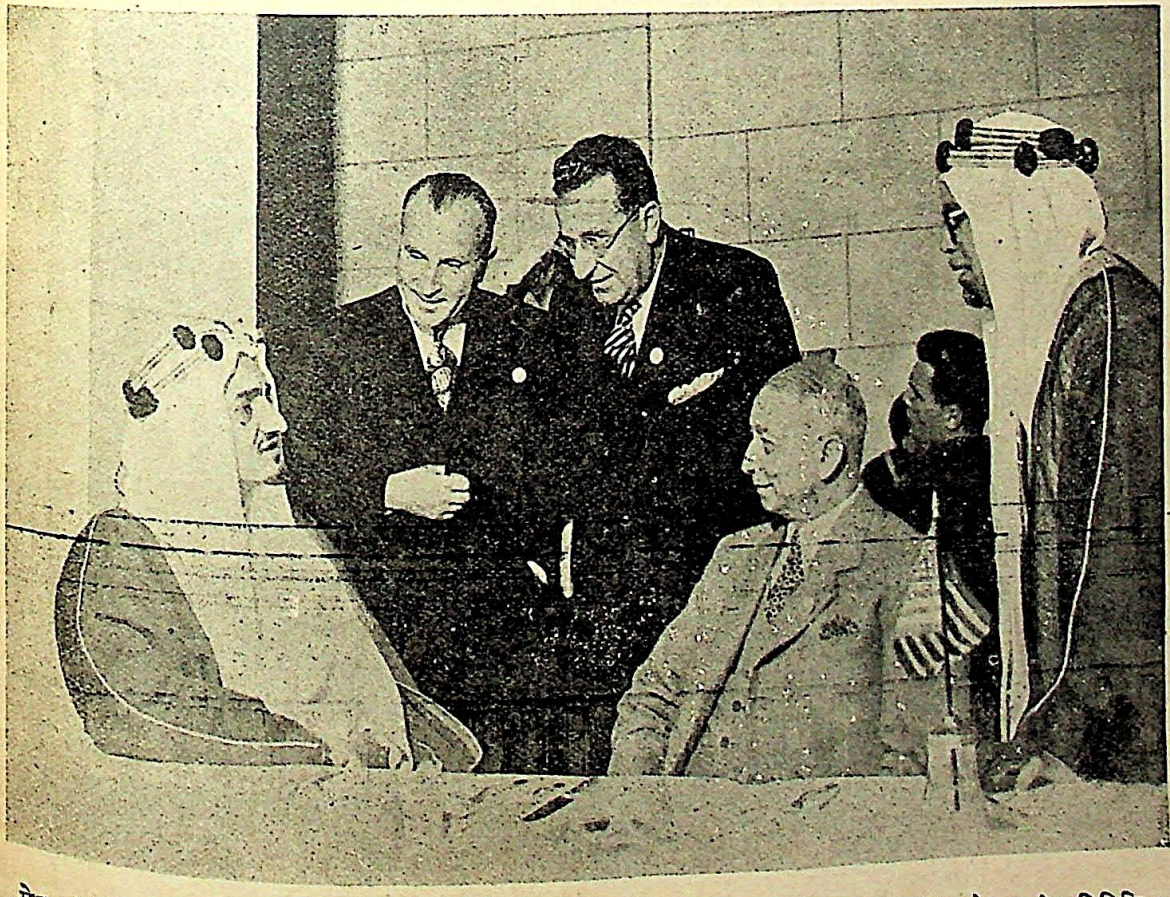

सेन फ्रांसिस्कोमें एकत्र हुए सऊदी अरबके प्रतिनिधि फ़ैसल इब्न अब्दुल अज़ीज़ (बाईं ओरसे पहले) और दूसरे प्रतिनिधि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओकीनावाकी गुफाओंमें छिपे जापानियोंको निकालनेके लिए अमरीकन नौसेना गोलन्दाज़ी कर रही है।

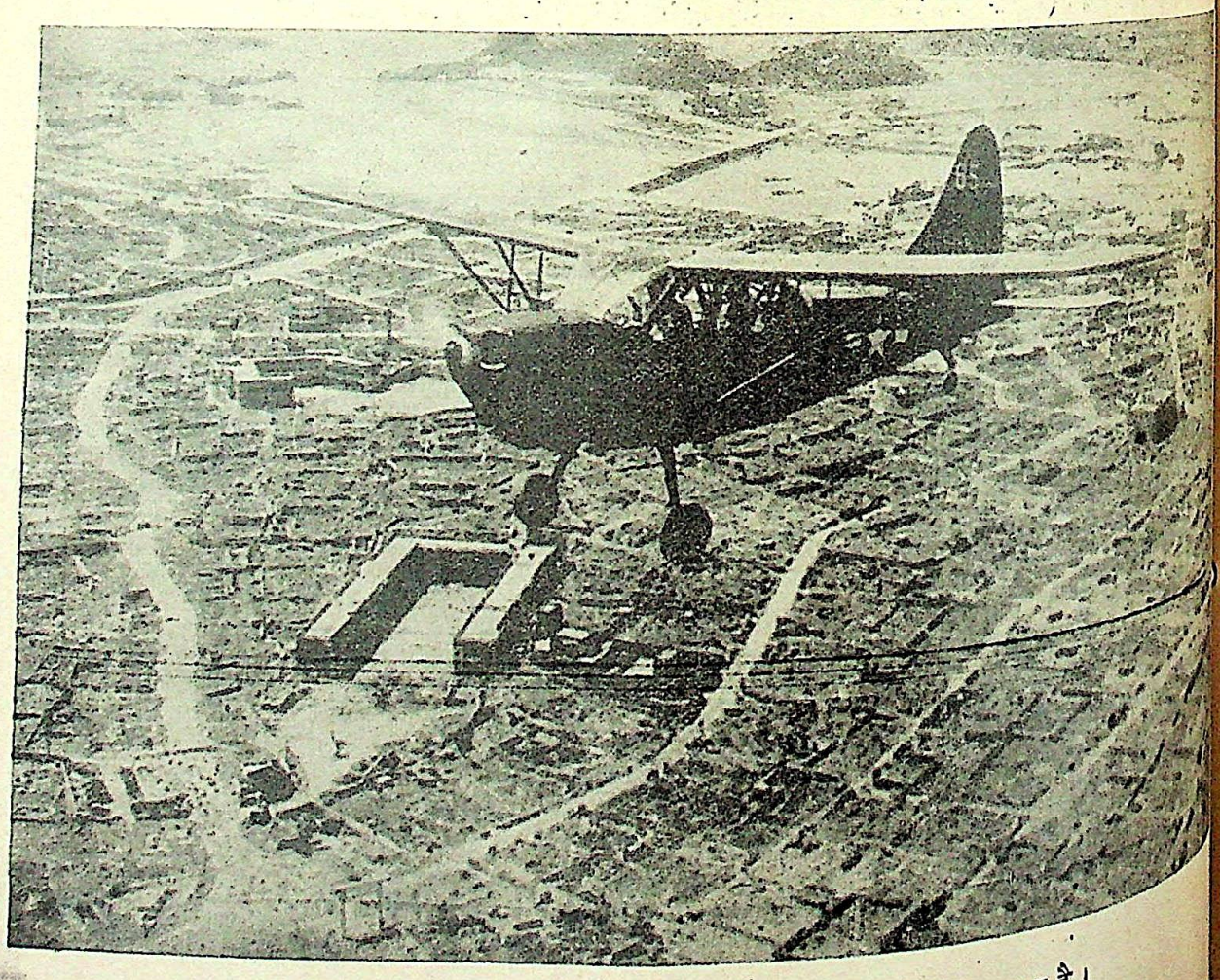

ओकीनावाकी राजधानी नाहापर एक अमरीकन गश्ती विमान चक्कर लगा रहा है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कॉस्मोपोलिटन क्लब

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

पात्र (आनेके क्रमसे)

१. महेन्द्रनाथ अवस्थी :: तेलकी एक बड़ी कम्पनीका चीफ़-एजेण्ट
२. चमनलाल सूरी :: अखबारनवीस
३. चन्दूलाल :: लड़ाईके सामानका एक बड़ा ठेकेदार
४. शीला भल्ला :: प्रो० दयानाथ भल्लाकी पत्नी; कम्यूनिस्ट
५. आफ़ताब(मेजर) :: कमीशण्ड फ़ौजी अफ़सर
६. दयानाथ भल्ला :: नगरके लब्धप्रतिष्ठ प्रोफ़ेसर
७. स्नेहभूषण :: एक अमीर कम्यूनिस्ट
८. प्रभा भूषण :: स्नेहभूषणकी पत्नी; फ़िल्म-ऐक्ट्रेस
९. प्रेमचन्द :: एक प्रसिद्ध लेखक
१०. तारारानी :: कुलीन घरकी एक कुमारी
११. इन्द्रप्रकाश :: रैडिकल डेमोक्रेट; बीमा-एजेण्ट
१२. सरजूभाई पटेल :: एम० एल० ए०; कांग्रेसके एक मुक़ामी लीडर

पात्रोंके चरित्रका सूत्र

१, २, और ५ :: 'यार, वह कौन थी!'
१, २ और ३ :: 'कस्मै देवाय?'
४, ७ और ८ :: 'डैम गांधी (गांधीवादका नाश हो)!'
११ :: 'हैंग गांधी (गांधीका नाश हो)!'
४, ८ और १० :: 'सबसे नया फैशन!'
६ :: फल-रहित बुद्धिजीवी
९ :: आलोचक
१२ :: 'हम!'

स्थान—क्लबका बाल-रूम। **समय**—साँझ (सूर्यास्तके बाद)

[बाल-रूमके एक तरफ़ बैण्ड-स्टैण्ड बना है, जिसपर विभिन्न तरहके ११ वाद्य-यन्त्र, जिनमें से १० विदेशी हैं, रखे हैं। क्लबमें कभी-कभी हिन्दुस्तानी नाच भी होता है। इससे तबले की एक सुन्दर जोड़ी भी वहाँ रखी है, यद्यपि कोई स्थायी तब-लची बैण्ड-स्टाफ़में नहीं है। बाक़ी सब वाद्य-यन्त्रोंके सम्मुख उनके बजानेवाले तथा बैण्डमास्टर अपनी निश्चित पोशाकमें विद्यमान हैं। एक बहुत हल्की, परन्तु श्रुति-मधुर स्वर-लहरी सुनाई दे रही है।

बैण्ड-स्टैण्डके सामने नाचनेका लकड़ीका फ़र्श है। उसके चारों ओर हल्के हरे रंगकी शीशेसे मढ़ी बहुत-सी छोटी मेज़ें बिखरी हुई बिछाई गई हैं। इन मेज़ोंके चारों ओर हल्के हरे रंगकी बेंतकी गद्देदार आरामदेह गोल कुर्सियाँ करीनेसे रखी हैं। हालमें दोसे लेकर बारह आदमियोंके एक साथ बैठनेका प्रबन्ध है। अधिकांश मेज़ें रिज़र्व हो चुकी हैं।

कुछ मेज़ोंके चारों ओर साँझकी अंगरेज़ी पोशाक पहने पुरुष और भड़कीली साड़ियाँ अथवा एक ही रंगकी सलवार, कमीज़ और चुन्नियाँ पहने स्त्रियाँ बैठी हैं। अधिकांशके सिर नंगे हैं; परन्तु हालमें छपी हुई छोटी-छोटी पगड़ियाँ बाँधे सिक्खों का भी अभाव नहीं है। बहुत-सी कुर्सियाँ अभी खाली पड़ी हैं। हालमें क्लबकी निश्चित पोशाक पहने बैरों और 'ब्वाएज़'की एक फ़ौज विद्यमान है।

एक जगह, नाचनेके फ़र्शके बिलकुल नज़दीक, बारह व्यक्तियोंके एक साथ बैठनेका प्रबन्ध है। परन्तु अभी वहाँ सिर्फ़ दो ही आदमी विद्यमान हैं। तेलकी एक बड़ी विदेशी कम्पनीके उत्तर-भारतके एजेण्ट मिस्टर महेन्द्रनाथ अवस्थी और नौजवान अखबारनवीस मिस्टर चमनलाल सूरी। दोनों शख्स पूरी तरह अंगरेज़ी वेश-भूषामें हैं और अपने प्रत्येक आचरण और उच्चारणमें अंगरेज़ियतकी पूरी नक़ल करनेकी कोशिशमें हैं।]

अवस्थी—आप तो जर्नलिस्ट हैं, मि० सूरी! यूरोपकी लड़ाईमें तो हम लोग जीत गए। कहिए, रूससे पेट्रोल कब तक हिन्दुस्तानमें आने लगेगा?

सूरी—यह बड़ा पेचीदा सवाल है, मि० अवस्थी! गवर्नर सर कौलविलने उस दिन प्रेस-कान्फरेन्समें कहा था। और मि० अवस्थी, हिज़ एक्सीलेन्सी उस दिन खास मेरी तरफ़ ही देख रहे थे! उन्होंने कहा था...

अवस्थी—(ज़रा मुस्कराकर, बात करते हुए) आपका यह चेहरा सचमुच देखनेके ही क़ाबिल है, मि० सूरी! यार, अभी तक सेठ चन्दूलाल तशरीफ़ नहीं लाए। उन्होंने मुझसे कहा था कि नाचसे आध-एक घण्टा पहले ही मैं क्लबमें पहुँच जाऊँगा।

सूरी—सेठ चन्दूलाल भी तशरीफ़ ला रहे हैं? हिन्दुस्तान की सियासियातके बारेमें मैंने हाल ही में एक किताब अंगरेज़ीमें लिखी है। आप सेठ साहबसे कहिएगा कि अपने मज़दूरोंमें बाँटनेके लिए वे उस किताबकी ५०० कापियाँ खरीद लें।

अवस्थी—वाह साहब, वाह! आपने अभी तक वह किताब मुझे तो उपहारमें दी नहीं! कुछ दोस्तीका हक़ तो अदा किया होता, यार!

(इसी वक्त सेठ चन्दूलालका प्रवेश। वे देसी पोशाकमें हैं। सेठ साहब अवस्थीसे हाथ मिलाते हैं और अवस्थी उनका सूरीसे परिचय करवाते हैं—'मिस्टर सूरी, मशहूर अखबारनवीस।' और 'सेठ चन्दूलाल, उत्तर-भारतके महान ठेकेदार।' सेठ और सूरी आपसमें कहते हैं—'हाउ डू यू डू?' और 'हाउ डू यू डू?')

सूरी—(चन्दूलालसे) आपसे मिलनेकी मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा थी। आज सौभाग्य है कि...

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चन्दूलाल—मैंने पहले भी आपको कहीं देखा है। हाँ, याद आया। अरे, अभी पिछले महीने ही तो। (एकाएक सूरीके कन्धेपर बेतकल्लुफ़ीसे हाथ रखकर) अरे मेरे यार, उस दिन वह परी तुम्हारे साथ कौन थी ?

अवस्थी—परी और इनके साथ ! (सूरीसे) तुम तो छिपे रुस्तम मालूम होते हो, यार !

सूरी—किस दिन ? कौन ? बहुत-सी लड़कियाँ मेरी मित्र हैं। आप किसको पूछ रहे हैं, सेठ साहब ?

चन्दूलाल—हल्के नीले रंगका रेशमी सूट पहने हुए वह गोरी मृगनयनी, जो तुम्हारे साथ उस दिन नाची भी थी।

सूरी—अजी, वह मिस...(नाम लेते-लेते रुक जाता है)। वह मेरी पुरानी दोस्त है। बहुत बड़े घरकी है। यों किसीके साथ आना-जाना पसन्द नहीं करती।

चन्दूलाल—यार, हमसे भी तो उसका परिचय करवाओ।

सूरी—देखिए, कोशिश करूँगा। मगर वह अधिक मिलना-जुलन पसन्द नहीं करती।

चन्दूलाल—अरे जाने भी दो, मेरे यार ! मैंने इन लड़कियोंके बड़े रंग देखे हैं। सिर्फ़ तरीक़ा आना चाहिए।

अवस्थी—अच्छा सेठ साहब, अब ज़रा कामकी बातें हो जायँ। और लोग भी धीरे-धीरे आते ही होंगे।

चन्दूलाल— हाँ, हाँ, कहिए।

अवस्थी—(सूरीसे) यार, मिसेज़ भल्ला आती ही होंगी। मिस्टर भल्ला ज़रा देरमें आयँगे। आप बाहर जाकर ज़रा मिसेज़ भल्लाको रिसीव तो करें।

सूरी—(मुस्कराकर) बहुत अच्छा। (प्रस्थान)

चन्दूलाल—यह कौन छोकरा है, अवस्थी साहब ?

अवस्थी—ऐसे ही एक चलतापुर्ज़ा अखबारनवीस है। ऐसे लोगोंको हाथमें तो रखना ही चाहिए। औरतका नाम सुनकर बछियाका ताऊ किस प्रकार मुस्तैदीसे चला गया !

चन्दूलाल- हूँ ! अच्छा यार, हमें तेल देनेके बारेमें तुमने क्या फ़ैसला किया ?

अवस्थी—क्रूड आयल तो आपको पूरी मिकदारमें पहुँचाना मेरे जिम्मे रहा। कहिए, मुनाफ़ेमें आप मेरा हिस्सा कितना रखेंगे ?

चन्दूलाल—जो कहो।

अवस्थी—आप ही बताइए, सेठ साहब !

चन्दूलाल—(उँगलियोंसे इशाराकर) २० प्रतिशत।

अवस्थी—अजी जनाब, जाने दीजिए। योंही तेल ले लीजिएगा।

चन्दूलाल—आप तो नाराज़ हो गए।

अवस्थी—मैं भला क्या नाराज़ होऊँगा। आप तो ५० की जगह बीस सुनाते हैं।

चन्दूलाल—५० की जगह ? ५० की तो हमें भी बचत है ! ब्लैक मार्केटका मुनाफ़ा कौन नहीं जानता ! (वक्त मिसेज़ दयानाथ भल्लाको लिए हुए सूरीका प्रवेश। होकर मिसेज़ भल्लाका स्वागत करते हैं।)

मिसेज़ भल्ला—मैं वक्तसे पहले आ गई न, मि० अवस्थी—जी, आपकी कृपा है।

मिसेज़ भल्ला—आज मौसम कैसा है, सेठ साहब !

चन्दूलाल—(सूरीसे) आज मौसम कैसा है, मि०

सूरी—क्यों, कोई खास बात है क्या ?

मिसेज़ भल्ला—नहीं, मेरा मतलब है, कुछ अजीब मौसम है आज। न सर्दी और गरमी। कुछ समझमें नहीं कैसा मौसम है !

अवस्थी—जी, बिलकुल समझमें नहीं आता।

मिसेज़ भल्ला—(ज़रा मुस्कराकर, सूरीसे) आप तो होता है, सारा दिन क्लबमें ही बिताते हैं, मिस्टर सूरी !

सूरी—जी, यह तो मेरा कर्त्तव्य हुआ।

अवस्थी—फ़रमाइए, आपके लिए क्या मँगवाऊँ मिसेज़ भल्ला ?

मिसेज़ भल्ला—नहीं, धन्यवाद। अभी मुझे कुछ चाहिए। मैं खुद माँग लूँगी। (इसी वक्त मिसेज़ निगाह नज़दीकको एक टेबलपर पड़ती है, जिसके पास नौजवान फ़ौजी अकेला बैठा है।)

मिसेज़ भल्ला—(फ़ौजीसे, ज़रा ऊँची आवाज़में) मेजर आफ़ताब, आप कब आए ?

(मेजर आफ़ताब बड़े अदबके साथ उठकर मिसेज़ सलाम करता है और उनके नज़दीक आ जाता है। मिसेज़ सबसे उसका परिचय करवाती हैं। पहलेके समान और 'हाउ डू यू डू'का दौर। मिस्टर अवस्थी मेजर अनुरोध करते हैं कि वे उसी टेबलपर बैठ जायँ और अनुरोधको स्वीकार कर लेते हैं।)

मिसेज़ भल्ला—मेजर आफ़ताब मेरे पुराने दोस्त तोब्रुककी लड़ाईमें इन्होंने दुश्मनके दाँत खट्टे कर दिए।

आफ़ताब—यह सब आपको इनायत है।

सूरी—आप आरामके साथ मुझे कोई वक्त दे सकेंगी।

आफ़ताब—ज़रूर-ज़रूर। मगर उसकी ज़रूरत नहीं।

मिसेज़ भल्ला—आप हिन्दुस्तान कब आए, मेजर !

आफ़ताब—मैं तो साल-भरसे आसाममें था। छुट्टीपर यहाँ आया हूँ।

मिसेज़ भल्ला—आप बड़े बहादुर हैं, मेजर आफ़ताब।

चन्दूलाल—जी, इसमें क्या शक।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिसेज़ भल्ला—(दूरकी एक टेबलकी ओर देखकर) ओहो, मि० तनखा भी आए हुए हैं। (अपनी टेबलके साथियोंसे) माफ़ कीजिएगा, मैं अभी आई। (मि० तनखाकी टेबलकी ओर प्रस्थान।)

अवस्थी—बड़ी ज़बरदस्त हैं, मिसेज़ भल्ला।

चन्दूलाल—(ज़रा मुस्कराकर) इसमें क्या शक।

आफ़ताब—बड़ी एडवान्स लेडी हैं मिसेज़ भल्ला। हमारे मुल्कको ऐसी ही औरतोंकी ज़रूरत है।

सूरी—मेजर साहब, आपको तो बहुतसे मुल्कोंकी औरतों का तजुर्बा होगा।

आफ़ताब—(अभिमानके साथ, मुस्कराकर) यह तो स्वाभाविक ही है, मिस्टर सूरी! हमारे मुल्ककी औरतें तो अभी बहुत पिछड़ी हुई हैं।

अवस्थी—इस लिहाज़से आपको सबसे अच्छा मुल्क कौन-सा लगा?

आफ़ताब—किस लिहाज़से?

चन्दूलाल—यही, मसलन खूबसूरतीके लिहाज़से?

आफ़ताब—मुझे तो ईरान बहुत पसन्द आया। इतनी खूबसूरती है उस मुल्कमें कि उसका बयान नहीं हो सकता। और फिर क्या खूबसूरतीसे मुस्कराती हैं वहाँकी औरतें! हिन्दुस्तानमें तो बस...

सूरी—कुछ तजुर्बे तो सुनाइए, मेजर साहब!

आफ़ताब—तजुर्बोंके लिए तो मैं पेरिस जाना चाहता था; मगर अपने अफ़सरोंको इन तजुर्बोंकी अहमीयत मैं समझा नहीं सका। जाने दीजिए, मिस्टर सूरी, इन बातोंको। आप अपने इस क्लबके तजुर्बे सुनाइए।

(इसी वक्त प्रोफ़ेसर दयानाथ भल्लाके साथ कामरेड स्नेहभूषण और उनकी पत्नी श्रीमती (मिस) प्रभा भूषणका प्रवेश। सब लोग खड़े होकर उनका सत्कार करते हैं। परिचयकी औपचारिकताएँ (Formalities) पूरी की जाती हैं।)

अवस्थी—आप लोग वक्तपर आ गए, इसके लिए धन्यवाद।

प्रभा—मैं तो थिएटरके रिहर्सलसे आज बिलकुल ऊब गई थी। यह असिस्टेण्ट डाइरेक्टर पूरा ऊत है।

सूरी—कौन है आपकी कम्पनीका असिस्टेण्ट डाइरेक्टर?

प्रभा—तनखा दि जूनियर। नालायक कहींका! कहता था कि हिन्दुस्तानकी लड़कियाँ आजकल बड़ी आज़ाद होती जा रही हैं। उसे मतलब?

चन्दूलाल—ओहो, मैं समझा। बड़े तनखा तो पहले ही से यहाँ क्लबमें विराजमान हैं।

प्रभा—सच!

चन्दूलाल—वह देखिए, उस मेज़पर बैठे हैं। मिसेज़ भल्ला उन्हींसे मिलने गई हैं।

प्रभा—बड़े तनखा कभी किसीके ज़ाती मामलेमें दखल नहीं देते; मगर यह छोटा तनखा तो पूरा शैतानका चर्खा है। जब देखो, लड़कियोंकी आलोचना करता रहता है।

स्नेहभूषण—तुम उसे ग़लत समझी हो, प्रभा! वह खरा आदमी है। वह यह पसन्द नहीं करता कि अपनी अभिनेत्रियोंकी निन्दा उनकी पीठ-पीछे दूसरे मर्दोंसे सुने। तुम्हें मालूम नहीं कि जो मर्द औरतोंके मुँहपर उनकी खुशामद करते नहीं थकते, वे उनकी पीठ-पीछे कितने भद्दे शब्दोंमें उनकी आलोचना करते हैं। तनखा इस क़िस्मका आदमी नहीं है। दिखावट वह पसन्द नहीं करता। (अचानक स्नेहभूषण देखता है कि वातावरणमें गम्भीरता छा गई, इससे बात बदल देनेकी इच्छासे वह कहता है) और प्रभा, तुम तो अब लड़की नहीं रहीं। कच्ची उम्रकी लड़कियोंके खिलाफ़ वह जो-कुछ कहता है, वह तुमपर लागू ही कहाँ होता है?

दयानाथ—तुम तो पूरा एक लेक्चर ही दे गए, स्नेहभूषण!

(इसी वक्त मिसेज़ भल्ला अपनी टेबलपर वापस आ जाती हैं।)

शीला—(अपने पतिसे) तुम आज वक्तपर कैसे पहुँच गए?

दयानाथ—(प्रभाकी ओर इशाराकर) इनकी दयासे।

(शीला आफ़ताबके नज़दीकवाली कुर्सीपर आ बैठती है। अवस्थीके हुक्मपर बैरे टेबलपर पेय, खाद्य आदि रख देते हैं।)

आफ़ताब—(ज़रा मुस्कराकर) आपकी तन्दुरुस्ती और क्रियाशीलतामें अभी तक कोई फ़र्क़ नहीं आया। कितने बरसोंके बाद हमारी मुलाक़ात हुई है?

शीला—क़रीब चार बरस बाद। और तुम तो पहलेसे भी अधिक तन्दुरुस्त दिखाई देते हो।

आफ़ताब—यह आपकी दुआ है।

शीला—हाँ, आफ़ताब, मुझे तुमसे एक बात कहनी थी। तुम्हारे राजनीतिक विचार कैसे हैं?

आफ़ताब—राजनीतिक विचार! मैं एक फ़ौजी हूँ और राजनीति मेरा विषय नहीं है।

शीला—मेरा मतलब है कि तुम कम्यूनिस्ट हो कि नहीं?

आफ़ताब—नहीं।

शीला—तो तुम अभी तक कुछ भी नहीं सीखे। तुम्हें कम्यूनिस्ट हो जाना चाहिए।

आफ़ताब—(ज़रा मुस्कराकर) वह क्यों?

शीला—क्योंकि मैं कहती हूँ।

आफ़ताब—जी हाँ, तब तो मुझे ज़रूर कम्यूनिस्ट हो जाना चाहिए। मगर क्या आप सचमुच कम्यूनिस्ट हैं?

शीला—हाँ, सचमुच। तुम्हें मालूम नहीं, हिन्दुस्तानके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सभी सही दिमाग़ बड़ी तेज़ीसे कम्यूनिस्ट बनते चले जा रहे हैं।

आफ़ताब--सचमुच ?

शीला— हाँ, सचमुच।

आफ़ताब—मगर मैं तो समझता था कि हिन्दुस्तानके लोग गांधीके पीछे हैं ?

शीला--अरे, तुम किस ज़मानेकी बातें करते हो, आफ़ताब ? अब ज़माना बदल गया। कम्यूनिज़्म तो अब इस देशमें एक फ़ेशन बनता जा रहा है। उस बुड्ढेको अब कौन पूछता है ?

आफ़ताब—दुनिया तो अब भी यही समझती है कि जो कुछ गांधी कहता है, वही हिन्दुस्तानकी आवाज़ है।

शीला--कौन कहता है ? मालूम होता है, तुम कुछ पढ़ते-लिखते नहीं हो, आफ़ताब! का० जोशीकी किताबें तुमने पढ़ीं ?

आफ़ताब--जी नहीं।

शीला--बस, यही तो बात है। तभी तो, पढ़ना-लिखना जानते हुए भी, तुम बेपढ़ोंकी-सी बातें कर रहे हो। इस लड़ाईमें रूसने जो-कुछ किया है, वह तुमने देखा ?

आफ़ताब—रूसकी बहादुरी तो बेशक बहसके ऊपरकी चीज़ है। मगर हम लोग तो फ़ौजी आदमी हैं। हमें तो जिधर हुक्म हो, गोली चलाना आता है।

शीला--वक्त निकालकर कुछ स्टडी भी किया करो।

आफ़ताब—बहुत ठीक। मगर अब तो सुना है कि रूस और इंग्लैण्डमें कई बातोंपर मतभेद पैदा हो गया है। मैंने कहा न कि हम तो, भाई, फ़ौजी आदमी हैं। फर्ज़ करो, अगर खुदा न खास्ता कभी इंग्लैण्ड और रूसमें छिड़ गई, तो हमें रूसके खिलाफ़ लड़ना ही पड़ेगा।

शीला—(ज़रा जोशके साथ) रूसके खिलाफ़ लड़ना पड़ेगा ? अरे क्या कहते हो, रूसके खिलाफ़ लड़ना पड़ेगा! अगर ऐसा हुआ तो आफ़ताब, मैं तुमसे उम्मीद करती हूँ कि रूसियोंपर गोली चलानेसे पहले तुम खुद अपनेको गोली मार लोगे।

आफ़ताब—(हँसकर) आप इतने जोशमें क्यों आ गईं, मिसेज़ भल्ला ? अगर गोली ही होती, तो हम लोग अपने मुल्कके लिए गोली न खा लेते! आप रूसी तो नहीं हैं, मिसेज़ भल्ला ?

दयानाथ--अरे भाई, जाने भी दो इस बेमतलबकी बहसको। रूस और इंग्लैण्डमें कभी लड़ाई नहीं होगी। आप बेफ़िक्र रहिए, मेजर आफ़ताब! शीलाके अनुरोधसे आपको खुद अपनेको गोली नहीं मार लेनी पड़ेगी!

आफ़ताब--यह तो मैं भी जानता हूँ, मिस्टर भल्ला! मगर मिसेज़ भल्लाको रूसकी फ़िक्र हिन्दुस्तानकी फ़िक्रसे भी ज़्यादा क्यों है ?

शीला—यही तो तुम नहीं समझते, आफ़ताब! तुम ज़रा स्टडी करो, तो तुम्हें पता चलेगा कि कम्यूनिज़्मके प्रचारके बिना न तो हिन्दुस्तान आज़ाद हो सकता है और न होना चाहिए।

आफ़ताब--यह किस तरह ?

शीला--देखो न, कांग्रेसने अब तक क्या कर लिया! सालसे बुड्ढा गांधी कोशिश कर रहा है, उसने क्या कर लिया सब हैंकी-पैंकी हैं। इन सबका दिमाग़ खराब है।

आफ़ताब--और कम्यूनिस्टोंने क्या कर लिया है भल्ला ?

शीला—असलमें तुम अपने मुल्कसे बिलकुल कट-आउट हो तुमने हमारे जलसे नहीं देखे; तुमने हमारे नेताओंके भाषण नहीं सुनीं। हाँ, और तुम्हें पता है कि सैनफ्रैंसिस्कोमें हेरल्ड टोवने कह दिया है कि 'हिन्दुस्तानको आज़ाद कर देना चाहिए' कांग्रेस कर सकी थी इस तरहकी कोई बात ?

(आफ़ताब ज़बरदस्ती अपनी हँसी रोकता है। तभी तारा प्रेमचन्दके साथ तारारानीका प्रवेश। तारारानी बहुत ही सुन्दर पोशाक पहने है। बनाव-सिंगार भी उसने कम नहीं किया है। मि० प्रेमचन्द स्वच्छ, पर सादी पोशाकमें हैं। परिचयकी औपचारिता एक बार और पूरी की जाती है।)

अवस्थी—(प्रेमचन्दसे) आपसे तो मुझे उम्मीद थी कि आप सबसे पहले यहाँ पहुँच जायँगे।

प्रेमचन्द—(ताराकी ओर इशाराकर) इन्होंने मुझे जल्दी यहाँ बुला लिया था और कहा था कि एक साथ कुछ चलें और चलते हुए स्त्रियोंको थोड़ा-बहुत वक्त लग ही जाता है।

प्रभा—(ज़रा खीझके साथ) मगर हम लोगोंको तो ऐसा लगा नहीं, मिस्टर प्रेमचन्द!

प्रेमचन्द—(ज़रा मुस्कराकर) आप तो सुबह स्टूडियो गईं, वक्त ही तैयार होकर गई होंगी और स्टूडियोमें तो बनाव-सिंगारके अलावा और काम ही क्या होता है!

प्रभा—आप तो सिर्फ़ किताबें ही लिख सकते हैं, मिस्टर प्रेमचन्द! स्टूडियोमें क्या होता है, इसका आपको क्या पता!

प्रेमचन्द—बात तो आपने ठीक कही। मुझे क्या मालूम कि स्टूडियोमें क्या होता है! (हँसी)

(इसी वक्त नाच शुरू होता है। अवस्थी और शीला दयानाथ और प्रभा फ्लोरपर नाचके लिए चले जाते हैं। बैरा आकर सब लोगोंसे आर्डर ले जाता है कि किसे क्या चाहिए। चन्दूलाल और सूरी मुस्कराकर ताराकी ओर देखते हैं। सहज मीठी मुस्कानसे वह उनका जवाब देती है; इसी मुस्कानसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कम-से-कम इस किसीके साथ नाचनेके लिए वह तैयार नहीं है। एक सैण्डविच उठाकर वह उसे कुतरने लगती है। ताराके सौन्दर्यसे विशेष रूपसे प्रभावित हुआ है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओर पेस्ट्रियाँ बढ़ाता है ; मगर वह धन्यवादपूर्वक इन्कार कर देती है ।)

प्रेमचन्द—तुम यहाँ सब लोगोंको अच्छी तरह जानती हो न, तारा ?

तारा—जी नहीं । सेठ चन्दूलाल और मेजर आफ़ताबसे मैं आज पहली बार परिचित हुई हूँ ।

(सूरी मेजरका प्रेमचन्दसे परिचय करवाता है ; मगर मेजर प्रेमचन्दमें विशेष दिलचस्पी ज़ाहिर नहीं करता । इसी वक्त इन्द्रप्रकाशका प्रवेश । इन्द्रप्रकाश सबको नमस्कार करता है । कोई खड़ा नहीं होता । जो लोग उसे जानते हैं, वे ज़रा-सा सिर हिलाकर उसके नमस्कारका जवाब देते हैं । कोई किसीसे उसका परिचय नहीं करवाता ।)

सूरी—आप बहुत देरसे आए, मि० इन्द्र ! आपकी अनुपस्थितिका लाभ उठाकर मिसेज़ भल्लाने मेजर आफ़ताबको अपनी पार्टीमें मिला लिया ! हाँ, यह हैं महशूर रैडिकल मि० इन्द्रप्रकाश, नैपचून बीमा-कम्पनीके एजेण्ट और यह हैं मेजर आफ़ताब । (दोनोंका परस्पर सिर झुकाना ।)

इन्द्र—क्या कहा मिसेज़ भल्लाने ?

आफ़ताब—यही कि अब ज़माना कम्यूनिस्टोंके साथ है । आप रैडिकल डेमोक्रेट भी तो कम्यूनिज़्मको मानते हैं न, मि० इन्द्र ?

इन्द्र—हाँ, कम्यूनिज़्म तो ठीक है ; मगर यह हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी असलमें कम्यूमिस्ट ही कहाँ है ! एक-से-एक बढ़कर गधे भरे हुए हैं इसमें !

स्नेहभूषण—(मुस्कराकर) रैडिकल पार्टीका बाड़ा तो फिर बिलकुल खाली हो गया होगा, मि० इन्द्र ?

इन्द्र—आप भी कम्यूनिस्ट हैं क्या ?

स्नेह—गधा तो ज़रूर हूँ ; मगर यह मालूम नहीं कि किससे बढ़कर ।

इन्द्र—माफ़ कीजिएगा ; मेरा मतलब किसीपर व्यक्तिगत आक्षेप करनेका नहीं था ।

आफ़ताब—आप यह बतानेकी कृपा करेंगे, मि० इन्द्र, कि आपमें और कम्यूनिस्टोंमें आधारभूत भेद क्या है ?

इन्द्र—हम लोग मुल्कमें पीपुल्स (जनता) का राज चाहते हैं । और ये कम्यूनिस्ट तो असलमें कांग्रेसके हाथके खिलौने हैं । वही कांग्रेस, गांधी और पटेल-जैसे फ़ासिस्ट जिसके नेता हैं ।

आफ़ताब—(ज़रा चौंककर) गांधीजी फ़ासिस्ट हैं, यह तो मैंने आज पहली बार सुना ।

इन्द्र—मालूम होता है, आप कभी अखबार नहीं पढ़ते ! 'वेन्गार्ड' कभी देखा आपने ? अगर आप स्टडी करें, तो आपको मालूम हो जाएगा कि गांधी से हिटलर और मुसोलिनीसे भी बढ़कर नाज़ी और फ़ासिस्ट हैं । मुझे तो हैरानी है कि उसे अभी तक 'वार क्रिमिनल' क्यों घोषित नहीं किया गया !

(इन्द्र पूरी गम्भीरतासे यह बात कहता है ; परन्तु सब लोग बरबस इतनी ज़ोरसे हँस पड़ते हैं कि आसपासके लोगोंका ध्यान भी उनकी तरफ़ खिंच जाता है ।)

आफ़ताब—माफ़ कीजिए, आपने मेरी बातका जवाब नहीं दिया । मैंने पूछा था कि रैडिकल्स और कम्यूनिस्टोंमें आधारभूत भेद क्या है ?

इन्द्र—यही तो मैं बता रहा हूँ । आप ज़रा समझनेकी कोशिश कीजिए । हिन्दुस्तानकी कम्यूनिस्ट पार्टीका अपना कोई प्रोग्राम ही नहीं ।

स्नेहभूषण—माफ़ कीजिएगा, आप फिर कम्यूनिस्टोंकी आलोचना करने लगे । आप अपना कोई प्रोग्राम समझाइए और बताइए कि यह प्रोग्राम कम्यूनिज़्म या रूसके आदर्शोंके अनुकूल है ।

इन्द्र—रूसके आदर्श ! आप क्या कह रहे हैं, मि० भूषण ! आपको मालूम है कि अब तो स्टालिनने भी यह स्वीकार कर लिया है कि मार्क्स और लेनिनकी फ़िलासफ़ीको यदि किसीने ठीकसे समझा है, तो सिर्फ़ का० एम० एन० रायने !

(इस बातपर फिरसे एक क़हक़हा पड़ता है । मि० इन्द्र ग़ुस्सा हो जाते हैं ।)

आफ़ताब—आप किस बीमा-कम्पनीका प्रतिनिधित्व करते हैं, मि० इन्द्र ?

इन्द्र—आपसे मतलब ?

आफ़ताब—वह कम्पनी बड़ी खुशकिस्मत है !

(इसी वक्त नाच समाप्त हो जाता है और सब लोग अपनी-अपनी जगह वापस आ जाते हैं । स्त्रियोंके बैठने तक सब लोग खड़े रहते हैं । अवस्थीके अतिरिक्त इन्द्रकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देता ।)

अवस्थी—आप बहुत गम्भीर क्यों हो रहे हैं, मि० इन्द्र ?

इन्द्र—नहीं, मैं गम्भीर तो नहीं हूँ ।

अवस्थी—मिसेज़ भल्लाको आप समझानेकी कोशिश कीजिए, मि० इन्द्र ।

सूरी—मिसेज़ भल्लाको तो नहीं ; मगर मेजर आफ़ताबको ये अपनी बात बखूबी समझा चुके हैं !

अवस्थी—अच्छा ? (बैरेसे) सब लोगोंसे आर्डर ले जाओ, ब्वाय !

(मि० सरजूभाई पटेल एम० एल० ए० का प्रवेश । पटेल साहब सिरसे पैर तक खद्दरकी स्वच्छ पोशाकमें हैं । उनके सिरपर गांधीटोपी है । स्त्रियोंको छोड़कर सभी लोग खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं । मि० पटेल पुरुषोंको सिर हिलाकर और स्त्रियोंको हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ।)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पटेल—मुझे माफ़ कीजिएगा, मि० अवस्थी ! कारपोरेशनकी बैठकमें मुझे अधिक वक्त लग गया। और मुझे खेद है कि मैं अधिक देर तक यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। सिटी कांग्रेसके पुनः-संगठनके सम्बन्धमें अभी हमें बहुत-कुछ करना है।

अवस्थी—आप चले आए, यही क्या कम है ! मैं आपका हृदयसे कृतज्ञ हूँ।

प्रेमचन्द—आपने तो आज अच्छी खासी आल पार्टीज़ कान्फरेन्स यहाँ जमा कर ली है, मि० अवस्थी !

शीला—उम्मीद है, आप नाचना भी जानते होंगे, मि० पटेल ?

पटेल—जब मैं विलायतमें था, तो बाल-रूम डान्सिग सीखा था ; मगर अब तो फ़ुरसत ही नहीं मिलती। यह काम तो जवानोंका है ; मैं तो अब बूढ़ा हुआ।

शीला—यही तो मुश्किल है। हमारे मुल्कमें ५० के आसपास पहुँचते ही पुरुष तक अपनेको बूढ़ा गिनने लगते हैं, स्त्रियोंका तो कहना ही क्या !

प्रेमचन्द—उम्मीद है, नए ज़मानेकी महिलाएँ बूढ़ी होकर भी अपनेको जवान समझा करेंगी।

शीला—यह तो मनोवृत्तिका प्रश्न है, मि० प्रेमचन्द ! जिन लोगोंके विचार अपरिवर्त्तनशील बन जायँ, वे खुद-ब-खुद बूढ़े नहीं बन जायँगे, तो और क्या बनेंगे ?

चन्दूलाल—गांधीजी वायसरायसे मिलने जा रहे हैं न ?

पटेल—यह तो निश्चित ही है। कान्फरेन्सकी सफलता महात्माजीपर ही निर्भर करती है।

शीला—यह आपकी ग़लतफ़हमी है, मि० पटेल ?

(पटेल साहब अवज्ञाके साथ ज़रा-सा मुस्करा देते हैं। वे शीलाकी बातका जवाब देनेकी भी ज़रूरत नहीं समझते।)

चन्दूलाल—आपका क्या खयाल है, मि० पटेल, कांग्रेस सूबोंमें अपना मन्त्रिमण्डल क़ायम करेगी या नहीं ?

पटेल—इस सम्बन्धमें मुझे अभी कुछ भी नहीं कहना चाहिए।

(इसी वक्त दुबारा नाच शुरू होता है। शीला और आफ़ताब, प्रभा और स्नेहभूषण नाचके लिए चले जाते है। इन्द्र ताराके पास जाकर उससे नाचनेकी प्रार्थना करता है ; मगर वह इन्कार कर देती है।) ,

पटेल—(प्रेमचन्दसे) आप डान्स नहीं करते, मि० प्रेमचन्द ?

प्रेमचन्द—मैं नाचके विरुद्ध नहीं हूँ, मि० पटेल। मगर मैं इस बातके सख्त विरुद्ध हूँ कि कोई बात महज़ इसलिए शुरू कर दी जाय कि वह समाजमें एक फ़ैशन बन गई है।

अवस्थी—आपका मतलब मैं नहीं समझा।

प्रेमचन्द—मेरा मतलब यह है कि ये जो अधिकांश जोड़े यहाँ नाच कर रहे हैं, इनमें से ९५ प्रतिशतको न तो नाचका शौक़ है और न इन्हें ठीक तरहसे नाचना ही आता है। फिर भी वे नाचते हैं, महज़ इसलिए कि नाच आजकलकी सभ्य सोसाइटीका एक फ़ैशन बन गया है।

दयानाथ—सिर्फ़ फैशन ही नहीं, नाचमें विरोधी सेक्सका आकर्षण भी तो है !

प्रेमचन्द—यह मैं मानता हूँ। मगर नाचकी लोकप्रियताका यह कारण निरी सेक्स-काम्प्लेक्सिटी नहीं, तो क्या है ?

चन्दूलाल—आप लोग तो बड़ी गम्भीर बातें करने लगे, प्रोफ़ेसर साहब। कुछ ड्रिंक-व्रिंक कीजिए न।

दयानाथ—मुझे एतराज़ नहीं। धन्यवाद।

(चन्दूलाल बैरेसे शराब लानेको कहता है।)

अवस्थी—मि० मुन्शी तो कांग्रेस-मिनिस्ट्रीमें अब रह न सकेंगे, मि० पटेल ! अब उनकी जगह कौन साहब होम-मिनिस्टर बनेंगे ?

पटेल—(ज़रा मुस्कराकर) लोग इस सम्बन्धमें मेरा नाम खुले तौरसे ले रहे हैं। मगर इस तरहकी कल्पनाओं और सवालोंसे लाभ ही क्या है ?

(अवस्थी, सूरी और चन्दूलाल बड़ी इज्ज़तके साथ मि० पटेलकी ओर देखते हैं। बैरा आकर मेज़पर शराबके गिलास रख जाता है।)

दयानाथ—आप ड्रिंक नहीं करते, मि० पटेल ?

पटेल—हमारा बस चले तो बम्बईमें फिरसे प्रोहीबीशन (शराबबन्दी) शुरू हो जाय। (ज़रा मुस्कराकर) और वह ज़माना अब आने ही वाला है।

इन्द्र—यह सब ढकोसला है। दुनिया-भरके और सब सवाल छोड़कर कांग्रेस भोलेभाले हिन्दुस्तानियोंके धार्मिक अन्ध विश्वासोंका लाभ उठानेके लिए प्रोहीबीशन-जैसे एकदम फ़ज़ूल सवालको अपना बैठी है !

पटेल—(दयानाथसे) यह कौन साहब हैं ?

दयानाथ—कैपचूनके एजेण्ट मि० इन्द्रप्रकाश, स्थानीय रैडिकल पार्टीके मन्त्री।

पटेल—ओहो, तो ये एम० एन० रायके अनुयायी हैं ! आप ठीक कहते हैं, महाराज !

(शीला और आफ़ताब फ्लोरसे वापस चले आते हैं। शीला अपनी कुर्सीपर बैठते हुए—)

शीला—ओह, मैं कितना थक गई ! (मेज़पर से खुद-ब-खुद शराबका एक गिलास उठा लेती है और सिप करने लगती है।)

तारा—आप चुप क्यों हो गए, मि० इन्द्र ?

इन्द्र—इनसे बहस करनेसे फ़ायदा ?

शीला—क्या बात हो रही थी, मि० प्रेमचन्द ?

प्रेमचन्द—मि० इन्द्रका कहना है कि प्रोहीबीशन एक हल्ला है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीला—प्रोहीबीशन तो ढकोसला है ही। कांग्रेसमें सिर्फ़ यही एक ढकोसला नहीं, बीसों ढकोसले हैं। मालूम होता है, कांग्रेसकी बुनियाद ही ढकोसलोंपर है।

(मि० पटेल सिर्फ़ हिकारतसे मुस्करा देते हैं।)

प्रेमचन्द—और क्या ढकोसला है कांग्रेसमें ?

शीला—यह सत्य, यह अहिंसा, यह लँगोटी बाँधकर रहनेकी पूजा, यह चरखा, यह तकली और यह खद्दर—यह सब ढकोसले नहीं, तो और क्या हैं ? हिन्दुस्तानकी भोलीभाली जनताको खूब बेवकूफ़ बनाया है इन कांग्रेसवालोंने !

प्रेमचन्द—यह आपकी ज़्यादती है, मिसेज़ भल्ला ! कांग्रेसकी लोकप्रियताका मूल उसकी राष्ट्रीयतामें है और उसके कार्यकर्ताओं के त्यागमें है। हिन्दुस्तानकी जागी हुई राष्ट्र-भावनाका यह कांग्रेस प्रतिनिधित्व करती है। यह चरखा-खद्दर तो कांग्रेसमें पिछले २५ बरसोंसे आए हैं। उससे पहले भी तो कांग्रेस इस मुल्ककी सबसे बड़ी राजनीतिक जमात थी।

शीला—उँह, १९२१ से पहलेकी कांग्रेसको तो खुद कांग्रेस-वाले एक लिबरल जमात गिनते हैं। कांग्रेस जबसे ताक़तवर बनी है, उसमें चरखा, खद्दर, सत्य, अहिंसाके ढकोसले पहले दिनसे आ घुसे हैं—बल्कि इन्हीं ढकोसलोंसे उसे ताक़त मिली हैं। तभी तो मैं कहती हूँ कि कांग्रेस अब खत्म हो गई। आजका हिन्दु-स्तान बेवकूफ़ नहीं रहा। उसे रूसने प्रकाश दिखा दिया है।

(मि० पटेल अपनी घड़ीकी ओर देखकर सहसा खड़े हो जाते हैं।)

पटेल—(अवस्थीसे) बहुत देर हो गई। मुझे ज़रूरी तौर से जाना है, मि० अवस्थी ! माफ़ कीजिएगा।

अवस्थी—यहाँ किसीसे कोई गुस्ताखी हुई हो, तो क्षमा कर दीजिएगा।

पटेल—नहीं, नहीं। ऐसी कोई बात नहीं।

(सबका प्रणाम स्वीकार करते हुए प्रस्थान। अवस्थी उन्हें बाहर तक छोड़ने जाता है।)

शीला—देखा, कितना दम्भ है इन कांग्रेसवालोंमें !

प्रेमचन्द—इसमें दम्भकी तो कोई बात नहीं, मिसेज़ भल्ला ! मि० पटेलको काम था, वे चले गए।

शीला—आपने देखा नहीं, मेरी किसी बातका उन्होंने कोई जवाब ही नहीं दिया।

चन्दूलाल—वे जवाब देते कहाँसे ? आपकी बातोंका कोई जवाब सम्भव हो, तभी तो दें !

(इसी वक्त एक युवती फ्लोरसे ताराके पास आ जाती है। चन्दूलाल पहचानता है कि यह वही युवती है, जो उस दिन सूरीके साथ नाची थी। सूरी उसकी ओर देखकर मुस्कराता है ; मगर वह सूरीकी ओर देखती भी नहीं, जैसे वह उसे पहचानती ही न हो।)

तारा—आप किस टेबलपर हैं, उमा बहन ?

उमा—मैं मि० कृपलानी आई० सी० एस० के साथ आई हूँ। तुम भी अब इस क्लबमें बाक़ायदा आने लगीं, तारा ? मेम्बर क्यों नहीं बन जातीं ?

(उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना उमाका प्रस्थान। जब तक उमा वहाँ रहती है, सब लोग खड़े रहते हैं। उसके जानेपर सब बैठ जाते हैं।)

चन्दूलाल—(सूरीसे) ओहो, मेरे यार, उसने तो आज तुम्हें पहचाना भी नहीं ! तुम कहते थे, मेरी पुरानी दोस्त है !

सूरी—(झेंपकर) मालूम होता है, उसने मुझे देखा नहीं।

(इन्द्रका चुपचाप किसीसे कुछ भी कहे बिना प्रस्थान। कोई उस ओर ध्यान नहीं देता। नाच समाप्त हो जाता है। स्नेहभूषण और प्रभा भी अपनी जगह वापस आ जाते हैं। अवस्थी बैरेको और शराब लानेका आर्डर देता है।)

अवस्थी—(शीलासे) आपने खूब खबर ली उस बुड्ढेकी !

शीला—तभी तो उठकर भाग गया। ये शराब नहीं पीते ! ढोंगी कहींके !

अवस्थी—हाँ, ढोंगी तो हैं ही ! कहीं यही शख्स होम-मिनिस्टर न बन जाय...(सहसा जैसे वह घबरा जाता है और सूरीसे कहने लगता है) देखना मेरे यार, कहीं मेरी शिकायत न कर देना मि० पटेलसे। तुम अखबारवाले किसीके नहीं होते !

प्रेमचन्द—(मुस्कराकर) और आप व्यापारी लोग भी मौक़ा पड़नेपर 'किसके' नहीं होते !

अवस्थी—(सूरीसे) अरे वह बीमा-एजेण्ट कहाँ चला गया ?

चन्दूलाल—अरे यार, तुम भी कैसे-कैसे आहमक़ोंको निमन्त्रित कर लेते हो, अवस्थी !

(अवस्थी बड़े अभिमान और सन्तोषके साथ मुस्कराता है।)

सूरी—आप अभी क्लबके मेम्बर नहीं बने, मि० प्रेमचन्द ?

प्रेमचन्द—नहीं। मैं न मेम्बर बना हूँ और न बननेका इरादा है।

सूरी—क्यों, कोई महिला पार्टनर नहीं है क्या ? मिस तारा के साथ आप मेम्बर बन जाइए।*

प्रमचन्द—यह बात नहीं है। मैं मेम्बर बनना चाहूँगा, तो मुझे पार्टनरकी कमी न होगी ?

अवस्थी—तो फिर आप मेम्बर क्यों नहीं बनते ?

प्रेमचन्द—यही कि इस क्लबके वातावरणमें ९९ प्रतिशत सिर्फ़ दिखावा है। सब कोई अपनेको दूसरोंसे अधिक बड़ा और

---

* इस कास्मोपोलिटन क्लबका मेम्बर बननेके लिए एक पुरुष और एक स्त्रीका एक साथ प्रार्थना-पत्र भेजना ज़रूरी है—चाहे परस्पर कोई सम्बन्ध हो या नहीं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महत्त्वपूर्ण दिखाना चाहते हैं। सामने सब लोग एक-दूसरेके मित्र हैं ; मगर पीठ-पीछे सब एक-दूसरेके दुश्मन। न यहाँ कलाका वातावरण है, न साहित्यका और न बौद्धिकताका ही। इस क्लबका मेम्बर बनकर मैं क्या करूँगा ?

(अवस्थी, चन्दूलाल और सूरी प्रेमचन्दकी ओर इस निगाहसे देखते हैं, जैसे वे कोई बड़ी बेवकूफ़ीकी बात कह रहे हों।)

शीला—तो आपका मतलब है कि नगर-भरके जितने प्रतिष्ठित नागरिक यहाँ आते हैं, सब-के-सब दिखावट-पसन्द और साहित्य-कला-विहीन हैं ?

प्रेमचन्द—नहीं, मिसेज़ भल्ला ; शहरके ये सब प्रतिष्ठित नागरिक यहाँ अपना-अपना उल्लू सीधा करने आते हैं। कोई अपना व्यक्तिगत फ़ायदा देखकर और कोई अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए। आप ही बताइए, मिसेज़ भल्ला, एक कम्यूनिस्ट होकर शहरके प्रतिष्ठित नागरिकोंको आप यह महत्ता क्यों दे रही हैं ? अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए ही तो ?

अवस्थी—आप बड़ी गम्भीर बातें करने लगते हैं, मि० प्रेमचन्द ! शराब न पीनेमें यही तो ऐब है !

(इसी वक्त फिरसे नाच शुरू होता है। यह अन्तिम नाच है। दयानाथ और शीला तथा आफ़ताब और प्रभा फ्लोरपर चले जाते हैं। इसी समय प्रेमचन्द और तारा सबसे छुट्टी माँगकर हालसे चले जाते हैं।)

चन्दूलाल—यह भी अच्छा ढोंगी आदमी है। एक खूबसूरत छोकरीको साथ लिए-लिए घूमता है और हमें लेक्चर फटकारता है !

सूरी—यह छोकरी कौन है ?

अवस्थी—(ज़रा मुस्कराकर) इतना भी नहीं समझते, यार ! शादी तक तो हुई नहीं और इतनी रात तक पराए मर्दोंके साथ घूमती रहती है। खुद समझ लो कि यह कौन है।

(स्नेहभूषणको यह चर्चा पसन्द नहीं, इससे वे अपने एक दोस्तसे मिलने एक और टेबलपर चले जाते हैं। इस टेबलपर अब अवस्थी, सूरी और चन्दूलाल ही बच रहते हैं। ये लोग अब बहुत नज़दीक बैठकर धीरे-धीरे बातें करने लगते हैं।)

चन्दूलाल—और इस शीलाको देखा तुमने ! कितना पीती है ! मर्दोंके भी कान काटती है, मेरे यार !

सूरी—और यह प्रभा ही कौन कम है !

अवस्थी—एक ही थैलीकी चट्टियाँ-बट्टियाँ हैं ये सब !

चन्दूलाल—इनके खाविन्द कैसे बछियाके ताऊ हैं। शर्म नहीं आती इन नालायक़ोंको। हमारी बहू अगर इस क्लबमें आए, तो हम उसका सिर उतार लें !

सूरी—क्यों, आप सारे क्लबको बेरौनक़ बना देना चाहते हैं, सेठ साहब !

चन्दूलाल—नहीं, मेरे यार, मैं तो योंही एक बात कहूँ हूँ।

अवस्थी—अजी सेठ साहब, आप नाचना क्यों नहीं सीखते ?

चन्दूलाल—अच्छा, अबके सीखनेकी कोशिश करूँगा। बग़लमें महरियाको लेकर नाचना है तो मज़ेदार !

(शीला और दयानाथ टेबलपर वापस आ जाते हैं।)

शीला—तुम तो नाचना ही भूल गए। वाल्ट्ज़ नाचते अँधेरेमें तुमने मेरा पाँव ही कुचल दिया।

अवस्थी—आखिर कुछ तो होना ही था अँधेरेमें। रोमान्स न सही, पैर कुचलना ही सही ! (मुस्कराता है।)

(शीला और दयानाथ टेबलपर बैठकर पीने लगते हैं। स्नेहभूषण भी अपनी टेबलपर वापस आ जाते हैं। उनके साथ एक वृद्ध सज्जन हैं। स्नेहभूषण उनका सबसे परिचय कराते हैं : 'मि० भरद्वाज, रिटायर्ड आई० सी० एस०।' 'हाउ डू यू डू !' इत्यादि।)

अवस्थी—आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

भरद्वाज—आपको मैंने पहले भी कहीं देखा है।

अवस्थी—जी, मैं तो रोज़ ही इस क्लबमें आता हूँ।

भरद्वाज—हाँ ! मैं जब चम्पारनमें डिप्टी-कमिश्नर था, तो मैंने वहाँके क्लबमें एक नियम बना दिया था। नहीं, चम्पारनमें नहीं, सारनमें !... मैं क्या कह रहा था ?

दयानाथ—आप कुछ पिएँगे ?

भरद्वाज—नहीं, धन्यवाद। मगर हाँ, आधा पैग शैम्पेन ले लेनेमें कोई हर्ज नहीं। मैं जब झाँसीमें कमिश्नर था, तब मैंने ही पहले-पहल...! हाँ, मैं झाँसीका पहला हिन्दुस्तानी कमिश्नर था ! (दयानाथसे) मैंने आपको कहीं देखा है।

दयानाथ—जी, आपने किसी औरको देखा होगा।

भरद्वाज—इस क्लबके मेम्बर नहीं हैं क्या ?

दयानाथ—जी, मैं इस क्लबका वाइस-प्रेसिडेण्ट हूँ।

भरद्वाज—हः हः हः। मेरी याददाश्त देखिए, अभी तक मुझे धोखा नहीं देती। मैंने आपसे कहा था न कि मैंने आपको कहीं देखा है।

(इसी वक्त भरद्वाजकी निगाह किसी और टेबलकी ओर चली जाती है, और दूर ही से 'हल्लो !' कहकर शराबका इन्तज़ार किए बिना वे उसी ओर बढ़ जाते हैं।)

दयानाथ—हमारे मुल्कके ये रिटायर्ड आई० सी० एस० दुनियाके सबसे अधिक रहमके क़ाबिल प्राणी हैं।—एक ऐसा कोबरा साँप, जिसका ज़हरका दाँत निकाल दिया गया हो !

स्नेहभूषण—अपनी टेबलपर यह हज़रत मुझसे कह रहे थे कि मैं प्रो० दयानाथको जानता हूँ ! मैंने उनके लेख भी पढ़े हैं !

(इसी समय नाच समाप्त हो जाता है। प्रभा और आफ़ताब भी वापस आ जाते हैं।)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दयानाथ—अब आप छुट्टी दीजिए, मि० अवस्थी!

अवस्थी—अजी जनाब, इतनी जल्दी क्या है?

दयानाथ—मुझे इसी वक्त रेडियो-स्टेशनसे एक भाषण देना है। नाच तो अब समाप्त हो ही चुके। यदि आप लोग बैठे रहना चाहें, तो मुझे छुट्टी दीजिए।

शीला—मैं भी चलती हूँ।

अवस्थी—आपको भी रेडियो-स्टेशन जाना है क्या?

शीला—ओह, यह रेडियो-स्टेशन जा रहे हैं! (दयानाथसे) अच्छा, आप चलिए, मैं घर पहुँच जाऊँगी।

दयानाथ—बहुत ठीक। (सबसे विदा लेकर प्रस्थान।)

(क्लबसे बहुतसे लोग चले गए हैं और बहुतसे चलनेकी तैयारीमें हैं। इस टेबलपर शराब पीनेकी रफ़्तार बढ़ गई है और बातचीत कम हो गई है। मिसेज़ भल्ला और आफ़ताबको छोड़कर सभी लोग बहकने लगते हैं।)

चन्दूलाल—क्यों भाई अवस्थी, यह तुम्हरा कैसा क्लब है?

अवस्थी—क्यों, क्या बात हो गई, सेठ साहब?

चन्दूलाल—विलायती शराबके नामपर साले पानी देते हैं, पानी! कुछ लुत्फ़ ही नहीं! कुछ सरूर ही नहीं आता!

सूरी—सेठ साहब तो बहक गए!

चन्दूलाल—(स्नेहभूषणकी ओर देखकर) कौन साला कहता है, हम बहक गए? हम तो पानी पी रहे हैं, निरा पानी!

सूरी—(अवस्थीसे) आपने ग़ालिबका यह शेर तो पढ़ा होगा···

अवस्थी—कौन-सा?

सूरी—

अगले वक्तोंके हैं ये लोग इन्हें कुछ न कहो;
जो मये नग्मा को अन्दुहा रवा कहते हैं!

स्नेहभूषण—ग़ालिबका यह शेर आपको याद है, मि० सूरी?—

जब मैक़दा छूटा तो अब जगहकी क्या क़ैद;
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई खानक़ाह हो!

सूरी—मुझे तो उनका यह शेर बहुत पसन्द है—

गो हाथको जुम्बिश नहीं, आँखोंमें तो दम है;
रहने दो अभी सागरो-मैना मेरे आगे!

(बहककर पहले गुनगुनाने लगता है, फिर गाने लगता है। क्लबमें कुछ तमाशा-सा बन जाता है। प्रभा चुपचाप पी रही है। शराब उसपर भी सवार है; मगर वह चुप है। शराब पीते हुए चुप रहनेका शुरूसे उसने अभ्यास किया है। आफ़ताब और शीला पी रहे हैं; मगर वे अभी तक शराबके बस नहीं आए। अवस्थी बहकता है; मगर सिर्फ हँस रहा है—बिलकुल बेवकूफ़ोंकी हँसी। स्नेहभूषणको भी पीते हुए चुप रहनेका अभ्यास है; मगर मालूम होता है, सूरीको गाता देखकर उसका मुद्दतका अभ्यास फेल कर जाता है। वह भी 'जब मैकदा छूटा' आदि गाने लगता है। सूरी और अवस्थी दोनों एक-दूसरेको अपना शेर सुनाना चाहते हैं; मगर कोई सुनना नहीं चाहता। नतीजा यह होता है कि दोनोंकी आवाज़ ऊँची होती है। क्लबमें एक तमाशा-सा बन जाता है।)

शीला—(ज़रा रोबके साथ) आप लोग भलेमानसोंका-सा सुलूक कीजिए। गाना बन्द करो, सूरी! यह क्लब है!

चन्दूलाल—हाँ-हाँ! मेरे बापका क्लब है। गाओ सूरी, खूब गाओ। देखें, कौन साला तुम्हें रोकता है!

शीला—होशमें आओ, चन्दूलाल!

(इसी वक्त क्लबका सेक्रेटरी वहाँ आकर उन लोगोंसे प्रार्थना करता है कि वे बाल-रूमसे उठकर किसी एकान्त कमरेमें या अपने घर चले जायँ।)

शीला—मुझे बड़ा अफ़सोस है, सेक्रेटरी साहब; इन लोगों ने पहले कभी इस तरहका व्यवहार नहीं किया।

(चन्दूलाल, सूरी, स्नेहभूषण, और अवस्थी फिरसे चीखने, गाने और हँसने लगते हैं। बड़ी कठिनतासे क्लबके बैरोंकी सहायता लेकर शीला और आफ़ताब उन सबको क्लबके बाहर कारों तक ले जाते हैं। प्रभाको किसीकी सहायताकी ज़रूरत नहीं पड़ती।)

कामना

श्री शंभुनाथ 'शेष', बी० ए०

अम्बरकी लहरोंपर बहते, रूप-क्षितिजके पार देखते;
मेघोंके अंचलमें छिपकर, सन्ध्याका शृंगार देखते।
अम्बर-चुम्बी शिखर मेरुके, जहाँ शून्यमें खो जाते हैं;
वहीं मनुजके आदर्शोंका, धुँधला-सा संसार देखते।
प्राण-पखेरू उड़ते-उड़ते, रह जाते हैं जहाँ हारकर;
नभमण्डलके तेजपुंजमें, वहीं दृष्टिका तार देखते।
नयनोंका अनुगामी है मन, नयन रूपके हैं अभिलाषी;
भाव-लोकके लता-कुंजमें, इनको एकाकार देखते।
तारा-सी दिखलाती है प्रिय, जहाँ मानसरकी गहराई;
वहीं बिन्दुमें सिन्धु समोकर, विकल हृदयका प्यार देखते।
सरिताके दोनों कूलोंमें जहाँ नहीं रहता कुछ अन्तर;
इच्छाओंकी तरणीपर से, जीवनका मँझधार देखते।
कभी प्रणय-लीला की होगी आदि-पुरुषने मुग्ध प्रकृतिसे;
किरण-लोकमें प्रेयसि, हम भी सुषमाका अभिसार देखते।
भीगे प्रहरोंमें निशीथके, प्यासी आँखें जाग रही हैं;
काश, स्वप्नकी इस वेलामें, वह 'अमूर्त' साकार देखते।
हो जाते यदि निकट हृदयके, आँखोंकी दूरी मिट जाती;
मानसके दर्पणमें तब हम, उनको सौ-सौ बार देखते।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रचनात्मक स्वप्न

प्रो० राजाराम शास्त्री

कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं, जिनमें स्वप्नद्रष्टाके जाग्रदवस्थाके विचार जारी रहते हैं और उसकी ऐसी बौद्धिक समस्याएँ, जिनमें वह जाग्रत कालमें उलझा रहा है, हल हो जाती हैं और अक्सर उसे अन्तःस्फूर्तिका महत्त्वपूर्ण प्रकाश भी प्राप्त होता है। इन समस्याओंमें गणित तथा अन्य विज्ञानोंसे सम्बद्ध समस्याएँ अथवा विद्यार्थियोंकी परीक्षा-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी होती हैं। किन्तु कविता या कहानी आदि कलात्मक रचनासे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याएँ अधिक होती हैं। इस सम्बन्धमें कुछ कलाकारोंके अनुभव मनोरंजक हैं।

अंगरेज़ीके कवि कालरिजकी 'कुबला खाँ' नामक कविताकी कल्पना उसे स्वप्नमें हुई थी, और पूर्णतः नहीं, तो अंशतः तो वह अवश्य स्वप्नके बाद तुरन्त ही स्मृतिसे लिख डाली गई थी। मिसेज़ आर्नल्ड फार्स्टरने एक लेखककी, जिसने आधुनिक उपन्यास-कारोंमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है, एक मौलिक और नाट-कीय कहानीके पूर्णतः स्वप्न-रचित होनेका वर्णन किया है। जिस समय स्वप्न हुआ, उस समय वह एक पुस्तक लिखनेमें व्यस्त था और अपनी सारी शक्ति और समय उसीमें लगा रहा था। पुस्तक का दो-तिहाई भाग लिखा जा चुका था और वह समाप्तिकी ओर बढ़ रही थी कि एक रात उसने एक असाधारण रूपसे सजीव स्वप्न देखा, जिसमें एक अत्यन्त नाटकीय ढंगकी कहानी अंशतः व्यक्त हुई। दूसरी रातको वह जारी रही और अन्तमें पूर्ण हो गई। उसने फिर-फिर उस कहानीका स्वप्न देखा। सारा कथानक, नाटक के दृश्य और पात्र इतनी सजीवतासे उपस्थित होते थे और स्वप्न-द्रष्टापर उन्होंने ऐसा आग्रहपूर्ण प्रभाव डाला कि वह उनकी स्मृति से अपनेको मुक्त नहीं कर सकता था। वे उसके पुस्तक-लेखनके कार्यमें बाधा-स्वरूप आ उपस्थित होते थे और अन्तमें उसने पुस्तक लिखना तब तकके लिए बन्द कर दिया, जब तक कि उसने स्वप्नकी कहानी पूरी लिख नहीं डाली। वह तेज़ लेखक नहीं है और जो प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है, उसे धैर्य और सावधानी से प्राप्त करता है। किन्तु जब वह इस स्वप्नको लिखने लगा, तो वह उसे अपनी रचनाकी तरह नहीं, बल्कि दूसरे किसीके द्वारा कही हुई कहानीकी तरह मालूम होता था, और उस लिखी हुई कहानीको पढ़नेसे सचमुच ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उसके दृश्य और घटनाएँ कल्पित नहीं, बल्कि लेखक द्वारा देखी हुई हैं।

इससे बहुत ही मिलता-जुलता अनुभव अंगरेज़ीके प्रसिद्ध लेखक स्टीवेन्सनका है। उसने एक निबन्धमें अपने रचनात्मक स्वप्नोंके विषयका वर्णन किया है, जिनसे उसकी अनेक कहानियाँ उद्भूत हुईं। ये स्वप्न उसे अपनेसे सर्वथा बाहरसे प्रेरित तथा अपनी साधारण मानसिक क्रियाओंसे सर्वथा भिन्न और उन्नत शक्तियोंके कार्य प्रतीत होते थे। यहाँ तक कि उसने उन्हें मनमें रहनेवाले किन्हीं भिन्न सूक्ष्म जीवोंकी रचना कहा है, जो उसके निद्रा-कालमें सचेष्ट हो जाते थे और उसके लिए कहा-नियोंके ऐसे कथानक विकसित करते थे, जो उन कहानियोंसे कहीं अच्छे होते थे, जिनकी वह स्वयं दिनको कल्पना करता था। उसने इस निबन्धमें एक ऐसी कहानीकी रूप-रेखा दी है, जिसके बारेमें वह सत्य ही कहता है कि उसकी स्थितियोंके नाटकीय प्रभावको उससे अच्छा बनाना कठिन है। कहानीके कथानकका आधार नायिकाकी गुप्त प्रेरणा थी, यह रहस्य अन्त तक गुप्त रखा गया था। उसने लिखा है—"स्वप्नद्रष्टाको…इस प्रेरणाका, जो इस सुकल्पित कथानकका आधार थी, कोई अन्दाज़ नहीं था, जब तक कि वह अत्यन्त नाटकीय रूपसे व्यक्त नहीं की गई। वह स्वप्नद्रष्टाकी कहानी नहीं थी, वह सूक्ष्म जीवोंकी थी। और न केवल वह भेद ही गुप्त रखा गया, बल्कि कहानी भी बड़ी ही कला-चातुरीसे कही गई थी। . . मैं इस समय जाग्रत अवस्थामें हूँ, मैं इस कामको जानता हूँ, और फिर भी मैं इस कहानीको इससे अच्छा नहीं बना सकता।…जितना ही मैं उसपर सोचता हूँ, उतना ही मुझे यह प्रश्न करनेका आग्रह होता है कि ये सूक्ष्म जीव कौन हैं?…स्पष्ट ही वे निस्सन्देह स्वप्नके निकट सम्बन्धी हैं। स्पष्ट है कि उसकी शिक्षा-दीक्षामें उसके साथी हैं। उसीकी तरह एक सुव्यवस्थित कहानीकी योजना बनाना और भावोंको विकास-क्रममें रखना सीखा है। मेरे विचारसे उनमें केवल योग्यता अधिक है। और एक बात असन्दिग्ध है कि वे क्रमशः किस्तोंमें कहानी कहना और उसे बराबर अपने उद्देश्यसे अनभिज्ञ रखना जानते हैं।"

अब कुछ वैज्ञानिक उदाहरण भी देखिए। इस प्रसंगमें फ्रांसीसी विज्ञानवेत्ता कन्दार्सेका उदाहरण बहुत दिया जाता है, जिसने स्वप्नमें गणितका एक ऐसा प्रश्न हल किया था, जिसका उत्तर वह दिनमें नहीं निकाल सका था। मिसेज़ आर्नल्ड फार्स्टरने अपने पिताका उदाहरण दिया था, जिसने एक वैज्ञानिक समस्यापर कई घण्टे काम करनेके बाद विवश होकर उसे बिना हल किए ही छोड़ दिया था और सो गया था। सोते ही उसे गहरी नींद आ गई और एक लम्बे स्वप्नके दौरानमें उस समस्याका हल उसके सामने आया। सबेरे तड़के ही वह जाग गया और उस हलको लिख डाला और बड़ी सतर्कतासे जाँचकर देखा कि वह शुद्ध था।

मिसेज़ आर्नल्ड फार्स्टरने इसीसे मिलता-जुलता अपने एक मित्रका एक और उदाहरण दिया है। उसने लिखा था—"कई बार परीक्षाकी तैयारी करते समय ऐसा हुआ कि मैंने दो-तीन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन तक किसी समस्यापर मेहनत की, किन्तु उसके हल तक न पहुँच सकी और अन्तमें स्वप्नमें इतनी स्पष्टताके साथ उसे हल किया कि जागनेपर बड़ी आसानीसे उसका सही हल लिख सकी। यों स्कूलके दिनोंमें अक्सर ऐसा होता था, और जब मेरे सामने बहुत कठिन सवाल आते थे, तो मैं अपने बिस्तरपर कागज़ और पेंसिल रख लेती थी, ताकि अगर जवाब स्वप्नमें आवे, तो उसे लिखनेके लिए तैयार रहूँ।"

हेनरी फ्रैबरने लिखा है कि उसके लिए निद्रा अक्सर मनकी क्रियाको बन्द करनेवाली नहीं, बल्कि उसे तेज़ करनेवाली अवस्था सिद्ध होती थी, और वह अक्सर नींदमें गणितके वे प्रश्न हल कर लेता था, जिनमें वह दिनको उलझा रहता था। उसने लिखा है—"एक तीव्र ज्योति मेरे मस्तिष्कमें प्रज्ज्वलित हो उठती है और तब मैं अपने बिस्तरसे कूद पड़ता हूँ और रोशनी जलाकर उस हलको लिख लेता हूँ, ताकि उसकी स्मृति चली न जाय। बिजलीकी चमककी तरह जैसे यह अकस्मात् प्रकट होती है, वैसे ही अकस्मात् गायब भी हो जाती है।"

श्री रामचन्द्र विनायक कुलकर्णीकी मराठी पुस्तक 'स्वप्न-मीमांसा'से भी इसी प्रकारके दो उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं: (१) एक विख्यात महिलाने अपने आत्म-चरित्रमें लिखा है—"अनेक बार सिलाईके काममें कपड़ा काटनेका ढंग ठीक तरहसे समझमें न आनेपर स्वप्नमें कपड़ोंके नापका दृश्य दिखलाई दिया, उसीके अनुसार जाग्रतावस्थामें ठीक तरहसे कपड़े नापकर काटे और सिए हैं।" (२) एक दूसरे सज्जनका कहना है—"विद्यार्थी-अवस्थामें भूगोलका ज्ञान मुझे बहुत कम था; अतएव बार-बार मुझे सज़ा मिलती थी। किन्तु एक दिन रातको जब मैं भूगोल लेकर पढ़ने बैठा, तो थोड़ी देरमें मुझे नींद आ गई। उसी समय स्वप्नमें मैंने समग्र एशिया महाद्वीपका नक्शा तैयार कर लिया। दूसरे दिन सुबह जागनेपर एशियाकी सारी बातें और नक्शेके सब भाग ज्यों-के-त्यों मेरे नेत्रोंके सम्मुख दिखलाई देने लगे, जिनका मुझे कई वर्ष तक स्मरण रहा।"

स्टीवेन्सन तथा एक और उपन्यासकारके जो अनुभव ऊपर उद्धृत हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि रचनात्मक स्वप्नोंकी दो विशेषताएँ फ़ौरन ध्यान आकृष्ट करती हैं। एक तो इनकी रचना अपनेसे सर्वथा बाह्य प्रतीत होती है और स्वप्नद्रष्टा केवल उसका श्रोता या द्रष्टा-मात्र प्रतीत होता है। फिर जिस मानसिक शक्तिसे इनकी रचना होती है, वह स्वप्नद्रष्टाके मनसे स्वरूपतः किसी भी बातमें भिन्न नहीं होती। वह भी उसी सामग्रीसे काम करती है, जो स्वप्नद्रष्टाके मनमें स्मृति-रूपसे संचित है। वह किसी ऐसी बातका प्रयोग नहीं करती, जो स्वप्नद्रष्टाके जीवनमें अनुभूत न हुई हो और न वह उन शक्तियोंसे काम लेती है, जो स्वप्नद्रष्टामें न हों। किन्तु उनके कार्यका पता स्वप्नद्रष्टाको नहीं होता। जाग्रत और सुषुप्त जीवनका साधारण तथा असाधारण अवस्थाओंसे प्राप्त ऐसा ही अनेक अनुभावोंने वैज्ञानिकोंको यह माननेके लिए विवश किया है कि मनुष्यके मनकी दो सतहें हैं—एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। जिस समय मनुष्यके विचारोंकी एक व्यक्त धारा प्रवाहित होती रहती है, उसी समय अक्सर दूसरे विचारोंकी एक अव्यक्त धारा भी प्रवाहित होती रहती है, जिसका व्यक्त चित्तको कुछ भी ज्ञान नहीं होता। विभिन्न व्यक्तियों तथा अवस्थाओंमें मनके इन दो स्तरोंका विलगाव विभिन्न मात्राओंमें होता है। कहीं अव्यक्त धारा थोड़ी ही देरमें व्यक्त होकर व्यक्त धाराका भाग बन जाती है। जब हम किसी आवश्यक कार्यमें दत्तचित्त होते हैं और उसकी अधूरी अवस्थामें ही कोई और समस्या हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, तो हम इस अन्तिम समस्यापर व्यक्तरूपसे ध्यान न देकर अपने प्रारब्ध कार्यमें लगे रह जाते हैं और यह समस्या अव्यक्त चित्तमें एक अलग विचार-धारा प्रवाहित कर देती है। या यदि हम इस समस्यापर ही सोच रहे थे और कोई अत्यन्त तात्कालिक कार्य आ पड़ा, तो हमारा व्यक्त चित्त इस कार्यकी ओर खिंच जाता है और वह समस्या अव्यक्त रूपसे काम करने लगती है। किन्तु इन दोनों स्थितियोंमें ज़रूरी कार्यके समाप्त होते ही अव्यक्त समस्या हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। कभी-कभी तो कार्यके बीचमें भी वह अपनी सक्रियता का पता देती रहती है। इसीलिए मनकी प्रवृत्ति स्वभावतः यही होती है कि व्यक्त क्षेत्रके खाली होते ही वह अव्यक्त विचार-धारासे उसे घेर ले, ताकि उसका स्थान कोई अन्य व्यक्त विचार या आवश्यकता न ले ले। मनोविज्ञानका यह सिद्धान्त है कि हर विचारकी स्वाभाविक गति अभिव्यक्तिकी ओर होती है। एक समयमें अपनी सारी अविभक्त शक्ति एक ही विचारमें लगानेमें सुविधा होती है, अर्थात् उसे अपने कार्यके लिए अधिक शक्ति प्राप्त होती है। उदाहरणके लिए, हम कभी किसी प्रसंगमें कोई बात याद करना चाहते हैं और उस अवसरपर उसे याद नहीं कर पाते; पर कुछ देर बाद वह यकायक बिना प्रसंगके खुद-ब-खुद याद आ जाती है। किन्तु जब हमारा मन किसी ऐसे धारावाहिक कार्यमें उलझा रहता है, जो दिन-ब-दिन हमारे जाग्रत जीवनका सारा समय ले लेता है और उसे एक ही दिशामें निर्दिष्ट रखता है, तो समय-समयपर हमारा ध्यान आकृष्ट करने-वाली अन्य विचार-धाराएँ स्वप्न-कालमें ही व्यक्त होनेका अवसर पाती हैं। इनमें से कोई विचार-धारा स्वयं काल-साध्य हुई, तो वह नित्यके स्वप्न-जीवनमें उसी प्रकार जारी रहेगी, जिस प्रकार जाग्रत जीवनमें पहली विचार-धारा। जाग्रत समयमें वह अव्यक्त रूपसे चलती रहेगी और अपनी आवश्यकता तथा संवेगके अनुसार मनकी कुल शक्तिका एक भाग अपनेमें उलझाए रहेगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यही कारण है कि जब इस प्रकार विभक्त मनमें कोई अव्यक्त विचार-धारा काम करती रहती है, उस समय मनको व्यक्त कार्यमें भी कुछ अन्यमनस्कताका परिचय मिलता है। और एक प्रकारका दूसरी दिशासे आता हुआ आकस्मिक बोझ शीघ्रता और परीशानीका विघ्न-स्वाद अनुभव होता है, जिसका कारण व्यक्त चेतन या अव्यक्त विचार-धाराका दबाव—अर्थात् मनकी कुछ शक्ति अव्यक्तमें खिंच जानेके कारण व्यक्त चेतनाकी शक्ति-क्षीणता—है। जिससे यह खीझ और अनुभव होता है कि उसकी शक्ति कहीं इस तरह उलझ गई है कि वह अपने कार्यमें पूरी तरहसे शक्ति नहीं लगा पा रहा है, जो उसमें विद्यमान है।

मनकी शक्तिके एक भागके इस प्रकार किसी आकर्षक समस्यामें उलझकर अव्यक्त रूपसे विभक्त हो काम करते रहनेके कारण ही रचनात्मक स्वप्नोंमें यह प्रतीति होती है कि इनका हल यकायक कहीं बाहरसे प्राप्त हो गया है; क्योंकि वास्तवमें उस समस्यापर हमारा मन अव्यक्त रूपसे जो काम करता रहा, वह, अर्थात् उसके पकनेकी क्रिया, तो हमारी चेतना के सामने आ पाई नहीं, केवल उसका पका-पकाया फल ही यकायक उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। जिस तर्कसे वह समस्या हल हुई, उसकी कड़ियाँ तो हमारी चेतनासे परे बनती रहीं। केवल बनी-बनाई शृंखला ही यकायक हमारे सामने आ गई। इसी कारण वह हमें बौद्धिक सृष्टिकी परिचित कष्ट-साध्य मंज़िलोंसे क्रमशः निर्मित अपनी रचना नहीं मालूम होती, बल्कि कहींसे बनी-बनाई पूर्ण रूपमें हमें अकस्मात् और अनायास प्राप्त प्रतीत होती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि स्वयं स्वप्नमें कोई बौद्धिक सृष्टि नहीं होती। सृष्टि तो अव्यक्त मनमें होती है। केवल यह सृष्टि जितनी और जहाँ तक हुई होती है, स्वप्न-कालमें चेतना का क्षेत्र खाली पाकर व्यक्त हो जाती है। वस्तुतः निद्राके विश्राम-कालमें मनको उतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती, जितनी कि बौद्धिक कालके लिए आवश्यक है। यही कारण है कि लगातार कई शक्तियोंमें हल होनेवाली समस्याका जो भी भाग स्वप्नमें आता है, वह अप्रयास सिद्ध प्रतीत होता है। वस्तुतः यह उस समस्या का उतना ही भाग है, जितना अव्यक्त विचार द्वारा व्यक्त करनेके बाद स्वयं स्वप्न उसे आगे न बढ़ाकर वहीं समाप्त हो जाता है और उसे हल करनेके लिए स्वयं कोई प्रयास नहीं करता। दूसरे दिन फिर वह समस्या अव्यक्त रूपसे आगे बढ़ती है और दूसरी रात्रिका स्वप्न उसे इस उन्नत रूपमें हलके अधिक समीप देखता है, अर्थात् वह उसके हलकी दूसरी कड़ी देखता है। इसी प्रकार क्रमशः वह समस्या हल हो जाती है, और उसका पूर्ण रूप, उत्तर या रचनाकी अन्तिम मंज़िल स्वप्नमें हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

इसी प्रकार यह भी समझमें आ जाता है कि स्वप्नमें अक्सर दीर्घ कालव्यापी सुसम्बद्ध घटनाचक्र घटित हो जाता है, और वस्तुतः उसका स्वप्न बहुत ही थोड़ा होता है। चन्द मिनटोंके स्वप्नमें बरसोंकी पूरी कथा-सामग्री सिमट आती है। यह वैसी ही बात है, जैसे हम वस्तुतः बरसोंमें घटी हुई घटनाओंका महीनोंमें लिखा हुआ वर्णन इतिहास या उपन्यासको मिनटोंमें पढ़ लेते हैं। स्वप्नमें इतने कम समयके लिए पूरी तफ़सीलके साथ इतनी बड़ी कहानीकी रचना करनेकी कठिनाई उपस्थित नहीं होती। वह तो अव्यक्त मन द्वारा पहलेसे तय एक स्मृति-शृंखलाके रूपमें संचित पूरे कालको एक साथ ही उद्बुद्ध करके चित्रवत् देख लेता है। जैसे हम अपनी स्मृतिमें संचित कोई पूर्वकालमें स्वनिर्मित या पढ़ी हुई या सुनी हुई पर-निर्मित कहानी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो उसको जानता हो, याद दिलाए जानेपर एकदम हमारे चित्तमें उदित हो जाती है और उसको क्रमशः बयान करनेकी आवश्यकता नहीं होती। यह इसलिए सम्भव है कि मूर्त कल्पनामें अमूर्त विचारसे कम शक्ति लगती है।

रचनात्मक स्वप्नोंकी दूसरी विशेषता यह है कि उनको रचनामें स्वप्नद्रष्टाको अपने मनकी साधारण शक्तिसे अधिक योग्यता प्रतीत होती है। इस प्रतीतिका एक कारण उसको अनायास शक्ति प्राप्त होनेकी प्रतीति ही है, जिसका कारण हम ऊपर देख चुके हैं। स्वप्नद्रष्टा जिस कार्यको जाग्रत जीवनमें धीरे-धीरे परिश्रमके साथ करता है, उसे एकदम और बिना प्रयासके होते देखकर उसे विचारकी गतिमें विस्मयजनक तीव्रता और अपनेसे अधिक योग्यताकी प्रतीति होना स्वाभाविक है। किन्तु कोई ऐसा व्यक्ति उपन्यासकी रचना या गणितका सवाल स्वप्नमें नहीं करता, जो इन कामोंको सर्वथा जानता नहीं। प्रश्न केवल यह रह जाता है कि फिर जो लोग स्वप्नमें इन कामोंको कर लेते हैं, वे जाग्रत कालमें इन्हीं कामोंको क्यों नहीं कर सके! इसका कारण यह है कि हर कामके लिए उपयुक्त समय, अवस्था तथा परिस्थिति चाहिए। अन्य आवश्यकताओंके दबावमें या थकानके कारण जब हम किसी कामको जल्द खत्म कर देना चाहते हैं और वह काम उससे अधिक समय चाहता है, या जब अनेक विक्षेपकारी बाह्य विषय हमारे मनकी एकाग्रतामें बाधक हो रहे हैं, तब हम स्वभावतः घबराकर उसे असम्भव मान लेते हैं। अगर हममें उस समय उस मानसिक प्रयासके लिए अधिक शक्ति होती और हमारी ऐसी मानसिक अवस्था तथा परिस्थिति होती, जिसमें इतर विषय हमारे मनको विचलित न कर सकते तथा हम उस कामपर और अधिक समय लगाते और हमारी संचित स्मृतियोंमें से, जितनी उसके लिए प्रासंगिक हैं, उन सबको उस प्रसंगमें उद्बुद्ध होनेका अवसर देते, तो हम यों भी कामयाब हो जाते।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किसी बौद्धिक समस्याको हल करनेमें अनेक दृष्टियोंसे उसपर विचार करना पड़ता है। किसी समय हम एक दृष्टिसे विचार करनेमें इतने तन्मय रहते हैं कि विचारकी दूसरी दिशा उस समय हमें सूझती ही नहीं। और हमारी स्मृतियोंका उद्बोधन हमारे आग्रहकी दिशासे ही निर्दिष्ट होता है। जिस प्रसंगकी स्मृतियाँ हम चाहते हैं, वही उद्बुद्ध होती हैं, अन्य नहीं। प्रस्तुत समस्याके लिए मालूम नहीं हमारा कौन-सा संचित ज्ञान उपयोगी है। इस समय हम उसपर जिस दृष्टिसे विचार कर रहे हैं, यदि उसे बिलकुल छोड़कर दूसरी दृष्टिसे विचार करना आरम्भ कर दें, तो हमारे स्मृत्युद्बोधनकी दिशा बदल जायगी। मुमकिन है, उस समय कोई ऐसी स्मृति उद्बुद्ध हो, जिसका हमारी समस्यासे उपयुक्त अनुबन्ध बैठ जाय और समस्या हल हो जाय। विचार करनेकी क्रियाका स्वरूप ही वर्त्तमान ज्ञान या समस्याके साथ संचित ज्ञान-रूपी पूर्वकी स्मृतियोंका सम्बन्ध जोड़ना है। जिन स्मृतियोंके अनुसार विचारको ऐसा रूप दिया जा सकता है, जो हमारे ज्ञानके अनुसार उस विचारकी सारी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करता है, उन्हींके आधारपर हम अपनी तर्क-शृंखलाकी कड़ियोंको पूरा करके समस्याका परिणाम या हल समझते हैं। जब तक हमें अपनी वे स्मृतियाँ, जो उस समस्याके लिए प्रासंगिक हैं, नहीं प्राप्त होतीं; तब तक हम अपने ज्ञानानुसार अबाधित नवीन ज्ञानपर नहीं पहुँच पाते हैं। उनके न मिलनेपर हमारी तर्क-शृंखलाकी कड़ियाँ पूर्ण नहीं होतीं और अपने दिमाग़में स्मृतियोंकी खोज जारी रखनी पड़ती है। यदि हम किसी समय ग़लत दिशामें आग्रहपूर्वक विचार करते रहते या स्मृतिके विघ्न-स्वरूप विस्मृतिके अन्य कारणोंसे अनुकूल स्मृतियोंको नहीं पाते, तो सफलतासे निराश हो जाते हैं। थकानके कारण उस समय हमारा मस्तिष्क दूसरी दिशामें प्रयत्न नहीं करता; किन्तु उस समस्यापर हमारा प्रारम्भ किया हुआ प्रयत्न अव्यक्तमें जारी रहता है। वहाँ बाह्य विषयोंकी बाधाओंसे दूर रहकर प्रस्तुत समस्यासे समानता रखनेवाली हमारी अन्य संचित स्मृतियोंके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिलता है और उपयुक्त स्मृतिके मिल जानेपर हमारी तर्क-शृंखलाकी खोई हुई कड़ी मिल जाती है। उसके योगसे हम आवश्यक परिणामपर पहुँच जाते हैं तथा हमारी समस्या हल हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी एक समय-विशेषमें व्यक्त चित्तके लिए जहाँ थोड़ी-सी स्मृतियाँ ही प्राप्त होती हैं, वहाँ अव्यक्त चित्तको सभी स्मृतियाँ प्राप्त हैं। इनमें से अक्सर किसी खास मौक़ेपर याद करना अत्यन्त कठिन हो सकता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वह तो हमें भूल ही गई थी। यही कारण है कि अव्यक्त चित्तकी रचनाएँ, जो इन सब स्मृतियों का उपयोग करती हैं और जिनपर हमारा प्रभुत्व नहीं-सा प्रतीत होता है, हमें अपनेसे बड़ी शक्ति और प्रतिभाशालिताका परिचय देती हैं। इस अर्थमें अव्यक्तमें अधिक योग्यता भी है। अक्सर हम बौद्धिक या कलात्मकमें व्यक्त चेतनाके भागको अत्यधिक महत्त्व दे देते हैं। कलाकार गेटे तथा वैज्ञानिक हेल्महोट्ज़-जैसे कुछ अत्यन्त सृजनशील व्यक्तियोंके कथनोंसे मालूम होता है कि उनकी रचनाओंके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मौलिक अंश उनकी चेतनामें अन्तःस्फूर्तिके रूपमें प्रायः पूर्ण होकर आते थे। हिन्दीके महान आधुनिक कवि 'प्रसाद'ने भी यही बात कही है:

कुछ रेखाएँ हों ऐसी, जिनमें आकृति हो उलझी;
फिर एक झलक वह कितनी, मधुमय रचना हो सुलझी।

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मानसिक प्रयासके लिए अव्यक्तावस्था ही सदा सर्वश्रेष्ठ अवस्था होती है। कारण यह है कि जिस प्रकार अव्यक्त विचार-धाराके दबावसे व्यक्त विचार-धाराकी शक्ति क्षीण होती है, उसी प्रकार व्यक्त भी अव्यक्तकी शक्ति कुछ-न-कुछ बँटाता ही है—चाहे अव्यक्त कितनी भी शक्ति क्यों न लिए हुए हो। इसलिए उत्कृष्ट विचारके लिए सबसे उपयुक्त अवस्था तो वही हो सकती है, जब मन अव्यक्त हो, अर्थात् किसी विचारको अन्य विचारोंके कारण चेतनाके क्षेत्रसे अलग होकर अधूरी शक्तिसे काम न करना पड़े और वह स्वयं चेतनाके क्षेत्रमें रहकर मनकी सारी शक्तिका अकेले अपने लिए उपयोग करे। किन्तु उसके लिए प्रमाद और विषयान्तर-विक्षेपका प्रभाव होना आवश्यक है, अन्यथा मनकी शक्ति और समय अन्य विषयोंमें बँट जायगा। ऐसी ही स्थितिमें मन अल्प-से-अल्प समयमें अधिक-से-अधिक शक्तिका प्रयोग कर सकता है। यह निद्रा या किसी भी मानसिक शक्तिकी क्षीणावस्थामें नहीं हो सकता। इसके लिए मन पूर्ण रूपसे स्वस्थ और जाग्रत होना चाहिए। ऐसी ही निर्विघ्न और एकाग्र जाग्रतिमें आवरण-विक्षेप-रहित चित्त समाहित होता है और समाहित चित्तकी अवस्था ही सफल विचार या रचनात्मक कल्पना और अन्तःस्फूर्तिके लिए अधिक स्वाभाविक है। जिन लोगोंके विचारोंको अथवा जिन विचारोंको अनेक कार्योंमें व्यस्तता, समयाभाव, शक्ति-क्षीणता या बाह्य विघ्नोंसे मुक्त शान्तिका वातावरण अथवा समय न मिलनेके कारण यह अवस्था प्राप्त नहीं होती, उन्हीं लोगोंके विचार या वे ही विचार अव्यक्त होकर अधिक शक्तिमत्ताका परिचय देते हैं। समाहित चित्त और निद्रामें इतनी समानता अवश्य होती है कि बाह्य विषयोंकी विघ्नकारक प्रतीति नहीं होती; किन्तु इसमें निद्राकी शक्ति-क्षीणता और प्रमाद न होकर इससे ठीक उल्टी स्थिति—मनमें पूरी पुष्टता और सतर्कता—होती है। कुछ कलाकारोंके अनुभव यह स्पष्ट कर देंगे कि इस अवस्थासे निद्रा तथा अव्यक्तावस्थाकी आन्तरिक तथा बाह्य स्थितिमें क्या भेदाभेद है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक चित्रकारने डिज़ाइनकी कल्पनाके समय अपनी कार्य-शैलीका इस प्रकार वर्णन किया है—"किसी चित्रकी कल्पनामें एक ऐसा मार्मिक समय आता है, जब चित्रकी डिज़ाइनको एक समग्रतापूर्ण रूपसे ढालना पड़ता है। अक्सर ऐसे समयमें यह ज़रूरी होता है कि अपनेको अकेले बन्द कर लिया जाय, रोशनी कम कर दी जाय और मनको पूर्ण शान्तावस्थामें लाया जाय। रोशनीका कम करना महत्त्वपूर्ण है, न केवल इसलिए कि इस प्रकार डिज़ाइनकी तफ़सीलें दब जाती हैं, बल्कि इसलिए भी कि अन्धकारमें चित्त बाह्य उत्तेजनाओंसे कम विक्षिप्त होता है और आन्तरिक उत्तेजनाओंके लिए अधिक ग्रहणशील हो जाता है। चित्तकी निर्णीत बातोंकी उपेक्षा करके सीधे उस कल्पनाशील स्मृतिका उपयोग करना अधिक आसान हो जाता है, जो स्वप्नों को सामग्री प्रदान करती है।" यहाँ चित्रकारने समन्वित कल्पनाके लिए एकान्त अन्धकार आदि निद्रा-कालकी बाह्य परि-स्थितिको ज़रूरी पाया है, जिसमें बाह्य तथा गौण विषयों द्वारा अप्रतीति अव्यक्तावस्थाकी तरह स्मृतियोंका स्वच्छन्द उपयोग होता है; किन्तु मुख्य आन्तरिक विषयके प्रति मन अत्यन्त सचेत रहता है।

ल्योनार्डोने भी इसी प्रकारकी अवस्थाका वर्णन किया है और महान चीनी चित्रकार कक्कीने इस दशाको प्राप्त करनेके अपने तरीक़ेका, जिसे वह अपनी कलाके लिए आवश्यक पाता था, पूर्ण वर्णन इस प्रकार दिया है—"कुकाईचीने स्टूडियोके लिए एक ऊँची मंज़िलका शामियाना बनाया था, ताकि उसके विचार अधिक मुक्त रह सकें।.....जब तक मैं एक शान्त घरमें न रहूँ और एक शान्त कमरेमें न बैठूँ, जिसकी खिड़कियाँ खुली हों, मेज़ साफ़ हो और धूप जल रही हो तथा मनमें हर वक्त आते-जाते रहनेवाले हज़ारों तुच्छ विचार बलपूर्वक निकाल और डुबो दिए गए हों, तब तक मुझमें सुन्दरता या चित्रकारीके लिए अच्छे भावों का प्रादुर्भाव नहीं होता और मैं रहस्यका अद्भुत निर्माण नहीं कर सकता।" चीनी कलाकारने सौन्दर्यकी सृष्टिके लिए बाह्य विघ्नोंसे मुक्त ही नहीं, वरन् सुगन्धित और स्वच्छ वातावरण द्वारा मनकी प्रसन्नता और स्वस्थता तथा आन्तरिक एकाग्रताको अनि-वार्य पाया है।

अब ज़रा हम सम्मोहन-जनित निद्राका मैक्डोवेल द्वारा किया हुआ वर्णन भी देख लें, जिसमें मानसिक शक्ति असाधारण रूपसे बढ़ी हुई पाई जाती है—"जब निद्रा आनेको होती है, हमारे विचारोंका प्रवाह क्रमशः मन्द होने लगता है और मस्तिष्ककी क्रिया बन्द हो जाती है। कुछ विचार और उन विचारोंसे सम्बद्ध नाड़ीचक्र अब भी सक्रिय रहते हैं।...अब भी मस्तिष्कके लिए एक प्रवेश-द्वार खुला रहता है, और ऐसे समय जो प्रभाव या विचार मनमें डाले जाते हैं, वे असाधारण शक्ति से काम करते हैं; क्योंकि वे खाली मैदानमें प्रतिद्वन्द्वी विचा और प्रवृत्तियोंसे अबाधित रहकर काम करते हैं।" अर्थ सम्मोहन-जनित निद्रा भी विषयान्तरके लिए ही निद्रा होती ताकि मनकी सारी शक्ति चारों ओरसे सिमटकर प्रस्तुत विचार ही केन्द्रित हो जाय और अभिमत विचारपर अधिक शक्ति काम करे।

ऊपर हम बहुत अधिक सामग्रीके स्वप्नमें अत्यल्प व्यक्त होनेका कारण देख चुके हैं। इसका उदाहरण भी ले लेना ज़रूरी है। मोरीका यह स्वप्न प्रसिद्ध हो गया है। बार वह बीमार था और बिस्तरपर पड़ा था। उसकी माँ उसके पास बैठी थी। उस समय उसने फ्रांसकी राज्यक्रान्तिके समयकी विभिषिका (Reign of terror) का स्वप्न देखा। उसी के भयानक दृश्योंमें भाग लिया और अन्तमें स्वयं न्यायालयके सम्मुख लाया गया। वहाँ उसने राब्सपियर आदि इस निर्दय के सब अभागे नायकोंको देखा। उसे अपने कार्योंका विवरण दे पड़ा और अनेक प्रकारकी घटनाओंके बाद, जिन्हें उसकी स्मृ स्थिर न कर सकी, उसे मृत्यु-दण्ड मिला। एक बड़ी भारी भी के साथ वह हत्याके स्थानको ले जाया गया। वह मचानपर चढ़ा जल्लादने उसे तख्तेसे बाँधा, तख्ता खरका और गिलोटिनका छु गिर पड़ा। उसे प्रतीत हुआ कि उसका सिर धड़से अलग हो गया है और वह अत्यन्त भयसे जाग पड़ा। उसने देखा कि बिस्तर सिरहानेका हिस्सा सचमुच उसकी गर्दनके पिछले भागपर इस प्रका लगा है, जिस प्रकार गिलोटिनका छुरा। स्पष्ट है कि फ्रांसकी राज्य क्रान्तिके समयकी यह पूरी कहानी स्वप्नमें इतने ही अर्सेमें व्य हुई, जितना अर्सा कि बिस्तरका सिरा गर्दनपर गिरने और जाग के बीच गुज़रा। यह सारा स्वप्न एक घटना-सूत्रमें सुसम्बद्ध और जागनेपर स्वप्नद्रष्टा जिस चीज़को निद्रा-भंग करनेवा शारीरिक आघातके रूपमें देखता है, जिसे जागकर हटाए बि वह पूर्ववत् बाधा-रहित स्थिरता और आरामकी शारीरिक स्थिति स्थित नहीं रह सकता, उसके गर्दनपर गिरने और स्वप्नकी क स्वाभाविक अन्तिम लक्ष्य-स्वरूप उसके सबसे अधिक उत्तेज भाग अर्थात् गिलोटिनके छुरेके गर्दनपर गिरनेमें हत शारीरि बिन्दुकी ऐसी एकता तथा आघातके स्वरूपमें ऐसी समानता कि बाह्य आघात ही स्वप्नका जन्मदाता तथा निद्रा-भंगका कार प्रतीत होता है। स्वप्न आकस्मिक बाह्य स्पन्दनोंको असाधार योग्यताके साथ अपने ताने-बानेमें बुनकर एक क्रमशः विकसि मर्मस्थल (Catastrophe) उपस्थित कर देते हैं। ऐसे स्व का एक वर्ग ही है, जिनसे जागनेपर कोई बाह्य उद्बोधक स्व के एक अंशको इतना अनुरूप दिखाई देता है कि वह स्पष्ट स्व स्वप्नका जन्मदाता प्रतीत होता है। यह विचार इस बातसे हो जाता है कि नियमित रूपसे बाह्य उत्तेजकोंका प्रयोग करने उनके अनुकूल स्वप्न सफलतापूर्वक पैदा किए जाते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब स्वाभाविक प्रश्न यह होता है कि उपर्युक्त उदाहरणमें बिस्तरके सिरेके गर्दनपर गिरने और जागनेके बीचकी अत्यल्प अवधिमें इतने बड़े स्वप्नकी रचना और अभिव्यक्ति किस प्रकार सम्भव हुई? जाग्रत कालमें तो मानसिक क्रिया इतनी तेज़ीसे नहीं होती। क्या स्वप्न-कालमें विचारकी गति असाधारण रूपसे तीव्र हो जाती है? यह कठिनाई उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार यह मान कर हल हो जाती है कि स्वप्न-कथाकी रचना स्वप्न-कालसे पहले अव्यक्त चित्तमें हो चुकी थी और एक सूत्रमें बद्ध स्मृति-मालाके रूपमें संचित थी, जो मनोवैज्ञानिक अनुबन्ध-नियमके अनुसार समान उत्तेजककी प्रतीतिके साथ ही एकदम पूरीकी पूरी चेतनामें उद्बुद्ध हो गई। मोरीके मनमें अव्यक्त रूपसे इस कल्पनाका निर्माण और स्थिति-प्रकरण अस्वाभाविक नहीं है। यह बहुत संभव है कि यह कल्पना अपने पूर्ण सुसम्बद्ध रूपमें उसकी स्मृति में बरसोंसे संचित रही हो; क्योंकि मोरी एक फ्रांसीसी था और सभ्यताके इतिहासका अध्येता भी। अतः यह स्वरूपतः ऐसी कल्पना है, जो प्रबल प्रभावोंसे आन्दोलित एक युवकके मस्तिष्क से स्वभावतः प्रसूत होती। कौन ऐसा व्यक्ति होगा, खासकर यदि वह मोरीकी स्थितिका फ्रांसीसी और सभ्यताके इतिहासका विद्यार्थी है, जिसका हृदय उस भीषण युगके वर्णनोंसे उच्छ्वसित न हो उठेगा और जिसकी कल्पना अपनेको उन प्रभावशाली व्यक्तियोंके स्थानमें रखनेकी महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित न होगी, जो केवल अपने विचार और अग्निमय वक्तृताकी शक्तिसे उस शहरपर शासन कर रहे थे, जिसमें मानव-जातिका हृदय इतनी प्रबलतासे उद्वेलित हो रहा था और जिन्होंने यूरोपके रूपान्तरकी बुनियाद डाल दी थी; किन्तु जो स्वयं अपना सिर हथेलीपर लिए हुए थे और एक दिन उसे गिलोटिनके छुरेके नीचे रख सकते थे। स्वप्नमें एक बड़ी भारी भीड़के साथ हत्याके स्थानको जानेका दृश्य यह दिखलाता है कि मोरीकी कल्पना इस यशेषणासे ही अनुप्राणित हुई थी।

गंगारामका प्रश्न

श्री खंडेराव त्र्यंबक सुले

छुट्टीका दिन था और मैं घरपर ही था। किसीने आकर मुझसे कहा—"पागल गंगाराम कल रातको अस्पतालमें मर गया।"

हमारे घरके सामने ही इमारती लकड़ियोंकी एक टाल थी। उसमें गंगाराम लकड़ियोंके तख्ते चीरनेका काम किया करता। कभी-कभी लकड़ीके कुन्दोंकी औघड़ गाँठें भी वह काटता। सुबह-शाम जब देखो, वह तीर-कमान बने हुए शरीर और अपने चमकते हुए दाँत दिखाता हुआ अर्द्धवर्तुलाकार तेज़ आरा लकड़ियोंके कलेजेमें ऊपर-नीचे चलता दिखाई देता। जैसे-जैसे लकड़ी चिरती जाती, उसके पाँवोंके पास लकड़ीका मुलायम बुरादा इकट्ठा होता जाता। तख्ते काटते वक्त आरेके एक तरफ़ वह और दूसरी तरफ़ एकाध लकड़ी काटनेवाला उसकी मददको रहता। उसका साथी ऊपरको ओरका हल्का सिरा चलाता और ज़मीनपर खड़ा रहकर अधिक मेहनतवाला सिरा वह अपने हाथमें रखता। तख्ते काटते वक्त उठती हुई तालबद्ध सुर-सुर आवाज़को सुनने और नावकी तरह ऊपर-नीचे होनेवाले आरेकी गति देखने के लिए, कभी-कभी मैं धुनमें आकर खिड़कीके पास जा खड़ा होता। तख्ते चीरते वक्त उसके शरीरपर ज़्यादा कपड़े न रहते, इसलिए उसके माथे और छातीपर से बहनेवाला पसीना उसके पाँवोंके पास बुरादेके ढेरपर टप्-टप् गिरा करता। कभी-कभी वह मुट्ठी-भर गरम-गरम सूखा बुरादा हाथमें ले छातीपर मसलकर अपना पसीना पोंछ डालता। ऐसे समय अलबत्ता मालिक नूरमुहम्मद अपनी जगहसे बैठा-बैठा चिल्ला उठता—"क़म्बख्त, वह क्या तेरे दिमाग़का भूसा है, जो उसे खराब कर रहा है। उसे शापुरजी बर्फ़वालेको बेच दिया है। देख, उधर वह तख्ता टेढ़ा कट चला।" मालिककी गाली सुनकर वह आरेको एक झटका देता और फिर सुर-सुरकी अवाज़ शुरू हो जाती।

इस तरह कितने ही साल गुज़र गए। इसी बीच एक बड़ा शहतीर टूटकर गंगारामके हाथपर आ गिरा और उसके हाथकी हड्डी टूट गई। इस गहरी चोटके कारण दो महीने अस्पतालमें बिताकर गंगाराम जब फिर अपने पुराने कामपर हाज़िर हुआ, तो उसे मालूम हुआ कि अब उसका हाथ कामका नहीं रहा और काम भी हाथमें नहीं रहा। नूरमुहम्मदने उससे कहा—"गंगा, तुझसे अब काम न होगा। तू और कहीं कोई नौकरी ढूँढ़ ले।"

यह सुनकर गंगारामका चेहरा फ़क़ पड़ गया और बड़ी मिन्नतके साथ उसने कहा—"सेठ, पर मेरा हाथ तो आपका काम करते हुए ही टूटा है न? दो महीने मेरे बाल-बच्चे भूखे रहे। अब तो मेरे लायक कुछ काम दीजिए।"

नूरमुहम्मद गुस्सेमें आकर बोला—"मेरे काममें तेरा हाथ टूटा है, बदमाश? मेरे यहाँ तू मुफ़्तमें काम नहीं करता था। निकल यहाँसे।"

गंगाराम दूसरे दिन रोता हुआ मेरे पिताजीके पास आया और उसने सारी हक़ीक़त उनसे कह सुनाई। पिताजी शहरके एक प्रसिद्ध वकील थे और नूरमुहम्मद उनका मुवक्किल था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूरमुहम्मदको बुलवाकर पिताजीने कहा—"नूरमुहम्मद सेठ, तुमने गंगारामको तो नौकरीसे निकाल दिया, अब वह बेचारा खायगा क्या? मैं पिछले दस सालोंसे उसको तुम्हारे यहाँ नौकरी करते देख रहा हूँ। और फिर तुम्हारा ही काम करते हुए उसका मज़बूत हाथ टूट गया है और हर्जाना भरनेके बदले अब तुम उसे नौकरीसे अलग करते हो। ऐसा कैसे हो सकता है?"

नूरमुहम्मद भोला-भाला बनकर बोला—"वकील साहब, आपको हम क्या बताएँ! मेरी टाल कोई फैक्टरी तो है नहीं कि वहाँ फैक्टरीका क़ानून लागू होगा। रही हाथ टूटनेकी बात, सो यदि उसने ध्यानसे काम किया होता, तो उसका हाथ कैसे टूटता? उसने तो सौ-डेढ़-सौ रुपएका माल बिगाड़ डाला है, उसका क्या होगा? पर जब आप कहते हैं, तो हम उसको कुछ काम देंगे—आपकी मुहब्बतकी खातिर।"

इसके बाद गंगाराम उस टालमें कुछ कम मेहनतका हल्का काम करने लगा। इस बातको भी तीन-चार साल गुज़र गए। सामनेकी टाल ज़ोरोंसे चल रही थी। नूरमुहम्मद सेठ मर चुका था और टालपर उसका लड़का पीरमुहम्मद बैठता था। पीर-मुहम्मदका ढंग नूरमुहम्मदकी अपेक्षा जुदा ही था। वह मज़दूरोंके कामोंपर स्वयं खड़ा रहकर निगरानी रखता और उनके कामोंमें ज़रा भी ढील होती, तो उनपर हाथ चला देता। उसने तख्ते चीरनेकी एक छोटी-सी मशीन मँगा ली थी और वहाँ फर्नीचर बनानेका एक छोटा-सा कारखाना भी खड़ा कर लिया था।

पीरमुहम्मदकी नौकरीमें गंगारामकी बुरी हालत थी। अपना लूला हाथ लिए वह तनतोड़ मेहनत करता; पर एक दिन भी ऐसा न जाता, जिस दिन उसे अपने सेठकी गालियाँ न सुननी पड़तीं। एक दिन तख्तोंको लारीपर लादते समय उसकी छोटी लड़की रोती हुई टालमें आई और बोली—"बाबूजी, जल्दी घर चलो। माँ बहुत बीमार है। पड़ोसके जनू दादा कहते हैं कि माँको तुरत अस्पतालमें नहीं ले गए, तो वह मर जायगी। चलो, बाबूजी जल्दी घर चलो।"—पिताका हाथ पकड़कर वह खींचने लगी।

पीरमुहम्मद चिल्ला उठा—"गंगा, क्या कहती है यह लड़की? निकाल इसको यहाँसे। कामका हर्जा हो रहा है।"

गंगारामने पीरमुहम्मदके पास जाकर बड़ी आजिज़ीके साथ कहा—"सेठ, मेरी स्त्री एकाएक बीमार हो गई है। उसके पेटमें दर्द है। अस्पतालमें न गई, तो वह मर जायगी। मुझे आज को छुट्टी दो।"

पीरमुहम्मद झल्लाकर बोला—"और ये तख्ते लारीमें कौन भरेगा? दो बजे तक बारह सौ तख्ते बम्बई पहुँच जाने चाहिएँ। तेरा बाप आयगा यह काम पूरा करनेको? जा काम कर, नहीं तो लात मारकर नौकरीसे निकाल दूँगा। औरत बीमार है, तो क्या हुआ? सरकारी अस्पताल क्या तेरे बापका [illegible] ताल है?"

उसी दिन शामको गंगारामकी स्त्री अस्पतालमें चौर-[illegible] करते वक्त मर गई। गंगारामकी राह देखकर उसके पड़ोसियों उसे सरकारी अस्पतालमें पहुँचा दिया था। उसका पेट [illegible] गया था और वह मर गई, यह सुनकर गंगाराम पागल हो गया।

इसी पागलपनमें वह दिन-भर गाँवमें भटकता रहता। रास्तेमें पड़ी हुई कोई भी चीज़ उठाकर उसका वह आरेकी तरह उपयोग करने लगता। तख्ते चीरनेका एक ही काम उसके दिमाग़में ठसा रह गया था।

उसने एक दिन मुझसे पूछा—"बाबू, नूरमुहम्मद ऊँचे-ऊँचे पेड़ क्यों काट डालता है? ज़िन्दा पेड़ काटनेसे नूरमुहम्मद को क्या मिलता है?"

मैंने कहा—"ऊँचे पेड़पर हाथ कैसे पहुँचेगा? ऊँचा पेड़ काटनेसे उसके तख्ते बनाए जा सकते हैं। उसकी मेज़-कुर्सी बनाई जा सकती हैं।"

वह कुछ सोचता हुआ-सा बोला—"तो फिर मेरी लल्ली कहाँ ऊँची थी? उसको तुम लोगोंने क्यों काट डाला? लेकिन सेठ ऊँचा है। तुम्हारा नौकर भोमा भी ऊँचा है। चलो, उनके पाँव काट डालें। टेबिलके पैर बनाता हूँ, देखो। जो तुम कहोगे वही चीज़ बना दूँगा; परन्तु मज़ूरी सात आने लूँगा।"

वह चुपचाप गाँवमें भटकता रहता। लकड़ीका सामान या ऊँचा पेड़ दिखाई देते ही उसका पागलपन बढ़ जाता। रास्तेमें पड़ी हुई लोहेकी पट्टी उठाकर किनारेके एकाध पेड़पर उसे आरेकी तरह चलाता और मुँहसे बड़बड़ाता—'पीरमुहम्मद—ऐ छोटे सेठ, मज़ूरी सात आने लूँगा।'

एक दिन वह मेरे घरपर आकर खड़ा हो गया। छोटे छोटे बच्चे 'गंगाराम, गंगाराम' चिल्लाते हुए डरकर भाग गए। दीवारपर पूर्व और पश्चिम गोलार्द्ध दिखानेवाला दुनियाका एक बड़ा-सा नक़्शा टँगा था। गंगाराम उसकी ओर एकटक देख रहा था। मैंने पूछा—"गंगा, क्या चाहिए?"

वह हँसा और आहिस्तासे जैसे कुछ विश्वासकी बात पूछ रहा हो, बोला—"बाबू, ये दो गोले कैसे हैं?"

मैंने हँसकर कहा—"गंगा, यह दुनियाका नक़्शा है। यह पूर्वी दुनिया है और यह पश्चिमी, इन्हींके ये दो गोले हैं।"

"दुनिया? तो फिर यह दुनिया किसने काटी? मैंने नहीं।"

"तुमने नहीं, भगवानने काटी है।"

वह घृणाके साथ बोला—"छिः, नूरमुहम्मद सेठने ये गोले काटे हैं, मेरे आरेसे। मुझसे कहने लगा, काट इस दुनियाको। मैंने कहा, भगवानकी दुनिया काटूँ? ऐसी बात मत करो। पीरमुहम्मदको काटूँगा। तुम्हें काटूँगा, टेबिल बनाऊँगा, कुर्सी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बनाऊँगा। जो तुम कहोगे, वही बनाऊँगा। तो फिर उसीने इस दुनियाको काटा है। यह देखो, ज़िन्दा दुनियाको काटकर उसने कितना खून बहा डाला है!"

उसने दोनों गोलार्द्धोंमें दिखाई देनेवाले ब्रिटिश साम्राज्यके लाल रंगको ओर अँगुलीसे इशारा किया। फिर बोला—"पर बाबू, उसने मेरी नहीं सुनी। उसीने ये गोले काटे हैं। फिर मैंने कहा, सेठ, तुझे क्या मजूरी दूँ? सेठ बोला, सात आने। मुझे गुस्सा आ गया। इतना काम करनेपर भी सिर्फ़ सात आने! मैंने चिल्लाकर कहा, निकल यहाँसे। मुझे हरामका पैसा नहीं चाहिए। मैंने उसे रुपया दिया। उसने वह डाक्टरको दे दिया और डाक्टरने उस रुपएसे मेरी रुखमीको काट डाला।"

उसकी आँखें कितनी भयंकर दिखाई दे रही थीं। कुछ ही दिनों बाद गंगारामने टालमें घुसकर पीरमुहम्मदपर खूनी हमला किया। सेठको बचाते वक्त टालके दो-एक मज़दूरोंने बख्शीशकी आशासे गंगारामके सिरपर जो चोट की थी, उससे उसका सिर साफ़ फूट गया था। शहरके अस्पतालमें वह सप्ताह-भर बेहोशी की हालतमें पड़ा रहा। बेहोशीमें वह बड़बड़ाता रहा—'पीर-मुहम्मदने मेरा सिर चीरा है, उसे एक रुपया मजूरी दो, सात आने नहीं। मुझे हरामका पैसा नहीं चाहिए। उसने दुनिया काट डाली। उसके दो गोले बन गए। वे गोले रुखमीका सिर और मेरा सिर हैं। उसकी मजूरी मुझे नहीं मिली।'

उसके मरनेकी खबर सुनकर गंगारामका वह प्रश्न फिर मुझे याद आ गया—'भगवानकी दुनिया किसने काटी?'

मैंने भी मनमें प्रश्न किया—'मनुष्य-समाजके पीरमुहम्मद और गंगाराम इस तरहके दो भाग किसने किए?'

अनुवादक—नरेन्द्रदेव विद्यालंकार

भारतीय संस्कृतिका भावी स्वरूप

श्री रामप्रताप गोंडल, एम० ए०, साहित्यरत्न

गांधीवाद और उसका वह स्वरूप, जो पिछले बीस वर्षोंसे भारतीय जनतापर साधारणतः और कांग्रेसके प्रमुख कार्यकर्ताओंपर विशेषतः अपना प्रभाव डालता रहा है; जो प्राचीन भारतीय संस्कृतिका, जब बड़ी-बड़ी मिलों और मशीनोंका आविष्कार नहीं हुआ था, द्योतक है और जो भविष्यमें भी हमें देश, काल और परिस्थितिके विचार छोड़कर शक्तिशाली और संसारव्यापी विरोधी शक्तियों—जैसे इंग्लैण्ड, अमरीका और रूस आदि—की दयापर रखना चाहता है; निस्सन्देह अब निष्पक्ष रहकर इस समस्यापर विचार करनेके लिए हमें बाध्य करता है। इसमें सन्देह नहीं कि मानव-स्वभाव सर्वत्र ही प्राचीन संस्कारोंसे प्रभावित रहता है और हमारे निष्पक्ष रहकर विचार करनेमें बाधक होता है। हम स्वभावतः आगे बढ़नेसे, नवीन रास्तेपर इदम बढ़नेसे, डरते हैं, और हमारे डरकी मात्रा और भी अधिक हो जाती है, जब हमें यह मालूम हो जाय कि कितनी कठिनाइयाँ हमें नवीन रास्तेपर चलनेमें सहन करनी पड़ेंगी। इंग्लैण्ड, अमरीका, जर्मनी, रूस, जापान वगैरहकी बड़ी-बड़ी मिलों, कारखानों और फैक्टरियोंको देखकर और उन देशोंकी अधिकांश जनताको उनमें मशीनवत् काम करते देखकर—एक ओर धन-वैभवके महल और दूसरी ओर छोटी-छोटी कोठरियाँ; एक ओर प्रचुर मात्रामें आमोद-प्रमोद, शिक्षा, रहन-सहनके साधन और दूसरी ओर दिन-रात एककर केवल रूखा-सूखा भोजन, अर्धनग्न शरीर और अशिक्षा; एक ओर स्वच्छन्द जीवन और दूसरी ओर दासता; एक ओर अधिकताके कारण मानवीय गुणों (जैसे सहृदयता, सहानुभूति, दयालुता, निःस्वार्थता, प्रेम) का विनाश और दूसरी ओर निपट अभावके कारण उनके विकासके मार्गमें बाधा—हम स्वाभाविक तौरपर ही यह चाहते हैं कि किसी प्रकार हम अपनी भारतीयताको बनाए रखें। हम अपनी उस संस्कृतिको बनाए रखें, जिसमें जीवनकी सादगी हो, धन-धान्यका बँटवारा अधिक समान हो, प्रत्येकके लिए काम हो, मानसिक व आत्मिक उन्नतिके साधन हों तथा समस्त मानव-जातिके प्रति आत्मवत् व्यवहारका निर्देश हो। अतः हम उन बड़ी-बड़ी मशीनोंसे दूर ही रहें, जिनके कारण पाश्चात्य देशोंमें पूँजीवादका अभिशाप फैल रहा है और इन सद्गुणोंका अभाव हो रहा है।

परन्तु हम भूल जाते हैं कि औद्योगिक क्रान्तिके पूर्व हम लोगोंका वास्तविक जीवन क्या था? हमें जीवन-निर्वाहके लिए घंटों काम करना पड़ता था। शिक्षा कुछ इने-गिने लोगोंकी पहुँच तक ही सीमित थी। पुस्तकों, पत्रों वगैरहका सर्वथा अभाव था। यात्रा करनेके लिए पैदल अथवा बैलगाड़ी वगैरहके अलावा और कोई सुविधा नहीं थी। यात्राका कष्ट और जीवनको खतरा भी कम न था। तार, रेडियो, टेलीफ़ोन, रेल, हवाई-जहाज़ अर्थात् समय तथा दूरी कम करनेवाले सब साधनोंका अभाव था। तात्पर्य यह है कि अगर अब हमें तीन शताब्दी पूर्वके जीवनके अनुसार जीवन व्यतीत करनेके लिए कहा जाय, या ऐसे भारतीय गाँवोंमें रहनेके लिए कहा जाय, जो वर्त्तमान सभ्यतासे कोसों दूर हैं, तो हम उस समयकी वास्तविक स्थितिको समझ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकते हैं। तब हमारा जीवन अपने पैदा होने और रहनेके गाँवों तक ही सीमित था और हमारी पहुँचकी परिधि साधारणतः १०-२० मील तक ही सीमित थी। परन्तु आज हम समस्त विश्वको प्रत्येक पहलूसे अपनी पहुँचमें पाते हैं और उसके किसी भी कोनेमें तीन दिनमें पहुँच सकते हैं। युद्धके बाद शायद यह चौबीस घण्टेमें ही सम्भव हो सकेगा।

आज संसार जिस शीघ्रतासे एकीकरणकी ओर बढ़ रहा है, उसकी प्रत्येक कल्पना भी नहीं कर सकता। मान लीजिए, एक मध्यम श्रेणीका भारतीय साधारण पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है। पढ़ने-लिखनेमें उसे रुचि नहीं, न ही वह दैनिक पत्र वगैरह के पढ़नेकी कोई आवश्यकता समझता है। वह भला क्या जान सकता है कि अब संसारमें किस प्रकारकी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं? यही स्थिति एक निर्धन व उस धनीकी है, जिसे इस दिशामें सोचनेकी आवश्यकता ही नहीं। साथ ही ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो हमारे भूतकालिक सुख-स्वप्नमें भूले हुए हैं, तथा दूरके ढोल सुहावनेवाली कहावतको चरितार्थ कर रहे हैं। केवल वे व्यक्ति ही इस बातको समझ सकते हैं, जो वायुयान, रेडियो तथा विद्युत की असीम शक्तियोंकी कल्पना कर सकते हैं तथा युद्धके बाद दूरीको कम करनेका जो कार्य इनके द्वारा होगा, उसे समझ सकते हैं। विज्ञानके इस कालमें जो शक्तियाँ हमें एकीकरणकी ओर द्रुत गतिसे ले जा रही हैं, उनमें से मुख्य हैं—(१) रेल, जहाज़, हवाई-जहाज़, वगैरह (दूरी कम करनेके साधन); (२) तार, टेलीफ़ोन, रेडियो, चलचित्र, समाचारपत्र, पुस्तकें वगैरह (बोल-चाल व समझनेके अर्थात् विचार-विनिमयके साधन); (३) व्यापार-सम्बन्धी वस्तुओंका एक देशसे दूसरे देशमें आना-जाना; (४) पिछड़े हुए देशोंपर—जैसे चीन, भारत, अफ्रीका, अरब तथा अन्य छोटे-मोटे देशों व द्वीपोंपर—बड़े-बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा अपने लाभार्थ अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी इच्छा और प्रयत्न; (५) विश्वमें शान्ति-स्थापनार्थ बड़ी-बड़ी शक्तियोंका सामूहिक प्रयत्न।

यूरोप व अमरीकाके मुक़ाबलेमें और उनसे लोहा लेनेके लिए यह अनिवार्य है कि एक आधुनिक एवं शक्तिशाली भारतका जन्म हो। हम निहत्थे रहकर या स्वयं गाय बनकर यूरोपीय या अमरीकन शेरोंको अत्याचार करनेसे रोक नहीं सकते—परोक्ष रूपसे प्रोत्साहित भले ही करते रहें। परन्तु स्वयं शक्तिशाली बनकर हम उनसे लोहा ले सकते हैं, उन्हें आततायी बननेसे रोक सकते हैं। भारतीय संस्कृतिके उस श्रेष्ठ स्वरूपको हम तब तक नहीं भूलते, जब तक कि हम स्वयं शक्तिशाली होकर दूसरोंपर अत्याचार करनेके लिए हाथ नहीं उठाते, बल्कि उनकी रक्षा करनेके लिए आगे बढ़कर लड़नेको तैयार रहते हैं। यह विज्ञानके वर्त्तमान आविष्कारों और भविष्यमें होनेवाले आविष्कारोंको व्यावहारिक रूप देकर ही संभव हो सकता है। वे देश, जिनमें मशीनें व मिलें और बड़े-बड़े कारखानोंका तथा विज्ञानके नवीनतम आविष्कारोंका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा रहा है, अब इस युद्ध कालमें विशेष परिस्थितिके पैदा हो जानेके कारण मशीन-युगकी अनेक बुराइयोंको कम करनेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं और बड़े-बड़े पूँजीपतियोंको अपने नियन्त्रणमें करते जा रहे हैं। निर्धन मज़दूरों व सामान्य जनताके हितार्थ खान-पान, रहन-सहन-सम्बन्धी मनुष्यकी समस्त दैनिक व्यवहारकी आवश्यकताओंका रक्षण (अर्थात् आवश्यकतानुसार वितरण), वस्तुओंका मूल्य-निर्धारण; पूँजीपतियोंके लाभमें से ९०-९५ प्रतिशत आयका भाग लेना; मजदूरोंके लिए शिक्षा, औषध, घर तथा जीवन-बीमा; स्त्रियोंके लिए प्रसव-कालकी छुट्टी, उनके ज़मीनके नीचे अस्वस्थ स्थानोंमें काम करनेपर प्रतिबन्ध, अधिक वेतन वगैरह सब समायोपयोगी आवश्यकताओंका सरकार द्वारा प्रबन्ध किया जा रहा है और यथासम्भव प्रत्येक देश इस प्रयत्नमें संलग्न है कि किस प्रकार पूँजीपतियों तथा मज़दूरों और धनिकों तथा निर्धनोंका अन्तर कम किया जाय तथा एकका दूसरे द्वारा शोषण बन्द हो।

हमारे यहाँ तथा अन्य देशोंमें शासनकर्त्ता रेल, तार, डाक, बिजली, अस्त्र-शस्त्रोंके कारखाने तथा इस प्रकारके अन्य लोकोपयोगी कार्योंका संचालन जनताके हितार्थ स्वयं कर रहे हैं या अपने हाथोंमें ले रहे हैं और शासनकर्त्ता अपना दायरा बढ़ाते ही जाते हैं। परन्तु भारतीय सरकार विदेशी होनेसे हमारे यहाँ एक नई समस्या अन्य सामाजिक व आर्थिक समस्याओंके साथ बनी ही रहती है। विदेशी सरकारके कारण हम इच्छा रखते हुए भी अपनी औद्योगिक उन्नति नहीं कर पाते। दूसरे देशोंने औद्योगिक उन्नतिके शैशव कालमें विदेशी वस्तुओंके आयातपर बड़े-बड़े प्रतिबन्ध लगाकर स्वदेशी वस्तुओंके उत्पादनमें मिल-मालिकोंको यथेष्ट सहायता दी और देशी उद्योग-धन्धोंको इस प्रकारका सहयोग देकर वहाँकी जनताको धन-धान्यपूर्ण बनाया। यहाँपर सरकारका प्रयत्न यह रहता है कि विदेशी वस्तुएँ जल्दसे जल्द को सस्ती दी जायँ; परन्तु उनको काम-धन्धोंसे वंचितकर भले ही उनके हाथमें खरीदनेकी शक्ति चाहे न रहे। इस बातकी पूर्ण आवश्यकता समझते हुए कि पूँजीपतियों तथा मिल-मालिकोंपर उचित नियन्त्रण रखना अनिवार्य है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि देशी वस्तुओंके उत्पादनमें सरकारकी ओरसे पूर्ण सहयोग मिले और इस हालतमें अगर भारतीय जनताको देशी वस्तुएँ कुछ काल तक घटिया तथा महँगी भी मिलें, तो भी कुछ कालके बाद यह हमारे हितमें ही रहेगा।

युद्धके बाद हमारी विदेशी सरकार भारतीय हितोंकी कुछ भी परवाहकर यहाँ आवश्यकतानुसार भारतीय औद्योगिक उन्नति की कोई पंचवर्षीय या दसवर्षीय योजना अमलमें लायगी, इसमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमें सन्देह है। औद्योगिक योजनाओंपर इस समय अंगरेज़ीमें इतना साहित्य निकल रहा है कि यह आशंका हुए बिना नहीं रहती कि युद्ध-कालमें जितने महँगे काग़ज़पर ये छप रही हैं, कहीं वही दुरुपयोगमें लाया गया न समझा जाय। हमें सरकार भारतीय परिस्थितिके अनुरूप योजनाको कार्य-रूपमें लानेके लिए ज़ोर डालनेके साथ ही अपने बल-बूतेपर भी अधिकाधिक उद्योग-धन्धोंको यहाँपर क़ायम करना चाहिए। ये उद्योग-धन्धे निम्न श्रेणियोंमें बाँटे जा सकते हैं : (१) जिनका संचालन सरकार द्वारा हो—जैसे रेल, तार, डाक, बिजली तथा कुछ अन्य आधारस्थ उद्योग-धन्धे। (२) बड़े-बड़े कल-कारखाने, जो जनता की आवश्यकताओंको पूरा करें तथा निर्यातके लिए भी वस्तुओं का उत्पादन करें—जैसे कपड़ा, लोहा, काग़ज़, दवाई आदिके कारखाने व मिलें। इनपर सरकारका नियन्त्रण हो, जिससे मज़दूरों व जनताके हितका पूरा ध्यान रखा जा सके। इनसे निर्धन मज़दूरों व जनताको काम भी मिलेगा और भूखों मरनेकी समस्या भी हल होगी। (३) छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे, जिनपर सरकारी प्रतिबन्धकी विशेष कोई आवश्यकता नहीं, जो मुख्यतः १०-२० मज़दूरों तक सीमित रहते हैं, जिनमें अधिक पूँजी भी नहीं लगती और साथ-ही-साथ मालिक व मज़दूरमें व्यक्तिगत सम्बन्ध भी बना रहता है। ऐसे छोटे-छोटे कई कामधन्धे कृषिके साथ चल सकते हैं और उनसे गाँववाले अपनी आमदनी भी बढ़ा सकते हैं।

भारतीय ग्रामीणोंका मुख्य धन्धा कृषि है ; परन्तु उसके साथ-साथ मुर्ग़ी पालना, मवेशी पालना, ऊनके लिए भेड़ पालना, देसरी, रेशमके कीड़े पालना, शहदका उत्पादन, तेल निकालनेको कोल्हू तथा बिजलीके गाँवोंमें पहुँचनेपर और भी ऐसे छोटे उद्योग-धन्धे खेतीके साथ-साथ सहकारी या पारिवारिक कार्योंके रूपमें बड़ी आसानीसे चल सकते हैं। इसके अतिरिक्त कई कारखाने व मिलें गाँवों व क़स्बोंकी पहुँचमें लगवाकर गाँवोंकी बेकारीकी समस्या तथा शहरोंकी मज़दूर-बस्तियोंकी समस्या भी हल की जा सकती है, जो कि वर्त्तमान फैक्टरियों और पूँजीपतियोंके लिए लज्जाका विषय है।

आजकल खादीको जिस रूपमें और मामूली चर्खेके आधारपर चलानेका प्रयत्न किया जा रहा है, वह अधिक कष्टसाध्य है और उसमें आय भी बहुत कम होती है। अगर कोई ऐसा चर्खा बन सके, जो एक आदमीको ६ घण्टे काम करनेपर बजाय एक-डेढ़ आनेके, जो आय लड़ाईके पहले इस काममें होती रही है, आठ-दस आने रोज़ दे सके ; तो फिर कताई और बुनाईका धन्धा ऐसे बढ़िया चर्खों और खड्डियोंके आधारपर गाँववालोंकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए गाँवोंमें चलाया जा सकता है। अखिल भारतीय चर्खा-संघ तथा कांग्रेसके बृहत् प्रयत्नके फल-स्वरूप खादीके उत्पादनसे जो आर्थिक लाभ किसानों को या इस कामके करनेवाले मज़दूरोंको हुआ है, वह बहुत ही साधारण है। यदि इतनी शक्ति अन्य छोटे-छोटे उद्योग-धन्धोंका, जिनसे अधिक आय हो सकती है, गाँववालोंमें प्रचार करनेमें लगाई जाय, तो अधिक सफलताकी आशा हो सकती है और उनकी निर्धनता भी बहुत-कुछ कम की जा सकती है।

छोटे-छोटे उद्योग-धन्धोंके रूपमें गाँवोंमें काग़ज़के उत्पादन पर भी शक्ति लगाना अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकेगा। कपड़ेकी तरह काग़ज़ भी मिलों द्वारा बहुत सस्ता और अच्छा तैयार किया जा सकता है। परन्तु अंडे, दूध, सुखाया हुआ दूध, घी, मक्खन, ऊन, घानीका तेल, चक्कियों द्वारा प्रस्तुत दालें तथा शहरकी और आवश्यकताएँ—जिनका आधार कृषि, मवेशी या ज़मीन है और जिनपर मिलोंकी प्रतियोगिताका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता—पूरी की जायँ, तो अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। यदि बिजली या तेलके इंजनोंमें मामूली पूँजी लगाकर सहकारी रूपमें उद्योग-धन्धे गाँवोंमें चलानेकी व्यवस्था कांग्रेस द्वारा की जाय, तो किसानोंकी वास्तविक सहायता की जा सकती है।

कृषिमें आवश्यक सुधारके साथ—यानी अच्छे हल, आबपाशी, एक परिवारके लिए आवश्यक ज़मीनका एक स्थानपर होना, रूसकी तरह ट्रैक्टरों द्वारा सामूहिक खेती आदि—देशके खाद्य-पदार्थोंकी कमी तथा कारखानोंके लिए कच्चे मालकी कमीको पूरा किया जा सकता है और किसानोंकी अवस्था भी सुधारी जा सकती है। कांग्रेसके सुयोग्य कार्यकर्त्ताओंका सफ़ाईके लिए झाड़ू लेकर गाँवोंमें जाना हास्यास्पद प्रतीत होता है, जब कि वे लोग वहाँ शिक्षक, डाक्टर, कृषि-विशेषज्ञ, मवेशी-विशेषज्ञ, समाज-सुधारक आदिके रूपमें जाकर अधिक उपयोगी कार्य कर सकते हैं। चूँकि कांग्रेस हमारे देशकी प्रमुख राजनीतिक संस्था है, अतः उसे अपना ध्येय पूर्णरूपेण राष्ट्रीय बनाना चाहिए। वह आदर्शवादके मंचसे नीचे उतरकर व्यावहारिकताकी समतल भूमिपर आए, यह उसके और देशके लिए परमावश्यक है। हमें फ़िलहाल एक मिल-मालिक या पूँजीपतिकी उतनी ही आवश्यकता है, बल्कि अधिक ही, जितनी एक किसान व मज़दूरकी। कांग्रेस स्वदेशी वस्तुओंका प्रचारकर जहाँ मिल-मालिकोंको करोड़ोंका लाभ पहुँचती है, वहाँ उनपर अपना प्रभाव डालकर मनुष्योपयोगी सब सुविधाएँ मज़दूरोंको दिलवा सकती है। मिलोंके प्रति घृणा के भाव पैदाकर या उन्हें अनिष्टकारी बतलाकर जनताको उस ओरसे उदासीन रखना तथा स्वयं भी मज़दूरोंकी रक्षाका संगठित रूपमें कोई प्रयत्न न कर उन्हें अनुभवहीन कम्यूनिस्टोंकी दयापर छोड़ देना, देशको आवश्यक उद्योग-धन्धों और बड़ी-बड़ी मिलों तथा कारखानोंके लाभसे वंचित रख उसको ग़रीब बनाए रखना

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक राजनीतिक व सामाजिक भूल ही है, जिसे हमें निकट भविष्य में सुधारना पड़ेगा।

युद्ध-कालमें परिस्थिति-विशेषके कारण यदि हम अपने देशके बड़े-बड़े कारखानों और मिलोंसे विदेशी सरकार होनेके कारण फ़ायदा नहीं उठा सके, तो शान्ति-कालमें उनसे अपने-आपको स्वतंत्र करना वास्तवमें एक बड़ी भूल होगी। संभव है, युद्ध-काल के बाद युद्ध-कालके नर-संहारसे डरकर और भी अधिक लोग मशीन-विद्रोही नीतिके समर्थक हो जायँ और हमारी औद्योगिक उन्नतिको भारी धक्का लगे। हमें एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिए। विज्ञानके कारण जो औद्योगिक उन्नति कल-कारखानों, मशीनों, रेलों, हवाई-जहाज़ों, रेडियो आदिसे हो रही है, उसका अभी आरम्भ ही है। १५० या २०० साल एक राष्ट्र या मानवताके इतिहासमें विशेष मूल्य नहीं रखते। इतने कालमें हमने अपने-आपको इसके अनुरूप नहीं बना पाया है। हमारा खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, सामाजिक नियम आदि उस कालके आधारपर हैं, जब विज्ञानके कारण इन शक्तियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सामाजिक नियम तथा संस्कार इतने शीघ्र नहीं बदलते, और यही कारण है कि हम अभी मशीन-युगपर अपना आधिपत्य नहीं जमा सके हैं। वे मशीनें जो निकट भविष्यमें पालतू गाय बनकर हमारे कल्याणका कारण बनेंगी, अभी हमारे ऊपर अपना आधिपत्य जमाए हुए हैं—विशेषकर सीधे-सादे भारतीयोंको दूरसे ही डरा रही हैं।

हमारी सामाजिक व्यवस्था और शासन-प्रणाली भी उस कालकी द्योतक है, जब उत्पादनके क्षेत्रोंका इस प्रकार केन्द्रीकरण नहीं हुआ था। यूरोपमें औद्योगिक क्रान्तिके कुछ काल बाद इस बातकी आवश्यकता समझी गई थी कि विज्ञानके आविष्कारोंको कार्य-रूपमें लानेके लिए कुछ-एक व्यक्तियोंमें शक्तिका केन्द्रीकरण हो, जो औद्योगिक क्रान्तिके पूर्व मज़दूरों व किसानोंमें बँटी हुई थी, धीरे-धीरे वहाँपर मज़दूर-संघों द्वारा और सरकार द्वारा पूँजीपतियोंपर ज़ोर डालकर कई औद्योगिक क्रान्तिकी बुराइयोंको हटाया गया; परन्तु विज्ञानके नवीनतम प्रयोगोंने जिस शीघ्रतासे उत्पादन बढ़ाया, उस शीघ्रतासे लोगोंमें उन वस्तुओंको उपभोगमें लानेकी शक्ति नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि वस्तुएँ बराबर बिकी रहीं, मज़दूरोंमें बेकारी बढ़ी, विज्ञानके नवीनतम प्रयोगोंको व्यावहारिक रूप देनेमें पूँजीपतियोंने अपनी आर्थिक हानि समझकर उन्हें रोक रखा, अन्य पिछड़े हुए देशोंमें अपना माल खपानेके लिए फ़ाशिस्त और पूँजीपति सरकारोंने बड़े-बड़े युद्ध किए। पिछला भीषण युद्ध और यह भीषण युद्ध भी उसीके परिणाम-स्वरूप हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह संकट पूँजी, बड़े-बड़े कारखाने, राज्य-संचालन आदि कुछ इने-गिने आदमियोंके हाथोंमें आनेसे आया है, और इसका हल अब यही है कि बड़े-बड़े कारखाने तथा उत्पादन-केन्द्र सामूहिक हों, इनके संचालनपर जनताकी सरकारका पूर्ण नियन्त्रण हो और वस्तुओंका उत्पादन तथा वितरण इस ढंगसे हो कि उनमें काम करनेवाले व्यक्तियोंके हिस्सेमें उत्पादन का अधिक अंश आवे। सरकार इनके लिए सर्वत्र मनुष्योचित सुविधाएँ दे तथा उन्हें बेकारीसे दूर रखे। उत्पादनकी इन वस्तुएँ औद्योगिक क्रान्तिसे पूर्ण पंचायती थीं और आज भी बड़े-बड़े उत्पादन-यन्त्रोंके पंचायती होने तथा उनपर कठोर नियन्त्रण रखनेका समय आ गया है। साथ ही हमारी सामाजिक व्यवस्था व शासन-प्रणाली जब तक औद्योगिक उन्नतिके साथ-साथ नहीं चलेंगी, हम जीवनको मनुष्योचित नहीं बना सकेंगे।

समाजवादका वह स्वरूप, जो भारतीय समाजको (परन्तु आगे चलकर समस्त विश्वको) पर्याप्त खान-पान, रहन-सहन, मानसिक और आत्मिक उन्नतिकी सुविधाएँ तथा जीवन-संचालनमें उचित व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी देता है, साथ ही विज्ञानके नवीनतम प्रयोगोंको मानव-हितमें लगानेका अवसर प्रदान करता है तथा धन और शक्तिका वितरण अधिक साम्य रूपमें करता है, हमारी सामाजिक व्यवस्था और राज्य-प्रणालीका आधार होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि द्रुत गतिसे हमें उस ओर बढ़ना चाहिए। भारतीय संस्कृतिका भावी भव्य भवन इसी समाजवादकी आधार-शिलापर ही निर्मितकर हम अपनी भारतीयता क़ायम रख सकेंगे, न कि औद्योगिक उन्नति और विज्ञानसे असहयोग कर।

क्या कहूँ ?

श्री 'वीरात्मा'

क्या कहूँ, जब रूठकर सौ कोस बैठी है जवानी ?
वे उमंगें हैं कहाँ मधु, खो गई उनकी रवानी ?
आँखमें 'मोती' न दिखते, बह चुका है आब-पानी।
किस सलज मनुहार-रसपर मन ललचता आज मानी ?
कब कहा था—प्राणमें मेरे मधुर कम्पन बने हो ;
और पुतलीमें मदिर तुम 'स्वप्न'के स्पन्दन बने हो ?

सान्ध्यकी मातल घड़ीके कब प्रतीक्षा पल बने हो ?
और कन्धोंपर रखी इन बाहुओंके बल बने हो ?
है न आगी, फिर जलन-सी, कौन यह भीतर सुलगती ?
है न कोई 'दृश्य', फिर यह दीठ रह-रह क्यों मचलती ?
है न 'स्वर', फिर कण्ठमें छुप कौन सहसा आज गाता ?
श्वास-सा विश्वास पा-खो, कौन आता, कौन जाता !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 3004

'कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो'

बनारसीदास चतुर्वेदी

तीन सौ वर्ष बीते। महाकवि तुलसीदासजीने अपनी अन्तरात्माकी गहराईसे एक ध्वनि निकाली थी :—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो॥
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निवहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम शीतल मन पर गुण, नहिं दोष कहौंगो॥
परहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥

यह सुन्दर पद एक मनोरंजक लेखमालाके लिए बहुत ही उपयुक्त शीर्षक बन सकता है। क्या ही अच्छा होता, यदि हिन्दीके अन्य कवि तथा लेखक महाकवि तुलसीदासजीका अनुकरण करके अपनी आकांक्षाओंको लिपिबद्ध कर देते! हाँ, तुलसीदासजीके समकालीन कविवर बनारसीदास जैनने 'अर्द्धकथानक' लिखकर हिन्दी-साहित्यके लिए अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। यदि हम एक-दूसरेकी अभिलाषाओं तथा उद्देश्योंसे भलीभाँति परिचित हो जावें, तो पारस्परिक सहयोगका मार्ग सुगम हो जाय, ग़लतफ़हमियोंके लिए गुंजाइश ही न रहे और समानशील व्यक्तियोंका सम्मिलन भी आसान हो जाय।

प्रारम्भमें ही एक बात स्पष्ट कर देनेकी ज़रूरत है। वह यह कि केवल अपने लिए ऐसे सुख-सुविधाओं और साधनोंकी आकांक्षा करना, जो सर्वसाधारणको दुष्प्राप्य हों, एक निन्दनीय अपराध है। वह उसी हालतमें कुछ क्षम्य माना जा सकता है जब कि उसका उद्देश्य सार्वजनिक सेवा हो। यह धृष्टता हमने इसी विश्वासपर की है कि उन साधनोंकी प्राप्तिपर हम शायद जनताके लिए कुछ सात्विक मानसिक भोजन तैयार कर सकेंगे।

हम लोगोंमें से अधिकांशका जीवन प्रायः निरुद्देश्य होता है। उसके पीछे किसी प्रकारकी योजना नहीं होती। नित्यप्रति सवेरे उठकर हम अपनी नावको किसी-न-किसी दिशामें खेते हैं, रातको विश्राम करते हैं और सुबह होते ही फिर खेना प्रारम्भ करते हैं—शायद ठीक उल्टी दिशामें! इसका परिणाम यह होता है कि पाँच-पाँच सात-सात वर्ष बाद भी हम जहाँ-के-तहाँ खड़े प्रतीत होते हैं!

एक तो इस प्रकारके आत्म-चरितात्मक लेखसे स्वयं हम अपने दिमाग़में एक प्रकारकी स्पष्टता ला सकते हैं। दूसरा लाभ यह भी हो सकता है कि हमारे मित्र तथा अमित्र यह भलीभाँति जान सकते हैं कि हम किस लक्ष्यकी ओर जा रहे हैं या जाना चाहते हैं। संक्षेपमें हम अपना लक्ष्य निवेदन किए देते हैं :

(१) तीन-चार अच्छे जीवन-चरित लिखनेकी हमारी अभिलाषा है। स्वर्गीय द्विवेदीजी, पं० पद्मसिंहजी शर्मा और श्री गणेशशंकरजीके जीवन-चरित लिखनेकी आकांक्षा बहुत दिनोंसे रही है। यह कार्य कम-से-कम तीन वर्षका है। इस बीचमें रोमाँ रोलाँ और गोर्कीके जीवन-चरितोंकी नींव पड़ सकती है। (२) अपने लिखे हुए संस्मरणों तथा रेखाचित्रोंका सम्पादन और प्रकाशन। इसमें चार-पाँच महीने लग सकते हैं। (३) अराजकवादी साहित्यका अनुवाद और प्रकाशन। (४) हिन्दी-साहित्यका आधुनिक इतिहास—इस इतिहासको हम एक विशेष दृष्टिकोणसे लिखना चाहते हैं। खास तौरसे हम इस इतिहासमें उन छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ताओंकी लगन, तपस्या और आकांक्षाओंका विवरण देना चाहते हैं, जिन्हें इतिहास-लेखक प्रायः उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं। छोटी-छोटी घटनाओं और क़िस्से-कहानियोंका भी उसमें हम वर्णन करना चाहते हैं। गरज़ यह कि हम उसमें सहृदयता और मानुषिकताका ज़बरदस्त पुट देना चाहते हैं। विज्ञापितोंको और भी विज्ञापित करना हमारा उद्देश्य नहीं। सेनापतियोंका कीर्त्ति-गान करनेकी अपेक्षा हम मामूली सैनिकोंकी मनोवृत्तिपर प्रकाश डालना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। यह महत्त्वपूर्ण कार्य कई बन्धुओंके सहयोगसे ही हो सकता है। (५) अपने संग्रहालयकी व्यवस्था। हमारा एक छोटा-सा निजी संग्रहालय है। उसमें खास तौरपर चिट्ठियोंका अच्छा संग्रह है। उसे हम किसी केन्द्रीय स्थलपर रखना चाहते हैं। (६) हम ऐसे उपयोगी ट्रैक्ट छपाना चाहते हैं, जो साधारण कार्यकर्त्ताओंके लिए स्फूर्तिप्रद हों, जो जनताके लिए लाभदायक हों और जो लागत मूल्यपर सबके लिए सुलभ हों। मूकोंको वाणी प्रदान करना लेखकका कर्त्तव्य है। जनतामें सुरुचि तथा सौन्दर्य-प्रेमको उत्पन्न करना हम लोगोंका ही काम है। जनपदीय परिस्थितियोंके अनुकूल और विषम स्थितियोंसे जनताको ऊपर उठानेवाली सस्ती-से-सस्ती पुस्तकाएँ छपाना, यह कर्त्तव्य हम लोगोंका ही है। (७) अपने रचनात्मक कार्यके साथ ही साथ छुटभइयोंकी कुछ सेवा करने—उन्हें प्रोत्साहन देने—की भी उत्कण्ठा हमारे हृदयमें विद्यमान है। किसान, मज़दूर और स्त्री-समाज—ये तीन विषय हमारी रुचिके अनुकूल हैं और इनपर विशेषज्ञों द्वारा छोटे-छोटे ट्रैक्ट लिखवाना हमें अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। लेखकोंकी अपेक्षा हम लेखिकाओं को प्रोत्साहनका अधिक उपयुक्त पात्र मानते हैं। (८) कुछ लेखक खास तौरपर हमारे आराध्य रहे हैं—यथा प्रिंस क्रोपाटकिन, एमर्सन, थोरो, एडवर्ड कार्पेण्टर, तुर्गनेव, रोमाँ रोलाँ, स्टीफन ज़्विग इत्यादि। हमारी आकांक्षा है कि हम कभी-कभी इनके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयमें लिखा करें और इनके विचारोंको हिन्दी-भाषा-भाषियों तक पहुँचावें। (९) अन्तमें हम अपने अत्यन्त प्रिय विषयको लेते हैं, और वह है दुभाषिएका काम ; यानी विदेशियोंमें जो कुछ अच्छा है, उसका सीधी-सादी भाषामें वर्णन करके जनता तक पहुँचाना, जिससे जातीय विद्वेष कुछ अंशोंमें तो दूर हो सके। (१०) देश-विदेशके अमर शहीदोंके रेखाचित्रोंका संग्रह और प्रकाशन। हमारे जैसे पाँच-सात क्षुद्र व्यक्तियोंके जीवन-भरके लिए यह कार्य काफ़ी है ; पर चूँकि पुनर्जन्ममें हमारा विश्वास है, इसलिए हम निराश नहीं हैं। इस जन्ममें न सही, अगले जन्मोंमें यह पूरा हो ही जायगा !

हम बुद्धिजीवी प्राणी बन चुके हैं, और अब ५३ वर्षकी उम्र में ग्राम-सेवकका जीवन बिताना हमारे लिए अत्यन्त ही कठिन है, क्योंकि हम ग्रामीणोंकी तरह रह नहीं सकते। हम किसी सांस्कृतिक केन्द्र--कलकत्ता, दिल्ली, प्रयाग इत्यादि—से चार-पाँच मीलकी दूरीपर किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थलपर हरे-भरे वृक्षोंके निकट रहना चाहते हैं। यदि कोई नदी-तट या जलाशय निकट हो, तब तो क्या कहना ! सांस्कृतिक धारासे अपनेको अलग रखना किसी भी साहित्य-सेवीके लिए आत्मघातका सबसे सरल मार्ग है। रोमाँ रोलाँके 'जीन क्रिस्टोफ़ी' नामक ग्रन्थमें जीन क्रिस्टोफ़ीको यह उपदेश दिया गया है कि तुम सामयिक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक धाराके साथमें रहो—चाहे वह धारा उस समय अस्वच्छ ही क्यों न हो।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और बिलकुल एकान्तमें, बिना किसीसे बातचीत किए, अपने व्यक्तित्वका विकास कर ले जाना केवल मुनियोंका ही काम है। हम तो समय-समयपर समानशील व्यक्तियोंसे मिलना चाहते हैं, उनसे विचार-परिवर्त्तन करना चाहते हैं और यथावकाश यात्रा भी करना चाहते हैं। पर ऐसे आदमियोंके साथ काम करना, जिनका उद्देश्य हमारेसे बिलकुल भिन्न है, जो मौलिक बातोंपर ही हमसे मतभेद रखते हैं अथवा जिनमें हमारे उद्देश्योंके प्रति श्रद्धाका अभाव है, हम अपने और उनके जीवनके लिए अभिशाप ही मानते हैं। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि दुनियाका कोई भी महत्त्व-पूर्ण कार्य पूरक व्यक्तियोंके सहयोगके बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। ऐसे लोगोंको संग्रह करना, जो उन विषयोंमें, उन चीज़ोंमें मज़बूत हों, जिनमें हम कमज़ोर हैं, सफलताके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हम प्रतिदिन पाँच-छः घंटेसे अधिक लिखने-पढ़नेका काम नहीं कर सकते। हमारी आकांक्षा यही है कि प्रातःकालके तीन घंटे बिलकुल निर्विघ्नतापूर्वक हम साहित्य-रचना कर सकें। इन घंटोंपर हम किसी भी प्रकारका आघात नहीं चाहते। जर्मन महाकवि गेटे कहा करते थे—'मैं प्रातःकालके चार घंटोंमें मक्खन निकाल लेता हूँ, बाक़ी मट्ठा या छाछ रह जाती है।' केवल महाकवियोंके लिए ही नहीं, हमारे-जैसे साधारण लेखकोंके लिए भी प्रातःकालके ये घंटे अत्यन्त क़ीमती हैं।

प्रातःकालमें बिलकुल एकान्तमें पाँच बजे दो-तीन प्याले चाय पीनेके हम अभ्यस्त हैं। उस समय न हमारा कोई साथी हो और न कोई आवाज़ हमारे कानोंमें पड़े। दिन-भरके लिए कार्यक्रम बनानेका हमारा यही वक्त है और हमारे अपने कि ग्रन्थकारोंके सत्संगका भी।

'आत्मानं विद्धि' (अपने-आपको जानो)—हमारे यहाँका यह प्राचीन उपदेश है। लेकिन अपने-आपको पहचान लेना आसान काम नहीं। जिनका व्यक्तित्व सरल और सादा होता है और जिनका उद्देश्य सिर्फ़ एक, उनका मार्ग अपेक्षाकृत आसान हो जाता है; पर जिनकी कई आकांक्षाएँ होती हैं, उन्हें मुश्किल पड़ जाती है। समाज-सेवा और साहित्य-सेवा अपनी इन दोनों प्रवृत्तियोंमें हम सामंजस्य उत्पन्न नहीं कर पाते। हमारे समयका एक अच्छा हिस्सा चिट्ठियाँ लिखते बीतता है और आश्चर्य तथा खेदकी बात यह है कि हमारे पास आए हुए अनेक पत्र बिना उत्तरके रह जाते हैं ! परिणाम यह होता है कि हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ बिलकुल ही कुण्ठित रह जाती हैं। हमारी यह आकांक्षा निरन्तर बनी रहती है कि हम अपने छुटभइयोंकी यथाशक्ति सेवा करें, उनकी रचनाओंमें संशोधन करें और उन्हें प्रोत्साहनके पत्र लिखें। इस दिशामें थोड़ा-सा कार्य हमसे बन भी पड़ता है ; पर इस परोपकार-वृत्तिके कारण अपनी रचनात्मक प्रवृत्तिका हमें बिलकुल ही दमन कर देना पड़ता है।

खुदाई फ़ौजदारीमें भी हमारे वक्तकी बहुत-कुछ बर्बादी हुई है। साहित्य-क्षेत्रमें अनाचारोंकी संख्या इतनी अधिक होती है [बक़ौल गेटेके, जितनी बेईमानी साहित्य-क्षेत्रमें होती है, उतनी अन्य किसी क्षेत्रमें नहीं !] कि बीसियों भलेमानसोंकी ज़िन्दगी उनके विरुद्ध आन्दोलन करते हुए बीत सकती है, और फिर भी अनाचार दूर न होंगे। खुदाई फ़ौजदारीके खतरोंको जानते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि जो भी साहित्य-सेवी अपनी आवाज़को बुलन्द रखना चाहता हो, उसे समय-समयपर इन अनाचारोंका विरोध करना ही पड़ेगा। सारा प्रश्न उचित अनुपात और सामंजस्यका है। अपनी किसी भी शक्तिशाली प्रवृत्तिको ज़बरदस्ती दमन करनेके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। अपनी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियोंके लिए कब और कितना समय देना, कितनी शक्ति उनपर व्यय करना, हमारा मुख्य प्रश्न यही है।

लार्ड नार्थक्लिफ़ कहा करते थे कि नित्यप्रति तालाबमें पत्थर फेंकना प्रगतिशील पत्रकारका कर्त्तव्य है। कृत्रिम रूपसे विचारोंकी लहरोंका यह निर्माण हमें कुछ जँचता नहीं। हमारा यह खयाल है कि यदि हम लोग अपने व्यक्तित्वको सजीव बनाने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिए भरपूर उद्योग करें, तो जो भी चीज़ हमारी क़लमसे निकलेगी, जनताका ध्यान आकर्षित किए बिना न रहेगी। यदि हम अपने मस्तिष्कके रेडियो-सेटको ठीक तौरपर रखें और आत्मा को संवेदनशील, तो स्वयं ही हमारे सामने ऐसे बीसियों कार्य आ जायँगे, जिनको हाथमें लेकर हम जनताकी सेवा करते हुए अपने व्यक्तित्वका निर्माण कर सकेंगे।

हम अपनी प्रचारात्मक प्रवृत्तियोंके लिए एक साप्ताहिक विचारपत्र और पैमफ्लेटोंका प्रकाशन पर्याप्त समझते हैं। एच० जी० वैल्सकी इस बातसे हम सहमत हैं कि अब पत्रोंका ज़माना लद चला है, पैमफ्लेटोंका युग आ गया है। जिस श्रेणीके व्यक्ति तक हम अपने जो विचार पहुँचाना चाहते हैं, उस श्रेणीके व्यक्तिके पास वही विचार संक्षेपमें और ज़ोरदार ढंगपर भेजनेमें हमारा विश्वास है।

हमारे अखबार आज चौंचौंका मुरब्बा बन गए हैं और उनमें स्त्री-वशीकरणसे लेकर साम्यवादकी उपयोगिता, यूरोपीय राजनीतिसे लेकर निकट-पूर्वकी विकट समस्या और ब्रह्मविद्यासे लेकर साप्ताहिक राशि-फलकी बातें छपा करती हैं। साप्ताहिक फलमें गुप्त स्त्रीसे झगड़ेकी चर्चा भी रहा करती है! स्त्री-वशीकरण, साम्यवाद, ब्रह्मविद्या, निकट-पूर्व और गुप्त स्त्री—इन भिन्न-भिन्न दिशाओंमें भागनेवाले घोड़ोंको एक रथमें जोतकर चलाना किसी महारथीका ही काम है और यह हमारी शक्तिके बाहर है।

जिनका विश्वास किसी नवीन सामाजिक व्यवस्थाके निर्माणमें नहीं है और साथ ही जो निरन्तर उस दिशामें प्रयत्नशील भी नहीं रहना चाहते, किसी प्रकार अपनी कौटुम्बिक हँड़ियाको खुद-बुद रखना ही जिनके जीवनका एकमात्र उद्देश्य है, ऐसे लेखक किसी पूँजीपतिके पत्रमें आसानीसे काम पा सकते हैं। वे किसी सजीव केन्द्रके निर्माणमें बाधक ही सिद्ध होंगे।

आजके युगका तक़ाज़ा है—सहस्रों ही सजीव केन्द्रोंका निर्माण। दुनियाके दो अरब आदमियोंकी रुचि भी भिन्न-भिन्न होनी ही चाहिए और जगत्का कल्याण इसीमें है कि मनुष्य अपनी रुचिके आदमियोंके साथ रहें। रुचि और उद्देश्योंकी विभिन्नताके कारण इन केन्द्रोंमें संघर्ष भी अनिवार्य है; पर ये संघर्ष ज़िन्दगीके लक्षणके रूपमें माने जाने चाहिएँ। वैसे इन केन्द्रोंका संघ इनमें पारस्परिक सहयोगकी भावना उत्पन्न कर ही देगा।

हम लोगोंके लिए—खास तौरपर लेखकोंके लिए—इससे अधिक दयनीय स्थिति हो ही नहीं सकती, जब कि हमें अपने विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों तथा सिद्धान्तोंके प्रतिकूल वायुमण्डल में काम करनेके लिए मजबूर होना पड़े। महाकवि तुलसीदासने कहा है—'चोर नारि जिमि प्रकट न रोई' और आज हम लोगोंमें से अधिकांशकी पोज़ीशन 'चोर नारि' की तरहकी हो गई है! इस लज्जाजनक परिस्थितिसे लेखकों और पत्रकारोंको निकलना है, और इसका एकमात्र उपाय यह है कि हम अपने-आपको स्वस्थ, सजग और चारों ओरकी परिस्थिति तथा वायुमंडलके प्रति खुला रखें। शारीरिक क्षयकी तरह आत्माका भी क्षय हुआ करता है, और उन्मुक्त वातावरणमें विचरण करना शरीर तथा आत्मा दोनों के लिए कल्याणकारी है।

किसी भी सजीव साहित्यिकके लिए साहित्य और राजनीतिक नामकी दो चीज़ें अलग-अलग हो ही नहीं सकतीं। इनमें भेद करना जीवनको एकांगी बना देना है। रोमाँ रोलाँने एक जगह लिखा है—"जो कोई मानव-समाजके भविष्यके लिए युद्ध करना चाहता है, उसे राजनीतिक क्षेत्रमें युद्ध करना चाहिए; पर अपने मस्तिष्ककी स्वाधीनताको किसी भी हालतमें न छोड़ना चाहिए, क्योंकि मानसिक स्वाधीनता ही उसे युद्धक्षेत्रपर हावी बनाए रखेगी।"

पर 'मानसिक स्वाधीनता' कोई ऐसी चीज़ नहीं, जो आसानी से मिल सके। इसके लिए निरन्तर त्याग, तप और संघर्षकी ज़रूरत है। दुनियामें आज अनेक शक्तियाँ ऐसी पाई जाती हैं, जो ज़बरदस्ती सबको अपने ढंगपर ढालनेमें ही जगत्का कल्याण मानती हैं। उन शक्तियोंसे समझौता करके—अपने-आपको बेचकर—कोई भी लेखक मज़ेमें अपनी ज़िन्दगी गुज़ार सकता है; पर वह जीवन घास-फूसकी तरहका होगा।

विचारोंकी स्वाधीनताको हम सबसे उच्च स्थान देते हैं, यद्यपि हम यह खूब समझते हैं कि वर्त्तमान पराधीनताके वायु-मण्डलमें यह चीज़ खरगोशके सींगोंकी तरह अप्राप्य है। जो भी हम उचित समझें, दृढ़तापूर्वक कह और लिख सकें; यह स्वतन्त्रता भला इस देशमें कहाँ मिल सकती है? फिर भी लक्ष्य तो हमारा यही होना चाहिए। लेखकमें आवाज़की बुलन्दगी या 'टोन'की सचाईका अभाव वैसा ही है, जैसे नमकमें से नमकीनपनका निकल जाना। किसी पार्टी-विशेषमें शामिल होनेके मानी हैं अपने मुँहपर ताला लगा लेना।

कोई भी सरकार, चाहे वह विदेशी हो या स्वदेशी, विचारों की स्वाधीनताको एक खास सीमा तक ही सहन कर सकती है, इसलिए प्रत्येक सजीव लेखकको बरबस राजनीतिक क्षेत्रमें आना ही पड़ेगा। जो भी लेखक अनाचारों तथा अत्याचारोंके खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलन्द करेगा, उसे जान-बूझकर लड़ाई मोल लेनी पड़ेगी। आजके युगमें जो भी लेखक संघर्षसे अपनेको बचाना चाहेगा, वह अपने-आपको निर्जीव बना डालेगा।

अपने व्यक्तित्वको सजीव बनाए रखनेका सर्वोत्तम तरीक़ा है निरन्तर दानशीलता। यदि हम अपना समय, शक्ति और अगर हमारे पास धन है तो वह भी सुपात्रोंको देते रहें अथवा सत्कार्योंमें व्यय करते रहें, तो हम अपने यौवनको बनाए रख सकते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निरन्तर करते रहना दान, इसीको कहते हैं यौवन।
बुढ़ापा कंजूसीका नाम, जगत्में बुरा हिसाबीपन ॥

कब जनताके निकट सम्पर्कमें आना अथवा कब मौन रहकर एकान्तमें कार्य करना यह किसी सजीव लेखकको इच्छापर निर्भर रहना चाहिए। प्राचीन कालके लेखक तपोवनोंमें रहकर अपने सर्वोत्तम विचार जनताको दिया करते थे और इस देशके शासक उनके निकट पहुँचकर ज्ञान प्राप्त करते थे। पर आज उल्टी स्थिति हो गई है। लेखक शासकोंके ही नहीं, धनाढ्य व्यापारियोंके भी गुलाम बन गए हैं। जब कभी भी हम अपने अधिकारों और अपनी सुविधाओंको प्रथम स्थान देंगे, तभी उलझनें पैदा हो जायँगी। बात यह है कि दुनियाके साधारण आदमी अपने हितको सबसे आगे रखते हैं। यदि लेखक उनके धरातलपर उतर आवेगा, तो वैसी ही धक्कम-धक्का होगी, जैसी थर्ड क्लासकी खिड़कियोंपर रेलका टिकट लेते वक्त होती है।

स्वभावतः यह लेख आत्म-चरितात्मक हो गया है; पर तीस-बत्तीस वर्षकी साहित्य-सेवाके बाद इस प्रकारकी धृष्टता क्षन्तव्य मानी जा सकती है। हमने इस लेखमें अपनी वर्त्तमान मनोवृत्तिका चित्रण कर दिया है।

पर किसी भी सजीव आदमीकी रुचि बदल सकती है। स्थायी रुचिवाले मुर्दोंकी बात हम नहीं कहते, जिन्होंने किसी मकबरेमें सोना ही अपना अन्तिम लक्ष्य बना लिया है। क्या-मतके वक्त शायद उनकी रुचिमें भी परिवर्त्तन होगा। आज हम केन्द्रीय स्थलके निकट नदी-तट, एकान्त स्थल, आम्रकुंज, छोटा-सा पुस्तकालय और साप्ताहिक साहित्य-गोष्ठीको पसन्द करते हैं, तो कल नगरके संघर्षमय जीवनको भी पसन्द कर सकते हैं। जिस प्रकार व्यापारी लोग चिट्ठियोंमें लिखा करते हैं कि आज गेहूँका भाव साढ़े तीन सेर है, कलकी राम जानें; उसी प्रकार हमने अपनी आजकी रुचिका वर्णन कर दिया है, कलकी राम जानें!

आज हम एकान्त स्थलपर रहकर कुछ अच्छे जीवन-चरित लिखना चाहते हैं और अपने मुतफर्रिक (विविध) कार्योंको स्थगित कर देना चाहते हैं। पत्र-व्यवहार भी कम-से-कम करना चाहते हैं। कुछ महीनों बाद इस प्रकारके कार्यमें ऊब जानेपर हम बिलकुल विपरीत कार्य-पद्धति ग्रहण कर सकते हैं। आज एक स्थानपर रहना हमें पसन्द है, तो कल तूफानी दौरा भी रुचिकर हो सकता है।

बाल्यावस्थामें हमने भिन्न पढ़ी थी, और भिन्नोंमें लँगड़ी भिन्न हुआ करती थी, जिसको ठीक-ठीक कर देना आसान नहीं था। दो बटे चार या तीन बटे छैकी तरह जिनका व्यक्तित्व सरल है, वे सौभाग्यशाली हैं, और उनसे भी अधिक सौभाग्य-शाली हैं वे, 'जिन्हें न व्यापै जगत् गति' (सबसे भले विमूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत् गति)। पर हमें तो दुर्भाग्यवश ऊँचे भिन्नको हल करना है।

बाबा तुलसीदास कह गए हैं :—

'जो इच्छा करिहौ मनमाहीं, राम कृपा कछु दुर्लभ नाहीं।'

यदि हम विश्वकी सहायक शक्तियोंकी धाराके साथ अपने आकांक्षाओंको मिला सकें, तो हमारी अभिलाषाओंकी पूर्त्ति आसान से हो सकती है। सारी मुश्किल इस बातकी है कि हम लोग दृढ़तापूर्वक किसी भी चीज़की इच्छा नहीं कर पाते।

अभी हम विलायतकी एक सजीव लेखिका ऐथिल मैलिन्स आत्म-चरित पढ़ रहे थे। उसने लिखा है—"इच्छाकी ज़बरदस्त आकर्षण-शक्तिमें मेरा सदासे ही दृढ़ विश्वास रहा है। जिस चीज़ के प्राप्त करनेकी मैंने इच्छा की है, वह अन्तमें मुझे मिल ही गई है। हाँ, उसे बनाए रखनेकी बात ही दूसरी है। इसमें कोई अन्ध-विश्वासकी बात नहीं। अगर कोई आदमी पूर्ण शक्ति के साथ किसी चीज़की अभिलाषा करता है, तो अन्तमें वह उसे मिल ही जाती है। इसका कारण यही है कि उसके विचार तथा कार्य चेतन तथा अचेतन अवस्थामें जागते तथा सोते उसी उद्देश के प्रति प्रेरित होते रहते हैं। और अचेतन अवस्थामें ध्येयके प्रति फेंके या खींचे जानेमें ज़बरदस्त शक्ति है। अधिकांश व्यक्तियोंके साथ एक बड़ी भारी मुश्किल है। वह यह कि वे यही नहीं समझ पाते कि आखिर वे अपने जीवनसे चाहते क्या हैं। जब कभी इस विषयमें उन्हें थोड़ा-सा ज्ञान होता भी है, तो उत्साह तथा दृढ़तापूर्वक वे इच्छा ही नहीं कर पाते।" अपने अनुभवसे हम उपर्युक्त कथनका समर्थन कर सकते हैं। आज से तेईस-चौबीस वर्ष पहले हमने किसी जलप्रतापके निकट रहनेकी इच्छा की थी—एडवर्ड कार्पेण्टरकी पुस्तक 'माई डेज़ एण्ड ड्रीम्स' (मेरे दिन और स्वप्न) नामक पुस्तकमें झरनेके निकट उनकी कुटीका एक चित्र देखकर—और वह इच्छा पन्द्रह-सोलह वर्ष बाद जाकर पूर्ण हुई, जब कि हमें कुण्डेश्वरके जलप्रपातके निकट आकर रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसलिए हम आकर्षण-वादी हैं।

एक पुराना दोहा है :—

सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत-सम जहँ-तहँ करत प्रकाश॥

जब हिन्दी-साहित्याकाशके चन्द्र तुलसीदासजीने अपनी आकांक्षाओंको एक पदमें लिखकर हमारा पथ-प्रदर्शन किया है, तो हमारे-जैसे साधारण लेखक, जो उनके मुक़ाबले जुगनूकी तरह हैं, उनका अनुकरण क्यों न करें? आखिर अपनी जगह जुगनूकी का भी कुछ महत्त्व है। खद्योतोंको भी आत्म-प्रकटीकरणका अधिकार है। इसी विश्वासपर हम 'कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो' शीर्षक लेखमालाको आगे बढ़ा रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिमलासे मसूरी

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

मनोविज्ञानके आचार्योंका मत है कि मनुष्यके मनकी अतृप्त इच्छाएँ अन्तस्तलकी गहराईमें जा जमा होती हैं और मौक़ा पाते ही पत्थरको भी भेदकर फूट निकलनेवाले स्रोतकी तरह बाहर आ पड़ती हैं। हमारी यात्राको भी एक ऐसी ही बलात् फूटी हुई धारा समझिए। वर्षोंसे शिमला और मसूरीके पहाड़ी रास्तेकी चर्चा सुन रखी थी। पंजाबके भूतपूर्व गवर्नर सर मालकम हेली और भूतपूर्व वाइसराय लार्ड इरविनके यात्रा-वृत्तान्तोंको पढ़कर दिल इस ओर आनेके लिए बुरी तरह मचला करता था। चार-पाँच साल पहले इसी इरादेसे एक बार मैं शिमला आया भी था। उन दिनों वर्षा सिरपर थी। शिमलामें २-४ दिनके अन्दर ही खटमलों और पिस्सुओंने मेरा खून ही नहीं, आगे बढ़नेकी हिम्मत भी चूस ली थी। अचानक घरसे एक आत्मीयकी बीमारीका तार मिला और मैं फिर कभीके लिए यात्रा स्थगित कर लौट आया।

इस बार मैं कमर कसकर शिमला आया। इन चार-पाँच सालोंमें अनेक पहाड़ी स्थानोंकी मैं सपत्नीक पैदल यात्रा कर चुका था। उन सबका अनुभव भी साथ बाँध-बूँधकर लाया। एक आश्चर्यकी बात यह है कि पहाड़ोंमें जो मौसम सबसे खराब होता है, ठीक उन्हीं दिनों लोग आम तौरपर पहाड़ जाते हैं। भला जुलाई-अगस्त भी कोई पहाड़ोंपर जानेके दिन हैं! इन दिनों तो भिक्खू लोग भी अपने-अपने विहारोंमें वापस आ जाते थे। पहाड़ोंमें वन-लक्ष्मीके साक्षात् दर्शन करने हों, तो मार्च-अप्रैलमें वहाँ जाना चाहिए, या फिर सितम्बर-अक्टूबरमें - अर्थात् वसन्त या शरदमें। स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे भी यही दिन उत्तम हैं। इन दिनों खटमल-पिस्सू भी नहीं होते। पर कोशिश करनेपर भी हम इन दिनोंमें अपनी यात्राके लिए न निकल पाए। १० जून, १९४५ को हम रवाना हुए। साथमें दो बालक और एक नौकर था। रास्तेमें हम ३ दिन सोलन ठहरे। पर पाठकोंको सोलनका वर्णन देकर हम ठगेंगे नहीं। यों सोलनकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं; पर हमारा यह पड़ाव व्यक्तिगत आकर्षणसे अना-यास बना था। हमारी यात्राका ठीक प्रारम्भ तो शिमलासे ही शुरू होता है।

शिमलामें हम चार दिन रहे। इस बीच हमने सब आव-श्यक तैयारी कर ली और शिमला भी खूब देखा। शिमलामें शाम होते ही मालपर कुछ ऐसी धूमधाम होती है कि जिसे देखे बिना नहीं रहा जा सकता। प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरेका मन लुभानेके लिए मानो खूब सज-धजकर शाम होते ही अभिसारके लिए निकल खड़े होते हैं। 'रिज'के ऊपर बैठकर सूर्यास्त दिव्य दिखाई देता है। शिमलेके ५-६ बाज़ार एक दूसरेके नीचे सीढ़ी-दर-सीढ़ी इस तरह आबाद हैं, जैसे पहाड़ोंमें खेत होते हैं। शिमला जानेवालेको एक दिन सुबह उठकर 'जाखू राउण्ड'को ज़रूर सैर करनी चाहिए--अर्थात् पश्चिममें बसे छोटे शिमलेमें उतरकर सिंजौली और सिंजौलीसे मुख्य सड़क लेकर वापस शिमला पहुँचना चाहिए। ६ मीलका यह चक्कर थोड़ी देरके लिए हमें इस बातको भूलनेका अवसर देता है कि शिमला पंजाब और भारत-सरकारकी महज़ राजधानी है और यहाँ अधिक संख्या कुलियोंकी है। इसी रास्तेमें 'लवर्स पार्क' है, जिसका नाम ही उसका सबसे बड़ा परिचय है। शिमलाके दक्षिणमें सरकारी दफ़्तरोंके पाससे होकर एक सड़क वाइसराय-भवन और 'समर हिल' तक चली जाती है। बस, संक्षेपमें यही शिमला है। पर शिमलाकी सबसे सुन्दर झाँकी रातको दिखाई

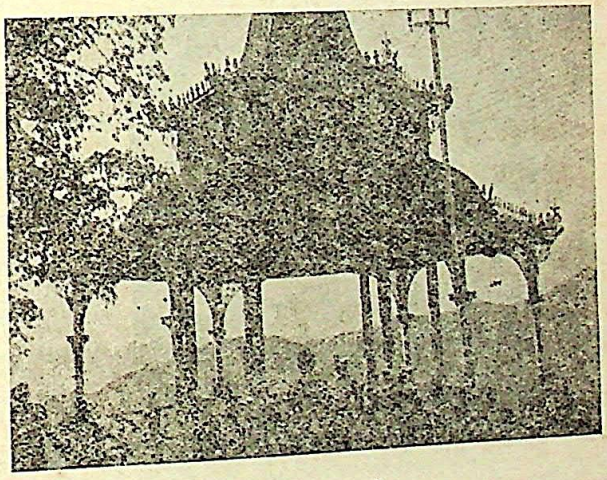

शिमलाका बैण्ड-स्टैण्ड

देती है। दूर-दूर तक शिमला और उसके उपनगर बिजलीसे जगमगाकर एक अद्भुत रोमांसकी सृष्टि करते हैं। पेड़ोंके बीचो-बीच बिजलीकी बत्तियाँ ऐसी दिखाई देती हैं, जैसे मुग्ध होकर जुगनू टिमटिमाना छोड़कर जहाँके तहाँ खड़े हो गए हैं।

शिमलासे १८ जूनको प्रातःकाल हमने मसूरीके लिए पैदल प्रस्थान किया। सरदार दलजीतसिंह एस० डी० ओ० के सौजन्यसे रास्तेके लिए खच्चरोंका इन्तज़ाम ठीक ढंगसे हो गया था। हमारा पहला पड़ाव फागू था। यह शिमलासे १२ मीलपर है और क्योंथल रियासतके अन्तर्गत एक बस्ती है। वास्तवमें शिमलासे मसूरीके रास्तेका वर्णन एक तरहसे उन छोटी-छोटी रियासतोंका ही वर्णन है, जिन्हें 'शिमलाकी पहाड़ी रियासतें' कहा जाता है और जिनके राजाओंकी आमदनी ५०) मासिकसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेकर २५०००) मासिक तक है। क्योंथल रियासतकी आबादी पन्द्रह हज़ार और वार्षिक आय अस्सी हज़ार रुपए है। शिमलासे चलते ही दो-ढाई मीलपर सिंजौलीका क़स्बा कोटी रियासतमें है। शिमलाके इतना समीप होनेके कारण इसकी आय, क्षेत्रफल थोड़ा होनेपर भी, एक लाख तक जा पहुँची है। फागूमें एक सुन्दर डाकबँगला है। कुल्लू और काश्मीरके रास्तोंमें भी डाकबँगले हैं; पर वे इतने सुन्दर और सुव्यवस्थित नहीं, जितने इधरके हैं। डाकबँगलोंमें ३) एक रातके लिए एक व्यक्ति या एक दम्पतिसे लिया जाता है और १४ सालसे कम उम्रके बच्चे निःशुल्क ठहरते हैं। फागूके रास्तेमें शिमलासे ८ मीलपर कुफ़रीका एक छोटा-सा पड़ाव है। हमने सुबहका भोजन यहीं किया, जो पहली रातको बनाकर रख लिया गया था। लम्बे सफ़रको रोज़ाना तय करनेवालेके लिए १२ या १५ मील प्रतिदिनकी चाल बहुत काफ़ी है, और यह दूरी बहुत सुबह ७ या अधिक-से-अधिक ८ बजे चलकर तय करनी

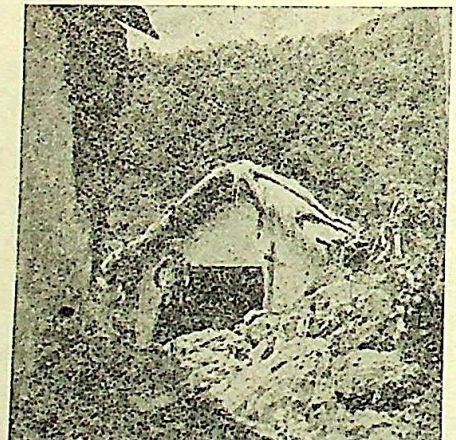

पहाड़ी दामनमें एक गूजरक झोंपड़ा

चाहिए। साधारणतया १२ मीलके लिए चार घंटे काफ़ी हैं। पर चूँकि हम पूरा काफ़िला बनाकर चल रहे थे, इसलिए ८-९ मीलपर आम तौरपर हम ठहरकर भोजन कर लेते थे और २-३ घंटे आराम करके फिर ३-४ मीलका सफ़र तय करते थे।

फागूसे हमारा अगला पड़ाव मनियाना था। आज हमें १६ मील चलना था। यों फागूसे ६ मीलपर एक सुन्दर पड़ाव थ्योग है; पर केवल ६ मील चलकर ठहर जाना हमें अच्छा नहीं लगा। यों थ्योग एक बड़ा महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। शिमलासे ऊपर किसी भी ओर जाइए, थ्योग बीचमें पड़ता ही है। यहाँसे एक रास्ता कोटखाई होकर सीधा जुब्बल जा निकलता है। इस रास्तेसे जाकर हम ३० मील बचा सकते थे; पर नारकण्डाकी तारीफ़ हमने बहुत सुन रखी थी, अतः थ्योगसे हमने मतियाना, नारकण्डा और बागी होकर जुब्बल पहुँचना तय किया। थ्योग स्वयं एक रियासत है और थ्योगकी बस्ती ही रियासतका हेड क्वार्टर है। इसे 'राजधानी' कहना तो एक कवित्वहीन अत्युक्ति होगी। इस रियासतकी कुल आबादी साढ़े सात हज़ार और सालाना आमदनी २२ हज़ार रुपए है। थ्योग सिमकोटके आसपास आलूके व्यापारका सबसे बड़ा केन्द्र है और हर साल क़रीब एक लाख मन आलू यहाँसे शिमला जाता है, और शिमला पहुँचनेवाले कुल आलूका एक-तिहाई है। यहाँ एक डी० ए० वी० मिडिल स्कूल भी है, जिसके हेडमास्टर लाला दुनीचन्द्र हमारे पहुँचनेपर अपनी हजामत अधूरी छोड़कर हमारे प्रश्नोंका प्रेमपूर्वक उत्तर देते रहे। थ्योगके राजा साहब ठाकुर कर्मचन्द्रजी सैंजमें रहते हैं, जो मुख्य रास्तेसे ज़रा हटकर थ्योग के पश्चिममें ३ मीलपर है।

थ्योगसे आगेका रास्ता काफ़ी सुन्दर है। रास्तेमें मटरके खेत हैं, जिनका लाभ उठानेके लिए ज़रा-सी हिम्मत काफ़ी है। पहाड़िनें देख भी लें, तो हँस-भर देती हैं, जो सेंतमेंतमें एक दूसरा लाभ है! पर पहाड़ियोंसे ज़रा होशियार रहना चाहिए, क्योंकि वे मूल और सूद दोनोंका नशा खट्टा करनेके आदी हैं। मतियाना हम ज़रा देरसे पहुँचे और १६ मील चलकर आनेके कारण हम ज़रा थक भी गए थे। मनियाना भी क्योंथल रियासतमें ही है। डाकबँगलेके पास ही पानीका नल है, अतः और पड़ावोंकी तरह यहाँ हमें पानीकी दिक़त नहीं हुई। यों सिर्फ़ वर्षा-ऋतुके इन पहाड़ोंमें पानीकी बड़ी दिक़त रहती है, क्योंकि काश्मीरकी तरह पानीके क़ुदरती मीठे चश्मे या नदी-नाले इधर नहीं हैं। अतः इस ओर यात्रा करनेवालेको एक बड़ी थरमस बोतल अपने साथ ज़रूर रखनी चाहिए। इधरके घने जंगलोंके दृश्य काश्मीरके बहते जलोंसे मुक़ाबला करनेकी हिम्मत ज़रूर कर सकते हैं। दूर-दूर तक एक-दूसरेके ऊपर फैली हुई खेतोंकी सीढ़ियाँ और उनके ऊपरके घने जंगल ऐसे मालूम होते थे, जैसे मानवीय शक्तिकी सीमा दैवी शक्ति हो।

२० जूनको प्रातः ८ बजे हम मतियानासे नारकण्डाके लिए रवाना हुए। नारकण्डा ९००० फ़ीट ऊँचा है और मतियानासे ११ मीलपर है। ११ मीलका यह मार्ग अद्भुत है। चढ़ाई होनेपर भी एकदम सीधी नहीं है और भले आदमीकी मित्रताकी तरह यह सड़क अनजाने और आनायास हमें ऊँची चोटीपर पहुँचा देती है। नारकण्डा हम १२ बजे पहुँच गए। बहुत हुए सामनेकी ओर पूर्वमें सतलुज-घाटी है, जहाँ सतलुज नदी न दिखाई दे सकनेके कारण अपूर्व उत्कण्ठा जाग्रत करती है। नारकण्डासे एक मार्ग लूटी और बनजार होकर कुल्लूको निकल जाता है। कुल्लू यहाँसे ८३ मील दूर है। सोचा, इधरसे कुल्लू ही निकल चलें; पर यह सोचना चित्रपटके विश्राम-संगीतकी तरह

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रतीरंजक होनेपर भी असंगत ही था। नारकण्डा कुम्हारसेन रियासतमें है। इस रियासतकी आबादी ३० हज़ार और वार्षिक आय लगभग ६० हज़ार रुपए है। यहाँ एक डाकबँगला है और साथ ही रियासतका रेस्ट-हाउस भी। रेस्ट-हाउसका किराया कुछ कम है और आराम भी उतना नहीं है। इसके

पहाड़ी प्रदेशकी एक स्त्री

सिवा एक होटल भी है, जिसका नाम 'समर हाउस' है। पहले कभी, शायद पिछले महायुद्धमें, यह एक जर्मनकी कोठी थी। अब भी इसमें उस ज़मानेकी एक टूटी-फूटी आलू पीसनेकी चक्की लगी है। कुल मिलाकर नारकण्डा एक सुन्दर स्थान है और हमारे अब तकके सभी पड़ावोंकी अपेक्षा हमें अधिक आकर्षक जान पड़ा। अब तक शिमलासे यहाँ तक हम तिब्बत रोडपर चल रहे थे। मसूरी जानेवालेको यह सड़क नारकण्डामें छोड़कर आगे चली जाती है। तिब्बत यहाँसे कुल १५२ मील ही है।

मसूरी जानेके लिए थानाधार जाना आवश्यक नहीं, फिर भी ११ मीलका सफ़र तय करके हम २१ जूनको थानाधार पहुँचे। बरसोंसे सुन रखा था कि हिमालयके इस सुरम्य अंचलमें अमरीकासे एक ईसाई यात्री आध्यात्मिक शान्तिकी खोजमें इधर आया था और अब स्टोक्ससे अपना नाम सत्यानन्द रखकर वह हिन्दू हो गया है। हमें इस यात्रीके साकार स्वप्नोंकी झाँकी लेनी थी, अतः हम थानाधारकी तरफ़ हो लिए। (यों कोई मसूरीका यात्री इधर न आना चाहे, तो उसे १२ मीलकी बचत हो सकती है। नारकण्डासे उसे सीधे बागी निकल जाना चाहिए, जो केवल १० मील है।) थानाधार शिमला इलाकेमें है और कोटगढ़ तहसीलकी एक छोटी-सी बस्ती है। यह मुख्य सड़कपर ही स्थित है। कोटगढ़ सड़कसे ढाई मील नीचे एक पगडण्डीपर है। यहाँ एक डाकबँगला और पी० डब्लू० डी० का रेस्ट-हाउस भी है। रेस्ट-हाउसमें सिर्फ १) रोज़ किराया देना पड़ता है और वह काफ़ी अच्छा है। नारकण्डासे थानाधारका रास्ता अत्यन्त सुहावना है। २००० फ़ीटकी निचाईपर होनेके कारण थानाधार तक दौड़ लगाकर आसानीसे आया जा सकता है। पहली बार मार्गमें हमें २-३ पानीके छोटे-छोटे झरने मिले। हमारा नौकर सौभाग्यसे पहाड़ी था, अतः अनेक जंगली फलोंके स्वादका परिचय उसकी बदौलत हमें मिलता रहा। काले रंगके छोटे-छोटे पीलुके-से फल सोलनसे ही हम खाते आ रहे थे, जिन्हें 'करुयल' कहते हैं। उसी आकारके पर लाल रंगके फल, जिन्हें पहाड़ी लोग 'कालचे' कहकर पुकारते हैं, इस रास्तेमें हमें बहुत खानेको मिले। स्ट्रावेरीकी शक्लके पर स्वादमें उससे घटिया लाल-लाल फल 'कैफल' और 'ईंशुल' इस मार्गके मीठे पुरस्कार हैं। जब हम हर रोज़ आलू खा-खा कर तंग आ चुके थे, तो एक दिन हमारा नौकर न-जाने कहाँसे एक पहाड़ी सब्ज़ी ढूँढ़कर लाया, जिसका नाम उसने हमें 'लिंगुर' बताया। पंजाबमें चौलाईका साग तन्दूरकी रोटीके साथ खानेमें जो स्वाद आता है, क़रीब-क़रीब वही स्वाद हमें लिंगुरके साग और पराठोंमें आया।

थानाधार पहुँचकर पता लगा कि ठाकुर सत्यानन्द (मि० स्टोक्स) शिमला गए हैं और २३ जूनकी शामको वापस आयँगे। इसका मतलब यह था कि हम २३ को यहाँसे न चल सकेंगे और अपने प्रोग्राममें एक दिनका विलम्ब करना पड़ेगा।

नारकण्डासे सतलुज-घाटीका दृश्य

यद्यपि हम अपने प्रोग्रामका बड़ी सख्तीसे पालन करते आ रहे थे; पर जिस व्यक्तिसे मिलनेकी उत्सुकता हमें इतनी दूर खींच लाई थी, उसके लिए एक दिनकी देर हमें सहनी ही पड़ी। सत्या-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नन्दजीकी अनुपस्थितिमें ही हमने उनका बहुत-सा परिचय हासिल कर लिया। आजसे कोई ४० साल पहले ये सज्जन अमरीकासे साधु-वेशमें भारत आए थे और आध्यात्मिक शान्तिकी खोजमें इन पहाड़ोंमें भटकते रहे। सन् १९३१ में ये हिन्दू हो गए और संस्कृत व हिन्दीका इन्होंने अध्ययन शुरू किया। अब इन्हें गीता, उपनिषदों और वेदान्तसे खासा परिचय है और नित्यकर्मी हिन्दूकी भाँति सात्त्विक जीवन व्यतीत करते हैं।

अगले दिन सत्यानन्दजी शिमलासे लौट आए और हमें अपने साथ उस हवनशालामें ले गए, जो ५-६ हज़ार रुपएकी लागतसे तैयार हुई है। चारों ओर लकड़ीके अक्षर काटकर गीताके अनेक श्लोक व वेद-मन्त्र बड़ी सुरुचिके साथ लिखे गए हैं और बीचमें हवनकुण्ड खुदा है। शामको उनके साथ बैठकर हमने संध्या की और उसके बाद उन्होंने अपनी पुस्तक 'पारिवारिक उपासना' बड़े प्रेमसे हमें भेंट की। सत्यानन्दजी एकदम खादीके लिबासमें रहते हैं। पिछले सत्याग्रह-आन्दोलनमें ६ मासके लिए आप लाहौर सेंट्रल जेलमें ब्रिटिश सरकारके मेहमान भी रह आए हैं। सुबह चलनेसे पहले हमें वे अपनी लाइब्रेरी ले गए, जिसके ऊपर शीशेके फ्रेममें लिखा है—

(होइ विवेक, मोह-भ्रम भागा।)
अस विचार नहिं कर जिय रोषु।
बादि काहु नहिं दीजिय दोषु।
मोह-निशा सब सो बनि हारा।
देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा।

हमें उनकी सूझ और सुरुचिका क़ायल होना पड़ा। कुछ ऊपर नग्गरमें रूसी साधक श्री निकोलस रोरिकके यहाँ भी हमने इसी तरहके एक साधकको कला-साधनाके स्वप्नको चरितार्थ होते देखा था; पर उनकी कलामें एक प्रौढ़ता और आतंक था, जब कि सत्यानन्दजीके आश्रमकी सात्विक सादगी ही सबसे बड़ी और ऊँची कला है। हम उनके आश्रममें तीन दिन रहे और हृदयपर उनका गहरा प्रभाव तथा उनके दिव्य प्रेमकी छाप लेकर वहाँसे आगे चल दिए। (क्रमशः)

गांधी-योजना

श्री महादेव साहा

हिन्दुस्तानकी आर्थिक उन्नतिके लिए आज देशके सामने तरह-तरहकी योजनाएँ उपस्थित की जा रही हैं। इन योजनाओंके उपस्थित करनेवालोंमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें, देशी पूँजीपति-वर्ग, देशी रियासतें, रायवादी और गांधीवादी प्रमुख हैं। इनमें से सभी अपनी-अपनी योजनाओं द्वारा जनताको बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधा रहे हैं। आज देशमें इन योजनाओंपर काफ़ी चर्चा चल रही है। यह आशाकी बात है। गांधी-योजनाको गोविन्दराम सेकसरिया कामर्स कालेज, वर्धाके प्रिंसिपल श्रीमन्नारायण अग्रवालने गांधीजीके आशीर्वादके साथ जनताके सामने रखा है। इसकी भूमिकामें उन्होंने विभिन्न देशी तथा विदेशी योजनाओंकी चर्चा की है और उनकी त्रुटियाँ दिखाते हुए लिखा है कि पश्चिमकी पूँजीवादी या समाजवादी किसी भी योजनाकी नक़ल करनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। हमें ऐसी 'देशी' योजना तैयार करनी होगी, जिसकी बुनियाद हमारे देशके अन्दर हो। उनका कहना है कि यह बुनियाद है घरेलू उद्योग-धन्धोंपर आधारित मानवता, न्याय, शान्ति और सहयोग-सम्पन्न ग्राम-पंचायतें (पृष्ठ २)।

विभिन्न योजनाओंके सिद्धान्तोंकी आलोचना करते हुए लेखकने लिखा है कि सभी अपनी योजनामें दुनियाके लोगोंके सभी दुःखोंको दूर करनेका दम भरते हैं। इसके बाद उन्होंने एक-एक करके फ़ाशिस्त प्लैन, न्यू डील, ब्रिटिश प्लैन और सोवियत् प्लैनकी धज्जियाँ उड़ाई हैं। सोवियत् प्लैनके बारेमें उनका कहना है कि यद्यपि इसने वहाँकी जनताके हन-सहनको काफ़ी ऊँचा किया है; पर इसने उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता छीन ली है। नात्सी जर्मनीने अपना प्लैन सिर्फ़ लड़ाईकी तैयारीके लिए बनाया था। न्यू डील अस्थायी रूपसे संयुक्त-राज्यकी आर्थिक अव्यवस्थाको दूर करनेके लिए बना था और बीवरिज-प्लैन उपनिवेशोंकी लूटके बलपर ब्रिटिश जनताको सुरक्षित करना चाहता है (पृ० ४)।

श्री अग्रवाल लिखते हैं कि 'जीवनका मान ऊँचा करना, अधिक सम्पन्नता लाना या आमदनी दूनी कर देना आदि ही किसी योजनाके लिए काफ़ी नहीं है। उसमें कांग्रेस नेशनल प्लैनिंग कमेटीके अनुसार जीवनके सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और मानवीय रुखको भी शामिल करना चाहिए।' श्री अग्रवाल हिन्दुस्तानमें गांधीजीकी 'सादगी, अहिंसा, परिश्रमकी पवित्रता और मानवीय मूल्यों'—इन चार चीज़ोंपर आधारित एक योजना चलाना चाहते हैं। गाँवोंमें इसका आधार ग्राम-पंचायतें होंगी। इनके बारेमें विद्वान लेखकने लिखा है कि ये पंचायतें अति प्राचीन कालसे हमारे देशमें चली आ रही हैं। इनमें आदर्श जनतन्त्रका राज्य था। ये मशीनोंकी बुराइयोंसे मुक्त थीं। साम्राज्योंके उत्थान-पतनके बीच भी ये ज्यों-की-त्यों बनी रहीं। इनमें उत्पादन स्थानीय वितरणके लिए होता था। जनताकी खुशहालीके बारेमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लेखकने मेगास्थनीज़, हुएनसांग, फ़ाहियान आदिके हवाले दिए हैं।

आइए, ज़रा इन ग्राम-पंचायतोंकी ओर नज़र डालें। हिन्दुस्तानमें प्राचीन साम्यवादका कोई इतिहास नहीं मिलता है। वैदिक कालसे ही समाज वर्गोंमें विभक्त था। हेनरी मेइनने पिछली शताब्दीमें यूरोपीय इतिहासका अनुकरण करके हिन्दुस्तान में ग्राम-साम्यवादकी बात लिखी। लेकिन अब कोई भी गम्भीर विद्वान मेइनके कथनकी सचाईपर विश्वास नहीं करता। उनके इस मत को अधिकारी विद्वानोंने खोखला सिद्ध कर दिया है। वैदिक समाजमें राजा, पुरोहित, योद्धा और व्यक्तिगत सम्पत्ति आदि विभिन्न प्रतिष्ठान दिखाई पड़ते हैं। ऋग्वेदमें भी ग़ुलामोंका कई स्थानपर उल्लेख मिलता है। वे दानमें भी दिए जाते थे।[1] उन दिनों ग़ुलामी एक सर्वस्वीकृत प्रथा थी।* इसी समाजमें महाकुल और मघवन-जैसे धनी-वर्ग भी थे। वैश्यों और खेतीबारीमें लगे हुए स्वतन्त्र शूद्रोंको हम क्षत्रिय शासकोंकी लूट-खसोटसे बचनेके लिए अपना संगठन बनाते देखते हैं। ऋग्वेदमें उल्लिखित है कि बनिए धन-लिप्साके लिए विदेशोंको जहाज़में माल भेजा करते थे।[2] चीज़ोंकी दरें ऊँची रखनेके लिए भी कई व्यापारियोंके मिलकर अपना संगठन बनानेकी भी बात मिलती है। तत्कालीन समाजमें दुर्भिक्षोंके भी कई दृष्टान्त इसी वेदमें मिलते हैं।[3] देवताओंसे दुर्भिक्ष दूर करनेके लिए कई प्रार्थनाएँ मिलती हैं।[4] भिखमंगोंका भी काफी उल्लेख मिलता है।[5]

मेगास्थनीज़ने ग़लतीसे लिख दिया था कि उसके कालके पहले हिन्दुस्तानमें कभी अकाल नहीं पड़ा था।[6] लेकिन यह बात भी झूठी है। वेदोंके अलावा बौद्ध साहित्यमें भी अनेक स्थानों--काशी, कलिंग, कोशल—में अकालोंका ज़िक्र आया है। बौद्ध कालमें भी ऋग्वेद-कालीन उपर्युक्त सभी बातें और बड़े पैमानेपर दिखाई पड़ती हैं। इस कालमें दास गर्भदास, क्रीतदास, भक्तदास आदि कई प्रकारके हो गए थे।[7] उनकी हालत पशुओंसे भी बदतर थी। उनपर तरह-तरहके ज़ुल्म होते थे। श्री अग्रवालके साम्यवादी जनपदोंमें उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। वहाँ मत देनेका अधिकार दासोंको नहीं था। यह बात सच है कि दास पैसेसे अपनी स्वतन्त्रता खरीद सकते थे और ग़ैरदास भी दासताको प्राप्त करते थे। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदिके कालोंमें भी उपर्युक्त बातें और व्यापक रूपमें प्रचलित थीं।

बौद्ध कालीन भारत तथा सोलह महाजनपदोंके युगमें भी उत्पादन स्थानीय लोगोंके प्रयोजनके लिए ही नहीं होता था। ऋग्वेद-कालमें वैदेशिक व्यापारका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। अब बौद्ध युगकी बात लीजिए। इस युगमें देशव्यापी और समुद्र से वैदेशिक व्यापार भी होता था।[8] याद रखिए, यह व्यापार ऐसे विशाल जहाज़ोंमें होता था, जिनकी लम्बाई ११२० हाथ, चौड़ाई ५६० हाथ और गहराई १४० हाथ थी। श्रीमती रीश डेविड्स (Buddhist India) तथा रैपसन (Cambridge History of India) आदिने भी इस बातको मान लिया है। बबेरू जातकमें पश्चिमी एशियासे व्यापारकी बात लिखी हुई है। हेरोडोटसने लिखा है कि बाबुल हिन्दुस्तानसे कुत्ते और मूल्यवान जवाहरात ले जाता था।[9] हंसा-लीग, यूरो-अमरीकाके बड़े-बड़े सिण्डीकेट, कार्टेल, कार्पोरेशन आदि इजारेदार तो आजके औद्योगिक युगमें ही सम्भव हैं; पर इनके प्राचीन संस्करणोंका निदर्शन भी हमें चुल्लक श्रेष्ठी, सुप्पारग, जरूदपन आदि जातक-कथाओंमें मिलता है। ५६० ई० पू० में ईरानी दरायुस आक्रमणकारीको क्षत्रपोंने क़रीब दो करोड़ रुपए दिए थे।[10] ईसाकी पहली सदीमें हिन्दुस्तानमें दुनियाके सोनेका बहुत बड़ा हिस्सा एकत्रित हो गया था। रोम और भारतके व्यापारसे हर साल हिन्दुस्तानमें वहाँसे काफ़ी सोना आता था। इसे देखकर रोमन इतिहासकार प्लिनी (ईसाकी पहली शताब्दी) चिल्ला उठा था। बादके कालोंमें भी ग्राम-पंचायतोंकी लगभग यही 'आदर्श' स्थिति जारी रही!

अपनी योजनामें लेखकने प्राचीन ग्राम-पंचायतोंका बड़ा ही भव्य चित्र लोगोंके सामने उपस्थित करनेके लिए कितने ही विद्वानोंके उद्धरणोंकी झड़ी-सी लगा दी है। लेकिन उन्होंने तमगेका एक रुख ही लोगोंके सामने रखा है। इसलिए अपने पक्षके समर्थनके उत्साहमें उन्होंने भारतीय इतिहासकी काफ़ी तोड़-मरोड़ की है और बहुतसे लेखकोंके साथ अन्याय भी किया है। इतिहासका सामान्य विद्यार्थी भी जानता है कि आदि-काल में लोग गँवार और जंगली थे तथा पहाड़ों, पेड़ों और गुफ़ाओं आदिमें आश्रय लेते थे। उनके पाप, शोक, अभाव, मृत्यु आदिसे परे तथा स्वर्ग-सुख भोगने और स्वर्ण-युगमें रहनेकी बात कोरी कवि-कल्पना है।[11] यहाँ मैं लेखकके सिर्फ़ एक ऐसे उद्धरण

---

१. ऋग्वेद—७।८६।७; ८।१९।१३; ८।१९।३६ और अथर्व० १२।६।१३; १२।४।९।

* U. N. Ghoshal: The Beginings of Historiography and other Essays; p. 86.

२. १।४८।३। ३. ३।५३।१५। ४. ३।८।२; ८।१८।११। १०।४२।१०। ५. १०।११७।३; १०।११७।४।

6 McCrindle: Ancient India As Described by Megasthenes; p. 82.

७. देखिए, जातक-कथाएँ, मज्झिमनिकाय, धम्मपद आदि।

८. देखिए, जातक, बौधायन धर्मशास्त्र, पाणिनी आदि।

9 McCrindle: Ancient India As Described in Classical Literature; Vol. II, p. 487.

10 Rawlinson's Herodotus.

11 Vincent Smith: Oxford History of India; p. 1.

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का उल्लेख करना चाहता हूँ। लेखकने कार्ल मार्क्सके 'कैपिटल' से ग्राम-पंचायतोंके विषयमें एक उद्धरण दिया है। पर मार्क्सने इनके बारेमें और क्या कहा है, इसे उन्होंने उद्धृत नहीं किया है। करते भी कैसे? ऐसा करनेसे तो उनके सपनेका भव्य महल ही ढह जाता!

इस बातको भारतीय इतिहासका प्रत्येक पाठक जानता है कि अंगरेज़ साम्राज्यवादियोंके आनेके बादसे ग्राम-पंचायतें तोड़ी जाने लगीं। ब्रिटेनकी उन्नत उत्पादन-पद्धतिके सामने ये कैसे टिक सकती थीं? इन्हें साम्राज्यवादियोंने बड़ी बर्बरता और निष्ठुरताके साथ बर्बाद किया। कार्ल मार्क्सने अंगरेज़ साम्राज्यवादियोंके अपने स्वार्थके लिए ग्राम-पंचायतें तोड़नेके सिलसिलेमें किए गए ज़ुल्मोंकी कड़ी निन्दा की है। पर साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि इतिहासकी अग्रगतिके लिए इनके टूटनेकी ऐतिहासिक ज़रूरत भी थी। इस सम्बन्धमें उनका निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है :—

"पुराने ढर्रेके ये सामाजिक अंग, जो अधिकतर मिट चुके हैं और शेष तेज़ीसे मिट रहे हैं, अंगरेज़ कर बटोरनेवालों और अंगरेज़ सिपाहियोंके क्रूर हस्तक्षेपके कारण इतने नहीं भंग हुए हैं, जितने कि अंगरेज़ोंके यहाँ भाफ़के प्रचलन और अबाध व्यापारके कारण।...अंगरेज़ोंके हस्तक्षेपने लंकाशायरके कातनेवालों और बंगालके बुनकरोंपर समान रूपसे प्रभाव डाला है। सच पूछा जाय, तो उसने भारतके कातने-बुननेवालोंको मिटाकर और इन अर्ध-सभ्य तथा अर्ध-बर्बर जातियोंके अर्थनीतिक आधारोंको ध्वस्तकर एशियामें सबसे बड़ी सामाजिक क्रान्ति की। इस प्रकार अनेक उद्योग-धन्धोंके विनाश और इन निर्जीव सामाजिक संगठनोंके विघटनपर—जिसमें लोगोंको अपनी सामाजिक परम्परा और जीविकाके पंतृक साधनोंसे वंचित होना पड़ा—बहुतोंको पश्चात्ताप होना स्वाभाविक है; पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कवि-कल्पनाकी ये ग्राम-पंचायतें चाहे जितनी भी निर्जीव क्यों न रही हों, इनका ठोस आधार पौर्वात्य स्वेच्छाचारिता ही रहा है, जिसने मानव-मस्तिष्कको यथासम्भव छोटे-से-छोटे घेरेमें ही आबद्ध रखकर अन्ध-विश्वासका हथियार और परम्परागत रूढ़ियोंका गुलाम बनाया और इस प्रकार उसे ऐतिहासिक शक्तियों तथा गौरवसे वंचित रखा। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि किसी अभागे भूखण्डपर केन्द्रित बर्बर अहम्मन्यताके कारण ही साम्राज्योंका विनाश हुआ, जनताको अकथनीय क्रूरताओंका शिकार बनना पड़ा, नागरिकोंका सामूहिक वध हुआ और इस प्रकार उसे स्वयं किसी भी आक्रमणकारीका ग्रास बनना पड़ा। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारतमें इस परोक्ष रूपसे पशुवत्, गौरवहीन, अवरुद्ध और उद्देश्यहीन जीवनने विनाशकी असीम एवं अनियन्त्रित शक्तियोंको प्रोत्साहित कर हत्याओंको धार्मिक कृत्यका रूप दे दिया। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि ये छोटी-छोटी पंचायत जाति-भेद और दासताकी विषमतासे ग्रस्त थीं; मनुष्यको बाह्य परिस्थितियोंका स्वामी बनानेके बजाय उसे उनका दास बना देती थीं; एक स्वविकासशील सामाजिक स्थितिको अपरिवर्त्तनशील स्वाभाविक प्रारब्ध बना देती थीं और इस प्रकार प्रकृतिके स्वामी मनुष्यको उसका क्रीतदास बना देती थीं। उनका यही मानव हनूमान और सबला (शायद कपिला) गायके सामने घुटने टेककर पूजा करता है।

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि अंगरेज़ोंने बड़े नीच स्वार्थोंसे प्रेरित होकर तथा बड़ी शठतापूर्वक उन्हें कार्यान्वित करके ही हिन्दुस्तानमें यह सामाजिक क्रान्ति की थी; पर असली सवाल यह नहीं है। प्रश्न तो यह है कि क्या एशियाकी सामाजिक स्थितिमें मूलभूत क्रान्ति हुए बिना मानवता अपने लक्ष्यपर पहुँच सकती है? यदि नहीं, तो इंग्लैण्डका दोष कुछ भी क्यों न हो, वह उस क्रान्तिको लानेका अचेतन ऐतिहासिक उपकरण ही रहा है। अतएव उस पुरानी दुनियाके विनाशसे हमारी व्यक्तिगत भावनाओंको कितनी ही ठेस क्यों न पहुँचे; किन्तु हमें भी गेटेके शब्दोंमें यह कहनेका ऐतिहासिक अधिकार है कि यदि यह यंत्रणा हमें अधिक आनन्द देती है, तो यही हमारे लिए श्रेयस्कर है।"[12]

लेखकने प्राचीन भारतको ग्राम-पंचायतोंकी 'आदर्श गणतंत्र' बतलाते हुए उनकी तुलना यूनानके प्राचीन नगर-राज्योंसे की है और कहा है कि वे अपना आन्तरिक शासन आसानी और शान्तिसे करती थीं। 'सबसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें सब लोगों द्वारा तय की जाती थीं और अन्याय तथा धोखेकी कोई गुंजाइश नहीं रहती थी' (पृष्ठ ३३)। लेखकका यह कथन न सिर्फ़ सुविदित ऐतिहासिक तथ्योंके सर्वथा प्रतिकूल ही है, बल्कि उनके महान इतिहास-ज्ञानका परिचायक भी। यह हम ऊपर बता आए हैं कि वैदिक समाजमें ही वर्ग-भेद और भीषण वर्ग-संघर्ष पूरे ज़ोरोंके साथ चल पड़ा था। बेगार, भीख माँगना, सूदखोरी और लूट-खसोट उन दिनों काफ़ी ज़ोरोंपर थे। एक वर्ग दूसरे वर्गपर अपनी श्रेष्ठता आरोपित करनेके लिए सभी तरहके उपाय काममें लाने लगा था। तैत्तिरीय-संहिता (२; ५, १०, १ आदि), मैत्रयानी-संहिता (४, ३, ८) और वाजसनेयी-संहिता (२१; २१) ने राज्यन्यों (क्षत्रियों) का ब्राह्मणोंपर और ब्राह्मणोंका राज्यन्योंपर अपनी श्रेष्ठता आरोपित करनेके लिए लड़ने और जनताका जागीरदारोंसे संघर्षका उल्लेख है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-संघर्षका ब्राह्मण-पक्षीय वर्णन रामायणमें और क्षत्रिय-पक्षीय वर्णन जैन ग्रन्थों (हरिवंश, सुभौमचरित आदि) में मिलता है। रही आन्तरिक शासनकी शान्ति और आसानीकी बात, सो ब्रह्मगामी

12 Karl Marx: The British Rule in India; *New York Daily Tribune*, June 25, 1853.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मजया और शतरुद्रीय स्तोत्रोंसे यह स्पष्ट है कि उस कालमें क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ और गौएँ छीन ले जाया करते थे। धोखे और अन्यायके उदाहरणोंसे तो इन समयोंका इतिहास भरा पड़ा है।

भारतीय ग्राम-पंचायतोंकी तुलना यूनानके नगर-राज्योंसे करते हुए लेखकने लार्ड ब्राइसके आधारपर कहा है कि नागरिक ही वहाँ सारी बातोंका फैसला करते थे। पर उन्होंने शायद यह जाननेकी चेष्टा नहीं की कि उन दिनोंके वे नागरिक होते कौन थे? पहली बात तो यह है कि दक्षिणी यूनानको छोड़कर शेष यूनानमें नगर-राज्य नहीं थे। दूसरे इन राज्योंके नागरिक भी केवल हेलेनिक जातियोंके लोग ही हो सकते थे, उनके गुलाम नहीं; जब कि तत्कालीन यूनानकी सभ्यताका भव्य महल इन्हीं अभागोंके रक्त और पसीनेकी नींवपर खड़ा था। शोषण, अन्याय और वर्ग-श्रेष्ठताकी प्रतिस्पर्धा इन राज्योंमें भी थी। (क्रमशः)

स्व० श्रीदेव सुमन

श्री भक्तदर्शन, एम० ए०

स्वाधीनता-हित धीरतासे दूँ झुका जगदीशको;
माँके पदोंमें सुमन-सा कर दूँ समर्पण शीशको।

इसी २५ जुलाईको जिन बलिदानी वीर स्व० श्रीदेव सुमनकी प्रथम वार्षिक निधन-तिथि देशके अनेक स्थानोंमें मनाई गई है, उनकी आन्तरिक भावनाकी प्रतीक कविताकी उपर्युक्त दो पंक्तियाँ हैं, जो उन्होंने अपने कविता-संग्रह 'सुमन-सौरभ' में प्रकाशित की थीं। इन पंक्तियोंमें जननी-जन्मभूमिकी निःस्वार्थ सेवा करने और अपने ऊँचे आदर्शके लिए प्राणों तककी बलि चढ़ा देनेकी जिस पवित्र भावनाका आभास मिलता है, उससे उनका जीवन ओतप्रोत था। हिमालयकी उपत्यकामें बसे हुए टिहरी-गढ़वाल राज्यकी पट्टी बमुण्डके जौल ग्राममें १३ ज्येष्ठ, १९७३ वि० (तदनुसार २५ मई, १९१६ ई०) को सुमनजी का जन्म हुआ। उनके पिता पं० हरिराम बडोनी अपने इलाक़ेमें अच्छे लोकप्रिय वैद्य थे। उनके अन्दर सेवा-भावना इतनी अधिक थी कि सन् १९१९ की गर्मियोंमें जब चारों ओर हैज़ा फैला, तो उन्होंने अपनी जानकी परवाह न करते हुए रोगी ग्रामीणोंकी चिकित्सा की। फल-स्वरूप वे ३६ वर्षकी अल्पायुमें ही हैज़ेके शिकार हो गए। सुमन उस समय क़रीब चार वर्षके थे। साथ ही उनके दो बड़े भाई और एक छोटी बहन भी थी। पर दृढ़-निश्चयी साध्वी माताने धीरज बाँधा और बच्चोंके पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षाका यथाशक्ति प्रबन्ध करती रहीं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सुमनजीने अपने पितासे लोक-सेवा और अपनी मातासे दृढ़-संकल्पके संस्कार पैतृक सम्पत्तिके रूपमें प्राप्त किए।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँवमें ही हुई। फिर कुछ दिनों उन्होंने चम्बाखाल और भोगपुरके प्राइमरी स्कूलोंमें शिक्षा प्राप्त की और सन् १९३१ में टिहरीसे हिन्दी-मिडिल पास किया। तदुपरान्त उन्होंने घरसे एक पैसेकी भी सहायता न लेते हुए देहरादून, लाहौर और दिल्लीमें स्वतंत्र अध्ययन किया। उन्होंने पहले पंजाब-यूनिवर्सिटीकी 'रत्न', 'भूषण' और 'प्रभाकर' और फिर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी 'विशारद' व 'साहित्यरत्न' परीक्षाएँ पास कीं। कुछ दिनों उन्होंने काशी-विद्यापीठमें भी अध्ययन किया। इस प्रकार परिश्रमपूर्वक शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने साहित्यिक क्षेत्रमें पदार्पण किया। बचपनसे ही उन्हें साहित्यके प्रति अगाध प्रेम था। हिन्दी-मिडिल पास करनेके बाद ही देहरादून में उन्होंने छोटी कक्षाओंके बच्चोंके लिए 'हिन्दी-पत्र-बोध' नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित की थी दिल्लीमें उन्होंने सन् १९३५ में

स्व० श्रीदेव सुमन

कतिपय मित्रोंके सहयोगसे श्री देवनागरी महाविद्यालयकी स्थापना की और उसके द्वारा युवक-युवतियोंमें उच्च हिन्दी-साहित्यके प्रति रुचि पैदा करनेका सफल प्रयत्न किया। सन् १९३७ में उन्होंने 'सुमन-सौरभ' नामसे अपनी राष्ट्रीय भावनापूर्ण कविताओंका संग्रह प्रकाशित किया। उन्हीं दिनों कुछ महीनों तक उन्होंने

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साप्ताहिक 'हिन्दू'के सम्पादकीय विभागमें कार्य किया और फिर जगद्गुरु श्री शंकराचार्यके अंगरेज़ी साप्ताहिक 'धर्मराज्य'में भी काम किया। फिर आ गया सितम्बर १९३७ का हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका शिमला-अधिवेशन। उसके कार्यालयाध्यक्षकी हैसियतसे भी उन्होंने खूब योग्यता व परिश्रमके साथ काम किया। उस अधिवेशनके अध्यक्ष तथा हिन्दीके ख्यातनामा पत्रकार श्री बा० वि० पराड़कर उस कार्यके लिए उनकी अभी तक खूब प्रशंसा करते हैं।

सन् १९३७ के जोड़ोंमें उन्होंने वर्धा जाकर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिमें कार्य किया और काका कालेलकरके प्रेम-पात्र बने। कुछ समय बाद वे इलाहाबाद चले आए और वहाँ श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा संचालित हिन्दी-साप्ताहिक 'राष्ट्रमत' के सहकारी सम्पादकका कार्य करने लगे। इस प्रकार साहित्यिक क्षेत्रमें वे आशातीत प्रगति कर रहे थे; पर जनता-जनार्दनकी सेवाके बिना उन्हें चैन कैसे पड़ सकता था? सन् १९३० के नमक-सत्याग्रहके दिनोंमें वे देहरादून गए हुए थे कि सत्याग्रही जत्थोंकी भीड़-भाड़ देखकर वे भी उनमें सम्मिलित हो गए। परिणाम-स्वरूप उन्हें १४-१५ दिन जेलकी रोटी खानी पड़ी और फिर कुछ बेतोंकी सज़ा पाकर रिहा कर दिए गए। इसके कुछ दिनों बाद उन्होंने दिल्लीमें 'गढ़वाल सेवा-संघ' की स्थापना की, जो बादको 'हिमालय-सेवा-संघ' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर उन्होंने गढ़वालके कार्यकर्त्ताओंसे सम्पर्क स्थापित किया। ब्रिटिश गढ़वालमें वे सर्वप्रथम मई, १९३८ में आए, जब कि श्रीनगरमें ज़िला राजनीतिक सम्मेलन हुआ था। उस अवसरपर उन्होंने पं० जवाहरलाल नेहरू और श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितको गढ़वाल-राज्यकी दुर्दशासे परिचित कराया। वहींसे उन्होंने ब्रिटिश व रियासती गढ़वाल दोनोंको एकताका नारा बुलन्द किया और अपने आकर्षक व्यक्तित्व द्वारा सदाके लिए हम सब साथियोंको मोहित कर लिया।

जनवरी, १९३९ में उन्होंने देहरादूनमें 'टिहरी-राज्य-प्रजा-मंडल' को स्थापनामें सहयोग दिया और उसके द्वारा गढ़वाल-राज्यकी मूक व पीड़ित प्रजाकी आवाज़ बुलन्द करनेका प्रयत्न किया। उसी वर्ष फरवरीमें अखिल भारतीय देशी राज्य-लोक-परिषदका जो ऐतिहासिक अधिवेशन लुधियाना (पंजाब) में हुआ था, वे उसमें सम्मिलित हुए और टिहरी तथा अन्य पर्वतीय रियासतोंकी समस्याको सार्वदेशिक रंगमंचपर उपस्थित किया। वहीं वे हिमालय प्रान्तीय देशी राज्योंके प्रतिनिधिके रूपमें लोक-परिषदकी स्थायी समितिके विशेष सदस्य मनोनीत हुए और अन्ततक उस पदपर रहे। इस ज़िम्मेदार व महत्त्वपूर्ण पदको प्राप्त करते समय उनकी आयु सिर्फ़ २२ वर्ष थी। अब वे जमकर पर्वतीय प्रान्तों और विशेषकर पहाड़ी रियासतोंके लिए दिन-रात काम करने लगे। 'हिमालय-सेवा-संघ' के अन्तर्गत उन्होंने 'हिमालय प्रान्तीय देशी राज्य-प्रजा-परिषद' का संगठन किया और उसके द्वारा पर्वतीय जनतामें जाग्रति व चेतना लानेका अथक प्रयत्न किया। इन्हीं दिनों १६ जुलाई, १९३९ को शिमलाके पास ही जब जनताका एक दल धामी-राज्यके महाराजके पास अपनी माँगें पेश करने जा रहा था, तो अचानक निहत्थी जनतापर गोली चलाई गई। सुमनजी फ़ौरन शिमला पहुँचे; घायलोंकी मरहम-पट्टी और सेवा-सुश्रूषाका प्रबन्ध किया और गोलीकाण्डकी जाँच की। जाँच-समितिके अध्यक्ष श्री दुनीचन्द, एडवोकेट, एम० एल० ए० (पंजाब) थे और सुमनजी मंत्री थे। उस जाँच-रिपोर्टके द्वारा उन्होंने शिमलाकी पहाड़ी रियासतों—विशेषकर धामी-राज्य—में होनेवाली मनमानी और धाँधलेका पर्दाफ़ाश कर दिया।

कुछ दिनों बाद सुमनजीको यह स्पष्ट मालूम हो गया कि बाहरसे प्रस्ताव पास करने और वक्तव्य निकालनेसे विशेष कुछ होना-जाना नहीं, इसलिए उन्होंने गढ़वाल-राज्यमें बैठकर काम करनेका निश्चय किया। इस उद्देश्यसे वे पहले लैंसडौन (गढ़वाल) से प्रकाशित 'कर्मभूमि'के सम्पादक-मंडलमें सम्मिलित हुए और उसमें राज्यके बारेमें अनेक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित किए। फिर हिमालय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषदकी ओरसे उन्होंने 'हिमांचल' नामकी एक पुस्तिका प्रकाशित कराके राज्यमें वितरित करवाई। इससे टिहरीके अधिकारी चौंके। अभी तक वे इनकी ओरसे प्रायः उदासीन-से थे; पर जब इन्होंने राज्यके अन्दर जमकर काम करना शुरू किया, तो उनका माथा ठनका। उन्होंने 'सभा-रजिस्ट्री-क़ानून'के अन्तर्गत इनपर भाषण न देने व सभाओंका संगठन न करनेकी पाबन्दी लगा दी। जहाँ कहीं ये जाते, छायाकी तरह पुलिस इनके पीछे चलती। पर सुमनजी अपने उद्देश्यसे विचलित नहीं हुए। वे सारे राज्यमें घूमे और जनतापर छाए हुए आतंकको दूर करनेका प्रयत्न किया। उन दिनोंकी एक मनोरंजक घटना एक मित्रके अनुसार इस प्रकार है—"एक बार रातके ग्यारह बजे एक मित्रीके घरपर सशस्त्र पुलिसने छापा मारा। पुलिसको सूचना मिली थी कि सुमनजी मित्रीके यहाँ लोगोंको भड़का रहे हैं। वहाँ जाकर पुलिस क्या देखती है कि एक रोगिणी भूमिपर पड़ी कराह रही है और सुमनजी पास बैठकर उसका माथा सहला रहे हैं! गृहपति वहाँ नहीं थे। फिर भी घरकी तलाशी ली गई। वृद्धा ज्वरसे तड़प रही थी। पुलिसने उससे उल्टे-सीधे प्रश्न किए। वह बेचारी क्या उत्तर देती! सुमनजीने ही उनसे बातें कीं। आखिर पुलिसवालोंको वहाँसे चुपचाप अपना-सा मुँह लेकर चला जाना पड़ा।"

इस तरह सुमनजी अपनी सेवा व तपस्या द्वारा जनतापर हृदयसे अधिकार जमाते जा रहे थे। पहले तो अधिकारियोंने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्हें ललचाया कि राज्यकी नौकरी स्वीकार कर लो ; तुम्हें ग्राम-सुधार-अफ़सर बना दिया जायगा ; तब तुम कताई-बुनाईका खूब प्रसार कर सकोगे।' पर वे उस झाँसेमें नहीं आये। अन्तमें क्रोधित होकर दरबारने उन्हें राज्यसे निष्कासनकी आज्ञा दे दी। तीन बार वे राज्यसे निकाले गए और हर बार उन्होंने राज्यमें पहुँचकर अपना काम फिर शुरू कर दिया। आखिर अधिकारियोंने उन्हें राज्यमें घूमने और प्रजामण्डलकी रजिस्ट्री करानेका प्रयत्न करनेकी अनुमति दे दी। इसी बीच अगस्त, १९४२ का भयंकर राजनीतिक झंझावात आ गया और अधिकारियोंको प्रजा-संगठनके इस अंकुरको कुचलनेका अच्छा अवसर मिला। लोकपरिषद्की स्थायी समितिकी बैठकमें भाग लेने सुमनजी बम्बई गए हुए थे। वहाँसे लौटकर वे टिहरी जाना और वहाँ कार्यकर्त्ताओंकी एक बैठक करना चाहते थे कि २९ अगस्तको देवप्रयागमें ही स्टेट-पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिए गए और फिर क़रीब १० रोज़ मुनीकीरेतीमें रोके रखकर सब वैधानिक नियमोंके प्रतिकूल ६ सितम्बरको ब्रिटिश पुलिसके हवाले करके देहरादून जेलमें पहुँचा दिए गए। यही नहीं, लगभग ४० सुशिक्षित भावनाशील युवकोंको भी बिना मुक़दमा चलाए टिहरी-जेलमें ठूँस दिया गया और अनेक लोगोंको ज़रा-से शकपर उनके गाँवोंमें नज़रबन्द कर दिया गया।

क़रीब सवा वर्षकी नज़रबन्दीके बाद नवम्बर, १९४३ में सुमनजी आगरा-सेंट्रल-जेलसे रिहा हुए। साथी कार्यकर्त्ता तो अपने-अपने उजड़े घरोंको बसानेमें लगे ; पर उन्होंने अपना कर्त्तव्य पहचाना और अन्तरात्माकी पुकार सुनकर राज्यमें लौटनेका निश्चय किया। उन्होंने कहा—'मेरा कार्यक्षेत्र टिहरी है। वहाँ कार्य करना और जनताके अधिकारोंके लिए लड़ना मेरा कर्त्तव्य है। मैं अपने शरीरके कण-कणको नष्ट हो जाने दूँगा किन्तु टिहरीके नागरिक अधिकारोंको न कुचलने दूँगा!' इसके साथ ही उन्होंने अधिकारियोंको सूचित कर दिया था कि वे दरबार और प्रजामण्डलके बीच सम्मानपूर्ण समझौता करना चाहते हैं और अपनी व अन्य कार्यकर्त्ताओंकी सारी शक्ति रचनात्मक कामोंमें लगाकर सर्वसाधारणके युद्ध-जनित कष्टोंको कम करनेका प्रयत्न करना चाहते हैं। पर राज्याधिकारी इस सन्धि-प्रस्तावको क्यों स्वीकार करने लगे थे? उनका तो एकमात्र ध्येय प्रजाके संगठनको न पनपने देना और राज्यकी उठती हुई जन-शक्तिको कुचल देना था। अतः उनके रियासतकी सीमामें प्रविष्ट होते ही पुलिसका दस्ता उनका पीछा करने लगा। कुछ दिन अपने गाँवमें रहकर जब २८ दिसम्बरको वे टिहरी नगरकी ओर बढ़ रहे थे, तो चम्बाखालमें पुलिस द्वारा रोक लिए गए। वहीं सड़कपर बैठकर उन्होंने राज्यके जनरल मिनिस्टर और चीफ़-सेक्रेटरीको विरोध-पत्र लिखे और फिर अपने रचनात्मक कार्यक्रमकी बात दुहराई। पर उनके उत्तरमें उन्हें ३० दिसम्बरकी शामको एक बन्द मोटरमें चम्बाखालसे ले जाकर सेण्ट्रल जेल टिहरीकी कालकोठरीमें बन्द कर दिया गया, जहाँसे फिर उनका शव ही बाहर निकला।

३० दिसम्बर, १९४३ से २५ जुलाई, १९४४ तक सुमनजी जीवितावस्थामें टिहरी-जेलकी चहारदीवारीमें रहे। इन सात महीनोंमें उनपर क्या-क्या बीती, यह कौन बतायगा? उनकी मृत्युके सम्बन्धमें अ० भा० दे० रा० लोकपरिषद् द्वारा नियुक्त जाँच-कमेटीकी रिपोर्टसे, जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है, शायद कुछ प्रकाश पड़े। पर अधिक आशंका यही है कि जेलमें उनकी आत्माको कुचलनेका पूरा प्रयत्न किया गया होगा और यह कोशिश की गई होगी कि वे हिम्मत हारकर माफ़ी माँग लें और इस तरह अपनी राजनीतिक आत्महत्या कर लें। यह तो निर्विवाद है कि जेलमें कुछ सप्ताह रखनेके बाद टिहरी-दण्ड-विधानकी धारा १२४-ए के अन्तर्गत उनपर राजद्रोहका एक झूठा मुक़दमा चलाया गया और गढ़े हुए गवाहोंके बयानोंका आधार लेकर उन्हें दो वर्षका कठोर कारावास और २००) जुर्मानेकी सज़ा दी गई। सफ़ाईकी सन्तोषजनक सुविधा न मिलनेपर भी उन्होंने उस नाटकीय अदालतके समक्ष जो बयान दिया था, उसमें उन्होंने अपनी पूर्ण अहिंसात्मक नीति और रचनात्मक मनोवृत्तिका परिचय दिया था। फिर कई बार छोटे-मोटे उपवास करनेके बाद जब उकताकर उन्होंने अन्तिम आमरण अनशन प्रारम्भ किया (जो स्वयं टिहरी-दरबारकी विज्ञप्तिके अनुसार ३ मईसे ११ जुलाई अर्थात् ६९ दिन तक रहा), तो उन्होंने व्यक्तिगत सहूलियतोंके स्थानपर (१) प्रजामण्डलको वैध क़रार देने, कार्यकर्त्ताओंपर से प्रतिबन्ध हटाने और स्वयं महाराजके सामने अपने मुक़दमेके बारेमें अपनी सफ़ाई पेश करनेकी सैद्धान्तिक माँगें पेश की थीं।

श्रीदेव सुमन एक उज्ज्वल विभूति थे। मूक, पद-दलित और प्रताड़ित प्रजाकी निःस्वार्थ सेवा ही उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। अपनी इसी अनवरत लगनपूर्ण सेवाके कारण वे भारतवर्षके चोटीके नेताओंके प्रियपात्र हो गए थे। इस कम उम्रमें ही उनकी योग्यता देखकर एक बार पं० जवाहरलालजीने कहा था—'सुमन, तुम वास्तवमें सुमन ही हो।' इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके असामयिक देहावसानसे पर्वतीय प्रान्तोंका एक उत्कृष्टतम व्यक्तित्व खो गया ; पर उनकी जीवनी भारतीय युवकोंको सदा अनवरत अध्यवसाय, क्रियाशीलता और निरीह प्रजाके लिए आत्मोत्सर्ग करनेका पाठ पढ़ाती रहेगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

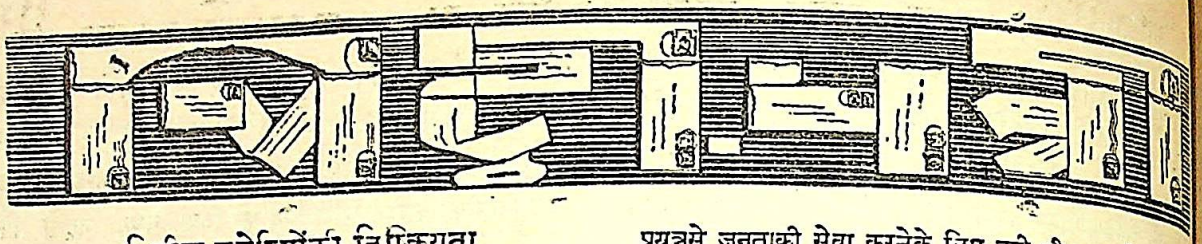

रिलीफ़-कमेटियोंकी निष्क्रियता

बंगालमें वर्षा आरम्भ हो गई है। शीघ्र ही लाखों आदमी फिर मलेरियाके शिकार होंगे। डा० विधानचन्द्र रायने एक बयानमें कहा है कि इस साल बंगालमें मलेरियाके भीषण प्रकोपका खतरा है। कलकत्ता-कार्पोरेशनके स्वास्थ्य-अफ़सरने भी कुछ दिन पहले कहा था कि कलकत्तेमें भी इस बार मलेरियाकी महामारी दिखाई पड़ेगी। पर खतरेकी इन चेतावनियोंको सुनकर भी यहांकी रिलीफ़-कमेटियोंके कानपर कोई जूँ रेंगी दिखाई नहीं पड़ती।

१९४३ के अकालके समय बनी कमेटियोंमें बंगाल रिलीफ़ कमेटी सबसे बड़ी है और रुपया भी उसके पास ५० लाखके लगभग है। बंगालके विभिन्न भागोंमें इसके जितने चिकित्सा-केन्द्र थे, वे एक-एककर सभी बन्द कर दिए गए हैं। बंगालके अकालमें कोई २०-३० लाख परिवार छिन्न-छिन्न हो गए, करीब ५० लाख व्यक्ति मरे और इतने ही निःसहाय भी हो गए। इनमें से अपने परिवारके लोगोंको लेकर २५००० शिक्षक, १० लाख जुलाहे, ४ लाख मछुए, २७ लाख खेतिहर किसान और १५ लाख ऐसे किसान हैं, जिनके पास ४-५ बीघेसे अधिक ज़मीन नहीं थी। इस तरह बंगालकी आबादीका कुल दसवाँ हिस्सा आज भी पीड़ित एवं सहायताका मुहताज है। इन अभागोंके एक करोड़ घरौंदोंमें से कई लाखकी मरम्मत एवं पुनर्निर्माणकी आज भी ज़रूरत है। मेदिनीपुरके दक्षिणी भागमें तो यह समस्या बड़े विकराल रूपमें उपस्थित है। १९४२ की वंचन-नीतिके कारण मछुओंकी २५००० नावें छीन ली गई हैं। अकालके बाद क़रीब एक करोड़ किसानोंने अपनी पूरी या आंशिक ज़मीन बेच दी है। ८० में से १६ लाखके क़रीब मवेशी नष्ट हो गए हैं। मलेरिया, पेचिश, हैज़ा, मियादी बुखारसे आज भी लाखों लोग कराह रहे हैं। इन लोगोंकी सहायताकी कितनी ज़रूरत है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। फिर भी हमें खेद और आश्चर्य है कि जनताके चन्देके लाखों रुपए होते हुए भी बंगाल रिलीफ़-कमेटी इस दिशामें कुछ न कर उल्टे अपने चिकित्सा-केन्द्रोंको बन्द कर रही है। क्या उसके अधिकारी इस सम्बन्धमें जन-साधारणके सामने अपनी स्थिति साफ़ करेंगे?

मैंने सुना है कि बंगाल सिविल प्रोटेक्शन कमेटी भी अपने चिकित्सा-केन्द्रोंको बन्द करने जा रही है। यह कमेटी १९४१ में मौलाना अबुलकलाम आज़ाद और पं० जवाहरलाल नेहरूके प्रयत्नसे जनताकी सेवा करनेके लिए बनी थी। इस दिशामें इसने काफ़ी काम किया। पर आजकल इसके संचालकोंमें विशेष उत्साह नहीं दिखाई देता। पिछले दिनों कलकत्तेमें मलेरिया, चेचक और हैज़ेका जो भीषण प्रकोप हुआ, उस समय इसने नाम-मात्रका ही काम किया। सुना है, मुफ़स्सिलमें इसके जो १५ चिकित्सा-केन्द्र हैं, उन्हें भी बन्द करनेकी बात सोची जा रही है। इसके पास एक लाखके लगभग रुपए हैं और इसके चिकित्स-केन्द्रोंके लिए सरकार तथा अमरीकन फ्रेण्ड्स सर्विस कमेटीसे आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। इतनेपर भी कमेटीका अपना कार्य बन्द करनेकी सोचना कम खेद और आश्चर्यकी बात नहीं है।

सितम्बर, १९४३ में कांग्रेस, कम्युनिस्ट-पार्टी, मुस्लिम-लीग, उदार-दल, कृषक प्रजा-पार्टी, किसान-सभा, मज़दूर-संघ, प्रगतिशील लेखक-संघ, जन-नाट्य संघ, विद्यार्थी-संघ आदिके प्रतिनिधियोंने मिलकर बंगाल-असेम्बलीके अध्यक्ष सैयद नौशेअलीकी अध्यक्षतामें एक पीपल्स रिलीफ़ कमेटी बनाई थी। इसने यथाशक्ति रोगियोंकी जाति, धर्म और दलका विचार त्यागकर सेवा-सहायता की। अब तक इसे जन-साधारणसे २ लाख ७० हज़ार रुपए सहायता-कार्यके लिए मिले, जिनमें से अब कुल ११००) बच रहे हैं। इस समय इसके ११ चिकित्सा-केन्द्र चल रहे हैं। यदि और रुपया न मिला, तो बचे हुए रुपयोंसे इसका काम अगले अक्टूबर तक चलकर बन्द हो जायगा।

१९४४ में विभिन्न सेवा एवं सहायता कार्योंको एक सूत्रमें सम्बद्ध करनेके लिए डा० विधानचन्द्र रायकी अध्यक्षतामें 'बंगाल मेडिकल रिलीफ़ को-आर्डीनेशन कमेटी' बनी थी। इस समय बंगालके विभिन्न भागोंमें इसके ७ चिकित्सा-केन्द्र चल रहे हैं। प्रत्येक केन्द्रका मासिक खर्च ६००) है, जिसमें से आधा सरकार देती है। ४८००) मासिक इसे फ्रेण्डस एम्बुलेंस यूनिटसे भी मिलता है। डा० रायकी अपीलपर ५६०००) इसे हाल ही में दक्षिण-अफ्रीकासे भी मिला है। लेकिन सुननेमें आया है कि अर्थाभावके कारण इनका काम भी अक्टूबरके बाद बन्द हो जानेकी सम्भावना है।

उपर्युक्त संस्थाओंने रुपएके अलावा काम बन्द करनेका दूसरा कारण कार्यकर्त्ताओंकी कमी बतलाया है। इस बातका सहसा विश्वास नहीं होता। एक ओर जहाँ बंगाल रिलीफ़ कमेटी और बंगाल सिविल प्रोटेक्शन कमेटी तथा ऐसी ही कुछ अन्य संस्थाओंके पास रुपया है, पर कार्यकर्त्ता नहीं या कम हैं, वहाँ दूसरी ओर पीपल्स रिलीफ़ कमेटी और बंगाल मेडिकल

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रिलीफ को-आर्डीनेशन कमेटीके पास कार्यकर्त्ता काफ़ी हैं, तो रुपया नहीं है। ऐसी हालतमें यदि ये आपसमें सहयोग-सामंजस्य-पूर्वक काम करें, तो एक-दूसरेकी पूरक सहायक हो सकती हैं। काम और रुपएके हिसाबकी देख-रेखका अधिकार दोनों तरहकी संस्थाओंको समान रूपसे रहे और काम मिल-जुलकर हो, इसीमें उनके अस्तित्वका औचित्य और जनताका हित है।—महादेव साहा, ७५ चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता।

कविवर 'मीर' के साहित्यका संकलन

हिन्दी-संसार स्व० सैयद अमीरअली 'मीर' से भलीभाँति परिचित है। आप खड़ी बोली एवं ब्रजभाषाके अच्छे कवि थे। खेद है कि प्रचारकी दुनियासे अलग रहनेके कारण उनकी कविताओंका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका। आपकी कविताओं का संग्रह रामगढ़-राजके भूतपूर्व महाराजा बहादुर श्रीमन्त रामनारायणसिंहने किया था। कुछ पत्र एवं कविताएँ पं० माखनलाल चतुर्वेदीके पास सुरक्षित हैं। देवरी (सागर) में आपने 'मीरमण्डल-कवि-समाज' की स्थापना की थी। 'मीर'-मण्डलसे सर्वश्री नाथूराम 'प्रेमी', शिवसहाय चतुर्वेदी, स्व० दशरथ बलवन्त जाधव, स्व० गोरेलाल मंजुसुशील (संपादक 'लक्ष्मी') प्रभृति कवि एवं लेखक तैयार हुए हैं। 'मीर'के साहित्यके संग्रहके लिए मैंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदसे पत्र-व्यवहारकर इस कार्यको बुंदेलखण्ड-साहित्य-सम्मेलन द्वारा करानेका अनुरोध किया था। चतुर्वेदीजीने किन्हीं कारणोंसे मुझे स्वतन्त्र रूपसे इस कार्यको करनेकी सलाह दी है। अतः जिन महानुभावोंके पास 'मीर' की कविताएँ, लेख, कहानियाँ, पत्रादि हों, वे निम्न पतेपर भेजकर इस कार्यमें सहयोग प्रदान करें। जिन सज्जनोंसे 'मीर'की घनिष्टता रही हो, वे अपने संस्मरण भी भेजनेकी कृपा करें। यदि संग्रहके कार्यमें सफलता मिली, तो शीघ्र ही 'मीर'पर एक पुस्तक हिन्दी-संसारके समक्ष प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया जायगा।—बैजनाथप्रसाद दुबे, होम ट्री स्टोट, महू (मध्य-भारत)।

लिपि-सुधारपर विचार

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाकी प्रबन्ध-समितिने अपने २४ चैत्र २००१ के अधिवेशनमें एक उपसमिति इस निमित्त नियुक्त की है कि वह यह विचारकर कि वर्त्तमान युगमें नागरी-लिपिमें सुधार तथा संस्कार आवश्यक हैं या नहीं, विद्वानों द्वारा सुझाए सुधारों और संस्कारोंकी ग्राह्यताके विषयमें उक्त प्रबन्ध-समितिके समक्ष अपनी सम्मति उपस्थित करे। इस उपसमितिका एक अधिवेशन २४ और २५ ज्येष्ठको हुआ और यह मन्तव्य स्थिर किया गया कि नागरी-लिपिमें सुधार और संस्कारके अब तक जितने प्रयत्न किए गए हैं, सबको संग्रह करके उपयुक्त प्रस्तावनाके साथ विद्वानोंकी सम्मतिके लिए प्रकाशित किया जाय। अतएव जिन लोगोंने इस विषयमें प्रयत्न किया है, उन समस्त सज्जनोंसे आग्रह है कि अपने प्रयत्नोंका पूरा विवरण शीघ्र ही निम्न पतेपर भेज देनेकी कृपा करें। आशा है, हमें इस कार्यमें लिपि-विशारदों का सहयोग सुलभ होगा।—कृष्णानन्द (संयोजक), लिपि-उपसमिति, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

श्री मैथिलीशरण-हीरक-जयन्ती-महोत्सव

आगामी सावनी तीज (तदनुसार ता० ११ अगस्त, १९४५ शनिवार) को राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्तका साठवाँ वर्ष-प्रवेश होगा। इस शुभ अवसरपर अपनी इस साहित्यिक महाविभूतिकी समुचित सवर्द्धना करना राष्ट्रका पुण्य कर्त्तव्य है। इसी विचारसे गत ७ जुलाईको श्री सम्पूर्णानन्दजीकी अध्यक्षतामें काशीके कुछ प्रमुख साहित्य-प्रेमी एकत्र हुए। इस बैठकमें यह निश्चय हुआ कि उक्त अवसरपर श्री मैथिलीशरण-हीरक-जयन्ती-महोत्सव काशी में समुचित धूमधामसे मनाया जाय, जिसके कार्यक्रममें राष्ट्र-कविके स्वास्थ्यायन-अभिनन्दन, कविता-पाठ, संगीत, अभिनय, वन-भोजन इत्यादिके साथ-साथ इस अवसरकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान करनेके लिए राष्ट्र-कविको एक थैली भेंट की जाय, जिसका उपयोग वे प्रयागके साहित्यकार-संसद्के चलानेमें करें। याद न दिलाना होगा कि संसद्की स्थापना श्री महादेवी वर्माने अभी थोड़े दिन पहले प्रयागमें की है, जिसका उद्देश्य साहित्यिकोंकी आर्थिक समस्या हल करना है। राष्ट्र-कवि इस संसद्के सभापति हैं। इतना ही नहीं, इसके संचालनमें विशेष भाग ले रहे हैं। इस महोत्सवका संचालन एक समिति करेगी, जिसमें सदस्य समूचे देशके लोग होंगे। समितिकी सदस्यताका शुल्क १०) नियत किया गया है। देशकी प्रमुख साहित्यिक संस्थाओंके प्रतिनिधि इसके निःशुल्क सदस्य बनाए जायँगे। समस्त साहित्य-प्रेमी जनता से प्रार्थना है कि अविलम्ब समितिके सदस्य बनकर इस योजना को, जिसमें थैलीके अतिरिक्त २०००) व्ययका अनुमान किया जाता है, सफल बनावें। सदस्यताका शुल्क श्री मुरारीलालजी केडिया, मुहल्ला—नन्दनसाव, बनारसके पतेसे भेजा जाना चाहिए। (राय)कृष्णदास, संयोजक।

हिन्दी-बाल-साहित्य-सम्मेलन

बच्चोंके उत्थानके अनेक साधनोंमें सर्वोत्तम बालकोपयोगी पुस्तकों द्वारा बच्चोंके हृदयपर जो स्थायी प्रभाव डाला जा सकता है, वह अन्य साधनों द्वारा नहीं। वर्त्तमान हिन्दी-बाल-साहित्यमें पर्याप्त सुधारकी गुंजाइश है। वैसे तो दस-बीस प्रकाशक इस समय बाल-ग्रन्थमालाएँ निकाल रहे हैं और कतिपय बालकोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलती हैं; पर भारतकी अन्य देशी भाषाओं एवं पाश्चात्य भाषाओंके मुक़ाबलेमें हिन्दीका बाल-साहित्य अभी पिछड़ा है। हिन्दीमें बड़े बालकोंके लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें हैं; किन्तु शिशुओंके योग्य पुस्तकोंकी बहुत कमी है। अवस्थाके रुचि-वैचित्र्यके कारण बाल-साहित्यके वर्गीकरणकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

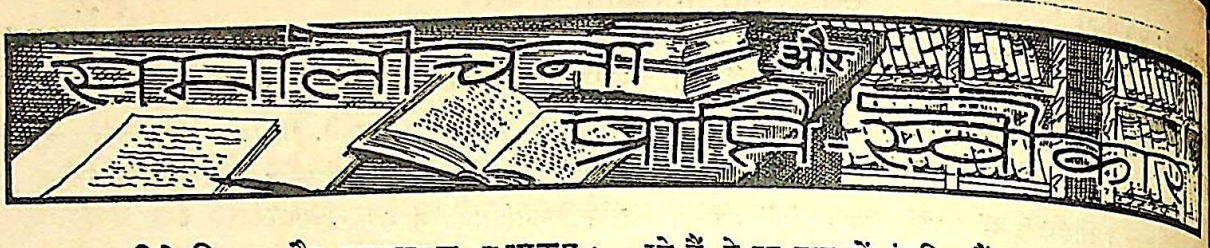

राष्ट्रभाषा-विषे विचार और रचनात्मक कार्यक्रम : लेखक महात्मा मो० क० गांधी ; प्रकाशक—नवजीवन प्रकाशन-मन्दिर, अहमदाबाद ; मूल्य क्रमशः चार और तीन आना।

महात्मा गांधीने जातीय गठन-कार्यके लिए राष्ट्रभाषाके प्रचारको एक प्रमुख अंग स्वीकार किया है। भारतकी राष्ट्रभाषा के प्रश्नपर उनके विचार इस पुस्तकमें सन्निविष्ट हैं। अभी तक इस विषयके गुरुत्वपर हमने यथोचित ध्यान नहीं दिया है एवं राष्ट्रभाषाको सिर्फ़ हिन्दीके रूपमें स्वीकार करके कुछ मानसिक उलझन भी पैदा कर ली है। किन्तु वास्तवमें यह राष्ट्रीय एकताका भाषाबद्ध प्रतीक है एवं हर राष्ट्रीय कर्मीको नागरी एवं उर्दू इन दोनों लिपियोंको यथासम्भव जानना ही चाहिए। सन् १९१७ से आज तक इस विषयमें गांधीजीके जो विचार रहे हैं, वे इस पुस्तकमें संकलित हैं। प्रकाशकने इसे छापकर बहुत अच्छा कार्य किया है। गांधीजीका २१ मईको लिखित प्राक्कथन एवं विषय-सूची भी इसमें सन्निहित हैं, जिनसे पाठक समुचित लाभ उठा सकते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रमको गांधीजीने भारतकी मुक्तिका उपाय बतलाया है। —(डा०) प्रियरंजन सेन

प्यासी आँखें : लेखक—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक—चौधरी एण्ड सन्स, बनारस ; मूल्य २॥)।

यह 'मस्त'जीका महज़ मामूली और छोटा-सा उपन्यास है। इसमें न तो कथाकी विशेषता है, न प्लाटकी और न किसी प्रकारके मनोवैज्ञानिक विश्लेषणकी। सुधा इलाहाबादमें पढ़ती थी। फिर लखनऊसे डाक्टरी पासकर वहीं प्रैक्टिस करने लगी। इलाहाबादके छात्र-जीवनका उसका एक मित्र प्रकाश था।

—

अत्यन्त आवश्यकता है। यद्यपि कुछ प्रकाशकोंने अपने प्रकाशनों का वर्गीकरण करके सुन्दर पथ-प्रदर्शन किया ; पर अभी तक जिस बाल-साहित्यका निर्माण हिन्दीमें हुआ है, वह किसी भी निर्दिष्ट एवं शास्त्रीय आधारपर नहीं। मेरे विचारमें बाल-साहित्यकी रूप-रेखा एवं भावी प्रगतिपर गम्भीर विचार करनेके लिए बाल-साहित्य-प्रकाशकों, लेखकों, सम्पादकों, मनोविज्ञानवेत्ताओं, शिक्षा-विशेषज्ञों एवं अनुभवी शिक्षकोंके एक सम्मेलनकी अत्यन्त आवश्यकता है। इसके द्वारा हिन्दी-बाल साहित्यके भावी विकासके मूल तत्त्वोंका निर्णय हो सकता है, तथा विशेषज्ञोंकी एक समिति द्वारा वर्गीकरणकी भी समस्या हल हो सकती है। इन विचारोंसे प्रेरित होकर मैं बच्चोंके हितैषियों एवं साहित्य-प्रेमियोंके समक्ष स्वतन्त्र रूपसे एक अखिल भारतीय हिन्दी-बाल-साहित्य-सम्मेलन की योजना रखनेका साहस करता हूँ।

यहाँ मैं कुछ विषयोंकी सूची दे रहा हूँ, जिनपर बाल-साहित्यके लेखकों, प्रकाशकों एवं प्रेमियोंका गम्भीर विचार जनता के समक्ष आना लाभप्रद होगा—बालकोंकी अवस्थाके अनुसार पुस्तकोंका टाइप, आकार, कहानी, कविता अथवा पाठकी लम्बाई तथा पुस्तककी पृष्ठ-संख्या निर्धारित करना ; अवस्थाके अनुसार भाषा तथा विषयमें परिवर्त्तन ; शिशु-गीत, लोरियाँ तथा छोटे बच्चोंकी निरर्थक एवं मनोविनोदकी तुकबन्दियोंका संग्रह ; कविताएँ, संवाद, प्रहसन तथा अभिनय करनेके योग्य नाटकोंका प्रकाशन ; जानवरों तथा परियोंकी कहानियाँ कैसी हों तथा भूत, प्रेत, पिशाच, दानव आदिकी कहानियोंका क्या स्थान हो, इसपर विचार ; देश-प्रेम, साहस तथा पौरुषकी कहानियोंका प्रकाशन ; आधुनिक आविष्कारों—रेडियो, हवाई-जहाज़, मोटर आदि—के वैज्ञानिक साहित्यका प्रकाशन ; देश-देशान्तर-सम्बन्धी भौगोलिक साहित्य—विशेषतया वहाँके बाल-जीवन-साहित्य—का प्रकाशन ; पौराणिक तथा ऐतिहासिक कहानियोंका सरल भाषामें बच्चोंके लिए प्रकाशन ; बालकोपयोगी ज्ञान-कोषका निर्माण ; स्वास्थ्य, व्यायाम, खेल-कूद-सम्बन्धी साहित्यका प्रकाशन ; अन्य देशी तथा भारतवर्षकी अन्य भाषाओंके सुप्रसिद्ध बालकोपयोगी साहित्यका हिन्दी में अनुवाद ; बालकोपयोगी मासिक पत्र और पत्रिकाएँ तथा उनमें संशोधनपर विचार ; भारतवर्ष तथा संसारके प्रसिद्ध महापुरुषोंकी जीवनियोंका प्रकाशन और बाल-मनोविज्ञान तथा बाल-शिक्षा-सम्बन्धी साहित्यका प्रकाशन।

भारतवर्षके समस्त साहित्य-प्रेमी तथा बाल-हितैषी सज्जनोंसे इस योजनाको कार्यान्वित होनेमें सहायताकी आवश्यकता है। जिन महानुभावोंको बच्चोंके इस कार्यमें विशेष रुचि हो, अथवा जो इस सम्मेलनकी सफलतामें सहयोग देना चाहें, उनसे प्रार्थना है कि वे मुझसे निम्न पतेपर पत्र-व्यवहार करें। —कृष्ण विनायक फड़के, श्रद्धानन्द-पार्क, कानपुर।

दिल्लीमें हिन्दी-भवन व संग्रहालय

दिल्ली-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने राजधानीके अनुरूप एक भव्य हिन्दी-भवन व सुन्दर संग्रहालय-निर्माणकी योजनाएँ अपने सुदृढ़ हाथोंमें ली हैं। हमें महती आशा और दृढ़ विश्वास है कि देशका सम्पन्न समुदाय इस पुण्य प्रयासको मूर्त्तिमान रूप देनेके लिए सम्मेलनको पूर्ण हार्दिक व क्रियात्मक सहयोग प्रदान करनेकी कृपा अवश्य करेगा। —पुत्तूलाल वर्मा 'करुणेश', प्रधान-मन्त्री, गुरुद्वारा रोड, नई दिल्ली।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आजीवन कुमारी रहनेके व्रतके बावजूद सुधाकी शादी प्रकाशसे हो जाती है। यही कथा है। द्विवेदी-युगके उपन्यासोंको पढ़िए—मसलन किशोरीलालजी गोस्वामीका 'लखनऊका क़ब्र', तो उसमें और कुछ न भी मिले, पर आपको बहाए चलनेवाली कथा तो अवश्य मिलेगी, Story-interest की कमी न होगी। पर आलोच्य पुस्तकमें तो वह भी न मिलेगी। हाँ, बचकानी रोमांसवाले पाठकोंका थोड़ा-सा मनोरंजन हो, तो हो जाय। छपाईमें यत्र-तत्र भूलें रह गई हैं।

श्यामकी माँ : अनुवादक—श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय; प्रकाशक—विष्णु गंगाधर केतकर, अ० वि० गृह-लोकसंग्रह छापखाना, पूना-२; मूल्य १)।

मराठीके प्रसिद्ध लेखक पाण्डुरंग सदाशिव साने की पुस्तक 'श्याम ची आई' का यह हिन्दी-अनुवाद है। प्रान्तीय भाषाओंके साहित्यमें मराठी-साहित्यका चतुर्मुखी विकास हो रहा है। इसका साहित्य अत्यधिक समृद्ध है। इधर मराठीसे कुछ बहुत ही अच्छी पुस्तकें अनूदित होकर हिन्दीमें आई हैं। यह पुस्तक भी वैसी ही है। इस पुस्तकमें लेखकके हृदयमें माँके प्रति बहने-वाली प्रेम, भक्ति और कृतज्ञताकी भावनाएँ भरी पड़ी हैं। मातृत्व हृदय कितना उदार, सरस और स्निग्ध होता है, इस बातका स्पष्टीकरण इस पुस्तकके पढ़नेसे हो जाता है। आज तो मशीन-युगने हमारे हृदयको भी मशीन बना दिया है। पर हमारा विश्वास है कि इस पुस्तकको पढ़कर हमारे मशीनवत् हृदय में भी एक बार मानवताके स्पन्दनका संचार होगा और हम स्नेहमयी माताके महत्वको पहचाननेमें समर्थ होंगे। माताएँ भी इसे पढ़कर अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यको पहचानेंगी। उन्हें मालूम होगा कि किस तरह पारिवारिक जीवनमें आई हुई उल-झनें प्रेम और सहानुभूतिकी एक साँससे हवा हो जाती हैं। बालकोंको सुधारनेके लिए दण्डकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है स्नेह और सहानुभूतिकी। इस पुस्तकके पढ़नेसे बालकोंके मनोविज्ञानका बड़ा अच्छा परिचय मिलेगा। प्रत्येक माँको इस पुस्तकका अध्ययन करना चाहिए। सारी पुस्तक शुद्धता और पवित्रताके वातावरणसे परिव्याप्त है। रही कला-पक्षकी बात, तो ऐसी पुस्तकमें कला-पक्षकी बात उठानेकी फुरसत ही नहीं रहती। पुस्तक हृदयको इस तरहसे शराबोर कर देती है कि हृदयमें और प्रश्नकी गुंजाइश ही नहीं रहती। आजके विद्युत्-प्रकाशके युगमें निष्कम्प घृत-दीपकी लौको हमारा हृदय नहीं भूल सकता।

मेरा विश्वास है कि इस पुस्तकके प्रचारसे हम मराठोंके जीवनसे, उनके रहन-सहन और रीति-रस्मोंसे परिचित होंगे तथा हममें चैतन्य जागरित होगा। हम इस पुस्तकका हिन्दीमें सहर्ष स्वागत करते हैं।

कामायनी-मीमांसा : लेखक—श्री शीलभद्र; प्रकाशक—व्रती भ्राता, लाहौर; मूल्य १)।

यह पुस्तक विद्यार्थियोंको परीक्षोत्तीर्ण होनेमें सहायता देनेकी नीयतसे प्रकाशित की गई है। 'कामायनी'पर इधर हिन्दीमें एक-दो अच्छी पुस्तकें निकली हैं, जिनमें श्री सत्यपाल विद्या-लंकारकी पुस्तक अच्छी है। पर इन पुस्तकोंके रहते भी परीक्षार्थियोंके लिए आलोच्य पुस्तक-जैसी जेबी-पुस्तककी ज़रूरत पड़ जाती है। छायावाद, रहस्यवाद, 'कामायनी'में प्रसादजीकी कला, 'कामायनी'का रूपक तथा और-और बातोंकी चर्चा शील-भद्रजीने अपनी पुस्तकमें कर दी है। अन्यान्य लेखकोंके मत भी आपने उद्धृतकर पुस्तककी उपादेयता बढ़ा दी है। निस्स-न्देह पुस्तक 'कामायनी'की गाइडका काम कर सकती है।

—(प्रो०) देवराज उपाध्याय

महर्षि दयानन्दका जीवन-चरित्र : लेखक—पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक—विजय पुस्तक-भण्डार; श्रद्धा-नन्द बाज़ार, दिल्ली; पृष्ठ २१६; मूल्य १॥)।

प्रस्तुत पुस्तक उस महर्षिका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त है, जिसने पुरातन वैदिक धर्म एवं आर्य-संस्कृतिके प्रचारमें अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया था। आधुनिक भारतके निर्माताओंमें ऋषि दयानन्दका आसन सबसे ऊँचा है। डा० राजेन्द्रप्रसादके शब्दोंमें 'महर्षि दयानन्दने देशोद्धारका जो सूत्र लिखा था, उसीका महात्मा गांधी आज भाष्य कर रहे हैं।' ऐसे महापुरुषकी जीवन-कथा आर्य-सन्तानके लिए अमूल्य निधि है। हिन्दीमें ऋषिके जीवनपर जो अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें निकल चुकी हैं, उनमें यह एक उपयोगी अभिवृद्धि है। पं० इन्द्रकी भाषा और शैली बड़ी जानदार होती है, इसलिए उनकी यह रचना भी बड़ी रोचक और प्रभावोत्पादक है। उन्होंने आर्यसमाजका एक इतिहास लिखा था, उसमें समाजके प्रवर्त्तकका जो चरित्र चित्रण हुआ है, उसी अंशको इस पृथक् जीवन-चरित्रके रूपमें प्रकाशित किया गया है। इसमें लेखकको गम्भीर गवेषणा, प्रचण्ड परिश्रम और महती मननशीलताका अच्छा परिचय मिलता है। है तो यह जीवनी, पर इसमें भारतकी तत्कालीन दशाका वर्णन पढ़कर हृदय प्रकम्पित हो उठता है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है, अतएव इसका व्यापक प्रचार वांछनीय है।

हिन्दी गीता : भाषान्तरकार—पं० हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक—श्री बृहस्पति उपाध्याय, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग; पृष्ठ ८५; मूल्य आठ आना।

श्रीमद्भगवद्गीताका यह पद्यानुवाद है। हिन्दी-संसार उपाध्यायजीके नाम और कामसे पूर्णतया परिचित है। वे हिन्दी-साहित्यके एक प्रकाण्ड पण्डित, उच्च श्रेणीके गम्भीर विचारक और राष्ट्रीयताके सन्देशवाहक हैं। उनकी भाषा जैसी मधुर है,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शैली भी वैसी ही अनूठी है। उन्होंने अपनी सुकृतियोंसे साहित्य-भण्डारमें अमूल्य अभिवृद्धि की है। प्रस्तुत पुस्तक उन्होंने सन् १९३२ में वृष्ण-मन्दिरके प्रवास-कालमें लिखी थी; पर दुर्भाग्यवश वह प्रति कहीं रेल-यात्रामें खो गई। इसलिए उनको दुबारा परिश्रम करना पड़ा, और यह कहनेमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है कि उनका परिश्रम सार्थक और सफल हुआ है। गीताका यह समश्लोकी अनुवाद अद्वितीय है। अनुष्टुप वर्णिक छन्दमें मूल श्लोकोंके भावको हिन्दी-पद्योंमें अभिव्यक्ति सम्यकरूपेण हुई है। गीता-भक्तोंके लिए यह बड़े कामकी चीज़ है। इसका एक-एक पद भक्ति-रसमें शराबोर है। छपाई साफ़ और शुद्ध है। आशा है, हिन्दी-संसारमें इस पोथीका यथेष्ट आदर होगा।

श्रीमन्मोहन गीता : लेखक—प्रोफ़ेसर इन्द्र, एम० ए०, अंगरेज़ी-भाषान्तरकार—श्री सुरेन्ददेवी; प्रकाशक—मिनर्वा बुकशाप, अनारकली, लाहौर; पृष्ठ १६५, मूल्य ३)।

श्रीमद्भगवद्गीताके ढंगपर लेखकने इस अहिंसा-योग अर्थात् श्रीमन्मोहन गीताकी रचना की है। मूल है संस्कृत श्लोकमें, जो प्रोफ़ेसर इन्द्रकी कृति है। उनकी बहन श्री सुरेन्द्रदेवीने मूलका अंगरेज़ीमें अनुवाद किया है, जो सुन्दर, सरस और बोधगम्य है। यह मोहन-गीता भी अठारह अध्यायोंमें विभक्त है। भारतकी सामयिक स्थिति, कांग्रेसकी प्रगति और जन-नायकोंकी देशभक्ति का दिग्दर्शन, सार्वजनिक क्षेत्रमें महात्मा मोहनका आविर्भाव, सत्य और अहिंसाका प्रचार और उनका प्रयोग, उपवासकी महिमा, अज्ञानता, दारिद्र्य एवं व्याधियोंका निवारण, पीड़ित मानवताकी सेवा, हरिजनोद्धार, प्रभु-प्रार्थनाका रहस्य, रामराज्यकी स्थापना और नवयुगका निर्माण प्रभृति विषयोंपर इसमें विद्वत्तापूर्ण विवेचन है। कृष्णार्जुन-संवादकी भाँति इस गीतामें भी राजेन्द्र-मोहनका प्रश्नोत्तर है। इसकी संस्कृत अत्यन्त सरल और सुबोध है। मूल श्लोकोंके अंगरेज़ीमें अर्थ और भावार्थ देनेमें सुरेन्द्रदेवीजीने बड़ी योग्यतासे काम लिया है। वास्तवमें यह पोथी बड़ी चित्ताकर्षक और शिक्षादायक है। मोहनके उपदेशसे पाठकके हृदयपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। गांधी-साहित्यमें यह ग्रन्थ अपने ढंगका निराला है। प्रसिद्ध दार्शनिक सर राधाकृष्णनकी भूमिकासे पुस्तकका महत्व और बढ़ गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश-हितैषी के पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। इसके प्रकाशनके लिए प्रोफ़ेसर इन्द्र और उनकी बहन सुरेन्द्रदेवी दोनों हमारे अभिनन्दनके अधिकारी हैं। —स्वामी) भवानीदयाल संन्यासी

जननी : लेखक तथा प्रकाशक—मास्टर सुजानसिंह, जी० टी० रोड, अमृतसर; पृष्ठ ६६६, मूल्य ६), सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक लेखककी प्रजनन-सम्बन्धी पंजाबी पुस्तकका, जिसको पंजाब-सरकारने एक उत्तम एवं लाभप्रद पुस्तक मानकर लेखकको ७००), रु० पुरस्कारमें दिए हैं, हिन्दी-रूपान्तर है। यौन-ज्ञानकी भाँति ही भारतमें अधिकांश माताओंको प्रसूति ज्ञान भी नहीं होता। इसके अतिरिक्त अधिकांश जापे बाबा आदम के ज़मानेकी अनाड़ी और अशिक्षित दाइयाँ ही कराती हैं। इन दोनों कारणोंसे भारतमें प्रतिवर्ष पैदा होनेवाले एक हज़ार बच्चोंमें लगभग २०० अकाल काल-कवलित हो जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें इसी ज्ञानको सुलभ करनेके खयालसे सरल भाषामें और चित्रोंकी सहायतासे जननेन्द्रियकी बनावट, मासिक धर्म, गर्भस्थितिसे लेकर बच्चेके जन्म, स्तनपान, उसकी खुराक, संरक्षण तथा माँ-बच्चेके सामान्य रोगोंपर बड़े अच्छे ढंगसे प्रकाश डाला गया है। भारतकी प्रत्येक माता और भावी माताको इस पुस्तककी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। —ननिवाल्य

जनता अजेय है : लेखक—वासीली ग्रोसमन; अनुवादक—प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त; प्रकाशक—जन-प्रकाशन-गृह, राज भवन, सैण्डहर्स्ट रोड, बम्बई-४; मूल्य १॥)।

प्रसिद्ध रूसी लेखक वासीली ग्रोसमनने प्रस्तुत उपन्यास १९४१ के शरत्कालमें पीछे हटती हुई लाल सेनाकी एक टुकड़ीके पीछे छूट जाने और शत्रुको तंग करनेका रोमांचक वर्णन किया है। साधारण सैनिकों, किसानों, स्त्रियों आदिके ऐसे-ऐसे दुस्साहसिक कार्योंका इसमें उल्लेख है, जो कहानीके-से मालूम होते हैं। पर हैं वे दर असल यथार्थ। इनसे उपन्यासमें रोचकताके अलावा उपादेयता भी आ गई है। आशा है, हिन्दी-संसारमें इसका समुचित स्वागत होगा।

समाजवाद—वैज्ञानिक और काल्पनिक : लेखक—फ्रेडरिक एंगल्स; अनुवादक—श्री इन्द्रदीप; प्रकाशक—उपर्युक्त ही; मूल्य ॥=)।

१८७५ के लगभग बर्लिन-विश्वविद्यालयके अध्यापक डा० यूजेन डूरिंगने सहसा घोषणा की कि वे समाजवादी हो गए हैं। पर इसके साथ ही उन्होंने मार्क्स आदि पहलेके सभी समाजवादियोंको कोसते हुए जर्मन जनताके सामने समाजके पुनर्निर्माण की व्यावहारिक (?) योजना उपस्थित की। इससे उनके समाजवाद-सम्बन्धी अज्ञान और नासमझीका प्रदर्शन तो ज़रूर हुआ; पर मज़दूरों और बाबुओंमें समाजवादके सम्बन्धमें भ्रम भी कम नहीं फैला। अतएव १८७८में एंगल्सने उनके काल्पनिक समाजवादकी धज्जियाँ उड़ाते हुए 'एण्टी डूरिंग' नामक ग्रन्थ लिखा। जर्मन मज़दूरों और बाबुओंको वैज्ञानिक समाजवाद ठीक-ठीक समझानेके लिए उन्होंने अपनी पुस्तकके तीन अध्यायोंसे संक्षिप्त करकर १८८० में प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित की, जिसका दुनियाकी कई भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। अच्छा हो, यदि जन-प्रकाशन-गृह 'एण्टी डूरिंग' को भी हिन्दीमें प्रकाशित करे। —'भास्कर'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

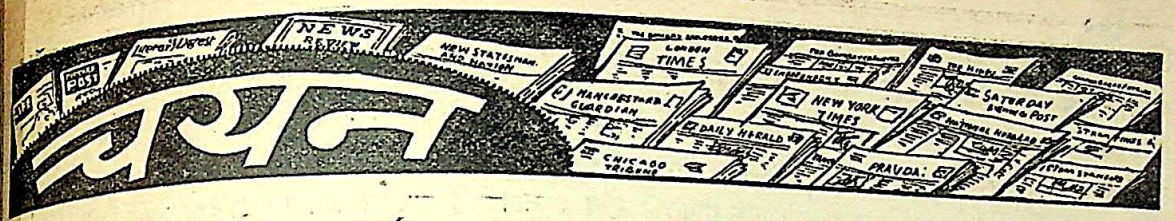
चयन

प्लासिडोकी मृत्यु-शताब्दी

२८ जून, १८४४ को स्पेनीय साम्राज्यशाहीने क्यूबाके महान साहित्यकार गैब्रियेलदेला कन्सेपशन वल्दे (उपनाम प्लासिडो) की हत्या कर डाली थी। उस समय उनकी उम्र केवल पैंतीस वर्षकी थी। उनका जीवन नाटकीय घटनाओंसे पूर्ण था। उनके घटना-बहुल और वैचित्र्यपूर्ण जीवनको लेकर स्पेनीय और चाइल देशीय उपन्यासकारोंने महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे हैं। क्यूबाके जेलमें उनकी हत्याके पहले ही उनके जीवन-कथानकको लेकर एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका था। इस वर्ष प्लासिडोके स्वदेशवासी उनकी शतवार्षिकी मना रहे हैं। इस अवसरपर उनकी स्मृतिमें छः पैसेका एक डाक-टिकट प्रकाशित होगा, जिसपर उनका चित्र, उपनाम तथा 'गौरवमय क्यूबाकी काव्य-प्रतिभा, स्वतन्त्र शहीद प्लासिडो' लिखा रहेगा। क्यूबा-निवासी आज भी उनकी जोशीली और माधुर्यमयी काव्य-धारासे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। प्लासिडोकी रचनाएँ उनके जीवन-कालमें ही मशहूर हो चुकी थीं। उनकी संक्षिप्त व्यंगपूर्ण कविताएँ आज भी लोगोंकी ज़बानपर हैं। इनकी कविताओंमें से अधिकांश स्थानीय आचार-व्यवहार तथा व्यक्तियोंसे सम्बन्ध रखती हैं। लेकिन हत्याके पहले जेलमें लिखी हुई उनकी तीन कविताएँ सबसे अधिक जनप्रिय हैं। इनमें से एक उन्होंने अपनी माँके प्रति लिखी थी, दूसरी अपने जीवन और रचनाओंकी परिभाषा है और तीसरी है मृत्यु-यात्रीकी प्रार्थना।

क्यूबा दक्षिण-अमरीकाका एक टापू है, जिसे कोलम्बसने २७ अक्टूबर, १४९२ को खोज निकाला था। यह पूर्वी द्वीप-समूहका सबसे बड़ा टापू है। विशेष उपजाऊ और धन-धान्यपूर्ण होनेके कारण १६ वीं तथा १७ वीं शताब्दीमें अंगरेज़ों, फ्रांसीसियों तथा स्पेनियार्डोंने इसे खूब लूटा। १७६४ में वहाँ स्पेन की हुकूमत क़ायम हुई। निगुयेल टैसन (१८३४–३९) तथा लियोपोल्डो आडोन्नेल (१८४४) ने यहाँ अपनी नादिरशाहीका नंगा नाच दिखाया। आडोन्नेलके समय ही प्लासिडोकी हत्या की गई। ५ मई, १९०२ में यहाँ एक नामधारी जनतान्त्रिक सरकार क़ायम हुई।

अमरीकासे एक भारतीयका निर्वासन

अमरीकामें नीग्रो लोगोंके साथ होनेवाले वर्ण-भेदपूर्ण दुर्व्यवहारकी खबरें जब-तब भारत पहुँचती रहती हैं। अभी हाल ही में वहाँके प्रसिद्ध पत्र 'पी० एम०' में बेट्टी मूर्स्टीनने जोआकिम रोड्रीकाज़ नामक एक भारतीयके सपरिवार वहाँसे निर्वासित किए जानेका सनसनीपूर्ण विवरण प्रकाशित कराया है। रोड्रीकाज़ गोआ (पुर्त्तगीज़ भारत) का एक निवासी है, जो पिछले १३ वर्षों से अमरीकामें बस गया है। वहाँ उसने मेरी मिलग्रीम नामकी एक अमरीकन महिलासे विवाह कर लिया, जिससे उसके एक लड़का और एक लड़की हुए। अब न्याय-विभागकी 'इमिग्रेशन एण्ड नेचुरलाइज़ेशन सर्विस' के एक अफ़सरने बतलाया है कि वह ५० प्रतिशत गौरांग नहीं है; अतः सरकारने उसे अमरीका से निर्वासित करनेकी आज्ञा दी है।

५० पुर्त्तगीज़ नागरिक प्रतिवर्ष अमरीकामें प्रवेश कर सकते हैं। रोड्रीकाज़ने कनाडा जाकर इस कोटामें शामिल होनेकी कोशिश की, ताकि वह पुर्त्तगीज़ नागरिककी हैसियतसे अमरीका में प्रवेशकर नागरिक अधिकार प्राप्त कर सके। पर प्रवास-विभाग ने उसके इस प्रयत्नको भी विफल कर दिया और कहा कि चूँकि वह गोआमें पैदा हुआ है, वह 'पूर्वी भारतीय जाति'का है और उसके खूनकी डाक्टरी जाँच करवाई जायगी। इसका विरोध किए जानेपर उसे वापस गोआ भेजनेकी आज्ञा दी गई है!

तुर्गनेवका जन्मस्थान

आजसे सवा साल पहले लाल सेनाने तुर्गनेवसे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेवाले ओरेल, मत्सेन्स्क, स्पास्सकोए-इन्तोविनोवोको आज़ाद किया था। प्रसिद्ध रूसी लेखक 'एक शिकारीकी नोटबुक'से लेकर 'गद्यमें पद्य'की रचनाओं तकमें इन्हीं स्थानोंके नर-नारियों और दृश्योंका चित्रण है। तुर्गनेवके उपन्यास 'रुदिन', 'भलेमानसों का घोंसला', 'पिता और सन्तान', 'फास्ट', 'तीन चित्र' और 'स्टेपीज़का बादशाह लीयर'का सम्बन्ध इन्हीं स्थानोंसे है। ओरेलके निवासी लिसा कालतिनाके उस 'भलेमानसोंके घोंसले' को अच्छी नज़रसे देखते थे। स्पास्सकोए-इन्तोविनोवो क़ब्रगाहमें आज भी लोग ज़ालिम ज़मींदार इवानोविच यारीशेवका, जिसे तुर्गनेवने 'बादशाह लियर'के रूपमें चित्रित किया है, अभिनय करते हैं। कब्रके ऊपरका शिलालेख 'लगोव' नामक कहानीमें उद्धृत किया गया है। स्पास्सकोए-इन्तोविनोवोके पुराने मकानमें एक चित्र सुरक्षित है, जिसके अन्दर एक तलवार घुसेड़ दी गई है। 'भलेमानसोंके घोंसले'के नन्हें बच्चे केदिया लावरेतस्कीकी प्रिय पुस्तक 'सिम्बल एण्ड एम्ब्लेन्स' भी यहीं सुरक्षित है। तुर्गनेव भी बचपनमें इसे बड़े चावसे पढ़ा करते थे। 'बेझिन प्रान्तर', 'क्रासिवायामेच' भी कवि-कल्पनाकी उड़ान नहीं, बल्कि स्पास्सकोए-इन्तोविनोवोके आसपासकी जगहें हैं। तुर्गनेव कहा करते थे कि स्पास्सकोएके आसपासकी सभी झाड़ियों, झुरमुटोंमें उनके बच-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पनकी स्मृति लिपटी हुई है। स्पास्सकोए-इन्तोविनोवोमें पैर रखते ही वे एक-एक करके मेरे मानस-पटपर उदित होने लगते हैं। यहीं उन्होंने अपना बचपन बिताया था। सारे यूरोपकी यात्रा करके उन्हें यहीं शान्ति मिलती थी। महान साहित्यिक गोगलकी मृत्यु पर लिखे गए लेखके लिए ज़ार निकोलाई प्रथमने उन्हें यहीं नज़रबन्द किया था। 'निर्वासन-गृह' उसी पुराने घरका नाम है, जिसमें वे १८५३ में आकर रहने लगे, और वहाँ उन्होंने जो पेड़ोंकी कतारें लगाई थीं, उन्हींका नाम 'एवज़ाइल्स ड्राइव अवे' है। यहीं एक पेड़की छायामें बैठकर तुर्गनेवने १८५६ में 'रुदिन' समाप्त किया था। यहीं दो धड़वाला अंजीरका पेड़ 'दोमाई' खड़ा था, जिसपर अतिथियोंके नाम खुदे हुए हैं। तुर्गनेवकी मृत्युके बाद लोग स्पास्सकोए-इन्तोविनोवोको भी भूलने-से लगे।

सोवियत्-संघकी स्थापनाके बाद इस स्थानका पुनर्जन्म हुआ। एक विशेष सरकारी ऐलान द्वारा यहाँ तुर्गनेवकी स्मृतिसे सम्बन्धित जगहें सुरक्षित कर दी गईं। हज़ारों लोग अपने प्यारे लेखकका नन्हा-सा घर देखने आने लगे। उजड़ा बगीचा फिरसे हरा-भरा हो गया। 'निर्वासन-गृह' आदिकी मरम्मत की गई। १९४३ में जर्मनों द्वारा जला डाले गए मकानका पुनर्निर्माणकर तथा तुर्गनेवकी जयन्तीका एक उत्सव मनाकर वहाँ उनकी स्मृतिमें एक अजायबघर बनानेकी योजना बनाई गई है। १९४१ में हिटलरी पशु इस चमनमें घुस आए थे; लेकिन अजायबघर के संचालक यारमाकोव वहाँकी करीब सभी मूल्यवान सामग्री ओरेल तथा स्पास्सकोएसे पहले ही दूसरी जगह हटा ले गए थे। उससे पेनज़ामें नया 'तुर्गनेव-अजायबघर' बनाया गया। तुर्गनेवकी स्मृतिसे सम्बन्धित स्थानोंको हिटलरियोंने भलीभाँति रौंद डाला। स्पास्सकोएका एक घर खड़ा नहीं रह गया। नात्सियोंने स्कूलको भी जला दिया। बगीचेके सभी पेड़ काट डाले गए और उसमें बने हुए दोनों मकान भी तहस-नहस कर दिए गए। स्पास्सकोएमें घुस आनेपर नात्सी लेफ्टिनेन्ट ने तुर्गनेवकी मूर्तिको देखकर कहा था—'यही एंगल्स है?' और उसके टुकड़े-टुकड़े करवा डाले। —म०

नेहरूजी और भाषाका प्रश्न

पं० जवाहरलाल नेहरूकी रिहाईके कुछ ही दिनों बाद उनसे एक पत्र-प्रतिनिधिने हिन्दी-उर्दूके मसलेपर उनके विचार जाननेके लिए कई प्रश्न किए, जिनके उत्तरमें उन्होंने कहा कि मैं भाषाके प्रश्नको इतना महत्व नहीं देने दूँगा कि वह हमारे स्वतन्त्रताके युद्धके रास्तेका एक रोड़ा बन जाय। आपने खेद प्रकट किया कि आज हिन्दी और उर्दूके हिमायती बजाय अपनी-अपनी भाषाको अधिक समयानुकूल बनानेके दूसरी भाषाकी बुराइयाँ कर रहे हैं। आपने इस विचारको हास्यास्पद बताया कि लोग इस बातका प्रयत्न करें कि उनकी भाषा कचहरियोंकी भाषा बना ली जाय तो वह देशकी भाषा हो जायगी। हमें यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाएँ आज संसारकी विकसित भाषाएँ हैं। उनमें कविता इत्यादिका अपना निजी साहित्य कितना ही क्यों न हो, यह बात तो स्पष्ट हो है कि इस कालमें हम इनके सहारे ही अपने सब विचार व्यक्त नहीं कर सकते। उनकी शब्दावली इतनी कम है और हमारे विचार दक़ियानूसी और संकीर्ण हैं कि हम अपनी इन भाषाओंको श्रेय ही नहीं देते। भाषा तो संस्कृतिकी द्योतक होती है। यही कारण है कि आज अंगरेज़ी-भाषा संसारकी सबसे शक्तिशाली भाषा हो गई। उसके समान प्रचलित भाषा संसारमें दूसरी नहीं। अंगरेज़ी-भाषामें रोज़ ही नए शब्द बढ़ते जा रहे हैं। पिछले पचास वर्षोंमें उसमें नए शब्दोंकी इतनी वृद्धि हुई है कि पचास वर्ष पहलेकी अंगरेज़ी-भाषा आज इस्तेमाल की ही जा सकती। आपने बताया कि वर्त्तमान कालमें किसी भाषाको इस बातसे नहीं देखी जा सकती कि उसका व्याकरण कितना है; बल्कि वह तो इस दृष्टिकोणसे देखी जाती है कि किस को लिखने, छापने और प्रयोग करनेमें सबसे ज़्यादा सहूलियत होती है। यह सर्वमान्य है कि संस्कृत संसारकी सबसे पूर्ण भाषा है और उसका व्याकरण सबसे पूर्ण है। मगर कारणोंसे वह इतनी कठिन भी है कि वह जन-साधारणकी बन ही नहीं सकती। चीनी भाषाका कोई व्याकरण नहीं है, भी वह धीरे-धीरे आगे बढ़ती चली जा रही है। आज इतना आगे बढ़ गई है कि संसारकी किसी भी भाषाकी अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई नहीं कि उसका चीनी अनुवाद हो गया। हमारी हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं इसकी बेहद कमी है। वर्त्तमान कालकी पुस्तकें इन भाषाओं ही नहीं। बजाय आपसकी तू-तू मैं-मैंके हिन्दी और हिमायतियोंको चाहिए कि वे समयानुकूल साहित्य तैयार भाषाके प्रसारका मार्ग बताते हुए नेहरूजीने कहा कि और उर्दू संस्कृत और अरबी-फारसीके कठिन शब्दोंके उन्नति नहीं कर सकेंगी; बल्कि मज़दूरों और साधारण रोज़के बोलचालके शब्दोंको अपने कोषोंमें स्थान देनेसे आगे बढ़ सकेंगी। उदाहरणके तौरपर आपने बताया कि मोटरगाड़ीके आविष्कारसे ही अंगरेज़ी-भाषामें लगभग एक शब्द बढ़ गए, क्योंकि उसके हर हिस्सेका अलग नाम था। रेज़ी-भाषाने इन सब चीज़ोंके नामोंको अपने कोषमें स्थान और इससे उसकी उन्नति हुई। आपने हिन्दी-उर्दू अच्छे कोषोंकी कमीको भी इन भाषाओंकी बहुत बड़ी बताया। ('लोकमान्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

ब्रिटिश मज़दूर-दलकी जीत

इस बारके ब्रिटिश चुनावोंमें मज़दूर-दलको मिली विजय जितनी आकस्मिक और आश्चर्यजनक है, उतनी ही कल्पना और आशातीत भी। उसके नेताओं और समर्थकोंने भी कभी ऐसी शानदार जीतकी आशा नहीं की थी। ब्रिटेनके इतिहासमें उसे पहली बार पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ है। 'स्टेट्समैन'के लन्दन-स्थित संवाददाताका कहना है कि हज़ारमें से एक आदमीने भी मज़दूर-दलके पक्षमें इतने बड़े परिवर्त्तनकी आशा नहीं की थी। इस हालतमें इस विजयका महत्व और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि टोरी-दलके नए हथियार चर्चिलने ऐसे समय चुनाव रखा, जब कि उसकी अपनी लोकप्रियता चरम सीमापर थी; मज़दूर-दलको चुनाव-प्रचारके लिए मुश्किलसे ६-७ हफ़्तोंका समय मिला; चर्चिल और उसके पृष्ठपोषक बीवरब्रूक तथा रदरमीयरके पत्रोंने (जिनके पाठकोंकी संख्या ४० लाखके लगभग है) मज़दूर-दलकी नीति और समाजवादके खिलाफ़ खूब ज़हर उगला तथा टोरी-दलके कार्यक्रमको पृष्ठभूमिमें रख 'राष्ट्रके नामपर वोट'का नारा देकर मतदाताओंको काफ़ी धोखा दिया गया। गत १३ जूनको अपना दूसरा भाषण ब्राडकास्ट करते हुए चर्चिलने मतदाताओंको आतंकित करनेके लिए यहाँ तक कहा कि यदि मज़दूर-दल सत्तारूढ़ हो गया, तो ब्रिटिश पार्ल्मेंटकी शक्ति कम हो जायगी और ब्रिटेनपर गेस्टापोके ढंगका राजनीतिक पुलिसका निरंकुश शासन स्थापित हो जायगा। पर उसका यह भूत भी चर्चिलके दलकी हारको टाल न सका।

अभी तक ६-७ चुनावोंके परिणाम ज्ञात नहीं हुए हैं। इन्हें छोड़कर मज़दूर-दलको ३९० सीटें प्राप्त हुई हैं, जब कि टोरियोंको कुल १९६। रायटरके विश्लेषणसे जिन्होंने विविध दलोंको वोट दिए, उन मतदाताओंका क्रम इस प्रकार है—मज़दूर ११९४१५०१, टोरी ९०५६६७२, उदार २२२११४५, उदार राष्ट्रवादी ७७९७८१, स्वतन्त्र ५३९२२८, स्वतन्त्र राष्ट्रीय १३७७१८, कामनवेल्थ १२४७३०, कम्युनिस्त १०२७८० और स्वतन्त्र मज़दूर-दल ४६६७९। प्रमुख दलोंकी पिछले और इस चुनावकी तुलनात्मक सदस्य-संख्याएँ इस प्रकार हैं:—

दल	१९३५ में	१९४५ में
टोरी	३८७	१९६
मज़दूर	१५६	३९०
उदार	२०	११
उदार-राष्ट्रीय	३२	१४

चर्चिल-पंथियोंका पराभव

यदि चुनावके इस परिणामको सामान्य रूपसे भी ब्रिटिश जनताका फ़ैसला माना जाय, तो यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश जनताने गत ३० वर्षोंके टोरी-आधिपत्य और युद्ध जोतनेवाले एकमात्र विज्ञापित राष्ट्रनायक चर्चिलके दलको खदेड़कर पहली बार प्रतिगामी राजनीति, पूँजीपतियोंको मुनाफ़ाखोरी, गुप्त अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, रूस-विरोधी दवे प्रचार और औपनिवेशिक जनताकी गुलामीके खिलाफ़ अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है। चर्चिल-जैसे अतिविज्ञापित राष्ट्रनायकके खिलाफ़ वुडफर्डमें खड़े हुए अपरिचित अजनबी आल्फ्रेड हेनकाकको २७ के मुक़ाबलेमें १० हज़ार वोट मिल जाना और चर्चिलके २६ साथी मन्त्रियों एवं उपमन्त्रियोंका भारी बहुमतसे पराजित होना टोरियोंकी दुर्नीतिकी बहुत बड़ी अस्वीकृति है। जब हम देखते हैं कि १९३८ में हिटलरके सामने चेम्बर्लेनके घुटने टेकनेके बदनाम म्यूनिख-पैक्टके २५१ टोरी समर्थकोंमें से ९९ भारी बहुमतसे पराजित हुए हैं और ८५ को चुनाव लड़नेका साहस ही न पड़ा, तो जनताकी टोरी-नीतिकी अस्वीकृति और भी स्पष्ट हो जाती है। चूँकि इनमें से अधिकांश पूँजीपतियोंके एजेण्ट, उनके दलाल एवं साम्राज्यवादियोंके भोंपू ही थे, अतः इनकी पराजय उन प्रतिगामी शक्तियोंका ही पराभव है।

एमरीका पतन

हम चाहते थे कि चर्चिलके साथी २६ हारे हुए मन्त्रियोंके विचारों, कारनामों, आमदनीके ज़रियों आदिसे पाठकोंको परिचित कराते; पर स्थानाभावके कारण वह अभी सम्भव नहीं देख पड़ता। ताहम बदनाम भारत-मन्त्री एमरीके पतनका उल्लेख किए बिना हमें, और शायद पाठकोंको भी, सन्तोष न होगा। बर्मिंगमके स्पार्कब्रुक-क्षेत्रसे इन्हें मज़दूर-सदस्य आल्फ्रेड श्रुमरने ५६३४ के बहुमतसे हराया। स्मरण रहे कि एमरी गत ३४ वर्षोंसे निर्द्वन्द्व रूपसे यहांसे पार्ल्मेण्टके सदस्य चुने जाते रहे हैं। एमरी गोरखपुरमें पैदा हुए अधगोरे हैं। कदाचित् इसी लिए उनकी मनोवृत्ति भी पक्के 'बड़े साहब'की-सी है। अंगरेज़-जातिकी श्रेष्ठताके वे इतने कट्टर हिमायती हैं कि ब्रिटेन-अमरीकाके सहयोग-सम्बन्धका उन्होंने खुल्लम-खुल्ला विरोध किया है। रोडस, मिलनर और किपलिंग-जैसे साम्राज्यवादी उनके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदर्श हैं। जान गुन्थरने इन्हें दो पक्के टोरियोंमें से एक कहा है (दूसरे हैं डोलोब्रानके लार्ड लायड)। बंगालके अकालमें मरे लाखों प्राणियोंकी हाय, कांग्रेसको जापान-पक्षीय और फाशिस्त साबित करनेका षड्यन्त्र, बिना मुक़दमा चलाए जेलोंमें सड़ाए गए हज़ारों निर्दोषोंकी मूक दुराशीष, दमन-चक्रमें बलिके बकरे बनने और बरबाद होनेवाले निरीहोंकी आहें और देशकी स्वतन्त्रताके विरुद्ध दिखाई गई अदूरदर्शिता एवं हठधर्मीके कारण पैदा हुई घृणा, कटुता और क्षोभ हम भारतीयोंको कभी भी इस नर-पुंगवको भूलने न देंगे, और शायद इन्हें भी सुख-शान्तिसे जीवन न बिताने दें। पूरा सन्तोष तो हमें तब होता, जब इन गुरुतर अपराधोंके लिए ब्रिटिश जनता इन्हें माकूल सज़ा देकर अपनी न्याय-परायणता और नैतिक साहसका परिचय देती। पर इनके राजनीतिक पतनपर भी आंशिक सन्तोषकी साँस लेनेके अधिकारी तो हम हैं ही।

राजनीतिक प्रतिगामिता और फाशिस्तोंके समर्थनके साथ ही एमरी सदर्न रेल्वे और प्रसिद्ध इंजीनीयरिंग फर्म केमेल लेयर्डके डाइरेक्टर भी थे। अतएव उनकी पराजय रूस-विरोधी ठगों और मुनाफ़ाखोरोंके मुँहपर एक तगड़ी चपत भी है। शायद अपने इन्हीं आक़ाओंके स्वार्थके लिए ही एमरीने वर्त्तमान युद्ध छिड़नेसे कुछ समय पहले तक बराबर रूससे दूर रहने और जर्मनी, इटली तथा जापानके निकट सम्पर्ककी वकालत की है।

मज़दूर-दल और भारत

इसमें कोई शक नहीं कि टोरियोंकी हार और मज़दूर-दलकी जीतसे दुनियाके दूसरे तरक्की-पसन्द लोगोंकी तरह भारतीयोंको भी बेहद खुशी हुई है; पर मज़दूर-दल टोरियोंसे कितना भिन्न या बेहतर है, इसका निर्णय तो उसके कामोंसे ही होगा। जहाँ एमरीके हारनेकी हमें खुशी है, वहाँ हम यह भी नहीं भूल सकते कि उनके विरुद्ध प्रमुख रूपमें भारतकी समस्याको लेकर खड़े हुए रजनी पाम दत्तको २४३४९ में से केवल १८५३ मतदाताओंने ही वोट दिए, जिसके फल-स्वरूप उन्हें अपनी ज़मानतसे भी हाथ धोना पड़ा। यदि वे भारतके बजाय ब्रिटेनके मज़दूरोंके मकानों, वेतन, स्वास्थ्य, सामाजिक बीमा आदिके प्रश्नोंको लेकर चुनाव लड़ते, तो वे चुने भले ही न जाते, पर इससे कई गुना अधिक वोट ज़रूर पाते। मज़दूर-दलके प्रमुख सदस्य क्लीमेण्ट एटली और हरबर्ट मौरीसनने सार्वजनिक रूपसे कहा है कि वेवेल-योजना हमारी अन्तिम सीमा है और एक तरहसे हमने अपने मार्गसे हटकर ही भारतसे उसे स्वीकार करनेका अनुरोध किया। वेवेल-योजना ब्रिटेनके सभी दलोंकी स्वीकृत योजना थी, यह तो मज़दूर-नेताओंने कहा ही है; पर साथ ही वे यह दोहराते भी नहीं थकते कि क्रिप्स-योजना अभी भी बरक़रार है। जैसे इन्हें मालूम ही नहीं कि उसे देशके सभी दल, कुछ चुके हैं। आखिर इस अर्थहीन बातको तोतेकी तरह रटनेसे लाभ

मज़दूर-दलने 'लैट अस फेस दि फ्यूचर' नामसे अपने कार्य-क्रमकी जो पुस्तिका निकाली थी, उसमें भी भारतका ज़िक्र नहीं है। चुनावमें जीतनेके बाद अर्नेस्ट बेविनको छोड़ किसी भी ज़िम्मेदार मज़दूर-मंत्रीने भारतका नाम तक भी लिया है। बेविनने चुनावके पहले कहा था कि यदि जीत गए, तो इण्डिया-आफ़िसको बन्दकर उसका काम कॉमनियन-आफ़िसको तब्दील कर देंगे, ताकि भारतीयोंको हालसे शासित होनेकी शिकायत न रहे। अब शर्मा-शर्मी बेविन (जो विदेश-मन्त्री हुए हैं, यद्यपि मुँह धोए बैठे थे वे मंत्रित्वके लिए!) कहना शुरू किया है कि हम इस वादेको करेंगे। सुना गया है कि प्रधान-मन्त्री, भारत-मंत्री, भारतीय और क्रिप्सकी एक समिति बनेगी, जो भारतीय समस्याके सम्बन्धमें वाइसरायको नई हिदायतें देगी। अभी तक भारतमंत्री और भारतीय उपमंत्रीकी नियुक्तियाँ ही नहीं हुई हैं—और मज़दूर-दल बेविनके वादेको पूरा करनेके लिए वचनबद्ध है, अनावश्यक भी हैं—तब फिर इस समितिका गठन कब और होगा? ग्लोबके कूटनीतिक संवाददाताने बतलाया है कि रानी विक्टोरियाकी घोषणामें भारत-मंत्रीका स्पष्ट उल्लेख अतः उसे हटाने और इण्डिया-आफ़िस बन्द करनेके मार्गमें निक कठिनाई उपस्थित हो रही है। प्रसिद्ध विधानवादी कूपलैण्ड और प्रो० केटलिनने सुझाया है कि बादशाह विशेषाधिकारोंसे इस विधानमें सुधार करा सकते हैं। संवाददाताने यह भी कहा है—"सम्भवतः मि० एटली सरकारके आरम्भ-कालमें इस तरहके प्रथम श्रेणीके झगड़ेमें पड़नेको अनिच्छुक हैं।"

कदाचित् इसीलिए एटलीने जहाँ रूस-ब्रिटेन-अमेरिका मैत्री और चुनाव-कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेकी बातें कहीं भूलकर भी भारतका नाम नहीं लिया है। बेविनकी इण्डिया आफ़िस हटानेकी बात बच्चोंको फुसलानेकी-सी नासमझी-भरी है। डोमिनियन-आफ़िस द्वारा भारतीय मामलोंकी देख होनेसे ही तो भारत डोमिनियन हो नहीं जायगा, और फिर डोमिनियन होना भी नहीं चाहता। ब्रिटिश सरकारके जो गण हैं, उनमें से भारत जिस किसी भी मंत्रीके अधीन रहे, तख्तो न रहनेपर भी वह भारत-मंत्री ही होगा। इससे स्थितिमें कौन-सा मौलिक अन्तर आ जायगा? फिर मामूली-सी बातके लिए भी मज़दूर-सरकार वैधानिक सामना करनेसे घबराती है, तो और अधिककी उससे क्या की जाय? साथ ही हम यह भी नहीं भूल सकते कि एटली, मौरीसन आदि चर्चिल-एमरीके उसी मन्त्रिमंडलमें थे,

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Vacanas Digitized By eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१९४३ में लगभग ५० लाखको अकालकी बलि चढ़ा दिया था, और १९४४-४५ में हज़ारों-लाखोंको नंगा-भूखा रखा ; पर इन लोगोंने कभी उस दुर्नीतिका दबा विरोध भी नहीं किया और न कभी उससे किसी तरहकी असहमति ही प्रकट की।

मज़दूर-दलका उदय

यद्यपि ब्रिटिश मज़दूर-दलकी नियमित रूपसे स्थापना १९०० में हुई, तथापि उसका सूत्रपात दो दशक पहले ही हो चुका था। १८८० में मार्क्सवादी विचार-धारासे प्रभावित होकर उसके प्रचारार्थ हाइण्डमैनने सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशनकी स्थापना की। इसके उस समय केवल १० हज़ार अनुयायी थे और कई बार खड़े होनेपर भी हाइण्डमैन पार्लमेण्टका सदस्य नहीं चुना जा सका था। १८८४ में कुछ आदर्शवादियोंने जन-साधारणकी दयनीय स्थितिसे आकुल होकर फेबियन सोसाइटीकी स्थापना की, जिसमें सिडनी वेब, बरनार्ड शा, ग्राहम वालेस आदि प्रमुख थे। १८९३ में केर हार्डीने फेबियन समाजवादके कार्य-क्रमको लेकर मज़दूर-दलकी स्थापना की। १९०० में लन्दनमें हुई ट्रेड-यूनियनिस्टों और समाजवादियोंकी कान्फ्रेंसने एक संयुक्त राजनीतिक संस्थाके रूपमें इसे 'मज़दूर-प्रतिनिधि-दल' नाम दिया। इसके दो सदस्य इसी वर्ष हुए पार्लमेण्टके 'खाकी-चुनाव'में सफल हुए। १९०६ में इसके २९ उम्मीदवार चुने गए और पहले-पहल 'मज़दूर-दल' नामका प्रयोग किया गया। १९१० में इसके ४२ सदस्य चुने गए। १९१८ तक यह दल एक तरहसे ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनोंका राजनीतिक मोर्चा ही रहा। उसके बाद आर्थर हेण्डरसनके नए विधानके अनुसार यह एक स्वतन्त्र-सा सुधारक समाजवादी दल बन गया, जिसका उद्देश्य हो गया समाजवादकी स्थापनाके लिए मज़दूर-सरकार क़ायम करना। तभी बहुतसे उदार-दली भी इसमें आ मिले।

पिछले महायुद्धसे पहले तक दलका संगठन बड़ा ढीला-ढाला-सा था। १९१२-१३ में जाकर दलकी स्थिति कुछ ठीक हुई और उसने पार्लमेण्टरी राजनीतिकी ओर विशेष ध्यान दिया। उलस्टर-आन्दोलनके कारण उस समय इंग्लैण्डमें गृह-युद्धकी आशंका थी। अपनी होम-रूल-नीतिके समर्थनके लिए सरकार हर दलकी चिरौरी कर रही थी। १९१४ में युद्ध छिड़नेपर मज़दूर-दलने उसके खिलाफ़ आवाज़ उठाई। पर अपने अध्यक्ष रेम्ज़े मैकडोनल्डके असहमत होकर इस्तीफ़ा दे देनेपर इसने अपनी नीति बदली और सरकारका साथ दिया। १९१६ में अनिवार्य सैनिक-भर्तीके प्रश्नपर मतभेद हो जानेसे इसके मन्त्रियों ने इस्तीफ़ा दे दिया, पर फिर नए संयुक्त मन्त्रिमण्डलमें शामिल हो गए। १९१७ की स्टाकहोल्म शान्ति-परिषदमें शत्रु-प्रति-निधियोंके शामिल किए जानेके विरोधमें आर्थर हेण्डरसनने मन्त्रिमण्डलसे इस्तीफ़ा दे दिया। १९१८ में नवम्बरकी सुलह-कान्फ्रेंसमें पहली बार दलने बाल्शेविज़्मके खिलाफ़ वैधानिक जनतन्त्रका समर्थन किया। युद्ध-समाप्तिपर १९१८ में दलने मन्त्रिमण्डल छोड़ दिया। पर इस वर्ष इसके ३६१ उम्मीदवारोंमें से केवल ६१ ही चुने गए। १९२३ के चुनावमें इसके १९१ सदस्य चुने गए। १५९ लिबरलोंसे मिलकर १९२४ में दलने अपना पहला मन्त्रिमण्डल बनाया। ८ अक्टूबरको एक कम्यु-निस्तकी सुनवाईको लेकर लिबरलों और अनुदार-दलियोंसे हुए संघर्षके कारण मज़दूर-सरकार गिरी और टोरियों द्वारा आविष्कृत फर्ज़ी 'ज़िनोविफ़-पत्र'के कारण नए चुनावमें इसके केवल १५१ सदस्य ही चुने गए। १९२६ की हड़तालोंके बाद दलका असर फिर बढ़ने लगा और १९२९ के चुनावमें उसे २८७ सीटें प्राप्त हुईं। पूर्ण बहुमत न होनेसे इस बार भी उसने संयुक्त-मन्त्रि-मण्डल बनाया, जिसका मैकडोनल्डकी अदूरदर्शिता एवं मूर्खता-पूर्ण नीतिके कारण कुछ समय बाद ही पतन हुआ। तबसे अब तक मज़दूर-दल प्रमुख विरोधी-दलके रूपमें ही रहा है।

समाजवाद बनाम सामाजिकतावाद

रेम्ज़े मैकडोनल्ड, आर्थर हेंडरसन, स्नाउडन, टामस, क्लीनेस आदि श्रेष्ठ मस्तिष्कोंको पाकर और दो बार मंत्रिमंडल बनाकर भी मज़दूर-दल न केवल ब्रिटेनमें समाजवादका प्रचार करनेमें ही असमर्थ रहा, बल्कि अपनी नासमझीसे उसके शत्रुओंको सत्तारूढ़ करनेमें सहायक भी हुआ। देशमें वह कोई व्यापक सामाजिक सुधार न कर सका और विदेशोंमें शान्ति, सुरक्षा और समझौते की नीतिको पूर्णतया सफल भी नहीं बना सका। जिस आर्थर हेंडरसनकी वैदेशिक नीतिको आदर्श मानकर नए मज़दूर प्रधान-मंत्री एटली चलना चाहते हैं, उन्होंने ब्रिटेनको लार्ड सालिस-बरीकी एकान्तता तक पहुँचा दिया था। स्ट्रेसा-कान्फ्रेंसमें यद्यपि उन्होंने इस भूलको कुछ सुधारा, पर उसका श्रेय उन्हें नहीं मिला। रेम्ज़े मैकडोनल्ड जब प्रधान-मंत्री होनेसे पहले भारत आए थे, तो यहाँकी दरिद्रता देखकर रो पड़े थे। पर १९३० में जब वे प्रधान-मंत्री थे और गांधीजीने नामक-सत्याग्रहके रूपमें इस दरिद्रताके विधायकोंको चुनौती दी, तो वैसे ही लाठी-चार्ज, गिर-फ्तारियाँ, ज़ब्तियाँ, और ज़ोर-ज़ुल्म हुए, जैसे कि बाल्डविन-होर या चर्चिल-एमरीके कार्य-कालमें हुए। इन सबका कारण क्या था ? आइए, मज़दूर-दलके अध्यक्ष प्रो० हैराल्ड लास्कीके शब्दोंमें ही इस परिवर्त्तनके मूलमें काम करनेवाली मनोवृत्तिको देखें-समझें। अपनी १९४४ में प्रकाशित पुस्तक 'फ़ेथ, रीज़न एण्ड सिविलिज़ेशन' (पृष्ठ ३२) में वे लिखते हैं :—

"१९२४ और '२९के मज़दूर-मंत्रिमंडलोंने समाजवादी समाजका स्वप्न भी नहीं देखा। जब ये लोग विरोधी-दलमें रहे, तो इन्हें सिद्धान्तोंके लिए लड़नेकी अपेक्षा—जैसा कि पार्नेलने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किया—स्थिर स्वार्थोंके लोगोंसे सुरक्षा और सुदृढ़ताके लिए वाहवाही पानेकी ही ज़्यादा चिन्ता रही। १९१४ से पहले इनका दृष्टिकोण उसी श्रमजीवी-वर्गका-सा था, जहाँसे कि ये आए थे। इनके राजनीतिक और अर्थनीति विचार और आकांक्षाएँ तथा दिमाग़ी आदतें श्रमजीवी-वर्गके ताने-बानेसे ही बनी थीं तथा इनकी औरतें और बच्चे श्रमजीवी-वर्गसे बाहरके किसी जीवनकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। पर १९१९ के बाद ट्रेड-यूनियनके नेता सिविल सर्वेण्ट बन गए और दलके सदस्योंके साथ उनका सम्पर्क केवल दफ़्तरके समयके घण्टों तक ही सीमित हो गया। उनका सामाजिक जीवन उनके मालिकों द्वारा प्रदत्त सुविधाओंको सतहपर पहुँच गया। उनकी स्त्रियाँ टुटपुँजिया मध्य-वर्गकी स्त्रियोंकी तरह बड़े-बड़े शहरोंके उपनगरोंमें रहने लगीं और उनके बच्चे ऊँचे पदोंकी महत्वाकांक्षा लेकर कालेजों तथा विश्वविद्यालयोंमें पढ़ने लगे। मज़दूर-दलमें ट्रेड-यूनियनी समाजवादियोंकी वृद्धिसे ये नाक-भौं सिकोड़ने लगे और इस बातमें इन्हें तनिक भी सन्देह नहीं रह गया कि पूँजीवादी समाजमें कोई परिवर्त्तन लानेके लिए उसी अनुपातमें ट्रेड-यूनियनके संगठनमें भी परिवर्त्तन होना आवश्यक है! दूसरे महायुद्धके छिड़नेपर इनके लिए अपने उन सहकर्मियोंके बजाय, जो श्रमजीवी-वर्गको सत्तारूढ़ करनेके लिए ज़्यादा उत्सुक थे, टुटपुँजिया सिविल सर्वेण्टोंसे अच्छे सम्बन्ध क़ायम करना ही ज़्यादा आसान हो गया।"

मज़दूर-दलका भविष्य

यदि लास्कीके विश्लेषणमें कुछ भी तथ्य है, तो आज इन टुटपुँजिया समाजवादियोंका मुक़ाबला बड़े माहिर और मज़बूत प्रतिगामियोंसे है। उनके सम्बन्धमें स्वयं एटलीने अपनी पुस्तक 'दि लेबर-पार्टी इन पर्स्पेक्टिव'में लिखा है—"ब्रिटेनका पूँजीवादी वर्ग संसारमें सबसे अधिक मज़बूत और कुल मिलाकर सबसे अधिक चतुर है। अन्य देशोंमें इस वर्गने जिन कठोर और घातक उपायोंका अवलम्बन किया है, यह उनका कभी प्रयोग नहीं कर सकता। बहुत चतुर होनेके कारण यह अपनी अस्तित्व इतनी आसानी और स्पष्टतासे प्रकट होने देना या जन-भावनाको आघात पहुँचाना पसन्द नहीं करेगा। यह सदा सुधार, शान्ति और लोकतन्त्रकी भाषाका प्रयोग करता है और अपने उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिए मानवी अधम उपायोंको काममें न लाकर हर भले आदमीको इस तरह समझाता है कि किसी भी समाजवादी या सुधारकके बजाय इसके मार्गको अपनाकर ही वह अपने उच्चतम आदर्शोंको प्राप्त कर सकता है।" (पृष्ठ २४८)

ऐसे पूँजीवादी वर्गके मुक़ाबलेमें अपनी उद्देश्य-पूर्त्तिके लिए मज़दूर-सरकारको क्या करना चाहिए, इस सम्बन्धमें एटलीने लिखा है—"मज़दूर-सरकारको यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि जनताके आदेशका पालन करनेके मार्गमें वह किसी भी तरहकी बाधाको सहन नहीं करेगी। सभी महान कार्योंमें क़दम ही कुछ मुश्किल हुआ करते हैं और जिस ढंगसे ये जाते हैं, सफलता या विफलता उसीपर निर्भर करती है। सरकारको किसी द्वेष या प्रतिशोधकी भावनासे नहीं, बल्कि प्रति न्याय करनेकी अधिकतम तीव्र भावनासे ही इस देशके स्वतन्त्रता, समानता और सामाजिक न्यायके आधारपर करने और दूसरे राष्ट्रोंसे मिलकर एक ऐसा ही राष्ट्रसंघ कार्य दृढ़तापूर्वक करना चाहिए।" (पृष्ठ २८७-८८)

निःसन्देह मज़दूर-दलका भविष्य—और एक बड़ी यूरोप तथा दुनियाका भविष्य भी—बहुत-कुछ इसीपर करेगा कि एटली कहाँ तक अपने सिद्धान्तों और कार्यान्वित करते हैं। इस बार मज़दूर-दलको पूर्ण बहुमत हुआ है तथा विश्व-लोकमत और परिस्थितियाँ भी उसके अतः यदि एटली और उनके साथी मैकडोनल्डकी-सी शिता, कायरता एवं झिझकका शिकार न हों, तो सहज ब्रिटेन और उसके अधीन देशोंको पूँजीपति मुनाफ़ाखोरोंके से निकालकर स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्यायकी आगे बढ़ा सकते हैं।

शिमला-सम्मेलनकी विफलता

लार्ड वेवेलने अपनी बदनाम शासन-परिषदके पुनर्गठन लिए गत २५ जूनको शिमलामें भारतीय नेताओंका जो सम्मेलन बुलाया था, वह सभी दलोंकी सहमतिके अभावमें गत १४ जुलाईको विफल घोषित किया गया। यद्यपि इस विफलताकी ज़िम्मेदारी लार्ड वेवेलने स्वयं ओढ़नेकी कोशिश की है; पर सब जानते हैं कि उसका एकमात्र कारण जिन्नाकी हठधर्मी है। पहले दो हफ़्तों तक सम्मेलनकी प्रगतिके जो समाचार पत्रोंमें उनसे यह आम विश्वास-सा हो चला था कि जिन्नाके न होनेपर भी शायद लार्ड वेवेल अपनी योजनाको कार्यान्वित में न झिझकें। यदि जिन्नाके राज़ी होनेकी शर्त्तपर ही वे करनेको तैयार थे, तो यह बात जिन्नासे हुई पहली मुलाक़ातमें उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो गई होगी। तब फिर इतने दिनों तक लनका नाटक जारी रखनेका अर्थ ही क्या था?

साम्राज्यवादी चाल?

शिमला-सम्मेलनकी विफलतापर कई तरहकी टिप्पणियाँ गई हैं। किसीका कहना है कि यह नाटक ब्रिटिश चुनावोंके 'स्टण्ट'-रूपमें ही खेला गया था। किसीका कहना है कि उद्देश्य था विदेशोंको यह दिखाना कि भारतीय आपसमें ही मत नहीं, अंगरेज़ोंका क्या दोष? भारतीय राजनीतिक करनेके लिए लार्ड वेवेलकी ईमानदारीसे की गई चेष्टाकी में हमें तनिक भी सन्देह नहीं; पर कान्फ्रेंसके अंतिम उनका रवैया भी कुछ क्विप्सका-सा ही रहा, और आश्चर्य

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि वे भी जाने-अनजाने चर्चिल-एमरीके हाथोंमें खेल गए हों। कार्ल्सबादकी विफलताकी घोषणा करते हुए उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि जब उनके 'हल'को जिन्नाने स्वीकार नहीं किया, तो उन्होंने नई परिषदकी सूची उन्हें तथा अन्य भारतीय नेताओंको दिखानेकी ज़रूरत ही नहीं समझी! गोया समूचे देशकी माँग और ब्रिटिश अधिकारियोंके सुझावोंका अन्तिम निर्णायक एक-मात्र जिन्ना ही हैं। वक़ौल राष्ट्रपति आज़ादके यह झिझक और ढुलमुलयक़ीनी कोई गुण नहीं, कमज़ोरी है। अगर यह कमज़ोरी लार्ड वेवेलकी अपनी है, तो उनकी नीयतमें बिना किसी तरह का शक किए हमें मजबूरन इतना तो कहना ही पड़ेगा कि देशने उनके पद और दायित्वके अनुरूप जिस दृढ़ता, दूरदर्शितापूर्ण निर्णय-शक्तिकी आशा की थी, ज़रूरतके समय वे उनका परिचय नहीं दे सके। पर अगर इस कमज़ोरीके मूलमें चर्चिल-एमरी हैं, तब तो वे हमारी दया और सहानुभूतिके ही पात्र हैं।

जिन्नाका राष्ट्र-विरोधी षड्यन्त्र

शिमला-सम्मेलनकी विफलतापर जन-साधारणकी अनेक टिप्पणियाँ हमारे सुननेमें आई हैं। पर उनमें से सबसे अधिक अर्थपूर्ण हमें एक मुस्लिम-लीगीकी टिप्पणी लगी, जिसने कहा—"जिन्ना और लियाक़तअली खाँ साहबको खाने-कपड़ेकी दिक्कत थोड़े ही है, जो वे कांग्रेससे समझौता करेंगे?" सचमुच अपने-आपको ९९ प्रतिशत मुसलमानोंका प्रतिनिधि कहनेवाले लीगके ये स्वयम्भू नेता अपनी अहम्मन्यता और थोथी शानके चक्करमें यह भूल जाते हैं कि ग़रीब मुसलमानोंको इस वक्त कैसी हालत है? दरअसल शिमला-सम्मेलनके सामने पाकिस्तान, मुस्लिम-लीगके प्रतिनिधित्वके दावे या भावी शासन-विधानका तो कोई सवाल ही नहीं था। जनताके प्रतिनिधियोंके सामने मुख्य प्रश्न था जनताकी मौजूदा कठिनाइयाँ, चीज़ोंकी कमी और शासनकी भ्रष्टता दूर करना। इसीलिए कांग्रेसने २९ करोड़ हिन्दुओं और ९ करोड़ मुसलमानोंके समान प्रतिनिधित्व-जैसी अनुचित और अन्यायपूर्ण बातको भी दरगुज़र कर नई शासन-परिषदमें शामिल होना स्वीकार किया। पर जिन्नाके सामने भारतीयों या सिर्फ़ मुसलमानोंकी दुरवस्था नहीं थी। उनके सामने थी देशके इस संकट-कालमें भी पाकिस्तानकी गारण्टी और मुसलमानोंके प्रति-निधित्वके दावेकी स्वीकृतिके रूपमें अपने नेतृत्वकी सफलताके विज्ञापनका अनुचित स्टण्ट। दुराशयी दुर्जनोंका दुराग्रह ऐसे नाज़ुक मौक़ोंपर ही हुआ करता है।

जिन्नाका यह आचरण देखकर हमें गांधीजीके वे शब्द याद हो आते हैं, जो उन्होंने पिछले साल १३ जुलाईको पँचगनीमें युद्धके दौरानमें भारतीयोंको शासन-सत्ता सौंपनेके अपने सुझावके सम्बन्धमें कहे थे। उन्होंने कहा था—"यदि श्री जिन्ना या अधिकारी मेरा सुझाव स्वीकार नहीं करते, तो मैं इसे अत्यन्त दुर्भाग्यजनक समझूँगा। उससे यह प्रकट होगा कि इन दोनोंमें से कोई भी इस अवसरपर भारतको वास्तवमें स्वतन्त्र होने और स्वाधीनता तथा जनतन्त्रकी लड़ाईको जीतनेमें उसे पूरा हिस्सा नहीं देना चाहते। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि श्री जिन्ना इस मार्ग में बाधक नहीं हैं; किन्तु सरकार भारतके आज़ादीके दावेका निपटारा—जो कभीका हो जाना चाहिए था—नहीं होने देना चाहती और वह श्री जिन्नाको भारतको आज़ादी न देनेके बहाने के रूपमें इस्तेमाल कर रही है।...सभी समझदार व्यक्तियोंका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे भारतकी महत्वाकांक्षाओंको कुचलनेके इस शैतानी षड्यंत्रको विफल करें।"

साम्प्रदायिकताको अनुचित महत्व

शिमला-सम्मेलनकी विफलतापर निराशा एवं खेद प्रकट करते हुए नेहरूजीने कहा है कि दरअसल संघर्ष तो था ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रीयतामें; पर अपने स्वार्थ-साधन के लिए सरकारने साम्प्रदायिकताको अनुचित महत्व दे डाला। आपने कहा—"धार्मिक फ़िर्क़ोंके रूपमें राजनीतिकी कल्पना जन-तन्त्र या राजनीति और अर्थनीतिकी आधुनिक धारणाके साथ बिलकुल असंगत है।...इस दृष्टिसे किसी भी अन्य दलकी अपेक्षा कांग्रेसका दृष्टिकोण राजनीतिक, अर्थनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें आधुनिक है। मुस्लिम-लीग या कोई भी अन्य साम्प्रदायिक संस्था न सिर्फ़ एक खास फ़िर्क़ेका दावा ही पेश करती है, बल्कि उसे मध्य-युगीन ढंगसे भी पेश करती है। इस दृष्टिकोणका मतलब है अब तक भारतमें जो राजनीतिक और अर्थनीतिक विकास हुआ है, उसे नज़र-अंदाज़कर भारतमें फिर एक मध्य-युगीन ढाँचा खड़ा करना।...पर साधारणतया आज देशोंको मध्य-युगीनता और जनतन्त्रमें से एकको नहीं चुनना है, बल्कि राजनीतिक और अर्थनीतिक जनतन्त्र अर्थात् किसी-न-किसी रूपमें समाजवादको चुनना है।"

पर जनतन्त्र या समाजवाद तो दूर रहा, जिन्ना साहब भारतीयों या भारतकी आज़ादीके रूपमें भी कभी नहीं सोचते हैं। उन्हें चिन्ता है सिर्फ़ मुसलमानोंकी और पाकिस्तानतुमा धनी मुसलमानों और नवाब-ज़मींदारोंके उस मध्य-युगीन ढाँचेकी, जिसमें हिटलर-मुसोलिनीका पार्ट अदा करते हुए जिन्ना साहब भोले-भाले मुसलमानोंको साम्प्रदायिक उत्तेजनके सहारे मुस्लिम-विश्व-संघकी ओर ले जा सकें! शेखचिल्लीके-से ये सपने तो किसी दिन जिन्ना साहबके साथ ही ठंडे हो जायँगे; पर करोड़ों मुसलमानों और भारतीयोंको जिन्नाके इस दिमाग़ी फ़ितूरकी बदौलत अभी वर्षों तक ग़ुलामीका जुआ और वहन करना पड़ेगा। कदाचित् इसीलिए ब्रिटेनकी कम्युनिस्ट-पार्टीके प्रमुख सदस्य रजनी पाम दत्त तकको कहना पड़ा है कि जिन्ना कुछ ऐसे प्रति-गामी सम्प्रदायवादियोंके दलके नेता हैं, जो किसी-न-किसी बहाने देशकी उन्नतिको रोक रखनेपर तुला हुआ है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दू-मुसलमानोंका कर्त्तव्य

भारतकी राष्ट्रीय राजनीतिको साम्प्रदायिक रंग देनेका ब्रिटिश षड्यंत्र उतना ही पुराना है, जितना कि उसका शासन। मुस्लिम-लीगके सर्वप्रथम प्रधान सर आगाखाँ जब पृथक चुनावकी माँगके लिए मुसलमानोंका एक डेपुटेशन लेकर लार्ड मिण्टोके पास पहुँचे, तो उन्होंने कहा था कि इस देशमें रहनेवाली जातियोंके धार्मिक विश्वासोंके अनुसार उन्हें प्रतिनिधित्व न देनेका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। इस साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके न मिलनेसे क्या 'भयंकर' परिणाम होता (या शायद उस हालतमें भारतीयोंमें साम्प्रदायिकताके बजाय राष्ट्रीयताका ही विकास होता, जो भारतीयोंके लिए तो नहीं, पर अंगरेज़ी शासनके लिए ज़रूर भयंकर होता!), यह आज विचारणीय नहीं है। पर इसके मिलनेसे जो फूट और ज़हर फैला है, जो रक्तपात हुआ है तथा हिन्दुओं और मुसलमानोंकी जो राष्ट्रीय क्षति हुई है, वह सभी जानते हैं। आज जब दुनियाके सभी देश राजनीतिक दलों, जनतान्त्रिक कार्यक्रमों और अर्थनीतिक योजनाओंके रूपमें सोचते हैं, हमारे देशकी राजनीति हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई और तफ़सीली जातियोंके साम्राज्यवादी खूँटोंके इर्द-गिर्द ही घूम रही है।

१९१९ में इण्डिया-बिलपर बोलते हुए कर्नल (अब लार्ड) वेजवुडने कहा था—"इस बिलसे भारतका तो विचार ही गायब हो गया और उसकी जगह ले ली हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, मरहठा, ग़ैर-ब्राह्मण, भारतीय ईसाई, अधगोरे और अंगरेज़ आदि पृथक सम्प्रदायोंने।" शिमला-सम्मेलनको विफलता इस कटु सत्य एवं अप्रिय यथार्थताकी खेदजनक याद-दिहानी है। ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा १९१९ और १९३५ में भारतपर थोपे गए शासन-विधानोंने इस ज़हरको हमारी नसोंमें इतना गहरा पहुँचा दिया है कि आज धारा-सभाओं या वाइसरायकी शासन-परिषदके प्रतिनिधि देश या देशवासियोंके हितके रूपमें न सोचकर अपने मज़हब, जाति अथवा दलगत स्वार्थोंके रूपमें ही सोचने और काम करनेके आदी हो गए हैं। इससे देशकी जो हानि हुई और हो रही है, वह किसी भी समझदार व्यक्तिसे छिपी नहीं है। तब फिर हम कब तक इस दयनीय और हानिकर स्थितिको जारी रहने देंगे? देशवासियोंको ग़रीबी और ग़ुलामीसे मुक्त करनेमें क्या हम सभी एकमत नहीं हैं? हमारे देशमें विदेशियोंके शासन और शिमला-सम्मेलन-जैसे नाटकोंका अभिनय बन्द होकर हमारा शासन हो, इस बारेमें हममें क्या मतभेद है? तब फिर क्यों नहीं हम लोग मिलकर काम करना शुरू करें और दुनियाके अन्य देशोंके साथ क़दम मिलाकर उन्नतिकी दिशामें बढ़ें?

श्रीदेव सुमनका मृत्यु या हत्या?

हिटलर और मुसोलिनी नहीं रहे और उनके बदनाम नज़रबन्द तथा यंत्रणा-कैम्पोंकी कलंक-कालिमा भी शायद अब इतिहासके पृष्ठोंमें ही रह जायगी; पर उनके भारतीय जेबी-संस्करण—जो हिटलर-मुसोलिनी और उनके कैम्पोंसे भी बहुत पुराने हैं—आज भी ब्रिटिश साम्राज्यवादकी कृपासे क़ायम हैं और निर्लज्ज पनप रहे हैं। मध्य-युगीन बर्बरताके इन अवशेषोंकी रक्षाके लिए सरकार बहादुरने क़ानून भी बना रखे हैं। इसी साम्राज्यवादी संरक्षणके कारण भारतके इन निरंकुश स्वेच्छाचारी फ़ासिस्ट सामन्तोंके अधिकांश काले कारनामे पहले तो जनताके सामने आने ही बहुत कम पाते हैं और यदि कुछ आते भी हैं, तो उनका कोई खास परिणाम नहीं होता।

गत वर्ष २५ जुलाईको गढ़वालके प्रसिद्ध लोकसेवक श्रीदेव सुमनकी टिहरी-जेलमें रहस्यपूर्ण ढंगसे मृत्यु होनेका संवाद पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। ६९ दिनकी भूख-हड़ताल तोड़नेके दो हफ़्ते बाद ही हुई इस 'मृत्यु'ने स्वभावतया जनताके मनमें सन्देह पैदा किया और अखिल भारतीय लोक-परिषदको इसकी जाँचके लिए एक समिति नियुक्त करनी पड़ी। खेद है कि अनेक कठिनाइयोंके कारण अभी तक समितिकी जाँच-रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हो पाई है। पर अभी हाल ही में उसके एक सदस्य श्री सत्यदेव विद्यालंकारने हरद्वार, ऋषिकेश और देहरादून आदिकी यात्रासे लौटकर कहा है—"श्रीयुत श्रीदेव सुमनकी टिहरी-जेलमें हुई मृत्युको मृत्यु नहीं, किन्तु हत्या कहना चाहिए; जो उनके विरुद्ध उस समयके अधिकारियों द्वारा किए गए षड्यन्त्रका परिणाम है।...श्रीदेव सुमनकी मृत्युके बाद उनके शवका कुछ भी पता नहीं दिया गया। मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि उनका शव कम्बलमें लपेटकर गंगाजीमें बहा दिया गया।" आपने कहा है कि टिहरी-राज्य द्वारा घोर आतंक फैलाए जानेके बावजूद कुछ नए गवाह और प्रमाण मिले हैं, जिनसे सुमनजीकी मृत्युपर और भी प्रकाश पड़ता है।

इन बातोंमें कहाँ तक सचाई है, यह कह सकना हमारे लिए संभव नहीं। पर लोक-परिषदको केवल इसकी जाँच करके ही चुप न बैठ जाना चाहिए। उसे तथा अन्य लोक-संस्थाओंको इस मामलेको उच्चाधिकारियों तकके जाना चाहिए।

कपड़ेकी कमी और सरकार

खाद्यके अकालकी तरह ही बंगालमें कपड़ेका अकाल भी भीषणसे भीषणतर रूप धारण करता जा रहा है और अधिकारी उसी तरहकी गफ़लत तथा लापरवाहीसे चल रहे हैं। कुछ दिन पहले टैक्सटाइल-कमिश्नरने कहा था कि बंगालमें अब कपड़ेकी कमी नहीं है। तब फिर पता नहीं आए दिन कपड़ेके लिए होने वाले दंगों, आत्म-हत्याओं और जगह-जगह निकलनेवाले नंगोंके जलूसोंके संवाद क्या कोरी कल्पनाकी ही उड़ान हैं! अभी हाल ही में अपने एक भाषणमें बंगालके गवर्नर श्री केसीने कहा है—"यदि मुनाफ़ाखोरी और चोर-बाज़ारकी व्याधि न भी होती,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब भी हमें कपड़ेकी बहुत बड़ी कमीका सामना करना पड़ता। दुनियाके हिस्सोंमें ज़रूरतके अनुपातमें कपड़ा कम है। कोयले और मज़दूरोंकी कमी और बाहरसे आनेवाले कपड़ेकी कमीके कारण समग्र भारतमें ही कपड़ेकी कमी हो गई है।"

श्री केसी-जैसे उच्चाधिकारीकी बात ठोस प्रमाणोंपर आधारित न हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर उपलब्ध आँकड़ोंसे हमारी तो यही धारणा है कि कपड़ेकी यह कमी बहुत हद तक यथार्थ नहीं, कृत्रिम है, और इसके लिए ज़िम्मेदार हैं मुनाफ़ाखोर तथा चोर-बाज़ार और अकर्मण्य, अयोग्य तथा ग़ैरज़िम्मेदार सरकार। भारतमें सूती कपड़ेकी ४०० मिलें हैं, जिनमें ४३ करोड़की पूँजी लगी है। १९४० में इनमें बना ४०० करोड़ गज़ कपड़ा भारतीय जनतामें खपा। इसके बाद युद्धकी आवश्यकताके कारण इसका उत्पादन तो ज़रूर बढ़ा, किन्तु जनताके लिए १९४२ में केवल १८० करोड़ गज़ कपड़ा ही मिल सका, जिसका मतलब यह है कि इन दो वर्षोंमें २२० करोड़ गज़ कपड़ा पहननेवाले नंगे या अधनंगे रहे। सरकारी सहायतासे मिल-मालिकोंने यह कपड़ा बाहर भेजा। इस तरह उत्पादनके निरन्तर बढ़नेपर भी जब बाज़ारमें कपड़ेका अकाल-सा आ गया और जनतामें असन्तोष बढ़ने लगा, तो सरकारने उसका भाव नियन्त्रित करनेके लिए जून १९४३ में बम्बईमें एक कान्फ्रेंस बुलाई। इसके द्वारा निकाली गई विज्ञप्तिमें कहा गया कि १०० करोड़ गज़ कपड़ा सरकार अपनी ज़रूरतोंके लिए खरीदेगी और १०० करोड़ निर्यात करेगी। पर वास्तवमें १९३९ में २२ करोड़ १० लाख गज़ कपड़ा बाहर भेजा गया और १९४१ में ६४ करोड़ ८० लाख गज़। इससे उत्पादकोंको भले ही लाभ हुआ हो, पर जनताको तो बेहद असुविधा ही हुई। इसी वर्ष सरकारने कपड़ेका उत्पादन बढ़ाने, उसकी क़िस्म उन्नत करने और मूल्य नियंत्रित करनेके उद्देश्यसे क्लाथ-कंट्रोल-बोर्ड स्थापित किया। पर इसके सदस्योंमें मिल-मालिकोंका बहुमत (२० मिल-मालिक और कपड़ेके व्यापारी, ४ सरकारी और एक मज़दूर सदस्य) होनेसे तथा इसकी मूल्य-निर्धारण-समितिमें सब-के-सब मिल-मालिक और कपड़ेके व्यापारियोंके होनेसे नियन्त्रणका यह ढोंग एक झूठा स्वांग-मात्र ही रहा।

सरकारकी स्टैण्डर्ड-क्लाथकी योजनाको भी इन मुनाफ़ाखोरोंने विशेष नहीं चलने दिया। उसमें सरकारने इनके लिए २० प्रतिशत मुनाफ़ा तय किया था। चोर-बाज़ारमें कपड़ा बेचने या माल चोरीसे बाहर भेजनेमें इन्हें ६५ से लेकर १२० प्रतिशत तक लाभ होता था, अतः इन्होंने धड़ल्लेसे उसी मार्गको अपनाया। इस चोरीकी शुरुआत हुई तकुओंकी संख्या छिपाकर असलीसे कम बतलाने और अपने भाई-भतीजों और फर्ज़ी मध्यस्थोंकी संख्या बढ़ाने (क्योंकि स्टैण्डर्ड क्लाथके व्यापारी हर दो साल बाद बदलनेकी बात है) से तथा अन्त हुआ उनके द्वारा चोरीसे कपड़ा देशी-राज्योंसे बाहर भिजवाने और चोर-बाज़ारोंमें ऊँची दरोंपर बिकवानेके रूपमें। काठियावाड़की अकेली एक रियासत जंजीरासे—जहाँ न एक तकुआ है, न एक मिल ही - पिछले वर्ष सिर्फ़ ३ हफ्तोंमें ४४ लाख रुपएका कपड़ा चोरीसे देशी नौकाओं द्वारा मिस्र और अफ्रीकाके अन्यान्य भागोंको भेजा गया है। कभी-कभी ऐसी चोरियाँ होती हैं, जिनका पता ही नहीं लगता—जैसे, मई १९४३ से मई, '४४ तक ८ करोड़ ९० लाख गज़ कपड़ा बंगाल भेजनेकी व्यवस्था हुई थी; पर कलकत्तेके टैक्स्टाइल-कंट्रोलरको यह आज तक भी नहीं मिला। अगस्त १९४३में कलकत्तेके अनेक स्थानोंकी तलाशी लेनेपर २७० करोड़ गज़ कपड़ा पकड़ा गया था, जो साधारण उत्पादन और युद्ध-माँगको पूरा करनेके बाद फाज़िल बचा था। यदि यह उचित मूल्यपर बाज़ारों में बेचा जाता, तो प्रति व्यक्तिको २१ गज़ कपड़ा आसानीसे मिल जाता। पर इसका कहीं पता भी नहीं चला।

रूस और भारतका वैज्ञानिक सम्बन्ध

गत ३० जूनको मास्को-रेडियोसे कहा गया कि कलकत्ता-विश्वविद्यालयके एक अनाम विज्ञानवेत्ताने भारत और रूसमें अधिक निकट वैज्ञानिक सम्पर्क स्थापित करनेका अनुरोध किया है। उन्होंने कहा—"भारतमें बहुत-सी वैज्ञानिक संस्थाएँ और परिषदें हैं, जो कलकत्तेकी राष्ट्रीय विज्ञान-परिषदसे सम्बद्ध हैं। मुझे बड़ी खुशी होगी, यदि सोवियत् विज्ञान-परिषद् इस भारतीय परिषदसे वैज्ञानिक जानकारी, छात्रों और विज्ञानवेत्ताओंका आदान-प्रदान करे।" १९१८ के रूसकी मौजूदा भारतसे तुलना करते हुए उन्होंने यह भी कहा कि यान्त्रिक विकासमें आज रूसकी गणना संसारके सर्वोन्नत राष्ट्रोंमें है।

कलकत्ता-विश्वविद्यालयसे एकमात्र डा० मेघनाद साहा सोवियत् विज्ञान-परिषद्के २२०वें वार्षिक अधिवेशनमें सम्मिलित होने रूस गए थे। पता नहीं, मास्को-रेडियोने क्या समझकर उनका नामोल्लेख नहीं किया? एक साम्राज्यवादी शक्तिके गुलाम होनेके कारण हमें अधिकांशतया सोवियत् रूसकी सर्वतोमुखी उन्नतिके बारेमें लगभग कुछ भी नहीं मालूम। डा० साहाने रूससे लौटकर सोवियत् रूसके विज्ञानवेत्ताओंके कृतीत्वके बारेमें स्थानीय 'हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड'में जो विवरण प्रकाशित कराया है, उससे पता चलता है कि विज्ञानके क्षेत्रमें भी रूस आज कितना आगे बढ़ गया है। विज्ञानकी शक्ति केवल मानवके अन्ध-विश्वासको मिटाने और उसके विकास-मार्गकी बाधाओंको दूर करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मानव-कल्याण एवं उन्नतिकी दिशामें भी उसकी सृजनात्मक शक्ति असीम है। फाशिस्त और पूँजीवादी व्यवस्थामें किस प्रकार विज्ञानको जन-धनके क्षय और शोषणका अस्त्र बनना पड़ता है, यह जर्मनी तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रिटेन-फ्रांस आदिने स्पष्ट दिखा दिया है। इन्हींकी कृपासे लोग विज्ञानकी उन्नतिको विनाशका प्रतीक-सा समझने लगे हैं। इसके विपरीत रूसने उसे अधिकाधिक जनोंकी अधिकाधिक उन्नति और कल्याणका अमोघ अस्त्र बनाकर दुनियाकी आँखें खोल दी हैं। अतएव भारत और रूसका वैज्ञानिक सम्पर्क न केवल करोड़ों नंगे-भूखे भारतीयोंकी स्थिति सुधारनेमें ही सहायक होगा, बल्कि भारतीयोंको स्मरणातीत कालके अन्ध-विश्वास, धर्मान्धता और रूढ़ियोंके जालसे भी मुक्त करेगा।

खानोंमें स्त्रियाँ

भारत-सरकारने युद्ध-स्थिति और कोयलेकी कमीका सहारा ले, लोकमत और पूर्व नियमकी उपेक्षा करके स्त्रियोंको खानोंमें काम करनेके लिए रखा है। इससे इनके चरित्र एवं स्वास्थ्यपर कैसा असर हुआ है, इसके बारेमें पत्रोंमें यदा-कदा निकलनेवाले संवादोंके खण्डनके सिवा उसने कुछ भी नहीं बतलाया है। उन्हें क्या-क्या सुविधाएँ दी गई हैं तथा खानोंमें काम करना उनके लिए कितना सुखद एवं अनुकूल है, इसका बखान उसके प्रचारकों ने ज़रूर किया है। पिछले दिनों जब पार्लमेण्टमें डा० एडिथ समरस्किलने पूछा कि भारतीय खानोंमें काम करनेवाली कितनी स्त्रियोंने खानोंमें बच्चे पैदा किए और कितनोंके अवधिसे पूर्व ही बच्चे हो गए, तो भारत-मन्त्रीने कहा कि उन्हें इस सम्बन्धमें कोई सूचना नहीं! इस ग़ैरज़िम्मेदारी और अन्धेरगर्दीकी भी कोई सीमा है? आखिर डा० समरस्किलको कहाँसे इन बातोंकी सूचना मिली? पर सचाई तो यह है कि खानोंमें काम करनेवाली औरतें मरें या उनका गर्भपात हो अपनी बलासे; सरकार क्यों व्यर्थ उनकी स्थितिकी जाँचका नया सिर-दर्द मोल ले?

पिछले महीने बंगालकी कम्युनिस्ट-पार्टीने अपना एक प्रतिनिधि आसनसोलके आसपासकी खानोंमें काम करनेवाले मज़दूरों की स्थितिकी जाँच करने भेजा था। उसने लौटकर 'जनयुद्ध' में जो आँखों-देखा वर्णन प्रकाशित कराया है, उसे पढ़कर मन तिलमिला उठता है। खानोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंके सम्बन्धमें उसने लिखा है—"खानके अँधेरेमें जो असंभव दुर्नीति चलती है, उसकी एक हालकी कहानी सुनी पवी और हेमी मज़दूरिनोंके मुँहसे। एक दिन काण्ट्रक्टर-इन्चार्ज लोकस साहबका नाम लेकर ट्रैफिक-इन्चार्जने इनसे 'छोकरो' ला देनेको कहा। राज़ी न होने पर ट्रैफिक-इन्चार्जने इनको जूतोंसे इस नृशंस भावसे मारा कि एककी एक आँख कानी होनेकी दशा हो गई।...सीतारामपुरमें एक लेडी-डाक्टरके मुँहसे सुना कि खानोंमें काम करनेवालोंमें से ५० प्रतिशत गुप्त रोगोंसे पीड़ित हैं। जूते न होनेसे ८३ प्रतिशत लोग हुकवर्म रोगसे पीड़ित हैं। इसके अतिरिक्त निमोनिया, यक्ष्मा और कुष्ठका प्रकोप भी काफ़ी है। प्रतिवर्ष चेचक और हैज़ेकी महामारीसे बहुतसे मज़दूर मर जाते हैं।"

खानोंका वातावरण, 'छोकरी' बनने और जुटानेका काम, पुरुषोंके गुप्त रोग और बीमारियों आदिका खानोंमें काम करने वाली बहनोंके स्वास्थ्यपर कैसा असर पड़ता होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। कदाचित् ऐसे ही कारणोंको देखते हुए सभ्य संसारमें कहीं भी खानोंमें स्त्रियोंसे काम नहीं लिया जाता। डा० समरस्किलके उपर्युक्त प्रश्नोंपर टिप्पणी करते हुए 'स्टेट्समैन' ने एक अग्रलेख लिखा है, जिसमें बतलाया है कि पिछली शताब्दीके उत्तरार्द्धमें ब्रिटेनकी जिन ग़रीब स्त्रियोंको खानोंमें काम करना पड़ा था, उनके स्वास्थ्यपर पड़े असरके कारण उसे राष्ट्रीय स्वास्थ्यकी हानिके रूपमें अब तक भी भुगतना पड़ रहा है। तब क्या भारतकी इन ग़रीब और अभागी बहनोंको भी खानोंके कामसे होनेवाली अपनी तथा अपनी भावी सन्तानकी स्वास्थ्य-हानिके अभिशापको पीढ़ियों तक नहीं वहन करना पड़ेगा?

अनधिकृत सरकारी आज्ञाएँ

गत २५ जुलाईको सीमान्त गांधीको हज़ारा-ज़िलेमें जाते हुए अटकका पुल पार करते ही पंजाब-पुलिसने प्रवेश-निषेधकी आज्ञाका उल्लंघन करनेके जुर्ममें गिरफ़्तार कर लिया। पर दूसरे ही दिन उन्हें रिहा भी कर दिया गया और कहा गया कि यह गिरफ़्तारी पंजाब-सरकारकी ग़ैरजानकारीमें हुई है और इसके हालातके बारेमें उसने अटकके डिप्टी-कमिश्नरसे रिपोर्ट माँगी है! गोया सिरको पता नहीं कि दुम किधर जा रही है!

पर इस अभागे देशमें जहाँ अधिकारी—जो या तो सबके सब चाकर हैं या फिर पूरे डिक्टेटर—जनताके बजाय अपने अफ़सरोंके प्रति जवाबदेह हों, वहाँ ऐसे राजनीतिक मज़ाक रोज़ ही होते रहते हैं। अभी कुछ दिन पूर्व दो वर्ष पहले पास हुए एक प्रस्तावपर बंगाल-सरकारकी तरफ़से एक हुक्म निकला कि अवामको पानी कम दिया जायगा। दूसरे ही दिन गवर्नरने अनधिकृत बतलाकर इस 'हुक्म'को मंसूख किया और क़ैफ़ियत दी कि यह हुक्म विभागीय सेक्रेटरीने स्थायी हिदायतोंका उल्लंघनकर निकाला दिया था, जिसकी जाँच की जायगी!

इससे कुछ ही रोज़ पहले मध्य-प्रान्तके सावनेर स्थानके अनाज खरीदनेवाले अफ़सरका यह हुक्म 'हिन्दुस्थान हैरल्ड'में छपा कि जो किसान सरकारके हाथ जवार न बेचेंगे, उन्हें चावल चीनी और किरासन नहीं दिया जायगा। दूसरे ही दिन डिप्टी कमिश्नर साहबने इस हुक्मको अनधिकृत बतलाकर मंसूख किया और सम्बन्धित अधिकारीके खिलाफ़ उचित कार्यवाही करनेका भी ऐलान किया! और स्मरण रहे, शासनकी ये बेहूदगियाँ किसी खास प्रान्त या विभाग तक ही सीमित नहीं हैं।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

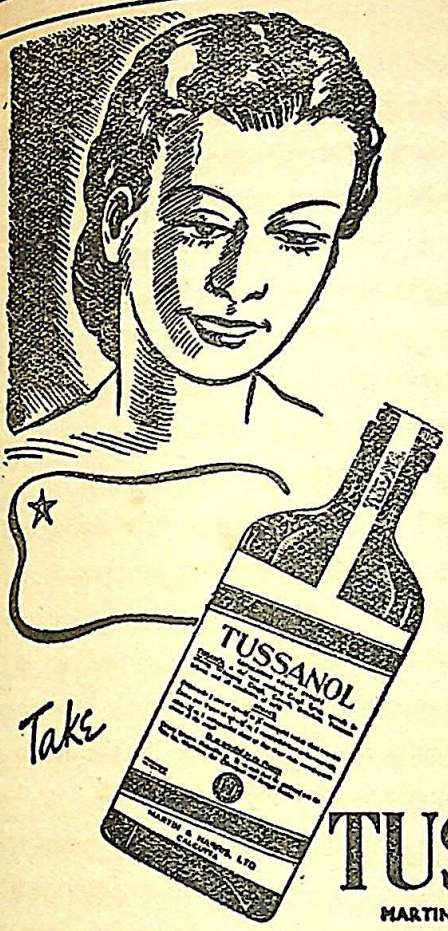

हर गृहिणीको एक बोतल सदा अपने पास रखनी चाहिए

खांसीकी उपेक्षा करना खतरनाक है। जब भी खांसी शुरू हो, चाहे वह कैसी ही मामूली क्यों न मालूम होती हो, एहतियातन 'टस्सानल'का सेवन शुरू कर दें और इस बातका इतमीनान कर लें कि आप समझदारी से काम ले रहे हैं। जब कभी और जहाँ कहीं खाँसी ज़ोर पकड़े, कभी सन्देह, संकोच या आश्चर्य न करें कि आपको क्या करना है? 'टस्सानल' ही उसका एकमात्र जवाब है।

मार्टिन एण्ड हेरिस लि०, कलकत्ता

TUSSANOL Cough Syrup

MARTIN & HARRIS, LTD., CALCUTTA

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTORY

"SANKHA & PADMA"

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

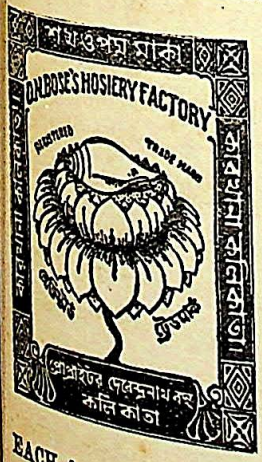

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.

'Phone: B. B. 6056.

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त-लिखित

अनुरागिनी

एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढ़ियोंपर सफल आघात करता है। भाषा सुललित है। एक बार प्रारम्भकर बिना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या ३८४, मूल्य केवल ४॥)।

प्रोफ़ेसर विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, लिखित

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी-कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्य-ग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"

—'विशाल भारत'

सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या १४७, मूल्य केवल ३)।

शिवाजी प्रकाशन-मन्दिर, लखनऊ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौन्दर्यकी रानी **लीला देसाई** "ओटीन"के चमड़ेको साफ़ करनेके विशेष गुणोंकी प्रशंसक हैं और यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि इस कामके लिए "ओटीन" अद्वितीय है।

I always use Oatine Cream before retiring. It is so pleasant and soothing and cleanses my skin from anything left by dust or make up. I recommend it to all my friends.

Lila Desai

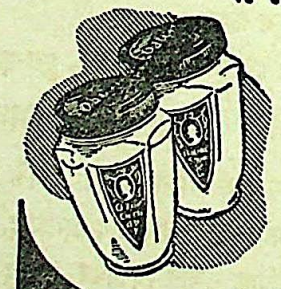

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तम्बर, १९४५

विप्लवगढ़

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

ath Co

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है।

हेड आफ़िस
४७, दी माल लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी ५५ करोड़ से अधिक

भारत भर में १९० शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये।

हमारी मद्रास ब्रांचने अपना कारोबार २ मई १९४५ से शुरू कर दिया है।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्यारी बहिनो !

न तो मैं कोई नर्स हूँ, न कोई डाक्टर हूँ और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थी स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक-धर्म के दुष्ट रोगों में फँस गई थी। मुझे मासिक-धर्म खुलकर न आता था। अगर आता था, तो बहुत कम और दर्द के साथ, जिससे बड़ा दुःख होता था। सफेद पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी। चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। घर के काम-काज से जी घबराता था। हर समय सर चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने मुझे सैकड़ों रुपये की मशहूर औषधियाँ सेवन कराईं, परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक संन्यासी महात्मा हमारे दरवाजे पर भिक्षा के लिये आये। मैं दरवाजे पर आटा डालने आई, तो महात्माजी ने मेरा मुख देखकर कहा--बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे का रंग रुई की भाँति सफेद हो गया है ? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पति को अपने डेरे पर बुलाया और उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वर की कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिये असल लागत पर बाँट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहिन के लिये पन्द्रह दिनकी दवा तैयार करनेपर २॥=) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फँस गई हों, तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूँगी। यह मेरा प्रण है कि मैं किसी बहिनसे दवाकी कीमत अपनी असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूँगी।

जरूरी सूचना—

मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और किसी रोग की दवाई के लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल

नं० (२१) बुढ़लाड़ा, ज़िला हिसार (पंजाब)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची (सितम्बर, १९४५)

१. विजय-गीत १२९ ; २. मनुज-मुक्तिका गीत १२९ ; ३. अशोकका अनुताप १३१ ; ४. चीनका भविष्य १३२ ; ५. उपहार किसीका १३६ ; ६. समाचारपत्र १३७ ; ७. मेरे मनके मीत १३९ ; ८. मुसाहिबजू १४० ; ९. बुद्धकी शिक्षाओंका मर्मस्थान १४३ ; १०. गतिशील श्री मैथिलीशरण गुप्त १४७ ; ११. शिमलासे मसूरी १४९ ; १२. एक महान पत्रकार : रामानन्द बाबू १५१ ; १३. कवि मैथिलीशरण गुप्तके प्रति १५२ ; १४. स्व० गोपाल अनन्त ओगले १५३ ; १५. बेबसी १५६ ; १६. कम्बलके धागे १५७ ; १७. याचना १५८ ; १८. 'शेष प्रश्न' १५९ ; १९. पूँजीवादका विरोधी व्यापार-चक्र १६१ ; २०. निर्माण-गीत १६५ ; २१. हिन्दीके हितैषी क्या करें ? १६६ ; २२. दिया-तले अँधेरा १६८ ; २३. 'विचार और अनुभूति' १७१ ; २४. शान्तिनिकेतनका हिन्दी-भवन १७३ ; २५. जीवन-कथा १७६ ; २६. गांधी-योजना १७७ ; २७. चिट्ठी-पत्री १८० ; २८. समालोचना १८१ ; २९. चयन १८३ ; ३०. सम्पादकीय विचार १८५ ।

तिरंगा चित्र—

मधु बेचनेवाली—श्री देवीप्रसाद राय चौधरी १२९

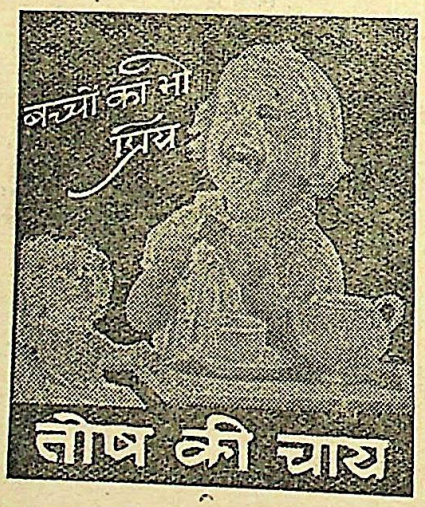

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost. Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As. 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B.

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

के

प्रसिद्ध प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १॥)

२ विभूति— ३)

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी नाटकोंका सचित्र संग्रह ।

३ शहरका अन्देशा— ३)

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। इसका प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है ।

४ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक १॥)

५ पाँचधागे— १।)

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक पाँच मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह ।

६ शासन-शब्द-संग्रह—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)

७ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)

८ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)

९ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)

१०-११ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक ॥)

१. मधुमक्खी २. जंगल

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,

मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त-लिखित

अनुरागिनी

एक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढ़ियोंपर सफल आघात करता है। भाषा सुललित है। एक बार प्रारम्भकर बिना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या ३८४, मूल्य केवल ४॥) ।

प्रोफ़ेसर विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, लिखित

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी-कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्य-ग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके सञ्चित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"

—'विशाल भारत'

सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, पृष्ठ-संख्या १४७, मूल्य केवल २) ।

शिवाजी प्रकाशन-मन्दिर, लखनऊ ।

क्या आपको आवश्यकता नहीं है ?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की स्त्री-पुरुषके लिए औषध

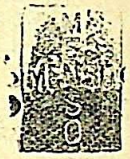

मेनसो—कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २) ।

लिवर्टो—उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २) ।

ओज़न—निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनता है। मूल्य सिर्फ ४) ।

कैटरेक्टो—बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २) ।

~~प्रधान~~ मेनसो चेम्बर

१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता

फोन : साउथ २४६७

खेती, बागवानी, उद्योगधंधे, व्यापार, स्वास्थ्य, इत्यादि विषयक एक मात्र सुप्रसिद्ध मासिक पत्र

सुन्दर मुखपृष्ठ ।] सर्वत्र लोकप्रिय । [सूचक व्यंगचित्र ।

इस विशेषांकमें सावुनके लिए लगनेवाला कच्चामाल, सावुन तैयार करने सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहारोपयोगी जानकारी, मालकी प्रसिद्धि व इतर सम्पूर्ण जानकारी प्रकाशित हुई है।

वार्षिक मूल्य रु० ५-८-०, (वी० पी० से रु० ५-१२-०) भेजकर अगस्तसे ग्राहक बननेवालोंको 'सावुन-अंक' तो प्राप्त होगा ही, इसके सिवाय खेती, बागवानी, लाभप्रद उद्योग-धंधे, व्यापार आदि विषयोंकी जानकारी प्रति माह १५ तारीखको नियमित प्राप्त होती रहेगी। 'उद्यम'की माँगको अधिकताके कारण कहीं आपको निराश न होना पड़े, अतः शीघ्रातिशीघ्र लिखिए।

मैनेजर, 'उद्यम मासिक' धर्मपेठ, नागपुर।

केवल एक दिनमें

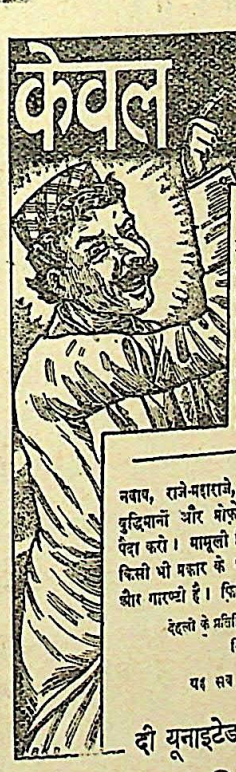

करामाती मिस्मेरिज़्म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की पीठियों में ६½ इत्यादि बजा देना, दीवार में आग लगा देना, मुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्यपूर्ण और रोमाञ्चकारी करिश्मे सीखकर

"दूसरे ही दिन"

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े पुरन्दर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाठन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब श्री की-चोरवार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Godrej

गोदरेज द्वारा जनता की सुरक्षा

गोदरेज की इन मजबूत और विशाल वस्तुओं से अपनी बेशकीमती चीजोंकी सुरक्षा कीजिए। जोड़रहित तिजोरियां, कैस-बाक्स् (नगदी का बाक्स), केबिनेट और आलमारियाँ, ताले जो आपको **सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन देते हैं।** और बाजार में दूसरे मिलने वालों की अपेक्षा कहीं बेहतर हैं। गोदरेज की वस्तुएँ भारत में धन और बेशकीमती चीजोंकी रक्षा करनेमें अपना सानी नहीं रखतीं। गवर्नमेण्ट, बैंक, व्यापारिक संस्थायें, जनता तथा समस्त देश अपनी बहुमूल्य सम्पत्ति की रक्षा के लिए गोदरेज की वस्तुओं पर ही विश्वास करता है।

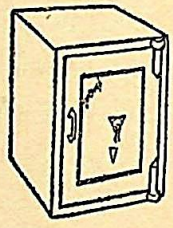

१६–कोनेवाली बैंड जोड़रहित तिजोरियाँ

६–पेटेंट एअर–टाइट आलमारी

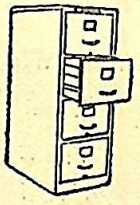

पेटेंट बाल–स्लाइड फाइलिंग केबिनेट

शेल्विंग रैक

गोदरेज एण्ड बाइस मेन्यु. [illegible] कं., लि०. कलकत्ता (१०२, क्लाइव स्ट्रीट)

कासाविन

श्वास और खांसीके रोगोंमें आशु फलप्रद

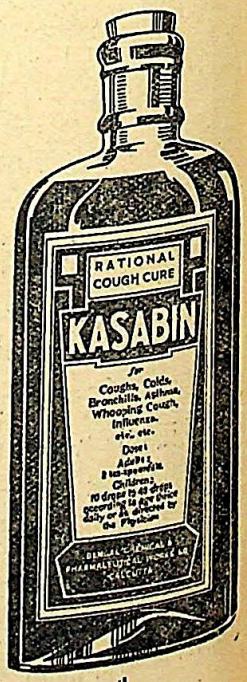

जिन्हें श्लेष्माका घात, ज़रा-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खांसी, टान्सिलका प्रदाह या दमा आदिमें उपद्रवोंका प्रकोप हो, वे सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातिरिक्त उपकार लाभ करेंगे।

कासाविन बच्चोंको भी निर्विघ्न रूपसे दिया जाता है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०,
कलकत्ता : : बम्बई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

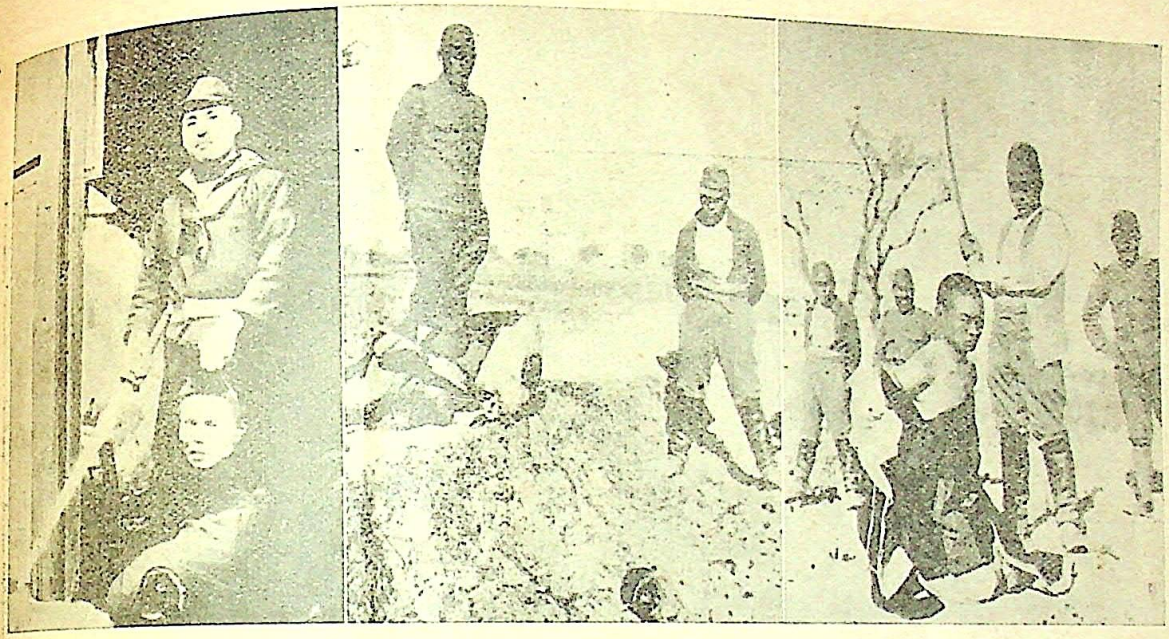

आख़िर जापान हार ही गया !

—पर चीनमें उसके द्वारा किए गए अमानुषिक और कल्पनातीत बर्बरतापूर्ण अत्याचार मानव-इतिहासके पृष्ठोंपर ज़हरीले दाग़ बनकर जलते रहेंगे। ऊपरके चित्रोंमें नृशंस जापानियों द्वारा (१) तलवारसे चीनी नागरिकोंका शिरच्छेद किए जाने, (२) उन्हें ज़िन्दा दफ़नाए जाने और (३) नंगा करके उन्हें निर्ममतापूर्वक पीटे जानेके रोमांचकारी दृश्य दिखाए गए हैं।

☞ और यह चित्र है जापानके बेताजके बादशाह—बादशाहोंके बादशाह—तथा जापानके खूनी दलके संस्थापक मित्सुरू तोयामाका, जिसका जापानियोंको खूँख्वार दरिन्दे बनानेमें प्रमुख हाथ रहा है। (विशेष विवरणके लिए देखिए-पृष्ठ १८३)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

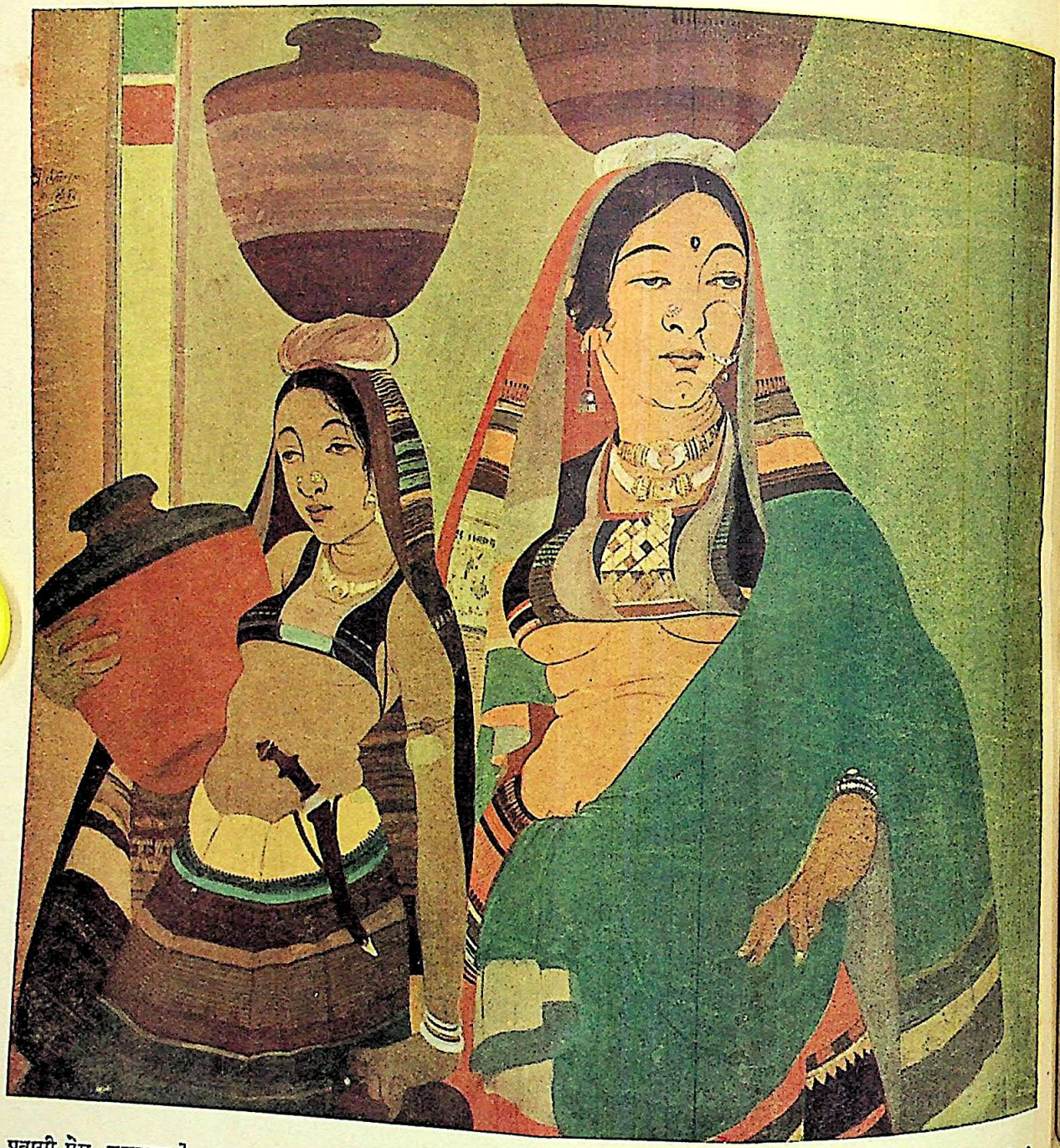

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

मधु बेचनेवाली

[श्री देवीप्रसाद रायचौधरी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक ३] कलकत्ता, सितम्बर, १९४५ [पूर्णांक २१३

विजय-गीत

श्री पूरनचन्द्र जोशी

लो आज विजय, लो आज विजय, लो आज विजय, जयके गाने!
गा-गा करके नभको भर दें, हम आज विजयके दीवाने!

- १ -

जिन क्रूर नृशंसोंने दल-बल लेकर, भूपर चढ़, अनियन्त्रित
संस्कृतिमें हाहाकार भरा, कर - करके पीड़ित पद-मर्दित
कितने नगरोंको, भवनोंको, वैभव - विभूतियोंको संचित;
कर दिया युगोंका सुन्दरतम सौन्दर्य कला - कौशल खण्डित।
ला रोग - शोक, आक्रान्ति - भ्रान्ति फैला उत्पात - अमंगलको;
महँगी, भुखमरी, लूटसे हा! कर दिया ध्वस्त भूमण्डलको।
जिन बली, आततायी लोगोंने किया कालका आवाहन;
उनकी समाधिपर ही करता, वह काल आज भैरव नर्त्तन।
उनके इस पतन - पराजयमें, लो अगणित बन्दनवार सजे;
वे देव - वृन्द आएँ नभमें, भूपर मंगल - मधु बरसाने।
लो आज विजय, लो आज विजय, लो आज विजय, जयके गाने!

- २ -

मनुजत्व फूँक अपना, अपने पशुको नर - बलियाँ दे - देकर,
उन युगके दनुजोंने सोचा, वे पावेंगे साम्राज्य अमर!
वे भूल गए प्रभुता - मदमें, कुछ सत्ता है असहायोंकी;
आहत - जर्जर कंकालोंकी, पद - दलित, दीन - निरुपायोंकी!
दीनोंकी आहोंमें घुल - घुल, उनके राज्योंके स्वप्न मिटे;
उस घोर अग्निमें युग - युगके, उनके संचित सौभाग्य लुटे!
बलिन - तोक्योंके खँडहरोंमें, है चूर - चूर उनकी सत्ता;
मिट्टीमें हत फ़ाशिज़्म अरे, अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनता।
यह हार क्रूर फ़ाशिस्तोंकी, है हार असत्की, पशुबलकी;
अविजित मानवतापर पाई, कब विजय क्रूर बर्बरताने?
लो आज विजय, लो आज विजय, लो आज विजय, जयके गाने!

- ३ -

कब, किसने दुर्जय पशुबलके बलपर पाया जगका शासन?
अधिकार मिलेगा उसको क्या, जिसने जाना न सृजन - सिंचन?
अधिकारी है वह भूतलका, जिसने सचराचरको पाला;
भावोंसे जगको विजय किया, जन - जनमें प्रेम - स्नेह ढाला।
संहार निरीह प्राणियोंका, करके क्या होती विश्व - विजय?
अपनोंका ही वध करके क्या, बनते हैं निष्कंटक दुर्जय?
शस्त्रोंसे मानवताका वध, क्या यही ध्येय, वीरत्व अरे?
श्रेष्ठत्व यही क्या महानाश, फैलावें भूपर दम्भ - भरे?
नर भूल जाय अपने उरका, शाश्वत साम्राज्य अकंटक जब;
फिर क्यों न लगेगा गर्वित नर - संसार महाभारत गाने?
लो आज विजय, लो आज विजय, लो आज विजय, जयके गाने!

- ४ -

यह विजय बनावें विजय सत्यकी, स्वत्व और मानवताकी;
यह हार रहे चिर - हार, असत्की, पशुबलकी, दानवताकी।
है वही यथार्थ विजय, जिसमें हो मानव - मानवताकी जय;
चिर-स्वत्व-विजय, चिर-सत्य-विजय, चिर-शान्ति-विजय, जीवनकी जय!
सत् - शिव - सुन्दरकी इस जयको, पशुबलकी हार सुनानेको;
अपने दानवका कर प्रहार, अपना देवत्व जगानेको;
अस्त्रों - शस्त्रोंसे, पशुबलसे, आहत - पीड़ित मानवताका;
युगकी बर्बरतामें खोए, जीवनके सत्य सनातनका;
करने उद्धार चलें भूपर, जीवनकी जयजयकार लिए।
अपने अन्तरकी प्रेम - सृष्टिको भूमण्डलपर फैलाने;
लो आज विजय, लो आज विजय, लो आज विजय, जयके गाने!

मनुज-मुक्तिका गीत

श्री 'भग्नदूत'

दूर हटो, आगे बढ़ने दो;
आज हमारा रस्ता छोड़ो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ सदियोंके काहिल रोड़ो,
ओ ज़ुल्मोंकी तीखी यादो,
ओ अभावकी चिर-फरियादो,
हटो, हमें आगे बढ़ने दो।
हम युग-युगकी भूख दबाए,
हम युग-युगकी प्यास छुपाए,
हम जीवनको नरक बनाए,
तड़प रहे हैं, बिलख रहे हैं,
और सड़ रहे हैं बन कीड़े!

पवन जहाँ चाहे जाता है,
पानीका भी पथ अपना है;
पर हम मानव हो अधीन हैं,
आज़ादी हमको सपना है!
हम हैं क्रीतदास उस नरके,
जिसके पास चार पैसे हैं।
जो खरीद श्रम कठिन हमारा,
बन जाता सुख-सत्तावाला।
हम अधनंगे, अधभूखे रह,
उसका वैभव खूब बढ़ाते;
वह 'करोड़पति', 'दानवीर' बन,
हमें काल-सा सदा सताता।

इन पूँजीके कीड़ोंने ही,
जग-जीवन है नरक बनाया;
मारें पर न आह करने दें,
रोना तक भी हाय, भुलाया।
हम दाने-दानेको तरसें,
मरकर भूखों प्राण गँवाएँ।
अपच-अजीर्ण अधिक खानेसे,
पर इनको हर रोज़ सताएँ।
ये दुनियाके चोर-उचक्के-
ठग तो साहूकार बन गए!
और शाप निर्धनताका ढो,
हम केवल कंकाल रह गए।

नहीं, नहीं, अब नहीं सहेंगे;
शोषित अब न अधिक हम होंगे।
भीख गिड़गिड़ाकर क्यों माँगें?
दया? नहीं। एहसान किसीका
क्यों लेंगे? क्यों नीच बनेंगे?
हम भी मानव बन जन्मे हैं,
मानव बनकर ही न जिएँगे!

पूर्व नहीं, उत्तरसे आई
लाल रोशनी रे, यह कैसी?
समझा, वह पचीस वर्ष
पहले जो चमका लाल सितारा;
वही हिमालयकी चोटीसे
जगमग जलता दीप हमारा!
दीप क्रान्तिका यह प्रचण्ड है,
इसकी लौ न कभी बुझ सकती;
अन्धकारकी सबल शक्तियाँ,
निगल इसे न कभी अब सकतीं।
हो प्रचण्डतर औ' प्रचण्डतम,
इसकी ज्योति बढ़ेगी दिन-दिन;
आलोकित करती, सँवारती,
और जगाती भूका कण-कण।
शोषित, पीड़ित, दलित जनोंके
मनमें शक्ति नई आशा भर,
यह अन्धोंके नैन बनेगी,
यह गूँगोंके बैन बनेगी,
यह लूलों-लँगड़ोंकी गति बन,
नया पन्थ निर्माण करेगी।
इसके सम्मुख टिक न सकेंगे,
प्रतिगामी स्वार्थोंके बादल;
और भ्रान्त भाड़ेके टट्टू,
नर-पिशाच पशुओंका दल-बल।

मानवपर मानवका शासन,
छिः यह कैसी बात बेतुकी!
शोषण, पीड़न और दमनकी
बातें अब इतिहास बन चुकीं।
कफ़न आज साम्राज्यवादका
खिसका स्वतः आ रहा आगे;
छोड़ ताज-सिंहासन देखो,
वे सम्राट जा रहे भागे!
'सब स्वतन्त्र हैं, सब समान हैं',
नारा है बुलन्द घर-घरसे;
मनुज-मुक्तिका तूर्यनाद यह,
गूँज रहा जल-थल-अम्बरसे!
इससे बढ़कर मनुज-सृष्टिका,
सुख-सौभाग्य-दिवस क्या होगा?
मनुज-मुक्तिसे बढ़कर बोलो,
अधिक गेय गीत क्या होगा?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अशोकका अनुताप

डा० देवराज

करके कलिंगकी महाविजय प्रत्यावर्त्तित
नगर अशोककी सेना थी हर्षान्दोलित ।
दो दिन तक पुरमें हुआ खूब गायन-उत्सव,
नागरिक-सैनिकोंने ढाला छक मदिरासव ।
ततः गणिकाओंके नूपुर-रवसे गुंजित,
थे हाट-बाट, पुर-व्योम गीत-ध्वनिसे मुखरित ।
सहसा नृप-गृहसे हुआ वज्र-आदेश निसृत—
'हों हर्ष-वाद्य सब बन्द, खिन्न-मन हैं भूपति !'
जबसे आए थे नृप कलिंग-समरांगणसे,
रहते थे चिन्तित-से, उदास-से, उन्मन-से ।
भाता उनको एकान्त, बात करना दुःसह,
हँसनेमें बहु आयास, विजय-चर्चामें भय ।
कल्पना-दृगोंके आगे उनके रह-रहकर—
खिंच-खिंच आता था दृश्य युद्धका दारुणतर !
कितना भीषण ! कैसा कुत्सित ! यह रक्तपात ;
मानव-पशुका ताण्डव अकाण्ड आत्माभिघात ।
यह ही है क्या वीरता परस्पर क्रूर-कदन ?
यह ही है क्या शूरता रक्तसे भू-सिंचन ?
टंकारित धनुषोंका रव खड्गोंकी झन्झन्,
दगती तोपों-बन्दूकोंकी वह भैरव ध्वनि ।
वह 'चलो, बढ़ो' योद्धाओंकी उन्मत्त रटन,
आहत हय-गज-वीरोंका वह चीत्कार करुण ।
क्या बने यही सब सुननेको रे, मनुज-श्रवण ?
क्या यही देखनेको मानवके स्निग्ध नयन ?
सचमुच ही थे वे वीर, उभय पक्षोंमें जो
तज प्राण-मोह, लड़ गए अमर निद्रामें सो ;
बाँके योद्धा सैनिक प्रवीर सुगठित शरीर,
जिनको लख मिटती मानव-उरकी जलन, पीर ।
हा ! कहाँ गए वे लाख-लाख सैनिक सुन्दर,
जिनसे दीपित था वह कलिंगका देश सुघर ?
वे वीर सिपाही, साभिमान जिनका मस्तक
अब तक न हुआ था किसी शत्रुके सम्मुख नत ।
मानवता-उपवनके वे सौरभ-भरे सुमन,
असमय तुषार-वर्षासे जिनका हुआ दलन ।
कट हुए हज़ारोंके सिर धड़से भिन्न, पतित ;
रक्त-विप्लुत कितने हुए रुधिरसे संप्लावित ।
कट गए किसीके हाथ-पैर, कन्धे विशीर्ण,
लुंठित अंग रोते, करते नभ-उर-विदीर्ण ।
जो बचे, भगे, वे हुए मौर्य-बन्दी सत्वर ।
हा ! शून्य युवाओंसे कलिंग अब है ऊजड़ ।
क्या कारण इसका ? अहो, दुखद इसका विचार ;
मेरी जय-काङ्क्षाका यह निष्ठुर अनाचार !
मेरी कुबुद्धिका यह दारुण फल हुआ उदय,
कह रहे भूलसे लोग आज भी जिसे विजय !
देखा था मैंने मुख कलिंगपतिका विवरन,
ज्यों राहु-ग्रस्त हो निशानाथ अति दीन, मलिन ;
बहु-यत्न-प्रपालित प्रजावर्गका दुख दारुण,
लख-लख भर-भर आते थे जिनके युग लोचन ।
देखी थी मैंने उनकी करुण क्लान्त चितवन,
करती है जिसकी याद अभी तक उर-दंशन ।
अपने ही द्वारा उजड़ा मैंने ऋद्ध देश
देखा था वह, विधवा-सा कातर, क्लिष्ट-वेश ;
शत-शत वनिताएँ गरम आँसुओंसे प्रतिपल
थीं सींच रहीं जिसका प्रदग्ध सूना मरुथल ;
ललनाएँ जिनके माथेका सुन्दर सिंदूर,
ले गया लूट खल कालचक्र, दुर्दैव क्रूर ।
'हा पिता ! तात !' कह चीख-चीख जननियों पास
देखे अनाथ बालक रोते कातर हताश ।
देखीं बहनें, भाई जिनके हत हुए वीर,
कुररी-सी क्रन्दन करतीं, सुधि खोतीं अधीर ।
देखे बहु बूढ़े पुत्र-शोकसे मृतप्राय,
ले नाम सुतोंका करते केवल हाय, हाय !
धिक् मुझे ! किया आमन्त्रित जिसने महानाश !
जिसके कारण जगतीने पाया तुमुल त्रास ।
धिक् यह विजिगीषा, जिसकी कायर रक्त-प्यास,
बल-दर्पित करती भूतलपर निर्लज्ज लास ।
मानवको वश करनेका यह दानव उपाय,
स्थिरता कब इसमें, कहाँ शान्ति ? रे व्यर्थप्राय !
कब कौन किसीको सका घृणासे कहीं जीत ?
भयपर आधारित शासनकी कब टिकी भीत ?
हा हन्त ! किया क्यों मैंने पशुताका प्रयोग,
तज आर्य-निषेवित जग-मैत्रीका प्रथित योग !
क्यों छू न सका अन्तर्मधुसे मैं विश्व-हृदय,
क्यों हो न सका मैं सचराचरके संग अभय ?
जगके स्पन्दनमें अपनी गति कर विलीन,
उसकी पीड़ासे हुआ न मैं क्यों दीन-क्षीण ?
क्यों मैं कलिंग-भूकी रजमें हो तदाकार,
सुन सका न उसके प्राणोंकी वेधक पुकार ?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनका भविष्य

श्री च्यांग चे शिल् (च्यांग काई-शेक)

आज, इसी क्षण, चीनके भाग्यका निर्णय हो रहा है। धुरी-शक्तियोंकी पराजयके कारण एक नई और अधिक आज़ाद दुनियाका जन्म हो रहा है। पर याद रखिए, जिन आदर्शोंके लिए संयुक्त-राष्ट्रोंके लोग लड़े और मरे हैं, उनकी यथार्थताकी कसौटी चीन ही होगा। चीनका भविष्य शेष संसारके साथ ही संलग्न है। लोकतन्त्रके सिद्धान्तोंकी सफलता, विफलता, जीवन या मरण एटलाण्टिक-सनदपर होनेवाले अमलपर ही निर्भर करता है। चीन एक ऐसी प्रयोगशाला बनेगा, जहाँ सभी जन-तन्त्र देशोंके युद्धोत्तर उद्देश्योंकी अग्नि-परीक्षा होगी।

चीन केवल अपनी आज़ादीके लिए ही नहीं लड़ा है। वह चीनियोंकी अस्तित्व-रक्षासे भी किसी ऊँचे आदर्श एवं उद्देश्यके लिए लड़ा है। वह छोटे और बड़े सभी देशोंकी स्वतन्त्रता चाहता है। वह चाहता है कि यह महायुद्ध ही अन्तिम युद्ध हो, क्योंकि अन्य किसी भी राष्ट्रकी अपेक्षा उसे इसके अभिशाप को कहीं अधिक सहन करना पड़ा है। पिछले १०० वर्षोंसे वह साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी लिप्सा और शोषणका शिकार बनता आ रहा है। आज वह महसूस कर रहा है कि सब राष्ट्रोंकी पूर्ण स्वतन्त्रता और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें एक-दूसरेके सम्मान तथा सहयोग द्वारा ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

सच पूछिए तो सारी लड़ाइयोंकी जड़ साम्राज्यवाद ही है। चूँकि चीनको इससे सबसे अधिक भुगतना पड़ा है, उसकी सभी देशोंकी पूर्ण स्वाधीनताकी माँग अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक गहरी, यथार्थ और वज़नी है। इसीसे वह चाहता है कि इस महायुद्धके अन्तका मतलब साम्राज्यवादका भी अन्त हो। इसमें केवल चीनका अपना स्वार्थ हो या वह एशियाका नेता बनना चाहता हो, ऐसी कोई बात नहीं है। स्वतन्त्र और शक्तिशाली होकर वह कदापि किसी दूसरे राष्ट्रको नहीं सतायगा और न साम्राज्यवादी जापानके चरण-चिह्नोंपर ही चलेगा। वह अपने पाँवोंपर खड़ा होकर अपनी सुरक्षा, अर्थनीति, राजनीतिक शासन और अपनी संस्कृतिको समुन्नत करना चाहता है। शान्तिकी रक्षा और मानवताके उत्थानमें वह अन्य सभी राष्ट्रोंके साथ हाथ बँटाना चाहता है। दूसरे शब्दोंमें चीन साम्राज्यवादके क़ायम रहनेके विरुद्ध है—स्वयं वह कभी भी उस मार्गपर नहीं जायगा।

चीनका एकमात्र उद्देश्य यही है कि एशियावासियोंको एक बार समता और स्वतन्त्रताका अवसर मिले। पिछले १०० वर्षों में हमने साम्राज्यवादियों द्वारा जो-कुछ भुगता है, उससे हम अपने एशियाई भाइयोंके भविष्यके सम्बन्धमें उदासीन नहीं हो सकते। एशिया महाद्वीप पृथ्वीका एक-चौथाई भू-भाग है और दुनियाकी एक-तिहाई आबादी यहीं बसी है। और लगभग सभी एशियावासी उतने ही शोषित-पेषित हैं, जितने कि चीनी। यदि चीन पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हो सकता, तो समस्त एशिया-वासी साम्राज्यवादकी चक्कीमें पिसते रहेंगे और संसारमें कभी भी स्थायी शान्ति नहीं होगी। अतएव चीनकी स्वतन्त्रताका अर्थ है सभी राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता, समस्त एशियाकी स्वतन्त्रता और विश्वमें स्थायी शान्ति। एशियाकी समता और स्वतन्त्रता ही विश्व-शान्तिकी एकमात्र गारण्टी है।

स्वभाव और संस्कृतिसे ही चीनी शान्ति-प्रिय हैं। इनका पिछले ५००० वर्षोंका इतिहास बताता है कि अपने स्वाभाविक विकासके लिए आवश्यक भू-भागसे अधिककी इन्होंने कभी कामना नहीं की। अपने देशसे बाहर कभी इन्होंने पाँव नहीं पसारे। अतः जब मैं कहता हूँ कि चीनी साम्राज्यवादसे घृणा करते हैं, तो मैं उनके स्वभाव, संस्कृति और अनुभवकी ही बात कहता हूँ।

साम्राज्यवादियोंके षड्यन्त्र

चीनियोंके शान्ति-प्रिय होनेके कारण ही उनका देश छोटे-बड़े साम्राज्यवादी देशोंके षड्यन्त्रोंका अखाड़ा बन गया। सभीने आ-आकर चीनकी ज़मीन, व्यापार, अर्थनीति और राष्ट्रीय जीवन पर अपने-अपने जाल बिछाने शुरू किए। सबने शोषण और परापहरण द्वारा अपने-आपको मालामाल किया तथा चीनियोंको हीन, अकर्मण्य और दासवत् बना दिया। अनुभवहीनताके कारण चीनी इन साम्राज्यवादियोंके षड्यन्त्रोंकी यथार्थता ठीक-ठीक समझ नहीं पाए। चीनके इस राष्ट्रीय अपमानका श्रीगणेश हुआ जबरन और धोखा देकर चीनपर थोपी गई असमान सन्धियों द्वारा। अफ़ीम-युद्धमें हुई पराजयके कारण चीनको ब्रिटेनसे नानकिङ्-सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार हाङ्काङ् उसे ब्रिटेनको दे देना पड़ा और केण्टन, एमोय, फूछाउ, निङ्पाओ और शंघाईमें विदेशियोंको आवासकी सुविधा देनी पड़ी। इसके साथ ही चीनको ब्रिटेनके कौंसलों (व्यापारी दूतों) की नियुक्तिकी बात भी स्वीकार करनी पड़ी, जिन्हें असाधारण अधिकार दिए गए। इसके फल-स्वरूप विदेशियोंको चीनमें व्यापार-व्यवसाय करनेके असाधारण अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त हो गईं।

ब्रिटेनके बाद फ्रांस मैदानमें कूदा और फिर दूसरे गोरे राष्ट्र। चीनी शासकोंकी अज्ञता और शराफ़तके कारण इन लोगोंने अपने अधिकार और सुविधाएँ और भी बढ़ा लिए। जब कभी कोई विदेशी राष्ट्र चीनी अधिकारियोंसे किसी तरहकी सुविधा प्राप्त करता, उसे बहाना बनाकर अन्य राष्ट्र भी मुँह

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फैलाते और डरा-धमकाकर 'विशिष्ट अधिकार' प्राप्त कर लेते। कई बार तो बिना अधिकारियोंकी सहमति-स्वीकृतिके ही सभी विदेशी शक्तियाँ विशिष्ट अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त कर लेती थीं और अधिकारियोंको बादमें उन्हें तथ्यके रूपमें स्वीकार करनेको बाध्य होना पड़ता था। विदेशियोंको मिले 'रियायती क्षेत्र' ऐसी ही ज़्यादतियोंका परिणाम था, जिनका मूल कारण था नानकिङ्-सन्धि।

दूसरी अनुचित सन्धि थी १८५८ की तिएंतसीन-सन्धि। नानकिङ्-सन्धिके बाद १६ वर्ष तक विदेशियोंने विशेषतया केण्टनमें ही व्यापार किया। उनके प्रभाव-विस्तारके कारण यह एक तरहसे पश्चिमी साम्राज्यवादका अड्डा बन गया। इन शोषकों की जुल्म-ज़्यादतियोंसे उत्तेजित होकर चीनियोंने हुङ्-सिन्-चुआन में विद्रोह किया। शीघ्र ही इसने अकर्मण्य छिङ्-राजवंशके ख़िलाफ़ क्रान्तिका रूप धारण कर लिया और क्वाङ्सीसे याङ्सी तक फैल गया। छिङ्-वंशका पतन जब कुछ ही घड़ियोंकी बात थी तो साम्राज्यवादी ब्रिटेन और फ्रांसकी सेनाओंने केण्टनपर आक्रमण कर दिया। उन्होंने तिएंतसीन जीत लिया और पीपिंग के द्वार तक बढ़ आए। अपेक्षाकृत दुर्बल होनेके कारण चीनी अधिक नहीं लड़ सके और हारकर उन्हें तिएंतसीनकी सन्धिपर हस्ताक्षर करने पड़े। पहले छिङ्-वंश आत्म-प्रवंचना और दीनताका ही शिकार था; किन्तु अब उसे हर बातमें झुकने और आत्म-विनाशके लिए भी मजबूर होना पड़ा। इस सन्धिके अनुसार विदेशी कौंसलोंको न केवल असाधारण अधिकार ही दे दिए गए, बल्कि समुद्री चुंगी वसूल करनेका अधिकार भी उन्हें मिल गया। जिन दीवानी मामलोंमें चीनी और विदेशी संलग्न होते, उनपर विचार करनेका एकमात्र अधिकार इन विदेशी कौंसलोंको मिल गया और फ़ौजदारी मामलोंपर विदेशी और चीनी न्यायाधीश मिलकर विचार करते थे। कुछ समय बाद विदेशियोंके रियायती क्षेत्रोंमें रहनेवाले चीनियोंके सम्बन्धके दीवानी और फ़ौजदारी सभी मामलोंपर विचार करनेका एकाधिकार इन विदेशी कौंसलोंका ही हो गया।

तिएंतसीन-सन्धिसे पहले ही शंघाईका चुंगी-अधिकार विदेशियोंने हथिया लिया था। अब इस सन्धिने ब्रिटिश चुंगी-अध्यक्षकी नियुक्तिके रूपमें चीनके रहे-सहे चुंगी-नियन्त्रणका भी खात्मा कर दिया। अब तो किसी मालपर चुंगी निर्धारित करनेका अधिकार भी चीनसे छीन लिया गया। चाय, लकड़ी, धातु और मसालोंको छोड़कर—जिनपर १० प्रतिशत चुंगी ली जाती थी—अन्य सब चीज़ोंपर उसे घटाकर ५ प्रतिशत कर दिया गया। इसका साफ़-सा मतलब था चीनके आयात-निर्यातका विदेशियोंमें नियन्त्रणमें चला जाना। फलतः याङ्सीके भीतरी बन्दरों पर नियन्त्रण करनेसे पहले ही विदेशियोंने अपने मालसे चीनके बाज़ारोंको भर दिया और चीनी मालके चीनके भीतरी भागोंमें भेजे जानेके लिए भी चीन विदेशी जहाज़ोंका मुहताज हो गया। इस स्थितिका लाभ उठाकर विदेशियोंने बिना चीनी अधिकारियोंकी अनुमतिकी प्रतीक्षा किए ही ज़बरदस्ती अनेक स्थानोंपर अपने रियायती क्षेत्र क़ायम कर लिए। इनमें शंघाईका फ्रांसीसी, यिङ्-चाओ, हाङ्काउ, क्यूक्याङ्, चिङ्क्याङ् और एमोयके ब्रिटिश तथा तिएंतसीन, केण्टन और छेफूके फ्रांसीसी, ब्रिटिश तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मुख्य हैं। विदेशी कौंसलोंको आरम्भमें जो अधिकार दिए गए थे, वे व्यक्तियोंके झगड़ोंसे ही सम्बन्ध रखते थे, क्षेत्रोंसे नहीं; पर इन क्षेत्रोंकी स्थापनाके बादसे उन्होंने अधिकारोंकी परिभाषा बदल ली और इनपर विदेशी अधिकारियोंकी सार्वभौम सत्ता स्थापित हो गई। दूसरे शब्दोंमें इनका परिणाम हुआ स्वतन्त्र चीनमें अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्योंकी स्थापना।

विदेशी साम्राज्यवादका विस्तार

ऊपर जिन सन्धियोंका उल्लेख किया गया है, उनसे विदेशी साम्राज्यवादियोंको न सिर्फ़ अपने रियायती क्षेत्रोंमें ही मनमानी करनेका अधिकार मिला, बल्कि उनके तिज़ारती और तोपची जहाज़ोंको चीनी नदियों तथा बन्दरगाहोंमें अबाध रूपसे आने-जानेका भी। इससे चीनको तटीय रक्षा और तिज़ारती जहाज़ोंके लिए भी विदेशियोंका मुहताज हो जाना पड़ा। सबसे अधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि जब भी किसी विदेशी शक्तिकी अनुचित अथवा ज़्यादतीपूर्ण माँगको स्वीकार करनेमें चीनी अधिकारियोंने कुछ ढिलाई दिखाई, तो इन्हीं तोपची जहाज़ोंकी तोपें दिखाकर उन्हें स्वीकृति देनेपर मजबूर किया जाता था। इस तरह पिछले १०० वर्षोंमें अनुचित सन्धियों और तोपची जहाज़ोंके आतंकके कारण न केवल चीनकी राष्ट्रीय भित्ति ही दुर्बल हो गई, बल्कि चीनियोंके स्वभाव एवं चरित्रमें भी आशातीत ह्रास हुआ। साम्राज्यवादियोंके षड्यन्त्रोंसे न सिर्फ़ चीनियोंकी आवास-भूमि ही टुकड़े-टुकड़े हो गई, बल्कि विदेशियोंके शोषण और ज़ुल्म-ज़्यादतियोंसे चीनी राष्ट्रकी रीढ़ भी दरकने-सी लगी। उसका राजनीतिक शासन, अर्थनीति, समाज, नैतिक मेरुदण्ड और यहाँ तक कि चीनी मनोविज्ञान आदि भी ऐसे खोखले हो गए कि चीनका शक्तिशाली स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें टिक सकना असम्भव-सा हो गया।

१९वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें चीनको जापानसे हारना पड़ा। इसे विदेशियोंने अपना भाग्य चमकानेका स्वर्ण-सुयोग समझा और उसके अंगभंगके लिए टूट पड़े। जगह-जगह उन्होंने अपनी फ़ौजोंके लिए बारकें खड़ी कीं, बन्दरगाह बनाए, रेलें बनाईं और चीनी खानों तथा साधन-सामग्रीका उपयोग शुरू किया। जापान द्वारा कोरिया हड़प लिए जानेके आघातसे अभी वह उबर भी न पाया था कि उसे फ़ौजी तैयारियोंके रूपमें विदेशी साम्राज्य-

CC-O. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वादियोंकी नई चुनौतीका सामना करना पड़ा। शस्त्र-बलसे वह इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता था, अतः एक-एककर उसे अपने अनेक महत्त्वपूर्ण अंगोंसे हाथ धोना पड़ा। यह परिणाम निम्नलिखित रूपमें हुआ :—

(१) जापानने कोरिया और फोर्मोसा-द्वीप छीन लिए और छिङ्-शासनको यह गारण्टी देनेके लिए मजबूर किया कि फूकिन-प्रान्त और आसपासके अन्य समुद्र-तटीय प्रदेशपर वह किसी दूसरी शक्तिका प्रभाव नहीं फैलने देगा।

(२) हाङ्काङ् हथियानेके बाद ब्रिटेनने वीहाईवी और काउलूनका पट्टा अपने नाम लिखा लिया तथा रूसके साथ याङ्सी-प्रदेशमें रेल बनानेका एकाधिकार भी प्राप्त कर लिया। ब्रिटिश व्यापारियोंको शांसी और होणानकी खानोंकी खुदाईके अधिकार भी प्राप्त हो गए।

(३) फ्रांसने हिन्द-चीन हथियाया और साथमें यह आश्वासन भी कि हैनान, क्वाङ्तुङ्, क्वाङ्सी तथा युन्नान प्रदेशों में किसी अन्य देशका प्रभाव नहीं फैलने पायगा। ब्रिटेनकी तरह उसे भी यहाँ रेल बनाने और खानोंकी खुदाईका एकाधिकार मिला। कुछ महीनों बाद ही क्वाङ्-चाउनका पट्टा भी उसने अपने नाम लिखा लिया।

(४) जर्मनीने क्याओचाउका पट्टा अपने नाम लिखाया और क्याओचाउ-रेल्वेके ३० मीलके घेरेमें खानोंकी खुदाईका एकाधिकार भी प्राप्त किया।

(५) रूसके ज़ारने उत्तर-पूर्वी चीनके तीन प्रान्त अपने प्रभाव-क्षेत्रमें ले लिए तथा पोर्ट आर्थर और डेरेनका पट्टा अपने नाम लिखा लिया। इसके सिवा याङ्सी-प्रदेशको रूस और ब्रिटेनने अपने-अपने पृथक प्रभाव-क्षेत्रोंमें बाँट लिया।

इस प्रकार विदेशी साम्राज्यवादियों द्वारा चीनका स्वशासित स्वतन्त्र प्रभाव-क्षेत्रोंके रूपमें विभाजन ही उसके अंग-भंगका कारण भी बना। इससे चीनका राजनीतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। जगह-जगह वैदेशिक रियायती और प्रभाव-क्षेत्रों तथा चीनी क्षेत्रोंमें सत्ताका संघर्ष सामने आने लगा। परिणामतः चीनी शासन छिन्न-भिन्न हो चला। धीरे-धीरे कई जगह इसका स्थान भी विदेशी अधिकारियोंने ले लिया। सबसे पहले रूसके ज़ारने अपनी प्रजाकी सुरक्षाका बहाना बनाकर चीनकी पूर्वी रेलके क्षेत्रमें अपनी सेना रखनेका 'अधिकार' प्राप्त कर लिया। फिर क्या था, रूसकी देखा-देखी अन्य शक्तियोंने भी क़दम बढ़ाया और कुछ ही समयमें चीनके विविध भागोंमें विदेशी सेनाओंके पड़ाव ही नज़र आने लगे! इससे चीन-राष्ट्रको रीढ़का रहा-सहा बल भी जाता रहा। विदेशी केवल नाम-मात्रकी चुंगीपर चीनमें सर्वत्र अपना माल ही ले जानेसे सन्तुष्ट नहीं थे, अतः अब उन्होंने विदेशोंसे कल-कारखानोंका सामान मँगाकर जगह-जगह अपनी फैक्टरियाँ भी खोल लीं। इस तरह चीनका व्यापार, अर्थनीति, राजनीति एवं समाज विदेशी साम्राज्यवादके मुहताज हो गए!

विदेशियोंकी औद्योगिक उन्नति और मशीनों द्वारा प्रस्तुत मालके मुक़ाबलेमें चीनका घरेलू और पुराने ढंगके औज़ारोंसे तैयार होनेवाला माल भला कब टिक सकता था? फलतः अपने बाज़ारोंमें ही चीन विदेशियोंकी प्रतियोगितामें पराजित हो गया! यह उसकी स्वाधीनताके लिए अन्तिम आघात सिद्ध हुआ। इसके बाद चीनी बाज़ार विदेशियोंकी प्रतियोगिताका अखाड़ा बन गया। इसने चीनकी स्वाधीनताके चिह्न भी मिटा दिए। व्यावसायिक स्वार्थके कारण ब्रिटेनने जापानसे गँठबन्धन किया और रूसके ज़ारने फ्रांससे। इस प्रतियोगिताके फल-स्वरूप अमरीकाको अबाध व्यापार-नीतिकी घोषणा करनी पड़ी, जिसका ब्रिटेनने समर्थन किया। पर इसके बावजूद रूस या जापानमें से किसीने भी त्याओतुङ् प्रायद्वीप या उत्तर-पूर्वी प्रान्तोंको नहीं छोड़ा। साम्राज्यवादी स्वार्थोंके इस संघर्षका परिणाम हुआ चीनकी भूमि पर रूस-जापान-युद्ध (१९०५ में), जिसमें हज़ारों चीनी मारे गए और लाखोंकी चीनी सम्पत्ति स्वाहा हो गई, और विजयी हुआ जापान! इस विजयने जापानकी आँखें फेर दीं और वह समस्त एशियाको जीतनेका स्वप्न देखने लगा।

साम्राज्यवादका नग्न रूप

विदेशियोंके बढ़ते हुए आतंक और शासनकी निर्जीवतासे चीनी जनताके मनसे अपने शासकोंके प्रति रहे-सहे आदर एवं विश्वासको भी खो दिया। रूसपर जापानकी विजयने छिङ्-शासकों और जनतापर गहरी छाप डाली थी। जनताके बढ़ते हुए असन्तोषको देखकर छिङ्-शासकोंने शासन-सुधारकी अन्तिम चेष्टा की और जब उसमें सफलता नहीं मिली, तो दमनसे काम लिया। हज़ारों चीनी जेलोंमें ठूँस दिए गए और सैकड़ों मार डाले गए। परिणाम-स्वरूप डा० सनयात-सेनके रूपमें चीनी जनताने एक युग-नेता पाया और जगह-जगह क्रान्तिकी लपटें फूट पड़ीं। १० अक्टूबर, १९११ को ऊचाङ्में आरम्भ हुई क्रान्ति आगकी लपटोंकी तरह देश-भरमें फैल गई और छिङ्-सम्राटको सिंहासन त्यागना पड़ा। परिणाम-स्वरूप चीनको प्रजातन्त्र घोषित किया गया।

चीनी जनताने समझा कि क्रान्ति सफल हुई और अब उसके कष्टोंका अन्त हो जायगा। पर एक स्वेच्छाचारी शासनके उच्चाटनका अर्थ जनतन्त्रका स्थापन तो नहीं है। वह तो ऐसे शासनके स्वाभाविक विकासका ही परिणाम है। और ऊपरकी अन्यायपूर्ण सन्धियोंके रहते हुए सच्चा लोक-शासन कैसे सम्भव होता! विदेशी शक्तियाँ भला कैसे सहन करतीं कि चीन एक पूर्ण स्वतन्त्र और सच्चा जनतन्त्र राष्ट्र बने? अतः क्रान्तिकी सफलताके बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही विदेशी साम्राज्यवादियोंने अपनी चालें बदलीं। अपने जासूसों, गुप्त एजेंटों और पैसोंके ज़रिए उन्होंने चीनके क़ानून-विरोधी लड़ाईझोरों तथा चोर-डाकुओंको उकसाया और चीनके भीतरी मामलोंमें अनुचित हस्तक्षेप करने लगे। सरहदी मामलोंमें यह हस्तक्षेप स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। रूसके ज़ारने बाहरी मंगोलियाको उकसाकर चीनसे स्वतन्त्र घोषित करवा दिया और उसके सब महत्त्वपूर्ण पदोंको अपने कब्ज़ेमें कर लिया। तिब्बत, सिङ्क्याङ् और युन्नानके झगड़ेमें ब्रिटेन पंच बनकर कूद पड़ा। शासनके साथ ही उत्तराधिकारके निर्णयमें भी विदेशी शक्तियोंने राजमाताको धमकी दी, जिसका परिणाम हुआ बाक्सर-विद्रोह। जापानी सम्राट भी चुपचाप युआनको फुसलाकर स्वयं चीनका सम्राट होनेकी चेष्टा कर रहा था। इन सब षड्यन्त्रोंके केन्द्र थे पीपिङ्के विदेशी दूतावास, तिएंतसीन और शंघाईके विदेशी रियायती क्षेत्र और उत्तर-पूर्वी चीनके रेल-क्षेत्रके विदेशी नियन्त्रणवाले स्थान। यहाँ चीन-विरोधी षड्यन्त्र आसानीसे किए जा सकते थे, क्योंकि विदेशियोंको प्राप्त विशेषाधिकारोंकी ओटमें षड्यन्त्रकारी चीनी क़ानूनकी पकड़से साफ़ बच जाते थे।

चीनके भीतरी मामलोंमें यह हस्तक्षेप होता था विदेशी नागरिकोंकी रक्षाके नामपर। जापानने दक्षिण-मंचूरियाके रेल-मार्गसे चीनी न पहुँच सकें, इसके लिए सेना भेजकर चीनके उत्तर-पूर्वी प्रान्तोंपर एक तरहसे फ़ौजी दखल ही कर लिया। इस तरह पूरे १३ वर्ष तक विदेशी साम्राज्यवादी हर तरहसे इस बातकी चेष्टा करते रहे कि किसी तरह चीनी प्रजातन्त्रका खात्मा हो। उनके गुप्तचर बराबर चीनमें झगड़े कराते रहे। अपनी सुविधाओंसे रेलों द्वारा विदेशी आसानीसे सर्वत्र प्रचारात्मक पर्चे और शस्त्रास्त्र बँटवाते रहे। पीपिङ्का दूतावास और नानकिङ्-रेल्वेका अहाता विदेशी शक्तियों और चीनके लड़ाकू पार्टियोंके बीच मिलने और शस्त्रास्त्रके आदान-प्रदानके अड्डे थे। चीन-सरकारसे असन्तुष्ट महत्त्वाकांक्षी और क्रान्ति द्वारा प्रताड़ित प्रतिगामी भी इनसे जा मिले और चीन कई स्वयंभू जागीरोंमें बँट गया। विशिष्ट अधिकारोंके कारण विदेशियोंके रियायती क्षेत्रमें से न चीनी सेनाएँ गुज़र सकती थीं और न वहाँ चीनी प्रजातन्त्रके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेवालोंको सरकार दण्ड ही दे सकती थी। १९०१ की अनुचित एवं अन्यायपूर्ण सन्धिको नई सरकारपर लागू करके पीपिङ्से समुद्र-तट तकके तोपखानेके सभी नाके भी खाली करवा लिए गए, जिससे चीनको सुरक्षाकी अन्तिम कड़ी भी छिन गई। विदेशी शासन और अदालतें तो पहलेसे ही मौजूद थे, अब विदेशी पुलिस भी तैनात कर दी गई। इन पुलिस-वालोंकी संख्या आवश्यकतासे कहीं अधिक थी। इसने जनताकी स्वतन्त्रतापर अनुचित आक्रमण करने शुरू किए। उत्तर-पूर्वकी जापानी पुलिस तो चोरों और लुटेरोंका एक गिरोह-मात्र थी। अकारण ही वह किसी भी चीनी नागरिक या सैनिकको गोली मार देती थी। ३० मई, १९२५को हाङ्काऊ और केण्टनमें विदेशी पुलिसकी गोलियोंसे सैकड़ों चीनी देशभक्तोंका खून हुआ और चीनी पुलिस खड़ी-खड़ी देखती रही! अगर चीनकी ओरसे इसके बदलेमें कुछ करनेकी बात सोची जाती, तो तोपची-जहाज़ोंके भोंपू खतरेकी सूचना देते और विदेशी सैन्य-संग्रह होने लगता! शिकायत की जाती, तो उसका जवाब अल्टीमेटमसे दिया जाता! राजनीतिक समझौतोंका कोई अर्थ या महत्व ही न था। अक्सर बेचारे चीनियोंका इन ज़्यादतियोंसे बचनेके लिए विदेशी रियायती क्षेत्रोंमें ही शरण लेनी पड़ती थी।

साम्राज्यवादियोंको इन ज़्यादतियोंसे आतंकित होकर अधिकांश धनी, व्यापारी, बैंकवाले और प्रतिगामी सरकारी अधिकारी तक विदेशी रियायती क्षेत्रोंको सुरक्षाका स्वर्ग समझने लगे। जो चीनी इनकी पुलिसके हत्थे चढ़ जाते थे, उनके साथ बड़ा अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। धनिक पैसा देकर रियायत पा सकते थे; पर बेचारे ग़रीब तो बिलकुल ही विदेशी हाकिमों तथा पुलिस-अफ़सरोंकी दयापर छोड़ दिए जाते थे। इन ज़ुल्म-ज़्यादतियोंके साथ ही विदेशी साम्राज्यवादियोंने अपने नोट चलाकर चीनकी अर्थनीतिको भी खत्म कर दिया। इसके परिणाम-स्वरूप ज़बरदस्त मुद्रा-प्रसार हुआ, किसान चौपट होकर शहरोंकी ओर चले, मज़दूर बेकार हो गए, जगह-जगह अकाल पड़ने लगे और चोरी तथा लूट-मारका ज़ोर हो गया। सामाजिक जीवनपर इसका बहुत बुरा असर पड़ा। जुआ, लाटरी, मादक द्रव्योंका सेवन, दुराचार, वेश्या-वृत्ति, यौन-विकार, भुखमरी, चोरी-डाके आदिका ज़ोर बढ़ा और चीनका ऐसा सामाजिक एवं सांस्कृतिक पतन हुआ कि विद्या-व्यसन, दर्शन, धर्म और सृजनात्मक शक्तिका चीनसे लोप-सा हो गया। लोग कनफ्यूसियस और मेनसियसके उपदेशोंसे दूर हट चले और बौद्ध मत, इस्लाम तथा ईसाई मतका जहाँ-तहाँ प्रचार होने लगा। अन्य दर्शनोंकी अपेक्षा चीनी दर्शन श्रेष्ठ था, अतः केवल ईसाई मतका ही चीनकी संस्कृतिपर कुछ विशेष प्रभाव पड़ा। पर विदेशी साम्राज्यवादका कटु अनुभव होनेके कारण चीनियोंने ईसाई मतको भी विदेशी आततायीपनका एक रूप होनेके सन्देहसे देखा।

नए युगका आरम्भ

विदेशी साम्राज्यवादियोंने पहले रियायतें, फिर विशिष्ट अधिकार, फिर चुंगी वसूल करनेका हक़, फिर रेलें बनाने और खानोंकी खुदाई करनेका एकाधिकार, फिर शासन, अदालतें और पुलिस तथा अन्तमें नोट चलानेका जो अधिकार प्राप्त कर लिया था, उसके खिलाफ़ सर्वप्रथम चीनी प्रजातन्त्रके पिता डा० सनयात-सेनने आवाज़ उठाई। उनका कहना था कि इस तरहका आर्थनीतिक आक्रमण किसी भी देशकी आज़ादीके लिए सशस्त्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आक्रमणसे अधिक घातक है। चीनी प्रजातन्त्रने अपने जन्म-कालसे ही इसे रोकनेके लिए विदेशियोंके विशिष्ट अधिकारों एवं अन्यायपूर्ण सन्धियोंका अन्त करनेकी चेष्टा की; पर साम्राज्यवादी षड्यन्त्रोंके कारण उसे विशेष सफलता नहीं मिली। गत १० अक्टूबर, १९४२ को अमरीका और ब्रिटेनकी सरकारोंने एक साथ एक महत्त्वपूर्ण पत्र चीन-सरकारके पास भेजकर चीनमें अपने विशिष्ट अधिकारों तथा सुविधाओंका अन्त करनेकी तत्परता घोषित की। चीनने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और गत ११ जनवरी, १९४३को इस आशयकी सन्धि भी हो गई। यह तारीख चीनके इतिहासमें अपना विशेष महत्व रखती है, क्योंकि इसी तारीखको चीनने बदनाम नानकिङ्-सन्धिपर हस्ताक्षरकर अपने ही देशके भागपर अपना अधिकार त्यागकर अपने पतन एवं पराजयका श्रीगणेश किया था। इस प्रकार अन्यायपूर्ण सन्धियोंका यह अन्त चीनके लिए एक नए युगका आरम्भ है और मुझे आशा है, वह चीनके साथ होनेवाली अन्य राष्ट्रोंकी भावी सन्धियोंका आधार सिद्ध होगा। इससे जहाँ आक्रमणकारी राष्ट्रोंके मिथ्या प्रचारको भारी धक्का लगा है, वहाँ संयुक्त-राष्ट्रके उद्देश्य सुस्पष्ट हो गए हैं।

ब्रिटेन और चीनके सम्बन्धोंमें एक ही असन्तोषजनक बात रह जाती है और वह है काउलूनके भविष्यकी। चीन-सरकारने ब्रिटेनको सूचित कर दिया है कि उसकी वापसीके लिए चर्चा चलानेका अधिकार उसका सुरक्षित है। और चूँकि हाङ्काङ् भी काउलूनके पास ही है, उसके भविष्यका प्रश्न भी विचारणीय है। इस सम्बन्धमें ब्रिटेनकी ओरसे देर-सवेर हो सकती है; पर हमें विश्वास है कि ब्रिटेन गोलियोंके बलपर छीने गए इस स्थानको लेकर चीन-ब्रिटेनके मैत्रीपूर्ण स्थायी सम्बधोंको बिगड़ने नहीं देगा। जो-कुछ भी हो, अन्यायपूर्ण सन्धियोंका पूर्णतया अन्त हमारी राष्ट्रीय क्रान्तिका पहला क़दम होगा।

आज चीन एक विश्व-शक्ति है। पर संसारके महान राष्ट्रोंके बीच अपना उचित स्थान प्राप्त करनेके लिए पहले उसे अपने देशकी हालत ठीक करनी होगी। सबसे पहले उसे राष्ट्रीय राजनीतिक और अर्थनीतिक पुनर्गठन करना है। सार्वभौम पद प्राप्त होनेके बाद ही वह इस पुनर्गठनमें लगेगा और उसके द्वारा राष्ट्रीय अर्थनीतिक आत्म-निर्भरता प्राप्त होगी, ताकि जन-साधारणके रहन-सहनका दर्जा ऊँचा किया जा सके।

चीनी प्रजातन्त्रके पिता डा० सनयात-सेनने चीनी क्रान्तिके तीन चरण बतलाए हैं—फ़ौजी संरक्षण, राजनीतिक संरक्षण और वैधानिक शासन। इन तीनोंके द्वारा ही हमें अपने देश-वासियोंका लोकशिक्षण करना है। फ़ौजी रूपमें हमें सदा तैयार रहना चाहिए और अपने देशकी अर्थनीतिक भित्तिको सुदृढ़ करना चाहिए। स्वतन्त्र होनेके लिए प्रत्येक राष्ट्रका शक्तिशाली और स्वावलम्बी होना नितान्त आवश्यक है। फ़ौजी दृष्टिसे चीन अपनी रक्षा करते हुए अन्य सभ्य राष्ट्रोंके साथ विश्व-शान्तिकी रक्षा और मानवताकी उन्नतिमें सहयोग करेगा। अर्थनीतिक स्वावलम्बनके लिए उसका उद्योगीकरण परमावश्यक है। अन्य देशोंके बराबरीमें आनेके लिए चीनी उद्योगको सब तरहके दबावों एवं प्रतिबन्धोंसे मुक्त करना होगा। इसके लिए हमें औद्योगिक योजनाएँ बनानी पड़ेंगी और छोटी चीज़ोंसे चलकर बड़ी चीज़ोंकी ओर आना पड़ेगा। इस सबका मूलमन्त्र होगा जनता-जनार्दनकी भलाई। इसके द्वारा सिर्फ़ उसके अस्तित्व एवं जीविकोपार्जनकी ही सुरक्षा नहीं की जायगी, बल्कि उसकी रहन-सहनकी सतह भी ऊँची की जायगी। पूँजीका राष्ट्रीयकरण किया जायगा, ताकि उससे होनेवाले लाभका भागीदार प्रत्येक व्यक्ति हो। इन सबके लिए जनता और सरकारका सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित होना परमावश्यक है। (लेखककी 'चीनका भवितव्य' पुस्तकसे)

उपहार किसीका !

श्री शम्भुनाथ 'शेष'

आज नयनसे आँसू बनकर छलक पड़ा है प्यार किसीका;
हँसते हैं क्यों दुनियावाले, रोता है संसार किसीका।
कितनी आशाएँ बलि देकर हम रख पाए दृगका पानी;
किसे खबर थी, पानी - पानी कर देगा उपहार किसीका।
तुम भी तो कुछ कहो वहाँकी सन्ध्याके रंगीन बादलो;
जहाँ सूर्य अपने हाथोंसे करता है शृंगार किसीका।
तारों - भरी रातमें देखो, कितने टूट रहे हैं तारे;
कम्पन - हीन रहेगा कब तक पाषाणी उर - तार किसीका?
लोहेके तारोंके अन्दर तोड़ रही है साँस ज़िन्दगी;
अचरज क्या जो स्वयं मृत्यु ही बन जाए आधार किसीका।
रात अँधेरी, दुर्बल माँझी, टूटी नौका, दूर किनारा;
अब तूफ़ानोंके हाथोंमें है जीवन - पतवार किसीका।
बन्दीगृहके सूनेपनमें साथ दिया केवल यादोंने;
आह किसीकी मधुर उपेक्षा आज बनी उपकार किसीका।
मर - मरकर जीनेवाले कब मरते हैं शाश्वत जीवनमें;
लहराता है रावी-उरपर अब तक यह उद्गार किसीका।
'हमें विदा दो दुनियावालो, हम जाते हैं लोक सुनहले';
इतना कहकर हंस उड़ गया, तज मानस - आधार किसीका।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाचारपत्र

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

हिन्दीमें समाचारपत्रोंकी विशेष वृद्धि हो रही है। तुम इसे राजनीतिक जाग्रति, सामाजिक प्रगति और बौद्धिक उन्नतिके शुभ-चिह्न कहोगे। मैं भी यह स्वीकार करता हूँ कि समाचारपत्रों द्वारा शिक्षाका प्रचार अवश्य होता है और उनसे जाग्रति भी होती है। हिन्दी-भाषा-भाषी जनतामें कांग्रेसकी नीति और स्वाधीनताके सन्देशको इन्हीं पत्रोंने फैलाया है। परन्तु पत्र-प्रकाशन-कार्यकी महत्ता और पत्र-सम्पादन-नीतिको गुरुतापर विचार करनेसे तुम्हें यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि हिन्दी-पत्रोंका प्रभाव जनतापर उतना नहीं पड़ता, जितना पड़ना चाहिए। 'हिन्दी बंगवासी', 'श्रीवेंकटेश्वर' तथा 'भारतमित्र'ने कितने ही वर्षोंसे हिन्दी-जगत्‌की सेवा की है। यह बात नहीं कही जा सकती कि वे लोकप्रिय नहीं थे, या नहीं हैं। मेरी छात्रावस्थामें इन्हीं पत्रोंके लिए मेरे ग्रामके कितने ही लोग बड़े उत्सुक रहते थे, और अभी तक कितने ही लोग पत्रोंको चावसे पढ़ते हैं। पर यह बात सच है कि जनतामें उनका जैसा प्रचार है, वैसा प्रभाव नहीं है।

उस दिन मैंने इंग्लैण्डके एक प्रसिद्ध समाचारपत्र 'टाइम्स' की कथा पढ़ी थी। देशके राजनीतिक जीवनके विकासमें समाचारपत्रका कितना प्रभाव पड़ता है, यह उसकी कथासे बिलकुल स्पष्ट हो गया। १७८५ में उसका जन्म हुआ और आज तक वह प्रकाशित हो रहा है। आरम्भसे लेकर आज तक वह अपने गौरवपूर्ण स्थानसे च्युत नहीं हुआ।

समाचारपत्र आधुनिक युगकी ही वस्तु है। वह ज्ञानके साथ मनोरंजनका भी साधन है। उसमें स्वार्थ-सिद्धिके साथ जन-सेवा, देश-सेवा और साहित्य-सेवा भी होती है। उसके द्वारा अर्थके साथ-ही-साथ कीर्त्ति भी मिलती है और शक्ति भी आती है, इसीलिए उसके समाचारोंका मूल्य भी होता है। जिन पत्रोंका कोई प्रभाव नहीं है, उन्हींके समाचारोंका भी कोई मूल्य नहीं होता।

प्रारम्भिक अवस्थामें समाचारपत्रोंमें केवल देश-विदेशके समाचार ही छापे जाते थे। पर कुछ ही समयके बाद समाचार-पत्रोंके संचालकोंने देखा कि समाचारपत्र द्वारा जनतामें बड़ी सरलता और शीघ्रतासे किसी भी बातका प्रचार किया जा सकता है। ज्यों-ज्यों जनताके अधिकार बढ़ने लगे, त्यों-त्यों समाचार-पत्रोंकी शक्ति और उपयोगिता भी बढ़ने लगी। जिन समाचारों का राजनीतिक या सामाजिक महत्व रहता है, वही उनमें प्रकाशित होते हैं। कहाँ किसके कार्यसे देश या जातिकी उन्नतिमें क्या सुविधा हो रही है, कहाँ राष्ट्रकी उन्नतिके लिए क्या बाधा हो रही है, लोग कहाँ कैसी भूल कर रहे हैं आदि बातोंकी चर्चा उनमें गम्भीरतापूर्वक की जाती है। पर उनकी शैलीमें सदैव एक आकर्षण रहता है, जिससे पाठकोंका मनोरंजन होता है।

वर्त्तमान युगमें रेल, तार और स्टीमरकी सुव्यवस्था होनेके कारण समाचार-संग्रह करनेका काम बड़ा ही सरल हो गया है। छापेखानेकी वृद्धि होनेके कारण समाचार प्रकाशित करनेका भी काम बड़ा सरल हो गया है। पार्लमेण्टमें प्रधान-मन्त्रीका वक्तव्य अभी पूरा भी नहीं हुआ कि वह पत्रोंमें छप गया। उन्नत देशोंमें संवाददाताओंका काम बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। उनमें कितने साहस, धैर्य और क्षमताकी आवश्यकता है, यह उनके संवादोंसे ही प्रकट हो जाता है। उन्हींके अनुभवोंको लेकर डायरी और पत्रोंके रूपमें कितनी ही अच्छी-अच्छी किताबें भी छपने लगी हैं। उनसे ज्ञानका मार्ग भी खूब विस्तृत हो गया है और ज्ञानकी ओर लोगोंकी अभिरुचि भी बढ़ने लगी है। लोगोंकी स्वाभाविक ज्ञान-लिप्साके लिए समाचारपत्रोंमें सप्लीमेण्टके रूपमें नए अंक निकाले गए हैं। जनताके अधिकारके साथ उनकी भी उपयोगिता बढ़ती चली जा रही है। समाचार-पत्र अब जनताके प्रतिनिधि माने जाते हैं। वे उनके अधिकारों और हितोंकी रक्षा करते हैं। इसीसे उनका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

कहा जाता है कि क्रिमियन युद्धके समय एक ने समाचारपत्र में यह छपाया कि युद्ध-क्षेत्रमें घायल सिपाहियोंकी अच्छी सेवा-सुश्रूषा नहीं हो रही है। यह समाचार पढ़ते ही लोगोंके हृदयमें इतना आतंक छा गया और साथ ही युद्धके कर्णधारोंपर इतना प्रभाव पड़ा कि तुरन्त ही उसके लिए सुव्यवस्था करनी पड़ी। समाचारपत्रोंके कारण अब यह सम्भव नहीं है कि कोई भी शासक स्वेच्छाचारसे अन्याय कर सके। समाचारपत्रों द्वारा शासन-नीति उच्छृंखल नहीं होने पाती। 'टाइम्स'के विरोधसे ग्लैडस्टनका 'होम-रूल' बिल पास न हो सका। पहले महायुद्धके प्रारम्भमें एस्क्विथके विरुद्ध 'टाइम्स'में लेख निकले, जिनके कारण प्रधान-मन्त्रीको अपना पद छोड़ना पड़ा। 'टाइम्स'की निर्भीक आलोचनाओं और निष्पक्ष लेखोंका प्रभाव जनता और गवर्मेण्ट दोनोंपर पड़ा। इसीसे सर राबर्ट पीलने उसकी नीतिकी प्रशंसा की।

समाचारपत्रोंका दूसरा कार्य यह है कि वे जनताको सुशिक्षित बनाते हैं। राजनीतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक आदि सभी विषयोंकी चर्चा बराबर करते रहनेके कारण समाचारपत्र लोगोंका उन विषयोंमें न केवल अनुराग ही बढ़ाते हैं, बल्कि उनको उचित ज्ञान भी देते हैं। समाचारपत्रोंका नियमपूर्वक पाठ करनेवाला व्यक्ति किसी भी विषयसे अनभिज्ञ

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं रह सकता। उसकी रुचि परिमार्जित होती रहती है। समाचारपत्रोंकी उपयोगितापर अब किसीको भी सन्देह नहीं रह गया है। जन-समूहके विचारोंको प्रकट करनेका साधन यही हैं। पर समाचारपत्रोंका उत्तरदायित्व भी अब खूब बढ़ गया है। शक्तिके साथ उत्तरदायित्व आता ही है। समाचारपत्र सर्वसाधारणके लिए नेताका काम कर रहे हैं, इसीलिए उन्हें सदैव सर्वसाधारणके कल्याणका विचारकर किसी बातको प्रकाशित करना पड़ता है। मिथ्या-नीतिका अवलम्बन करने पर ही समाचारपत्रोंका प्रभाव नहीं पड़ता।

हिन्दीमें कई कारणोंसे समाचारपत्रोंका प्रभाव जनतापर नहीं पड़ता। मेरी तो यह धारणा है कि हिन्दीमें मासिक पत्रोंका काम जितना अच्छा होता है, उतना साप्ताहिक अथवा दैनिकका नहीं होता। मुझे भी कुछ समय तक सम्पादनका काम करना पड़ा है। वह एक मासिक पत्र था। मासिक पत्रों और समाचार-पत्रोंके उद्देश्यमें विभिन्नता रहती है। सामाजिक विषयोंकी चर्चा करनेपर भी मासिक पत्र निर्माणकी ओर जितना ध्यान देते हैं, उतना प्रचारकी ओर नहीं। इसीसे उनके लेखोंमें अधिक स्थायित्व रहता है। अंगरेज़ीके कितने ही स्थायी निबन्धों और कथाओंका भी प्रकाशन पहले मासिक पत्रिकाओंमें हुआ है। यह सच है कि मासिक पत्रका आदर्श कुछ ऊँचा रहता है। उसके उच्च आदर्शकी रक्षा करना मेरे समान लोगोंके लिए साधारण बात नहीं है। इसीसे मैं सदैव अपनी ओरसे यथेष्ट परि-श्रम करके भी अपनी अयोग्यताके कारण घबराता रहता था। ज्योंही किसीने किसी लेखके विरुद्ध कुछ कहा, त्योंही मैंने वह लेख बन्द किया। मैं जानता हूँ कि हर तरहकी सुविधा होनेपर भी मुझे जो असफलता हुई, उसका एकमात्र कारण मेरी अयोग्यता है। पर इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दीके मासिक पत्रोंको अधिक सफलता मिली है। 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'विशाल भारत' आदि पत्रों द्वारा हिन्दी-साहित्यके नवयुगका निर्माण हुआ है। साप्ताहिक तथा दैनिक समाचारपत्रोंके विषयमें यही बात नहीं कही जा सकती। भाषाकी ही दृष्टिसे इनमें जो शिथिलता रहती है, वह उपेक्षणीय नहीं है।

वर्त्तमान युगमें कौन कहाँ क्या लिख रहा है, इसपर किसीकी दृष्टि नहीं है। क्या मासिक पत्र और क्या साप्ताहिक पत्र, दोनोंकी इतनी वृद्धि हो गई है कि अब यह सम्भव नहीं है कि हम सभी पत्रोंको ध्यानपूर्वक पढ़ सकें। अतएव अच्छी और बुरी दोनों प्रकारकी रचनाओंके प्रति पाठकोंमें भी एक उदासीनता, विरक्ति या उपेक्षाका भाव आ गया है। यह द्विवेदीजीका ही युग था कि एक 'अनस्थिरता' शब्दने ही हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें आँधी-सी ला दी थी। अब तो साहित्यका क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि हम बड़ी-से-बड़ी भूलोंपर भी ध्यान नहीं देते। इसमें सन्देह नहीं कि अब हिन्दी-पत्रोंकी नीति परिवर्त्तित हो गई है। पत्रोंको लोकप्रिय बनानेकी चेष्टामें हम लोग रुचिको परि-ष्कृत करनेकी कोशिश नहीं करते। हम पत्रोंसे एक क्षणिक उत्तेजना ही चाहते हैं, क्षणिक मनोरंजनकी ही आशा करते हैं। सिनेमाके गीतोंकी लोकप्रियता हम अपनी कविताओंमें चाहते हैं और उसीकी कथाओंकी विशेषता हम अपनी कथाओंमें रखना चाहते हैं। हम अपने पाठकोंकी विचार-शक्तिको उत्तेजित करनेके लिए यत्न नहीं करना चाहते।

मैं हिन्दीके पत्रोंको पढ़ता हूँ और अंगरेज़ीके भी पत्रोंको पढ़ता हूँ। दो-चारको छोड़कर अधिकांश पत्रोंमें कितने ही ऐसे वाक्य आते हैं, जिनका अर्थ ही समझमें नहीं आता है; कितनी ही ऐसी बातें होती हैं, जो बिलकुल अस्पष्ट होती हैं। उनके लेखोंमें प्रामाणिकता नहीं रहती। उनकी आलोचनाओंमें न वह गम्भीरता रहती है और न वह मननशीलता, जिससे पाठक आप-से-आप उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। संवादोंमें भी बहुधा उत्तरदायित्व-हीन निन्दा या प्रशंसा रहती है। समाचारों और लेखोंमें भी एक नीरसता रहती है, जो पाठकोंके लिए विरक्तिजनक होती है। 'शिवशम्भुके चिट्ठे'के समान सामयिक विषयोंपर लेख-माला समाचारपत्रोंमें दुर्लभ है। राजनीतिक लेखोंमें अंगरेज़ी पत्रोंकी शून्य प्रतिध्वनि रहती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग कम-से-कम परिश्रमसे अधिक-से-अधिक लाभ उठानेकी चेष्टा करते हैं। क्या प्रकाशक, क्या सम्पादक और क्या लेखक सभीके मनमें शायद यही भावना काम करती है। अंगरेज़ीके पत्र तो शिक्षित जनोंके ही पास पहुँचते हैं। उनमें अनर्गल बातें प्रकाशित नहीं हो सकतीं। हिन्दीके पत्र सर्वसाधारणके लिए हैं, जिनमें शिक्षाका प्रचार नहीं है, इसीलिए उनमें कोई भी बात लिख दी जाती है। लेखकोंपर कोई भी उत्तरदायित्व नहीं रहता। उन्हें अपनी योग्यतापर इतना अधिक विश्वास है कि वे जो चाहें, लिख सकते हैं।

हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें अधिकांश पाठक अल्पशिक्षित होते हैं। जो उच्चशिक्षा-प्राप्त व्यक्ति हैं, वे बहुधा हिन्दीके पत्रोंको नहीं पढ़ते हैं। ऐसे लोगोंमें वही हिन्दी-पत्रोंके पाठक होते हैं, जिन्हें उनसे विशेष अनुराग है और जो स्वयं किसी-न-किसी रूपमें हिन्दी-साहित्यकी सेवामें संलग्न हैं। पर इन्हीं अल्पसंख्यक शिक्षित पाठकोंपर हिन्दीके समाचारपत्रोंका आदर्श निर्भर है। वही लेखक हैं और वही उनके यथार्थ पाठक भी। सर्वसाधारण तटस्थ रहते हैं। यही कारण है कि हिन्दीके पत्रोंमें कुछ समय पहले व्यक्ति-विशेषके सम्बन्धमें जो कटुता या व्यंगपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे, उनका सर्वसाधारणसे कोई सम्बन्ध नहीं था। उस समय समालोचनाका ढंग भी दूसरा था। भाषाकी भूलें भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अक्षय थीं। आजकल हिन्दी-पत्रोंमें हम जो उन्नति और परिष्कार देख रहे हैं, उसमें भी उन्हीं अल्पसंख्यक शिक्षित जनोंका ही प्रभाव है। उन्हींकी नीति और रुचिका अनुसरणकर कितनी ही रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। जन-समूह अभी तक हिन्दीकी इस प्रगतिकी ओरसे उदासीन ही है। पन्त, निराला, जैनेन्द्र, यशपाल, प्रसाद आदि लेखकोंके पाठक अल्पशिक्षित जन ही हैं। इन शिक्षित और अशिक्षित जनोंके बीच अभी तक एक बड़ा व्यवधान है। प्रगतिके नामसे हिन्दीमें जो-कुछ लिखा जा रहा है, उसका प्रचार सीमाबद्ध है। हिन्दीके प्राचीन रस-साहित्यकी तरह वह केवल अल्पसंख्यक रसिकोंके लिए है।

लेखकोंके भावोंमें भी परिवर्त्तन हो गया है। पहले मेरे समान लेखकोंमें अपने सम्बन्धमें जो एक हीनता या क्षुद्रताका भाव था, वह अब नहीं है। लेखकोंमें अब एक गौरवका भाव अवश्य आ गया है। पहले अनुवादों या भावानुवादोंसे ही हिन्दी-साहित्य भरा था, अब मौलिक रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। इन मौलिक रचनाओंको अगर हम गौरव दें, तो यह कोई अनुचित नहीं है। पर सीमाका अतिक्रमण करनेसे वह छूँछा हो जाता है। लेखक और आलोचक दोनोंमें विश्वास भी होता है। यही कारण है कि समालोचनामें भी गौरवका वही भाव आ गया है। उस दिन एक समाचारपत्रमें एक उपन्यासके सम्बन्धमें मैंने यह पढ़ा कि हिन्दीमें ही नहीं, विश्व-साहित्यमें उसका अक्षय स्थान है। मैंने भी सभी तरहके उपन्यास पढ़े हैं और अभी तक पढ़ता ही हूँ। इसलिए हिन्दीके इन आलोचकोंकी ऐसी बातें सुन कर मैं तो अवाक् हो जाता हूँ। कुछ समय पहलेकी बात है। पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयीने मुझे 'मिठी चुटकी' नामक एक उपन्यास दिखाया। उसे पढ़कर मैंने यह कहा कि यह बिलकुल निकृष्ट उपन्यास है, और किसी प्रकार प्रकाशित करने योग्य नहीं है। पर हिन्दीके सभी विज्ञोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। एक विज्ञ आलोचकने यहाँ तक कहा कि प्रेमचन्दजीका कोई भी उपन्यास उसके बराबर नहीं है! तबसे हिन्दीके किसी उपन्यासपर सम्मति देनेका साहस मैंने नहीं किया। मैंने तो कान पकड़ लिए।

कोई ४३ वर्ष पहले 'हिन्दी बंगवासी'में एक व्यंगचित्र प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था 'राजा'। उसके नीचे लिखा था—'मुझे राजा कहो भाई, जूता न धोती, यह पगड़ी देखो।' यथार्थ शिक्षासे हीन होनेपर भी जब हमें गौरवकी पगड़ी मिल जाती है, तब गौरव ही हमारी अक्षमता प्रकट कर देता है। साधारण स्थितिमें अँगरखा और जूता न रहनेपर भी हम लोग सिर्फ़ धोतीसे काम चला लेते हैं और किसीकी दृष्टि हमपर नहीं जाती; पर सिरपर बहुमूल्य पगड़ी बाँध लेनेपर वस्त्राभूषणका अभाव क्यों न खटकेगा? इसीलिए सम्पादक अथवा समालोचक का पद-गौरव मेरे समान लेखकोंके लिए तो दुर्वल हो जाता है। एक पाठककी दृष्टिसे मैं निस्संकोच तुम्हें जो बात लिख सकता हूँ, वही क्या सम्पादक और समालोचकके रूपमें भी लिख सकूँगा?

पर हिन्दीके साहित्य-क्षेत्रमें यह एक सन्तोषजनक बात है कि हम अपनी इच्छाके अनुसार भी गौरवकी कोई पगड़ी स्वयं बाँध सकते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि हमें यह पगड़ी कोई दूसरा ही दे। यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हिन्दीके अधिकांश पत्र अभी जनताके पत्र नहीं कहे जा सकते और न लेखक ही जनताके लेखक समझे जा सकते हैं। दोनों अभी प्रकाशकोंकी कृपापर निर्भर हैं। स्वयं प्रकाशक अपनी शक्ति या सम्पत्तिपर निर्भर रहनेके कारण जनताके हितकी अपेक्षा अपने ही प्रभावकी वृद्धिके लिए प्रयत्नशील रहता है। मेरी समझमें तो पत्रोंमें अभी प्रकाशककी नीति और रुचिकी ही प्रधानता रहती है। यही कारण है कि हिन्दी-पत्रोंका प्रभाव अभी जनतापर नहीं है।

मेरे मनके गीत !

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

मेरे मनके मीत !
तुमने अपने बादल भेजे, मैंने अपने गीत !
तुमने घनमें गरज उतारी, मैंने स्वरमें क्रन्दन ;
तुमने वर सौंपे धरतीको, मैंने बरबस बन्धन ।
तुमने सरस सनातन सींचा, मैंने विरस अतीत !
मेरे मनके प्राण ! मेरे मनके मीत !

मेरे मनके प्राण !
तुमने अपनी सुधा बरस दी, मैंने अपने बाण !
तुमने चाहा वसुन्धराका आँचल करना धानी ;
तभी रक्तसे रँगनी चाही मैंने अपनी वाणी ।
तुमने पारस दिया, बनानी चाही मैंने शाण !
मेरे मनके प्राण !

मेरे मनके मीत !
मिला एक क्षण अगर, रहा मैं युगों-युगों विपरीत !
तुम समर्थ हो, बदल नहीं देते क्यों मेरी रहनी ?
विश्व-जगत्को पड़ें न मेरी कुटिल कलाएँ सहनी ।
लिख दो आकर नेह-क़लमसे मुझपर अपनी जीत !
मेरे मनके मीत !

मिलूँ आज तो, रहा अगर मैं युगों-युगों विपरीत !
मेरे मनके मीत !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुसाहिबजू

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

परिचय

[छोटू नाई दतियाका रहनेवाला था। जब मुझे मिला, लगभग ८० वर्षका था। उसने जीवन-भर सिपाहगरी की थी। दतियामें बंकाजू कोतवालके सिपाहियोंमें नौकर रहा था। दतियामें अनेक पुरातन प्रथाओंके विध्वंसके साथ उसकी सिपाहगरी खत्म हो गई। इस उपन्यासकी घटना उसीकी बतलाई हुई है। इस उपन्यासके दो नाम मुसाहिब दलीपसिंह और रामसिंह धधेरा सच्चे हैं, शेष कल्पित हैं। उपन्यासकी सब मुख्य घटनाएँ वास्तविक हैं। कोतवालने जिस प्रकार मुसाहिबजूसे बन्दूक़ ले ली थी, वह घटना भी सही है। हमारा वर्त्तमान समय सवा सौ वर्ष पहलेकी अवस्थाका प्राकृतिक सिलसिला है। उस समय सामन्त-युगकी समाप्ति प्रारम्भ हो गई थी, अब उस समाप्तिका अवशिष्ट-मात्र है। उस समय उसमें कुछ सौष्ठव था — अब ?–ले०]

- १ -

चिड़ियाँ चुप थीं। झींगुर झंकार रहे थे। तड़का नहीं हुआ था। सायँ-सायँ चलनेके बाद हवा मन्द पड़ गई थी और उसमें कुछ ठंडक भी आ गई थी। मनुष्योंका एक झुण्ड सुलगते हुए बोंड़ोंवाली बन्दूकें लिए उस टीलेदार बीहड़ वनमें चुपचाप चला जा रहा था। कभी-कभी ये लोग एकाएक ठहरकर आहट ले लेते थे और फिर सपाटेके साथ चल देते थे। गिनतीके २०-२५ आदमी होंगे।

सघन वृक्षोंसे ढँकी हुई एक छोटी-सी पहाड़ीपर चढ़नेके उपरान्त ये लोग अलग-अलग ऊँची-नीची टोरोंपर छिपकर जा बैठे। एक टोरपर दो मनुष्य एक साथ थे। एकके पास बन्दूक़ थी और दूसरेके पास म्यानमें बन्द तलवार।

धीरे-धीरे भोर हुआ। पूर्व दिशाके प्रतिक्षण बदलनेवाले रंगोंकी ओर इन लोगोंका ध्यान न था। इनकी गड़ी आँखें वृक्षोंके एक झुरमुटके तले प्रभाप्रच्छन्न अन्धकारमें कुछ टटोल रही थीं। यह स्थान उस टोरके नीचे निकट ही था, जहाँ ये दो मनुष्य जा बैठे थे। आधी घड़ी पश्चात् दो आकार उस अन्धकारकी ओर रेंगते हुए दिखाई पड़े। उन दो मनुष्योंमें से एकने बिलकुल दबे हुए स्वरमें कहा—'काकाजू, तेंदुओंकी जोड़ी है।'

दूसरेने भी देख लिया था। संकेतमें उत्तर दिया। तेंदुओंको सन्देह हो गया। वे वहीं दबकर बारीकीके साथ टोह लेने लगे। रह-रहकर सिमटे। इन दोनों मनुष्योंने साँस साधी।

इतनेमें और प्रकाश हुआ। झुरमुटके तलेका अँधेरा और खण्डित हुआ। तेंदुओंके आकार स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगे। उनकी चुल भी दिखलाई पड़ी। एक अदृश्य हो गया।

जिस मनुष्यको कुछ देर पहले 'काकाजू' शब्दसे सम्बोधन किया गया था, उसने रंजकको तोड़से छुला दिया। रंजक फुर्र-फुर्र हुई और फिर ज़ोरका धड़ाका हुआ। उस धड़ाकेके साथ ही एक चीत्कारमय गर्जन सुनाई पड़ा; परन्तु उस समय बारूदके धुएँके कारण कुछ स्पष्ट न दिखलाई पड़ सका। उस समय बन्दूक़ चलानेवाले अपने साथीसे दूसरेने ज़रा ऊँचे प्रफुल्ल स्वरमें कहा—'काकाजू, तेंदुआ अवश्य मारा गया।' वाक्य समाप्त ही हो पाया था कि लोहू-लुहान तेंदुआ छलाँग भरकर काकाजू-सम्बोधित व्यक्तिकी छातीपर आ चढ़ा। छिपनेके स्थानोंपर इधर-उधर जो लोग बैठे हुए थे, उनमें से कुछ निकला और कोई-कोई अपनी ही घबराहटके कारण हथियार समेत नीचेकी ओर लुढ़क गए!

तेंदुएके पिछले पंजे चट्टानपर थे। एक पंजा बन्दूक़ चलानेवाले व्यक्तिके कन्धेपर पहुँच गया था और दूसरा हवामें हुआ हुआ-सा था। उस पंजेके बड़े-बड़े नाखून निकले हुए थे। सिरपर बँधे हुए साफ़ेमें वे नाखून धँस गए। साफ़ा हिला डुला, खिसका। तेंदुआ अपने प्रबल आक्रमणके धक्केको न सँभाल सका। उसी चट्टानपर ज़रा फिसलकर तिरछा हुआ, सँभला और दूसरे आक्रमणके लिए दुगुने वेगके साथ तैयार हुआ।

तुरन्त दूसरे व्यक्तिने फुर्तीसे तलवार निकालकर ज़ोरका हाथ तेंदुएकी गर्दन और छातीके बीचमें भर दिया। वार कड़ा हुआ था; परन्तु तुरन्त घातका काम न दे सका। तेंदुएका पिछला धड़ चट्टानके नीचेकी ओर फिसलकर रुक गया और सिर तलवार चलानेवाले शिकारीकी जाँघपर जा अँटका। दाँत ही पैने दाँत जाँघमें जा घुसे।

'वाह पूरन! वाह!'—बन्दूक़ चलनेवालेने कहा—'ख़ूब बढ़िया हाथ किया है।'

पूरनने इस प्रशंसाकी ओर ध्यान न देकर आहत तेंदुएको अपनी जाँघपर से धकेलकर नीचे गिरा देनेका प्रयत्न किया। मांसमें दाँत अँटे हुए थे। अलग न कर पाया। पीड़ा हुई। तेंदुएके मुँहका लोहू पूरनकी जाँघके रक्तके साथ मिलकर होकर बहने लगा। पूरन ज़रा घबराया, कराहा। पूरनका काका उसकी पीड़ाका ठीक-ठीक कारण न समझ पाया और बन्दूक़में पड़ी हुई बन्दूक़को फिरसे भरनेके लिए जल्दीसे उतरा। पूरन कष्टपूर्ण स्वरमें बोला—'काकाजू, इसने मरते-मरते जाँघ चबा डाली है।'

बन्दूक़ अलग रखकर वह व्यक्ति तेंदुएके दाँतोंको पूरनकी जाँघसे छुड़ानेका उपाय करने लगा। बलिष्ठ होते हुए भी वह व्यक्ति अपनी पूरी शक्तिका उपयोग न कर सका। चिल्लाकर बोला—'क्या सब मर गए? चलो इधर।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सबसे पहले एक बुड्ढा आया। हिम-सदृश श्वेत दाढ़ी थी। उसके दोनों सिरे कानोंपर लिपटे हुए थे। लम्बी, छरहरी देह। बन्दूक़ हाथमें और तलवार बग़लमें। यह पूरनका दादा था।

'राजा, आप ठहरो', बुड्ढा बोला—'मांसमें दाँत धँस गए हैं, मैं निकालता हूँ।'

बुड्ढ़ेने दोनों पैर पूरनकी जाँघमें अड़ाकर हाथोंके पूरे बलसे तेंदुएके दाँत जाँघसे छुड़ा लिए। जाँघका बहुत-सा भाग बँधी हुई दाढ़ोंमें बिंधा चला आया।

'रमू कक्का, आज मेरे प्राण पूरनने बचाए हैं। मैं सोचता हूँ कि क्या देकर मैं इसके प्राण बचाऊँ।'

चिन्ता न की जावे, राजा', बुड्ढे रमूने काँपते हुए स्वरमें कहा—'अपने साथ मरहम-पट्टीका सामान है।'

थोड़े क्षण उपरान्त और शिकारी भी आ गए। कुछ लोग तेंदुएके मारे जानेपर बधाई देने लगे, कुछ ज़रा दूरोसे पूरनके घाव और मृत तेंदुएके सिरको देखने लगे। उन लोगोंके इस भावमें उदासीनताका आभास पाकर पूरनके बन्दूक़ चलानेवाले उस साथीने आँख तरेरी और करारे स्वरमें कहा—'तुरन्त मरहम-पट्टी करो।'

रमू बोला—'आप कोई न छुओ। मुझको मरहम और पट्टी दे दो। मैं अभी बाँधे देता हूँ।'

'ठहरो। मैं इस कामको अच्छा जानता हूँ।'—काकाजूने कहा।

- २ -

तेंदुएपर बन्दूक़ चलानेवाले और मरहम-पट्टीका दृढ़ प्रस्ताव करनेवाले दतिया राज्यान्तर्गत केरुआके जागीरदार, जो ग्वालियर राज्यमें है, मुसाहिब दलीपसिंह थे और रमू तथा पूरन जातिके मेहतर और मुसाहिबके सैनिक थे।

अठारहवीं शताब्दीका अन्त हो गया था। भारतवर्षमें दूरवर्ती पश्चिमसे आई हुई एक नई जाति द्वारा नई राजनीतिक संस्था स्थापित होती चली जा रही थी। बुन्देलखण्डके रजवाड़ोंके ऊपर सन्धियोंके बन्धन पड़ चुके थे। नई संस्थाकी नई प्रणालीसे बुन्देलखण्ड, अन्य प्रान्तोंकी तरह, सम्मोहित और संप्रभावित हो चुका था; परन्तु उसकी जकड़में इतनी कठोरता नहीं आई थी कि परम्पराएँ और स्थानिक रीतियाँ स्मारकोंके उत्सव-मात्र रह जायँ और जीने-मरनेकी स्वाधीनताका उच्छ्वास निरोधके दबोचनेवाले संयममें कस जाय।

दतियाकी परम्परागत अनियमित सेनामें उस समय कई सहस्र सैनिक थे। केरुआके मुसाहिब दलीपसिंहको बारह सौ योद्धा रखनेका आदेश था। इसी प्रयोजनसे उनको बारह सहस्र रुपए वार्षिक आयकी जागीरमें सेंहुड़ेके पास चिरूली इत्यादि आठ गाँव मिले हुए थे। इन बारह सौ सैनिकोंमें से लगभग आधे मुसाहिबके पास आते-जाते बने रहते थे, बाक़ी छः सौके विषयमें विश्वास था कि अटक पड़नेपर कहींसे बुला लिए जायँगे। पूरे बाहर सौ दशहरेके दरबारके दिन भी हाज़िरी देने न आते थे; परन्तु भीड़-भाड़को देखकर बारह सौका अनुमान कल्पनाशक्ति द्वारा कर लिया जाता था। क़िलेमें रखी हुई तोपें, जिनको श्रीवास्तवने ढाला था और जिनपर उसका नाम खुदा या ढला हुआ था, कल्पनामें प्रत्येक टुकड़ीकी चीज़ समझी जाती थी। थोड़े वर्षों पहले इन टुकड़ियोंने इन्हीं तोपोंका प्रयोग दिल्लीके मुग़लोंकी हरावलमें दक्षिण और उत्तरमें किया था। परन्तु अब वे किसी संभव घटनासम्पातके केवल संभावनीय प्रयोगकी साधन रह गई थीं और अब इन तोपोंका गर्व इन टुकड़ियोंको अंगरेज़ी तोपोंके सामने उतना नहीं रहा था। युद्धकी शैली परम्परामें परिणत हो चुकी थी। नई सूझ-बूझके लिए कोई स्थान न रहा था। और यह परम्परा भी पारस्परिक बखेड़ोंके समय जात-पाँतका अभिमान प्रकट करनेके लिए ही अधिक उपयोगमें आने लगी थी। युद्ध और योद्धाके नामकी लकीर पीटी जाने लगी थी। किसी सैनिकको थोड़ी-सी भूमि और किसीको एक-एक दो-दो रुपए मासिक वेतन मिलता था। यह भी महीनों बक़ायामें पड़ा रहता था और कभी-कभी बक़ाया बिना दिए-लिए ही साफ़ भी हो जाया करता था।

परन्तु मुसाहिब दलीपसिंहका नियम था कि जब कभी जितने सैनिक उनके घरपर आ जाते, वे उनको भोजन कराते। भोजनके लिए दो-चार घण्टेका विलम्ब भले ही हो जाय; परन्तु कराया अवश्य जाता था।

इन्हीं सैनिकोंमें से मुसाहिबका एक शिकारी-दल भी था। यों तो उनकी सेनामें सभी जातियों और वर्गोंके मनुष्य थे; परन्तु शिकारी-दलमें मेहतर अधिक थे। दलीपसिंह उदार थे, शिथिल थे, हठी थे, सहज विश्वासी और सहसाप्रवर्ती थे। छुआछूतके दम्भको वे न मानते थे। इसीलिए उनके सैनिकों तथा अनुयायियोंमें छुआछूतका भेद-भाव बहुत न था।

मुसाहिब दलीपसिंहने बिना किसी संकोचके कहा—'नहीं, तुम रहने दो। इस कामको मैं करूँगा।' और उन्होंने अपने बहुमूल्य साफ़ेमें से एक टुकड़ा पट्टीके लिए फाड़ डाला। तब और लोग जुट पड़े। थोड़े-से पलोंमें पट्टी बँध गई। पूरनकी शूरताकी सराहना करनेके बाद शिकारी तेंदुएकी भीम काया और उसके रंगके सौन्दर्यकी प्रशंसा करने लगे। तब बुड्ढा रमू पूरनसे बोला—'अच्छा, बहुत अच्छा हाथ कसा बेटा! पर राजाके निमकसे कभी उऋण होओगे या नहीं, इसमें सन्देह है।'

'बब्बा', पूरनने बिना कोई कष्ट प्रकट किए हुए कहा—'म्यानमें न पड़ी होती तलवार, तो तेंदुएको मचानके पास आनेके पहले ही वहाँका वहीं कतरकर फेंक देता।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'क्या!' रमू चिल्लाकर बोला—'मुसाहिबजूके साथ बैठा शिकार खेलने और तलवारको म्यानमें बन्द करके! तूने आज हमारे पुरखोंको डुबोई होती।'

बेचारा पूरन सकपका गया।

दलीपसिंहने कहा—'इतनी सफ़ाईके साथ कोई बन्दूक़ भी नहीं चला सकता था, जितनी सफ़ाईके साथ पूरनने तलवार चलाई।'

'परन्तु', सधे हुए गलेसे रमू बोला—'ऐसे शिकारमें इतनी असावधानी करनेके कारण इसको दो लातें अवश्य लगनी चाहिएँ।'

पूरन मुस्कराने लगा और लोग फिर उसकी प्रशंसा करने लगे। मुसाहिबजूने अपने गलेका गुँज उतारा और पूरनको पहना दिया। पूरनने निषेध भी किया; पर वे न माने। गुँज खरे सोनेका था और उसमें कुछ जवाहर भी थे।

रमूकी आँखोंमें आँसू आ गए। बोला—'यह क्या किया राजा? इस तुच्छ सेवाके लिए इतना बड़ा पुरस्कार!'

'यह तो कुछ भी नहीं है', मुसाहिबने उत्तर दिया, और पूरनको छातीसे लगाकर बोले—'आजसे यह मेरे बेटेके बराबर हुआ।'

'सो तो वह और हम सब आपके हैं ही।' रमूने रोते-रोते कहा—'परन्तु यह क्या किया! छातीसे लगा लिया! क्या किया यह!'

उसी मण्डलीमें रामसिंह धंधेरा नामक शिकारी भी था। यह कुम्हर्राका निवासी था। मुसाहिबका दूरके नातेमें साला होता था। बोला—'तभी तो समय पड़नेपर पूरन इसी छातीपर गोली भी तो लेगा।'

रमू गला साफ़कर बोला—'सो तो राजा, वैसे भी अपने स्वामीके लिए छातीपर गोला-गोली ओढ़ लेनेका हमारा धर्म है।'

रामसिंहने कहा—'रमू कक्का, सिपाहीको लात मारना धर्ममें नहीं है!'

- ३ -

वहीं जंगलमें एक छोटा-सा गाँव था। गाँव तक कन्धोंपर और वहाँसे दतिया खटियापर पूरनको सावधानीके साथ ले आए। दतियामें दलीपसिंहका डेरा भरतगढ़ फाटकसे लगा हुआ था। डेरे तक आते-आते तीसरा पहर होनेको आ गया। कड़ी धूप थी और तेज़ लू। उतरता जेठ होनेपर भी मेहकी एक बूँद न पड़ी थी। सब-के-सब भूखे और प्यासे थे। परन्तु मुसाहिबके डेरेपर इतने मनुष्योंके खिलाने लायक भोजन-सामग्री न थी, और उनका प्रण था कि जब तक अपने सगियोंमें से एक भी भूखा रहेगा, तब तक स्वयं अन्न ग्रहण न करेंगे।

उनकी पत्नी चरखारीके राजाकी बेटी थीं। वे भी उतनी ही उदार थीं। अटक पड़नेपर अनेक बार उन्होंने मुसाहिबको अपने बहुमूल्य आभूषण दे दिए थे। कई बार ऐसा करनेके कारण उनके पास बहुत थोड़े आभूषण बचे थे। मुसाहिबके सैनिक भी इस बातको जानते थे और उनमें से कई तो कभी-कभी इस बातकी चिन्तामें पड़ जाया करते थे कि मुसाहिब-पत्नीके उपकारोंका बदला कैसे चुकाया जाय। खाद्य-सामग्रीकी कमीके कारण वे उस दिन फिर चिन्तामें पड़ीं। उन्होंने सोचा, सन्ध्या तक कुछ-न-कुछ प्रबन्ध हो जायगा। इस समय शर्बतसे काम चलातो हूँ।

रानीने रसोइनोंसे शर्बत बनानेको कहा। खाँड़की खोज हुई। भाँड़ेमें केवल इतनी निकली, जितनीसे मुसाहिबका और तीन-चार मनुष्योंका काम चल पाता! रसोइनोंसे खिसियाकर कहा—'कहाँ गई? कल तो बहुत रखी थी!'

एक रसोइनने बिना बुरा माने हुए उत्तर दिया—'खर्च क्या कुछ कम है?'

'अच्छा, एक पान बना लाओ,' मुसाहिब-पत्नीने कहा—'तब तक मैं कुछ उपाय करती हूँ।'

रसोइन बीड़ा बनाने लगी। मुसाहिब-पत्नी, जो 'चरखारी-वाली सरकार' कहलाती थीं, आरसीमें अपना मुँह देखने लगीं। मुँह उतरा हुआ था। उन्होंने तुरन्त मुस्करानेकी चेष्टा की। मनमें कहा, ज़रा पानी मिला देनेसे काम चल जायगा। वे इस बातको प्रस्तावका रूप देनेवाली ही थीं कि फिर गम्भीर हो गईं। बोलीं—'बड़ी देर लगाई ज़रा-सा पान बनानेमें।'

'लाई तो।'—रसोइनने व्यग्रताका कोई भी लक्षण न दिखलाते हुए कहा।

चरखारीवालीने सोचा, बहुत पानी मिला देनेसे थोड़ी-सी खाँड़का भी स्वाद फीका पड़ जायगा। रसोइनसे कहा—'अच्छा, ठण्डा पानी घरमें है कि वह भी नहीं है?'

'जाड़ोंमें पकाए मटकोंमें हिम-सा ठण्डा पानी भरा है', सुपारीपर सरौता चलाते हुए रसोइन बोली—'ऐसा ठण्डा कि छूनेसे कँपकँपी लग जाय।'

क्षीण मुस्कराहटके साथ उन्होंने सन्देहपूर्ण स्वरमें पूछा—'गुड़ तो कदाचित् होगा ही नहीं?'

'गुड़के शर्बतसे तो ठण्डा पानी ही अच्छा।'—रसोइनने विवेकपूर्ण दृष्टिके साथ उत्तर दिया।

अपनेको निस्सहाय समझकर चरखारीवालीने एक साँस ली और मनमें प्रश्न किया, न-जाने क्यों इतनी कड़ी गरमीमें शिकार खेलते हैं? रसोइनसे बोलीं—'शिकार खेलना तो सरदारोंका काम ही है; परन्तु ज़रा पानी पड़ जाय, तब बाहर जाया करें, तो अच्छा हो।'

रसोइनने कोई उपाय नहीं किया। पान देकर ज़रा हिल-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खिचाहटके साथ कहा—'कितने लोगोंके लिए रसोई होगी? हम लोगोंको अभीसे तैयारी करनी पड़ेगी, तब कहीं रात गए खाना बन पायगा।'

चरखारीवालीने पान चबाते-चबाते धीरे स्वरमें कहा—'गुसाहिबजूको शर्बत भिजवा दो और अन्य लोगोंके लिए ठण्डा जल। समझी न?'

रसोइनने पहलेसे ही समझ रखा था; परन्तु अपनी समस्याको हल न होते देखकर ज़रा खीझकर स्वामिनीकी आज्ञाका पालन करने चली गई। इस बीच चरखारीवाली भाण्डारमें गईं। वहाँ देखा, तो रसोईकी सामग्री पूरी नहीं थी। कहीं रसोइनें घबराहटको न परख लें, इसलिए वे तुरन्त भाण्डारमें से निकल आईं और ठण्डे पानीसे हाथ-पैर धोने लगीं।

थोड़ी देरमें उस रसोइनने आकर कहा—'भिजवा दिया।'

(क्रमशः)

बुद्धकी शिक्षाओंका मर्मस्थान

भदन्त शान्तिभिक्षु शास्त्री

बुद्धसे पहले और उसके बाद धर्मगुरु श्रमण और ब्राह्मण धार्मिक कर्मकाण्डपर जितना ज़ोर देते थे, उतना ज्ञानपर नहीं। आचरण और सदाचारके सुन्दर-से-सुन्दर नियमोंको टटोलना चाहें, तो धर्मग्रन्थोंको उठा लीजिए। आपको बहुत ही उच्चकोटिके आचरणके नियम मिलेंगे; पर ज्ञानकी सामग्री, ज्ञानके प्रति उत्सुकता उनके भीतर बहुत कम मिलेगी। धर्म-गुरुओंकी ज्ञानके प्रति उपेक्षा क्यों थी? इसका एक कारण यह कहा जा सकता है कि धर्मगुरु जिस समय हुए, उस समय ज्ञानके साधन बहुत सीमित थे, और उन सीमित साधनोंमें यह शक्ति न थी कि ज्ञानके प्रति लोगोंकी उत्सुकताको जगा सकें। पर यह कोई कारण नहीं है। ज्ञानके साधन सीमित होनेपर भी ज्ञानके प्रति व्याकुलता उनमें उत्पन्न न हुई थी। धर्मकी गति प्रायः कुछ ऐसे निश्चल विश्वासोंपर जमी होती है कि उन विश्वासोंके अतिरिक्त स्वच्छन्द होकर न तो धर्माचार्य ही सोच पाते हैं और न उनके श्रद्धालु अनुयायी ही। ज्ञानके प्रति धार्मिकोंकी यह जड़ता और उदासीनताका संकेत जागरूक लोगोंने बहुत किया है। कालिदासने पुरुरवासे उर्वशीके रूपका वर्णन कराते कहलवाया है—अरे, वेदका अभ्यास करते-करते जड़, विषय-कौतूहलसे रहित वह पुराना मुनि ब्रह्मा भला इस तरहका सुन्दर रूप कैसे बना सकता है? ज़रूर ही इसके बनानेमें कान्तिमान् चन्द्रमाका हाथ है, या एकमात्र शृंगार-रसके अधिपति मदनने इसे बनाया है, या यह वसन्त-ऋतुकी देन है :—

अस्या सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रोनु कान्तिप्रदः
शृंगारैकरसः स्वयंनु मदनो मासोनु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यास जड़ः कथनुं विषयव्यावृन्त कौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥

आजके एक वेदपाठीको लीजिए, एक हाफ़िज़को लीजिए, देखिएगा कि दोनोंकी ज्ञान-विज्ञानके प्रति उदासीनता है। धर्मके प्रति अधिक विश्वासी प्रायः बहुत अन्ध-विश्वासी देखे जाते हैं और अपने अन्ध-विश्वासके कारण वे बहुत थोड़ेमें ही सब-कुछ समझ लेते हैं। इतना ही है, इसके अतिरिक्त और सब मिथ्या है, इस समझसे उनकी दृष्टि तो संकुचित हो ही जाती है और साथ ही वे ज्ञानके आनन्दसे भी वंचित रह जाते हैं। वे अपनी संकीर्णताके कारण अपने चारों ओरके जगत्से उदासीन हो जाते हैं और अपनेको अधिक बुद्धिमान् और प्रज्ञावान् बनानेके अवसरको खो देते हैं। बुद्धने इस प्रकारके जड़वृत्ति लोगोंकी उपमा दालके चम्मचसे दी है। चम्मचको चाहे जितना दालमें रखो, वह दालका रस नहीं ले सकता; दालका रस तो जीभ ही ले सकती है। धर्माचार्य होते हुए भी बुद्धमें इस तरहकी संकीर्णता न थी। उन्होंने कहा है :—

अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिबद्दोव जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति॥ (धम्मपद)

अल्पश्रुत—जिसने थोड़ा सुना है, वह बैलकी तरह बढ़ता जाता है। उसका मांस ही बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं बढ़ती।

बुद्धकी अपनी इस उदारता और ज्ञान-विज्ञानकी जागरूकताकी छाप उनकी धार्मिक शिक्षाओंमें समान भावसे व्याप्त है। बुद्धने जो शिक्षाएँ दी थीं, वे बहुत थीं, और बुद्धके समय उनका पाठ किया जाता था। पाठ करनेके लिए उनका कण्ठस्थ करना ज़रूरी था। एकवज्जिदेशीय भिक्षु उनको कण्ठस्थ करनेमें असमर्थ था। वह भगवानके पास गया और बोला—भगवन्! डेढ़ सौसे अधिक शिक्षापदोंका पाठ किया जाता है। मैं उनको सीख नहीं सकता। भगवान्ने उससे पूछा कि क्या तुम केवल अधिशील शिक्षा, अधिचित्त शिक्षा और अधिप्रज्ञा शिक्षा—ये तीन शिक्षाएँ सीख सकते हो? उसने कहा—हाँ भगवन्, सीख सकता हूँ। बहुत स्पष्ट है कि भगवान्ने अपनी शिक्षाओंमें अधिशील या उत्तम सदाचार, अधिचित्त या उत्तम समाधिको ही स्थान नहीं दिया है, प्रत्युत अधिप्रज्ञा या उत्तम प्रज्ञाको भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। प्रज्ञा एवं बुद्धिके विकासपर बुद्धने बहुत ज़ोर दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बुद्धकी शिक्षाएँ उनके उदार हृदयसे ओतप्रोत थीं। उन्होंने अपनी शिक्षाएँ सारे मनुष्य-समाजके लिए दी थीं। उनके शिष्योंमें सभी प्रकारके लोग थे। किसानसे राजा तक, वेश्यासे रानी तक, शूद्रसे ब्राह्मण तक—सभीने उनके उपदेशोंको सुना था। बुद्धके उपदेशोंमें आडम्बर न था। बुद्ध आडम्बरको पसन्द नहीं करते थे। पर उनके समयमें धर्मके नामपर बहुतसे आडम्बर प्रचलित थे। यहाँ एक आडम्बरकी कहानी कहना ठीक रहेगा।

एक बार कुछ भले घरानेके भिक्षु वर्षावासके लिए एक आश्रममें ठहरे। उन्होंने सोचा, क्या उपाय किया जाय कि हम सब विवाद-रहित हो विहार करें। तब उन्होंने अपने रहनेके लिए नियम बनाए। जो भिक्षा माँगकर पहले आए, वह आसन बिछाए, पीने और धोनेका पानी रखे। बादमें जो आए, वह जो-कुछ बचा हो, खाए। आसन आदि समेटे। चौका साफ़ करे। पानीके बर्तनोंको खाली देखे, तो भर दे। न भर सकता हो, तो इशारेसे दूसरेको कहे। पर कोई किसीसे न बोले। इस तरह मौन रहकर उन भिक्षुओंने चौमासा बिताया। चौमासा बितानेके बाद वे सब बुद्धके दर्शनको गए। बुद्धने कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने अपनी सब कहानी कही, जैसे कि रहनेके नियम बना उन्होंने मौन रहकर चौमासा बिताया था। भगवानने उनकी कहानी सुनकर कहा कि इन मोघपुरुषोंने पशुओंकी तरह ही एक साथ सहवास किया है, फिर भी ये समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरह वर्षावास किया। इन्होंने भेड़ोंकी तरह एक साथ सहवास किया, फिर भी ये समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरह सहवास किया है (विनय १८६)। भगवानने कहा है—'न मोनेन मुनी होति' (धम्मपद, १९।१५)—मौन रहनेसे मुनि नहीं होता। 'यो मुन्नति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति'—जो दोनों लोकोंका मनन करता है, वही मुनि होता है।

मौनको बुद्धने मना किया। बेकारकी बातें बोलनेको भी बुद्धने मना किया। बुद्धने उन सभी आडम्बरोंको मना किया, जिन्हें उस समय धर्मका उच्चतम आदर्श माना जाता था। एक भिक्षु एक बार नंगा होकर बुद्धके सामने गया और कहा कि भगवान त्यागमय जीवनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह नग्नता बहुत बड़ा त्याग है। भगवान इसकी अनुमति दें। भगवानने कहा, यह ठीक नहीं है, यह अकरणीय है। आज संसारके सभ्यमानी देशोंमें नग्नवादी बढ़ रहे हैं। भारतके लिए तो नग्नवाद बहुत पुराना है। पर दोनों नग्नवादोंके पीछे एक ही तरहकी प्रवृत्ति काम करती है। पश्चिममें नग्नवादी नग्न जीवनको स्वाभाविक जीवन समझते हैं और इसे जीवनका आदर्श मानते हैं। पूरबमें नग्नवादी इसे त्यागमय जीवनकी पराकाष्ठा समझते हैं और यही उनके खयालसे उत्तम जीवन है। पर इन नग्न और मौन वादोंके आडम्बरसे संसारको क्या कुछ भलाई हो सकती है? भारतमें दीर्घकालसे इनका अभ्यास होता रहा है; पर उससे हुआ कुछ नहीं। दुनिया उसी तरह बेढंगी चालसे चलती जा रही है।

ज्ञानके प्रति जागरूकता और आडम्बरहीनताके साथ बुद्धने मनुष्योंके भीतर जमी ऊँच-नीचकी भेद-भावनाको दूर करनेका बहुत यत्न किया। जन्मसे श्रेष्ठ होनेकी भावना ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। शूद्र और अतिशूद्र बहुत निचली कोटिके समझे जाते थे। हमारे अन्दर ऊँच-नीचकी भेद-भावनाएँ, स्पृश्यास्पृश्यकी भावनाएँ, एक-दूसरेका छुआ न खा सकना, एक-दूसरेका पानी न पी सकना आदि भावनाएँ इस तरह की हैं, जिनका दूसरे देशवाले अनुमान भी नहीं कर सकते।

१९४४ की जनवरीमें मैंने शान्तिनिकेतनके चीनी प्रोफ़ेसर मि० ऊ के साथ विहारके बौद्ध तीर्थोंकी यात्रा की। श्रावस्ती, जो किसी समय कोसलकी राजधानी थी और जहाँ बुद्धने बहुत से वर्षावास किए थे, हम दोनों देखने गए। वहाँ पहुँचकर हमें मालूम हुआ कि एक चीनी बौद्ध भिक्षु रन् चूङ् यहाँ कुटी बनाकर रह रहे हैं। हम दोनों उन्हें देखने गए। साथमें उनकी कुटीका रास्ता बतानेके लिए एक सज्जन थे। पता नहीं, किस जातिके थे; पर निश्चय ही द्विजाति थे। द्विजोंका चिह्न यज्ञोपवीत उनके शरीरपर था। भिक्षुने हमारी बड़ी खातिर की। चलते समय हमारे मित्रको देसी भटवांस (सोयाबीन) भी दिया। जो व्यक्ति हमारे साथ रास्ता बताने गए थे, उन्होंने बताया कि इन चीनी भिक्षुको यहाँ कोई छूता नहीं, कोई अपने बर्तन भी नहीं छुआता। मैंने आश्चर्यसे कहा, ऐसा क्यों? यहाँ बर्माके भिक्षु भी हैं, उनके तो लोग पैर भी छूते हैं, पात्र भी छूते हैं और उनके सेवक भी हिन्दू ही हैं, जो भोजन भी पकाकर देते हैं। उन्होंने बताया कि यह चीनी भिक्षु मुसलमानोंके हाथका भी खा लेते हैं, इसलिए सब हिन्दुओंने इनका बहिष्कार कर रखा है। भला एक चीनी भिक्षु—जो इस देशकी भाषा नहीं जानता, यहाँका रस्म-रिवाज नहीं जानता और जिसने अपनी आँखोंसे ऐसा समाज नहीं देखा, जिसमें लोग एक-दूसरेको छूनेसे अपवित्र हो जाते हों—कैसे समझे कि मुसलमानके हाथका खानेमें बुराई है!

हमारे चीनी मित्रने एक स्टेशनपर चायवालेको देखते ही फ़ौरन चायका आर्डर दिया। साथमें जितने लोग थे, सबके लिए आर्डर दिया गया था। एक पण्डितजी भी साथमें थे। यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि चायवाला मुसलमान था। हमारे मित्रने चायका प्याला लेकर बड़े आदरके साथ पंडितजीको पहले दिया। पंडितजी बहुत घबराए; पर वे शान्तिनिकेतनमें बहुत दिन तक रह चुके थे, पुराने खान-पानके संस्कार कुछ ढीले हो चुके थे। वे बड़ी हिम्मत करके चाय पी गए। वह चायका प्याला पीते समय उनका रोम-रोम व्याकुल था; पर वे अपनेको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत पिछड़ा सिद्ध नहीं करना चाहते थे, इसीलिए वे उसे गलेसे नीचे उतार गए।

सन् १९३९ की बात है। मैं सारनाथमें था। एक दिन घूमनेके लिए जा रहे थे। साथमें भदन्त आनन्द थे। सारनाथ से स्टेशन तकका रास्ता एक मीलके लगभग है। आनन्दजीको प्यास लगी। हम एक दुकानपर गए। साथमें जितने लोग थे, प्रायः सबके सब ब्राह्मण थे, केवल एक आनन्दजी ही भिक्षु थे। एक दुकानके पास पहुँचकर पानी माँगा। दुकानदार शायद सबको पहचानता था। पानी भरकर उसने सबको पिलाया और अपने लड़केसे कहा, बाबाजीके लिए एक सिकोरा ला दे। मैंने समझा कि यह शायद आनन्दजीकी खातिर हो रही है। औरोंने दूसरी चुल्लूमें पिया है, बाबाजीको यह चुल्लूमें पानी न देकर उनका सत्कार करनेके लिए सिकोरा मँगा रहा है। आनन्दजीने सिकोरेमें पानी पिया। जब आनन्दजी पानी पी चुके, तो उसने कहा—'बाबाजी, सिकोरा सड़कके उस किनारे फेंक देना।' बाबाजी ने सहज भावसे सिकोरा उस किनारे फेंक दिया। बादमें पता चला कि बाबाजी चूँकि बौद्ध भिक्षु थे, उन्हें किसीके छूने या किसीके हाथका खानेमें एतराज़ न था, इसलिए उस दुकानदारकी निगाहमें बाबाजी भी अछूत ही थे, फिर भला वह उन्हें बर्तन कैसे देता।

सन् १९३३ की बात है। मैं घरसे जयपुर जा रहा था। रास्ते बीचमें मुझे सनक सवार हुई मथुरा, आगरा, दिल्ली इत्यादि की सैर करनेकी। रुपये जितने थे, उनसे खयाल था जयपुर पहुँच जाऊँगा। पर अलवर पहुँचते ही मैंने देखा कि मेरी जेब बिलकुल खाली है। वहाँ उस समय कोई मित्र न था, जिसे मैं तक़लीफ़ देता। मैंने पैदल चलनेकी ठान ली। यह कहनेकी ज़रूरत नहीं कि मेरे पास सामान विशेष कुछ न था। जूनका अन्तिम सप्ताह था। चारों ओर खूब हरियाली थी। पहाड़ी टीलोंपर मोर मस्तीसे विहार कर रहे थे। मोरोंकी इतनी सुन्दरता मुझे इससे पहले देखनेको न मिली थी। रास्तेमें जहाँ प्यास लगती, मुझे पानी दूसरोंसे माँगकर पीना पड़ता। मैं एक जगह पहुँचा। दो नवयुवक पानी भर रहे थे। मैंने पानी माँगा। पानी तो उन्होंने न दिया और बहुत भद्दे ढंगसे जाति पूछी। मैंने उनसे कहा कि मैं प्यासा हूँ, पानी आप हमें दूरसे पिला दें। हमारी जातिसे आपको क्या लेना है? पर उन्हें दूरसे पानी पिलानेमें भी अपनी जाति जानेका डर था। मुझे दो-चार गालियाँ दीं और मैं प्यासा ही फिर आगे चल पड़ा। मेरा मन बुरी तरह खीझ उठा। मुझे ज़िद हो गई कि जाति बताकर तो मैं पानी नहीं पिऊँगा। मैं चलता रहा, कहीं कोई आदमी बहुत दूर तक न मिला। छोटे गड्ढोंमें भरे बरसाती गँदले जलसे मैंने प्यास बुझाई, पर मुझे यह बहुत बड़ा डर था कि यह गँदला पानी कहीं बीमार न कर दे। साथ ही उस बरसाती पानीसे प्यास भी न बुझती थी। मुझे फिर एक आदमी मिला। उससे मैंने पानी माँगा। उसने भी पूछा, कौन जातिके हैं? मैंने सहज ही उत्तर दिया कि भाई, पानी पिलाना हो, तो पिला दो; जातिसे क्या करोगे? आदमी शायद भला था। पानी पिलाया और फिर कुछ न पूछा।

जिस समाजमें इस ढंगका अन्ध-विश्वास है, उसके विचारक मुँहसे भले ही कहते रहें :—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीता)

—पण्डित जन, विद्या और विनयसे सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चण्डालमें समदृष्टि होते हैं। पर उसका व्यावहारिक मूल्य बहुत कम है। बुद्धने अपने उपदेश सबको दिए। बुद्धके प्रभावके कारण उस समय और उसके बाद भी बहुत दिनों तक यह समझा जाता रहा कि मनुष्यकी श्रेष्ठताका कारण उसका धर्माचरण है, उसका जाति-भेद नहीं। वरुलसुत्तमें कहा है :—

तदमिन्नपि जानाथ यथामेदं निदस्सनं।
चण्डालपुत्तो सोपाको मातंगो इति विस्सुतो॥
सो यसं परमं पत्तो मातंगो, यं सुदुल्लभं।
आगच्छुं तस्सु पट्ठानं खत्तिया ब्राह्मणा बहू॥ (सुत्तनिपात)

—मातंग नामक चण्डाल-पुत्रको (उनके धर्माचरणके कारण) बड़ा यश मिला। उनकी सेवामें बहुतसे क्षत्रिय और ब्राह्मण उपस्थित हुआ करते थे।

बुद्धके समय और उसके बाद भी बहुत दिनों तक सब जातिके लोग साधु बनते थे और उनका समाजमें बहुत आदर था। पर उनका आदर बहुत दिन तक टिक न पाया। ऊँच-नीचका भेद-भाव जो बुद्धके समय जड़ जमाने जा रहा था, बादमें उसने अपनी जड़ें जमा लीं। धर्माचरण करनेवाले साधुओं का मान कम होने लगा। दिव्यावदानमें अशोक और उसके मन्त्री यशकी कहानी है। अशोक भिक्षुओंकी वन्दना किया करता था। उसके मन्त्री यशको यह बात अच्छी न लगी। उसने अशोकसे कहा—'महाराज, इन बुद्ध-मतके साधुओंमें सब जातिके लोग होते हैं। अपने अभिषिक्त सिरको इनके आगे झुकाना ठीक नहीं है।' अशोकने यशको उस समय कुछ उत्तर न दिया और थोड़े दिन बाद बकरे-भेड़ आदि मेध्य प्राणियोंको मँगाकर उनको बेचनेके लिए अपने लोगोंको भेजा। यशको मृत मनुष्यका सिर देकर बेच लानेको कहा। बकरे आदिके सिर बिक गए। कुछ पैसा भी मिला। पर मनुष्यका सिर किसीने नहीं लिया। तब अशोकने यशसे कहा कि इस मनुष्यके सिरको बिना दाम लिए ही किसीको दे दो। पर उस सिरको बिना दामके भी किसीने नहीं लिया। लेनेकी बात तो दूर, जहाँ यश सिर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ले जाता, लोग घृणा करते। उसे कोई पास भी खड़ा न होने देता। बादमें यशने अशोकसे कहा कि मुफ़्तमें भी इस सिरका लेनेवाला कोई नहीं है। अशोकने पूछा--'इसे लोग मुफ़्त भी क्यों नहीं लेते?' यशने कहा--'महाराज, इस सिरसे लोग घृणा करते हैं।' अशोकने पूछा--'क्या इसी सिरसे लोग घृणा करते हैं, या सब मनुष्योंके सिरसे घृणा करते हैं?' यशने कहा--'महाराज, किसी भी आदमीका सिर काटकर ले जाया जाय, लोग उससे घृणा करेंगे।' अशोकने पूछा--'क्या मेरे सिरका भी यही हाल होगा?' यश उत्तर न दे सका। उसे डर लगा कि सच्चा उत्तर देनेसे कहीं राजाको बुरा न लगे। पर बादमें जब अशोक उसे अभयदान दिया, तो उसने कहा—'महाराज, आपके सिरसे भी लोग इसी तरह घृणा करेंगे।' तब अशोकने कहा--'जो सिर इस तरहका घृणापात्र है, वह यदि भिक्षुओंके आगे झुका, तो तुमको बुरा क्यों लगा?'

अशोक जैसे लोग जब तक रहे, धर्माचरणमें सबका समान अधिकार रहा; पर बादमें ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरी जातिके लोग यदि साधु भी हो जाते, तो उनका न तो समाजमें उतना आदर होता और न वे धर्मगुरु ही हो सकते थे। हालत यहां तक पहुँची कि बुद्धको बादमें लोग गालियाँ देने लगे। लोगोंने कहना शुरू किया, बुद्ध क्षत्रिय थे, उन्हें धर्मके उपदेश देनेका कोई अधिकार न था। कुमारिलने साफ़ कहा है—"स्वधर्मातिक्रमेण येन क्षत्रियेण सता प्रवक्तृत्व प्रतिग्रहौ प्रतिपन्नौ, सधर्मम् अविप्लुतम् उपदेश्यतीति कः समाश्वासः।... सन्मूलमपि अहिंसादि श्वहति निक्षिप्त क्षीरवदनुपयोगि, अवस्रम्भ वीयं च।" (मी० तन्त्रवार्तिक, १, ३, २-३)—जिस बुद्धने क्षत्रिय होकर भी धर्मोपदेश और भिक्षावृत्तिको अपनाकर अपना धर्म त्याग दिया, वह ठीक-ठीक धर्मका उपदेश करेगा, इसपर कैसे विश्वास कर लें? और रही अहिंसा आदि जो वेद आदि सत् शास्त्रोंमें भी है, वह भी (बुद्ध—बुद्धके शिष्यके उपदेशसे ग्रहण की जाय) तो उसी तरह अनुपयोगी और अविश्वसनीय है, जैसे कुत्तेकी खालमें पड़ा दूध (अपवित्र और) अनुपयोगी होता है।

बुद्धने अपने समयमें इस बातके लिए बड़ा प्रयत्न किया था कि लोग जन्मगत ऊँच-नीच भेदोंको भूलकर समान भावसे धर्मके अधिकारी हों और उन्हें अपने समयमें कितने ही ऐसे ब्राह्मण विचारक भी मिले थे, जो जन्मगत जाति-भेदको बेकार समझते थे; पर बादमें यह बात सफल न हो पाई। आज भी भारतमें सभी जातिके साधु हैं। पर यदि साधु हीन जातिका है, तो वह कितना ही त्यागी, तपी और सदाचारी हो, समाजमें वह आदर नहीं पा सकता, जो उच्च वर्णका साधु। जब धर्माचरणके भीतर इतनी संकीर्णता है, धर्मका अधिकार भी सबके लिए समान नहीं है, तो और बातोंकी समानताकी आशा छोड़ देनी चाहिए। आज भारतमें धार्मिक समानताके लिए यत्न हो रहा है। अछूतोंके लिए कुएं और मन्दिर खोलनेकी ओर प्रवृत्ति है। पर उससे होगा क्या? मैं कभी सोचता हूँ, तो जान पड़ता है कि मन्दिरोंका हाल भी रेलगाड़ी और नलों-जैसा होगा। जिस तरह गाड़ीमें सभी जातिके लोग यात्रा एक साथ कर लेते हैं और नलपर सभी लोग पानी भी लेते हैं, वैसे ही सभी लोग मन्दिरमें जाने लगेंगे और सभी लोग कुओंपर पानी भरने लगेंगे। पर हमारा भेद-भाव तो दूर नहीं होता। यदि एक अछूत आज वेद पढ़ ले, तो भी पुरोहित नहीं ही हो सकता। अछूत ही क्यों, स्पृश्य शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय आदिके भी पुरोहित होना इस समाजमें कठिन है। एक अछूत यदि आज हलवाईकी दुकान करे, तो ज़रूर उसे कल ही अपना दिवाला निकालना पड़ेगा। लोग उसके यहाँसे कभी न खरीदेंगे। हिंदू भी उससे दूर भागेंगे और अहिन्दू भी।

दिव्यावदानमें एक श्लोक आया है:—

आवाहकालेऽथ विवाहकाले
जातेः परीक्षा नतु धर्मकाले
धर्मक्रियायां हि गुणानिमित्ता
गुणाश्च जातिं न विचारयन्ति।

—लड़की लेने-देनेमें जातिका विचार करना; किन्तु धर्मके समय, धर्म-विधिमें जातिका विचार नहीं करना चाहिए। धर्म-कर्ममें गुण ही कारण हैं और गुण किसी जातिका खयालकर कहीं नहीं होते।

आज लड़की लेने-देनेमें नहीं, सभी जगह जातिका विचार होता है—धर्म-कर्मसे लेकर नौकरी-चाकरी तकमें। ब्राह्मण ब्राह्मणका पक्षपात करता है, गुणका नहीं। क्षत्रिय क्षत्रियका पक्षपात करता है, गुणका नहीं। वैश्य वैश्यका पक्षपात करता है, गुणका नहीं। मुसलमान मुसलमानका पक्षपात करता है, गुणका नहीं। सबने अपनी जमातें बना रखी हैं और उससे ऊपर उठनेको तैयार नहीं। इस संकीर्णताके कारण उच्चकोटिका जीवन बिताना तथा शील और सदाचरणका पालन करना सम्भव नहीं। बुद्धने जिस सर्वसाधारण सदाचारका प्रतिपादन किया है, उसके भी पालनमें हम असमर्थ हो गए हैं। यहाँ बुद्धने जिस सर्वसाधारण सदाचारका प्रतिपादन किया है, उसका ज़िक्र कर देना ठीक रहेगा। बौद्ध धर्मका सदाचार पाँच शीलोंसे प्रारम्भ किया जाता है—(१) वाणाति पाता वेरमयी, (२) अदिन्ना दाना वेरमयी, (३) कामेसु मिच्छाचारा वेरमयी, (४) मुसावादा वेरमयी और (५) सुरामेय मज्जापमाद ट्ठाना वेरमयी। ये बड़े ही सरल शील हैं। सब कह देंगे, इनके माननेमें हमें विमति नहीं है; पर पालनमें कदाचित् कुछ लोग ही सफल होंगे। कोई लालच

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवसर आया, शील टूटते देर न लगेगी। यशके लिए शीलसे लोग फिसल जायँगे, अपने बान्धवोंके लिए लोग कचहरीमें झूठी गवाही दे आयँगे। यदि अपने शरीर या प्राणपर आ बनी, तो सब-कुछ कर डालेंगे। देशभक्तिके लिए एक देशके लोग दूसरे देशके साथ आज सब-कुछ कर डालेंगे। गाँव जला देंगे, स्त्री-बच्चोंको कत्ल कर डालेंगे। धर्मका आचरण करनेवाले भी आपत्ति पड़नेपर अपने धर्मके विपरीत कार्य करते कभी न हिचकिचायँगे। दिव्यावदानके चीनी ग्रन्थमें इस विषयमें एक बहुत सुन्दर कहानी है। एक चोर एक भिक्षुको बहुत तंग करता था। भिक्षु बेचारा बहुत असमर्थ था, करता भी क्या? चोर अपनी हरकतसे बाज़ नहीं आता था। एक दिन चोरने साधुको बहुत तंग किया। भिक्षुने भी उससे तंग आकर एक रज्जु-यन्त्र बना रखा था। साधुकी वस्तुएँ लेते समय चोरका हाथ उस रज्जु-यन्त्रपर पड़ा और वह उससे बँध गया। चोरके बँध जानेपर भिक्षुने उसकी पीठपर खासा अच्छा प्रहार किया और कहा—बुद्धं सरणं गच्छामि। फिर दूसरा प्रहार किया और कहा—धम्मं सरणं गच्छामि। फिर तीसरा प्रहार किया और कहा—संघं सरणं गच्छामि। तीन प्रहरोंसे चोर तिलमिला गया और कहा कि मुझे अब छोड़ दो, जो तुम कहोगे, वही करूँगा। भिक्षुने उसे छोड़ दिया। तब चोरने भिक्षुसे कहा कि यह तो बड़ा कुशल था कि कृपालु बुद्धने तीन ही शरणका विधान किया था। यदि कहीं चार शरणका विधान होता, तो तुम मुझे मार ही डालते!

(आगामी अंकमें समाप्य)

गतिशील श्री मैथिलीशरण गुप्त

प्रो० विनयमोहन शर्मा

गत ११ अगस्तको हिन्दी-जगत्में बाबू मैथिलीशरण गुप्तकी ६०वीं वर्षगाँठ 'हीरक-जयन्ती'के रूपमें मनाई गई। इसमें सन्देह नहीं कि आप आधुनिक खड़ीबोली-कविताके जीवित इतिहास हैं। समय चाहे जितनी तेज़ीसे भागे, आप कभी 'दौड़'में पीछे नहीं रहे। 'समय'ने जब जिस 'स्वर'की माँग की, आपने उसे अपना कण्ठ प्रदान किया।

आजसे कोई चालीस वर्ष पूर्व हिन्दी-काव्य ब्रजभाषा और खड़ीबोलीके 'दोल'में झूल रहा था। एक पक्ष ब्रजभाषाको ही काव्यके उपयुक्त मानता था। (बाबू हरिश्चन्द्र भी, जिनसे हिन्दीका आधुनिक कालका अथ माना जाता है, खड़ीबोलीमें काव्य करना एक विनोद समझते थे। ब्रजभाषामें ही 'काव्यका मायुर्य झर सकता है, ऐसा उनका विश्वास था।) यह पक्ष रूढ़िवादियोंका था। दूसरा पक्ष बोलचालकी भाषामें—खड़ी-बोलीमें—काव्यको उतारनेके लिए व्यग्र था। उसका कथन था कि जब गद्य खड़ीबोलीमें लिखा जाने लगा है, तो पद्य भी उसीमें लिखा जाना चाहिए। गद्य और पद्यकी पृथक-पृथक भाषा रखना उचित नहीं है। इस पक्षका नेतृत्व आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी कर रहे थे। गुप्तजीने समयके 'संकेत'को समझा और द्विवेदीजीकी 'छाया'में खड़ीबोलीके क्षेत्रमें आ गए। आप हिन्दीके प्रथम रूढ़ि-भंजक प्रगतिशील कवि कहे जा सकते हैं।

जिस समय आपके कविका प्रादुर्भाव हुआ, देशमें जातीय और राष्ट्रीय चेतनाओंने आँखें खोली ही थीं। अतः आपकी प्रारम्भिक रचनाओंमें इन दोनों विचार-धाराओंका समावेश पाया जाता है। 'भारत-भारती'का महत्व, चाहे शून्य ही क्यों न हो; पर समयकी प्रतिध्वनि उसमें अवश्य सुन पड़ती है। उस समयके वातावरणमें 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान' का नारा अमन्द गूँज रहा था। 'भारत-भारती'में इसीसे जहाँ 'हिन्दुस्तान'के गत गौरव और वर्त्तमानकी ह्रास-दशाका वर्णन है, वहाँ हिन्दू-जातिको जगानेकी आतुरता भी है। उसे अन्य जातियोंसे श्रेष्ठ भी बतलाया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि कवि हिन्दू-समाजको उस लघुत्व-भावनासे मुक्त करना चाहते थे, जिससे वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सो रहा था। ('भारत-भारती'में ही नहीं, उसके बाद प्रकाशित 'हिन्दू'-कृतिमें भी गुप्तजीका 'हिन्दू'-भाव प्रबल दीख पड़ता है। उसमें हिन्दुओंको उत्पीड़ित करनेवाली जाति-विशेषसे बदला लेनेका उन्मेष भी है। प्रतीत होता है, उस समय उनपर हिन्दू-महा-सभावादियोंका प्रभाव तीव्रतम हो उठा था। हिन्दुओंको संगठित करनेकी दृष्टिसे सिक्खों और बौद्धोंके महागुरुओंकी महिमा प्रदर्शित करनेवाली कृतियाँ भी आपने लिखीं। उनमें 'यशोधरा'का काव्यकी दृष्टिसे अधिक सम्मान हुआ।)

'भारत-भारती'के पश्चात् जिस काव्य-कृतिने आपको ख्याति प्रदान की, वह थी 'जयद्रथ-वध'। वह काव्य अपनी प्रवाही भाषा और हिन्दीमें प्रथम उल्लेखनीय खण्डकाव्य होनेके नाते अधिक लोकप्रिय हुआ। काव्य-रसिकोंने उसमें सर्वप्रथम गुप्तजीके कवि-रूपके दर्शन किए। 'जयद्रथ-वध'के अतिरिक्त आपका प्रसिद्ध खण्डकाव्य 'पंचवटी' है, जिसमें प्रकृति अपनी सहज-सरल मुस्कानसे ज्योत्सनामयी हो उठी है। इसमें चित्रा-त्मक नाटकीय तत्त्वकी प्रधानता है। कविने छोटे-से काव्यमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चरित्र-चित्रणका कौशल भी प्रदर्शित किया है और लक्ष्मणको आजका मानव बनाकर उन्हें हमारे बिलकुल समीप ला दिया है। देवर-भौजाईका विनोद रसाभास भले ही पैदा कर दे; पर वह मनोविज्ञानकी दृष्टिसे लक्ष्मणके आत्म-दमन-युक्त जीवनको स्पन्दन-मय बनाए रखनेको आवश्यक प्रतीत होता है।

इतिवृत्तात्मक द्विवेदी-कालके समाप्त होते ही हिन्दीमें अन्तर्मुखी वृत्तिको लेकर छायावाद-रहस्यवादका युग आता है। आचार्य द्विवेदीने काव्यके इस 'प्रवाह'को सन्देहकी दृष्टिसे देख उसको अवरुद्ध करनेकी भरसक चेष्टा की। उनको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन आदि साहित्य-मर्मज्ञोंका सहयोग भी प्राप्त हुआ; पर गुप्तजीके 'स्वर' बीते राग ही न गा सके, उनकी 'हृत्तन्त्री' भी 'झंकार' उठी :—

सखे, मेरे बन्धन मत खोल,
आप बन्ध्य हूँ, आप खुलूँ मैं,
तू न बीचमें बोल।

आपने भी छायावादी कवियोंके समान माधुर्य भावकी उपासना की—'रहस्य'की 'खोज'की। छायावाद-युगका पूर्व-काल काव्यमें लाक्षणिकताकी ओर अधिक उन्मुख था और छन्दका बन्धन स्वीकार नहीं करता था। अतः उस कालकी गुप्तजीकी रचनाओंमें ये दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। पर जब उत्तर-कालमें गीति-काव्यकी प्रधानता बढ़ी, तो गुप्तजीकी रचनाओंमें भी गीत झरने लगा—इतना अधिक कि उनके प्रबन्ध-काव्योंमें भी प्रबन्धत्वकी अपेक्षा गीतत्व ही अधिक प्रबल हो उठा। 'साकेत' और 'यशोधरा'के कई गीत स्वतन्त्र रूपसे भी गाए जा सकते हैं। छायावाद-युग और द्विवेदी-इतिवृत्तात्मक युगके संक्रान्ति-कालमें जब असहयोग-आन्दोलनकी देशव्यापी चेतनाने करवटें लीं, तो गुप्तजी की राष्ट्रीयता मुखर हो उठी। 'स्वदेश-संगीत'में ऐसी रचनाओंका अच्छा संग्रह है।

आज जब हिन्दी-साहित्य वर्त्तमान समस्याओंको ही काव्यका विषय बनानेको गतिवान हो रहा है, तब गुप्तजीका चिन्तक भी 'कारा'में देशका बन्दी-जीवन चित्रित कर रहा है और 'काबा और कर्बला' तथा 'अर्जन-विसर्जन'में मुस्लिम-संस्कृतिको श्रद्धांजलि अर्पितकर हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यको भूमिका प्रस्तुत कर रहा है। हमारी धारणा है, गुप्तजी हृदयसे सच्चे वैष्णव कवि हैं, जो 'पराई पीर'को जानते हैं, अपना भान रखकर भी दूसरों को विस्मृत नहीं करना चाहते। 'काबा और कर्बला'में हज़रत मुहम्मदकी उदारता प्रकट करते समय भी ग्रन्थकी 'श्रीगणेशाय-नमः'-पंक्तियोंमें वैदेहीकी यह स्तुति मिलती है :—

लाड़ लड़ा चाहे तो झल्ला, नहीं छूटनेका वह पल्ला।
इस देहीकी गति वैदेही, मुक्ति-मूर्ति मेरी तू 'अल्ला'।

'अल्ला'में श्लेषसे माताका अर्थ लेकर गुप्तजीने अपने हृदय को सर्वप्रथम अपनी 'आराध्या'के चरणोंमें ही झुकाया है। गुप्तजी को जो गांधीवादी कहते हैं, वे उनको काव्यकी आत्माको नहीं झाँकना चाहते। आप किसी 'वाद'को लेकर नहीं चले। यदि 'वाद'को किसी कविके साथ जोड़े बिना किसी समीक्षाका काम न चले, तो कहा जा सकता है कि आप 'रामवाद'के वैष्णव कवि हैं। यह 'वाद' आपकी आत्माका धर्म है, विश्वास है। पर व्यवहारके क्षेत्रमें आप सर्वधर्म-समन्वयके पक्षपाती तब अपने राष्ट्रकी आकांक्षाओंके प्रति जागरूक हैं।

आप काव्यको कविका केवल 'आत्म-सुख' नहीं मानते। 'कला कलाके लिए' सिद्धान्तमें आपको लेश-मात्र भी आस्था नहीं है। 'बहुजन हिताय—लोक-मंगलकी साधना'में ही काव्यकी स्थिति आपको वांछनीय है। अतः यदि आपकी अधिकांश रचनाएँ उपदेशपरक होती हैं, तो आश्चर्य ही क्या है! कलावादी न होते हुए भी गुप्तजीकी सारी रचनाएँ कलाशून्य नहीं हैं। साहित्यके छायावाद-युगमें जब अभिव्यंजना-वैचित्र्यका प्राधान्य था, तब उस कालकी आपकी रचनाओंमें भी लाक्षणिकता अधिक मिलती है। अलंकारोंसे मोह न होनेपर भी यत्र-तत्र अलंकृत भाषासे आपके काव्यका चमत्कार बढ़ गया है। कई बार आपकी कृतियोंको पढ़ते समय ऐसा भी लगा है कि कविको 'तुकों'से विशेष संघर्ष लेना पड़ा है; भावोंकी अपेक्षा 'तुकें' ही प्रधान हो गई हैं। भाषाके सम्बन्धमें आप विदेशी शब्दोंपर ज़रा भी आश्रित नहीं रहना चाहते। आवश्यकता पड़ने पर आप प्रान्तीय शब्दोंको अपनाना उचित समझते हैं। भाषाकी शक्ति देशी-विदेशी सभी प्रचलित शब्दोंके स्वीकारसे बढ़ती है, इस सिद्ध सिद्धान्तके आप क़ायल नहीं हैं।

आपने हिन्दीको लगभग पचास कृतियाँ भेंट की हैं, जिनमें कुछ नाटक और अनुवाद-कृतियाँ भी हैं। माइकेल मधुसूदन दत्त-कृत 'मेघनाथ-वध' और 'विरहिणी व्रजांगना'के अनुवाद सफल कहे जाते हैं। इनमें कविकी भाषा अत्यधिक मधुर और प्रांजल हो उठी है। आपके खण्डकाव्योंमें 'जयद्रथ-वध' और 'पंचवटी'की लोकप्रियताकी पहले चर्चा हो चुकी है। बड़े कथानक को लेकर लिखे गए प्रबन्ध-काव्योंमें 'साकेत' और 'यशोधरा' में आपके कविका पूर्ण विकास मिलता है। इनमें शृंगार और करुणाका सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। विरह काव्यमें करुणा रहती ही है। तभी 'प्रसाद'ने कहा है :—

उनका शृंगार चमकता, मेरी करुणा मिलनेसे।

हिन्दीके इन सहज, सरल और भारतीय संस्कृतिके प्रतीक कविकी ६०वीं वर्षगाँठके समय किस हिन्दी-प्रेमीका मस्तक उनके प्रति श्रद्धासे नत नहीं हो जायगा?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिमलासे मसूरी

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

(गतांकसे आगे)

२४ जूनको हम लोग थानाधारसे चल पड़े। आजसे अपनी यात्रा मैंने साथ-साथ डायरीमें लिखनी शुरू कर दी। मैंने देखा है कि कैमरेकी तस्वीरोंको तरह क़लमकी तस्वीरें भी तत्काल उतार लेनी चाहिएँ, नहीं तो उनकी सजीवता कम होती चली जाती है। थानाधारसे बागी १२ मील है। पहले ६ मील खेतोंके पास होकर रास्ता जाता है और फिर घने जंगलमें से। जंगलका रास्ता कितना सुहावना है! जिस अंग्रेज़ यात्रीने इस जंगलको इस ओरका सर्वोत्तम जंगल कहा है, उसने कोई अतिशयोक्ति नहीं की है। अपनी यात्रामें पहली बार मुझे डर लगा कि कहीं किसी जंगली जानवरका सामना न हो जाय और फलतः मैं खाहमखा अपनी पत्नी तथा बच्चोंको इस रास्तेकी भयशून्यता समझाने लगा! चढ़ाई खासी है; परन्तु रास्तेपर बिछे चीड़के पत्तोंसे मार्ग सुकोमल मालूम पड़ा। थोड़ी-थोड़ी देर बाद शीतल झरनोंसे थकान दूर होती चली जाती है। पहले ही झरनेपर जी-भरकर पानी पी लेनेसे पछताना पड़ता है, जब कि आगेके झरने अधिक मीठे और मनोरम मिलते हैं। हमने वह गलती नहीं की और हर झरनेपर एक-एक घूँट पानी पीते चले गए।

बागीके डाकबँगलेपर पहुँचकर सोचा कि यहाँ न ठहरकर किसी सरायमें चलें। पर डाकबँगलोंमें ठहरनेका चस्का एक बार लग जाय, तो आसानीसे छूटता नहीं। बँगलेके सामने लानमें कुर्सी डाले जंगलातके एक अफ़सर देर बाद निकली धूपका आनन्द ले रहे थे। वे रोहतकके चौधरी निकले और सरलता वा सज्जनता तो उनमें जैसे कूट-कूटकर भरी थी। बागीके डाकबँगलेमें दो दिनके जीवनमें उनके साथ हमारी खूब घुटी। इस दौरानमें मैंने अनुभव किया कि जीवनके प्रत्येक पहलूपर उनके खूब सुलझे विचार हैं। पहाड़ी जीवनका उनका अध्ययन बड़ा गहरा और स्पष्ट था। बागीमें कुल ३-४ दुकानें हैं; पर उनमें से एक खास दुकानसे ही हम सौदा लेते रहे, क्योंकि उसकी मालकिन एक औरत थी, जो सुन्दर न होनेपर भी अपने चपल स्वभाव और प्रगल्भताके कारण हमारे आकर्षणका विषय बन गई थी। पहाड़ियोंके जीवनमें एक बात स्पष्ट रूपसे देखी जा सकती है कि दीन-दुनियासे उन्हें जैसे कोई सरोकार ही नहीं! पैसेका उन्हें मोह नहीं, भावुकता या पराई पीरसे उनको कोई वास्ता नहीं। वे नाचते हैं और मौज करते हैं। 'पहाड़ी बीर किसके, भात खाया और खिसके' कहावत शायद ठीक ही प्रचलित है।

तीन दिन तक बागीके सुन्दर दृश्योंका आनन्द लेनेके बाद २७ जूनको हम जुब्बलके लिए रवाना हुए। वर्षा उतर आई थी; पर उससे डरकर रुक रहनेका असमंजस हमने नहीं दिखाया। पहाड़ी प्रदेशोंमें वर्षाका आरम्भ एक विशेष क्रमसे होता है। प्रायः जूनके अन्तिम दिनोंमें एक हल्की-सी बौछार हो जाती है और फिर ७-८ दिन तक बादल चुप रहते हैं। इसके बाद जो वे बरसना शुरू करते हैं, तो लगातार बरसते ही चले जाते हैं। पर पहाड़ी यात्राओंका अनुभव होनेके कारण हम लोग तो चलते ही चले गए। बागीसे जुब्बल २० मील है। रास्तेमें एक जगह भटक जानेके कारण आज हमें २५ मील चलना पड़ा। रास्ता इतना ऊबड़-खाबड़ था कि जिसको हद नहीं। एक जगह तो हमारे साथका एक खच्चर गिर पड़ा। कुशल यह हुई कि सिर्फ़ उसकी एक टाँग ही टूटी। खच्चरवालेको कानोंके हाथ लगाकर फिर कभी इधर न आनेकी प्रतिज्ञा करते देख मैं अपनी हँसी न रोक सका।

२० मीलके इस पड़ावमें हमें सुन्दर दृश्योंकी विविधता खूब मिली। कहीं मीलों तक घने जंगल हैं, तो कहीं मीलों तक हरी-हरी घासके मैदान हैं। लगातार समुद्र-यात्रासे जैसे उबकाई आने लगती है, उसी तरह लगातार पर्वत-यात्रासे भी उबकाईका अनुभव होता है। हमारी यह उबकाई इस मार्गके हरे और लम्बे मैदानोंसे टूटी। आँखें शीतल हो गईं। मनमें एक नई स्फूर्ति भर गई और हम हिरणोंकी तरह चौकड़ी भरते दौड़ने लगे। पर कुछ दूरीके बाद फिर जंगल शुरू हो गया। फिर वही शीतल झरने और पक्षियोंका मधुर कलरव। पगडंडीसे बाईं ओर ज़रा दूरपर एक झोंपड़ा दिखाई दिया। पास जानेपर पता चला कि उसका निवासी एक गूजर-परिवार है। ये लोग गर्मियोंमें अपने पशुओंको हाँककर देहरादून या उसके आसपासके इलाकोंसे इधर चले आते हैं और सर्दियोंके शुरूमें फिर उधर चले जाते हैं। झोंपड़ेके द्वारपर दो बड़े-बड़े कुत्ते कुछ ऐसी मुद्रासे बैठे थे, जैसे प्राचीन मन्दिरोंके सिंहद्वारपर दो सिंह-मूर्तियाँ आसीन हों। भीतर बैठे एक दढ़ियल गूजरसे पूछकर इस बातका निश्चय कर लिया कि हम ठीक रास्तेपर जा रहे हैं। एक बार भटक जानेके कारण हम ठीक मार्गके विवेकका विश्वास खो बैठे थे। रास्तेमें जो कोई मिलता, हम उससे रास्ता पूछते। पहाड़ियोंका दूरी-ज्ञान भी अजीब क़िस्मका होता है। जब जुब्बल क़रीब १०-१५ मील रह गया, तो एक पहाड़ीसे पूछनेपर हमें जवाब मिला—'जुब्बल अभी एक रोटी दूर है!' शायद इसका अभिप्राय यही हो कि सुबह चलकर रोटीके वक्तपर जुब्बल पहुँचा जा सकता है। इसी प्रकार 'दो रोटी पड़ाव'का अभिप्राय २०-२२ मीलसे होता है, जिसे तय करनेमें शायद दो जगह भी खानेको रुकना पड़े।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४-५ मील पहले खासा उतार शुरू होता है और सड़क अच्छी होनेसे दौड़नेका मज़ा भी लिया जा सकता है।

जुब्बलका राजमहल इस उतारके शुरू होनेसे पहले ही दिखाई देने लगता है। महलके ठीक बीचमें राजकोष है और उसके ऊपरका चमकीला स्वर्ण-कलश अत्यन्त भव्य दिखाई देता है। राजमहलके चारों ओर एक सुन्दर फुलवारी है। बीचकी पक्की सड़क दूरसे एक सुन्दर नदीकी तरह दिखाई दे रही थी। जुब्बल शिमलेकी एक बड़ी रियासत मानी जाती है। यद्यपि क्षेत्रफलकी दृष्टिसे रामपुर-बुशायर और नाहन आदि रियासतें इससे बड़ी हैं और आबादी भी इसकी कुल २८ हज़ार ही है; पर आर्थिक दृष्टिसे और सब रियासतोंसे यह अधिक महत्व-पूर्ण है। इसकी वार्षिक आय १२ लाखके क़रीब है, जिसमें १० लाख केवल जंगलोंसे है। कुछ साल हुए यहांके राजा भगत-चन्द्रने देहरादून-ज़िलेमें डोईवालाके समीप एक जागीर खरीदी थी। उससे भी ५०-६० हज़ार रुपया वार्षिक आय है। राजा साहब खुद एक अच्छे व्यवसायी हैं। हालमें शिमलेमें भगतचन्द्र सनातनधर्म-कालेजकी स्थापना उन्होंने समर-हिलके रमणीक स्थान में की है। हरद्वारमें हरकी पैड़ीपर उनका बनवाया जुब्बल-घाट भी दर्शनीय है। पर ठेठ जुब्बलमें उनकी नाकके नीचे जो हाई-स्कूल वे चला रहे हैं, उसके हेडमास्टरको, जो मैट्रिक पास हैं, सिर्फ ३०) मासिक ही वेतन मिलता है! रियासतोंमें प्रजाकी जो दुर्दशा है, उसका जुब्बल भी अपवाद नहीं है। वैसे अति-थियोंके स्वागत-सत्कारका यहां खूब प्रबन्ध है। रियासतकी तरफ़से तीन अतिथि-भवन बने हैं। रियासतमें बिजली भी है; पर उसका प्रकाश गाँवके ठीक बीचमें राजमहलको ही जगमगाता है, जिससे चारों ओरके गाँवका अँधेरा रातको और भी अधिक भयावह मालूम देता है। विषकलटी नदीका कल-कल प्रवाह, जिससे यह बिजली पैदा की गई है, मानो निरन्तर अपने रोष-भरे स्वरसे इस अन्यायकी याद दिलाता रहता है। चारों ओरके जीर्ण-शीर्ण गाँवके ऊपर इस हिम-धवल राजमहलकी शोभा ऐसी दिखाई देती है, जैसे मिट्टीके एक पुराने मटकेपर शीशेकी धूनी रख दी गई हो।

दो दिन जुब्बलमें बिताकर हम लोग रवाना हुए। हमारा आजका पड़ाव 'एक रोटी'--अर्थात् कुल १० मील--का था और हमें अराकोट पहुँचना था। पहले सात मील तक हम विषकलटी के दाएँ किनारेपर चले। मार्ग एक हल्के-से उतारपर था और पीली खुबानियोंके पेड़ोंसे घिरा था। जुब्बलसे ठीक सात मीलपर हाटकोटीका प्राचीन मन्दिर है, जो वहांके पुजारीके कथनानुसार पाण्डवोंके समयका है। मुख्य सड़कसे हटकर जो पगडण्डी उस मन्दिर तक जाती है, वहां ज़मींदारका लकड़ीका मकान है। पगडण्डीके दूसरे छोरपर चमकीले कलशोंवाला मन्दिर साफ़ दिखाई देता है। बागीसे एक और लम्बा रास्ता यहाँ हाटकोटीपर जुब्बलवाले रास्तेसे आ मिलता है। उस रास्तेपर रोड़ू का प्रसिद्ध गाँव है और रास्ता भी अधिक चौड़ा और अच्छा है। पर लम्बा होनेसे और जुब्बल देखनेके लालचसे हमने उस रास्तेको बागीमें ही छोड़ दिया था। हाटकोटीमें विषकलटी और पावर नदियोंका संगम है। एक बड़े पहाड़के पीछे होकर पावर अपने कल-कल निनादके साथ विषकलटीका मधुर आलिंगन करती है और मन्दिरकी दुर्गमाई इस चिरन्तन क्रीड़ाकी चिरन्तन साक्षी है! हाटकोटीमें जुब्बल, रामपुर-बुशायर और क्योंथल रियासतों की सीमाएँ मिलती हैं और तीनों रियासतोंने मिलकर मन्दिरके आसपासकी भूमि देवार्पण कर रखी है।

हाटकोटीसे आगेका रास्ता पावरके साथ-साथ है। हम क्योंथल रियासतसे निकलकर अब रवाई रियासतमें चल रहे थे। नदीके उस पार टिहरी रियासत है। इस पार घना जंगल है, जहाँ बीच-बीचमें देसी शराब निकालनेकी एक-दो भट्ठियां हैं। हमारा पड़ाव अब कुल ३ मील रह गया था; पर द्रौपदीके चीरकी तरह वह लम्बा ही होता चला जाता था। बस्ती नज़र आई, तो पता लगा कि जंगलातका बँगला अभी एक मील दूर है। बँगला क्या था, किसी पुराने रईसकी टिमटिमाती हवेली थी। सोफ़ा था, पर गद्दे फटकर चिथड़े हो रहे थे। पलँगोंकी निवार में दीमकने अपना घर बना लिया था। डाकबँगलोंकी रीतिपर चन्द अंगरेज़ी किताबें भी रखी थीं; पर उपेक्षिता होनेके कारण वे धूलमें लोट रही थीं। यह था टिहरी-रियासतके जंगलात-महकमेका शानदार बँगला। कोई ५०० फ़ीट नीचे पावर नदी मस्तानी चालसे अपना रास्ता तय कर रही थी। उस पार एक बड़ा पहाड़ किनारेके साथ-साथ दूर तक फैला था, जो न केवल जन-शून्य था, बल्कि पत्र-पुष्प-शून्य भी था। बँगलेका चौकीदार तक नदारद था। यहीं बाहर पलँग डालकर हम लोग लेटे।

ऊपर शीतल चाँदनी छिटकी थी। मैं सोया न रह सका। अपने साथियोंको आँखें मूँदते देख मैं उठ बैठा और पगडण्डी पकड़कर पावरके तटकी ओर चल पड़ा। न-जाने उस निस्तब्ध निशामें चाँदनीके झिलमिलाते प्रकाशमें कितनी देर तक नदीकी लहरें गिनता रहा। उस ओरका पहाड़ भी तो मेरी ही तरह नदी-तटपर बैठा न-जाने कबसे लहरें गिन रहा था! मुझे ऐसा लगा, मानो आज जीवन एक विराट एवं उदार रूप लेकर मेरे सामने प्रत्यक्ष हुआ। मूक और गम्भीर भावसे स्नेह-सजल दोनों कर जोड़कर मैंने किसी अदृश्य देवताके आगे सिर नवा दिया। सिर नवाकर मैं उठ खड़ा हुआ और नदीसे अंजलि भरकर आँखोंसे लगाई और लौट पड़ा। जीवनकी एक अद्भुत झाँकी पाकर भी मैं जैसे खोया-सा था। जीवनमें मैंने अनेक सुन्दर दृश्य देखे हैं। अमरनाथकी यात्रामें शेषनागका दृश्य भुलाए नहीं भूलता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोलाहाईके बर्फ़ीले ग्लेशियरका दिल चीरकर निकलनेवाली लिदर नदी आज भी मेरे हृदयपर अंकित है। अपने राजरथपर सवार होकर नभोमण्डलसे उतरनेवाले सान्ध्य विधुके साथ मैंने अलपत्थरकी झीलका जो आनन्द उपभोग किया था, वह स्वर्गसे बढ़कर था। पर उन सभी दृश्योंका मैंने दर्शककी तरह आनन्द उपभोग किया था, किन्तु उस दिन अराकोटके उस सूने वन-प्रान्तमें पावरके तीरपर तो मैं स्वयं अपना ही दर्शक बन गया!

दूसरे दिन सुबह हम लोग अगले पड़ावके लिए चल पड़े। १० मील चलकर हम अराकोटसे त्यूनी पहुँचे। पंजाबमें सोकर हमने आज युक्तप्रान्तमें आँखें खोलीं। अराकोट दोनों प्रान्तोंका सन्धिस्थल है। अराकोटसे त्यूनी तक पावर नदीका साथ रहता है। दो मीलपर काष्ठाकी एक छोटी-सी बस्ती है। वहाँ बनिएकी दुकानसे गुड़-चने लेकर हमने जेबें भर लीं और चल पड़े। रास्तेमें हरे-हरे धानके खेत थे। पर निचाईपर चलने के कारण गर्मी हमें बड़ी महसूस हुई। देवदारु और चीड़के जंगल हमसे विदा ले चुके थे। झरने मिले, पर पानीमें वह शीतलता और मिठास न थी। कड़ी धूपको धोखा देनेके लिए अपनी ही परछाँहीपर पैर रखे हम भागे जा रहे थे। काष्ठासे चार मील दूर कठन्नर गाँव है। हम वहाँ बैठकर ज़रा सुस्ता लिए। त्यूनी अब चार मील ही रह गया था। यहाँ आकर ऐसा अनुभव हुआ, जैसे हमारी यात्राका दूसरा किनारा हमें दिखाई देने लगा हो। त्यूनीसे एक मील पूर्व पावर नदी टोंसके साथ मिलती है। पावर रजस्वला है और टोंस शुभ्रवर्णा। प्रकृतिकी गोदमें सत्व और रजके मेलसे एक अद्भुत सौन्दर्यकी सृष्टि हो रही थी। हम लोग बड़ी देर तक मुग्ध नयनोंसे उस संगमको देखते रहे। कुछ आगे चलनेपर झूलेका पुल पार करना पड़ता है। पुलसे पहलेका रास्ता अत्यन्त संकीर्ण है और सिरपर एक ढीला पहाड़ मुँह बाए राक्षसकी तरह खड़ा है। प्रतिक्षण डर लगता है कि कब कोई पत्थर गिरकर सिरका भरता न बना दे। पुल पारकर हम लोग त्यूनी पहुँचे। यहाँ एक सुन्दर जंगलात-वालोंका बँगला है, जिसमें यात्रियोंके ठहरनेकी बिलकुल मनाही है। पर चाँदीकी चाबीसे सब ताले खुल जाते हैं!

त्यूनीसे जौनसारका इलाका शुरू होता है—वह जौनसार, जहाँके पुरुषोंका स्वभाव उद्दण्ड और स्त्रियोंका सौन्दर्य सर्वग्रासी कहा जाता है, जहाँके समाजकी विचित्र प्रथाएँ इस बीसवीं सदीमें एक कुतूहलका विषय हैं, जहाँके घने जंगल और रहस्यमय स्रोत प्रकृति-प्रेमियोंके परम तीर्थ हैं। हम अब देहरादून-ज़िलमें पहुँच गए थे। यहाँसे मसूरी कुल ७५ मील है। (क्रमशः)

एक महान पत्रकार : रामानन्द बाबू

श्री विजयकुमार मुन्शी

एक महान पत्रकारका जीवन यातनाओंका उपनाम हुआ करता है। रामानन्द बाबू एक महान पत्रकार, संस्कृतिके पोषक, तप एवं त्यागके साधक तथा मातृभूमिके मौन आराधक थे। अपने यौवनकालमें लगी-लगाई नौकरीको लात मारकर उन्होंने अपने अदम्य साहस एवं त्यागका परिचय दिया था।

कलकत्ता-विश्वविद्यालयसे एम० ए० पास करनेके पश्चात् रामानन्द बाबूने 'दासी' नामक एक बँगला पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। कहना न होगा कि पत्रकार-जीवनके लिए उनके हृदयमें लगन एवं रुचि थी, और यही कारण था कि उन्होंने इण्डियन प्रेसके प्रमुख-पदको भी अस्वीकार कर दिया। इलाहाबादकी कायस्थ-पाठशालाके प्रिंसिपल हो जानेके पश्चात् उन्होंने 'प्रवासी' नामक बँगला पत्र प्रकाशित किया और कुछ समय बाद 'माडर्न रिव्यू'। इस वक्त रामानन्द बाबू जीवन-पथके उस स्थानपर खड़े थे, जहाँसे जीवनका निढाल दृष्टिगत होता है। कटु आलोचनाके कंटकाकीर्ण मार्गके मध्यमें भी अपना पथ प्रशस्त करता हुआ सरस्वतीका यह महान आराधक सेवा-संलग्न था। सचाई और निर्भिकता उसका धर्म था और सेवा उसका शस्त्र। मातृभूमिके प्रति उसकी अगाध श्रद्धा थी। कौन कह सकता है कि इस महान चिन्तक एवं साधककी तपस्या विश्वके किसी प्रसिद्ध चिन्तकसे कम थी।

'प्रवासी' एवं 'माडर्न रिव्यू' उनकी स्मृतिके आधार-स्तम्भ हैं। इन दो पत्रोंके द्वारा उन्होंने अपने जीवनमें जो महान सेवा-कार्य किया है, जनताकी जो अमर सेवा की है तथा पत्रकार-जगत्के सम्मुख सेवा एवं त्यागका जो उच्चादर्श उपस्थित किया है, वह युग-युग तक पत्रकार-जगत्के तमपूर्ण मार्गका उज्ज्वल आलोक द्वारा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। रामानन्द बाबूकी लेखन-शैली प्रवाहपूर्ण, सरल, भाव-गम्भीर तथा कहीं-कहीं शिष्ट हास्यका सुन्दर पुट लिए हुए होती थी। सत्य और ईमानदार आलोचना उनका ध्येय था और जीवन-पर्यन्त उन्होंने इसे बड़ी खूबीके साथ निभाया। सामाजिक जीवनमें दम्भ और झूठा अभिमान तो उन्हें स्पर्श भी नहीं कर पाए थे।

१९०६ की जनवरीमें 'माडर्न रिव्यू'का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था। जिस वक्त पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ, रामानन्द बाबूकी स्थिति अच्छी नहीं थी। किन्तु अदम्य उत्साह एवं साहस भी धनसे किसी क़दर कम नहीं होते। यही कारण है कि 'माडर्न रिव्यू' निरन्तर जनताकी सेवा करता हुआ आज अंगरेज़ीके उत्कृष्ट मासिक पत्रोंमें अपना सानी नहीं रखता। कटु सत्यको जनताके सम्मुख रखने तथा अधिकारियोंकी कड़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आलोचना करनेमें रामानन्द बाबू कभी नहीं हिचकिचाए। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियोंमें, जो आज पत्रकारोंकी निधि एवं आदर्श हैं, मातृभूमिके प्रति उनका अटल अनुराग परिलक्षित होता है। प्रशंसा और थोथे बड़प्पनकी न तो उन्होंने ज़रूरत महसूस की और न उसका उनकी दृष्टिमें कभी कोई मूल्य ही रहा। इसीलिए न चाहकर भी उन्हें जो यश और प्रतिष्ठा मिले, वे बिरलोंको ही सुलभ होते हैं।

अपनी एकनिष्ठ सेवा और साधनाके कारण ही रामानन्द बाबूकी गणना भारतके उन प्रतिष्ठित पत्रकारोंमें है, जो किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकारकी तुलनामें कम नहीं, वरन अधिक ही हैं। अनुशासनके रामानन्द बाबू बड़े हिमायती थे। इसे उन्होंने जीवन-भर अपने लिए भी उतना ही आवश्यक समझा, जितना दूसरोंके लिए। इस महान पत्रकारके जीवनमें संयम, विद्वेषहीनता तथा लोकमतका सही मार्ग-प्रदर्शन करना सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। खरी आलोचनासे अपने जीवनमें न वे कभी डरे और न कभी उन्होंने उसे नाजायज़ तौरपर इस्तेमाल ही करनेकी कोशिश की।

नारी-जातिके लिए उनके हृदयमें अपार श्रद्धा एवं सहानुभूति थी। उनको पर्देमें बन्द रखने तथा जनताके सम्मुख आने अपने अधिकारोंके लिए जूझनेसे रोकनेके वे नितान्त विरोधी थे। मर्यादा-प्रेमी होते हुए भी वे दक़ियानूसी विचारोंके नहीं थे। जब कभी भी किसी व्यक्ति-विशेषने समाजके रूढ़ि-क्रोधसे ऊपर उठकर समाज-सुधार करनेकी ईमानदार चेष्टा की या समाजके रूढ़िग्रस्त सड़े-गले विचारोंकी परवाह न करते हुए अन्तर्जातीय या विधवा-विवाह किया, रामानन्द बाबूने हार्दिक रूपसे उसकी प्रशंसा की एवं इस विचार-धाराको प्रोत्साहन प्रदान करनेके लिए प्रचारकी दृष्टिसे कई बार सम्पादकीय नोट और लेख भी लिखे।

उनके सम्बन्धमें जे० टी० सण्डरलैण्डने कहा है—"मैं बड़े सोच-विचारके बाद इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि अमरीका या ब्रिटेनमें ऐसा कोई पत्र नहीं है, जिसका क्षेत्र इतना व्यापक हो और जो इतने सही, विद्वत्तापूर्ण एवं दिलचस्प ढंगसे विश्व-समस्याओंपर प्रकाश डालता हो। इन्हीं सब कारणोंसे मैं 'मार्डन रिव्यू'को, जिसका सम्पादन सुयोग्य और धीमान रामानन्द चट्टोपाध्याय करते हैं, भारतको उनकी एक अमूल्य थाती समझता हूँ।"

कवि मैथिलीशरण गुप्तके प्रति—

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद

अहा, धन्य! अवतीर्ण हुआ यह कौन हृदय हरषाता?
ले 'साकेत' पुरीके रजकण स्वर्ण - सदृश बरसाता।
सुरतरु - सी लेखनी - नोंकसे सोए भाव जगाता;
पुनः जानकीके जीवनकी जयजयकार मनाता।
वही दुलारा 'महावीर'का, 'सियाराम'का प्यारा;
गुप्त - रूपमें आ पहुँचा है तुलसी वही हमारा!

विसरी जाती थी जिसकी वीणाकी मृदुल कहानी;
सिर धुनती थी वाणीकी रानी जो खो निज पानी;
आ पहुँचा वर पुत्र उसी जननीका यह अभिमानी;
मृत आशा - अभिलाषाओंको पुनरुज्जीवन - दानी!
जीवन - दानी नव नीरद - सा ले नवरसकी धारा;
गुप्त - रूपमें आ पहुँचा है तुलसी वही हमारा!

ले स्वराज्य-हित राम-राज्यके रंग-रूप क्रम-क्रमसे;
प्रीति ऊर्मिलाकी, प्रतीति - दृढ़ता उसके प्रियतमसे;
गोपासे नारी - विभूति ले, तपस्तेज गौतमसे;
नवयुगका आदर्श अमर इस युगके पुरुषोत्तमसे।
भारतकी भारती-मूर्त्ति यों सज-सज सिरजनहारा;
गुप्त - रूपमें आ पहुँचा है तुलसी वही हमारा!

वहाँ पन्थ - भय कहाँ जहाँ मानसका मधुर मिलन है;
अलामें ही मुक्ति - मूर्त्तिका मिलता शुभ दर्शन है;
विश्व - वृत्तका केन्द्र - विन्दु जो पावन गृह-जीवन है;
बैठ गया यह राष्ट्र - तपस्वी वहीं मार आसान है।
भाग चला जो त्याग तियाका नेह, गेह, भव सारा;
गुप्त - रूपमें घर लौटा फिर तुलसी वही हमारा!

अद्भुत है मसि-बूँद लेखनीकी उसकी मन भाई;
खून शहीदोंका भी जिससे लहे अपूर्व ललाई!
पर क्या कहें, गुनाह जहाँ हो माँकी सुधि भी भाई!
सजा न जंज़ीरोंसे जो उसकी भी क्या कविताई?
एक बार पहले भी जिसने थी पवित्र की कारा;
गुप्त-रूपमें आ पहुँचा है तुलसी वही हमारा!

युग-युगसे जो रहे उपेक्षित अब उनका युग आया;
उन उपेक्षितोंको वाणीका वर देने वह आया।
चिर-लाञ्छिता भरत-जननी, गोपा, लक्ष्मणकी जाया;
कारावासी या किसानने भी खोया हक़ पाया।
'सावन स्यामा तीज' पुण्य तिथिको जो स्वर्ग सिधारा;
शुक्ल तीजको गुप्त-रूपमें तुलसी वही पधारा!

शुक्ल श्याम युग तीज पुण्यमय कर निज जन्म-मरणसे;
ठुकरा करके भुक्ति-मुक्तिको भव-हित पूज्य चरणसे;
अमर धाम तज धन्य धराको कर निज मर्त्य-वरणसे;
पुनः 'सूर-शशि'-सा प्रकाश ले लौटा स्वर्ग-शरणसे।
एक बार अवतार आदि-कविने था जिसका धारा;
गुप्त-रूपमें आ पहुँचा है तुलसी वही हमारा!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्व० गोपाल अनन्त ओगले

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

श्रद्धा च नो मा व्यगवद् बहुदेयं च नोस्त्विति।
या चितारश्च नः सन्त मा च या चिष्म कंचन॥

भारतमें पुरानी पीढ़ीके पत्रकारोंमें स्व० गोपाल अनन्त ओगलेका स्थान अन्यतम है। मा० डा० भा० खरेने स्व० ओगले के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें आद्याचार्य कहा है और नागपुर-विश्वविद्यालयके कुलगुरु जस्टिस पुराणीकने उन्हें क्रान्तिकारी पत्रकार बताया है। वस्तुतः स्व० ओगलेने 'महाराष्ट्र'को एक संस्था बनाकर अद्भुत और चमत्कारिक काम किया।

भारतके सम्पादकों और पत्रकारोंकी मोटे तौरपर दो श्रेणियाँ हैं। एक तो वे पत्रकार हैं, जो अपने विचारोंका प्रचार करनेके लिए समाचारपत्र निकालते हैं। लो० तिलक, सर चिन्तामणि, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और महात्मा गांधी इस श्रेणीके हैं। वृत्त-पत्रकारित्व इनके जीवनका चरम ध्येय न था और न मिशन ही। वह एक साधन-मात्र था। दूसरी श्रेणीके पत्रकार वे हुए हैं, जो पक्ष-विशेषके समर्थक होते हुए भी राजनीति और समाज-सुधारमें बहुत अधिक सक्रिय भाग न लेकर अपना सारा जीवन पत्रकार-कलाको ऊँचा और जन-सेवाके लिए अधिक उपयोगी बनानेमें ही अर्पित कर देते हैं। इस श्रेणीमें शिशिरकुमार घोष, मोतीलाल घोष, रामानन्द चट्टोपाध्याय, डा० सच्चिदानन्द सिन्हा, कस्तुरी स्वामी आयंगर आदिके नाम लिए जा सकते हैं। जिन्होंने पेशेके रूपमें इस धन्धेको अपनाया और अपना जीवन इसीमें उत्सर्ग कर दिया है, ऐसे सम्पादकोंकी श्रेणी इससे पृथक है। वे पत्रोंके संचालक और मालिक नहीं हैं। स्व० ओगले, जो अपने परिचितोंमें महाराष्ट्र-परम्पराके अनुसार दादा साहबके नामसे पुकारे जाते थे, इसी दूसरी श्रेणीके थे।

महाराष्ट्रमें लोकमान्य तिलक द्वारा डाली गई परम्परा आज भी जीवित है। 'चित्रमय जगत्'के स्वामी अपनी मृत्युके बाद चित्रशाला-प्रेस और पत्रको एक ट्रस्टीको सौंप गए हैं। दादा साहब ओगलेने भी 'महाराष्ट्र'को एक ट्रस्टके अर्पित कर दिया है। इससे होनेवाले विशुद्ध लाभका ४० प्रतिशत 'महाराष्ट्र'को स्थिर करनेमें, २५ प्रतिशत उनके पुत्र श्री नारायण गोपाल ओगलेको, १५ प्रतिशत 'महाराष्ट्र'के कार्यकर्त्ताओं और कर्मचारियोंको और शेष २० प्रतिशत शैक्षणिक, धार्मिक और सामाजिक कार्योंमें दिया जायगा। ट्रस्ट-डीडमें यह भी कहा गया है, यदि किसी कारणसे ट्रस्ट न चले, तो सारी सम्पत्ति या इसको बेचकर सारा धन सार्वजनिक कार्यमें अर्पित कर दिया जाय। स्व० ओगलेने एक नया आदर्श वृत्त-पत्रोंके संचालकोंके सामने रखा है। उनकी यह उदारता, ध्येय, तत्वनिष्ठा और आदर्श-प्रेम सदा आदरसे स्मरण किया जायगा और नई पीढ़ीको त्याग तथा बलिदानकी सदा प्रेरणा देता रहेगा।

स्व० गोपाल अनन्त ओगलेका जन्म विजयदुर्गके एक अति दरिद्र चितपावन ब्राह्मणके घर १३ जून, १८७९ को हुआ था। उनके पिता ५) रु० माहवारपर एक प्राइमरी स्कूलमें शिक्षकका काम करते थे, इसलिए श्री ओगलेको अपनी शिक्षाकी व्यवस्था स्वतः करनी पड़ी। जो-कुछ उन्होंने स्कूली शिक्षा पाई, अपने उद्यम और पुरुषार्थसे। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण वे ऊँची शिक्षा नहीं पा सके। उच्च शिक्षा पानेसे वंचित रहनेपर भी उन्होंने मराठी और संस्कृतका बालपनमें गहरा अध्ययन किया था और बुढ़ापेमें—६६ सालकी उम्रमें—भी उनका दावा था कि 'मैं आज भी दो-तीन हज़ार चुने हुए श्लोक और कवित्त सुना सकता हूँ।' उनका अंगरेज़ीका अध्ययन भी विशाल था।

स्व० गोपाल अन्त ओगले

एक दिन पूनामें लोकमान्य तिलकका अध्यात्म - विषयपर व्याख्यान हुआ। विषय गम्भीर होनेके कारण सभामें दो-ढाई सौसे अधिक व्यक्ति उपस्थित न थे। व्याख्यानकी रिपोर्ट लेनेके लिए 'केसरी'की ओरसे कोई आदमी वहाँ नहीं गया था। अगले दिन सम्पादक-मण्डलको चिन्ता हुई कि उस व्याख्यानकी रिपोर्ट 'केसरी'में कैसे दी जाय। फिर सम्पादकोंमें से एकको ध्यान आया कि 'केसरी'-कार्यालयमें समाचारपत्र पढ़नेके लिए आनेवाला गोपाल व्याख्यानमें उपस्थित था। गोपालसे पूछा गया कि वह व्याख्यानकी मुख्य बातें बता सकता है? गोपालका उत्तर था—'मैंने व्याख्यानके नोट नहीं लिए हैं। यदि आप कहें, तो मैं व्याख्यानकी रिपोर्ट लिखनेका प्रयत्न करूँ।' यह कहकर दादा साहबने 'केसरी'के तीन कालमोंके लायक व्याख्यानकी रिपोर्ट लिख कर दी। विषय गहन है और लोकमान्यके नामसे कोई ग़लत बात न छप जाय, इस खयालसे उनके व्याख्यानकी रिपोर्टका प्रूफ़ लोकमान्यके पास भेजा गया। उस तीन कालमोंके पाठ्य-विषयमें तिलकने एक-दो छोटे-मोटे संशोधन किए। उनको

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज्ञात था कि उनके व्याख्यानमें 'केसरी'से कोई व्यक्ति नहीं गया था। अतः उन्होंने पूछा कि यह रिपोर्ट किसने लिखी है? गोपालको उनके पास भेज दिया गया। तिलक यह जानते थे कि उनके श्रोताओंमें से किसीने भी उनके व्याख्यानके नोट नहीं लिए। स्मरण-मात्रसे इतनी बड़ी और शुद्ध रिपोर्ट लिखनेपर उनको कौतुक हुआ। गोपालकी पीठ ठोंककर तिलकने कहा—'गोपाल, यदि ऐसा ही प्रयत्न करता रहा, तो तू एक बड़ा पत्रकार होगा।'

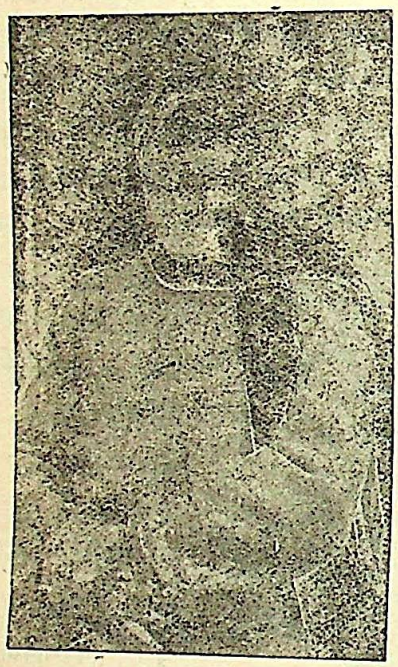

स्व० गोपाल अनन्त ओगले

१९०६ में बंग-भंग-आन्दोलनके सिलसिलेमें लोकमान्य कलकत्ते गए हुए थे। कलकत्तेसे लौटते हुए वे नागपुरमें 'देशसेवक'के संचालक श्री माधव राव फड़केके यहाँ ठहरे थे। उनको एक योग्य सम्पादककी ज़रूरत थी। तिलकने उनको योग्य आदमी देनेका वचन दिया। पूना लौटनेपर उन्होंने दादा साहबसे कहा—'क्या तुम नागपुर जाओगे? वहाँ एक समाचार-पत्रमें सम्पादककी ज़रूरत है।' घरके लोग इतनी दूर जाने देना पसन्द न करेंगे, इसीलिए गोपाल संकोचमें पड़ गए। वे तिलककी ओर देखते रह गए। उनसे न 'हाँ' कहते बना और न 'ना'। तिलकने कठिनाई समझकर फिर कहा—'तुम्हारे सदृश तरुण यदि विभिन्न प्रान्तोंमें जाकर अपने कृतीत्वका परिचय न देंगे, तो तुमसे देशोद्धार कैसे होगा?' इसपर युवक ओगलेके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—'मैं जाऊँगा।' लोकमान्य ने भी उसी तत्परताके साथ पत्र लिखकर दादा साहबको दे दिया।

श्री कोल्हारकरके साथ रहकर उन्होंने दो साल 'देशसेवक'में काम किया। कुछ दिनोंके लिए वे पुनः पूना चले गए और लोकमान्य द्वारा संचालित मद्य-निषेध-आन्दोलनमें सम्मिलित हुए और पिकेटिंग करनेके कारण जुर्मानेकी सज़ा पाई। कोल्हारकरके राजद्रोहमें जेल जानेपर वे 'देशसेवक'के सम्पादक बनाए गए। नागपुरमें इस समय राजनीतिक विचारोंके लोग नरम और गरम दो दलोंमें विभक्त थे। नरम दलके नेता स्व० सर गंगाधर राव चिटणवीस थे। उनका मुखपत्र 'हितवाद' था। 'देशसेवक' गरम-दलका पत्र था। दोनों एक ही प्रेसमें छपते थे। 'हितवाद'के सम्पादक थे श्री नरेश आप्पाजी द्रविड़। 'देशसेवक' और 'हितवाद' दोनोंमें खूब झड़पें होती थीं। उसी समय दादा साहबका निस्पृहत्व, कर्त्तव्य-परायणता और दृढ़निष्ठा देखनेमें आई थी। 'देशसेवक'से ३०००) रु० की जमानत माँगी गई। इस अवसरपर श्री ओगलेने अपने मुकदमेकी पैरवी स्वयं की थी, जिसे सुनकर जजने कहा था—'उनकी पैरवी उनकी लेखनी से भी अधिक राजविद्रोही है।'

'देशसेवक' बन्द हो गया। महाराष्ट्र हाईस्कूल, पूनाका शिक्षकत्व वे पहले ही छोड़ चुके थे। वह उनकी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप भी न था। वे जिस उद्देश्यसे नागपुर आए थे, वह पूना लौटनेसे भी पूरा नहीं होता दीखता था। इसीलिए वे नागपुरसे बम्बई गए। वहाँ कुछ लोगोंने 'राष्ट्रमत' निकाला था। पत्र दैनिक था। सर्वश्री गंगाधर देशपाँडे, कालेलकर, और वामन राव जोशी, दामले, हरिभाऊ फारक आदि उनके सहयोगी थे। इस कालके श्री ओगलेके सम्बन्धमें काका कालेलकरने अपने संस्मरण 'ज्योत्स्ना'में लिखे हैं, जो दादा साहबकी हीरक-जयन्ती पर निकला था। उनकी बौद्धिक क्षमताकी काका कालेलकरने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। 'राष्ट्रमत' भी सरकारी दमनके आगे न टिक सका और १९०९-१० में उसका अन्त हो गया। हार्डिंज-बम-केस और जैक्सन-हत्या-केसमें पुलिस उनको फँसानेमें लगी हुई थी। लाचार होकर वे पुनः महाराष्ट्र हाईस्कूलमें चले गए। सेंट ज़ेवीयर कालेजने भी उन्हें आमन्त्रित किया था; पर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया।

१९१४ में दादा साहब नागपुर वापस आ गए। लोकमान्य की रिहाईसे राजनीतिक वातावरण शान्त हो गया था। दादा साहबने खापर्डे, मुंजे, अभ्यंकर, अलेकर, नियोगी आदिकी सहायतासे 'महाराष्ट्र'की स्थापना की। जस्टिस डा० सर एम० बी० नियोगीने लिखा है कि उस समय मध्य-प्रान्तमें एक भी अनुभवी पत्रकार न था। श्री ओगले ही एकमात्र अनुभवी और विशेषज्ञ पत्रकार थे। उनकी ज़िम्मेदारीपर ही 'महाराष्ट्र'को जन्म दिया गया।

दादा साहबने 'महाराष्ट्र'को कभी किसी व्यक्ति या पार्टीका पत्र न बनने दिया। उन्होंने 'केसरी'के ढंगपर 'महाराष्ट्र'को ढाला; पर 'केसरी'के समान वह किसी पक्ष-विशेषका पत्र न होने पाया। उन्होंने डा० मुंजे और बैरिस्टर अभ्यंकरका विरोध और समर्थन समान रूपसे किया। उन्होंने अपना जो आदर्श निश्चित किया, उससे वे विचलित नहीं हुए। वे एक योग्य लेखक, अनुभवी पत्रकार और निपुण प्रबन्धक थे। उनके साथ काम करनेवालोंने कभी भी स्वामी और नौकरका भाव अनुभव नहीं किया। पहली मुलाक़ातमें उनको देखकर जो प्रभाव पड़ता था

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह गलत होता था। वे एक शुष्क व्यक्ति मालूम होते थे; पर उनका स्वभाव वस्तुतः शिलाके नीचे दबे पड़े मधुर जल-स्रोतके समान था। उन्होंने कभी किसी व्यक्तिकी टीका नहीं की। गोखलेके पक्षके विरोधी होते हुए भी उनमें उनकी भक्ति थी। तिलकके अनुयायी अपने घरोंमें जब गोखलेका फोटो लगाना उचित नहीं समझते थे, तब भी उनका मत था कि गोखले उत्कट देशभक्त हैं और उनका कार्य राष्ट्रोद्धारका कार्य है। राष्ट्र-हितके पोषक तत्त्वोंका उन्होंने बिना विघ्न-बाधाओंकी चिन्ताके बराबर प्रचार किया। उन्होंने राष्ट्रीयताकी अखण्ड ज्योति सदा जाग्रत रखी।

दादा साहबका उद्देश्य लोक-संग्रह था। उन्होंने अपना जीवन गीताके इस कथनके अनुसार बिताया—'दुःखेस्वनुद्विग्न-मनाः' व 'विगतः स्पृहः'। वे सच्चे अर्थोंमें स्थितप्रज्ञ थे। प्रसिद्धिसे वे सदा दूर रहे। उन्होंने अपने विषयमें भूलकर भी एक शब्द नहीं लिखा। इसीपर स्व० डा० राधवेन्द्र रावका कहना था—'वे हमारे प्रान्तके बहुत बड़े निरभिमानी और शक्तिशाली पत्रकार हैं।' उन्होंने दूसरोंसे बातें करते हुए कभी अप्रत्यक्ष रूपसे भी ध्वनित नहीं होने दिया कि वे एक बहुत बड़े सम्पादक हैं और बड़ा सार्वजनिक काम करते हैं। यदि कभी किसीने ऐसी बात कही भी, तो वे धीरेसे बात टाल देते थे।

१९४० में 'महाराष्ट्र'ने २५ साल पूरे किए थे। इसी वर्ष दादा साहबने ६० साल पूरे किए। उनके मित्रों और प्रशंसकोंने उनकी हीरक-जयन्ती मनानेका प्रस्ताव किया; पर उन्होंने इस समारोहमें भाग लेनेसे इन्कार करते हुए एक पत्रमें लिखा—"जिस मनुष्यने कोई असाधारण कार्य नहीं किया, यहाँ तक कि राष्ट्रकी सेवा भी निस्स्वार्थ भावसे न कर सका, वह केवल ६० वर्ष तक जी लेनेके कारण ही अभिनन्दनका अधिकारी नहीं हो सकता। 'काकोऽपि जीवति चिरं च बलिं च भुंक्ते।' ऐसे मनुष्य, जिनके दीर्घकालीन जीवनमें मानवताको प्रसन्न करने की शक्ति होती है, विरले ही संसारमें आते हैं। मैं तो निश्चित रूपसे उनमें नहीं हूँ।"

प्रो० वनहट्टीने लिखा है—"दादा साहबकी अपेक्षा मराठीमें अधिक यशस्वी पत्रकार हो गए हैं। उनसे अधिक बहुश्रुत व्यक्ति भी बहुत मिलेंगे। उनके समान निष्ठावन्त प्रामाणिक देशभक्त अत्यन्त विरले हैं, ऐसी बात भी नहीं है, और अधिक क्या उनकी अपेक्षा अधिक सौजन्यपूर्ण और परोपकारी मनुष्य मिलना कठिन है, ऐसा भी मुझे नहीं प्रतीत होता। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि दादा साहबके व्यक्तित्वमें जो एक सुन्दर पर प्रांजल भलाई थी, वह शायद ही कहीं मिले। उन्होंने किसीके साथ व्यवहार करनेमें, प्रत्यक्ष कार्य और वस्तुस्थितिमें, कभी किसीके मनमें विसंगति उत्पन्न नहीं की।

एक बार उनसे एक मशीन खरीदनेका मौक़ा पड़ा। दूसरा कोई सम्पादक या सार्वजनिक कार्यकर्त्ता मनपर यह असर डालनेका यत्न करता कि आपको मैं सस्ती दे रहा हूँ। दादा साहब ऐसे नहीं थे। व्यवहारका अर्थ व्यवहार है। उसमें परोपकार लाना दूसरेको फँसाना है। मशीनकी क़ीमत बताई और इतना कहा कि इतनेमें लेनेसे आपको घाटा न होगा। मशीन खरीदनेवालेकी अपेक्षा भंग होनेकी कभी पारी नहीं आई।"

मध्य-प्रान्तमें आज 'महाराष्ट्र' एक महान शक्ति और संस्था है। इसलिए नहीं कि इसका साहित्यिक पृष्ठ विशेष आकर्षक होता है, इसका सम्पादक-मण्डल विभिन्न विचारोंका होते हुए भी एक सूत्रमें एक परिवारके समान काम करता है, या इसलिए नहीं कि यह पत्र किसी पक्ष-विशेषका नहीं है; बल्कि इसलिए कि जनताके साथ इसने अपने-आपको समरस कर दिया है और उसके साथ स्वरैक्य स्थापित कर लिया है। अन्न-वस्त्र-संकटपर 'महाराष्ट्र'ने जितना लिखा है, उतना शायद ही किसीने लिखा हो।

स्व० ओगलेने जहाँ समतोल लेखनी पाई थी, वहाँ ऐतिहासिक और व्यापक दृष्टि भी पाई थी। १५ और १६ अगस्त, १९४२ को नागपुरमें अराजकता थी, उस समय उन्होंने अगस्त-आन्दोलनको जिस रूपमें देखा था, उसे देखकर उनकी दृष्टिकी व्यापकता और ऐतिहासिक बुद्धिके आगे आदरसे सिर झुका लेना पड़ता है। श्री देशपांडेने उनसे उस समय निम्न प्रश्न पूछा था—"दादा, १८९८ से लेकर आपने अनेक आन्दोलन देखे और अनुभव किए हैं। सन् १९०६-८, १९२०-२१, १९३०-३२ के प्रचण्ड जन-आन्दोलन आपने देखे हैं। उसीके समान नागपुरके अन्दर हिन्दू-मुस्लिम-दंगा और उसके कारण क्षुब्ध हो उठे जन-सागरकी ऊँची तरंगोंकी भयानक ध्वनि भी सुनी है। पहले आन्दोलन और दंगेके कारण उत्पन्न खलबलीके साथ इसकी तुलना करके अब चल रहे आन्दोलनका निष्पक्ष मूल्यमापन क्या आप करके दिखायँगे?"

दादाने शान्त भावसे उस समय जो-कुछ कहा था, वह इस प्रकार है—"हिन्दू-मुसलमानोंके भीषण दंगे मैंने नागपुरमें देखे हैं। उनमें सरकारी पुलिसके अकार्यक्षम होनेके कारण जनताको अपनी सुरक्षितताकी चिन्ता थी। दंगाइयोंसे अपना घर-द्वार, अपनी सम्पत्ति, अपने बाल-बच्चे कैसे सुरक्षित रहेंगे, यही एक चिन्ता और भयसे जनता संत्रस्त थी। प्रस्तुत परिस्फोटमें पुलिस तो कभी की अकार्यक्षम बन गई है। सेना भी अभी पूर्ण रीतिसे कार्यक्षम नहीं बनी है। परन्तु जनताको 'घात-पात'से कोई भय नहीं है। फ़ौजी गोलाबारीसे अपना बचाव करनेका गम्भीर प्रसंग आनेपर भी किसीके मनमें भय नहीं दीखता। फ़ौजी लारियोंका एक दल निकल जानेपर दूसरा दल आनेके समय तक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग अपना नित्यका व्यवहार भली प्रकार कर लेते हैं। विशेष बात यह है कि इतना घोर उत्कापात हो रहा है, फिर भी हिन्दू या मुसलमान किसी स्त्रीको अपना सतीत्व धोखेमें नहीं मालूम देता। सड़कके नलसे पानी भरनेसे लेकर वे अपना सब काम निर्भयता और निःशंकपनसे करती हैं। 'वे हमारा माल-मत्ता, धान-पानी लूट लेंगे,' ऐसा भी किसीको मालूम नहीं देता। हिन्दू-मुस्लिम-दंगेका भी भय नहीं है। इतना विलक्षण नैतिक अधिष्ठान इस आन्दोलनका दीखता है। यह अत्यधिक महत्वकी बात है।"

थोड़ा ठहरकर दादा आगे बोले—"१९२०-२१ और १९३०-३२ के आन्दोलनमें, जिसको वस्तुतः बहुजन समाज कहा जायगा, वह सम्मिलित हुआ था। ऊपर प्रत्यक्ष आन्दोलनमें बहुजन समाजका छोटा-सा भाग ही शामिल था। आज नागपुरमें शुरू हुए आन्दोलनमें अमुक शामिल है और अमुक नहीं है, ऐसा भेद क्या किया जा सकता है? किस गली और किस मुहल्लेमें सैनिक घुस पड़ेंगे और गोलाबारी कर देंगे, इसका निश्चय न होनेसे प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह किसी धर्म, पक्ष अथवा मतका हो—अपना एक ही कर्त्तव्य समझता है। वह यह कि रास्ते बन्द कर दो। फ़ौजके आनेके मार्गमें प्रत्यवाय या बाधा खड़ी करो।" १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्धका निर्देश करके दादाने आगे कहा—"उस समयके विद्रोहियोंको सम्पूर्ण जनताका इतना समर्थन प्राप्त था या नहीं, इसमें मुझे शंका है। आज पहली बार जनताने दिखा दिया है कि वस्तुतः उसको स्वाधीनता चाहिए। स्वतन्त्रता उसको कब नहीं चाहिए थी? पर उसके लिए जनता कितना धैर्य दिखा सकती है और कितना त्याग करनेको प्रस्तुत है, इसका सक्रिय प्रत्यन्तर उसने आज पहली बार दिया है।" थोड़ा ठहरकर दादा ओगले फिर कहने लगे—"अपने होते हुए या अपने पश्चात् ३०-४० वर्षोंमें भी यह देश स्वतन्त्र हो सकेगा, इसमें मुझे शंका होती थी; पर अब मुझे विश्वास हो गया है कि भारत अगले १०-१५ सालोंमें आज़ाद हो जायगा।" यह कहकर दादा आँखें मूँदकर बैठ गए। मालूम होता था, वैभवशाली स्वाधीन भारतकी मूर्त्ति प्रत्यक्ष देखनेके लिए उन्होंने अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी कर ली है।

डेढ़ वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन निराश दृष्टिसे देखते, विषण्णतासे सिर हिलाते, सूचक चुटकी बजाते हुए ओगलेने कहा था—"अब मैं चला। जीना भारी हो गया है।"

इसपर मित्रोंने कहा—"दादा क्या कहते हो, अभी १० वर्ष आप और जिएँगे।"

"दस वर्ष! छीः-छीः, ऐसी रोग-जर्जर देह लेकर और दस वर्ष जीनेका क्या अर्थ?"—ओगलेने जवाब दिया।

मृत्युसे कुछ दिन पहलेकी बात है। 'संग्राम'को दादा ओगलेने उसके प्रश्नोंका उत्तर भेज दिया था। उसमें अपनी जन्मतिथि १३ जून, १८७९ दी थी। इसके दूसरे दिन गणेश दामोदर सावरकरकी मृत्युका समाचार आया। उन्होंने अपने एक सहकारी सम्पादकको बुलाया और पूछा—"क्या आपको आज कोई विशेष बात दिखाई दी है? बाबा सावरकरका जन्म और मेरा जन्म एक ही दिन हुआ, यह बात क्या आपके ध्यानमें आई? मैं भी अब ज़्यादा दिन जीऊँगा नहीं। बन्धु सावरकर भी मेरे समान बीमार थे। मेरे समान वे भी अब थक गए थे। मुझे अच्छा लगे, इस हेतु आप लोग कितना ही मुझे अच्छा बतावें; पर मुझे भली प्रकार मालूम है। मैं मृत्युसे डरता हूँ, यह बिलकुल मत समझिए। आज मेरी तैयारी है। अहा, मृत्युके समान जगतमें निश्चित ऐसी दूसरी कोई बात नहीं है। उससे डरनेसे काम कैसे चलेगा?"

बीच-बीचमें दादा ओगले यद्यपि कुछ अच्छे प्रतीत हुए, फिर भी दुर्दैवसे उस दिनके बादसे अधिकाधिक अस्वस्थ होते गए और गत ४ मईको स्वर्गधामको सिधार गए। पर अपने पीछे वे एक अनुकरणीय उच्च परम्परा छोड़ गए हैं। उन्होंने जिस 'महाराष्ट्र'को जन्म दिया था, आज वह उनकी स्मृतिके रूपमें और अधिक गौरवपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है और दैहिक रूपमें प्रकट होनेकी तैयारी कर रहा है। दादा ओगलेका पार्थिव शरीर नहीं रहा; पर उनका त्याग और बलिदानसे पूत और आदर्शसे उन्नत गौरवमय यशःशरीर सदा बना रहेगा।

बेबसी

श्री होमवती देवी

साथी, मनका क्या समझाना?
पीड़ामें सुख-सुस्मृतियाँ हैं, विरह-मिलनका लेखा;
सूनेपनमें भी जीवनकी, रंगीनीको देखा।
सहते-सहते हो जाता है, दुख जाना-पहचाना। साथी०
साधोंका घुट-घुटकर मिटना है संयम कहलाता।
लाचारीको धीरज कहकर ही मन चुप रह जाता।
घोर निराशा-नियति-यंत्रणा कहकर जी बहलाना। साथी०

आँसूमें प्रियका दर्शन है, आहोंमें आकर्षण;
चिन्तामें चिन्तन उनका, आकुलतामें आमन्त्रण।
अपनेको खो देना ही है अपनेको पा जाना। साथी०
पश्चात्ताप, प्रेम, उत्पीड़ित, मनका कठिन उलहना;
प्रायश्चित्त है प्रणय-ज्वालमें, तिल-तिल करके दहना।
मर्मस्थलकी तीव्र कसक है संसृतिका भरमाना।
साथी, मनका क्या समझाना?

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कम्बलके धागे

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

जनवरीका महीना था। आकाश मेघाच्छन्न था। शीतल वायु चल रही थी। कहीं-कहीं ओले पड़ जानेसे थर्मामीटरका पारा बहुत नीचे चला गया था। गाँवकी एक कच्ची, ऊँची-नीची सड़कपर कई आदमी एक अर्थी लिए जा रहे थे, जिसपर एक श्वेत चादर पड़ी थी। अर्थीके साथ-साथ एक नौजवान था। उसकी आयु कोई पच्चीस वर्षकी होगी। वह एक रिक्शा खींच रहा था। रिक्शेमें तीन नव-आयु बच्चे बैठे थे। उनका चेहरा उतरा हुआ था और उनके शरीर एक मोटे कम्बल में लिपटे हुए थे।

यह अर्थी उन बच्चोंको माँकी थी। जो रिक्शा खींच रहा था, वह टाकची, उनका बाप, था। रातमें जब बच्चोंकी आँखें खुलीं, तो उन्होंने देखा कि उनका छोटा-सा घर लोगोंसे भरा हुआ है। माँकी वाक्-शक्ति समाप्त हो चुकी है, और बाप उसका हाथ पकड़े बिछौनेपर बैठा रो रहा है।

इसके बाद बापने बिना कुछ कहे बच्चोंके गाल चूमे, और उनको रिक्शेमें बैठा लिया। उन्होंने सोचा कि नित्यकी तरह वे आज भी सुबहकी सैरको जा रहे हैं। लेकिन और दिनोंकी तरह बापके चेहरेपर ताज़गी न थी। वह चुपचाप, दृष्टि नीचे किए रिक्शा खींच रहा था। चलते-चलते वे लोग गाँवके बाहर पहुँच गए। बादलोंके कारण अँधेरा-सा छा रहा था। रिक्शेमें लेटे-लेटे बच्चोंको नींद आ गई।

जब बच्चोंकी आँखें खुलीं, तो वे एक मन्दिरमें चटाईपर लेटे थे। उनके बापने उन्हें फिर रिक्शेपर बैठा लिया। वे घर लाए गए। छोटा बच्चा घर आकर 'माँ-माँ' पुकारने लगा। माँ को न पाकर वह रोने लगा। उसको रोते देख दूसरे बच्चे भी रोने लगे। सूरजकी किरणें कमरेमें खोई-खोई-सी बिखर रही थीं। खिड़कीके पास बाप खड़ा था। उसकी आँखोंमें आँसू थे।

- २ -

फ़रवरीके आखिरी दिन थे। आकाश स्वच्छ था। वायु बड़ी भली लग रही थी। बरामदेके सामनेवाले छोटे बाग़में रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे। उनकी भीनी-भीनी सुगन्ध आसपास चारों ओर फैल रही थी।

रिक्शा-स्टैण्डपर सूरजकी किरणोंसे चमकती हुई गाड़ियाँ एक क़तारमें खड़ी थीं। रिक्शा खींचनेवाले एकजा बैठे तम्बाकू पी रहे थे और गप्पें लड़ा रहे थे। सहसा दूरसे घंटेकी आवाज़ आई। एक आदमी 'खबर! खबर!' चिल्लाता हुआ उनकी ओर दौड़ा आ रहा था। लोग पागलकी तरह 'खबर' खरीदनेको टूट रहे थे। एक रिक्शावाला भी दौड़कर दो पैसेमें एक 'खबर' खरीद लाया। सड़कपर खासी भीड़ लग गई थी।

थोड़ी देरमें चारों ओर शोर हुआ कि सबको लड़ाईमें जाना होगा। केवल विधवाका इकलौता पुत्र, बीमार और औरतें लड़ाईमें शरीक नहीं हो सकते। बाक़ी सबको लड़ाईमें जाना होगा।

टाकचीके सोचनेकी बात यह थी कि उसके लड़ाईपर चले जानेके बाद उसके ग़रीब बच्चोंकी देख-भाल कौन करेगा? यदि वह अपने बच्चोंको किसीके सिपुर्द कर दे, तो वह चिन्ता-रहित हो युद्धमें भाग ले सकता है। यही सोचकर वह सारा दिन गली-गली, दरवाज़े-दरवाज़े ठोकरें खाता फिरा; पर कोई फल न निकला। किसीने उन ग़रीब बच्चोंकी परवरिश करनेका भार अपने ऊपर न लिया।

दूसरे दिन छोटे बच्चेको पीठपर बाँधकर और बड़े बच्चोंको रिक्शेपर बैठाकर वह इस इच्छासे सड़कपर घूमने लगा कि आज वह अपने बच्चोंको सदाके लिए किसीको दे देगा। लेकिन कौन ले उसके बच्चोंको? सबको अपनी-अपनी पड़ी थी।

- ३ -

टाकचीको अपना नाम सेनामें लिखाना पड़ेगा, नहीं तो उसे जेलकी सख्त सज़ा भुगतनी पड़ेगी या कुत्ते-बिल्लीकी तरह आम लोगोंके सामने उसे बन्दूकका निशाना बनना पड़ेगा। कितनी लज्जा और अपमानकी बात है यह! यह सोचकर वह काँप उठा।

अँधेरी रात भींग चुकी थी। गाँवपर एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। आकाशमें अलसाए हुए तारे ऊँघ-से रहे थे।

टाकची धीरेसे बिस्तरसे उठा। तीनों बच्चे पास ही सो रहे थे। लैम्पकी मद्धिम रोशनी इतनी कम थी कि कमरेकी कोई वस्तु साफ़ नहीं दिखाई देती थी, फिर भी टाकचीको अच्छी तरह याद था कि वह बड़ा छुरा कहाँ है।

हाँ, वह छुरा, उसके बचपनका साथी, जिसने कितने ही जंगल साफ़ किए थे, कितनी ही जानें ली थीं! टाकचीने उसकी धार देखी। चमकती धार खराब नहीं हुई थी; लेकिन बहुत दिनों तक रखे रहनेके कारण कहीं-कहीं ज़ंग लग गया था।

'थोड़ी और तेज़ कर लूँ, तो ठीक होगा!' होंठोंमें ही बुदबुदाते उसने हथियार तेज़ करनेका पत्थर उठाया।

पत्थरपर छुरा घिसा जाने लगा। उसने लैम्पकी मद्धिम रोशनीमें एक बार बच्चोंके चेहरोंकी ओर देखा। कितनी गहरी निद्रामें वे डूबे हुए थे! केवल साँस लेनेकी आवाज़ आ रही थी।

दूर मन्दिरके घंटेने बारह बजाए। कितनी भयंकर आवाज़ थी घंटेकी चोटोंकी! एक बच्चेने करवट बदली। उसका एक हाथ कम्बलसे बाहर हो गया। बाप बच्चोंके पास आकर बैठ गया। लैम्प एकाएक बुझ गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्नाटा, भयंकर सन्नाटा ! इतना अँधेरा, जहाँ नेत्र-शक्ति कुछ काम न कर सके।

'पहले छोटे बच्चेको !'

'यदि वह जग जाय और चिल्ला उठे, तो ?'

'उसकी आवाज़से दोनों बच्चे जग सकते हैं। फिर यह करुणा-रहित स्नेह मेरी इच्छा पूरी न होने देगा।...'

'आह ! कितनी छोटी गर्दन है ! कितनी मुलायम ! लेकिन मैं जानता हूँ, कहाँ चोट करनेसे मेरे मासूम बच्चेको अधिक कष्ट न होगा !...'

'फिर मँझलेको। शीघ्र ! अभी हाथोंमें शक्ति है !...'

'बड़ा जाग उठा क्या ?'

'नहीं, वह तो चैनसे सो रहा है !'

'यह बड़ा रहा। यही मरनेवाली अन्तिम स्मृति है ! उसी दिनकी तो बात है। नाम-संस्कारके अवसरपर बच्चेको अपनी गोदमें लेकर माँ मन्दिरमें गई थी। वहाँ उसकी बाँहपर पुजारीने एक तावीज़ बाँधा था, जिसके प्रभावसे वह अच्छे नामवाला और भाग्यवान हो। लेकिन आज ? आह !...'

टाकचीका हाथ काँप गया। ललाटसे पसीनेकी बूँद टपककर छुरेकी मुठियापर गिर पड़ीं। छुरा हाथसे छूटते-छूटते बचा।

'क्या यह हाथ अपना काम पूरा न कर सकेगा ?'

'इतना कमज़ोर है ?'

'कदापि नहीं !'

'फिर, जल्दी करो ; नहीं तो...'

—कर्रकी धीमी-सी आवाज़ !

बलिदान समाप्त हुए। उसने शवोंको कम्बलमें लपेटकर रिक्शामें रख दिया। फिर रिक्शा खींचकर वह सड़कपर आया।

कुछ दिन पहले वह उसी रास्तेसे अपनी बीवीकी अर्थीके साथ गया था। उस दिन उसकी आँखोंमें आँसू थे ; पर आज उसकी आँखोंमें शून्यता थी। उस दिन अपना कहने लायक़ बहुत-कुछ था ; लेकिन आज कुछ भी नहीं था। केवल अपना देश था और उसके प्रति अपना कर्त्तव्य।

रात्रिका अन्तिम प्रहर था। पर्वतोंकी ओटमें डूबते हुए चाँदकी पीली रोशनीमें उसने तीनों बच्चोंको उनकी माँके समीप ही धरतीकी गोदमें सुला दिया और फिर उनकी क़ब्रोंपर ताड़के छोटे-छोटे पौदे लगा दिए।

बच्चे कितने सुखसे सो रहे हैं ! क्या अच्छा होता कि टाकचीको भी उनके समीप ही स्थान मिल जाता ! लेकिन उसके लिए तो युद्धने अपना भयंकर मुँह फैला रखा है। वहाँ उसे स्थान मिलेगा, यहाँ नहीं। टाकची, चलो ! यहाँ नहीं !

उसने एक बार घुटने टेककर ईश्वरकी प्रार्थना की।

- ४ -

जब वह मन्दिरके अन्दर घुसा, पौ फट रही थी। सीढ़ियोंके नीचे पत्थरके हौज़में पानी भरा था। देवताका दर्शन करने पापी उस पानीसे अपने पाप धो डालते हैं। टाकचीने भी उस पानीसे हाथ धो डाले।

हाथ धोकर वह पुजारीके पास आ खड़ा हुआ। कहा—"इस संसारमें अब मेरे सिरपर किसीका भार नहीं है। अब मैं निश्चिन्ततापूर्वक अपने देशके लिए लड़ सकूँगा। मन्दिरके द्वारपर एक रिक्शा है। उसे आप ले लीजिए। अब मैं साधु हूँ।" कहकर वह मन्दिरसे सिर झुकाए निकल पड़ा।

मार्चका महीना था। सारा गाँव युद्धमें जानेको तैयार था। दस हज़ार चीनी झण्डोंपर सूर्यकी किरणें चमक रही थीं। सड़कों पर बहुत भीड़ थी ; लेकिन क़िलेके फाटकके सामने उससे भी अधिक भीड़ थी।

बिगुल बजा। सिपाहियोंके नाम पुकारे जाने लगे।

"टाकची हाज़िर है ?"

"हाज़िर है।"

हर्ष और गर्वके नशेमें चूर फ़ौज नारे लगाती निकल गई। सबसे अधिक खुशी टाकचीको थी—खूनी टाकचीको ! हाँ, दूसरोंकी नज़रमें वह निर्मम हत्यारा हो सकता है ; पर स्वदेशियोंकी दृष्टिमें वह अपने देशके लिए सब-कुछ बलिदान कर देनेवाला बहादुर सिपाही था !

* * *

कई वर्ष बाद।

दूर पर्वतकी घाटीमें ताड़के वृक्षोंके नीचे, जहाँ कुछ मिट्टीकी मिटी हुई समाधियोंके चिह्न अवशेष हैं, एक साधु रहता है। वह दर्शनार्थियोंको तावीज़ बाँटता है। लोग कहते हैं कि उन तावीज़ोंको बाँहोंपर बाँधनेसे हृदयमें देश-प्रेम बढ़ता है। उस साधुके यहाँ युवकोंकी भीड़ लगी रहती है। वह तावीज़ अपने हाथसे बनाता है। उन तावीज़ोंमें सुनहले तागेमें लपेटे हुए कुछ रक्त-लगे कम्बलके धागे होते हैं !*

* एक चीनी कहानीके आधारपर।—ले०

याचना

काज़ी अशरफ़ महमूद

पर - दुख को जो दुःख न माने,
पर - दुख से जो सदय न हो।
सब कुछ दो पर, प्रभो, किसीको
अंग में ऐसा हृदय न दो।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'शेष प्रश्न'

श्री शीलभद्र

समाजकी जटिल समस्याओंका समाधान जिस रूपमें कलाकार शरत्ने किया है, वह उसी रूपमें सबको मान्य हो या न हो; किन्तु उनकी महत्ताको कौन अस्वीकार कर सकता है? आज विविध समस्याएँ मानव-जीवनके सामने विभीषिकाके रूपमें खड़ी हैं। समाज उनकी दारुण यंत्रणासे पीड़ित हो रहा है; पर आश्चर्य तो तब होता है, जब व्यक्ति उन्हीं रीति-नीतियों, कुप्रथाओं और विधि-विधानोंको शिरोधार्य कर लेता है, सिर्फ़ इसलिए कि वे पुराने हैं, सम्मान्य हैं।

किसी युगके किसी खास प्रश्नको सुलझानेके लिए समाजने जो विधि-निषेधसूचक नियम बनाए थे, उनका उसी रूपमें पालन करते जाना प्राचीनताके प्रति मोह भले ही कहा जा सकता है; पर उससे समाजका कल्याण नहीं हो सकता। कल्याण तो तभी होगा, जब हम मानव-जीवनको रस्मोंकी रस्सियोंमें न जकड़कर उपयोगिताके दृष्टिकोणसे देखें। कलाकार शरत्ने अपने 'शेष प्रश्न' में इसी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उनका कहना है कि कोई भी वस्तु इसलिए मान्य नहीं हो सकती कि वह पुरानी है, बल्कि उपयोगिताकी कसौटीपर ही कसकर उसे अपनाया जा सकता है। इन प्रश्नोंके अतिरिक्त विवाह, प्रेम, नारीत्व, प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतिके गुण-दोष-जैसे गम्भीर प्रश्नोंपर भी उन्होंने प्रकाश डाला है।

आज भारतमें तीन तरहके सुधारक व्यक्ति मौजूद हैं। कुछका कहना है कि राजनीतिक समस्याओंके हल होते ही सभी उलझनें आप-से-आप सुलझ जायँगी। कुछ लोगोंका कहना है कि अर्वाचीन शिक्षा-पद्धति और फैशनके अनुकरणसे ही हममें ये दुर्गुण आए हैं, अतः हमें पुनः आजसे हज़ारों वर्षकी पुरानी दुनियामें लौट चलना चाहिए। उनका कहना है कि भारतवर्ष ही एक दिन संसारका गुरु था और वही गुरु बनेगा; किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि वह अनुकरणको छोड़कर वैदिक युगके प्रचलित विधि-विधानोंको स्वीकार कर ले।

कहना न होगा कि शरत् बाबूका व्यक्तित्व इनसे अलग था। उनका तो कहना है कि संसारके शेष प्रश्नोंका अन्तिम उत्तर कभी किसी कालमें किस भी देशके ऋषि-मुनि नहीं दे पाए। ज्यों-ज्यों प्रश्न उपस्थित होता है, व्यक्ति अपने-आप उसका उत्तर ढूँढ़ लेता है। उनका कहना है—'मनुष्यसे बढ़कर मनुष्यकी मनुष्यता नहीं हो सकती, और सिर्फ़ इसलिए कि किसी जातिकी विशेषता बहुत दिनोंसे चली आ रही है, उस देशके मनुष्योंको अपने कल्याण-अकल्याणका खयाल किए बगैर उससे चिपटे रहना अनुचित है।' अपने इन्हीं विचारोंका इन्जेक्शन देनेके लिए शरत् बाबूने 'शेष प्रश्न' लिखा है। 'शेष प्रश्न' की नायिका कमल समाजके लिए स्वाभाविक हो या न हो; पर वह उन आदर्शोंका मूर्त्तिमन्त प्रतीक है। इतने दिनोंसे शरत् जिसे अपनी छातीमें छिपाए आ रहे थे, उसे तर्कके बलपर और भावुकताके आश्रयमें वे फूलने-फलनेके लिए संसारमें निर्द्वन्द्व भावसे छोड़ गए हैं।

इस उपन्यासमें चार प्रकारके व्यक्ति हैं। अक्षय और सतीश, जो नवीनताके प्रति ज़रा भी आगे बढ़नेमें हिचकते हैं कि कहीं उससे भारतीय वैशिष्ट्यपर आँच न लग जाय। उनके मनमें भारतके अतीतका आदर्श ही चिर-युगका चरम आदर्श है। दूसरे हैं आशु बाबू-जैसे व्यक्ति, जिनका हृदय महान है। वे भारतीय विधि-विधान और पुरातन रीति-नीतियोंके प्रति अमिट विश्वास रखते हुए भी बेलाको पति-परित्यागकी सलाह दे देते हैं; क्योंकि वह नारीत्वकी सम्मान-रक्षाके लिए उस समय अनिवार्य थी। तीसरी श्रेणीके व्यक्ति हैं शिवनाथ, जिनके सामने कला और आमोद-प्रमोद ही सब-कुछ है और वह किसीको भी अपने स्वार्थके लिए धोखा दे सकते हैं।

और कमल? वह इन सबोंसे अलग है। वह पाश्चात्य संस्कृतिके गुणोंका हामी है। यद्यपि वह जानती है कि सिर्फ़ भोगवादको अपनाए रखनेके कारण मुसलमानी साम्राज्यकी तरह यूरोपियन संस्कृतिका भव्य-भवन भी चकनाचूर हो जायगा; पर उसे इस बातका भी दुःख है कि इतनी बड़ी जाति (पाश्चात्यों)के पतनसे जो धूलि उठेगी, उसीमें संसारके अनेक प्रकाश-स्तम्भ मलिन हो जायँगे, फिर भी इससे वह भयभीत नहीं होती। उसका यह चरम विश्वास है कि 'संसार-त्याग और वैराग्य-साधन हमारा उद्देश्य नहीं। हमारी साधना है सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण जीवन लेकर जीनेकी।' संयम, विवेक और साधनाकी कृत्रिम धारणाके प्रति उसके मनमें तीव्र विरोध है। वह कहती है—'अन्य सभी संयमोंकी तरह यौन संयममें भी एक सत्य है; मगर वह गौण सत्य है। धूम-धामके साथ उसे ही जीवनका मुख्य सत्य बना देनेसे वह भी असत्य हो जाता है। आत्म-निग्रह के उग्र दम्भसे आध्यात्मिकता क्षीण होने लगती है।' यही है भगवान बुद्धकी मध्यमा प्रतिपदा या मध्यम मार्ग, जिसमें संसारका कल्याण निहित है।

इस उपन्यासकी नायिका कमल अंगरेज़ पिता और भारतीय मातासे उत्पन्न है। उसने एक पतिकी मृत्युके बाद दूसरे (शिवनाथ)से शादी की और वह भी उसे धोखा दे जाता है। किन्तु इतनेपर भी वह दुःखी नहीं होती, क्योंकि उसने जीवनके अतीतको ही सब-कुछ नहीं समझा है। वह विराट महत्वाकांक्षिणी है। उसका कहना है—'सिर्फ़ इसलिए कि जो नहीं है, वह क्यों नहीं है, आँसू बहानेमें मुझे शरम आती है। इस बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर झगड़ा करनेमें कि जितना वे कर सके, उससे ज़्यादा उन्होंने क्यों नहीं किया, मेरा सिर झुक जाता है।'

यहींपर हम उसे सामान्य स्त्रियोंसे अलग पाते हैं। अन्य तथाकथित आधुनिक स्त्रियाँ जहाँ इस बातको लेकर ही झगड़नेमें अपना चरम पुनीत कर्त्तव्य समझती हैं कि वह अपने पतिको दंड दे, जो उसे धोखा दे गया, वहाँ कमल, जिसे कभी एक बार प्रेम किया था, उसे दंड देनेकी बात सोच तक नहीं सकती है। उसका यह न सोचना ही उसकी महानता और शिवनाथके लिए सबसे बड़ी सज़ा है। किन्तु काश! शिवनाथ इसे समझ पाता।

अब प्रश्न यह है कि वह अपने जीवनका आदर्श क्या समझती है? उसका कहना है—'जिस तरह पेड़के सूखे पत्ते झड़ जाते हैं और नए आकर उनकी क्षति-पूर्त्ति कर देते हैं, उसी तरह वह भी एक बार धोखा खा जानेसे अपने सम्पूर्ण जीवनको धोखा नहीं दे सकती।' आशु बाबूके यह पूछनेपर कि इस जीवनमें इस तरह देह-मनसे क्या तुम और किसीको अंगीकार कर सकती हो? वह उत्तर देती है—'कम-से-कम ज़िन्दा तो यही आशा लेकर रहना पड़ेगा, आशु बाबू! असमयमें बादलोंकी ओटमें यदि आज सूर्य अस्त हो गया-सा मालूम दे, तो क्या वह अन्धकार ही सत्य हो जायगा, और कल प्रभातमें अरुण प्रकाशसे अगर आकाश छा जाय, तो क्या अपनी आँखोंको बन्द करके यह कह दूँगी कि यह प्रकाश नहीं, अन्धकार है?' अपने जीवनको वह बच्चोंका खेल नहीं समझती। एककी मृत्युके बाद दूसरा (शिवनाथ) और शिवनाथकी कपट-चातुरीके बाद वह तीसरे अजितको लेकर अपनी जीवन-यात्राकी थकान और मर्मस्थलकी चोटोंको सहलाकर नया जीवन प्रारम्भ कर देती है। वह जीवनको, जो भगवानका सबसे बड़ा दान है, शून्यमें व्यतीत नहीं करना चाहती। कोई आदमी किसीके जीवनमें विफल हो गया, तो वह अपने-आपको भी विफल कर डाले, इसकी वह कल्पना तक नहीं कर सकती।

कलाकार शरत्ने अपनी नायिका कमलके मुँहसे जिन आदर्शोंकी अभिव्यंजना कराई है और उसके जिन महान कार्य-कलापोंका वर्णन किया है, उसके आधारपर हमारे सामने तीन-चार तत्त्व उपस्थित होते हैं। पहली बात, प्रेमको पवित्रताका इतिहास ही मनुष्यकी सभ्यताका इतिहास है। दूसरी बात, संसारके किसी भी युगमें मानवने अपने शेष प्रश्नका उत्तर नहीं निकाला। अतः संसारमें आजका शुभ कलके शुभतरके चरणोंमें आत्म-विसर्जन करके उसके लिए मार्ग छोड़ देता है। तीसरी बात, मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ अपराजेय हैं और उनपर सरल स्वाभाविक तथा सांसारिक ढंगसे ही विजय प्राप्त की जा सकती है। चौथी बात, जीवनमें वस्तुओंकी क़ीमत उसकी क्षण-मात्रापर निर्भर नहीं करती, अपितु निर्भर करती है उसकी उपयोगिता और आनन्द-प्रदायिनी शक्तिपर।

इन्हीं चार प्रकारके सिद्धान्तोंके प्रतिपादनके लिए शरत्ने कमलके मुँहसे पाश्चात्य विचार और आशु बाबू, अक्षय बाबू, हरेन्द्रके मुँहसे प्राच्य विचारोंमें वाद-विवाद कराकर अपना मत प्रकट किया है। कमल उनके (शरत्के) बुद्धि-पक्षका प्रतीक है और उनके उपयोगितावादी सिद्धान्तोंका प्रतिपादक है; पर वह अपने सिद्धान्तोंपर अटल रहकर भी आशु बाबूके चरणोंमें झुककर नमस्कार करती है। और आशु बाबू अपनी पत्नी-प्रेमकी सुदीर्घ छायामें इसके लिए कभी तैयार नहीं हो सके कि वह किसी नारीको अपने हृदय-पटपर आसीन करें। यहाँ तक कि नीलिमा जैसी अभागिनी विधवाको भी, जो उनके चरणोंमें अपनेको समर्पित करने गई थी, उन्होंने न अपनाया; क्योंकि वे प्रेमकी पवित्रताकी मर्यादा क़ायम रखना चाहते थे। और इधर कमल एककी मृत्युके बाद दूसरे शिवनाथको और शिवनाथके धोखा देकर भाग जानेके बाद अजितको अपनाया। यही है प्रेमकी पवित्रता। आशु बाबूका कहना है कि एकके बाद दूसरी नारीसे प्रणय या परिणय करना वे अपने लिए पाप समझते हैं। उधर कमल इस बातको मानते हुए भी कि भोग ही मनव-जीवनका चरम सत्य नहीं—जो नहीं है, उसकी स्मृतिको अहोरात्र मनमें पालकर अपने जीवनको व्यर्थ नहीं कर देना चाहती। उसके लिए जीवन—सम्पूर्ण जीवन—के सामने एकाध सफलता-असफलता ही सब-कुछ नहीं। वह सम्पूर्ण जीवनको प्रेम-आनन्दमें ही बिताना चाहती है; पर वह इस बातको जानती है कि विवाह ही सब-कुछ नहीं, सब-कुछ है प्रेम। और अगर प्रेम नहीं रह सका, तो विवाहका विधान तो ढकोसला है। नर-नारीके पवित्र प्रेमपर ही समाज टिक सकता है, बन्धन तो उपलक्ष्य है, लक्ष्य नहीं।

उधर आशु बाबू विवाह-बन्धनको परम पुनीत मानकर इस बातकी ओर लक्ष्य करते हैं कि हम लोग इहलोककी अपेक्षा परलोकको भी सब-कुछ समझते हैं, इसीलिए इसकी आशामें बँधे रहते हैं कि परलोकमें पुनर्मिलन होगा। इसपर कमल उत्तर देती है—'आप लोग इहलोकको तुच्छ समझते हैं, इसलिए इहलोकने भी सारे जगतके सामने आप लोगोंको तुच्छ रखा है।' और मैं—'फूल, फल और शोभा-सम्पदासे मेरा यह जीवन भर उठे; परलोकके विशाल लाभकी आशासे इस जीवनकी मैं उपेक्षा, अवज्ञा और अपमान न करूँ।' कमलका यह दृष्टिकोण ही शरत्का अपना दृष्टिकोण है। यद्यपि वे प्रेमकी महानताके सामने सिर झुकाते हैं, तथापि उनका कहना है कि वृक्षके शुष्क पीले पत्तेके झड़ जानेपर भी नए कोंपल निकल सकते हैं। अभावजन्य दारिद्र्य संकुल संयमकी स्तुति करना वे समाजको धोखा देना समझते हैं। उनका तो कहना है कि अभाव चाहे स्वेच्छासे आए, चाहे दुर्भाग्यसे आए, उसमें दुःखके सिवा और कोई गौरवकी वस्तु नहीं। वह अभाव चाहे रोटीका हो या प्रेमका, अभाव ही है,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

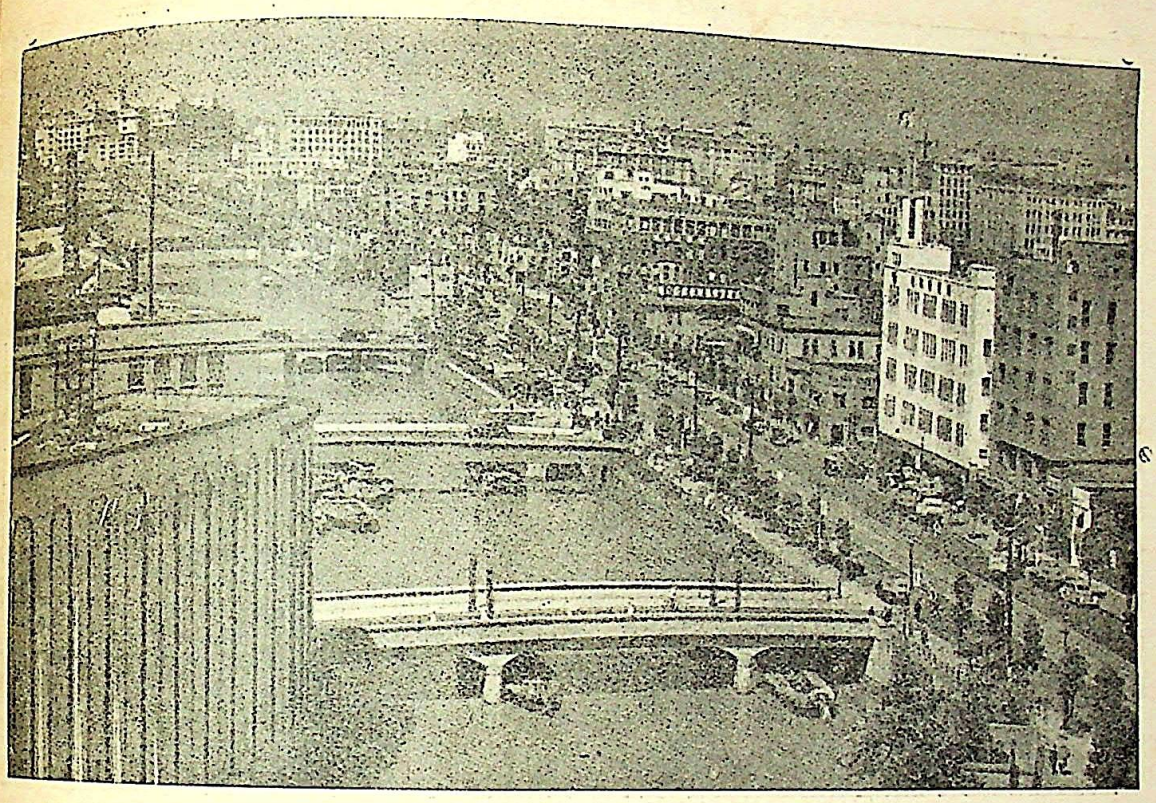

जापानकी राजधानी तोक्यो, जो अब संयुक्त राष्ट्रोंके फौजी अधिकारमें है।

सुदूर-पूर्वका पेरिस—शंघाई

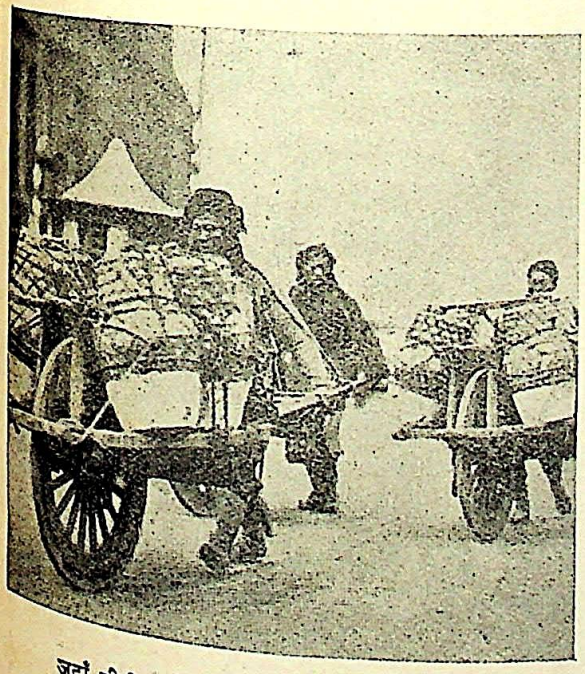

जहां चीनी कुली बेगारमें जापानी माल ढोते थे

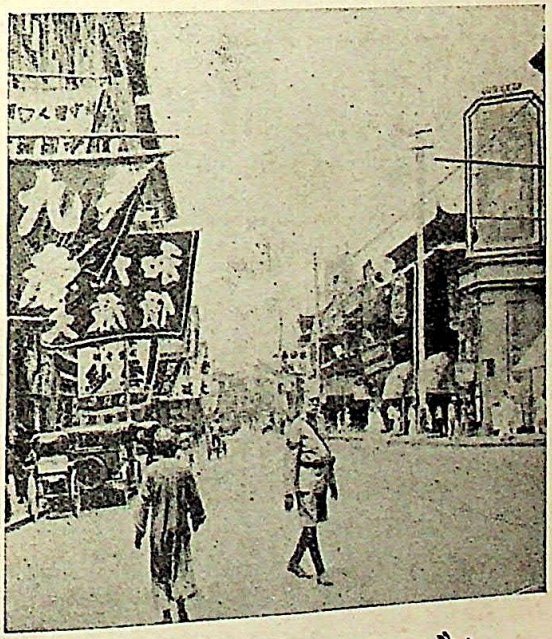

अब फिर चीनके अधिकारमें आ गया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

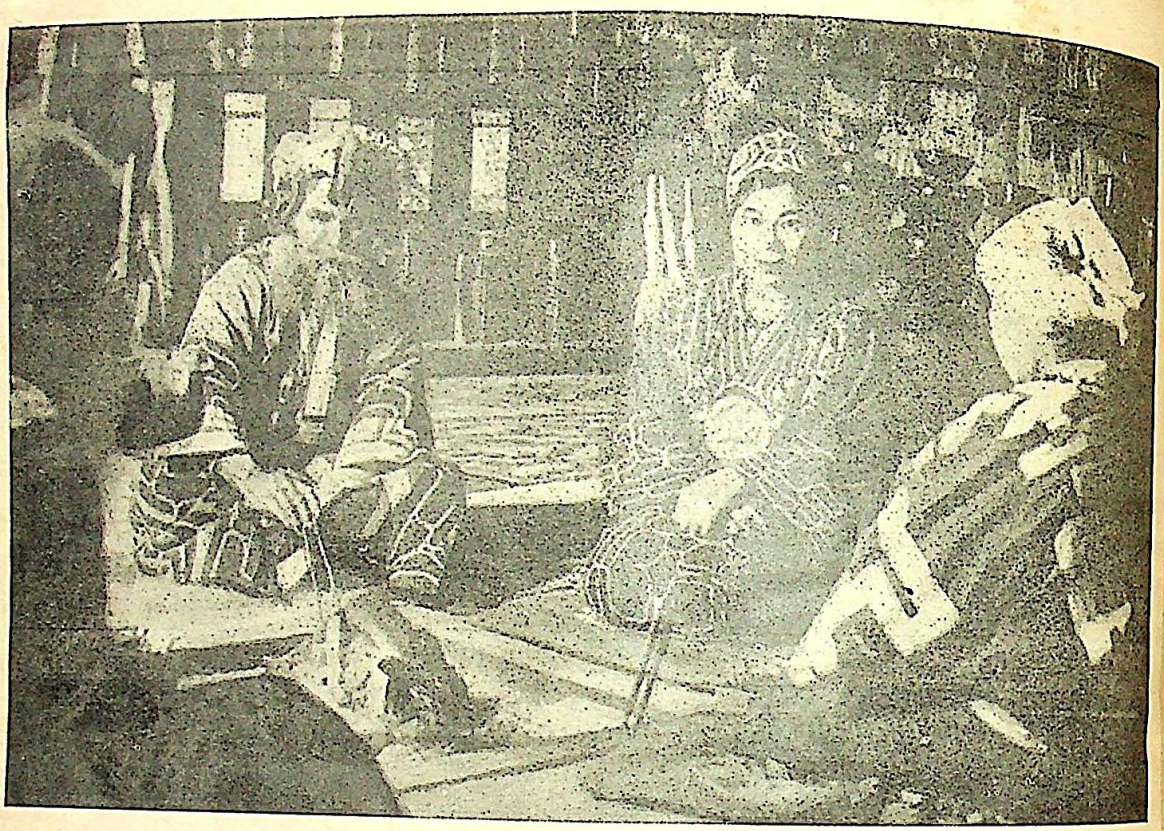

जापानकी एक मूल जाति 'आइनूज़'के एक घरका भीतरी दृश्य ।

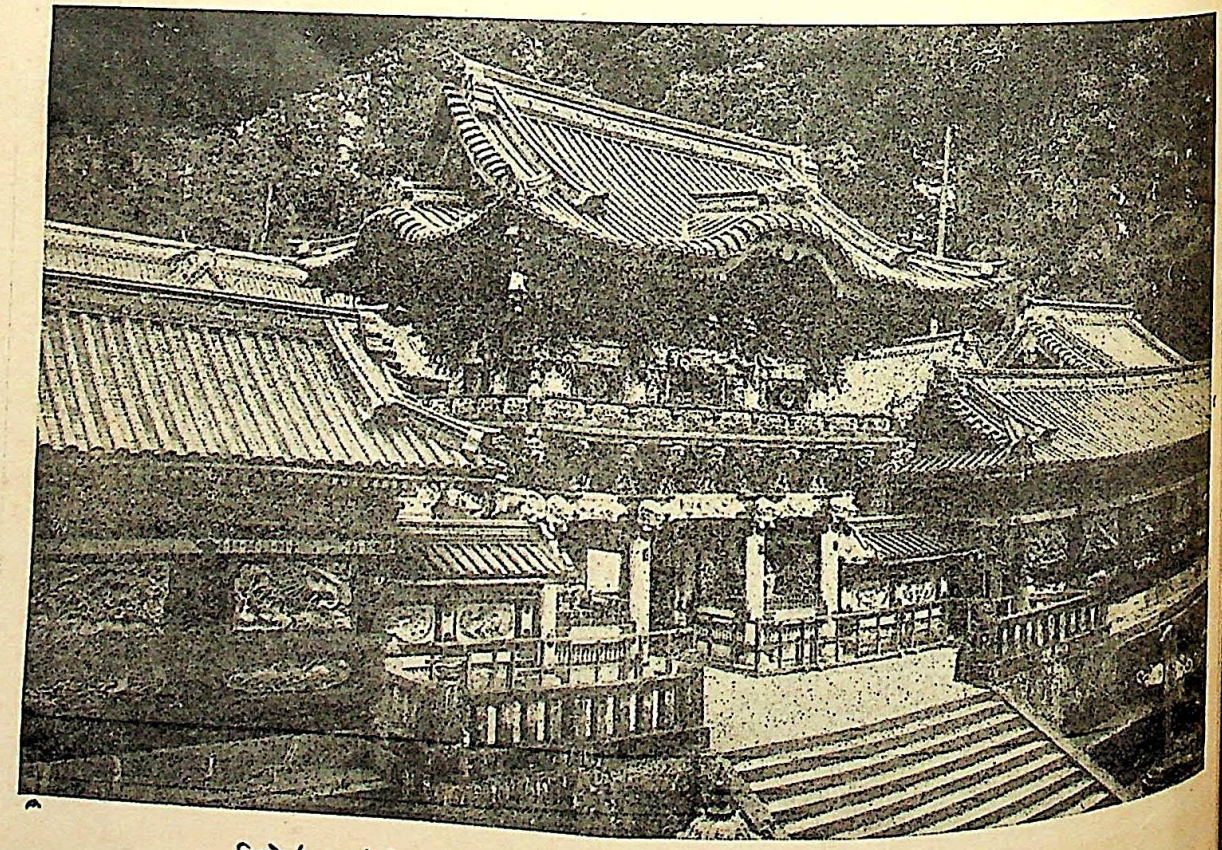

निक्को (जापान) के सामन्तों वैभवका एक नमूना—तोशोगू-मठका योमियोमो-द्वार ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और उसमें जो दुःख है, उसे दूर करना ही मनुष्यका कर्त्तव्य है। उसको लेकर बैठे-बैठे वैधव्यका पालन करना और उसकी आगमें झुलसते रहना वे उचित नहीं समझते। उनका कहना है कि त्यागमें भी दुःख होता है। त्याग-तपस्याके अन्दर जो सुखकी अनुभूति होती है, वह तपस्याके सुखकी अनुभूति नहीं, तपस्याके बाद स्वर्गमें मिलनेवाले आनन्दके लिए की जानेवाली साधनाका आनन्द है। अतः त्यागके अन्दरका आनन्द आनन्द नहीं, उसे तो बुद्धिके बन्धनसे आनन्द मानना पड़ता है। यही कारण है कि वस्तुतः प्रेमको ही सब-कुछ समझते हुए भी उन्होंने उपयोगिताको ठुकराया नहीं, तो स्वर्गकी अमानतपर शंका करनेवाले व्यक्तियोंको क्या कहकर सान्त्वना देते? उधर आशु बाबूके एकनिष्ठ पत्नीव्रतको वे सर्वसाधारणके लिए उपयोगी न समझते हुए भी उनकी अखंड श्रद्धाके क़ायल हैं। यही कारण है कि कमल चलते समय उनके पैरोंकी धूल अपने सिरपर धारण करती है। और आशु बाबू-जैसे महान् व्यक्ति अपनी ही तरह सबसे एकनिष्ठ पत्नीव्रतकी कृच्छ साधनाकी कामना करते हुए भी कमल और अजित तथा मनोरमा और शिवनाथको अपना स्नेहाशीष देते हैं, जिन्होंने सुदीर्घ काल तक उनके सिद्धान्त और व्यक्तित्व की खिल्ली उड़ाई है। शरत्की दृष्टिमें यही है प्रेमकी पवित्रता, जो आत्मिक पवित्रतापर ही निर्भर है, बाह्य विधि-विधानपर नहीं। उनके दूसरे सिद्धान्तमें भी प्रेम यहीं तर्क उठता है। समाज का 'शेष प्रश्न' अभी बाक़ी है। अतः कोई आवश्यकता नहीं कि पूर्वका (भारतका) पुराना आचार-विचार ज्यों-का-त्यों मान लिया जाय। अपितु संसारके सभी देशोंके उपयोगी मत यदि हमारे प्रश्नका उचित उत्तर हों, तो मान्य हो सकते हैं। केवल विदेशी या नवीन होनेके कारण ही वे अपवित्र नहीं, बल्कि उपयोगी होना ही उनकी सबसे बड़ी पवित्रता है। यहाँ एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि उपयोगितावाद और जड़वाद या भोगवादमें शरत्ने अन्तर माना है और बतलाया है कि भोगवाद पतनका मार्ग है।

शरत्का तीसरा प्रश्न मनुष्यकी प्रवृत्तियाँ अपराजेय हैं, अतः उनको वशमें किया जा सकता है। किन्तु उग्र संयमसे असफल आत्म-पीड़न और दम्भ ही उत्पन्न होगा; अतः उन्हें सरल-स्वाभाविक-सांसारिक ढंगसे अर्थात् दाम्पत्य प्रेमसे ही सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जा सकता है। दम्भपूर्ण संयम उतना ही भयावह है, जितनी विषयाशक्ति। व्यक्ति-विशेषके लिए अति-संयम संयम कहा जा सकता है; पर साधारण जनताके बीचमें उसे ही चरम सिद्धान्त बना देना, उसे असंयममें परिणत कर देना होगा। शरत्का चौथा दृष्टिकोण यह है कि क्षणस्थायी प्रेमकी भी संसारमें क़ीमत है। क्षण-भरका आनन्द ही कभी-कभी कल्प-कल्पान्तरोंको मधुर कर देता है, इसलिए हम क्षण-भरके सुख-दुःखकी भी उपेक्षा नहीं कर सकते। क्षण-क्षणको समेटकर ही जीवन विकसित होता है, अतः क्षणिक सुख-दुःखोंका तिरस्कार करके नहीं, अपितु उनको शिरोधार्य करके ही हम जीवनकी समग्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

इन सबके अतिरिक्त समाजमें क्रान्ति—विशेषकर सामाजिक कुप्रथाओं तथा विधि-निषेधोंके प्रति क्रान्ति—करना ही उनका प्रधान उद्देश्य था। कहना न होगा कि इस उपन्यासमें उन्हें आशातीत सफलता मिली है। उनका कहना है कि यह क्रान्ति वे ही लोग कर सकते हैं, जो बुद्धिवादी और संयमी हों। संयमी और विवेकी सुधारकके चरणोंमें एक-न-एक दिन समाज अवश्य सिर झुका देगा, जैसे कमलके चरणोंमें अक्षयका अहंकार झुक जाता है और वह उससे पत्र लिखते रहनेकी याचना करता है, जिसे वह व्यभिचारिणी और कुलटासे भी बढ़कर समझता था। 'शेष प्रश्न'में शरच्चन्द्रने हमारे शेष प्रश्नोंका नहीं, अपितु प्रस्तुत प्रश्नोंका भी उत्तर दिया है। शेष प्रश्नोंका—आनेवाली समस्याओंका—उत्तर तो भविष्य ही देगा; पर समाजके प्रस्तुत प्रश्नोंको सुलझाने के लिए शरत्का यह 'शेष प्रश्न' अचूक औषध-सी है।

पूँजीवादका विरोधी व्यापार-चक्र

श्री रामपूजन तिवारी

यों तो पूँजीवादी ढंगसे उत्पादनकी प्रणाली बहुत पहलेसे शुरू हो गई थी, फिर भी नए-नए वैज्ञानिक अन्वेषणोंके बाद उसमें अभूतपूर्व उन्नति हुई है। इन अन्वेषणोंके फल-स्वरूप नए ढंगकी मशीनें बनीं, जिनसे मनुष्यकी आवश्यकता-पूर्त्तिके साधनोंका उत्पादन अत्यन्त ही सरल और सुगम हो गया। पहले समाजमें ज़रूरतकी चीज़ें लोग स्वयं अपने परिवारवालोंकी सहायतासे तैयार कर लिया करते थे। उस समय उनकी ज़रूरतें भी साधारण ही थीं। जब कभी उन्हें किसी अन्य वस्तुकी आवश्यकता आ पड़ती थी, तो उसकी पूर्त्ति वे अपनी चीज़ोंके अदल-बदलसे ही कर लिया करते थे। जीवन सादा था और ज़रूरतें भी थोड़ी थीं। उस समयका उत्पादक और भोक्ता एक ही था, या दोनोंमें एक पारस्परिक सम्बन्ध रहता था। लेकिन धीरे-धीरे यह स्थिति बदलती गई। इस परिवर्त्तनका प्रधान कारण सौदेके विनिमयमें कई प्रकारकी असुविधाओंका होना था। उदाहरणके लिए, हम इसको यों समझ सकते हैं: किसी व्यक्तिके पास एक जोड़ा जूता है और उसे हलकी आवश्यकता है; और

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूसरेके पास एक बैल है, उसे एक जोड़े जूतेकी ज़रूरत है। जब तक ऐसा आदमी न मिले, जो हलके बदलेमें जूता चाहता हो अथवा जो बैल लेकर जूता दे सके, तब तक इन चीज़ोंका विनिमय नहीं हो सकता। इस कारण समाजके भीतर एक बड़ी गड़बड़ी थी। फिर यह भी दिक्कत पैदा हो जाती थी कि चीज़ोंका विनिमय किस आधारपर हो, क्योंकि मूल्य-निर्धारणके लिए अभी मुद्राका उपयोग नहीं होता था। अतएव इन आवश्यकताओंकी पूर्त्तिके लिए एक विशेष वर्गकी उत्पत्ति हुई, जो आजका बनिया है; और उसके साथ ही मुद्रा भी ईजाद हुई।

समाजमें अब बिक्रीके लिए भी वस्तुओंका उत्पादन शुरू हुआ। प्रारम्भमें तो वे ही चीज़ें बिक्रीके लिए आती थीं, जो उत्पादकके व्यवहारसे अतिरिक्त थीं; परन्तु बादमें बिक्रीके लिए ही चीज़ें बनने लगीं। बिक्रीके लिए चीज़ोंके उत्पादनकी प्रणाली प्रारम्भिक अवस्थामें थी, अतएव उसीके अनुपातमें बाज़ार भी संकुचित था और विनिमय भी। आगे चलकर वही बनिया कारीगरोंको वेतन देकर काम कराने लगा। उसका काम अब सिर्फ़ चीज़ोंको खरीदकर बेचना ही नहीं रह गया, बल्कि वह एक छोटे-से कारखानेका मालिक भी हो गया। अठारहवीं सदीके अन्तमें भाफ़से चलनेवाले यन्त्रोंका आविष्कार हुआ। बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ बनीं और बड़े-बड़े कारखाने खुले।

क्रान्तिके बाद उत्पादन कई गुना ज़्यादा बढ़ा और क्रमशः बढ़ता ही रहा। इसका अन्दाज़ हम इसीसे लगा सकते हैं कि मध्यकालीन युगमें यूरोपकी जनसंख्या लगभग एक-सी ही रही, न ज़्यादा घटी और न ज़्यादा बढ़ी; लेकिन क्रान्तिके बाद सौ वर्षोंके अन्दर ही वह बढ़कर दूनीसे भी ज़्यादा हो गई, फिर भी यूरोपके लिए उसका भरण-पोषण सम्भव ही रहा। घरमें काम करनेवाले कारीगरोंके जीवनमें भी एक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुआ। पहले वह अपने घरमें अपनी इच्छाके मुताबिक, जब चाहता था, काम करता था; लेकिन उसने पाया कि पहलेकी अपेक्षा अब उसका काम नियमित, सहज और तरतीबवार हो गया है। प्रत्येक दिन उसे फैक्टरीमें हाज़िर होना पड़ता है। इस प्रकार ठीक समयपर काम शुरू करना और ठीक समयपर घर जाना उसकी दिनचर्या हो गई।

इंग्लैण्डकी हालतमें बहुत बड़ा परिवर्त्तन हुआ। उत्पादनके बढ़नेके साथ-साथ व्यापारमें और सरगर्मी आई। लोगोंको ज़्यादा-से-ज़्यादा काम मिला। सुख-समृद्धि बढ़ी। लेकिन कुछ ही वर्षोंके बाद लोगोंने पाया कि यद्यपि वाष्प-यन्त्रोंके बलसे तथा उत्पादन करनेवाली शक्तियोंके सुसंगठित होनेसे उत्पादन कल्पनातीत परिमाणमें बढ़ा, देशमें धनकी वृद्धि हुई, फिर भी साधारण लोगोंकी हालत अच्छी होनेके बदले और खराब ही हुई। कुछ समयके बाद लोगोंने देखा कि पहले तो कुछ काम मिल भी जाता था; लेकिन अब काम मिलना तो दूर रहा, उसे अधिक-से-अधिक बेकारी ही बढ़ती जा रही है। उनके स्वास्थ्य और उनकी शिक्षामें उन्नति होना तो दूर रहा, उल्टे दो दाने अन्नके लिए भी उन्हें मुहताज होना पड़ रहा है। यहाँ तक कि १८२५ सालमें इंग्लैण्डमें हीं नहीं, बल्कि संसार-भरमें एक ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई कि उत्पादन ठप्प हो गया, व्यापारमें मन्दी आ गई तथा लोगोंकी बेकारी और ज़्यादा बढ़ गई। चीज़ोंकी क़ीमत गिरी, फिर भी लोगोंके पास पैसे नहीं कि अपनी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति कर सकें। उसके बादसे ऐसा देखा गया है कि हर दस या ग्यारह वर्षोंका अन्तर देकर ऐसी ही हालत पैदा हो जाती है। सारी चीज़ोंके रहते हुए भी कारबारमें एक विचित्र गड़बड़ी पैदा हो जाया करती है। मन्दी आती है और फिर धीरे-धीरे तेज़ी आती है और सभी कारखाने, सारा व्यापार पूर्ववत् चलने लगता है।

वर्त्तमान पूँजीवादी देशोंमें ऐसा पाया जा रहा है कि उत्पादनका काम कभी बड़ी तेज़ी और सरगर्मीसे चलता है तो उसके बाद ही मन्दी आ जाती है। अमरीकामें यह अवस्था कम या बेशी मात्रामें १८३७ से लेकर १९२९ तक कई बार आई। इन व्यापारकी तेज़ी और मन्दीके कई अनुभवोंने अर्थ-शास्त्रियोंका ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट किया और इस अवस्थाका नाम उन लोगोंने 'व्यापार-चक्र' (Trade cycle) दिया। इसकी कईएक तरहकी परिभाषाएँ भी उन्होंने कीं और इस दलदलसे निकलनेके लिए कईएक सुझाव भी पेश किए। हाट्ट्रेके मुताबिक "व्यापार-चक्र उस कालको कहते हैं, जिसमें बढ़ती हुई क़ीमतों और घटती हुई बेकारीके साथ व्यापार समृद्ध अवस्थामें हो और इसके बाद ही एक ऐसी अवस्था आ जाय, जब कि व्यापारकी स्थिति बिगड़ जाय, चीज़ों की दर गिर जाय और बेकारी हदसे ज़्यादा बढ़ जाय।"*

व्यापार-चक्रकी दो विशेषताएँ प्रमुख रूपसे ध्यान आकर्षित करनेवाली हैं: बेकारीकी कमी या बेशीके साथ उत्पादनकी तीव्रता या शैथिल्य और वस्तुओंकी दरका गिरना या तेज़ होना। असलमें होता यह है कि जब तेज़ी रहती है, तो अधिकतर अधिक माल तैयार होता है और बेकारोंकी संख्यामें अपेक्षाकृत कमी हो जाती है। चीज़ोंका मूल्य बढ़ जाता है और व्यापारको अत्यधिक लाभ होता है। इसके विपरीत जब मन्दी आ जाती है, तो मालकी खपत कम होने लगती है, अतएव चीज़ें कम तैयार होती हैं। मज़दूर बेकार होते जाते हैं और असमर्थ होकर बहुत-से मिलें बन्द हो जाती हैं।

चक्र शब्दकी भी अपनी विशेषता है। ऐसा देखा जाता है कि व्यापारकी चार अवस्थाएँ हमारे सामनेसे गुज़रती हैं। सबसे पहले तेज़ी आती है और उसके बाद ही अर्थ-संकट

* ट्रेड एण्ड क्रेडिट, पृ० ८१

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समना करना पड़ता है। अर्थ-संकट धीरे-धीरे मन्दीके रूपमें परिणत हो जाता है और फिर काल-क्रमसे मन्दी खतम होने लगती है और व्यापारमें गति आने लगती है। तेज़ीकी अवस्था में चीज़ोंका मूल्य बढ़ा हुआ रहता है। व्यापारमें नफ़ेकी बहुत बड़ी सम्भावना दीख पड़ती है। बड़े-बड़े पूँजीपति जो पहले डर-डरकर नए उद्योगोंमें रुपया लगाते हैं, वे बिना हिचकके झटकेके साथ रुपया लगाते जाते हैं। बहुतसे नए-नए उद्योग-धन्धोंका उस समय आविर्भाव होता है। पुराने कल-पुर्ज़ोंमें सुधार होता है। नई फैक्टरियोंके बनानेकी मानो होड़-सी लग जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि नित्य-व्यवहारवाली चीज़ोंका उत्पादन मशीन तथा फैक्टरी-निर्माणमें लगनेवाले सामानोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होने लगता है। इन बढ़ते हुए उद्योग-धन्धोंके लिए रुपएकी आवश्यकता बहुत बढ़ जाती है। बैंकका कारबार पूरा फैल जाता है। बैंक सूदकी दरमें वृद्धि कर देता है। बेकारी कम हो जाती है और साथ ही मजूरी भी पहलेसे कुछ अधिक हो जाती है। लोगोंके हाथमें पैसा आता है और उसे वे अपनी ज़रूरतकी चीज़ोंके लिए खर्च करते हैं। नित्य-व्यवहारवाली वस्तुओं (जैसे कपड़ा, अन्न इत्यादि) की माँग बढ़ जाती है, और इस माँगके साथ उनकी क़ीमतमें भी वृद्धि हो जाती है। इन चीज़ोंकी ओर स्वभावतः पैसेवालोंका ध्यान जाता है। वे उन्हें जमा करना शुरू कर देते हैं और सट्टेका बाज़ार गर्म हो जाता है। इससे बैंकोंसे और रुपयोंकी माँग बढ़ जाती है। इसके बाद दूसरी अवस्थाके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। बाज़ारकी ऐसी तेज़ीके रहनेपर भी एक ऐसी स्थिति आ जाती है, जब यह भावना फैलने लगती है कि चीज़ोंकी दर बेहद और नाजायज़ ढंगसे बढ़ गई है। लोगोंमें भयका संचार होने लगता है और इसका असर सट्टेके बाज़ारपर पड़ता है। मूल्य अत्यधिक बढ़ जानेके कारण लोग अपनी प्राण-रक्षाके निमित्त ही चीज़ोंको खरीदना शुरू करते हैं और अन्य अनावश्यक वस्तुओंकी बिक्री कम पड़ जाती है। अतएव इन अनावश्यक वस्तुओंका उत्पादन भी उसी हिसाबसे कम पड़ने लगता है। उन उद्योग-धन्धोंसे खर्च कम करनेके लिए मज़दूरोंका हटाना ज़रूरी हो जाता है। इससे स्थिति और खराब हो जाती है। बेकारी बढ़नेके साथ-साथ समाजकी क्रय-शक्ति और कम हो जाती है। माल और कम तैयार होता है, बेकारी और अधिक बढ़ती है। ऐसी हालतमें भयकी भावना बैंकपर भी अधिकार जमा लेती है। बैंक कर्ज़ देनेसे इन्कार करने लगता है और कर्ज़ दिए हुए रुपयोंका तक़ाज़ा शुरू हो जाता है। कर्ज़-अदायगीका प्रश्न व्यवसायियोंके सामने विकराल रूप धारण कर लेता है। जो लोग कर्ज़ चुकानेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं, वे तत्काल रुपया पानेके लिए अपनी चीज़ोंका मूल्य घटाकर बेचना शुरू कर देते हैं। लाभकी आशा नहीं रहनेके कारण बहुतसे उद्योग-धन्धे बन्द हो जाते हैं, जिससे बेकारी और बढ़ जाती है तथा जो चालू भी रहते हैं, वे मजूरी कम करना शुरू कर देते हैं। सभी चीज़ोंका मूल्य घट जाता है और व्यापारकी मन्दी शुरू हो जाती है। इस मन्दीकी हालतके कुछ दिनों तक गुज़र जानेके बाद चौथी अवस्था अर्थात् व्यापारकी गति फिर धीरे-धीरे शुरू हो जाती है। यह अवस्था तभी पैदा होती है, जब तेज़ीके समयकी नित्य-व्यवहारवाली चीज़ें खप जाती हैं और फिरसे उनके उत्पादनकी ज़रूरत पड़ती है। इस बीच कर्ज़-अदायगीके कारण बैंकके पास भी बहुत-कुछ रुपया आ जाता है और फिरसे कम सूदपर रुपया देना शुरू कर देता है। ये चार अवस्थाएँ दस या ग्यारह वर्षोंका अन्तर देकर संसारके सामने आती रहती हैं।

इन व्यापार-चक्रोंका असर सभी उद्योग-धन्धोंपर समान रूपसे नहीं पड़ता। निर्माणकारी उद्योग-धन्धों—जैसे कल-पुर्ज़े बनानेवाले, जहाज़ोंका निर्माण करनेवाले इत्यादि—पर इनका असर अधिक पड़ता है। तेज़ीके समय इनकी हालत सबसे अच्छी रहती है और मन्दीके समय सबसे खराब। लेकिन इसका यह मतलब लगाना ग़लत होगा कि सभी व्यापार-चक्रोंका ढंग एक-सा ही रहता है। इसे यंत्रवत् समझना ग़लत है। सबके मूलमें एक ही बात रहती है, सही; फिर भी प्रकारमें अन्तर पड़ सकता है। "सभी चक्रोंको, जिनका विवरण प्राप्त है, मिलाकर एक खास चक्र बनाया जाय, तो उस विशेष चक्रकी रूप-रेखा अन्य दूसरोंसे परिवर्त्तित नहीं होगी। फिर भी यह चक्र पिछले चक्रोंका हू-ब-हू रूपान्तर नहीं होगा। चक्रोंके छन्द अधूरे और व्यवस्थित होते हैं। यद्यपि सभी चक्र एक ही कुटुम्बके हैं, लेकिन उनमें कोई जुड़वाँ-से नहीं होते।"*

अब विचार यह करना है कि व्यापार-चक्र स्वयं अपनेमें एक रोग है या किसी रोगका बाहरी लक्षण। अभी तक अर्थ-शास्त्रियोंने इसे एक रोग समझकर ही इससे छुटकारा पानेके उपाय बतलाए हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि व्यापार-चक्र प्राकृतिक कारणोंसे होते हैं। जेवन्सने तो यह परिणाम निकाला कि १०.४५ वर्षोंका बीच देकर सूर्यमें एक विशेष प्रकारके धब्बे नज़र आते हैं, और जब ये धब्बे नज़र आते हैं, तो सूर्यसे कम रोशनी निकलती है, जिसके फल-स्वरूप फ़सल अच्छी नहीं होती। फ़सल अच्छी नहीं होनेके कारण किसानोंकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है, जिससे उनकी क्रय-शक्ति कम हो जाती है और इसी कारण मन्दी आती है। क़रीब इसी सिद्धान्तको संशोधित रूपमें एच० एल० मूर और विलियम बेवरीज वगैरह मानते हैं। खेती और उद्योग-धन्धेमें सम्बन्ध तो अवश्य है;

* पीगु : 'इण्डस्ट्रियल फ्लक्चुएशन', पृ० १५-१६।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु जब हम देखते हैं कि तेज़ीके समय निर्माणकारी सामानों (Production of capital goods) के उत्पादन करनेवाले उद्योग-धन्धेमें ज़्यादा सरगर्मी आ जाती है, तो उपर्युक्त सिद्धान्त ठीक नहीं जँचता।

अमरीकन अर्थशास्त्री इरविंग फिशर, टी० एन० कार्वर तथा ब्रिटिश अर्थशास्त्री जे० ए० हौब्सनका खयाल है कि नफ़ेका असम-वितरण ही व्यापारकी मन्दी लाता है। इन लोगोंके मतसे रुपएका—आमदनीका—ठीक ढंगसे बँटवारा नहीं होता। बैंककी सूद-दर चीज़ोंके बढ़ते हुए मूल्यसे पीछे पड़ जाती है, जिससे अत्यधिक तेज़ी होकर फिर मन्दी आ जाती है। कुछ ऐसा भी सोचते हैं कि नफ़ेकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे तेज़ी आती है और फिर यही बादमें अर्थ-संकटका रूप धारण कर लेती है। कुछका कहना है कि बढ़ते हुए मूल्यके साथ मजूरी नहीं बढ़ती है, इसलिए मन्दी आ जाती है। इस प्रकारके बहुतसे कारण बतलाए गए हैं। प्रश्नके मूलपर इन लोगोंने विचार नहीं किया है, अतएव ठीक सिद्धान्तपर पहुँचना इन लोगोंके लिए सम्भव नहीं है। विषाक्त रक्तके कारण उत्पन्न हुए फोड़ेका ही निदान ये लोग करते हैं और उसीके अनुरूप उसकी दवा भी। नतीजा यह हुआ है कि आज तक ये व्यापार-चक्र वशमें नहीं किए जा सके हैं।

इनसे छुटकारा पानेके लिए बहुतसे उपाय बतलाए गए हैं, जिनमें दो प्रमुख हैं। एक तो यह है कि एक ऐसी प्रतिनिधि-समितिका संगठन होना चाहिए, जो उद्योग-धन्धोंमें ग़लत ढंगसे लगनेवाली पूँजीपर नियन्त्रण करे और इसके साथ ही चीज़ोंके मूल्यपर भी नियन्त्रण रखे, जिसमें वह न ज़्यादा बढ़ सके और न बहुत ज़्यादा घट सके। बैंक भी इसमें सहयोग करें। वे तेज़ीके समय सूद-दर ज़्यादा बढ़ा दें और हो सके तो कर्ज़ देनेमें एक विशेष प्रकारकी व्यवस्था रखें, जिसके मुताबिक एक खास परिमाण तक ही विशेष उद्योग-धन्धोंमें रुपया लगने पाय।

दूसरा तरीक़ा पहले-पहल इंग्लैण्डके 'पूअर ला कमीशन' (१९०६-९) के अल्प-मतवालोंकी रिपोर्टमें सुझाया गया था। उसमें बतलाया गया है कि केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारोंको मन्दीके ज़मानेमें जनताकी भलाईवाले कार्यों—जैसे नई सड़कें बनाना आदि—को ज़्यादा-से-ज़्यादा करना चाहिए और तेज़ीके समय अपेक्षाकृत इन्हें कम करना चाहिए। इसका फल यह होगा कि मन्दीके समय काम करनेवालोंको कुछ-न-कुछ पैसे मिलते जायँगे, जिनसे वे चीज़ें खरीद सकते हैं, और इस प्रकार कुछ उद्योग-धन्धे चालू रखे जा सकते हैं। कुछ लोगोंका सुझाव यह भी है कि मज़दूरोंके लिए एक इन्श्योरेन्स फण्ड का प्रबन्ध तेज़ीके समय किया जाय और उसका उपयोग मन्दीके समय हो। जो मज़दूर लाचारीसे बेकार हों, उन्हें उसमें से दिया जाय। इसका नतीजा यह होगा कि कुछ उद्योग-धन्धे चालू रह सकते हैं, क्योंकि कुछ क्रय-शक्ति समाजके अन्दर वर्त्तमान रहेगी। लेकिन अनुभव यह बतलाता है कि ये सब उपाय कारगर साबित नहीं हुए। जब हम १९२९ की संसारव्यापी मन्दीपर ग़ौर करते हैं, तो हमें पता लगता है कि ऊपरसे किए गए ये मरहम-पट्टीके कार्य बेकार ही रहे। अतएव हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि आख़िर इसका रहस्य क्या है? क्या कारण है कि तेज़ी और मन्दी तब मन्दी और तेज़ी हज़ार कोशिश करनेपर भी आ ही धमकते हैं? इसके लिए हमें आजकी उत्पादन-प्रणालीकी छान-बीन करनी पड़ेगी।

हम पहले ही कह आए हैं कि मध्य-युगके उत्पादकका दायरा उसके घर तक ही सीमित था। उत्पादनका उद्देश्य अपने और अपने परिवारकी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति ही था। चीज़ोंका विनिमय मुद्रापर आधारित नहीं था, अतएव चीज़ें सौदेके रूपमें नहीं तैयार की जाती थीं। बादमें जब वह अपनी आवश्यकतासे ज़्यादा तैयार करने लगा, तो उसको चीज़ें बिक्रीके लिए बाज़ारमें आने लगीं। जब छोटे पूँजीपतिके रूपमें पहलेके बनियेका परिवर्त्तन हुआ, तब स्थिति कुछ दूसरी हो गई। उसके कब्ज़ेमें चीज़ोंके तैयार करनेवाले मज़दूर आए। उसका अपना एक छोटा-सा कारख़ाना हुआ। कच्चे मालका खरीदना और उसकी खपत तथा और उत्पादनके दूसरे-दूसरे इन्तज़ाम करना अब उसका मुख्य काम हो गया। अतएव जो भी चीज़ तैयार होती थी, उसपर उस पूँजीपतिका अधिकार हुआ। जो चीज़ोंका असल उत्पादक था, उसका उनपर सिवा अपनी मज़दूरीके कोई भी अधिकार नहीं रहा। जो माल तैयार होता था तथा जिन मशीनोंसे वह तैयार होता था, उसका ढंग बदल गया। वह माल अब एक व्यक्ति द्वारा तैयार न होकर कईएक आदमियों के परिश्रमसे तैयार होना शुरू हुआ। एक ही चीज़ कईएक आदमियोंके हाथसे गुज़रती हुई और भिन्न मशीनोंके उपयोगसे तैयार होने लगी। इस समय कोई ऐसा नहीं कह सकता कि अमुक चीज़ सिर्फ़ हमारे हाथों द्वारा अमुक मशीनसे तैयार हुई है। इस दृष्टिसे उत्पादक और उत्पादन करनेवाली मशीन सामाजिक ढंगकी हो गईं।

पहलेका सौदा तैयार करनेवाला व्यक्ति यह नहीं जानता कि जिस चीज़को वह बना रहा है, उसकी ज़रूरत किसीको है या नहीं, उसकी बिक्री होगी या नहीं। उत्पादनमें अराजकता थी। उत्पादनके सामाजिक ढंगका होनेपर भी पूँजीवादी प्रणालीमें ठीक वही अराजकता आ गई। उत्पादनकी किसी भी प्रणालीमें सामाजिक सम्बन्धोंका एक विशिष्ट स्थान होता है, जो अर्थ-जकतापर हावी होते हैं। इसको हम यों समझ सकते हैं कि समय उन्हीं चीज़ोंको ज़्यादा रखना चाहेगा, जिनकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अधिक-से-अधिक हो। जिन चीज़ोंमें उसे ज़्यादा नफ़ा होगा, उनसे वह परिणाम निकाल सकता है कि इस वक्त लोगोंको किस चीज़की ज़्यादा आवश्यकता है। बहुत अनुभवके बाद उत्पादक इस बातका पता पाता है और अलग-अलग उत्पादन करनेवाले उस विशेष वस्तुके उत्पादनमें लग जाते हैं और वे बादमें पाते हैं कि उनके बिना जाने, बिना चाहे भी वे एक-दूसरेकी प्रतियोगितामें आ गए हैं।

इस प्रतियोगिताका नतीजा यह होता है कि उत्पादक कम-से-कम कीमतमें अपने सौदेको बाज़ारमें लाना चाहता है। इसके लिए उसे बहुतसे उपाय करने पड़ते हैं। उत्पादनमें वृद्धिके उद्देश्यसे मशीनोंमें सुधार होता है। मज़दूरी घटानेकी कोशिश होती है। मशीनोंके सुधारसे बहुतसे मज़दूर बेकार हो जाते हैं। "श्रम-कालको कम करनेके लिए जो सबसे प्रभावशाली हथियार (मशीन) है, वही मज़दूरों तथा उनके परिवारवालोंके समयके प्रत्येक क्षणपर पूँजीपतिका क़ब्ज़ा रखनेका सफल साधन बन जाता है, जिसे वह पूँजी बढ़ानेके उपयोगमें लाता है।"*

इसके फल-स्वरूप पूँजीपति उनसे मनमाना काम लेता है। कुछ लोगोंसे अधिक परिश्रम कराकर वह फ़ायदा उठाता है और उसीके अनुपातसे दूसरोंकी बेकारी बढ़ती है। एक तरफ़ बेकारी बढ़ती है और दूसरी तरफ़ दौलत। जो वर्ग उत्पादन करता है और पूँजीको अधिकाधिक बढ़ाता है, उसके बाँटे दुःख, दरिद्रता और मानसिक ह्रास पड़ते हैं। इस प्रकार उत्पादन बढ़ता जाता है; लेकिन खरीदार उसके हिसाबसे उसी तरह बढ़नेके बदले घटते जाते हैं। ये दोनों पूँजीवादी प्रणालीमें साथ-साथ बढ़ते हैं। नतीजा यह होता है कि दोनोंका संघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है। एक तरफ़ गट्ठरके गट्ठर माल पड़े हुए हैं और दूसरी तरफ़ उन चीज़ोंके लिए लालायित लोग पैसा नहीं होनेके कारण खरीद नहीं सकते। व्यापार ठप्प हो जाता है। बाज़ारोंमें माल भर जाता है। रुपएकी कमी हो जाती है। बहुतोंका दिवाला निकल जाता है। बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ बन्द हो जाती हैं। यह अवस्था तब तक रहती है, जब तक पहलेका तैयार किया हुआ माल खप नहीं जाता। उसके बाद फिर वही रवैया शुरू हो जाता है।

फैक्टरीके भीतर उत्पादन करनेवाली शक्तियोंका समष्टिगत संगठन इतना आगे बढ़ गया है कि समाजके अन्दर उत्पादनकी अराजकतासे उनका मेल नहीं खाता। जब भी कोई आर्थिक संकट उपस्थित होता है, यह चीज़ और स्पष्ट हो जाती है। उस समय छोटी-छोटी कम्पनियोंको बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ एक प्रकारसे हड़प लेती हैं, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन-प्रणालीका दिवालियापन बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। पूँजीवादका सारा संगठन तितर-बितर हो जाता है। उत्पादन करनेवाली सारी शक्तियाँ—मैशीन, मज़दूर, जीवन-निर्वाहके सभी साधनः अन्न-वस्त्र इत्यादि—प्रचुर मात्रामें वर्त्तमान रहती हैं; लेकिन उत्पादनका काम आगे नहीं चल पाता है। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें लाचारी-ही-लाचारी नज़र आती है। लगता है कि अपने हाथों यह होनेवाला है। प्रकृतिके कठोर और निर्मम नियमकी नाईं यह स्थिति संसारके सामने उपस्थित हो जाती है।

ऐसी हालतमें जब कईएक छोटी और बड़ी कम्पनियोंको आत्मसात्कर बड़ी कम्पनियाँ उत्पादन करना शुरू कर देती हैं, तो हम दो-तीन निष्कर्षपर पहुँचते हैं। पहला तो यह कि असंगठित उत्पादन और प्रतियोगिताके आधारपर (जिसकी बुनियाद व्यक्तिगत नफ़ेपर है) अब उत्पादन असम्भव-सा है। दूसरा यह कि उत्पादनका समष्टिकरण अत्यधिक होता जा रहा है, जैसा कि हम छोटी-छोटी कम्पनियोंको मिलाकर एक करनेकी चेष्टामें देखते हैं। तीसरा यह कि उत्पादनके लिए कोई ज़रूरी नहीं है कि पूँजिपतिका रहना आवश्यक ही हो। उत्पादनके सभी साधनोंके रहते हुए भी उत्पादनका कार्य अग्रसर नहीं हो पाता, तो हमें यह सोचनेके लिए विवश होना पड़ता है कि क्या अपनी असमर्थता प्रकट करके ही हमें सन्तोष कर लेना चाहिए? क्या उत्पादनके साधनोंको इसी प्रकारसे व्यर्थ और बरबाद होने देते रहना चाहिए? व्यापार-चक्रोंका पुनः-पुनः प्रकट होना इसी ओर इशारा कर रहा है।

* Capital, P. 455, Kerr Edition.

निर्माण-गीत

श्री आनन्दवर्द्धन विद्यालंकार

मैं गाऊँ ; तुम गाओ !
बनकर मधुमय कण्ठ विश्वके विवृत व्योममें छाओ !
मैं गाऊँ ; तुम गाओ !
एक हमारा स्वर-बन्धन हो, एक हमारा राग ;
एक हमारे हृत्कम्पनमें जागें शत अनुराग ;
तुम चिर-स्नेहमयी अंग-जगमें अचल ऐक्यकी प्रभापूर्ण, शुचि ;
अकलुष रश्मि जगाओ ! मैं गाऊँ ; तुम गाओ !

बना रहे आह्लाद हमारा हृदय-हृदयका गान ;
बने रहें उत्फुल्ल नेत्र ये युग - युगके वरदान !
बना रहे यह हम दोनोंका मधु नव - यौवन, प्राण !
जर्जर - जीर्ण सृष्टिकी कायाका अभिनव निर्माण !
बन आऊँ मैं शीर्ण शिशिरकी झंझाका - सा !
तुम वसन्तकी मलय पवन-सी गन्ध - भरी बन आओ !
मैं गाऊँ ; तुम गाओ !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दीके हितैषी क्या करें?

श्री चन्द्रबली पांडे

स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचन्द्रजी शुक्लके सहसा उठ जानेसे बहुतोंको बहुत-कुछ कहनेका अवसर मिल गया। सभीने कुछ-न-कुछ अपने-अपने ढंगपर कहा। उनमें से राय-बहादुर विद्यावाचस्पति डाक्टर श्यामसुन्दर दासने उनके विषयमें जो-कुछ लिखा, वह विषयकी अपेक्षा व्यक्तित्वका ही जीता-जागता मरसिया अथवा क्षोभका ही छपा परिणाम था। अतः उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। उसमें जाननेकी नहीं, माननेकी ही बात अधिक थी; किन्तु उनके ग्रन्थ 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' के विषयमें जो-कुछ काशी-विश्वविद्यालयके वार्षिक विवरणमें छपा, उसपर विचार करना इसलिए अनिवार्य हो गया कि जहाँ-तहाँ यह सुनाई पड़ने लगा कि उसमें उक्त विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके कतिपय व्यक्तियोंका भी कुछ हाथ है। जहाँ तक सुननेकी बात थी, इसे चुपचाप सुन लिया गया। बोलनेका जन्म-सिद्ध अधिकार मानवको जो सहज ही प्राप्त है, उसका अपहरण क्यों किया जाय? पर अपने आश्चर्यका ठिकाना उस दिन नहीं रहा, जिस दिन एक छात्रने लाकर प्रत्यक्ष दिखा दिया कि जो कुछ जहाँ-तहाँ कहा जा रहा है, वह सूक्ष्म रूपसे विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके विवरणमें भी विराजमान है। निदान बहुत-कुछ सोच-समझकर स्थितिको स्पष्ट करनेके विचारसे उक्त विश्वविद्यालयके करणिक महोदयको (११-११-४३) लिखा गया—

"श्रीमानको विदित ही है कि काशी-विश्वविद्यालयके १९४०-१ के वार्षिक विवरणके पृष्ठ ४१ पर हिन्दी-विभागके अनुशीलनके सम्बन्धमें लिखा गया है—

"The most important creation of the Deptt. was the revised and enlarged edition of the History of Hindi Literature (Hindi Sahitya Ka Itihasa) written by the late Acharya Pandit Ramachandra Shukla."

"इससे सिद्ध होता है कि स्व० आचार्य शुक्लजीके 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास'का जो संशोधित और संवर्द्धित संस्करण नागरी-प्रचारिणी सभासे निकला है, उसमें आपके उक्त विभागका विशेष योग है। ऐसी परिस्थितिमें एकका यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह स्व० शुक्लजीपर कुछ लिखनेके पहले यह स्पष्ट जान ले कि वास्तवमें उनके 'इतिहास'के उक्त संस्करणमें आपके हिन्दी-विभागका कितना हाथ है और उनके आँख मूँदनेपर कहाँ-कहाँ, किस मात्रामें उसने क्या-क्या और कितना योग दिया है? कहनेकी बात नहीं कि उक्त संस्करणमें इसका कोई निर्देश नहीं है और उससे किसी प्रकार यह सिद्ध भी नहीं हो पाता।

"साथ ही बड़ी कृपा होगी, यदि आप यह भी स्पष्ट करनेका कष्ट करें कि क्या सचमुच 'गद्यभारती' आधुनिक हिन्दीके गद्य-साहित्यका आलोचना-ग्रन्थ है? कारण कि उसके बारेमें भी उक्त विवरणमें वहीं लिखा गया है—

"Pandit Keshava Prasad Misra prepared in collaboration with Pandit Padma Narayan Acharya, M.A. *Gadya Bharti*, a book of criticism on the prose literature of Modern Hindi. The book has been prescribed for the Intermediate examination in Arts of the University."

"परन्तु इस विश्वविद्यालयकी इण्टरमीडियट-परीक्षाकी पाठ्य-पुस्तकोंमें जो 'गद्यभारती' है, वह आधुनिक हिन्दी-गद्य-साहित्यकी आलोचना-पुस्तक नहीं, वस्तुतः संग्रह-पुस्तक है और फलतः पढ़ाई भी तभीसे जा रही है आर्ट्स तथा साइन्स कालेजोंके इण्टरमीडियट-कक्षाओंमें पाठ्य-पुस्तकके रूपमें ही।

"ऐसी स्थितिमें, आशा है कि आप शीघ्र यथोचित उत्तर देनेकी कृपाकर विनीतको चिर-कृतज्ञ करनेका कष्ट करेंगे और यदि प्रमादवश ऐसा छप गया हो, तो उसे दूर करनेका यत्न करेंगे।"

करणिक महोदयने इसका जो उत्तर (२२-१२-४२) दिया, सन्तोषप्रद न रहा। निदान उनको फिर लिखा गया—

'श्रीमानकी सेवामें स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचन्द्रजी शुक्लके जिस ग्रन्थके सम्बन्धमें आपसे जिज्ञासा की गई थी, उसकी पूरी छानबीन करनेके उपरान्त भी आपके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष की बात समझमें न आ सकी। आपसे जिज्ञासा की गई थी कि स्व० शुक्लजीके उक्त ग्रन्थमें उनके अतिरिक्त 'आपके हिन्दी-विभागका कितना हाथ है और उनके आँख मूँदनेपर कहाँ-कहाँ, किस मात्रामें उसने क्या-क्या और कितना योग दिया है?' किन्तु उक्त विभागके अध्यक्ष महोदयने मूल प्रश्नको तो छोड़ दिया और न-जाने किस न्यायके आधारपर लिख दिया—

"The revised edition of the work was published in the year and it was doubtless the creation of the Deptt. As Acharya Shukla belonged to it."

"किसीको इस बातमें सन्देह कब हुआ कि स्वर्गीय शुक्लजीका 'संशोधित और संवर्द्धित संस्करण' विभागका नहीं है, जो इस प्रकार तर्क उपस्थित किया गया है। नहीं, सोधा प्रश्न तो यह है कि उसमें शुक्लजीके अतिरिक्त कहीं किसीका हाथ है अथवा नहीं? विभागके अध्यक्ष महोदय इसे क्यों पी जाते हैं? तनिक ध्यानसे देखिए तो आपका वार्षिक विवरण क्या बोलता है। वह कहता है—

"The . . . .Shukla."

"क्या आप सरलतासे कह सकते हैं कि इससे ध्वनित नहीं होता कि स्वर्गीय पंडित रामचन्द्रजी शुक्लने जिस 'इतिहास'को रचा था, उसका 'संशोधन' और 'संवर्द्धन' विभागके द्वारा हुआ? यदि हाँ, तो ऐसा क्यों लिखा गया और आज पूछनेपर इसका ठीक-ठीक उत्तर क्यों नहीं दिया जाता? क्या आप बता सकते

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं कि आपके १९३८-३९ के विवरणमें उक्त ग्रन्थके 'संशोधित' और 'संवर्द्धित' संस्करणके विषयमें जो-कुछ लिखा गया है, उसका रहस्य क्या है ? उसमें स्पष्ट कहा गया है—'(2) History of Hindi Literature (हिन्दी-साहित्यका इतिहास) revised and enlarged.' (पृ० २२)

"सच बात तो यह है कि उक्त आचार्यजीका उक्त ग्रन्थ १९३८-३९ और १९३९-४० के अनुशीलनका परिणाम है, न कि १९४०-४१ का, जैसा कि उक्त अध्यक्ष महोदय दिखाया चाहते हैं और इस प्रकारकी चेष्टासे न-जाने कौन-सा कार्य सिद्ध करना चाहते हैं।

"हाँ, और भी विचित्र बात तो यह है कि अध्यक्ष महोदय स्वयं अपनी रचनाके विषयमें लिखते हैं—

"The original report which was sent by the Deptt. contained like this : The prose selection of Modern Hindi with criticism on each piece."

"समझमें नहीं आता कि जब अध्यक्ष महोदयने अपनी रचनाके विषयमें ऐसा-कुछ लिखा, तब वह किस दैवी प्रेरणासे उक्त विवरणमें वैसा-कुछ छप गया कि उनकी बन गई और वह कुछसे कुछ हो गया यह—'A book of critcism on the prose Literature of Modern Hindi.' और यदि किसी प्रकार छप ही गया, तो अध्यक्ष महोदयने उसे सुधारनेका श्रम क्यों नहीं किया ? क्या आप ऐसे ही उत्तरको सन्तोषप्रद समझते हैं ? यह तो और भी रहस्यमय है !

"एक बात और। अध्यक्ष महोदयकी जिस रचना—'गद्य-भारती'—के विषयमें आपने विवरणमें कुछ-का-कुछ छाप दिया है, उसकी रचना भी वस्तुतः १९३९-४० में ही हुई होगी। कारण कि वह सन् १९४२ की इण्टरकी परीक्षाकी पाठ्य-पुस्तक है। यदि यह ठीक है, तो इस दोहरे रहस्यका कारण क्या है, और क्यों सन् १९४०-४१ के विवरणमें हिन्दी-विभागके अध्यक्षके सम्बन्धमें ऐसा-कुछ गोलमाल है ? गोलमालका नाम केवल इसलिए लिखा गया है कि आप इसीको सन्तोषका कारण समझते हैं और विश्वविद्यालयके 'विवरण'के विषयमें भी सीधे विभागके अध्यक्षसे पूछनेको कहते हैं। जो हो, हमारी खड़ी प्रार्थना यह है कि या तो स्पष्ट करें कि स्वर्गीय शुक्लजीके उक्त 'संस्करण'में उनके अतिरिक्त उक्त विभागका कोई योग है अथवा खुली घोषणा की जाय कि वस्तुतः वस्तुस्थिति क्या है और क्यों उक्त ग्रन्थके सम्बन्धमें ऐसा गोलमाल लिखा गया है।"

करणिक महोदयको १-३-४४ को यह पत्र लिखा गया था। अन्तमें ३१-७-४४ को उन्होंने 'हिन्दी'में ही उत्तर दिया—

"श्रीमान् पं० चन्द्रबलीजी पाण्डेय,

आपके एक-दो पत्र मिले। हिन्दी-विभागमें भेजकर सम्मति प्राप्त की। आपने 'गद्यभारती'के विषयमें लिखा, उस त्रुटिको शुद्ध कर लिया गया है, अर्थात् वह Book of criticism नहीं, किन्तु Selections with criticism of each piece है। स्व० पण्डित रामचन्द्रजी शुक्लने जो-कुछ भी लिखा, उसका श्रेय उक्त पण्डितजी तथा उनके संचालित विभागको सदा मिलना चाहिए। इसमें कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं। यदि आपको अब भी इन बातोंसे असन्तोष हो, तो कृपया हिन्दी-विभागके अध्यक्षसे इस विषयमें विचार-विनिमय कर लीजिए। हिन्दी-विषयमें उनका अथवा उनकी समितिका मत हमें शिरोधार्य होता है।

भवदीय,

गंगाप्रसाद महता।",

श्री महताजीके इस पत्रसे स्थिति स्पष्ट हुई और यह निश्चित हो गया कि स्व० शुक्लजीके ग्रन्थके विषयमें जो-कुछ उन्हें मिला, उन्होंने छाप दिया और जो-कुछ उसमें संशोधन किया जायगा, उसे वे ठीक कर देंगे। पर यह संशोधन करे कौन ? 'अध्यक्ष' की दृष्टिमें तो यह सर्वथा साधु है। अस्तु, उनसे कुछ पूछना व्यर्थ समझकर 'विभाग'के दो अन्य व्यक्तियोंसे एक ही पत्र द्वारा यह पूछा गया कि उक्त ग्रन्थमें उनका भी कुछ योग है अथवा नहीं। कहना न होगा कि उनमें से उसी महाशयका कोई उत्तर नहीं मिला, जिसका उत्तर मिलना अनिवार्य था। अर्थात् 'शर्मा तथा आचार्य'जीमें से केवल श्री शर्माजीने उत्तर दिया, श्री आचार्यजीने नहीं। कारण कौन कहे ?

हाँ, तो श्री शर्माजीका उत्तर भी कुछ उड़ता हुआ था; परन्तु उन्होंने स्पष्ट मान लिया था कि उनका उस ग्रन्थमें कोई योग नहीं है। शेष विषयके बारेमें भी उन्होंने पूछनेपर २१-८-४४ को लिखा—

"प्रिय चन्द्रबलीजी,

आपका कृपापत्र मिला। आपके पत्रका केवल एक अभिप्राय मालूम पड़ता है—कि एक लिखित सूचना दी जाय—विभागके अध्यक्षके द्वारा; उसमें यह कहा जाय कि 'वस्तुतः उक्त इतिहासके संशोधन एवं परिवर्द्धनमें हिन्दू-विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागका कोई योग नहीं रहा। वह सब-कुछ स्वर्गीय शुक्लजीका ही किया है।' यदि आपका यही अभिप्राय है, तो इस पत्रके द्वारा मैं विभागकी ओरसे आपके अभिप्रायका समर्थन करता हूँ।

भवदीय,

जगन्नाथप्रसाद शर्मा।"

इसके उत्तरमें निवेदन यह किया गया—

"भाई सीधी-सी और खड़ी बात तो यह है कि 'विभाग' सच्ची बात लिखकर करणिक महोदयके पास भेज दे, जो उक्त 'विवरण'में उसे कृपया ठीक कर दें और उसका उचित विज्ञापन कर दें।"

परमात्मा जाने इसमें कौन-सी बात ऐसी आ गई कि उन्होंने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी चुप्पी साध ली और आज तक इसका कोई उत्तर भी न दिया। क्या 'विभाग'के इस व्यवहारका स्पष्ट अर्थ यही नहीं है कि उसने जो-कुछ 'विवरण'में छपवाया है, वही साधु है? उसमें जो दोष आ गया था, उसका निराकरण तो कर दिया गया; पर जो सर्वथा साधु है, उसमें परिवर्त्तन क्यों किया जाय? है न यही इसका अभिप्राय? यदि हाँ, तो समझमें नहीं आता कि उक्त शर्माजी विभागकी ओरसे समर्थन किसका करते हैं और क्यों नहीं 'विभाग'की ओरसे यही बात लिखकर करणिक महोदयके पास भेज देते, जो इसे भी ठीक उसी प्रकार 'शुद्ध कर' लेते, जिस प्रकार कि कृपाकर 'गद्यभारती'को उन्होंने शुद्ध कर लिया है?

स्थिति जनताके सामने आ चुकी है। 'विभाग' अपनी बात पर अड़ा है। 'विवरण'में 'विभाग'की सम्मतिके बिना करणिक महोदय सचमुच कुछ कर नहीं सकते। 'विभाग' न तो यही बताता कि वस्तुतः स्वर्गीय शुक्लजीके उक्त संस्करणमें कहीं भी उनके अतिरिक्त उसके किसी अन्य लालका कोई योग है और न यही करता कि इसे स्पष्ट करणिक महोदयके पास लिख भेजे। ऐसी स्थितिमें हम हिन्दीके सपूतोंका कर्त्तव्य क्या है, इसको स्मरण करानेके लिए ही यह लेख छपाया जा रहा है। क्या काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा तथा काशी-विश्वविद्यालयके कर्णधारोंसे यह आशा की जा सकती है कि वे कृपाकर स्थितिको स्पष्ट कर दें, जिससे भविष्यमें उस 'इतिहास'के निर्माणके विषयमें भी खोजियोंमें यह विवाद न उठे कि वास्तवमें उसके 'संशोधित और संवर्द्धित' संस्करणमें कितना किसी 'मिश्र' और कितना किसी 'आचार्य'का है और विवाद उठनेपर विश्वविद्यालयका यह शुद्ध किया हुआ विवरण और भी उस स्वर्गीय आत्माके प्रतिकूल पड़े। अरे! क्या यही न्याय और यही धर्म है? क्या अब हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागमें यही शिक्षा दी जायगी और हिन्दू-विश्वविद्यालय इसीका अनुमोदन भी करेगा?

दिया-तले अँधेरा

श्रीराम शर्मा 'राम'

यह कथा एक ऐसे दैनिक पत्रके कार्यालयकी है, जो देशसेवा, आदर्शों और दरिद्रनारायणकी सेवाका हिमायती है। कार्यालयमें दो सौसे कम व्यक्तियोंका परिवार नहीं है। पत्र देशकी चहुँमुखी प्रगतिका पृष्ठपोषक है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक शृंखलामें आमूलचूल परिवर्त्तन करनेके साथ वह देशकी आर्थिक अवस्थाके प्रति भी विशेष सजग है। कार्यालयमें बारह वर्षकी आयुवाले लड़कोंसे लेकर पचास और साठ वर्ष तक की आयुके व्यक्ति काम करते हैं। उन्हींमें एक जग्गू नामका चपरासी है। जग्गू अभी मुश्किलसे बारह-चौदह वर्षका हुआ है। कार्यालयमें वह चपरासीका काम करता है। बारह अथवा चौदह रुपए ही उसे वेतनके रूपमें मिलते हैं।

जग्गूको काम करते हुए एक वर्षके लगभग हो गया। दिन-भर ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर कार्यालयकी तिमंज़िला इमारतमें भागते रहना ही जैसे उसका जन्मसिद्ध अधिकार और कर्म बन गया है। किसी भी क्लर्क, मैनेजर अथवा सम्पादककी आवाज़ सुनते ही तीरकी तरह भागकर सामने जा खड़ा होना मानो उसका आदिकालसे चला आया लगा-बँधा कर्म बन गया है। 'अरे जग्गू, इधर आ।' 'एक गिलास पानी तो पिला।' 'वह फ़ाइल उठाकर ला।' 'अबे, जल्दी! और देख रे जग्गू, यह चिट्ठी मैनेजर सहाब···सम्पादकजीको देके आ···जल्दी-जल्दी।' इस प्रकार जग्गू फिरकनीकी तरह चारों ओर नाचता है और दिनमें अनेक बार घड़ीकी ओर देख ड्यूटीके आठ-दस घण्टे बितानेकी चेष्टा करता है। यहाँसे वहाँ और जहाँसे तहाँ दौड़ते रहनेके साथ 'जी, बाबूजी'का एकमात्र शब्द उसकी जिह्वासे बँधा हुआ मुँहसे निकलता रहता है और पैरोंका दौड़ना अविरत गतिसे चालू रहता है। कभी साँस फूल जाती और थककर जग्गू बैठता, तो जाने अपने भाग्यके विरोधसे अथवा कार्यालयकी परम्परासे तुरन्त कह दिया जाता—'अरे, बैठ गया, जग्गू! पान ला...सिगरेट। बीचमें कहीं बैठ मत जाना···हाँ, जल्दी!'

जग्गू इस भाग-दौड़ और नौकरीकी चिन्तासे ही शायद पहलेसे आधा रह गया है। कार्यालयमें जब आया था, तो बाल-सुलभ कोमलता और खिलते हुए कमलकी तरह किसी भी बच्चे के समान उसके मुँहपर आभा थी। पर अब उसका गोरा-गोरा मुँह काला पड़ चला था। पहले-पहल जग्गूका पिता जब उसे कार्यालयमें नौकरीके लिए लाया, तो अपनी विवशताको देखकर भी न-जाने कितने भरोसेपर उस अपने एकमात्र पुत्रको मैनेजरके हवाले कर गया। उस समय जैसे बरबस उसके मुँहसे निकल गया—'बाबूजी, जग्गू मेरा इकलौता बेटा है। वह अपनी अन्धी माँका उजाला और बूढ़े बापका एकमात्र सहारा है। अब वह आपकी दयापर ही...।'

यह सुन मैनेजरने सदासे चली आई अपनी अभ्यस्त वाणीमें कह दिया—'हाँ, जग्गू ठीकसे काम करेगा, तो इसका वेतन और बढ़ा दिया जायगा।'

निदान जग्गू काम करने लगा। पहले जहाँ कार्यालयमें उस कामके लिए दो आदमियोंकी जगह खाली थी और पहले रखे हुए उन दो व्यक्तियोंको पच्चीस-पच्चीस रुपए वेतन मिलता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था, वहाँ उनकी जगह अब अकेला जग्गू ही बारह रुपएपर काम करनेके लिए बाध्य किया गया। जब जग्गू नहीं आया था, तो पत्रमें चपरासियोंकी जगहके लिए रोज़ विज्ञापन निकलता था; लेकिन चतुर मैनेजरने जब जग्गूसे ही काम चलता देख लिया, तो उस विज्ञापनको बन्द कर दिया।

जग्गूने भले ही एक ज़िम्मेदारीका काम अपने ऊपर ले लिया हो; परन्तु उसका बाल-स्वभाव जब-तब उसे अपनी याद ज़रूर दिलाता। अक्सर वह नौकरी और कामको भुला देता तथा बाबुओंकी आँख बचा मैनेजर और मालिकके बच्चोंके खेलोंको खड़ा होकर देखने लगता। कभी-कभी स्वयं भी उनके साथ खेलने लगता। उन छोटे बच्चोंकी दृष्टिमें जग्गू भले ही उनका नौकर था; परन्तु उनमें अभी छोटे-बड़ेका भेद-भाव नहीं आया था। इसके विपरीत उनमें जग्गूके प्रति प्यार और मित्रताका भाव था। अपने प्रति जग्गू उनसे जितना अपनत्व पाता, उसीका यह परिणाम था कि वह छुट्टीके दिन भी कार्यालयके दरवाज़ेपर आ बैठता। रज्जू, शशी या अजयमें से कोई बाहर आ जाय, वह इसीकी कामना करता। लेकिन ऐसा सुयोग बहुत कम होता था। जब देर तक भी उसे कोई न दिखाई देता, तो वह लौट जाता। मालिक और मालकिनके सामने जानेका साहस उसको नहीं था। और न-जाने किस प्रेरणासे वह इसे अपनी अनधिकार चेष्टा भी समझता था। एक दिन मालकिनने उसे बच्चोंके साथ खेलते हुए देख डाँट दिया था और कान पकड़कर कभी ऐसा न करनेके लिए भी उससे प्रतिज्ञा करवा ली थी। इसे जग्गू अभी नहीं भूला था। परन्तु न-जाने किस भावनासे आश्वस्त होकर वह बच्चोंके साथ खेलता अब भी था।

एक दिन जब मैनेजरके कमरेसे जग्गूकी बुलाहट हो रही थी, तो वह खेलमें इतना व्यस्त था कि अपने कामको भी भूल गया। निदान जब वह कुछ देर बाद मैनेजरके पास गया, तो उसे देखते ही कहा गया—'अरे जग्गू, तू कहाँ मर गया था? तू अगर काम नहीं करना चाहता, तो जाकर अपना हिसाब ले ले। ऐसे नहीं चलेगा।'

यह सुनकर जग्गू सचमुच ही निरा दीन बन गया। उसके छोटे और भोले मुँहपर वेदनाका भाव झलक आया और उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'बाबूजी,···अब आगेसे कभी नहीं···'

'नहीं, नहीं, तुझे काम नहीं करना···तुझे खेलना है। जा, खेल। तेरी छुट्टी है। कामसे जी चुराता है और ऊपरसे तनख्वाह बढ़ानेके लिए कहता है। पाजी कहींका।'

जग्गूने फिर आकुल होकर कहा—'अब कभी नहीं खेलूँगा, बाबूजी।' और वह बाबूजीके परोंकी ओर झुक गया।

आखिर बाबूजी दयालु और बाल-बच्चोंवाले थे; जग्गूकी आर्त्त-पुकार सुन पिघल गए और जग्गूका अपराध क्षमा कर दिया। जग्गूने सन्तोषकी साँस ली। यह तो कैसे कहा जाय कि वह अपनी वस्तु-स्थितिसे पूर्ण परिचित था; परन्तु इतना वह अवश्य जानता था कि दफ़्तरसे जितना पैसा वह महीनेमें ले जाता है, उसीपर माँ-बाप और उसका जीवन-निर्वाह होता है। उसीसे उसने सोचा कि यदि आज उसकी नौकरी छूट जाती, तो स्वयं भी भूखों मरता और अपने माता-पिताको भी भूखा रखने का कारण बनता। यही सोचकर जग्गू नीचे-से-ऊपर तक काँप गया। वह खुलकर तो नहीं रो सका; परन्तु उसका मानस जिस वेदनासे तड़प गया, उससे बरबस उसकी आँखोंमें आँसू भर आए।

कुछ देर बाद जब वह फिर नीचे गया, तो मालिक और मैनेजरके खेलते हुए बच्चोंने उसे सम्बोधित करके कहा—'अरे यार जग्गू, आ न। आ खेलें।'

जग्गूने कनखियोंसे उनकी ओर देखा और अपना मुँह फेर लिया। उसने अपनी भरी हुई आँखोंको भी पोंछ लिया। वह कितना दीन और तुच्छ है उन बालकोंकी अपेक्षा!

बच्चोंने फिर उसे टोककर कहा—'क्यों रे जग्गू, आता नहीं। बोलता नहीं रे जग्गू? क्यों, क्या हुआ?'

जग्गूने दूसरी ओर देखते हुए कह दिया—'मैं नहीं खेलता।···मैनेजर साहब नाराज़ होंगे। मैं तुम्हारे पास नहीं बैठूँगा।'

यह सुनकर जिस अजयने उसे बुलाया था, उसने फिर आगे कुछ नहीं कहा और उसी समय जग्गू दफ़्तरके एक सिरेपर खड़ा होकर सोचने लगा—ठीक तो है, मुझे नहीं खेलना चाहिए इनके साथ। ये तो मालिकके बच्चे हैं। मैं काम करूँगा, तभी तो पैसे पाऊँगा, नहीं तो खाऊँगा क्या?

इस प्रकार वह दिन जग्गूका बड़ी निराशा और उदासीनता में कटा। वह घर गया और कटे धड़की तरह ऐसे चारपाईपर गिर गया, जैसे सचमुच वह गिरा नहीं था, बल्कि गिराया गया था। और इसीसे वह वेदनासे भरा था।

उसे घरमें आया देख, माँने कहा—'अरे जग्गू, आ गया, बेटा।'

जग्गूने क्षीण स्वरमें कहा—'हाँ, माँ।'

माँने नहीं देख पाया कि जग्गू उसकी आवाज़ सुनते ही रो पड़ा था। जब वह अपने रोनेके आवेगको नहीं रोक सका, वरन् और अधिक ज़ोरसे रोने लगा, तो उसे सुन अन्धी माँने उसके पास आकर कहा—'जग्गू बेटा, क्या हुआ?'

जग्गू नहीं बोला, वह रोता ही रहा। माँने उसके मुँहपर हाथ रखते ही चौंककर कहा—'अरे बेटा, जग्गू! तुझे तो बड़ा तेज़ बुखार है।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जग्गूने कहा—'हूँ।' और रोता रहा। माँने भारी मनसे आहत होकर कहा—'रोटी खाएगा, बेटा?'

जग्गूने इसका भी कुछ जवाब नहीं दिया। वह रात-भर बेचैन और बड़बड़ाता रहा। रातमें कुछ सोकर, कुछ जाग-कर, जब प्रातः वह फिर कामपर जानेको तैयार हुआ, तो पिताने उसे रोककर कहा—'अरे आज मत जा कामपर, जग्गू, लेट जा। देखता नहीं, तबीयत जो ठीक नहीं है।'

यह सुन, जग्गूने नितान्त वेदनासे भर, झुँझलाहटके स्वरमें कहा—'न जाऊँगा, तो नौकरीसे हटा दिया जाऊँगा। फिर हम सब खायँगे क्या?'

पिताने कहा—'पर तुझे तो बुखार है, जग्गू! कुछ दिनकी छुट्टी ले ले।'

यह सुनकर जग्गू कुछ नहीं बोला और चुपचाप चला गया। जाते-जाते रास्तेमें अपने-आप कहने लगा—कैसी बात है कि दो आदमियोंका मुझ अकेलेसे काम लिया जाता है और पैसे बढ़ाने को कहता हूँ, तो कहा जाता है कि तू खेलता है,···तू काम नहीं करता है। यह तो बहाना है, नहीं तो मैं अगर काम नहीं करता, तो कौन काम करता है? दिन-भर दौड़ते-दौड़ते टाँगोंका कचूमर निकल जाता है, पर···। अपनी इसी समस्यामें उलझा हुआ जग्गू कार्यालयमें पहुँचा। बुखार उसे था। रातमें खाया भी कुछ नहीं था। इसीसे वह अपनेमें अपेक्षाकृत दुर्बलता अनुभव कर रहा था। वहाँ जाते ही उसे मालिककी ओरसे आदेश मिला—'जग्गू, उस कमरेके पलंग बाहर निकाल दे।'

जग्गूने कहा—'जी, अच्छा।'

वह कमरेसे पलंग निकालने लगा। उसे नहीं पता था कि उसके पीछे ही उसका पिता छुट्टी दिलानेके अभिप्रायसे वहाँ आ गया था। कमरेसे पलंग निकालनेके लिए पूरा प्रयत्न कर रहा था और उसका पिता मालिकके सामने खड़ा हो गिड़गिड़ाकर कह रहा था—'अन्नदाता, आज जग्गूको बुखार है, मेहरबानीकर उसे छुट्टी दे दें।'

सुनते ही मालिकने अप्रतिभ होकर कहा—'बुखार है, तो आया क्यों था? आज उसे बुखार है, कल पेटमें दर्द। ऐसे बहाने बनाने थे, तो लड़केको कामपर नहीं भेजना था, समझे?'

यह सुनकर जग्गूका पिता जैसे अवाक् रह गया। वह यकायक कुछ नहीं कह सका। अपनी और जग्गूकी जिस विवशताका चित्र उसकी आँखोंके सामने आ गया था, उसको देख वह सचमुच सिहर उठा था। इसी समय उसने बाहर छज्जेपर से जग्गूकी चीख सुनी। वह चौंक गया। बात यह थी कि जग्गू जिस पलंगको उठा रहा था, वह इतना भारी था कि उससे पूरा प्रयत्न करनेपर भी उठ नहीं रहा था। वह इसी खींचा-तानीमें लगा था कि उधर आ गईं मालकिन, जिन्हें उसे देखते ही कहा—'अरे, अभी तक नहीं उठा पाया पलंग जल्दी उठा।'

जग्गूने डरते और काँपते हुए कहा—'माँजी, पलंग भारी है। मुझसे उठता नहीं।

यह सुन माँजीने उसके मुँहपर एक तमाचा मारकर कहा—'सूअर···हरामकी तनख्वाह पाता है। ज़रा पलंग उठानेको कहा तो कहता है, भारी है! ये बहाने बनाने कहाँसे सीखा है? चल उठा।'

जग्गूके मुँहपर तमाचा लगते ही उसका सिर चक्कर गया। इसीसे वह अवसन्न हो गया। खड़े उस पलंगका सहारा लेकर वह सम्हल गया, अन्यथा शायद गिर पड़ता। वह फिर पलंगको उठानेका प्रयत्न करने लगा। इस बार वह अपनी पीठका ज़ोर लगाकर उसे उठानेका उपक्रम करने लगा। कठिनतासे वह उसे पीठपर उठाकर दो-चार क़दम ही चल पाया होगा कि उसकी आँखोंके सामने अँधेरा आ गया, सिर चक्कर खा और सम्हालनेकी चेष्टा करते-करते भी वह धड़ाम-से गिर पड़ा और पलंग उसके ऊपर आ गिरा। इसी समय वह चीख उठा और उसीके साथ जिस आर्त्त-स्वरमें माँको सम्बोधित किया, वह दूसरे कमरेमें खड़े उसके पिताके कानोंमें एकबारगी गूँज गया। वह वहाँ दौड़ा आया। पलंगको उठाकर देखा, तो जग्गूके मुँहसे खून बह रहा था और वह बेसुध पड़ा था। उसने जग्गूको उठा लिया और सीनेसे लगाकर घरकी ओर चल दिया। वह अभी मालिकके कमरेको पार भी नहीं कर पाया था कि मालकिनने मुँह बनाकर मालिकसे कहा—'ओहो, कितने मक्कर-फरेब भरा है यह ज़रा-सा लड़का!'

जग्गूके पिताने इसे सुन लिया। तड़पकर वह मुड़ गया। वेदना-भरे स्वरमें उसने कहा—'जग्गू रात-भरका भूखा है और उसे अभी भी बुखार चढ़ रहा है। फिर इतना भारी पलंग... यह जग्गू···आप भी तो आल-औलादवाले हैं, बाबूजी!'

यह सुन बाबूजीने क्षुण्ण होकर कहा—'अच्छा, अच्छा, लेक्चर न झाड़। ले जा अपने लाड़ले जग्गूको। अब इसे यहाँ कभी मत भेजना।'

जग्गूका पिता चाहकर भी कुछ नहीं बोला और चला गया।

लेकिन जब दूसरे दिन वह घबराया हुआ फिर मैनेजरके पास आया, तो नितान्त विनीत होकर उसने कहा—'जग्गूके मुँहसे खून जाता हुआ नहीं रुक रहा है, बाबूजी! दवा लानी है, उसके जो पैसे बाक़ी हैं, वह दे दीजिए।'

यह सुनते ही मैनेजरने कहा—'हमें मालिककी आज्ञा है कि जग्गू काम न करनेके कारण बैठ गया है, इसलिए कार्यालयके नियमानुसार उसके जितने दिनके पैसे हैं, उन्हें जुरमानेमें काट

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Sarayu Trust. eGangotri Kosha

लिया जाय। हमारे यहाँ जो कोई बिना नोटिसके घर बैठ जाता है, उसका नाम काटते समय पन्द्रह दिनका वेतन काट लिया जाता है। जग्गूके साथ भी ऐसा ही किया गया है।'

लाचार तक़दीरका मारा बेचारा बाप वापस घर लौट गया। उस वृद्धने जीवनमें एक बार फिर इस बातको समझा कि उसकी निरीहता, अपंगता और विवशताका मोल दुनियाके किसी आदमीकी दृष्टिमें कानी कौड़ी भी नहीं है। वह आदमी है, बाप भी है और उसका इकलौता बेटा जग्गू बीमार भी है; परन्तु जब कोई उसकी वेदना समझे, तब तो। जब वह अपने जग्गूके मेहनतके पैसे ही नहीं पा सका, तो और कहींसे क्या भरोसा किया जा सकता?

इसी समस्यामें उलझा हुआ वह घर पहुँचा। वहाँ जाकर देखा कि जग्गूकी चारपाईके पास अन्धी माँ बैठी रो रही थी। सम्भवतः एक-दो मिनट पूर्व ही जग्गूको खूनकी क़ै हुई थी और उसीसे उसे अचेतना आ गई थी। पास जाकर वृद्धने अवरुद्ध स्वरसे पुकारा—'जग्गू···बेटा!'

जग्गूने आँखें खोलीं। वृद्धने कहा—'उन्होंने पैसे नहीं दिए बेटा! कहते हैं कि बिना नोटिस दिए जग्गू घर बैठ गया, इसलिए हमने पन्द्रह दिनके पैसे काट लिए हैं। पिशाच कहींके!'

धीरेसे आहत स्वरमें जग्गूने कहा—'तो तुम अब क्या खाओगे, चाचा?'

यह सुनते ही माँने आकुल होकर कहा—'हमें अपनी भूख-प्यासकी नहीं, तेरी फिक्र है, बेटा!'

यह सुनकर जग्गूने आगे कुछ नहीं कहा। उसे फिर हिचकी आई और खूनकी एक गुच्छी-सी उसके मुँहसे निकल पड़ी। दिखता था कि पलंगकी पट्टी उसकी छातीपर लग गई, जिससे पसलीकी कोई स्नायु चटक गई और वही बार-बार खून देने लगी। उस समय जग्गूमें न-जाने किस युगकी एकत्र हुई व्यथा, घृणा और विवशताके प्रति एक हूक-सी छातीके नीचे-नीचे ही बिजलीकी तरह कौंध गई कि उसकी चमक और जलनसे उसकी समूची आत्मा एकबारगी छटपटा गई। इसीसे जैसे ही उसके मुँहसे खूनकी बँधी हुई गाँठ-सी निकली। जग्गू आँख फाड़कर पड़ गया। ऐसा लगता था, मानो वह प्राणोंसे लड़ रहा था। प्राण आँखोंसे बाहर निकलना चाहते थे और वह उन्हें कठिनतासे पकड़नेकी चेष्टा कर रहा था!

उसी समय वृद्धने पुकारा—'बेटा!' जग्गू बोल नहीं सका, उसका मुँह एक ओरको ढुलक गया था। यह देखते ही वृद्धने चीखकर कहा—'जग्गू बेटा!'

पर जग्गू नहीं बोला। उसका बोल कहीं और चला गया था। वहाँ जग्गूका केवल शरीर पड़ा था!

× × ×

सुना कि उस पत्र-कार्यालयने आदर्श और दरिद्रनारायणकी सेवाका व्रत लेकर अपने व्यवसायसे उस वर्ष और भी अधिक धन कमाया और लगभग बीस हज़ार रुपया आय-करके रूपमें सरकारके कोषमें भी दिया। चतुर मैनेजरने कार्यालयका खर्च घटानेमें अधिक परिश्रम किया और कौशल दिखाया था, इसलिए मालिकने खुश होकर उसका वेतन ड्योढ़ा कर दिया।

'विचार और अनुभूति'

श्री अमरनाथ झौहरी, एम० ए०

मैथ्यू आर्नाल्डने एक स्थानपर लिखा है कि रचनात्मक साहित्यके निर्माणके लिए आवश्यक है कि आलोचनाके क्षेत्रमें काफ़ी जीवन हो; विचारोंके टुकड़े सर्वसाधारणके लिए सहजमें ही प्राप्य हों। जब तक सर्वसाधारणमें विस्तृत रूपसे साहित्यिक चेतनाकी सृष्टि नहीं होगी, तब तक अच्छी कला-कृतियोंका निर्माण होना भी कठिन है। यही बात हिन्दी-साहित्यके विषयमें भी कही जा सकती है। स्वस्थ आलोचनाके अभावमें हमारे साहित्यकी धाराएँ बहुत विशृंखल और संकुचित हो गई हैं। उनका समुचित विकास नहीं हो पाया। स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्लने जो कार्य आरम्भ किया था, उसको पूरा करनेका भार हिन्दीके विद्वानोंपर ही है।

प्रसन्नता और सन्तोषका विषय है कि हिन्दीके विद्वानोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है, यद्यपि अभी उतना कार्य नहीं हो रहा, जितना होना चाहिए। इधर जो नए समीक्षा-ग्रन्थ हमारे देखनेमें आए हैं, उनमें 'विचार और अनुभूति' विशेष रूपसे उल्लेख्य है। यह हिन्दीके सुपरिचित समीक्षक प्रो० नगेन्द्रके १८ आलोचनात्मक निबन्धोंका संग्रह है। इन निबन्धोंकी रचना "किसी एक प्रेरणा-भावसे दबकर एक ही समयमें नहीं हुई···साहित्यकी गतिमयी धारामें इस बीच अनेक परिवर्त्तन हुए हैं। स्वयं मेरे दृष्टिकोणमें संकोच-विस्तार हुआ है, जो कि व्यक्तित्व-विकासके साथ अनिवार्य ही था।"

लेखकके इस कथनका परिचय 'विचार और अनुभूति'के प्रायः प्रत्येक निबन्धमें मिलता है। "'साहित्यकी प्रेरणा'में पूर्व और पश्चिमके सिद्धान्तोंका विवेचन है। लेखककी रायमें संस्कृत-शास्त्रके तत्त्ववेत्ताने जितना परिश्रम रसग्राही पाठककी मनः-स्थितका विश्लेषण करनेमें किया है, उसका एक सूक्ष्मांश भी रससृजेताके मनोविश्लेषणपर खर्च नहीं किया।" काव्य-प्रयोजन और काव्य-हेतुमें भी प्रेरणाके विषयमें कुछ नहीं मिलता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका कारण लेखकके अनुसार यह है कि भारतीय परम्परा अखण्ड रूपसे काव्यमें केवल निर्वैयक्तिक रूपको ही मानती रही है। पश्चिममें ऐसा नहीं हुआ। अरिस्टाट्ल, हीगेल और क्रोचीके अनुकरण, जन्मजात सौन्दर्य-प्रेम और शुद्ध सहजानुभूतिमें प्रेरणा-विषयक चर्चा मिलती है। मनोवैज्ञानिकोंमें फ्रायड कला या साहित्यको अभुक्त कामकी प्रेरणा मानता है। आड्लरके अनुसार समस्त साहित्य हमारे जीवनगत अभावोंकी पूर्त्ति है। जो हमें जीवनमें अप्राप्य है, उसीको कल्पनामें खोजते हैं। एक और विचारकके अनुसार जीवनेच्छा ही साहित्यकी प्रेरक है। लेखकका मत है कि जिस व्यक्तिके अहं और वातावरणमें या प्रवृत्ति और कर्त्तव्यमें जितना ही उत्कट संघर्ष होगा, उसकी प्रतिभा भी उतनी ही प्रखर होगी और उतनी ही प्रखर उसकी सृजनकी प्रेरणा भी।

'साहित्य और समीक्षा' नामक लेखमें साहित्य और जीवनके सम्बन्धपर विचार किया गया है। लेखककी रायमें "काव्यकी कसौटी है उसकी शुद्ध आनन्ददायिनी शक्ति, जिसे अपने शास्त्रकारोंने रस कहा है।" उपयोगिताका प्रश्न भी आनन्दसे हल हो जाता है। इसके उपरान्त परीक्षण-विधिका विवेचन है। आत्मनः प्रिय, सदाचार, स्मृति और वेद—यह चार बातें रस-परीक्षणके लिए आवश्यक हैं। इन्हींके द्वारा हम साहित्यके मूल मानवीय अन्तर्तत्त्वोंको पकड़ सकेंगे। सामयिक प्रेरणाओंके अतिरिक्त, लेखककी रायमें हमें उस कलाकृतिमें व्यक्तिकी चेतनाका भी अध्ययन करना चाहिए।

प्रगतिवादको लेखक शंकाकी दृष्टिसे देखता है, फिर भी वह आदर और धैर्यपूर्वक उसकी गति-विधिका निरीक्षण करना चाहता है। छायावादकी व्याख्या बड़ी सूक्ष्म है। छायावादके मूल तत्त्वों—व्यक्तिवाद, शृंगारिकता और प्रवृत्तिपर चेतनाका आरोप—की व्याख्या कवियोंके अन्तरंग जीवनकी उलझनों द्वारा की गई है। लेखकके अनुसार "छायावादकी रहस्योक्तियाँ एक प्रकारसे जिज्ञासाएँ हैं। वे धार्मिक साधनापर आश्रित न होकर कहीं भावना, कहीं चिन्तन और कहीं केवल मनकी छलनापर ही आश्रित हैं।"

उन लेखोंमें भी, जिनमें रचनात्मक कला-कृतियोंकी समालोचना की गई है, लेखककी प्रतिभा स्पष्ट है। 'हिन्दी-उपन्यास', 'यौवनके द्वारपर' और 'वाणीके न्याय-मन्दिरमें' आदिकी शैली बड़ी सजीव है; पढ़नेपर उपन्यासका-सा आनन्द आता है। अगर साहित्यिक समालोचनाएँ ऐसी मनोरंजक बना दी जायँ, तो मेरा विश्वास है कि सर्वसाधारण फिर इसे ऐसा नीरस और शुष्क विषय न समझेंगे। हिन्दीके मृत तथा जीवित उपन्यासकारोंको एक स्थानपर एकत्रित करके उनके मुँहसे स्वयं वक्तव्य दिलवाना तथा प्रेमचन्द और उनके रचे हुए चरित्रोंको नवीन तथा प्रतिवादीके रूपमें प्रस्तुत करना लेखककी साहित्यिक भूतियोंकी तीव्रता तथा उच्चकोटिकी रचनात्मक कल्पनाके चायक हैं। 'यौवनके द्वारपर' नामक लेखमें कलाकारों तथा लोचकोंका जो चित्रण किया गया है, उसमें काफ़ी सजीव विनोद तथा रसिकता है।

'प्रसादके नाटक'-शीर्षक लेखमें भी लेखकने बड़ी सूक्ष्म दृष्टिका परिचय दिया है। प्रसादका मनोविश्लेषण बड़ा रोचक पड़ा है। लेखकके अनुसार "प्रसादको अतीतके लिए केवल रोमण्टिक मोह ही नहीं था; बल्कि कोलाहलकी अवनी तल जब वे भुलावेका आह्वान करते हुए विराम-स्थलकी खोज करते होंगे, उस समय यह रंगीन अतीत उन्हें सचमुच बड़े वेगसे आकर्षित करता होगा।" वातावरण तथा चरित्रके द्वन्द्व उनके नाटकोंमें अद्वितीय हैं। इनके अतिरिक्त देशभक्तिकी एक दिव्य भावना उनके साहित्यमें रमी हुई है। प्रसादके काव्योंमें विराट और कोमलका अद्भुत संयोग है। लेखककी रायमें प्रसादके सभी नाटक मधु-सिंचित हैं। वह मूल रूपमें कवि हैं, अतः उनके नाटकोंमें काव्यकी गहरी एवं पृथुल अन्तर्धारा बह रही है।

गुलेरीजीकी कहानियोंवाले निबन्धमें सामाजिक चेतना, रस, हास्य, भाषा और टेकनीकका सुन्दर विवेचन किया गया है। 'त्यागपत्र' और 'नारी'का तुलनात्मक अध्ययन और इसके द्वारा दोनों उपन्यासकारोंके व्यक्तित्वोंके अन्तरका स्पष्टीकरण स्पष्टता और तीव्रता लिए हुए है। यथा—"'त्यागपत्र'का कौशल अपनी विदग्धताके बलपर अपने मेधावी शिल्पीकी दुहाई देता है और 'नारी'का कौशल अपनेको छिपाकर अपने स्नेहार्द्र शिल्पीकी सिफ़ारिश करता है।" 'अज्ञेय और शेखर' नामक निबन्धमें लेखकका आत्म-तत्व अज्ञेय और शेखरके समान ही शक्तिशाली हो जाता है। 'शेखर' हिन्दीके गौरव-ग्रन्थोंमें से है। प्रतीत होता है कि शेखरसे टक्कर लेते-लेते और उसके सहारे अपनी शक्तिकी परीक्षा करते-करते नगेन्द्रजी भी अपनी हिचकिचाहट और शान्ति छोड़कर बलवान बन गए हैं। कलाकारके अन्तस्तल तक प्रवेश करके मानो वहाँकी लिखावट पढ़ते हुए बोलते हैं—"'शेखर' अज्ञेयके अपने ही जीवनका प्रत्यालोकन है और उसकी घटनाएँ जीवनके प्रति सच्ची हैं। जो नहीं हैं, वे ज़बरदस्ती तोड़ी-मोड़ी और गढ़ी हुई साफ़ नज़र आ जाती हैं।...उसमें स्वयं ही एक ऐसा आदमी झूठ बोलनेका प्रयत्न कर रहा है जिसे उसका अभ्यास नहीं है।" शेखरके दोष-गुणोंका विश्लेषण करके अन्तमें लेखक कहता है—"तब आप सहज ही समझ सकेंगे कि पूर्व और पश्चिमकी दृष्टिमें जो जघन्य पाप है—बहनके प्रति रति—उसको पवित्र रूप देनेके लिए हृदयमें कितने सतोगुण की आवश्यकता हुई होगी।" सतोगुण अथवा तमोगुण, इसका निर्णय तो प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक आदर्शोंके अनुसार

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही करेगा ; पर हाँ, इसके लिए हृदयमें अमानुषिक बलकी आवश्यकता अवश्य है। निषिद्ध कार्योंको करनेमें जो असाधारण उत्साह होता है, उसका कारण है अभुक्त वासना अथवा और कोई स्वाभाविक ग्रन्थि। ओडीयस तथा चेंचाई (Cenci) के चरित्रमें जो तीव्रता और अहं हैं, लगभग वही शेखरमें भी हैं। उसकी नास्तिकता और क्रान्तिकी भावनाके मूलमें अन्य कारणोंके अतिरिक्त यह विषम अभाव भी छिपा बैठा है।

'दीप-शिखा'की आलोचनामें भी लेखकने इसी कवित्व और सूक्ष्म दृष्टिका परिचय दिया है। उसके अनुसार "इस युगमें 'दीप-शिखा'का प्रकाशन एक घटना है।" महादेवीजीके शब्दोंमें 'जीवन और मरणके इन तूफ़ानी दिनोंमें रची हुई यह कविता ठीक ऐसी है, जैसे झंझा और प्रलयके बीचमें स्थित मन्दिरमें जलनेवाली निष्कम्प दीप-शिखा।' महादेवीजीका मानसिक विश्लेषण बहुत सुन्दर है। लेखक स्वयं सौन्दर्यद्रष्टा है और सूक्ष्म उपमाओं द्वारा कविताओंके रहस्यको बतलाता है। अपने व्यक्तित्वको एक क्षणके लिए वह कविके व्यक्तित्वमें खो देता है और कविकी आँखोंसे झाँककर संसारका सौन्दर्य देखता है। यह हिन्दी-आलोचनाके इतिहासमें एक नई चीज़ है। लेखकके अनुसार "यह कहना होगा कि 'दीप-शिखा'की प्रेरक अनुभूति छाँह-सी सूक्ष्म और मोम-सी मृदुल तो है ; परन्तु हूक-सी तीव्र नहीं। एक स्थानपर स्वयं कवियित्रीने ही अपने गीतकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है—

"खोजता तुमको कहाँसे आ गया आलोक सपना,
चौंक खोले पंख तुमने याद आया कौन अपना,

कुहरमें तुम उड़ चले किस छाँहको पहचान?

स्वभावतः छाँहको पहचानकर कुहरमें उड़नेवाले इन गीतोंमें विस्मय-भरे मधुर संकेत तो स्थान-स्थानपर मिलेंगे ; परन्तु लपक कर हृदयको पकड़नेवाली पंक्तियाँ दुर्लभ ही हैं।"

'विचार और अनुभूति'-जैसी पुस्तकोंका हिन्दीमें अभी बहुत अभाव है। लेखककी शैली और शब्द-विन्यास बहुत प्रभावशाली हैं। समालोचनामें नगेन्द्रजी रचनात्मक साहित्यकी कल्पना और सूक्ष्म दृष्टि लेकर आए हैं। इस पुस्तकके सारे निबन्ध विचारपूर्ण और अनुभूत हैं, इसमें कोई संशय नहीं। इस दृष्टिसे यह पुस्तक हिन्दी-समालोचनामें एक 'लैंडमार्क' है। इसकी कुछ बातें हिन्दी-संसारके लिए नई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखकने काम-वृत्तियोंका बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है। दुराग्रहकी भावना कहीं नहीं दिखाई पड़ती। उनके निष्कर्ष इतने आकर्षक और विश्वासप्रद हैं कि मतभेद रखनेवाले पाठकका भी उन्हें स्वीकार करनेको जी चाहता है।

आचार्य शुक्लने भारतीय रस-सिद्धान्तोंको पाश्चात्य दृष्टिकोणसे स्थापित किया। उन्होंने संस्कृतकी प्राचीन रस-परम्पराको ले मनोवृत्तियोंके निदर्शन-स्वरूप काव्योंसे बहुतसे उदाहरण देकर उनका मार्मिक विवेचन किया। किन्तु नगेन्द्रजी साथ-ही-साथ लेखक अथवा कविका मनोविश्लेषण भी करते हैं और लेखकके मन तथा मस्तिष्कके गहनतम स्तरों तक पहुँचनेका प्रयास भी करते हैं। एक बात और है। वे राजनीतिक अथवा सामाजिक चेतनाकी पृष्ठभूमिपर भी मनोवृत्तियोंका विश्लेषण करते हैं, जिसकी ओर अन्य समीक्षकोंने उतना ध्यान नहीं दिया है, इससे उनकी समालोचनामें एक प्रकारकी व्यापकता तथा सम्पूर्णता आ जाती है। इससे पता चलता है कि आलोचकका मानसिक धरातल बड़ा समुन्नत है। पश्चिमी समीक्षा-सिद्धान्तोंसे उनका काफ़ी गहरा परिचय है तथा संस्कृत-समीक्षामें भी उनकी अच्छी पैठ है। उन्होंने देश-विदेशके रचनात्मक तथा समीक्षात्मक दोनों प्रकारके साहित्यका अध्ययन किया है। इससे उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं हो पाया। उनकी आलोचनामें सहानुभूतिका तत्त्व है, ईमानदारी है, मूल्यांकनका निष्पक्ष प्रयास है। इसके अतिरिक्त जिस आत्म-विश्वासके साथ उसने अपनी समीक्षा-सम्बन्धी स्थापनाओंको हिन्दी-जनताके सामने रखा है, उससे आलोचकके रूपमें उसके उज्ज्वल भविष्यकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

शान्तिनिकेतनका हिन्दी-भवन

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

पिछले दो महीनोंमें कई साहित्यिक मित्रोंने हिन्दी-भवनके विषयमें पूछा है। यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दीके साहित्य-सेवियों और प्रेमियोंमें इस संस्थाके विषयमें अब जिज्ञासा उत्पन्न हुई है। जिस संस्थाका शिलान्यास दीनबन्धु एण्ड्रूज़, पौरोहित्य स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुरने तथा द्वारोद्घाटन पं० जवाहरलाल नेहरूने किया था और जिसके बनानेमें स्वर्गीय सेठ विश्वेश्वरलाल मोतीलाल हलवासिया द्वारा स्थापित ट्रस्टका द्रव्य व्यय हुआ था, उसके विषयमें साधारण जनताकी जिज्ञासा बढ़े, यही वांछनीय है। हिन्दी-भवन सबका है, उसे सबसे सहयोग पानेका अधिकार है।

भवनकी स्थापना सं० १९९४ में हुई थी और द्वारोद्घाटन सं० १९९६ में। परन्तु सात वर्षों तक हिन्दी-भवनमें भवनके सिवा कुछ नहीं था। यद्यपि यहाँके हिन्दी-भाषी अध्यापक और विद्यार्थी किसी-न-किसी रूपमें भवनसे कुछ-न-कुछ साहित्यिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्य करते अवश्य रहे हैं ; परन्तु हिन्दी-भवन धनाभावके कारण किसी शास्त्रीय (एकेडेमिक) कार्यका केन्द्र नहीं बन सका। सं० १९९८ में आवागढ़के उदार नरेश राजा सूर्यपालसिंहजीकी कृपासे शान्तिनिकेतनसे हिन्दीकी एक त्रैमासिक पत्रिका निकली, जो अब भी निकल रही है। पत्रिकाका रूप यद्यपि सांस्कृतिक था ; परन्तु उससे विशेष रूपसे कविगुरु रवीन्द्रनाथके साहित्यके अनुवादका कार्य लिया गया। पत्रिकाने अनेक प्रकारसे हिन्दी-साहित्यको समृद्ध करनेका प्रयत्न किया। हिन्दी-प्रान्तोंकी भाँति अहिन्दी-प्रान्तोंमें भी उसकी माँग है और धीरे-धीरे हिन्दुस्तानके बाहर भी उसका प्रचार हो रहा है।

इस वर्षसे हिन्दी-भवनका संगठन नए सिरेसे हुआ है। हलवासिया-ट्रस्टने फिरसे उदार सहायता देकर इस संस्थाकी प्राणप्रतिष्ठा की है। इस वर्षके आरम्भमें ही हिन्दी और संस्कृतके प्रमुख विद्वानोंका एक सम्मेलन शान्तिनिकेतनमें बुलाया गया था, जिसमें डा० धीरेन्द्र वर्मा, पं० ललिताप्रसाद सुकुल, पं० विधुशेखर भट्टाचार्य, आचार्य क्षितिमोहन सेन आदि उपस्थित थे। इन विद्वानोंने उपलभ्य साधनोंको दृष्टिमें रखकर एक योजना बनाई, जिसमें पाँच प्रकारके कार्य प्रारम्भ करनेकी बात सोची गई। हिन्दी-भवन इन पाँच प्रकारके कार्योंको शुरू कर चुका है। यद्यपि भवनके पास साधन कम हैं और कार्य दीर्घकाल तक चलनेवाला है, तथापि उसे शुरू करनेमें किसी प्रकारकी दुविधा नहीं अनुभव की गई।

प्रथम महत्वपूर्ण कार्य है हिन्दीके मूलभूत साहित्यका अध्ययन। हिन्दी-भाषामें साहित्य-सृजनका आरम्भ लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व हुआ था। शुरू-शुरूका साहित्य हमें बहुत कम मिलता है। जो मिलता है, उसका कितना अंश पुराना है और कितना बादका प्रक्षिप्त, यह निश्चित रूपसे नहीं बताया जा सकता। परन्तु इतना निश्चित है कि हिन्दीका यह पुराना साहित्य आजसे एक सहस्र वर्ष पहले एकाएक नहीं शुरू हो गया। उसका एक इतिहास है। हिन्दीका साहित्य लोक-साहित्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं ; परन्तु हमें अभी तक ठीक नहीं मालूम कि इस लोक-साहित्यका प्रधान उत्स तत्कालीन लोक-जीवन क्या था ? साधारण जनताका धार्मिक विश्वास उसकी राजनीति, उसका आचार-व्यवहार आदि हमारे लिए अपरिचित-से हैं। उस समयके महायान, वज्रयान, सहजयान, नाथ-पंथ, जैनमत और स्मृति-पुराण-प्रतिपादित मत क्या थे, लोक-जीवनको वे किस रास्तेसे ले गए थे, यह जाने बिना परवर्ती लोक-साहित्यका अध्ययन नहीं हो सकता। इसीलिए यह सोचा गया था कि इन विषयोंपर पहले काम शुरू किया जाय। चीन-भवनके अध्यापक श्री प्रह्लाद प्रधान वज्रयानपर, वहींके श्री भदन्त शान्ति-भिक्षु शास्त्री महायानपर, इन पंक्तियोंका लेखक दशम शताब्दीके लोक-धर्मपर और श्री रामसिंह तोमर अपभ्रंश-साहित्यपर काम कर रहे हैं। सोचा गया है कि पुस्तकें ऐसी हों, जो साधारण जनताकी पहुँचके बाहर भी न हों और हिन्दी-साहित्यके सूत्र उसके अध्येताओंके कामकी भी हों। इसीलिए वे यथासम्भव सरल भाषामें लिखाई जा रही हैं।

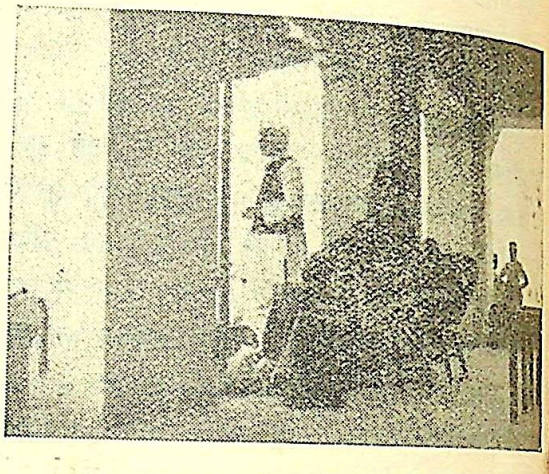

शान्तिनिकेतनमें पं० जवाहरलाल नेहरू

दूसरा कार्य है मध्य-युगमें प्रयुक्त साम्प्रदायिक और शास्त्रीय शब्दोंके विशाल कोषका निर्माण। हिन्दी-साहित्यके अध्ययनमें प्रधान अन्तराय यह है कि उस युगके शास्त्रीय और साम्प्रदायिक शब्दोंका अर्थ बतानेवाला कोई कोष नहीं है। सोचा गया है कि निर्गुण और सगुण सम्प्रदायोंके ग्रन्थों ; बौद्ध, ब्राह्मण और जैन सम्प्रदायोंके ग्रन्थों और तन्त्र, योग, आगम, निगम आदिमें प्रयुक्त शब्दोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंमें प्रचलित अर्थ संग्रह किए जायँ। प्रत्येक शब्दका पुराना इतिहास और तत्तत् सम्प्रदायोंमें प्रचलित अर्थ इस कोषकी प्रधान विशेषता होगी। शब्द-संग्रहका कार्य शुरू हो गया है। सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, मोहनलाल बाजपेयी, रामसिंह तोमर और पृथ्वीनाथ द्विवेदीने यह कार्य शुरू किया है। अनुमान है कि शब्दोंकी संख्या शायद १५ हज़ार तक जाय और सारे शब्दोंको संग्रह करनेमें कम-से-कम दस वर्ष लगें।

तीसरा कार्य है आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके अध्ययनका। कला, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, समाज-विज्ञान आदिका इस युगमें बहुत विकास हुआ है। हिन्दीकी संस्थाएँ अपने-अपने ढंगसे इस विषयपर पुस्तकें प्रकाशित कर रही हैं। पर इतना तो निश्चित है कि यह कार्य न तो सन्तोषजनक ही हुआ है और न पर्याप्त ही। हिन्दी-भवन आधुनिक ज्ञानकी शाखाओंपर छोटी-छोटी सरल पुस्तकें लिखाना चाहता है। अभी तक यह कार्य शुरू नहीं किया जा सका है। इसमें कई बातोंकी तैयारी आवश्यक है और बाहरके हिन्दी-प्रेमी-मात्रकी सहायता और सहानुभूति अपेक्षित है।

चौथा महत्वपूर्ण कार्य है हिन्दी-भाषा और साहित्यके सम्बन्धमें विभिन्न भाषाओंमें परिचयात्मक पुस्तकें लिखानेका।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGyaan Kosha

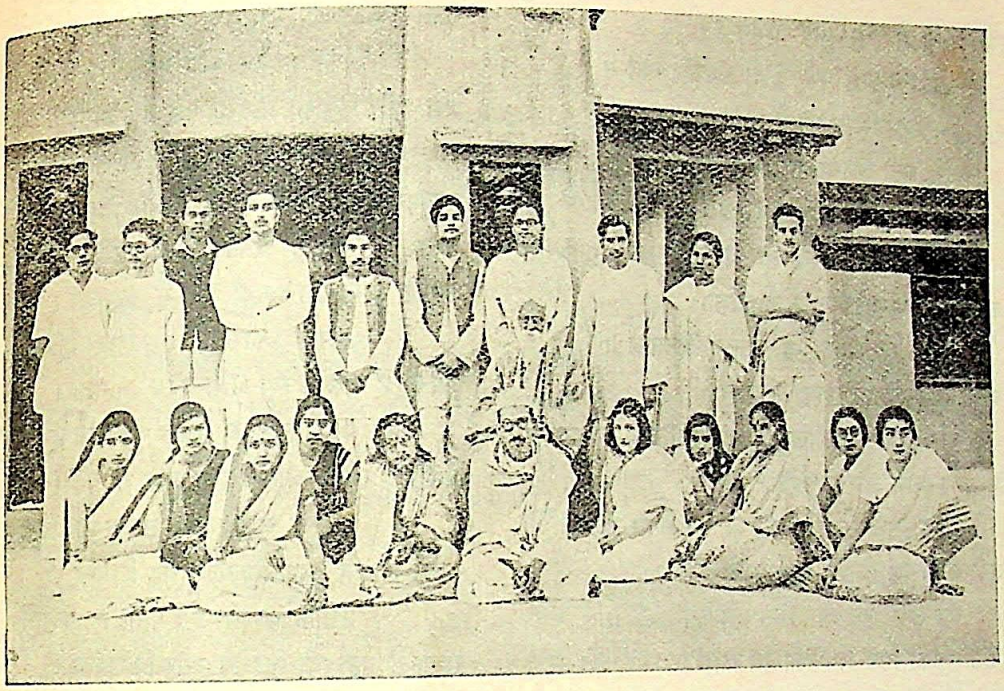

हिन्दी-भवनके उद्घाटनके समय स्व० गुरुदेवके साथ उसके अध्यापक और छात्र-छात्राएँ।

ये दो श्रेणियोंमें विभक्त की जा सकती हैं—भारतीय भाषाओंमें लिखी गई और अंगरेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओंमें लिखी गई पुस्तकें। यद्यपि सभी भाषाओंमें हिन्दी-भाषा और साहित्यके परिचयात्मक ग्रन्थ आवश्यक हैं और उनका जल्दी-से-जल्दी लिखा जाना भी वांछनीय है ; पर यह सारा काम अभी भवन हाथमें नहीं ले सकता। अपनी स्थिति और साधनोंको दृष्टिमें रखकर हिन्दी-भवन इस समय अंगरेज़ी और बँगलाके माध्यमसे ही काम शुरू करनेकी इच्छा रखता है। श्री मोहनलाल बाजपेयीने अंगरेज़ीमें हिन्दी-साहित्यकी परिचयात्मक पुस्तकोंके लिखनेका काम हाथमें ले लिया है। इसमें बाहरके विद्वानोंका सहयोग भी अपेक्षित है।

पाँचवाँ कार्य है रवीन्द्रनाथके ग्रन्थोंके प्रामाणिक अनुवादका। यह कार्य बहुत दिनोंसे रुका पड़ा है और इसका ज़्यादा रुकना उचित नहीं है। इस पंचमुख कार्यके अतिरिक्त हिन्दी-भवनके पुराने कार्य यथापूर्व चल रहे हैं। हिन्दी-भाषी विद्यार्थियोंकी पढ़ाईकी व्यवस्था, अहिन्दी-भाषी अध्यापकों और विद्यार्थियोंको हिन्दी सिखाने आदिका कार्य हो रहा है।

हिन्दी-भवन हिन्दीकी सबसे छोटी संस्था है ; परन्तु उसकी सेवा-भावना बड़ी है। वह अपनी अन्य सहयोगी संस्थाओंके साथ हिन्दी-साहित्यको समृद्ध बनानेका भरसक प्रयत्न कर रही है। यहाँ यह कह रखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हिन्दी-भवनने विदेशके विद्वानों और संस्थाओंसे पहलेसे ही सम्पर्क रखा है और नाना भावसे इस देशके बाहर हिन्दी-साहित्यके विषयमें रुचि उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया है। हिन्दीके विषयमें एशियाके पूर्वी देशोंमें जिज्ञासा उत्पन्न हो चुकी है। अपनी सीमित शक्तिके अनुसार बाहरके विद्वानों और विद्यार्थियोंकी भाषा-विषयक और साहित्यिक भूख मिटानेका साधन यह संस्था बनी है। चीन-सरकारने यहाँसे हिन्दीका अध्यापक माँगा और शीघ्र ही संसारके अन्यान्य देश—विशेषकर पूर्वी देश—भी माँगेंगे। हिन्दीका साहित्य तेज़ीसे बन रहा है। यद्यपि इसमें प्रसार जितना है, उतना गाम्भीर्य नहीं है ; तथापि वह साहित्य भारतवर्षकी आशा-आकांक्षाको व्यक्त करने योग्य है। सारा संसार बहुत शीघ्र उसकी माँग करेगा। हमारे देशके विश्वविद्यालय इस माँगको पूरा करनेमें शायद ही सचेष्ट हों। शान्तिनिकेतन अपनी शक्ति-भर यह कार्य करता आया है। उसका यह नया विभाग भी अपनी शक्ति-भर इस कार्यको अग्रसर करनेका संकल्प लेकर आगे आया है।

हिन्दी-भवनकी प्रेरणा पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीके चित्तमें आई। उनके इस संकल्पको रूप देनेमें दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज़ श्री भागीरथजी कानोडिया, श्री सीतारामजी सेकसरिया और श्री रामदेवजी चोखानी प्रभृतिकी सहायता मिली। एण्ड्रूज़ साहब ने ही इस संस्थाका शिलान्यास किया था। इस प्रकार यह संस्था जन्मके साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय महत्वका पद पा गई। अब यह हिन्दी-प्रेमियोंकी ज़िम्मेदारी है कि इस संस्थाका उचित उपयोग करें और इसे इस योग्य बना दें कि यह उस सन्देशको देश-विदेशमें सुलभ करनेमें समर्थ बनी रहे, जिसे कबीर, तुलसी और मीराबाईने हिन्दी-भाषाके माध्यमसे सुनाया था।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन-कथा

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

जीवनमें आता है मंगलमय सुप्रभात।
प्रेमके पुलकसे पूर्ण होता सबका गात॥
ला रही पुष्प-पीत-परिमल भी है समीर।
हो गई क्षण-भरमें सारी वसुधा अधीर॥
अपने शृंगारमें ही व्यस्त हैं लताएँ सब।
चंचल हो रहीं सभी, व्यग्र हो रही हैं अब॥
कोकिलाके मधुर आलापके ही साथ आज।
गूँज रहे भ्रमर-वृन्द कैसा संगीत-साज॥
किस वरके स्वागतमें हो रहा शंखनाद।
और किस वधूके लिए यह है आशीर्वाद॥
वृक्षोंकी मर्मर-ध्वनि और निर्झरोंका स्वर।
खिल उठा उनसे पद्माका भी उर सत्वर॥
बज उठी वीणा यह किसके कर-स्पर्शसे।
बज उठी हृतन्त्री किस पुलकित हर्षसे॥
गूँज उठी मुरली किन अधरोंका रस ले।
गूँज उठी नूपुर-ध्वनि मुरलीका यश ले॥
आ गई उषा यह ले नववधूकी लालिमा।
किन्तु क्या न रजनीके उरमें कुछ कालिमा॥
एक ओर उषा और एक ओर है रजनी।
एक ओर दुहिता है, एक ओर है जननी॥
एक ओर हर्ष और एक ओर है विषाद।
किन्तु दोनोंमें ही है निगूढ़ प्रेमका प्रसाद॥
रह-रहकर पीड़ा-सी, वेदना-सी अज्ञात।
कर रही उरपर है बार-बार आघात॥
शून्य हुआ राज-भवन, शून्य हो गया उपवन।
शून्य हुआ किस विदेहका भी विरक्त मन॥
शून्य हुआ किससे तपोधनका तपोवन।
वह तो एक कन्या थी, परकी सम्पत्ति, धन॥
पर उस शून्यतामें भी प्रेमकी थी भावना।
और उसमें थी लीन उनकी शुभ कामना॥
प्रेम एक बन्धन है, धर्म एक बन्धन है।
और इसी बन्धनपर जगका यह जीवन है॥
इसी ग्रन्थि-बन्धनपर ममता है, त्याग है।
इसीसे सुखमें और दुःखमें अनुराग है॥
उषा नहीं, वह है दिनकर अनुगामिनी।
वह अब कन्या नहीं, वह है अब कामिनी॥
संध्या बन जाती स्वयं क्षण-भरमें यामिनी।
चपला छिप जाती बन घनकी सौदामिनी॥
जनकनन्दिनी अब रघुकुलकी भामिनी।
वह अब उमा नहीं, वह है शिव-स्वामिनी॥

किस अजकी कौन इन्दुमती है अर्धांगिनी।
किस शशिकी कौन चन्द्रिका जग-विहारिणी॥
प्रेम और सेवाकी प्रतिमा वह बन जाती।
किन्तु वही जीवनमें श्रीके साथ शक्ति लाती॥
मृत्युपर उसीने कर ली है विजय प्राप्त।
कालसे ले अक्षय वर कर दी कीर्ति व्याप्त॥
उसकी महिमासे यह हुई भू वसुन्धरा।
उसकी गरिमासे यह पृथ्वी है यशोधरा॥
अपनी है सलज्ज रूप-श्रीसे स्वयं नमिता।
अपने गुणोंके भारसे जो नित्य है अमिता॥
जननीकी लीला और गृहकी प्रभा भी वह।
वही है सुशीला जो सबका भार लेती सह॥
मनके अनन्त नभ-मण्डलमें वह है इन्दु।
उसीके करोंसे जग पाता है अमृत-बिन्दु॥
रहता है पड़ा जो निश्चेष्ट और क्रियाहीन।
तमसे आच्छन्न, प्रबल घोर निद्रामें लीन॥
किसकी उज्ज्वल दृष्टि करती है स्नेह-वृष्टि।
और उस तममें कर जाती नव श्री-सृष्टि॥
तभी वह पा लेता है अपनी विलुप्त शक्ति।
तभी उसे होती उसकी महिमापर भक्ति॥
एक है अनूप और एक वह निरुपमा।
एक पुरुषोत्तम है और एक वह रमा॥
जीवन चिरन्तन है, कालसे न उसे भीति।
कहेंगे सभी कि वही तो जयति जयतीति॥
और फिर जीवनमें आता है मध्याह्न-काल।
दुस्सह हो जाता है भवका यह स्वर्ण-जाल॥
पीड़ित हो, चिन्तित हो, व्यग्र हो, रहता व्यस्त।
अपनी ही कामनाओंसे नर होता है त्रस्त॥
सुखमें रहती चिन्ता, चिन्तामें सुख रहता।
सुखोंके लिए ही वह सर्वदा दुःख सहता॥
और फिर सहसा वह आ जाती एक रात।
चला वह जाता कहाँ, यह है किसको ज्ञात॥
अपने पथके हैं सभी यात्री हुए एकाकी।
कितने जा चुके और कितने अब हैं बाकी॥
जाते हैं क्योंकि उन्हें रुकना नहीं क्षण-भर।
सभी हैं व्यग्र कौन, किसका अब सहचर॥
काल नहीं होता जीर्ण, हम ही जीर्ण होते हैं।
काल नहीं खोता है, हम सब-कुछ खोते हैं॥
काल तो पुरातन हो रहता है चिर-नवीन।
उसकी अमित रूप-राशि होती नहीं क्षीण॥

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन तो एक मधुर चिन्ता या प्रयास है ।
जीवन तो एक सरल क्रीड़ाका उल्लास है ॥
युग-युगसे जीवनकी एक है यही कथा ।
युग-युगसे जीवनकी एक है यही व्यथा ॥
तमोमयी निशासे तो फिर होता सुप्रभात ।
किन्तु रह जाती है अधूरी जीवनकी बात ॥

गांधी-योजना

श्री महादेव साहा

(गतांकसे आगे)

श्री अग्रवालने प्राचीन ग्राम-संघोंके सिलसिलेमें मनुस्मृति, कौटिलीय अर्थशास्त्र और रामायणका नाम भी लिया है। मनुके 'समाजवाद'को आज डा० भगवानदास और श्री रामपूर्णानन्द भी क़ायम रखना चाहते हैं। मनुके ग्राम-संघ और समाजवादमें शूद्रोंकी क्या दशा थी, आइए, ज़रा उसपर नज़र डालें। मनुके अनुसार 'शूद्रका निजका धन कुछ भी नहीं है, उसका मालिक उसके धनको खुशीसे ले सकता है' (न हितस्यास्ति हि स्वित्वं भर्तृहार्यं धनोहिसः)। 'शूद्र चाहे खरीदा हुआ हो और चाहे बिना खरीदा हुआ, उससे दासता करनी चाहिए, क्योंकि स्वयंभू ब्रह्माने उसे दासताके लिए ही बनाया है' (शूद्रं तु कारयेदास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा। दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा)। ध्वजाहृत (संग्राममें जीता हुआ), भुक्तदास (भोजनके बदले), गृहज (दासी-पुत्र), क्रीत (खरीदा), दत्रिम (दहेजमें मिला), पैत्रिक (पुरखोंसे चला आया) और दण्ड-दास (दण्डके धनको चुकानेके लिए दासता करनेवाला)—ये सात प्रकार के दास मनुने बतलाए हैं (ध्वजाहृतो भुक्तदासो गृहजःक्रीत-दत्रिमौ। पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दास योजनयः)। मनुने शूद्रोंके लिए जो व्यवस्था बतलाई है, वह दुनियाके शोषक-वर्गके साहित्यके इतिहासमें बेजोड़ है। उसकी कुछ बातें आज भी ग्रामीण जीवनसे परिचित लोगोंको दिखाई पड़ती हैं। मनुने लिखा है कि शूद्रका जन्म अन्य तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवाके लिए ही हुआ है। इन्हींकी सेवामें उसकी मुक्ति और जीवनकी सार्थकता है। शूद्रको चाहिए कि वह इन तीनों वर्णोंकी सेवा करे, उनकी जूठन खाकर ज़िन्दा रहे, उनके फटे-पुराने कपड़े पहने और दास आदि युक्त खराब नाम रखे। शूद्र आज भी काफ़ी तादादमें इन्हीं तीनों वर्णोंके सम्पन्न लोगोंको गुलामी लेकर पैदा होते हैं, उसीमें जीवित रहते हैं और अन्तमें उसीको लेकर असमय ही दुनियासे कूच भी कर जाते हैं। एक स्मृतिमें लिखा है कि शूद्र या चाण्डालको वेद नहीं सुनना चाहिए, वेद उसके पास नहीं पढ़ा जाना चाहिए। अगर शूद्र वेद सुन लेता है, तो उसके कानोंमें गलाया शीशा भर देना चाहिए। अगर वह पवित्र ग्रन्थोंकी आवृत्ति करता है, तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिए। अगर वह उन्हें याद कर लेता है, तो उसके शरीरके दो टुकड़े कर देना चाहिए।[1] वाल्मीकि रामायणमें आया है कि रामने तपस्वी शम्बूककी इसलिए हत्या कर डाली थी कि वह शूद्र होकर तपस्या कर रहा था और उसका ऐसा करना उच्च वर्णवाले तपस्वियोंको अखर रहा था।

प्राचीन चीन, ईरान, मिस्र, असुर, बाबुल, यूनान, जर्मनी आदिमें चार वर्णोंका पता चलता है; पर इनमें से किसी भी देशके इतिहासमें मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम आदिकी शूद्र-सम्बन्धी व्यवस्था देखनेमें नहीं आती। फिर भी प्राचीन भारतपर लिखनेवाले अधिकांश विद्वान हमें एक लम्बे अर्सेसे यही राग सुनाते आ रहे हैं कि प्राचीन भारतमें धन-धान्य भरा हुआ था। घी-दूधकी नदियाँ बहती थीं। सभी सुख और आनन्दकी ज़िन्दगी बसर करते थे। किसीको कोई दुःख नहीं था। राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करता था। सभी कला-विलास किया करते थे। अकाल, बीमारियाँ, संघर्ष, क्षुद्रता आदिका नामोनिशान नहीं था। सर्वत्र सत्य-अहिंसाका राज था। आज भी श्री अग्रवाल-जैसे पण्डितोंके मुँहसे यही बात सुनाई पड़ रही है। दुनियाकी सभी जातियाँ अपने प्राचीन इतिहासको बहुत पुराना और गौरवमय दिखानेकी कोशिश करती हैं। उन सभीका 'सतयुग' भूतकालमें ही हुआ करता है। अधिकांश पश्चिमी विद्वानोंमें से कितने ही जान-बूझकर भी क्यों प्राचीन भारतका वास्तविक चित्र न देकर हमारे सामने उसका एक नक़ली और भव्य चित्र रखते हैं, इस सम्बन्धमें ब्रिटेनके प्रसिद्ध साइन्सदाँ प्रोफ़ेसर हाल्डेनने बड़े पतेकी बात लिखी है। उनका कहना है कि इसके पीछे साम्राज्यवादियोंका एक बड़ा नीच स्वार्थ छिपा रहता है। ये पूरबकी तथाकथित आध्यात्मिकताकी प्रशंसा करते नहीं थकते। वहाँके मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना आदिको मानव-मस्तिष्ककी उच्चता का निदर्शन बतलाते हैं। वे कहते हैं कि दीर्घकालसे पूरब महान अध्यात्मवादमें और पच्छिम घोर भौतिकवादमें ही मग्न रहा है; पच्छिमवालोंको पूरबवालोंसे अध्यात्मवादका सबक़ लेना होगा, इत्यादि। ऐसा करके वे पूरववालोंको अपने तथाकथित प्राचीन बड़प्पनके नशेमें चूर और उन्हें अपने देशके साम्राज्यवादियोंके विरुद्ध होनेवाले संघर्षसे दूर रखना चाहते है।[2] इस

1. *Gautam-Smriti*, 12/4-6; Winternitz's *History of Indian Literature*, Vol. I, p. 35; Dr. B. N. Dutt's *Studies in Indian Social Polity*, pp. 33-89.
2. J. B. S. Haldane: *Science in Everyday Life*.

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कथनमें बहुत बड़ी सचाई निहित है। चतुर साम्राज्यवादी ज्ञान-विज्ञान, इतिहास आदिको अपने साम्राज्यवादी स्वार्थोंके लिए तरह-तरहसे उपयोगमें लाते हैं। उनके तत्वावधानमें भारत-तत्वका अध्ययन-अध्यापन भी अधिकांशतया राजनीतिक कारणोंसे ही होता आया है, इसे हम लोगोंने अभी तक अच्छी तरह नहीं समझा है। इसीलिए अभी तक हमारे देशके तथाकथित विद्वान उनके असत्य और अर्द्धसत्य प्रचारोंसे मुक्त नहीं हो पाए हैं।

श्री अग्रवालने लिखा है कि गांधीजी मशीनों द्वारा बड़े पैमानेपर और केन्द्रित उत्पादनके विरोधी हैं, क्योंकि इससे मनुष्य मशीनका एक पुर्ज़ा बन जाता है और उसकी सूक्ष्म अनुभूतियोंकी धारा सूख जाती है (पृ० ३४)। गांधीजीके इस कथनके समर्थनमें उन्होंने ऐडम स्मिथ*से लेकर रिकार्डो, मार्क्स, क्रोपाट-किन, शा आदि विद्वानोंके मत उद्धृत किए हैं। साथ ही आगे (पृ० ३७) वे लिखते हैं कि गांधीजी सभी मशीनोंके खिलाफ़ नहीं हैं। उनका विरोध craze for machinery and its indiscriminate multiplication से है। वे मशीनोंको ध्वंस नहीं करना चाहते, बल्कि उनको 'सीमित' करना चाहते हैं। वे उस तरहकी मशीनोंका स्वागत करते हैं, जो 'झोंपड़ोंमें रहनेवाले करोड़ों लोगोंके श्रमको कम करती हैं।' वे मनुष्योंको 'यन्त्र' बनानेवाली और उसके 'श्रम'को बेकार करनेवाली मशीनोंके खिलाफ़ हैं, क्योंकि हमारे यहाँ करोड़ों लोगोंके लिए अवसर (leisure) ढूँढ़नेकी समस्या नहीं, बल्कि उनके लिए काम ढूँढ़नेकी समस्या है। गांधीजी उन मशीनोंको भी नहीं चाहते, जो 'बहुमतसे लोगोंकी कमाईसे कुछको माल-दार बना देती हैं।' 'सबके उपकारके लिए होनेवाले प्रत्येक आविष्कारको वे क़ीमती समझते हैं।'

ऊपर हमने मशीनोंके बारेमें गांधीजीके विचारोंका जो सारांश दिया है, वह उनके १९२४ के बादके विचार हैं। १९०८ में लिखी अपनी पुस्तक 'हिन्द-स्वराज'में गांधीजीने लिखा था—'यूरोपीय चिकित्सा-विज्ञानके अध्ययनका अर्थ है देशकी गुलामीकी जंज़ीरोंको मज़बूत करना। अंगरेज़ भारतीय गाँवोंका शासन नहीं करते हैं और कभी कर भी नहीं सकेंगे।' 'अंगरेज़ी शिक्षा प्राप्त करके हम लोगोंने देशको गुलाम बना दिया है।' 'हमें अनेक विज्ञानोंके पठन-पाठनका ढोंग छोड़ देना चाहिए।' 'हमें पश्चिमीय सभ्यताको खदेड़नेके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।' 'मशीनोंने ही भारतको दरिद्र बना दिया है।' 'मशीनें पापकी प्रतीक हैं।' 'हिन्दुस्तानमें मशीनोंकी संख्या बढ़ाकर मैन्चेस्टर रुपए भेजना और महीन कपड़े पहनना अच्छा है।' 'यद्यपि भारतीय राकफेलर अमरीकन राकफेलरसे बेहतर नहीं होगा; पर ग़रीब भारत फिर भी स्वतन्त्र हो सकता है। किन्तु असद् उपायसे धनवान बना भारत आज़ादी हासिल नहीं कर सकता। धन मानवकी आत्माको निस्सहाय बना देता है। यह मन, शरीर और आत्माको ध्वंस कर देता है। मिलोंके उद्योग-धन्धोंके बढ़नेकी आशा है, हमें सन्तुष्ट होनेकी आशा करता नहीं।' 'मशीनोंके विषयमें मुझे एक भी अच्छी बात नहीं आती है।' 'अगर मशीनोंको एक वरदान समझनेके बजाय हम उन्हें एक बुराई समझें, तो इनका खात्मा हो जायगा।' 'यंग इण्डिया' (जनवरी, १९२५) में गांधीजीने लिखा था कि उपर्युक्त पुस्तकका एक भी शब्द वापस लेनेके लिए तैयार नहीं, लेकिन आज मशीनोंके बारेमें गांधीजीके विचार बहुत बदल गए हैं, चाहे उन्हें वे अथवा श्री अग्रवाल मानें या न मानें।

आज गांधीजी गाँवोंमें बिजलीका व्यवहार करना चाहते हैं (पृष्ठ ७९)। कितने ही तथाकथित गांधीवादी हिन्दुस्तानके विशाल मशीनपतियोंमें से हैं, और स्वयं गांधीजीने भी अपने लम्बे सार्वजनिक जीवनमें मशीनोंका व्यावहारिक विरोध कभी नहीं किया है। अभी हाल ही में उन्होंने ब्रिटेन और अमरीका जानेवाले भारतीय उद्योगपतियोंके मिशनके सदस्य श्री घनश्यामदास बिड़लाको आशीर्वाद दिया था। गांधी-योजनामें भी लिखा गया है कि गाँवोंमें तो खेती-बारी, चरखे-करघेसे काम लिया जायगा; पर शहरोंके लिए उत्पादन बड़ी-बड़ी मशीनोंसे होता रहेगा, जैसा कि आज हो रहा है। हाँ, यह बात ज़रूर है कि सब नहीं, तो कुछ उद्योग-धन्धोंपर सरकारका अधिकार हो जायगा। योजनाकी भूमिकामें गांधीजीने लिखा है, उन्हें दुःख है कि जितने ध्यानसे इस पुस्तकको पढ़ना चाहिए, उतने ध्यानसे उन्होंने इसे नहीं पढ़ा है। फिर भी इसके इतने काफ़ी हिस्सेको मैंने पढ़ा है कि यह कह सकता हूँ कि इसमें कहीं भी मूल ग़लत रूपमें पेश नहीं किया गया है। अगर मशीनोंके बारेमें अपने पहलेके विचारोंपर गांधीजीकी ज़रा-सी भी आस्था होती, तो वे गाँवोंमें चरखे-करघे और शहरोंमें आधुनिक विशाल मशीनोंके चालू किए जानेकी बातोंको एक साथ कैसे मान लेते!

'हिन्द-स्वराज'में मशीनोंके विरोधमें गांधीजीने जो बातें कही हैं, वे क़तई नई नहीं हैं। मशीनोंके विकासका इतिहास भी संघर्षोंसे मुक्त नहीं रहा है। मानवने पहले-पहल जब हल जोतना शुरू किया, तो कुछ लोगोंने यह कहकर विरोध किया कि धरती

* ऐडम स्मिथ (जन्म १७२३ ई०) को श्री अग्रवालने आधुनिक अर्थनीति-शास्त्रका पिता कहा है (पृ० ३४)। पर मैं तो आज तक यही सुनता और पढ़ता आ रहा था कि सर विलियम पेट्टी (१६२३-८७ ई०) को ही यह सम्मान सर्व-सम्मतिसे दिया गया है। कार्ल मार्क्स तथा एरिक रोलने ऐसा ही लिखा है और इसका उल्लेख पालग्रेवके अर्थनीतिक कोष (पृ० ९९) में भी है।—ले०

3. *Hind Swaraj* (5th Edition, Natesan), pp. 53-101.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाताके कलेजेको चीरना घोर पाप है। पर आज सारे संसारमें हल या ट्रैक्टरसे ज़मीन जोतना पाप नहीं समझा जाता। इसी प्रकार मशीनोंका भी विरोध होता रहा है। आधुनिक कालमें सिसमण्डी (१७७३-१८४२) और प्रूधो (१८०९-१८६५) ने भी मशीनोंका विरोध किया था, पर दूसरे कारणोंसे। भारतीय उद्योग-धन्धोंके इतिहाससे परिचय रखनेवाले लोग जानते होंगे कि ईस्ट-इण्डिया कम्पनीके ज़मानेमें यहाँ भी कुछ मशीनोंका आविष्कार भारतीय कारीगरोंने किया था।[४] ब्रिटिश पूँजीपतियोंने किन घिनौने और खून खौला देनेवाले तरीकोंसे इन यन्त्रोंको तथा भारतके दूसरे उद्योग-धन्धोंको बर्बाद किया, यह जाननेके लिए वामनदास बसु और कार्ल मार्क्सको पढ़ना ज़रूरी है। पर विदेशी साम्राज्यवादियोंके विरोध और दमनके बावजूद आज हिन्दुस्तान दुनियाके सात उद्योग-धन्धे-प्रधान देशोंमें है। किसी भी देशी-विदेशी संस्था या व्यक्तिका विरोध भारतमें यन्त्रोंकी प्रगतिको सदाके लिए रोक नहीं सकता। यह किसी व्यक्ति-विशेषका नहीं, बल्कि युग-धर्मका तकाज़ा है।

मशीनोंने मानवताकी प्रगतिमें क्रान्तिकारी काम किया है। क्रमशः उत्पादनके इस क्रमोन्नतिशील साधनके कारण ही आज हम असभ्य बर्बर-युगसे सभ्यताके युगमें पहुँच सके हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस युगकी त्रुटियाँ अभी पूरी तरह दूर नहीं हुई हैं। व्यक्तिगत मालियत और मुनाफ़ेके लुप्त होनेपर ही इसकी सब बुराइयाँ दूर हो सकेंगी, जैसा कि आज सोवियत् रूसमें हुआ है। दुनियाके दूसरे भागोंमें जहाँ उत्पादनकी मशीनें मुट्ठी-भर पूँजीपतियोंके हाथोंमें शोषण और शासनका हथियार बन गई हैं, वहाँ सोवियत् रूसमें समग्र मानवके कल्याणका पथ प्रशस्त कर रही हैं। मशीनोंका भला-बुरा होना इस बातपर निर्भर करता है कि उनका उपयोग हम मुट्ठी-भर लोगोंकी नीच लालसाको चरितार्थ करनेके लिए इस्तेमाल कर रहे हैं या समग्र समाजके कल्याणके लिए। अगर मशीनोंका उपयोग पहले उद्देश्यसे होता है, तो शोषण, बेकारी, दरिद्रता, युद्ध, अनाचार आदि बुराइयाँ पैदा होंगी, और अगर दूसरे उद्देश्यसे हुआ, तो सुख, समृद्धि तथा सभ्यताका विकास होगा। मशीनें निर्जीव हैं। सजीव लोग उसका उपयोग करते हैं। निर्जीवोंपर उनकी बुराइयोंका दोष थोपना तर्क-संगत नहीं। दुनियामें बिना दोषके बहुत कम चीज़ें होती हैं। उन्हें दोष-मुक्त करना मनुष्यका काम है। साम्राज्यवादियोंने मशीनोंके बारेमें भारतमें जो-कुछ किया, वह किसी शुभेच्छासे प्रेरित होकर नहीं किया। क्या उन्होंने कभी यह चाहा था कि हिन्दुस्तानमें उद्योग-धन्धे बढ़ें और आगे चलकर आज़ादीका आन्दोलन संगठित हो। कार्ल मार्क्सने लिखा है—"अंगरेज़ पूँजीवादी जो-कुछ भी करनेको बाध्य होते हैं, उसीसे जन-साधारणकी स्थिति सुधरेगी, यह ज़रूरी नहीं। वह तो तभी सुधरेगी, जब कि उत्पादन-शक्ति बढ़े और उसपर जनताका अधिकार हो। किन्तु पूँजीवादी इन दोनोंका भौतिक आधार अवश्य क़ायम कर देते हैं।...ब्रिटिश पूँजीवादियों द्वारा उत्पन्न की गई इस स्थितिसे भारतीय उस समय तक लाभ नहीं उठा सकते, जब तक कि या तो ब्रिटेनके शासकोंका स्थान वहाँका सर्वहारा-वर्ग न ले ले या फिर भारतीय स्वयं इतने मज़बूत न हो जायँ कि ब्रिटेनकी ग़ुलामीका जुआ उतार फेंकें।"[५]

श्री अग्रवालने अपनी मशीन-विरोधी योजनाके तर्कहीन समर्थनमें कम पढ़े-लिखे लोगोंको आतंकित करनेके लिए यहाँ तक कह डाला है कि मशीनोंके प्रयोगसे बेकारी बढ़ेगी तथा पश्चिममें उनकी इतनी उन्नति हुई है कि वे एक खतरा और दुर्घटना बन गई हैं। बेकार लोगोंको वे भत्तेकी ज़िल्लतपर ज़िन्दगी बसर करनेको मजबूर करती हैं। इसके बाद उन्होंने विभिन्न देशोंके बेकारोंके आँकड़े दिए हैं। पर तारीफ़की बात यह है कि इन देशोंमें रूस शामिल नहीं है, जो मशीनोंकी दृष्टिसे दुनियाके तीन बड़े राष्ट्रोंमें है। वहाँ मशीनोंका उपयोग मुट्ठी-भर लोगोंके स्वार्थके लिए नहीं, बल्कि समाजके कल्याणके लिए हो रहा है। वहाँ न सिर्फ़ कोई बेकार ही नहीं है, बल्कि एक तरहसे आदमियोंकी ही कमी। इस प्रकार रूसने मशीनोंकी सहायतासे अपने यहाँकी जनताके रहन-सहनके दर्जेको जो उन्नत किया है, उसको स्वीकार करते हुए भी लेखकने मैक्स ईस्टमैन, फ्रेडा ऊटले, बर्नहाम, मसानी आदिके कथनोंके आधारपर रूसके खिलाफ़ अनावश्यक और बेतुका ज़हर उगला है। उनका कहना है कि वहाँ कोई व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं है, सामूहिक हत्याएँ हुई हैं और रूसके समर्थकों, प्रशंसकों तथा दुनियाके पीड़ितोंको रूससे जो आशा बँधी थी, वह धुँधली हो चुकी है। आमूलचूल सामाजिक परिवर्त्तन किए बिना ही जो किसी देशको सुख-समृद्धिके सब्ज़ बाग़ दिखाते हैं, उनका मौक़े-बेमौक़े पेशेवर सोवियत्-विरोधियोंकी थोथी और मिथ्या दलीलोंको दोहराना एक पवित्र कर्त्तव्य-सा बन गया है।

आगे चलकर लेखकने राष्ट्रीय रक्षा, उत्पादनका खर्च तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिके प्रश्नोंपर विचार किया है और चर्खे, करघे तथा शहरी मशीनोंको ही उनके लिए अमोघ अस्त्र बताया है। पर क्या आजके युगमें कोई यह विश्वास कर सकेगा कि चर्खे-करघेसे किसी राष्ट्रकी रक्षा सम्भव है? कोई राष्ट्र इनसे अपनी तथा विश्व-शान्तिकी रक्षा कर सकता है? लेखकने चीनके जिस 'इण्डस्को-आन्दोलन'का ज़िक्र किया है, वह सहयोगितापूर्ण उद्योगीकरणका ही प्राथमिक रूप है, जिसे पूँजीवादियोंसे प्रभावित चीनकी वर्त्तमान राष्ट्रीय सरकार पनपने नहीं दे रही है। (क्रमशः)

४. Brooke Adams : *Laws of Civilization and Decay*

५. Karl Marx : *The Future of British Rule in India.*

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

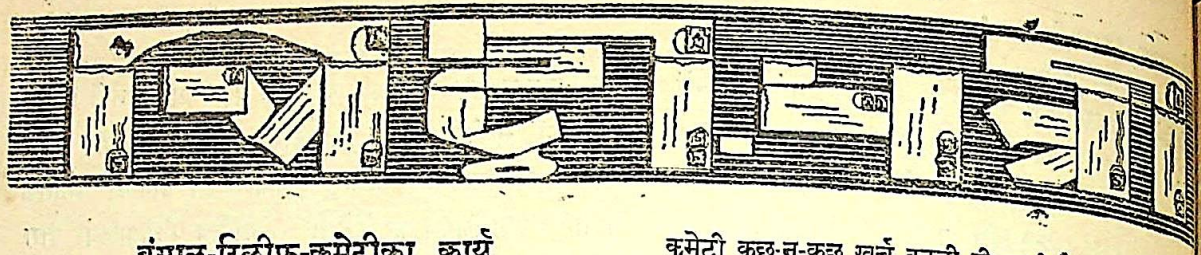

बंगाल-रिलीफ़-कमेटीका कार्य

गत अगस्तके 'विशाल भारत'में 'रिलीफ़-कमेटियोंकी निष्क्रियता'-शीर्षक पत्रमें बंगाल-रिलीफ़-कमेटीके सम्बन्धमें अनेक भ्रान्तिपूर्ण बातें लिखी गई हैं, जिन्हें सुधारना मैं उचित समझता हूँ। पत्र-लेखकका कहना है कि (१) बंगाल-रिलीफ़-कमेटीके पास लगभग ५० लाख रुपया है ; (२) कमेटीने बंगालके विभिन्न भागोंमें चलनेवाले अपने समस्त चिकित्सा-केन्द्रोंको एक-एककर उस समय बन्द कर दिया है, जब कि उसके पास जनताके चन्देके लाखों रुपए पड़े हैं और (३) कमेटीने कार्यकर्त्ताओंके अभावमें काम बन्द कर दिया है। किन्तु यह बात ग़लत है कि कमेटीके पास ५० लाख रुपया है। कमेटीको अब तक चन्देसे कुल मिलाकर २९ लाख रुपएसे कुछ अधिक नक़द तथा लगभग १५ लाख रुपएके मूल्यके अनाज, कपड़े, दवाएँ तथा अन्य दूसरी चीज़ें प्राप्त हुई हैं। ये सभी चीज़ें कमेटीने मुफ़्तमें बँटवा दी हैं। नक़द मिले २९ लाख रुपएमें से अब सिर्फ़ डेढ़ लाखके लगभग रुपए कमेटीके पास बच रहे हैं। बाक़ी साढ़े सत्ताईस लाख रुपए विभिन्न रिलीफ़-कार्योंमें खर्च हो चुके हैं। कमेटीने अपने समस्त चिकित्सा-केन्द्र अब तक भी बन्द नहीं किए हैं। प्रायः ४० चिकित्सा-केन्द्र इस समय भी बंगालके विभिन्न ज़िलोंमें चल रहे हैं। इन चिकित्सा-केन्द्रोंके चलानेमें लगभग ४०००) प्रतिमास खर्च हो रहा है। इन चिकित्सा-केन्द्रोंको चलानेके अतिरिक्त कमेटी इस समय बंगालके विभिन्न ज़िलोंमें ६ शिशु-सदन चला रही है। इनमें लगभग ५०० बच्चे तथा बच्चियोंके रहने, भोजन, चिकित्सा तथा बुनियादी शिक्षा देनेका प्रबन्ध है। इन शिशु-सदनोंको चलानेमें प्रायः १२०००) प्रतिमास खर्च हो रहा है। कमेटी हर महीने तीनसे चार हज़ार रुपए तक विभिन्न रिलीफ़-कमेटियोंके सहायतार्थ दे रही है। ये कमेटियाँ बच्चोंके लिए कलेवाघर तथा चिकित्सालय चलाती हैं। कुछ कमेटियाँ दूसरे तरहके रिलीफ़-कार्य भी करती हैं। कमेटीने कार्यकर्त्ताओंके अभावमें कहीं भी काम बन्द नहीं किया है। ऊपर लिखे आँकड़ोंसे यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि कमेटीके पास जो सीमित साधन हैं, उनके आधारपर वह उससे अधिक ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ले सकती, जितनी उसने इस समय सोच-विचारकर ले रखी है। कमेटी इस समय भी विभिन्न रिलीफ़-कार्योंपर नियमित रूपसे लगभग २००००) प्रतिमास खर्च कर रही है। इसके अलावा समय-समयपर झोंपड़े बनवाने, कारीगरोंको औज़ार देने तथा मछुओंको नाव देने-जैसे पुनर्निर्माण-सम्बन्धी कार्योंपर भी कमेटी कुछ-न-कुछ खर्च करती ही रहती है।

बंगाल मेडिकल रिलीफ़ को-आर्डिनेशन कमेटी तथा पेपु[illegible] रिलीफ़-कमेटी, जिसके कार्यकी पत्र-लेखकने पर्याप्त प्रशंसा की है, दोनोंको ही बंगाल-रिलीफ़-कमेटीसे समय-समयपर सहायता मिलती रही है। अकेले बंगाल मेडिकल रिलीफ़ को-आर्डिनेशन कमेटीको ही कमेटीने ८००००) से ऊपर रुपया दिया है। [illegible] पत्र-लेखक पत्रोंकी शरण लेनेसे पहले मुझसे या इस कमेटीके किसी दूसरे सदस्यसे मिलकर वस्तु-स्थिति जाननेका प्रयत्न करते तो अच्छा रहता।—भागीरथ कानोड़िया, मंत्री, बंगाल-रिलीफ़ कमेटी, ८ रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता।

खद्दरका गांधीवादी कण्ट्रोल

निर्भीक, निष्पक्ष और स्वतंत्र विचारोंका समर्थक एवं प्रचारक होनेपर भी 'विशाल भारत'ने प्रति रुपया दो पैसेका चन्दा देनेके खद्दरके गांधीवादी कण्ट्रोलके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। फिर भी अनेक पत्रोंने इसे अनावश्यक, अनुचित और अन्यायमय बतलाते हुए इससे नक़ली खद्दरकी बिक्रीको उत्तेजित किया और खद्दरका चोर-बाज़ार चलनेका संकेत किया है। यदि हम आदर्शों और सिद्धान्तोंके चक्करमें न पड़ा जाय, तो व्यावहारिक दृष्टिसे यह कण्ट्रोल ग़रीबों और मध्य-श्रेणीवालोंके लिए तो [illegible] भी कष्टकारक है। तेल और खाद्यके लिए क्यू लगानेमें जिन्हें प्रतिदिन घण्टों जाकर खड़ा रहना पड़ता हो, वे कब तो अपने कामपर जायँ, कब देश और समाजकी कुछ सेवा करें तथा कब सूत कातें ?—रा० वि० मोरे, हुसेनगंज, लखनऊ। [अपने मत हम सम्पादकीय विचारोंके अन्तर्गत दे रहे हैं।—सं०]

लेखकोंके पारिश्रमिकका प्रश्न

'विशाल भारत'के पिछले कुछ अंकोंमें लेखकोंके पारिश्रमिकके प्रश्नपर प्रकाश डालनेवाले पत्र प्रकाशित हुए हैं। युद्ध-कालमें पत्र-संचालकोंने जो असाधारण कमाई की है, उसे देखकर बहुतसे पत्रकारों तथा पत्र-कार्यालयोंके अन्यान्य कर्मचारियोंने अपने वेतनका प्रश्न उठाया है, जो सर्वथा उचित ही है। [illegible] फिर जिन लेखकोंके परिश्रमसे कोरे कागज़ छपकर 'पत्र-पत्रिका' बनते हैं, उनके हितकी उपेक्षा क्यों और कैसे की जा सकती है? पर मुझे यह देखकर कम आश्चर्य और दुःख नहीं हो रहा है कि इसपर प्रायः सभी पत्र और पत्रकार लगभग मौन-से ही हैं। बिना इस समस्याके क्रियात्मक हलके पत्रोंका उन्नत होना एक स्वप्न ही बना रहेगा।—चन्द्रकिशोर शर्मा 'विशारद', भदैनी, काशी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

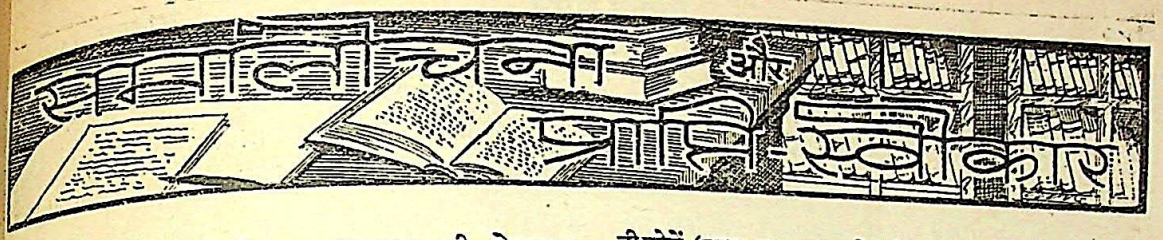

प्राकृतमार्गोपदेशिका : लेखक—अध्यापक श्री बेचरदास जीवराज दोशी ; प्रकाशक—गुर्जरग्रन्थमाला, गान्धी रोड, अहमदाबाद ; मूल्य २), सजिल्द ।

हमारे देशमें व्याकरण द्वारा भाषाका ज्ञान करानेकी पुरानी परिपाटी है जिसका पालन आज भी संस्कृत पाठशालाओंमें होता है। संस्कृत कभी लोकभाषा थी या नहीं यह विवादास्पद है ; परन्तु प्राकृत अपनी विविध शैलियों वा रूपोंमें लोकभाषा थी, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है और इन्हीं प्राकृतोंसे हमारी वर्त्तमान प्रादेशिक आर्य भाषाएँ निकली हैं यह भी निर्विवाद है। ऐसी अवस्थामें वर्त्तमान भाषाओंकी उन्नति और प्रसारके लिए उस आधारभूत प्राकृतका ज्ञान आवश्यक है। परन्तु देशमें प्राकृतकी शिक्षाकी कोई सुव्यवस्था नहीं है। संस्कृतके ढंगपर और संस्कृतके द्वारा ही प्राकृतका ज्ञान करानेके लिए व्याकरण बने हैं। ये प्राकृत-शिक्षाके लिए अनिवार्य होनेपर भी नवीन छात्रके लिए बहुत सहायक नहीं होते।

विद्यार्थियोंको बड़ा सुभीता हुआ, जब 'पाइअ सद्द महण्णवो' नामका प्राकृत कोश प्रकाशित हुआ। कोश नहीं थे, यह नहीं कह सकते ; पर जिस ढंगके कोशोंसे हम काम लेते हैं, उस ढंगके कोश न थे। अमरकोशकी तरह वे रटनेवाले कोश थे और उनका वही उपयोग था। इसी ढंगका एक डिंगल कोश भी है। अस्तु। 'पाइअ सद्द महण्णवो'से प्राकृतकी ओर बढ़नेमें हमें सहूलियत तो मिली ; परन्तु प्राकृत शिक्षाके काममें नवच्छात्रको उससे कोई सहायता नहीं मिलती। हमें यह लिखते बड़ा हर्ष होता है कि कोशकार शेठजीके ही सहाध्यायी अध्यापक पण्डित बेचरदास जीवराज दोशीने 'प्राकृतमार्गोपदेशिका' लिखकर यह कमी पूरी कर दी है।

पं० बेचरदासजी उच्चकोटिके विद्वान् हैं, यह तो हमने उनकी 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'से ही जान लिया है और अब 'प्राकृतमार्गोपदेशिका'ने उसकी पुष्टि कर दी है, यदि किसी पुष्टिकी आवश्यकता रही हो तो। यह पुस्तक प्राकृतका स्वयं-शिक्षक (Self-teacher) है। विद्यार्थीकी आवश्यकताओं और कठिनाइयोंको समझकर ही यह पुस्तक लिखी गई है, और हम समझते हैं कि यदि कोई विद्यार्थी इसे अच्छी तरह समझकर याद कर लेगा, तो प्राकृत समझनेको समर्थ हो जायगा।

इस पुस्तकके तीन विभाग किए जा सकते हैं। पहले विभागमें २१ पाठ हैं, जो २२४ पृष्ठोंमें समाप्त हो जाते हैं। दूसरेमें शब्दकोश है, जो ३८० वें पृष्ठमें समाप्त होता है; और तीसरेमें 'पाइअ गज्ज पज्जाणि' (प्राकृत गद्यपद्यानि) ३२ पृष्ठोंमें और ९ पृष्ठोंमें इनका शब्दकोश है। तीसरा विभाग और दूसरा विभाग विद्यार्थीको पहले विभागमें दिए हुए ज्ञानको पक्का करनेके लिए हैं। पहले चार पाठोंमें वर्त्तमान काल और उसमें लगनेवाले उपसर्गोंका वर्णन है। वर्त्तमानके एकवचन और बहुवचन प्रत्यय बताकर धातु दिए गए हैं, जिनमें प्रत्यय लगाकर वर्त्तमानके रूप तैयार किए जा सकें। फिर रूपाख्यान भी है, जिसमें रूप तीनों पुरुषों और दोनों वचनोंमें दिखाए गए हैं और पश्चात् वाक्य हैं। अनन्तर अकारान्त नर-जातीय नामों और बादको इतर जातीय नामोंके रूप ५वें और ६ठे पाठोंमें हैं। ७ वें पाठमें अकारान्त नामों, ८वेंमें सर्वादि सर्वनामों, ९वेंमें तुम्ह, अम्ह आदिके रूपों, १०वेंमें भूतकालके प्रत्ययों, ११वेंमें इकारान्त और उकारान्त नर-जातीय शब्दोंके रूपों, १२वें और १३वेंमें भविष्यकाल, १४वेंमें ऋकारान्त शब्दों, १५वें और १६वें विध्यर्थ और आज्ञार्थ, १७वेंमें प्रेरक भेदों, १८वेंमें भावे प्रयोग और कर्मणि प्रयोगों, १९वेंमें व्यंजनान्त शब्दों, २०वेंमें कृदन्त हेत्वर्थ और २१वें पाठमें संख्यावाचक शब्दोंपर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार इस स्वयंशिक्षकका स्वरूप है। यह पुस्तक तो गुजराती-भाषी विद्यार्थियोंके लिए गुजरातीमें लिखी गई है ; परन्तु नागराक्षरोंमें और संस्कृतका हवाला देकर लिखी जानेके कारण गुजराती न जाननेवाला और संस्कृतका अल्पज्ञान रखनेवाला मनुष्य भी इससे लाभ उठा सकता है। दोशीजी अध्यापक हैं और विद्यार्थियोंकी कठिनाइयाँ अध्यापकके सिवा कोई समझ भी नहीं सकता, इसलिए उन्होंने बड़े यत्नसे यह 'प्राकृतमार्गोपदेशिका' लिखी है। हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक प्राकृत-शिक्षाके लिए अपने ढंगकी बेजोड़ है। —अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

[दोशीजीकी 'गुजराती भाषानी उत्क्रान्ति'पर विचार करते समय हमने भूलसे एक जगह लिख दिया था, 'शायद गुजरातीमें ज्योतिषी शब्द दोशी हो जाता है।' पीछे दोशीजी और अन्य मित्रोंने हमारी भूल बताते हुए लिखा कि दोशी शब्दका ज्योतिषीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह दूसरे शब्दसे बना है और उसका अर्थ कपड़ा बेचनेवाला है। हमें अपने इस अज्ञानपर लज्जा नहीं प्रसन्नता हुई ; क्योंकि हम भूल न करते तो दोशी शब्दकी व्युत्पत्ति न जानते और हिन्दीमें एक शब्द न बढ़ता। हम लोग हिन्दीमें वस्त्रविक्रेताको बजाज कहते हैं ; पर वह फारसीका शब्द है। दोशी स्वदेशी शब्द है और हिन्दीमें प्रचलित होना चाहिए। —अं० वा०]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन और यौवन : लेखक—श्री आरसीप्रसाद सिंह ; प्रकाशक—श्री रामदेव शर्मा, वैशाली निकुंज, मज़फ़्फ़रपुर ; मूल्य १।) ।

कविताओंके इस संग्रहमें चार-छः कविताओंके अतिरिक्त शेष रचनाकारकी प्रकाशित हो चुकी रचनाएँ ही हैं। 'मेरे रोम-रोमसे विह्वल, फूट-फूटकर निकल जवानी'का अरमान लेकर कवि इस संग्रहमें सामने आता है। वह यौवनका आह्वान करता है, क्योंकि यौवन ही जीवन है। वह ऐसा यौवन चाहता है, जो आँधी-सा गतिशील हो, जिसमें वह डूब जाय और फिर भी संसार उसके एक इंगितपर बने और मिटे। जीवनमें यौवन ही तो वह स्थिति है, जहाँ कल्पनाकी गति तर्कोंसे अवरुद्ध नहीं हो पाती, इसीलिए यौवनको सुखकी बात सुहाती है। उसमें अदम्य उत्साह होता है, उत्सर्ग होनेकी लालसा रहती है, विभोर हो जानेकी क्षमता रहती है। 'आई इधर जवानी, आया उधर झूमता मतवालापन' आदिमें यौवनका उल्लास, 'जाग ओ तू राष्ट्र वाणी'में भावुक प्राणोंकी विकलता और 'मुझे बना दे माँ निर्भय'-जैसे गीतोंमें कुछ कर गुज़रनेकी भावनाओंके क्रमशः चित्रण मिलते हैं। 'चिरयात्री' और 'विभेद'-जैसे कुछ प्रौढ़ भावोंसे पूर्ण गीत वास्तवमें ललित और रसमय हैं। किन्तु जहाँ कविकी उपदेशात्मक वृत्ति प्रधान हो उठी है, वे स्थल अत्यन्त रुक्ष भी हो गए हैं।

कविकी सामान्य विशेषताएँ संग्रहमें हैं। सीधी, सुबोध भाषामें सरल भावोंको अभिव्यंजना दी गई है। गीतोंमें कहीं दुरूहता नहीं है। पुस्तक स्कूलके विद्यार्थियोंको प्रिय होगी।

कालरात्रि : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त हो ; मूल्य २) ।

कहानियोंके क्षेत्रमें रचनाकारका यह प्रथम प्रयास है। सामाजिक बन्धनोंके कारण परिस्थिति-विशेष द्वारा प्रसूत उलझनें और उनके कारण मानव-हृदयमें उठते-मिटते भावोंकी झाँकी इनमें चित्रित की गई है। कहानियाँ अपने धरातलको किसी मौलिक, नवीन दृष्टिकोणसे नहीं देखतीं। दो-चार उत्तम रचनाओंको छोड़, शेष शिथिल हैं – शिथिल इसलिए कि पाठकके लिए उनमें अस्पष्टता है। 'जीवित या मृत'में यह अन्त तक स्पष्ट नहीं हो पाता कि उस खोए बालकके पिताका पता उसकी पालक माताने आखिर लगा कैसे लिया! इसी प्रकार 'चित्रा'में राजकुमारीके षड्यन्त्रकी गन्ध उसके पिता और मन्त्रीको भी नहीं लग पाती। शत्रु उनपर चढ़ आए और वे सोते ही रहते हैं! सहसा इसपर विश्वास नहीं होता। 'शेष पत्र'में पात्री बार-बार अपनी स्थितिके प्रति अपने प्रेमीको सचेत करती है, उसे पुकारती है। नायक सब-कुछ समझते हुए भी पहले तो उसकी पुकारका उत्तर नहीं देता ; फिर यह विश्वासकर कि उसने प्रेमके पथपर धोखा खाया, आत्महत्या कर लेता है। यह कुछ अस्वाभाविक मालूम होता है। 'भूली बात' संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'वेश्या हो गई', 'आँखोंकी पीड़ा' और 'कालरात्रि'में भी कथा द्वन्द्वका सुन्दर निरूपण है। भाषा सरल और शैली ललित है।

रातोंका रंग : लेखक—श्री लक्ष्मीचन्द्र वाजपेई ; प्रकाशक—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य २)

जहाँ तक टेकनीकका सम्बन्ध है, कहानियाँ 'Short stories' ही हैं। छोटे सहज वाक्य, भावोंके अनुकूल शब्दोंके चयन और शैलीके कारण हृदयपर चोट करनेकी क्षमता इनमें होने पड़ती है। ये अत्यन्त मर्मस्पर्शी होतीं, यदि केवल इनमें जीवनका इतना विशाल एकांगी चित्रण न होता। ये मृत्युकी कहानियाँ हैं, जीवनकी तो इनमें कहीं चर्चा ही नहीं। ऐसा मालूम होता है, यहाँ जीवन-नाटकके उपसंहारको ही आलेखित किया गया है। यदि केवल जीवित रहनेकी बात भी ये कर सकी होतीं! एक सामान्य-सी बातपर आहत हो संग्रहके पात्र-पात्री कालके गालमें समाने चले जाते हैं। यह घटनाओंका वास्तविक चित्रण नहीं। कहानियोंका प्रारम्भ चाहे जहाँसे किया गया हो, अन्त सबका एक ही है—विनाश। यहाँ प्रत्येक चित्र एक स्वर बोल रहा है, एक गति चल रहा है, जो उकता देनेवाली बात हो जाती है।

निराधार : लेखक और प्रकाशक—श्री विश्वम्भर 'मानव', एम० एस०, बनबटा, मुरादाबाद; मूल्य १।) ।

अतुकान्त छन्दमें अपनी स्मृतियोंकी सजल कुछ छायाओंको कृतिकारने संग्रहमें आकार प्रदान किया है। अतीतके इन चल-चित्रोंका लेखकके हृदयसे जो अन्तरंग सम्बन्ध है, वह पाठकके हृदयमें भी स्थान खोजता-सा जान पड़ता है। यहाँ कुछ उन नारी-व्यक्तित्वों – बहन, सखी, माँ, प्रेयसी—की चर्चा है, जो उसके अन्तरपर स्थायी प्रभाव डाल चुके हैं ; जो उसके मनमें सदैव भाव-सृष्टि रचा करते हैं। इन्हें कहानियाँ कहूँगी एक कवि द्वारा लिखित। लेखककी अनुभूति इनमें अत्यन्त कोमल, भावना बेहद सुकुमार और इनपर उसका स्पर्श प्रौढ़ है। विचार संयत हैं, गम्भीर हैं। पाठक रसमें लीन हो जाता है। भाषा और भावोंमें तादात्म्य है।

—रूपकुमारी बाजपेई

हमारे सहयोगी

उद्योग-धन्धों-सम्बन्धी उपयोगी और सर्वोपकारी सामग्री देकर हमारे नागपुरके नए सहयोगी 'हिन्दी उद्यम'ने अपने जीवनके इस अल्पकालमें ही हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। सहयोगीने अपना अगस्तका अंक साबुन-विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया है, जिसमें साबुनकी शिक्षा तथा उसके घरेलू एवं व्यावसायिक पहलुओंपर अधिकारी व्यक्तियों द्वारा खासा प्रकाश डाला गया है। अंक संग्रहणीय है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

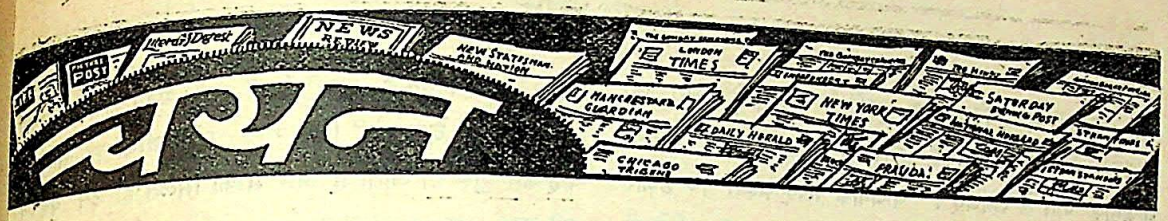

जापानका गुप्त ख़ूनी दल

पिछले ४० वर्षोंसे जापानमें जिस 'ब्लैक ड्रेगन सोसाइटी' का ख़ूनी राज्य रहा है, उसके नेता मित्सुरू तोयामाकी गत अक्टूबर मासमें ९० वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गई। तोयामा जापानका बेताजका बादशाह था, जिसने बिना किसी दुराव-छिपाव या बहानेबाज़ीके जापानकी साम्राज्यवादी योजनाओंके मार्गमें आनेवाले हज़ारों व्यक्तियोंको मौतके घाट उतरवा दिया। उसके अधीन जापानी युवक-युवतियोंकी बीसों संस्थाएँ काम करती थीं, जिनका एकमात्र काम था देश-सेवा और देशभक्तिके नामपर सन्दिग्ध, साम्राज्य-विरोधी एवं शान्तिवादी जापानियोंकी हत्या करना। जापानका सारा शासन और सैनिक सत्तावादी एक तरहसे तोयामाकी मुट्ठीमें ही रहे हैं।

तोयामाकी प्रेरणासे ही १८९४ में जापानने चीनपर और १९०४ में रूसपर आक्रमण किया। इन विजयोंसे मिली लूटसे तोयामाने अपना घर भरा और अपने ख़ूनी दलकी स्थिति और भी मज़बूत कर ली। १९१४-१८ के यूरोपीय महायुद्धकी प्रतिक्रिया-स्वरूप जापानमें भी जनतन्त्रकी भावना फैलने लगी। तोयामाके दलने सभी उदारदलियों और जनतन्त्रवादियोंका ख़ात्मा कर दिया। १९३० में प्रधान-मन्त्री हामागूचीको उसके दफ़्तरमें जाकर गोली मारी गई। १९३२ में जब कुछ राजनीतिज्ञोंने सैनिक-सत्तावादियोंको हटानेका प्रयत्न किया, तो तोयामाके दलने सेनावादियोंकी सहायतासे प्रधान-मन्त्री इनूकाई और अर्थमन्त्री ताकूमाका वध कर डाला। तोयामाके 'महान पूर्व-एशिया-संघ' के स्वप्नको पूरा करनेके लिए जब १९३५ में जापानने चीनपर आक्रमण किया, तो प्रधान-मन्त्री हिरानुमाने कुछ आनाकानी की। उन्हें गोलीका शिकार होना पड़ा। उनके उत्तराधिकारी राजकुमार कोनोयने भी डरकर अपना पद छोड़ दिया और सम्राट को तोयामाके विश्वस्त तोजोके हाथमें शासनकी बागडोर सौंपनी पड़ी। इस प्रकार न-जाने कितने व्यक्तियोंको तोयामाके ख़ूनी दलने मारा; पर उसका कोई बाल भी बाँका न कर सका।—म०

विश्व-समृद्धिके लिए बैंक

पिछले दिनों ब्रेटेनउड्समें हुए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-सम्मेलन में लार्ड कीनसने दुनियाके पुनर्गठनके लिए जो एक विश्व-बैंकको स्थापनाका प्रस्ताव रखा था, वह आर्थिक दुनियाके इतिहासमें बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। संयुक्त-राज्य अमरीकाके विशेषज्ञोंने ही इसकी योजना बनानेमें मुख्य भाग लिया और संयुक्त-राज्य ही प्रस्तावित बैंकके लिए अधिकांश सामग्री भी जुटायेगा। कुछ लोगोंका कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-विषयक समझौतेसे तब तक दुनियाका कोई खास उपकार नहीं होगा, जब तक युद्धके बादवाले ज़मानेमें व्यापार नियन्त्रण या विस्तारके आधारपर संचालित होगा। युद्धके बादवाले कालमें व्यापारपर संयुक्त-राज्य जैसे महाजन राष्ट्रका काफ़ी बोलबाला होगा। अगर अमरीका लड़ाईमें तहस-नहस हुए मुल्कोंके पुनर्गठनके लिए काफ़ी कर्ज़ देनेकी नीति अपनाता है और पिछड़े हुए देशोंके आर्थिक विकास में सहायता पहुँचाता है, तो संसारका व्यापार बेहद बढ़ेगा। अगर ये बातें सम्भव हुईं, तो दुनियाके देश एक विश्व-मुद्रा-नीति स्वीकार करके १९२९-३३ के बाद अमलमें लाए गए नियन्त्रणों को रद्द कर सकते हैं।

विश्वके पुनर्गठनके लिए बैंक स्थापित करनेकी योजना सोलह्वो आना अमरीकन योजना है। यद्यपि अमरीकन कांग्रेसने अभी तक इसे स्वीकार नहीं किया है; लेकिन यह योजना अमरीकाकी अपनी आवश्यकताके लिए ही बनाई गई है, क्योंकि युद्ध-कालके विशाल उत्पादनको क़ायम नहीं रखा गया, तो संयुक्त-राज्य अमरीकाके डेढ़ करोड़ मज़दूर (यानी उसकी आबादीका आठवाँ हिस्सा) बेकार हो जायँगे। इस योजनासे उपर्युक्त गम्भीर परिस्थिति सरल बनाई जा सकेगी और विदेशोंमें संयुक्त-राज्य अमरीकाकी चीज़ोंके बिकने लायक़ वातावरण तैयार किया जा सकेगा। यह बात ब्रिटेन आदि उद्योग-धन्धोंमें अत्यधिक बढ़े हुए मुल्कोंके लिए भी विशेष सुविधाजनक होगी, क्योंकि उधार लेनेवाले देश कर्ज़में मिली हुई रक़मसे उपर्युक्त विश्व-बैंकके किसी भी सदस्य-देशमें अपने लिए मालका आर्डर दे सकते हैं। उदाहरणार्थ, फ्रांस, बेलजियम, डेन्मार्क आदि अमरीकासे कर्ज़ लेकर ब्रिटेनसे अपना माल खरीद सकते हैं। ब्रिटेन अपने इन क्रेताओंसे मिले हुए रुपएसे अमरीकासे अपने लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीद सकता है। उधार देनेकी इस नीतिसे विश्वका व्यापार बढ़ेगा; लेकिन इसके विपरीत कर्ज़-नीति—यानी ब्रिटेनसे मिला हुआ कर्ज़ ब्रिटेनमें या अमरीकासे मिला कर्ज़ अमरीकामें माल खरीदनेके लिए ही खर्च किया जाय—से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगिताके रास्तेमें बाधाएँ उपस्थित होंगी। विश्व-बैंकमें शामिल होनेवाले सभी मुल्क सामूहिक रूपसे कर्ज़को अदा करनेकी ज़िम्मेदारी लेंगे। इससे विश्व-बैंककी स्थिति सुदृढ़ होगी। इसके अलावा उधार लेनेवाले देशोंकी सरकारें उसे अदा करनेका वादा करेंगी। इससे कर्ज़को न चुकानेवाली परिस्थिति नहीं पैदा हो सकेगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Mumbai. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्थिक दृष्टिसे पिछड़े हुए मुल्कोंकी तरक्क़ीके लिए जो व्यवस्था की गई है, वह बड़े मार्केकी है। इस विषयमें बम्बई-योजनाकी बात ले लीजिए। योजनाके लिए ज़रूरी १० हज़ार करोड़ रुपयोंमें क़रीब बारहवाँ हिस्सा यानी ८०० करोड़ विदेशों से उधार लिया जायगा। प्रसिद्ध अमरीकन विशेषज्ञ प्रो० यूजेन स्टैनलीका कथन है कि एशियाई देशोंमें सालाना ३०० करोड़ डालर (यानी १००० करोड़ रुपए) नियोजित करनेकी ज़रूरत है और इसका दो-तिहाई विदेशोंसे उधार लेना पड़ेगा। पिछड़े हुए देशोंको उन्नत बनानेमें इसका काफ़ी असर पड़ेगा। चीन और भारतमें दुनियाकी कुल आबादीके ३९ फी-सदी लोग बसते हैं; पर इनका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल ५ फी-सदी है। इन देशोंकी आर्थिक उन्नतिसे सारे संसारकी सामूहिक उन्नति होगी। पर ये सब बातें बहुत-कुछ बैंककी संचालन-पद्धतिपर निर्भर करेंगी। ('डेली वर्कर')

अधिकृत जर्मनीका जीवन

जर्मनीके युद्धमें हारकर आत्म-समर्पण कर देनेके बावजूद जनताके बहुतसे खूनी दरिन्दोंने अब तक अपने तौर-तरीक़ोंको नहीं बदला है। संयुक्त राष्ट्रोंकी सेनाको वे आज फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते। अनेक सैनिकोंके धोखा देकर मारे जानेके समाचार भी मिले हैं। उनके प्रति जर्मनोंका व्यवहार भी बड़ा उपेक्षापूर्ण और अपमानजनक होता है। रूसियों द्वारा नियुक्त किए गए बर्लिनके मेयर डा० आर्थर वेरनरने अभी हाल ही में जनताको सतर्क करते हुए कहा है कि जर्मनोंका अधिक कोप रूसियोंके विरुद्ध ही है और वे बड़ी मुस्तैदीसे इसका मुक़ाबला कर रहे हैं। लाल-सेना या उसके किसी अफ़सरकी जान लेने-वालेके साथ या ऐसा करनेवाले सन्दिग्ध व्यक्तिके साथ ५० नात्सियोंको प्राणदण्ड दिया जाता है! इसी प्रकार आग लगाने तथा सरकारी कर्मचारियों या मालको हानि पहुँचानेवालोंको भी कड़ी सज़ाएँ दी जाती हैं।

जर्मनोंके अत्याचारोंके सम्बन्धमें होनेवाले प्रचारका असर तो बिलकुल उल्टा हुआ है। जब कुछ जर्मनोंको ज़बरदस्ती बेल्सन और बुकेनवाल्डके मृत्यु-कैम्पोंके रोमांचकारी अत्याचारोंकी फिल्में दिखाई गईं, तो जर्मन बड़े हँसे और बोले कि ये फिल्में तो इंग्लैण्डमें तैयारी की गई हैं, अतः वहींके कैम्पोंकी हैं! इससे सेनाधिकारियोंको मजबूरन इन फिल्मोंका प्रदर्शन बन्द कर देना पड़ा है। पहले तो कोई इन फिल्मोंको देखने ही नहीं आता था। जब अधिकारियोंने ज़बरदस्ती लोगोंको इन्हें देखनेके लिए मजबूर किया, तो उसका यह परिणाम हुआ!

जो कुछ पढ़े-लिखे और सभ्य जर्मन हैं, वे मौन रहकर भी विदेशी सेनाके प्रति सहानुभूति या सद्भावनाका अभाव दिखानेसे नहीं चूकते। कहीं किसी जर्मन युवतीको किसी विदेशी सैनिकके साथ देखा नहीं कि उसके पूरे परिवारका सामाजिक बहिष्कार शुरू हो जाता है और मौक़ा मिलते ही उस युवतीकी बुरी तरह मरम्मत की जाती है। इसके डरके मारे भी कोई विदेशी सैनिकोंसे बात नहीं करता। विदेशियोंके प्रति घृणा और क्षोभका सबसे अधिक ज़ोर बुर्गस्टीनफुर्ट गाँवमें है। वहाँके लोगोंने इसका नाम ही 'घृणाका गाँव' रख दिया है। इस तरह जर्मनीका अधिकार संयुक्त राष्ट्रोंके लिए काफ़ी मँहगा पड़ रहा है।

इस सबके अतिरिक्त बर्लिनमें आजकल अपराधोंका बड़ा ज़ोर है। रायटरके विशेष संवाददाताके कथनानुसार अकेले जुलाई महीनेमें वहाँ १२३ हत्याएँ, ५९८ बलात्कार और महिलाओंपर आक्रमण, १४८३ चोरी-डाके और ५५०० चोर-बाज़ारीमें गिरफ़्तारियाँ हुई हैं। अधिकांश खून उन जर्मन पुलिस-वालोंका हुआ है, जिन्होंने चोरियों और लूट-पाटको रोकनेकी कोशिश की। कई नक़ली पुलिसवाले भी पकड़े गए हैं। वेश्या-वृत्ति भी काफ़ी बढ़ रही है। इस समय बर्लिनमें २५००० वेश्याएँ हैं, जिनमें से ४० प्रतिशत यौन-विकारोंसे ग्रस्त हैं। माकूल डाक्टरी व्यवस्थाके अभावमें ये बीमारियाँ चारों तरफ़ फैल रही हैं। ('फ्री प्रेस जर्नल')

हिन्दू-मुसलमानोंकी मौलिक एकता

कोई भी निष्पक्ष और ईमानदार आदमी यदि देशके उन भागोंका दौरा करे, जहाँ जिन्नाकी प्रतिगामी और साम्प्रदायिक विद्वेषपूर्ण राजनीतिका ज़हर अभी तक नहीं फैला है, तो वह देखेगा कि आज भी हिन्दू-मुसलमानोंकी मौलिक एकता, समा-शीलता एवं सांस्कृतिक एकता, अपने अक्षुण्ण रूपमें जीवित है। गत १२ जूनके 'इण्डियन सोशल रिफ़ार्मर'में पालनी पहा-ड़ियोंमें स्थित हिन्दू-मन्दिरके दर्शनकर लौटे हुए एक यात्रीने लिखा है कि उसने वहाँ हिन्दू-मुसलमानोंको साथ-साथ पूजा करते देखा है। वहाँ बहुत-से ऐसे मठ-मन्दिर हैं, जिनके ट्रस्टी मुसलमान हैं और बहुत-सी ऐसी मस्जिदें हैं, जिनके ट्रस्टी हिन्दू हैं। कमोबेश रूपमें हिन्दू-मुसलमानोंकी यह धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता भारतके प्रायः सभी भागोंमें पाई जाती है। हाँ, शहरोंमें ब्रिटिश शासन, मुस्लिम-राजनीति और हिन्दुओंकी कट्टरताके कारण यह एकता कुछ कम और धुँधली-सी हो गई है। पर वह मरी नहीं है और उसे सहज ही फिर नई शक्ति, नई प्रेरणा और नई दिशा दी जा सकती है। यह काम वे ही समझदार और निःस्वार्थी हिन्दू-मुसलमान कर सकते हैं, जिन्हें दोनोंको लड़ाकर अपनी रोटी सेंकनेके बजाय दोनोंकी भलाई ज़्यादा प्रिय और वांछनीय है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

जापानका आत्म-समर्पण

वैसे तो स्तालिनग्रादके युद्धसे ही महायुद्धकी धारा बदल गई थी, पर जर्मनीके आत्म-समर्पणके बाद तो शायद ही किसीको इस बातमें कोई सन्देह रहा हो कि अकेला जापान संयुक्त राष्ट्रोंके सम्मुख ज़्यादा दिन टिक नहीं सकेगा। फिर भी गत ८ मईको जापानके नए प्रधान मन्त्री एडमिरल सूज़ूकीने बड़े गर्वके साथ कहा कि जर्मनीके पतनका जापानपर कोई असर नहीं पड़ेगा और वह अन्तिम विजय तक लड़ेगा! किन्तु मनमें वे खूब जानते थे कि ऐसा कहकर वे अपने-आपको तथा भोली-भाली और परवश जापानी जनताको धोखा भले ही दे लें, जापानको अवश्यम्भावी हारको अधिक दिनके लिए पीछे नहीं ठेल सकते। जिस तरह हिटलर, गोयबल्स और गोयरिंगने अन्तिम क्षण तक संयुक्त राष्ट्रोंमें फूट डालकर जर्मनीकी पराजयको 'सन्धि'का रूप देनेकी सतत चेष्टाएँ कीं, सूज़ूकीने भी बिला शर्त आत्म-समर्पण करनेके कठोर तथ्यका सामना करनेके बजाय रूसकी मध्यस्थता द्वारा कुछ अनुकूल और नरम शर्तोंपर सन्धि करनेकी चेष्टा की। पर जब बिगत ६ नवम्बरको जापानको 'आक्रमणकारी राष्ट्र' कहने और गत ५ अप्रैलको उसके साथ हुए तटस्थता-समझौतेका अन्त करनेवाले रूसने गत ८ अगस्तको उसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर मंचूरियाकी क्वांतुङ्-सेनापर धावा बोल दिया, तो सूज़ूकी की यह क्षीण आशा भी नष्ट हो गई और गत १० अगस्तको तोक्यो-रेडियोने जापानके आत्म-समर्पण करनेकी तत्परताकी घोषणा की! इस तरह जर्मनीके पतनके पूरे १३ सप्ताह बाद जापानी आततायियोंने भी घुटने टेक दिए।

१६ अगस्तको तोक्यो-रेडियोसे जापानके सम्राट हिरोहितो ने नियमानुसार जापान द्वारा आत्म-समर्पण करनेकी घोषणा की और दो सप्ताह बाद जापानी प्रतिनिधियोंने आत्म-समर्पणके पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। जापानियोंके अजेय होनेके स्वप्नको भंग करनेके लिए संयुक्त राष्ट्रोंका १३०० विमानोंसे संरक्षित ३८३ जंगी-जहाज़ोंका 'विजयी बेड़ा' सागामीकी खाड़ीसे होता हुआ तोक्योकी खाड़ीमें पहुँचा और वहीं प्रसिद्ध अमरीकन जंगी-जहाज़ 'मिसौरी'पर जापानके प्रतिनिधियोंने आत्म-समर्पणके पत्रपर हस्ताक्षर किए। अस्थायी रूपसे तोक्यो और जापानके कई अन्य स्थानोंपर संयुक्त राष्ट्रोंका फौजी अधिकार हो गया है और सम्राट हिरोहितो संयुक्त राष्ट्रोंके प्रधान सेनापति जनरल मैक्आर्थरके आदेशानुसार ही काम करेंगे, ऐसा तय पाया गया है। इस तरह आततायी जापानके अजेय और सम्राटके ईश्वर-पुत्र अथवा अति-मानव होनेके जापानियोंके परम्परागत अन्धविश्वासका पहली बार सफलापूर्वक पर्दा फ़ाश किया गया है।

जापान क्यों और कैसे हारा?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूसकी युद्ध-घोषणा और अणु-बमोंके प्रयोगने जापानी पराजयको कुछ और निकट ला दिया, पर केवल यही उसकी हारके यथार्थ कारण नहीं हैं। और फिर जो राष्ट्र पिछले ४० वर्षोंसे अपने आक्रमणोंमें निरन्तर सफल होता आ रहा हो, जिसके पास १०,२० और १०० वर्षों तक युद्ध चलानेकी साधन-सामग्री जुट गई हो, आज भी जिसका ३०-४० लाख वर्गमीलपर अधिकार हो और जिसके पास आज भी ४० लाख सशस्त्र सैनिक, २० लाख घरेलू गारद और २० लाख अधिकृत-देशोंके सैनिक मौजूद हों, वह आखिर इतनी आकस्मिकतासे हथियार कैसे डाल देगा? पर यथार्थमें तो, जापानके प्रसिद्ध पत्र 'असाही शिम्बुन'के शब्दोंमें, अणु-बम और रूसकी युद्ध-घोषणासे बहुत पहले ही जापान युद्ध हार चुका था। इसे भलीभांति समझनेके लिए हमें सुदूर-पूर्वकी युद्ध-नीतिको ज़रा ध्यानसे समझनेकी कोशिश करनी चाहिए।

जापानकी भौगोलिक स्थिति लगभग इंग्लैण्डकी-सी ही है। अक्सर उसे सुदूर-पूर्वका ब्रिटिश द्वीप-समूह कहा भी जाता है। उसका अस्तित्व—और उसके साम्राज्यकी प्राप्ति तथा सुरक्षा भी—उसकी नौ-शक्तिपर ही निर्भर करता है। अमरीका और ब्रिटेनके बाद तीसरा स्थान उसीकी नौ-शक्तिका है। वर्त्तमान महायुद्ध आरम्भ होनेके समय उसकी नौ-शक्ति क्या थी, यह ठीक-ठीक कह सकना सम्भव नहीं; पर १९३४ में उसके पास सब तरहके मिलाकर २५६ जंगी-जहाज़, ९ विमान-वाहक और ६० पनडुब्बे जहाज़ थे। १९४१ के दिसम्बर तक—जब कि उसने पर्ल बन्दरगाह और सिंगापुरपर आक्रमण किए—इनकी संख्यामें अवश्य ही पर्याप्त वृद्धि हुई होगी। फिर भी जापान जानता था कि उसे अपने से बड़ी दो नौ-शक्तियोंका मुक़ाबला करना होगा, अतः उसने सबसे पहले इन दोनोंकी रीढ़ तोड़नेका ही निश्चय किया। फलतः ७ दिसम्बरको पर्ल बन्दरगाह, हांग-कांग, गुआम, फिलिपीन, वेक द्वीप और शंघाईके बन्दरोंपर हमला कर उसने अमरीकाके लगभग एक दर्जन जंगी-जहाज़ोंको डुबोया तथा बेकार किया। इसके तीसरे ही दिन उसने सिंगापुरपर हमला कर ब्रिटेनके दो बड़े जंगी-जहाज़ों ('रिपल्स' और 'प्रिंस आफ़् वेल्स') को डुबोया। स्वयं ब्रिटेन और अमरीकाके अधिकारियोंको भी मानना पड़ा कि जापानके इन धावोंने उनकी सुदूर-

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्वकी नौ-शक्तिको पंगु कर दिया। जब तक वे इस क्षतिकी पूर्त्ति कर सकें, तब तक जापानने समयसे होड़ बदी और कुछ ही महीनोंमें हवाई, गुआम, लूज़ोन, काउलून, मिण्डानाओ, हांग-कांग, कोरीजिडोर, सुमात्रा, न्यूगिनी, मार्शल और गिलबर्ट द्वीप, मलाया, जावा, अण्डमान, किस्का (एल्यूशियन द्वीप) आदिपर अधिकार कर लिया।

इस तरह पहली दौड़में जापान ज़रूर जीता; पर ज्योंही संयुक्त राष्ट्रोंने ज़रा मुस्तैदीसे एक-एककर उसकी नौ-शक्तिके पंख काटने शुरू किए, पर्ल बन्दरगाह और सिंगापुर-आक्रमणके लगभग ९ मास बाद ही प्रशान्त-युद्धकी धारा बदल गई। संक्षेपमें इसका इतिहास इस प्रकार है: ८ दिसम्बर, १९४१ को अमरीका, ब्रिटेन और हालैण्डने जापानके विरुद्ध युद्ध-घोषणा की और ११ दिसम्बरको ही फिलिपीनके निकट जापानका प्रसिद्ध जंगी-जहाज़ 'हिरानुमा' (२९३३० टन) डुबोया गया तथा दूसरा बेकार कर दिया गया। फिर २३-१२-४१को सारवाकके पास ३, २४।२८-१-४२को मकासर-जलडमरूमध्यमें कई, १३-२-४२को ४, २२-२-४२को बालीके निकट कई, १५-४-४२को कई, ११-५-४२को कोरल-सागरके युद्धमें ११, १-६-४२को सिडनी-बन्दरगाहमें ३ पनडुब्बे जहाज़, ७।८-६-४२ को मिडवेके युद्धमें २०, २७-८-४२को १४, १३-१०-४२को ६, ३०-१०-४२ को स्टीवार्ड द्वीपके पास ७, ५-१२-४२को ३७, २।३-३-४३को बिस्मार्क-सागरके युद्धमें २२, ६-६-४३को ४, ३-७-४३को न्यूजार्जियाके पास १० और ८-८-४३को वहीं ३, २७।२८-९-४३को २, १२-१०-४३को २, रबौलके निकट ४९, ४।५-११-४३को १६, ६-११-४३को बोगेनविलेके निकट ३, १८-२-४४को पूर्वी केरोलीनके निकट २०, ३०-३-४४ को पालाऊ (पश्चिमी केरोलीन) के निकट १७, १३-६-४४को १३, १९।२०-६-४४को १६, १०-१०-४४को रेक्यूज़ द्वीपके पास ५८, २३।२६-१०-४४को लेटे-खाड़ीमें ५६ तथा १०-११-४४को वहीं १० जापानी जंगी-जहाज़ डुबोए या बेकार किए गए। ७-४-४५को जापानका बहुत बड़ा जंगी-जहाज़ 'यामाताओ' (४५००० टन) अमरीकन बमवर्षकों द्वारा डुबो दिया गया। २१-५-४३को पर्ल बन्दरगाहका आक्रमणकारी जापानी नौ-सेनाध्यक्ष यामामोतो सोलोमन द्वीपकी लड़ाईमें मारा गया और वहाँका जापानी जंगी-बेड़ा काफ़ी अव्यवस्थित हो गया।

इस प्रकार जापानकी नौ-शक्तिको अच्छी तरह छिन्न-भिन्नकर जब अमरीकन सैनिकोंने ईवो-द्वीप (जापानसे ७५० मील) और ओकीनावा (जापानसे ३७५ मील) पर तथा ब्रिटिश सेनाने ट्रक और सुमात्रापर धावा किया, तो स्थल तथा आकाशसे जापानी मुक़ाबला ज़रूर हुआ, पर नौ-सेनासे नहीं। यही कारण है कि जब जुलाई '४५में अमरीकन जंगी-जहाज़ों और विमान-वाहकोंने ईवोजीमा और ओकीनावासे जा-जाकर जापानी प्रमुख नगरोंपर गोलाबारी की, तो जापानी जंगी-बेड़ेसे विरोध नहीं हुआ। संभवतः जापानने मुख्य द्वीपकी रक्षाके भले ही कुछ जंगी-जहाज़ सुरक्षित रखे हों; पर अधिकांशतः उसका बेड़ा अगस्त '४२में हुई तुलागी, गेल, ग्वादलकनाल सोलोमनकी समुद्री लड़ाइयोंमें ही पिट चुका था। यदि अपने सामने प्रशान्तका एक अच्छा-सा नक़्शा और युद्ध रखकर देखें, तो उन्हें स्पष्ट हो जायगा कि इस समयके जापानकी विजयोंका ताँता रुक गया और उसका आक्रमण युद्ध रक्षात्मक युद्धके रूपमें बदल गया।

अगस्त '४२की नाविक हारके बाद जापानकी रही-सही शक्ति मार्च '४४में न्यूब्रिटेन, न्यूआयरलैण्ड और बोगेनविले नाविक हारोंमें छिन्न-भिन्न हो गई। इस अवसरपर जापान अपनी जान बचाने और संयुक्त राष्ट्रोंका ध्यान तथा शक्ति बँटाने उद्देश्यसे छिन-पहाड़ियोंके रास्तेसे भारत (मनीपुर)पर एक ज़ोरदार आक्रमण किया। पर यह चाल विशेष कारगर सिद्ध नहीं हुई और एक-एककर प्रशान्तके द्वीपोंसे उसके क़दम तेज़ीसे उखड़ने लगे। संयुक्त राष्ट्रोंका तो उद्देश्य ही यही था कि पहले जापानकी नौ-शक्तिको ध्वस्त किया जाय, ताकि न केवल वह उसके जीते हुए स्थानोंकी रक्षा ही न कर सके, बल्कि समयपर जहाँ सेनाकी कमी हो, वहाँ सेना और जहाँ युद्ध-सामग्रीकी कमी हो वहाँ युद्ध-सामग्री न भेज सके। फल-स्वरूप शैतानकी आँतकी तरह प्रशान्तकी छातीपर फैले हुए जापानी विजयोंके चिह्न एककर ग़ायब होने लगे। इस तरह जापानको पंगु करके संयुक्त राष्ट्रोंने उसके प्रमुख युद्धोद्योग-केन्द्रों (तोक्यो, योकोहामा, कोबे, नागासाकी, यावाता आदि) को विस्फोटक और अग्नि-बमोंसे धुनना शुरू किया। एक-एक बारमें ३००से लेकर ११०० बमवर्षक हज़ारों टन बम गिराने लगे। इस तरह नौ-शक्तिके विनाशके बाद कुछ ही हफ़्तोंमें जापानके युद्धोद्योग भी चौपट प्राय हो गए। इस व्यापक विनाशका (और कुछ अंशोंमें जर्मनीके पतनका भी) जापानी नागरिकोंपर क्या असर हुआ होगा, इसका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि शान्ति और व्यवस्था क़ायम रखनेके लिए गत १२ जून, १९४५को प्रधान-मन्त्री सूज़ूकीको तानाशाही अधिकार दिए गए। ऐसी स्थितिमें रूस और अणु-बमोंके आघातने आकर उसकी पराजयकी रही-सही कमी भी पूरी कर दी।

सम्राट और जापानका भविष्य

जापानी मानें या न मानें, पर आत्म-समर्पणके पत्रपर हस्ताक्षर हो जानेके बाद उनकी हार एक ऐतिहासिक तथ्यके रूपमें लिपिबद्ध हो चुकी है। अब संयुक्त राष्ट्रोंके सामने मुख्य प्रश्न यह है कि पिछले महायुद्धमें पराजित जर्मनीकी भाँति जापानको भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिर आततायीपन करनेसे कैसे रोका जाय ? सम्राटके प्रति जापानियोंकी अन्धभक्ति, अपनी श्रेष्ठताके सम्बन्धमें उनका अन्धविश्वास, कट्टरता, प्रतिहिंसा और गौरांगोंके प्रति घृणा केवल दन्तकथा ही नहीं, व्यावहारिक तथ्य भी हैं। सम्राट हिरोहितोने गत १५ अगस्तको पोट्सडम-अल्टीमेटम स्वीकार करते हुए तोक्यो-रेडियो से जो शाही फ़रमान ब्राडकास्ट किया था, उसमें कहीं भी पराजित शत्रुका-सा स्वर नहीं है। कहीं भी उसमें अनुत्तेजित और विश्वासघातपूर्ण आक्रमण तथा साम्राज्य-लिप्साके लिए क्षोभके रूपमें अपनाए गए आततायीपनका अपराध या पराजय स्वीकार करनेका कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष संकेत नहीं है। वह एक उद्धत और अहम्मन्य शत्रुके दिमाग़में उफ़ननेवाली घृणा, क्षोभ और प्रतिहिंसाकी भावनाको दबाकर 'अनुग्रहपूर्वक मौजूदा स्थितिका समाधान करनेके लिए उठाए गए एक असाधारण क़दमके रूपमें एक अभिमानी और आततायीका उद्दण्डतापूर्ण वक्तव्य है। १९ अगस्तको सम्राटके फ़रमानका स्पष्टीकरण करते हुए जापानके नए प्रधान-मन्त्री प्रिंस हिगाशी कुनीने भी इसी औद्धत्यका परिचय दिया है। नए विदेश-मन्त्री शिगेमित्सुने आततायीपनका अपराध तो नहीं, पर पराजय ज़रूर स्वीकार की है; किन्तु उनके भाषणकी सुदूर-पूर्वकी घोषणामें से 'पराजय' शब्द निकाल दिया गया! कदाचित् इसी वजहसे इन घोषणाओंके कई दिनों बाद तक भी उद्धत जापानियोंने आक्रमण बन्द नहीं किए और संयुक्त राष्ट्रोंको चेतावनी दी गई कि उनके विजयी बेड़ेके जापान पहुँचनेपर शायद कुछ उद्दण्ड जापानी गड़बड़ी करें, अतः वे सावधान रहें! पाठक देखेंगे कि इन सारी कार्यवाहियोंकी तहमें जापानियोंकी वही परम्परागत अजेयता और सर्वश्रेष्ठताकी ज़हरीली ज़हनियत काम कर रही है।

अतएव नात्सियोंकी तरह ही इन खूँख्वार दरिन्दोंको भी शान्त और जनतान्त्रिक ढंगसे रहनेवाला ज़िम्मेदार तथा सहिष्णु नागरिक बनानेके लिए सबसे पहले इनकी ज़हनियतको बदलना होगा। इस दिशामें सबसे पहली कठिनाई या समस्या है सम्राट की। गुन्थरने लिखा है कि जापानी सम्राट राजनीतिसे परे है। पर यथार्थमें वह सहज बुद्धि, विवेक, तर्क और जन-साधारणकी समझ-बूझसे भी परे जान पड़ता है। उसका ईश्वर-पुत्र होना जापान में एक रूढ़ि या अन्धविश्वास हो नहीं, ऐतिहासिक तथ्य बन गया है; जिसे लोगोंके दिमाग़से निकालना एक काफ़ी टेढ़ी समस्या होगी। इसी आरोपित अतिमानवताके कारण जन-साधारणका उससे मिलना या बात करना तो दूर रहा, उसकी ओर आँख उठा कर देखना भी नैतिक और सामाजिक अपराध समझा जाता है, जिसका दण्ड है आत्महत्या! आज भी जापानमें ११ फरवरी, १८८९ को मेईजी सम्राट द्वारा बनाया गया विधान प्रचलित है, जिसके अनुसार सारी शासन-सत्ता सम्राट नामके एक व्यक्तिमें ही केन्द्रित है! पर दरअसल सम्राट-नामधारी यह अतिमानव बेचारा एक निरीह अल्पमानव-मात्र है, जो धनियों एवं सैनिक-सत्तावादियोंके हाथकी कठपुतली है। यह प्रतिगामी गुट्ट पैसे, सेना, सत्ता और गुप्त खूनी दलोंकी सहायतासे सम्राटसे जो चाहे कहलाता और जनतासे उसपर धर्म-रूपेण आचरण कराता है।

इस गुट्टका दबदबा कम करनेके लिए सबसे पहला क़दम तो यह उठाया जाना चाहिए कि जापानके सम्राट हिरोहितोको सर्वप्रथम युद्ध-अपराधी घोषितकर न केवल शासन और सिंहासन से ही च्युत किया जाय, बल्कि उसे माकूल सज़ा भी दी जाय। दूसरा क़दम हो वहाँ लोकतान्त्रिक उपायोंका प्रचार, लिखने-पढ़ने-बोलनेकी स्वतन्त्रता, वालिग़ मताधिकार द्वारा चुनाव और भावी विधानके सम्बन्धमें जनता द्वारा आत्म-निर्णयके अधिकारका स्वतन्त्र एवं अबाध प्रयोग। यह बात नहीं है कि जापानमें लोकतान्त्रिक विचारोंके लोग हैं ही नहीं। जिन्हें सड़ा-गलाकर मार डाला गया है, उनके सिवा भी लगभग ६ लाख आदमी इस समय जापानकी जेलोंमें सड़ रहे हैं। इनका एकमात्र अपराध है पूँजीपतियों और सैनिक सत्तावादियोंके कुचक्रसे भोली-भाली जनताको बचाना और जापानमें ज़िम्मेदार लोक-शासनके लिए प्रयत्न करना। यद्यपि जापानके सैनिक-सत्तावादियोंने १९२०-२४में समाजवादी विचारोंके प्रचारकों तथा १९३२-३६ में उदारदली नेताओंका वध कराकर समझ लिया कि जापानमें सदा के लिए प्रगतिशील विचारोंका अन्त हो गया; पर वहाँ ऐसे विचार मरे नहीं, गुप्त रूपसे अधिकाधिक फैले ही हैं। अतः यदि संयुक्त राष्ट्र अपनी विजयको आपसी स्वार्थोंकी प्रतिस्पर्धाका रूप न देकर जापानी जनताको अन्धकार-युगकी सामन्तशाही और पूँजीवादके निकृष्टतम षड्यन्त्रसे निकालनेका सच्चा प्रयत्न करें; तो वे न केवल अपना, जापानियों या एशियाका ही, बल्कि संसारका भी बहुत बड़ा उपकार करेंगे।

एशियाका भविष्य

सुदूर-पूर्वके युद्धको समाप्तिने लाखों एशियावासियोंको जापान की गुलामीसे मुक्तकर संयुक्त राष्ट्रोंके सामने एक नई ज़िम्मेदारी और समस्या उपस्थित कर दी है। स्व० वेण्डेल विल्कीने कहा था कि जापानको पराजयसे पूर्व ही संयुक्त राष्ट्रोंको एशियावासियों के राजनीतिक विकासको कोई रूप-रेखा तैयार कर लेनी चाहिए; ताकि उसकी हारके बाद वहाँ जो रिक्तता हो, उसकी पूर्ति की जा सके। अब तक हमने ऐसी किसी रूप-रेखाकी चर्चा नहीं सुनी है। सुना है केवल यह कि ब्रिटेन फिर हांगकांग, सिंगापुर, मलाया, उत्तरी बोर्नियो आदि; फ्रांस हिन्द-चीन; हालैण्ड जावा, सुमात्रा, बाली आदि पूर्वी द्वीप और अमरीका कुछ प्रशान्त-द्वीप अपने कब्ज़ेमें लेना चाहते हैं! क्या एशियामें जापानी साम्राज्यवादके परिणामस्वरूप उसकी जगह फिर यूरोप-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमरीकाका साम्राज्यवाद थोपना उचित और हितकर होगा ?

यदि सुदूर-पूर्वके युद्धके अन्तका मतलब एशियासे साम्राज्यवाद और सैनिक-सत्तावादका अन्त नहीं है या हो, तो निश्चय ही यह युद्ध व्यर्थ लड़ा गया। नेहरूजीके शब्दोंमें जापानी सैनिक-सत्तावादके अन्तसे समस्त एशियावासियोंको खुशी ज़रूर हुई है ; पर असली दिली खुशी तो उन्हें तभी होगी, जब कि साम्राज्यवाद और सैनिक-सत्तावादका एशियासे नाम-निशान ही मिट जाय। पोट्सडम-घोषणामें कहा गया है कि मुख्य द्वीपोंको छोड़कर जापानसे सब 'अधिकृत' या 'जीते' हुए स्थान छीन लिए जायँगे। यह सर्वथा उचित और आवश्यक है। पर एशियावासियोंके लिए यह समझना कठिन है कि जो आततायीपन और अनधिकारी दखल जापानके लिए बुरा है, वह गोरे साम्राज्यवादियोंके लिए अच्छा कैसे है ? यदि बलपूर्वक छीने हुए स्थानोंको जापान अपने अधीन नहीं रख सकता, तो ब्रिटेन, फ्रांस, हालैण्ड और अमरीका कैसे रख सकते हैं ? यूरोप-अमरीकाके साम्राज्यवादियोंके पास एशियावासियोंके इन सीधे प्रश्नोंका क्या उत्तर है ?

अमरीकन व्यवस्थापिका-परिषदके सदस्य एल्बर्ट टामसने ठीक ही कहा है कि जब तक एशियामें यूरोपीय साम्राज्यवादका आतंक रहेगा, वहाँ ज़ोर-ज़बरदस्ती तथा अशान्ति रहेगी ही। सच पूछा जाय, तो जापानी साम्राज्यवादका बहुत बड़ा कारण एशियाका यह यूरो-अमरीकी साम्राज्यवाद ही है। गत ७ दिसम्बर, १९४१ को इस प्रतियोगी साम्राज्यवादके खिलाफ़ युद्ध-घोषणा करते हुए जापानके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री तोजोने कहा था—"अपना लोभ पूरा करनेके लिए अमरीकी और यूरोपीय राष्ट्र पूर्वी एशियाके एक अरब लोगोंका शोषण कर रहे हैं।...जापान पूर्वी एशियासे ब्रिटेन और अमरीकाको निकाल बाहर करेगा, जो पूर्वी एशियापर अपना कब्ज़ा रखनेके लिए यहाँके लोगोंको आपसमें लड़ाते रहते हैं।" इन शब्दोंकी यथार्थता और एशियावासियोंके लिए इनकी अपीलसे इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रारम्भमें जापानको जो सफलता मिली—जर्मनीसे भी अधिक जो क्विज़लिंग मिले – उसका एक प्रधान कारण यही था कि एशियावासियोंने उसके उदयमें यूरो-अमरीकी साम्राज्यवादसे अपनी मुक्तिका अरुणोदय देखा। भले ही बादमें जापानी साम्राज्यवादका शिकार होकर उनकी यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई हो ; पर उन्होंने दो साम्राज्यवादोंकी कशमकशमें विनाशके साथ ही अपनी मुक्तिका क्षीण किन्तु क्षणस्थायी आलोक भी देख लिया है। उनके लिए दोनोंका ही अनुभव कटु और कष्टदायक सिद्ध हुआ है। अतएव वे आज अविलम्ब दोनोंका ही अन्त देखनेके लिए व्यग्र हैं।

आँधीमें उखड़ा हुआ पेड़ फिर पुराने स्थानपर कदापि नहीं रोपा जा सकता। इसी तरह पराजित और पददलित हुए साम्राज्य भी—जिनकी जड़ें बहुधा जनताकी मिथ्या आशंकाओं और आत्म-शक्तिके विश्वासकी कमीमें ही हुआ करती हैं—फिर उसी पुराने रूप और स्थानमें प्रतिष्ठित नहीं किए जा सकते। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और हालैण्डके साम्राज्य-लोलुप अधिकारी भूलकर भी ऐसा सोचते-समझते हैं कि वे जापानी साम्राज्यवादके चंगुलसे मुक्त हुए प्रदेशोंपर संगीनों और तोपोंके बलपर अपने पुराने साम्राज्यवादोंकी पुनः प्रतिष्ठा करनेमें सफल होंगे, तो वे मूर्खोंके स्वर्गकी ही सैर कर रहे हैं। पूँजीवादी उद्योगीकरणको अपनाकर कच्चे माल, बाज़ार और सस्ती मज़दूरीके लिए जापानको साम्राज्यकी चिन्ता करनी पड़ी। उसका जो हश्र हुआ, वह सबके सामने है। क्या जापानी साम्राज्यवादके इस पतनसे गोरे साम्राज्यवादी कुछ शिक्षा नहीं ग्रहण करेंगे ?

अणु-बम और विश्वका भविष्य

जापानकी पराजयसे अमरीका, यूरोप और एशियाने कुछ सन्तोषकी साँस ज़रूर ली ; पर अणु-बमोंके प्रयोगने इस सन्तोष और खुशीको कुछ फीका एवं आतंकपूर्ण भी बना दिया। गत ६ अगस्तको हिरोशिमापर गिरे पहले अणु-बमने उसके दो-तिहाई भागको और ८ अगस्तको नागासाकीपर गिरे दूसरे अणु-बमने उसके ३० प्रतिशत भागको ध्वस्त कर दिया। टोक्यो-रेडियो इस विनाशका विवरण देते हुए कहा गया कि मकान राख भाफ़ बनकर गायब हो गए और सब जीव-जन्तु राख हो गए। मीलों तक राख और मलबेके सिवा कुछ भी नहीं बचा। दूसरे आघातवाले १९ दिन बाद तक मरते रहे। और यह विध्वंस भी ताज़े और अधिक बलशाली अणु-बमोंसे नहीं हुआ, बल्कि बक़ौल 'न्यूज़ क्रानिकल'के संवाददाता स्टुअर्ट गेल्डरके, ये दोनों बम कुछ पुराने हो चुके थे और एक तो नीचे आनेसे पहले ही फट गया। इन दो बमोंसे जो क्षति हुई है, वह बड़े-बड़े हज़ारों विस्फोटक बमोंकी क्षतिसे भी कहीं अधिक है। इस प्रयोगसे दुनियाके विवेकको कितना कल्पनातीत धक्का पहुँचा है, इसका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि इसके ज़िम्मेदार तथा समझदार व्यक्तिका दिल दहला है और उन्होंने इनके प्रयोगकी निन्दा की है।

अमरीकाने अणु-बमका प्रयोगकर जापानके प्रस्तावित आत्मसमर्पणमें होनेवाली अपनी जन और धनकी अपार हानिको तो बचा लिया ; पर इनसे प्राप्त की हुई शान्तिको उसने महायुद्धसे भी अधिक भीषण और भयावह बना दिया है। आज मानव-समाजके सामने उसके सर्वस्वके किसी भी क्षण स्वाहा हो जानेकी आतंकपूर्ण आशंका प्रतिक्षण उपस्थित है। न मालूम किस दिन पृथ्वी आकस्मिक दुर्घटनाके रूपमें विश्वका संहार हो जाय। अमरीकन राष्ट्रपति ट्रूमान और ब्रिटेनके प्रधान-मन्त्री एटलीने कहा है कि वे इसके रहस्यको प्रकट नहीं होने देंगे और इसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानव-कल्याणके काममें लाए जानेका भी प्रयत्न किया जायगा; पर इन आश्वासनोंका कोई अर्थ या मूल्य नहीं है, क्योंकि ये दोनों ही काम उनके बूतेके बाहरकी बातें हैं। चर्चिलका यह कथन तो और भी आशंकामय है कि इसका रहस्य अमरीका और ब्रिटेनके सिवा किसीको भी नहीं बतलाया जायगा। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे आज भी विश्वपर ब्रिटेन-अमरीकाका आधिपत्य क़ायम रखनेका स्वप्न देख रहे हैं। और यह स्वप्न थोथा नहीं है; आज इसके पीछे अणु-बमका ज़ोर भी है!

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि और किसी राष्ट्रसे चर्चिलका संकेत सोवियत् रूसकी ओर है, क्योंकि वही आज पूँजीवादी उत्पादन और साम्राज्यवादी शोषणके प्रतीक आंग्ल-अमरीकी आधिपत्यके सामने एक सफल एवं सुदृढ़ चुनौती बना खड़ा है। पर हम चर्चिल साहबको विश्वास दिला देना चाहते हैं कि उनकी यह खुशी ज़्यादा दिनकी नहीं है। युद्ध आज नैतिक और भौतिक रूपसे कम अमानुषिक या भयावह नहीं रह गया है। उसके भविष्यको अणु-बमोंके सुपुर्द कर देना तो और भी गर्हित कार्य होगा। अतएव सभी देशोंके राजनीतिज्ञों और राजनीतिक दलोंका यह पुनीत कर्तव्य है कि वे विश्व-राष्ट्र-संघको अधिकाधिक सुदृढ़, सहयोगिता-पूर्ण और सृजनशील बनानेके लिए लोकमत संगठित करें। उसीके द्वारा अणु-शक्तिका मानव-कल्याणके लिए उपयोग सम्भव एवं सुलभ होगा। इसके सिवा हमें विश्वके भविष्यकी सुरक्षा और उज्ज्वलताका और कोई रास्ता दिखाई नहीं देता।

रूस-चीनकी ३० वर्षीय सन्धि

गत २६ अगस्तको रूस और चीनमें भविष्यमें जापानी आक्रमण रोकनेके उद्देश्यसे ३० वर्षीय सन्धि हुई है, जिसका सारांश इस प्रकार है: आवश्यकता पड़नेपर रूस चीनको फौजी मदद देगा; तीनों पूर्वी प्रान्तोंमें चीनकी सार्वभौम सत्ता रहेगी; रूस चीनके भीतरी मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करेगा; चाइनीज़ ईस्टर्न और साउथ-मंचूरियन रेल्वेको मिलाकर चुंगशान रेल्वेके नामसे ३० वर्ष तक रूस और चीन दोनों उसकी व्यवस्था करेंगे, जिसके बाद वह पूर्णरूपेण चीनको हो जायगी; डेरेन स्वतन्त्र बन्दरगाह रहेगा और पोर्ट आर्थर ३० वर्ष तक रूस-चीनका सम्मिलित नौ-सेना-केन्द्र रहेगा; जनमत-संग्रह द्वारा तय होनेपर चीन आउटर-मंगोलियाकी स्वाधीनता स्वीकार करेगा तथा दोनों में से कोई भी देश पृथक सन्धि-समझौता नहीं करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि-समझौतोंका आज कोई खास मूल्य नहीं रह गया है। सामर्थ्य होनेपर अपने स्वार्थ और सुविधाके लिए कोई भी राष्ट्र उन्हें रद्दी कागज़के टुकड़ेका रूप दे सकता है। फिर भी हमारा अनुमान है कि इस सन्धिसे जहाँ चीन जापानके साथ ही यूरो-अमरीकी साम्राज्यवादसे भी अपने-आपको बचा सकेगा, रूसके खिलाफ़ पूर्वमें अब हो कोई गुटबन्दी भी नहीं हो सकेगी। इसका एक तात्कालिक प्रत्यक्ष परिणाम तो यह हुआ है कि जो साम्राज्यवादी एजेण्ट जापानके हारते ही चीनमें गृह-युद्धका वातावरण तैयार करनेकी कुचेष्टाएँ करने लगे थे, वे शिथिल-मनोरथ नज़र आ रहे हैं और कम्युनिस्ट नेता माओत्से तुंग स्वयं समझौतेकी बातचीत करने चुङ्किङ् गए हैं। यदि चीनी अधिकारियों एवं प्रमुख राजनीतिक दलोंने समझ, सुबुद्धि और कल्पना-शक्तिसे काम लिया, तो चीनको एक स्वावलम्बी एवं स्वतन्त्र राष्ट्र बननेमें रूससे काफ़ी सहायता मिलेगी। कुल मिलाकर यह सन्धि न सिर्फ़ चीन, बल्कि समस्त एशियाके लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

'आज़ाद हिन्द-सेना'का भविष्य

सुदूर-पूर्वके युद्धकी समाप्तिके बाद सबसे पहला प्रश्न जो हम लोगोंके सामने उपस्थित है, वह है 'आज़ाद हिन्द-सेना'के अफ़सरों तथा सैनिकोंके भविष्यका। उनकी प्राण-रक्षाके लिए चिन्ता प्रकट करते हुए नेहरूजीने कहा है—"...इनमें से लगभग २५ हज़ार व्यक्ति भारतीय जेलोंमें हैं और हमें स्वभावतः उनके भविष्यकी चिन्ता है। ये लोग भुलावेमें ज़रूर आ गए; पर इनकी देशभक्तिमें शक नहीं किया जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने ग़लती की; पर अगर इनके साथ अच्छा सलूक नहीं किया जाता, तो यह भारतके लिए एक नई समस्या हो जायगी।" एक दूसरे अवसरपर नेहरूजीने फिर कहा—"तीन वर्ष पहले मेरी यह राय थी और आज भी यही राय है कि इस सेनाके आदमी और अफ़सर कई तरहसे भुलावेमें आ गए और अपने जापानसे मिलनेके परिणामोंको ठीक-ठीक नहीं सोच सके। ये लोग ग़लतीपर ज़रूर थे; पर हैं ये बहादुर लोग, और जो-कुछ इन्होंने किया, अपने देश-प्रेमके कारण ही। यदि इनके प्राण गए, तो हमें भारी आघात पहुँचेगा।"

नेहरूजीके उपर्युक्त शब्दोंके बाद इन सैनिकोंकी ग़लतीके सम्बन्धमें और कुछ कहना अनावश्यक-सा प्रतीत होता है। सबसे अहम और विचारणीय प्रश्न तो यह है कि किन परिस्थितियों और दबाव तथा ज़्यादतियोंसे लाचार होकर भारतीय सैनिकोंको ऐसी ग़लती करनी पड़ी। इस हक़ीक़तको समझनेके लिए अधिकारियोंको अपने-आपको उस स्थितिमें रखना होगा, जिसमें मजबूर होकर उनके सेनानायकोंको १९४२ में सुदूर-पूर्वसे भागना पड़ा था और भारतीयोंने आखरी दम तक वीरतासे लड़ाई की थी। अभी हाल ही में जापानियोंकी क़ैदसे मुक्त होकर चुङ्किङ् पहुँचे हांगकांगके जनरल आफ़ीसर कमाण्डिंग मेजर-जनरल माल्टबीने चीनी सूचना-विभागके अधिकारियोंको बतलाया है कि—

"Two Indian Battalions fought gallantly, but were swamped by superior numbers. Later, some of them were taken away and *starved into submission to make them join the so-called Indian National Army, but 95 per cent of them remained loyal.*" (Italics ours.—Ed.)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हार जानेपर भूखों मारकर बहादुर हिन्दुस्तानियोंको तथाकथित आज़ाद हिन्दी-सेनामें भर्त्ती होनेको मजबूर किया गया, फिर भी उनमें से ९५ प्रतिशत राजभक्त रहे।

गत २६ अगस्तको नई दिल्लीसे निकली सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया है कि दबावमें आकर शत्रुसे जा मिले साधारण सैनिकोंके साथ दया एवं उदारताका बर्ताव किया जायगा; पर विशेष रूपसे गर्हित कार्य करनेवाले नेताओंका फौजी अदालतोंके सामने विचार होगा। शत्रुसे जा मिलनेके अपराधकी गुरुता बताते हुए सरकारने यह स्वीकार किया है कि ये लोग झूठे प्रोपेगेण्डा द्वारा बरग़लाए गए। ऐसे बहुसंख्यक लोगोंके साथ दयाका ही बर्त्ताव होगा। पर शेष लोगोंमें से उन नेताओंके साथ, जिन्होंने जान-बूझकर जापानके उद्देश्यको अपनाया, ऐसा नहीं किया जायगा। उनपर खुली अदालतोंमें मामले चलेंगे। सरकारी कथनके औचित्यको बहुत अंशोंमें स्वीकार करते हुए भी इतना तो हमें कहना ही पड़ेगा कि युद्धकी समाप्तिके बाद अब क़ानूनकी अपेक्षा दूरदर्शिता और उदारतासे ही काम लेना ज़्यादा अच्छा होगा।

सुभाष बाबूका क्या होगा?

विगत १९४२ में सुभाष बाबूके मरनेका एक दुःसंवाद आया था। पर उसपर बहुत कम लोगोंको विश्वास हुआ था और बादमें वह असत्य एवं निराधार ही साबित हुआ। वैसा ही एक दुःसंवाद गत २३ अगस्तको फिर आया, और यद्यपि सुभाष बाबूके 'निधन'पर कई जगह शोक-सभाएँ हुईं, हड़तालें हुईं, छुट्टियां हुईं तथा जनता और नेताओंने श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं; पर अभी भी बहुतोंको इसकी सत्यतापर विश्वास नहीं हुआ है। गत २९ अगस्तको दिल्लीमें एक अमरीकन पत्रकारने नेहरूजीसे उनके सायगोनमें जीवित होने तथा युद्ध-अपराधीके रूपमें उनपर मुक़दमा चलाए जानेकी बात कही है। पता नहीं इस संवाददाताके कथनका आधार क्या है; पर यदि वास्तवमें सुभाष बाबू जीवित हैं, तो निःसन्देह उनके भविष्यमें हम सबका दिलचस्पी रखना सर्वथा स्वाभाविक ही है।

अंगरेज़ या अमरीकन उन्हें क्या समझते हैं और यदि वे इनके हाथों पड़ें, तो ये क्या करेंगे; इसकी चिन्ता करना हमारा काम नहीं है। हम तो केवल अपने देशवासियोंको बात ही कह सकते हैं। एक दिन देशने उन्हें अपना गौरव-मुकुट बनाकर सर्वोच्च आसनपर समासीन किया था। बादमें उन्हें अपदस्थ करनेके लिए गांधीवादी गुट्टने जो निकृष्टतम षड्यन्त्र रचा, वाम-पक्षियोंने उनके साथ जो विश्वासघात किया तथा स्वयं सुभाष बाबूने कांग्रेसकी सत्ता और प्रतिष्ठापर जो आघात किए, उन सबका उल्लेख यहाँ अनावश्यक होगा। कांग्रेससे 'निकाले' जानेके बादसे अब तक उन्होंने जो-कुछ किया है, हर समझदार भारतीय उसके लिए उनकी प्रशंसा नहीं करेगा। पर इस राजनीतिक मतभेदके बावजूद सरकारी गुर्गोंको छोड़कर कभी किसीने उनकी ईमानदारी, देशभक्ति और स्वाधीनताकी लगनमें सन्देह नहीं किया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है पिछले १०-१५ दिनोंमें उनके 'निधन'पर देश द्वारा अर्पित की गई श्रद्धांजलियाँ और व्यापक शोक-समवेदना। उपर्युक्त पत्रकारसे कहे गए नेहरूजीके शब्द उनके सम्बन्धमें शायद देश-भरका मत व्यक्त करते हैं—"जहाँ तक मेरी जानकारी है, आज़ाद हिन्द-सेना सुभाष बाबूके जापान पहुँचनेसे पहले ही बन चुकी थी।...उनकी आज़ादीकी लगनमें मुझे कभी शक नहीं हुआ। जापानियोंके प्रति उनका कोई प्रेम नहीं था। यह समझनेमें उन्होंने ज़रूर ग़लती की कि जापान और जर्मनीसे मिलकर—जो न सिर्फ़ आततायी शक्तियाँ ही थीं, बल्कि खतरनाक भी—वे भारतकी आज़ादी हासिल कर लेंगे।" पर ग़लती और ग़द्दारी एक ही तो नहीं हैं।

वाइसरायकी दूसरी लन्दन-यात्रा

'इण्डिया-आफ़िसको तोड़कर भारतका काम डोमीनियन-आफ़िसको सौंप देने'की डींग हाँकनेवाला मज़दूर-दल जब ब्रिटेनमें सत्तारूढ़ हुआ, तो स्वभावतया भारतमें बड़ी-बड़ी आशाएं बँधीं। पर भारत-मन्त्री और भारतीय उपमन्त्रीकी नियुक्तियोंने आशाने अटकलबाज़ी और प्रतीक्षाका रूप धारण कर लिया। गत ८ अगस्तको नए भारत-मन्त्री लार्ड पेथिक लारेंसने पहले-पहल कहा कि वे भारतको यथाशीघ्र समान और स्वतन्त्र उपनिवेशोंकी श्रेणीमें देखना चाहते हैं। गत १५ अगस्तको नई पार्लमेण्टका उद्घाटन करते हुए बादशाहने भी कहा—"भारतीय जनतासे किए गए वादोंके अनुसार मेरी सरकार भारतीय लोकमतके नेताओंसे मिलकर शीघ्र ही वहाँ स्वशासन क़ायम करनेके लिए शक्ति-भर प्रयत्न करेगी।" अगर हम भूलते नहीं, तो १८५८ में मल्का विक्टोरियासे लेकर आज तक ब्रिटिश सिंहासनसे यही बात शब्दान्तरमें दोहराई जाती रही है; पर भारतको कितना स्वशासन मिला है, यह किसीसे छिपा नहीं है!

ब्रिटिश सरकार यदि वास्तवमें अपने इन पवित्र वादों और आश्वासनोंको पूरा करना चाहती, तो समझमें नहीं आता कि उसके सामने ऐसी कौन-सी कठिनाइयाँ थीं कि इन ८७ वर्षोंमें भी वह विशेष कुछ नहीं कर सकी। कदाचित् इसीलिए आज ब्रिटिश अधिकारियोंके वादों और आश्वासनोंमें भारतीय जनताका कोई विश्वास नहीं रह गया है। शिमला-कान्फ्रेंसमें सारे देशके भविष्यका प्रश्न जिन्नाकी मर्ज़ीपर छोड़कर ब्रिटिश अधिकारियोंने यह स्पष्ट कर दिया है कि अपने वादों और आश्वासनोंको पूरा न करनेके लिए उन्होंने इस दौरानमें कितनी सुन्दर और मज़बूत ढाल तैयार कर ली है! सम्भवतः इसीलिए वाइसरायकी दूसरी लन्दन-यात्रापर देशमें विशेष उत्सुकता और दिलचस्पी नहीं दिखाई देती। जैसा कि नेहरूजीने कहा है, अब युद्ध खत्म हो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चुका है, अतः अस्थायी समझौतेका कोई प्रश्न नहीं उठता। अब तो स्थायी रूपसे ही कुछ हल होना चाहिए। इसके लिए मज़दूर-सरकार अपने पूर्ववर्त्ती टोरियोंसे कितनी आगे बढ़ और साहस तथा दृढ़तासे काम ले सकेगी, यह अभी देखना बाक़ी है। पर अब तक मज़दूर-मन्त्रियोंने जो-कुछ कहा है, उससे विशेष आशा बाँधना एक नई निराशाको ही आमन्त्रित करना है।

चुनाव या एक नई चाल ?

लन्दनके लिए रवाना होनेसे पहले वाइसरायने निकट भविष्य में आगामी चुनावोंके होनेका संकेत किया है। लीगी हल्कोंमें इसपर बड़ी खुशी ज़ाहिर की जा रही है। उसकी तरफ़से अगले चुनावोंके लिए चन्दा इकट्ठा होना शुरू हो गया है और प्रचार भी। सर फ़ीरोज़खाँ नून वाइसरायकी कौंसिलसे इस्तीफ़ा देकर चुनावकी तैयारीमें लग गए हैं और कुछ दूसरे लीगी भी कमर कस रहे हैं। इसके विपरीत कांग्रेस अभी कई जगह ग़ैरक़ानूनी है, उसका प्रचार और सभाएँ नहीं हो सकतीं, उसके हज़ारों कार्यकर्त्ता आज भी बिना मुक़दमा चलाए जेलोंमें सड़ाए जा रहे हैं। ऐसी हालतमें चुनाव कैसा-क्या होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। यद्यपि नेहरूजीने इस चुनौतीको स्वीकार करनेकी घोषणा की है; पर राष्ट्रपति आज़ादने वाइसरायको सूचित किया है कि चुनावोंसे पहले कांग्रेसपर से पाबन्दी उठाई जाय और उसे सामान्यतया अपना संगठन एवं प्रचार करने दिया जाय। बिना इसके चुनाव करना सरासर अन्याय होगा।

आगामी चुनावके सम्बन्धमें नई पार्लमेण्टमें श्री सोरेन्सन द्वारा उठाए गए प्रश्नके उत्तरमें नए भारतीय उपमन्त्री श्री अर्थर हेण्डरसनने कहा कि 'आगामी चुनाव अधिकाधिक स्वतन्त्रताकी स्थितिमें ही होंगे।' इस 'अधिकाधिक स्वतन्त्रताकी स्थिति'को भलीभाँति समझनेके लिए एक उदाहरण देखिए। केन्द्रीय असेम्बलीके जबलपुर-क्षेत्रके मतदाताओंकी सूची गत जूनमें तैयार हुई थी। उस समय वहाँके प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्त्ता और केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य सेठ गोविन्ददास जेलमें (पर अपनी इच्छासे नहीं!) थे। बाहर आनेपर उन्होंने जबलपुरके दौरा-जजकी अदालतमें मतदाताओंकी सूचीमें अपना नाम शामिल किए जानेकी दरख्वास्त दी। डिप्टी-कमिश्नरने रिहायशी शर्त्त पूरी न करनेकी बिनापर इसका विरोध किया। सेठ गोविन्ददासने कहा कि चूँकि वे गिरफ़्तारकर जेलमें ठूँस दिए गए, उन्हें अपने मकानमें रहनेकी स्वतन्त्रता थी ही कहाँ? इसके लिए सरकार ही ज़िम्मेदार है। फलतः दौरा-जजने उनका नाम मतदाताओंकी सूचीमें सम्मिलित किए जानेकी आज्ञा दे दी।

यह तो एक सामान्य-सा उदाहरण है, जो पत्रों द्वारा जनसाधारणके सामने आया है; पर न-जाने और कितने कांग्रेसी नज़रबन्दी या अन्य कारणोंसे इसी तरह मताधिकारसे वंचित कर दिए गए होंगे। इस शरारत और षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ तथा विरोध किए बिना ही यदि कांग्रेसको चुनाव लड़नेके लिए मजबूर किया जाता है, तो उसकी कठिनाइयोंका अनुमान पहले ही लगाया जा सकता है। यदि इसी स्थितिमें जल्दीसे चुनाव हो जाते हैं, तो वह न सिर्फ़ कांग्रेसके साथ सरकारका अन्याय और देशके साथ विश्वासघात ही होगा, बल्कि चुनावोंकी वैधानिकताके नामपर ब्रिटेन और भारतकी जनताको धोखा देना भी।

भारत-रक्षा-क़ानून या पुलिस-राज ?

एक ओर वाइसराय दौड़-दौड़कर लन्दन जा रहे हैं और दुनियाके सामने यह प्रोपेगेण्डा किया जा रहा है कि भारतके राजनीतिक ज़िचको दूर करनेके लिए ब्रिटिश अधिकारी कितने व्यग्र हैं, उनके दिलोंमें भारतकी स्वाधीनताकी माँगके प्रति कितनी सद्भावना और सहानुभूति है; तथा दूसरी ओर भारत-रक्षा-क़ानूनके नामपर देशमें पुलिस-राज क़ायम है। हज़ारों देशभक्त आज बिना मुक़दमा चलाए जेलोंमें सड़ाए जा रहे हैं और नागरिक-स्वाधीनता नामकी कोई चीज़ नहीं रह गई है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितके शब्दोंमें आज भारत एक नज़रबन्द कैम्प हो रहा है। गत ३० अगस्तको दिल्लीके पास टिकरीकलाँमें भाषण देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरूने इस दम घुटा देनेवाली स्थितिपर प्रकाश डालते हुए कहा है :—

"भारत-रक्षा-क़ानून और कुछ नहीं, जनताकी आज़ादीपर सीधा हमला है। लागू तो किया गया था यह देशकी रक्षाके लिए, पर युद्ध-कालमें घूस, बेईमानी और चोर-बाज़ारका खूब ज़ोर रहा। लोगोंसे ज़बरन रुपया ऐंठा गया। इस तरह जो-कुछ रुपया इकट्ठा हुआ, वह भारतकी रक्षापर खर्च नहीं हुआ, बल्कि उसमें से ज़्यादा हिस्सा अफ़सरोंकी जेबोंमें ही गया। जिस देशमें पुलिसका राज हो और पुलिसको मनमानी करनेकी खुली छुट्टी हो, वहाँ ऐसा होना स्वाभाविक ही है।" अगस्त १९४२ की घटनाओंका उल्लेख करते हुए आपने कहा —"इस संघर्षके बाद जो दमन हुआ, इतिहासमें उसकी मिसाल नहीं है। युक्त-प्रान्त, बंगाल और बिहारमें न सिर्फ़ लोगोंको मशीनगनोंसे भूना गया और उनके घर जला दिए गए, बल्कि कई गाँव मिट्टीमें मिला दिए गए और सारी जगहमें हल चला दिए गए।"

वर्दीधारी गुण्डोंका उत्पात

भारत-रक्षा-क़ानून और युद्ध-परिस्थितिकी ओटमें इस देशमें कौन-सा ज़ुल्म और ज़्यादती नहीं हुई, यह कहना कठिन है। सबसे दुखद और दिल दहलानेवाले काण्ड हुए हैं वर्दीधारी सैनिकों द्वारा। ये विदेशी और स्वदेशी दोनों ही रहे हैं। वर्दी पहनकर मानो इनका दिमाग़ ही फिर गया और सारे नियम-क़ानूनोंसे ये मुक्त हो गए। अमीर और ग़रीब स्त्री-पुरुषोंकी असमत और इज़्ज़तपर हमला करना तो जैसे इनका एक साधारण काम हो गया।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आर्डिनेन्सों तथा भारत-रक्षा-क़ानूनोंके डरसे कभी इनके खिलाफ़ कोई संगठित सार्वजनिक कार्यवाही सम्भव नहीं हुई। बहुतसे काण्डोंको तो प्रकट करने या छापनेकी भी बड़े-बड़े जनसेवकों और अखबारनवीसोंको जुरअत नहीं हुई। अब शायद लड़ाई खत्म हो जानेके कारण ऐसे काण्डोंके संवाद देखनेमें आने लगे हैं। अभी हाल ही में कूचबिहारमें गत २१ अगस्तको हुए एक रोमांचकारी काण्डका विवरण २७ अगस्तके स्थानीय पत्रोंमें छपा है, जिसका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है :—

गत २१ अगस्तको दिनके ११ बजेके लगभग कूचबिहारके विक्टोरिया कालेजके छात्रावासके पास एक ओरसे आते हुए एक बूढ़ेकी साइकिल सामनेसे साइकिलपर आते हुए दो रियासती फौजके सिपाहियोंकी साइकिलसे टकरा गई। इसमें क़सूर किसका था, यह तो नहीं मालूम ; पर फौजियोंने बूढ़को मारना शुरू किया। बूढ़ा अपनी जान बचानेके लिए भागा। यह देखकर छात्रावासके दो छात्रोंने आकर बीच-बचाव किया और दोनों फौजियोंकी साइकिलें छीनकर उन्हें पुलिसको सौंप दिया। फौजी लौटकर छात्रोंको मज़ा चखानेकी बात कहकर चले गए। जब प्रिंसिपलको यह सूचना मिली, तो उसने शिक्षा-मन्त्रीको शान्तिभंग होनेकी आशंका सूचित की ; पर उसने कुछ भी नहीं किया। जब क्लासोंमें पढ़ाई हो रही थी, तो दो फौजी अफ़सरोंने आकर प्रिंसिपलसे फौजी बारकों तक चलनेको कहा। प्रिंसिपलने ऐसा करनेमें असमर्थता प्रकट की। इसके बाद एक सूबेदार आया और कहा कि मेजर उनको याद फ़रमा रहे हैं। काम छोड़कर जानेमें प्रिंसिपलने फिर असमर्थता प्रकट की। इसपर सूबेदार चला गया। तीसरे पहर ४ बजेके लगभग २०० फौजी ईंट-पत्थर और डण्डे लेकर चढ़ आए और कालेजके छात्रावास तथा जेंकिंग-स्कूलपर धावा बोल दिया। प्रिंसिपल, प्रोफ़ेसरों, छात्रों और छात्राओं तकको उन्होंने बुरी तरह पीटा और कालेजका बहुत-सा सामान भी तोड़-फोड़ डाला। इसके फल-स्वरूप लगभग १०० आदमी घायल हुए। इनमें से ४५ छात्र अस्पतालमें भर्त्ती कराए गए हैं, जिनमें दो छात्राएँ भी हैं।

वर्दीधारी गुण्डोंके इस उत्पातकी जितनी भी निन्दा की जाय, कम है। कूचबिहारकी पुलिस और उच्चाधिकारियोंने इस सम्बन्धमें जिस शिथिलता और लापरवाहीका परिचय दिया है, वह देशी राज्योंकी अराजकता, नपुंसकता और निकृष्टताके अनुरूप ही है। फिर भी क्या हम आशा करें कि इस गुण्डेपनकी आवश्यक जाँच की जाकर अपराधियोंको माकूल सज़ा दी जायगी ?

वाजपेयाजी और गुप्तजीकी संवर्द्धना

पिछले दिनों कलकत्तेमें सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और काशीमें बाबू मैथिलीशरण गुप्तकी संवर्द्धनाकर हिन्दी-संसारने अपने एक आवश्यक कर्त्तव्यका पालन किया है। हिन्दी के इन दोनों महारथियोंने अपने-अपने क्षेत्रोंमें जो कार्य किए हैं, उनसे आधुनिक हिन्दीको पर्याप्त बल मिला है और उसकी पौष्टि वृद्धि हुई है। ये महानुभाव स्वस्थ, सुखी तथा चिरजीवी और प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूपसे हिन्दीके भविष्य-निर्माणमें कई वर्षों तक और सहायक एवं पथ-प्रदर्शक हों, यही हमारी मंगल-कामना है।

बाबू श्यामसुन्दरदासका निधन

गत ८ अगस्तको बाबू श्यामसुन्दरदासके निधनके रूपमें हिन्दी अपना एक बहुत बड़ा महारथी, सेवक और पृष्ठपोषक खो दिया पिछले कई वर्षोंसे वे अस्वस्थ चले आ रहे थे। चिकित्सा और परिवर्त्तनके लिए बीचमें कुछ दिन वे लखनऊमें भी रहे, पर फिर काशी लौट आए। कुछ समय पूर्व हुए पत्नी-वियोगने उनके स्वास्थ्यकी स्थिति और भी खराब बना दी और अन्तमें ८ अगस्तको वे हम सबसे सदाके लिए बिछुड़ गए। 'सभा', नागरी-प्रचारिणी सभा, दर्जनों ग्रन्थों और सैकड़ों हिन्दीकी कीर्ति वृद्धि करनेवाले सुयोग्य शिष्योंके रूपमें हिन्दीके लिए वे जो कर गए हैं, उस अमित ऋणका बखान शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। यद्यपि उनका यह समूचा कार्य ही उनका सच्चा और जीवित-जाग्रत स्मारक है, फिर भी अपने ऋण-शोधके लिए हमें तो कम-से-कम उनकी सेवाओं तथा स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए ही हिन्दी-संसारको उनका एक उपयुक्त स्मारक अवश्य बनाना चाहिए।

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

श्रीमती सरलादेवी चौधरानीके निधनसे बंगालके नारी-आन्दोलनका एक बहुत बड़ा स्तम्भ टूट गया। साहित्य, संगीत और राजनीतिके क्षेत्रमें लगभग आधी शताब्दी तक उन्होंने जिस लगन, साहस और दृढ़ताके साथ काम किया, वह हमारे राष्ट्रीय इतिहासका एक अंग बन चुका है। जिस समय वे कर्म-क्षेत्रमें उतरीं, बंगालमें नारी-स्वातन्त्र्यका नाम भी नहीं था। उनकी प्रतिभा देखकर बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथने उन्हें प्रेरित हित किया था। जात-पाँत और प्रान्तीय सीमाको तोड़कर उन्होंने पंजाबके प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता श्री रामभजदत्त चौधरीसे विवाह किया और डायरशाहीके समय अपने पतिके कन्धेसे कन्धा मिलाकर पंजाबमें काम किया। इन्हींके प्रयत्नसे सर्वप्रथम जलियाँवाला काण्डकी खबर पंजाबके बाहर पहुँची और रवीन्द्रनाथने नाइटहुड विरोध-स्वरूप 'सर'की उपाधि ठुकरा दी। इस तरह बंगाल और पंजाब दोनों ही इस निडर एवं कष्ट-सहिष्णु देश-सेविकाके कर्म-क्षेत्र रहे हैं। इनके निधनसे बंगालके नारी-आन्दोलनकी प्रगतिमें एक युगका भी अ त हो जाता है।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि इतना जल्द मुझे आराम हो जायगा।

आखिरकार मुझे खाँसीकी दवा मिल ही गई, जो शीघ्र आराम करनेके साथ-साथ गुणकारी भी है।

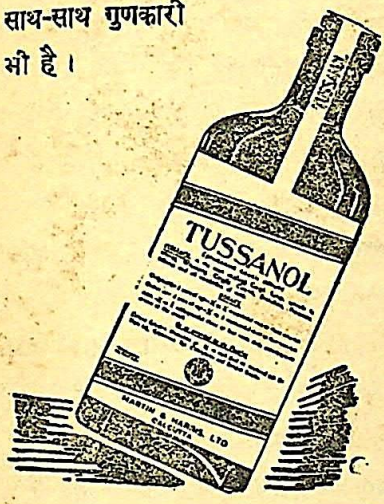

छाती और फेफड़ों-सम्बन्धी शिकायतोंको दूर और आराम करने तथा उन्हें सुरक्षित बनाये रखनेके लिए टस्सानलसे बढ़कर निर्दोष, अचूक या लाभकारी दूसरी कोई दवा नहीं।

TUSSANOL
COUGH SYRUP

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

D. N. BOSE'S
HOSIERY FACTORY
"SANKHA & PADMA"
BRAND
GENJEES
STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

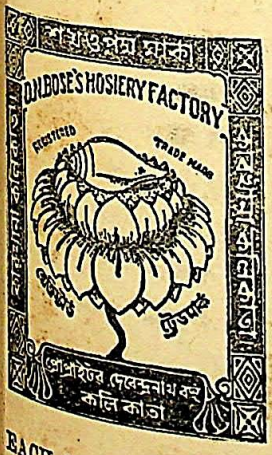

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL
ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND
FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.
'Phone: B. B. 6056.

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

		मूल्य
१.	प्रेमयोग	०-१४-०
२.	प्राच्य और पाश्चात्य (द्वितीय संस्करण)	०-१४-०
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (द्वितीय संस्करण)	१-४-०
४.	परिव्राजक (द्वितीय संस्करण)	०-१४-०
५.	भक्तियोग	०-७-०
६.	मेरे गुरुदेव (द्वितीय संस्करण)	०-६-०
७.	शिकागो वक्तृता (तृतीय संस्करण)	०-६-०
८.	वर्त्तमान भारत	

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखिए।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर
(सी० पी०)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस प्रकार "ओटीन" आज सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य-प्रसाधनके रूपमें प्रसिद्ध हो गया है, उसी प्रकार साधना बोसकी ख्याति भी—न केवल उनके सौन्दर्यके कारण, बल्कि एक सफल कलाकार और नर्तकीके रूपमें। देखिये "ओटीन"के बारेमें वे क्या कहती हैं :—

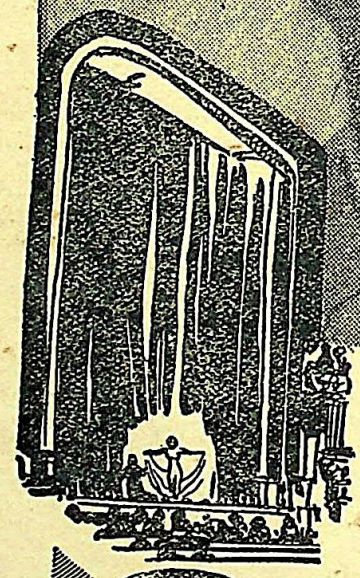

OATINE CREAM is indispensable for my toilet. I have been using it for a long time, and find it delightful, and extremely necessary to preserve a perfect skin.

Sachona Bose

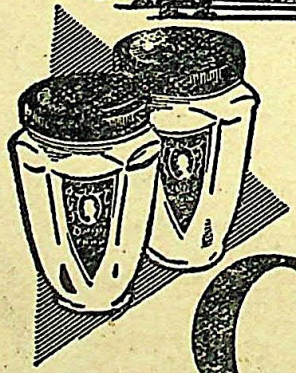

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बर, १९४५

विशालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Math C... Vara...

—अपने और अपने देश —के भविष्य के लिए

आत्मत्याग कीजिए

फ़िज़ूलखर्ची से आप जितना परहेज करेंगे, चीज़ों के भाव उसी क़दर गिरेंगे जिससे जनता की भलाई होगी और ग़रीबों को अधिक माल मिल सकेगा। आजकल कमखर्ची की ही ज़्यादा क़दर है। यह देशभक्ति का कार्य है। पुरानी, मरम्मत की गई और पैवन्द लगी हुई वस्तुओं को बरतना कोई लज्जा की बात नहीं।

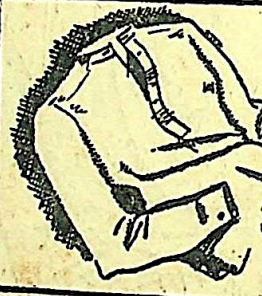

पुरानी क़मीज़ों की मरम्मत कर लीजिए।

फटे हुए कफों को उलट लीजिए।

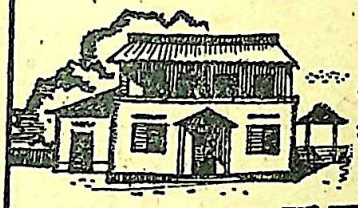

आजकल जायदाद मत ख़रीदिए, क्योंकि अभी दाम बहुत ज़्यादा हैं।

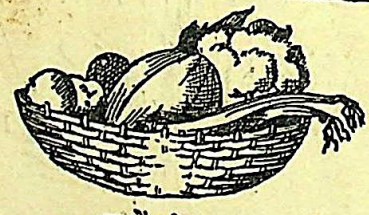

फूलों की जगह तरकारियाँ उगाइए।

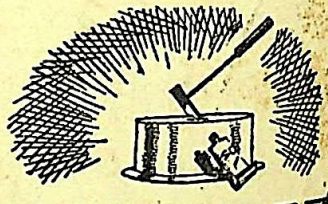

पुराने बर्तनों की मरम्मत करा कर इन्हीं से काम लीजिए।

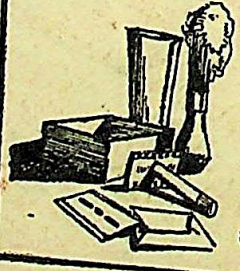

पुराने ब्लेडों को तेज़ करके इनसे और हजामत बनाइए।

कमख़र्ची से संकट दूर कीजिए

घर के फालतू कमरे किराये पर देकर बचत कीजिए।

जिसके बिना काम चल जाय उसे मत ख़रीदिए

AAA 6 HINDI

भारत-सरकार के सूचना तथा प्रचार-विभाग द्वारा प्रकाशित।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादक और विज्ञापन-मैनेजर की आवश्यकता

शीघ्र ही कलकत्तेसे प्रकाशित होनेवाले एक आधुनिक ढंगके उच्चकोटिके सचित्र हिन्दी साप्ताहिकके लिए एक सुयोग्य एवं अनुभवी सम्पादककी आवश्यकता है। केवल ऐसे सज्जन ही सम्पूर्ण विवरण तथा इच्छित वेतन-सहित अपना प्रार्थना-पत्र भेजें, जिन्होंने कम-से-कम ५ वर्ष तक किसी श्रेष्ठ पत्रका सम्पादन किया हो।

* * *

इसी पत्रके लिये एक अनुभवी विज्ञापन-मैनेजरकी भी आवश्यक है। केवल वे सज्जन ही इसके लिए प्रार्थना-पत्र भेजें, जो इस लाइनमें कम-से-कम ५ वर्ष तक काम कर चुके हों। प्रार्थना-पत्रमें इच्छित वेतन और यदि कोई अन्य शर्त्त हो, तो वह भी लिख भेजें।

बाक्स नं० १००१,

मार्फ़त—'विशाल भारत' कार्यालय,

१२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रजिस्ट्रड

श्री चित्रकूटमें स्वांस दमाकी

प्रसिद्ध जड़ी बूटी कैलाश हिल्स हर्ब्स

आश्विन सुदी शरद (पूर्णिमा) तारीख २१-१०-४५ को एक ही खूराक सेवन करनेसे स्वांस, दमा हमेशाके लिये जड़से नष्ट हो जाता है। ब्रह्मचारी जी० दास श्री सिद्ध ब्रह्मचर्य सेवा आश्रम, पो० चित्रकूट, यू० पी०।

गवर्मेण्ट हास्पिटल, स्टेट्स, मिशन्स, सेण्ट्रल आर्डनेन्स डिपो आदि द्वारा खरीदा जानेवाला

इण्डो-कुनैन

कुनैनके इस संशोधित रूपकी अत्यधिक प्रशंसा हुई है और इम्पीरियल मलेरिया कान्फरेन्स, मेजर एफ० जे० क्राउफोर्ड, आई० एम० एस०, कैप्टेन स्टूअर्ट, आई० एम० एस०, डा० बी० सी० राय, बी० ए०, एम० डी०, टी० डब्लू० स्टीवर्ट, कैप्टेन, आई० एम० एस० आदिने इसके प्रयोगकी सिफ़ारिश की है। मूल्य : १२० टिकियोंका २), ४८० टिकियोंका ७॥), १९२० टिकियोंका ३०)।

इन्डो-कुनैन मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी,
(इण्डिया), मेरठ-२

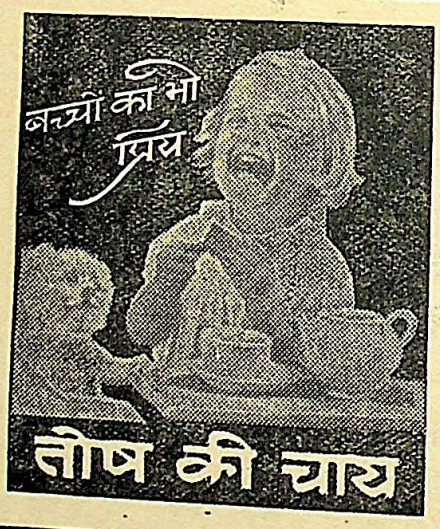

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As. 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B.

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

के

प्रसिद्ध प्रकाशन—

१ **नवयुगके गान**—श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह

२ **विभूति**—

डा० रामकुमार वर्माके सर्वश्रेष्ठ नवीन एकांकी नाटकोंका सचित्र संग्रह।

३ **शहरका अन्देशा**—

श्री किरणविहारी दिनेश-लिखित उच्चकोटिके हास्य व्यंग्यकी अत्यन्त आकर्षक ढंगसे छपी हुई पुस्तक। इसका प्रत्येक पृष्ठ सचित्र है।

४ **पृथ्वीराजकी आँखें**—डा० रामकुमारके एकांकी नाटक

५ **पाँचधागे**—

श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'की रक्षा-बन्धन विषयक मनोहर कहानियोंका कलापूर्ण सचित्र संग्रह।

६ **शासन-शब्द-संग्रह**—संग्रहकर्त्ता श्री हरिहरनिवास द्विवेदी

७ **गीता-परिचय**—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित

८ **ग्राम-चिन्तन**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

९ **अश्वपरीक्षा**—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले

१०-११ **ग्राम-पुस्तकालय-माला**—मूल्य प्रति पुस्तक १)

१. मधुमक्खी २. जंगल

—विस्तृत विज्ञापनके लिए लिखें—

प्रबन्धक, विद्यामन्दिर-प्रकाशन,
मुरार (ग्वालियर-राज्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

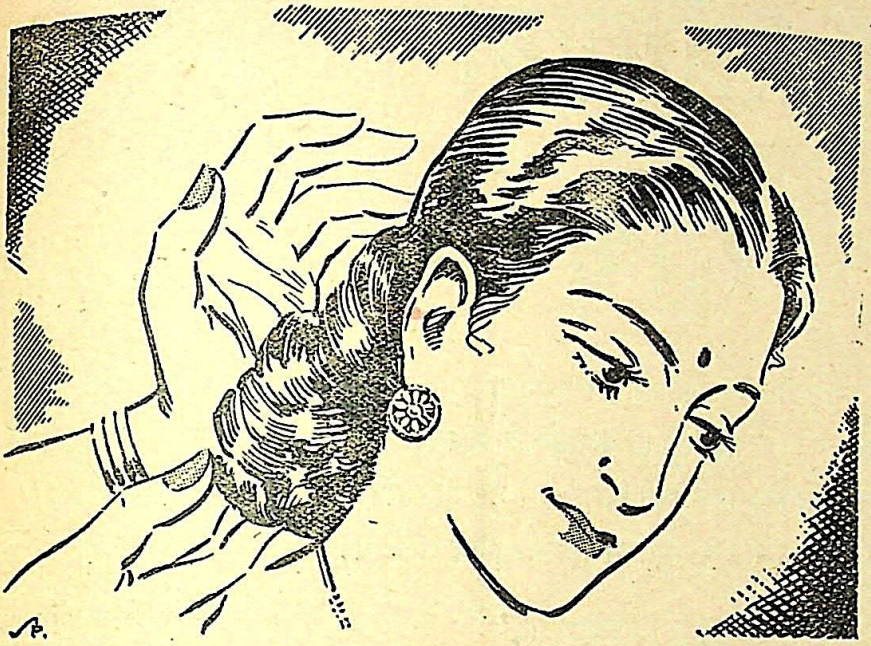

त्योहारके इस शुभ अवसरपर
आपके सौन्दर्यको प्रतिबिम्बित होने दीजिए !

मार्गो सोप

नीमका यह साबुन चमड़ेके स्वास्थ्यके लिए
पिछले २५ वर्षोंसे प्रसिद्ध है।

नीम टूथ पेस्ट

इसमें नीमकी दँतुअनके सभी गुण हैं।
दाँतोंके स्वास्थ्यके लिए यह सर्वश्रेष्ठ है।

कस्टोरल

एक मीठी खुशबूवाला बालोंमें लगानेका अंडीका
तेल, जिसमें विटामिन 'एफ' है।

सिलट्रेस

बालोंको रेशम-सा मुलायम बनानेवाला सुगन्धित
शैम्पू, जो नीम, नारियल और जैतूनके तेलोंसे
तैयार किया गया है।

रेनुका

नीमका सुगन्धित पाउडर, जो चमड़ीके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

कलकत्ता केमिकल
कलकत्ता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाँसीको रोकिये

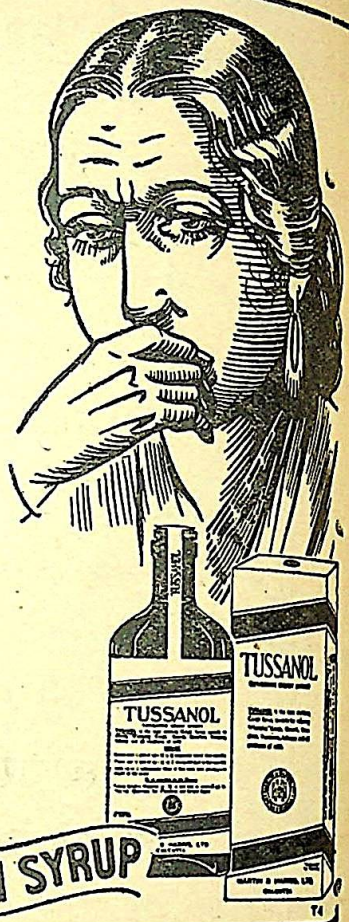

मामूली-सी खाँसीको भी छुपाना या दबाना नहीं चाहिए। वह भले ही फेफड़ोंकी सूजनसे हो, या दिक़से हो, या गलेकी ख़राशसे ; उसको फौरन, सुरक्षापूर्वक और ख़ुशनुमा तरीक़ेसे आराम कीजिए।

टस्सानल से

TUSSANOL

MARTIN & HARRIS, LTD.
CALCUTTA

D. N. BOSE'S
HOSIERY FACTORY
"SANKHA & PADMA" BRAND
GENJEES
STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

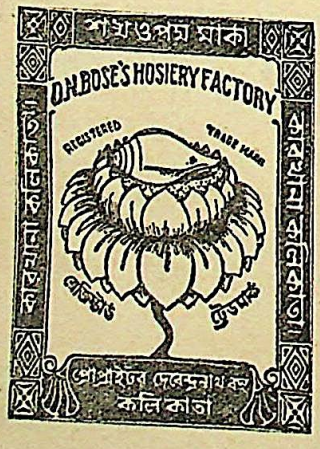

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL
ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND
FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.
'Phone: B. B. 6056.

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

		मूल्य
१.	प्रेमयोग	,, ०-१२
२.	प्राच्य और पाश्चात्य (द्वितीय संस्करण)	,, ०-१२
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (द्वितीय संस्करण)	१-४
४.	परिव्राजक (द्वितीय संस्करण)	,, ०-१२
५.	भक्तियोग	,, ०-१२
६.	मेरे गुरुदेव (द्वितीय संस्करण)	,, ०-१२
७.	शिकागो वक्तृता (तृतीय संस्करण)	,, ०-१२
८.	वर्त्तमान भारत	,, ०-१२

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखिए।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर
(सी० पी०)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे दो नये महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

"उन्मुक्त प्रेम"

लेखक—श्री गुरुदत्त एम० एस-सी०

'स्वाधीनताके पथपर' और 'पथिक'के बाद लेखकका यह तीसरा उपन्यास है। इसमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टीके असामाजिक रूपपर प्रकाश डालते हुए मज़दूरों व अन्य नागरिकोंकी वर्त्तमान सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक स्थितिको सुधारनेके उपायोंपर रोचक शैलीमें प्रकाश डाला गया है। पुस्तकमें गम्भीर समस्याओंके विवेचनके साथ-साथ हास्य-रसका पुट भी जहाँ-तहाँ दे दिया गया है। पतले टाइपके लगभग पौने पाँच सौ पृष्ठोंके इतने बड़े सजिल्द उपन्यासका मूल्य केवल छै रुपये।

"बच्चोंकी आदतोंका विकास"

लेखक—श्री प्रो० राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०

यह पुस्तक वर्षोंके बाल-निरीक्षण, अध्यापन तथा अनुभवके बाद लिखी गई है। इसमें बच्चोंके खेलों, सहशिक्षा, काम-शिक्षा, झूठ बोलना तथा चोरी करना आदि समस्याओंका सुन्दर विवेचन है। सभी अध्यापकों तथा बच्चोंके अभिभावकोंको यह पुस्तक एक सच्चे पथ-प्रदर्शकका काम देगी। मूल्य केवल दो रुपये।

विद्या मन्दिर लिमिटेड

कनॉट सरकस, नई देहली

उद्यम

प्रत्येक अंकमें १५ तारीखको नीचे दिए गए विषयोंपर विस्तृत जानकारी प्रकाशित होती है :—

लाभप्रद उद्योगधन्धे	*	घरेलू मितव्ययिता
खेती, बागवानी	*	शास्त्रीय जानकारी
व्यापारिक जानकारी	*	सुन्दर मुखपृष्ठ, चित्र
बाजार भाव'		
स्वास्थ्य		व्यंग चित्र इ०

प्रत्येक अंक घरके प्रत्येक व्यक्तिके लिए उपयोगी होता है। इस कारण घरों-घर, शालाओं तथा लायब्रेरियोंसे 'उद्यम'की अधिक माँग की जाती है। रेलवे बुक स्टाल्स् और न्यूजपेपर एजेन्टोंकी ओरसे भी उद्यमकी माँग सतत बढ़ती जा रही है। अतएव आज ही वार्षिक मूल्य रु० ५-८-०, (वी. पी. से रु० ५-१२-०) भेजकर अपने उपयोगका मासिक पत्र मँगवा लीजिए।

मैनेजर, 'उद्यम मासिक' धर्मपेठ, नागपुर।

हिन्दीकी लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका

आजकल

मई, १९४५ से हिन्दीमें "आजकल" नामसे एक लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका निकलने लगी है। इसमें हिन्दी साहित्य, भारतीय संस्कृति, विदेशोंकी जानकारी तथा ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी खोजपूर्ण लेख व सुन्दर कहानियाँ होती हैं। इसकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांगको देखते हुए आपको अपनी प्रति अपने नगरके एजेंटसे सुरक्षित करा लेनी चाहिए।

पृष्ठ ४८। एक प्रतिका मूल्य छः आने, वार्षिक ५)

रेलवे-बुकस्टाल व बड़े-बड़े शहरोंके सब पुस्तक-विक्रेताओंके यहां मिलता है।

आर्डरके लिए निम्न पतेपर लिखिए—

युनाइटिड पब्लिकेशन्स

पोस्ट बाक्स १६६, दिल्ली।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्या आपको आवश्यकता नहीं है ?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की
स्त्री-पुरुषके लिए औषध

मेनसो—कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २)।

लिवर्टी—उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २)।

ओज़न—निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनता है। मूल्य सिर्फ ४)।

कैटरैक्टो—बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २)।

मेनसो चेम्बर

१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता

फोन : साउथ २४६७

केवल एक दिनमें

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की पड़ियों में ६½ इत्यादि बना देना, दीवार में आग लगा देना, हाथ में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अक्षरों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्मे सीखकर

"दूसरे ही दिन"

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाउन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पांच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की जोरदार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

— दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

हमारे ५ नये प्रकाशन

अनुरागिनी

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त-लिखित

उच्च कोटिका सामाजिक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्रचलित रूढ़ियोंपर सफल आघात करता है। एक बार प्रारम्भ कर देने पर समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ४॥)।

एप्रिल फूल

मराठी साहित्यके चुने हुए ख्यातनामा लेखकोंकी हास्यरसकी चुनी हुई कहानियोंका अनुवाद हिन्दी-साहित्यके सहृदय पाठकोंके लिए विशेष रूपसे प्रकाशित किया गया है। इन्हें पढ़ते-पढ़ते पाठक हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता है। अपने विषयकी यह एक बेजोड़ पुस्तक है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ३)।

संगम

श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे, बी० ए०-लिखित १६ मौलिक कहानियोंका ओजस्वी एवं प्रभावशाली संग्रह, जिसकी एक-एक कहानी अपनी एक विशेषता रखती है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य ३)।

कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ

[ले० प्रो० विनयमोहन शर्मा, एम०ए० एल्-एल्० बी०]

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्यग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"—'विशाल भारत'। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल २)।

कीमती आँसू

श्री रा० र० खाडिलकर, बी० एस-सी०-लिखित १२ कहानियोंका मौलिक सुन्दर संग्रह। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ॥)।

शिवाजी प्रकाशन मन्दिर,

लखनऊ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्यारी बहिनो !

न तो मैं कोई नर्स हूँ, न कोई डाक्टर हूँ और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थी स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक-धर्म के दुष्ट रोगों में फँस गई थी। मुझे मासिक-धर्म खुलकर न आता था। अगर आता था, तो बहुत कम और दर्द के साथ, जिससे बड़ा दुःख होता था। सफेद पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी। चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। घर के काम-काज से जी घबराता था। हर समय सर चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने मुझे सैकड़ों रुपये की मशहूर औषधियाँ सेवन कराईं, परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक संन्यासी महात्मा हमारे दरवाजे पर भिक्षा के लिये आये। मैं दरवाजे पर आटा डालने आई, तो महात्माजी ने मेरा मुख देखकर कहा—बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे का रंग रुई की भाँति सफेद हो गया है ? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पति को अपने डेरे पर बुलाया और उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वर की कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिये असल लागत पर बाँट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहिन के लिये पन्द्रह दिनकी दवा तैयार करनेपर २॥=) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फँस गई हों, तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूँगी। यह मेरा प्रण है कि मैं किसी बहिनसे दवाकी कीमत अपनी असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूँगी।

जरूरी सूचना—

मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और किसी रोग की दवाई के लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल

नं० (२१) बुढ़लाड़ा, ज़िला हिसार (पंजाब)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केशचर्या और केशचर्चाका श्रेष्ठ उपकरण

कैन्थाराइडिन

हेयर आयल

पोषणके उपयोगी पदार्थोंके अभावमें जब केश शुष्क और विवर्ण हो जाते हैं एवं शिरमें खुश्की, रूसी आदि आ जाती है, तब बेंगल केमिकलका कैन्थाराइडिन व्यवहार करनेसे केशोंकी जड़ें नीरोग होती हैं एवं केशोंकी विरलता और उनका झड़ना दूर होकर केशोंके स्वास्थ्य और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

टांगा रबर बदलने के दिन आगये

RED ★ STAR

और

FLY WHEEL

मार्के याद रखिये।

USEFUL EMPLOYMENT OF R B S RUPEES BRAIN & STRENGTH

सुंदर — स्वदेशी — टिकाऊ

प्रस्तुत कारक

आर बी एस जैनवर मिल्स

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पोट्सडम-कान्फ्रेन्सका दृश्य। सामने स्तालिन, बाईं ओर एटली, चर्चिल तथा ईडन और दाहिनी ओर ट्रूमान बैठे हैं।

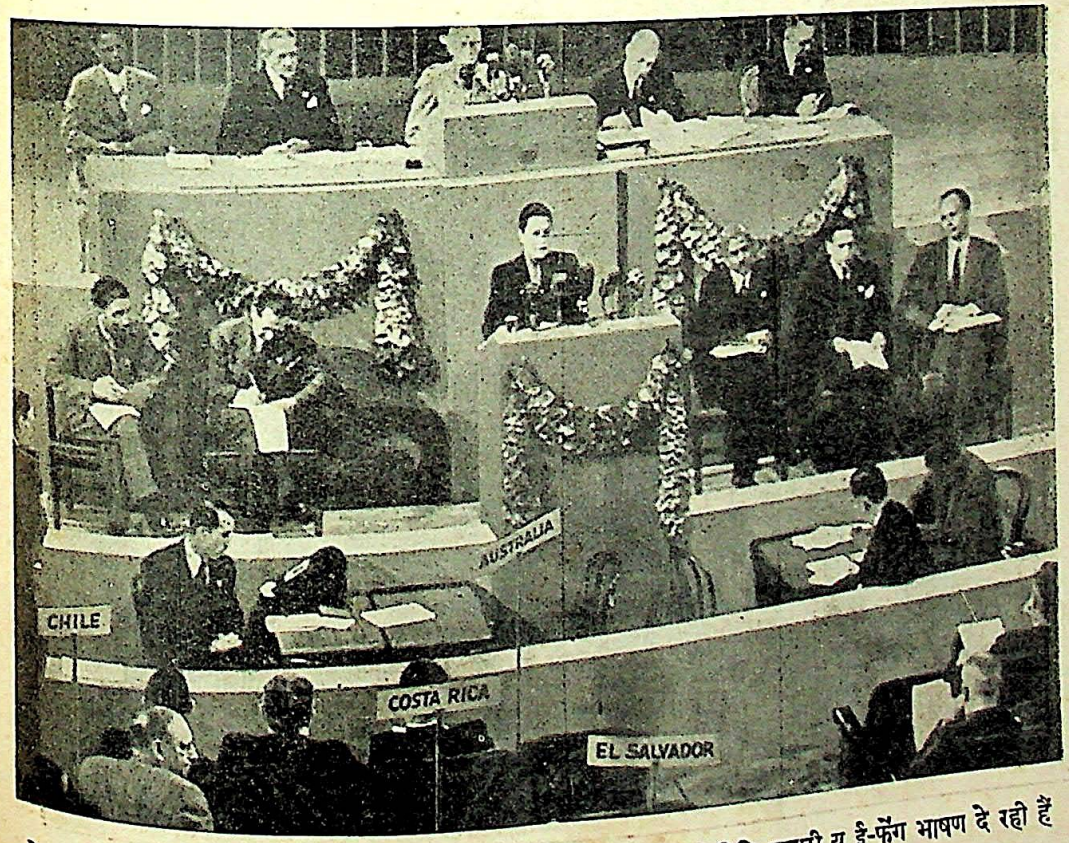

सेन-फ्रांसिस्कोमें हुए संयुक्त राष्ट्र-सम्मेलनका एक दृश्य। बीचमें चीनी प्रतिनिधि कुमारी यू ई-फेंग भाषण दे रही हैं और दाहिनी ओर ब्रिटिश भारतके सरकारी प्रतिनिधि सर ए० रामस्वामी मुदालियर बैठे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

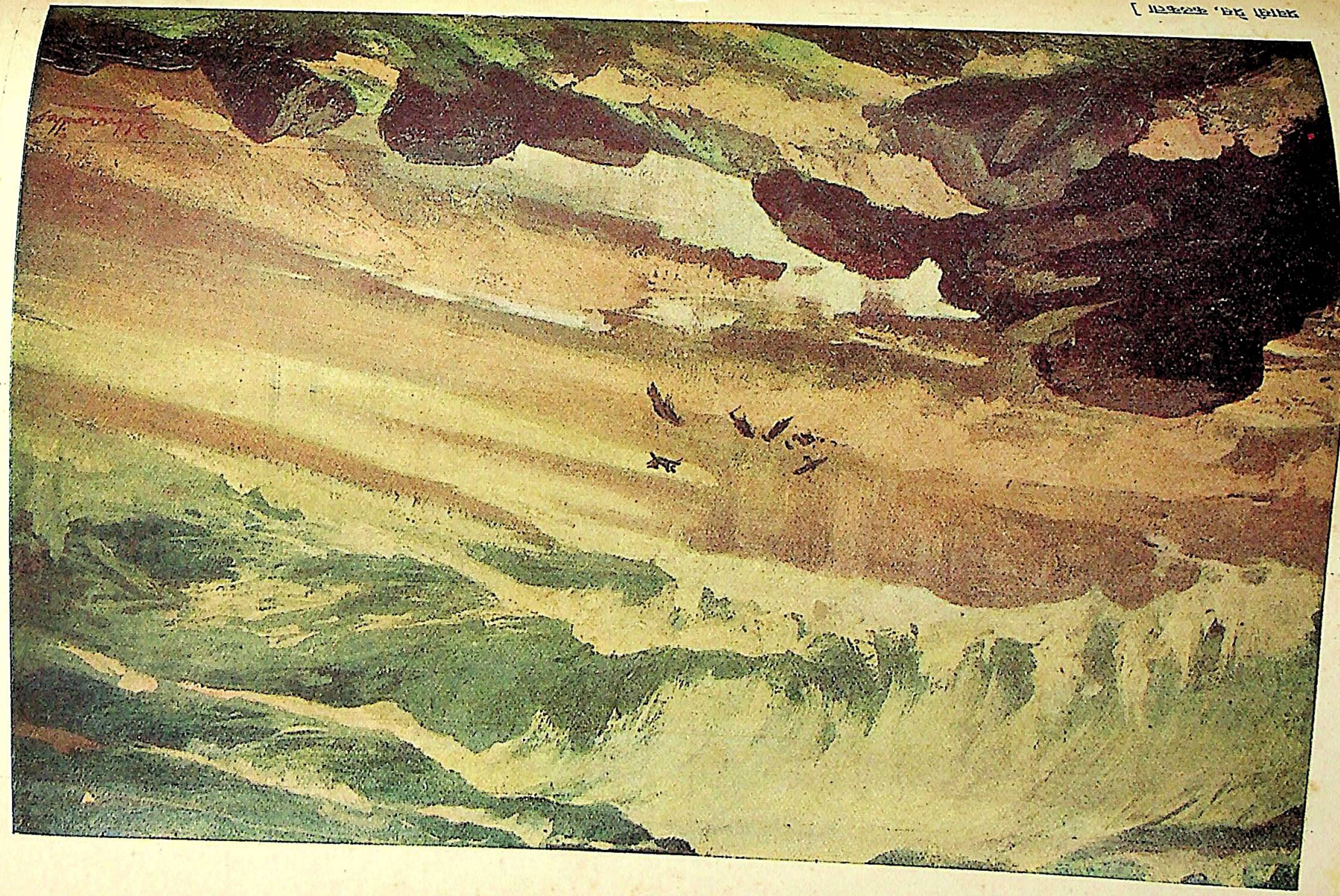

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक ४] कलकत्ता, अक्टूबर, १९४५ [पूर्णांक २१४

काल-पुरुष गांधी

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

तुम आत्म-यज्ञके होम - कुण्डके गन्धपूत ;
हे स्वयं प्रकाशित दिनमणि - से प्रिय देवदूत !
तुम सत्य, शील, समता, मृदुताके खिले फूल ;
संयमी, सतत सन्तुष्ट, शान्तिके सुदृढ़ मूल !
तुममें गंगा - से सिंचित, हिमगिरि-से उपमित ;
शुचि - आशयता, दुस्तरता, अगम्यता अविदित !
तुममें युग - युगसे पूजित, श्रमसे उद्भासित ;
चिर - परम्परागत लोक - सभ्यता मर्यादित !
तुम निखिल विश्वके भ्रातृ - भावसे अभिनन्दित ;
ईसाके काँटोंकी छायामें संघर्षित !
कटिमें शोभित खादीकी लोकोज्ज्वल कछनी ;
जो पराधीनता प्रेतात्माकी गलफँसनी !
तुम नग्न गात वनवासी - से लगते तपसी ;
पर, सिखलाते सभ्यता - पाठ जगको हब्शी !
बस डेढ़ पसलियोंसे निर्मित बौनी काया ;
उसने जाने ऐसा प्रकाश किससे पाया !
अति - चिन्ताग्रस्त ललाट झुर्रियोंसे छाया ;
पर, उसने गहरा तत्त्वान्वेषण प्रकटाया !
हे राष्ट्र - नियन्ता, बुद्धि - प्राण !
तुम सन्त पाल आधुनिक युगके नीतिवान !
तुम जुलहा, कोमल अंगुलियोंसे प्रिय - स्पर्शी ;
बुनते प्रच्छापट जीवनके गौरवदर्शी !
गलियों, कूचों, झोपड़ियों और पहाड़ोंमें ;
पथके एकान्तोंमें, महलोंकी आड़ोंमें ;
जीवनकी दरदीली आहोंमें, साँसोंमें ;
अपमानोंमें, गुमराहोंके उल्लासोंमें ;
सन्देश 'चलो'का लिए शान्तिदा कल्याणी ;
लिखती भविष्यका भाग्य एक तुम वह वाणी !

ब्रह्माण्ड बाध्य है सुने जिसे होकर अधीर ;
थम जाय लहरता मन्द - मन्द चंचल समीर !
परिवार, सम्पदासे वंचित होनेके डर ;
पद - ख्याति, प्रतिष्ठासे विहीन होनेके डर ;
कब डिगा सके तव कृतसंकल्पित अडिग चरण ;
निज पथसे, जो युगसे भटकोंके उद्बोधन !
ज़ालिमकी कर दी खड्ग - धार तुमने टेढ़ी ;
पशु - बलकी नहीं, आत्म - बलकी रेती तेरी !
कर सत्य - स्वर्णसे जीवनकी प्रतिमा निर्मित ;
दी प्राण - प्रतिष्ठा मानव - शवको मनुजोचित !
फूत्कार छोड़ता गरल कुशासनका अजगर ;
कर्कश ध्वनिसे उनकी दिगन्त कम्पित थर - थर !
नभमें गिद्धों - से दानव दल-के-दल भुक्खड़ ;
उड़ रहे यन्त्र - पंखोंको निज हुंकारित कर !
जल - भुन कर कीट - पतंगोंसे मरते मानव ;
जूठन पर लड़ते श्वानों - से भूखे मानव !
हो रहे लिप्त सन्ताप - धूमसे नील गगन ;
बढ़ रहे दैन्य, भय, रोग, त्रास, क्लेशित जन - मन !
लघु स्वार्थनिरत, अधिकार - क्षुब्ध गर्वित जनगण ;
बन काल - विवरके कीट प्रलयके आमन्त्रण !
बो रहे ध्वंसके बीज धरातल पर पावन ;
सच्चिदानन्द निज आत्माको दे निर्वासन !
कर रही निखिल मानवताको पशुता पीड़ित ;
जड़गत संस्कारों, आचरणोंसे उत्प्रेरित !
जीवनका मंगल - कलश पंकमें समासीन ;
विज्ञान उड़ाता धूल, वायुमण्डल मलीन !
अब केवल सत्य, अहिंसाके पथपर निश्चित ;
चलकर जग होगा मानवतासे अभिनन्दित !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ्रम, द्वेष मिटें, मद, क्रोध, लोभ, लघु अहंकार ;
मिट जायँ ताप, सन्ताप मनोभवके विकार !
हो शान्ति विधायक - शक्ति विश्वकी महीयान ;
सामाजिक संघर्षों, छिद्रोंका समाधान !
हो विविध वर्ग, देशों, राष्ट्रोंकी शक्ति एक ;
समताके सक्रिय संस्थापनमें दृष्टि एक !

जग तोड़ सके शृंखला दासताकी कठोर ;
बँध ऐक्य - सूत्रमें बाधाओंके शृंग फोड़ !
हे दहन - भूमिमें घन - वर्षणके सिक्त प्राण ;
दो गहन तिमिरमें अमर ज्योतिका अभयदान !
हे सत्यान्वेषक, द्वन्द्वमुक्त !
तुम समद्रष्टा, सर्वतोभद्र, व्रत - श्रेय - युक्त !

पग-चिह्न

श्री रांगेय राघव

मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
कारवानों-से अनेकों तिमिरमें लय हो गए हैं ;
राहपर चलकर अजाने अगन निर्बल खो गए हैं ;
भूलके प्रस्तर अनेकों वर्ष कलके ढो गए हैं ;
किन्तु मेरा मन उलझकर फिर सशंक पुकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
स्वर्णके साम्राज्य धुँधले टिमटिमाकर बुझ गए हैं ;
और वे खय्यामके डेरे कभीके उठ गए हैं ;
वे गुलाबी रंग भी निर्जीव-से अब उड़ गए हैं ;
किन्तु मन छाया-अछायाको अचानक वारता है ।
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
कौन कहता है, यही है मौत जीवनका किनारा ?
क्या न दिखती वेगमय उन्मादिनी यह मुक्त धारा ?
मैं न बहलूँगा कभी पाकर गुलामीका सहारा ;
हर कगारेके तले जल काटता फुंकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
'किस लिए'का घोर रव चिंघाड़ता यह जानता हूँ ;
भीरुता इतिहासकी मेरा सँजीवन, जानता हूँ ;
जन्म-जन्म न मानता मैं, एक जीवन जानता हूँ ;
इसलिए अधिकार सारे 'आज' मेरा माँगता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
मैं यहूदी हूँ, युगोंसे आगपर ही सिक रहा हूँ ;
देख सागरपर अनेकों रेख-सी क्या लिख रहा हूँ ;
गिर गए सब पात फिर भी एक मैं ही हिल रहा हूँ ;
आज तूफ़ाँ भी मुझे नतशीश हार दुलारता है !
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
प्यारका अभिशाप बन वरदान साहस भर रहा है ;
गूँजती हैं सब दिशाएँ और घंटा बज रहा है ;
आज मेरे ही पगोंपर पाप घुट-घुट मर रहा है ;
क्रुद्ध मृत्युंजय-धनुष यह आप ही टंकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
कर चुका है रक्तको पानी भयद साम्राज्य काला ;
किन्तु है विश्वास अपना, है सबल कलका उजाला ;
छिन्न तारक-जालमें मैंने जिसे है रात पाला ;
रातके तममें लहरता स्वर यही झंकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
विजन मरुकी इस कहानीको सुनाएगा प्रभंजन ;
किन्तु शैलोंसे विवश टकरा उठाता घोर क्रन्दन ;
कालका लटका हुआ कम्बल मिटाता चिह्न क्षण-क्षण ;
ले भविष्यत्को हृदय भाला बना ललकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
खा गए पतझड़ अनेकों कीट बनकर रूप सारा ;
पर न मधुमें फूल आए कौन-सा है वृक्ष हारा !
नील नभमें जगमगाता है अभी तक शुक्र तारा ;
देख प्रहरी-सा यही अभिमान मुझमें जागता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
धूलि है वह ही जहाँ उस दिन सिकन्दर चल रहा था ;
ढेरपर इसके सभीका दर्प अब तक पल रहा था ;
कौन-सा यौवन न इसकी लाजको ही छल रहा था ;
चिह्नका कर ही पथिकसे आज पंथ उगाहता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
स्वर्ण जिनकी नख-किरनसे लाल होकर लाज करते ;
जो कि पद्मासन लगाकर ध्यानमें वैकुण्ठ धरते ;
लाल अलतेसे रँगे जो गोदमें ही खेल पलते ;
हैं न कोई चिह्न उनके देख मन किलकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
धूलिको देकर चुनौती रौंदते जो कालका फन ;
शूलपर पलकर न मरते और करते मुक्त गर्जन ;
और वैभव छा दिया जिनने कभी था भेद निर्जन ;
आज उनकी दृढ़ निशानीको समय पुचकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !
जानता हूँ मृत्यु है कल और यह जीवन नहीं है ;
किन्तु क्या अवगुण्ठनोंके रूपमें यौवन नहीं है !
क्या युगोंका शक्ति-सागर बूँद-सा यह क्षण नहीं है !
एक यह मीनार-सा उठ लौह स्वर हुंकारता है—
मिट न जाए हाय, यह पग-चिह्न जीवनका !

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परम्परागत योग और कबीरका 'सहज योग'

श्री मनोरंजनसहाय श्रीवास्तव, बी० ए० (आनर्स)

योगकी क्रिया जितनी प्राचीन है, उतना ही आगे चलकर उसके अर्थमें परिवर्त्तन हो गया है। अतः 'योग' शब्दके अर्थका अनुशीलन करना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है और उस समय तो और भी अधिक, जब हम कबीरके काव्योंमें स्वतन्त्र 'सहज योग' अथवा 'सहज समाधि'[1] का उल्लेख पाते हैं। उन कविताओंके पर्यवेक्षणके पश्चात् हम सहसा यह अनुमान कर बैठते कि जिस योगकी चर्चा ऋग्वेद[2] से अब तक होती चली आ रही है, कबीरका सहज योग क्या उसी योगका प्रतिपक्ष करता है अथवा इसका कोई अन्य अर्थ है? अंगरेज़ीमें Yoke-शब्दका अर्थ to go into harness अथवा to buckle to अर्थात् कार्यके लिए तत्पर हो जाना है। संस्कृत योग शब्द 'युज्' धातुके बाद करण और भाववाच्यमें घञ् प्रत्यय लगानेसे बनता है। 'युज्' धातुका अर्थ है 'समाधि'। समाधि-शब्दका अर्थ है सम्यक् प्रकारसे भगवान्के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना; जीवका कामना, आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकारको आगन्तुक मलिनताको दूरकर, स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर, मुख्य भावसे भगवान्में मिल जाना। योग शब्दका अर्थ है जीव और ब्रह्मका पूर्ण रूपसे मिलन—अर्थात् विजातीय, सजातीय एवं स्वगत भेदसे रहित होकर जीव और ब्रह्मका ऐक्य प्राप्त कर लेना—'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। यों भी यदि विचार किया जाय, तो योगका अर्थ 'जोड़' ही होता है। इस दृष्टिसे अर्थ हुआ आत्मा-परमात्माका मिलन, और वह मिलन भी किस प्रकारका, जिस प्रकार नमक पानीमें मिल जाता है। इसका कारण यह है कि जब तक हमारे मनमें अहंभाव है, तब तक हम अपनी सत्ताका उस परम सत्तामें तिरोधान नहीं कर पाते। अहंभाव वर्त्तमान रहनेपर 'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च' वाले चक्रमें हम भी भ्रमित होते रहेंगे। इसीलिए मनुने कहा है—'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥'

अतएव जब तक योगीके मनमें अहंभाव चक्कर काट रहा है, निश्चय ही उसकी समाधि ईश्वर तक पहुँचनेवाली न होगी और अनेकानेक बाधाएँ उसे प्रताड़ित करती रहेंगी। अतः योग वही है, जिसमें मनुष्य सांसारिक चिन्ताओंसे मुक्त होकर उसी एक परमेश्वरकी सत्तामें मनका निवेश करता है—'सर्वचिन्ता परित्यागी निश्चिन्तो योग उच्यते' (योगशास्त्र)। इस प्रकार सभी चिन्ताओंसे मुक्त होकर नाना विधानके पश्चात् जब समाधि लग जाती है, तो केवल ध्येयका ही ध्यान होने लगता है और योगीके अपने अस्तित्वका पता नहीं रहता। वह ध्येयमें इतना लीन हो जाता है कि सोचने लगता है—वह स्वयं ही ध्येय है। योगदर्शनमें आया है—'तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।' उपनिषदोंमें भी समाधि हृदयकी उस अवस्थाको कहा गया है, जिस क्षण हृदयमें भरी हुई सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। उस समय वह मरणधर्मा मनुष्य अमृतत्त्व लाभ करता है और इस जीवनमें ब्रह्मानन्दका आस्वादन करता है (बृहदारण्यकोपनिषद, ४।४।७)। जीवात्मा-परमात्माकी एकताके ज्ञानके उदयको 'समाधि' कहते हैं (जाबाल दर्शनोपनिषद, १०।१)। योगी अपने बलसे इसी समाधिकी अवस्थाको प्राप्तकर ईश्वरका साक्षात्कार करता है। प्राचीन कालके योगी इसी प्रकार योगाभ्यासकर अहर्निश मधुमती भूमिकामें लीन रहते थे। समय जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, यौगिक क्रियाएँ भी नाना रूपोंसे सन्निविष्ट होने लगीं और योगके अनेकानेक अर्थ हो गए। 'जोड़' आदि साधारण अर्थोंपर ध्यान न देकर यदि हम उसके विशिष्ट और अभिप्रेत अर्थपर विचार करें, तो योगका निम्नलिखित अर्थ परिलक्षित होगा :—

१. जीवात्मा-परमात्माका सम्पूर्ण रूपसे मिलन—'अद्वैतानुभूति योग।'

२. देहात्मबुद्धि त्यागकर आत्मभावापन्न होना—'योगेनान्ते तनुत्यजाम्।'

३. योगका अर्थ है योग-दर्शन (पतंजलिका योगदर्शन नामक ग्रन्थ), जिसका उद्देश्य है जीवात्मा-परमात्माका सम्पूर्ण मिलन कराकर कैवल्य-प्राप्तिमें सहायक होना।

४. पातंजल मतानुसार चित्त-वृत्तिका निरोध करके स्व-रस प्रतिष्ठ होना योग है—'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' तथा 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽव स्थानम्।'

५. सांख्य मतानुसार प्रकृति-पुरुषका पृथकत्व स्थापितकर, दोनोंका वियोग करके पुरुषका स्व-रूपमें स्थित होना योग है—'पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्यभिधीयते।'

---

१. सखो, सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन तैं उपजी दिन-दिन अधिक चली॥

२. म० म० पं० विधुशेखर भट्टाचार्यने लिखा है—'ऋग्वेद (१०।१३६।२) में कुछ ऐसे लोगोंका वर्णन आता है, जो दिगम्बर-वेशमें रहते थे और पीत वस्त्र पहनते थे। यही नहीं, अन्यत्र (१०।१३६।३) उनके मौनेयका भी वर्णन मिलता है।' सम्भवतः ये योगी ही थे और योगके नियमोंका पालन करते थे।—ले०

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

६. सुख-दुःख, पाप-पुण्य, शत्रु-मित्र, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंसे अतीत होकर समत्व भाव प्राप्त करना योग है। गीतामें कहा है—'समत्वं योग उच्चते।'

७. कर्मबन्धन न कर सकें, इस प्रकार कर्मके प्रति उदासीन भावको धारणकर मुक्तावस्था प्राप्त करनेके उपायको भी योग कहते हैं, जैसे गीतामें कहा है—'योगः कर्मसु कौशलम्।'[3]

योगदर्शन (२।२९) में पतंजलिने योगके जो आठ अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) बताए थे, आगे चलकर उनमें यह चौथा अंग ही प्रमुख हो गया और प्राणायामके द्वारा ही योगसिद्धि-क्रिया प्रचलित हो गई। इसका एक बहुत बड़ा कारण था मानव-ज्ञानकी वृद्धिके साथ-साथ उसकी ग्रहणशक्तिका भी विकास। शनैः-शनैः सूक्ष्म पद्धतियोंका अभ्यास क्षीणप्राय हो गया और उसके बदलेमें जनतापर प्रभाव डालनेके निमित्त कृच्छ्र एवं कष्टसाध्य प्रणालियाँ ही सर्वतोभावेन श्रेष्ठ मानी जाने लगीं। योगके सहज नियमनका परित्यागकर लोग कठिन नियमोंका पालन करने लगे और वह जन-साधनासे हटकर व्यष्टि-साधनाका अंग बन गया। सम्भवतः यही कारण था कि ईसाके जन्मसे ४५०० वर्ष पहलेसे चली आई इस विद्याके साधक विरले ही मिलने लगे। इसी योगकी व्यवस्थाको लक्ष्यकर महर्षि अष्टावक्रने अपने शिष्य राजर्षि जनकसे एक दिन कहा था कि इस विश्वमें योगी अनेक हैं, पर योग-साधन करनेवाले विरले ही मिलते हैं (बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते। योगमोक्ष निराकाङ्क्षी विरलो हि महाशयः॥)।

योगशास्त्रका पुनर्निर्माण बौद्धों एवं जैनोंने किया। बुद्धदेवके निर्वाणके ७५ वर्ष बाद ही बौद्ध धर्म वाद-विवादका केन्द्र बन गया और यौगिक क्रियाओंमें चमत्कारका सन्निवेश हुआ। इसलिए जब हम इतर साहित्यमें यह पढ़ते हैं कि एक बार बुद्ध भगवानने अपने सागत नामक भिक्षुको राज्याधिकारी पुरुषोंकी सभामें जाकर उन्हें चकित करनेका आदेश दिया, तो हमें आश्चर्यमें न पड़ जाना चाहिए; क्योंकि ये समस्त कपोल-कल्पनाएँ जनताको आकृष्ट करनेके निमित्त ही गढ़ी गई हैं। बुद्धदेवकी मृत्युके पश्चात् शनैः-शनैः जनताकी भावना पुनः वैदिक धर्मकी ओर आकर्षित होने लगी थी; अतः आवश्यक यह था कि इस प्रकारकी क्रियाओंको आधार मानकर धर्ममें चमत्कारका सन्निवेश हो। बुद्धदेवके परिनिर्माणके पश्चात् जब विक्रमशिला-विश्व-विद्यालयके चौरासी सिद्ध जनताके समक्ष अपना उपदेश देनेके लिए पहुँचे, तो वे पूर्ण रूपसे चामत्कारिक प्रदर्शनोंके निमित्त प्रस्तुत थे। इस समय योगदर्शनमें वर्णित योगके आठों अंगोंमें प्राणायाम नामक चौथे एवं समाधि नामक आठवें अंगकी क्रिया का ही विकास यथेष्ट रूपमें हुआ। योगोंमें महत्ता 'हठयोग' नामक योग-विशेषको मिली और प्राचीन कालसे आता हुआ 'योग' (अथवा महायोग) का अर्थ हठयोग हो गया। गीताका कर्मयोग अप्रयुक्त रहा। भक्तियोगपर लोगोंकी आस्था परिस्थिति विशेषके कारण नहीं रह गई थी। ध्यानयोग पीछे चलकर वितण्डावादके रूपमें परिणत हो गया। हठयोगकी क्रियाओंके प्रचार-प्रसार विशेष रूपेण गोरखनाथके समयमें ही हो चला था। ऐसा कहा गया है कि गोरखनाथ, चर्पटिनाथ आदिने हठयोग प्रसादसे कालपर भी विजय प्राप्त की थी—'गोरक्षचर्पटिप्रभृ हठयोगप्रसादतः। वंचयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ह (बोधसार)॥'

इन्हीं ग्रन्थोंमें हठयोगको महिमा विशेष रूपसे गाई गई है।[4] योगियोंके लिए यह आवश्यक हो गया कि वे हठयोग अभ्यास करें। इस प्रकार इस कालमें योगका अर्थ ही 'हठयोग' हो गया। यह कहा गया कि हठयोगियोंके निमित्त प्राणायाम अन्यान्य साधनाओंसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम सिद्ध जानेपर चित्तमें स्थिरता आती है (हठिनामधिकस्यैकः प्राणायाम परिश्रमः। प्राणायामे मनः स्थैर्यं स तु कस्य न सम्मतः)। पतंजलिने प्राणायामके विषयमें लिखा है कि आसनके सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वासकी गतिके अवरोध हो जानेका नाम प्राणायाम है (योगदर्शन, २।४९)। हठयोगमें कुण्डलिनी नामक एक शक्ति-विशेषका बड़ा महत्व है। आर्थर ऐवेलानने कहा है—

"But whereas the Jnana Yogi attains Svarupa-Jnana by his mental efforts without rousing Kundalini, the Hatha Yogi gets the jnan through Kundalini herself. It is the bodily representative of the great cosmic power (Shakti) which creates and sustains the universe."
(*The Six Centres and the Serpent Power.*)

अर्थात् जब कि ज्ञानयोगी-मात्रको मानसिक परिश्रमसे ही कुण्डलिनी को बिना जगाए स्वरूप-ज्ञान प्राप्त होता है, हठयोगी स्वयं कुण्ड लिनीके द्वारा ही ज्ञान लाभ करता है। यह उस विराट ऊर्जाकी शक्तिका मूर्त रूप है, जो विश्व-जनन एवं विश्व-संवहन करती है। अतः यदि हम हठयोगको कुण्डलिनी-योग भी कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि हठयोगकी समस्त क्रियाएँ सर्पाकार कुण्डलिनी-शक्तिको जागरूक करनेके लिए ही उन्मुख रहती हैं। श्री गोपीनाथ कविराजने लिखा है—"कुण्डलिनीके जगानेसे और उसके प्रवाहमें प्राण वा मनको डाल देनेसे जीवको ब्रह्मत्वकी प्राप्त करनेके लिए पृथक उद्यम करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। प्राचीन बौद्धगण इसको आपन्न कहते हैं। बुद्धदेव शक्तिसंचार पूर्वक शिष्यको इसी उर्ध्वस्रोतमें स्थापित करते थे। यह गुह्य

३. 'कल्याण'का योगांक, पृष्ठ ३७।

४. देखिए—'गुह्यसमाजतन्त्र'।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वही ऊर्ध्वस्रोतसे भिन्न कुछ और नहीं है। इस स्रोतको प्राप्त किए हुए जीवको कदापि 'अपाय'में गिरनेका भय नहीं रहता। कारण, उस समय उसके सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा एवं शीलव्रत परामर्श नामक त्रिविध बन्धनोंके 'संयोजन' छिन्न हो जाते हैं। संचारित शक्तिकी न्यूनाधिकता एवं संचित वासनाओंकी गाढ़ताके तारतम्यके कारण अवश्य 'स्रोत-आपन्न'-अवस्था नाना प्रकारकी होती है।"

इन नाना विधानोंके कारण बादके योगियोंने अपनी कवितामें उन अटपटी वाणियोंका उद्रेक किया, जिसे 'संध्या भाषा के नामसे अभिहित किया गया है। इन योगियों और उनकी रहस्यमय कथाओंकी अभिव्यंजनाके सम्बन्धमें हम अंडरहिलके शब्दोंमें यही कहकर सन्तुष्ट हो सकते हैं कि—

"Mysticism is the art of Union with Reality. The mystic is a person who has attained that Union in greater or less degree or who aims at or believes in such attainment."

हठयोगको राजयोग कहा गया है। हठयोगकी पूर्ण परिणति राजयोग है। पातंजल दर्शनमें असम्प्रत ज्ञान-समाधिके नामसे इसीका वर्णन किया गया है। हठयोगकी नियमित साधना द्वारा राजयोगको सिद्धि होती है, इस कारण आचार्यगण हठयोगका राजयोगके सोपानके रूपमें वर्णन करते हैं। 'हठयोगप्रदीपिका'के मतानुसार समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्त्व, परम पद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहज, तुरीय—ये सब राजयोगके नामान्तर हैं।[५] यहाँ 'सहज' शब्दपर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। उत्तम सेवाका स्वरूप बताते हुए शुक्रसमाजकार कहते हैं कि इस सेवामें सिद्धि प्राप्त करनेके लिए षडंगयोगको साधन करनी चाहिए। योगके इन छः अंगोंके नाम उसी ग्रन्थमें इस प्रकार उल्लिखित हैं—प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति और समाधि। सारनाथमें भगवान बुद्धने कहा था—'हे भिक्षुओ, बहुजनोंके हितके लिए, बहुजनोंके सुखके लिए, लोकपर दया करनेके लिए, देवताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके लिए, सुखके लिए विचरण करो (चरख भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं)। इसीके फल-स्वरूप गोरखनाथने हठयोगका प्रचार इस प्रकार किया है :—

ऐसा जाप जपो मन लाई। सोऽहं सोऽहं अजपा गाई॥
आसन दिढ़ करि धरो धियान। अहनिसि सुमिरौ ब्रह्म गियान॥
नासा अग्र निज ज्यों बाई। इड़ा पिंगुला मधि समाई॥
छ सै सहंस इकीसो जाप। अनहद उपजै आपै आप॥
बंकनालि मैं ऊगे सूर। रोम-रोम धुनि बाजै तूर॥
उलटै कमल सहसदल बास। भ्रमर गुफा मैं ज्योति प्रकास॥

५ 'कल्याण'के योगांकमें श्री गोपीनाथ कविराज, एम० ए०।

बौद्ध धर्मके 'योग'-स्वरूपकी विवेचनाके पश्चात् हम संक्षेपमें जैन धर्मके 'योग'पर भी विचार करें; क्योंकि जैनियोंने बौद्धोंकी अपेक्षा योगका कुछ और ही अर्थ समझा है। बौद्ध धर्ममें जिस प्राणायामको प्रकर्षपर पहुँचाया गया था, जैनाचार्योंने उस प्राणायामका सर्वथा निषेध किया।[६] जैनाचार्योंने योगका अर्थ हठयोग नहीं स्वीकार किया। जैन आगमोंमें योगका अर्थ मुख्यतया 'ध्यान' लिखा है। ध्यान मुख्यतः चार प्रकारका है—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें आदिके दो ध्यान तम और रजोगुण-विशिष्ट होनेके कारण योगमें अनुपयुक्त और प्रत्यूहकारी हैं। धर्म-ध्यान और शुक्ल-ध्यान योगोपयोगी हैं। इनमें भी शुक्ल-ध्यान अत्यन्त परिशुद्ध है और अव्यवहित मोक्ष-साधन है।[७] जैन धर्म और बौद्ध धर्मके योगोंमें यह बहुत बड़ा अन्तर हो गया। यही कारण है कि बौद्धोंने हठयोगको अन्ततः ऐसा रूप दे दिया, जिसके चलते धीरे-धीरे जनतामें इस धर्मके प्रति विश्वास ही उठ गया। (इस सम्बन्धमें मैंने मई, १९४४ के 'विशाल भारत' में विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला है।—ले०)

कबीरके समक्ष योगके ये ही रूप वर्त्तमान थे—ऋग्वेदीय महायोग, इतर उपनिषदादिका योग, बौद्धोंका हठयोग, राजयोग एवं कुण्डलिनी-योग, और जैनियोंका ध्यान। कबीर-से सन्तके निमित्त एक मध्यम मार्गका निकलना आवश्यक था। उनकी कविताओंके परिशीलनके पश्चात् कुछ ऐसा प्रतीत होता है, मानो उनकी कविताएँ एवं उनका योग अनेक स्थानोंपर मनुस्मृतिके वाक्योंको ही दुहरा रहे हों :—

यमान् सेवेत् ननित्यं नियमान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥
—मनु०, ४।२०४

अर्थात् यम-नियमोंका पालन अच्छी तरहसे करना चाहिए। झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुराचारोंकी वृत्तियोंके नष्ट हुए बिना चित्तका एकाग्र होना कठिन है और चित्त एकाग्र हुए बिना ध्यान और समाधि भी कठिन है। इसीसे कबीरने कहा है कि यदि पत्थर पूजनेसे हरि मिल सकते, तो कबीरदास पहाड़ ही पूजनेको तत्पर हैं—और फिर चक्की क्यों न पूजी जाय, जिसका पीसा समस्त संसार ही खाता है। अतः वाह्याचार तो उन्हें कदापि भी ग्रहण नहीं हो सकता। उनके लिए मनकी वृत्तिकी एकाग्रता ही प्रमुख है। यदि मनुष्य यम-नियमोंका पालन करता हुआ सांसारिक जटिलतासे दूर रहकर, सादा जीवन व्यतीतकर, परमेश्वरकी चिन्तना करे, तो वह अवश्य परमपदको प्राप्त हो सकता है।

६. तन्नाप्नोतिमनः स्वस्थ्यं प्राणायामैः कदर्थितम्।
प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्याच्चित्त विप्लवः॥—हैमयोगशास्त्र

७. मुनि श्री हिमांशु विजयजी : 'जैन धर्ममें योग-विद्या'।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य क्षितिमोहन सेनने अपने 'कबीरका योग'-शीर्षक लेखमें

उलटे पवन षट्चक्र बेधा, मेरडण्ड सर पूरा।

गगन गरजि मन सूँनी समाँनाँ बाजे अनहद तूरा॥ (पद ७)

आदि उद्धरण देकर लिखा है--"योगके सम्बन्धमें कबीरके वैचित्र्य का अन्त नहीं। वे पवन उलटकर षट्चक्र भेद करके शून्यमें समाहित होना चाहते हैं।" कदाचित् क्षिति बाबू यह कहना चाहते हैं कि वे भी हठयोगीय क्रियाका निर्वाह न कर शून्यमें समाहित होना चाहते हैं। अब मुख्य प्रश्न यह रह जाता है कि क्या कबीर-सरीखे महात्माके लिए यह उचित था कि वे अपने सिद्धान्तको हठयोगीय चमत्कारकी ओर उन्मुख करते? क्या साधु कबीर चौरासी सिद्धोंकी अद्भुत लीलाओंसे परिचित नहीं थे? कबीरके काव्योंमें इतस्ततः हठयोगीय क्रियाओंका वर्णन मिलता है, फिर भी प्रश्न रह जाता है कि क्या ऐसी क्रियाएँ उन्हें मान्य थीं? कबीरके पदोंमें इन हठयोगीय वार्त्ताओंका वर्णन रहते हुए भी हमें यत्र-तत्र 'सहज समाधि'का वर्णन मिलता है। प्रश्न तब यह होता है कि यह 'सहज समाधि' क्या है? यह हठयोगका पर्याय है, अथवा कबीरके 'सहज समाधि' कहनेका कोई दूसरा ही अर्थ है? सूक्ष्म पर्यवेक्षणके पश्चात् पता चलता है कि कबीरके काव्योंमें जिस 'सहज समाधि'की चर्चा बारम्बार आई है, वह निश्चय ही हठयोगी चमत्कारसे विभिन्न है। ऐसा सम्भव हो सकता है कि युवावस्थामें अनपढ़ कबीरपर चौरासी सिद्धोंके चमत्कारका प्रभाव पड़ा हो और उनका विश्वास भी हो गया हो कि कुण्डलिनी-योग ही मुक्तिका अन्यतम मार्ग है। पर बादमें परिपक्वावस्थामें उन्हें सहज समाधिपर ही दृढ़ आस्था हो गई हो; क्योंकि उन्होंने देखा होगा कि ये चमत्कार वास्तवमें चमत्कार-मात्र ही हैं, ईश्वर तक पहुँचानेके सोपान नहीं। इस सम्बन्धमें डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने अपनी पुस्तक 'हिन्दी-काव्यमें निर्गुण-सम्प्रदाय'में लिखा है[८]:—

This intuition or *Sahaja bhava*, as the word itself implies, is inborn in everybody and though it transcends thought and sense perception, yet is not educed by blunting them, but is instead awakened with the fulness of feeling in perfect refinement. In Kabir's definition *sahaja* involves all the five senses and make it easy for one to abandon the morbidities for a sensual life by diverting them to the Lord and consequently to attain to him.

इससे यह ज्ञात होता है कि कबीरके 'सहज योग'का अर्थ है वासनामय विश्वसे विलग होकर अपने अन्तःकरणको परमेश्वरकी ओर उन्मुख करना और उसीमें तल्लीन रहना। फिर भी प्रश्नका हल नहीं हो पाता। प्रश्न रह ही जाता है कि कबीरने अपने पदोंमें जो उक्त क्रियाओंके नाना विधानोंकी चर्चा की है, उसका क्या अर्थ है? कबीरके योग-सम्बन्धी सिद्धान्तोंके विषयमें स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्लका कथन है—"...सारांश यह कि जो ब्रह्म हिन्दुओं की विचार-पद्धतिमें ज्ञानमार्गका एक निरूपण था, उसीको कबीरने सूफ़ियोंके ढर्रेपर उपासनाका विषय ही नहीं, प्रेमका भी विषय बनाया और उसकी प्राप्तिके लिए हठयोगियोंकी-सी साधनाका समर्थन किया।"[९] इससे तो यही ज्ञात होता है कि कबीरकी साधना हठयोगियोंकी साधनासे भिन्न कुछ न थी और उनका 'सहज योग' वस्तुतः हठयोगियोंका राजयोग एवं कुण्डलिनी-योग ही था। अतः 'सहज समाधि'के सम्बन्धमें जितनी जानकारी डा० बड़थ्वालके उद्धरणसे मिलती है, उसपर शुक्लजीका यह अवतरण आवरण-सा डाल देता है। डा० रामकुमार वर्मा भी आचार्य शुक्लके कथनका समर्थन करते हुए कहते हैं—"प्राणायामके द्वारा पंचप्राणोंकी साधनामें कुण्डलिनी, जो सर्पके समान मूलाधार चक्रमें सोती है और जो अपनी ही ज्योतिसे आलोकित है, हठयोगमें महत्वपूर्ण शक्ति है। इसी हठयोगको कबीरने ईश्वर-प्राप्तिका एक साधन माना है।"[१०] इसका अर्थ यह हुआ कि कबीरने कुण्डलिनी-योगको ही अपने योगका सिद्धान्त स्वीकार किया, जो भ्रमपूर्ण है। सहज समाधिके सम्बन्धमें अवश्य ही यत्किंचित् प्रकाश पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीने भी डाला है—"कबीर-ग्रन्थावलीमें एक ऐसा पद मिलता है, जिससे पता चलता है कि भिन्न-भिन्न चक्रोंमें देवताओंके निवासका जो विवरण कबीरदासने दिया है, वह अपेक्षाकृत सहज है और सर्वांशमें ऊपर बताई हुई व्यवस्थाके अनुकूल नहीं है। षट्दल कमलमें कालका अभाव बताया गया है और शायद 'मनमोहनके बीछुवा' या विट्ठल भगवानका निवास-स्थान है, अष्टदल कमलमें श्रीरंग केलि करते हैं; पर द्वादशदल-बिहारी भगवानके रूपका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। यह ज़रूर बताया गया है कि त्रिवेणी-स्नानके बाद सनकादिका साथ हो जाता है—अर्थात् शायद बैकुण्ठ-विहारी विष्णुका स्थान नज़दीक आता है। फिर गगन-गुफ़ामें अनन्ततारका दर्शन बताया गया है और षोडषदल कमलमें बनवारीके मिल जानेकी बात है। ऐसा जान पड़ता है कि कबीरदासका मतलब इस पदमें (क० ग्रं० पद ४) उस सहज समाधिसे है, जिसमें पद-पदपर भगवानका दर्शन होता है और इस पदमें आए हुए विट्ठल, श्रीरंग, बनवारी आदि पद पारिभाषिक नहीं, बल्कि सीधे-सादे ढंगसे भगवानके वाचक हैं। सब पूछा जाय तो कबीरदास योगमार्गकी क्लिष्ट साधनाओंको व्यावहार ही समझते रहे। उनके जैसा उन्मुक्त विचारका मनुष्य किसी

8. Dr. Pitambar Datta Barthval, *Nirguna School of Hindi Poetry*, p. 59.

९. रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास', पृष्ठ ९४।

१०. डा० रामकुमार वर्मा : 'हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास', पृष्ठ १६६।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकारकी रूढ़ियोंका क़ायल नहीं हो सकता। बारम्बार वे जिस सहज समाधिकी घोषणा कर गए हैं, उसमें नाना प्रकारके प्राणायाम, आसन, समाधि, मुद्राएँ परम तत्त्वकी उपलब्धिके साध्य नहीं। सहज समाधिसे ही यदि उद्देश्य सिद्ध हो जाता है, तो कायाको क्लेश देनेसे क्या लाभ है? आँख मूँदे बिना, मुद्रा धारे बिना, आसन लगाए बिना, खुली आँखोंसे परमाराध्यका मनोहर रूप देखना ही सहज समाधि है। ऐसे साधकका हिलना-डुलना, सब-कुछ परिक्रमा है, सोना-बैठना ही दण्डवत् है, बोलना ही नाम-जप है, खाना-पीना ही पूजा है। एक बार इस सहज समाधिमें जो साधक रम गया, वह उस अपूर्व अनहद नादको निरन्तर सुनता रहेगा, जिसके सुनने-मात्रसे रोम-रोम थकित हो जाते हैं, समस्त इन्द्रिय शिथबन्ध हो जाते हैं, मन आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है। उसीमें समस्त कुशलोंका कुशल है, जिसमें सहज समाधि प्राप्त हो जाती है। यह उपाधिमय शरीर सहज समाधिमय बन जाता है, दुःखके दुर्गमें सुखका विश्रामागार बन जाता है।...आप-ही-आपमें रम सकें तो फिर कोई विघ्न सता नहीं सकता, मन सनातन हो जाता है, जन्म-मरणका ज्ञान हस्तामलककी भाँति सहज हो जाता है।" ('कबीर', पृष्ठ ६६-६८)

ऊपर जो मनुका उद्धरण दिया गया है, उससे तुलना करने पर ज्ञात होगा कि कबीरका योग यह कभी गवारा नहीं कर सकता कि ईश्वरकी प्राप्तिका एकमात्र मार्ग कष्टसाध्य यौगिक क्रियाओं द्वारा ही है। हाँ, यह सम्भव है कि प्राणायामादिके द्वारा भी हम ईश्वर तक पहुँच सकते हैं। कारणतः ईश्वर-प्राप्तिके अनेकानेक मार्ग हैं। सम्भव है, हठयोग भी एक मार्ग हो; किन्तु यही एकमात्र मार्ग नहीं है। जैसा स्वयं मनुने कहा है—यम-नियमोंका सुचारु रूपेण पालनकर हम 'सहज समाधि' लगाकर ईश्वरसे साक्षात्कार कर सकते हैं। द्विवेदीजीके उद्धरणमें 'मनके मोहन बीठुला, यहु मन लागौ तोहि रे'के अर्थका प्रतिपादन कर यह प्रदर्शित किया गया है कि—

गुर गमि तैं पाईये, भ्रंषि मरे जिनि कोइ रे।
वहीं कबीरा रमि रह्या, सहज समाधी सोइ रे॥

कबीरदासने अपने इस सहज समाधिके बलपर ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है और इसी सहज समाधिके द्वारा वे कोटि काल तक विश्राम करेंगे :—

अब मैं पइबो रे पाइबो ब्रह्म गियान।
सहज समाधें सुख मैं रहिबो, कोटि कलप बिस्राम॥

× × ×

पुहुप बिना एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिनां नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया॥

इतना ही नहीं, उन्होंने भगवानको इसी सहज समाधिके बलपर जान भी लिया। इसी सहज समाधिके बलपर उन्होंने 'गोव्यंद' को भी पहचान लिया और उन्हें अनन्त सुखकी उपलब्धि हुई:—

अब हम सकल कुसल करि जांनां, स्वांति भई तब गोव्यंद जांनां।
तनमें होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि॥
जम थैं उलटि भया है रांम, दुख बिसर्‌या सुख कीया बिस्रांम॥
बैरी उलटि भए हैं मींता, साषत उलटि सजन भए चीता॥
आपा जांनि उलटि लै आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूं ताप॥
अब मन उलटि सनातन डूबा, जब हम जांनां जीवत मूवा॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊँ, आप न डरौं न और डराऊँ॥

वेदोंमें जिस समाधिका कथन है, कबीरको सहज समाधि उससे भी न्यारी है। किन्तु इसपर पाँव देनेके पहले विचारकर लेनेकी आवश्यकता है—'अपनें बिचारि असवारी कीजे, सहज पाइड़े पाँव जब दीजै।' एक बार भी जब सहज शून्यमें योगी तल्लीन हो जाता है, तो फिर वह निरन्तर महारस ही पीता रहता है और उससे दूर होना नहीं चाहता :—

बसै गगनमें दुनीं न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाँड़ै, पीवै महारस मींठा॥
परगट कंथां माँहैं जोगी, दिल मैं दरपन जोवै।
सहंस इक्कीस छसै धागा, निहचल नाकै पोवै॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै।
कहै कबीर सोइ जोगेस्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै॥

सहज समाधिके द्वारा 'सहज सुंनि'में पहुँचकर योगी 'रस' चखने लगता है, तो फिर जिस रसको शिव-सनकादिक पीकर मत्त हो जाते हैं, उसे वह भी पीते नहीं अघाता। इस सहज समाधिके निमित्त आवश्यकता इस बातकी रहती है कि योगी मनको स्थिर करे और सत्संगतिमें ही निरत रहे। एक बार जब कबीरका जी उदास हो रहा था और 'रांम'के बिना सांस भी नहीं निकल पाती थी, तो वे बड़ी परेशानीमें पड़े। सभी सन्तोंके पास वे गए, पर किसीने रामका दर्शन नहीं कराया। शरीरकी आग बुझानेवाला कोई न रहा। उन्हें रात्रिको नींद भी न आने लगी। चन्दन घिस-घिसकर अंगोंमें लगाते थे, ताकि विरहाग्नि प्रशमित हो, क्योंकि वे रामके विरहमें अतीव क्लेश पा रहे थे। किन्तु जब मनको स्थिर करके सत्संगतिमें लीन होकर उन्होंने सहज-रूपमें रामका भजन किया, तो वे सभी कष्टोंसे विनिर्मुक्त हो गए :—

अत्मा अनंदी जोगी, पीवै महारस अंमृत भोगी।
ब्रह्म अगनि काया पर जारी, अजपा जाप उनमनीं नारी॥
त्रिकुट कोट मैं आसण मांडै, सहज समाधि विषै सब छांड़ै॥
त्रिवेंणी विभूति करै मन मंजन, जन कबीर प्रभू अलष निरंजन॥

इस प्रकार कबीरके अन्य पदोंमें भी इसी सहज समाधिकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चर्चा है। कबीरका यह 'सहज योग' परम्परागत योगसे अवश्य भिन्न है। कदाचित् इस योगका अर्थ यह हो कि यम-नियमोंका पालन करता हुआ मनुष्य यदि अनन्य भावसे स्थिर-चित्त होकर परमेश्वरकी आराधना करे और उसीमें अपने ध्यानका निवेश करे, तो वह उस ब्रह्मानन्दके आनन्दका आस्वादन कर सकता है, जिसके लिए ऋषि-मुनि भी तरसा करते हैं। यही कबीरका 'सहज योग' है।

किन्तु इस सहज योगकी साधना किस भाँति सम्भव है, इसपर भी हमें संक्षेपमें विचार करना होगा। जब कबीरदासने यत्र-तत्र सहज योगकी चर्चा की है, तो अवश्य ही उस योगके अनुष्ठानके निमित्त नियमोंका समावेश भी उन्होंने अपने काव्यमें किया होगा। प्रो० श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्रीका कथन है—"उपनिषदोंमें जहाँ-तहाँ ऐसे वाक्य मिलेंगे, जिनमें परमात्माके सूक्ष्म-रूपकी उद्भावनाकी दृष्टिसे उसकी तुलना आँखमें के पुरुष—अर्थात् किसी आँखकी पुतलीमें दिखाई पड़नेवाले सामने खड़े हुए व्यक्तिके सूक्ष्म प्रतिबिम्ब-रूपसे को गई है [य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते। आत्मेति हो वाच···ब्रह्मेति॥ (छान्दोग्य, ५।१०।१५)]। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह तुलना बहुत महत्वान्वित है; क्योंकि निरगुणिया सन्तों द्वारा प्रतिपादित विहंगम-योगका मुख्य उद्देश्य यही है कि सत्पुरुष (परमात्मा) को आँखोंके अष्ट-दल कमलमें और उसके द्वारा मानस-प्रत्यक्ष किया जाय। यों कहिए कि उपनिषदोंका 'आँखोंका पुरुष' पीछे चलकर 'आँखोंका सत्पुरुष' (अक्षिणि सत्पुरुषः) बन बैठा।" शास्त्रीजीके कथन निम्नांकित कवितामें अक्षरशः प्रतिपादित है :—

मुरशिद नैनों बीच नबी है।
आँखी मद्धे पाँखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुरबीन लगावै उतरें भव-जल पारा॥
सुन्न सहरमें बास हमारा तहँ सरबंगी जावै।
साहब कबीर सदाके संगी शब्द महल लै आवं॥

कबीरका सहज योग सदैव 'मुरशिद नैनों बीच नबी है' की घोषणा करता है और यह कहता है कि यही 'अक्षिणि पुरुष' है, जिसका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् (५ : १० : १५) में आया है। अभी किसीने इस विषयपर पूर्ण रूपसे प्रकाश नहीं डाला है। मैं तो शास्त्रीजीके वाक्यको दुहराकर कहूँगा कि कबीरका सहज योग परम्परागत योगसे भिन्न है, तथापि वह उपनिषदोंकी ही वाणीका अक्षरशः प्रतिपादन करता है। अतः सहज योग और कुछ नहीं, वही योग है, जिसका आधार वेद हैं। कबीरने स्थिर-चित्त हो इन्हीं आँखोंके 'अष्टदल कमल' और इसके द्वारा मानस-प्रत्यक्ष किया था। इस सहज योगके लिए हठयोगकी कष्टसाध्य क्रियाओं द्वारा शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती। स्थिर-चित्त मानव सहज भावसे ही सब चिन्ता-मुक्त होकर, आँखोंमें ही 'नबी'को देखकर, सहज समाधि लीन हो 'महारस'का पान कर सकता है, जो ब्रह्मरन्ध्रसे अहर्निश निर्गत होता है।

बलिदानियोंके प्रति—

श्री रामकुमार चतुर्वेदी

ये सतत् संघर्षकी घड़ियाँ अमर होंगी!

मिट रहे हो तुम, न होगा व्यर्थ यह मिटना;
लुट रहे हो तुम, न होगा व्यर्थ यह लुटना;
बीज अमरण है तुम्हारी भस्मका कण-कण;
तुम मिटोगे, किन्तु मरघटको बना मधुवन।
ऊसरोंको जो बनाती जा रहीं उर्वर,
ये तुम्हारी अश्रुकी लड़ियाँ अमर होंगी!
ये सतत् संघर्षकी घड़ियाँ अमर होंगी!

दीप होते हैं कि जो बुझते हिलोरोंसे;
तुन लपट हो और फैलोगे झकोरोंसे;
ये तुम्हारे क्रान्ति - डमरूके गमकते स्वर,
भस्म कर देंगे तमिस्रा गूँजकर घर - घर।
रच रहीं जो पृष्ठ-भू नव - सृष्टिकी प्रतिपल,
ये प्रलयकी दीप्त फुलझड़ियाँ अमर होंगी!
ये सतत् संघर्षकी घड़ियाँ अमर होंगी!

आज इस भूकम्पमें जो तुम खड़े अविचल;
पाठ लेंगे कल इसीसे विश्वके निर्बल;
वज्र हो जितना प्रबल उतना अडिग विश्वास;
हर चरण बलिदानका होगा नया इतिहास।
शान्त होगा विश्व, अम्बर स्वच्छ जिनके बाद,
ये विकट तूफ़ानकी झड़ियाँ अमर होंगी!
ये सतत् संघर्षकी घड़ियाँ अमर होंगी!

जानता हूँ, तुम हृदयपर हो रखे पत्थर;
ज्ञात है तुम आज प्यासे चल रहे पथपर;
किन्तु तुमसे भी अधिक प्यासे नयन उनके,
भस्म शोषणने किए घर-बार, जन, जिनके।
कर रहीं जो पीढ़ियोंमें ऐक्यका संचार,
ये तुम्हारे प्यारकी कड़ियाँ अमर होंगी!
ये सतत् संघर्षकी घड़ियाँ अमर होंगी!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनकी बात

श्री सीताराम सेकसरिया

[श्री सेकसरियाजी पिछले कई वर्षोंसे नियमित रूपसे डायरी लिखते आ रहे हैं। चूँकि यह छपनेके लिए और किसीको लक्ष्य करके नहीं लिखी गई, इसमें न काव्यकी कल्पना है, न प्रबन्धकी संयोजना और न किसी तरहकी औपचारिकता, आडम्बर या कृत्रिमता ही। जहाँ-जहाँ वे गए, जिस-जिससे मिले, जो-जो बातें उन्होंने देखीं अथवा सुनीं और इन सबकी जब जैसी प्रतिक्रिया उनपर हुई, उसीको अपने निजी ढंगसे उन्होंने लिपिबद्ध किया है। पर और कुछ होनेसे पहले वे एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं और अक्सर उन्हें ऐसे ही महत्वके लोगोंके सम्पर्कमें आना पड़ता है, अतः उनके दैनन्दिन जीवनकी अधिकांश बातोंका भी सार्वजनिक महत्व है। यही समझकर हम उनकी डायरीके कुछ पृष्ठ यहाँ दे रहे हैं। लेखक ही की भाँति विश्व और देशके जीवनमें भी पिछले तीन वर्ष बड़े ही महत्वके और घटनापूर्ण रहे हैं। मुहूर-पूर्वमें जापानका आक्रमण, भारत—और विशेषतया कलकत्ते—पर उसकी प्रतिक्रिया, अगस्त '४२ की क्रान्ति, बंगालका अकाल और दूसरे महायुद्धका दिशा-परिवर्त्तन आदि असाधारण महत्वकी घटनाएँ इन्हीं वर्षोंमें घटी हैं। अतः हमने लेखककी सुविस्तृत डायरीसे इसी कालके कुछ पृष्ठ चुने हैं, जो क्रमशः प्रकाशित किए जायँगे। —सं०]

कलकत्ता, ३ जनवरी, १९४२

साढ़े पाँच बजे सोकर उठा। हाथ-मुँह धोकर प्रार्थना की। लेक्पर घूमने गया और लौटकर गीता-रामायणका पाठ किया। चरखा काता। आए हुए लोगोंसे बातें कीं। स्नान-भोजन करके खादी-भण्डार गया। सेवासदन गया। स्कूल तो कलसे बन्द है ही। कारण, जापानके लड़ाईमें आ जानेसे कलकत्तेकी दशा डावाँ-डोल हो गई है। रोज़ ही लोग कलकत्ता छोड़कर भाग रहे हैं। चारों ओर भय और आतंक छाया हुआ है। लोगोंकी तकलीफ़ें भी बढ़ गई हैं। दुकानदारोंकी चीज़ें नहीं बिकतीं और न उन्हें माल ही मिल रहा है। ग्वाले, रसोइये, दाइयाँ, जमादार आदि लोग ज़्यादा भाग रहे हैं। क्या होगा, यह तो ईश्वर जाने; पर काफ़ी उथल-पुथल मची हुई है। लोग बेकार हुए जा रहे हैं। सभी लोग चिन्तित और उदास हैं। वे निश्चय नहीं कर पा रहे कि क्या करना चाहिए? ग़रीब आदमियोंको बहुत मुसीबतें उठानी पड़ रही हैं। पहले वे अच्छी तरह कमाते थे, खाते थे। पर अब काम नहीं मिलता, पैसा पास नहीं। ऐसे लोगोंको ज़्यादा तकलीफ़ होना स्वाभाविक है। हिन्दुस्तानमें ज़्यादा संख्या ऐसोंकी ही है।

४ जनवरी

कांग्रेस-कार्यसमितिके सदस्य डा० प्रफुल्लचन्द्र घोषसे बारडोलीमें वर्किंग-कमेटीकी जो मीटिंग हुई थी, उसके बारेमें बातें हुईं। उनकी बातोंसे ऐसा जान पड़ा कि कांग्रेसमें मतभेद पैदा हो गया है। यदि यह मतभेद दूर न हो सका, तो कांग्रेसमें फूट पड़ जानेका अन्देशा है। १५ तारीखको वर्धामें ए० आई० सी० सी० (अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमेटी) की मीटिंग बुलाई गई है। उसकी कार्यवाहीपर ही सब-कुछ निर्भर करता है। यह तो निश्चय है कि बहुमत गांधीजीके पक्षमें रहेगा, क्योंकि दूसरे पक्षके लोगोंके पास कोई कार्यक्रम नहीं है। अहिंसात्मक युद्ध गांधीजीको छोड़कर नहीं चलाया जा सकता। जो भी हो, गांधीजी परिस्थितिको सम्हाल लेंगे। वे कांग्रेसमें फूट नहीं पड़ने देंगे। उनकी हार-जीत नहीं होती, क्योंकि वे इससे ऊपर हैं।

वर्धा, १५ जनवरी

साढ़े पाँच बजेके क़रीब सोकर उठा। प्रार्थना की। नाश्ता करके झण्डा-उत्सवमें गया। राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद साहबकी तबीयत ज़रा ढीली थी, इसलिए जवाहरलालजीने झण्डा फहराया। पाँच-सात प्रमुख आदमियोंसे मिला। सामान्य-सी बातें हुईं। यहाँ भी परिस्थितिको समझनेकी कोशिश की; पर लोगोंमें कोई खास उत्साह या जोश नहीं दिखाई दिया। श्री जयरामदास दौलतराम सामने आते हुए मिल गए। उनसे बातें कीं। उन्होंने साफ़ तो नहीं कहा, पर वर्किंग-कमेटीकी कार्यवाहीकी बातोंसे मालूम होता है कि बापूजी आज जो भाषण करेंगे, उससे परिस्थिति सम्हल जायगी तथा कांग्रेसमें फूट नहीं पड़ सकेगी। दो बजे ए० आई० सी० सी० की मिटिंगमें सम्मिलित हुआ। यह मीटिंग दोसे आठ—छः घण्टे—तक चली। मौलाना साहबका भाषण लम्बा था। इसके बाद पूज्य गांधीजीका भाषण हुआ, जो बहुत ही सुन्दर था और गांधीजीकी महानताका प्रत्यक्ष प्रमाण था। वर्किंग-कमेटीने बारदोलीमें जो प्रस्ताव पास किया है और जिस प्रस्तावकी वजहसे गांधीजीको कांग्रेसके नेतृत्वसे हटना पड़ा, उसपर विचार हुआ। गांधीजीकी विचार-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धाराका ए० आई० सी० सी० में बहुमत है, यह सब होते हुए भी गांधीजीने कहा—'ए० आई० सी० सी० को बारदोली-प्रस्ताव पास करना चाहिए। जिन लोगोंके विचार इस प्रस्तावके विरुद्ध हैं, वे उदासीन रहें। प्रस्तावका विरोध न करें, यह मेरी राय है। या फिर वे अपना विवेक कहे, वैसा करें; पर मेरे कारण प्रस्तावका विरोध बिलकुल न करें।' उन्होंने प्रस्तावकी व्याख्या भी की और यह भी कहा कि मेरी दृष्टिमें प्रस्ताव ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें हर तरहके युद्धका विरोध अहिंसात्मक तरीक़ेसे करनेके लिए नहीं कहा गया है, आदि। इसके बाद जवाहरलालजीने प्रस्ताव उपस्थित किया और एक लम्बा व्याख्यान भी दिया। श्री राजगोपालाचार्यने प्रस्तावका समर्थन किया और आजकी कार्यवाही समाप्त हुई। घर आकर भोजन किया और चरखा कातकर सो गया।

१६ जनवरी

आठ बजे स्नानादि करके ए० आई० सी० सी० की मीटिंग में सम्मिलित हुआ। कलके प्रस्तावपर जिन लोगोंने संशोधन दिए थे, वे पेश किए गए और उनपर वक्तृताएँ हुईं। पर उनमें कोई खास बात नहीं थी। बारह बजेके क़रीब मीटिंग समाप्त होने पर ए० आई० सी० सी०के पण्डालमें ही पूज्य जमनालालजीके साथ भोजन किया। दो बजे फिर मीटिंग शुरू हुई, जिसमें राजाजी का व्याख्यान हुआ। जो हो, मुझे वह नहीं रुचा। कई लोगोंके बोलनेके बाद प्रस्तावपर वोट लिए गए। प्रस्तावके पक्षके वोट गिने नहीं गए, पर वे ज़्यादा-से-ज़्यादा साठ-सत्तर रहे होंगे। कई लोग तो इससे भी कम बताते हैं। विपक्षमें १७ वोट थे, क्योंकि गांधीजीकी विचार-धाराके लोग तो उदासीन ही थे। प्रस्ताव पास हो गया। इसके बाद श्री राजेन्द्र बाबूने रचनात्मक कार्यक्रमके बारेमें प्रस्ताव रखा, जिसका समर्थन पंतजीने किया। यह प्रस्ताव बिना विरोधके पास हो गया। इस प्रकार क़रीब सात बजे शामको ए० आई० सी० सी० की मीटिंग समाप्त हो गई, जो बहुत महत्त्वपूर्ण समझी और मानी जाती थी। पर मेरी निगाहमें उसमें कोई खास कार्यवाही नहीं हुई। हाँ, बारदोली-प्रस्तावपर कांग्रेसकी मुहर ज़रूर लग गई। ए० आई० सी० सी० की मीटिंग न होती, तो भी यही स्थिति रहती, जो आज है। गांधीजी ऐसे नाजुक मौक़ेपर कांग्रेसमें मतभेद पैदा करना नहीं चाहते, इसलिए बारदोली-प्रस्ताव रह गया। जो हुआ, सो अच्छा ही हुआ। ईश्वरके कामोंका रहस्य हम नहीं समझते। इस मौक़ेपर शायद यही अच्छा था, फिर भी मेरे मनको यहाँकी कार्यवाहीसे बहुत सन्तोष नहीं हुआ। मुझे कांग्रेसमें आज वह जोश, उत्साह, कार्य-तत्परता और एकाग्रता नहीं दीखती, जो होनी चाहिए या पहले थी। आज कांग्रेस देशके सामने कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं रखती। आज ऐसे नाजुक वक्त[illegible] चोटीके नेताओंमें मतभेद पाते हैं। मतभेद बुरी चीज़ [illegible] है—मतभेद तो जाग्रतिका लक्षण है—पर हमारे कामोंमें [illegible] एकता चाहिए, वह न हो, तो देश आगे नहीं बढ़ सकता। [illegible] गांधीजी अहिंसाकी बात कहते हैं, तो राजाजी सरकारको [illegible] सहयोग देनेकी तरफ़ झुके हुए-से मालूम होते हैं। जवाहरलाल [illegible] जी कहते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य तो मिट्टीका ढेर है, उससे [illegible] बात या समझौता क्या करना है या किया जा सकता है, [illegible] अनेक बातें हैं। इससे जनताके सामने कोई ऐसी चीज़ [illegible] आती, जिससे वह उत्साहके साथ उसमें जुट सके। [illegible] लिए तो कोई निश्चित बात होनी चाहिए थी कि या तो [illegible] लड़ाईमें योग दो या इसका बायकाट करो। हमारा एक [illegible] आदमी, एक भी पैसा लड़ाईमें न जाय। शायद ऐसा कहने [illegible] करनेमें नाना तरहकी आपत्तियाँ हो सकती हैं, तो यह [illegible] चाहिए कि ऐसा करनेमें हमारा सच्चा लाभ नहीं होगा। इसके [illegible] जब तक युद्ध चलता है, तब तक हमें इसी तरहके काम [illegible] हैं। जो हो, इन्हीं चर्चाओं और संघर्षोंके बीचसे कोई [illegible] रास्ता भी निकलेगा।

१८ जनवरी

सुबह प्रार्थना करनेके बाद भाई महावीरप्रसादजी [illegible] साथ घूमने निकला। बातें करता-करता सेवाग्राम चला [illegible] सामने ही पूज्य बापूजी अपनी टोलीके साथ घूमते हुए [illegible] प्रणाम करनेपर भाई महावीरप्रसादजीसे उन्होंने कहा—[illegible] छूटकर यहाँ आ गए!' वे मीराबेनके साथ बातें कर रहे [illegible] कहा—'तुम लोग आश्रममें जाओ, मैं आ रहा हूँ।' श्री किशोर [illegible] लाल भाईसे मिले तथा अन्य लोगोंसे बातें करते रहे। [illegible] खादीका काम तथा और दूसरे ग्रामोद्योगके काम होते हैं, उन्हें [illegible] देखा। लौटकर बापूजीके पास गए, तो उन्होंने कहा—'[illegible] भोजन कर लेना।' इसलिए वहीं रह गए। श्री नरहरि [illegible] पारेख, जो एक खास कार्यकर्त्ता हैं और गुजरातीके अच्छे लेखक [illegible] भी, आजकल खूनके दबावकी बीमारीके कारण यहाँ आए हुए [illegible] हैं। पूज्य बापूजी उनको प्राकृतिक चिकित्सा कर रहे हैं और [illegible] बापूजीकी बग़लकी कोठरीमें ही रहते हैं। गांधीजी बराबर इस [illegible] बातकी कोशिश करते हैं कि वे एक आदमीकी तो कम-से-कम [illegible] व्यक्तिगत सेवा करें ही। इसीलिए उन्होंने अपनी बग़लमें एक [illegible] कोठरी बनवा रखी है, जहाँ वे अपने साथी या किसी बराबर [illegible] मरीज़को रखकर उसकी सेवा-सुश्रूषा किया करते हैं। आजकल [illegible] श्री नरहरिभाई गांधीजीकी सेवाके मर्ज़के मरीज़ बने हुए [illegible] हैं। उनसे मिला। उनकी बीमारी तथा बापूजीके इलाजके [illegible] सम्बन्धमें कई दिलचस्प बातें होती रहीं। ग्यारह बजे भोजन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पड़ी हुई। लोग भोजनके स्थानपर अपनी-अपनी थाली, कटोरा, गिलास आदि लेकर एक-दो मिनटके अन्दर पहुँच गए। पूज्य गांधीजी भी आ गए। सुबहसे ही गांधीजी लोगोंके साथ बातें करनेमें लगे हुए थे। पं० जवाहरलालजी, उनकी लड़की इन्दिरा, श्री राजगोपालाचार्य, आचार्य कृपलानी आदि कई लोग बापूसे बातें करने आए थे, वे सभी भोजनमें शरीक हुए। सब लोग यथास्थान बैठ गए। भोजनमें गेहूँकी सूखी रोटी, एक उबला हुआ साग, थोड़ा-सा मक्खन तथा फलोंमें टमाटर और अमरूद मिला हुआ सलाद था। कच्चे प्याज़का एक-एक टुकड़ा भी दिया गया था और पाव-भर दूध या दही। यही सब खानेका सामान था। परोसदारी होनेके बाद 'सहनो भवन्तु, सहनोपवन्तु' की प्रार्थनासे भोजन शुरू हुआ। मुझे यह भोजन बहुत रुचिकर मालूम हुआ। भोजनके समय भी गांधीजीकी बातचीत चालू थी। गांधीजीके पास समयकी कमी इतनी रहती है कि किसी को घूमनेके समय वक्त देते हैं, तो किसीको भोजनके समय। जो खास आदमी होते हैं—जैसे आश्रमवासी या और इसी तरहके—उनका नम्बर तो स्नान और मालिशके समय ही आता है। भोजन समाप्त करके लोग अपने-अपने बर्त्तन आप ही साफ़ करके यथास्थान रख देते हैं। अतिथियोंके बर्त्तन आश्रमके लोग साफ़ कर देते हैं। आश्रममें कोई भी नौकर नहीं। पाखाना साफ़ करनेसे लेकर ऊपरसे ऊपर तकके सब काम आश्रम-वासी खुद करते हैं। हम लोगोंको पूज्य बापूजीसे बातें तो करनी थीं; पर बापूजीको समय नहीं मिल रहा है, क्योंकि जवाहरलालजी आदिके साथ अभी उनकी बातें खत्म नहीं हो पाई थीं। इसलिए हम लोग महादेवभाईके पास चले गए। शामको छः बजे जवाहरलालजीका गांधी-चौकमें व्याख्यान था। मैं भी उसमें गया। जवाहरलालजी काफ़ी लम्बे बोले।

२० जनवरी

पूज्य जमनालालजी, भाई महावीरप्रसादजी, जानकी बहन, श्री मृदुला बहन साराभाई आदिके साथ सुरगांव, जो यहाँसे नौ मील है और जहाँ पूज्य विनोबाजीने वस्त्र-स्वावलम्बनका काम कर रखा है, देखने गए। पौनार तक तो ताँगेका रास्ता है। वहाँसे तीन मील पैदल चलकर सुरगाँव पहुँचे। सब लोग गाँवके दो-चार घरोंमें गए। यहांके घर साफ़-सुथरे और सुव्यवस्थित हैं। एक पंचायत-मन्दिर है, जिसमें गोपाल कृष्णकी मूर्त्ति है। इस मन्दिरमें हिन्दू, मुसलमान, हरिजन आदि सभी आते हैं। हम लोगोंने मन्दिरके चबूतरेपर विश्राम किया। श्री विनोबाके दृष्टिशिष्य श्री वल्लभभाई आ गए। मेरा उनसे आगेका ही परिचय है। उन्होंने रसोई आदिकी व्यवस्था कराई। पूज्य जमनालाल-जी तथा मृदुला बहनने कहा कि आप लोग जो भोजन रोज़ करते हैं, उसमें और आजके भोजनमें ज़रा भी फ़र्क़ नहीं होना चाहिए। इसीलिए भोजनमें ज्वारकी रोटी और भात तथा एक उबली हुई तरकारी मिली। विशेषता यह थी कि थोड़ा-थोड़ा गुड़ भी दिया गया था। भोजन करनेके बाद मन्दिरमें चर्खा-प्रदर्शन हुआ, जिसमें सौ-सवा-सौ भाई-बहन सम्मिलित थे। इनमें मुसलमान थे, हरिजन थे तथा और कई जातियोंके लोग भी थे। गोपालजीकी मूर्त्तिके सामने लोग भजन गा रहे थे और चरखा कात रहे थे। यहाँके प्रधान श्री नानाजी, जो एक त्यागी और तपस्वी आदमी हैं और जिनकी देख-रेखमें श्री विनोबा यहांका काम चला रहे हैं, एक पतले-से आसनपर बैठे चरखा कात रहे थे। निहायत सुन्दर और सात्विक दृश्य था। हम सब लोग भी उनके साथ चरखा कातते थे। गाँवकी एकता तथा सफ़ाई-सुथराई और सब लोगोंकी सुघड़ता देखने लायक़ थी। इसका एक कारण तो यह भी है कि इधरके गाँव बंगाल, उड़ीसा और बिहारकी तरह भुखमरी और कंगालीसे तबाह नहीं हुए हैं। यहाँ लोगोंके तनपर पूरा और कईएकके तो अच्छा कपड़ा है। खाना भी इन्हें पूरा मिलता है तथा घरमें कुछ बर्त्तन और ओढ़ने-बिछानेका सामान भी है। पर बंगाल और उड़ीसामें तो स्त्रियाँ तक तन ढँकनेके लिए कपड़ा नहीं पातीं और बच्चों तकको पूरा भोजन नहीं मिलता! ग़रीबी खुद एक बड़ी समस्या है। बंगाल, बिहार और उड़ीसाके लोग ग़रीबीसे तबाह होकर आज आलसी और बेकाम-से बन गए हैं। उनके चेहरे जवानी में भी बुढ़ापेसे ज़्यादा गिरे हुए हैं। यहाँके लोग उद्यमी और फुर्त्तीले मालूम होते हैं तथा परिश्रमी भी। यहाँकी बहनोंके चेहरोंपर नूर मालूम होता था। यहाँके लोगोंके शरीरमें कस है। आज इनको अच्छे-से-अच्छा पथ-प्रदर्शन मिल रहा है। गाँवमें बाहरका कपड़ा नहीं आता। कपड़ेके मामलेमें लोग स्वावलम्बी-से हैं। हम लोगोंको यह गाँव सचमुच सुरगाँव मालूम हुआ। यहाँ आकर, यहाँका दृश्य देखकर, यहाँके लोगों और कार्यकर्त्ताओंसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यदि हिन्दुस्तानके और गाँवोंकी हालत ऐसी ही होती, तो फिर क्या बात! पर कहाँ हैं ऐसे कार्यकर्त्ता और कहाँ हैं ऐसे लोग?

२३ जनवरी

सुबह प्रार्थना करके भाई महावीरप्रसादजीके साथ नालवाड़ी श्री विनोबाजीके आश्रम तक घूमने चला गया। श्री विनोबा क़ुरआन पढ़ रहे थे। क़ुरआन पढ़नेके लिए उन्होंने इस बारकी जेल-यात्रामें अरबीका अध्ययन किया है। क़रीब आध घण्टे भाई महावीरप्रसादजी और मैं श्री विनोबाका क़ुरआन पढ़ना सुनते रहे। कोई वेद पाठ करता हो, इस तरह वे क़ुरआन पढ़ रहे थे। हम लोग समझते तो नहीं थे, पर जैसे संस्कृतके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्लोकोंमें एक प्रकारके काव्य और छन्दका आनन्द आता है, वैसा ही इसमें भी आता था। कम-से-कम मुहम्मद साहब-जैसे महापुरुषके वाक्योंको श्री विनोबा-जैसे पवित्र पुरुष और साधकके मुँहसे सुननेका सुख तथा सौभाग्य भी क्या कम है। क़ुरआन समाप्त करके श्री विनोबा घूमने निकले। हम लोग भी साथ थे। रास्तेमें भाई महावीरप्रसादजीने ध्यान और प्राणायामके बारेमें उनसे कई प्रश्न किए, जिनका श्री विनोबाने बहुत ही विवेचनापूर्ण उत्तर दिया। श्री विनोबा हर चीज़की गहराईमें जाते हैं। गहराईसे विचार करना जैसे उनका स्वभाव बन गया है। उनके कहनेका, उनके सोचनेका, अपना तरीक़ा है। घूमने और बातें करनेमें बड़ा आनन्द आया। घर आकर गीता-रामायणका पाठ किया, स्नान-भोजन किया और चरखा काता। आचार्य नरेन्द्रदेवजी, जो तीन-चार दिनसे यहाँ आए हुए थे, आज अहमदनगर जा रहे थे। उनसे मिलने गया। नरेन्द्रदेवजी बीमार रहते हैं। बापूने उनसे कहा—'एक महीनेके लिए मेरे पास आ जाओ, तुम्हारा इलाज करूँगा।' नरेन्द्रदेवजी कहते थे—'कुछ दिनों बाद लौटकर आऊँगा।' शामको भोजन करके जमनालालजीके साथ गोपुरी गया और वहीं उनके झोंपड़ेमें सोया। रातमें काफ़ी देर तक बातें होती रहीं। जमनालालजीसे मेरा सम्बन्ध कौटुम्बिक-सा है और उनकी वजहसे मुझे बहुत सुख मिलता है।

२५ जनवरी

साढ़े चार बजेके क़रीब सोकर उठा। हाथ-मुँह धोकर प्रार्थना की और गीता-रामायणका पाठ किया। सेवाग्राम, जो यहाँसे चार मील है, आजकल घूमते हुए प्रायः चला जाता हूँ। जब मैं सेवाग्राम पहुँचा, तब पूज्य गांधीजी घूमने निकल रहे थे, इसलिए उनके साथ हो गया। घूमते समय प्रायः गांधीजीके साथ किसी-न-किसीका बातें करनेका वक्त रहता है, इसलिए उन बातोंको सुननेसे काफ़ी जानकारी हो जाती है। एक सज्जनसे बातें करते हुए बापूजीने कहा—'तुम वर्धा आकर रहो, तो अच्छा है। जब तक जीता हूँ, यहाँपर जो रचनात्मक कामोंकी मौलिक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं, उनको देख और समझ लो।' इसपर वे सज्जन तो अपनी दृष्टिसे विचार करेंगे ही, पर मैं सोचता हूँ कि मैं कलकत्तेमें ही क्यों रहूँ? यहाँ क्यों नहीं आया जाय? श्री जमनालालजीको कई दिनोंसे यह इच्छा है कि मैं वर्धा आकर रहूँ। मैं भी थोड़ा-बहुत रचनात्मक कार्य तो करता हूँ, बहुत-कुछ करना भी चाहता हूँ; पर मेरी मनोवृत्ति शहरी बन गई है, इसलिए ग्रामोद्योग आदि काम अच्छे लगते हुए भी मैं उनमें लग नहीं पाता। मैं शिक्षा, सेवा आदिका काम तो कर सकता हूँ; पर जिनका ग्रामोंसे ज़्यादा सम्बन्ध हो तथा प्रत्यक्ष जनतासे सम्पर्क बढ़े, ऐसे काम करनेमें न जाने क्यों अपनेको आपको असमर्थ-सा पाता हूँ। परन्तु गांधीजीकी फिलासफ़ी सम्पूर्ण ग्रामोद्योगपर ही निर्भर करती है, इसलिए मैं गांधीजीका श्रद्धालु भक्त भले ही बनूँ; पर उनके बताए हुए कामोंको ज़्यादा सहायक नहीं हो सकता।

२६ जनवरी

पता नहीं आज कितने बजे सोकर उठा। सोचा, दिन निकलने में कम ही देर है, इसलिए गोपुरीके लिए चल पड़ा। रास्ता अँधेरेमें भटक गया और घण्टा-भर भटकता रहा, तो भी रास्ता नहीं मिला। थककर सूर्य उगनेकी राह देखनेके लिए एक टीलेके नीचे बैठ गया। कुछ देर बाद ज़रा उजाला हुआ, तो फिर चल पड़ा। दूरसे महिला-आश्रमके मकान कुछ-कुछ दिख रहे थे। रास्तेका पता नहीं था, क्योंकि चारों ओर खेत और जंगल थे। आखिर मैं मकानोंकी सीधमें ही चला। रास्तेकी झाड़ियों तथा रेलवेके तारोंसे हल्की-सी चोट भी लगी। यों भटकते-भटकते सवा छः बजे महिला-आश्रम पहुँचा। वहाँ पौने छः बजे झण्डा स्वतन्त्रता-दिवसके उपलक्ष्यमें मुझे झण्डा फहराना था; लेकिन देरसे पहुँचनेके कारण वह कार्य श्री जमनालालजी द्वारा सम्पन्न गया। जब मैं पहुँचा, तब 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' गाया जा रहा था। मैं भी उसमें शरीक हुआ। थोड़ी देर बाद घर आकर स्नान किया; लेकिन रास्ता भूलने सम्बन्धमें मनमें कई तरहके विचार चल रहे थे। न मालूम स्वतन्त्रता-आन्दोलनके कामों तथा अन्य सार्वजनिक कार्योंको करनेमें मुझसे कितनी भूलें होती होंगी। जब इस आध मीलके रास्तेको ही पार करनेमें मैं भूल कर गया और घण्टों इधर-उधर भटक गया, तो सार्वजनिक कामोंके क्षेत्र में कितनी सावधानी और कितनी जागरूकताकी ज़रूरत है। कांग्रेसकी ओरसे भी झण्डा-उत्सव था। श्री जमनालालजीके वहाँ गया, वर्धामें सब जगह एक प्रकारका राष्ट्रीय वातावरण है।

२७ जनवरी

मैं जब-जब वर्धा आता हूँ, तब-तब इस बातकी कोशिश करता हूँ कि गांधीजीके साथ आने-जानेवाले लोगोंकी जो बातें होती हैं, उनको सुनूँ। इसीलिए मैं गांधीजीकी कुटियामें ज़्यादा बैठता हूँ। वहाँपर इतनी बातें होती हैं, इतनी तरहकी होती हैं, इतने लोगोंके साथ होती हैं कि देशकी हर हलचलका प्रकाश पड़ता है। आज कलकत्तेके एक मित्र आए हैं। वे कहते थे कि कलकत्तेकी हालत बहुत बुरी है। नमक १५) मन है, कोयला ४॥) मन। लोग बेतहाशा बहाँसे भाग रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारी भाषा और लिपिकी समस्या

प्रो० ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए०

सहसा सवाल उठता है कि हमारी भाषा और लिपिका प्रश्न आज इतना उग्र क्यों हो उठा है ? पग-पगपर आदरणीय महात्माजीका नाम इस द्वन्द्वके साथ जुड़ा देखकर तो आश्चर्यको सीमा नहीं रहती। भारतकी एकता आज खतरेमें हो सकती है ; परन्तु युगोंसे वह अक्षुण्ण थी, इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। इतने बड़े देशके विशाल जन-समूहको युगों तक यदि संस्कृत भाषाने एक सूत्रमें बाँधकर रखा था, तो उसके बाद अन्य देशी भाषाओंने भी अपनी-अपनी सीमाओंमें अपने उत्तर-दायित्वका समुचित निर्वाह किया था। उत्तर और दक्षिणकी भाषाओंमें 'कुल-भेद' होते हुए भी संस्कृतके परम्परागत प्रभावने उन्हें एक-दूसरेसे बहुत पृथक नहीं होने दिया था। सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकताके कारण आजसे सदियों पहले भी भारतीयों का अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध कम घनिष्ट न था। उस समय भी पारस्परिक व्यवहारके लिए मध्य-उत्तर-भारतकी प्रचलित भाषा ही काममें लाई जाती थी। इसका प्रमाण आजसे लगभग ४०० वर्ष प्राचीन कागज़-पत्रोंसे चल सकता है, जो आज भी जगन्नाथ-पुरी तथा रामेश्वरके कुछ पण्डोंके पास सुरक्षित हैं। यदि उस समय धार्मिक अथवा व्यावसायिक कारणोंसे हमें अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए एक चालू भाषाकी आवश्यकता पड़ी थी, तो आज प्रधानतः राष्ट्रीय सन्देशके प्रचार एवं विस्तार के लिए देशव्यापिनी साधारण भाषाकी आवश्यकता आ पड़ी है। भेद इतना ही है कि आजका वातावरण राजनीति, कूटनीति इत्यादि विविध मत-मतान्तरोंके विषाक्त वायुमण्डलसे दूषित है। किन्तु उस समयके लोगोंकी भावना अधिक पवित्र थी। प्रत्येक वस्तुका ग्रहण अथवा त्याग उसकी न्यायोचित उपयोगिता अथवा अनुपयोगितापर निर्भर हुआ करता था।

भाषा बनाम धर्म

आजकी भाषा-विषयक समस्या साम्प्रदायिक पक्षपातोंके कारण और अधिक जटिल हो उठी है। आज प्रायः धर्म और संस्कृतिकी आड़ लेकर ही भाषाके प्रश्नपर विचार किया जाता है। भारतवर्ष सदासे धर्म-प्राण देश रहा है। प्राचीन संस्कृतिकी प्रतिष्ठा यहाँके जीवनकी विशेषता रही है। देशके अन्य नेता धर्मके प्रश्नसे उदासीन रह सकते हैं ; परन्तु श्रद्धेय महात्माजीके जीवनमें यह सदासे ही प्रमुख रहा है। भाषा और लिपि ही क्या, शायद राष्ट्रीय उद्योगके किसी पगपर भी उन्होंने धार्मिक चेतनाको गौण नहीं होने दिया। इस दृष्टिकोणकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु धर्मके साथ उर्दू या हिन्दीको अनिवार्य रूपसे जोड़ना कहाँ तक न्याय-संगत है, यह प्रश्न विचारणीय है।

सैकड़ों वर्षोंसे भारतके एक बड़े जन-समुदायकी विचार-धारा हिन्दीमें ही प्रवाहित हुई है। मध्य-युगकी सूर, तुलसी और कबीर-जैसे महात्माओंकी वाणी धार्मिक उपदेश ही है तथा उनकी पूजा भी उसी प्रकार होती है, फिर भी हिन्दुओंकी धार्मिक भाषाका पद आज भी देववाणी संस्कृतके द्वारा ही सुशोभित है। सभी पुण्य कार्योंके अवसरपर मन्त्रोच्चारण संस्कृतमें ही होता है। इसी प्रकार मुसलमानोंके धार्मिक ग्रन्थ भी सब अनिवार्य रूपसे अरबीमें ही हैं और उनके सभी धार्मिक कृत्योंका प्रतिपादन अरबीके ही माध्यमसे होता है। कुछ ही वर्षों पहले अरबीमें लिखे गए क़ुरआनका उर्दूमें तर्जुमा करना भी कुफ़्रसे कम न था। हिन्दीमें तो संस्कृतका प्राचीन साहित्य—क्या धार्मिक और क्या अन्य—प्रायः सभी आ चुका है ; किन्तु उर्दू तो आज भी इस्लामके क्षेत्रमें पूर्ण प्रवेश नहीं पा सकी है। काव्य-प्रधान उर्दूका साहित्य विचार-परम्परा, काव्य-प्रणाली, एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमिके लिए अरबीकी अपेक्षा फ़ारसीका अधिक ऋणी है। आजके कुछ अनुवादोंको छोड़कर प्रायः सारा उर्दू-साहित्य दर्शन अथवा अध्यात्मकी अपेक्षा बुद्धिवादसे ही प्रेरित है। किन्तु धर्मका मूल तो तर्क नहीं, विश्वास है। अतः उर्दू भाषा या साहित्यके दामनमें धर्मको या इस्लामी संस्कृतिको बाँधना या हिन्दीके साथ हिन्दू-धर्मका गँठबन्धन करना उचित नहीं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, धर्म एवं संस्कृतिको सात्विक भावना तो सुरक्षित रहनी ही चाहिए। न केवल हिन्दू या मुसलमानों ही के लिए, वरन अन्य सम्प्रदायोंके लिए भी इसी नीतिका अनुसरण होना चाहिए। राष्ट्रके नवनिर्माणमें अनिवार्य शिक्षाका नियम तो होगा ही। उपर्युक्त उद्देश्यकी वास्तविक पूर्त्तिके लिए यह आवश्यक होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा-क्रममें ही हिन्दू बालकोंके लिए प्राथमिक संस्कृत, मुसलमान बच्चोंके लिए प्राथमिक फ़ारसी या अरबी, उसी प्रकार अन्य सम्प्रदायोंके बच्चोंके लिए उनके धर्म-ग्रन्थोंकी भाषाका प्राथमिक ज्ञान आनिवार्य कर दिया जाय। ऐसा करनेसे आगे चलकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार वे बालक इस ओर बढ़ सकेंगे, क्योंकि धार्मिक अथवा सांस्कृतिक संस्कारोंका बीजारोपण तो हो ही चुकेगा। इस प्रस्तावमें शायद किसीको दक़ियानूसीपनकी बू आए ; परन्तु ऐसोंके लिए तो शायद धर्मकी चर्चा भी दक़ियानूसीपनसे खाली नहीं। यदि बच्चोंमें धार्मिक प्रवृत्ति रखनी वांछनीय है, तब तो उपर्युक्त प्रस्तावके अतिरिक्त और कोई व्यावहारिक निरापद मार्ग नहीं, क्योंकि इस प्रकार राष्ट्रके बच्चोंमें विविध धर्मों एवं संस्कृतियोंके संस्कार तो जाग्रत होंगे ही,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साथ-ही-साथ विविध मूल-भाषाओंका परिचय उनके आधुनिक भाषा-ज्ञानकी नींवको भी अधिक सुदृढ़ करेगा। इस तरह आपस के अनावश्यक संशय भी दूर हो जायँगे।

राष्ट्रभाषाका स्वरूप

आजसे बीस साल पहले राष्ट्रीय संगठनके लिए राष्ट्रभाषा की उपयोगिताके विचारसे कांग्रेसके द्वारा हिन्दीको राष्ट्रभाषा माना गया था। इसके प्रचार तथा प्रसारमें महात्माजीका बहुत बड़ा योग रहा है। शायद कोई भी ईमानदार व्यक्ति यह न कह सकेगा कि भाषाके इस चुनावके पीछे किसी प्रकारके छल अथवा पक्षपातका लेश भी न था; क्योंकि इसके प्रधान पृष्ठपोषक थे महात्माजी, जिनकी मातृभाषा थी गुजराती। अतः हिन्दीके प्रति उनके पक्षपात या अनुचित मोहका तो प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु ज्यों-ज्यों स्वाधीनताके युद्धमें गरमाहट आने लगी तथा स्वतन्त्रताके मन्दिरका शिखर—दूरसे ही सही—देख पड़ने लगा, त्यों-त्यों कितने ही निठल्ले खून लगाकर शहीद बननेवाले व्यक्ति भी कांग्रेसके पड़ावके इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगे। लड़ाकू पंक्तियोंमें जाना तो जेलके खतरेसे खाली नहीं था, इसलिए तथाकथित रचनात्मक कार्यक्रमकी ओटमें अपना उल्लू सीधा करना और भाषा-जैसे लगभग निर्विवाद मसलोंपर फ़तवेबाज़ी करना ही इन लोगोंका पेशा हो गया। ऐसे ही हिन्दीसे अनभिज्ञ और उर्दूसे कोरे कुछ व्यक्तियोंने लगभग १५-१६ वर्ष पूर्व कहींकी ईंट और कहींके गारेसे हिन्दुस्तानी भाषा बनानेके लिए एक संस्था गढ़कर अपनी 'मस्तिश्किक क़ुव्वत'का परिचय दिया था। सच पूछा जाय तो आजकी इसी नामकी दुरंगी भाषाके विधाता इसी संस्थाके कर्णधार हैं। उन्होंने इसलिए ऐसा नहीं किया कि राष्ट्रीय शिक्षाके क्षेत्रमें उनका भाषा-विषयक यह कोई विचारपूर्ण प्रयोग था, वरन् इसलिए कि यही एक मसला और यही एक भाषा उनके पल्ले पड़ी थी और महात्माजीके शब्दोंमें 'दिमाग़ी तौरपर ये बहुत सुस्त' शायद थे ही, 'लेकिन अंगरेज़ीके बोझने इनकी मानसिक शक्तिको बहुत पंगु बना दिया था'। नए सिरेसे यह या वह भाषा सीखना तो इनके लिए सम्भव नहीं था, अतः इन्होंने सरलताका सस्ता नारा लगाकर और भाषाके 'स्टैण्डर्डाइज़ेशन'का झण्डा उठाकर ही अपने अवसरवाद और अज्ञानको 'स्टैण्डर्डाइज़' करनेका बीड़ा उठाया। 'ध्वनि'-जैसे शब्दको ज़बर्दस्ती 'धुनि' कहना या 'संस्कृत'से 'संस्कीरतीयत' प्रयोगोंका चालू करना उपर्युक्त कथनके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

आए दिन उपदेश सुने जाते हैं कि हिन्दी-लेखकोंको भाषा सरल लिखनी चाहिए। लेकिन इन उपदेशकोंसे कोई पूछे कि कठिन किन्तु सार्थक भाषा लिखना क्या ऐसा आसान काम है कि निष्प्रयास ही कोई भी कठिन भाषा लिख सकता है और सरल लिखनेके लिए प्रयास करनेकी ज़रूरत है? कठिन अर्थ-बहुल भाषा लिखनेके लिए चाहिए अपार शब्द-भण्डार और गम्भीर विचार-विवेचनकी शक्ति। यह दोनों वास्तवमें विरले पास होते हैं? योंही कोई अण्ड-बण्ड बके तो बात दूसरी है, किन्तु सार्थक तथा सारयुक्त कुछ भी कहना हो, तो सामान्यतः मार्ग ही अधिक सीधा हुआ करता है। इसमें प्रयासपूर्ण दुरूहता का प्रश्न ही कहाँ उठता है? सच बात तो यह है कि हिन्दीके लेखकोंको सरलताका आए दिन उपदेश देनेवाले ये व्यक्ति हिन्दीके साधारण ज्ञानसे भी हीन होते हैं, अतः हिन्दीकी प्रकृति उन्हें कठिन हो जान पड़ती है। इसका इलाज ही क्या!

पिछली २६ फरवरीको हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका उद्घाटन करते समय महात्माजीने भाषाके नवीन नामकरण (हिन्दीके बदले हिन्दुस्तानी) की उपयुक्ततापर भी प्रकाश डाला था। इस परिवर्त्तनके मूलमें भी साम्प्रदायिक समझौतेकी नीति ही काम कर रही है। यों तो हिन्दीके ही समान हमारी भाषाका हिन्दुस्तानी नाम भी कई सौ वर्ष पुराना है। अरबके सम्बन्धके लेखसे ज्ञात होता है कि वहाँवाले भारतको 'हिन्द' तथा वहाँकी उत्तर-भारतीय भाषाओंको 'हिन्दी' ही कहते थे। परन्तु तुर्की 'हिन्दुस्तान' शब्दका अधिक प्रयोग किया है। कुछ दिनों पहले तक तो अनेक हिन्दीके भाषा-तत्त्ववेत्ता भी समझा करते थे कि ग्रियर्सनने ही शायद युक्त-प्रान्तकी उत्तर-पश्चिमकी बोलीके लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग किया था। किन्तु आगे चलकर डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने एक प्राचीन व्याकरणके आधारपर सिद्ध किया कि उर्दू-मिश्रित उत्तर-भारतीय भाषाके लिए 'हिन्दुस्तानी'का प्रयोग पोर्चुगीज़ोंने किया था। किन्तु इससे भी पहले सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें बाबरने अपने जीवन-चरितमें 'हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग देशकी चालू भाषाके अर्थमें किया था। उस समय तो उर्दूका जन्म भी नहीं हुआ था। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन समयमें भी प्रचलित हिन्दीके ही लिए 'हिन्दुस्तानी' नामका प्रयोग होता था और उसमें फ़ारसी या अरबी या अन्य विदेशी शब्दोंकी मिलावटकी शर्त्त नहीं थी।

उपर्युक्त अवसरपर ही गांधीजीने कहा था—"बहुत अर्सा नहीं हुआ, उत्तर-भारतके लोगोंकी भाषा एक ही थी। वह उर्दू और देवनागरी लिपियोंमें लिखी जाती थी।... ग्रामीण जनता बड़े-बड़े शब्दोंको, चाहे वे फ़ारसीसे लिए गए हों चाहे संस्कृतसे, परवा नहीं करती।...वह (ग्रामीण जनता) जो भाषा बोलती है, केवल वही भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है, और हरएक हिन्दुस्तानीका कर्त्तव्य है कि वह उसे सीखे।" महात्माजीके इस कथनसे काफ़ी हलचल मची। लोगोंने सन्देह प्रकट किया कि 'समूचे या केवल उत्तर-भारतकी ही सारी ग्रामीण जनता' क्यों

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक भाषा नहीं बोलती और न ग्रामीणोंकी भाषा या भाषाएँ इतनी समुन्नत हैं कि उनके आधारपर राष्ट्रभाषा बनाई जा सके। पर यदि ज़रा गम्भीरतासे विचार किया जाय, तो ये आशंकाएँ अपने-आप मिट जाती हैं। साधारण व्यवहारमें 'भाषा' और 'बोली' शब्दोंका प्रयोग कुछ अनियमित-सा ही किया जाता है। अधिकांश तो इसके भेदको ठीक-ठीक जानते भी नहीं। यदि यह भेद स्पष्ट कर दिया जाय, तो गांधीजीके उपर्युक्त कथनकी आधी सत्यता अपने-आप प्रमाणित हो जाती है। यदि सिद्धान्त-रूपसे देखा जाय, तो भाषा अधिक व्यापक संज्ञा है, जिससे समान-रूपवाली विविध बोलियोंके समूहका ज्ञान होता है—अर्थात् प्रत्येक भाषाका संगठन समान-रूपवाली कई बोलियों तथा उपबोलियोंको लेकर ही होता है। समान-रूपताके प्रधानतः तीन आधार होते हैं—शब्द-भण्डार, शब्द-ग्रन्थन तथा उच्चारण। जिन बोलियोंमें इन तीनों अंगोंकी उचित समानता दीख पड़ती है, वे स्वभावतया एक समूहके रूपमें संगठित हो जाती हैं। इसी समूहको भाषाकी सत्ता दी जाती है।

इस दृष्टिकोणसे समझनेमें देर न लगेगी कि उत्तर-भारतकी ग्रामीण जनता सचमुच एक ही भाषा-सूत्रमें बँधी हुई है। बोलियाँ विविध एवं विभिन्न अवश्य हैं, किन्तु सामूहिक रूपसे एक ही भाषाके सूत्रसे गुँथी हुई हैं। यही कारण है कि ब्रज-मण्डल या राजपूतानेका निवासी अवधीके क्षेत्रमें जाकर भी अपनी बात कहनेमें या दूसरेकी समझनेमें विशेष कठिनाईका अनुभव नहीं करता। भले ही वह अवधी बोलीमें बोल न सके, या अवधीवाला ब्रजमण्डलकी बोलीमें बोलनेमें असमर्थ हो; परन्तु उनका पारस्परिक विचारोंका आदान-प्रदान सुगमतासे हो जाता है। इसी व्यावहारिक सत्यके आधारपर हिन्दीको भाषा कहा जाता है, क्योंकि उसमें अवधी, ब्रजभाषा, राजस्थानी, बाघेली, बुन्देली इत्यादि कितनी ही बोलियाँ सम्मिलित हैं। उर्दू भी उसीके अन्तर्गत एक बोली ही है, क्योंकि उसका अपना कोई पृथक बोली-समूह नहीं है। इसीसे उसे हिन्दीकी एक शैली एवं बोली कहा गया है और फिर, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, 'बोली' और 'भाषा'का पारस्परिक अटूट सम्बन्ध है। भाषासे किसी विशिष्ट आदर और बोलीसे निरादरकी सूचनाकी आशंका करना अनावश्यक भ्रम है। हिन्दी और उर्दूके इसी सम्बन्धके आधारपर तो राष्ट्रभाषाकी भित्ति खड़ी है। शब्द-भण्डार, शब्द-ग्रन्थन एवं उच्चारणकी समता इस आधारका बड़ा बल है।

अब प्रश्न आता है इन विविध बोलियोंकी अनुन्नत अवस्था का। यह शंका भी निराधार है, क्योंकि आज तो राष्ट्रको एक साधारण भाषाकी आवश्यकता है प्रधानतः अन्तर्प्रान्तीय विचार-विनिमयके लिए, राष्ट्र-सन्देशके प्रचार और प्रसारके लिए। विविध प्रान्तीय भाषाओंके पृथक अस्तित्वको न छूनेकी नीतिका अभिप्राय ही यह था कि उच्चकोटिके साहित्यकी रचना मनुष्य अपनी मातृभाषामें ही कर सकता है; अतः उस ओर सबको समान अवसर मिलना ही चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रभाषासे तात्पर्य एक प्रकारकी 'सरकारी भाषा'से ही है। निःसन्देह ऐसी भाषाका सफल संगठन प्रचलित बोलियोंके आधार पर ही हो सकता है। लेकिन इस प्रकारसे संगठित हमारे राष्ट्रकी 'सरकारी भाषा'की रूपरेखा भी निश्चित तो होनी ही चाहिए। अब तक इस ओर जितने प्रयास हुए हैं, उनके द्वारा कदाचित् विषमताकी खाई ही अधिक चौड़ी हुई है। सुना जाता है कि सेवाग्रामका विश्वास तो कुछ यह हो गया है कि हिन्दी-साहित्य-सेवी तथा उर्दूके विद्वान एक साथ बैठकर किसी निर्णयपर पहुँच ही नहीं सकते। ऐसे आक्षेप यदि किए जाते हैं, तो सर्वथा अनुचित हैं। हाँ, दो समानान्तर रेखाओंको मिलानेमें ही यदि विद्वानोंकी परख है, तब तो दूसरी बात है। अच्छा तो यह हो कि हिन्दी और उर्दूके योग्य विद्वानोंकी **दो पृथक समितियोंका संगठन किया जाय** तथा उनसे निम्नलिखित रूपसे शब्द-चयन कराया जाय :—

समस्त	प्रचलित	क्रियापद
,,	,,	सर्वनाम
,,	,,	विभक्ति-चिह्न
,,	,,	अव्यय
,,	,,	शारीरिक अंग-प्रत्यंगोंके नाम
,,	,,	घरेलू तथा साधारण भारतीय जीवन में काम आनेवाली वस्तुओं एवं जानवरों आदिके नाम।

इन छः विभागोंमें दिए गए जितने शब्द भी दोनों समितियाँ दें, उन्हें लेकर एक कोष संकलित कर लिया जाय और ये सभी शब्द राष्ट्रकी 'सरकारी भाषा'के लिए मान्य समझे जायँ। उच्च साहित्य-निर्माणमें लेखक अथवा कलाकार किन शब्दोंका प्रयोग करें या उनकी भाषाका मापदण्ड क्या हो, इस विषयमें राष्ट्रकी ओरसे किसी विशेष नीतिके निर्धारणकी न आवश्यकता है और न उसके पीछे न्यायका बल ही है, क्योंकि सच्ची कला अपना रूप स्वयं स्थिर करती है। बन्धन अथवा आदेश या तो इस दिशामें निरर्थक सिद्ध होते हैं या फिर कला कुण्ठित होकर दब जाती है।

लिपिकी समस्या

अब प्रश्न है लिपिका। जातीय शिक्षामें लिपिका प्रश्न कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, और विशेषकर जब कि इसके साथ भी धर्म और संस्कृतिका अस्तित्व जुड़ा हो। इस ओर खरी कसौटी तो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैज्ञानिकताकी ही होनी चाहिए ; किन्तु वर्त्तमान वातावरण उसके प्रतिकूल जान पड़ता है। फिर इस सम्बन्धमें तो एक तरहसे निर्णय भी हो चुका है कि भारतीय राष्ट्र देवनागरी तथा फारसी दोनों लिपियोंको समान रूपसे स्वीकार करता है और प्रत्येक सरकारी कार्यवाही दोनों ही लिपियोंमें सुलभ होगी। और शब्दकोषकी एकताका स्वाभाविक निष्कर्ष ही यह होगा कि दोनों लिपियोंमें इबारत एक ही होगी। यही उचित भी है।

लेकिन तब प्रत्येक व्यक्तिके लिए दोनों लिपियोंका जानना क्यों अनिवार्य होना चाहिए? जब इबारत एक ही होगी, तब क्या एक लिपिके जाननेसे काम न चलेगा? दोनों लिपियोंके जाननेका आग्रह तो कुछ ऐसा ही है, जैसे कि विख्यात वैज्ञानिक न्यूटनके विषयमें प्रसिद्ध है। उनकी एक बिल्ली थी, जिसे वे बहुत अधिक प्यार करते थे। बिल्लीने बच्चे दिए और प्राकृतिक नियमानुसार कभी-कभी वह उन बच्चोंको बाहर भी ले जाती थी। वापस आनेका उसका कोई निश्चित समय नहीं था। बेवक्त आकर वह और बच्चे बन्द दरवाज़ा खोलनेकी चेष्टा किया करते थे। अतएव उनकी सुविधा तथा अपनी शान्तिके विचारसे न्यूटनने दरवाज़ेमें छेद बनवानेका निश्चय किया। बढ़ईको बुलाकर उन्होंने कहा कि दरवाज़ेमें दो छेद बनाओ—एक छोटा और एक बड़ा, ताकि बड़े छेदसे बड़ी बिल्ली भीतर आ सके और छोटेसे छोटे बच्चे। बढ़ई इस आदेशसे असमंजसमें पड़ गया और डरते-डरते उसने पूछा—'क्या बड़े छेदसे छोटे बच्चे भी अन्दर नहीं आ सकेंगे?' यह सुनते ही न्यूटनको अपनी भूल मालूम हुई और ज़ोरसे हँसते हुए उन्होंने कहा—'भाई, तुम ठीक ही तो कहते हो। एकसे ही काम चल जायगा।'

महान व्यक्तियोंकी भूलें भी असाधारण ही हुआ करती हैं।

मैडम मॉण्टिसरीसे भेंट

श्री गुरुदयाल मल्लिक

'हिमाचलके मस्तकपर आज रुपहले तुषारकी शोभा कैसी निराली है!'—यह वाक्य अनायास ही उस समय मेरे मुँहसे निकल गया, जब मैंने काश्मीरके सुन्दर परिवेशमें मैडम माण्टिसरीके दर्शन किए। गुलमर्गके शायद सबसे उच्च शिखर पर अहमदाबादके एक सुसंस्कृत धनकुबेरके द्वारपर काश्मीरका नरवाहन—डाँड़ी—रुका और वृद्धा मैडम धीरे-धीरे नीचे उतर आईं। सीढ़ियोंके निकट जब वे पल-भरके लिए औचक ही रुक गईं, तो मेरी दृष्टि उनकी दीर्घच्छन्द, शानदार, वयोवृद्ध शोभापर अटक गई। पीछे हमारे देशका 'सन्तरी' सिर उठाए खड़ा था और वे उसके साथ—एक ही धरातलपर न सही, तो एक ही पंक्तिमें—जान पड़ती थीं। मुझे ऐसा लगा कि नर-नारियोंके इस सुपरिचित जगत्में भी प्रतिभा और पराक्रमके ऐसे ही समुच्च दृष्टान्त हुआ करते हैं, जैसी कि हिमालयकी बर्फ़से घिरी और आसमानको चूमनेवाली ये चोटियाँ हैं। और फिर मैंने मन ही मन यह भी अनुभव किया कि यदि ऐसे चोटीके व्यक्ति इस दुनियामें सचमुच ही होते हैं, तो मैडम माण्टिसरीका स्थान निःसन्देह उन्हींके बीच है। उनका दीप्त चेहरा, शुभ्र केशोंका मुकुट धारण करनेवाला मस्तक, शरीरकी असाधारण ऊँचाई—सभी अपने प्रथम दर्शनमें ही यह सूचित कर देते हैं कि मैडम माण्टिसरी उन्हीं साधकोंमें से एक हैं, जो कभी-कभी हमारे मंगल-साधनके लिए हमारे बीच रहा करते हैं। उनके मुखपर सत्यद्रष्टाकी छाप है और उसीके साथ जीवनके परम रहस्योंको अपनी अलमस्त नादानियोंमें ही जान लेनेवाले शिशुकी दिव्य प्रसन्नताका उजाला भी।

मैडम अत्यन्त स्वल्पभाषी महिला हैं—मानो वे अपने निरालेपनकी गहराईमें डूबी रहती हैं। कविके समान वे उन हृदयकी गोपन भावनाओंमें ही ध्यानस्थ जान पड़ती हैं। हाँ, जब वे कुछ कहती हैं, तो उसमें मनुष्य और प्रकृतिको उस भावसे परिचालित करनेवाले नियमोंकी प्रतिध्वनि होती है। उदाहरणके लिए, उन्होंने अपने सामने एक सम्पूर्णतया अपरिचित व्यक्तिके जीवन-प्रवाहको पल-भरकी दृष्टिमें ही पहचान लिया। केवल उसके बाहरी रूप और चेहरेकी विशेषताके साथ प्रकृतिके एक निगूढ़ सामंजस्यके बलपर ही वे ऐसा कर सकीं। प्रकृतिका प्रभाव मनुष्यके विकासको कई प्रकारसे दिशा देता है। उनकी यह प्रणाली इतनी मौलिक और सुन्दर जान पड़ी कि हम लोग, जो आज अपने उदार यजमानके अतिथि थे, महसूस करने लगे कि मनुष्य और निखिल प्रकृतिके योग-सूत्रका मानो कोई आभास आज हमने समझा ही नहीं, किसी अंशमें उपलब्ध भी किया है।

'देखनेमें आप खूब ही तरुण दिखाई देती हैं, मैडम!'—हममें से किसीने बातों-ही-बातोंमें कहा।

'जी, हाँ,—मैडमने मुस्कराते हुए कहा—'मैं सचमुच ही तरुण हूँ। किन्तु जिनके जीवनका कोई विशेष उद्देश्य होता है, जिसकी सार्थकतामें वे सर्वतोभाव संलग्न रहते हैं, वे लोग सचमुच ही कभी बूढ़े नहीं होते।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'और आपके जीवनका उद्देश्य भी तो शिशुके अन्तरमें निवास करनेवाली शाश्वत और उद्बुद्ध आत्माका उद्घाटन और विकास करना है।'

मैडम मुस्कराईं--उसी सच्ची विनम्रताके साथ, जिसके दर्शन केवल सच्ची महानात्माओंमें ही मिलते हैं। और सच्चे महान् आत्मा वही तो होते हैं, जिन्होंने जीवनके दर्शन खुली आँखोंसे, प्रत्यक्ष भावसे, किए हैं—किसी रूढ़ि, शास्त्र अथवा अन्ध-विश्वासके चश्मेसे नहीं।

हममें से किसीने—मुझे स्मरण नहीं, किसने—कहा : 'कैसे खेदकी बात है कि आज पिछले चार दशाब्दोंसे मैडमने शिशु-शिक्षाके क्षेत्रमें जो अनमोल सेवाएँ की हैं, उनके परिमाण अथवा महत्वकी तुलनामें जनताका जवाब कितना थोड़ा और कितना क्षीण है! कितना अच्छा होता कि हमारे बीच एक ऐसा केन्द्र होता, जिसमें मैडमकी दृष्टि और जीवनकी उपलब्धियोंको हम शिक्षकोंके प्रयोगके लिए सहज कर देते, और हमारा शिक्षक-समुदाय तब समझ पाता कि उसका कार्य आत्माके अग्रदूतका है—महज़ जड़ कारखाना चलानेवाले राबटका नहीं!'

मैडमकी आँखें आनन्दसे चमक उठीं। वे इस तरह बोलीं, मानो उन्हें कुछ आशा हो आई कि सम्भवतः जनता उनके कार्योंके लिए कुछ क्षेत्र, कुछ समवेदना, कुछ सहायता दे सकेगी। वे बोलीं—'अगर कोई ऐसा केन्द्र खोला जा सके, तो कितनी प्रसन्नता होगी मुझे! तब मैं अपने जीवनका सारा श्रम, सारा अनुभव जनताके हाथों सौंप सकूँगी। मेरी इच्छा जीवनके इन बाक़ी दिनोंको भारतवर्षमें ही बितानेकी है। (इस जीवनके सत्तर वर्ष वे पार कर चुकी हैं।—ले०) मेरा एकमात्र उद्देश्य सृष्टिके नियमोंको अपने उस स्वप्न और प्रेरणाके प्रकाशमें चरितार्थ करना है, जो अभी सद्य ही मैंने हिमाचलकी छायामें—गोद में—देखा है!'

हमारे यजमानकी कवियित्री कन्याने प्रश्न किया—'मैडम, आजकल आपको अपने इस सूनेपनका बोझा-सा नहीं अनुभव होता?'

'नहीं, नहीं,'—मैडमने कहा--'मेरे काम-काजने कुछ दिनों से एक नई दिशा ले रखी है। पहले मैं अपने दिखाई पड़नेवाले ठोस काम-काजके भीतर कुछ इस तरह खोई रहती थी कि न तो समयका ध्यान होता था, न अन्य बातोंका ही। किन्तु इधर कुछ दिनोंसे मैं अपना वह ठोस काम-काज एक तरफ़ पड़ा रहने देती हूँ और केवल किन्हीं एकाकी, शाश्वत प्रेरणादाता और हमारे जीवन तथा श्रमके प्रकाशकके साथ समयको बिता देती हूँ।'

दोपहरके भोजनके बाद यह बातचीत चल रही थी। मैडम ने विदा लेनेकी इच्छा प्रकट की। जब और सबोंने उनसे हाथ मिलाए, मैंने दोनों हाथ जोड़कर विनम्र हृदयसे उन्हें प्रणाम किया और उनके दोनों हाथोंको अपने हाथोंमें लेकर अन्तरकी यह सश्रद्ध कृतज्ञता उन्हें निवेदन की कि उनके दर्शनसे मैं धन्य हुआ।

'मुझे भुलाइएगा नहीं।'—मैडमने कहा।

जब मैं लौट रहा था, तब उनके शब्द मेरे कानोंमें गूँजे। अपने मित्रके उस आवासकी ओर मैं वापस हो रहा था, जहाँ रहते हुए उनके स्नेहवश मैंने आजका यह सौभाग्य पाया था। भला मैडम माण्टिसरीको भी कोई भूल सकेगा? तब तो उन्होंने मुझसे कहा होता कि हिमालय पर्वतको ही न भूल जाना!—भला यह भी कहीं सम्भव है!

चीन-देशकी कविता-रानी !

श्री हरिमोहन मिश्र

चीन-देशकी कविता-रानी, सुनो पड़ोसिन मेरा नाम ;
सखी-सहेली पीत नदी है, वहीं मचा था कल संग्राम।
कहता कौन चीन निर्बल है, चीन, विश्वका गौरव चीन ;
जिसने देखा इतिहासोंका रूप पुराना और नवीन।
मैंने काग़ज़ दिया विश्वको, दिया रेशमीका परिधान ;
बारूदी आविष्कारोंसे बना दिया उसको बलवान।
है मेरा इतिहास पुराना, शान्ति-सभ्यता मेरा गीत ;
अपना नहीं गँवाना जाना, नहीं ग़ैरको करना भीत।
दरवाज़ेपर के दुश्मनको मैंने चाय पिलाई है ;
एक नहीं, दो बार नहीं, दुनियासे आँख मिलाई है।
हाँ, अफ़ीम खा गृह-युद्धोंमें मैं सचमुच खोई कुछ काल ;
अब तो हुआ सवेरा, देखो, पीत नदीका पानी लाल!
ज़िन्दा दुनियामें मुझको रहना है और रहूँगी मैं ;
नहीं जान रहते उत्पीड़न - अत्याचार सहूँगी मैं।
झेल गोलियाँ औ' गोलोंको खड़ी हमारी है दीवाल ;
खड़ी रहेगी तब तक जब तक चीन खड़ा है खुद सुविशाल।
वह शेन्सी-अभियान हमारे गानोंसे ही पूर्ण हुआ ;
लाल सफेदोंका झण्डा भी, दर्प सुरोंका चूर्ण हुआ।
घुमड़ उठा हर ओर चीनमें देशप्रेम - बादल भारी ;
सूरज-झण्डा आज छिप गया, फिर ठण्डी दुनिया सारी।
मुझे मिटाने उबल पड़ी थी जापानी तानाशाही ;
पूरबके स्वर्णिम उदयाचलपर यह पश्चिमकी स्याही।
सुनो सहेली, हम दोनोंका यही आज कर्त्तव्य रहे ;
जिससे यह सुविशाल एशिया बोझ गुलामीका न सहे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फ़ाज़िलशाह

क़ाज़ी अब्बासहुसेन 'ज़रीफ़'

एक मोटे-ताज़े बेडौल-बेहंगम-से आदमी थे। दाढ़ी थी तो चुग्गी, मगर थी लम्बी और थोड़ी भरी हुई भी। जब हवामें सुकून होता तो शायद किसी वक्त साकिन रहती, वर्ना बेचारी लहराया ही करती। और तेज़ हवामें तो ग़रीबकी मुसीबत ही थी—यानी पछवा चली, तो सिमटकर पूरबको हो गई और पुरवा चली, तो पच्छिमकी तरफ़ सिमटकर रह गई। पढ़े न लिखे, नाम मुहम्मद फ़ाज़िल। मुहम्मद फ़ाज़िल असलमें बिलकुल कोरे थे। पढ़ना-लिखना दरकिनार, इन्हें तो हर्फ़ोंकी शुद-बुद भी न थी। बहरहाल थे फ़ाज़िलशाह! जिस तरह शाइर साहब क़िब्ला, ज़रूरते-शेरीसे अल्फ़ाज़को तोड़-मरोड़कर भी जायज़ मान लेते हैं और सातका क़ाफ़िया 'हाथ' बाँध लेते हैं, उसी तरह हमारे इन साहबने भी अपना नाम फ़ाज़िलशाह रख लिया था। इन्होंने तो क्या रखा, दरअसल इनकी बीवीने रख दिया, जो बहुत तेज़ थीं। ये तो बेचारे अल्लाहके जीव थे, मगर इनकी बीवीको अल्लाह मियाँने इनके हिस्सेकी भी अक़्ल दे दी थी। एक दिन मियाँ-बीवीमें यों बातें हो रही थीं :

बीवी—देखना, कोई धन्धा करो ना। यों हाथ-पर-हाथ धरे कब तक बैठे रहोगे?

मियाँ—क्या करूँ? तुम जो-कुछ कहो, वही करूँ। और मैं कर ही क्या सकता हूँ? पढ़ा मैं नहीं, लिखा मैं नहीं, रुपया-पैसा मेरे पल्ले नहीं, करूँ तो क्या करूँ; मेरी तो समझमें कुछ आता नहीं।

बीवी—फिर क्या होगा, कैसे काम चलेगा?

मियाँ (सिर खुजलाते हुए)—अब मैं क्या बताऊँ!

बीवी—मेरा तो हाथ-गला भी नंगा हो गया! जो दो तार अम्मा-बाबाने दिए थे, वे भी बिक गए। खासे सौ बरतन थे, अब ये दो-तीन ठीकरे दिखाई दे रहे हैं। ये भी बिक गए, तो मुआ झलंगा और दो मटके पानीके रह जायँगे! मैं पूछती हूँ, फिर क्या करोगे? आखिर तुमने सोच क्या रखा है? (मियाँ दाढ़ी खुजलाते हुए चुप रह जाते हैं।)

बीवी—बोलते क्यों नहीं? कुछ जवाब दो। क्या सोचा है तुमने? धूल फांककर जीओगे?

मियाँ—अल्लाह मालिक है। उसने पैदा किया है, तो रिज़्क़ भी देगा।

बीवी—बड़े आए अल्लाहवाले बनके! (कुछ सोचकर) अरे हाँ, खूब याद आया। बस, बस, ठीक है। सब दलिद्दर दूर हो जायगा। पीर बन जाओ।

मियाँ—क्या बन जाऊँ? क्या कहा, टिड्डी? (ये अपनी बीवीको प्यारसे टिड्डी कहा करते थे।)

बीवी—पीर बन जाओ, पीर! क्यों, क्या कुछ [illegible] बात है?

मियाँ—ना, बाबा ना; यह मेरे बसका रोग नहीं!

बीवी—अरे बढ़िया पीर नहीं, फ़क़त मामूली; जैसे [illegible] साहब होते हैं। अच्छा, तुम बिलकुल न बोलना। जैसे मैं [illegible] वैसे किए जाना; नहीं तो मुझसे बुरा कोई न होगा।

मियाँ खामोश हो गए। कुछ तो बीवीसे डरते थे, [illegible] महसूस करते थे कि मैं बेवक़ूफ़ हूँ और वह अल्क़मन्द [illegible] और कुछ इन्हें बीवीसे ग़ैरमामूली मुहब्बत भी थी। बेवक़ूफ़ [illegible] इश्क़ भी बेवक़ूफ़ ही होता है। बहरहाल जो-कुछ भी [illegible] कहती गईं, ये करते गए। दाढ़ी तो थी ही, पट्टे अक्सर [illegible] लोग रखा ही करते थे। बस, इन्हीं पुराने कपड़ोंको [illegible] गेरवा रँग लिया। यह लीजिए, अच्छे-खासे 'फ़ाज़िलशाह [illegible] बन गए! दो उजले रंगके जुज़दान, हरेकमें एक-एक ईंट [illegible] बग़लमें दबाए, दाढ़ी और काकुलोंमें तेल लगाए, हाथमें [illegible] हुआ बोरिया लिए जामेमस्जिदकी सीढ़ियोंपर आन जँचे। [illegible] हुए एक लम्बी-सी तस्बीहके दाने खट-खट कर रहे थे। [illegible] इससे कुछ बहस नहीं थी कि क्या हो रहा है और क्या [illegible] हूँ। ये तो फ़क़त बीवीके हुक्मको तामील कर रहे थे। [illegible] ज्यूँ-ज्यूँ शाम क़रीब आती जाती थी, खुश होते थे कि [illegible] थोड़ी-सी देरमें घर जाकर अपनी टिड्डीसे बातें करेंगे। [illegible] करना यूँ हुआ कि एक घोसी अपनी भैंसें ला रहा था। [illegible] पुटा-सा हो जानेसे एक भैंस कहीं ग़ायब हो गई। इत्तिफ़ाक़ ऐसा हुआ कि भैंस किसी और रास्तेसे निकल गई थी और [illegible] दूसरी तरफ़से ढूँढ़ने गया था। वह भला काहेको मिलती [illegible] सवा सौकी भैंस थी, बधिया बैठ गई बच्चूकी। हाथोंके तोते [illegible] गए। वह बेचारा आफ़तका मारा, जामेमस्जिद रास्तेमें [illegible] वहाँसे जो गुज़रा, तो फ़ाज़िलशाह साहब मय अपनी काकुलों [illegible] दाढ़ी, गेरवा लिबास और तस्बीहके नज़र पड़े। डूबतेको तिनके [illegible] का सहारा। आते ही क़दम लिए और रोकर कहा—'या हज़रत, मेरी भैंस खो गई है, दुआ कीजिए।' पीर साहब अपनी टिड्डीके खयालमें थे, घोसीका आना उन्हें नागवार गुज़रा। घूरकर देखा और हाथके इशारेसे भाग जानेको कहा। लोगोंको मज़ाक़ हाथ आया। कहने लगे—'अबे जा, उधर जा। देखता नहीं पीर साहबने उधर इशारा किया है। उधर ही जा, तेरी भैंस मिल जायगी।'

घोसी उधर ही को हो लिया। उसी तरफ़ उसका घर था। घर गया, तो देखा कि भैंस खड़ी है! उसने जल्दीसे पाँच रुपए निकाले और उल्टे पाँव वापस आया। एक रुपए [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिठाई ली और पीर साहबके पास पहुँचकर बड़े अदबसे मिठाईकी टोकरी बोरियेपर रखी और पीरजीके पाँव चूमने लगा। पीरजीने फिर उँगलीसे इशारा किया। गोया हुक्म दिया कि चले जाओ। उसने चार रुपए बोरियेपर रखे और चला गया। पीरजीने रुपए जेबमें डाले, टोकरी हाथमें उठाई और बड़ी मुश्किलसे बोरिया और ईंटोंके जुज़दान लिए हुए घर पहुँचे और आवाज़ लगाई—'टिड्डी, अरी ओ टिड्डी, मैं मर गया। अरी आ तो सही।'

बीवीने जो मियाँकी ये आवाज़ें सुनीं, तो बदहवास होकर भागीं कि या इलाही खैर, कहीं मेरा अहमक मियाँ किसी गाड़ीके नीचे तो नहीं आ गया। आकर देखा, तो मियाँको लदा-फँदा पाया। मिठाईकी टोकरी देखकर जानमें जान आई। खुशी-खुशी टोकरी लिए घरमें आईं। पीरजी हाँफ़ रहे थे, बात मुँहसे न निकलती थी। बड़ी मुश्किलसे जेबसे रुपए निकालकर बोले—यह लो, अब मैं नहीं जानेका। कमबख्त कहता था कि भैंस खो गई! झूठा, बेईमान!

पर बीवीके कुछ भी समझमें न आया। आखिर उनके इसरारपर उन्होंने घोसीका क़िस्सा बयान किया। बीवी बड़ी होशियार थीं, समझ गईं कि अल्ला मियाँ अपने गधोंको खुश्का देते हैं। बोलीं—लो, देख लो, मैं कहती न थी कि मेरे मियाँ बड़े अच्छे हैं। ये चाहें तो मिट्टीमें से सोना पैदा कर लें। लो, इक ज़रा-सी देरमें चार रुपए नक़द और मिठाईकी टोकरी ले आए। कल जाओगे, तो इससे भी ज़्यादा लाओगे।

मियाँ झट बोल उठे—कल तो मैं हर्गिज़ नहीं जानेका।

बीवी—हमारे अच्छे मियाँ, ऐसा न कहो।

पीरजी—इधरकी दुनिया उधर हो जाय, तब भी मैं कभी नहीं जानेका।

बीवी—देखो तो सही, इक ज़रा-सी देरमें तुम चार रुपए ले आए। यह लो, चार बजे तो गए थे, सात बजे घर आ गए। कुछ देर भी लगी? कल ज़रूर जाना, नहीं तो लड़ाई हो जायगी, हाँ!

पीरजी—तुम तो नाहक लालच करती हो। महीने-भरका खर्च तो मिल गया और क्या चाहती हो?

उस ज़मानेमें दो रुपए महीनेमें घर चलता था। आखिर कुछ देर यूँही रद्दोकद्दके बाद मियाँ तीसरे दिन जानेपर राज़ी हो गए।

- २ -

तीसरे दिन फ़ाज़िलशाह साहब फिर उसी भेसमें जामे-मस्जिदकी सीढ़ियोंपर बैठ गए। मुक़द्दरकी बात कि इधर तो ये पहुँचे, उधर एक सुनार भागता हुआ आया और कहने लगा—या हज़रत, मेरा हीरा खो गया। अँगूठी बना रहा था, नग निकलकर कहीं रखा कि गायब हो गया। बहुतेरा ढूँढ़ा-खोजा, लेकिन पता नहीं चला। आपकी दुआसे घोसीकी भैंस परसों मिल गई थी, आप दुआ कीजिए कि मेरा हीरा भी मिल जाय।' पीरजी आकर बैठे ही थे, साँस फूल रही थी। अब जो देखा कि सुनार तो हाथ धोकर पीछे ही पड़ गया, तो गुस्सेमें फरमाने लगे—'माशका आटा, माशका आटा खा; सेर-भर खा; नामाक़ूल।' सुनार भिन्नाया कि यह क्या मुसीबत आई! लोगोंको अच्छा खासा मज़मा हाथ आया। कहने लगे—'अबे, शाह साहब जो-कुछ कहते हैं, वही कर; तेरा हीरा मिल जायगा। ज़रा करके तो देख।' सुनार दोपहरको पेट-भर खाना खा चुका था। चला तो गया, मगर सोचता था कि सेर-भर माश (उरद) का आटा कैसे खाऊँगा! मगर शाह साहबका हुक्म और हीरेकी तश्वीश जो थी। बेचारेने कुछ दाल पकवाई और बाक़ीके आटेकी रोटी। जिस तरह भी हो सका, ज़बरदस्ती पेटमें उतारी। हीरेका फ़िक्र तो लगा हुआ था, सीधे दुकान पहुँचा। भला खयाल तो फरमाइए, सेर-भर माश पेटमें जाय और बदहज़मी न हो! बेचारेको दस्त आने लगे। एक-दो, तीन-चार, ताँता बँध गया। पतला हाल हो गया। दुकानमें बेसुध पड़ा था। छतपर जो निगाह गई, तो देखा कि हीरा चमक रहा है। उछल पड़ा! सारी बीमारी और कोफ़्त जाती रही! लपककर हीरा उतारा। हुआ यह था कि जब वह अँगूठी में से मोचनेसे हीरा निकाल रहा था, तो वह चिटखकर छतकी कड़ीमें जा अटका। जल्दीसे दुकानमें ताला डालकर वह भागा और 'वाह फ़ाज़िलशाह, वाह फ़ाज़िलशाह! धन हो, धन हो!' कहता हुआ जामेमस्जिद पहुँचा। एक थान मलमलका, एक लट्ठेका, एक टोकरेमें मिठाई और दस रुपए नक़द जाकर फ़ाज़िलशाहको दिए और उनके पाँव-हाथ चूमे। पीरजी बहुत घबराए! उस दिन तो एक टोकरी ही थी, आज ये दो थान कपड़ेके और लदे! उधर बोरिया और ईंटें वबाले-जान बनी हुई थीं। गर्ज़ बमुश्किल तमाम घर पहुँचे और बीवीको आवाज़ दी—'अरे, जल्दी कर टिड्डी, मैं तो मर गया!'

बीवीको तो चाट पड़ी हुई थी, आवाज़ सुनकर भागीं। जाकर मियाँसे सारी चीज़ें लीं। मियाँका दम चढ़ा हुआ, साँस फूली हुई, मुँहसे बात नहीं निकलती थी। गुस्सेमें सुर्ख हो रहे थे। बीवी खुशामद कर रही थीं। हाथ-पाँव दबातीं और प्यार-मुहब्बतकी बातें करती जाती थीं। आखिर जब ज़रा क़रार आया और मियाँ मुस्कराए, तो बोलीं—बस, आज यही है! खैर, अल्लाहका शुक्र है, कपड़े तो साल-भरके बन जायँगे और वह मिठाई तो परसों ही की अब तक रखी है! अच्छा देखना, आज कुछ रुपए नहीं मिले?

मियाँने कहा—बस, तुम्हें तो रुपए चाहिएँ! लो, ये लो।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और जेबसे रुपए निकालकर फेंक दिए। बीवी निहाल हो गईं। कहने लगीं, या अल्लाह तेरे सदक़े, तेरे क़ुरबान! चार महीनेका खर्च दे दिया!

मियाँ (जल्दीसे)—अच्छा, तो बस अब चार महीने तक न बोलना। अब मैं चार महीने तक कहीं नहीं जाऊँगा।

बीवी—हाँ, हाँ, न जाना, न जाना। बस, अब तो खुश हो?

ग़र्ज़ मियाँ-बीवी हँसी-खुशी रहने-सहने लगे। बीवी दूसरे-तीसरे दिन कुछ ज़िक्र निकाल दिया करती थीं और अगर मियाँ गुस्सा हो जाते, तो हँसकर टाल जातीं। इस वाक़यके दस-बारह दिन बाद एक दिन कहने लगीं—वो देखना, तुमने भी सुना है या नहीं?

मियाँ—क्या?

बीवी—यही कि बैठे-बैठे तो कुएँ भी खाली हो जाते हैं।

मियाँ—हो जायँ, मैं क्या करूँ?

बीवी—तुम समझे नहीं? मैं कहती हूँ, यों कैसे काम चलेगा?

मियाँ—मतलब क्या है तुम्हारा?

बीवी—तुम तो खफ़ा होने लगे। मैं तो कह रही थी, दो महीने नहीं, तीन महीने, आखिर कब तक ये रुपए चलेंगे? जब खत्म हो गए, तो फिर क्या करेंगे?

मियाँ—अल्लाह और देगा।

बीवी—यही तो मैं भी कहती हूँ; मगर कुछ करोगे, तभी तो देगा। कोई छप्पर फाड़कर थोड़े ही देगा।

मियाँ—देखो टिड्डी, तुमने फिर वही बातें शुरू कर दीं। मैंने तुमसे एक दफ़ा कहा, दो दफ़ा कहा, बीस दफ़ा कहा कि अब मैं नहीं जाऊँगा, हर्गिज़ नहीं जाऊँगा। लोग मेरा मज़ाक़ उड़ाते हैं। क्या मैं ही उल्लू बननेके लिए रह गया हूँ?

बीवी—मज़ाक़ उड़ाते हैं, तो उड़ाने दो; हमें इससे क्या? हमें तो मतलब रुपयोंसे है, वह अल्लाह दे ही देता है। खैर, आज न सही, मगर कल ज़रूर जाना होगा।

मियाँ—हर्गिज़ नहीं।

बीवी—नहीं, हमारे अच्छे मियाँ, ज़रूर जाना।

मियाँ—देखो बी टिड्डी, तुम तो बहुत हैरान करती हो।

इसपर बीवीने कुछ ऐसी नज़रोंसे मियाँको देखा कि मियाँ पिघल गए। ग़र्ज़ दूसरे दिन फिर गए। इतने अर्सेमें पीर फ़ाज़िलशाह सारे दिल्लीमें मशहूर हो गए थे। ज़्यादातर लोग मज़ाकिया उनका ज़िक्र करते थे; मगर हक़ीक़तके गलेपर छुरी कैसे फिर सकती थी? घोसीकी भैंस और सुनारके हीरेका वाक़या दोनों सच्ची और आँखों-देखी बातें थीं! अब फ़ाज़िल-शाहका ज़िक्र दिल्लीमें घर-घर था।

- ३ -

इधर तो पीरजी जाकर जामेमस्जिदकी सीढ़ियोंपर उधर लाल क़िलेकी तरफ़से आठ-दस सवार आए और पीरजी देखकर कुछ देर तो खड़े रहे, फिर उतरकर एकने कहा 'चलिए, आपको बादशाह सलामत याद फ़रमाते हैं।' पीरजीने सुनी-अनसुनी कर दी। इसपर एक सवारने आगे बढ़ उनका शाना हिलाते हुए कहा—'शाह साहब चलिए, बादशाह सलामत बुलाते हैं।' अब तो पीरजी बड़े घबराए। हड़बड़ाकर उठे और जुज़दान बग़लमें दबा, बोरिया हाथमें लटका, अपने घरकी तरफ़। सवारोंने रास्ता रोककर कहा—'चलिए पीरजी साहब, उधर कहाँ जाते हैं?' अब पीरजी हैं मिन्नत-खुशामद कर रहे हैं, अपनी बीवीका वास्ता देते हैं, हैं। मगर तौबाह कीजिए, सवार और फिर शाही सवार, बादशाह भी कैसा, खुदमुख्तार! लेकिन पीरजी भी मस्त गए—'हम नहीं जाते। यह भी कोई ज़बरदस्ती है! साहब, खामखा खींचे लिए जाते हैं। हमने किसीका बिगाड़ा है? हम तो पहले ही टिड्डीसे कह रहे थे कि तू दिन हमारी जान लेकर रहेगी! हाय टिड्डी, देख तो वही न आखिरको!' सवार भला किसकी सुनते थे, खींच-पीरजीको ले चले। बच्चे तालियाँ बजा रहे थे, जवान कस रहे थे—'बड़ा बना फिरता था पीर! अब मियाँको दूध याद आ जायगा।'

पीरजी साहब बादशाहके हुज़ूरमें पेश किए गए। ताज़ीमो-तकरीमके साथ बिठाया और कहा कि शाह साहब को इसलिए तकलीफ़ दी है कि हमारी मलिकाका हार गुम हो गया है। आप अपने इल्मकी बरकतसे दीजिए। पीरजी इस वक्त कुछ ऐसे बेऔसान हो रहे थे अपनी टिड्डीके खयालमें ऐसे गुम थे कि अनाप-शनाप, जलूल न मालूम क्या-क्या बकते रहे। बादशाहके अगर और कोई ऐसी गुस्ताखी करता, तो उसका सर कर दिया जाता। मगर बादशाहके दिलमें फ़क़ीरोंकी गैरमामूली अक़ीदत और श्रद्धा थी। वे समझते थे, और दुनियाके लोग हैं, ये क्या जानें कि बादशाह और फ़र्क़ होता है? चुनाँचि उन्होंने अपने महलके पास ही रहनेके लिए एक बड़ा-सा मकान दे दिया। रोज़ बुलाते और पूछते कि हारका पता चला? पीरजीकी टिड्डीकी यादमें हालत गैर थी, दुनिया आँखोंमें रस्सियाँ तुड़ाते थे, मगर बादशाह जाने न देते थे। चार दिन गुज़र गए। एक दिन बादशाहको भी गुस्सा आ कहने लगे कि सुनो पीरजी साहब, तुम्हें आजकी मुहलत दी जाती है, कल सुबह अगर नौ बजे तक हार न मिला, तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जायगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब तो पीरजीके हाथोंके तोते उड़ गए। रोते-धोते अपने मकानमें आए। टिड्डीको कोसने लगे। इतनेमें रातके बारह बज गए। ये समझ रहे थे कि बस, अब सुबह नौ बजे मारा जाऊँगा। टिड्डीने लालचमें मेरी जान गँवाई और खुद बेवा हुई। अब क्या होगा? वह बेचारी मेरे बग़ैर कैसे जिएगी? वह भी मर जायगी! फिर कहने लगे कि कल तो मरना ही है, आज तो सो लो। मगर नींद कहाँ? फिर कहने लगे कि नींद तो सूली पर भी आ जाती है, मुझे क्यों नहीं आती? फिर छतपर इधर-से उधर फिरने लगे और कहते जाते थे—'आ जा री निंदिया, कलको मारी जायगी जिंदिया।'

अब उधरकी सुनिए! मलिकाका नौलखा हार दरअसल उनकी एक लौंडीने चुराया था, जिसका नाम था जिंदिया। नौलखे हार-जैसी क़ीमती चीज़ चुरानेको तो उसने चुरा ली; मगर दिल उसका बल्लियों उछल रहा था और खासकर जबसे शाह साहबको बादशाहने मुक़र्रर किया था, बेचारी बहुत ही डर रही थी। यह वह भी सुन चुकी थी कि शाह साहब के तावे मुवक्किल हैं, उनसे कोई बात पोशीदा नहीं। चुनाँचि वह मौक़ेकी ताकमें थी कि किसी तरह शाह साहबके मकानपर पहुँचकर मालूम करे कि वे क्या अमल करते हैं। आज मौक़ा पाकर वह छतों-ही-छतों पहुँची और अब जो सुना कि शाह साहब कह रहे हैं—'कलको मारी जायगी जिंदिया', तो बेऔसान हाथ जोड़कर शाह साहबसे कहने लगी—'हुज़ूर, वह हार मैंने ही चुराया था, अभी ले आती हूँ; मगर हुज़ूर वादा करें कि मेरा नाम न लेंगे।' पीरजी बहुत खुश हुए, टिड्डीसे मिलनेकी आस बँधी, कहने लगे—'हमें पहले ही मालूम हो गया था और हम तो उसी वक्त बादशाहसे कह देते, मगर तू जानसे जाती! हम तेरा इन्तज़ार ही कर रहे थे। ला, जल्दीसे हार ला।' चुनाँचि लौंडी हार ले आई।

अब तो पीरजी खूब पाँव पसारकर सोए। सुबह अभी उठे भी न थे कि बादशाहका आदमी आया और उन्हें साथ ले गया। बादशाहने कहा कि नौ बजनेवाले हैं, बताइए, हारका पता चला या नहीं? नहीं चला, तो मौतके लिए तैयार हो जाइए। यह सुनते ही पीरजीको जोश आ गया। ग़ुस्सेमें बोले—'तू बादशाह बनकर मग़रूर हो गया है, अल्लाहवालोंको आज़माता है। हम उसी दिन बता देते कि हार कहाँ है; मगर हमें हुक्म नहीं था, इसलिए खामोश थे। यह ले अपना हार और हम जाते हैं।' यह कहकर पीरजीने हार बादशाहके सामने फेंक दिया। बादशाह मरऊब हो गया, शाह साहबके क़दम आँखोंसे लगाए और मुआफ़ी चाही। मगर शाह साहब अपनी टिड्डीके लिए बेचैन थे। जाना चाहते थे और बादशाह उन्हें नेमते-बेमुतक्किबा समझकर अपने ही पास रखना चाहते थे। हुक्मे-हाकिम मर्गे-मफ़ाजात, चारो-नाचार वहीं रहने लगे। मगर टिड्डीकी यादमें हर वक्त आँसू बहाते रहते और बादशाह यह समझते कि ये अल्लाहवाले लोग हैं, अल्लाहके डरसे हर वक्त रोते रहते हैं।

दो-चार दिन और गुज़र गए। एक दिन पीरजीने सोचा कि टिड्डीके बग़ैर ज़िन्दगी बवाले-जान है। खुदकुशी कर नहीं सकते, क्यों न बादशाहको ही ठण्डा कर दें। बादमें तुम्हें भी मौतके घाट उतार दिया जायगा। यह सोचकर अपना असा उठा भरे दरबारमें पहुँचे और सीधे बादशाहके पास पहुँचकर एक भरपूर हाथ उनके सरपर जमाया। यह सब-कुछ आनन-फ़ाननमें हो गया। लोग दौड़ते ही रहे, मगर वे तो हाथ रसीद कर चुके थे। डण्डा ताजपर पड़ा, मगर बादशाहके चोट नहीं आई। ताज परे जा पड़ा। बादशाहको भी गुस्सा आ गया। हुक्म दिया, पकड़ लो इसे। मगर अब जो देखा, तो ताजमें से एक काला साँप निकलकर फन फैलाए फुंकारें मार रहा था! साँप तो लोगोंने मार दिया; लेकिन बादशाहने भरे दरबारमें पीरजीके पाँव चूमे और शुक्रिया अदा किया कि मेरी जान आज आपने बचाई, नहीं तो यह साँप डँस लेता। पीरजी फिर महलमें आ गए। कहते थे, अजीब मुसीबतमें जान है, मरना चाहता हूँ, पर मर नहीं सकता! क्या करूँ, क्या न करूँ?

दो-चार दिन और गुज़र गए। एक दिन पीरजीने कहा कि अबकी तो बादशाहको मार ही डालूँगा, छोड़ने ही का नहीं। यह सोचकर भरे दरबारमें पहुँचे और जाते ही बादशाहकी टाँग घसीटते हुए कमरेके बाहर ले आए। लोग दौड़े कि बादशाहको छुड़ाएँ, मगर बादशाहने मना कर दिया। उनकी खुश-ऐतक़ादी कुछ इस हद तक बढ़ गई थी। इधर तो यह बादशाहको बाहर लाए और उधर छत आन पड़ी। बहुतसे लोग दबकर मर गए। बादशाहने फिर पीरजीका शुक्रिया अदा किया और हाथ-पाँव चूमे। अब तो पीरजी बहुत परीशान हुए। सोचा, जाता हूँ बादशाहको मारने कि वह खफ़ा होकर मुझे क़त्ल करवा दे, मगर वह उल्टा शुक्रगुज़ार हो जाता है।

अब तो बादशाहके वज़ीर और दूसरे मुसाहिब पीरजीसे बहुत जलने लगे। उनको मालूम हो चुका था कि इनके जुज़-दानमें दो ईंटें हैं, कोई किताब नहीं है। यह बात उन्होंने बादशाहसे कही भी, पीरजीकी शिकायत भी की; मगर बादशाहकी खुश-ऐतक़ादीमें ज़रा फ़र्क़ न आया। वह यही समझता रहा कि इन लोगोंसे पीरजीका उरूज़ देखा नहीं जाता। आखिर एक दिन रोज़-रोज़की शिकायतें सुनते-सुनते परीशान होकर बादशाहने वज़ीरसे कहा कि इस क़िस्सेको खत्म करना चाहिए। तुम और मेरे मुसाहिब जिस तरह चाहें, पीरजीका इम्तहान लें और अगर वे उस इम्तहानमें साबित-क़दम और कामयाब साबित हों, तो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम और मेरे तमाम मुसाहिब उनके मुरीद हो जायँ और उन्हें असली और सच्चा पीर मानें—चाहे उनके जुज़दानमें ईंटें हों या पत्थर ; और अगर वे नाकाम रहें, तो उन्हें जानसे मार दिया जाय, ताकि यह रोज़-रोज़की किल-किल खत्म हो। वज़ीर और मुसाहिबोंने इस बातको मंज़ूर किया और कुछ मुद्दत तलब करके रुखसत हुए।

दो-तीन दिन बाद सारे मुसाहिब वज़ीर-समेत बादशाहकी खिद्मतमें हाज़िर होकर बोले कि हुज़ूर शिकारकी ग़र्ज़से जंगलमें तशरीफ़ ले जायँ और पीरजीको भी साथ लें लें। चुनाँचि शिकार को सब लोग रवाना हुए। घने जंगलमें पहुँचकर पीरजीको तो अलग छोड़ा और बादशाह समेत सब लोग कहीं दूर चले गए। वहाँसे वापस पीरजीके पास आए। बादशाहने पीरजीसे कहा—सुनो पीरजी, ये लोग रोज़मर्रा तुम्हारी शिकायतें करते रहते हैं। मैंने इस क़िस्सेको यूँ मुख्तसर किया है कि ये वज़ीर साहब तुम्हारा इम्तहान लिया चाहते हैं। अगर तुम आजके इम्तहानमें कामयाब हुए, तो ये वज़ीर और तमाम मुसाहिब मेरी तरह ही तुम्हारे मुरीद हो जायँगे, वर्ना यहीं इसी वक़्त तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जायगी ! लो अब बताओ कि वज़ीरकी मुट्ठीमें क्या है !

पीर साहब हवास-बाख्ता हो गए। मौत आँखोंमें फिर लगी। समझे कि अब वक़्त आन लगा। अपनी बीवीकी मेरे रगीका खयाल आया। बड़ी हसरतसे आँखोंमें आँसू भरकर बादशाहसे कहने लगे—'टिड्डी !' उनके मुँहसे टिड्डीका लफ़्ज़ निकलते ही बादशाहने वज़ीरसे मुट्ठी खोलनेको कहा। देखा तो वज़ीरकी मुट्ठीमें सचमुच एक टिड्डी थी ! बात यह हुई कि वज़ीरने उधर जंगलमें जाकर बादशाह और मुसाहिबोंके सामने एक टिड्डी पकड़कर मुट्ठीमें रखी थी, इस खयालसे कि पीरजी कभी नहीं बता सकेंगे कि मुट्ठीमें क्या है। अब जो उन्होंने टिड्डी कहा, तो बादशाहने वज़ीर और मुसाहिबोंको क़ायल कर दिया। सब पीरजीके मुरीद हो गए। तब पीरजीने बादशाहसे दरख्वास्त की कि अब तो आप मेरा इम्तहान ले चुके, मुझे घर जानेकी रुख़्सत दीजिए, ताकि आप सबके लिए दुआए-खैर करता रहूँ। बादशाहने मंज़ूर फरमाकर पीरजीको बहुत जागीर अता फ़रमाई और पीरजी अपनी टिड्डीके साथ हँसी-खुशी रहने-सहने लगे।

(अनु०—श्री नरेन्द्र तुर्की)

संथालोंका स्वातंत्र्य-आन्दोलन

श्री रामचरित्र सिंह

सभ्यताके शैशव-युगीन मानव-जीवनके अवशिष्ट चिह्न-स्वरूप शताब्दियोंसे निर्यातन और कालान्तरसे परिवर्त्तनकी चोटें सहती हुईं आज भी कुछ जातियाँ भारतके वन-प्रान्तों एवं पर्वताच्छन्न भू-भागोंमें अपने अस्तित्वको बचाए अपने विरोधियों को मूक चुनौती दे रही हैं। उन जातियोंमें संथाल भी एक है। सम्प्रति संथाल-जाति बंगालके वीरभूम और बिहारके पलामू, हज़ारीबाग, राँची, संथाल-परगना आदि ज़िलोंमें निवास कर रही है। कुछ अगल-बगलके अन्यान्य ज़िलोंमें भी हैं ; किन्तु वहाँ उनकी संख्या अत्यधिक न्यून है। संथाल-परगना ज़िलेका नाम तो इसी जातिके नामपर पड़ा है।

संथाल लोग स्वभावतया परिश्रमी और कष्ट-सहिष्णु हैं। शारीरिक श्रमके फल-स्वरूप उन्हें जो अन्न मिल जाय, उसीपर सन्तोषकर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना वे खूब जानते हैं। जंगलोंको काटकर ज़मीन आबाद करनेमें वे बड़े दक्ष हैं। जिस समय ये हज़ारीबागकी ओरसे वर्त्तमान संथाल-परगना इलाक़ेमें आकर बसे और खेती करने लगे थे, उस समय यहाँ अंगरेज़ोंका आधिपत्य जम चुका था। उन लोगोंके बीच बंगाली एवं भोजपुरी महाजन भी जाकर बस गए और अल्प कालमें ही बड़े भाग्यशाली बन गए। उन्होंने बेचारे संथालोंको खूब ठगा और चूसा। तौलनेके बटखरोंमें हेर-फेरकर एकका तीन किया। तब लोगोंने संथालोंको थोड़ा-बहुत कर्ज़ देकर उनकी जीविकाका एक मात्र आधार भूमिपर भी पंजा फैलाना शुरू कर दिया। जहाँ तहाँ महाजनोंसे तंग आकर बेचारे संथाल अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए स्थान छोड़कर अन्यत्र जाने लगे, तो महाजनोंने उनका अवशिष्ट सामान भी कुर्क करवा लिया। महाजनोंकी चालबाज़ीके कारण उन्हें कर्ज़के एक रुपएके कई-कई रुपए चुकाने पड़े। संथाल लोग स्वतन्त्रताके पक्के एवं जंगली पुजारी हैं। कर चुकाना किस चिड़ियाका नाम है, वे जानते ही नहीं। अपना ही खून और पसीना एक करनेके फल-स्वरूप खेतीके योग्य तैयार की हुई ज़मीनके लिए मालगुज़ारी देना उन्हें स्वीकार न था। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारी उन्हें जंगली और असभ्य समझकर सताया करते थे। इन सब अत्याचारोंसे वे जर्जरित हो गए थे। जब अत्याचारों एवं दुर्व्यवहारोंकी पराकाष्ठा हो गई, तो उन लोगोंके भीतर विद्रोहकी आग सुलगने लगी।

वर्षोंके षड्यन्त्रों, चालबाजियों, अत्याचारों, विरोध तथा दबावके पश्चात् भी संथाल-जातिने अपनी आदिम-युगीन सभ्यता, अपने पूर्वजोंके आचार-विचार तथा उनके सीधापन लिए शौर्यको बचाए रखा है। मनुष्य द्वारा मनुष्यपर बर्बर-से-बर्बर जो भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अत्याचार किए जा सकते हैं, उन्हें सहनेके पश्चात् भी ऐसे विरोधियोंका सामना करते हुए अपने अस्तित्वको इस वीर जातिने बनाए रखा है। इस ओर भारतीय इतिहासकारोंने अब तक ध्यान नहीं दिया है। सन् १८५७के ग़दरके तीन वर्ष पूर्व ही अपने पूर्वजोंके धर्म और प्रकृति-प्रदत्त अपनी स्वाधीनताकी रक्षा तथा दिकुओं (हिन्दुओं)के अन्यायपूर्ण व्यवहारोंका उन्मूलन करनेके लिए सब प्रकारके प्रलोभनोंको ठुकराकर उन्होंने जो लोहा लिया, उसको यादकर आज भी रोमांच हुए बिना नहीं रहता। उनके विद्रोही नेता थे सिधु, कानू, चाँदू और भैरव। नायकोंने घोषित कर दिया कि ठाकुर (संथालोंका ईश्वर) ने आदेश दिया है कि अत्याचारियोंसे उनके अत्याचारोंका बदला लो और संथाल-राज्यकी स्थापना करो। ३० जून, १८५५ ई० को इस जातिके अन्तरमें कुछ पहलेसे ही सुलगानेवाली विद्रोहाग्नि भड़क उठी। एक ही बार दस हज़ार संथाली विजय-पताका लिए चल पड़े। कोई-कोई उनकी संख्या तीस हज़ार भी बतलाते हैं। कई अंगरेज़ अफ़सर और कितने ही महाजन तथा साधारण व्यक्ति उनकी क्रोधाग्निका हव्य बन गए। अन्तमें तंग आकर ब्रिटिश सत्ताने उनका दमन करनेके लिए सेना भेजी ; पर उनकी बहादुरीके कारण गोरे सैनिकोंके भी दाँत खट्टे हो गए। अन्तमें विवश होकर अंगरेज़ोंने फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया। जब तक संथालोंका जातीय वाद्य बजाता था, तब तक वे धनुष-बाण लेकर लड़ा करते थे और साहसके साथ आत्म-बलिदान करते थे। इस स्वातन्त्र्य-युद्धको लोग 'संथाली-हुल'के नामसे पुकारते हैं।

जिस प्रकार १८५७ के विद्रोहके पश्चात् भारतीय जाग्रतिके विकासोन्मुख होनेके कारण यत्र-तत्र नए-नए संगठनों और सुधारवादी आन्दोलनोंका सूत्रपात होने लगा था, उसी प्रकार संथाली विद्रोहके पश्चात् उन लोगोंके बीच भी एक सुधारवादी आन्दोलनका सूत्रपात हुआ। सम्प्रति संथालोंके बीच एक सुधारवादी समुदाय है, जो प्रारम्भसे ही संथाल-समाजके दुर्गुणोंको दूर करनेको सतत प्रयत्नशील रहा है। उस सम्प्रदायको 'सत्यं शिवं' कहते हैं। कोई-कोई उसे 'राम साधु-दल' भी कहते हैं। जो लोग इस समुदायमें सम्मिलित होते हैं, वे 'सफाहड़' कहलाते हैं। 'सफाहड़'का अर्थ साफ़-सुथरा अर्थात् पवित्र संथाल है। उन लोगोंको खरवार भी कहते हैं। खरवार-आन्दोलनका सूत्रपात सन् १८७१ ई० में हुआ। इसका जन्मदाता भागूत नामक एक संथाल साधु था, जिसका घर तलडीहा नामक स्थानमें था। उसे लोग बाबाजीके नामसे सम्बोधित करते थे। भागूत संथालोंका बहुत बड़ा वैद्य भी था। धार्मिक शिक्षा और सुधारात्मक उपदेशोंके साथ-साथ वह औषधोपचारका भी कार्य करता था। दवाकी अपेक्षा वह मन्त्र एवं झाड़-फूँक ही अधिक करता था। जब कोई बीमार पड़ता था, अथवा किसीको किसी भी प्रकारका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट होता था, तो वह भागूतके यहाँ सूर्यके प्रकाशमें सुखाया हुआ अरवा चावल, एक लोटा दूध, एक सुपारी तथा एक पैसा दे आता था। इसका अर्थ यह समझा जाता था कि देनेवाला भागूतसे प्रार्थना करता है कि आप मेरे कष्टोंको दूर करनेकी कृपा करें। भागूत कहता कि तुमने जो मुझसे निवेदन किया, उसे मैं 'चाँदो बोंगा' के सम्मुख पेश करूँगा। बहुधा सब-के-सब अपने विश्वासके बलपर उक्त कष्टसे मुक्ति पा जाते थे। भागूत कहता था कि सभी कोई मेरे आज्ञानुसार ही आचरण करो, नहीं तो भगवानका आशीष प्राप्त न कर सकोगे। सबको शुद्ध हृदयके साथ मेरे पास आना चाहिए।

पादरी लोग भागूतको अपने मार्गमें बाधक समझते थे। अतः उन्होंने उसके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। एक पादरीने लिखा—'कुछ दिनोंमें ही भागूत धनी हो गया और उसकी आमदनी बहुत बढ़ गई। १८७४ ई० में इस इलाकेमें एक अकाल पड़ा। इसी साल रंगुनिया चावल आया। भागूतने सबसे कहा कि तुम लोगोंने जो चावल मेरे पास भेजा था, भगवानने तुम लोगोंको विपत्तिग्रस्त देखकर वह वापस भेज दिया है, ताकि तुम लोग उसे खाकर जीवन-रक्षा कर सको।' पर संथालोंपर इसका कोई असर नहीं हुआ। वे तो भागूतके उपदेशोंको ही मानते थे, जो इस प्रकार थे : 'संथालोंको साफ़-सुथरा रहना चाहिए। चिड़ियों और सूअरके बच्चोंकी बलि नहीं देनी चाहिए। नित्य स्नान करके भोजन करना चाहिए।' इन उपदेशोंपर हिन्दुत्वकी स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। यह आन्दोलन संथालोंके भीतर फैलती हुई जाग्रति एवं उनके विकास का द्योतक है। इस आन्दोलनके सिलसिलेमें लोगोंने समाजके विभिन्न पहलुओंपर भी ध्यान दिया। इन लोगोंका कथन था कि १८५५ ई० वाले विद्रोहकी असफलताका कारण हम लोगोंका धर्मके पथसे विचलित हो जाना ही था। भगवानकी सहायता भी हमें इसी कारण न मिल सकी।

चिड़ियों एवं सूअरोंका मारना कोई-कोई बुरा ज़रूर मानते थे ; पर उनके मांस-भक्षणको बहुतसे लोग अधिक दिनों तक न छोड़ सके। संथाल भी देवताओंके नामपर पशुओं एवं पक्षियोंको मारकर खाने लगे। भागूतके सच्चे अनुयायियोंने ऐसा करना नैतिकताकी दृष्टिसे समुचित न समझा और पहलेकी तरह ही अपना कार्य जारी रखा। इन लोगोंने अपना नाम 'खरवार' रख लिया। अकालके अवसरपर सरकारकी ओरसे मिले हुए चावल का जब पीछेसे दाम वसूल होने लगा, तो भागूतके विरोधियोंने उसके खिलाफ़ तरह-तरहकी झूठी बातोंका प्रचार किया और उसे बदनाम करनेको भरपूर कोशिश की। भागूत संथालोंमें ईसाइयत प्रचारका घोर विरोधी था। वह संथालोंका राष्ट्रीय अथवा युग-प्रवर्त्तक नेता था। इस कारण सरकारकी आँखोंका भी काँटा बन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया। उसपर लोगोंको बहकानेका अभियोग लगाकर सरकारने उसे गिरफ़्तार कर लिया। गिरफ़्तारीका वास्तविक कारण तो था ज़बरदस्त जन-आन्दोलनकी आशंका, जिसकी भूमिका भागृत ही तैयार कर रहा था। किन्तु उसके पकड़े जानेपर भी उसके अनेक शिष्योंने उसके चलाए हुए कार्यको उसीके आदेशानुसार जारी रखा। वे सब-के-सब 'गुरु' कहे जाते थे। जो ईसाइयोंके प्रभाव में आ चुके थे, वे सब उनपर विश्वास नहीं करते थे। 'गुरु' लोग प्रति रविवारको घूम-घूमकर सभा करते थे और उसमें अपने मतका प्रचार करते थे। वे पशुओंपर दया करनेको कहते थे और 'राम चाँदो दोहाई'के नारे लगाते थे। प्रारम्भमें उनकी संख्या अत्यधिक न्यून थी; पर पीछे ताक़त बढ़नेपर उस आन्दोलनके साथ-साथ कर-बन्दीको भी कार्यक्रममें शामिल कर लिया गया। (सरकारी रिपोर्टमें इस आन्दोलनको 'उत्पात' कहा गया है!) गोडुके आसपास इस आन्दोलनका सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे पूर्वी तथा दक्षिणी हिस्सोंमें इसका प्रचार होता गया। १८८० ई० में अधिकांश नेताओंकी गिरफ़्तारीके पश्चात् जब यह आन्दोलन कमज़ोर पड़ने लगा और कोई पथ-प्रदर्शक नहीं रहा, तो वैद्यनाथधामके पासके किसी गाँवसे दुबिया जसाई आगे आया और आन्दोलनका नेतृत्व करने लगा। पादरी एवं अंगरेज़ोंने प्रचार करना शुरू किया कि जसाई तो हिन्दू है। जसाईने चिड़ियों और सूअरोंको मारकर खानेकी आज्ञा दे दी थी, इससे यद्यपि सरकारका षड्यन्त्र न चल सका; पर अन्तमें आन्दोलन दबा ही दिया गया।

प्रत्यक्षतः आन्दोलन तो दब गया; किन्तु विद्रोह एवं समाज-सुधारकी भावना भीतर-ही-भीतर संथालोंके दिलोंमें पोषण पाती रही। १८९१ ई० में पुनः इसका विस्फोट हुआ। खरवार लोग प्रचार करने लगे कि अंगरेज़ी राज्यका अन्त काल अब समीप पहुँच गया है, उनके बदलेमें अब खरवार ही शासन करेंगे। उनके शासनमें किसीको कर नहीं देना पड़ेगा। यहाँकी मिट्टी काली है, अतः काले लोगोंका ही इसपर शासन रहना चाहिए। जिस देशकी मिट्टी गोरी है, गोरे लोगोंको वहाँ वापस चला जाना चाहिए। खरवारोंमें हिन्दुओंके बहुतसे आचार-विचार प्रवेश पा गए। बाबाजी तथा उनके सभी अनुयायी शाकाहारी थे; पर वे सबको इसके लिए बाध्य नहीं करते थे। हाँ, प्रचार सदैव इसीका करते थे। बाबाजी स्त्रियोंकी छुई हुई वस्तु नहीं खाते थे। खरवार लोग आज भी बहुधा स्वयंपाकी ही होते हैं। १९०७ ई० में भी कुछ बाबाजी लोग निकल आए, जो घूम-घूमकर प्रचार-कार्य करने लगे। वे किसीको स्त्री और किसीको बच्चा प्राप्त होनेका आशीर्वाद देते थे। असल बात यह थी कि सरकारकी कड़ी दृष्टिसे बचकर समाजमें कार्य करनेका उन लोगोंने यह एक बहाना बना रखा था। इन कार्योंकी आड़में इन लोगोंने अपना कार्य जारी रखा। कुछ लोगोंका कथन है कि राजनीतिसे इस आन्दोलनका कोई नाता न था; पर मूलतः तो यह राजनीतिक आन्दोलन ही था। भागृतके अर्थ-संग्रहकी बातको लेकर भी कुछ विरोधी उसे बदनाम करते हैं; लेकिन वह तो जननायक था। जन-आन्दोलनमें व्यय करनेके लिए उसे भी औरोंकी तरह अर्थकी आवश्यकता थी। उसने पैसा जमा भी किया, पर अपने लिए नहीं।

इस दलके गुरु लोग जटा रखते और महादेवकी पूजा करते हैं। प्रसिद्ध गुरु चरणमूर्मू एम० एल० ए०, जो भागृत बाबाके खास शिष्य हैं, का कथन है कि इस आन्दोलनका उद्भव इस प्रकार हुआ है: जंगलमें शिवजीका एक पुराना मन्दिर था। बाबा भागृत वहींपर रहते थे और शिवजीकी उपासना किया करते थे। एक दिन उन्हें शिवजीका आदेश मिला कि तुम अपनी जातिको पतनके गहरे गर्त्तसे निकालकर उन्नत मार्गपर ले चलो। इसीके अनुसार भागृत बाबाने कार्यारम्भ किया। आन्दोलनके प्रारम्भमें आवश्यक जाग्रति फैलानेके लिए ही इसका श्रीगणेश हुआ था। प्रत्येक देश और जातिके स्वाधीनता-आन्दोलनके इतिहासमें धार्मिक एवं सामाजिक सुधारोंका ही प्रारम्भिक अध्याय रहता है। वे लोग भी इसी भित्तिपर अपने समाजको ठीक करके अपनी प्रकृति-प्रदत्त स्वाधीनताको पुनः प्राप्त करना चाहते थे, जिसको वे लोग कुछ काल पूर्व ही खो चुके थे। पहले उन्हें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त थी। अंगरेज़ोंके आगमन एवं आधिपत्यके पश्चात् उनसे कर माँगा जाने लगा और इसके लिए उन्हें नाना प्रकारसे तंग किया जाने लगा। यही सब बातें उन्हें इस तरह खलती रहती थीं। उन लोगोंने स्वतन्त्र होनेका दृढ़ निश्चय किया। उनका कहना था कि हम लोगोंने एड़ी-चोटीका पसीना एक करके जंगली एवं पर्वतीय भूमिको कृषिके योग्य बनाया है, इसलिए इसपर हम लोगोंका ही स्वामित्व रहना चाहिए, ताकि पूर्व-श्रमका फल हम चख सकें। इस प्रकारके क्रान्तिकारी विचारोंके कारण सरकारकी आँखोंमें बाबाजी काँटेकी तरह चुभने लगे। सरकारने उन्हें दबानेके लिए सारी शक्ति लगा दी; किन्तु वह आन्दोलन मरा नहीं और आज भी जारी है। अब तो उस दलकी ताक़त और भी बढ़ गई है। भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्रामके जितने सैनिक इन जंगली एवं पर्वतीय इलाकोंके हैं, उनमें अधिकांश इन्हीं लोगोंमें से हैं।

मुद्दतसे यह जाति अनेक प्रकारकी चोटें सह रही है। अधिकांश लोग इन्हें असभ्य समझकर इनके साथ व्यवहारमें भी असभ्यता ले आते हैं। लेकिन खरवार-आन्दोलनके फलस्वरूप आज ये अपनी दासता एवं तज्जनित कष्टोंको महसूस करने लगे हैं और सक्रिय होकर आगे बढ़नेके लिए प्रयत्नशील हैं। विभिन्न प्रकारके राष्ट्रीय गीतोंकी रचनाकर ये लोग संथाल-समाजमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जगानेकी चेष्टा कर रहे हैं, ताकि जो लोग अब तक जग न सके हैं, उनकी चेतना भी जाग्रत हो। इन गीतोंको 'विन्ती सेरेञ' कहते हैं। नमूनेके लिए एक 'विन्ती सेरेञ' देखिए :—

संथाल परगना दिसोम तवेन हो ; वोर वुरुते जावा अकान।
होड़ होपोन हो मेना वोन ; हलंग पुलुरे गुलाम दशा।
ओत वड़गे मा मेना तवोन ; सहर गवर हो अड़ो तवोन।
वास वास उपजोवा आनेच धनेच् ; रेहिड़ विदिड़ वंदीके चोंगीद।
होड़ महाजन दिको होपन ; बावा दिदल खोन रिनमा तवोन।
वोवा सोंग सोंग तेवोन चवाएदा ; सनाम अरजाव होड़ो दिकते लगि।
सब दिसोम मानेवाँ हो हुदिस तावन पे, आवोगे चोंग हो वुनियादी जात
हुल मुटोते मावन रकाव लगि ; ओलो पढ़ा चित जो लगि।

अर्थात् संथाल-परगनादि देशोंमें खूब जंगल और झाड़ियाँ सजी हैं और जंगल-झाड़ी साफ़कर खूब अन्न उपजाते हैं। तब भी संथाल-जाति गुलाम ही बनी है। अन्न उपजाते तो हैं ; किन्तु किसके लिए ? उन्हीं कर्ज़ देनेवाले महाजनोंके लिए। इसीलिए गुलाम हैं। हे संथाल-जातिके सपूत, तू अब भी सँभल, विद्या-बल प्राप्त कर (अर्थात् सब प्रकारके कुसंस्कार, भूत-प्रेत, डायन, मन्त-तन्त्र आदि मिथ्या विश्वासों और शराबादि दुर्व्यसनोंसे मुक्त हो) और सच्चिदानन्द सर्वशक्तिमान् परमात्माकी उपासनासे सुखी बन, जिससे पुनः ऐसी दुर्दशा न होने पावे।

इस प्रकार संथालोंमें जो चेतना जगी है, उसे बाहरका प्रोत्साहन अब तक नहीं मिला है। बाहरकी सहायता एवं सहयोग यदि उन्हें उचित मात्रामें मिलें, तो फिर वे लोग स्वातन्त्र्य-युद्धकी दहकती हुई भट्ठीमें भी अपनेको झोंकनेमें नहीं हिचकेंगे। उन लोगोंके बीच कार्य करनेके लिए श्री ठक्कर बापाकी सहायतासे 'संथाल पहाड़िया सेवाश्रम-संघ' नामक एक संस्था बनी थी और श्री प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक, सत्यकाली बाबू एवं कुछ सफाहड़-दलके कार्यकर्त्ताओंने मिलकर एक दर्जनसे भी अधिक केन्द्रोंकी स्थापना की भी थी ; किन्तु सन् १९४२ के आन्दोलन का बहाना लेकर सरकारने इस संस्थाको ही ज़ब्त कर लिया। उसके कार्यकर्त्ता आज बिना मुकदमेके जेलोंमें सड़ रहे हैं। बिहारके सुप्रसिद्ध कांग्रेसकर्मी विनोदा बाबू एक नई योजना लेकर पुनः इस कार्यको चालू करने जा रहे हैं। आशा करनी चाहिए कि कांग्रेसके इन तपे हुए कार्यकर्त्ताओंकी सहायता एवं पथ-प्रदर्शनको पाकर संथाल पूर्वकी अपेक्षा अधिक उत्साहसे स्वातन्त्र्य-मोर्चेकी ओर बढ़ेंगे और अपनी पिछड़ी जातिका उत्थान करेंगे।

हिन्दू-जाति और मुसलमान

श्री सुमंगलप्रकाश

आजसे ग्यारह-बारह साल पहलेकी बात है, सन् १९३४की। व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलनके सिलसिलेमें इलाहाबादके सुविख्यात कांग्रेस-नेता श्री मंज़रअली सोख्ताके साथ मैं इलाहाबाद जिलेके गाँवोंमें घूम रहा था। चार-पाँच आदमियोंकी हम लोगोंकी टुकड़ी थी, और कांग्रेसका सन्देश देते हुए हम लोग एक गाँवसे दूसरे गाँवमें अपनी पैदल यात्रापर चले जा रहे थे। सन् १९३२-३३ में चले दमन-चक्रसे गाँवकी जनता अत्यन्त भयभीत थी। कम ही गाँवोंमें हमारा हार्दिक स्वागत हुआ, और ठहरनेको जगह और खानेके लिए घरका बना खाना तो हमें उनसे भी कम गाँवोंमें नसीब हुआ।

पर कुछ ऐसे भी बहादुर किसान थे, जिन्होंने हमारी आवभगत की, अपने घरमें हमें ठहराया, खिलाया-पिलाया तथा हमारे साथ-साथ या पीछे-पीछे दौरा करनेवाले दारोग़ा साहबकी धमकियोंकी कोई परवा नहीं की। कहीं-कहीं तो यहाँ तक हुआ कि हमारे मेज़बानने दारोग़ा साहबको बैठने तकके लिए कुछ नहीं दिया, जहाँ उनके सामने ही सोख्ता साहब और हम लोग उसके दालान में पलंगपर बिस्तारा बिछाए बैठे रहे।

किसी-किसीने ऐसा भी किया कि एक ही साथ हमारे जत्थे और दारोग़ा साहबकी पल्टन दोनोंको अपने घरमें मेहमान बनाया। किन्तु खानेके वक्त हमारे ऐसे मेज़बानोंने भी दारोग़ा साहबके मुक़ाबलेमें हमारा बड़प्पन साफ़ स्वीकार किया। जहाँ पुलिसकी पार्टीके लिए बाहर खाना आता, वहाँ हम लोग आदर-पूर्वक अन्दर ले जाए जाते। हाथ-पाँव धुलाकर आँगनमें बिछे हुए लकड़ीके पटलोंपर हम बिठा दिए जाते। पीनेके पानीसे भरे फूलके लोटे और गिलास हमारे सामने रख दिए जाते और फिर थालियाँ आ जातीं – हमारे मेज़बानकी हैसियतके हिसाबसे फूलकी, काँसेकी या पीतलकी।

और मैं ताज्जुबमें रह जाता यह देखकर कि मंज़र साहब बिना किसी हीले-हवालेके, बिना ज़रा भी सकोच प्रकट किए थाली में हाथ डाल देते और खाना शुरू हो जाता। और तबसे लेकर जो मेरे दिलमें धुकधुकी शुरू होती, वह तब तक न जाती, जब तक कि अपने मेज़बानकी मेहमानीसे निपटकर हम उस गाँवको छोड़ आगे न निकल जाते। कहीं इसे पता लग गया कि सोख्ता साहब मुसलमान हैं तो ? घबराहटके मारे मुझे रात को नींद भी अच्छी तरह न आती, अगर रात वहीं बितानेको होती। क्या पता कब राज़ खुल जाय और लाठी ले-लेकर गाँव-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले हमपर टूट पड़ें—उनका 'धरम' भ्रष्ट करनेके लिए !

यों मंज़र साहब मुसलमान हैं ; पर उन्हें देखकर ही नहीं, उनके साथ अर्से तक रहकर भी कोई यह भाँप नहीं सकता, अगर उसे बताया न जाय। पूरी वेश-भूषा ही नहीं, बातचीतका ढंग, हिन्दू-संस्कृतिका उनका ज्ञान, गाँववालों तकसे बातें करते समय बिलकुल उन्हींकी भाषा, उन्हींके अनुकूल दृष्टान्तों और पौराणिक कथाओं तथा प्रसंगोंका उल्लेख—किसी प्रकार भी यह प्रकट नहीं होता कि वे हिन्दू नहीं, मुसलमान हैं। अलबत्ता एक उनके नामको छोड़कर। पर गाँववाले बेचारे हम लोगों द्वारा व्यवहृत उसके संक्षिप्त संस्करण 'सोख्ता साहब'से कैसे समझें कि यह नाम मुसलमानी है ? नेहरू, काटजू-जैसे नाम क्या पहले उन्होंने कभी हिन्दुओंके सुने थे ? पर अब इलाहाबादके गाँव तक उन हिन्दू नामोंसे परिचित थे। क्या पता यह 'सोख्ता' भी कोई उसी बिरादरीका हिन्दू नाम हो !

एक रोज़ मैंने सोख्ता साहबसे यह चर्चा छेड़ ही दी आखिर। 'अच्छा हो सोख्ता साहब', मैंने उनसे कहा—'अगर हम लोग खानेके पहले ही उन लोगोंसे कह दें कि अपने बरतनों में हमें न खिलायँ ; पत्तलों और कुल्हड़ोंमें खाना और पानी परोसें। क्यों, कैसा रहेगा यह ?'

'किस लिए ?'—कुछ खिन्न-से स्वरमें मंज़र साहब बोले।

'इसलिए कि अगर उन्हें पता चल जाय कि हम सभी हिन्दू नहीं हैं, तो क्या यह ठीक होगा ?'

'तो क्या हम छिपाते हैं कि मैं मुसलमान हूँ ?'—उन्होंने कुछ गरमीके साथ कहा। स्पष्ट ही इस 'हम'से उनका मतलब अपनेसे था।

'नहीं, छिपाते तो नहीं हैं', मैंने जवाब दिया—'पर साफ़-साफ़ कहते भी तो नहीं...'

'क्या ज़रूरत इस बातका ऐलान करते चलनेकी कि हममें से कोई हिन्दू है और कोई मुसलमान ?'—उत्तप्त स्वरमें मेरी बात पूरी होनेके पहले ही वे बोल उठे। 'ये लोग क्या यह नहीं जानते कि हम लोग कांग्रेसके आदमी हैं, और हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूतका भेद हम नहीं मानते ? जो हमारी खातिर करता है, वह कांग्रेसकी खातिर करता है। जो कांग्रेसके इस पहले उसूलको नहीं मानता, वह कांग्रेसवालोंको अपना मेहमान बनाने जायगा ही क्यों ?'

'यों बहसके लिए आपकी बात बिलकुल ठीक है सोख्ता साहब', क्षण-भर चुप रहकर मैंने धीमे और नरम स्वरमें कहा—'पर क्या ठीक यही समझकर यह लोग हमें अपना मेहमान बनाते हैं ? ज़रा एक बार देखिए न यह कहकर कि हममें मुसलमान भी हैं। तब भी अगर अपने बरतनोंमें वह खाना खिलाएँ, तो बड़ी खुशीकी बात है।'

'मगर मैं उसूलन इस बातके खिलाफ़ हूँ कि खामखाह हम अपना मज़हब, अपनी ज़ात लोगोंको बताते फिरा करें'—मंज़र साहबने कहा। पर उनका स्वर डोला पड़ गया था। इसके साथ-ही-साथ इस बहसमें से जान निकल चुकी थी। फिर कुछ नहीं बोला।

उस वक्त मैं किसी तरहसे भी नहीं समझ सका था कि मंज़र साहब अपने हिन्दू मेज़बानको यह बतानेमें क्यों हिचकिचाते हैं कि वे मुसलमान हैं ? क्यों वे वस्तुस्थितिका सामना करनेको तैयार नहीं होते—खास तौरसे जब कि हम, उनके हिन्दू दोस्त, इस बातपर तुले हुए थे कि हममें से एकके साथ मुसलमानके नाते जो व्यवहार होता, उसमें हम उसके साथ शरीक होंगे ; वह भी उस मेज़बानके बरतनोंमें खाना न खाकर पत्तलों और कुल्हड़ोंका ही इस्तेमाल करते ? आखिर मंज़र साहब यह क्यों नहीं समझ पाते कि गाँवोंके इन भोले-भाले हिन्दुओंसे इतने त्यागकी और इतने साहसकी आशा करना ही ग़लत है कि वे अतिथि होनेके नाते ही किसी मुसलमानको अपने घरके बरतनोंमें खाना को दे देंगे और सदियोंसे चली आनेवाली रूढ़ियोंको एकदम तोड़ देंगे ? मैं यह सोचता और मंज़र साहबपर मन-ही-मन झुँझलाता।

ग्यारह-बारह साल पुरानी यह घटना इधर कुछ वर्षोंसे मेरी स्मृतिमें ताज़ी हो गई है ; पर एक बिलकुल ही नई दृष्टिसे। जहाँ उस समय मुझे मंज़र साहबपर झुँझलाहट थी और गाँवोंके उन भोले-भाले हिन्दुओंके प्रति सहानुभूति, वहाँ आज एकदम उल्टी ही बात है। आज जब कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका सवाल हमारे सामने दिन-पर-दिन उग्र होता जा रहा है, जब कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके राष्ट्रीय दृष्टिसे एक होनेकी समस्या अधिकाधिक उलझती ही चली जाती दिखाई दे रही है, मेरे सामने मंज़र साहबका वह रूप नाच उठता है—उनका वह संकोच, उनकी वह झिझक, स्वयं अपनेको 'मुसलमान' घोषित करके पत्तल और कुल्हड़में खाना परोसे जानेकी कल्पना तकके प्रति उनकी वह असीम विरक्ति !

जहाँ तक मैंने उन्हें समझा था, मंज़र साहब हिन्दू-मुस्लिम मानकी भेद-भावनासे एकदम ऊपर हैं। किसी 'सम्प्रदाय'की सीमामें बँधे रहनेवाला व्यक्तित्व ही उनका नहीं है। अपने जन्मसे वे मुसलमान हैं, तो अपने जीवन और व्यवहारसे विशुद्ध मानव-मात्र। अगर बचपनमें मुसलमानियतके संस्कारोंसे उन्हें बाँधा गया होगा, तो स्पष्ट ही उन्होंने यत्नपूर्वक असाम्प्रदायिक साध्य करते हुए उन संस्कारोंसे अपनेको मुक्त करके उन्हें 'भारतीय'के रूपमें अपनेको निर्मित किया है। पोशाक उन्हें वह पसन्द है, जो शुद्ध भारतीय है, भारतीय जलवायु, भारतीय रहन-सहनके अनुकूल है, न कि वह, जो कहीं बाहरसे आई है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सांस्कृतिक दृष्टिसे भी वे विशुद्ध भारतीय हैं। अगर मुसलमानोंकी संस्कृति और इतिहासपर उनका अधिकार है, तो शुद्ध भारतीय—हिन्दू—संस्कृति और इतिहासका भी उनका अध्ययन साधारण नहीं है, अनेक हिन्दू-पण्डितोंसे भी अधिक है। सामाजिक दृष्टिसे उनका कार्यक्षेत्र, मिलने-जुलनेवालोंका दायरा, बन्धु-बान्धवोंका चुनाव सब एकान्त रूपसे भारतीय हैं, किसी भी हिन्दूके साथ सब प्रकारसे तुलनीय। इस तरहके व्यक्तिके ऊपर क्या ठेस लगती होगी, जब कि वह उनके जन्मतः मुसलमान होनेका आभास पाते ही अपने हिन्दू मेज़बानोंके चेहरों पर एक घबराहट-सी देखता होगा, एक बेचैनी-सी, जिसमें कुछ घृणा भी है और कुछ परायापन भी, और कुछ यह भाव भी कि यह हमसे निकृष्ट है, अस्पृश्य है, घृणा-योग्य है!

हम हिन्दुओंकी आँखें अभ्यस्त हो गई हैं, दिल पत्थर हो गए हैं हमेशा यही देखते-देखते कि मुसलमान मुसलमान है, वह हमसे दूर-ही-दूर रह सकता है। किसी कोमल भावना अथवा व्यावहारिकताका तक़ाज़ा होनेपर यदि उसे अपने घरमें खिलाया-पिलाया भी जाता है, तो अपने बरतनोंमें नहीं—पत्तलों और कुल्हड़ोंमें, जो पीछे उठाकर फेंक दिए जाते हैं! हम इसमें कोई बेहूदगी देख ही नहीं पाते, और यदि कोई यह दिखानेकी कोशिश भी करता है, तो बड़े भोले-भालेपनके साथ हम जवाब देते हैं कि हम भी तो नहीं खाते उनके घर, उनके बरतनोंमें; तब फिर ऊँच-नीचकी बात कहाँ रही इसमें? पर अगर अपना दिल टटोलें, तो हम जानते हैं कि हम स्वयं जिस दृष्टिसे मुसलमानके घर नहीं खाते, वह बिलकुल ही दूसरी है। मुसलमानको हमारे घर, हमारे बरतनोंमें खानेमें ऐतराज़ नहीं है। वह हमें अस्पृश्य नहीं समझता। हमारे बरतनोंमें खाकर उसका 'धरम' नहीं जाता। घृणा उसके रास्तेमें बाधक नहीं होती। उसके रास्तेमें बाधक हम हैं—हमीं उसे नहीं खिला सकते अपने बरतनोंमें, क्योंकि उससे हमारा 'धरम' जायगा! पर मुसलमान हमें खुशीसे अपने बरतनोंमें खिला सकता है, इससे उसका 'धरम' नहीं जाता। उल्टे हमीं नहीं खा सकते घृणाके मारे, हमारे ही गलेमें अटक जायगा मुसलमानका छुआ रोटी खाना, अगर किसी तरह मुँहमें एक बार चला भी जाय तो!

मुसलमान गन्दे होते हैं, गोमांस खाते हैं, शराब-कबाबका शौक करते हैं, उनका आचरण शुद्ध नहीं होता—यह भी कुछ हिन्दू दलील देंगे अपनी सफ़ाईमें। पर यह दलील एकदम बेकार है। एक तो ये सारे 'दुर्गुण' होते हुए भी कोई व्यक्ति-विशेष हिन्दू उस हद तक हमारी सामाजिक घृणाका पात्र नहीं होता, और दूसरे इन सब 'दुर्गुणों'से एकदम दूर होते हुए भी किसी मुसलमानको हम अपने बरतनोंमें खिलानेको तैयार नहीं होते, भले ही वह मुसलमान यदि सिद्धान्ततः नहीं, तो कमसे कम भारतीयताका आदर करनेकी ही दृष्टिसे, अपने हिन्दू भाइयों की घृणासे बचने ही के लिए, गोमांस-जैसे 'दुर्गुण'का परित्याग कर देता है।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या इस समय हमारे देशकी सबसे बड़ी समस्या है और दिन-पर-दिन वह बिगड़ती ही जा रही है। मुसलमानोंकी पाकिस्तानकी माँग कितनी राष्ट्रीयता-विरोधी है, स्वयं उनके लिए भी कितनी घातक और अदूरदर्शितापूर्ण है—यह कहते 'राष्ट्रीयता' और 'अखण्ड भारत'का नारा लगानेवाले हिन्दू थकते नहीं हैं। उनकी दृष्टिमें इसका सारा दोष मुसलमानोंके सिर है, जो शाखापर चढ़कर पेड़की जड़ काटनेपर तुले हुए हैं। पर प्रश्न तो यह है कि हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लिए हिन्दुओंने ही नहीं, कांग्रेसने भी क्या किया है अब तक? हिन्दू-महासभावादी, हिन्दू-संगठनवाले हिन्दुओंकी बात छोड़ दीजिए। क्या कांग्रेसी हिन्दुओंने हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लिए इस सबसे अधिक आवश्यक शर्तका पालन किया है? क्या कांग्रेसी हिन्दुओं के बारेमें यह साधारण रूपसे कहा जा सकता है कि उनका सामाजिक व्यवहार इस साम्प्रदायिक भेद-भावको नष्ट करनेकी दृष्टिपर अवलम्बित है? अगर नहीं, तो क्या हम लोग यह आशा करते हैं कि सामाजिक दृष्टिसे दिन-पर-दिन दूर होते जाकर भी हम एकताके निकट पहुँच सकेंगे, अखण्ड हिन्दुस्तानका स्वप्न चरितार्थ कर सकेंगे? क्या हम यह समझते हैं कि एक सम्प्रदाय को, एक समाजको निरन्तर घृणाकी दृष्टिसे देखते हुए भी, उसपर अविश्वास रखते हुए भी, पारस्परिक सामाजिक विनिमय, सामाजिक घनिष्टता, सामाजिक लेन-देनसे बचते रहकर भी हम उसे अपने अन्दर पूरी तरहसे मिला ले सकेंगे? और कुछ नहीं तो कम-से-कम बराबरीका स्थान तो हम दें उन्हें अपने सामाजिक जीवनमें।

दुर्भाग्यवश एक हिन्दू-जाति ही संसारमें ऐसी जाति है, जो खान-पान तथा शादी-ब्याहके सम्बन्धमें इस तरहकी अभेद्य चहारदीवारियोंको खड़ा किए हुए है और हर दरवाज़ेपर काला मोटा परदा टाँगे हुए है। युगोंके इस अभ्यासने, अँधेरी गुफ़ाओंमें रहते चले आनेकी इस आदतने, हमें एकदम अन्धा बना दिया है, प्रकाशकी ओर हम देख ही नहीं पाते, बाहरके साथ अपना मेल बिठा ही नहीं पाते। हम किसी तरह भी यह नहीं समझ पाते कि किसी सम्प्रदाय-विशेषको अपने बरतनोंमें न खिला सकनेके कारण अथवा शादी-ब्याहके दायरेसे उसे हमेशाके लिए दूर रख कर हम उसका कोई अपमान करते हैं, उसके प्रति कोई घृणा दिखाते हैं। पर संसारका और कोई भी समाज, और कोई भी सम्प्रदाय इस प्रकारके प्रतिबन्धोंको समझ नहीं सकता, इन प्रतिबन्धोंके पीछे हमारे अदम्य दर्प और घोर जातीय

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहंकारके सिवा कुछ देख ही नहीं सकता। यही कारण है कि मंज़र साहब-जैसे साम्प्रदायिक दायरेसे ऊपर उठे हुए व्यक्ति भी यह सह नहीं पाते कि जिस भारतीयताको उन्होंने इतने यत्नपूर्वक, इतनी साधनाके बाद अपनाया है, उसे अपने ही मुँहसे उन्हें दर-दरपर छोड़ते चलना होगा, यह घोषित करते चलना होगा कि वे मुसलमान हैं, उन्हें कोई हिन्दू पतल-कुल्हड़ छोड़ और किसी बरतनमें खाना न परोसे!

एक घटना और याद आ गई, जो मैंने एक विश्वस्त सूत्रसे सुनी थी। एक बार दिल्लीमें मौलाना शौकतअली और भाई परमानन्द एक ही जगह बैठे हुए थे, और शुद्धि और तबलीगके बारेमें बहस चल रही थी। इसी समय एक जवान भंगिन सामनेसे टोकरी और झाड़ू लिए गुज़री। मौलाना साहबने उसकी ओर उँगली उठाकर दिखाते हुए भाईजीसे कहा—'अच्छा, बताइए तो भाईजी, इस भंगिनकी शुद्धि करके इसे आप अपने समाजमें कैसी जगह दे सकते हैं?'

भाईजी ज़रा घबरा-से गए। भंगिन तो यों ही हिन्दू थी, उसकी भला क्या 'शुद्धि' हो सकती थी! और मौलाना साहबकी दलीलोंको काटोंके बीच उन्हें यह स्वीकार ही करना पड़ा कि ऊँची मानी जानेवाली जातियोंमें उस भंगिनको श्रद्धा-सम्मान तो क्या, बराबरीका भी स्थान मिल सकना कम-से-कम अभी सम्भव नहीं है।

'पर आप जानते हैं न भाईजी', मौलाना शौकतअली विजय-गर्वके साथ कहा—'हमारे मजहबमें आनेके बाद यह भंगिन अगर कल ही मेरे लड़केसे शादी करना चाहे, तो मुझे कोई ऐतराज़ नहीं होगा और न हमारे समाजमें ही किसीको!'

भाई परमानन्दके पास इसका जोई जवाब नहीं था।

नेटालके ब्रम-कमीशनकी रिपोर्ट

स्वामी भवानीदयाल संन्यासी

जिस समय यूनियन-सरकारकी पृथक्करण-नीतिको क़ानून द्वारा कार्यान्वित होते देखकर भारत और दक्षिण-अफ्रिकाके हिन्दुस्थानियोंमें हाहाकार मच गया था और वहाँके श्वेतांगोंसे अत्याचारका बदला लेनेकी भावना अत्यन्त उग्र हो उठी थी, उसी समय न्यायका ढोंग रचकर क्षुब्ध भारतीयोंको शान्त करने एवं विश्वके आलोचकोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी ग़रज़से वहाँकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया। इसको यह काम सौंपा गया कि वह प्रवासी भारतीयोंकी सारी समस्याओंकी जाँच करे और उनको सुलझानेके लिए उचित उपाय बतलावे। कमीशनके सात सदस्योंमें से पाँच श्वेतांग थे और दो भारतीय। सभापति थे जस्टिस एफ़० सी० ब्रूम। हाल ही में इस कमीशनकी एक अस्थायी रिपोर्ट निकली है। रिपोर्ट केवल श्वेतांग सदस्योंकी एकपक्षीय है। भारतीय सदस्य तो जाँचके दौरानमें ही इससे इस्तीफ़ा दे चुके थे, इसलिए कि एक तरफ़ तो कमीशनकी जाँच हो रही थी और दूसरी तरफ़ नेटालकी प्रान्तिक कौंसिल प्रवासी भारतीयोंके विरुद्ध आर्डिनेन्सपर आर्डिनेन्स पास कर रही थी। अतएव भारतीय सदस्यों—श्री काज़ी और श्री नायडू—को कमीशनकी जाँच एक तमाशा-सा प्रतीत हुआ और उन्होंने कमीशनमें बने रहना उचित नहीं समझा।

यद्यपि प्रस्तुत रिपोर्ट अस्थायी है और श्वेतांगोंके दृष्टिकोण से लिखी गई है, तो भी इसमें कई ऐसी मार्केकी बातें हैं, जिनसे नेटालके प्रवासी भारतीयोंकी सामयिक स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वहाँके गोरे कैसे प्रतारक और विश्वासघाती हैं, वचन देकर कैसे मुकर जाते हैं; उसीकी एक रोचक झलक इस रिपोर्टका श्रीगणेश हुआ है। जिस समय कमीशन नेटालकी राजधानी पीटर मेरित्सबर्गमें जाँचके लिए बैठा, उस समय वहाँकी सिटी-कौंसिलके प्रतिनिधियोंने बयान देते हुए कहा कि कौंसिलकी ओरसे शहरके समीप ही २५२ एकड़ भूमि भारतीयोंके बसनेके लिए सुरक्षित है। चूँकि भारतीय किसी भी रूपमें पृथक्करणके सिद्धान्त माननेको तैयार नहीं हैं, इसलिए कौंसिलने श्वेतांगोंके सिवा अन्य जातिके लोगोंको भी वहाँ ज़मीन खरीदनेकी आज़ादी दे रखी है। कौंसिलको इस बातपर खेद है कि भारतीयोंने अभी तक इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया है। इसीलिए कौंसिलने वहाँ सड़क आदि बनवानेमें खर्च करना ठीक नहीं समझा, क्योंकि उसको आशंका है कि कहीं भारतीयोंने उस ज़मीनका बहिष्कार कर दिया, तो सारा श्रम और धन व्यर्थ जायगा।

सिटी-कौंसिलकी इस उचित और उदार व्यवस्थासे कमीशन इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी बैठक स्थगितकर नेटाल इंडियन कांग्रेसके मन्त्रीसे जवाब तलब किया। भारतीय कांग्रेसने जवाब देनेमें देर नहीं की। पन्द्रह मिनटके अन्दर उसने कौंसिलके प्रस्तावपर अपनी स्वीकृति दे दी। इसपर कमीशनने [illegible] पर लगभग साल-भर बाद जब [illegible]

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

कमीशन अपनी अस्थायी रिपोर्ट तैयार कर रहा था, तब अख-बारोंमें उस ज़मीनके बारेमें ऐसी खबर निकली, जिससे जस्टिस ब्रूमको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने मेयरको लिखकर पूछा, तो जवाब मिला कि उस प्रस्तावमें कोई दम नहीं था। वह बात तो योंही कह दी गई थी, जिसे कौंसिलने मंजूर नहीं किया। इसपर जस्टिस ब्रूम और उनके सहयोगियोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे अपनी रिपोर्टमें लिखते हैं—'सिटी-कौंसिलके शिष्ट-मण्डलमें कोई ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे नहीं, प्रत्युत मेयर, डिप्टी-मेयर, फाइनेन्स-कमेटीके चेयरमैन, तीन कौंसिलर, टाउन-क्लर्क, सिटी-ट्रेज़रर, सिटी-इंजीनियर, मेडिकल आफ़िसर और कौंसिलके वकील थे।' नेटाल इण्डियन कांग्रेसके प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि क्या इंडियन कांग्रेस और सिटी-कौंसिलके बीच ऐसा कोई समझौता हुआ है, जिसके अनुसार शहरके समीप 'हेथोर्न' पहाड़ीपर २४४ एकड़ ज़मीनमें भारतीयोंको बसानेके प्रस्तावपर कौंसिलने विचार करना स्वीकार कर लिया है? मेयरने स्पष्ट उत्तर दिया—'वह ज़मीन २४४ नहीं, २५२ एकड़ है। उस ज़मीनमें भारतीयोंको बसानेके लिए कौंसिलकी तरफ़से तो निश्चय हो चुका है, अब विचार करनेकी गुंजाइश ही कहाँ रही? शर्त्त यही है कि भारतीयोंकी ओरसे कौंसिलको आश्वासन मिल जाना चाहिए कि वे इस व्यवस्थासे लाभ उठानेको तैयार हैं।'

सिटी-कौंसिलके समस्त प्रतिनिधियोंके सामने कौंसिलकी तरफ़से मेयरने यह बात कमीशनसे कही थी; पर श्वेतांगोंमें बात कहेकी लाज कहाँ है? वचन-भंग और विश्वासघात तो उनके स्वभावकी सबसे बड़ी विशेषता है। अपने श्वेतांग बन्धुओंके इस नैतिक पतनपर जस्टिस ब्रूमको कितनी मानसिक वेदना और ग्लानि हुई, उसकी गवाही दे रहा है रिपोर्टमें लिखित उनका एक-एक शब्द। वे अपनी जातिकी अधोगतिपर अत्यन्त मर्माहत होकर कहते हैं—'यदि ऐसी बातोंसे भारतीय सारे यूरोपियनों को विश्वासघाती समझ बैठें, तो इसके लिए ज़िम्मेदार और दोषी है मेरित्सबर्गकी सिटी-कौंसिल!' शायद जस्टिस ब्रूम यह नहीं जानते कि पीटर मेरित्सबर्गको सिटी-कौंसिलकी यह दग़ा-बाज़ी भारतीयोंके लिए कोई नई चीज़ नहीं है। दक्षिण-अफ्रिका के सर्वोपरि श्वेतांग राजनीतिज्ञ जनरल स्मट्स अनेक बार महात्मा गांधीको धोखा दे चुके हैं—वचन देकर भंग कर चुके हैं। ब्रिटेनके बड़े-बड़े सत्ताधिकारी भी संकट-कालमें भारतीयोंसे तरह-तरहके वादे करके काम निकल जानेपर अँगूठा दिखा देते हैं। इसलिए, भारतीयोंका, चाहे वे स्वदेशमें हों या विदेशोंमें, श्वेतांगोंपर से बिलकुल विश्वास उठ गया है। भारतीयोंको इतना कटु अनुभव हो चुका है कि यदि गोरे बाइबिल उठाकर शपथ-पूर्वक भी कोई वादा करें, तो भी भारतीयोंको उसपर विश्वास न होगा। श्वेतांग चाहे सभ्यता एवं श्रेष्ठताकी कितनी ही शेखी क्यों न बघारें, पर भारतीयोंकी दृष्टिमें वे गिर चुके हैं।

भारतीयोंके मकान, स्वास्थ्य, शिक्षा, नागरिक स्थिति और धार्मिक एवं मनोरंजन-सम्बन्धी सुविधाओंका जाँच-कार्य कमीशन को सौंपा गया था। इनमें से किसी भी विषयपर कमीशन अपना निश्चयात्मक विवरण देनेमें अद्यपर्यन्त असमर्थ ही है। पर जहाँ तक जाँच हो सकी है, उसके आधारपर कमीशनने कुछ सम-स्याओंकी समालोचना की है। कमीशनकी समीक्षा अत्यन्त पक्षपातपूर्ण है। सरकारकी पृथक्करण-नीति एवं श्वेतांगोंकी वर्ण-विद्वेषपूरित प्रवृत्तिको वहाँकी स्थितिके अनुसार न्याय-संगत सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है।

सन् १८६० में दक्षिण-अफ्रिका-प्रवासी अंगरेज़ोंके ऊखके खेतों, चायके बागानों, शक्करके कारखानों और कोयलेकी खानोंमें गुलामी करने और उन्हें उनके लिए लाभदायक बनानेकी नीयतसे नेटाल-सरकारकी प्रार्थनापर हिन्दुस्थानकी अंगरेज़ सर-कारने भारतसे मज़दूर भेजने आरम्भ किए थे। यह प्रथा १९१० तक जारी रही। इस दरम्यानमें लाखों भारतीय यहाँसे गए और पाँच-सात साल गिरमिटमें गोरोंकी गुलामीकर स्वदेश लौट आए। केवल एक लाख भारतीय नेटालमें बसे, जिनकी सन्तानकी संख्या इस समय डेढ़-पौने दो लाखसे अधिक नहीं है। इन भारतीयोंको भाँति-भाँतिके प्रलोभन देकर वहाँ बसनेपर मज-बूर किया गया था और वे जहाँ चाहें, वहाँ ज़मीन खरीदने और बसनेका अधिकार भी दिया गया था।

श्वेतांगोंके मुहल्लेमें बसनेकी भारतीयोंकी आम तौरपर कोई इच्छा नहीं है। डरबनके आसपास हिन्दुस्थानियोंने अपने खास मुहल्ले बसा लिए हैं। एक भारतीय दूसरे भारतीयके पड़ोसमें बसना चाहता है, किसी गोरेके पड़ोसमें हर्गिज़ नहीं। पर जहाँ-जहाँ भारतीयोंके मुहल्ले हैं, वहाँ एक तो मकानोंकी कमी है, दूसरे डरबन-म्युनिसिपैलिटीकी अत्यन्त उपेक्षा-वृत्ति। यद्यपि हिन्दुस्थानियोंसे टैक्स वसूल करनेमें कोई रियायत नहीं की जाती है—गोरोंके बराबर उनको भी टैक्स देना पड़ता है—तो भी उस पैसेका उपयोग होता है श्वेतांग-बस्तियोंको सँवारने-सुधारनेमें। भारतीयोंके मुहल्ले अपने भाग्यपर रोया करते हैं। वहाँ न रोशनीका प्रबन्ध है और न पानीका। ऊबड़-खाबड़ सड़कें, मच्छर-मक्खियोंकी भिनभिनाहट और कूड़ा-करकटकी सड़ाँद म्युनिसिपैलिटीकी दुष्टतापूर्ण नीति और प्रवृत्तिकी साक्षी दे रही हैं। ऐसी स्थितिमें इने-गिने उच्च श्रेणीके भारतीयोंको वहाँ रहना पसन्द नहीं आया और उन्होंने आराम एवं सुभीतेके विचारसे गोरोंके मुहल्लेमें कुछ मकान खरीदकर रहना आरम्भ किया। बस, गोरोंमें हाय-तोबा मच गई और भारतीयोंको इससे रोकनेके लिए आवाज़ उठाई गई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहला कमीशन बैठा। उसने पूरी-पूरी जाँचकर राय दी कि श्वेतांगोंकी आशंका निराधार है। इसपर और तूफ़ान उठा। सरकारने फौरन दूसरा कमीशन बैठाया और उससे कहलवाया गया कि भारतीय धीरे-धीरे गौरांगोंके मुहल्लेमें प्रविष्ट होते जाते हैं। इसके आधारपर एक सप्ताहके अन्दर 'पेगिंग-एक्ट' पास कर दिया गया। संसारको कहा गया कि यदि यह क़ानून न बनता, तो डरबनकी सारी ज़मीन गोरोंके हाथसे निकलकर भारतीयोंके हाथमें चली जाती। प्रवासी भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित कर गूँगा एवं सब प्रकारसे निःशस्त्र बना देनेके बाद उनपर यह दोष मढ़ना कि यदि रोका न गया, तो एक दिन भारतीय सारे देशपर अधिकार कर लेंगे, वास्तवमें दुनियाकी आँखोंमें धूल झोंकनेके सिवा और क्या है? इस झगड़ेका मूल कारण तो भारतीयोंके प्रति जन्मगत घृणा है। वे एशियाइयोंको महानीच और अस्पृश्य मानते हैं, इसलिए उनको अपने पड़ोसमें बसने देना अपनी शानके खिलाफ़ समझते हैं।

इधर भारतीयोंमें भी आत्म-सम्मानका भाव बढ़ने लगा है और उनको अपना राष्ट्रीय अपमान अखरने लगा है। आधी शताब्दी पहले यह सम्भव था कि भारतीय अपना स्वत्व भूलकर श्वेतांगोंके अमानुषिक अत्याचारोंको चुपचाप सहन कर सकते थे और सहन करते थे। वहाँके गौरांगोंने हिन्दुस्थानियोंपर कौन-सा सितम नहीं ढाया, जिसे वे अपनी दासता एवं अपने देशकी परवशताके कारण खूनके घूँट पीकर सहन कर गए। पर अखिल विश्वकी उमड़ती हुई मानव-जाग्रतिकी घोषणा है कि एक जातिका दूसरी जातिका गुलाम बनकर रहना सबसे बड़ा कलंक है। फलतः दक्षिण-अफ्रिका और भारतमें श्वेतांगोंकी अत्याचारमूलक प्रवृत्तिके विरुद्ध एक ज़ोरदार आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह बात ब्रूम-कमीशनको बहुत खटकी है। उसने भारतके नेताओं और राजनीतिज्ञोंपर अकारण ही आक्षेप किया है। कमीशनकी धारणा है कि नेटाल-प्रवासी भारतीयोंमें श्वेतांगोंकी श्रेष्ठताकी उपेक्षा और समानाधिकारका दावा करनेकी जो प्रवृत्ति पैदा हो गई है, उसका मुख्य कारण है वहाँकी वास्तविक स्थितिसे सर्वथा अनभिज्ञ भारतके नेताओंकी ओरसे उनको उकसाया और प्रोत्साहित किया जाना। इसीसे नेटालकी हालत इतनी नाजुक और खतरनाक हो गई है। दक्षिण-अफ्रिकाकी घरेलू समस्याओंमें भारतको टाँग अड़ानेका कोई अधिकार नहीं है।

जस्टिस ब्रूम और उनके सहकारी सदस्योंको यह तो मालूम ही है कि इस समय प्रवासी भारतीयोंका प्रश्न वहाँके लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है, दक्षिण-अफ्रिकाका घरेलू प्रश्न नहीं। इसी वजहसे वहाँके मामलेमें कभी-कभी भारतको दखल देनेकी ज़रूरत पड़ जाती है। यदि यूनियन-सरकार और वहाँके गोरे चाहते हैं कि उनके घरेलू प्रश्नोंपर भारत मौन साधे रहे, तो इसका उनके पास एक ही उपाय है और वह है भारतीयोंको नागरिक अधिकार देकर उनको अपने राष्ट्रका एक अंग बना लेना। पर जब तक उनको पार्लमेण्टरी एवं म्युनिसिपल मताधिकारसे वंचित रखा जायगा, तब तक उनकी तरफ़से वकालत करनेका भारतके नैसर्गिक अधिकार है। भारत अपनी वोट-हीन और इसलिए आवाज़-हीन सन्तानको श्वेतांगोंकी दयापर नहीं छोड़ सकता। जिस दिन प्रवासी भारतीयोंको वहाँके नागरिककी भाँति मताधिकार दे दिया जायगा, उसी क्षणसे भारतको कुछ कहने-सुननेकी ज़रूरत न रहेगी—उससे पहले नहीं।

इस तथ्यको ब्रूम-कमीशनने भी महसूस किया है, इसलिए मताधिकारपर उसने अपनी रिपोर्टमें विस्तृत चर्चा की है। नेटाल-प्रान्तमें श्वेतांगोंको बालिग-मताधिकार है और उनकी संख्या लगभग भारतीयोंके बराबर ही है, अधिक नहीं। इसलिए भारतीयोंको भी बालिग मताधिकार दे देना कमीशनकी रायमें मानो श्वेतांगोंको प्रभुत्व नष्ट कर देना होगा; क्योंकि इसका परिणाम यह होगा कि लोकतन्त्रके सिद्धान्तानुसार नेटाल-प्रान्तीय शासन-व्यवस्थामें भारतीय अधिक हिस्सेदार बन जायँगे, जो श्वेतांगोंके लिए असह्य होगा। अतएव कमीशनने भारतीयोंके बालिग-मताधिकार देनेके प्रश्नको असम्भव कहकर उड़ा दिया है।

कमीशनके कथनानुसार दूसरी विचार-धारा यह है कि दक्षिण-अफ्रिकाके मूलनिवासी बाँटुओंकी भाँति भारतीयोंको भी जातिगत मताधिकार देकर छुट्टी पा लेनी चाहिए। इस पद्धतिके अनुसार बाँटू लोग आम चुनावमें भाग नहीं ले सकते हैं, केवल वे श्वेतांग उम्मीदवारोंको वोट दे सकते हैं, जो खासकर उनके हितके लिए खड़ा होता है। केनियामें भारतीयोंको भी इसी प्रकारका म्युनिसिपैलिटी और लेजिस्लेटिव-कौंसिलमें जातिगत मताधिकार है; पर वहाँ भारतीयोंकी तरफ़से भारतीय उम्मीदवार खड़े होते हैं, श्वेतांग नहीं। केनियामें हिन्दू बहुमत एवं मुस्लिम अल्पमतकी भी समस्या है। यद्यपि नेटालमें भी हिन्दुओंका बहुमत है और मुसलमानोंका अल्पमत; पर यहाँ धार्मिक भिन्नता होते हुए भी राजनीतिक दृष्टिसे सभी हिन्दुस्थानी एक और अभिन्न हैं।

कमीशनका खयाल है कि नेटालके भारतीय शिक्षा और सभ्यतामें बहुत आगे बढ़े हुए हैं। उनमें दलबन्दी है; पर उसका आधार आर्थिक है, धार्मिक नहीं। नेटाल-प्रवासी भारतीयोंका राष्ट्रीय अभिमान उनको बाटुओंकी भाँति जातिगत मताधिकार स्वीकार करनेकी आज्ञा कदापि नहीं देगा। अतएव इस विषयपर विचार करना ही व्यर्थ है। अन्तमें कमीशन इस परिणामपर पहुँचा है कि न तो भारतीयोंको बालिग मताधिकार दिया जा सकता है और न वे जातिगत मताधिकार स्वीकार ही करेंगे। इसलिए श्वेतांगोंकी भलाई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारतीयोंको भी आम चुनावमें गोरे उम्मीदवारको वोट देनेका अधिकार मिलना चाहिए (क्योंकि १९१० के यूनियन-एक्टके अनुसार श्वेतांगके सिवा अन्य वर्णका उम्मीदवार पार्लमेण्टकी सदस्यताके लिए खड़ा नहीं हो सकता है); पर भारतीयोंके मताधिकारपर सम्पत्ति एवं शिक्षाकी ऐसी पावन्दी लगा देनी चाहिए कि भारतीय वोटरोंकी तादाद श्वेतांगोंके मुक़ाबलेमें तुच्छ और नगण्य रहे। इससे श्वेतांगोंका प्रभुत्व अक्षुण्ण बना रहेगा और भारतीयोंको मताधिकार भी मिल जायगा।

सन् १८९३ से पहले नेटालमें भारतीयोंको पार्लमेण्टरी मताधिकार प्राप्त था। उससे कुछ काल पहले भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित करनेके लिए एक क़ानून पास किया गया था। उसी समय महात्मा गांधी पहले-पहल एक मुस्लिम व्यापारीके मामलेमें पैरवी करनेके लिए वहाँ गए थे। जब गांधीजीका ध्यान इस क़ानूनकी तरफ़ आकर्षित हुआ, तो वे बड़े चिन्तित और व्यथित हुए। भारतीयोंकी नेटालमें कोई राजनीतिक सभा भी नहीं थी। अतएव महात्माजीने स्वयं एक अर्ज़ी तैयार की। उसपर दस हज़ार भारतीयोंकी सही ली गई और वह इंग्लैण्डके कोलोनियल सेक्रेटरीके पास भेजी गई। उस समय नेटाल एक क्राउन कोलोनी था। क़ानूनपर बादशाहकी मंजूरी आवश्यक थी। महात्माजीके उद्योगका फल यह हुआ कि क़ानूनको बादशाहकी स्वीकृति नहीं मिली। वर्ण-भेदमूलक होनेके कारण वह रद्द हो गया।

पर नेटालके गोरे इससे हताश नहीं हुए। उन्होंने कूट-नीतिसे काम लेना उचित समझा। जिस कारणसे उनका क़ानून रद्द हुआ था, उस कारणको उन्होंने दूर कर दिया। क़ानूनका रूप इस प्रकार बदल दिया गया कि जिन देशोंमें लोकतन्त्रात्मक शासन-पद्धति नहीं है, वहाँके निवासियोंको नेटालमें भी पार्लमेण्टरी मताधिकारसे वंचित रहना पड़ेगा। चूँकि भारतमें विदेशियोंका एकतन्त्र शासन था, इसलिए भारतीयोंको अपने देशकी पराधीनताका फल नेटालमें भी भोगना पड़ा। इस अभागे देशके निवासी होनेके कारण प्रवासी भारतीयोंको नेटालके पार्लमेण्टरी चुनावमें वोट देनेके अधिकारसे हाथ धोना पड़ा।

नेटाल-प्रवासी भारतीयोंकी सारी समस्याओंपर गम्भीर विचारकर कमीशन अन्ततः इस परिणामपर पहुँचा है कि वहाँकी वर्त्तमान अवस्था अत्यन्त आतंकपूर्ण हो गई है—श्वेतांगों और भारतीयोंमें कटुताकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। एक तरफ़ तो गरम दलके कुछ भारतीय हैं, जो श्वेतांगोंके समान पूर्ण नागरिक अधिकारोंका दावा कर रहे है और दूसरी तरफ़ हैं कुछ व्यवहार-शून्य श्वेतांग, जो भारतीयोंको कुछ देकर यहाँसे निकाल बाहर करनेका स्वप्न देख रहे हैं। दक्षिण-अफ्रिकाकी परिस्थितिकी दृष्टिसे ये दोनों बातें अव्यवहार्य हैं। श्वेतांगोंके समान अधिकार पानेकी अभिलाषा भारतीयोंके लिए मृगतृष्णा ही है। भारतीयों को दक्षिण-अफ्रिकासे निकाल देना भी असम्भव है। प्रत्यागमन-योजनाको कार्यान्वित करके देख लिया गया कि वह भारतीयोंकी संख्या घटानेमें सफल नहीं हो सकी। भारतीयोंको नेटालमें कई पुश्तें हो चुकी हैं। ८० प्रतिशत भारतीय नेटालमें ही जन्मे हैं। अब उनको निकालनेकी बात करना बिलकुल व्यर्थ और बेहूदा है।

भारतीय और श्वेतांगोंके मध्य स्थायी समझौता करनेके विचारसे कमीशन सिफारिश करता है कि यूनियन-सरकारकी तरफ़से भारत-सरकारको अपना प्रतिनिधि-मण्डल, जिसमें भारतीयोंकी प्रधानता हो, यहाँ भेजनेके लिए आमन्त्रित करना चाहिए। जब तक भारत-सरकारके यहाँसे निमन्त्रणकी स्वीकृति न आ जाय, तब तकके लिए कमीशन स्थागित रहेगा। भारत और दक्षिण-अफ्रिकाके प्रतिनिधियोंकी गोलमेज़-परिषदमें बैठकर प्रवासी भारतीयोंकी सारी समस्याओंपर विचार-विमर्श करना चाहिए और भविष्यके लिए कोई स्थायी समझौता कर डालना चाहिए। नेटालकी वर्त्तमान परिस्थितिमें कमीशनको यही सर्वोत्तम उपाय जँचता है। परिषदमें समझौता हो जानेपर इस कमीशनका अन्त समझा जाय।

हाल ही में जनरल स्मट्सने भी एक ऐसी परिषद बुलानेकी घोषणा की है। यदि यूनियन-सरकारका निमन्त्रण आए, तो भारत-सरकारको यहाँसे लोक-नेताओंका एक ज़बरदस्त प्रतिनिधि-मण्डल भेजना चाहिए। भारतीय नेताओं और पत्रकारोंसे हमारा अनुरोध है कि वे इस सम्बन्धमें ज़ोरदार आन्दोलनकर त्रिशंकुकी तरह लटके हुए प्रवासी भाइयोंका उद्धार करें। यह सोचकर चुप बैठे रहना कि जब स्वराज्य मिलेगा, तब उनका भी उद्धार होगा ही, भारी भूल है। स्वराज्य मिलने तक उनका कोई अस्तित्व रह भी जायगा या नहीं, इसमें ही सन्देह है।

बदलीका चाँद

श्रीमती होमवती देवी

कलेजा मुँहको आने लगा, तृषित प्राणोंमें आया ज्वार;
भरा आता नयनोंमें नीर, हुआ बरबस जीवन लाचार!
विश्व सूना-सूना लग रहा, घोरतम बढ़ता जाता त्रास;
बिलखकर खो जाते निश्चेष्ट शून्यमें टकराकर निश्वास!
सुनाऊँ किसको मनकी व्यथा, बिंधे हैं हा! नस-नसमें शूल;
धधकती मानवताकी चिता, बरसती अरमानोंपर धूल!
दिखाऊँ किसको अन्तर खोल, न भाता मुझको व्यर्थ विवाद;
दूजसे भी बढ़कर हो गया, मुझे तो यह पावसका चाँद!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक्ति

श्री विष्णु प्रभाकर

ठीक उस समय जब कि मेरी ट्रेन स्टेशनपर रुकी, तो दूरसे ही रमेशने चिल्लाकर कहा—'अरे निशिकान्त, आ गए!'

मैंने हँसकर कहा—'नमस्ते। कहो कैसे हो?'

वह उसी तरह बोला—'ठीक हूँ। तुम कैसे हो? मैं जानता था, तुम उन अनाथ बच्चोंको देखनेके लिए अवश्य आओगे।' और उसने आगे बढ़कर मेरा सूटकेस उठा लिया और बोला—'होलडोल तुम उठा लो। जगह बहुत दूर नहीं है, मुश्किलसे एक फर्लांग होगी।'

वह एक छोटा-सा स्टेशन था। भीड़ अधिक नहीं थी। सूरज निकलनेमें काफ़ी देर थी और बिजलीकी धीमी रोशनीमें जाड़ेकी वह रात बड़ी सुहावनी मालूम पड़ रही थी। रमेशने एक शाल ओढ़ रखा था, इसीलिए आसानीसे सूटकेस उठा लिया; परन्तु ओवरकोटके कारण मुझे होलडोल उठानेमें कठिनाई पड़ रही थी। और वह था कि चलते-चलते कहता जा रहा था—'बेचारे अनाथ बच्चे! निशिकान्त, जब वे पिछले महीने इस स्टेशनपर आए, तो उन्हें देखकर मेरी आँखें भर आईं। हड्डियाँ निकली हुईं, आँखें डूबीं-डूबीं, पतले-पतले हाथ-पैर और धुएँ-से काले—जैसे युगोंसे अन्नकी सूरत न देखी हो। वैसे हो काफ़ी खूबसूरत थे, ऊपरसे भूखके शिकार और माँ-बापका बिछोह।' और फिर हो-हो करके ऐसे हँसा कि रो पड़ेगा।

मैं होलडोलके कारण इतना खिन्न-मन था कि उसकी ओर देख न सका। केवल इतना कहकर रह गया—'भूख और स्नेह के अभावमें वे जीते रहे, यही क्या कम अचरज है, रमेश?'

'हाँ, हाँ',—रमेश बोला—'अचरज ही तो है। निशिकान्त, तुमने वह दृश्य नहीं देखा। मैंने देखा है, जब पहले दिन उन्हें खाना खिलाया गया था। भैया, सच कहता हूँ, खिलानेवाले थक गए; पर उन्होंने मना नहीं किया। भूखे भेड़ियोंकी तरह खानेपर टूट पड़े।' फिर आप-ही-आप धीमा पड़कर बोला—'न-जाने कितने दिनोंमें उन्होंने पका हुआ खाना देखा होगा! खिलाने-वाले डर रहे थे कि कहीं पेट न फट जाय।'

मैंने कहा—'बेशक, ज़्यादा खानेसे भी मौत आ जाती है और फिर इतने दिनोंके उपवासके बाद!'

मेरी बात बिना सुने ही रमेशने कहा—'पहले तो उनकी बात समझमें ही नहीं आती थी; पर अब वे धीरे-धीरे हिन्दी बोलने लगे हैं। भजन गाते हैं, मन्त्र पढ़ते हैं। लेकिन भैया, प्रेमके लिए भाषाकी ज़रूरत नहीं होती। एक लड़की मुझसे इतनी हिलमिल गई है कि जैसे जन्म-जन्मका साथ हो। नाम है उसका मीनू। साँवली है, पर आँखें इतनी भोली हैं कि चित्र खींचनेको मन करता है। सबसे पहले जब मैंने उसे देखा, तो वह घबराकर चारों ओर देख रही थी। मैंने पास जाकर पूछा क्या बात है, मुनिया? पर वह समझी नहीं। कैसे समझती बंगाली बच्चे भला हिन्दी क्या जानें? मैंने उसका नाम पूछा तो वह मेरा मुँह देखने लगी। मैं समझा। मैंने कहा—मेरा नाम रमेश, उनका नाम जीवनदास, इनका धीरेन। तो वह हँसी और बोली—आमार नाम मोनू। निशिकान्त, अब तो मैं उसके साथ टूटी-फूटी बँगला बोल लेता हूँ। बँगला-शिक्षक खरीद लाया हूँ और उसीके सहारे मैं उन सबसे बातें करने लायक बंगला सीख गया हूँ।'

और यहीं आकर उसका एक फर्लांग समाप्त हो गया। मैं हाँफने लगा था, उँगलियाँ बर्फ़की तरह ठण्डी होकर अकड़ गई थीं और नाकसे पानी टपक रहा था। सामने एक नया-सा छः मंजिला मकान था। मुख्य द्वारपर अनाथालयका एक साइनबोर्ड लगा था। मकानका अहाता इतना विशाल था कि दूरसे प्रभाव डालता था। रमेशने यहीं रुककर कहा—'बस, यही है।' और फिर पुकारा—'रामू, ओ रामू!'

रामू अनाथालयका नौकर था। काँपता हुआ आया और रमेशने एकदम बोलना शुरू कर दिया—'यह सामान ले जाओ। मेरे कमरेमें रखो। चायका प्रबन्ध करो। पहले हाथ-मुँह धोनेको गरम पानी लाओ।'

रामूने बिस्तर सिरपर उठाया, सूटकेस पकड़ा और चलते हुआ कि रमेश फिर बोला—'बच्चे जागे?'

'जी, अभी नहीं।'

'क्यों? छः तो बज चुके। जाओ, जगाओ उन्हें। बेकार कूफ़ रोज़का काम भूल जाता है। शौच जाएँगे, कुल्ला-दतौन करेंगे, सात बजे सन्ध्या करनेका समय होता है, जाओ।'

फिर हम लोग उसके कमरेमें गए। काठकी कुरसीपर वह तो धम्म-से बैठ गया। कोट उतारनेका मन नहीं किया। वैसे बैठा खिड़कीसे झाँकने लगा। दूर पूरबमें किरणें फूटने लगी थीं पर कुहासेके कारण धुँधलापन कम नहीं हुआ था। तो भी सर्दी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। रमेश काठकी चौकीपर योगिवत् मारे सन्ध्याके मन्त्र गुनगुना रहा था। थोड़ी देर बाद वह सहसा उठ खड़ा हुआ और पूछा—'तुम्हारी चाय आई?'

'नहीं, अभी तक तो नहीं आई।'

'क्या मुसीबत है? ये लोग समयका मूल्य नहीं जानते। अरे ओ रामू..रामू···!' और फिर मुड़कर बोला—'उसका कसूर नहीं हैं। हम लोग चाय पीते ही नहीं।'

इसी समय दो गिलास कपड़ेसे पकड़े रामू आया और उन्हें मेजपर रखकर बोला—'जी, चाय तो बन गई थी; पर बच्चोंने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

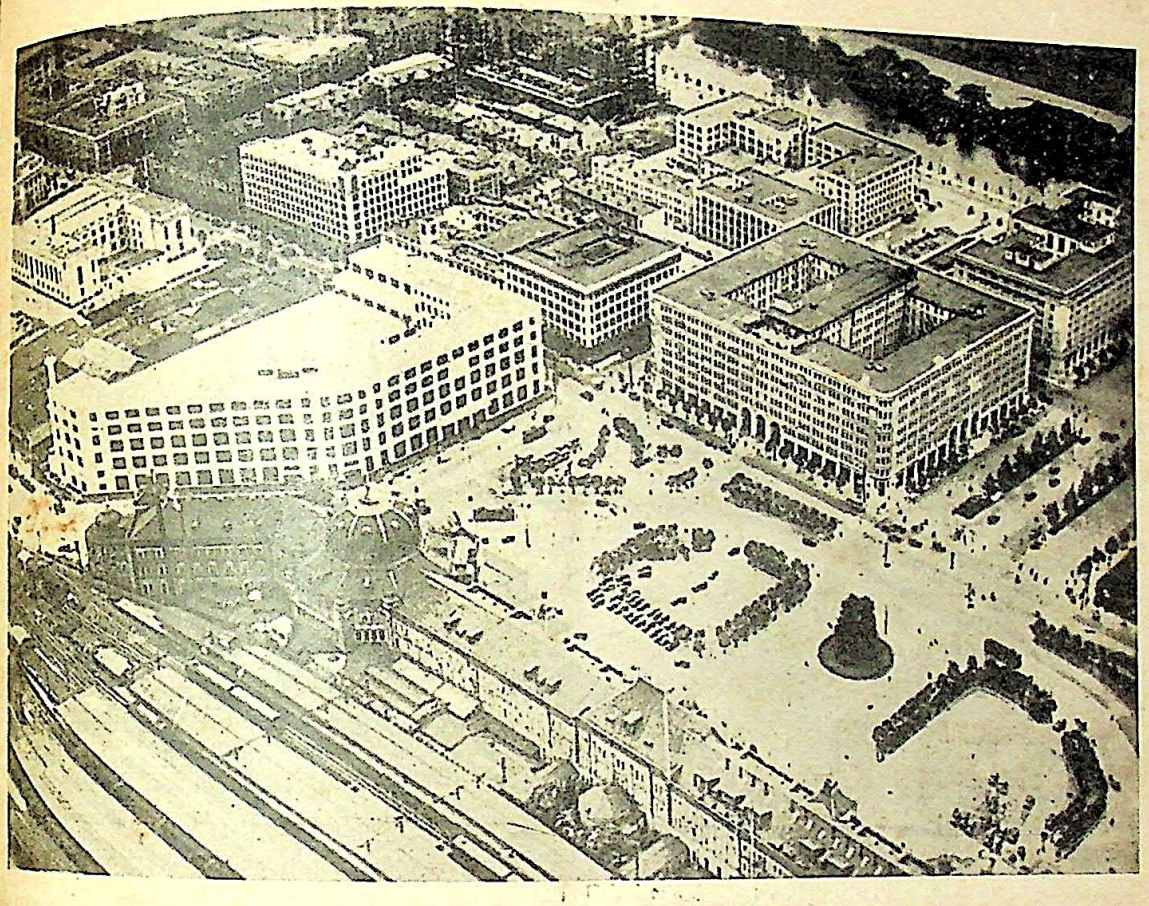

युद्धसे पूर्व जापानकी राजधानी तोक्यो। बाईं ओर केन्द्रीय रेलवे-स्टेशन और उसके पास ही सरकारी दफ़्तर 'मारुनाची' है।

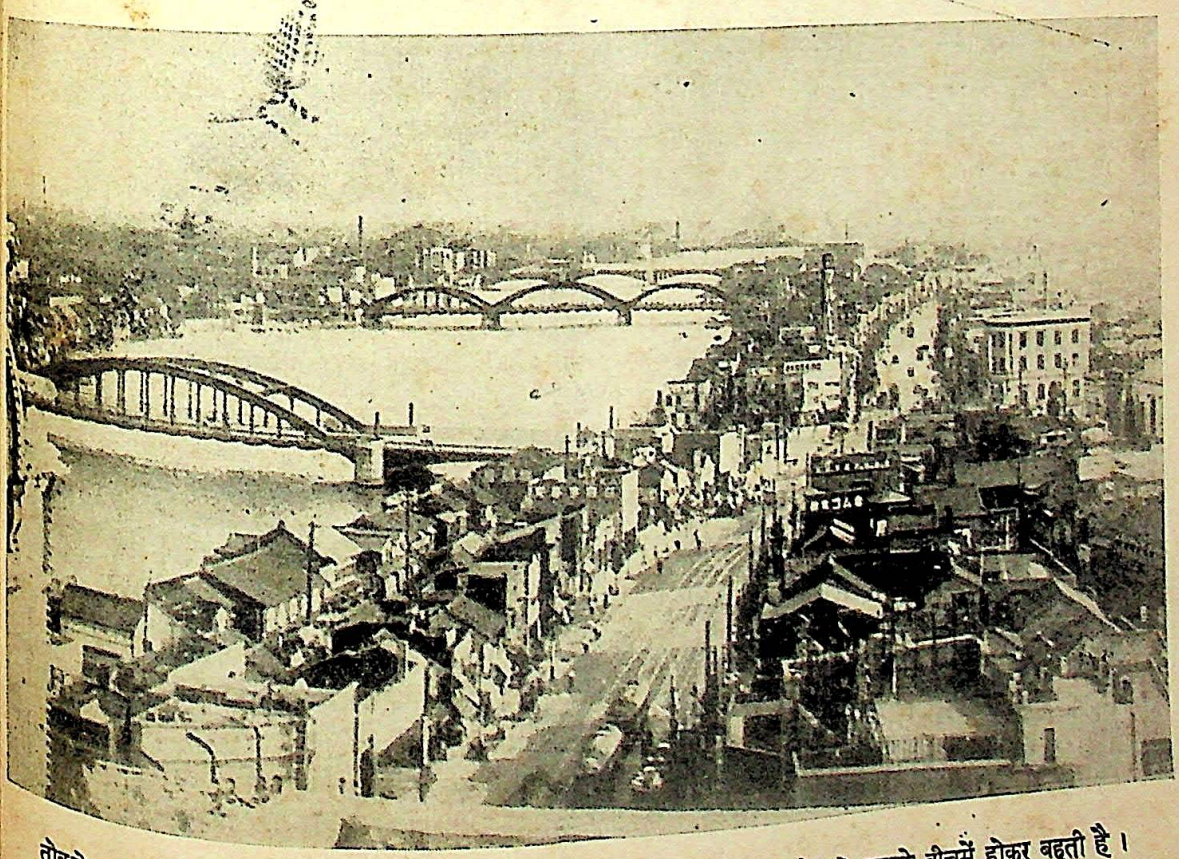

तोक्यो नगरका एक व्यवसाय-प्रधान भाग। पास ही सुमिदा नदी दिखाई पड़ रही है, जो नगरके बीचमें होकर बहती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

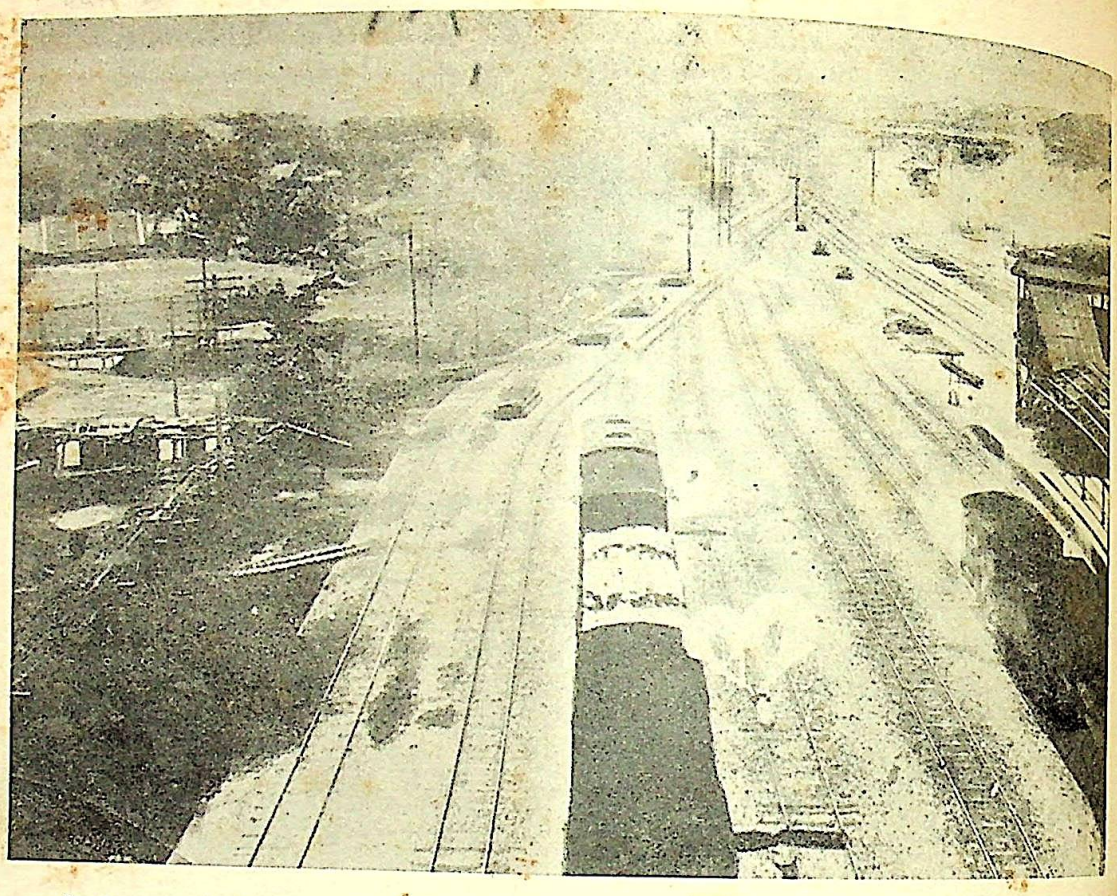

फार्मोसाके उत्तर-पश्चिमके उपनगर चिकूनानके रेलवे-स्टेशनपर अमरीकनों द्वारा छतरी-बम गिराए जानेका एक दृश्य।

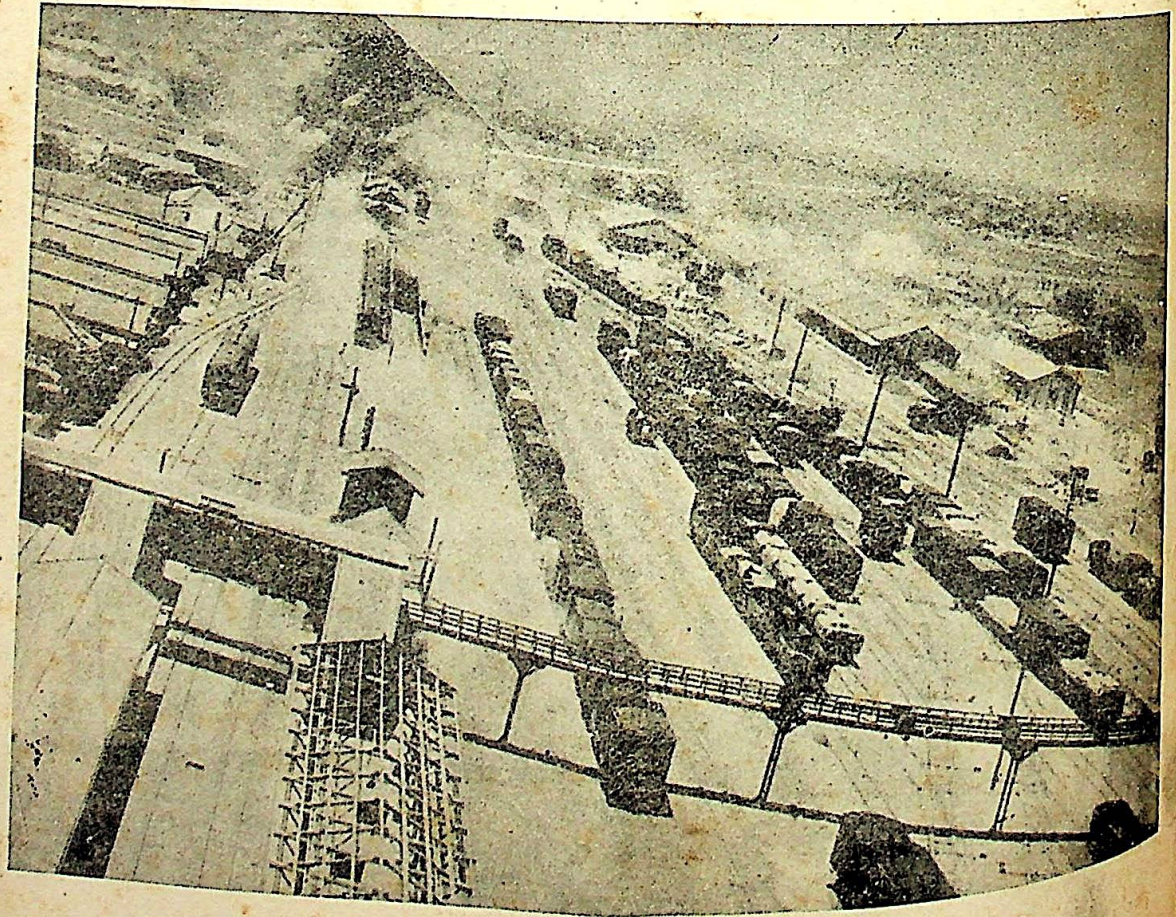

फार्मोसाका प्रधान रेल-केन्द्र शोका, जिसको अमरीकनोंने छतरी-बमोंसे बेकार कर दिया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानेमें देर हो गई। मीनू कह रही है कि मैं भी चाय पिऊँगी।'

अधिकारपूर्वक रमेशने कहा—'नहीं, वह चाय नहीं पी सकती।'

मैं गिलास उठाकर चाय पीने लगा था। बदनमें कुछ गरमी आई, तो मैंने कहा—'मीनूको ज़रा यहाँ तो बुलाओ?'

उसी तरह गम्भीर रमेशने कहा—'नहीं, उसकी आदत बिगड़ जायगी। आखिर वह अनाथ है।' और फिर सहसा जैसे जागकर बोला—'अरे, तुम चाय वैसे ही पी गए? खाली चाय, वाह! ज़रा ठहरो तो, अभी कुछ नाश्ता...।'

मैंने कहा—'नहीं रमेश, अभी कुछ नहीं। मैं चायके साथ कुछ नहीं खाता। केवल गरमीके लिए...।'

'जानता हूँ',—वह हँसा—'बड़े शहरमें रहकर भी तुम बिगड़े नहीं हो।'

इसी समय अनाथालयकी घण्टी बज उठी। वह चौंका—'लो चलो, सन्ध्याकी घण्टी बज रही है।'

मैं उसी तरह उसके पीछे-पीछे चल पड़ा और जहाँ हम जाकर रुके, वह एक हाल था। उसमें सात सौसे अधिक आदमी बैठ सकते थे। उसकी दीवारोंपर अनेक चित्र थे—कुछ आर्य-समाजी नेता, कुछ दानवीर पूँजीपति, कुछ अनाथोंके ग्रुप और कुछ आदर्श-वाक्य, भजन आदि। नीचे फर्शपर एक पुरनी दरी बिछी थी और उसपर लगभग सौ बालक-बालिकाएँ कतार बनाकर बैठे थे। वे योगासनकी मुद्रामें थे। उनसे आशा की जाती थी कि वे शून्यमें ध्यान केन्द्रितकर मन्त्रोंका उच्चारण करेंगे; परन्तु वास्तवमें वे काँप रहे थे। उनके हाथ घुटनोंपर से सरककर गोदियोंमें आ गए थे। लगभग सभीकी आँखें खुली थीं और वे दृष्टि चुराकर इधर-उधर ताक रहे थे। उनकी आकृतियाँ भी अजीब थीं। उस धुन्धमें कुछ तो बड़े दयनीय और त्रस्त मालूम पड़ रहे थे, लेकिन स्वर सबका ऊँचा था। उनमें बागड़ी, पंजाबी, हिन्दी, बंगाली सभी थे। सभीका स्वर भिन्न था। जब तक वे सन्ध्या करते रहे, मैं उनको देखता रहा। मेरी कल्पना कहींसे कहीं पहुँच गई। मैंने उन सब अनाथ बच्चोंके माँ-बापोंको देखा। देखा उन सबको अपनी-अपनी माताओंकी गोदियोंमें दूध चूसते, हँसते-रोते और माँ-बापको हँसाते। उन्होंने इनपर न-जाने कितनी आशाएँ लगाई होंगी। उनमें कुछ वे बच्चे भी थे, जिन्हें उनकी विलासिनी माताएँ अपने रास्तेका रोड़ा समझती थीं। इसीलिए वे यहाँ थे।

सन्ध्या समाप्त हो गई। पण्डितजीके प्रार्थना करनेके पश्चात् सबने गाया—'हे दयामय हम सबोंको शुद्धताई दीजिए'; और फिर शान्ति-पाठ करके सब उठे। लाइन बनाई और बाहर जाने लगे। मैं नया था, सबने मुझे देखा और मैंने उन्हें। उनकी दृष्टि खाली थी, मानो उन्होंने अपनेको भाग्यके भरोसे छोड़ दिया हो। उनके बदनपर लगभग एक-से कपड़े थे—पीली कमीज़, पाजामा और सस्ते स्वेटर, जो शायद किसी पूँजीपतिने अपने पापोंका भार उतारनेके लिए दान कर दिए थे। लड़कियाँ सादी धोती पहने थीं। वे लगभग सभी बंगालसे आई थीं। धीरे-धीरे वे मेरे पाससे गुज़रीं। सहसा मैंने एक लड़कीको देखा। उसकी आँखोंमें एक अद्भुत आकर्षण, एक अद्भुत भोलापन था। अवश्य वह मीनू थी, जिसके बारेमें रमेशने कहा था। मैंने उसे पुकारा—'मीनू!' वह हठात् सहमी। अचरजसे मुझे देखा, जैसे पहचानना चाहती हो। मैंने फिर पूछा—'तुम्हारा नाम मीनू है न?'

उसने बिना बोले गरदन हिला दी और मेरी ओर देखती रही। मैंने मुस्कराकर कहा—'मेरे पास आओ।'

उसने रमेशकी ओर देखा। रमेश बोला—'हाँ, हाँ, तुम इनके साथ जा सकती हो।'

मैं मीनूको साथ लेकर कमरेमें चला आया। इतनी ही देर में मीनूमें अद्भुत परिवर्तन हो आया। वह मुझसे तनिक भी नहीं झिझकी। पूछा—'चाय आपने पी थी?'

'हाँ',—मैंने कहा—'तुम्हें मिली?'

'नहीं, हमें दूध मिलता है।'

'ओ! तब तुम खुशक़िस्मत हो। दूध चायसे अच्छा होता है।'

उसने अचरजसे मेरी ओर देखा। फिर बोली—'नहीं, चाय अच्छी होती है। हमें दूध अच्छा नहीं लगता। हमारे देशमें बड़ी चाय होती है।'

'तुम्हारा देश कहाँ है?'

'चटग्राम। वहाँ हमारा बाबा बहुत चाय लाता था।'

'तुम्हारा बाबा वहाँ क्या करता था?'

'पता नहीं।'

'माँ...?'

'माँ?'—उसने मुझे देखा—'माँ तो अपने घर चली गई।'

'और तुम?'

'हम भी जायँगे। ये भेजते ही नहीं। कहते हैं, वहाँ खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है। क्या सच वहाँ खाना-कपड़ा नहीं है? तो माँ क्या खाती-पहनती होगी?'

मैंने उसे अपने समीप खींच लिया और पूछा—'तुम यहाँ कैसे आईं, मीनू?'

सहज भावसे वह बोली—'माँने भेजा था। कह रही थी, तुम्हें बहुत अच्छे कपड़े मिलेंगे, खाना मिलेगा। दीदीको भी उसने इसी तरह भेज दिया था। माँको लोग एक गाड़ीमें बैठाकर ले गए थे। वह रो रही थी।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मेरा हृदय उसके भोलेपनपर फटा पड़ता था; पर जैसे जीवन उसके लिए अभी कोई मानी नहीं रखता हो। मैंने पूछा—'वहाँ खाना मिलता था?'

'पहले तो मिलता था, पर पीछे कम मिलने लगा। माँ कहती थी, चावल दुश्मन लूट ले गए। उस पारके देशमें दुश्मन आए थे। वे हमारे बाबाको भी पकड़ ले गए।' और फिर क्षण-भर रुककर पूछा—'वे बाबाको क्यों ले गए? अब बाबा कब आएँगे? आएँगे न?···पर वे तो खूब भात खाते होंगे। आप हमें भी वहाँ ले चलिए न।'

'हमारे साथ चलोगी?'

'हाँ, हाँ।' प्रसन्नतासे उसकी आँखें चमक उठीं—'चटग्राम चलेंगे न? आज ही चलो। वहाँ माँ होगी, बाबा होंगे, दीदी, हासी और सोना सब होंगे।'

उसकी भोली आँखें बेहद खुशीसे भर रही थीं, पर उन्हें देखकर रोना आने लगा। मैंने बात टालकर पूछा—'तुम पढ़ती हो?'

भोलेपनसे उसने कहा—'पढ़ती तो हूँ, पर जी नहीं लगता।'

'खेलनेको जी करता है?'

'हाँ, खेलनेको तो करता है। घर हम लोग हासी, सोना, बकू कागज़की नाव बनाकर नदीमें तैराते थे। हमारे देशमें बहुत बड़ी (दोनों हाथ खूब फैलाकर) नदी है। उसे सागर कहते हैं। उसमें बहुत बड़ी-बड़ी नावें चलती हैं।'

हमारी ये बातें चल रही थीं कि रमेश आ गया। हँसकर बोला—'मीनू, ये तुम्हारे देशके ही आदमी हैं। इनके साथ जाओगी न?'

'हाँ, हाँ, ज़रूर जायँगे',—वह मुस्कराकर बोली—'इन्हींके साथ जायँगे।

'हमें छोड़कर?'—रमेश सहसा चौंका-सा।

मीनू क्षण-भर रुकी, फिर बोली—'आप भी चलना, अच्छा। हम सब चलेंगे। वहाँ बहुत चाय होती है, बहुत भात और माछ होती है।'

मैंने रमेशसे अंगरेज़ीमें कहा—'मीनू बहुत भोली है। बेचारी अकालकी दुर्दशाको बिलकुल भी अनुभव नहीं करती। इसे विश्वास है, इसके माँ-बाप ज़िन्दा हैं।'

रमेश धीरेसे बोला 'कौन जाने इसका विश्वास ठीक हो। रिपोर्टके अनुसार इसकी माँ इसे एक रुपएमें बेच गई थी। इसका बाप बर्मामें व्यापार करता था, वहीं रह गया। एक बहन थी, वह कहाँ गई, पता नहीं। सुनते हैं, इनके ज़िलेमें फ़ौजका बहुत बड़ा अड्डा है। युवतियाँ सब वहीं चली गई हैं। मरने-वालोंको उनकी ज़रूरत जो है!'

कहते-कहते उसका मुख घृणासे भर उठा। मैं कुछ नहीं बोला। एक क्षण रुककर उसने फिर कहा—'उनका अनाथ क्या है?' भूखा क्या पाप नहीं करता? इसीलिए मैंने सोचा इस मीनूको मैं ही पाल लूँगा। तुम तो जानते ही हो, तुम्हें भाभीके मरनेके बाद मैंने विवाह नहीं किया; करूँगा भी नहीं इसीलिए मीनू···बस जी करता है, इसे देखता रहूँ।' और फिर चुपचाप अनबूझ हमें देखती मीनूसे बोला—'चाय पिएगी मीनू?'

मीनू एकदम प्रफुल्लित हुई—'हाँ, पिएँगे।'

मैं अब तक कल्पनाके परोंपर उड़ रहा था। उसकी बात सुनकर चौंका-सा। जेबमें से पचीस रुपए निकालकर रमेशको देते हुए बोला—'रमेश, आज सब बच्चे पेट-भर फल और मिठाई खायँगे और साथमें चाय भी।' और बिना उसके उत्तरकी प्रतीक्षा किए मैं बाहर चला गया।

- २ -

अचरज कि मैं अनाथालयमें अधिक दिन नहीं ठहर सका। रमेशके बहुत कहनेपर भी मैं उसी रातको लौट आया। मेरा मन उद्विग्न हो रहा था और मैं अपने कार्यमें डूबकर उस दृश्यको भूल जाना चाहता था। चलते समय मैंने मीनूसे बातें नहीं कीं। हाँ, याद है, जब मैं चला था, तो वह प्रसन्नतासे अपनी साथिनों बँगलामें समझा रही थी—'अब मैं अपने घर जाऊँगी। ये सब हमारे देशके हैं।' यह सुनकर मेरा गला भर आया और मैं शीघ्रतासे दृष्टि चुराकर बाहर निकल आया। लेकिन फिर आकर भी मेरा मन किसी काममें डूब नहीं सका। मैं हर समय उखड़ा-उखड़ा रहने लगा। लिखनेको कापी उठाकर मैं घंटों शून्यमें ताकता रहता।

एक दिन जब मैं इसी प्रकार शून्यमें ताक रहा था, तो किसीने करुणार्द्र स्वरमें पुकारा—'क्या मैं आ सकती हूँ!'

मैं चौंका। मेरे सामने एक युवती खड़ी थी। उसने एक छपी हुई पतली धोती पहन रखी थी। पैरोंमें साधारण चप्पलें थीं, सिर नंगा था और लम्बे बाल दो वेणियोंमें बँधे थे। वह मेरे उत्तरकी चिन्ता किए बिना ही भीतर चली आई और एक चिट्ठी दिखाकर बोली—'इसे ज़रा पढ़िए।'

मैंने पढ़ा। अंगरेज़ीमें लिखा था—'यह लड़की बंगालके महानाशका शिकार है। इसके माँ-बाप मर गए। भाई बहिन मारा गया। भूखसे तड़प-तड़पकर यह यहाँ तक पहुँची है। सम्भ्रान्त कुलकी है, भीख माँगना नहीं जानती। पढ़नेवालेसे प्रार्थना है कि इसकी मदद करें।'

मैंने पढ़कर उस युवतीको देखा। बड़ा अजीब-सा लगा। कहा—'तो आप···।'

वह गिड़गिड़ाई—'हम भूखे हैं। हमारा सब-कुछ नष्ट हो गया। दुखी-सन्तप्त हम आपकी शरणमें आए हैं। हमारी सहायता करें। हमारा बालक मर रहा है।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मैंने कहा—'देखो, यहाँपर बंगालियोंकी कई सभाएँ हैं। मैं कुछके पते बता देता हूँ। वहाँ चली जाओ। वे लोग तुम्हारा कुछ प्रबन्ध कर देंगे।'

वह बोली—'हम जानते हैं। वहाँ भी हम गए थे, पर वे हमारी सहायता नहीं कर सकते।'

'क्यों?'

'हम बहुत हैं।'

'कहाँ रहती हो?'

उसने एक जगहका नाम बता दिया और फिर गिड़गिड़ाकर कहा—'कुछ दीजिए, बाबू!'

मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। मैंने देखा, उसकी आँखोंमें जो रंग था, वह अक्सर उन औरतोंमें होता है, जो पेशा कमाती हैं। अतः मैंने कहा—'मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'लेकिन बाबू···!'

'नहीं, इस वक्त मुझे माफ़ करो।'

'बाबू! आप हिन्दू हैं, आपको ज़रूर हमारी मदद करनी चाहिए।'

लेकिन मैं उसकी बात नहीं मान सका और अन्तमें वह निराश होकर चली गई। जाते-जाते उसने कहा—'तुम हिन्दू नहीं हो। अगर सच्चे हिन्दू होते, तो ज़रूर मदद करते।'

वह क्या कहना चाहती थी, मैं नहीं समझा; पर मैंने इतना निश्चय अवश्य किया कि इनका पता लगाना चाहिए।

और मैं उसी सन्ध्याको उस स्थानपर पहुँचा, जहाँका पता उसने बताया था। उसकी बात सच थी। वहाँ कई बंगालिनें थीं। मैंने देखा, उनके कपड़े फटे नहीं थे, उनके बाल भी सुलझे-सँवारे थे और दो-तीनको छोड़कर वे सब युवतियाँ थीं। उस समय वे एक स्त्रीको घेरे बैठी थीं। वह स्त्री बहुत बुरी हालतमें थी। उसकी साड़ी तार-तार हो रही थी, उसके बाल बिखरे थे, आँखें गड़ गई थीं और शरीर एकदम शिथिल था। मैंने साहस करके एक स्त्रीसे पूछा—'इसे क्या हुआ है?'

चौंककर उन सबने मुझे देखा, घूरा और फिर एकने कहा—'बाबू, अकालकी मारी है। सब-कुछ लुट गया बेचारीका। अब यह भी मुक्त होनेवाली है।'

इसी समय वह स्त्री बोल उठी—'नहीं, नहीं, मैं लौट जाऊँगी। मुझसे यह पाप नहीं होगा। मेरी लड़की, मेरी बच्ची···!' और मैंने देखा, उस मण्डलीमें खलबली-सी मची, जैसे उन्हें यह बुरा लगा हो। एक प्रौढ़ाने डपटनेके स्वरमें कहा—'शोर न मचा। पेटमें अन्न पड़ा है, तो पाप-पुण्यकी बात सूझी है।' और फिर मुझसे कहा—'बाबू, ज्वर तेज़ है। कोई दवा दिला सकोगे?'

मैंने पूछा—'तुम क्या करती हो? कहाँसे खाती हो?'

वह गिड़गिड़ाकर बोली—'आप-जैसे बाबुओंसे माँगकर जो मिल जाता है, वही खाती हूँ।'

रोगिणी उठ बैठी। वह तमतमा रही थी और उसकी आँखें निकली पड़ती थीं। तेज़ीसे बोली—'कहाँसे खाती है? माँगेसे कौन देता है? सब युवतियाँ हैं, और यौवनका मोल खाती हैं, बाबूजी!'

मैं काँपा। दूसरी स्त्रियाँ क्रुद्ध नागिनकी तरह उसपर झपटीं—'जवानीका मोल खाती हैं, तो क्या हुआ? अपनी जवानी तो है; पर तू तो दूसरोंकी ही जवानीका मोल खाती है। तूने अपनी बेटी वेश्याके दलालको बेची है और अब हमें उपदेश देती है!'

मेरा दिल धक्-धक् कर उठा। मैंने रोगिणीकी आँखोंको देखा था। उनमें न-जाने क्या था, जो मेरे दिलको कचोट रहा था। मुझे सहसा मीनूकी याद आई और मैं थरथरा उठा।

मैं कुछ कहूँ कि रोगिणी फिर बोली। इस बार वह शान्त थी। 'तुम ठीक कहती हो, मैंने अपनी लड़की बेची है। मुझे इसका दुःख है। मैं वापस जाना चाहती हूँ। मैं अपनी बच्चीको वापस लाऊँगी।' और सहसा मुड़कर देखा, फिर बोली—'बाबू, बाबू, दिला सकोगे मेरी बच्चीको वापस? मेरी वह भोली बालिका···!'

मैंने अपनेको सँभाला और एकसे पूछा—'आखिर क्या बात है? यह कौन है?'

इस प्रश्नके उत्तरमें मुझे जो-कुछ बताया गया, उसका सारांश यह है: एक दिन वह सुखी परिवारकी गृहिणी थी। पति था, पुत्र था, दो पुत्रियाँ थीं। अचानक एक दिन लड़ाई छिड़ी, अकाल आया, लोग भूखों मरने लगे। इसका पति तब बर्मामें था; नहीं लौट सका। पुत्र भी लड़ाईमें काम आया। भूखने इसे घर छोड़नेको विवश किया। जो तन बेचती हैं, वे अब भी शासन करती हैं। यह भी कर सकती थी; पर इसका मन नहीं माना। लेकिन शहरमें दोहरी मुसीबत थी। न भोजन मिला, न ठौर। आखिर एक दिन एक आदमी बड़ी लड़कीको ले गया कि वह उसे पालेगा। उसने जाते-जाते पन्द्रह रुपए भी दिए। पर वे कब तक चलते? फिर दूर-दूर भटना पड़ा। एक दिन सरकारने इसे पकड़कर शहरसे बाहर भेज दिया और छोटी लड़की किसी अनाथालयमें भेज दी गई।

मैंने अनायास पूछ लिया—'अनाथालयमें?'

'हाँ, कहते तो ऐसा ही हैं।'

'उसका नाम?'

रोगिणी फिर चौंकी। बोली—'किसका नाम? मेरी बच्चियोंका? विनोद और मीनू।'

'मीनू!' मैं अपनेको न रोक सका और उसने मुझे ऐसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखा, जैसे मैं सब-कुछ जानता हूँ। बोली—'हाँ, मीनू। क्या आप मीनूको जानते हैं, क्या आपने मीनूको देखा है?'

मैंने अपनेको सँभाला—'नहीं, मैं तुम्हारी मीनूको नहीं जानता। मेरी एक लड़की है, उसका नाम भी मीनू है।'

यह सुनकर वह डूबने-सी लगी। उसकी आँखें फैलीं। उसने थके स्वरमें कहा—'बाबू, कहो तो मैं मीनूको जानता हूँ, मैंने विनोदको देखा है। इतना ही कहो, बाबू! मुझे सुख मिलेगा। मैं अभागिन···!'

मेरे मनमें रह-रहकर उठ रहा था कि कहूँ, तुम्हारी मीनूको मैंने देखा है, वह सुखी है; पर न-जाने क्यों, मैं रुक जाता था। न-जाने क्यों, मैं मीनूका सम्बन्ध इस मरणासन्न नारीसे नहीं जोड़ना चाहता था। मैं चाहता था कि मीनू सदा समझे उसकी माँ जीवित है, वह अपने घरपर सुखी और सन्तुष्ट है। इसी समय रोगिणीने चीख मारी कि सब स्त्रियाँ उसपर झुकीं। मैं उन्हें परे हटाकर रोगिणीके पास जा बैठा और तेज़ीसे कहा—'सुनो, मैं सच कहता हूँ, मैंने तुम्हारी मीनूको देखा है। वह सुखी है, खूब प्रसन्न है।'

उसने आँखें खोल दीं; पर उनकी ज्योति मानो बुझ चुकी थी। अति धीमे स्वरमें बोली—'सच, मीनूको तुमने देखा है?'

'हाँ।'

'वह सुखी है, खूब?'

'हाँ।'

और फिर एक सर्द आह खींचकर रोगिणीने आँखें मूँद लीं। सन्तोषकी गहरी रेखा उसके रक्तहीन विकृत चेहरेपर फैल गई और उसने कहा—'बाबू, विनोद काक्सबाज़ारमें है। तुम लगा सकोगे? क्या उसे बचा सकोगे?'

उसका स्वर गिर चुका था, केवल फुसफुसाहट शेष थी। मैं उसके ऊपर झुका और ज़ोरसे बोला—'अवश्य पता लगाऊँगा, तुम चिन्ता मत करो।'

उसने शायद सुन लिया। अपना दाहिना हाथ उठाया—शायद आशीर्वाद देना चाहती थी, पर वह उठ नहीं सका और साथ ही उसकी गरदन भी एक ओर लुढ़क गई। मैंने चीख़कर कहा—'अरे, यह तो मर गई!'

अचरज, मैं क्या देखने आया था और क्या देख चला!

बुद्धकी शिक्षाओंका मर्मस्थान

भदन्त शान्तिभिक्षु शास्त्री

(गतांकसे आगे)

बुद्धके समयमें भी इसी प्रकारकी एक घटना हुई थी। मोलिय फग्गुण एक भिक्षु थे। उनका कुछ भिक्षुणियोंसे बहुत स्नेह था। स्नेहवश यदि कभी कोई उन भिक्षुणियोंके बारेमें कुछ भी शिकायत करता, तो मोलिय भिक्षु बड़े नाराज़ होते; यहाँ तक कि भिक्षुसंघके सामने इस बातकी शिकायत करते। वे भिक्षुणियाँ भी यदि आयुष्मान् मोलियकी कुछ शिकायत सुनतीं, तो बहुत बिगड़तीं और संघके सामने नालिश-फ़रियाद करतीं। लोगोंने भगवानसे यह बात कही। भगवानने मोलियको बुलाकर समझाया कि जो तुम्हें प्रिय नहीं है, उसे सुनकर तुम्हें बिगड़ना नहीं चाहिए। बुद्धने उनको एक कहानी सुनाई। इसी श्रावस्तीमें वेदेहिका नामकी एक सेठकी स्त्री थी। उसका बड़ा यश फैला था कि वह किसीसे लड़ती-झगड़ती नहीं; किसीको बुरा-भला नहीं कहती। उसके घरमें एक काली नामक दासी थी, जो बहुत मेहनतसे कामकर अपनी मालकिनको खुश किए रहती थी। उसने सोचा कि मालकिनकी परीक्षा लेनी चाहिए, इसलिए वह एक दिन ज़रा देरसे उठी। उसी दिन मालकिनने कहा—'दासी बड़ी दुष्ट है, बहुत दिन चढ़े उठती है।' ऐसा कह वह भौंहें टेढ़ी करती रही। दूसरे दिन दासी फिर देरसे उठी। फिर मालकिन ने बहुत बुरा-भला कहा। तीसरे दिन वह फिर देरसे उठी तब तो मालकिनसे न रहा गया और उसने किवाड़ी-किवाड़ खींचकर उसके सिरपर दे मारी। कालीका सिर फूट गया। कालीका रोना-धोना सुन अड़ोस-पड़ोसके लोग दौड़ आए। सब लोगोंने सारा हाल सुना, तो उन्हें जान पड़ा, जिस स्त्रीके बहुत शान्त और सरल समझते थे, वह केवल अपनी दासीसे देरसे उठनेपर इतनी बिगड़ उठी कि उसका सिर फोड़ डाला। इस कथाको सुनाकर बुद्धने समझाया कि अप्रिय सुननेपर भी यदि तुम शान्त बने रहोगे, तभी तुम्हें शान्त कहा जा सकता है।

बुद्धने अपनी शीलदेशनामें अपवाद नहीं रखे हैं। शील-पालनका समान भावसे उपदेश किया है। लाभ, यश, बन्धु, अंग, प्राण अथवा और किसीके लिए भी शीलका त्याग कर देना बुद्धको सम्मत नहीं है। आचार्य बुद्धघोषने शीलको तीन प्रकार का कहा है—'तण्टावसेन भवभोगत्थाय पवत्तितं हीनं, अत्तनो विमोक्खाय पवत्तितं मज्झिमं, सब्बसत्त विमोक्खाय पवत्तितं परमति सीलं पणीतं।' तृष्णावश संसारमें भोगके लिए किए शीलका आचरण किया जाता है, वह हीन शील है। दुनियामें अपना मान, आदर और अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिए लोग सदाचारका जीवन बिताते हैं, दान-पुण्य करते हैं। इस प्रकार

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्वारा प्राप्त सामाजिक विश्वासके सहारे उन्हें अपने संसारी जीवन में बहुत मदद मिलती है। ऐसे लोग भीतर दुराचारी भी हो सकते हैं; पर ऊपरसे पूर्णतया सदाचारी होनेका प्रयत्न करते हैं। ये लोग शीलका जो आचरण करते हैं, वह हीन है। त्यागियों और तपस्वियोंके दल अपनी मुक्तिके लिए जो शीलका आचरण करते हैं, वह मध्यम है। सम्पूर्ण प्राणियोंका दुःख दूर करनेके लिए शीलका जो आचरण किया जाता है, वह उत्तम है।

इस उत्तम शीलको पारमिता शील कहते हैं। पारमिता शब्दके दार्शनिक भावको वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितामें बुद्धने इस तरह बताया है: "परम पारिमितेयं सुभूते तथागतेन भाषिता यदुत अपारमिता···तेनोच्यते परम पारमिता।" पारमिताको हम पारमिता क्यों कहते हैं? उसे उत्तम क्यों कहते हैं? चूँकि उसका पार नहीं है, सीमा नहीं है, इसलिए उसे पारमिता कहते हैं। इस पारमिता या अपर्यन्त शीलके आचरणके व्रतीको बौद्ध साहित्यमें बोधिसत्त्व कहा जाता है। गीतामें कृष्णने कहा है:—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे॥

—धर्म-हानि और अधर्मकी वृद्धि होनेपर मैं जन्म लेता हूँ। साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका नाश और धर्मकी स्थापनाके लिए मैं युग-युगमें उत्पन्न होता हूँ।

पर पारमिता शीलका व्रती इस तरह नहीं सोचता। वह यह नहीं सोचता कि वह अधर्मियोंको तलवारके घाट उतारेगा, क्योंकि वह जानता है कि अधर्म करना प्राणियोंका स्वभाव नहीं है। अधर्म और पाप तो ऊपरी कार्य हैं, वे अपने-आपमें रोग नहीं हैं। रोग तो अधर्म और पापके मूलमें है। मूलमें क्या है? व्यासने महाभारतमें दुर्योधनके मुँहसे कहलवाया है:—

जानामि धर्मं न मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

—मैं धर्म जानता हूँ; पर उस ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं अधर्म जानता हूँ; पर उस ओरसे मैं निवृत्त नहीं होना चाहता। पता नहीं हृदयमें कौन देव बैठा है, वह जैसा कहता है, वैसा कर रहा हूँ।

जिस अधर्म करनेवालेको अधर्मका पता होनेपर भी यह पता नहीं कि वह पाप क्यों कर रहा है, पाप करनेमें उसका प्रयोजन क्या है, सचमुच वह पागलपनका शिकार है, पागलपनका रोगी है? बोधिसत्त्व ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करना चाहता है, उन पर कृपा करना चाहता है, उन्हें तलवारके घाट नहीं उतारना चाहता। आचार्य शान्तिदेवने इस प्रकारके अधर्मियों और अपराधियोंकी चर्चा करते हुए कहा है:—

प्रमादादात्मनात्मानं बाधन्ते कण्टकादिभिः।
भक्तच्छेदादिभिः कोपाद् गुरुपत्न्यादि लिप्सया॥
उद्बन्धन प्रपातैश्च विषापथ्यादि भक्षणैः।
निघ्नन्ति केचिदात्मानमपुण्या करणे न च॥
यदैवं क्लेशवश्यत्वाद् घ्नन्त्यात्मानमपि प्रियम्।
तदंषां पर कायेषु परिहारः कथं भवेत्॥ (बोधिचर्यावतार)

—कितने ही प्रमादसे काँटों आदिमें फँसकर अपनेको पीड़ा देते हैं। कितने ही किसीसे रूठकर उपवास रख अपनेको क्लेश देते हैं। कितने ही दुर्लभ स्त्री आदिके फेरमें पड़कर दुःख उठाते हैं। कोई फाँसी लगाकर लटके रहते हैं। कोई पहाड़से गिरकर जान देते हैं, कोई ज़हर खा लेते हैं, कोई हत्या-खून आदि अपुण्य करके अपना सत्यानाश किया करते हैं। इस तरह क्लेशकर (वासनाओंके वशमें होकर) जो लोग अपने-आपको ही मार डालनेमें लगे हैं, वे दूसरोंके साथ अपकार कैसे नहीं करेंगे?

ऐसे अपराधियोंपर, जो खुद अपना घात करनेपर तुले हैं, बोधिसत्त्वको भला क्रोध कैसे हो सकता है? उनपर तो उसे दया ही आती है:

क्लेशोन्मत्ती कृते स्वेव प्रवृत्ते स्वत्मघातने।
न केवलं दया नास्ति क्रोध उत्पद्यते कथम्॥ (बोधिचर्यावतार)

दयालु बोधिसत्त्व उन्हें मार नहीं सकता, मारनेका उपदेश नहीं दे सकता। और मार-काट तो एक अत्यन्त प्राचीन युगसे चली ही आ रही है। विष्णु तो अधर्मियोंको मारनेके लिए बार-बार अवतार लेते-लेते थक गए; पर अधर्म दूर न हुआ और बढ़ता ही गया। विष्णुकी यह नीति—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्।' (जो मुझे जैसा भजते हैं, मैं भी उनको वैसा भजता हूँ।) जगत्का उद्धार न कर सकी। बुद्धने साफ़ कहा है:—

नहि वरैन वेरानि सम्मन्तधि कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥ (धम्मपद)

—वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता। वैर तो अवैरसे ही शान्त होता है। यही सनातन धर्म है।

जो-कुछ भी हो, बोधिसत्त्व किसी भी दशामें आत्मघात करनेको तत्पर नहीं होता। वह प्रयत्न करता है कि इस पारस्परिक घात, पीड़ा, अधर्म और पापके मूलमें जमी द्रोह-भावना, जो तृष्णासे उत्पन्न होती है, शान्त हो जाय:—

एवं बुद्धवातु पुण्येषु तथा यत्नं करोम्यहम्।
येन सर्वे भविष्यन्ति मैत्र्यिताः परस्परम्॥ (बोधिचर्यावतार)

बोधिसत्त्व जिन पारमिता शीलोंका आचरण करते हैं, उनमें छः पारमिताओंका बौद्ध वाङ्मयमें जगह-जगह ज़िक्र आता है। वे हैं—दानपारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता और प्रज्ञापारमिता। प्राणियोंको सुख देनेके लिए

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बोधिसत्त्व दानपारमिताका अभ्यास करता है। बोधिसत्त्वका दान उन लोगोंके जैसा दान नहीं होता, जो कृपणतापूर्वक मन मारकर कुछ दे दिया करते हैं। 'चित्तशूराः खलु बोधिसत्त्वा भवन्ति'—बोधिसत्त्व चित्तशूर होते हैं। बोधिसत्त्व सब-कुछ दे डालते हैं। 'भवति...रतिपरित्यागी, परिवारपरित्यागी, चित्तपरित्यागी, सुख-परित्यागी, गृहपरित्यागी, वस्तुपरित्यागी, देशपरित्यागी, रत्नपरि-त्यागी, सर्वस्वपरित्यागी।' बोधिसत्त्व अपने लिए कुछ नहीं चाहते। उनका सब-कुछ प्राणियोंके लिए होता है। और तो और मोक्षकी भी उन्हें चाह नहीं है। उनकी घोषणा है :—

मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रामोद्य सागराः।
तैरेव नतु पर्याप्तं मोक्षे पारसिकेन किम॥

—प्राणियोंके दुःख मुक्त होनेसे जो सुख मिलता है, वही बहुत काफ़ी है। नीरस मोक्षसे क्या लेना-देना।

तिब्बतके सम्राट् मु-नि-बूचन् पो (७८५-८६)पर बोधिसत्त्वों के इस आदर्शका बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने आसपासकी जनताकी ग़रीबी देखी और उनका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने धनके मदमें मत्त लोगोंके उस अमानुषीय व्यवहारको भी देखा, जो ग़रीबोंको सहना पड़ता था। उनके हृदयको बहुत दुःख हुआ। वे अपनी दुःखी प्रजाके दुःख दूर करनेके लिए चिन्तित हो उठे। उनकी समझमें आया कि यदि धनका समान वितरण कर दिया जाय, तो यह दुःख हलका हो जायगा। उन्होंने धनको समान भावसे बँटवा दिया। पर उस समय देश इतने बड़े प्रयोग के लिए तैयार न था। फिर जब तक श्रमके समवितरणका प्रबन्ध न कर दिया जाय, तब तक धनके समवितरणका प्रयोग सफल नहीं हो सकता था। इसी कारण यह प्रयोग सफल न हो सका। सम्राट्ने तीन बार अर्थका समवितरण किया। बादमें यह बात उनकी माताको भी असह्य हो उठी और माताके विष द्वारा उस चित्तशूर महात्माने अपना शरीर छोड़ा।

चित्तशूरताकी यह एक ऐतिहासिक घटना है। जातकमें, पौराणिक कथाओंमें इस तरहकी चित्तशूरताके उदाहरण भरे पड़े हैं। चित्तशूरताका यह आदर्श और इस आदर्शके पीछे अपना सर्वस्व समर्पित करनेको—यहाँ तक मु-नि-बूचन् पोकी तरह अपना शरीर छोड़ने तकको—कोई पागलपन भले ही कहे; पर उनका वह पागलपन एक बहुत पवित्र उद्देश्यसे था। उनकी मानवता पूर्ण विकासपर पहुँच चुकी थी। वे मनुष्यको दुःखी देखकर पिघल उठे थे और मानवीय दुःख दूर करनेके लिए स्वयं बड़े आनन्द तथा सुखके साथ सारी पीड़ाओं और यन्त्रणाओंको सहनेको तैयार थे।

दानके बारेमें ही नहीं, सभी शीलोंके बारेमें बोधिसत्त्व चित्तशूर होता है। बुद्धको लोगोंने वसल कहकर अपमानित किया, मुण्डक कहकर दुत्कारा। उनपर तरह-तरहके लांछन लगाए; पर बुद्ध सहज भावसे उन्हें सहते रहे। जब मैं ही वर्ष पहले जयपुरमें अलंकारशास्त्रका अभ्यास कर रहा 'साहित्य-दर्पण'में एक श्लोक पढ़ा :—

अनेन लोकगुरुणा सतां धर्मोपदेशिना।
अहं व्रतवती स्वैर मुक्तेन किमतः परम्॥

—सज्जनोंको धर्मोपदेश करनेवाले, इस लोकगुरुने मुझ अबला साथ ज़बरदस्ती···क्या किया, उसे और क्या कहूँ। श्लोक व्याख्या करते ग्रन्थकारने स्वयं आगे कहा—'अत्र प्रतीयमानेन शाक्यमुनेः तैर्थिक दोषिति बलात्कारोपभोगः फुटतया मान इत्य गूढम्।' यहाँ शाक्यमुनि अर्थात् बुद्धका परिव्राजिकाके साथ बलात्कारोपभोग व्यंग्य होते हुए भी वाच्यकी तरह मालूम होता है, यह अगूढ़ व्यंग्यका उदाहरण है। मुझे समय बुद्ध और उनके साहित्यके बारेमें कुछ भी पता न था मेरे साहित्यके अध्यापकका भी यही हाल था। उन्होंने बड़े आश्चर्यके साथ कहा—'इतने आचारनिष्ठ व्यक्ति भी प्रकारके अपवादोंसे बच न पाए!' यह बात मेरे हृदयमें रही। बौद्ध साहित्यके अध्ययनमें लग जानेपर मुझे चिंचा विकाकी कहानी मिली। तब जाकर इस श्लोककी गाँठ खुली

बुद्धका बड़ा यश फैला था। बुद्धके आगे दूसरे तैर्थि लोगोंकी कुछ पूछ न होती थी। उन्होंने सोचा कि बुद्धके नामी करानी चाहिए। चिंचा परिव्राजिका बहुत सुन्दर थी। तैर्थिकोंने उसको सिखाया कि तू किसी तरह श्रमण गोतमको बदनाम कर। चिंचाने उनकी बात मानकर जेतवनकी ओर, जब बुद्ध रहते थे, तब जाती, जब बुद्ध उपासक बुद्धका दर्शन लौटते। वह जेतवन न जाकर जेतवनके समीप तैर्थिकारामें रहकर वहाँ सबेरे लौटती और रास्तेमें बुद्धके दर्शनार्थ जानेवाले उपासक उसे लौटते हुए देखते। रोज़ाना उसे आते-जाते देखकर उन्होंने उससे पूछा—'तू कहाँ शामको जाकर सबेरे लौटती है?' पहले तो वह यह कहकर टालती रही कि तुमसे क्या मतलब, मैं कहीं जाती होऊँ; पर बादमें वह कहने लगी कि मैं श्रमण गोतमके पास एक ही कुटीमें वास करके लौटी हूँ। एक दिन उसने लकड़ीकी एक मण्डलिका पेटपर बाँध जेतवनमें गई और सब लोगोंके सामने बुद्धसे कहा—'श्रमण, मेरा गर्भ पूरा हो गया है, आप मेरे लिए कुछ प्रबन्ध क्यों नहीं कर देते?' बुद्धने सुना और इतना ही कहा—'बहन, मेरे-तेरे बीचकी बात मैं और तू ही जान सकते हैं।' दैवयोगसे वह मण्डलिका उसके पेटसे गिर पड़ी और लोगोंको मालूम हो गया कि वह सब छल था।

चौदहवीं शताब्दीमें होनेवाले विश्वनाथ कविराजने 'साहित्य दर्पण'में उद्धृत श्लोकपर टिप्पणी देते हुए इसी कथाकी ओर इशारा किया है। इसी तरहके अनेक अपवादों और कल्पित

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का सामना करते हुए बुद्ध कदापि विचलित नहीं हुए। उन्होंने सबको क्षमा किया और सबको क्षमाका उपदेश दिया। निन्दा और अपवाद ही नहीं, प्राणपर आ बननेपर भी बुद्धने क्षमाको त्यागना कभी उचित नहीं समझा। भगवानने कहा है—"उभतो दण्डकेन पि के भिक्खवे ककचेन चोरा ओचरका अंगभंगानि ओकन्तेय्युं तथापि यो मन्ते पटूसेय्य न मे तेन सो सासन करो। तथापि वो भिक्खवे एवं सिक्खितब्यं न चेव चित्तं विपरियतं भविस्सति न च पापकं वाचं निच्छारेस्साम···विहरिस्सामेति।" अर्थात् भिक्षुओ, चोर-लुटेरों द्वारा दोनों ओर मूँठवाले आरेसे अंग-अंग चीरे जानेपर भी जो मनको दूषित न करे, वह मेरे धर्मके अनुसार चलनेवाला है। भिक्षुओ, उस दशामें भी तुम्हें यों सीखना चाहिए कि मैं अपने चित्तको विकार-युक्त न होने दूँगा, दुर्वचन न निकालूँगा, वैर-रहित हो विहरूँगा। आचार्यशान्तिदेवने कहा है :—

प्रतिमास्तूप सद्धर्म नाशकाक्रोशकेषु च।
न युज्यते मम क्रोधो बुद्धादीनां न हि व्यथा॥

—प्रतिमाओं, स्तूपों और सद्धर्मका नाश करनेवाले, बुरा-भला कहनेवालेके प्रति क्रोध करना ठीक नहीं है। बुद्ध और बोधिसत्वोंको इससे पीड़ा नहीं होती।

ज्ञानके प्रति अपार जागरूकता, आडम्बर-हीनता, अपार उदारता, जिसमें किसी प्रकारके सामाजिक भेद-भावोंको स्थान नहीं, प्रणहितके लिए सर्वस्व निछावर करनेकी कामना और अपार क्षमाके कारण भगवान बुद्धका सन्देश उस प्राचीन समयमें, जब यातायातके साधन सुलभ न थे, जाति और देशकी सीमा लाँघ कर सारे पूरबमें फैल गया। इस धर्म-विजयमें कहीं एक भी बूँद खून न गिरा। बौद्ध धर्म चीन गया, और उसने वहाँकी सब बातोंपर प्रभाव डाला। क्या साहित्य, क्या कला, क्या विज्ञान सबको उसने अमूल्य दान दिया। तिब्बतका भारतसे सम्बन्ध ७वीं शतीमें शुरू हुआ। उस समय वह बिलकुल असभ्य था। वहाँ वर्णमाला न थी, फिर साहित्य कैसे होता? सम्भोटने यहाँकी वर्णमाला ले पहले-पहल तिब्बती भाषाके लिखनेकी प्रथा चलाई और तिब्बतीका व्याकरण बनाया। चीन और तिब्बतमें एक विशाल वाङ्मय केवल बौद्ध ग्रन्थोंके अनुवादका है। बौद्ध धर्म जहाँ गया, वहाँ उसने लोगोंको सब तरहसे प्रभावित किया; पर उसने किसी जातिकी संस्कृति और साहित्यका लोप नहीं किया, प्रत्युत कुछ नई भेंट ही दी। भारत बुद्धकी शिक्षाओंको लेकर आज भी गर्व कर सकता है। बुद्धकी शिक्षाओं में भारतीय हृदयका उदारतम रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। बुद्धने अपनी शिक्षाओंके मर्मकी ओर संकेत करते हुए कहा है—"इह मैत्रेय प्रतिभानं सत्योपसंहितं भवति नासत्योपसंहितं, धर्मोपसंहितं भवति नाधर्मोपसंहितम्, क्लेशहायकं भवति, न क्लेश वर्धकम्, निर्वाणगुणानुशंस सन्दर्शकं भवति न संसारगुणानुशंस सन्दर्शकं। यस्य कस्यचिन्मैत्रेय एमिश्चतुर्भिः कारणैः प्रतिभानं प्रतिभाति प्रतिभास्यति वा तत्र श्राद्धैः कुलपुत्रैः कुलदुहितृभिर्वा बुद्धसंज्ञोत्पादयितव्या शास्तृसंज्ञा कृत्वा। सधर्मः श्रोतव्यः। तत्कस्य हेतोः। यत्किंचिन्मैत्रेय सुभाषितं तत्सर्वं बुद्ध भाषितम्।" मैत्रेयनाथनेकहा है :—

यदर्थं बद्धर्मपदोपसंहितं त्रिधातु संक्लेश निबर्हणंवचः।
भवेच पच्छा न्यनुसंशदर्शकं तदुक्तमार्षं विपरीतमनन्यथा॥

—सत्य, धर्म, दुःख दूर करनेकी प्रवृत्ति, वैराग्य ही ऋषियोंकी वाणीका सार है।

इस तरह हम देखते हैं कि बुद्धकी शिक्षाओंका केन्द्रबिन्दु मनुष्यका मानसिक जगत् है। भौतिक जगत्में भेद रह सकता है; पर मानसिक जगत्में समभाव लाया जा सकता है। भौतिक जगत्में चलनेके लिए मनको संवृत रखना बहुत ज़रूरी है। एक जगह इस बातको उपमा द्वारा समझाया गया है। पृथिवीपर चलते समय पैरमें काँटे चुभनेका डर रहा करता है। यह सम्भव नहीं है कि पृथिवीको काँटेसे रहित कर दिया जाय और न यही सम्भव है कि पृथिवीको चमड़ेसे ढँक दिया जाय; पर यह किया जा सकता है कि पैरको चमड़ेसे ढँक लिया जाय। यदि पैर चमड़ेसे ढँक गया, तो समझिए कि सारी पृथिवी चमड़ेसे ढँक गई। इसी तरह इस संसारमें यह तो सम्भव नहीं कि बुरे लोग और बुराइयाँ न रहें। 'कियतो मारयिष्यामि दुर्जनान् गगनोपमान्'—आकाशके समान अनन्त दुर्जनोंको मारकर खत्म नहीं किया जा सकता। इस तरह दुर्जनता नहीं मिटाई जा सकती; पर हम अपने मनको इस योग्य बना सकते हैं कि हमें दुर्जनोंकी दुर्जनतासे क्लेश न मिले। मनमें सब प्राणियोंके प्रति निर्वैर भावनाको उत्तेजित करना ही बुद्धकी शिक्षाओंका ध्येय है :—

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं॥

—जयसे वैर होता है, पराजित दुःखी होता है। जय-पराजय छोड़ शान्त मनुष्य सुखी होकर सोता है। यही निर्वैर भावना, यही मानसिक विजय बुद्ध-वचनोंका सार है। कहा भी है—'धर्म समासतोऽहिंसां वर्णयन्ति तथागताः।' (समाप्त)

पावस-गीत

बरसो, बरसो, हे सघनश्याम; बरसो, बरसो, नयनाभिराम!
बरसो वन-उपवनमें अपार, बरसो गृह-आँगनमें अपार;
बरसो सरिता-सर में अपार, बरसो गिरि-निर्झरमेंअ पार।
शीतल कर दो तुम धराधाम; बरसो, बरसो, हे सघनश्याम!
हीरे-सी मोती-सी सुन्दर, बरसो लघु-लघु बूँदें प्रियतर;
बरसो दिशि-दिशि घिर-घिर फिर-फिर, बरसो नभ-सागरको तिर-तिर
वसुधाको करदो पूर्णकाम; बरसो, बरसो, हे सघनश्याम!

—श्री सोहनलाल द्विवेदी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शिमलासे मसूरी

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

(गतांकसे आगे)

त्यूनीमें दो दिन विश्राम करके हम कथ्यानके लिए रवाना हो गए। डाकबँगला टोंस और पावरकी सम्मिलित विशाल धाराके तटपर है। यद्यपि त्यूनी खासी गरम जगह है, पर नदीके शीतल स्नानका आनन्द गर्मी महसूस नहीं होने देता। एक काम और निकल आया। शिमलासे चले हुए क़रीब दो सप्ताह हमें हो गए थे। मैले कपड़ोंकी एक पूरी गठरी हमारे साथ हो चली थी। रास्तेमें पानीकी सुविधा न होने और खुली धूप न मिलनेसे उन्हें धोना कठिन था। त्यूनीमें दोनों सुविधाएँ थीं। नदी-तटपर बड़ी-बड़ी शिलाएँ अपने सपाट आसन लिए हमारा आवाहन कर रही थीं। सर्दीमें चूल्हेपर और गर्मीमें नदीपर बैठना काम न होकर आराम अधिक है। गर्मी खूब तेज़ थी, धूप भी निखरकर निकली थी। हमने तटकी शिलाओं पर आसन जमाया और घण्टे-भरमें सब कपड़े धो डाले। नहा-धोकर आए, तो नौकरने भोजन तैयार कर रखा था। हम ब्राह्मण नहीं, तो भी नहा-धोकर जो थालीपर बैठे, तो ग़ज़ब ही ढा दिया!

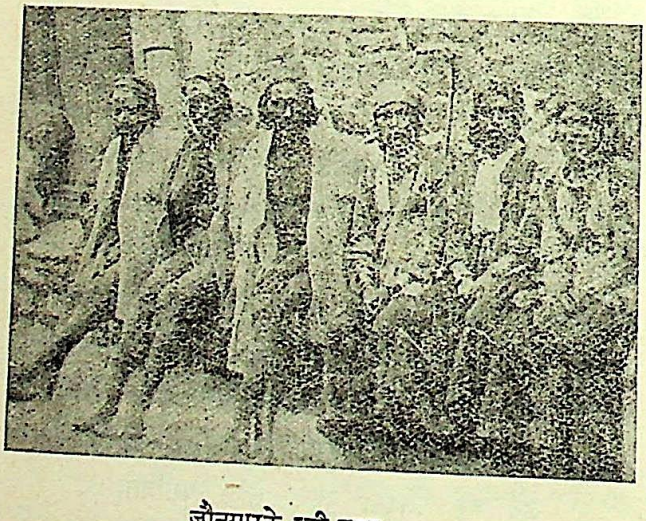

जौनसारके स्त्री-पुरुष

त्यूनीसे कथ्यान १२ मील है; पर हम छोटे रास्तेसे चले, जो ८ मील था। चार मील तकका रास्ता बड़े मज़ेमें कट गया। टोंस नदीने हमारा साथ दिया। प्रातःकालका सुहावना समय था। सौभाग्यसे हल्के-हल्के बादल आकाशमें छाए थे। चढ़ाई होनेपर भी हमें अखरी नहीं। घने जंगलोंके बीचसे होकर हम जा रहे थे। रह-रहकर एक अज्ञात पंछी किसी अज्ञात शाख़ापर बैठा बीच-बीचमें कूक उठता था। मनपर एक नशा-सा छा गया।

हम एक ऐसे मार्गपर चल रहे थे, जो शेष संसारसे एकदम विच्छिन्न होकर अकेला चल रहा था। अब तककी यात्रामें डाकखाने थे, डाकबँगले थे, दुकानें थीं और गाँव थे। त्यूनीसे चकरौते तककी यात्रामें यह सब, कुछ भी नहीं था। [illegible] बाद कभी-कभी कोई जौनसारी पुरुष या स्त्री अपने किसी [illegible] पहाड़ी झोंपड़ेसे अलग होकर रास्तेमें मिल जाती, तो [illegible] अकेलापन टूट जाता। इस अकेलेपनको दूर करनेकी धुनमें [illegible] नौकर एक चार एक जौनसारी लड़कीसे मेलजोल बढ़ाने [illegible] देर तक छलनेकी कोशिश करता रहा। अपनेको सफल [illegible] लेनेके कारण वह हमारे और भी अधिक मनोविनोदका [illegible] बन गया।

त्यूनी ३००० फ़ीट ऊँचा है और कथ्यान ७००० [illegible] चार मीलके बाद महेंद्रु गाँवसे हम जब टोंसका साथ छोड़कर आगे बढ़े, तो धूप तेज़ निकल आई थी। चढ़ाई भी खासी [illegible] सारी यात्रामें पहली बार चलना एक मुसीबत जान पड़ी। जंगल भी समाप्त हो चुका था। सामने एक छोटा-सा [illegible] दिखाई दिया, जिसपर प्रगल्भा नायिकाकी तरह एक स्थूल [illegible] अपने हाथ फैलाकर बेहद छा गई थी और वह [illegible] बेचारा किसी तरह उसके जालसे अपना सिर ऊपर निकाले [illegible] रहा था। इतनी शिद्दतकी गर्मी होनेपर भी ग़नीमत यह थी कि रास्तेमें चीड़की पत्तियाँ बिछी थीं, जो मानो मखमली बिछौनेका काम दे रही थीं। हम चलते ही गए, क्योंकि हमें चलना था। कथ्यान ३ मील दूर रह गया था। रास्तेमें एक सुन्दर स्थान मिला। हम वहीं बैठ गए। इधर-उधरसे लकड़ियाँ बीनकर [illegible] जलाई और रोटी बनाने लगे। उस दिन सूखी रोटी [illegible] अरहरकी अधपकी दालमें जो स्वाद आया, वह बड़े-बड़े [illegible] भोगोंमें भी कहाँ? खा-पीकर बड़ी देर तक ताश खेलते रहे, पुस्तक पढ़ते रहे। शाम होते-होते हमारा छोटा-सा काफ़िला फिर चलनेको तैयार हो गया। खच्चरोंकी जोड़ीको, जो [illegible] होकर हरी-हरी घास चर रही थी, पकड़कर फिर कस दिया गया।

कथ्यान पहुँचनेपर हमारी समस्या यह थी कि ठहरनेका प्रबन्ध कहाँ किया जाय? जंगलातके रेंजरकी चौकी थी; पर सौभाग्यसे फ़ारेस्ट-आफ़ीसरके अपने रहनेका बँगला हमारे लिए खोल दिया गया। बँगला कोई ७५०० फ़ीटकी ऊँचाईपर था। चारों ओर देवदारुका सुरम्य घना जंगल था। ऊपर एक पहाड़ी झरनेसे लकड़ीका पतनाला लगाकर पानी लाया गया था। हवामें एक भीनी सुगन्ध थी। यही वे स्थान हैं, जहाँ अनायास सात्त्विक भावोंका उदय होकर मन एक अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब जाता है।

टोंस और यमुनाके बीचका प्रदेश जौनसार कहलाता है। कथ्यान भी इसी जौनसार प्रदेशमें है। यह प्रदेश अपनी विचित्र प्रथाओंके लिए विख्यात है। चार-पाँच भाई मिलकर एक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारा काफ़िला (कुहरेमें)

तटपर मसूरीसे ६-७ मील पहले पं० धर्मदेव शास्त्रीने अशोकाश्रमकी स्थापना करके यहाँ सुधार और शिक्षाका कार्य प्रारम्भ किया है। इस आश्रमने जौनसारके घने पहाड़ी प्रदेशोंमें जो महान कार्य आरम्भ किया है, वह एक दिन अवश्य फल लायगा।

३ जुलाईको हम मुण्डालीके ऊँचे शिखरका आनन्द ले रहे थे। कथ्यानसे ८ मीलके इस पड़ावमें चढ़ाई और उतराई दोनोंका आनन्द है। पहले तीन मील तक लगातार उतराई है। रास्तेमें धानके खेत और आड़ूके पेड़ बहुत हैं। छोटी-छोटी नदियों और झरनोंसे मार्ग अत्यन्त मनोरम है। पहाड़ी रास्तोंमें छोटी-छोटी पगडण्डियोंसे रास्ता काटकर छोटा किया जा सकता है। तीन मीलकी उतराईके बाद तीन मीलके क़रीब रास्ता सपाट मैदान है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं।

जौनसार-क्षेत्रकी एक स्त्री

स्त्रीसे ब्याह करते हैं। पहली सन्तानका पिता सबसे बड़ा भाई समझा जाता है। इधरके लोग प्रायः शामको स्नान करते हैं। अफ़ीमका प्रयोग खूब किया जाता है और वह खुलेआम बिकती है। आसपासकी पहाड़ी रियासतोंमें पोस्तका जितना प्रचार और व्यापार है, उसका अधिक श्रेय जौनसारको ही है। यहाँकी स्त्रियोंको भगवानने शारीरिक सौन्दर्य प्रदान करनेमें काफ़ी उदारतासे काम लिया है; और वे अपने सौन्दर्यका आगे वितरण करनेमें भी कंजूसी नहीं करतीं! अपने झोंपड़ेमें पधारे हुए अतिथिदेवके लिए उनका सब-कुछ समर्पित है! पर उनकी यह सेवा और उदारता विवाहिता स्त्रियोंके बारेमें एकदम लागू नहीं होती। प्रत्येक पुरुष इस बारेमें भयंकर रूपसे कट्टर है। हाँ, यदि स्त्री स्वयं किसी पतिवर्गको छोड़कर बाक़ायदा दूसरे कुलमें सम्बन्ध जोड़ना चाहे, तो उसे खुली छुट्टी है। जौनसारी स्त्री कभी विधवा नहीं हो सकती, और इस बातका यहाँके लोगोंको अभिमान है। यहाँके समाजमें उनकी अपनी प्रथाएँ और रिवाज इतना घर कर गए हैं कि अंगरेज़ी सरकारके क़ानून उनपर कम ही लागू किए जाते हैं। उनकी अपनी पंचायतें होती हैं, जो फ़ैसले किया करती हैं। गाँवमें एक मुखिया होता है, जिसे गाँवके लोग 'सयाना' कहते हैं। बाहरका यात्री किसी गाँवमें चला जाय, तो उसे सयानेके पास पहले जाना होता है। देवी-देवता, भूत-प्रेत और जादू-टोनेमें इनका बेहद विश्वास है। निरक्षरता अपनी जड़ें जमाए है। सरकारकी ओरसे कोई अस्पताल तक नहीं। खुले भी, तो जौनसारी लोग उनका पूरी तरह बहिष्कार करके उन्हें व्यर्थ बना देते हैं। अभी हालमें यमुना-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जौनसार-क्षेत्रका एक पुरुष

रास्तेमें आड़ू और खुमानियोंके पेड़ मिले। हम सभीका बारी-बारीसे उपभोग करते चले गए। पहाड़ी मिले, उनकी लम्बी-लम्बी सलामें कबूल कीं। पहाड़िनें मिलीं, उनकी छवि आँकते चले गए। हमारे खच्चर बढ़ते चले जा रहे थे—बोझा लादे, सिर झुकाए। जंगल घना हो चला था। मुण्डाली यहांसे ३ मील रह गया था। चढ़ाई यद्यपि बड़ी सख्त थी, पर रास्ता इतना मनोहर और शीतल था कि खला नहीं। चारों ओर हरियाली थी। विविध वर्णोंके फूल खिलते थे। विधाताके कुशल हाथोंने यहाँकी वनश्रीका अद्भुत शृंगार किया था। अंग्रेज़ इस वनकी शोभाका मुक्तकण्ठसे गुणगान किया है। रास्ते का एक झरना मिला, जिसके ऊपर पत्थरका पक्का चबूतरा यात्रियोंके लिए पानी पीनेकी सुविधा कर दी गई है। पानी इतना शीतल और मीठा था कि हम पीते गए। चारों ओर सन्नाटा साँस खींचे खड़ा था। हम करते, सारे जंगलको गुँजाते चले जा रहे थे। ऊँचाईपर जंगलातवालोंका एक सुन्दर बँगला है, ही देहरादूनके फ़ारेस्ट इंस्टीट्यूटके छात्रोंके लिए हैं। पानीकी असुविधा एक ऊँचे झरनेसे जोड़कर दूर कर दी गई है।

मुण्डालीका दृश्य कथ्यानसे कहीं सुन्दर था। यात्रामें तीन पड़ाव प्राकृतिक सौन्दर्यमें अपना सानी नारकण्डासे बागी, कथ्यानसे मुण्डाली और मुण्डालीसे नारकण्डासे बागी आते हुए बीचके वनोंकी स्तब्धतामें गूँजनेवाला दिव्य राग सदा हमारे कानोंमें प्रतिध्वनित रहेगा। कथ्यानके बँगलेसे सामनेका सूर्यास्तका दृश्य और मुण्डालीका भयावह सूनापन हमारी यात्राकी अनमोल हैं। मुण्डालीमें हम सिर्फ एक रात ही रहे। दूध-घी अच्छा मिल जाता है। दो-तीन मीलपर गूजर हैं, संसारसे अभी न मिल पानेके कारण मिलावटके दोषसे

४ जुलाईको हम मुण्डालीसे चकरौता पहुँच गए। मील लगातार चल आनेके कारण हम थक गए थे। पहुँचते रात हो आई। मुण्डालीसे चलते ही हमें दो चढ़ाई चढ़नी पड़ी। हम खडाम्बेकी चोटीको ओर जा जो १० हज़ार फ़ीट ऊँची है। इतनी ऊँचाईपर जंगल और पेड़ोंका राज्य समाप्त होकर हरी-हरी घासके होते हैं। चीड़के पेड़ तो ६-७ हज़ार फ़ीटपर ही समाप्त हैं और अपना स्थान देवदारुके पेड़ोंको दे देते हैं। चोटीपर पहुँचते ही बाईं ओर एक विशाल घाटी दूर तक हुई दृष्टिगोचर हुई। हम ऊँचेपर खड़े विजयी खिलाड़ीकी चारों ओर उल्लासके साथ दृष्टि दौड़ा रहे थे। फूलोंकी थी, उनके मादक सौरभसे दिमाग़ घूम जाता था। बादल नीले और बैंगनी रंगके पुष्प अपनी-अपनी ओर बुला रहे रास्ता अब न चढ़ाईका था, न उतराईका। दो मील तक तरह चलते चले गए। मुण्डालीसे चलते वक्त बादलों स्वागत किया था; पर अब वह भी हमारे मार्गकी शीतलता जा चुकी थी। मुण्डालीसे ५-६ मीलपर जंगलातकी एक सी चौकी मुख्य सड़कसे ज़रा नीचे हटकर है। वहीं कर हमने सुबहका भोजन बनाया। खाते-पीते और करते वक्तका खयाल न रहा। चलने लगे, तो पता

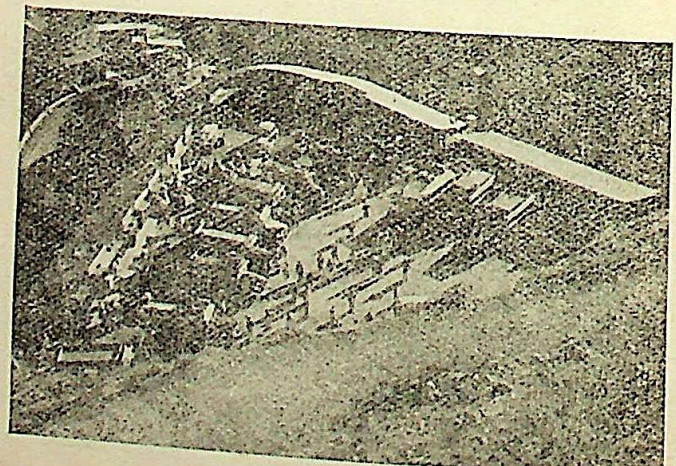

मसूरीका मोटर-स्टैण्ड (ऊपरसे)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४॥ बज चुके हैं। १० मील अभी चलना था, जिसका मतलब था कि चकरौता पहुँचनेसे पहले रात अवश्य पड़ जायगी। रास्ते के जंगलमें भालुओंका डर था और हमसे कुछ दिन पहले एक मोटर-दल दुर्घटनाका शिकार भी हो चुका था। अतः हम लोगोंने कदम तेज़ किए और दौड़ लगाई। चकरौता हमें अपनी यात्रा का अन्तिम उद्देश्य जान पड़ता था।

चकरौता पहुँचकर घड़ी देखी, तो पता लगा कि सिर्फ़ ७ बजे हैं। गोया २॥ घण्टेमें हम लोगोंने १० मीलकी दौड़ लगा ली थी। चकरौता एक फ़ौजी छावनी है, जो भारतकी तिब्बती कैम्पके निकट होनेके कारण क़ायम की गई है। देहरादून-ज़िले की यह एक बड़ी तहसील है। यहांसे सहारनपुर और देहरादून मोटरें आती-जाती हैं। हम जंगलातके बँगलेमें ठहरे, जो मुख्य बस्तीके एक किनारेपर था। मुख्य बस्ती यहांसे लगभग दो मील दूर है। बीचमें मालपर घूमनेका खूब आनन्द उठाया जा सकता है। फ़ौजकी परेडका मैदान भी आकर्षक है, जिसके एक किनारेपर किराएके घोड़े लिए उनके मालिक मुसाफ़िरोंको सवारी के लिए अपनी-अपनी ओर खींचते हैं। चकरौतेका मुख्य बाज़ार एक ऊँची पहाड़ीपर बसा है, जिसपर जानेके लिए सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। नीचे मोटरका अड्डा और देहरादून जानेवाली सड़का फाटक है। चकरौतेका प्रपात अत्यन्त भव्य है। बाज़ारसे उतरते ही इसका रास्ता अलग हो जाता है और यह वहाँसे तीन मीलपर है। शुरू-शुरूमें रास्ता ठीक है, पर आगे जाकर वह लुप्त हो जाता है। एकदम उतार है। नीचे गड्ढेमें एक स्वच्छ जलधारा बह रही है, जो पहाड़के ऊपरसे आती है। वहाँ आगे रास्ता न पाकर सवा सौ फ़ीटका प्रपात बनाकर वह नीचे गिरती है। उसकी गर्जना बड़ी दूरसे सुनाई देनी शुरू हो जाती है। जल बर्फ़की तरह सुन्न कर देनेवाला है और उसकी शीतल फुहारें तन-मनको भिगो देती हैं।

चकरौतेमें हम दो दिन रहे। यहाँ प्राकृतिक दृश्यों और शहरी रौनकका सुन्दर मेल है। सारा शहर बिजलीसे जगमगा रहा है। मालपर एक जगह हिमालय प्वाइंट है। यहाँसे बदरीनाथ, केदारनाथ और कंचनजंघा आदिकी उच्चतम चोटियाँ मौसम अच्छा होनेपर दिखाई देती हैं। जलवायु यहाँका अत्यन्त उत्तम है। हमें तो यह स्थान मसूरीकी अपेक्षा अधिक जँचा। काश्मीर को पर्वतोंका राजा और मसूरीको पर्वतोंकी रानी कहा गया है। पर हमें तो राजाके सामने रानी बड़ी फीकी मालूम हुई! चकरौता पहुँचते ही हमारे काफ़िलेमें बग़ावत हो गई—खच्चरवाला जवाब दे बैठा! उसे मालूम था कि हमें अब देहरादूनके लिए यहाँसे मोटर मिल सकती है और हम मसूरी आरामसे पहुँच सकते हैं। हमारे नौकरको उसने फोड़कर अपनी ओर कर लिया। श्रीमतीजी 'चलनोऽब कितो'के संकोचमें पड़कर न कुछ पूछ सकीं, न चुप ही रह सकीं। स्वदेशका उत्साह मेरी ओर था, पर बालककी सम्मतिका मूल्य ही क्या? आखिर मुझे हार माननी पड़ी और ४० मीलकी पैदल यात्रा करके मसूरी पहुँचनेके बजाय हमने मोटरकी शरण ली और देहरादून होकर मसूरी पहुँचे।

६ जुलाईको हम लोग मसूरी पहुँचे। मसूरी युक्त-प्रान्तवालों का काश्मीर है। कानपुर और लखनऊके व्यापारियोंको जब मैं मसूरीकी तारीफ़ोंके पुल बाँधते सुनता हूँ, तो हँसी आए बिना नहीं रहती। यह ठीक है कि यहाँ घूमनेके लिए कैमल्स बैक रोड और देखनेके लिए लायब्रेरी बाज़ार काफ़ी अच्छा है; पर पहाड़की दो नियामतों—प्राकृतिक दृश्य और उत्तम जलवायुका यहाँ विशेष लाभ नहीं है। पानी भारी है और मई-जूनमें उसका मिलना भी भारी हो जाता है। लायब्रेरी बाज़ारसे देहरादूनका दृश्य सुन्दर है, पर जिसने काश्मीर और कुल्लूके सुन्दर दृश्य देखे हों, वह इस तरहके एक-दो दृश्योंके कारण मसूरीको ऊँचा दर्जा नहीं दे सकता। हाँ, यहाँका ठाठ-बाट ज़रूर निराला है। बड़े-बड़े नवाब और ताल्लुकेदार शाम होते ही सजे-धजे जब बाहर निकलते हैं, तो मानो मसूरीके भाग्य जग जाते हैं। सिनेमा, क्लब, नाचघर और आधुनिक युगके सभी प्रमोद यहाँ सुलभ हैं।

मसूरी मुख्यतया दो भागोंमें बँटा है। पश्चिममें अधिकतर सुन्दर कोठियाँ और अंगरेज़ी ढंगकी दुकानें हैं। पूर्वके भागको लंघौर कहा जाता है। दोनोंके मध्यमें टाउन-हाल तथा कुलरी बाज़ार है। मसूरीमें देखने लायक स्थान अधिक नहीं हैं। सैर की दृष्टिसे तीन स्थान हैं—हैपी वैली, कैमल्स बैक रोड तथा लाल टिब्बा। कैमल्स बैक रोडपर प्रायः प्रतिदिन लोग सैर करने जाते हैं। यह कुलरी बाज़ारसे शुरू होकर मसूरीके उत्तरकी ओर चली जाती है और एक पहाड़की पीठके साथ-साथ होकर पश्चिम में मालके साथ लायब्रेरीके पास जा मिलती है। पहाड़का घुमाव ऊँटकी पीठकी तरहका होनेसे ही इस सड़कका नाम कैमल्स बैक रोड पड़ा है। तीन मीलकी इस सैरमें शीतल समीर और छायादार वृक्षोंके कारण बड़ा आनन्द मिलता है। हैपी वैली मसूरीके एक किनारेपर है और काफ़ी रमणीक है। किसी समय यहाँ एकान्त और शान्त स्थान था; पर अब तो जगह-जगह बँगले बन गए हैं। लाल टिब्बा मसूरीसे काफ़ी ऊँचाईपर है और चढ़ते-चढ़ते आदमी थक जाता है। इसका रास्ता लंघौर होकर जाता है। आकाश जब साफ़ हो, तब लाल टिब्बेपर खड़े होकर चारों ओरकी पर्वतमालाका आनन्द लिया जा सकता है। लंघौरसे एक मार्ग गंगोत्रीको भी जाता है।

इन स्थानोंके अतिरिक्त हवाघर और तिलक-पुस्तकालय भी दर्शनीय हैं। हवाघरसे अभिप्राय उस बड़े जलस्रोतसे है, जहाँसे मसूरी नगरको म्युनिसिपल-कमेटीके नलसे पानी मिलता है। एक लोहेका रेलगाड़ीका-सा छोटा डिब्बा अधरमें लटक रहा है, जो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मोटे-मोटे लोहेके रस्सों द्वारा क़रीब १५०० फ़ीट ऊपर आकाश में ही बिजली द्वारा खींचा जाता है। इसीमें हम बैठ गए और ऊपर चढ़ने लगे। हितोपदेशकी कहानीके कपोतोंकी तरह, जो शिकारीका पिंजरा ही लेकर उड़ भागे थे, हम उस डिब्बेमें बन्द ऊपर उड़े जा रहे थे। नीचे देखते ही डर लगता था। हम आँखें बन्द किए बैठे थे।

मसूरीमें हम १०-१२ दिन रहे और फिर हरद्वार ... ८ अगस्तको लाहौर वापस पहुँचे। १० जूनको हम ... चले थे। इस तरह क़रीब दो मासकी यह सरकारी ... हमारे जीवनमें सदा अंकित रहेगी।

बैंक आफ़् इंग्लैण्ड

श्री रामपूजन तिवारी, एम० ए०

ब्रिटिश पार्लमेण्टके गत चुनावसें मज़दूर-दलकी जीत हो जानेके बादसे तरह-तरहकी अटकलबाजियाँ चल रही थीं कि मज़दूर-सरकारकी आर्थिक नीति किस प्रकारकी होगी, बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंके सम्बन्धमें क्या होगा? अन्तमें मज़दूर-सरकारने अपनी नीतिकी घोषणा की है कि बैंक आफ़् इंग्लैण्ड, कोयला तथा अन्यान्य उद्योग-धन्धोंका राष्ट्रीयकरण होगा। बैंक आफ़् इंग्लैण्डका ब्रिटिश सरकारके साथ कुछ इस प्रकारका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है कि प्रायः लोग उसे सरकारी बैंक ही समझते रहे हैं। व्यक्तिगत पूँजी द्वारा उसकी स्थापना हुई है, ऐसा खयालमें आता ही नहीं। बैंक आफ़् इंग्लैण्डका इतिहास देखनेसे हम जान सकते हैं कि किस प्रकार व्यक्तिगत पूँजीसे उसकी नींव पड़ी और किस प्रकार उसका क्रमशः विकास होता गया है, जिससे उसने इंग्लैण्डके आर्थिक जीवनमें अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

बैंक आफ़् इंग्लैण्डकी स्थापना सन् १६९४ में हुई थी। इसकी स्थापनाका श्रेय विलियम पेटरसन नामक एक स्काचको है। १२ लाख पौण्डकी पूँजीसे एक ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनीके रूपमें इसका श्रीगणेश हुआ था। इस सारी पूँजीको कम्पनीने उस समयकी इंग्लैण्डकी सरकारको कर्ज़के रूपमें दिया। सरकारने कम्पनीको आठ प्रतिशतके हिसाबसे सूद तथा चार हज़ार पौण्ड प्रबन्धके लिए देना स्वीकार किया। इस प्रकार सरकारको प्रति वर्ष एक लाख पौण्ड देना पड़ता था। इसके बदलेमें सरकारने कम्पनीको बैंकके अन्य कार्यों—जैसे हुण्डियोंका भुगतान सिक्युरिटियोंपर कर्ज़ देना तथा रुपया जमा करना इत्यादि—के साथ नोटोंके छापने तथा चलानेका अधिकार भी दिया। नोटोंके चलन पर यह प्रतिबन्ध रहा कि उसका परिमाण सरकारी ऋण तक ही सीमित रहेगा। उसके बाद समय-समयपर बैंक और भी अतिरिक्त कर्ज़ प्राप्त करनेमें सरकारकी सहायता करता रहा। सन् १६९६ई० में दोनोंका सहयोग इस हद तक पहुँचा कि बैंकने चाँदीके सिक्कोंको ढालनेमें सरकारके साथ पूर्ण सहयोग किया। बैंककी सारी सुविधाएँ सरकारसे सनद द्वारा प्राप्त थीं। सर्वप्रथम यह सनद ग्यारह वर्षोंके लिए ही थी। इसके अनुसार बैंकका ... गवर्नर, एक डिप्टी-गवर्नर और चौबीस डायरेक्टर होते हैं ... डायरेक्टर हिस्सेदारों द्वारा चुने जाते हैं। बैंकके हिस्से ... इंग्लैण्डके धनपतियोंके एक छोटे दायरे तक ही सीमित है ... बैंकका गवर्नर अभी तक उसी श्रेणीसे ही चुना जाता रहा है ... बैंकके डायरेक्टर इस बारेमें पूरा सतर्क रहते थे कि समय ... ही पुरानी सनद फिरसे नई हो जाय। ऐसा भी होता रहा है ... सरकारको समय-समयपर रुपएकी आवश्यकता पूरी करके बैंक ... अतिरिक्त सुविधा प्राप्त कर लेता था। भिन्न-भिन्न अवसरों ... बैंक सरकारको प्रारम्भिक कर्ज़के अलावा और भी कर्ज़ देता ... रहा है। इस प्रकार वह कर्ज़ बढ़ते-बढ़ते सन् १८१६ई० में ... करोड़ ४५ लाख ५३ हज़ार पौण्ड तक पहुँच गया और ... भी वह उसी मात्रामें वर्त्तमान है।

बैंक आफ़् इंग्लैण्डके प्रारम्भसे लेकर आज तकके इतिहास को देखनेसे पता चलता है कि सरकारके साथ इसका सम्बन्ध सहयोगीका ही रहा है, सहकारीका नहीं। अपने क्षेत्रमें यह स्वतन्त्र रहा है। इसपर सरकारी अर्थ-विभागका सीधा कोई नियन्त्रण नहीं है। पार्लमेण्टमें क़ानून पास करके ही सरकार इसपर किसी प्रकारका दबाव डाल सकती है। परन्तु इस प्रकार के क़ानूनी दाव-पेंचकी आवश्यकता सरकारको बैंकके सम्बन्धमें नहीं पड़ी है। उनमें मतभेदका मौक़ा सिद्धान्त रूपमें कभी ... उपस्थित नहीं हुआ है। सरकारकी आर्थिक कठिनाइयोंमें सहा... यता देकर तथा उसकी ज़रूरतें पूरी करके बैंक अपने लि... अनेक सुविधाएँ प्राप्त करता गया है। और धीरे-धीरे बढ़ते हुए ... वह इंग्लैण्डके आर्थिक जीवनका केन्द्र बन गया है। सन् १७... में बैंकने सरकारको ४ लाख पौण्ड सहायताके रूपमें ... २१ लाख ७५ हज़ार २७ पौण्ड, १७ शिलिंग कर्ज़के रूपमें ... देकर ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनीका एकाधिकार प्राप्त किया। सरकार ... ने क़ानून पास कर दिया कि जिन बैंकोंमें छः आदमियोंसे अधिक ... सदस्य हैं, उन्हें नोट छापने तथा चलानेका अधिकार नहीं ... नोटोंके चलानेका अधिकार उस समयके बैंकिंगमें एक प्रमुख ...

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझा जाता था। यह क़ानून ११८ वर्षों तक इसी रूपमें रहा। सन् १८२६ ई० में जब इस क़ानूनमें कुछ परिवर्त्तन हुआ, तभी और दूसरे इस प्रकारके बैंक क़ायम हुए। इस क़ानूनके मुताबिक लन्दनसे ६५ मीलकी दूरीपर स्थित किसी भी बैंकको नोटोंके चलानेका अधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु लन्दन ही सारे इंग्लैण्डके आर्थिक व्यवसायका केन्द्र है, अतएव इस क़ानूनके पास होनेपर भी बैंक आफ् इंग्लैण्डकी स्थिति पूर्ववत् ही बनी रही। इसकी शक्ति तथा साख बढ़ती गई और सन् १७५१ से राष्ट्रीय ऋणकी व्यवस्था पूर्ण रूपसे इसीके हाथोंमें आ गई।

१८४४ ई० का 'बैंक चार्टर एक्ट' बैंक आफ् इंग्लैण्डके सम्पूर्ण इतिहासमें अत्यन्त महत्त्वका रहा है। इस एक्टके मुताबिक एक अनिर्दिष्ट काल तकके लिए अपनी सारी सुविधाओंके लिए बैंकने सनद प्राप्त कर ली। इसके साथ ही इस एक्टके मुताबिक १८५५ की पहली अगस्तके बाद सरकार जब भी चाहे बैंकको एक वर्षका नोटिस देकर और सम्पूर्ण सरकारी ऋण अदा कर बैंककी सारी सुविधाएँ खत्म कर सकती है। अब कोई भी आदमी सोनेके बदलेमें ३ पौण्ड १७ शि० ९ पेंस प्रति औंसके हिसाबसे बैंकसे नोट ले सकता था। बैंकके दो विभाग कर दिए गए। एक विभागका काम सिर्फ बैंकिंगसे सम्बन्ध रखता था और दूसरेका नोटोंके चलनसे। बैंक एक करोड़ १४ लाख पौण्ड मूल्य तकके नोट छाप सकता था। इससे ज़्यादा नोट छापनेपर उसे उतने ही परिमाणमें संचित कोषमें सोना रखना पड़ता था। बैंकको इस प्रकारके दो विभागोंमें बाँटनेका काम बहुत दिनसे चले आए विवादका परिणाम था। प्रत्येक सप्ताह बैंकको संचित कोष और नोटोंका हिसाब प्रकाशित करना पड़ता है।

इस क़ानूनके पास होनेके बादसे नोटोंके चलन द्वारा इंग्लैण्ड की मुद्रामें वृद्धि नहीं हो सकती थी, क्योंकि अधिक नोटोंको छापनेके साथ ही उसी परिमाणमें संचित कोषमें सोना रखना पड़ता था। अन्य बैंकोंको नोटोंके चलानेका अधिकार नहीं था, अतएव चेकोंका व्यवहार वे पहलेसे ही करते आते थे। इस समय चेकोंका व्यवहार और ज़्यादा बढ़ा। क़ानूनके बनानेवालों का यह उद्देश्य था कि नोटोंके चलानेका अधिकार सिर्फ बैंक आफ् इंग्लैण्डको ही रहे। उनका यह उद्देश्य सन् १९२१ में जाकर पूरा हुआ। १८४४ ई० के एक्टके अनुसार अगर कोई बैंक दूसरे बैंकमें मिला लिया जाता था, तो फिर उसका नोटोंके चलानेका अधिकार भी खतम हो जाता था और दूसरी ओर बैंक आफ् इंग्लैण्डको उसके दो-तिहाई नोटोंके चलानेका अधिकार प्राप्त हो जाता था और उसके लिए उसे संचित कोषमें सोनेके बदले सिक्यूरिटी रखनेसे ही काम चल जाता था। इस प्रकार खत्म होनेवाला सबसे अन्तिम बैंक वेलिंग्टन, सोमरसेटशायरका फ्लक्स, फाउलर एण्ड कम्पनी लिमिटेड नामक बैंक था, जो सन् १९२१ में लायड्स बैंकके साथ मिला लिया गया। इस प्रकार उस समय तक बैंक आफ् इंग्लैण्डने १ करोड़ ९७ लाख ५० हज़ार पौण्ड मूल्यके नोटोंके चलनका अधिकार प्राप्त कर लिया।

लोगोंका विश्वास था कि १८४४ के एक्टके पास होनेके बाद आर्थिक संकटोंका, जो इस शताब्दीके प्रारम्भसे ही आते रहे थे, आना असम्भव हो जायगा; परन्तु यह बात सम्भव न हो सकी। १८४७, १८५७ और १८६६ में यह आवश्यक हो गया कि कुछ समयके लिए नोटोंके चलनमें वृद्धि की जाय और उसके बराबर सोना या सिक्यूरिटी संचित कोषमें रखनेके नियम को छोड़ दिया जाय। इस प्रकारके अर्थ-संकटका सामना बैंक आफ् इंग्लैण्डको बहुत दिनों तक नहीं करना पड़ा। १८६६ के बहुत दिनों बाद १९१४ में ही फिर वैसी परिस्थिति आई।

आर्थिक जगत्में बैंक आफ् इंग्लैण्डने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। आज वह इंग्लैण्डका सेण्ट्रल बैंक है। नोटोंके चलनपर उसका एकाधिपत्य है। राष्ट्रीय ऋणकी व्यवस्था उसीके हाथमें है। सरकार तथा अन्य बैंकोंका यह बैंक है। उपनिवेशों तथा साम्राज्यके अन्य भागोंके साथ भी उसका आर्थिक सम्बन्ध है। इंग्लैण्डकी सरकारके साथ इसका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और आर्थिक मामलोंमें यह सरकारका सलाहकार रहा है। इंग्लैण्डके सोनेका संचित कोष तथा सोनेके आयात और निर्यातपर इसका अधिकार रहा है; परन्तु १९३२ में जब सरकारने विनिमय संतुलन कोष (Exchange Equalisation Fund) की स्थापना की, तबसे बैंकके हाथसे सोनेका नियन्त्रण इसीके हाथमें आ गया है।

मुद्रा-सम्बन्धी कई तरहके परिवर्त्तन १९१४-१८ ई० के यूरोपीय महायुद्धके बादसे हुए। लड़ाईके समय अधिक-से-अधिक चलनमें मुद्राकी ज़रूरत पड़ी। सरकारने सन् १९१४ के अगस्त में एक 'दो करेन्सी बैंक नोट्स एक्ट' नामक क़ानून पास किया, जिसके मुताबिक सरकारने एक पौण्ड तथा दस शिलिंगके नोट चलाए। इस प्रकार ५ करोड़ ६२ लाख २५ हज़ार पौण्डके मूल्यके नोट बैंक-नोटोंके बदलेमें सरकारने बैंक आफ् इंग्लैण्डके पास जमा कर दिए। इन नोटोंके अलावा चाँदीके सिक्कोंके बदले ५२ लाख ५० हज़ार पौण्ड मूल्यके नोट भी चलनमें आए। इस प्रकार सरकारने बैंक आफ् इंग्लैण्डके पास सम्पूर्ण ६ करोड़ १५ लाख पौण्ड मूल्यके नोटोंको जमा कर दिया। इसमें से आवश्यकतानुसार सरकार खर्च किया करती और इसके लिए उसे बैंकको सूद भी नहीं देना पड़ता था। ये सरकारी नोट, बैंक-नोटोंसे भिन्न थे। १९१४ के एक्टमें यह भी नहीं निश्चित किया गया था कि इन सरकारी नोटोंके बदलेमें कितना सोना संचित कोषमें रखा जायगा। इन नोटोंकी संख्यामें क्रमशः वृद्धि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती ही गई—यहाँ तक कि १९२१ की पहली जनवरीको ३६ करोड़ ७६ लाख २६ हज़ार पौण्ड मूल्यके नोट चलनमें आए। इसके बदलेमें पन्द्रहसे लेकर बीस प्रतिशतके अनुपातसे सोना या सिक्यूरिटी संचित कोषमें रखी जाती थी। बादमें १९२८ ई० में सरकारने एक क़ानून पासकर यह तय किया कि सरकारी नोटोंका चलन बन्द कर दिया जाय और उसी मूल्यके बैंक-नोट चालू कर दिए जायँ। बैंक आफ् इंग्लैण्डको इन नोटोंके चलानेका अधिकार दिया गया और एक बार फिर समूचे इंग्लैण्डके काग़ज़ी सिक्केके चलनका अधिकार बैंकके हाथोंमें आ गया।

बैंक आफ़् इंग्लैण्डके इतिहासको देखनेसे दो बातें ध्यानमें आती हैं। एक तो यह कि बैंक इस अर्थमें पब्लिक संस्था है कि उसकी स्थापना पार्लमेण्टके क़ानून द्वारा हुई है और सनदोंके द्वारा ही इसे अधिकार प्राप्त है, जिसे समय-समयपर पार्लमेण्ट संशोधित करती है। दूसरी बात यह कि बैंककी स्थापना व्यक्तिगत पूँजीसे हुई है और हिस्सेदारोंको अपनी पूँजीपर नफ़ा मिलता है, इसके डायरेक्टरोंके हाथमें कोर्ट आफ़् डायरेक्टर्सके चुननेका अधिकार है तथा हिस्सेदारोंको मीटिंगके प्रति ही इसके व्यवस्थापक अन्ततः उत्तरदायी है; अतएव यह एक व्यक्तिगत संस्था है। सिद्धान्ततः ऐसा होनेपर भी बैंक आफ़् इंग्लैण्ड अपने हिस्सेदारोंको एक नियत मात्रामें ही नफ़ा देता है। दूसरे बैंकोंकी तरह इसके अधिकारी नफ़ेकी बातको लेकर ही किसी प्रकारकी नीति निर्धारित नहीं करते। इसका सबसे मुख्य कारण यह है कि बैंकने एक ऐसा स्थान बना लिया है कि नफ़ा उसको होगा ही। सरकारी अर्थ-विभागसे इसका घनिष्ट आर्थिक सम्बन्ध है। यद्यपि बैंकके डायरेक्टर सरकारी नियन्त्रणमें नहीं हैं, फिर भी अभी तक ऐसा होता आया है कि नए डायरेक्टर या गवर्नरकी नियुक्ति अर्थ-विभागकी रायसे ही होती है। उनमें मतभेद नहीं [illegible] अभी तक इस प्रकारके मतभेदका कभी भी मौक़ा नहीं आया है।

यदि इन्हीं बातोंके आधारपर यह कहा जाय कि बैंक [illegible] इंग्लैण्ड एक व्यक्तिगत संस्था न होकर सार्वजनिक नियन्त्रण [illegible] रहनेवाली संस्था है, तो शायद यह ग़लत होगा; क्योंकि बैंक [illegible] डायरेक्टर, गवर्नर इत्यादि इंग्लैण्डके पूँजीवादी स्वार्थोंके [illegible] निधि हैं। उनसे इस बातकी उम्मीद करना कि किसी प्रकार [illegible] सामाजिक परिवर्त्तनमें वे सरकारका साथ देंगे, ग़लत होगा। [illegible] १९३१ ई० में ऐसा अवसर आ भी चुका है, जब कि बेकारी [illegible] खर्चकी बातको लेकर बैंकने रैमज़े मैकडोनल्डकी मज़दूर-सरकार [illegible] सहयोग करनेसे इन्कार कर दिया था।

आजकी मज़दूर-सरकार बैंक आफ़् इंग्लैण्डके राष्ट्रीयकरण [illegible] घोषणा कर चुकी है। वास्तवमें किसी भी प्रकारकी आर्थिक [illegible] और सामाजिक योजनाके लिए, जिसमें उत्पादनपर नियन्त्रण [illegible] और लोग अधिकांशतः बेकार न रहें, इस बातका प्रयत्न हो; बैंक [illegible] और सरकारका सहयोग आवश्यक है। उन योजनाओंको क्रमान्वित करनेके लिए सरकार जो नीति निर्धारित करती है, उसका अनुसरण अगर बैंक न करे, तो वह सफल नहीं हो सकेगी। आज सभी देशोंने यह समझ लिया है कि उत्पादन और बेकारी की समस्याको हल करनेके लिए सरकारी योजनाएँ और नियन्त्रण आवश्यक हैं। अनियन्त्रित उत्पादन-प्रणाली और आर्थिक [illegible] नाएँ, जिनका आधार व्यक्तिगत नफ़ा है, सफल नहीं हो सकी हैं और आए दिन विश्व-शान्तिको भंग करती रहती हैं। इसलिए, जब यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाता है कि देशके आर्थिक जीवनपर समाजके हितको दृष्टिमें रखकर सरकारी नियन्त्रण रहना वांछनीय है, तब यह भी आवश्यक है कि आर्थिक नीतिके निर्धारणपर भी सरकारी नियन्त्रण रहे।

फूल और काँटे

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

मुझे फूल बिलकुल न सुहाते, तीखे काँटे भाते!

जो न सहन कर सकते कोमल तितलीका भी भार;
जो न झेल सकते आपत, आँधी, पानी, बौछार;
कैसे उन दुर्बल फूलोंको मैं कर सकता प्यार?
उनके कोमल अंग, विविध रँग मुझको नहीं लुभाते!
मुझे फूल बिलकुल न सुहाते, तीखे काँटे भाते!

जिनके साथ किया करते हैं भँवरे नित व्यभिचार,
उन कुलटाओं-से फूलोंको लाख बार धिक्कार;
अच्छा है उनका मुरझाना, उनका होना क्षार,
जिनके सुरभित श्वास वायुमें कलुषित फैलाते!
मुझे फूल बिलकुल न सुहाते, तीखे काँटे भाते!

रविकी आग, घोर जल-प्लावन, झंझावात - प्रहार,
अडिग खड़े सहते रहते जो तूफ़ानोंकी मार;
उन तीखे काँटोंको ही मैं कर सकता हूँ प्यार;
उनका साहस, शौर्य, अमिट बल मुझको मत्त बनाते!
मुझे फूल बिलकुल न सुहाते, तीखे काँटे भाते!

जो न सहन कर सकते क्षण-भर शोषण, अत्याचार,
अपनी ओर बढ़े हाथोंपर जो कर सकते वार,
जो जीवन-रक्षा कर सकते बहा रुधिरकी धार,
उन काँटोंपर मैं दीवाना जो उरमें गड़ जाते!
मुझे फूल बिलकुल न सुहाते, तीखे काँटे भाते!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैसिकाकी शाहज़ादी

श्री पू सुङ्-लिङ्

किसी समय चियाओ-चोंमें ताऊ-सूं नामका एक मनुष्य रहता था। एक दिन दोपहरकी गरमीमें सोते हुए उसने अपने पलँगके पास रेशमी कपड़े पहने हुए एक आदमीको खड़े देखा। उस आदमीने ताऊ-सूं को इंगितसे बताया कि वह उसे कुछ सन्देश देने आया है। ताऊने उससे पूछा कि उसे क्या काम है? उस मनुष्यने उत्तर दिया कि वह अपने स्वामीके पाससे उसके लिए निमन्त्रण लाया है।

'और कौन है तुम्हारा स्वामी?'—ताऊने पूछा।

सन्देशवाहकने कोई सीधा उत्तर न देते हुए यह कहा—'वह यहाँसे दूर नहीं रहता है।' और ताऊसे अपने साथ चलनेकी प्रार्थना की।

और वे दोनों चले। कुछ समय बाद ताऊने अगणित श्वेत और नीबूके वृक्षोंसे आच्छादित मकान एक-दूसरेके पीछे खड़े देखे। उसका साथी उसे असंख्य अद्भुत और विचित्र बनावटके दरवाज़ोंमें से ले गया। ताऊने वहाँ अनेक कर्मचारी स्त्री-पुरुषों को देखा, जो सब-के-सब उसके साथीसे पूछते थे—'क्या ताऊ सूं आ गए?' और उसका साथी ताऊकी ओर आँखोंसे इशारा करके मुस्करा देता।

अन्तमें उसका साथी उसे एक व्यक्तिके पास ले गया, जिसे देखकर ताऊने समझा कि यह कोई बड़ा अफ़सर है। उसने ताऊका अत्यन्त सत्कारपूर्वक स्वागत किया और उसे एक दिव्य भवनमें ले गया। अब ताऊ कुछ हिचकिचाया।

'आपके सौजन्यसे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई; पर चूँकि मुझे आपका परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य नहीं मिला, इसलिए मुझे कुछ संकोच हो रहा है।'—ताऊने कहा।

'हमारे राजाने बहुत दिनोंसे आपके उच्चकुल और सद्गुणों की प्रशंसा सुन रखी है। वे आपसे परिचय बढ़ाना चाहते हैं।'

'पर कौन हैं आपके राजा?'—ताऊने फिर पूछा।

'कुछ क्षणोंमें आप स्वयं उन्हें देख लेंगे।'—उस कर्मचारीने उत्तर दिया। और उसके बोलते-बोलते दो सुन्दर बालाएँ राज्य-पताका लिए हुए प्रविष्ट हुईं और ताऊको अनेक दरवाज़ों और कमरोंमें से ले जाकर सिंहासनपर बैठे हुए राजाके सामने हाज़िर किया। ताऊको देखकर राजा सिंहासनसे उतर पड़ा और अपने अतिथिको स्वयं प्रतिष्ठित आसनपर बिठाया। तब उसने भोजन परोसनेकी आज्ञा दी और अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन और मदिरा तुरन्त दोनोंके सामने आ गए।

अचम्भेमें पड़े हुए ताऊने अपने नेत्र चारों ओर घुमाए। उसकी दृष्टि एक तख्तीपर पड़ी, जिसपर लिखा था—'कैसिकाका राज-दरबार'। पर इससे भी उसकी समझमें यह न आया कि यह सज्जन पुरुष कौन है? उसकी चिन्तित मुद्रा देखकर राजाने कहा—'आपका हमारा पड़ोसी होना हमारा परम सौभाग्य और हम लोगोंके बीच एक स्नेह-शृंखला है। आइए, हम लोग सन्देह और डरको छोड़कर खुशियाँ मनाएँ।'

इसके पश्चात् ताऊने यह चिन्ता छोड़ दी कि वह कैसी विचित्र परिस्थितियोंमें आ पड़ा है और व्यंजनोंका स्वाद लेने लगा। बहुत देर तक मदिराका दौर चलनेके बाद ताऊको दूरसे आती हुई संगीतकी मधुर ध्वनि सुनाई दी—शहनाईके साथ मनुष्य-कण्ठका सुन्दर आलाप। राजा बोला—'भद्रो, हम आपके लिए एक अपूर्ण कविता* प्रारम्भ करते हैं, जिसे आप लोग पूरा करें। वह यह है: प्रतिभावान् कैसिकाके राज-दरबारमें आते हैं।'

जब दरबारके सभी लोग सोचनेमें उलझे हुए थे, तभी ताऊ कह उठा—'सभ्य लिलीके पुष्पको प्यार करते हैं।'

प्रशंसासूचक ध्वनिके साथ राजाने प्रसन्न होकर कहा—'यह वास्तवमें विचित्र संयोग है कि आपके मुखसे ये शब्द निकले! मेरी कन्याका नाम भी लिली है। अब आप उसे स्वयं ही देखेंगे।' फिर राजाने आज्ञा दी और कुछ ही क्षणोंके बाद आभूषणोंकी झंकार और भीनी सुगन्धके झोंकोंने राज्यकन्याके आगमनकी सूचना दी।

अपनी सहेलियोंके साथ वह आई। वयस उसकी अभी कोई सोलह-सत्रहके बीच होगी। वह अतुल रूप लिए थी, जिसे देखकर ताऊ निर्वाक् रह गया और केवल उसीकी ओर दृष्टि गड़ाए रहा। राजाने उसे ताऊको प्रणाम करनेका आदेश दिया। राजकुमारीने फ़ौरन ताऊको नमस्कार किया और वहाँसे चली गई।

यह देखकर कि ताऊ उसकी पुत्रीके प्रेममें डूब गया है, राजा कहने लगा कि वह अपनी कन्याके लिए उपयुक्त वर ढूँढ़ने के प्रयत्नमें लगा है। पर ताऊ इस समय एक अज्ञात आनन्दमें ऐसा विभोर था कि उसने राजाकी बातका एक शब्द भी नहीं सुना। इस समय वह अपनी परिस्थितिसे मानो बहुत दूर था। इसी समय एक दरबारीने उसका कन्धा हिलाकर बताया कि राजा उसीसे बात कर रहा है। ताऊ चौंक गया और अपनेको कुछ सम्हालते हुए उसने अटक-अटककर क्षमा-प्रार्थना की और जानेकी आज्ञा माँगी।

राजाने कहा—'आपका स्वागत करके मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। दुःख यही है कि आप इतनी थोड़ी देर ठहरे। मैं आशा करता हूँ कि आप हम लोगोंको भूलेंगे नहीं और फिर आएँगे।'

---

* ऐसी कविता चीनके राज-दरबारोंमें प्रचलित है। इसकी विशेषता विरुद्ध-अलंकारका प्रयोग है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिर उसने आज्ञा दी कि ताऊको उसके घर पहुँचवा दिया जाय। उसके साथ जो दरबारी गया, उसने ताऊसे पूछा कि जब राजाने इतने स्पष्ट रूपमें कहा कि वह शाहज़ादीसे विवाह कर ले, तो ताऊने कुछ कहा क्यों नहीं? विमुग्ध ताऊको अब घर पहुँचनेपर होश आया कि उसने कैसा स्वर्ण-अवसर हाथसे निकल जाने दिया! अब वह अपने स्वप्नसे जग गया था।

सूर्य अस्त हो गया था और ताऊ अँधेरेमें बैठा था—खोए हुए अवसरके सोचमें, राजकुमारीके ध्यानमें मग्न। रात होनेपर जब वह सोने चला, तो उसने शमा बुझा दी—इस आशामें कि कदाचित् उसके स्वप्नका तार फिर जुड़ जाय।

कई रातें व्यतीत हो जानेके बाद एक बार जब ताऊ अपने एक मित्रके घर सो रहा था, तब दरबारके एक कर्मचारीने सहसा आकर ताऊसे राजाके सामने उपस्थित होनेके लिए कहा। एक बार फिर ताऊने अपनेको उस अनेक कमरों और दरवाजोंवाले विचित्र राजभवनमें पाया। उसने राजाके सामने दण्डवत किया और राजाने भी सत्कारपूर्वक उसका स्वागत किया।

आह्लादित ताऊसे उसने कहा कि उसे मालूम था कि ताऊ राजकुमारी लिलीसे प्रगाढ़ प्रेम करने लगा है। राजाने यह भी कहा कि यदि ताऊ प्रस्तुत हो, तो तुरन्त ही दोनोंका विवाह कर दिया जाय। भला ताऊको क्या अपत्ति हो सकती थी? उसी दिनसे प्रीतिभोज आदि होने लगे।

अन्तमें वह समय भी आया, जब यह घोषणा की गई कि राजकुमारी शृंगार कर चुकी है। अपनी सखियोंके साथ वह आई, लाल घूँघट डाले हुए। दूल्हेके पास जाती हुई उसकी पदध्वनि लहराते हुए जलका-सा शब्द कर रही थी। राजकुमारी के सम्मानमें झुककर ताऊने कहा—'आपकी उपस्थितिमें मृत्युको भी सहज ही भूला जा सकता है। पर कहिए, क्या यह सब स्वप्न तो नहीं है?'

'प्रियतम, जब मैं और आप यहाँ साथ-साथ हैं, तो यह स्वप्न कैसे हो सकता है?'—मन्द स्वरमें राजकुमारीने उत्तर दिया।

दूसरे दिन ताऊने राजकुमारीका मुख सजानेके कार्यमें कोई कसर नहीं उठा रखी। फिर एक पेटी उठाकर राजकुमारीकी कमर, उँगलियों और पैरोंका माप लेने लगा। राजकुमारी हँस कर चिल्ला उठी—'क्या आप पागल हो गए हैं!'

'मुझे इतनी बार धोखा हो चुका है कि मैं अब ठीक-ठीक ब्यौरा रखना चाहता हूँ। यदि यह स्वप्न ही हुआ, तो मेरे पास आपकी कुछ निशानी तो रहेगी!'—ताऊने सहज भावसे कहा।

उनके बातें करते-करते एक स्त्री दौड़ती हुई आकर रोने लगी—'हाय, हाय, एक महाभयानक जन्तु राजभवनमें आ गया है। राजा एक कोठरीमें छिप गए हैं। हमारा सर्वनाश हो रहा है।' ताऊ तुरन्त राजाके पास गया। राजाने आँखोंमें आँसू भरकर ताऊसे प्रार्थना की कि वह उन लोगोंको छोड़कर न जाय। 'हमारा सम्बन्ध ऐसे समय होना था, जब भगवान्ने यह विपत्ति हमपर डाल दी! अब मेरा राज्य तहस-नहस हो जायगा। मैं क्या करूँ?'

ताऊने पूछा कि बात क्या है? तब राजाने मेज़पर से राजपत्र रखते हुए ताऊसे उसे खोलकर स्वयं ही सब-कुछ जान लेनेको कहा। ताऊने राजपत्र पढ़ा। उसमें लिखा था—'राज्य सचिव श्रीमान् राजा साहबकी सेवामें निवेदन करता है कि एक महाभयानक जन्तु राज्यमें आ पहुँचा है और यह मन्त्रणा देता है कि साम्राज्यकी शक्तिको बचानेके हेतु राज-दरबार तुरन्त अन्यत्र ले जाया जाय। पीले दरवाज़ेके अफ़सर द्वारा यह सूचना मिली है कि पाँचवें चन्द्रमाकी छठी तिथिसे एक विकराल काय भयानक जन्तु १०००० फ़ीट लम्बे राजभवनके बाहर पर कुण्डली मारे बैठा है और श्रीमान्की प्रजाके १३८०० लगभग जीवोंका भक्षण कर चुका है और दूर तक चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा चुका है। इस समाचारके मिलनेपर आपके दास स्वयं जाँच करने गया और एक विषधर सर्प, जिसका सिर एक पर्वतके समान है और जिसके नेत्र जलको लम्बी-लम्बी चादरोंके समान हैं, देखा। जितनी बार वह सिर उठाता था, भवनके भवन उसके गलेमें उतर जाते थे, और जब वह अपने को फैलाता था, तो दीवारें और मकान ढेर हो जाते थे। इससे पहले कभी ऐसी विपद नहीं आई। हमारे प्राचीन मन्दिरों और भवनोंके भाग्यका निर्णय होनेमें अब विलम्ब नहीं। इसलिए हम श्रीमान्से प्रार्थना करते हैं कि आप राज-कुटुम्बको लेकर कहीं अन्यत्र चले जायँ।'

ताऊने यह पत्र पढ़कर समाप्त ही किया था कि एक दूत दौड़ता हुआ आकर चिल्लाने लगा—'विकराल जन्तु!' दरबार भरमें उपद्रव मच गया और ताऊको चारों ओरसे रोने और चिल्लानेकी आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं। राजा स्वयं भी चिन्तित और उदास था। उसने ताऊसे प्रार्थना की कि वह अपनी पत्नी का, जिसके कारण वह इस संकटमें पड़ा, ध्यान न करके उसके प्राण-रक्षा करे। परन्तु राजकुमारी, जो पास ही खड़ी हाथ मल रही थी, ताऊके पैरोंपर गिर पड़ी और उससे प्रार्थना करने लगी कि वह उसे छोड़कर न जाय।

ताऊने धीरेसे उसे उठाया और राजाको प्रणाम करके कहा—'मेरी धृष्टता क्षमा करें। मेरा ग़रीबखाना प्रस्तुत है, यदि आप वहाँ आनेकी कृपा करें।'

'इस समय कृपा करनेका ज़िक्र ही नहीं है। मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप शीघ्र ही हम लोगोंको वहाँ ले चलें।' कहकर राजकुमारी रोने लगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ताऊ उसे शीघ्रतासे अपने घर ले गया। ताऊके यह कहने पर कि उसका घर अत्यन्त साधारण है, राजकुमारीने बड़ी प्रसन्नता दिखाई और कहा कि यह जगह तो बहुत सुन्दर है—उसके राजभवनसे भी अच्छी। 'अब मैं आपसे यह कहना चाहती हूँ कि आप मेरे माता पिता और राज-दरबारको भी यहाँ लानेका प्रबन्ध करें, ताकि पुराना क्रम यहाँ स्थापित हो सके।'

ताऊपर जैसे बिजली गिर पड़ी, क्योंकि उसकी समझमें दूसरा कोई उपाय न आया, जिससे वह राजकुमारीके पिताके सम्पूर्ण दरबारको वहाँ लाकर रख सकता। ताऊको उधेड़-बुनमें पड़ा देखकर राजकुमारीके क्रोधका वारापार न रहा। वह कहने लगी कि वह पुरुष, जो संकटके समय उसकी सहायता नहीं कर सकता, कदापि उसका पति कहलाने योग्य नहीं है। उसका चिल्लाना बढ़ता ही गया।

उसे शान्त करनेका प्रयत्न करते-करते परेशान ताऊकी आँखें खुल गईं और उसे पता चला कि वह स्वप्न देख रहा था। उसके कानोंमें अब भी भनभनाहटकी आवाज़ आ रही थी और ध्यानसे चारों ओर देखनेपर उसने तीन-चार मधुमक्खियोंको अपने तकिए पर बैठा पाया। वे हटानेपर भी न हटीं। उसने अपने मित्रको बुलाया और दोनोंने साथ-साथ ताऊके कपड़ोंपर और कमरेमें बहुत-सी मधुमक्खियाँ देखीं। ताऊको बड़ा अचम्भा हुआ, पर उसके मित्रने उनके लिए तुरन्त एक छत्ता लानेको कहा। ताऊने वैसा ही किया और मक्खियाँ उसमें घुस गईं—केवल वे ही नहीं, जो कमरेमें थीं; वरन् बाग़की दीवारसे आई हुईं झुण्डकी झुण्ड मक्खियाँ भी।

फिर दोनों मित्रोंने खोजना आरम्भ किया कि यह समूह कहाँसे आया था? उन्हें मालूम हुआ कि वह पास ही रहनेवाले एक वृद्धका था। त्यक्त छत्तेको खोलनेपर उन्होंने उसमें एक दीर्घकाय सर्प देखा—ताऊके स्वप्नका विकराल जन्तु!

और मक्खियाँ? वे ताऊके पास रहीं तथा प्रतिवर्ष संख्यामें बढ़ती गईं। अनु०—श्रीमती वीरबाला बिसारिया

स्वर्गीय परचुरे शास्त्री

श्री सुन्दरलाल त्रिपाठी

घर और श्मशानकी तट-भूमिसे आरम्भ आत्मीय-स्वजनोंमें, निवास, नगर, प्रान्त, देश और विदेशमें—पृथ्वीमें परिधि अथवा परिव्याप्तिमें पात्र-अपात्र-विचारके अनुसार दिवंगत व्यक्ति स्मरणीय और आलोच्य हो उठता है। यूनाइटेड प्रेस द्वारा अखबारोंमें संवाद प्रकाशित हुआ है—"सेवाग्राम, ७ सितम्बर। केरलके महापण्डित श्री परचुरे शास्त्रीका लगभग सत्तर वर्षके आयुमें दतपुरके कुष्ठ-आश्रममें देहावसान हो गया। उनकी मृत्युकी सूचना गांधीजीको तार द्वारा दी गई।" परचुरे शास्त्री कुष्ठ-रोगी थे - गलित कुष्ठके रोगी। वे गांधीजीके निकटतम सखा थे। आजसे लगभग छः वर्ष पहले कुष्ठ-रोगीके अधिकारसे वे सेवाग्राममें प्रविष्ट हुए थे। गांधीजीने उनकी शक्य-सम्भवसे अतिरिक्त सेवा-परिचर्या की, परन्तु उनके रोगका शमन नहीं हुआ। इसलिए अन्तमें वे कुष्ठ-आश्रममें ले जाए गए।

सेवाग्रामसे गांधीजीके नेतृत्वमें राजनीतिका एकान्त संचालन होता है। वह देशकी शक्तिका सबसे बड़ा केन्द्रस्थल है। आजके सेवाग्रामकी यही महत्ता और विशेषता है। नाम अनुरूप होने पर भी वहाँ कुष्ठ-आश्रम नहीं है। गांधीजी अहिंसाके प्रथम प्रवक्ता हैं। प्राणि-मात्रके प्रति और मनुष्य-मात्रके प्रति उनके मनमें समान सहज ममत्व-बोध है। देशकी स्थितिके अनुसार मार्गमें अनेक गलित कुष्ठ-रोगी अवश पड़े दिखाई पड़ते हैं। किन्तु गांधीजीने अपने आश्रममें कुष्ठ-चिकित्साशाला नहीं खोली। तब परचुरे शास्त्रीके लिए वहाँ क्यों एक कुटिया बनाई गई? मनुस्तत्वके हिसाबसे अतिचेतन स्तरकी रूप-चिन्ता करनेपर जिज्ञासा स्वतः सुबोध हो उठती है। गांधीजीने तो एक आदर्श स्थापित किया है और परचुरे शास्त्री विशेष हैं।

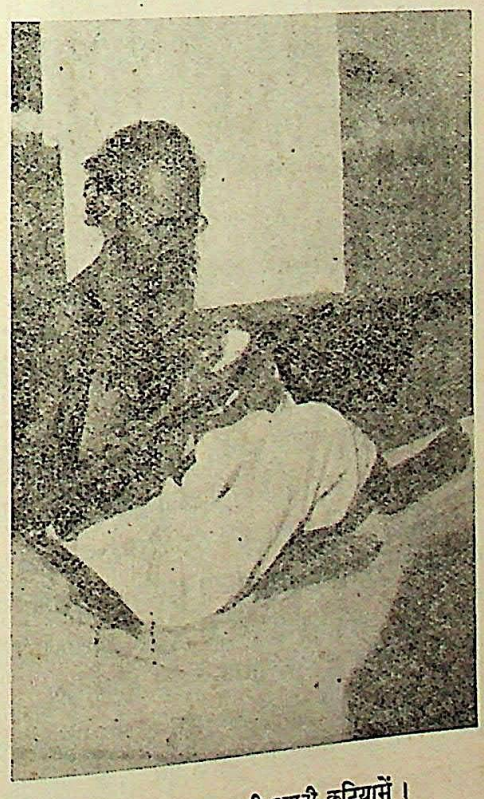

शास्त्रीजी सेवाग्रामकी अपनी कुटियामें।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रीजीका कुष्ठ-रोग वंशानुक्रमका उनका विभव नहीं था —उनका स्व-अर्जित था। उनके पिता अथवा उनके मामाके कुलमें कभी किसीको कुष्ठ-रोग नहीं हुआ था। शास्त्रीजीने स्वतः लगभग पचास वर्षके वय तक इस कुत्सित रोगकी अपनी देहमें सम्भावनाका स्वप्न तक नहीं देखा था। सन् १९२५-२६ में पत्रकारोंके पिता-तुल्य स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्यायने 'मार्डन रिव्यू'में एक लेख लिखा—'The Black spot in Bankura District.' स्वर्गीय रामानन्द बाबूने बंगालके बाँकुड़ा-ज़िलेमें फैले कुष्ठ-रोगका वर्णन इस लेखमें किया था। परचुरे शास्त्रीने लेख पढ़ा। दुःखी और निपीड़ितोंके प्रति असीम वेदना-बोध हो जिनके अपरिसीम आनन्दका विषय है, ज्वलन्त ऐसे व्यक्तियोंमें शीर्षोज्ज्वल श्री परचुरे शास्त्री थे। शास्त्रीजी अन्दरसे आकुल हुए। उनके मस्तिष्ककी चेतनावाही शिराएँ आन्दोलित हो उठीं। उन्होंने स्थिर किया कि वे एक वर्षका

गांधीजीके पहुँचनेपर शास्त्रीजी खड़े होकर प्रणाम कर रहे हैं।

समय केवल अपने ज़िलेके कुष्ठ-रोगियोंके निरीक्षण और उनकी औषध-चिन्ता आदिमें व्यतीत करेंगे। बद्धपरिकर यही उन्होंने किया और फलतः सन् १९२९ में वे स्वतः गलित कोढ़से ग्रस्त हो गए। देवता, ऋषि अथवा मुनि यदि श्रापभ्रष्ट हुए हैं, तो उसका गुरुतर अथवा गम्भीरतम कारण रहा है। होताके यदि हाथ जल गए हैं, तो वे परिपुष्ट भी हो उठे हैं। शास्त्रीजी पुण्य-पन्थी थे। अपने कोढ़से गल-गलकर वे सारे जीवन जिए।

संख्यालघिष्ठ व्यक्ति ऐसे हैं, जो महत् हैं और जिनका यश विकीर्ण हो उठा है। संख्यागरिष्ठ व्यक्ति ऐसे हैं, जो महत्तम हैं और जो नामके परिचयसे भी विहीन हैं। गतिविधि ऐसी ही है। जो व्यक्ति प्रतिष्ठा और यशके वास्तविक अधिकारी हैं, उनमें से लघिष्ठ संख्याकी संज्ञाके सहित ही उनका प्राप्य जुटा है।

विजातीय, विदेशी शासन-संचालनके कारण संस्कृत भाषाकी नै कीय महत्ता उतनी नहीं रही है। देशकी कांग्रेसका ऐसा इ हास अभी निर्मित हुआ है, जिसमें उससे संश्लिष्ट व्यक्ति पुंखानुपुंख वर्णन है। परचुरे शास्त्री अपर प्रान्तवासी थे। गांधीजीके सहित साबरमती-आश्रममें रह चुके हैं। आन्दोलनमें उन्हें सम्भवतः चार बार कारावास भोग करना है। उन्होंने अपना चारों बारका कारावास अनुमानतः रोगक्लिन्न स्थितिके पश्चात् ही भोग किया था। तथापि शास्त्री की विश्रुति उनके सेवाग्राम पहुँचनेके पश्चात् विकीर्ण हुई नाना प्रान्तवासियोंको उनका परिचय प्राप्त हुआ। शास्त्री सम्भवतः सन् १९३९ में सेवाग्राम गए थे।

गांधीजीके मनमें मनुष्यके प्रति ऐकान्तिक समवेदना सहिष्णुता है। पर श्री परचुरे शास्त्रीके प्रति अतुल आग्रह आदर था। उन्होंने सेवाग्राममें एक कुटिया बनवाकर शास्त्रीजी रख लिया हो और उनकी चिकित्साका उचित प्रबन्ध कर लि हो, इतना ही केवल नहीं हुआ। गलित-कुष्ठ-रोगीकी देहमें औषध मिश्रित तेलकी मालिशकी व्यवस्था दी गई थी। गांधीजीने अपने हाथोंसे शास्त्रीजीकी यह परिचर्या की। इस प्रकार मनुष्यके द्वा मनुष्यकी सुश्रूषाका सत्य रूप गांधीजीके तन-मनसे शास्त्रीजी कुटियामें प्राण पाकर परिस्फुट हो उठा।

भवका जाल ऐसा है अथवा उसकी बाधाएँ ऐसी हैं कि मनुष्य हर समय देखने-जानने-योग्य सब-कुछ देख और जान नहीं सकता। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलकी स्थापनाके पश्चात् क्रम-वश अनेक बार मैं वर्धा गया और संयोगवश एकाधिक बार सेवाग्राम भी गया। सेवाग्राममें गांधीजीके निवासका स्थान, उनके रहन-सहन आदि तथा आदर्श ग्रामके वातावरणका वाह्यिक दर्शन करके हिन्दुस्तानी तालीमी संघके कर्त्ताओंसे मिलकर मैंने अपना नयन-मन चरितार्थ मान लिया और मैं वहाँसे लौट आया। पर देखने और जानने योग्य मैं वहाँ सब-कुछ देख और जान नहीं सका।

'हिन्दी' अभिधाको 'हिन्दुस्तानी' संज्ञामें परिवर्तित करनेका प्रश्न यद्यपि अनेक वर्ष पहले उठ चुका था, तथापि निखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें वह प्रस्तावित और स्वीकृत हुआ। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी तालीमी संघका जन्म उसके पश्चात् ही हुआ। हिन्दीके प्रति अपेक्षाकृत वृत्तिके कारण मैं स्वभावतः सन्त्रस्त हो उठा और 'हिन्दुस्तानी'के विरुद्ध संस्कारमूलक हिन्दी लिखनेके यत्नमें तथा हिन्दीके पक्षमें चिन्तनमें लग गया। कांग्रेसी नियन्ताओं द्वारा भाषाकी निर्मिति नेमिका यह आवर्त्त अनेकके सहित मुझसे भी सहा नहीं गया। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी तालीमी संघका स्वभावतः प्रसारित हो उठा। मेरी धारणा है कि देश अपने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

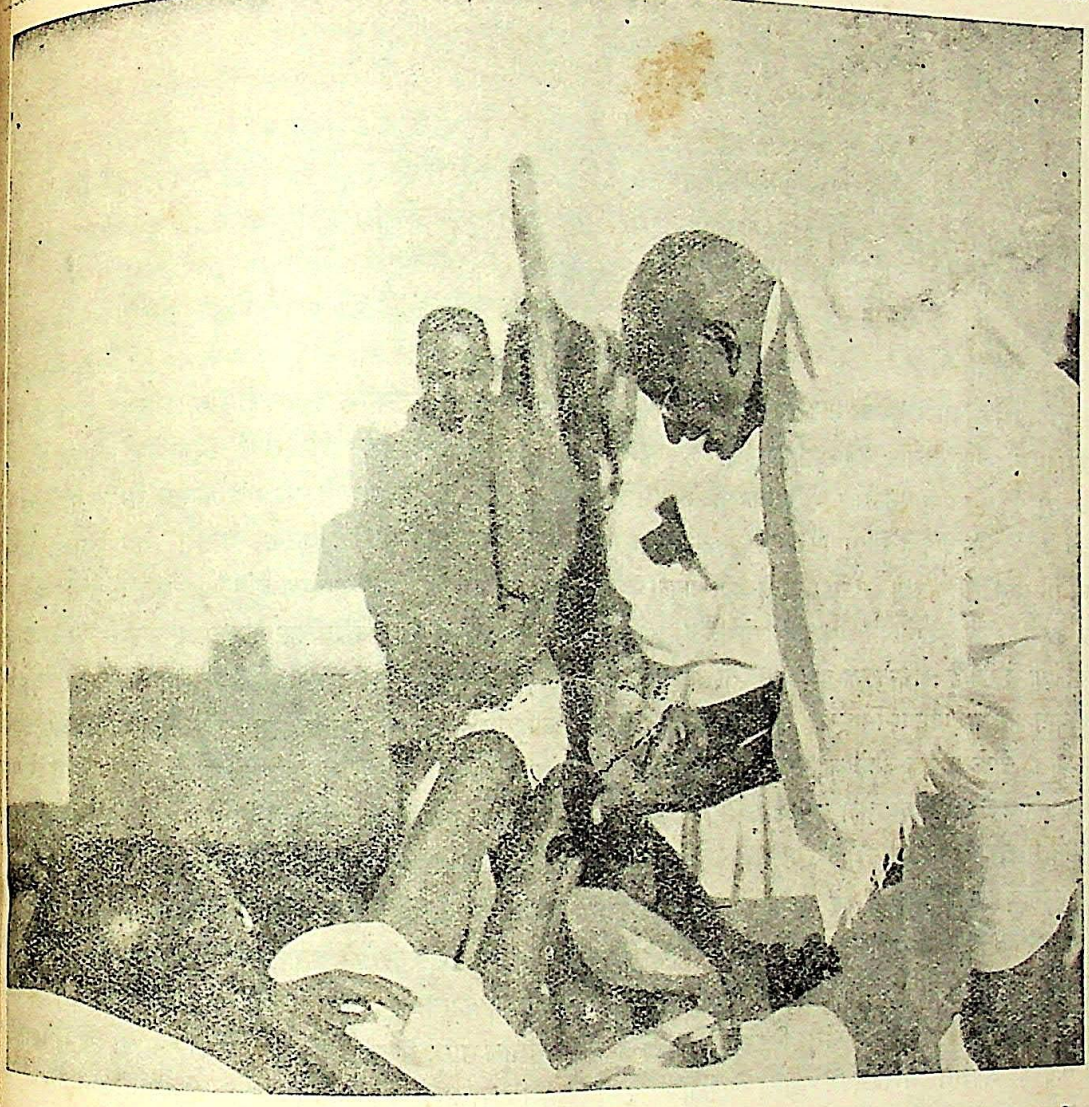

शास्त्रीजीकी मालिशके लिए गांधीजी हथेलीपर ओषध-मिश्रित तेल ले रहे हैं। [फोटो : पं० श्रीराम शर्मा

किसीमें इस प्रकारके अथवा जो भी संस्थान अथवा प्रतिष्ठान गलित हैं, ऐसा नहीं है कि ये श्री-सम्पद्से परिपूर्ण नहीं हैं अथवा श्रेयस्कर इनके द्वारा कुछ होता नहीं है। व्यक्तिकी शक्ति का प्रयोग जब समष्टिके अर्थमें होने लगता है, तब ही संस्थान अथवा प्रतिष्ठान प्रचलित हो उठते हैं। स्वभावतः और अधिकांशतः वे श्री-सम्पद्से पूर्ण होते हैं और श्रेयस्कर ही उनके द्वारा होता है। किन्तु देवताके तुल्य व्यक्ति भी गलित कोढ़से ग्रस्त, कुष्ठके समान श्रापभ्रष्ट दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार समष्टि, संस्थान अथवा प्रतिष्ठान द्वारा भी पापविद्ध, असुन्दर और कुश्री कभी-कभी हो उठता है। छातीपर यह पत्थर रखकर ही भाषा जब समयसे समस्या बन गई है।

मौन जब मुखर नहीं हुआ था, किन्तु अनुभूति जब जाग उठी थी, मनोभावका प्रकाश उस दिनसे ही आरम्भ हुआ है। इंगित और भंगिमासे अग्रसर रसनाने वाणीका रूप ग्रहण किया । हजार-हजार वर्ष पहलेके उस आदिम युगमें प्रवर्तित शिक्षण, बुद्धि, विवेक, वातावरण, देश और कालसे प्रभावित भाषा अवश्य प्राकृत, संस्कृत आदिसे क्रमशः परिवर्त्तित सदैव पुरातन परिच्छद परित्यागकर सदैव नवोढ़ाका यौवन, उन्माद, आनन्द और संस्कार धारण करती आई है। संयम और मर्यादा आज तक उसने अर्जन ही को, खोई नहीं। आदिम युगकी बर्बरतासे लेकर आजके वैज्ञानिक युगकी सभ्यता तकका भाषाके नव-प्रवर्त्तन और नव-निर्माणका यही इतिवृत्त है। बर्बरताके आदिम युगसे सभ्यताके आजके वैज्ञानिक युग तक दुःखजयी व्यक्तियोंके दलने भाषा और उसके साहित्य-निर्माणकी साधनामें अपना सारा जीवन, सारा संसार, अपना इहलोक और परलोक एक कर दिया। मैं नहीं जानता था कि भाषाकी आजकी समस्यासे हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक श्री परचुरे शास्त्रीका अन्तर भी वाष्पाकुल हो उठा है।

भाषाका निर्माण समयकी गति और गंगा-यमुनाके प्रवाहके समान अबाध और अपरिमेय है। जाति-वर्गका भेद और गिरि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ॐ नमस्ते अस्तु ओजसे
गृणन्ति देव कृष्टयः॥
अमैरमित्र मर्दय॥

ऋग्वेदके जिस मन्त्रोच्चारणके साथ शास्त्रीजी गांधीजीको प्रणाम करते थे, वह उन्हींके हस्ताक्षरोंमें ऊपर दिया जा रहा है।

शृंखला एवं गुहा-गह्वरकी बाधा उसके सम्मुख तुच्छ, नगण्य है। प्रचलन यही है और प्रमाण भी यही है। फिर भी भाषा रोगाविष्ट हो उठी है। सुयोग है कि गंगासे नहरें निकलीं, जिनसे दिगन्त तक शस्योत्पादन हुआ। गंगा यद्यपि बहन यमुना और अनेक बहनोंके सारे अस्तित्वमें एकाकार सम्मिलिता समुद्रका आलिंगन पा ले रही है; किन्तु यह दुर्योग नहीं तो और क्या है कि सीमन्त अथवा सौभाग्य-सिन्दूरकी उपमासे उन्मद गंगा क्षीणकाया है, उसके प्रवाहके जलमें जहाँ-तहाँ शव स्थिर सड़ते हैं और दुर्गन्धिकी नारकीयता एकत्र कर उठते हैं। भाषाके सम्बन्धमें भी कुछ ऐसा ही हुआ है।

राष्ट्रभाषाके कर्त्ताओंमें बापू-जैसे वरेण्य, राजेन्द्र-जैसे रत्न और जवाहर-जैसे जराव्याधि-विहीन सर्वोपरि हैं। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके कर्त्ताओंमें काका दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर हैं। वाग्देवीके माध्यम द्वारा उनसे मेरा निकटका परिचय है। काका साहबके अनवरत अध्यवसायके कारण आसामसे लेकर सीमा-प्रान्त तक और शिमलासे लेकर सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक सब कहीं अपर भाषा-भाषियोंमें उद्देशमूलक हिन्दुस्तानी भाषा और नव-संस्कारकी एवं शिरोरेखा-विहीन लिपिका प्रचार यथेष्ट बढ़ा। मैं जब-जब वर्धा गया, मैंने भाषा और लिपिके सम्बन्धमें काका साहबसे विचार-विनिमय किया। किन्तु मेरे अन्तरमें जो धूम्र विकीर्ण हो रहा था, वह केवल इतनेसे ही शान्त नहीं हुआ। हिन्दी हिन्दुस्तानी बन गई थी और उसकी लिपि देवनागरी तथा उर्दू दोनों स्थिर की गई थीं। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके शिक्षा-विभाग द्वारा भी यह प्रचार हुआ था। भाषा और लिपिकी समस्यापर मैं गांधीजीसे आलोचना-चर्चा करना चाहता था। अतः सन् १९४२ के तीसरे महीनेमें मैं वर्धा और सेवाग्राम गया। मैंने गांधीजीके समक्ष अपना मन्तव्य प्रकट किया, और वे सबेरे और शामको अपने वायु-सेवनके समयमें मुझसे चर्चा करनेको प्रस्तुत हो गए। मेरी उनसे जो चर्चा हुई, वह फाल्गुन, १९४४ के 'विशाल भारत'में 'हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी'-शीर्षकसे प्रकाशित हुई है।

पहले दिन सबेरे गांधीजीसे अनुमति माँगकर मैं [illegible] निवासकी ओर लौट पड़ा था। शामसे मेरी चर्चा आरम्भ [illegible] और दूसरे दिन सबेरे अनेक आसन्न बाधा-विघ्नोंको अतिक्रम करके फिर वही क्रम आरम्भ हुआ। मुझसे चर्चा करते [illegible] गांधीजी लौटे और नैमित्तिक क्रमके अनुसार श्री परचुरे शास्त्री निकट पहुँचे। शास्त्रीजी तो धराशायी हो गए। उन्होंने आदितम ऋग्वेदका मन्त्रोच्चारण किया और गांधीजीको दण्डवत् प्रणाम किया। शास्त्रीजी जब प्रकृतिस्थ हुए, तब व्यक्तिगत [illegible] कुछ भूलकर उन्होंने गांधीजीसे एकान्त प्रश्न किया—"[illegible] 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी'का यह जो सम्मेलन है, इसमें अतीतके वाङ्मयकी संगति है क्या?"—गांधीजीने मेरी ओर इंगित किया और शास्त्रीजीसे बताया कि मैं भी उनसे ठीक इसी प्रश्न के प्रश्न करता चला आ रहा हूँ। उन्होंने जो उत्तर दिया, वह 'विशाल भारत'में प्रकाशित है। मैं जानता था कि मैं निःसंग हूँ, मुझे ज्ञात नहीं था कि हिन्दीका पक्षपाती एक महर्षि कोई शास्त्रीके छद्मवेशमें मेरे निकट ही विद्यमान है। मैंने बहुत देखे हैं और संस्कृतकी उक्ति भी पढ़ी है; पर शास्त्रीजी संस्कृतके महापण्डित थे। उन्होंने बाल्यवयमें ही अनेकों आवृत्तियोंके द्वारा कण्ठाग्र किया होगा:—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
अप्रियंचाहितंचापि प्रियायापि हितं वदेत्॥

कोढ़ी शास्त्रीजी संसारके सामान्य धरातलके व्यक्ति नहीं थे। मनुष्यके विश्व-जनीन दरदी यौवनको पचास वर्षके [illegible] उन्होंने अपने गलित कोढ़के रूपमें परिस्फुट किया था। उनके पक्षमें सत्य अप्रिय रह ही नहीं गया था। यद्यपि वे अपर [illegible] भाषी थे, तथापि राष्ट्रभाषाके प्रति उनके मनमें अजस्र अनुराग और निगूढ़ वेदना थी। शास्त्रीजीके आग्रहसे दुबारा उन्हें मिला। अतिरंजन नहीं है कि ठिंगने, गठीले, गलित कोढ़ी ग्रस्त शास्त्रीजीमें मनुष्यका अभिमान और देवत्वका आदर्श देखा। मैंने पहली बार देखा। मैंने उन्हें चरणस्पर्शमय प्रणाम किया। गांधीजी शास्त्रीजीके वरेण्य थे, तथापि उन्होंने व्यक्त किया

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राष्ट्रभाषाका आसन शतगुण-सहस्रगुण उच्च है। यह जानकर कि मैं हिन्दीका सामान्य नगण्य लेखक हूँ, शास्त्रीजी 'साधु साधु' उच्चारण कर उठे। आवेग-विगलित स्थिर कण्ठसे वे कह उठे—"हिन्दुस्तानीके विपरीत आन्दोलन कीजिए। बापूके विरोधकी चिन्ता मत कीजिए। भ्रान्ति दूर कीजिए। भाषाका, साहित्यका, वाङ्मयका महत्व सबसे ऊँचा है। आप आभिजात्य स्थापित कीजिए।" यद्यपि अपनी चर्चामें मुझे उस समय ज्ञात हुआ कि साहित्यकी भाषाके सम्बन्धमें गांधीजी हिन्दुस्तानीके विपरीत हिन्दीके विरोधी नहीं हैं।

वन्दना अथवा स्तवकी आवृत्तिसे पुनरुक्तिका दोष नहीं लगता। शास्त्रीजी सदा सत्य वाक्यका व्यवहार करते थे। जो उनके अन्तरकी अनुभूति थी, उनकी जिज्ञासासे वह सर्वदा प्रिय हो उठती थी। शास्त्रीजी लोकहितैषी, देशहितैषी थे। वे आध्यात्मिक, दार्शनिक वृत्तिके थे; अथच शास्त्रीजी विनोदप्रिय थे। गांधीजी उनके निकट और सेवाग्राममें निकटतम थे। शास्त्रीजीकी महत्ताके कारण गांधीजी ईसा-से दिखाई पड़ते थे। शास्त्रीजी गांधीजीसे प्रश्न किया करते—'संसार त्रिगुणात्मक है; तब फिर अहिंसाका असर रज और तम प्रकृतिसे सम्पन्न व्यक्तियों पर कैसे हो सकता है?'—'क्षमाकी कोई सीमा है?'—'प्रायश्चित्त और पापोंको कहनेकी मर्यादा क्या है?'

और शास्त्रीजी अपने बापूसे अबोध बालकके समान विनोद करते—'बापू, गुजरातकी भी अपनी कोई संस्कृति है?'

शास्त्रीजी वास्तवमें सच्चिदानन्द थे।

धारावाहिक उपन्यास

मुसाहिबजू

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

- ४ -

पूरनको मुसाहिबजूने अपनी ड्योढ़ीके एक कोनेमें लिटा दिया। पंखा झलनेके लिए उन्होंने लल्ली नामक अपने एक लोधी सैनिकको आज्ञा दी। वह पंखा झलने लगा। नाई मुसाहिबजूके लिए हुक्का भरनेको गया। इतनेमें बाहर रमू आ गया। उसने झपटकर लल्लीके हाथसे पंखा छीन लिया। बोला—'यह क़ायदेके खिलाफ़ है।'

मुसाहिबजूके हठ करनेपर भी रमू नहीं माना। इतनेमें नाई हुक्का लेकर आ गया। मुसाहिबजू रमूके सामने हुक्का नहीं पीते थे। वह उनके पिताका साथी था और उसको मुसाहिबजू 'रमू कक्का' कहकर पुकारते थे। नाई भी इस बातको जानता था, इसलिए उसने हुक्का एक तरफ़ रख दिया। रमूने देख लिया। पूरनके बिस्तरेपर पंखा रखकर रमू वहाँसे चल दिया। कहता गया—'राजा, मैं घर तक हो आऊँ।'

उसके चले जानेपर लल्लीने फिर पंखा झलना आरम्भ कर दिया। मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे। एक नौकर शर्बत, पानीके घड़े, लोटे और कटोरे ले आया। मुसाहिबजूने हुक्का अलग रख दिया। प्यासे थे, उत्सुक दृष्टिसे जल-पात्रोंकी ओर देखने लगे। शर्बत एक छोटे-से लोटेमें था और पानी घड़ेमें। जैसे ही पानी पिलानेवालेने शर्बतका लोटा उनकी ओर बढ़ाया, वह बोले—'पहले पूरनको।'

पानीवाला शर्बतके लोटेको एक ओर रखकर ठंडे पानीके घड़े और लोटेको पूरनकी ओर ले गया। घड़ा तो उसने एक ऊँचे स्थानपर रख दिया, लोटेसे पानी ढालकर प्यासे पूरनको पिलाया। उसी समय एक सनिक शर्बतका लोटा और कटोरा मुसाहिबजूके पास ले गया। कटोरेसे मुसाहिबजू शर्बतका पूरा लोटा खाली कर गए। फिर हुक्का सामने रखकर पूरनसे पूछा—'खूब मीठा है, पूरन?'

'मीठा, काकाजू!'—पूरनने ज़रा आश्चर्यके साथ कहा। फिर तुरन्त सहज स्वरमें बोला—'बहुत ठीक है, काकाजू!'

मुसाहिबजू हुक्का पीने लगे और दूसरे लोग पानी। लल्लीने भी पिया। पानी पिलानेवालेसे कुछ दिल्लगीमें, कुछ रिसियाना-सा, बोला—'हमें कोरा पानी! कबकी कसर निकाली है?'

मुसाहिबजूका ध्यान आकृष्ट हुआ। पूरनने अज्ञेय संकेतमें लल्लीसे कहा—'तुम्हें न-जाने क्या बान पड़ी है।'

'क्या है पूरन?'—मुसाहिबजूने लापरवाहीके साथ पूछा।

'कुछ नहीं।'—पूरनने विश्वास दिलाते हुए उत्तर दिया।

लल्लीने मुँह फेर लिया। मुसाहिबजूको सन्देह हुआ। हुक्केकी निगाली हाथमें पकड़े हुए वह बोले—'क्यों जी, लल्लीको शर्बत नहीं दिया?'

नौकरने कोई उत्तर नहीं दिया। वह दूसरे लोगोंको पानी पिलाने लगा।

'क्या बात है?'—मुसाहिबजूने ज़रा ज़ोरके साथ प्रश्न किया।

एक सैनिकने पानी पीते-पीते कहा—शर्बत नहीं है, पानी है, दाउजू!'

'क्यों रे?'—मुसाहिबजूने उत्तेजित होकर पूछा?

'मैं क्या करता?'—नौकरने मुँह फेरकर उत्तर दिया।

मुसाहिबजूने हुक्का सामनेसे हटा दिया। मूँछपर हाथ फेर-कर कुछ सोचने लगे। एक क्षण बाद भीतर गए। खबर की

CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गई। पत्नीसे कहा—'किसीको शर्बत, किसीको पानी! यह क्या?'

'केवल आपके लिए शर्बत था, और सबके लिए पानी।'

'क्यों? यह भेद क्यों किया गया?'

'क्या किया जाता?'

'मैं ही सब-कुछ हूँ—ये लोग आपके कोई नहीं हैं? मेरे सिपाही आपके कोई नहीं!'

'आपके सब-कुछ होनेसे ही मेरे भी कुछ-न-कुछ हैं।'

पत्नीको उग्र होता हुआ देखकर मुसाहिबजू भी उत्तेजित हुए। बोले—'किसी दिन पानी न होगा, तो क्या पिलावेंगी आप?'

'जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो कुएँ नहीं सूखेंगे। मेरे पीछे जो-कुछ हो।'

मुसाहिबजू कुछ ठंडे पड़े। नरम स्वरमें बोले—'क्या इतनी भी खाँड़ न थी कि थोड़ी-थोड़ी सबके बाँटमें पड़ जाती?'

चरखारीवालीकी उग्रतामें अन्तर नहीं आया। बोली—'थोड़ी वस्तुको बढ़ा देनेका रसायन मुझको नहीं मालूम है।'

मुसाहिबजू और नरम पड़े। बोले—'पहले तो कई बार मैंने इस रसायनके उदाहरण देखे हैं।'

'अब भी देखिएगा।'—ज़रा कम्पित स्वरमें चरखारीवालीने कहा।

गम्भीर होकर मुसाहिबजूने पूछा—'क्या खाँड़ मेरे ही लोटे में थी या और भी किसीको दी गई?'

'केवल इतनी थी कि आपको दी जा सके।'—सरल उत्तर मिला।

मुसाहिबजूने ज़रा कठोरताके साथ कहा—'यह बहुत बुरा हुआ। जो-कुछ हो, सबके लिए एक-सा होना चाहिए। मेरा जीवन मेरे सैनिकोंसे ही सार्थक है। मेरे लिए धिक्कार है, यदि मैं पेट भर खाऊँ और मेरे आदमी भूखे या अधपेटे रहें!'

'आज कदाचित् ऐसा ही होगा।'—चरखारीवालीने भी निर्ममताके साथ उत्तर दिया।

'तब मैं भी आज भोजन नहीं करूँगा।' मुसाहिबजूने कहा—'हम सब लोग भूखे ही रहेंगे।'

मीठे स्वरमें चरखारीवालीने जवाब दिया—'आज तो यह नौबत न आवेगी।'

मुसाहिबज़ ढल गए। उन्होंने उत्सुकताके साथ पूछा—'भोजनकी काफ़ी सामग्री है भण्डारेमें?'

चरखारीवालीने हँसकर कहा—'आपको हमारे भीतरकी बातोंसे क्या प्रयोजन है? आज आपकी सेवामें कितने सैनिक हैं?'

एक क्षण सोचकर मुसाहिबजू बोले—'ठीक-ठीक नहीं मालूम। अभी समाचार भेजता हूँ; परतु पूरनके लिए आज और आगे १०–१५ दिन तक विशेष भोजनका प्रबन्ध करना पड़ेगा। उसको बहुत चोट आई है।'

'मैंने सुन लिया है।' चरखारीवालीने कहा—'उसने कोई निमककी बजाई है। उसकी सुश्रूषा बहुत अच्छी तरह होनी चाहिए।'

'अबकी बार किसानोंने पूरा लगान नहीं दिया है, इसीलिए बीच-बीचमें अटक पड़ जाती है। क्या करें, कहीं कोई सुभीता भी नहीं होता है, जिससे सिपाहियोंका कुछ दिनों काम चले।' मुसाहिबजू कहते चले गए—'उनकी संख्या कम भी नहीं की जा सकती है। अंगरेज़ोंके साथ सन्धि हो जानेपर भी सिंधियेकी ओरसे खटका बना रहता है। किसी दिन अंगरेज़ों और मराठोंकी फिर छिड़ जावे, तो हमारे हथियारोंकी भी ज़ंग छूटे।'

चरखारीवाली इस प्रकारका मन्तव्य अनेक बार सुन चुकी थीं। बोलीं—'सैनिकोंकी संख्या कम न की जावे। आप दस सौ योद्धाओंके नायक हैं। उनमें कमी होनेसे आपके प्राचीन गौरवको बट्टा लगनेका डर है।'

मुसाहिबजूने एक ओर देखकर कहा—'यदि उस समय पूरनने अपने प्राणोंकी होड़ न लगाई होती, तो तेंदुआ तो मेरी छातीपर आ ही गया था।'

'आप क्या तवा लगाकर नहीं गए थे?'—चरखारीवालीने दृष्टि गड़ाकर पूछा।

मुसाहिबजूने उत्तर दिया—'शिकारमें तवा लगाकर नहीं जाता।'

'पूरनकी मरहम-पट्टीका तो अच्छा प्रबन्ध हो गया है?'—उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

मुसाहिबजूने उत्तर दिया—'वह तो हो गया है। अब उसके लिए विशेष भोजनका प्रबन्ध हो जाना चाहिए। कदाचित् उसको बिलकुल अच्छा होनेमें एक महीना लग जावे। तेंदुएके दाँत और नाखूनमें विष होता है।'

'जानती हूँ'—चरखारीवाली बोलीं—'नाहरकी अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है। उसके भोजनका उचित प्रबन्ध हो जावेगा।'

मुसाहिबजू वर्त्तमान समस्याको इस तरह सुलझी देखकर सन्तोषके साथ ड्योढ़ीमें लौट आए। अपने साथियोंसे कह दिया कि बहुत शीघ्र रसोई तैयार हुई जाती है। खाँड़वाली बातकी कसक जीसे निकल गई। 'नाहरकी अपेक्षा बहुत कम भयानक होता है' ज़रूर ज़रा ज़्यादा देर तक याद रहा।

अकेली रह जानेपर चरखारीवालीकी आँखमें छोटा-सा आँसू आ गया। उसको पोंछ डाला। सोचने लगीं, शिकारमें तवा लगाकर नहीं जाते, तो युद्धमें क्यों जाते हैं? आक्रमण और आत्म-रक्षाका तो अखण्ड सम्बन्ध है। फिर भीतर जाकर एक सन्दूकचीमें से अपनी रत्नजटित स्वर्ण पहुँची निकाली। मन्त्रीसे कहा, बहुमूल्य है; इस समय धरोहर रखकर पाँच सौ रुपए

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri eGangotri Gyaan Kosha

मँगा लेनेसे कुछ दिनों काम चल जावेगा। तब तक उगाहीका रुपया आ जावेगा। प्रधान रसोइनको बुलाकर कहा—'कितने लोगोंके लिए खाना बनेगा, इसका पता लगाओ।'

उसने उत्तर दिया—'पता लगा लिया है। बहुत हैं। भण्डारेमें...।'

चारखारीवालीने बात पूरी नहीं होने दी। कहा—'घबराओ मत, अन्नपूर्णा सहायता करेंगी। लल्ली लोधीको बुलवा लो।'

रसोइन प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखने लगी। वह मुस्कराकर बोलीं—'ये पहुँचियाँ उसको देकर कुंजीके यहाँ भेज दो। पाँच सौ रुपए इसी समय ले आवे। रुपए आते ही तुरन्त भाण्डारकी कमीको पूरा करो और भोजन तैयार करो। मुसाहिबजू और उनके सैनिक थके-माँदे हैं। पूरनको हलुवा और खीर दो—आज सभीको हलुवा और खीर दो। भूलना मत। मैं पूरनको कुछ पारितोषिक भी दिया चाहती हूँ।'

'वह उसको पहले ही मिल गया है।' रसोइनने कहा—'राजाने अपने निजके पहननेका गुंज पूरनको पहना दिया है।'

मुसाहब-पत्नी बोलीं—'चलो, मेरा बोझ हल्का हुआ।' दूसरी ओर मुँह फेरकर उन्होंने एक हल्की-सी आह खींची। फिर उसी क्षण सम्मुख होकर रसोइनसे कहा—'सेनापतिके लिए उनके योद्धा ही सब-कुछ होते हैं।'

'अब आप और कुछ पारितोषिक न दीजिएगा।' रसोइनने सम्मति दी—'ज़रा-ज़रा-सी बातपर पुरस्कार लुटानेसे पानेवालोंका स्वभाव बिगड़ जाता है।'

'मैं पुरस्कारके सिद्धान्तको जानती हूँ। तुम इन पहुँचियों को लल्ली द्वारा कुंजीके पास भेज दो। जल्दी जाओ।'

रसोइन पहुँचीकी जोड़ी लेकर चली गई। चरखारीवाली सोचने लगीं, अपने पहननेका गुंज भी दे दिया! मैंने लक्ष नहीं कर पाया, नहीं तो पूछती। परन्तु पूछकर क्या करती? रीता गला भला नहीं मालूम पड़ेगा। गुंजका प्रबन्ध भी शीघ्र ही होना चाहिए। पर इस समय कुछ नहीं कर सकती हूँ। क्या करूँ, बड़ी विपद है! अब गाँठमें और कोई ऐसे आभूषण भी नहीं हैं। घर जाऊँ, तब कुछ ठीक पड़े।

- ५ -

कुंजी सेठ पड़ोसमें ही रहता था। लल्ली पहले भी कई बार अटक-भीरके समय इसी तरह मुसाहिब-पत्नीके आभूषण कुंजीके यहाँ गिरवी रख चुका था। गिरवी रखनेके बाद फिर आभूषण कभी नहीं छुड़ाए जा सके। ब्याज इतना बढ़ा कि कुछ भी न दिया जा सका। मुसाहिबजूको भी मालूम था। वे आशा करते थे कि किसी अदृष्ट अचानक साधन द्वारा कभी इतना धन हाथ आ जायगा कि सब आभूषण, कदाचित् एक ही दिनमें, छुड़ा लिए जायँगे, अथवा किसी दिन किसी अदृष्ट आकस्मिक घटना द्वारा कम न किए जाने योग्य व्यय बिलकुल कम हो जायँगे और जागीरकी आयसे ही सारा ऋण चुका दिया जायगा। इसीलिए वे ब्याज देनेकी चिन्तामें अपनेको बहुत कम खपाते थे। और जब तक पत्नीके आभूषण ठेले दिए चले जाते थे, तब तक त्रासको मनमें बसानेकी आवश्यकता ही क्या पड़ सकती थी?

लल्ली कुंजीके घर गया। उस समय कुंजी घरपर नहीं था। उसकी लड़की थी। सुभद्रा नाम था। युवावस्था-प्राप्त विवाहित स्त्री थी। पतिगृहमें सुख न मिलनेके कारण प्रायः बापके पास रहती थी। ४-६ महीनेमें विवश होकर जब उसको पतिके घर जाना पड़ता था, तब दो-चार दिन रहकर फिर मायके चली आती थी। घरमें बापके सिवा और कोई न था। वह पतिके यहाँसे कुछ महीने हुए लौटकर आई थी।

कुंजीको घरमें न देखकर लल्लीने पूछा—'कक्का कहाँ गए हैं? तुम कब आईं?'

'कहीं बाहर गए हैं। आते ही होंगे।'—सुभद्राने अपने काले बालोंको ज़रा-सा ढाँकते हुए कहा; परन्तु अन्तिम प्रश्नका उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

लल्ली दरवाज़ेके पास बैठ गया। एक ओर देखते हुए बोला—'बहुत दुबली हो गई हो।'

'जी अच्छा नहीं रहा।'

'कोई दवा खाई?'

'मैं दवा नहीं खाती।'

'कक्कासे कहूँगा कि तुम्हारी अच्छी तरह चिकित्सा करा दें।'

'भगवान मेरी सुन लें, तो पूरी चिकित्सा हो जावे।'—सुभद्रा मुस्कराई। उसकी मुस्कराहटमें मादकता थी।

लल्लीने जोशके साथ कहा—'ऐसा मत कहो। सुननेमें बुरा मालूम होता है।'

सुभद्रा घरके एक भीतरी कोठेमें चली गई। लल्ली रह-रहकर उसी ओर देखने लगा। कभी-कभी सड़ककी ओर भी देख लेता। थोड़ी देरके बाद सुभद्रा भीतरसे ही बोली—'शायद कक्काको आनेमें विलम्ब हो जाय।'

लल्लीने कहा—'तुम तो कहती थीं कि वह आते ही होंगे।'

'कहीं कोई काम लग गया, तो अटक भी तो सकते हैं।'—सुभद्रा भीतरसे ही बोली।

'मैं तब तक नहीं टलनेका, जब तक कक्का नहीं आते।' लल्लीने निश्चय प्रकट किया—'मुझको बड़ा आवश्यक काम है।'

सुभद्रा कोठरीसे बाहर नहीं आई। वहींसे बातचीत करती रही—'क्या काम है?'

'इतनी दूरसे चिल्लाकर नहीं बतलाया जा सकता।'

'दूर क्या है?'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'तुम।'

सुभद्राने इसपर कुछ नहीं कहा। लल्ली भी चुप बैठा रहा। जिस कोठरीमें सुभद्रा चली गई थी, वहाँसे कभी उसकी चूड़ियों और कभी पैजनोंकी आवाज़ आने लगी। लल्ली कभी सड़कपर से आने-जानेवालोंको देखता और कभी उस आवाज़को सुनता। इस तरह कुछ समय हो गया।

जमुहाई लेकर लल्लीने पूछा—'सुभद्रा क्या सो गईं? इसीलिए तो जी अच्छा नहीं रहता।'

कोठरीमें से सुभद्राकी हँसीका स्वर सुनाई पड़ा। उत्तर दिया—'तुम जाग रहे हो, मैं सो रही हूँ।'

लल्ली—'ऐसा कब तक होता रहेगा?'

सुभद्रा—'जब तक जीवन है।'

लल्ली—'जीवनका कौन ठिकाना है?'

सुभद्रा—'हमारा भी तो कोई ठिकाना नहीं।'

लल्ली—'अन्धे कोठेमें से ऐसी बात मत कहो।'

सुभद्रा—'तुम्हारे पास तो उजेला है।'

लल्ली—'अकेले तो अँधेरा-उजेला दोनों बराबर हैं।'

सुभद्रा—'दुकेलेसे उजेला भी अँधेरा हो जायगा।'

लल्ली—'और अँधेरा उजेला!'

सुभद्रा—'आज तो बड़ी अड़ पकड़ रहे हो।'

लल्ली—'अपने मनसे पूछो। जबसे आईं, दिखलाई तक नहीं दीं!'

सुभद्रा—'मन ही तो बतला रहा है। किसी मतलबसे आए होगे।'

लल्ली—'मतलब न होता, तो मुसाहिबजूके यहाँ ही न चिलम-तम्बाकू चलतो।'

सुभद्रा—'तम्बाकू-चिलम दे जाऊँ?'

लल्ली—'किसी बहाने सही, अन्धी कोठरी तो छोड़ो।'

सुभद्रा मुस्कराती हुई बाहर आई। चिलम-तम्बाकू दी और एक ओर बैठ गई। तम्बाकू भरकर लल्ली चिलम पीने लगा।

सुभद्रा निकटवर्ती ग्राम बड़ौनीमें ब्याही थी। लल्लीने धुआँ खींचते-खींचते पूछा—'बड़ौनी क्या जल्दी जाना होगा?'

लल्ली सुभद्राका पुराना परिचित था और दिल्लगी करना तथा चिढ़ाना अपने अधिकारके भीतरकी बात समझता था। सुभद्रा उस पुराने परिचयके व्यवधानोंमें अपेक्षा और उपेक्षा दोनों अवगत करने लगी थी। बोली—'जल्दी जाऊँ या देरसे, तुमको क्या पड़ी है?'

लल्लीने उत्तर दिया—'पड़ी है, तभी तो पूछा।'

सभद्रा—'फिर इतने दिनों बाद आकर क्यों पूछा?'

लल्ली—'हमने तो हाल ही में सुना था।'

सुभद्रा—'झूठे हो!'

लल्ली—'सच्ची बात है, सुभद्रा! सिपाही हैं। इधर-उधरके काम लगे रहते हैं। फ़ुरसत ही नहीं मिलती।'

सुभद्रा—'रोज़ तो तुमको यहाँसे निकलते देखती हूँ।'

लल्ली सड़ककी ओर देखने लगा। बोला—'वे दिन कैसे मीठे थे, सुभद्रा! कभी नहीं भूल सकता हूँ।'

सुभद्रा चिढ़कर बोली—'न कोई दिन मीठे होते हैं और न खट्टे। अपने मनकी दशापर निर्भर है।'

लल्लीने मधुरताके साथ प्रश्न किया—'तुम्हारा मन कैसा है, सुभद्रा?'

सुभद्राने मुँह फेरकर उत्तर दिया—'जैसा तुम्हारा नहीं है।'

लल्लीने उत्तेजित होकर कहा—'कभी परीक्षा कर लेना। या तो मुसाहिबजूके लिए गर्दन दे सकता हूँ या तुम्हारे लिए।'

सुभद्रा बोली—'देखूँगी।'

इतनेमें सामनेसे सुभद्राका पिता कुंजी आता दिखाई पड़ा। सुभद्राने भौंहें चढ़ाकर कहा—'तुम्हारे लिए यह बड़ी देरसे बैठे हैं।'

लल्ली बोला—'एक चिलम तम्बाकू भी पी चुका हूँ।'

कुंजीने पौरमें जूते उतारते हुए आदरपूर्वक पूछा—'भातेको छालिया नहीं खिलाई?'

सुभद्राने उत्तर दिया—'तम्बाकूके सामने छालियाको कौन लेने लगा?'

कुंजीको असन्तोष नहीं हुआ। वृद्ध कुंजीकी सुभद्रा वर-प्राप्त लड़की थी। लल्ली प्रसिद्ध मुसाहिबजूका पदगौरवान्वित सैनिक था और मुसाहिबजूके गहने गिरवी रखनेके लिए बहुधा यहीं आया करता था। यद्यपि लल्ली और सुभद्राके वास्तविक सम्बन्धकी बात उसको मालूम न थी, तथापि वह उनके पारस्परिक सम्पर्कमें कोई असुविधाजनक सन्देह अनुभव नहीं करता था। उसका काफ़ी लेन-देन था; परन्तु वह उसकी सीमाको सदा संकुचित प्रकट किया करता था और अपना रहन-सहन इतना सादा, यहाँ तक कि टुच्चा, प्रदर्शित करता था, जिसमें उस समय के झंझट और अशान्तिमें कोई उसकी असाधारण लोगोंमें गिनती न कर सके।

कुंजीने एक चिलम और तैयार की। लल्लीको देखकर शिष्टताके साथ आनेका कारण पूछा। लल्लीने चरखारीवाली सरकारकी सोनेकी जड़ाऊ पहुँचियाँ सामने रखकर कहा—'पाँच सौ रुपए इसी समय चाहिएँ।'

ललचाई हुई आँखोंको एक ओर नियन्त्रित करके कुंजी बोला—'माते, हम तो मुसाहिबजूकी चाकरीके लिए सदा हाज़िर हैं; परन्तु आप ही सोचो, कितना पिछला हिसाब पड़ा हुआ है और इसी समय इतने रुपए तो शायद ही घरमें निकलें।'

लल्लीने सुभद्राका लिहाज़ करते हुए कहा—'रुपएके आपके यहाँ भगवान्‌ने भाण्डार भर रखे हैं। रह गया हिसाब, सो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

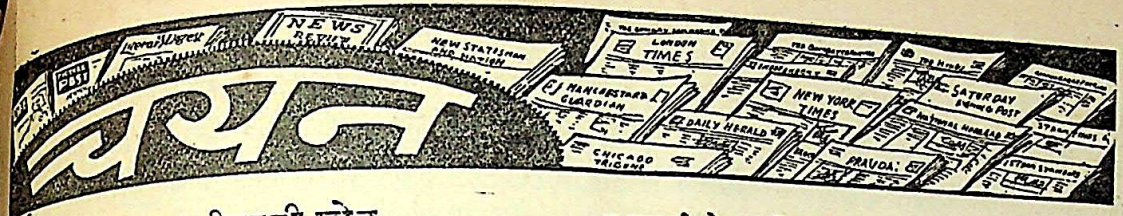

कृष्ण-जीवनकी खोज

मौलाना सय्यद हबीब, सम्पादक दैनिक 'सियासत', लाहौरने 'हिन्दी मिलाप'के कृष्णांकमें लिखा है—"मुझे कृष्ण-चरित्रकी तलाश हुई, तब मुझे मालूम हुआ कि इस पवित्र व्यक्तिकी ज़िन्दगीके हालात लिखनेमें बहुत ज़्यादा बेपरवाही और सज़ाके क़ाबिल ग़फ़लतसे काम लिया गया है। न सिर्फ़ उर्दूमें ही श्रीकृष्णजीके जीवनके हालात मज़बूत आधारपर जमा नहीं किए गए, बल्कि दूसरी ज़बानोंमें भी ऐसी किताबें न होनेके बराबर हैं। संस्कृतमें जो किताबें इस पवित्र और उच्च व्यक्तिकी ज़िन्दगी पर रोशनी डालती हैं, वे हैं—हरिवंश, महाभारत, अनुशासन-पर्व, महासल-पर्व और नौ पुराण। अंगरेज़ीमें सबसे अच्छी किताब रायबहादुर बंकिमचन्द्र चटर्जीने इस पवित्र हस्तीके सम्बन्ध में लिखी है और उर्दूमें लाला शान्तिनारायण साहब, एडीटर 'वन्देमातरम', लाहौरकी किताब 'नारायण कृष्ण-चरित्र' है। यह पुस्तक प्रारम्भिक किताबकी हैसियतसे क़द्रके क़ाबिल है, लेकिन इससे ज़्यादा कुछ नहीं। आवश्यकता है कि कोई कृष्ण-प्रेमी पहले कुछ अच्छे लेखकोंका एक बोर्ड बैठाएँ, जो आवश्यक खोज व छान-बीनके बाद हिन्दुस्तानको इस सर्वश्रेष्ठ हस्तीके जीवनके हालात जमा करके हिन्दुस्तानकी कुछ मशहूर भाषाओंमें उसे प्रकाशित करे। मुझे शौक है कि इस काममें मरनेसे पहले मैं भी कुछ हिस्सा ले सकूँ।

"श्री कृष्णचन्द्रजीको हिन्दू-दुनिया अवतार मानती है। अवतार और भी बहुत-से हैं; लेकिन रामचन्द्रजी और श्री कृष्ण-चन्द्रजीको जो प्रतिष्ठा प्राप्त है, वह ग़ैरहिन्दू-दुनियामें और किसीको प्राप्त नहीं। इन दोनोंमें से भी कृष्णका दर्जा ऊँचा माना जाता है, इसलिए कि यह पूर्णावतार स्वीकार किए गए हैं। लेकिन आश्चर्यका विषय है कि जीवनी-लेखकोंने रामचन्द्रजीके बारेमें बहुत ज़्यादा ध्यान दिया है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि श्री रामचन्द्रजीकी जीवनी रामायणमें एक जगह सिलसिले-वार और साफ़ मौजूद है। श्री कृष्णजीका हाल महाभारतमें मौजूद है। लेकिन रामायणका मक़सद तो श्री रामचन्द्रजीकी जीवनी लिखना ही है और महाभारत युद्धका ज़िक्र है, जिसमें श्री कृष्णचन्द्रजीका भी ज़िक्र कर दिया गया है। इसलिए श्री कृष्णचन्द्रजीके जीवनपर पूरी रोशनी नहीं पड़ती। भागवत् वग़ै-

---

लेना रुपया मुसाहिबजूके यहाँ गया है, सब सोनेके ज़ेवरपर गया है। उठाने आवेंगे, तो आपका ब्याज और असल देंगे, नहीं तो सोना तो आपके हाथमें है ही। कहो सुभद्रा, मैंने ग़लत तो नहीं कहा?'

सुभद्राने साधकर उत्तर दिया—'न मुझको गहनेसे प्रयोजन है और न रुपएसे। मुझको तो चैनसे रोटी खानेको मिल जाती है, और मुझको करना ही क्या है।'

कुंजी बोला—'माते, जो-कुछ मेरे पास चाँर पैसेकी गृहस्थी है, इसी लड़कीके लिए है। बड़ोनोंमें एक ब्याह है, इसलिए एकाध बार और भेजूँगा, फिर तो जो कुछ रूखी-सूखी यहीं मिले, यहीं रहेगी। मेरे अब हाथ-पैर नहीं चलते। यह होशियार है। थोड़ी-सी पूँजीका जो मेरा लेन-देन है, चला लेगी।'

लल्लीने कहा—'सुभद्रा, जाओ तो पाँच सौ रुपए निकाल लाओ। मुझको शीघ्र ही मुसाहिबजूके यहाँ हाज़िरी देनी है। लो सेठ, तुम सोना और इसके जवाहिर परख लो।'

'क्या परखना है।'—कहते हुए कुंजीने बारीकीके साथ पहुँचियोंको परखा। बापका संकेत पाकर सुभद्रा रुपया लेने भीतर चली गई।

कुंजी बोला—'आपने कहा, सो बिलकुल ठीक है; परन्तु गहनेपर गहना रखते जानेसे रुपएका तो आना ही रुक जाता है। जब तक हिसाब न हो जाय या यह हुक्म न हो जाय कि गहना असल और ब्याजमें डुबो दिया, तब तक बेच नहीं सकता और बिना बेचे रुपया हाथ आ नहीं सकता। आप ही बतलाओ, क्या करूँ? छोटा-सा लेन-देन है। थोड़े रुपए कभी-कभी आ जाते हैं। अब ये इकट्ठे पाँच सौ रुपए चले। बुरा न माना जाय। यदि कोई बड़ी रक़म माँगनेवाला सोना लेकर आ जाय, तो नाहीं करनी पड़ेगी; क्योंकि देना फेलानेके लिए लेना गिनतीमें पहले है।'

लल्ली उपयुक्त व्याख्याके चिन्तनमें चिलम पीता रहा; परन्तु बोला कुछ नहीं। सुभद्रा पाँच सौ रुपए लेकर आ गई। लल्लीके सामने रख दिए। लल्लीने गिनकर बाँध लिए। कुंजी पहुँचियोंको सावधानीके साथ रखनेके लिए भीतर चला गया। सुभद्रा उसके पीछे-पीछे जानेको हुई।

लल्ली हँसकर बोला—'आगे कभी रुपएकी ज़रूरत पड़ी, तो सेठसे न माँगकर तुमसे लूँगा।'

सुभद्राने मुस्कराकर कहा—'मेरे पास क्या रखा है? गहना क्या, मोती-जवाहर भी लाओगे, तो मुझसे कुछ न पाओगे।'

लल्ली धीरेसे बोला—'कुछ तो पाऊँगा।'

कोठरीमें प्रविष्ट पिताकी ओर देखते हुए सुभद्राने कहा—'मेरे पास थोड़े-से ये चाँदीके ज़ेवर हैं और एकाध हल्का-सा सोने का है। पैसा-कौड़ी गाँठमें एक नहीं। मैं क्या लेन-देन करूँगी?'

लल्ली बहुत धीरेसे कहता हुआ चला गया—'बतलाऊँगा, तुम्हारे पास क्या है।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रह बादमें लिखी गईं। महाभारतसे साफ़ पता लगता है कि उसका लेखक श्री कृष्णचन्द्रजीका समकालीन था। अगर कोई योग्य लेखक श्री कृष्णचन्द्रजीके जीवनका हाल लिखे, तब सबसे बड़ी मुश्किल उसकी यह होगी कि कहावतोंसे हक़ीक़तोंको अलग कर ले। लोगोंकी श्रद्धा हर मज़हबके शुरू करनेवालेके सम्बन्धमें अजीबो-ग़रीब किंवदन्तियाँ फैलानेका कारण बन जाती है। श्री कृष्णचन्द्रका व्यक्तित्व न सिर्फ़ इससे अछूता ही रहा, बल्कि उसपर सबसे ज़्यादा ज़ुल्म किया गया। आपके बारेमें दो क़िस्म की कहावतें हैं। एक वे जो श्रद्धालुओंने पैदा कीं, दूसरी वे जो विरोधियों और दुश्मनोंने गढ़ीं। पिछली कहावतें बहुत घृणित और हानि पहुँचानेवाली हैं। गीता-जैसी पवित्र पुस्तकके लेखक को बचपनमें चोर, जवानीमें कामी और अधीर उम्रमें फरेबी बतलानेवाले लोग दुनियाकी सबसे बुरी लानत और फटकारके हक़दार हैं। हिन्दू-दोस्तोंका सबसे पहला फर्ज़ यह है कि हिन्दुस्तानके इस सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिको जिन गानोंमें बदनाम कर उन्हें भजनका नाम दिया जाता है, उनका अस्तित्व मिटा दें।"

राजा महेन्द्रप्रताप

राजा महेन्द्रप्रताप मुरसानके राजाबहादुर घनश्यामसिंहके पुत्र हैं। सन् १८८६ में आपका जन्म हुआ था। ढाई वर्षकी आयुमें हथुआके राजा हरनारायणसिंहने आपको गोद लिया और आप उनके साथ वृन्दावनमें केलिघाटके विशाल प्रासादमें रहने लगे। गृह-शिक्षकसे विद्या ग्रहण करते समय आप वीरोंकी जीवनियाँ ही पढ़ते थे। खेल-कूलमें भी आपको नैपोलियन बनना और अपने साथियोंको सैनिक बनाना ही अच्छा लगता था। साढ़े नौ वर्षकी आयुमें आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। आप हाई-स्कूलमें दाखिल हुए और मैट्रिक पास करके अलीगढ़-कालेजसे एफ० ए० पास किया। फिर बी० ए० में पढ़ने लगे। उसी समय कालेजके अंगरेज़ प्रिन्सिपलने कोई अन्याय किया। आपने इसके विरुद्ध हड़ताल करवा दी। हड़ताल तो समाप्त हो गई; परन्तु आप फिर कालेज नहीं गए। १३ वर्षकी आयुमें आपका विवाह झींदके तत्कालीन राजाकी बहनके साथ हो गया। १८ वर्षकी आयुमें आप स्त्रीको साथ लेकर यूरोप भ्रमण करने गए। भारतके विषयमें सत्यका प्रचार तथा ज्ञान-विज्ञानका अध्ययन ही आपकी यात्राका उद्देश्य था। भ्रमणमें आपने यूरोपके विभिन्न देशोंकी विभिन्न शिक्षा-संस्थाओंपर विशेष ध्यान दिया। नए विद्यालय देखकर आपको भारतमें एक वैसा ही विद्यालय स्थापित करनेकी प्रेरणा हुई, जिसमें पुस्तकोंके ज्ञानके साथ-साथ कला-कौशल भी सिखाया जाय। भारत लौटकर १९०९ के मई मासमें आपने अपने आत्मीय-स्वजनों और महामना मालवीयजी आदि नेताओंको निमन्त्रित किया और उनके सामने अपनी पत्नीके नामपर ज्वालापुरमें प्रेम-महाविद्यालयकी स्थापना की। आपकी इच्छा थी कि अपनी सम्पत्ति विद्यालयको दान कर दें; परन्तु लोगोंने मना किया, इसलिए १० लाख रुपएके गाँव विद्यालयको दे दिए और वृन्दावनका राजप्रसाद भी उसे सौंप दिया।

महात्मा गांधीने १९२१ में असहयोग प्रारम्भ किया, परन्तु राजा महेन्द्रप्रतापने ३६-३७ वर्ष पहले ही असहयोग आरम्भ कर दिया था। उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र सरकारको लौटा दिए थे। विदेशी औषध वे कभी न छूते थे। सरकारसे अपने सब सम्बन्ध तोड़ लिए थे और राष्ट्रीय आदेशका अनुसरण करते थे। दान आप मुक्तहस्त होकर देते थे और ऐसे देते थे कि किसीको पता भी न चलता था। सामाजिक कुरीतियोंके आप विरोधी थे और हरिजनोंके साथ बैठकर खान-पान करनेमें संकोच नहीं करते थे। आप सदा एक ही बात सोचते थे कि भारतको किस मार्गसे स्वाधीनता मिलेगी? १९१२ में आप फिर यूरोप गए और लौटकर प्रेम-महाविद्यालय द्वारा संगठन-कार्य करने लगे। भारतकी स्वाधीनताके लिए जनताका जागरण उन्हें आवश्यक जान पड़ता था। कुछ दिन बाद जब उन्हें पता चला कि यूरोपमें महायुद्ध प्रारम्भ हो गया है, तो वे फिर यूरोप चले गए। महायुद्धमें आप यूरोपके विभिन्न देशोंमें घूमकर भारतके लिए सहायता प्राप्त करनेकी चेष्टा करते रहे। जर्मनीके सम्राट क़ैसरसे चिट्ठी लेकर आप तुर्की होते हुए अफ़ग़ानिस्तान आए और फिर जर्मनी लौट गए। भारत-सरकार इन सब बातोंसे आपपर नाराज़ हो गई और भारतमें आपके प्रवेशपर पाबन्दी लगा दी। तब आप अफ़ग़ानिस्तानके नागरिक बन गए। अमीर अम्मानुल्लासे आपकी गहरी मित्रता हो गई थी। अफ़ग़ानिस्तानके दूतके रूपमें आपने संसारके अनेक देशोंका भ्रमण किया। बर्लिन-निवासके समय आप 'वर्ल्ड फेडरेशन' नामक पत्रका सम्पादन करते थे और भारतके विभिन्न अंगरेज़ी-पत्रोंमें लेख भी लिखते थे। महात्माजीके 'यंग इण्डिया' में भी आपने काफ़ी लिखा था। इसके पहले भारतमें आप प्रेम-महाविद्यालयसे 'प्रेम' नामक हिन्दी-साप्ताहिक भी प्रकाशित करते थे।

इधर कुछ दिनोंसे राजा महेन्द्रप्रतापका कोई समाचार नहीं मिला था। सुना जाता था कि वे काबुल और मास्को आदि स्थानोंमें रह रहे हैं। रूसी राज्यक्रान्तिके समय उन्होंने लेनिनसे भेंट की थी। फिर वे तिब्बतको संगठितकर भारतको स्वतन्त्र करनेके प्रयासमें लगे रहे। बादमें पता चला कि वे जापानमें हैं। तोक्यो और कोबेके ब्रिटिश व्यापारी दूतावास जब उनकी गतिविधिमें दिलचस्पी लेने लगे, तब उन्होंने प्रतिवाद किया और कहा—'मैं अफ़ग़ानिस्तानकी प्रजा हूँ।' इसके बाद होनोलूलूमें अपना केन्द्र बनाकर वे संसारके सब राष्ट्रोंको एक सूत्रमें पिरोनेके कार्यमें लग गए। इस सम्बन्धमें उन्होंने कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनकी विदेशोंमें बहुत चर्चा हुई। (लोकमान्य)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

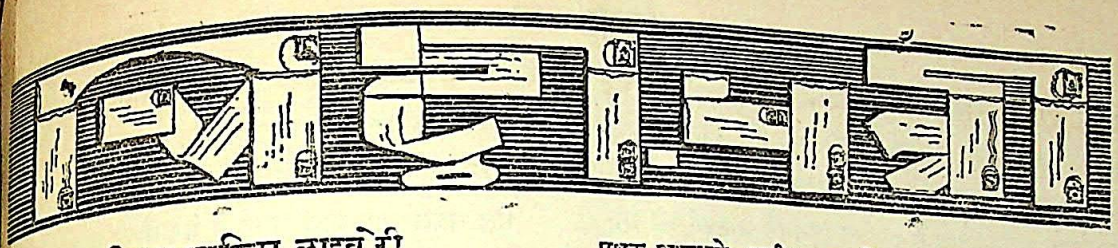

इण्डिया-आफ़िस लाइब्रेरी

ब्रिटिश सरकार भारतका शासन भारत-कार्यालय (इण्डिया-आफ़िस) द्वारा करती है, जो भारत-मन्त्रीके अधीन है। इस कार्यालयके अधीन एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, जिसे 'इण्डिया-आफ़िस लाइब्रेरी' कहते हैं। इस पुस्तकालयमें पौर्वात्य विद्वानोंके परिश्रमके फल-स्वरूप लगभग २०० वर्षके कालमें बहुमूल्य ग्रन्थ एकत्र किए गए हैं, जिनमें से कुछ क्रय किए गए हैं, कुछ परिवर्त्तनमें संग्रह किए गए हैं, कुछ लूटके द्वारा हस्तगत किए गए हैं और बहुतसे कापी-राइट-कानून द्वारा प्राप्त हुए हैं, जिसके अनुसार इस पुस्तकालयके अध्यक्षको यह अधिकार प्राप्त है कि वह भारतमें प्रकाशित किसी भी ग्रन्थको बिना मूल्य मँगा सकता है। इस पुस्तकालयको उन्नत अवस्थामें लानेका श्रेय विल्किन्स, विल्सन रोस्ट और इन्हीं-जैसे अन्य शिक्षित विद्वानों तथा परिश्रमी पुस्तकाध्यक्षोंको है। इस पुस्तकालयकी नींव वारेन हेस्टिंग्स और सर विलियम जोन्सके संरक्षणमें पड़ी थी और ईस्ट इण्डिया कम्पनीका इसे उल्लेखनीय सहयोग और सहायता प्राप्त हुए थे। प्रारम्भमें इस बातपर बहुत विवाद हुआ था कि इसमें केवल अंगरेज़ोंकी पुस्तकें रखी जायँ या अन्य जातियोंकी भी। लार्ड मैकालेने अंगरेज़ी-भाषाका पक्ष लेकर इस विवादमें सक्रिय भाग लिया था और अन्तमें उन्हींकी विजय भी हुई थी। परन्तु पौर्वात्य साहित्यके पक्षपाती भी हताश न हुए, क्योंकि उन्होंने कई पौर्वात्य विद्वान उत्पन्न कर दिए थे। आज इन पौर्वात्य विषयोंके ग्रन्थोंका ससारमें सबसे प्राचीन और वृहत् पुस्तकालय है। विल्किन्सने सबसे पहले भगवद्गीताका अंगरेज़ी में अनुवाद किया था।

प्रारम्भमें यह पुस्तकालय एक अद्भुदालयके रूपमें था। उस समय यह 'पूर्वीय संग्रहालय'के नामसे पुकारा जाता था। विल्किन्सने ही ईस्ट इण्डिया कम्पनीके डाइरेक्टरोंको इस पुस्तकालयकी स्थापनाके लिए तैयार किया था और वे ही २०० पौण्ड मासिक पारिश्रमिकपर पहले पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त हुए थे। पुस्तकालयकी स्थापना होते ही इसे विशाल धन-राशि और हस्तलेखोंके दान प्राप्त हुए थे। टीपू सुल्तानकी लाइब्रेरीका बहुमूल्य भाण्डार सबसे पहले इंग्लैण्डकी इस लाइब्रेरीमें पहुँचा। इसके पश्चात् वेवीलोनियाका पत्थरका एक विचित्र चीता, अप्राप्य फारसीके हस्तग्रन्थ, फारसीकी कविताओंके संग्रह, तंजोरके विविध चित्र तथा बहुमूल्य खनिज पदार्थों और पशुओं आदिके चित्र पहुँचे। इन वस्तुओंके पहुँचनेपर इस पुस्तकालयके अद्भुदालय-भागको पुस्तक-विभागसे पृथक् करना पड़ा और वह विभाग एक पृथक् अध्यक्षके अधीन कर दिया गया। पुस्तक-विभागकी उन्नतिमें भी देर न लगी। सूचीपत्र तैयार किए गए और इसके व्ययके लिए बहुत-सा धन रखा गया। कोलब्रुक ओरिय, मेकेन्जी, हेमिल्टन, बीजापुर और देहलीके संग्रहों, फ्रांसिस, जान्सन हेस्टिंग्स और लीडेनके हस्तलेखों और टीपू सुल्तानके पुस्तकालयने इस पुस्तकालयके भाण्डारको बहुमूल्य, अप्राप्य और अनुपम ग्रन्थोंसे भरकर संसारका एक अत्यन्त बहुमूल्य पुस्तकालय बना दिया।

कुछ समय हुआ इस पुस्तकालयके छपे हुए ग्रन्थों और पुस्तिकाओंकी गिनती हुई थी। उस गणनाके अनुसार इसमें प्राचीन पूर्वीय भाषाओंके लगभग ३४१०० और अर्वाचीन भारतीय भाषाओंके लगभग १२३६४९ ग्रन्थ थे। इसके अतिरिक्त इसमें पुरातत्त्व-विषयक असंख्य मनोरंजक फोटो भी विद्यमान हैं। यह पुस्तकालय भारतकी सम्पत्तिका बहुमूल्य कोष और भारतकी लूटका एक बड़ा अंग है। अतः देश-प्रेमी भारतीयोंने माँग उठाई है कि यह पुस्तकालय भारतके सुपुर्द कर दिया जाय। प्रजाके माने हुए नेता और बड़े-बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति इस पुस्तकालयसे स्वतन्त्रतापूर्वक लाभ उठा सकते हैं। इस पुस्तकालयके ग्रन्थ उधार रूपमें भी दे दिए जाते हैं। इसलिए यह पुस्तकालय समस्त देशोंके विद्वानोंके लिए, जो लन्दनमें जाते हैं, बड़े कामका सिद्ध हुआ है। परन्तु उन विद्वानोंको क्यों नहीं भारतमें आकर अध्ययन और अनुसन्धानका कार्य करना चाहिए, जिसका वे इतना सम्मान करते हैं और जिसके सौन्दर्यके अनुभवके परीक्षणके लिए वे लन्दनकी यात्रा करते हैं। पौर्वात्य विद्वानोंका उद्देश्य पूर्वको पश्चिमके सामने व्याख्या करना-मात्र है। यदि पुस्तकालय लन्दनसे भारत पहुँचा दिया जाय, तो उसे अत्यन्त सुपरिचित और क्रियात्मक रूपमें अपने कर्त्तव्यके अनुष्ठानमें सहायता मिलेगी।

— रघुनाथप्रसाद पाठक, देहली।

हिन्दीमें रेडियो नाट्य-साहित्यकी आवश्यकता

आल-इण्डिया रेडियोमें इस समय हिन्दीकी क्या स्थिति है और इसके लिए कौन उत्तरदायी है, इससे सम्पूर्ण हिन्दी-संसार भलीभाँति परिचित हो गया है। परन्तु इस सिलसिलेमें एक अपनी कमीकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। रेडियोसे हिन्दीके भाषण तो कभी-कभी हो भी जाते हैं; पर हिन्दीके नाटक शायद ही कभी होते हों। रेडियोके अधिकारियोंके कथनानुसार इसका कारण हिन्दी-लेखकोंकी रेडियोके लिए ड्रामे न लिखनेकी प्रवृत्ति है। हम इससे कदापि सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इसका कारण रेडियोके अधिकारियोंकी हिन्दी-द्रोही नीति और उसीके फल-स्वरूप हिन्दी-लेखकोंकी रेडियोके प्रति उदासीनता है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि हिन्दीमें रेडियो-नाट्य-साहित्यका सर्वथा अभाव है। जब रंगमंचके अभावमें भी रंग-मंचपर खेले जाने योग्य नाटक हिन्दीमें लिखे जा सकते हैं, तो रेडियोमें हिन्दीकी वर्त्तमान स्थितिके होते हुए भी रेडियोसे विस्तारित किए जाने योग्य नाटक तथा नाटिकाएँ क्यों नहीं लिखी जा सकतीं? जिस प्रकार सिनेमाके आनेके बाद हिन्दीमें सिनेमा-साहित्यका निर्माण हुआ और सिनेमाके लिए कहानियाँ, संवाद, गायन इत्यादि लिखे जाने लगे, उसी प्रकार रेडियो-साहित्य--विशेषकर रेडियो-नाटक, नाटिकाएँ--भी तैयार होना चाहिए। हिन्दी-साहित्यके इस अंगकी पूर्त्तिकी ओर हिन्दी-लेखकोंको अवश्य ध्यान देना चाहिए।

रेडियो-नाटकोंका अपना अलग टेकनीक है। रेडियो-नाटक केवल श्रव्य काव्य है। इसमें कुल वातावरण केवल शब्द द्वारा उपस्थित करना पड़ता है। उस वातावरणके उत्पन्न करनेमें कुछ कृत्रिम साधनोंसे भी सहायता ली जाती है। उदाहरणके लिए विभिन्न प्रकारकी ध्वनियोंके रेकार्ड तैयार रहते हैं। कई प्रकार की ध्वनियाँ—जैसे घोड़ेकी टापोंकी आवाज़, मनुष्यके पैरोंकी आहट, पानी बरसनेकी आवाज़ इत्यादि—लकड़ीके तख्ते तथा टीनकी चादरें सरीखे उपकरणोंसे आवश्यकतानुसार उत्पन्नकर बोले हुए शब्दके साथ माइक्रोफ़ोनमें मिला दी जाती हैं। सुननेवालेके सामने तो ये चीज़ें आती नहीं, इसलिए उसे यथार्थका ही भास होता है। रेडियोमें आवाज़को यन्त्र द्वारा घटाने-बढ़ाने, पृष्ठभूमिमें संगीत इत्यादिको मिलानेके भी साधन होते हैं। जिस प्रकार स्टेजके लिए नाटकमें लेखक अंकों, दृश्यों इत्यादिकी सृष्टि करता है, कई तरीक़ोंसे समयका बीतना दिखाता है और विभिन्न प्रकारके संकेत देता है, उसी प्रकार रेडियो-नाटकमें लेखकको कितनी ही बातोंका ध्यान रखना पड़ता है और विभिन्न प्रकारके संकेत देने होते हैं—जैसे कहाँपर आवाज़ घटाई जाय, कहाँपर बढ़ाई जाय, कहाँपर किस प्रकार संगीत अथवा कोई और ध्वनि मिलाई जाय इत्यादि। ये संकेत इत्यादि तभी दिए जा सकते हैं और रेडियो-नाटककी विशेषताओंको तभी भली-प्रकार सामने लाया जा सकता है, जब लेखकको इसका पूरा ज्ञान हो कि रेडियोसे नाटक किस प्रकार विस्तारित किया जाता है और रेडियोमें नाटकके लिए क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि जिन हिन्दी-लेखकोंको इसका ज्ञान है, वे इसपर लेखों द्वारा प्रकाश डालें और दूसरे लेखकोंके लिए मार्ग प्रशस्त करें। चूँकि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने रेडियोकी हिन्दी-द्रोही नीतिके विरोधका झण्डा उठाया है, इसलिए क्या हम आशा करें कि सम्मेलन ही इस विषयपर एक पुस्तिका लिखवाकर प्रकाशित करा देगा? —सूर्यप्रकाश, एम० ए०, ३, हिवेट रोड, लखनऊ।

भाषामें पंजाबीपन

गत अप्रैलके 'विशाल भारत'में मेरे तीसरे नाटक 'आधे' की समालोचना प्रकाशित हुई है। अन्य बातोंके साथ उसकी भाषाके सम्बन्धमें विदुषी आलोचिकाने लिखा है—"भाषा शिष्ट-समाजकी हिन्दी है। कहीं-कहीं अत्यधिक साहित्यिक हो जानेके कारण सामान्य दर्शकके लिए दुर्बोध हो जायगी। वाक्यों और मुहावरों का प्रयोग भी पंजाबी है। पंजाबके बाहर यह अपरिचित है।" पर आलोचिका महोदयाने यह लिखनेकी कृपा नहीं की कि वाक्यों और मुहावरोंके कौन-से प्रयोग पंजाबी तथा पंजाबसे बाहर अपरिचित हैं। अतः मैंने 'विशाल भारत'-सम्पादककी मार्फ़त उनसे इस विषयमें सोदाहरण प्रकाश डालनेकी प्रार्थना की। उत्तरमें उन्होंने लिखा—" 'डाल दिया उसे राहपर' (पृष्ठ २४)। हिन्दीका मुहाविरा यदि मैं भूल नहीं कर रही हूँ, तो 'राहपर लगाना' या 'रास्ते लगाना' है। 'नौकरसे बोल देना' (पृष्ठ १७)। हम कहेंगे—'नौकरसे कह देना।' 'कहो कुमुद, आज क्या सब रहा है?' (पृष्ठ ३७)। मुहावरा होगा—'क्या हो रहा है?' 'मोटरको पावोंमें रख देता है।' (पृष्ठ ३९)। यह होगा—'पैरोंके पास रख देता है।' पृष्ठ ५८ और ६७ में भी इसी दोकी पुनरावृत्ति हुई है। पृष्ठ ५३ के एक वाक्यपर आपसे स्पष्टीकरण चाहती हूँ—'बूटपर मिट्टी पड़ी है।' हम तो शायद इसे इस प्रकार नहीं लिखा करते। 'बूटपर धूल चढ़ी है' या 'बूटमें मिट्टी लगी है' कुछ इस प्रकार अच्छा होता है।"

आलोचिकाके कथनसे झलकता था कि प्रायः सभी वाक्य और मुहावरे पंजाबीपन लिए हुए है। किन्तु वे केवल पाँच वाक्य अपने कथनके समर्थनमें दे पाई हैं। इन पाँचोंमें से एक भी पूर्णरूपसे मुहावरा नहीं, क्योंकि मेरे पास जो लोकोक्ति-कोष आदि हैं, उनमें इनका ज़िक्र नहीं है। आलोचिकाने स्थान-स्थान पर लिखा है कि 'हम लोग' इस या उस वाक्यको ऐसे कहेंगे। पर 'हम लोग' कौन, यह मैं समझ नहीं पाया। सम्भवतः 'हम लोग'से उनका आशय यू० पी० के रहनेवालोंसे है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, भाषाकी विशुद्धता किसी स्थान-विशेषकी बोलीपर निर्भर नहीं होती। यदि वह इसपर निर्भर होती, तो लन्दनके असली निवासी King's English बोलनेमें प्रमाण माने जाते। किन्तु बात इससे उल्टी है। उनके मुखसे भाषाका विकृत रूप ही निकलता है। आज perfect English बोलनेवालोंमें भारतके एक निवासी आनरेबल श्रीनिवास शास्त्री का स्थान सर्वोपरि है। अतः आलोचिका द्वारा बताए गए वाक्यों का निरीक्षण हिन्दीमें अब तक स्थापित हुए साहित्यिक स्टैण्डर्ड

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही करूँगा—कर सकता हूँ। मैं आपका ध्यान निम्नलिखित कोष्टककी ओर आकृष्ट करता हूँ :—

'साथ'में दिए गए वाक्य	आलोचिका द्वारा निश्चित किया हुआ रूप	पंजाबी रूप	मेरा मत
'डाल दिया उसे राहपर'।	आलोचिकाने पूरा वाक्य नहीं दिया, किन्तु उनके खयाल से 'राहपर लगाना' या 'रास्ते लगाना' ठीक रूप है। इस लिए उनके मतानुसार वाक्य बनता है—'लगा दिया उसे राहपर'।	'पा दित्ता ओनूँ राह ते' या 'ला दित्ता ओनूँ राह ते'।	आलोचिकाके दृष्टिकोणसे 'डाल'की जगह 'लगा' होना चाहिए। संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर, जो कि काशी नागरी-प्रचारिणी सभाकी ओरसे प्रकाशित हुआ है, 'डालना'का अर्थ 'लगाना' भी देता है। इसी प्रकार चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा-प्रणीत हिन्दी-शब्दार्थ-पारिजात 'डालना'का अर्थ 'लगाना' देता है।
नौकरसे बोल देना'	'नौकरसे कह देना'।	'नौकरनूँ कह देईं' या 'नौकरनूँ आख देईं'।	'बोलना'का अर्थ हिन्दी-शब्दसागर देता है—'कुछ कहना, कथन करना, आज्ञा देकर कोई बात स्थिर करना।
कहो कुमुद, क्या हो रहा है ?'	'कहो कुमुद, क्या हो रहा है ?'	'की पया वणदा ए' या 'की पया हुंदा ए' या 'की पये करदे ओ'।	संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर 'बनता'का एक अर्थ 'हो सकता' भी देता है। इसी तरह होनाका अर्थ 'बनना' इसी कोषमें दिया गया है।
'मोटरको पाँवमें रख देता है।'	'मोटरको पैरोंके पास रख देता है'।	'मोटर नूँ पैराँ ते रख देंदा ए' या 'मोटरनूँ पैराँ कोल रख देंदा ए'।	आलोचिका और मेरे वाक्यसे भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। बालक-प्रकृतिको दृष्टिगत रखते हुए मुझे यह दिखाना अभीष्ट था कि बालकको मोटरसे इतना मोह था कि वह उसे अपने पाँवसे इस प्रकार सटाकर रखता है कि उसका कुछ भाग पाँवके ऊपर तक भी आ जाय। 'पैरोंके पास'से मोटर और पैरोंमें कुछ अन्तरका बोध होता है। इससे मेरा काम नहीं चल सकता था। बाक़ी रहा मुहावरा, सो सिरको पाँवमें रखना सभी जानते हैं।
'बूटपर मिट्टी पड़ी है'।	'बूटपर धूल चढ़ी है' या 'बूटमें मिट्टी लगी है'।	'बूट ते मिट्टी पई ए' या 'बूट ते धूड़ चढ़ी ए' या 'बूट नूँ मिट्टी लगी ए'।	यहाँ झगड़ा एक ओर 'पड़ी' और दूसरी ओर 'चढ़ी' तथा 'लगी'में है। 'पड़ना'का अर्थ हिन्दी-शब्दसागर देता है—'ठहरना', 'टिकना' और चढ़नाका 'मढ़ा जाना'। मिट्टी जान-बूझकर मढ़ी नहीं जाती, बल्कि उड़कर जा बैठती या पड़ती है।

ऊपर दिए गए कोष्टकसे यह तो स्पष्ट है कि मेरे द्वारा प्रयुक्त वाक्य हिन्दीके कोषकारों—जो यू० पी० के रहनेवाले हैं (हम लोगोंमें से ही हैं)—के अनुसार ग़लत नहीं हैं। उन वाक्योंके बलपर मेरी भाषामें पंजाबीपन कैसे ज़ाहिर हो गया, यह मेरे लिए अब भी आश्चर्यकी बात है। अपना मत प्रकट करनेमें यदि मैंने कहीं भूल की है, तो आभिज्ञ पाठकोंसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे मुझे वह भूल बता दें, ताकि मैं उसका सुधार कर लूँ। अंगरेज़ीकी भाँति 'हिन्दी' लिखना भी मैंने विशेष परिश्रमसे सीखा है। अतः हिन्दी मेरी मातृभाषा है, यह मेरा दावा नहीं और अपनी सच्ची भूलको सुधारनेमें मुझे ज़रा भी संकोच नहीं होगा। —पृथ्वीनाथ शर्मा, ४१-बी० माडल-टाउन, लाहौर।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

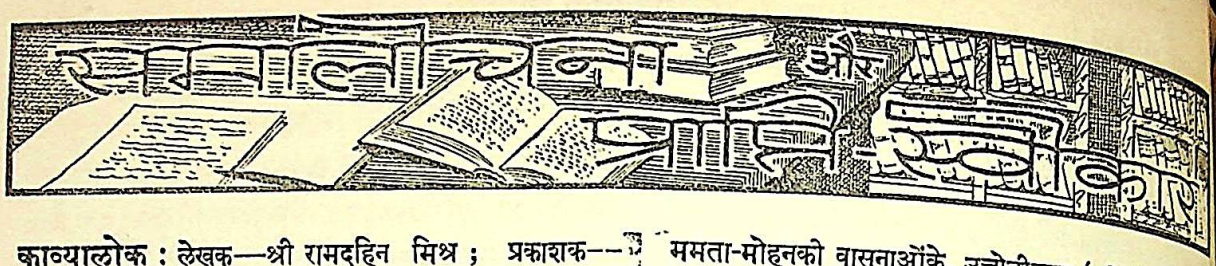

काव्यालोक : लेखक—श्री रामदहिन मिश्र ; प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना) ; मूल्य ५) ।

हिन्दी-वाङ्मयके विविधांगीय विकास-विस्तारके साथ ही उसके अध्येताओंकी प्रवृत्ति साहित्यके शास्त्रीय परिशीलनकी ओर भी उन्मुख हो रही है, प्रस्तुत ग्रन्थ इस बातका प्रमाण है। भाषा केवल विचारोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम ही नहीं, उनमें चमत्कृति उत्पन्न करनेकी क्षमता भी रखती है। इस क्षमताको अभिधा, लक्षणा और व्यंजनामें विभाजित किया गया है। ध्वनि इन भेदोंका एक व्यापक एवं स्थूल सम्बल है। प्रस्तुत ग्रन्थमें विद्वान लेखकने साहित्यके अध्येताओंके लिए भाषाकी इस भेद-त्रिवेणीका विशद एवं सोदाहरण विवेचन किया है। साहित्य और उसका धर्म ; शब्द और उसके भेद ; अर्थ और उसका बिम्ब-ग्रहण ; अभिधा, लक्षणा और व्यंजनाकी शक्ति, भेद और भिन्न रूप ; ध्वनिका उद्गम एवं स्थापना आदिकी संस्कृत, हिन्दी और अंगरेज़ीके आचार्योंके मत तथा प्रमाण और संस्कृत-हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानोंकी रचनाओंके उद्धरण देकर विशद विवेचना की गई है। जो हिन्दी-समीक्षक पाश्चात्य मान्यताओंकी जूँठनको ही आलोचनाकी आधुनिकतम कसौटी मान बैठे हैं, उनके पुनर्विचार, अध्ययन-मनन और अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिए 'काव्यालोक' निःसन्देह ज्ञानालोककी एक स्वस्थ किरण है—यद्यपि सर्वतोभावेन नवीन नहीं। ऐसे उपयोगी और बहुमूल्य ग्रन्थके प्रणयन-प्रकाशनके लिए लेखक-प्रकाशक साधुवादके पात्र हैं।

—'भग्नदूत'

चढ़ती धूप : लेखक—श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, शाहगंज, इलाहाबाद ; मूल्य ४॥) ।

'चढ़ती धूप' तरुण कविका प्रथम उपन्यास है। मुख्यतः कवि होनेके कारण उपन्यास भी कई स्थलोंपर कवित्व-प्रधान हो उठा है—यथा अन्तिम स्थलोंमें। वैसे उपन्यासकार भी एक प्रकारका कवि ही होता है। परन्तु जहाँ कवि भावुकतामें बह सकता है, उपन्यासकारको यथार्थके प्रति अपनी निष्ठाके कारण अधिक निर्मम होना पड़ता है। खेद है कि इस उपन्यासमें लेखक सिवा तारा और मिस्टर वर्माके अन्य पात्रोंके प्रति वह निर्ममता नहीं निभा सका है। फलतः इस उपन्यासका यथार्थवाद भी वही प्रेमचन्दवाला आदर्शोन्मुख यथार्थवाद हो गया है। विषय-वस्तुसे असंलग्नताका एक कारण—आधुनिक औपन्यासिकों की एक कमज़ोरी—उपन्यासमें आत्मवृत्तका प्रक्षेपण है। इस उपन्यासके लेखकने भी अपने कैशोर्यके एक अधपके रोमान्सके, ममता-मोहनकी वासनाओंके, उत्तोलीकरण (सब्लिमेशन) के छोटे आधेसे अधिक पृष्ठ खर्च किए हैं। माना कि सेक्स जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अंग है ; परन्तु इन यौन-वर्जनाओंके प्रति कौन-न्यासिकोंका ममत्व कुछ अर्थ नहीं रखता, जब कि स्वयं लेखकने अपने 'पहले कुछ शब्दों'में साहित्यको 'मानव-समाजकी आर्थिक और राजनीतिक उन्नतिका सर्वश्रेष्ठ माध्यम और अस्त्र' माना है। क्रान्तिकी अपेक्षा वासनागत द्वन्द्वपर अधिक ज़ोर देनेके कारण आधुनिक उपन्यास-साहित्यपर 'अश्लीलता'का लांछन लगा है—कम-से-कम 'अश्लीलता' नहीं, तो यौन-प्रश्नोंमें रस लेनेको तो निर्विवाद है।

ममताकी आत्मवंचना, ताराका अनावश्यक आत्मालाप और मोहनकी अन्तश्चेतनापर गांधीवादी संयम आदि संस्कारोंके प्रबल आवरणके द्वन्द्वके सिवा उपन्यासमें मज़दूरोंमें साम्यवादियोंकी कार्य-प्रणालीका वर्णन, वर्माका स्वभाव-चित्र, गाँवके छोटे-छोटे रेखाचित्र आदि बहुत-सी अच्छी बातें हैं। 'दादा कामरेड' और 'अग्निपथ'में हड़ताल और हड़तालियोंका थोड़ा-बहुत उल्लेख आता है ; पर श्रमिक जीवनके इस पहलूको इतनी अच्छाईसे व्यक्त करनेका श्रेय 'चढ़ती धूप'को ही है। वाद-विवाद बहुत लम्बी वक्तृताओंके कारण कुछ किताबीपन और उपन्यासकी प्रवाहपूर्ण शैलीमें भारीपन पैदा करते हैं। भाषाकी दृष्टिसे कुछ लोगोंको 'अंचल'से शिकायत है। अपनी कविताओंमें शब्द-प्रेमके जोशमें कई अर्थ-शून्य पंक्तियाँ वे लिख जाते हैं; पर उपन्यासमें मिली-जुली भाषा खूब फबती है। इस उपन्यासके गद्यमें एक विशेष नाटकीय आवेश, एक प्रवाह और एक प्रकारका भावानुकूल उतार-चढ़ावका लचीलापन है। कुल मिलाकर सामाजवादी राजनीतिक आकांक्षाओंको कलात्मक रूपमें प्रस्तुत करनेवाला यह एक सफल उपन्यास है।

—प्रभाकर माचवे

क्रान्त-दूत : लेखक—श्री कृष्णदास, एम० ए० ; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद ; मूल्य ४॥) ।

अगस्त-आन्दोलनके पूर्व भारतके जन-जीवनमें जो ज्वार आया था, उस सब परिस्थितिका मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण 'क्रान्ति-दूत'के रूपमें प्रस्तुत हुआ है। राजनीतिके क्षेत्रमें देशकी विपन्न अवस्थाके लिए लेखकके हृदयमें एक टीस है। उसने विभिन्न वर्गोंकी मनोदशाका अच्छा अध्ययन किया है तथा ग्राम और नगरके वर्णनमें उसे समान सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तककी भूमिका एक उत्कृष्ट गद्यकाव्य है और सजग होकर रहनेवाली राष्ट्रकी आत्माके लिए उसका समर्पण एक उत्तम कल्

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। लेखकके दृष्टिकोणसे क्रान्ति-दूत सन्तोष उपन्यासका नायक है; किन्तु हमारी सम्मतिमें उपन्यासका नामकरण कर्मठ कार्यकर्ता विनय अथवा आदर्श पात्री नसीमको लेकर होता, तो अधिक उपयुक्त था। निश्चय ही यह उपन्यास लेखककी एक सफल कृति है, तथापि उसमें नसीमके पारिवारिक जीवन तथा विनयकी दादीके सम्बन्धमें कुछ और भी रहस्योद्घाटनकी आवश्यकता थी।

रंगमहल : लेखक—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी बुकडिपो, लखनऊ; पृष्ठ ११६; मूल्य १)।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने स्वतन्त्रताप्रिय नवयुवकोंका अहिंसाके मार्गसे विचलित होकर 'क्रान्ति'के पथका अनुसरण करनेकी प्रवृत्तिका दिग्दर्शन कराया है। जीवनके प्रति—समाज और राजनीतिके सम्बन्धमें—लेखकका अपना दृष्टिकोण है, और इस प्रकार उपन्यास एक सफल कृति है। लता आधुनिक समयकी एक शिक्षित हिन्दू युवती है और उसका चरित्र अपनेमें पूर्ण है। लेखकने प्रकृतिका सजीव चित्रण किया है। उसकी भाषा सरल सौन्दर्यपूर्ण है। उपन्यासमें एक ही लम्बी कहानीका रोचक विकास है। यदि घटनाएँ समानान्तर चलकर गुम्फित होतीं, तो उसमें कलाका विशेष उत्कर्ष दिखाई देता। मुद्रणकी अशुद्धियाँ पुस्तकमें सर्वत्र बिखरी मिलती हैं; किन्तु प्रकाशकने समालोचनार्थ प्रतिमें भरसक सुधार करके हमारे लिए अवश्य सुभीता कर दिया है।

निशीथ : लेखक—श्री ब्रह्मदेव; प्रकाशक—भारती कुटीर, मैगरा, गया; पृष्ठ २४; मूल्य ।)।

पैंतीस गद्यकाव्योंकी इस पुस्तकमें भावोंकी लोल लहरों और कल्पनाके रंगीन स्वप्न-चित्रोंके सहारे उस अज्ञात अलौकिक प्रेमीके प्रति दिव्य प्रेमकी सरल व्याख्या की गई है। कविकी रहस्योन्मुख आध्यात्मिकता किसी अनजान स्वप्न-लोककी वस्तु नहीं, उसकी अनुभूतिमें जगतीकी पावन आकांक्षाएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। कविके अधिकांश गद्यकाव्य वर्णनात्मक शैलीसे दूर रहकर उसके 'अहं'से आलोकित हैं। तीन-चार वाक्योंके कुछ छोटे गद्यकाव्योंमें मनको लिप्त कर रखनेवाले सौन्दर्यकी कमी अवश्य दिखाई देती है। गद्यकाव्योंकी भाषाशैली मधुर और प्रांजल है।

लाशपर : लेखक—प्रो० भगवतशरण उपाध्याय, एम० ए०; प्रकाशक—प्रदीप-कार्यालय, मुरादाबाद; पृष्ठ ९२; मूल्य १)।

आजके कहानी-साहित्यमें आदर्शवादसे अधिक रोमांसवाद और उससे भी अधिक यथार्थवादको महत्व प्राप्त है। लेखककी ये दस कहानियाँ जीवनके सरल सत्यसे आलोकित होकर समयकी इस आवश्यकताकी पूर्ति भली प्रकार करती हैं। प्रगतिशील विचार-धाराके अनुरूप इन कहानियोंमें हृदयका मन्थन करनेकी विशिष्ट शक्ति है। 'लाशपर', 'अभाव और जीवन—अन्तिम तीन कहानियोंमें तो कला कुछ विशेष निखरकर प्रकट हुई है। 'तूफ़ानके बाद' और 'पेंच' नामक कहानियाँ किसी अलग संग्रहमें स्थान पातीं, तो उपयुक्त था। लेखककी भाषा सजीव और व्यावहारिक है, और हमें उसका भविष्य समुज्ज्वल दिखाई देता है।

युद्धके बाद हिन्दुस्तानके शिक्षा-सम्बन्धी विकासकी योजना : अनुवादक—श्री बैजनाथसिंह, एम० ए०; प्रकाशक—एन० आर० अग्रवाल एण्ड को०, आगरा; पृष्ठ ६७; मूल्य १)।

युद्धोत्तर-कालमें शिक्षाके व्यापक प्रचारके लिए केन्द्रीय सलाहकार समितिने गत वर्ष सार्जेन्ट-स्कीमकी क्रान्तिकारी योजनाको जन्म दिया है। अनिवार्य रूपसे ६ और १४ वर्षके बीचकी आयुके बालक-बालिकाओंके लिए बिना मूल्य आधारभूत (बेसिक) शिक्षा, नर्सरी-स्कूलों द्वारा ६ वर्षसे कम अवस्थाके बच्चोंकी शिक्षा, केवल विशेष योग्यतावाले विद्यार्थियोंके लिए उच्च शिक्षा, रहन-सहनको ऊँचा करनेके लिए शिल्प-विज्ञान, व्यापार और कलाकी शिक्षा तथा देशकी ८५ प्रतिशत निरक्षरताको मिटानेके लिए प्रौढ़ोंकी शिक्षापर रिपोर्टने योग्य ध्यान दिया है। धन और समयके अमित व्ययको लेकर चलनेवाली इस 'महत्वाकांक्षी' योजनाका सारांश आलोच्य पुस्तक द्वारा अंगरेज़ीसे अनभिज्ञ जनताके विचारके लिए उपस्थित करनेका बलवन्त राजपूत कालेज, आगराने सराहनीय प्रयत्न किया है। प्रारम्भमें अनुवादकने भारतीय शिक्षाका संक्षिप्त इतिहास भी प्रस्तुत किया है। अनुवादकी भाषा सरल हिन्दुस्तानी होती, तो पुस्तक अधिक उपादेय सिद्ध होती। —हरिमोहनलाल श्रीवास्तव

सिद्धयोग-संग्रह; लेखक—वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य; प्रकाशक—वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा, श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन, पटना; मूल्य २॥)।

आयुर्वेद-संसारमें वैद्य यादवजी त्रिक्रमजीका नाम बहुप्रसिद्ध है। आप जैसे विद्वान हैं, वैसे ही अनुभवी चिकित्सक भी। आपने अपने ४० वर्षोंके चिकित्सा-कार्यमें जिन योगोंको विशेष रूपसे फलप्रद पाया, उनका संग्रह करके इस ग्रन्थका निर्माण किया है। इस संग्रहमें अधिकांश योग प्रचलित शास्त्रीय योग हैं और कुछ अन्य वैद्योंसे प्राप्त तथा स्वतः अनुभूत हैं। कुछ शास्त्रीय योगोंमें आपने अपने अनुभवके आधारपर परिवर्तन भी किया है और नीचे 'किंचित् परिवर्तन' लिख दिया है। शास्त्रीय योगोंके गुण बतलाते हुए जो गुण अनुभवमें आए, वे ही बतलाए हैं। भाषानुवादमें योग-निर्माण-विधि, मात्रा, अनुपान आदिका स्पष्ट निर्देश किया है। लेखककी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और हिन्दीमें ग्रन्थ लिखनेका उनका यह प्रथम प्रयास है, फिर भी भाषा बुरी नहीं है। हाँ, छपाईमें अशुद्धियाँ अधिक रह गई हैं, जिनका कारण लेखक महोदय छपाई-कार्य बम्बईसे अति दूर पटनेमें होना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बतलाते हैं। आशा है, दूसरे संस्करणमें यह कमी भी न रहेगी।

पुस्तक नए और पुराने सभी वैद्योंके कामकी है। गुजरात और महाराष्ट्रके वैद्योंके लिए भी यह उपयोगी हो सके, इस दृष्टिसे इसमें प्रयुक्त औषधोंके हिन्दी-नामोंके साथ उनके गुजराती और मराठी नामोंकी एक तालिका भी लगा दी गई है। अन्तमें परिशिष्टमें स्वर्णादि धातुओंके शोधन और मारणकी विधि भी दे दी गई है। छपाई वगैरह भी साधारणतया अच्छी है। अपने अनुभवों को हिन्दी-भाषामें निबद्ध करनेके लिए वैद्यवर यादवजी तथा उसे प्रकाशमें लानेके लिए प्रकाशक महोदय धन्यवादार्ह हैं।

भावना योग : लेखक—उपाध्याय श्री आत्मारामजी ; प्रकाशक—एस० एस० जैन यूनियन, लुधियाना ; मूल्य ॥)।

प्रस्तुत पुस्तकमें जैन धर्मकी बारह भावनाओंका स्वरूप समझाया गया है। यह जैन श्रावकोंके कामकी चीज़ है। सर्वसाधारण भी इससे लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक उपयोगी है।

जवाहर किरणावली (किरण , २, ३) : सम्पादक—पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल ; प्रकाशक—सेठ चम्पालाल बांठिया, भीनासर (बीकानेर) ; मूल्य क्रमशः १०) और एक-एक रुपया।

प्रस्तुत किरणोंमें जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराजके व्याख्यानोंका संग्रह है। व्याख्यान अनेक लोकोपयोगी विषयोंपर हैं। अतः सर्वसाधारणके लिए भी उपयोगी हैं। छपाई, कागज़ वगैरह उत्तम हैं। —कैलाशचन्द्र शास्त्री

अमेरिका और अमेरिकन : लेखक—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ; प्रकाशक—श्री उपेन्द्रनारायण वाजपेयी, २१ पत्थरगली, बनारस ; पृष्ठ ६२ ; मूल्य १।)।

पिछले महायुद्धके दौरानमें काफ़ी संख्यामें अमरीकन यहाँ आए और अमरीकाका तो युद्ध ही नहीं, युद्धोत्तर-कालकी अधिकांश समस्याओंमें भी विशेष हाथ रहेगा। अतः हम लोगोंके लिए अमरीका और अमरीकनोंको समझना काफ़ी आवश्यक हो गया है। हिन्दी-भाषा-भाषियोंको यह जानकारी करानेके लिए ही वाजपेयीजीने प्रस्तुत पुस्तिका लिखी है। इसमें बड़े सरल ढंगसे अमरीकाकी स्थिति, संगठन, शासन-प्रणाली, न्याय-व्यवस्था, जनता के अधिकार, अमरीकाकी विशेषताओं आदिपर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक सामयिक और हिन्दी-भाषा-भाषियोंके बड़े कामकी है।

हमारा भोजन : लेखक—श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय ; प्रकाशक—महेन्द्र-रसायनशाला, कटरा, इलाहाबाद ; मूल्य ४)।

भोजन मनुष्य-जीवनकी कदाचित् सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसकी उचित जानकारी और पालनपर न केवल शरीर और स्वास्थ्यका ही अस्तित्व निर्भर करता है ; बल्कि जीवन-शक्ति, रोगोंका मुक़ाबला करनेकी शक्ति और स्वास्थ्य एवं बलकी वृद्धि भी। पर दुर्भाग्यवश बेपढ़े-लिखोंकी कौन कहे, पढ़े-लिखे लोग भी इस सम्बन्धमें उचित और वैज्ञानिक जानकारी नहीं रखते। कब, क्या और कितना खाना चाहिए, यह हममें से अधिकांश नहीं जानते। पाठकोंको यही जानकारी करानेके लिए विद्वान् और अनुभवी लेखकने अनेक संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी ग्रन्थोंके आधारपर प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की है। भोजन और खाद्य तथा जलके सम्बन्धमें प्रायः सभी तरहकी आवश्यक और सम्भव जानकारी इसमें है। प्रत्येक घरमें इसका रहना और आबाल-वृद्ध द्वारा इसका पढ़ा जाना आवश्यक है। पुस्तकके विषय और उसकी सार्वजनिक आवश्यकताको देखते हुए उसका मूल्य बहुतोंकी पहुँचसे बाहर जान पड़ता है। —श्रीपति पाण्डेय

हमारे सहयोगी

ग्रन्थमाला-कार्यालय, बाँकीपुर (पटना) से हाल ही में पं० रामखेलावन पाण्डेयके सम्पादकत्वमें 'पारिजात' नामक एक नवीन हिन्दी-त्रैमासिकका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। यह एक 'प्रधानतः साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रकाशन' है, जिसका उद्देश्य है 'संक्रान्तिकालीन नवीन समस्याओंको वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा सुलझानेकी चेष्टा' करना। 'मानवी कल्याणको दृष्टिसे ही सच्चे विज्ञानकी व्याख्या उपस्थित करता है'। सहयोगीका पहला अंक (सितम्बर १९४५) हमारे सामने है। इसकी अधिकांश रचनाओंको देखकर बिना किसी झिझकके हम कह सकते हैं कि सहयोगीने अपने घोषित उद्देश्यको बड़े संयत, सुरुचि एवं दायित्वपूर्ण रूपसे निबाहा है। 'छायावादकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि', 'प्रारम्भिक युगकी चीनी संस्कृति', 'प्रगतिवाद—वर्तमान कालीनताकी व्याख्या', 'भारतमें पुनर्निर्माण', 'विज्ञानकी सांस्कृतिक देन', 'शिक्षा और स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति', 'कलाका सूत्रांकन' आदि लेख विशेष रूपसे पठनीय एवं मननीय हैं। 'रूप-अरूप' और 'कड़ियाँ' कहानीके नए टेकनीकके सामान्य—बहुत श्रेष्ठ नहीं—प्रयोग हैं। 'संस्कृतिका आर्थिक आधार' तथा 'काम-भावना और साहित्य' शायद त्रैमासिकके विशेष उपयुक्त न हों। 'मध्यकालीन भारतकी आर्थिक अवस्था' सर्वथा एकांगी और एतदर्थ भ्रान्तिमूलक है। ११ पृष्ठके इस निबन्धनके ९ पृष्ठ डब्लू० एच० मोरलैण्डके विचारोंके उद्धरणोंसे भरे हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादके इस चतुर और प्रोपेगेंडिस्टके विचारोंको ज्यों-का-त्यों निगल लेनेका लेखक का सबसे बड़ा आधार यह है कि 'श्री के० टी० शाह-जैसे अर्थ-शास्त्री इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि उस समय भारतकी आर्थिक हालत आजसे बहुत खराब थी।' पर शाह और मोरलैण्डके दृष्टिकोणोंमें जो मौलिक भेद है, उसे लेखकने समझनेकी चेष्टा नहीं की। भारतीयोंको भूखा-नंगा सिद्ध करनेमें ऐतिहासिकसे बढ़कर मोरलैण्डका साम्राज्यवादी हेतु था, यह आज सिद्ध हो चुका है। सर यदुनाथ सरकार, डा० सुरेन सेन, प्रो० ब्रजनारायण, डा० अशरफ़ आदिने इस सम्बन्धमें काफ़ी प्रकाश डाला है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

भारतको मजूर-सरकारका तोहफ़ा !

शिमला-सम्मेलन भंग होनेके बाद मजूर-दलके सत्तारूढ़ होने से बहुतोंको आशा हुई थी कि संभवतः अब दल अपने वादोंके अनुसार भारतके सम्बन्धमें अवश्य कोई उपयुक्त हल खोज निकालेगा। गत १५ अगस्तको नई पार्लमेण्टका उद्घाटन करते हुए बादशाहने कहा था—"मेरी भारतीय प्रजासे किए गए वादों के अनुसार मेरी सरकार भारतीय लोकमतके नेताओंके सहयोगसे भारतीयों द्वारा शीघ्र ही स्वशासन प्राप्त किए जानेकी दिशामें जितना सब-कुछ करेगी।" फलतः लार्ड वेवलको लन्दन बुलाया गया और अनेक आवश्यक एवं प्राथमिक कामोंको छोड़कर मजूर-सरकारने उनके साथ भारतके वैधानिक हलके सम्बन्धमें आलोचना-चर्चा की! लौटकर लार्ड वेवलने गत १९ सितम्बरको नई दिल्लीसे जो घोषणा की, उसका सारांश इस प्रकार है : पहले केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियोंका चुनाव होगा। यह पुरानी निर्वाचक-सूचियोंके ही आधारपर होगा, जिन्हें दोहराया जायगा। ये सूचियाँ नहीं बनेंगी, क्योंकि उनकी तैयारीमें दो वर्षकी देर होनेका डर है। चुनावके बाद सरकारको आशा है कि राजनीतिक नेता प्रान्तोंमें मन्त्रित्व ग्रहण करेंगे और वाइसराय विधान-निर्मातृ-परिषद बुलानेकी ग़रज़से असेम्बलियोंके प्रतिनिधियोंसे मालूम करेंगे कि आया उन्हें १९४२ की घोषणा (क्रिप्स-योजना) स्वीकार है या वे कोई दूसरी संशोधित योजना चाहेंगे। इस प्रारम्भिक अवस्थामें शासन-संचालन, आवश्यक अर्थनीतिक और सामाजिक समस्याओंके हल तथा नई विश्व-व्यवस्थामें भारत द्वारा पूरा भाग लिए जानेके हेतु प्रमुख भारतीय दलोंके सहयोगकी एक शासन-परिषद स्थापित की जायगी।

उपर्युक्त रूप-रेखाकी घोषणा करनेके बाद वाइसरायने कहा—"भारतके लिए नया विधान बनाने और उसे अमलमें लानेका काम बड़ा पेचीदा और कठिन है, जिसमें सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंकी सद्भावना, सहयोग और धैर्य अपेक्षित हैं। सबसे पहले हमें चुनाव करने चाहिएँ, ताकि भारतीय मतदाताओंका मत जाना जा सके। हम उन कठिनाइयोंसे सुपरिचित हैं, जिनका सामना हमें करना पड़ेगा; किन्तु हम उनका अतिक्रम करनेपर तुले हुए हैं।...मेरी और सम्राटकी सरकारकी रायमें यह ढंग भारतको अपना भाग्य-निर्णय करनेका अवसर देनेके लिए सर्वश्रेष्ठ है।...अब यह भारतीयोंके हाथकी बात है कि वे इस बातमें बुद्धिमत्ता, विश्वास और साहस दिखायँ कि कैसे वे किस रूपमें अपने मतभेदोंको दूरकर अपने देशका शासन भारतीयों द्वारा भारतीयोंके लिए करना चाहते हैं।"

इसी दिन ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री श्री एटलीने लन्दनसे घोषणा करते हुए कहा—"...पहला आवश्यक क़दम है यथाशीघ्र भारतीय जनताका जितना भी लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व संभव हो, प्राप्त करना।...निर्वाचक-सूचियाँ समयके अनुसार पूर्णतया दोहराई जा रही हैं और इस बातकी हर संभव कोशिश की जायगी कि चुनाव बिल्कुल स्वतन्त्र और उचित हों। वाइसरायने आज हमारी यह मन्शा घोषित कर दी है कि चुनावोंके बाद निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधियोंकी एक विधान-निर्मातृ-परिषद संगठित की जाय, जो भावी विधान तैयार करे।...भारतीय रियासतोंके प्रतिनिधियोंके साथ भी विचार-विमर्श होगा।" फिर आपने 'दुर्भाग्यवश भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा अस्वीकृत' क्रिप्स-योजनाकी मन्शा और भावनाके अनुसार काम करनेकी दुहाई देकर कहा है—"भारतके प्रति ब्रिटिश नीतिकी जो व्यापक व्याख्या १९४२ की उस घोषणामें है और जिसे इस देशके सभी दलोंका समर्थन प्राप्त है, वह पूर्ण रूपसे बरक़रार है। इस घोषणामें ब्रिटिश सरकार और भारतकी विधान-निर्मातृ-परिषदमें जिस सन्धिकी बातचीतका उल्लेख था, सरकार शीघ्र ही उसके उपकरणोंपर विचार करेगी। यहाँ कहा जा सकता है कि उस सन्धिमें हम ऐसा कुछ नहीं रखेंगे, जो भारतीय हितोंके प्रतिकूल हो।"

यह धोखा और ढोंग क्यों ?

शब्द-जालकी इस नई बोतलसे साम्राज्यवादी स्वार्थकी पुरानी शराब अपनी बदबू स्वतः बाहर फैला रही है। पाठक देखेंगे कि कुछ मामूली हेरफेरके सिवा यह कोई नया प्रस्ताव नहीं; वही पुरानी क्रिप्स-योजना है, जिसे सभी भारतीय राजनीतिक दल ठुकरा चुके हैं। तब क्या वाइसराय और मजूर-मन्त्रिमण्डलके आलादिमाग़ोंने इतने दिनोंको खोज और विचार-विनिमयके बाद यही 'सर्वश्रेष्ठ ढंग भारतको अपना भाग्य-निर्णय करनेका अवसर देनेके लिए' निकाला है? बक़ौल पं० गोविन्द-वल्लभ पन्तके यह तो पहाड़ खोदकर चुहिया निकालना ही हुआ! फिर जिस क्रिप्स-योजनाको समूचा देश एक स्वर और एकमतसे ठुकरा चुका है, आखिर बार-बार उसीको सामने रखनेमें तुक क्या है? क्या मजूर-मन्त्रिमण्डल भी इससे ऊपर उठकर कुछ सोच या कर नहीं सकता? मजूर-नेता विश्वके लोकतान्त्रिक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वतन्त्र राष्ट्रोंका जो संघ बनाना चाहते हैं, क्या उसकी भूमिका यही है ?

वाइसरायने बुद्धिमत्ता, विश्वास और साहसकी जो आशा भारतीयोंसे की है, क्या वही भारतीय भी उनसे और उनकी सरकारसे न करें ? शिमला-सम्मेलनसे पहले उन्होंने कांग्रेससे 'भूल जाओ और क्षमा करो'की अपील की थी। कांग्रेसने क्या नहीं भुलाया, क्या नहीं क्षमा किया ? पर उन्होंने ? उनकी सरकारने ? आज भी अनेक कांग्रेसजन जेलोंमें बन्द हैं, कांग्रेस तथा उससे सम्बन्धित संस्थाएँ ग़ैरक़ानूनी हैं और कांग्रेसके सभा-जुलूसोंपर पाबन्दियाँ हैं। नात्सीवाद और फ़ाशिज़मके विनाश तथा मजूर-दलकी विजयके बाद भी ब्रिटिश अधिकारी भारतमें १९१९ के विधान द्वारा गठनीय शासन-परिषदकी स्थापनाकी बात सोचते हैं, यह क्या उसे साम्राज्यवादके जुएसे मुक्त न करने की दुर्भावनाका द्योतक नहीं है ? भारतीय जनताके लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्वकी दुहाई देकर १९१९ के विधानके अनुसार केन्द्रीय असेम्बलीका—जिसके मतदाता भारतीय जनताका एक प्रतिशत से भी कम हैं—और १९३४ की निर्वाचक-सूचियोंके आधारपर प्रान्तीय असेम्बलियोंका चुनाव करना क्या भारतीय जनताके साथ विश्वासघात और धोखा नहीं है ? उस हालतमें इस राजनीतिक जुर्मकी अनैतिकता तथा गम्भीरता और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं कि इसी आधारपर चुने जानेवाले प्रतिनिधि भारतका भावी विधान और प्रस्तावित ब्रिटिश-भारत-सन्धिकी रूप-रेखा तय करेंगे। क्या सचमुच इस तरह भारतीय जनताका सही, पर्याप्त और लोकतान्त्रिक प्रतिनिधित्व हो सकेगा ?

फिर, यदि देश इस दूषित प्रतिनिधित्व-प्रणालीको ही छोटी बुराईके रूपमें स्वीकार कर लेता है, तो क्या सरकार उन प्रतिनिधियोंके बहुमतको स्वीकार करेगी ? अगर शिमला-प्रस्तावकी भाँति भारतके विधानका अन्तिम निर्णय मुस्लिम-लीग और उसके स्वयंभू फ्यूहररके 'वीटो'पर ही छोड़ा जाना है, तब तो यह सारा आयोजन समय, शक्ति और धनके अपव्ययके सिवा और कुछ नहीं है। इस हालतमें तो बक़ौल सर जगदीशप्रसादके पहले सरकार लीगसे ही कोई फ़ैसला कर ले, तो मामला ज़्यादा सुलझ जायगा। क्रिप्स-योजना और शिमला-सम्मेलनके समय कांग्रेस और लीगका जो रुख रहा है, पुराने ढंगके चुनावोंके बाद दोनों दलोंकी स्थिति और नीतिके सम्बन्धमें कोई विशेष अन्तर शायद न पड़े। अतः ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा यह स्पष्ट किया जाना ज़रूरी है कि वैसी ही स्थिति आनेपर वे क्या करेंगे। राजनीतिक ज़िच स्थायी रूपसे बनाए रखेंगे या और कुछ ? आखिर उनकी 'कठिनाइयाँ' क्या हैं ?

पूरी आज़ादीसे कम कुछ नहीं !

वेवल-एटली-घोषणाओंके सम्बन्धमें कांग्रेस-महासमितिने जो प्रस्ताव पास किया है, उसका मुख्यांश इस प्रकार है—"भ युद्धके अन्त और न ब्रिटेनमें शासनके परिवर्त्तनके परिणाम-स्व भारत-सम्बन्धी ब्रिटिश नीतिमें कोई वास्तविक परिवर्त्तन हु है। वह अभी भी हर प्रगतिमें विलम्ब करने तथा नई समस्य और पेचीदगियाँ पैदा करनेपर ही आधारित है। यह उल्लेखनीय है कि इन घोषणाओंमें भारतकी आज़ादीका ज़िक्र नहीं है। कांग्रेस और देश पूर्ण स्वाधीनतासे कम कुछ स्वीकार नहीं करेंगे। जो प्रस्ताव अब किए गए हैं, वे क महासमितिकी रायमें अस्पष्ट, अपर्याप्त और असन्तोषजनक हैं केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियोंके चुनावकी घोषणा ऐसे और परिस्थितियोंमें की गई है कि स्वभावतया सन्देह पैदा होते है। सहसा कई प्रान्तीय असेम्बलियोंका भंग कर दिया जा लोकप्रिय शासनकी स्थापनाकी सम्भावनाके प्रति सरकारी नौकरोंके विरोध प्रकट करता है, जिसका किसी तरह भी औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय असेम्बली अभी भी १९१९ के क़ानूनके मातहत है। भारतकी स्वाधीनताकी पृष्ठभूमिमें जनता के एक प्रतिशतसे भी कम मताधिकारपर गठित ऐसी लुंज और अजनतान्त्रिक केन्द्रीय असेम्बलीको क़ायम रखनेका कोई औचित्य नहीं है।...स्वतन्त्र और उचित चुनाव उस समय तक सम्भव नहीं, जब तक कि अनेक संस्थाएँ—जैसे कांग्रेस-समाजवादी दल, फारवर्ड ब्लाक और किसान-सभाएँ—निषिद्ध हैं; जब कि हज़ारों व्यक्ति अभी भी बिना मुक़दमेके जेलोंमें बन्द हैं अथवा राजनीतिक अपराधोंके लिए कारावास भोग कर रहे हैं; जब कि अधिकारियोंकी पूर्व आज्ञाके बिना सभाएँ नहीं की जा सकतीं और जब कि राजनीतिक अपराधोंके लिए दिए गए दण्डोंके कारण बहुतसे व्यक्ति अयोग्य क़रार दे दिए गए हैं।"

सरकारकी गाड़ी पीछे जा रही है !

नई घोषणाकी आलोचना करते हुए श्री एम० आर० जय कर, कुँवर सर जगदीशप्रसाद और सर एन० गोपालस्वामी आयंगरने एक संयुक्त वक्तव्य निकाला है, जिसमें कहा गया है—"वाइसरायका हालका ब्राडकास्ट बड़ा शिथिल, उपेक्षापूर्ण, प्रेरणा-हीन और निराशाजनक है और उसमें मैत्री और सहृदयताकी वह भावना नहीं है, जो शिमला-सम्मेलनके पूर्वके उनके ब्राडकास्टमें थी। स्पष्ट रूपसे इसमें स्वर कुछ कठोर हुआ है और नीति गिरी है। राजनीतिज्ञताका स्थान अब राजनीतिक तिकड़मने ले लिया है। शिमला-सम्मेलनके बाद चूँकि मुस्लिम-लीगकी माँगें और कड़ी हो गई हैं, सरकारका रुख अन्यान्य राजनीतिक दलोंके प्रति भी कम मैत्रीपूर्ण हो गया है। केन्द्रमें अस्थायी सरकार तथा प्रान्तोंमें ९३ धाराके शासनके स्थानपर लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना और यहाँ तक कि विधान-निर्माण-परिषद बुलाया जाना तक भी अनिश्चित कालके लिए खटाईमें डाल दि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया है।...ब्रिटिश सरकारका एकमात्र उद्देश्य यह देख पड़ता है कि पहले तो सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओंका निर्णय ७-८ मासके लिए स्थगित कर दिया जाय और फिर जब नया ज़िच पैदा हो, तो बड़े पवित्र भयके साथ हाथ उठा-उठाकर यह कहे कि सत्ता हस्तान्तरित करनेके उसके सच्चे प्रयत्नोंको भारतीय नेताओंने बातमें असहमत होकर फिर बेकार कर दिया है!...इस वक्त सरकारकी गाड़ी तेज़ीसे पीछेकी ओर जा रही है। क्या इसे पीछे जानेसे रोका जा सकता है? क्या कोई आशा है कि यह फिर कभी आगेकी ओर चलेगी?"

नए भारत-मन्त्रीका आदर्श!

ब्रिटिश सरकारके नए प्रस्तावोंकी भारतमें जो प्रतिक्रिया हुई है, गत २३ सितम्बरको उसपर बोलते हुए मसेलबर्ग (एडिनबरो) में नए भारत-मन्त्री लार्ड पैथिक लारेन्सने कहा—"इस प्रतिक्रियासे न मैं परेशान हुआ हूँ, न हतोत्साहित ही। घोषणा अपने-आपमें भारतकी पेचीदा राजनीतिक समस्याओंका कोई हल नहीं है। परिस्थितिको देखते हुए यह वैसा हल हो भी नहीं सकती थी। घोषणा भारतीयोंके सामने पूर्ण स्वशासनका मार्ग-भर उपस्थित करती है। सम्राटकी सरकारकी तरफ़से उन्हें इस मार्गपर आगे बढ़ानेके लिए जिस सहायता एवं प्रोत्साहनकी जरूरत होगी, वह ये करेंगे, देना मेरा सुयोग होगा।" इसके बाद ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत रहकर मिलनेवाली स्वाधीनताका सब्ज़ बाग़ दिखाकर आपने फरमाया—"पद ग्रहण करनेके बाद ही मैंने पत्रकारोंकी एक सभामें कहा था कि ब्रिटेन और भारतकी समान साझीदारीका आदर्श ही मैंने अपने सामने रखा है। ब्रिटिश जनताका बहुत बड़ा भाग इसी आदर्शका समर्थक है।"

लार्ड लारेन्स ७३ वर्षके बुज़ुर्ग, बड़े अनुभवी एवं समझदार मजूर-कार्यकर्त्ता हैं। क्या उन्हें भी यह बतलाना होगा कि इस तरहकी लफ़्फ़ाज़ी, आदर्शोंकी थोथी दुहाई और सहृदयताके सस्ते नुस्खोंमें आज भारतका कोई विश्वास नहीं रह गया है। स्वशासन के मार्गपर चलकर ब्रिटेनसे समान साझीदारीका उद्देश्य अथवा आदर्श उनका हो सकता है, भारतका नहीं। भारतका एकमात्र आदर्श तो पूर्ण स्वाधीनता है—न उससे कुछ कम, न कुछ अधिक। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलका सदस्य भारत हो या नहीं, अथवा ब्रिटेनसे उसकी कैसी सन्धि हो, इसका निर्णय एकमात्र स्वतन्त्र भारतीय जनता ही कर सकती है। न भारतको चर्चिल-एमरीकी धौंस और दमनने कभी डराया या पद्दलित किया, न क्रिप्स-एटलीके थोथे आश्वासन ही उसे धोखा दे सकेंगे। लार्ड लारेन्सके प्रोत्साहन या सहायताकी भी शायद हमें ज़रूरत न पड़े। अच्छा हो यदि वे स्वयं अपने और अपने साथियोंके लिए सचाई और यथार्थवादिताका मार्ग ढूँढ़ निकालें और उसीपर आगे बढ़नेका साहस, दूरदर्शिता एवं समझदारी दिखायँ। उस हालतमें शायद अधिक सुगमतासे भारत और ब्रिटेनके सम्बन्ध वास्तवमें समानता और सद्भावनाके हो सकें।

दिखाने और खानेके ये दाँत!

मजूर-दलके अध्यक्ष प्रो० हेरल्ड लास्कीने न्यूयार्कसे प्रकाशित कालियर्स मेगेज़ीनके सितम्बरके अंकमें लिखा है—"मजूर-दल साम्राज्यवादके सभी रूपोंके खिलाफ़ है। मजूर-दल सदा ही राजनीतिक साम्राज्यवादका ज़बरदस्त विरोधी रहा है—जैसे कि भारतमें—जिसने भारतीयोंकी एक राष्ट्रके रूपमें स्वशासन करनेकी भावनाको दबा दिया है।" शब्द तो बड़े ज़बरदस्त और गरम हैं; पर भारतमें जो-कुछ है, हो रहा है और उसके भावी विधानके सम्बन्धमें मजूर-सरकारने जो छलनापूर्ण प्रस्ताव देशके सामने रखा है, उसमें हम प्रो० लास्कीके शब्दोंके समर्थनके बजाय खण्डन ही ज़्यादा देखते हैं। और अकेले भारत ही क्यों, दुनियाके किस भागमें मजूर-दलने साम्राज्यवादके किसी भी रूपका अन्त या विरोध किया है? वैसे ज़बानी विरोध तो साम्राज्यवादका बहुत-से टोरी और फ़ाशिस्त भी करते हैं।

प्रो० लास्कीने इसी शाब्दिक गरमीका परिचय पिछले दिनों ब्लैकपूलमें हुई ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन कांग्रेसके अवसरपर भी दिया। आपने कहा—"कई ज़बरदस्त गुट हैं, जो यह देखनेको उत्सुक हैं कि मजूर-सरकार विफल हो। उसके सामने आज राजनीतिक लोकतन्त्रको अर्थनीतिक लोकतन्त्रमें परिवर्त्तित करनेका प्रश्न है। सबसे पहले उसके सामने गम्भीर और ज़ोर पकड़नेवाली समस्याएँ हैं सेनाके विघटन, घरों, पेंशनों और भारतके स्वशासन तथा स्वतन्त्रताकी।...दलके सामने आज अपना रास्ता चुननेका सवाल है। या तो वह जनताको विश्वास दिला देता है कि जनतान्त्रिक समाजवादी सिद्धान्त अमली रूप दिए जाने योग्य हैं, या फिर वह अपना स्थान उन लोगोंके लिए खाली कर देगा, जो जनतन्त्रसे भिन्न कोई प्रयोग करेंगे।"

उपर्युक्त कथनके अन्तमें जो संकेत है, वह आशंकासे बढ़कर एक गम्भीर चेतावनी है। हम प्रो० लास्कीको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमारी हार्दिक सहानुभूति मजूर-दलके साथ है और हम अपनी तथा दुनियाकी भलाईके लिए स्वप्नमें भी यह नहीं चाहेंगे कि मजूर-सरकार विफल हो। पर इस सहानुभूति और सद्भावनाकी क़द्र यदि मजूर-सरकार न कर सकी, यदि इसका जनतान्त्रिक मूल्य और समाजवादी महत्व वह नहीं समझ सकी; तो उसका भविष्य अँधेरा नहीं तो धुँधला ज़रूर होगा। भारत उसके सिद्धान्तोंकी आज़माइशकी पहली और अन्तिम कसौटी है। ब्रिटेनके सभी खरे-खोटे दलोंकी पहचान इसीसे हुई है।

भारत आज़ादी लेकर रहेगा!

ब्रिटिश प्रतिगामियोंके नए प्रस्तावोंको जन्मके साथ ही भारतीय लोकमतने एक तरहसे दफ़ना दिया है। इससे ब्रिटेनके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साम्राज्यवादी और नीम-साम्राज्यवादी पत्रोंने जहाँ मगरमच्छके-से आँसू बहाए हैं और भारतीयोंको बिना माँगे ही ढेर-सी सीख दी है, वहाँ ब्रिटिश साम्यवादी दलके मुखपत्र 'डेली वर्कर'ने ज़रा स्पष्टवादितासे काम लिया है। उसने लिखा है—"भारतीय समस्याके साथ अब अधिक दिन खिलवाड़ या राजनीतिक कनकौएबाज़ी नहीं की जा सकेगी। जापानी साम्राज्यवादकी पराजय के बाद भारतकी स्वाधीनता-प्राप्ति एशियाई शान्ति-व्यवस्थाका केन्द्रीय प्रश्न बन गया है। हमें इस तथ्यको भलिभाँति समझ लेना चाहिए कि यदि भारतको स्वाधीनता नहीं दी गई, तो वह उसे स्वयं ले लेगा। वह स्वाधीनताकी घोषणाके लिए इन्तज़ार नहीं करेगा।...ब्रिटिश शासनने भारतको एक भीषण दुर्घटनाके किनारे ला खड़ा किया है और केवल जनताका सबल प्रयत्न ही लाखों व्यक्तियोंको अकालके मुँहसे बचा सकता है।"

'डेली वर्कर'ने जिस तथ्यकी ओर ब्रिटिश जनता और अधिकारियोंका ध्यान आकृष्ट किया है, उसकी ओर भारतीय जनताका ध्यान आकृष्ट करते हुए गत २३ सितम्बरको कांग्रेस-महासमितिमें पं० गोविन्दवल्लभ पन्तने ज़ोरदार शब्दोंमें कहा है—"स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे। मुझे इस सम्बन्धमें तनिक भी सन्देह नहीं। पिछले तीन वर्षोंकी घटनाओंने मुझे विश्वास दिला दिया है कि एटलियों और चर्चिलोंके बावजूद भारत अपनी आज़ादी हासिल करेगा।" पन्तजीके ये शब्द भारतकी आत्माकी आवाज़ हैं और दूसरे शब्दोंमें साम्राज्यवादकी मृत्यु-घोषणा! इसे अधिक दिन अनसुनी नहीं किया जा सकता।

स्वाधीनताके सैनिकोंका अभिनन्दन

बम्बईके जिस गवालिया-मैदानमें कांग्रेस-महासमितिने अपना अगस्त १९४२ का 'भारत छोड़ो' नामक ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया था, ठीक तीन वर्ष बाद वहीं एकत्र होकर उसने उसके बादकी प्रतिक्रियाओंका सिंहावलोकन किया। असाधारण दमन और उत्पीड़न तथा शोषण और लूटके बावजूद जनताका उत्साह अपार, साहस अमित और धैर्य अचल था। ज़ोरोंकी वर्षा और बार-बार कुछ वतनफ़रोश गद्दारों द्वारा माइक्रोफ़ोनके तार काट दिए जानेके बावजूद लगभग ३० हज़ार लोगोंने पण्डालमें शान्त-संयत बैठकर और हज़ारोंने बाहर खड़े होकर जिस उत्सुकतासे महासमितिकी कार्यवाहीको देखा-सुना, वह कांग्रेसके प्रभाव और स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए जनताके अटूट निश्चयका सम्यक रूपसे परिचायक है। इस अधिवेशनमें पास हुए अनेक महत्त्वपूर्ण प्रस्तावोंमें से सबसे उल्लेखनीय है राष्ट्रके प्राण पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया गया अगस्त १९४२ के संघर्षके लिए राष्ट्रका अभिनन्दन करनेका प्रस्ताव। उनके नीचे लिखे शब्द मानो आज भी देशके कोने-कोने, कण-कण और जन-जनके मनसे प्रतिध्वनित हो रहे हैं :—

"जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हमारे लिए तो एक ही मुद्दा था और वह था सरकारके दमनपूर्ण उपायोंके खिलाफ़ जनताका संघर्ष। महासमितिको खेद है कि कुछ स्थानोंमें लोग अहिंसात्मक शान्तिपूर्ण उपायोंको भूलकर विपथ हो गए; पर वह महसूस करती है कि सरकार द्वारा अकस्मात सब प्रसिद्ध नेताओं की गिरफ़्तारी और शान्तिपूर्ण प्रदर्शनोंके क्रूर एवं बर्बर दमनके उत्तेजनापूर्ण कार्यने जनताको विदेशी साम्राज्यवादी शक्तिके बलका सामूहिक मुक़ाबला करनेको प्रेरित किया, जो कि भारतकी जनताकी स्वाधीनताकी भावना और उसकी प्राप्तिकी तीव्र आकांक्षाको कुचलनेकी चेष्टा कर रही थी। महासमितिने अगस्त १९४२ में संयुक्त राष्ट्रोंके विश्व-स्वातन्त्र्यके उद्देश्यमें सहयोग देनेकी पूर्वस्थिति लानेके लिए जो अपील की थी, उसकी सरकार ने उपेक्षा की और उसके द्वारा समझौतेके रूपमें भारतीय समस्या को हल करनेका उत्तर भारतीय जनतापर व्यापक आक्रमणके रूपमें दिया और निहत्थे देशको युद्धमें होनेवाले आक्रमणोंसे अनेक आतंकोंका शिकार बनाया। आतंकके ये तीन वर्ष घोर पीड़ा और कष्ट; टाले जा सकनेवाले अकाल, जिसने लाखोंका भक्ष्य लिया और भ्रष्ट तथा निकम्मी शासन-प्रणाली—जो इस देशकी समस्याओंपर विचार करने और उन्हें हल करनेके सर्वथा अयोग्य है—की एक लम्बी दुःख-कहानी है। फिर भी इन सबने सरकारी दमनका मुक़ाबला करनेके जनताके साहसको बल दिया है और विदेशी शासनसे मुक्ति पानेके उनके निश्चयको फौलादकी तरह सुदृढ़ बना दिया है। अधिकारियोंने भारी हाथसे वार किया। एकके बाद एक दमनके उपाय काममें लाए जाने लगे। जनताके खिलाफ़ सरकारने अपनी सारी शक्ति लगा दी। फिर भी जनताका हौसला टूटा नहीं। जनताने अपना संगठन किया तथा अपने नेता और अपने ढंग चुने। मुझे इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतके आधुनिक इतिहासमें जनताने इतना अटूट हौसला कभी नहीं दिखाया। सतारा, बिहार, मिदनापुर और बंगालके अन्य स्थानों तथा युक्त-प्रान्तमें हुई घटनाओंने जनताके स्वाधीनता-संग्रामके इतिहासमें एक गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है।"

कहा न होगा कि नेहरूजीके इन शब्दोंने कितनी हत्या और दुःख, गोलियोंके घावों, लाठियोंकी मारोंके असर, अग्निकाण्डोंसे हुई हानि और जलन, बलात्कारोंकी ग्लानि और जुल्म-ज्यादतियों-अपमानोंकी ठेसको हल्का एवं फीका कर दिया है। मुक्तिकामी जनताका साहस, धैर्य और उत्साह अजर-अमर है।

आज़ाद हिन्द फौज और कांग्रेस

कांग्रेसने अपने देशके उन हज़ारों नर-नारियोंको भी नहीं भुलाया, जो देशकी आज़ादीके लिए आज़ाद हिन्द फौजमें भर्ती होनेका लोभ संवरण नहीं कर सके। महासमितिने एक प्रस्ताव द्वारा यह

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की है कि बदला लेनेकी भावनासे इन लोगोंको राजद्रोहके नाम पर दण्डित नहीं किया जायगा। इनके मुक़दमोंकी पैरवीके लिए पं० जवाहरलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री भूलाभाई देसाई, डा० कैलासनाथ कटजू, श्री रघुनन्दनशरण और श्री आसफ़अली (संयोजक) की एक समिति बनाई गई है। यह समिति आज़ाद हिन्द फौजके लोगोंके सम्बन्धियोंसे मिलकर उनकी सफ़ाईकी व्यवस्था करानेमें सहायता देगी और जिनकी सफ़ाईका कोई उचित प्रबन्ध न होगा, उनकी सफ़ाईकी स्वयं व्यवस्था करेगी।

उक्त प्रस्ताव पेश करते हुए नेहरूजीने कहा—"बर्माकी राष्ट्रीय सेना और इस सेनाके कार्यमें कोई फर्क़ नहीं है। फिर भी आज़ाद हिन्द फौजके साथ किया जानेवाला बर्त्ताव उससे बिलकुल भिन्न है। इतिहासमें ऐसे ही और कई उदाहरण हैं। पिछले महायुद्धके बाद जर्मनोंके पक्षमें लड़नेवाले चेक सैनिक लड़ाकू मान लिए गए। तब आज़ाद हिन्द फौजमें भर्ती होनेवाले भारतीय उनसे भिन्न किस तरह हैं? मैं ब्रिटिश सरकारको चेतावनी देना चाहता हूँ कि यदि बदला लेनेकी भावनासे उसने इन भारतीय नौजवानों—जिनका एकमात्र अपराध है अपने मुल्ककी आज़ादीकी गहरी भावना—को दण्डित किया, तो भारतीय जनतामें भारी असन्तोष फैलेगा। इन्हींके नाते-रिश्तेदार ब्रिटिश भारतीय सेनामें भी हैं, अतः इनको सज़ाकी प्रतिक्रिया ब्रिटिश भारतीय सेनामें भी होनी ज़रूरी है। ये लोग आगे ही काफ़ी सज़ा पा चुके हैं, अब इन्हें और सज़ा देना असंख्य घरों और समूची भारतीय जनतामें दुःखकी सृष्टि करेगा, जिससे ब्रिटेन और भारतके बीचकी खाई और भी अधिक चौड़ी होगी।...ये लोग नवीन और स्वतन्त्र भारतके निर्माणमें बहुमूल्य सहायता दे सकते हैं।"

भारतीयोंके साथ जापानियोंका बर्त्ताव

भारतीय नर-नारी यदि स्वेच्छासे और सामान्य परिस्थितिमें आज़ाद हिन्द फौज या आज़ाद हिन्द सरकारके साथ हो गए होते, तो ब्रिटिश अधिकारियोंके पास उन्हें 'राजद्रोही' कहकर दण्डित करनेका कोई बहाना भी होता। पर जिन प्रतिकूल एवं क्रूर परिस्थितियोंमें उन्हें इस मजबूरीको अपनाना पड़ा, उन्हें देखते हुए उनसे अधिक ये क्षमाके ही पात्र हैं। अंगरेज़ सेनापतियोंने मलाया और सिंगापुरमें जिन युद्ध-बन्दियोंको मुक्त किया है, उनमें अनेक भारतीय भी हैं। 'टाइम्स'के युद्ध-संवाददाताने इनके साथ जापानियों द्वारा किए गए बर्त्ताबका जो विवरण छपाया है, वह विचारणीय है। उसने बतलाया है कि दक्षिण-पूर्वी एशियाकी रक्षाके लिए ज़िम्मेदार १७००० भारतीयोंको आज़ाद हिन्द फौजमें भर्ती करनेके लिए जापानी समझाने, खुशामद करने, प्रलोभन देने आदिसे लेकर मार-पीट, असाधारण कठोर श्रम तथा हत्या तकके उपाय काममें लाए। कई लोगोंको कई दिनों तक भूखा उल्टा लटकाए रखा गया; कइयोंको असाधारण रूपसे कठोर श्रम करने पर मजबूर किया गया; कइयोंसे विस्फोटक पदार्थ उठवाए गए, जिसमें बहुतोंकी जानें गईं। गत २५ सितम्बरके 'स्टेट्समैन'में अनेक भारतीयोंकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर जापानियों द्वारा उनके गोलीसे उड़ा दिए जानेके चित्र प्रकाशित हुए हैं।

अभी हाल ही में मनीलासे सिडनी पहुँचे भारतीयोंने जापानियोंके अमानुषिक दुर्व्यवहारकी अनेक रोमांचक घटनाओंका वर्णन अमरीकन यूनाइटेड प्रेसके संवाददातासे किया है। कन्हैया नामके एक व्यक्तिने बताया कि जापानी सैनिक भारतीय स्त्रियोंके बच्चोंको उनकी गोदसे छीनकर जलते हुए मकानोंमें फेंक देते और ठहाका मारकर हँसते थे। ६० भारतीयोंको जापानियोंने मशीनगनसे खत्म कर दिया। तालाराम आसनमल नामक एक वस्त्र-व्यापारीने बताया कि उसने अपने लड़केके तीन बार संगीन भोंका जाते देखा! तीसरे वारके बाद बच्चा मर गया! श्रीमती रुक्मिणी किशनचन्दने कहा कि उसके पति और तीन बच्चोंको जापानियोंने ज़िन्दा जला दिया! ये कोई इक्के-दुक्के उदाहरण नहीं हैं; अधिकांश भारतीयोंके साथ लगभग ऐसा ही बर्त्ताव हुआ है।

विघटित सैनिकोंका भविष्य

जिन भारतीयोंने इटली, जर्मनी और जापानके आततायियोंके विनाशमें स्पृहणीय योग दिया है, विघटनके बाद उनके भविष्यका प्रश्न समूचे देशके लिए विशेष महत्व रखता है। इनमें सैनिकोंकी ही भाँति युद्ध-कालीन कल-कारखानोंके लाखों कुली-मिस्त्री, किरानी-अफ़सर भी हैं। स्वतन्त्र देशोंकी सरकारें इस ओर विशेष ध्यान दे रही हैं। पर भारतकी ब्रिटिश सरकार इस दिशामें भी बड़ी शिथिल-सी है। अभी हाल ही में नई दिल्लीसे निकली विज्ञप्तिमें बतलाया गया है कि एक अक्टूबरसे लगाकर अगले ८ महीनोंमें लगभग ८५०००० या इनसे कुछ कम आदमी विघटित होंगे। इनमें से पहले १३००० शायद इसी महीनेके अन्त तक रुखसत कर दिए जायँ। इनमें से कुछ स्थायी सेनामें रखे जाने लायक, कुछ पेंशन पाने लायक और कुछ शायद सरकारी नौकरियोंमें खपने लायक़ हों। पर अधिकांशके लिए तो काम खोजने की ही समस्या है। इसे सरकार किस प्रकार हल करेगी? कागज़पर उसने कुछ योजनाएँ ज़रूर बना रखी हैं, पर उन्हें अमलमें लानेकी क्षमता क्या उसमें है? क्या वह ब्रिटेनमें जमा भारतके पौण्ड-पावनेको वसूलकर, पुनर्निर्माण-कार्योंका श्रीगणेशकर इन लाखों बेकार भारतीयोंके लिए काम खोज सकेगी? पहले तो वह स्वयं भ्रष्ट, निकम्मी और ग़ैरज़िम्मेदार है; फिर उसे यही भरोसा नहीं कि कल वह रहेगी भी नहीं! अतः उसका चौकड़ी भूलना और अकर्मण्य होना समझमें आता है।

पर देशकी अधिकतम प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस न केवल साम्राज्यवादी शोषण और पेषणसे ही देशको मुक्त करनेका दावा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करती है, वरन वह सत्ताके हस्तान्तरित होनेपर अपने सम्यक कर्त्तव्य-पालनके रूपमें भी सोचती है। इसीलिए पिछले दिनों बम्बईमें हुई कांग्रेस-कार्य-समितिकी बैठकमें विघटित भारतीय सैनिकोंको भी भुलाया नहीं गया। इस सम्बन्धमें पास किए गए उसके प्रस्तावका मुख्यांश इस प्रकार है : युद्ध-कार्यमें संलग्न मज़दूरों और सैनिकोंको विघटनके बाद जो कार्य दिया जाय, वह राष्ट्रीय उन्नतिकी अन्य योजनाओंके साथ सामंजस्य रखनेवाला होना चाहिए। इन्हें ऐसे काम नहीं दिए जायँ, जिनसे कि दूसरे लोग बेकार हों ; बल्कि ऐसे काम ही दिए जायँ, जिनसे युद्ध-कालमें प्राप्त शिक्षा और अनुभवोंका राष्ट्रीय पुनर्निर्माणमें सदुपयोग हो सके। अन्य बड़े पैमानेके कार्योंकी तरह यह कार्य भी सावधानीपूर्वक योजना और सामंजस्य-स्थापना द्वारा होना चाहिए। सैनिकोंका विघटन तो अभी होना है, पर मज़दूरोंका आरम्भ हो चुका है। लाखोंकी संख्यामें इन मज़दूरोंको मुक्त होते ही राष्ट्रोपयोगी कार्योंमें लगाए बिना बड़े पैमानेपर बेकारी फैलनेका खतरा है, जिसका देशकी अर्थनीतिक व्यवस्थापर बहुत बुरा असर पड़ेगा। अनुभवी और दक्ष कारीगरोंका उपयोगन होना सामाजिक और अर्थनीतिक दृष्टिसे भी देशके लिए हानिकर और अपव्यय है। उधार-पट्टा-व्यवस्थाके अनुसार बने अस्पताल, भवन और कैम्प अब फौजी उपयोगके लिए नहीं रहेंगे, अतएव इनको भारतीय नागरिकोंके काममें लाया जाना चाहिए। भवनों और कैम्पोंको सामान्य परिवर्त्तनोंके साथ पुस्तकालयों, वाचनालयों, सहयोग-समितियों और पंचायतोंके काममें लाया जा सकता है।

पौण्ड-पावना कम न हो

वैध और अवैध ढंगसे ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंने भारतको जिस रूपमें चूसा और लूटा है, उसका हिसाब भला कौन लगाने लगा! पर इस महायुद्धमें ब्रिटिश अधिकारियोंने भारतसे जो सामान लिया है, उसका उन्होंने अपने दर और ढंगसे हिसाब रखा बतलाते हैं। भारतका कर्ज़ उतारकर इस समय उसके पास भारतका एक अरब पौण्ड (लगभग १४ अरब रुपए) पावना है। 'सण्डे एक्सप्रेस'के अनुसार कुछ ब्रिटिश अर्थनीतिज्ञ सोचते हैं कि इतनेमें से २५ करोड़ पौण्ड कम कर दिया जाय और बाक़ीका सामान भारतके उद्योगीकरणके लिए भारतीयोंपर लाद दिया जाय! पौण्ड-पावनामें यह कमी करनेका कारण ब्रिटिश अर्थ-विशेषज्ञ यह बतलाते हैं कि रुपएकी विनिमय-दर अपरिवर्त्तित रहनेसे उन्हें भारतसे खरीदी गई चीज़ोंका दुगुना-तिगुना दाम देना पड़ा है। पर दरअसल यह भारतका करोड़ों पौण्ड डकार जानेका बहाना-मात्र है। रुपएकी विनिमय-दरके अनौचित्यके खिलाफ़ भारत कई वर्षोंसे आवाज़ उठा रहा है ; पर ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके कानपर जूँ तक नहीं रेंगी। अब जब लेनेके बजाय देनेका वक्त आया, तो उन्हें यह दर भारी हो गई!

किन्तु भारतके भविष्यके लिए पौण्ड-पावनेका महत्त्व धारण है। ग़ुलाम और अनुन्नत होनेके कारण उसकी कोई भी योजना बिना पूँजीके चल नहीं सकेगी। अतः न-जाने कितने ग़रीबोंके शोषण और शोषकोंके तर्पणसे जो निधि एकत्र हुई है, उसे खो देना उसके लिए बहुत बड़ी होगी। इसीलिए कांग्रेस-महासमितिने इस सम्बन्धमें एक पास करके देशके अभिमतको स्पष्ट किया है। प्रस्तावमें कहा है—"पौण्ड-पावनामें कमी करनेकी ब्रिटेनकी माँग सर्वथा छनीय है। भारत इस समस्याके किसी ऐसे हलको नहीं करेगा, जिससे उसके उचित दावोंका हनन किया और उसकी भावी उन्नतिको आघात पहुँचाया जाय। सन्तोषजनक समझौतेके रूपमें इस समस्याका शीघ्र ही समाधान होना चाहिए, ताकि इसका देशकी अर्थनीतिक उन्नतिको योजनाओंमें लगने हो सके।"

भारतमें ब्रिटिश-अमरीकन प्रतियोगिता

भारतके पौण्ड-पावनेके सम्बन्धमें ब्रिटेनकी नीयत ख़राब होनेकेका कारण २५ करोड़ पौण्डकी कटौतीसे भी गहरा है। धीरे-धीरे भारत न सिर्फ़ उसके राजनीतिक, बल्कि अर्थनीतिक चंगुलसे भी निकल रहा है, इसे ब्रिटिश पूँजीपति महसूस करने लगे हैं। अभी हाल ही में भारतीय उद्योगपतियोंका जो शिष्ट मण्डल ब्रिटेन और अमरीका होकर लौटा है, उसका कहना है कि भारतकी औद्योगिक उन्नतिमें ब्रिटेनकी अपेक्षा अमरीकासे विशेष सहायता मिल सकती है। इसका कारण है अमरीकाका यन्त्र-उद्योगमें अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक उन्नत होना। ब्रिटिश पत्रोंने इसपर बड़े आँसू बहाए हैं और हस्बदस्तूर भारतीयोंको कुछ नेक सलाहें और उपदेश भी दिए हैं। वे डर-से गए हैं कि अगर भारत और अमरीकाका यह संयोग हो गया, तो उस ब्रिटेनका क्या होगा, जिसका दो-तिहाई साम्राज्य-व्यापार अकेले भारतसे है। इस संयोगको ब्रिटिश अधिकारी भारतके पौण्ड-पावनेको पूरा या आंशिक रूपसे हज़म करके ही टाल सकते हैं। न भारतीयोंको डालर-विनिमय मिल सकेगा और न वे अमरीकासे इच्छित सामान खरीद सकेंगे।

अनेक ब्रिटिश पत्रोंने भारतीय बाज़ार-सम्बन्धी ब्रिटेन-अमरीकाकी इस गुप्त प्रतियोगिताकी ओर इशारा भी किया है। स्वयं ब्रिटेनके बोर्ड आफ़ ट्रेडके अध्यक्ष सर स्टेफ़र्ड क्रिप्सने ता ११ सितम्बरको कहा—"मेरा विश्वास है कि जब तक हम आपसमें अपने बाज़ारोंको पुनः प्राप्त नहीं करते और बढ़ाते हमारे दूसरी श्रेणीकी शक्ति होनेका खतरा है।...ज्योंही हमारे पास निर्यातका सामान तैयार हो जाता है, हम सीधे निर्यात बाज़ारोंमें पहुँचेंगे।...हम सिर्फ़ जहाँसे भी आर्डर मिलें, उसे झपटनेको ही तैयार नहीं हैं ; बल्कि अपने लिए एक ऐसी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोकप्रियता अर्जित करना चाहते हैं, जो न सिर्फ़ पुराने बाज़ार ही हमें लौटा देगी, वरन नए बाज़ारोंका भी आधार बनेगी, जो हमारी रहन-सहनकी सतहको बनाए रखनेके लिए आवश्यक हैं।"

अमीर समाजवादी क्रिप्सको मालूम होगा कि असंख्य लोगों को भूखा-नंगा रखकर ब्रिटेन अपनी रहन-सहनकी सतह क़ायम रखे हुए है। लूट और शोषणपर आधारित यह परोपजीवी और अन्यायपूर्ण साम्राज्यवादी व्यवस्था अब खत्म होनी चाहिए। जो चीज़ भारतमें जल्दी और सस्ती बन सकती है तथा जिसके बनाने और खरीदनेमें लगनेवाला पैसा इसी देशके लोगोंके उपभोगमें आ सकता है, उसे महज़ इसलिए भारतीयोंको भूखा-नंगा रखकर ब्रिटेनसे खरीदना कि वहाँके शौकीन समाजवादियोंको सत्तारूढ़ रखनेवाली प्रजाकी रहन-सहनकी सतह क़ायम रहे, कहाँका न्याय और अक़्लमन्दी है?

लीगके पास नहीं जायँगे!

बम्बईमें हुए कांग्रेस-महासमितिके पिछले अधिवेशनमें सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण वेवल-एटली-घोषणा-सम्बन्धी प्रस्तावपर हुए। अन्य बातोंके दौरानमें अनेक प्रमुख नेताओंने लीग-सम्बन्धी कांग्रेसके रुखको और भी स्पष्ट कर दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"अतीतमें कांग्रेससे ग़लतियाँ भले ही हुई हों; पर कांग्रेसपर यह आरोप नहीं किया जा सकता कि उसने जनताके हर भाग तक पहुँचनेका यत्न ही नहीं किया।...अतीतमें हमने मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेकी भरसक चेष्टा की है; पर अब हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि आयन्दा मुस्लिम-लीगके नेताओं से दूर रहनेमें ही देशकी ज़्यादा भलाई है। क्या डा० अशरफ़ और मियाँ इफ़्तिख़ारुद्दीन भूल गए हैं कि लीगके नेताओंने किस तरह हमारे राष्ट्रपतिको ज़लील किया है? जब तक इसका प्रायश्चित्त नहीं किया जाता, हम लीगसे समझौतेकी कोई चर्चा या बातचीत नहीं करेंगे। हम मुसलमानोंका विश्वास प्राप्त करेंगे। हम मुसलमानोंकी माँगोंको पूरा करने और उन्हें कांग्रेस में लानेका भरसक प्रयत्न करेंगे, पर मुस्लिम-लीगके नेताओंके पास हम अब कभी न जायँगे।"

सरदार वल्लभभाई पटेलने कहा—"अतीतमें कांग्रेसने मुस्लिम-लीगसे समझौता करनेके लिए सब-कुछ किया। लीगको हर संभव रियायत—साम्प्रदायिक निर्वाचन और ५०-५० प्रतिशत प्रतिनिधित्वकी समानता—दी गई। किन्तु श्री जिन्ना तो कांग्रेसपर अपनी शर्तें थोपना और मुसलमानोंको कांग्रेससे निकाल लेना चाहते हैं। जो मुसलमान कांग्रेसमें हैं, उन्हें लीगने 'काफ़िर' कहा है और कहा है कि कांग्रेस मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व नहीं करती।...अब हम लीगको कोई आमन्त्रण नहीं देंगे। पर एक आमन्त्रण मैं मुस्लिम-लीगको अवश्य दूँगा और वह यह कि हम दोनों लीग और कांग्रेसके मतभेदोंकी निष्पक्ष जाँचके लिए कोई पंचायत मुक़र्रर कर दें। हमें उसका फैसला मंज़ूर होगा।"

कांग्रेस और देशके दुश्मन भले ही इन घोषणाओंका नाजायज़ फ़ायदा उठायँ और इनकी ग़लतबयानीसे जन-साधारणमें भ्रम फैलानेकी कुचेष्टा करें; पर कोई भी ईमानदार और निष्पक्ष व्यक्ति नेहरूजीके कथनके गुरुत्व और सरदार पटेलकी माँगके औचित्यको अस्वीकार नहीं कर सकता। समझौता करनेवालेकी नीयत और हरकत छुपी नहीं रह सकती। अगर श्री जिन्ना साफ़ दिल और दिमाग़से कांग्रेसकी सीमा और मर्यादाको समझ-बूझकर कोई उचित समझौता करना चाहते, तो यह बात असम्भव न थी। पर वे तो कांग्रेसकी जड़पर कुठाराघात करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि हिन्दू-मुसलमान आज़ादी-जैसे मसले पर भी विभाजित हो जायँ। उनको समूचे देश या देशवासियों की नहीं, सिर्फ़ पाकिस्तान और मुसलमानोंकी चिन्ता है। कांग्रेससे ज़्यादा उन्हें भरोसा है ब्रिटिश साम्राज्यवादकी कृपापर! कांग्रेस और उसके नेताओंको वे ज़लील-भर करना चाहते हैं, समझौता नहीं। ऐसी दशामें मुसलमानोंके लिए कौन-सा पक्ष त्याज्य और कौन-सा ग्राह्य है, इसका निर्णय वे स्वयं करें।

९९ फ़ी-सदा मुसलमान लीगमें नहीं हैं!

गत २५ सितम्बरको अपने वक्तव्यमें खाकसार-नेता श्री अल्लामा मशरिकीने कहा है—"पिछले अगस्तमें मैंने मि० जिन्ना के सामने यह तजवीज़ रखी थी कि मुस्लिम-लीगको किसी भी शक़्लमें मुसलमानोंकी नुमायन्दगी करनेवाली जमात बनानेके लिए वे ४० फ़ी-सदी नुमायन्दगीमें से १० फ़ी-सदी ग़रीब मुसलमानों को और ५ फ़ी-सदी शियाओंको दें और बाक़ी ५ फ़ी-सदी खान बहादुरों व उन दीगर अमीर लोगोंके लिए छोड़ दें, जिनकी कि मुस्लिम-लीगमें अक़्सरियत है।...लेकिन मि० जिन्ना इस मश्विरेके लिए जो लोग उनसे मिलने गए थे, उनके साथ बड़ी बदसलूकीसे पेश आए और उन्हें अपने मकानसे बाहर निकलवा दिया! इस वाक़येने खाकसारोंको मजबूर किया है कि वे खुल्लम-खुल्ला उन ९९ फ़ी-सदी ग़रीब मुसलमानोंके लिए लड़ें, जो लीगमें नहीं हैं और जो अमीरोंको ज़ुल्म-ज़्यादतियोंसे कराह रहे हैं। मेरा अक़ीदा है कि हिन्दोस्तानका हर मुसलमान मेरा साथ देगा, क्योंकि मैं उन खान बहादुरोंकी हुकूमतसे—जो हर जगह ग़द्दार साबित हुए हैं—बरतानवी हुकूमतको बदरजः बेहतर समझता हूँ।"

आतंकका राज्य नहीं हटेगा!

केन्द्रीय असेम्बलीके सदस्य सरदार सन्तसिंहने युद्धकी समाप्ति के बाद भारत-रक्षा-क़ानूनोंके हटाए जानेका वाइसरायसे अनुरोध किया था। इसके उत्तरमें कहा गया है कि निकट भविष्यमें ऐसा होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। शीघ्र ही इनके हटा लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानेसे गम्भीर असुविधा होगी। चुनावोंमें इनसे कोई बाधा नहीं होगी। इन बदनाम क़ानूनोंसे जनतामें जो आतंक फैला है, उसकी चर्चा हम पिछले अंकोंमें कर चुके हैं। पता नहीं आज भारतमें ऐसी कौन-सी स्थिति, सम्भावना या खतरा है, जिसका मुक़ाबला करनेके लिए ये असाधारण क़ानून आवश्यक हैं! भारतकी रक्षा के नामपर पास किए गए इन क़ानूनोंसे जनताकी रक्षा करनेके लिए सबसे पहला और आवश्यक क़दम है इनका अविलम्ब रद्द किया जाना। इनके खिलाफ़ जनताको संगठित रूपसे अपनी आवाज़ उठानी चाहिए।

भारतीय जेलोंकी ज़ुल्म-कहानी

गत २३ अगस्तको नवीन पार्लमेण्टमें कुमारी रैथबोनने पूछा था कि भारतीय जेलोंमें अनुचित दण्ड और यन्त्रणाको रोकनेके लिए सरकार किन एहतियाती उपायोंको काममें लाती है और किस प्रकार जेल-शासनकी व्यवस्था करती है? आपने मिदनापुर, ढाका, अण्डमान तथा बंगालकी कुछ जेलोंमें हुई ज़्यादतियोंके उदाहरण देकर सरकारी नीतिका स्पष्टीकरण चाहा था। इन प्रश्नोंके लिखित उत्तरमें भारतीय उपमन्त्री श्री आर्थर हेण्डरसनने बहुत-कुछ एमरीके ढंगपर ही यह साबित करनेकी कोशिश की थी कि कुछ 'ज़्यादतियाँ' तो अनुशासन क़ायम रखनेके लिए विद्रोह अथवा आतंकवादी या साम्प्रदायिक दंगोंके फल-स्वरूप हुईं। सबसे उल्लेखनीय बात जो उन्होंने कही, वह यह है—"केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारोंने किसी भी ढंगकी निकृष्ट यन्त्रणाको सहन नहीं किया है और हिदायतोंका अतिक्रमण करनेवाले अपने किसी भी अफ़सरके खिलाफ़ अनुशासनकी कार्यवाही करनेमें नहीं झिझकी हैं।" इसके बाद आपने ग़ैरसरकारी निरीक्षकों द्वारा क़ैदियोंसे मिलने और उनकी शिकायतोंकी जाँच करनेकी दुहाई देकर यह ज़ाहिर करनेकी कोशिश की है, मानो भारतीय जेलें पृथ्वीपर स्वर्ग ही हों!

आए दिन हम ब्रिटिश अधिकारियोंके ऐसे सफ़ेद झूठ देखते, सुनते और पढ़ते हैं। कब कितने जेल-अधिकारियोंको उनकी ज़्यादतियोंके लिए माकूल सज़ा दी गई है, हमारे सुननेमें नहीं आया। हाँ, ज़्यादतियोंकी दुखद कहानी सुनते-सुनते हमारे कान ज़रूर पक गए हैं। अगस्त १९४२ के बाद ज़ाहिरा और कल्पित 'अपराधों'के लिए जो हज़ारों सम्भ्रान्त नागरिक हठात् पकड़कर जेलोंमें ठूँस दिए गए और जिन्हें अदालतके सामने अपनी निर्दोषिता सिद्ध करनेका भी मौक़ा नहीं दिया गया, उनमें से बहुतोंके साथ जो दुर्व्यवहार जेलोंमें हुआ, जो निकृष्ट और अमानुषिक यन्त्रणाएँ उन्हें दी गईं, वे जर्मनों और जापानियोंके काले कारनामोंसे कम नहीं हैं। इन सबके फल-स्वरूप कितनोंकी मृत्यु हुई और कितने सदा या एक लम्बे अर्सेके लिए बेकार कर दिए गए, इसका अनुमान-भर किया जा सकता है। अभी हाल ही में लाहौरके अपने अनुभव षिक यन्त्रणा देनेवालोंके चंगुलसे लगभग ४॥ वर्ष बाद सुभाष बाबूके भतीजे श्री द्विजेन्द्रनाथ बसुने खुफ़िया-पुलिसके बड़े-बड़े अफ़सरोंके खिलाफ़ जो गम्भीर आरोप किए हैं, वे काँपा देनेवाले हैं। उन्होंने बतलाया है कि लाहौरके क़िलेमें तरह उन्हें निकृष्टतम यन्त्रणा दी गई, रात-दिन पूछताछ की सोने तक नहीं दिया गया और बुरी तरह मारा-पीटा उन्हें १६० डिग्रीकी गरमीवाली एक तंग कोठरीमें रखा जहाँ वे बेहोश हो गए। द्विजेनको देखकर कोई भी कह है कि जापानी या नात्सी नज़रबन्द-कैम्पके बन्दीसे बेहतर हालत नहीं है। और उनसे जैसे विचित्र प्रश्न किए गए, उनकी मौलिकता भी मुलाहिज़ा फरमाइए: क्या सुभाष गांधीजीकी सलाहसे हिन्दुस्तानसे भागे? क्या सरदार बल्लभभाई सुभाष बाबूके दोस्त हैं? क्या उन्होंने सुभाषकी मदद की? इन प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर न देनेपर द्विजेनको फौज द्वारा गोली उड़वानेकी भी धमकी दी गई!

और इस तरहकी नीचता, कमीनापन तथा अमानुषिकता पंजाबके सरकारी गुर्गों तक ही सीमित नहीं है। भारतको अधिकांश जेलोंमें उसके दर्शन होते हैं। अभी हाल ही में बिहार जेलसे छूटे श्री एच० बी० कामथने दिल्लीके लाल क़िलेमें यन्त्रणा की एक कालकोठरीका रोमांचकारी उल्लेख किया है। श्री कामथ ने जिस व्यक्तिके वहाँ अमानुषिक ढंगसे सताए जानेकी बात कही है, वे हैं राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके कार्यकर्त्ता और 'विशाल भारत'-परिवारके सुपरिचित श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी। कहा गया है कि उन्हें एक अँधेरी कोठरीमें दिन-रात जगते रखा गया। जब भी वे यन्त्रणाकी थकान और भूखसे व्याकुल होकर ऊँघने लगते, एक डण्डेका खोचा मारकर उन्हें जगाया जाता। इतने पर भी जब कुछ नहीं हुआ, तो उन्हें एक बर्फ़की शिलासे दबा दिया गया, जिससे वे बेहोश गए!

ये हमने केवल दो उदाहरण-भर दिए हैं। न-जाने कहाँ और किस-किसको ये या इनसे भी निकृष्ट यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ी हों, या आज भी भोगनी पड़ रही हों? क्या शासनके इन पर ऐसी कमीनी हरकतें करनेवालोंको सरकार कोई सज़ा देगी?

छुट्टीका सूचना

पूजाके उपलक्षमें 'विशाल भारत'-कार्यालय १२ से २१ अक्टूबर तक बन्द रहेगा। अतः इस बीचमें आए हुए पत्रोंका उत्तर और तदनुसार कार्यवाही छुट्टियोंके बाद दफ़्तर खुलनेपर ही हो सकेगी। इसी कारण अगला अंक नवम्बरके दूसरे सप्ताह तक पाठकोंकी सेवामें पहुँचेगा।

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२-२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है।

हेड आफ़िस
४७, दी माल, लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी ५५ करोड़ से अधिक

भारत भर में १९० शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-0. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

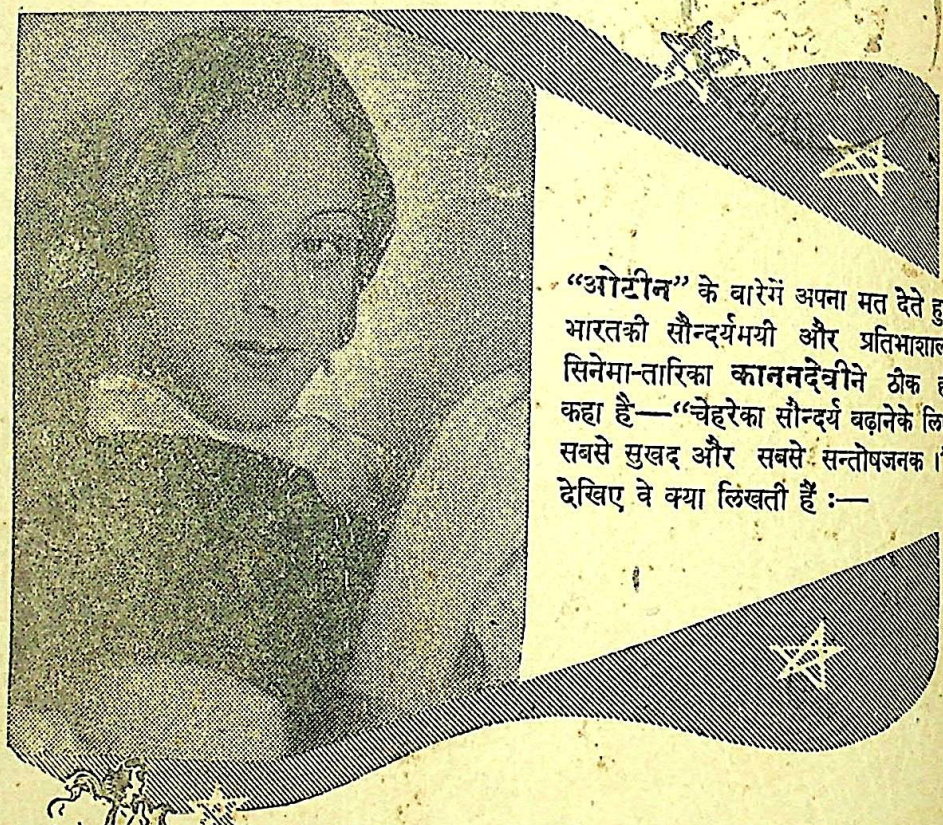

"ओटीन" के बारेमें अपना मत देते हुए भारतकी सौन्दर्यमयी और प्रतिभाशाली सिनेमा-तारिका **काननदेवीने** ठीक ही कहा है—"चेहरेका सौन्दर्य बढ़ानेके लिए सबसे सुखद और सबसे सन्तोषजनक।" देखिए वे क्या लिखती हैं :—

Of all the toilet creams that I have used, I unhesitatingly prefer Oatine Cream as being the pleasantest and most satisfactory for improving the complexion.

Kanan Devi

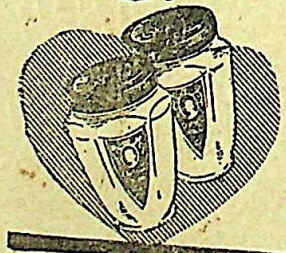

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

अक्तूबर, १९४५

विशालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

...h Colle... Varanasi

प्यारी बहिनो !

न तो मैं कोई नर्स हूँ, न कोई डाक्टर हूँ और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थी स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक-धर्म के दुष्ट रोगों में फँस गई थी। मुझे मासिक-धर्म खुलकर न आता था। अगर आता था, तो बहुत कम और दर्द के साथ, जिससे बड़ा दुःख होता था। सफेद पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी। चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। घरके काम-काज से जी घबराता था। हर समय सर चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने मुझे सैकड़ों रुपये की मशहूर औषधियाँ सेवन कराईं, परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक संन्यासी महात्मा हमारे दरवाजे पर भिक्षा के लिये आये। मैं दरवाजे पर आटा डालने आई, तो महात्माजी ने मेरा मुख देखकर कहा--बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे का रंग रुई की भाँति सफेद हो गया है? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पति को अपने डेरे पर बुलाया और उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वरकी कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिये असल लागत पर बाँट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहिन के लिये पन्द्रह दिनकी दवा तैयार करनेमें २॥=) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फँस गई हों, तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूँगी। यह मेरा प्रण है कि मैं किसी बहिनसे दवाकी कीमत अपनी असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूँगी।

जरूरी सूचना—

मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और किसी रोग की दवाई के लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल

नं० (२१) बुढ़लाड़ा, ज़िला हिसार (पंजाब)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुधासिन्धु-बालसुधा

एवं प्रख्यात निजी पेटेन्ट तथा शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माता

सुख संचारक कम्पनी, लि०,

सुख संचारक बिल्डिंग, सुख संचारक पोस्ट-आफिस,

मथुरा

युक्त-प्रान्तमें

अपने ढंगका एकमात्र विश्वसनीय विशालकाय कार्यालय

हमारी विशेषताएँ

१—हमारा अपना निजी ५५ वर्षीय अनुभव।

२—औषधें वैद्यककी ऊँचेसे ऊँची उपाधि-प्राप्त विशेषज्ञ और अनुभवी वैद्यराज, उप-वैद्यराजके निरीक्षणमें निर्माण होती है।

३—अप्राप्य व दुष्प्राप्य खनिज एवं वनौषधियोंके प्राप्त करनेके संगठित साधन।

४—कड़ी, गठीली वनस्पतियोंके चूर्ण-विचूर्ण करने, गोलियाँ, टिकियाँ बनाने व कार्क फिट करने और अन्य विभिन्न कार्योंके लिये आधुनिक पद्धतिकी मशीनें।

५—औषधियोंका अधिक परिमाणमें तैयार करने तथा इकट्ठा सामान मंगानेके कारण सस्ती और सर्वोत्तम तैयार होना।

विशेष विवरणके लिये
वृहत सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची : नवम्बर, १९४५

१. तीन वर्ष २६५, २. बर्नार्ड शाकी जीवन-संध्या २६६, ३. एक दृश्य २६९, ४. परमाणुःऔर परमाणु-बम २७०, ५. दक्षिण-पूर्वी एशियाका स्वाधीनता-संग्राम २७३, ६. मनकी बात २७६, ७. रूसी साधक रोरिक २७९, ८. क्या कला मनुष्यका पतन है ? २८२, ९. नीलमकी अँगूठी २८६, १०. प्रेरणा २८९ ११. हिन्दू-विवाह-विच्छेद-सम्बन्धी क़ानून २९०, १२. शिकार-भेद और भेद-शिकार २९३, १३. स्मृतिकी साधना २९५, १४. नव-क्षितिज २९७, १५, घोषणा २९९, १६. आधुनिक हिन्दी-काव्यकी पृष्ठभूमि ३००, १७. चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा ३०४, १८. गद्य-काव्य ३०५, १९. चित्तौड़-दर्शन ३०६, २०. तार-सप्तक ३११, २१. मुसाहिबजू ३१४, २२. सन्त तुकाराम और उनकी हिन्दी-कविता ३१९, २३. आई० सी० एस०की मौखिक परीक्षा ३२१, २४. चिट्ठी-पत्री ३२२, २५. समालोचना ३२४, २६. चयन ३२७, २७. सम्पादकीय ३२९।

रजिस्टर्ड

श्री चित्रकोटमें श्वास (दमा) की प्रसिद्ध जड़ी-बूटी कैलाश हिल्स हर्ब्स कार्तिक सुदी (पूर्णिमा) ता० १९-११-४५ की रात्रिको एक ही खुराक सेवन करनेसे श्वास (दमा) हमेशाके लिए जड़से नष्ट हो जाता है।

नोट :—मिस्टर शम्भूदयाल नायब दीवान एण्ड जज मकराई स्टेटसे लिखते हैं कि आपकी दवासे २० रोगियोंमें १७ रोगी आरोग्य हो गये।

दवा मँगानेका पता : ब्रह्मचारी जी० दास
श्री सिद्ध ब्रह्मचर्य-सेवा-आश्रम
पो० चित्रकोट (यू०पी०)

शूल—किसी प्रकारके अम्ल शूल आदिके लिए "सुलारी" अटल अचूक दवा है। एक खुराकमें शूल बन्द होता है। एक शीशी दवासे पूर्ण आराम होता है। इसके लिए गारण्टी है। हज़ारों आरोग्य लाभ कर चुके हैं। मूल्य २॥)।

कोढ़—निकृष्टतम कोटिके कोढ़ (क्षत, गलित, असार) के लिए जहाँ सारी चिकित्साएँ व्यर्थ हो चुकी हों, "लेप्रोसू" जादूकी तरह काम करता है। २० दिनोंमें पूर्ण और जड़से आरामकी गारण्टी। पूरे खुराककी दवाका मूल्य १५॥) और प्रयोगके लिए १०)।

माया देवी
२०, मदनदास लेन, ढाका

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

के

प्रसिद्ध प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १)
२ विभूति—डा० रामकुमार वर्माके एकांकी नाटक ३)
३ शहरका अन्देशा—उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्य ३)
४ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० वर्माके एकांकी नाटक १)
५ पाँचधागे—रक्षा-बन्धन विषयक पाँच कहानियाँ १)
६ शासन-शब्द-संग्रह—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी १)
७ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित १)
८ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १)
९ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २)
१०-११ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक १)
१. मधुमक्खी २. जंगल
१२ वे चहरे—कहानी-संग्रह (श्री शम्भुनाथजी) १)
१३ चिन्तन-कण—श्री 'मिलिन्द'का निबन्ध-संग्रह १)
१४ नागरीका अभिशाप—श्री चन्द्रबली पांडे १)

हमारे प्रकाशनोंके विषयमें मद्रास-प्रान्तके भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री सी० राजगोपालाचारीकी राय—

I was very pleased to see your publications. Excellent work!

C. Rajagopalachar.

विद्या मन्दिर लिमिटेड

कनॉट सरकस, नई देहली

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्योहारके इस शुभ अवसरपर
आपके सौन्दर्यको प्रतिबिम्बित होने दीजिए !

मार्गो सोप

नीमका यह साबुन चमड़ेके स्वास्थ्यके लिए पिछले २५ वर्षोंसे प्रसिद्ध है।

नीम टूथ पेस्ट

इसमें नीमकी दँतुअनके सभी गुण हैं। दाँतोंके स्वास्थ्यके लिए यह सर्वश्रेष्ठ है।

कस्टोरल

बड़ी मीठी खुशबूवाला बालोंमें लगानेका अंडोका तेल, जिसमें विटामिन 'एफ' है।

सिलट्रेस

बालोंको रेशम-सा मुलायम बनानेवाला सुगन्धित शैम्पू, जो नीम, नारियल और जैतूनके तेलोंसे तैयार किया गया है।

रेनुका

नीमका सुगन्धित पाउडर, जो चमड़ीके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

कलकटा केमिकल
कलकत्ता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे ५ नये प्रकाशन

अनुरागिनी

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त-लिखित

उच्च कोटिका सामाजिक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढियोंपर सफल आघात करता है। एक बार प्रारम्भ कर बिना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ४॥) ।

एप्रिल फूल

मराठी साहित्यके चुने हुए ख्यातनामा लेखकोंकी हास्यरसकी चुनी हुई कहानियोंका अनुवाद हिन्दी-साहित्यके सहृदय पाठकोंके लिए विशेष रूपसे प्रकाशित किया गया है। इन्हें पढ़ते-पढ़ते पाठक हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता है। अपने विषयकी यह एक बेजोड़ पुस्तक है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ३) ।

संगम

श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे, बी० ए०-लिखित १६ मौलिक कहानियोंका ओजस्वी एवं प्रभावशाली संग्रह, जिसकी एक-एक कहानी अपनी एक विशेषता रखती है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य ३) ।

कवि प्रसाद: आँसू तथा अन्य कृतियाँ

[ले० प्रो० विनयमोहन शर्मा, एम०ए० एल्-एल्० बी०]

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्यग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"—'विशाल भारत'। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल २) ।

कीमती आँसू

श्री रा० र० खाडिलकर, बी० एस-सी०-लिखित १२ कहानियोंका मौलिक सुन्दर संग्रह। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ॥।) ।

शिवाजी प्रकाशन मन्दिर,

लखनऊ

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

१.	प्रेमयोग	मूल्य ०-१२-०
२.	प्राच्य और पाश्चात्य (द्वितीय संस्करण)	" ०-१२-०
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (द्वितीय संस्करण)	१-०-०
४.	परिव्राजक (द्वितीय संस्करण)	" ०-१२-०
५.	भक्तियोग	" ०-१२-०
६.	मेरे गुरुदेव (द्वितीय संस्करण)	" ०-८-०
७.	शिकागो वक्तृता (तृतीय संस्करण)	" ०-६-०
८.	वर्त्तमान भारत	" ०-६-०

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखिए।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

नक़ालोंसे सावधान

चित्रकूटकी श्वास-दमाकी अचूक जड़ी

श्री १०८ महात्मा सिद्ध बाबाजीकी १०० वर्षसे [illegible] विख्यात अनुभव सिद्ध असली जड़ी। केवल १ मात्रा ता० १९-११-४५ कार्तिक पूर्णिमाकी रात्रिको सेवन करके [illegible] लिए नीरोग हो जाइये।

नोट:—बृन्दावन, गुरुकुल वैदिक विश्वविद्यालयसे श्री गौड़ शास्त्रीजीने लिखा है कि इस जड़ीसे ११ रोगियोंकी दवाकर रोगियोंका उपयोग सफल हुआ, रोगी नीरोग हो गये। पत्र—

श्री सिद्ध बाबा, सेवा आश्रम, पो० चित्रकूट (यू०पी०)

दमा और क्षय

एक दिनमें इनके कीटाणु मर जाते हैं। भुआलके [illegible] राजकुमारको पुनः जीवित करनेवाले महात्मा धर्मदास [illegible] 'एस्मोडायना' की एक शीशीसे रोगी बिलकुल अच्छा हो [illegible] है। मूल्य ३) रु०। पत्र-व्यवहार अंगरेज़ीमें करें। सब [illegible]

एजेंटोंकी ज़रूरत है?

W. Dye & Co., P. O. Wari, Dacca (B).

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्या आपको आवश्यकता नहीं है ?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की
स्त्री-पुरुषके लिए औषध

मेनसो—कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २।

लियर्टो—उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २।

ओज़न—निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनता है। मूल्य सिर्फ ४।

कटरैक्टो—बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २।

मेनसो चेम्बर
१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता
फोन : साउथ २६८७

हिन्दीकी लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका
"आजकल"

मई, १९४५ से हिन्दीमें "आजकल" नामसे एक लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका निकलने लगी है। इसमें हिन्दी साहित्य, भारतीय संस्कृति, विदेशोंकी जानकारी तथा ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी खोजपूर्ण लेख व सुन्दर कहानियाँ होती हैं। इसकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांगको देखते हुए आपको अपनी प्रति अपने नगरके एजेंटसे सुरक्षित करा लेनी चाहिए।

पृष्ठ ४८। एक प्रतिका मूल्य छः आने, वार्षिक ५।

रेलवे-बुकस्टाल व बड़े-बड़े शहरोंके सब पुस्तक-विक्रेताओंके यहां मिलता है।

आर्डरके लिए निम्न पतेपर लिखिए—

युनाइटिड पब्लिकेशन्स
पोस्ट बाक्स १६६, दिल्ली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

D. N. BOSE'S

HOSIERY FACTORY

"SANKHA & PADMA"
BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

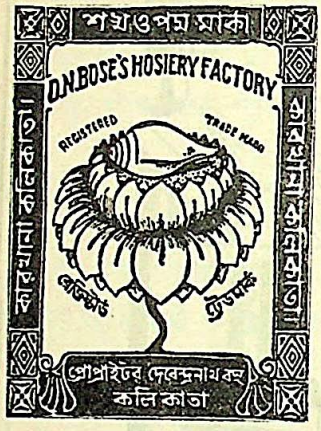

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL
ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND
FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.
'Phone: B. B. 6056.

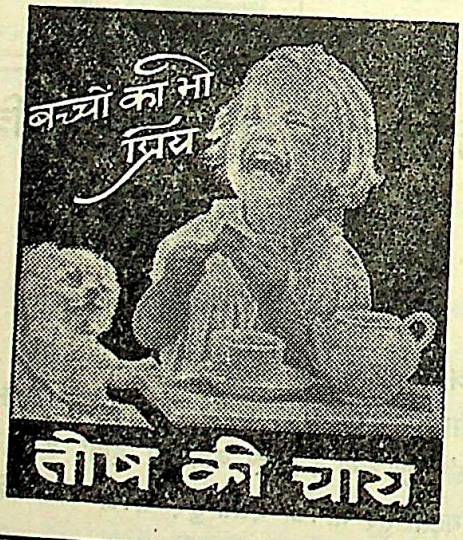

STOP! BIG MONEY! MORE MONEY! **(1) Recharge your dry Batteries** at little cost Complete instructions only As. 8 in stamps. Post free. **(2) Electric Belts,** make your own at a cost of 1 sh. Complete instructions As. 8 stamps. Post free. **(3) Coffee Essence,** make your own at very small cost. Complete formula and instructions As 8 stamps. **(4) Six Funny Love Letters** (Read 2 ways) Really 12 different letters As. 8 stamps **(5) 20 Ways To Make Money** new booklet. As 8 in stamps. Post free. **All Post Free.** GENERAL SUPPLIES Co., C/o G. P. O. Box 167, Karachi, 7 V. B.

कविवर श्री आरसीप्रसाद सिंहकी

बिल्कुल नई और ताजा रचनाएँ

पांचजन्य

नई दिशामें जो वस्तु अंकुरित हुई, वही इस काव्य-पुस्तकमें अद्भुत सफलताके साथ पुष्पित-पल्लवित हुई है, जिसकी सुगन्धसे समस्त हिन्दी-संसार आप्लावित है। पुस्तककी ऐसी कोई कविता नहीं और किसी कविताकी ऐसी कोई भी पंक्ति नहीं, जिसमें पुल्लिंग न बोलता हो। एक साथ ही अध्यात्म, दर्शन, पौरुष एवं अमृत-छन्दसीके रहस्य-मय भावोंसे ओत-प्रोत यह नवीन पुस्तक अभी-अभी प्रकाशित हुई है। मूल्य २)।

एक प्याला चाय

हास्य, व्यंग और कौतुककी अपूर्व सरस रचना। दर्जन-भर कहानियोंकी यह पुस्तक बरबस पाठकोंको भुला देनेमें समर्थ है। एक बार हाथमें लेकर फिर बिना खत्म किए छोड़नेका जी नहीं चाहता। वसन्तके कोकिलकी तरह फुदकती हुई लेखनीके कुतूहलसे परिपूर्ण चमत्कार देखना हो, तो 'एक प्याला चाय' अवश्य तृप्ति-लाभ कीजिए। मूल्य केवल २)।

नयी दिशा

कल्पनाके आकाश-महलसे नीचे उतरकर कविने जब धरातलकी कठोर भूमिपर पैर रखा, उस समयकी बहु-विचित्र भावनाओंका सफल चित्र इस कलात्मक पुस्तकमें देखिए। तीन महीनेमें ही प्रथम संस्करणका समाप्त हो जाना इस बातका सूचक है कि यह पुस्तक कितनी लोकप्रिय है। दूसरा संस्करण इसी महीनेमें फिर छपकर तैयार है। मूल्य केवल २)।

आँधीके पत्ते

रस-प्रधान आख्यायिकाओंका यह संग्रह हिन्दीके कथा-साहित्यमें एक नवीन प्रयत्न है। प्रत्येक कहानीमें जीवनका वास्तविक और मार्मिक चित्र अंकित हुआ है। भाव तथा भाषाका ऐसा प्रिय-दर्शन संयोग अन्यत्र दुर्लभ है। जीवनकी आँधीमें आशा और निराशा, प्रेम और घृणा तथा तृप्ति और पिपासाके इन उड़ते हुए पत्तोंको अवश्य देखिए। आपका सन्तोष निश्चित है। मूल्य केवल १।)।

तारामण्डल, मुज़फ्फरपुर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

टांगा रबर बदलने के दिन आगये

RED ★ STAR
और
FLY WHEEL
मार्के याद रखिये।

USEFUL EMPLOYMENT OF RBS RUPEES BRAIN & STRENGTH

सुंदर—स्वदेशी—टिकाऊ

प्रस्तुतकर्ता—
आर वी एम जेनरल वर्क्स

केवल एक दिनमें

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की घड़ियों में ६½ इत्यादि बजा देना, दीवार में आग लगा देना, मुंह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक तिलस्मात जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्मे सीखकर

दूसरे ही दिन

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर उनाउन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की जोरदार सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

— दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

उद्यम

सर्वत्र
अत्यन्त
लोकप्रिय

नवम्बर-अंकमें

अत्यन्त लोकप्रिय रंगीन मुखपृष्ठ
महिलाओंके लिए विशेष जानकारी
विद्यार्थियोंके लिए खास लेख
खेती, बागवानी, उद्योगधन्धे,
स्वास्थ्य इ० विषयों पर लेख

आपके हृदयको आनन्दसे भर देनेवाले अनेक व्यंचित्र

इन और अन्य व्यवहारोपयोगी विषयोंपर लेख इस अंकमें देखिये। उद्यमके जिज्ञासु जगत तथा खोजपूर्ण खबरोंको लोग अधिक पसन्द करते हैं। वार्षिक मूल्य रु० ५-८-० (वी० पी० से रु० ५-१२-०) भेजकर ग्राहक बननेवालोंको प्रति माह १५ तारीखको अंक वर्ष-भर मिलते रहेंगे।

प्रति माह प्रकाशित होते ही अंक बिक जाया करते हैं। शीघ्रता कीजिये।

उमद्य मासिक, धर्मपेठ, नागपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

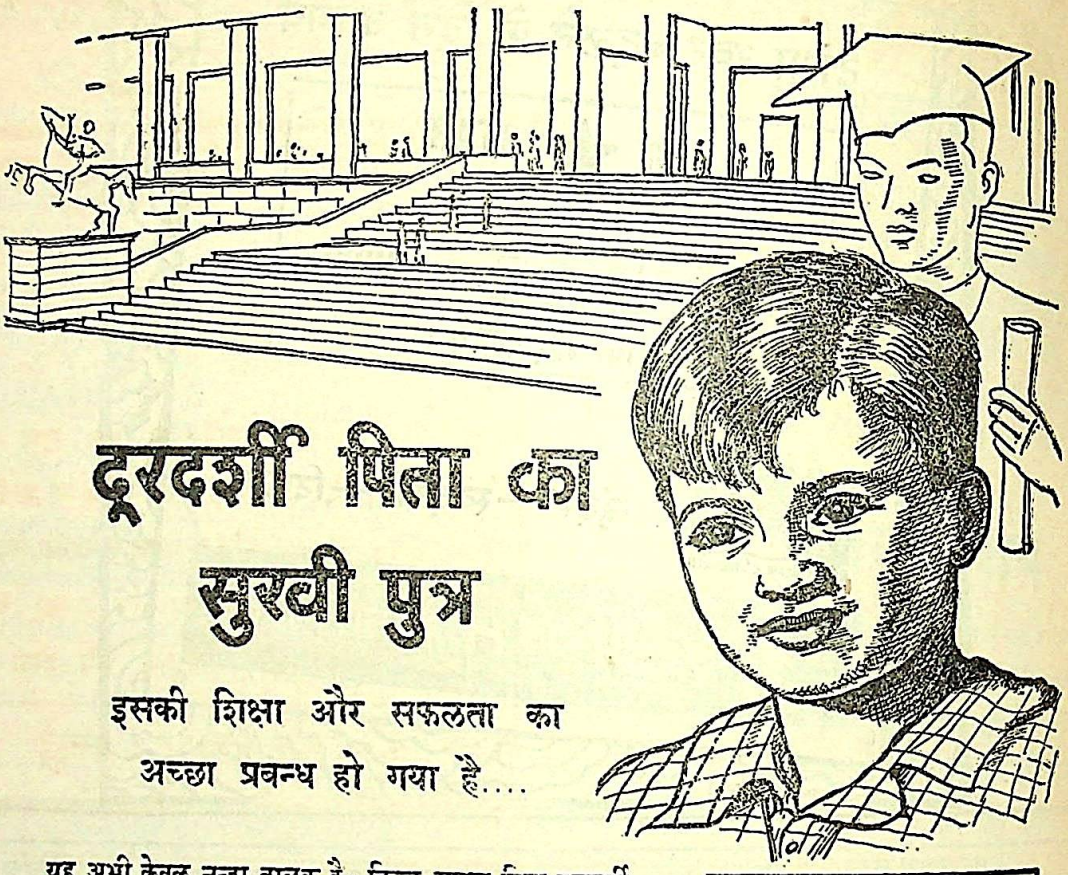

दूरदर्शी पिता का सुखी पुत्र

इसकी शिक्षा और सफलता का अच्छा प्रबन्ध हो गया है....

यह अभी केवल नन्हा बालक है; किन्तु इसका पिता दूरदर्शी है और वह जानता है कि पढ़ाने-लिखाने में पैसा ख़र्च होगा; इसलिए उसने बुद्धिमानी से इसकी पढ़ाई के लिए पैसा जमा करा दिया है। इस रक़म में १२ वर्ष में ब्याज से ५० प्रति शत वृद्धि हो जायगी, जिसके आधार पर बड़े होने पर विश्वविद्यालय में इसका ख़र्च भली भाँति पूरा हो जायगा और पूर्ण तथा लाभजनक शिक्षा प्राप्त करके यह विश्वास तथा आशा के साथ संसार-क्षेत्र में प्रवेश कर सकेगा।

यह अपने पिता के प्रति कितना ऋणी होगा कि उसने नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेटों में अपनी बचत की रक़म लगा कर बड़ी समझदारी से काम लिया। क्या **आप** अपने पुत्र के लिए ऐसा कर सकेंगे? यह आप पर निर्भर करता है।

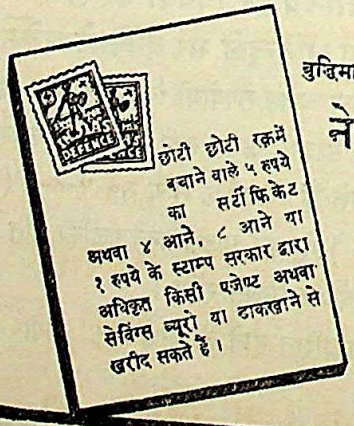

छोटी छोटी रक़में बचाने वाले ५ रुपये का सर्टीफिकेट अथवा ४ आने, ८ आने या १ रुपये के स्टाम्प सरकार द्वारा अधिकृत किसी एजेण्ट अथवा सेविंग्स ब्यूरो या डाकख़ाने से ख़रीद सकते हैं।

बुद्धिमान माता-पिता के दल में आप भी सम्मिलित हो जाइए और अपनी आमदनी की बचत

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट में लगाइए!

★ १२ वर्ष में १० रुपये के १५ रुपये हो जाते हैं।
★ ४½ प्रति शत साधारण ब्याज, इनकम टैक्स माफ़।
★ जमा हुए ब्याज के सहित तीन साल बाद इन्हें भुनाया जा सकता है (५ रुपये के सर्टीफिकेट को १८ महीने बाद)।

AAA 121—HINDI

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केशचर्या और केशचर्चाका श्रेष्ठ उपकरण

केन्थाराइडिन

हेयर ऑयल

पोषणके उपयोगी पदार्थोंके अभावमें जब केश शुष्क और विवर्ण हो जाते हैं एवं शिरमें खुश्की, रूसी आदि आ जाती हैं, तब बेंगल केमिकलका केन्थाराइडिन व्यवहार करनेसे केशोंकी जड़ें नीरोग होती हैं एवं केशोंकी विरलता और उनका झड़ना दूर होकर केशोंके स्वास्थ्य और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०, कलकत्ता : : बम्बई

The Bharat Seeds Supply Co.
Nasik.

दी भारत सीडस् सप्लाय कम्पनी.

देशी व विलायती बी चे व्यापारी.

भद्रकाली मार्केट, नाशिक सिटी.

उत्तम बीज बोइये ! भारतभू समृद्ध कीजिये !!

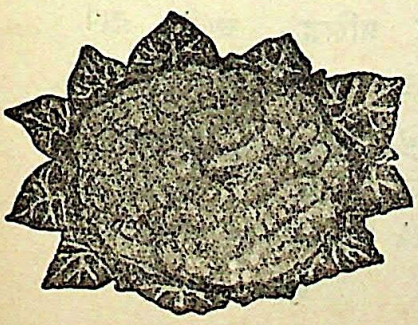

भारतके लाखों किसानोंका जीवन उत्कृष्ट तथा चुने हुए उत्तम बीजोंपर अवलम्बित होता है ; इसीलिए विश्वसनीय तथा नवीन बीजोंके लिए आज ही लिखिए।

—हजारों किसानों द्वारा प्रशंसित—

दी भारत सीडस् सप्लाय कम्पनी

भद्रकाली मार्केट, नाशिक सिटी.

(प्याजके बीज—खास हमारी देखरेखमें तैयार किये गये हैं—)

—आज ही मूल्य-पत्रक मंगवाइये—

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत के प्रसिद्ध साबुन की नयी आकृति

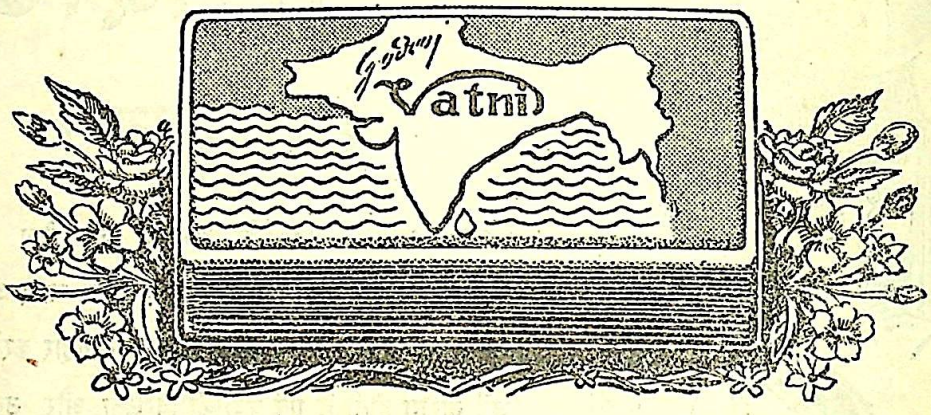

आपके मनपसन्द लम्बगोल 'वतनी' साबुनकी पुरानी आकृतिमें सुन्दर परिवर्तन किया है। इस नये रूपके वजनमें और विशिष्ट गुणोंमें कुछ भी घाटा नहीं है। आप इस हरी और सफेद दफ्तीके डिब्बेमें ठीक सटे हुए साबुनके रत्नको इसके परिचित छापसे पहचान लेंगे।

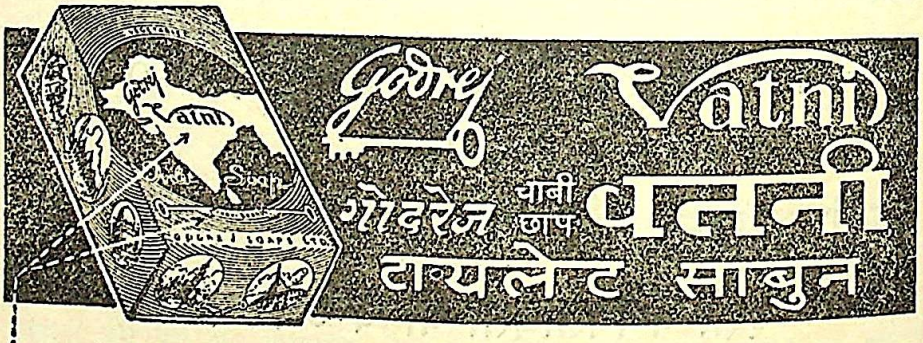

यह साबुन और इस का हरी व सफ़ेद दफ्ती का डिब्बा इन छापों के बिना असल नहीं।

छोटा वतनी Vatni (नयी आकृति): बड़े साबुन के अनुसार दफ्ती के डिब्बे में अलग मिल सकती है।

गोदरेज के दूसरे प्रसिद्ध चाबी छाप टायलेट साबुनों:

No.1	Sandal	Limda	Khus
नं. १	सॅन्दल	लिमडा	खस
Shaving Stick		Shaving Round	
शेविंग स्टिक		शेविंग 'राऊँड'	

Godrej गोदरेज
चाबी छाप
ग्लीसरीन

गोदरेज सोप्स, लि०

कलकत्ता: १०२, क्लाइव स्ट्रीट; पटना: स्टेशन रोड.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

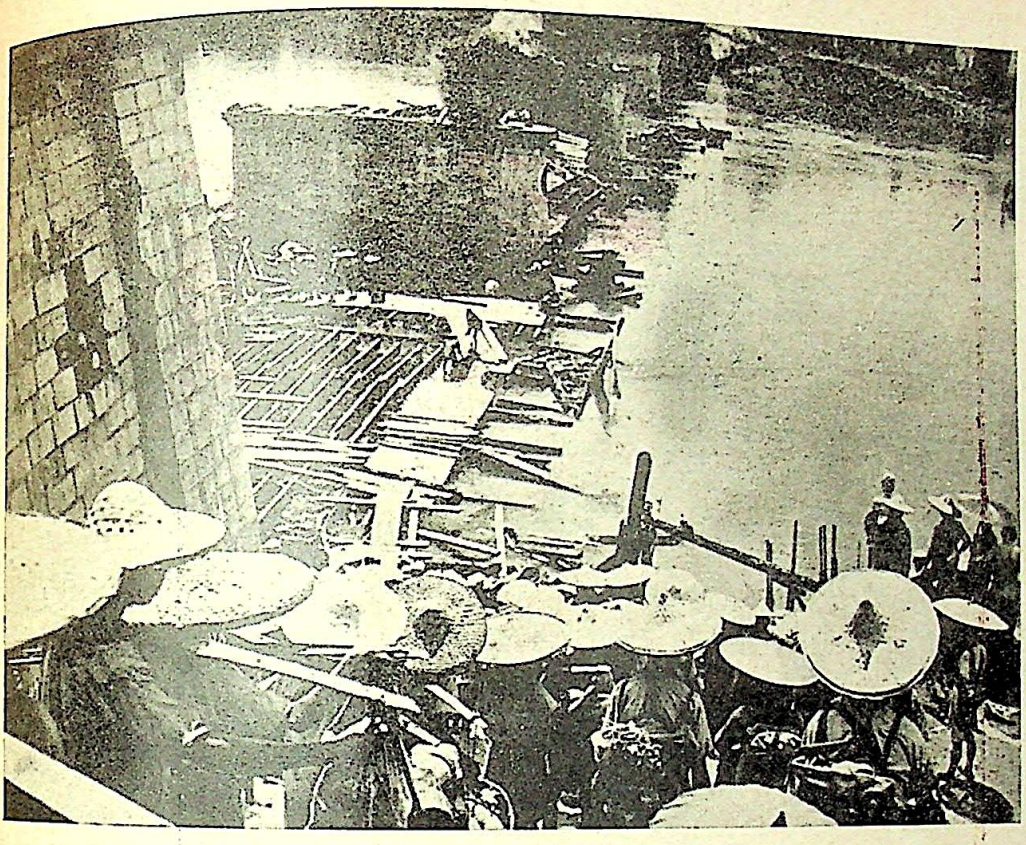

जापानियों द्वारा क्वीलीन-पुल ध्वंस कर दिए जानेके कारण चीनी सेना नौकाओं द्वारा पार हो रही है।

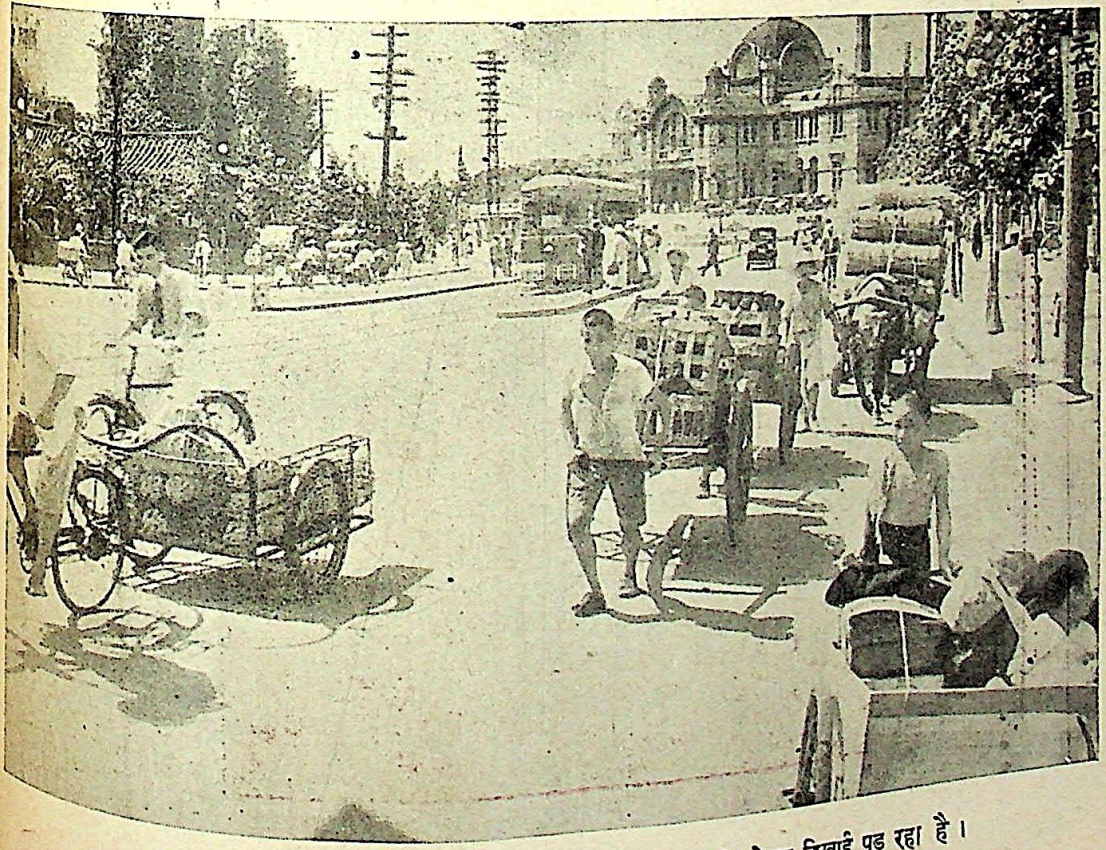

कोरियाकी राजधानी केइजोका प्रधान राजमार्ग। पीछे बड़ा रेल्वे-स्टेशन दिखाई पड़ रहा है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक ५] कलकत्ता, नवम्बर, १९४५ [पूर्णांक २१५

तीन वर्ष

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

तीन वर्षों बाद उस दिन फट गए अवसादके बादल,
हँसी ऊषा, क्षितिजपर हिन्दके मुस्का उठीं किरणें।
दमनकी सुर्खियोंमें झूम तरुणाई हमारे हिन्दकी उट्ठी,
पुनः पा अपने सरताजोंको अपने बीचमें!
तीन वर्षों तक दमनकी चक्कियोंमें,
झोंक जलती भट्ठियोंमें देशके नव-जागरणको;
चढ़ी काली हुकूमतने पुनः चिर-दासताके गर्तमें—
अपमानके उस नरकमें ला छोड़ देनेकी,
ले सिर तोड़ देनेकी थी रखी ठान सब खूनी उपायोंसे!
तीन वर्षों तक उठाए सिर बढ़े हम खूनमें लतपथ,
प्रहारोंसे क्षत-विक्षत, झुलसते दमन-ज्वालोंसे,
गुज़रते बर्छी-भालोंसे, बरसती गोलियोंकी बौछारों.
चमकते लाल अंगारोंमें बढ़ते हम चले—
सिरपर कफ़न बाँधे, निहत्थोंकी सफ़े साधे;
लगाते क्रान्तिके नारे, हिला ज़ुल्मोंकी दीवारें।
थे गूँजी जा समन्दर पार तक जनताकी ललकारें:
हमारे देशके नेता, हमारे राष्ट्र-प्रणेता;
हमें प्राणोंसे प्यारे हैं, ये जनताके दुलारे हैं;
इन्हें तुम इस तरह सिखचोंके अन्दर रख नहीं सकते!
सितम इनपर कोई हरगिज़ अब हम सह नहीं सकते!
भले ही आज जल जाएँ हमारी बस्तियाँ,
भले ही आज उड़ जाएँ हमारी धज्जियाँ;
भले ही आज मिट जाएँ हमारी हस्तियाँ,
पर हमें सौगन्ध अपने इस 'तिरंगे'की—
न धब्बा लगने देंगे हम कभी इनकी चमकती पेशानी पर!
तीन वर्षों तक चली चक्की, पिसे हम;
तीन वर्षों तक जली भट्ठी, जले हम!
तीन वर्षों तक दीवाने देशके अनगिनत ज़ुल्मोंको सिरपर झेलते,
पहले बर्बर हुकूमतके निरंकुश अत्याचारोंसे,
अमर क़ुरबानियोंके ज़ोरपर ऊँचा किए झण्डा—
रहे संगीनकी नोकोंपे हँसते और बढ़ते। तीन वर्षों तक कुचलकर
दुश्मनोंने बन्द आँखें खोलकर देखा कि जनताके
उठे सिर झुक नहीं सकते, बढ़े पग रुक नहीं सकते!
जगी जनताकी आवाज़ें दबाए दब नहीं सकतीं,
लगाई आग जनताकी बुझाए बुझ नहीं सकती!
तो आखिर झुक गया दुर्जेय वह 'लहरोंका शासक'
हिन्दकी अजेय जनताको साँसोंसे उठे तूफ़ाँके आगे!
तीन वर्षों बाद फिर आवाज़ मक़तलसे उसी शासककी आई—
'माफ़ कर दो, भूल जाओ!'
माफ़ कर दें आज हम उन खूनी हाथोंको,
जिन्होंने भून डाले देशके कितने निरीहोंको!
जला डाले हज़ारों घर! तड़पते बेकसोंको बाँधकर कोड़ोंसे पीटा!
माफ़ कर दें आज उन बेशर्म बूटोंको,
तले जिनके गए कुचले 'तिरंगे' राष्ट्रके!
अपमानकी ठोकर खा जिनको चीख उट्ठी
देशकी माँ-बहनोंकी अस्मत!
भूल जाएँ आज हम वे दृश्य सड़कोंके,
जिन्हें लख क़ब्रमें उफ़कर उस नादिरने भी आँखें मींच ली होंगी!
तीन वर्षोंके वे काले दिन न भूलेंगे, न भूलेंगे;
रहेंगे झूलते जनताकी आँखोंमें। सदा जलती चिताएँ उन शहीदोंकी
रहेंगी देशकी छातीमें चिर-स्वतन्त्रताकी आग बनकर!
तीन वर्षों तक वहीं जो खूनकी धारें,
रहेंगी देशकी नस-नसमें बन तड़पन;
जो आज़ादीकी मंज़िल तक बिना पहुँचे,
न लेने चैन देंगी एक पलको भी!
तीन वर्षों तक पड़े ज़ुल्मोंके छाले,
रिसते दिलमें रहेंगे देशके नासूर बन
जब तक न इस ज़ालिम हुकूमतका निशाँ मिट जायगा इस हिन्दसे!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बर्नार्ड शाकी जीवन-सन्ध्या

प्रो० दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी

बर्नार्ड शा ८९ वर्षके वयोवृद्ध व्यक्ति हैं। लगभग ४५ वर्ष पहले 'मानव तथा अतिमानव' (मैन एण्ड सुपरमैन) नामक अपने नाटकके परिशिष्टमें 'एक क्रान्तिकारीकी विचार-संहिता' लिखते हुए शाने बतलाया था—"चालीस वर्षके बाद जीवित रहनेवाला हरएक आदमी बदमाशके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता।"[1] पता नहीं, ८९ वर्षोंके बर्नार्ड शा आज इस प्रश्नपर क्या विचार रखते हैं। एक बार सुप्रसिद्ध आलोचक तथा निबन्धकार जी० के० चेस्टरटनने शासे उनके इस सूत्रकी व्याख्या माँगी थी। शाने उत्तरमें कहा था—"चालीसकी अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनके सर्वोत्तम उपयोगकी अवधि समाप्त कर चुकता है और इसके बादका उसका जीवन परोपजीवी कीटाणुके जीवन-सदृश होता है।"[2] शाकी जीवन-संध्या उस मध्याह्नका करुण अवसान है, जिसके प्रकाशने कभी सारे संसारकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न की थी। शा आज भी जीवित हैं, आज भी वे अपने विचारोंको प्रकाशमें लानेकी उपयोगितापर विश्वास रखते हैं; किन्तु आजके जार्ज बर्नार्ड शा अपने पूर्ववर्त्ती व्यक्तित्वके कीटाणु-सदृश हैं। अपनी प्रौढ़ावस्थाके विचारोंका आश्रय लेकर शाका वर्त्तमान व्यक्तित्व परोपजीवी कीटाणुकी भाँति ही चर्वित-चर्वणके सहारे आज जीवित है। संसारके इतिहासमें किसी साहित्यकारका व्यंग्य-तीर, आस्ट्रेलियाके आदिम-निवासीके 'बुमेरँग'[3]की भाँति, शायद ही कभी इतनी तीव्रता और सचाईसे लौटकर स्वयं उसीपर आ लगा हो। 'लक्षाधीश्वरी' (मिलियोनरेस) के बाद शाने 'जेनीवा' तथा 'अच्छे बादशाह चार्ल्सके स्वर्ण-दिवसोंमें' (इन गुड किंग चार्ल्सेज़ गोल्डेन डेज़) नामक दो नाटक लिखे, जिनकी अच्छी चर्चा रही। यहाँ 'अप्रत्याशित द्वीपपुंजका बुद्ध' (दी सिम्पुलटन आफ़् दी अनएक्सपेक्टेड आइल्स) नामक नाटककी चर्चा महत्वहीन होगी। यद्यपि यह नाटक 'मिलियोनरेस'के बाद ही लिखा गया, फिर भी अन्य दो रचनाओंकी भाँति इसकी प्रसिद्धि नहीं हुई। और इधर पिछले साल उन्होंने 'सर्वसाधारणके लिए राजनीतिक कोश' (एवरीबडीज़ पालिटिकल ह्वाट्स ह्वाट) नामक एक मीमांसात्मक गद्य-पुस्तक लिखी है, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा कला-सम्बन्धी सुधारोंके लिए उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज भी कार्य-संलग्न हैं। पत्रोंमें अभी-अभी यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि इन दिनों वे एक नवीन नाटक लिखनेमें व्यस्त हैं। पर पिछले कोई दस वर्षोंमें उन्होंने जो-कुछ लिखा है, इन पंक्तियोंके लेखककी सम्मतिमें उनकी प्रतिभाके चमकीले तेजपर संध्याके पल-पल घनीभूत होनेवाले अन्धकारके यवनिका-पतनके सिवा और कुछ विशेष अर्थ नहीं रखता। प्रतिभा और बुढ़भसकी क्रिया-प्रतिक्रियाके अध्ययनके लिए इस विश्वविख्यात विचारक, गद्य-लेखक और नाटककारकी जीवन-संध्या अत्यन्त उपयोगी है।

अपनी 'शाकी जीवनी'के अन्तिम अध्यायमें फ्रैंक हैरिसने व्यंग्यपूर्वक लिखा है—"मरनेसे बहुत पहले शाने अपनी अमरता का प्रबन्ध कर लिया है। आग्रह करके शाने रोदाँसे अपनी आकृति ब्रांजकी बनी मूर्त्तिमें अंकित करा ली है। हज़ार वर्ष बादके जीवनियोंके कोशमें शाका उल्लेख इस प्रकार किया जायगा : शा, बर्नार्ड, रोदाँने इस आदमीकी आकृति सर्वप्रथम एक मूर्त्तिमें अंकित की थी, अन्यथा अज्ञात।" अर्थात् रोदाँके स्थापत्य-कलाके सम्मुख शाकी लेखन-कला निरर्थक और मूल्यहीन है। फ्रैंक हैरिसने उपर्युक्त पुस्तकमें यह भी लिखा है—"कुछ की भाँति शाका भी यह विचार है कि किसी जीवित व्यक्तिकी जीवनी उसकी मृत्युके पूर्व नहीं समाप्त की जा सकती। इसका अर्थ यह होता है कि मेरा लिखा शाका यह जीवन-चरित 'फ्रान्जोन' नामक शाके नाटक-सम्बन्धी वाद-विवादकी चर्चाके साथ ही समाप्त हो जाना चाहिए था, क्योंकि 'एपल कार्ट' ('सन्त जोन'के बाद लिखा गया नाटक) निश्चय ही किसी निष्प्राण शरीर द्वारा लिखी गई रचना है।"[4] पर शा इस विचारसे बिलकुल असहमत हैं। अपनी सबसे बादकी पुस्तक 'सर्वसाधारणके लिए राजनीतिक कोश'के प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही उन्होंने यह घोषणा की है कि यह ग्रन्थ मानव-जीवनके सर्वांगीण सुधारकी भावनासे ही अनुप्रेरित होकर लिखा गया है। उनका कहना है कि यदि मानव-स्वभावकी आत्मोन्नतिमें उनका विश्वास न होता, तो वे कदापि इस पुस्तकके लिखनेका परिश्रम नहीं करते और उन्हें पाठकोंको वे किसी जासूसी कहानी या प्राचीन काव्यकी पढ़कर काल-यापन करनेका परामर्श देते। यह स्पष्ट है कि शा आज भी अपने विचारोंको वही महत्ता देते हैं, जो उन्होंने अपनी प्रौढ़ावस्थामें दी थी। जिन दिनों राष्ट्र-संघ यूरोपके शस्त्रीकरणकी झकोरेमें लड़खड़ा रहा था, शाने 'जेनीवा' नामक प्रहसन

1 "Every man over forty is a scoundrel". (*The Revolutionist's Handbook*).

2 "Every man over forty has been all the essential use that he was likely to be, and was therefore in a manner a parasite." (G. K. Chesterton : *George Bernard Shaw*, p. 215).

३. Boomerang—अस्ट्रेलियाके आदिम-निवासियोंका एक प्रकारका अस्त्र था, जो लक्ष्य-वेधके बाद अस्त्र-चालकके पास लौट आता था।

4 *Bernard Shaw*, By Frank Harris, p. 381.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिखकर यूरोपके तानाशाहोंकी पोल खोलने तथा शासन-विधानके आदर्शोंके नव-निर्माणकी ओर जनताका ध्यान आकर्षित करनेकी चेष्टा की। इसके बाद इंग्लैण्डमें अष्टम एडवर्ड तथा मिसेज़ सिम्पसनको लेकर जब वैधानिक संकट उपस्थित हुआ, शाने 'महाराज, महिला और मन्त्री' (दी किंग, दी लेडी एण्ड दी मिनिस्टर्स) नामक प्रहसन लिखकर इस समस्यापर मौलिक ढंगसे प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया। और आज द्वितीय विश्व-युद्धके बाद जब संसार भविष्यकी ओर सन्दिग्ध दृष्टिसे देख रहा है, शाके विचार फिर हमारे सम्मुख उनकी नवीनतम पुस्तकमें उपस्थित हैं। यों शा हमें चुनौती देते हैं कि हम आज भी उन्हें उसी अद्वितीय दार्शनिक कलाकारके रूपमें स्वीकार करें, जिस रूपमें वर्त्तमान शताब्दीके प्रथम दशाब्दमें हमने उन्हें स्वीकार किया था।

प्रारम्भसे ही शाने अपने साहित्यमें हमें चिन्तनशीलता तथा विनोद-प्रियताके अद्भुत सम्मिश्रणका उदाहरण दिया। एक ओर जहाँ वे युगके गम्भीरतम प्रश्नोंपर असाधारण पैनी बुद्धि द्वारा विचार करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे अपनी निराली विनोद-प्रियता तथा व्यंग्य-कुशलतासे अपने साहित्यके मीमांसात्मक पक्षकी ओर पाठकों तथा अभिनय-प्रेमी जनतामें अभिरुचि उत्पन्न करते हैं। साथ ही प्रारम्भसे ही शाने नाटकोंके 'गठन'—कथानककी सजावट—की ओरसे अपनेको उदासीन रखा है। तार्किक विश्लेषण, व्यंग्य-विनोद तथा गाम्भीर्यका सम्मिश्रण, किसी कला-रूपकी निरी अवयव-योजनाके प्रति आस्थाका अभाव—ये सभी लक्षण शाकी पिछली कुल रचनाओंमें पहलेकी ही भाँति विद्यमान हैं। किन्तु इन लक्षणोंके योगसे उत्पन्न होनेवाली शक्तिमें अब वह पहलेका-सा तेज नहीं। शाके पहलेके लिखे नाटकों तथा हालकी प्रस्तुत की हुई रचनाओंमें अन्तर गुणका नहीं, परिमाणका है; पर यह परिमाणका अन्तर गुणपर भी अपना प्रभाव डालता है, और इस प्रकार नवीनतम शा-साहित्य पहलेके शा-साहित्यकी दयनीय अनुकृति-मात्र रह जाता है। साहित्यके इतिहासमें ऐसी दुर्घटनाएँ कई बार घट चुकी हैं। अपने विकासके चरम बिन्दुसे गुज़रकर कितने कवियों, औपन्यासिकों तथा नाटककारोंने शक्तियोंके ह्रास-कालमें अपनी सर्वोत्तम शैलीका अनुकरण करनेका प्रयत्न किया है, और इस प्रयत्नके फल-स्वरूप जो साहित्य उन्होंने हमें दिया है, वह आज उनकी ही क़लमपर उतरा उनकी अपनी विभूतियोंके व्यंग्यचित्रके अलावा और कुछ नहीं प्रतीत होता।

कहा जा सकता है कि सत्य कभी पुराना नहीं पड़ता और इसलिए सत्य सिद्धान्तोंकी पुनरावृत्ति सदैव क्षम्य है। सूर्य-चन्द्र युग-युगसे एक ही भाँति उदय-अस्त होते आए हैं। फूलोंके खिलने-मुरझानेके क्रममें अन्तर नहीं परिलक्षित हुआ। मानवता युग-युगसे जड़ता तथा चैतन्यके संघर्षसे होकर बढ़ती आई है, और इस गतिमें न्यूनता या आधिक्य जो भी आया हो; पर इस गतिका तारतम्य कभी टूटा नहीं और न कभी हमें पुराना, एतदर्थ अप्रिय ही प्रतीत हुआ। पर साहित्य या कोई भी ललित-कला निरा दर्शन नहीं; वरन् दर्शनका रसात्मक रूपान्तर है। स्वयं शाने इस सिद्धान्तको स्वीकार करते हुए 'कलाकार-दार्शनिक'को ही अपना आदर्श माना है। 'कलाकारके लिए' सिद्धान्तके नाम पर शाको एक शब्द भी लिखना स्वीकार नहीं। वे कला और दर्शनके सम्मिश्रणके समर्थक हैं। कलाकारको दार्शनिक होना चाहिए, जीवनके प्रति उसमें विशिष्ट दृष्टिकोणका होना आवश्यक है; पर साथ ही कलाके रसात्मक पक्षकी, उनके विचारसे, अवहेलना नहीं की जा सकती। 'मैन एण्ड सुपरमैन'की भूमिकामें उन्होंने लिखा है—"कलाकार-दार्शनिक हो ऐसे कलाकार हैं, जिनके प्रति मेरी आस्था है।"[५] दर्शन तथा कलाके संयोगसे, विद्युत्की 'पाज़िटिव'-'नेगेटिव' धाराओंके संगम-फलके समान, जो दीप्ति शाकी प्रौढ़ावस्थाकी रचनाओंमें हम देखते हैं, उसका उनकी नवीनतम कृतियोंमें अभाव है। चाँद-सूर्यका उदय-अस्त, फूलोंका खिलना-मुरझाना तथा मानव-जीवनकी प्रगति हमें सदैव इसलिए प्रिय हैं कि चाँद-सूर्यमें तेज-शीतलता तथा सौन्दर्य है, फूलोंमें सौरभ है, जीवनमें महत्व है। यदि ये चीज़ें अपना रूप छोड़कर गणितका प्रश्न बन जायँ, तो इनकी पुनरावृत्तिमें कलाके लिए कोई अर्थ नहीं रह जायगा। शा अपनी नवीनतम कृतियोंमें अपने पुराने विचार ही दुहराते हैं; पर विचारोंको यों दुहरानेमें शाका वह तेज अब नहीं दीखता, जो उनके व्यक्तित्व तथा कला की विलक्षणता था। अपनी नवीनतम कृतिमें एक स्थानपर वे लिखते हैं—"इस पुस्तकमें अधिकांशतः उन्हीं बातोंकी पुनरावृत्ति की गई है, जो मेरे या अन्य व्यक्तियों द्वारा पहले कही जा चुकी हैं। पर ये बातें ऐसी हैं, जिनको बार-बार दुहराना ही पड़ेगा। जिस प्रकार काँटोपर बार-बार हथौड़ेकी चोट करनी पड़ती है, उसी प्रकार बार-बार इन बातोंको दुहराते रहनेसे, सम्भव है, ये सर्वसाधारणके मनमें घर कर जायँ।"[६] पर आपत्ति यह है कि इस पुस्तककी गद्य-शैलीमें उस बल तथा कान्तिका अभाव है, जो शाके नाटकोंकी भूमिकाके उनके गद्यमें मिलती है। इस पुस्तकका गद्य सुष्ठ, स्पष्ट तथा प्रवाहपूर्ण अवश्य है; पर व्यंग्य-विनोदकी चिर-परिचित छटा, शब्द-शब्दके चयनमें सतर्कता, द्व्यर्थक उक्तियोंकी सहज बहुलता, विश्लेषण करनेकी समुत्सुकता आदि तत्त्वोंका अभाव इसमें शाकी पूर्ववर्त्ती गद्य-शैलीके प्रेमियोंको अवश्य खटकता है।

शाकी नाटक-रचना-कुशलताके ह्रासका उपयुक्त उदाहरण है

5 ". . . the artist-philosophers are the only sort of artists I take quite seriously . . ." (Preface to *Man And Superman*).

6 *Everybody's Political What's What?* p. 344.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'इन गुड किंग चार्ल्सेज़ गोल्डेन डेज़'। यद्यपि इस नाटकमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटनका चरित्र-चित्रण बड़े ही सजीव ढंगसे किया गया है; पर इस चरित्र-चित्रणके अतिरिक्त इसमें कोई और तत्त्व नहीं। न्यूटनके चरित्र-चित्रणमें शाने अपनी स्वाभाविक कुशलतासे काम लिया है। प्रारम्भमें ही हम न्यूटनको घरमें खानेके लिए खरीदे गए गोश्तका हफ़्तावारी हिसाब लगाते देखते हैं। वे दशमलव, ऐकिक तथा त्रैराशिक नियमोंके आधारपर जटिल गुणा-भाग करने में दत्तचित्त हैं कि घरकी दाई आकर, चुटकी बजाते-बजाते, उँगलियोंपर जोड़कर क़साईका हिसाब ठीक कर देती है। कुछ आगे चलकर एक युवती न्यूटनसे मिलने आती है। न्यूटन उससे मिलते ही बिना किसी झिझकके पूछ बैठते हैं—'तुम्हारी उम्र क्या है?' युवती सकपकाई-सी अपनी अवस्था बतला देती है। न्यूटन हिसाब लगाते हुए कहने लगते हैं—'तो तुम इतने सालों, अर्थात् इतने महीनों, अर्थात् इतने दिनों, अर्थात् इतने घण्टों, अर्थात् इतने मिनटों, अर्थात् इतने सेकेण्डोंकी हुईं! क्यों कभी तुमने सोचा है कि तुमने जीवनका इतना-सारा समय व्यतीत कर डाला?' व्यक्तित्व-विलक्षणताका यह चित्र निश्चय ही आकर्षक तथा सजीव है; पर इस नाटकके केन्द्रमें हमें कोई निश्चित विशिष्ट दृष्टिकोण नहीं मिलता। यह नाटक 'कलाकार-दार्शनिक'की कृति न होकर कोरे 'कलाकार'की कृति है, और इस प्रकार यह शाकी प्रौढ़ावस्थाके सिद्धान्तपर वृद्धावस्था द्वारा अंकित एक निरंकुश प्रश्न-चिह्न है।

'जेनीवा'में एक सुस्पष्ट, निश्चित विचार-धारा अवश्य विद्यमान है। अन्तर्राष्ट्रीय अवस्थाको हटाकर एक व्यवस्थित परिस्थितिकी सृष्टिके प्रश्नपर शाने इसमें विचार करना चाहा है। उन्होंने विश्व-शान्तिके लिए सामूहिक सुरक्षाके सिद्धान्तोंका इस प्रहसनमें प्रतिपादन किया है। इस नाटकमें चित्रित यहूदीके शब्दोंमें 'अन्तर्राष्ट्रीय संघकी केन्द्रीय समितिके सदस्योंकी महान् मानसिक शक्ति, उनकी प्रतिष्ठा, उनके अधिकार' पर ही राष्ट्रोंका भाग्य निर्भर करता है। सैनफ्रांसिस्कोके सुरक्षा-सम्मेलनमें जो विचार-धारा राष्ट्रोंके पारस्परिक विचार-विनिमय द्वारा दृष्टिगोचर हुई, उसको वर्षों पूर्व लिखे गए शाके इस नाटकमें हम पाते हैं। पर इस पुस्तकमें विनोद-व्यंग्यका पलड़ा विचारोंके पलड़ेसे भारी पड़ता है। जहाँ पूर्ववर्त्ती नाटकोंमें हम व्यंग्य-विनोद तथा विचारोंका सन्तुलित सम्मिश्रण पाते हैं, वहाँ इस नाटकमें व्यंग्य-विनोदकी उच्छृंखल-प्रधानता जगह-जगह अपनी कलापर शाके ह्रासमान अधिकारका परिचय देती है।

पर शाकी यह जीवन-संध्या, स्वभावतः, प्रकाश तथा अन्धकार दोनोंकी उनके साथ निर्दय आँखमिचौनी है। शाका मस्तिष्क आज भी सुयोग्य ढंगसे विचार करनेकी सामर्थ्य रखता है। दलितोंके उद्धार, सत्यके प्रचार, दरिद्रताके नाश आदि अपने स्तुत्य कार्योंमें आज भी वे संलग्न हैं। बढ़ती हुई अवस्था का बुरा परिणाम यह अवश्य हुआ है कि उनको कलाभिव्यंजनामें अब पहली तीव्रता नहीं रही, और कलाभिव्यंजनाकी इस तीव्रताके अभावमें उनकी रचनाओंका अब पहले-जैसा साहित्यिक महत्त्व भी नहीं रह गया। यहाँ उन विचारोंका, जिन्हें शा अपनी वृद्धावस्थामें अपनी नवीनतम पुस्तकमें तन्मयतासे आज भी दुहरा रहे हैं, सारांश देना अनुपयुक्त न होगा। आर्थिक क्षेत्रमें शा शान्तिपूर्ण क्रान्तिके पक्षपाती हैं। "जिस समाजमें"—शा लिखते हैं—"९० प्रतिशत लोग काम-ही-काम करते हैं, आराम कभी नहीं करते, और १० प्रतिशत लोग आराम-ही-आराम करते हैं, काम कभी नहीं करते; उसके लिए स्वतन्त्रता निरी मरीचिका है।" इसलिए वे भूमिपर व्यक्ति नहीं, समाजका अधिकार चाहते हैं। वे 'पंचायती खेती'के पक्षमें हैं। पर साथ ही वे मानते हैं कि सम्पत्तिकी भूख मनुष्यमें स्वाभाविक है, इसलिए वे चाहते हैं कि उनके आदर्श संसारमें व्यक्तिको घरके आसपास छोटी-सी फुलवारी लगाने, पोशाक-भोजन-सम्बन्धी व्यक्तिगत चीज़ोंको एक हद तक उत्पन्न करने और सँजोनेकी स्वतन्त्रता अवश्य रहेगी। राजनीतिके क्षेत्रमें शा न तो प्रजातन्त्रके पक्षपाती हैं, न तानाशाहीके। 'अतिमानव'के सिद्धान्तमें विश्वास रखनेवाले व्यक्तिसे प्रजातन्त्रके सांगोपांग समर्थनकी आशा की भी नहीं जा सकती। इस सम्बन्धमें शा लिखते हैं—"यह तो साधारण, प्राकृतिक इतिहासका सत्य है कि मनुष्य-मनुष्यकी राजनीतिक योग्यतामें बड़ा अन्तर होता है।...इस सर्वविदित सत्यके सामने यह कहकर अपनेको ठगते जाना कि जनताकी आवाज़ ही ईश्वरकी आवाज़ है, मूर्खता है।...संसारमें सभी प्रकारके मनुष्य हैं, और सभ्यताके संरक्षणके लिए यह आवश्यक है कि इनमें से कुछको पागल कुत्तोंकी नाईं मार दिया जाय और कुछके हाथोंमें शासनका सूत्र सौंपा जाय।"[7] पर शा तानाशाहीका भी विरोध इसी सचाई और प्रखरतासे करते हैं। वे चाहते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र वास्तवमें जो व्यक्ति शासन-सूत्र सँभालनेकी योग्यता रखते हैं, उनकी तालिका रखे, और इस सूचीमें जिनके नाम दर्ज हों, वे ही शासन-कार्यमें हस्तक्षेप कर सकें। कलके क्षेत्रमें 'कला कलाके लिए'-सिद्धान्तके वे आज भी कट्टर विरोधी हैं। शिक्षाके पुनर्निर्माणके लिए वे प्राथमिकसे लेकर विश्वविद्यालय-शिक्षा तक सर्वांगीण सुधार चाहते हैं, ताकि शिक्षा जीवनकी प्रगतिके पथका

7 "It is a matter of simple natural history that humans vary widely in political competence... In the face of this flat fact it is silly to go on pretending that the voice of the people is the voice of God . . . It takes all sorts to make a world; and to maintain civilization some of these sorts have to be killed like mad dogs whilst others have to be put in command of the State." (*Ibid*, p. 46).

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रोड़ा न बनकर इस पथकी सच्ची सहायिका बन सके। वे शिक्षाको 'उदार' नहीं होने देना चाहते। उनके अनुसार 'उदारता'का अर्थ है विचारशून्यता। वैज्ञानिकोंको वे निरर्थक प्रयोगकी स्वतन्त्रता नहीं देते। पावलोवकी उन्होंने बड़ी निन्दा की है और कहा है कि फ़िज़ियालाजीके क्षेत्रमें पावलोवने 'कण्डिशण्ड रिफ़्लेक्सेज़'के जिस सिद्धान्तका आविष्कार किया है, उसका आविष्कार कुछ सीधी-सादी बातोंको सीधे-सादे ढंगसे देखकर ही किया जा सकता था; पर इस 'वैज्ञानिक'को इस 'आविष्कार'के लिए जाने कितने कुत्तोंकी निर्दयतासे हत्या करनी पड़ी! धार्मिक सुधारके लिए शा 'धर्म-पुस्तकों'का बहिष्कार चाहते हैं। वे 'बुद्धवादी धर्म'के पक्षमें हैं। वे लिखते हैं—"जैन मतके अनुसार ईश्वर बुद्धिगम्य नहीं हैं, फिर भी बम्बईमें जैनोंका जो मन्दिर है, वह जैन महात्माओंकी मूर्त्तियोंसे भरा है।..."[8] और इतना सब-कुछ कह चुकनेके बाद शा इस पुस्तकका अन्त इन शब्दोंमें करते हैं—"भविष्यके सम्बन्धमें, जिसका प्रारम्भ ईस्वी सन् १९४४ से होता है, अब वे लोग इस पुस्तकको लिखते जायँगे, जो इसको लिखनेकी क्षमता रखते हैं।" यों शा आज भी अपनेको युगद्रष्टा मानते हैं और भविष्यके युगद्रष्टाओंके प्रति आशावान भी हैं। पहले ही कहा चुका है कि शाकी दृष्टि धुँधली यद्यपि नहीं हुई, फिर भी उनकी क़लममें अब पहला लोच नहीं रहा।

सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यिक अनातोल फ्रांससे जब शाकी पहले-पहल भेंट हुई, अनातोल फ्रांसने पूछा—'आप कौन हैं?' शाने उत्तर दिया—'मैं भी आपकी ही नाईं एक असाधारण प्रतिभाशाली पुरुष (ए मैन आफ़् जीनियस) हूँ।' फ्रांसीसी शिष्टाचार और नम्रताके वातावरणमें पले अनातोल फ्रांसको शाका यह कथन इतना खटका कि आवेशमें आकर वे बोले—'इस प्रकार तो कोई वेश्या ही अपनेको "आनन्द-वणिक्" (प्लेज़र मर्चेण्ट) कह सकती है।'[9] अनातोल फ्रांसके कथनमें फिर भी एक तथ्य है। शा-साहित्यकी विशिष्टता 'चुलबुलाहट और गाम्भीर्यका एक अनोखा सम्मिश्रण' कहकर व्यक्त की जा सकती है, और शाकी सर्वोत्तम रचनाओंमें यह कहना कठिन है कि आकर्षण-पक्ष या चिन्तन-पक्षमें किसको प्रधानता दी जाय। पर इन दिनों शा यदि विचार-निमग्न होते हैं, तो उनकी शैलीकी चुलबुलाहट जाती रहती है (उदाहरणके लिए 'सर्वसाधारणके लिए राजनीतिक कोश'की गद्य-शैली) और शैलीके आकर्षणकी ओर ध्यान देते हैं, तो विचारशीलता साथ नहीं देती (उदाहरणके लिए 'इन गुड किंग चार्ल्सेज़ गोल्डेन डेज़')।

इधर हालमें हेस्केथ पियर्सनने शाका एक जीवन-चरित लिखा है। यह शाका नवीनतम जीवन-चरित है। इसमें पियर्सनने एक रोचक प्रसंगका उल्लेख किया है। लगभग दस वर्ष पूर्व शा-दम्पति संसार-भ्रमणको निकले थे। लौटनेपर शासे पियर्सनने पूछा—'संसारमें आपको क्या-क्या रोचक वस्तुएँ दीखीं?' शाने कहा—'कुछ भी नहीं। सभी जगह दो आँखों और दो हाथोंवाले आदमी दीखे। हाँ, एक देश स्याम है, जो मुझे पसन्द आया।' चरित-लेखकने पूछा—'वह क्यों?' शाने कहा—'वहाँके युवक अपने यहाँके बूढ़ोंकी बात ध्यानसे सुनते हैं।' पियर्सनने फिर पूछा—'केवल ध्यानसे बातें ही सुनते हैं कि उन बातोंपर चलते भी हैं?' शाने कहा—'नहीं, उन बातोंपर वे स्वभावतः चलते नहीं, क्योंकि उन्हें कामकी बातें बतलानेवाला कोई स्यामी "शा" उपलब्ध नहीं है।'[10]

पर स्वयं इंग्लैण्ड भी, जिसको शा उपलब्ध हैं, आज उस रुचि और तन्मयतासे उनकी बातें नहीं सुनता, जिस रुचि और तन्मयतासे वह पहले उनकी बातें सुना करता था। और इन बातोंपर न तो पहले कभी उसने आचरण किया, न आज ही कर रहा है। यह 'केहरी', जिसके 'नख-रद' टूटे नहीं तो अब पहले-जैसे पैने भी नहीं रहे, अपने जीवनके संध्या-कालमें आज भी यदा-कदा गरजनेकी चेष्टा कर रहा है; पर इस गर्जनसे अब न तो किसीको भय होता है, न विस्मय ही। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सर्कसके शेरकी तरह शाको आजकी सभ्यता-सर्कसके 'रिंगमास्टर' पत्रकार जब-तब छेड़कर गरजनेको विवश करते हैं, ताकि दर्शकोंका इससे मनोरंजन हो! उदाहरणके लिए परमाणु-बमपर शाके वक्तव्यको प्रस्तुत किया जा सकता है।

8 *Ibid*, p.363.
9 *Ibid*, p. 186.
10 Hesketh Pearson : *George Bernard Shaw.*

एक दृश्य

प्रो० प्रभाकर माचवे

उन काले अछोर खेतोंमें
हलवाहोंके बालकगण कुछ खेल रहे हैं;
पहली झड़ियोंसे निर्मित कर्दमकी गेंदें झेल रहे हैं!
वे बालक हैं, वे भी कर्दम-मिट्टीके ही राजदुलारे;
बादल पहले-पहले बरसे, बचे-खुचे छितरे दिशिहारे।
सद्यस्नाता हरित-श्यामता, शस्य-बालियोंमें प्रफुल्लता;
प्रकृतिमें सौन्दर्य फैलता, किन्तु गाँववालोंके लड़के ये मटमैले,
शिक्षा-संस्कृति-विहीन, दीन-मलीन, निठल्ले,
क्यों मिट्टीसे खेलें?
इसका उत्तर स्वयं हमींमें, हमने ही उनको यों रक्खा;
जो अब उनकी गिनती है प्रेतोंमें—
उन काले अछोर खेतोंमें!

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परमाणु और परमाणु-बम

श्री 'अशोक'

गोस्वामी तुलसीदासजीने शरीरको पृथ्वी (या मिट्टी), जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्वोंका बना बताया है (छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।)। महाभारतमें भी लिखा है-'पंचत्वं निर्मिले देहे पंचतंच विनिर्जिते, स्वांस्वां योनिमनुप्राप्ते तत्र का परिवेदना।' मृत्यु शरीरस्थ पंच तत्वोंका प्रकृतिस्थ पंच तत्वोंमें मिल जाना है। तब क्या मिट्टी, जल, वायु आदि तत्वोंका विनाश या इनसे भी सूक्ष्म वस्तुओंमें परिवर्त्तित हो जाना सम्भव नहीं? इस बातकी छानबीन पिछली दो शताब्दियोंमें यूरोपके वैज्ञानिकोंने की और पता लगाया कि स्थिति या पृथ्वी कंकर, पत्थर, मिट्टी, बालू आदि जिन पदार्थोंसे बनी दिखती है, वे भी और सूक्ष्म और प्रारम्भिक पदार्थोंसे बने हैं। इनमें सिलिकोन और आक्सीजन प्रमुख हैं। सिलिकोन या आक्सीजन नामक पदार्थोंको और सूक्ष्म पदार्थोंमें नहीं बदला जा सकता है, इसलिए वे तत्व हैं।

जल हाइड्रोजन और आक्सीजन नामक दो तत्वोंसे बना है। एक अणु जलका दो हाइड्रोजनके परमाणुओं और एक आक्सीजनके परमाणुसे बना है। रासायनिक भाषामें इसका सांकेतिक नाम H_2O रखा गया। अग्नि तत्व नहीं है। एक वस्तु तप्तावस्थामें शीतावस्थासे अधिक भारी नहीं होती, इसलिए अग्नि मात्राहीन होनेसे पदार्थ नहीं कही जा सकती। ऐसे ही आकाश रिक्त स्थानका नाम है। वह भी मात्राहीन होनेसे पदार्थ नहीं कहा जा सकता। वायु आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि गैसोंका सम्मिश्रण है।

वैज्ञानिकोंने संसारकी सभी प्राप्य वस्तुओंका विश्लेषण करके सिद्ध किया है कि कुल ९०के लगभग प्रारम्भिक पदार्थ हैं, जिन्हें और सूक्ष्म पदार्थोंमें नहीं परिवर्त्तित किया जा सकता। इन पदार्थों का नाम तत्व (Element) रखा गया। जिस प्रकार जलका रासायनिक सांकेतिक नाम या सूत्र H_2O है, वैसे ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंका विश्लेषण करके उनमें किस तत्वके कितने परमाणु हैं, यह जानकर वैज्ञानिकोंने उनके भी सूत्र बनाए। साधारण नमक का सूत्र Nacl है, अर्थात् एक परमाणु सोडियम धातु और एक परमाणु क्लोरीन गैसका रासायनिक संयोग करनेसे एक अणु नमकका बनता है। अथवा खनिज या समुद्रसे प्राप्त नमकका एक अणु एक परमाणु सोडियम धातु और एक परमाणु क्लोरीन से बना है और ये दोनों वस्तुएँ इसके विश्लेषणसे प्राप्त होंगी। वैज्ञानिक नमकको सोडियम और क्लोरीन गैसके यथोचित संयोग से अपनी प्रयोगशालामें बना सकते हैं। इस प्रकार कई पदार्थोंका सृजन वैज्ञानिकोंने अपनी प्रयोगशालाओंमें उनके सूत्रोंको जानकर तथा अणु और परमाणुओंको उसी प्रकार व्यवस्थित करके किया। पर इस सबके लिए उन्हें यथोचित परमाणुकी आवश्यकता होती है—अर्थात् प्रकृतिमें न किसी तत्वके परमाणुओंका निर्माण होता है, न नाश। केवल तत्वोंके परमाणुओंका संयोग होकर नए-नए रासायनिकोंका निर्माण होता है। मोमबत्ती जलते-जलते समाप्त-सी होती दिखती है; पर मोमबत्ती स्वयं कारबन और हाइड्रोजनके परमाणुओंकी बनी है। अग्निके प्रभावसे कारबन कारबन-डाइआक्साइड नामक अदृश्य गैसमें परिवर्त्तित हो जाता है और हाइड्रोजन हवामें स्थित आक्सीजनसे मिल वाष्प बनकर उड़ जाता है। बिना हवाके मोमबत्ती न जलेगी, क्योंकि तब आक्सीजनका मिलना सम्भव न होगा।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, तत्वोंको ताप, दबाव, विद्युत आदिसे नहीं बदला जा सकता। हाइड्रोजन आदि गैसें, जो तत्व हैं, अधिक शीत या दबावसे द्रवित होकर तत्व अथवा स्थूल हो जायँगी। अधिक तापसे उबलकर उसके परमाणु उछल-कूद-सी मचाने लगेंगे; पर टूटकर और किसी प्रारम्भिक तत्वमें परिवर्तित न हो सकेंगे। इस प्रकार इस शताब्दीके आरम्भ-काल तक वैज्ञानिकोंका विचार था कि ऐटम या परमाणु अविभाज्य है। 'ऐटम' शब्द ग्रीक 'अटेम्नो'से बना है, जिसका अर्थ है अटूट। परमाणुके लिए तब इससे उपयुक्त शब्द यूरोपके वैज्ञानिकोंको कोई और न जँचा। पर आज वैज्ञानिक इस 'ऐटम'को अशुद्ध शब्द कहते हैं, क्योंकि अब 'ऐटम' या परमाणु अटूट नहीं रहा है। परमाणु-बम जिस शक्तिसे बना है, वह परमाणुके टूटनेसे ही उत्पन्न होती है।

प्राचीन मिस्र और यूनानमें भी भारतकी ही भाँति चार या पाँच तत्वोंसे समस्त सृष्टिकी रचना हुई है, ऐसा दार्शनिकों का विश्वास था। अरस्तूने जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी इन चार तत्वोंका वर्णन किया है। जब सारी सृष्टिकी रचना पाँच या चार प्रारम्भिक वस्तुओंसे हुई है, ऐसा वे लोग विश्वास करते थे, तो उनके लिए यह भी सोचना उचित था कि लोहा और धातु भी इन्हीं तत्वोंसे बने हैं। तब लोहेसे सोना बना लेना भी उन लोगों को सम्भव प्रतीत होता था। रासायनिक विज्ञानका अंगरेजी नाम केमिस्ट्री, अरबी 'कीमिया' या 'अलकीमिया'का ग्रीक रूपान्तर है, जिसका अर्थ है एक धातुका दूसरेमें परिवर्त्तित हो जाना। वे प्राचीन 'दार्शनिक पारस-पत्थर' (Philosopher's stone) नामक ऐसे पदार्थके अस्तित्वमें भी विश्वास करते थे, जिसके स्पर्श-मात्रसे लोहा सोना बन जाता था। पर पिछली दो सदियोंके विज्ञानाचार्योंका विश्वास इसके विरुद्ध था। सोनेके परमाणु या लोहेके परमाणु यदि अविभाज्य हुए, तो उनका एक-दूसरेमें परिवर्त्तित होना सम्भव नहीं हो सकता। दोनों तत्व हैं। इसलिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पारस-पत्थरके अस्तित्वकी बात प्राचीन रासायनिकोंका एक अन्ध-विश्वास-मात्र रह गई।

पर आज परमाणुका विभाजन सम्भव हो गया है, और एक तत्वके परमाणुओंसे दूसरे तत्वके परमाणुओंका सृजन भी सम्भव हो गया है। लोहा सोनेमें परिवर्त्तित किया जा चुका है, यद्यपि इस मात्रामें नहीं कि उससे व्यावहारिक लाभ उठाया जा सके। पिछली सदीके परमाणु-सम्बन्धी अपने ही विचारोंकी आजके वैज्ञानिक 'विक्टोरियन कन्सेप्शन आफ़् ऐटम' कहकर हँसी उड़ाते हैं। परमाणु-बमका निर्माण इन्हीं तत्वोंके रूपान्तर और तज्जनित शक्तिसे हुआ है। आज वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि परमाणुओंकी रचना कुल तीन इकाइयोंसे हुई है। सारा संसार, पृथ्वी, पेड़-पत्र-पुष्प, नाना धातु, बहुमूल्य रत्न, जड़-चेतन सृष्टि—सब केवल तीन प्रारम्भिक इकाइयोंके बने हुए हैं, इस तथ्यपर अब वैज्ञानिक पहुँच गए हैं। यह तथ्य सांख्यदर्शनमें कहे गए त्रिगुणी प्रकृतिसे बहुत-कुछ मिलता है—'सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः।'

वैज्ञानिक अब विश्वास करते हैं कि ८० या ९०[1] तत्वोंके परमाणु इन्हीं तीन इकाइयोंके भिन्न प्रकारसे व्यवस्थित पुंज-मात्र हैं। ये इकाइयाँ हैं—(१) एलेक्ट्रोन या ऋणात्मक विद्युत इकाई (-), (२) प्रोटोन या धनात्मक विद्युत इकाई (+) और (३) विकिरण या रेडिएशन (प्रकाश आदिके विकिरणकी क्रिया, जिसमें मध्यस्थ पदार्थपर बिना प्रभाव पड़े शक्तिका स्रोतसे पात्र तक संचार हो जाता है।)।

परमाणु एक सौर-संसार-सा है। बीचमें एक भारी-सा केन्द्र है और उसके चारों ओर एक या अधिक परिधियोंमें ऋणात्मक इकाइयोंके ग्रह। सबसे हल्का परमाणु हाइड्रोजनका है। उसकी रचना भी बड़ी साधारण है। एक प्रोटोन (+) से बने केन्द्रके चारों ओर कुछ दूरीपर घूमता हुआ एक एलेक्ट्रोन (-)। 'कुछ दूरीपर'का प्रयोग अक्षरसः सत्य न होगा, क्योंकि केन्द्र और ग्रहके आकारकी अपेक्षा यह दूरी बहुत बड़ी है। हाइड्रोजनके परमाणु-केन्द्रको यदि सूर्य मान लिया जाय और परिक्रमा करनेवाले एलक्ट्रोन (-) को पृथ्वी, तो पृथ्वीका सूर्यकी परिक्रमा करनेका जो मार्ग है, उससे एक हज़ार गुना अधिक बड़ा मार्ग इस इकाईके परिक्रमणका होगा। हीलियम नामक गैसका परमाणु चार (+) और चार (-) इकाइयोंसे बना है। चार (+) इकाइयाँ २ (-) इकाइयोंके साथ केन्द्रमें संकुचित रहती हैं। शेष २ (-) इकाइयाँ बाहर परिक्रमा करती हैं। इसी प्रकार कारबनका परमाणु १२ (+) इकाइयों और १२ (-) इकाइयोंसे बना है। ६ (-) इकाइयाँ १२ (+) इकाइयोंके साथ केन्द्रमें संकुचित रहती हैं। शेष ६ (-) इकाइयाँ दो परिधियोंमें परिक्रमा करती हैं। सोडियमके परमाणुमें २३ (+) इकाइयाँ १२ (-) इकाइयोंके साथ केन्द्रकी रचना करती हैं। शेष ११ (-) इकाइयाँ २,८ और १ इस प्रकार तीन परिधियोंमें केन्द्रकी परिक्रमा करती हैं। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों तत्वोंका परमाणु-भार बढ़ता जाता है, उनके परमाणुओंकी रचना जटिल होती जाती है। उपर्युक्त परिक्रमण-मार्ग एक ही धरातलपर स्थित नहीं हैं; न वे सभी गोलाकार हैं। इससे परमाणुकी रचनाका मोटा-सा अनुमान-मात्र हो सकता है।

पूछा जा सकता है कि ये (+) और (-) विद्युत-इकाइयाँ हैं क्या वस्तुएँ और क्या इनका स्वतन्त्र रूपमें पाया जाना सम्भव है? द्रव-पदार्थोंमें बिजलीका संचार करते समय फैरेडेने मालूम किया था कि यदि विद्युत्-धारासे किसी पदार्थपर चाँदीका आवरण चढ़ाया जाय, तो एक तोला चाँदी चढ़ानेके लिए सदा एक ही मात्रा बिजलीकी आवश्यकता होती है। यदि इस मात्राका नाम 'य' रखें और मान लिया कि एक तोले चाँदीमें परमाणुओं की संख्या 'स' है, तो—

'स' चाँदीके परमाणुओंके लिए 'य' बिजलीकी आवश्यकता है;

∴ १ चाँदीके परमाणुके लिए $\frac{य}{स}$ बिजलीकी आवश्यकता होगी।

हम $\frac{य}{स}$ का संक्षेपमें नाम 'ए' रख लें। इसी तरह सोने, तांबे, जस्ते, एल्यूमीनियम आदि धातुओंकी कलई विद्युत-धारासे करके फैरेडेने पता लगाया कि इन धातुओंको या तो उपर्युक्त 'ए' बिजली प्रति परिमाणुकी आवश्यकता होती है, या २ए, ३ए, ४ए आदि। कभी विद्युतको $\frac{ए}{२}$ या $\frac{ए}{३}$ अथवा ए को कोई भिन्नांश मात्राकी आवश्यकता किसी धातुके परमाणुके लिए नहीं हुई। इससे ज्ञात हुआ कि विद्युत्की सबसे छोटी मात्रा शायद 'ए' ही है; पर वैज्ञानिक इसका पूरा निर्णय न कर सके। फैरेडेके प्रयोगोंके लगभग ५० वर्ष बाद एक वैज्ञानिकने पता लगाया कि वास्तवमें बिजलीकी सबसे छोटी प्राप्य मात्रा 'ए' है, इससे कम बिजलीका पाना या व्यवहारमें लाना असम्भव है।

एक काँचकी नलीके दोनों सिरोंपर धातुके टुकड़ोंको जोड़कर और उसमें गैसका दबाव क्रमशः कम करनेकी व्यवस्था करके जब बिजलीका संचार किया जाता है, तो जिस ओर बिजलीका (-) सिरा है, उस ओरसे (+) सिरेकी ओर चमचमाती हल्के हरे रंगकी किरणें निकलती हैं। ये किरणें नलीके समानान्तर जाती हैं और चुम्बकसे आकर्षित करनेपर ऋणात्मक (-) विद्युत्-प्रभावसे प्रभावित ज्ञात होती हैं। जे० जे० टामसन नामक वैज्ञानिकने पता लगाया कि ये किरणें एक प्रकारके बहुत ही सूक्ष्म कणोंकी धारा हैं। एक कणका भार हाइड्रोजनके परमाणुका $\frac{१}{१८००}$ है।

1. वैज्ञानिकोंने पता लगा लिया है कि कुल ९२ तत्व संसारमें हैं, जिनमें से ९० के नाम और गुणादि ज्ञात कराए गए हैं। दो तत्वोंका अन्वेषण बाक़ी है, यद्यपि उनके गुणोंका अनुमान लगा लिया गया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भिन्न-भिन्न प्रकारकी गसोंको नलीमें भरकर उपर्युक्त प्रयोग किया गया और सदा एक ही प्रकारकी किरणें निकलीं। ज्ञात हुआ कि ये किरणें गैसोंके परमाणुसे टूटकर निकली हैं। फैरेडेने जिस 'e' नामक बिजलीकी मात्राका पता लगाया था, उतना विद्युत-प्रभाव इनमें से प्रत्येक कणपर मिला। इस प्रकार विद्युत्की सबसे छोटी इकाईका पता वैज्ञानिकोंको लग गया और इस (–) इकाईका नाम एलेक्ट्रोन रखा गया। प्रोटोन अथवा (+) विद्युत् इकाई (–) विद्युत्-प्रभावकी अनुपस्थितिको कहते हैं। इसका वास्तविक रूप अभी अज्ञात है, और जब यह ज्ञात हो जायगा, तो बिजलीका रहस्य खुल जायगा। आजकल वैज्ञानिक बिजलीका वास्तविक रूप नहीं समझा पाते हैं, क्योंकि पानीकी भाँति तरल होते हुए भी विद्युत्का रूप कणमय है। प्रोटोन(+)का भार एलेक्ट्रोन (–) का लगभग २००० गुना होता है।

परमाणुका लगभग सारा भार उसके केन्द्रमें होता है और उसके (–) विद्युत्-ग्रह उससे अपेक्षाकृत बड़ी दूरीपर घूमते हैं। यद्यपि केन्द्रमें कई (–) और (+) इकाइयाँ एकत्रित रहती हैं; पर ये सब मिलकर इतने कम स्थानमें संकुचित-सी रहती हैं कि अकेले (–) ग्रहसे कम क्षेत्रफल केन्द्रका होता है। ग्रहों और केन्द्रके बीचमें इतना अधिक व्यवधान रहता है कि तीव्रगामी अन्य तत्वोंके परमाणु उस बीच आसानीसे आरपार जा सकते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि केन्द्रस्थ (–) और (+) विद्युत्-इकाइयाँ अपने स्वतन्त्र आयतनसे बहुत न्यून होकर केन्द्रमें एक ग्रन्थिका-सी बनकर आबद्ध रहती हैं। इस बन्धनमें परमाणुको अपनी कुछ शक्ति लगानी पड़ती है। आइन्स्टीनके सापेक्षवाद-सिद्धान्तके अनुसार शक्ति और भारका एक-दूसरेमें रूपान्तर सम्भव है। इसलिए उस ग्रन्थि-बन्धनमें परमाणुका कुछ भार कम हो जाता है। यही कारण है कि तत्वोंका परमाणु-भार उनके (–) और (+) इकाइयोंके कुल भारके योगसे कुछ कम रहता है। परमाणु की केन्द्र-ग्रन्थिको किसी प्रकार तोड़कर आबद्ध (+) और (–) इकाइयोंको यदि स्वतन्त्र कर दिया जाय, तो उपर्युक्त शक्ति प्रस्फुटित हो जायगी और परमाणु एक संकुचित आयतनसे अपने पूर्ण स्वतन्त्र आयतनको प्राप्त होनेमें एकाएक एक भयानक विस्फोट-सा उत्पन्न करेंगे। यही परमाणु-बमकी रचनाका रहस्य है।

रेडियम नामक धातुसे एक प्रकाश-सा सदा प्रस्फुटित होता रहता है। इस प्रकाशका विश्लेषण करनेसे ज्ञात हुआ है कि यह तीन प्रकारकी किरणोंके विकिरणसे होता है। इनमें से एक (+) विद्युत्-प्रभावकी ज्ञात हुईं, जो 'अल्फा' किरणें कही जाती हैं। दूसरी (–) विद्युत्-प्रभावकी हैं, जो 'बीटा' किरणें कही जाती हैं। तीसरे प्रकारकी किरणें वे हैं, जिनपर चुम्बकका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इन्हें 'गामा' किरणें कहा गया है और ये एक प्रकारकी बड़ी तीव्र एक्स-रे हैं। ये किरणें रेडियम-तत्वके परमाणु-केन्द्रके स्वतः टूट जानेसे बनती हैं। रेडियम, युरेनियम, आयोनियम आदि तत्व, जिनका परमाणु-भार बहुत अधिक है, संसारमें बहुत ही कम मात्रामें प्राप्य हैं। इन तत्वोंके केन्द्र स्वतः विस्फोटित होते रहते हैं और इस प्रकार युरेनियम कई परमाणु आयोनियममें परिवर्त्तित होता है। आयोनियमका केन्द्र भी स्वतः विस्फोटित होता रहे, तो वह रेडियम नामक तत्वमें बदल जाता है। रेडियमसे जो किरणें निकलती हैं, वे रोडोन आदि कोई कई सहोदरों (आइसोटाप्स) में बदलती हुईं अन्तमें एक ऐसे पदार्थमें बदल जाती हैं, जो साधारण सीसेका सहोदर है। इस प्रकार संसारकी सबसे मूल्यवान और सबसे अप्राप्य वस्तु रेडियम साधारण सीसेमें परिवर्त्तित हो जाता है। रेडियमसे निकली हुई अल्फा, बीटा और गामा किरणोंकी गति-विधिका अध्ययन करके वैज्ञानिकोंने पता लगाया कि अल्फा-कण हीलियम की केन्द्रग्रन्थि-सी चार (–) ऋणात्मक और दो (+) धनात्मक विद्युत्-इकाइयोंके पुंज हैं। इनकी गति लगभग १४०० मील प्रति सेकेण्ड है। बीटा-कणोंकी गति लगभग १७४०० मील प्रति सेकेण्ड है। ये ऋणात्मक विद्युत्-कणोंको बौछार हैं। ये दोनों किरणें तीव्रगामी गोलियोंकी भाँति अन्य तत्वोंकी केन्द्र-ग्रन्थिको तोड़नेमें बड़ी सहायक हुईं।

किसी तीव्रगामी गोले या वस्तुकी चलन-शक्ति उसकी गतिके वर्ग और मात्राके गुणनफलके अनुकूल होती है। मान लीजिए एक १६ मन वज़नी मोटरकार ५० मील प्रति घण्टा दौड़ रही है और एक मोटर ट्रक ८० मन वज़नकी १० मील प्रति घण्टा जा रहा है। एक पुलके ऊपर ५० वैसे ट्रकोंका झटका मिलाकर उस अकेली मोटरकारके झटकेके बराबर होगा—

$$\frac{\text{मोटरकारकी चलन-शक्ति}}{\text{मोटर ट्रककी चलन-शक्ति}} = \frac{१६ \times ५०^२}{८० \times १०^२} = ५०$$

एक सेकेण्डमें १८४८० मील चलनेवाले कणोंकी चलन-शक्तिका अनुमान इस उदाहरणसे हो सकता है। अल्फा-कणोंका भार बीटा-कणोंसे लगभग ८००० गुना अधिक है, इसलिए वे भी कम शक्तिशाली नहीं हैं। सम्भवतः इन्हींका प्रयोग परमाणु-बमकी रचनामें हुआ है। इन तीव्रगामी कणोंसे युरेनियम, रेडियम आदि स्वयमेव प्रस्फुटित होनेवाले परमाणुओंके केन्द्रोंका विस्फोट करके सारी अल्फा, बीटा और गामा किरणोंको एक संकुचित स्थानमें एकत्रित कर लिया जाता है। इस स्थानमें विस्फुटित अल्फा-कण शेष युरेनियमके परमाणुओंपर टक्कर मारकर और अधिक परमाणुओंका विस्फोटन करेंगे और सारी क्रिया देर तक जारी रहेगी। इस सारी विस्फोटन-क्रियाको नियन्त्रित करके और यथासमय उपयुक्त स्थानपर छोड़कर स्वतन्त्र कर देना ही परमाणु-बमकी रचनाका रहस्य है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि परमाणु-शक्तिका उपयोग सर्वप्रथम संहारके लिए हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐटम-बमके विध्वंसका यथार्थ प्रायश्चित्त तभी होगा, जब वैज्ञानिक परमाणु-शक्तिके नियन्त्रणका रहस्य संसारके सभी देशोंके सम्मुख रखकर उन्हें भी मानव-हितके लिए उस अपार शक्तिका प्रयोग करनेका अवसर देंगे। जितनी जल्दी यह भेद वैज्ञानिकों को ज्ञात होगा, उतनी ही शीघ्रतासे वे इसे रेल, मोटर, वायुयान आदिके इंजनोंके चलाने और उद्योग-धन्धोंकी वृद्धिमें लगानेका उपाय सोचेंगे। भारतवर्ष-जैसे देशके लिए, जहाँ तेल और कोयले दोनोंका अभाव है, यह शक्ति बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। एक ग्रेन रेडियम ब्रोमाइडसे प्रतिक्षण १०,०००,०००,०००, अल्फा-किरणें निकलती हैं। केवल एक बड़ी सूक्ष्म रेडियमकी मात्रासे भारीसे भारी इंजनोंका संचालन हो सकता है।

रेडियम आदि धातुएँ अन्तमें सीसेमें बदल जाती हैं, इसलिए सीसेकी खानके पास रेडियम या युरेनियमका होना सम्भव है। यूरोप और अमरीकामें भी यह धातु पिचब्लैण्ड (स्वर्णमक्षिका-जैसा एक खनिज पदार्थ) नामके एक खनिजसे प्राप्त होती है, जिससे सीसा निकाला जाता है। भारतवर्षमें इस पदार्थका होना बिलकुल दुर्लभ नहीं है, क्योंकि सीसेकी खानें यहाँ हैं। हिमालयकी ओर भी इसका मिलना सम्भव है, क्योंकि एक विदेशी वैज्ञानिकने गंगा-जलका विश्लेषण करके बतलाया है कि गंगा-जलकी कीटाणु-नाशक शक्तिका कारण उसमें किसी रेडियोएक्टिव धातुके सूक्ष्मांशका होना है। अल्फा-किरणें हीलियमके परमाणुकी केन्द्र-ग्रन्थि हैं। वैज्ञानिकोंको हीलियमका अस्तित्व सर्वप्रथम सूर्यमें ही ज्ञात हुआ। सूर्यकी रश्मियोंका विश्लेषण करके पृथ्वीमें इस तत्व के प्राप्त होनेसे पहले ही वैज्ञानिकोंने सूर्यमें इसे पा लिया था। इस प्रकार सूर्यका ताप और प्रकाश परमाणु-शक्तिके कारण ही हैं। जब सूर्यके गोलेमें यह क्रिया होती रहती है, तो शायद पृथ्वीके गोलेके अन्दरका ताप भी परमाणु-शक्तिके कारण ही है। हिमालयमें स्थित तप्त जलके कुण्ड, जो सभी गन्धक-से नहीं महकते, शायद ऐसे ही रेडियम या उसके सगोत्रीय तत्वोंके स्वाभाविक परिवर्त्तनसे ही सम्भव हुए हैं। आशा है, इन सबका अन्वेषण हमारे वैज्ञानिकोंके लिए उपयुक्त विषय होगा।

दक्षिण-पूर्वी एशियाका स्वाधीनता-संग्राम

श्री बालकृष्ण गुप्त

दुनियाके इतिहासमें दक्षिण-पूर्वी एशियाका नाम आज तक रबड़, चाय, कुनैन, चीनी, मसाले, तेल आदिके लिए ही मशहूर था। लोग समझते थे कि केले, चावल व मछलीके बाहुल्यने इन द्वीपों और प्रायद्वीपोंके निवासियोंको ऐसा आराम-पसन्द बना दिया है कि उन्हें स्वतन्त्रताकी कोई ख्वाहिश ही नहीं। लेकिन यह सब साम्राज्यवादी प्रचार-मात्र था। आज जब पराजित फ्रांसीसी व डच जातियाँ यूरोपमें कमज़ोरोंकी गिनतीमें आ चुकी हैं और जापान हार चुका है, मौक़ा पाकर जावा व अन्नामकी उत्पीड़ित-शोषित जनताने आज़ादीका झण्डा ऊँचा उठाया है। अंगरेज़ी सरकार इस आज़ादीकी लड़ाईको बिल-कुल पसन्द नहीं करती, इसीलिए फ्रांसीसी और डच साम्राज्यों की सुरक्षाको उसने अपनी ज़िम्मेदारी बना लिया है। उसे भय है कि प्रशान्त महासागरके तटवर्त्ती भू-भागोंकी यह ज्वाला कहीं मलाया, बर्मा व हिन्दुस्तानमें फैलकर उनकी पुलिस व सेनापर अवस्थित शासन-प्रणालीको नष्ट-भ्रष्ट न कर दे। अंगरेज़ोंको अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिए एशिया व अफ्रीकाके महाद्वीपोंमें कहीं भी स्वतन्त्र सबल राष्ट्रोंकी स्थापना पसन्द नहीं। दक्षिण-पूर्वी एशियामें वे आज डच व फ्रांसीसी अधिकारोंके पक्षमें सिर्फ़ 'शान्ति और क़ानून'की स्थापना करनेके लिए ही अपनी फ़ौजें जावा व अन्नाममें नहीं उतार रहे हैं, बल्कि सीरियाकी ही तरह उनका मतलब यह भी हो सकता है कि इन धन-धान्यपूर्ण इलाक़ोंको वास्तवमें ब्रिटेनके ही अधिकारमें क्यों न ले लिया जावे! ऐसा बढ़िया बहाना फिर कब मिल सकता है!

इण्डोनेशियाके लोकनायक डा० सुकर्ण

लगभग ३५० वर्ष गोरों और ३ वर्ष जापानी आतताइयोंके शोषण एवं दमनका शिकार बननेके बाद आज दक्षिण-पूर्वी

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एशियामें बर्मासे लेकर टौंगकिन तक और सिंगापुरसे सैगौन तक एक ऐसी आग लगी है कि पतित डच व फराँसीसी साम्राज्य तो अलग रहे, ब्रिटेनको भी अपना पुराना शासन स्थापित करनेमें असाधारण दिक्कतोंका सामना करना पड़ रहा है। प्रशान्त महासागर में आज महायुद्धकी ज्वाला तो शान्त हो गई है; परन्तु सैकड़ों वर्षोंसे पराधीन जातियोंने अपनी स्वतन्त्रताके लिए हथियार उठाए हैं। विजयी साम्राज्यवादी, जो कल तक विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रका दम भरते थे, आज इन राष्ट्रवादियोंपर हवाई-जहाज़ों, टैंकों और जंगी-जहाज़ोंकी सहायतासे टूट पड़े हैं! जापानके 'एशियावासियोंके लिए एशिया' नारेका मज़ाक उड़ानेवाले ये गोरे साम्राज्यवादी आज यूरोपके लिए एशियाको सुरक्षित करनेमें एड़ी-चोटीका पसीना एक कर रहे हैं। सभी देशों और जातियोंकी स्वाधीनताकी झूठी घोषणा करनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियाँ आज स्वतन्त्रताके पुजारियोंको कुचलना ही अपना कर्त्तव्य समझती हैं। महायुद्धका भीषण विनाश और परमाणु-शक्ति भी मानो इनकी साम्राज्य-लिप्साको मिटा या कम नहीं कर सके। आज भी ये दुनियाकी तीन-चौथाई आबादीको तोपों और मशीनगनोंकी भाषामें कह रहे हैं: पानी खींचते जाओ और लकड़ी काटते जाओ, इसीमें तुम्हारी खैर है। विजित पश्चिमी यूरोपके मुक़ाबलेमें खड़े होकर क्या करोगे? जर्मनी और जापान जैसोंको हमने नष्ट कर दिया। तुम किस खेतकी मूली हो? अपनी कमज़ोरीके वक्त तुमसे दिन-रात काम लेनेके लिए हमने विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रका मोहक नारा लगाया था। तुमने उसकी सचाईपर विश्वास किया, यह तुम्हारी नासमझी है। हमने तो अपने देशोंको हिटलरी जर्मनी और अपने पूर्वी साम्राज्यको 'पीले साम्राज्यवाद'के खतरेसे मुक्त करनेके लिए लड़ाई लड़ी है, तुम्हें अपने कब्ज़ेसे निकालनेके लिए नहीं!

पिछली लड़ाईके बाद ब्रिटेनने जर्मनी व तुर्कीके लगभग दस लाख वर्गमीलवाले इलाके व उपनिवेश हथिया लिए थे। अब इस लड़ाईके बाद, जब कि इंग्लैण्ड और भी कमज़ोर तथा दिवालिया हो चुका है तथा उसके अधिकांश उद्योग नष्ट-प्राय हो गए हैं, भला वह दक्षिण-पूर्वी एशियाके सहज उपजाऊ जंगलों और बहुमूल्य खनिज पदार्थोंसे भरे स्थानोंको कैसे छोड़ दे? एशिया और अफ्रीकाकी लूट ही इंग्लैण्डके दिवालेको तोप सकती है। उधार-पट्टा क़ानूनमें मिली हुई युद्ध-सामग्री तो अब भी उसके पास काफ़ी है। है नहीं सिर्फ़ नाश्ते और खानेके लिए चाय, चीनी, मक्खन, गेहूँकी रोटी, मांस, पनीर और साग-सब्ज़ी। अतः जब अपने पासकी युद्ध-सामग्रीका दक्षिण-पूर्वी एशियामें मामूली-सा प्रयोग करनेसे ही ये सब चीज़ें सुलभ हो सकती हैं और इन्हें भविष्यमें बराबर भेजते रहनेवाले साम्राज्य भी सुरक्षित हो सकते हैं, तो भला ब्रिटेनकी साम्राज्यवादी सरकार विश्व-लोकमतकी क्यों परवाह करने लगी? जावामें फ़क़त महीने होती हैं। भूमध्य-रेखाके नज़दीक होनेकी वजहसे वर्षा और धूप दोनोंकी कमी नहीं; अतः चीनी, चाय, कुनैन, चावल, मसाले आदि चीज़ें बहुत बड़ी मिक़दार पैदा होती हैं। यदि यहाँके निवासी डचों या अंगरेज़ोंकी रोज़ाना पाँच घण्टा ही काम करें, तो इनके बाज़ार और आसानीसे भर सकते हैं। यहाँकी ज़मीनके नीचे टीन, सीसा और पेट्रोल इतनी काफ़ी मात्रामें मौजूद हैं कि अंगरेज़ों उद्योग-धन्धोंको और कहीं झाँकनेकी ज़रूरत नहीं। साम्राज्यके लिए तो जावाका वही महत्व है, जो ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भारतका है।

दक्षिण-पूर्वी एशियाके ये छोटे और द्वीपमय देश बड़े उत्पादनशील और सुन्दर हैं। फूलों और फलोंके बहुतायत कारण ही इन्हें 'प्रशान्तका उद्यान' कहा गया है। नीले समुद्र घिरे ये हरे-भरे देश भारतके पड़ोसी ही नहीं हैं, भारतीय संस्कृतिके केन्द्र भी हैं। आमोद-प्रमोद-प्रिय यहाँके लोगोंके रहन-सहन, उत्सव-त्यौहार, संस्कार, नृत्य-संगीत और धर्म विश्वास एवं कर्म आदि सभी भारतीयोंसे मिलते-जुलते हैं। इन सुसंस्कृत लोगोंको किस तरह डच और फराँसीसी लुटेरों असभ्य और जंगली बताकर सस्ती मज़दूरी करनेवाले गुलाम बना डाला, यह कहानी हिन्दुस्तानी इतिहासकी अठारहवीं और उन्नीसवीं सदीकी दुःखद पुनरावृत्ति-सी ही प्रतीत होती है। बताविया और सूरबाया तथा सैगौन व हनोईमें रहनेवाले विदेशी डच और फराँसीसी साम्राज्यवादी तो फलोंके बगीचों और वहाँ पैदा होनेवाली चीज़ोंके व्यापारके मालिक तथा खानों और तेलके कुओंको लूटनेवाली कम्पनियोंके संचालक बन गए और यहाँके ये सुसंस्कृत निवासी तीस-चालीस सेंट रोज़ानापर काम करनेवाले मज़दूर! अंगरेज़ोंके साम्राज्यवादी गुरु डचोंने कुछ स्थानोंपर सीधा अपना राज्य और कहीं भारतीय देशी राजाओंकी तरह छोटे-छोटे कठपुतले सुल्तान बना रखे हैं, जो उनके शासनके पंजेमें जकड़कर दबाए रखते थे। जापानी आक्रमणने डच शासनके साथ इन सुल्तानोंका भी खात्मा कर दिया। हालैण्डमें ७५ लाख डच रहते हैं, जो सात समुद्र पारके ७ करोड़ एशियावासियोंपर दो लाख सेना और पुलिसके बलपर राज्य करते हैं। आमस्टरडाम व रोटेरडामकी समृद्धि और हालैण्डकी खुशहाली इन्हीं देशोंकी लूटपर अवस्थित है। जर्मनीसे स्वतन्त्र हो जानेसे डच लोग भी डेन्मार्ककी तरह पनीर व मक्खन बनानेवाले ग्वाले-मात्र रह जायँगे। अगर बोर्नियो, जावा व सुमात्राका तेल इनके हाथसे निकल जाय, तो तेलकी राजा शैल कम्पनी, जिसमें अंगरेज़ भी आधे हिस्सेदार हैं, दीवाले के मुक़ाबलेमें कहींकी भी न रहे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

हिन्द-चीन, स्याम, बर्मा, मलाया और पूर्वी द्वीपसमूह मिलाकर रक़बेमें हिन्दुस्तानसे बड़े हैं; पर इनकी आबादी कुल १५ करोड़के क़रीब है। अंगरेज़ी सरकारने अठारहवीं व उन्नीसवीं सदीमें हिन्दुस्तान-से धनिक मुल्कपर अपना अधिकार जमानेके वक्त लगभग उन्हीं साम्राज्यवादी अस्त्रोंका प्रयोग किया, जिनको डच और स्पेनियार्ड अपने उपनिवेशोंमें सफलतापूर्वक काममें ला चुके थे। पर महायुद्धकी लूट और इस दौरानमें हुई ज़्यादतीने हिन्दुस्तानी जनताको और भी क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट बना डाला है। अतः अगर उनके हाथमें पूर्वी एशियाके ये खनिज पदार्थोंवाले इलाके आ जायँ, तो वे हिन्दुस्तानकी बाग-डोरको भी अपने हाथमें थामे रख सकनेका ख्वाब देख सकते हैं। यदि ब्रिटिश हथियारोंसे दक्षिण-पूर्वी एशियामें ये पतनशील साम्राज्य क़ायम रह सके, तो फ्रांस और हालैण्ड नामके लिए शासक बने रहेंगे और वास्तविक ताक़त होगी ब्रिटेनकी, जो फ्रांसीसी व डच सरकारोंकी छत्रछायामें ब्रिटिश व्यापारका प्रसार करेगी। भारत और बर्माके साथ ही अगर जावा, सुमात्रा, स्याम, अन्नाम व हिन्द-चीन भी अंगरेज़ी निर्यातके क्षेत्र बन जायं, तो फिर न सिर्फ़ सस्ती चीज़ें बनानेवाले जापानके पूर्वी बाज़ार ही हथियाए जा सकते हैं, बल्कि चीन और जापानमें हाथ-पाँव फलानेवाले अमरीकाके मुक़ाबलेमें भी खड़ा हुआ जा सकता है।

पूर्वी एशियाके पराधीन देशोंमें रक़बेके खयालसे हिन्द-चीन सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल २८६००० वर्गमील है, पर आबादी है सिर्फ़ २॥ करोड़। भारत ही की तरह इसका शासन भी फ्रांससे नियुक्त एक गवर्नर-जनरल कुछ जी-हुज़ूरोंकी एक दिखावटी परिषदके नामपर करता है। कोचिन-चीन इसीका एक उपनिवेश (जिसका शासन एक गवर्नर करता है) है और अन्नाम, कम्बोडिया, टौंगकिन, लूस आदि 'संरक्षित राज्य' हैं, जिनका शासन फ्रांससे नियुक्त 'रेज़िडेण्ट सुपीरियर' करते हैं। पर ये गुलामीके मुख्तलिफ़ दर्जे-भर हैं। शोषण और दमनमें फ्रांसने ब्रिटिश या डच सम्राज्यवादियोंको अगर मात नहीं दी, तो बहुत पीछे भी नहीं रहा। नागरिक स्वतन्त्रता नामकी कोई चीज़ यहाँ नहीं है। फ्रांसके प्रति भक्ति और कम दामोंपर सख्त मज़दूरी करानेकी प्रवृत्ति ही यहाँके फराँसीसी अधिकारियोंका एकमात्र मूलमन्त्र है। अधिकारियोंके प्रति जनतामें इतना अधिक रोष, घृणा, असन्तोष और आग थी कि जापानने विना लड़े ही इसपर आसानीसे अधिकार कर लिया। अब फ्रांसके साथ ही जापानी साम्राज्यवादकी पराजयने जनताकी आँखें खोल दी हैं और वह किसी भी हालतमें युद्ध-पूर्वकी गुलामीको स्वीकार करनेको तैयार नहीं। फ्रांसीसी अधिकारियों द्वारा दिए गए स्वशासनके आश्वासन पर यहाँ किसीको कोई विश्वास नहीं।

डच-साम्राज्यके पूर्वी द्वीप-समूहमें जावा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसीको 'इण्डोनेशिया' भी कहते हैं। इसका रक़बा ८००००० वर्गमील और आबादी पाँच करोड़ है। बताविया इसकी राजधानी और सूरबाया नौकेन्द्र है। जितना यह धन-धान्य और खनिज पदार्थोंसे पूर्ण है, उतना ही अधिक ग़रीब एवं दलित भी है। यहाँके लोगोंपर डच-साम्राज्यवादियोंने जो ज़ोर-ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ की हैं, उनके सामने फ्रांस और ब्रिटेन ही नहीं, जर्मनों और जापानियोंके ज़ुल्म भी मामूली जान पड़ते हैं। यहाँका कोई व्यक्ति राजनीतिक अधिकार नहीं रखता, ज़मीन ख़रीद-बेच नहीं सकता और स्वतन्त्र व्यापार नहीं कर सकता। इसके विरुद्ध जब-तब जनताने विरोधकी आवाज़ उठाई; पर संगठित रूपमें जनताका आन्दोलन पहले महायुद्धके छिड़नेपर ही हुआ—जिसमें भारतकी ही भाँति इण्डोनेशियनोंको भी अपनी मुक्तिकी आशा दिखाई दी। इसके नेता डा० सुकर्ण कई बार पकड़कर जेलमें बन्द कर दिए गए; पर आन्दोलन ज़ोर पकड़ता ही गया। जापानी आक्रमणके बाद जब डच लुटेरे और ब्रिटिश सेनापति जावाको अरक्षित छोड़कर भाग गए, तो डा० सुकर्णके राष्ट्रीय आन्दोलनने जनताके संगठनको भीतर-ही-भीतर मज़बूत बनाया और जापानियोंके हारते ही इण्डोनेशियन प्रजातन्त्रकी घोषणा कर दी। डच-साम्राज्यकी रक्षाके नामपर आज अंगरेज़ शस्त्र-बलसे इसी प्रजातन्त्र और इसके पीछे जो अपार जन-बल है, उसको कुचलकर ख़त्म करनेपर आमादा हैं!

इतना ही नहीं, दक्षिण-पूर्वी एशियाके अन्य भागोंमें भी—जहाँकी जनताने गोरे और पीले साम्राज्योंके पतनको देखकर अपने विश्वास और शक्तिको पहचाना है—गुलामीके जुएको सदाके लिए उतार फेंकनेकी प्रचेष्टाएँ चल रही हैं। गोरे साम्राज्यवादी अपना युद्ध-पूर्ववाला शोषण-दमनका शासन फिर थोपनेके लिए बेचैन हैं। वे 'स्वशासन' और 'स्वतन्त्रता'के अपने पुराने और निरर्थक वादोंको फिर दोहरा रहे हैं, जिनपर किसीका भी विश्वास नहीं रह गया है। और किसी तरह अपनी दाल गलती न देख इन्होंने शस्त्र-बलका सहारा लिया है और दुनियाकी भोली भाली जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए बहाना यह बनाया है कि इण्डोनेशियाका यह आन्दोलन जापानी हथियारों एवं अफ़सरों की सहायतासे चलनेवाला 'विद्रोह' है! यह गोरोंकी आत्मासे भी ज़्यादा काली और उनकी चमड़ीसे भी ज़्यादा सफ़ेद झूठ है। यदि इसमें कोई सचाई भी हो, तब भी उनके द्वारा मुक्तिकामी दक्षिण-पूर्वी एशियाके जन-आन्दोलनका कुचला जाना संयुक्त-राष्ट्रों द्वारा घोषित युद्ध और शान्ति-उद्देश्योंकी सरासर हत्या है। एशिया अब जाग चुका है और किसी भी ज़ुल्म-ज़्यादतीसे उसे फिर दबाया नहीं जा सकता, यह तथ्य गोरे साम्राज्यवादियोंको गाँठ बाँध लेना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एशियामें बर्मासे लेकर टौंगकिन तक और सिंगापुरसे सैगौन तक एक ऐसी आग लगी है कि पतित डच व फराँसीसी साम्राज्य तो अलग रहे, ब्रिटेनको भी अपना पुराना शासन स्थापित करनेमें असाधारण दिक्कतोंका सामना करना पड़ रहा है। प्रशान्त महासागर में आज महायुद्धकी ज्वाला तो शान्त हो गई है ; परन्तु सैकड़ों वर्षोंसे पराधीन जातियोंने अपनी स्वतन्त्रताके लिए हथियार उठाए हैं। विजयी साम्राज्यवादी, जो कल तक विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रका दम भरते थे, आज इन राष्ट्रवादियोंपर हवाई-जहाज़ों, टैंकों और जंगी-जहाज़ोंकी सहायतासे टूट पड़े हैं! जापानके 'एशियावासियोंके लिए एशिया' नारेका मज़ाक उड़ानेवाले ये गोरे साम्राज्यवादी आज यूरोपके लिए एशियाको सुरक्षित करनेमें एड़ी-चोटीका पसीना एक कर रहे हैं। सभी देशों और जातियोंकी स्वाधीनताकी झूठी घोषणा करनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियाँ आज स्वतन्त्रताके पुजारियोंको कुचलना ही अपना कर्त्तव्य समझती हैं। महायुद्धका भीषण विनाश और परमाणु-शक्ति भी मानो इनकी साम्राज्य-लिप्साको मिटा या कम नहीं कर सके। आज भी ये दुनियाकी तीन-चौथाई आबादीको तोपों और मशीनगनोंकी भाषामें कह रहे हैं : पानी खींचते जाओ और लकड़ी काटते जाओ, इसीमें तुम्हारी खैर है। विजित पश्चिमी यूरोपके मुक़ाबलेमें खड़े होकर क्या करोगे ? जर्मनी और जापान जैसोंको हमने नष्ट कर दिया। तुम किस खेतकी मूली हो ? अपनी कमज़ोरीके वक्त तुमसे दिन-रात काम लेनेके लिए हमने विश्व-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्रका मोहक नारा लगाया था। तुमने उसकी सचाईपर विश्वास किया, यह तुम्हारी नासमझी है। हमने तो अपने देशोंको हिटलरी जर्मनी और अपने पूर्वी साम्राज्यको 'पीले साम्राज्यवाद'के खतरेसे मुक्त करनेके लिए लड़ाई लड़ी है, तुम्हें अपने कब्ज़ेसे निकालनेके लिए नहीं!

पिछली लड़ाईके बाद ब्रिटेनने जर्मनी व तुर्कीके लगभग दस लाख वर्गमीलवाले इलाके व उपनिवेश हथिया लिए थे। अब इस लड़ाईके बाद, जब कि इंग्लैण्ड और भी कमज़ोर तथा दिवालिया हो चुका है तथा उसके अधिकांश उद्योग नष्ट-प्राय हो गए हैं, भला वह दक्षिण-पूर्वी एशियाके सहज उपजाऊ जज़ीरों और बहुमूल्य खनिज पदार्थोंसे भरे स्थानोंको कैसे छोड़ दे ? एशिया और अफ्रीकाकी लूट ही इंग्लैण्डके दिवालेको तोप सकती है। उधार-पट्टा क़ानूनमें मिली हुई युद्ध-सामग्री तो अब भी उसके पास काफ़ी है। है नहीं सिर्फ़ नाश्ते और खानेके लिए चाय, चीनी, मक्खन, गेहूँकी रोटी, मांस, पनीर और साग-सब्ज़ी। अतः जब अपने पासकी युद्ध-सामग्रीका दक्षिण-पूर्वी एशियामें मामूली-सा प्रयोग करनेसे ही ये सब चीज़ें सुलभ हो सकती हैं और इन्हें भविष्यमें बराबर भेजते रहनेवाले साम्राज्य भी सुरक्षित हो सकते हैं, तो भला ब्रिटेनकी साम्राज्यवादी सरकार विश्व-लोकमतकी क्यों परवाह करने लगी ? जावामें फ़सलें बहुत महीने होती हैं। भूमध्य-रेखाके नज़दीक होनेकी वजहसे वर्षा और धूप दोनोंकी कमी नहीं ; अतः चीनी, चाय, रबड़, कुनैन, चावल, मसाले आदि चीज़ें बहुत बड़ी मिक़दारमें पैदा होती हैं। यदि यहाँके निवासी डचों या अंगरेज़ोंके लिए रोज़ाना पाँच घण्टा ही काम करें, तो इनके बाज़ार और ख़ज़ाने आसानीसे भर सकते हैं। यहाँकी ज़मीनके नीचे टीन, जस्ता, सीसा और पेट्रोल इतनी काफ़ी मात्रामें मौजूद हैं कि अंगरेज़ोंके उद्योग-धन्धोंको और कहीं झाँकनेकी ज़रूरत नहीं। सचमुच साम्राज्यके लिए तो जावाका वही महत्व है, जो ब्रिटिश साम्राज्यके लिए भारतका है।

दक्षिण-पूर्वी एशियाके ये छोटे और द्वीपमय देश बड़े ही उत्पादनशील और सुन्दर हैं। फूलों और फलोंके बहुतायतके कारण ही इन्हें 'प्रशान्तका उद्यान' कहा गया है। नीले समुद्रसे घिरे ये हरे-भरे देश भारतके पड़ोसी ही नहीं हैं, भारतीय संस्कृतिके केन्द्र भी हैं। आमोद-प्रमोद-प्रिय यहाँके लोगोंके रहन-सहन, उत्सव-त्यौहार, संस्कार, नृत्य-संगीत और धर्म-विश्वास एवं कर्म आदि सभी भारतीयोंसे मिलते-जुलते हैं। इन सुसंस्कृत लोगोंको किस तरह डच और फराँसीसी लुटेरोंने असभ्य और जंगली बताकर सस्ती मज़दूरी करनेवाले गुलाम बना डाला, यह कहानी हिन्दुस्तानी इतिहासकी अठारहवीं और उन्नीसवीं सदीकी दुःखद पुनरावृत्ति-सी ही प्रतीत होती है। बताविया और सूरबाया तथा सैगौन व हनोईमें रहनेवाले विदेशी डच और फराँसीसी साम्राज्यवादी तो फलोंके बगीचों और वहाँ पैदा होनेवाली चीज़ोंके व्यापारके मालिक तथा खानों और तेलके कुओंको लूटनेवाली कम्पनियोंके संचालक बन गए और यहाँके ये सुसंस्कृत निवासी तीस-चालीस सेंट रोज़गारपर काम करनेवाले मज़दूर! अंगरेज़ोंके साम्राज्यवादी गुरु डचोंने कुछ स्थानोंपर सीधा अपना राज्य और कहीं भारतीय देशी राजाओंकी तरह छोटे-छोटे कठपुतले सुल्तान बना रखे हैं, जो जनताको शासनके पंजेमें जकड़कर दबाए रखते थे। जापानी आक्रमणने डच शासनके साथ इन सुल्तानोंका भी खात्मा कर दिया। हालैण्डमें ७५ लाख डच रहते हैं, जो सात समुद्र पारके ७ करोड़ एशियावासियोंपर दो लाख सेना और पुलिसके बलपर राज्य करते हैं। आमस्टरडाम व रोटेरडामकी समृद्धि और हालैण्डकी खुशहाली इन्हीं देशोंकी लूटपर अवस्थित है। जावाके स्वतन्त्र हो जानेसे डच लोग भी डेन्मार्ककी तरह फार्म व मक्खन बनानेवाले ग्वाले-मात्र रह जायँगे। अगर बोर्नियो, जावा व सुमात्राका तेल इनके हाथसे निकल जाय, तो तेलकी राजधानी शैल कम्पनी, जिसमें अंगरेज़ भी आधे हिस्सेदार हैं, दिवालेकी अदालत कम्पनीके मुक़ाबलेमें कहींकी भी न रहे।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्द-चीन, स्याम, बर्मा, मलाया और पूर्वी द्वीपसमूह मिलाकर रक़बेमें हिन्दुस्तानसे बड़े हैं ; पर इनकी आबादी कुल १५ करोड़के क़रीब है। अंगरेज़ी सरकारने अठारहवीं व उन्नीसवीं सदीमें हिन्दुस्तान-से धनिक मुल्कपर अपना अधिकार जमानेके वक्त लगभग उन्हीं साम्राज्यवादी अस्त्रोंका प्रयोग किया, जिनको डच और स्पेनियार्ड अपने उपनिवेशोंमें सफलतापूर्वक काममें ला चुके थे। पर महायुद्धकी लूट और इस दौरानमें हुई ज़्यादतीने हिन्दुस्तानी जनताको और भी क्षुब्ध एवं असन्तुष्ट बना डाला है। अतः अगर उनके हाथमें पूर्वी एशियाके ये खनिज पदार्थोंवाले इलाके आ जायँ, तो वे हिन्दुस्तानकी बाग-डोरको भी अपने हाथमें थामे रख सकनेका ख्वाब देख सकते हैं। यदि ब्रिटिश हथियारोंसे दक्षिण-पूर्वी एशियामें ये पतनशील साम्राज्य क़ायम रह सके, तो फ्रांस और हालैण्ड नामके लिए शासक बने रहेंगे और वास्तविक ताक़त होगी ब्रिटेनकी, जो फ्रांसीसी व डच सरकारोंकी छत्रछायामें ब्रिटिश व्यापारका प्रसार करेगी। भारत और बर्माके साथ ही अगर जावा, सुमात्रा, स्याम, अन्नाम व हिन्द-चीन भी अंगरेज़ी निर्यातके क्षेत्र बन जायं, तो फिर न सिर्फ़ सस्ती चीज़ें बनानेवाले जापानके पूर्वी बाज़ार ही हथियाए जा सकते हैं, बल्कि चीन और जापानमें हाथ-पाँव फलानेवाले अमरीकाके मुक़ाबलेमें भी खड़ा हुआ जा सकता है।

पूर्वी एशियाके पराधीन देशोंमें रक़बेके ख़यालसे हिन्द-चीन सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल २८६००० वर्गमील है, पर आबादी है सिर्फ़ २॥ करोड़। भारत ही की तरह इसका शासन भी फ्रांससे नियुक्त एक गवर्नर-जनरल कुछ जी-हुज़ूरोंकी एक दिखावटी परिषदके नामपर करता है। कोचिन-चीन इसीका एक उपनिवेश (जिसका शासन एक गवर्नर करता है) है और अन्नाम, कम्बोडिया, टौंगकिन, लूस आदि 'संरक्षित राज्य' हैं, जिनका शासन फ्रांससे नियुक्त 'रेज़िडेण्ट सुपीरियर' करते हैं। पर ये गुलामीके मुख्तलिफ़ दर्जे-भर हैं। शोषण और दमनमें फ्रांसने ब्रिटिश या डच सम्राज्यवादियोंको अगर मात नहीं दी, तो कुछ पीछे भी नहीं रहा। नागरिक स्वतन्त्रता नामकी कोई चीज़ वहाँ नहीं है। फ्रांसके प्रति भक्ति और कम दामोंपर सख्त मज़दूरी करानेकी प्रवृत्ति ही यहाँके फरांसीसी अधिकारियोंका एकमात्र मूलमन्त्र है। अधिकारियोंके प्रति जनतामें इतना अधिक रोष, घृणा, असन्तोष और आग थी कि जापानने विना लड़े ही इसपर आसानीसे अधिकार कर लिया। अब फ्रांसके साथ ही जापानी साम्राज्यवादकी पराजयने जनताकी आँखें खोल दी हैं और वह किसी भी हालतमें युद्ध-पूर्वकी गुलामीको स्वीकार करनेको तैयार नहीं। फ्रांसीसी अधिकारियों द्वारा दिए गए स्वशासनके आश्वासन पर यहाँ किसीको कोई विश्वास नहीं।

डच-साम्राज्यके पूर्वी द्वीप-समूहमें जावा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसीको 'इण्डोनेशिया' भी कहते हैं। इसका रक़बा ८००००० वर्गमील और आबादी पांच करोड़ है। बताविया इसकी राजधानी और सूरबाया नौकेन्द्र है। जितना यह धन-धान्य और खनिज पदार्थोंसे पूर्ण है, उतना ही अधिक ग़रीब एवं दलित भी है। यहाँके लोगोंपर डच-साम्राज्यवादियोंने जो ज़ोर-ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ की हैं, उनके सामने फ्रांस और ब्रिटेन ही नहीं, जर्मनों और जापानियोंके ज़ुल्म भी मामूली जान पड़ते हैं। यहाँका कोई व्यक्ति राजनीतिक अधिकार नहीं रखता, ज़मीन खरीद-बेच नहीं सकता और स्वतन्त्र व्यापार नहीं कर सकता। इसके विरुद्ध जब-तब जनताने विरोधकी आवाज़ उठाई ; पर संगठित रूपमें जनताका आन्दोलन पहले महायुद्धके छिड़नेपर ही हुआ—जिसमें भारतकी ही भाँति इण्डोनेशियनोंको भी अपनी मुक्तिकी आशा दिखाई दी। इसके नेता डा० सुकर्ण कई बार पकड़कर जेलमें बन्द कर दिए गए ; पर आन्दोलन ज़ोर पकड़ता ही गया। जापानी आक्रमणके बाद जब डच लुटेरे और ब्रिटिश सेनापति जावाको अरक्षित छोड़कर भाग गए, तो डा० सुकर्णके राष्ट्रीय आन्दोलनने जनताके संगठनको भीतर-ही-भीतर मज़बूत बनाया और जापानियोंके हारते ही इण्डोनेशियन प्रजातन्त्रकी घोषणा कर दी। डच-साम्राज्यकी रक्षाके नामपर आज अंगरेज़ शस्त्र-बलसे इसी प्रजातन्त्र और इसके पीछे जो अपार जन-बल है, उसको कुचलकर खत्म करनेपर आमादा हैं!

इतना ही नहीं, दक्षिण-पूर्वी एशियाके अन्य भागोंमें भी—जहाँकी जनताने गोरे और पीले साम्राज्योंके पतनको देखकर अपने विश्वास और शक्तिको पहचाना है—गुलामीके जुएको सदाके लिए उतार फेंकनेकी प्रचेष्टाएँ चल रही हैं। गोरे साम्राज्यवादी अपना युद्ध-पूर्ववाला शोषण-दमनका शासन फिर थोपनेके लिए बेचैन हैं। वे 'स्वशासन' और 'स्वतन्त्रता'के अपने पुराने और निरर्थक वादोंको फिर दोहरा रहे हैं, जिनपर किसीका भी विश्वास नहीं रह गया है। और किसी तरह अपनी दाल गलती न देख इन्होंने शस्त्र-बलका सहारा लिया है और दुनियाकी भोली भाली जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए बहाना यह बनाया है कि इण्डोनेशियाका यह आन्दोलन जापानी हथियारों एवं अफ़सरों की सहायतासे चलनेवाला 'विद्रोह' है! यह गोरोंकी आत्मासे भी ज़्यादा काली और उनकी चमड़ीसे भी ज़्यादा सफ़ेद झूठ है। यदि इसमें कोई सचाई भी हो, तब भी उनके द्वारा मुक्तिकामी दक्षिण-पूर्वी एशियाके जन-आन्दोलनका कुचला जाना संयुक्त-राष्ट्रों द्वारा घोषित युद्ध और शान्ति-उद्देश्योंकी सरासर हत्या है। एशिया अब जाग चुका है और किसी भी ज़ुल्म-ज़्यादतीसे उसे फिर दबाया नहीं जा सकता, यह तथ्य गोरे साम्राज्यवादियोंको गाँठ बाँध लेना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनकी बात

श्री सीताराम सेकसरिया

वर्धा, १ जनवरी

शमको एक प्रसिद्ध धनी व्यापारीके साथ सेवाग्राम गया। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला भी आजकल सेवाग्राममें ही हैं। घूमनेके रास्तेपर उनसे भेंट हो गई। हम लोग ताँगेपर थे, इसलिए घनश्यामदासजीने कहा कि चलिए, वहीं बातें होंगी। सेवाग्राम पहुँचे, तो पूज्य बापूजी घूमने गए हुए थे। हम लोग रास्तेमें टहलने लगे। थोड़ी देरमें बापूजी घूमकर लौट आए, तो रास्तेमें ही उनसे भेंट हुई। वे तो ज़बरदस्त आदमी हैं। उन धनी सज्जनसे कहने लगे—'लाइए, लाइए, क्या लाए हैं मेरे लिए? निकालिए।' बापूके साथ हम लोग उनकी कुटियामें गए। उन धनी सज्जनने, जो बापूके परिचित हैं, एक हज़ार रुपया बापूके पैरोंपर रखकर प्रणाम किया। बापू थोड़े ही माननेवाले थे। उन्होंने कहा—'आप तो मुझे ठग रहे हैं। इससे क्या होगा? मुझे तो बहुत रुपए चाहिएँ। मुझे देंगे, वे बच जायँगे। मुझे मालूम है कि सरकार आपसे बहुत रुपया लेनेवाली है।' बापूकी सारी बातोंमें विनोद और हास्य भरा हुआ था। अन्तमें श्री घनश्यामदासजी बीचमें दलाल बने और पचीस हजारमें सौदा पटा। गांधीजी कहते थे—'खादीके लिए मुझे कम से-कम बीस लाख रुपए चाहिएँ। ये रुपए मिलें, तो मैं करोड़ोंकी खादी पैदा करा सकता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आगे आनेवाले ज़मानेमें लोग कपड़ेके लिए तरसते रहेंगे। यदि खादीका उद्योग ज़्यादा संगठित हो जाय, तो मैं देशको वस्त्र-संकटसे बचा सकता हूँ।'

१ फरवरी

सुबह जानकी बहन, महावीरप्रसादजी आदि तीन-चार लोगोंके साथ सेवाग्राम गया। सामने ही पूज्य बापूजी घूमते हुए मिले। आजकल सेवाग्राम जानेपर बापूजीके साथ घूमनेका मौक़ा मिल जाता है। वहाँपर कई तरहकी बातें सुनने और समझनेका मौक़ा भी अनायास मिल जाता है। आज गो-सेवा-संघका प्रथम अधिवेशन था। गांधीजीने अधिवेशनका उद्घाटन करते हुए गो-सेवा और गो-रक्षापर अपने मौलिक विचार प्रकट किए। उसके बाद अधिवेशनके अध्यक्ष श्री विनोबाका लम्बा भाषण हुआ। इस सम्मेलनमें बाहरके कई लोग आए हैं, जिनमें सरकारी डेयरियोंके विशेषज्ञ तथा पशु-रक्षण, पशु-पालन और गो-रक्षाके काममें विशेष रुचि रखनेवाले कई लोग हैं। श्री विनोबाका भाषण कुछ लोगोंको पसन्द आया और कुछको नहीं; पर यह स्वीकार करना चाहिए कि श्री विनोबा अपने ढंगके एक विशेष आदमी हैं। उनके लिखने, बोलने और काम करनेमें सचाई और कर्मठता है। महाराष्ट्र-स्वभावमें एक स्वाभाविक कर्कशता होती है, वह श्री विनोबामें भी है। उन्होंने कहा—'मराठी भाषा और मराठी संस्कृति कभी दबायी नहीं रहीं। फिर मैं तो जंगली आदमी हूँ। मैंने उपनिषद पढ़े और आज भी मुझे तो उपनिषदोंका मार्ग ही प्यारा लगता है। उपनिषदोंकी उत्पत्ति अरण्यमें हुई है, इसलिए मेरी बातोंमें आपको सरसताका अभाव मालूम होगा; पर यह तो मेरा स्वभाव ही है।'

कई लोगोंको गो-सेवा-संघका मेम्बर बनाया गया। मेम्बर बननेकी शर्त्त है कि इसके सदस्य अपने खान-पानमें गायके घी और दूधके सिवाय दूसरे पशुके घी और दूधका इस्तेमाल नहीं करेंगे। चमड़ा भी मरी हुई गायका ही काममें लायेंगे। मजबूरी की हालतमें जैसे विदेश या जेलमें—यह शर्त्त लागू नहीं होगी। मुझे भी मेम्बर बनना पड़ा, क्योंकि एक तो यह पंचोंका काम है, दूसरे जमनालालजी इसके स्थायी सभापति हैं, अतः मेरी इच्छा कम होनेपर भी सदस्यता स्वीकार करना ज़रूरी मालूम हुआ।

कलकत्ता, १० फरवरी

जबसे जापान लड़ाईमें आया है, तबसे कलकत्तेकी हालत खराब होनी शुरू हुई, और अब ऐसी हो गई है कि बाज़ार, रास्ते, मकान सूने-सूने लगने लगे हैं। कारबार प्रायः बन्द हो गया है। लोगोंमें भय और आतंक छाया हुआ है। जापान ज़ोरोंसे आगे बढ़ रहा है। अमरीका और इंग्लैण्ड इतने शक्तिशाली देश माने जाते हैं; पर ये लोग भी जापानको हटाना तो दूर रहा, कहींपर रोक भी नहीं पा रहे हैं! पूर्वमें मलाया जापान के हाथमें चला गया। सिंगापुरमें, जो सबसे ज़्यादा सुदृढ़ था, जिसपर अंगरेज़ोंको बहुत गर्व था और जहाँ कई वर्षोंसे तैयारी की गई थी, जापानने दो ही दिनोंमें अपनी फ़ौज उतार दी। बर्मामें भी जापान बहुत आगे बढ़ गया है। इससे लोगोंका धीरज टूटने लगा है। घबराहट बढ़ रही है। ऐसा दीखता है कि अंगरेज़ोंकी पोल खुल रही है। उनके पास वास्तविक ताक़त और तैयारी थी ही नहीं। वे तो योंही अपना रौब जमाए हुए थे। अब तो ये बेइज्ज़त भी होने लगे हैं। लोग इनको बर्दाश्त विश्वास नहीं करते। इनके उपनिवेश भी आहिस्ते-आहिस्ते इनके खिलाफ़ होते जा रहे हैं। हिन्दुस्तान तो कभी इनके था ही नहीं। यहाँपर जो-कुछ हो रहा है, वह ज़ोर-ज़बरदस्तीसे हो रहा है। आज ऐसी स्थितिमें भी इनका वही अफ़सरशाही और वही पुराना ढर्रा बना हुआ है। अब तो हिन्दुस्तानी लोगोंकी ऐसी धारणा होती जा रही है कि अंगरेज़ोंके द्वारा हिन्दुस्तानका समझौता होने या अंगरेज़ों द्वारा हिन्दुस्तानको स्वाधीनता देनेका इरादा ज़ाहिर किए जानेका कोई अर्थ नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चीनके भाग्य-विधाता श्री च्याङ्काई-शेक आज देहली पहुँचे हैं। उनका स्वागत हिन्दुस्तानके लोग अपने हृदयसे करते हैं, क्योंकि चीनका हिन्दुस्तानके साथ बहुत पुराना सम्बन्ध है। दोनों ही देश विदेशियों द्वारा पद्दलित किए गए हैं और आज भी किए जा रहे हैं। दोनोंकी पुरानी संस्कृति और सभ्यता है। इसलिए एककी दूसरेके प्रति सहानुभूति होनी स्वाभाविक ही है। श्री च्याङ्काई-शेक महात्माजी और पं० जवाहरलालजीसे मिलेंगे। देखें उनके यहाँ आने और इस मिलनमें क्या चीज़ निकलती है।

११ फरवरी

सुबह उठकर नित्यके काम जैसे रोज़ करता हूँ, किए। शामको अचानक एक मित्रने खबर दी कि श्री जमनालालजी बजाजका स्वर्गवास हो गया। कैसे विश्वास किया जाय! आजसे पाँच दिन पहले मैं उनको वर्धामें बहुत अच्छी तरह छोड़कर आया हूँ; लेकिन उन मित्रने कहा—'अभी मुझे वर्धासे फ़ोनपर खबर मिली है कि अचानक उनका हार्ट-फेल हो गया।' मैं तो सन्न रह गया। यह समाचार सुनने और सहनेकी शक्ति मुझमें नहीं थी। यह तो वज्रपात है! यह तो देशकी एक इतनी बड़ी क्षति है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। जमनालालजी! जमनालालजी! हा, जमनालालजी! आप हम लोगोंको छोड़कर यों अचानक चले गए! हम सोच भी नहीं सकते कि आप इतने शीघ्र चले जायँगे। आप चले गए, और सब भी कभी-न-कभी जायँगे ही; पर यों आपका अचानक चला जाना हमें बर्दाश्त नहीं हो रहा है। पर हमारा बस हो क्या—सिवा उस महान प्रभुसे प्रार्थना करनेके कि वह आपकी आत्माको शान्ति प्रदान करे। आपकी आत्माको शान्ति प्राप्त होगी, इसमें क्या शक है। हमें भी शक्ति दे कि हम इस महान शोकको बर्दाश्त कर सकें तथा आपकी देश-सेवाकी भावनाको अपना और फैला सकें। आपकी मृत्युसे हम आहत हो गए हैं। इस समय कुछ सूझ नहीं रहा है। पर तो भी उस महान विधायकके विधानको निन्दा कैसे करें? उसके कामोंका रहस्य जाननेकी बुद्धि हममें कहाँ है? इसलिए यह घटना हमें बहुत दुखित कर रही है। फिर भी प्रभुके हर कामके सामने सिर नवाना आपने तथा पूज्य बापूजीने हमें सिखाया है, इसलिए उस महान प्रभुको प्रणाम करते हुए आपकी आत्माकी शान्तिके लिए प्रार्थना करते हैं।

जमनालालजीसे मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध काफ़ी घनिष्ट था। वे मेरे पिता-जैसे, बड़े भाई-जैसे, एक अभिभावक-जैसे थे। आज उनका जो अभाव हो गया है, वह पूरा नहीं हो सकता। उनके द्वारा देश और देशसेवकोंकी जो भलाई और सहायता होती थी, वह अलभ्य है। आप देशसेवकोंके पारिवारिक तथा व्यक्तिगत जीवनमें भी भाग लिया करते थे और उनकी साज-सम्हाल रखा करते थे। उनके द्वारा जो सहायता-संरक्षण समाज-सेवकोंको मिला करता था, उसका अब एकदम अभाव हो गया। अब वैसा संरक्षण कहीं मिलेगा, इसकी आशा नहीं की जा सकती। उनका जीवन एक ऐसा जीवन था, जिसको सच्चे रूपमें सार्वजनिक जीवन कहा जा सकता है। वे कितनी ही संस्थाओंके जन्मदाता थे। उनके द्वारा कितनी ही संस्थाएँ चल रही थीं। वे स्वयं कोई व्यक्ति थोड़े ही थे। वे तो व्यक्तिके रूपमें एक महान संस्था थे। उनके जीवनका बड़े-से-बड़ा हिस्सा, बड़ी-से-बड़ी शक्ति और ज़्यादा-से-ज़्यादा धन देश-सेवामें लगा। आज उनके वियोगमें कितने ही लोग यह अनुभव कर रहे होंगे कि हमारा पिता, हमारा भाई, हमारा अभिभावक, हमारा सहायक और सलाहकार उठ गया। आप पूज्य गांधीजीके बड़े-से-बड़े सहायक और काम करनेवाले थे। आपपर बापूजीका असीम विश्वास और अनुराग था। वे आपको अपना एक अंग ही मानते रहे हैं। आप उनके पंचम पुत्र थे। जो लोग उनके निजी सम्पर्कमें आए हैं, उनके हृदयोंमें तो उनकी स्मृति सदा अमर रहेगी।

वर्धा, १४ फरवरी

शामको सात बजे गाड़ी वर्धा पहुँची। इसी समय जमनालालजीका दाह-संस्कार गोपुरीमें हुआ था। इस समय उस स्थानपर प्रार्थना हो रही थी। मैं सीधा वहीं गया और प्रार्थनामें शरीक हुआ। प्रार्थना तो शान्ति प्रदान करती ही है, फिर प्रार्थना करनेवालोंका दिल तो जमनालालजीके प्रति श्रद्धासे भरा हुआ था। शोक भी था, पर उस स्थानका वातावरण निहायत शुद्ध, शान्त और गम्भीर था। प्रार्थनामें महिला-आश्रमकी बहनें, नालवाड़ी-आश्रमके लोग तथा गोपुरी और जमनालालजीके परिवारके लोग थे। प्रार्थनाके बाद जानकी बहनसे मिला। वे एक सफ़ेद साड़ी पहने निहायत गम्भीर और उदास मालूम होती थीं। मेरा तो दिल भरा आता था, पर जानकी बहनने एक भी आँसू नहीं निकाला और कहा कि उनकी मृत्यु हम लोगोंके लिए चाहे जितनी भी दुखद है, पर वे बड़ी शान्ति और शुद्धतासे मरे। उनकी-जैसी मृत्यु किसे मिल सकती है? और भी बहुत-सी बातें हुईं। जानकी बहनका धैर्य और हिम्मत सराहने लायक है। जमनालालजीकी मृत्युके बारेमें किसीको कुछ कहना और समझाना मुश्किल है। हिन्दुस्तानके हज़ारों कार्यकर्त्ता क्या सोच रहे हैं, क्या अनुभव कर रहे हैं, बताया नहीं जा सकता; फिर यहाँके लोगोंकी, यहाँके कार्यकर्त्ताओंकी तो बात ही क्या? महिला-आश्रमकी पचासों बहनों को देखकर, उनकी आकृतिसे प्रकट होनेवाली भावनाओंको देख कर, ऐसा लग रहा था कि उनकी कोई ऐसी चीज़ चली गई है, जिसको पाना उनके लिए दुर्लभ है। और भी अनेक लोगोंकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसी ही हालत थी। तो भी यहाँ आचार्य श्री विनोबाने एक आध्यात्मिक वातावरण पैदा कर रखा है। पूज्य गांधीजीने जो भावना भर रखी है, उससे सारे लोग शान्त प्रार्थना और अपने-अपने काममें लगे हुए हैं।

रास्तेमें नागपुरमें ही श्री विनोबा मिल गए। गाड़ीमें उनसे जमनालालजीके बारेमें बातें होती रहीं। 'जमनालालजी रक्तके दबावके कारण मरे, यह पहले मालूम न हो सका।'—श्री विनोबाने कहा। मैंने कहा—'यदि पहले मालूम हो जाता, तो शायद बच जाते?' श्री विनोबाने कहा—'नहीं, मृत्युका समय ही नहीं, स्थान भी निश्चित है।' यह बात मेरा विवेक स्वीकार नहीं करता। पर मेरा विवेक कितना? श्री विनोबा पहुँचे हुए सन्त हैं, विचारक हैं। वे जो-कुछ कहते हैं, उसमें कुछ सार अवश्य होगा।

१५ फरवरी

गोपुरीमें, जहाँपर जमनालालजीकी दाह-क्रिया हुई है, वहाँ जिस झोंपड़ीमें जमनालालजी रहते थे, भजन, हवन और रामायणका पाठ होता है, जिसमें मैं भी सम्मिलित हुआ। महिला-आश्रमकी बहनें तथा और कार्यकर्त्ता तथा जमनालालजीके परिवारके लोग भी थे। एक सात्विक भावनापूर्ण वातावरण पैदा हो गया था। मृत्यु तो अनिवार्य है, वह अवश्य आती। इसमें विशेष शोक न करके जीवनमें शिक्षा ली जा सकती है, पवित्रता लाई जा सकती है। यहाँ जो-कुछ हो रहा है, वह इसी विचारसे हो रहा है। स्नान-भोजन करके पूज्य बापूजी और श्री घनश्यामदासजीसे मिलने सेवाग्राम गया। बापूजीने कहा—'तुम तो सिर्फ़ चार-पाँच दिनके फ़र्क़में जमनालालजीकी मृत्युके समय न रह सके।' बापूजीकी आवाज़में दुःख मालूम होता था, फिर उन्होंने कहा—'बीस तक रहनेका विचार है न? बीस तारीखको जमनालालजीके मित्रों, साथियों तथा कार्यकर्त्ताओंकी एक मीटिंग बुलाई गई है, जिसमें जमनालालजीके छोड़े हुए कामोंको कैसे चलाया जाय आदि विषयोंपर विचार किया जायगा।' श्री घनश्यामदास जीसे कई तरहकी बातें हुईं।

१८ फरवरी

सुबहका सब कार्य जैसे रोज़ करता हूँ, किया। श्री आनन्दमयी माँ आज यहाँ आई हैं। इनको एक पहुँची हुई साधिका बताया जाता है। श्री जमनालालजीपर इनका बहुत प्रभाव पड़ा था। वे इनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे। मैं भी उनके दर्शन करने गया। पहुँचे हुए लोगोंको पहचाननेके लिए जिस पहुँचकी ज़रूरत है, वह तो मेरे पास नहीं है; पर यों साधारणतः कोई खास बात मुझे उनमें नहीं मालूम हुई। हाँ, उनका स्वभाव आनन्दमय ज़रूर है। वे खूब हँसती रहती हैं और एक प्रकारसे पागलकी-सी बातें करती हैं। पता नहीं, पहुँचे हुए सभी लोग क्या इस तरह ही किया करते हैं। देखनेमें ऐसा ही आया है कि जिन साधु-सन्तोंको पहुँचा हुआ बताया जाता है, उनमें अधिकांश, पागलोंकी-सी बातें ही किया करते हैं और शरीरकी संभाल कम रखते हैं। हो सकता है कि पहुँचे हुए लोग इस तरह रह सकते हैं; पर ढोंगी लोग ऐसा करके लोगोंको ठगते भी हैं। मेरी समझमें तो आज ज़रूरत है ऐसे लोगोंकी, जो समाजमें कुछ काम करें। यदि वे पहुँचे हुए हैं, आध्यात्मिक सिद्धि उन्होंने हासिल की है, तो वे अपने प्रभावसे जनताको प्रभावित करके उसे कर्मनिष्ठ और सत्यवान बनावें।

२० फरवरी

सुबह साढ़े सात बजे गोपुरीमें होनेवाली रामायणकी कथामें शरीक हुआ। दो बजे पूज्य बापूजीने जमनालालजीके मित्रों और सहयोगियोंकी जो सभा बुलाई थी, उसमें बाहरके अनेक अच्छे कार्यकर्त्ता और नेता भी शरीक हुए। पूज्य गांधीजीने क़रीब सवा घण्टे तक बोलकर जमनालालजीके साथका अपना सम्बन्ध बतलाया और कहा कि 'उनके काम और उन कामोंकी ज़िम्मेदारी जो अब पीछे रह गए हैं—जिनका जमनालालजीके साथ सम्बन्ध तथा प्रेम था और जो जमनालालजीको श्रद्धा करते थे—उन सबपर आ गया है। जानकी बहनका त्याग, तथा जमनालालजीने सार्वजनिक सेवा-कार्यके लिए जो रक़म निकालने का विचार किया था—जो क़रीब ६ लाख है—वह उनके लड़कोंने दे दी है। उनका बँगला और अतिथि-गृह भी सार्वजनिक कामोंमें जैसे पहले आते थे, वैसे ही अब भी आयँगे। जानकीदेवीने अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति, जो क़रीब ढाई लाख है, सेठजीके आखरी काम गो-सेवा-संघके लिए दी है। इस प्रकार जमनालालजीकी सम्पत्तिसे साढ़े आठ लाख रुपया और मकान आदि अलग सार्वजनिक कामोंके लिए या यों कहिए कि जमनालालजीके चालू किए हुए कामोंके लिए दिए गए।' महात्माजीने सारी बातें बड़ी गम्भीरतासे कहीं। कई बार वे बोलते-बोलते विह्वल भी हुए और बोले कि लोगोंपर नैतिक प्रभाव पड़े। वे अपने-आप सोचें कि जमनालालजीके लिए उनको क्या करना चाहिए। इसीपर उन्होंने विशेष ज़ोर दिया। कोई निश्चित योजना या काम करनेकी बात उन्होंने नहीं कही। लोग चाहते थे कि एक बड़ी रक़म इकट्ठी करके जमनालालजीका स्मारक स्थापित किया जाय। पर महात्माजीने इस बारेमें कुछ कहा नहीं। उन्होंने सारी बातें धार्मिक भावसे ही कहीं। लोग खुद सोचें और अपने-आप जो करना चाहें, वही करें। दबावसे या संकोचसे वे इस विषयमें कुछ करना नहीं चाहते। वे बहुत गम्भीर थे। उन्होंने कहा कि जमनालालजी तो अनेक काम करते थे, पर जमनालालजी राष्ट्रभाषाका प्रचार भी करते थे। इसलिए लोगोंको राष्ट्रभाषा (हिन्दुस्तानी) सीखनी चाहिए। हिन्दी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वालोंको उर्दू और उर्दूवालोंको हिन्दी सीखना ज़रूरी है। यहाँ जो लोग हैं, उनको उर्दू ही सीखना है, तो वे आजसे ही क्यों न सीखें। यह तो जमनालालजीके लिए करना हो चाहिए। तीन घण्टे बाद सभा समाप्त हुई। हम लोग उपस्थित मित्रोंके साथ बैठकर गांधीजीके प्रवचनपर विचार करते रहे। सब मित्रोंने मिलकर यह तय किया कि कम-से-कम ५० हज़ार रुपया खादी-कार्यके लिए कलकत्तेसे गांधीजीको दिया जाय और बम्बई-कलकता मिलकर एक हज़ार साँड़ तैयारकर गो-सेवा-संघको दें। एक हज़ार साँड़ तैयार करनेमें कम-से-कम पाँच लाख रुपया लगेगा और पाँच वर्षका समय भी। इसके लिए दो कमेटियाँ भी बना दी गईं। इसके बाद श्री घनश्यामदासजी तथा दूसरे मित्रोंके साथ सेवाग्राम गया। वहाँपर घनश्यामदासजीने ये सब बातें महात्माजीको बताईं, जिनसे उन्हें खुशी हुई। फिर शामकी प्रार्थनामें शरीक हुआ।

रूसी साधक रोरिक

श्री सत्यपाल विद्यालंकार

कुल्लूकी रमणीक घाटीके उत्तरमें 'नगर' गांवकी एक शान्त, ऊँची चोटीपर रूसी साधक रोरिकको कुटिया है। 'कुटिया' इसलिए कि 'काटेज'का वह एक सुन्दर अनुवाद है; यों वह महलसे कम नहीं। चारों ओरसे फूलों तथा लताओंसे लिपटा यह भवन प्रकृति और पुरुषके मेलकी तरह अपने-आपमें सम्पूर्ण है। बाहर सिंहद्वारपर महात्मा बुद्धकी एक विशाल प्रस्तर-मूर्त्ति प्रतिष्ठित है और भीतर काँसेकी दो-एक मूर्त्तियाँ देवी-देवताओंकी हैं। एक पुजारी इस बातके लिए नियुक्त है कि वह दैनिक पूजा-पाठमें इन दूर देशके यजमानोंका विधि-निषेधके विषम मार्गपर ठीक तरह नेतृत्व कर सके। बदलेमें अपने नियत वेतनके अतिरिक्त उसे विलायती पौधके बढ़िया सेब और रोरिक-परिवारके पौष्टिक मीठे बोल प्रतिदिन मिला करते हैं।

श्री रोरिक चित्रकार, लेखक, कवि, दार्शनिक और स्वप्न-साधक हैं; पर संसार उन्हें चित्रकारके रूपमें ही अधिक जानता है। इस देशकी ओर उनका प्रारम्भिक आकर्षण रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दके साहित्य द्वारा हुआ।

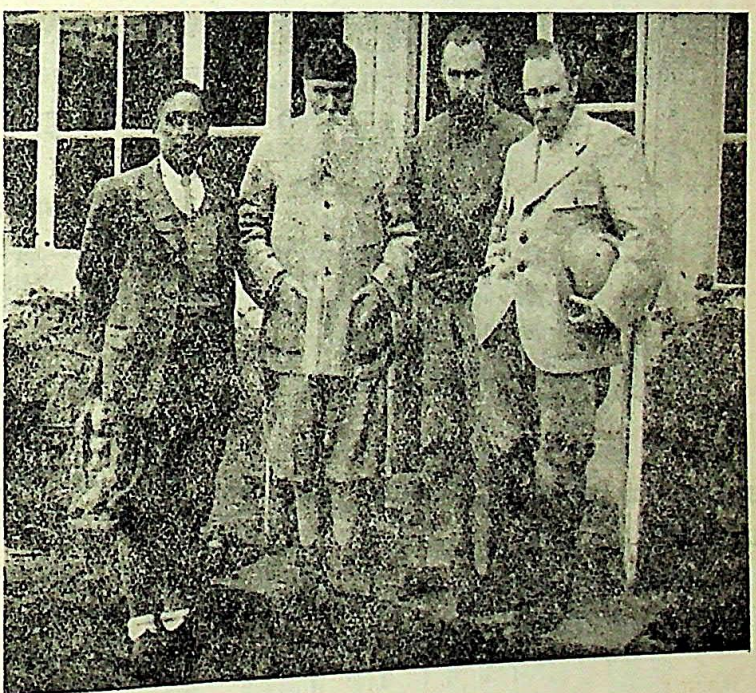

लेखक निकोलाई रोरिक, श्वेतस्लाव रोरिक और जार्ज रोरिकके साथ

सन् १९२३ में श्री निकोलाई रोरिक भारत आए। पर इससे बहुत पहले वे अपने बचपनमें ही भारतवर्ष की घनी उपत्यकाओंके स्वप्न देखा करते थे। उनके पिताकी बैठकमें हिमालयका एक सुन्दर दृश्य टँगा रहता था और बालक रोरिकके मनको नित्य नवीन मुग्धतासे वह भर देता था। भारत आनेसे कोई १८ साल पहले, सन् १९०५ के आसपास, वे कई चित्र और लेख इस देशके सम्बन्धमें प्रकाशित करवा चुके थे। उस समयके उनके चित्रोंमें भारतके स्वप्न, दमयन्ती, लक्ष्मी और श्रीकृष्ण तथा लेखोंमें 'भारतका साधना-पथ', 'गायत्री' आदि प्रसिद्ध हैं।

उनके परिवारमें आज भी भगवद्गीता और रवीन्द्रनाथकी 'गीतांजलि'के प्रति एक गहरी आस्था है। श्री रोरिक जहाँ कहीं जाते हैं, ये दोनों पुस्तकें उनके साथ रहती हैं। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आल्टर हिमालय'में एक स्थानपर वे लिखते हैं—"हे भारत देश, हम तुम्हारी दिव्य सुगन्धसे परिचित हैं, तुम्हारे विचारोंकी गहराई और प्रबल प्रेरणासे हम प्रभावित हैं और तुम्हारे 'ॐकार'से हमारा हृदय निनादित है! हे भारत, तुम्हारे प्राचीन ऋषियोंके आगे हम नतमस्तक हैं और उनके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रिकालदर्शी साहित्यके आगे भी!" इस देशको श्री रोरिकका सबसे पहले परिचय देनेका श्रेय 'माडर्न रिव्यू'को है। सन् १९२१ में पहले-पहल श्री जोसेफ़ फ़िंगरने इस रूसी साधकको बहुमुखी प्रतिभा और अन्तर्मुखी साधनापर एक सुन्दर लेख 'माडर्न रिव्यू' में लिखा था।

इंग्लैण्डवालोंने इस कलाकारकी उपमा गाजिन और सेबेलसे, फ्रेंच कलाकारोंने मोरेसे, जर्मन कलाकारोंने वागनरसे और इटलीके कला-पारखियोंने बेनोज़ो, गाज़ली वा ड्यूकोसे दी है। परन्तु एक बातपर उनके सभी प्रशंसक एकमत हैं और वह है

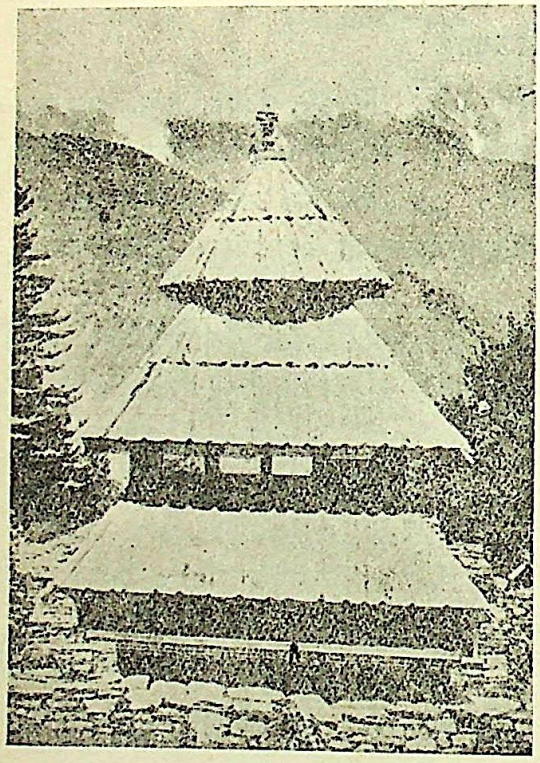

नगरमें 'त्रिपुरासुन्दरी'का मन्दिर

उनकी कलाकी मौलिकता। मक्सिम गोर्कीका कहना है कि कलाकार रोरिक संसारके सबसे महान् स्वप्नदर्शी हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने एक बार रोरिकको लिखा था—'आपकी कला-वृत्तियोंसे मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ, क्योंकि उनमें बुद्धिवादीकी-सी एक तीव्र स्पष्टता है और साथ ही रहस्यमयता भी। उनकी मौलिकता ईर्ष्याकी वस्तु है।' उनकी चित्रकलाका आनन्द लेना हो, तो बनारसके भारत-कला-भवनमें रखे मुक्तिदाता बुद्ध, कल्की-अवतार, वैद्य चरक; इलाहाबादके म्युनिसिपल चित्रागारमें अर्हत, गुगा चौहान, मैत्रेय और कलकत्तेके बोस-इंस्टीट्यूटमें सन्तान, जीवन-स्रोत आदि चित्रोंके दर्शन करने चाहिएँ। पर सच्चे खोजीको तो हम यह सलाह देंगे कि वह सीधे नगर जाकर कलाकार रोरिक और उनके कला-स्रोतके दर्शन करे और वहाँकी उरुध्वती हिमालय-दर्शन-संस्थाके भीतर जाकर एक-एक कृतिको ध्यानपूर्वक देखे। मद्रासके अडयार-चित्रागारमें, शान्तिनिकेतनके चित्र-संग्रहमें, त्रावणकोरके श्रीचित्रालयमें और मैसूरके राजकीय चित्रागारमें भी उनकी कृतियोंका संग्रह किया गया है।

पिछले दिसम्बरमें हमें क्रिसमसकी छुट्टियोंमें कुल्लूकी सैर करनेकी सूझी। वर्षोंसे इस रूसी साधककी प्रशंसा सुन रखी थी। इसके अतिरिक्त पहाड़ोंपर बर्फ़ गिरनेका अद्भुत दृश्य भी एक प्रमुख आकर्षण था। रोरिककी कुटियापर पहुँचते ही पूरे ६ फीटके सफ़ेद लम्बी दाढ़ीसे युक्त, भव्य लाल चेहरेसे दीप्तिमान श्री रोरिक हमारा अभिनन्दन करने आए। अधपके पर मधुर हिन्दीके बोल उनके मुँहसे सुनकर हमारा हृदय मुग्ध हो गया। इसके बाद मुँह मीठा करनेके लिए उनसे भी अधिक लाल-लाल सेबोंसे भरी एक तश्तरी हमारे सामने लाई गई। हमारे आग्रह और संकोचको परे ठेलकर वे स्वयं सेब छील-छीलकर हमें देने लगे। हम अबोध बालकोंकी तरह सेबके टुकड़े लेकर मुँहमें डालते चले गए। रोरिकका पूरा नाम निकोलाई कास्टेण्टिनोविच रोरिक है। उनके दो लड़कोंका नाम क्रमशः श्वेतस्लाव रोरिक और जार्ज रोरिक है। अपने पुत्रसे परिचय कराते हुए उन्होंने कहा—'आप जानते हैं कि श्वेतस्लाव नाम भारतके एक प्राचीन ऋषिसे मिलता-जुलता है।'

इसके बाद हमने उनसे रूसके सम्बन्धमें अनेकानेक प्रश्न किए। हमने देखा कि बालकोंके-से उत्साह वा चावके साथ हमारे ८० वर्षके वृद्ध मेज़बानने हमारे एक-एक प्रश्न का उत्तर देना शुरू किया। अनेक रूसी प्रथाओंका परिचय उन्होंने दिया। रूसी भाषाके अनेक शब्दोंको संस्कृतके साथ समीपता दिखलाई। इस देशके प्राचीन साहित्यके सम्बन्धमें उनकी गहरी अभिज्ञता देखकर हमें आश्चर्य हुआ। श्री रोरिक कहने लगे—'हमारे देशवासियोंकी सदासे भारतके कवियों और दार्शनिकोंके प्रति बड़ी आस्था रही है। और सच तो यह है कि रूसी और भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिसे और किन्हीं भी दो देशोंकी अपेक्षा परस्पर अधिक समीप हैं। हम दोनों तो भाई-भाई हैं।'

रोरिक-परिवारमें हमें श्री श्वेतस्लाव रोरिक बड़े आनन्दी जीव मालूम हुए। अपने पिताकी तरह वे भी एक अच्छे चित्रकार हैं। अभी हाल ही में उनका विवाह प्रसिद्ध अभिनेत्री श्रीमती देविकारानीसे हुआ है। उनके स्वभावमें एक ऐसी सुगमता और शालीनताका सम्मिश्रण हमें अनुभव हुआ कि उनका व्यक्तित्व हमारे हृदयपर अंकित हुए बिना न रह सका। नगरके चारों ओरका समूचा वातावरण रोरिक-परिवारके व्यक्तित्वसे ओतप्रोत है। गाँवके जीवनपर उनकी एक स्पष्ट छाप दिखाई देती है। पासके 'त्रिपुरासुन्दरी'-मन्दिरके उत्सवोंके आयोजनों तकमें उनका हाथ है। संक्षेपमें 'नगर' गाँवका यह रूसी साधक अपना व्यक्तित्व रखते हुए भी गाँवके जीवनमें घुल-मिल गया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्या कला मनुष्यका पतन है ?

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

'प्रकृतिका पतन मनुष्यमें होता है और मनुष्यका पतन होता है कलामें।' बिना किसी भी आवेश या उत्तेजनाके मैं यह वाक्य कह बैठा। सामनेवाले मित्र, जो मुझे अपना एकांकी सुना रहे थे, बीच-बीचमें नाट्य-सिद्धान्त और पद्धतिके प्रसंगको लेकर मुझसे उलझते हुए आगे बढ़ रहे थे। मेरी आँखें जो उनकी ओर घूमीं, तो मैं सजग हो उठा। उनको शायद कहीं चिनगारी छू गई थी। आकृतिका रंग लाल, आँखें खिंचीं-सी, लम्बा उभरा ललाट, बाएँ हाथसे वे अपने लम्बे बाल पीछेकी ओर दबा रहे थे, जिनमें उनकी उँगलियाँ डूब चुकी थीं। इस तरह बालोंके साथ त्वचाके खिंच उठनेसे ललाट और भी प्रशस्त हो उठा था। घोंघी नुकीली नाक उस पल तो एक ओर झुकी जा रही थी। भावुक साहित्यकारके भीतर समुद्रके तूफ़ानकी तरह कोई चीज़ चल रही थी। मैंने सोचा, बीचसे ही रोकना ठीक न होगा, किनारे तक आ जाय।

'तो यह जो मैंने कहा, उसीका उत्तर है ?' उनका स्वर कुछ उत्तेजित था। कुछ देर तक हम लोग और मौन रहे। फिर मैंने कहा—'आपने अभी जो कहा है, पूरे साहससे आपको उसे स्वीकार करना होगा। पूरे साहससे कहनेवाले लोग दूसरे होते हैं, जो बुद्धिके अभिनयसे यथार्थको एकदम मिटा देना चाहते हैं। तुम्हारे एकांकीमें, जो मैं अभी सुनता हूँ, केवल बुद्धि है। आदमीका मेरुदण्ड तो उसमें लुप्त हो चुका है। पुरुष होनेके नाते पुरुष-चरित्रोंको तुम अपने नाटकमें चाहे जैसा गढ़ दो तथा रक्त, मांस, अस्थि और मज्जासे तुम उन्हें बिलकुल अलग कर दो; किन्तु जब अपने नारी-चरित्रोंमें भी तुम यही काम करते हो, तो तुम उन्हें इस लायक़ भी नहीं छोड़ते कि वे गर्भको भी वहन कर सकें।'

'लेकिन नारी गर्भका भार बराबर वहन करती रहे, इसकी चिन्ता आपको इतनी अधिक क्यों है ? कोई दिन आ सकता है, जब वह ऐसा करनेसे एकदम इन्कार कर दे। हमारी इस पृथ्वी, इस नितान्त छोटे ग्रहकी प्रकृतिमें तुम इसकी सम्भावना भी देख रहे हो, या किसी दूसरे महाग्रहके सम्बन्धमें यह तुम्हारी धारणा है, जिसका पता अभी हमें नहीं है ? प्रकृतिको और अधिक बोधगम्य बनानेकी बातको मैं साहित्यकारसे ले सकता हूँ; किन्तु जब वह उसे एकदम उलट देनेकी···'

'तो अब आप बुद्धिवादसे भाग रहे हैं; लेकिन सबसे पहले अपने नाटकोंमें बुद्धिवाद लेकर आप ही आए भी थे। मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ, शायद "मुक्तिका रहस्य"की भूमिका अब आप भूल गए हैं।'

'मैं बुद्धिवादको लेकर चला था यथार्थको खोजके लिए, अब तुम्हारा बुद्धिवाद यथार्थको मिटाने चला है।'

'और आप अब कहने लगे हैं कि कलाकी साधनामें मनुष्य का पतन होता है।'

'देखो जी,···साधना, तपस्या, प्रेम और ईश्वर—इन शब्दों को इतनी आसानीसे नहीं निकलने देना चाहिए। इन शब्दोंके प्रयोगके लिए हमें कुछ अधिक संयम और सावधानीसे काम लेना चाहिए। जिस समय तुम कहने लगते हो कि तुम साधक हो, तब तक तुम्हारी सारी साधना मिट चुकी रहती है। कलाके साथ जो बार-बार साधनाका नाम लिया गया, उसने कलाकी सारी मान्यताएँ मिटा दीं।···हिन्दी-साहित्यमें इस तरहकी अनेक बातें कही जा रही हैं। जितने लेखक हैं, प्रायः उतने दृष्टिकोण और उतने वाद भी चल रहे हैं। अभी उस दिन मेरे एक मित्रने कहा था कि हिन्दी-साहित्यमें बाढ़ आई है और अपने साथ ढेर-की-ढेर वस्तुएँ उखाड़ती जा रही है। लोगोंकी वेश-भूषा तथा बैठनेके तरीक़े जैसे एक-दूसरेसे एकदम बाज़ी मार लेना चाहते हैं। आप लोग जो साहित्यकार या अब कवि, कहानी-लेखक, नाटक-लेखक हैं, सभीके लिए कलाकार शब्दका प्रयोग किया जाता है। मेरा मतलब है कि हिन्दीमें जितने क़लम चलानेवाले हैं आप सब लोग, आपके साथी, आलोचक, प्रशंसक और निन्दक, इन्हें छोड़कर और लोग किसी गम्भीर भावनासे आपके साहित्यकी ओर नहीं देखते।'

'तो आप साफ़-साफ़ यह क्यों नहीं कहते कि हमारा समाज हमारे साहित्यकी उपेक्षा करता है ?'

'इसलिए कि यह बात कुछ लगनेवाली है।'

'बिलकुल नहीं,'—मैंने कहा—'इससे तो हमें अपनी ठीक स्थितिका पता चलता है। हम जान जाते हैं कि हम अपने समाजके उपयोगी अंग हैं या नहीं। कम-से-कम हमारा समाज हमें उपयोगी नहीं मानता। विदेशी लेखककी पचास लाख प्रतियाँ जहाँ निकल जायँ, वहाँ किस हिन्दी-लेखककी किसी पुस्तककी पाँच हज़ार प्रतियाँ भी निकली हैं ? इसके कारणके लिए समाजको दोष देना व्यर्थ होगा। हमारा आधुनिक साहित्य शायद अपनी समाधिके लिए बराबर एकान्त खोजता रहा है। समाजसे विमुख रहनेकी प्रवृत्ति पूरे-के-पूरे छायावादमें देखी जा सकती है। हम जो बराबर समाजकी उपेक्षा करते रहे हैं, समाजसे किस दूसरी बातकी आशा कर सकेंगे ? जिस अंश तक हमने समाजकी उपेक्षा की है, उसी अंश तक प्रकृतिका पतन हमारे भीतर हुआ है और उसी अंश तक हमारा भी पतन कलाके भीतर हुआ है।'

आज हमारे साहित्यमें एक ही साथ जो इतने साधक, स्रष्टा

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और विचारक हर गलीके मोड़पर मिलते हैं और जो अलग-अलग अपनी दुनिया बसाते चले जा रहे हैं, उन्हें कुछ देर रुककर अपनी और अपनी साहित्य-सृष्टिकी स्थितिको देखना होगा। उन्हें देखना होगा कि उनकी स्थिति समाजमें कहाँ है? इसके साथ उन्होंने कौन-सा लगाव पैदा किया है? उनकी सृष्टि इस व्यापक सृष्टिकी संगतमें बैठ सकी है या नहीं? अस्वीकार कर देनेके बाद हम अपना आधार खो देते हैं, जब तक कि हम फिर कुछ स्वीकार नहीं करते। हमारा यह स्वीकार या अस्वीकार हमारी बुद्धिका नहीं, हमारी स्थितिका होना चाहिए, जिसे हम जीवन कहते हैं। अदालतोंमें हम बुद्धिका कौशल नित्य देखते और सुनते हैं। हमने निर्दोषको फाँसीपर झूलते भी देखा है और यह भी देखा है कि बुद्धि और युक्तिने अपराधीको न्यायकी पकड़से बाहर निकालकर फिरसे समाजमें सर्वोन्नत रहनेका अवसर दिया है। केवल साहित्य और कलामें ही नहीं, हमारी स्थितिके हर क्षेत्रमें हमारी बुद्धि यथार्थको विकृत करती रही है, और उसके साथ-ही-साथ हमारा जीवन भी विकृत होता गया है। हम चिकित्सक नहीं, रोगी भी नहीं; स्वयं रोग बनकर अपने समाजमें संक्रामक हो रहे हैं।

सत्य विशुद्ध विचार हो नहीं है। इसे तो हम केवल विचार और क्रियाकी संगतिमें पा सकते हैं—उस संगतिमें, जो बुद्धि और स्थितिके—स्वप्न और तथ्यके—मेलमें पैदा होती है। इसीलिए वैज्ञानिक और कलाकारके क्षेत्रमें कोई मौलिक भेद नहीं है। वैज्ञानिककी तरह कलाकार भी बार-बार यथार्थके सम्पर्कके लिए जैसे अपने व्यक्तित्वके आकर्षणसे छूट जाता है। कलाकार और वैज्ञानिक दोनों ही अपने व्यक्तित्वसे मुक्त होकर अपने बाहर सत्यकी अनुभूति और प्रतिष्ठा करते हैं। कलाके जिस निर्माणमें कलाकार स्वयं अपनेसे मुक्त नहीं हो पाता, उस कलामें उसका पतन होता है। साहित्य और कलाकी भारतीय परम्परामें जो हम कलाकारके हृदयकी धड़कन नहीं देखते, इसके मूल तक पहुँचनेके लिए केवल विचार-पद्धतिसे काम नहीं चलेगा। इसके लिए हमें कलाके वैज्ञानिक मूल तक जाना होगा, और कलाके वैज्ञानिक मूल तक जानेका मतलब होगा मनुष्यके वैज्ञानिक मूल तक जाना। यह मनुष्यका वैज्ञानिक मूल मनुष्यके अवतारसे बहुत पहले पशु-जगतसे भी आगे बढ़कर वनस्पति-जगत तक जा लगा है। मनुष्यके विकासकी यह कथा अपने साथ वनस्पति और पशु-जगतके सारे-के-सारे तथ्य ढोती चली आ रही है। हमारी बनावटका दशांश ही अभी चेतन या ठीक अर्थमें बौद्धिक होनेके कारण मनुष्य हो पाया है; किन्तु शेष तो अभी वही है, जो पशुका है। जिसके लिए हमने अर्धचेतन या अचेतनका नाम दिया है, कला भी तो अपने आरम्भमें इसी अचेतनका व्यापार है, जिसमें वासनाएँ और यौन-वृत्तियाँ मनोवेगोंके रूपमें अपना काम करती रहती हैं। इन मनोवेगोंकी स्वतन्त्र सत्ता और इनके [illegible] को बुद्धिसे पैदा हुए भ्रामक शब्दों और वाक्योंसे हम बदल नहीं सकते। महादेवी वर्मा और कभी-कभी सुमित्रानन्दन पन्त भी जब इस तरहकी कोशिश करते हैं, तो हमें ऐसा लगता है, वे अपने मनोवेगोंपर अधिकार न कर वे पाठकोंकी बुद्धिपर अधिकार पाना चाहते हैं। महादेवी वर्मा और पन्त केवल विवेचनके क्षेत्रमें एक ही तरह चलते हुए देखे जा सकते हैं। जहाँ तक कृतिकी बात रही, वहाँ तो इन दोनोंका भेद बहुत स्पष्ट है, और वहाँ इन दोनोंको मिलते हुए मैंने कहीं नहीं देखा। अपनी काव्य-कृतिमें पन्त सब कहीं अपने व्यक्तिसे मुक्त हैं; किन्तु महादेवीको यह अवसर कहीं नहीं मिला। यह भेद तो पन्त और महादेवीके प्रकृतिका भेद है। प्रकृतिने पन्तके भीतर अपनेको जिस रूपमें खोला है, ठीक उसके विपरीत उसने खोला है अपनेको महादेवीके भीतर। यहाँ पन्त और महादेवी दोनों विवश हैं।

'वियोगी होगा पहला कवि,
आहसे निकला होगा गान।'

में संगीतकी सम्भव उपज पन्तकी बुद्धिके लिए कविके विरहसे हो सकी है। किन्तु कविके विरहसे बहुत पहले जब मनुष्य कवि इस पृथ्वीपर नहीं आया था, तभी पशुओंकी रतिकी ध्वनियें संगीत पैदा हो चुका था। मनुष्यकी कलाओंमें संगीत सबसे पुराना है। मनुष्यने उसका निर्माण नहीं किया, केवल संस्कार किया। जिस कलाका मनुष्यको अभिमान है, मनुष्यके आनेके पहले ही वह प्रकृतिमें, प्रकृतिके जीवोंमें, जन्म ले चुकी थी। असहाय, नग्न और रोमश मनुष्य अपनी आरम्भकी स्थितिमें इस डालसे उस डाल और इस गुहासे उस गुहामें छिपकर, भागकर सबल जीवोंसे अपनी रक्षा करता रहा। शब्द अभी उसे नहीं मिले थे। विवेचनकी शक्ति अभी उसमें नहीं आई थी कि वह गा उठे—'सजनि मुझे निजत्व दे कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं?' पर इस युगका मनुष्य उस इस स्थितिमें आ गया है कि संस्कृति और कलाके नामपर उसने अपने चारों ओर जो बुद्धिका आवरण पैदा कर लिया है, उसे हटा कर अपनी और अपनी कलाकी सही स्थिति देख ले। संगीत पैदा हुआ था पशुकी रतिके समयकी ध्वनिमें। मनुष्यको संगीतका पहला पाठ भी वहीं मिला था। संगीत, चित्र और काव्य, जिसके लिए मानवी बुद्धिने स्वर्ग और संकल्पके कितने ही मनोहर मुकुट बना लिया है, अपनी मूल स्थितिमें तो यौन-आकर्षण या दूसरे शब्दोंमें काम-केलिकी ही उपज हैं। कलाके इस सत्यसे बचकर विद्रूप विवेचनमें अपनी रक्षा कर लेनेकी भावना इधर महादेवी वर्मामें बहुत बढ़ रही है। थोड़ी देरके लिए वे शुद्ध विचारसे अपनेको बाँध लें; लेकिन तब जीवन विचारके अनुमानपर खड़ा भी होने हो सकेगा? जीवनके जो तकाज़े और जो आग्रह हैं, उनसे बचने के लिए पातंजलिके योगसे शायद कुछ निर्वाह हो

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सके ; पर पाठकोंकी बुद्धिपर सम्मोहनसे काम न चलेगा।

कलाका आधार सम्मोहन मान लेनेमें मुझे कोई भी आपत्ति नहीं। किन्तु कलाकारका आधार यदि सम्मोहन मान लिया जाय, तो हमारी सारी स्थिति भ्रमपूर्ण हो उठेगी। आधुनिक हिन्दी-साहित्यमें अधिकांश लेखकोंको स्थिति भ्रमपूर्ण हो भी चुकी है। कलाका उद्गम और उसके भौतिक कारणकी जानकारीके अभावमें (या कहीं-कहीं जानकर भी केवल बुद्धिके माध्यमसे कुछ लोगोंने जो अपनी रुचि बना ली है, जिसमें जीवन सब ओरसे सुन्दर, पूर्ण चेतन और पूर्ण प्रकाश बनकर काल्पनिक हो रहा है) साहित्य और कलाके नामपर हम भ्रम और असत्यके व्यापारमें जा पड़े हैं। कलाकार आसानीसे मान लेते हैं कि उनकी कला किसी देवी, किसी स्वर्गीय वरदानकी तरह उन्हें मिली है। यह उनका अपना भ्रम है। और यह भ्रम सैकड़ों छापाखानोंसे निकलकर साहित्यके रूपमें समाजमें फैल रहा है। जीवनकी यथार्थ धारणा, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक अनुभूति हमें उस जगह तक पहुँचा देती है, जहाँ हम सब-कुछ देखने लगते हैं। सूर्यकी प्रखर किरणोंमें बुद्धि और वाणीके बादल छिन्न-भिन्न हो उठते हैं। सब-कुछ देख लेनेकी यह स्थिति कलाको आज तक जीवित रखनेमें सहायक हुई है। केवल कर्मके भीतरसे पैदा हुई अनुभूति रचनात्मक हो पाती है। जीवनकी स्थिति निरन्तर नई उलझन और नई जटिलताएँ पैदा करती चली जा रही है। मनुष्य आवर्त्तनके इस चक्रसे छूटकर स्वतन्त्र विचारकी स्थिति कभी पा नहीं सकता। फिर क्रोध आ जानेके बाद मनुष्य बुद्धिसे उसके कारण और निराकरणपर विचार करेगा। सदैवके लिए उसपर विजय पानेका दावा बुद्धिने अभी नहीं किया। जितने भी हमारे मनोवेग हैं, इसी तरह बुद्धिकी पकड़के बाहर रहते हैं। 'तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय'—किसी दिन सब ओरसे हारकर किसी निष्ठावानको बुद्धिने यह कहा था। लेकिन इस पराजयमें भी उस मनीषीने प्रकृतिकी, मनुष्य और मानव-समाजकी, स्थितिको ठीक-ठीक देख लिया था। उसने देखा था भ्रम और वंचनासे काम न चलेगा। प्रकृतिमें जो तथ्य है, सदैव मंगल है। उसे सुन्दर या असुन्दर कहनेका मनुष्यको अधिकार नहीं है। यथार्थ की धारणा उसकी सबसे बड़ी सिद्धि है। उससे भागकर भी वह बच नहीं सकता। इसलिए सजग होकर वह उसे स्वीकार करता है। और यही स्वीकृति जीवनकी स्वीकृति है, कलाकी स्वीकृति है। इस स्थितिमें किसी भ्रम या विडम्बनाकी जगह नहीं है।

कलाका उद्गम और उसकी धारणा

क्या कलामें मनुष्यका पतन होता है, इस सूत्रको खोलनेसे पहले मैं कलाका उद्गम और उसकी धारणाके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा। इसमें पन्त, तुलसीदासको भी देख सकेंगे और मीराको भी, पन्तको भी देख सकेंगे और महादेवीको भी। फ्रायडके शब्दोंमें 'संस्कृतिके विकासका तत्त्व अब हमारे लिए रहस्य नहीं रहा है। जीवन और मृत्युके मनोविकार जो मानवी जीवनमें व्यापार करते हैं, उनकी सही अनुभूतिमें हम इसे जीवन और मृत्युके संघर्षमें देख सकते हैं।' कलका आधार यही जीवन और मृत्युका संघर्ष है। जहाँ जीवन प्रबल है, वहाँ तुलसी और पन्त हैं, और जहाँ मृत्यु प्रबल है, वहाँ मीरा और महादेवी हैं। 'महादेवीकी आलोचक दृष्टि' ('विशाल भारत', अप्रैल, १९४४) में प्रो० नगेन्द्रने लिखा है—"सामंजस्यद्रष्टा महादेवी 'उग्र' या 'अंचल'को क्षमा नहीं कर सकतीं।" लेकिन यह सामंजस्य मनुष्य की सही स्थितिको गोपनीय बनानेके लिए बुद्धिने पैदा किया है—उस बुद्धिने, जो यथार्थका भार उठानेमें निर्बल रही है। सामंजस्यका वजूद प्रकृतिमें नहीं है। सारा-का-सारा प्राणिजगत् विरोधी तत्त्वोंके संघर्षमें ही विकसित होता आया है। इस संघर्षके अभावमें महादेवी 'उग्र' या 'अंचल'को क्षमा न कर सकें, अथवा कभी-कभी तुलसी और पन्तसे भी विमुख हो उठें, तो कोई आश्चर्य नहीं।

विवेकशील कलाकारोंने—जो इस सही स्थितिको समझनेमें समर्थ रहे हैं कि कलाका उद्गम केवल मनुष्य नहीं, सारे प्राणि-जगत्में कामवृत्तिमें हुआ है तथा कलाका निर्माण किया है नरने, मादा उसका संचय करती रही है और इस निर्माणमें नरका नाश होता रहा है—कला-सृष्टिके समय अपने व्यक्तित्वसे अपनेको मुक्त करनेकी चेष्टा की है। इस चेष्टामें जो जितना ही अधिक सफल हुआ है, उसके भीतर प्रकृति उतना ही अधिक चेतन होती गई है, और जिसके भीतर प्रकृति जिस अंश तक चेतन हो पाई है, उसी अंश तक कलामें पतनसे भी वह बच सका है। लेकिन इस कोटिके कलाकार संसारकी कलामें उँगलियोंपर गिने जा सकते हैं। भारतीय पद्धतिके विचारकोंने इस तथ्यको बहुत पहले समझ लिया था, इसीलिए यहाँ हम व्यक्ति-कला न पाकर पद्धति-कला पाते हैं। पश्चिमके संसर्गने हमारी उस पद्धतिको जड़से हिला दिया। पद्धतिको रूढ़िवाद कहकर हमने विद्रोह किया, और उसका फल यह हुआ कि व्यक्तिवादके दलदलमें कलाके भीतर केवल हमारा पतन हुआ है। छायावादके पूरे साहित्यमें पन्त और अंशतः 'निराला'को छोड़कर कलामें इसी तरहका पतन साहित्यकारोंका हुआ है। 'निराला' कवितामें तो अपने व्यक्तित्वसे मुक्त हैं; किन्तु कथा-साहित्यमें वे भी इस व्यक्तित्वके लोभसे न बच सके।

कामातुरता और कलाका प्रभात प्रायः एक ही साथ होता है। एक ही प्रवृत्ति इन दोनों दशाओंमें साफ़-साफ़ देखी जा सकती है। कामकी तृप्तिके लिए प्रेमी प्रेमिकाको लेकर समाजसे दूर—बहुत दूर किसी एकान्त स्थानकी चाह करता है, जहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल वे ही दो प्राणी एक-दूसरेका सारा रस और सारा सुख ले सकें। वह स्थान चाँदनी रातमें नदीका किनारा हो सकता है। किसी पर्वतीय प्रदेशका कोई एकान्त निकुंज भी हो सकता है। तत्त्वकी बात तो यह है कि यह एकान्त, दुनियाकी कशमकशसे निकल जानेकी यह भावना कामके उद्गमके साथ ही उसी अचेतनसे पैदा होती है, जिससे कामकी लालसा पैदा होती है। इस तरह सामाजिक जीवनमें यह काम-वृत्ति स्वार्थका एकाक्ष रूप पैदा करती है। प्रेमी समुदायकी ओरसे मुँह फेरकर बस एक जोड़ेकी दुनिया बनाते हैं, जिसमें उनको छोड़कर और सब मिट जाता है। और ठीक यही बात हम कलाकारकी स्थितिमें भी देखते हैं। उसके लिए भी समाज और यहाँ तक कि कहीं-कहीं सृष्टि भी अवांछनीय हो उठती है। वह भी अकेले रहना चाहता है। यह एकान्तकी वृत्ति कवितामें, कहानीमें, सब कहीं देखी जा सकती है। यहाँ काम और कलाका स्वभाव और व्यापार कुछ ऐसा मिल उठा है कि कामकी कोमलता और कलाकी कोमलतामें भी भेद नहीं। पिछले युगमें हिन्दी-साहित्यकारोंकी शरीर, त्वचा, केश, अंग और वेश-विन्यासकी कोमलतापर जो अधिक नज़र रही है, वह भी इस स्थितिका सही सबूत है। प्राचीन साहित्य और कलामें भी शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंकी जो फूलोंसे उपमा दी गई है, वहाँ भी यही तत्त्व है। कलाका उद्गम कामकी वृत्ति है। साधारणतः पाठक इस स्थितिको पसन्द न करेंगे; किन्तु है यह यथार्थ। और जो यथार्थ है, उसमें पसन्द और नापसन्दकी बात चल नहीं सकती। अवस्था बढ़नेके साथ अवश्य ही बुद्धि और अनुभूति बढ़ती है। किन्तु कलाकी सृष्टि कलाकार कर सका है केवल अपनी जवानीमें। १५ से लेकर ६०-६५ वर्षकी अवस्था तक कला और साहित्यकी रचना देखी गई है। किन्तु इस रचनामें जो-कुछ भी गौरवशील रहा है, वह तो २० और ३० तथा कभी-कभी ४० वर्षोंके भीतर ही समाप्त हो गया है। कला और कलाकारकी यही सही स्थिति है। असलियतके ऊपर एकके बाद दूसरे और इस तरह अनेक पर्दे जो चढ़ा दिए गए हैं। उससे यही नहीं कि कला और साहित्य भ्रमपूर्ण हो उठा है, बल्कि साहित्यकार और उसके समाजका जीवन भी भ्रमपूर्ण हो उठा है। भ्रमकी कोई भी पद्धति जादूके खेलकी तरह रोचक हो सकती है; लेकिन इस सस्ती रोचकताके लिए न तो मनुष्य है और न उसकी कला। मनुष्य अपने चेतनका दम्भ इसलिए नहीं करेगा कि उसने रोचक भ्रम पैदा किया है, बल्कि इसलिए कि उसने यथार्थ देख लिया है और दूसरोंको भी दिखलानेकी क्षमता उसमें है।

कलाका निर्माण नर करता है, नारी उसका संचय और समाधान करती है। नारीका यह संचय और समाधान नरकी सबसे बड़ी तृप्ति है, जिसे कला कहते हैं और जिसमें नरका नाश होता है। रतिके समय नितान्त छोटे जीवोंसे लेकर मनुष्य तक ध्वनि, अंग-संचालन, उस समयका सारा-का-सारा स्वाभाविक व्यापार नरको करना पड़ता है। मादा एक स्थानपर स्थिर रहती है। पुरुषका दान नारी ग्रहण करती है उसकी स्वामिनी होती है। नारी और नरकी प्रकृतिका यह भेद मिटाया नहीं जा सकता। पशु और मनुष्य-जीवनकी सर्वत्र यही स्थिति है। नारीकी सृष्टि के लिए पुरुषकी स्थिति क्षयको प्राप्त होती है। यह तो अविकसित जगत्के विकसित धरातलकी बात है; किन्तु अविकसित धरातलमें, निम्न स्तरके जीवोंमें, तो नरकी भौतिक स्थिति ही मिट जाती है। मकड़ेका सिर मकड़ी ठीक उस समय काटकर खा डालती है, जिस समय वह उसके साथ रतिमें लिप्त रहता है। उसका शेष शरीर जब मकड़ीके शरीरसे छूटकर नीचे गिरता है, कुछ देर तक कदाचित् प्राणिजगत्का आदिम नृत्य करता रहता है। प्रकृतिने कला-निर्माणकी भावना पुरुषके भीतर रख दी है। पुरुष इस बन्धनको अपना विभव मानता है, जिसका दूसरा नाम नारी-रसमें पूर्ण रूपसे लय हो जाना है। और इसी नारी-रसमें पूर्ण रूपसे लय हो जानेकी वृत्तिने कलाके विभिन्न रूप पैदा किए हैं। मधुचक्र अविकसित प्रकृतिमें कलाका सबसे सुन्दर नमूना है। इसका निर्माण नर-मक्खियोंने किया है, नारी-मक्खी वहाँ भी केवल संचय और समाधान करती हुई ही देखी जाती है।

इस स्थितिमें कलाके भविष्यके सम्बन्धमें चेतनशील मनुष्य को चिन्ता भी हो सकती है। जो कला आज तक मनुष्यके सबसे बड़ी विभूति समझी जाती रही है, उसका सत्य यदि यही है तब तो यह अंशतः लज्जाकी बात भी हो सकती है। पर कलाके निर्माणमें जहाँ तक स्वाभाविक और यथार्थ है, उसमें लज्जा या संकोचकी कोई बात नहीं। हमारी इस स्थितिका जो-कुछ भी सत्य है, हमारे लिए सदैव महान है। प्रश्न केवल इतना ही है कि हम अपनी स्थिति समझ पाते हैं या नहीं? यदि नहीं समझ पाते और कलाका निर्माण करते हैं, तो निस्सन्देह यह स्थिति हमारे लिए लज्जाजनक है। कालिदासके साहित्यमें वियोगी यक्ष, वियोगी पुरुरवा और वियोगी अजका विलाप प्रकृत सत्य है। कलाका निर्माण नर करता है, इस तथ्यकी रक्षा कालिदासने इस रूपमें की है। तुलसीके राममें भी वियोगका उच्छ्वास कुछ इसी तरहका है। इसके ठीक विपरीत रीतिकालीन कवियोंने वियोगकी अभिव्यक्ति नारीसे कराई है। नारीके प्रकृत सत्यको न देखकर वे सतहकी बातोंमें भूल गए। जब चरित्र-निर्माणकी क्षमता उनमें नहीं थी, तो फिर जीवन और जगतकी यथार्थ धारणाके अभावमें इस तरहके सत्यकी आशा भी उनसे कौन करेगा?

अब यहाँ यह शंका पैदा होगी कि यदि प्रकृतिने केवल पुरुषको कला-निर्माणकी ओर प्रवृत्त किया है, तो फिर स्त्री

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कलाकारोंकी स्थिति क्या है ? बीते युगमें भी नारी कला-सृष्टि करती हुई देखी गई है और आज भी देखी जा रही है। इस प्रत्यक्ष सत्यके सामने किसी भी वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणके टिकनेकी सम्भावना ही क्या होगी ? इसके उत्तरमें मैं केवल यही कहना चाहूँगा कि इस लेखका जो वैज्ञानिक आधार है, उसमें पुरुष और नारी शरीर-रूपमें नहीं, बल्कि वृत्ति-रूपमें ही देखे जा सकते हैं। इतना मान लेनेपर कि विरोधी तत्त्वोंके संघर्षमें ही कोई भी स्थिति सम्भव हो सकी है, यह शंका अधिक ठिकाऊ न हो सकेगी। पुरुषके निर्माणमें प्रकृति बहुत-कुछ नारी-तत्त्वोंसे भी सहायता लेती है, और उसी प्रकार नारीके निर्माणमें भी वह सहायता लेती है पुरुष-तत्त्वोंसे। लेकिन इस मेलमें कहीं-कहीं प्रकृति भी भूल कर बैठती है। हमें समाजमें ऐसे पुरुष दिखाई पड़ते हैं, जो पुरुष होते हुए भी नारी-वृत्तिके होते हैं, और ऐसी नारियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं, जो नारी होते हुए भी पुरुष-वृत्तिकी होती हैं। नारी-वृत्तिका पुरुष पुरुष-वर्गसे आक्रान्त होकर नारी-वर्गमें अपनी जगह बना लेता है, और पुरुष-वृत्तिकी नारी नारी-वर्गसे आक्रान्त होकर पुरुष-वर्गमें अपनी जगह बना लेती है। प्रकृतिके अनेक रहस्योंमें यह जाति-ज्ञान भी एक प्रकारका रहस्य है, और यह जाति-ज्ञान शरीरका नहीं, वृत्तिका है। किन्तु यह स्थिति भी बहुत ठीक नहीं पड़ती। इस तरहके नारी और पुरुषको अपने शरीरके प्रतिकूल, किन्तु वृत्तिके अनुरूप वर्गमें किसी भी प्रकारकी सच्ची सहानुभूति नहीं मिलती। सामाजिक सहयोग-भरके लिए उनकी सारी स्थिति हो जाती है और वह भी एकांगी। अपने इस नए वर्गमें किसी प्रकार जम जानेके लिए उन्हें बहुत-कुछ करना पड़ता है—इतना, जो प्रकृत पुरुष और नारीसे सम्भव नहीं। इस तरह भी उन्हें केवल आक्रान्त ही रहना पड़ता है। पुरुष-वृत्तिकी नारी किसी भी पुरुषके भीतर कामका आकर्षण नहीं पैदा कर सकती और न नारी-वृत्तिका पुरुष ही किसी नारीका प्रेम प्राप्त कर पाता है। इस कठिन परिस्थितिमें दोनोंको केवल अपनेसे सामंजस्य पैदा करना होता है। और कदाचित्, प्रो० नगेन्द्रके शब्दोंमें, यही महादेवी वर्माका सामंजस्य है।

इसी तरहके सामंजस्यमें मीरा भी कवियित्री हो सकी थीं। मीरा पूरी तरह जवान हो चुकी थीं। पतिगृहमें और भी सपत्नियाँ थीं, जो केवल अपने रूप नहीं, नारीत्वके आकर्षणमें पतिको बाँधे रहती थीं। रात-रात-भर जागकर, लुक-छिपकर मीराने सपत्नियोंका पतिके साथ परिहास-विनोद, केलि और मान देखा था। इस नित्यके निरन्तर स्नायविक घात-प्रतिघातमें मीराके लिए वह सारी-की-सारी परिस्थिति असह्य हो उठी। किन्तु राजभवनके बन्द घेरेके भीतर सब ओर लाचारी, अभाव और निराशा। पतिकी उपेक्षाके अलावा उन्हें और मिलता ही क्या था ? मीराके इस अभावके लिए न तो उस युग-विशेषकी परिस्थितिको दोष दिया जा सकता है और न बेचारे पतिको। मीराकी बनावटमें स्वयं प्रकृति जब सदोष हो चुकी थी—पुरुष-वृत्तिकी नारी नारी-जीवनमें पूर्ण न हो सकी। अपने मन, शरीर और बुद्धिपर ज़ोर देकर पतिने किसी प्रकार सामाजिक मर्यादाकी रक्षाके लिए सामंजस्य पैदा करना भी चाहा था; किन्तु मीराके नारीत्वका आकर्षण इतना निर्बल था कि पुरुष और नारीके संघर्ष का चिरन्तन आकर्षण, नारीके रसमें पुरुषके लय हो जानेकी प्रवृत्ति वहाँ पनप न सकी। एक रात पति और परिवारकी मर्यादा को लात मारकर मीरा घरसे निकल पड़ीं, अपनी वृत्तिके अनुरूप पुरुष-वर्गमें जगह बनानेके लिए। मीराकी स्थितिका यह वैज्ञानिक सत्य किसी भी नारीका वैज्ञानिक सत्य है, जिसे हम कलाका निर्माण करते हुए देखते हैं। पुरुष-वृत्तिकी नारी सब ओरसे वंचित रहकर नारीत्वके अभावको गीति-काव्यसे भरना चाहती है। इस जगह हम उस नारीके पक्ष और विपक्षमें कुछ भी कहने में संकोच करेंगे।

इतना समझ लेनेपर कि कलाकी कलियाँ कामकी डालियोंमें ही लगती हैं, हमारी कठिनाई बहुत-कुछ मिट जाती है। विचार तथ्य नहीं पैदा करते, तथ्यसे विचार पैदा होते हैं—तथ्य, जिनकी संगति जीवनकी संगतिमें देखी जा सकती है। तथ्यकी संगति जीवनकी संगतिमें देखनेवाले ही महाकवि और कलाकार हो सके हैं। वैज्ञानिक और कलाकार दोनों ही यथार्थके सम्पर्कके लिए अपने व्यक्तिके आकर्षणसे छूट जाते हैं। निर्माणके समय व्यक्तित्वके इस आकर्षणसे छूट जानेपर ही मानवी सृष्टि इस विशाल सृष्टिके साथ लगाव पैदा करती है। मनुष्य भी जिसका अंग है। यहाँ उसका अपना कुछ नहीं है। जो-कुछ है, इस विशाल सृष्टिका है। और समष्टिकी इस धारणामें व्यक्ति मिटकर समष्टिमें मिल जाता है। यौन-वृत्तियाँ और मनोविकारोंकी भिन्न-भिन्न दशाएँ किसी एक व्यक्तिकी नहीं, बल्कि जीवन-मात्रकी हैं। इसलिए इनकी अभिव्यक्ति कला और साहित्यमें जब व्यक्तिके धरातलसे ऊपर उठकर होती है, हमें कालिदासके दर्शन होते हैं। कालिदासका नग्न शृंगार-वर्णन आज लोगोंको असह्य हो रहा है—इसलिए नहीं कि वह असत्य और अश्लील है; बल्कि इसलिए कि हम स्वयं असत्य हैं, इसलिए अश्लील हैं। हमने अपनी इस भौतिक स्थितिको सत्यसे दूर रखकर भ्रमको भूल-भुलैयामें डाल दिया है। हमारी आसक्ति हमारी सृष्टिकी नहीं, हमारे व्यक्तिकी है, और हम इसे सब ओरसे गोपनीय रखना चाहते हैं। पुष्प-धन्वा अलकाके किसी कमरेमें बन्द नहीं बैठता। नन्दनके उन्मुक्त वातावरणमें अशोकके लाल-लाल फूलोंको चुनकर वह अपने बाण बनाता है, और युवतियाँ उसी अशोकके तनेपर लाक्षा-रंजित एड़ियाँ रगड़ती रहती हैं। केवल कालिदास ही नहीं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्कृत-साहित्यमें तो सब कहीं शृंगारका चित्रण बिना किसी भी हिचक या असमजसके जैसे अपने किनारोंको प्लावित करता रहा है। शृंगार-रसको साहित्यके मीमांसकोंने रसराज नाम देकर इसे अन्य सभी रसोंका मूल उद्गम माना है। आधुनिक मनोविज्ञान भी अपने प्रयोगोंके सहारे इसी विचारपर जा टिका है। लेकिन जहाँ संस्कृतमें शृंगार-रसराज है, पूर्ण भक्ति और विरक्ति का साधन भी यही है। इसीके भीतरसे होकर जीवनकी सही अनुभूति अग्रसर होती रही है। यह आनन्दकी स्थिति है, जिसमें मनुष्य तन्मय होकर तृप्त होता है। अतृप्ति, वेदना और निराशा मनुष्यकी विकृतिकी उपज हैं। हिन्दीका पिछला छायावाद और यूरोपका उन्नीसवीं सदीके मध्यका रोमांसवाद या उपभोगवाद (Hedonism) मानवी विकृतिकी चरम दशाएँ हैं, जिनमें जीवनको भौतिक भूख बौद्धिक और यहाँ तक कि आध्यात्मिक आवरणमें अंगारोंकी सेज बिछाती रही है—'अलस, निद्रित और मदिर' जीवनकी चिर-शान्तिके लिए।

इस तरहकी-चिर शान्ति मृत्युका आकर्षण है। कला और साहित्यकी केवल एक कसौटी हो सकती है, और वह है मृत्युके आकर्षणसे जीवनकी रक्षा। साहित्यकी भारतीय परम्परा इसी सिद्धान्तपर अवलम्बित है। इस सिद्धान्तसे, चरित्रोंके माध्यमसे मानवी भावनाओं और अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति होती रही है इसीलिए संस्कृत-साहित्यमें लिरिक या गीत-काव्य ऐसी वस्तु नहीं मिलती। छायावाद जो अपने मौलिक रूपमें यूरोपकी गीति-कविता का अनुकरण है, पता नहीं, किस तरह कुछ विचारकोंके लिए वैदिक भाव-धाराओंका क्रमिक विकास है। यह मोह कि हमारे साहित्यकार किसी-न-किसी तरह अपने साहित्यका लगाव भारतीय परम्परासे स्थापित करें, तब तक सही नहीं हो सकता, जब तक कि वे अपने व्यक्तित्वके मोहसे मुक्त होकर अपनी अनुभूतियों बात कहनेके लिए बौद्धिक और आध्यात्मिक भ्रम तथा बंधनसे मुक्त होकर अपने व्यक्तिका लगाव अपने समाज और अपनी परम्परासे नहीं पैदा करते। साहित्यकार अपने बन्धनोंसे मुक्त होकर निराधार आकाशमें नहीं उड़ता, उसकी जड़ें तो उसकी धरतीके नीचे हैं।

नीलमकी अँगूठी

श्री अनन्त गोपाल शेवड़े, एम० ए०

आज सुबहसे ही वीणा बहुत परेशान है, क्योंकि उसकी सुन्दर-सी नीलमकी अँगूठी खो गई है। यह आलमारी देखी, वह सन्दूक देखा; इस आलेमें देखा, उस खिड़कीपर देखा। एक-एककर सब कपड़े छान डाले, किताबें और कागज़ात भी उलट-पुलट कर डाले; लेकिन कहीं पता न चला। बर्त्तनोंके नीचे देखा, पीढ़ेके नीचे तलाशा, झाड़ू भी बार-बार उठा-पटककर देखी, स्नानघरमें देखा, सोनेके कमरेमें देखा, उठने-बैठनेके कमरेमें देखा। यहाँ तक कि बेचारी पाखाने तकमें देख आई। उस छोटे-से मकानमें कोई जगह नहीं बच रही, जहाँ वीणाने निगाह न पहुँचाई हो। लेकिन नहीं, कोई पता नहीं। यही खोज हेर-फेरकर करते-करते एक घण्टा बीत गया, पर अँगूठी हाथ न लगी।

उसका पति विनोद जब बाज़ारसे लौटकर आया, तो उसे खयाल हुआ कि उसके दफ़्तर जानेका वक्त तो रहा है, खाना तो वक्तपर बनाना ही होगा। किसी तरह भात राँध और तीन गरम-गरम रोटियाँ सेंक और पान खिलाकर उसने उसे दफ़्तर रवाना किया और खुद फिर अँगूठीकी जाँच-पड़तालमें मशगूल हो गई। अव्वल तो वह सोनेकी अँगूठी थी; फिर उसपर सुन्दर नीलमका पत्थर लगा हुआ था, जो काफ़ी क़ीमती था। आजकल सोनेकी इस महँगाईके ज़मानेमें पहलेसे उसकी क़ीमत दुगुनी तो हो ही गई होगी। उसका डिज़ाइन भी कितना खूबसूरत था। और सबसे महत्त्वकी बात तो यह थी कि वह अँगूठी विनोदने उसके विवाहके उपलक्ष्यमें भेंट की थी, इसलिए उसके पीछे कई कोमल, मधुर और पवित्र भावनाएँ छिपी हुई थीं। अगर वह ताँबे या पीतलकी भी होती, तब भी वीणाकी नज़रोंमें उसका मूल्य वही होता।

बूढ़ी महरीसे पूछा, तो उल्टे उसीने सवाल किया—'क्यों रख दी तूने, बहूरानी? राम-राम, बड़ा नुक़सान हो गया!'—और वह भी तलाशमें हाथ बँटाने लगी। 'लेकिन गई तो कहाँ गई?'—महरीकी ज़बान चलने लगी—'जायगी कहाँ? यहीं होगी। उसके पर थोड़े ही हैं, जो कहीं उड़ जायगी। या कोई भूत आकर ले गया! हाय राम, कितना बड़ा नुक़सान हो गया!'

लेकिन वीणाके दिलकी हालत ऐसी नहीं थी कि वह इन सब प्रलापों तथा सहानुभूतिके शब्दोंको ध्यानसे सुन सके। उसका सारा चित्त उस गुमी हुई अँगूठीको खोजनेमें ही लगा हुआ था। वीणा सोचने लगी—आखिर जायगी, तो कहाँ जायगी? मैं जब सुबह नहाने गई थी, तब तो शायद हाथमें थी। उसके बाद? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि पानीके साथ बहकर नालीमें चली गई हो! आशा बँधी। चटसे मैली साड़ी पहनकर, हाथमें झाड़ू ले उसने उस नन्हे नालीका सारा पानी बहाया और बाहर नालीमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जाकर उस नालीके दूसरे सिरेपर भी तलाश की ; पर वहाँसे भी उसे खाली हाथ लौटना पड़ा ।

फिर खयाल आया, कहीं झाड़ूवाली तो उसे हज़म नहीं कर गई। लेकिन झाड़ूवाली तो तड़के ही सफ़ाई करके चली गई थी। उसके बाद तो अँगूठी उसकी उँगलीमें थी। नहीं, झाड़ूवाली नहीं ले गई। और महरी तो पूरी ईमानदार है। उसके चेहरेसे ऐसा नहीं जान पड़ता कि अँगूठी उसने ली होगी। वह बेवकूफ़ भले ही हो, लेकिन ईमानदार है। आज तक उसने किसी चीज़-बस्तपर हाथ साफ़ नहीं किया है। तो फिर अँगूठी गई कहाँ ? जब इसका कोई जवाब नहीं मिला, तो वह हताश हो गई। पसीनेकी बूँदें उसके कपालपर चुहचुहाने लगीं। आँखों की बूँदोंने भी उनका साथ देना शुरू कर दिया। वह रुआँसी होकर अपने कमरेमें बिस्तरपर जा पड़ी और बिना खाए-पिए ही बड़ी देर तक रोती रही।

आखिर वीणाकी अभी उम्र ही कितनी है। वह पत्नी है, लेकिन अभी लड़की ही तो है। सत्रह वर्ष पूरे होनेमें भी कुछ हफ्ते बाकी हैं। विवाह हुए अभी कुल सात महीने ही हुए हैं। गृहस्थी क्या होती है, यह वह अब धीरे-धीरे समझने लगी है। अभी उसने कितनी-सी दुनिया देखी है ? इसलिए कोई छोटी-सी विपत्ति भी आ पड़े, तो ज़रा घबरा जाती है ; लेकिन फिर शीघ्र ही अपने-आपको सँभाल भी लेती है। वैसे वह बड़ी समझदार है। पर आजकी मुसीबत अब तककी विपत्तियोंसे सबसे बड़ी है। विनोदकी तनख्वाह ज़्यादा नहीं है। बीमा-कम्पनी फिलहाल ५०) से एक पाई भी ज़्यादा देनेको तैयार नहीं है। कहती है कि इस इलाक़ेमें काम बढ़ जाय, तो फिर ५) बढ़ा दिए जायँगे। इन पचास रुपयोंमें दो जीवोंकी गुज़र ज़रा मुश्किलसे ही होती है, खासकर जब कि महँगाई बढ़ रही हो। लेकिन इसके कारण दोनों ज़रा भी दुखी नहीं हैं। तारीफ़ है वीणाकी, जो इस क़दर कमखर्ची और कुशलतासे सारी गृहस्थी चलाती है कि जैसे विनोद डेढ़ सौ रुपए पाता हो ! वह मानो साक्षात् अन्नपूर्णा है। उसके रहते घरमें किसी चीज़की कमी नहीं है।

इसीलिए विनोद उससे बहुत खुश है। उसके सरल और स्नेहशील स्वभावने उसे पूरी तरह मोह लिया है। और वीणा ? उसने तो विनोदमें ही अपने जीवनकी सारी साधें पा ली हैं ! दोनों एक-दूसरेमें मस्त हैं। उनकी छोटी-सी दुनियाको देखकर यही मालूम पड़ता था कि दर असल ये लोग जीवनकी कला जानते हैं। लेकिन आज यह आफ़त अचानक कहाँसे आ गई ? विनोद अगर जान पायगा कि अँगूठी खो गई, तो उसका दिल क्या नहीं दुखेगा ? अपनी छोटी-सी तनख्वाहमें से मुश्किलसे बचाए हुए रुपयोंकी यह क़ीमती अँगूठी और वह भी विवाहके मंगल-प्रसंगकी मधुरतम भेंट ! और वह मेरी ही लापरवाहीसे खो गई ! नहीं, विनोदको यह बात हर्गिज़ नहीं मालूम होनी चाहिए। महरी भी उनसे कुछ न कहे।

- २ -

घोर दुश्चिन्ता और मानसिक उथल-पुथलके बाद वीणाने एक रास्ता निकाला। मन-ही-मन उसने एक निर्णय किया, और वह निराशा, असहायता आदि सबको भुलाकर उठ खड़ी हुई, मानो उसमें कोई नई हिम्मत, नई उम्मीद आ गई हो। चार बजे शामको एक अच्छी-सी साड़ी बदलकर वह जौहरी बाज़ार गई। उसने सोने-चाँदीवालोंकी तीन-चार दुकानें खोज डालीं ; लेकिन उसे उस डिज़ाइनकी नीलमकी अँगूठी कहीं भी नहीं दिखाई दी, जो उसे उसके पतिने भेंटमें दी थी। हाँ, नीलमकी कई अँगूठियाँ थीं, कई तरहके डिज़ाइन थे ; लेकिन उस-जैसी कोई नहीं थी। आखिर दामोदरदास माणिकचन्द जव्हेरीकी दुकानपर ठीक वैसी ही अँगूठी मिल गई—मानो सुबह उसीकी अँगूठी मकानसे भागकर इस दुकानदारके केसमें आ गई हो ! हाँ, उसकी पालिश और चमक-दमक तेज़ थी। बस, ठीक है। यही अँगूठी खरीदनी होगी। मिल गई, बिलकुल मिल गई ! और खुशीमें आकर उत्साहसे उसने दाम पूछे। दुकानदारने कहा—'सैंतीस रुपए साढ़े तेरह आने।'

'ओह, सैंतीस रुपए साढ़े तेरह आने !'—वीणाने ठण्डी साँस ली। अभी उसके हाथमें तो नौ रुपए साढ़े पाँच आनेसे एक पाई भी अधिक नहीं थी। फिर चटपट उसने कहा—'देखिए जौहरीजी, इसे और किसीको न दीजिएगा। मैं इसे लूँगी। मुझे यह खूब पसन्द आई है। समझे न, किसीको भी न दीजिएगा। अलग रख दीजिए। मैं बादमें बाक़ी रुपए लाकर ज़रूर ले जाऊँगी। चाहें तो मैं अभी बयाना दे सकती हूँ—पाँच रुपए, नहीं आठ रुपए। या फिर ये सब ही रख लीजिए—नौ रुपए साढ़े पाँच आने।' और वीणाने वे सब उसके सामने निकालकर रख दिए।

'नहीं, नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। लीजिए, यह मैं आप ही के सामने अलग आलमारीमें रख देता हूँ। आपके सिवा और किसीको नहीं दूँगा। बस।'

'नहीं, आप बयाना ले लीजिए, नहीं तो फिर कोई गड़बड़ हो जाय। इन्हें रख लीजिए, बाक़ीके रुपए बादमें लाकर दूँगी।'

'खैर, आपका आग्रह है, तो इन्हें रख लेता हूँ। अरे खीमजभाई, इसकी रसीद तो फाड़ देना।'

'नहीं, मुझे रसीद-वसीद नहीं चाहिए। आपकी मशहूर दुकान है। यहाँ कहीं धोखेबाज़ी थोड़े ही हो सकती है। बस, जब मैं अँगूठी लेने आऊँगी, तभी इकट्ठी रसीद दे दीजिएगा। लेकिन देखिए, वह और किसीको न दे दीजिएगा, कहीं गड़बड़ न हो जाय। मेरा नाम वीणा है,—मुझीको दीजिएगा।' और वह खुशी-खुशी, उत्साहके साथ वहाँसे निकल आई।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दामोदरदास माणिकचन्दकी फर्मने वीणाके नामकी ९।८।।। की रसीद फाड़कर उसी अँगूठीके केसमें रख दी और उसे अपनी आलमारीमें बन्द कर दिया। मालिकने सोचा, अजीब ग्राहक है यह भी!

शामको जब विनोद दफ़्तरसे लौटा, तो उसे पता भी न चला कि उनकी ग़ैरहाज़िरीमें क्या-क्या हो गया है। खानेके वक्त उसने मुस्कराते हुए वीणासे पूछा—'अरे, तुम्हारी उँगली आज खाली क्यों है? अँगूठी कहाँ है?'

वीणाका चेहरा पहले तो ज़रा फ़क़ हो गया, पर फिर धीरज समेटकर वह बोली—'रखी है।'

'फिर पहनी क्यों नहीं?'

'वाह, ऐसे रोज़-रोज़ पहननेसे उसका महत्व कम नहीं हो जायगा? उसे तो खास-खास मौक़ोंपर ही पहनना चाहिए—जैसे अपने विवाहकी वर्षगाँठ या आपके जन्म-दिवसपर।'

और इन दोनोंमें अभी पाँच-छः महीनेका समय था। विनोद केवल मुस्कराकर रह गया और कुछ न बोला। वीणाने विनोदसे आँख भी नहीं मिलाई, वर्ना उसे मालूम पड़ता कि उनमें कौन-सा भाव खेल रहा है। उसे तसल्ली हुई कि विनोदने और कुछ नहीं पूछा।

- ३ -

हफ़्तोंपर हफ़्तों बीतने लगे। एक दिन सुबह उठते ही विनोदने अनायास पूछा—'वीणा, तुम दिन-ब-दिन इस तरह सूखती क्यों जा रही हो? क्या बात है?'

'कौन, मैं? नहीं तो। मैं तो अच्छी हूँ।'

'ज़रा आईनेमें अपनी सूरत तो देखो। आँखें धँसी जा रही हैं, चेहरा पीला पड़ गया है। ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हें कुछ बीमारी है, या फिर कोई गहरी चिन्ता सताती रहती है।'

'नहीं, नहीं; न मुझे कोई बीमारी है और न कोई चिन्ता ही। आपके साथ रहते मुझे भला किस बातकी चिन्ता हो सकती है? मुझ-जैसी सुखी स्त्री कहीं ढूँढ़े नहीं मिलेगी।'

उसके इस कथनमें सचाई है, सो तो विनोदने उसकी आँखोंकी दीप्तिसे ही देख लिया; लेकिन उसके गिरते हुए स्वास्थ्यकी फिक्रने उसे बेचैन भी कर दिया।

'आप बिलकुल चिन्ता न करें'—आश्वासनके स्वरमें वीणाने कहा—'इस मौसममें तो ऐसा हो ही जाता है। अगले महीनेसे जब ठण्ड पड़ने लगेगी, आप देखेंगे कि मैं कितनी अच्छी हो जाती हूँ।'

विनोद कुछ न बोला। दोपहरको उसके दफ़्तर जानेके बाद जब उसने अपना चेहरा शीशेमें देखा, तो सचमुच उसे जान पड़ा कि वह काफ़ी सूख गया है। खैर, उसने मनमें कहा, अब और ज़्यादा दिन बाक़ी नहीं हैं।

फिर उसने टीनका वह सिगरेटवाला पुराना डिब्बा निकाला और उसमें का अपना सारा खज़ाना बिस्तरपर उँड़ेल दिया। फिर वह बड़े ध्यानसे एक-एक पैसा करके गिनने लगी—बीस रुपए, इक्कीस, बाईस, तेईSSSS, और ये ऊपरसे चार आने; यानी कुल सवा तेईस रुपए हुए। अब सिर्फ़ सवा पाँच रुपएकी ही कमी है। बस, सिर्फ़ एक महीनेकी बात है। तीस दिन और मुझे दूध-घी नहीं मिलेगा। परसों तनख्वाह मिलेगी। इस महीने और इन्हीं चूड़ियोंपर काम चला लूँगी। ओफ्, चूड़ियाँ भी कितनी महँगी हो गई हैं आजकल! और यह ब्लाऊज़; इतना सीने-पिरोनेके बाद भी कहीं दीखता है कि फटा-पुराना है! बस, थोड़ा और धीरज रखना है। अगले महीनेमें अँगूठी मेरे हाथमें आ जायगी! विवाहकी वर्षगाँठके पहले! और अपने इस मनोराज्यकी कल्पनासे उसके चेहरेपर आनन्दकी एक लहर चमक गई!

कुछ दिन बाद फिर विनोदने एक दिन सहसा पूछा—'वीणा, अगले मंगलवारको क्या है, याद है?'

'वाह, वह शुभ दिन मैं कैसे भूलूँगी? उस दिन तो मेरे भाग्यदेव मुझे मिले थे!'—उसने अभिमानसे कहा।

'नहीं, उस दिन मेरी भाग्यलक्ष्मी मुझे मिली थी!...'

'देखिए, उस दिन आप दफ़्तरसे छुट्टी ले लीजिए।' वीणाने बात काटकर कहा—'हम लोग वह दिन धूम-धामसे मनायेंगे।'

'अच्छा, मंज़ूर है। बड़ी अच्छी कल्पना है यह तो।' विनोद बोला।

- ४ -

मंगलवार, मंगल-स्मृतियोंका वह पवित्र दिन, आखिर आ ही पहुँचा। सुबहसे ही वीणा बड़े उत्साहमें थी। चटसे नहा-धोकर वह बासौंदी और पूड़ी बनानेमें जुट गई, क्योंकि ये चीज़ें विनोद को पसन्द हैं। विनोद उसके लिए नई साड़ी लानेको बाज़ार चला गया। लौटते ही उसने कहा—'वीणा, रोज़ तुम मुझे पहले खिलाती हो, आज हम दोनों साथ खायँगे।'

वीणा कुछ संकुचित, किन्तु मन-ही-मन प्रसन्न होकर बोली—'अच्छा, तो चलिए, खाना तैयार है।'

दोनों खानेपर बैठे। वीणाने दो थालियाँ खूब सजाकर रखी थीं। आज उसने वही सुन्दर साड़ी पहनी थी, जो गत वर्ष विवाहके दिन पहनी थी। आभूषण भी वे ही थे। विनोद को उसका यह सात्विक-सुन्दर रूप देखकर प्रसन्नता हुई; लेकिन उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उसने उसकी उँगलीपर ललकती हुई सुन्दर नीलमकी अँगूठी देखी! आज वीणा अपने हाथको छिपा नहीं रही थी। खुले हाथसे वह सारा काम कर रही थी। उसकी गौरवर्ण, लम्बी और पतली उँगलीमें वह अँगूठी बहुत खुलकर दीख रही थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संयुक्त-राज्य अमरीकामें युद्धोत्तर पुनर्निर्माण-कार्य

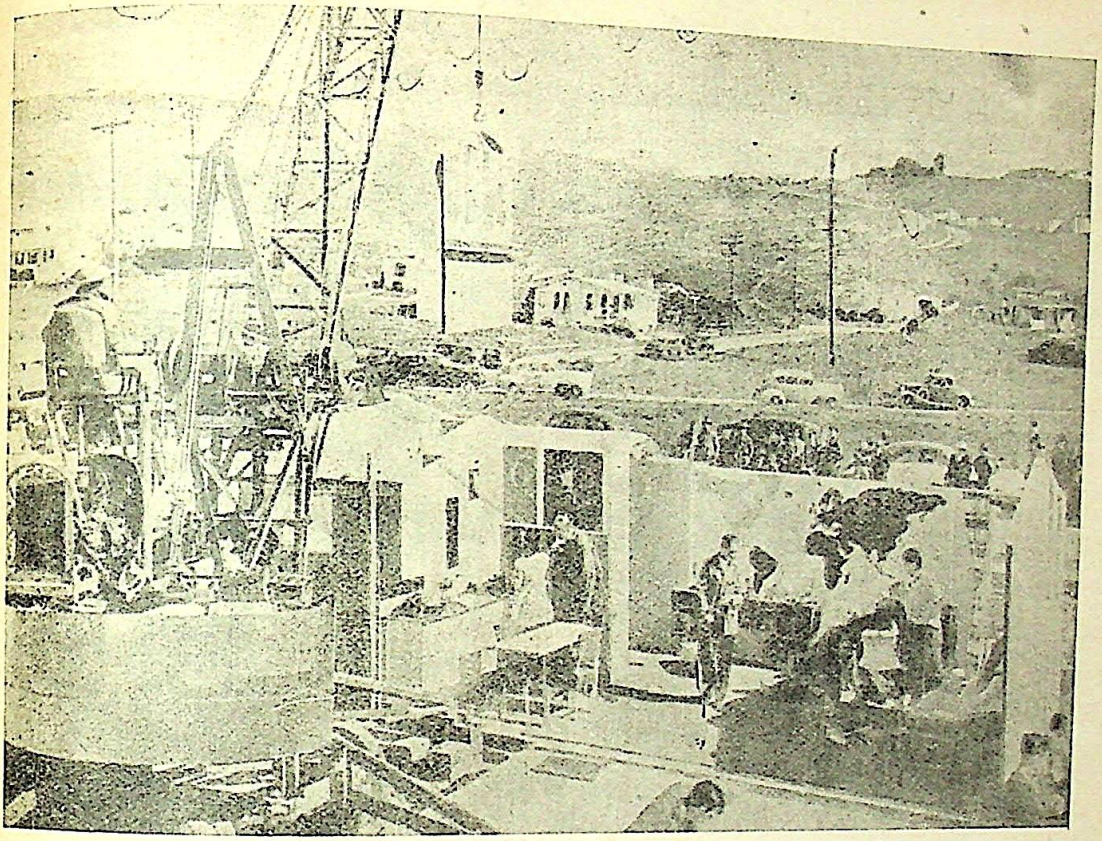

अन्य देशोंकी भांति अमरीकामें भी घरोंकी समस्या युद्धोत्तर पुनर्निर्माण-कार्यका एक प्रमुख अंग है। ऊपरके चित्रमें फर्श, दीवारें, छत आदि बनाकर फिर उन्हें जोड़कर घर खड़ा किया जा रहा है।

तैयारशुदा घरके भीतरका एक दृश्य। बैठकमें दम्पति बच्चेके साथ खेल रहे हैं और पीछे शीशेके दरवाज़ेमें से पड़ोसी देख रहे हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जीवन और जवानीपर वैज्ञानिकोंका नियन्त्रण

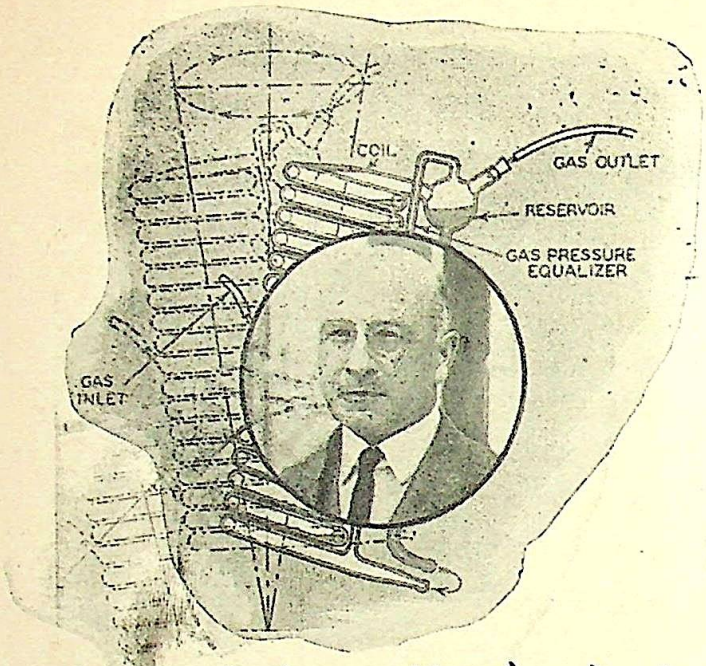

प्रसिद्ध अमरीकन विज्ञानवेत्ता डा० अलेक्सिस कैरल और उनके द्वारा आविष्कृत कृत्रिम हृदय-यन्त्र 'लिण्डबर्ग लाइफ़-चेम्बर', जिसे रुग्ण हृदयके स्थानपर लगाकर मनुष्यके जीवन एवं यौवनकी अवधि बढ़ाई जा सकती है।

एक रोगिणीके हृदयका आपरेशनकर उसके स्थानपर 'लिण्डबर्ग लाइफ़-चेम्बर' लगाया जा रहा है।

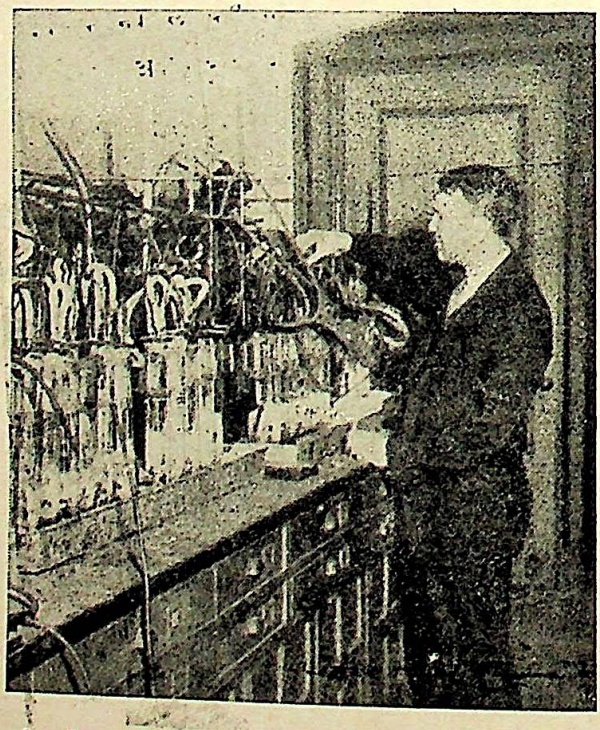

अपनी प्रयोगशालामें डा० कैरेल उस 'भारी जल'को मनुष्यकी देहसे पृथक करनेका शोध-कार्य कर रहे हैं, जिसके बढ़नेसे आदमी असमय ही बूढ़ा होने लगता है।

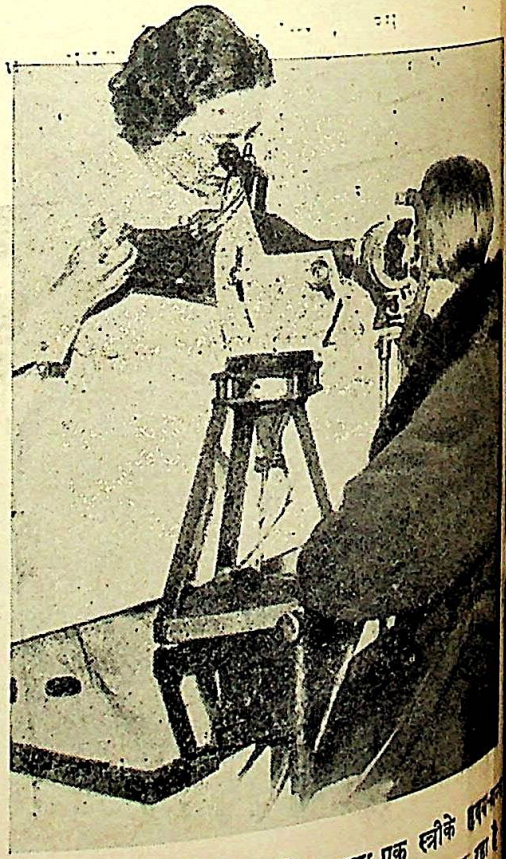

बहुत तेज़ और सूक्ष्मदर्शी खुर्दबीन द्वारा एक स्त्रीके [illegible] की जाँचकर उसके जीवन-कालका अन्दाज़ा लगाया जा रहा है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'वीणा !'—विनोदके मुँहसे निकल पड़ा।

'क्या ?'—उसने पतिकी ओर आँख उठाकर देखा।

'यह अँगूठी कहाँसे आई ?'

'मैंने कहा था न कि अँगूठी रखी है। रोज़-रोज़ पहननेसे इसका महत्त्व जाता रहता है। आज तो इसी अँगूठीका दिन है न, इसलिए निकाली है। अच्छी दिखाती है न ?'

'पर, पर, यह तो गुम गई थी न ?'—विनोद अकचका कर बोला।

'कब ? कहाँ ?'—वीणाने कहा।

विनोदने एक पतले शुभ्र कपड़ेमें बँधी हुई साड़ीका पैकिंग खोला। खोलते ही देखा, तो वीणाको आश्चर्यका धक्का लगा। तहमें साड़ीके ऊपर उसकी वही नीलमकी अँगूठी रखी थी।

'हैं यह कैसे ? यह कहाँसे आ गई ?'—वीणाने एक ही साँसमें पूछा।

'मेरे ही पास थी। उस दिन सुबह तुम इसे स्नानघरमें भूल आई थीं। शायद तुम्हारी साड़ीके झोंकेसे लुढ़ककर यह नलीमें जा गिरी थी। मैं इसे उठा लाया था और मज़ाकके लिए अपने पास रख लिया था।'

'ओह !'—वीणाके मुँहसे दीर्घ निःश्वास निकला। दोनों स्तम्भित होकर चुप रह गए।

'पर यह दूसरी अँगूठी तुम कहाँसे लाईं, वीणा ?'—विनोदने पूछा।

'परसों ही तो खरीदी है ; दामोदरदास माणिकचन्दकी दुकानसे।'

'कितनेमें ?'

'सैंतीस रुपए साढ़े तेरह आनेमें। बड़ी मुश्किलसे मिली। उनका नौकर तो कह रहा था कि पाँच महीनेमें सोनेका दाम बढ़ गया है। पैंतालीस रुपए देने होंगे। लेकिन मालिकने कहा कि नहीं, ज़्यादा दाम मत लो। मैंने सैंतीस साढ़े तेरह आनेका ही इक़रार किया था। बड़ा भला आदमी है।'

'पर इतने रुपए आए कहाँसे ?'

'वाह, पाँच महीनेमें क्या इतना भी नहीं बचा पाती ?'

'ओह, वीणा !'—विनोदका कण्ठ गद्गद हो गया। आँखोंमें आँसू आ गए। उसकी आँखोंके सामने वीणाका पाँच महीनोंका शान्त एवं मूक त्याग स्पष्ट उतर आया। वे धँसी हुई आँखें, पीला चेहरा। 'ओह, अब समझा !' विनोद बोल—'रानी, तुम साक्षात् लक्ष्मी हो। मैं तुम्हारे सामने लज्जित हूँ।'

'क्यों, क्या हो गया ? अब अपने पास दो अँगूठियाँ हो गईं, इसमें क्या बिगड़ा ? अच्छा ही तो हुआ।'

'अरे पगली, दो अँगूठियाँ नहीं, एक ही है। वह जो मैंने तुम्हें भेंट की थी न, वह तो इमीटेशन गोल्डकी नीले काँचकी अँगूठी थी। सिर्फ़ साढ़े तीन रुपएकी। मेरे पास पैसे नहीं थे, इसलिए मैं असली चीज़ खरीद नहीं सका था।'

'नहीं, नहीं, मेरे लिए वह असली ही है। आपकी दी हुई भेंट मेरे लिए सबसे बेशकीमती है। लाइए, मेरी अँगूठी मुझे दे दीजिए और आप अपने विवाहकी वर्षगाँठके अवसरपर यह अँगूठी मेरी ओरसे स्वीकार कीजिए।'—और वीणाने वह असली सोनेकी अँगूठी विनोदकी उँगलीमें ज़बर्दस्ती पहना दी।

'वीणा, वीणा !'—कहकर विनोद भावावेगके कारण कुछ न बोल सका। उसने वीणाको अपने पास खींच लिया। उसकी आँखोंका पानी वह निकला। उसने स्वप्नमें भी न कल्पना की थी कि उसके मज़ाकका यह पर्यवसान होगा।

वीणाने अपना मस्तक विनोदकी छातीपर टिका दिया। उसकी आँखोंसे आनन्दाश्रु लुढ़क रहे थे। वीणाने देखा कि उसके हाथपर उसके तथा उसके पतिके आँसू मिल रहे हैं।

प्रेरणा

श्री रामप्रकाश अग्रवाल, एम० ए०

उपवन क्यों सूना-सूना तितलीके पर झपके ?
गतिके चरण थके।
मन्द हुई मारुतकी श्वासें, फूलोंके अधर रुके।
दूर्वा पर निश्चल ओस पड़ी
निस्पन्द स्नायु वसुधाके ;
सो रही कहाँ वह सूर्य-किरण
किस तमका आश्रय पाके ?
क्यों जगे न अब तक अम्बुज मुरझाये म्लान झुके ?
जाता निराश क्यों फिर-फिर
वह चिर-उदार मलयानिल ?
कलियोंकी हँसी कहाँ है,
क्यों हुई लताएँ तन्द्रिल ?
राका में सुधा बरसती
मरुथलमें आ खो जाती ;
पुरवाई भी बहती है,
पर क्या जीवन भी लाती ?
ये क्षेत्र पड़े हैं विजड़ित, ये शस्य खड़े उनपके।
जागो जागो हे अम्बर !
जागो जागो हे निर्झर !
जागो वसुन्धरा रानी !
जागो हे धूम्र शिखा-धर !
जग जाओ आज प्रभंजन, चरणोंमें शीश झुके।

CC-0, Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दू-विवाह-विच्छेद-सम्बन्धी क़ानून

श्री रामप्रताप गोंडल एम० ए०, साहित्यरत्न

मैं प्रत्येक हिन्दू-विवाह पवित्रताको और उसके आजीवन तथा जन्म-जन्मान्तरके सम्बन्धको धोखा मानता हूँ और साथ ही अत्यधिक पाश्चात्य वैवाहिक उच्छृंखलताको, जिसका आभास हमें समाचारपत्रोंसे मिलता है, व्यक्तिगत अन्धेरगर्दी। फिर भी मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि हिन्दू-विवाह और आजन्म पति-पत्नी-सम्बन्धमें व्यक्तिगत और सामाजिक हित निहित ही नहीं। साथ ही अधिकांश पाश्चात्य विवाह व्यक्तिगत अन्धेरगर्दी ही हैं और उनमें सामाजिक व्यवस्थाका स्वरूप ही देखनेको नहीं मिलता, यह भी सत्य नहीं। वास्तवमें क्या हिन्दुओंमें और क्या पाश्चात्य जातियोंमें ऐसे विवाहोंकी कमी नहीं, जिनमें पुरुष और स्त्री आजीवन साथ रहकर प्रेममय जीवन-यापन करते हुए अच्छी सन्तानको उत्पन्नकर और पाल-पोषकर व्यक्तिगत लाभके साथ सामाजिक लाभमें भी योग देते हैं। परन्तु जब हम देखते हैं कि हिन्दू-विवाहका प्रचलित रूप और उसका आजन्म बन्धन पुरुष और स्त्रीके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें अभिशाप बन रहा है और विवाहित पति-पत्नीको—विशेषकर पत्नीको—एक बार आबद्ध हो जानेपर फिर व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करने और दुबारा विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेकी क़ानून अनुमति नहीं देता, तो अवश्य ही ऐसे क़ानूनमें आवश्यक परिवर्त्तनकी आवश्यकता है।

शिक्षाके प्रचारके साथ ही विवाह-सम्बन्ध अधिक आयुमें—अर्थात् १८ सालसे ऊपर—होने लग गए हैं। पढ़ी-लिखी स्त्रियोंका अपना व्यक्तित्व इस उम्रमें बनने लगता है। उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्री विवाहित होकर अपना घर अलग बनाना चाहती है। वह हरदम अपने पतिको पूज्य मानकर उसकी प्रत्येक बात आँखें मूँदकर और अपने विचारों तथा भावोंको दबाकर सहर्ष माननेको तैयार नहीं होती। इसमें उसके सास-ससुर और पतिकी ओरसे रुकावटें आती हैं। चूँकि अधिकांश विवाह-सम्बन्ध लड़की व लड़केके अभिभावकों द्वारा होते हैं, उनमें पति-पत्नीका प्रेम-सम्बन्ध सर्वेसर्वा बादको बनता है, इसलिए यह सम्बन्ध नैसर्गिक रूपमें नहीं बन पाता, और कई विवाह तो स्त्रियोंके लिए विशेषकर भार-रूप हो जाते हैं। जहाँ पति दूसरा विवाहकर या स्त्रीको छोड़ देनेपर अपना समय दूसरे कामोंमें लगाकर अपना जीवन-यापन करता है, वहाँ स्त्रीपर दुःखका भार टूट पड़ता है। पतिके साथ उसके आश्रयपर रहकर वह न स्वयं सुखमय जीवन व्यतीत कर पाती है और न ही पतिके जीवनमें सक्रिय योग दे पाती है; अलग रहकर वह न दूसरा विवाह कर सकती है और न हो सन्तानवती बन सकती है। हिन्दू-समाज की वर्त्तमान अवस्थामें उसका जीवन चरित्र-सम्बन्धी नैतिकताके नियमों तथा स्त्री-जीवन-सम्बन्धी संकुचित भावनाओंके कारण भार-स्वरूप हो जाता है।

शिक्षाने स्त्रियोंके विवाह-सम्बन्धी विचारोंमें विशेष रूपसे परिवर्त्तन कर दिया है। उनके लिए योग्य माताएँ बनना एक सामाजिक आवश्यकता है, परन्तु प्रेममय विवाह-सम्बन्ध एक व्यक्तिगत नैसर्गिक आकांक्षा। फिर भी पतिके प्रति तथा सास-ससुर के प्रति अन्धभक्ति-और श्रद्धा, विवाहको ईश्वरीय आदेश, अग्निको साक्षी समझकर संस्कृतमें पण्डितों द्वारा दुहराई गई प्रतिज्ञाओंका पालन करना, योग्य शिक्षा पाकर भी घरकी चहारदीवारीमें मजबूरन रहकर अपने जीवनकी इतिश्री समझना आदि मान्यताएँ वे तैयार नहीं होतीं, और न इनके माननेमें हिन्दू-समाजकी कोई भलाई ही है। हिन्दू-विवाह-सम्बन्धका जो रूप आजकल देखने को मिलता है, वह इस प्रकार है—जैसे एक अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित पुरुष एक निहत्थी स्त्रीसे सम्मुख लोहा ले रहा हो। स्त्री इस बलात्कारके सामने आत्म-समर्पणके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देखती। लड़कीके माँ-बाप जीवन-यापनके सब अन्य मार्ग बन्दकर केवल इस युद्धमें भाग लेनेके लिए मजबूर कर देते हैं। इस विषम परिस्थितिके अलावा विवाह-सम्बन्ध कितना भी देख-भालकर, सोच-समझकर, स्वयं प्रेम-विवाहके रूपमें या अभिभावकों द्वारा हो, उसमें विच्छेदके अवसर आते ही हैं। आदमी एक साल, दो साल, चार साल तक अनिच्छापूर्वक कट सकता है; परन्तु मनोमालिन्य बढ़ जानेपर जीवनके ५० या ६० साल सहर्ष नहीं काटे जा सकते। इसलिए स्त्रीको सर्वदाके लिए—आजीवन—दासताकी जंज़ीरोंमें बाँधकर घरकी चहार-दीवारीमें रखना उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोणसे, उसके प्रेममयी स्त्री और एक विज्ञ माता बननेके दृष्टिकोणसे तथा पुरुषोंको जीवन-सम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्त्तिकी दृष्टिसे अवांछनीय एवं समाज के लिए अहितकर है।

विशेष विवाह-क़ानून (Special marriage Act) के होते हुए भी संस्कारों व अज्ञानतावश, अभिभावकोंकी संकीर्णताके कारण तथा लड़कियोंकी अपनी सौदा करनेकी कमज़ोरीके कारण वे विशेष विवाह-क़ानूनके अनुसार अभी अपने विवाह नहीं करा पातीं। इनेगिने विवाह ही इस क़ानूनके अन्तर्गत होते हैं और अधिकांश प्रचलित हिन्दू-विवाह-प्रथाके अनुसार। इसलिए विवाह-विच्छेदकी अनुमति विशेष विवाह-क़ानूनके अनुसार हिन्दुओंके लिए होनेपर भी कोई उच्च जातिकी स्त्री अथवा पुरुष, जो विवाह-बन्धनसे मुक्त होना चाहता है, उसका लाभ नहीं उठा सकता। (हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि निम्नतर जातियों में विवाह-विच्छेदकी प्रथा विद्यमान है।) अतः यह नितान्त

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवश्यक है कि हिन्दू-विवाह-विच्छेदके लिए एक ऐसे क़ानूनका निर्माण हो, जो समस्त हिन्दू-विवाहोंपर लागू हो सके।

हिन्दू-कोडका विवाह-विच्छेद-भाग, जो हिन्दू-क़ानून-सुधार-समिति द्वारा केन्द्रीय धारा-सभामें बिलके रूपमें पेश किया जायगा और जिसपर कमेटीने समस्त भारतमें भ्रमणकर जनताकी राय ली है, संक्षेपमें इस प्रकार है : हिन्दू पतिपर अपनी स्त्रीके भरण-पोषणका उत्तरदायित्व तब तक है, जब तक वह स्त्री उसके साथ रहती है। क़ानूनकी ओरसे स्त्रीको पतिसे खर्च लेकर अलग रहनेकी अनुमति निम्न कारणोंपर दी गई है—पति किसी घृणित बीमारीका शिकार हो, पर यह बीमारी पत्नीके कारण न लगी हो ; पति कोई रखेल घरमें लाकर रख ले ; पति स्त्रीसे निर्दयतापूर्ण व्यवहार करे, अर्थात् उसे अपने पास रहना खतरनाक तथा अवांछनीय कर दे ; बिना स्त्रीकी इच्छाके अथवा उसकी इच्छाके विपरीत उसे छोड़ दे ; पति अपना धर्म बदल ले अथवा कोई और आवश्यक कारण हो।

निम्न कारणोंपर विवाह नाजायज़ क़रार दिया जा सकेगा—पति विवाहके समय और प्रार्थनापत्रके समय भी नपुंसक हो ; स्त्री अथवा पतिमें कोई भी पागल अथवा निरा मूर्ख हो ; उनमें आपसमें कोई नज़दीकी खूनी रिश्ता निकल आया हो या वे सपिण्डोंके अन्तर्गत आते हों ; पहला पति या पत्नी विवाहके समय ज़िन्दा हो और उससे विवाह-सम्बन्ध क़ायम हो।

निम्न कारणोंपर हिन्दू-विवाह-विच्छेदकी डिग्री ली जा सकती है—प्रार्थनापत्र भेजनेके समय तथा उसके पूर्व ७ साल या उससे ऊपर तक इलाज करनेपर भी उसका (स्त्री अथवा पुरुषका) निराश ठीक न हुआ हो ; अगर वह गलित कोढ़की बीमारीका शिकार हो, पर यह बीमारी प्रार्थनापत्र देनेवालेसे न लगी हो ; बिना किसी आवश्यक कारणके प्रार्थीको सात सालसे अधिकके लिए छोड़ रखा हो ; धर्म बदलनेके कारण हिन्दू न रहा हो ; किसी ऐसी घृणित यौन-व्याधिका शिकार हो, जो ७ सालसे पुरानी हो, पर प्रार्थीसे न लगी हो ; अगर पतिने कोई रखेल रख ली हो अथवा स्त्री किसी दूसरे आदमीकी रखेल हो अथवा वेश्या-वृत्ति करती हो।

जहाँ तक स्त्रीके खर्च लेकर अलग रहनेका सवाल है तथा विवाह नाजायज़ क़रार देनेका सम्बन्ध है, हमें कोई विशेष आपत्ति नहीं ; परन्तु जहाँ विच्छेदका सम्बन्ध है, वहाँ तीन आपत्तियाँ हैं :—

१. सात सालकी अवधि बहुत अधिक है। वर्त्तमान विज्ञान के युगमें कोई भी बीमारी अगर अच्छी हो सकती है, तो साल-दो सालमें ही हो सकती है। हमारे पास रेल, तार, डाक तथा यातायातके इतने साधन हैं कि लम्बी अवधि रखनेका कोई विशेष कारण समझमें नहीं आता। सिवा इसके कि हिन्दू-समाजमें चार सालसे आठ सालकी अवधि लिखी है। अगर एक मुस्लिम-स्त्री चार साल तक पतिके लापता रहने अथवा पति द्वारा दो साल तक उसे छोड़ देने अथवा पतिको सात सालसे ऊपर जेल होने अथवा पतिके दो सालसे पागल होने या कोढ़ अथवा प्रमेह वग़ैरहकी बीमारी होने अथवा संरक्षक द्वारा १५ सालकी उम्रसे पहले शादी कर देनेपर विवाह-विच्छेदकी डिग्री ले सकती है, तो हिन्दू-स्त्रीके लिए सात सालकी अवधि क्यों ? एक पुरुषके लिए सात सालकी अवधिका इतना अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि वह सहजमें ही किसी अन्य स्त्रीसे सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उसे प्रचलित सामाजिक नियमोंके अनुसार अनुमति है। उसके पास इसके लिए पर्याप्त साधन रहते हैं। परन्तु इसके विपरीत स्त्री प्रचलित नियमोंके आधारपर तथा अपनी आर्थिक और शारीरिक कमज़ोरीके कारण (अवैध सन्तान होनेके डरसे) कोई भी ऐसा सम्बन्ध निर्भय होकर स्थापित नहीं कर सकती। या तो हिन्दू-स्त्रियोंकी प्रार्थनाका आधार भी मुस्लिम-स्त्रियोंके आधारपर होना चाहिए और पुरुषोंके लिए सात सालकी अवधि रहने दी जाय, या फिर यह ७ सालकी अवधि तीन साल या उससे भी कम रखी जाय।

२. अगर मुस्लिम-स्त्री विवाह-विच्छेद पतिके निर्दयतापूर्ण व्यवहार—अर्थात् हमेशा स्त्रीको पीटना या उसके जीवनको अपने व्यवहार द्वारा दुखी बनाना, भले ही वह शारीरिक कष्ट न हो ; पतिका बदचलन औरतोंसे मिलना-जुलना या चरित्रहीन जीवन व्यतीत करना ; अपनी स्त्रीको चरित्रहीन जीवन व्यतीत करनेको मजबूर करना ; उसकी धार्मिक भावनाओंमें बाधा पहुँचाना आदि—के कारण कर सकती है, तो एक हिन्दू-स्त्री क्यों नहीं ? मेरा अपना विचार है कि विवाह-विच्छेदके उपर्युक्त छः कारणोंके अतिरिक्त सातवाँ कारण 'अगर पति अपनी स्त्रीसे निर्दयतापूर्ण व्यवहार करता है अर्थात् उसके लिए अपने पास रखना खतरनाक अथवा अवांच्छनीय कर देता है,' अवश्य होना चाहिए। यह कारण ऐसा है, जिसके आधारपर न्यायाधीश पीड़ित प्रार्थीकी रक्षा कर सकता है।

३. इस विवाह-विच्छेद-सम्बन्धी बिलके आधारपर एक स्त्री, जिसका विवाह इस क़ानूनके बननेसे पूर्व हो चुका है, अपने नपुंसक पतिसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करवा सकती। इस बिलके पास होनेके बाद जो विवाह होंगे, वे ही नाजायज़ हो सकेंगे, ऐसा विधान इस बिलमें है। अतः यह आवश्यक है कि विवाह-विच्छेदके लिए आठवाँ कारण नपुंसकता होना चाहिए।

मैं स्वयं यह मानता हूँ कि विवाह-विच्छेदका क़ानून इस आधारपर बनना चाहिए :—

(१) विवाह-विच्छेद-सम्बन्धी क़ानूनके मुक़दमे एक विशेष न्यायाधीशपर जाने चाहिएँ। साधारण न्यायाधीशोंके सामने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खुल्लमखुल्ला इनकी पैरवी नहीं होनी चाहिए। कम-से-कम विज्ञापन इन मुकदमोंको मिले।

(२) विवाह-विच्छेदकी अनुमति सरलतासे (क़ानूनकी दृष्टिसे) ही मिल जानी चाहिए। व्यर्थके झगड़े, छानबीन, दोषी सिद्ध करनेकी आवश्यकता, वकीलोंकी पैरवी, सब अनावश्यक-से सिद्ध कर दिये जायँ।

(३) पति-पत्नीको, दोनोंकी ओरसे प्रार्थना-पत्र होनेपर, अथवा स्त्रीकी ओरसे किसी आवश्यक कारणके होनेपर प्रथम अवस्थामें एक वर्ष अलग रहनेकी अनुमति देकर उसके बाद फिर सम्बन्ध-विच्छेद क़रार दे दिया जाय। इस एक वर्षके समय में अगर वे अपने झगड़े निपटा पति-पत्नी बनकर रहना चाहें, तो उनके रास्तेमें कोई रुकावट क़ानूनन नहीं आनी चाहिए।

(४) सम्बन्ध-विच्छेदके उन मुकदमोंमें जहाँ सन्तानोंका प्रश्न सम्मुख आवे, उनमें छोटे-छोटे बच्चे तो माताके साथ ही जाने चाहिएँ। शेष जो पढ़ते हैं अथवा दस वर्षसे ऊपरकी आयु के हैं, उनका परिस्थिति-विशेषके आधारपर निर्णय होना चाहिए।

(५) अगर न्यायाधीश यह समझता है कि पति अपनी पत्नीको निकालनेका दोषी है और वह इस स्थितिमें है कि वह स्त्री और बच्चोंके खर्चके लिए रुपया दे सकता है, तो विच्छेदकी शर्त्तमें माता तथा बच्चोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था भी होनी चाहिए। स्त्रीको एक निश्चित रकम, जो उसके आवश्यकतानुसार घटाई-बढ़ाई जा सकती है, सरकारकी ओरसे मासिक रूपमें मिलनी चाहिए और सरकार उसके पतिसे वह रकम वसूल करती रहे। जहाँ यह सम्भव नहीं, वहाँ स्त्रीके माता-पिता या अन्य सगे-सम्बन्धियोंपर उसका भार डालना चाहिए। अगर कहीं भी कोई प्रबन्ध नहीं हो पाता, तो सरकारको अपने कोषसे उसका प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसी स्थिति कभी-कभी ही पैदा होगी। बच्चोंके पालन-पोषणका भार समाजपर ही पड़ना चाहिए। यूरोपीय देशोंमें इस ओर बड़ा ज़ोरदार प्रयत्न किया जा रहा है। बर्नार्ड शाका तो यहाँ तक कहना है कि वे पति-पत्नी जो स्वयं निःसन्तान रहते हैं, दूसरेके बच्चोंको पालनेके इतने ही जिम्मेवार हैं, जितने कि अपने। अगर अन्य लोग भी बच्चे पैदा न करें, तो देशकी रक्षा शत्रुओंसे किस प्रकार हो सकती है तथा किस प्रकार देशका काम चल सकता है?

विवाह-विच्छेदके विरोधी हमारे समाजमें अधिक देखनेमें आते हैं। उनके विरोधके कई कारण हैं। अपनी अज्ञानतावश वे कोई भी नई बात पसन्द नहीं करते, इसलिए यह विधान भी नहीं चाहते। स्त्रियोंको अपने स्वार्थके लिए वे सदैव ही अन्धकार और दासताकी स्थितिमें रखना चाहते हैं। अपने अनुचित अधिकारोंको वे सहजमें छोड़ना नहीं चाहते। क़ानूनका रास्ता खुल जानेपर, सम्भव है, वे विज्ञापन तथा अपनी बेइज़्ज़ती से डरते हों। कई इस क़ानूनमें पारिवारिक प्रथाके नष्ट-भ्रष्ट होने के कीटाणु पाते हैं। दूसरे देशोंके एकांगी समाचारोंके आधारपर वे सोचते हैं कि विवाह एक खिलवाड़ हो जायगा और सन्तान पालन वगैरह अच्छी प्रकारसे नहीं हो सकेगा। इसके अलावा अन्य और भी कई कारण हो सकते हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनमें कुछ सचाई भी है, बाक़ी सारहीन और भ्रममूलक। इतना तो प्रत्येक व्यक्ति समझ सकता है कि प्रत्येक विधान, रिवाज और प्रथाके अच्छे-बुरे दोनों पहेलू होते हैं। कोई चीज़ ऐसी नहीं, जो सर्वांश अच्छी या बुरी हो। विवाह-विच्छेदसे, सम्भव है, कुछ छोटी-मोटी बुराइयाँ भी आवें; परन्तु यथासम्भव क़ानूनको अनुभवके आधारपर धीरे-धीरे ठीक बनाया जा सकता है।

यह भी एक निर्भ्रान्त धारणा है कि विच्छेदकी अनुमति मिलते ही, और वह भी सहजमें ही, हर आदमी विच्छेद प्राप्त करने की ओर दौड़ेगा। वास्तविक स्थिति इससे भिन्न होगी। विच्छेदकी अनुमति क़ानूनन मिलते ही लोग केवल अन्तिम अवस्थामें ही उस दरवाज़े तक पहुँचेंगे। जहाँ एक छोटी-सी वस्तुका विछोह भी असहनीय हो जाता है, वहाँ पति-पत्नी-सम्बन्ध तोड़ना भी प्रत्येक इतना आसान नहीं पाएगा। विवाह-सम्बन्ध देख-भाल कर, सोच समझकर, स्थापित करनेपर विच्छेदके वैसे ही अवसर आयँगे। फिर एक सम्बन्धका वज़न इतना हो जाता है कि मनुष्य स्वभावतः उसे बनाए ही रखना चाहता है, नवीन सम्बन्ध अथवा नवीन जीवनकी ओर शीघ्र नहीं बढ़ता। लोग आशंका ही बनी रहती है। इसलिए वे ही पति-पत्नी इससे लाभ उठाना चाहेंगे, जो अपने दाम्पत्य-जीवनसे सर्वथा ऊब चुके हैं, जिन्हें प्रत्येक स्थिति इससे अच्छी मालूम होगी। विवाह-विच्छेद से हिन्दू-समाजके नष्ट होनेकी आवाज़ सती-प्रथाको हटानेके समय तथा शारदा-एक्ट पास होनेपर भी उठाई गई थी। परन्तु हिन्दू-समाज या पारिवारिक प्रथा अभी तक तो नष्ट नहीं हुई। खेद है कि हम सब लोग इतिहासके विद्यार्थी नहीं, इसलिए इन प्रतिक्रियाओंके निरर्थक होनेको भूल जाते हैं।

विवाह-विच्छेदका क़ानून बड़ौदा-राज्यमें १९३१ में पास हुआ था। १९४३ तक—अर्थात् गत ११ सालमें—५१४ मुकदमे विवाह-सम्बन्धी आए, जिनमें ४५ सन् १९४३ में आए। इनमें ४३७ विच्छेदके लिए, २७ न्यायानुकूल अलग होनेके लिए, ७ अलग मकान लेकर रहनेके लिए, ५ विवाह ग़ैरक़ानूनी करार देनेके लिए तथा ३८ पुनः विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए आए। सम्बन्ध-विच्छेद अधिकांश पतिकी निर्दयता, शराबखोरी और स्त्रीके घरसे निकाल देनेके लिए किया गया। इस सम्बन्ध में प्रकाशित बड़ौदाकी रिपोर्टसे यह भी पता चलता है कि जिन जातियोंमें विवाह-विच्छेदकी प्रथा नहीं है, उन जातियोंके लोग इससे बहुत कम लाभ उठा रहे हैं, यद्यपि यह क़ानून विशेष तौर

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

पर उन्हींके लिए बनाया गया है। इन जातियोंके केवल ३७ व्यक्तियोंने अभी तक इस क़ानूनसे लाभ उठाया है। यह उदासीनता प्रचलित रिवाज़ तथा परम्परागत अन्धविश्वासके कारण है, न कि क़ानून-सम्बन्धी कठिनाइयोंके कारण। इन वर्षोंमें इस क़ानूनका इन लोगोंके मुक़ाबलेमें अधिक आश्रय लिया है, अर्थात् आरम्भिक ५ वर्षोंमें जहाँ केवल ७ मुक़दमे आए, वहाँ गत ५ वर्षोंमें २६।

इस तरह अगर बड़ौदा-राज्यमें १३-१४ सालके अर्सेमें विवाह-विच्छेदके इतने कम मुक़दमे आए, तो इससे यह सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्थाके नष्ट होनेकी धारणा निर्मूल है। इससे यह लाभ होगा कि एक समयानुकूल क़ानून बन जायगा और हिन्दू-विवाह-प्रथामें जो क़ानूनी खामियाँ हैं, वे ठीक हो जायँगी; स्त्रियों और पुरुषोंमें जो विवाह-सम्बन्धी असमानता पाई जाती है, वह क़ानूनकी दृष्टिमें दूर हो जायगी; शिक्षित स्त्री-पुरुषोंका बढ़ता हुआ असन्तोष दूर हो सकेगा तथा जो पति-पत्नी विच्छेदमें ही अपने भावी जीवनका विकास देखते हैं, उन्हें उसके लिए क़ानूनकी ओरसे पर्याप्त सुविधा मिल सकेगी।

हिन्दू-ला-कमेटीने भारतवर्षमें भ्रमणकर विभिन्न व्यक्तियों, संस्थाओं, सनातनी पण्डितों, वकीलों, प्रोफ़ेसरों तथा न्यायाधीशोंकी सम्मतियाँ ली हैं। परन्तु केवल समाज-विज्ञानके प्रोफ़ेसरों, हिन्दू-लाके वकीलों, हाईकोर्टके न्यायाधीशों और योग्य तथा अनुभवी हिन्दू-समाज-सुधारकोंकी सम्मतियोंके आधारपर ही कमेटीको बिलका संशोधनकर उसे केन्द्रीय धारा-सभामें यथाशीघ्र पेश करना चाहिए। केन्द्रीय धारा-सभा अगर किसी कारणसे इसे क़ानूनका रूप देनेमें आगा-पीछा करे, तो वाइसरायका अपने विशेष अधिकारोंका प्रयोग करना भी अनुचित नहीं। हिन्दू-धार्मिक अधिकारोंमें हस्तक्षेप जब समाज-विशेष और क़ानूनकी दृष्टिसे आवश्यक है, तो इसकी ओरसे सरकारकी उदासीनता शिक्षित समाजको असहनीय होती जा रही है।

शिकार-भेद और भेद-शिकार

श्री कुँवर कन्हैयाजू

शस्त्र-विद्याविद् मृगया-सम्प्रदायके आचार्योंने मृगया-विनोद अर्थात् तफ़रीह शिकारके मुख्य तीन भेद माने हैं—थल-शिकार, जल-शिकार और आकाश-शिकार। पुनः थल-शिकारको २०, जल-शिकारको १६ और आकाश-शिकार को १६ भेदोंमें विभक्त किया। फिर देश-काल-भेदके अनुसार उक्त ५२ भेदोंको भी अनेक भेदाभेदोंमें विभक्त करके शिकारके कुल १०७ भेद कल्पित किए गए हैं। शिकारके इन भेदाभेदोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेसे द्विपद प्राणी मनुष्यकी उन्नति और अवनतिके उन साधनोंपर प्रकाश पड़ता है, जो दर्शन-शास्त्रके जटिल सूत्रों और इतिहासकी आलंकारिक भाषा-परिपाटी में हज़ार सरमगजी करनेपर भी नहीं दिखाई देते।

चरखारीके महाराज रतनसिंहका आश्रित गोपाल कवि थल, जल और आकाश शिकारके भेदोंका नीचे लिखे अनुसार वर्णन करता है। यथा :—

थल-शिकार

प्रथम घात पुनि गढ़ा पारछौ फाँस जुगारौ।
डाली - टारन बरद - झेलिया झुकन बिचारौ॥
सरकन - ढूकन हेर - अहेरी और हकाइय।
पनवा औघट - घाट परावौ स्वान हकाइय॥
गोपाल भनत बाघुर ढिकुर जाल खेद जे कहि अकल।
रमिथल शिकार यह बीस विधि रतनसिंह खेलत सकल॥

थल-शिकारके अन्तर्गत प्रथम घात-शिकार-वर्णन

बाहिय आय अनुचरन बात सुनतहिं नृप हरषिय।
निकटवर्ति लिय संग चलिय पर अमित अमररुषिय।
कर सुहत्थ बन्दूक भरी कर कलिय परच्चिय।

× × ×

गोपाल भनत रतनसेन नृप तकियजु बँध तेहि बँध हनिय।
सोवतहि प्रान मुक्किव सुँगर तेहि ठाँ सोवत सौ रहिय॥

—इच्छानुवर्त्ती सेवकोंने कहा कि घातकी खबर आई है, अर्थात् शिकारगाह रमनाके अमुक स्थानमें अकेला सूअर अपनी पाल (निवास-स्थान) में निर्भूल सो रहा है। यह सुनकर राजाको बड़ी खुशी हुई। तत्समय उपस्थित पासवानोंको साथ लेकर राजा जोशमें भरा हुआ चल पड़ा। उसके हाथमें भरी हुई बन्दूक थी और कली परच रही थी। गोपाल कवि कहता है कि राजा रतन सिंहने जिस मर्मस्थलपर निशान साधा, ठीक उसी जगह गोली मारी। सोता हुआ सूअर ज्यों-का-त्यों सोता रह गया।

कविने घात-शिकारको सर्वप्रथम स्थान दिया है। उसमें कविने उस समयकी घातका वर्णन किया है, जब रंजकदार (Match lock) बन्दूकका रिवाज़ था। 'पृथीराजरासो' में भी इसी प्रकार शब्दोंके हेर-फेरसे घात-शिकारका वर्णन किया गया है; परन्तु घात-शिकारका लक्षण खुद प्रमाणित करता है कि यह शिकार उस समयका है, जब मनुष्यके पास अन्य प्रकारके शिकारोंके कोई साधन ही नहीं थे। जिस वक्त बन्दूक ईजाद नहीं हुई थी, उस वक्त बाणसे घातका खेल खेला जाता था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाणके पूर्व भालेसे सोते हुए जानवरका मर्मस्थल भेदन किया जाता था और इसके भी पूर्व गदासे घात होना सम्भाव्य है। वस्तुतः जब ये कोई भी शस्त्रास्त्र नहीं थे, तब यानी पाषाण-युगमें बड़े भारी पत्थरके ढोकेसे घात किया जाता होगा।

यदि यह प्रश्न उठे कि मनुष्य जो इस समय संसारके प्राणी-मात्रसे सर्वोपरि आसनपर सुशोभित है और प्राणी-मात्रका शासक होनेके कारण यह स्वयं ईश्वरत्वका दावेदार है, उसने यह पदवी कैसे और कहाँसे पाई, तब उसका सहज और सरल उत्तर होगा 'घात'से। घात-शिकारके लक्षणों द्वारा अनुमोदित घात शब्दका मूल अर्थ यही हो सकता है कि किसी अन्य प्रबल प्रतिपक्षीकी असावधानीसे लाभ उठाकर, स्वयं सावधान और समूहबद्ध होकर, उसे हानि पहुँचाना। अनुकूल अवसरकी प्रतीक्षा करना (घातमें रहना), मर्मस्थलपर चोट करना, आश्वासन देकर हानि पहुँचाना आदि घात शब्दके पर्यायवाची अर्थ हैं। तात्पर्य यह है कि जो घात शब्द इस समय हेय मुहावरेमें प्रयुक्त होता है, असलमें वही घात-शिकार मानव-समाजका उन्नति-साधन, संघशक्तिका मूल श्रोत और मानवी विजय-वैजयन्तीकी आधारभूत क्रिया है।

घात-शिकार मानव-समाजकी उस अवस्थाका द्योतक है, जब कि उसके पास प्रतिपक्षीको परास्त करनेके लिए कोई भी पर्याप्त साधन नहीं थे। हिंसक जीव नख और दाँतोंसे प्रतिपक्षीका आक्रमण रोकते और उसपर खुद आक्रमण करते हैं। बैल या उसी श्रेणीके अन्य पशु सींगोंको काममें लाते हैं। घोड़े और गधे पिछले पैरोंसे चोट करते हैं; परन्तु मनुष्य-जैसे सुकुमार और निरावलम्ब जीवके पास एक बुद्धि-बलके सिवा और था ही क्या, जिससे वह अपनी रक्षा और शत्रुपर घात करता। अतः घात द्वारा उसने अनेक सौम्य और क्रूर जन्तुओंपर आधिपत्य स्थापित करते हुए जब गदा-शस्त्र ईजाद कर लिया, तब 'गढ़ा'-शिकारकी उत्पत्ति हुई।

गढ़ा-शिकार-वर्णन

ध्यान रहे कि शस्त्रोंमें सर्वप्रथम व मुख्य स्थान दण्डको प्राप्त है। दण्ड शब्दका अर्थ है डण्डा या लाठी। लाठी या डण्डेका सहारा पाकर मनुष्य इस बातका मुहताज न रहा कि वह सिर्फ़ सोते हुए शत्रुपर आक्रमण करे। उसने चलते-फिरते और सचेत प्राणियोंपर प्रहार करनेकी परिपाटीके लिए गढ़ा-शिकारका आविष्कार किया। समतल ज़मीनमें करीब दो-ढाई फुट गहरा गड्ढा खोदकर और उसके किनारेपर कुछ पत्थर व वनस्पतिकी शाखाएँ रख उसमें छिपकर बैठना और पाससे निकलनेवाले पशुपर घात करनेका नाम गढ़ा-शिकार है। यह शिकार प्रायः छोटी झाड़ी-वाले जंगलोंमें होता है, जहाँ चलता-फिरता जानवर समकक्ष दृष्टिसे दिखाई नहीं देता। अब भी गढ़ा-शिकार खेला जाता है। इसमें प्रतिद्वन्द्वीकी असावधानीके विरुद्ध खुद अपनी सावधानी विशेष आवश्यक होती है। गढ़ेमें बैठनेवालेको खाँसने और छींकने तो बात क्या साँस भी ज़ोरसे न खींचनी चाहिए। निशंग रात्रिमें एकान्त चुपचाप जंगलमें बैठनेवाला गढ़ेका शिकारी एक दुर्दान्त योगीसे किसी प्रकार कम अक्रिय क्रियाशील नहीं होता। वह वक्त गढ़ेका शिकारी ज़रा-सी असावधानीके कारण खुद किसी भीषण जन्तुका शिकार हो जाता है।

गढ़ा-शिकारका साधारण नियम यह है कि नदी वा नालेके ऐसे घाटपर जहाँसे जानवरका आवागमन हो, अथवा ऐसे जलाशयके पास जहाँ जानवर पानी पीने आता हो, या खेतोंके आस-पास जहाँ जानवर लगे हों, शिकारी अपने बैठने-भरको एक गड्ढा ज़मीनमें खोदकर किनारेपर आड़के लिए पत्थरके ढोके या झाड़-झंखाड़ रख देता है। सन्ध्या होते ही या जानवरोंके आवागमन का समय लक्ष करके शिकारी गढ़ेमें चुपचाप जा बैठता है। शिकारीको सब प्रकारसे चौकन्ना और सावधान रहते हुए जानवरके दृष्टिगोचर होते ही तत्काल उसपर वार करनेके लिए सन्नद्ध रहना ज़रूरी होता है। उसे इस बातका भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि अगर जानवर घायल होकर उसपर आक्रमण कर दे, तो वह अपने बचावका क्या साधन रखता है। गढ़ेका शिकार कहनेमें साधारण, पर बड़ी जोखिमका व्यवसाय है। तात्पर्य यह कि गढ़ा-शिकार मानव-समाजकी उस अवस्थाका सूचक है, जब कि वह आत्म-निर्भरतामें पशुओंसे अधिक बलवान होकर आत्मोन्नति की दूसरी सीढ़ीपर पैर रख चुका था।

अगोट

गढ़ेका एक आवान्तर भेद अगोट-शिकार है, जिसका कवियोंने वर्णन नहीं किया। अगोटका खेल प्रायः सन्ध्या-सवेरे होता है, जब कि जानवर जंगलसे निकलकर खेतोंमें चरने या मैदानमें घूमने जाता है और फिर मैदान या खेतोंसे लौटकर जंगलमें घुसने लगता है। ऊषाकालसे कुछ पहले ही शिकारी या शिकारियोंका दल जंगलके छोरपर चुपचाप जा बैठता है। इस खेलमें गढ़ा वगैरह नहीं बनता; परन्तु शिकारी वस्तुतः अपनेको छिपाकर तथा जानवरकी नज़र बचाकर ज़रूर बैठता है और अपने पाससे निकलनेवाले जानवरपर वार करता है। यह खेल अत्यन्त सूक्ष्मकालीन मनोविनोद-मात्र है। ऊषाकालसे लेकर सूर्योदय होते ही सवेरेकी और सूर्यास्तसे लेकर रात्रिकी अँधेरी दबते ही शामकी अगोटका खेल पूरा हो जाता है।

पारछौ-वर्णन

गढ़ेके बाद कवि पारछौ या पारछेके शिकारका नामोल्लेख करता है। गढ़ा और पारछे शिकारके विधि-विधान प्रायः समान हो हैं; परन्तु विशेष अन्तर दोनोंमें यह है कि गढ़ेके वास्ते ज़मीनमें गड्ढा खोदा जाता है, जब कि पारछेमें शिकारी वृक्षकी डाली या ऊँचे स्थानपर बैठक बनाकर बैठता है। इन दोनों

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकारके शिकारोंका प्रयोग भी जंगलकी परिस्थितिपर निर्भर है। हाँ, यह बात अवश्य है कि गढ़ेका खेल सिर्फ़ रात्रिमें होता है और पारछौका प्रयोग दिन और रात्रि दोनों समय होता है। कारण, इसका हकाईके शिकारसे विशेष सम्बन्ध है।

फाँस

पारछौके बाद फाँसका नाम आता है। यही फाँस उत्तरोत्तर आगे चलकर वरुणपाश, कुबेरपाश आदिके रूपोंमें परिणत हो गया है। असलमें रस्सीका फन्दा (यही साधारण फन्दा, जिसमें कुएँसे जल निकालनेका घड़ा फाँसा जाता है, या फाँसी लगाई जाती है) डालकर किसी जीवको वशीभूत निर्जीव करनेका कौतुक 'फाँस-शिकार' है। फाँससे अधिकांश गुड़ारे यानी गीसोंवाले जानवरका ही शिकार होता है। यह ध्यान रहे कि जिस फाँसका देवास्त्रके रूपमें वर्णन है, उसके फन्दे और रस्सीकी बनावटमें फ़र्क़ है। मानवी शस्त्रोंके सम्बन्धमें फाँसको कबन्ध या कमन्द भी कहा गया है। भारतवर्षमें ठगीके समय तक इस (फाँस) का प्रयोग होता रहा है। ठगोंके सरदार अमीरखां चीतूने अपने जीवन-वृत्तान्तमें कई जगह फाँसका वर्णन किया है।

जुगारौ

जब कोई नखी (हिंसक) जानवर शिकार मारकर खाते-खाते कुछ अंश छोड़ जाता है, उसीको गारौ कहते हैं; पर सही शब्द जुगालौ है, जो जुगालीसे बना है। शृंगी पशु खाद्य-पदार्थको पेट-भर खा लेनेके बाद निश्चिन्तापूर्वक बैठकर अपने पेटके खाए हुए चारेके गोले-से पेटसे अचकचकर मुखमें लाते, फिर उसे स्वादपूर्वक चबा-चबाकर निगलते हैं। इसीको जुगाली कहते हैं। दुबारा चबाए जानेवाला अधकुचला खाद्य जुगालौ कहलाता है। हिंसक पशु खाते-खाते आसूदा होकर बचा हुआ मांस दूसरे वक्तके लिए छोड़ देते हैं, उसका नाम भी जुगालौ या जुगारौ हो गया और वही जुगारौ शब्द अब केवल गारौ या गायरा कहा जाता है।

जब किसी जगह गारौ या गायरेका पता पड़ता है, तब शिकारी उसके समीप ही गढ़ा या पारछा बनाकर सन्ध्याके पूर्व जा बैठता है, और जब गारौ करनेवाला जानवर आता है, तो शिकारी उसपर आघात (बन्दूकका फायर) करता है या बाण चलाता है। इस खेलमें भी पूर्वोक्त गढ़ेके शिकारकी भाँति शिकारीका सचेत और सावधान रहना ज़रूरी है। कारण, अगर गारौ-कर्त्ता जन्तु शिकारीको देख ले, तो वह भाग जायगा, और अगर आघातका निशाना चूक जाय या ओछा पड़े, तो लक्ष्य जन्तु शिकारीपर भयानक आक्रमण करता है।

अब तक जिन पाँच प्रकारके शिकारोंका संक्षिप्त वर्णन किया गया है, वे मानव-समाजकी उत्तरोत्तर उन्नतिकी चार सीढ़ियोंको द्योतक हैं। अर्थात् जब मनुष्य अन्यान्य पशुओंकी भाँति निःशस्त्र था, तब वह केवल घातसे शत्रु-पराजय और आत्म-रक्षा करता था। कालान्तरमें जब उसने दण्डका आविष्कार किया, तब गढ़ेसे शिकार करनेकी परिपाटी निकाली गई। दण्ड-शस्त्रसे लेकर भाले (कुन्त) और तलवारके आविष्कार-पर्यन्त गढ़ा-शिकारसे काम चलता गया। किन्तु जब पाश यानी फाँस की युक्ति ईजाद हुई, तो उसके लिए गढ़ा उपयुक्त न समझकर पारछेपर बैठनेकी युक्ति सोची गई। पारछेमें बैठकर फाँससे लेकर धनुष-बाणके आविष्कार तक काम चलता रहा। परन्तु मनुष्य स्वभावतः असन्तोषी जीव है। जब वह दूरसे ही मर्मभेदी अस्त्रसे सुसज्जित हो गया, तब उसने एक जगह बैठकर जानवरकी प्रतीक्षा करना उचित न समझ डालीका शिकार ईजाद किया।

स्मृतिकी साधना

श्री चन्द्रचूड़, बी०ए०

स्मृतिकी रेखाएँ किस अतीतके अन्तरालमें छिपी हुई स्वानुभूतियोंको और मनुष्यकी सवेदनशील प्रकृतिको रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्शके साथ स्पष्ट कर देती हैं; कैसे देखी गई चीज़ोंके रूपकी स्मृति हो आती है और बीत गई बातोंको हम लोग स्मरण करते हैं, यह मनोविज्ञानका विषय है। मनुष्य की अनेक कोमल और लचीली भावनाओंमें मधुर और तीव्रका, सुन्दर और कुरूपका तथा जीवन और सत्यका यथार्थ विश्लेषण अतीतकी स्मृतिसे होता है। स्मृतिसे स्मरण होता है। बौद्ध साहित्यके मिलिन्द-प्रश्नमें सोलह प्रकारोंसे स्मृतिकी उत्पत्ति बतलाई गई है। स्मृतिके वे जन्म-स्थान इस प्रकार हैं—अभ्याससे, निर्देशसे, महत्त्वपूर्ण घटनाओंके संयोगसे, आनन्दसे, विषादसे, दो वस्तुओंमें समानता होनेसे, दो असमान वस्तुओंमें एकको देखनेसे, दूसरेके कहनेसे, लक्षणसे, प्रयत्नसे, विचारसे, गणनासे, कण्ठस्थ कर लेनेसे, भावनासे, अध्ययनसे और शास्त्रोंसे।

पूर्व अनुभवके कारण इतनेमें से किसी एक अथवा अनेकके उपस्थित होनेपर स्मृतिकी उत्पत्ति होती है। प्रायः देखा जाता है कि इन घटनाओंके संघटनसे सोई हुई स्मृतियाँ जाग उठती हैं, जिस तरह इच्छाएँ मरती नहीं, दबाई जा सकती हैं, उसी तरह स्मृतियाँ भी सो-सोकर जागती हैं। जीवनमें स्मृतियोंका समादर इसीलिए है कि अधिकांश जन शेष स्मृतियोंके आधारपर ही जीते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस समय मैं 'गीत' लिखने लगता हूँ, नहीं जानता प्रेरणा कहाँसे मिलती है। पर लिखता हूँ, क्योंकि इसके बिना चित्तको शान्ति नहीं मिलती। मैं आत्म-सन्तोषके लिए लिखता हूँ और आत्म-विस्मृतिके लिए भी। जिन क्षणोंमें गीत-रचनाके लिए आह्वान होता है, वे क्षण मेरे जीवनके कितने अमूल्य क्षण होते हैं! संसारकी संकुल परिधिसे अपरिमित उनका दैनिक जीवनके साधारण क्षणोंसे कितना विशिष्ट मान है, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यह मान मुझे स्मृतियोंसे मिलता है। स्मृतियाँ मनुष्यको बनानेवाली होती हैं। स्मृतियाँ मनुष्यको बिगाड़ भी देती हैं। स्मृतिका उन्माद मनुष्यको कवि, कलाकार और दार्शनिक बना देता है। कभी-कभी तो इस उन्मादके वशीभूत होकर वह स्थूल जगतमें अपनेको न पाकर बिलकुल संज्ञाहीन-सा हो जाता है। किन्तु दूसरे ही क्षण स्वप्नके टूटनेपर वह स्मृतिकी साधना कल्पनाके पंखोंपर बैठकर पूरी करनेका प्रयास करता है। जिन लोगोंने सुप्रसिद्ध कलाकार हाइनरिख हाईनकी मर्म-भरी कविताएँ पढ़ी हैं और उनमें उसके हृदयकी यन्त्रणाओंकी अनुभूति पाई है, कविके स्मृति-पत्रों एवं आत्म-चरितके आधारपर कलाकारके जीवनमें स्मृतिके महत्वका निर्देश वे ही कर सकेंगे। क्यों 'निरी मूर्खताकी यह इच्छा कविको अपने साथ बहाए ले जा रही है,' इसका अनुशीलन कविकी मानसिक दशासे तटस्थ रहनेवाले नहीं कर सकते। मैं मानता हूँ कि केवल स्मृतिकी साधना कलाकी प्यास नहीं बुझा सकती; पर उसके अभावमें कलाकी कोई भी विवेचना अधूरी नहीं तो अपूर्ण अवश्य रह जायगी।

यह जगत स्थूल द्रव्यों एवं मूर्त्त वस्तुओंके संघातसे बना है। मूर्त्त वस्तुएँ वे हैं, जिन्हें हम अपनी आँखोंसे देख तथा इन्द्रियों से स्पर्श अथवा अनुभव कर सकते हैं। प्रत्यक्ष रूप-विधानमें जहाँ कहीं हमारी दृष्टि जायगी, वहीं हमें मूर्त्त स्वरूप मिलेगा। मूर्त्तका विपर्यास है सूक्ष्म; सूक्ष्मको हम केवल भावनाके क्षेत्रमें देख सकते हैं। कल्पनाको मूर्त्त स्वरूप देनेका तात्पर्य है स्मृतिके सहारे चेतनाको भाषा, शैली, ताल आदि वाह्य उपकरणों द्वारा जीवनके सत्यमें विसर्जित कर देना। जब तक स्वरों या पार्थिव कलाके अर्थमें चिह्नोंका आश्रय न लिया जायगा, रूप-विधानकी कोई प्रक्रिया प्रत्यक्ष, स्मृत या कल्पित अनिमन्त्रित होगी, और इस तरह कलाकी प्रेषणीयताका मान भी टूट जायगा।

कलाकी दृष्टिसे कलाकारकी स्मृति ही विस्मृति कहलाती है। कलाकारके जीवनमें विस्मृतिकी भावना जितनी ही प्रबल होगी, जीवनका सत्य सौन्दर्यमें प्रतिष्ठित होनेके लिए अपने सम्पूर्ण आवेगसे विद्रोहके लिए लालायित हो उठेगा। चित्रकारकी तूलिका माइकेल एंजलोका वरदान बन जायगी और कविकी भावुकता उर्वशीके प्रति मधुमय बोल बनकर फूट पड़ेगा। इस माधुर्यका रहस्य क्या है? कला सौन्दर्यकी मूर्त्तिमान अभिव्यक्ति है। कलाकार उसी सौन्दर्यको जब प्रकृतिमें प्रत्यक्ष स्मृत अथवा कल्पित रूप-विधानों द्वारा देखता है, उस समय उसे एक विक्षण रसात्मकताका बोध होता है, और वह उस अनन्त सौन्दर्यके सदृश अपनेमें भी एक अनन्त सौन्दर्यकी चिनगारी दीप-शिखाके समान मनोहर फूटती हुई अनुभव करने लगता है। उसके इसी सौन्दर्यानुभूतिमें कलाकी प्रेरणा छिपी होती है, जिसके सहारे कलाकार अपने भावोंको संयत एवं प्रणाली-संगत बनाकर कलाको मूर्त्त रूप देता है—यद्यपि वह चित्त-वृत्तियोंको दबाता नहीं, उन्हें निरंकुश भी नहीं होने देता। इस प्रकार सौन्दर्यकी कल्पनासे कलाकार उल्लसित होता है, फिर अपने आयोजनके अनुसार वाह्य उपादानों द्वारा कल्पनाको मूर्त्त रूप देकर उसे स्थायी बना देना चाहता है। कलाकारकी प्रथम प्रेरणा ही रसकी साधनावस्था है।

रसकी निष्पत्ति स्मृतियोंके संचय एवं मधुमें लिपटी हुई अतीतकी भावनासे परिसमाप्त होती है। हृदयकी यन्त्रणा और हृदयका उल्लास दोनों ही उसके आत्मीय पक्ष हैं। गानोंमें विशेष कर लालसाके गीत तो एकमात्र स्मृतिपर ही अवलम्बित होते हैं; शिल्पीका अभिमान और वीणाके तार भी स्वप्नलोककी कल्पनामें उलझी हुई स्मृतियोंका एकदम रसीली और चित्रमयी भावुकताका वांछित गहराईके साथ सृजन करते हैं। रहस्यको सम्पृक्तकर चिरन्तनताका रूप देनेके लिए स्मृतिकी आराधना 'गीतांजलि'में कवीन्द्र रवीन्द्रने इस प्रकार की है:—

नम्र शिरे सुखेर दिने
तोमार मुख लइबे चिते
दुःखेर राते निखिल धरा जे दिन करे वंचना
तोमारे जेन ना करि संशय।

लोक-जीवनमें जहाँ एक तरफ़ सामूहिक गुलाबी पंखुड़ियोंवाले रूप-विनिमयमें हमारी आत्मा सहज आह्लादसे उद्वेलित हो उठती है और वैज्ञानिक सभ्यताके विद्युत्-कोषसे शक्ति ग्रहण की जाती है, उन्हीं भौतिक परिसरोंके बीच लकड़ीके तख्ते और लोहेकी चादरें उठाए मौतके क्षेत्रसे गुज़रते हुए मनुष्योंको देख कर हरबर्ट रीडके शब्दोंमें 'प्रलयकी छाया'की प्रेरणा मिलती है:

My men go wearily
With their monstrous burdens.
They bear wooden planks
And iron sheeting
Through the area of death.
When a flare curves through the sky
They rest immobile.
Then on again,
Sweating and blaspheming—
'Oh bloody Christ!'
My men, my modern Christs,
Your bloody agony confronts the world.

जीवनकी छायाकी पार्श्वभूमिमें जिस तरह पीड़ा, उसी तरह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

स्मृतिविलासकी स्वाभाविक उन्मादिनी भावनाओंके उच्छृंखल आकर्षणमें स्मृतिकी प्रेरणा समान रूपसे काम करती दिखलाई पड़ती है। फिर चाहे वह कवीन्द्र रवीन्द्रकी निश्छल आध्यात्मिकता हो अथवा अधरोत्पलके प्रेमी विद्यापतिकी इन्द्रियजन्य अनुभूतियाँ। विश्वके अप्रतिम कलाकारोंके निश्शंक प्रदर्शनके पीछे स्मृतिकी सैकड़ों नीहारिकाएँ झाँक रही हैं। कौन कह सकता है कि मेघदूतके 'त्वामालिख्य प्रलयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्'में वर्णित यक्षकी विरह-दशा स्वयं महाकविके अशान्त हृदयकी अव्यक्त प्रतिध्वनि नहीं है और कवीन्द्र रवीन्द्रकी 'शाहजहान'-शीर्षक कविता कविके विविक्षत कंगाल नयनोंकी मूक भाषा ही 'सम्राट् कवि' के लावण्य-विलासमें परिवर्त्तित नहीं हो गई है? जीवनकी विषमताओंका सामना करते हुए भी कलाकार अपनी स्मृतिको एक क्षणके लिए छोड़नेको तैयार नहीं; जैसे उसका यही मोह चिरकालीन सत्य हो।

कलाकी कान्ति, स्वयं कलाकारके शब्दोंमें, 'कठिनाइयोंकी चिन्ता न करके कण-कणसे शिला बने आडम्बरको उसी सहज भावसे छिन्न-भिन्नकर डालती है, जिस सरलतासे माँके भृकुटि-भंगपर हँसता हुआ बालक फीके खेलौनेको फेंक कर चूर-चूर कर देता है। तब वह आदर्श और यथार्थके बीचको खाइयोंको जीवनके सहज संवेदनसे भरता हुआ उस देशमें जा पहुँचता है, जहाँ स्वप्न कभी झूठे नहीं होते, सौन्दर्य कभी पुराना नहीं पड़ता, सूक्ष्म कभी शून्य नहीं बनता और स्थूल कभी निर्जीव नहीं रहता। यह सारा व्यवसाय कल्पना और स्मृतिका है। स्मृतिका नीराजन यथार्थ और आदर्शकी मलिन संकीर्णता धोकर उनके बीच स्थापित अचेतनताकी गहरी खाईको समूल नष्ट कर डालता है। और कलाकार व्यष्टिमें सीमित चेतनाको उन्मुक्त कर समष्टि तक पहुँचेनेका साधन प्रस्तुत करता है। रूपके मरु-स्थलमें भी उसे अपनी आत्माकी प्रत्यक्ष आवज़ सुनाई देती है।

नव-क्षितिज

श्री हंसराज 'रहबर'

महेन्द्रने सुबहकी सैर स्थगित कर दी थी और अपने कमरेमें बैठा उस बुढ़ियाका इन्तज़ार कर रहा था, जो कल शाम को भी आई थी, पर उससे बिना मिले ही लौट गई थी। जेलमें बन्द अपने इकलौते बेटेकी बातें उसके साथी क़ैदीसे सुननेके लिए वह कितनी उत्सुक थी। शायद उसे रात-भर नींद भी न आई हो। महेन्द्र खुद जाकर उससे मिलता। लेकिन वह ग्वालमण्डीमें रहती थी और उसे नई और पुरानी अनार-कलीके थानोंकी सीमासे बाहर जानेकी आज्ञा न थी। सरकारने उसे रिहा क्या किया था, बाँधकर दाना-दुनका चुगने-भरको छोड़ दिया था।

जंगके कारण इस दुनियामें रहना भी तो कोई आसान बात न थी। महेन्द्रने दो-चार दिनमें ही देख लिया था कि इन तीन सालोंमें जब कि वह जेलमें था, ज़माना कितना बदल गया है। भयानक महँगाई, सरकारी आतंक, आर्डिनेन्सोंका राज, जनताके मनमें भय और आशंका। उसके बहुतसे साथी अब तक जेलमें पड़े थे और जो रिहा हो कर आए थे, वे अपने-अपने इलाक़ोंमें नज़रबन्द कर दिए गए थे। न आराम, न आज़ादी। फिर न जाने उसकी आत्मा दुनियामें क्या देखनेके हेतु जेलसे छूट आनेके लिए छटपटाया करती थी?

उसके लिए कमरेमें बैठना कठिन हो जाता था। वह सुबह-सवेरे ही निकल जाता और दिन-भर बिना मतलब इधर-उधर घूमता रहता। रात गए लौटता और चारपाई बिछाकर सो रहता। अब घण्टा, सवा घण्टा बैठना पड़ा, तो तबीयत घबराने लगी। उसे यह छोटा-सा कमरा क्षण-प्रतिक्षण तंग होता हुआ मालूम हो रहा था—मानो दीवारें एक-दूसरेके क़रीब आ रही हैं और उसकी आत्माको बीचमें भींचकर मसल देना चाहती हैं। काश कि वह बुढ़िया जल्द आय और वह चन्द मिनट उससे बातें करके इस पिंजड़ेसे बाहर निकले।

वह यह सोच ही रहा था कि बुढ़ियाने कमरेमें प्रवेश किया। महेन्द्र आदरके लिए उठ खड़ा हुआ। उसे अपनी कुर्सी पर बिठाया और खुद सामने रखी छोटी-सी मेज़के एक नुक्कड़पर बैठ गया। बुढ़ियाकी उम्रका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल था। लेकिन वह बूढ़ी थी—बहुत बूढ़ी। उसका सुन्दर और कोमल चेहरा झुर्रियोंसे भरा था। कमर किसी क़दर झुक गई थी। ताँगेसे उतरकर कमरे तक चार क़दम चलकर आनेमें ही उसकी साँस फूल गई थी। परन्तु उसकी आँखें उस आदि और पवित्र ज्योतिसे चमक रही थीं, जो केवल माँको प्राप्त होती है। जब वह महेन्द्रकी ओर ध्यानसे देख रही थी, तो ऐसा मालूम होता था कि उन प्रतिभापूर्ण आँखोंसे कोमल प्रकाशकी किरणें निकल कर न सिर्फ़ कमरेमें ही फैल रही हैं, बल्कि महेन्द्रकी आत्मामें प्रवेश कर उसके भीतरका अन्धकार भी दूर भगा रही हैं।

वह चुपचाप बैठी महेन्द्रकी ओर देखती रही। शायद वह यह जान लेना चाहती थी कि इतने दिनों जेलमें रह लेनेके बाद उसे यह दुनिया कैसी लग रही है? जेलसे लौटनेवाला महेन्द्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जेल जानेसे पहलेके महेन्द्रसे मुख्तलिफ़ तो नहीं है ? उसका शरीर कमज़ोर तो नहीं हो गया है ? उसकी अत्मा कहीं सुकड़ तो नहीं गई है ? वह मनुष्य था और आया मनुष्य ही लौटा है ? यही या इसी प्रकारके दूसरे विचार उसके मनमें उठ रहे थे, जिनका जवाब उसे चाहे कुछ ही मिला हो, लेकिन अन्तमें वह मुस्करा पड़ी थी और उसने स्नेह-सिक्त स्वरमें पूछा—'तुम कब रिहा हुए बेटा ?'

'परसों, नौ तारीखकी शामको।'

'तुम्हारे साथ और लोग भी आए होंगे ?'

'मैं तो अकेला ही आया हूँ। और आदमी पहले छूट चुके थे।'

इसके बाद वह बुढ़िया मालूम नहीं क्या पूछना चाहती थी। उसके होंठ तनिक खुले, लेकिन कुछ सोचकर वह चुप हो गई। महेन्द्रने खुद ही कहा—'सरकार हर छः महीनेके बाद नज़रबन्दों के मुक़दमोंपर गौर करती है। जिन्हें मुनासिब समझती है, छोड़ देती है। बाक़ीके लिए छः महीने और जेलमें रहनेका नया हुक्म भेज देती है। मुझे भी वह हुक्म मिल चुका था, लेकिन पन्द्रहेक दिन बाद अपने-आप ही छोड़ दिया। न जाने क्यों ?'

'तुम्हारी क़ैदके दिन खत्म हो चुके थे, बेटा !—बुढ़ियाने सुखकी साँस लेते हुए कहा—'अच्छा बेटा, पूरनचन्द तुम्हारे साथ ही रहता था न ?'

'जी हाँ, हमारे कमरे बिलकुल पास-पास थे।'

'तुम कमरोंमें बन्द ही रहते थे या आपसमें मिल-जुल भी सकते थे ?'

'कमरे खुले रहते हैं। कांग्रेसी क़ैदी आपसमें मिल-जुल सकते हैं। इकट्ठे बैठते और इकट्ठे खेलते हैं। किसी प्रकारकी बंदिश नहीं।'

'आदमी अकेला बैठे तो दिन काटना मुश्किल हो जाता है'—बुढ़ियाने ज़िन्दगी-भरके अनुभवसे कहा और फिर बोली—'हाँ, तो पूरनचन्द वहाँ कभी उदास तो नहीं होता था ?'

'जी नहीं, बिलकुल खुश रहता था।'

बुढ़िया एकदम चुप हो गई। उसकी आँखोंसे सन्तोष या असन्तोष कुछ भी व्यक्त न हो रहा था। महेन्द्रने महसूस किया कि भावनाओंसे रिक्त नेत्रोंका प्रश्न कितना दुखप्रद होता है! वह वेदना-युक्त स्वरमें अपनी ही बातका प्रतिवाद करते हुए बोला—'जब आदमी विवश हो, तो खुश रहना ही अच्छा है।'

'ठीक है बेटा, उसे क़ैद तो अवश्य काटनी थी। इस तरह न जाता, तो किसी और तरह जाता। इस काममें किसी प्रकारकी बदनामी तो नहीं, नेकनामी ही मिलती है। दुख-सुखका क्या है, वह तो शरीरके साथ ही लगा है।'

'हाँ माँ, क़िस्मतका लिखा तो भुगतना ही पड़ता है।' महेन्द्रने मुक्त भावसे कहा। वैसे वह क़िस्मतके फलसफ़ेमें कत्तई चित् विश्वास नहीं रखता था; पर इस समय इसके अतिरिक्त और कुछ कहना बुढ़ियाके नेत्रोंमें जो सुखमय भावना उमड़ आई थी, उसे आहत करना होता। वह बुढ़ियाकी ओर देख रहा था और उसकी निरानन्द प्रातः-ओसमें नहाई कलीके सदृश मुख पर आँखें आकर्षित होती जा रही थीं। सहसा बुढ़िया पूछ बैठी—'पूरनचन्दने कच्छे मँगवाए थे, वे उसे मिल गए होंगे ?'

'जी हाँ, मिल गए थे।'

'बाहर तो वह कच्छे कभी नहीं पहनता था। जेलमें पहनेका हुक्म होगा तुम्हें ?'

'हुक्म तो कोई नहीं, वैसे ही पहन लेते हैं। उठने-बैठने और खेलनेमें ज़रा सहूलियत रहती है।'

क्षण-भरके लिए खामोशी रही। फिर बुढ़िया बोली—'सुना है कि तुम सारे लाहौरमें घूम नहीं सकते ?

'जी हाँ, इसीलिए तो आपको तकलीफ़ उठानी पड़ी।

'तकलीफ़ क्या है बेटा, दो बार मुलाक़ातको गई हूँ। आजकल गाड़ीके सफ़रमें आदमी मर रहता है। और फिर कहाँ कोसों दूर ! इतनेपर भी उसे देखा ज़रूर है, पर बात कुछ भी नहीं हुई। सिपाही कान लगाए सिरपर बैठा रहता है। कुछ कहते-सुनते डर लगता है कि कहीं झिड़क न दे या बादमें बेटेपर खफ़ा न हो। समझमें नहीं आता वह क्यों बैठा रहता है वहाँ ?'

'क़ानून है सरकारका'—महेन्द्रने उत्तर दिया और वह व्यंग भावसे मुस्कराया। बुढ़िया भी मुस्कराई, लेकिन उसकी मुस्कराहटमें व्यंग न था। उसके चेहरेसे ऐसा निरीह भाव झलक रहा था, जो बच्चेके चेहरेपर उस समय प्रकट होता है, जब वह कोई ऐसी बात देखता या सुनता है, जो उसके लिए अत्यन्त अचरज की तो होती है, पर वह उसे समझ नहीं सकता। महेन्द्रके दिमाग़में व्यंग-भाव दब गया और वह संजीदगीसे सोचने लगा—यह अजीब क़ानून है, जो माँ-बेटेके प्रेममें दखल देना भी अपना अधिकार समझता है!

'क्या सोच रहे हो बेटा ?'—बुढ़ियाका सवाल सुनकर महेन्द्र चौंका और बोला—'कुछ नहीं माँ वैसे ही।'

'न बेटा, कोई ऐसी-वैसी बात हो, तो मुझे बता दो। मैं इतनी दूरसे आई हूँ और जानना चाहती हूँ कि उसे वहाँ किसी क़िस्मकी तकलीफ़ तो नहीं है।'

'जी नहीं, मैं सच कहता हूँ। उसे कोई तकलीफ़ नहीं। नज़रबन्दोंसे काम नहीं लिया जाता, उन्हें सज़ा नहीं मिलती। सरकारने खुराक बाँध रखी है, वह उन्हें देनी ही पड़ती है। बस इतनी बात है कि जब तक उन्हें छोड़ न दिया जाय, वे जेलके दरवाज़ेसे बाहर नहीं आ सकते।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Mumbai. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

'अन्दर रहनेका तो कुछ डर नहीं बेटा। जितने दिन उसके भाग्यमें जेलका दाना-पानी लिखा है, वह तो खाना ही पड़ेगा।' कहकर बुढ़ियाने इत्मीनानकी साँस ली और चुप हो गई। फिर वह तनिक आगेको झुकी और प्रेम-भरी दृष्टिसे महेन्द्रकी ओर देखते हुए बोली—'मुझे एक और बातका खटका लगा रहता है। तुम तो अन्दरसे आ रहे हो, सब कुछ जानते हो; एक बात बताओगे?'

'क्यों नहीं माँ, तुम पूछो तो सही।' महेन्द्रने कहा।

'मैंने सुना है कि जो लोग जेलमें रह गए हैं, उनके लिए सरकारने कोई नया क़ानून बनाया है। सुना है, अब उनपर अधिक सख्ती की जायगी। क्या यह सच है बेटा?'

उसका शरीर भयसे काँपने लगा। मानो उसने कोई स्वप्न देखा हो, जिसमें भयानक और हिंसक दानव उसके बच्चेको घेरे खड़े हों और लोहेकी गर्म-गर्म शलाखें हाथमें लिए उसे डरा रहे हों।

'जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। किसीने आपसे ग़लत कहा होगा।'

इस जवाबसे उसे कुछ तसल्ली तो हुई, मगर वह फिर बोली—'पर हुकूमतका क्या एतबार? अगर वह सख्ती करने लगे, तो कौन रोकनेवाला है?'

महेन्द्रको उस सख्तीका खयाल आया, जो उसे और उसके साथियोंको क़िलेमें सहन करनी पड़ी थी। अगर जेलमें भी इस प्रकारकी सख्तियाँ रवाँ रखी जावें, तो वाक़ई हुकूमतको कौन रोकनेवाला है? वह असमंजसमें पड़ गया कि बुढ़ियाकी तसल्लीके लिए क्या जवाब दे? सोचनेके लिए भी रुकना उचित न था। वह बोला—'रोकनेवाला तो दरअसल कोई नहीं, पर उन्होंने वतनपरस्तीके सिवा कोई जुर्म भी तो नहीं किया, जिस कारण हुकूमत उनपर सख्ती करे। जो लोग छोड़ दिए गए और जो लोग अभी तक जेलोंमें हैं, दोनोंको इस सन्देहमें गिरफ़्तार किया गया था कि वे बाहर रहते हुए गड़बड़ करेंगे। जब तक हुकूमतका यह सन्देह दूर नहीं होता, वह उन्हें बन्द रख सकती है; पर उनके साथ सख्ती नहीं कर सकती।'

'बहुत अच्छा बेटा, तुम्हें सब खबर है। इसी लिए तो तुमसे पूछने आई हूँ। तुमसे मिलकर आत्मा ठंडी हो गई। तुम्हें देखकर मानो मैंने अपने पूरनचन्दको देख लिया।'

बुढ़ियाकी आँखोंमें ममता भरी थी, जिसे देख महेन्द्रको अपनी बूढ़े माँका ध्यान हो आया, जो सैकड़ों मील दूर थी और जिसे वह मिलने नहीं जा सकता था। उसे खयाल था कि शायद किसी दिन वह खुद ही आय। कुछ क्षण बुढ़िया गुमसुम बैठी रही। उसने कमर कुर्सीकी पुश्तसे टेक ली थी। दायाँ बाजू पास ही लटक रहा था, बायाँ गोदमें पड़ा था और उसकी आँखें दूर शून्यमें कुछ ढूँढ़ रही थीं। उनमें थकान न थी, निराशा न थी; विवशताका दुखप्रद एहसास था—उस मुसाफ़िरकी तरह, जो अपने जीवनकी तमाम राहें आरामसे तय कर चुका हो, लेकिन जब वह मंज़िलके निकट पहुँचता है, तो कोई व्यक्ति उसके मार्गमें एक भारी पत्थर फेंक देता है। वह उसे उठा नहीं सकता, फांद नहीं सकता। इधर-उधर रास्ता ढूँढ़ता है, पर न पाकर चुप हो जाता है और किसी सहारेका मुन्तज़िर है। बुढ़ियाका यह चित्र बड़ा करुणोत्पादक था। महेन्द्र बैठा उसे देखता रहा। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कभी नहीं बोलेगी। लेकिन उसके होंठ हिले और वह एकदम बोली—'इस दुःखका अन्त भी होगा।'

'होगा क्यों नहीं माँ, जब इतने आदमी कोशिश कर रहे हैं?'

'दिल तो मेरा भी यही कहता है, पर यह समझमें नहीं आता कि सरकार गाँधी महात्माको किस तरह जेलमें रख सकती है? वह तो देवता है—साक्षात् देवता।'

और फिर वह अपने-आपमें खो गई। न जाने वह किस भविष्यका चिन्तन कर रही थी? उसके मुखपर एक विचित्र प्रकारकी प्रसन्नता नाच उठी थी! ऐसा मालूम होता था जैसे बूढ़े शरीरमें जीवनकी नई लहरें दौड़ रही हैं। उसके चेहरेकी झुर्रियाँ मिट गई थीं, होंठ आप ही आप हिल रहे थे और उसकी साँसें वातावरणको पवित्रता और प्रेमसे शराबोर कर रही थीं।

अन्तमें वह उठी और महेन्द्रके सिरपर हाथ फेरकर धीरे-धीरे चलती हुई कमरेसे बाहर निकल गई।

घोषणा

श्री आरसीप्रसाद सिंह

जाति, रंग, देशसे मनुष्य, तू विभिन्न है?
कृष्ण, श्वेत, रक्त, पीत, हो रहा तुझे प्रतीत;
आत्माके वस्त्र सभी अंग-अंगमें पुनीत!
रंगोंसे ऊपर तू, एक रंग, एक वर्ण और अविच्छिन्न है!
तुझमें क्या जाति-भेद? एक शरीर, एक खेद!

हे मनुष्य, बँधा हुआ आज तक; महान् खेद!
उठ न अभी तक सका? कौन शत्रु तेरा है? किससे तू भिन्न है?
घेर नगर, प्रान्त, देश, आप बँध रहा अशेष;
हे असीम, अन्त-हीन, इतना क्यों क्षुद्र वेश?
क्या स्वदेश? क्या विदेश? तेरा सम्पूर्ण भुवन; फिर क्यों तू खिन्न है?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधुनिक हिन्दी-काव्यकी पृष्ठभूमि

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'

आधुनिक हिन्दी-साहित्यका काल उस समयसे शुरू होता है, जब हिन्दुस्तानपर अंगरेज़ी हुकूमत क़ायम हो जाती है। अंगरेज़ी हुकूमतके साथ ही साथ अंगरेज़ी भाषा, साहित्य, सभ्यता और संस्कृतिका भी प्रवेश देशमें हुआ। उस समयकी अंगरेज़ी संस्कृति और साहित्यमें सामन्त-कालीन बन्धनों से मुक्तिकी भावना बलवती थी। भौतिक विज्ञानका असर भी उसपर हो चला था। अनेक देशोंसे सम्पर्क क़ायम करना भी उसमें सहज हो गया था। पर इन सबके साथ ही अंगरेज़ी हुकूमतमें दूसरे देशोंपर शोषणके लिए शासनकी वृत्ति भी थी। शायद इसीलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्रपर इसकी प्रतिक्रिया हम इस रूपमें पाते हैं :—

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अतिख्वारी॥

यहाँ अंगरेज़ी हुकूमतकी बुराई इतनी ही मानी जाती है कि उससे धन विदेश चला जाता था। पर इसका यह अर्थ नहीं कि अंगरेज़ी सभ्यता और संस्कृतिको देश वैसे ही कबूल कर लेता है। कहनेका अर्थ इतना ही है कि अंगरेज़ी शोषणके अलावा और बातोंपर सोच-विचारकी गुंजाइश भी थी।

अंगरेज़ी हुकूमतके साथ जो सामन्त-कालीन बन्धनोंसे मुक्तिकी भावना देशमें आई, उसका असर बड़ा व्यापक पड़ा। अंगरेज़ोंके सम्पर्कमें रहनेवाले समुदायमें देशकी संस्कृति और सभ्यताके प्रति उपेक्षा और अंगरेज़ी सभ्यतामें ही सब गुण माननेकी भावना बलवती होने लगी। पाश्चात्य सभ्यताके साथ ही आनेवाले मिशनरियोंने इस भावनाको और भी उभाड़ा। राजनीतिक दृष्टिसे पराजित देशके सामने सांस्कृतिक पराजयका खतरा आ गया। हिन्दुस्तानके लिए यह खतरा सबसे बड़ा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों इस खतरेसे सावधान होने लगे। इस कालमें मुसलमानोंके नेता मौलाना सैय्यद अहमदशहीद (बरेलवी) और मौलाना मुहम्मद इस्माइल हुए। देवबन्दका मदरसा क़ायम हुआ, जो इसलामी संस्कृति और देशकी राजनीतिका केन्द्र बना। मौलाना रशीदअहमद (गंगोह) ने हिन्दू-मुसलमानोंके एकाको क़ायम रखनेमें बड़ा काम किया। मुसलमानोंने अंगरेज़ी भाषा और अंगरेज़ी हुकूमतके स्कूलों तकका बहिष्कार किया। हिन्दुओंमें नवजागरण-कालके सबसे बड़े नेता राजा राममोहन राय हुए। उनके अन्दर मुसलमानों-जैसी कट्टरता नहीं थी। उन्होंने अंगरेज़ी सभ्यताको समझनेके लिए अंगरेज़ी पढ़ी और अंगरेज़ी सभ्यतामें जो-कुछ उत्तम था, उसे स्वीकार किया। पर उन्होंने यह भी बता दिया कि हमारे यहाँ भी बहुत कुछ उत्तम है। उन्होंने इस्लामी संस्कृतिको उसकी मूल भाषामें जाना और उसके भी सर्वोत्तमको कबूल किया। हिन्दू-समाजकी सामाजिक बुराइयोंको दूर करनेमें उन्होंने जो काम किया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं है। उस ज़मानेमें उन्होंने देशकी राजनीतिको संसारके नक़्शेपर रखकर देखा; और स्पेनकी स्वाधीनताकी खुशीमें सभा की। इसी प्रकार दक्षिण अमरीकाके स्पेनीय उपनिवेशोंके सफल विद्रोहकी खुशीमें उन्होंने कलकत्तेके टाउन-हालमें एक भोजका आयोजन किया था।[1]

राजा राममोहन रायने १८२८ में ब्रह्मसमाजकी स्थापना करके जिस आन्दोलनकी सृष्टि की, उसका असर देशपर बहुत व्यापक हुआ। आगे चलकर १८४२ में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरका प्रवेश इस आन्दोलनमें हुआ। पर इस कालके बाद इस आन्दोलनमें भी शिथिलता आ गई। एक तरफ़ तो अंगरेज़ी राजनीतिके कारण कुछ लोगोंकी उदार-वृत्तिमें भी कटुता आ गई—जैसे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर अंगरेज़ी भाषाके पत्रोंको भी अस्वीकार करने लगे—और दूसरी ओर राजा राममोहन रायकी उदार-वृत्तिसे अनुचित लाभ उठानेके लिए कुछ लोग अंगरेज़ोंके गुणानुवाद करने लगे और उसमें अपनेको भूल जाने लगे। पर इसके बावजूद इतिहासके विद्यार्थीको नज़रोंमें राजा राममोहन राय क्रान्तिके वाहक सिद्ध होते हैं। उन्होंने एक ऐसी चेतना दी, जिससे हिन्दुस्तानकी सभी जातियों और सभी धर्मोंकी एकता सम्भव थी। उन्होंने अंगरेज़ों तथा विदेशियोंसे उतना ही लिया, जितनेसे हिन्दुस्तानी क़ौम संसारकी नज़रोंमें ऊपर उठ सकती थी और उठी। पर उनकी उदार चेतनाको समझने और उसे कबूल करनेके लिए जिस चित्तकी ज़रूरत थी, वह जन-साधारण में उस समय नहीं था। जन-चित्त सामन्ती बन्धनोंसे आक्रान्त था; इसीलिए ब्रह्म-समाजका आन्दोलन नूतन शिक्षा-सम्पन्न लोगों तक ही महदूद रह गया।

इस बीच ईसाई मिशनरियोंका प्रचार ज़ोरोंसे चल रहा था। इन मिशनरियोंका ध्यान हिन्दुस्तानियोंको ईसाई बनानेकी ओर था। ईसाइयोंके इस मज़हबी हमलेका असर हिन्दू-समाज और विशेषतया निम्नकोटिपर पड़ रहा था। राजा राममोहन राय और ब्रह्मसमाजने उसका जो निराकरण किया, वह कुछ तो जन-साधारण तक पहुँच न सका और कुछ जन-साधारणमें भी वहाँ तक पहुँचनेकी शक्ति नहीं थी। ऐसी ही परिस्थितिमें स्वामी दयानन्द का आविर्भाव हुआ। स्वामी दयानन्द विचारक कम और सैनिक

---

१. 'एडिनबरो मैगेज़ीन', सितम्बर, १८२३। इस अवसरपर उन्होंने कहा था—"दुनियामें जहाँ कहीं भी हम लोगोंकी तरह कष्ट पानेवालोंको सफलता मिले; वह हम लोगोंके लिए खुशीकी बात है।"

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ज़्यादा थे। इनकी दृष्टि विशेष व्यापक नहीं थी। ये वैदिक साहित्यके पंडित थे और उसी तक इनकी दृष्टि महदूद थी। हिन्दू-धर्मकी रक्षा करना इनका ध्येय था। इसीलिए इन्होंने वेदकी नई व्याख्या की। उसमें शूद्रोंके लिए भी इन्होंने जगह रखी और इसी अंशमें इनका आन्दोलन प्रगतिशील तथा आक्रमणमूलक था। किन्तु इनके आन्दोलनका मुँह वेदकी ओर था, सामन्त-वादको तोड़कर भीषण वेगसे प्रधावित भौतिक विज्ञानको इन्होंने नहीं समझा। संसारकी गतिको न समझनेके कारण ही स्वामी दयानन्दके आन्दोलनसे हिन्दुस्तानको किसी हद तक धक्का लगा। इस सम्बन्धमें महात्मा गांधीने कहा है—"स्वामी दयानन्द सरस्वतीको मैं अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। कारण कि हिन्दू-धर्मकी उन्होंने भारी सेवा की है। इनकी बहादुरीके सम्बन्धमें किसीको शंकाकी गुंजाइश नहीं है। लेकिन उन्होंने स्वयं हिन्दू-धर्मको संकीर्ण कर दिया। आर्य-समाजके ग्रन्थ साहब 'सत्यार्थ प्रकाश'को मैंने दो बार पढ़ा है। यरवदा-जेलमें उसके तीन अनुवाद मित्रोंने भेजे, जिसे फुर्सतके समय मैंने देखा।...ऐसा निराशाजनक ग्रंथ मैंने दूसरा नहीं देखा। उन्होंने उस ग्रंथमें सत्यकी और सिर्फ सत्यकी हिमायत करनेका दावा किया है। लेकिन ऐसा करते हुए अनजानमें उन्होंने जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और खुद हिन्दू-धर्मका अर्थका अनर्थ किया है।..."[२] इस्लाम और उसकी स्पिरिटको भी स्वामीजीने ठीक-ठीक समझनेकी कोशिश नहीं की। वे वेदको छोड़ और कहीं सत्य और भलाई माननेके लिए तैयार ही नहीं थे। यही कारण था कि दिल्ली-दरबारके समय सर सैयद अहदखाँ और श्री केशवचन्द्र सेनसे स्वामी दयानन्दकी एकता न हो सकी और यह देशका सबसे बड़ा दुर्भाग्य हुआ।[३]

इस तरह हम देखते हैं कि भारतीय नवजागरण-कालमें मुसलमानोंका नेतृत्व पहले देवबन्द-स्कूलके हाथमें जाता है। इस आन्दोलनका आधार इस्लामी संस्कृति और क़ुरान है। पर हिन्दुस्तानकी समस्त जातियों की (उनके अपने विश्वासोंके साथ) क़ौमी एकताका हामी भी यह आन्दोलन था और जिसका असर भी हमें १८५७ के विद्रोहमें दिखाई पड़ता है। राजा राममोहन रायका ब्रह्मसमाज तथा उनके और आन्दोलनोंका आधार सांस्कृतिक एकता है। हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों तथा और-और धर्मों तथा जातियोंके सर्वोत्तमको लेकर और उसे भारतीय बनाकर उन्होंने एक नई चेतना पैदा की। उन्होंने मानव-चित्तकी उदारता, सामन्ती बन्धनोंसे मुक्ति और मनुष्यकी मनुष्यतापर ज़ोर दिया। इस आन्दोलनका असर भी हमें उस कालके नेताओंपर दिखाई पड़ता है। इसीके असरकी देन महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं।

नवजागरण-कालमें जो भी आन्दोलन सामने आता है, वह अपनी प्राचीन संस्कृतिको आधार मानता है। लेकिन शुरूमें हम देखते हैं कि अपनी प्राचीन संस्कृतिको आधार मानते हुए भी अपनी पड़ोसी जातिकी संस्कृतिको आदरकी दृष्टिसे देखनेकी भावना मिलती है। देवबन्द-स्कूल द्वारा चलाए गए आन्दोलनोंमें यह साफ़ है। राजा राममोहन रायके आन्दोलनोंमें वह उदार तत्व और भी चमक उठता है। पर स्वामी दयानन्द द्वारा चलाए गए आन्दोलनोंमें से यह उदारता ग़ायब हो जाती है। इसके साथ ही सर सैय्यद अहमदखाँ मुसलमानोंके नेताके रूपमें सामने आते हैं। इनकी दृष्टिमें पड़ोसी जातियोंके लिए शंका रहती है। साथ ही अपने पूर्ववर्ती सभी मुसलिम नेताओंसे विपरीत सर सैय्यद अहमदखाँ अंगरेज़ी सरकारकी ओर झुकते हैं। यहींसे हमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एक-दूसरेके प्रति खिंचाव और अलगावकी भावना मिलती है।

अधुनिक हिन्दी-साहित्यका वही क्षेत्र है, जिसमें स्वामी दयानन्द भी अपना काम करते थे—अर्थात् मध्यदेश—हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त और जन-समुदाय। स्वामी दयानन्दके पहले इस क्षेत्रमें नवजागरण-कालका कोई ऐसा नेता नहीं हुआ था। स्वामीजीका प्रभाव भी इस क्षेत्रपर काफ़ी पड़ा। नवजागरण-कालके समाज-सुधारक नेता वे ही थे। आर्यसमाज द्वारा चालाए गए समाज-सुधारके आन्दोलनोंमें से ही हिन्दी-साहित्यका नवजागरण-काल शुरू होता है। इस कालके सभी कवियोंमें नई चेतना है, जिनमें से कुछ तो आर्य-समाजके सामाजिक सिद्धान्तोंको स्वीकार कर चलते हैं और कुछ उसमें मतभेद रखते हुए भी सुधारकी बात करते हैं। पर एक बात यह स्पष्ट है कि सबपर किसी-न-किसी रूपमें स्वामी दयानन्दका प्रभाव रहता है। स्वामी दयानन्द के प्रभावमें रहनेवाले कवियोंने स्वामीजीकी तरह ही हिन्दू-समाज के अन्य सम्प्रदायोंका उपहास किया; मुसलमानोंको ग़ैरतकी निगाहसे देखा।[४] उनमें देशकी आज़ादीकी भावना तो है, पर वह देश केवल हिन्दुओंका रह गया है, जब कि उसमें मुसलमान भी हैं। और उनकी दृष्टि आगेकी ओर नहीं, बल्कि सामन्ती बन्धनोंकी ओर ही है। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्यमें रोमांस बादमें चलकर आता है। इस कालके हिन्दी-साहित्यमें समाज-सुधारकी जो लहर आती है, उसमें हिन्दू-समाजकी ८५ प्रतिशत बुराइयोंका कारण मुसलिम हुकूमतको माना जाता है।

२. 'धर्म मंथन' (गुजराती), खण्ड १, हिन्दू-धर्म, पृ० ६८।
३. 'आर्यसमाजका इतिहास' (ले० इन्द्र विद्यावाचस्पति), पृ० ११७।

४. हिन्दीके कवि १८५७ के विद्रोहमें अंगरेज़ोंके साथ थे। अंगरेज़ोंको वे अच्छी नज़रसे देख रहे हैं। कुछ आलोचक इसमें मुग़ल-शासनका ज़ुल्म देखते हैं; पर यह ऐतिहासिक भ्रम है। हमें तो इसमें उच्चवर्गके हिन्दुओंका स्वार्थ, अंगरेज़ी कूटनीति और स्वामी दयानन्दका एकांगी आन्दोलन ही मालूम पड़ता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक आधुनिक आलोचकने लिखा है—"...इनके साथ ही विधवा-विवाह-निषेध, बहु विवाह, खान-पान-सम्बन्धी प्रतिबंध, समुद्र-यात्राके कारण जाति-बहिष्कार, नशाखोरी, पर्दा, स्त्रियोंकी हीनावस्था, धार्मिक साम्प्रदायिकता, अफ़ीम खाना आदि कुप्रथाओं का चलन हो गया। इनमें से कुछ तो कालवश स्वयं हिन्दू-जातिमें उत्पन्न हो गई थीं और कुछ विदेशी आक्रमणकारियोंके कारण फैल गई थीं।"[५] जिन्हें हिन्दू-समाजका ज़रा भी ऐतिहासिक ज्ञान है; वे जानते हैं कि ८वीं शतीसे पहले हिन्दू-समाज में ये सारी बुराइयाँ थीं, जिनके प्रमाण हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंमें मिलते हैं। राजा राममोहन रायने कहीं भी इस तरहकी ग़लत बात नहीं कही, इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस युगमें सभी हिन्दू मुग़ल-सल्तनतके अत्याचारसे मुक्त करनेवाले अंगरेज़ोंके प्रति कृतज्ञ और मुसलमानोंके प्रति चिढ़े थे। हिन्दी-साहित्यके नवजागरण-कालमें मुसलमानोंके प्रति यह जो रुख़ है, उसे हम हिन्दी-साहित्यका स्वाभाविक विकास नहीं मानते। इसके अन्दर अंगरेज़ोंकी भेद-नीतिक चाल है, जिसे अनेक कारणोंसे उस समय हिन्दीके साहित्यिकों तथा समाज-सुधारकोंने नहीं समझा था। पर ब्रह्मसमाजकी उदार छायामें पले रवीन्द्रनाथ ठाकुरने बंग-भंगके बाद ही उसे समझ लिया और समझकर कहा—"यदि सचमुच यही बात है, अंगरेज़ोंने ही मुसलमानोंको हमारे विरुद्ध खड़ा होनेका पाठ पढ़ाया है, तो उन्होंने हमारा महत् उपकार किया है। जिस प्रचण्ड सत्यकी नितान्त उपेक्षाकर हम बड़े-बड़े राष्ट्रीय कार्योंकी योजनाएँ तैयार कर रहे थे, उसकी ओर आरम्भमें ही उन्होंने हमारी निगाह फिरा दी है। यदि इससे हम कुछ भी शिक्षा न ग्रहण कर उल्टे शिक्षक ही पर क्रोध करना अपना कर्त्तव्य समझेंगे, तो हमको फिर ठोकर खानी पड़ेगी। जो सच्ची बाधा है, उसका सामना हमें करना ही पड़ेगा—चाहे जैसे भी करें। उसकी निगाह बचाकर निकल जानेका कोई रास्ता नहीं है।"[६]

भारतीय नवजागरण-कालके शुरूसे ही संस्कृत-साहित्यके अध्ययनकी ओर विद्वानोंका ध्यान गया था। भारतीय वाङ्मयके अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद विदेशी विद्वानोंने किया था। हिन्दुस्तान के इतिहासकी खोजका काम भी शुरू हो गया था। दर्शन और साहित्यके क्षेत्रमें भारतीयोंके ज्ञानकी प्रशंसा संसारकी विद्वद्-मण्डलीमें होने लगी थी। किन्तु इसके साथ ही पाश्चात्य विद्वानों के एक दलने भारतीयोंको इतिहास और राजनीतिमें कोरा सिद्ध करना चाहा। इस दलका कहना था कि पुराने भारतीयोंका ध्यान स्वर्ग और मोक्षकी ओर था, यही कारण है कि उनका क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता और उनमें राजनीतिका भी ज्ञान नहींके बराबर था। इस दलके ऐसे प्रचारका यह गूढ़ार्थ था कि भारतीयों—हिन्दुओंके लिए—अंगरेज़ी हुकूमत एक वरदान है। इस कूटनीतिक विद्वद्-दलका जवाब उस समयके भारतीय विद्वानों ने यथासाध्य दिया। पर उसका ठीक जवाब तो बौद्ध साहित्यके अन्वेषणके बाद ही दिया गया। किन्तु इन सब सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक घात-प्रतिघातोंके फल-स्वरूप नव-जाग्रत भारत राष्ट्रमें यौवनका उन्मेष हो चला। इस सांस्कृतिक यौवनोन्मेषने भारतीय संस्कृतिके एक ऐसे तत्वका सहारा लिया, जो यद्यपि संसारके सभी साहित्योंमें था, पर जिसका सुन्दरतम विकास भारतीय साहित्य और संस्कृतिमें ही था। वह तत्व था वेदान्त। इस कालमें वेदान्तपरक युग-धर्मके स्रष्टा थे स्वामी रामकृष्ण परमहंस। पर उनके गम्भीर ज्ञानको आत्मसात् करके, उसे दिगन्तव्यापी करनेका श्रेय है स्वामी विवेकानन्दको। यद्यपि स्वामी विवेकानन्दका वेदान्त वही नहीं था, जिसकी शिक्षा शंकर और रामानुजने दी थी। उनके वेदान्तने कर्म ही नहीं, क्रांतिकी प्रेरणा भी दी थी। उनके वेदान्तने विरक्त और निकम्मे नहीं, बल्कि वे कर्मठ पैदा किए, जो अदृष्ट और मृत्युका भी उपहास करते थे। कुछ ही आगे चलकर स्वामी रामतीर्थने इस वेदान्त को मध्यकालीन साधना-धारा और तसव्वुफ़की अमृत-माधुरीसे भर दिया। इस कालमें जिस कर्ममूलक वेदान्तका प्रबल प्रचार हुआ, उसके अन्दर व्यापक भारतीय चिन्ता-धाराकी अभिव्यक्ति हुई। इस कालमें इन दोनों मनीषियोंने मानव-हृदयके एक ऐसे सत्यको स्पर्श किया, जो किसी-न-किसी रूपमें सभी देशोंमें मौजूद था। यही कारण था कि वेदांतके माध्यमसे इन दोनों महापुरुषोंने संसारमें भारतीय संस्कृति और सभ्यताको गौरवान्वित किया। सम्भव है, इन दोनों व्यक्तियोंके लिए वेदान्त चरम साध्य रहा हो। पर हम देखते हैं कि इस समयमें भारतीय जागृतिके लिए वेदान्त आन्दोलन एक अभिनव साधन रहा है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने वेदांतके मान्य ग्रंथ गीताकी ऐसी कर्म और क्रांतिमूलक व्याख्या की, जिसके अन्दर उस कालका सम्पूर्ण जीवन साकार हो उठा। बंगाल और पंजाबमें इस वेदांत आन्दोलनने ऐसे क्रांतिकारी पैदा किए, जिनका जीवन-रस गीता था। बंगालमें तो कुछ समयके लिए गीतापर सरकारी पाबन्दी भी लगाई गई थी। हमें मालूम है कि मध्य-कालमें कबीरने वेदांत के माध्यमसे ही हिन्दू-मुसलिम एकताका स्वर-संधान किया था और थोड़े समयके लिए ही सही, इस समयमें हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मुहम्मद इक़बाल दोनोंको वेदान्तकी वीणापर एक ही राग गाते हुए पाते हैं। अंगरेज़ोंके अविराम कूटनीतिक दाँव-पेंचके बावजूद भी थोड़े समयके लिए हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको भाई-भाईके रूपमें रहते पाते हैं।

५. 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (ले०. डा० वार्ष्णेय), पृ० २९।
६. हमारी सबसे बड़ी समस्या—'विश्व भारती पत्रिका' खं० ३, अंक ४।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस कालमें हमारे साहित्यपर विदेशी साहित्यका भी असर पड़ रहा था और वेदांत-आन्दोलनसे भी वह अनुप्राणित था। सामन्त-कालीन सभी सामाजिक बन्धनोंको तोड़कर मुक्त मन-प्राणसे संसारमें विचरण करनेकी भाव-धारा यूरोपीय साहित्यकी देन है, और उसमें भी एक नैतिक नियम, एक व्यापक विश्वात्माकी चेतना वेदांत आन्दोलनकी देन है। इन दोनोंका सुन्दर सामंजस्य हम रवीन्द्र-साहित्यमें पाते हैं। इस कालका कवि वेदांत को मानते हुए भी इस संसारको 'देश बेगाना' नहीं मानता और न इस संसारसे परे कहीं मुक्ति चाहता है। संसारके नाना बन्धनों के अन्दर ही उसकी मुक्तिके स्वादकी इच्छा इस सामंजस्यका युग सापेक्ष सुन्दर फल है। इस कालमें श्रुति-अमान्यकारी शुद्ध बाउलों का 'सबार ऊपर मानुष सत्य, ताहार ऊपर नाई' मान लिया जाता है। और सच तो यह है कि मानवताके इस अभिनव कालमें ही वेदांतको भी श्रुतिके कठोर नागफाँससे मुक्ति मिलती है। इस कालमें वेदांत सिर्फ़ वेदवालोंका ही नहीं, जैनों, बौद्धों, मध्य-कालीन श्रुति-अमान्यकारी सूफ़ियों और सन्तों सभीका हो जाता है और सभी उसमें मिल जाते हैं। और इसके साथ ही उसे इतिहास और विज्ञान-सम्मत निखिल मानव-समाजकी विश्व-चेतना भी मिल जाती है। इस कालमें इन सभी चेतनाओंसे अनुप्राणित एक महान प्रतिभाका उदय भी होता है और उसे हम रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नामसे जानते हैं।

हिन्दी-कविताका नवजागरण-काल भारतेन्दुसे शुरू होता है। किन्तु भारतेन्दु और भारतेन्दुके समकालीनोंमें सामन्ती बन्धनोंको तोड़नेका रुझान, विश्व-चेतना और सम्पूर्ण मानवताके लिए एक स्वर स्पष्ट नहीं सुनाई पड़ता; यद्यपि इनके अन्दर ये चीज़ें थीं। पर स्वामी दयानन्दके वेदवादी कट्टर आन्दोलनके कारण ये सभी सहित्यिक सिर्फ़ सुधारक होकर रह गए। इसी लिए हिन्दी-साहित्यके अन्दर विश्व-साहित्यका असर ज़रा बादसे शुरू होता है। हिन्दी-साहित्यमें रोमांसकी स्पष्ट झलक श्रीधर पाठकसे शुरू होती है। किन्तु वहाँ वह सहमा हुआ भी है और भारतीय चिन्तनके अन्दर भी नहीं है। भारतीय चिन्तनके अन्दरसे यह नई चेतना, जिसे लोग लौकिक और अलौकिक रहस्यवाद भी कहते हैं, पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवीसे शुरू होती है। कहा जाता है कि हिन्दी-कविताकी इस नई प्रवृत्ति या स्तर-विकासमें रवीन्द्रनाथ और उनकी गीतांजलिका प्रभाव है। पर सिर्फ़ इसीको देखना मूलको छोड़कर पल्लवको ग्रहण करना है। किसी एक आदमीके प्रभावसे किसी साहित्यका ऐसा विकास नहीं होता। हिन्दी-साहित्यके इस नूतन विकासका कारण स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थका वेदान्त-आन्दोलन, यूरोपीय साहित्यका प्रभाव, रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी सफलता और युद्धोत्तर संसारकी नई स्थिति तथा उसका हिन्दु-स्तानपर असर है। इस नई प्रवृत्तिको छायावाद, रहस्यवाद और रोमांस भी कहते हैं। पर अधिकांशमें इसे छायावाद और कुछ रहस्यवाद कहते हैं। इसके कवि अक्सर अपनेको 'रोमांटिक' कहनेमें संकोच करते हैं। शायद इसका कारण यह है कि वे 'रोमांस'में सिर्फ़ यौन-भावनाकी अभिव्यक्ति पाते हैं। और उससे अपनेको अलग करनेके खयालसे ऐसा कहते हैं। जो भी हो; पर ये छायावादी कवि ही हिन्दीके रोमांटिक कवि हैं। इनकी सामन्ती बन्धनोंसे मुक्तिकी वृत्ति यूरोपीय नव-जागरणकी भावना और उसके साहित्यके फल-स्वरूप है; और उसमें वेदान्त मूलक भक्ति तथा धर्म-भावना भारतीय नव-जागरण और वेदान्त-आन्दोलनका प्रतिफल है।

हिन्दी-काव्यके छायावादको यूरोपीय भावना और कलाके संस्पर्शमें वेदान्तकी रहस्यात्मक भावनाकी साधनाहीन अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं। यहाँ कवि ब्रह्म, विराट पुरुष या विश्वमानव के प्रति आकर्षित नहीं है; यहाँ तो वह अपने सुख-दुखके प्रति मोहाक्रान्त है। ब्रह्म, विराट पुरुष या विश्वमानव-जैसी वस्तु उसके काव्यमें साध्य नहीं है; साध्य है उसका अपना सुख और उस सुखके प्रति तीव्र इच्छाकी अभिव्यक्ति। उसके काव्यमें ब्रह्म या विश्वमानव-जैसी चीज़ तो साधनके रूपमें है। सम्भवतः इसका एक बड़ा कारण यह है कि उसके समय तक व्यवहार रूपमें समाजपर सामन्ती बन्धनोंकी मान्यता थी, और उसका सुख, उसकी कामनाके लिए उन बन्धनोंका तोड़ा जाना जरूरी था; पर उन सामन्ती बन्धनोंको तोड़कर अपनी बात स्पष्ट कहनेकी उसमें सामर्थ्य नहीं थी। इसीलिए उसने ब्रह्म-जैसे प्रतीकका सहारा लिया। यही कारण है कि उसकी काव्यगत भावनासे ब्रह्म या विश्वमानवकी लोक-प्रचलित भावनाका मेल नहीं खाता। हिन्दीके छायावादी कविकी समान साधारण अभिव्यक्तिमें जो चीज़ सामने आती है, उसको रहस्यवाद नहीं कहा जा सकता।

जिस समाजमें हिन्दीके छायावादी कवि पैदा हुए, उसके संस्कार सामन्त-युगके थे। उसमें जो समाज-सुधारके आन्दोलन चले, उसके अन्दर समाजको पीछे वैदिक युगकी ओर मोड़नेकी प्रवृत्ति थी। अपने इतिहास और अपनी संस्कृतिको समझना एक बात है और उसीको शास्वत सत्य मानकर पकड़ रखना बिलकुल दूसरी बात है। इस युगके आलोचकोंमें विकासवाद, समाज-शास्त्र, इतिहास और विज्ञानकी मान्यता नहीं है। वे सामने देखना और चलना नहीं चाहते—यद्यपि आगे चलनेके लिए उनपर धक्का लग रहा है। उनकी मान्यताएँ सामन्त-युगीन हैं, उनका स्वर्ण-युग पीछेकी ओर है, जिसका सापेक्षिक अर्थ होता है आगे बढ़नेसे रुकना। इस स्थितिके साथ ही उस युगकी राज-नीतिमें हम अंगरेज़ी पूँजीवाद द्वारा भारतीय समाजके विकास

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का रोका जाना भी पाते हैं और उसके फल-स्वरूप भारतीय विकासका विद्रोहात्मक रूप विदेशी वस्तु-बहिष्कार और असहयोग आन्दोलन सामने आता है।

ऐसी ही कारारुद्ध स्थितिमें विद्राहात्मक पेरण और व्यापक असन्तोषके साथ हिन्दी कवितामें छायावादका आविर्भाव होता है। हिन्दी-कविताके इस युगमें जो असन्तोष, अतृप्ति और वेदना मिलती है; उसे कवियोंकी व्यक्तिगत चीज़ कह कर टाला नहीं जा सकता। काव्यमें व्यक्तिगत कुछ नहीं होता। इन कवियोंकी असन्तोष-भावना और अतृप्तिमें इनके युगकी असन्तोष-भावना और अतृप्ति व्याप्त है। यदि ऐसा न होता तो अपने उपजीव्यके अभावमें ये कवि खत्म हो गए होते। हिन्दीके छायावादी काव्यमें व्यक्त असन्तोष और अतृप्ति अपने कालमें समाजके अज्ञात मानसका, या विकासके लिए व्याकुल समाजका सापेक्ष है। वह उस कालकी मनःस्थिति है। उस कालमें समाजको परिचालित करनेवाली शक्तियाँ तो आगे बढ़ गई हैं, पर समाजके संस्कार और उसकी मान्यताएँ पुरानी हैं; नूतन आकांक्षाओंपर पुरातन समाजके प्रतिबन्ध हैं। प्रायः सभी हिन्दीके कवि मध्यश्रेणीके हैं। और मध्य श्रेणीका आर्थिक धरातल निरन्तर नीचेकी ओर खसक रहा है; पर उस श्रेणीका मानसिक रुझान उच्च श्रेणीके जीवनकी ओर है। इस तरह उनके जीवनमें अतृप्ति और प्रवंचनाका राज हो जाता है। पर पुराने संस्कारों और मान्यताओंके कारण वे अपनी अतृप्ति और प्रवंचनाका कारण समाजमें न ढूँढ़ कर उसे नियतिकृत मान लेता है। और जब वह उसे नियतिकृत मान लेता है, तब उसके सामने निराशा, तिमिर-पारावार और वेबसी छा जाती है। किन्तु इस निराशा और बेबसीके बावजूद भी उसमें गति है और गतिके कारण ही छायावादी अपनी समस्याओं के कारणोंकी ओर निगाह न करके भी आगे बढ़नेकी बात करता है। वह सीमाकी गोद-पलनेपर भी असीमसे खेलना चाहता है। वह असीमाकाशको बन्धनोंका भिखारी देखना चाहता है। उसकी मुक्तिमें बन्धनोंकी कामना रहने लगती है। वह दुःखों और कष्टों की आँचमें अपने जीवन-रूपी सोनेको तपाकर खरा करना चाहता है; अपने आदर्श रूपी प्रिय-पथके शूलोंको भी वह प्यार करने लगता है। छायावादी कविका यह रूप इतना मनोमुग्धकारी, उदात्त और शक्तिदायक है कि हम उसपर गर्व कर सकते हैं।

यहाँ तक आते-आते छायावादी कविताके विकासकी पृष्ठभूमि खत्म हो जाती है। १९३२ के आन्दोलनके बाद भारतीय जन-जीवनके रंगमंचपर नूतन चेतनाके साथ साम्यवादका दृश्य आ जाता है। और जाग्रत छायावादी कवि 'सब-कुछको क्षय अभिनन्दित' देखने लगता है और उसके हृदयमें 'सब-इच्छाओंका आकुल फिकरव' होने लगता है।

चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा?

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा?
आसमाँका क्या कि धरती देख, धू-धू जल रही है,
हर घड़ी जैसे क़यामतके लिए हो पल रही है।
चल रही है नाशकी क्रीड़ा, प्रलय हुंकारता है;
आज मानवता कि अपने हाथ टूटे मल रही है।
इस जलनके बीच अपनी नींद किसपर वो सकेगा?
चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा?

आसमाँ तो दूर है, इस पासको तो देख, भाई!
नर-पिशाचोंके भयानक हासको तो देख, भाई!
देख तो यह दर्प, जिसको सह रहा है देवता भी;
इस अबोधी लालसाके लासको तो देख, भाई!
यह अगर भड़की, तो फिर क्या चाँदनीसे हो सकेगा?
चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा?

फूल की है सेज तेरी किन्तु कुछ भूसर पड़े हैं;
और भू कैसी कि जलती आग धू-धूपर पड़े हैं।
किरन तो क्या है कि कोई सुधा भी उनपर बरस दे;
वे न चेतेंगे कि यमके बाणके अक्षर पड़े हैं।
काँटों पर सोया कि हमसे जागने को क्या सकेगा?
चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा!

उबलती है आँचसे गंगा, हिमाचल गल चला है;
विन्ध्यकी छाती चटखती है कि रेवा रो रही है।
रक्त कृष्णाके कलेजेसे अरुक अविरल चला है।
स्वप्नके जलसे इसे तू क्या कभी भी धो सकेगा!
चाँदनी चन्दन छिड़कती कि तू सो भी सकेगा!

उठ कि सीनेसे लगी है आग—जगनेपर बुझेगी;
लग गई जीमें अगर तेरे तो लगनेपर बुझेगी।
यह न सोनेसे बुझेगी, यह न रोनेसे बुझेगी;
खड़े होकर देखते रहते, न भगनेसे बुझेगी;
तू निछावर प्राण यदि कर दे, अमर हो भी सकेगा।
चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा!

यह प्रलयकी आग, इस पर प्यारका सागर उलट दे;
प्यारका सागर नहीं गर पास तो गागर उलट दे।
पासमें दो बूँद भी तेरे अगर हों—सींच तो दे!
कालका यह नेत्र, चाहे एक क्षणको मींच तो दे!
एक सुख सन्देश लेकर तब कि मर तो भी सकेगा!
चाँदनी चन्दन छिड़कती है कि तू सो भी सकेगा!

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गद्य-काव्य

श्री तेजनारायण काक, एम० ए०

पिछले कुछ वर्षोंसे मैं हिन्दीके गद्य-काव्य-साहित्यका अध्ययन कर रहा हूँ। इसी सम्बन्धमें कुछ खोज करते हुए मैंने अंगरेज़ी, बँगला और गुजरातीके गद्य-काव्य-साहित्यको भी उलट-पुलटकर देखा है। जहाँ तक हिन्दीके गद्य-काव्य-साहित्यकी सम्पन्नताका प्रश्न है, मुझे हमारे साहित्य-स्रष्टाओंसे कोई शिकायत नहीं; क्योंकि मैंने उसे अन्य भाषाओंके गद्य-काव्य-साहित्यसे परिमाणमें किसी प्रकार कम नहीं पाया। किन्तु जहाँ उसके साहित्यिक स्वरूपकी विवेचनाका प्रश्न आता है, वहाँ इस विषयकी ओरसे हमारे साहित्यिकोंकी घोर उदासीनता, उत्कट उपेक्षा-भाव और अज्ञानका अनुभवकर मुझे अत्यन्त निराशा होती है।

साहित्यमें नए-नए विषयों, शैलियों और साहित्यिक स्वरूपों के उद्भव और विकासकी दृष्टिसे गद्यकी अपेक्षा पद्यका नम्बर हमेशा पहले रहता आया है। गद्यमें भी उपन्यास, कहानी आदि मनोरंजक विषयोंके जन्म और विकासके बाद ही निबन्धके दर्शन होते हैं, और गद्य-काव्य, मेरे विचारमें, निबन्धका सबसे विकसित रूप होनेके कारण गद्यका भी पूर्ण विकसित, सबसे नवीन और ठोस स्वरूप है। इससे आगे गद्यमें हमारी अभिव्यंजन-शैलीका और अधिक विकास होना कदाचित् असम्भव है।

फिर भी श्री रामचन्द्र शुक्ल-जैसे उद्भट समालोचकके वृहत् इतिहास-ग्रन्थमें गद्य-शैलीके इस नवीनतम विकासके विषय में दो-चार स्फुट पंक्तियोंको छोड़ हमें कुछ नहीं मिलता। यहाँ तक कि हिन्दी-साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें अपनी मौलिक और प्रगतिशीलताकी धाक जमानेवाले, शुक्लजी-जैसे प्रकाण्ड विद्वानको शिवरात्रि विकिलकी उपाधिसे विभूषित करनेवाले हमारे वर्त्तमान समाजवादी समालोचनाचार्य भी इस ओरसे सर्वथा मौन ही हैं।

प्रसिद्ध साहित्यिक-विचारक श्री जैनेन्द्रकुमारने इस विषयमें पत्र-व्यवहार करते हुए हाल ही में मुझे लिखा था—"हिन्दीमें गद्य-काव्यके इतिहासको अलग करके मैं नहीं देख पाता हूँ। उसके साहित्यिक स्वरूपके विषयमें मुझे प्रतीत होता है कि वह विशेष लोकप्रिय न हो सकेगा, न अधिक प्रेरक। बिना गाढ़े रंगके गद्य-गीत रंगीन हो सकता है। वह सामयिक मूडका द्योतक है। प्रेरणा गम्भीर हो तो, इसकी लाचारी वहाँ नहीं है। मेरे खयालसे आजके हिन्दीके गद्य-गीतमें समीक्षा और विवेचना का कुछ कठिन्य भी आना चाहिए। वह तरल बहुत है।" आधुनिक हिन्दीके एक प्रसिद्ध साहित्यसेवीने, जिनका नाम मैं यहाँ प्रकट नहीं करना चाहता, मुझे लिखा था—"गद्य-गीत तो शायद वह चीज़ होती है, जिसमें छायावादी ढंगकी कुछ प्रियतम [illegible] चीज़ें हुआ करती हैं।" एक प्रगतिवादी सम्पादक महोदय, जो अब शायद [illegible] हैं, मेरे एक परिचित साहित्यिकके भेजे हुए कुछ गद्य-काव्य देखकर एकदम भड़क उठे थे। आपने उन्हें लिखा था—"हिन्दीमें इस प्रकारकी गद्य-रचनाएँ छापनेके लिए जितना साहस चाहिए, उतना अभी मुझमें नहीं आया। वैसी, यानी उस जातिकी कविताएँ, अंगरेज़ीमें तो देखी हैं; पर वहाँ भी शायद पत्रोंमें नहीं छपतीं, 'author's guaranttee' पर छापी जाती हैं।" 'सरस्वती'के वयोवृद्ध सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल, जो मेरी पद्य-रचनाओंको बड़े प्रेमसे 'सरस्वती'में स्थान देते हैं, गद्य-गीतोंसे न-जाने क्यों कुछ अरुचि-सी रखते हैं। अभी कुछ ही दिन पहले आपने मुझे लिखा था—"आप जानते हैं, हम लोग 'गद्य-गीत' 'सरस्वती'में नहीं छापते हैं। छन्दोंकी रचनाएँ भेजनेकी कृपा किया करें या फिर कहानियाँ।"

इन दो-चार पत्रांशोंको यहाँ उद्धृत करनेमें मेरी इच्छा किसी वयोवृद्ध साहित्यिककी पगड़ी उछालनेकी अथवा किसी प्रगतिवादी नामधारी आलोचककी बुराई करनेकी नहीं है; किन्तु मैं इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य-सेवियोंका ध्यान केवल इस बातकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि गद्य-काव्य-जैसे भाव-सुन्दर विषयके बारेमें हमारे कई माने हुए साहित्यिकों, सम्पादकों और विवेचकों के विचार कितने असंयत, अव्यवस्थित और भ्रामक हैं!

हिन्दी-गद्य-काव्यके इतिहासके विषयमें मैं इस निबन्धमें कुछ नहीं लिखना चाहता; किन्तु गद्य-काव्यके साहित्यिक स्वरूप के उद्भव और विकासके विषयमें थोड़ा-सा विवेचन करना चाहता हूँ। काव्य पद्यात्मक भी होता है और गद्यात्मक भी। 'कविता' शब्दसे प्रायः पद्यबद्ध काव्यका ही बोध होता है। 'कविता' शब्द उतना ही पुराना है, जितना 'काव्य' या 'साहित्य'। गद्यका पर्याप्त विकास हो जानेके बाद इस 'गद्य' शब्दके साथ वही प्राचीन शब्द 'काव्य' लगाकर एक नवीन शब्द 'गद्य-काव्य' की सृष्टि की गई, जो आरम्भमें समस्त गद्य-साहित्यके लिए प्रयुक्त किया जाता रहा; किन्तु साहित्यके विभिन्न रूपोंकी क्रम-बद्ध उत्पत्ति और विकासके दृष्टिकोणसे विशुद्ध 'गद्य-काव्य'—अपने नवीन रूपमें—एक हाल ही में उत्पन्न हुआ अंग है। न-जाने कितने हज़ार वर्षों तक साहित्य-क्षेत्रमें कविताका ही एकाधिपत्य रहा। उसके बाद धीरे-धीरे गद्य तथा उसके विभिन्न अंगोंका विकास हुआ, और सबके अन्तमें गद्यका कवितामय विकसित रूप ही 'गद्य-काव्य' बनकर हमारे सामने आया।

यह 'गद्य-काव्य' अपने मिश्रित रूपमें हमें आजसे सैकड़ों वर्ष पहले भी मिलता है। भारतीय साहित्यमें यह कोई सर्वथा नवीन वस्तु नहीं है। हमारे वैदिक गद्य-साहित्यमें—ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा आरण्यक और प्राचीन उपनिषदोंमें—ऐसे अनेक अंश हैं,

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो सचमुच गद्य-काव्य ही हैं। बृहदारण्यक उपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद, कौषितकी उपनिषद आदिमें से ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिन्हें गद्य-काव्य कहा जा सकता है। यहाँ मैं बृहदारण्यकसे एक ऐसे ही कवित्वमय गद्य-खण्डका उदाहरण देता हूँ, जिसे पहली बार खोज निकालनेका श्रेय डा० सुनीतिकुमार चटर्जीको दिया जाना चाहिए :—

"स वा अयमात्मा
सर्वेषां भूतानामधिपतिः,
सर्वेषां भूतानां राजा ;
तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिता
एवनेवास्मिन्नात्मनि
सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः
सर्व एत आत्मानः समर्पिताः ॥" (२।५।१५)

अर्थात् वह ही आत्मा समस्त प्राणियोंका अधिपति है, समस्त प्राणियोंका राजा है ; जिस तरह रथनेमि और रथनाहमें सारे आरे निबद्ध रहते हैं, उसी तरह आत्मामें सब वस्तुएँ, सब देव, सब लोक और सब प्राण—ये सब आत्माएँ समर्पित हैं।

इन्हीं डा० सुनीतिकुमार चटर्जीके मतानुसार यह सब गद्यात्मक कविता वैदिक छन्दोमय कवितासे पृथक है। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदोंकी यह गद्य-काव्य-धारा भारतीय साहित्यसे समय पाकर लुप्त हो गई। छन्दोंके बन्धनने इसकी गतिको अवरुद्ध कर दिया ; किन्तु अनेक वर्षों बाद यह बाण और दण्डी आदिके अमर संस्कृत-काव्योंमें अपने पूर्ण और विशुद्ध काव्यात्मक रूपमें प्रस्फुटित हुई।

अंगरेज़ी-भाषामें हमें गद्य-काव्यके प्रारम्भिक चिह्न बाइबिल में मिलते हैं। बाइबिलके दो अंशोंमें से एकमें—जिसे 'Old Testament' या 'प्राचीन साक्ष्य' कहते हैं—मूलतः यहूदी जातिके प्राचीन शास्त्र, पुराण, इतिहास, स्मृति तथा सन्तवाणीका संग्रह है। यह पुस्तक हिब्रू या इब्रानी भाषामें लिखी गई है। इसका अधिकांश भाग अत्यन्त सरस गद्य-काव्य ही है। अंगरेज़ी में गद्य-काव्यका जन्म इसी ग्रन्थके अंगरेज़ी अनुवादसे आरम्भ होता है ; किन्तु हमारे वैदिक गद्य-काव्य-साहित्यकी तरह यह शैली भी अधिकांश रूपसे बाइबिल तक ही सीमित रही। अनेक वर्षों बाद अंगरेज़ीके एक साहित्यिक जेम्स मैकफ़र्सनने गैलिक भाषाके—जो स्काटलैण्डकी पहाड़ी जातिकी भाषा थी—कुछ प्राचीन काव्योंका गद्यानुवाद किया और आगे चलकर बाइबिल तथा इसी प्राचीन गैलिक गद्य-काव्य-साहित्यके अनुवादसे प्रभावित होकर अंगरेज़ीमें वाल्ट ह्विट्मैन, वाल्टर पेटर, वाल्टर डिला मेयर और एडवर्ड कार्पेन्टर-जैसे गद्य-कवि उत्पन्न हुए।

बँगला-साहित्यमें विशुद्ध गद्य-काव्यका जन्म रवि बाबूकी 'गीतांजलि'के अंगरेज़ी-गद्यानुवादसे हुआ। इसीके अनुकरणपर यह धारा गुजराती आदि अन्य प्रान्तीय साहित्योंमें होती हुई हिन्दी-साहित्यमें भी आई। हिन्दी-साहित्यमें गद्य-काव्य हमें प्रधानतया चार रूपोंमें मिलता है—(१) कवित्वमय उपन्यास, (२) कवित्वमय कहानियाँ, (३) कवित्वमय नाटक और (४) कवित्वमय निबन्ध। कवित्वमय निबन्धोंके—उनके आकार-प्रकार और भावाभिव्यंजनकी शैलीके दृष्टिकोणसे—दो उपविभाग 'गद्य-काव्य' और 'गद्य-गीत' किए जा सकते हैं। गद्य-काव्य और गद्य-गीतमें लगभग वही अन्तर है, जो छन्दोबद्ध प्रबन्ध-काव्य और पद्य-गीतमें हुआ करता है। गद्य-काव्योंमें जहाँ किसी एक प्रधान भावके साथ-ही-साथ अनेक गौण अनुभूतियाँ, भावनाएँ और कल्पनाएँ पाई जाती हैं, वहाँ गद्य-गीतोंमें थोड़े-से चुने हुए शब्दोंमें व्यक्तिगत भावोंका प्रकाशन तथा विचारोंकी एकरूपता ही रहती है। प्रबन्ध-काव्य और पद्य-गीत छन्दोबद्ध होनेके कारण गेय होते हैं ; किन्तु गद्य-काव्यों और गद्य-गीतोंमें केवल शब्द-संगीतका ही समावेश किया जा सकता है। ध्वनियों, शब्दों और वाक्योंकी मायासे गद्यमें भी लय उत्पन्न की जा सकती है ; किन्तु पद्य-कविताकी लयसे वह सर्वथा भिन्न होती है। गद्य-काव्यों और गद्य-गीतोंमें भी हमें आज 'धारा-शैली', 'विश्लेष-शैली', 'तरंग-शैली', 'बिन्दु-शैली', 'प्रलाप-शैली', 'भाषण-शैली' आदि विभिन्न शैलियाँ मिलती हैं, जिनके समुचित वर्गीकरण और साहित्यिक विवेचनकी आजके इस गद्य-युगमें बहुत अधिक आवश्यकता है।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि लोगोंको कवि बनने की हवस है, तो वे गद्य-काव्य अथवा गद्य-गीत लिखना छोड़कर छन्दोबद्ध कविता क्यों नहीं लिखते? कुछ लोगोंकी सम्मतिमें इसका कारण यह है कि गद्यमें काव्यकी रचना करना पद्यमें कविता लिखनेसे सरल कार्य है। उनका कहना है कि जिन लोगोंके पास या तो इतना समय नहीं, या इतनी रुचि नहीं कि वे पिंगल, काव्य-कला आदिका अनुशीलन कर सकें, अथवा जिनमें वास्तविक काव्य-प्रतिभाका अभाव है, वे ही नौसिखिए लेखक दो-चार टेढ़ी-सीधी पंक्तियाँ लिखकर गद्य-कवि बन बैठते हैं। किन्तु मेरी रायमें यह बात वास्तविकतासे बहुत दूर है। विशुद्ध काव्यकी रचना करना पद्यमें कविता लिखनेसे कहीं कठिन कार्य है। पहली बात जो मैं अपनी इस सम्मतिके पक्षमें कहना चाहता हूँ, वह यह है कि पद्य-कवितामें कविको शब्दोंको तोड़-मरोड़कर विकृत करनेकी काफ़ी स्वतन्त्रता रहती है, और इस स्वतन्त्रताका तुलसी और सूर-जैसे महाकवियोंने भी कई स्थलों पर दुरुपयोग किया है ; किन्तु गद्यमें हमें शब्दोंको इच्छानुसार विकृत करनेका अधिकार नहीं, प्रत्युत प्रत्येक शब्द चुनकर ठीक स्थानपर सजाना पड़ता है तथा प्रत्येक वाक्यकी गठनका पूरा ख़याल रखना पड़ता है। इसलिए केवल रचना-शैलीकी दृष्टि

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पद्यकी अपेक्षा गद्यमें काव्य-रचना करना कोई सरल कार्य नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह है कि हमारे साहित्यका वर्त्तमान युग गद्यका युग है। संसारकी प्रत्येक जीवित भाषाका साहित्य पद्यसे आरम्भ होकर धीरे-धीरे किस प्रकार गद्यात्मक होता जा रहा है, यह किसी भी साहित्यिककी दृष्टिसे छिपा हुआ नहीं है। यही कारण है कि हमारे काव्यका भी पद्य-कवितासे मुक्त छन्द और मुक्त छन्दसे गद्य-काव्यके विशुद्ध रूपमें विकसित होना कोई नितान्त अनहोनी या चौंकानेवाली बात नहीं कहा जा सकता।

स्व० प्रेमचन्दजीने कई वर्ष पहले मेरे पहले गद्य-गीत-संग्रह 'मदिरा'की 'हंस'में आलोचना करते हुए लिखा था—"हमारा खयाल है, यद्यपि हमें इस विषयमें कुछ कहनेका अधिकार नहीं, कि गद्य-गीत स्वतन्त्र वस्तु है और कवि जो-कुछ पद्योंमें नहीं कह पाता, वह गद्य-गीतोंमें कहता है। कविता भावना-प्रधान रचना है, गद्य-गीत अनुभूति-प्रधान।" कुछ-कुछ ऐसी ही बात मुझे जैनेन्द्रजीने भी लिख भेजी थी, जिसे मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूँ। किन्तु, मेरे विचारमें, प्रेमचन्दजी और जैनेन्द्रजी दोनों ही जो-कुछ कहना चाहते थे, वह स्पष्ट रूपसे नहीं कह पाए। उनके इन्हीं विचारोंको मैंने सन् १९३४ में 'मदिरा'की भूमिकामें निम्न लिखित शब्दोंमें व्यक्त किया था—"मानव-हृदयमें प्रायः दो प्रकारके भाव उठा करते हैं। कुछ भाव बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होते हैं, जिनके प्रभावसे हृदयमें एक अत्यन्त कोमल स्फुरण-सा होने लगता है। ऐसे ही भावोंको पद्यमय कवितामें व्यक्त किया जा सकता है। किन्तु कुछ भाव ऐसे भी होते हैं, जो आँधीकी तरह उत्पन्न होते हैं और जिनका प्रवाह एक पहाड़ी नालेके वेगसे भी अधिक द्रुत और प्रचण्ड होता है। ऐसे भाव गद्य-कवितामें ही व्यक्त किए जा सकते हैं, क्योंकि इन भावोंको पद्यबद्ध करने की चेष्टामें उनके खो जानेका भय रहता है।" किन्तु पिछले कुछ वर्षोंमें मेरे विचार कुछ और बदल गए हैं और अपने नवीन अध्ययन और चिन्तनके आधारपर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि आधुनिक गद्य-युगमें हमारे किसी भी प्रकारके भाव अथवा अनुभूतिको प्रकट करनेका सबसे स्वाभाविक और कलापूर्ण तरीक़ा सिवा गद्यके कुछ हो ही नहीं सकता।

मैंने हिन्दीके कई वर्त्तमान प्रसिद्ध कवियोंका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। उनमें से कुछने, जिनके मैं बहुत अधिक निकट सम्पर्कमें रहा हूँ, मेरे सम्मुख यह निष्कपट भावसे स्वीकार किया है कि उनको कविताओंके भाव उनके हृदयमें गद्य-रूपमें उठते हैं, वे फ़ुर्सतके समय उन्हें छन्दोबद्ध करने बैठते हैं। आजकलका कोई कवि यदि मुझसे यह कहे कि कविता उसके हृदयसे अपने नितान्त स्वाभाविक रूपमें भी ताल, स्वर और छन्दोंके बन्धनमें बँधकर निकलती है, तो मैं तो उसे निरा दम्भी, पाखण्डी अथवा कोरा तुक्कड़ ही कहूँगा। आधुनिक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय 'प्रसाद'जीके विषयमें मैंने इसी सम्बन्धमें कुछ छानबीन की थी, तो मुझे विश्वस्त रूपसे यह पता चला कि 'प्रसाद'जी अपने कितने ही भाव पहले गद्यमें लिख लिया करते थे और फिर बड़ी सावधानीसे उन्हें उनके उपयुक्त छन्दोंमें पिरोया करते थे। 'प्रसाद'की टक्करके हमारे दो अन्य वर्त्तमान कवि 'पन्त' और 'निराला'की दो नवीन रचनाओंके दो टुकड़े मैं नीचे उद्धृत करता हूँ।

पन्तजीकी 'ग्राम्य'में संग्रहीत 'पतझर'-शीर्षक कविताके पहले दो पद ये हैं :—

झरो, झरो, झरो!
जंगम जग - प्रांगणमें,
जीवन - संघर्षणमें,
नवयुग - परिवर्त्तनमें,
मनके पीले पत्तो!
झरो, झरो, झरो!

सन्-सन् शिशिर समीरण
देता क्रान्ति-निमन्त्रण!
यह जीवन विस्मृति-क्षण,
जीर्ण जगतके पत्तो!
टरो, टरो, टरो!

यह एक मात्रिक छन्द है। इसकी सभी पंक्तियोंमें बराबर मात्राएँ हैं। पहले पदमें 'में' 'में'की तुक है, दूसरेमें 'ण' की। आरम्भिक पंक्तियोंमें 'झरो', 'झरो' और अन्तिममें 'टरो', 'टरो'की भी तुक है। किन्तु इन पदोंको यदि सीधी तरह पढ़ा जाय, तो इनमें, पद्य-कविताके इतने सारे उपकरण होते हुए भी, बिलकुल सीधे-सादे गद्यसे कोई अन्तर नहीं जान पड़ता।

अब 'निराला'जीका एक मुक्त छन्द लीजिए। आपके 'अनामिका'-शीर्षक कविता-संग्रहकी मुक्त छन्दमें लिखी हुई 'दिल्ली' नामक कविताकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

क्या यह वही देश है—
भीमार्जुन आदिका कीर्त्तिक्षेत्र,
चिरकुमार भीष्मकी पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उड़ती है आज भी जहाँके वायुमण्डलमें
उज्वल, अधीर और चिरनवीन?
श्रीमुखसे कृष्णके सुना था जहाँ भारतने
गीता-गीत—सिंहनाद—
मर्मवाणी जीवन-संग्रामकी—
सार्थक समन्वय ज्ञान, कर्म, भक्ति-योगका?

यह कविता किधरसे है, यह कोई साहित्य-समालोचक मुझे समझाएँ। इसमें छन्दशास्त्रके किस नियमका पालन किया गया

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है ? सीधे-सादे गद्यके वाक्योंको क्या कुछ उलट-फेरकर लिख देनेसे, अथवा साधारण गद्यके किसी वाक्यमें व्याकरणके विरुद्ध उल्टे-सीधे शब्द रख देनेसे ही क्या 'मुक्त छन्द' बन जाता है ? आप इसे ज़रा इस रूपमें देखिए और फिर इसे साधारण गद्यकी तरह बिना रुके सपाटेसे पढ़ जाइए—"भीमार्जुन आदिका कीर्त्ति-क्षेत्र क्या यह वही देश है, जहाँके वायुमण्डलमें चिरकुमार भीष्मकी ब्रह्मचर्य-दीप्त, उज्ज्वल, अधोर और चिरनवीन पताका आज भी उड़ती है, जहाँ भारतने कृष्णके श्रीमुखसे जीवन-संग्रामकी मर्मवाणी गीता-गीत—ज्ञान, कर्म, भक्ति-योगका सार्थक समन्वय—सिंहनाद सुना था ?"

इसमें मैंने अपनी ओरसे एक भी शब्द नहीं मिलाया है। 'निराला'जीके मुक्त छन्दका ज्यों-का-त्यों अन्वय-मात्र कर दिया है। अब बताइए, इसमें और सीधे-सादे गद्यमें अन्तर ही क्या है ? इन उद्धरणोंको इस रूपमें यहाँ उद्धृतकर मैं 'पन्त'जी या 'निराला' जीकी कवित्वशक्तिका उपहास नहीं कर रहा हूँ ; किन्तु इसके द्वारा मैं यह प्रमाणित करना चाहता हूँ कि अन्य भाषाओंके साहित्योंकी तरह हमारे साहित्यमें भी कविता किस प्रकार धीरे-धीरे पद्यके बन्धनोंसे मुक्त होकर अपने स्वाभाविक गद्य-रूपमें ढलती चली जा रही है, और अब वह समय आ गया है कि हमारे साहित्य-समीक्षक और विचारक कविताके इस नवीन गद्य-रूपकी गम्भीरतापूर्वक समीक्षा और विवेचना करें।

चित्तौड़-दर्शन

श्री केशवचन्द्र मिश्र, एम० ए०

प्रभातकालीन भास्करकी अगवानीके लिए प्राचीने अपने विशाल प्रांगणमें कुमकुमका बुक्का बिखेर दिया था। हेमन्तका शीतल उषाकाल था। पर्वत-प्रदेशका मन्द मलय-वात, जिसके सहारे क्षितिजमें फैली हुई ओसकी दीवारें निकटकी वस्तुओंको भी देखनेसे वंचित कर रही थीं, बदनपर फुलेल छिड़क रहा था। हम लोग चित्तौड़के स्टेशनपर उतर गए थे। मनमें स्पर्धा और दर्पका संचार होने लगा था कि क्या हम उसी वसुन्धरा-पटपर खड़े हैं, जिसके रजकणको स्वतन्त्रता और स्वाभिमानका अध्वर्यु अन्वेषक अपने स्वेदसे अभिषिक्त कर गया है ! केसरिया बाना पहने हुए देशभक्त भील जहाँ स्वतन्त्रताके आह्वानपर अपना सर्वस्व लुटाते हुए नहीं झिझके थे ! जिसके मृदुल अंकमें त्यागमयी पन्नाने अपने इकलौतेकी पुष्पांजलि देकर स्वामिभक्तिकी दृढ़ शिक्षा दी थी ! जहाँ सौन्दर्यकी अनुपम मूर्त्ति पद्मिनीने तुर्कोंकी दुराकांक्षा शौर्य और आत्मबलिके होमसे मिटाकर भारतकी वीरांगनाओंका नेतृत्व किया था ! धन्य है वीरभूमि मेवाड़ तेरी कोख ! तूने इतने मणि-माणिक्य उत्पन्न किए, जिनकी निर्मल ज्योतिसे आर्यावर्त्तका इतिहास देदीप्यमान है और जिनकी विगत कहानियोंमें जीवन फूँक देनेवाले स्वतन्त्रताके अमिट गान भरे हुए हैं। जब कुहरेका परदा विलीन हुआ, तो पासमें ही पूर्वकी ओर दूर तक फैली हुई एक विशाल पहाड़ीके दर्शन हुए। पूछनेपर पता चला कि यही चित्तौड़की पहाड़ी है, जिसपर गढ़ बना हुआ है। मैंने गद्‌गद हृदयसे श्रद्धापूर्वक वीरभूमिका अभिवादन किया।

समुद्र-सतहसे मेवाड़की भूमि लगभग दो हज़ार फीट ऊँची है। इस ऊँचाईके ऊपर पाँच सौ फीट उन्नत शिखर किए हुए मेवाड़का वह शैल प्राकृतिक विभूतियोंसे सजा-धजा राजपूतोंकी विगत विभुताको धीरताके साथ वहन कर रहा था। पर्वतकी परिधि यद्यपि लगभग आठ मील ही है, परन्तु इसकी चोटीपर एक विस्तृत खल्वाट मैदान बना हुआ है। यहींपर दुर्गका निर्माण हुआ है। गढ़के परकोटेका बाहरी भाग गहन वनसे आच्छादित है, जिसमें हिरण, सूअर, चीते आदि रमते रहते हैं। पर्वतके ऊपर पहुँचकर यदि चारों ओर देखा जाय, तो बड़ा ही सुहावना दृश्य दिखाई देता है। पूर्वमें दूर तक एक चौरस गहरी घाटी चली गई है, जिसमें स्थान-स्थानपर पर्वत-श्रेणियाँ निकल आई हैं। परन्तु दक्षिणी भाग समलम्बकी भाँति पृथ्वीसे उठा हुआ है। इस ओर पर्वतके निकटकी तराई बड़ी गहरी है। यहींसे होकर गम्भीरी नदी बहती है। इधरका दृश्य इतना भयावह प्रतीत होता है कि नीचे देखनेका साहस ही नहीं होता। ऊँचे पर्वतोंपर बने हुए विशाल जलाशयों तथा प्राकृतिक जल-स्रोतोंका जल लेती हुई कलध्वनिके साथ गम्भीरी पहाड़ीके कई ओरसे उसके अंकमें लिपटी हुई बहती है। गढ़की रक्षाकी दृष्टिसे इसका महत्व अतुलनीय है।

गम्भीरीके वनाच्छादित कूलसे गढ़की चढ़ाई आरम्भ होती है। गढ़के प्रथम गोपुरको 'पाड़न फाटक' कहते हैं। चट्टानके ढोकोंसे निर्मित यह फाटक जितना महाकाय है, उतना ही भग्न-वूत भी। इसकी बाईं ओर बाघसिंहका स्मारक है, जिन्होंने गुजरातके बहादुरशाहसे लड़ते हुए १५३५ ई० में यहाँ वीर-गति प्राप्त की थी। इस स्थलपर कितने राजपूत वीरोंने समय-समयपर स्वाधीनताकी रक्षाके लिए रणचण्डीको शीश चढ़ाया होगा, आज इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। पर यह गोपुर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतीतको गौरवमय कीर्त्ति लिए आज भी अडिग खड़ा है। हम लोग आगे बढ़े। गढ़के प्राचीरका निर्माण इतना वैज्ञानिक और कौशलपूर्ण है कि चढ़ते समय हर जगहसे एक ओर उन्नत प्राचीर और दूसरी ओर पर्वतका निम्नतम भाग दिखलाई पड़ते थे। दोनों ओर प्राचीरका बाहरी भाग वृक्ष-लताओंसे ढँका है। गढ़के ऊपर पहुँचनेके लिए इस प्रकारके सात बड़े फाटकोंसे होकर जाना पड़ता है। दूसरे द्वारका नाम भैरोंपोल है। यहाँ ही भैरोंसिंह सोलंकीने बहादुरशाहकी सेनाको रोक दिया था और जोते-जी उसे आगे नहीं बढ़ने दिया था। कुछ ही दूर ऊपर चढ़नेपर वीर जयमल और फ़त्ताकी समाधियाँ मिलती हैं, जिन्होंने अकबरकी बाग रोक दी थी और चित्तौड़की रक्षामें अपनेको बलिदान कर दिया था। उसी प्रकार आगे हनुमान पोल, गणेशपोल, जोड़लापोल और लक्ष्मणपोलको पार करते हुए राम फाटक आ जाता है। यहाँ आकर चढ़ाई समाप्त हो जाती है और गढ़का प्रवेश आरम्भ हो जाता है। यह अन्तिम प्रवेश-द्वार सबसे विशाल और कलाकी दृष्टिसे सुन्दरतम है। शिखरपर दो मीनार, उनके बीचमें गणेश और भैरवकी मूर्त्तियाँ, प्रत्येक पार्श्वपर हिन्दू देवताओंकी मूर्त्तियाँ, गोपुरकी भव्यताको और भी बढ़ा देती हैं। यह द्वार मध्यकालीन गोपुर-निर्माण-कलाका एक अनुपम नमूना कहा जा सकता है। इसके ऊपरका शिखरा भाग पीछेको झुककर मेहरावको रोके हुए है। सामनेकी ओर इसपर १८वीं शतीके बहुतसे लेख खुदे हुए हैं। क़िलेकी मज़बूतीका अनुमान यहाँसे परकोटेको देखकर किया जा सकता है। परकोटेके पीछे उसपर दो घोड़े साथ-साथ दौड़ सकते हैं। यही नहीं, दूरसे आते हुए शत्रुके गोलोंसे पूर्ण रक्षित रहते हुए यहाँसे उसपर सफल लक्ष्य भी किया जा सकता है।

दुर्गकी अन्तःप्रदक्षिणामें सबसे पहले संग्रहालय मिलता है। यों तो गढ़को ही राजपूत-युगका एक अद्भुत संग्रहालय कहना चाहिए, क्योंकि इस कालकी वास्तु और मूर्त्ति कलाओंके प्रतिनिधि नमूने यहाँ काफ़ी वर्त्तमान हैं। इसके अतिरिक्त किस तरह तीन सौ वर्षों तक चित्तौड़ हिन्दू-इतिहासका केन्द्र बना रहा, यह अलग-अलग बिखरे हुए यहाँके भग्नावशेषोंसे जाना जा सकता है। राजपूतानेकी अमर भूमिमें चित्तौड़ ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ युद्धोंका, इतने वीर और वीरांगनाओंका तथा समष्टि रूपसे जनवर्गका इतिहास उनके वास्तु और मूर्त्ति-खण्डोंमें रक्षित है। इनकी विविधताको देखते हो एक बार बड़े संग्रहालयका भ्रम हो जाय, तो आश्चर्य नहीं। पर यहाँ तो केवल चीज़ें एकत्र करवा कर एक जगह बाहर रखवा दी गई हैं। इनके लिए कोई भवन नहीं है। कलाके एक-से-एक मनोरम और उत्कृष्ट अवशेष यहाँ हैं। यहाँ चतुर्मुख एकलिंगकी एक बड़ी मूर्त्ति है, जो इस शैलीकी उत्तम मूर्त्ति है। बौद्ध और जैन कलाओंके भी सुन्दर नमूने यहाँ हैं। एक मूर्त्ति तो ऐसी है, जिसका जोड़ा उत्तरी भारतके किसी दूसरे संग्रहालयमें नहीं है। एक प्रस्तर-खण्डपर तीन मूर्त्तियाँ हैं—दोनों ओर दो पुरुष हैं, जिनके दाहिने हाथोंमें जल-कमण्डलु और तनपर जनेऊ हैं तथा बीचमें एक स्त्रीकी मूर्त्ति है, जिसके सिरपर कमल-छत्र है। तीनों मूर्त्तियाँ त्रिभंगी हैं। इनमें बीचकी मूर्त्तिकी अभी तक ठीक-ठीक पहचान नहीं हुई है।

यहाँसे पूर्वको ओर बढ़नेपर नवाकोठ तोपखाना मिलता है, जिसमें मध्य-युगकी कुछ विशाल तोपें रखी हैं। तोपखानेके सटा हुआ बौद्ध स्तूप है। इसमें ध्यानमुद्रामें बैठे बुद्धकी १० मूर्त्तियाँ हैं। कालके प्रभावसे उनका सौन्दर्य विनष्ट-प्राय हो गया है। दूसरी ओर महाराणा उदयसिंहका बनवाया हुआ पातालेश्वरका मन्दिर है, जिसका मण्डप स्तम्भोंपर बना हुआ है। परन्तु इन

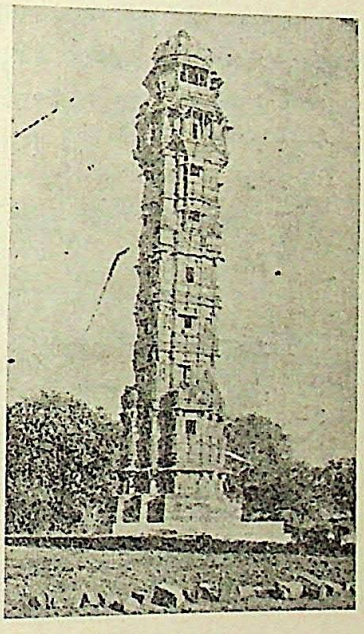

चित्तौड़-गढ़का जय-स्तम्भ

सबमें सुन्दर राणा कुम्भाके कालका बना हुआ एक जैन मन्दिर है। इसे आजकल 'शृंगारचौरा' कहते हैं। यह जैन तीर्थंकरकी अर्चनामें निर्मित हुआ था। इस मन्दिरमें सोलहवीं शतीके कई शिलालेख हैं। इस मन्दिरके आसपास कई छोटे-छोटे जैन मन्दिर हैं, जो १२वीं शतीके बने हैं। ये सभी अभी तक सुरक्षित पड़े हैं। इसके उत्तरमें मुसलमानों और राजपूतोंका अन्तिम बार सामना हुआ था। गोलोंकी बौछारसे पासकी दीवारें बिंधी हुई हैं। भारी पत्थरोंके ढोंके चारों ओर बिखरे हुए हैं। शत्रुओंपर ऊँचाईसे इनसे अच्छा लक्ष्य किया जाता रहा होगा।

सामने ही राणा कुम्भाका राजप्रासाद भग्न दशामें अपने उज्ज्वल अतीतकी साक्षी दे रहा है। इसकी निर्माण-शैली और स्तम्भोंसे निश्चित रूपसे यह विश्वास हो जाता है कि यह ईसाकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१३वीं शतीका बना हुआ है और राणा कुम्भाने इसका विस्तार कराया है। इस प्रकार यह मुग़ल-कालके पूर्वकी वास्तु-कलाका एक अच्छा उपहार है। प्रासादके प्रकोष्ठमें मध्यकालीन इतिहासके कितने महान् पात्रोंने अभिनयकी योजनाएँ बनाई होंगी, इसके स्मरण-मात्रसे रोमांच हो आता है। भीतर जानेके साथ ही दाहिनी ओर श्रीदेवजीका मन्दिर है, जो राणा सांगाके इष्टदेव थे। थोड़ी दूर मुड़नेपर एक सोढ़ी मिलती है, जो नीचे एक अँधेरे घरमें जाती है। नीचेके स्थानपर वासना-लोलुप अला-उद्दीनसे सतीत्व और स्वाभिमानकी रक्षाके लिए जलती हुई चिता में शान्तिके साथ प्रवेशकर सम्भवतः पहले-पहल पद्मिनीने जगत के नारी-इतिहासमें इस प्रकारकी अखण्ड नैतिकताका आदर्श उपस्थित किया था। यहींसे नीचे-नीचे एक मार्ग स्मशान-भूमिको जाता है, जहाँ सात सौ राजपूत रानियाँ पद्मिनीके पश्चात् चितामें भस्म हुई थीं। प्रासादके दूसरे भागमें राजकुमार-महल है, जिसमें पन्नाने पुत्रका बलिदानकर स्वामिभक्तिका बेजोड़ उदाहरण रखा था। पास ही अन्तःपुर है, जहाँ स्वाधीनताके अनन्य उपासक महाराणा प्रतापका जन्म हुआ था। एक दिन यहीं

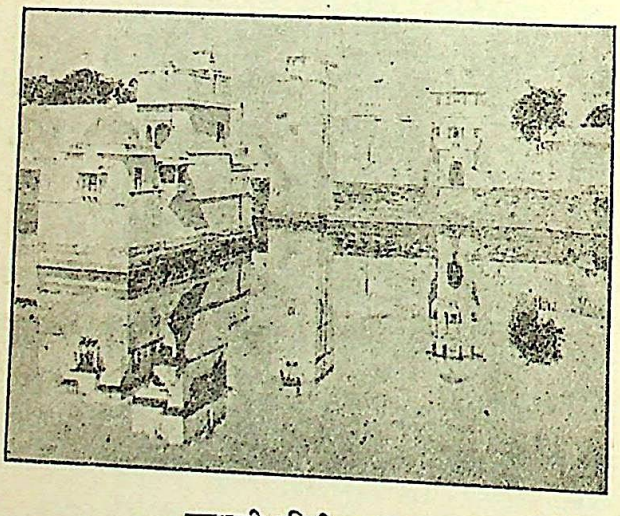

महारानी पद्मिनीका महल

मेवाड़के हिन्दूपति खेले थे, धूलमें लोटे थे और इन दीवारों और चौखटोंको पकड़कर खड़े होते थे!

गढ़के पूर्वी भागमें स्वर्गीय महाराणा फतहसिंहका बनवाया हुआ नवीन राजमहल है। महलका भीतरी भाग बड़ा सुन्दर है। इसीके दक्षिण-पूर्वमें कीर्त्ति-स्तम्भ है। १४वीं शताब्दीमें जब जैन कला उन्नतिके शिखरपर पहुँच चुकी थी, उसी समय यह स्तम्भ जैन तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभदेवकी परिचर्यामें बना। इसके चारों पार्श्वोंमें तीर्थंकरोंकी बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ बनी हैं। कलाविदोंके लिए यह जितना आकर्षक है, उतना ही जन-साधारणके लिए भी। इसकी ऊँचाई ८० फीट है। इसमें छः स्तर हैं और ऊपर एक बैठक है। चढ़नेके लिए स्तम्भके बीचसे एक चक्करदार सीढ़ी बनी है। स्तम्भके शिखरकी छतरी, जिसकी बनावट चौमुखी है, बौद्ध विहारोंके द्वारके छज्जोंके अनुकरणपर बनी है।

सातबीस देवरीके पास तीन सड़कोंकी चौमुहानी है। प्रमुख सड़क दक्षिण दिशाको चली जाती है, और एक सड़क छोटे विजय-स्तम्भकी ओर जाती है; परन्तु दूसरी सड़क, जो सिपाही बाज़ार होते हुए विजय-स्तम्भकी ओर जाती है, हाथीकुण्ड तक गई है। इसीपर कुम्भा श्यामजीका मन्दिर है। इसे राणा कुम्भाने बनवाया था। इसमें पहले वाराह भगवानकी स्थापना हुई थी। अब भी आलोंमें वाराह-मूर्त्तियाँ वर्त्तमान हैं। आँगनके दूसरे भागमें सामने ही एक छोटा-सा मन्दिर है, जो श्याम-रंगमें रँगी मतवाली मीराँका है। राणा साँगाके पुत्र भोजराजके लौकिक सम्बन्धका सांसारिक नाटक छोड़कर मीराँने यहीं आकर व्रज-विहारी गिरिधरगोपालका दिव्य दर्शन किया था। यहाँ वे 'नाचूँगी मैं तो हरिजीके आगे' गाकर नाचती थीं और नाचते-नाचते भाव-विभोर हो जाती थीं। कहते हैं द्वारका जाते हुए मीराँने यहाँके श्यामकी मूर्त्ति भी साथ ले ली थी।

परकोटेके पास ही जटाशंकरका छोटा-सा मन्दिर है। उसके सामने ही भक्त रैदासकी समाधि है। इसके पश्चात् चित्तौड़की कलाका सुन्दरतम अवशेष जय-स्तम्भ है। इसे सन् १४३७ में महाराणा कुम्भाने मालवाके महमूद खिलजी को हराकर विजयको चिरजीवी करनेके लिए विष्णुदेवकी अर्चनामें बनवाया था। इसकी विस्मय-विभोर कर देनेवाली कलाके समक्ष जगतके अन्य स्तम्भोंकी चर्चा अनर्गल-सी है। इसके प्रतिमा-निर्माण और संगतराशीको लखकर रोमका जगत्प्रसिद्ध ट्राजन-स्तम्भ भी लज्जित हो जाता है, फिर दिल्लीके कुतुबमीनारकी तो तुलना ही क्या? इसकी कला देखकर विदेशी कलामर्मज्ञ आज भी दाँतों-तले अँगुली दबा लेते हैं। फर्ग्यूसन और टाड प्रभृति विद्वानोंने इसकी कलाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यह स्तम्भ १२८ फीट ऊँचा है। इसमें ९ देहरियाँ हैं और सबसे ऊपर एक बैठक है। चढ़नेकी सीढ़ी, जो बीचसे जाती है, बड़ी चौड़ी है और क्रमसे अर्धचक्र करती हुई प्रत्येक खण्डपर पहुँचकर समाप्त हो जाती है। कुतुबमीनारकी सीढ़ीमें यह सुविधा नहीं। हिन्दू देवता और देवियोंमें कोई ऐसा नहीं है, जिसकी मूर्त्ति यहाँ न हो। इसके अतिरिक्त विभिन्न ऋतुओं, अस्त्र-शस्त्रों, नदियों और वादन-यन्त्रोंकी मूर्त्तियाँ भी प्रतिष्ठित की गई हैं। सब मूर्त्तियोंके नीचे उनके नाम खुदे हुए हैं, जिससे हिन्दू-मूर्त्ति-शास्त्र के विद्यार्थियोंके लिए स्तम्भ बहुत ही अमूल्य वस्तु बन गया है। प्रत्येक स्तरपर विस्तृत चबूतरा बना है, जहाँ हवा अबाध रूपसे पहुँचती है। शिखरपर से पहाड़ीके नीचेका और क़िलेका सौन्दर्य देखते ही बनता है।

गम्भीरीके तटपर राजकीय स्मशान है, जो राजपूत स्त्रियोंके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

जौहर-व्रतसे पवित्र हो चुका है। इसके पास ही समाधीश्वर शिव का मन्दिर है। इसमें मनुष्य-रूपमें शिवकी इतनी विशाल मूर्त्ति है, जो उत्तर-भारतमें और कहीं देखनेको नहीं मिलती। यह सम्भवतः ११वीं शताब्दीकी बनी हुई है। क़िलेकी रक्षाको दृढ़ बनानेके लिए महाराणा प्रतापने अपने सेनापतियोंका निवास-स्थान भी प्राचीरके पास ही रखा था। प्रतापके प्रधान सेनापति फत्ता और जयमलके भवन विशाल खण्डहरोंके रूपमें शान्ति लाभ कर रहे हैं। उनकी स्थिति ऐसे स्थानपर है, जहाँसे शत्रु-सेना कोसों दूरसे देखी जा सकती थी; परन्तु बाहरसे वह स्थान केवल पहाड़ीके समान दिखलाई पड़ता है। यहाँसे थोड़ी दूर हटकर गढ़का सबसे प्राचीन मन्दिर है। यह पहले सूर्यका मन्दिर था; परन्तु इस समय उसमें कालीकी मूर्त्ति स्थापित है। इसमें लताओंका शिल्प बड़ा आकर्षक है।

एक बड़े जलाशयमें राजा रतनसेन और पद्मिनीका राजभवन बना है। इसका कुछ भाग जलाशयके बीचमें एक द्वीपपर स्थित है। यद्यपि टूटे हुए भागको फिरसे बनाए जानेके कारण भवनका प्राचीन रूप लुप्तप्राय हो गया है, फिर भी इसकी स्थिति और शोभा आज भी मनोहर और अद्वितीय है। अनुश्रुति है कि यहीं अलाउद्दीनने पद्मिनीको दर्पणमें देखा था। इस जलाशयके अतिरिक्त क़िलेमें ४१ छोटे-बड़े और जलाशय हैं। कुछ तो अब भी सुन्दर और सुदृढ़ हैं।

आजकी किताब

'तार-सप्तक'

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

'तार-सप्तक' हिन्दी-काव्यमें एक नया, महत्त्वपूर्ण 'प्रयोग' है। यह सात 'युवा कवियों'के सामूहिक प्रयासका फल है। संग्रहके सम्पादक श्री 'अज्ञेय'ने इन कवियोंकी प्रयोगशीलतापर ज़ोर दिया है—"वे किसी एक स्कूलके नहीं हैं, किसी मज़िलपर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहोंके अन्वेषी।" इन सात कवियोंमें कम-से-कम चार हिन्दीके प्रतिष्ठित लेखक हैं, जिनका स्थान आधुनिक साहित्यमें बन चुका है—'अज्ञेय', रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर; और गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र और भारतभूषण अग्रवालसे हिन्दी-पाठकोंका परिचय बढ़ता जा रहा है। इन सात कवियोंके आलावा हिन्दीके और भी अनेक नए कवि प्रयोगशील हैं। यदि और भी आधुनिक कवियोंके ऐसे सामूहिक प्रयास प्रकाशित हों, तो यह हिन्दी के भविष्यके लिए शुभ ही होगा।

'तार-सप्तक' इस बातकी सूचना है कि हिन्दीके कवि विकास के नए पथ खोजनेमें तल्लीन हैं। उनके हृदय असन्तोषसे भरे हैं, और नवीन साहित्य और समाजकी सृजन-प्रेरणा उनके मनमें उमड़ रही है। इसी प्रकार अंगरेज़ोंके कुछ कवियोंने साहित्यको नई दिशा देनेके लिए 'जार्जियन पोएट्री' (Georgian Poetry) का पहला संग्रह मिल-जुलकर निकाला था। इन कविताओंमें रूप और भाव दोनोंमें ही प्रयोगका आग्रह है। 'तार सप्तक'के सभी कवि मुक्त छन्दोंका प्रयोग करते हैं। उनकी रचनाओंमें एक नवीन ही संगीत और स्वर है। जीवनके प्रति उनके मनमें घोर असन्तोष और क्षोभ है। ये 'कवि-युवा' अधिकतर मार्क्सवादी हैं, और इनकी काव्य-प्रेरणाके पीछे एक नए समाजकी कल्पना है।

नए रूप और प्राणकी अपेक्षामें इन कविताओंमें एक आन्तरिक संघर्ष भी है। कवि नए संगीतकी खोजमें अधिकाधिक अस्पष्ट, अन्तर्दर्शी और एकाकी होता जा रहा है। उसको काव्यके पुराने रूप-प्रकारों, भाषा, संगीत और चित्रोंसे सन्तोष नहीं। उसका संगीत अधिकाधिक भग्न और विकृत हो रहा है। उसके चित्र विरूप हो रहे हैं। वह अपने भावोंकी अभिव्यक्तिके साधन तोड़ रहा है। साधारण पाठकके लिए उसकी कविता दुरूह हो गई है, इसका अनुभव स्वयं 'अज्ञेय'जीको हो चुका है। उनकी 'जैसे तुझे स्वीकार हो'-शीर्षक कविताका अर्थ करनेके लिए एक पत्रकारने पुरस्कार घोषित किया। 'अज्ञेय'जीने ही इस कविताका अर्थ छद्म नामसे पद्यमें करके भेजा। कण्टक-मात्र ही आज कवितामें बचे हैं, यह इस पैरोडीका आशय है:

"जय सदा जय हो!
प्रबल झंझाके थपेड़ोंसे पिटे हैं फूल—
भूमिपर, नभपर, पवनके चक्षुओंमें भी भरी है धूल,
काव्यके झंखाड़में बाकी बचे बस
निविड़ छायावादके निष्प्राण रूखे शूल—
जयतु हे कण्टक चिरन्तन, जय सदा जय हो!

× × ×

"मैं खड़ा खोले सभी कटिबन्ध पिंगलके,
मुक्त मेरे छन्द, भाषा मुक्ततर, हैं मुक्ततम मम भाव पागलके।
ज्ञेय हो, दुर्ज्ञेय हो, अज्ञेय निश्चय हो,
अर्थके अभिलाषियोंसे सतत निर्भय हो,
असुर दुर्दम, दैत्य कवि, तेरी सदा जय हो!
जय, पुनः जय सदा जय-जय,
जय, सदा जय हो!"

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'अज्ञेय' कविताको दुर्बोध बनाना नहीं चाहते। वे कविता के माध्यममें अधिक लचकीलापन लाना चाहते हैं—"भाषाको अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतोंसे, अंकों और सीधी-तिरछी लकीरोंसे, छोटे-बड़े टाइपसे, सीधे या उलटे अक्षरोंसे, लोगों और स्थानोंके नामोंसे, अधूरे वाक्योंसे—सभी प्रकारके इतर साधनोंसे कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदनाकी सृष्टिको पाठकों तक पहुँचा सके।...बहुतसे लोग इस बातको भूल गए कि कवि आधुनिक जीवनकी एक बहुत बड़ी समस्याका सामना कर रहा है—भाषाकी क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकताको कैंचुल फाड़कर इसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है—और अहंकारके कारण नहीं, इसलिए कि उसके भीतर इसकी गहरी माँग स्पन्दित है, इसलिए कि वह 'व्यक्त-सत्य'के 'व्यापक सत्य' बनानेका सनातन उत्तरदायित्व अब भी निबाहना चाहता है; पर देखता है कि साधारणीकरणकी पुरानी प्रणालियाँ जीवनके ज्वालामुखीसे बहकर आते हुए लावासे ही भरकर और जमकर रुद्ध हो गई हैं, प्राण-संचारका मार्ग उनमें नहीं है।"

'तार-सप्तक'के अनेक कवियोंको टेकनीकके प्रति विशेष मोह है। श्री गिरिजाकुमार माथुर कहते हैं—"कवितामें विषयसे अधिक टेकनीकपर ध्यान दिया है। विषयकी मौलिकताका पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीकके अभावमें कविता अधूरी रह जाती है।..." उनकी कविताओंके विषय हैं—'रेडियमकी छाया', 'चूड़ीका टुकड़ा', 'एसोसिएशन्स'। वे नई उपमाएँ और नए शब्द-चित्र खोज रहे हैं। 'रेडियमकी छाया'में दो प्रेमियोंका मिलन आपने इस प्रकार देखा है :

प्रथम मिलनके उस ठंडे कमरेमें
छतके वातायनसे
नींद-भरी मन्दी-सी एक किरन भी
थककर लौट-लौट जाती थी
आलस-भरे अँधेरेमें
दो काली आँखों-सी चमकीली
एक रेडियम घड़ी सुप्त कोनेमें चलती
सूनेपनके हल्के स्वर-सी।
उन्हीं रेडियमके अंकोंकी लघु छायापर
दो छाँहोंका वह चुपचाप मिलन था
उसी रेडियमकी हल्की छायामें
चुपकेका वह रुका हुआ चुम्बन अंकित था
कमरेकी सारी छाँहोंके हल्के स्वर-सा
पड़ती थीं जो एक-दूसरेमें मिल गुँथकर।
सूनी-सी उस आधी रात।

नए विज्ञान और मनोविज्ञानका प्रभाव आधुनिक कलापर पड़ना निश्चय है। यह उचित भी है कि कलाकार मनुष्यके प्रगतिके सभी साधनोंका उपयोग करे। फ्रान्सके चित्रकारोंने रंग भरनेके नए तरीक़े निकाले, सूर्यकी किरणोंका रहस्य समझा, तरह-तरहसे बहिर्जगकी शक्तिको कलामें व्यक्त किया। इन प्रयोगों का महत्व कलाके इतिहासमें चिर-अमर रहेगा।

किन्तु साथ-ही-साथ कलाकार अन्तर्मनकी अन्ध गुहाओंमें भी प्रवेश कर रहा था। उसने अनुभव किया कि मनुष्य चिरन्तन रहस्यका पुतला है। उसका स्वभाव समझा ही नहीं जा सकता। कलाकारकी कृतिमें इस कारण भी दुरूहता आने लगी। यह आधुनिक कलाकी एक मुख्य प्रवृत्ति है। आजका कवि 'एनार्किस्ट' है। वह पाठकोंके प्रति मनमें उपेक्षा रखता है और निरन्तर अधिकाधिक दुर्बोध हो रहा है। वह पाठकोंको चमत्कृत करना चाहता है, उन्हें आतंकित कर देता है। यदि जीवनके प्रति उसकी दृष्टि गम्भीर है और पाठकोंके पास वह अपना सन्देश पहुँचाना चाहता है, तो अवश्य ही उसकी रचना-शैली सरल और सुबोध होगी। इसी कारण हिन्दीके कुछ प्रतिष्ठित कवि अपने समाजवादी विचारोंको लोकगीतोंमें व्यक्त करते हैं।

'तार-सप्तक'के अधिकतर कवि समाजवादी विचार-धारासे प्रभावित हुए हैं, यद्यपि अभी वे 'राही' हैं, 'राह नहीं, राहोंके अन्वेषी'। उनमें से कई अभी सिगरेट पीना ही सीख रहे हैं और इसको कोई भारी करामात समझते हैं। एक पैर उनका 'बोहिमियन' कलाकारोंकी दुनियामें है, दूसरा समाजवादकी कठोर, कँकरीली भूमिपर। उनके मनके संकल्प-विकल्प उनकी कलामें भी प्रतिबिम्बित हैं। ये कवि हमें अंगरेज़ीके 'न्यू राइटिंग' (New Writing) ग्रुपका स्मरण दिलाते हैं। सेसिल डे लुई, स्टीफेन स्पेण्डर, आडेन आदि भी इसी द्विधामें पड़े हैं। पुराने कला-रूपोंकी जोड़-तोड़में उन्हें विशेष दिलचस्पी है; किन्तु उनकी ईमानदारी उन्हें विवश करती है कि नए समाज-निर्माणमें वे योग दें। 'तार-सप्तक'के कवियोंमें एक प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है—अपनेमें ही केन्द्रित एकाकीपनकी प्रवृत्ति—जिसके प्रभावसे कविकी कलाका माध्यम छिन्न-भिन्न हो रहा है। दूसरी प्रवृत्ति बहिर्मुखी है, जो कविको अपने समाजकी पीड़ा समझने और व्यक्त करनेको आतुर बनाती है।

'तार-सप्तक'के कुछ कवि कम्यूनिस्ट हैं, जैसे—रामविलास शर्मा, नेमिचन्द्र और भारतभूषण—और कुछ 'कम्यूनिज़्म'के काफ़ी नज़दीक हैं, जैसे—गजानन मुक्तिबोध और शायद प्रभाकर माधवे भी। 'अज्ञेय' अपने स्वाभावसे लाचार व्यक्तिवादी हैं—"अकेले रहनेका आरम्भसे ही कुछ अधिक अभ्यास है; फलतः प्रायः लोगोंके बीचमें भी अकेला रह जाता हूँ, जिससे सब नाराज़ हैं और 'घनिष्ट मित्र' कोई अपनेको नहीं समझता। सभा-समाजोंमें सिट्टी भूल जाता हूँ, जिसे कृपालु लोग 'गम्भीरता' समझते हैं और शेष लोग अहंकार। कृपालु लोगोंका अल्प-मत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

है।" 'अज्ञेय'का राजनीतिसे घना सम्बन्ध रहा है और उन्हें अपने 'घोंघे' के बाहर अक्सर आना पड़ा है। इसीका फल 'चुनाव' नामकी कविता है :—

ठहर-ठहर, आततायी ! ज़रा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्यकी पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलनाकी टक्कर सहार ले—
क्षण-भर स्थिर खड़ा रह ले—
मेरे दृढ़ पौरुषकी एक चोट सह ले !

नूतन प्रचण्डतर स्वरसे
आततायी आज तुझको पुकार रहा मैं—
रणोद्यत दुर्निवार ललकार रहा मैं—
कौन हूँ मैं ?

तेरा दीन-दुःखी पद-दलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्प-से अतीतको जगा
'मैं' से 'हम' हो गया।
'मैं' के झूठे अहंकारने हराया मुझे
तेरे आगे विवश झुकाया मुझे,
किन्तु आज मेरे इन बाहुओंमें शक्ति है,
मेरे इस पागल हृदयमें भरी भक्ति है,—
आज क्योंकि मेरे पीछे जाग्रत अतीत है,
और मेरे आगे है अनन्त
आदिहीन शेषहीन पथ वह
जिसपर
एक दृढ़ पैरका ही स्थान है
और वह दृढ़ पैर मेरा है...

'तार-सप्तक' की बहिर्मुखताका उदाहरण रामविलास शर्माकी कविताएँ हैं। रामविलास स्वभावसे ही जनताके लेखक हैं। उनका, विश्वविद्यालयकी शिक्षा-दीक्षाके बावजूद, किसान-वर्गसे आत्मीयतात्मक सम्बन्ध है। उनकी कविता 'किसान-कवि और उसका गीत' सहज वेदनासे ओत-प्रोत है। इस संगीतमें कोई बनावटी शृंगार नहीं। घनके समान यह पाठकके हृदयपर चोट करता है :—

ओ मेरे साथी ! मेरे जाने-पहचाने !
वज्र हड्डियोंसे बन गए अन्नके दाने !
साथी अपनी छोड़ गया था एक निशानी,
साथीसे ज़्यादा है उसकी करुण कहानी।
वह सूने वनमें आशाका फूल खिला था,
सूने वनको उस तरुणका वरदान मिला था !
प्रतिभाका वह फूल, किसी अज्ञात दिशामें,
धूमकेतु-सा खिला और छिप गया निशामें।
चन्द्रहीन है अमा निशाका जल-सा तम है।
दुखका पारावार अकूल अथाह अगम है।
अनजानी है राह, न साथी आज पास है।
एक नियतिका पीछे अट्टहास है।
यह मानवका हृदय क्षुद्र इस्पात नहीं है।
भयसे सिहर उठे वह तरुका पात नहीं है।...

किसान-कवि 'पड़ीस' और उनके तरुण पुत्रकी मृत्युपर कविके यह आँसू उमड़े हैं। पर कविके सहज संगीतका उत्कृष्ट उदाहरण उसकी कविता 'समुद्रके किनारे' है :—

सागर लम्बी साँसें भरता है
सिर धुनती है लहर-लहर,
पर आगे बढ़ता है मानव
अपनेपनसे ऊपर उठकर।
आगे सागरका जल अथाह
ऊपर हैं नीर-भरे बादर,
बढ़ता है फिर भी जन-समूह
जलकी इस जड़ताके ऊपर।
बैठा है कौन किनारेपर,
यह गरज रहा है जन-सागर,
पीछे हटकर सिर धुनकर भी
आगे बढ़ती है लहर-लहर।
दुखके इस हहर-हहरमें भी
ऊँचा उठता है जयका स्वर ;
सीमाके बन्धन तोड़ रही है
सागरकी प्रत्येक लहर॥

बंगालके अकालपर रामविलासकी कविता मर्मस्थलपर चोट करती है, क्योंकि देशके प्रति कविकी सहज अनुभूतिने उसे विकल कर डाला है। कविको गुरुदेव और उनकी पुण्य-भूमिकी अनायास ही याद आती है :—

यह शस्य श्यामला वसुन्धरा है, जिसे देखकर
कविने मनमें स्वर्ग रचा था सुन्दर।
यह पुण्य-भूमि है, जिसे देखकर
आन्दोलित हो उठता था कविका भावाकुल अन्तर।
वे भरे धानके खेत यहीं थे, जिन्हें देखकर
साँझ-सबेरे, फूटे थे कविके स्वर।
इस बंग-भूमिसे ही जगको सन्देश दिया था
कविने,—"अजर अमर है मानव-जीवन !"
इस बंग-भूमिसे कविने घोषित किया—
"क्षुद्र है मानव द्वारा, मानवका उत्पीड़न !"
बर्बर फ़ासिस्तवादको यही चुनौती दी ;
साम्राज्यवादसे युद्ध किया आजीवन !

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

इस शस्य श्यामला वसुन्धरापर
क्रूर प्रेत-सी घिर आई किस विभीषिकाकी छाया ;
उस अजर अमर जीवनपर यह विनाशकी छाया,
किसकी दारुण सर्वग्रासिनी माया ;
इस पुण्य-भूमिमें तीस हज़ार युवतियोंने
क्यों वेश्यालयमें जाकर आश्रय पाया ?
उन भरे धानके खेतोंमें दिन-रात भूख,
बस भूख महामारीका आकुल क्रन्दन !
हड्डी-हड्डीमें सुलग रही है आग भूखकी ;
सुलग रहा है भीतर-भीतर रक्तहीन मानव-तन ;
पट गया अधजली लाशोंसे कविगुरुका प्रिय
यह हरा-भरा नन्दन वन !...

'तार-सप्तक'के तरुण कवियोंकी वाणीमें भी मुक्तिका अनुभव है, मानो बन्दीके बन्धन टूट गए हों, उसकी वासनाका जाल कट गया हो :—

हो गया आज उन्मुक्त विहग पलमें अबन्ध
छुट गए वासनाके नाते सब मोह-अन्ध
खुल गए पलकमें ममताके सब नागपाश
कारा-तमके वासीने देखा उला-हास
उड़ चला गगनमें अपने आतुर पंख खोल
भर गई मुक्ति मनमें कुछ वह मस्ती अमोल
उद्दाम वेगसे उड़ा चला मानो अशान्त—
हो नभकी सीमा ही छू लेनेको नितान्त
उड़ जायगा मानो अग-जगके आर-पार
उसके अन्तरमें आया है वह रक्त-ज्वार
है आज न उसके प्राणोंको कोई विराम
वह छोड़ चला रुकनेके सारे सरजाम...

(– नेमिचन्द्र, 'उन्मुक्त')

यही मुक्तिका अनुभव और आगे बढ़नेकी आतुरता मुक्तिबोध और भारतभूषण अग्रवालके काव्यमें भी है, यद्यपि उनके पैर उनकी उड़ानका बोझ सँभालनेमें असमर्थ-से लगते हैं, उनकी वाणीको जैसे सुसज्जित कलाने बाँधकर रखा है।

छायावादने हिन्दी-काव्यमें युग-परिवर्त्तन किया। अब कवि उस थातीको सँभालकर आगे बढ़नेके पथ खोज रहे हैं। यह खोज 'तार-सप्तक'में जारी है। मंज़िल अभी दूर है, कविके पैर रास्ता ही टटोल रहे हैं। दो रास्तोंके मोड़पर उनके पैर अटक रहे हैं। शब्द, संगीत, टेकनीक आदिके प्रश्न उसको एक रास्तेपर बुला रहे हैं ; क्रान्तिकी प्रेरणा दूसरी ओर। प्राण और रूप दोनोंसे ही सम्पन्न भविष्यकी कला होगी ; किन्तु आजका कवि युगका प्रतिनिधि तभी होगा, जब युग उसकी वाणी समझ सकेगा। 'तार-सप्तक' सूचना है कि हिन्दीके 'कवि-कुल' सजग हैं। उनके दृढ़ कन्धे अपने उत्तराधिकारोंका बोझ सँभालने के लिए तत्पर और समर्थ हैं। आजके ये 'अन्वेषी' कलके पथ दर्शक होंगे और उस गुरुतर दायित्वको उठानेकी तैयारीमें लगे हैं। कुल मिलाकर 'तार-सप्तक'का मुक्त-कण्ठसे स्वागत होना ही चाहिए। इस संग्रहमें हिन्दीके अनेक युवा कवियोंका सबल स्वर है।

धारावाहिक उपन्यास

मुसाहिबजू

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

- ६ -

मराठी सेनाएँ अंगरेज़ोंकी सेनाओंसे हार चुकी थीं, अर्थात् मराठे राजाओं द्वारा परिचालित राजनीतिमें विभक्त—यद्यपि फ्रांसीसी, जर्मन इत्यादि यूरोपियन सेनानायकों द्वारा शिक्षित—भारतीय सेनाएँ अंगरेज़ राजनीतिसे परिचालित अंगरेज़ों द्वारा शिक्षित भारतीय सेनाओंसे हार गई थीं। ग्वालियर, इन्दौर इत्यादि प्रबल मराठे नरेश अंगरेज़ोंकी सन्धियोंको क़बूल कर चुके थे ; परन्तु उनके हृदयोंने अंगरेज़ोंके लोहेको मान लिया हो, सो नहीं हुआ था। सामाजिक अशान्तिके बाहरी चिह्न कम हुए दिखलाई पड़ते थे ; परन्तु लोगोंके मनमें विश्वास नहीं बैठा था कि जो-कुछ परसों तक होता रहा था, वह कल फिरसे न हो उठेगा। खार खाए किसी ऊबट घड़ाकी बाट जोह रहे थे। व्यापारीवर्ग कुछ साँस लेने लगा था ; परन्तु दम कब उखड़ बैठे, इसकी धुक-धुक लगी हुई थी। चाहे जिस तरहकी शंकाकुल कहानीको कोई भी भयभीत व्यक्ति विस्तृत किए जानेकी आशापर उत्पन्न, विकसित और विस्तृत कर सकता था।

राजा विजयबहादुरसिंहको उनके विश्वस्त हरकारोंने स्पष्ट चार दिया कि ग्वालियर-राज्य दतियापर आक्रमण करनेकी योजना बना रहा है और शायद बड़ोनीके जागीरदार ग्वालियरका साथ दें। ग्वालियरसे दतियाकी कई बार खटकी थी, जिसके किसी प्रकार दतिया-राज्य ग्वालियरमें सम्मिलित होनेसे बालबाल बचता गया था। बड़ोनीके जागीरदारोंसे दतियाका मनमुटाव औरंगज़ेबके देहान्तके बादसे ही चला आता था ; परन्तु ऐसी घटना नहीं हुई थी, जिससे इस मनमुटावको तोप-तलवारका

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

अंगरेज़ोंके साथ सन्धि हाल ही में हुई थी। उनकी सहायता अपने हितोंकी रक्षाके निमित्त जैसे और रईस लेते थे, वैसे ही दतिया-राज्य भी ले सकता था; परन्तु अपनेको सबल बना लेनेपर बाहरके मित्र भी प्रबल सहायता दे सकते हैं, यह सोचकर राजा विजयबहादुरसिंहने और उनके सम्मतिदाताओंने पहले अपनी सेनाको बली बनाने और फिर अंगरेज़ोंको सहायता के लिए न्यौतनेका निश्चय किया।

राजाने मुसाहिब दलीपसिंहको बुलाया। बुलानेके पहले ही मुसाहिबजूको बुलावेका उद्देश्य विदित हो गया था। उन्होंने अपने खास आदमी जागीरके और आसपास गाँवोंमें तुरन्त सैन्य संग्रहके लिए भेज दिए।

दरबारमें राजा मसनदपर थे। तकिएसे टिके हुक्का पी रहे थे। दीवान और थोड़ेसे अन्य विशिष्ट दरबारी अदबके साथ नीचे बैठे थे। मुसाहिबजू भी मुजरा करके यथास्थान बैठ गए। राजाने आदरके साथ दलीपसिंहसे कहा—'मुसाहिबजू, कुछ खटका सुननेमें आया है। आशा है कि संकट भगवानकी दयासे आयगा ही नहीं; परन्तु ज़माना अच्छा नहीं है, इसलिए अपनी सेनाको चाकचौबन्द रखना चाहिए।'

दीवान बोला—'महाराजकी मर्ज़ी ठीक हुई है। मुसाहिबजूकी सेना तो तैयार ही रहती है। यदि कोई कसर हो भी—मेरी समझमें कसर बिलकुल नहीं है—तो शीघ्र पूरी हो जायगी।' दीवान जानता था कि मुसाहिब दलीपसिंह राजाके प्रियपात्र हैं; परन्तु वह राजाकी चिन्तासे भी परिचित था।

मुसाहिबजूने नम्रता और दृढ़ताके साथ कहा—'दीनबन्धुकी जो आज्ञा हुई है, उसका पालन तुरन्त होगा।'

राजा—'आपके पास १२०० सिपाही हैं?'

मुसाहिब—'हाँ महाराज, और भी बढ़ाए जा सकते हैं।'

राजाने मनमें खज़ानेकी ओर आंख फेरकर कहा—"नहीं, इतने ही चौकस रखो। बढ़ानेकी ज़रूरत नहीं है। बात सधते-सधते अंगरेज़ोंकी भी सहायता आ पहुंचेगी। सन्धिपत्रमें शर्त है।'

कहा किसीने नहीं, परन्तु सोचा सभीने कि जैसे अनेक पूर्व सत्ताधारियोंने सन्धिपत्रोंकी अवहेला की, उसी प्रकार अंगरेज़ भी कर सकते हैं। इसलिए यही निश्चय स्थिर किया गया कि सेना इकट्ठी करके तैयार हालतमें रख ली जाय। इसके उपरान्त शिकार और आमोद-प्रमोदके प्रसंगमें दरबारका वार्तालाप सरक गया।

राजा—'उस तेन्दुएकी छाल बनवा ली? सुना है, बड़ा था।'

मुसाहिब—'हाँ दीनबन्धु, बड़ा था। परन्तु गलेकी खाल फट जानेके कारण मुझे पसन्द नहीं आई। एक साधूने भजनके लिए मांग ली, सो मैंने दे दी।'

दीवान—'वही साधू होंगे, जो आदेके बागमें ठहरे थे?'

मुसाहिब—'जी हाँ, कुछ दिनों ठहरे थे—'

राजा—'रामसागरपर एक साधू ठहरे हैं, उन्होंने खबर दी है कि पास ही डांगमें नाहरकी जोड़ी ठहरी हुई है।'

मुसाहिब—'महाराज, सेंहुड़ेके पाससे भी नाहरोंका समाचार आया है।'

राजा—'पिछली बार सेंहुड़े जाते हुए इन्द्रगढ़में जल्सेके लिए रुक गए थे और फिर दतिया लौट आना पड़ा था। वहाँ तक पहुँच नहीं पाए।'

दीवान—'दिल्लीसे एक बीनकार आए हैं, गोसाईं हैं। बड़ी तारीफ़ सुनी है।'

राजा—'बिब्बो भी तो इन्द्रगढ़से यहीं आ गई है, गोसाईंजी उसके साथ बीन बजा सकेंगे?'

दीवान—'महाराज, हाथ तो उनका बहुत तैयार है।'

राजा—'तुमने सुना है?

दीवान—'महाराज!'

राजा—'तो अलगसे भी सुनेंगे और बिब्बोके गलेके साथ भी।' इस प्रकार शिकारसे शुरू होकर दरबारका वार्त्तालाप गायिकाके गलेमें समा गया।

- ७ -

३-४ दिनके भीतर ही मुसाहिबजूकी गढ़ीके आसपास सैनिकोंके झुण्ड-के-झुण्ड एकत्र होने लगे। सबके पास बन्दूक और ढाल-तलवार थीं। मूँगिए कपड़े पहने और बुन्देलखण्डी झब्बू जूते। न कोई नियम, न कोई संयम। क़वायद-परेड बहुत थोड़े सिपाहियोंको सिखाई गई थी; पर इनकी नक़ल अन्य सिपाही उत्साह और ध्यानके साथ कर रहे थे, जो हवालदारके परिश्रमकी कमीकी पूर्त्ति कर रही थी। एक बड़ा झुण्ड भरतगढ़के आस-पास ठहर गया, बाक़ी कोई कहीं, कोई कहीं। पर सबके भोजन के लिए अटाला भरतगढ़में ही था। ब्राह्मण रसोइयोंके रसोड़ोंमें दाल-रोटी और घीका प्रबन्ध था। यद्यपि सिपाहियोंमें क़तार और घड़ीकी सुईकी तरहकी पाबन्दी न थी, तो भी उनके दल और दस्ते बँटे हुए थे। इन दलों और दस्तोंके अलग-अलग अफ़सर और कर्मचारी थे। बहियोंमें नाम, पता-ठिकाना, वेतन, हथियार इत्यादि दर्ज थे, जो बख्शी नामके उच्चपदाधिकारीके हाथमें रहती थीं। सेनामें मिस्त्री थे, कमठाना था। सिपाहियों में अपने सेनापति और सरदारकी आनको पकड़ने और उसके लिए अपने प्राण आहूत कर देनेकी बान थी। इन्हीं सिपाहियों की सहायतासे दक्षिणमें बीजापुर और गोलकुण्डा तथा उत्तर-पश्चिममें काबुल और कन्दहारको औरंगज़ेबने विनय सिखलाई थी।...का ढाली हुई तोपोंने उत्तरमें सिन्ध-सतलज और दक्षिण में कृष्णा-कावेरीकी मुहिमा और मोर्चोंको मरोड़ा था। पड़ोसी सिन्धियाके डीबौर्य, पैरों और फ़ीलाज़ सेनापति बुन्देलखण्डी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कड़ाबीन और तलवारको पहचानते थे; परन्तु बुन्देलखण्डी सेनाके पास नहीं थी तो समझी, सुलझी हुई राजनीति और अपनेको सुधारने-सँभालनेकी प्रवृत्ति। उनके नायक और संचालक अदूरदर्शी, आलसी और निकम्मे हो गए थे। तब सिपाही पुराने हथियारोंके भरोसे नई हेकड़ीके साथ पुरानी डीगोंको मारनेके सिवाय और करते ही क्या? और टोली बाँध-बाँधकर शराब, शिकार, गाँजा, भाँग और कम-से-कम तम्बाकूके दौरोंकी ओर क्यों न दौड़ते? इनका नायकत्व सड़ गया था और परम्परा गल गई थी। ये लोग लोहेके बेकार लोढ़ोंकी तरह बिखरे पड़े थे।

छावनीबन्द सिपाही थोड़े ही रह गए थे, बाक़ी भुमियाँ थे और केवल भुमियाँ रह गए। बहुत शीघ्र बड़ा परिवर्त्तन हो गया। थोड़ेसे ही वर्ष पहले इसी प्रकारकी बुन्देलखण्डी सेनाने कर्नल···की अंगरेज़ी सेनाका विन्ध्याचलकी घाटियों और बेतवा धसानके भरकोंमें विध्वंस कर दिया था। अंगरेज़ी सेनाने उस पराजयसे सबक़ सीखा और कुछ ही महीनों पीछे विजेताओंको परास्त करके सन्धिकी शर्तोंमें बाँध लिया--यद्यपि जिन शर्तोंसे बाँधा था, वे ज़रतारी रेशमसे बुनी हुई थीं। पर कर्नल···के बुन्देलखण्डी विजेताओंने कुछ नहीं सीखा। सीखा यदि तो केवल बख्शीजीके बही-खातोंमें सिपाहियोंका वेतन बक़ायामें डालना!

मुसाहिब दलीपसिंहके अधिकांश सिपाहियोंका वेतन भी महीनोंकी बक़ायामें पड़ा था। सेंहुड़ेके आसपाससे सिपाही लड़नेकी उमंग और बक़ाया वेतनकी वसूलीकी आशामें दतियामें शीघ्र जमा हो गए थे। मुसाहिबजूको बख्शीने सम्पूर्ण स्थिति, करारी आर्थिक स्थिति, समझा दी। मुसाहिबजू बहुत चिन्तित हुए। जागीरके गाँवोंसे लगान वसूल हो नहीं सकता था। सिपाहियोंकी संख्या कम नहीं की जा सकती थी। बख्शीके बही खातोंको छेंका या मिटाया नहीं जा सकता था। सेनाके संग्रह और तैयारीका वचन वह छाती ठोंककर दरबारमें राजाको दे आए थे। जमा होते चले जानेवाले सिपाहियोंकी चहल-पहल बढ़ती चली जा रही थी। उनके हो हल्ले, हास-परिहास और गपशपकी तहमें तनख़ाहोंका बक़ाया दृढ़ताके साथ झाँक रहा था। मुसाहिबजू चिन्तित थे; पर घबराहट उनकी प्रकृतिमें न थी। चरखारीवाली सरकार और अन्तमें चरखारी राज्यका सहारा तथा अपना उदार मन घबराहटको रोकनेमें सहायक बन रहा था। फिर भी उनकी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी और बिना कहे काम बन भी नहीं सकता था। एक-एक क्षण दुस्सह होता चला जा रहा था। अन्तमें उन्होंने रावर (अन्तःपुर)में दूतीकी मारफ़त अपने आनेकी खबर भेजी। बुलावा आ गया। बरबस मुस्कराते हुए वह सामने पहुँचे। नौकरानी पान बनाकर लाई और देकर चली गई। पर मुसाहिबजू बात न कर सके।

चरखारीवाली सरकारने अपनी कल्पनासे सब समझ लिया तो भी हँसकर पूछने लगीं—'सब सिपाहियोंके लिए डेरे प्रबन्ध हो गया?'

'हो गया है।'—मुसाहिबने शीघ्र उत्तर दिया—'लड़ाई लग जाय, तो मन भी खूब बहले और सिपाहियोंका हथियारोंका मोर्चा छूट जाय।'

'कितने आदमी इकट्ठ हो गए हैं?'

'लगभग १२०० सौ होंगे।'

'बख्शीजीने हाज़िरी तो ली होगी?'

'ली तो है। ठीक-ठीक संख्या उनके पास है।'

'रसोइए रसोई तो ठीक समयपर बनाकर देते चले आ रहे हैं?'

'वह सब प्रबन्ध हो गया है। सिपाही उमंगोंमें हैं और किसी भी सेनासे टक्कर ले सकते हैं।'

'अंगरेज़ोंसे तो नहीं डरते?'

'डरते तो यमराजसे भी नहीं हैं, परन्तु हथियार अंगरेज़ोंके पास अच्छे हैं।'

'आप भी अपनी सेनाको अच्छे हथियार दीजिए।'

'सो तो बहुत आवश्यक है ही; परन्तु इसका प्रबन्ध राजाको करना चाहिए।'

'सिपाहियोंके वेतनका?'

'यह ज़िम्मा हमारा है। परन्तु···परन्तु अभी रुपया तो है नहीं और उनके कई महीने बाक़ीमें पड़े हैं,' मुसाहिबने ज़रा नीचा करके कहा--'यही तो चिन्ताका कारण हो जाता है।'

चरखारीवालीने उत्तर दिया—'आप चिन्ता कभी मत किया कीजिए। इन सबकी बाक़ी आज ही चुका दीजिए।'

मुसाहिबजू--'कैसे?'

चरखारीवाली--'जैसे मैं कहूँ।' मुसाहिबजू अपनी पत्नीका मुँह ताकने लगे। उन्होंने हँसते हुए कहा--'लक्ष्मी मातेश्वरी मारफ़त किसी बड़े साहूकारके यहाँसे रुपया मँगवा लीजिए। मेरे पास एक नथ कम-से-कम तीन हज़ार रुपएकी है।'

मुसाहिबजूकी आँखोंमें आँसू आ गए। उनको चटपट पॉलिटिक अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टिसे मुसाहिबने पत्नीके प्रस्तावको स्वीकृत किया बोले--'मैं चाहता हूँ कि चाहे ग्वालियर हो चाहे अंग्रेज़ोंसे लड़ाई हो पड़े, तो वैरियोंके छक्के छुटा दूँ और आपको मुँह दिखलाने लायक बनूँ।'

चरखारीवालीने कन्धेपर हाथ रखकर मुस्कराते हुए कहा—'ऐसी बात मत कहिए। आपका बड़ा नाम है। काम भी ऐसा करिए। बख्शीजीके बही-खातोंपर ध्यान रखिए। १२०० आदमियोंका वेतन तो अवश्य दीजिए; किन्तु उनको तुलादान बनाए रखिए। उनको यदि ढोल मिलो, तो गाढ़े समयपर

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

काम न दे सकेंगे और आपके नामको बट्टा लगा देंगे।'

'ऐसा ही करूँगा।'—मुसाहिबजूने अपनी पत्नीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा।

थोड़ी देर बाद वह अपनी ड्योढ़ीमें चले आए। चरखारी-वालीकी मुस्कराहटने बिदा ले ली। सन्दूक़ खोलकर उन्होंने अपनी नथ निकालो। अब उस सन्दूक़में थोड़ी-सी अँगूठियों और कुछ साधारण सोनेके आभूषणोंको छोड़कर और कुछ न था! आकृति दृढ़ करके उन्होंने अपनी एक परिचारिकाके हाथ नथ लल्लीके पास भिजवाई। लल्ली नथको एक बड़े साहूकारके यहाँ २५००) में गिरवी रखकर रुपया ले आया। बख्शीने परिश्रमके साथ हिसाब करके बाक़ी चुकाई। कुछ बक़ाया अनुमान-भूत था, उसको काट-कूटकर खाता ड्योढ़ा किया। रातके दस बजते-बजते सब हिसाब साफ़ हो गया और मुसाहिबजूको समाचार दे दिया गया। २००) बच गए, वह मुसाहिबजूके हाथमें दे दिए गए। मुसाहिबजूने प्रसन्नतापूर्वक इन रुपयोंको भीतर पहुँचा दिया; परन्तु उनके विचारमें यह नहीं आया कि बख्शीके बही-खातोंपर ध्यान कैसे रखा जाता है।

- ८ -

दतियाकी तैयारीका समाचार विविध और विस्तृत रूप धारण करके ग्वालियर पहुँच गया। सिन्धिया-सरकार अंगरेज़ों को उसी सन्धिसे बँधी हुई थी, जिसमें दतिया; और सिन्धिया-सरकारको ज्ञात था कि दतियाके साथ अंगरेज़ोंकी मैत्री तथा बराबरीकी सन्धि है, शक्ति भले ही दतियाकी उसके अनुपातमें न होनेके समान ही हो। इसलिए ग्वालियरसे अधिकारमूलक समाचार उसी सप्ताह दतियामें आ गया कि राजा किसी प्रकारकी दुविधामें न पड़ें और ग्वालियरकी ओरसे निश्शंक रहें।

राजा और उनका दरबार ग्वालियरकी ओरसे यथासम्भव बेखटके हो गया, और राज्यका जीवन पुराने ढर्रेपर फिर चलने लगा। मुसाहिबजूकी सेना तितर-बितर होकर अपने घरोंको चली गई। दतियामें उतने ही सैनिक और शिकारी रह गए, जितने साधारण समयमें रहा करते थे। मुसाहिबजू और उनके बख्शीने ज़रा चैनकी साँस ली।

उन्हीं दिनों रनवासमें एक उत्सव हुआ। महारानोकी परि-चारिकाएँ चरखारीवाली सरकारको निमन्त्रित करनेके लिए आईं। वह भोजन करनेके उपरान्त शयन कर रही थीं। परिचारिकाओं का पान-सुपारीसे सत्कार करवाया; परन्तु वह अपने स्वभावके विरुद्ध पलँगपर ही लेटो रहीं। बोलीं—'मैं अस्वस्थ हूँ। जी अच्छा रहा, तो पीनस भिजवानेके लिए कहला भेजूँगो, अन्यथा माफ़ीके लिए विनती कर देना।'

परिचारिकाएँ शिष्टाचारके बाद चली गईं। उनके जानेके पश्चात् चरखारीवाली सरकार चादरसे मुँह ढककर सिसक-सिसक कर रोईं। रसोइनोंको मालूम हो गया। अन्य परिचारिकाओंसे भी छिपा न रहा। अन्तमें ड्योढ़ीपर मुसाहिबजूके कुछ सैनिकोंके भी कानमें बात पहुंच गई; परन्तु मुसाहिबजूसे किसीने नहीं कहा। सैनिक—खासकर मुसाहिबजूका शिकारोवर्ग—विशेष चिन्तित हुए। कारण जाननेकी उत्सुकता बढ़ी। कुतूहलने शीघ्र व्यथाका रूप पकड़ा।

लल्लीको अकेलेमें ले जाकर रमू मिहतरने कहा—'माते, ऐसा कभी नहीं हुआ है। क्या क़िलेसे आई हुई परिचारिकाएँ कोई अपमान कर गई हैं?'

लल्लीने उत्तर दिया—'मैं स्वयं हैरान हूँ। अपमान करनेका साहस क़िलेके बाहर-भीतर किसीमें नहीं है।'

'फिर क्या बात हो सकती है?'

'मेरी भी समझमें नहीं आ रहा है।'

'पता लगाओ।'

'बड़ा कठिन और नाज़ुक काम है।'

'पर हमारा धर्म है कि मालिककी सब प्रकारसे सेवा करें।'

'मुसाहिबजूसे कहें? वह भोतर जाकर समझा-बुझा लेवें।'

'कदापि नहीं, उनके बिरतेके भीतरको बात होती, तो जवाबवाली स्वयं आकर उनको बुला ले जातो। तुम किसी जवाबवालीसे पूछो या पुछवाओ और यह कहलाओ कि सारी सेना क़दमोंमें सिर काटकर चढ़ा देगी, मर्ज़ी-भर हो जाय।'

'हाँ, ठीक मालूम होता है, रमू कक्का! इसमें किसीको कुछ बुरा नहीं लगेगा।'

लल्लीने जवाबवालीको बुलाया। उससे अकेलेमें गहना गिरवी और रुपए-पैसेकी बातचीत हुआ ही करती थी, इसलिए रमूके सुझावके आधारपर इस विषयकी चर्चा एकान्तमें करनेमें उसे कोई हिचक नहीं हुई। जवाबवालीको खुद कुछ मालूम न था; परन्तु ढूँढ-खोजके बाद कारण बतला जानेका आश्वासन देकर वह चलो गई।

वह परिचारिका चरखारीवाली सरकारके पलँगके निकट चुपचाप पहुँची। वह रोनेके उपरान्त सो गई थीं। उत्सुकतासे विवश होकर परिचारिका उनको जगा लेनेको भी तैयार थी; परन्तु किसी तरह धैर्य धरकर वह भूमिपर एक पोढ़ा बिछाकर बैठ गई और चरखारीवालीके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगी। उसने एक घण्टा दर्जनों जमुहाइयाँ लेकर काट पाया। जागकर चरखारीवाली बिस्तरपर बैठ गईं। परिचारिकासे आश्चर्यके साथ पूछा—'कितनी देरसे बैठो हो?'

'अभी थोड़ी देर हुई, जब यहाँ आई।' उसने उत्तर दिया। फिर सावधानीके साथ प्रश्न किया—'उत्तर लेनेके लिए महलोंसे कोई-न-कोई फिर आता ही होगा।'

चरखारीवाली ज़रा चकित होकर बोलीं—'क्या मैं बड़ी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देरसे सो रही हूँ ?' उनके कण्ठमें किसी गत दुःखकी दारुणताका अवशेष अब भी था।

चतुर परिचारिकाने उत्तर दिया—'आप खूब सोई हैं, यह आपके स्वरसे ही विदित हो रहा है।

कण्ठ-स्वरके स्मारकने स्मृतियोंको फिर जगा दिया। चरखारीवालीकी आँखें छलछला आईं। परिचारिकाने तुरन्त खड़े होकर कहा—'जल ले आऊँ ?'

चरखारीवाली बोलीं—'नहीं, बैठ जाओ। प्यास नहीं है।'

'हुकुम हो।'—परिचारिकाने प्रस्ताव किया।

चरखारीवालीने दृढ़ताके साथ कण्ठको संयत करके कहा—'मैं क़िलेमें नहीं जाऊँगी।'

'महाराज'—परिचारिका हाथ जोड़कर उत्साहके साथ बोली—'चरखारी और दतिया एक कोटिके राज्य हैं। आप चरखारीकी बेटी हैं और वह दतियाकी रानी हैं। कोई अन्तर नहीं है। आप न जायँ, तो कोई कुछ नहीं कह सकता है। केवल यह भय लगता है कि महारानी साहबा स्वयं यहाँ न आ जावें। इसलिए कुछ-न-कुछ उत्तर शीघ्र भिजवा दिया जाना आवश्यक है।'

'चरखारीवालीने अपने सहज स्वरमें कहा—'हमारा उनका आना-जाना बना रहता है; परन्तु आज जैसी अवस्थामें मैं क़िलेमें नहीं जाना चाहती।'

परिचारिका—'मैं समझी नहीं।'

चरखारीवाली—'इस उत्सवमें अन्य जागीरदारों और सेठ-साहूकारों तथा अफ़सरोंकी बहू-बेटियाँ इकट्ठी होंगी। मेरे पास कोई आभूषण नहीं हैं। सबकी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ेगी। मायका चरखारी न होता, तो कोई बात न थी। अब नंगे हाथ और गला लेकर महलोंमें क्या मुँह दिखलाऊँगी ? वहाँ तमाम स्त्रियाँ कानाफूसी करेंगी। मेरी अवस्थाकी आड़ लेकर और लोगोंका नाम वाद-विवाद और गपशपमें घसीटा जायगा। मैं अपने कानोंको कहाँ तक मूँदे रहूँगी ?'

आभूषणोंकी कमीके कारण उद्विग्नताको शान्त करनेके प्रयोजनसे परिचारिकाने कई बार 'महाराज' शब्दसे चरखारीवालीको सम्बोधित किया। वैसे भी परिचारिकाएँ इस शब्द द्वारा सम्बोधन किया करती थीं; परन्तु इतने अनेक बार नहीं।

'महाराज'—परिचारिकाने कहा—'बात ठीक है। आप तो क्या मालिकके विषयमें कोई भी छोटी मोटी बात हम लोग, जो आपका निमक खाते हैं, नहीं सह सकते।'

चरखारीवाली—'मैं सोचती हूँ, किस प्रकार आजका निमन्त्रण बरकाया जावे। इसके बाद ही मैं शीघ्र चरखारी जानेकी तैयारी करूँगी।'

परिचारिका—'महाराज, जब आज्ञा होगी, चरखारीका जाना हो सकता है।'

चरखारीवाली कुछ सोचने लगीं। सोचकर बोलीं—'महलों हुए बिना न रहेगा कि आभूषणोंके न होनेके कारण ा बनाया है।'

ारिका कुछ न कह सकी। उसने सिर नीचा कर लिया। ालीकी आँखोंमें फिर आँसू आ गए। परिचारिकाने होकर कहा—'मैं महलोंमें कहलाए भेजती हूँ कि शरीर ्थ है, इसलिए पीनस न भेजी जावे।'

गलेको संयत करके चरखारीवालीने सहमति दे दी।

परिचारिकाने लल्लीको अकेलेमें बुलाकर सब हाल सुना दिया और उसमें अपनी ओरसे थोड़ा-सा अतिरंजन करके चेतावनी दी—'मुसाहिबजूको सूचित न किया जाय और न सिपाहियोंमें बात फैलने पावे। खबरदार!'

लल्लीने रमूको अकेलेमें ले जाकर सब बात समझा दी और बातको फैलने न देनेका अनुरोध किया। रमूने अपने वर्गके लगभग सभी मिहतर सैनिकोंको बात सुना दी और सबको चुप रहनेका आदेश कर दिया। ये सैनिक अपने स्वामीकी पत्नीकी इस दशापर क्षोभमें पड़ गए। लल्लीने क़िलेमें खबर भेज दी कि अस्वस्थताके कारण चरखारीवाली सरकार उत्सवमें सम्मिलित न हो सकेंगी।

थोड़ी देरमें नंगी तलवारें लिए हुए घुड़सवार आगे-पीछे महारानीकी पीनसको घेरे मुसाहिबजूकी गढ़ीके पास आ गए। एकने आगे बढ़कर समाचार दिया—'महारानी साहबा पधारी हैं।'

मुसाहिबजूने झटपट साफ़ा बाँधा। कपड़े पहनकर पीनसके पास दौड़ आए। मुजरा किया। ड्योढ़ीके भीतर परिचारिकाओंने चरखारीवालीको खबर दी। पीनसवाले पीनसको ड्योढ़ीके भीतरी आँगनमें छोड़कर चले आए। दूसरी पीनससे जो पीछे-पीछे आई थी, महारानीकी परिचारिकाएँ उतरकर गढ़ीके भीतर चली गईं। चरखारीवालीने स्थितिकी आकस्मिकताको अपने सहज दृढ़ स्वभावसे सँभाल लिया। महारानीका आगत-स्वागत किया और ऐसे यकायक आनेपर आश्चर्य और हर्ष प्रकट किया।

महारानीने कहा—'मैंने सुना कि आपका जी अस्वस्थ है, सो देखने चली आई। आज क़िलेमें बड़ा उत्सव है। आपका न होना मुझको खलता, इसलिए मैं स्वयं आई।'

चरखारीवालीने विषण्ण स्वरमें उत्तर दिया—'मैं महाराज, अवश्य आती; परन्तु आज दोपहरसे सिर और पेटमें पीड़ा है, इसलिए विवश हूँ।'

औषधोपचारके लिए महारानीने सम्मति दी। चरखारीवाली ने टालाटूली की। महारानीने लिवा जानेका बहुत हठ किया; परन्तु वह चरखारीवालीके हठपर विजय न पा सकीं। अन्तमें उनके स्वास्थ्यकी कामना करके महारानी क़िलेको वापस चली गईं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भीतर जो-कुछ घटित हुआ था, अतिरेकके साथ परिचारिका ने लल्लीको सुनाया और लल्लाने रसूको। और सैनिकोंको भी क़िले के निम्न त्रणको स्वीकार न कर पानेका असली कारण मालूम हो गया। अज्ञानके वातावरणमें यदि कोई रहा, तो केवल मुसाहिब दलीपसिंह। उन्होंने चिन्ताके साथ परिचारिका द्वारा स्वास्थ्यका सवाद मँगवाया। उनको आश्वासन दिया गया—'चिन्ताको कोई बात नहीं, जी शीघ्र ठीक होता चला जा रहा है; परन्तु क़िलेमें जाना न होगा।'

सन्त तुकाराम और उनकी हिन्दी-कविता

श्री उषादेवी रस्तोगी, बी० ए०

प्राचीन कालसे ही हिन्दी भारतकी अन्तर्प्रान्तीय भाषा रही है। महाराष्ट्र ही क्या सुदूर दक्षिणमें भी प्राचीन कालमें हिन्दी-भाषाके अस्तित्वके प्रमाण पाए जाते हैं। सुदूर प्रान्तोंमें हिन्दीके प्रचारका कारण मुख्यतः धार्मिक और राजनीतिक रहा है। महाराष्ट्र और गुजरातमें गोरखपन्थियोंके प्रभाव और मुसलमानोंके आगमन एवं शासनके कारण हिन्दी-भाषाका बहुत प्रचार हुआ। काशी, अयोध्या, मथुरा आदि प्रमुख तीर्थ-स्थानोंका हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तमें होना भी हिन्दीकी व्यापकता बढ़ानेमें बहुत सहायक हुआ, और फिर कबीर आदि सन्तोंकी साखियों और तुलसी, सूर, मीरा आदि भक्त कवियोंके पदोंने भी सन्त-समाजमें प्रचलित होकर इस कार्यमें बहुत योग दिया।

जो हो, महाराष्ट्रकी सन्त-परम्परामें हिन्दी-रचनाएँ बहुत प्राचीन कालसे उपलब्ध हैं। ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ प्रभृति सभी प्रसिद्ध सन्तोंकी हिन्दी-रचनाएँ कुछ-न-कुछ परिमाणमें मिलती हैं। महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध सन्त कवि तुकारामने भी हिन्दीमें कविता करके उसके गौरवकी अभिवृद्धि की है। यह अवश्य है कि तुकारामकी हिन्दी-कविता परिमाणमें बहुत कम है, और उसके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि तुकारामको हिन्दीका अच्छा ज्ञान न था। फिर भी प्राचीन कालमें महाराष्ट्र-प्रदेशमें हिन्दीके प्रचारकी दृष्टिसे उनकी कविताका बहुत महत्त्व है।

तुकारामका अध्ययन संस्कृत और मराठी ग्रन्थों तक ही परिमित था। उनका परिचय न तो हिन्दी-छन्दशास्त्रसे था और न हिन्दीके ग्रन्थोंसे ही। पर उत्तर-भारतके सन्त कवि — विशेषकर कबीरकी साखियों—से वे परिचित थे। कबीर — वित होकर उन्होंने उनके ढंगपर कुछ दोहे भी लिखे — भावकी दृष्टिसे भी बहुत-कुछ कबीरकी साखियोंसे — हैं। कबीरके समान और उन्हींके ढंगपर, जीवनकी — और रामनामके महत्त्वपर तुकारामने कई दोहे लिखे — हरणके लिए :—

राम कहे सो सुख भला रे, बिन रामसे दोख।
अब न जानूँ रमते वेरों, जब काल लगावे सीख॥

कबीरके सदृश्य वाह्य विधि-विधानोंकी निस्सारता दिखाते हुए अन्तःकरणकी शुद्धिपर उन्होंने भी बहुत ज़ोर दिया है :—

तुका वस्तर बिचारा क्या करे रे, अन्तर भगवान होय।
भीतर मैला कब मिटे रे, मरे ऊपर धोय॥

एकान्तवासके आग्रही होते हुए भी जब तक भौतिक विषयानन्दोंसे मन विरक्त न हो जाय और हृदयमें अभिलाषाओंका अन्त न हो जाय, तब तक वैराग्य और वाह्याडम्बरोंको वे व्यर्थ समझते थे :—

तुका कुटुम्ब छोरे रे, लरके ज़ोरों सिर मुँढ़ाय।
जब ये इच्छा नहिं मुई, तब तू किया काय॥

अथवा —

तुका इच्छा मीट नई तो, काहा करे जट खाक।

स्पष्टवक्ता होते हुए भी तुकाराममें सच्चे भक्तकी दीनता और निरभिमानता थी; कबीरकी-सी उद्दण्डता, अक्खड़ता और सबसे बढ़कर अपनेको तत्त्वज्ञानी समझनेकी प्रवृत्ति नहीं। जायसी ने कहा है—'हौं पण्डित केर पछलगा'; उसी प्रकार तुकारामका भी कथन है :—

सन्तत पन्था ले खड़ा, राहूँ ठाकुर-द्वार।
चलत पाछें हूँ फिरों, रज उड़त लेउ सोर॥

कबीरकी भाँति तुकाराम भी जात-पाँतको भगवत्-प्राप्तिके मार्गमें बाधक नहीं समझते थे। तुकाराम स्वयं शूद्र थे। अपनी प्रगाढ़ भक्ति-भावनासे उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि 'जात-पाँत पूछे नहिं कोई। हरिको भजे सो हरिका होई॥' उन्होंने कहा भी है :—

मेरे रामको नाम जो लेवे बारोंबार, पाउँ मेरे तनकी पैंजार।
हाँसत खेलत चालत बाट, खाता खाते सोरे खाट॥
जातन सुँ मुजे कछु नहिं प्यार, असते कि हिन्दु धेड़ चमार।
ज्याका चित लागा मेरे रामके नाम, कहे तुका मेरा चित लगा
त्याके पाव॥

अधिक याती कुलहीन नहिं जानूँ, जाने नारायण सो प्राणी मानूँ॥

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुकाराम सगुणोपासक भक्त थे ; किन्तु सगुण ब्रह्ममें आस्था रखते हुए भी निर्गुण ब्रह्मसे उनका विरोध न था। उन्होंने घटके भीतर भी भगवानकी सत्ता मानी है, और खुले जगतके बीच दुष्टोंका दलन और सन्तोंकी रक्षामें तत्पर परमब्रह्मके रूपावतारोंमें भी पूरी श्रद्धा दिखाई है। जहाँ उन्होंने यह कहा है कि 'अन्तर भगवान होय', वहाँ यह भी कहा है :—

हम उदास तीन्हके सुना हो लोका, रावण मारके विभीषण दिई लंका।
गोबरधन नखपर गोकुल राखा, बर्सन लागा जब मेंहु फत्तरका।
बैकुण्ठनायक काल कौंसासुरका, दैत डुबाय सब मँगाय गोपीका।
स्तम्भ फोड़ पेट चिरीया कश्यपका, प्रह्लादके लिए कहे भाई तुकायाका।

तुकारामकी हिन्दी-रचनाओंमें एक बात और दिखाई देती है। यद्यपि पण्ढरपुरके विट्ठल उनके आराध्य थे ; परन्तु अपनी हिन्दी-कवितामें उन्होंने राम, हरि, गोविन्द, रघुराज, अल्ला और खुदाका ही प्रयोग किया है, विट्ठलका नहीं। इसका कारण यही है कि नाम-स्मरण उनका मूलमन्त्र होते हुए भी नामोंसे उनका विरोध न था। तुलसीकी भाँति तुकारामने भी नामको रामसे बढ़कर महत्त्व दिया है। कबीरने कहा है :—

माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुँह माँहिं।
मनवा तो चहुँ दिसि फिरै, या तो सुमिरन नाहिं॥

इसके विपरीत गोस्वामीजीका कथन है—'भाय कुभाय अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥' तुकारामका भी मत है—'हँसत खेलत चालत बाट, खाना खाते सोरे खाट' रामका नाम सदा ही मंगलकारी है। नाम-स्मरणमें अटूट भक्तिके कारण उनको दृढ़ विश्वास था कि हर समय जिह्वापर रामका नाम रहनेसे अन्तमें चित्तवृत्ति अवश्य ही स्थिर होकर भगवानमें लीन हो जायगी।

दोहोंके अतिरिक्त तुकारामने मराठीके अभंग छन्दके ढंगपर हिन्दीमें भी कविताएँ लिखी हैं। तुकारामके समयमें महाराष्ट्र-प्रदेशमें मुसलमान फ़कीरोंका बहुत दौरदौरा था। विभिन्न सम्प्रदायों के ये मुसलमान फ़कीर भीख मांगते और अपने-अपने सम्प्रदायोंका प्रचार करते हुए घूमते थे। इनमें दरवेश, मलंग, डोइफडा और मुंढ़ा प्रमुख थे। इन्हींको लक्ष्य करके तुकारामने कुछ हिन्दी-अभंग लिखे हैं। इसके अतिरिक्त उस समय महाराष्ट्रमें मुसलमानोंका राज्य होनेके कारण दिल्ली और मेरठके आसपास बोली जानेवाली खड़ीबोलीको राजभाषा होनेका भी महत्त्व प्राप्त था। अतः तुकारामके हृदयमें हिन्दी-भाषामें कविता करनेकी प्रेरणा करनेमें इन मुसलमान फ़कीरोंका भी बहुत-कुछ हाथ है।

गोपियोंके विरह-निवेदनसे परिपूर्ण 'गोलणी'-शीर्षक रचनाएँ भी, जो वारकरी परम्परामें 'गवालन' या 'गोलणी' के नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्होंने की हैं। कृष्ण-लीलापर भी एकाध अभंग रचे हैं, जैसे :—

चुरा-चुराकर माखन खाया, गोलनीका नन्दकुमार कन्हाया।
काहे बराई दिखावत मोही, जानत हूँ प्रभुपना तेरा सबही॥
और बात सुन उखल सुँ गला, बाँध लिया अपना तू गोपाल।
फेरत बन-बन गाऊ धरावत, कहे तुकया बंधु लकरी लेले हास॥

तुकारामकी कवितामें वाह्य सौन्दर्य और मोहकता नहीं है। छन्दशास्त्रके नियमोंका उल्लंघन होनेके कारण पढ़नेमें भी खींचा-तानी करनी पड़ती है। न अलंकारीका चमत्कार है, न भाषाकी मधुरता ; परन्तु फिर भी सरल, सुबोध और निजी अनुभूतिके आधारपर होनेके कारण उसमें वह मार्मिकता, खरापन और स्पष्टता है, जिसके कारण तत्काल ही वह सर्वसाधारणके हृदयोंको स्पर्श कर लेती है। उनकी कविता प्रयासका नहीं, सहज प्रेरणाका परिणाम है। थोड़ेसे शब्दोंमें प्रत्यक्षानुभूति द्वारा चयन की हुई गहन तथ्यपूर्ण बातोंको उन्होंने बड़ी सरलतासे कह दिया है। न कहीं गुह्यताकी ओर संकेत है और न कहीं सीधी-सादी बातोंको आडम्बरपूर्ण विचित्र रूपकोंमें लपेट जान-बूझकर जटिल बनानेका प्रयत्न ही लक्षित होता है।

तुकारामकी भाषा शुद्ध और सर्वत्र एक रूप नहीं है। वह ब्रजभाषा, फ़ारसी, गुजराती और मराठीके शब्दोंसे मिली-जुली खड़ीबोली है। कबीरकी बोलीमें जिस प्रकार राजस्थानी और पंजाबीका अधिक मेल है, उसी प्रकार उनकी बोलीमें गुजराती और मराठीका। प्रान्तीय शब्दों और स्थान-स्थानपर मराठी-भाषाकी विभक्तियोंका प्रयोग होनेके कारण भाषा सरल और सुबोध होते भी कहीं-कहीं उसे समझनेमें कठिनाई होती है। अपनी भाषाके सम्बन्धमें तुकारामने स्वयं कहा है :—

कहाँसे लाऊँ मधुरा बानी, रीझे ऐसी लोक बिरानी।
गिरिधरलाल तो भावका भुखा, राग कला नहिं जानत तुका॥

महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध सन्त कवि तुकाराम और अन्य निस्पृह सन्तोंने हिन्दीको अपनाकर यह प्रमाणित कर दिया है कि हिन्दीमें स्वतः वह शक्ति और विशेषताएँ हैं, जिनके कारण प्राचीन कालमें भी वह अन्तर्प्रान्तीय भाषा रही है, और यदि अंगरेज़ी-भाषा बीचमें आकर उसके मार्गको अवरुद्ध न करती, तो अपनी स्वाभाविक क्षमताके बलपर अपने फलने-फूलनेके लिए हिन्दी-भाषा जो क्षेत्र बना रही थी, वह अब तक बहुत व्यापक हो गया होता और वर्त्तमान कालमें राष्ट्रभाषाके प्रश्नको लेकर जो समस्या उठ खड़ी हुई है, वह इतने अधिक उलझे रूपमें सामने न आती।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आई० सी० एस० की मौखिक परीक्षा

श्री सन्तराम, बी० ए०

श्री ए० एस० पी० अय्यर, एम० ए०, आई० सी० एस० इस समय दक्षिणमें किसी जगह डिस्ट्रिक्ट और दौरा जज हैं। उन्होंने एक बड़ी मनोरंजक पुस्तक लिखी है। जिस समय टाटा एजूकेशन-स्कीमके सेक्रेटरीने उन्हें इंग्लैण्ड जाकर अध्ययन करनेके लिए छात्रवृत्ति पेश की थी, तबसे लेकर उस समय तक जब वे इण्डियन सिविल सर्विसकी परीक्षा पास करके भारत लौट आए, उन्होंने जो-जो अनुभव लन्दनमें प्राप्त किए थे, उनका वर्णन उन्होंने अपनी इस पुस्तकमें किया है। पुस्तकका नाम 'पश्चिमी यूरोपमें एक भारतीय' बहुत उपयुक्त है। सन् १९२१ में आई० सी० एस० की जो मौखिक परीक्षा हुई थी, उसके सम्बन्धमें लेखकने पुस्तकमें अपना जो अनुभव दिया है, उसके कुछ अंशका भाषान्तर नीचे दिया जाता है। पांच परीक्षकोंने उनसे जो प्रश्न किए और उनके जो उत्तर उन्होंने दिए, वे पाठकोंके मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धनके कारण होंगे :

सवेरे भलीभाँति जलपान करके मैं मौखिक परीक्षा देने बर्लिंग-टन गार्डन्सको चला। मेरे लिए १० बजकर २५ मिनटका समय नियत किया गया था। मेरा नाम 'अय्यर' अंगरेज़ी वर्णमालाके पहले वर्णसे आरम्भ होता है, इसलिए इस कठोर परीक्षामें जानेके लिए मेरा दूसरा नम्बर था। पहला नम्बर बम्बईके अमीन नामक एक सज्जनका था। फलतः मुझे कुछ भी पता न लग सका कि मुझसे किस प्रकारके प्रश्न पूछे जायँगे। मैं बिना किसी प्रकारकी झिझकके प्रसन्नवदन भीतर चला गया।

जब मैंने कमरेमें प्रवेश किया, तो पाँचों परीक्षकोंने मुझे बड़े ध्यानसे देखा। इसलिए वेश और साधारण आकृतिका भी शायद बड़ा प्रभाव होता है। चेयरमैनने मुझे मेज़के सामने परीक्षकोंकी ओर मुख किए एक कुरसीपर बैठ जानेको कहा। तब परीक्षक एक-एक करके मेरे साथ भिड़ने लगे।

थोड़ेसे सामान्य प्रश्नोंके उपरान्त एक परीक्षकने मुझसे पूछा—'श्री गांधीके सम्बन्धमें आपकी क्या सम्मति है? मैं आपका स्पष्ट मत जानना चाहता हूँ।'

'मैं उनके अनेक राजनीतिक एवं आर्थिक सिद्धान्तोंके साथ सहमत नहीं; परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि उनके समान चरित्रवान एवं उदारचेता इस समय भारतमें दूसरा नहीं। वे एक बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हैं।'

'आपका ऐसा विचार है?'

'जी हाँ।'

'भारतीय जनतापर उनके प्रभावका रहस्य क्या है?'

'इसका एकमात्र कारण यह है कि साढ़े इकतीस करोड़ भारतीय जनतामें केवल वही अकेले ऐसे हैं, जिनका अपना कोई स्वार्थ नहीं। सर्वसाधारणको यह बात मालूम है, इसलिए वे उनका पूजन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनके तापस जीवन, सादा वेश, निष्कपट भाव, असीम सहिष्णुताने भी उनके प्रभावको बनानेमें सहायता दी है।'

'आपके मतसे उन्होंने देशकी कौन सबसे बड़ी सेवा की है?'

'अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकताके लिए उनका भूरि परिश्रम।'

'क्या रेल और तारके सम्बन्धमें उनके वचन और कर्ममें आप कोई असंगति नहीं पाते? वे इनको बुरा बताते हैं और फिर भी इनका जितना उपयोग वे करते हैं, उतना शायद दूसरा कोई भी भारतीय नहीं करता। आप इसका सामाधान कैसे करते हैं?'

'गांधीजी केवल इतना कहते हैं कि ये चीज़ें न तो आध्यात्मिक महत्ताके लिए आवश्यक हैं और न उसकी सूचक ही हैं। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, वे कभी इनको बुरा नहीं कहते।'

'क्या आपका विचार नहीं कि उनके चरखा-प्रोपेगेण्डाका विफल हो जाना अनिवार्य है?'

'हाँ, देशके सुशिक्षित सम्प्रदायमें तो यह अवश्य विफल रहेगा; परन्तु जिन किसानोंको प्रति वर्ष चार मास बेकार रहना पड़ता है, हो सकता है कि वे इसे अपना लें। और उन्हें इसके लाभ भी हों।'

'हाँ, यह बात ठीक हो सकती है।'

अब एक दूसरा परीक्षक प्रश्न पूछने लगा—'क्या आपके मतसे भारत इंग्लैण्डकी अपेक्षा अधिक परमार्थिक है?'

'यह बात इसपर निर्भर करती है कि परमार्थिक या आध्यात्मिक आप किसे कहते हैं। यदि किसी देशमें असाधारण आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न लोगोंकी अधिक संख्या होनेसे ही वह देश अधिक परमार्थिक हो जाता है, तब तो निश्चय ही भारत इंग्लैण्डसे अधिक परमार्थिक है, क्योंकि उसने बुद्ध, महावीर, चैतन्य और तुलसीदासको जन्म दिया है। इसमें इंग्लैण्ड उसकी बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु यदि हम इस बातपर विचार करें, जैसा कि हमें निश्चय ही अवश्य करना चाहिए कि देशमें निम्न श्रेणियोंके प्रति कैसा व्यवहार होता है, तो इंग्लैण्ड अधिक परमार्थिक है, क्योंकि भारतमें ऐसी जातियाँ हैं, जिनको देखने, जिनके पास पहुँचने, या जिनको छूनेसे ऊँचे वर्णके लोग अपनेको अपवित्र मानने लगते हैं; वैसे इंग्लैण्डमें कोई नहीं। इस प्रकार भारतकी अपेक्षा इंग्लैण्ड ईश्वरके अधिक निकट है। यदि प्रधान-मंत्री श्री लायड जार्ज किसी मज़दूरसे कहें कि मुझसे सौ गज़ परे हटकर खड़े हो, क्योंकि तुम्हारे स्पर्शसे मैं अपवित्र हो जाऊँगा, और आज्ञाका पालन न करनेपर वे मज़दूरको पीटें, जैसे कि आज भी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

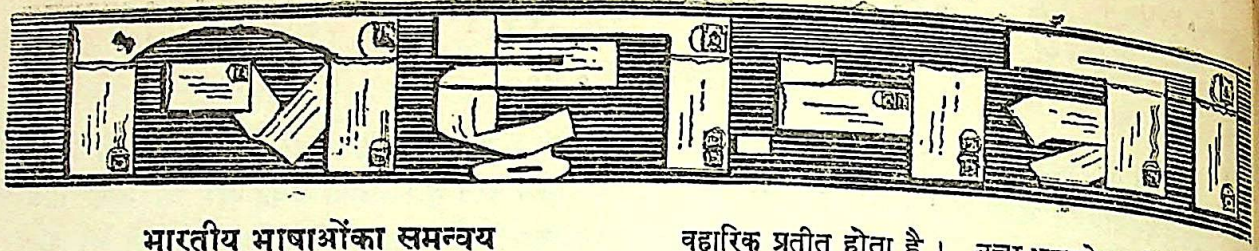

भारतीय भाषाओंका समन्वय

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके २७ वर्ष तक सदस्य रहकर उससे महात्मा गांधीका इस्तीफ़ा देना ऐसी घटना है कि प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीको हिन्दी-हिन्दुस्तानीके प्रश्नपर गहरा विचार करना चाहिए। महात्माजीके द्वारा हिन्दी-प्रचारका जितना विशाल कार्य हुआ है, उतना अन्य किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं। श्रद्धेय टण्डनजी देशकी प्रमुख हिन्दी-संस्था—साहित्य-सम्मेलन—के पिछले ३४ वर्षोंसे जीवन-प्राण रहे हैं। ऐसे व्यक्तियोंमें मतभेद-सूचक पत्रव्यवहार अध्ययन एवं मननकी चीज़ है। श्रद्धेय टण्डनजीका तर्क अकाट्य है। पर हिन्दी-हिन्दुस्तानीका प्रश्न एक जटिल राजनीतिक समस्या है, यह बात प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीको स्पष्ट रीतिसे समझ लेनी चाहिए और यह भी कि राजनीतिक प्रश्नोंका समाधान शुद्ध तर्कसे नहीं होता। राजनीतिक भ्रमको मिटानेके लिए महात्मा गांधीका सम्मेलनसे इस्तीफ़ा देना ही ठीक था। हिन्दी-हिन्दुस्तानीके सम्बन्धमें महात्माजीने अपनी जो नीति निश्चित की है, उसे देखते हुए उनका इस्तीफ़ा देनेका निश्चय ठीक ही था।

पंजाब, संयुक्त-प्रान्त, बिहार आदि प्रान्तोंको छोड़कर अन्य प्रान्तोंकी अधिक जनता दोनों भाषाएँ और दोनों लिपियाँ सीखनेमें असमर्थ रहेगी, इसलिए महात्मा गांधीका यह प्रयत्न अव्यावहारिक प्रतीत होता है। उत्तर-भारतके लाखों हिन्दू हिन्दी, उर्दू व फ़ारसी जानते हैं। पर हिन्दी-संस्कृत जाननेवाले मुसलमानोंकी संख्या उपर्युक्त तीनों प्रान्तोंमें कदाचित् इनी-गिनी ही हो। हिन्दी-उर्दूके समन्वयकी ताली एक हाथसे न बज सकेगी। हमारे अनेक मुसलमान भाई मुस्लिम-लीगमें सम्मिलित हैं और मुस्लिम-लीगका विचार है कि किसी भी केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकारमें हिन्दुओंका बहुमत रहेगा और हिन्दुओंके बहुमत द्वारा शासनकी अपेक्षा अंगरेज़ोंकी गवर्मेण्ट अच्छी है! इसके अतिरिक्त हमारे कई मुसलमान भाई यह भी सोचते हैं कि अंगरेज़ोंके आनेसे पूर्व देशपर उन्हींका राज्य था। मुसलमानी कालमें राजभाषा फ़ारसी थी। मुसलमानोंकी बहस यह है कि फ़ारसीसे उतरकर उर्दू तक आनेमें वे पर्याप्त मात्रामें झुक गए हैं और हिन्दुओं द्वारा चलाया गया हिन्दीका प्रोपेगेण्डा उनके प्रति सरासर अन्याय है। यह सब लिखनेका तात्पर्य यह है कि इस समस्याका समाधान साहित्यिक दृष्टिसे नहीं हो सकता। जो-कुछ भी होगा, वह सम्पूर्ण राजनीतिक समझौतेका ही भाग होगा।

यदि महात्मा गांधी द्वारा विचारा हुआ निराकरण व्यावहार्य नहीं है, तो हमको करना क्या है? हाथपर हाथ रखकर बैठनेसे काम नहीं चलेगा। हिन्दी-उर्दूमें जब कभी भी समझौता हो

मलाबारमें सवर्ण हिन्दू अछूतोंको पीटते हैं, तो लायड जार्जको गोलीसे उड़ा दिया जायगा। अन्ततः यदि आध्यात्मिकताका अर्थ इस लोकमें और परलोकमें भौतिक लाभ पानेके विचारसे देवी-देवताओं और भूत-प्रेतोंको मानना है, तो भारत अधिक आध्यात्मिक है।'

तीसरा परीक्षक बोल उठा—'आपने इतिहास ले रखा है। क्या आपका विचार है कि समूचे संसारको एक राज्य बना देनेके लिए कोई आन्दोलन चल रहा है?'

'नहीं। संसारके राज्योंको एक संघमें लानेके लिए एक आन्दोलन है, और वस्तुतः यह आवश्यक भी है।'

एक और बोला—'मैं देखता हूँ, आपने क़ानूनका अध्ययन किया है। आपका धर्मशास्त्र नृशंस था, क्यों; क्या नहीं?'

'पर एंग्लो-सेक्सन क़ानूनके मुक़ाबलेमें उसकी नृशंसता कुछ भी नहीं।'

'ब्राह्मणको फाँसी नहीं दी जा सकती थी। इसलिए उसे तो खूब मौज रहती होगी?'

'हाँ, यही बात स्त्रियोंको भी थी। क़ानूनमें ऐसा दोष होनेसे हम आशा करते हैं कि ब्राह्मणों और स्त्रियोंने हत्याको अपना व्यवसाय ही बना लिया होगा; परन्तु इतिहास इस बातको प्रमाणित नहीं करता। आज भी ट्रावनकोर और अन्य हिन्दू-राज्योंमें ब्राह्मण और स्त्रीको फाँसी नहीं दी जाती। मैंने स्वयं एक ब्राह्मण देखा है, जिसने चार व्यक्तियोंकी हत्या कर डाली थी। इनमें दो छोटे-छोटे कोमल बालक भी थे। उसको फाँसी न देकर आजन्म कारावासका दण्ड दिया गया था। स्त्रियोंकी बात पूछें, तो उनको तो इंग्लैण्डमें भी क्वचित ही फाँसी दी जाती है। इसलिए यहाँ वास्तविक अन्तर यह है कि हमारे धर्मशास्त्रने वही बात कही थी, जो आपकी रीति और प्रथा घुमा-फिराकर लाती है।'

'परन्तु मृत्यु-दण्डके विषयमें आपके स्मृतिकार कैसे खुले थे?'

'मैं नहीं समझता कि यदि उनकी तुलना उनके समकालीनों के साथ की जाय, तो वे उनसे बुरे सिद्ध होंगे। वास्तवमें पोलेके सुधारोंके समय तक एक शिलिंगसे अधिक चुरानेवाले चोर या गँठकतरेको इंग्लैण्डमें जितना भीषण दण्ड दिया जाता था, उतना भारतमें वैसा ही अपराध करनेवालेको नहीं।'

परीक्षकने हँसते हुए कहा—'मेरी भी ऐसी ही धारणा है। अच्छा, नमस्कार।' और मैं चला आया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और जैसे भी हो, यह प्रश्न सम्मुख आयगा कि उसका प्रभाव बंगाली, गुजराती तथा मराठी भाषाओंपर क्या पड़ेगा ? इसलिए यदि इन चारों भाषाओंका समन्वय हो सके, तो हिन्दीकी शक्ति भी कई गुना अधिक बढ़ जायगी और आगे चलकर समझौता इसमें भी अपेक्षाकृत सरलता रहेगी। हिन्दी, बंगाली, गुजराती, मराठी चारों भाषाओंमें पिछले १०० वर्षोंमें जो नए शब्द बढ़े गए हैं, उन्हें या तो हमने अंगरेज़ीसे लिया है या संस्कृतसे, वे तत्सम हैं या तद्भव। यदि इन चारों भाषाओंके लेखक सम्मिलित होकर एक भावको व्यक्त करनेके लिए एक ही शब्द का प्रयोग करनेका निश्चय करलें, तो चारों भाषाएँ एक-दूसरेके अत्यन्त निकट आ जायँ। भारतके अनेक प्रान्तोंको एक राष्ट्रमें बाँधनेके लिए यह कार्य जितने महत्वका है, उतना ही कठिन भी है। आवश्यकता है सहयोगकी, अनेक भाषाओंके सम्मेलनों द्वारा और पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकों द्वारा।—एक साधारण व्यक्ति।

काल-पुरुष गांधी

गत अक्टूबरके 'विशाल भारत' में उपर्युक्त शीर्षकसे मेरी जो कविता छपी है, उसकी पहले कालमकी चौदहवीं पंक्ति 'पर, बिलखाते सभ्यता-पाठ जगको हब्शी' में अन्वय-भ्रमसे अनेक पाठकोंको यह आशंका हुई है कि 'हब्शी' शब्दका प्रयोग गांधीजी के लिए किया गया है। पर इस पंक्तिका जो अन्वय उन्होंने किया है, वह सुसंगत प्रतीत नहीं होता। बात सीधी-सी है। पद्यमें कभी कभी सुविधा-असुविधाकी दृष्टिसे विशेषणोंका प्रयोग विशेष्यके बाद भी किया जाता है, जैसे 'जगके छवि-उपवनसे अकूल', 'मधु-मुखर प्राणका पिक अधीर' (पन्तका 'गुंजन') और 'वह भी था एक दिवस मंगल' ('विशाल भारत', नवम्बर १९३९, पृ० ४७३) आदि पंक्तियोंमें विशेष्यके पीछे ही विशेषणोंका प्रयोग हुआ है। इसकी पुष्टिमें हिन्दीके सुप्रसिद्ध साहित्यिकोंकी रचनाओंसे बीसियों पंक्तियाँ उधृत की जा सकती हैं। इस दृष्टिसे मेरी उपर्युक्त पंक्तिका तुम हब्शी-जग अर्थात् बर्बर-विश्वको सभ्यताका पाठ पढ़ाते हो, यही अर्थ होता है। विश्व-वन्द्य महात्माजीके लिए 'हब्शी' शब्दका प्रयोग करना इन पंक्तियोंके लेखकका उद्देश्य कदापि नहीं रहा। —'राकेश', रूनी सैदपुर (मुज़फ़्फ़रपुर)।

राजस्थानको ख्रीस्तस्थान बनानेका प्रयत्न

अजमेर-नगरमें ईसाई-मिशनका कुछ कम प्रभाव नहीं है, परन्तु आर्यसमाजकी प्रवृत्तिसे उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई है। इसलिए मिशनने नगरका मोह त्यागकर गाँवोंपर धावा बोल दिया है। अजमेर-मेरवाड़ाके गाँवोंमें ईसाइयोंका प्रभाव देखकर चकित हो जाना पड़ता है। उनके बड़े-बड़े गिरजे ईसाइयतका सन्देश सुना रहे हैं, उनकी पाठशालाएँ हिन्दू-बालकोंके हृदयपर ईसाइयतका गाढ़ा रंग चढ़ा रही हैं और उनके औषधालय रोगियोंको यीशू ख्रीस्तकी शरणमें आनेका आवाहन कर रहे हैं। इसका फल यह हो रहा है कि गाँवोंमें ईसाइयोंकी संख्या तीव्र गतिसे बढ़ती जा रही है। हिन्दुओंको ईसाई बनानेके लिए साम-दाम-दण्ड-भेद सभी प्रकारकी नीति काममें लाई जा रही है। किसीको ऋण देकर, किसीको नौकरी देकर और किसीको संकटमें सहायता देकर जालमें फँसाया जा रहा है। जिन गाँवोंमें ईसाइयोंकी संख्या अधिक हो गई है, वहाँके अल्प-संख्यक हिन्दुओंकी स्थिति अत्यन्त भयावह और त्रासदायक हो गई है। उनको भी येनकेनप्रकारेण ईसाकी भेड़ोंके झुण्डमें सम्मिलित करनेके लिए कोशिश हो रही है।

इस समस्यापर गम्भीर विचार करके आदर्शनगरके आर्य-समाजने ग्रामोंमें वैदिक धर्म-प्रचार करनेका विचार किया है। पर इस कार्यको सुचारु रूपसे चलानेके लिए एक मन्दिरकी आवश्यकता है, जहाँ ग्राम-प्रचारके कार्यकर्त्ता एकत्र हो सकें, आपसमें विचार-विमर्श कर सकें और आवश्यकतानुसार ठहर भी सकें। इस केन्द्रके बिना प्रचारकी समुचित व्यवस्था नहीं हो सकती। आदर्शनगर एक छोटी-सी बस्ती है। यहाँके निवासियों की शक्ति इतनी परिमित है कि बाहरके उदार दानियोंकी आर्थिक सहायताके बिना इस कार्यको पूर्ण कर लेना सम्भव नहीं है। इसलिए हम समस्त धर्मानुरागियोंसे विनीत-भावसे प्रार्थना करते हैं कि इस यज्ञमें अपनी आहुति डालकर हिन्दुत्वको एक भयंकर खतरेसे बचावें।—हरस्वरूप शर्मा, मन्त्री, आर्यसमाज-आदर्श नगर, अजमेर।

सुखमय जीवन-ग्रन्थमाला

आर० बी० एस० जैन रबर-मिल्सकी ओरसे २५०००) की पूँजीसे लोकोपकारार्थ जिस सुखमय जीवन-ग्रन्थमालाके प्रकाशन का आयोजन हुआ है, उसके लिए सौ-सौ पृष्ठोंकी प्रत्येक पुस्तक पर ५००) पुरस्कारकी घोषणा प्रकाशित की जा चुकी है। परन्तु अभी तक बहुत कम लेखक महानुभावोंने इस ओर ध्यान दिया है। अतः निवेदन है कि अब शीघ्र ही वे अपनी पुस्तकें भेजनेकी कृपा करें। पुस्तकोंके विषय निम्न प्रकार हैं—नागरिक शिक्षा, स्कूलके छात्र और उनका जीवन, कालेजके छात्र और उनका जीवन, गार्हस्थ्य-जीवन, अवकाश-प्राप्त जीवन, बातचीतकी सभ्यता, खान-पानकी सभ्यता, व्यायाम और शारीरिक विकास, मध्यम श्रेणीकी आय और उसका सदुपयोग, शिशु-शिक्षाका आदर्श।—मंत्री, सुखमय जीवन-ग्रन्थमाला-कार्यालय, आर० बी० एस० जैन रबर मिल्स, चौक, बनारस।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

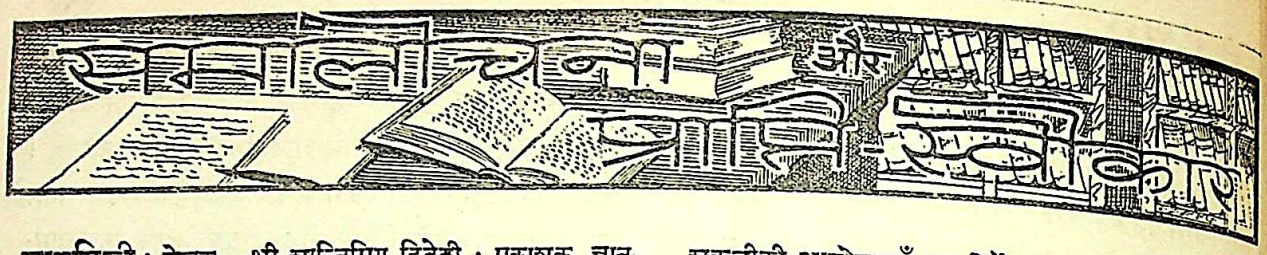

सामयिकी : लेखक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ; प्रकाशक ज्ञान-मण्डल लिमिटेड, काशी ; मूल्य ३॥)

'सामयिकी' वर्त्तमान राजनीतिक और आर्थिक समस्याओंकी पृष्ठभूमिपर युग-साहित्यका विश्लेषण है। गत महायुद्धके बाद देशके सन्मुख जो अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय समस्याएँ उठ खड़ी हुईं, उन्होंने साहित्यमें भी अभिव्यक्ति पाई। साहित्य जिन धाराओंमें वह चला, वे मुख्यतः तीन नामोंसे परिचित हुईं—रहस्यवाद, जिसमें चेतना अन्तर्मुखी होती है ; गांधीवाद और प्रगतिवाद, जो समाजकी कठिनाईयोंका सत्य चित्रण करना चाहता है और विज्ञान तथा मनोविज्ञानपर आश्रित है। यह केवल भावासिक्त नहीं और साहित्यमें समाजवादकी प्रेरणा है। गांधीवाद रहस्यवादके समान पूर्णतः आध्यात्मिक तो नहीं, किन्तु अध्यात्मवादके बलपर विश्व-प्राणीकी समस्याएँ सुलझाना चाहता है। हिन्दी-साहित्यमें भी वंग-वाङ्मयके रवीन्द्र और शरत् ही रहस्यवाद और यथार्थवादके आदि-प्रवर्तक रहे हैं। पुस्तकके पहले खण्डमें रवीन्द्र, गांधी और शरत्पर लेखकका गम्भीर अध्ययन है। गांधीवाद और रहस्यवादके कला और भाव-पक्ष, समाजवाद, गांधीवाद और रहस्यवादका आलोचनात्मक विश्लेषण, जीवनके विस्तारमें उनका आरोप, आदि अनेक दृष्टिकोणोंसे उनका विवेचन किया गया है। शरत्का 'शेष प्रश्न' समाजकी बौद्धिक जड़ताके विरोधमें उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसीलिए 'शेष प्रश्न' की छाया ही में आलोचक शरत्की प्रतिभा और प्रवृत्तिकी आलोचना करते हैं। नेहरूजीकी रचना वे गांधीवाद और समाजवाद की मध्यवर्ती कृति मानते हैं। उसमें दोनों 'वादों'का सम्मिश्रण-सा है। आत्मचरित्रोंके रूपमें साहित्यमें मूल या अनुवादित कृतियोंका लगभग अभाव है। इस दिशामें जवाहरलालजीके आत्मचरित्रको पथ-प्रदर्शकका गौरव मिलना ही चाहिए।

दूसरा खण्ड आधुनिक साहित्य परसे गुज़री नव-चेतनाकी लहरोंके प्रतीक ग्रन्थोंकी मीमांसा लेकर आता है। राष्ट्रीयताकी प्रवर्त्तिका 'भारत-भारती', प्राचीन और नवीन भारतका सांस्कृतिक सामञ्जस्य उपस्थित करनेवाली 'कामायनी', 'प्रिय-प्रवास', जिसे लेखक अर्वाचीन और पुरातन भारतके कलात्मक केन्द्रीकरणका प्रयास मानते हैं, पन्तजीका 'पल्लव', जो छायावादी रचना है और प्रगतिवादका प्रवर्त्तक ग्रन्थ 'मिट्टी और फूल'। इस समय वास्तव में 'काल' में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ, केवल अभिव्यक्तिकी शैलियाँ बदली हैं। इन्हें स्पष्ट करनेके लिए ही इन पाँच काल-खण्डोंकी यह योजना है। गद्यके क्षेत्रमें इसी समय आचार्य शुक्लजीकी आलोचनाएँ युग-निर्देशनका कार्य कर रही थीं। उनके आलोचक और कवि दोनों रंगोंको लेकर हिन्दी-साहित्यके इस युग-स्रष्टापर मननपूर्ण लेख है। छायावादी और प्रगतिवादी कलात्मक और मनोवैज्ञानिक अन्तर समझानेका भी आलोचकने स्तुत्य प्रयास किया है।

हिन्दी-साहित्य-खण्ड भारतेन्दु-युगके बादसे आज तकका हिन्दीका इतिहास भी है और आलोचना भी। यही वह युग है, जब मौलिक रचनाओंकी बाढ़-सी आई। प्रेमचन्द उपन्यासोंके क्षेत्रमें नवयुगकी स्थापना कर रहे थे। कहानियों तथा नाटकोंकी भी प्रचुर मात्रामें रचना हुई। आधुनिक काव्य जिस प्रकार रवीन्द्रसे प्रभावित हुआ, गद्यमें वैसे ही शरत्का प्रभाव स्पष्ट है। इस खण्डमें वर्त्तमान साहित्यकी आवेगशीलता जीवनके प्रति उसकी निष्कपटता और उसके बुद्धिवादी दृष्टिकोणोंपर एक दृष्टि है। आलोचक गांधीवाद, रहस्यवाद और यथार्थवादके त्रिशक्ति-सम्मेलनमें विश्व-कल्याणकी औषधि खोजता है। यदि आलोचक गांधीवादकी अपनी परिभाषा भी दे देते, तो पाठकोंकी बहुत-सी कठिनाइयाँ हल हो जातीं। यद्यपि भाषा आंग्ल शब्दोंकी भरमारके कारण जटिल हो गई है, फिर भी आलोचना गम्भीर अध्ययनकी सामग्री प्रस्तुत करती है।

मुक्तिपथ : लेखक—श्री उदयशंकर भट्ट ; प्रकाशक—अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ ; मूल्य १॥)

'मुक्तिपथ'में पुराने कथानकको नाटकके उपयुक्त किया गया है। भगवान बुद्धके जीवनको लेकर निर्मित अबतकके नाटकोंमें सम्भवतः 'मुक्तिपथ' ही उन्हें इतना मानवीय चित्रित करता है। नाटकका आरम्भ बुद्धके विद्या-अध्ययन-कालसे होता है। प्रारम्भ ही से कुमार गौतममें अनुपम चरित्रके लक्षण दृष्टिगोचर हो चलते हैं। परम्परामूलक ज्ञान और व्यवस्था दोनोंके प्रति हम उनमें सन्देह और सामान्य पार्थिव जीवनके लिए अनासक्ति पाते हैं। उनकी जाग्रत जिज्ञासा ही बादमें उन्हें गृहत्यागी बनाती है। बुद्धका चरित्र सहज भावसे विकसित किया गया है। 'सुकेशी'की कल्पना बहुत उपयुक्त और सुन्दर हुई है। यह सम्पूर्ण नाटकको स्वभाविकतासे रँग देती है। 'देवदत्त' भी गौतमके रूढ़िगत विरोधी देवदत्तके रूपमें नहीं, गौतमके भक्तके रूपमें आते हैं। बोध प्राप्त करनेके बाद कपिलवस्तुमें उपदेशके हेतु बुद्धके आते ही और उनके चरणोंपर गोपा द्वारा राहुलके अर्पित किए जाते ही नाटककी समाप्ति हो जाती है।

कुल मिलाकर 'नाटक का चरित्र-विकास बहुत उच्चकोटिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

नहीं हो पाया। शुद्धोधन केवल-मात्र मोहासक्त पिता हैं। गौतमी और गोपाके चित्र भी ऐसे नहीं हो पाए, जो उनमें उस दिव्य-ज्योति बुद्धकी जननी और पत्नी होनेकी योग्यताका अभास देते। वे साधारण स्थितिकी गृहस्थ रमणी-मात्र हैं। छाया-चित्रका प्रवेश यद्यपि गौतमका अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करनेमें सहायक होता है, पर रस-भंग करता है। भाषा पुष्ट है, परन्तु उसकी गतिमें मन्थरता है।

—रूपकुमारी वाजपेई

यह जो मैंने देखा : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त ही; पृष्ठ २८० ; मूल्य ३॥)

जेम्स जायसके 'यूलीसीज़'के समान यह उपन्यास भी जीवन की विशृंखल घटनाओंकी कहानी है। अन्तर केवल इतना है कि जायस यथार्थवादकी उस पराकाष्ठापर पहुँच गया है, जहाँ मानवकी कोमल भावनाएँ तथा उसके स्वप्न मृत हो जाते हैं; भट्टजी भारतीय संस्कृतिके प्रभावके कारण ऐसा नहीं कर सके हैं। जीवनका वास्तविक चित्रण होते हुए भी इसमें कल्पना-प्रसूत सौन्दर्य तथा रोमांटिक स्थलोंकी कमी नहीं है। प्रासंगिक घटनाओंके कारण कहीं-कहीं मुख्य कथामें बाधा पड़ जाती है। विरायअली तथा जाटकी कथाएँ अनावश्यक हैं। शोभाका प्रसंग एकांगी है। उसका संयम स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। एक स्थानपर तो भट्टजी वासनाको संसारकी मूलशक्ति मानते हैं (पृष्ठ १७१-१७२), दूसरे स्थानपर वे शोभाको वासनासे निर्लिप्त दिखाकर उसके चरित्रको ऊँचा उठानेका प्रयत्न करते हैं। यह उनकी यथार्थ-भीरुता है।

अजय इस कथाका केन्द्र है। उसके जीवनमें चार स्त्रियाँ आती हैं—पिशी, कमलिनी, सुधी और शोभा। पिशोके प्रति तो अजयका केवल अभुक्त सेक्सका आकर्षण होता है। कमलिनी के लिए उसके हृदयमें वासना जाग्रत नहीं होती। शोभा संयमके कारण बच जाती है। रह गई सुधी, सो अन्तमें वह भी कवि प्रमथेशके साथ निकल जाती है। सेक्सकी भूख वास्तवमें सुधी को नहीं, अजयको है। अजयका देश-सेवा करना भी उसी अभुक्त कामका एक रूप है। जब होटलमें उस अपरिचित रमणीसे जान-पहचान होती है, तब अजयके हृदयमें उस बच्चेके प्रति विशेष आकर्षण होता है। अन्तमें—'मुझे ध्यान आया न-जाने उस रमणीका नौकर आया या नहीं। वह सुन्दर बच्चा··· इसके बाद फिर आँखें बन्द हो गईं' (पृष्ठ २७६)। व्रजमोहन तो अपनी असमर्थताके कारण सुधीका उपभोग न कर सका, इसीसे उसका चरित्र इतना कुण्ठित तथा विकृत हो गया है; किन्तु अजयने हैमलेटके समान सोच-विचारमें ही आते हुए स्वर्गको लात मार दी। यही अजयकी ट्रैजेडी है। कहानीके अन्य पात्रोंका चित्रण स्वाभाविक तथा मार्मिक हुआ है। अजयके दोनों चचा, नलिन बाबू तथा सुधीकी विमाता, अजयके मित्र—हेमू, हरीश, वेदू, धन्नू तथा व्रजमोहनकी मौसी—सब मूर्तिमान बनकर हमारे सामने आते हैं। कथा-विकासमें भी कुछ स्थलोंको छोड़कर कहीं शिथिलता नहीं आई है। भाषापर भट्टजीका पूर्ण अधिकार है। कम-से-कम शब्दोंमें बड़े-बड़े तत्त्वोंको कह जानेमें वे सिद्धहस्त हैं। कई स्थल तो बहुत ही काव्यमय हैं। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायके समान भट्टजी भी मनुष्यकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियोंका सूक्ष्म विवेचन करते हैं। आरम्भसे अन्त तक इस उपन्यासपर एक कलाकारकी छाप है। लेखककी प्रथम रचना होते हुए भी यह उपन्यास हिन्दीके लिए गौरवकी वस्तु है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—अमरनाथ जौहरी

पूर्वी और पश्चिमीय दर्शन : लेखक—डा० देवराज; प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य २)

डा० देवराजने 'पूर्वी और पश्चिमीय दर्शन'में भारत और यूरोपके कितने ही दार्शनिक मन्तव्योंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। पुस्तकका आकार बहुत छोटा है, पर उसके भीतर जितनी सामग्री आई है; वह कम नहीं है। इस पुस्तक से यह समझनेमें बहुत सहायता मिलेगी कि भारत और यूरोपके तत्त्वचिन्तकोंकी विचार-धारामें भेद क्या है तथा उस भेदका कारण क्या है? तुलनात्मक विचारोंको निष्पक्ष रूपमें प्रकट करना एक कठिन कार्य है और यह तभी हो सकता है, जब लेखक स्वयं किसी रंगमें रँगा हुआ न हो। भारतीय हिन्दू-विचारकोंको वर्णाश्रम व्यवस्था बहुत प्रिय है और वे उसका सुन्दर रूप उपस्थित करनेमें सचेष्ट रहते हैं। लेखक स्वयं भी उसके ममत्वसे परे नहीं हैं। उनका खयाल है कि 'भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था प्लेटोकी रिपब्लिकसे आश्चर्यजनक समानता रखती है' (पृ० १७७)। उसपर दलील है 'समाजके सब सदस्य एक-सी बुद्धि और स्वभाववाले नहीं हैं, इसलिए सबके कर्त्तव्य भी एक नहीं हो सकते' (पृ० १७०)। बात ठीक है, पर भारतमें इस ढंगकी व्यवस्था कभी रही नहीं। यहाँ तो एक जन्मसे ही स्वामी है, तो दूसरा जन्मसे ही दास। दासमें बुद्धि और बल सब-कुछ होनेपर भी उसे स्वामित्व नहीं मिल सकता। शूद्र विद्वान् होकर भी पुरोहित नहीं हो सकता। अपवाद-रूपमें यदि कहीं कोई क्षत्रिय ब्राह्मण बन गया, तो उससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह उस व्यवस्थाकी विशेषता है। दार्शनिक मतोंको व्यक्त करनेमें कितनी ही जगह बहुत असावधानी हो गई है, जैसे—'वास्तवमें सृष्टि कर्तृत्व वेदान्तके ब्रह्मका एक प्रमुख गुण है' (पृ० ३०)। वेदान्तमें ब्रह्म सृष्टिका कर्ता नहीं है, यह तो नैयायिकोंका मत है। वेदान्तमें सृष्टि ब्रह्मका परिणाम या विवर्त है। जिस तरह दूध दहीका बनानेवाला नहीं, किन्तु स्वयं दही बननेवाला पदार्थ है, वैसे ही ब्रह्म भी सृष्टिका बनानेवाला नहीं, सृष्टि बननेवाला पदार्थ है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुस्तकमें कितनी ही विवादास्पद बातें हैं, पर उन सबको यहाँ छेड़ा नहीं जा सकता। एक बात अवश्य कहनी है। लेखकका खयाल है कि 'चीनी दर्शनका आरम्भ बौद्ध दर्शनके सम्पर्कसे लगभग पहली शताब्दी ई० में हुआ था' (पृष्ठ ५)। यह वक्तव्य बहुत ज़्यादा भ्रान्तिपूर्ण है। यह अंश पुस्तकसे हटा देना ही ठीक होगा, चाहे यह काम कागज़ चिपकाकर ही क्यों न करना पड़े। चीनमें पहली शताब्दीसे बहुत पूर्व कालमें ही दार्शनिक उत्पन्न होने शुरू हो गए थे और ईसासे पहले ही वहाँ दर्शनके अनेक सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हो चुके थे। खुङ्-च् (ई० पू० ५५१-४७९), च्ङ्-च् (ई० पू० ४८१), मङ्-खो (३७२-२८९ ई० पू०), श्यून्-च् (२९८-२३८ ई० पू०), तुङ्-चुङ्-षु (१७९-१०४ ई०) आदि सब एक ही सम्प्रदायके दार्शनिक हैं, जो ईसासे पहले हो चुके थे। खुङ्-च् और बुद्धका समय लगभग एक ही है। मो-च् (४९७-३८१ ई० पू०) एक स्वतन्त्र सम्प्रदायके दार्शनिक थे, इनके उपदेश उसी तरह अधिक बुद्धिवादी हैं, जैसे भारतमें बुद्धके। ताव् धर्मके प्रतिष्ठापक लाव्-च् (खुङ्-च्के समकालीन) ईसासे बहुत पहले हो चुके थे। हुअइ-ष (४०० ई० पू०) कुङ्-सुन्-लुङ् (३०० ई० पू०) आदि नैयायिकोंका समय भी ईसासे बहुत पूर्वका है। षाङ्-इआङ् (३३८ ई० पू०) षन्-पु-हाय् (३०० ई० पू०) षन्-ताव् और हान्-फ़इ (छिन्-वंश २५५-२०७ ई० पू०) आदि नीतिवादी भी ईसासे पहलेके ही हैं। इस तरह जिस देशमें ईसासे पहले दार्शनिक सम्प्रदायोंकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी, उसके विषयमें यह कहना कि ईसाकी पहली सदीमें वहाँ भारतके सम्पर्कसे दर्शनका आरम्भ हुआ, सचमुच बड़ी भूल है। चीनके बारेमें हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है, अतः हम भूल कर सकते हैं; पर उन भूलोंको छाप-छापकर इकट्ठा करते जाना हम सबकी शोभा नहीं है। आशा है मेरे इस नम्र निवेदनपर प्रशस्त लेखकको बुरा न लगेगा। पर इससे पुस्तककी उपादेयतामें कोई अन्तर नहीं आता। मैं डा० देवराजके इस सुन्दर प्रबन्धका स्वागत करता हूँ।

पातंजल योग और श्री अरविन्दकी योग पद्धति : लेखक—स्वामी ओमानन्द; प्रकाशक—मोहन-आश्रम, हरद्वार; पृ० ८८; मूल्य ॥)

यह पुस्तक स्वामी अभयदेवके उन मंतव्योंका निराकरण करनेके लिए लिखी गई है, जो 'अदिति' (२४ नवम्बर, १९४३) में छपे थे तथा जिनमें अरविन्दके योगको पातंजल योगपर तरजीह दी गई थी। यह प्रयत्न उतना अध्ययनात्मक नहीं है, जितना कि साम्प्रदायिक। 'पातंजल-योग ही योगकी पराकाष्ठा है', इस भावसे प्रेरित होकर यदि पुस्तक न लिखी गई होती, तो अच्छा होता। पुस्तक दो भागोंमें विभक्त है। पहलेमें पातंजल योग-पद्धतिका संक्षेपमें प्रतिपादन है। यह भाग सुन्दर हुआ है। दूसरेमें खण्डन-मण्डन है। यदि इसको अपेक्षा खण्डनीय भागको ध्यानमें रखते हुए केवल पातंजल योग-प्रणालीको विशद कर दिया जाता, तो कहीं अधिक अच्छा होता।—भदन्त शांतिभिक्षु

चिद्विलास : लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द; प्रकाशक—ज्ञान-मण्डल, काशी; पृष्ठ २७२; मूल्य ३॥)

साधारण लोगोंकी धारणा है कि दर्शनका विषय शुष्क होता है, पर 'चिद्विलास'को पढ़कर यह भ्रान्ति दूर हो जाती है। इसकी भाषा बड़ी पुष्ट और पूर्ण है। हिन्दीमें अपने ढंगकी यह प्रथम पुस्तक है। लेखकने सम्पूर्ण विश्वको इस पुस्तकका विषय बना कर उसके अवयवों और उनके स्थान और स्वरूपपर सम्यक विचार किया है। उन्होंने समूचे जगतके स्वरूप, विकास और संकोचका तथा अस्मत, युष्मतके स्वरूप तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयके सम्बन्धका शास्त्रीय पद्धतिसे गम्भीर विवेचन किया है। इस पुस्तकमें तीन खण्ड हैं। प्रथम आधार-खण्डमें दर्शनशास्त्रकी वे आवश्यक बातें हैं, जिनको जाने बिना विश्व-स्वरूपको जानने-समझनेकी इच्छा करना भूल है। दूसरे ज्ञान-खण्डमें इस पुस्तकके मुख्य विषयका वर्णन है, जो पाठकके हृदयमें एकबार सत्स्वरूप के साक्षात्कारकी जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न करता है। तीसरा धर्म-खण्ड है, जो लेखकका वह सराहनीय प्रयास है, जिसे दर्शन-शास्त्रके अन्य किसी भाषाके किसी भी लेखकने दार्शनिक ग्रन्थों में स्थान देनेका कष्ट नहीं उठाया। यह पुस्तक आधुनिक विज्ञान के आविष्कारोंको लेकर चली है। इससे बहुत-सी गूढ़ बातें शीघ्र स्पष्ट हो जाती हैं। गणितके उदाहरण आवश्यक स्थलोंपर दे दिए गए हैं। संवित्वादके आधारपर जहाँ बाह्य वस्तुकी सत्ताको चित्तोव्यापार कहा गया है, वहाँ विषय पूर्णतः स्पष्ट नहीं हुआ है। पुस्तक योगाभ्यासकी प्रेरणा देती है और आत्म-साक्षात्कारकी जिज्ञासा भी उत्पन्न करती है। —रामसखि सिंह

जन्म-नियन्त्रण : लेखक—श्री आबूल हसनत; प्रकाशक—दी स्टैण्डर्ड लाइब्रेरी, जे० एच०, ढाका; पृष्ठ ५६; मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तकमें जन्म-नियन्त्रणके पक्ष-विपक्ष और उपायोंपर प्रकाश डाला गया है। भारत—और विशेषकर बंगाल—के मध्य तथा निम्न वर्गोंमें अतिसन्ततिकी समस्या भीषण रूपसे विचारणीय हो उठी है। जो लोग परम्परागत रूढ़ियों और अन्धविश्वाससे मुक्त होकर इस विनाशसे बचना आवश्यक समझते हैं, उनके लिए यह पुस्तिका काफ़ी सहायक एवं उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तककी भाषा कुछ क्लिष्ट, अस्पष्ट और बँगलापन लिए हुए है। —म०

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

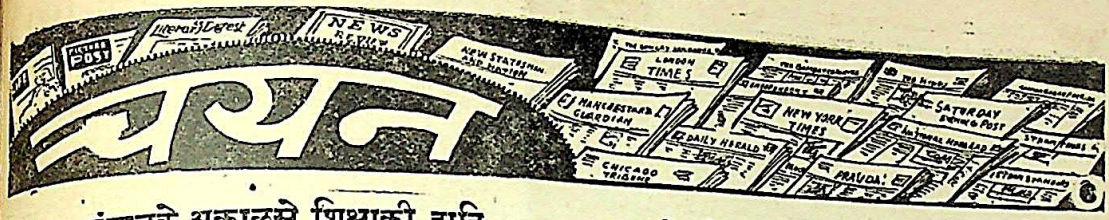

बंगालके अकालसे शिक्षाकी हानि

बंगालके पिछले अकालने उसकी देह-सम्पद पर ही नहीं, मानस-सम्पद और संस्कृतिके भावी रूपपर भी काफ़ी गहरा असर डाला है। इस दिशामें सबसे अधिक उल्लेखनीय है उसकी शिक्षा-सम्बन्धी हानि। अभी हाल होमें कलकत्ता-विश्वविद्यालयके अध्यापक श्री के० पी० चट्टोपाध्यायने इस सम्बन्धकी अपनी सर्वे का जो विवरण स्थानीय 'स्टेटस्मैन' में प्रकाशित कराया है, वह काफ़ी ध्यान देने योग्य है। ४० सब-डिविज़नोंके ३१० गाँव इस कार्यके लिए छाँटे गए थे। इनमें से १२ पर अकालका गहरा, २१ पर मामूली, ४ पर थोड़ा असर पड़ा तथा ३ पर कोई असर नहीं पड़ा। इन गाँवोंमें १९३९ में कुल २८००० छात्र थे, जो १९४३ में १८५२३ और १९४४ में १७८४९ रह गए। ३७ प्रतिशत छात्रोंने धनाभावके कारण और १९ ने बीमारीके कारण स्कूल छोड़े तथा १७ प्रतिशतने कपड़ा, किरासन और किताबें न मिलनेके कारण। १९३०-३१ में स्कूली छात्रोंका अनुपात २०६ प्रतिशत था, जो १९४०-४१ में २५·७ प्रतिशत हो गया। पर १९४३-४४ में यह केवल २०·९ ही रह गया। यदि स्कूली छात्रोंका पुराना अनुपात जारी रहता, तो १९४३ में बंगालके ग्रामीण स्कूलोंमें ३८००००० छात्र होते; जब कि इस वर्षमें उनकी संख्या थी मात्र २७८०००० और १९४४ में तो यह और भी कम हो गई।

अर्थनीतिक दृष्टिसे बंगालके ग्रामीण क्षेत्रोंमें शिक्षा मध्य और उच्च वर्गोंमें ही विशेष प्रचलित है। जाँचसे मालूम हुआ है कि अकालके कारण मध्य वर्गके बहुतसे लोग निम्न वर्गमें आ गए और उच्च श्रेणीके लोग भी अकालके सत्यानाशी प्रभावसे बच नहीं सके। जो लोग १९४३ के पहले निम्न वर्गमें थे, उनकी सन्तान तो बिलकुल निराश्रित या अर्ध-निराश्रित हो गई है। अतः इस ओर आजकी निम्न, मध्य तथा उच्च श्रेणियोंके बच्चोंकी शिक्षाकी समस्यापर विशेष ध्यान देना होगा। प्रथम श्रेणीके बच्चोंके लिए केवल बिना मूल्य पुस्तकें व निःशुल्क शिक्षा ही पर्याप्त न होगी, अन्य प्रकारसे उनको देख-रेखकी ज़िम्मेदारी भी लेनी होगी। उनके मता-पिताको भी जीविकोपार्जनकी समुचित व्यवस्था होने तक सहायताकी ज़रूरत होगी। अन्य श्रेणियोंके बच्चोंके लिए नियंत्रित मूल्यपर किताबें और कागज़ दिलानेकी भी सुविधा करनी होगी।

हिन्द-महासागरका नियन्त्रण

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के भूतपूर्व सम्पादक और अनेक देशी राज्योंके मन्त्री श्री के० एम० पणिक्कर राजनीतिके एक सुलझे हुए प्रसिद्ध लेखक हैं। अभी हाल ही में आपने 'भारत और हिन्द-महासागर' (एलेन एण्ड अनविन, लन्दन; ६ शि०) नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें भारतके राजनीतिक और अर्थ-नीतिक महत्वकी दृष्टिसे हिन्द-महासागर और उससे सम्बन्धित खाड़ी-सागरोंपर जल, थल और आकाशसे भारतके नियन्त्रणपर ज़ोर दिया है। आपने पाश्चात्योंके इस दावेका सप्रमाण पर्दा-फाश किया है कि दुनियामें जहाज़रानी एजियन-सागरसे ही फैली, या १६वीं शतीमें जोन बोदिन, १८वींमें विडल और २०वींमें किण्डरने ही लम्बी-लम्बी समुद्री यात्राएँ कीं, अथवा वास्कोडी-गामा ही सर्वप्रथम भारत आया। आपने साबित किया है कि ईस्वी सनसे बहुत पहलेसे भारतीय न केवल सागर-तटकी, बल्कि महासागरोंके बीचकी यात्राएँ भी करते थे और न केवल पूर्वके मलाया एवं इण्डोनेशियामें, बल्कि सुदूर पश्चिम तक भी भारतीय व्यापार और संस्कृतिका प्रसार था। ज़मोरिनसे बहुत पहले विजय और चोल राजाओंका भारतके पूर्वी समुद्र-तटपर बड़ा दबदबा था। उत्तम-आशा-अन्तरीप होकर ज़मोरिनके पुर्त्तगाल पहुँचनेकी बात तो सर्वविदित है। विद्वान लेखकने भारतीय नौसेना, नौसैनिकों और कुंजली नामक समुद्री लड़ाकू जातिका भी वर्णन किया है। इस युद्धके दौरानमें गठित शाही भारतीय नौसेनाका उल्लेख कर लेखकने बर्मा, सीलोन, अफ्रीका, फारसकी खाड़ीके भौगोलिक एवं अर्थनीतिक महत्वपर प्रकाश भी डाला है। उनका कथन है कि आजके युगमें दूर-दूर तक फैले साम्राज्य नहीं रह सकेंगे, अतः क्षेत्रके हिसाबसे इनका बँटवारा हो और हिन्द-महा-सागरका नौ-क्षेत्र भारतके अधीन हो। आप भारतका भविष्य ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डलके बीच ही देखनेके अभ्यस्त हैं, अतः आपने भारतमें साम्राज्यकी पूर्वीय नौ-परिषद और उसका केन्द्रीय कार्यालय लन्दनमें रखनेकी परिकल्पना की है। पर शायद हिन्द-महासागरके भावी नाविक नियन्त्रणका श्रेय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चाकरोंके नसीबमें न बदा हो!

इण्डोनेशियाके लोकनायक

भारतका पड़ोसी इण्डोनेशिया अपने स्वाधीनता-संग्रामके कारण इन दिनों सबकी ज़बानपर है। एक दिन हिन्दू-मुसलमानोंने जाकर उसे आबाद किया था, पर आज दोनों एक-दूसरेसे अपरिचित-से हैं। इण्डोनेशियाके स्वाधीनता-आन्दोलनके सिलसिलेमें हम लोगोंने अभी तक दो ही नाम सुने हैं—एक डा० सुकर्ण (जिन्हें अंगरेज़ी हिज्जेके कारण लोग 'सोकार्नो' बोलते हैं) और दूसरे मोहम्मद हता। श्री हता इस आन्दो-लनकी आत्मा या मस्तिष्क हैं और डा० सुकर्ण जनताको अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वक्तृत्व-कलासे मंत्र-मुग्ध कर देनेवाले मसीहा। पर इनके सिवा भी और कई ऐसे लोकनायक इनके साथ हैं, जिनकी योग्यता, कर्मठता और जनतापर जिनका प्रभाव उनसे क़तई कम नहीं। इनमें से विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं अमीर शरीफुद्दीन (इण्डोनेशियन प्रजातंत्र-सरकारके सूचना-विभागके मंत्री) और की-हैदर देवतनारा (शिक्षा-मंत्री)।

अमीर शरीफुद्दीन ३८ वर्षके एक आत्मत्यागी कम्युनिस्त कार्यकर्त्ता हैं। जब आप बताविया-विश्वविद्यालयमें पढ़ते थे, तभी से राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं। स्नातक होनेके १० रोज़ बाद ही राजद्रोहात्मक पुस्तिकाएँ लिखनेके अपराधमें आपको १॥ वर्षकी सज़ा हुई। इसके बाद आप वक़ालत करने लगे और साथ ही अर्थनीति-सम्बन्धी शोध-कार्य भी। जापान द्वारा मित्र-शक्तिपर आक्रमण किए जानेके बाद आपने सभी वाम-पक्षी दलोंसे मिलकर एक जापान-विरोधी मोर्चा क़ायम किया। १९४३ के आरम्भमें ५४ साथियों सहित आप पकड़ लिए गए थे।

की-हैदर देवतनारा एक कुलीन इण्डोनेशियन हैं। पहले-पहल आप १९१३ के राष्ट्रीय आन्दोलनमें पकड़े गए। उसके बाद आप हालेण्ड भेज दिए गए, जहाँ आपने ६ वर्ष तक शिक्षण-शास्त्रका अध्ययन किया। लौटकर आपने दोएजकारतामें 'तामन सिस्वा' नामसे आम शिक्षाका एक केन्द्र खोला। इसे कवीन्द्र रवीन्द्र और माण्टीसोरीकी शिक्षण-पद्धतियोंका मिश्रण कहा जा सकता है। इसमें लड़के-लड़कियोंको एक साथ जर्मन, डच, अंगरेज़ी आदिके अलावा धार्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा भी दी जाती थी। सरकारसे आपने कोई सहायता स्वीकार नहीं की, फिर भी देश-भरमें इसका विकास हुआ। युद्ध छिड़नेके समय इसके १९० केन्द्र थे, जिनने १७००० लड़के तथा ४००० लड़कियाँ पढ़ते थे। राष्ट्रीय शिक्षाके परिणामसे भयभीत होकर जापानियों ने 'तामन सिस्व' के सब केन्द्र बन्द करा दिए; पर छुपकर इसका कार्य चलता रहा। प्रजातंत्र-सरकारमें आपने शिक्षा-मंत्रीका पद इसी अभिप्रायसे स्वीकार किया है कि इण्डोनेशियासे शीघ्रातिशीघ्र निरक्षरताका अन्त करेंगे और प्रत्येक इण्डोनेशियन नर-नारीको सुशिक्षित करेंगे। १८३० की मर्दुमशुमारीके अनुसार जावामें पुरुषोंकी साक्षरताका औसत ९·७ और स्त्रियोंका केवल १·४ है।

भारतमें राजनीतिक सेंसर

युद्ध-सेंसरका मतलब होता है फौजी महत्व या हलचलके संवादोंको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे शत्रु तक न पहुँचने देना। पर भारतके ब्रिटिश अधिकारियोंने तो अपने और भारतके मित्रों तकसे उसकी राजनीतिक स्थितिके सही समाचारोंको भी छिपाया। इस राजनीतिक सेंसरकी बातको ब्रिटेनके कई अधिकारियोंने पार्लमेंटमें अस्वीकार किया है; पर 'न्यूज़ क्रानिकल' के युद्ध-सम्वाद-दाता स्टुअर्ट गेल्डरने अभी हाल ही में इस झूठका पर्दा-फ़ाश किया है। उनके लेखकके मुख्य अंशका भावार्थ इस प्रकार है :—

"जब मैं भारतमें था, तो वहाँसे उस समय तक एक शब्द भी तार द्वारा इंग्लैण्ड नहीं भेज सकता था, जब तक कि वह फौज़ी सेंसर द्वारा पास न हो जाय। जब १९४२ में मैंने मि० गांधीका वक्तव्य सेंसर होनेको दिया, तो अधिकारियोंको गांधीजी से किए गए अपने वादेकी बात भी कह दी और यह भी दोहरा दिया कि यदि इसमेंसे कुछ भी काटा गया, तो मुझे पूरा वक्तव्य स्वयं इंग्लैण्ड ले जाना पड़ेगा। दरअसल उसमें से एक शब्द भी नहीं काटा गया और यदि मैं किसी भी हालतमें अधिकारियोंकी अवमानना करनेकी धमकी न भी देता, तब भी शायद वह पूरा पास हो जाता। किन्तु तारघर भेजे जानेसे पूर्व स्वीकृतिके लिए उसका दिल्ली भेजा जाना ज़रूरी था—अर्थात् उसे दबानेका अधिकार सरकार द्वारा सुरक्षित था। यह कोई अपवाद नहीं है। गांधीजी या भारतकी राजनीनिक स्थितिके बारेमें मैंने जो भी लेख लिखा, वह इसी अधिकारके मातहत था और बहुसंख्यक लेख अपने-आप सरकारके 'हाँ' या 'ना'के लिए देने पड़ते थे। यह सब भारत और इंग्लैण्डमें अधिकारियों द्वारा भारतमें राजनीतिक सेंसर होनेकी बातका प्रतिवाद करनेके बावजूद होता था। यह सब फौजी सुरक्षाके नामपर होता था और शीघ्र ही हम लोगोंने देखा कि ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो फौजी सुरक्षाकी परिभाषामें न आती हो। यदि किसी भारतीय नेताने सरकारकी कोई आलोचना की, तो कहा जा सकता था कि इससे जापानियोंको पता चल जायगा कि भारत युद्ध-प्रयत्नमें संगठित और सबल नहीं है और इस तरह भारतको सुरक्षा खतरे में पड़ जायगी—जब कि जापानके भीतर या बाहर किसी पागल को छोड़कर शायद ही कोई विश्वास करता कि नेहरूजी और अन्य कांग्रेसी नेताओंके जेलमें होनेका बावजूद हमारा युद्ध-प्रयत्न बड़ा सुसंगठित है। इंग्लैण्डके लोगोंको बंगालके अकालका उस वक्त तक हाल मालूम नहीं होने दिया गया जब तक कि उसमें लाखों मर नहीं गए। तब तक उसे खाद्यकी कमी ही बतलाया गया। क्या इस सचाईको प्रकट करनेमें फौजी सुरक्षाके कारण देर की गई या उन मुल्की अधिकारियोंने अपने बचावके लिए ऐसा किया, जो उस दुर्घटनाके लिए अपने-आपको सर्वथा निर्दोष नहीं समझते थे? क्या यहाँ फौजी सुरक्षाका उन्होंने अपनी अयोग्यताकी ढालके रूपमें प्रयोग नहीं किया?...सरकारने यह देखनेके लिए कि उसकी प्रतिकूल आलोचनावाली कोई चीज़ पास न हो, मुल्की सलाहकार नियुक्त किए थे; जो फौजी सेंसरको बता लाते थे कि क्या पास किया जाय और क्या नहीं।" ('स्टेटसमैन')

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

आज़ाद हिन्द-फौजका मुक़दमा

आज समूचे देश—और अनेक विदेशों—की नज़र दिल्लीके लाल क़िलेमें फौजी अदालतके सामने आज़ाद हिन्द-फौजके अफ़सरोंपर चलनेवाले मुक़दमेकी ओर लगी है। ब्रिटिश प्रचारकों द्वारा अतिविज्ञापित भारतीयोंकी फूट और विभेदोंके बावजूद कुछ प्रकट और छुपे सरकारी एजेण्टोंके सिवा देशकी सभी जातियों, धर्मों और दलोंके लोगोंने एक स्वरसे इनकी रिहाईकी मांग की है। बड़े-बड़े क़ानूनदाओंने भी उसे सलाह दी है कि इन निर्दोष देशभक्तोंको दण्ड देनेका कोई कारण अथवा आधार नहीं है, अतः इन्हें अविलम्ब छोड़ दिया जाय। पर ब्रिटिश अधिकारियोंने, जो समय-असमय भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूतिका दम भरते नहीं थकते, इन देशभक्तोंको लांछित और दण्डित करनेका मौक़ा हाथसे जाने देना ठीक नहीं समझा। फलतः गत ५ नवम्बरको उसने अपने चन्द फौजी अफ़सरोंकी फौजी अदालतके सामने कप्तान शाहनवाज़, कप्तान पी० के० सहगल और लेफ्टिनेण्ट गुरुबख्शसिंहका बादशाहके खिलाफ़ लड़ने और हत्या करने तथा उसमें सहायक होनेके अभियोगोंमें चालान किया है तथा कप्तान अब्दुलरशीद, सूबेदार शिंगारासिंह, जमादार फतहखाँ और कप्तान बुरहानुद्दीनको इन्हीं अभियोगोंमें चालान किए जानेकी सूचनाएँ दी हैं।

हमें नहीं मालूम सरकारने आज़ाद हिन्द-फौजके अफ़सरोंपर मुक़दमा चलानेका यह निर्णय कब और क्यों किया। पर इतना हम पत्रोंमें ज़रूर पढ़ चुके हैं कि बर्मा, मलाया और सिंगापुरमें ही नहीं, भारतकी कई जेलों और कैम्पोंमें भी इस फौजके अनेक सदस्य बिना किसी तरहके मुक़दमेके अभिनयके ही गोलीसे उड़ा दिए गए तथा बहुतोंके साथ पशुओंसे भी बुरा सलूक हो रहा है। नेहरूजाने गत ११ अक्टूबरको इलाहाबादमें दिए गए अपने एक बयानमें बतलाया है कि कलकत्तेके पास नीलगांव-कैम्पमें गत २५ सितम्बरको ५ सैनिक गोलीसे मार डाले गए और कई घायल हुए। लखनऊ-जेलसे छूटे श्री अन्सार हरवानीने भी गत २ नवम्बरके अपने वक्तव्यमें कुछ सैनिकोंके फांसी दिए जाने और सैंसे कड़ी मशक्कत ली जानेकी बात कही है। सिंगापुरसे आए एक संवादमें भी डा० एन० के० मैनन, एन० राघवन, केशव मैनन, एस० सी० गोहो, एम० के० रामचन्द्रन और डा० लक्ष्मैया पर अत्याचार किए जानेकी बात कही गई है। मलायासे श्री असरफअलीके नाम आए स्वामी आत्मारामके समुद्री खतमें भी वहाँके अनेक भारतीयोंपर बिना मुक़दमा चलाए माने ज़ुल्म किए जानेकी बात कही गई है। भारत-सरकारकी ओरसे इनमें से किसीका भी खण्डन या स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। ऐसी हालतमें इनकी यथार्थतामें शककी कोई गुंजाइश नहीं। तब समझमें नहीं आता कि दिल्लीमें होनेवाला न्यायका यह नाटक किस मज़की दवा है? अगर दरअसल सरकारको आज़ाद हिन्द-फौज तथा उसके साथ हमदर्दी रखनेवालोंके खिलाफ़ कोई क़ानूनी शिकायत है, तो उसे छुपे-छुपे, लोगोंको बिना सफ़ाईका मौक़ा दिए, फांसीपर लटका देने या उनके साथ अमानुषिकता करने—जिसका कि उसे कोई अधिकार नहीं है—के बजाय उन्हें किसी निष्पक्ष खुली अदालतके सामने पेश करना चाहिए। विजयके बाद ब्रिटिश साम्राज्यवादी कितने निरंकुश और बेहया हो गए हैं, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता कि उन्होंने इस तरह मारे और सताए जानेवाले लोगोंके नाम तक भी प्रकाशित नहीं किए हैं! क़ानूनके नामपर होनेवाली इन हत्याओं और ज़ुल्मोंकी जितनी भी निन्दा की जाय, कम है।

राजद्रोह बनाम देश-भक्ति

चूँकि आज़ाद हिन्द-फौजका मुक़दमा अभी ज़ेरतजवीज़ है, हम उसके पक्ष या विपक्षमें कुछ नहीं कह सकते। पर हज़ारों भारतीयोंके जीवन-मरणके इस प्रश्नको लेकर आज जो तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ है, उसका सिंहावलोकन करना असंगत न होगा। ब्रिटिश न्यायनीतिका प्राथमिक सिद्धान्त यह है कि जब तक कोई व्यक्ति अदालत द्वारा अपराधी घोषित न किया जाय, उसे निर्दोष समझा जाय। पर ब्रिटिश प्रचारकों और उनके भाड़ेके भारतीय टट्टुओंने पत्रोंके कालमों और सभा-मंचोंसे निरन्तर यह प्रचार करना शुरू कर दिया है कि आज़ाद हिन्द-फौजके सदस्य जापानी एजेण्ट और ग़द्दार हैं! जो स्वयं ग़द्दार और दूसरोंके भाड़ेके एजेण्ट हैं, उनका किसीके भी सम्बन्धमें ऐसा समझना स्वाभाविक है। अधिक आश्चर्य तो हुआ हमें युक्त-प्रान्तके गवर्नर मारिस हेलेटकी लैंसडाउन और अल्मोड़ाकी बकवास पढ़कर, जिसमें उन्होंने कुमायूँनी सिपाहियोंसे इनके प्रति कोई सहानुभूति न रखने और इनके चोर-डकैत होनेकी आशंका प्रकट की है! पर सभी अंगरेज़ शायद हेलेटकी-सी हल्की मनोवृत्तिके नहीं हैं। स्थानीय 'स्टेट्समैन'के चिट्ठी-पत्री-स्तम्भमें इस सम्बन्धमें एक अंगरेज़ फौजीका पत्र छपा है, जिसमें उसने कहा है—"यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे मेरा यह विचार है कि सुभाष बसु ग़लतीपर थे, किन्तु वे जार्ज वाशिंगटन, डी-वेलेरा या ह्यांगकाई-शेकसे भिन्न नहीं। इन सबने स्वतन्त्र होनेके लिए

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बाहरी सहायता ली थी। ये सब वीर हैं और सुभाष गद्दार! निश्चय ही ब्रिटेनके लिए वे गद्दार हो सकते हैं, पर भारतके लिए क्यों?"

ब्रिटिश साम्राज्यवादके अन्धे चाकरों और एजेण्टोंकी दुर्बुद्धि पर हँसी तो हमें तब आती है, जब हम देखते हैं कि जर्मनोंकी गुलामीसे अपने देशको आज़ाद करनेवाले रूसियों, पोलों, स्लावों, इतालियनों और फ्रांसीसियों तथा जापानी साम्राज्यवादके जुएसे मुक्त होनेवाले चीनियों, कोरियनों तथा बर्मियोंको तो ये गला फाड़-फाड़कर देशभक्त बताते हैं; पर उसी साँसमें ब्रिटिश साम्राज्यवादकी नागफांससे मुक्त होनेकी प्रचेष्टा करनेवाले भारतीयोंको गद्दार या राजद्रोही बताते हैं। लेकिन किसी भी देशकी सर्वोच्च सत्ता और अदालत तो जनता है, और उसने एक स्वरसे इन्हें देशभक्त स्वीकार किया है तथा इनकी रिहाईकी माँग की है। अगर ये गद्दार या जापानी एजेण्ट होते, तो क्या सभी देशभक्त और फ़ाशिज़्म-विरोधी संस्थाएँ इनकी मुक्तिके लिए आज इसी बल और आग्रहके साथ आवाज़ उठातीं? अब तक जो चीज़ें पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं, उनसे यह साफ़ ज़ाहिर है कि ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा निराश्रित, निहत्थे तथा अरक्षित छोड़ दिए जानेपर एकमात्र अपने देशकी आज़ादीकी भावनासे प्रेरित होकर ही इस फौजके सदस्यों तथा मलाया, सिंगापुर और बर्मामें बसे सहस्रों भारतीय नर-नारियोंने अपने प्राणों को जोखिममें डाला। ब्रिटिश साम्राज्यवादी और उनके एजेण्ट जो-कुछ भी कहें, भारतीयोंके हृदयों और भावी भारतके इतिहासमें इन देशभक्तोंका सदा सर्वोच्च सम्मानका ही स्थान रहेगा।

अज़ाद हिन्द-फौजका काम

शत्रु-अधिकृत प्रदेशोंमें संगठित देशभक्तोंकी नियमित या अनियमित सेनाओंने अपने देशकी आज़ादीके लिए शत्रुकी पराजय या पलायनसे पहले ही उसकी जड़ें खोदनेकी सफल चेष्टा की और इस प्रकार उसके अन्तको निकट बुलाया; यह फ्रांस, इटली, यूगोस्लाविया, बर्मा और इण्डोनेशियाकी देशभक्त सेनाओंके बारेमें प्रकाशित विवरणोंसे ज़ाहिर है। आज़ाद हिन्द-फौजको, जो देशभक्तोंका ठीक वैसा ही सैनिक संगठन था, अपना यह कार्य संसारको दिखानेका अवसर ही नहीं मिला। उसके सम्बन्धमें आज कुछ समझदार लोगोंमें भी जो ग़लतफ़हमी पैदा हो गई है और उसके महत्वको ठीक-ठीक समझनेके बजाय कमीने वतनफ़रोश उसे जो गद्दारों और जापानी एजेण्टोंका दल बतलानेका दुःसाहस कर रहे हैं, उसका सबसे बड़ा कारण यही है कि ये लोग उसके प्राथमिक कार्योंका मनमाना अर्थ निकालकर ही उसके नामपर कालिख पोतनेकी कुचेष्टा कर रहे हैं। पर अपने जीवनके प्रारम्भिक कालमें ही इस फौजने न सिर्फ़ ब्रिटिश साम्राज्यवादसे ही भारतको मुक्त करनेका संकल्प किया, बल्कि जापान-अधिकृत प्रदेशोंमें बसे प्रवासी भारतीयोंके जान-मालकी रक्षा भी की, हज़ारों भारतीय सैनिकोंको अकाल मौतके मुँहमें जानेसे बचाया और मौक़ा आनेपर जापानी आततायीपनके खिलाफ़ जहाँ तक संभव तथा शक्य था, लोहा भी लिया।

मलाया और सिंगापुरसे भारत पहुँचे लोगोंने बतलाया है कि जापानियोंने भारत और सीलोनपर जो तगड़ा हमला नहीं किया, उसका कारण सुभाष बाबू थे। भारतकी आज़ादीकी लड़ाईको वे बिलकुल पृथक रखना चाहते थे। वे दबाव डालकर अंगरेज़ोंसे भारतकी आज़ादीकी घोषणा कराना चाहते थे। जापानी भारतमें पहुँचें और भारतीयोंको जान-मालकी हानि हो, यह वे कभी नहीं चाहते थे। जापानियोंके बारेमें उन्हें कोई धोखा नहीं था, और यदि भारत स्वतन्त्र हो जाता, तो वे बर्मियों से मिलकर निश्चय ही जापानियोंको खदेड़ देते। इसी आशासे उन्होंने अण्डमानके बजाय रंगूनको अपना सदरमुक़ाम बनाया। वे दिलसे भारतकी आज़ादीके इच्छुक थे। जब उन्होंने जापानियोंके असली रुखको देखा-समझा और जाना कि वे आज़ाद हिन्दी-फौजका भारतपर आक्रमण करनेके लिए उपयोग करना चाहते हैं, तो वे टालमटूल करने लगे। कभी ट्रेनिंग और कभी शस्त्रास्त्रोंकी कमीका बहाना बनाकर वे समय टालने लगे। जापान-अधिकृत क्षेत्रोंके कितने ही भारतीयोंकी अस्तित्व-रक्षा और जान-मालकी हिफ़ाज़तके लिए उन्होंने बहुत-कुछ किया। इन बातोंको जानकर भी यह समझना कि सुभाष बाबू और आज़ाद हिन्द-फौजके लोग भारतपर ब्रिटिश साम्राज्यवादके बदलेमें जापानी साम्राज्यवादको थोपना चाहते थे, सरासर उनकी समझ-सूझ और अपनी सहज-बुद्धिका अपमान करना है।

राजद्रोह : गुलामोंका जन्मसिद्ध अधिकार

क़ानून और नैतिकताके किसी भी मापदण्डसे भारतपर भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध ब्रिटेनके शासनका औचित्य किसी भी अंशमें सिद्ध नहीं किया जा सकता। अगर फ्रांस और इटलीपर जर्मनीका अधिकार अनुचित एवं अन्याय्य है; अगर कोरिया, चीन, मलाया, हिन्द-चीन, इण्डोनेशिया और हांगकांगपर जापानको शासन करनेका कोई अधिकार नहीं; तो भारतपर भारतीयोंकी इच्छाके विरुद्ध शासन करनेका ब्रिटेनको क्या अधिकार है? यह कौन-सा न्याय या औचित्य है? अगर शस्त्र-बलसे फ्रांस, इटली, हालैण्ड, बेल्जियम, यूगोस्लाविया, पोलैण्ड और उत्तर-पूर्वी चीन, कोरिया, हिन्द-चीन, मलाया, इण्डोनेशियापर थोपे गए शासनके खिलाफ़ बग़ावत करनेका वहाँके देशवासियोंको नैतिक अधिकार है, तो वैसे ही शासनके खिलाफ़ शस्त्र उठानेवाले भारतीय गद्दार या राजद्रोही कैसे हुए? पुराना हो जानेसे भारत पर ब्रिटेनका शस्त्र-बलसे थोपा गया अधिकार नैतिक, क़ानूनी या उचित नहीं कहा जा सकता। अतएव अगर इससे भारतको मुक्त

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करनेकी चेष्टा करनेवाले रौजद्रोही कहे जा सकते हैं, तो ब्रिटिश अधिकारियोंको यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि भारतका बच्चा-बच्चा राजद्रोही है। उसके निकम्मे, भ्रष्ट, शोषण-दमनपूर्ण अत्याचारी शासनको आज कोई भी भारतीय नहीं चाहता।

ग़ैरक़ानूनी उपायोंसे जिस 'क़ानून'के डण्डेके बलपर सरकार 'राजद्रोहियों'को डराती, धमकाती और पीटती है, उसका कोई नैतिक या क़ानूनी आधार नहीं है। क़ानून वह है, जिसे जनता के प्रतिनिधि जनताके हितों एवं अधिकारोंकी रक्षाके लिए बनायँ। पर भारतके ब्रिटिश शासनमें तो लूट और ग़ुलामीको बरक़रार रखनेके सभी वैध-अवैध उपाय 'क़ानून'की संज्ञा पा गए हैं। ईस्ट-इण्डिया कम्पनीने अपने बेईमान और लुटेरे नौकरोंपर अंकुश रखनेके लिए जब पहले-पहल कलकत्तेके फोर्ट विलियममें सुप्रीम कोर्टकी स्थापना करवाई, तो उसके विचारपति एलीजा इम्पीने वारेन हेस्टिंग्ज़के ख़िलाफ़ अपनी मर्ज़ीको ही क़ानून बना दिया। पर उन दिनों इंग्लैण्डमें ऐसे ईमानदार व्यक्ति थे, जिन्होंने क़ानूनके नामपर की गई ज़्यादतियोंके लिए वारेन हेस्टिंग्ज़ और इम्पीको भी नहीं बख्शा। १८७०में नागरिक अधिकारोंकी रक्षाके क़ानूनको मुफ़स्सिलमें अमान्य ठहराकर जहाँ इम्पीने जनताको अरक्षित छोड़ दिया, वहाँ १८१८ के बंगाल-रेगूलेशन द्वारा ब्रिटिश शासनकी रक्षाके नामपर किसीको भी राजद्रोही कहकर अनिश्चित कालके लिए बन्दी बनानेका अधिकारियोंको अबाध अधिकार भी दे दिया गया। ज़ाब्ता-फौजदारीके संशोधक क़ानूनने रही-सही कमी भी पूरी कर दी। इन सब 'क़ानूनों'का एक ही उद्देश्य है—ब्रिटिश शासनको क़ायम रखना! युद्ध-कालमें विषम परिस्थितिकी ओट लेकर जो आर्डिनेन्स बनाए गए हैं, उन्होंने तो साम्राज्य-रक्षाके नामपर होनेवाली ज़्यादतियोंके सम्बन्धमें अदालतों या पत्रों तकको मुँह खोलनेके अधिकारसे वंचित कर दिया है। उदाहरणके लिए आज़ाद हिन्द-फौजके कुछ सदस्योंको 'शत्रु-एक्सपेण्ट आर्डिनेन्स'के मातहत प्राणदण्ड दिए जानेकी बात पत्रोंमें आई है। पर इसकी सार्वजनिक चर्चा भी दण्डनीय है!

जहाँ जनताकी इच्छाके विरुद्ध, शस्त्र-बलसे, विदेशी सत्ता द्वारा ग़ैरक़ानूनी शासन थोपा गया हो और उसकी रक्षाके लिए हर वैध-अवैध उपाय 'क़ानून'की संज्ञा एवं परिभाषामें आता हो; वहाँ भला स्वाधीनताका हर प्रयत्न ग़ैरक़ानूनी और उसका हर सिपाही राजद्रोही नहीं तो क्या होगा? पर ऐतिहासिक और नैतिक आवश्यकताकी दृष्टिसे हर ग़ुलामको राजद्रोहका जन्मसिद्ध अधिकार है—और होना भी चाहिए। लगभग सभी उल्लेखनीय भारतीय नेताओंको कभी-न-कभी राजद्रोहके 'अपराध'में दण्डित भी किया गया है। सन् १९२२ में इसी 'अपराध'की सज़ा सुनाए जानेसे पूर्व गांधीजीने जस्टिस ब्रूमफील्डकी अदालतमें कहा था—"...सद्भावना क़ानूनसे नहीं बनाई या निर्धारित की जा सकती। अगर किसीके मनमें किसी व्यक्ति या प्रणालीके प्रति सद्भावना नहीं, तो उसे उसको प्रकट करनेका पूरा मौक़ा मिलना चाहिए।...मैं ऐसी सरकारसे असन्तुष्ट होना एक गुण मानता हूँ, जिसने कुल मिलाकर भारतको किसी भी अन्य प्रणालीसे अधिक हानि पहुँचाई है। पहलेकी अपेक्षा ब्रिटिश शासनमें भारत आज कम प्राणवान है। इस विश्वासके साथ ऐसी प्रणाली के प्रति सद्भाव रखना मेरी समझमें पाप है।...अतः क़ानूनमें जिसे जान-बूझकर राजद्रोहका अपराध करना कहा गया है और जिसे मैं हर नागरिकका सर्वोच्च कर्त्तव्य समझता हूँ, उसके लिए आप मुझे अधिकतम दण्ड दें। मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा।"

साम्राज्यवादके क़फ़नकी अन्तिम कील

आज़ाद हिन्द-फौजके मुक़दमेके नैतिक और क़ानूनी पहलुओंको अगर न भी लिया जाय, तो सहज-बुद्धिकी दृष्टिसे भी हम इसकी कोई आवश्यकता, आधार या औचित्य नहीं देखते। जहाँ इन्हें छोड़कर सरकार न सिर्फ़ समय, अर्थ और शक्तिके भारी अपव्ययसे बच जाती और अधिकांश देशवासियोंकी सहानुभूति हासिल करती, वहाँ अब उसे भारी व्यय करके जनताकी घृणा, कटुता और नाराज़गी खरीदनी पड़ रही है। यह परले सिरेकी मूर्खता, पागलपन और अक़्लका दिवालियापन नहीं तो क्या है? अगर अधिकारियोंने भारतके इन देशभक्तोंको दण्डित करनेकी ग़लती और मूर्खता भी की, तो पता नहीं उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी; पर निःसन्देह वह ब्रिटिश साम्राज्यवादके क़फ़नकी आखरी कील होगी। भारतीय सेनाके एक अंगरेज़ अफ़सर डेविड कारपेण्टरने भारतसे लौटकर लन्दनके 'ट्रिब्यून'में कुछ स्पष्ट बातें लिखी हैं। उनका कहना है—"भारतकी राजनीतिक स्थितिका एक बढ़ता हुआ पहलू है इंग्लैण्ड और हर अंगरेज़ी चीज़के प्रति भारतीयोंके हृदयोंमें घृणाका ज्वालामुखी। यह घृणा भारतीय सेनासे बढ़कर और कहीं नहीं है, और उसमें भी सबसे अधिक है उसके अफ़सरोंमें। अगर हम सब मामलोंको उस समय तक घसिटने देंगे जब कि फिर सविनय अवज्ञा-आन्दोलन उठ खड़ा हो, तो सेनाके लोग जनताका साथ देंगे और उनका नेतृत्व करेंगे उन्हींके अफ़सर। मेरा अनुमान है कि अपने कमान और शासनको योग्यतामें विश्वास और भारत द्वारा अपना शासन स्वयं किए जानेके दृढ़निश्चयके साथ वे सेनाको छोड़ देंगे।"

कारपेण्टरकी यह भविष्यवाणी कहाँ तक सत्य सिद्ध होगी, हमें नहीं मालूम; पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज़ाद हिन्द-फौजका भाग्य-निर्णय जनताके साथ-ही-साथ भारतीय सेनापर भी गहरा असर डालेगा। गांधीजी और जनरल स्टिलवेलके यह कहनेपर कि भारतीय सेना भाड़ेकी सेना है, अंगरेज़ बुरी तरह उबल पड़े थे, और चर्चिलने तो बड़े गर्वके साथ कहा था कि भार-

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तीय सेना संसारकी सबसे बड़ी 'स्वेच्छा सेना' है। झूठ बोलनेका वह युग युद्धके साथ ही खत्म हो गया। आज तो आज़ाद हिन्द-फ़ौजका संगठन, कॉरपेण्टरकी आशंका और हिन्द-चीन तथा इण्डोनेशियामें भारतीय सेनासे जो काम लिया जा रहा है, ये सारी बातें चर्चिलकी गर्वोक्तिको गहरी चुनौती दे रही हैं। ब्रिटेनका वह मिथ्या वाक्वीर तो आज अपनी राजनीतिक पराजयका शान्ति-सुख लाभ कर रहा है; पर भारतके ये तथाकथित 'स्वेच्छा सैनिक' ज़रूर अपने मनमें पूछ रहे हैं—हम क्यों लड़े? हमें और हमारे देशको विजयसे क्या मिला? सेनामें इनके साथ जैसा व्यवहार हुआ है, अब इन्हें जो दिशाहारे 'अमर बकरों' और 'धर्मसाँड़ों'की तरह स्वच्छन्द विचरनेको छोड़ दिया गया है तथा आज़ाद हिन्द-फ़ौजके प्रति ब्रिटिश अधिकारियोंका जो संकीर्ण और अदूरदर्शी रुख है, ये सब बातें क्या उन्हें आत्म निरीक्षणके लिए मजबूर नहीं करेंगी? क्या अब भी वे इस भेदको नहीं समझेंगे कि अगर भारत आज़ाद होता, तो भारतकी राष्ट्रीय सरकार इनकी सेवा, कष्ट-सहन और क़ुरबानीके लिए समुचित पुरस्कार देती? ये बहुत पढ़े-लिखे और जागरूक भले ही न हों, पर गुलामी और आज़ादीका भेद तो समझ ही सकते हैं।

भारतीय बेल्सन और बुकेनवाल्ड

युद्ध-स्थितिका बहाना और भारत रक्षा क़ानूनों तथा आर्डिनेंसोंका सहारा लेकर सरकारके ज़रूरतसे ज़्यादा वफ़ादार नौकरोंने दिल्ली और लाहौरके क़िलों, विविध जेलों तथा कैम्पोंमें भारतीय राजबन्दियों एवं नज़रबन्दोंपर जो ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ की हैं, छूटनेवाले व्यक्तियों द्वारा अब उनका भण्डाफोड़ हो रहा है। अपने पापका घड़ा फूटते देखकर स्वयं सरकारकी तो सिट्टी गुम है; पर उसके प्रकट और अप्रकट एजेण्टोंने इन सनसनीपूर्ण समाचारोंके खिलाफ़ अपनी घृणा और द्वेषकी आवाज़ उठाई है। जिस अधगोरे 'स्टेट्समैन'ने जर्मनों और जापानियोंके नज़रबन्द-कैम्पोंमें हुए रोमांचकारी ज़ुल्मों और यन्त्रणाओंके विवरणों एवं चित्रोंको सर्वप्रथम भारतीय पाठकोंके सामने रखा; उसने भारतके बेल्सन और बुकेनवाल्डोंके विवरण या चित्र छापना तो दूर रहा, इन ज़ुल्म-ज़्यादतियोंको अतिरंजित बताते हुए अपने २७ अक्टूबरके अग्रलेखमें लिखा है—"गत जुलाईमें शिमला-सम्मेलनके विफल होनेके बादसे भारतके सबसे बड़े राजनीतिक दल कांग्रेसके नेता अंगरेज़ों और जिस उद्देश्यके लिए भारतके वीर सैनिकोंके साथ ६ वर्ष तक वे लड़े हैं, उसे बदनाम करनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। इसमें अग्रणी हैं पण्डित नेहरू और बहुतसे पत्र उनका समर्थन कर रहे हैं।...सचाईको तोड़ने-मरोड़नेके इस आन्दोलनके सहायक अस्त्रके रूपमें जिन भारतीय जेलों और हाजतोंमें अगस्त-उपद्रवोंके समर्थकोंको रखा गया था, उन्हें बेल्सन कहा गया है।" इसके बाद सहयोगीने पिछले ६ वर्षोंके भारतके कष्टोंकी ज़िम्मेदारी उसकी आबादीपर थोपते हुए जेलोंकी यातनाओंको आंशिक रूपमें सत्य किन्तु अत्यधिक अतिरंजित बताकर सरकारसे जाँच करनेका अनुरोध किया है।

हमें निःसन्देह बड़ी खुशी और सन्तोष होगा यदि सरकार 'स्टेट्समैन'की इस नेक सलाहपर अमल करे। पर अब तकके उसके रवैएको देखकर तो यही कहा जा सकता है कि इसकी आशा कम है। स्वयं 'स्टेट्समैन'को भी आरोपोंकी भाषापर ही आपत्ति है, तथ्योंको अस्वीकार करनेका आधार उसके पास भी कुछ नहीं है। प० गोविन्दवल्लभ पन्तने बरेली जेलमें हुई श्री दीवानसिंहकी मृत्युको गन्दी साज़िशका परिणाम बताते हुए एक निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा सारे मामलेकी जाँच कराए जानेकी माँग की है। दीवानसिंहके साथ किए गए दुर्व्यवहारके सम्बन्धमें पन्तजीने जो-कुछ कहा है, उसमें क्या झूठ, अर्धसत्य या अतिरंजना है, यह हम 'स्टेट्समैन' और उसकी सरकार दोनोंसे पूछना चाहेंगे। बरेलीके सिविल जजने इसी जेलमें एक दूसरे कांग्रेसी कार्यकर्ता मुंशी माधोनारायणके डंडों, घूँसों और जूतोंसे पीटे जाने एवं घायल होनेके कारण जेलके सुपरिन्टेण्डेण्ट तथा डेपुटी-सुपरिन्टेण्डेण्टपर हर्जानेकी जो डिक्रियाँ की हैं, क्या वे भी अतिरंजना के कारण ही? दिल्लीके क़िलेमें दी जानेवाली यन्त्रणाओंके बारेमें श्री शोलभद्र याजी तथा श्री प्रभुदयाल विद्यार्थीने और लाहौरके क़िलेकी यन्त्रणाओंके बारेमें डा० शिवनन्दन कृपलानी, मौ० मुनीरुज़्ज़मा इस्लामाबादी तथा श्री द्विजेन बसु आदिने जो-कुछ कहा है, उसमें कौन-सी बात ग़लत या अत्युक्तिपूर्ण है? इनके अलावा आगरा, फतेहगढ़, दमदम, बेतूल, जबलपुर, नैनी, नागपुर, लखनऊ, हज़ारीबाग, लाहौर, कसूर आदिकी जेलोंसे छूटकर आए राजबन्दियोंके जो वक्तव्य पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि जेलोंमें उनके साथ कैसा अमानुषिक और कमीना व्यवहार किया गया। ये लोग चोर-डाकू नहीं, देशभक्त होनेके कारण जेलोंमें ठूँसे गए। एक तो धमकी देकर भी सरकारने खुली अदालतके सामने इन्हें पेश नहीं किया और ऊपरसे ये ज़ुल्म-ज़्यादतियाँ! क्या इंग्लैण्डमें राजबन्दियोंके साथ ऐसा ही वर्त्ताव होता है? किसी भी शासनके लिए यह अमानुषिकता शोभाकी चीज़ नहीं। हम फिर कहेंगे कि ऐसा कमीनापन कोई भी लोकतन्त्रवादी शासन नहीं कर सकता। डिग्रीका फ़र्क भले ही हो, पर है यह जर्मनों और जापानियोंके ढंगका ज़ुल्म ही। अगर इनमें कुछ भी अतिरंजना या असत्य है, तो सरकार खुले तौरपर अविलम्ब इनकी निष्पक्ष जाँच कराए और उसकी रिपोर्ट जनसाधारणके सामने रखे।

अगस्त '४२ के ज़ुल्मोंकी जाँच हो

पिछले तीन वर्षोंमें भारतीय जेलों और नज़रबन्द-कैम्पोंमें जो-कुछ हुआ, वह बाहरके ज़ुल्मोंके मुक़ाबलेमें चिकुटी काटनेके समान ही है। सन् सत्तावनके ग़दरके बाद भी शायद ऐसा कठोर और अविचारपूर्ण अत्याचार न हुआ होगा। नेताओंकी गिरफ़्तारीकी अप्रत्याशित प्रतिक्रियाने नौकरशाहीको जैसे बिल्कुल पागल और अन्धा बना दिया और मुल्ककी हुकूमत खुलमखुल्ला

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुलिस और फौजके हाथोंमें सौंप दी गई। पिछले दिनों नेहरूजीने युक्त प्रान्तके जिन स्थानोंका दौरा किया है, वहां निरीह, निहत्थी और निर्दोष जनतापर अकथनीय ज़ुल्म किए जानेके जो हृदय-विदारक काण्ड सामने आए हैं, उनसे स्पष्ट है कि सरकारी नौकरोंने जनताको कुचलनेके लिए कोई भी नीचता या ज़्यादती बाक़ी नहीं छोड़ी। पन्तजी और राजेन्द्र बाबूके दौरोंसे भी ऐसी ही बातें प्रकट हुई हैं। पटना-ज़िलेके बाढ़ और बख्तियारपुर गांवोंका दौरा करनेके बाद श्री जगतनारायण लालने कहा है कि सेना तथा सशस्त्र पुलिसने अन्धाधुन्ध गोलियां चलाईं और निन्दनीय ढंगसे लूट-पाट तथा मार-पीट की। मुकामाके श्री ब्रह्मदेव-सिंहको इसलिए गोलियोंसे घायल किया गया कि उन्होंने लोटा-छड़ी पुलिसको नहीं दिए! धरीहन नामक व्यक्तिकी निर्दोष स्त्री और बच्चेको गलीसे उड़ा दिया गया! मुकामाके आसपास ३० व्यक्ति गोलीसे उड़ा दिए गए और मालपुर तथा रावेच गांवोंमें खुलेआम लूट-मार की गई। बख्तियारपुर, कोइलार और रावेचमें कई निरपराध व्यक्तियोंको गोलीसे उड़ा दिया गया और कइयोंके घर लूट लिए गए। नरवोरपुरके श्री चन्द्रमणीसिंहके घरकी छत उतार फेंकनेकी सरकारी आज्ञा न माननेवाले लोगोंको पैर पकड़ कर घसीटा गया, जिसके फल-स्वरूप कई व्यक्ति लोहू-लुहान और बेहोश हो गए।

इस तरहके लोमहर्षक काण्ड युक्त-प्रान्त या बिहार ही नहीं, भारतके अधिकांश गांवोंमें हुए है। सन्तोषकी बात है कि कांग्रेसने इन ज़ुल्म-ज़्यादतियोंका विवरण एकत्र करना शुरू कर दिया है। यदि ये सब बातें किसी दिन संगृहीत रूपमें जनताके सामने आ सकीं, तो निश्चय ही दुनिया देखेगी कि मुक्तिकामी जनताको कुचलनेके लिए भारतमें जो-कुछ हुआ है, शत्रु-अधिकृत यूरोप या एशियामें भी शायद वैसा अत्याचार नहीं हुआ होगा। राष्ट्रपति मौलाना आज़ादकी चुनौतीका समर्थन करते हुए हम इन सबकी खुली और निष्पक्ष जाँचकी मांग करते हैं।

सतारामें पुलिस-राज

अनेक स्थानोंपर आज भी पुलिस-राज क़ायम है। नौकरशाहीकी बौखलाहट और आशंकाओंका निकृष्ट शिकार सतारा हुआ है। अभी हाल ही में उसका दौरा करके लौटे श्री शंकरराव देवने एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है, जिसमें कहा है—"युद्ध समाप्त हो चुका है और लोगोंमें सर्वत्र शान्तिपूर्ण सामान्य स्थितिकी ओर लौटनेकी इच्छा है; लेकिन सरकारने सतारा-ज़िलेमें जो रुख इख्तियार किया हुआ है, वह इस दिशामें सहायक नहीं है। सरकार अपने प्रभावको क़ायम रखनेके नामपर साधारण जनताके न्यायसंगत अधिकारोंका भी बलिदान कर रही है। यदि वर्त्तमान पाबन्दियां व प्रतिबन्ध जारी रहे, तो आगामी चुनावोंको कदापि न्याय्य नहीं कहा जा सकता। इस अन्धाधुन्ध दमन व नागरिक स्वतन्त्रताके अपहरणको जारी रखनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता।...आश्चर्य है कि सतारांके सैकड़ों नर-नारियोंपर पुलिस-राजके अधीन जो-कुछ बीत रहा है, उसका गवर्नरको पता भी है या नहीं; क्योंकि उनके वक्तव्यमें ज़िलेके पीड़ित लोगोंके प्रति सहानुभूतिका एक शब्द भी नहीं कहा गया और पुलिसके कारनामोंपर स्वीकृतिकी मुहर लगा दी गई है।"

सिविल-सर्विसका निकम्मापन

शासनके नामपर भारतमें पिछले ५-६ वर्षोंसे यह जो-कुछ हो रहा है, एक बड़ी हद तक उसकी ज़िम्मेदारी भारतीय सिविल-सर्विसके सदस्योंपर है। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके सत्तारूढ़ होनेपर जहां बहुतोंने उनके सामने पालतू कुत्तोंकी तरह दुम हिलाना शुरू किया, वहां साम्राज्यवादके ज़रूरतसे ज़्यादा वफ़ादार सिविलियनों ने उनकी जड़ें खोदनेमें भी कोई कसर नहीं छोड़ी। उनके इस्तीफ़ा देनेके बाद तो इन्होंने न सिर्फ़ सन्तोषकी ही सांस ली, बल्कि खाली मैदान पाकर खुल खेलनेके मौक़ेका भी भरपूर उपयोग किया। अगस्त '४२के बादकी स्थितिने मानो इन्हें दिलके अरमान पूरे करनेका अलभ्य अवसर दे दिया। इनके काले कारनामोंका पूरा कच्चा चिट्ठा तो शायद अभी जनताके सामने न आ सके; पर गत ३० अक्टूबरको मुरादाबादमें भाषण देते हुए नेहरूजीने जो-कुछ कहा है, उससे इनकी करतूतोंका अनुमान तो किया ही जा सकता है। नेहरूजीने कहा—"ये सर्वथा अयोग्य और मुल्कको समस्याओंको समझनेके सर्वथा अनुपयुक्त हैं। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके इस्तीफ़ा देनेके बाद इन लोगोंने भारत-रक्षा क़ानूनोंकी हानिकर धाराओंका मनमाना दुरुपयोग किया। सब तरहकी सावधानी उठाकर ताकमें रख दी गई और मुल्ककी हुकूमत खुल्लमखुल्ला पुलिसके हाथोंमें सौंप दी गई। सब व्यावहारिक बातोंके लिए आज भी मुल्कमें पुलिसका राज है। अब भी, जब कि लड़ाई खत्म हो चुकी है, लोग विजय-कोषमें चन्दा देनेके लिए मजबूर किए जा रहे हैं।"

सिविल-सर्विसके निकम्मेपनकी शिकायत सिर्फ़ नेहरूजीको ही हो, ऐसी बात नहीं है। बंगालके अकालकी जांच-रिपोर्टमें भी उसकी अयोग्यताका उल्लेख है। बहुतोंपर आज भी घूसखोरीके मुकदमे चल रहे हैं। गत ३१ अक्टूबरको कानपुरके इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट आफ़ शुगर टैकनालाजीमें बोलते हुए सर शान्तिस्वरूप भटनागरने कहा—"विशिष्ट जानकारीवाले विभागोंका संचालन बड़ा त्रुटिपूर्ण है। अक्सर ये ऐसे सिविलियनोंके अधीन होते हैं, जिन्हें सम्बन्धित विषयकी कोई विशेष जानकारी नहीं। भारतमें आई० सी० एस० ये तीन अक्षर सब पापोंको छुपा लेते हैं और जिनके पीछे यह दुम लगी हो, वे दुनियाके सभी काम करनेके योग्य समझ लिए जाते हैं।" और ये जी-हुज़ूर भी अपने-आपको 'जो हुक्म, सरकार' कहकर ऐसा ही समझने लगते

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। शासन करनेकी अपेक्षा इनके जीवनका उद्देश्य रहता है तरक्की और समृद्ध बननेकी असीम महत्वाकांक्षा।

एक आदर्श भारतीय सिविलियन!

इन सिविलियनोंके बारेमें जनता चाहे जो भी सोचे-समझे, पर सरकार इनकी राजभक्तिका पुरस्कार अवश्य देती है। अंगरेज़ सिविलियन तो प्रायः अवकाश ग्रहण करनेपर सीधे किसी प्रान्तके गवर्नर या पहले वाइसरायकी शासन-परिषदके सदस्य और फिर गवर्नर बना दिए जाते हैं। भारतीयोंको स्वाभाविक कारणोंसे गवर्नरीका पुरस्कार कम ही मिलता है। अभी हाल ही में यह सम्मान सरकारके युद्ध-विभागके मन्त्री सर चन्दूलाल त्रिवेदीको प्राप्त हुआ है। उन्हें उड़ीसाका गवर्नर नियुक्त किया गया है। (इस प्रान्तकी भाषा, संस्कृति, समाज, राजनीति आदिके बारेमें वे इतने ही अनभिज्ञ हैं, जितना कि कोई भी अंगरेज़!) इस पर 'भारत ज्योति'के नई दिल्ली-स्थित संवाददाताका कहना है—"यहाँके जानकार राजनीतिक क्षेत्रोंका खयाल है कि सर चन्दूलाल त्रिवेदी ब्रिटेनके दृष्टिकोणसे १९३० के आन्दोलनके दौरान में और जब मध्य-प्रान्तमें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल था, चीफ़ सेक्रेटरीके रूपमें आदर्श सिविलियन रहे हैं। युद्ध-मन्त्रीके रूपमें भी वे लार्ड वेवल और जनरल आकिनलेकके प्रति बड़े वफ़ादार रहे हैं। सर चन्दूलाल उन पुराने भारतीय सिविलियनोंमें से हैं, जो फाइलों तकमें कभी असहमति न प्रकट कर ब्रिटिश नीतिपर अमल करनेमें विश्वास करते हैं। सर गुरुनाथ बेवूरके मुक़ाबलेमें उन्हें युद्ध-विभागका मन्त्री इसीलिए बनाया गया कि सरकारका ज़्यादा फ़ायदा सामाजिक और राजनीतिक सम्पर्कसे हीन एक 'जी हुज़ूर'की नियुक्तिमें ही था। इस प्रकार सरकारकी यह नीति है कि केवल उन्हीं भारतीय सिविलियनोंको गवर्नर बनाया जाय, जिनका भारतमें ब्रिटिश शासनके प्रति वफ़ादारीका अटूट रेकर्ड है।"

कुछ इसीसे मिलती-जुलती बात जबलपुरके सहयोगी 'शुभचिन्तक'के नई दिल्ली-स्थित विशेष प्रतिनिधिने भी लिखी है। उसका कहना है—"सर चन्दूलाल त्रिवेदीकी उड़ीसाकी गवर्नरीपर नियुक्तिकी चर्चा करते हुए एक राजनीतिक पर्यवेक्षकने कहा है: अगस्त '४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलनसे ब्रिटिश राज्यकी रक्षा का यह सर्वोच्च पुरस्कार है। सी० पी० के चीफ़ सेक्रेटरीकी हैसियतसे उन्होंने चिमूर और आष्टीके उन जघन्य कार्योंको लीपापोतीकर समर्थन किया, जिनका कि ब्रिटिश कलंकोंके इतिहासमें उदाहरण नहीं है। उनका स्थान उड़ीसाकी गवर्नरीके बजाय जनताकी अदालतमें अभियुक्तके स्थानपर होना चाहिए था। ऐसे व्यक्तिको उड़ीसाका गवर्नर नियुक्तकर ब्रिटिश मज़दूर-सरकारने प्रमाणित कर दिया है कि वह प्रजातन्त्रके मार्गको कुचलनेवालोंको शुद्ध नवीन ढंगसे पुरस्कृत कर सकती है।"

दिल्लीके क़िलेपर तिरंगा फहरायगा!

पर देशद्रोहियों, जी-हुज़ूरों और उनके साम्राज्यवादी आक़ाओंके निकृष्ट षड्यन्त्रोंके बावजूद जनता झुकी नहीं, मरी नहीं, मिटी नहीं। मुरादाबादमें कहे गए नेहरूजीके शब्दोंमें 'इन अफ़सरोंको हमारी ओरसे चुनौती है कि ये बलिया जायँ और वहाँ अपने प्रयत्नोंकी निर्थकताको देखें। भयंकर दमनके बावजूद वहाँकी जनता आज भी सीधी कमरेसे अकड़के साथ और सिर ऊँचा करके चलती है।' बलिया ही क्यों, सम्पूर्ण भारतीय जनता आज नए आत्म-विश्वास, दृढ़निश्चय और मज़बूत हाथोंसे ग़ुलामीकी जंज़ीरोंको छिन्न-भिन्न कर डालनेकी प्रेरणासे अनुप्राणित हो उठी है। जन-जागरणका यह सैलाब भला कौन रोक सकता है। आज मानो भारतका बच्चा-बच्चा अजमेरमें कहे गए नेहरूजीके इन शब्दोंको दोहरा रहा है—"एक दिन आयगा जबकि दिल्लीके लाल क़िले और सरकारी इमारतोंपर हिन्दुस्तानका तिरंगा झण्डा फहरायागा। यह झण्डा किसी एक फिर्क़े या दलका नहीं, आम लोगोंका होगा, सब तबक़ोंका होगा। मुल्कमें आज लोगोंको न अपनी भूख मिटानेके लिए खाना मिलता है, न तन ढँकनेके लिए कपड़ा। देशके सामने आज सबसे बड़ा सवाल यही है। इसीको हल करनेके लिए हम आज़ादीकी लड़ाई लड़ रहे हैं, क्योंकि आज़ादीके बिना मुल्ककी ग़रीबी और भुखमरी मिटानेके लिए कोई क़दम तेज़ीसे नहीं उठा सकते। हमारे पैर बँधे हुए हैं। उनके खुलनेपर ही हम तेज़ीसे आगे बढ़ सकते हैं। हो सकता है कि इतने दिनों बाद पैर खुलनेपर हमारे पैर लड़खड़ाएँ और हम ठीक तरह चल न सकें। लेकिन ठोकर खाकर ही हम सीखेंगे और गिरकर ही उठेंगे।"

कांग्रेस और आगामी चुनाव

शिमला-सम्मेलनके नाटककी विफलताके बाद ब्रिटेनके नए प्रतिगामी अधिकारियोंने भारतीय समस्याका कोई हल न निकाल सकनेकी अपनी लाज छुपानेके लिए आम चुनावोंकी शरण ली है। यद्यपि आज सैकड़ों कांग्रेसी कार्यकर्त्ता जेलोंमें बिना मुक़दमा चलाए बन्द हैं, कई जगह कई तरहके प्रतिबन्ध हैं; फिर भी देशकी सबसे बड़ी प्रतिनिधि संस्था होनेके नाते कांग्रेसने इस चुनौतीको स्वीकार किया है। 'भारत छोड़ो' आगामी चुनावोंमें उसका नारा होगा। केन्द्रीय असेम्बलीके उसके चुनाव-घोषणापत्र की मुख्य बातें ये हैं—(१) कांग्रेस भारतके प्रत्येक नागरिकके लिए समान अधिकारों और समान अवसरोंकी समर्थक है। (२) वह सब जातियों और धार्मिक दलोंकी एकता और उनके बीच सहिष्णुता तथा सद्भावनाकी समर्थक है। (३) वह लोगोंके अपनी इच्छा और बुद्धिके अनुरूप उन्नति और विकास करनेके पक्षमें है। (४) वह प्रत्येक दल और प्रादेशिक क्षेत्रको बड़े ढाँचे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देनेकी हिमायत करती है। (५) वह प्रान्तोंका भाषा और संस्कृतिके आधारपर पुनर्संगठन करना चाहती है। (६) वह उन सब लोगोंके अधिकारोंकी समर्थक है, जो सामाजिक अत्याचार और अन्यायसे पीड़ित हैं और समानताके मार्गकी सब बाधाओं को उनके मार्गमें से हटाना चाहती है। (७) कांग्रेस एक स्वतन्त्र जनतन्त्रीय शासनको हिमायत करती है, जिसमें सब नागरिकोंके मूलभूत अधिकार विधान द्वारा सुरक्षित हों। (८) कांग्रेस संघीय विधानकी समर्थक है, जिसमें उसके अंगभूत प्रदेशोंको अधिकसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। (९) कांग्रेस भारतकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या दरिद्रताके अभिशापको दूर करेगी और जनसाधारणके जीवनके मापदण्डको ऊँचा करेगी। (१०) कांग्रेस उद्योगों और कृषिको आधुनिक आधारपर संगठित करने और सम्पत्तिके सब साधनों, उत्पत्ति और वितरणकी विधियोंपर समाजका नियन्त्रण स्थापित करनेके पक्षमें है, जिससे भारत एक सहकारी संगठन बन सके। (११) अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें कांग्रेस स्वतन्त्र राष्ट्रोंके संघकी स्थापनाकी हिमायत करती है। (१२) कांग्रेस सब पराधीन जातियोंकी स्वतन्त्रता और सर्वत्र साम्राज्यवादके उन्मूलनका समर्थन करेगी।

महामना मालवीयजीके शब्दोंमें 'आगामी चुनावोंमें मतदाताओंको अपना वोट किसे देना चाहिए, यह बहुत विवादका विषय नहीं रह गया है।' देशकी आज़ादीकी लड़ाईमें आज एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवसर उपस्थित है। इसके भविष्यपर चुनावोंका काफ़ी गहरा और निर्णायक असर पड़ेगा। आज जब समूचा साम्राज्यवादी शासन-यन्त्र, ब्रिटेनके भारतीय और ग़ैर-भारतीय दलाल, अपने-आपको क्रान्तिकारी तथा जनतन्त्रवादी कहकर जनताको धोखा देनेवाले स्वार्थसाधक और साम्प्रदायिक कठमुल्ला आदि सब-के-सब भारतकी राष्ट्रीय आकांक्षाका प्रतिनिधित्व करने और उसके लिए गोलियाँ-लाठियाँ खानेवाली कांग्रेसको पराजित एवं विघटित करनेपर तुले हुए हैं, जनताको भलीभाँति सोच-समझकर तय करना चाहिए कि उसके वोटका सही और सच्चा हक़दार कौन है?

श्रीमती सत्यवतीदेवीका बलिदान

यह जानकर हमें मार्मिक आघात लगा कि गत २१ अक्टूबरको लम्बी बीमारीके बाद दिल्लीकी प्रसिद्ध राष्ट्रकर्मिणी श्रीमती सत्यवतीदेवीका ३८ वर्षकी अल्पायुमें ही देहावसान हो गया। सहयोगी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के शब्दोंमें इस दुर्घटनाको जेलकी वेदीपर हुआ बलिदान ही कहा जायगा, क्योंकि आपका अधिकांश जीवन जेलमें ही बीता। जेल ही में आपको पहले प्लूरिसी हुई, जो आगे चलकर तपेदिक़ हो गई। जेलके दुर्व्यवहारके कारण ही आपका रोग बढ़ा और जेल-अधिकारियोंकी लापरवाहीके कारण ही समुचित इलाज नहीं हो सका। अगस्त ४२ में आपको नज़रबन्द किया गया था। जब आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया और जीवनके सम्बन्धमें डाक्टर निराश हो गए, तो आपको छोड़ा गया—पर इस बेहूदा शर्तके साथ कि आप दिल्ली न जायँ, जहाँ कि आपका सब-कुछ था! इस प्रतिबन्धको तोड़कर जीवन और मृत्युके बीचमें मँडराती सत्यवतीजी जब दिल्ली पहुँचीं, तो आपको गिरफ्तार कर लिया गया! पर आपकी हालत देखकर काष्ठबुद्धि अधिकारियोंको अपनी मूर्खतापर शर्म आई और आपको कुछ ही अर्से बाद छोड़ दिया गया। इलाजके लिए आप अस्पताल में भर्ती हुईं और फिर वहाँसे आपकी लाश ही बाहर निकली।

सत्यवतीजीका जन्म स्वामी श्रद्धानन्दजीकी सुपुत्री श्रीमती वेदकुमारीजीकी कोखसे हुआ था। गार्हस्थ्यके सुख-जैसी किसी चीज़का उपभोग आपने अधिक दिनों तक नहीं किया। लाला लाजपतरायके बलिदानके बाद आपने क़ीमती वस्त्राभूषण त्याग दिए और आजीवन देश-सेवा करनेका व्रत लिया। पहली बार आप १९३० में गिरफ़्तार और दण्डित हुईं, जब कि आपकी अवस्था केवल २३ वर्षकी थी। इसके बाद तो आपने कभी चैन नहीं लिया और १९३२, ३४, ३५, ३६, ३८, ३९, ४१ तथा ४२-४५ में अनेक बार गिरफ़्तार और दण्डित हुईं। सदा आपका एक पाँव कार्यक्षेत्रमें और दूसरा जेलमें रहा। दिल्ली और उसके आसपासके गाँवोंकी कोई ऐसी राष्ट्रीय प्रवृत्ति न थी, जिसके श्रीगणेश या संचालनमें आपका हाथ न हो। पुलिस और सेनाकी ज़्यादतियोंसे आप कभी पीछे नहीं हटीं। 'हिन्दुस्तान टाम्इस'ने १९३० में एक जलूसका नेतृत्व करते हुए आपको भारतीय जोन आफ़् आर्क कहा था। पर हमें तो आप ला-पैशोनारिया ही अधिक जान पड़ीं—वही कर्मठता, दृढ़निश्चय, साहस, शत्रुको ललकारकर आगे बढ़नेकी प्रवृत्ति, बिखरे केश और मृदु हास लिए कठोर मुख-मुद्रा। न-जाने कितनी महिलाओंको सार्वजनिक क्षेत्रमें लानेका श्रेय आपको है। श्रीमती सरोजिनी नायडूने आपका स्मारक बनानेके लिए जो एक लाख रुपएकी अपील की है, हम उसका हृदयसे स्वागत एवं समर्थन करते हैं।

आगरकरजीका देहावसान

हिन्दी-संसारमें यह दुःसंवाद बड़े शोकके साथ पढ़ा जायगा कि गत २३ अक्टूबरको केवल ५८ वर्षकी आयुमें 'हिन्दी-स्वराज्य'-सम्पादक श्री सिद्धनाथ माधव आगरकरका देहावसान हो गया। आगरकरजीका निधन हिन्दी-पत्रकारिता और मध्य-भारतके रियासती जीवनके लिए बहुत बड़ी क्षति है। जिस ईमानदारी, स्वाभिमान, ऐच्छिक ग़रीबी, सादगी और आत्मत्यागके साथ आगरकरजीने हिन्दी-जगत् और मध्य-भारतकी पीड़ित-शोषित प्रजाकी सेवा की है, उसे बहुत अधिक लोग नहीं जानते। येनकेनप्रकारेण पैसा बटोरने और वाहवाही लूटनेकी प्रवृत्तिसे बचकर आगरकरजीने जो सेवाएँ की हैं, उनका मूल्य

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और महत्व अमित है। पहले आप कई वर्ष तक 'कर्मवीर', 'मध्यभारत' और 'प्रणवीर'के सम्पादनमें हाथ बँटाते रहे और फिर १९३१ में मित्रोंके सहयोगसे 'हिन्दी स्वराज्य' निकालना आरम्भ किया। आपके रचित ग्रन्थोंमें कांग्रेसका संक्षिप्त इतिहास तथा विद्यार्थियोंका स्वास्थ्य और अनूदितमें लोकमान्य तिलक तथा सावरकरके जीवन-चरित, मानसोपचार-पद्धति और अहंभाव की गूँज उल्लेखनीय हैं। 'निरंजन' नामसे आप प्रायः हास-परिहास भी लिखा करते थे। अगस्त १९४२ में पकड़े जानेके बाद जेलमें ही आपको रक्त-चापका शिकार होना पड़ा। जब रक्तका दबाव २६० तक पहुँच गया, तो अविचारी अधिकारियोंने 'जीवित मृतक'के रूपमें आपको छोड़ा। इसके बाद जो आप रोग-शय्यापर पड़े, तो विषमज्वरके आघातसे आपका हृदय दुर्बल होता गया, यकृत बढ़ गया तथा गुर्दे निष्क्रिय हो गए। इसीके परिणाम-स्वरूप २३ अक्टूबरको प्रातःकाल ४ बजे आपका शरीरान्त हो गया। हमें यह जानकर सन्तोष हुआ कि मध्य-भारतके अनेक कार्यकर्त्ता आगरकरजीकी स्मृति-रक्षाके रूपमें 'हिन्दी स्वराज्य'को स्थायी एवं सुव्यवस्थित बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

'भानु' अस्त हो गए!

अभी हाल ही में महामहोपाध्याय पं० जगन्नाप्रसाद 'भानु' के निधनके रूपमें पिंगल और काव्यका एक अधिकारी विद्वान उठ गया। वियोग तो सदा दुखद ही होता है; पर 'भानु'जीने पूर्ण वय प्राप्त की और अस्त होनेसे पूर्व अपना जो प्रकाश हमें दिया, वह सदा आदर और श्रद्धापूर्वक हमें उन्हें याद करनेके लिए प्रेरित करता रहेगा। हिन्दी जब अपनी शैशवावस्थामें ही थी, तभी आपने उसे पुष्पित-पल्लवित करनेमें बहुमूल्य योगदान दिया। आपके लिखे 'काव्यप्रभाकर' और 'छन्दप्रभाकर' हिन्दी ही नहीं, सम्भवतः अन्यान्य भारतीय भाषाओंमें भी अपने ढंगके बेजोड़ शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त छन्द-सारावली, अलंकार-दर्पण, हिन्दी-काव्यालंकार, अलंकार-प्रश्नोत्तरी, रस-रत्नाकर, काव्य-कुसुमांजलि, नायिका-भेद शंकावली, नवपंचामृत रामायण, श्रीतुलसीतत्वप्रकाश, श्रीतुलसीभावप्रकाश, काल-विज्ञान, अंक-विलास, ग्रहण-दर्पण, तुम्हीं तो हो, जय हरिचालीसा, शीतला माता-भजनावली आदि आपके उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। अंगरेज़ी और छत्तीसगढ़ीमें भी आपने कई ग्रन्थ रचे। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंगरेज़ी, उड़िया और मराठीके आप अच्छे विद्वान थे। आपका जन्म ८ अगस्त, १८५९ को नागपुरमें हुआ था। १९१३ में बिलासपुरके सैटलमेण्ट-अफ़सरके पदसे पेंशन लेनेके बादसे आप वहीं रहकर साहित्य-सेवा कर रहे थे।

एशियाका स्वाधीनता-संग्राम

जापानी साम्राज्यवादके अन्तके साथ ही समूचा एशिया आज स्वाधीनताकी प्रसव-पीड़ासे कराह उठा है। बर्मा, मलाया और सिंगापुरमें यद्यपि मुक्तिकामी जनतापर फिर शस्त्र-बलसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन थोपा जा रहा है तथा कोरियाको स्वतन्त्र करनेकी घोषणा करके भी वहाँसे सेनाका कब्ज़ा हटाया नहीं गया है; पर हिन्द-चीन और इण्डोनेशियाने राष्ट्रीय सरकारोंकी स्थापना कर फराँसीसी और डच साम्राज्यवादके फिर थोपे जानेका सशस्त्र विरोध किया है। आश्चर्य है कि देश-भरके विरोधके बावजूद ब्रिटिश अधिकारी भारतके इन पड़ोसियोंके स्वाधीनता-आन्दोलनोंको कुचलनेके लिए भारतीय सैनिकोंको काममें ला रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंकी ही भाषामें फराँसीसी और डच साम्राज्यवादी भी इन देशोंके लोगोंको स्वशासन और सहयोगके आश्वासन दे रहे हैं, जिनपर कोई भी विश्वास नहीं कर रहा।

गुलाम हिन्द-फौजके कारनामे

हिन्द-चीनकी राजधानी सैगोनमें ब्रिटिश व भारतीय सैनिकों द्वारा किए गए बलात्कार, लूट-मार व अग्निकाण्डोंके सम्बन्ध में वहाँकी चीनी बस्ती चोलोनसे निकलनेवाले एक पत्रने लिखा है—"१९ अक्टूबरको वूलवार्ड अरामण्ड रोस्यूमें ५ गुरखे एक मकानके अन्दर घुस गए और वहाँ उन्होंने एक चीनी स्त्रीके साथ बलात्कार करनेका प्रयत्न किया। किन्तु स्त्री बचकर निकल गई। इसपर उन्होंने मकानसे लगभग २००० पियस्टर मूल्यका माल लूट लिया। उसी दिन ५ गुरखे एक अन्य चीनीके मकान में घुसे और उसके हाथ-पैर बाँध दिए। इसके बाद उन्होंने उसकी पत्नीके साथ बारी-बारीसे बलात्कार किया। इस बीचमें पतिने उस रस्सीको तोड़ दिया, जिससे उसे बाँधा गया था। इसपर गुरखोंने उसे गोलीसे घायल कर दिया। २५ अक्टूबरकी रातको तानडोंग-डिन्ह जलपान-गृहके समीप एक चीनीकी सोनेकी घड़ी व अँगूठी छीन ली गई। २६ अक्टूबरको ३ गुरखे एक छप्परवाले मकानमें घुस गए और वहाँ एक चीनी स्त्रीके साथ बलात्कार करनेकी चेष्टा की। इतनेमें एक चीनीने वहाँ पहुँचकर उस स्त्रीकी सहायता की और एक गुरखेको लकड़ीसे पीटकर घायल कर दिया। इसपर वे अपनी पल्टनमें भाग गए और वहाँ जाकर रिपोर्ट की कि हमपर अनामियोंने हमला किया है। बस फिर क्या था, एक मोटर-लारी गुरखा सैनिकोंसे भरकर घटना-स्थलपर पहुँची और २०० मकानोंमें आग लगा दी। जब लोग जलते हुए घरोंसे अपना माल निकालने लगे, तो गुरखोंने उनका सब सोना-चाँदी लूट लिया। रातको जब गृह हीन चीनी परिवार खुलेमें सोए, तो गुरखे १२ स्त्रियोंको उठा ले गए; जिनका अभी तक कोई पता नहीं चला है। एक अन्य बस्तामें ४ गुरखोंने एक मकानमें शस्त्रोंकी तलाश करते समय बहुमूल्यवान वस्तुएँ अपनी जेबोंमें भर लीं और स्त्रियोंके साथ छेड़खानी की।"

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

दी पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

(स्थापित १८९५)

* *
*

शक्ति, स्थायित्व और पूर्णांगताका स्तम्भ ।

सब से अधिक सुरक्षा और तत्परता से काम करता है ।

हेड आफ़िस
४७, दी माल, लाहौर

एजेंसियाँ
लन्दन और न्यूयार्क

कारोबारी पूँजी ५५ करोड़ से अधिक

भारत भर में १९१ शाखायें

अपना हिसाब इस बैंकके साथ खोलिये ।

योधराज,
चेयरमैन एण्ड जेनरल मैनेजर

CC-0. Jangamwadi Math Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

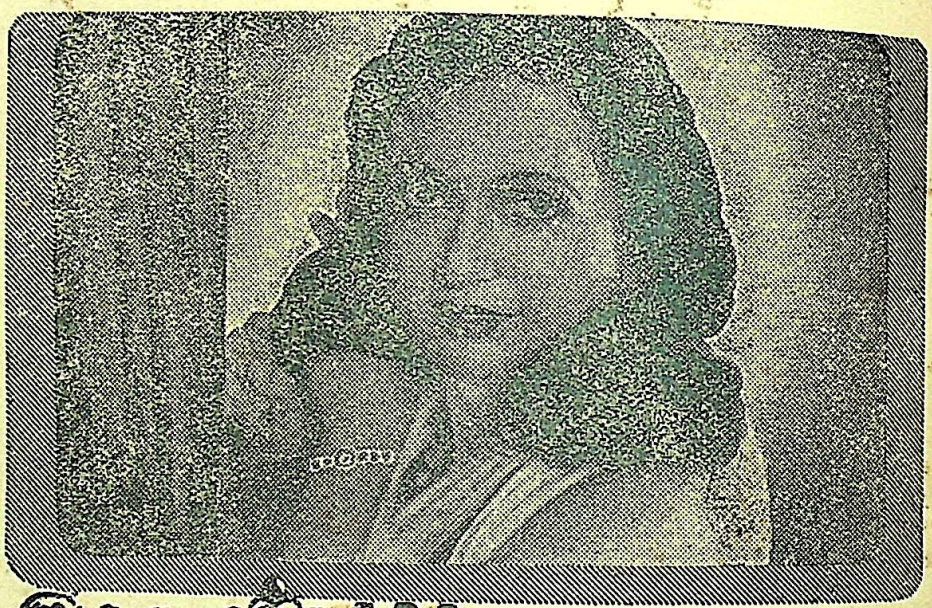

सौन्दर्यकी रानी लीला देसाई "ओटीन"के चमड़ेको साफ़ करनेके विशेष गुणोंकी प्रशंसक हैं और यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि इस कामके लिए "ओटीन" अद्वितीय है।

I always use Oatine Cream before retiring. It is so pleasant and soothing and cleanses my skin from anything left by dust or make up. I recommend it to all my friends.

Leela Desai

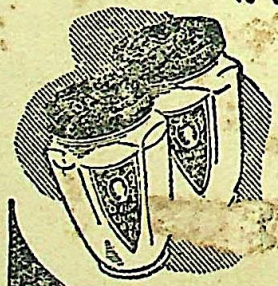

Oatine

SNOW for DAY • CREAM for NIGHT

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अक्टूबर, १९४५

विशालभारत

सम्पादक—मोहनसिंह सेंगर

Math G... Van... ...gotri Gyaan Kosha

यह मैंने कभी नहीं सोचा था कि इतना जल्द मुझे आराम हो जायगा।

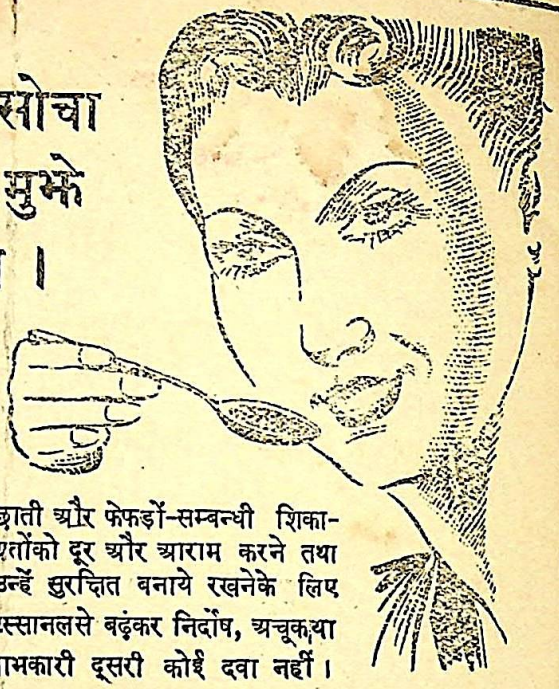

आखिरकार मुझे खांसीकी दवा मिल ही गई, जो शीघ्र आराम करनेके साथ-साथ गुणकारी भी है।

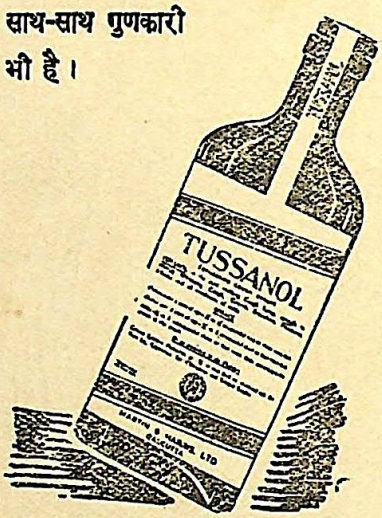

छाती और फेफड़ों-सम्बन्धी शिकायतोंको दूर और आराम करने तथा उन्हें सुरक्षित बनाये रखनेके लिए टस्सानलसे बढ़कर निर्दोष, अचूक या लाभकारी दूसरी कोई दवा नहीं।

TUSSANOL
COUGH SYRUP

MARTIN & HARRIS, LTD. CALCUTTA

कासाबिन

श्वास और खांसीके रोगोंमें आशु फलप्रद

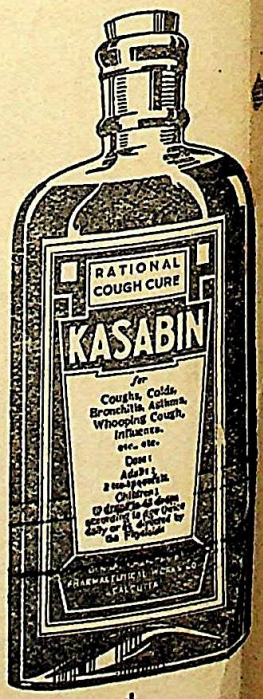

जिन्हें श्लेष्माका घात, ज़रा-सी ठंडसे छींक, सर्दी, खांसी, टान्सिलका प्रदाह या दमा आदिमें उपद्रवोंका प्रकोप हो, वे सुनिर्वाचित उपादानोंसे प्रस्तुत इस सुखसेव्य औषधकी कुछ मात्राओंके सेवनसे ही आशातिरिक्त उपकार लाभ करेंगे।

कासाबिन बच्चोंको भी निर्विघ्न रूपसे दिया जाता है।

बेंगल केमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वर्क्स लि०,

कलकत्ता : : बम्बई

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुधासिन्धु-बालसुधा

एवं प्रख्यात निजी पेटेन्ट तथा शुद्ध आयुर्वेदिक औषधियोंके निर्माता

सुख संचारक कम्पनी, लि०,

सुख संचारक बिल्डिंग, सुख संचारक पोस्ट-आफिस,

मथुरा

युक्त-प्रान्तमें

अपने ढंगका एकमात्र विश्वसनीय विशालकाय कार्यालय ।

हमारी विशेषताएँ

१—हमारा अपना निजी ५५ वर्षीय अनुभव ।

२—औषधें वैद्यककी ऊँचेसे ऊँची उपाधि-प्राप्त विशेषज्ञ और अनुभवी वैद्यराज, उप-वैद्यराजके निरीक्षणमें निर्माण होती है ।

३—अप्राप्य व दुष्प्राप्य खनिज एवं वनौषधियोंके प्राप्त करनेके संगठित साधन ।

४—कड़ी, गठीली वनस्पतियोंके चूर्ण-विचूर्ण करने, गोलियाँ, टिकियाँ बनाने व कार्क फिट करने और अन्य विभिन्न कार्योंके लिये आधुनिक पद्धतिकी मशीनें ।

५—औषधियोंका अधिक परिमाणमें तैयार करने तथा इकट्ठा सामान मंगानेके कारण सस्ती और सर्वोत्तम तैयार होना ।

विशेष विवरणके लिये
वृहत सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय-सूची : दिसम्बर, १९४५

१. डंका ३३७ ; २. अहमदनगरकी डायरी ३३८ ; ३. तू अपना इतिहास कहेगा ? ३३९ ; ४. अखिल-भारतीय साहित्यकार-सम्मेलन ३४० ; ५. स्व० आगरकरजी ३४१ ; ६. मज़दूर-सरकार और भारत ३४४ ; ७. शहीद बहन सत्यवती ३४७ ; ८. कवि ३५२ ; ९. सन्धान ३५३ ; १०. लोक-साहित्यका सीमा-विकास ३५६ ; ११. नई दृष्टि ३५९ ; १२. कवि अजवेश महापात्र ३६१ ; १३. रूपन ३६३ ; १४. भक्ति-कालके चित्रकार ३६६ ; १५. रानी और मज़दूर ३६८ ; १६. रक्त-दीप ३७१ ; १७. जैनेन्द्रके उपन्यासकी भाषा ३७२ ; १८. शून्यको ओर ३७४ ; १९. कांग्रेस ३७६ ; २०. गांधीजीसे मिलनेवाले ३७७ ; २१. क्रिस्टोफर मार्लो ३७८ ; २२. मुसाहिबजू ३८१ ; २३. मनकी बात ३८५ ; २४. गांधी-योजना ३८९ ; २५. फिल्में और हमारी सामाजिक समस्या ३९२ ; २६. चिट्ठी-पत्री ३९४ ; २७. समालोचना ३९६ ; २८. चयन ३९९ ; २९. सम्पादकीय विचार ४०१ ।

रजिस्टर्ड

श्री चित्रकोटमें श्वास (दमा) की प्रसिद्ध जड़ी-बूटी कैलाश हिल्स हर्ब्स मार्गशीर्ष सुदी (पूर्णिमा) ता० १९-१२-४५ की रात्रिको एक ही खुराक सेवन करनेसे श्वास (दमा) हमेशाके लिए जड़से नष्ट हो जाता है ।

नोट :—मिस्टर शम्भूदयाल नायब दीवान एण्ड जज मकराई स्टेटसे लिखते हैं कि आपकी दवासे २० रोगियोंमें १७ रोगी आरोग्य हो गये ।

दवा मँगानेका पता : ब्रह्मचारी जी० दास
श्री सिद्ध ब्रह्मचर्य-सेवा-आश्रम
पो० चित्रकोट (यू०पी०)

शूल किसी प्रकारके अम्ल शूल आदिके लिए "सुलारी" अटल अचूक दवा है । एक खुराकमें शूल बन्द होता है । एक शीशी दवासे पूर्ण आराम होता है । इसके लिए गारण्टी है । हज़ारों आरोग्य लाभ कर चुके हैं । मूल्य २॥) ।

कोढ़ निकृष्टतम कोटिके कोढ़ (क्षत, गलित, असार) के लिए जहाँ सारी चिकित्साएँ व्यर्थ हो चुकी हों, "लेप्रोसू" जादूकी तरह काम करता है । २० दिनोंमें पूर्ण और जड़से आरामकी गारण्टी । पूरे खुराककी दवाका मूल्य १५॥) और प्रयोगके लिए १०) ।

माया देवी
२०, मदनदास लेन, ढाका

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

के

प्रसिद्ध प्रकाशन—

१ नवयुगके गान—श्री 'मिलिन्द'का कविता-संग्रह १)
२ विभूति—डा० रामकुमार वर्माके एकांकी नाटक २)
३ शहरका अन्देशा—उच्चकोटिके हास्य एवं व्यंग्य २)
४ पृथ्वीराजकी आँखें—डा० वर्माके एकांकी नाटक १)
५ पाँचधागे—रक्षा-बन्धन विषयक पाँच कहानियाँ १)
६ शासन-शब्द-संग्रह—श्री हरिहरनिवास द्विवेदी ३)
७ गीता-परिचय—श्री विजयगोविन्द द्विवेदी-लिखित ॥)
८ ग्राम-चिन्तन—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले १॥)
९ अश्वपरीक्षा—राजराजेन्द्र कर्नल मा० न० शितोले २॥)
१०-११ ग्राम-पुस्तकालय-माला—मूल्य प्रति पुस्तक ॥)
१. मधुमक्खी २. जंगल
१२ वे चहरे—कहानी-संग्रह (श्री शम्भुनाथजी) ॥)
१३ चिन्तन-कण—श्री 'मिलिन्द'का निबन्ध-संग्रह १)
१४ नागरीका अभिशाप—श्री चन्द्रबली पांडे १)

हमारे प्रकाशनोंके विषयमें मद्रास-प्रान्तके भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री श्री सी० राजगोपालाचारीकी राय—

I was very pleased to see your publications. Excellent work !

C. Rajagopalachar.

मिलनेका पता

विद्यामन्दिर-प्रकाशन
मुरार (ग्वालियर)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

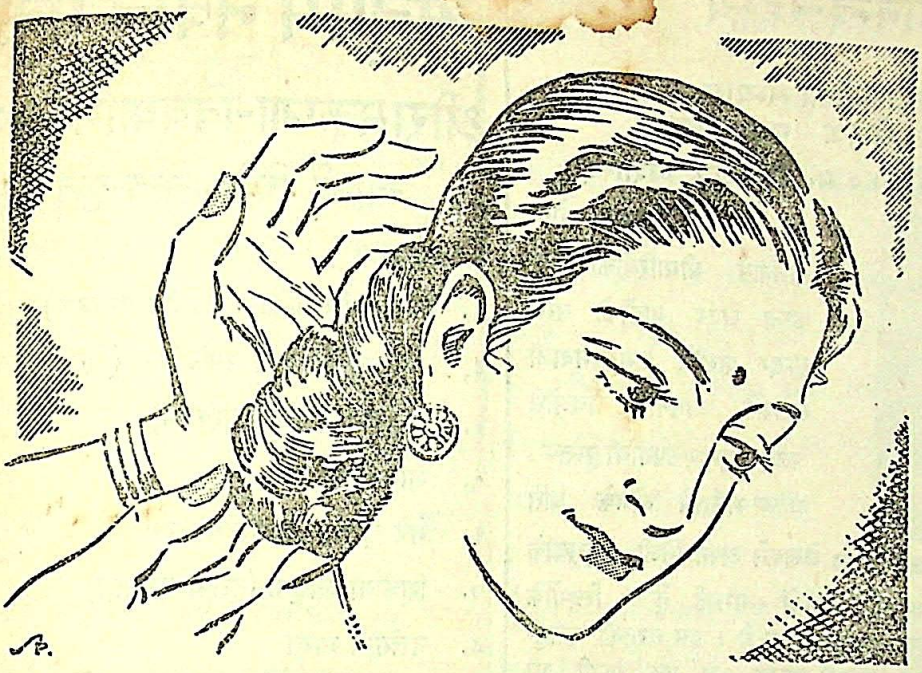

त्योहारके इस शुभ अवसरपर
आपके सौन्दर्यको प्रतिबिम्बित होने दीजिए !

मार्गो सोप

नीमका यह साबुन चमड़ेके स्वास्थ्यके लिए पिछले २५ वर्षोंसे प्रसिद्ध है।

नीम टूथ पेस्ट

इसमें नीमकी दँतुअनके सभी गुण हैं। दाँतोंके स्वास्थ्यके लिए यह सर्वश्रेष्ठ है।

कस्टोरल

बड़ी मीठी खुशबूवाला बालोंमें लगानेका अंडीका तेल, जिसमें विटामिन 'एफ' है।

सिलट्रेस

बालोंको रेशम-सा मुलायम बनानेवाला सुगन्धित शैम्पू, जो नीम, नारियल और जैतूनके तेलोंसे तैयार किया गया है।

रेनुका

नीमका सुगन्धित पाउडर, जो चमड़ीके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

कलकत्ता केमिकल
कलकत्ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आनन्द-रहस्य

या

योगासनोंका अभ्यास

मूल तामिल लेखक— एस० सुन्दरम्

अनुवादक—पं० क० म० शिवराम 'विशारद'

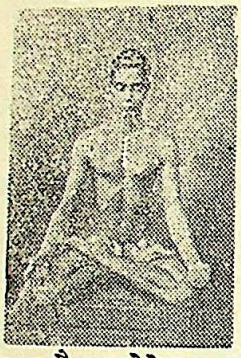

योगासन, प्राणायाम, योग-साधनासे बीमारियोंको दूर करना आदि बातोंको सरल सुन्दर शैलीमें समझानेवाली लेखकके आसनोंके चित्रोंसे अलंकृत सुन्दर उपयोगी पुस्तक। दक्षिण-भारतमें योगके प्रति उत्साह पैदा करनेके कारण मूल लेखकने अपने निजी अनुभवोंके आधारपर सारी बातें आकर्षक शैलीमें समझाई हैं। स्त्रियोंके लिए बहुत उपयोगी एक अध्याय अलग है। इस तरहकी स्वानुभवपूर्ण और सरल योग-सम्बन्धी पुस्तक अब तक किसी भी भाषामें प्रकाशित नहीं हुई। मूल्य ३) रु०, डाक-खर्च ।=)

२. योगासन-चित्र मूल्य ।), डाक-व्यय =)

पुस्तकोंका मूल्य मनी-आर्डरसे भेजें, वी० पी० नहीं भेजी जायगी। पत्र-व्यवहार अंगरेज़ीमें करें। पुस्तक मिलनेका पता :

योग पब्लिशिंग हाउस,

टासकर टाउन, बैंगलोर।

केवल एक दिनमें

करामाती मिस्मेरिज़म

द्वारा लड़के को ज़मीन पर लिटाकर और चादर से ढककर अजीब व ग़रीब प्रश्नों के सही-सही उत्तर पूछना, दहकती आग पर आप चलना व दर्शकों को चलाना, किसी भी समय सब दर्शकों की पीठियों में ६½ इत्यादि बना देना, दीवार में आग लगा देना, हुँह में से आग की लपटें निकालना, पानी के अन्दर आग के अङ्गारों का नाच कराना और आदमी को उड़ा देना इत्यादि अनेक विलक्षण बातों के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी करिश्मे सीखकर

→दूसरे ही दिन←

नवाब, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों को दिखाकर बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों, बुद्धिमानों और प्रोफ़ेसरों की बुद्धि चकर और हैरत में डालकर टनाटन रुपये पैदा करो। मामूली हिन्दी पढ़ लेनेवाला यह सब एक दिन में जान जाता है। किसी भी प्रकार के अभ्यास व सिद्धि की झंझट नहीं—ऐसा हमारा दावा और गारण्टी है। फ़िलहाल इसकी क़ीमत केवल पाँच रुपया।

देहली के प्रतिष्ठित पत्र "वीर अर्जुन" तथा कुँवरसाहब जी की ओरसे सिफ़ारिश के साथ सैकड़ों प्रशंसापत्र प्राप्त।

यह सब एक दिन में न आवे तो क़ीमत वापिस।

दी यूनाइटेड वण्डरफुल मेजिकल कम्पनी

विभाग नं० २५,

मुरादाबाद, यू० पी०

अनुपम नवीन प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

स्वामी विवेकानन्द-कृत पुस्तकें

१.	प्रेमयोग	मूल्य ०-१४-०
२.	प्राच्य और पाश्चात्य (द्वितीय संस्करण)	,, ०-१४-०
३.	आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (द्वितीय संस्करण)	१-४-०
४.	परिव्राजक (द्वितीय संस्करण)	,, ०-१४-०
५.	भक्तियोग	,, ०-१४-०
६.	मेरे गुरुदेव (द्वितीय संस्करण)	,, ०-७-०
७.	शिकागो वक्तृता (तृतीय संस्करण)	,, ०-६-०
८.	वर्त्तमान भारत	,, ०-६-०

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखिए।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर

(सी० पी०)

दमा और क्षय

एक दिनमें इनके कीटाणु मर जाते हैं। भुआलके मृत राजकुमारको पुनः जीवित करनेवाले महात्मा धर्मदास नागाकी 'एस्मोडायना' की एक शीशीसे रोगी बिलकुल अच्छा हो जाता है। मूल्य ३) रु०। पत्र-व्यवहार अंगरेज़ीमें करें। सब जगह एजेंटोंकी ज़रूरत है?

W. Dye & Co., P. O. Wari, Dacca (B).

नक़ालोंसे सावधान

चित्रकूटकी श्वास-दमाकी अचूक जड़ी

(रजिस्टर्ड हिमाल्यास बूटी)

श्री १०८ महात्मा सिद्ध बाबाजीकी १०० वर्षसे विख्यात अनुभव सिद्ध असली जड़ी। केवल १ मात्रा ता० १९-१२-४५ मार्गशीर्षक पूर्णिमाकी रात्रिको सेवन करके सदैवके लिए नीरोग हो जाइये।

नोट :—वृन्दावन, गुरुकुल वैदिक विश्वविद्यालयसे श्री गौतम शास्त्रीजीने लिखा है कि इस जड़ीसे ११ रोगियोंकी दवापर ९ रोगियोंका उपयोग सफल हुआ, रोगी नीरोग हो गये। पता—

श्री सिद्ध बाबा, सेवा आश्रम, पो० चित्रकूट (यू.पी.)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिन्दीकी लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका

"आजकल"

मई, १९४५ से हिन्दीमें "आजकल" नामसे एक लोकप्रिय सचित्र मासिक पत्रिका निकलने लगी है। इसमें हिन्दी साहित्य, भारतीय संस्कृति, विदेशोंकी जानकारी तथा ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी खोजपूर्ण लेख व सुन्दर कहानियाँ होती हैं। इसकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मांगको देखते हुए आपको अपनी प्रति अपने यहाँके एजेंटसे सुरक्षित करा लेनी चाहिए।

पृष्ठ ४८। एक प्रतिका मूल्य छः आने, वार्षिक ५)

रेलवे-बुकस्टाल व बड़े-बड़े शहरोंके सब पुस्तक-विक्रेताओंके यहां मिलता है।

आर्डरके लिए निम्न पतेपर लिखिए—

युनाइटिड पब्लिकेशन्स

पोस्ट बाक्स १६६, दिल्ली।

क्या आपको आवश्यकता नहीं है?

४० वर्षके अनुभवी डी० सी० भट्टाचार्य HMD की

स्त्री-पुरुषके लिए औषध

मेनसो—कितने ही दिनोंका ऋतुबन्ध क्यों न हो, एक ही दिनमें स्वाभाविक रूपमें स्राव करके पीड़ा दूर करता है और शीघ्र ही पहलेका-सा स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसका व्यवहार किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। मेनसो पूर्ण निर्दोष और निर्भर-योग्य औषध है। मूल्य २)।

फेक्टो—उत्तम और निरापद गर्भरोधक है। मूल्य २)।

रोज़न—निस्तेज और दुर्बल पेशियोंमें रक्तका संचारकर अनिर्वचनीय सुख भोगनेके योग्य बनता है। मूल्य सिर्फ ४)।

एसेप्टो—बिना अस्त्रके ही मोतियाबिन्दको काटकर पूर्ण दृष्टि-शक्ति प्रदान करता है। सभी प्रकारके नए और पुराने नेत्र-रोगोंके लिए यह निरापद ब्रह्मास्त्र है। मूल्य २)।

मेनसो चेम्बर

१२०, आशुतोष मुखर्जी रोड, कलकत्ता

फोन : साउथ २४६७

साहित्य-निकेतन, कानपुर

के

नवीन, श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध प्रकाशन

संघर्ष—लेखक हिन्दीके प्रमुख कहानीकार एवं उपन्यास-प्रणेता—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक।

कौशिकजीका नवीनतम और श्रेष्ठ उपन्यास। बहुत ही रोचक एवं शिक्षाप्रद। भाषा सरल, सुबोध एवं पुष्ट। रियासतोंके जीवनका सरल एवं सजीव वर्णन। मनोवैज्ञानिक चित्रणके साथ ही विशेष रूपसे रोचक— मूल्य ३॥)

संस्कृत साहित्यकी रूपरेखा—लेखक साहित्यरत्न पं० चन्द्रशेषर पाण्डेय एम० ए० शास्त्री तथा श्री शान्तिकुमार व्यास एम० ए०।

हिन्दीमें संस्कृत साहित्यका अपने ढंगका पहला इतिहास, परिचय एवं आलोचना। आगरा-विश्वविद्यालयकी बी० ए० की परीक्षाके लिए स्वीकृत। विद्यार्थियोंके साथ ही साहित्यिकोंके लिए भी विशेष रूपसे उपयोगी। हिन्दी एवं संस्कृतके श्रेष्ठतम विद्वानों द्वारा प्रशंसित— मूल्य ३॥)

भारतीय वैज्ञानिक—लेखक श्री श्यामनारायण कपूर।

अपनी प्रतिभा एवं विज्ञान-साधनासे संसारमें भारतकी कीर्ति-पताका फहरानेवाले आधुनिक समयके बारह श्रेष्ठतम भारतीय वैज्ञानिकोंके जीवन-चरित्र, अन्वेषण एवं आविष्कारोंका रोचक और प्रामाणिक वर्णन— मूल्य ३)

सूर : जीवनी और ग्रन्थ—लेखक श्री प्रमनारायण टण्डन।

महाकवि सूरदासके जीवन-चरित्र, उनकी रचनाओंका सरल, सुबोध एवं संक्षिप्त विवरण— मूल्य ॥।)

'प्रसाद'के नाटकीय पात्र—लेखक प्रो० जगदीशनारायण दीक्षित एम० ए०।

'प्रसाद'के समस्त नाटकीय पात्रोंका विस्तृत अध्ययन तथा मार्मिक एवं गम्भीर विवेचन। पात्रोंके चरित्रोंको भलीभाँति समझने और नाटकोंके पूर्ण रसास्वादनके लिए अपरिहार्य पुस्तक

मूल्य लगभग ३)

(प्रेसमें)—

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फोन :—७३६२

तार :—गॉडल्स प्रेस, नई दिल्ली

हमारी नवीन और आकर्षक योजना

अधिकृत पूँजी
साधारण शेयर १०००००)
आजीवन साहित्य-सदस्य शेयर २५)
प्रीफरेंस शेयर १००)
१००)

हमारा एक आजीवन-साहित्य-सदस्य शेयर खरीदने पर आपको आजीवन हमारे सब आगामी प्रकाशनोंकी एक-एक प्रति तथा एक मासिक पत्र निःशुल्क मिलेगा, परन्तु जो ३१ दिसम्बर १९४५ तक सदस्य बन जावेंगे, उन्हें पिछले प्रकाशन भी भेंट-स्वरूप दिये जावेंगे। विस्तृत विवरणके लिए हमें लिखिये।

उपन्यास

१—स्वाधीनताके पथपर मूल्य ६)
(श्री गुरुदत्त)
२—पथिक " ६)
३—उन्मुक्त प्रेम " ६)
४—राजसी कलाकार (प्रेसमें) . १॥)
(श्री सीतेश)
५—आयुष्मती (प्रेसमें) १॥)
(श्रीमती प्रभादेवी)

कहानी

१—अध्यापिका (श्री रामप्रताप गॉडल) १॥)
२—यहाँ आँसू बहाना है मना १॥)
(श्री राधेश्याम मिश्र)
३—मालनियाँ ऐसी बनी (प्रेसमें) १॥)
(श्रीरामशरण शर्मा)

नाटक

१—तपस्विनी (श्रीमती प्रकाश गॉडल) १॥)

कावता

१—जौहर (श्री सुधीन्द्र) २)
२—चित्तौड़ (श्री परदेशी) १)

मनोविज्ञान

१—बच्चोंकी आदतोंका विकास ३)
(श्री राममूर्ति मेहरोत्रा)

समाजोपयोगी

१—विवाह और विच्छेद ॥)
(श्री रा० प्र० गॉडल)

स्वास्थ्य

१—भोजन (श्री गुरुदत्त) ।=)

ENGLISH

1. The Bio. Economic Problem of India ... Rs. 3/-
(By Dr. A. Nader, M.A., Ph.D.)
2. Humanism or The Human Religion
(By Swami Krishnanand) Rs. 2 -
3. Hindustani (Hindi) Self Taught
(for those who know English) *In Press*
by Miss Ram, M.A. (Cantab),
London Teacher's Diploma.

विद्या मन्दिर लिमिटेड

१२।६० कनॉट सरकस, नई देहली

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पाठक इस विशेषांककी आतुरतासे बाट जोह रहे हैं।

उद्यम

डेअरी विशेषांक

१५ जनवरीको प्रकाशित होगा !

खालिस और सस्ता दूध कहाँ मिलेगा ? यही एक प्रश्न आज प्रत्येक छोटे-बड़े शहर निवासी एक दूसरेसे पूछते हैं। प्रस्तुत डेअरी विशेषांकका सहायतासे यह प्रश्न अत्यन्त विश्वासपूर्वक हल किया जा सकेगा।

इस लाभदायक व्यवसायकी कोई भी अन्य पूंजीमें आसानी से कर सकता है। फिलहाल इस धन्धेको करनेवाले अथवा करनेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तियोंको प्रस्तुत डेअरी विशेषांकसे बड़ी सहायता मिलेगी।

डेअरी विशेषांककी कीमती रीज० डा० व्यय सहित रु० १-४-० है। 'उद्यम' का वार्षिक रु० ५-८-० भेजकर शीघ्र ही ग्राहक बननेवालोंको डेअरी अंक अवश्यह ही मिलेगा। शीघ्रता कीजिए।

हिन्दी उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर

D. N. BOSE'S HOSIERY FACTORY

"SANKHA & PADMA"

BRAND

GENJEES

STAND FOR QUALITY & EXCELLENCE

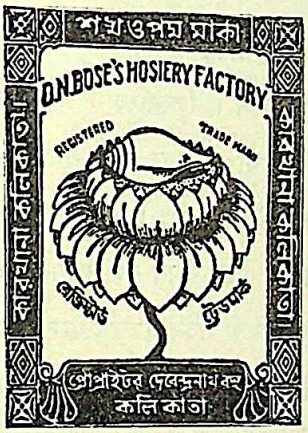

Pelican Shirt
Colour-Shirt
Super Fine
Lady Vest
Kulty Shirt
Himani
Sho-Well
Grey Shirt
Sandow
Silkot

EACH & EVERY ITEM FAVOURITE TO ALL

ASK FOR THE ABOVE-RENOWNED BRAND

FACTORY: 36-1A, Sarkar Lane, Calcutta.

'Phone: B. B. 6056.

प्यारी बहनजी

अगर किसी बहनके ५० वर्षकी कम उम्र या किसी बीमारी की वजहसे माहवारी हैज़ बन्द हो गये हों या खुलकर न आते हों, तो वह बहन मेरे पास आयें, मैं उनको अपनी सौ फी-सदी मुजर्रबा दवाई **मासिक धारा** दूँगी। यह दवाई इस कदर तेज़ है कि इसकी एक खुराकसे ही कई महीनोंके रुके हुए माहवारी हैज़ खुल जाते हैं और तीन खुराकसे तमाम रुका हुआ खून निकलकर बचादानी बिलकुल साफ़ हो जाती है। कीमत तीन खुराक ७) रु०।

रक्त-लोहाम्ला—बहनें यह दवा इस्तेमाल न करें, क्योंकि इससे हमल फौरन गिर जाता है।

पाम-रोक दवा—अगर आप कमज़ोरी या बीमारीमें बच्चा पैदा होनेकी तक़लीफ़को बरदाश्त न कर सकें, तो आप यह दवाई इस्तेमाल करें। इसको एक खुराकसे दो सालके लिए और तीन खुराकसे हमेशाके लिए हमलका होना बन्द हो जाता है। कीमत दो खुराक १०) रु० और तीन खुराक १५) रु०। महसूल डाक अलग।

श्रीमती प्रेमकुमारी अग्रवाल

१२, टोहान, ज़िला हिसार (पंजाब)

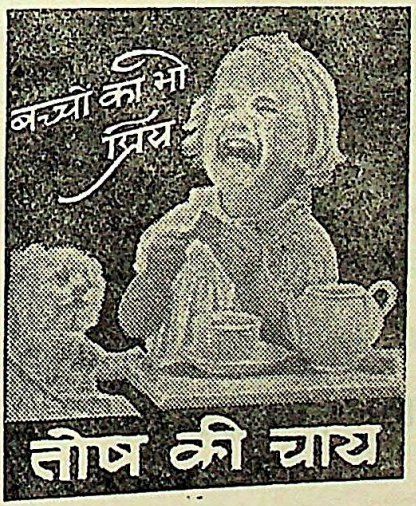

चित्रकूटकी प्रसिद्ध (असली) रजिस्टर्ड

हिस्टोरिया, मृगी व स्वाँस दमाकी फ़क़ीरी दवा

जो इन भयंकर रोगोंको जड़से मिटा देती है पूर्णिमा ता० (१९-१२-४५) व (१८-१-४६)को घर बैठे सेवन करके सदैवके लिए आरोग्य हो जाइये (चित्रकूट आने पर मुफ़्त)। कृपया पत्र बहुत जल्द लिखें, वरना साल भर परखना होगा।

पता :—मैनेजर, शुभचिन्तक कार्य्यालय,
चित्रकूट (बांदा) यू० पी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्यारी बहिनो !

न तो मैं कोई नर्स हूँ, न कोई डाक्टर हूँ और न वैद्यक ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थी स्त्री हूँ। विवाहके एक वर्ष बाद दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिक-धर्म के दुष्ट रोगों में फँस गई थी। मुझे मासिक-धर्म खुलकर न आता था। अगर आता था, तो बहुत कम और दर्द के साथ, जिससे बड़ा दुःख होता था। सफेद पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी। चेहरे का रंग पीला पड़ गया था। घर के काम-काज से जी घबराता था। हर समय सर चकराता, कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने मुझे सैकड़ों रुपये की मशहूर औषधियाँ सेवन कराईं, परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ। इसी प्रकार मैं लगातार दो वर्ष तक बड़ा दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक संन्यासी महात्मा हमारे दरवाजे पर भिक्षा के लिये आये। मैं दरवाजे पर आटा डालने आई, तो महात्माजी ने मेरा मुख देखकर कहा--बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे का रंग रुई की भाँति सफेद हो गया है? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पति को अपने डेरे पर बुलाया और उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वरकी कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ। अब मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिये असल लागत पर बाँट रही हूँ। इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रखा है। एक बहिन के लिये पन्द्रह दिनकी दवा तैयार करनेपर २॥=) दो रुपये चौदह आने असल लागत खर्च होती है और महसूल डाक अलग है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फँस गई हों, तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथसे औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूँगी। यह मेरा प्रण है कि मैं किसी बहिनसे दवाकी कीमत अपनी असल लागतसे एक पैसा भी ज्यादा न लूँगी।

जरूरी सूचना—

मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और किसी रोग की दवाई के लिए न लिखें।

प्रेमप्यारी अग्रवाल

नं० (२१) बुढ़लाड़ा, ज़िला हिसार (पंजाब)

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

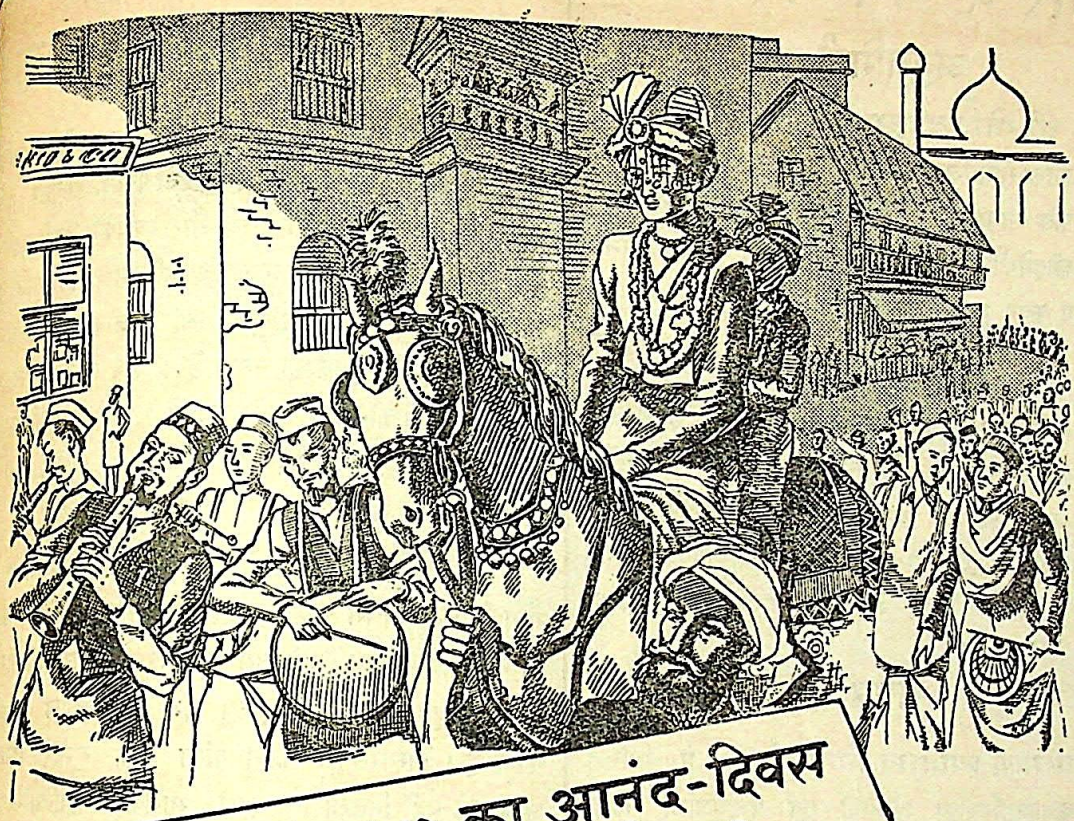

सन् १९५७ का आनंद-दिवस जिसका आयोजन सन् १९४५ में हुआ था

"क्या मैं अपने बच्चों के विवाह का ख़र्च उठा सकूँगा ?" इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि आप इस समय क्या उपाय करते हैं।

शादी-विवाह में रुपया ख़र्च होता है और वर्षों पहिले बचत की योजना बना कर और बचत के रुपये को समझदारी से लगा कर ही आप इस बात का निश्चय कर सकते हैं कि आपके बच्चे बड़े होने पर सुचारु रूप से सुखी जीवन प्रारम्भ करें।

छोटी छोटी रक़में बचाने वाले ५ रुपये का सर्टीफिकेट अथवा ४ आने, ८ आने या १ रुपये के स्टाम्प सरकार द्वारा अधिकृत किसी एजेण्ट अथवा सेविंग्स ब्यूरो या डाकख़ाने से ख़रीद सकते हैं।

नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट

★ १२ वर्ष में १० रुपये के १५ रुपये हो जाते हैं।
★ ४½ प्रति शत साधारण ब्याज, इनकम टैक्स माफ़।
★ जमा हुए ब्याज के सहित दो साल बाद इन्हें भुनाया जा सकता है (५ रुपये के सर्टीफिकेट को १८ महीने बाद)।

AAA 126—HINDI

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे ५ नये प्रकाशन

अनुरागिनी

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त-लिखित

उच्च कोटिका सामाजिक उपन्यास, जो हिन्दू-समाजकी प्राचीन रूढियोंपर सफल आघात करता है। एक बार प्रारम्भ कर बिना समाप्त किए छोड़नेको जी नहीं चाहता। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ४॥)।

एप्रिल फूल

मराठी साहित्यके चुने हुए ख्यातनामा लेखकोंकी हास्यरसकी चुनी हुई कहानियोंका अनुवाद हिन्दी-साहित्यके सहृदय पाठकोंके लिए विशेष रूपसे प्रकाशित किया गया है। इन्हें पढ़ते-पढ़ते पाठक हँसते-हँसते लोटपोट हो जाता है। अपने विषयकी यह एक बेजोड़ पुस्तक है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ३)।

संगम

श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे, बी० ए०-लिखित १६ मौलिक कहानियोंका ओजस्वी एवं प्रभावशाली संग्रह, जिसकी एक-एक कहानी अपनी एक विशेषता रखती है। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य ३)।

कवि प्रसाद: आँसू तथा अन्य कृतियाँ

[ले० प्रो० विनयमोहन शर्मा, एम०ए०, एल्-एल्० बी०]

"इसमें 'प्रसाद'की संक्षिप्त जीवनी, उनके पूर्व हिन्दी कविता, 'प्रसाद'का प्रादुर्भाव और रहस्यवाद-छायावाद, प्रगतिवाद तथा नियतिवादका क्रमिक संघात दिखाकर 'प्रसाद'के प्रधान काव्यग्रन्थोंका विवेचन किया गया है। निरीक्षण बड़ा सरल, मार्मिक और गम्भीर है। शैली कहीं भी बोझिल या दुरूह नहीं होने पाई है। 'प्रसाद'के काव्यको भलीभाँति समझने और उसके समुचित रसास्वादनके लिए यह पुस्तक अपरिहार्य-सी है।"—'विशाल भारत'। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल २)।

कीमती आँसू

श्री रा० र० खाडिलकर, बी० एस-सी०-लिखित १२ कहानियोंका मौलिक सुन्दर संग्रह। सुन्दर गेट-अप, सुन्दर छपाई, दोरंगा कवर, मूल्य केवल ॥)।

शिवाजी प्रकाशन मन्दिर,

लखनऊ

स्वर्गीय मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताईकी

पांच अनुपम पुस्तकें

(१) मिर्ज़ा जंगी—इसमें चग़ताई साहबके मिर्ज़ा जंगी, शादीकी ज़रूरत, बेरज़ामन्दी तथा नौजवान डाक्टर ये चार प्रहसन हैं। प्रत्येक प्रहसन हास्य और व्यंगकी गहरी पुटसे भरा हुआ है। पहले प्रहसनमें लखनऊके अन्तिम नवाब वाजिद अली-शाहके दरबार तथा दरबारियोंका ऐसा सजीव मनोरंजक चित्र खींचा गया है कि पढ़ते ही बनता है। शेष तीन प्रहसन सामाजिक समस्याओंको लेकर लिखे गये हैं। यह अभी निकला है। इसकी कवर-डिजाइन प्रसिद्ध हास्य-चित्रकार केदार शर्मा द्वारा बनाई गई है। मूल्य १)।

(२, ३) चग़ताईकी कहानियाँ—(प्रथम व द्वितीय भाग) पहले भागमें चग़ताई साहबके हास्यरसपूर्ण उन कहानियों का संग्रह दिया हुआ है, जिनमें शृंगाररसकी ज़रा भी गन्ध नहीं है। इसे बूढ़े, बच्चे, स्त्री, पुरुष सभी निस्संकोच भावसे पढ़ सकते हैं। हास्यरसपूर्ण कहानियोंका ऐसा सुन्दर शिष्ट संग्रह आज तक नहीं निकला। दूसरे भागकी कहानियोंमें शृंगार मिश्रित मधुर हास्यकी गहरी पुट है। पर कहीं भी अश्लीलता या भोंड़ापन नहीं दिखलाई पड़ेगा। इन्हें भी सभी निस्संकोच भावसे पढ़ सकते हैं। मूल्य प्रत्येक भागका १)।

(४) कोलतार—चग़ताई साहब उर्दू और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंके पाठकोंके लिए अपरिचित नहीं हैं। जिन्होंने आपकी दो-चार भी कहानियाँ पढ़ी होंगी, वह जानते होंगे कि आप लोगों को हँसानेकी कलामें कितने पटु हैं। आपकी चुटकी कितनी गहरी होती है। इस उपन्यासमें इतना हास्य, व्यंग और चुलबुलाहट है कि आप इसे एक सांसमें पढ़ जायँगे। ऐसा रोचक उपन्यास हिन्दीमें आज तक नहीं निकला है। दूसरा संस्करण हाल ही में छपा है। मूल्य २॥)।

(५) शरीर बीबी—यह मिर्ज़ा अजीम बेग चग़ताईका दूसरा उपन्यास है। एक बार हाथमें लेनेपर छोड़नेको जी नहीं चाहता। शरीर बीबीकी शरारतें पढ़ते-पढ़ते पेटमें बल पड़ जाते हैं। ऐसी निर्दोष हास्यरसपूर्ण पुस्तक हिन्दीमें नहीं है, यह इसे पढ़कर ही ज्ञात होगा। सुन्दर नयनाभिराम कवरसे युक्त पुस्तकका मू० १॥)।

छात्र-हितकारी-पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

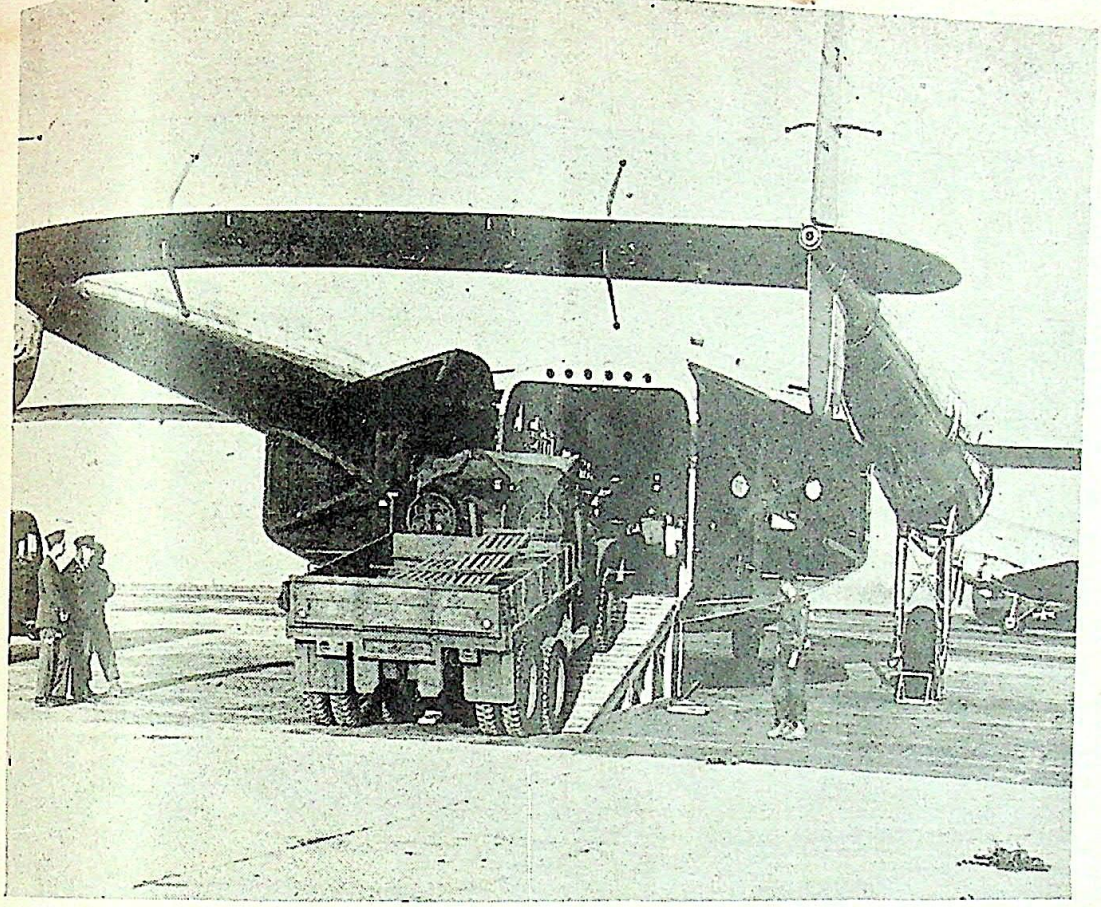

अमरीकाका माल ढोनेवाले फौजी हवाई-जहाज़ 'फेयरचाइल्ड सी-८२ पैकेट', जिसमें २॥ टनकी फौजी ट्रक आसानीसे जा सकती है।

चीनी कम्युनिस्ट-दलके अध्यक्ष माओ त्से-तुंगके साथ अमरीकन एलची पैट्रिक जे० हर्ले, जिन्होंने अभी हाल ही में अमरीकाके अधिकारियोंकी चीन-सम्बन्धी नीतिसे मतभेद होनेके कारण अपने पदसे इस्तीफा दे दिया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रवासी प्रेस, कलकत्ता]

आरती

[श्री निशीथकुमार मजूमदार

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संस्थापक रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशाल भारत

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

भाग ३६, अंक ६] कलकत्ता, दिसम्बर, १९४५ [पूर्णांक २१५

डंका

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

जन-मनके खँडहरमें मौन, क्षुब्ध अन्तरमें ;
बधिर कर्ण-कोटरमें, स्वरका मारू डंका—
बजो, बजो, बजो !
वज्रघोषसे घरघर, भुवन - कोशको जर्जर ;
रनन-घननकर अम्बर, दिग्घोषित स्वर-डंका—
बजो, बजो, बजो !
धागड़ांग ढिम्-ढन्-ढन्, दीर्ण करो दिग्बन्धन ;
घहर-गहर हर लो मन, मनुज-मुक्तिका डंका—
बजो, बजो, बजो !
रोम-रोममें गति-स्वन, रुद्ध कण्ठमें गर्जन ;
अणु-अणुमें भर कम्पन, रस-घनवर्षी डंका—
बजो, बजो, बजो !
धमक-गमकसे मन्दर, शब्द-श्रवणसे अजगर,
थिरके दम्भी सागर, ब्रह्म-रन्ध्रमें डंका—
बजो, बजो, बजो !
दिव्य सृष्टिका अंचल, तन्द्रिल, तमस, अमंगल ;
ऊर्मिल कर छवि-उज्ज्वल, इन्द्र-वज्रवत् डंका—
बजो, बजो, बजो !
भयमें, भ्रमके घनमें, क्रन्दन-कम्पित मनमें ;
उत्पीड़नके क्षणमें मन्वन्तर तक डंका—
बजो, बजो, बजो !

- २ -

श्रावणी वातास डोले क्षिप्र पंख पसार ;
खोलता सुर पर न क्यों उरका सुरंग सितार ।
पंकमें शतदल खिलाते गन्धमय अरमान ;
क्यों न मानव-कुसुम करते स्नेह-अर्घ्य प्रदान ।
प्रकट करती आसुरिकता विश्वग्रासी रोष ;
सभ्य युगके उन्नयनमें घृणाका आक्रोश ।
वज्र-अस्थि दधीचिकी पर खोल देगी द्वार—
मुक्तिका ; कर ध्वंस दुर्जय दम्भका प्राकार ।
कौंधती काली घटामें दामिनीको देख ;
स्याहियोंमें ज़िन्दगीकी अग्निपंखी रेख ।
शृंखलाकी कुण्डलीमें दमकती शमशीर ;
रंग-भीने कुमकुमोंका बंकनोकी तीर ।
बज उठा डंका नपुंसक शान्तताको चीर ।
गढ़ रहा युग स्वयं नूतन सृजनको तस्वीर ।

चट्टान

गाओ नहीं ज़नाने कड़खे धन्वाकी टंकारमें ;
डहके धातु न तो सरगम क्या राख बने अंगारमें ।
खिले न यौवन-फूल गुलाबी मधुवनके अनुरागमें ;
दमके प्राण-कनक कुन्दन बन लावाओंकी आगमें ।
सूख गया प्राणोंका रस निज पौरुषके निर्माणमें ;
बाधाओंके मस्तकपर चढ़ अकड़े जो तूफ़ानमें ।
रेते नहीं समयके फरसे खरबूजेकी फाँकमें ;
जीवनकी हल्दीघाटीमें मिटे न जो घिस खाकमें ।
टूट पड़ें उंचास पवन जो सजकर तीर-कमानमें ;
पाषाणी ठोकर खा लौटें ठुकराए अरमानमें ।
रौंदे टाप न संघर्षोंकी डिगे न डग मग-भारमें ;
फटे नहीं मज़बूत कलेजा नियागराकी धारमें ।
उमड़-घुमड़ जो बादल आए प्रलय-सिन्धुके ज्वारमें ;
भूले हिरनचौकड़ी मनकी समा कालकी दाढ़में ।
पिघल उठे यदि अन्तर मेरा उद्वेलित अनजानमें ;
गंगा, जमुना फूट बहें तो जगके रेगिस्तानमें ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहमदनगर-क़िलेकी डायरी

डा० पट्टाभी सीतारामय्या

अहमदनगर-क़िलेकी असली डायरी अब शुरू होती है। स्टेशनपर उतरते ही हमें एक बसमें ले जाकर बैठाया गया। इसकी छत बहुत नीची थी, अतः मौलाना आज़ाद और हम सबको अपने सिर इतने नीचे करने पड़े कि हमारा जिस्म तक़रीबन दोहरा हो गया। रास्तेमें कुछ ऐसी बातें हुईं, जिनका यहाँ उल्लेख करना ज़रूरी है।

ज्योंही हमारी गाड़ी बम्बईके विक्टोरिया टर्मिनससे चली, कुछ गड़बड़ी हुई। गांधीजी पासके दूसरे डिब्बेमें थे। हम लोगोंने पूछा—'क्या हम वहाँ जा सकते हैं?' जवाब मिला—'हाँ, थोड़ी देर बाद।' इसी समय खाने-पीनेके डिब्बेमें हम लोगोंने नाश्ता किया। खानेका सामान काफ़ी और खासा था। इसमें नाशपातियाँ भी थीं—नक़ली देशी नाशपातियाँ नहीं, असली नाशपातियाँ। वहीं हम लोगोंने देखा कि हम कोई ३० आदमी हैं। बम्बईके सब मित्र भी यहीं 'बँधे' थे।

नाश्तेके बाद हम लोग अपनी-अपनी जगह चले आए। जब मेहरअली हमारे डिब्बेमें बातचीत कर रहे थे, एक सर्जका सूट और फेल्ट-हैट पहने लम्बे अंगरेज़ने—जो सुबह ६ से ८ बजे तक प्लेटफार्मपर चक्कर लगा रहा था—भीतर झाँका और पूछा—'क्या बम्बईका कोई व्यक्ति यहाँ है?' मेहरअलीको देखते ही उसने उनसे अपने डिब्बेमें जानेको कहा। मेहरअलीने कुछ बहाना बनाते हुए उसे ज़रा ठहरनेको कहा और यह भी कह दिया—'ऐसे मामलोंमें आपको ज़रा उदार होना चाहिए।' उस अफ़सरने, जिसका रुख शुरूसे ही कड़ा था, कहा—'उदार? नाश्तेके समय तो आप सब साथ थे ही, खानेके समय फिर आप लोगोंको एक घण्टा साथ रहनेको मिलेगा।'

'कृपया ज़रा नम्रतासे बात कीजिए।'—मेहरअलीने कहा—'अगर आप हमसे नम्रतासे पेश आयँगे, तो हमसे आपको दोहरी नम्रता मिलेगी। अगर आप मेरे साथ नम्रता बरतेंगे, तो मैं अभी दो मिनटमें ही अपने डिब्बेमें चला जाऊँगा।'

कुछ क्षण ठहरकर अफ़सरने कहा—'Do go, my boy.' (ज़रूर चले जाना, मेरे बच्चे!)

इससे मेहरअली क्रुद्ध हो गए। वे इतने छोटे भी नहीं कि उन्हें 'बच्चा' कहा जा सके। अपनी पूरी ऊँचाई तक खड़े होकर—इस रूपमें वे अफ़सरकी गरदन तक ही पहुँच पाए—उन्होंने अफ़सरकी ओर मुँह करके कहा—'तुमने मुझे बच्चा कहा है! तुम जानते हो, मैं कौन हूँ?'

'तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूँ?'—अफ़सरने कहा।

'तुम जानते हो, मैं कौन हूँ? मैं बम्बईका मेयर हूँ!'

'तुम नहीं जानते कि मैं कौन हूँ? मैं तुम्हें बिठाकर ही रहूँगा।'

इस तरह थोड़ी देरकी कहा-सुनीके बाद हर बार उठते-बैठते मेहरअली जब तीसरी बार अपनी पूरी ऊँचाईके साथ खड़े हुए, तो अफ़सरने अपना दाहिना हाथ धीरेसे उनके बाएँ कन्धेपर रखकर दबाते हुए उन्हें नीचे बिठा दिया। दोनोंमें हाथापाई होनेकी पूरी सम्भावना थी। कुछ देर दोनोंमें फिर गरमागरम कहा-सुनी हुई, जिसके दौरानमें मेहरअलीने बम्बईका मेयर होते हुए भी 'बच्चा' कहे जानेपर फिर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। इसके बाद अफ़सर कुछ ठण्डा पड़ा और अपने होश-हवास दुरुस्तकर बोला—'मैंने तो वैसे ही सहज भावसे my boy (मेरे बच्चे) कहा था।' पर मेहरअलीने अपना विरोध करना जारी रखा।

इस डिब्बेमें हम चार व्यक्ति थे और पाँचवें या शायद छठें मेहरअली थे। पासके तंग रास्तेको वह अफ़सर रोके हुए था। दोनोंमें हाथापाई होनेकी पूरी सम्भावना थी। बड़ी कठिनाईसे कई बार मेहरअलीसे बोलनेकी चेष्टा करनेके बाद कहीं मैं उन्हें समझा सका कि उन्हें अफ़सरकी यह सफ़ाई स्वीकार कर लेनी चाहिए कि उसने केवल सहज भावसे ही उन्हें 'बच्चा' कहा था। इस तरह जैसे-तैसे मामला रफ़ा-दफ़ा हुआ और मैंने सन्तोषकी साँस ली।

पर इस काण्डका असली गुल तो अभी खिलना ही था। मेरे कई साथियोंको मेरा इस मामलेमें पड़ना अच्छा नहीं लगा और इसके लिए मुझे उनकी टीका-टिप्पणी भी सुननी पड़ी। थोड़ी देर बाद जब मैं गाड़ीके लम्बे रास्तेसे जाते हुए दूसरे डिब्बेके पाससे गुज़रा, जिसमें वह अफ़सर अपने मातहतोंके साथ बैठा था, तो मैंने अफ़सरसे कहा कि यदि वे मेहरअलीसे एक शब्द सान्त्वनाका कह देंगे, तो उन्हें सन्तोष हो जायगा, क्योंकि आरम्भसे इन्हींका रुख उत्तेजनामय था। उन्होंने कहा कि वे मेहरअलीको समझा-बुझा चुके हैं और १५ मिनट तक उनसे शान्तिपूर्वक बातचीत भी कर चुके हैं। मैंने जो-कुछ किया था, उसके लिए उन्होंने मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट की। मैंने कहा—'नहीं, वह कुछ नहीं। झगड़ेकी सम्भावना बढ़ती देखकर मैं भला चुप कैसे बैठ सकता था?' वे बोले—'जो कुछ भी हो।' बादमें मुझे मालूम हुआ कि यह अफ़सर रेल्वे-पुलिसके और शायद सी० आई० डी० के भी डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल मि० शार्पर थे।

एक बात मैं यहाँ ज़रूर कहूँगा और वह यह कि मि० शार्परने यह बात सच नहीं कही कि खानेके समय मेहरअली और हम सब फिर एक घण्टेके लिए मिलेंगे—क्योंकि बम्बईके सब मित्र पूना मेरे जानेके लिए बीचमें किरकीमें ही उतार लिए गए। क्या उन्हें यह मालूम न था? तब फिर उन्होंने १२ बजे

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दोपहरको (खानेके समय) एक घण्टे बातचीतका समय मिलनेका झूठा वादा क्यों किया ? जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि यह अफ़सर प्लेटफार्मपर चहलक़दमी कर रहे थे। उससे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो सरकारके कार्यक्रमके लगभग पूरा हो जानेपर वे सन्तुष्ट थे। 'लगभग' मैंने इसलिए कहा कि श्री गोविन्दवल्लभ पन्तने सुबह ५ बजे पुलिस द्वारा जगाए जानेसे इन्कार कर दिया था। अतः उन्हें और उनके साथी अतिथि श्री हरेकृष्ण महतावको पीछे छोड़ दिया गया। इन लोगोंको एक दिन आर्थर रोडकी हवालातमें रखनेके बाद फिर पूनासे मोटर द्वारा अहमदनगर पहुँचाया गया। वे हम लोगोंके कैम्पमें दूसरे दिन पहुँचे।

'लाठी-चार्जकी ऐसी-तैसी !'

रास्तेमें दो दलोंको हम छोड़ आए थे। बम्बईके मित्र किरकीमें उतार लिए गए थे और गांधीजीका दल चींचवड़में। इस दलका एक व्यक्ति आरम्भसे ही भद्र अवज्ञा कर रहा था, अतः उसे पुलिसवाले उठाकर ले जा रहे थे। गाड़ी किरकीसे चलकर थोड़ी ही देर बाद पूना पहुँची। रेडियोसे हमारी गिरफ़्तारीकी खबर यहाँ पहुँच गई थी, अतः प्लेटफार्मपर खड़े कुछ लड़के गाड़ीमें बैठे नेताओंके नाम ले-लेकर जय-जयकार कर रहे थे। अभी मुश्किलसे मैं यह जयघोष सुन पाया था कि तेज़ कदमोंसे जवाहरलालको यह कहते हुए रास्तेके दरवाज़ेकी ओर दौड़ते पाया—'ऐसी-तैसी लाठी-चार्जकी ! तुम इन लड़कोंपर लाठी चलानेकी जुरअत करते हो !' परन्तु दरवाज़पर सादे कपड़े पहने एक मोटा-ताज़ा भारतीय पुलिस-अफ़सर ऐसा पसरा खड़ा था कि एक मक्खी भी बाहर न निकल सके। मैं बाहरका दृश्य देखनेको अपने डिब्बेमें से बाहर निकला। पुलिस-अफ़सरको दरवाज़ेपर से हटाना असम्भव देखकर थोड़े-से संघर्षके बाद जवाहरलाल वापस अपने डिब्बेकी ओर चले गए। उन्हें कोई बाधा रोक नहीं सकती। वे खिड़कीसे कूद पड़े और लाठियाँ चलाने वाले एक सार्जेण्टकी ओर बढ़े। पर विशालकाय मि० शार्पर वहाँ थे। उन्होंने जवाहरलालको अपनी भुजाओंमें बाँध लिया। जवाहरलालने मि० शार्परके फौलादी बन्धनसे मुक्त होनेको हाथ-पैर पटके और इसी स्थितिमें (लाठी चलानेवाले) एक मूर्ख भारतीय कान्सटेबलकी तरफ़ पूरे हाथसे घूँसा भी बढ़ाया (पर वह चूक गया)। जब यह स्थिति संगीन होने लगी, तो डिब्बेकी खिड़कीसे कूदकर शंकरराव देवने चिल्लाते हुए जवाहरलालकी ओर बढ़नेकी कोशिश की। पर पुलिसवालोंने आकर उन्हें रोक लिया और सिर्फ़ लँगोटी पहने शंकरराव देवको हाथ-पाँव पकड़कर उठाकर फिर डिब्बेमें पहुँचा दिया। इसी तरह जवाहरलालको भी डिब्बेमें वापस लाया गया और गाड़ी पूनासे आगे चल पड़ी।

वह अज्ञात क़िला !

पर हम लोग जा कहाँ रहे थे ? यह हमें ज्ञात हो गया था कि गांधीजीको सरोजिनी नायडू, मीराबेन और महादेव देसाईके साथ चींचवड़में उतारकर पूनाके आगाखाँ-महलमें ले जाया गया है। बम्बईके मित्रोंको तो लगभग हमारे देखते-देखते यरवदा-जेलकी ओर ले जाया गया। पर हम लोग कहाँ जा रहे थे ? किसी क़िलेके बारेमें कुछ काना-फूसी ज़रूर सुनी थी ; पर पता नहीं, वह क्या और कहाँ था ? तब मैंने शंकरराव देवसे पूछा कि ढोंड-मनमाड़ लाइनपर कौन-से प्रमुख स्थान हैं। हमें ढोंडसे अन्यत्र ले जाया जायगा, यह असन्दिग्ध था। तो क्या हमें ढोंडसे अपने-अपने प्रान्तोंको भेज दिया जायगा या ढोंड-मनमाड़ लाइन पर किसी जगह ले जायगा ? इस लाइनपर इधर सिर्फ़ विस्सापुर की ही जेल थी। पर हम तो एक क़िला चाहते थे और वह था अहमदनगरमें। अतः मुझे यह तय करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई कि हम लोग अहमदनगर ही जा रहे हैं।

सुबहका खाना हम लोगोंने गाड़ीमें ही खाया और कोई १॥ बजे दोपहरको अहमदनगरके क़िलेमें पहुँचे। दरअसल जब हमें कहा गया कि १२ बजे खाना गाड़ीमें ही खाना होगा, तभी अपने गन्तव्य स्थानके बारेमें हमारा क़यास पक्का हो गया। जब गाड़ी ढोंड पहुँची, तो मि० शार्परने, जो इस बीच हम लोगोंसे खूब हिलमिल गए थे, बता दिया था कि हमारा गन्तव्य स्थान अहमदनगर है। स्टेशनसे मोटर द्वारा हमें क़िलेमें पहुँचाया गया। सदर दरवाज़ेपर खड़े एक अंगरेज़ सन्तरीके पाससे गुज़रकर हम लोग भीतरके एक द्वारपर उतारे गए, जहाँ तक कुछ गज़ लम्बी एक क्रमशः ऊपर उठती हुई सड़क बनी थी। हम लोगोंके लिए यह द्वार खुला और हमें भीतर लेकर बन्द हो गया।*

* लेखककी पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बईसे शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'फदर्ज़ एण्ड स्टोन्स' (पर और पत्थर) से।

तू अपना इतिहास कहेगा ?

श्री भवानीप्रसाद मिश्र

उदय-अस्तमें कभी कमलने सुखको, दुखकी बात नहीं की।
कभी पतिंगोंने रो-रोकर पूरी अपनी रात नहीं की।
कभी सूर्यके आ जानेपर तारोंने क्या आँसू ढाले ?
बज्राहत होकर बादलने क्या सुखकी बरसात नहीं की ?
फिर क्या ऐसा हुआ कि पगले ! तू अपना परिहास करेगा ?
तू अपने सुखका या दुःखका शब्दोंमें इतिहास कहेगा ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रथम अखिल-भारतीय साहित्यकार-सम्मेलन

श्री गुरुदयाल मल्लिक

छः अन्धे और एक हाथीकी कहानी हमारे यहाँ स्कूलके विद्यार्थी भी जानते हैं। लेकिन उससे हमें जो नसीहत मिलती है, उससे विद्यार्थी तो क्या, बड़े भी अक्सर भूल जाते हैं। किसी व्यक्ति, विचार या घटनाके केवल थोड़े-से अंश को ही प्रत्येक व्यक्ति देख या अनुभव कर पाता है—यह देखना चाहे बाहरकी आँखोंसे हो या दिलकी दृष्टिसे—यही उस पुरानी कहानीकी प्रधान शिक्षा है।

पी० ई० एन०के भारतीय केन्द्रने इस बार अक्टूबरके उत्तरार्धमें जिस अखिल-भारतवर्षीय साहित्यकार-सम्मेलनका विपुल आयोजन किया था, उसे भी हम लोग विभिन्न दृष्टिकोणोंसे देख सकते हैं। यह कोण कितने अंशका होगा, यह तो दर्शककी अपनी चारित्रिक विशेषतापर निर्भर करेगा। फिर भी इस बातपर तो सब लोग एकमत होंगे ही कि इस सम्मेलनका आयोजन अपने-आपमें हमारे देशके समसामयिक साहित्यके इतिहासकी एक स्मरणीय घटना हुई है।

सैद्धान्तिक दृष्टिसे सम्मेलनमें तीन प्रधान धाराएँ देखनेमें आईं और इनके प्रति सम्मिलित समाजकी प्रतिक्रिया भी कई प्रकारसे हुई। ये धाराएँ साहित्य-सृष्टिकी आत्मा तथा अर्थशास्त्रके प्रश्नोंको लेकर उठी थीं। वाणीके प्रजातन्त्रके अनुभवी सयानोंने यह घोषणा की कि सृजनकी शक्ति सत्यके सौन्दर्यमय दर्शनमें ही निहित है; रचनाकी शर्त्त सौन्दर्यमय सत्यका साक्षात्कार है। दूसरी ओर नव्य उत्साहियोंने अपना स्वर ऊँचा किया कि सत्य को दीवानखानेके बाहरी हिस्सेमें तब तकके लिए रोक रखना होगा, जब तक कि हमने अपनी ज़मीनका चप्पा-चप्पा न जाँच लिया हो—अर्थात् वास्तु-सत्यकी पूरी-पूरी पड़ताल सृष्टिके लिए सबसे पहले आवश्यक है। जो लोग इन दोनों दलोंके बीच मध्यममार्गी थे, उन्होंने रोटी और सौन्दर्य, पेटकी भूख और आत्माकी क्षुधा—दोनोंकी महिमा स्वीकार की। साहित्यकारोंके सम्मेलनमें प्रतिनिधित्व करनेवाले कवियों, दार्शनिकों, सम्पादकों, कहानीकारों—सभीने अपने-अपने ढंगसे उपर्युक्त तीनों धाराओं का संचालन किया। (कुछ ऐसे भी वहाँ थे, जो न-कुछ होते हुए भी सब-कुछ बन गए थे।) जो हो, सभी प्रकारके मान-दण्डोंपर विचार किया गया और विचार-विनिमय हुआ।

इन तीनों धाराओंको उस समय सबसे अधिक स्पष्टतासे उपलब्ध किया गया, जब भारतकी विभिन्न भाषाओंकी साहित्यिक प्रगतिका सिंहावलोकन किया गया। यह भी एक प्रकारसे एक अपूर्व घटना थी। सम्भवतः पहली बार सभी साहित्यिक एक ही कुटुम्बके विभिन्न सदस्योंकी भाँति एकत्र हुए थे। सबने मिलकर अनायास ही तुलना की कि अन्यान्य क्षेत्रोंमें लोग क्या कर रहे हैं, हवाका कैसा रुख है। सबने अनुभव किया कि एक ही ज़मीनके वे सभी खेतिहर हैं—खेती चाहे अलग-अलग चीज़ोंकी हो और उसका तौर-तरीक़ा भी अलग हो। जो लोग शिल्पकी दृष्टिसे साहित्यसे सम्बद्ध थे, वे भी उपस्थित थे और जो वाणिज्यकी दृष्टिसे उससे विजड़ित थे, वे भी। इस प्रकार भी यह सम्मेलन अपूर्व था।

किन्तु क्या साहित्य-सृजन शिल्प है अथवा वाणिज्य? वह ज़माना लद गया, जब कि साहित्यकारको किसी-न-किसी राजा या धनीमानी व्यक्ति अथवा किसी एकेडेमीका आश्रय सुलभ था। आज वह उन आश्रयदाताओंकी प्रसन्नताकी उपेक्षा कर सकता है और अपनी आत्माके निभृत एकान्तमें रचना करता रह सकता है। किन्तु आज उसे जीविका भी तो जुटानी पड़ती है। और चूँकि वर्तमान समाज उसे आज भी अपना कोई उपयोगी या अपरिहार्य अंग नहीं मानता, इसलिए आजका साहित्यकार केवल साहित्य-रचनाको ही जीविकाका साधन नहीं मान सकता। लिखना आज भी उसके लिए एक विनोदनकी सामग्री है, जिसे अंगरेज़ीमें 'हौबी' कहते हैं। बाज़ारमें इस लिखावटका ख़ास कोई मूल्य नहीं। लेकिन क्या मूल्य होना भी नहीं चाहिए? वह तो अमूल्य है! तब क्या शोषकवर्गके अन्यायसे उसकी रक्षा भी नहीं करनी चाहिए? सम्भवतः वृद्ध मनीषी कार्लाइलने ही तो कहा था कि 'दुनिया केवल लूटनेवालेकी दूकान नहीं है।' इस सम्मेलनने एक होकर स्थिर किया कि साहित्यकारके 'स्वार्थों' की समुचित रक्षा होनी चाहिए; उन्हें अपने श्रमका उपयुक्त पारिश्रमिक मिलना चाहिए। इस माँगको उपस्थित करनेका समय आ पहुँचा है। कापीराइट-विषयक क़ानूनपर विचार करनेके लिए सम्मेलनने ऐसे सदस्योंकी एक सब-कमिटी संघटित की, जो साहित्यके भी जानकार हैं और क़ानूनके भी। यह इस सम्मेलनकी तीसरी विशेषता थी।

चौथी ख़ासियत यह थी कि देश और विदेशमें भारतीय साहित्यके प्रचार तथा परिचयके लिए सम्मिलित प्रयत्नोंकी आवश्यकता महसूस की गई। प्रामाणिक अनुवादोंकी ज़रूरतको सबने स्वीकार किया। इस उद्देश्यसे एक सामयिक पत्रके प्रस्ताव पर विचार किया गया, जिसमें साहित्यकारोंकी फुटकर रचनाओंके अनुवाद छपते रहें—पुस्तकाकार छपनेकी बात तो सर्वसम्मतिसे पास हो ही गई। एक सुयोग्य उपसमिति इन सब प्रस्तावोंपर भी विस्तारसे विचार करनेके लिए गठित हुई। एक विश्वकोषकी रचनाका प्रस्ताव भी सामने आया, जिससे शिक्षित और साहित्यिक दोनों वर्गोंके लिए ज्ञानका भाण्डार सुलभ किया जा सके। देश की विभिन्न भाषाओंके साहित्योंको यह कोष निकट ला सकेगा

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और भारतवर्षकी सभ्यता तथा संस्कृतिका संश्लिष्ट परिचायक होगा। इस प्रकार नाना दृष्टियोंसे देशके आदर्शवादी और यथार्थवादी, अतीतके प्रशंसक और वर्त्तमानके पक्षपाती, पुराने और नए, अनुभवी और उत्साही—सभी विचार-विनिमयके लिए एकत्र हुए। और यह एकत्र होना ही अपने-आपमें कम महत्वकी घटना नहीं थी।

जयपुर-राज्यकी शानदार आतिथेयताने मानो एक बार फिर हमें स्मरण करा दिया कि साहित्यका शिल्प अवकाशके उदार वातावरणमें उन्मुक्त पंख फैलाया करता है। किन्तु राजाश्रयसे आज कहीं अधिक आवश्यक शायद वह अबाध स्वतन्त्रता है, जिसमें साहित्यकार जीवनके स्वप्न और यथार्थ दोनोंकी व्याख्या करता है, सुन्दरकी सृष्टि करता है, जीवनके सत्यका अपने ही ढंगसे सन्देसा सुनाया करता है।

सम्भवतः यह पहली अखिल-भारतीय साहित्यकार-सम्मिलनी एक संकेत-निर्देशककी तरह हुई—गन्तव्य तीर्थ-स्थलकी तरह नहीं। तब भी यह उसका बहुत बड़ा कृतित्व है कि उसने उन सब धारणाओं-समस्याओं, जो आज साहित्य-जगत्में उठती हैं, इत्यादिपर विचार किया—उनकी ओर निर्देश किया (चाहे उन सबका सदाके लिए समाधान न भी किया हो)। और उचित भी यही है। जीवनके समान साहित्य भी नदीकी प्रवाहमान धाराकी ही तरह है, जो सदा जाग्रत रहती है, चंचल रहती है; किसी बन्द तालाबके भीतर सदाके लिए आबद्ध रहनेवाली जलराशि वह नहीं है।

स्वर्गीय आगरकरजी

श्री विनयमोहन शर्मा

मार्च, १९४३ की बात है। दिनके ११ बजे होंगे। मैं कालेज जानेकी तैयारी कर रहा था। सहसा बरामदेमें देखा, तो चुपचाप एक आरामकुर्सीपर 'पण्डितजी' बैठे-बैठे मुस्करा रहे हैं। मैं दौड़कर उनके पास पहुँचा। अभिवादनके बाद मैंने कहा—'आपने जेलसे छूटनेके पहले ज़रा सूचना तो दी होती।' 'तो क्या होता? यही न कि ताँगा लेकर तुम फाटकपर पहुँच जाते; सो मैं ही तांगेपर बैठकर यहाँ आ गया।' उनके इस सरल उत्तरमें उनके स्वभावकी वह महानता छुपी थी, जो प्रदर्शन और कोलाहलसे अपनेको पृथक् रखकर सुख अनुभव करती रहती थी। जहाँ कई छुटभैये जेलसे छूटनेके पूर्व सम्बन्धियों और मित्रोंको तारोंसे उपकृत करनेमें पल-भरका विलम्ब नहीं करते, वहाँ अत्यन्त बीमार अवस्थामें रहते हुए भी आगरकरजीने अपने निकट-से-निकट स्नेहियोंको न तो बीमारीका पता दिया और न जेलसे छूटनेकी सूचना ही!

जब मैंने उनसे पूछा—'आप कैसे छूटे? क्या सरकारकी नीतिमें परिवर्त्तन हो रहा है?'

'परिवर्त्तन क्या, मुझे तो असाध्य रोगी मानकर छोड़ा गया है। मेरा "ब्लड-प्रेशर" (रक्तचाप) २६० है। इतने "प्रेशर" पर किसी मनुष्यका ज़िन्दा रहना डाक्टरोंके विश्वाससे आश्चर्यजनक घटना है।'—उन्होंने कहा।

मैं घबरा गया। मैंने कहा—'तो आप आराम कीजिए। मैं डाक्टरको बुलाता हूँ।'

'नहीं, घबरानेकी कोई ज़रूरत नहीं है। मैं तो कलका छूटा हुआ हूँ। मैं अपनी खुशीसे ही एक दिन और इसलिए जेलमें रहा कि मुझे अपने साथियोंको छोड़कर बाहर आनेमें झिझक होती थी। मुझे ऐसा भी मालूम होता था कि सहसा बाहर निकलनेपर मेरे हृदयपर बुरा आघात पड़ेगा। सच पूछो तो मुझे बाहर आकर तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई। न-जाने कितने साथी एकाकी मानसिक और शारीरिक व्यथा भोग रहे हैं!'

बादमें मालूम हुआ कि जेल-डाक्टरोंने प्रान्तीय सरकारको लिखा था कि रोगी कभी भी समाप्त हो सकता है, इसलिए उसे छोड़ देना ही उचित है। सरकारने जेल-डाक्टरोंकी रिपोर्ट पर सहसा विश्वास नहीं किया। रोग-विशेषज्ञसे परीक्षा करवाई, और जब उसने भी यही कहा कि रोगीका अभी तक ज़िन्दा रहना आश्चर्य है, तब आगरकरजीको जेलसे बाहर धकेल दिया गया। 'ज़िन्दा मुर्दे'को जेलमें रख सरकार बदनामी नहीं झेलना चाहती थी।

उनकी इच्छाशक्ति बड़ी प्रबल थी। जेलसे छूटनेके बाद दो रोज़ मेरे साथ रहे; पर रोगीके समान उन्होंने चारपाईपर लेटने की इच्छा नहीं की। वे शहरमें मित्रोंसे मिलते-घूमते ही रहे। जब मैं कहता, 'पण्डितजी, इतने भारी रोगके साथ आप खेल रहे हैं,' तो कहते—'क्या तुम्हें भी डाक्टरोंकी बातोंपर विश्वास होने लगा? डाक्टर तो मुझे कभीका मार चुके। वे तो ज़रा-सी बीमारीको बड़ा भारी रूप दे देते हैं। मुझे तो उनके कहनेसे ही मालूम हुआ कि मैं बीमार हूँ, वर्ना मुझे तो कुछ भी हुआ नहीं समझ पड़ता। देखो, तुम्हारे समान ही खाता, पढ़ता, चलता-फिरता-सोता हूँ न? अगर खराबी होगी, तो मैं थोड़े ही दिनोंमें अपनेको ठीक कर लूँगा।' यहाँसे खण्डवा जानेपर उन्होंने अपने जीवनको नियमित बना लिया और कुछ ही महीनोंके बाद एक लड़कीका विवाह भी कर डाला। विवाहके दिनोंमें भी उन्होंने

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पैदल घूमने और दस बजे रातको चारपाईपर सोनेके नियममें व्यवधान नहीं आने दिया। खान-पानके नियममें दृढ़ रहनेके कारण ही वे जेलसे छूटनेके बाद ढाई वर्ष तक जीवित रह सके।

मरनेके १५ दिन पूर्व एक दिन उनकी नाड़ियाँ छूट गईं। घरमें कुहराम मच गया। डाक्टरोंने मृत घोषित कर दिया। पर डेढ़ घण्टेके बाद उनके मस्तिष्ककी गर्मी क्रमशः शरीर-भरमें फैल गई; नाड़ियाँ ठिकानेपर आ गईं; धुकधुकी चलने लगी। डाक्टरोंने उत्तेजक पेय दिया। थोड़ी देरमें वे बोलने लगे। जब उनसे कहा गया कि उनका यह पुनर्जन्म हुआ है, तो उन्हें आश्चर्य-सा हुआ! अन्तिम दिन भी ९ बजे रातको उन्हें चारपाई से नीचे लिटा दिया गया था; पर दो घण्टेके बाद उनमें चैतन्य आ गया। उन्होंने दवाई पी और संकेतोंसे भाव भी व्यक्त किए। जब परिचर्या करनेवाले सो गए, तो चार बजे प्रातः उनके प्राण सदाके लिए खो गए! इस तरह पुनः चेतना लाभ होनेका कारण केवल उनकी 'जीवित रहनेकी दृढ़ इच्छा' ही थी। पर उन्हें जीवित रखनेको शरीरके अंग—हृदय, यकृत और गुर्दे—तत्पर न थे। हृदय तो इतना फैल गया था कि उसकी धड़कनें दाईं ओर अनुभव होती थीं, गुर्दोंमें मूत्र तैयार ही न होता था और यकृत सर्वथा सुस्त हो कड़ा पड़ गया था।

कांग्रेसके अनुशासनको वे एक सिपाहीकी तरह मानते थे। उसके प्रति बगावत करनेवाले बड़े-से-बड़े नेताका भी विरोध करनेमें वे सहमते न थे। सन् १९२६ में कांग्रेसके विरोधमें स्वर्गीय लाला लाजपतरायने स्वतन्त्र दलकी स्थापना की थी और असेम्बलीका चुनाव लड़ा था। मध्य-प्रान्तमें कांग्रेसकी ओरसे असेम्बलीके लिए प्रान्तके भूतपूर्व मन्त्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र उम्मीदवार थे। उस समय वे इलाहाबाद-विश्वविद्यालयमें क़ानून का अध्ययन कर रहे थे और बिलकुल तरुण थे। उनकी उम्मीदवारीका विरोध करते लालाजीने सी० पी० का भी दौरा किया था और खण्डवा भी गए थे। खण्डवाकी जिस सभामें लालाजी का भाषण हुआ, उसका वर्णन करते हुए 'कर्मवीर'ने लिखा था—"सभामें तिल धरनेकी जगह नहीं थी। पंजाबके शेरकी दहाड़ कांग्रेसके उम्मीदवारोंकी बड़ी बेमुरौवत बनकर खबर ले रही थी। लालाजीकी वाग्धारा, खरस्रोता नदीकी तरह, बीचमें उछाले गए प्रश्नोंको प्रवाह-पतित सूखे पत्तोंकी तरह बहाती चली जा रही थी। वे कह रहे थे: असेम्बली मज़ाक नहीं है। वहाँ देशके भाग्यके बारे-न्यारे करनेवाले क़ानून बनते हैं। कांग्रेस वहाँ एक ऐसे छोकरेको भेजनेका दुस्साहस कर रही है, जो क़ानूनका विद्यार्थी है। वह क़ानूनके पर्चे हल करनेकी फिकर करेगा या अपने प्रतिद्वन्द्वी असेम्बलीके दिग्गज विद्वानोंके तर्कोंसे भिड़नेकी तैयारी? कैसी मूर्खता कर रही है कांग्रेस!"

लालाजीके ये तीखे तीर प्रान्तके कांग्रेस-उम्मीदवार पं० द्वारकाप्रसाद मिश्रको निशाना बना रहे थे। लालाजी भाषण समाप्त कर बैठ गए। श्रोताओंमें एक खलबली-सी मच गई। कांग्रेस पक्षसे इस लोहेका जवाब कौन अपने इसपातसे दे। एक, दो, तीन, धीरे-धीरे पाँच मिनट बीत गए। क्या कांग्रेस-पक्ष निर्बल पड़ जायगा? दो-एक वक्ता मंचपर आए; किन्तु लालाजीका तर्क वज्रनदार पत्थरकी तरह कांग्रेस-प्रेमी पर तार्किक श्रोताओंपर भारी पड़ रहा था। आक्रोशकी खरोंचोंसे उसका हटना सम्भव नहीं था। इतनेमें एक कोनेमें हलचल मची। लोगोंने देखा, एक ठिंगना व्यक्ति सामनेकी भीड़ चीरकर रास्ता बनाते हुए सभा-मंच की ओर बढ़ रहा है। वह श्री आगरकर थे। मंचपर पहुँचे। शील-भरे व्यंगके साथ उन्होंने अपने भाषणका आरम्भ यों किया—"राजनीतिके मैदानमें जिन खेले हुए घोड़ोंने अपने करतब दिखाए हैं, उनमें श्रद्धेय लालाजी अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। मैं उनसे नम्रतासे पूछता हूँ कि २३ वर्षका एक अंगरेज़ छोकरा आई० सी० एस० बनकर भारतके बड़े-बूढ़ोंपर जब शासन कर सकता है, तब लालाजी यह क्यों महसूस नहीं कर सकते कि उसी उम्रका भारतीय तरुण, जिसमें राष्ट्रीय तेज और साहसका अभाव नहीं है, असेम्बलीमें बूढ़े अंगरेज़ोंसे सफलतापूर्वक लोहा ले सकेगा? लालाजी हमारे बुज़ुर्ग हैं। वे कृपाकर चुनावके जोशमें कोई ऐसी बात अपने श्रीमुखसे न निकलने दें, जिससे लघुता की भावना प्रकट हो।" भाषणकी भूमिकाके ये शब्द लालाजीके कांग्रेस-विरोधी असरको आँधीकी तरह उड़ा ले गए।

आगरकरजी सरकारी अधिकारियोंके आगे कभी भी नहीं झुकते थे। अन्यायके खिलाफ़ वे सदा निर्भीकतासे आवाज़ बुलन्द करते थे। इसीसे मध्य-भारतकी रियासतें उनसे भयभीत रहती थीं। उनपर किसी रियासतकी धमकीका असर नहीं होता था और प्रलोभनोंको तो वे पैरों-तले रौंदा करते थे। उनकी देशभक्ति बड़ी प्रखर थी, जो कबीरके इस दोहेको चरितार्थ करती थी :—

कबिरा खड़ा बजारमें लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, सो चले हमारे साथ।

मस्तफ़क़ीरी ही उनका बाना था; पर अपनी धन-हीनताका कभी उन्होंने दैन्य प्रदर्शित नहीं किया। वे अपनेको किसी पूँजीपतिसे लघु नहीं अनुभव करते थे। उज्जैनके एक पूँजीपतिका, जिसके यहाँ बचपनमें उन्हें नौकरी करनी पड़ी थी, उन्होंने समय-समयपर 'स्वराज्य'में कड़ा विरोध किया। उनकी इस न्याय और सत्य-प्रियताका उक्त पूँजीपतिपर अच्छा ही असर पड़ा। प्रजाके आन्दोलनोंके लिए 'स्वराज्य'के स्तम्भ सदा खुले रहते थे; पर वे इस बातका अवश्य ध्यान रखते थे कि 'आन्दोलन' सत्य घटनाओंपर आधारित रहें। इसका परिणाम यह होता था कि रियासतें झेंक-खीझकर रह जाती थीं और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संवाददाताकी खोजमें व्यस्त रहती थीं। 'संवाददाता'का पता न देनेपर एक-दो बार अदालतोंमें मामले भी चलाए गए। एक ईमानदार पत्रकारके नाते वे इस तरहकी छोटी-मोटी झंझटोंको सदा झेलते रहते थे।

उनके मकानमें उनके रिश्तेदारोंका ही जमाव नहीं रहता था। रातको कभी पहुँच जाइए, तो '...जी झाबुआसे निर्वासित जमे हुए हैं,...जी इन्दौरसे निकाले हुए विराजमान हैं, ...जी रतलामसे भागे हुए आए हैं' के परिचयसे आप आश्चर्य-मुग्ध हो जायँगे। रियासतोंके अधिकारी खण्डवाको 'रावण चबूतरा' कहा करते थे; क्योंकि वहाँ पहुँचनेपर 'अपराधियों'पर हाथ रखना कठिन हो जाता था। गैरक़ानूनी ढंगसे 'स्वराज्य'-आफ़िससे किसी 'कार्यकर्त्ता'को खींच ले जाना पुलिसके लिए टेढ़ी खीर थी।

सन् १९३२ की एक घटना है। 'नागपुर-षड्यन्त्र-केस' प्रान्तका पहला क्रान्तिकारी केस पुलिसने खोज निकाला था। उस सिलसिलेमें पुलिस मुझे, घरकी तलाशीके बाद, खण्डवा-कोतवालीमें ले गई। दस बजेसे दो बजे दिन तक जब मैं नहीं लौटा और आगरकरजीको यह पता लगा कि कोतवालीको सशस्त्र पुलिस घेरे हुए है और मुझ तक किसीको भी नहीं पहुँचने देती, तो वे फौरन कोतवाली पहुँचे और 'पुलिस-कार्डन'की ज़रा भी परवा न कर कोतवालीके उस कमरे तक पहुँच ही गए, जहाँ नागपुरका पुलिस सी० आई० डी० मुझपर उल्टे-सीधे प्रश्नोंकी झड़ी लगाए हुए था। उन्होंने गरज कर कहा—'क्या मैं जान सकता हूँ कि आपने इस युवकको गिरफ़्तार कर लिया है? यदि नहीं, तो आपको इसे इतने समय तक भूखे रखकर रोक रखनेका कोई अख्तियार नहीं है। यदि आपने इसके साथ कोई दुर्व्यवहार किया, तो उसके लिए आप ज़िम्मेदार होंगे।'

पुलिस-अधिकारी सहम गया। उसे इस बातसे आश्चर्य हुआ कि 'पुलिस-कार्डन'की परवा न कर उस तक पहुँचने का साहस किसीको कैसे हो गया? बादमें उसे विदित हुआ कि वे 'स्वराज्य'-सम्पादक आगरकरजी थे, जिनकी निर्भीकतासे स्थानीय अधिकारी सदा सशंकित रहते थे। उसने बाहर जाकर उन्हें आश्वासन दिया कि वह कोई सख्ती नहीं करेगा। मुझे भी उन्हें देखकर बड़ा बल अनुभव हुआ और पुलिस-अधिकारीके व्यवहारमें भी अन्तर आ गया। उसने दूसरे दिन मुझे इन्दौर ले जाकर और जाँच करके छोड़ दिया।

एक बार और जब धार-स्टेटमें राजनीतिक डकैतीके सिलसिलेमें पुलिस मेरी टोहमें आई, तो आगरकरजीने उसे बुरी तरह फटकारा। बिना प्रमाणके केवल सन्देहमें व्यक्तियोंको परेशान करनेमें हमारे देशकी पुलिसको गर्व अनुभव होता है। उन्होंने कई बार कार्यकर्त्ताओंकी पुलिसकी ज़्यादतियोंसे रक्षा की है—कभी स्वयं अपने प्रभावसे और कभी उच्च अधिकारियों को वस्तुस्थितिसे अवगत कराकर। गत वर्ष मध्य-भारतके एक कार्यकर्त्ता 'क' पर रतलाम-दरबारकी कुदृष्टि हो गई। उसने ग्वालियर-स्टेटसे उनकी माँग की। आगरकरजी जानते थे कि यदि 'क' रतलाम-दरबारके हवाले कर दिए गए, तो उनकी खैर नहीं है। उन्होंने 'स्वराज्य' द्वारा तो तीव्रतम आन्दोलन किया ही, अपने व्यक्तिगत प्रभावसे भी 'क'की रक्षा की। ग्वालियर-स्टेटने 'क' को रतलाम-दरबारको सौंप देनेसे इन्कार कर दिया। श्री 'उग्र'की साहित्यिक हलचलोंसे इन्दौर-मध्य-भारत-समितिके सरकारी पक्षी सदस्य परेशान थे। वे उन्हें इन्दौरसे ही येनकेन-प्रकारेण हटाना चाहते थे। 'स्वराज्य'ने महीनों आन्दोलनकर 'उग्र'की स्थितिकी रक्षा की।

देशी रियासत ही नहीं, ब्रिटिश भारतके भी तेजस्वी तरुणों को कई नाज़ुक प्रसंगोंपर उन्होंने साहसके साथ आश्रय दिया। उनके स्वाभिमान और त्यागको अनेक घटनाओंमें से एकका यहाँ उल्लेख करता हूँ। जबलपुरसे निकलनेवाले 'कर्मवीर'में वे रियासतकी नौकरी छोड़कर आए थे। सम्पादकीय टिप्पणियोंमें ग्वालियर-शासनकी वे खरी आलोचनाएँ किया करते थे। जब तत्कालीन ग्वालियर-नरेशको (जो रियासतमें 'माधव महाराज'के नामसे अधिक परिचित थे) यह विदित हुआ कि 'कर्मवीर'की रियासत-सम्बन्धी टिप्पणियोंका लेखक उन्हींकी 'प्रजा' है, तो उन्होंने अपने सरकारी पत्र 'जयाजी प्रताप'के सम्पादकीय विभाग में उन्हें आमन्त्रित किया। उन्होंने महाराजको सूचित कर दिया—'मैं रियासतके बाहर रहकर ही रियासतकी अधिकसे अधिक सेवा कर सकता हूँ। रियासतका नौकर होकर रियासती प्रजाकी मुझसे सेवा होना सम्भव नहीं है।'

लोग उन्हें 'रूखा' समझते थे। यह सच है, वे अपने हृदयकी सरसताको मधुर शब्दोंका जामा नहीं पहनाते थे, अपने कृत्योंसे ही अपनी सहृदयताका परिचय देते थे। कठिनसे कठिन परिस्थितिमें भी उनकी आँखोंमें किसीने पानी नहीं देखा; पर मृत्यु-शय्यापर पड़े-पड़े जब उन्हें सुभाष बाबूके स्वर्गवासका संवाद मिला, तो वे इतना अधिक फूट-फूटकर रोए कि देखनेवाले आश्चर्यमें डूब गए। व्यक्तिके साहस, ईमान, त्याग और बलिदानपर वे सदा आत्मविभोर हो उठते थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवनकी 'चादर'को इतना उज्ज्वल रखा कि कबीरके शब्दोंमें हम कह सकते हैं :—

'दास कबीर जतनसे ओढ़ी, ज्योंकी त्यों धर दीन्ही चदरिया।'

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मज़दूर-सरकार और भारत

श्री सुधीन्द्र प्रामाणिक

ब्रिटेनके इतिहासमें सर्वप्रथम बार मज़दूर-सरकार कामन-सभामें एक बहुत बड़े बहुमतके साथ सत्तारूढ़ हुई है। निकट भविष्यमें विश्व-स्वातन्त्र्य और सामाजिक क्रान्तिके बारेमें इसका रुख और रवैया जो-कुछ भी रहे, इसकी विजय असन्दिग्ध रूपसे इतिहासकी एक बहुत बड़ी घटना और युद्धके कारण व्यापक हुई सामाजिक शक्तियोंकी अभिव्यक्ति है। मज़दूर-दलने यूरोपके शासक-दलकी सबसे चतुर राजनीतिक पार्टी अनुदार-दलको, जिसका ब्रिटेन ही नहीं, यूरोपकी राजनीति और अर्थनीतिमें भारी प्रभुत्व था, एकदम परास्त कर दिया है। युद्ध-कालमें ब्रिटेनमें बने संयुक्त-दलीय राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डलमें भी इसी दलका प्रभुत्व था, यद्यपि उसने मारीसन और बेविनको काफ़ी महत्वपूर्ण पदोंपर नियुक्त किया और चर्चिलका राग अलापनेका काम उनका नायब बनाकर एटलीसे लिया। जहाँ तक पूँजीवादियोंके निहित हितोंका सम्बन्ध था, ये लोग मौलिक सिद्धान्तोंके बारेमें लोकमतसे प्रभावित नहीं हुए। दरअसल यह सम्मिलित मन्त्रिमण्डल ऐसा अच्छा चला कि भारत या उपनिवेश ही नहीं, युद्ध और शान्ति-सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर भी उसके सदस्योंमें कोई मत-भेद नहीं हुआ। अतः आश्चर्य नहीं, यदि अनुदार-दलियोंका ऐसा विश्वास हो गया हो कि कुछ चोटीके मज़दूर-नेताओंको वे अपनी ओर मिला लेंगे। उन्हें यह भी आशा थी कि इनमें से कुछ तो ज़रूर मैकडोनल्डकी तरह आचरण करेंगे। पर उन्हीं नेताओं द्वारा मज़दूर-दलकी तगड़ी प्रतियोगिता और शानदार जीत देखकर इन अनुदार-दलियोंको अवश्य आश्चर्य हुआ होगा।

दरअसल टोरियोंने युद्धके दौरानमें मज़दूर-दलके सहयोगको ग़लत समझा। वे जन-साधारण—और विशेष रूपसे यूरोपमें लाल-सेनाके सम्पर्कमें आए सैनिकों और गुप्त रूपसे काम करनेवाले वामपक्षियोंके सम्पर्कमें आनेवाले सैनिकों और मज़दूरों—के दृष्टिकोणमें हुए प्रगतिशील परिवर्त्तनको क़तई समझ न सके। और यथार्थमें फ़ाशिज़्म-विरोधी लड़ाई और शानदार विजयके पीछे काम करनेवाली शक्ति इन्हींकी थी। स्वयं मज़दूर-दलको विश्वास न था कि उन्हें इतना भारी बहुमत प्राप्त होगा, क्योंकि उन्हें सन्देह था कि वे सम्मिलित मन्त्रिमण्डल द्वारा पैदा की गई समस्याओंका सन्तोषजनक हल और ब्रिटेनमें तथा उसके बाहरके अपने समाजवादी समर्थकोंकी आशाएँ पूरी नहीं कर पायँगे। उन्हें शायद यह भी यक़ीन न था कि समाजवाद-सम्बन्धी अपने विश्वास तथा उसे कार्यान्वित करनेको अपनी क्षमताके आधारपर वे ब्रिटेनको समाजवादी बना सकेंगे और उपनिवेशों, भारत तथा अन्य देशों-सम्बन्धी उसकी साम्राज्यवादी नीतिका भी अन्त कर सकेंगे, जिसके लिए कि वे अपने समाजवादी समर्थकों के सामने अपनी घोषणाओं द्वारा वचनबद्ध हैं। अतः यह विशेष आश्चर्यकी बात नहीं कि वे आम-चुनावके सम्बन्धमें अनिश्चित-से थे और ब्लैकपूल-कान्फ्रेंससे पूर्व अपने कार्यक्रमके आधारपर, जिसके लिए उसके भीतर-बाहरकी वामपक्षीय समाजवादी शक्तियों और मज़दूरोंके बढ़ते हुए प्रभाव एवं महत्वने उन्हें मजबूर किया, उन्हें टोरियोंको चुनावके लिए ललकारनेका साहस नहीं हुआ। अपने दलके साधारण सदस्योंके बढ़ते हुए उत्साहको देखकर ही उन्हें टोरी-दलके मुक़ाबलेमें अधिक स्पष्ट और दृढ़ रुख अख्तियार करना पड़ा।

टोरी कट्टरपन्थी मज़दूर-दल तथा सिपाहियों, सैनिकों और निम्न मध्य-वर्गके अधिकांश बुद्धिजीवियोंके इस दृढ़ और प्रगतिशील रुखके महत्वको ठीक-ठीक समझ ही नहीं सके। इसीलिए उन्हें यह देखकर अपने जीवनका सबसे बड़ा आघात लगा कि जिन लोगोंकी बुद्धिके बारेमें उन्हें सन्देह था, वे अपनी विवेक-बुद्धिसे काम लेकर कभी-कभी बड़ी तत्परतासे कार्य कर सकते हैं। मज़दूर-दलके लिए भी यह सफलता आशातीत थी। इसीलिए इससे ब्रिटेनकी राजनीतिमें एक तूफ़ान-सा आ गया। सभी दलों और पत्रोंने ब्रिटेनके इतिहासमें इसे एक बहुत बड़ा भूकम्प समझा। बुद्धिजीवी भी यह देखकर भौंचक रह गए कि जो लोग फ़ाशिज़्म-विरोधी भीषण संघर्षमें टोरियोंका साथ दे रहे थे और जिन्होंने उनके विजयी नेता चर्चिलका चुनाव तकमें हर जगह हर्ष-ध्वनिसे स्वागत किया, उन्हींने इतनी समझदारी और दृढ़-निश्चयके साथ उन्हींके खिलाफ़ वोट भी दिया। सभीके लिए यह आँखें खोल देनेवाली बात थी। इसके महत्वको टोरी और उनके समर्थक कितना भी कम क्यों न करें, इतिहासके इस सन्धि-कालमें वे उस सशक्त जनबलके सामने खड़े थे, जिसने इतने तार्किक और निर्णयात्मक रूपसे उनके खिलाफ़ अपना मत प्रकट किया था। उन्हें अन्ततः यह मानना पड़ा कि जनताकी शक्ति उनकी धारणासे कहीं अधिक है।

जनबलकी क्षमता और प्रभावको शायद साम्राज्यवादी कट्टरपन्थी जल्द ही भूल जायँ; पर जनता अथवा इतिहासकी शक्तियाँ नहीं। अभी तो उसकी और भी बड़ी विजय होगी और न सिर्फ़ ब्रिटेनमें, बल्कि संसारके उन सब स्थानोंमें, जहाँ साम्राज्यवाद अपनी फौजी शक्तिसे मुक्तिकामी जनताके संघर्षोंको कुचल रहा है। इस विजयका महत्व मज़दूर-दलके नेतृत्वके सन्दिग्ध और ढुलमुलयक़ीनी रुखके रूपमें नहीं, जनशक्तिके बढ़ते हुए प्रभाव और प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी रवैयेके रूपमें आँका जाना चाहिए। पहली बार ब्रिटेनकी जनता—मज़दूर, किसान, सिपाही आदि—ने किसी प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं, बल्कि बेहतर

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्यक्रम, बेहतर ब्रिटेन और बेहतर दुनियाके पक्षमें मत दिया। सम्भव है, नेतागण इन लोगोंकी आशाएँ पूरी करनेमें सफल न हों; पर या तो जल्दी या देरसे उन्हें इस दिशामें काफ़ी आगे बढ़ना पड़ेगा या फिर हट जाना पड़ेगा। अतएव मज़दूर-दलकी विजयके महत्वको कम करना अथवा बहुसंख्यक मज़दूरों और सिपाहियोंके—जिन्होंने इस युद्धमें भारी कष्ट सहे हैं और युद्ध-कालमें बहुत-सी बातें अपनी आँखोंसे देखी हैं – दृष्टिकोणमें हुए उल्लेखनीय परिवर्त्तनको नगण्य समझना बुद्धिमत्ता नहीं।

पूरी शक्तिके साथ मज़दूर-सरकारके सत्तारूढ़ होनेसे अनेक क्षेत्रोंमें यह आशा बलवती हो गई है कि विश्व-शान्तिके अच्छे रूपमें स्थापित होने और सभी राष्ट्रोंके आत्म-निर्णयके अधिकारके अधिक न्याय रूपमें मान्य होनेकी अधिक सम्भावना है। इस स्थितिने भारतकी आज़ादीके प्रश्नको सर्वप्रमुख रूपमें सामने ला दिया है। किन्तु भारत, बर्मा और दूसरे अधीन देशोंमें उसी पुरानी साम्राज्यवादी नीतिके जारी रहनेसे यूरोपके समाज-वादियों और अन्यान्य देशोंके मज़दूर-दलोंमें मज़दूर-दलकी विजयसे जिस आशा और उत्साहका संचार हुआ था, वह ठण्डा पड़ गया नज़र आता है। पिछले सात मास ब्रिटेनमें बिताकर वहाँकी राजनीति और विविध दलोंकी राष्ट्रीय एकताकी मूल भावनाके बारेमें मैं जो-कुछ धारणा बना सका हूँ, उससे भी मेरा यही विचार होता है कि चुनाव-जितना प्रगतिशील और निर्णा-यक मज़दूर-दलका कार्य नहीं होगा। अतः संसारके करोड़ों मेहनतकशों और पराधीन देशोंके बारेमें की गई इनकी घोषणाओंके अमलके सम्बन्धमें इसके अनुसार ही आशा करनी चाहिए।

फिर भी जिन शक्तियोंने मज़दूर-सरकारको उसके कार्यक्रम के आधारपर सत्तारूढ़ किया है, उनके बलको कम कूतना ठीक नहीं—भले ही समाजवाद या विश्व-स्वातन्त्र्यकी ओर उसकी प्रगति कितनी ही सीमित क्यों न हो। मज़दूर-दलके मन्त्रि-मण्डलमें न सिर्फ़ कुछ प्रमुख समाजवादी ही हैं, बल्कि अनेक उल्लेखनीय वामपक्षीय समाजवादी भी हैं। इसी प्रकार नई पार्लमेण्टमें भी कई नई भावनावाले सुदृढ़ समाजवादी और साम्राज्यवाद-विरोधी व्यक्ति हैं। परन्तु उदीयमान नई शक्तियोंको समझनेकी कुंजी ऐसे मन्त्रिमण्डल या ऐसी प्रगतिशील नई पार्लमेण्टके सदस्योंके हाथोंमें न होकर नई पीढ़ीके बहुसंख्यक बुद्धिवादियों, सिपाहियों और मज़दूरोंके रुखके उस उल्लेखनीय परिवर्त्तनमें है, जो एक काफ़ी बेहतर दुनिया बनाने, दूसरे लोगों के साथ न्याय करने और बार-बार लड़ाइयाँ करानेवाली अपने नेताओंकी भयंकर भूलोंकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिए अधीन देशों का जनतान्त्रिक स्वाधीनताका अधिकार माननेको बेसब्र हैं। मज़दूर-दलके नेतृत्वको कुछ समय तो युद्धोत्तर-स्थितिकी व्यवस्था करने तथा अर्थनीतिक संकटका सामना करनेके लिए मिलना ही चाहिए और हमें विश्वके आगे की गई उसकी प्रतिज्ञाओंको पूरा होनेके लिए कुछ समय प्रतीक्षा करनी ही चाहिए। सम्भव है, कुछ समय तक तथ्योंकी ग़लतबयानी और सुदूर विदेशोंके लोगोंके बारेमें सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर उन्हें भ्रान्त भी होना पड़े। इनमें से कुछ शायद काले लोगोंके बुर्ज़ुआ और फ़ाशिस्त-पक्षीय होनेके ग़लत प्रचारसे उनके प्रति अपने रुखको ठीक भी समझने लगें। पर सर्वत्र बढ़ते हुए वामपक्षके प्रभाव और उनके मौजूदा रुखको देखते हुए अधिक समय तक उन्हें इस तरह धोखा नहीं दिया जा सकता। युद्धके बाद जो राज-नीतिक स्थिति पैदा हो गई है और साम्राज्यवादी शक्तियाँ खूनी उपायोंसे अधीन देशोंपर फिर अधिकारकर इसे जो संगीन बनाने की चेष्टा कर रही हैं, उसमें आशाकी एकमात्र रजत-रेखा भी है।

इस नाज़ुक समयमें मज़दूर-सरकारके कन्धोंपर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। इसे निभानेकी दिशामें मज़दूर-नेताओंका रुख कितना भी धीमा, अनिश्चित और असन्तोषजनक क्यों न हो; पर वे इसके प्रति जागरूक अवश्य हैं। घरेलू राजनीतिमें उनके सामने चलन-शक्ति (बिजली, गैस आदि), कोयला, लोहा, फौलाद आदिके उद्योगों तथा सार्वजनिक यातायातको वैयक्तिकसे राष्ट्रीय और खानगी इजारेदार व्यापारचक्रोंको सार्वजनिक नियन्त्रणकी महत्त्वपूर्ण समस्या है। मज़दूर-दलकी पीठपर जो सबसे सुसंगठित और नरम संस्था ट्रेड-यूनियन है, वह भी यही चाहती है कि मज़दूर-सरकार एकदम सब उद्योग-धन्धोंका राष्ट्रीकरण करनेके बजाय पहले प्राथमिक आवश्यकताके रूपमें चलन-शक्ति, कोयला, लोहा, इस्पात आदिका ही आंशिक राष्ट्रीयकरण करे। साथ ही वह यह भी चाहती है कि सरकार घरोंकी सुव्यवस्था करे, बीवरिजसे अच्छी सामाजिक सुरक्षा-योजना बनाय, ४० घण्टेका सप्ताह प्रचलित करे और मज़दूर-क़ानूनोंका आमूलचूल सुधार-संशोधन करे। मज़दूर-सरकारको अपने चुनाव-घोषणापत्रके अनुसार शीघ्र ही इन महत्त्वपूर्ण कार्योंको सम्पन्न करना होगा, ताकि उचित समयमें समाजवादकी ओर क़दम बढ़ाया जा सके। मज़दूरों और उनके समाजवादी बुद्धिजीवी समर्थकोंको समाज-वादसे कममें सन्तोष नहीं होगा।

इसके साथ ही मज़दूर-सरकारके सामने सबको काम देने और जन-साधारणकी रहन-सहनकी सतह ऊँची करनेकी नीतिपर अमल करनेके लिए उत्पादक उद्योगोंके पुनर्निर्माण तथा निर्यात-व्यापारका स्पष्ट कार्यक्रम तैयार करनेका भी काम है। इस समय उनकी इस ज़िम्मेदारीका बोझ इसलिए और भी बढ़ गया है कि विदेशोंमें ब्रिटेनकी जो पूँजी थी, वह युद्धमें काम आ चुकी और स्वदेशमें सार्वजनिक कर्ज़ बहुत बढ़ गया है और शान्ति-कालीन उद्योग-धन्धे जन-शक्तिकी कमीसे लगभग छिन्न-भिन्न हो गए हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने अपने घोषणापत्रमें स्पष्ट लिखा है कि ब्रिटेनके जीवनके लिए, आवश्यक खाद्य-पदार्थोंके लिए, निर्यात-व्यापारको अपने पाँवोंपर खड़ा करनेके लिए सरकारी सहायता दी जायगी। यही बात दूसरे देशोंके साथ उनके राजनीतिक एवं अर्थनीतिक सम्बन्धोंको तय करनेका मूलाधार है। उनके युद्धोत्तर निर्यात-व्यापारके विस्तारकी योजनामें सबसे प्रमुख स्थान भारतका है, जो कि उनके कच्चे मालका मुख्य सूत्र और तैयार-शुदा मालका सहज बाज़ार है। अतः अपने राष्ट्रीय स्वार्थको कोई धक्का न पहुँचाते हुए, इस निर्यात-कार्यक्रमको अग्रसर करते हुए, वे अपनी साम्राज्यवाद-विरोधी जनतान्त्रिक स्थितिको क़ायम रखनेमें सामंजस्य नहीं बिठा पा रहे। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हितोंके इस संघर्षको बचानेके लिए वे बड़े चिन्तित हैं। और स्वार्थोंका यह संघर्ष ही भारत-सम्बन्धी उनकी नीतिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है।

भारतके सम्बन्धमें मज़दूर-दलने जो वादे किए हैं, उनकी पूर्त्तिमें होनेवाले विलम्बसे ब्रिटिश जनताका जो दबाव उसपर बढ़ रहा है और भारतीयोंमें जो विक्षोभ फैल रहा है, उससे वह अनभिज्ञ नहीं। वे जानते हैं कि अपने हितोंकी दृष्टिसे भी भारत की समस्याको अधिक दिन खटाईमें डाले नहीं रख सकते। कई समाजवादी आलोचकोंका ख़याल है कि यदि मज़दूर-सरकारको यह आश्वासन मिल जाय कि भारतमें जो राष्ट्रीय सरकार बनेगी, वह कुछ निश्चित समयके लिए भारत और ब्रिटेनके हितोंके रक्षार्थ एक व्यापारिक सन्धि कर लेगी, तो वह भारतकी आज़ादीके सम्बन्धमें पं० जवाहरलाल नेहरू-जैसे कांग्रेसी नेताओंसे समझौता करनेको तैयार है। पर इस बातका किसीको भी कोई ख़याल नहीं कि भारत और ब्रिटेनके व्यापारिक हितोंकी दृष्टिसे मज़दूर-सरकारकी नज़रमें 'उचित' समझौता क्या होगा? या एटली, बेविन और मारीसन किस हद तक अपने दावोंमें आगे आयँगे?

चतुर साम्राज्यवादी प्रचारकों और कई स्वार्थी भारतीय दलोंके निरन्तर ग़लत प्रचारके कारण भारतके स्वाधीनता-संग्राम के बारेमें भी मज़दूर-दलमें बड़ी ग़लतफ़हमी है। कांग्रेस, लीग और अन्य दलोंकी स्थिति एवं शक्तिके सम्बन्धमें परस्पर-विरोधी विवरणोंसे तथा भारतीय जनताकी ग़रीबी जिस हद तक बढ़ रही है, भारत और ब्रिटेनकी जनतामें मतभेदकी खाई जो चौड़ी हो रही है और जनतामें जो कटु विक्षोभ और साम्राज्य-वाद-विरोधी भावना ज़ोर पकड़ रही है, बहुत कम मज़दूर-नेता इस बातके बारेमें ठीक धारणा बना पाते हैं। इसके विपरीत उनमें से बहुतोंका यह ख़याल है कि अपनी सारी साम्राज्यवादी खामियोंके बावजूद ब्रिटेनने भारतको औद्योगिक एवं सांस्कृतिक उन्नतिके लिए बहुत-कुछ किया है और इस तरह भारतीय जनता में नवजागरण लाया है। ब्रिटेनके समाजवादी और भारतीय राष्ट्रवादी जब कहते हैं कि जहाँ तक ब्रिटेनके निहित हितोंका सम्बन्ध है, मज़दूर-दल टोरियोंसे बेहतर नहीं है, तब वे उपर्युक्त दलील हो ढालके रूपमें पेश करते हैं। वे अपने मनमें यह भी समझते हैं कि इनके दलकी कथनी और करनीमें कितना भेद है! इसीलिए वे टोरियोंके तीव्र विरोधके कारण भारतके हितकी दृष्टिसे ब्रिटेनके हितोंका समझौता न हो, अतएव भारत-सम्बन्धी तथ्योंका सामना करनेका भी साहस नहीं कर रहे। वे जानते हैं कि एक-न-एक दिन उन्हें इस महत्त्वपूर्ण समस्याको हल करना ही होगा; पर वे यह नहीं समझ पा रहे कि अपने देशके स्वार्थोंकी रक्षा करते हुए वे ऐसा किस प्रकार करें? इसीलिए वे भारतमें होनेवाले चुनावोंके परिणामकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अतएव इस समय जहाँ भारतकी वस्तु-स्थिति और स्वाधीनता-संग्रामके बारेमें ब्रिटेनके मज़दूरों, सैनिकों, समाजवादियोंको ठीक-ठीक जानकारी करानी है, वहाँ कांग्रेसके आधार एवं संगठनको भी अधिकाधिक व्यापक बनाना चाहिए तथा मुसलमानोंको भी काफ़ी तादादमें साथ लेना चाहिए, ताकि धीरे-धीरे उद्देश्य-पूर्त्तिकी ओर बढ़नेवाले हमारे स्वाधीनता-संग्रामके पीछे ठोस लोकबल हो जाय। मज़दूर-दलके भावी रवैयेके सम्बन्धमें हमें सिर्फ़ यही याद रखना चाहिए कि ब्रिटेन और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें राजनीतिक शक्तियोंका सम्बन्ध कुछ ऐसा हो रहा है कि राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनेके भारतीयोंके जन-आन्दोलनको वह कदापि निर्ममतापूर्वक कुचल नहीं सकती। बहुत कम लोग इस बातको महसूस कर रहे हैं कि अपने सिद्धान्तों और कार्यक्रमकी दृष्टिसे इतिहासके प्रति उनकी ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है। प्रो० हेराल्ड लास्कीके शब्दोंमें 'वे असफल होना सहन नहीं कर सकते, क्योंकि उसका परिणाम होगा प्रतिगामी शक्तियोंका फिर सत्तारूढ़ होना और नए जीवन एवं नवनिर्माणकी सारी आशाओंपर पानी फिरना।' चुनावके एक दिन पहले ही लास्कीने कहा था—"भारत न सिर्फ़ ब्रिटेनकी, बल्कि मज़दूर-दलकी सद्भावनाकी भी कसौटी है। भारत या तो ब्रिटेनके सहयोगसे अपनी स्वाधीनता प्राप्त करेगा या क्रान्तिसे।"

जल्द या देरसे ब्रिटिश मज़दूर-दल और ट्रेड-यूनियन आन्दोलनको इन दोमें से एक मार्गका निर्णय करना ही होगा और भारतमें उग्र होता जानेवाला स्वाधीनता-संग्राम तथा बर्मा, हिन्द-चीन, इण्डोनेशिया, सीरिया और अन्य देशोंमें फैलनेवाले ऐसे ही संग्राम उसे शीघ्र ही यह निर्णय करनेमें मदद देंगे। इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता इस समस्याका नहीं है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शहीद बहन सत्यवती

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

पिछले आठ बरसोंसे मैं अत्यन्त विस्मयके साथ देख रहा था कि हिन्दोस्तानकी आज़ादीकी लड़ाईके इस महायज्ञमें एक स्त्री किस तरह पूरी निष्काम भावनाके साथ अपनी देहको तिल-तिल करके बलि दे रही है। धधकती ज्वाला देखी है आपने? सत्यवती सचमुच एक धधकी ज्वालाके समान थीं। जब उनमें जलने लायक कुछ भी बाक़ी रहा, वे धधककर उजेला दे रहीं। आखिर जब सभी कुछ चुक गया, तो पिछले २१ दिसम्बरको वह प्रकाशमान ज्वाला बुझ गई! कितना मुश्किल था इस तरह बरसों तक अपने हाड़-मांसको लगातार जलाए जाना! इसकी अपेक्षा तो गोली खाकर मर जाना या फाँसीपर चढ़ जाना भी कहीं अधिक आसान है।

बहन सत्यवतीकी इस अमर शहादतकी कहानी हमारे देशके बहुत लोग नहीं जानते। उन्होंने कभी इसके लिए कोशिश नहीं की और न वे इस बातको पसन्द ही करती थीं। मगर आज वे नहीं रहीं, उनके अमर आत्मा-बलिदानकी कुछ घटनाएँ प्रकाशित कर देनेमें यह खतरा नहीं रहा कि उनके व्यक्तिगत अपमानके अपराधमें उनसे डाँट खानी पड़ेगी।

पहले-पहल सन् १९३० के लाहौर-कांग्रेस-अधिवेशनमें सत्यवती प्रतिनिधि-रूपमें शामिल हुईं। पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव पास होते समय जब मैंने उन्हें, खद्दरकी धोती पहने, एक ओरसे दूसरी जगह दौड़ते-भागते देखा, तो मुझे काफ़ी आश्चर्य हुआ; क्योंकि तब तक मैं उन्हें बन-ठनकर रहनेवाली एक सम्भ्रान्त गृहस्थ महिलाके रूपमें ही जानता था। मुझे बताया गया कि शुरू ही से उन्हें बढ़िया कपड़ों और बनाव-सिंगारका शौक़ था। उसपर उनका मधुर स्वभाव, ऊँचा क़द, आकर्षक और सुन्दर शरीर और हर समय मुस्कराता हुआ चेहरा उन्हें दिल्लीके सम्भ्रान्त समाजमें बहुत लोकप्रिय बनाए हुए था। आज मुझे सभी मालूम है कि भरी जवानीमें उनका मानसिक कायाकल्प किन परिस्थितियों और किन घटनाओंके कारण हो गया; परन्तु तब उन्हें इस नए रूपमें देखकर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ था।

लाहौर-कांग्रेससे वापस आते ही बहन सत्यवतीने दिल्लीकी महिलाओंको राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें काम करनेके लिए संगठित करना शुरू किया। उनके समान संगठनात्मक शक्ति बहुत कम लोगोंमें पाई जाती है। परिणाम यह हुआ कि सन् ३०-३१ के राजनीतिक आन्दोलनमें दिल्लीके कितने ही कुलीन परिवारोंकी असूर्यम्पश्या महिलाओंको शराब और विदेशी कपड़ोंकी दूकानोंके सामने बहन सत्यवतीकी अध्यक्षतामें पिकेटिंग करते देखकर जानकार लोग विस्मयसे दाँतों-तले अँगुली दबाते थे।

आखिर दिल्लीकी महिलाओंमें सबसे पहले बहन सत्यवती ही जेल गईं। यही अवसर था, जब दिल्लीवालोंने अपनी इस लोकप्रिय बहनका नाम 'दिल्लीकी जोन आफ़ आर्क' रखा था। मुमकिन है कि दिल्लीवालोंने महज़ भावुकताके कारण अथवा सन् '३०के आन्दोलनको प्रगति देनेके लिए बहन सत्यवतीका नाम 'जोन आफ़ आर्क' रखा हो। परन्तु गांधी-इर्विन-समझौतेके बाद जब वे जेलसे छूटकर आईं, तो लोगोंने पाया कि वे सच्चे अर्थोंमें हिन्दोस्तानकी 'जोन आफ़ आर्क' बन गई हैं।

सन् १९३२ के आन्दोलनमें अपनी सिर्फ़ ११ दिनोंकी बच्चीको लेकर वे जेल चली गईं। डाक्टरोंकी तो राय थी कि उन्हें उस दिन भी चारपाईपर ही लेटा होना चाहिए था। बहन सत्यवतीकी इस बच्ची का लगभग सम्पूर्ण पालन-पोषण जेल में ही हुआ। बहन सत्यवतीको अपनी इस सन्तान से विशेष स्नेह था और उन्होंने उसका प्यारका नाम रखा था—'मुन्ना'। इस बार जेलसे वापस आ कर बहन सत्यवतीने घर-बार सब छोड़ दिया। जेलमें उन्होंने राजनीति और अर्थशास्त्रका विशेष अध्ययन किया था और उनके विचार साम्यवादी बन गए थे। दूसरी बार जेलसे वापस आते ही उन्होंने दिल्लीके मज़दूरों, झल्लीवालों और टांगेवालोंको संगठित करना शुरू किया। सुबह, जल्दीमें नहा-धोकर, प्रायः कुछ भी खाए-पीए बिना वे घरसे निकल जाती थीं। अपने बच्चोंकी वे ज़रा भी परवाह या देखभाल नहीं करती थीं। उन्हें मालूम था कि उनकी माता श्रीमती वेदकुमारी-जी उनकी देख-भाल उनकी अपेक्षा बहुत अच्छी तरह कर लेंगी। घरसे निकलकर, बिना विश्राम किए, वे प्रायः बारह-बारह घण्टे कुली-मज़दूरोंमें काम करतीं और भूख लगनेपर जहाँ जो-कुछ रूखा-सूखा भोजन मिलता, उदरस्थ कर लेतीं।

स्व० श्रीमती सत्यवतीजी

हुकूमतने बहुत जल्द बहन सत्यवतीकी कीमती पहचान ली

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और बड़ी इज्ज़तके साथ उन्हें अपना मेहमान बना लिया। और इसके बाद तो उनपर आए दिन मुकदमे चलने लगे। वे जेलसे छूटकर आतीं, तो मज़दूरों और किसानोंमें काम करनेकी उनकी भावना पहलेकी अपेक्षा भी अधिक प्रखर और प्रभावशाली बनी होती। नतीजा यह होता कि बहुत जल्द उनपर नया मुकदमा चला दिया जाता। इस तरह पिछले १५ बरसोंमें बहन सत्यवती ११ बार जेल गईं।

सन् १९३८ से मुझे उन्हें बहुत नज़दीकसे देखनेका अवसर मिला। तब उनकी आयु सिर्फ़ ३० बरसकी ही थी। परन्तु लगातार कष्ट-सहनने उनके स्वस्थ और असाधारण शक्तिशाली शरीरको बहुत कमज़ोर और रुग्ण बना दिया था। मुझे अच्छी तरह याद है, उन दिनों बहन सत्यवती दिल्लीके आसपासके गाँवों का संगठन कर रही थीं। नवम्बरका महीना था। बहन सत्यवती सुबहसे रात तक एक गाँवसे दूसरे गाँवमें भटकती फिरतीं। जिन गाँवोंमें कोई राजनीतिक कार्यकर्त्ता काम करनेको तैयार न होता, उनमें काम करनेका ज़िम्मा बहन सत्यवती अपने ऊपर लेतीं। इन गाँवोंमें या तो सरकार-परस्तोंका बोलबाला होता या डरका साम्राज्य। कोई किसान बहन सत्यवतीको अपने घरमें आश्रय तक भी न देना चाहता। कितनी ही बार देर हो जाने-पर, गाँवके नज़दीकके वृक्षोंके नीचे, सिर्फ़ एक कम्बलमें, वे सारी रात काट देतीं। यह उस दशामें होता था, जब उन्हें दिल्ली वापस आनेकी सवारी न मिलती। यदि सवारी मिल जाती, तो रातके ११-१२ बजे तक वे घर वापस आ जातीं। उनके वापस आनेका कोई ठिकाना तो था नहीं। घरके सब लोग खा-पीकर सो चुके होते। घण्टोंसे लगाए हुए उनके थालका भोजन एकदम ठण्डा और बेस्वाद हो चुका होता। वे किसीको भी जगाए बिना जिस किसी तरह अपना भोजन उदरस्थ करतीं और अपने बिस्तरपर पड़ रहतीं। रात उन्हें इतनी खाँसी उठती कि घर-भरको मालूम हो जाता कि बहनजी आज घर वापस आ गई हैं। उनकी प्राणलेवा उस खाँसीकी वह भयानक आवाज़ आज भी मेरे कानोंमें गूँज रही है। मैंने आपसे ठीक ही कहा था; पूरे आठ साल हुए, उन्होंने अपने भीतरका सभी कुछ तिल-तिल करके होमना शुरू किया था। सन् '३८ में वे दूसरी बार प्लूरिसीका शिकार बनीं।

डाक्टरोंकी रायकी उन्होंने सदैव अवज्ञा की। बुखारकी हालतमें भी जब उन्हें मालूम होता कि फलाँ गाँवमें थानेदार मीटिंग नहीं करने देता, अथवा फलाँ कारखानेके मज़दूर एक नतीजेपर नहीं पहुँच रहे और आपसमें लड़ने-मरनेको तैयार हैं, तो वे घरवालोंको चकमा देकर चुपचाप घरसे खिसक जातीं। इन सब बातोंका परिणाम वही होना था, जो पिछले २१ अक्तू-बरको हुआ। बल्कि डाक्टरोंको इस बातकी सख्त हैरानी है कि इस परिणामको इतनी देर किस तरह लगा सके!

अब बहनजीका अधिकांश समय लाहौरके महिला-जेलमें कटता था और मैं प्रति सप्ताह एक बार उनसे मिलनेके लिए जाया करता था। अपने जीवनका मैं यह एक महान सौभाग्य मानता हूँ कि इतनी वीर आत्माका खूब नज़दीकसे अध्ययन करने का मुझे यथेष्ट अवसर मिला। जेलमें प्रायः वे अकेली ही राज-नीतिक क़ैदी होती थीं। जेलकी सब क़ैदिनें बहुत शीघ्र उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक मान लेती थीं। हत्याके अपराधकी और इसी तरहके भयंकर अपराधोंकी स्त्रियाँ अपने जीवनका पूर्ण और सच्चा इतिहास उन्हें कह सुनातीं और अपनी ज़िन्दगी सुधारनेके लिए उनसे आदेश माँगतीं। जेल-भरके बच्चे उन्हें अपनी माँ मानते और दिन-रात एक-दूसरेसे लड़नेवाली, सामाजिक परिस्थि-तियोंसे अपराधी बन गईं, अशिक्षिता क़ैदी-स्त्रियाँ (हिन्दू, मुस-लमान, सिक्ख सभी) उनके सामने सहज आदरके साथ सिर झुकाने लगतीं। बहन सत्यवती भी पूरी तरह उनके दुःखोंमें (सुखोंका तो वहाँ अवसर ही कहाँ होता था!) शरीक होतीं; उनकी समस्याको सुलझानेका भरसक प्रयत्न करतीं। इन्हीं दिनों जेलमें जानेवाली अपराधी स्त्रियोंकी मानसिक और चारित्रिक घटनाओंके सम्बन्धमें बहुत-से नोट सत्यव्रतीजीने लिखे थे। वे कीमती नोट वे नियमित रूपसे मुझे देती रहीं। अवसर आनेपर मैं उनका उपयोग करूँगा। एक बार जेलसे छूटते ही बहन सत्यवतीको अपने दुबारा जेल आनेका इतना अधिक विश्वास होता था कि वे अपना अधिकांश सामान मेरे यहाँ लाहौरमें ही छोड़ जाती थीं, ताकि सारा सामान फिरसे लानेका झंझट न करना पड़े। और हुकूमत सचमुच किसी-न-किसी ढंगसे उन्हें पुनः गिरफ़्तार करके लाहौर-जेलमें भेज देती थी।

आत्माहुतिकी चमक और प्रखरता क्रमशः बढ़ती चली गई। बहन सत्यवतीका स्वास्थ्य पहले खूब अच्छासे मामूली बना था, फिर मामूलीसे 'बद' बन गया था। अब दिन-रातकी मेहनत और निरन्तर जेल-वाससे वह बदसे 'बदतर' बनता जा रहा था। सन् १९४१ तक वह चिन्ताजनक बन गया। जेलमें वे लगातार बीमार रहतीं और स्वास्थ्यके आधारपर, जेल-विभाग की मेहनतोंसे, उन्हें जेलसे रिहा कर दिया जाता। परन्तु रिहा होते ही अधिक-से-अधिक दो सप्ताह तक वे अपने रिश्तेदारों अथवा डाक्टरों द्वारा लगाई गई बन्दिशोंकी परवाह करतीं। उसके बाद वे बीमारीकी हालतमें ही मज़दूरों और किसानोंमें काम करने चली जातीं। उनका कहना था—मेरे जीवनकी कीमत ही क्या है? मैं काम करते-करते मर जाऊँगी, तो कोई और मेरी जगह ले लेगा और स्वतन्त्रताकी लड़ाईका यह सिल-सिला बन्द नहीं होगा।' भावुक वे इतनी थीं कि किसी देश-भक्तकी कोई वीरतापूर्ण कहानी सुनते-सुनते उनकी आँखोंमें आँसू

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भर आते थे। बड़े-बड़े नामोंकी अपेक्षा अज्ञात अथवा अल्पज्ञात देशसेवकोंके कारनामे उन्हें अधिक प्रभावित करते थे।

सन् १९४२ में, ९ अगस्तसे पहले, बहन सत्यवतीने जिस तरह दिन-रात एक करके काम किया, उसकी मिसाल मिलनी कठिन है। किसी शादीवाले घरमें लड़कीकी माँ जितना व्यस्त रहती है, उससे भी अधिक व्यस्त मैंने उन्हें अगस्त '४२ के शुरूमें पाया। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसमें मैं ज़रा भी अत्युक्ति नहीं कर रहा। मैं उन दिनों दिल्ली गया था और उन्हींके पास ठहरा हुआ था। बहनजी चिररोगी बन गई थीं, इससे दिल्लीके एक वयोवृद्ध प्रसिद्ध चिकित्सक अपना कर्त्तव्य समझकर प्रतिदिन अपनी कारपर उनकी चिकित्साके लिए आया करते थे। अगस्त-आन्दोलनसे पहलेके दिनोंमें एक बार भी बहनजी घरपर उन्हें नहीं मिलीं। डाक्टर साहब भी कमालके धैर्यशाली थे। बीमार कभी न मिलता था, फिर भी वे अपनी कीमती प्रैक्टिसका हर्जकर बहनजीको देखने ज़रूर आते थे और बहनजी नहीं मिलती थीं, तो झुँझलाते तक नहीं थे। एक दिन डाक्टर साहबने इतना ज़रूर कहा था—'मुझे जिस तरह वे चकमा दे रही हैं, काश वे अपनी बीमारीको भी उसी तरह चकमा दे सकतीं!'

९ अगस्त, १९४२ का ऐतिहासिक दिन आज भी मुझे अच्छी तरह स्मरण है। ८ अगस्तकी रात हम लोग बहुत देर तक बातें करते रहे थे। १२½ बजे हम लोग सोए और उस समय तक बहन सत्यवती घर वापस नहीं आई थीं। मुझे नहीं मालूम कि वे कब वापस लौटीं। ९ अगस्तके प्रातःकाल ७ बजे रेडियोकी खबरें सुनने मैं गोल कमरेमें जा बैठा। महात्मा गांधी और कांग्रेस-वर्किंग-कमेटीके सदस्योंकी गिरफ़्तारीकी खबर सुनते ही मैंने उन्हें आवाज़ दी—'बहनजी, महात्मा गांधी गिरफ़्तार हो गए!' उनका कमरा नज़दीक ही था। सम्भवतः वे अभी तक अपने बिस्तरेपर थीं। चौंककर वे उठीं और क्षण-भरमें अपने कपड़े ठीक करके गोल कमरेमें आ गईं। रेडियोके पास भी वे अधिक देर तक खड़ी नहीं रहीं। उनके चेहरेके भाव प्रतिक्षण बदल रहे थे। एक अस्पष्ट-सी आवाज़ जैसे उनके अन्तःकरणको भेदती हुई बाहर निकली, जिसका एक अक्षर भी मेरी समझमें नहीं आया। सहसा एक विशेष दीप्तिसे उनका रोगी चेहरा तमतमा उठा और वे तेज़ीके साथ घरसे चल दीं। रेडियो अब भी एकके बाद एक सांघातिक खबरें सुनाए जा रहा था; मगर देवी सत्यवतीको अब और कुछ सुनना बाक़ी नहीं था। तेज़ीसे वे सीढ़ियोंकी ओर लपकीं। मैंने पूछा, घरके और लोगोंने पूछा, बहनजीकी सबसे लाड़ली बेटी दस बरसकी मुन्नाने पूछा; परन्तु किसीके किसी सवालका कोई जवाब नहीं मिला।

वे शायद पहले ही जानती थीं कि क्या होनेवाला है। उनके जानेके बहुत थोड़ी देर बाद पुलिस उनकी गिरफ़्तारीके लिए आ पहुँची। उनकी और उनकी माता श्रीमती वेदकुमारीजीकी गिरफ़्तारीके वारण्ट थे। माताजी तो गिरफ़्तार हो गईं; परन्तु बहन सत्यवतीके सम्बन्धमें किसीको कुछ भी मालूम नहीं हो सका कि वे कहाँ हैं और क्या कर रही हैं। उसके बाद मैं काश्मीरमें था, जब मुझे उनकी गिरफ़्तारीकी खबर मिली। उन दिनों जेलवालोंको बाहरकी खबरें मिलना सम्भव नहीं था और बाहरवालोंको जेलोंके भीतरकी। इतना हमें ज़रूर मालूम था कि दिल्लीकी अन्य महिला-क़ैदियोंके साथ बहनजीको भी लाहौरके 'स्त्रियोंके जेल'में ले आया गया है।

९ अक्टूबर, १९४२ को एक खास विस्मयकी सनसनी लाहौरमें देखनेमें आई। स्त्रियोंके जेलको जानेवाली सड़कपर आध मीलकी दूरी तक पुलिसका सख्त पहरा था। उस तरफ़ किसी को जानेकी इजाज़त नहीं थी। यहाँ तक भी सुननेमें आया कि स्त्रियोंके जेलमें 'टियर गैस' ले जाई जा रही है। इतनी दूरसे भी बीसों स्त्री-कण्ठोंसे निकले अनेक नारे स्पष्ट रूपमें सुनाई दे रहे थे। एक अजीब तरहकी सनसनी सब तरफ़ व्याप्त हो गई। बादमें मालूम हुआ कि बहन सत्यवतीके नेतृत्वमें जेलकी महिला कार्यकर्त्रियोंने न सिर्फ़ ९ तारीखका दिन ही मनाया, अपितु जेलके ऊँचे मुख्य फाटकके ऊपर तिरंगा झण्डा भी फहरा दिया। इस सम्बन्धमें जेलमें बन्द कालेजकी छोटी-छोटी लड़कियोंसे जो व्यवहार अधिकारियोंने किया, जिस तरह उन्हें खींच-खींचकर कोठरियोंमें बन्द किया गया, वह सब यहाँ लिखना अनावश्यक है। यहाँ इतना ही लिखना काफ़ी है कि इस घटनाके बाद पंजाबके अधिकारी बहन सत्यवतीको लाहौरके स्त्रियोंके जेलमें रखनेका साहस नहीं कर सके। उन्हें, उनकी छोटी बहन कौशल्या, उनकी बड़ी लड़की कुसुम तथा उनकी माताजीको अम्बाला-जेलमें भेज दिया गया।

और यह अम्बाला-जेलकी सील-भरी एक कोठरी ही थी, जिसमें बहन सत्यवती तपेदिक़-जैसी बीमारीका शिकार बनीं। प्लूरिसीके दो हमले उनपर पहले भी हो चुके थे। पिछले दिनों दिन-रात काम करके अपने रोगी शरीरको उन्होंने और भी कमज़ोर बना लिया था। खेत तैयार था, सिर्फ़ बीजके पड़नेकी देर थी। बहन सत्यवतीकी यह दसवीं जेल-यात्रा थी। बहन सत्यवतीमें जब चारपाईसे उठनेकी भी सामर्थ्य बाक़ी न रही, तो उन्हें पुनः लाहौर-जेलमें ले आया गया। एक्स-रेसे मालूम हुआ कि उनका एक फेफड़ा अधिक और एक कम तपेदिक़का शिकार हो चुका है। अतः उन्हें अस्पतालके स्पेशल वार्डमें भर्त्ती कराया गया। परन्तु यहाँ भी पुलिसका दिन-रातका पहरा था और उनका कोई रिश्तेदार या मित्र उनसे मिलने नहीं जा सकता था।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मई, १९४३ के प्रारम्भमें दिल्लीमें बहनजीकी लाड़ली बेटी मुन्नाका, एक छोटी-सी बीमारीके बाद, देहान्त हो गया। यह एक सचाई है कि मुन्ना (उमा उसका असली नाम था) अपनी माताके शोकमें मरी। वह एक बहुत प्रतिभाशालिनी और भावुक लड़की थी। ग्यारह बरसकी उम्रमें ही उसकी समझ अपनी हमउम्र लड़कियोंसे बहुत अधिक थी। वह अपनी माँपर जान देती थी। जिस दिनसे उसे मालूम हुआ कि उसकी माँको तपेदिक़ हो गया है, उस दिनसे उसे किसीने हँसते या मुस्कराते नहीं देखा। अपने बचपनमें अपने स्वभाव, स्वास्थ्य और सौन्दर्यके कारण मुन्ना बहुत लोकप्रिय रही थी। उसे जाननेवाले सभी लोग हैरान थे कि १०-११ बरसकी यह ज़रा-सी लड़की इतनी गमगीन क्यों रहने लगी है! अपने स्कूलकी साथिनियोंसे वह प्रायः कहा करती—'अगर मेरी माँको कुछ हो गया, तो मैं ज़िन्दा न रहूँगी।' और अपनी माँकी सांघातिक बीमारीके अफ़सोसमें वह अधखिली कली सचमुच मुरझा गई।

किसीमें यह साहस नहीं था कि यह शोकपूर्ण समाचार बहनजी तक पहुँचा सके। सबको मालूम था कि बहन सत्यवती अपनी इस बेटीसे कितना प्यार करती हैं और अब तो स्वयं उनका स्वास्थ्य एक बहुत बड़ी चिन्ताका विषय बना हुआ था। वे चारपाईसे हिल भी नहीं सकती थीं। जेलके अधिकारी भी उन्हें यह समाचार देनेका साहस नहीं कर सकते थे। जिस औपन्यासिक ढंगसे उन्हें यह खबर मिली, वह आज तक भी एक भेद है, जिसे पंजाब-सरकारके अधिकारी आज तक भी नहीं जान सके। बहनजीका कहना था कि मुन्नाके देहान्तकी खबर मिलनेके बाद पूरे ७२ घण्टों तक वे उथले पानीमें पड़ी मछली की तरह तड़पती रहीं। उन्हें सान्त्वना देनेवाला या मुन्नाके देहान्तकी विस्तृत खबरें सुनानेवाला भी कोई नहीं था। उन्हें तो इतना भी नहीं मालूम हो सका कि मुन्ना बीमारीसे मरी या किसी दुर्घटनासे। दिल्ली-सरकार और पंजाब-सरकारमें एक खतो-किताबत हुई और उसके बाद हम लोगोंको यह इजाज़त मिली कि अस्पतालमें जाकर हम लोग उनसे मिल सकें, उन्हें सान्त्वना दे सकें।

जून, १९४३ से लेकर २० अक्टूबर, १९४५ तक बहन सत्यवती लगातार मौतसे जूझती रहीं। आप एक ऐसे मरीज़ की कल्पना कीजिए, जिसके दोनों फेफड़े तपेदिक़का शिकार बन गए हों; निरन्तर बीमारी और अत्यधिक परिश्रमसे जिसका शरीर जर्जर हो चुका हो और उसपर हाल ही में उसे अपनी सबसे प्यारी सन्तानके देहावसानकी खबर मिली हो। ऐसे मरीज़को यदि मई और जूनके महीनोंमें भी लाहौरमें रखा जाय, जहाँ इन दिनों पारा ११८ तक जा पहुँचता है, तो उस मरीज़का शेष जीवन आप कितने दिनोंका अन्दाज़ कर सकते हैं?

जीवन और मौतके इस संघर्षमें उन्हें पंजाब-सरकार द्वारा दिल्ली-सरकारकी यह चिट्ठी मिली कि यदि वे राजनीतिक कार्योंमें भाग न लेनेका वचन दें, तो उन्हें रिहा किया जा सकता है। बहनजी इस तरहका वचन देंगी, इसकी आशा उनके शत्रुको भी नहीं हो सकती थी। इस कारण मैं पंजाब-सरकारके होम-सेक्रेटरीसे मिला और उन्हें बताया कि बहन सत्यवतीकी इस घातक बीमारीमें उनसे यह आशा करना कि वे राजनीतिक कार्य करेंगी, एक बहुत दूरकी कल्पना है। होम-सेक्रेटरीका कहना था कि उनका अब तकका रेकार्ड बहुत ही खतरनाक है। इसपर भी होम-सेक्रेटरी महोदय इस बातके लिए तैयार हो गए कि यदि सत्यवतीजी इतना ही वादा कर दें कि राजनीतिक कामोंमें भाग लेनेसे पहले वे इस बातका नोटिस सरकारको अवश्य दे देंगी, जिस तरह १९४१ के सत्याग्रहमें किया जाता था, तो सरकार उन्हें रिहा कर देगी।

बहनजीके स्वास्थ्यको दृष्टिमें रखकर, लाचारीकी सूरतमें, मुझे होम-सेक्रेटरीका उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लेने योग्य प्रतीत हुआ और तब होम-सेक्रेटरीकी इजाज़तसे ही, सी० आई० डी० के एक अफ़सरके साथ, मैं बहनजीसे मिलने गया। पूरे दो घण्टों तक अनेकानेक प्रकारकी युक्तियोंसे मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि नोटिस देकर राजनीतिक कामोंमें भाग लेनेको शर्त्तमें बुराई या अपमान नहीं है। परन्तु वे अखीर तक यही कहती रहीं—'जब मैं इस सरकारको सरकारी सत्ता ही स्वीकार नहीं करती, तो उसे नोटिस देनेका वादा क्यों करूँ?' इस सम्बन्धमें मैं कई दिनों तक बहनजीपर दबाव डालता रहा, क्योंकि मुझे मालूम था कि लाहौरकी गरमी और अस्पताल के बन्द कमरे (लूसे बचानेके लिए उसे खसकी टट्टियोंसे बन्द रखना और भी आवश्यक था) में प्रतिदिन उनके फेफड़े अधिकाधिक बीमार होते जा रहे हैं। परन्तु बहनजी नहीं मानीं। किसी भी तरहका कोई वचन देनेसे उन्होंने इन्कार कर दिया।

आखिर लाचार होकर, अत्यन्त चिन्ताजनक डाक्टरी रिपोर्टों के आधारपर, सरकारने बिना किसी शर्त्तके उन्हें रिहा कर दिया। उन्हें शिमला पहाड़ियोंके किसी सैनेटोरियममें ले जानेका निश्चय किया गया। मैं ही यह प्रबन्ध करने गया। कसौलीके सुप्रसिद्ध बड़े डाक्टर जोज़फने बहनजीके फेफड़ोंके फोटो देखते ही कहा कि इस मरीज़की बीमारी प्रतिदिन बड़ी भयंकरताके साथ बढ़ रही है। तब मैंने उन्हें बताया कि मरीज़ सरकारी मेहमान रहा है; सरकारने अपने इस मेहमानको आखिर दिन तक, जूनके दूसरे सप्ताहमें भी, लाहौर ही में रखा है। डाक्टर जोज़फ़ने उसी दिन कह दिया था—'केस एकदम असाध्य बन चुका है।'

लाहौर-अस्पतालमें रहते हुए एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। सरकारी तौरसे मरीज़की देख-भाल करनेके लिए एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुसलमान महिला उनपर नियुक्त थी। यह महिला कोहाटके भूकम्प में विधवा हुई थी और उसके बाद लाहौर चली आई थी। हम लोग जब अस्पतालमें जाते थे, तो इस महिलाका व्यवहार बहुत सहानुभूतिपूर्ण पाते थे। बहनजी तो उसे 'बूआ' कहकर बुलाया करती थीं। जब बहनजी रिहा हुईं, तो 'बूआ'ने भी सरकारी नौकरी छोड़ दी। कुछ लोगोंका खयाल था कि हो-न-हो, वह सी० आई० डी० के तौरपर बहनजीके साथ है। मगर स्वयं बहनजीको उसपर अगाध विश्वास था, और बादमें बहनजीकी लम्बी बीमारीके दिनोंमें उनके लिए बूआने जो कुछ किया, वह माँको छोड़कर और कोई नहीं कर सकता। बहनजीके जीवनसे प्रभावित होकर यह बूआ सचमुच उन्हें अपनी बेटी मानने लगी थी।

जून १९४३ से लेकर दिसम्बर, १९४४ तक बहनजी लेडी इर्विन सैनेटोरियम, जुब्बरमें रहीं। उनके फेफड़ोंके ३ आपरेशन हुए, फिर भी वे ठीक नहीं हो सकीं। रोग सचमुच असाध्य हो गया था। बल्कि बादमें तो उन्हें अँतड़ियोंकी शिकायत भी शुरू हो गई, इसलिए दिसम्बर, १९४४ में उन्हें पुनः लाहौर ले आया गया। जुब्बारमें बहनजीको नज़रबन्द कर दिया था; मगर उसकी परवाह किए बिना वे लाहौर चली आईं। महात्मा गांधीने उन्हें लिखा था कि वे 'बेशर्मीकी कोई शर्त्त मंजूर न करें।' लाहौर पहुँचनेके बाद उनपर अनेक पाबन्दियाँ लानेका एक नोटिस सरकारने उनके पास भेजा। लाहौरमें इस तरहकी पाबन्दियाँ प्रायः सभी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंपर थीं, और वे साधारण जीवनका एक भाग बन गई थीं। इसी कारण पुलिस-इन्स्पेक्टरको यह देखकर अत्यधिक अचम्भा हुआ, जब बिस्तरेपर लेटे हुए एक बीमारने—खास तौरसे एक महिला बीमारने—सरकारी नोटिसकी पीठपर यह लिख दिया—'तुम मुझे हुक्म देनेवाले कौन हो? मैं यह हुक्म तुम्हारे सिरपर तोड़ूँगी।'

बहन सत्यवतीको अब तक यह मालूम हो गया था कि वे बच नहीं सकतीं। अपने बिस्तरेपर पड़े-पड़े वे पत्रों और सन्देशों द्वारा दिल्ली तकके राजनीतिक आन्दोलनका संचालन और संगठन करने लगीं। लाहौरके विद्यार्थियोंके एक बड़े जल्सेमें वे भाषण भी दे गईं। बुखारकी हालत ही में उन्हें मंचपर ले जाया गया और वहाँसे अपना सन्देश उन्होंने कह सुनाया।

इसके बाद १४ फरवरी, १९४५ को वे अपनेपर लगाई गई पाबन्दीको तोड़कर लाहौरसे दिल्लीके लिए रवाना हुईं। लाहौर स्टेशनपर उनके मित्रों और परिवारके लोगोंके साथ सी० आई० डी० की एक पूरी फ़ौज उन्हें अलविदा देने गई। बहन सत्यवती की हालत उस वक्त बहुत खराब थी। १०३ डिग्रीसे ऊपर उन्हें बुखार था। एक स्ट्रेचरपर डालकर उन्हें अपने बर्थ तक ले जाया गया। और इस दशामें भी १५ फरवरी, १९४५ के प्रातःकाल फ्रान्टीयर मेलको दिल्लीसे एक स्टेशन पहले खड़ा करके उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। यह उनकी ग्यारहवीं और उनके जीवनकी अन्तिम गिरफ़्तारी सबसे अधिक शानदार थी। उनको उस वक्त तेज़ बुखार चढ़ा हुआ था। वे दर्दसे तड़प रही थीं। गाड़ीसे स्ट्रेचरपर और फिर स्ट्रेचरसे एम्बुलेन्समें डाल कर पुलिस उन्हें दिल्ली-जेलमें ले गई। कुछ ही दिनोंके बाद, पहले तो उन्हें दिल्लीके सिल्वर-जुबली अस्पतालमें नज़रबन्द कर दिया गया और बादमें उनपर से पाबन्दियाँ भी उठा ली गईं। इसी अस्पतालमें २१ अक्टूबर, १९४५को उनका देहावसान हुआ।

जीवनकी पूर्णाहुति देनेके दिन अब नज़दीक आ गए थे। बहन सत्यवतीकी शारीरिक कमज़ोरी और कष्ट बहुत बढ़ गया था, इसपर भी उनका मन सचेत और जागरूक था। अपने बिस्तरपर से ही वे देश और विशेषतः दिल्लीके राजनीतिक जीवन में पूरी दिलचस्पी लेती रहीं। उनका कमरा राजनीतिक विवादों और चर्चाओंका एक प्रमुख केन्द्र बना हुआ था। अपने देहान्तसे कुछ ही महीने पहले उन्होंने भूख-हड़ताल करनेका इरादा ज़ाहिर कर दिल्ली-कांग्रेसकी आपसी फूटको रोका था। दिल्लीके और सब लोग इस प्रयत्नमें असफल हो चुके थे।

महात्मा गांधीको बहन सत्यवतीसे विशेष स्नेह था। महात्माजी प्यारसे उन्हें 'तूफ़ानी' कहकर बुलाया करते थे। 'तूफ़ानी, अब कौन-सा नया तूफ़ान खड़ा करना है?'—महात्माजी बहुत बार उनसे यह सवाल किया करते थे। बहनजीकी बीमारीकी पूरी खबरें वे मँगाते रहते थे। अनेक बार उन्होंने बहनजीको लिखा था—'अगर हो सके, तो तू यहाँ सेवाग्राममें आ जा। मैं यहाँ खुद तेरी सेवा करूँगा।' परन्तु बहनजीकी हालत इतनी खराब हो गई थी कि उनके लिए सेवाग्राम जा सकना सम्भव न था। तब शिमला-कान्फ्रेन्समें जाते हुए महात्माजी खास तौरसे इसीलिए करीब डेढ़ घण्टे दिल्लीमें रुके कि अस्पतालमें जाकर बहन सत्यवतीसे मिल लें। शिमलासे वापस आते हुए वे दुबारा बहनजीसे मिले और पिताकी तरह बहनजीको देशके भविष्यके सम्बन्धमें दिलासा देते रहे—'तू अब किसी किस्मका फ़िक्र मत कर, तूफ़ानी! कांग्रेसकी शक्ति अब बहुत अधिक बढ़ गई है।' यह उनका अन्तिम सन्देश था। महात्माजीका स्वास्थ्य अच्छा हो या बुरा, बहनजीको चिट्ठी वे सदैव अपने हाथसे लिखते थे।

क्रमशः बहनजीका ध्यान अपने परिवारकी ओर केन्द्रित होता चला गया। सन् १९३० से अपने पारिवारिक जीवनकी उन्होंने नितान्त उपेक्षा की थी। अब वे पारिवारिक मामलोंमें पूरी दिलचस्पी लेने लगीं। अपने पति श्री बलभद्रको वे विशेष श्रद्धासे देखने लगीं। अपने एकमात्र पुत्र कृष्णका विवाह वे अपने जीवन-कालमें कर देना चाहती थीं। १६ अक्टूबर, १९४५ को रावलपिण्डीमें कृष्णका विवाह होना था। बहनजीका

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वास्थ्य अब इतना बिगड़ चुका था कि उनका शरीर कमज़ोर हड्डियोंका ढाँचा-भर ही रह गया था। प्रतिक्षण 'अब और तब' का मसला था। किसीको आशा नहीं थी कि बहनजी १६ तारीख तक ज़िन्दा रहेंगी। परन्तु उन्होंने घोषणा कर दी थी कि चाहे कुछ भी हो जाय, मैं १९ अक्टूबरसे पहले नहीं मरूँगी रावलपिण्डीसे बरात १८ तारीखकी रात वापस आई। बहनजीने अपनी पुत्रवधूको आशीर्वाद दिया। १९ तारिखको पं० जवाहरलाल नेहरू बहन सत्यवतीसे मिलने गए और उसके ४० घण्टोंके बाद बहन सत्यवतीने यह नश्वर देह त्याग दिया।

और जब देवी सत्यवतीकी अमर आत्मा अपने नश्वर शरीर को छोड़ गई, तो दिल्लीके हज़ारों-लाखों नागरिकोंने पाया कि वह वीर आत्मा उनके लिए दधीचिकी हड्डियोंके समान सिर्फ़ एक सूखा हुआ पिंजर-भर छोड़ गई है। आज, इस कलिकालमें, मालूम नहीं कि इस महामहिम और अनन्त शक्तिशाली वज्रका प्रयोग कोई कर सकेगा या नहीं।

× × ×

दिल्लीका यह एक बहुत बड़ा सौभाग्य है कि इसी सदीमें दिल्लीने एक नहीं, बल्कि दो अत्यन्त बहादुर महिलाओंको जन्म दिया—एक बहन सत्यवती और दूसरी श्रीमती अरुणा आसफ़ अली। श्रीमती अरुणाके बारेमें कोई नहीं जानता कि वे आजकल कहाँ हैं। परन्तु हाल ही में, अपने एक दिल्ली-निवासी मित्रको, देशके किसी अज्ञात भागसे जो पत्र उन्होंने लिखा है, वह पत्र इस लेखका सबसे अच्छा उपसंहार है। पत्र यों है—

"प्यारी सत्यवतीका चेहरा क्षण-भरके लिए भी मेरे खयाल से ओझल नहीं होता। उनका अदम्य साहसपूर्ण जीवन देशके लिए एक बहुमूल्य सम्पत्ति था, और आज जब इस तरहकी निर्भयताकी हमें सबसे अधिक ज़रूरत है, वे ज़िन्दा नहीं रहीं। जब कभी मेरे लिए सम्भव होगा, मैं सत्यवतीकी माताजीसे मिलने आऊँगी। आप उनसे कहिएगा कि अबसे वह मुझे भी अपनी बेटियोंमें शामिल कर लें।

"उस बहादुर आत्माके स्थानकी पूर्ति हम लोग नहीं कर सकते; परन्तु उसकी यादको ज़िन्दा रखनेके लिए हम उसके जीवनके ध्येयको पूरा करनेका प्रयत्न अवश्य कर सकते हैं। मैं उनका संक्षिप्त जीवन-वृतान्त लिखनेका प्रयत्न कर रही हूँ। परन्तु यही काफ़ी नहीं है। दिल्लीकी प्रत्येक महिलाको यह अवश्य मालूम होना चाहिए कि हिन्दुस्तानका महिला-समाज बहन सत्यवतीका कितना ऋणी है और उन्होंने अपने निष्काम अनवरत प्रयत्नसे स्वतन्त्रताके आन्दोलनको कितनी बड़ी प्रगति दी है।

"आज मैं अधिक नहीं लिख सकूँगी। मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकती हूँ कि जब बहन सत्यवतीजीके शवका जुलूस दिल्लीकी सड़कोंपर से गुज़रा होगा, तब सम्पूर्ण दिल्लीके दिलपर क्या बीती होगी। दिल्लीकी इन्हीं सड़कोंपर बहन सत्यवतीने कितनी ही बार बड़े-बड़े जुलूसोंका नेतृत्व किया था। कितनी बार दिल्लीका वायुमण्डल उनके जोशीले भाषणोंसे काँप चुका है।"

कवि

श्री देवराज 'दिनेश'

दुनिया आज चली है कविको माँग-माँगकर अन्न खिलाने;
दुनिया आज चली है कविका रहा-सहा सम्मान मिटाने।
कौन जगतमें ऐसा बोलो, जिसने रवि रुकता देखा है;
कौन जगतमें ऐसा बोलो, जिसने कवि झुकता देखा है।
दुनिया आज चली है गा-गाकर अपना कर्तव्य निभाने;
दुनिया आज चली है कविका रहा-सहा सम्मान मिटाने।
उसको ज्ञात नहीं क्या कवि तो निर्धनतामें ही पलता है;
पगली भूल गई है, दीपक अन्धकारमें ही जलता है।
दुनिया आज चली है दाताको भिक्षुकका रूप दिलाने;
दुनिया आज चली है गा-गाकर अपना कर्त्तव्य निभाने।
जी-भर उसका रक्त निचोड़ा, घी-भर तुमने दीप जलाए;
उसकी अमर कला पर तुमने ये चाँदीके महल सजाए!
रही रहमपर जिसके जीती, उसे चली है रहम दिखाने;
दुनिया आज चली है दाताको भिक्षुकका रूप दिलाने।
कवि भूखा-नंगा है, उसकी मौत खड़ी है मर जाने दो;
अमिट अभावोंकी बस्तीमें उसको मस्तीसे गाने दो।
लेकर कविका नाम चली है दुनिया अपना काम बनाने;
दुनिया आज चली है कविको माँग-माँगकर अन्न खिलाने।
दुनिया आज चली है कविको माँग-माँग कर अन्न खिलाने।
जिस दिन उसे अभाव खलेंगे, मस्ती तभी टूट जाएगी;
शंख पकड़ लेगा हाथोंमें, वीणा वहीं छूट जाएगी।
भैरव स्वरसे लग जाएगा एक अमिट सन्देश सुनाने;
लेकर कविका नाम चली है दुनिया अपना काम बनाने।
जिस दिन कविकी भृकुटी तन गई असल रूप उसने पहचाना;
सच बतला दूँ, नहीं मिलेगा अखिल विश्वमें तुम्हें ठिकाना।
भूखे-नंगोंके दल उस दिन आयेंगे प्रतिशोध चुकाने;
दुनिया आज चली है गा-गाकर अपना कर्त्तव्य निभाने।
जिनके बच्चे मरें भूखसे, तुमने जिन्हें नष्ट कर डाला;
हो दयार्द्र उनपर जिस दिन कविने उनका नेतृत्व सँभाला।
सच कहता हूँ मुश्किल हो जाएगा तुमको प्राण बचाने;
भूखे-नंगोंके दल जिस दिन आयेंगे प्रतिशोध चुकाने।
कविमें अमिट शक्ति है चाहे तो गीदड़को सिंह बना दे;
कवि वह जादूगर है, चाहे तो सागरमें आग लगा दे।
चुल्लू-भर पानीसे दुनिया आई ज्वालामुखी बुझाने;
दुनिया आज चली है कविको माँग-माँगकर अन्न खिलाने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्धान

श्री रूपकुमारी बाजपेई

नीम और आमके सघन वृक्षोंके नीचे मिट्टीके साफ़-सुथरे हवादार मकान बीचकी चौड़ी सड़कके दोनों ओर लताओंसे आभूषित खड़े थे। प्रत्येक घरके चारों ओर फूलोंसे लहलहाते छोटे-छोटे बगीचे और उनसे सटी समानान्तर रेखाएँ बनाती दोनों ओर आने-जानेके लिए रेतीली राहोंके नक्शे अंकित किए गए थे। ज़रा दूर बहती नदीसे कटी नहर उस बागके बीचसे अनेक धाराओंमें विभक्त हो बह गई थी, जिसमें फलोंके पौधे रोपे हुए थे। बस्तीसे दूर हट एक ओर पशु-गृह था। मैदानके दूसरे किनारे उपासना-गृहके सामनेकी ज़मीनपर छोटे-बड़े प्रसन्न-मुख बच्चे असंख्य खेलोंमें लगे हुए थे। इस छोटे-से उपनिवेशके बाहरकी ओर लम्बे-चौड़े वे खेत थे, जो गाँवकी सामूहिक सम्पत्ति थे और जिनकी उत्पत्तिके लाभमें प्रत्येक उत्पादकका समभाग होता था। वहाँका प्रत्येक निवासी मनोयोगपूर्वक अपने कामोंमें व्यस्त था। जैसे चुप बैठने—समय बर्बाद करने—का वहाँ किसीको समय ही न हो।

'इन घरोंमें कितने परिवार हैं?'

'गाइड' बने हुए देहाती तरुणने कहा—'पन्द्रह। लेकिन सन्ध्या-आरतीके समय गाँवके बहुत-से व्यक्ति यहाँ आ जाया करते हैं। आराधनाके बाद कुछ यहाँ-वहाँकी खबरें हम उन्हें सुनाते हैं। कुछ अपनी-पराईपर विचार-विनियम तथा देहाती जीवनमें सुधार-सम्बन्धी व्यक्तिगत योजनाओंका आदान-प्रदान हो लेता है।'

'इन योजनाओंमें कोई आपके लिए आकर्षक हुई तो?'

'तो वह प्रबन्धकारिणीके सामने रखी जाती है। उसकी अनुमति पाए बिना तो किसी विधानका अनुष्ठान हम कर ही नहीं सकते।'

'आपकी कक्षाएँ नियमित चलने लगीं?'

'जी, कहाँ? वक्त ही नहीं मिल पाता। खेतीके लिए अभी हम काफ़ी आदमी कहाँ। हमें बारी-बारीसे खेतोंमें चला जाना पड़ता है। पढ़ाईका कार्य इसीलिए सुचारु रूपसे हो नहीं पाता। सिर्फ़ बच्चोंकी शालामें चिन्तना बहन कुछ कर लेती हैं। खेलते हुए जो भी वे सीख लें, उतना ही उन्हें सिखाया जाता है।'

चिन्तनाने पास आकर कहा—'आप आए हैं?'

'जी हाँ, चला आया। आज कालेज विजय-दिवस मना रहा है। क्लासें नहीं लगीं।' चलते-चलते वे सब बागके किनारे आ पहुँचे थे। हरी दूबके कोमल पल्लवोंमें तनिक देर पहले रिम-झिमाई फुहारके जलकण अभी भी उलझे हुए थे। अनुरुद्धने बैठते हुए कहा—'चाँद मुझे हठ करके ले आई है, चिन्तना! उसे कौतूहल है।'

'आज्ञा कीजिए।'

'आपके पास व्यक्तिकी निजकी सम्पत्ति नहीं। क्या आप पारिवारिक जीवनके विरोधका भी आदर्श लिए हैं?'

'यहाँ प्रत्येक गृहस्थी अपना सारा भार आप सँभाले है। हम तो कौटुम्बिक जीवन अधिक पुष्ट और समुन्नत करना चाहते हैं। भेद इतना ही है कि हमारे यहाँ पारिवारिक व्ययमें स्त्री और पुरुषका...।'

'...आधा-आधा भाग होता है?'

'आधा नहीं, स्त्री खर्चका सिर्फ़ एक चतुर्थांश अपनी आयसे देती है।'

'खूब!' अनुरुद्ध मुस्कराए—'स्त्री-राज्य जो ठहरा!'

'नारी गृहस्थी सँभालने, शिशु-पालन आदिके अतिरिक्त कार्य भी तो अपने सिर उठाए है। या फिर पुरुष भी इनमें अपनी मदद दे।'

'पुरुष किसे पसन्द करता है?'

चिन्तना हँस पड़ी। 'अधिकांश घरोंमें तो गृहस्थीका भार वे ही वहन कर रहे हैं। "पुरुषतत्व"का गुरुत्व और "स्वामित्व" का दर्प स्त्रीसे माली सहायता पसन्द नहीं करता। पर देवियाँ ही अब उनके बल जीना नहीं चाहतीं। आर्थिक स्वावलम्बनका रस उन्हें मिल चुका है।'

चाँदने सीधे प्रहार किया—'हमें आपपर विश्वास नहीं होता।'

वह फिर हँस उठी—'हाँ, और बहुतोंको भी नहीं होता।'

'आप विश्वास दिलाना नहीं चाहतीं?'

'नहीं; विश्वास भी क्या आग्रहकर दिया और लिया जा सकता है? यह तो अन्तरका उन्मुक्त भाव है।'

'आखिर आपके सिद्धान्त क्या हैं?

'कुछ भी नहीं। हम बस समझदार प्राणियोंके समान रहनेका प्रयास कर रहे हैं। पार्थिव उन्नतिकी ओरसे आँखें फेर लेने ही में हम महत्ताका परिहार्य नहीं मानते। मेरा वश चलता, तो मेरे देशके कण-कणपर लंकाकी स्वर्ण-नगरी बस जाती। निर्धनतासे हमें प्रेम नहीं।'

चाँदने जलकर कहा—'यह सब कहाँ पढ़ लिया?'

फिर वे लौट आए थे।

- २ -

खुली खिड़कीसे सड़कका कुछ भाग दीख पड़ रहा था। चिन्तना बँगलेका कम्पाउण्ड पारकर आ खड़ी हुई। मोटी, तनिक मटमैली-सी खद्दरकी साड़ीमें उसका पीला रूखा गात और भी धूमिल हो उठा था। चन्द्रभागाको वह तनिक नहीं भाती। अपनी बुझी-सी आँखोंमें कौन-सा भाव वह छुपाए है, इसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समझनेका वह किसीको अवसर नहीं देती। चाँद देखती है, यह अपरिचित लड़की उसके देवता-स्वरूप भाईके निकट अनायास ही आ खड़ी हुई है। उसकी इस धृष्टतापर चाँदके नयनोंमें रोष भर-भर आया है। उसमें बस एक ही विशेषता वह सहन कर लेती—उसकी हँसी। शरत् रात्रिकी ज्योत्सना-सा वह हास्य बहुत ही स्वच्छ, अत्यन्त स्निग्ध, सुमधुर था। उसमें कहीं छल न था, कहीं कालिमा न थी।

उस दिन बहुत रात गए जब वह लौटी, तब क्लान्त दीख पड़ रही थी। चन्द्रभागाने यह भी देखा, आकर पलंगपर वह आड़ी ही लेट गई है। चाँद कमरेके द्वारपर आकर खड़ी हो गई। पूछा—'खाना क्या यहीं लाएँ?'

चिन्तना सिर उठाकर मुस्कराई—'नहीं। कष्ट न कीजिए। आज भूख नहीं है।'

'लेकिन भोजन बन जो गया है?'

वह सकपकाकर उठ बैठी। बोली—'जी हाँ, बन तो गया है। चलिए खा लें। मुझे याद न थी। क्षमा कीजिएगा।'

किन्तु नित्यकी भाँति सुबह वह उठी नहीं। बहुत दिन चढ़े चन्द्रभागाने द्वारका पर्दा हटाकर पूछा—'चाय नहीं पीनी?' पर चिन्तना निश्चेष्ट पड़ी रही। 'पूछ रही हूँ, चाय पिएँगी?' वह तब भी न बोली। 'खूब हैं, नींद ही नहीं टूटने आती!' चाँद अरुचिसे माथा सिकोड़कर हट आई।

इसी समय फाटकपर एक गाड़ी आकर रुकी थी। कीचड़से भरी यह गाड़ी और उसका चालक वह स्वस्थ श्यामल देहाती। उन्हें देखते ही वह विद्रोही भावोंसे भर उठती है। विद्रोह उस तारुण्यके विरुद्ध, जो एकाकिनी चाँदके अन्तरमें समवयस्क एक साथी पाकर सामान्य परिस्थितियोंमें उत्पन्न हो जाता। लेकिन उन्हें देखते ही उसे तो षड्यन्त्रका-सा आभास मिलता है। वे सब किसी प्रयोजनसे मिलते-जुलते हैं। और वह अभीष्ट चाँदपर प्रकट नहीं होने दिया जाता। प्रतिदिन सुबह यही तरुण अपनी गाड़ीपर आ उपस्थित होता है। प्रतिदिन चिन्तना अपनी मट-मैली साड़ीमें आगे बढ़, मुस्कराती, सिर झुकाती उसकी गाड़ीमें जा बैठती है। फिर पहर रात बीते वे वापस आते हैं। दस महीनोंसे यही एक कार्यक्रम चिन्तनाका उसने पाया है। चाँदने जब-जब जिज्ञासा प्रकट की है, उसके भाईने उसे समझा दिया है—'वे गाँवोंमें काम करते हैं।' चिन्तनासे वह कुछ नहीं पूछती। अपने कौतूहलको उसने स्वाभिमानसे बाँध रखा है। अनुरुद्धसे भी कुछ जाननेकी अब उसे आकांक्षा नहीं। अपनी समितिसे जो वे उसे अलग रखना चाहते हैं, तो वह भी उनकी चेष्टाओंके प्रति विरक्त बनी रहेगी। उसका गर्व चोट खाकर फुफकार उठा है। वह किसीका रत्ती-भर भी भेद जानना नहीं चाहती। अभिव्यक्तिकी सामान्य तृणाको भी वह पी चुकी है। चिन्तनाकी अब वह चर्चा ही नहीं चलाती।

और इन्हीं भावोंमें भरी चाँदको फिर दोपहर तक चिन्तना की खोज-खबर लेनेकी ज़रूरतका बोध न हुआ। किन्तु भोजनके समय उसे पुकार लेनेका अपना कर्तव्य निबाहने वह एक बार और उसके कमरे तक चली गई। चिन्तना उठी न थी। उसने कहा—'उठिए, भोजनका समय हुआ।'

चिन्तनाने आँखें खोलकर कहा—'दयाकर पानी मँगवा दीजिए, प्यासी हूँ।'

चाँद चमत्कृत-सी हो गई। लड़की बीमार है और सुबहसे योंही पड़ी हुई है। उसे अपना मनोमालिन्य पिघलता हुआ-सा मालूम हुआ—'क्या तबीयत ठीक नहीं?'

'मालूम तो होता है।'

स्पर्श किया, तो शरीर अंगारे-सा दहक रहा था। चाँदके लिए चिन्तनामें अजीब आकर्षण भी है। यह चिन्तना, जो अपनी नीरवतामें इतनी सशक्त है, निरीहतामें इतनी असहाय है जैसे प्रेमके राजपथपर खड़ी होकर भी वह आँचल नहीं फैलाती; निर्धन होते भी करुणाका दान नहीं लेती। चाँदको याद आया, उसके घरमें उसकी अवहेलनासे अवसन्न वह कितने संकोचसे रहती आ रही है। उसके व्यवहारने उसे कितनी बार व्यथा न पहुँचाई होगी! पर वह सब-कुछ हँसकर सँभाल लेती है। झुकना वह जानती ही नहीं। कितनी स्वाधीन है यह रहस्यमयी! एकाएक उसपर झुककर चन्द्रभागाने पुकारा—'चिन्ता!'

चिन्तनाका बुखार नहीं छूटता। चन्द्रभागा चिन्तित है। चिन्तना भी व्यग्र है। उसने अनुरुद्धको बुलवाकर कहा—'किसीके मनपर विजय पाना बहुत बड़ी विजय है। अपना मन समझ लेना उससे भी कठिन है, इतना तो आप मानते हैं।'

'पाप और पुण्यकी अन्तिम परिभाषा अभी तक मेरे देखनेमें नहीं आई। ये युग-विशेषके अभ्यास-मात्र हैं, यह तो तुम भी जानती हो।'

'युगोंके अभ्यास आपके कहते ही कैसे छूट जायँ?'

'चेष्टाकर देखो न। कभी मानव इनके बन्धनसे मुक्त भी था।'

'तब वह विवेकहीन था।'

'वह सुखी था। जहाँ परिस्थितियोंसे लाचार हो मनुष्य किसीकी अहित-साधना कर बैठे, वहाँ वह पापी नहीं। उस मनुष्यको कमज़ोर, विवश मनुष्य कहो। मैं चाहता हूँ, तुम अपना महत्व समझो।'

'आप दार्शनिक हैं। मैं तो लोकाचारके तराज़ूपर ही किसीके कार्योंकी मीमांसा कर सकती हूँ। मैं तो तत्त्वदर्शी हूँ नहीं।'

'तुम क्या हो?'

'हाँ, क्या हूँ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'तुम शक्ति हो, जब कि मैं केवल स्पृहा हूँ। तुम कर सकती हो ; मैं करना चाहता-भर हूँ।'

'क्या किया मैंने ?'

'ज़मींदार अपनी भूमि वापस चाहते हैं। तुम अपना "आदर्शग्राम" चाहे जहाँ ले जाओ। झगड़ा क्यों किया, चिन्तना ?'

चिन्तनाने कुछ देर सोचकर कहा—'मानवकी ग्राहक-शक्ति सामान्यतः बहुत परिपक्व नहीं हुआ करती। मनके किसी बँधे-बँधाए संस्कारको जब एकाएक धक्का पहुँचता है, तब वह उसे तुरन्त स्वीकार नहीं कर पाता। और उसे समझ सकनेमें स्वयंको असमर्थ पाते ही वह उसके प्रति कटुतासे भर उठता है। हमारी हस्तकला और शिक्षा-प्रचार-समिति ज़मींदारके गाँवमें भी काम करती हैं। हमारी सेवा तो मानव-मात्रके लिए है। ज़मींदारके मनुष्य अपने ही घरमें तैयार होता वह नव-दल पसन्द नहीं करते, जो अज्ञानका सक्रिय विरोध करना सीख गया है। और हमारे लिए अपूज्य कभी वन्दनीय नहीं रहा। यों, ज़मींदार खुद अविवेकी नहीं।'

बात अब पुरानी पड़ गई थी। तब वे तेरह थे। एक ही परिवारके व्यक्ति। वे सब एक ही विचार-प्रवाहमें बह रहे थे, इसीलिए स्वयंको सहकुटुम्बी समझते थे। उनके अपने स्वप्न थे। अपनी कामनाएँ थीं। उन्हें मूर्त्त कर लेनेके अपने साधन और प्रयास थे। पर वे सब जिसपर चल रहे थे, शायद वह राह भ्रान्त थी। राजाने उन्हें विद्रोही समझा। वे खुश थे कि वे देशद्रोही नहीं।

तेरहकी संख्या अशुभ मानी जाती है। प्रान्तके एक उच्च पदाधिकारीकी हत्या हो गई। वे कुछ पकड़े गए। विभीषण उनमें से एक भी न था ; परन्तु पुलिसकी पाशविक यन्त्रणाएँ तो साँस नहीं लेने देतीं। चिन्तना जब साथियोंके नाम छिपाए न रह सकी, तब क्या वह होशमें थी ? वह जानती थी, मैं वह कर रही हूँ, जो नहीं करना चाहिए। फिर भी करती गई। जाने किसे ! जाने क्यों ! तब एक दिन उनमें से दस पन्द्रह वर्षोंका कारावास ढोने अज्ञात दिशाके पथिक बन चले गए। उस समय ये ज़मींदार उनके आपदग्रस्त परिवारोंके अन्नदाता थे।

त्यागमें महत्ता है। आवेगका नशा दूसरी ही बात है। चिन्तना उस ऊँचाईपर चढ़ गई थी, जहाँ पहुँचकर स्थिर रहनेकी क्षमता पैरोंमें न थी। पाँव काँप गए। पर दुनियाने चाहे जो समझा हो, अनुरुद्धका सत्य वह अन्तरसे महसूस करती। उससे सत्यका किनारा काटना केवल इस कारण था कि अनुतापकी अग्नि क्रियाशीलताको गति देती रहती है। तृप्तिमें तो अकर्मण्यता भी है, जो उसकी मृत्यु होती।

उसने पूछा—'एक बार परिस्थितियोंसे ऊपर उठ न सकी, तो क्या माताकी वन्दनाका अधिकार भी मैंने खो दिया ? मेरा देश तो मेरा ही है। मर्मान्तक आह्वान दिन-रात सुना करती हूँ, उसके चरणोंपर विश्वसे अलग मेरा अर्घ्य चढ़ रहा है। फिर संसार मेरी राहमें बाधक क्यों बने ?'

'उसका स्वभाव है। ज़मींदार अपने गाँवमें तुम्हारे आश्रमके कारण उपद्रव नहीं चाहते।'

चिन्तानाने क्रोधित होकर कहा—'किसी छलके भुलावेमें अब मैं नहीं आती। द्वन्द्व समझ चुकी हूँ। पराजय पहचानती हूँ। आश्रमोंकी रचना मेरा काम नहीं। अभी हममें हज़ारों परिवर्त्तन, लाखों सुधार होंगे। पर हमसे उत्साहित हो देशका प्रत्येक गाँव अपना नक्शा बदल दे, मैं बस इतना ही चाहती हूँ।'

बाहर हल्की फुहार पड़ रही थी। अनुरुद्धने उठकर खिड़की पूरी खोल दी। मिट्टीकी भीनी-भीनी सुगन्ध आई और दिशिओं पर छा गई। चिन्तना पास आ खड़ी हुई। 'ये बम, ये गोलियाँ, जो तीरकी तरह हमारे सिरोंपर से निकल चुकी हैं, हमें स्पर्श न कर सकीं। हम मिटे नहीं। सृष्टि शिथिल हो ले। प्रलय तो जागरण ही की वेला है।'

अनुरुद्धने उसका गिरता आँचल कन्धेपर सँभाल दिया। बोले—'तुम अपनी राह खोज चुकी हो। तुम्हारा पथ निर्दिष्ट है। हम भटक रहे हैं। तुम्हें सम्बलकी ज़रूरत नहीं। हमपर दायित्व हैं। हम वंचित हैं, इसीलिए प्रलोभनोंकी भी कमी नहीं। हमारे बन्धन नहीं टूटते।'

चिन्तना हँस पड़ी। 'यह आप क्या कह गए ? हम हिमालय-से दुर्बोध हैं। फ्यूज़ीयोमा हैं हम। ऊपरसे निर्विकार, निस्पन्दन, शीतल। भीतर अग्निका सागर भी है, विस्फोट भी है। मिटनेवाले हम नहीं।'

- ३ -

चिन्तना बेचैन है। पैंतालीस दिन बीत चुके मलेरिया और 'फ्लू'का मान रखते। अभी बीमार पड़नेका उसे अवकाश न था। उसने कुछ आयोजन किया था, जो उसके बिना विकलांग हुआ जा रहा था। अपने ग्राम लौट चलनेके लिए वह अधीर है। वहाँ सब परिश्रमशील प्राणियोंका जीवन व्यतीत करते हैं। केवल वही किसीका आतिथ्य स्वीकार किए हुए यहाँ रहती है। ऐसा अस्तित्व उसे बन्धन जान पड़ता। यह उसे रुचता नहीं। परन्तु सारी विद्वत्ताके बावजूद शिशु-जैसे सरल अपने मित्रका स्नेहसिक्त अनुरोध वह समझ नहीं पाती, कैसे टाल दे। बन्धन नहीं टूट पाते, इसे वह अनुभव कर रही है। एक अनुरुद्ध ही के लिए वह चाँदकी सारी उपेक्षा निर्विकार ग्रहण कर लेती है। सृष्टिकी कोई शक्ति स्वाभिमानकी रक्षामें बाधक नहीं होती, जीवनके इसी एक परम सत्यसे अब तक उसकी घनिष्टता हो सकी है। इसे ही वह समझना चाहती है। उसका पथ निरापद नहीं। पर उसने तो हमेशा कण्टकपूर्ण रास्तों ही पर पैर बढ़ाए हैं। जिनका विश्वास

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उसके पास रक्षित न रह सका, उन अपने प्रवासी साथियोंको उनके परिवार स्वस्थ और प्रसन्न दे सके, तभी वह कृतार्थ होगी। परन्तु उसके वर्षोंका परिश्रम मिटा जा रहा है।

ग्राममें आतंकका राज्य था। दो दिन पहले कुछ मुसलमान बिगड़ बैठे। एक ही आराधना-भूमिपर विभिन्न धर्मावलम्बियोंका एकत्र होना उन्होंने इस्लामके खिलाफ़ ज़ेहाद माना। लोगोंका खयाल था, यह ज़मींदार-दलके किसी अन्वेषणकारी मस्तिष्ककी उपजका फल है। पुलिस आई; गिरफ़्तारियोंकी बाढ़ आ गई। षड्यन्त्रकारियोंके परिवारका समुन्नत और पुष्ट होना साम्राज्यके लिए खतरा था। चिन्तनाने हताश होकर सोचा, हम जोड़ते हैं, वे तोड़ते रहेंगे। यह देश! यह कान्सेन्ट्रेशन कैम्प! यहाँ जीवित रहनेका हक़ भी उसे है, जिसे हमारे भाग्य-विधायक जीने दें! उसे गर्व भी हुआ। उसके साथियोंमें उसकी जैसी दुर्बलता न थी, उसका सन्धान देनेकी बातपर वे सब एक गति मौन रहे। परन्तु वह तो छिपना नहीं चाहती!

पढ़ते-पढ़ते चिन्तना रुकी। खबर देरसे आई थी। पत्रके एक कोनेमें प्रकाशित हो सकी। यह तो पुलिसको उसके आत्म-समर्पण ही का विवरण था!

अनुरुद्धने स्थिर पैरों कमरेमें आकर कहा—'चाँदकी खबर नहीं, चिन्तना!'

तब चिन्तनाके नेत्र सजल हो उठे। उसने झुककर अखबार चूम लिया। बोली—'मानवता! बहुरंगिनी! तेरा भेद कोई कैसे समझे?'

चाँदका सुबहसे पता न था।

लोक-साहित्यका सीमा-विकास

श्री रामइक़बालसिंह 'राकेश'

मुद्रित साहित्यकी भाँति अमुद्रित लोक-साहित्य लिपि-मशीन-प्रचार अथवा लिपि-सृष्टि-निर्माण-कालसे सम्बद्ध नहीं है। जब लोक-वाणीने लिपिकी छाया तक नहीं देखी थी, जब अन्तर की बेचैनी अनायास हू-बहू लिखी जाती थी और मस्तीकी धुन अलिखित राग-रागिनीमें ही वंशी फूँका करती थी, तभी लोक-साहित्य समयके पवन-पंखसे होड़ करनेका पाठ पढ़ने लग गया था। यह विचार ग़लत है कि अमरताकी प्राप्तिके लिए अभि-व्यक्तिको काग़ज़की ज़मीनपर उतारा जाय। काग़ज़के धरातलसे दूर रहकर भी लोक-वाणीने अपनी अभिव्यक्तिको अमरताका अमृत पिलाया। लोक-साहित्यकी अमरताका रहस्य न तो उसके अनुभवोंकी मार्मिक व्यंजनामें निहित है और न मुद्रण-कलाकी विज्ञापन-कुशल विशिष्टतामें। क्षणिक समाधानके लिए आप भले ही इसे अन्तस्तल कँपा देनेवाली लाखों नर-नारियोंकी वाणीका चमत्कार कह डालें, चाहे इसका कारण आप एकान्त ग्रामीण वातावरण या जनसमुदायके चिकोटक भाषा-प्रवाहमें ढूढ़ें; मगर सच तो यह है कि लोक-साहित्यके अमरत्वका बीज उसकी सार्व-जनिक उपयोगितामें निहित है—जन-मानवसे सम्बन्ध-स्थापक उसकी भाव-प्रवण आत्मीयतामें, जो किसी चमत्कार पैदा करने-वाली प्रतिभा या कल्पना-शक्तिकी अमर देन नहीं है।

लोक-साहित्यके गर्भमें हज़ारों वर्षोंकी संस्कृतिका इतिहास विपुल रूपमें बिखरा पड़ा है। वह वीरता, नीति, त्याग और वैराग्यके उपदेश-भरे विचारों, बड़ों-बूढ़ोंके अनुभवों और लोक-मानसको पौष्टिक आहार देनेवाली गाथाओंको साधारण जनोंकी बोलियोंके माध्यमसे व्यक्त करता है। संयोगावस्था, विकृतावस्था, विच्छेदावस्था और वियोगावस्थाके अनुसार वह उम्रकी पहली मंजिल पाकर दूसरी, दूसरीसे तीसरी और तीसरीसे चौथीमें सतत चलते-फिरते रहनेके कारण समाजकी बदलती रहती हुई स्थिति का परिचय देनेका सर्वोत्तम साधन है।

भारतीय लोक-साहित्यका विकास उसकी अपनी जनपदीय बोलियोंमें हुआ। विदेह जनपदका मैथिलीमें, त्रिगर्त्तका पश्चिमी पहाड़ीमें, कुरूका कौरवीमें—इस प्रकार भिन्न-भिन्न जनपदोंकी निजी बोलियोंमें साहित्य-रचना होनेके कारण लोक-साहित्य विश्वजनीन भावनाओंका प्रदर्शन करने लगा। पण्डित राहुल सांकृत्यायनके अनुसार चालीस करोड़ जनसमुदायकी राष्ट्रभाषा कही जानेवाली हिन्दीका आदि-निर्माण भी सरहप्पा, वज्रघण्टा आदि सिद्धोंकी मगध जनपदकी मागधी काव्य-रचनामें हुआ। आठवीं शताब्दी संवत् ८२६ में ही इन सिद्धोंने अपभ्रंश-मिश्रित मागधीमें मन्त्र, हठयोग आदि विषयोंका पद्यबद्ध विवेचनकर जन-पदीय बोलियोंकी महत्ता स्वीकार कर ली थी।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि हिन्दीकी भाँति लोक-साहित्यने संस्कृतसे ली गई परम्पराओंको किसी भी रूपमें ग्रहण किया या नहीं। वस्तुतः किसी भी भाषा या बोलीमें साहित्यिक परम्पराओंको अपना बना लेनेकी दिशाएँ और दशाएँ अनेक हैं। परम्पराओंकी नूतनता स्थानीय वातावरणमें सुरक्षित होती है। कोई भी साहित्य प्रगतिशील तभी रहता है, जब उसकी अभि-व्यंजना समाज-सम्बन्धोंसे प्रभावित हो। लोक-साहित्यका साहचर्य संस्कृत या किसी शिष्ट साहित्यसे न होनेके कारण उसके वर्णनकी परम्पराओंको शास्त्रीय दृष्टिसे न अपनाकर स्वतन्त्र रीतिसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अपनाया गया। यही कारण है कि उपमेय और प्रतीक उपमानका चुनाव लोक-साहित्यमें मौलिक ढंगसे किया गया है, जैसे—रेहके लिए धोबियोंके कपड़ा साफ़ करनेके काठका पाट, केशके लिए रेशमके मुलायम रेशे, आँखके लिए आमकी फाँक, जाँघके लिए केलेके थम्भ, प्रवासी प्रियतमकी ग़ैरहाज़िरीका परिचय देनेके लिए गूलरके फूल[1], चमकती कंचुकीके लिए पर्वतोंके ऊपर कौंधती हुई बिजली और उठते हुए उरोजोंके लिए आमके टिकोरे।

काव्य-जनित बहुज्ञताके विषयमें लोक-साहित्यके अपढ़ रचनाकारोंकी आँखें ऐसी हैं, जो जीवनके गुप्त-से-गुप्त रहस्यों तक प्रविष्ट होती हुई जान पड़ती हैं। जहाँ एक ओर उनकी वाणीमें 'आम्र-मंजरीमें छुपकर पंचममें कूकनेवाली कोयल'का मधुर संगीत निनादित है, वहाँ दूसरी ओर कागोंका कर्त्तव्य-राग भी उनके कानोंमें जानेसे वंचित नहीं रह सका है। उनकी पारदर्शी दृष्टिने पुरुषोचित और स्त्री-जनित विशेषताओंसे शून्य हिजड़ोंकी सूरत-शक्ल भी देखी है।[2] साथ ही स्वातन्त्र्य-देवतापर जीवनका फूल चढ़ानेवाले पुरुष-सिंह भी उनकी निगाहसे अछूते नहीं रह सके हैं। प्राचीन वाद्योंमें आदृत मृदंग और बाँसुरीकी धुनमें धुन मिलाकर भी उन्होंने लोक-मानसका अभिनन्दन किया है और वाद्य-यन्त्रोंमें अनादृत डफ, झाल, माँदर और कठतालपर ताल देकर भी जन-मनका आनन्दवर्द्धन किया है। एक तरफ़ वे बाँसमें मिट्टी, ओलमें करकट और मानमें छाँह देनेकी सलाह देते हैं और दूसरी तरफ बाँस तथा मानमें फूल आनेपर उनके समीप घर बनानेके अनिष्टकारी परिणामकी ओर भी संकेत करते हैं। उन्होंने यात्रा-कालमें ब्राह्मणका दर्शन पुण्योत्पादक और मंगलकारक माना है, साथ ही यात्राके प्रसंगमें एक आँखके काने ब्राह्मणका निषेध भी किया है।[3] उनकी भेदक दृष्टि गमलेमें सजे-सजाए गुलाबकी रंगीन पँखुड़ियोंमें जा अटकी है, और घूरे पर उगे हुए धतूरेको भी उन्होंने देखा है। उनके उपवनमें सिरिस, अशोक, रसाल और दाड़िम ही नहीं हैं, हल्दी, अदरख, तुम्बीफल, बैंगन और कुम्हड़े भी अपनी छटा दिखला रहे हैं।[4]

कथागीत, लग्नगीत, ऋतुगीत, पर्वगीत, वर्ग-विशेषके गीत, लोरियाँ और बालगीत—मोटे तौरपर इन्हीं वर्गवृत्तोंमें लोक-साहित्यका सीमा-विकास हुआ है। इस छोटे-से लेखमें केवल कथागीतोंकी विशिष्टताका ही उल्लेख किया जायगा।

कथागीतोंके सम्बन्धमें 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका'के लेखकने बतलाया है—

"Ballads sprang from the very heart of the people, and flirt from age to age, from lip to lip of shepherds, peasants, nurses of all class that continues nearest to the state of natural man. They make music with the plash of the fisherman's oars and the hum of the spinning-wheel, and keep time with the step of the ploughman as he drives his team. The country seems to have aided men in their making; the bird's note rings in them, the tree has lent her whispers, the stream its murmur, the village-bell its tinkling tune. The whole soul of the peasant class breathes in their burdens as the great sea resounds in the shells cast up on the shores. Ballads are a voice from secret places, from silent peoples and old times long dead; and as such they stir us in a strangely intimate fashion to which artistic verse can never attain."

—कथागीत लोग-जनके कलेजेसे अवतीर्ण हुए और प्राकृत जीवनसे निकटतम सम्पर्क रखनेवाले वर्ग—जैसे किसान, गड़रिया आदि—के कण्ठोपकण्ठका सहारा लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक भटकते फिरे। इन्होंने पवन-चक्कीके मन्द-मन्द गान और माँझियोंके चप्पूकी छपछपाहटके साथ आवाज़ मिलाकर संगीतको रंगीनी दी और खेतमें बैलकी जोड़ी हाँकते हलवाहेके साथ क़दम उठाकर प्रगति की। इन गीतोंके रचना-कौशलमें राष्ट्रके जनसाधारणका ज़बरदस्त हाथ रहा। इनमें पंछियोंका कलरव, वृक्षोंका संलाप, निर्झरका संगीत-नाद और ठाकुर-द्वारेके घण्टेकी टनटन ध्वनि सुनाई देती है। तटपर फेंके गए शंखकी गोदमें जिस प्रकार असीम महासागर गर्जन-तर्जन करता है, उसी प्रकार इन गीतोंमें समस्त किसान-वर्गकी आत्मा साँस ले रही है। कथागीत गुप्त निर्जनता, अबोल जनता और अतीतमें विलीन पुरातन-कालकी वाणी हैं। यही कारण है कि ये हमारे हृदयोंमें अद्भुत आत्मीयताका भाव संचारित करते हैं, जिनकी समता कलात्मक काव्य-रचना कर नहीं सकती।

ब्रिटिश सामुद्रिक माँझी सफ़रकी थकान कम करनेके लिए अक्सर ऐसे मीठे कथागीतोंकी सृष्टि करते थे, जो संगीत-शास्त्र की दृष्टिसे सर्वथा असंगत एवं अशुद्ध थे और जिन्हें कभी मुद्रित अमरत्व प्राप्त नहीं हो सका था। इनमें से अधिकांश तथ्यपूर्ण और विश्वस्त खोजके अभावमें लुप्त हो गए। इनमें से कुछको संग्रहीत करनेका प्रयास किया गया; मगर इन्हें संग्रहीत करनेकी पद्धति इतनी अनर्थक और अमार्जनीय थी कि उनकी मौलिक एकरूपतामें कृत्रिमताकी छाया प्रविष्ट कर गई। इन समुद्रीय संगीत तथा कथागीतोंने अपनी सरल अभिव्यक्तिसे हृदयको छू लेनेकी शक्तिके कारण सामुद्रिक नाविकोंके मनको इस तरह आकृष्ट कर लिया कि इनके नैसर्गिक सौन्दर्यके समक्ष किसी अन्य

---

१. कन्त डुमरिक फूल यो। —मैथिली-लोकगीत, पृष्ठ ४०४।

२. ना नारी ना नाह, अदबिचला दीसे अपत।
कारज सरै न काह, राँडोल्या सूँ राजिया। —राजस्थानी

३. बाभनमें जों भेंटय कान; ब्रह्मलोक धरि बचय ने प्रान। —डाक

४. तुम्बीफल आओर कर्कारू; कुम्हड़ भण्टा सभ दिशि चारू।
लता समोप सदनके होय; कबहुँ ने दुष्ट बढ़ावय सोय।
सिरिस अशोक कदम्ब सोहाय; हरदी अदरख सभ सुखदाय।
पूरब दिशा आक यदि होय; धनदायक 'डाक' कह सोय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शास्त्रीय संगीतकी टेक श्रुति-प्रिय प्रतीत नहीं होती थी। गर्व कि नियमित गीत-रचयिताओं तथा संगीत-मर्मज्ञोंके हाथोंमें पड़कर इनकी स्वाभाविक रूप-रेखामें आंशिक कतर-ब्योंत भी हुई; किन्तु भाषा-विज्ञानकी मार्ग-प्रशस्तिने रगमें नश्तर मारनेका यह अप्राकृतिक कार्य धीरे-धीरे कम कर दिया। लय और छन्दाकृति की दृष्टिसे प्राचीन समुद्रीय संगीत विलक्षण थे। कभी-कभी इनमें काव्यका यथार्थ स्वरूप भी लक्षित होता था। लेकिन उनमें चिन्तनका प्राधान्य था, साहित्यिक मुहाविरेका नहीं। पद्य-रचना निम्नकोटिकी थी। छन्द और क़ाफ़िया तंग थे। फल-स्वरूप उच्चकोटिके संगीत-कला-विशारद इन्हें उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे। किन्तु संगीत-शास्त्रीय संस्कारसे च्युत होनेके बावजूद इनकी अटपटी वाणीमें एक ऐसी अलौकिक शक्ति थी, जिससे आकर्षित हो श्रोताओंके नेत्र और हृदय उनके कानोंके पास सिमट आते और समुद्रके उस शान्त वातावरणके बीच वे ध्यानावस्थित दशामें चुपचाप गायकके कण्ठसे निकली हुई तानको सुना करते थे। लगभग शत-प्रति-शत कथागीत लम्बे होते थे। स्मृति-पटलसे एक भी शब्द उतर जानेपर उनका पुनर्साक्षात्कार कर लेना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। और 'कागद, मसि' के स्पर्शसे वंचित होनेके कारण नवीन गायक उन्हें ध्यान-पूर्वक सुनकर ही कण्ठाग्र रखते थे।

भारतीय कथागीतोंका आदर्श सामाजिक, धार्मिक और नैतिक मान्यताओंसे सम्बद्ध है। इन मान्यताओंका मर्यादा-निर्धारण करनेके बावजूद प्रसाद-माधुर्यकी अभिव्यक्तिमें कथागीत-रचयिताओंका कौशल दर्शनीय है। काव्य-जनित इस प्राकृत गुणने कथागीतोंको प्रवाह-गति विशदताके अतिरिक्त मौलिकता की शक्ति भी दी है। फल-स्वरूप वर्त्तमान भूत और भविष्य वर्त्तमान बन गए। मगर इनकी अमरताको मौतकी विनाशकारी छाया स्पर्श नहीं कर सकी।

भारतीय कथागीतोंका वर्ण्य-विषय न्यूनाधिक वासना-शून्य प्रेम-घटनासे भी तात्पर्य रखता है, जिसमें कहीं भी फिसलनका काला धब्बा दृष्टिगोचर नहीं होता। कथावस्तु कल्पनाके परिधानसे विभूषित है। ऐसी स्थितिमें काल्पनिक ताना-बाना कथानकके प्रायः सभी अंगोंका विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण करते हैं। लेकिन कल्पना तभी व्यवस्थित कही जाती है, जब उसमें स्वाभाविकताका स्वतन्त्र निर्वाह होता है। उसमें मनोरंजक उत्क्रान्तिके साथ-साथ रहस्य-सृजनका बीज अन्तर्निहित रहता है। जब उसमें अस्वाभाविकताका अनियन्त्रित प्रभाव लक्षित होने लगता है, तो कल्पना महत्त्व-शून्य हो जाती है।

कथागीतके लिए अंगरेज़ीमें 'बैलेड' शब्द प्रचलित है। इस शब्दका पहले-पहल फ्रांसमें फ्रेंच क्रियापद Baller के रूपमें प्रयोग होने लगा। Baller का तीसरा अर्थ है नाचना। गति और तालके साथ वृत्ताकार नृत्य करते हुए लोकवृन्द जो लोकगीत गाते थे, यूरोपमें उन्हींका 'बैलेड' नामकरण किया गया। कर्णाटकके लोक-साहित्यमें 'बैलेड'के पर्याय स्वरूप 'लावनी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। वहाँ 'लावनी'का प्रतिनिधित्व करनेवाले संवाद, पवाड़, लावण्य इत्यादि नाम भी लोकप्रिय हो चुके हैं। अंगरेज़ी लोक-साहित्यके विशेषज्ञोंका मत है कि कथागीतोंमें संकटके समय निर्भीकता, युद्धमें पराक्रम और प्रेममें दृढ़त्व प्रदर्शित करने तथा रणक्षेत्रमें शूरजनोंके विरुद्ध विश्वास-घातकके मारने-मरनेकी मनोवृत्ति लक्षित होती है। कर्णाटकके लावनीकारोंने भी समरांगणमें सैनिकोंका उत्साह-वर्द्धन करनेकी दृष्टिसे कुछ लावनियोंकी रचना की है। प्राचीन कालके द्रविड़ जनसमुदायमें प्रचलित 'पुरम्'-शैलीके कथागीत इसी श्रेणीके हैं। द्रविड़ोंकी यही कथा-रचना स्वाभाविक रूपसे प्रगति-पथपर अग्रसर होती गई और कालान्तरमें यही कर्णाटककी लावनियोंकी पृष्ठ-भूमि सिद्ध हुई। कथावस्तुकी दृष्टिसे इन लावनियोंको पाँच भागोंमें विभाजित किया जा सकता है :—

(१) ऐतिहासिक लावनियाँ : समाजमें घटित घटनाको आधार मानकर इनकी रचना हुई है। संज्ञान लावनी, सँगोल-रायनका गद्दर, श्रीरंगपट्टणकी लावनी और पिरियापट्टणका झगड़ा इस श्रेणीमें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। लावनी-साहित्यकी विशेषताका उल्लेख करते हुए श्री देवडू नरसिंह शास्त्रीने लिखा है—'जनताके मन आन्दोलितकर उनके आगे सुख-दुखोंका चित्र खींचकर जो विषय या घटना लोगोंके दिलपर असर डालती है, वही एक लावनी बन जाती है। इन गीतोंमें यह नियम नहीं है कि गीतका नायक केवल वीरश्रेष्ठ या नृपति-पुंगव ही हो। नायक कोई भी क्यों न हो, उसका कार्य लोगोंका मन बरबस खींच लेना होता है। बार-बार उसीके बारेमें बात करते रहनेपर वही एक लावनीका रूप धारण कर लेता है।' इन लावनियोंकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

बडतन अम्बोदु बहु कष्ट बऽवगे बन्तो बाहु सिट्ट ;
साहुकारर साल कोडवेकादर संग्यागे आदितो संकष्ट।[५]

—निर्धनता एक बुरी चीज़ है। निर्धनको क्रोध हुआ और साहूकारका कर्ज़ चुकानेमें उसे कष्ट हुआ।

(२) सवाल लावनियाँ : इनमें कथावस्तुकी एकसूत्रताके लिए स्थान नहीं है। प्रश्नोत्तरके रूपमें संवादात्मक अभिव्यक्तिकी ही प्रधानता है।

(३) उपदेशात्मक लावनियाँ : उपदेशात्मक लावनियोंमें शास्त्रीय और धार्मिक परम्पराओंको विचार-विश्लेषण द्वारा समझने-समझानेका प्रयास किया गया है।

५. अनुवादिका—श्रीमती एस० भीमाक्षीदेवी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

(४) स्तुति-लावनियाँ : इनमें गुरु, गणेश, शारदाकी भाव-स्तपूरित प्रार्थनाका निदर्शन हुआ है। वाणीमें विनय-सुलभ भावोंकी नम्रता और लयकी टेकानमें भैरव, यमन, पीलू, शंकराभरण आदि राग-रागिनियोंका प्रभाव है।

(५) रंगु लावनियाँ : इनकी भाव-मुद्रामें शृंगारात्मक अंकन-कौशलोंका संस्कार स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

मैथिली-कथागीतोंने अपने लिए जो आधार ढूँढ़ निकाला है, वह एक आदर्श-विशेषको लेकर चलता है। उनके कथानक में शृंगार, वीर और करुण तीनोंमें किसी एक रसकी प्रधानता होती है। प्रबन्धात्मकता, विचारोंकी अपूर्वता, कथानकमें परिस्थितिका रंग (Local colour), छन्द और लयकी विविधता, एक ही कथागीतमें विविध छन्द, विविध लय, वर्ण्य-विषय अथवा रसके अनुकूल संगीतकी टेकान ऊँची या नीची गानेमें समय-विशेषकी पाबन्दी (रातमें ही, दिनमें नहीं) इत्यादि बातोंका सफल निर्वाह देखा जाता है। इनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो देखनेमें मुक्तक काव्यकी तरह मालूम होते हैं, जिनमें कोई कथा या प्रबन्ध नहीं चलता। कुछ ऐसे हैं, जो कथागीत कहे जा सकते हैं; मगर जिन्हें ऊपरिलिखित मान्यताके अनुकूल कथागीत कहना युक्तिसंगत न होगा, जैसे—श्रवणकुमार, सुदामा-चरित्र, गोपीचन्द, दानी कर्ण इत्यादि लोकगीत। इन्हें कनफटे और कठमलिए फकीर तथा आपापंथी भुक्खड़ जोगियों को अधिक नहीं, सेर-भर चावल और पाव-भर दाल देकर हर शख्स दिनमें देख सकता है। और मिथिलामें दिनमें कथागीत गाना अशुभ समझा जाता है, रातमें शुभ।

नई दृष्टि

श्री किशोरलाल मशरूवाला

दुनियाका साधारण नियम यह है कि किसी राष्ट्रके उन्नत होनेसे पहले उस राष्ट्रकी जनतामें एक नया धर्म अर्थात् जीवन-विषयक एक नई दृष्टि उत्पन्न होती है। जब तक जीवनमें आशा निर्माण करनेवाला एक नया सत्य लोगोंको नहीं दीखता, तब तक लोक-सेवाके सब प्रयत्न केवल पैबन्द-रूप ही रह जाते हैं। उनमें से ऐसी किसी शक्तिका निर्माण नहीं होता, जो अपने-आप प्रगति करती रहे।

जीवन-विषयक नई दृष्टिके अंग नीचे लिखे अनुसार हैं—(१) जीवनको और जीवनके अन्त एवं ध्येयको नए अर्थमें समझना और अनुभव करना। (२) सदाचारकी नई 'शिक्षा-पत्री'को जानना। यह शिक्षा-पत्री एक ओरसे प्रचलित आचारों की अपेक्षा अधिक व्यापक नीतिपर रची होनी चाहिए और दूसरी ओरसे इसमें संयम, सादगी, शरीरकी और अपने आस-पासकी स्वच्छताका एवं मनकी पवित्रताका अधिक कठोर भावसे पालन होना चाहिए। (३) इस दृष्टिको अपनानेवालोंमें भ्रातृ-भावकी—भाईचारेकी—स्थापना। (४) व्यक्तिगत और सामूहिक रीतिसे कुछ कार्योंमें सबका सहयोग। (५) मानो एक प्रकारका एकत्र कुटुम्ब हो, इस भावसे अपने सुख, दुःख और सम्पत्तिको समान रूपसे बाँट लेनेवाले मण्डलोंका निर्माण। (६) शराब, व्यभिचार, चोरी, घूस-रिश्वत, ठगी, झूठ, आलस्य आदि व्यसनोंसे मुक्ति।

जिन लोगोंकी सेवा करनी है, उनकी नीतिका मान या स्तर्जा जब तक ऊपर नहीं उठता, तब तक बड़े पैमानेपर उनकी आर्थिक उन्नतिका होना अशक्य समझा जाना चाहिए। यदि जनताको जीवनका नया सन्देश मिला होगा और अपनी नीतिमें सुधार करनेका महत्त्व उसने समझ लिया होगा, तो उसे शिक्षा प्राप्त करने, साफ़-सुथरी आदतें डालने, कुछ मामलोंमें किफ़ायतशारीसे काम लेने और दूसरोंमें उदार बनने, परिश्रमी और प्रामाणिक बनने और इस सबके उपरान्त भरण-पोषणके दर्जेको ऊपर उठाने और पर्याप्त मेहनताना माँगनेका आग्रह रखनेके बारेमें खुशामद-भरे ढंगसे समझानेकी ज़रूरत नहीं रहेगी। नई दृष्टिके उत्पन्न होते ही मनमें जड़ जमाकर बैठी हुई लघुता अथवा हीनताकी भावना लुप्त हो जायगी।

- २ -

नई दृष्टिके साथ नए प्रकारके कार्यों, नई शिक्षा और नियम-पालन आदिकी आवश्यकता रहेगी ही। पदार्थों और कार्योंका मूल्य भिन्न रीतिसे कूता जायगा। पुरानी जीवन-व्यवस्थामें मनुष्योंकी क़ीमत उनकी जाति, कुल, विद्या, धन, अधिकार आदिके अनुसार कूती जाती है। कामकी क़ीमत काम लेनेवालेकी शक्ति और काम करनेवालेकी परेशानियोंसे कूती जाती है, और वस्तुओंकी क़ीमतका फ़ैसला उनके अभाव और आकर्षकतापर से किया जाता है।

नई जीवन-व्यवस्थामें मनुष्यकी क़ीमत उसके चारित्र्य और उसकी आवश्यकताको देखकर, कामकी क़ीमत जीवनकी आवश्यकताओंको पूरा करनेमें वह किस हद तक उपयोगी होता है, इसका विचार करके और वस्तुओंकी क़ीमत इस बातका विवेक करके ठहरानी चाहिए कि वे जीवनकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं या जीवनके लिए गौण हैं। और जो जीवनकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं, वे अमूल्य होनी चाहिएँ, अर्थात् वे यथासम्भव बहुत सहज रूपसे सुलभ होनी चाहिएँ।

वैसे मनुष्य-मात्र समान माने जायँ; किन्तु सदाचारीकी साख सदाचारहीन मनुष्यकी अपेक्षा अधिक रहे। संकटमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फँसा और तंगीसे घिरा हुआ पुरुष, स्त्री, बालक, अपंग या रोगी मनुष्य सशक्त मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सार-सँभाल और चिन्ताका अधिकारी माना जाय। खूराक, पानी और कपड़े जितना हो सके, उतने सस्ते हों, और इनको पैदा करनेमें होनेवाली मेहनतका मूल्य दूसरे सब कामोंसे अधिक कूता जाय। सिक्कोंकी स्वतन्त्र रूपसे कोई क़ीमत न हो, अर्थात् उनपर ब्याज न लिया जाय। ज़मीनपर, पानी और हवाकी तरह, किसीका निजी स्वामित्व न हो। यदि इन सिद्धान्तोंपर गाँवों, संस्थाओं, सहयोग-मण्डलियों या दूसरे प्रकारके संगठनोंकी स्थापना की जा सके, तो वे अच्छी नमूनेदार चीज़ें साबित हो सकती हैं।

- ३ -

संसारके महान् धर्मोंने परलोकमें व्यक्तिकी जीवन-मुक्ति या विदेह-मुक्तिपर और व्यक्तिको मिलनेवाले सुखोंपर ज़ोर दिया है। नास्तिक भी व्यक्तिके लिए इस संसारमें प्राप्त हो सकनेवाले विषय-सुखोंको महत्त्व देते हैं। दोनों व्यक्तिका ही विचार करते हैं। नई दृष्टि व्यक्ति और समाज दोनोंकी मुक्तिका विचार करेगी और भूतलपर स्वर्गकी स्थापना करनेका प्रयत्न करेगी। दूसरे शब्दोंमें वह रोग, अभाव, अज्ञान, विषमता, अन्याय, द्वेष, स्वार्थ, लड़ाई, व्यसन, असंयम, बाहरी सत्ता और अन्तरके विकारोंकी गुलामी आदिका नाश करनेकी कोशिश करेगी।

पुराने धर्म अभी तक यह मानकर चले हैं कि इस संसारके जीवनको ऊपर कहे दुःखोंसे रहित बनानेकी आशा ही नहीं रखी जा सकती। अभाव, दुःख और मनुष्यका मनुष्यपर अत्याचार इस जीवनमें तो टल ही नहीं सकते; परलोक ही ऐसी जगह है, जहाँ ये नहीं होते। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि इस दुनियामें जितनी अधिक आपत्ति रहेगी, परलोकमें उतना ही अधिक उसका बदला मिलेगा। इस कारण, जान-बूझकर, केवल दुःख सहनेके लिए ही दुःख सहनेकी कृत्रिम रीतियोंको भी उन्होंने प्रायः प्रोत्साहित किया है। सामाजिक अन्यायों और कुप्रथाओं, दुःखों और रोगों और मनुष्यों द्वारा निर्माण की गई रूढ़ियों, क़ायदे-क़ानूनों और संस्थाओंको भी प्रायः आज्ञानवश ईश्वर-निर्मित समझकर उन्हें बरदाश्त कर लेना सिखाया है। यह समझना चाहिए कि इस अंशमें प्राचीन धर्मोंकी यह दृष्टि मिथ्या दृष्टि है।

हमें जानना चाहिए कि जिसमें दुःख ही नियम-रूप हो, ऐसी सृष्टि रचनेका कोई ईश्वरीय हेतु हो ही नहीं सकता। असलमें तो अज्ञान, व्यसन, अव्यवस्था और कुव्यवस्था ही मनुष्यों के अधिकांश दुःखों और संकटोंके कारण हैं; अतएव जीवनको दुःखी बनानेवाले इन बलोंका, फिर ये मनुष्य-निर्मित हों या प्राकृतिक कारणोंसे हों, निरन्तर सामना करते रहनेका नाम ही मोक्षकी साधना है।

मोक्ष इस दुनियामें यहीं प्राप्त करना है, और वह व्यक्ति एवं समाज दोनोंके लिए है। इस मोक्षका अन्त नहीं। यह निरन्तर बढ़ता रहनेवाला मोक्ष है; किन्तु जो व्यक्ति इसके लिए ठीक-ठीक साधना करता है, उसे उसका पूरा-पूरा फल उसके अन्तःकरणमें तुरन्त ही मिलता है, और वह फल है अन्तःकरणकी शान्ति और समाधान।

नई दृष्टिमें—(१) केवल ईश्वरकी ही उपासना होगी; (२) जीव-मात्रके प्रति आदर और उसकी सेवाका भाव रहेगा; (३) अवतारों, पैगम्बरों, गुरुओं आदिके प्रति और उनकी तस्वीरों आदिके लिए आदर-भाव रहेगा, किन्तु ईश्वरके बदले या ईश्वर के प्रतिनिधि-रूपमें या ईश्वरके समान ही उनकी उपासना नहीं की जायगी, और जैसी पूजा अकेले एक ईश्वरकी ही करनी चाहिए, वैसी पूजा किसी मनुष्यकी, फिर वह कितना ही पूर्ण और महान् आत्मा क्यों न हो, कभी नहीं की जायगी; (४) जिनके लिए हमारे मनमें आदर हो, उनके पास हम आदरपूर्वक जायँ और उनकी सेवा करें, किन्तु उस आदरमें यह भाव न होना चाहिए कि उनके सामने हम हल्के, पामर, छोटे और निर्माल्य मनुष्य हैं।

- ४ -

तत्त्वज्ञानकी भाषा छोड़कर आलंकारिक भाषामें कहूँ, तो कहना होगा कि ईश्वर और शैतानके बीच वैसी शत्रुता नहीं है, जिसकी कल्पना शास्त्रोंके पढ़नेसे हमें होती है। प्रायः दोनों एक ही ध्येयके लिए कार्य करते पाए जाते हैं। दोनोंके बीच भेद केवल साधनोंका है। शैतानको शुद्ध साधनका आग्रह नहीं होता। अक्सर पाया यह गया है कि वह ग़लत साधनोंसे अच्छा परिणाम लाता दीखता है। इस कारण साधारण आदमीके हृदयमें उसके प्रति गहरी श्रद्धा जम जाती है। दीर्घ दृष्टिसे सोचनेपर ही शैतानकी बुद्धिमानी और उसकी दृष्टिकी विशालताके विषयमें शंका उत्पन्न होती है।

किन्तु दीर्घ दृष्टिकी भी अपनी मर्यादाएँ हैं। कसौटीके समय दीर्घ दृष्टिसे सोचनेवाला भी गोता खा जाता है और अल्प दृष्टिकी नीतिके साथ समझौता कर बैठता है तथा शैतान द्वारा किए गए कामके फलको अपनानेके लिए तैयार हो जाता है। शैतानके कार्योंका निषेध करनेकी उसकी हिम्मत नहीं पड़ती। हर किसी साधनका उपयोग करनेके प्रलोभनको भी जीवन-युद्धका एक भाग समझना चाहिए। इसमें कभी हम भूल कर बैठें, तो भी हमें पुनः-पुनः ईश्वरके पक्षमें ही जानेका प्रयत्न करना चाहिए।

('कोड़िया' से श्री काशिनाथ त्रिवेदी द्वारा अनूदित)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कवि अजवेश महापात्र

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी

कवि अजवेशका जन्म सं० १८४१ वि०में हुआ था। आप ख्यातनामा महाकवि नरहरि महापात्रके पुत्र कविवर हरिनाथ महापात्रकी असनी (ज़िला फतेहपुर) वाली शाखाके शिवनाथ कवि महापात्रके पुत्र थे। शिवनाथ कवि रीवाँके महाराजा श्री जयसिंहजू देव और उनके पुत्र श्री विश्वनाथसिंहजू देव बहादुरके दरबारी कवि थे। उन्होंने रीवाँ-नरेश और तत्कालीन महाराणा उदयपुर द्वारा अपनी कवित्व-चातुरी और काव्य-मर्मज्ञतापर एक-एक ग्राम पुरस्कार-स्वरूप पाया था। इस प्रकार अजवेशको एक बड़े कविका पुत्र होनेका गौरव प्राप्त हुआ और नरहरिवंशी होनेके कारण कवित्व-शक्ति इन्हें पैतृक धरोहरमें मिली। शिवनाथजीने अजवेशको समयानुसार संस्कृत और फ़ारसीकी ऊँची शिक्षा दिलाई। बीस वर्षकी आयुमें आप रीवाँ-महाराज श्री विश्वनाथसिंहजू देव बहादुरके दरबारमें नौकर हो गए। आप समय-समयपर महाराजके विनोदार्थ कविता भी करते रहते थे।

अब तक आपकी जितनी फुटकर रचनाएँ और काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, उनमें शृंगार-रसकी प्रधानता है। शृंगार-सम्बन्धी आपके कुछ छन्द नीचे दिए जाते हैं :—

मसि घसि कीन्हीं सोभा कीन्हीं उछोनी छीनी,
निज मुख चन्द ही सौं सुषमा सरोजकी।
मृग मद रंजनके गंजन गरूर दृग,
दीन्हीं खोय खूबी खरे खंजनकी खोजकी।
ललित त्रिभग अंग-अंग अतुलित ओप,
अजवेश बाढ़ै चित चाहै चित चोजकी।
लाज तरु तूरति-सी पूरति प्रमोद उर,
साँवरेकी सूरति धौं मूरति मनोजकी।

जीवको जीवन प्रानको प्रान अहै सिगरो ब्रजमण्डल जाको।
रूपकी राशि सकेलि विरंचि रच्यो तन ताको मनो भव छाको।
बूझती हौ अजवेश कहा इन सूझती आँखिन ही किन ताको।
मोहिं तौ नीको लगै सजनी नन्दगाँवको लाड़िलो नन्द बाबको।

आपकी रचनाओंमें रीति-कालकी छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और उस परम्पराका निर्वाह आपने बहुत खूबीके साथ किया है। उदाहरणार्थ, आपका स्वाधीन पतिका-नायिकाका असंगति अलंकारमें सखी प्रति सखी वाक्यवाला सवैया देखिए :—

छाप छला नवला कौं गिरै तौ उठाय लला धरि राखत जीकैं।
घोखेहु पायँ धरा पै धरैं अजवेश सरोषै सहेलनि ठीकैं।
कानेनहूँ न सुनी अब लौं न लखी सखि नैननि ऐसी अलीकैं।
लाग धुवाँ अलबेलीकी आँखिन धावैं ललाके ललाईकी लीकैं॥

कविका स्वाधीन पतिका (परकीया)-नायिकाका ध्यान-विषयक निम्न कवित्त भी अच्छा बन पड़ा है :—

रतन-जटित बाँधे ललित लपेटा फेंटा,
चीरा चित चोरै सुही सबुझ लहरिकों।
कुण्डलकी कान्ति जुग कानन विराजै लाजै,
मुख अरबिन्द रूप पानिप न हरिकों।
पीत पट कटि पै सोहाई मुरली है हाथ,
अजवेशकी सौं खरो भारी दुपहरकों।
जोहनकों माहिं तिरछौहन चितौत,
मेरे गोहन फिरत मनमोहन महरिकों॥

आपका शुद्ध वीर-रसका कवित्त भी ध्यान देने योग्य है :—

संगर समस्त सज्यो बाँध्यो धनी विश्वनाथ,
वीरताको रूप खूब आनन लखात है।
मारू बजे बाजे गाजे दुरद दतारे भारे,
सुभट-समूह सावधान दरसात है।
विक्रम विहद्द हिन्दुवान हद्द अजवेश,
जैसिंहके नन्दके अनन्द अधिकात है।
तरकत जात बन्द करकत जात कवच,
थरकत बाजी, बाँह फरकत जात है।

आप काव्यसे प्रसन्न होकर रीवाँ-नरेश श्री विश्वनाथसिंहजूने एक ग्राम दिया और आपकी बुद्धि तथा राज्य-कार्यमें दक्षता देख आपको अपनी 'पंच-मुसाहिबी' कचहरीका स्थायी सदस्य बना लिया। सं० १९०० में रीवाँ-नरेशने आपको अपने दरबारका 'वकील' बना दिया, जिस पदपर आप मृत्युपर्यन्त रहे। सं० १९०१ में आप रीवाँ-दरबारकी ओरसे उदयपुरके महाराणा स्वरूपसिंहके दरबारमें गए, जहाँ आपकी अच्छी आवभगत हुई। उदयपुरमें रहते हुए आपने महाराणाके नामपर 'स्वरूप-विलास' नामक एक 'नर-काव्य-ग्रन्थ' रचा। यह ग्रन्थ असनी-निवासी श्री लालजी कवि महापात्रके पास है और अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस काव्य-ग्रन्थसे प्रसन्न होकर महाराणाने कविको अपने राज्यमें एक ग्राम दिया। जब अजवेशजीने महाराणापर अपना प्रभाव जमता हुआ देखा, तो समय पाकर आपने रीवाँ-नरेशके पुत्र श्री रघुराजसिंहजीका विवाह महाराणा सरदारसिंह की सुपुत्रीके साथ कर देनेकी चर्चा चलाई। पहले तो महाराणा इस सम्बन्धके लिए प्रस्तुत न हुए; परन्तु अजवेशजीके निरन्तर उद्योग तथा समझाने-बुझानेपर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इस कार्यके लिए अजवेशजीको उदयपुरमें सं० १९०१-१९०८ वि० तक रहना पड़ा। सं० १९०८ में विवाहके अवसरपर दरबारमें उदयपुर-दरबारके 'प्रसाद' कविने महाराणाकी प्रशंसामें निम्न कवित्त पढ़ा :—

बाढ़ो पातसाही प्रलयकालके सजल ज्यौंही,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

डूबे राव राजा पै न कीन्हों तेग खरको।
देन लागे नवल दुलैया नव रोजनकी,
पीछे आनि देखैं नीठि नीठि मुख घरको।
बाँधि तरवारि पातसाहन सौं कीन्हों रारि,
भनत प्रसाद अवतार साँचो हरको।
दोऊ दीन जाना बात अकह कहाना, सदा
ऊँचो रह्यो राना जैसे पाना अखैबरको।

यह सुनकर अजवेशजीने बाँधोगढ़में अकबर बादशाहकी जन्म-विषयक कथाका आश्रय लेकर अक्षयवटका रूपक बाँध निम्न कवित्त पढ़ा :—

दिल्लीके जितेक सरदार मनसबदार,
राजा राव उमराव सबको निपात भो।
बेगम बिचारी बही कतहूँ न थाह पाई,
बांधोगढ़ गाढ़ो गूढ़ ताको पक्षपात भो।
शेरशाह सलिल प्रलयको बढ़्यो अजवेश,
बूड़त हुमायूँके महाई उतपात भो।
बलहीन बालक अकब्बर बचाइबेको,
वीरभानु भूपति अखैबरको पात भो।

तथा—

सरनको सलिल समिट सरितान आवैं,
सरिता सरन आवैं नीर-निधि-नाहके।
देवता दबे ते चतुरानन सरन आवैं,
आवैं चतुरानन सरन चारि बाँहके।
चन्द्रमा सरन आवैं उडुगन अजवेश,
चन्द्रमा सरन आवैं कुमुदिनि दाहके।
आवत जगत सब साह की सरन,
साह आवत सरन बांधवेश पातसाहके।

इस प्रकार अजवेशजीने उक्त अवसरपर महाराज रीवाँ-नरेशकी श्रेष्ठता प्रतिष्ठित कर दी, जिससे महाराजका कविपर अनुराग अधिक बढ़ गया।

महाराज रीवाँ श्री विश्वनाथसिंहजू देव बहादुरकी मृत्युपर अजवेशजीने निम्न कवित्त दरबारमें सुनाया था :—

समुद सुखान्यो कैधौं सन्त जन मीननको,
दीननको देव दरखत सौं उखरिगौ।
पुण्यके प्रकासको अकास ससि छीन भयो,
अथयो प्रतापको तरनि तम भरिगौ।
कीन्ह्यो विश्वनाथ बिसराम राम धाम आजु,
सुकृतको भाँड़ो भूरि भूतलतैं टरिगौ।
हरिगौ गुनीनको गुनको गुमान हाय,
आजु गुनग्राहक जहान तैं निकरिगौ।

इसके उपरान्त महाराजा राघुराजसिंहजू देव बहादुर गद्दीपर बैठे। आपने प्रथम वर्ष पितृ-शोकमें होलीका उत्सव नहीं मनाया। दूसरे वर्ष सभासदोंके समझाने-बुझानेपर महाराजने होली खेली, उस समय अजवेशजीने यह कवित्त पढ़ा :—

त्रिगुन बिभूति सौं बनायो जौन अजवेश,
ताहि पुनि तैसेई निहारत नितै रह्यो।
आजु महाराज रघुराजसिंह खेल्यो फागु,
अति अनुराग जनु हीतल हितै रह्यो।
एते मान उड़त गुलाल लाल भूमि भई,
छई अरुनाई नभ नीलता रितै रह्यो।
रज तम हीन रज रंजित नवीन जग,
चहुँधा चकित चतुरानन चितै रह्यो।

सं० १९१४ वि० (सन् १८५७) के विद्रोहमें रीवाँ-महाराज रघुराजसिंहजूने अंगरेज़ोंको बड़ी भारी सहायता दी थी, जिसके परिणाम-स्वरूप पुरस्कारमें रीवाँ-राज्यका छूटा हुआ परगना सोहागपुर उन्हें भारत-स्थित अंगरेज़ी सरकारसे प्राप्त हुआ था। यह खबर सुनकर अजवेशजीने निम्न कवित्त पढ़ा था :—

जम्बू दीप जीत्यो जिन साँकरे परे ते डरे,
तिन अँगरेजनको राख्यो बरजोरी तैं।
पाँयेन सौं मरदि गरदि कीन्ह्यो छत्रसाली,
सत्रुनकी लाली कोप काली मैं बोरी तैं।
किम्मति कहै को तेरी वीरताको अजवेश,
थोरी ही उमरि करी हिम्मति न थोरी तैं।
बीर भानुवंश अवतंश धन्य रघुराज,
केतिकौ दिनाकी गई अवनि बहोरी तैं।

सं० १९१७ वि० में महाराज रघुराजसिंहजूने अजवेशजीको जोधपुर भेजा, जहाँ सं० १९२२ वि० तक रहकर उन्होंने वहाँके महाराज तख्तसिंहको अनेक प्रकारसे आकर्षित करके उनका विवाह रीवाँमें कराया। सं० १९२६ वि० माघ मासमें ८५ वर्षकी अवस्थामें कवि अजवेश महापात्रका रीवाँमें शरीरान्त हो गया। कतिपय विद्वानोंका कथन है कि अजवेश नामके तीन कवि क्रमशः रीवाँ, उदयपुर और जोधपुरमें प्रायः एक ही समयमें हुए हैं; परन्तु प्रस्तुत लेखसे स्पष्ट हो जायगा कि असनीके महापात्र-वंशी अजवेश केवल एक हुए हैं, जो रीवाँ-दरबारके कवि, मुसाहिब तथा वकील रहे और यही अजवेश रीवाँ-महाराजके कार्य-सम्पादनके लिए क्रमशः सं० १९०१ से १९०८ वि० तक उदयपुरमें तथा सं० १९१७ से १९२२ वि० तक जोधपुरमें रहे। अजवेशजीको रीवाँ, उदयपुर व जोधपुरमें ग्रामोंकी माफ़ी आदिके जो ताम्रपत्र मिले हैं, वे भी हमारे देखनेमें आए हैं। इन ताम्र-पत्रोंमें से कुछ अजवेशजीके वंशज असनी-निवासी श्री लालजी कवि महापात्रके पास हैं और अवसर पड़नेपर देखे जा सकते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रूपन

श्री सोमनाथ

अपने बाबाके मरते ही रूपन इस लम्बे-चौड़े संसारमें अकेला रह गया। अठारह वर्षके जीवनमें चिन्ता नामकी कोई चीज़ उसने देखी ही न थी, मानो विधाताने उसके लिए केवल खाने और खेलनेको ही यह सुनहरा संसार बनाया हो। बीस बीघा खेतोंमें उसका बाबा इतना अनाज उपजा लेता था कि दोनोंका पूरा साल सुखसे कट जाता था। इसी कारण जब एक दिन उसका बाबा उसे अकेला छोड़कर चल दिया, तो वह घबरा उठा—उस नए बछड़ेके समान, जिसके कन्धेपर कोई निर्धन किसान विवश होकर समयसे पहले ही हलका जुआ रख देता है; और जिस प्रकार कुछ अड़नेके बाद बछड़ा धीरे-धीरे चल ही निकलता है, उसी प्रकार रूपनने भी अपने बाबाके हलको उठाकर इन्हीं बीस बीघा खेतोंको जोतते-बोते हुए अपना जीवन-चक्र चलानेका निश्चय कर लिया।

पर रूपनके बाबाकी मृत्युसे खुश होनेवाले लोगोंकी भी गाँवमें कमी न थी। उसके बाबाने अपने खेतोंको घूरा डाल-डालकर गाँव-भरसे अधिक उपजाऊ बना दिया था। कितने ही लोग उन्हें देख-देखकर ललचाया करते थे और ड्योढ़े-दूने लगानपर लेनेको तैयार थे। गाँवके चित्रगुप्त लाला भजनलाल पटवारी ऐसा सुन्दर अवसर पाकर भला कब चूकनेवाले थे। उन्होंने तत्काल अपनी माया फैलानी आरम्भ कर दी। आज गाँवमें पड़-ताल करने आए, तो रूपनसे बोले—'कहो, कितना माल निकला बाबाके पास?'

दुनियादारीकी यह पहली बात थी, जो रूपनके सामने आई। बाबाके शोकमें माल निकलनेकी बात उसके जीमें अभी तक आई ही न थी। अन्यमनस्क भावसे बोला—'माल कहाँ, लाला? साहूजीसे रुपया लेके तो क्रिया-कर्म किया है।'

'उड़ो मत। हमसे कोई बात छिपी नहीं है। गाँव-भरसे तुम्हारे खेत अच्छे हैं।'

'जो सच्ची बात थी, वह मैंने तुम्हें बता दी।'

'इसमें जितनी सचाई है, उसे मैं खूब जानता हूँ। तुम किसानोंकी आदत ही ऐसी है। जहाँ किसी मामलेमें धरे गए कि बस थानेदार, वकील और अहलकारोंके आगे चाँदीकी दीवार कर दी और जहाँ पटवारी पास आया, तो लगे रोने कि कहीं यह अपना हक़ न माँगने लगे!'

'आप मानें चाहे न मानें, बाबाके पास तो सचमुच कुछ भी नहीं निकला।'

लाला भजनलाल नित्य ही ऐसी बातें सुना करते थे। वे व्यवहारकाजी आदमी थे। बहसमें समय नष्ट करना ठीक न समझते थे। उन्होंने अपनी मुद्रा बदली और फुसलानेके भावसे बोले—'अच्छा बाबा, कुछ न सही। तुम जो कहो, वही ठीक; लेकिन मेरा हक़ तो कहीं-न-कहींसे निकालना ही होगा।'

रूपन चौंका। दो-एक बार गाँवके अन्य लोगोंसे भी उसने लाला भजनलालके हक़का तक़ाज़ा होते सुना था; परन्तु उसने यह स्वप्नमें भी न सोचा था कि उसके बाबाके मरनेपर भी लालाका हक़ देना पड़ेगा। चकित होकर बोला—'आपका हक़ कैसा?'

सुनते ही लालाके कान खड़े हो गए। गाँवमें किसानोंकी सभा होनेके बाद एक-दो मज़बूत आसामियोंने उनके हक़के विरुद्ध अवश्य आवाज़ उठाई थी, जिन्हें वे समझा-बुझाकर ठिकाने ले आए थे; परन्तु रूपन-जैसे तुच्छ किसानसे उन्हें इस विरोधकी आशा न थी। आश्चर्यका भाव प्रकट करते हुए उपस्थित लोगोंसे बोले—'लो समझाओ इसे, मेरा हक़ कैसा!'

रूपनने गाँववालोंके समझानेकी अपेक्षा न की। कुछ तेज़ होकर बोला—'आप ही समझा दो न।'

'तो समझ लो'—लालाने गरम होकर कहा—'मेरा हक़ जब तक नहीं दे दोगे, तब तक काग़ज़में तुम्हारा नाम नहीं चढ़ाऊँगा।'

रूपन चिढ़ गया। कुछ और रुष्ट होकर बोला—'नाम चढ़ानेके लिए सरकार तुम्हें तनख़ा देती है; चढ़ाओगे कैसे नहीं?'

भजनलाल इसपर आग-बबूला हो गए। गरम-गरम साँस छोड़ते हुए बोले—'अच्छा, तो फिर सरकारका ही नाम चढ़ेगा!'

रूपनने इन शब्दोंका अर्थ समझा हो या नहीं, परन्तु अन्य गाँववाले भली प्रकार समझते थे। उन्होंने रूपनको समझानेका प्रयत्न किया; परन्तु जब वह किसी प्रकार हक़ देनेको राज़ी न हुआ, तो उन्हें निश्चय हो गया कि अब उसके ऊपर अवश्य कोई विपत्ति आयगी। वे जानते थे कि पाप करते-करते भजनलालका हृदय कितना कठोर हो गया है। उनकी क़लमकी करामातोंने कितने ही खाते-पीते किसानोंकी लोटा-थाली बिकवा दी थी, भाईको भाईके ख़ूनका प्यासा बना दिया था और कितने ही अनाथ स्त्री-बच्चोंको उनकी ज़मीनसे बेदख़ल कराके दर-दरका भिखारी बना दिया था। रूपन आज पहली बार सोच रहा था कि इस सुनहरे संसारका ऐसा कटु रूप भी हो सकता है, जहाँ न तो प्यार है और न दया-धर्म; वरन् है केवल निर्मम शोषण-व्यापार।

- २ -

'ऐसी झूठी बातकी गवाही कौन देगा!'—ज़मींदारने कहा।

'वाह, इसी हिम्मतपर ज़मींदारी करते हो?' पटवारीने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा—'गवाही वह देगा, जो खेत लेना चाहेगा, जो गाँवमें रहना चाहेगा ; और मैं क्या मर थोड़े ही गया हूँ।'

अन्तमें नादान भेड़की हत्याके लिए चालाक लोमड़ीने भेड़ियेको तैयार कर ही लिया, और एक दिन न्यायालयके काग़ज़ पर सिद्ध हो गया कि रूपन अपने बाबाका कोई भी नहीं है, इसलिए बाबाके खेतोंपर उसका कोई अधिकार नहीं है ! रूपनने बहुत दौड़-धूप की, समस्त गाँवकी विनय करता फिरा ; परन्तु परमपिता द्वारा निर्मित पिता-पुत्रके सच्चे सम्बन्धकी साक्षी देनेके लिए कोई भी तैयार न हुआ और रूपन अपने खेतोंसे बेदखल कर दिया गया। जिस दिन फ़ैसला सुनाया गया, उसी दिनसे संसारकी प्रत्येक वस्तु रूपनको बुरी मालूम देने लगी। अपना गाँव और उसके निवासी सभी पराए-से जान पड़ने लगे। उसने सबसे मिलना-जुलना छोड़ दिया। साँझ-सवेरे अन्यमनस्क भावसे खेतोंकी मेंड़पर जा बैठता। कुछ क्यारियोंमें उसने भिण्डी और लौकी बोई थीं। दोनों ही फलने लगी थीं। ललचाए पक्षियोंके झुण्ड उसीके सामने आ-आकर उन्हें नष्ट किया करते और वह चुपचाप बैठा-बैठा ताकता रहता। कोई गाय-भैंस यदि कछवारोंमें घुस पड़ती, तो भी वह कुछ न बोलता। बेलें टूट जातीं, फल नष्ट हो जाते; पर उसके दिलमें कुछ भी दर्द न होता।

एक दिन संध्याका समय था। जेठ मासके लम्बे दिनकी कड़ाकेकी धूप और लूसे झुलसे उजड़ी कछवारीके बचे-खुचे पौदोंने अपने मुरझाए पत्तोंको कुछ-कुछ चैतन्य करना आरम्भ कर दिया था। रूपन सदाकी भाँति मेंड़पर चुपचाप बैठा था। इसी समय लाला भजनलाल, एक डुग्गीवाला, ज़मींदार सुरजन-सिंह और दो-चार अन्य व्यक्ति वहाँ आ पहुँचे। लाला भजन-लालने बड़ी ऐंठसे कहा—'ओ बे रूपना, इन खेतोंपर अब ज़मींदारका दखल होता है। आजसे यहाँ न आना।' फिर डुग्गीवालेसे बोले—'हाँ, कर दे मुनादी।'

डुग्गी बजी, तो रूपनको ऐसा लगा, मानो उसके हृदयपर किसीने हथौड़ेसे चोटें की हों। जिन खेतोंकी मिट्टीमें लोट-लोटकर उसने अपना बालपन बिताया था, वे अब सदाके लिए उससे बिछुड़ गए। उसके हृदयमें दुःखका एक भीषण ज्वार उमड़ा, जो मुँहसे शब्द बनकर तो नहीं, पर आँखोंसे कुछ बूँदें बनकर बाहर निकल ही पड़ा। भजनलाल इसी समय बोले—'रोओ अब ज़िन्दगी-भर।' भजनलालने यदि कुछ कहा न होता, तो रूपनने अपनी ज़िन्दगी-भरका रोना अब तक शायद शुरू भी कर दिया होता ; परन्तु भजनलालके इन तिरस्कारपूर्ण शब्दोंने उसके हृदयमें एक विलक्षण शक्तिका संचार कर दिया। उसके सोए हुए अभिमानने चोट खाकर उसे सावधान किया—नहीं, वह रोए क्यों ? उसकी बाँहोंमें बल है। क्या यह बल वृथा रहेगा ?

उसने सिंहकी भाँति सिर ऊँचा करके लाला भजनलालको दल-बल-सहित गाँवकी ओर जाते देखा, जो बड़ी तत्परताके साथ ज़मींदारसे नज़रानेकी चौथके लिए आग्रह करते जाते थे। उसकी आँखोंमें खून उतर आया। जोशसे अंग-अंग फड़कने लगा। दौड़कर घर गया और गँड़ासी उठाकर पत्थरपर रगड़नी आरम्भ की। चारों ओर अँधेरा छाने लगा, परन्तु इसका उसे कुछ भी ध्यान न था। वह अविराम गतिसे बड़ी देर तक रगड़ लगाता रहा। जब धार खूब तेज़ हो गई, तो उठा और तेज़ीसे बाहर चला गया।

- ३ -

लाला भजनलाल मीठी नींदमें अचेत पड़े थे। चौपालमें उनके अतिरिक्त और कोई न था। बाहर भी चारों ओर सन्नाटा था। रूपन गँड़ासी लिए वहीं आ पहुँचा। ऐसा सुयोग पाकर वह प्रसन्न अवश्य हुआ ; परन्तु उसने आते ही प्रहार नहीं किया। जिस मनुष्यके सिरपर हत्या सवार होती है, उसका प्रत्येक भाव रौद्र रूप धारण कर लेता है। वह एक ऐसे आवेशमें भर जाता है कि लक्ष्यके अतिरिक्त और कुछ देखता ही नहीं। अधिकांश हत्याएँ मनुष्य द्वारा ऐसी ही दशामें होती हैं। होश आनेपर कभी-कभी स्वयं हत्यारेको ही आश्चर्य होने लगता है कि उसने हत्या किस प्रकार की होगी। यदि उसके हाथमें वही शस्त्र फिर दे दिया जाय और उसीके द्वारा मारे हुए शत्रुपर फिर प्रहार करनेको कहा जाय, तो उसका साहस जवाब दे जायगा। रूपनके मुखपर ऐसे आवेशका कहीं पता न था। हाथमें गँड़ासी अवश्य थी ; परन्तु अपने हृदय और मस्तिष्कको पूरी तरह सँभाले हुए वह चुपचाप खड़ा था। एक क्षणके लिए उसने सोचा कि इस पापीका अन्त ही कर दूँ ; किन्तु दूसरे ही क्षण यह विचार बदल गया। भजनलालने उसका जीवन नहीं, केवल जीविका ली थी ; अतः उसे भी उनका जीवन न लेकर जीविकापर ही आघात करना चाहिए। कुछ समय तक वह सोचता रहा ; फिर गँड़ासी उठाई और तानकर लालाके दाहिने हाथपर मारी। एक ही चोटमें पाँचों उँगलियाँ कटकर गिर पड़ीं। लाला चीख मारकर उठ बैठे। सामने खूनसे भरी गँड़ासी लिए रूपनको देखते ही उनके होश उड़ गए। उसके रूपमें उन्हें अपना काल दिखाई देने लगा। लालाको उठते देख रूपन झपटा और उन्हें भूमिपर दे मारा और फिर गँड़ासी उठाई। लालाने समझा, इस बार वह उनके गलेपर पड़ेगी ; किन्तु ऐसा नहीं हुआ। रूपनका दूसरा प्रहार उनके बाँए हाथपर हुआ और फिर पाँचों उँगलियाँ कटकर पृथ्वीपर जा गिरीं। भजनलाल फिर बड़ी ज़ोरसे चिल्लाए, जिसे सुनकर सारा गाँव दौड़ आया।

दूसरे प्रहारके बाद रूपनने भजनलालको छोड़ दिया ; किन्तु उन्हें अब भी गँड़ासी अपने गलेपर आती हुई दिखाई देती थी। भूमिसे भी उठनेका साहस न होता था। मुखसे कातर स्वरमें

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

कराहनेकी ध्वनि निकल रही थी। उनकी दशा उस बकरीके समान थी, जिसे भेड़िया घायल करके छोड़ गया हो। परन्तु भजनलालका भेड़िया रूपन भागा न था, वरन् शान्तिपूर्वक एक ओर खड़ा था। रक्तिम आघातोंने उसके हृदयको उत्तेजित तो अवश्य किया था; परन्तु उसका आत्मनियन्त्रण अब भी विचलित नहीं हुआ था। भजनलालकी दशा देखकर उसने कहा—'बस, अब मत डरो। मैं तुम्हारी जान नहीं लूँगा। तुमने मुझे बेदखल कराके मेरी जीविका मिटाई, इसलिए मैंने भी तुम्हारी उँगलियाँ काटकर तुम्हारी जीविका मिटा दी है। अब न तुम्हारे पापी हाथोंमें क़लम आयगी और न किसी ग़रीबका गला कटेगा!'

× × ×

रात्रिका अन्धकार फैलना आरम्भ हो गया था। दोनों हाथोंमें पट्टियाँ बाँधे लाला भजनलाल अस्पतालकी चारपाईपर पड़े थे। उनकी आँखोंमें आँसू भरे थे। हाथोंकी पीड़ा असहनीय थी; परन्तु इससे भी अधिक पीड़ा उन्हें उस मानसिक संताप से हो रही थी, जिसने उनके हृदयमें बवण्डर उठा दिया था। रह-रहकर उन्हें प्रतीत होने लगता था, मानो रूपन खड़ा कह रहा है—'अब न तुम्हारे पापी हाथोंमें क़लम आयगी और न किसी ग़रीबका गला कटेगा!' ये शब्द उनके हृदयपर गोली-से लगते और अतीत जीवनकी अनेक विस्मृत घटनाओंको उनके नेत्रोंके आगे लाकर खड़ा कर देते थे। अनेक भूखे-नंगे किसान पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी दुःखित मूर्तियाँ उनके सामने आ खड़ी होतीं और अपने साथ किए गए अन्यायका उत्तर माँगतीं। उन सभीके ऊपर उठा हुआ रूपनका मुँह मानो गम्भीर स्वरमें कहता—'तुमने मेरी जीविका मिटाई थी, इसलिए मैंने भी उँगलियाँ काटकर तुम्हारी जीविका मिटा दी है!'

वे और सहन न कर सके। विकल होकर छटपटा उठे। जो हृदय पाप करते-करते पक्का हो जाता है, वह केवल भीषण ठेस लगनेपर ही चेतता है। रूपनके प्रहारोंने भजनलालके हृदय पर भी एक भीषण ठेस पहुँचाई थी। मानवताका जो स्रोत उनके हृदयमें अनेक वर्षोंसे सूख चुका था, वही उँगलियाँ कटते ही सहसा फिर उमड़ पड़ा था। अब उन्हें रूपनपर नहीं, वरन् अपने-आपपर क्रोध आ रहा था। प्रतिशोधके स्थानपर सन्तोष का उदय हो रहा था। लिखनेके अयोग्य होकर उनका पटवारी बना रहना असम्भव था। फिर भी जीविका चली जानेका उन्हें इतना दुःख न था, जितना अभी तकके पापमय उपार्जनका। सभी मूर्तियाँ ऐसी कारुणिक दृष्टि डालती और ऐसी ठण्डी आहें भरती थीं कि मारे भयके उन्होंने आखें बन्द कर लीं। किन्तु आँखें बन्द करते ही उनके रूखे, पीले तथा शोषित चेहरे और भी स्पष्ट अंकित हो उठे। भजनलालकी व्याकुलता चरम सीमाको जा पहुँची। वे भर्राए हुए स्वरमें चिल्ला उठे—'रूपन, रूपन!'

- ४ -

रात बीत गई। बड़ा सुन्दर प्रभात हुआ। लाला भजनलालके हृदयमें एक अपूर्व प्रकाशका उदय हो गया। बाहर वृक्षों पर चिड़ियाँ मीठा राग गा रही थीं। शीतल पवनके मन्द-मन्द झोंके प्यारी-प्यारी थपकियाँ दे जाते थे। आजके समान सुन्दर दिवस उन्होंने कभी न देखा था। संसारकी अधिकांश सुन्दरता और कुरूपताकी सृष्टि हमारे मानसिक विकारोंके अनुसार ही होती है। सुन्दर मनको प्रत्येक वस्तुमें सुन्दरता थिरकती दिखाई देती है और बुरे हृदयको प्रत्येक वस्तु भयंकर बनकर डराती है। उँगलियाँ कटनेके समयसे उन्होंने प्रायश्चित्तके आँसू बहा-बहाकर अपने हृदयकी सारी कालिमा धो डाली थी। वे चुपचाप स्थिर और शान्त दृष्टिसे अपने हाथोंकी ओर देखने लगे। इसी समय डाक्टर, दारोग़ा और पुलिसके कई सिपाही वहाँ आ पहुँचे। वे इस दुर्घटनाकी जाँच करने आए थे। भजनलालने उन्हें देखा, तो ऐसा मुँह बनाया, मानो उनका आना उन्हें काट रहा हो। दारोग़ाने आगे बढ़कर कहा—'लाला भजनलाल, हमने रूपनको गिरफ़्तार कर लिया है। तुम अपना बयान लिखवा दो, मैं उसे भारी सज़ा दिलाऊँगा।'

भजनलाल दारोग़ाकी ओर असम्मतिसूचक भावसे देखते हुए बोले—'कैसा बयान और कैसी सज़ा? आप रूपनको छोड़ दीजिए।'

दारोग़ा सुनकर अवाक् रह गए। डाक्टरकी ओर मुड़कर बोले—'कहीं यह पागल तो नहीं हो गए?' फिर याद दिलाते हुए भजनलालसे बोले—'आपकी उँगलियाँ रूपनने काट डाली हैं, उसीका बयान लिखवाइए।'

भजनलाल एक बार सिरसे पैर तक काँप गए। फिर एक ठण्डी साँस खींचकर दृढ़तापूर्वक बोले—'मेरी उँगलियाँ रूपनने नहीं काटीं। मुझे और कुछ नहीं कहना है।'

लोगोंने भजनलालको बहुतेरा समझाया, किन्तु वे टससे मस नहीं हुए। दारोग़ा खीझते हुए चले गए। लोग समझते थे कि निश्चय ही भजनलाल पागल हो गए हैं; परन्तु उनके मुखपर शान्ति और सन्तोषकी मन्द मुस्कराहट खेल रही थी। ऐसी मुस्कराहट उन पागलोंके मुखपर खेलती है, जो मेरा-तेरा भूलकर अखिल ब्रह्माण्डमें एक अखण्ड ज्योतिकी झलक देखने लगते हैं। उँगलियाँ खोकर उन्हें यह मिला था।

एक सप्ताहके बाद अकस्मात् रूपन उनकी चारपाईके पास आकर खड़ा हो गया। भजनलालने उसे देखा, तो चटपट उठ बैठे और पट्टियाँ बँधे हुए अपने दोनों हाथ उसके पैरोंपर रख दिए। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। रूपनकी आँखोंमें भी आँसू आ गए। वह चुपचाप उन कटे हाथोंको देख रहा था—शायद सोचता हो कि उसने अच्छा किया या बुरा?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भक्ति-कालके चित्रकार

श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

भारतमें जिस समय भक्ति-रसकी मधुर भावनाएँ चारों ओर फैली हुई थीं, तुलसी और सूरके पदोंको गाकर मनुष्य अपने जीवनकी जटिलताओंमें कोमल कल्पनाओंकी सृष्टि कर रहे थे, दुःख और दारिद्र्यके दावानलको रसकी अमृतधारासे शान्त कर रहे थे, लोककी समस्त लीलाओंमें भगवानके लीला-विलासका आनन्द ले रहे थे, समस्त विश्वका विराट् रूपकी भावनामें दर्शन कर रहे थे, संसारके जड़-चेतनोंमें सौन्दर्यकी अनन्त आनन्द-राशिका रसास्वादन करते हुए शृंगार-रसकी कान्त पदावलियों द्वारा राधा-माधवके मधुर मिलनको मनोहर झाँकी पा रहे थे, उस समय राजपूतानेके चित्रकार अपना एक नूतन संसार निर्माण कर रहे थे। वे कवियोंके कल्पना-सूत्रोंको रंगोंसे रँग रहे थे, रेखाओंके झीने तारोंसे बुन रहे थे, उन्हें रूप दे रहे थे, रसमें डुबो रहे थे और उस रस-सिन्धुमें स्वयं भी डूबे जा रहे थे। उनके रंगोंसे अपने-आपको रँग रहे थे तथा अपने रंग संसारपर छिड़ककर भक्ति-रसकी होली खेल रहे थे, आनन्दका अबीर उड़ा रहे थे। उनका एक ही लक्ष और एक ही मार्ग था। वह था युगल रूपका आराधन, विश्वके बन्धनोंमें रहकर मुक्तिका साधन, जीवनके जंजालोंको ज्योतिर्मय बनानेका एक अनुपम उपाय। उनके इस प्रयत्नने, इस साधनने सारे देशको सौन्दर्योपासक, रसिक, भावुक तथा भक्त बना दिया था।

जनता रामचरितमानस और सूरसागरको केवल श्रवण-गोचर ही नहीं, दृष्टिगोचर भी कर सकती थी। भगवानके गुणोंको गाकर ही नहीं, देखकर भी आनन्द उपलब्ध कर सकती थी। जो विद्या-विहीन थे, श्रवण-शक्ति-रहित थे, अरसिक थे, वे भी देख कर भगवानकी लीलाओंका आनन्द प्राप्त कर सकते थे। उनके मनोमोहक चित्रोंमें रूपकी माधुरी थी, कल्पनाओंके इन्द्रजाल थे और थे रसोंके स्रोत, जो मनुष्यकी आत्माको आकर्षित होनेके लिए विवश करते थे। और उस आनन्दाम्बुधिमें एक बार डुबकी लगा मनुष्य उसके सुखद भक्ति-सलिलमें निमग्न हो जाता था। उस समय भारतकी श्रवणेन्द्रिय और दृश्येन्द्रियने एक ही साथ, एक ही मुहूर्तमें लोकेश्वरकी गुण-गाथाओंको गा तथा देख-कर, रूपमें रमकर, रसमें बहकर, संसारके क्षणिक तथा साधारण सुखोंसे विरक्ति प्राप्त कर ली थी। मनुष्यने कल्पनाओंके लावण्य-लोकमें पहुँचकर वृन्दावन-विहारीकी मनोमोहक मुरली-ध्वनि सुनी थी और वह उसकी स्वर-लहरीमें डूबकर उन्मत्त बन गया था।

उस कालके मानवने कवियों और कलाकारोंके सहयोगसे अपने चारों ओर ऐसी मधुर भावनाओंको सृष्टि कर ली थी कि उस भावावेशमें वह संसारके समस्त नीति-नियमोंको छोड़कर एक ही मार्गकी ओर अग्रसर हो गया था, और वह मार्ग था प्रेमके उस पवित्र लोकका, जहाँ सांसारिक भावनाएँ बहुत पीछे रह जाती हैं—देश-समाज, ज्ञान-विज्ञान, बुद्धि-तर्क सब-कुछ छोड़कर मनुष्य अपने आराध्यमें ही लीन हो जाता है। उसने अपने दुःखोंकी ओरसे 'आगे चले बहुरि रघुराई' कहकर दृष्टि फेर ली, 'जो कछु होय राम रचि राखा'के आगे भाग्यकी विषमताको परास्त कर दिया, 'खंजन मंजु तिरीछे नयननि' कह-कर भगवती सीताकी रूप-राशिके आगे अपने काम-विकारोंको जलाकर भस्म कर दिया था। वह 'दूर्वादलः श्यामलकोमलांगम्' की रूप-माधुरी देखकर जड़वत् बन गया। वह देखता ही रहा, सुनता ही रहा, अपने अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्में उसने उसी अनन्त रूप-राशिका दर्शन करके अपने-आपको कृतार्थ माना।

'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे' सूरदासने गाया। चित्र-कारोंने अपनी तूलिका सम्हाली, रंग घोला और नील जलदके समान सुन्दर कान्तिधारी गोप-वेष नटवरकी विविध लीलाओंके चित्र अंकित करनेमें लीन हो गए। कहीं ब्रजकी बीथिकाएँ, गोपियोंके रास-विलास, गोप-बालकोंकी विविध क्रीड़ाएँ, गो-यूथ, मानिनी राधा, हठीली राधा, वियोगिनी राधा, विह्वला राधा तथा वियोग और संयोगकी आँख-मिचौनीमें वे मानो खो-से गए। गृहस्थोंके घरोंमें राधा-माधवका विलास ही अंकित था। उनकी उपयोगी वस्तुओंमें प्रेम-लीलाके ही दृश्य यत्र-तत्र उत्कीर्ण किए गए थे। उनकी वेश-भूषामें रसिकताका ही पुट था। उनकी मनोवृत्तिमें सौन्दर्य और शृंगारके ही मधुर भाव जाग्रत थे। वे समस्त संसारको ब्रजभूमि और करीलके कुंजोंमें ही व्याप्त देख रहे थे। मनुष्य-मात्रमें गोपियोंकी ही आत्माका दर्शन उन्होंने किया था। लोक-व्यवहारमें वे रासलीलाके ही दृश्य देखते थे। मानव प्रेम-सुरामें मदमत्त होकर झूमने लगा था। इस भावना-मय संसारकी रचना करनेमें चित्रकारोंने अपने परिश्रमकी इतिश्री कर दी थी। वे बिहारीके त्रिभंगी लालकी ललित कल्पना लेकर संसारमें उतरे। उन्होंने मीराके प्रेम-स्वरोंमें अपना स्वर मिलाया। तुलसीके राजिवलोचन रामकी अनन्त सौन्दर्य-राशि पान करनेके लिए उनके नेत्र भ्रमर बनकर उड़ चले। नागर नन्दकिशोरकी नूपुर-ध्वनिके साथ-साथ वे नृत्य करनेमें तल्लीन हो गए। कोकिलों के मीठे स्वरोंमें वे कूक उठे। यमुनाकी चंचल लहरियोंपर वे ताल देने लगे। उनका हृदय चातकके पी-हू शब्दोंमें पुकार उठा और कदम्बके कुंजोंमें कीर बनकर बसेरा लेने चला गया।

संसारकी बाधाओंसे विकल प्राणियोंने इस अनुपम भाव-जगत्को देखा। विविध दृश्यों, विविध रूपों और विविध रसोंके आस्वादनसे उनका हृदय मन्त्रमुग्ध-सा होकर एक अनुपम शान्ति लाभ करने लगा। उन्होंने अपने मनको गोप-बालकोंकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रीड़ाओंमें खेलने दिया, गो-यूथोंमें विचरने दिया, उन कुंज-कुंजके लता-मण्डपोंका सौरभ लेने दिया, जहाँके केकी-कपोतोंकी वाणीमें प्रेम-सुराकी मादकता थी, ललित लताएँ और द्रुम-वल्लरियाँ एक-दूसरेका आलिंगन कर रही थीं। जहाँ वसन्तकी मधुरिमा थी। रूप-ही-रूप था, रस-ही-रस, ताल-मृदंग-मंजीरोंका स्वर-संचार, कमल-वनोंसे आच्छादित भूमि और विहंगावृत्त आकाश। जहाँ सरिता और स्रोतोंके कलकल-निनादसे दिशाएँ झंकृत थीं। दिनके आलोकमें शरच्चन्द्रिकाका रजत चूर्ण बिखरा पड़ता था। नक्षत्रोंमें गोपियोंका रूप और 'चन्द्र-सुन्दरी भुवन-मोहिनी' राधाके मुखका प्रतिबिम्ब था। इस स्वर्गीय वातावरणमें मलया-निलका प्रवाह, पुष्पोंका पराग और आनन्दकी वर्षा थी। काम-देव निरन्तर पुष्प-चाप लिए इस लोकमें विचरण करते थे। नूपुरोंकी झंकार और घुँघरुओंकी मधुर ध्वनिसे हृदय उन्मत्त हो जाता था। केतक कुसुमोंकी गन्धसे कुहरा-सा छा जाता था। भ्रमरोंके समूह प्रकाशको अन्धकार बनाए देते थे। मानिनी राधाके पद-पंकजोंमें श्रीकृष्णके मयूरपुच्छ लुण्ठित हो-हो जाते थे। सखियोंकी हास्य-ध्वनिसे निर्जीव निकुंजमालाएँ मुखरित हो उठी थीं।

चित्रकारोंके इस नवनिर्मित संसारमें ऐसी मोहिनी भरी थी, जिसे देखकर मानव-हृदय अपनी सुध-बुध खो बैठा था। यह कल्पित संसार अपने-आपमें सम्पूर्ण था। यहाँ विश्वके दुख-द्वन्द्वोंको स्थान नहीं मिलता, जीवनकी ज्वालमालाओंका ताप नहीं पहुँच पाता और दारिद्र्यकी दुर्बलता दूर खड़ी रहती है। इस लोकमें तो आनन्दका साम्राज्य है, प्रेम-सुराकी मादकता है, 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'का आदेश है। जब श्रीकृष्ण उनके चरितनायक हैं, वे और किसको चुनें? वे बालक बनकर हँसते हैं, किशोर बनकर रास-विलास करते हैं, युवा बनकर युद्धमें उतरते हैं। लम्पट हैं, चोर हैं, जार हैं, रणछोड़ हैं, गायक हैं, वीर हैं, क्या नहीं हैं? सारे रस इस एक ही समुद्रमें उन्हें मिल गए, तब वे किसकी शरण जाते, किसके सम्मुख अपनी भावनांजलियोंको अर्पित करते? भगवानके सम्मुख ही उन्होंने अपनी अन्तरात्माको खोलकर रख दिया है—चाहे भक्तको तारें, चाहे डुबा दें। इससे उन्हें प्रयोजन ही क्या?

चित्रकारोंने विद्यापतिके गान तथा जयदेवकी सुललित पदावलियाँ रंगों और रेखाओंमें उतार लीं। रामायण और महाभारतके लम्बे कथानक चित्रावलियोंके रूपमें हो गए, जिन्हें देखकर अरसिक भी आनन्दसे विह्वल हो गए। उनके चित्रोंकी संख्या एक या दो नहीं थी, आनन्दके आवेशमें उन्होंने क्या-क्या रच डाला, इनकी संख्या नहीं थी। ऐसे-ऐसे विचित्र दृश्योंकी मालाएँ उन्होंने गूँथ डालीं, जिन्हें देखकर मनुष्य चकित रह गए। चित्रकार निर्विराम चित्र अंकित करते ही गए—काग़ज़ोंपर, पत्थरोंपर, मिट्टीपर, दीवारोंपर, लकड़ीपर, कपड़ेपर, अर्थात् जो साधन मिला, उसीपर अपनी भाव-राशि उँड़ेल दी, रूप बिखेर दिया, रस बहा दिया। ऐसा करनेमें वे कवि-कल्पनाके आगे तक चले गए; कविताके अदृश्य शब्द-चित्रोंमें अपने हृदयकी भावनाओं का पुट देकर स्वर्गीय कल्पनाओंको पृथ्वीपर उतार लाए। देव, बिहारी, मतिराम, केशव आदि सब ही की कविताओंके छन्दोंने मूर्त्त-रूप ले लिया। श्रवण-गोचरसे वह सारा विभूति दृष्टिगोचर हो गई।

चित्रकलाका वह युग कितना महत्त्वपूर्ण और सजीव था, यह चित्रकलाके पारखी ही जान सकते हैं। उन चित्रकारोंने संसारको क्या दिया और कैसा दिया, उनका विषय त्याज्य था या ग्राह्य, यह बुद्धि या तर्कका विषय है। कलाका जन्म वस्तुतः किसी प्रयोजनको लेकर नहीं होता। उसके धरातलपर सद् और असद्का विवेचन नहीं है। वह तो आनन्द-सिन्धुकी एक लहर है, जिसका कोई उद्देश्य नहीं, कोई लक्ष्य नहीं। जिस भावके चित्रणमें कलाकारको आनन्दकी उपलब्धि होती है, जो भाव प्रकट होनेके लिए उसके हृदयको विकल बना देता है, जो भाव फूट पड़नेके लिए विवश कर देता है और प्रकट होकर संसारके सम्मुख जो-कुछ उपस्थित करता है, वही कलाकारके अन्तरसे निकली हुई रसधारा 'कला' है। यह किसीको रिझानेके लिए नहीं, अर्थ लगानेके लिए नहीं, नीति ढूँढ़नेके लिए नहीं; वरन स्वान्तः सुखाय रचना है। संसार जो भी समझे, समझ ले। भक्ति-कालके चित्रकारोंने कवियोंके स्वरमें स्वर मिलाकर कलाकी उपासना की है। उन्होंने सर्वत्र राम-रूप और कृष्ण-रूप देखा है और अपनी सुख-दुखकी भावनाओंको उन्हींके कथामृतोंमें डुबो दिया है। दीनताका चित्रण सुदामा ही के चरित्रमें है। नारी-सौन्दर्य व्रजवनिताओंके रूपमें ही है। पशुओंका चित्रण गायों तथा व्रजकुञ्जोंमें रहनेवाले शुक-पिकोंके ही रूपमें है। तरु-लताएँ, पथ-पाषाण, पर्वत-गिरि-गुहा सब व्रजभूमिके ही जैसे उल्लेख्य हैं। जिस भावकी ओर दृष्टि जाती है, वह भगवान ही के पदारविन्दोंकी ओर दौड़ा चला जा रहा है, जैसे उन्हींमें लीन हो जाना उसकी सार्थकता है। नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन आदिकी अश्लील कही जानेवाली भावनाएँ उसी आनन्द-सिन्धुमें निमग्न होनेके लिए चली जा रही हैं, सबकी मानो वही एक गति है।

इन चित्रकारोंने अपने परिश्रमका कोई मूल्य जनतासे नहीं माँगा, किसीसे कभी कोई पुरस्कार नहीं चाहा, किसी सम्मान या पद-विशेषके लिए कभी प्रार्थी नहीं हुए। वे तो आनन्दकन्दके विविध स्वरूपोंमें ही अपना कल्याण देख रहे थे। वे अपने कल्पना-जगत्के नायकके साथ ही हँसते थे, रोते थे, रूठते थे, सोते थे, जागते थे, प्रेम करते थे और उन्हींके आनन्द-सिन्धुमें डूबे रहते थे। किसी कीर्त्तिके लोभ या व्यवसायकी दृष्टिसे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उन्होंने भक्ति-भावनाके इन चित्रोंको अंकित नहीं किया और न यह समझकर ही कि भविष्य इनको किस दृष्टिसे देखेगा। किसीके अर्थ लगानेके लिए कलाकार कलाकी सृष्टि न तब करता था, न आज ही करता है। कतिपय आधुनिक विद्वानोंका यह मत कि उन चित्रकारोंने कामुकताका प्रचार किया और राजा-महाराजाओं तथा धनी-सम्प्रदायने उन्हें आश्रय दिया, भ्रम और कृतघ्नता ही हैं। इन चित्रोंमें कामोत्तेजक सौन्दर्य देखनेवाले या तो इस विषय का ज्ञान नहीं रखते या उनके मस्तिष्कमें ही काम-विकार है। उन्होंने तो उस सौन्दर्यको स्थान ही नहीं दिया, जो लौकिक है; जो तद्वत् है। उनके चित्रोंमें सौन्दर्यका वह संकेत है, जो आदर्श है, काल्पनिक है। उन्होंने किसीको रिझानेके लिए चित्रोंको सुन्दर ही कहाँ बनाया है, जो कोई उनपर मोहित हो। वे तो उनके अन्तर्भावोंकी वेग-सहित घूमनेवाली मालाओंके दाने हैं, जिनमें संख्या-ही-संख्या है। उन संख्याओंको गिननेका चित्रकारके पास समय ही कहाँ? चित्र सुन्दर है या असुन्दर, इस भावनाके निकट ही वे नहीं पहुँचे। उनके भावोंने जो संस्कार कर दिया, उनका अभ्यास जिधर भी वह चले, उन्होंने उसको उसी ओर बहने दिया। उनका केवल एक ही लक्ष्य था—'भावोंके शरणं व्रज।' यदि वे किसीसे पुरस्कार पाते, तो दरिद्र न रहते। भारतके चित्रकार युगोंसे दरिद्र रहे हैं। उनकी साधनासे सरस्वती ही प्रसन्न हुई हैं, लक्ष्मी नहीं। और राजपूतानेके इन भक्तिमार्गी चित्रकारोंने तो अपनी इस कलाकी भूखे रहकर ही उपासना की है। जान पड़ता है कि चित्र बनानेकी पर्याप्त सामग्री भी वे जुटा न पाते होंगे। उन्होंने कलाको कलाके लिए ही जन्म दे और पूजनकर जनता-जनार्दनके सामने रख दिया है। जिसको इच्छा हो, उनके हृदयसे हृदय मिलाकर उस आनन्द-निधिमें अवगाहन करे; जिसकी इच्छा हो, उनके भक्ति-रसका रसास्वादन करे; और न इच्छा हो, उन्हें दूर फेंक दे।

रानी और मज़दूर

श्री सुमंगलप्रकाश

जीव-विज्ञान-विषयक एक पुस्तक पढ़ रहा था। कीड़े-मकोड़ों के प्रकरण तक आ पहुँचा। लिखा था—"जितने भी क़िस्मके कीड़े-मकोड़े पाए जाते हैं, एक बात उन सबमें समान रूपसे पाई जाती है। वह यह कि हर क़िस्मका कीड़ा जीवन-भर कुछ खास तरहके ही काम करता चला जाता है—बिलकुल मशीनकी तरह। उन कामोंको छोड़ और किसी भी तरहका काम वह नहीं कर सकता।" ये वाक्य ही कुछ देरके लिए मुझे अपनी पुस्तकके अक्षरोंकी दुनियासे बाहर मनुष्योंकी दुनियामें ले गए। कुछ चित्रोंकी धुँधली-सी छाया मेरी आँखोंके आगे घूम गई। पर यह छाया, ये चित्र स्पष्ट तब हुए, जब मैंने फिर पुस्तकमें आँखें गड़ाकर उस वाक्यके बादका यह स्थल पढ़ा—"सामाजिक कीड़े-मकोड़ोंके समाजका केन्द्रबिन्दु है एक रानी, जिसका काम अण्डे-ही-अण्डे देना होता है और कुछ नर, जिनमें से एक उन अण्डोंको अनुप्राणित करता है। इस रानी और उन नरोंके बीच कई कोटिके जीव होते हैं, जो न नर होते हैं न मादा, और जो अपने-अपने विशेष कार्योंकी दक्षता लेकर ही जनमते हैं तथा जीवन-भर उन्हींको किए जाते हैं। ये काम अपने विशिष्ट रूपमें भले ही मानव-सदृश दिखाई दें और उनके पीछे अद्भुत कौशल तथा एक स्पष्ट ध्येय मालूम हो; पर वस्तुतः उन सब-के-सब विशिष्ट कार्योंका केवल एक ही उद्देश्य होता है—अण्डे देनेवाले उस सजीव कारखाने—अर्थात् रानी—की सेवा और रक्षा।"

किताब मेरे हाथमें आप-ही-आप बन्द हो गई और मैं अपनी स्मृतिकी दुनियामें रमने लगा। एकके बाद एक, कई सजीव चित्र आँखोंके आगे नाच उठे। सुदर्शनजी (नाम बदल दिया है, नहीं तो बड़ी फ़जीहत होगी) का चेहरा हम हमेशा ही हँसता देखते थे या मुस्कराता—हर वक्त खुश, दूसरोंका जी बहलानेको तैयार, सबकी सेवाके लिए तत्पर। किसीको कोई भी काम हो, सुदर्शनजीके दिखाई देते ही उसकी बला टल जाती थी। और सुदर्शनजीका चेहरा और भी खिल उठता था, मानो काम क्या मिला, मेवा मिला। और अपनी बाइसिकिलपर सवार होकर घण्टी टुनटुनाते हुए सुदर्शनजी वह जा रहे हैं और वह जा रहे हैं दूसरोंकी उन बलाओंको अपनी साइकिलके पहियोंके नीचे लुढ़काते हुए। अब यह बात दूसरी है कि जिनकी बला सुदर्शनजीके सिर उतरी थी, वह सचमुच वहीं रह गई, या फिर जहाँसे चली थी, वहीं लौट आई। कोई यह तो सुदर्शनजीसे आशा करे नहीं कि वे एक ही के गुलाम हो जानेको तैयार हैं। यह तो खुशकिस्मती ही समझिए पहली बलावालेकी कि सुदर्शनजीकी साइकिलके पहिए रास्तेमें किसी दूसरेकी बलाओंको भी बटोरनेके लिए रुक न जायँ। अगर रुक गए, तो अब यह तो नसीब ही उन दोनों बलाओंवालोंका तय करेगा कि किसकी बला सचमुच उतरी, या किसीकी भी नहीं।

पर इसका मतलब यह नहीं कि सुदर्शनजी जान-बूझकर

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

—अणु-बमकी सृष्टि करनेवाले विज्ञानवेत्ता—

प्रो० एनरिको फेर्मि

प्रो० पी० एम० एस० ब्लेकेट

डा० रुडोल्फ़ पियर्ल्स

डा० लाइज मेटनर

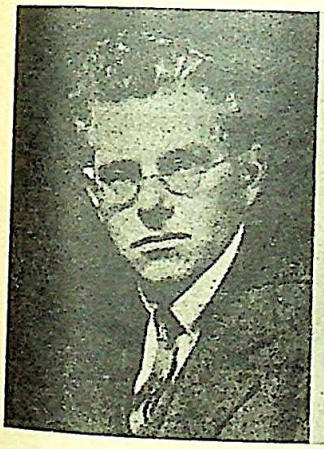

डा० मार्कस ओलीफेंट

डा० ई० ओ० लारेंस

सर एडवर्ड एपलटन

डा० फ्रांज़ यूजेन साइमन

प्रो० जे० डी० क्रुफ़्ट

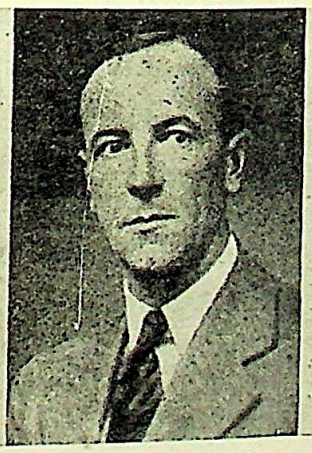

डा० जेम्स चाडवीक

प्रो० नेल्स रोर

सर जार्ज टाम्सन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

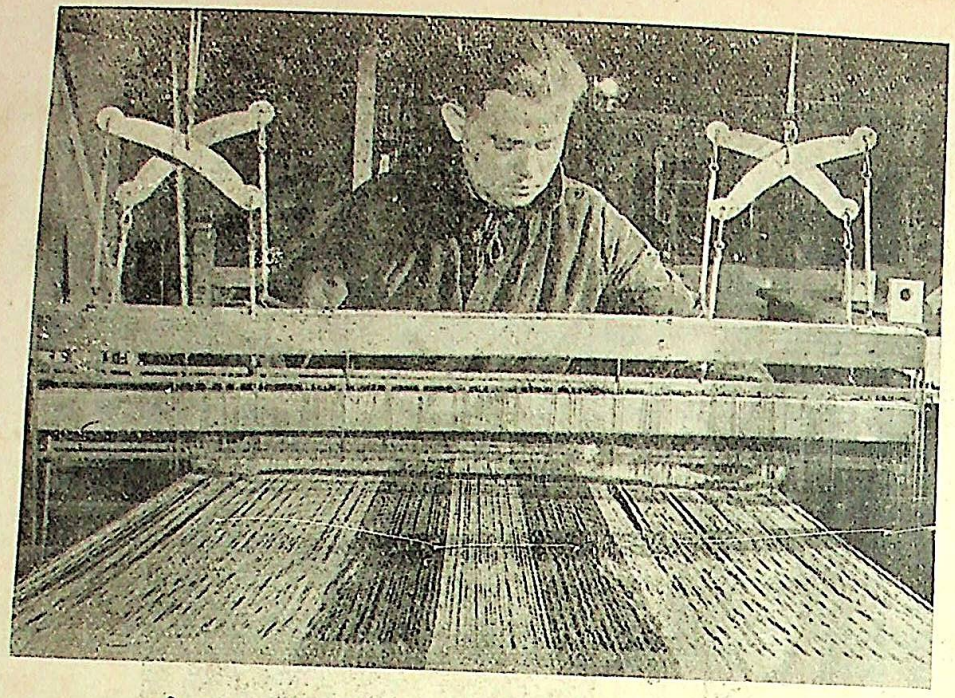

रेडक्रास-अस्पतालमें एक घायल सैनिक बुनना सीख रहा है।

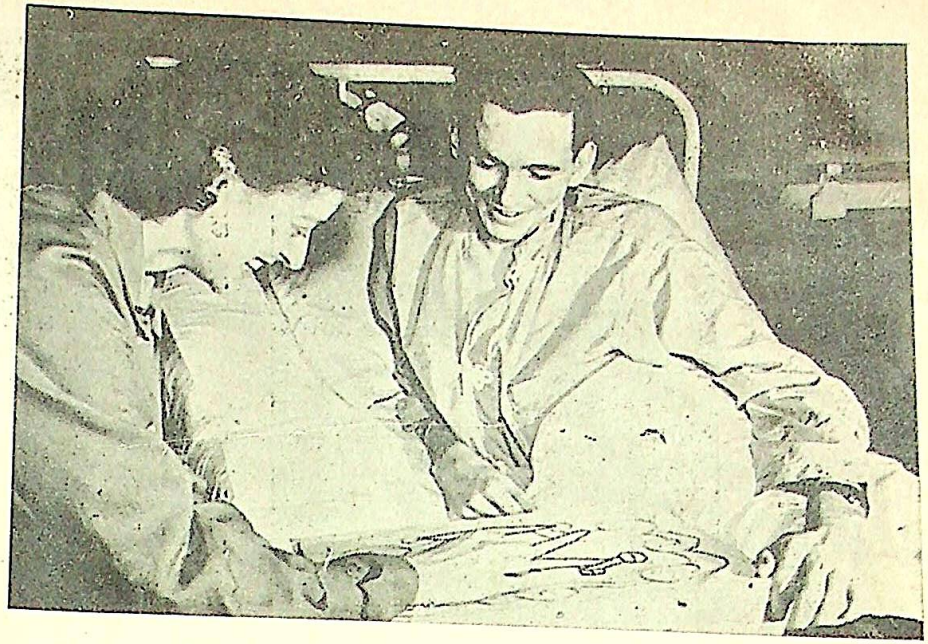

एक घायल सैनिक नर्सकी सहायतासे कपड़ेपर बेल-बूटा काढ़ना सीख रहा है।

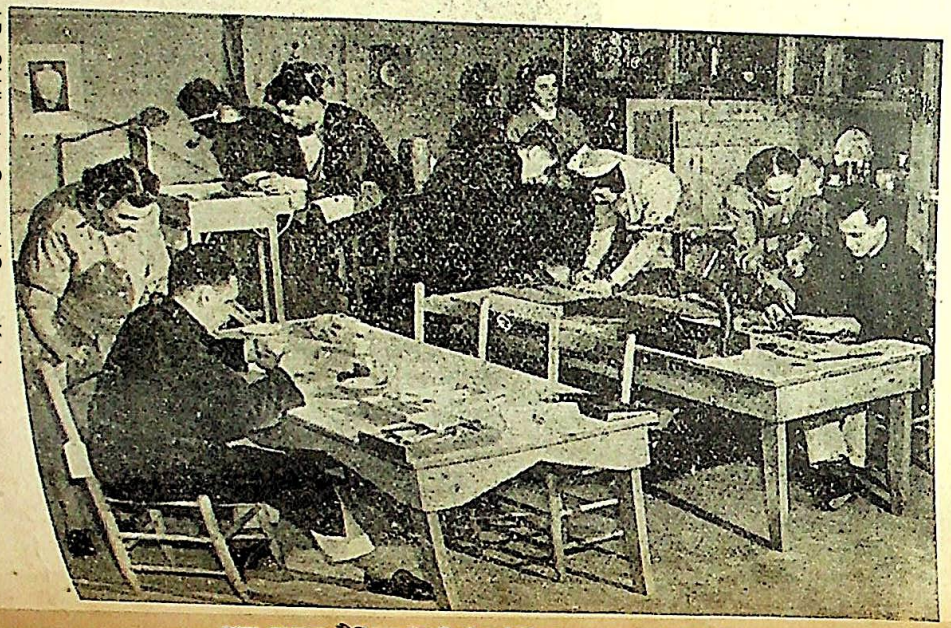

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शारत किया करते थे। किसीका काम अपने सिर लेकर उसे पूरा न कर पानेका जो सदमा उन्हें होता था, वह उनको भला क्या होगा, जिसका काम था। बस, एक ऐसे ही मौक़ेपर सुदर्शनजीका चेहरा बिना हँसी या मुस्कराहटके दिखाई देता था—और विषादकी कालिमासे परिपूर्ण, अत्यन्त करुण और दयनीय, मानो अभी रो पड़ेंगे। सचमुच ही इसके बाद किसीको भी उनसे शिकायतकी कोई वजह नहीं रह जा सकती थी। और यह स्वाभाविक ही था कि जब सुदर्शनजीका सारा वक्त, उनका सारा जीवन औरोंके लिए था, दूसरोंकी बलाओंके लिए, तब उनकी अपनी बलाएँ अपना करम ठोंककर, दीवारसे सिर मारकर चूर-चूर होनेके लिए मजबूर थीं।

एक बार बहुत अरसेपर उनसे मुलाक़ात हुई; पर उनकी साइकिल उनके साथ नहीं थी। वह उनकी जीवनसंगिनी-सी हो चली थी। मैं पूछ बैठा। बोले—'वह अब नहीं है।' पर कोई दर्द नहीं दिखाई दिया उनके इस संक्षिप्त वाक्यमें, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

'तब भी, आखिर हुआ क्या?'

'कुछ नहीं, योंही एक साथी थे जेलमें—यादवजी। वे अब कालेजमें भरती हो गए हैं। उन्हें साइकिलकी ज़रूरत थी, एक दिन उन्होंने माँग ली।'

'फिर? फिर लौटाई नहीं उन्होंने?'—मैंने पूछा।

'अब, मैं कैसे माँगता, सुमंगलजी!'—गिड़गिड़ाते हुए, झेंपते हुए, लज्जाका मनों बोझ अपने चेहरेकी रेखाओंपर डालते हुए वे बोले—'और फिर उन्होंने वह बेच भी दी।'

'बेच भी दी? माने?'—मैं एकदम सन्नाटेमें आ गया।

'कालेजकी फ़ीस देनी थी उन्हें, घरसे मनीआर्डर आनेमें देर थी, इसलिए बेच देनी पड़ी।'—बहुत ही संकुचित, लज्जित स्वरमें सुदर्शनजीने सफ़ाई दी।

'और वह रुपए भी आपको नहीं मिले, क्यों?' मुझे कुछ ऐसा क्रोध-सा हो आया सुदर्शनजीपर, मानो मेरी साइकिल उन्होंने बेच दी हो। बेचारे सुदर्शनजी मेरी आँखोंका सामना नहीं कर सके, नीचे तक सिर झुकाए खड़े रह गए।

और भी कितने ही क़िस्से हैं सुदर्शनजीके। एक बार वे इसलिए जेलखानेकी हवा खा आए थे कि दो क्रान्तिकारियोंके बीच गुप्त पत्र-व्यवहारके वे माध्यम बन गए थे। पत्रोंमें क्या लिखा है, यह उन्होंने कभी नहीं देखा; पर दोनों छोरोंको जोड़नेवाले धागे वे बने रहे।

यों सुदर्शनजीकी शादी हो चुकी थी; बीवी थी, दो बच्चे भी थे। पर शायद ही यह बात किसीको मालूम हो। शायद ही वे कभी अपने गाँव जाते हों, बीवी-बच्चोंको पास रखनेकी बात तो छोड़ ही दीजिए। पर एक बार एक दूसरेकी बीवीपर इतनी दया आ गई कि उसे बहुत-कुछ दे डाला। यहाँ तक कि बच्चा हो गया, और उस औरतके साथ-साथ सुदर्शनजीको भी समाजमें लांछित होना पड़ा। इस घटनाने उन्हें एकदम जर्जरित कर डाला था। बहुत दुःख, बहुत ही गहरे अनुतापके साथ उन्होंने यह कहानी मुझे सुनाई थी, और उससे बिलकुल स्पष्ट था कि उन्होंने जो-कुछ किया था, किसी अपने आवेशके कारण नहीं। बस, वे 'ना' नहीं कर सके, उसका जी नहीं दुखा सके।

सचमुच यह पहला मौक़ा था कि दूसरोंकी बला अपने सिर लेनेके सिलसिलेमें दूसरोंकी नाराज़गी और इतनी बड़ी बदनामी उनके सिर आई थी। यह सम्भावना उनके मस्तिष्कमें झाँकी तक नहीं थी। वे तो दूसरोंके लिए ही अपना जीवन देते आ रहे थे, यही उनका स्वभाव था। वे कैसे सोचते कि इस प्रसंगमें एकको खुश करनेके सिलसिलेमें वे कईको नाराज़ कर लेंगे।

बुढ़ापेके निकट आ जानेपर भी अभी तक सुदर्शनजीकी उस प्रकृतिमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है। उस भारी आघातके कारण कुछ समयके लिए उनके चेहरेकी हँसी और मुस्कराहट गायब ज़रूर हो गई थी; पर इस तरह रहना उनके लिए असम्भव था। धीरे-धीरे स्थान और परिस्थितियोंमें कुछ परिवर्त्तन करके उन्होंने अपना वह विशिष्ट कार्य फिरसे शुरू कर दिया। फिर उन्होंने हँसते और मुस्कराते हुए दूसरोंकी बला अपने सिर लेना शुरू कर दिया।

और आज भी वे यही किए जा रहे हैं। शक्ति अब उतनी नहीं रही है। इसमें जितना परिश्रम पड़ता है, उसकी क्षति-पूर्त्ति लायक आमदनी भी नहीं हो पाती; पर वे करें तो क्या करें? आज तक वे यह नहीं जान पाए कि जीविकाके लिए कौन-सी लाइन उनके लिए उपयुक्त है, किस दिशामें उनकी अपनी उन्नति है। दुनिया ही उनकी 'रानी' है, और उसकी सेवा तथा रक्षाके लिए ही, उस 'रानी'के लालन-पालनके इस विशिष्ट कार्यमें ही, वे दीक्षित हैं। जीवन-भर वे यही करते आ रहे हैं और अब और किसी लायक नहीं हैं। घरवाले असन्तुष्ट हैं, बीवी-बच्चे बोझ पर बोझ बनते जा रहे हैं; पर इन अपनी बलाओंको वे अपने सिरपर से बार-बार टालते आए हैं, टालते रहते हैं।

ऐसा लगता है, मानो मानव-समाजमें भी कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो स्वभावतः न नर होते हैं, न मादा। उनका अपना कुछ भी नहीं होता। बस, अपनी 'रानी'—दुनिया—को खुश करनेकी कोशिशमें प्रकृतिवश एक यन्त्रकी तरह वे लगे रहते हैं। अगर उनका मानव-वैशिष्ट्य कभी अन्दरसे ज़ोर मारता है, विद्रोहकी चिनगारी छोड़ता है, तो वे एकदम असहाय हो उठते हैं, उसका सामना करनेमें एकदम असमर्थ हो जाते हैं। उस अवस्थामें या तो वे अपनी उस मानव-प्रकृति, अपने उस मानव-वैशिष्ट्यको कुचल-कुचलाकर उन मज़दूर, नर-न-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मादा कीड़ोंकी प्रकृतिपर फिर वापस आ जाते हैं, या उनके जीवनका रस एकदम नष्ट हो जाता है। मानव-समाजमें वे अपना स्थान खोजकर भी कहीं नहीं देख पाते।

मगर नहीं, सुदर्शनजी-जैसे व्यक्तियोंकी भी प्रकृति कभी-कभी बदलती दिखाई देती है, उनके भी स्वभावमें परिवर्त्तन होता देखा जाता है। और अचानक मेरी आँखोंके सामने एक और चित्र आ खड़ा होता है—अपने एक घनिष्ट मित्र शान्ति-स्वरूपका (नाम इस बार भी बदल रहा हूँ)। शान्तिस्वरूपसे जब मेरा प्रथम परिचय हुआ था, तब उनमें और सुदर्शनजीमें शायद ही मुझे कोई फ़र्क दिखाई दिया हो—दोनोंकी प्रकृतिमें बड़ा भारी साम्य था। नम्रताकी मूर्त्ति थे वे भी, शील-सौजन्यके अवतार, दूसरोंको खुश करनेके लिए हर वक्त मानो हाथ बाँधे खड़े रहते थे। ओठोंपर सदाबहार मुस्कराहट, बातोंमें मिसरी, हाथ और पाँव सेवाके लिए आगे बढ़ने और दौड़ पड़नेको सर्वदा तत्पर।

इनके भी बीवी-बच्चे थे, और स्वयं उन्हींकी तरह दूसरोंके हमेशा मोहताज रहनेके लिए मजबूर थे। जब जिन्हें अपनी 'रानी'के आसनपर बिठा देते थे, तब अपना सर्वस्व उनपर निछावर करके शान्तिस्वरूप अपने बीवी-बच्चों-समेत उन्हींकी दरबानीमें दिन-महीने-साल गुज़ारते चले जाते थे। खुद उनके खानसामेसे लेकर चपरासी तक बन जाते थे और उनकी बीवी बाबर्ची। और जब-जब अपनी 'रानी'से अलग होकर अपना निजका घर बसानेका सवाल उनके सामने आता, जब-जब खुद कमा-धमाकर दुनियामें मनुष्यताका अपना दावा सिद्ध करनेकी दिलमें एक तड़प उठती, तब-तब 'रानी'का खयाल उन्हें बेचैन कर देता—क्या होगा उस बेचारेका, जो उन्हींके आसरे अपना रानीत्व निभा पा रहा था!

पर धीरे-धीरे सब-कुछ ही तो हुआ। कीड़े-मकोड़ोंकी दुनियासे जो प्रकृति विपरीत परिस्थितियोंके कारण उन्होंने अपना ली थी, उसपर बार-बार चोटें पड़ीं और उनकी भी अन्तर्निक्षित मानव-प्रकृतिने ज़ोर मारा। और आजका दिन है कि शान्तिस्वरूप उन तेजस्वी मनुष्योंमें गणनीय हैं, जिनके पीछे-पीछे चलनेमें कितने ही अपना गौरव समझेंगे। अपनी उस व्यक्तिगत प्रकृति को इन्होंने इस तरह झाड़-झूड़कर उतार फेंका है कि उसका रंचमात्र चिह्न उनके आजके व्यक्तित्वमें कहीं चिपका नहीं रह गया दिखाई देता। धीरे-धीरे हर 'रानी'का बोझा उन्होंने अपनी पीठपर से उतार फेंका है। अपने नए सबल व्यक्तित्वके आधारपर अपना नया संसार गढ़नेमें वे पूरी तरहसे समर्थ हुए हैं। उनके बीवी-बच्चे, जो उनके पुरातन नर-न-मादा व्यक्तित्वको दिलसे घृणा करते हुए भी संस्कारवश वैसा करनेमें असमर्थ थे, आज हृदयसे उनकी पूजा करते हैं, उनकी छत्रछायामें पनपकर स्वयं भी मनुष्य बन रहे हैं और अपने भाग्यको सराह रहे हैं कि उन्होंने ऐसा पति अथवा पिता पाया, जिसे वे प्यारके साथ-साथ श्रद्धा भी कर सकते हैं।

और शान्तिस्वरूप ही क्यों, बेचारे विश्वम्भरजीका परिवर्त्तन क्या कुछ कम आश्चर्यजनक है! सचमुच 'बेचारे' ही एक विशेषण है, जो कभी उनको पूरी तरहसे सोहता था। किसीकी इच्छाका विरोध करना, किसीके आदेशका उल्लंघन करना उनके लिए कल्पनातीत था। और आज? अभी उसी दिनकी तो बात है। वे कलकत्तेसे अपनी छुट्टियाँ बिताने यहीं मेरे पास आ रहे थे। कलकत्तेसे यहाँ आते वक्त मैं अपना अधिकांश सामान वहीं छोड़ आया था। उस बोझको सानन्द ढोनेके लिए विश्वम्भरजीसे ज़्यादा और कौन उपयुक्त हो सकता था। पर मुझे भारी आश्चर्य हुआ, जब विश्वम्भरजी आए और मेरा सामान नहीं आया! उनके आनेके एक दिन पहले मेरी पत्नी तकने, जो उनके स्वभावसे बखूबी परिचित थी, एक प्रसंगमें पूरे विश्वासके साथ यहाँ तक कह डाला था कि विश्वम्भरजी खुद ही न आ पाएँ, तो बात दूसरी है; पर अगर वे आए, तो हमारा सामान भी ज़रूर आयगा। सबसे पहला प्रश्न मेरी पत्नीका उनसे यही था—'क्या कलकत्तेसे होकर नहीं आए आप?'

'कलकत्ते ही होकर तो आ रहा हूँ। चार-पाँच दिन रहा वहाँ।' विश्वम्भरजीने जवाब दिया और बिना ज़रा भी झेंपे अत्यन्त निःसंकोच होकर सफ़ाई दी—'बड़ी झंझटोंमें पड़ा रहा इस बार कलकत्ते पहुँचकर। इसीलिए आपका सामान लाना तो दूर, अपने दोस्तों तकसे मिलने बालीगंज नहीं जा सका।'

मेरी पत्नीको इस जवाबसे पूरा सन्तोष हुआ या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; पर मेरा आश्चर्य फिर भी कम नहीं हुआ। विश्वम्भरजीका सारा तौर-तरीक़ा, बातचीत करनेका सारा ढंग अजीब तरहसे बदला हुआ-सा नज़र आया। जब कमरेमें सिर्फ़ हमीं दोनों रह गए, तब एक अजीब लहज़ेमें, मानो उन्हींको मुझसे शिकायत हो, बोले—'वाह साहब, आप भी अच्छे आदमी हैं! क्या मैं ही रह गया था आपका असबाब ढोकर लानेके लिए? माल गाड़ीसे, पार्सलसे नहीं आ सकता था?'

मैं फिर भी अच्छी तरह समझ नहीं पाया कि बात क्या है? इस बीच विश्वम्भरजीको यह हो क्या गया है? फिर एक दीर्घ अट्टहासके साथ विश्वम्भरजीने जो अपनी इस बीचकी कहानी सुनानी शुरू की, तो मानो मेरे सामने एक नए ही विश्वम्भरजी धीरे-धीरे आविर्भूत हो चले, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था, जो आज एकदम नए थे। मेरी पीठपर एक घूँसा मारकर उन्होंने कहना जारी रखा—'अब वे दिन लद चुके, जब हम अपनेसे भागे-भागे फिरते थे और दूसरोंका माल ढोया करते थे। देखिए न, अब हम अपना माल ढोते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

!' और हाथ उठाकर अँगुलीसे उन्होंने बारामदेमें छिटके पड़े अपने असबाबकी ओर इशारा किया। सचमुच इस परिवर्त्तनपर तो मेरा ध्यान अभी तक गया ही नहीं था! पहले कभी विश्वम्भरजीको इतना सामान लेकर यात्रा करते नहीं देखा था—कम्बलमें लिपटा हुआ एक संक्षिप्त-सा बिस्तरा, एक छोटा-सा ट्रंक और एकाध झोला। बस, इससे ज़्यादा सामान उनके साथ कभी नहीं होता था, पर आज? एक बहुत बड़ा नया-सा होल्डाल, एक चमड़ेका तगड़ा-सा सूटकेस, एक स्टीलका काला भारी ट्रंक, एक चमड़ेका बैग, एक थर्मोफ़्लास्क, एक बरसाती, सुराही और फलों एवं मिठाइयोंकी दो बड़ी-छोटी टोकरियाँ!

'अब हम अपना शौक पूरा कर रहे हैं, बदला ले रहे हैं अपनेसे।' वे कहते ही चले जा रहे थे और बीच-बीचमें अट्टहास करते चले जा रहे थे—'अब हम अपनेको ढो रहे हैं, दूसरोंको नहीं। पहले अपनेसे छुट्टी पा लें, तब दूसरोंकी फ़िक्र करेंगे।' और विश्वम्भरजीके इस प्रकृति-परिवर्त्तन, उनके इस नवीन मनुष्यत्व-लाभके इस उत्सवमें मैं बिलकुल ही भूल गया कि जाड़ा आ गया है और कलकत्तेसे अपना सामान मँगानेकी चिन्ता मुझे अब नए सिरेसे करनी पड़ेगी।

मनुष्य मनुष्य है, कीड़ा-मकोड़ा नहीं; और न वह यन्त्र ही है। विपरीत परिस्थितियोंमें भले ही व्यक्ति-विशेष अपनी मानव-प्रकृतिको विकसित करनेमें समर्थ न हो पाय; पर इसके आधारपर मानव-समाजका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता—'रानी' और 'मज़दूर'के रूपमें उसके दो विभाग नहीं किए जा सकते। विभिन्न परिस्थितियोंमें विभिन्न मनुष्य 'रानी' अथवा 'मज़दूर'की प्रकृतिमें बँधे दिखाई ज़रूर देते हैं, और 'रानी'के आसनपर बैठनेका अवसर पानेवाले बहुधा यही मान भी बैठते हैं कि यन्त्रवत् वे इसी तरह सदा 'रानी' ही बने रहेंगे और अण्डे देना छोड़ उन्हें जीवनमें कभी कुछ नहीं करना होगा। पर जहाँ कीड़े-मकोड़ोंकी 'रानी' मज़दूरोंके विद्रोहका शिकार नहीं बनती, वहाँ मानव-'रानी'को पग-पगपर इस खतरेका सामना करना पड़ता है। मानव-मज़दूर सदा ही मज़दूर नहीं बना रह सकता। उसका अज्ञान जब टूटता है, तब वह या तो 'रानी'को नष्ट कर डालता है, अथवा उसे ही मज़दूर बना देता है।

जिस तरह यह बात व्यक्तिके सम्बन्धमें लागू है, उसी प्रकार समाजके सम्बन्धमें भी। हमारे समाजका 'रानी'-वर्ग यही सोचता है कि वह हमेशा अपने आसनपर जमा रहकर मज़दूर-वर्गको चूसता चला जायगा। पर जितनी बड़ी भूल वह करता है, उतनी ही बड़ी भूल मज़दूर-वर्गके भी पिछड़े हुए लोग करते हैं, जब वे यह सोचते हैं कि उनके भाग्यमें सदा मज़दूर होना ही बदा है। मानव-समाजके इन दोनों ही कृत्रिम वर्गोंकी यह धारणा कितनी भ्रान्त है, यह सिद्ध करनेके लिए आज प्रमाणकी कोई कमी नहीं है। मानव-प्रकृति उत्तरोत्तर अग्रगामी, प्रगतिशील है। न उसे बाबा आदमके ज़मानेकी लीकमें बाँधा जा सकता है और न कीड़ों-मकोड़ोंकी यान्त्रिक प्रकृतिके अन्धकारपूर्ण आवेष्टनमें ही।

यह ठीक है कि जिस तरह व्यक्ति-जगत्में हमें सुदर्शनजी-जैसे लोग भी मिलते हैं, जिनमें न नर और न मादा कीट-प्रकृति अपरिवर्त्तित-अविकसित रूपमें जीवनव्यापी-सी बनी दिखाई देती है; उसी तरह मानव-समाजमें भी शोषक और शोषितके रूपमें दो स्पष्ट वर्ग दिखाई देते हैं। पर इसका दायित्व कुछ ऐसी परिस्थितियोंपर है, जिनके कारण आदि-मानवकी अपेक्षाकृत जड़-प्रकृतिसे मानव-समाज अभी तक सम्पूर्ण रूपसे छुटकारा नहीं पा सका है। जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ रहा है, सचमुच मानव-प्रकृतिको अपनाता जा रहा है, सच्चे अर्थमें 'सभ्य' बनता जा रहा है, वैसे-वैसे वह बन्धन-मुक्त, स्वाधीन होता जा रहा है। दूसरोंका बोझा ढोना मनुष्यका नहीं, पशुका धर्म है। मनुष्य अपनी प्रकृतिकी उपलब्धिमें ही सर्वोच्च आनन्द पाता है, और जब तक उस आनन्दसे वह वंचित रहता है, तब तक दूसरोंकी सेवा, दूसरोंके लिए कुछ करना उसके लिए बोझ ही बनता है, सहज-स्वाभाविक धर्म नहीं। सुदर्शनजी-जैसे व्यक्ति इस धोखेमें ज़रूर रहते हैं कि दूसरोंकी बेगार अपने सिर लेकर वे सुखी हैं, सेवा-धर्मका पालन कर रहे हैं, अथवा वे अपनेपनकी निकृष्ट भावना, तुच्छ स्वार्थान्धतासे ऊपर उठे जा रहे हैं; पर वस्तुतः वे अपनेको पीस-पीसकर, अपनी मनुष्यताको कुचल-कुचलकर जिस जीवनकी उपलब्धि करते हैं, वह कीट-जगत्के आनन्द-हीन यान्त्रिक अस्तित्वसे कुछ अधिक भिन्न नहीं है।

रक्त-दीप

श्री ब्रजकिशोर 'नारायण'

भरो हे रक्त-दीप! आलोक, राष्ट्रमें जीवनका आलोक;
तिमिरमय भयसे दूर-सुदूर, बज उठी हैं हथकड़ियाँ क्रूर!
शहीदोंकी टोली झुक-झूम गा रही बलिवेदीको चूम;
और तुम देते चले प्रकाश—रगोंमें विद्युत्पूर्ण प्रकाश!
आज है यौवनकी पहचान और कल जीवनका अवसान;
भभककर जलो, जलो हे दीप, सँजोए हैं हमने अभिमान!
मत सहो हरगिज़ यह अपमान ज्योतिका, जाग्रतिका अपमान;
जलो तुम, जले जगतका पाप; बुझो तुम, बुझे मनुजका ताप।

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैनेन्द्रके उपन्यासोंकी भाषा

प्रो० देवराज उपाध्याय

भाषाको लेकर संस्कृतके वैयाकरणोंने स्फोट और प्रणव इत्यादि सिद्धान्तोंकी जो विवेचना की है, उसका विस्तृत वर्णन करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। हम इतना ही जानें कि भाषा और भावमें बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। भावमें परिवर्त्तनके साथ भाषामें परिवर्त्तन भी एक तरहसे लाज़िमी हो जाता है। हमें भाषामें परिवर्त्तन बुद्धिपूर्वक लानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, वह स्वयमेव परिवर्त्तित हो जाती है। उसमें भावोंकी ऊँचाई या गहराई तक पहुँच जानेकी अपूर्व शक्ति होती है। कारण, भाषाको भावसे पृथक् नहीं किया जा सकता, भाषा भाव ही है। अंगरेज़ी-साहित्यके इतिहाससे बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिनसे स्पष्ट प्रमाणित होगा कि देशकी प्रचलित धाराके, जिसका प्रतिबिम्ब साहित्यमें पड़ता है, परिवर्त्तनके साथ साहित्य की भाषामें परिवर्त्तन हो गया है। पोपकी वही भाषा नहीं, जो वर्ड्सवर्थकी या कालरिजकी है। कारण, दोनोंके विचारों और भावोंमें बहुत अन्तर था।

जैनेन्द्रजीकी भाषाको देखनेसे पता चलता है कि उनके उपन्यासोंकी कथाकी तरह उनकी भाषा भी भिन्न तरहकी है। और ऐसा होना पूर्णरूपेण स्वाभाविक है। यदि भाषा या भाव प्रकाशनके ढंगमें परिवर्त्तन नहीं होता, तभी हमारे लिए आश्चर्यकी बात होती। इस परिवर्त्तनपर हमें कोई आश्चर्य नहीं। हम यहाँ एक बात और भी स्पष्ट कर दें। भाषाको हम स्कूलके अध्यापकोंकी दृष्टिसे देखना नहीं चाहते, जो एक-एक वाक्य और शब्द लेकर यह कहते हैं कि यहाँपर व्याकरणकी अमुक भूल है, यहाँपर विवरण ठीक नहीं इत्यादि। यहाँपर एक व्यक्तिगत उदाहरणके लिए पाठक क्षमा करें। हमारे एक माननीय मित्रने, जिनकी विद्वत्ताकी हमारे हृदयमें बड़ी प्रतिष्ठा है, हमसे पूछा कि क्या आप 'दुकेला' शब्दको ठीक समझते हैं? हमने कहा कि ठीक हो या न हो, यह हम नहीं जानते। हो तो वह ग़लत भी सकता है। पर शब्द तो विचारका प्रतीक-मात्र है। जो बात किसी शब्दके द्वारा कही जानेवाली है, यदि वह कह दी जाती है, उस बातको सुननेवालेके हृदय तक पहुँचा दी जाती है, तब वह ठीक है, अन्यथा ग़लत। पर जो दुकेला शब्द है, वह इस कसौटीपर ठीक उतरता है। बस, और चाहिए ही क्या? उसी तरह जैनेन्द्रजीकी व्याकरण-सम्बन्धी भूलों और विवरणके दोषोंको कला-गृहके लिए छोड़ उसके अभिव्यंजात्मक स्वरूपको देखना ही समीचीन होगा।

स्वर्गीय प्रेमचन्दकी भाषाको देखिए। उसमें गजेन्द्रकी मस्ती है, पर मृग-शिशुकी लुभानेवाली चौकड़ी नहीं है। हृदयके सन्तोषको आप भले ही पावें, पर आत्माकी बेचैनी नहीं। उसमें समाजके पहलू हैं, पर जिन्दगीकी आरज़ू नहीं। उसमें समाजकी हलचल और प्रतिबिम्ब हैं, पर मानवात्माकी गहरी पुकार और उसकी माँग नहीं। प्रेमचन्दकी भाषा किसी चीज़के वर्णन करनेमें लामिसाल है। उसे कठिन-से-कठिन विषयके वर्णनका भार सौंपिए, वह कैंचीकी तरह मार करती हुई साफ़ निकल जायगी और विषयको आईनेकी तरह झलका देगी। उनकी पुस्तकोंमें कहीं-कहीं बड़ी मनोहर सूक्तियाँ मिल जाती हैं, जिन्हें पढ़कर हमारे हृदयमें अपार सन्तोष होता है।

पर जैनेन्द्रकी भाषामें ये विशेषताएँ नहीं मिलतीं। और ये मिल भी कैसे सकती थीं? कारण, हृदयकी वह तह, जहाँ रचनाका उद्गम होता है, इन दोनों औपन्यासिकोंमें भिन्न-भिन्न तलपर है। भाषा और भाव, अभिव्यक्ति और अभिव्यक्त होनेवाले भावोंको अलग-अलग करके भाषाको उसकी परिपार्श्विक परिस्थितियोंसे तोड़कर देखनेकी प्रवृत्ति भ्रामक है। भाषामें भावोंके अनुरूप, उन्हें अभिव्यक्त करनेकी ऊँचाई तक उठ खड़ी होनेकी ग़ज़बकी शक्ति है, उसके लिए प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। सांख्य-दर्शनके अनुसार जिस प्रकार पुरुषके सम्पर्कमें आते ही प्रकृतिमें गति आ जाती है और सृष्टिकी रचना प्रारम्भ हो जाती है, उसी प्रकार भावोंके स्पर्श पाते ही भाषा अपना रूप स्वयं प्रकट करने लगती है। कहनेका अर्थ यह है कि जैनेन्द्रकी भाषामें भी, उनके उपन्यासोंकी तरह ही, स्वाभाविकता और सहजता पाई जाती है। उनकी भाषामें भावोंकी ऊँचाई तक उठकर उन्हें अभिव्यक्त करनेकी ग़ज़बकी शक्ति है। उनके वाक्य प्रायः छोटे, चलते, पर साथ-ही-साथ मानो फूल बिखेरते हुए-से चलते हैं। वे पारेकी तरह ढुलमुल-से करते रहते हैं, मानो हमारे हाथोंकी अँगुलियोंका स्पर्श हुआ नहीं कि वह हिल पड़ा, छितरा उठा। पर उससे ज़रा सहृदयतासे हौले-हौले पेश आइए, आपको अपार सौन्दर्यका दर्शन होगा। जैनेन्द्रकी पुस्तकोंके वाक्य बहुत ही छोटे हैं, भाषा भी बड़ी चलती-सी है; पर उनके पढ़नेसे ऐसा मालूम होता है कि वे जितने छोटे दीखनेमें मालूम पड़ते हैं, उतने ही नहीं उससे 'कुछ' बड़े हैं। और यही 'कुछ' तो साहित्यकी जान है--चाहे उसे लाक्षणिकता कहें या व्यंजनात्मकता या ध्वनि। उनके वाक्य जितने कहते नहीं, उससे कहीं अधिक ध्वनि करते हैं, इंगित करते हैं और अपने अभ्यन्तरमें पैठकर देखनेकी प्रेरणा करते हैं। सचमुच भाषा हो, तो ऐसी हो कि जिस बातका वर्णन हो, उसकी तस्वीर पाठकके हृदय-पटलपर उतर आए। इसके विपरीत सब तरहसे अनिन्द्य होनेपर भी यदि इतनी-सी पात्रता नहीं, वह त्याज्य तो कैसे कहें; पर असफल अवश्य है। यहाँ एक उदाहरण द्वारा यह बात स्पष्ट कर दें। अभी-अभी हमने जैनेन्द्रकी कहानी 'जाह्नवी' पढ़ी है। वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Varanasi Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे सामने है। यों यह जैनेन्द्र कहानियोंमें कोई विशेष महत्व की कहानी है, यह भी नहीं कहा जा सकता है; पर चूँकि यही कहानी अभी हमारे मनमें ताज़ी है, अतएव उसीकी चर्चा यहाँ करें। एक सज्जनकी अपनी पूर्व-परिचिता जाह्नवी नामक महिला कहीं कौओंको दाना चुगाती हुई चुभ जाती है। उन्होंने उसे बहुत दिनोंसे देखा नहीं है। उसकी स्मृति बड़ी धुँधली-सी है। उसे पहचानने और न पहचाननेके बीचकी अवस्थासे वे गुज़र रहे हैं। यही बात लेखकके शब्दोंमें सुनिए—"अब खिड़कीके पार इतवारको, सोमवारको, मंगलवारको और आज बुधवारको सबेरे ही सबेरे छतपर नित रोटीके मिस कौओंको पुकार-पुकारकर खिलानेवाली जो लड़की देख रहा हूँ, सो क्या जाह्नवी है? जाह्नवीको मैंने एक बार ही देखा है, इसलिए, मनको कुछ निश्चय नहीं होता है। क़द भी इतना ही था; लावण्य शायद उस जाह्नवीमें अधिक था। पर यह वह नहीं है,—जाह्नवी नहीं है, ऐसा दिलासा मैं मनको तनिक भी नहीं दे पाता हूँ। सबेरे ही सबेरे इतने कौए बुला लेती है कि खुद दीखती ही नहीं, काले-काले वे ही दीखते हैं…।" और जो-कुछ हो, ये वाक्य मानसपर विस्मृतिके आवरणको भेदकर प्रातःकालीन सूर्यकी नन्हीं किरणोंकी तरह अन्धकारको दूर करते-से दिखाई पड़ते हैं।

जैनेन्द्रकी भाषाकी चर्चा चल रही है। जनेन्द्रकी चर्चा करते हुए इस बातपर कई बार ज़ोर देनेका अवसर मिला है कि रचनात्मक साहित्यमें यदि कोई सबसे महत्वकी चीज़ है, तो वह हार्दिकता है। उसीके अभावमें सारी विडम्बना उत्पन्न होती है, उसीके नहीं रहनेसे बखेड़े उठ खड़े होते हैं। यदि रचनामें हृदयका सहयोग है, तो सारे दोषोंके बावजूद भी वह महत्त्वपूर्ण है; बल्कि मैं तो एक पग आगे और बढ़कर कहने का साहस करूँगा कि रचना उन्हीं तथाकथित दोषोंके कारण अच्छी है। उसे अधिक सुन्दर बनानेमें उनका, जिन्हें हम दोष, त्रुटि, कमी और न-जाने क्या-क्या कहते हैं, बहुत बड़ा हाथ है। अपने दोष दूसरोंके उधार लिए हुए गुणोंसे कहीं अच्छे हैं। आखिर कौआ मोरकी पाँखके बलपर कितने दिन चल सकता है? लड़के तो अपने प्रोफ़ेसरोंकी आलोचना करते ही रहते हैं। एक बार एक लड़केने एक प्रोफ़ेसरके व्याख्यान देनेके ढंगपर टीका-टिप्पणी करते हुए कहा—'डा०…जब किसी विषयपर व्याख्यान देने लगते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो बातचीत कर रहे हों; पर वह इतना सुन्दर और प्रभावशाली होता है कि बस मत पूछो।' उसी तरह हमसे पूछा जाय, तो हम कहेंगे कि जैनेन्द्रकी रचनामें सर्वत्र यही चर्चात्मक शैली और भाषा पाई जाती है। उनकी पुस्तकोंको पढ़ते समय मालूम होता है, मानो लेखक आपसे बातचीत कर रहा हो। उस बातचीतमें कहीं कुछ गर्मी भी आ जाती हो; पर ठीक उसी सहज और स्वाभाविक ढंगसे, जैसे हम और आप कभी-कभी बातचीत करते गर्म हो उठते हैं।

पर हम आपसे पूछते हैं कि क्या आप उस लेखकसे अधिक प्रभावित नहीं होते, जो आपके समीप बैठकर बिना बने हुए आपसे बातें करता है और प्लेटफार्मके वक्ताओंकी तरह हाथ-पैर पटक, आँखें मटका ज़बरदस्ती आपके गलेके नीचे कोई चीज़ उतरता नहीं दिखलाई पड़ता। वह चुपचाप, स्वाभाविक गतिसे बातें-भर कर रहा है, उसमें कोई आग्रह नहीं है। फिर भी उसकी बातों तथा भाषासे आप प्रभावित नहीं हों, सो बात भी नहीं। आप प्रभावित होते हैं, पर इस तरह कि वह प्रभाव आपके जीवनमें घुल-मिल जाता है, ऐसा नहीं कि वह पिण्डकी तरह अलग अस्तित्व बनाए गलेमें अटका-सा हो। बिना प्रयत्न किए ही हम पुस्तक उठाते हैं 'कल्याणी' और हमारी दृष्टि जाती है उसके प्रथम पैराग्राफपर—"जब कभी उधरसे निकलता हूँ, मन उदास हो आता है। कोशिश तो करता हूँ कि फिर उधर जाऊँ ही क्यों? लेकिन बेकार। सच बात यह है कि अगर मैं इस तरह एक-एक राह मूँदता चलूँ, तो फिर खुली रहनेके लिए दिशा किधर और कौन शेष रह जायगी? यों सब रुक जायगा। पर रुकना नाम ज़िन्दगीका नहीं है। ज़िन्दगी नाम चलनेका है।" सर्वत्र जैनेन्द्रकी यही भाषा और शैली है। उर्दूसे घृणा नहीं, अंगरेज़ी से परहेज नहीं, संस्कृतसे दुराव नहीं। उनके यहाँ भेद-भावकी बू तक नहीं। केवल शर्त है, तो स्वाभाविकताकी, सहजताकी और बोध्यगम्यताकी। ऊपरकी उद्धृत पंक्तियोंके बाद चर्चात्मक शैली क्या है और उसकी क्या खूबियाँ हैं, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। समयके परिवर्त्तनके साथ हमारे आचार-विचार, वेश-भूषा, रहन-सहन और बातचीतमें परिवर्त्तन होता रहता है। राजनीतिके क्षेत्रमें ही देखिए न। एक युग था, जिसमें सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी वाग्मिता, विपिनचन्द्र पालकी आवाज़की बुलन्दी और श्रीमती एनी बेसेंटके Mannerisms की कितनी धूम थी। जो रंगमंचपर आकर जितनी ही उछल-कूद मचा सके, हाथ-पैर पीटकर आसमानको सरपर उठा सके, वही उत्तम वक्ता समझा जाता तथा लोगोंको प्रभावित कर सकता था। पर अब तो हमें जवाहरलालजीकी सीधी-सादी देश-हितैषितासे पूर्ण हृदयकी बातें, गांधीकी चुटीली और चुभती हुई बातें ही चाहिएँ। आज आरामसे लीडरी करनेवाले राजनीतिज्ञोंकी आवश्यकता नहीं, आज तो देशपर कुर्बान होनेवाले देशप्रेमियोंकी आवश्यकता है—चाहे ज़बानदराज़ीके क्षेत्रमें भले ही वह कोरा हो। उसी प्रकार स्व० चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' तथा स्व० सरदार पूर्णसिंहकी चुहचुहाती लच्छेदार भाषाका युग भी लद गया।

प्रेमचन्दने भाषा और भावके क्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने उसे जीवनके साहचार्यमें ला दिया। किसी भी सहजबुद्धिवाले साहित्यके आलोचकको बतलानेकी आवश्यकता

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं कि प्रेमचन्दके पूर्वका साहित्य और स्वभावतः उसकी भाषा हमारे जीवनसे दूरकी चीज़ थी। पात्र जैसे कृत्रिम, वैसे ही उनकी भाषा भी विचित्र। प्रेमचन्दके होरी, सुमन आदि अवश्य हमारे जीवनके प्राणी हैं और हमारी ही भाषा बोलते हैं। पर इतना अवश्य है कि वे भी हमारे चेतन संसारकी सतह तक पहुँच सके थे। उनके पात्र और उनकी भाषा हमारे चेतन जगतकी भाषा थी। आज मनोविश्लेषणके युगमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं रही कि हमारी चेतनाको पारकर एक और भी जगत है, जो इससे कहीं अधिक रमणीय और मनोरम है। वास्तवमें हमारा चैतन्य जिस को हम जान सकते हैं, जिसकी प्रतिक्रियाको बुद्धिके नियन्त्रणमें विधि-निषेधकी डोरमें जकड़ सकते हैं, वह तो जितना अपना नहीं, उतना दूसरोंसे ऋण ली हुई चीज़ है। उस जगतकी भाषा मेरी नहीं, दुनियाकी दी हुई भाषा है। उसे लेकर थोड़ी देरके लिए मन बहल जाय; पर गहरी आत्मतृप्ति कहाँ प्राप्त हो सकती है? वह तो तभी हो सकती है, जब हम अर्ध-चेतन या अचेतन के शीतल स्पर्शके सम्पर्कमें आवें। हर्षकी बात है, जैनेन्द्रजीकी भाषा अपने पात्रोंकी तरह ही हमें इस अचेतन और अर्ध-चेतन के क्षेत्रकी ओर अग्रसर करती है। यही कारण है कि हमको अर्थात् वैसे लोगोंको, जो चेतन मस्तिष्ककी भाषाके सुननेके आदी हैं, जैनेन्द्रजीकी भाषा कुछ विचित्र-सी लगती है। पर उन्हें भी स्वीकार करना ही पड़ता है कि उसमें हमें अन्दरसे उभाड़नेकी और हमारी प्रवृत्तियोंको अन्तर्मुखी करनेकी गज़बकी शक्ति है। जैनेन्द्रजीके किसी भी उपन्यासके चलते पाठकसे यह बात छिपी नहीं रह सकती।

शून्यकी ओर

कुमारी अंजना स्याल

सुभद्रा चंगुलानीने ओवरआल उतारा और आरामकुर्सीपर लेट गई। आज उसकी रातकी ड्यूटी थी और एक सीरियस केस आ गया था। सारी रात जागनेके कारण उसका शरीर और मन दोनों ही क्लान्त थे। पलकें नींदके भारसे झुकी पड़ती थीं, पर वह सोना नहीं चाहती थी। अभी उसकी ड्यूटी खत्म नहीं हुई थी, न-जाने कब फिर अस्पतालसे बुलावा आ जाय। समीपसे एक स्टूल खिसकाकर सुभद्राने उसपर पैर रख दिए और शरीरको आरामकुर्सीपर अच्छी तरह फैलाकर कुछ सोचनेका प्रयत्न करने लगी। पर कुछ सोच भी नहीं पा रही थी वह। सोचनेकी बात तो कबकी अतीतके गर्भमें विलीन हो गई थी।

उसके जीवनमें एक तूफ़ान आया था, वह उसकी अभिलाषाओं तथा अरमानोंका अच्छी तरह विध्वंस करके न-जाने किधर बह गया। अब तो कुछ-एक बीमारियों और दवाइयोंके अतिरिक्त उसके पास दिलचस्पीका और कोई साधन ही नहीं रह गया था। जब उसने अपने जीवनकी प्रथम बड़ी ठोकर खाई, तब उसे रीडिंग मेडिकल कालेजने आश्रय दिया। यहीं वह एक डिमानस्ट्रेटरके पदपर नियुक्त हुई। फिर कुछ वर्षों बाद असिस्टेण्ट प्रोफ़ेसर बनी। तब वह युवती थी। यौवन अपनी सारी उमंगोंके साथ उसके हृदयमें हिलोरें ले रहा था। अभी उसके जीवनकी कुछ आकांक्षाएँ बाक़ी थीं, जो शायद समय पाकर कभी फलवती हो जातीं। उन्हीं दिनों सुभद्राके पिताने डाक्टर मसानीको अपना भावी जामाता बनाना निश्चित किया। मसानी रूपवान, धनी और सुशिक्षित युवक था, और साथ ही सुभद्रासे विवाह करनेकी तीव्र आकांक्षा भी उसके मनमें थी। पर पिताकी एक न चली। न-जाने किस मृगतृष्णाके धोखेमें सुभद्राने मसानीकी पत्नी बननेसे इन्कार कर दिया।

अभी यह गृह-द्वन्द्व चल ही रहा था कि सुभद्राको एडिनबरो जानेके लिए वज़ीफ़ा मिला। माँ रोईं-धोईं, पिताने अन्यमनस्कता प्रकट की; पर सुभद्रा अपने निश्चयपर अटल थी। यह बात नहीं कि उसे विलायत जाकर डिग्रियोंका संग्रह करनेका चाव था, या डाक्टरके रूपमें विशेष नाम हासिल करनेकी उत्कण्ठा थी। वास्तवमें उसके भीतर एक सूनापन था, एक व्यग्रता थी और उसे यह सूझ नहीं पड़ता था कि मनकी इस रिक्तताको दूर करनेके लिए क्या उपाय करे। अशान्तिके इस आन्तरिक तूफ़ानको देशसे बाहर घूम-फिरकर वह शान्त कर लेना चाहती थी।

आखिर वह एडिनबरो चली ही गई। वहाँ उसने एफ० आर० सी० एस० की परीक्षा पास की। जब वह वापस देश लौटी, तो कालेजको स्त्री-रोग-विज्ञानकी प्रोफ़ेसर अपना विवाह करके इस्तीफ़ा दे चुकी थीं। सुभद्राको उन्हींके रिक्त स्थानपर नियुक्त किया गया। कहना न होगा कि माँ-बाप यद्यपि सुभद्राको एक सुखी गृहिणीके रूपमें देखकर अधिक प्रसन्न होते; पर इससे वे विशेष असन्तुष्ट नहीं हुए। सुभद्राकी कालेजके ज़मानेकी सहेलियाँ उसके भाग्यपर ईर्ष्या करतीं; परन्तु सुभद्राको कोई खास प्रसन्नता नहीं थी। उसका हृदय अब भी अशान्तिका तूफ़ान ही बना हुआ था।

इसी प्रकार जैसे-तैसे जीवनक्रम चल रहा था। बड़े पदका गौरव होता है, पर कष्ट भी कम नहीं। सुभद्राका मन चाहता था कि वह कालेजकी लड़कियोंके साथ हँसे-खेले, पर उसके पदकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महत्ता उसे ऐसा करनेसे रोकती थी। असिस्टेण्टके साथ मित्र-व्यवहार रखनेमें मानहानि होती थी और हाउस-सर्जनोंके साथ भी वह स्वतन्त्रतापूर्वक मिल-जुल न सकती थी। रह गईं उसकी सहकारिणी शिक्षिकाएँ—अधेड़ावस्थाकी दहलीज़को कभीका लाँघकर पार किए हुए विभिन्न धर्मों और जातियोंके संग्रहीत नमूने—सो बरसोंसे बीमारोंमें काम करते रहनेके कारण उनके हृदय भी जैसे बीमार हो चुके थे। मुर्दोंकी चीर-फाड़ करनेके कारण अब वे आनन्दकी चीर-फाड़में अभ्यस्त हो चुकी थीं। उनमें से जो यूरोपियन तथा एँग्लो-इण्डियन थीं, वे तो प्रायः अपने मनोविनोदकी सामग्री जुटा लेती थीं; पर बाक़ी तो अपने-अपने बँगलोंमें बन्द अपने पदके गौरव तथा महत्ताको समेटे अपने जीवनको विषमय बना रही थीं।

मनोविनोदके साधन नगरमें न हों, यह बात न थी। सिनेमा थे, क्लब, काफ़ी-हाउस, रेस्तराँ आदि सब-कुछ थे; पर सुभद्रा इन सबसे दूर भागती थी। सिनेमामें प्रेम-अभिनयके सिवा और क्या होता है? सुभद्रा उन्हें देखती, तो उसके हृदयमें एक टीस-सी उठती। एक-दो बार वह क्लब भी गई; पर पुरुषों की लोलुप दृष्टिके अन्दर उसका सारा शरीर मानो जल उठा। दो-तीन सदस्योंसे परिचय भी हुआ; पर ज्योंही उन्होंने परिचितों की परिधिको लाँघनेका उपक्रम किया, सुभद्रा कन्नी काट गई।

× × ×

सुभद्राकी आँख अभी झपकने भी न पाई थी कि अस्पतालकी जमादारिनने आकर कहा—'डाक्टर सा'ब!' सुभद्रा चिहुँककर उठी। जमादारिन बोली—'डाक्टर खान मिस सा'ब ने यह पुर्ज़ा भेजा है।'

सुभद्राने उसके हाथसे पुर्ज़ा लेकर पढ़ा। लिखा था—'डाक्टर, मेटरनिटी-वार्डमें एक बहुत सीरियस केस आया है। शायद आपरेशन करना पड़े। आपका आना ज़रूरी है।' सुभद्रा ने झटपट दस्ताने पहने, ओवरआल कन्धोंपर डाला और बैग उठाकर चल दी।

हाउस-सर्जन डा० खान घबराई हुई खड़ी थीं। कहने लगीं—'रोगिणीकी हालत बहुत खराब है, पर उससे भी बुरी दशा तो उसके पतिकी है। नब्ज़ तो मानो चल ही नहीं रही।' नर्स हँसकर बोली—'बीवीकी बीमारीपर इस क़दर घबरानेवाला यह पहला पुरुष मैंने देखा है! अगर विलियम मुझसे…'

उनकी बातोंपर ध्यान दिए बिना सुभद्रा कमरेके भीतर चली गई। अन्दर पलँगपर लगभग अठारह वर्षकी एक अत्यन्त रूपवती युवती कराह रही थी। सुभद्राको देखते ही वह बिस्तर पर हाथ-पाँव पटकने और चिल्लाने लगी। सुभद्राने हाउस-सर्जनसे कहा—'देखिए, बिना क्लोरोफ़ार्म दिए इसकी डाक्टरी परीक्षा करना असम्भव है। इसलिए आप जाकर इसके पतिसे लिखवा लायँ कि उन्हें इस विषयमें कोई आपत्ति नहीं।'

हाउस-सर्जन अनुनयपूर्वक बोली—'डाक्टर, अच्छा होगा, यदि आप जाएँ। इसका पति तो मानो इस दुनियामें ही नहीं है। हमारी किसी बातका उत्तर ही नहीं देता।'

सुभद्रा बाहर गई। युवतीका पति अभी तक घुटनोंमें सिर डाले बैठा था। सुभद्राने समीप जाकर कहा—'महोदय!' पर उसने सुना नहीं। वह ज़रा ऊँचे स्वरमें बोली—'मैं पूछती हूँ, महोदय!' कोई उत्तर नहीं मिला। इसपर उसको ज़रा क्रोध आया। सभी विवाहिता स्त्रियाँ माँ बना करती हैं; पर यह पहला बच्चा है और विवाह भी सम्भवतया प्रेमके एक लम्बे अभिनयके पश्चात् हुआ होगा! सुभद्रा मन-ही-मन मुस्कराई। उसने हल्के-से उसके कन्धेको झकझोरकर कहा—'मैं कहती हूँ, महाशय!'

इस बार उसने मुँह ऊपर उठाया। बड़ी-बड़ी विस्फारित आँखें, कोनोंमें जलकी बूँदें। सुभद्राकी आँखोंमें वे आँखें गड़-सी गईं। अब सुभद्राकी बारी थी। उसे लगा कि वह गिर पड़ेगी; पर उसने अपने-आपको सँभाला। सामने कैले बैठा था। सुभद्रा के नेत्रोंके सामने कालेज-जीवनके सारे चित्र घूम गए। उसका और कैलेका साथ-साथ खेलना और पढ़ना, सहपाठिनियोंकी ईर्ष्या तथा व्यंग्य-भरे ताने, और फिर एकदम स्वप्न-संसारके सारे महल भड़भड़ाकर गिर पड़े! कैलेके माता-पिता अपने एकमात्र पुत्रका एक हिन्दू कन्याके साथ गँठबन्धन होना किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकते थे। इधर सारा हिन्दू-समाज इस बातपर दृढ़ था कि एक क्रिस्तान हिन्दूकी बेटीसे विवाह नहीं कर सकता। फिर वही सब-कुछ हुआ, जो ऐसी हालतमें हुआ करता है। डाँट-फटकार, रोना-धोना और अन्तमें आँसुओंके दरियाके बीच दोनोंका चिर-बिछोह। वही कैले आज अपनी 'पत्नी'को लेकर सुभद्राकी शरणमें आया है! वह तो अभी तक उसीके नामकी माला जप रही थी; पर कैले विवाह कर भी चुका है! यही बाप बननेको भी तैयार बैठा है, और पत्नीपर उसका अगाध प्रेम भी है। सुभद्राकी स्त्री-सुलभ ईर्ष्याकी दावाग्नि भड़क उठी। उसके मनमें आया कि कह दे—'अस्पतालमें कोई कमरा खाली नहीं है।' पर डाक्टरका कर्त्तव्य जो उसके सामने था। उसके मनमें ये विचार चक्कर लगा ही रहे थे कि कैलेने कहा—'मिस चंगुलानी, आप!'

तो वह मिस चंगुलानी है! सुभद्राके हृदयमें जैसे तीर-सा लगा। पर उसने शिष्टतापूर्वक कैलेको नमस्कार किया और कहा—'मि० कैले, मैं आपसे यह कहना चाहती हूँ कि आपकी पत्नीकी दशा बहुत नाज़ुक है। यदि आप यह लिख दें कि आप को अपनी पत्नीको "एनेस्थेज़िया" दिए जानेमें कोई आपत्ति नहीं, तो मैं अपना काम आरम्भ करूँ।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैलेने अपनी आँखोंमें अनुग्रह तथा विनय भरकर पूछा—'एनिड बच तो जायगी न ? देखिए, मुझे···।' यह कहते-कहते उसके मुँहपर रक्तिम आभा छा गई। अभी भी यह कितना सुन्दर है—सुभद्राने सोचा। कुछ रुककर उसने कहा—'मुझे इसकी परवाह नहीं। एनिडकी जान बच जाय, यही काफ़ी है।' और काँपते हाथोंसे उसने पत्नीको क्लोरोफ़ार्म सुँघाए जानेके विषयमें अनुमति लिख दी। फिर हाथमें हैट लेकर सुभद्राके सामने खड़ा हो गया और बोला—'डाक्टर चंगुलानी, मैं आपसे एनिडके प्राणोंकी भिक्षा माँगता हूँ। आप उसे बचा दीजिए, मैं जीवन-भर आपका आभारी रहूँगा।'

आजसे पन्द्रह वर्ष पूर्व कैलेने सुभद्रासे प्रणयकी भिक्षा माँगी थी, और उसे सफलता भी मिली थी। वह भिक्षा देते समय सुभद्राको कितना रोमांचकारी आह्लाद हुआ था। और आज ? क्या वह यह भिक्षा दे सकेगी ? क्या वह कैलेकी पत्नीके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकेगी ?

भीतर आकर उसने नर्सोंसे कहा—'मरीज़ाको आपरेशन-थियेटरमें ले जानेकी ज़रूरत नहीं। तुम जाकर डा० हिल्डाको खबर दो कि मेटरनिटी-वार्डमें एक बीमारको एनेस्थेज़िया देना है। और हाँ, डाक्टर मल्होत्राको भी बुलाती लाना।'

× × ×

सुभद्रा बाहर निकली, तो देखा कैले व्यग्रतासे इधर-उधर चक्कर लगा रहा है। उसके समीप जाकर क्षीण मुस्कराहटसे वह बोली—'आपको बधाई है, मि० कैले ! आपके लड़की पैदा···।'

कैलेने झपटकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और उत्सुकता से कहा—'पर एनिड तो ठीक है न, यह बताइए।'

'हाँ, उनकी अवस्था अच्छी है। आशा है, कुछ ही दिनोंमें घर जाने-लायक़ हो जायँगी। आप चाहें, तो अन्दर जा सकते हैं। पर देखिए, रोगिणीको जगाइगा नहीं।'

प्रसन्नताकी आभा मुँहपर लिए और हर्षातिरेकसे उछलता-कूदता कैले भीतर दौड़ा गया। सुभद्राका मुँह पीला पड़ गया था और उसकी आँखोंके आगे अँधेरा छा रहा था।

× × ×

कोई पन्द्रह दिनके बाद कैले सुभद्राके घर आया। हैट उतारकर उसने मेज़पर रख दिया और समीप ही कुर्सी खिसका कर बैठ गया। फिर धीरे-धीरे सलज्ज भावसे कहने लगा—'डा० चंगुलानी, मैं और मेरी पत्नी आपके बहुत आभारी हैं। एनिडने यह निश्चय किया है कि वह बेबीका नाम आपपर रखेगी। क्या आप उसकी धर्ममाता बनना स्वीकार करेंगी ?'

सुभद्राकी आँखें भर आई थीं। उसके मुँहसे यत्न करनेपर भी एक शब्द न निकल सका। कैले कुछ देर बैठा मेज़के कोनेको अँगुलियोंसे कुरेदता रहा ; पर जब उसे कोई उत्तर न मिला, तो चुपचाप उठकर चला गया। कुछ देर बाद सुभद्राने आँखें उठाकर देखा ; वह वहाँ नहीं था। यह दूसरी विदा थी। प्रथम विदाके पश्चात् तो जीवन बितानेके लिए उसके पास अतीतकी रंगीन स्मृतियाँ थीं ; पर अब ? अब वह किसके सहारे जिएगी ?

(इस कहानीके सब पात्र कल्पित हैं।—ले०)

कांग्रेस

(राष्ट्रकवि स्व० माधव शुक्लकी अन्तिम और अप्रकाशित रचना : फरवरी, १९४२)

कांग्रेस मज़हबसे न्यारी है, कांग्रेस जन-शक्ति सँवारी है ;
हम कांग्रेसके अनुयायी हैं, कांग्रेस सरकार हमारी है।
जो सत्य-अहिंसावादी है, जिसका धन चरखा-खादी है ;
उद्देश्य एक जिस कांग्रेसका इस भारतमें आज़ादी है।
चालीस कोटि योद्धाओंका दल उसका आज्ञाकारी है ;
हम कांग्रेसके अनुयायी हैं, कांग्रेस सरकार हमारी है।
कांग्रेसने हमें जिलाया है, कांग्रेसने हमें जगाया है ;
इस कांग्रेसने ही जन्मसिद्ध अधिकार हमें बतलाया है।
हम कांग्रेसपर बलि जाएँगे, कांग्रेस-हित सीस कटाएँगे ;
हम नर-नारी मरते दम तक कांग्रेसका मान बचाएँगे।
इस अखिल भारती संस्थाका हरएक भारती पुजारी है ;
हम कांग्रेसके अनुयायी हैं, कांग्रेस सरकार हमारी है।
हम नहीं मानते यह कहना—'कांग्रेस ग़ैरक़ानूनी है।'
नौकरशाही दीवानी है, सिरफिरानी है, मजनूनी है।

घर-दर-जन सभी कुचल डाले, पर कुछ भी निशान रह जाएगा,
फिर भी ये तिरंगा कांग्रेसका झण्डा उसपर लहराएगा।
कोने-कोनेमें भारतके इस कांग्रेसकी ही उजियारी है ;
हम कांग्रेसके अनुयायी हैं, कांग्रेस सरकार हमारी है।
हम खुले शब्दमें कहते हैं, जो भरा हृदयके भीतर है ;
हम सब कांग्रेसके सेवक हैं, घर-घर कांग्रेसका दफ़्तर है।
कांग्रेसकी सतत पुकारोंसे भारतको अपना ज्ञान हुआ ;
मानवताका अभिमान हुआ, हमको स्वराज्यका ध्यान हुआ।
अंगरेज़ी शासन घातक है, भारतको उससे आस नहीं ;
हम रोम-रोमसे कहते हैं, हमको उसपर विश्वास नहीं।
यदि नौकरशाहीमें बल है, उस बलको चाहे अज़मा ले।
घर-दर-तन खाक बना डाले, अपने अरमान मिटा डाले।
पर विश्व सुनेगा खाकोंके कण-कणसे यह धुन जारी है—
हम कांग्रेसके अनुयायी हैं, कांग्रेस सरकार हमारी है।

CC-O. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गांधीजीके मिलनेवाले

श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी

पूनाके प्राकृतिक चिकित्सालयमें महात्मा गांधीको नित्य कोई न कोई कुछ उपहार भेंट करनेके लिए आता ही रहता है। धनीसे लेकर कंगाल तक वहाँ आ सकता है। अपनी शक्तिके अनुसार सभी उन्हें भेंट देते हैं। करोड़पति आयगा, तो लाखों की भेंट देगा। गरीब आयगा, तो एक पैसेकी भेंट देगा। डाक्टर आयगा, तो कुछ दवाइयाँ भेंट करेगा। लेखक आयगा, तो अपनी रचनाओंकी भेंट चढ़ायगा। व्यापारी आयगा, तो कुछ चीज़ोंका उपहार देगा। देशप्रेमी और भक्त आयगा, तो अपने हाथ-कते सूतके धागोंको भेंट करेगा। कवि आयगा, तो अपनी रचनाएँ सुनायगा। कहनेका तात्पर्य यह कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो गांधीजीके चरणोंपर अपनी कुछ-न-कुछ भेंट न चढ़ाय। गांधीजी सबकी भेंट बड़े स्नेह और नम्रतासे स्वीकार करते हैं और अपनी प्रेम-भरी मुस्कानमें आशीर्वाद देते हैं।

गांधीजीमें कुछ ऐसी अनोखी शक्ति है कि वे सबको अपनी तरफ़ आकर्षित कर लेते हैं। उनके हास्य और मुस्कानसे सभी उनके अपने हो जाते हैं। सभीको ऐसा मालूम होता है, गांधीजी अपने ही कुटुम्बके एक महापुरुष हैं। सब लोग उनकी वाणी बड़े प्रेमसे सुनते हैं। हरएकको गांधीजी मानो अपना ही कुटुम्ब बना लेना चाहते हैं। और ऐसा करें भी क्यों न? सारे विश्व को वे अपना कुटुम्ब और भाई-बन्धु मानते हैं। किसीसे वैर-भाव रखना उनका हृदय जानता ही नहीं। उनका कट्टर-से-कट्टर शत्रु, निन्दक या आलोचक भी उनके पास यदि भेंट करने आयगा, तो वे उससे भी उतने ही प्रेमसे मिलेंगे, जितने प्रेमसे पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और डा० राजेन्द्रप्रसादके साथ भेंट करते हैं। एक समय उनका एक कटु आलोचक उनसे मिलने आया। गांधीजीकी वह कड़ी-से-कड़ी आलोचना करता था। कभी-कभी तो गन्दे शब्दोंका भी प्रयोग करता था। पत्रों में गांधीजीके लिए बस विष ही उगलता था। गांधीजीकी जितनी भी बुराई उससे हो सकती थी, वह जी-भरकर करता था। उसका एकमात्र उद्देश्य गांधीजीको पतित बनाना था। लेकिन क्या गांधीजीके दिलमें उसके प्रति क्रोध था? गांधीजी अपनी बातचीतमें कहा करते थे—'भाई, वह अब एक दूसरे मार्गपर बह रहा है, उसकी धारणा कुछ और बन गई है। मुझे समझ नहीं पा रहा है। जिन दिन मुझे समझ जायगा, उस दिन मेरा मित्र बन जायगा। ईश्वर उसको सुबुद्धि दे, यही मैं प्रार्थना करता हूँ। तुम लोगोंको उससे घृणा नहीं करनी चाहिए।'

जब वह आलोचक गांधीजीके निकट पहुँचा, तो गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े और बोले—'अच्छा भाई, तुम आ गए। अच्छा ही हुआ। तुम मुझको समझो। मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ। मेरे सम्बन्धमें तुम जो-कुछ लिखो, समझ-बूझकर लिखो।' गांधीजीकी इस वाणीसे आर्द्र होकर उसने एकदम बापूके चरणों पर अपना माथा टेककर सादर प्रणाम किया। बापूने हँसते हुए आशीर्वादकी एक हल्की थपकी उसकी पीठपर लगाई। अपनी सारी अनुचित आलोचनाओंका पाप उसने अपना माथा गांधीजीके पैरोंपर टेककर धो लिया। गांधीजीकी सहिष्णुता, उदारता और संयत वाणीका महत्त्व वह समझ गया।

कहनेका तात्पर्य यह कि गांधीजीके पास हर तरहके मनुष्य आते हैं। एक भिखारी आता है, तो वह भी गांधीजीको अपनी श्रद्धांजली चढ़ाता है और अपनी टूटी-फूटी वाणीमें गांधीजीसे वार्त्तालाप करता है। गांधीजी उससे बड़े प्रेम और चावके साथ बातचीत करते हैं। एक मर्त्तबाका ज़िक्र है। घूमते समय एक पागल आया। बोला—'महात्माजी, मुझे कुछ खानेको दो।' गांधीजीने कहा—'भाई, तुमको मालूम नहीं है कि मैं भी भिखारी हूँ!' वह मुस्कराता हुआ तुरन्त दूसरी तरफ़ चला गया।

गांधीजीके पास बहुधा बालक भी आया करते हैं। बच्चे गांधीजीको क्या भेंट दे सकते हैं, यह एक कल्पना करनेकी चीज़ है। पर गांधीजीको बच्चे सबसे प्यारे हैं। बच्चोंको मालूम होता है कि गांधीजी हमारी माताके तुल्य हैं। उनके पास बड़ी निर्भीकताके साथ आते हैं। कभी-कभी तो गांधीजीकी गोदमें भी बैठ जाया करते हैं। अपनी तोतली बोलीमें बड़ी घुल-घुलकर बातचीत करते हैं। आजकल गांधीजी पूनाके जिस प्राकृतिक चिकित्सालयमें ठहरे हैं, वहीं रोज़ सुबह-शाम वे बगीचेमें ही घूमते हैं। इस समय भीड़ कम रहती है। दर्शनार्थियोंसे परेशान न हो जायँ, इसलिए वे बाहर घूमने नहीं जाते। प्राकृतिक चिकित्सालयके बाजूमें कुछ गृहस्थ कुटुम्बियोंके मकान हैं। उनमें रहनेवाले छोटे-छोटे बच्चे बापूको घूमते हुए देखकर फौरन दौड़ आते हैं और निकट आकर बापूके हाथोंमें गुलाब या गेंदेके सुन्दर पुष्प उपहार-स्वरूप थमा देते हैं। बापू अपनी मीठी बोलीमें कहते हैं—'क्या तुम आ गए?' बच्चे जवाब देते हैं—'बापूजी, फूल लाया हूँ, लो।' और बापूके हाथोंमें फूल थमाकर खिलखिलाते हुए दौड़कर चले जाते हैं। गांधीजीसे मिलने आनेवालोंमें बच्चे सबसे संक्षिप्त, मनोरंजक और कुतूहल-वर्द्धक हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रिस्टोफ़र मार्लो

श्री दुर्गाप्रसाद

अंगरेज़ोंका नाट्य-साहित्य विश्व-साहित्यमें विशेष स्थान रखता है। वहाँके राजत्व-काल और धन-जनकी समृद्धि नाटकोंकी समृद्धिका कारण बनी। वहाँ एक ऐसा समय था, जब लोग उपन्यासों और आख्यायिकाओंसे परिचित नहीं थे; परन्तु रंगमंचपर आज कौन-सा अभिनय होनेवाला है, इस सम्बन्धमें उनकी उत्सुकता, उनका कौतूहल और उत्साह आज-कलके सिनेमा-प्रेमियोंसे कम नहीं था। जिस युगमें महारानी एलिज़ावेथसे सनद लेकर व्यापारीगण भारतवर्षमें अपने पाँव जमा रहे थे, उस समय इंग्लैण्ड विख्यात नाटककारोंका केन्द्र बन चुका था। अंगरेज़ोंके इस युगके साहित्यिक और बौद्धिक उत्थानको नवजागरण-काल (Renaissance) कहते हैं। इस कालमें साहित्यिकोंमें एक स्फूर्त्त चेतनाका उदय हुआ था, जो अपने साथ नवीन भावनाओंका आन्दोलन लाई थी। कुछ अपवादोंके साथ यह नवजागरण नवीनताका युग था। मध्यकालीन युगकी धार्मिक वृत्तियाँ इस युगमें प्रवेश कर गई थीं और लोगोंके जीवनमें एक नए संघर्षका आविर्भाव हो गया था। मध्यवर्गके लोगोंके लिए यह उत्थानका युग था और रंगमंचके दर्शक उस श्रेणीके बने थे, जिनका उद्देश्य जीवनको अनेक प्रकार से व्यतीत करना था। नाट्यकारोंने इस विविध व्यक्तित्वको रंग-मंचपर कलात्मक रूपसे अभिव्यक्त करनेकी चेष्टा की। लोगोंकी माँग थी कुछ नई, चटपटी और दिमाग़ी दायरेके बाहरकी चीज़ोंकी, और प्रत्येक बार वे नाटककार एक नई रागिनी लेकर उसकी पूर्त्तिको पहुँच जाते थे।

इन्हीं परिस्थितियोंके बीच १५६४ ई० में, जिस साल इंग्लैण्डके साहित्य-सम्राट् शेक्सपियरका जन्म हुआ था, एक मोची-परिवारमें क्रिस्टोफ़र मार्लोका जन्म हुआ। कैंटरबरीके किंग्स स्कूलमें उसने प्रारम्भिक शिक्षा पाई और फिर कार्पसक्रिस्टी कालेज, केम्ब्रिजमें पढ़ने लगा। १५८३ में उसने बी० ए० की डिग्री ली। इंग्लैण्डका कवि-समाज इस समय कल्पनाके पंखोंपर दूर देशोंकी सैर कर रहा था, या भावनाओंके प्रवाहमें डूब-उतरा रहा था। उनके हृदय उन पुकारोंको सुननेके लिए व्याकुल हो उठे थे, जो गीतोंमें अभिव्यक्त की जाती हैं। उनकी इस भावना-प्रधान वृत्तिको इउफ़िउस (Eupheus) का लेखक लिली प्रश्रय दे चुका था। दर्शक गद्य और संवाद दोनों ही मँजे हुए चाहते थे। लिलीने उन्हें प्रेम और रोमांसका सुन्दर दिग्दर्शन कराया, भले ही उसे इसके लिए कथावस्तुकी उपेक्षा करनी पड़ी हो। पील (जिसका जन्म लिलीसे चार वर्ष बाद हुआ था) ने भी अपनेको रसात्मक और गीतात्मक परिधिमें सीमित रखा, यद्यपि लिलीसे उसकी दिमाग़ी दौड़ कम थी। इनके नाटकोंके पीछे एक और संचालक सूत्र था, और वह था तत्कालीन दरबार। बहुधा इन्हें महारानीकी विलास-भावनाकी पूर्त्तिको ही अपना ध्येय बनाना पड़ता था। इस कारण नैतिक ह्रासके साथ-साथ नाटकके टेकनीकमें कुछ और सफलता मिली—जैसे 'आर्डेन आफ़् फीवरशम'में। जान किडने अपनी 'स्पेनिश ट्रेजेडी'में ही शेक्सपियरके विख्यात नाटक 'हेमलेट'का सूत्रपात भी किया।

इसी समय विश्वविद्यालयोंकी सीमित परिधिसे मुक्त होकर क्रिस्टोफ़र मार्लो साहित्यिक क्षेत्रमें आया। इस साहित्यिक आन्दोलनके युगमें—जब सभी साहित्यिक किसी नवीनता, किसी विशेषताकी ओर मुड़े जा रहे थे, जब समस्त दर्शक-समाज नाटकोंमें गीतोंकी आकुल पुकार और रंगमंचपर लोमहर्षक काण्ड देखनेको व्याकुल हो रहा था—मार्लोने अपना क्षेत्र कुछ हटकर बनाया। वह कवितामें कल्पनाकी ऊँची उड़ानें भर सकता था; किन्तु उसकी उड़ानें चहकती बुलबुलोंकी उड़ानें न थीं, बाजोंके झपट्टे थे। उसकी नवीनता दुनियाके सौन्दर्य और मानव-जीवन के सन्तोषके उद्घाटनमें न थी, संसारके प्राकृतिक सत्योंको प्रकाशमें लाने और मानव-जीवनके असन्तोषके रहस्योद्घाटनमें थी। लोग लोमहर्षक काण्ड देखना चाहते थे, उसने रंगमंचपर मृत्युकी सर्वव्यापक भयंकरता दिखलाई। लोगोंके जो रूढ़िगत नैतिक सिद्धान्त थे, उनसे मार्लो बिलकुल सहमत न था। वह एक नवयुवक था और उसकी धमनियोंमें क्रान्तिका रक्त खौल रहा था। उसने परम्परापर एक कठोर आघात किया और उसकी शृंखलाएँ हिला दीं।

मार्लोकी प्रतिक्रियाओंका पहला विकास उसके नाटक 'टेम्बरलेन'में हुआ, जिसका नाम उसने स्वयं 'टेम्बरलेन महान्' रखा। मार्लो स्वयं इस स्वरचित नाटकपर रीझा हुआ था और टेम्बरलेनकी जो प्राणप्रतिष्ठा उसने की, वह नवजागरण-युगसे भी दो क़दम आगेकी है। टेम्बरलेनके उसने दो भाग लिखे हैं, और दोनों पाँच-पाँच अंकोंके नाटक हैं। टेम्बरलेन सीथियाका एक गड़रिया है; किन्तु शक्तिकी आकांक्षा उसे आगे बढ़नेको प्रेरित करती है, और वह धीरे-धीरे एक शासक बन जाता है। फ़ारसके राजा और उनके दरबारी मन्त्रणा करते हैं। टेम्बरलेनके विरुद्ध सेना जाती है; किन्तु थेरिडेमस उसके तेजके आगे नत हो जाता है, और वह टेम्बरलेनसे जा मिलता है। फिर तुर्कोंके सम्राट् सामना करते हैं; फ़ेज़, मोरोको, आजियरकी सेनाएँ मिलती हैं। किन्तु टेम्बरलेनके भाग्याकाशका निर्माण उस धातुसे हुआ है, जो झुकना नहीं जानता। राज्य-मदसे मत्त टेम्बर-लेन हज़ारों-लाखोंके भाग्य और साम्राज्यपर अपने पैर रखकर बढ़ता है। उसके विरुद्ध आवाज़ें उठानेवाले नगर भस्मीभूत

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर दिए जाते हैं। कुमारियाँ ज़िन्दा जला दी जाती हैं और टेम्बरलेनका एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो जाता है। उसे हृदय नामक कोई चीज़ है या नहीं, इसमें सन्देह होता है; किन्तु जब मिस्रकी राजकुमारी ज़ेनोक्रेट उसके आगे आती है, तो वहाँ भी वह प्रेम-बलसे जय प्राप्त करता है। ज़ेनोक्रेटकी प्रशंसा करते समय टेम्बरलेन मार्लो हो गया है, और उसकी वाणी कल्पनाके अभिनव रागोंसे मुखरित हो उठी है। मिस्रके बादशाह सोल्डनके आत्मसमर्पण और ज़ेनोक्रेटके अभिषेकके साथ टेम्बरलेनका पहला भाग समाप्त होता है।

दूसरे भागमें सीरिया, जेरूसेलम, एमेसिया आदिके अनेक राजागण मिलकर टेम्बरलेनको पराश्त करनेकी संयुक्त चेष्टा करते हैं; किन्तु टेम्बरलेन अजेयकी भाँति समस्त एशियापर अपनी विजय-ध्वजा फहरा देता है। कितने राज्य छोड़कर भाग जाते हैं, कितने आत्महत्या कर लेते हैं। और तभी ज़ेनोक्रेट बीमार हो जाती है। टेम्बरलेन भाग्यको बलवत्तर माननेको तैयार नहीं। वह अदृष्टके प्रति क्रुद्ध हो उठता है। उसकी भवें तन जाती हैं। वह अपनी सारी शक्ति लगाकर ज़ेनोक्रेटको बचाना चाहता है; पर वह नहीं बचती। मृत्युका यह पहला आघात उसे कुछ विचलित करता है और दूसरा आघात वह तब अनुभव करता है, जब विजयके शिखरपर आरूढ़ उसे सहसा जीवनका आखिरी अंक खेलना पड़ता है। मृत्युके पहलेका भाषण उसने दृढ़ शब्दों में दिया है। उसे मृत्युसे भय नहीं, मृत्युके पहलेका क़दम भी उसके लिए कर्मण्यताका क़दम है।

'टेम्बरलेन'में मार्लोने उन भावोंको व्यक्त किया है, जो लोकप्रिय होनेपर भी लोकमतके विरुद्ध थे, जिन्होंने समष्टिसे व्यष्टिको बड़ा बताकर व्यक्तिकी विजय-घोषणा की। टेम्बरलेनकी प्रधानता ज़ेनोक्रेटके प्रेमीके रूपमें नहीं थी, जूपिटरका पुत्र बननेमें नहीं थी; किन्तु एक ऐसा व्यक्ति बननेमें थी, जो परम शक्तिका उपासक था। मार्लो उसे पृथ्वीका साधारण व्यक्ति नहीं कहता :—

Still climbing after knowledge infinite
And always moving as the restless spheres.

अर्थात् जो अनन्त ज्ञानकी ओर बढ़ रहा था और चलायमान मण्डलोंकी भाँति गतिमान था। टेम्बरलेन बड़ोंसे बड़ेके रूपमें आता है। उसने सबसे बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, सबसे बड़े जुर्म किए थे, सबसे बड़ी सज़ाएँ दी थीं और अपने शत्रुओंके बीच वज्र घोषणा की थी :—

I hold the Fates bound fast in iron chains
And with my hand turn Fortune's wheel about.

अर्थात् भाग्योंको मैंने लोहेकी जंज़ीरोंसे बाँध रखा है और उनके चक्रका संचालन मैं अपने हाथसे करता हूँ। जिन अपराधोंकी अभिव्यक्ति नाटककार अभी तक करनेमें हिचकते थे, मार्लोने उन्हींका एक प्रतीक आगे रख दिया।

टेम्बरलेन संसारकी जनतासे विलक्षण था। उसने नवजागरण के दर्शनका रक्तदान पाया था। यद्यपि वह बहुत ज़्यादा नाटकीय पात्र हो जाता है; किन्तु एक ऐसे विलक्षण व्यक्तिका चित्रण करते समय आत्मप्रशंसा या नाटकीय अभिव्यक्ति-जैसे प्रश्नोंपर विचार करनेको मार्लो जैसे तैयार ही न था। मार्लोने उसे एक आदर्श प्रेमी, आदर्श विजेता, आदर्श क्रूर और नवजागरण-काल का शक्ति-उपासक चित्रित किया है। अलभ्यको प्राप्त करनेकी जो एक प्रकारकी कामना मानव-हृदयमें होती है, उसीका मूर्त्त रूप मार्लो इसमें दे रहा था। मार्लोके विचारोंसे टेम्बरलेनके विचार-साम्य होनेके कारण मार्लोने एलिज़ाबेथ-कालीन नाटककार की नाईं इसमें अलंकार भर दिए हैं। वह तुरत विश्वविद्यालयसे आया था, इसलिए पौराणिक गाथाओंकी चर्चा बहुत करता था।

किन्तु अभी रंगमंचोंके अनुभवमें वह अपरिपक्व था। इसका परिमार्जन उसके 'माल्टाका यहूदी'में हुआ है। इसका यहूदी बाराबास भी एक ऐसा ही पात्र है, जो समस्त ईसाई समाजके विरुद्ध बीड़ा उठाता है। माल्टामें अपने धनके ज़ब्त हो जानेपर प्रतिशोधकी भावनासे वह उत्तेजित होता है और इसके लिए अपनी पुत्रीको संन्यासिनियोंके आश्रममें भर्ती हो जानेको कहता है। फिर नाना प्रपंचों द्वारा बाराबास और उसका दास इथामूर मठकी समस्त संन्यासिनियोंका वध करते हैं। अन्तमें बाराबासका दास एक वेश्याके फेरमें पड़कर इसका शोषण करना चाहता है। माल्टाके शासकके पुत्र, जो बाराबासकी पुत्री एबिजेलका प्रेमी है, तथा एबिजेलके एक अन्य प्रेमी और इसी सम्बन्धमें दो और सन्यासियोंका भी वध ये कर चुके हैं, यह भेद इथामूर जानता है। बाराबास अपने उसी पूर्व-कौशलसे वेश्याके घरपर इथामूरको भी विषके घाट उतारता है। फिर कर उगाहनेको आए हुए तुर्कोंसे मिलकर वह अपने नगरके विरुद्ध षड्यन्त्र करता है। उसका षड्यन्त्र असफल होता है और जो गड्ढा उसने अपने शासकके लिए खुदवा रखा था, उसमें खुद गिरता है। उस गड्ढेमें उबलती गर्मी है, जिसके दाहमें उसकी अभिलाषाओंकी समाधि बन जाती है। उसकी पुत्री मठमें पहले ही मर चुकी है।

टेकनीककी दृष्टिसे 'माल्टाका यहूदी'में कुछ अधिक सफलता मार्लोको मिली है। इसकी भाषामें संयम है और दर्शकपर इसका प्रभाव विस्तार और प्रसारमें खो नहीं जाता, केन्द्रित रूपसे होता है। इसमें नाटकीय कथावस्तुकी प्रधानता है—देखनेको बहुत-कुछ, सोचनेको कम। पर जिस नाटकसे मार्लोको सबसे ज़्यादा प्रसिद्धि मिली, वह है 'डाक्टर फ़ास्टस'। मध्य-युगकी धार्मिक संस्कृतिका इंग्लैण्डपर एक विशेष प्रभाव था। धीरे-धीरे लोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक आदर्शवादकी स्थापना कर रहे थे। यह आदर्शवाद बहुत-कुछ प्लेटोके सिद्धान्तोंसे लिया गया था। इसके अनुसार मनुष्य की पूर्णता कोरी कल्पना नहीं थी, और लोग चरम-ज्ञानके पिपासु थे। जिस तरह टेम्बरलेनकी साधना विश्वका एकमात्र आतंक होनेमें थी, फ़ास्टसके विचारमें दर्शन, क़ानून और ईश्वरत्व सभी निकृष्ट हैं। वह कहता है :—

Philosophy is odious and obscure ;
Both law and physic are for pretty wits,
Divinity is basest of the three,
Unpleasant, harsh, contemptible and vile.

अर्थात् दर्शन घृण्य और अस्पष्ट है, क़ानून और चिकित्सा आला दिमाग़वालोंके लिए हैं और देवत्व जो इन तीनोंमें निकृष्ट है—ये सब असुखकर, कठोर, घृण्य और कुत्सित हैं। उसकी सिद्धि सर्वशक्तिमान होनेमें ; लाभ, सुख, शक्ति और सम्मानके विश्वकी विजय करनेमें है। फ़ास्टसका दुखद अन्त उसकी अभिलाषाओं और अन्तःकरणके संघर्षसे होता है। फ़ास्टस जर्मनीका सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। पुस्तकों द्वारा वह भौतिक परिधिसे ऊपर उठना चाहता है। तन्त्रोंका अध्ययनकर वह शैतानका आवाहन करता है और उसके हाथों अपनी आत्माको बेच देता है। उसका अन्तःकरण उसे रोकता है ; पर उसकी भौतिक सुखकी आकांक्षाएँ प्रबल होती हैं, और वह दृढ़संकल्प हो जाता है। संकल्पोंके बीचमें एक क्षीण आवाज़ आती है—'फ़ास्टस, तुम अभिशप्त हो गए !' पर वह फिर व्यंगपूर्वक अपनेको अटल बतलाता है। इसके बदलेमें शैतान उसे सभी सुख भोग करनेका सामर्थ्य देता है। शैतानका दूत मेफ़िस्टोफ़िलिस २४ वर्षोंके लिए उसका दास बनता है। इसके अन्तमें वह आता है और निर्मम होकर फ़ास्टसकी आत्माको ले जाता है, जिसे वह पहले ही शर्त्तके अनुसार बेच चुका है। मरनेके पहले दिया गया उसका भाषण अंगरेज़ीकी उत्कृष्ट कविताका उदाहरण है।

'एडवर्ड द्वितीय'में मार्लो उसकी ऐतिहासिक घटनाओंसे उतना सम्बद्ध नहीं, जितना उसकी भावना-प्रधान वृत्तियों और परिस्थितियोंसे। मार्लोका विषय एडवर्डका राज्य-विस्तार नहीं है। ऐतिहासिक घटना वहाँ व्यक्तिकी भावना हो जाती है। डिडोको पढ़कर लगता है कि पौराणिक गाथाओंमें यह घटना घटी हो या नहीं, किन्तु यह एक अमिट प्रेम-कथानक है। 'हीरो एण्ड लेण्डर' मार्लोका लिखा हुआ स्वतन्त्र उत्कृष्ट पद्यांश है।

मार्लोकी श्रेष्ठता एक और बातमें है। उसने मुक्तक छन्दको मार्जित और परिपक्व कर दिया। अपने छन्दोंको उसने वीणाके सदृश बना दिया, जिसमें आरोही-अवरोही, चढ़ाव-उतार, कोमल और दृढ़ स्वर साथ-साथ हों। जब टेम्बरलेन ज़ेनोक्रेटका अभिनन्दन करता है,[1] तो मधुर रागिनी उस मुक्तकसे निकलती है। जब फ़ास्टस अद्वितीय सुन्दरी हेलेनको भूतसे वर्त्तमानमें बुलाकर उसका चुम्बन लेता है,[2] तो उसकी कविता ऐन्द्रिकता और सौन्दर्यका सम्मिश्रण बन जाती है। किन्तु जब वही टेम्बरलेन दहाड़ता है,[3] तो अग्नि-स्फुलिंगकी शिखाएँ दिशाओंमें फैल जाती हैं।

पर हमें यह न भूलना चाहिए कि वह नाटककार कवि था, जीवनकी सभी दिशाओंमें वह प्रगति चाहता था और उसके विभिन्न पात्र उसकी इस प्रगति-भावनाके प्रतिनिधि थे। उसकी भावनाएँ उद्दाम थीं ; पर वह चित्रोंको संयत रूपसे हृदयंगम करने लगा था। सिर्फ़ अपनी कविताके सहारे वह शेक्सपियरके समकक्ष खड़ा हो सकता था। उसकी कवितामें अभूतपूर्व प्रवाह है। वह विस्तार-शैलीका कवि है, और यही उसके नाटकोंको प्रभावशाली बनानेमें सहायक होती थी। अपनी समस्त भयानकताओंके साथ मृत्यु मार्लोके लिए एक आकर्षक वस्तु थी। उसके नाटक मृत्युके साम्राज्य हैं, और उनकी चिताओंके बीचसे मार्लोके अग्नि-गान फूट पड़े हैं। आश्चर्यका विषय है कि इस मरणदर्शी लेखकको १५९३ में अपनी हत्याके रूपमें मृत्युका आलिंगन करना पड़ा ! इस महान साहित्यिकके हिस्सेमें ज़िन्दगीके कुल २९ वसन्त ही पड़े थे।

---

1. Zenocrate, the loveliest maid alive,
Fairer than rocks of pearl and precious stone,
Whose eyes are brighter than the lamps of heaven,
And speech more pleasant than harmony.
(*Tam. Pt. 1, Act III, Sc. III*)

Black is the beauty of the brightest day ;
The golden ball of heaven's eternal fire,
That danc'd with glory on the silver waves,
Now wants the fuel that inflam'd his beams.
(*Tam. Pt. 2, Act II, Sc. IV*)

Now walk the angels on the walls of heaven
As sentinels to warn the immortal souls
To entertain divine Zenocrate.

2. Was this the face that launch'd a thousand ships,
And burnt the topless towers of Ilium ?—
Sweet Helen, make me immortal with a kiss.—
Her lips suck forth my soul : see, where it flies !—
Come, Helen, give me my soul again.
Here will I dwell, for heaven is in these lips
And all is dross that is not Helen.
(*Dr. Faustus*)

3. . . . draw thy sword,
And wound the earth, that it may cleave in twain
And we descend into the infernal vaults,
To hale the fatal sisters by the hair,
And throw them in the triple most of hell,
For taking hence my fair Zenocrate.
Raise cavalieros higher than the clouds,
And with the cannon break the frame of heaven ;
Butter the shining palace of the sun,
And shiver all the starry firmament.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धारावाहिक उपन्यास

मुसाहिबजू

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

- ९ -

रात्रिको क़िलेमें उत्सव हुआ—गाना-बजाना, हँसी-मज़ाक, आदर-सत्कार। चरखारीवाली सरकारकी कल्पना क़िलेके भीतर पहुँची। उन्होंने अपनेको वहाँ पाकर देखा कि जितनी स्त्रियाँ उत्सवमें शरीक हुई हैं, गहनोंसे लदी हैं। आनन्द और परिहासका स्रोत फूट पड़ा है। उनके तनपर कोई गहना नहीं है। वे रहे-सहे थोड़े-से गहने भी यह सोचकर छोड़ गई हैं कि दर्शिकाओंके मनपर यह आतंक बैठ जाय कि उन्हें सांसारिक रेल-पेलके प्रति अत्यन्त तटस्थता है। परन्तु स्त्रियाँ उस आनन्दके वातावरणमें भी कानाफूसी कर रही हैं—'चरखारीवाली सरकारके घरमें चूहे दुलत्ती झाड़ते हैं। इनकी गाँठमें कुछ नहीं। यह तो फ़क़ीमस्त हैं।...'

शरीर गरम हो गया और तिलमिली छूटने लगी। परिचारिकाएँ और नौकरानियाँ दिन-भरके परिश्रमके कारण गहरी नींदमें धँस चुकी थीं। जगाकर बातचीत करनेके लिए लालसा हुई; परन्तु स्वाभाविक दृढ़ताने लालसाको ठोकर दे दी, और वे फिर रो उठीं। थोड़ी देर बाद उन्होंने निश्चय किया कि इसी अठवारेमें मैं अपने मायके—चरखारी— जाऊँगी।

भरतगढ़के पहरुए जाग रहे थे। एक ओर रमू और उसका नाती पूरन पहरेपर न होते हुए भी सोए न थे। लल्ली खुर्राटे खींच रहा था। रमू और पूरनमें बहुत धीरे-धीरे बातचीत हो रही थी।

रमू—'बेटा, निमकसे उऋण होनेके लिए यह करना ही पड़ेगा।'

पूरन—'बब्बा, पहले कभी तुमने ऐसा किया है?'

रमू—'लड़ाइयाँ क्या हैं? क्या वे कोई यज्ञ हैं? डाके और लड़ाईमें कोई अन्तर नहीं। इसीलिए डाकेको बग़ावत और डाकुओंको अपने यहाँ बाग़ी कहते हैं।'

पूरन—'काकाजू सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? वे मार डालेंगे।'

रमू—'उन्हें मालूम ही क्यों हो पावेगा?'

पूरन—'कितने आदमी चाहिएँ?'

रमू—'१०-२० बहुत होंगे।'

पूरन—'कोई-न-कोई काकाजूसे कह देगा। शायद सरकार ही उन्हें भेद बतला दें।'

रमू—'ऐसा नहीं होगा। लल्लीको रहस्यमें शामिल कर लेंगे।'

पूरन—'वह डाकेका ज़ेवर स्वीकार कर लेंगी?'

रमू—'क्यों नहीं? लड़ाई द्वारा प्राप्त लूट-पाटकी भूमि और सोना-चाँदी कौन ठुकरा देता है? पुरुष नहीं छोड़ते हैं, तब स्त्रियाँ कैसे इनकार कर देंगी?'

पूरन—'बब्बा, सरकार राजाकी बेटी हैं।'

रमू—'राजा लोग ही तो, बेटा, यह सब कर सकते हैं। हम-तुम थोड़े ही इतना सब पचानेकी शक्ति रखते हैं।'

पूरन—'और लोग तैयार हो जावेंगे? ठकुरासका कोई साथ रहेगा?'

रमू—'लड़ाईमें कटने-मरनेके समय यह सवाल नहीं किया जाता और न उस कामके लिए इस सवालके करनेको इस समय अटक है। हमारी मिहतर-मण्डली ठकुरासके बीचमें से निकल कर आगे बढ़ती है और हाथ करती है। इस काममें भी केवल हमारी ही मण्डली रहेगी। लल्लीको अवश्य साथ ले लेंगे, जिसमें हमारे ईमानकी साख बनी रहे; कोई यह नहीं कह सके कि हम लोगोंने लूटके ज़ेवरमें से छदाम-भर भी अपने लिए निकाल लिया।'

पूरन सहमत हो गया। अन्य मिहतरोंको भी रमूने सलाहमें पक्का कर लिया। लल्लीको भी जगाया। चरखारीवाली सरकारकी उदारता, पदकी महानता और परिस्थितिजन्य उनकी क्षीणता लल्लीके मनको भी व्यस्त कर चुकी थी। अपने ऐसे मालिककी किसी प्रकार भी सुखी करनेकी वांछा उसको हौसला देती रहती थी। लड़ाई भी बड़े प्रकारकी लूट-पाट ही है—रमूका यह सिद्धान्त लल्लीके धर्ममें पहलेसे काफ़ी स्थान घेरे हुए था। इसलिए इस षड्यन्त्रमें अग्रवर्त्ती होनेका अवसर उसने अविलम्ब ग्रहण किया।

उसी समय स्थान और समयके प्रसंगपर चर्चा हुई। दतिया से बहुत दूर जाना किसी-न-किसी प्रकारकी मुठभेड़को आमन्त्रित करना था। साँप मरे और लाठी न टूटे। होली खेल ली जावे और कपड़ोंपर रंग न गिरने पावे। सीधी बात—डाका डालकर ज़ेवर इकट्ठे किए जायँ, चरखारीवाली सरकारकी कमीकी पूर्त्ति की जावे, मुसाहिबजूको मालूम न होने पावे और अपने शरीर भी घात-प्रतिघातसे बचकर सही-सलामत घर लौट आवें।

दलील थी : हमारे ही पेट भरनेके लिए सरकारने अपने गहने एक-एक करके साहूकारोंको भेंट कर दिए है। हमारे ही पैसे साहूकारोंके पास हैं। युद्ध और डाकेमें कोई अन्तर नहीं। इसलिए साहूकारोंपर ही डाका डालना चाहिए। और यह वर्ग प्रतिघात करनेकी समर्थता भी कम रखता था।

दूसरे दिन टोह लगानेपर मालूम हो गया कि कुछ व्यापारी दतियासे बड़ौनी रुपया और ज़ेवर लेकर जा रहे हैं। यह भी मालूम हुआ कि कुछ साहूकारोंकी स्त्रियाँ सोने-चाँदीके प्रचुर आभूषण लिए हुए बैलगाड़ियोंपर इन्हीं साहूकारोंकी आड़-ओट और भीड़-भाड़में बड़ौनी किसी विवाहमें शरीक होनेके लिए

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा रही हैं। रमू, लल्ली और अन्य मिहतर शिकारी सैनिकोंने समय और स्थान तय कर लिया।

- १० -

सन्ध्याके पहले ही गाड़ियाँ दतियासे बड़ौनीके लिए चल दीं। बैल छरछरे थे और गाड़ीवान मुस्तैद। गाड़ियाँ पास-पास चली जा रही थीं और उनपर आगे-पीछे चार बन्दूक़वाले भी बैठे हुए थे। गाड़ियोंमें दतियाके कुछ साहूकार थे और स्त्रियाँ भी थीं। बहुत जल्दी करते-करते कई घण्टेकी देर हो गई। फिर भी अभी समय था। उड़नूकी टौरियाके पास गाड़ियाँ आ गईं।

उड़नूकी टौरियाका भीम गौरव उस समय और भी सघन वृक्षोंसे परिवेष्टित था। कितने श्रम और व्ययसे इस टौरियापर चढ़नेके लिए सीढ़ियाँ बनाई गई होंगी, और इसकी चोटीपर की बैठक और मन्दिर निर्माणके पहले एक साथ ही कितनी खीझ, कितनी लगन और कितनी भक्ति अर्पित करा चुके होंगे। उड़नू की टौरियाका भीम गौरव, विशाल सौन्दर्य, एकान्त भक्ति और विकट प्रयासका मानो सामंजस्य है—मानव-हृदयके पराक्रम और विलासका समन्वय, कल्पनाके मोह और त्यागका सम्मिश्रण।

उड़नूकी टौकरियाके पाससे बड़ौनीके लिए मार्ग सघन बीहड़ वनमें होकर गया है और कई जगह पथरीला है। बड़ौनी और दतियाके लगभग बीचों-बीच रामसागर नामका एक बड़ा तालाब है, जंगलसे घिरा हुआ, पहाड़ियोंसे आवृत्त। एक ओरसे पानीका निकास है। निकासने अपने नालेको गहराई दी है और निरन्तर जल। नालेका घाट औघट है।

इस नालेके पास आते-आते गाड़ियोंको सूर्यास्त हो गया; परन्तु थोड़ा-सा प्रकाश बाक़ी था। मार्गका भयवाला हिस्सा पार कर आए थे। नालेके आसपास झरबेरी इत्यादि छोटे-छोटे पेड़ोंके बिखरे हुए समूह थे और घाटपर घनी करौंदी और अड़ूसे। नालेको पार करके गाड़ियाँ घाट चढ़ी ही थीं कि आगेकी गाड़ीके बैल बिचके और लीक छोड़कर बग़लकी एक चट्टानसे जा टकराए। पीछेकी गाड़ियाँ अटक गईं। दो गाड़ियोंकी ज्वांरियाँ उठ गईं। गाड़ीवान 'क्या हुआ, क्या है?' एक-दूसरेसे पूछने लगे। यकायक २०-२५ आदमियोंने गाड़ियोंको घेर लिया। सबके पास बन्दूकें थीं, सबके चेहरेपर ढाटियाँ चढ़ी हुई थीं। गाड़ियोंमें आगे-पीछे अगल-बगल बैठे हुए बन्दूक़वालोंने अपनी बन्दूकें नीची कर लीं। भौंचक्के रह गए। सोचा, चारों एक ही गाड़ीमें बैठे होते, तो मुक़ाबला कर लेते। साहूकारोंने बन्दूक़वालोंको पुकारा; परन्तु उनके औसान डिग चुके थे। 'क्या है भाई, क्या है भाई?' कहकर चुप हो गए।

आक्रमणकारियोंमें ज़रा आगे एक लम्बा छरहरा मनुष्य था। उसने डाँटकर कहा—'ज़रा भी चीं-चपट की, तो सबको भून डालूँगा। तुरन्त चुपचाप रुपया और गहना हवाले करो।'

साहूकारोंकी पुकारपर उत्तर देनेवाले बन्दूक़वालोंको दो-दो डाकुओंने घेर लिया। स्त्रियाँ रोने लगीं। डाकुओंके उसी मुखिया ने कहा—'स्त्रियोंको कोई नहीं छुएगा। गहना चुपचाप उतारकर रख दो।'

यात्री इधर-इधर हाथ डालने लगे। स्त्रियोंने पैरके चाँदीके ज़ेवर उतारनेका प्रयत्न प्रकट किया; परन्तु डाकुओंके सामने ज़ेवर एक भी नहीं आया। वे लोग समझ गए कि यात्री किसी सहायताके आ जानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसी अग्रवर्त्तीने गाड़ीमें बैठे एक साहूकारके सीनेपर बन्दूक़ अड़ा दी और गहरे धीमे स्वरमें बोला—'अभी तक भलमनसाहतसे काम लिया, अब जैसा करते हो, उसके लिए तुमको रोनेवाले न मिलेंगे।'

एक बुड्ढी स्त्री भी यात्रियोंके साथ थी। अनुनयके साथ वह बोली—'किसीको चोट-जरब मत पहुँचाओ। गहने ले लो और हमारे पास पकवान, मिठाई है, वह खानेके लिए ले लो।'

डाकुओंके अगुएने कहा—'तो जल्दी करो।'

स्त्रियाँ रोती थीं और अपने ज़ेवर उतार-उतारकर रास्तेकी बग़लमें डालती जा रही थीं। आध घण्टेके भीतर गहनोंका ढेर लग गया; परन्तु फिर भी कुछ ज़ेवर यात्रियोंके पास बच गया। स्त्रियोंने पकवान निकाले।

उसी अगुएने कहा—'खाना नहीं चाहिए। लेते जाओ। हम लोग ऐसा खाना नहीं खाते।'

रोते-रोते वही स्त्री बोली—'अब पकवानका ही क्या करेंगे! छुआछूत हो गई है।'

डाकुओंमें से एकने, जो ज़रा पीछे खड़ा था, कहा—'किसीको भी नहीं छुआ है।'

एक गाड़ीमें से एक स्त्री-कण्ठसे यकायक निकला—'ऐं!'

डाकुओंके मुखियाने कहा—'हाँ, ठीक तो है। ज़ेवर उतार कर हमारे हवाले न किया होता, तो छूना तो क्या और न-जाने क्या-क्या न करते।'

डाकुओंने ज़ेवर इकट्ठे किए। गाड़ियाँ आगे बढ़ीं। ज़ेवर लेकर डाकू तेज़ीके साथ वहाँसे चल दिए। स्त्रियाँ रोती-कलपती हुई और पुरुष माथा नीचे किए तथा आह भरते हुए बड़ौनीकी ओर मन्द गतिसे चले। जिस स्त्रीके मुँहसे 'ऐं' निकल पड़ा था, उसने मार्गको निष्कण्टक समझकर उसी गाड़ीमें बैठी हुई एक स्त्रीसे धीरेसे कहा—'गाड़ियोंको इन लोगोंने छू लिया था, पकवान खाने लायक़ नहीं रहे।'

'क्यों?'

'ये लोग नीची जातिके थे—भंगी।'

'कैसे मालूम!'

'मैंने पहचान लिया है।'

- ११ -

डाकू सपाटेके साथ जंगल-जंगल होते हुए उड़नू टौरियाके

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पीछेसे एक वृक्ष-समूहके निकट आकर ठहर गए। पहला काम जो उन्होंने किया, वह डाटियोंका उतारना था और दूसरा आग जलाकर तम्बाकूका पीना। डाटियोंके उतारनेपर रमू, पूरन, लल्ली इत्यादि अपनी-अपनी चिलम पीने लगे। रमूके चेहरेपर विजयका उन्माद था। लल्ली अनमना और चिन्तित था।

रमूने कहा—'इतना ज़ेवर इकट्ठा कर लिया है कि हमारी सरकारको अब चिन्ता न रहेगी।'

लल्लीने अनमने स्वरमें पूछा—'चाँदीके ज़ेवरका क्या होगा? इसको सरकारके सामने पेश नहीं करना चाहिए।'

रमूने तुरन्त उत्तर दिया—'उसको तुम ले लो। हमको बिलकुल उज़र नहीं।'

लल्ली—'यह असम्भव है। हम लोग इसको नहीं ले सकते।'

रमू—'आप हमारे अफ़सर हैं। आप ले सकते हैं।'

लल्ली—'मैं अकेला?'

रमू—'नहीं तो क्या? हम मिहतर लोग न तो उस पकवान को ग्रहण कर सकते थे और न इन ज़ेवरोंको छुएँगे। यदि सरकारको चाँदीका ज़ेवर नज़र नहीं किया जा सकता है, तो किसी कुएँमें फेंक दो।'

लल्ली—'कुएँमें फेंकनेकी अपेक्षा तो उसको बाँट लेना ही अच्छा है।'

रमू—'बँट नहीं सकता, मैं पहले ही कह चुका हूँ।'

पूरन—आप ले लो, माते! बब्बाकी बात मान जाओ।'

लल्ली—'हैं, कैसा? बब्बाकी बात मान जाओ! कैसे मान जाऊँ? या तो चाँदीका ज़ेवर समान भागसे बँटेगा या—या उसका जो-कुछ भी हो।'

रमू—'तब कुएँमें डाल दो। केवल सोनेका लेते चलो और जवाबवालोके हाथों भीतर भिजवा दो। अपने पास इन चीज़ोंको एक क्षण भी नहीं रखना चाहिए। ये अपनी नहीं हैं—अपने मालिककी हैं।'

इसपर कुछ समय तक सब चुप रहे। तम्बाकूकी दूसरी चिलम पी जाने लगी। लल्ली सबसे पहले बोला—'कुएँमें नहीं फेंकना चाहिए।'

रमूने दृढ़ताके साथ अपने प्रस्तावको दुहराया—'तब आप ले लो।'

लल्लीने कहा—'मैं तो नहीं लूँगा।...'

रमूने इस 'तो' में लल्लीकी प्रथम अस्वीकृतिकी तरमीमका आभास पाकर बोला—'तो फिर क्या किया जावे?'

लल्लीने अपना निश्चय प्रकट किया—'सरकारको ही नज़र करवाऊँगा। यदि उन्होंने लौटा दिया, तो फिर वैसा देखा जावेगा।'

रमूने प्रश्न किया—'कहलवाओगे क्या? असली बात ज़ाहिर न होने पावे, नहीं तो मुसाहिबजू कटवा डालेंगे।'

पूरन बीचमें बोल उठा—'मैंने पहले ही कहा था।'

'चुप, चुप,' रमूने धीमे और गहरे स्वरमें ज़रा रोषके साथ कहा—'अभी तुझको बहुत-कुछ सीखना है।' फिर लल्लीसे बोला—'माते, क्या कहलवाओगे आप? जो-कुछ आप कहलवाओगे; वही बात, पूछे जानेपर, हम लोग भी कहेंगे। एकमत हो जाना चाहिए।'

इस बातको लल्ली और पूरन पहले ही सोच चुके थे। खरी करनेके लिए ही चर्चा फिरसे छिड़ी थी। लल्लीने कहा—'चिरूलाके पास महाराज दलपतसिंहके समयका, सैकड़ों बरसोंसे, गड़ा हुआ द्रव्य पड़ा है। उसमें से कुछ अकस्मात् हाथ लग गया है। उसीको नज़र कर रहे हैं।'

रमू—'और अभी बहुत-सा ज़मीनके भीतर चिरूलाके आसपास कहीं पड़ा हुआ है। पता नहीं है।'

लल्ली—'मुसाहिबजूको इसलिए नज़र नहीं किया कि वे आधेसे अधिक तो योंही बाँट-चूँट देंगे, बाक़ी शीघ्र ही अनापशनाप मदोंमें खर्च हो जावेगा। और राजाको खबर लग जावेगी, तो पूरा-का-पूरा, नहीं तो अधिकांश सरकारी खज़ानेमें जमा कर देना पड़ेगा।'

रमू—'सरकार इस बातको मान जावेंगी और मुसाहिबजूसे कुछ कहेंगी भी नहीं।'

सलाह पक्की करनेके उपरान्त ही ये लोग दतियाकी ओर चल दिए। भरतगढ़ दो-दो, चार-चारकी टोलियोंमें पहुँच गए। हाज़िरीका कोई कड़ा नियम था नहीं, इसलिए किसीका सन्देह जाग्रत नहीं हुआ। लल्लीने चाँदीके ज़ेवर अपनी कमरमें बाँध लिए और सोनेके सम्पूर्ण ज़ेवर जवाबवालीके सिपुर्द कर दिए। जवाबवालीको 'चिरूलाके पास गड़ा हुआ धन अचानक मिल जाने की बात' समझा दी और मुसाहिबजूपर प्रकट न होने देनेके लिए आग्रह कर दिया—प्रकट होनेपर कितने अनेक संकट सिर फोड़नेको खड़े हो सकते हैं, यह अच्छी तरह बतलानेकी चेष्टा कर दी।

जवाबवालीने वे सब आभूषण चरखारीवाली सरकारको दे दिए और लल्लीकी बात जितनी उसकी समझमें आई थी, उनके विचारमें बिठला दी। चरखारीवालीको हर्ष हुआ। वह उस हर्षको छिपानेका प्रयत्न करनेपर भी न दबा सकीं। परन्तु उस हर्षकी तलीमें से एक प्रश्न मनमें कई बार उस रात उठा—'क्या यह सोना घरमें रखने योग्य है?' इस प्रश्नकी नोकको उन्होंने इस अनिवार्य सान्त्वना द्वारा झाड़ दिया—'भगवानने घोर समयपर सहायता की है।'

रमूके मनमें किसी प्रकारका अन्तर्विवाद खड़ा नहीं हुआ और न उसके साथी मिहतरोंके मनमें। लल्ली चाँदीके गहनोंके उपयोगके विषयको लेकर प्रातःकाल तक बहुत इधर-उधरकी सोचता रहा, सो न सका।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

- १२ -

लुटे हुए लोगोंमें एक सुभद्रा भी थी। उसकी ससुरालमें ब्याह था। कुछ व्यापारी गाड़ियाँ लेकर बड़ौनी जा ही रहे थे, यह सुभीता देखकर उसके पिताने सुभद्राको एक गाड़ीमें बिठला दिया था। बड़ौनी पहुँचते ही पहला मुहल्ला वेश्योंका मिला। वहीं लगभग सब गाड़ियोंको रुक जाना था। गाड़ियोंके रुकते ही स्त्रियोंने करुण क्रन्दन प्रारम्भ किया। मुहल्लेके लोग इकट्ठे हो गए। 'क्या बात है, क्या हुआ?' इत्यादि प्रश्न अनेक कंठोंसे एक साथ ही निकले। स्त्रियाँ गाड़ियोंसे उतरती जाती थीं और रोती जाती थीं। गाड़ीवान बैलोंको चुपचाप खोल रहे थे। व्यापारी अपना-अपना सामान गाड़ियोंमें से उतारते चले जा रहे थे, परन्तु उत्तर कोई नहीं दे रहा था। मुहल्लेवाले चकित और जिज्ञासाविह्वल थे।

एक गाड़ीवानने स्त्रियोंके प्रति प्रश्न किया—'पकवानकी गठरियोंका क्या होगा?'

'कुत्तोंको डाल दो।'—सुभद्राने सिसकते-सिसकते, धीरेसे उत्तर दिया।

गाड़ीवानने कहा—'बलोंको खिलाए देते हैं।'

मुहल्लेवाले और भी हैरान हुए। व्यापारी अपनी गठरी-पुटरी इकट्ठी करके एक जगह खड़े हो गए, घरोंमें नहीं घुसे। मुहल्लेवालेने व्यापारियोंके बिलकुल पास आकर धीरेसे पूछा—'बात तो बतलाओ।'

'क्या बतलावें', एक व्यापारीने कहा—'लुट गए।' और उसका गला भर आया।

मुहल्लेवाला घबराहटके साथ बोला—'डाका पड़ गया है? गाँवके इतने समीप! कोई मारा तो नहीं गया?

'मारा तो कोई नहीं गया; पर ले सब गए।'

'कहाँपर पड़ा?'

'रामसागरके नालेपर।'

'इतने निकट! कौन लोग थे, पहचाना?'

'हाँ, सुभद्राने पहचान लिया। दतियाके थे।'

'कौन थे? कौन थे?'

'यहाँ नहीं बतला सकते। घरमें चलकर बतलावेंगे।'

गाड़ीवानने पकवान खोल-खोलकर बैलोंके सामने डालने शुरू कर दिए। उक्त व्यापारीने मुहल्लेवालोंसे अनुरोध किया—'हमें छुओ मत। नहा लें, तब घरोंमें घुसेंगे।'

मुहल्लेवालोंने पूछा—'क्यों?'

व्यापारीने रुखाईके साथ, परन्तु मन्द स्वरमें उत्तर दिया—'कह दिया कि सब बात भीतर चलकर कहेंगे, धीरज तो धरो।'

पानी मँगवाकर सभी स्त्री-पुरुषों और गाड़ीवानोंने स्नान किया। रेशमके कपड़ोंपर जलके केवल थोड़े-से छींटे डाल दिए; बाक़ी सब कपड़े धोए। मुहल्लेवालोंकी कल्पनाको सन्देह करनेमें विलम्ब नहीं लगा—हो-न-हो मिहतरोंने डाका डाला है, और मिहतर किसी सरदारके सिपाही हैं।

सुभद्राकी ससुरालवाले घरमें सब लोग एकत्र हुए। बैलोंको बेड़ोंमें बाँधकर गाड़ीवान भी आ गए। चिलमके साथ-साथ पूछ-ताछ और बातचीत चल पड़ी।

'यह कैसे निश्चय हुआ कि मुसाहिब दलीपसिंहजूके ही वे सब मिहतर थे?'

'सम्भव है, किसी और सरदारके भी मिहतर डाकेमें शामिल हुए हों; परन्तु मुसाहिबजूके ज़रूर थे और उनका दायाँ हाथ लल्ली लोधी भी था।'

'गलेके स्वरसे ही दतियावाली बहूने पहचाना। और कोई प्रमाण तो है नहीं?'

'जब कोई प्रमाण लेनेवाला दिखलाई पड़ेगा, तब प्रमाण भी दे देंगे।'

'वैसे आपसमें तो सब बातें तय कर ही लेनी चाहिएँ।'

'दतियावाली बहू इन सबको जानती है। उसने पहचान लिया। जब एक डाकूने पकवानके सम्बन्धमें कहा कि किसीने छुआछूत नहीं की है, अपने पकवान लिए जाओ; तब हम भी लल्लीका स्वर पहचान गए। दतियावालीके मुँहसे तो यकायक 'ऐं' निकल पड़ा था और वह नाम भी लेनेवाली थी; परन्तु अन्य स्त्रियोंने मना कर दिया, नहीं तो वह नाम ले-लेकर उन सबोंको बातें सुनाती। हमारे ही क़र्ज़पर तो ये सरदार और सिपाही पलते हैं और हमारी ही जड़ खोदना चाहते हैं!'

'जब अटक पड़ती है, तो 'सेठजी' और 'साहजू' और जब अटक निकल जाती है, तब बनिया-बक्काल!'

'हमारी भी भगवान कभी सुनेंगे।' मुहल्लेवाले सहानुभूति-पीड़ित थे। एक बोला—'इन अत्याचारियोंके कुचलनेवाले भी रामने उत्पन्न कर दिए हैं। इनका एक दिन ऐसा हाल होना है कि मार खाते जावेंगे और चों तक नहीं कर पावेंगे।'

'अभी तो वे लोग और वे दिन दूर हैं।'

'नहीं तो; अंगरेज़ोंसे जो लिखा-पढ़ी रियासतोंकी हुई है, उसमें साफ़-साफ़ लिखा है कि लूट-मार बन्द कर दी जावे।'

'खैर, अब क्या करना चाहिए, सो बतलाओ। जागीरदार साहबके पास चलें। डाका उन्हींकी हदमें पड़ा है।'

'देखो, ऐसा न होवे कि उल्टी आँतें गले पड़ें। ठाकुर ठाकुर सब एक हैं और मुसाहिबजू चरखारीवालोंके दामाद हैं, राजाके भाई-बन्द।'

'परन्तु हमारे जागीरदार हम लोगोंके लिए कट मरेंगे।'

'आशा तो ऐसी ही है। इनके पुरखे दीवान...जू हम लोगोंके लिए, सूखे पड़े थे। अब भी उन्हींके वंशजोंका सहारा

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Gyaan Kosha

है। नहीं तो हमने तो मऊ चले जानेका निश्चय कर लिया है। वहाँ नातेदारी है। झाँसीके मराठोंका राज्य है। इतना अन्धेर नहीं है।'

अन्तमें व्यापारी-समुदायने बड़ौनीके जगीरदारके सामने अपनी फ़रियादका पेश करना तय किया, और वे सब-के-सब उसी समय उनकी गढ़ीमें पहुँचे। मुजरा करनेके बाद व्यापारियोंने रो-रोकर अपनी व्यथा जागीरदारको सुनाई और अपना सन्देह भी प्रकट किया।

जागीरदार मसनदसे टिके हुए देर तक हुक्का पीते रहे। बहुत शान्त और धीमे स्वरमें बोले—'बहुत बुरा हुआ। कल राजाके पास समाचार पहुँचना चाहिए।'

व्यापारियोंके मुखियाने विनय की—'महाराज, हमारी पहुँच तो महलों तक नहीं हो सकती। हमको तो दरवाज़ेपर ही दुत्कार दिया जावेगा।'

जागीदारने दृढ़ताके साथ कहा—'हमारी पाती लेते जाओ। पाती राजाके दीवानके हाथमें देना।'

मुखिया हाथ जोड़कर बोला—'दीवान साहब पाती मुसाहिबजूके पास पहुँचा देंगे और फिर हमारी और भी खराबी होगी।'

जागीरदार मूँछोंपर हाथ फेरकर कुछ सोचने लगे।

मुखियाने सोचा कि जागीरदार साहबकी पाती भी हाथसे खिसकी। बोला—'महाराजकी जैसी मर्ज़ी हो। मैंने विनती इसलिए की कि मुसाहिबजूको अपने मिहतर इतने प्यारे हैं कि वे कोई न्याय नहीं करेंगे। हाँ, राजाके हाथमें पाती पहुँच जाय, तो कुछ हो जावेगा; नहीं तो हमको हुकुम मिल जावे, तो हम लोग अपनी बंजी-भौंरी और कहीं कर खायँगे।'—यह कहकर मुखिया ढार मारकर रोने लगा।

जागीरदारको डाकेकी फ़रियादपर इतना क्षोभ नहीं हुआ, जितना व्यापारियोंके बार-बार रो पड़नेपर। वह डाँट-डपटकर उन लोगोंको चुप करना चाहते थे; परन्तु उनके संयमने क्षोभको दूसरा मार्ग पकड़ा दिया। कहने लगे—'मुझको तुम्हारा औरतों की तरह रोना अच्छा नहीं लगता। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे साथ बड़ी ज़्यादती हुई है और हम लोगोंका अपमान हुआ है; परन्तु हम लोग अभी जीवित हैं। हम तुम्हारे लिए राजासे भी टक्कर लेनेको तैयार हैं। हमारे जंगल, चुंगी-चबूतरे, न्यायालय सब राजासे अलग हैं। इसलिए हमारी पाती राजाके ही पास ले जाओ और कल ले जाओ। ऐसा मत सोचो कि तुम्हारी पीठपर कोई नहीं है। बड़ौनीमें रहो और सुख-शान्तिके साथ रहो। कभी हमारे सामने बड़ौनी छोड़नेकी बात मत करना।'

व्यापारी लोग जागीरदारके पाससे चले आए। दूसरे ही दिन उनको जागीरदारकी पाती मिल गई। परन्तु राजाके पास यह पाती दो-तीन दिनोंके बाद पहुँची। पाती पहुँचानेके लिए व्यापारियोंको काफ़ी परिश्रम, चातुर्य और पैसा भी खर्च करना पड़ा। पातीमें केवल डाकेका वृत्तान्त था। मुसाहिबजूके सिपाहियोंपर उसमें कोई सन्देह प्रकट नहीं किया गया था; परन्तु यह स्पष्ट तौरपर लिखा गया था कि दतियाके किसी सरदारके मिहतर सिपाहियोंने डाका डाल है।

राजाको मुसाहिबजूके मनचले सिपाहियों और मुसाहिबजूकी निर्धनताका हाल मालूम था, इसलिए उनको सन्देह करनेमें विलम्ब नहीं हुआ। परन्तु उन्होंने बात मनमें रख ली। व्यापारियोंको उत्तर दिया गया—'घबराओ मत, जाँच-पड़ताल की जावेगी और न्याय होगा।'

मनकी बात

श्री सीताराम सेकसरिया

२१ फरवरी, १९४२

सुबह प्रार्थना करके पूज्य बापूजीको एक पत्र लिखा, जिसमें मैं जमनालालजीके लिए क्या कर सकता हूँ, यह लिखा और अपनी सारी मानसिक, शारीरिक और आर्थिक हालत भी लिखी तथा उनसे आज्ञा चाही कि ऐसी हालतमें क्या करना चाहिए। साढ़े सात बजे रामायणकी कथामें शरीक हुआ। स्नान-भोजन करके श्री कृष्णदासजी जाजू (जो वर्धाके ही नहीं, मारवाड़ी-समाजके और महाराष्ट्र-प्रान्तके एक सन्त पुरुष हैं और जमनालालजीके नज़दीकके मित्र और राजनीतिक गुरु भी हैं) से बातें हुईं। श्री जाजूजीकी मंशा थी कि जमनालालजीकी स्मृतिके लिए एक बड़ी रक़म इकट्ठी करके उनका स्मारक स्थापित किया जाय। इसलिए उनके साथ श्री घनश्यामदासजीसे सेवाग्राम जाकर मिला। पर श्री घनश्यामदासजीको यह बात कम जँची और बापूजीकी राय भी कम मालूम होती थी, इसलिए यह विचार यहीं खत्म कर दिया गया। दो बजे फिर जमनालालजीके सम्बन्धमें एक मीटिंग थी, उसमें शामिल हुआ। आज भी पूज्य गांधीजीने कई बातें बताईं। कई बार तो बोलते-बोलते वे इतने विह्वल हो गए कि उनकी ज़बान रुकी-सी जाती थी। कई कार्यकर्त्ताओंने गांधीजीको पत्र लिखे हैं, जिनमें जमनालालजीके लिए वे क्या कर सकते हैं, यह विचार प्रकट किए हैं। गांधीजीने कहा कि मुझे जो पत्र मिले हैं तथा लोगोंसे व्यक्तिगत बात भी हुई है, उनमें कई पत्र तो बहुत ही अच्छे हैं। बापूजीने कहा जिन लोगोंने उर्दू पढ़नेका निश्चय किया है, उन्हें वह आज ही शुरू कर देनी चाहिए। रातमें घर लौटनेमें देर हो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चुकी थी ; पर आज उर्दू पढ़ना तो शुरू करना ही था, इसलिए रातमें थोड़ी पढ़कर ही सोया ।

२१ मार्च

दस बजेके क़रीब नासिकसे वर्धा लौटा । स्नान-भोजनादि करके सेवाग्राम गया । पूज्य बापूजी बराबर काममें ही रहते हैं । उनके पास फ़ुर्सतका तो नाम ही नहीं। उनसे बातें करनी हैं, उन्होंने भी बात करनेके लिए कहा था ; पर समय नहीं मिलता। यहाँ रहकर उनके पास बैठे-बैठे अन्य लोगोंके साथ उनकी जो बातें होती हैं, उन्हें सुननेमें बड़ा आनन्द आता है, जानकारी बढ़ती है, बहुत-सी बातें नई मालूम होती हैं तथा गांधीजीकी विचार-धारा, कार्य-पद्धति और सतर्कता-जागरूकताका ज्ञान होता है । मेरी मान्यता है कि गांधीजीसे बातें करनेकी अपेक्षा उनकी बातें सुननेमें ज़्यादा लाभ होता है । तो भी जिन बातोंके बारेमें उनसे आदेश लेना हो, वे बातें किए बिना तो काम नहीं चलता, और मैं जहाँ तक बन पड़ता है, गांधीजीसे ऐसी ही बातें करता हूँ । पन्द्रह वर्षके सम्पर्कमें बीसों-पचासों बार उनके पास बैठनेका मौक़ा मिला है । इससे मेरा यही अनुभव है कि जहाँ तक बन पड़े, उनका समय कम-से-कम ही लेना अच्छा है । मेरे जानेपर पहली बात उन्होंने यह पूछी कि उर्दू कहाँ तक सीखी? जितनी-सी उर्दू मैं लिख-पढ़ सका था, बताई । जानेके बारेमें पूछा, तो मैंने कहा कि मंगलवारको जानेका विचार है । बापूजी बोले—'पाँच-सात दिन यहाँ रहकर प्यारेलालके पास उर्दूका अभ्यास बढ़ा लेते ।' श्री घनश्यामदासजीने स्वर्गीय जमनालालजीके बारे में एक छोटी-सी किताब लिखी, उसकी पाण्डुलिपि पढ़नेके लिए दी । आजकल बापूजी उर्दू-हिन्दुस्तानीके बारेमें काफ़ी विचार करते हैं । उनकी मंशा यह मालूम होती है कि हिन्दी-भाषा-भाषी लोगोंको उर्दू-लिपि और भाषा सीखनी चाहिएँ। मैं तो नियमित रूपसे उर्दू पढ़ता हूँ । कारण, बापूजीसे वादा किया है कि उर्दूमें जल्द-से-जल्द एक पत्र आपको लिखूँगा । मेरे यहाँ एक सज्जन रहते हैं, जो लिखे-पढ़े हैं ; पर गांधीजीके विचारोंके विरोधी-से हैं—खासकर हिन्दुस्तानीके बारेमें । मेरी उनसे बातें होती रहती हैं । मुझे उनका तर्क ठीक नहीं जँचता, तो भी उनको जिस तरह जवाब देना चाहिए, उस तरह नहीं दे पाता । जवाबमें ज़रा गुस्सा-सा या तिरस्कार-सा था । यह न तो तर्ककी दृष्टिसे ठीक कहा जा सकता है और न व्यक्तित्वके विकासके लिए ही ठीक है । प्रत्येक व्यक्तिको गम्भीर और सहनशील होना चाहिए । हो सकता है कि सामनेवालेकी बात ठीक हो और हमारी समझमें न आती हो । यह कैसे माना जा सकता है कि हम जो समझते हैं, वही ठीक है? जब तक हमको न जँचे, तब तक अपना आग्रह रखना ठीक है ; पर सामनेवालेके प्रति क्रोध या तिरस्कारका भाव तो असंस्कारिता ही कहा जायगा ।

२२ मार्च

नित्यके कामोंसे फारिग़ होकर पूज्य बापूजीके पास सेवाग्राम गया । बापूजी अपने काममें व्यस्त थे । मैं उनकी कुटिया में जाकर उनके पास बैठ गया । दो मुसलमान सज्जन बापूजीसे मिलने आए थे । एक मद्रासके थे और एक सिन्धके । एक तो ज़मींदार थे, दूसरे शायद कोई पत्र-सम्पादक । उन्होंने बापूजी से हिन्दू-मुस्लिम-एकताके सम्बन्धमें हिदायतें चाहीं । बापूजीने कहा—'मैं नई हिदायतें क्या दूँ? मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, वही मेरी हिदायत है । खादीके द्वारा, ग्रामोद्योगके द्वारा हज़ारों मुसलमान बहनोंको, जुलाहोंको काम देता हूँ और ज़्यादा काम देनेकी, उनकी तकलीफ़ोंको कम करनेकी, कोशिश करता हूँ। यही मेरी हिदायत है । आपको यह ठीक जँचे, तो आप भी मेरे काममें मदद कीजिए ।' वे भाई तो राजनीतिक हिदायत लेने आए थे और गांधीजीने ऐसी बात कह दी, जिससे उनकी भूखको एक कौर भी नहीं मिला । उन्होंने फिर कहा कि यह तो ठीक है, पर सियासी मसलोंपर भी तो कुछ कहिए। गांधीजीने कहा—'राजनीतिकी क्या बात करूँ? मेरी कोई सुननेवाला हो, तब तो । क्या एक मिनटके लिए भी हिन्दू-मुसलमान आपसमें लड़ सकते हैं? इसलिए मैंने धीरजका पल्ला पकड़ रखा है । बन पड़े जितना प्रयत्न करता हूँ; पर यह विश्वास लिए बैठा हूँ कि हिन्दू-मुसलमान परस्पर दुश्मन बनकर रहें, यह सही नहीं है । और अन्तमें तो जो सही है, वही होगा । इसलिए एक दिन हिन्दू-मुसलमानका प्रेम भी अवश्य होगा ।'

इसी तरहकी बातें गांधीजीकी कुटियामें होती रहती हैं और साथ-साथ डाकका काम भी होता रहता है । गांधीजीकी डाक सुरसाके बदनकी तरह बढ़ती ही जा रही है, जिसको समेटनेके लिए तीन-चार आदमी—सर्वश्री महादेवभाई, प्यारेलाल, किशोरलालभाई और आजकल राजकुमारी अमृतकौर भी—हैं। खुद बापूजीको भी बहुत ज़्यादा समय और शक्ति इसमें लगानी पड़ती है । फिर भी समूची डाक सिमट नहीं पाती ! शामको वहीं भोजन किया । बापूजी घूमने गए, तो उनके साथ मैं भी हो लिया । साथमें आश्रमके कई बच्चे और बहनें भी थीं। बच्चोंसे विनोद करनेका एक अच्छा मौक़ा था । गांधीजी बच्चोंके साथ जिस तरह खेलते हैं, उसमें बच्चे उस सत्तर वर्षके बूढ़ेको अपनी उम्रका अनुभव करते हैं । बच्चोंको गांधीजीके साथ खेलनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं होता । वे खुलकर गांधीजी को चिढ़ाते हैं, हठ करते हैं और उनकी लाठी छीनकर भाग जाते हैं । यह एक खासा अच्छा और जीवनप्रद विनोद रहता है। ताज्जुब तो यह है कि इस आदमीमें कितनी गम्भीरता, कितना धीरज और कितना बाल-स्वभाव क़ुदरतने एक ही साथ भरा है! लौटकर प्रार्थनामें शरीक हुआ । उसके बाद थोड़ी देर तक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बापूजीसे अपनी व्यक्तिगत बातें कीं। एक बात और हुई। मैंने उनसे पूछा कि सार्वजनिक संस्थाओंके चलानेमें, उनके लिए खर्च करनेमें, इफ़रातसे खर्च करना अच्छा है या कंजूसीसे? बापूजीने कहा—'सार्वजनिक पैसेका अच्छे-से-अच्छा उपयोग होना चाहिए।' मैंने कहा—'सवाल यह है कि ज़्यादा वेतनके कर्मचारी रखे जायँ या नहीं?' वे बोले—'जिन लोगोंके पीछे खर्चकी ज़िम्मेदारी ज़्यादा है, उनको सार्वजनिक संस्थामें न लेना ही अच्छा है। यदि कोई बहुत ही योग्य आदमी हो, जिससे संस्थाको बहुत लाभ मिलनेकी आशा हो, तो बात दूसरी है। लेकिन सार्वजनिक कामोंमें वेतनकी दृष्टिसे काम करनेवाला आदमी सार्वजनिक संस्थाओंके लिए ज़्यादा अनुकूल नहीं हो सकता। त्याग और सेवा-भाववाला कर्मचारी ही संस्थाके कामोंमें सहायक हो सकता है, जो रात-दिन वहीं रहे।'

२७ मार्च, कलकत्ता

लड़ाईकी खबरें खराब आ रही हैं। हिन्दुस्तानपर खतरा दिन-दिन बढ़ रहा है। जापान बर्मामें बहुत आगे बढ़ आया है। लोगोंमें घबराहट बढ़ती जा रही है। इधर अंगरेज़ सरकारने हिन्दुस्तानसे समझौता करनेके लिए क्रिप्स साहबको भेजा है। आज महात्माजी उनसे मिले और सवा दो घण्टे बातें कीं। पता नहीं, क्या बातें हुईं; पर उन्होंने अपना युद्ध-विरोधी विचार समझाया मालूम होता है। और भी देशके अनेक बड़े-बड़े लोगोंसे क्रिप्स साहबकी मुलाक़ातें हो रही हैं। इस महीनेके अन्त तक कोई परिणाम सामने आ जानेकी उम्मीद है। पर आजकी स्थितिमें अंगरेज़ोंके साथ क्या समझौता हो सकता है? यदि अंगरेज़ हिन्दुस्तानको पूर्ण स्वाधीन देश मान लें, तब तो सब ठीक हो जाय; पर वे ऐसा नहीं करेंगे। यह अंगरेज़ी स्वभावके विरुद्ध है। जब तक बन पड़ेगा, वे हिन्दुस्तानपर अपना कुछ-न-कुछ प्रभुत्व रखना चाहेंगे। ऐसी हालतमें आज समझौता होनेका कोई मूल्य नहीं। देखें क्या होता है।

३० मार्च

सर स्टफ़र्ड क्रिप्सने, जो कई दिनोंसे हिन्दुस्तानके प्रमुख लोगों और संस्थाओंके प्रतिनिधियोंसे मिल रहे थे, आज अपना वह प्रस्ताव प्रकाशित करा दिया, जिसमें अंगरेज़ सरकार हिन्दुस्तानको किस तरहकी और कहाँ तक स्वाधीनता देनेका विचार करती है। उन प्रस्तावोंके पीछे अगर सचाई हो और अंगरेज़ युद्ध जीत जायँ, उसके बाद उनका इरादा ठीक रहे, तो प्रस्ताव बुरे नहीं हैं। यदि अंगरेज़ोंका इरादा ठीक न हो, तो इन प्रस्तावोंमें गोलमाल करनेकी काफ़ी गुंजायश है। इसलिए मेरी समझमें कांग्रेस इन प्रस्तावोंको कैसे स्वीकार करेगी? इन प्रस्तावोंमें आज कुछ भी अधिकार नहीं दिया गया है; युद्ध समाप्त होनेके बाद ही वे काममें लाए जायँगे। यह सच है कि आजकी परिस्थितिमें ये प्रस्ताव पूरे-पूरे काममें नहीं लाए जा सकते, तो भी आज जो-कुछ किया जा सकता है, वह तो करना ही चाहिए। इसीलिए तो गांधीजीने इन प्रस्तावोंको 'पोस्ट-डेटेड चेक' कहा है। आज कुछ भी अधिकार न मिले, तब कांग्रेस किस बिनापर ज़िम्मेदारी ले? मेरी तो यही धारणा है कि कांग्रेसके साथ समझौता नहीं हो सकेगा। यदि इन प्रस्तावोंमें सुधार हो जाय, या कांग्रेसको यह विश्वास हो जाय कि प्रस्ताव आगे ठीक तरहसे काममें लाए जायँगे, तो बात दूसरी है। लेकिन आजका सवाल तो सामने है ही। यदि आज हमें कुछ नहीं मिलता, तो काम कैसे किया जाय? सब बातें सोचनेपर यही ठीक लगता है कि जो-कुछ होगा, वह हमारी ताक़त और शक्तिसे ही होगा।

८ अप्रैल

सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सके साथ हिन्दुस्तानके नेताओंकी कई दिनोंसे जो बातें चल रही हैं, उनकी तरफ़ दुनियाके हर राजनीतिज्ञका ध्यान लगा हुआ है। आज सुबहके अखबारोंसे ऐसा मालूम होता है कि कांग्रेस या दूसरे राजनीतिक या साम्प्रदायिक संगठनोंके साथ समझौता न हो सकेगा। कांग्रेसका निर्णय कलके अखबारोंमें प्रकाशित हो जायगा। यह खबर कई कारणोंसे अच्छी लगी और कइयोंसे बुरी भी। पर अन्तमें यही सोचा कि देशके बड़े-से-बड़े आलादिमाग़ देशभक्त और त्यागी पुरुष इस समस्याको समझने-सुलझाने और इस महान् संकटके समय देशकी इज़्ज़तकी रक्षा करनेके लिए जो चेष्टा कर रहे हैं, वे जो-कुछ करेंगे, अच्छा ही करेंगे। शामको रेडियोसे खबर आई कि कांग्रेसके साथ समझौते की आशा जो भंग हो गई थी, वह आज फिर दुपहरकी बातोंके बाद सजीव हो गई है और ऐसा समझा जाता है कि राष्ट्रीय सरकार क़ायम हो सकेगी। इसी बड़ी समस्याको सुलझानेमें देशके बड़े-से-बड़े लोग रात-दिन लगे हुए हैं।

१२ अप्रैल

इतने दिनोंकी दौड़-धूपके बाद क्रिप्स साहब लन्दनसे जो भेंट लेकर आए थे, उसीको लेकर वापस लौट रहे हैं! कांग्रेस, मुस्लिम-लीग, हिन्दू-महासभा आदि सबने वह भेंट लेना अस्वीकार कर दिया! सर स्टैफ़र्ड क्रिप्सने भी कह दिया है—'ब्रिटिश सरकारने जो प्रस्ताव मेरे द्वारा हिन्दुस्तानके पास भेजा था, वह अब वापस ले लिया गया है। हिन्दुस्तानके सामने यह बहुत अच्छा मौक़ा आया था, मुझे दुःख है कि इससे वह लाभ न उठा सका।' आजकलमें ही क्रिप्स साहब इंग्लैण्ड लौट जायँगे। मेरी निगाहमें कांग्रेसने जो निर्णय किया है, वह बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण है। देखें आगे क्या होता है? अंगरेज़ हमपर विश्वास नहीं करते, और अंगरेज़ोंका पिछला इतिहास हमें बाध्य करता है कि हम उनपर विश्वास न करें। इसी वजहसे हमारे और उनके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बीच जो खाई है, वह पट नहीं सकती। हमें अपनी शक्ति और संगठनसे ही इस स्थितिका अन्त करना होगा।

९ मई

नित्यके काम नियमानुसार चल रहे हैं। दो-ढाई महीनेसे उर्दू पढ़नेका क्रम भी बराबर निभ रहा है। इस बार इलाहाबादमें जो ए०आई०सी०सी०की मीटिंग हुई, उसमें शरीक न हो सका। भाई बसन्तलालजी गए थे। आज उनसे बातें हुईं, तो उनका कहना था कि वहांकी कार्यवाहीका कोई अच्छा असर उनके मन पर नहीं पड़ा। बात यह है कि कांग्रेसके ऊपरके लोगोंमें काफ़ी मतभेद है। कोई भी निर्णय करनेमें ज़्यादा देर होती है। जो निर्णय होता है, उसमें भी सबका पूरा दिल नहीं होता। आधे मनके कामोंमें जो हालत होती है, वही हालत इस समय कांग्रेस-कार्यकारिणीके कामोंकी है। वास्तवमें यह स्थिति दुखद है। आजकी जैसी नाज़ुक स्थिति हमारे सामने सैकड़ों वर्षोंमें नहीं आई और शायद आगे भी जल्दी आनेवाली नहीं। ऐसे मौक़ेपर हमें सुदृढ़ और निश्चित नेतृत्वकी ज़रूरत है। वह नेतृत्व कांग्रेस ही कर सकती है। पर बदक़िस्मतीसे कांग्रेस आज वैसी स्थितिमें नहीं है। कारण, कांग्रेसके नेताओंमें एक प्रकारका बुद्धि-भेद पैदा हो गया है। इसका कारण शायद गांधीजीकी अहिंसामें नेताओंके पूर्ण विश्वासकी कमी हो। जो भी हो, दुनिया एक बहुत बड़े परिवर्त्तनके अन्दरसे गुज़र रही है। संसारव्यापी इन्क़लाब तेज़ीसे आ रहा है। इससे हमारा देश भी बच नहीं सकता। इस देशमें भी बड़े-बड़े परिवर्त्तन होंगे ही। पर ये हमारे किए हों, हमारी अपनी ताक़त और बुद्धिसे हों, तो इनका फल भी ज़्यादा अच्छा हो। ऐसे मौक़ेपर हमें ज़्यादा सुसंगठित होनेकी ज़रूरत है।

१ जून

आजकल तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए घरमें ही रहना पड़ रहा है। अच्छा तो नहीं लगता, पर कोई उपाय नहीं। चार बजेके क़रीब हवाई-हमलेके खतरेकी घण्टी बजी। लोग अपने-अपने घरोंमें चले गए, तो भी हज़ारों आदमी योंही बाहर घूम-फिर रहे थे। यदि यहाँ बम गिरें—और नागरिक हिस्सों में गिरें—तो हज़ारों आदमी मर जायँगे। पता नहीं क्या होगा? पर स्थिति निहायत नाज़ुक है, क्योंकि सरकार और जनताका सहयोग नहीं है। सरकार हिन्दुस्तानपर क़ब्ज़ा रखना चाहती है, जनताके दिलपर नहीं। युद्धमें जो सहायता यहाँसे मिल रही है, वह या तो भयसे मिल रही है, या लालचसे। व्यापारी लोभवश सहायता करते हैं और देहातोंके लोग भयवश। पर सरकारका काम तो चल ही रहा है। सिपाही लड़ाईमें जाते हैं, मरते भी हैं; पर देशके लिए नहीं। पैसेके लिए मरने-वालोंमें और देशके लिए मरनेवालोंमें जो अन्तर है, उसको सरकार समझनेके लिए तैयार नहीं। हालत बड़ी नाज़ुक है। चारों ओर काफ़ी असन्तोष और कष्ट है।

७ जून

मेरे एक मित्र मिलने आए। वे १७-१८ बरस पहले इंग्लैण्ड गए थे और इस लड़ाईके शुरू होनेके डेढ़ बरस बाद हिन्दुस्तान लौटते समय रास्तेमें जिस जहाज़में वे थे, उसके टारपीडो हो जानेपर संयोगवश ही बचे। बादमें एक वर्षसे भी ज़्यादा वे इधर-उधर भटकते रहे। कुछ काल तक उन्हें ब्रिटिश क़ैदी होकर जर्मनीकी जेलमें भी रहना पड़ा। बहुत-सी कार्यवाहियों और मुसीबतोंके बाद, जिसका एक लम्बा इतिहास है, किसी तरह वे हिन्दुस्तान पहुँचे। उन्हें देखकर पहचानना मुश्किल था। वे दुबले-पतले, काले और कमज़ोर हो गए थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनकी लम्बाई भी ढाई इंच कम हो गई थी। रीढ़की हड्डी सिकुड़कर छोटी हो गई थी और एक प्रकारका कूब निकल आया था। उनको देखकर आश्चर्य होता है। लन्दनमें वे जिस मकानमें रहते थे, वह बम गिरनेसे ध्वंस हो गया था; लेकिन वे बच गए। इसके बाद जब वे दूसरे मकानमें गए, तो उसकी भी वही हालत हुई। फिर हिन्दुस्तानके लिए चले, तो जहाज़ डूब गया। फिर ब्रिटिश भेदियोंने पीछा किया। इसी बीच जर्मनोंने पकड़कर उन्हें जेलमें डाल दिया। आज उनकी मानसिक हालत यह है कि वे एक-एक शब्द बोलते समय सशंक रहते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं फिरसे फँस न जायँ! उनसे कोई प्रश्न किया जाता है, तो साफ़ उत्तर देनेमें डरते हैं। तब भी उनसे जो बातें हुईं, उनसे पता लगता था कि इस युद्धमें अंगरेज़ोंकी हालत निहायत नाज़ुक है। इन सज्जनसे मेरा बहुत पुराना परिचय है और इनकी बातोंपर अविश्वास नहीं किया जा सकता। जो हो, इनकी बातोंसे यह मालूम होता है कि मनुष्यकी सारी कार्यवाहियोंके बाद भी कोई ऐसी शक्ति है, जो उसके भाग्यका नियन्त्रण करती है।

१८ जून

इलाहाबादसे पं० सुन्दरलालजी आए हैं। उनका हिन्दू-मुस्लिम एकताका मिशन मुझको बहुत पसन्द है। इस विषयमें मेरे और उनके विचारोंमें काफ़ी मेल है। मेरी निगाहमें उनका यह काम देश-हितका ही नहीं, सांस्कृतिक उन्नतिका भी है। सर्वधर्म-समन्वयकी, यानी सब धर्मोंके प्रति आदर रखनेकी, वृत्ति उस हर आदमीमें होनी ही चाहिए, जो धर्मपर विश्वास करता हो।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गांधी-योजना

श्री महादेव साहा

पिछले अगस्त और सितम्बरके अंकोंमें हमने गांधी-योजनाके सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक पहलुओंपर प्रकाश डाला था। उससे पाठकोंको पता चल गया होगा कि योजनाको कितने ग़लत सिद्धान्तों और अनैतिहासिक तथा प्रतिगामी बुनियादपर खड़ी करनेकी कोशिश की गई है। इस लेखमें हम योजनाके दूसरे भाग--यानी आर्थिक पहलू--को लेना चाहते हैं। भारतीय पूँजीपतियोंकी तथाकथित बम्बई-योजना १०,००० करोड़ रुपएसे १५ सालमें हमारी आमदनी दूनी करने और हमारे हाथोंमें स्वर्गीय सुख ला देनेका सब्ज़बाग दिखाती है, तो गांधी-योजनामें ३,५०० करोड़ रुपए और १० सालके समयमें ब्रिटिश भारत के समग्र लोगोंको सुखी बना देनेका दावा किया गया है। योजनामें सबके लिए स्वास्थप्रद भोजन (२६०० कैलोरी गरमी पैदा करनेवाला), काफ़ी कपड़ा (कम-से-कम २० गज़ फ़ी-आदमी फ़ी-साल), हर आदमीके लिए १०० वर्गफीट रहनेकी जगह, मुफ़्त अनिवार्य बुनियादी तालीम, मर्द-औरतोंके लिए क्रमशः दवा और ज़च्चाखानोंका इन्तज़ाम, सभीके लिए डाकखाने, बीमा, बैंक वग़ैरहकी सुविधा और खेल-कूदके लिए मैदानों, लोकमनोविनोद के लिए नाचों, रामलीलाओं और भजन-मण्डलियोंकी व्यवस्था की गई है। इसमें ९० प्रतिशत लोगोंकी आमदनी सिर्फ़ गाँवोंको ही यथासम्भव आत्म-निर्भरशील सहयोगी तबक़ोंके रूपमें संगठितकर और खेती तथा घरेलू उद्योग-धन्धोंको वैज्ञानिक आधार पर चलाकर चौगुनी करनेकी बात लिखी गई है।* गाँव अपने लिए खाना, कपड़ा तथा मकानादि बनानेके सामानका इन्तज़ाम करेंगे। उनका सम्बन्ध तालुकासे, तालुकाका ज़िलेसे, ज़िलेका प्रान्तसे और प्रान्तका सारे देशसे होगा। सभी बालिग़ोंको मताधिकार होगा और चुनाव गाँवोंमें सीधा और बादवाले सभी स्थानोंमें अप्रकट रूपमें होगा। गाँव-पंचायतें सारे गाँवके लिए मालगुज़ारी तय और वसूल करेंगी, अमन-क़ानून क़ायम रखेंगी, स्थानीय मामलोंका फ़ैसला करेंगी, गाँववालोंमें भाईचारेका सम्बन्ध क़ायम करेंगी, बुनियादी और अन्य प्रकारकी शिक्षाका प्रबन्ध करेंगी। दवाका इन्तज़ाम और लोगोंके स्वास्थ्य, मकान, रास्ता, तालाब, कुआ आदिकी देख-भाल भी उन्हींपर होगी। वे खेती को उन्नत करेंगी, गाँवके व्यापार, उद्योग-धन्धोंका संगठन और नियन्त्रण करेंगी। उत्पन्न वस्तुओंको सहयोग-समितियोंके ज़रिए अच्छे दामोंपर बेचेंगी और लोगोंके लिए ज़रूरी चीज़ें खरीदेंगी। इन्हींके पुनर्गठन और पुनर्जीवनमें भारतीय राष्ट्रकी आशा और समृद्धि निहित है।

इसके लिए ज़मीनके राष्ट्रीकरण और मौज़ूदा रैयतवारी तथा ज़मींदारी प्रथाकी जगह मौज़ावारी ज़ारी करनेकी व्यवस्था दी गई है। ज़मीनका लगान नक़द नहीं, बल्कि जिन्समें देना होगा और यह कुल उपजका $\frac{1}{6}$ या $\frac{1}{4}$ वाँ हिस्सा होगा। ज़मीन जोतनेवालोंको ही लम्बी मीयादके लिए दी जायगी और वाजिब समयके अन्दर मिल्कियतके अधिकार धीरे-धीरे रद्द किए जायँगे। ज़मीनके मालिकोंको वाजिब मुआवज़ा भी दिया जायगा। ज़मीन पर व्यक्तिगत मालिकाना दो पुश्तोंमें आप-से-आप खत्म कर दिया जायगा। ज़मीनोंको बेहद छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँटनेसे रोका जायगा। सहयोगसे खेती की जा सकती है, पर सोवियतकी तरह सामूहिक खेती नहीं। लोगोंके लिए कम-से-कम २० एकड़ ज़मीनका इन्तज़ाम होगा। लोगोंका नाजायज़ कर्ज़ मन्सूख कर दिया जायगा। जोतने लायक नई ज़मीन तैयार की जायगी और ऊसर ज़मीनको खेतीके लायक बनाया जायगा। वर्षापर ही निर्भर नहीं करके सिंचाईका भी समुचित प्रबन्ध होगा। पाखाने, गोबर, राख, हड्डियाँ आदिकी खादसे ज़मीन उपजाऊ बनाई जायगी। यूरोपकी तरह खेतीके कामोंमें मशीनोंका प्रयोग नहीं करके पशुओंसे ही काम लिया जायगा, क्योंकि यह सस्ता और अच्छा रहेगा। राष्ट्रको गायकी रक्षा करनी होगी और भैंसके मुक़ाबलेमें उसीको प्रोत्साहन देना होगा, क्योंकि किफ़ायतसारी गायसे ही होगी। हलों आदिका भी सुधार करना होगा। गाँव-पंचायतोंके पुनर्जीवनसे ही भारतीय खेती फिर ज़रूर चमक उठेगी। खेतीके साथ ही पशु-पालन, चमड़ेका उद्योग, फल, जंगल और बगीचे लगानेको भी योजनामें स्थान दिया गया है। योजनाकारके मतानुसार राष्ट्रीय योजना-समितिका मुख्य उद्देश्य गाँव-पंचायतोंको यथासम्भव आत्म-निर्भरशील बनाना ही होगा। इसलिए घरेलू उद्योग-धन्धोंमें खादी व क़ायज़ बनाना, तेल पेरना, धान कूटना तथा ईंटें व साबुन बनाना, बढ़ई और लुहार आदिके कामोंको करना होगा। इन कामोंमें राष्ट्र सहायता पहुँचायगा, लोगोंको कर्ज़ देगा, ताकि वे औज़ार वग़ैरह खरीद सकें। उन्हें कारीगरीकी तालीम दी जायगी तथा औज़ारोंकी उन्नतिके लिए शोध-विभाग भी क़ायम किए जायँगे।

ऊपर गांधी-योजनामें गाँव-पंचायतोंके लिए की गई व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। अब ज़रा शहरी इन्तज़ामपर भी नज़र दौड़ा लें। इसमें जिन बुनियादी उद्योगोंपर खास ध्यान दिया जायगा, वे हैं—देश-रक्षा-सम्बन्धी उद्योग, बिजली-उद्योग, खनिज पदार्थ, धातु और जंगलातके उद्योग, मशीनों और औज़ारोंके उद्योग, जहाज़, रेल्वे-इंजन, मोटरें और हवाई-जहाज़ों के उद्योग और भारी रासायनिक द्रव्य, खाद और दवाएँ।

* श्री अग्रवालने ग्रामीण लोगोंकी आमदनी फ़ी-आदमी फ़ी-साल १८) के आसपास मानी है। (पृ० ५८)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By.Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गाँवोंके उद्योग-धन्धोंमें व्यक्तिगत और सहयोगी प्रयत्नोंके लिए काफ़ी मौक़ा मिलेगा; पर बड़े उद्योग-धन्धे राष्ट्रके हाथोंमें रहेंगे। इसीलिए श्री अग्रवालका कहना है कि देशी या विदेशी किसी पूँजीपतिको अपने निजी स्वार्थके लिए इस योजनाके अन्दर भारतको लूटनेके लिए स्थान नहीं रहेगा। राष्ट्रके लिए यह सम्भव नहीं होगा कि वह तत्काल ही सभी उद्योग-धन्धोंको खरीद ले या उनपर कब्ज़ा कर ले। इसलिए बहुत दिनों तक उनपर व्यक्तिगत प्रभुत्व रहेगा।

ज़मीनके राष्ट्रीकरणके बारेमें लिखा गया है कि उसकी सालाना मालगुज़ारीका दसगुना मुआवज़ा देकर राष्ट्र उसे ले लेगा। इसमें ३५०० करोड़ रुपए इस हिसाबसे योजनामें खर्च होंगे—खेती ११७५, ग्रामीण उद्योग-धन्धे ३५०, बड़े उद्योग १०००, रेल आदि ४००, जन-स्वास्थ्य २६०, शिक्षा २९५ और खोज आदि २० करोड़। यह रक़म एककालीन है। इसके लिए २०० करोड़ सालाना खर्च बैठा करेगा। यह इस तरह एकत्र की जायगी—जनताके संचित तथा लोगोंके जमा किए हुए धनसे, नई सिक्यूरिटियोंसे प्राप्त धनसे, अतिरिक्त करसे तथा राष्ट्रके उद्योगों और रेल, शिक्षा आदिकी आमदनीसे। दूसरे शब्दोंमें ३५०० करोड़ रुपया इस तरह इकट्ठा होगा—कर्ज़ (देशमें) २०००, नए प्राप्त धनसे १००० और अतिरिक्त करोंसे ५०० करोड़।

श्री अग्रवाल पौण्ड-पावनेपर निर्भर नहीं करना चाहते, क्योंकि वे समझते हैं कि इसके पानेकी कोई आशा नहीं। वे विदेशोंके व्यापारसे भी रुपएकी आशा नहीं रखते। विदेशोंसे ऋण तब तक लेनेके लिए वे तैयार नहीं हैं, जब तक देशके अन्दरके सभी साधनोंका अच्छी तरह उपयोग नहीं कर लिया जाता है। उनके मतसे राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों, रेल, सिंचाई आदि से होनेवाली आमदनीसे ही २०० करोड़ रुपएका सालाना खर्च निकल आया करेगा। गाँव-पंचायतोंका खर्च चलेगा फ़सली चन्दे (फ़ी-हल ५ सेर अनाज), हल पीछे ५ दिनकी मुफ़्त शारीरिक मेहनत, व्यक्तिगत दान, (ब्याह, जनेऊ आदिके मौक़ोंपर), मुक़दमा, चरागाह आदिकी आमदनीसे।

ऊपर गांधी-योजनाके रचनात्मक अंशका सारांश दिया गया है, ताकि पाठकोंको लेखकका वक्तव्य समझने और योजनाके यथार्थ स्वरूपको पहचाननेमें आसानी हो। पाठक देखेंगे कि बम्बई या सेठोंकी दस हज़ार करोड़ी योजनामें खेतीके लिए सिर्फ़ १२०० करोड़ यानी ¼ से भी कम खर्च करनेकी बात लिखी गई है। सेठ ज़मींदारों और उनकी आक़ा सरकारको नाराज़ नहीं करना चाहते और बड़े-बड़े उद्योग क़ायम करके रातोंरात मालामाल हो जाना चाहते हैं। खेतीकी तरक़्क़ीके लिए भी उन लोगोंने वही साम्राज्यवादियोंकी रटी-रटाई बातें दोह- राई हैं। सिंचाई, खाद आदिके बलपर ही वे भारतीय गाँवोंको सरसब्ज़ बना देना चाहते हैं। इसके विपरीत गांधी-योजनामें ३५०० करोड़ कृषिके लिए अर्थात् ⅓ हिस्सा खर्च किया जायगा। पर यहाँ भी किसानोंकी खुशहालीके लिए वही बम्बई-योजनाके सेठोंवाले नुस्खेसे ही काम लिया गया है। गांधी-योजनामें खेतोंके धीरे-धीरे राष्ट्रीकरणकी बात कही गई है। राष्ट्र मौजूदा मालिकोंको २०० करोड़ मुआवज़ा देकर ज़मीन खरीद लेगा। इस बातको लिखकर आचार्य अग्रवालने सचमुच हमें आश्चर्यमें डाल दिया है। इसे लिखनेके पहले उन्हें भारतमें इंग्लैण्डकी नक़लपर कार्नवालिस द्वारा क़ायम की गई ज़मींदारी-प्रथाके इतिहासपर नज़र डाल लेनी चाहिए थी। भारतके अधिकांश जमींदार, ताल्लुकेदार आदि लुटेरों, डाकुओं और ब्रिटिश शासनकी जारज सन्तान हैं। उन्होंने ज़ुल्म, बेईमानी, जालसाज़ी, षड्यन्त्र करके अपढ़, असहाय, भोलेभाले किसानोंकी ज़मीनें हड़प लीं। ज़मींदारी-प्रथाके पीछे करोड़ों वंचित किसानों की असहनीय चीत्कारका मूक और अन्यायपूर्ण इतिहास है। यदि श्री अग्रवालको इसमें कुछ सन्देह हो, तो वे बेडेन पावेल, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, रमेशचन्द्र दत्त, द्विजदास दत्त, भूपेन्द्रनाथ दत्त, प्रमथ चौधुरी आदिकी पुस्तकें और लैण्ड-रेवेन्यूके रेकार्ड देख सकते हैं। ऐसे ज़मींदारोंको मुआवज़ा देकर ज़मीनका राष्ट्रीकरण करनेकी बात चोर या डाकूको दण्डित करनेके बजाय पुरस्कृत करनेकी-सी विडम्बना जान पड़ती है। लेकिन गांधीवादी योजनाकार बिना मुआवज़ा दिए ज़मीनके राष्ट्रीकरणकी बात करें भी कैसे, क्योंकि तब तो यह भी हिंसा हो जायगी! इसीलिए वे सामूहिक खेतीके भी खिलाफ़ हैं, क्योंकि मनुकी इस पावन भारत-भूमिमें लेनिनकी साम्यवादी सामूहिक खेतीकी योजना कैसे लागू की जा सकती है? हिन्दुस्तान रूस थोड़े ही है! यहाँ तो चरखे-करघे, छोटे-मोटे घरेलू उद्योगों और बाबा आदमके ज़मानेके हलोंसे बिखरे नन्हें खेतोंसे ही देहाती दुनियामें 'राम-राज्य' क़ायम किया जायगा। काश, बेचारे भारतीय ग्रामीण शिक्षित होते और शहरी बाबुओंके इस बुद्धि-विलासकी विडम्बनाको ठीक-ठीक समझ पाते!

अपने दूसरे लेखमें ही हमने गांधीजीके 'हिन्द स्वराज' तथा १९२१ के वादवाले अनेक लेखोंसे उद्धरण देकर दिखाया था कि गांधीजी ज़बानी बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंके खिलाफ़ भले ही हों, वे वास्तवमें आधुनिक मशीनोंके खिलाफ़ नहीं हैं। पर गांधीजी तथा गांधीवादी इस बातको माननेके लिए कदापि तैयार नहीं होंगे। किन्तु सचाई तो यही है, और 'गांधी-योजना'से यह बात और भी अच्छी तरह सिद्ध एवं स्पष्ट हो जाती है। इस योजनामें बड़ी मशीनोंके लिए उतना ही स्थान है, जितना बम्बई-योजनामें। यहाँ सदस्योंमें ही बड़ी मशीनोंसे चीजें तैयार होंगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं, उद्योगोंमें एक चीज़का नाम कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता है, और वह है कपड़ेका उद्योग। यह शायद इसलिए हो कि बड़ी मशीनोंका इस्तेमाल होगा और सभी तरहकी चीज़ें शहरोंमें—प्रधानतया शहरियोंके लिए—तैयार होंगी; पर कपड़ा सब 'विशुद्ध खादी'का ही पहनेंगे! शहरी उद्योग-धन्धोंके स्वामित्वके बारेमें 'आधा तीतर आधा बटेर'वाली बात दीख पड़ेगी। अधिक उद्योग सरकारके हाथोंमें और कई सेठोंके हाथोंमें होंगे। सेठोंको मुआवज़ा देकर कुछ उद्योग-धन्धोंका राष्ट्रीकरण होगा। शहरी और ग्रामीण जनताके 'मालिक' (ट्रस्टी) सेठों और जमींदारोंके पास पहलेके और मुआवज़ेके करोड़ों रुपए होंगे, और वे आज ही की तरह गांधीजीका नाम लेकर आनन्द और विलासकी ज़िन्दगी बसर करेंगे। बेचारे किसानों और मज़दूरोंके तो भाग्यमें ही ग़रीबी लिखी है!

गाँवों और शहरोंके लिए की गई योजनाकी व्यवस्थामें एक मार्केकी बात दिखाई पड़ती है। शहरमें तो बीसवीं सदीका उन्नत मशीनोंके उत्पादनका युग होगा और गाँवोंमें वही तथाकथित प्राचीनकालीन भव्य साम्यवादी (?) गाँव-पंचायतें! अगर यह अकेले श्री अग्रवालके दिमाग़का खयाली पुलाव होता, तो हम इसकी चर्चा भी शायद न करते। पर इसे 'योजना' कहकर, गांधीजीके नामके साथ नामकरणकर और गांधीजीके प्रमाणपत्र के साथ जिस रूपमें भोली-भाली जनताके सामने रखा गया है और बड़े-बड़े अधिकारी एवं अनधिकारी विद्वानोंने इसकी तारीफ़ में जो बिना सिर-पैरके पुल बाँधनेकी होड़-सी की है, उस सब को देखकर हमें साश्चर्य खेद होता है। चीनी क्रान्तिके नेता डा० सनयात सेनने १९२० के बाद लिखी अपनी पुस्तक 'चीन का अन्तर्राष्ट्रीय विकास'में समग्र चीन (तिब्बतके अन्दरसे उत्तरी हिन्दुस्तानकी सरहद तक) को रेलों, सड़कों, विशाल उद्योगों आदिसे युक्तकर एक आधुनिक प्रजातान्त्रिक राज्य बनानेका स्वप्न देखा था। आजका चीन उन्हींके स्वप्नोंको वास्तविक रूपमें परिणत करनेके लिए संघर्ष कर रहा है। साम्यवादी चीनने उनके स्वप्नकी आंशिक पूर्त्ति भी की है। आज भी चीनी जनवादी चीनको आधुनिक उद्योग-धन्धोंसे सम्पन्न करनेके लिए सतत प्रयत्नशील हैं। निकट भविष्यमें वहाँ अरबों रुपए लागतकी योजनाका काम शुरू होगा। अगले पन्द्रह सालोंके अन्दर चीन एक उन्नत, महान और आधुनिक जनतान्त्रिक राष्ट्र बन जायगा। पर दुर्भाग्यवश इस ग़ुलाम और ग़रीब भारतमें आज भी ऐसे 'विद्वान' हैं, जो चरखे-करघे और गाँव-पंचायतोंके अर्थहीन एवं भ्रान्तिपूर्ण वर्णनों से भोलीभाली जनताको सुख-समृद्धिके सब्ज़बाग़ दिखा रहे हैं! इन्हें गांधीजीका आशीर्वाद एवं प्रमाणपत्र प्राप्त है और उन्हींके नामसे 'विशेषज्ञों' एवं 'विद्वानों'के प्रशंसापत्र भी!

दुनियाकी आधी आबादी (१०० करोड़से कुछ ऊपर) घोर ग़रीबी और अभावोंकी ज़िन्दगी बसर कर रही है। इसमें से अधिकांश लोग एशियामें बसते हैं। आज समग्र एशियाको जनताको सोवियत् रूसकी व्यवस्थाने नई प्रेरणा, नई सूझ एवं नए जोशसे भर दिया है। (शहरी बाबुओं और तथाकथित नेताओंको मैं इसमें शामिल नहीं करना चाहता।) महायुद्धकी यवनिका उठ गई है। जली रस्सीकी ऐंठनकी तरह प्राचीन व्यवस्थाके अनुरागी मुट्ठी-भर अर्थपिशाच, किसानोंके पसीनेपर गुलछर्रे उड़ानेवाले परोपजीवी ज़मींदार और फ़ासिलकी संज्ञाको चरितार्थ करनेवाले उनके पिट्ठू एवं प्रतिगामी योजनाकार इस प्रेरणाके बढ़ते हुए प्रभाव एवं प्रसारको रोक नहीं सकते। युगोंके शोषण एवं पीड़नके बाद अब तेज़ीसे समाजवादकी ओर बढ़नेवाली जनता को नोट दुगुने करनेवाले ठगोंकी तरह आमदनी चौगुनी करने और उनके रहन-सहनको सतह ऊँची करनेके झाँसे देकर फिर अधिक काल तक शोषण और मुनाफ़ाखोरीका वाहन नहीं बनाया जा सकता! यह काम दो-चार तो क्या हज़ारों आचार्य अग्रवाल और लाखों बिड़ला भी शायद नहीं कर सकते। जैसा कि पं० जवाहरलाल नेहरूने (जिन्होंने देशके लिए अभी हाल ही में एक समीचीन एवं यथार्थवादी योजना पेश की है) कहा है, भारतकी आज़ादीकी समस्या मानवताकी आज़ादीकी समस्याका ही एक अंश है। और मानवतकी आज़ादीका रास्ता सोवियत् रूसने दिखाया है, वही एकमात्र सही रास्ता है, इससे कोई भी ईमानदार और निष्पक्ष व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। जनताकी भलाईकी योजना एकमात्र आज़ाद जनताके निःस्वार्थ प्रतिनिधि ही बना सकते हैं—साम्राज्यवादी और पूँजीवादी मुनाफ़ाखोर, सेठ, ज़मींदार, ट्रस्टी, महात्मा और बाबा आदमके ज़मानेकी सनातनी व्यवस्थाका स्वप्न देखकर जन-साधारणको दोहनका पुर्ज़ा बनाए रखनेवाले 'विद्वान' नहीं।

आज यदि हम भारतीय गाँवोंके जीवनकी यहाँके शहरी जीवनसे तुलना करें, तो हमें स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि गाँवोंको सांस्कृतिक दृष्टिसे पिछड़ा और अज्ञानी तथा अर्थनीतिक दृष्टिसे निःस्व रखनेवाले स्वदेशी शत्रु सामन्तवाद और पूँजीवादकी जड़ें उखाड़ फेंकनेके लिए हमने लगभग कुछ भी नहीं किया है। देशकी सारी कमियों और खराबियोंके लिए एकमात्र ब्रिटिश साम्राज्यवादको ज़िम्मेदार बताकर हम निर्दोष नहीं हो सकते। विदेशी साम्राज्यवाद खोखला और मरणोन्मुख हो चला है। एक-न-एक दिन वह खत्म होकर ही रहेगा। पर जो भारतीय सामन्तवादका उत्तराधिकारी पूँजीवाद इन गाँवोंको सदा-सर्वदाके लिए 'रामराज्य' और 'आत्मनिर्भरशील'-जैसे आकर्षक नामोंसे क़ायम रखनेका स्वप्न देख रहा है, उसके मूलोच्छेदके लिए हमने कौन-सी योजना बनाई है? बम्बई और गांधी-योजना तो इस जालमें ग्रामीणोंको फँसानेका ही चोचला है। (समाप्त)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

फिल्में और हमारी सामाजिक समस्याएँ

कुमारी निर्मला सहाय

भारतीय फिल्मोंने प्रेमकी सामाजिक समस्याको बहुत प्रधानता दी है। यह स्वाभाविक ही है। जीवनोपयोगी कला को वर्त्तमान समस्याओंपर केन्द्रित रहना ही चाहिए। हमारे देश में युग-परिवर्त्तन हो रहा है। पुरानी भित्तियाँ धीरे-धीरे ढह रही हैं। सामाजिक क्षेत्रमें दहेज-प्रथा एवं बाल-विवाह प्रभृतिके विरुद्ध घोर विरोध उठ खड़ा हुआ है। प्रत्येक युगमें जहाँ एक ओर विध्वंसकारी शक्तियाँ पुरातन आचारोंका विनाश करती हैं, वहाँ नूतन युगके निर्माणकी नींवें भी बहुत पहले ही खोदी जा चुकी होती हैं। पर हमारे समाजमें जो युग-परिवर्त्तन हो रहा है, वह पुरातन आचारोंका विरोध करके भी नवीनके निर्माणमें विशेष सहायक नहीं हो रहा।

अधिकांश फिल्मोंका वर्ण्य विषय है समाजमें स्त्रियोंका स्थान। उनमें पुराने जितने सामाजिक आचारोंको नष्ट किया जा रहा है, उनका मूल स्त्रीकी सामाजिक नगण्यता ही है। इसका एक कारण यह है कि यह स्त्री-शिक्षाका युग है। समाजमें स्त्रियाँ स्वयं अशिक्षिता नहीं रहना चाहतीं और शिक्षिता स्त्रियाँ घरकी चहारदीवारीमें बन्द होकर नहीं रहना चाहतीं। ऐसी स्त्रियाँ विवाह माता-पिताकी अनुमतिसे भले ही करना चाहें; पर बिना अपनी सहमतिके एकमात्र उनके द्वारा ही नहीं, उनके दबावसे ही नहीं। तिलक-दहेजका प्रश्न भी धीरे-धीरे उठ रहा है। बाल-विवाह भी कम हो रहे हैं। अधिक खूसट कन्याके पिताको थैली भेंटकर पत्नी घर नहीं ला पा रहे। विधवाएँ यदि उचित एवं आवश्यक समझें, तो अपना विवाह कर सकती हैं। उनसे विवाह करनेवालोंकी इफ़रात नहीं, तो विशेष कमी भी नहीं। कहनेका तात्पर्य यह कि विवाह पारस्परिक समझौतेके फल-स्वरूप हों, समाजकी शक्तियाँ कमोबेश इसी लक्ष्यपर अग्रसर हो रही हैं। यद्यपि इसकी गति अभी बड़ी मन्द और संकीर्ण है, पर हम लोग अभी परिवर्त्तनकी ही अवस्थामें हैं। जहाँ आगे बढ़नेवाली शक्तियाँ ज़ोर लगा रही हैं, वहाँ नष्ट होनेवाली भित्तियाँ गिरनेके पहले अपनी सारी रही-सही ताक़त बटोरकर उन्हें रोकने की कोशिश कर रही हैं। यह एक गहरा सामाजिक संघर्ष है, और यही संघर्ष हमारी फिल्मोंके लिए विवेचनाका प्रधान विषय है—या कम-से-कम होना चाहिए।

पर यह संघर्ष हमारी फिल्मोंमें कितना स्पष्ट, सजीव एवं व्यावहारिक है, यही हमें देखना है। किसी भी भारतीय फिल्मको ले लीजिए। आप वहाँ पाएँगे कि प्रेम किसी-न-किसी तरहसे शुरू हो ही जाता है। यहाँ तक तो झगड़ेकी कोई बात नहीं, क्यों कि प्रेमको किसी-न-किसी तरह तो शुरू होना ही है। पर उसके बाद घोर अस्वाभाविकता और मूढ़ अबर्थका आरम्भ हो जाता है। नायक-नायिका घर और घाट, जंगल-पहाड़, नदी-तालाब, यानी दुनियामें जितने सम्भव और असम्भव प्रेम-स्थल हो सकते हैं, सभी जगह वक्त-बेवक्त मिलना-जुलना शुरू कर देते हैं—मानो संसार एक बड़े स्टूडियोके रूपमें सिर्फ़ प्रेम करनेके लिए ही बनाया गया है! नायक महाशय रातको घर या होस्टलसे भाग आते हैं। चाँदनी रात है, क्या जाने कहाँका खूबसूरत-सा उपवन है, और वहीं नायिका महाशया भी पहुँच जाती हैं। आप भी घरवालोंको सोता छोड़कर घरसे भाग आई हैं! नई रोशनीकी सुशिक्षिता आदर्श महिला जो हैं, तभी तो चाँदनी रातमें घरसे अकेली भाग निकली हैं! इन फिल्मवालोंसे कोई पूछे कि कितनी शरीफ़ घरानोंकी सुशिक्षित लड़कियाँ इस तरह भागती हैं? पर लैलाके आदर्शसे प्रेरणा लेनेवाले इन मजनुओंको भला स्वाभाविकता या यथार्थवादितासे सरोकार ही क्या? यही नहीं, छुपकर इस तरह भागनेवालोंके मार्गमें कैसी भी बड़ी बाधाएँ क्यों न हों, एकाध दुर्घटनाके बाद निर्देशक सबपर विजय प्राप्तकर प्रेमियोंको 'मिला' देता है! इससे भला कौन-सी सामाजिक समस्या हल हुई?

एक दूसरी फिल्ममें नायक महाशय दाढ़ी लगा लेते हैं। भयावनी सूरत बनाकर आप उस गाँवमें चले जाते हैं, जहाँ नायिकाके होनेका पता आपको टेलीफ़ोनसे (?) मालूम हो गया है! वहाँ जाकर पतेके घरको बिना किसी चेष्टाके आप चुन लेते हैं—और वह भी रातके वक्त! खिड़कियोंमें पर्दे लगे हुए हैं। आप निहायत 'सभ्यता'के साथ खिड़कीके पर्दे सरकाकर भीतर झाँकते हैं। एक औरत—यानी एक बहुत खूबसूरत लड़की—चिल्ला पड़ती है। आप भागते हैं। फिर किसी तरह नायिका आपको अपने घरमें छिपा लेती है! इतना ही नहीं, अपनी खाटपर आपको सुला भी लेती है! कितना स्वाभाविक चित्रण है! कितने ऊँचे विचार हैं! भले घरोंकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंको बदनाम करनेका इससे निकृष्ट भला और क्या कुचक्र होगा?

एक तीसरी फिल्ममें प्रधान पात्र महाशय अपनी बहनके साथ नायिकाके घरमें घुस पड़ते हैं। (बहनका भ्रातृ-प्रेम ज़रा मुलाहिज़ा फ़रमाइए!) उनसे नायिकाके पिता पूछते हैं—'आप यहाँ कैसे आए?' नायकजी सिर खुजलाकर एक भद्दी हँसी हँस देते हैं और कहते हैं—'मेरी बहन चली आई, इसीसे मैं भी चला आया।' वाह! क्या स्वाभाविक और सुसंगत शुभागमन है! यहाँ भी बहनके रूपमें फिर एक निरीह स्त्रीकी मिट्टी पलीद कराई गई है। बहनें क्या ऐसी ही बेहूदा होती हैं?

इस तरह मनमाने ढंगसे निर्देशक प्रेमकी गाड़ी एक चिकने रास्तेपर सरटिके साथ दौड़ाने लगते हैं, जैसे कहीं कोई रोक-टोक ही ही नहीं। घोड़ेकी लगाम मानो टूट गई हो और गाड़ीको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उठाता-पटकता, तोड़ता-फोड़ता वह चला जा रहा हो। पर करामात यह है कि रास्ता ज्यों-का-त्यों सीधा और साफ़ है। कई फिल्मवालोंको सूझता है कि रास्तेपर कोई रुकावट भी होनी चाहिए। फिर क्या है, उस रास्तेपर कोई नक़ली चट्टान या पेड़ ला खड़ा किया जाता है, या फिर कोई तेज़ीसे आती हुई मोटर। इस तरह 'एण्टी-क्लाइमेक्स'के लिए एक 'दुर्घटना'की सृष्टि प्रायः सभी प्रेम-सम्बन्धी फिल्मोंमें की जाती है। अक्सर इसका पात्र प्रधान-नायक-ही होता है। एक फिल्ममें नायिकाके पिताने नायिकाका विवाह नायकसे करनेसे इन्कार कर दिया। फलस्वरूप नायिकाने ज़हरकी शीशी अपने मुँहमें खाली कर डाली। नायिकाने जब दूसरे लोकमें जानेकी बात सोची, तो घबराकर रोने-चिल्लाने लगी। शोर सुनकर उसके पिता आ गए और अपनी भूलपर पश्चात्ताप करने लगे। अगर फिल्मोंकी कहानियाँ लिखनेका काम मेरा होता, तो मैं लड़कीको उसकी इच्छाके विरुद्ध मर जाने देती और उसके पिताको चुपचाप छोड़ देती। पर शायद माता-पिताकी तरह आजकल फिल्मोंमें भी जैसे-तैसे लड़कीका विवाह करा देनेका अनिवार्य दायित्व निर्देशक पर रहता है। लड़की ज़हर नहीं, ज़हरका बाप पी जाय, निर्देशक भला बिना उसका विवाह करवाए कब माननेवाला है (वैसा करनेसे ट्रेजेडी जो हो जायगी)! डाक्टर तक बुलानेकी ज़रूरत नहीं पड़ी! निर्देशकने खेल न बिगड़ने देनेके लिए ज़हरकी शीशीमें ज़हरके बदले लाल रोशनाई रख छोड़ी थी! क्या आसान तरीक़ा है मरनेका नाटककर विवाह रचानेका! एक रंगकी शीशीमें ही सारी सामाजिक रुकावटें हवा!

किसी-किसी फिल्ममें नायक भी (शायद 'लाल हवेली' और 'चन्दन'में) खुलेआम—बाप-माँके सामने दर्दे-जिगरकी बीमारी लेकर—बिछौनेपर सो जाते हैं और कराहने लगते हैं। लानत है प्रेमियोंके पुरुषत्वके ऐसे चित्रणपर! 'नमस्ते'का शादीका तरीक़ा भी शायद आजकलके प्रेमी-प्रेमिकाओंको सुन्दर सीख देनेके लिए ही शेक्सपियरको रुलाकर उससे छीन लिया गया है। नायक-नायिका दोनों एक ऐसा इंजेक्शन ले लेते हैं, जिससे चौबीस घण्टे तक बेहोशी रहती है—न नब्ज़ चलती है और न साँस ही। फिर दोनों अपने-अपने घरोंमें मर जाते हैं। दोनोंकी अन्तिम इच्छा है—'हम दोनोंकी अर्थियोंको एक ही कमरेमें चौबीस घण्टों तक रखा जाय।' और फिर दोनोंकी नींद एक ही साथ 'स्वर्ग'में उचटती है, और वहाँसे दोनोंके स्वर्ग—विवाह—की मंज़िल अत्यन्त निकट है, जो शहनाईकी आवाज़के साथ तय हो जाती है! पर सिनेमाके शौकीन प्रेमी यह भी याद रखें कि इस तरहकी नक़ली मृत्युको प्राप्त करनेका तरीक़ा 'रोमियो और जूलियट'के फ़ायरको छोड़कर शायद किसी औरको अब तक मालूम भी न हुआ होगा।

हमारी सामाजिक समस्याओंके समाधानके लिए पुरातन तथा नूतनके बीच जो संघर्ष चल रहा है, प्रेमकी सामाजिक समस्या उसी संघर्षका केन्द्र है। उस केन्द्रकी विवेचना एवं विश्लेषणको अपनी आधार-भूमि बनाकर चलनेवाली भारतीय फिल्मोंकी ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है। पर दुःख है, भारतीय फिल्में उस गुरुतर ज़िम्मेदारीको तनिक भी नहीं निभा सकी हैं। यह ज़िम्मेदारी तभी निभती, जब कि हमारी समस्याएँ सच्चे एवं यथार्थवादी रूपमें हमारे सामने रखी जातीं और उनके समाधानके लिए फिल्म-लेखक एवं निर्देशकके मस्तिष्ककी वास्तविक चेष्टाका आधार होता सूझ और हलके प्रति यथार्थवादी, व्यावहारिक एवं समीचीन रुख। पर जैसी फिल्में हमें मिल रही हैं, वे इस बातकी साक्षी हैं कि फिल्म-जगतमें वैसी भावना काम ही नहीं कर रही। फिल्मी कहानियोंके लेखक और निर्देशक व्यवसाय-बुद्धिसे चलते हैं, विवेक-बुद्धिसे नहीं। फलस्वरूप हम ठगे जाते हैं। हमारी भावनाका केवल एक सूमुर्ष प्रायः निर्जीव प्रतिबिम्ब दिखाकर वे जो-कुछ हमें देखनेको मजबूर-सा करते हैं, वह दयनीय रूपसे असफल निम्नकोटिकी चेष्टाओंका निर्जीव फल है।

अब प्रश्न उठता है, ऐसा क्यों होता है? क्या फिल्म-लेखकों और निर्देशकोंके मस्तिष्क नहीं है? क्या उनमें प्रतिभाकी कमी है? क्या वे हमारी सामाजिक रूढ़ियों एवं बुराइयोंका ऐसा खिलवाड़-भर ही कर सकते हैं? अक्सर हम शिकायत सुनते हैं कि फिल्म-जगत्का वायुमण्डल अच्छे लेखकोंके लिए नितान्त प्रतिकूल है। इसलिए जिन लेखकोंमें प्रेरणा, प्रतिभा और सामाजिक नेतृत्वकी क्षमता है, वे फिल्मी दुनियामें कार्य करना नहीं सह सकेंगे। किसी हद तक इसमें सचाई भी है। फिल्म-जगत् का संचालन आज कुछ पूँजीपतियों या रंगीन तबीयतवाले रईसों के चाकरोंके हाथोंमें है। कुछका देवता धन है, तो कुछका रूप। उद्देश्य और आदर्श-जैसी चीज़ें भला वे जानें भी क्या और ये उन तक फटकें भी कैसे? बनियों या उनकी वृत्ति अपनानेवालोंके सामने पैसा और उसे पैदा करनेके सभी भले-बुरे ढंग ग्राह्य हैं। उनकी राष्ट्रीयता भी उनके स्वार्थों तथा पूँजियोंकी रक्षा करनेका एक साधन-मात्र है। हमारा देश गुलाम है। हमारा मस्तिष्क गुलामका मस्तिष्क है। और गुलामका आदर्श उसका मालिक ही होता है, इसलिए हमारा फिल्म-जगत् भी पश्चिमकी सस्ती नक़लको ही आदर्श मानकर चल रहा है। पर भारतीय फिल्म-व्यवसायियोंको यह न भूलना चाहिए कि वहाँका फिल्म-व्यवसाय आज काफ़ी उन्नत एवं प्राणमय है, जब कि इन्हें ठीकसे नक़ल करना भी नहीं आ पाया। हमारे सामने जो सामाजिक समस्याएँ हैं, वे उनके सामने नहीं है, अतः हमें अपना मार्ग सोच समझकर स्वतन्त्र रूपसे ही तय करना चाहिए।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

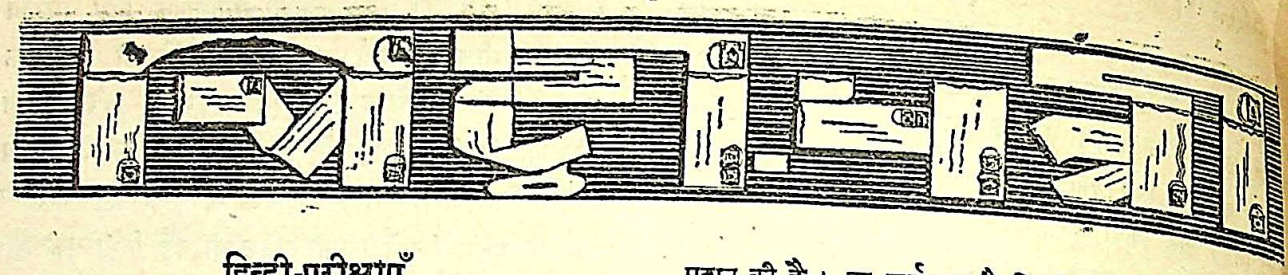

हिन्दी-परीक्षाएँ

हिन्दी राष्ट्रभाषाके पदपर सुशोभित होने जा रही है। हिन्दीकी संस्थाओंकी संख्या इधर उत्तरोत्तर बढ़ रही है। हिन्दी-साहित्य तथा देवनागरी-लिपिके प्रचार और प्रसारका कार्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी जैसी सजीव संस्थाएँ कर रही हैं। अन्य संस्थाओंने भी इसकी श्रीवृद्धि में हाथ बँटाया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा हिन्दी-विद्यापीठ, देवघरकी क्रमशः प्रथमा, मध्यमा (विशारद), उत्तमा (साहित्यरत्न) एवं प्रवेशिका, साहित्यभूषण, साहित्यालंकार और पंजाब-विश्वविद्यालयकी हिन्दी-रत्न, भूषण, प्रभाकर और युक्त-प्रान्तकी विशेष योग्यता आदि परीक्षाओंने इसकी सर्वप्रियताको और बढ़ा दिया है। बिहार तथा युक्त-प्रान्तीय सरकारोंने प्रथमा, प्रवेशिका, विशारद, साहित्यभूषण, साहित्यरत्न और साहित्यालंकारको क्रमशः अपने विश्वविद्यालयोंके मैट्रिक, आई० ए० तथा बी० ए० के समकक्ष मान लिया है तथा उपर्युक्त योग्यता-प्राप्त व्यक्तियोंको विश्वविद्यालयोंकी योग्यता-प्राप्त लोगोंकी तरह ही नौकरियोंमें सुविधा देनेकी खुलेआम घोषणा भी कर दी है। इससे प्रभावित हो बहुतसे लोग इन परीक्षाओंमें सम्मिलित हो रहे हैं। पर जब वे नौकरीकी तलाशमें यत्र-तत्र निकलते हैं, तो सर्वत्रसे अपमानित एवं उपेक्षित हो अपने भाग्यको कोसते हुए अपने घर आते हैं। इसे हिन्दीका वरदान कहूँ या अभिशाप? सरकारकी स्वीकृति-प्राप्त परीक्षाओंकी यह दशा देखकर मुझे हिन्दी-संस्थाओं तथा सरकार दोनोंपर क्षोभ होता है। इन परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष हज़ारोंकी संख्यामें लोग सम्मिलित होते हैं; पर उनमें से सैकड़े पाँच भी इन परीक्षाओंके प्रमाणपत्रोंके बलपर अपनी आर्थिक कठिनाइयोंको सुलझा नहीं पाते। इसके फलस्वरूप वे निरुत्साहित ही नहीं होते, बल्कि उन्हें इन परीक्षाओंसे भारी घृणा एवं चिढ़-सी भी हो जाती है।

सम्मेलनकी प्रथमा तथा विद्यापीठकी प्रवेशिका पास व्यक्तियोंको प्रान्तीय असेम्बलियोंके वोटर बनानेका अधिकार प्रदान किया गया है। पर स्थानीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा होनेवाली जाँचके समय प्रमाणपत्र दिखलाते हुए हिन्दी तथा उन सज्जनोंकी जो छीछालेदर होती है, भर्त्सना एवं व्यंग्योक्तियोंका जो शिकार होना पड़ता है, उसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। युक्त-प्रान्तके हाई-स्कूल तथा इण्टरमीडिएट-बोर्डने मध्यमा (विशारद) पास व्यक्तियोंको हाईस्कूल-परीक्षामें केवल अंगरेज़ी लेकर बैठनेकी सुविधा प्रदान की है। पर शर्त्त यह है कि वे सज्जन युक्त-प्रान्तके ही निवासी हों। सम्मेलनके पदाधिकारियोंको चाहिए कि इस नियमको विस्तृत रूप दिला दें, जिससे हर प्रान्तके मध्यमा पास व्यक्ति इस सुविधासे लाभ उठा सकें। विद्यापीठके साहित्यभूषण योग्यता-प्राप्त लोग इस नियमके अपवाद-स्वरूप हैं। उन्हें अपने प्रान्तके विश्वविद्यालयमें ही जब यह सुविधा प्राप्त नहीं है, तो अन्यत्रकी तो बात ही न्यारी है—जब कि बिहारके संस्कृतके मध्यमा पास पण्डितोंको यह सुविधा आजसे बहुत पूर्वसे ही प्राप्त है। यह विद्यापीठके अधिकारियोंकी शिथिलता तथा अकर्मण्यता प्रमाणित करता है। दुर्भाग्यवश हिन्दीकी परीक्षाएँ पास लोगोंकी ओर न तो सरकारका ध्यान है और न उन परीक्षा लेनेवाली संस्थाओंका ही। इसके फलस्वरूप दिनों-दिन हिन्दी-परीक्षाओंका महत्त्व घटता जा रहा है। अतः हिन्दी-पत्रों, संस्थाओं तथा सरकारी कर्मचारियोंसे मेरा सानुरोध निवेदन है कि इन हज़ारोंकी संख्यामें परीक्षा पास बेकार लोगोंके जीवनके मार्गको सरल बनानेमें सहायक बनें।—रामशरणसिंह वर्मा, साहित्यालंकार, फतेहपुर, गया।

स्व० माधव शुक्ल

राष्ट्रकवि स्व० माधव शुक्लकी मृत्युके बाद सुननेमें आया था और समाचारपत्रोंमें भी देखनेको मिला कि उनकी स्मृतिको स्थायी रूप देनेके लिए हिन्दी-नाट्य-परिषद, कलकत्ताके तत्वावधान और स्व० दुर्गाप्रसाद खेतानके सभापतित्वमें एक स्मारक-समितिकी स्थापना हुई है। दुर्भाग्यवश कुछ ही दिनों बाद खेतानजीका निधन हो गया। उसके बाद इस समितिकी भावी कार्य-प्रणालीसे सम्बन्ध रखनेवाली योजना भी सामने आई, जिसमें आकर्षण और महत्वाकांक्षा दोनों वस्तुएँ थीं। पर इसके बादकी दीर्घशान्ति—चुप्पी—बुरी और खलनेवाली मालूम देती है।

स्व० शुक्लजी सच्चे अर्थोंमें जनताके कवि थे। उनकी वाणी जनताकी वाणी थी। उनकी कवितामें राष्ट्रकी व्यथा झलकती है। वे जब तक जीवित रहे, अपने आदर्शके अनुसार जनता, राष्ट्र और स्वाधीनताकी आशाको अपने प्राणसे अनुप्राणित करते रहे। आज जब दैहिक रूपसे वे हमारे बीचसे उठ गए हैं, अपनी रचनाओंके रूपमें वे हमें एक अमोल निधि दे गए हैं। हिन्दी-रंगमंचके इतिहासपर दृष्टि डालते ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी बाबू राधिकारमणके बाद जो नाम अपने पूरे तेजके साथ चमकता हुआ दिखलाई देता है, वह स्व०

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan

...व शुक्लका नाम है। आजका साहित्यका जानकार इसे ...ता है तो भूल जाय; पर नाट्य-कलाके इतिहासकी वह ...रत, जो आज कुछ भी ऊँची उठ पाई है, मूक रहकर ही ...ी, अपनी आँखोंसे ओझल अपने उस तामीर करनेवालेको ...शा याद रखेगी।

समयकी आवश्यकता और राष्ट्रके प्रति उचित कर्त्तव्यकी ...रको देखते हुए यह ज़रूरी है कि शुक्लजीकी सारी राष्ट्रीय ...विताओंका सुन्दर संग्रह देशके सामने रखा जाय। अगर ...पूर्वक देखा जाय, तो आज़ादीकी प्राप्तिके लिए आन्दोलनकी ...नी ज़रूरत आज हम महसूस कर रहे हैं, उतनी ही ज़रूरत ...बातकी भी है कि इन राष्ट्रीय कविताओंका प्रकाशन हो। ...हमारे आन्दोलनको बल और प्रेरणा देंगी। शुक्लजीकी सारी ...विताओंका एक संग्रह तैयार हो रहा है। इस संग्रहमें देशके ...मान्य नेताओं और साहित्यिकोंके संस्मरण भी रहेंगे। जिनके ...हम अलगसे पत्र न भेज सकें, वे इसे ही सूचना समझें ...र अपने संस्मरण भेजनेकी कृपा करें। साथ ही हम स्मारक-...तिका भी ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वह ...क्रियाशीलता दिखलाए।—देवनारायण द्विवेदी, बड़ा गणेश, ...रस।

दशमिक सिक्कोंका नामकरण

भारत-सरकार सिक्कोंकी वर्त्तमान पद्धतिमें परिवर्त्तन करके ...में दशमिक पद्धतिके सिक्के चलाना चाहती है। इस पद्धतिके ...सार १०० सेण्टका एक रुपया होगा। भारतीय जनतापर यह ...ग्रेजी शब्द 'सेण्ट' अनावश्यक रूपसे लाद न दिया जाय, इसके ...धारका उपाय भारतीय जनताको अविलम्ब करना चाहिए। ...के अतिरिक्त सिक्कोंमें कुछ और सुधार भी आवश्यक हैं, ...का प्रस्ताव बहुत ज़ोरदार समर्थनके साथ भारत-सरकारके ...-विभागके समक्ष उपस्थित किया जाना चाहिए। एक तो ...र्ती-चवन्नीपर से भारतके प्रतीक कमलके अतिरिक्त अन्यान्य ...के प्रतीक-चिह्न (जैसे स्काटलैण्डका थिसल्, आयरलैण्डका ...क तथा इंग्लैण्डका गुलाब) हटा दिए जाने चाहिएँ; दूसरे ...र नाम 'भारत' अथवा 'भारतवर्ष' दिया जाना चाहिए तथा ...री अंकोंमें देशव्यापी विक्रम संवत्का उल्लेख होना चाहिए। ...के प्रबन्ध-समितिने अपने गत अधिवेशनमें भारत-सरकारके ...विभागके समक्ष निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करनेका ...किया है—(१) रुपएके सौवें भागका नाम 'शती' रखा ...(२) रुपएपर भारतका प्रतीक केवल कमल रहे—अन्यान्य ...चिह्न न रखे जायँ; (३) देशका नाम 'भारत' अथवा ...संचित किया जाय और (४) नागरी अंकोंमें विक्रम ...उल्लेख हो। आशा है, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा हिन्दी प्रचारिणी एवं भारतीय संस्कृतिकी पोषक संस्थाएँ इससे सहमत होंगी और इन प्रस्तावोंका समर्थन करते हुए भारत-सरकारके अर्थ-सदस्यके पास अविलम्ब अपनी सम्मति भेज देंगी।

डा० श्यामसुन्दरदास-पुरस्कार

डा० श्यामसुन्दरदासजीके निधनसे हिन्दी-भाषा और साहित्य तथा देवनागरी-लिपिपर से रक्षाका एक बलवान हाथ उठ गया। स्वर्गीय डाक्टर महोदय उन इने-गिने निष्ठावान मनीषियोंमें से थे, जिन्होंने हिन्दी-नागरीके लिए अपना सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर दिया। नागरी-प्रचारिणी सभा, काशीके तो वे जन्मदाता, पालनकर्त्ता और सर्वस्व थे। यह एकमात्र उन्हींके परिश्रमका पुण्यप्रभाव है कि आज हम कबीर, तुलसी, जायसी आदि प्राचीन कवियोंकी रचनाओं और उनपर आधुनिक विद्वानोंके गम्भीर विचारोंसे परिचित हैं। 'सरस्वती'का प्रवर्त्तन, 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका'का वर्षों सम्पादन, 'पृथ्वीराजरासो,' 'हिन्दी-शब्द-सागर', 'हिन्दी-वैज्ञानिक कोष' एवं अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सम्पादन तथा 'साहित्यालोचन', 'भाषा-विज्ञान' आदि अनेक मौलिक ग्रन्थोंका प्रणयन करके उन्होंने साहित्यकी सर्वांगीण प्रगतिके लिए मार्ग तैयार किया। नागरी-प्रचारिणी सभाके रूपमें यद्यपि वे अपना अत्यन्त दृढ़ स्मारक छोड़ गए हैं, तथापि यह हिन्दी-भाषा-भाषी-मात्रका कर्तव्य है कि उनके अत्यन्त प्रिय कार्य हिन्दी-भाषा तथा साहित्य एवं देवनागरी-लिपिके प्रचार और उन्नतिमें यथाशक्ति योग देकर उसे आगे बढ़ाए। प्रसन्नताकी बात है कि काशीमें एक पुस्तकालय भी उनकी स्मृतिमें स्थापित होने जा रहा है तथा एक विद्यालयका संघटन भी उनके नामसे किए जानेका आयोजन हो रहा है। सभाने स्वयं यह निश्चय किया है कि १०००) तथा २०००) के दो पुरस्कार प्रति चौथे वर्ष उनकी पुण्यस्मृतिमें दिए जाया करें, जिनका क्रम इस प्रकार होगा—(१) १०००) का एक पुरस्कार संवत् २००५ से प्रति चौथे वर्ष ऐसे लेखककी सर्वश्रेष्ठ कृतिपर दिया जायगा, जिसकी मातृभाषा हिन्दी न हो तथा जो प्रधानतः अहिन्दी-भाषी प्रान्तमें निवास करता हो। ये पुरस्कार किन विषयोंकी रचनाओंपर दिए जाने चाहिएँ, यह प्रश्न अभी सभाके समक्ष विचाराधीन है। इन दोनों पुरस्कारोंके लिए सभाको १००००) की स्थायी निधि संकलित करनी है। सर्वप्रथम दिए जानेवाले दोनों पुरस्कार सभाने अपनी साधारण आयमें से देना निश्चित किया है। इस बीच स्थायी निधिके १००००) संचित कर लेने हैं। आशा है, स्वर्गीय डाक्टर महोदयके भक्तों और परिचितोंको यह आयोजन रुचिकर होगा और वे इसके लिए अधिक-से-अधिक आर्थिक योग दे और दिलाकर शीघ्र १००००) की स्थायी निधि संचित करनेमें सहायक होंगे। —रामनारायण मिश्र, प्रधान-मन्त्री।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

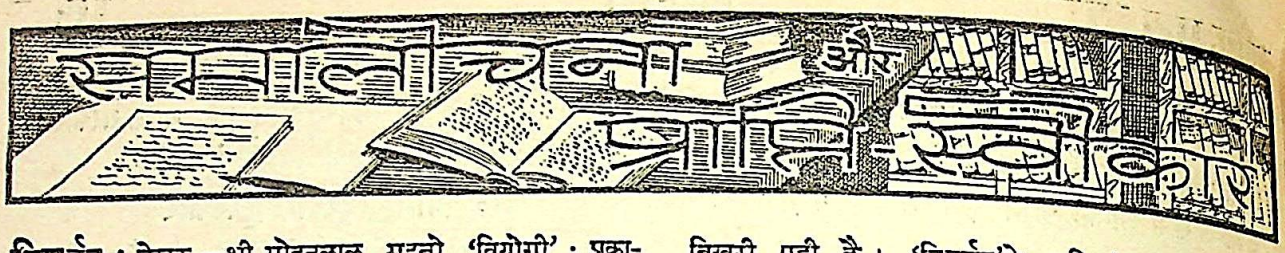

विसर्जन : लेखक—श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' ; प्रकाशक—श्री छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य २)।

अति आधुनिक वातावरणमें पली युवती बेला और गाँवों और शहरोंके बीच रमनेवाले किशोरीको लेकर उपन्यासका आरम्भ हुआ है। बेला प्रतिभाशील लड़की है। अपने सहपाठीके लिए उसके हृदयमें आकर्षण है, इसे वह महसूस तो करती है ; परन्तु है इस ओर उदासीन। किशोरको बेलासे प्रेम है। उसे देशसे भी स्नेह है। देशके दलित-गलित अंगके दुःखसे भी सन्तप्त है। बेलाको पाकर उसे बहुत प्रसन्नता होती ; पर उसे प्राप्त करनेका वह कभी प्रयास नहीं करता। कालेज छोड़कर वह ब्रह्मचारीके दिखाए पथपर चल ग्रामोद्धारके कार्योंमें लग जाता है। उसकी राहमें पुलिसके रिटायर्ड दारोगा उसके पिता ही सबसे बड़ी बाधा हैं। प्रभुभक्तिके जोशमें एक दिन वे किशोरकी गिरफ़्तारीका सरंजाम कर देते हैं। गाँवके दूसरे दारोगाकी हत्यामें निरपराधी होते हुए भी किशोर स्वयंको अपराधी मान लेता है। उसे फाँसी हो जाती है। एक मिलमें मज़दूरोंपर होते लाठी-चार्जने बेलाकी आँखें खोल दीं। उसका जीवन नितान्त आमोद-रत बीता था। अब वह उस पथपर चलनेकी आकांक्षासे भर उठती है, जिसपर अभी तक कभी चली न थी और जिसपर किशोर चला था।

'विसर्जन' पूँजीवादी शोषण, अन्ध-अनुकरणकी बुराइयों और 'विलायती व्यक्तिगत स्वतन्त्रता' पर एक व्यंग है। विचारों के पीछे तर्क और अध्ययनका ज़ोर है। सुलेखकने अपने उपन्यासमें चरित्र-विकासको समुचित क्षेत्र नहीं दिया। 'विसर्जन'के पात्र-पात्री घटनाक्रम अथवा अपने व्यक्तित्व द्वारा नहीं, लेखक द्वारा परिचालित हैं। कृतिकारने अपनी आवश्यकताके अनुसार उन्हें बड़ा किया और इच्छा होते ही खत्म कर दिया है। किशोरको जो प्राकृतिक रूपसे उन्नत होने दिया गया होता, तो फाँसीके तख्तेपर वह बलिदान और त्यागके आनन्दमें झूमता हुआ जाता। वह तो किसी ध्येयके लिए नहीं, प्रेमकी निराशासे आहत हो प्राण त्यागने आया है। तब निर्बलतासे भरा वह एक सामान्य व्यक्ति रह जाता है—वह आदर्श चरित्र नहीं, जिसे लेखकने शुरूमें अंकित करना चाहा है। चटर्जी और सेन तो बिलकुल ही अन्तःसार शून्य दिखलाए गए हैं। अमीरोंकी मण्डलीमें ऐसा एक भी पात्र नहीं, जिसमें गर्हित पशुताके अतिरिक्त कुछ और भी होता। समाजके इस स्तरके प्रति लेखकका मन अत्यधिक कड़ुआहटसे भरा है। सारी पुस्तकमें यह कटुता बिखरी पड़ी है। 'विसर्जन'के अधिकांश पात्र प्रतिनिधि-पात्र हैं ; परन्तु परिपक्वतापर नहीं पहुँच पाए।

महादेवीकी रहस्य-साधना : लेखक और प्रकाशक—श्री विश्वम्भर 'मानव', बनबटा, मुरादाबाद ; मूल्य २)।

इतनी सहज, सुबोध शैलीमें लिखी आलोचनाएँ हिन्दीमें चार-छः ही होंगी। ग्रन्थकी रचना सामान्य पाठककी कठिनाइयों को ध्यानमें रखकर की गई है। महादेवीको समझनेमें अक्सर भूलें हुई हैं। उनपर सबसे बड़ा आक्षेप उनकी एकरसता और दुःखवादी दर्शनके सम्बन्धमें है। उनके प्रत्येक गीतमें वही एक बात, प्रियसे वियोग और उस विरहमें आनन्दकी अनुभूति ही, अनेक ढंगसे चित्रित मिलती है। गीतोंमें करुणा मूर्त्तिमती है। वे कहीं हँसती नहीं। देवी सम्पूर्णतः रहस्यवादिनी हैं। उनके सम्बन्धकी ये भ्रान्तियाँ रहस्यवादसे पाठककी अनभिज्ञताका परिणाम है। रहस्यवादको ठीक रूपमें समझे बगैर महादेवीको समझा नहीं जा सकता। प्रस्तुत पुस्तक इस दिशामें लेखकका एक सफल प्रयास है।

रहस्यवादका छायावादसे अन्तर, उनकी सरल-सुबोध परिभाषाएँ, उनके विषयमें प्रचलित भ्रमों—विशेषतः आचार्य शुक्लजी के तर्कों—का उत्तर और रहस्यवादके मूल तत्वोंपर मनोरम अध्याय बने हैं। इसके बाद रहस्यवादका सामान्य रूप छोड़कर व्यक्ति-विशेषके—महादेवीके—रहस्यवादकी आलोचना की गई है। महादेवीमें करुणा, उनकी प्रणयानुभूति, उनके काव्यके साधन और साध्य पक्षकी मीमांसा करते समय स्वयं एक सरस गद्यकी सृष्टि हो गई है। अन्तिम अध्याय रहस्यवादके अन्य कलाकारोंकी संक्षिप्त आलोचनाओंका संग्रह है। अपनी बात कहते समय आलोचक कहीं जटिल नहीं हो जाते, यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनमें आलोचककी सूक्ष्म परख ही नहीं, मर्मीकी रसानुभूति भी है। रसमें वे डूब-डूब जाते हैं—'अश्रुमय, कोमल, कहाँ तू आ गई परदेशिनी री।' 'महादेवीकी रहस्य-साधना' इसी परदेशिनीका विस्तृत परिचय-पत्र है।

यहाँ आँसू बहाना है मना : लेखक—श्री राधेश्याम मिश्र ; प्रकाशक—विद्या-मन्दिर लिमिटेड, कनाट सरकस, नई दिल्ली ; मूल्य १॥)।

पुस्तक कहानियोंके रूपमें लिखे गए लेखकके जेल-जीवनके अनुभवोंका संग्रह है। ये किसी अमानुषीय संसारकी कहानियाँ हैं। जेलके बाहर बसनेवालोंका इससे परिचय नहीं। यहाँ जो कुछ है, वह इतना जघन्य अत्याचारपूर्ण, इतना कुत्सित, इतना घृणित है कि इसपर विश्वास नहीं होता। किन्तु लाहौर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और दिल्लीके क़िलोंमें क़ैदियोंके साथ हुए नृशंस व्यवहारका जो रहस्य अब प्रकाशनमें आया है, उसे ध्यानमें रखते तो यही जान पड़ता है कि कहानियोंमें कल्पना नहीं, वास्तविकता ही है। पुस्तक में नग्न अश्लीलताके प्रकरण भरे पड़े हैं। रियासती जेलोंके इस नारकीय वातावरणको उसके सत्य रूपमें अंकित करनेकी जिस लगनसे लेखक व्याकुल है, जान पड़ता है, उसके कारण ही इससे वह त्राण नहीं पा सका। लेकिन इसकी बीभत्सता मनमें इस प्रकार अपरिसीम घृणा भर देती है कि वह बीमार महसूस करने लगता है। मनुष्यको राक्षसोंमें परिणित करनेवाले इन जेलोंका सुधार देशके इतिहासमें एक स्वर्ण-घटना होगी। शैली सुन्दर है।

—रूपकुमारी बाजपेई

प्रेरणा : लेखक—श्री प्रेमनारायण टण्डन ; प्रकाशक—विद्या-मन्दिर, चौक, लखनऊ ; मूल्य ॥।) ।

'प्रेरणा'में टण्डनजीके पाँच नाटक संग्रहीत हैं। प्रथम दो अंगरेज़ीसे स्वतन्त्र रूपसे अनूदित हैं। टण्डनजीने इन्हें भारतीय वातावरणके अनुकूल बनानेका प्रयत्न किया है ; किन्तु इसमें वे असफल ही हुए हैं। इन्हें उनके नाटक लिखनेका अभ्यास-मात्र कहना उचित होगा। ऐसी दशामें इन्हें प्रकाशित करना ठीक न था। सासके सम्मुख बहूका अपने पतिसे कहना—'शतीश, मेरे प्यारे, तुम भीगे हुए हो ? सर्दी खा रहे हो ?' (माता, पृष्ठ ९) यह अस्वाभाविक धृष्टता प्रतीत होती है। इसी प्रकार 'प्रेमी' नामक नाटकमें वृद्धा कुमारी रजनी भारतीय समाजके ढाँचेमें फ़िट नहीं होती। शान्ति और प्रभाका अपने-अपने प्रेमियोंके प्रति इतना खुला अनुराग भी विदेशी है।

अन्य तीन नाटकोंमें लेखकने आधुनिक समाजके चित्रोंको अंकित करनेका प्रयत्न किया है। अपने निवेदनमें लेखकने स्वयं स्वीकार किया है कि कथानककी न्यूनताके कारण अभिनयोचित क्रियाशीलताका इन सभीमें अभाव है। इसके अतिरिक्त पात्रोंका चित्रण भी साधारण ही हुआ है। लकड़ीके खिलौनोंके समान वे जड़ बने रहते हैं। उनका क्रमिक विकास नहीं हो पाता। 'बचपन के साथी'में धीरेन्द्रका चरित्र इतना नगण्य और प्रभावहीन है कि जब वह अन्त तक प्रलोभनोंकी उपेक्षा करता है, तो हमें आश्चर्य होता है। 'कनवेसिंग' प्रहसन है। इसमें बौद्धिक हास्य नहीं है। वार्त्तालाप चलता हुआ है। 'प्रेरणा' नामक नाटकके अन्तमें चन्द्रकेतुके बाहर चले जानेपर राजेन्द्रका स्वगत भाषण हमें खटकता है। उसके विचारोंमें अचानक परिवर्त्तन कैसे हुआ, इसका कोई कारण समझमें नहीं आता। क्या राजेन्द्र पहले नहीं जानता था कि उसका मित्र उदीयमान लेखक है ? ऐसे अस्वाभाविक स्थल अन्य नाटकोंमें भी हैं। लेखककी भाषामें चुस्ती और प्रतिबन्धकी कमी है। इसके अलावा इनमें भावनाजन्य 'क्लाइमेक्स' कहीं नहीं है। विद्युतके समान दीख जानेवाले तथ्योंके हमें कहीं दर्शन नहीं होते। कलाकारकी सूक्ष्मदृष्टि इनमें नहीं है।

उन्मुक्त प्रेम : लेखक—श्री गुरुदत्त ; प्रकाशक—विद्या-मन्दिर लिमिटेड, कनाट सरकस, नई दिल्ली ; मूल्य ६) ।

उन्मुक्त प्रेमकी समस्याके साथ ही इस उपन्यासमें और कई गुत्थियाँ उलझी हुई हैं—मुख्यतः पूँजीवाद और कम्यूनिज़्मकी। किन्तु लेखक इनमें से किसीका पक्षपात नहीं करता। मानव-चरित्रकी विविधताओंको समझनेका प्रयास करता है। ग़ुलाम-रसूल कम्यूनिस्ट पार्टीका प्रधान होते हुए भी मुसलमान रहता है। सेठ धन्नारामके कारखानेमें आग लगवाकर, विमला और नरगिसको फाँसनेका प्रयत्न करके तथा प्रेमको भ्रष्ट करके वह अपनी पठान-मनोवृत्तिका ही परिचय देता है।

प्रेमके लिए हृदयमें करुणा उमड़ती है ; परन्तु बिहारीलाल के लिए घृणा। उन्मुक्त प्रेमकी आड़में वह अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। विमलाके प्रति उसका व्यवहार बड़ा असंगत है। विमला और प्रेम दोनोंके चरित्रपर वह सन्देह करता है। नरगिससे तो उसका प्रेम शारीरिक है ही। शेक्सपियरके इयागोके समान वह नारी-हृदयसे खेल करता है। परन्तु अन्तमें प्राण-रक्षा विमला ही करती है, उन्मुक्त प्रेमकी उपासिका प्रेम नहीं। प्रेमका चरित्र आरम्भसे ही बहुत उच्छृंखल है। सम्भोग उसके लिए निजकी बात है, समाजसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसीलिए वह बिहारीलालसे छिपाकर ग़ुलामरसूलको आत्म-समर्पण कर देती है। इसके उपरान्त सेठ धन्नारामसे विवाहका स्वाँग रचती है, क्योंकि नौ हज़ारकी मोटरकारपर चढ़कर कम्यूनिस्ट बनना तो सरल बात है ; किन्तु १५०) रु० मासिक में जीवन बिताना कठिन। उसकी मनोवृत्ति शुद्ध पूँजीवादी है।

अन्य पात्रोंका चित्रण सामान्य है। कथावस्तु विशृंखल है। प्रासंगिक घटनाओंकी अधिकताके कारण उपन्यासकी सूत्र-बद्धता नष्ट हो गई है। गुरुदत्तजी अपनी गुत्थियोंको सुलझा नहीं सके। जीवनके अन्तर्द्वन्द्वने उन्हें पराभूत कर दिया है। वे कोरे यथार्थवादी हैं। फ़ोटोग्राफ़रके समान वे जीवनके चित्र सफलतासे उतार सकते हैं, कल्पनाके रंगोंसे उन्हें सुन्दर नहीं बना सकते। उनमें अन्तर्दृष्टिकी कमी है।

प्रेमचन्दके उपन्यासोंके समान उन्मुक्त प्रेमकी आधार-भूमि सामाजिक है। एक ओर जहाँ प्रेमचन्द गांधीवादी हैं और ग्रामीणोंके सुधारका स्वप्न देखते हैं, गुरुदत्त बुद्धिवादी हैं और नागरिक-अधिकार-रक्षक समितियोंके पक्षपाती हैं। किन्तु देशमें फैले हुए अनाचार तथा अत्याचारको ऐसी समितियाँ कहाँ तक दूर कर सकती हैं, यह विचारणीय है। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द एक सिद्धहस्त कलाकार हैं। उनकी एक विशिष्ट शैली है। गुरुदत्तकी भाषामें प्रौढ़ता नहीं है। उनके परिश्रमकी झलक साफ़ दिखाई देती है। वर्णन तथा कथोपकथन कहीं-कहीं नीरस

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो गए हैं। फिर भी इस उपन्याससे पाठकोंका मनोरंजन अवश्य होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

एकांकिका : लेखक—श्री चन्द्रकिशोर जैन, बी० ए०; प्रकाशक—जीवन-कला-मन्दिर, सहारनपुर; मूल्य २)।

इस पुस्तकमें लेखकके सात एकांकी संग्रहीत हैं। इनमें जो बँगला तथा अंगरेज़ीके स्वतन्त्र अनुवाद हैं, उनमें भी मौलिक रचनाओंका-सा रस है। लेखकने नाटकोंकी टेकनीकका गहरा अध्ययन किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इनमें से अधिकांश केवल साहित्यिक दृष्टिसे ही श्रेष्ठ नहीं, रंगमंचके लिए भी बहुत उपयोगी हैं। रेडियोपर तो यह आ ही चुके हैं।

इन्साफ़ हल्के 'मूड'में लिखा हुआ 'फ़ार्स' है। स्त्रियोंके चरित्रके एक अंग (भावुकता तथा बुद्धिहीनता) को अत्युक्तिके साथ प्रस्तुत करके नाटककारने उच्चकोटिके हास्यकी सृष्टि की है। 'अस्पतालका कमरा' सफल नाटक है। इसका अन्त बड़ा करुण है; किन्तु कारुण्यका सृजन शब्दों द्वारा न होकर पात्रोंके व्यवहारसे हुआ है। यह प्रणाली बहुत कलात्मक है। राबर्ट सिंजके 'राइडर्स टू दी सी'का अन्त भी ऐसा ही वेदनामय है। 'क़ानून'में आधुनिक समाजका दर्दनाक चित्र है। पूँजीवादके इस युगमें ऐसी घटनाओंका होना कोई असाधारण बात नहीं। इस नाटकमें एक तीव्र व्यंग है। आजके क़ानूनों तथा नैतिक आदर्शोंके प्रति एक तीखा उपहास है। ढाई वर्षकी क़ैदने चमनलालको मनुष्यसे पशु बना दिया, इसका उत्तरदायित्व क्या बेचारे चमनलालपर ही है? गोपीचन्द अपने पिता सेठ विलास रायसे ठीक ही कहता है—'आज आपकी आत्माके चारों ओर एक दरिद्रकी हत्या और उसके अभिशापकी काली लकीरें खिंच गईं और लाख पश्चात्ताप करके भी आप उसका प्रतिकार नहीं कर सकेंगे...'

'पहली भेंट'में रानीके मनोभावोंका विश्लेषण और उसके अभिशप्त हृदयके अन्तर्द्वन्द्वका चित्रण प्रभावशाली है। वातावरण-अंकन भी अच्छा हुआ है। 'विष-कन्या'में एक ऐसी नारीकी कहानी है, जिसका नारीत्व एक मूर्ख संन्यासीकी तप-साधनापर बलि किया जाता है, जिसे आदर्शका भुलावा देकर नारीके नैसर्गिक अधिकारसे वंचित किया जाता है; किन्तु इसका अन्त क्या होता है? नारीके हृदयकी प्रतिहिंसा ज्वाला बनकर उसी संन्यासीको दग्ध करती है; किन्तु उसके हृदयकी पूजा वामदेवके चरणोंपर अर्पित होती है, जिसकी मंगल-कामनासे प्रेरित होकर वह अपने सँजोए हुए यौवनकी क्षणिक तृप्तिको ठुकरा देती है, अपनी वर्षोंकी तृष्णाको कुचल देती है और कहती है—'मैं विष-कन्या हूँ। ज़हरसे भरा हुआ मेरा शरीर हमारे मिलनके बीच है, ठीक वैसे ही, जैसे इन दो तटोंके बीच नदीकी यह प्रचण्ड धारा।'

नाटककारको भाषाके ऊपर अधिकार है। वस्तु-संगठन तथा चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। भावनाजन्य 'क्लाइमेक्स' इन नाटकोंमें तीव्र है। चन्द्रकिशोरजीका भविष्य उज्ज्वल है, ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। —अमरनाथ झौहरी

'दि ब्लाइण्ड इन इण्डिया एण्ड एब्राड' (भारत और विदेशोंके अन्धे) : लेखक—प्रो० सुबोधचन्द्र राय, एम० ए०, बी० एल०; प्रकाशक—कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता; पृष्ठ २५५; मूल्य ३)।

प्रस्तुत पुस्तक प्रो० रायके समय-समयपर लिखे गए उन लेखों, पत्रों, रेडियो-भाषणों आदिका संग्रह है, जिनमें आपने भारतीय अन्धोंकी समस्याओं तथा उनकी शिक्षा और विकासके सम्बन्धमें क्रियात्मक विचार प्रकट किए हैं। भारतीय अन्धोंकी स्थिति, उसके प्रति जनताका उपेक्षा-भाव और समाज तथा देशके लिए उनकी शिक्षाके महत्वको स्पष्ट करनेके लिए आपने विदेशोंमें इस दिशामें हुए कार्योंका बड़े सहायक रूपमें उल्लेख किया है। जो व्यक्ति अन्ध-शिक्षण-कार्यमें संलग्न हैं, उनके लिए तो पुस्तक बहुमूल्य है ही; पर जनसाधारणके लिए भी यह विशेष उपादेय एवं जानकारी बढ़ानेवाली है। विद्वान लेखकने अपने विचारोंको अमली रूप देनेके लिए कलकत्तेमें अन्धोंके लिए एक 'प्रकाश-गृह'की भी स्थापना की है। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान, अमरीका आदिमें अन्धोंकी शिक्षा तथा समस्याओंका अध्ययन कर लेखकने इस पुस्तकके रूपमें जो बातें लिखी हैं, यदि सरकार और ग़ैर-सरकारी संस्थाएँ उनको कार्यान्वित करें, तो भारतीय अन्धोंका न सिर्फ़ सुधार और उद्धार ही हो सकता है, बल्कि देश और समाजका यह बोझ उसके लिए वरदान बन सकता है। हमें आशा है, इस उपयोगी पुस्तकका अधिकाधिक प्रचार होगा।

गांधीजीके साथ सात दिन : लेखक—लुई फिशर; अनुवादक—श्री सुदर्शन और श्री कुलभूषण, बी० ए०; प्रकाशक—वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड, ३ राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई-२; पृष्ठ १३०, मूल्य २), सजिल्द।

जून १९४२ में प्रसिद्ध अमरीकन पत्रकार श्री लुई फिशर सेवाग्राममें एक सप्ताह गांधीजीके पास ठहरे थे। उस समय उनकी गांधीजीसे जो बातचीत हुई, उसीको उन्होंने 'ए वीक विद गांधी' नामसे पुस्तकाकार छपवाया है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका भाषान्तर है। इससे गांधीजीके व्यक्तित्व, विचार-शैली और तत्कालीन भारतकी राजनीतिक वस्तु-स्थितिको समझनेमें बड़ी मदद मिलेगी। पुस्तककी भाषा सरल और हिन्दुस्तानीपन लिए हुए है। कई जगह अनुवाद अच्छा नहीं हुआ है। फिर भी पुस्तक प्रत्येक भारतीयके पढ़ने लायक है। —'भग्नदूत'

CC-O. Jangamwadi Math Collection. Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

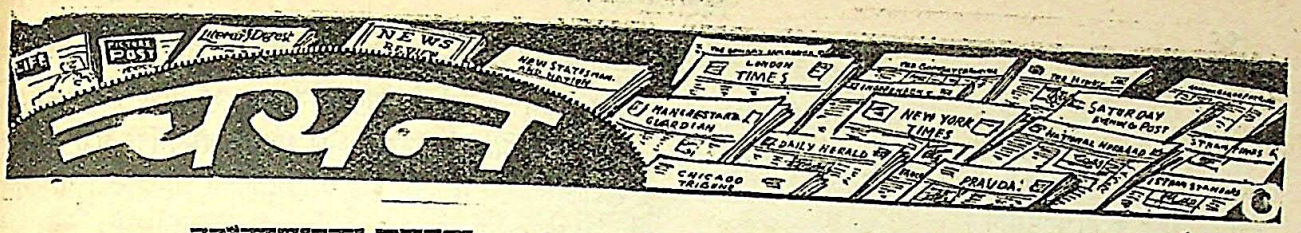

बहादुरशाहका मुक़दमा

दिल्लीके लाल क़िलेमें आज़ाद हिन्द-फौजके 'फौजी विचार' के रूपमें होनेवाले ब्रिटिश न्यायके नाटकने ८७ वर्ष पूर्व वहीं हुए एक ऐसे ही नाटककी याद ताज़ा कर दी है। यह था दिल्लीके भूतपूर्व शाह मोहम्मद बहादुरशाहका मुक़दमा, जो जनवरीसे मार्च १८५८ तक चला। जिस दीवाने खासमें कभी बहादुरशाह का दरबार लगा करता था, उसीमें अपने सहकारी ग़ुलामअब्बास और दुभाषिए जेम्स मर्फ़ीके साथ उन्हें पाँच अंगरेज़ अफ़सरोंके आगे अभियुक्तके रूपमें खड़ा होना पड़ा था। उनपर इल्ज़ाम लगाए गए थे—ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी सेनाके लोगोंको 'सरकार' के खिलाफ़ बग़ावत करनेको उकसाना; अपने लड़के और अन्य ब्रिटिश नागरिकों (?) को बग़ावतके लिए उकसाना; ब्रिटेनके प्रति अपनी राजभक्ति भूलकर स्वयं भारतका बादशाह हो जाना और दिल्लीपर कब्ज़ा कर लेना और ब्रिटिश शासनको उखाड़ फेंकनेका षड्यन्त्र करना तथा ४९ गोरोंकी हत्यामें हाथ होना। उनका कोई क़ानूनी सलाहकार न था, अतः उन्होंने इस्तग़ासेके गवाहोंसे खुद जिरह की और न्यायके इस नाटककी कई असम्बद्धताओंको उनके मुँहसे उगलवा लिया। गोरे अफ़सरों और स्त्री-बच्चोंकी तथाकथित हत्याओंमें उनका तनिक भी हाथ होनेका कोई सबूत नहीं मिला। फिर भी फौजी अदालत(?)ने उन्हें सब अपराधोंका 'दोषी' पाया और रंगून जलावतन कर दिया।

बहादुरशाहपर लगाई गई फ़र्दज़ुर्म भारतके पहले स्वाधीनता-संग्रामकी एक आंशिक झाँकी है। कहते हैं कि लाल क़िलेके छोटे-से तालाबके किनारे जो पीपलका पेड़ है, उसीके नीचे ४९ गोरोंका तथाकथित खून हुआ था। यह बात कहाँ तक सच है, यह तो कहा नहीं जा सकता; पर इसने फौजी इस्तग़ासेके वकीलको इतना कटु बना दिया कि उसने अपने बयानमें हिन्दुस्तानियों, हिन्दू-मुसलमानों और एशियाइयों तकको लानत-मलानत देनेमें कुछ उठा नहीं रखा। पर इतना तो उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि '१८५७ का विद्रोह एक ऐसा संघर्ष होता, जिसमें देशवासी आदतों, भावनाओं, वर्ण, धर्म, रक्त आदिमें अपनेसे बिलकुल भिन्न विदेशियोंको बाहर निकालकर शासन-सत्ता अपने हाथमें ले लेते।' मुसलमान शासकों द्वारा ज़बरदस्ती हिन्दुओंके मुसलमान बनाए जानेकी सफेद झूठ भी हिन्दू-मुसलमानोंमें फूट नहीं डाल सकी और ब्राह्मण तथा मुसलमान भाई-भाईकी तरह मिलकर गोरोंके खिलाफ़ लड़े। ('हिन्दुस्थान स्टैण्डर्ड')

भारतकी आबादी

भारतकी आबादी बुरी तरह बढ़ रही है। हर मिनट उसके अधभूखे परिवारमें १० सदस्योंकी वृद्धि होती जाती है। यह वृद्धि उसकी आबादीका १५ प्रतिशत है। १९३१ में यह ३३·८ करोड़ थी, जो १९४१ में ३८·८ करोड़ हो गई। इस तरह हर १० वर्षोंमें ब्रिटेनकी पूरी आबादीसे भी अधिक भारत की आबादी बढ़ जाती है। कुछ लोगोंका खयाल है कि इस देशमें बच्चे अधिक पैदा होते हैं और कुछका यह कि इस देशकी आबादी अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत घनी है। कुछका कहना है कि प्रगतिशील पाश्चात्य स्त्रियोंकी अपेक्षा भारतीय स्त्रियोंको सन्तानोत्पत्तिमें कम कष्ट होता है। पर दरअसल ऐसी बातें सब पर लागू नहीं की जा सकतीं। यहाँ ज़िन्दगी बसर करना काफ़ी सस्ता है और समय-समयपर आनेवाले अकाल, अनावृष्टि, प्लेग, भूकम्प, तूफ़ान एवं अन्यान्य महामारियोंके बावजूद देशमें जो ऊपरी शान्ति है, वह भी इसका एक कारण है। किसी हद तक सन्तानोत्पत्तिको भाग्यकी बात समझना और नियन्त्रित करनेको अनैतिक एवं अधार्मिक समझना भी इसका कारण है।

पर अन्य देशोंसे भारतमें पैदायश अधिक है, यह धारणा भ्रान्त एवं मिथ्या है। १८७० से १९३० तक संसारमें आबादी की जो वृद्धि हुई है, उसके कुछ देशोंके आँकड़े इस प्रकार हैं—भारत ३० फ़ी-सदी, यूरोप (रूसको छोड़कर) ६४ फ़ी-सदी, जर्मनी ६० फ़ी-सदी, रूस ११५ फ़ी-सदी और अमरीका १२५ फ़ी-सदी। भारतमें १८७० के बाद बढ़ी आबादी इसलिए अधिक मालूम होती है कि यहाँ तो पहलेसे ही मूल आबादी अधिक थी। १९२१ और १९३१ के बादकी दशाब्दियोंमें ज़रूर यहाँ की आबादी विशेष बढ़ी है, जिसका कारण है देशकी खुशहाली और किसी बड़ी महामारीका अभाव। सिन्ध, पंजाब तथा पूर्वी बंगालके बहुतसे हिस्से जरखेज हो गए और फलतः यहाँकी आबादी भी बढ़ी।

भारतकी आबादी बंगालमें प्रति वर्गमील ८०० है, तो बलूचिस्तानमें सिर्फ़ १०० ही। औसत आबादी प्रति वर्गमील २६४ है। अमरीकासे यह ५॥ गुना है, यद्यपि ब्रिटेन, जापान, जर्मनी और इटलीसे कम ही है। किन्तु भारतके जन्म, मृत्यु और बाल-मृत्युके आँकड़े, जो प्रति हज़ार पीछे क्रमशः ४५, २३ और २४० हैं, संसारमें सबसे ऊँचे हैं। ज़च्चाओंकी मृत्यु-संख्या भी, जो ५० से १०० तक प्रति हज़ार है, काफ़ी ऊँची है। पर इसका कारण है कम उम्रमें बच्चे होने लगना तथा शारीरिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शक्तिकी कमी। इस दृष्टिसे भी पश्चिमके मुकाबलेमें भारतकी स्थिति दयनीय है। अतः देशकी आबादीके सम्बन्धमें कोई रचनात्मक योजना उपस्थित करनेसे पूर्व इन सब समस्याओंपर ध्यान देना आवश्यक है। ('स्टेट्समैन')

सच्ची स्वतन्त्रता और शिक्षा

गत ७ नवम्बरको लन्दनमें हुई संयुक्त-राष्ट्रोंकी शिक्षा और संस्कृति-परिषदमें बोलते हुए भारतीय प्रतिनिधि राजकुमारी अमृतकौरने कहा—"भले ही कोई जाति शिक्षा या उद्योगोंके क्षेत्रमें कितनी ही पिछड़ी हुई क्यों न हो, स्वतन्त्रताको बहुमूल्य थाती उसके लिए भी सुरक्षित रहनी चाहिए। उस दुनियामें—जो आधी गुलाम और आधी आज़ाद है, जो आधी भर-पेट और आधी भूखी है, जहाँ पवित्र वचनों और सद्भावनाओंके साथ ही शोषण और सामाजिक अन्याय पनपते हों—सच्ची स्वतन्त्रता और तदनुसार वास्तविक संस्कृति हो ही नहीं सकती। भले ही भौगोलिक अवरोधोंपर विजय प्राप्त कर ली जाय, किन्तु घृणा और ग़लतफहमियोंके महासागर हमें आज भी अलग किए हुए हैं। अगर दुनियाके पुनर्निर्माणके लिए शिक्षासे कुछ काम लेना है, तो हमें पहले शिक्षाका ही पुनर्निर्माण करना चाहिए।

"बच्चोंको अब और अधिक अपने ही देशकी वीरताके रूपमें सोचना नहीं सिखाया जाना चाहिए। उन्हें यही सिखाया जाना चाहिए कि उनका देश समूचे विश्व-राष्ट्रकी भलाईमें लगा राष्ट्रोंके संघका एक सामान्य सदस्य-मात्र है। सबसे पहले हम सब मनुष्य हैं, इस बातकी स्वीकृति आवश्यक है। जाति या वर्णका कोई भी विचार मनुष्यमें पृथकताकी भावना पैदा न करे। विविध देशोंका भ्रमण और उनकी संस्कृतियों, धर्मों एवं इतिहासोंका अध्ययन हमारी शिक्षाका एक आवश्यक अंग होना चाहिए। बच्चे जाति और वर्णके भेदोंको नहीं जानते। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें ये सब न सिखायँ।"

शिक्षा द्वारा भावी विश्वके निर्माणमें महिलाएँ क्या कर सकती हैं, इस सम्बन्धमें आपने कहा—"स्त्रियोंकी शिक्षाका महत्व तो और भी अधिक है; क्योंकि यदि सद्भावना पैदा करनी है, तो वह जातियोंकी माताओं द्वारा ही पैदा हो सकती है। मेरा विश्वास है कि यदि स्त्रियाँ अपनी नैतिक शक्तिको महसूस कर लें, तो वे ही दुनियासे 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली मसलको खत्म करा सकती हैं।

"अपने धर्म और दर्शन द्वारा भारतने सदा शान्तिका ही प्रसार किया है। वह बहुत-सी जातियों और संस्कृतियोंका संगम भी है। पर समूचे अतीत और वर्त्तमानमें हमारी सहानुभूति सदा अन्तर्राष्ट्रीय ही रही है और आक्रमणका शिकार होनेवालोंको हमसे पूरा नैतिक समर्थन मिला है। अपने आजके स्वाधीनता-संग्राममें भी हमने दुनियाके एक महान व्यक्तिके नेतृत्वमें अहिंसा और आत्म-पीड़नको ही अपने उद्देश्य तक पहुँचनेका साधन बनाया है। आज विश्वकी संस्कृति और सभ्यता दोनों विनाशके द्वारपर खड़ी हैं। इस स्थितिमें एक ऐसी दुनियामें जो शक्तिसे प्रभावित राजनीतिके दलदलमें फँसी हो, पारस्परिक सन्देहों और द्वेषभावोंसे अलग-अलग हो, जो दुर्बल लोगोंके शोषणपर तुली हो और जहाँ हर देश अपनी आज़ादीके लिए लालायित और दूसरोंकी आज़ादीके प्रति उदासीन हो, शिक्षा और संस्कृतिकी शक्ति ही मानवताकी रक्षा कर सकती है।" (रायटर)

७-८ हज़ार वर्ष पहलेकी सभ्यता

लन्दनमें होनेवाली संयुक्त-राष्ट्रोंकी शिक्षा और संस्कृति-परिषदके ईराकी प्रतिनिधि डा० नजीउल् असिल (ईराक-सरकार के पुरातत्त्व-विभागके अध्यक्ष) का कहना है कि सेटन लायड नामके एक अंगरेज़ पुरातत्त्ववेत्ताके साथ ईराकके प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता सुआद सफ़रने दो वर्षोंकी खुदाईके बाद अब्राहमके समयके ईराककी कुछ ऐसी चीज़ें प्राप्त की हैं, जो ईस्वी-पूर्व ५००० और ६००० वर्ष पहलेकी हैं। अब तक हमारा विश्वास था कि मानव-सभ्यताका आरम्भ सुमेरियन युगसे ५०० से एक हज़ार वर्ष पहले उबैदके ज़मानेमें हुआ था, जैसा कि १५ वर्ष पूर्व ल्योनार्ड ऊलेने खोज निकाला था। पर इस नई खोजसे मालूम होता है कि मानव-सभ्यता ई० पू० ४ से ६ हज़ार वर्ष पुरानी है।

ये नई चीज़ें हुसेना नामक गाँवके पास प्राप्त हुई हैं। इनसे पता चलता है कि लगभग ८००० वर्ष पूर्व मनुष्य ज़मीन बोना पशु पालना, ईंटें तथा मिट्टीके बर्त्तन बनाना आदि जानता था। इस युगके लोग शान्तिवादी किसान तथा औज़ार बनानेवाले थे। फसल काटनेका एक पत्थरका हँसिया मिला है, जिसकी धार आज भी काफ़ी तेज़ है। कुछे टुकड़ोंको जोड़कर विशेषज्ञोंने जो सुराही बनाई है, वह ६००० वर्ष पहलेकी है। बहुत-सी ईंटें और घरोंकी नीवें भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे ८००० वर्ष पहलेकी गृह-निर्माण-कलापर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक घरमें आवश्यकतानुसार २ या ३ कमरे होते थे। हर घरका एक सहन होता था। प्रत्येक कमरेका रक़बा लगभग ६-७ वर्गफीट और ऊँचाई ८ फीट होती थी। सब ईंटें हाथसे बनाई हुईं, इक्सां और आजकलकी ईंटोंसे आधी हैं। क़ब्रें भी मिली हैं, जिनमें से कइयोंमें कंकाल तक निकले हैं। विशेषज्ञोंने निरक्षणके बाद बताया है कि आजकलके और तत्कालीन मनुष्योंमें क़द आदिका कोई खास फर्क़ नहीं था। जहाँ ऊरकी खुदाईमें शाहों, मलिकाओं, देवी-देवताओं, पादरी-पादरिनियोंकी सम्पन्नताके चिह्न मिले हैं, हुसेनामें सामान्य नागरिकोंके दैनिक जीवनके ही चिह्न मिले हैं। ('न्यूयार्क टाइम्स')

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सम्पादकीय विचार

गांधीजी बंगालमें

करोड़ों भारतीयोंके आशा-देव और दरिद्रोंको 'नारायण'की संज्ञा देनेवाले महात्मा गांधी गत १ दिसम्बरको बंगालका दौरा करने कलकत्ता पहुँचे हैं। इस अभागी 'सुजलां, सुफलां, शस्य श्यामलाम्' बंग-भूमिके शोषित-पेषित दरिद्रोंकी मूक आहों-आकांक्षाओंके साथ हम अपने हृदयके आदर और श्रद्धाका अर्घ्य उनको अर्पित करते हैं।

सेवाग्रामसे बंगालके लिए रवाना होते समय गांधीजीने वहाँके महिला-आश्रममें बोलते हुए कहा—'मैं चार या पाँच आदमियोंको सेवा करने बंगाल नहीं जा रहा हूँ, बल्कि करोड़ों की।' गांधीजीसे देशवासियोंको आशा भी इसी बातकी है। कलकत्ता पहुँचनेके दिन ही सोदपुर-आश्रममें संध्याकी प्रार्थनाके बाद उन्होंने कहा—'मैं बंगालकी राजनीति या आगामी चुनावों में भाग लेनेके लिए नहीं आया हूँ। बंगाल आनेका मेरा उद्देश्य सिर्फ़ यह है कि अपनी उपस्थितिसे अकालका शिकार हुए लोगोंको जो सान्त्वना देना सम्भव है, दूँ और उनके कष्टोंको कम करनेके लिए जो-कुछ हो सके, करूँ।'

जिस समय सरकारी बेईमानी तथा पाप और ग़ैरसरकारी पूँजीवादके अभिशापसे पड़े अकालके कारण बंगाल यमलोक बन रहा था और कलकत्तेकी गली-सड़कोंपर मौत बिछ गई थी, दुर्भाग्यसे गांधीजी नज़रबन्द थे। मई '४४ में, जब कि मौतकी वह छाया काफ़ी फीकी पड़ चुकी थी, गांधीजी छूटे; पर रक्त-चाप और मलेरियाने उन्हें इतना दुर्बल बना दिया था कि वे शीघ्र ही बंगाल न आ सके। इसके बाद भारतकी राजनीति तथा अन्य कारणोंने उन्हें रोक लिया। आज जब गांधीजी बंगाल आए हैं, अधिकांश अकाल-पीड़ित क़ब्रों और मसानोंमें चैनसे सो रहे हैं। अब उनके कष्ट कम करनेके लिए किसी मानवी सान्त्वनाकी ज़रूरत नहीं है। हाँ, वे लोग आज भी जीवित हैं, जिन्होंने घूस-मुनाफ़ाखोरी, चोरबाज़ारी और चोरीसे अनाज जमा करके इन दरिद्र-नारायणोंको असमय और असम्मानके साथ मौतके मुँहमें धकेला। मनुष्यताका कलंक बने ये भारतीय बहूदी—जिन्होंने कल कस्तूरबा-स्मारक-कोषकी निधि बढ़ाई और जो आज खद्दरकी पोशाकमें गांधीजीकी जय बोलने, हरिजन-कोष और हिन्दुस्तानी-प्रचारके लिए मुँहमाँगा धन देनेमें भी अग्रणी हैं—आज गांधीजीके सत्य और अहिंसाकी नैतिकताको चुनौती देते-से खड़े हैं। जो अकालमें मर चुके, वे तो कष्ट-मुक्त हो गए; पर जो इन नराधमोंकी यहूदी-वृत्तिके कारण भावी अकालकी संभावनासे सन्त्रस्त हैं, उनको सान्त्वना और रक्षाके लिए गांधीजी क्या करते हैं, बंगालके करोड़ों दरिद्र आज इसी प्रश्नके साथ आशा-भरी दृष्टिसे गांधीजीकी ओर ताक रहे हैं।

यह ख़ूनख़राबा क्यों?

कलकत्तेकी प्रमुख सड़कोंमें से बहुत कम ऐसी होंगी, जो विगत अगस्त '४२ में पुलिस तथा फौजियोंकी लाठियों-गोलियों का शिकार बनी निरीह-निहत्थी जनता और युद्धके दौरानमें बर्मा तथा फौजी लारियोंसे कुचले गए अभागोंके खूनसे अभिषिक्त न हुई हों। पिछले अकालके समय सड़कोंपर भूखसे रिस-रिसकर मरे लाखों व्यक्तियों और बच्चोंका नज़ारा तो आज भी यम-लोककी याद दिला देता है। पर शोषण और दमनपूर्ण विदेशी साम्राज्यवादी शासनकी निगाहमें भारतीयोंके जिस्म-जानका क्या मूल्य एवं महत्व है, यह मानो इन काली करतूतोंसे अभी काफ़ी स्पष्ट नहीं हुआ था; इसीलिए यहाँके भ्रष्ट, निकम्मे, ग़ैरज़िम्मेदार और स्वेच्छाचारी शासनने गत २१, २२ और २३ नवम्बरको लाठियों तथा गोलियों द्वारा ४० व्यक्तियोंका खून बहाकर तथा ३४० से अधिक व्यक्तियोंको घायलकर अपने पुलिस-राजके खूनी इतिहासमें एक नया काला अध्याय जोड़ा। स्थानीय पत्रोंमें कलकत्तेके इस रक्त-स्नानका जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उससे पता चलता है कि गत २१ नवम्बरको वैलिंगटन पार्कमें 'आज़ाद हिन्द-फौज-दिवस' मनानेके बाद छात्रोंका एक दल जलूसके रूपमें जब तीसरे पहर ३॥ बजेके लगभग धर्मतल्ला और मैडन स्ट्रीटके चौराहेपर पहुँचा, तो पुलिसने आगेका हल्का 'सुरक्षित क्षेत्र' बतलाकर उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। इसपर छात्र सड़कपर बैठ गए। उनके पास केवल तिरंगे झण्डे और सुभाष बाबूके चित्र थे और वे 'जय हिन्द' तथा 'आज़ाद हिन्द-फौजको छोड़ दो' के नारे लगा रहे थे। वे पूर्णतया शान्त और अनुत्तेजित थे। ६-५० के लगभग काफ़ी भीड़ वहाँ जमा हो चली और दो दलों में विभाजित छात्रोंने मिलनेकी कोशिश की। इससे बीचमें खड़ी पुलिसपर 'दबाव' पड़ा और उसने छात्रोंपर लाठियाँ बरसानी शुरू कीं। इससे उत्तेजित होकर पुलिसपर कुछ ईंटें फेंकी गईं। स्थानीय पत्रोंमें प्रकाशित विवरणसे पता चलता है कि ईंटें तो प्रदर्शनकारियोंने इकट्ठी की थीं, न पुलिसपर फेंकी ही। (शरत बाबूके कथनानुसार यह काम पुलिसके एजेण्टोंने किया।) कुछ देर तक घुड़सवार-पुलिस और सशस्त्र सार्जेण्टोंकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लाठी-वर्षा जारी रही और ७-१० पर सहसा गोलियाँ चलने लगीं। भीड़ पीछे ज़रूर हटी, पर एकदम नहीं हटी और गोलियाँ चलानेवालोंपर अधिक ईंटें बरसने लगीं। पुलिसवाले अन्धाधुन्ध गोलियाँ चला रहे थे और बहुतोंको, जिनमें से अधिकांश दर्शक ही थे, पकड़ भी रहे थे। शरत् बाबूके सन्देश तथा कई कांग्रेसी नेताओंके समझाने-बुझानेपर भी जब छात्र वहाँसे वापस नहीं लौटे, तो रातको १०॥ के लगभग स्वयं गवर्नर केसी घटनास्थल पर पहुँचे। डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, कलकत्ता-विश्वविद्यालयके वाइस-चांसलर डा० राधाविनोद पाल तथा प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्तृ कुमारी ज्योतिर्मयी गांगुलीने उन्हें सारी स्थिति समझाई और अनुरोध किया कि यदि प्रदर्शनकारियोंको डलहौज़ी-स्क्वायर होकर निकल जाने दिया जाय, तो कोई अशान्ति नहीं होगी। पर गवर्नर और अधिकारी ऐसा करनेको राज़ी न हुए। वे बोले — 'यह असम्भव है, क्योंकि वह जगह सुरक्षित है।' इसके बाद वे लोग छात्रोंसे मिले और उन्हें लौट जानेको कहा; पर छात्र अपने नागरिक अधिकारकी रक्षाके लिए दृढ़निश्चय थे। इसपर डा० मुकर्जीने कहा कि प्रदर्शनकारियोंको कम-से-कम कर्ज़न पार्क तक ही जाने दिया जाय; पर अधिकारियोंने इसे भी नहीं माना। ११ बजे गवर्नर लौट गए और प्रदर्शनकारी रात-भर सड़कपर ही बैठे रहे। सुबह ७ बजेके लगभग उन्हें चित्तरंजन एवेन्यू होकर गुज़रने दिया गया।

उपर्युक्त विवरणसे पाठक देखेंगे कि प्रदर्शनकारी बिलकुल निरस्त्र, शान्त और अनुत्तेजित थे। न तो उनकी ओरसे पुलिस या उसके आक़ाओंको कोई उत्तेजन दिया गया और न क़ानून तथा अमनको भंग करने या किसी 'सुरक्षित' स्थानको अरक्षित बनानेका ही उनका कोई इरादा या तैयारी थी। आए दिन कलकत्तेमें कई जलूस निकलते हैं; पर क़ानून या शान्ति भंग होते नहीं देखी गई। फिर २१ नवम्बरको ही आखिर ऐसा कौन-सा साम्राज्यवादी अपशकुन आ गया, जो अधिकारी अपनी बुद्धि और दूरदर्शिता खो बैठे? यदि डलहौज़ी-स्क्वायर 'सुरक्षित' क्षेत्र था और वहाँ जाना निषिद्ध था, तो क्या कभी किसी विज्ञप्ति या नोटिस-बोर्ड द्वारा इसकी घोषणा की गई? और यदि था, तो फिर दूसरे दिन झक मारकर प्रदर्शनकारियोंको वहाँसे क्यों गुज़रने दिया गया? फिर इस दिन तो कोई आसमान नहीं फटा! अगर यही सुविधा प्रदर्शनकारियोंको २२ के बजाय २१ नवम्बर को दी गई होती, तो कौन-सी क़यामत बरपा हो जाती या ब्रिटिश साम्राज्यवाद खत्म हो जाता? पर हुक्म हाकिमका था, टलता कैसे? ज़िद शासकोंकी थी, वे झुकते कैसे? शानमें बट्टा जो लगता! और इस झूठी शान, काष्ठबुद्धिकी हठधर्मी और शासनकी खुलती हुई कलईको क़ानून तथा अमनकी रक्षाके नामपर बचा रखनेके लिए लगभग ४०० भारतीयोंका खूनखराबा क्या बड़ी बात है! अगर अन्धे अधिकारियोंकी निगाहमें भारतीयोंके स्वाभिमान का कुछ भी महत्व होता, अगर उनकी निगाहमें भारतीयोंके जिस्म और जानका कुछ भी मूल्य होता, तो या तो वे लाठियों और गोलियोंकी शरण लेनेसे पहले बुद्धि और विवेकसे काम लेते या फिर लाठियोंके बाद सीधे गोलियोंपर न आकर आँसू लानेवाले बमोंका ही प्रयोग करते। निहत्थे और शान्त प्रदर्शनकारियोंका दल जर्मनी या जापानकी सशस्त्र सेना तो था नहीं, जो उसे रोकने के लिए गोलियोंके बिना काम ही न चलता!

घृणा और क्षोभका ज्वालामुखी

शासनके दम्भ और अधिकारके मदमें क़ानून तथा अमनकी रक्षाके नामपर जो आततायीपन गत २१ नवम्बरको हुआ, उसकी पुनरावृत्ति २२ और २३ नवम्बरको भी नगरके कई भागोंमें हुई। शान्त, निहत्थी और अनुत्तेजित भीड़पर हुई गोली तथा लाठी-वर्षाने जनताको इतना क्षुब्ध कर दिया कि इस निकम्मे एवं अवांछनीय शासनके प्रति क्षण-प्रतिक्षण बढ़नेवाली उसकी घृणा और असन्तोषका ज्वालामुखी सहसा धधक उठा। नगरमें बस, ट्राम, घोड़ागाड़ी और टैक्सियोंका चलना रुक गया। दुकानें, होटल और दफ़्तर बन्द हो गए। सड़कोंपर उत्तेजित और ग़मगीन लोगोंकी भीड़ लगने लगी। जिधर आखें उठतीं, तिरंगे झण्डे और सुभाष बाबूके चित्र ही नज़र आते थे। जनताकी इतनी अखण्ड एकता, नगर-भरकी इतनी व्यापक और ठोस सहानुभूति, इतनी मुक़म्मिल और शान्तिपूर्ण हड़ताल कलकत्तेमें पहले कभी नहीं देखी गई। पहले दिनके गोलीकाण्डमें मारे गए एक छात्र श्री रामेश्वर बनर्जीकी अर्थीके जलूसमें लाखों व्यक्तियोंकी जो अजस्र सरिता उमड़ पड़ी; उसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, हिन्दू-महासभाई, कांग्रेसी, मुस्लिम-लीगी, कम्युनिस्त और खाकसार सभी लोग थे। इन्हें देखकर मालूम होता था, मानो गोलियों और लाठियोंपर टिके आततायी शासनको चुनौती देनेके लिए जनबल की यह सामूहिक और संगठित पाँत फौलादी दीवार बनकर उठ खड़ी हुई है। इसे देखकर कोई अन्धा भी शायद न कहता कि भारतीय सोए, ग़ाफिल और असंगठित हैं।

जब अधिकारियोंकी ज़्यादतीसे उत्तेजित जनता क्षुब्ध और ग़मगीन हो रही थी, कलकत्ता-कार्पोरेशनकी पूँजीवादी मनोवृत्तिके विरोध-स्वरूप उसके २० हज़ार कर्मचारियोंने हड़ताल कर दी। इस तरह सवारियों, दुकानों, दफ़्तरों और इस हड़तालसे लाखों अशिक्षित मातहत बेकार होकर घूमने लगे। इन लोगोंने नगरमें फैली आतंकपूर्ण स्थितिका लाभ उठाना शुरू किया। फौजी लारियों द्वारा हस्बदस्तूर कुचले गए व्यक्तियोंके खूनने गोरोंके खिलाफ़ इनकी घृणा और क्षोभको इतना उभाड़ा कि इन्होंने फौजी लारियोंपर पत्थर बरसाना, गोरोंको पीटना और कई जगह लारियाँ जलाना शुरू कर किया। पर प्रदर्शनकारी छात्रसों

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इनका न तो कोई संगठन था, न कोई व्यवस्था ; अतः इन्हें मना करना काफ़ी मुश्किल काम हो गया। पर किसी तरह कांग्रेसी तथा अन्य कार्यकर्त्ताओंने घूम-घूमकर इन्हें समझाया और तब कहीं जाकर इनके अप्रिय काण्ड रुके। अधिकारियोंको इस गम्भीर प्रतिक्रियासे सबक़ लेना चाहिए और आयन्दा निरीह जनताके प्राणोंके मूल्यपर लाठियों-गोलियोंसे खेलनेकी अपनी खतरनाक आदतको बदलना चाहिए।

ख़ूनियोंको सज़ा दी जाय

कमोबेश रूपमें कलकत्तेके उपर्युक्त रक्त-स्नानको जलियाँवाला-बागके हत्याकाण्डकी पुनरावृत्ति कहा जा सकता है। निहत्थे और ग़रीब भारतीयोंकी जान और जिस्मके प्रति अधिकारियोंकी वही उपेक्षा, लोकमतके प्रति वही उदासीनता तथा हर हालतमें अपनी ज़िद और दम्भकी रक्षा करनेके लिए खून तक बहानेका वही दुराग्रह आज भी मौजूद है। अगर जलियाँवालाबाग-हत्याकाण्ड को पहले महायुद्धमें विजयी ब्रिटिश साम्राज्यवादका भारतको और उस युद्धमें दिए गए सहयोग-साहाय्यके लिए भारतीयोंको पुरस्कार कहा जाय, तो अगस्त '४२ से नवम्बर '४५ तक हुए रक्तपातको दूसरे महायुद्धमें विजयी उसी पुराने साम्राज्यवादका तौहफ़ा कहा जा सकता है। आततायी जर्मनी, जापान और इटलीका फ़ाशिस्त शासन खत्म हो गया ; पर उनसे पहलेका यह बूढ़ा नख-दन्त-हीन फ़ाशिज़्मका पितामह आज उनके बाद भी शानसे दूसरोंके घरों व ज़मीनपर यूनियन जैक फहरा रहा है!

एक स्वरसे समूचे देशने कलकत्तेके गोलीकाण्डकी निन्दा की है और उसके लिए ज़िम्मेदार व्यक्तियोंको अविलम्ब दण्डित करनेकी माँग की है। गोलियाँ किसने चलाईं और किसके हुक्मसे, इस सम्बन्धमें बंगाल-असेम्बलीके कांग्रेस-दलके नेता श्री किरणशंकर रायके, जो घटनास्थलपर मौजूद थे, वक्तव्यकी निम्न पंक्तियोंकी ओर हम जनता और उच्चाधिकारियोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं—"जनताके दिमाग़में यह भ्रम है कि किसीने गोली चलानेकी आज्ञा ज़रूर दी होगी। पर मेरा विश्वास है, यह बात ठीक नहीं। किसी आज्ञाकी ज़रूरत इसलिए नहीं पड़ी कि पुलिसने किसीके हुक्मसे गोली नहीं चलाई। मेरी धारणा यह है कि भारतीय पुलिसने तो काफ़ी आत्म-नियन्त्रण रखा ; पर कलकत्ता-पुलिसके सार्जेण्टोंने हमले किए और गोलियाँ चलाईं। इसका स्वाभाविक बहाना हस्बदस्तूर वही आत्म-रक्षाका होगा। यह विश्वास करना कठिन है कि इन सज्जनोंकी क़ीमती जानें इतनी खतरेमें थीं कि नौजवानोंको गोली से उड़ाकर ही उनकी रक्षा की जा सकती थी। इन अपराधियोंका पता लगाना मुश्किल नहीं होना चाहिए। इन पुलिस-सार्जेण्टोंको दिए गए कारतूसोंका कोई हिसाब तो होगा ही। उनकी संख्यासे खाली कारतूसोंकी संख्या मिलाकर यह जाना जा सकता है कि कौन-कौनसे व्यक्तियोंने कितनी गोलियाँ चलाईं। इन लोगोंको सज़ा मिलनी चाहिए। दूसरे, ऐसे बुज़दिलोंको, जिनका अपने-आपपर नियन्त्रण न हो और जो ज़रा-सी अशान्तिसे ही समझने लगें कि उनकी जान खतरेमें है, ऐसे खतरनाक अस्त्र नहीं दिए जाने चाहिएँ। हम भूले नहीं हैं कि सन् १९४२ की अशान्तिके दिनोंमें सड़कपर टेलीफ़ोनकी लाइन ठीक करनेवाले एक मिस्त्रीको ही गोली मार दी गई थी। अतः पुलिस-सार्जेण्टोंसे पिस्तौल छीन लिए जाने चाहिएँ। एक बुज़दिल, भारतीय जीवनसे घृणा करनेवाला और पिस्तौल इन तीनोंका बड़ा खतरनाक संयोग हो जाता है, जो सार्वजनिक शान्तिके लिए ठीक नहीं। विशेष मौक़ोंपर और विशेष आदेशोंके साथ ही पुलिसको पिस्तौल दिए जाने चाहिएँ।"

किरण बाबूके उपर्युक्त वक्तव्यकी यथार्थतासे इन्कार नहीं किया जा सकता। अधगोरे सार्जेण्टोंके चरित्र, ज़हनियत और सांस्कृतिक सतहको देखते हुए उनके हाथोंमें पिस्तौल देना बच्चे या शैतानके हाथोंमें पिस्तौल देनेसे कम खतरनाक नहीं है। क्लाइव और हेस्टिंग्ज़की यह जारज सन्तान अपने-आपको उनसे किसी भी तरह कम या हिन्दुस्तानके मालिकसे और कुछ समझने को तैयार नहीं। फिर भला अपने बाप-दादों द्वारा तलवारसे जीते गए मुल्ककी ये भला पिस्तौलसे भी रक्षा न करें!

गोली चलाना अनावश्यक था

ऊपर हमने कहा है कि निहत्थे, शान्त और अनुत्तेजित छात्रोंपर गोली चलाना सर्वथा अनुचित एवं अनावश्यक था। उन बहुतसे निष्पक्ष और ईमानदार विदेशियोंका भी यही मत है, जो घटनास्थलपर उपस्थित और अधिकारियोंके सम्पर्कमें थे। इस सम्बन्धमें गत २६ नवम्बरके 'स्टेट्समैन'में छपा अमरीकन फ्रेंड्स सर्विस कमिटी और फ्रेंड्स एम्बूलेंस यूनिटके अध्यक्ष श्री हैरी अब्राहमसनका यह पत्र दर्शनीय है—"महोदय, पिछले तीन दिन कलकत्तेमें हुआ संघर्ष और रक्तपात फ्रेंड्स एम्बूलेंस यूनिट और अमरीकन फ्रेंड्स सर्विस कमिटीके सदस्योंके लिए भारी चिन्ताका कारण बना है। इन संस्थाओंके शान्तिवादी होनेके कारण हम किसी प्रकारके बल-प्रयोगके औचित्यसे सहमत नहीं और हमारा यह भी विश्वास है कि ऐसे बल-प्रयोगसे घृणा और कटुता ही बढ़ती है और इसके बदलेमें भी बल-प्रयोग ही होता है। अतः हम पिछले दिनों हुई घटनाओंकी निन्दा करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्यमें सभी दल समझ और तर्कसे काम लेंगे। प्रदर्शनकारियोंमें से जिन शरारतियोंने बल-प्रयोग किया, उसकी निन्दा ठीक ही हुई है। किन्तु यह मानते हुए भी कि इन्हें रोकनेके लिए बल-प्रयोग आवश्यक था, हम यह नहीं महसूस करते कि स्थितिका तक़ाज़ा पुलिस द्वारा निहत्थी भीड़पर गोली चलानेका था, जिसके परिणाम-स्वरूप कई जानें गईं।"

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले सफ़ाई, फिर जाँच !

देशव्यापी माँगके बावजूद बंगाल-सरकारने कलकत्तेकी इस अशान्तिके कारणोंकी निष्पक्ष ग़ैरसरकारी जाँच करानेकी मानो कोई आवश्यकता ही नहीं समझी और अपनी सफ़ाईमें गत ३० नवम्बरको एक विज्ञप्ति प्रकाशित करा दी! इसका आधेसे अधिक भाग उपद्रवकारियोंके विवरणसे भरा है, जिसका छात्रोंके प्रदर्शनसे कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सरोकार नहीं था। अधिकसे अधिक इसे सरकारी उपद्रवकी ग़ैरसरकारी प्रतिक्रिया कहा जा सकता है। विज्ञप्तिमें कहा गया है कि 'प्रदर्शनकारियोंको बल-प्रयोग द्वारा तितर-बितर करनेकी कोई कोशिश नहीं की गई' और 'भीड़को नियन्त्रित करनेके पुलिसके प्रयत्नोंका तगड़ा मुक़ाबला किया गया। एक स्थितिमें भीड़ द्वारा बुरी तरह घिर जाने का विश्वास होनेपर एक छोटे पुलिस-दलने गोली चलाई।' इन दोनों कथनोंका विरोधाभास पाठक स्पष्ट देख सकते हैं। अनेक चश्मदीद गवाहोंका कहना है कि यह विवरण अपर्याप्त और यह बहाना सरासर झूठा है। विज्ञप्तिमें पुलिस द्वारा विभिन्न अवसरों पर १४ बार गोली चलाए जानेका उल्लेख कर कहा गया है—'पुलिस द्वारा गोली चलाए जानेके प्रत्येक अवसरको परिस्थितियों के सम्बन्धमें पुलिस-रेगूलेशनोंके अनुसार आवश्यक जाँच हो रही है।' तब फिर जाँचका परिणाम ज्ञात होनेसे पहले ही यह विज्ञप्ति निकालकर पुलिसके गोली चलानेको उचित बताने और सारा दोष जन-पक्षपर मढ़नेका अर्थ ही क्या? या सारे काण्डकी निष्पक्ष एवं ग़ैरसरकारी जाँचकी देशव्यापी माँगको भुलावा देनेके लिए ही इस थोथी जाँचकी दुहाई दी गई है?

सरकारी ग़ैरज़िम्मेदारी और लोकमतकी उपेक्षाका इससे बड़ा और निकृष्ट उदाहरण शायद ही कहीं मिले। अगर किसी रेगिस्तान या निर्जन स्थानमें चाँदमारीका अभ्यास करती हुई पुलिसकी गोलीसे कोई हताहत होता, तो शायद उपर्युक्त ढंगकी जाँचसे लीपा-पोती हो सकती थी। पर कलकत्ते-जैसी घनी आबादीवाले शहरमें, और वह भी भीड़पर, १४ बार गोली चले और जाँच हो पुलिस-रेगूलेशनोंके अनुसार! ऐसी जाँचका परिणाम तो लगभग वही होगा, जो विज्ञप्तिमें पुलिस द्वारा गोली चलाए जानेके औचित्यके रूपमें प्रकट हो चुका है! पुलिस-रेगूलेशनोंमें क्या यह आदेश है कि बिना पर्याप्त खतरे या उत्तेजनाके, बिना माकूल चेतावनी दिए, बिना किसी ज़िम्मेदार अफ़सरकी आज्ञाके जिस किसी पुलिसवालेके मनमें आय, गोली चला बैठे? वक़ील शरत बाबूके, इन गुरुतर अपराधों—अधिकारोंके दुरुपयोग—की जाँच हाईकोर्टके जजों तथा जनताके विश्वासपात्र नेताओंके निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा ही होनी चाहिए। हमें आशा है, लगभग ४०० निहत्थोंके ख़ूनसे खेली गई इस अपवित्र होलीके लज्जाजनक काण्डकी सरकार शीघ्रातिशीघ्र निष्पक्ष और ग़ैरसरकारी तौरपर जाँच करवायगी।

शरत् बाबूका खेदजनक रवैया

जहाँ हमें अधिकारियोंसे अदूरदर्शिता, हठधर्मी, झूठी शान और अधिकारके दुरुपयोगकी शिकायत है, वहाँ शरत् बाबूसे भी हमें कुछ कहना आवश्यक जान पड़ता है। उनके त्याग, सेवा और देशके लिए कष्ट-सहनकी गौरवमय गाथा बंगाल ही नहीं, समूचे देशका बच्चा-बच्चा जानता है। आज बंगालमें उनकी प्रतिष्ठा, लोकप्रियता और प्रभाव सर्वोच्च हैं। ऐसी दशामें हमारा—और हमारे साथ हज़ारों कलकत्ता-निवासियोंका भी—विश्वास है कि यदि वे गोली-लाठी-वर्षासे पूर्व या बादमें घटनास्थलपर पहुँच कर स्थितिको सँभालने-सुधारनेकी चेष्टा करते, तो यह काण्ड इतना भीषण शायद न हो पाता। पर न सिर्फ़ वे कांग्रेसी और विद्यार्थी-कार्यकर्त्ताओंके बार-बार अनुरोध करनेपर भी घटनास्थल पर नहीं गए, बल्कि छात्रोंसे तितर-बितर हो जानेकी अपील करते हुए अपने सन्देशमें यहाँ तक कह डाला—'छात्रो, तुमने अपनी अनुशासन-हीनतासे मेरा दिल तोड़ दिया!' पूर्ण अनुशासन में रहकर गोलियाँ और लाठियाँ झेलनेवाले दृढ़व्रती छात्रोंमें इसकी जैसी प्रतिक्रिया हो सकती थी, वैसी ही हुई। सन्देशवाहकके हाथोंसे छीनकर सन्देश फाड़ डाला गया और छात्रोंने कहा—'शरत् बाबूका कोई सन्देश सुननेको हम तैयार नहीं। हम उन्हें खुदको यहाँ देखना चाहते हैं। अगर यहाँ आनेके बाद वे हमसे तितर-बितर होनेको कहते, तो हम हो जाते।' इसके बाद रात को १०॥ बजे प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्री कुमारी ज्योतिर्मयी गांगुली स्वयं शरत् बाबूको लिवा लानेके लिए गईं। पर पौने ग्यारह बजे लौटकर उन्होंने कहा कि शरत् बाबू घटनास्थलपर आनेको तैयार नहीं। काश, शरत् बाबू सुभाष या जवाहर होते!

इतना ही नहीं, दूसरे दिन वैलिंगटन पार्ककी सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए आपने अपनी शान दिखानेको यहाँ तक कह डाला कि कल कुछ खुफिया शरारती और भाड़ेके उत्तेजक जनतापर कांग्रेसका जो असर है, उसे नष्ट करनेका षड्यन्त्र रच रहे थे। ऐसे मौक़ेपर साम्राज्यवादके एजेण्टों और गवर्नरोंसे हाथ मिलाने में घटनास्थलपर कैसे आ सकता था! गत २९ नवम्बरको चिनसुरा-मैदानमें हुई सार्वजनिक सभामें बोलते हुए आपने फिर दोहराया कि मुझे किसी भी तरह घटनास्थलपर ले जानेका षड्यन्त्र इसलिए किया गया था कि ज्योंही मैं वहाँ पहुँचता, ईंटें बरसने लगतीं और पुलिस गोली चलाती; जिससे ख़ूनकी नदियाँ बहतीं और मेरी आँखोंके आगे दर्जियों नहीं, सैकड़ों जानें जातीं! पहले तो हम यही नहीं समझ सके कि बिना घटनास्थलपर गए शरत् बाबूने खुफिया शरारतियों और भाड़ेके एजेण्टोंके इस षड्यन्त्रका पता कैसे लगा लिया? जब वे कलकत्तेमें थे और स्वस्थ थे, तब दूसरोंकी सुनी-सुनाई बातोंके

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आधारपर इतना बड़ा निर्णय दे देना उनके-जैसे प्रतिष्ठित और ज़िम्मेदार नेताके लिए क्या शोभाकी बात है? फिर अगर यह बात सच भी थी, तब तो उनका घटनास्थलपर आना और भी अधिक आवश्यक था; क्योंकि जब जनतापर से कांग्रेसका प्रभाव नष्ट करनेका षड्यन्त्र किया जा रहा हो, तो कोई भी ईमानदार और दूरदर्शी कांग्रेसी नेता चैनसे घरमें बैठकर उसकी रक्षा कैसे कर सकता है? शरत् बाबूके गवर्नरों तथा साम्राज्यवादके एजेण्टों से हाथ न मिलानेकी प्रवृत्तिका हम हृदयसे समर्थन एवं आदर करते हैं। परन्तु घटनास्थलपर उन्हें जनताके नागरिक अधिकारकी हिमायत और उसके हननकी खूनी प्रतिक्रियाको रोकने—निहत्थे लोगोंकी प्राण-रक्षा—का प्रयत्न करनेके लिए जाना चाहिए था। किसी गवर्नर या साम्राज्यवादी एजेण्टके सम्मानमें वहाँ कोई पार्टी तो दी नहीं जा रही थी, जो उनसे हाथ मिलाने का प्रश्न उठता। और ऐसा कहनेके कुछ ही घण्टे बाद शरत् बाबूने गवर्नरके सैक्रेटरीसे टेलीफ़ोनपर बातें कीं और दूसरे दिन गवर्नरसे मिले भी! सभी जानते हैं कि उनके इस प्रयत्नसे स्थिति सुधरी। यही काम क्या वे पिछले दिन नहीं कर सकते थे?

शरत् बाबूकी उपर्युक्त बातों और छात्रोंको दिए गए इस उपदेशसे कि तुम लोग पूर्ण अहिंसावादी और शान्त रहो, अपनी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न न करो; यदि अधिकारी और बाहरवाले यह धारणा बनायँ कि ज़रूर उत्तेजना या गड़बड़ी पहले प्रदर्शनकारियों की ओरसे हुई होगी, तो आश्चर्य ही क्या? इस तरह परोक्ष रूपसे उन्होंने न केवल प्रदर्शनकारियोंके कठोर अनुशासन-पालन, धैर्य, दृढ़ता, साहस, पूर्ण अहिंसाव्रती रहने और आसाधारण संगठनपर ही पानी फेर दिया, बल्कि पुलिसकी गोली-लाठी-वर्षाका औचित्य भी सिद्ध कर दिया! शरत् बाबूकी इन्हीं ग़लत तथा भ्रान्त बातोंके आधारपर मौलाना आज़ाद, सरदार पटेल और नेहरूजीने भी जो वक्तव्य दिए हैं, उन्होंने लाठियाँ और गोलियाँ खानेवालोंके मनपर जलेपर नमक छिड़कनेका काम किया है। आततायी शासनकी जिस ज़ुल्म-ज़्यादतीका दृढ़तासे मुक़ाबला करनेकी बात कांग्रेसके नेता आए दिन जनतासे कहते हैं और अगस्त १९४२ में हुए ऐसे जिन मुक़ाबलोंपर वे गर्व करते हैं, हमें आश्चर्य और खेद है, एक वैसे ही श्रेष्ठ, अनुकरणीय और कठोर अहिंसावादी मुक़ाबलेके लिए कलकत्तेके छात्रोंको अपनी शक्ति छिन्न-भिन्न न करने तथा पूर्ण अहिंसावादी बने रहनेका उपदेश दिया जा रहा है—जैसे इन्होंने अनुशासन भंगकर तथा पुलिसको व्यर्थ उत्तेजित करके ही लाठियाँ-गोलियाँ खाई हों।

कुमारी ज्योतिर्मयी गांगुली

ऊपर हमने बंगालकी जिन प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्री कुमारी ज्योतिर्मयी गांगुलीका नामोल्लेख किया है, दुर्भाग्यवश वे अब इस संसारमें नहीं रहीं। गत २१ नवम्बरको खाना-पीना सब-कुछ भूलकर वे स्थितिको सुधारनेके लिए और लाठी-गोलीसे आहत व्यक्तियोंकी सेवा-सुश्रूषा करती घूमती रहीं। २२ नवम्बरको जब वे पिछली शाम पुलिसकी गोलीका शिकार हुए छात्र श्री रामेश्वर बनर्जीकी शव-यात्रामें शामिल होने जा रही थीं, तो उनकी मोटरसे एक फौजी लारी टकरा गई। वे सख्त घायल होकर अस्पताल पहुँचाई गईं, जहाँ रातको उनका प्राणान्त हो गया।

बंगालकी राजनीति और समाजमें कुमारी गांगुलीकी देन अशेष है। उनका समूचा परिवार अपनी देशसेवा और आत्म-त्यागके लिए प्रसिद्ध है। कलकत्तेमें २५ जनवरी, १८८९ को उनका जन्म हुआ था। बचपनसे ही उन्हें अपने पिता श्री द्वाराकानाथ और माता श्रीमती कादम्बिनीदेवीसे समाज और देश-सेवाकी अनुपम शिक्षा मिली थी। बड़े होनेपर यही उनके जीवनका व्रत हो गया। १९२० में कांग्रेसके विशेष अधिवेशन के समय वे देशसेविका-दलकी अध्यक्षा थीं। अधिवेशनके अध्यक्ष स्व० लाला लाजपतराय उनकी कर्मठतासे इतने प्रसन्न एवं प्रभावित हुए कि उन्हें जालंधरके कन्या-महाविद्यालयमें बुला लिया। कई अन्य कन्या-शालाओंकी भी आप अध्यक्षा रहीं। १९३० और '३२ में भद्र-अवज्ञा करनेपर आप जेल गईं। कुछ समय तक आप लंकाकी बुद्धिस्ट कन्याशालाकी भी अध्यक्षा रहीं। इस कालमें आपने वहाँके राष्ट्रीय आन्दोलनको काफ़ी प्रेरणा और शक्ति दी। उनकी लगन, तत्परता, कार्यक्षमता और रात-दिन एककर काम करनेकी प्रवृत्ति पुरुषोंको भी दंग कर देती थी। उनकी दृढ़ता और साहस तो आश्चर्यजनक थे। गत २१ नवम्बरको जब निहत्थे छात्र घुड़सवार-पुलिसको लाठियों और उसके घोड़ोंकी टापोंके नीचे कुचले जा रहे थे, सिंहनीकी भाँति वे बीचमें कूद पड़ीं और एक घोड़ेकी लगाम पकड़कर उसपर बैठे सवारको उसकी काली करतूतपर धिक्कारने लगीं! उस समय उनकी तमतमाती मुख-मुद्रा चण्डीका स्मरण दिलाती थी। बड़ी बहन या माँकी तरह उन्होंने घायल छात्रोंकी सेवा-सुश्रूषा की और जब छात्रोंने रात-भर सड़कपर ही बैठे रहनेका निश्चय किया, तो कुमारी गांगुलीने भी रात वहीं बितानेका निश्चय किया। कहना न होगा कि जितना ज्योतिर्मय कुमारी गांगुलीका जीवन था, मृत्यु उससे किसी भी प्रकार कम ज्योतिर्मयी नहीं हुई। दिवंगत आत्माके प्रति हम साश्रु अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

गोरखोंका सामाजिक बहिष्कार

देशके दुश्मनोंका साथ देनेवाले ग़द्दारोंको राजनीतिक जागृतिवाले देशोंमें गोलीसे उड़ाए जाने तथा उनका सामाजिक बहिष्कार किए जानेकी बातें हमने बहुत पढ़ी-सुनी हैं; परन्तु भारत में ऐसी बातें विशेष नहीं सुनी गईं। कुछ लोगोंका कहना है कि पिछले दिनों कलकत्तेमें जिन्होंने गोली-लाठी-वर्षा की, उनमें कई गोरखे फौजी व पुलिसवाले भी थे। इसी धारणाको प्रतिक्रिया-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वरूप पिछले दिनों दक्षिण-कलकत्तेमें गोरखोंका सामाजिक बहिष्कार किया गया। घरों, दुकानों, होटलों आदिसे बहुतसे गोरखे बर्खास्त कर दिए गए। उन्हें बसोंमें नहीं चढ़ने दिया गया। खाने-पीनेका सामान भी उन्हें नहीं दिया गया। स्थिति इतनी गम्भीर हो चली कि गोरखा-दुःख-निवारक सम्मेलनका एक डेपूटेशन शरत बाबूसे मिला और उनसे इस आशयका एक वक्तव्य निकलवाया कि कलकत्तेकी गोरखा-जाति गोली और लाठी-वर्षाकी निन्दा करती है और चूँकि उसका गोली-लाठी चलानेवाले गोरखा पुलिसवालों तथा फौजियोंसे कोई सम्बन्ध नहीं, अतः उसका इस तरह बहिष्कार न किया जाय।

हम शरत् बाबूकी अपीलका ज़ोरोंसे समर्थन करते हैं। दरअसल इन नागरिकोंको उन गोरखा सिपाहियोंके कारनामोंके लिए दण्ड देना, जिनसे इनका शायद नामके सिवा और कोई सम्पर्क नहीं, वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं। पर इससे गोरखा भाइयोंको कुछ सबक़ तो ज़रूर ही सीखना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गोरखोंमें अनेक प्रतिभाशाली विद्वान, परखे हुए देशभक्त, आत्मत्यागी समाजसेवी और उन्नत विचारोंके लोग भी हैं; पर इनकी संख्या शायद आटेमें नमकके अनुपातमें ही है। अधिकांश तो सैनिक ही हैं, जिन्हें ब्रिटेनके साम्राज्यवादी कुल्हाड़े की बेंट कहना अधिक उपयुक्त होगा। जो खुशी हमें जर्मनों और जापानियोंपर चलनेवाली इनकी कुकरियों और गोलियोंके ठीक निशानेसे होती है, वह भारतीयों, बर्मियों या हमारे ही पड़ोसी फ्रांसीसी हिन्दी-चीनके निवासियों तथा इण्डोनेशियनोंपर लगनेवाले इनके निशानोंसे हर्गिज़ नहीं। क्या ये इस भेदको नहीं समझते? तब फिर इनमें और उन वफ़ादार कुत्तोंमें क्या भेद है, जो मालिक के इशारेपर उसके दोस्त और दुश्मन दोनोंको समान रूपसे काट सकता है। गोरखा भाइयोंको हमारी यह बात ज़रा कड़ुवी लग सकती है; पर है यह सच। दरअसल इसमें उनका कोई दोष नहीं। असली दोष है उनकी सामाजिक स्थितिका और मनु महाराजके उस हिन्दू-फ़ाशिज़्मका, जिसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद पहाड़ी रियासतोंके रूपमें जीवित-जाग्रत रख रहा है। इन राज्योंमें से अधिकांशमें आधुनिक शिक्षा, नई समाज-व्यवस्था या जनतन्त्रकी पहली किरण भी अभी नहीं पहुँची है। आदमीके प्राणों और स्त्रीके सतीत्वका मूल्य इनमें से अधिकांशमें किसी सस्ती सिगरेट के पैकेट या बीड़ीके बण्डलसे अधिक नहीं। क्या हमारे गोरखा भाई भारतीय ग़ुलामीके इन कोढ़-स्थलोंको मिटाकर स्वस्थ जनतन्त्र स्थापित करने और अपनी सामाजिक व्यवस्थाके आमूलचूल परिवर्त्तनकी ओर अब भी ध्यान नहीं देंगे?

वर्णद्वेषका यह भूत!

कलकत्तेकी पिछली अशान्तिमें, जैसा कि किरण बाबूने बतलाया है, शायद अधगोरे सार्जेण्टों द्वारा पहले-पहल गोलियाँ चलाई गईं। कदाचित् इसीलिए इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि गोरों द्वारा चालित फौजी लारियोंपर स्थितिका नाजायज़ फ़ायदा उठानेवाले ग़ैरज़िम्मेदार उपद्रवकारियोंने ईंट-पत्थर बरसाए और बहुत-सी जला भी दी गईं। हमें इसके लिए कम खेद नहीं। गोरी चमड़ीवालोंसे भारतीयोंका कोई विद्वेष नहीं। हमारी लड़ाई केवल अधिकारकी है; स्वाधीनताके अपने जन्मसिद्ध अधिकारको अमली जामा पहनानेका प्रयत्न-मात्र है। पर वर्णद्वेषका यह भूत दरअसल तो इस देशके गोरे शासकोंकी ही देन है। एक ज़माना था, जब प्रायः अधिकांश गोरे हिन्दुस्तानियोंको 'काला आदमी' और 'कुली-जाति' का कहकर हिक़ारतकी निगाहसे देखते थे। पर चमड़ी का रंग किसीको अपने जन्मसिद्ध अधिकारसे वंचित कैसे कर सकता है? किन्तु यह देखकर हमें आश्चर्य हुआ कि कलकत्तेकी घटनाओंके जो समाचार ब्रिटेन और अमरीकाके पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं, वे सरासर झूठे और इसी भूतके प्रभावके परिचायक हैं।

अभी-अभी समाप्त हुए महायुद्धमें ब्रिटेन और अमरीकाके पत्रोंमें जापानके खिलाफ़ राजनीतिकसे अधिक वर्णद्वेष-सम्बन्धी प्रचार ही अधिक हुआ है। आज फ्रांसीसी हिन्द-चीन और इण्डोनेशियामें तथा लंका और बर्मामें जाग्रत जनताको स्वाधीनताकी ओर जानेसे जो चीज़ रोक रही है, वह यही भूत है। भारतीयों के साथ आज भी मनुष्यताका व्यवहार नहीं हो रहा। अभी गत ११ अक्टूबरको लखनऊके फौजी हिसाबके दफ़्तरमें एक गोरे अफ़सरने फ़ाइल लानेमें आपत्ति करनेपर एक क्लर्कसे कहा बतलाते हैं कि 'हिन्दुस्तानी कहींके, तुम्हें यह काम करना ही होगा!' लन्दनमें 'विक्टोरिया-क्रास'-प्राप्त दो भारतीय सैनिकोंके एक होटलमें पहुँचनेपर कहा गया—'हम काले आदमियोंको नहीं रखते!' लन्दनके घायल भारतीय सैनिकोंमें सेवा-कार्य करनेवाली एक महिलाने शिकायत की है कि उन्हें बहुत घटिया दर्जेके कृत्रिम अंग दिए जाते हैं! भारतीय और गोरे सैनिकोंके वेतन, वर्दियों, सुविधाओं आदिमें जो भेद है, वह तो सर्वविदित है। यह ज़हर सिर्फ़ गोरे पुरुषोंमें ही हो, ऐसा नहीं है; गोरी महिलाओंमें भी पहुँच गया है। अभी हाल ही में कलकत्तेके पास एक फौजी नाचघरसे कुछ गोरी महिलाएँ इसलिए बाहर चली गईं कि वहाँ भारतीय महिला-सहायक-सेनाकी कुछ सदस्याएँ मौजूद थीं। और इन बेचारी भारतीय महिलाओंका एकमात्र दोष था इनका वर्ण, जब कि इन्होंने गोरे साम्राज्यवादकी रक्षाके लिए युद्ध-प्रयत्नमें योग दिया और सम्भवतः गोरे सैनिकोंके मनोरंजनके लिए ही यहाँ उपस्थित थीं। पिछले दिनों जो भारतीय छात्र ब्रिटेन और अमरीका गए, उनके साथ दुर्व्यवहार होने तथा बैठनेसोनेके लिए गन्दे स्थान दिए जानेके अनेक क़िस्से पत्रोंमें छपे हैं। अभी कुछ दिन पहले ब्रिटिश, डच, बेल्जियन और पुर्त्तगीज़

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan

जहाज़-मालिकोंकी परिषदमें यहाँ तक कहा गया कि अफ्रीकी, एशियाई और पश्चिमी द्वीप-समूहके काले लोगोंकी कार्यक्षमता कम है और उनकी रहन-सहनकी सतह भी नीची है, अतः उन्हें कम उजरत मिलनी चाहिए। इस तरह हमारे स्वाभिमान और मनुष्यताको ठेस पहुँचानेवाली बातें आए दिन होती हैं।

भारत नहीं, एशिया छोड़ना होगा

पर गोरोंके वर्णद्वेष-रूपी पापका घड़ा इतना भर चुका है कि अब अमानुषिक शोषण और बर्बर दमन द्वारा अधिक दिन उसकी रक्षा नहीं हो सकेगी। कनाडाने तो सिर्फ़ यूनियन जैकको ही विदा किया है, पर एशियावासी उसके साथ फ्रांसीसी और डच-साम्राज्योंके झण्डोंको भी उनके शासनके साथ ही विदा करनेपर तुले हैं। अगस्त '४२ में भारतीय जनताने जो 'भारत छोड़ो'का नारा दिया था, वह आज 'एशिया छोड़ो'का नारा बन चुका है और उसकी प्रतिध्वनि 'जय हिन्द'के रूपमें समूचे भारतमें गूँज रही है! बर्मा, इण्डोनेशिया और फ्रांसीसी हिन्द-चीनवाले आज स्वयं अपना भाग्य-निर्णय करनेपर आमादा हैं। वे ट्रूमैन या स्तालिन, एटली या द'गालसे नहीं, पं० जवाहरलाल नेहरूसे मार्ग-प्रदर्शन चाहते हैं (जब कि ब्रिटिश सरकार उनकी गिरफ़्तारी की चिन्तामें है!) एक दिन जो भारतीय लाठियों और गोलियोंके नामसे ही भेड़ोंकी तरह भाग खड़े होते थे, उन्हींने कलकत्ता, बम्बई, मदुरा, लखनऊ, रावलपिण्डी, लाहौर आदिमें साहस और धैर्यके साथ गोलियाँ-लाठियाँ खाईं; पर पीछे नहीं हटे। बर्मा पर थोपे गए फ़ाशिस्त शासनके खिलाफ़ यू सान और आंग सानके निरीक्षणमें मुक्तिकामी जनताका पुनर्संठगन हो रहा है। उन्होंने ब्रिटिश गवर्नरके हटाए जानेकी माँग की है। वीर और साहसी इण्डोनेशियन तथा हिन्द-चीनी दृढ़ताके साथ साम्राज्यावदियोंकी फ़ाशिस्त शक्तियोंसे लोहा ले रहे हैं। 'न्यू चाइना डेली'के कथनानुसार चीनको अमरीकन उपनिवेश बनानेकी चेष्टा करनेवाले अमरीकन पूँजीवादियोंने वहाँके कम्युनिस्तों और मुख्य रूपसे रूस के खिलाफ़ मोर्चाबन्दी करनेके विचारसे अपने प्रधान सेनापतिको चीनका एलची नियुक्त किया है! (इस नियुक्तिसे कुछ ही दिन पहले अमरीकाने रूसको फारससे अपनी सेना हटा लेनेको कहा है।) पर वह दिन दूर नहीं है, जब एशिया स्वतन्त्र होगा और उसकी स्वतन्त्रता समग्र संसारके शोषित-पीड़ित जनसमूहकी सच्ची स्वतन्त्रता और जनतन्त्रका श्रीगणेश होगा।

नए धुरी-गुट्टका निर्माण?

अब अस्पष्ट होता जा रहा है कि एशियाका यह मुक्ति-संग्राम वर्णोंका नहीं, वर्गोंका संघर्ष है। शोषित-शासित जनताने आज शोषक-शासकके अनीति और अन्यायपूर्ण 'अधिकार'को चुनौती दी है। इस महायुद्धने भले ही अमरीकन पूँजीवाद और यूरोपीय साम्राज्यवादकी प्राण-रक्षा की हो, पर इसके बाद आ रही शान्ति इनकी जड़ें हिला रही है। क्रान्ति और समाजवादको दो तरह प्रतिक्रान्ति (साम्राज्यवाद और पूँजीवाद) की शक्तियाँ भी किसी एक या दो देशोंमें अधिक दिन जीवित नहीं रह सकतीं। अतएव आज उन्होंने आपसमें मिलकर एक गुट्टके रूपमें संगठित होकर अपनी प्राण-रक्षा करनेका निश्चय-सा किया जान पड़ता है। इनका नेतृत्व अमरीकन पूँजीवाद कर रहा है। चीनकी धनिकों और ज़मींदारोंकी प्रतिगामी सरकारकी रक्षा (ताकि उसकी ओट में चीन उसका उपनिवेश बन जाय) वह अपने रुपए, सेना और शस्त्र-बलसे कर रहा है। इण्डोनेशिया, फ्रांसीसी हिन्द-चीन और बर्मामें ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच-सेनाएँ उसके शस्त्रास्त्रोंसे (जिनपर से अमरीकन झण्डे उतार लिए गए हैं, ताकि विरोधियोंके सामने वह इनकी ज़िम्मेदारीसे मुकर सके!) मुक्तिकामी आन्दोलनोंको दबा रही हैं। भारतीय पूँजीवादको प्रतिक्रान्तिका एक नया एशियाई गढ़ बनानेके खयालसे वह और ब्रिटेन दोनों उद्योगीकरणके नामपर भारतीय पूँजीपतियोंको अपनी शतरंजके मोहरे बनानेपर तुले हुए हैं। इस गढ़का श्रीगणेश शायद मोटरों और साइकिलोंके निर्माणसे होगा, जो आगे चलकर टैंक और बमवर्षक बनायगा! फ्रांस, इटली, बेल्जियम आदिसे भी 'बात' पक्की हो चुकी जान पड़ती है। ब्रिटेन किसी भी शर्त्तपर उससे कर्ज़ लेनेको तैयार है – शायद इसीलिए उसने यूनियन जैक हटाकर कनाडाको भी अमरीकाका बायाँ हाथ बन जाने दिया है!

इस सब गुटबन्दीके साथ अणु-बमने मानो इन गंजोंको नाखून भी बख्श दिए हैं! उसके रहस्यको महारहस्य बनाकर यह गुट्ट जनशक्तिके एकमात्र प्रतिनिधि सोवियत् रूससे पूछ रहा है—'तुम्हारी मन्शा क्या है? तुम्हें क्या सन्देह हैं?' गोया यह भी इन राजनीतिज्ञों(?)को कहकर बतलानेकी बात रह गई है! आज अमरीका रूससे कह रहा है—'फारस और मंचूरियासे अपनी सेनाएँ हटा लो!' अगर अमरीका जनतन्त्रकी भावनासे प्रेरित होकर ही ऐसा कर रहा होता, तो क्या इण्डोनेशिया, फ्रांसीसी हिन्द-चीन, यूनान, इराक और फिलस्तीनसे ब्रिटिश सेनाएँ हटानेके लिए कुछ कहना ज़रूरी न था? हिटलर और मुसोलिनी भले ही न रहे हों; पर आज उनके अधूरे कार्यको पूरा करनेकी ज़िम्मेदारी उन्हींका अन्त करनेवाले लेते नज़र आ रहे हैं। ट्रूमैन आज त्रिराष्ट्र-सम्मेलनकी आवश्यकता नहीं समझते! एटली और बेविन तथा हेंडरसन और मारीसनके मुँहसे आज मानो चर्चिल-चेम्बरलेन और एमरी-ईडन बोल रहे हैं! चर्चिल और ईडन उन्हें इन अनमोल बोलोंके लिए बधाई देते हैं और मज़दूर-दलके बेचारे सामान्य सदस्य टोरियोंकी तालियों की गड़गड़ाहटके बीच आँखें फाड़-फाड़कर अपनी सरकारका समाजवादीपन निहारते हैं! इस तरह जन-मुक्तिके व्यापक संग्राम का मुकाबला करनेके लिए प्रतिक्रान्तिका यह क़ाफ़िला 'जनतन्त्र'

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 3004

और 'समाजवाद'के छायादार वृक्षोंके नीचे जमा हो रहा है।

सिर्फ़ ६ महीने ठहर जाओ!

दूसरे महायुद्धके दौरानमें जनतन्त्रका दम भरनेवाले प्रतिगामी संयुक्त-राष्ट्रोंके सामने सबसे बड़ी नैतिक चुनौती भारतकी आज़ादी थी। अब शान्ति-कालमें वह समूचे एशियाकी आज़ादी का आन्दोलन बन चुकी है। अगर जर्मनी, इटली, फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड, डेन्मार्क, नार्वे, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया आदिकी जनताको अपना भाग्य-निर्णय करनेका अधिकार है, तो भारतका भाग्य-निर्णय एटली और हेंडरसन, हिन्द-चीनका द'गाल-सरकार और इण्डोनेशियाका हालैण्डकी वुढ़िया रानी किस नैतिक या क़ानूनी अधिकारसे करनेके हक़दार हैं? यह किसी एक देश या कुछ देशोंका नहीं, मूल नैतिक और राजनीतिक सिद्धान्त का सवाल है। इसका जवाब लाठियाँ, गोलियाँ, टैंक और बम हर्गिज़ नहीं हैं। भारत एशियाई मुक्ति-आन्दोलनका बारूदघर हो रहा है और इसीपर पानी डालनेके लिए आज बड़ी-बड़ी योजनाएँ सोची जा रही हैं। पहली मज़दूर-सरकारके सत्तारूढ़ होनेपर भारतके प्रति सबसे अधिक सहानुभूति दिखानेवाले प्रधान-मन्त्री रेमज़े मैकडोनल्डने कहा था कि ६ महीनेमें भारतको आज़ादी मिल जायगी! अपनी इस झूठकी बेशर्मी सहनेके लिए वे ६ महीने ही क्यों वर्षों तक ज़िन्दा रहे, मगर भारत तो ग़ुलाम ही रहा! आज बढ़-बढ़कर बातें करनेवाले प्रो० लास्की, पैथिक-लारेन्स जार्ज कैटलिन आदि फिर भारतीयोंसे कम-से-कम ६ मास ठहर जानेको कह रहे हैं! वक़ौल कैटलिनके ६ मास और धैर्य रखनेसे भारतका शताब्दियोंके लिए सुखद भाग्य-निर्णय हो जायगा!

लेकिन शताब्दियोंके लिए भारतका सुखद भाग्य-निर्णय करनेवाले इन तथाकथित बुद्धिजीवी साम्राज्यवादियोंकी ज़हनियतमें तो हमें एक क्षणको भी रत्ती-भर सुखद या आशाप्रद परिवर्त्तन हुआ नज़र नहीं आता। क्रिप्स-प्रस्तावसे आगे आज भी इनकी अक़्ल नहीं पहुँच पाती। लारेन्स और एण्डरसनके कथनोंमें आज भी हम एमरी या होरकी बातोंसे कोई मौलिक भेद नहीं पाते। देशकी सबसे बड़ी प्रतिनिधि-संस्था कांग्रेसके प्रति आज भी मज़दूर-सरकारका रुख धोखे, दमन और प्रतिशोधका है। फूट डालकर शासन क़ायम रखनेमें आज भी वह पिछली सरकारोंसे पीछे नहीं है। ऐसी हालतमें इण्डोनेशिया और फ्रांसीसी हिन्द-चीनको दूसरोंके साम्राज्यवादी नागफाँससे मुक्त न होने देनेकी कुचेष्टा करनेवाली ब्रिटेनकी साम्राज्यवादी सरकार भारतको ६ मासमें पूर्ण स्वतन्त्र कर देगी, इसपर यदि भारतीय जनताको विश्वास न हो, तो आश्चर्य क्या? आदमीकी पहचान कथनीसे नहीं, करनीसे होती है; और भारतीय जनता अंगरेज़ोंकी करनी तथा कथनी दोनोंसे सुपरिचित हो चुकी है!

'सैनिक' और 'नेशनल हैरल्ड'

युद्ध-स्थितिकी ओट लेकर सरकार लोकमतको जिस निर्ममताके साथ कुच सभ्य देशमें उसकी मिसाल मिलनी मु समाप्त हो चला है और वह गला फाड़ जानेकी दुहाई दे रही है, उसने फि तलबीके पुराने हथियारोंका प्रयोग शुरू 'नागपुर टाइम्स', 'सर्चलाइट', 'इण्डिपे शिकार हो चुके हैं। इस वातावरणमें 'नेशनल हैरल्ड'का पुनर्जन्म हमारे लि बढ़कर गर्वकी बात है। 'जय हिन्द'के अभिवादन करता हुआ 'सैनिक' छठी और अपने संस्थापककी देशभक्तिको सा अवतीर्ण हो रहा है। इसी 'जय हिन्द गुँजता और उनके दिल दहलाता हुआ अपने नए स्वर-संधानके साथ सामने आ योगी पत्र न होकर देशके स्वाधीनता-सं स्वर हिन्दके जय-लाभकी आकांक्षाको पू में गूँजे और प्रत्येक भारतीयको नई प्रे हमारी हार्दिक आकांक्षा है। हम दोनों स्वागत करते हुए उनके दीर्घ जीवनकी

पं० श्रीराम शर्मा रिहा

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता 'विशाल भारत'-परिवारके सुपरिचित पं तीन वर्षके कारावासके बाद गत २८ न रिहा कर दिए गए। शर्माजी नवम्बर ' थे। आपको तथाकथिक आगरा-षड्यंत्र रूपमें फँसानेकी पुलिसकी चालोंके बेका राजबन्दीके रूपमें रोक रखा गया। दुर्व्यवहारके कारण आपका स्वास्थ्य काफ़ तक हिन्दी-संसार शर्माजीको केवल एक शिकारीके रूपमें ही जानता था; पर दे संग्राममें जूझकर उन्होंने बतला दिया अर्पित करनेवालोंमें वे किसीसे पीछे रह हृदयसे फिर अपने बीच उनका स्वागत

हमारा आगामी विशेषांक

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता हो अध्यक्षतामें आगामी जनवरीमें होनेवाले प्रचार सभा, मद्रासके रजत-जयन्ती समा भारत'का आगामी अंक 'दक्षिण-भारत- होगा। स्थायी ग्राहकोंको यह अंक मुफ़्त लेनेवालोंको १) में। इसकी वी० पी० न

मुद्रक और प्रकाशक—श्री निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कल
CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi.Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha